

NAVNEET FEB-DEC 1961 G K U

11281

ब
ब
नी
ब

हिन्दी डाइजैस्ट

~~R10940~~

ग्वालियर के

क्षितिज पर नया सिताय...



ग्रासीलीन से
बने कपड़े शीघ्र ही
सभी प्रमुख स्टोर्स पर
उपलब्ध

GR
GRASIM

दि ग्वालियर रेयन सिल्क मेन्यू फैब्रिकरिंग
(वीविंग) कम्पनी लिमिटेड
स्टेपल फाइबर डिवीजन
विरलाग्राम, नागदा (एम.पी.)

Grasilene

सूटिंग्स/शर्टिंग्स

तथा अन्य कपड़े

वैज्ञानिक मिश्रित धागे ग्रासीलीन के बने।

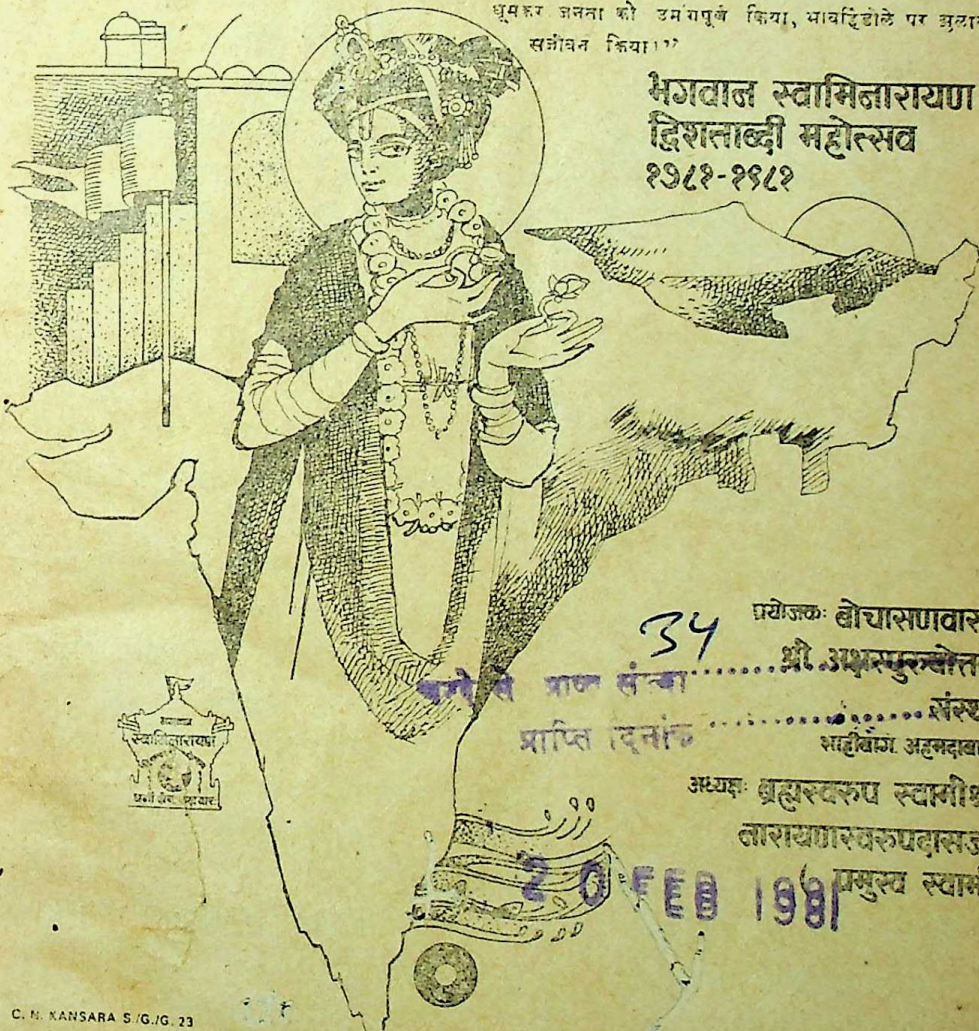


Grasilene

कृत्रिम सामान्य विस्कोज
तथा अन्य प्राकृतिक रेशों से बना एक
आश्चर्यजनक उच्च कार्यकारिता वाला
मिश्रित धागा !

इतिहासविद् श्री गंगाधर तिलक जी कहते हैं: "१८ वर्ष की भरतवानी में रातारी के परिवर्तन के प्रभाव में श्रीजी भद्वाराज धर्मधुरंधर बने। उनके पश्चात् तीस वर्षों का काल, मुजरात देश में उनके धर्मविश्वजय का काल रहा।" उस समय यह जीवनधुरंधरों का रथ कहलाता था। "और श्रीजी द्वारा प्रयत्नित धर्म की लाक्षणिकता क्या कही जाये? यह धर्ममार्ग है। भाचार-स्वच्छता का, सर्वश्रेष्ठ अन्तर्गत स्वच्छता का यह धर्ममार्ग है। भांग, गांजा, तंबाकू का सेवन लुहवाहर श्रीजी ने गृहस्थ के जीवन की निर्मादक बनाये; रंगी तृप्तिधियों को पुडवा कर श्रीजी ने संतों की निर्मादी बनाये; स्त्री-पुरुष के दहीन-झांशों को बलम अलग करवाकर श्रीजीने देवमंदिरों की पवित्र किया। पंचवर्तमान ग्रहण करवाकर सांप्रदायिकों को भाचार-मुक्त किया, शिक्षावर्ती प्रदान कर व्यवहारशुद्ध किया, प्रेमधर्म की दवां कर अन्तर्मुक्त किया। धर्म, उत्सव, समाज का आयोजन कर जनता में उत्साह का उफान भरा। मध्य मंदिर, अहिंसात्मक बल, विमुक्त पूजाविधान, पालना, हिंदोल, वलंतवर्तमान, जन्माष्टमी के वैष्णव भंडोत्सवों का आयोजन कर जनता को जगृण किया। परिव्राजक के समान गौव गवि में धूमकर जनता को उमंगपूर्व किया, भावहिंदोले पर झुलाया, संसार को सजोवन किया।"

भगवान स्वामिनारायण
द्विराताब्दी महोत्सव
१९८१-१९८२



प्रयोजक: बोचासणावासी
श्री. अक्षयपुरखोतम
संस्था
साहोबाजी अहमदाबाद
अध्यक्ष: ब्रह्मचरुप स्वामीश्री
लारायणचरुपदासजी
(प्रमुख स्वामी)

20 FEB 1981

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया

भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५३

*

संपादक

वीरेन्द्र कुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र :

भगवान गोमटेश्वर बाहुबली

[सौजन्य : फोटो फीचर्स निट :

टाइम्स ऑफ इंडिया]

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३० ; अंक : २

एको देव : सर्वभूतषु

एक वार्तालाप ५०

मानवीय प्रज्ञा के रहस्य

जगजीत सिंह ९

कालजयी हस्ताक्षर

मिश्रीलाल जैन १६

एक ही चेहरा : तीन मुद्राएं

प्रस्तोता : विक्रान्त माथुर १८

एक मुकदमा : कई सवाल

कुमार प्रशांत २०

क्या मनुष्य हो सकता है ?

हरिमोहन शर्मा २४

प्रार्थना

३३

अपने 'मैं' को ही नमस्कार

३४

ताओ उपनिषद्

ताओ तेह किंग ३५

बाहुबली

जैनेन्द्रकुमार ३६

भगवान गोमटेश्वर ङग भरने को हैं

पिनाकपाणि शंकर ४२

महावीर और आइन्स्टाइन

अशोक कुमार सक्सेना ४४

बाहुबली : एक आत्म-संलाप

लक्ष्मीचंद्र जैन ४८

बिछुड़ी आत्माओं का मिलन

म. र. पं. गोपीनाथ कविराज ५२

दो कविताएं

गिरिजाकुमार माथुर ५६

पुरुष और नारी

नलिनीकांत गुप्त ६०



फरवरी १९८१

अन्न की वैदिक ऋचाएँ

सावित्री परमार ६४

भारतीय कला और साहित्य के सौ वर्ष
सम्भवामि युगे युगे (उपन्यास-अध्याय)

सन्ध्यालाल ओझा ६५

डा. मुल्कराज आनंद ७७

कला, अकला और सकला....

राजू विश्वनाथन ८०

रथनेमि (जैन पुराकथा)

गणेश ललवानी ८८

आधुनिक जर्मन महाकवि रिल्के का

प्रेम-पत्र ९७

मानव, मानव की खोज में....

राजेन्द्रपाल शर्मा १००

प्रेम-कहानी (चीनी कविता)

शिह चिंग १०५

द्विरागमन (हिंदी कहानी)

सुधा १०८

नयी कविता का आत्म-संदर्भ

पुष्पारानी गर्ग ११२

मैया (हिंदी कहानी)

अमिता श्रीवास्तव १२०

भगवान गोमटेश्वर बाहुबली

प्रस्तोता : श्री दर्शन १२५

भवन : वृत्त और विचार १४९

दो क्षण तो हंस लें १५३

चित्रसज्जा : वी. एन. ओके, कमलाक्ष

शोणै, रमेश सत्यार्थी, दिनेश शाह,

टी. राणा, आलोक जैन ।

अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित पूर्णतया शिक्षा, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी प्रगतिवादी, संस्थापक : कुलपति क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री धरमवी म. खटाऊ, उपाध्यक्ष : श्री निरधारीनाथ मेहता, श्री जयसुखलाल हाजी ।

सहयोगी प्रतिष्ठान

१- मुम्बईकी संस्कृत महाविद्यालय २-शास्त्रीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३-सरल संस्कृत परीक्षा विभाग ४-गीता विद्यालय ५-मुगा-नाल गोयनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रतिष्ठान ६-मुन्शी सरस्वती मंदिर (पुस्तकालय) ७-कलमजी रामजी बाल पुस्तकालय ८-भारतीय संगीत शिक्षापीठ ९- भारतीय नर्तन शिक्षापीठ १०-भारतीय इतिहास विभाग ११-प्रकाशन मंदिर, पुस्तक मुनिवर्मिटी, मुन्शी साहित्य, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या प्रामाणिक), भवन्म जर्नल (अंग्रेजी पत्रिका), सचिद (संस्कृत प्रामाणिक), नवनीत हिन्दी डायरेक्ट (हिन्दी, प्रामाणिक), नवनीत समर्पण (गुजराती प्रामाणिक) १२-प्राचीन अंतर्दृष्टियाँ और आधुनिक आविष्कार योजना १३-ओपनिषदिक योजना १४-राजाजी शतवाषिणी समिति १५- म. म. कला कालेज और न. म. विज्ञान विज्ञान संस्थान (अंधेरी) १६-बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (नवी दिल्ली) १७-हजारीमल सोमानी कालेज, कला एवं विज्ञान (कोपाटी, बम्बई) १८- सरदार पटेल अभियांत्रिकी कालेज (अंधेरी) १९- रणछोडनाल अचरतनाल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०- रणछोडनाल अचरतनाल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१-जसोदाबेन वाणिज्य कालेज, (डाकोर) २२- कला एवं विज्ञान कालेज (डाकोर) २३- स्वामीनारायण पॉलिटेक्निक (डाकोर) २४- श्री ज्ञानलाल कालिदास जोगी महिला कालेज (जामनगर) २५- व. स. मेहता विज्ञान कालेज (भरवारी) २६- राजेन्द्र प्रताप संश्लेषण एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मृतिदे) प्राणनाथ देवकरन नानजी संश्लेषण एवं प्रबंध-विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंश्लेषण कालेज, नवी दिल्ली; हस्तिनाल भगवती जनसंश्लेषण कालेज अहमदाबाद तथा बंगलौर; सोमानी जनसंश्लेषण कालेज, एरनाकुलम; बड़ोदा, चंडीगढ़, गुटूर, हैदराबाद, मंगलौर तथा त्रिपुर में स्थित जनसंश्लेषण कालेज २७- जवाहरलाल नेहरू भाषा अकादमी, नवी दिल्ली २८- ज. ह. वाडिया स्कूल (अंधेरी) २९- बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याश्रम) बड़ोदा तथा भरवारी ३०-भवन का विद्या मंदिर, एलामक्कर, एरनाकुलम ३१- कोचीनवाट पर भवन का स्कूल, कोचीन ३२- बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याश्रम) भरवारी, इनाहाबाद के पास ३३- भवन का पब्लिक स्कूल, भेन, रामचन्द्रपुरम्, हैदराबाद ३४- संयुक्त संस्थापक : संस्कृत सिन्धु परिवर्ध; मास्कीय स्त्री सेवा संघ; ज्योतिष परिवर्ध (बम्बई) ३५- संस्कृति पाठ्यक्रम फुलकें ।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलौर, बड़ोदा, भोपाल, भुवनेश्वर, कलकत्ता, कोयंबटूर, कोयम्बटूर, डाकोर, दिल्ली, एरनाकुलम, गुटूर, हैदराबाद, जम्मू, जामुनगर, काकोनाडा, कानपुर, मद्रास, मद्राई, मंगलौर, मुंबई, नागपुर, शिवान, श्रीनगर, त्रिपुर, विद्यावाटनम्, वल्लन (तंजूर जिल्ला) ।

भारतीय विद्या भवन

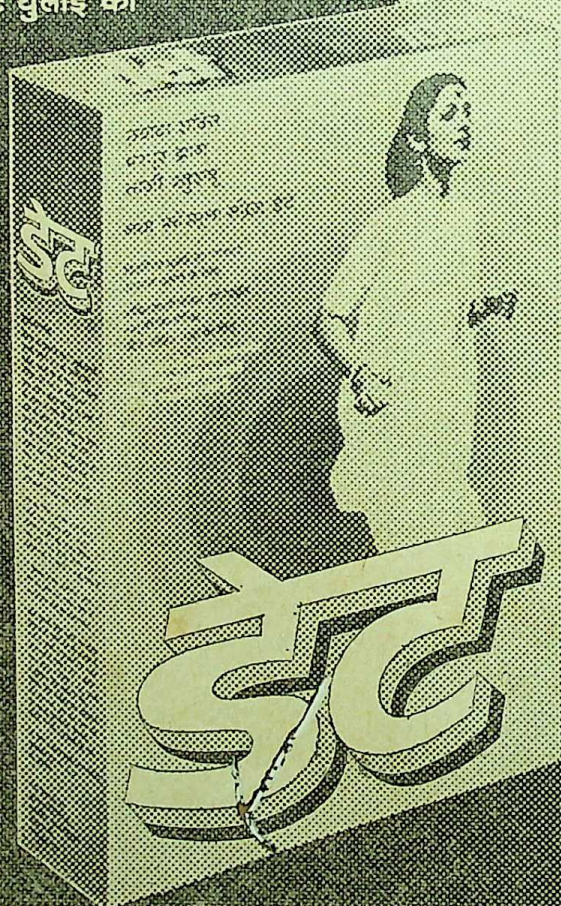
के.ए.ए. नयी मार्ग, कोपाटी, बम्बई-४००००७

आलाशान सफ़ेदी डेट की सफ़ेदी

नया फॉर्मूला

डेट

डिटर्जेंट धुलाई का
पाउडर



बेजोड़ धुलाई की शक्ति, भगपुर हाग, ताज़ा खुशबू और आलीशान सफ़ेदी।

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri



111281

एको देवः सर्वभूतेषु

एक वार्तालाप : स्वामी मुक्तानंद परमहंस के साथ

जिज्ञासु : ध्यान में पैरों के अंगूठों से प्राण का झंकार सहित ऊपर उठना और प्रकाशमयी अवस्था में आकाश में उड़ना, शहरों के ऊपर दूसरे लोगों के देखते हुए उड़ते जाना, इसमें क्या सचमुच सूक्ष्म शरीर बाहर निकल जाता है या यह अवस्था एक सात्विक प्रश्नमात्र है? फिर स्थूल शरीर के स्थित रहने पर भी स्थूल शरीर सहित उड़ते कैसे देखा जा सकता है? अपने शरीर को भिन्न रूप से उड़ते हुए देखने वाला कौन है? जीवात्मा या सबका साक्षीरूप ईश्वर?

बाबा : ये सब अनुभव सूक्ष्म शरीर में होते हैं। देश-देशान्तर में जाना और सब कुछ देखना, गिरि, कंदरा, पर्वत पर उड़ते जाना, ये सूक्ष्म शरीर की ही अनुभूतियां हैं। पर सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से बाहर निकलकर नहीं उड़ता। सूक्ष्म शरीर जितना अंदर छोटा है, उतना ही बाहर बड़ा है। अंदर व्यष्टि सूक्ष्म शरीर और बाहर विराट सूक्ष्म शरीर, दोनों की परस्पर तादात्म्यता है। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर में रहते हुए ही देश-देशान्तरों को देख सकता है। फिर, अंतर-हृदय छोटा दिखने पर भी बाह्य जगत् से बड़ा है।

१९८१

५

हिंदी डाइजेस्ट

जीवात्मा स्थूल शरीर को ऐसा ही रखते हुए, बाहर निकल सकता है, मगर ऐसा नील के साथ संबंध स्थापित करने से ही होता है। वह सूक्ष्म शरीर से नहीं महाकारण द्वारा शरीर के बाहर जाता है। बड़े-बड़े महात्मा और योगी लोग नील द्वारा ही शरीर को छोड़कर कहीं भी आते-जाते हैं। वस्तुतः नील बिंदु घर है, आत्मा नहीं। वह तो परमात्मा का वाहन है। महाकारण शरीर बाहर निकल जाता है, पर दूसरे को दिखने की बात शास्त्रीय नहीं। स्थूल आंखों से यह देखा नहीं जा सकता। उसको देखने के लिए बहुत सूक्ष्म आंखें होनी चाहिये। लोगों की स्थूल दृष्टि उसे देख नहीं सकती। यदि योगी अपने महाकारण शरीर को कुछ स्थूल जैसा दिखने के लिए बना ले, परंतु ऐसी रीति नहीं है। वस्तुतः जैसे आकाश में अनेक विमान उड़ते हैं, वैसे ही अनंत सिद्ध पुरुष अपने-अपने महाकारण शरीर में उड़ते रहते हैं। वे लोग अपने को कहां दिखते हैं? उनको हम दिखते हैं। वे हमको तभी दिख सकते हैं, जब हमारा ध्यान अंतर-प्रवेश होकर सूक्ष्म-स्तरों पर पहुंच जाता है। भंग हो जाने और स्थूल अवस्था में वापस आ जाने पर, फिर दुबारा स्थूल जगत ही दिखेगा, सूक्ष्म नहीं। सूक्ष्म जगत त्रिशिष्ट दशा में ही दिखता, उसके भंग होने पर महात्मा को भी दिखता नहीं, क्योंकि जगत सामय है, निरामय नहीं। चाहे

नवनीत

स्थूल जगत हो अथवा सूक्ष्म, है तो जगत ही, है तो प्रवृत्ति ही, परम निवृत्ति अथवा चिदानन्द तो है नहीं।

ये अनुभूतियां स्वप्न नहीं, सत्य हैं। स्थूल शरीर उड़ नहीं सकता। हां, यदि कोई योगी इसकी स्थूलता का नाश करके सूक्ष्म बना ले, तब भले ही उड़ने लगे। ध्यान करते-करते शरीर की स्थूलता चली जाती है। शरीर में पृथ्वी और जल के अंश कम होते जाते हैं। मनुष्य की जड़ता जल और पृथ्वी के कारण ही है। उच्च ध्यान करने वाला प्रायः क्षीण, लघु और हल्का हो जाता है। उसका शरीर बहुत कोमल हो जाता है और उसका वजन घट जाता है। स्थूल शरीर की स्थूलता का नाश हुए बिना इसका उड़ना कल्पना मात्र है। हां, योगी को अंतरगति प्राप्त हो जाती है, वह अंतर से चाहे ज़िंदर भी जा सकता है।

बहुत से योगी अपने ही शरीर को उड़ते हुए देख सकते हैं। उन्हें अपना शरीर स्वर्ग में जाता, नरक में जाता, भिन्न-भिन्न लोकों में जाता दिखता है। देखनेवाला तो आत्मा ही है, वही द्रष्टा है। वह सभी का द्रष्टा है। जागृति का भी द्रष्टा और स्वप्न का भी। वह जागृति के व्यवहार का सूक्ष्मता से निरीक्षण करते हुए जागृति से दूर रहता है और रात्रि-स्वप्न के सब व्यापार स्वप्न से दूर रहकर देखता है। निद्रा के साथ तादात्म्य होकर सो नहीं जाता। वह

६

फरवरी

जगत
थवा
हैं।
हां,
नाश
उड़ने
लता
और
नुष्य
ही
णिण,
सका
और
रीर
नका
को
तर
को
पना
ता,
है।
एष्टा
का
गृति
क्षण
और
से
साथ
वह
वरी

सतत साक्षी है, सर्वात्कृष्ट साक्षी है। रात्रि का भी साक्षी, दिन का भी साक्षी। जागृति का भी साक्षी, स्वप्न का भी साक्षी। निद्राकाल में निद्रा से दूर रहता है। तुरीयावस्था को भी जानता है। सुषुप्ति का भी साक्षी, तुरीया का भी साक्षी। बाह्य जगत का साक्षी, अंतर जगत का साक्षी। वह प्रत्यक् आत्मा है, नील का अंतरात्मा है। वह सभी में एक है, किंतु बहुत-जैसा भासता है। देखो, इस मकान को बनाने से पहले यहां का आकाश बाहर का आकाश था। अब इस मकान के बनने के बाद, यहां का आकाश इस मकान का आकाश हो गया है, फिर भी यह आकाश और बाहर का भिन्न आकाश नहीं है।

एक दूसरे में मिल-जुले हैं। इसीलिए शास्त्र कहते हैं : 'एको देवः सर्वभूतेषु।'

एक ही परमात्मा सब भूतों में साक्षी भाव से उनके अंतर गुह्य रूप से रहता है। वही सर्वभूतों का अंतरात्मा है। सभी के कर्मों का अध्यक्ष है। सभी इन्द्रियों, सभी देवताओं का अध्यक्ष है। आंखें देखतीं तो उसी से, कान सुनते तो उसी से, जिह्वा बोलती तो उसी से, प्राण आते-जाते तो उसी की अध्यक्षता में। 'साक्षी चेतो केवलम् निर्गुणश्च' वह सभी का साक्षी है। परम चेतन है, निर्गुण है। गुण-रहित, कामना-रहित, लिंग-रहित, चाह-रहित है। बाहर-अंतर रहित है, मैं-तू रहित है।



‘नाटीगर्ल आफ इंडिया’

एक बार असहयोग आंदोलन के दौरान श्रीमती सरोजिनी नायडू को प्रवासी भारतीयों से संबंध स्थापित करने पूर्वी अफ्रीका भेजा गया। उनके सम्मान में प्रवासी खोजा संप्रदाय ने एक वृहत् सभा का आयोजन कर उनका अभिनंदन किया। वक्ता थे वहीं के एक समृद्ध खोजा व्यापारी, जिन पर लक्ष्मीजी की तो अगाध कृपा थी, किंतु सरस्वती की कृपा से वे वंचित थे। अंग्रेजी भाषा का ज्ञान सीमित होने के कारण उनका भाषण एक स्थानीय शिक्षित युवक ने ही लिखा था।

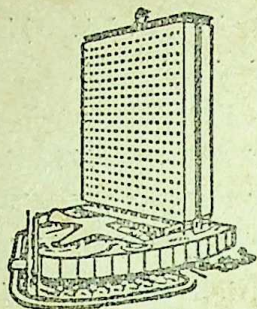
जब वे अभिनंदन-पत्र पढ़ने लगे तो उस युवक ने जहां सरोजिनी को उनकी बहुचर्चित उपाधि 'दि फेमस नाइटिंगल आफ इंडिया' (भारत कोकिला) कह संबोधित किया था, वहीं पर उक्त खोजा व्यापारी लड़खड़ा गये, क्योंकि इस अंग्रेजी शब्द से उनका कोई पूर्व परिचय नहीं था। फिर भी उनके व्यापार-कुशल मस्तिष्क ने गाड़ी यह पढ़कर खींच ही ली, 'दि फेमस नाटी गर्ल आफ इंडिया' (भारत की प्रसिद्ध शैतान लड़की)। इस चुटकुले को जब भारत कोकिला स्वयं हंस-हंसकर सुनाती थीं, तो सभा भवन देर तक कह-कहों से गूंजता रहता था।

—ललित कुमार पारेख,

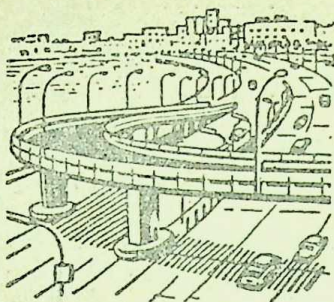
५८, श्रीनाथ मार्ग, उदयपुर-३१३००१ (राजस्थान)



SKYSCRAPERS



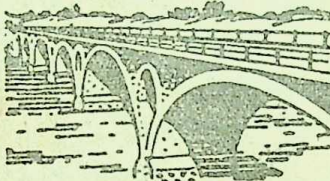
FLY-OVERS



STADIUMS



BRIDGES



For modern projects

ANCHOR

CONCRETE SHUTTERING PLYWOOD

is used
to cut drastically
shuttering and centering
costs.

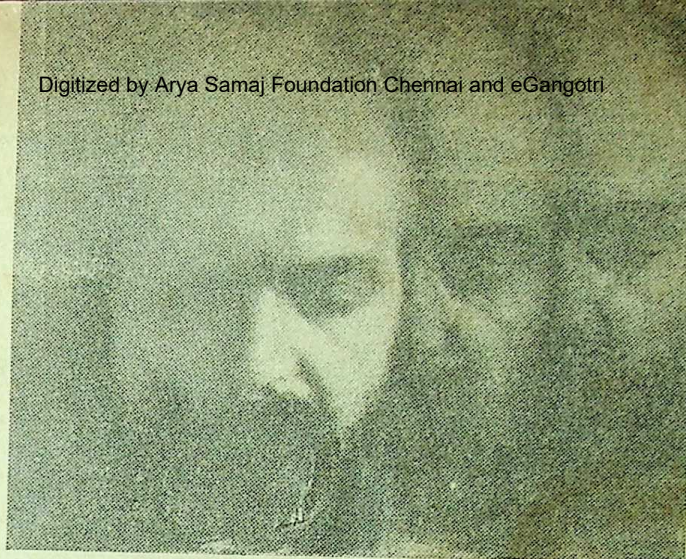
For details write for our Technical Bulletin.



**THE INDIAN PLYWOOD
MFG. CO. LTD.**

Regd. Office: 9 Wallace Street, Fort,
Bombay 400001

ANCHOR



मानवीय प्रज्ञा के रहस्य

जगजीत सिंह

क्या मस्तिष्क के उच्चतम कार्यकलापों को दोहराने के लिए कम्प्यूटरों का प्रयोग किया जा सकता है? प्रस्तुत लेख में इस सम्भावना पर विचार करते हुए, एक प्रख्यात भारतीय वैज्ञानिक कहते हैं कि कृत्रिम बुद्धि की खोज लम्बी और श्रमसाध्य होगी; क्योंकि मानवीय प्रज्ञा का भेद एक आदि युगीन रहस्य है। Book of Ecclesiastes के अज्ञात लेखक के शब्दों में 'आदि मानव भी उसे पूरी तरह नहीं समझ सका, और और अंतिम मानव को भी उसका पता नहीं चल पायेगा।'

तुर्की में एक कहावत है, 'अगर अल्लाह आपको सम्पन्नता देता है, तो उसके साथ-साथ अकल भी देता है।' इस बारे में संदेह है कि यह कहावत लोगों और राष्ट्रों के बारे में भी सच निकली है। और इस बारे में भी संदेह है कि आधुनिक शिल्पविज्ञानीय समाज की सम्पन्नता के

परिणामस्वरूप, मानव की मानसिक सामर्थ्य का विकास हुआ है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि आज का शिल्पविज्ञानीय विश्व उपलब्ध सम्पन्नता से मेल खाने वाले मस्तिष्कों को कृत्रिम रूप से पाने का सपना देखे।

मानवीय बुद्धि के संश्लेषण की जांच

When you save with **NEW BANK** Smiles are on the way



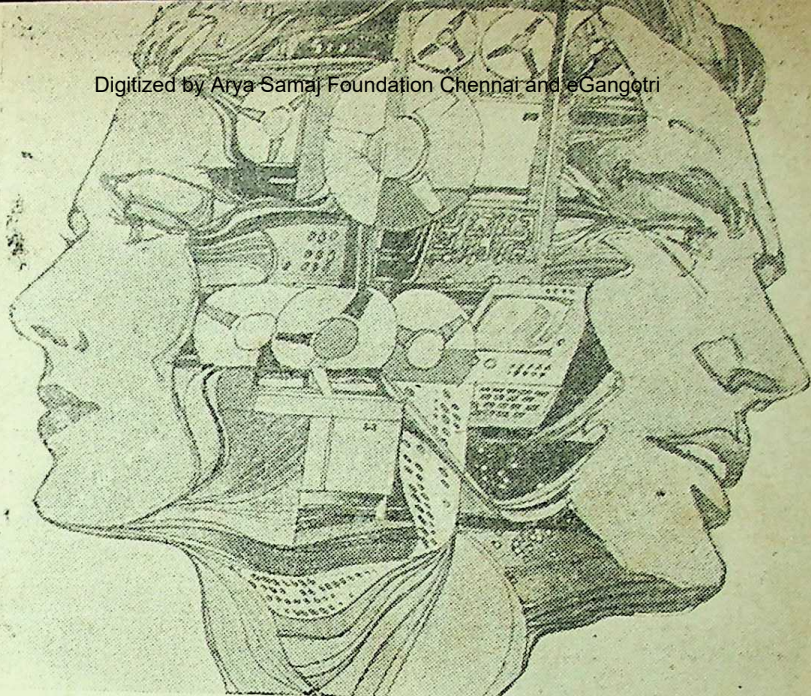
Security is happiness. When you know your savings in NEW BANK will take care of all your rainy days, you can smile with ease.

Start saving with NEW BANK today. Our various schemes like Saving Accounts, Fixed Deposits, Reinvestment Deposits, Janta Deposits and Popular Deposits will assure these smiles for you.



NEW BANK OF INDIA

(A Government of India Undertaking)



करने की आवश्यकता पर बल देने वाले पहले व्यक्ति थे, प्रख्यात अमरीकी गणितज्ञ नोरवर्त वीनर। १९४८ में प्रकाशित 'सायबरनेटिक्स' नामक पुस्तक में उन्होंने उद्योगों में स्वयंचालित यंत्रों के अधिक-धिक प्रयोग के दौर का उल्लेख करते हुए, भविष्यवाणी की थी कि इस दौर की परिणति, ऐसी नयी किस्म की मशीनों में होगी, जो शारीरिक श्रम द्वारा उत्पादित शक्ति के स्थान पर, प्रमस्तिष्कीय शक्ति का उत्पादन करेंगी। यह सच है कि हमारी विचारणा के कामकाजों का स्थान लेने दैत्याकार यांत्रिक मस्तिष्कों की कल्पना कोई नहीं है। वीनर के प्रदर्शन में नयी बात यह थी कि ऐसे दैत्याकार यांत्रिक मस्तिष्कों की कल्पना एक अव्या-

वहारिक सपना नहीं रह गयी थी।

विज्ञान-कथाओं के इस विषय को वास्तविक और आदरणीय बनाने के उद्देश्य से वीनर को जिन विशेषज्ञों के आविष्कारों पर आश्रित रहना पड़ा, वे थे : द्वितीय महायुद्ध के दौरान प्रथम सफल स्वचालित आंगुलिक कम्प्यूटर ENIAC की संरचना करने वाले जॉन वान न्यूमन, 'सायबरनेटिक्स' की आधार-शिला के रूप में मान्य, सूचना-सिद्धांत का आविष्कार करने वाले सी. ई. शेनन; सूचना और उत्क्रम-माप के बीच संबंध स्थापित करने वाले एल. ज़िलार्ड; जीवित मस्तिष्क की प्रक्रिया को उत्तेजन देने के महत्वाकांक्षी प्रयास में तंत्रिकीय के सिद्धांत का आविष्कार करने वाले वाल्टर मिट्स

और डब्ल्यू.एस. कुलोक । इनके अतिरिक्त
वैल टेलीफोन, कैलिफोर्निया इन्स्टीट्यूट
ऑफ टैक्नालोजी और मैसाचूसेट्स इन्स्टी
ट्यूट ऑफ टैक्नोलोजी की प्रयोगशालाओं
में काम करने वाले अनेक वैज्ञानिकों के
आविष्कारों से भी वे लाभान्वित हुए ।
इन लोगों के आविष्कारों तथा स्वयं
अपने प्रयोगों के आधार पर, वीनर यह
सिद्ध कर सके कि मानसिक कार्य करने
वाली प्रमस्तिष्कीय मशीन की संरचना,
सैद्धांतिक रूप से, दूसरे काम करने
वाली मशीनों की संरचना से भिन्न नहीं
है । सच तो यह है कि हमारे प्राकृतिक
मस्तिष्कों के संदर्भ में, प्रमस्तिष्कीय
मशीन उन्हीं विशाल मशीनों का ही एक
प्रतिरूप है, जिन्होंने हमारी शारीरिक
शक्ति की सामर्थ्य को कई गुना बढ़ाकर
दिखाया है ।

जिस प्रकार कारखाने में काम करने
वाला एक मजदूर 'पॉवर मशीन' की
सहायता से हजार अश्वशक्ति या इससे
अधिक क्षमता वाले शारीरिक श्रम के
बराबर का उत्पादन करके दिखा सकता
है, भले ही, स्वयं अपने बाहुबल से वह इस
उत्पादन का अत्यल्प भी नहीं कर सकता ।
इसी प्रकार एक दिन हम किसी ऐसी
विधि का आविष्कार भी कर सकेंगे,
जो हमारी बौद्धिक शक्ति का विस्तार कर,
हमें वह सर्वव्यापक परिज्ञान दे सके,
जिसकी हमारे अंदर कमी है । ऐसे ही
विस्तार से, हम उन आज के विश्व के

ओरियन्ट पेपर एन्ड इन्डस्ट्रीज़ लि.

रजि. आफिस -

ब्रजराजनगर, उड़ीसा

उत्तम प्रकार के प्रिंटिंग-राइटिंग,
पेकिंग-रेपिंग कागज और पेपर
बोर्ड के निर्माता

मिल्स : ब्रजराजनगर-७६८२१६

अमलाई - ४८४११७

शीघ्र पत्र वितरण हेतु पोस्टल
पिन कोड व्यवहार करें ।

सामने मौजूद उस संकट को दूर कर सकते हैं, जिसे दूर करने के प्रयास में समाज-वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, मानवीय इंजीनियरिंग तथा अन्य शोधकर्ता लगे हैं। इन लोगों को थोड़ी-बहुत सफलता मिली भी है, पर उसका श्रेय मानवीय मस्तिष्क से अधिक किसी विवेकी बुद्धि-विस्तारक मशीन को नहीं दिया जा सकता। उसका श्रेय, वास्तव में आज के दैत्याकार कम्प्यूटरों को जाता है। चूंकि ये विशाल कम्प्यूटर गणित की उन पेचीदा गणनाओं को, जिन्हें मानव-मस्तिष्क को हल करने में कई सौ वर्ष लग जायें, कुछ ही घंटों में हल करके दिखा सकते हैं, इसलिए अनेकानेक प्रतिबंधों से गुंथी आर्थिक, सामाजिक और व्यवस्थीय समस्याओं को हल करना संभव हो सका है।

कम्प्यूटर की सीमित क्षमताएं

किंतु गणना, नियंत्रण और सम्प्रेषण के कई बढ़िया कारनामों के बावजूद, आधुनिक कम्प्यूटर अपने प्रारंभिक 'प्रोग्रामिंग' से आगे किसी विचार का सर्जन नहीं कर सकता। 'प्रोग्राम' में दिये गये निर्देशों के रूप में उसे जो सूचना दी जाती है, वह महज उन्हीं के परिणामों तक पहुंच सकता है। इस सीमाबंधन के अर्थ यह है कि वह किसी नये विचार या निर्देश का अपने आप सर्जन नहीं कर सकता। क्या यह सीमाबंधन हमेशा रहेगा? या आगामी काल के संरचनाकार, ऐसे स्वचालित यंत्र या यंत्रवत् चलने

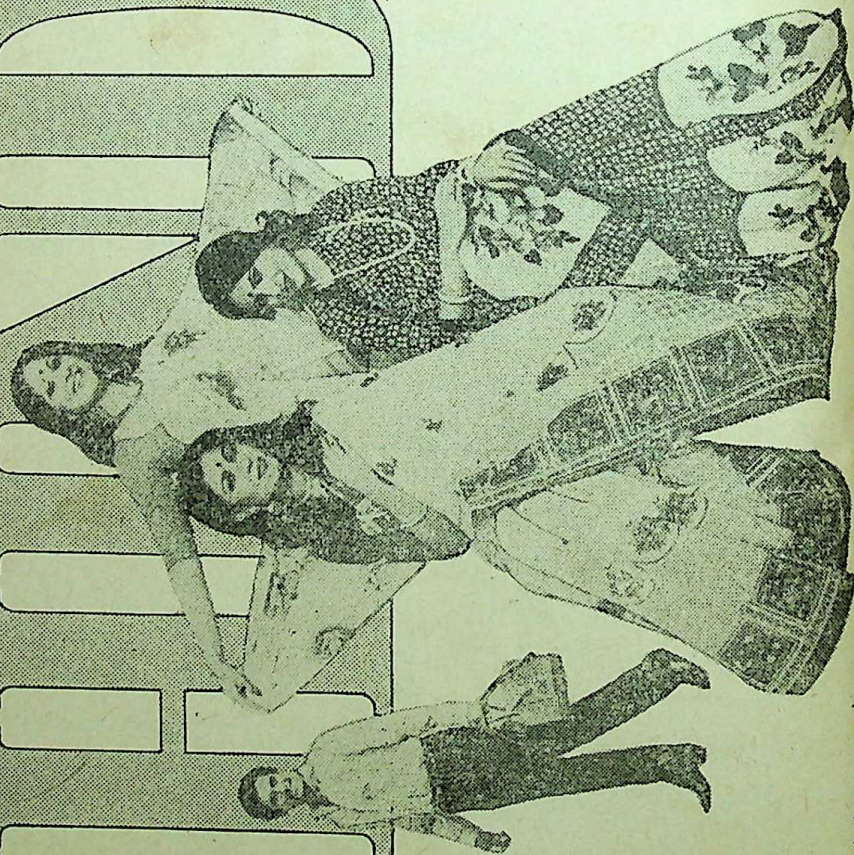
वाले प्राणी का निर्माण कर सकेंगे, जिनके बारे में हम विज्ञान-कथाओं में पढ़ते हैं।

जो स्वाभाविक प्रश्न जन्म लेता है, वह यह है, क्या हम ऐसी सुविज्ञ मशीनों का आविष्कार और निर्माण कर सकते हैं, जो निर्देशों के संरक्षण के, जिसके अनुसार प्रोग्रामर द्वारा दिये गये निर्देशों और मशीन के निर्गत में पूरा संतुलन होता आवश्यक है, उल्लंघन के बिना, नयी विचारणा का सर्जन कर सके। इस प्रश्न का कोई सुस्पष्ट उत्तर नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर उस अर्थ पर निर्भर करेगा, जो हमें 'विचारणा करने' की क्रिया को देना पसंद करेंगे। यदि हम इस क्रिया की व्यवहारवादी व्याख्या करना पसंद करें, जिसका सुझाव त्रितानी तार्किक ए. एम. ट्यूरिंग और उनके साथियों ने किया है, तो हम उस मशीन को 'विचारणा करने' में समर्थ कहेंगे, जो अपनी मानवीय संभावी के प्रश्नों का इतना संतोषजनक उत्तर दे सके कि उस संभावी को यह धोखा हो जाये कि वह किसी दूसरे मानव से बात कर रहा है। यदि हम विचारणा के इन व्यावहारिक या परिचालन परीक्षणों को वैध मान लें, तो सैद्धांतिक रूप से, व्यावहारिक रूप से नहीं, मानव के विचारों की नक़ल करने वाली मशीन का निर्माण संभव है।

स्वयं ट्यूरिंग ने ऐसी मशीन का, जो ट्यूरिंग मशीन के नाम से प्रसिद्ध हुई, निर्माण किया था। ऐसी मशीनों का

हिन्डन की बहार... लाई निलवार

HINDON



हिन्डन

साड़ियाँ . सूटिंग्स
शर्टिंग्स . ईस मैटरियल
सर्वाधुनिक मिल द्वारा
निर्मित कपड़े



DCM
TEXTILES

५०० से भी अधिक डी सी एम रिटेल स्टोर्स
तथा अन्य रिटेल स्टोर्स पर उपलब्ध

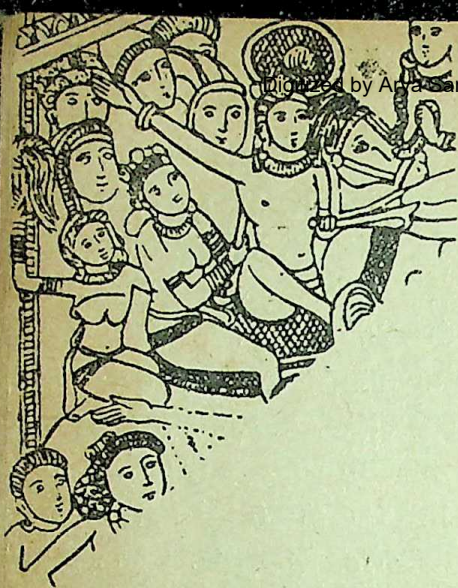
akshara

akshara

१९८१

34

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



साधना वीतराग की
दो विरुद्ध आयाम
एक तट पर ठहरे हैं ।
प्रस्तर वेद, पुराण और
आगम की भाषा बोल रहा है,
जन्म-मरण की गूढ़ पहेली
के रहस्य को खोल रहा है ।

देह बल्लरी कामदेव-सी
पर उस पर ठहरा कब पहरा ?
मृत्यु बिना पदचाप,
बिना आहट के आती दबे पांव है ।
सांसों की हर पहरेदारी
ठगी-ठगी सी रह जाती है ।

कालजयी हस्ताक्षर

मिश्रीलाल जैन

प्रस्तर में इतना सौन्दर्य
समा सकता है,
प्राण-प्राण पुलकित हों
पत्थर भी ऐसा क्या गा सकता है ?

नवनीत

जय जय हे प्रभु गोमटेश्वर
सच में ही तुम कामदेव थे
पर तुमने ही कामदेव
के रथ को मोड़ा
रूप राशि का, सजग वासना का था
वज्र कठोर पहरा
प्रज्ञा की छैनी से तुमने,
वीतरागता के प्रहार से
उसको तोड़ा ।
वह अनुपम क्षण
किस अनाम शिल्पी की
छैनी पर यों उतरा ?
पत्थर पर ठहरे
शिल्पकोष की अक्षय-निधि को
शत-शत बार नमन है मेरा ।

किसकी ये प्रतिमा युग-युग से
बिना सहारे खड़ी हुई है ।

हर युग के शिल्पी ने मानो

- पत्थर में हैं प्राण उतारे
इतनी भव्य, विशाल और
दुर्लभ कृति कहां सुलभ हो पायी,
शिल्पकोष की अक्षय निधि-सी ।

कामदेव ये बाहुबली हैं

अन्तिम कुलकर नाभिराय के :

आदि प्रजापति कर्मभूमि के

नव-मन्वन्तर के तीर्थकर,

ऋषभदेव शंकर का बेटा ।

ऋषभदेव जिनका गुण-गायन

वेद ऋचाएं करती आयीं,

नये कार्य के शुभारंभ में

जिनको सम्बोधन करके ही

नित आह्वान किया जाता है :

विश्व हितैषी, ऋत्विजों के प्राण

कर्मभूमि के संस्थापक

आगम, वेद, पुराण सभी

आदिकाल से जिनकी स्तुति गाते हैं

युगारंभ में कृषि करने का

था उपदेश दिया

इस कारण वृषभ चिह्न

स्मृति स्वरूप, उस मूर्तिमान

वीतराग

की प्रतिमा पर अंकित पाते हैं ।

दर्शन, ज्ञान, चरित्र

सभी का जो प्रतीक है

वह त्रिशूल

संग-संग चलता है ।

मुक्ति बंधू को वरण किया था

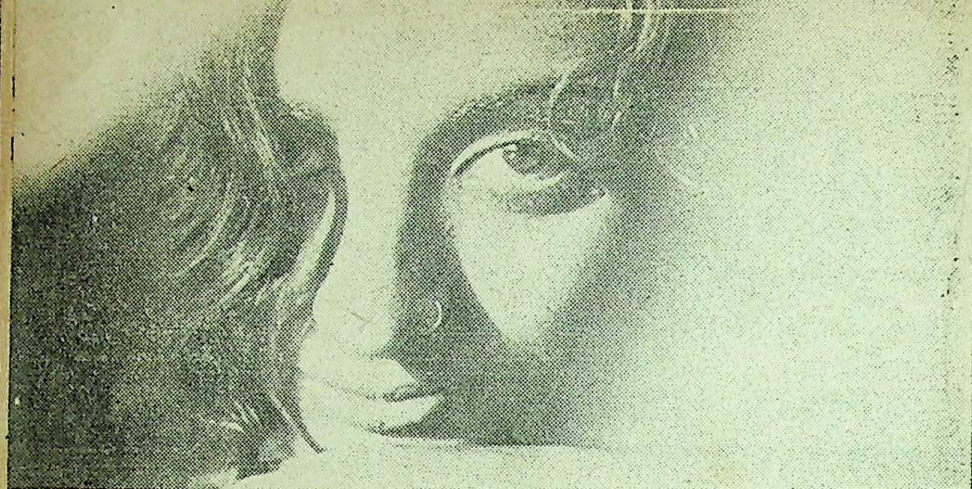
इसीलिये मां पार्वती,

मां सरस्वती का नाम

आपके संग जुड़ता है ।

—पृथ्वीराज मार्ग, गुना, म. प्र.





एक ही चेहराः तीन मुद्राएँ



प्रस्तोता-छायाकार :

विक्रान्त माथुर



कहते हैं 'चेहरा मन की किताब होता है' लेकिन कभी-कभी कई ऐसे चेहरे भी होते हैं, जो नितांत भावशून्य होते हैं। कभी मन में चलते विचार, किसी-किसी के चेहरे तक नहीं पहुंचते और देखनेवाला अंतर में उमड़ते, विचारों के बवंडर की सतह भी नहीं छू पाता। तो कभी भौतिक परिवर्तनों के कारण कई चेहरों पर ऐसे भाव दिखायी दे जाते हैं, जिनका अंदरूनी विचारों से दूर का नाता भी नहीं होता। कई चेहरों की मांसपेशियां इतनी सख्त होती हैं कि उन पर कोई भाव ही नहीं दीख पड़ता। फिर भी ऐसे चेहरों को भावना शून्य कहना उनके साथ अन्याय करना होगा—क्योंकि ऐसे चेहरों में आंखें एक बड़ी भूमिका निभाती हैं—वहां सारे द्रढ़, अंतर्द्रढ़ स्पष्ट दिखायी देते हैं।

यहां मैंने एक ऐसा ही चेहरा चुना है, जिसे मैंने छायांकन के पहले विभिन्न परिस्थितियों पर सोचने के लिए कहा। चेहरे की मांसपेशियां हर चित्र में एक जैसी हैं, परंतु आंखें बोलती प्रतीत होती हैं।



इन छायाचित्रों में मेरा काम इतना ही है कि जैसे भाव आंखों में मुझे दिखे, मैंने वैसी ही प्रकाश व्यवस्था की। यदि फिर भी मुझे कोई कमी दिखी, तो चित्र बनाते समय, उसमें अन्य चित्रों का सामंजस्य स्थापित किया, या थोड़ी 'दिक्स' इस्तेमाल कीं, जिससे आंखों का भाव सही दिखने लगे।

हर छायाचित्र में आंखें कुछ कह रही हैं। क्या चित्रों के क्रमानुसार, 'नवनीत' के पाठक बता सकेंगे कि किस चित्र में क्या भाव हैं?

एक मुकदमा : कई सवाल

कुमार प्रशान्त

सवाल बहुत पुराना है, लेकिन उत्तर बहुत ही अस्पष्ट है। शिक्षा कैसी हो, कैसे हो और उसका परिणाम क्या हो? शिक्षा में सरकार और समाज की क्या भूमिका हो? शिक्षण-संस्थाओं की क्या भूमिका हो? परिवार शिक्षा की प्राथमिक इकाई है या नहीं? इस तरह के न मालूम कितने सवाल, कितने लोगों ने उठाये हैं, और समय-समय पर समाज-सुधारकों, विचारकों, क्रांतिकारियों ने अपना-अपना उत्तर पेश किया है। इन उत्तरों में से कुछ का प्रयोग हुआ, कुछ का नहीं हुआ, लेकिन भारतीय संदर्भ में, कुल मिलाकर परिणाम यही आया कि शिक्षा दिनोंदिन एक समस्या बनती गयी। 'शिक्षा की समस्या' हमारे समाज का सबसे चलता मुहावरा है आज।

लेकिन पश्चिम का क्या हाल है? उनके यहां गरीबी, बेरोजगारी का वैसा संकट नहीं है जैसा एशिया महादेश में है। लेकिन शिक्षा की पद्धति और उसके उद्देश्यों को लेकर वहां एक कशमकश चल रही है। यह कशमकश ऊपरी तौर पर साम्यवादी मुल्कों में नहीं दीखती है, चूंकि वहां सरकारी मानक ही स्वीकृत माने जाते हैं। पश्चिम के लोकतांत्रिक

मुल्कों में शिक्षा प्राप्त करना, स्कूल जाना अनिवार्य है, और शिक्षा है भी करीब-करीब पूरी, लेकिन प्रश्नचिह्नों की कमी नहीं है। पिछले दिनों ब्रितानी अदालत में एक ऐसा अजीबोगरीब मुकदमा पेश हुआ जिसने इन प्रश्नचिह्नों को उजागर कर दिया। भारतीय संदर्भ में भी इस मुकदमे से संबंधित सवाल काफी दूर-गामी हैं, और शिक्षा की वैकल्पिक व्यवस्था के बारे में जो सोचते हैं, उनके लिए कुछ विचारोत्तेजक सवाल खड़े करता है।

ज्योफ्रे और इरिस हैरिसन अपने व्यापार-व्यवसाय से डूब चुके थे। बच्चों की शिक्षा और उनके भविष्य को लेकर भी इस दंपति की अपनी कुछ कल्पनाएं थीं। इसलिए व्यापार की दुनिया से हाथ-पांव सभेटकर, इन लोगों ने एक देहाती इलाके में थोड़ी ज़मीन खरीद ली और वहीं बस गये। उनके दो लड़के थे और एक लड़की। ग्रांट १४ वर्ष का, न्यूवेल १० साल का और एंड्रिया अब १५ वर्ष की है। हैरिसन-दंपति ने शुरू में ही यह तय किया कि वे अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजेंगे; क्योंकि वे उन्हें 'तोता' या किसी की कार्बन-कापी नहीं बनाना चाहते हैं। अपनी तरह से अपने बच्चे

नवनीत

२०

फरवरी

जाना
करीब-
कमी
दालत
पेश
जागर
इस
दूर-
वस्था
ए कुछ
है।
अपने
वच्चों
लेकर
पनाएं
या से
एक
द ली
के थे
न्यूवेल
५ वर्ष
यह
स्कूल
या
बचप
करवरी

१५ वर्षीया एंड्रिया ने अपने सीधे बयान में काउंटी की शंका का उत्तर दिया—‘मैंने किसी स्कूल में दाखिला लिये और किसी शिक्षक को घर पर बुलाये बगैर संगीत सीखा है। मैं स्वर-लिपि पढ़ सकती हूँ और बड़े-बड़े आर्केस्ट्रा-दल में वायलिन बजा सकती हूँ। मैं आगे चलकर पेशेवर संगीतज्ञ बनना चाहती हूँ। इसके अलावा मैं आशुलिपि एवं

‘वे सब गुण, आज वे जिस तरह का जीवन जी रहे हैं, उसके लिए काफी हैं, लेकिन यदि इनमें से किसी ने अपने जीवन की दिशा बदली तो वे समाज की

दूसरी शक्तियों, प्रवाहों का मुकाबला नहीं कर सकेंगे।'

एंड्रिया ने बताया कि वह संगीत सीखने के अलावा एक व्यवसाय भी करती थी। उसने अपने एक पड़ोसी मित्र से गेहूं खरीदकर, ब्रेड बनाकर बेचना शुरू किया था। यह लाभ इस कदर चल निकला कि उसके लिए मांग के मुताबिक ब्रेड दे सकना ही संभव नहीं रहा; 'क्योंकि मुझे संगीत का अपना अभ्यास भी पूरी गंभीरता से करना था। आखिर मैंने अपनी दुकान बंद कर दी। १८ वर्ष की हो जाऊंगी तब मैं डार्टिंगटन में दाखिला लेकर, संगीत की उच्च शिक्षा पूरी करूंगी।'

ग्रांट ने बताया कि वह एक बड़ा पोल्ट्री-फार्म चलाता है। मुर्गियों की देख-भाल, इलाज से लेकर, व्यवस्था के दूसरे सभी पहलू ग्रांट खुद संभालता है। वह संकर-जातियों को लेकर प्रयोग कर रहा है और अबतक मुर्गियों की १० नयी जातियां विकसित कर चुका है। 'इसके अलावा मुझे कल-पुर्जे बनाने का शौक है। मैंने घड़ियों के पुर्जे बनाये भी हैं। मेरे पास अपनी लेथ-मशीन नहीं है। वह हो जायेगी तो मैं मशीनों के पुर्जे भी तैयार करूंगा।'

किसी बाहर की दुनिया और किन प्रवाहों की बात काउंटी के वकील साहब कर रहे थे? एक १५ वर्ष की लड़की ब्रेड की दुकान चलाती है और इतनी सफलता से चलाती है कि लोग ब्रेड के

लिए उमड़ आते हैं। एक १४ वर्ष का लड़का मुर्गी का व्यवसाय करता है और आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ा है। उसे मुर्गी की नयी जातियां विकसित करने का अनुभव है। तीव्र प्रतियोगिता और व्यवसाय की दुनिया में जो बच्चे यह कर सकते हैं, उन्हें किस दूसरे प्रवाह का डर है?

बर्मिंघम विश्वविद्यालय में शिक्षा के व्याख्याता रोलैंड मेइघन (Roland Meighen) ने अपने वयान में बताया कि उन्होंने हैरिसन-परिवार का अध्ययन करने के लिए, उनके साथ दो दिन व्यतीत किये और पाया कि उनकी शिक्षा की बुनियाद में एक संपूर्ण, संतुलित मानव बनाने की दृष्टि है। 'उनकी पद्धति में आत्मविश्वास का जागरण, समस्याओं को हल करने की योग्यता, एक बौद्धिक स्तर की प्रश्नाकुलता, आत्मनिर्भरता तथा खुद करके सीखने को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है।'

श्रीमती हैरिसन से पूछा गया कि आपके जीवन का आधार-भूत सिद्धांत क्या है? श्रीमती हैरिसन ने उत्तर दिया—'जीवन का पूर्ण सम्मान—चाहे वह धरती हो, पौधे हों, जानवर हों या मनुष्य। और सबसे ज्यादा जोर हम इस बात पर देते हैं कि बच्चों का पूरा सम्मान होना चाहिये।'

'आपके बच्चों ने बगैर स्कूली ढांचे में गये, शिक्षा प्राप्त कैसे की?'

'उन्होंने जीवन के साथ-साथ, हर वक़्त

नवनीत

शिक्षा प्राप्त की है। एक घटना बताती है। घर में लकड़ी का फर्श बनाना था और हमें खबर मिली कि उस उपयोग की छोटी-छोटी लकड़ियां मिल रही हैं। ज्योफ्रे बच्चों को लेकर वहां गये, लकड़ी पसंद की और बच्चों पर छोड़ दिया कि घर में कितनी लकड़ी लगेगी, कितना वजन होगा आदि का हिसाब करें। लड़कों ने घर की नपाई की, लकड़ी के एक टुकड़े को नापा, वजन किया। हिसाब लगाया। एक बार में कितनी लकड़ी, हमारी घरेलू लारी में आ सकेगी। कितने फेरे लगाने होंगे। उन लकड़ियों को रखने के लिए कितनी जगह की जरूरत होगी आदि-आदि पूरा हिसाब इन बच्चों ने मिलकर तैयार किया। आखिर घर जो उनका था ! मैंने अपने ग्रामर स्कूल में गणित सीखा जरूर था, लेकिन इस काम में मेरी बुद्धि ने तो जवाब दे दिया था।

‘ग्रांट जंब बहुत छोटा था, तभी उसने कुछ घड़ियों के पुर्जों खोल दिये थे। तब वह उन्हें वापस जोड़ नहीं सकता था। इसलिये सारे पुर्जों को एक डिब्बे में बंद करके रख दिया। जब वह १० वर्ष का हुआ तो उसे वह डिब्बा दिया। पूरा दिन लगाकर उसने उन्हें जोड़ा। तीन घड़ियां एकदम ठीक काम करने लगीं।’

‘आपके बच्चे बाहरी दुनिया में कैसे ‘फिट’ होंगे?’

‘क्यों? क्या उन्हें हमने दुनिया से वकलगत हटा लिया है? वे आज की दुनिया



की समस्याओं को खूब समझते हैं और खूब समझते हैं इस जिम्मेवारी को कि हममें से हर एक को, पुराने आदर्शों से चिपकना छोड़कर, जीवन को, दुनिया को ज्यादा अर्थपूर्ण बनना है।’

सारी बहस सुनकर मजिस्ट्रेट ने अपना फैसला सुनाया—‘अपने तीन बच्चों की स्कूली शिक्षा की उपेक्षा के अपराध में हैरिसन-दंपति को जुर्माना अदा करना होगा।’

श्रीमती हैरिसन ने ऊपर की अदालत में अपील की है, और साथ ही एक आंदोलन तीव्र किया है—प्रशासन और सरकार के हस्तक्षेप के बगैर बच्चों को शिक्षा देने का नागरिकों का अधिकार !

पाठशाला को गांधी ने क्रांतिशाला के रूप में देखा था। इस कल्पना की प्रथम सीढ़ी होगी सरकार-मुक्त शिक्षा! हैरिसन-दंपति का प्रयोग कानून की अदालत में कहां पहुंचेगा, यह तो समय ही बतायेगा, लेकिन क्रांति की प्रक्रिया में ऐसे ही प्रयोगों का बड़ा महत्त्व है।

— १२ राजेन्द्र नगर, पटना-१६

क्या मनुष्य सशरीर अमर हो सकता है ?

□ हरिमोहन शर्मा

आत्मा अमर है, यह घोषणा विश्व के प्रायः सभी देशों के धर्मों और आत्म-ज्ञानियों ने की है।

पर मध्य युग में भारत में ऐसे योगी और सिद्ध भी हुए, जिन्होंने जोरदार दावा किया कि विशेष प्रकार के अति-रासायनिक संयोग से इस भंगुर देह को भी अमर बनाया जा सकता है।

‘रसार्णव तंत्र’ में शिव पार्वती से कहते हैं — ‘मृत्यु के पश्चात् अमरत्व प्राप्त करने से क्या लाभ है? मृत्यु के पश्चात् तो एक साधारण गधा भी अमर हो सकता है।’

ऐसा कहा जाता है कि नाथ सम्प्रदाय जोगियों के कायायोग की रसेश्वरी योग साधना से अनेक सिद्धों ने स्वयं सदेह अमरत्व प्राप्त किया था, तथा आज भी वे अपनी अमर देह के साथ अपने सिद्धालय में सनातन विद्यमान हैं।

यूं तो तंत्रवाद का जन्म वैदिक युग में हुआ था, पर उसका सबसे अधिक प्रचलन सन ७०० से लेकर सन १३०० तक हुआ। आज भी भारत में उसके हजारों अनुयायी हैं। इन तांत्रिकों में हिन्दू भी हैं, और बौद्ध भी, पर सबका लक्ष्य एक ही है—भंगुर देह को अमर बनाना।

नवमीत

तंत्रवाद क अनुसार, कुछ विशिष्ट नियमों और पद्धतियों का पालन करके देह को अमर बनाया जा सकता है।

मनुष्य के भीतर बुढ़ापे और मौत से ऊपर उठकर अमरत्व प्राप्त करने की अभीप्सा आरंभ से ही रही है। स्वयं उपनिषदों ने घोषणा की है कि हमें मौत से अमरत्व की ओर जाना है। अमरता की यह चाह, जो सारे विपरीत अनुभवों के बावजूद भी मनुष्य के प्राण के तल से, उठती चली आ रही है, तांत्रिकों के अनुसार निराधार नहीं है।

अनेक प्राचीन सिद्धों ने इस अमरत्व की प्राप्ति के लिए कुछ अज्ञात यौगिकों के साथ पारे और गंधक के प्रयोग की सिफारिश की है। इन प्रयोगों का वर्णन उन्होंने अपने ग्रंथों में भी किया है। पर उनकी साधना का क्षेत्र अत्यन्त सीमित होने और सभ्य समाज में उनके अवगुण ही अधिक प्रसिद्ध होने के कारण, साधारण लोगों को इन ग्रंथों की बहुत कम जानकारी है। वैसे बौद्ध तांत्रिकों द्वारा लिखे गये ‘गुह्य समाज’ और ‘मंजुश्री-मूलकल्प’ तथा हिन्दू तांत्रिकों द्वारा लिखे गये ‘रुद्र यमल’ तथा ‘ब्रह्म यमल’ ग्रंथ आज भी आधुनिक तांत्रिकों द्वारा बड़े चाव से पढ़े जाते हैं।

२४

फरवरी

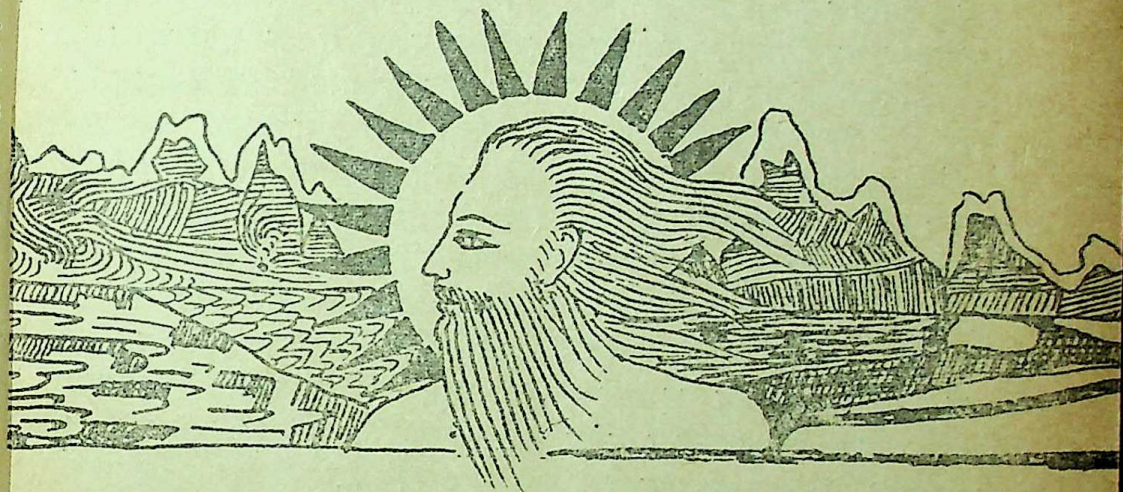
१९

कायायोग

कायायोग के रसेश्वर मत में आस्था रखने वाले नाथ सम्प्रदायी जोगियों का पंथ एक महान और अद्भुत पंथ है। यह योग पतंजलि के अष्टांग योग से सर्वथा पृथक् है। पतंजलि की योग साधना के आठ अंग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। नाथ सम्प्रदायी यम (अहिंसा,

और बिन्दु (वीर्य) ये मानव-शरीर में तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली तत्त्व हैं। पर वे ऐसा भी मानते थे कि ये तीनों ही तत्त्व अत्यन्त चंचल हैं, और अपनी स्वभावगत चंचलता के कारण ही मनुष्य की ऊर्ध्वगति के स्थान पर उसकी अधोगति का कारण बन जाते हैं।

इन जोगियों का मत है कि यदि मनुष्य इन्हें अपने अधिकार में कर लेने में सफल



सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं परिग्रह) और नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्राणिधान) को अपने लिए अनावश्यक मानते हैं।

यम और नियम के पांच-पांच प्रकारों को छोड़ देने पर जोगियों के लिए योग-साधना में मात्र शरीर के अंतर-बाह्य अंगों को वश में करने की पद्धति ही बच रहती है, जिसे उन्होंने 'कायायोग' कहा। इन जोगियों के अनुसार, प्राण, मन

हो जाये, तो वह स्वयं अपने शरीर में ही शक्ति (शिव) तथा आत्मा (परमात्मा) के सामरस्य की परम सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इस सिद्धि के प्राप्त कर लेने पर फिर उसके लिए ऐसी कोई सिद्धि या वस्तु नहीं रह जाती, जिसे पाना शेष हो।

अनुभवों से इन जोगियों ने यह भी जाना कि यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य इन तीनों पर ही एक साथ प्रभुत्व प्राप्त करे; इन तीनों तत्त्वों में से एक पर भी

प्रभुत्व प्राप्त कर लिया जाये तो शेष दो तत्त्वों पर सरलता से प्रभुत्व प्राप्त किया जा सकता है।

बज्रौली का आविष्कार

प्रथम तत्त्व प्राण को अपने वश में करने के उद्देश्य से जोगियों ने हठयोग (प्राणायाम सहित) का आविष्कार किया। मन तत्त्व पर विजय पाने के लिए उन्होंने मंत्र-पद्धति का आविष्कार किया। तथा बिन्दु तत्त्व पर प्रभुत्व पाने के लिए उन्होंने प्राणायाम-पद्धति पर आधारित बज्रौली पद्धति का आविष्कार किया। इस अंतिम आविष्कार का श्रेय रसेश्वर सम्प्रदाय के किसी एक जोगी को न देकर अनेक जोगियों को दिया जाना चाहिये।

तंत्रग्रंथों में बज्रौली-पद्धति का वर्णन पढ़ने को मिलता है। इस वर्णन के अनुसार बिन्दु या तो ऊपर जाता है, या नीचे। बिन्दु जब नीचे जाता है, तो वह शरीर से बाहर चला जाता है, और जोगी बिन्दु की इस अधोगति को 'कालाग्नि', 'विषहर' या 'प्रलय' नाम से पुकारते हैं। जोगियों की मान्यता है कि बिन्दु की यह अधोगति प्रत्येक अज्ञानी प्राणी के लिए स्वाभाविक है, और उसे जन्म-मृत्यु के आवागमन और संसार-चक्र में घुमाती रहती है।

पर इस पद्धति में वर्णित उपायों से मनुष्य ऊर्ध्वरेता बन सकता है, अर्थात् बिन्दु को शरीर में ऊपर चढ़ाकर 'काल-भैरव' या 'कालाग्नि रुद्र' बनने की संभावना उसमें आ सकती है। बिन्दु की ऊर्ध्वगति

साधना से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि कुंडलिनी (ब्रह्माण्डव्यापी ऊर्जा का पिंडगत स्वरूप) भी ऊर्ध्वमुखी बन जाती है। और जब कुंडलिनी का उत्थान होता है, तो वह मेरुदंड में पाये जाने वाले षट्चक्रों को भेदकर, सहस्रार में प्रवेश कर स्थिर हो जाती है, और वहीं स्थित परम शिव के साथ एकात्म होकर मनुष्य को भी शिव-समान बना देती है।

बिन्दु को सृजक अग्नि में रूपांतरित करने के उद्देश्य से जोगी नेति, धोती, बस्ति, नौली, त्राटक और कपालभाति इन षट्कर्मों द्वारा लाखों की संख्या में सारे शरीर में फैला प्राणवाही नाड़ियों (Motor Nerve) और मनोवाही नाड़ियों (Sensory Nerves) को शुद्ध करते हैं।

जोगियों में बज्रौली-पद्धति के दो प्रकार अधिक प्रचलित और लोकप्रिय हैं। पहले प्रकार-शारीरिक बज्रौली मुद्रा-में ऊर्ध्वरेता पुरुष स्त्री के रज को खींचकर अपने बिन्दु के साथ एकरस कर लेता है।

इस क्रिया के फलस्वरूप कुंडलिनी उद्बोधित होकर सुषुम्ना मार्ग से सहस्रार में पहुंचकर स्थिर हो जाती है। मत्स्येन्द्रनाथ तथा अधिकांश गोरखपंथी जोगियों ने हठयोग द्वारा बिन्दु के ऊर्ध्वकरण और उससे कुंडलिनी के उत्थान की साधना की थी। वज्रयानी बौद्ध साधक भी आसन, प्राणायाम तथा मुद्रा आदि के सहारे इस मार्ग को अपनाते थे।

बबनीत

२६

फरवरी

१९

जब मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से लभ्मण को मूर्च्छित कर दिया था, तो सुवेण वैद्य ने संजीवनी बूटी देकर ही उन्हें पुनर्जीवन दिया था । देवासुर-संग्राम में मृत दैत्यों को पुनः जीवित करने के लिए उनके गुरु महर्षि शुक्राचार्य ने मृतसंजीवनी नामक एक नवीन औषधि-पेय का आविष्कार किया था । इसकी निर्माण-विधि आयुर्वेद में पायी जाती है । पर आयुर्वेद के ग्रंथों के अनुसार, मृतसंजीवनी मृतकों को जीवन तो नहीं देती, पर मूर्च्छित या मृतक तुल्य लोगों में जीवन का संचार कर उन्हें शक्तिशाली अवश्य बना देती है । पर आयुर्वेद और तंत्र दोनों के ही अनुसार, विशिष्ट जड़ियों आदि को उखाड़ने के निश्चित नियम और समय हैं । जैसे, एक तंत्र के अनुसार, 'देव के सूर्य में स्नान कर, जो नीम की एक पत्ती चबा लेता है, उस पर सर्प-दंश का प्रभाव नहीं होता ।'

शायद यही कारण है कि आज हम मृतसंजीवनी का वह प्रभाव नहीं देख पाते, जिससे दैत्य नया जीवन पाते थे । वह अमृत नहीं, जो समुद्रमंथन से निकला था, जिसे सर्पों के लिए गरुड़ बलपूर्वक स्वर्ग से उठा लाये थे, और जिसे राजधर्मा की प्रार्थना पर, इन्द्र ने मृत कृतघ्न गौतम पर छिड़ककर, उसे जीवित किया था ।

योगियों की मान्यता है कि अमृत वह है, जो अंबामाता के तालु भाग से

ऐसा नहीं है कि अमृत का पान करने वाला कभी मरता ही नहीं । हाँ, इतना अवश्य है कि उसकी मृत्यु उसके अधिकार में हो जाती है । भीष्म ने यद्यपि अमृतपान नहीं किया था, तो भी मृत्यु उनके अधिकार में थी । अमृत पीने वाले पर मृत्यु और वृद्धावस्था का कोई वश नहीं चलता ।

हमारे महर्षियों ने कल्पना की है कि मनुष्य के शरीर में छह तथा नौ चक्र हैं । सुषुम्ना नाड़ी की छह ग्रंथियों में छह पद्माकार चक्र हैं । इनके अतिरिक्त, गुह्यस्थान में मूलाधार चक्र, लिङ्गमूल में स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिमण्डल में मणिपुर चक्र, हृदय में अनाहत चक्र, कंठ देश में विशुद्ध चक्र और भ्रूमध्य में आज्ञा चक्र स्थित है । नवचक्रों में इन चक्रों के अलावा तीन और चक्र हैं—तालु, ब्रह्मरूप और सहस्रार । महर्षियों की कल्पना के अनुसार, आज्ञाचक्र के ऊपर मस्तक में सहस्रार कमल है । सुषुम्ना नाड़ी यहीं से अधो-मुखी होकर चलती है ।

सहस्रदल कमल के नीचे दो कलाओं का केन्द्र है, जिनमें से एक का नाम है मृत्युकला (निर्वाणकला) और दूसरी का अमृतकला । सहस्रदल कमल के सिंहासन की कणिका से जो एक तत्त्व सदा एक जलप्रपात की भांति नीचे आता रहता है । योगियों का कहना है कि इस तत्त्व से अधिक मधुर और सुगन्धित पदार्थ विश्व में नहीं मिल सकता । जो

इसे पी लेता है, उसके लिए सब पदार्थ व्यर्थ हैं।

यही तत्त्व अमृत कहा जाता है।

पर यह अमृतत्त्व उन्हीं लोगों को प्राप्त हो सकता है, जिनकी कुण्डलिनी जागृत हो चुकी है; क्योंकि कुण्डलिनी की नागिन ही इस अमृत के पीने में समर्थ है।

योगी अनेक यौगिक क्रियाओं द्वारा कुण्डलिनी को जागृत करते हैं। पहली क्रिया है चक्रों का भेदन या ग्रन्थिमोचन। दूसरी क्रिया है मुद्रा, जिनमें खेचरी मुद्रा सर्वाधिक प्रचलित है। इस मुद्रा का अभ्यास किसी निष्णात् योगी की देखरेख में ही होना चाहिये, अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि की ही अधिक संभावना है। वैसे, सैद्धांतिक रूप से खेचरी मुद्रा द्वारा अमृत की प्राप्ति के लिए पहले जीभ के नीचे के जुड़े हुए भाग को किसी धारदार अस्त्र से काटा जाता है और फिर उस कटे हुए स्थान पर पिसी हल्दी और पिसा नमक छिड़का जाता है, ताकि वे फिर न जुड़ पायें। इसके बाद, मक्खन की सहायता से जीभ को प्रतिदिन खींचकर लंबा किया जाता है। जीभ को प्रतिदिन इतना लंबा किया जाता है कि उसके अग्रभाग से सरलतापूर्वक भ्रूमध्य को छुआ जा सके।

खेचरी मुद्रा की पूर्व की इस तैयारी के बाद शीर्षासन करना चाहिये। उसके बाद दोनों अंगूठों से दोनों कानों को बंद करके नेत्र बंद कर लेने चाहिये। अब

बधनीत

जीभ को उल्टा मोड़कर, उससे तालुभाग के गड़ढे को ढंक दीजिये। इस साधन से कुण्डलिनी हार जाती है, और साधक को अमृत प्राप्त होता है।

योगिराज श्री पार्श्वनाथजी के अनुसार अमृततत्त्व प्राप्त करने की एक विधि और भी है। उनके कथनानुसार, अमृत-कला का एक सूत्र प्रत्येक स्त्री की दाहिनी या बायीं आंख में होता है। जिस आंख में यह सूत्र होता है, उसमें गुलाबी रंगत छापी रहती है। अमृत सूत्र यहीं से बहता है।

‘स्त्री को सीधा लिटाकर अमृतवाहिनी नस को अंगूठे से रगड़कर, अमृत मिलने पर, उसे पानी से धो लेना चाहिये। यह अमृत मधु-सा गाढ़ा, हिंगुल के रंग का, पीने में बहुत मीठा और कस्तूरी-सी मधुर गंध वाला होता है। एक स्त्री से यह अमृत थोड़ा ही प्राप्त होता है। कम से कम एक छटांक पीने से अमृत तत्त्व की प्राप्ति होती है। पर जिस पर ईश्वर कृपा हो उसे यह अनायास प्राप्त हो जाता है। अम्बा माता का अमृत योगियों का तालुचक्र का अमृत था, जो सदा झरता था। नहीं तो चक्रभेदन के बिना, खेचरी मुद्रा के बिना, इसे पाना कहां संभव है?’

गवामृतम्

युधिष्ठिर से यक्ष ने पूछा था, ‘अमृत किम्?’ (अमृत क्या है?)

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया था : ‘गवा-

लुभाग
धन से
साधक

नुसार
विधि
अमृत-

हिनी
आँख
रंगत
ही से

हिनी
मिलने
हिये।
के रंग

स्तूरी-
स्त्री

है।
अमृत
जिस

यास
अमृत
जो
न के
पाना

अमृत

गवा-

रवरी

मृतम् ।' (गाय का दूध देवी आशुत है) Digitized by Arya Samaj Foundation
महाभारत के शांतिपर्व में कथा आती
है कि मुरमि देवी ने आकाश में प्रकट
होकर, राजधर्मा की चिता पर फेनमिश्रित
•गाय का दूध गिराया था, जिसे पीकर
राजधर्मा जीवित हो उठा था। गाय का
दूध ही अमृत बन गया।

शास्त्रों में दूध के लिए 'अमृत' का
प्रयोग अनेक अवसरों पर हुआ है।
शास्त्रों में जिस 'कामधेनु' का वर्णन आता
है, वह अमृत की जननी है। आधुनिक
वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों से सिद्ध किया
है कि गोदुग्ध के समान बल, वीर्य तथा
ओज-शक्ति को बढ़ाने वाला कोई और
पदार्थ संसार में नहीं है। तत्काल बल
देने वाले छह पदार्थों में दूध की गिनती
है। 'सद्यः प्राणकराणि षट् ।' इसका
प्रोटीन वीर्य से मिलता है।

यजुर्वेद, ऋग्वेद तथा अथर्ववेद तथा
अन्य प्राचीन ग्रंथों में दूध की महिमा का
वर्णन है। आयुर्वेद में दूध को बच्चों और
बूढ़ों के लिये अमृत घोषित किया गया है।

'जरा समस्त रोगाणां शान्तिकृत सेवनं
सदा ।'

'भावप्रकाश' के अनुसार, दूध का
दोपहर के पूर्व सेवन वीर्यवर्धक, दोपहर

वाला है। रात्रि में दूध के सेवन से अनेक
दोष दूर होते हैं।
कश्यप संहिता के अनुसार, 'क्षीरात्परं
नास्ति च जीवन्दीयम्' (दूध से बढ़कर
जीवन बढ़ाने वाला और आहार नहीं है।)

चरक संहिता में गाय के दूध के बारे
में कहा गया है :

स्वादु शीतं मधुस्निग्धं बहलं श्लक्ष्ण-
पिच्छिकम् ।

गुरु मंदं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः ।

(गाय का दूध स्वादिष्ट, शीतल,
कोमल, चिकना, गाढ़ा, सौम्य, लसदार,
भारी, बाहरी प्रभाव को देर से ग्रहण
करने वाला तथा चित्त को प्रसन्नता देने
वाला है।)

अंग्रेजी में एक कहावत है - Cow
Milk and Honey are the root of
beauty गाय का दूध और मधु सौंदर्य
के मूल हैं।)

विख्यात अमरीकी चिकित्सक फ्रैंक
ओ. लॉडेन के शब्दों में, 'सदियों से जिस
चिर-यौवन की खोज मानव कर रहा है,
उसका निकटतम साधन रखने वाला जो
पदार्थ अव तक मिल सका है, वह गौ
का दुग्ध-स्तन ही है।'



ग्राहकों को सूचना

'नवनीत हिंदी डाइजेस्ट' का व्यवस्था-संबंधी पत्र-व्यवहार निम्न पते पर करें :

क्षिप्रा ट्रेडिंग एंड इन्वेस्टमेंट कं. प्रा. लि., न्यूज पेपर हाउस, सासुन डाक,
बंबई-४००००५

लिक चेन

जिसकी एक-एक कड़ी मजबूत, परखी हुई और
पूर्णतः विश्वसनीय है।



सभी उद्योगों व वाहनों में उपयुक्त



एलॉय स्टील चेन एक विशेषता
इंडियन लिक चेन मैन्यु. लि., भाण्डुप, बंबई-७८

(पृष्ठ १५ का शेषांश)

मशीनों के लिए अपने से अधिक जटिल मशीनों को जन्म देना क्यों सम्भव नहीं है ?

अपने इस सिद्धांत का जो प्रमाण ट्यूरिंग ने प्रस्तुत किया है, उसकी चर्चा न करके, अब हम उसके सर्वाधिक लाभदायक परिणाम पर आते हैं। परिकलन करने वाली मशीन की सांकेतिक निदर्शन-प्रणाली, जिसके विकास के कारण वह दूसरे प्रकार की विनिर्देशित परिकलन करने वाली मशीन के समान व्यवहार करने लगती है। विनिर्देशन की ऐसी प्रणालियों को, जिसमें एक मशीन को जो दूसरी मशीन के व्यवहार की नकल करती है, 'शॉर्ट कोड्स' या 'आटोकोड्स' कहा जाता है। आजकल अनेक 'ऑटो-कोड्स' प्रचलित हैं, जैसे, फ़ैरेन्ती ऑटो-कोड, फ्लोमैटिक, फोरतान आदि। ये कई प्रकार से एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी सब ट्यूरिंग के प्रमेय के मूर्त रूप हैं। इन्हीं अवलंबों पर कई किस्म की ऐसी स्वचालित प्रोग्रामिंग शिल्पविधियां टिकी हैं, जिनके द्वारा कम्प्यूटर को निर्देश देने का कार्य भी स्वचालित हो गया है। ट्यूरिंग की ऐसी स्वचालित प्रोग्रामिंग शिल्पविधियों की विशाल संभावनाओं के विषय में दृष्टि अत्यन्त स्पष्ट थी। उसने भविष्यवाणी की थी कि बीसवीं सदी के अंत तक ये शिल्पविधियां इतनी परिशुद्ध हो जायेंगी कि वे कम्प्यूटरों का विलियन विट्स (विट वह इकाई है,

जिसके द्वारा किसी संदेश, सूचना या पाठ की सूचनाधारिता का माप किया जाता है) की वृहत् सामर्थ्य से प्रोग्रामिंग कर सकेंगी। वह सामर्थ्य आज के विशालतम कम्प्यूटर की सामर्थ्य से १००० वां गुना अधिक होगी। एक बार उनका प्रयोग आरंभ हो गया, तो उनके द्वारा यंत्रवत् विद्वता के स्थान पर ऐसे बहुसंख्यक कार्य निष्पन्न हो सकेंगे, जिनमें बुद्धि की आवश्यकता होती है।

उदाहरणार्थ, ऐसी मशीन सॉनटस (चतुर्दश-पदियां) लिख सकेंगी। और उसके बाद, उसकी नैतिक परीक्षा लेकर, उससे पूछा जा सकेगा कि जो कुछ उसने लिखा था, उसे उसने 'समझा' भी था या नहीं, या बिना किसी 'समझ' के तोते के समान रटकर लिख दिया था। ट्यूरिंग का कहना था कि मौखिक परीक्षा के दौरान मशीन का प्रदर्शन संतोषजनक रहेगा। वातालाप कुछ इस ढंग से चलेगा :

प्रश्नकर्ता : अपनी सॉनट की प्रथम पंक्ति में तुमने लिखा है, 'क्या मैं तुम्हारी तुलना ग्रीष्म के किसी दिन से कर सकता हूं?' इसके स्थान पर, क्या वसंत का एक दिन बेहतर नहीं रहता ?

मशीन : उसे लय के साथ नहीं पढ़ा जा सकेगा।

प्रश्नकर्ता : 'गीत का एक दिन' तो लय के साथ पढ़ा जा सकेगा।

मशीन : हां, मगर शीत के दिन के

हिंदी डाइजेस्ट

साथ अपनी तुलना कौन चाहेगा ?

प्रश्नकर्ता : क्या मिस्टर पिकविक आपको क्रिसमस की याद दिलाते हैं ?

मशीन : हां, एक प्रकार से ।

प्रश्नकर्ता : और क्रिसमस शीत का ही एक दिन है, और मिस्टर पिकविक को इस तुलना पर कोई एतराज नहीं होगा, ऐसा मेरा खयाल है ।

मशीन : आप शायद गंभीर नहीं हैं । 'शीत के दिन' से मेरा अभिप्राय एक ठेठ शीत के दिन से है, क्रिसमस के विशिष्ट दिन से नहीं ।

यद्यपि ट्यूरिंग के अनुसार, भविष्य की सॉनट लिखने वाली मशीनें उपरोक्त विधि से बहस करने में समर्थ होंगी,



तथापि उन्हें यह अहसास था कि ऐसी मशीन के मस्तिष्क के व्यवहार की तुलना मानव-मस्तिष्क के व्यवहार से नहीं की जा सकेगी । जैसा कि उन्होंने 'क्या कोई मशीन सोच सकती है ?' शीर्षक के अपने मनोहर निबंध के अंत में स्वीकार किया है, 'मेरे पास उस व्यवहारवादिता का, जिसकी वकालत मैंने इस निबंध में की है, समर्थन करने वाले ठोस तर्क नहीं हैं । मैंने जिस नतीजे पर पहुंचने का प्रयास किया है, उसके पक्ष में एकमात्र संतोषजनक समर्थन मेरी वह ट्यूरिंग मशीन है, जिसकी सामर्थ्य विलियन विट्ट है और जो वस्तुतः नक़ल का खेल कर सकती है ।
('स्पैन' से साभार)

इस अंक में

श्रवण बेलगोल में २२ फरवरी १९८१ को हो रहे

श्री भगवान बाहुबली प्रतिष्ठापना सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक महोत्सव

के उपलक्ष्य में विशेष सामग्री सहर्ष प्रस्तुत है ।

विश्वधर्म-प्रवर्तक एलाचार्य श्री विद्यानंद स्वामी के
नेतृत्व में आयोजित इस महोत्सव की
उत्सव-समिति के अध्यक्ष हैं
श्री साहू श्रेयांसप्रसाद जैन

क ऐसी
तुलना
हीं की
कोई
अपने
किया
का,
की है,
ही है।
प्रयास
वजनक
न है,
और
ती है।
(भार)

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

आ नो भद्रः क्रतवो यन्तु विश्वतः

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

नवनीत

प्रार्थना

यस्य सूर्यश्चक्षुः

चंद्रमा च पुनर्णवः ।

अग्निं चश्चक्रे आस्यं

तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

भगवान् विष्णु

पार्श्वनाथ जैन मंदिर

खजुराहो, ११ वीं शती

यह सूर्य और बार-बार नया होनेवाला
यह चांद जिसकी आंखें हैं, जिसने
अग्नि को मुख बनाया है, उस सर्वतो
महान् ब्रह्म को नमस्कार है।

अथर्व-१०-७-३३



अपने 'मैं' को ही नमस्कार

मत्तो विनिर्गतं विश्वं मय्येव लयमेष्यति ।

मृदि कुंभो जले वीचिः कनके कटकं तथा ॥

जैसे मिट्टी में से बना घड़ा मिट्टी में, पानी में से उत्पन्न तरंग पानी में, और सोने में से निर्मित कड़ा सोने में लय पा जाता है, वैसे ही मेरे अहं में से प्रकट हुआ विश्व मेरे अहं में ही लय हो जायेगा ।

अहो अहं नमो मह्यं विनाशो यस्य नास्ति मे ।

ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं जगन्नाशेऽपि तिष्ठतः ॥

ब्रह्मा से लगाकर तृण तक के जगत का नाश होने पर भी जिस 'मैं' का विनाश नहीं होता, उस 'मैं' को ही मैं नमस्कार करता हूं । अहो, यह 'मैं' कितना आश्चर्य-भरा है !

अहो अहं नमो मह्यमेकोऽहं देहवानपि ।

क्वचिन्न गंता नागंता व्याप्य विश्वमवस्थितः ॥

अहो 'अहं' ! अपने को अर्थात् 'अहं' को ही नमस्कार करता हूं ! 'मैं' देहधारी होते हुए भी, एक ही हूं ; न कहीं जाता हूं न कहीं से आता हूं, किन्तु विश्व को व्याप्त करके रहता हूं ।

अहो अहं नमो मह्यं दक्षो नास्तीह मत्समः ।

असंस्पृश्य शरीरेण येन विश्वं चिरं धृतम् ॥

अहो 'अहं' ! अपने आपको यानी 'अहं' को नमस्कार करता हूं । 'मुझ' जैसा चतुर कोई नहीं, कि जिसने शरीर के साथ संसर्ग साधे बिना भी इस विश्व को चिरकाल से धारण कर रखा है ।

अहो अहं नमो मह्यं यस्य से नास्ति किंचन ।

अथवा यस्य मे सर्वं यद्वाङ्मनसगोचरम् ॥

अहो 'अहं' ! 'मुझे' अर्थात् अपने 'अहं' को नमस्कार करता हूं, कि जो 'मुझ' में 'कुछ नहीं' है, अथवा जो 'मुझ' में वाणी और मन का विषय-रूप बना हुआ 'सब कुछ' है ।

प्रस्तुति : नीलतारा

—अष्टावक्र गीता

नवनीत

३४

फरवरी

ताओ उपनिषद्

पूर्णाविस्था

महान् भूमा ताओ सर्वव्यापी है ।

वह एक ही समय इस पार और उस पार रहता है ।

उसी के कारण सारा जीव-समूह जी रहा है ।

वही सबकी खोज-खबर लेता रहता है ।

वही कार्य करता है, वही पूर्णता तक पहुंचाता है,

लेकिन उसके श्रेय (फल) का स्वयं को स्पर्श तक

नहीं होने देता ।

वह प्रेम द्वारा सभी का पोषण करता है और ऐसा

करने में श्रेष्ठता की गंध तक आने नहीं देता ।

उसे महत्वाकांक्षा नहीं रहती । किसी तरह की

इच्छा भी नहीं होती ।

उसे साधारण-से-साधारण वस्तु की श्रेणी में रखा जा सकता है ।

अन्ततः सारे पदार्थ उसी में आ मिलते हैं, पर उससे

वह कुछ बढ़ता भी नहीं ।

महत्तमों की पंक्तियों में उसका निर्देश होता है ।

इस तरह ज्ञानी पुरुष आत्मगौरव से सदैव दूर रहता है ।

• -ताओ-तेह-किंग





महान कथा-शिल्पी जैनेन्द्रकुमार की कहानी

बाहुबली

बहुत पहले की बात कहते हैं। तब दो युगों का संधिकाल था। भोगयुग के अस्त में से कर्मयुग फूट रहा था। भोगयुग में जीवन मात्र भोग था। पाप-पुण्य की रेखा का उदय न हुआ था। कुछ निषिद्ध न था, न विधेय। अतः पाप असंभव था, पुण्य अनावश्यक। जीवन बस रहना था। मनुष्य इतर प्रकृति के प्रति अपने आपमें स्वत्व का अनुभव नहीं करने लगा था और प्रकृति भी उसके प्रति पूर्ण वदान्य थी। वृक्ष कल्पवृक्ष थे। पुरुष तन ढांपने को बल्कल उनसे लेता, पेट भरने को फल। उसकी हर बात प्रकृति ओढ़ लेती। विवाह न था और परस्पर संबंधों में नातों का आरोप न हुआ था। स्त्री, माता, बहन, पत्नी, पुत्री न थी। वह मात्र मादा थी और पुरुष नर। अनेक थलचर प्राणियों में मनुष्य भी एक था और उन्हीं की भांति जीता था।

उस युग के तिरोभाव में से नवीन युग का आविर्भाव हो रहा था। प्रकृति अपने दाक्षिण्य में मानो कृपण होती लगती थी। उस समय विवाह ढंढा गया। परिवार बनने लगे, और परिवारों में समाज। नियम-कानून भी उठे। 'चाहिये' का प्रादुर्भाव हुआ और मनुष्य को ज्ञान हुआ कि जीना रहना नहीं है, जीना करना है। भोग से अधिक जीवन कर्म है और प्रकृति को ज्यों का त्यों लेकर बैठने से नहीं चलेगा। कुछ उस पर संशोधन, परिवर्तन, कुछ उस पर अपनी इच्छा का आरोप भी आवश्यक है। बीज उगाना होगा, कपड़े बनाने होंगे, जीवन संचालन के लिए नियम स्थिर करने होंगे और जीवन संवृद्धि के निमित्त उपादानों का भी निर्माण और संग्रह कर लेना होगा। अकेला व्यक्ति अपूर्ण है, अक्षम है, असत्य है। सहयोग स्थापित करके परिवार, नगर, समाज

बनाकर पूर्णता, क्षमता और सत्यता को पाना होगा।

ठीक जब की बात कहते हैं तब व्यक्ति व्यष्टि सत्ता से समष्टि सिद्धि की ओर बढ़ चला था। राजा जैसी वस्तु की आवश्यकता हो चली थी। पर राजा जो राजत्व की संस्था पर न खड़ा हो, प्रजा की मान्यता पर खड़ा हो। यह तो पीछे से हुआ कि राजत्व की संस्था बनी और शिक्षा और न्याय विभाग-रूप में शासन से पृथक हुए। नगर बन चले थे और जीवन यापन नितांत स्वाभाविक कर्म न रह गया था। उसके लिए उद्यम की आवश्यकता थी।

०००

इस भांति राज्य बना और प्रथम राजा हुए श्री आदिनाथ। उनके दो पुत्र थे, दो पुत्रियां। पुत्र भरत और बाहुबली, पुत्रियां ब्राह्मी और सुंदरी।

अवस्था के चतुर्थ खंड में ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर श्री आदिनाथ ने कहा, 'पुत्र अब तुम यह पद लो। मुझे अब दीक्षा लेनी चाहिये।'।

भरत ने कहा, 'महाराज.....'

आदिनाथ ने कहा, 'तुमको पहला चक्रवर्ती होना है। इस राज्य से बाहर भी बहुत प्रांत हैं, जिनको व्यवस्थित शासन तुम्हें देना है। मैं तो लोगों के मान लेने से उनका मुखिया हो गया था। उनको मुझे राजा कहने में सुख मिला। मैंने कहा, अच्छा। लेकिन तुमको साम्राज्य बनाना है। अपने लिए नहीं, लोगों में एकत्रता

१९८१

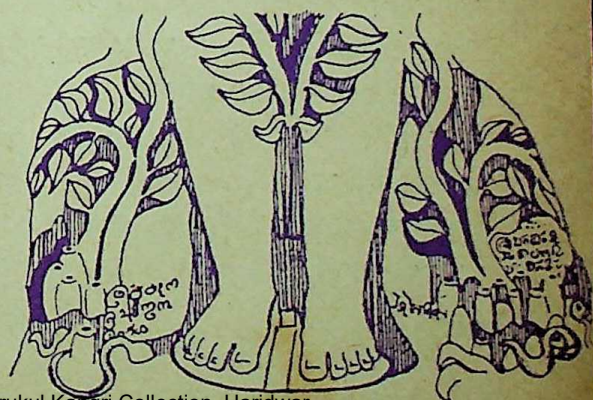
लाने के लिए। तुमको विजय-प्रसार का कर्तव्य भी करना होगा।'।

भरत ने कहा, 'महाराज आप दीक्षा क्यों लें? मैं विजयवज्र पहना न बाऊं और अपने को समर्थ न समझ लूं तब तक आप अपना आशीर्वाद मुझ पर से न उठायें।'।

आदिनाथ ने कहा, 'पुत्र, अब समय आता जाता है कि राजा शासक अधिक हो, प्रजा का हमजोली उतना न हो। राजैश्वर्य से युक्त राजा को देखकर प्रजा समझती है कि उसने कुछ पाया है। तब तक उसका चित्त तुष्ट नहीं होता। मैं तो प्रजा के निम्नातिनिम्न जन से अपना हमजोलीपन नहीं तज सकता। किंतु तुम्हारे लिए यह अनिवार्य नहीं है। तुम राजपुत्र हो। मैं तो साधारण पिता का पुत्र हूं और जिस पद से शासन की आशा है उसके सर्वथा अयोग्य बन जाना चाहता हूं। मुझे लोगों के दुख में जाना चाहिये और मुझे उस मार्ग में से चलकर अपना कैवल्य पा लेना चाहिये।'।

भरत ने निरुत्तर होकर सिर झुका लिया।

अगले दिन आदिनाथ ने दीक्षा ले



ली। समस्त वस्त्राभरण और नग्न होकर वे निर्ग्रन्थ विहार कर गये। और भरत, चुप मन, जय-यात्रा पर चल दिये।

पृथ्वी के छहों खंडों पर विजय स्थापित कर और बहुभांति के मणि-मुक्ता, हय-गज और कन्या सुदरियों की भेंट से युक्त भरत धूम-धाम के साथ नगर को लौटकर आये।

किंतु जब भरत नगर में प्रवेश करने लगे, तब विचित्र घटना हुई। चक्रवर्ती का शासनचक्र नगर के भीतर प्रविष्ट नहीं होता था। प्रत्येक द्वार से नगर में प्रवेश करने के यत्न किये गये, किंतु शासनचक्र ने साथ न दिया। इस पर लोगों को बहुत अचरज हुआ। तब राजगुरु की शरण में जाकर इसके कारण के विषय में उन्होंने जिज्ञासा की। राजगुरु ने बताया कि इस नगर में एक व्यक्ति है जो अविजित है। उस पर जब तक विजय न पा ली जाये तब तक चक्रवर्तित्व अखंड नहीं होता। और उस समय तक यह शासनचक्र नगर में प्रवेश न करेगा। राजगुरु ने यह भी बताया कि अभी तक जिन पर किसी ने विजय नहीं पायी है ऐसे व्यक्ति राजकुमार बाहुबली हैं।

भरत ने पूछा, 'गुरुदेव, तब क्या बाहुबली से मुझे युद्ध करना होगा?'

राजगुरु ने समझाया, 'राजन्, तब तक चक्रवर्तित्व असिद्ध है।'

भरत ने कहा, 'किंतु मैं चक्रवर्ती नहीं होना चाहता।'

नवनीत

राजगुरु ने कहा, 'राजपि, यह आपकी व्यक्तिगत इच्छा, अनिच्छा का प्रश्न नहीं है। यह राजकारण का प्रश्न है।'

भरत ने कहा, 'गुरुदेव, क्या भाई से भाई को लड़ना होगा?'

गुरुदेव कहा, 'राजन्, राजकारण गहन है। राजकारण-धर्मी का कौन भाई है, कौन भाई नहीं है?'

भरत नतमस्तक हुए।

०००

पांच युद्धों द्वारा शक्ति-परीक्षण का, निश्चय हुआ। दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध आदि और अंत में मल्लयुद्ध।

आरंभ के चारों युद्धों में बिना प्रयास बाहुबली ही विजयी हुए। बाहुबली इस विजय से विशेष उल्लसित नहीं दिखाई देते थे, न भरत विशेष उदास। मल्लयुद्ध अंतिम युद्ध था और उसके समय प्रजा की उत्सुकता इस भाई-भाई के द्वेषहीन युद्ध में बहुत बढ़ गयी थी।

मल्लयुद्ध में कुछ देर के बाद बाहुबली ने भरत को दोनों हाथों पर ऊपर उठा लिया। इस समय दर्शकों के प्राण कंठ में आ बसे थे। वे प्रतिपल आशंका करने लगे कि चक्रवर्ती भरत अब धरती पर चित्त आ पड़ते हैं। किंतु बाहुबली ने धीमे-धीमे अपने हाथों को नीचे किया और भरत पृथ्वी पर सावधान खड़े दिखाई दिये! तदनंतर नतमस्तक होकर बाहुबली ने दोनों हाथों से अपने बड़े भाई के चरण छुये।

३८

फरवरी

भरत ने भी बाहुवली को अपना छाती से लगा लिया। कहा, 'बाहुवली, विजयी होओ। मुझे तुम पर गर्व है और मैं तुम्हारी विजय पर हर्षित हूँ। तुम सामर्थ्यशाली बनो।' *

बाहुवली ने कहा, 'यह आप क्या कहते हैं? आप ज्येष्ठ हैं, योग्य हैं। और मैं एक क्षण के लिए भी राज्य नहीं चाहता।' *

भरत ने कहा, 'भाई बाहुवली, वह तुम्हारा है। तुम उसके विजेता हो, उसके पात्र हो। और मैं अपना हृदय दिखा सकूँ तो तुम जानो मैं कितना प्रसन्न हूँ। तुम राजा बनो, मुझे अमात्य बनाओ, सेनापति बनाओ, अथवा जो चाहो सेवा लो।' *

बाहुवली ने हाथ जोड़कर कहा, 'भाई, मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। इस विषय में आप राज्य-पालन का कर्तव्य मुझ पर न डालें। मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। मुझे राज्य आदि नहीं चाहिये।' *

भरत ने बहुत कहा। परंतु बाहुवली दीक्षा लेकर वन की ओर चले गये। भरत चुपचाप राज्य-रक्षा और राजस्व-पालन में लग गये।

०००

बाहुवली ने घोर तपश्चरण किया, अति दुर्धर्ष, अति कठोर, अति निर्मम। वर्षों वे एक पैर से खड़े रहे। महीनों निराहार यापन किये। सुदीर्घ काल तक अखंड मौन साधे रखा। वर्षों बाहर की ओर आंख खोलकर देखा तक नहीं।

उनकी इस तपस्या की कीर्ति दिदिगांत

में फैल गया। दश-दश से लोग उनके दर्शन को आने लगे। भक्तों की संख्या न थी। उनकी महिमा और पूजा का परिमाण न था !

किंतु बाहुवली भक्तों और उनकी पूजा से विमुख होकर घोर से घोरतर निर्जन दुष्प्राप्य एकांत में चले जाते थे। एक स्थान पर एक बार अडिग, एकस्थ, एकाकी इतने काल तक खड़े रहे कि उनके सहारे बल्मीक जम गये, बेलें उठ कर शरीर को लपेटने लगीं। उन बल्मीकों में कीड़े-मकोड़ों ने घर बना लिये।

इस कामदेवोपम सर्वांगसुंदर बलिष्ठ पुरुष ने निदारुण काय-क्लेश में वर्ष के वर्ष बिता डाले। लोग देखकर हा-हा खाते थे और निस्तब्ध रह जाते थे। उसकी स्पृहणीय काया मिट्टी बनी जा रही थी। स्त्रियां उस निमीलित नेत्र, मग्न मौन, शिला की भांति खड़े हुए पुरुष-पुंगव के चरणों को धो-धोकर वह पानी आंखों में से लगाती थीं। उसके चरणों के पास की मिट्टी औषधि समझी जाती थी, पर वह सब ओर से विलग, अनपेक्ष, बंद आंख, बंद मुख, मलिन देह, कृश गात तपस्या में लीन था।

यह था, पर कैवल्य उसे नहीं प्राप्त हुआ, नहीं हुआ। ज्ञानी लोग इस पर कि-विमूढ़ थे।

०००

जीवन्मुक्त भगवान् आदिनाथ से लोगों ने पूछा, 'भगवान्, दीर्घकाल से कुमार

हिंदी डाइजेस्ट

बाहुबली अतिशय कठोर तपश्चर्या कर रहे हैं। आपको ज्ञात तो है ?'

भगवान बोले, 'हां, ज्ञात है।'

'उससे हमारा हृदय कांपता है। आप उन्हें इससे विरक्त करेंगे ?' भगवान ने कहा, 'नहीं। एक निष्ठा के साथ जो किया जाता है, उससे किसी का अपकार नहीं होता।'

लोगों ने पूछा, 'किंतु भगवान, कुमार बाहुबली को अब तक कैवल्य सिद्धि क्यों नहीं हो सकी ?'

भगवान ने कहा, 'यह तुम पीछे जानोगे।'

०००

भरत राज्य-शासन चला रहे थे। प्रथम चक्रवर्ती भरत के ऐश्वर्य का पार न था। मणि-माणिक-मुक्ता की दीप्ति से उनका परिच्छद जग-

मग रहता था। उनके नाम का आतंक दिग्दिगंत में छाया था। सब प्रकार के सुख-विलास और आमोद-प्रमोद के साधन उनके संकेत पर प्रस्तुत थे। और वे अपने अखंड निष्कण्टक चक्रवर्तित्व का उपभोग कर रहे थे।

इसको भी वर्ष के वर्ष हो गये।

एक दिन भगवान आदिनाथ के पास पहुंचकर भरत ने कहा, 'भगवन, भाई बाहुबली को यह अधिकार मिला कि वह मुझको छोड़कर और राज्य को छोड़कर

स्वाधीन रह और सत्य को पायें। जो मेरे अधिकार में नहीं आता था, जो बाहुबली का हो गया था, उस राज्य को लेने को मैं रह गया। मेरे लिए अस्वीकार करने का तनिक भी अवकाश नहीं छोड़ा गया। मुझे शिकायत नहीं है। लेकिन मैं आपसे पूछता हूं, क्या मैं अब दीक्षा नहीं ले सकता ?'

भगवान ने कहा, 'ले सकते हो। अगर सत्य की खोज और सत्य की उपलब्धि राजत्व के द्वारा तुम्हारे निकट अगम्य

बन गयी है, तो तुम उसे अवश्य तज सकते हो। और मैं कह सकता हूं, अगम्य बन जाना भी चाहिये। तुम पचास वर्ष से तो ऊपर हुए न ?'

भरत संतुष्ट चित्त महलों को लौट आये। और दो दिन बाद

घोषणा हो गयी कि चक्रवर्ती अब दीक्षा लेंगे।

नगरवासियों में विकलता छा गयी। साम्राज्य के प्रांत-प्रांत से विरोध में अनुनय प्रार्थनाएं आयीं। किंतु भरत ने एक प्रतिनिधि सभा को अपना उत्तराधिकार देकर दीक्षा ले ली।

और राज्याभरण उतारते-उतारते मुहूर्त के अंतर में उन्हें निर्मल कैवल्य की उपलब्धि हो गयी।

०००





लोगों ने क्लिष्ट भाव से भगवान् आदिनाथ की शरण में जाकर पूछा, 'भगवान्, यह क्या बात है? कुमार बाहुबली ने कितना घोर कायोत्सर्ग झेला, कैसा दुर्द्धर्ष तपश्चरण किया, आरंभ से ही उन्होंने सब सुखों का विसर्जन किया, किंतु उनको कैवल्य प्राप्त नहीं हुआ। और चक्रवर्ती भरत ने जीवन के अधिक भाग में ऐश्वर्य ही भोगा, प्राचुर्य ही देखा, विलास ही पाया। उनको राज-चिह्न उतारते-उतारते परम ज्ञान की प्राप्ति हो गयी! भगवान्, बताइये, यह कैसे हुआ? हमारा चित्त भ्रान्त है।'

भगवान् ने सदय भाव से कहा, 'बाहुबली अविजित है। यह वह बेचारा नहीं भूल सका है।'

लोगों को अनाश्वस्त पाकर खिन्न स्मित के साथ भगवान् ने फिर कहा, 'बाहुबली के मन में से एक फांस नहीं निकली है। वही एक शल्य उसकी मुक्ति में कांटा है। उसके चित्त में यह खटक बनी हुई है कि जिस भूमि पर वह खड़ा है, वह भरत के राज्यांतर्गत है।'

०००

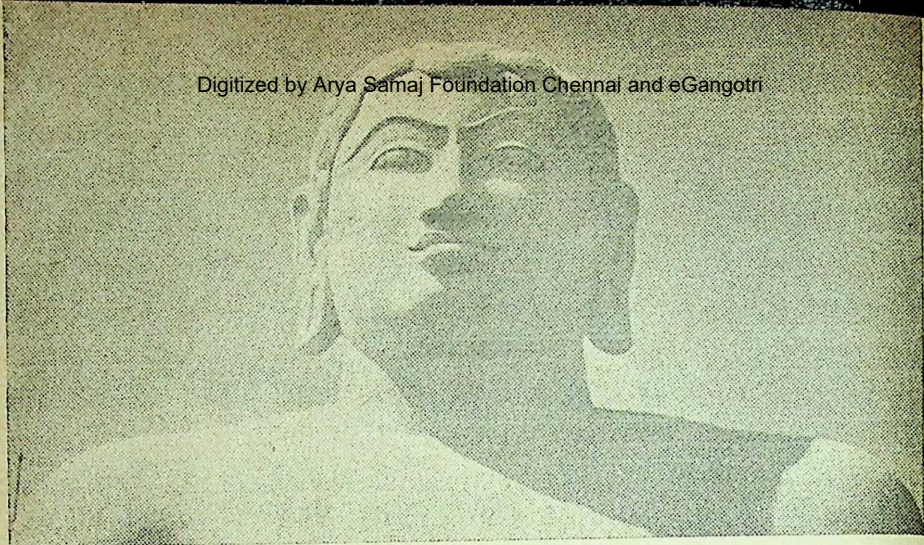
बाहुबली के कानों में जब यह बात पहुंची, मन का कांटा एकदम निकल गया। जैसे एक साथ ही वे स्वच्छ हो गये। आंखें खुल गयीं, मौन मुख मुस्करा उठा। उस मुस्कराहट में मन की अवशिष्ट ग्रंथि खुलकर बिखर गयी और मन मुकुलित हो गया।

उनके चहुं ओर वन में उस समय असंख्य भक्त नर-नारियों का मेला-सा लगा था। उन सबको अब उन्होंने अस्वीकार नहीं किया, उनका आवाहन किया। अपने आराध्य की यह प्रसन्न-वदन-मुद्रा देखकर लोगों के हर्ष का पारावार न था। बाहुबली ने अपने को उनके निकट हर तरह से सुगम बना लिया। कहा, 'भाइयो, तुमने इस बाहुबली को आराध्य माना। उसकी आराध्यता समाप्त होती है। तपस्या बंद होती है। तुमने शायद मेरे काय-क्लेश की पूजा की है। अब वह तुम मुझमें नहीं पाओगे। इसलिए आशा है कि तुम मुझे पूजा देना छोड़ दोगे। और यदि मेरी अप्राप्यता का तुम आदर करते थे, तो वह भी नहीं पाओगे। मैं सबके प्रति सदा सुप्राप्त रहने की स्थिति में ही अब रहूंगा।'

बाहुबली ने निर्मल कैवल्य पाया था। ग्रंथियां सब खुल गयी थीं। अब उन्हें किसी ओर से बंद रहने की आवश्यकता नहीं थी। वे चहुं ओर से खुले, सबके प्रति सुगम रहने लगे।

यह देख धीरे-धीरे भक्तों की भीड़ उजड़ने लगी और परम योगी बाहुबली की शरण में अब शांति के लिए विरल ज्ञानी और जिज्ञासु लोग ही आते थे।





भगवान गोमटेश्वर डग भरने को हैं



पिनाकपाणि शंकर

...ओ मेरे अनुत्तर योगी, तुम साथ हो न मेरे ?
—तो विनाश और मृत्यु की इन घाटियों में,
किसी मन्दिरवासी महावीर को पूजना मेरे लिए जरूरी नहीं रहा।

ओरे भगवानो, सुनो,
मैंने कन्या-कुमारी की द्विकानन्द-चट्टान पर,
अपनी आत्मा का अणुबम विस्फोट किया है।
मेरी तड़कती नसों के फूटते बारूद से,
महासमुद्रों के निश्चल गर्भ विक्षुब्ध हो उठे हैं।
मेरी आग से सरशार समुद्र
अपनी मर्यादा तोड़ देने की अनी पर खड़ा है।

अरे देखो तो,
चन्द्रगिरि पर्वत पर विराट् पुरुष भगवान गोमटेश्वर डग भरने को हैं।
उनके पैरों में जमी बाँबियों के नाग
हजारों बरसों की नींद से जागकर,

विन्ध्याचल पर फन फटकार रहे हैं।

मैंने हिमालय के शिखरों को दोनों हाथों में उठाकर

महाकाल की छाती पर पछाड़ा है ।

लो, कैलासपति शंकर

• अपनी पार्वती के साथ कहीं और पलायन कर गये हैं ।

...हस्तिनापुर में फिर से

सर्वमेध यज्ञ के हुताशन धधक रहे हैं ।

वर्तमान के तमाम चिकने चुनिन्दा खूबसूरत पशु

हमारे बाजुओं के क़ौलादी यूषों से बंधे हैं :

हमारी यातना के असंख्य धधकते हवन-कुण्ड

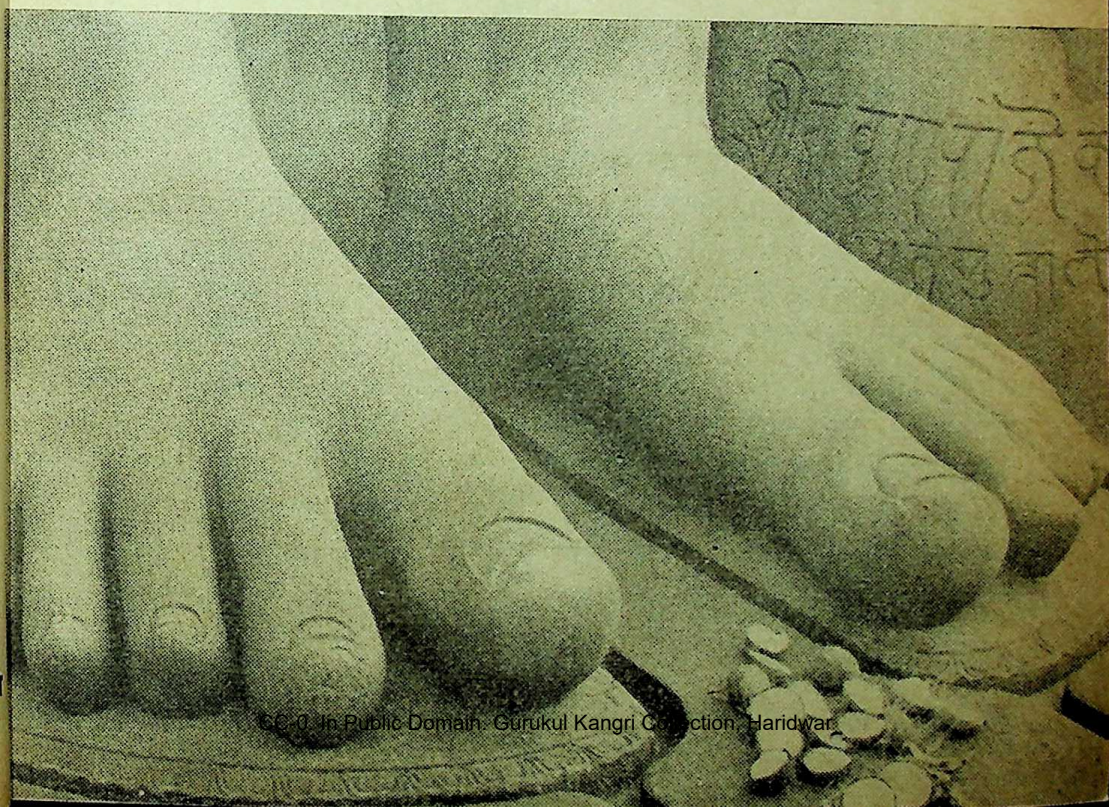
उनकी आहुति मांग रहे हैं.... !

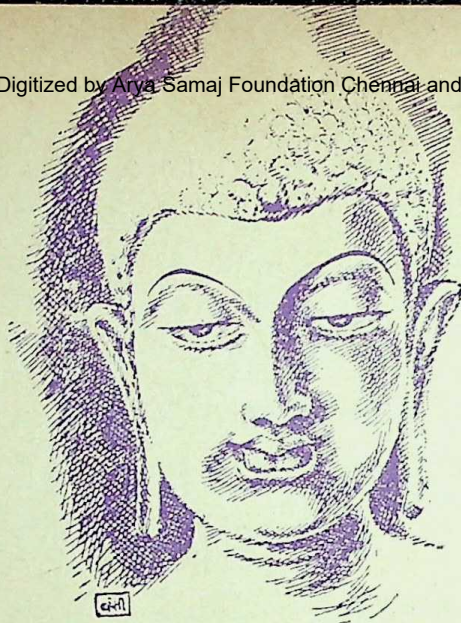
आओ, हम उन सबको होम कर,

स्वयम् अपनी भी आहुति दे दें ।

क्योंकि हममें से कोई भी तो

पशुपतिनाथ होकर नहीं उठ पा रहा है.... !





अशोक कुमार सक्सेना

महावीर और आइन्सटाइन



महावीर और आइन्सटाइन भले ही दर्शन और विज्ञान की दृष्टि से अलग-अलग विभूतियां रही हों, किन्तु मन और विचार में वे एक थे; क्योंकि दोनों ही की विचारधाराओं में दर्शन और विज्ञान में संघर्ष से कहीं अधिक समन्वय है, दोनों में ही सत्य ग्रहण की एक उत्कट लालसा है। आइन्सटाइन के वैचारिक भौतिक विज्ञान (थियोरेटिकल फिज़िक्स) और महावीर के दर्शन ने दर्शन और विज्ञान की निकम्मी सीमारेखा को और अधिक महत्वपूर्ण तथा आकर्षक बना

दिया है। वास्तव में दोनों ही इतिहास-पुरुष काल-पुरुष थे।

आइन्सटाइन से उनके गम्भीर रोग के दौरान पूछा गया कि क्या वे मृत्यु से डरते हैं? तब, उन्होंने उत्तर दिया था :

‘मैं सभी जीवित चीजों के साथ एक ऐसी एकात्मकता का अनुभव करता हूँ कि मेरे लिए यह बात कोई अर्थ नहीं रखती कि व्यक्ति कहां शुरू होता है और कहां समाप्त होता है।...

‘संसार में ऐसा कुछ नहीं है, जिसे मैं क्षणभर में त्याग नहीं सकता।...

नवनीत

४४

फरवरी

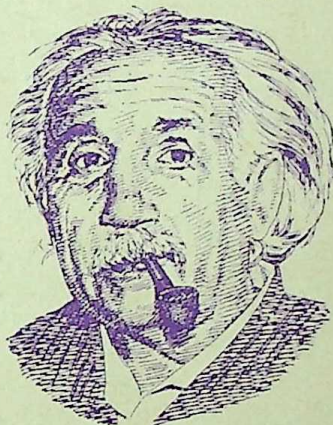
‘में’ जानता हूं कि सारी प्रकृति में चेतना काम कर रही है।...

आइन्सटाइन महावीर की भांति आत्म-अस्तित्व तथा पुनर्जन्म में निष्ठा रखनेवाले वीतरागी थे। वे मानते थे कि यह दुनिया बिना रूह की मशीन नहीं है, यह इत्तिफाक ही से यों ही नहीं बन गयी है, इस परदे के पीछे एक चेतना-शक्ति काम कर रही है, चाहे हम उसका कुछ भी नाम क्यों न दें। मनुष्य इस ब्रह्मांड के भंवर से छिटका हुआ छीटा नहीं है। वह आत्मा की हैसियत से भौतिक और सामाजिक जगत से उभर कर ऊपर उठा है।

मानव उत्कर्ष की ऊर्जा के संवाहक महावीर के स्याद्वाद के अनुसार वस्तु का इन्द्रियग्राह्य रूप कुछ और होता है और उसका वास्तविक स्वरूप कुछ और। हम बाह्य-स्वरूप को देखते हैं, जो इन्द्रियग्राह्य है। सर्वज्ञ बाह्य व आन्तरिक दोनों स्वरूपों को यथावत् जानते व देखते हैं। सरलता, सौम्यता और सादगी की संत-मुद्रा वाले सच्चे कर्मयोगी आइन्सटाइन अपने सापेक्षवाद (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) में भी यही कहते हैं कि हम केवल आपेक्षिक-सत्य (रिलेटिव ट्रुथ) को ही जान सकते हैं., सम्पूर्ण सत्य

(एन्सोल्यूट ट्रुथ) तो सर्वज्ञ के द्वारा ही ज्ञात है।

समन्वय, सह-अस्तित्व और सहिष्णुता को महावीर-दर्शन शारीरिक घरातल पर अहिंसा कहता है और बौद्धिक पृष्ठ-भूमि पर अनेकान्त। अनेकान्त चिन्तन की अहिंसामयी प्रक्रिया है, और स्याद्वाद उसकी अभिव्यक्ति की सापेक्ष शैली। ‘स्यात्’ समस्त विरोधियों को नष्ट कर देता है, और हमें सम्पूर्ण सत्य की ज्ञांकी दिखाता है। सत्य शाश्वत है, किन्तु यह मत कहो कि मेरा सत्य ही सत्य है। एकान्त आग्रह सत्य नहीं है। इस अनाग्रह दृष्टि का नाम ही स्याद्वाद है।



आइन्सटाइन

महावीर के स्याद्वाद के अनुसार सत्य सापेक्ष है। महावीर ने जिस भी तथ्य का प्रतिपादन किया, वह सापेक्ष दृष्टि से किया। अनेकान्तवाद ने विरोधी प्रतीत होने वाले तत्त्वों की समन्वित स्वीकृति कर सहअस्तित्ववाद के सिद्धान्त को जन्म दिया। स्याद्वाद की दृष्टि से किसी भी तत्त्व को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती, अपने-अपने स्थान पर सब प्राथमिक और मुख्य हैं। काल का कार्य पुरुषार्थ नहीं कर सकता और पुरुषार्थ का कार्य भाग्य नहीं कर सकता। यही कारण है

कि जागतिक द्रव्यों और नियमों में विरोध और अवरोध का सामंजस्यपूर्ण संतुलन है, इसलिए वे कार्य की निष्पत्ति में अपना-अपना अपेक्षित योग देते हैं। मनुष्य की कार्य करने की स्वतंत्रता सापेक्ष ही होती है, निरपेक्ष, निरंतर और निर्बाध नहीं होती। यदि वह निरपेक्ष होती तो मानव इस विश्व को सुदूर अतीत में ही स्वेच्छा-नुसार परिवर्तित कर देता और यदि वह कार्य करने में स्वतंत्र होता ही नहीं तो वह विश्व को कुछ भी परिवर्तित नहीं कर पाता।

सृष्टि के मूलभूत सिद्धान्तों को भी महावीर ने सापेक्ष बताया। वे कहते हैं कि परमाणु नित्य भी है और अनित्य भी। द्रव्यत्व की अपेक्षा से वह नित्य है, बाह्य-स्वरूप की अपेक्षा से अनित्य — प्रतिक्षण परिवर्तनशील, उसी प्रकार संसार शाश्वत भी है और अशाश्वत भी।

प्राकृतिक स्थितियों के विषय में आइन्सटाइन भी अपेक्षा-प्रधान बात कहते हैं। सापेक्षवाद के अनुसार प्रत्येक ग्रह व प्रत्येक पदार्थ चर भी है और स्थिर भी। आइन्सटाइन तो यहां तक कहते हैं कि प्रकृति ऐसी है कि किसी भी प्रयोग के द्वारा चाहे वह कैसा भी क्यों न हो, वास्तविक गति का निर्णय असंभव ही है, क्योंकि गति और स्थिति आपेक्षिक धर्म हैं।

आइन्सटाइन के सापेक्षवाद और महावीर के स्याद्वाद के कुछ प्रसंग ऐसे हैं, जो अनायास गंगा-यमुना की तरह एकी-

भूत होकर बहते हैं। सापेक्षवाद के अनुसार जिस किसी घटना के बारे में हम कहते हैं कि वह घटना आज या अभी हुई, हो सकता है कि वह घटना सहस्रों वर्ष पूर्व हुई हो! इस प्रकार नीहारिकाओं के विस्फोट का परमार्थ-काल नहीं, सापेक्ष-काल ही बताया जा सकता है। इसी प्रकार माप, तौल, गणित आदि की परिभाषाएं सापेक्षवाद के अनुसार ठीक हो सकती हैं, यदि उन्हें परमार्थ-सत्य मानने की जगह सापेक्ष-सत्य कहें। अधिक वक्र की अपेक्षा कोई रेखा सरल हो सकती है। अधिक मोटे बिन्दुओं की अपेक्षा किसी बिन्दु की लम्बाई-चौड़ाई नगण्य समझ सकते हैं! हमारे सभी माप-तौल सापेक्ष हैं। स्याद्वाद भी इन्हीं अपेक्षात्मक समीक्षाओं से भरा पड़ा है, जो स्याद्वाद के आपेक्षित-सत्य के स्थापना-सत्य भाग पर आधारित हैं।

स्याद्वाद का प्रतीत-सत्य भी सापेक्ष-वाद के सापेक्ष-सत्य से मेल खाता है। 'स्यात् अस्ति' 'स्यात् नास्ति', की भी बात स्याद्वाद व सापेक्षवाद में पद-पद पर मिलती है। स्याद्वाद के अनुसार 'स्यात्' शब्द उस निश्चित दृष्टि का प्रतिपादन करता है जो कहती है, इस दृष्टि से देखने पर, वस्तु का अमुक धर्म है और एक दूसरी दृष्टि से देखने पर उसका दूसरा धर्म। एक अपेक्षा से वस्तु 'स्यात् अस्ति' है, तो दूसरी से 'स्यात् नास्ति'। सापेक्षवाद भी 'यह है भी और

अनु- नहीं भी' विचार को प्रवर्तन करता है।

हम आइन्सटाइन के सापेक्षवाद की व्याख्या करते हुए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिंगटन कहते हैं, 'मैं सोचता हूँ हम बहुधा सत्य व वास्तविक सत्य के बीच एक रेखा खींचते हैं। एक वस्तु जो कि केवल पदार्थ के बाह्य-स्वरूप को ही व्यक्त नहीं करता, अपितु उसकी सतह में रही सच्चाई को भी प्रकट करता है, वह वास्तविक सत्य है।'।

महावीर का स्याद्वाद भी बताता है कि वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। जब हम किसी वस्तु के विषय में कुछ भी कहते हैं तो एक धर्म को प्रमुख और अन्य धर्म को गौण कर देते हैं। हमारा वह सत्य केवल आपेक्षिक-सत्य होता है। अन्य अपेक्षाओं से वही वस्तु अन्य प्रकार की भी होती है। गुरुत्व व लघुत्व जो हमारे व्यवहार में आते हैं, वे मात्र आपेक्षिक हैं। स्याद्वाद और सापेक्षवाद की इस प्रकार की विस्मयोत्पादक समता को देखकर यह तो मान लेना पड़ता है कि, स्याद्वाद कोई अधूरे तथ्यों का पुलिदा नहीं, अपितु वस्तुतथ्य को परखने का एक यथार्थ मार्ग है। स्याद्वाद तर्क की कसौटी पर आधुनिक सापेक्षवाद द्वारा समर्थित है, दोनों ही वाद अपेक्षानिष्ठ हैं। और वस्तुतथ्य को परखने की पद्धति दोनों में लगभग समान है। परंतु वास्तव में स्याद्वाद जीवन का व्यावहारिक मार्ग होते हुए भी एक आध्यात्मिक सिद्धान्त

१९८१

है और सापेक्षवाद भौतिक, अतः स्याद्वाद सापेक्षवाद का पर्याय नहीं है।

भगवान महावीर की वाणी में परमाणु और पुद्गल का विषय इस प्रकार प्रस्फुटित हुआ है: धर्मास्तिकाय (द्रव्य व आत्मा की गति का माध्यम), अधर्मास्तिकाय (द्रव्य व आत्मा की स्थिरावस्था का माध्यम), आकाशास्तिकाय (अन्तरिक्ष), पुद्गलास्तिकाय (द्रव्य तथा ऊर्जा), जीवास्तिकाय (आत्माएं) तथा काल (समय)। विज्ञान-पुरुष आइन्सटाइन भी ईथर (धर्मास्तिकाय), स्पेस या अन्तरिक्ष (आकाशास्तिकाय), द्रव्य तथा ऊर्जा (पुद्गलास्तिकाय), टाइम या समय (काल) की अभिव्यक्ति करते हैं। कांट और हेगेल आकाश व ईथर को मानसिक व्यापार अथवा परिकल्पना मानते हैं, किंतु आइन्सटाइन ने सिद्ध किया है कि आकाश व ईथर सत् पदार्थ हैं।

आइन्सटाइन का अपेक्षिता का विशिष्ट सिद्धांत ईथर की व्याख्या करता है कि ईथर एक अभौतिक, लोक-व्याप्त, नहीं देखा जा सकनेवाला, अरूप, अविभाज्य, अखण्ड, गति का अनिवार्य माध्यम और अपने आप में स्थिर द्रव्य है, पिण्डत्व और घनत्व का उसमें अभाव है, उसमें नये निश्चयात्मक गुण हैं। आइन्सटाइन के ईथर तथा महावीर के धर्मद्रव्य या धर्मास्तिकाय में बहुत कुछ साम्य है, क्योंकि महावीर के अनुसार धर्मद्रव्य एक

(शेषांश पृष्ठ १५७ पर)



लक्ष्मीचन्द्र जैन की लंबी कविता बादुबली : एक आत्म-संलाप

[वन-गमन की राह में]

मैं द्वंद्व, वासना, घृणा, क्रोध, लोभ
और आत्म-वंचना के जगत् को पीठ देकर निकल पड़ा हूँ।
यह सोच कर मुझे पीड़ा होती है, कि मैं
इस सारे विग्रह का मूल केंद्र और आदि कारण बना !

‘विग्रह’—कहा क्या मैंने ?

आह, वह सत्यानाश था,
युद्ध-क्षेत्र को चारों ओर से आवृत्त किये हुए
वह सघन से सघनतर होता विषाद !
चमक रहा था केवल चक्र, सेवा में अविचल उपस्थित :
उसके बारे में सोचना अतल स्रन्दकों में गिर जाना है !
कितना भयंकर है यह ख्याल
कि चक्र चलाया भरत ने,
मेरे सहोदर ने, मेरे बड़े भाई ने, मेरे प्यारे बड़े भाई ने,
जो मेरे मान्य हैं, परम पूजनीय हैं;
और वह भी हमारे तीर्थंकर पिता
आदिनाथ की अनुपस्थिति में,
जिनका समवसरण, जो हर पीड़ित का
पावन शरणघाम है,

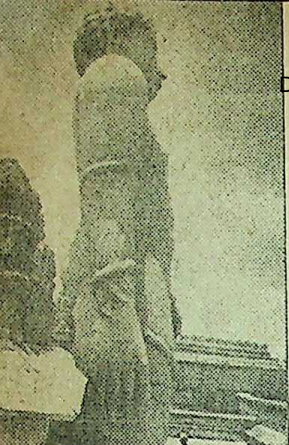
जिसमें से परम शांति की लहर निरंतर
उच्छ्वसित और प्रवाहित होती रहती हैं।

ओ पिता, क्या तुम्हारी सर्वज्ञता में
प्रतिबिम्बित हुई वे सारी घटनाएं ?
घूरती हुई आंखों का वह
झपटता हुआ आग का दरिया।
पानी की फलांगती हुई दीवारों का
वह तलातुम, वह उद्दाम ज्वार।
दो योद्धाओं के गुत्थमगुत्था होते
शरीरों का वह पारस्परिक भञ्जन और सम्मर्दन।

... किस तरह मैंने हलके से उठाया उन्हें अपने कंधों पर :
वह था एक महाक्षण : किस बात का ?
प्रतिशोध का ? नहीं ! वह था एक मुहूर्त-क्षण,
निर्मोह होने का, निष्क्रान्त होने का :
वह बिंदु था, रास्तों के जुदा हो जाने का।
वह क्षण था चरम विजय का, और चरम पराजय का।
वह क्षण था, जब ब्रह्माण्ड एक मटर के दाने में
सिमट गया था और अवकाश
विलुप्त हो गया था वाष्प की धुंध में !
यद्यपि मैंने बेहद मृदुता से लिटा दिया था
उन्हें धरती पर; मेरी नम्रता गर्वोन्नत हो गयी थी
सत्ता के उस शिखर पर, जिस पर वह
आरोहण कर गयी थी।

मुझे अचम्भा होता है सोचकर, कि
क्या बात थी कि मेरे भाई ने स्वीकार लिये
वे तीन द्वन्द्व-युद्ध, जिनके परिणाम पहले ही जाने-माने थे ?
मेरा बांधा, मेरा बल, मेरा पराक्रम

[इस कविता के छायाचित्र 'फोटो फीचर्स यूनिट : टाइम्स ऑफ इंडिया' के सौजन्य से]



प्रकट था सबके सामने पहले ही ।

चक्रवर्ती की अजेय सेना भी

सबकी आंखों के सामने थी पहले ही ।

रणांगन में उन्हें अपनी अप्रतिम शक्ति आजमाने का इनकार,

खुब सुक्राबिल होकर पारस्परिक द्वंद्व-युद्ध में

मुझे अपने अश्व्य बल को आजमाने का स्वीकार:

यह नियति के एक क्रूर मजाक का अंदाज ही तो था ।

०

मैं सोचता हूं, भरत कह सकते थे 'नहीं'.....

वे नकार सकते थे दोनों सैन्य-शिविरों

के वृद्ध और सयाने मंत्रियों के क्षोभ को—

जो एकजुट थे शांति के लक्ष्य पर :

लक्ष्य—जो नहीं था भरत का, न था मेरा—बाहुबली का,

बल्कि जो लक्ष्य था हमारे पिता तीर्थंकर आदिनाथ का,

जिनकी अहिंसा की धर्म-देशना,

तलवारों की टक्कर, और हाथियों के घमासान

तले मरणान्तक रक्तपात के दरिये में डूब जातीं ।

... तो क्या हुआ ? युद्ध आखिर युद्ध है,

और मेरे भाई नकार सकते थे

इस द्वंद्व-युद्ध के प्रस्ताव को ।

लेकिन नहीं, उन्होंने ऐसा नहीं किया ।

०

तराजू के पलड़े भारी तुलते खड़े थे, उनके विरुद्ध ;

पांसा थमा था भरपूर मेरे पक्ष में ।

मैं टक्कर पर टक्कर, टक्कर पर टक्कर,

टक्कर पर टक्कर देता ही चला गया ।

उन्हें झुका देने के लिए, मैंने निर्लज्ज होकर

अपने बल और पराक्रम को चरम तक आजमाया,

उनके क्रोध और क्षोभ को उभारने के लिए ।

उन्होंने आखिर आक्रामक होकर

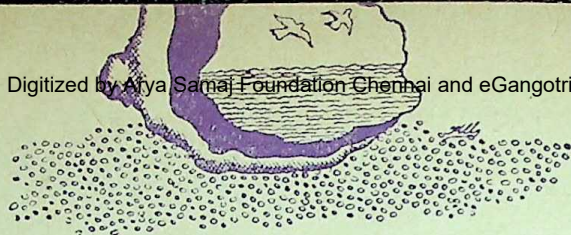
अपने चक्र का आवाहन किया,
 इस ख्याल से आश्वस्त होकर शायद,
 कि मैं उनका निर्दलन नहीं कर सकता हूँ।
 इस ख्याल में शरण लेकर शायद,
 कि वे मेरी हस्ती को मिटा नहीं सकते हैं,
 क्योंकि हम दोनों की नसों में तीर्थकरों का रक्त प्रवाहित था,
 क्योंकि हम दोनों के गालों को एक ही नमक के आंसू धो रहे थे,
 क्योंकि हम दोनों एक ही पश्चात्ताप में सहभागी थे।

जब मैंने उन्हें अपने कंधों पर उठा लिया,
 जब उन्होंने मुझ पर अपने चक्र का प्रहार किया,
 वही सुहृत् क्षण था—सत्य के साक्षात्कार का :
 'बाहरी आचार का स्खलन नहीं,
 आंतरिक भाव का बहुमुखी पीड़न ही हिंसा है !'
 अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए,
 अपने मन के अंधियारे प्रकोष्ठों में
 दीपक उजालने के लिए ही,
 अब मैं जंगल के एकान्त में जा रहा हूँ।
 मैं उदग्र हूँ उस प्रकाश को पा लेने के लिए,
 जो चक्र की चकाचौंध को निष्प्रभ कर देगा,
 वह प्रकाश—जो अपनी प्रभा से,
 केवल हृदय और मष्तिष्क को ही आन्ध्रारित न करेगा,
 बल्कि उस कुटिल प्रवंचक अंधकार को भी विदीर्ण कर देगा,
 जो प्रज्वलित दीपक के तल में शरण खोजता है;
 जो उन दो नग्न चरणों तले छुपा रहेगा—
 जो चक्रवर्ती की भूमि पर खड़े रहने को लाचार होंगे :
 लेकिन क्या वह प्रकाश भी उसी चक्रवर्ती की देन होगा ?

... सो तो केवल वे परम-पिता तीर्थकर,
 वे सर्वज्ञ केवलज्ञानी ही जानते हैं !

—मूल अंग्रेजी से अनुवाद : वीरेन्द्रकुमार जैन





परलोक वार्ता-३

प्रस्तोता : म. म. पं. गोपीनाथ कविराज

बिछुड़ी आत्माओं के मिलन का अमरलोक

हम लोग वहां से थोड़ा और ऊपर उठने लगे। उस लोक में भी इसी प्रकार बहुत-सी आत्माएं हैं, परंतु वे अधिक उन्नत हैं। उनमें से २२-२३ वर्ष का एक युवक बाहर निकलकर हमारे पास आया और नमस्कार करके हमारे मुख की ओर देखने लगा। मैंने कहा, 'क्या तुम हमको पहचान सकते हो?' वह बोला, 'पूर्वजन्म में मालूम पड़ता है, आपको कहीं देखा है। कहां देखा है, यह भलीभांति स्मरण नहीं हो रहा है।' मैंने पूछा, 'पूर्व जन्म में तुम्हारा घर कहां था, बताओ।' उसने उत्तर दिया—'मूलचर पूर्व बंग में।' तब हम उसे पहचान सके। तुम लोग भी कदाचित् समझ सके हो। मैंने कहा, 'मुझको तुम क्यों नहीं पहचानते हो? मेरे घर पर तुम कितनी बार आये थे। थोड़े दिन हुए मैं भी भवधाम को छोड़कर इस अनंत धाम में आ गया हूं।' यह सुनकर उसने कहा, 'क्या आप बंकिम बाबू हैं?' यह कहकर वह चौंक उठा और बोला, 'हा! भगवान्! तुम किसी को भी छोड़ते नहीं

हो? आप लोग हमको ज्ञानधर्म के विषय में शिक्षा दीजिये और शीघ्र और शांति-धाम में, शांतिमय भगवान् के चरण में पहुंचने का उपाय बताइये, जिससे उनको हृदय से पुकारकर उन्नत हो सकूँ और उनकी स्नेहमय गोद में आश्रय पा सकूँ। ऐसा उपदेश देकर हमारा इस अशांति के देश से उद्धार कीजिये।' मैंने कहा, 'क्या चिंता है? अनाथशरण भगवान् को पुकारने पर ही सब ज्वालाओं से मुक्त हो जाओगे। मैं बीच-बीच में आकर तुम लोगों को ज्ञानधर्म के विषय में शिक्षा दूंगा। तुम लोग एक स्वर से भगवान् को पुकारकर कहो—'हे भगवान्! किस प्रकार से पुकारने पर हम श्रीचरण में पहुंच सकेंगे और तुम्हारे शांतिमय अंबर में स्थान लाभ कर सकेंगे, बताइये। हम लोग आश्रयहीन हैं। कृपा कर आश्रय दीजिये। वे करुणामय हैं, तुमको आश्रय देंगे। उनके श्रीचरण में तुम्हें स्थान मिलेगा। यह कहकर हम लोग अपने स्थान को यह सोचते हुए लौट आये कि इन लोगों की उन्नति में अभी बहुत देरी है।

नवनीत

५२

करवा

दूसरे दिन हम लोग और एक स्थान में गये। वहाँ भी प्रकाश है, कई आत्मा रहते हैं। धर्म की चर्चा होती है। हम लोग एकत्र होकर धर्म के विषय में बातचीत करने लगे। यह स्थान बड़ा सुंदर है। थोड़ी देर बाद दिखाई पड़ा कि एक आत्मा हमारे निकट उपस्थित है। उसको जब हम जीवित थे, पुत्र की भांति स्नेह करते थे। बीमारी तथा जीवन की अन्य सभी अवस्थाओं में मैं उससे सहायता पाता था। वह हम पर पिता की भांति भक्ति करता था। उसका नाम है सुरेश सर्वाधिकारी। उसको देखकर बहुत आनंद हुआ। फिर जज रमेश-चंद्र, तिनकरीपाल और अतुल बाबू भी वहीं मिल गये। इन्हें देखकर मैंने सोचा, बड़े आनंद और शांति का स्थान है। कभी जिनके साथ एक दिन नहीं रह सका, रोग हुए बिना जिस डॉ. सुरेश को बुला नहीं सका, उसी के साथ आज हम लोग एक स्थान में बात कर रहे हैं। भगवान तुम्हारी क्या लीला है? लड़कपन में रमेश बाबू को देखा था—आज वे भी हमारे साथ इस अमरलोक में वास कर रहे हैं। मृत्यु! तुम कितनी शांतिमय हो। लोग न समझ करके ही तुमसे डरते हैं। इन लोगों ने आकर हमसे हाथ मिलाया और मेरा नाम लेकर कहा, 'बंकिम बाबू! तुम अच्छे हो न? तुम्हारे संबंध में हम लोग प्रायः चर्चा करते हैं। तुम और कुछ दिन पृथ्वी पर रहते तो



लोगों का बहुत उपकार होता। असमय में ही तुम आ गये।'

मैंने उत्तर दिया—'क्या मृत्यु को समय-असमय का कुछ विचार है? जब भी प्रभु कहते या स्मरण करते हैं, तभी वह कार्य सिद्ध हो जाता है। पृथ्वी में जितने दिन रहा जाये उतना ही लोग कुसंग और कुकार्य में लिप्त हो जाते हैं। उसके फल-स्वरूप स्वर्गद्वार रुद्ध हो जाता है। हम ठीक समय पर आये हैं। आप लोगों की ही मृत्यु असमय हुई है। डॉ. सुरेश के आने से कलकत्ता में बहुत हानि हुई है। कुछ दिन और रहते तो अच्छा होता। इनके अभाव में ही रोग के तीव्र भय से हमारी मृत्यु हो गयी। इस मृत्यु ने ही मुझे मुक्ति दी है।'

यह सुनकर वे हंसने लगे और परिहास करते हुए बोले, 'अब बीमार होने पर तुम्हें मृत्युभय नहीं रहेगा, क्योंकि डॉ. सुरेश सशरीर तुम्हारे पास उपस्थित हैं,' मैंने कहा, 'हमें अब मृत्युभय नहीं है।'

हम लोग अब अनंतधाम के मुक्त जीव हैं। यहां डॉ. का प्रयोजन नहीं है। भगवान का नाम-ज्ञान ही जीवन का महीषध है।

मैंने देखा, उन लोगों की आत्मा ज्योतिर्मय है और उनके मुख पर शांति की छाया है। इससे हमें बहुत आनंद हुआ। डॉ. सुरेश को कुछ दिन पहले ही पता लग गया था कि उनकी मृत्यु निकट है। इसीलिये उन्होंने वसीयतनामा लिखकर रख दिया था। अपने एक छात्र से उन्होंने यह कह भी दिया था, किंतु उन लोगों की समझ में बात आयी नहीं। मृत्यु का पूर्वाभास इने-गिने लोगों को ही मिलता है। प्यारी बाबू को भी इसका ज्ञान हो गया था। परंतु मैं अंतिम समय पर्यन्त समझ न पाया कि मेरी मृत्यु इतनी निकट है। जीने की आशा बनी ही रही।

मैंने यहां आकर पहले की माया का उच्छेद करने की चेष्टा की, परंतु कर नहीं सका। इसीलिये भगवान को पुकारा कि माया-बंधन कट जाये। उन्होंने मेरी प्रार्थना सुन ली है। मैं अत्यंत शीघ्र ही सब माया-मोह, स्नेह-प्रेमादि के संबंध से मुक्त हो गया हूं। आज पौष का चौथा दिन है, ठीक ऐसे ही दिन मेरे सभी कष्टों का अवसान हुआ था। मैं भवधाम छोड़कर अनंतधाम का जीव बना। भगवान विश्वनाथ ने अपनी स्नेहमयी गोदी में मुझे उठा लिया। इससे मेरी शांति हुई, परंतु जिस देश से

इस देश में आया हूं उस देश में हाहाकार उठ रहा है। अब मेरी कोई कामना या वासना नहीं है। सब विषयों से अतीत हो गया हूं। अब सब कुछ स्वप्नवत् प्रतीत होता है। पहले समझते थे किसी अपरिचित स्थान में जाऊंगा और मृत्यु के बाद किसी को देख नहीं सकूंगा। ऐसा भाव उठा था कि कुछ न कुछ दंड अवश्य मिलेगा। यह समझकर व्याकुल हो जाता था परंतु अब देख रहे हैं कि इससे अधिक शांति और कहीं है ही नहीं। हे भगवान्! तुम्हारी लीला अपार है!

०००

यहां अनंत कोटि जगत हैं। उनकी संख्या नहीं हो सकती। बायस्कोप के चित्र की भांति सभी आत्माएं चलती फिरती हैं। मैं देखता हूं कि ये सभी आत्माएं ही मानों मेरी अपनी हैं। अथवा वस्तुतः मेरी कोई नहीं है। पूर्व जन्म की स्मृति मानों आंख के सामने जाग उठती है। मैं आत्महारा हो जाता हूं। तुम लोगों के सामने क्या कहूं? कभी-कभी मैं समझ नहीं पाता हूं कि यह कैसा स्थान है? सभी आत्माएं कहती हैं कि यह शान्तिलोक है। वस्तुतः यहां बहुत ही शांति मिलती है। स्त्री-पुत्र-कन्या जिनके ऊपर इतना स्नेह था और जिनसे बीमार होने पर चक्षु में अंधकार आ जाता था, भगवान् को पुकारता था आज हम उनसे बहुत दूर हैं। लेकिन फिर भी उनके प्रति आकर्षण है। उस माया

नवनीत

५४

फरवरी

मुक्त होना चाहता हूँ। फिर उसमें बंद न हो जाऊँ। आत्मीय, स्वजन, भाई सबको छोड़ यहाँ आकर किस प्रकार शक्तिलाभ किया, यही आश्चर्य है। डर होता है कि बार-बार नरलोक में जाने से फिर माया में प्रबद्ध न हो जाऊँ। इसी-लिये यहाँ आते ऐसा कर दिया गया जिससे माया अथवा मोह में लिप्त न हो जाऊँ। और फिर जन्म न लेना पड़े। हे भगवान् ! इसी प्रकार हमारी रक्षा करना और श्रीचरण में स्थान देकर शांति प्रदान करना।

यहाँ की सभी आत्माएँ कहां और कैसे रहती हैं यह समझा दूंगा। पृथ्वी में जैसे अनंत ब्रह्मांड हैं, उसी प्रकार यहाँ भी अनंत कोटि जगत हैं। कहां किस महात्मा का अवस्थान है? कहां कौन रहता है? यह अभी तक जान नहीं पाया हूँ और बता भी नहीं सकता। जब उन लोगों से मिलते हैं तब उनके मुख से थोड़ा-थोड़ा सुन पाते हैं। मैं नूतन आत्मा हूँ, नूतन देश में आया हूँ। कुछ दिन वास करने पर ही उन लोगों का कर्म ग्रहण करूँगा, तब तुम लोग जान सकोगे।

०००

अब भीतर की बात कहता हूँ। जिस समय मेरे मस्तक का रोग बढ़ गया उस समय समझा कि कोई दैवी औषध हो अथवा दैववाणी हो, उसी से मेरा रोग हट जायेगा। मेरी स्त्री चक्षु के लिए दैवी औषध पाकर आरोग्य हो गयी थी,

यह समझकर रात्रि में चक्षु बंद करके सो जाता था, परंतु औषध नहीं पायी। स्त्री के निकट कुछ गंभीर आवाज़ सुनकर मुझे सिहरन हुई। तीसरे दिन देखा कि एक आदमी मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसके सर्वांग में क्षत 'अत्सर' था। उसे देखते ही मैं कांपने लगा। डर के मारे आँखें बंद कर लीं। सोचने लगा कि यह क्या है? भगवान् ने कौन दृश्य दिखाया। फिर देखने में आया कि कोई आभायुक्त देवता उपस्थित है। अवश्य इसका कोई तात्पर्य होगा। अंत में जब यह स्वप्न दर्शन यथार्थ सत्य हो गया, तब मैंने समझा कि स्वप्न में संन्यासी या और कोई देवता को देखकर क्यों उस क्षतपूर्ण-प्राणी को देखा। प्रतीत होता है कि इसी प्रकार कुछ देखकर मेरी मृत्यु अनिवार्य है।

इस स्वप्न का फल एक दिन मिल गया। उस समय सोचकर कण्ठ पाता था, आज देखता हूँ शांति ही शांति है। जो विषदग्रस्त होनेवाले हैं वे पहले ही विभीषिका देखते हैं। मेरे संबंध में भी ऐसा ही हुआ। एक मास के बाद मुख में व्रण दिखाई देने लगे। अंत में चारपाई पर पड़ गया। अंतिम समय में फिर उसी देवता ने दिव्यदेह धारण करके मुझे दर्शन दिया। और हरिनाम औषधि देकर सब रोगव्याधि-भयग्रंथणा से मुक्त कर दिया। मेरे सब कण्ठ दूर हो गये।

(शेषांश पृष्ठ ५८ पर)

१९८१

५५

हिंदी डाइजेस्ट

इतना मत दूर रहो
गंध कहीं खो जाये,
आने दो आंच
रोशनी न मंद हो जाये—

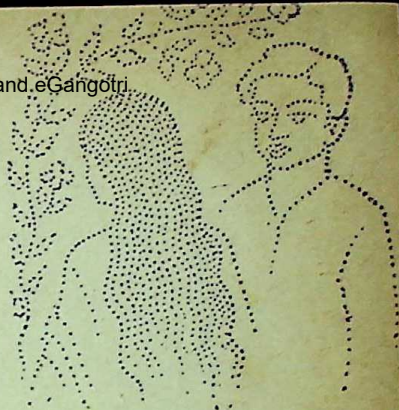
देखा तुमको मैंने कितने जन्मों के बाद
चम्पे की बदली-सी धूप-छांह आसपास,
धूम-सी गयी दुनिया, यह भी न रहा याद—
बह गया है वक्त लिये सारे मेरे पलाश,
ले लो ये शब्द
गीत भी न कहीं सो जाये
आने दो आंच
रोशनी न मंद हो जाये—

आने दो आंच

उत्सव-से तन पर सजा ललचाती मेहराबें
खींच ली मिठास पर क्यों शीशे की दीवारें,
टकराकर डूब गयीं इच्छाओं की नावें
लौट-लौट आयी हैं मेरी सब झनकारें,
नेह-फूल नाजुक
न खिलना बंद हो जाये
आने दो आंच
रोशनी न मंद हो जाये—

क्या कुछ कमी थी मेरे भरपूर दान में
या कुछ तुम्हारी नज़र चूकी पहिचान में,
या सब कुछ लीला थी तुम्हारे अनुमान में
या मैंने भूल की तुम्हारी मुसकान में,
खोलो देह-बंध
मन समाधि-सिंधु हो जाये
आने दो आंच
रोशनी न मंद हो जाये ।

तुम मेरे शरीर पर काले जादू की तरह छा गयी हो,
 तुम्हारी देह मेरे भीतर ताल देती है
 किसी जंगली गीत की बहती हुई
 अजनबी लय की तरह लगातार,
 सौ जाने पर भी
 दुहराती जाती है
 एक ही जगह अपने को बार-बार—



तुम मेरी दुनिया पर एक अचरज की तरह छा गयी हो,
 मेरी खामोश आंखें
 फिर से अनोखे सपने देखने लगी हैं,
 अंधी पड़ती हुई चीजें
 नया अर्थ देने लगी हैं,
 उम्र पर उड़ती गर्द
 साफ़ होने लगी है,
 अधूरी भीतरी इमारत
 कुछ पूरी होने लगी है,

खुले बालों की रात

फिज़ूल कामों की ऊबती थकानों के बीच
 तुम खुले बालों की रात बन सहसा आ गयी हो !

तुम मेरे जन्म के इकहरे सुनेपन में
 एक बाहरी फूल की तरह आकर लग गयी हो,
 मेरे शब्दों की खुशबू
 तुम्हारी बांहों की लिपटती गंध है,
 उनके चटकीले रंगों पर
 तुम्हारे ओठों की छाप है,
 मेरी वाणी की उग्रता में
 तुम्हारी इच्छाओं का ताप है,
 तुम मेरे नंगे वक्त के पहिले खालीपन में
 गहरे खुले स्वाद की तरह समा गयी हो !
 तुम मेरे शरीर पर काले जादू की तरह छा गयी हो !



(पृष्ठ ५५ का शेषांश)

भगवान् अन्याय अथवा अविचार नहीं करते ।

जन्म के कर्मफल-भोग से मेरी कौन रक्षा करेगा ? रोग के कारण किसी दैवोषधि की आंकांक्षा नहीं करना, उससे उल्टा फल होगा । यह समझ करके उसकी व्यवस्था की नहीं थी । अब वही श्री चरण में स्थान देंगे ।

भगवान् विश्वनाथ मेरी इस सूक्ष्म देह में विराज रहे हैं, सब समय मैं यही अनुभव करता हूँ । मानव-जगत में रहने के समय कितना दुख कष्टानुभव किया । यहां आकर मेरी सारी यंत्रणा दूर हो गयी । मेरे लिए तुम लोग चिंतित मत होना । संयम में रहकर ईश्वर-चिन्ता करो । उसी से तुम्हारी आशा पूर्ण होगी । जहां मेरी देह दग्ध हुई थी, सुरेश ने उस स्थान के चित्तस्वरूप स्तंभ तैयार कर दिया, यह जानकर सुख हुआ । मैं तो इस समय विषम भावना से अतीत हूँ । उसके पिता का चित्त चिरस्थायी रहे, इस चिन्ता में उसका मन व्यग्र है, यह जानकर मुझे शांति मिलती है ।

०००

आज हम लोग बहुत स्थान देख करके आये । एक स्थान में एक बालिका की आत्मा को देखा । कुछ कष्ट में है । पंचम स्तर में वास करती है । उसकी मृत्यु काशी में हुई थी । देहांत के समय शांति से प्राण त्याग नहीं कर सकी ।

नवनीत

इसालिय उसकी आत्मा जड़भाव में और मन का भ्रम अभी तक दूर नहीं हो सका है । किसी को पहचान नहीं सकती स्पष्ट रूप से देख नहीं सकती । इसी कष्ट होता है । मेरी बातें सुनकर उस मुझे पहचान लिया और मेरे पास आकर बोली, 'मुझे आप पहचानते हैं क्या ? मेरा नाम हेमांजनी है । मैं मंटू की बहन हूँ । बंधु-बांधवहीन होकर यहां अकेले रहती हूँ । आपने जिस रोग से देह त्याग किया था, मुझे भी वही हो गया था । आप अतिशीघ्र श्रेष्ठस्थान में पहुंच गये मैं उन्नति नहीं कर सकती । आप कह सकते हैं कि इसका कारण क्या है ? मैंने कहा, 'केवल ईश्वर-चिन्ता करके मेरा अंधकार दूर करो । यह होने पर ज्ञान का प्रकाश होगा और पुण्य की ज्योति देख सकोगी । तुम्हारी आत्मा निर्मल होगी और प्राण में शांति आयेगी । तब सब बंधु-बांधव तुम्हें दृष्टिगोचर हो जायेंगे । किसी प्रकार अशांति नहीं होगी ।

इसके बाद दूसरे स्थान में जाकर बहुत कुछ देखा । देखकर मन में आनंद हुआ । पारुल नाम की एक लड़की की आत्मा मुझे देखकर कहा, 'आप तो नरलोक जाते हैं, एक दिन हमको भी साथ ले चलिये । मां को देख आऊंगी । वह बहुत ग़रब करती थी । मेरे लिए बहुत व्याकुल है ।' यह लड़की माखन स्त्री है । शायद वह पहचान सकेगी ।

०००

५८

आज फिर चारों बाबू के साथ बैठे हुए। बीच में ६-७ दिन उनका दर्शन नहीं हुआ था। वे नवम् स्तर में हैं। बीच-बीच में आकर भगवान का नाम सुनाकर हमें आनंद देते हैं। उनमें बहुत शक्तियां हैं। वे जब तक संसार में रहे भगवान का नाम लेते हुए ही जीवनयापन किया। बालक-बालिकाओं को बड़े स्नेह से परिश्रमपूर्वक पढ़ाते थे। उचित और अनुचित का विचार कर काम करते थे। विद्यार्थी उनको देवता की भांति पूजते थे। इसीलिये आज उन्हें श्रेष्ठस्थान में वास मिला है। उनके लड़के से जितनी बातें सुनने में आयीं वे आश्चर्यजनक हैं। इस समय इनकी असीम शक्ति है। इस लोक में यदि भगवान को पुकारकर हृदय में आनंद मिले और किसी विषय में लक्ष्य न रहे तो हृदय देवता के तुल्य हो जाता है। वह सचमुच देवता ही बन जाता है।

डॉ. बाबू सुरेश सर्वाधिकारी की एक पुत्रवधू को कठिन रोग हो गया था। वचने की आशा नहीं थी। किंतु डॉ. साहव के सामर्थ्य और भगवत्कृपा से उसकी संरक्षा हो गयी। यह अत्यंत आश्चर्यजनक व्यापार है। बहुत बातें हैं। शांति के रुग्ण होने के समय भी वे आये थे। उस बहू को रोग के आक्रमण के पहले ही कुछ-कुछ आभास मिल गया था कि वह भीषण रोग से पीड़ित होगी। रोगमुक्त होने पर उसे धर्मजीवन का लाभ हो गया। भगवान इसी प्रकार

से किसी-किसी जीव को अपने सांचे में ढाल लेते हैं। डॉ. बाबू और उनकी स्त्री एक साथ हैं। बीच-बीच में जाकर देख आता हूं और उनकी मंगल कामना करता हूं। उनकी एक और पुत्रवधू भी रोग मुक्त हुई थी—भगवान की इच्छा है। जब शांति के जीने की आशा नहीं थी, तुम लोग व्याकुल हो गये थे, चारों ओर अंधकार छा गया था, उसी अंधकार-पूर्ण स्थिति में एक क्षीण आशा जाग उठी। समझ में आया, मानों कोई भीतर से कह रहा है—‘भगवान को पुकारो, वे ही विपत्ति से उद्धार करेंगे।’ यह सुनते ही अंधकार दूर हो गया। उस स्थान में प्रकाश देखने में आया। भगवान के नाम-कीर्तन से प्राणरक्षा हुई। परमहंस राम-कृष्ण स्वयं आये थे। उनके साथ अन्य आत्माएं भी आयी थीं। भगवान ने सहायता की। शांति रोगमुक्त होकर पूर्णतया स्वस्थ हो गयी।

०००

मुकुल नाम की एक बालिका की आत्मा यहां आयी है। वह बहुत छोटी है, प्रायः अपनी दादी और दादू की बात पूछती है। मैं उसको एक दिन साथ लेकर दादू और दादी को ‘नरलोक में’ दिखाकर ले आया।

यहां दो श्रेणी की आत्माएं हैं—जो लोग जल में डूबकर मर जाते हैं और जो लोग आत्महत्या करते हैं। जो लोग देववाणी (शेषांश पृष्ठ १५९ पर)

पुरुष और नारी

□ नलिनीकांत गुप्त

भारत ने पुरुष और नारी के विषय में एक संगठित और नियंत्रित विशेष प्रकार का आदर्श गठित करना चाहा है। नारी को उसने पुरुष का एकांत अनुगत करके बद्ध कर देना चाहा है। पुरुष के अतिरिक्त व्यक्तिगत सत्ता और सार्थकता नारी को नहीं दी गयी। पुरुष के जीवन-धर्म को ही नारी स्वीकार कर लेगी। उसकी ही पूर्णता के लिए नारी अपने को उत्सर्ग कर देगी, ऐसा माना जाता था। पुरुष ही स्थिर कर देता था उसका लक्ष्य—उसकी साधना, नारी थी पुरुष के पथ की सहाय-शक्ति। जो नारी जितना ही अपने निजत्व, अपने वैशिष्ट्य को इस तरह से पुरुष में विलीन कर सकती है, अपना बलिदान करके पुरुष को ऊंचे चढ़ा सकती है, वह उतना ही नारीत्व का आदर्श बन गयी है।

केवल भारत में ही क्यों, पहले सर्वत्र ही नारी-जीवन इसी तरह से संगठित हुआ करता था। यूरोप में भी यही नियम था। प्राचीन ग्रीस और रोम की तो बात ही नहीं, मध्ययुग और उसके बाद तक भी इसी आदर्श का जोर था। पर भारतवर्ष में इस आदर्श को रीतिपूर्वक आदर्श पद पर स्थापित किया गया था। उसे धर्म-नीति के बंधनों के बीच डालकर एक साधना की वस्तु बना दिया गया था।

नवनीत

यूरोप में तो यह अधिक से अधिक एक सामाजिक व्यवस्था और संस्कारमात्र था। पर भारतवर्ष में इस सामाजिक व्यवस्था को जीवन-साधना, जीवन की ऊर्ध्वगति से मिलाकर दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित कर दिया गया था। नारी का व्रत था पुरुष में अपने को मिला देना, पुरुष का कर्तव्य था नारी को अपने में मिला लेना।

इस तरह की व्यवस्था या आदर्श का एक उद्देश्य भी था। यही नहीं कि केवल पुरुष का प्रभुत्व-लाभ या नारी की असहायता प्रमाणित करता था। पुरुष और नारी के अपने-अपने स्वभाव के एक विशेष सत्य का आश्रय करके ही ये संबंध निमित्त हुए थे। इसमें पुरुष का षड्यंत्र नहीं है। नारी ने भी बिलकुल बाध होकर इस संबंध को स्वीकार किया। ऐसी बात भी नहीं है। प्रश्न है कि पुरुष और नारी के वे सत्य क्या हैं जिस कारण पुरुष और नारी के बीच नेतृत्व और नीत या प्रभु और दास का संबंध दृष्टिगोचर हुआ है।

उपनिषद् की भाषा में पुरुष का जीवन केंद्र मनोमय कोष और नारी का जीवन केंद्र प्राणमय कोष है। तभी पुरुष स्वभावतः ज्ञान का प्रतीक और नारी शक्ति का विग्रह है। प्राणशक्ति का धर्म

जहाँ तक संभव हो सके जीव को पृथ्वी के साथ बांध रखना, उसे निम्नाभिमुखी करके घर की ओर झुकाये रखना। इसी लिए नारी समाज-संगठन का केंद्र हो उठी है। नारी का स्वाभाविक धर्म है—गृह, उसकी रचना—‘गृहणी गृहमुच्यते।’

प्राणशक्ति की एक और दिशा है। वह उतनी रचना नहीं करती या कर नहीं सकती, जितना वह नष्ट कर सकती है। प्राणशक्ति में एक अवाध गति, चंचल

एक अधाभिमुखी आक्रोश, एक अनिश्चितता है। इसीलिए पुरुष के ज्ञान की उर्व्वगति के पास उसे वशीभूत करके रखने की चेष्टा की गयी है। मनोमय सत्ता के दबाव, प्रभाव आदि का प्रयोजन, प्राणमय शक्ति को बांध कर रखने के लिए, एक विशेष प्रणाली से चला लेने के लिए, उसे संहत और शृंखलित करके उच्चतर आदर्श की ओर उठाये रखने के लिए ही, हुआ था। नहीं तो समाज नहीं बनता,



आवेग और भूख है। प्रकृति में एक ओर जितने सौम्य, शांत, कल्याणकर रूप हैं, जैसे, चांदनी, मधुयामिनी, दिवालो, वर्षा, फल, फूल, रूप, रस, गंध आदि, दूसरी ओर उतने ही भीषण प्रलयंकर रूप भी हैं, जैसे, अमावस्या, कालवैशाखी, जंझा, अग्नि का उत्पात, महामारी। भीम और कांत गुणों के समावेश से नारी भी प्रकृति की तरह ही ‘अघष्यश्चाधिगम्यश्च’—

एक ओर भीषण, दूसरी ओर लोभनीय है। नारी-शक्ति में एक अंध प्रमत्त भाव,

बनता तो टिक नहीं पाता। समाज की शृंखला और स्थिति के लिए ही पुरुष और नारी के प्रभु-दासी-भाव की आवश्यकता हुई थी। मनोमय सत्ता का सहज धर्म है ज्ञान की साधना, आदर्श का निरूपण, जीवनव्रत का स्वरूप-निर्णय, तभी देखते हैं कि पुरुष ने अपने विशेष लक्ष्य, विशेष दीक्षा को स्थिर किया है। और नारी ने उसकी परिपूर्णता और सार्थकता के लिए अपनी प्राणशक्ति को उसी के साथ जोड़ दिया है। यही कारण था कि

प्राचीन समाज में नारी की स्वतंत्रता क्षेत्र को मान लेने में उसकी व्यवस्था अनु- नहीं दी गयी या नहीं दी जा सकी। प्राण-शक्ति संयमित रहे, वह उच्छृंखल और उद्वेलित होकर न चल पड़े, समाज में एक अव्यवस्थित ध्वंस की धारा न फूट उठे, इसी मूल कारण से चारों ओर एक दीवार खड़ी की गयी थी, इसी कारण से और भी ज्ञान या अर्धज्ञान में उसे ठीक से बांध कर रखा गया था। नारी की स्वतंत्रता का अर्थ था प्राणशक्ति को अबाध रूप से खोल देना। इससे समाज-शक्ति का विकास हो सकता है, पर वह शक्ति किस रास्ते चलेगी, इसकी कोई स्थिरता नहीं है। वह अच्छा-बुरा सब कुछ कर सकती है। पर समाज इतनी अनिश्चित बात पर निर्भर करके नहीं चल सकता, तभी शक्ति का मान करके भी उसने उसे एक निश्चित, परिमित रूप देना चाहा है। पुरुष की मनोमय सत्ता के ज्ञानचक्षु से उसने, नारी की अंध प्राणशक्ति को चला लेना, नियंत्रित करना चाहा है।

अवश्य ही यह बात ठीक नहीं कि पुरुष मात्र ही केवल ज्ञान का आधार है और नारी मात्र ही प्राण-शक्ति की मूर्ति है। समाज में इसके विपरीत प्रमाण भी यथेष्ट मिलते हैं। पर बात है साधारण प्रकृति की, तत्त्व की जो व्यक्तिगत सत्य-असत्य को छोड़कर जीवनधारा के पीछे काम कर रहा है। समाज में साधारण शक्ति प्रकरण को देखना होता है, तभी विशेष

पयुक्त लगने पर भी समाज की शृंखला के लिए उसे मानकर चलना होता है।

नारी को जहां तक संभव है, सब तरफ से बांधकर रखना, पुरुष का एकांत अनुगत कर देना, यह समाज-व्यवस्था के लिए कार्यकर होने पर भी समाज की, जाति की उन्नति के लिए एक अंतराय है। क्योंकि इसी व्यवस्था के कारण नारी पुरुष की मात्र प्रतिध्वनि बन गयी है। भले वह आकर्षक हो, सुंदर हो, पर जीवंत मूर्ति नहीं है। जब तक नारी की पृथक् व्यष्टि-सत्ता नहीं जगती, तब तक नारी की निजत्व सृष्टि किसी प्रकार भी संभव नहीं। समाज की क्रमगति, पुरुष और नारी के मिलन पर, केवल प्राण ही नहीं एक निविड़ बृहत्तर मन के आदान-प्रदान पर निर्भर करती है। नये आदर्शों का उपलब्धि की चेष्टा में इस तरह दो अंतः जब एक लक्ष्य की ओर चल पड़ते हैं तब उसी से समाज नये जीवन का रसायन पाता है। पर जहां इन दोनों दिशाओं से उन्नत स्तर के आदान-प्रदान का आकाश नहीं है, जहां एक ओर केवल आदान और दूसरी ओर से केवल प्रदान है, कर्ममंथरता, शिथिलता, गतानुगतिक संस्कार निश्चलता, ये तत्त्व दिखाई देते हैं। समाज का आदर्श समाज के प्रथम बंधन के समान एक सजीव आदर्श था, पर क्या आज वह प्राणहीन अंध अभ्यास में नहीं परिणत हो गया है ?

पुरुष की प्रतिध्वनि होने पर भी ऐसी बात नहीं है कि वह पुरुष की सहायिका नहीं होती। पर अधिकतर सहायक होने का अर्थ 'बाधा न देना' हो गया है। इसी-लिये स्पष्ट रूप से बाधा न होने पर भी पुरुष के लिए नारी एक भार बन जाती है। नारी जब स्वयं जोर नहीं दे पाती तो उसे कम या अधिक कष्ट के साथ वहन करना, खींचकर ले चलना होता है। इसी से हम देखते हैं कि पुरुष भी अपने क्षेत्र में जीवन को उतनी तेजस्विता के साथ नहीं चला पाता। साधारण जीवन में नारी पुरुष की अनुगता होने पर भी पुरुष अपने भीतर नारी के प्राणधर्म से कवलित हो जाता है। पर नारी जब स्वतंत्र, पूर्णपरिणत और अपनी शक्ति और सामर्थ्य लेकर पुरुष के पास आकर खड़ी होती है तब पुरुष का बल दुगुना, उससे भी अधिक हो जाता है। दो परिणत स्वाधीन सत्ताओं का मिलन उन्हें केवल सहायता ही नहीं करता, बल्कि प्रत्येक कदम पर ऊंचा उठाये चलता है, एक दूसरे की जीवन की सिद्धि और सार्थकता की और जल्दी ले चलता है।

समाज दो परिणत आत्माओं का मिलन नहीं चाहता, क्योंकि इनमें अनेक विपत्तियां हैं। जहां मिलन हो, वहां आदर्श मिलन होता है अवश्य, किन्तु अधिकतर संघर्ष की संभावना ही होती है। समाज बना है साधारण मनुष्यों से और समाज साधारण व्यक्तियों से उच्चतम प्रकार

के मिलन की आशा नहीं कर सकता। वह उस रास्ते की उच्चतर सिद्धि के लोभ में आनुषंगिक विपत्ति को वरण करना नहीं चाहता। नारी को जब पुरुष की अनुगता ही बनना है, तो वह जितने निर्दोष भाव से किया जाय वही ठीक है।

पर नारी की भी एक व्यष्टि-सत्ता है। वह व्यष्टि-सत्ता अपना परिस्फुटन और पुरुष की व्यष्टि-सत्ता के साथ एक बृहत्तर मिलन चाहती है। प्राचीन काल के यूरोपीय समाज, ग्रीक, रोमन समाज ने नारी को एकांत रूप से पुरुष का दास बना रखा था। विवाहिता स्त्री थी मात्र घर-गृहस्थी और संतानोत्पादन का यंत्र। तभी हम देखते हैं कि पुरुष वहां की वार-वनिताओं (COURTESANS) के समुदाय से अपनी सहधर्मिणियां चुन लेते, क्योंकि उनमें शिक्षा, कला-चर्चा के लिए नारी की विशेष व्यक्ति-सत्ता दृष्टि-गोचर हुई थी। जो हो, यूरोप ने एक समय अपनी स्त्रियों को समाज में इतना हेय और प्राकृत करके रखा था कि वहां प्रतिक्रियास्वरूप नारी-जागरण दिखायी दिया, उनमें आत्म-बोध में प्रतिष्ठित होने की चेतना जगी है और कुछ सफलता भी उन्हें प्राप्त हुई है। फलस्वरूप यूरोपीय समाज में विश्रृंखलता आयी थी, किन्तु उसके बीच ही समाज की जीवनी-शक्ति दृष्टिगोचर हुई और पुरुष और नारी के बीच नये संबंध की सूचना प्राप्त हुई।

(शेषांश पृष्ठ १५८ पर)

अन्न की वैदिक ऋचाएं

आओ बैठें
सूर्य की कुछ रश्मियां
पहले बुनें
शाम की हारी-थकी
बातें अभी तो छोड़ दें ।
हवाओं ने
मांड दी हैं देहरी पर
गंध की शुभ-अल्पनाएं
बीच आंगन
धूप की दरियां बिछाकर
द्वार बैठा कर रहा मृदु कल्पनाएं

सावित्री परमार

पाल लहराते
मछेरों के प्रभाती
स्वर सुनें
नाव अपनी भी
इसी स्वर-साधना पर मोड़ दें ।
लिख रहे हैं
ओस भीगे खेत मिलकर
अन्न की वैदिक-ऋचाएं
अंजुरी में
घोलकर चंदन
दरख्तों ने पूज ली मंगल-दिशाएं
हरित पौदों पर
लहरते फूल
भरसों के चुनें
सृष्टि के अभियान में
निज प्रार्थना-क्षण जोड़ दें ।

— श्रीमहावीर हा. से. स्कूल, सी. स्कीम,
जयपुर (राज.)





सम्भवामि युगे युगे

[लेखक के रचनान्तर्गत महाकाव्यात्मक उपन्यास का एक अध्याय]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सन्ध्यालाल ओझा

उपरि-अंकित शीर्षक से लिखे जा रहे लेखक के देश-कालातीत शाश्वत-सत्ता के अन्वेष्टी-महाकाव्यात्मक उपन्यास का एक विशिष्ट अध्याय । पांच हजार वर्ष के कालपट पर फैली इस महा-गाथा में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव बोलते सुनाई पड़ते हैं ।



मनुष्य को जैसा वह है, वैसा ही देखना बड़ा असंगत है । उसके पीछे केवल पीढ़ियों की आनुवंशिकता या संस्कृतियों का इतिहास ही नहीं, प्रत्युत समग्र सृष्टि का आद्यंत विकास है । उसका केंद्रीय अस्तित्व अविनश्वर 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं' है, वह कभी मरता नहीं जन्मता भी नहीं । 'संभवामि' यहां जन्मने के अर्थ में नहीं, नित्य 'होते रहने' के अर्थ में है । और जो राशि हमें दिखाई देती है, वस्तुतः वह गणित-शास्त्र की फैक्टोरियल संख्या है अपनी पूर्ववर्ती सभी संख्याओं का गुणनफल, चाहे वे गुणक-अंक दिखाई न दें । इस तत्त्व फैक्टोरियल संख्या दिखाई चाहे ५ ही दे, किन्तु उसका मान १२० है, और वह अपने पूर्ववर्ती अंकों ($1 \times 2 \times 3 \times 4 \times 5$) का गुणनफल ही है — । ये गुणक दिखाई नहीं देते इन पर 'देश' और 'काल' की छाया जो पड़ जाती है । प्रस्तुत उपन्यास देश और काल के इन प्रतीयमान आच्छादनों को हटाकर इन गुणक-अंकों को उद्घाटित करने का विनम्र प्रयत्न है ! — इसका नायक विभांडक बृद्ध लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व दिखाई दिया था एक उर्वशी मृगी के साथ । इसी शताब्दि के प्रारंभ में वह फिर दिखाई दिया है प्रोफेसर मुरारीलाल मनस्वी के नाम में । आज भी है वह यहीं कहीं । नाम बदल गया हो । होना ही है उसे, वह आप भी हैं, भी हूं ! — अविनश्वर जो है वह ! वैदिक और औपनिषदिक विचारधारा के पूर्व उसने मध्य एशिया में दजला-फरात तथा मिस्र में नील की सभ्यताओं की कसौटी पर अपनी मूल श्रमण संस्कृति को कसा है । गुणक चाहे न दिखाई दें — वे देश और काल के अवगुण्ठन में प्रच्छन्न हैं — किन्तु गुणनफल प्रत्यक्ष है, वही फैक्टोरियल अंक !

कौन है इस कथा का लेखक ? पुष्पदंत ने कहा था, 'सुर तरुवर-शाखालेखनी पत्रमूर्वी लिखति यदि गृहीत्वो शारदा सर्वकालं । तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।' मैं महाकाश के इस तारकांकित नील-पत्र को देखता हूं और भय, विस्मय तथा आतंक से सम्मोहित हो आंखें बन्द कर लेता हूं ।



[पूर्व पृष्ठ पर मुद्रित है भगवान् ऋषभदेव का छायाचित्र । अतिशय क्षेत्र चांदखेड़ी (झालावाड़) में विराजमान ऋषभदेव की भव्य-दिव्य प्रतिमा का यह फोटो श्री मिश्रीलाल जैन, गुना के सौजन्य से प्राप्त ।]

रात काफी बीगड़की थी, आँखों में आँसू थे, वह तो है ही, पर यह मुरारीलाल स्वयं क्या कुछ पता ही नहीं लगा। घर में वच्चे-कच्चे सब सो चुके थे। प्रकृति का उद्देश्य समझकर ही ज्योति बाबू की प्रतिभा ने शहर की सभी वस्तियों बुझा दी थीं, कि मैं भी चादर तानकर निद्रादेवी के आलिंगन में सब कुछ भूलकर सो जाऊँ। पर मुरारीलाल का प्रसंग और टेबल पर उनके द्वारा छोड़ा हुआ कागजों का वह बंडल जैसे आँखों को

तो है ही, पर यह मुरारीलाल स्वयं क्या एक ऐसे ही अप्रतिम उपन्यास का नायक नहीं है?—आश्चर्य ही है कि ऐसे अद्भुत इतिहास-पुरुष को इधर कोई नहीं जानता! शायद अपने क्षेत्र में काफी प्रख्यात हो! जो हो, जबकि वह अभी नहीं है तो अब अधिक उसे जानने का उपाय नहीं है। अबसर आयेगा तब मालूम करना ही होगा, सब कुछ, कि सचमुच एक उपन्यास

०

फॉर्मूला साहित्य, फॉर्मूला तन्वीक्षा। फॉर्मूला भाषा, फॉर्मूला मुहाविरा, फॉर्मूला शैली। फॉर्मूला विषय-वस्तु फॉर्मूला 'थीम'। फॉर्मूला जीवन, फॉर्मूला समस्या, फॉर्मूला आम आदमी। फॉर्मूला संघर्ष, फॉर्मूला द्वंद्व। फॉर्मूला तलाश, फॉर्मूला समाधान। जीवन का एक फॉर्मूला पर्यवेक्षण और आकलन। फॉर्मूला संसार, और उसका फॉर्मूला अनुभव, उसकी एक फॉर्मूला तस्वीर। फॉर्मूला आइडियालॉजी, फॉर्मूला वैज्ञानिक दृष्टिकोण, फॉर्मूला प्रगतिवाद, फॉर्मूला क्रांति। ...

इस अंतहीन पुनरावृत्ति के माहौल में एक मौलिक अनुभोक्ता, द्रष्टा रचनाकार की पहचान हो तो कैसे हो? ऐसा ही एक नजरंदाज प्रातिभ विस्फोट है—तन्हैयालाल ओझा। उन्होंने जीवन को अपनी अत्यन्त निजी मौलिक अंतर्दृष्टि से देखा है, सहा है, अवगाहा है। उन्होंने अपनी तहों से जीवन की तहों को भेदा, छाना और अनुभूत किया है। इसी कारण उनका अपना एक अत्यन्त स्वतंत्र अवबोधन है, पर्येक्षण है। उनका अपना एक 'वर्ल्ड आउटलुक' है। उनकी अपनी एक मौलिक ग्राहिका भाषा है। वह आज की चालू भाषा और मुहाविरा से अलग है। इसी कारण छह अत्यन्त सशक्त उपन्यास लिखकर भी, वे हिन्दी के केन्द्रीय कथा-परिदृश्य में विलुप्त हैं, जहाँ उन्हें उजागर होना चाहिए। उनके अंतिम उपन्यास 'सर्वनाम' में एक साथ गहराई, ऊँचाई, सूक्ष्मता और विस्तार के आयास संयुक्त हैं, जो आज हिन्दी में दुर्लभ है।

उनके शीघ्र प्रकाश्य महागाथात्मक उपन्यास 'सम्भवामि युगे युगे' का एक अध्याय यहाँ प्रस्तुत है, जो सर्वकालीन और तत्कालीन जीवन-मूल्यों के सामरस्य का एक अप्रतिम रचना-साक्ष्य उजागर करता है।

०

बन सकता है यदि हमें अपनी भाषा को सामने है उसे तो देखा जाये। अंधेरे में ही टटोलकर कहीं से मोमबत्ती निकाली, उसे जलाकर सिरहाने रखा, और फिर लेटकर बंडल को खोल ही तो डाला। लिपि सहज की पढ़ी जा सकती है। लेख चाहे हजारों वर्ष पूर्व का हो। और अनुवाद तो, सृष्टि का यह रहस्य भी तो उस परम पुरुष का अनुवाद ही है, भिन्न-भिन्न भाषाओं की, भिन्न-भिन्न लिपियों में।

बबु ने स्वीकृति में सिर हिलाकर कहा, 'कहा तो था, पर मुझे याद नहीं रहा !' सिर हिलाने से बालों की एक अलक अलक उसकी आंखों के सामने आ गयी, तो फिर सिर को झटका देकर उसने शुष्म की ओर देखा और कहा, 'जरा इसे आकार दे लं !'

‘क्या बना रहा है यह?’

संध्या का झुरमुटा था। जंगल से लौटते हुए गोष्ठों की गोधूलि से प्राचीर के ऊपर सारा आकाश व्याप्त था और बाहर पश्चिम क्षितिज में सूर्य भी उसमें छिप गया था। अपने घर के सामने प्रशस्त खुले आंगन में बृबु कुलालचक्र पर चढ़े हुए मिट्टी के लोदे को बड़े मनो-योग से सहलाकर किसी अद्भुत आकृति को जन्म देने का प्रयास कर रहा था कि सामने से उसका अन्यतम साथी शुष्ण भागता हुआ आया और बोला, 'अरे वाह, अभी तक तू इसी में उलझा बैठा है। चलना नहीं है ?

‘बड़ा कलाकार बनता है ! इन्हें अब
बाद में करना । देर हो जायेगी तो देखने
के लिए अच्छा स्थान नहीं मिलेगा !
उठ !’

‘कहां?’ चक्के पर चढ़ी घूर्णमान
मिट्टी पर दृष्टि गड़ाये ही बृबु ने
पूछा !

‘यह भी बताना पड़ेगा ? जैसे जानता ही नहीं ! मातृ-सरोवर पर पूजन समा-रोह नहीं है आज ? महापणिक कुयव पूजा

नवनीत

फरवरी

दिखायी देती है। इसके अतिरिक्त शुष्ण के परिवार में धातु-शोधन, तक्षण-टंकण आदि का बारीक काम होता है। महापणिक तथा नगर के गण्यमान्य पणिकों के परिवार में ही नहीं, बाहर के दूर देशों में भी उसके यहां बने स्वर्णाभूषणों की पुछ होती है। उसका परिवार महामुनि कृषाणक का शिष्य है। यद्यपि महामुनि कृषाणक अन्य दिगंबर मुनियों की तरह वातरशना नहीं हैं, पर वे बड़े ज्ञानी और अपरिग्रही प्रसिद्ध हैं। नगर में उनके ही प्रयत्न से शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार है। उन्होंने बड़े परिश्रम से कीलाक्षर-लिपि में बहुतेरे युवकों को प्रशिक्षित किया है। शुष्ण के परिवार की, और उसके पिता की बड़ी प्रतिष्ठा है। शुष्ण के पिता को सभी सुवर्णक के नाम से ही जानते हैं!



शुष्ण ने गुरुडम जताते हुए कहा, 'कलाकार नहीं जानता? बुद्धू है निरा! कभी-कभी चला कर न मेरे साथ महामुनि के आश्रम में। उपनिषदें जुड़ा करती हैं वहां। बहुत कुछ जानने को मिलेगा।' 'पर कलाकार...?' बबु ने उसकी बात पर ध्यान न देकर अपना प्रश्न दुहरा दिया।

पास रखी आसंदी पर बैठकर शुष्ण ने कहा, 'तू कह रहा था न अभी कि कुछ आकृतियां उभर आयी थीं तेरे मन में!

स्थूल आधार के बिना भी जब इस तरह के आकार आंखों के सामने आ जायें तो समझो कि कला जन्म ले रही है। और जिसके मन में ये आकार उभरें वह कलाकार!' और उसने सहज अपने दोनों हाथ इस तरह फैला दिये, जैसे एक सहज से तथ्य को उसने सहज ढंग से ही समझा दिया।

किंतु बबु ने कहा, 'वे आकार अभी स्पष्ट कहाँ हैं? स्पष्ट होता तो यह मिट्टी अब तक वह नहीं बन जाती? वे आकार तो अभी बहुत ही धुंधले हैं! दुत्!—कलाकार तो तू है!' और वह फिर चक्का घुमाने लगा।

'यही तो कलाकार की पीड़ा है, बुद्धू! इसी से तो कुछ नया, अद्भुत बनता है! पर अब उठ! बहस बाद में कर लेना!' और उसने बबु का हाथ पकड़

लिया।

बबु ने भी उठ खड़े होकर कहा, 'इतनी उतावली भी क्या है, भाई! जब समारोह ही में चलना है तो नहा-धो लेना ठीक नहीं होगा? चल तू भी नहा ले। हम्माम में आज ही पानी भरा है। नना (मां) से कहता हूँ, तेरे लिए भी स्वच्छ वस्त्र निकाल दे! ऐसे ही वस्त्र पहनकर चलेगा?'

०००

और अंधकार सहसा, खुली खिड़की

हिंदी डाइजैस्ट

से हवा का एक झंझूटा झोंका, आर्य के स्वेच्छंद युवक की तरह कब भीतर घुस आया, और नृत्य में थिरकती इस ज्योति-बाला को अपने दुर्निवार आलिंगन में दुबकाकर खुले दरवाजे से भाग गया ? अजीब परेशानी है। इस दर्ईमार नगर के आकाश छूते मकानों की पंक्ति में ये कमरे यों ही हवा के लिए तरसते हुए दड़बे हैं, अगर खिड़की-दरवाजे भी बंद कर लो तो बिना पंखों के क्या ये गैस-चेंबर नहीं बन जायेंगे ? फिर उठकर मोमबत्ती जलाऊं ?—हवा तो तब भी आयेगी, आना भी चाहिये उसे।

और यह बृबु-शुष्ण का प्रसंग ?

वेद में ये नाम आये हैं। वेद के युग में तो लिपि नहीं थी, वह संपूर्ण साहित्य श्रव्य था, इसीलिये तो उसे श्रुति कहा जाता है, स्मृति में टंगा रहकर लोक-विश्रुत हुआ, इसलिये उसे स्मृति भी कहते हैं। पर यह मुरारीलाल तो कहता है उसे यह सब लिखा हुआ मिला है, किर-चियों पर उत्कीर्ण कीलाक्षरों में। अवश्य ही यह प्रसंग आर्यों के आगमन से पहले का है। आर्य उस लिपि से परिचित नहीं थे, हो भी नहीं सके। क्योंकि आये तो वे उनके शत्रु बनकर ही थे न ! इनकी तो सारी सभ्यता को उन्होंने नष्ट कर देना चाहा था। पूरी तरह नष्ट नहीं कर पाये यह दूसरी बात है। भौतिक उपकरण तो सभी नष्ट हो गये, संस्कारों को वे नष्ट कर ही कैसे सकते थे ! आज तो कहा भी

में वही प्राग्वैदिक हो गया है। वैदिक संस्कार हममें रह ही कहां गये हैं ? तभी तो मुरारीलाल डंके की चोट कहता है कि मनुष्य वही है मूलतः। मूलतः तो प्रागार्य या प्रागैतिहासिक ही क्यों, प्राग्मानव क्या पशु ही नहीं है ? संस्कारों से वह छिप भले गया हो, पर मिटा तो नहीं न ! पर वह मूल भी क्या पशु है ?—उससे पहले ?—उससे भी पहले ? विज्ञान कहता है, वह शुद्ध ऊर्जा है ! पर शुद्ध ऊर्जा तो संकल्पहीन, चितनविहीन, निरिच्छ है, जबकि मनुष्य मनोमय है, मनन-सक्षम, मनस्य !—क्या है यह ?—कहां से आया है, और कहां जा रहा है ?—इतिहास की उन गहरी पतों में खोया हुआ वास्तव का वह गिल गमेश इतनी शताब्दियों तक क्या उसी उत्तपिष्टिम की खोज में था ?—अमर जीवन, जीवन का इससे सारतत्त्व—वही तो, जो नित्य है युगों युगों से, संभूत है, नेति है, अनादि है। महामुनि कृपाणक को क्या इसकी प्रतीति हुई थी ?—और मुरारीलाल ?—पढ़ने चाहिये। हवा तो चलेगी ही, और अगर मोमबत्ती बुझ जाये तो फिर लगायी जायेगी वेदों के आविर्भाव के पहले ये कलाका देखना चाहिये, क्या कर रहे हैं ?

०००

एक बहुत बड़ा प्रशस्त चैत्य, आलोक मालाओं से दीप्त, नव-किशलय बंदनवारों से परिवृत्त, और नाना रंग

नवनीत

७०

करवा

स्कारों
वैदिक
तभी
हता है
तः तो
मानव
से वह
ही न !
-उससे
कहता
जो तो
च्छ है
-सक्षम,
आया
इतिहास
बाबु
ताद्विधों
खोज में
इससे
हुगों
दि है
प्रतीति
-पहन
र अण
जायेगी
कलाका
?
आलोच
लय के
ता र
करवा

के विकच पुष्प-स्तवकों से सुसज्जित !
सामने ही एक अपेक्षाकृत ऊंचे मंदिराकृत
मंडप में पशुपतिनाथ की अलंकारों से
द्वीपत ध्यानमग्न भव्यमूर्ति, जिसके आस-
पास रखे प्रोज्वल दीपाधारों से निर्गत
प्रकाश-रश्मियाँ अलंकारों से प्रत्युद्-
भासित होती हुई सामने समवेत जन-
मानस को उल्लसित कर रही थीं।
पशुपतिनाथ के विग्रह के पास ही पार्श्व
में मातृदेवी का वैसा ही तेजोदीप्त भव्य
विग्रह, वैसी ही भव्य सज्जा से सज्जित।
चैत्य के सामने ही है स्वच्छ जल से भरा
विशाल सरोवर, जिसके किनारे प्रज्वलित
दीपों की माला जल में प्रतिबिंबित हो
कर शतधा बिखर रही थी। समवेत
जन-समुदाय में उत्साह का समुद्र लहरा
रहा था। अभी कुछ ही दिन पूर्व महापणिक
उत्तर-पश्चिम प्रदेशों की यात्रा से लौटे
हैं। इस यात्रा में वे कई अद्भुत वस्तुएं
एवं बहुमूल्य वस्त्रों के अतिरिक्त प्रचुर
हिरण्य भी लाये हैं !—चैत्य के बायीं
ओर इनमें से कई वस्तुएं जन सामान्य के
प्रदर्शन के लिए रखी हुई हैं। सबसे
विचित्र तो सेलखड़ी से बनी हुई एक
अद्भुत मूर्ति है, जिसका मस्तक एक
मनुष्य का, किंतु नीचे का शरीर पंख-
युक्त वृषभ का है, और उसके चार नहीं,
पांच पैर हैं ! मस्तक पर उस मूर्ति के
शिरस्त्राण है, आंखें खुली हुई आयत,
उन्नत नासिका, जो यहां के निवासियों
की चपटी नाक से विशिष्ट है, और गल-

मुच्छों सहित नीचे लटकती तराशी हुई
चौकोर दाढ़ी। दोनों बाजुओं में पंख
खुले हुए, मूर्ति मानो अभी उड़ने लगेगी।
मूर्ति बड़ी ही प्राणमय लग रही थी, और
उसके सामने दर्शकों की बड़ी भीड़ धक्क-
धक्का कर रही थी। कहते हैं यह मूर्ति
जहां से आयी है, वह और भी दूर है
उत्तर-पश्चिम में। कोई देश है बाबुल,
वहां के राजा ने उपहार स्वरूप भेजी है
कि निकट भविष्य में उनके देश भी
हमारा अभियान जाये ! जन-समुदाय
बड़ी उत्सुकता से अपने प्रिय महापणिक
की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनमें उत्साह
उमड़ा पड़ रहा था। जन-समुदाय में
केवल पुरुष-वृंद ही नहीं, महिला-वृंद
भी उतनी ही बड़ी संख्या में एकत्र था।
सब परस्पर मुक्त भाव से मिलजुलकर
हंस-बोल रहे थे। किसी प्रकार का कोई
संकोच या मिथ्या-लज्जा की भावना
नहीं थी।

सामान्य जन की वेशभूषा में शाटक-
युगल, अर्थात् नीचे धोती और ऊपर
दुशाले की तरह उपरना, कमर में काय-
बंधन लपेटा हुआ। चेहरे पर प्रायः सभी
वयस्क पुरुषों के छोटी खसखसी दाढ़ी
और गलमुच्छ, किंतु ओठों पर मूछों के
बाल नदारद। सिर पर बाल लंबे पट्टों
में कतरे हुए, जिन पर पीछे नोक पर उठी
हुई टोपी। गले में प्रायः सभी के सोने की
जंजीरें, कानों में बालियाँ, हाथों में कड़े,
तथा अंगुलियों में अंगूठियाँ, जिनसे उनकी

समृद्धि का पता चलता था। स्त्रियों की शाटिकाएं रंग-विरंगे कौशेय की थीं, तथा वे अपने सामर्थ्य के अनुसार सिर, गले, हाथों, बांहों, कमर, पैर आदि अंगों में स्वर्ण, रजत, गजदंत, ताम्र और कर्पदिका के आभूषण पहने हुए थीं। उनके सिर पर घने, चिक्कण, कृष्ण बालों का बड़ा-सा जूड़ा दाहिने कंधों पर झूलता हुआ, जिनमें विकच सुगंधित पुष्पों के गुंथे हुए गुच्छे सारे वातावरण को सुवासित कर रहे थे।

सहसा पूर्व की ओर तुमुल शोर उठा, 'महापणिक आ गये, महापणिक आ गये !'—सभी आंखें उस ओर उठ गयीं। मशालों के प्रोज्वल प्रकाश में अपने प्रियजनों के साथ एक ऊंचा सुदर्शन व्यक्ति अपने नगर की सामान्य वेशभूषा में चला आ रहा था। उसके मुख पर सहज मुस्कान थी, जो उसके प्रकृत-नेतृत्व की आभा में चार चांद लगा रही थी ! उधर पूर्वाकाश में पूर्णिमा का पूर्णचंद्र अपनी सोलहों कलाएं दिग्दिगंत में बिखराता हुआ ऊपर चढ़ रहा था, और इधर महापणिक कुयव धीर-मंथर गति से चैत्य की सीढ़ियां चढ़ रहा था। देखते ही भीड़ ने हर्षध्वनि से उसका स्वागत किया और उसे मार्ग देने के लिए सहज ही दो भागों में बंट गयी।

कुयव शरीर पर मध्य एशिया से आयातित, पाट और चीनी रेशे से बुने क्षौम वस्त्र धारण किये हुए था। सारे

शरीर पर भांति-भांति के स्वर्णालंकार सुशोभित थे। मुंह पर वही खसखसी दाढ़ी, गलमुच्छे, और सिर पर स्वर्ण मंडित शृंगकिरीट ! हाथ में उसके ताम्र मंडित नोक वाला शूल था। सबका अभिवादन स्वीकार करते हुए मुस्कराता हुआ वह सहज गति से आगे अपने आसन की ओर बढ़ रहा था। उसके पीछे सुहृदों, सेवकों और भृत्यों की पंक्ति थी। समारोह की सहज उल्लासमयी मुक्त स्वच्छंदता सबकी मुखमुद्रा पर अंकित थी, जिसे उनकी गति तक में किसी प्रकार की अनिश्चितता या तनाव का लेश भी नहीं था !

सहसा भीड़ में से एक युवक धाव बढ़ा, और पलक झांपते उसने अपने दाहिने हाथ को ऊपर उठाया। एक तीक्ष्ण शस्त्र का फलक मशालों के प्रकाश में झलक उठा। उसका लक्ष्य महापणिक की पीठ थी, कि उतनी ही स्फूर्ति से उस भीड़ में से एक किशोर उछलकर उस आक्रमणकारी की पीठ पर चढ़ बैठा। आक्रमण की गति में बाधा पड़ी और कुयव चाकू कुयव की पीठ को बचाकर पीछे चले आ रहे भृत्य के फैलाये हुए हाथों को छूकर फर्श पर गिर पड़ा। कुयव पीछे मुड़कर देखा। आक्रमणकारी भागने का प्रयत्न कर रहा था, किंतु उसकी पीठ पर चढ़े हुए बालक के प्रत्याक्रमण ने उसकी चेष्टा विफल हो रही थी। बालक एक हाथ से उसके बाल खींचकर दूसरे

से उसके गले की जकड़ को कसता जा रहा था। भृत्यों ने व्यापार को समझकर आक्रमणकारी को पकड़ लिया और शीघ्र ही उसे रस्सी से बांधकर विवश कर लिया।

भृत्यों की पंक्ति को ठेलकर पीछे से एक सुदर्शन व्यक्ति आगे बढ़ा, और आक्रमणकारी की ओर देखकर आश्चर्य की मुद्रा में बोला, 'अरे अत्रि, तुम और यहां?'

'हां। मैं अत्रि हूं, तुम जैसा स्वजन-द्रोही नहीं!—तुमने अपने कुल को कलंकित किया है।'

आगतुक ने मुस्कराकर कहा, 'तुमने अपने कुल की बड़ी गौरव-वृद्धि की है, अत्रि, हूं? जानते हो इसका फल क्या होगा?'

'मुझे अपने प्राणों का मोह नहीं है। वह तुम्हें ही शोभा दे।'

कुयव ने सुदर्शन व्यक्ति से पूछा, 'इसे जानते हो नासत्य?'

'कुछ-कुछ जानता हूं, महापणिक! इसके स्वभाव की उग्रता से रूष्ट होकर हमारे यूथपति ने कुछ वर्ष पूर्व इसे निष्कासित कर दिया था। मुझे नहीं मालूम था कि यह यहां आ पहुंचेगा!'

'चिता की बात नहीं, नासत्य! यहां इसे उचित शिक्षा मिल जायेगी। और यह किशोर, जिसने हमारे प्राण बचाये, कौन हो तुम?' और उसने किशोर को खींचकर अपने पार्श्व में सटा

लिया। महापणिक की दृष्टि में स्नेह की अजस्र धारा बह रही थी।

एक और दूसरा किशोर, उम्र में पहले से कुछ बड़ा, उसके पास आ खड़ा हुआ। महापणिक की ओर देखकर जब छोटे किशोर ने बड़े किशोर की ओर देखा तो बड़े किशोर ने ही महापणिक को उत्तर दिया, 'यह भांडव्य का पुत्र बूबु है, महापणिक!'

'महाभाग भांडव्य का पुत्र?—भांडव्य दिखायी नहीं देता!' कुयव ने बूबु की ओर देखकर पूछा!

इस बार उत्तर बूबु ने दिया, 'वे अपना पण्य लेकर इस बार पवथ गये हैं, महापणिक! आपके लौटने के पूर्व ही वे चले गये थे। यह मेरा मित्र शुष्ण है, सिद्ध स्वर्णकार सुवर्णक का पुत्र!'

'आह सुवर्णक का पुत्र! हम प्रीति हुए, पुत्रो!—और बूबु, तुमने तत्काल-बुद्धि और अत्युत्तम साहस दिखाकर हमारे प्राणों की रक्षा की है। आज इस समारोह में तुम्हारा भी सम्मान किया जायेगा।—और भृत्यों, इस दुष्ट आक्रमणकारी को समारोह में ही प्रस्तुत करो। इसे अपने अपराध के योग्य दंड मिलना चाहिये!'

भीड़ में से सामूहिक आ गज उठी, 'इसे हमें सौं दीजिये। रंघनशाला की भट्टी में झोंककर ही इसकी उचित व्यवस्था होगी।'

समारोह के उत्साह में इस अप्रत्याशित आकस्मिक घटना से कुछ व्याघात पहुंचना

स्वाभाविक था। भीड़ में कुछ आतंक और सिहरन भी फैल गयी थी, सभी एक दूसरे का मुंह देख रहे थे। न जाने कैसे यह अपरिचित सब लोगों की आंखों में धूल झोंककर प्रविष्ट हो गया था!—यह अकेला है, या और भी कोई इसके साथी हैं?—यदि हैं, तो वे कहां हैं? उनको किस तरह पहचाना जा सकता है? सभी में कानाफूसी चल निकली थी। निश्चय ही यह अमंगलसूचक है। पशुपति-नाथ और महादेवी कुपित हो गये लगते हैं! उनको तुष्ट करने के लिए क्यों न इसी की बलि दे दी जाये? एक ही साथ दोनों काम हो जायें, अपराधी को उचित दंड और देवता की तुष्टि!

आक्रमणकारी स्पष्ट ही विदेशी है। उसका स्वच्छ वर्ण, विशिष्ट परिवेश, उन्नत नाक, वक्ष पर बायें स्कंध से लटकती हुई तीन सूत की माला! कहां का है वह?—महापणिक के साथ जो गौर वर्ण व्यक्ति है, वह जानता है उसे! परिवेश तो दोनों का एक-सा ही है न!—साम्य और भी है, वैसी ही उन्नत नाक, पुरुष-भर ऊंचा पूरा, आस्कंध-केश-पाश से आवृत्त मुखमंडल और उसी तरह बाम स्कंध से लटकती हुई सूत की माला! उम्र में अवश्य वह बड़ा है, मुंह पर दाढ़ी-मूँछ भी नहीं! दोनों शायद एक ही देश के हैं।—क्या नाम लेकर पुकारा था महापणिक ने?—नासत्य!—नासत्य आक्रमणकारी को जानता है। नासत्य ने उसका नाम भी तो

लिया था न! क्या दोनों के एक साथ यहां होने में किसी की कुछ अभिसंधि है?

सहसा भीड़ में एकाएक चुप्पी फैल गयी। लगता है, देवताओं की पूजा संपन्न हो गयी है, तभी तो महापणिक आसनों पर खड़े होकर जन-समुदाय को संबोधित कर रहे हैं! अरे वह दिगंबर मुनि का आ गया यहां?—वह तो वस्ती में कब दिखायी नहीं देता!—महापणिक उस पर बड़ी श्रद्धा करते हैं। श्रद्धा के योग्य भी वह। कदाचित्त उसे निहोरा कर बुलाया गया है। तभी तो इतने ऊँचे आसन पर आसीन है!—निर्विकार, नीरव शांत, करुणा की प्रतिमूर्ति, क्या स्वयं पूजा-पीठ पर आसीन देव-विग्रह न लगता? दर्शन मात्र से मन में शांति की एक अविच्छिन्न धारा, भक्ति का एक मधुर मुखर प्रपात-सा प्रवाह जाता है!—अरे सुनो, सुनो। महापणिक क्या कह रहे हैं?—अवश्य वह महत्त्वपूर्ण होना चाहिये!—विदेशियों की घुसपैठ क्या संकेत करती है?

महापणिक कह रहे थे, नागरिकों, उत्तेजित या आतंकित की कोई बात नहीं है। इस बार का यह अभियान न केवल आर्थिक दृष्टि से अत्यंत लाभप्रद और समृद्धिपूर्ण बल्कि अभिज्ञता की दृष्टि से भी विस्तृत और महत्त्वपूर्ण रहा है। मैं और भी उत्तर-पश्चिम में भूमध्यसागर तक जाना चाहता था, किंतु स्वदेश लौ

की आतुरता थी, आप लोगों का स्नेह मुझे हर पल लौटने को विवश कर रहा था, और फिर यदि शीघ्र ही नहीं लौटता तो यह जो सुदर्शन व्यक्ति मेरे पास आसीन है, इन्हें खो देना पड़ता। यह मितन्त्रियों के देश मीदिया के निवासी हैं, और बड़े ही गुणी व्यक्ति हैं। इनका वहां एक पुरा अभिजन बसा हुआ है। ये लोग अपने आपको देव कहकर पुकारते हैं, और अब तो अपने आपको आर्य भी कहने लगे हैं, आर्य अर्थात् श्रेष्ठ, जबकि इन्हें ठीक तरह से रहने का, खाने-पीने का ढंग भी नहीं मालूम। इनका एकमात्र धन पशु है, जिनके रेवड़ लिये ये चरागाहों की खोज में इधर-उधर घूमते रहते हैं, और सब साथ मिलकर यज्ञ करते रहते हैं! इनके यहां एक अद्भुत धातु का प्रयोग होता है, कृष्ण अयस्क का। उस आक्रमणकारी ने जिस क्षुरिका से मुझ पर आक्रमण करना चाहा था, वह इसी धातु की है। यह धातु हमारे यहां प्राप्त रक्त-अयस्क की तुलना में बड़ा कठोर होता है। हमें भी इस धातु का प्रयोग करना चाहिये, किंतु उसकी प्राप्ति के लिए हमें खोज करनी होगी।

महापणिक ने तब पास बैठे हुए नासत्य की ओर संकेत कर कहा, 'ये महाभाग नासत्य आर्यों के उसी अभिजन के निवासी हैं। ये बड़े गुणी व्यक्ति हैं, पर आर्य इन्हें इनके योग्य प्रतिष्ठा नहीं दे सके, इसलिए ये रुष्ट होकर सुदूर पूर्व में चले

जा रहे थे। मार्ग में अकस्मात् इनसे मेरी भेंट हो गयी, और मैं इन्हें यहां अपने साथ ले आने में सफल हो गया। इन्हें शरीर-शास्त्र का बहुत अच्छा ज्ञान है, जिससे ये शरीर की किसी भी व्याधि का उपचार कर उसे स्वस्थ कर दे सकते हैं। आप को विदित ही है, मेरी पुत्री विश्पला, पैरों में कण्ट के कारण ठीक तरह से चल-फिर नहीं सकती थी। इन्होंने आते ही उसका उपचार प्रारंभ कर दिया और मुझे यह स्वीकार करते हुए अत्यंत प्रसन्नता है कि वह ठीक तरह से चलने-फिरने लग रही है। ऐसे गुणी व्यक्ति का वहां पर्याप्त सम्मान नहीं था।—मैंने कहा था न कि वे लोग वहां सब परस्पर मिल-जुलकर बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं। यह एक बड़ी ही अद्भुत किंतु, हिंसा-प्रधान प्रथा है! एक बड़ा अग्नि-कुंड जलाया जाता है और समाज के प्रतिष्ठित नेतृवृंद उस अग्नि के चारों ओर बैठकर पशुओं की बलि अग्निदेव को अर्पित करते हैं, फिर इस बीच संग्रहीत सारे भोज्य पदार्थ को प्रतिष्ठा के अनुसार परस्पर बांट लेते हैं। एक प्रकार का मीरेय, क्या कहते हैं उसे, नासत्य ?'

‘सोम !’

‘हां सोमरस, उसे पीकर वे मस्त हो जाते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, उत्सव मनाते हैं। गोपालन के बाद यह यज्ञकर्म ही इनका सबसे बड़ा धार्मिक और सामाजिक कर्तव्य है। महाभाग नासत्य को उस

१९८१

७५

हिंदी डाइजेस्ट

यज्ञ-अनुष्ठान से इनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल यज्ञ-भाग नहीं मिलता था। इसीलिए ये रुष्ट होकर चले जा रहे थे। यह बात नहीं कि इन्हें उसकी आवश्यकता हो, किंतु प्रश्न सामाजिक प्रतिष्ठा का तो है न!—मैं इन्हें ससम्मान यहां ले आया हूं कि यहां रहकर अपनी प्रतिष्ठा अर्जित करें और हमारे नगर को इनके अप्रतिम ज्ञान का लाभ प्राप्त हो।—बेचारे आर्य कहते अपने को श्रेष्ठ हैं, पर हैं अभी उसी आदिम असभ्य युग में, जबकि अग्नि का पता मानव को लगा ही था। अभी उस सम्मोह से वे उबर ही कहां पाये हैं कि नासत्य जैसे गुणी पुरुष की प्रतिभा का मूल्यांकन कर सकें!

भीड़ में से किसी ने क्रुद्ध स्वर में कहा, 'और वह आक्रमणकारी भी तो इन्हीं के देश का है, इन्हीं का साथी!'

'इनके देश का हो सकता है, किंतु इनका साथी नहीं है। जैसा कि मैं आपसे कह चुका हूं, नासत्य अपने दल से संतुष्ट नहीं होकर ही चले जा रहे थे। फिर भी शायद वे स्वयं इस बारे में स्थिति स्पष्ट करें!' और महापणिक ने नासत्य की ओर साभिप्राय देखा।

नासत्य ने उठ खड़े होकर कहा, दुर्योधन के समवेत सभ्य महाजन एवं सम्मान्य महापणिक, मैं आपके हार्दिक आतिथ्य और सद्भावनाओं के लिए कृतज्ञ हूं। आपका यह महानगर अद्भुत है। ऐसी अलंघ्य परिखा और दुर्भेद्य प्राचीर

से परिवृत आवास-योजना, इष्टिका-निर्मित ये भव्य और उच्च हर्म्य और भवन, जल-प्रवाह की ये सौम्य प्रणालियां, स्थापत्य-भास्कर्य-तक्षण की यह दक्षता, अपने जीवन में मैंने अन्यत्र नहीं देखी। आपका अकृत्रिम स्नेह मुझे अपनी सामर्थ्य भर आपकी सेवा करने की प्रेरणा देता है। मैं सौभाग्यशाली हूं कि आपने न केवल मुझे सम्मान दिया है, बल्कि अपना विश्वास भी दिया है, मैं उसके योग्य होने की चेष्टा करूंगा!—जहां तक इस आक्रमणकारी युवक अत्रि का प्रश्न है, वह अवश्य हमारे अभिजन का एक उग्र, विद्रोही और क्षिप्र स्वभाव का तरुण है...

भीड़ में से आवाज आयी, 'उसे यहां सुपुर्द कर दिया जाये। आर्यों की विधि से ही हम उसे यज्ञ-कुंड में स्वाहा का देंगे और पूरा यज्ञ-फल उसे सौंप देंगे। भीड़ उत्तेजित थी ही।

हाथ उठाकर भीड़ को शांत रहने का संकेत करते हुए महापणिक ने कहा 'आप लोग शांति से सुनें। सिधु-नद कुछ इस दुर्योधन नगर के हम न्यायप्रिय सभ्य नागरिक हैं। संकट या उत्तेजना क्षणों में कब हमने संतुलन खोया है। हम हर चुनौती का सामना करते हैं। आप मत भूलिये कि हमारे बीच इस नगर की विभूति वीरता, महामुनि, शांतिरूप महाश्रमण ऋषभनाबुरे विद्यमान हैं! आप शांति से सुनें!'

(शेषांश पृष्ठ १४३ पर)



डा. मुल्कराज आनंद

भारतीय कला और साहित्य के सौ वर्ष

[लेखांक : २]

यूरोप और भारत के टकराव से साहित्य के क्षेत्र में जिस संभ्रान्ति के दर्शन हुए, वह तो और भी बुरी तरह संयोजित लगती थी।

प्राचीन धर्म की अनेक उक्तियां जैसे एक अदृश्य दीवार बनकर, सब विदेशियों के सामने खड़ी हो गयी थीं।

हमारे पूर्वजों के लेखे, भले ही सिकन्दर कुषाणों, हूणों, तुर्कों, पठानों, मुगलों पुर्तगालियों, हालैण्डवासियों और अंग्रेजों के आक्रमणों से बाहर से भारत बहुत कुछ बदल गया था, तथापि उसकी अन्तरात्मा अपरिवर्तनशील थी। संसार रूपी अदृश्य दीवार ने सब बाह्य परिवर्तनों को ढक लिया था। 'कर्म' शब्द का वही पुराना सम्पूक्तार्थ चला आ रहा था कि भलाई का बदला बुराई से मिले। वीतरागी यही समझो कि तुम्हें अपने पिछले बुरे कर्मों की सजा मिल रही है, क्योंकि तुम्हें कर्म के सिद्धांत के अनुसार, अच्छे कर्मों का अच्छा पुरस्कार मिलना चाहिये,

और बुरे कर्मों की सजा मिलनी अनिवार्य है। मुक्ति की धारणा जल में स्थित उस इन्द्रमहल के समान थी, जहां पहुंचकर स्वर्ग में प्रवेश सुलभ हो जाता था। यह बात अलग थी कि प्रतिदिन प्रार्थना करने पर भी, हमारा उन्नयन नहीं हो पाता था, हम उससे उन्नत होने की प्रेरणा पाकर ही रह जाते थे। हमारे पूर्वजों को जब भयंकर यथार्थताओं का सामना करना पड़ता था, तब वे उन्हें माया मानकर, अपने को उनसे पृथक् समझ लेते थे। पंडितों द्वारा संस्कृत की ऋचाओं और श्लोकों का सुरीला और अनुवादी पाठ, हमारे पूर्वजों की ज्ञानेन्द्रियों को जैसे सुप्त कर देता था।

संस्कृत के लाखों शब्द ताड़पत्रों में अक्षुण्ण रहकर एक विस्मृत कोष के रूप में खो गये हैं।

भगवान के साक्षात् अवतार राजा राम के आदर्शों का अनुकरण करने के लिए हमारे बहुत से राजा तैयार न थे।

महाभारत का आदर इसी रूप में किया जाता था कि प्रत्येक दस वर्ष बाद, एक नया कुरुक्षेत्र देखने को मिलता था। सामान्य आदमी अपने बन्धुओं को जातक-कथाएं या सोमदेव कृत 'कथा-सरित-सागर' की कहानियां सुनाते थे, और गांव में प्रचलित कहावतों में निहित व्यावहारिक विवेक के अनुसार जीते थे।

०००

मध्ययुग में मस्जिदों की मीनारों से 'अल्लाहो अकबर' जैसे शब्द बाहर वातावरण में गूँजकर लोगों के मन में अल्लाह का डर भरने लगे, और सुल्तानों को नये-नये राज्यों को जीतने की प्रेरणा देने लगे।

जब ये सुल्तान युद्धभूमि पर न होते, और अकर्मण्य होकर रात को नाच-गाने की महफिलों में मौजूद रहते, तब हाफिज़, जामी और अमीर खुसरो की फारसी की मीठी गज़लें उन्हें साकी द्वारा दी गयी स्वादिष्ट शराब और ठंडे शर्बत जैसी लगतीं।

मीर, दर्द, सौदा, जौक और गालिव ने खड़ी बोली, ब्रजभाषा और फारसी की मिली-जुली मिठास से भी बोली में विवेक के जो मोती बिखरे वे नवोदित शायरों के लिए मंजिले-मकसूद बनकर रह गये। पर्वत की ऐसी चोटियां, जिन पर उन्हें विजय पानी थी।

और फिर हो-हल्ला करता हुआ मैकाले आया। और उसने सब मीनारों, सब

पर्वत-चोटियों को समाप्त कर दिया और सब अन्तर्भाग नदियों को अवसृष्ट कर दिया। उसने घोषणा की कि किसी अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय के एक शेल्फ में संस्कृत, अरबी और फ़ारसी के सारे साहित्य से अधिक ज्ञान भरा है। उसने ब्रितानी भारत के विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी अनिवार्य कर दिया।

इसमें संदेह नहीं कि कुछ ऐसे अंग्रेज़ों ने जिन्हें लगा कि अंग्रेज़ी को भारत पर थोपने के अर्थ हैं, भारत की उस आत्मा की अस्वीकृति, जो उसकी भाषाओं के श्लोकों, सूत्रों और सुरों में प्रतिष्ठापित है, मैकाले की घोषणा का विरोध भी किया। और मैकाले के कारण ही अनेक भारतीय अपने प्राचीन साहित्य से पुनः परिचित भी होने लगे। कालिदास का शकुन्तला का अंग्रेज़ी में अनुवाद करके सैम्युअल विलियम जोन्स ने दिखा दिया कि शैली कीट्स और बायरन से भी बहुत पहले प्राचीन भारतीयों का प्रेम की कोमलता और संवेदनशीलता से परिचय था किन्तु, लार्ड मैकाले के गर्जक शब्दों ने सब विरोधों और असहमतियों को शांत कर दिया, और अंत में वही सब पहाड़ी हावी हो गये।

कुछ समझदार भारतीयों ने अंग्रेज़ों के कुछ अर्थवान् शब्द सीख लिये। जॉन स्टुअर्ट मिल से उन्होंने 'लिवर' (स्वतंत्रता) शब्द सीखा, बेथम

‘हैप्पीनेस’ (सुख) और अंग्रेजी में अनू-
दित यूनानी ग्रंथों से ‘डैमोक्रेसी’ (प्रजातंत्र)।
रस्किन से उन्होंने सीखा ‘वर्क इज वर-
शिप’ (कर्म ही पूजा है)।

०००

वस्तुतः एक विदेशी भाषा के चार-
पाँच लाख शब्द, जिनका प्रयोग हमारी
अपनी भाषाओं और उनके साहित्य के
इन शब्दों से कई गुना अधिक शब्दों के
स्थान पर होने लगा था, हमारे लिए
बड़े उपयोगी सिद्ध हुए, क्योंकि उन्हीं
का प्रयोग कर, हमारे नेताओं ने दुनिया
के सामने आज़ादी के अपने इरादे की
घोषणा की।

यह सोचकर बड़ा अजीब लगता है
कि ‘लिवर्टी’ जैसे एक छोटे-से शब्द ने
हमें एक सर्वांग विश्व दृष्टि प्रदान की।

हमारे पूर्वजों में से कुछ ने नूतन के
प्रति कौतूहल की अपनी क्षमता और
भावना को बनाये रखा; वे अतीत पर
पूर्णतया निर्भर नहीं रहे। उनका कहना
था कि मात्र निष्क्रिय स्वीकृति के स्थान
पर, स्वतंत्रता को जीवन की एक नयी
शैली के रूप में स्वीकार किया जाना
चाहिये। उनका यह भी कहना था कि
आदमी अपने भविष्य का चुनाव कर सकता
है, स्वनिर्माण करके, नयी अनुभूतियों के
दौर से गुज़र सकता है। वे यह भी मानते
थे कि परिवर्तन अस्तित्व का सार-तत्त्व
है, और जिस प्रकार फूलों के बीज के
बिना फूल नहीं उगाये जा सकते, उसी

प्रकार मानवता के बीजों के बिना मानवता
के फूल पृथ्वी को भेदकर, मुस्कराते हुए
स्वर्ग तक नहीं जा सकते।

इसे एक विरोधाभास ही कहा जायेगा
कि विचारों और अनेक वस्तुओं के बीच
चुनाव करने का अवसर हमें उन्हीं विदे-
शियों से मिला, जिन्होंने अपना अधिराज्य
हमारे ऊपर स्थापित किया था। अपनी
इस प्राचीन कल्पना से प्रेरित होकर
कि ब्रह्मा ने विश्व का सर्जन किया है,
और ऐसा सर्जन करते समय स्वयं का
सर्जन भी किया, हम इस गतिशील सत्य
को स्वीकार करने लगे कि नियति और
भवितव्यता से बड़ी सचाई यह है कि
आदमी इच्छानुसार अपना विकास करने
में समर्थ है।

अरविन्द, टैगोर, इकबाल, गांधी से
नेहरू तक हमारी चेतना पर यही विचार
हावी हुआ दिखायी देता है कि विचार
अमूर्त होते हुए भी मूर्त कर्म के आगे-आगे
चलता है, और यदि आदमी अपने विचार
के अनुरूप जिये, उसके साथ एकाकार
हो जाये, तो वह दूसरों के सामने एक
उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है।

०००

हमारी सभी भाषाओं के साहित्य में
आदर्शों का वर्णन है, और यही साहित्य
हमें उन आदर्शों की प्राप्ति की प्रेरणा भी
प्रदान करता है, वे प्रतिमान प्रस्तुत करता
है, जो स्वयं हमारे प्रतिमान बन सकते
(शेषांश पृष्ठ ९६ पर)

१९८१

७९

हिंदी डाइजेस्ट



कला, अकला और सकला : गोमटेश्वर बाहुबली के प्रति एक जैनेतर मनस्-दृष्टि

राजू विश्वनाथ

‘तदलं स्पर्द्धया, दध्वं यूयं धर्म-महातरोः ।

व्या कुसुममल्लानि यत्तन्मुक्तिफलप्रदम् ॥’

‘तदलं स्पर्द्धया’ छोड़ दो स्पर्धा....
कुछ दिनों पहले हम पति-पत्नी अपने
किशोरायु पुत्र से कह रहे थे, ‘बेटा,
तुम्हारा ‘रैंक’ क्लास में कम आया ।
अबकी बार तो पहले से भी पीछे हो गये
हो । तुम तो होशियार हो । ज़रा मेहनत
करके ‘फर्स्ट रैंक’ लाओ । तुम्हारा मांगा
हुआ इनाम तुम्हें देंगे । हम सभ्य दम्पति
हैं । बच्चे को मारते-पीटते नहीं । हम
अच्छी तरह से समझते हैं कि समृद्ध जीवन
निर्वाह के लिए स्पर्धा और प्रतिस्पर्धा
का एक महत्वपूर्ण स्थान है । पिछलगू
होने का मतलब है कि गये काम से !

आज फिर पढ़ रहा हूं और सुन रहा
हूं उसी जानी-पहचानी अतीत से गुंजती
हुई आवाज़ को, ‘तदलं स्पर्द्धया....’
कुछ और भी इसी तरह की चेतावनी
देती हुई आवाज़ें भी गुंज रही हैं,—‘त्येन्
त्यक्तेन भुंजीथाः,’ ‘Thou shalt

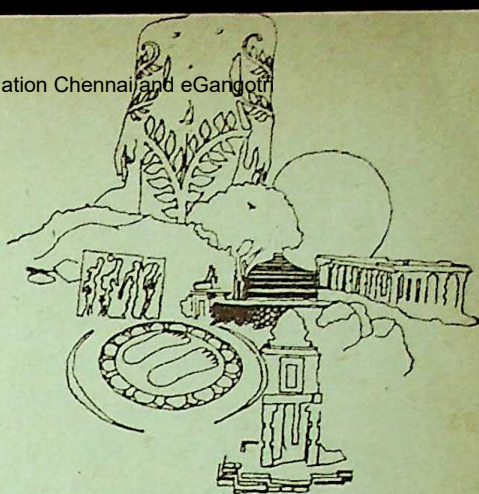
not covet...’ सभ्य हैं, इसीलिए इस
धरोहर की कीमत बखूबी समझते हैं:
ऐसी हिफाजत से रखते हैं इन्हें कि अपनी
हीं आंखें और अपने ही कान भी रोज-
रोज इन्हें न देखें या सुनें । धरोहरों का
कहीं कोई खुले आम ‘एग्जिबीशन’ करता-
फिरता है क्या ?

आज फिर क्यों कर बैठा इस धरोहर
को नज़रअंदाज़ । बात कुछ ऐसी हुई
...‘वाइफ’ की चुलबुली चहक से फुरसत
मिली हुई है, क्योंकि वह मेरे साले साहब
यानी अपने भाई के घर न्योता देने गयी
है । बैठ गया आरामकुर्सी पर इस
किताब (अंतर्द्वन्दों के पार : गोमटेश्वर
बाहुबली—ले. लक्ष्मीचंद्र जैन) को लेकर
पढ़ना शुरू किया, पढ़ता ही चला गया ।
वैसे एक तरह के ‘स्कालरशिप’ का दंड
में रखता हूं, पर इस किताब के विद्वान
लेखक की आसान और माकूल ‘स्कालर-
शिप’ से मैं भी अभिभूत हो गया । पाण्डित्य
का सहज और रोचक प्रदर्शन, शैली में गंभीर

नवनीत

८०

१९८०



और विनोदात्मक वक्तव्यों का सहज सम्मिश्रण, और तथ्यों का निष्पक्ष विवेचन।

इस पुस्तक में श्रवण बेलगोल स्थित कुछ जैन देवालयों और मूर्तियों के 'फोटो-प्लेट्स' (छायाचित्रांकित पृष्ठ) भी हैं। एक 'कट-आउट फोटो' है गोमटेश्वर बाहुबली की, उसी विश्वविख्यात विशाल प्रस्तर-प्रतिमा की, जिसकी प्रस्थापना का सहस्राब्द महोत्सव इसी वर्ष के फरवरी महीने में मनाया जायेगा।

पुस्तक पढ़ने के पश्चात् इसी चित्र पर किसी विचित्र आकर्षणवश ध्यान केन्द्रित हो गया।

छयालों का एक फ्रीस्टाइल खुमार

दिमाग को घेरने लग।। ऐसा लग रहा था कि बाहुबली की इस कायोत्सर्ग मुद्रा की दृढ़ता से पृथ्वी को अपनी धुरी पर अविचल गति से फिरती रहकर अपने

कोलंबस नये-नये देश खोजता था, धरतियां खोजता था, उसने अमरीका खोज निकाला। हम हृदय, आत्मा और प्रतिभा के अज्ञात द्वीप खोजते हैं। जगत के सारे प्रभु यही तो करते आये हैं। अपनी इत तलाश के दौरान हाल ही में हमारी मुलाकात ऐसी ही एक विलक्षण अनजान आत्मा और प्रतिभा से हुई।....

और आज हम हिन्दी साहित्य में एक नया और समर्थ हस्ताक्षर प्रस्तुत करना चाहते हैं। राजू विश्वनाथन् जन्मजात तमीलियन हैं, मगर वे अंग्रेजी में ठीक एक अंग्रेज की प्रभुता से लिखते हैं। आरंभिक शिक्षण उनका उत्तर भारत में हुआ, अतः हिन्दी को भी वे ठीक एक हिन्दी भाषी की तरह बामुहाविरा बोलते और बरतते हैं।

राजू लड़कपन से ही अंग्रेजी में कविता लिखते रहे हैं। वे मूलतः कवि हैं, और विश्व-साहित्य का उनका अध्ययन, मंथन और अवगाहन छोरगामी है। भारतीय वाङ्मय की उनकी अवगति हैरत में डाल देती है। उनकी कविता की बुनावट में भारत और पश्चिम के क्लासिकल-रोमानां युगों से लगाकर, अधुनातन युग तक की सृजन-मनीषा का एक अपूर्व और विलक्षण समन्वय देखने को मिलता है। सारे विश्व के दर्शन, अध्यात्म और रहस्यवाद का संयुक्त निचोड़ उनकी रचना में रसा-बसा होता है। यहां मूल हिन्दी में लिखा उनका यह पहला लेख प्रस्तुत करते हुए हमें खुशी होती है।

१९८१

८१

हिंदी डाइजेस्ट

कर्तव्य को निभाने की सौधकता को हाँ जी, आप मानें या न मानें, बाहुबली
 आश्वासन मिल रहा है। प्रतिमा के मुझसे बोलने लगे! 'यस सर', हो
 मध्य भाग पर दृष्टि पड़ी। कुछ ऐसा ठिकाने रखकर ही बात कर रहा हूँ।
 लगा कि बाहुबली अपने पुरुष-चिन्ह आप मानें या न मानें, मेरा क्या विचार
 के नैसर्गिक शैथिल्य को प्रदर्शित करते हुए वाला है। हाँ जी, बाहुबली मुझसे बोले:
 धरती से बोल रहे हों, 'मां, द्यावा पृथ्वी, 'वत्स, क्यों मुंह बाये ताक रहा है एक
 लो, तुम्हारे ही तत्त्व के प्रसारण से मानव उच्छृंखल बालक की तरह। मुझे विदि
 देह को प्रकृत करने वाले शस्त्र को नमित है कि तू मेरे अग्रज भरत के उस संदेश
 करके तुम्हें ही समर्पित कर रहा हूँ। वाहक दूत के समान चाटुकार औ
 लेकिन मां, तुम्हारे उसके साथ दिये गये वाचाल है और उसी की तरह का उद्ग
 तेजस् और ओजस् को ऊर्ध्वरेतस करके वाग्बिलासी भी। आश्चर्य है कि
 ही तो मैं मुक्तिपद पर प्रतिष्ठित होकर अपनी जिह्वा के व्यसन को स्थगित रख
 सर्वकामपूर्ण और पूरक हो गया। सका इतने निमिषों तक। तुझे भी विदि
 तुम अपने तात्त्विक सौष्ठव और सौंदर्य है कि तेरे जैसे ही उस दूत की जिह्वा
 को अक्षुण्ण रखने का दायित्व मुझ पर के आलोड़न के कारण ही हम भाइयों
 छोड़ सकती हों, मां!' में लड़ाई हो गयी थी...'

आंखें ऊपर उठीं, धीरे-धीरे, और मैं रुक नहीं पाया, बोल उठा, 'भगव
 साथ ही साथ मन में विचार आते रहे क्षमा करें, आपके मुखारविन्द की दिव
 उस प्रतिमा के शिल्पी की मानुषोपरि छटा से सम्मोहित होकर मैं स्तब्ध
 दृष्टि और कृतकौशल की प्रतिभा पर। हो गया था। वाह, क्या राजव का 'वन्द
 बाहुबली के मुख पर आंखें ठहरी। 'फुल' खुदाई नूर है आपके इस दिव
 क्या अटक गयी। पाषाण में से ऐसी दिव्यभा मुखमंडल पर...' मुझे बोलना रोक
 को उर्रित करने की कला का आलोक पड़ा; क्योंकि बाहुबली रुष्ट होते वा
 किस लोक से आता है! किस विद्या हैं, ऐसा कुछ आभास हुआ।
 से शिल्पी उसे अपने चक्षुओं में धारित बाहुबली बोले, 'रे अनर्गल प्रलप
 और स्थिर रख लेता है! देख तो रहा ही तू तो भगवान को भी अपनी वार्ता पू
 था बाहुबली के मुख को; देख रहा था करने का अवसर नहीं देता। और
 उनके बंद ओठों और अधखुली आंखों की भाषा की कैसी खिचड़ी पका रहा है
 पीछे अजीब तरह से छिपी हुई मुस्कान वैसे तो हम अपने सहज निमित्त ज्ञान
 की परछाईं को; देख ही रहा था.... कि उच्चरित शब्दों के प्रयोजित अर्थों
 गुल खिला कला के जादू का। ग्रहण कर लेते हैं। क्या तेरे विद्या

नवनीत

में भाषा के लय-प्रवाह, अर्थ-संकेत, भाव-समन्वय, विषय-सामंजस्य, न्याय-नियोजन, सिद्धान्त-निरूपण तथा तर्क-विधान को प्रयोजनानुसार रूप देने की शिक्षा नहीं मिलती? क्या वहां विद्यार्थियों को शब्दों में स्वरों का भावाधीन लय-विलय, व्यंजनों का परिष्कृत समन्वय, वाक्यों की सुव्यवस्था आदि की दीक्षा नहीं दी जाती? क्या पद-रचना का ज्ञान लुप्त हो गया है? भरतखंड में तो इस प्रतिभा के प्रस्थापन काल में भी ये विद्याएं प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थीं। क्या दण्डिन, कालिदास, जयदेव का पठन बंद हो गया है? याद है समंतभद्र? हो सकता है कि उसके पाण्डित्य-दर्प से कुछ नम्र जनों को कतिपय क्षोभ हो, पर उसके शब्द कौशल को तो मानना ही पड़ेगा। सुन उसका यह श्लोक : अवटु-तट मटति स्फुट-पटु-वाचाट धूर्जटेरपि जिह्वा। वादिन समन्तभद्रे स्थितवति तव सदसि भूप कास्थान्येषाम् ॥ हां बोल, बोल, तेरी जीभ तो तबसे कांप रही है। तुझसे तेरी भाषा में ही बोलना हमें दुखमय लगता है, पर तेरी चपल बालबुद्धि के प्रेमांशवश ही बोलने को विवश हो रहे हैं।

मैं—‘प्रभो, धृष्टता क्षमा करें कि आप जैसे सर्वज्ञानी के समक्ष इस काल का यह अति संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहा हूं। आजकल इस विश्व में समाज व्यवस्था गणतंत्रों के विधानों के अंतर्गत की जाती

है। देशान्तर से इनका रूप और प्रकृति भिन्न हो जाती है, पर जातिनाम एक ही है, जैसे भेड़, भेड़िये, कुत्ते, बिल्लियां और शेर और हिरन सब एक दूसरे के दुश्मन होकर भी जानवर कहलाते हैं। पर, भगवन्, एक बात है कि गणतंत्र का कोई भी रूप हो और किसी भी देश का हो, सबके सब जिस तंत्र को उच्चस्थ तंत्र मानते हैं, उसका नाम है खिचड़ी तंत्र। इस तंत्र में जिन व्यक्तियों को सबसे निपुण माना जाता है, उन्हें राजनेताओं और व्यवस्थापकों के पद पर आसीन कर दिया जाता है और जब तक वे अपने पदों पर प्रतिष्ठित रहते हैं, तब तक उनका मुख्याति-मुख्य कर्तव्य है कि वे अपनी बुद्धि की कुशाग्रता को जनसाधारण से अत्यंत गौण और गुप्त रखें। इसका कारण यह है कि जनता, जिसको ‘जनार्दन’ की उपाधि से विभूषित किया गया है, यह अच्छी तरह से समझती है कि राजकार्य का सुचारु रूप से संचालन करने में राजनेताओं और व्यवस्थापकों का बुद्धि-व्यय केवल बाधक ही हो सकता है, सहायक नहीं। इस सिद्धांत का प्रमेय यह है : जनता ‘जनार्दन’ है और प्रभु है और उसके सेवक हैं ये राजनेता और व्यवस्थापकगण। सेवक अपनी बुद्धि का प्रयोग अपने प्रभु की आज्ञा का शीघ्रातिशीघ्र पालन तथा उन्हें संतुष्ट करने के लिए करता है, न कि अपने चातुर्य का प्रमाण देने के लिए। हां, किसी दूसरे प्रभु का सेवक

बनकर अधिक पारिश्रमिक प्राप्त करने के लिए भी वह बुद्धिव्यय कर सकता है। इसी सिद्धांत के अनुगत राजनेता तथा व्यवस्थापक गण 'गद्दी' हथियाने के लिए अपनी मेधा का समुचित प्रदर्शन करते हैं। उनके इस मेधा-प्रदर्शन का निरीक्षण करके 'जनार्दन' जनता उनका चयन रिक्त पदों के लिए करती है। इन राजनेताओं और व्यवस्थापकों के 'गद्दी' हथियाने और हथियाने के बाद उनके उस पर चिपके रहने की अद्भुत लीला में उनके मस्तिष्क के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कल-पुर्जों के उपयोग में उनकी बुद्धियों के नर्तन को देखकर जनता जनार्दन का उल्लासपूर्ण मनोरंजन होता रहता है। इसे खिचड़ी तंत्र इसलिए भी कहा जाता है कि इस सिद्धांत के मुख्य प्रमेय का एक उप-प्रमेय भी है। वह यह है : राजनेता और व्यवस्थापक जनता जनार्दन की सेवा अर्थलाभ के लोभ से नहीं करते हैं। उनकी यह सेवा अर्थ की आकांक्षा से परे और अर्थातीत होती है, इसलिये वह अर्थरहित भी है। इस कारण जब ये गुणाढ्य अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करते हैं तो प्रतीति होती है बृद्धिहीनता की अथवा इसके पूर्ण विपरीत। खिचड़ी ही ऐसे विरोधी गुणों से मिश्रित खाद्य है। अब आप समझ गये होंगे कि क्यों इस विचित्र और गूढ़ तंत्र को खिचड़ी तंत्र कहते हैं, और गणतंत्र क्यों इस तंत्र पर टिका हुआ है।

'भाषा इस तंत्र का मुख्य वाहन है। भाषा से साहित्य निर्मित होता है। साहित्य समाज का दर्पण है। इसलिये हर गणतंत्र की जनता 'जनार्दन' की भाषा भी खिचड़ी भाषा हो गयी है। आपका परिचित कोई नैयायिक है जो मेरे इस तर्क को कुतर्क सिद्ध कर सके ?

'और भाषा संबंधित शिक्षा-दीक्षा तथा काव्यों की जो चर्चा आप कर रहे थे, वे सब तो हमारे साधारण हास और प्रहसन का लक्ष्य हैं। आपके दिगम्बर का एक प्रतीक हम लोगों को बहुत प्रिय हो गया है। वह है, 'दिगम्बर सत्य और तथ्य को दिगम्बर शब्दों में कहना। यह हमारे विश्व साहित्य का सबसे बुरा नारा है। बताइये इसके लिए जिस प्रकार के पाठ-पठन का प्रसंग आप दिखा रहे थे, उसका क्या प्रयोजन ? हमारे साहित्यकार भी साहित्य का सृजन अर्थलाभ के कारणवश नहीं करते (वह तो शायद आपके जमाने में भी न कर पाते होंगे)। उनका दावा है कि राजनेताओं की सेवा की तरह उनकी कृतियां भी अर्थातीत तथा अर्थरहित हैं। उनका कहना है कि वे अपने कृतित्व से उत्पन्न वस्तु को उसके नग्न नैसर्गिक रूप में ही प्रस्तुत करते हैं। उसको अर्थ के कपड़े पहनाकर उनकी प्रकृति को दबाने जैसा घिनौना काम वे कभी नहीं कर सकते। भगवन्, मैं भी अपनी साहित्यिक रचनाओं के अर्थातीत सौंदर्य की सूक्ष्म और निपुण अभिव्यक्ति

के लिए अपनी मित्र-मंडली में प्रशस्त हूं।
 'और समंतभद्र के टकार की टंकार।
 अरे रे! छिपा लीजिये उसे! अगर आज-
 कल किसी कवि ने ऐसे टकार की टंकार
 अथवा किसी कार को बेकार लिपिबद्ध
 और मुद्रित करने का अहंकार किया तो
 उसे उसकी रचना के साथ ही सदेह भूमिगत
 समाधिमरण के लिए अर्पित कर दिया
 जायेगा, धिक्कार-वचनों के साथ। अब
 तो कवितातीत अकविता, और कलातीत
 अकला की खोज शुरू कर दी गयी है, प्रभो!
 भगवन्, इस प्रगतिगामी युग में आपके
 दिग्गम्बरत्व से प्रेरणा लेकर हमारे सृजन
 और कृतित्व का लक्ष्य और ध्येय एक
 ऐसा बुद्धि और चिद्विलास प्राप्त करना
 हो गया है जो वाणीरहित, शब्दरहित,
 अर्थरहित, साररहित, रसरहित, आधार-
 रहित, दिक्करहित, अम्बररहित, स्वयमस्थ
 कार्यकारण पर्याय रहित भी हो—शुद्ध
 सृजन हो और शुद्ध कृत हो। खोज जारी
 है। मेरा एक मित्र रचनाकार पाठक के
 हाथ में एक कोरा कागज थमाकर कहता
 है, 'पाठक, तुम्हारी कविता इसमें है,
 देखकर या बनाकर पढ़ लो।' वह वाकई
 में काफी ऊंचे दर्जे का जादूगर है।'

बाहुबली—'अरे विद्युत्वेगी जिह्वा-
 नर्तक, जरा सांस लेने के लिए तो अपनी
 जीभ को विश्राम दे। तू तो वाग्वैचित्र्य
 का ऐन्द्रजालिक है। मैं भगवान न होकर
 केवल किसी स्वर्ण का इन्द्र-मात्र होता तो
 तेरे साथ एक घंटे के वार्तालाप के पश्चात्

किर्कतव्यविमूढ़ हो जाता। अच्छा, अच्छा,
 एक-दो बात और कहना चाहता है।
 कह डाल। सुनना ही पड़ेगा। तेरा प्रेम
 भी विचित्र है। सुनने के बजाय सुनाता
 ही चला जा रहा है।'

मैं—'देवाधिदेव, मैं इस प्रगतिशील
 युग के एक विशेष प्रगति-चिह्न की ओर
 आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता
 हूं। प्रभो, निवेदन है। आप जैसे युगस्रष्टाओं
 द्वारा प्रादुर्भूत चतुर्वर्ण समाज विभाजन
 में—जो भरतखंड में अब भी एक विकृत
 रूप में कायम है,—हम लोग एक और
 वर्ण जोड़ लेने में सफल हो गये हैं, क्योंकि
 उसकी आवश्यकता बड़ी प्रबल हो गयी
 थी। उस वर्ण को हमने 'बुद्धिजीवी' या
 आंग्लभाषा के और भी 'फिट' शब्द—
 'इन्टलेक्चुअल' से नामित किया है।
 अभी नया-नया है यह वर्ण, यद्यपि इस
 प्रगतिशील युग में भी इसका उत्थान
 असाधारण वेग से हुआ है।

'वैश्विक खिचड़ी तंत्र जिसकी बात
 में पहले कह चुका था, हम सबको इसी
 वर्ण की देन है। बाल की खाल छीलने
 में तो ये कणाद के सामने भी कणकणा-
 कणाद दिखाई देंगे। इनकी सबसे बड़ी
 खूबी यह है कि खुद अपनी समझ को दूसरे
 के दिमाग की कोठरी में बंद करके भी
 तीसरे की समझ का पर्दाफाश करने का
 तिलस्माती नुस्खा अपने पास रखते
 हैं। सारे समाज को बड़ा लाभ होता है
 इनके वाग्श्रम से। इनके इस श्रम के

प्रकाश में हम जो कुछ करते हैं वह ठीक ही लगता है। इनकी हर विषय पर निकलती हुई दोहरी विज्ञप्तियों का निरीक्षण करने से हम सदैव इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि त्रुटियाँ हमारी नहीं, दूसरों की हैं। इनकी समीक्षा-प्रतिभा बड़ी प्रबल है। जिस वस्तु या व्यक्ति का विवेचन करते हैं वह लुप्त होकर इनके रूप में ही परिवर्तित हो जाता है। जनता जनार्दन पर इनकी बड़ी कृपा है, और उसकी व्यथाओं को उसी की विभाओं के रूप में प्रस्तुत करके उसके लिए उन्हें संतोषजनक बना देना तो इनके बायें हाथ का खेल है। ये भी राजनेताओं की तरह अर्थ शून्यता के दृढ़निश्चयी पुजारी हैं। वास्तव में अब यह पंचमवर्ण ही हर तरह के सत्ताधिकार के योग्य समझा जाता है। और तो और, शेष वर्ण भी अपने को इस पंचमवर्ण के सदस्यों के व्यक्तित्व के सांचे में ढालने का प्रयत्न कर रहे हैं। गणतंत्र में समाज का इस प्रकार के एक वर्ण में परिणत हो जाना ही उसका चरमोत्कर्ष मान लिया जा चुका है।

‘अब आप ही बोलिये कि आदिनाथ के ‘तदलं स्पृद्धया...’ के उपदेश पर आचरण कैसे किया जा सकता है। और जनसंख्या की अभिवृद्धि के कारण तो एकांतवास भी अप्राप्य ही हो गया है; और संन्यास-प्रस्थान के लिए वन भी कहाँ रह गये हैं!’

बाहुबली—‘रे, कुटिल-मति-भाषक बाल,

नवनीत

तेरी पृथ्वी पर तो कलिकाल अपेक्षित मानव अधःपतन भी नियति विधानित दिशा के विपरीत ही हो रहा है। लगता है कि भोलानाथ शंकर किसी मति-सुप्ति के क्षण में किसी पुरे के पुरे रावण समुदाय को अमोघ वरदान दे डाले हैं। महेश्वर प्रायः कुछ ऐसा उलटा-सुलटा करके हमारे कंठ सृष्टि-पालक विधाताओं के कार्य को क्लिष्ट कर देते हैं, और ऊपर से कहें हैं कि ‘तुम्हें भी तो कुछ काम चाहिए नहीं तो तुम इधर वीतराग कायेत मुद्रा में स्तम्भित, और उधर कि शेषशायी शयन-विलास में अलसा क सृष्टि का कार्य ही शिथिल कर दो और यदि उत्पात तुम्हारे बस के बाहर तो मुझे बता देना, तब मैं तीसरी आंख खोलकर सबको सही ठिकाने लगा दूंगा उस महेश्वर से अगर कहें कि तुम्हारे ठिकाना लगाने का मतलब तो सभी पंचभूतों में वितरित करना होता तथा उससे हमारा कार्य और भी जटिल हो जाता है, क्योंकि फिर अणु-अणु सांठ-गांठ से नये सिर से सृष्टि-संयोग करना पड़ता है, तो महेश्वर बोलें हैं कि ‘बुद्धि का तर्कान्वित उपयोग काम नहीं है, वह आयाम तो तुम्हारे पालनहार-धर्म के प्रयोजन के लिए तुम्हारे ही पास रहता है। उस जंजाल मुझे क्यों घसीट रहे हो। और रही दानों की बात, वह तो महज अति

८६

सत्कार है। कैलाश तक पहुँचना ही बड़ी मेहनत का काम है; फिर किसी के यहां तक पहुँचने पर उसे खाली हाथ कैसे लौटाया जाये !' खेद के साथ कहना पड़ता है कि गणाधिपति शम्भु सोच-विचार के 'एक्सपर्ट' नहीं हैं।

'लेकिन उनके ताण्डव के बिना कल्पांत का काम भी नहीं हो सकता, क्योंकि तब तक हम भी सृष्टि का 'एडमिनिस्ट्रेशन' करते-करते थोड़ा बहुत 'कम्प्यूज्ड' हो जाते हैं और कुछ 'रेस्ट' की इच्छा करने लगते हैं। और फिर कभी बीच में सलाह-मशविरे के लिए ब्रह्मा के साथ 'कॉन्फरेंस' में उस बुजुर्ग विधाता से पूछें कि आप किसका भाग्यपत्र किसके ललाट पर चिपकाकर भेज देते हैं, जिसके कारण ये मानव अपनी बुद्धि और स्वभाव के विपरीत आचरण करते रहते हैं, तो ब्रह्मा खीझ जाते हैं और कहते हैं कि 'रिकार्ड कीपिंग' का काम उतना आसान नहीं है, जितना तुम समझते हो। इस ब्रह्मांड की कोटि-कोटि पृथ्वियों के कोटातिकोटि मानवों के भाग्यपत्रों को अकेले ही बनाते रहना क्या आसान काम है? हो सकता है कि कुछ भाग्य-पत्रों के गड़ठर मेरे कर्मचारियों ने किसी गलत पृथ्वी के पते पर भेज दिया हो। बुद्धि और स्वभाव का नियंत्रण तो तुम्हारे दायित्व में है। ऐसी छोटी-छोटी बातों को मेरे सामने मत लाओ।' देखा वत्स, तुम्हारे ऐसे मानव हम विधाताओं का भी चैन छीन लेते हैं।'

मैं—भगवन्, मैं कैसे सोच सकता था कि सृष्टि-संचालन के कार्य में आप जैसे देवाधिदेव भी उलझन में पड़ सकते हैं। यह तो बड़ी दारुण स्थिति है। हम मंदगति और चपल मन वाले मानव तब कैसे इस संसार-चक्रव्यूह का भेदन कर पायेंगे। इस स्थिति में हम कैसे आदिनाथ के मानवों को दिये गये उपदेश, 'तदलं स्पृहया...'—जो सभी धर्मग्रंथों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है—पर आचरण कर सकते हैं? आपके ९९ भाई लोग तो इस उपदेश को सुनकर मुनि हो गये। विलक्षण सामर्थ्य होगा उनके व्यक्तित्वों का। प्रभो, बताइये ऐसे अप्रयोगात्मक उपदेशों से हमें क्या लाभ? मैं तो बड़ा दुर्बल और निरीह मानव हूँ। कैसे ऐसे उपदेशों से धर्मलाभ ग्रहण कर पाऊंगा? मैं तो सोचने लगा था कि ये सब ग्रंथ कुछ गल्पगुच्छों के संकलन हैं, उसी तरह के मनोविनोद के लिए जैसा कि जासूसी उपन्यासों से होता है; क्योंकि उनमें भी 'हीरो' की सदैव विजय ही होती है। तारणहार, कुछ रास्ता दिखाइये, मनस्-शांति की बड़ी इच्छा है, और कहते हैं कि वह धर्मलाभ से ही प्राप्त होती है। उसके लिए मुझे आपसे प्रकट वार्ता करने से अधिक और कौन-सा सुअवसर मिलेगा। प्रभो, ऐसा मेरा नम्र निवेदन है आपसे।'

बाहुबली—'अरे, तू तो विनम्र मुख रखकर भी सबका उपहास करता रहता (शेषांश पृष्ठ ९३ पर)

रथनेमि

मूल बंगला से अनुवाद :

राजकुमारी वेगानो

[बंगला कहानी]

‘उस उद्गोर्ण विष की भांति ही मैं हूँ’—राजीमती ने कहा—‘मेरे पिता ने मुझे जिनके हाथों में समर्पित करना चाहा था, वे मुझे ग्रहण न कर शिखरारोहण कर गये। मैं उन्हीं से दीक्षित होकर विचरण कर रही हूँ... तो क्या इसके उपरान्त भी आप मेरी आकांक्षा करेंगे?’ ईषत् अन्तत रथनेमि ने राजीमती के चरण छुए और फिर धीरे-धीरे गुफा से बाहर हो गये। आकाश ने भी उसी क्षण मेघमुक्त होना आरम्भ कर दिया था।

उज्जयन्त गिरि के शिखर-शिखर पर जिस दिन प्रथम वर्षा की मेघमाला प्रलम्बित थी, अपराह्न में जिस दिन आसन्न वर्षा की आशंका थी, उसी दिन अधित्यकानुवर्ती अरण्यपथ पर चल रही थी भोग राजकन्या उग्रसेन - दुहिता राजीमती। समस्त सांसारिक सुखभोग-ऐश्वर्य का उसने परित्याग कर दिया था। क्योंकि जो प्रथितयशः अरिष्टनेमि उसे पत्नी रूप में वरण करने आये थे, वे विरक्त होकर मध्य पथ से ही आरोहण कर गये थे उज्जयन्त गिरि के शीर्ष पर। तभी तो स्नेह के समस्त अनुरोध उपरोधों की उपेक्षा कर उन्हीं के पदचिह्न अंकित पथ पर वह गतिमान थी। संसार में जिनसे मिलना संभव न हो सका, उन्हीं से मिल सकेगी लोकांतवर्ती ईषत् प्राग्भार पर।

किन्तु, कुछ दूर चलने के पश्चात्

ही एक झंझावात ने उसका पथ अवरुद्ध कर दिया। देखते-देखते मूसलाधार वृष्टि होने लगी। कड़कड़ शब्द करता हुआ अशनिपात प्रारंभ हो गया, जिसकी ध्वनि गिरिगात्रों से आहत होकर ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रही थीं अधित्यकाओं में। उसी झंझावात एवं वर्षा के मध्य राजीमती आगे की ओर अग्रसर हो रही थी। क्योंकि समीप में कहीं कोई आश्रय नहीं था। अन्ततः एक गिरिगुहा प्राप्त होने पर आश्रय के लिए उसने उसी में प्रवेश किया।

गुफा का भीतरी भाग संकीर्ण होने के कारण अंधकारपूर्ण था। फिर मेघ के अंधकार ने उस अंधकार को और भी घनीभूत कर दिया था। जहां तक दृष्टि जा सकती थी, वहां राजीमती को कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। इस दुर्गम में सहसा कोई आकर उपस्थित हो जायेगा,

हाथों में
हीक्षित
रेंगे ?
गये।

अवच्छिन्न
वृष्टि
हुआ
छवि
प्रति-
में।
जीमती
क्योंकि
था।
ने पा
किया।
हीने
मेघ के
भी
दुष्टि
को कही
दुर्गोप
जायेगा
फरवरी



चित्रकार : गणेश ललवानी

‘तुम्हारी अनुपम तनुशोभा देखने के लिए, तुम्हारे प्रस्फुटित यौवन के सान्निध्य के लिए कितना व्याकुल है अखिल विश्व का हृदय। धन्य है तुम्हारा रूप !’

ऐसी संभावना भी नहीं थी। अतः देह से भीगे वस्त्र उतार कर उन्हें निचोड़ा और जमीन पर सूखने के लिए प्रसारित कर दिया।

किन्तु उसी गुफा के गर्भभाग में अरिष्ट-नेमि के लघुभ्राता रथनेमि, जिन्होंने श्रमण धर्म ग्रहण कर लिया था, कुछ समय से अवस्थान कर रहे थे। राजीमती ने जिस समय गुफा में प्रवेश किया, वे उस समय ध्यानावस्थित थे, लेकिन कुछ ही क्षणों के पश्चात् उनका ध्यान भंग हो गया। नेत्र खुलते ही देखा, गुफा के मुख पर अवस्थित पूर्णतः अनावृता राजीमती को। एक अननुभूत तृष्णा के आवेग से उनके समस्त शरीर को सहसा विमथित कर डाला।

आसन छोड़कर खड़े हो गये रथनेमि। उन्हें ऐसा लग रहा था मानो प्रजापति ने समस्त कौमुदी कणों का आहरण कर उस सुंदर देह की रचना की हो। पूर्णिमा के कोरक की भांति सुयौवना उत्तम रूपाभिरामा की रूपराशि को और निकट से देखने का लोभ संवरण न कर सके रथनेमि। अतः धीरे-धीरे अग्रसर होने लगे उस अपरूपा की रूप रचिर तनुभंगिमा की ओर अपलक दृष्टि लिये सतृष्ण नेत्रों से।

गुफा के मुख पर सहसा विद्युत्पात होने पर भी राजीमती इतनी चमत्कृत नहीं होती, जितनी वह अचानक श्रमण को सन्मुख पाकर हो गयी। तत्क्षण दोनों हाथों से वक्षदेश आवृत्त कर बैठ गयी। आर्द्र

वसनो को ही उठाकर किसी भांति अपना सर्वांग ढंक लिया।

रथनेमि एकटक उसकी ओर देख रहे, पान करते रहे उस रूप माधुरी को जिसका निर्माण अखिल चराचर के समस्त प्राणियों की देह शोभा से तिल-तिल आहृत कर हुआ था। हरिणी के आयत नयन मराली की गति रम्यता, ज्योत्स्ना जीक चकोरी की कोमलता लेकर ही तो इतना सुंदर और शोभामय हो रही थी वह सदा नयन मनोहर।

राजीमती भी तब तक संभल कर खड़ी हो गयी।

राजीमती के आनत मुख की ओर दृष्टि प्रसारित करते हुए रथनेमि बोले 'तुम्हारा परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ रूपसि !'

राजीमती दृष्टि उत्तोलित किये कि 'हैं ही रुक्ष कण्ठ से बोली, 'श्रमण अशोभन है आपका प्रश्न और उससे कहीं अधिक अशोभन है आपका आचरण !'

क्षुब्ध हो उठे रथनेमि। कहने लगे 'शोभने ! मेरे आचरण में तुमने ऐसा अशोभन क्या पाया ? मैं हूँ अश्रम वृष्णि कुलोत्पन्न रथनेमि। तुम क्या जानो शुभ्रे, तुम्हारी अनुपम तनुशोभा देख लिए, तुम्हारे प्रस्फुटित यौवन के सान्निध्य के लिए कितना व्याकुल है अखिल का हृदय। धन्य है तुम्हारा रूप !'

रथनेमि के मुख की ओर दृष्टि उठाकर देखने लगी राजीमती। उसके रूप

यह प्रगल्भ प्रशंसा भी उस आनन्द नहीं दे सकी । न जाने कैसी विषण्ण वेदना वह मन ही मन अनुभव करने लगी । क्या सत्य ही उसका रूप इतनी प्रशंसा के योग्य है ? नहीं, नहीं । अधन्य है उसका यह रूप जो आवद्ध कर रोक न सका उस प्रियतम को ।

रथनेमि उच्च स्वर में बोले, 'सुनो, शोभनांगि !' व्यथित आँखों से देखने लगी राजीमती । बोली 'वृष्णि-पुंगव, साध्वी का इस प्रकार सम्बोधन करना अनुचित है।' 'मैं अपनी आकांक्षिता नारी को सम्बोधन कर रहा हूँ।' 'किन्तु मैं आपकी आकांक्षिता नहीं हो सकती, फिर आप यह भी तो भूल रहे हैं कि आप श्रमण हैं।' 'हे विम्बाधरे, सुनो, मैं यह भूला नहीं हूँ कि मैं श्रमण हूँ, किन्तु इस क्षण तुम्हारे अधरपुटों में संचित मकरन्द का पान करना चाहता हूँ । मेरा यह वक्षदेश तुम्हारे उन्नत वक्षदेश के आलिगन को उन्मुख है । तुम्हारे नेत्रों से विच्छुरित रश्मि अग्नि की भांति मेरे अन्तर में प्रवेश कर रही है । हे क्षीणकटि मधुरे, इस मुहूर्त को क्षण-प्रणय के महोत्सव से धन्य करो । श्रमण धर्म फिर भी किसी दिन ग्रहण किया जा सकता है किन्तु यौवन है चंचल एवं अचिरस्थायी ।'

एक अस्फुट आर्तनाद करती हुई राजीमती पीछे हट गयी । जैसे विषधर सर्प का गरल-निःश्वास उसके अंगों से टकराया हो । कैसी भयंकर आकांक्षा लिये उसका पथ अवरुद्ध किये खड़े थे रथनेमि !

रथनेमि बोले, 'सुनो निविडक्षणे ! तुम्हारी वय अभी साध्वी बनने की नहीं है । निद्रित केतकी की निगीथ-वासना की भांति सुस्वप्न विहंसित एक कामना की सिहरन देख रहा हूँ मैं रक्त प्रवाल से तुम्हारे अधरोष्ठों पर, जो प्रियतम के अधर स्पर्श के लिए समुत्सुक हैं । तुम्हारा मोहनीय चम्पक गौर ग्रीवादेश . . . '

ध्रुव कंठ से बीच हाँ बाधा देकर राजीमती बोल उठी, 'वृष्णिपुंगव, प्रगल्भता की भी एक सीमा है । मैं और सहन नहीं कर सकती । आप यहां से प्रस्थान कीजिये !'

'किन्तु क्यों ?' . . . एक पीड़ा-भरी प्रश्न-दृष्टि से देखने लगे रथनेमि । बोले, 'क्या मैं तुम्हारी कामना के अयोग्य हूँ ?'

प्रत्युत्तर देते हुए कण्ठ अवरुद्ध हो गया राजीमती का । क्या वह भी कामना के अयोग्य थी ? फिर कैसे उसका परित्याग कर जा सके लीलामात्र में ही वे पुरुष-पुंगव, किन्तु नहीं' . . .

प्रेमिक का प्रबल आग्रह लिये निरीक्षण कर रहे थे रथनेमि राजीमती का अन्तर्द्वंद्व । सहसा बोले उठे, 'बोलो, सुतनुके, बोलो, क्या मेरा यह प्रबल आग्रह तुम्हारे शान्त वक्ष के अन्तराल में कोई स्पृहा उन्मुख नहीं करता ?'

धीर कंठ-स्वर में राजीमती बोली, 'क्षण-चंचल नश्वर कामना का उत्सव नितान्त विद्रूप है । वह विद्रूप सुखकर होने पर भी उसके लिए मेरे मन में कोई स्पृहा नहीं ।'



अवनत सिर किये नीरव खड़े थे रथ-
नेमि । और स्वयं की भावनाओं के आवेग
में दूर अधित्यका की ओर देख रही थी
राजीमती । वृष्टि वेग कम हो चुका था ।
जल भीगा समीर वन गुल्मों के सौरभ से
था जैसे मन्थर मंदिर ।

सहसा मुंह फिराकर राजीमती बोल
उठी, 'आप यदि रूप में वैश्रवण होते,
लालित्य में नलकुबेर, इतना ही नहीं
स्वर्गाधिपति पुरन्दर भी यदि आप होते
तब भी मैं आपकी कामना नहीं करती ।

टूटकर अवलुंठित हो जाना चाहता था
रथनेमि का हृदय राजीमती के पदतल में ।
बोले, 'शोभने ! कठोर मत बनो मेरे प्रति !'

कैसी दारुण वेदना अनुभव कर रही थी
राजीमती, सुन रही थी रथनेमि के हृदय का
आर्तनाद जो गुहाप्रान्त की वारि धारा
पुष्ट निर्झर की कलध्वनि को भी म्लान
कर रहा था । क्या सचमुच ही वह इतनी
कठोर हो सकेगी ?

हठात् उद्भासित हो उठीं राजीमती
की दोनों आंखें । करुणा के वशीभूत होकर
ही तो वे पुरुष-पुंगव संसार परित्याग कर
चले गये थे । उसी करुणा का आश्रय लेना

नवमीत

होगा रथनेमि
स्वयं के धैर्य पर । वचाना होगा उसे तू
खंड की भांति कामना में प्रवाहित होने से
धीरे-धीरे राजीमती रथनेमि की ओर
अग्रसर हुई । सुशान्त कंठ-स्वर में बोले
'वृष्णिपुंगव ! आप उच्चकुल जात हैं
क्या आपका गन्धन जातीय सर्प की भांति
होना उचित है ?'

'इसका अर्थ ?' विस्मित दृष्टि से देख
हुए बोले रथनेमि ।

'इसका अर्थ है—अगन्धन जातीय
अग्नि से दग्ध होने पर भी उद्गीर्ण
को पुनः ग्रहण नहीं करता और आप क
के उद्गीर्ण विष को ग्रहण करने के
इस भांति उत्सुक हैं ।'

कुछ जैसे समझ गये और कुछ समझ
ही नहीं पाये रथनेमि । एतदर्थ सप्र
दृष्टि से उसी प्रकार राजीमती के
की ओर देखते रहे ।

'उस उद्गीर्ण विष की भांति ही
हूं,' राजीमती बोली—'मेरे पिता ने
जिनके हाथों में समर्पित करना चाहा
वे मुझे ग्रहण न कर शिखर पर आरो
कर गये । मैं उन्हीं से दीक्षित होकर विज
कर रही हूं । तो क्या इसके उपरांत
आप मेरी आकांक्षा करेंगे ?'

सिर झुकाये प्रस्तर मूर्ति की भांति
स्तब्ध खड़े थे रथनेमि । क्षणिक काम
के वशवर्ती होकर, यह क्या कर
उसने ? केवल कुल को ही लांछित

(शेषांश पृष्ठ ९५ पर)

है। देवाधिदेवों को भी नहीं छोड़ता। एक 'डुप्लिकेट' चार्वाक लगता है तू। चाणक्य भी कुछ ऐसी ही प्रवृत्ति का मनुष्य था। लेकिन दोनों ही मुनि हो गये। कदाचित् तेरे विधान में भी कुछ ऐसा ही है, इसलिए तेरे कुछ दुरूह प्रश्नों का सांकेतिक उत्तर दूंगा। सबसे पहले अपने असामर्थ्य का कारण हमें बनाना छोड़। तेरे जैसों की दुर्बलताएँ ही हमारे कार्य को जटिल करती हैं। हमारा प्रयत्न तो यही रहता है कि तुम्हारे जैसे लोगों को महेश्वर की तीसरी आंख खोलने के पुण्य-प्रकोप से बचाकर धर्मलाभ ग्रहण करने का अवसर दें। इसीलिए मानवदेह दे देते हैं तुम लोगों को, तुम्हारे पूर्वजन्मों के कुकर्मों के बावजूद भी; फिर भी तुम लोग अपनी नरकगामी प्रवृत्ति के कारण एक से एक 'गोल्डन' चांस 'मिस' करते चले जाते हो। समझ रखकर भी बेवकूफी करते हो।'

मैं—'लगता है कि ठीक कह रहे हैं आप।'

बाहुबली—'लगता है... मूढ़मते, तेरे दर्प की सीमा ही नहीं दिखाई देती। प्रत्यक्ष भगवान के वचनों को भी अपने न्याय के तराजू पर तौल रहा है। कदाचित् तू भी वैसा ही 'इन्टेलेक्चुअल' है, जिनकी खिल्ली तू स्वयं ही कुछ देर पहले उड़ा रहा था।'

मैं—'क्षमा करें, प्रभु, क्षमा करें।'

इन्टेलेक्चुअल-बुद्धिजीवी के सिवा और किसी भी नाम से प्रताड़ित करें, मैं सह लूंगा। लेकिन क्या करूँ उनके कुसंगत की रंगत बड़ी तगड़ी चढ़ी हुई है मेरे ऊपर। आप जैसे सर्वकामदेव ही उसे साफ़ कर सकते हैं। खैर, छोड़िये इन बातों को नहीं तो इनमें उलझकर आपके सदुपदेश से मैं वंचित रह जाऊंगा। 'तदलं स्पष्टंया' की निगूढ़ता का कुछ अनावरण कर दें तो वह ही मेरे इस जन्म के लिये काफ़ी हो जायेगा। प्रभो, उपनिषत् हूँ!'

बाहुबली—(कुछ खुलकर मुस्कराते हुए) 'ठहर, मैं भी एक प्रश्न तुझसे कर लूँ। तेरी सुलक्षणा पत्नी जो ऐहिक काया में इस समय अपने भ्राता के ग्रह में प्रत्यक्ष है, उसके मन का त्रिचतुर्थांश तेरी खोपड़ी के ऊपर क्यों मंडरा रहा है? क्या तू उसको क्लेश देता है, अथवा अपने जीवन के अधिकांश भाग का उससे गोपन करता है, स्मरणक्षीणतावश? तेरे से बड़ा स्नेह और प्रेम है उसका। तेरे कौन से लक्षणों से उसमें इन भावों का उद्दीपन होता है, वे लक्षण तो मुझे भी नहीं दिखाई दे रहे हैं। वैसे कहे तो मैं उसको मनस्वक्षु



को जब चाहे, जिस समय चाहे, कहीं भी रहकर देख सके। वैसे पत्नियों के मनसांशों का इस तरह पतियों के सर पर मंडराना कोई खास बात नहीं है। त्रियाचरित्र के वैचित्र्य से मैं भी कुछ सीमा तक परिचय रखता हूँ। पूर्ण परिचय तो आदिनाथ भी नहीं रख पाते थे; क्योंकि ऐसा होता तो नीलांजना से धोखा न खाते।

(एक हल्का-फुल्का-सा अट्टहास करते हुए) तो दूँ तेरी पत्नी को मनस्वक्षु?’

मैं—‘हे पूर्णकाम प्रभो, अपने प्रश्नों का उत्तर आप स्वयं ही दे रहे हैं। स्मरण-क्षीणता की बात पते की पकड़ी आपने। अगर उसका मनसांश इसीलिए मेरे उपर मंडराता रहता है तो मैं स्मरण-सुधार का भरसक प्रयत्न करूँगा। उसको मनस्वक्षु देना तो व्यर्थ होगा। हर समय मुझे ही देखते रहने पर वह ‘बोर’ हो जायेगी और उसके स्नेह की प्रगाढ़ता भी क्षीण होने लगेगी। और ‘तदलं स्पृहया...’ के मेरे प्रश्न से इन सब बातों का क्या संबंध है, भगवान्?’

बाहुबली—‘मन के आतंक को अप्रत्यक्ष रखने का सामर्थ्य तुझमें है। तू मन में थर-थर कांप रहा था, यह विचार करते हुए कि प्रभु कितनी ब्रह्म-हत्याओं का दंड इस मनस्वक्षु-प्रदान के व्यवधान से मुझे देने वाले हैं। ऐसा मैंने क्या कह दिया! मेरे साथ तो बड़ा अनर्थ घटित होने वाला है। कैसे टलवाऊँ इस बात

को। विकल न हो, वत्स। ऐसी रीति न तीत यातना योग्य पाप तो कोई मा करना भी चाहे तो भी नहीं कर पायेगा हम तो अपनी शक्ति देवियों को भी दृष्टि नहीं प्रदान करते हैं, क्योंकि स्त्री को तो लीलामयी होने के कारण अलख की भी किसी परिभाषा में समा नहीं किया जा सकता है।

‘वत्स, इस वार्ता-विनोद में विकल बुद्धि की अविकल चपलता देख हम प्रसन्न हुए। अब हम तेरे प्रश्नों उत्तर-संकेत देने वाले हैं। ध्यान से मनन कर, धारण कर, तथा शांत-मन को प्राप्त हो।’

और सर्वकामदेव बाहुबली मुझे बोले: ‘अब मैं तेरी मनस्थ अंतर्धानी ही प्रतिध्वनित कर रहा हूँ।

‘तदलं स्पृहया,’ उसके पश्चात् ‘दध्वं यूयं धर्म-महातरोः’ (धर्म महावृक्ष के तले आश्रय लो)। यहाँ शब्द के पूर्व किसी विशेषण का नहीं है। जैसे कि जिन-धर्म, सनातन....आदि; ठीक उसी तरह से जैसे यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति....’ भ

उवाच में। प्रथमतः इस वक्तव्य के को अपने मन में दृढ़ता से अंतर्निहित यदि ऐसा वास्तव में कर सका तो लाभ के अंतिम सोपान तक एक में पहुँच जायेगा। क्योंकि विशेष परिधि है। परिधि है तो सीमा है। है तो कुण्ठा है। कुण्ठा है तो अ

है। अवहेलना है तो ग्लानि है। ग्लानि है तो द्वेष है। द्वेष है तो क्रोध है। क्रोध है तो अज्ञान है। अज्ञान है तो मृत्यु है। मृत्यु है तो लोक है। लोक है तो मोह है। मोह है तो राग है। राग है तो द्वेष है। शेष है तो.....

‘पहचान ले भवसागर के इस भंवर-चक्रवात को।

‘ग्लानि तक तो तू व्यक्तिविशेष रह सकता है और विरक्ति अथवा अनासक्ति के मार्ग से मुक्ति की चेष्टा कर सकता है। पर मन में जब द्वेष भाव आया तो समझ ले तेरे टुकड़े हो गये और तू व्यक्ति नहीं, विभक्ति हो गया। भंवर में फंस गया....

‘और जकड़ गया पूर्वाग्रह, परिग्रह और दुराग्रह, वासना, व्यसन, मद, मत्सर, लोभ की वज्र-शृंखला की कड़ियों से; पर भ्रांति रखता रहता है कि वे हैं तेरे मन की आकांक्षाओं के सुवासित पुष्पहार यद्यपि हैं वे सब तेरे व्यक्तित्व के बिखरे टुकड़े ही, क्योंकि तेरा दया-भाव तो इनमें लुप्त हो गया। दया नहीं तो धर्म कहां ?

‘तदलं स्पृहया...’ क्योंकि, स्पृहा, स्पृहा, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष.... फिर वही भंवर...। पुनः विभक्ति। पहले व्यक्ति बन, फिर पहचान अपने उस व्यक्ति को। फिर समझ उस व्यक्ति के लिए स्वभावोचित सुलभ मुक्ति चेष्टा कौन-सी है ? फिर वह चेष्टा कर। चेष्टा कर। चेष्टा कर आशा त्याग कर। आशा गयी...मुक्ति आयी। चेष्टा कर... चेष्टा कर...।

‘तदलं स्पृहया....’

और देख रहा था मैं इस किताब (‘अंतर्द्वन्द्वों के पार’) में छपे हुए बाहु-बली की मूर्ति के इस फोटो को, कि वह (मेरी पत्नी) वापस आ गयी। मुझे देखकर हंसते हुए बोली, ‘देखिये क्या-क्या लायी हूँ आपके लिए।’ उसके प्रसन्न मुख को देखकर एक अभिनव परितोष मिला। हां, वह बहुत कुछ तो लेकर आयी है। समझ में कुछ-कुछ सफाई आयी है।.... कला, अकला और सकला।

—एम. डी. /२२९/II, १२ बंगला, ठाकुरली (पूर्व), थाना

(पृष्ठ १२ का शेषांश)

किया, अपितु अपमान भी किया है अग्रज की वाग्दत्तापत्नी का। कलंकित है उसका जीवन। कलंकित है उसकी साधना।

अश्रु विगलित हो पड़े उनकी आंखों से। करुणा से विगलित हो गया राजीमती का अन्तर भी। बोली, ‘आपकी आंखों के ल में धुल गयी है क्षणिक उन्माद की

कालिमा। विस्मृत कर दीजिये अतीत को। स्वयं को पुनः उद्वुद्ध कीजिये शाश्वत के लिए।’ ईषत् आनंत होकर रथनेमि ने राजीमती के चरण स्पर्श किये, और फिर धीरे-धीरे गुफा से बाहर हो गये।

आकाश ने भी उसी क्षण मेघमुक्त होना प्रारम्भ कर दिया था।

(पृष्ठ ७९ का शेषांश)

हैं। इस प्रकार साहित्य हमें स्वयं को पहचानने की दृष्टि देने के अलावा, अपनी सब सीमाओं और शक्तियों के साथ आदर्शों तक पहुंचने के मार्ग पर अग्रसर भी करता है।

मानव अपने आदर्शों के अनुरूप अपना 'पुनर्निर्माण' कर सकता है, इसका संकेत वेद की अनेक ऋचाओं में मिलता है। वेद ने ही एक ऐसे रहस्यमय स्रष्टा की कल्पना की, जिसने एक अपरिवर्तनशील संसार का विधान किया, और उसके इंद्रियातीत और अनुभवातीत होने के कारण स्वयं हम उसकी कल्पना नहीं कर सकते।

जो लोग ऐसा मानते हैं, वे मेरे लेखे, अपने को मृत शब्दों के सागर में डुबाये जा रहे हैं। वे किनारे पर नहीं आना चाहते, क्योंकि वे इन्हीं मृत शब्दों में ही अपनी मुक्ति खोजते हैं।

किन्तु, टैगोर के बाद ऐसे लोगों के चिन्तन में एक क्रांति-सी आयी। टैगोर के बाद के लेखकों में इस अन्तःप्रेरणा के दर्शन होते हैं कि हमारी कल्पना हमें

किसी सुनिश्चित लक्ष्य की ओर प्रवृत्त करती रहती है। उन्हें यह भी अनुभव है कि हम जैसी दुनिया में जीना चाहते हैं, उसका चुनाव स्वयं करते हैं, इस दुनिया का सर्जन करते-करते, अपना सर्जन भी करते चलते हैं।

यदि कोई तितिक्षा का एक द्रोण बनना चाहे, और अपने को अलगाव में सोचना चाहे, और यदि दूसरों के साथ संपर्क की कोई नैसर्गिक लांघन न हो तो शब्द उसके मानवीय सम्प्रेषण का माध्यम बन जाते हैं।

और चूंकि सारे मानव सम्बन्ध तेजी से सिकुटित जा रही दुनिया में हैं, इसलिए हमें ऐसे रूपकों और प्रतीकों का विकसित करना होगा, जो हमारे अंधेरे पथ के प्रदीप बन सकें।

आज, शब्दों की प्रवृत्ति राष्ट्रीय सीमाओं को लांघकर, विश्व मानवों को एक सूत्र में जोड़ने और व्याप्त होने की है।



चित्र : आलोक जैन

'आज-कल जुड़वां बच्चे बहुत जन्म लेने लगे हैं।' एक आदमी ने दूसरे से कहा।

'अरे भाई, इसमें आश्चर्य की क्या बात है। देखते नहीं कि दुनिया में घटनाएं कितनी अधिक बढ़ गयी हैं! अब वे भी अकेले जन्म लेने का साहस नहीं कर रहे हैं।'

—दीपक, बरेली

‘मेरी स्नेहिनी, यदि तुम चाहो तो कल्पना करो उस आफिअस की, जो अपनी अगाधिनी बीन के संग, पर्वतों के उगने से पहले और पानियों के बहने से पहले भगवान की सृष्टि के आरपार दौड़ गया था। ठीक उसी ढंग से मैं सोचता हूँ कि सबसे पहले मुझे अपनी कुछ शिलाओं को उभार लेना चाहिये, अपनी नदी को आगे भेज देना चाहिये.....’

आधुनिक जर्मन महाकवि रिल्के का प्रेम-पत्र :

बेल-बेलुता के नाम

पेरिस : फरवरी १९१४

मेरी मित्र, कल से तुम्हें मैं यह तीसरा पत्र लिख रहा हूँ। सुबह मैंने तुम्हें तार दिया है, मेरे मन में पहले ही इस बात का अनुत्पाप है। मुझे ऐसा करना चाहिये, केवल इसलिए नहीं, बल्कि सच कहूँ तो मुझे ऐसा करना पड़ा—लेकिन मैं क्या कह रहा हूँ? अगर सच ही कहा जाये, तो मुझे तुम्हें रात और दिन लिखना चाहिये—वह सब-कुछ प्रकट करने के लिए, जो प्रतिकूलताओं में यहाँ-वहाँ छिछोड़ा होता है और हलचल पैदा करता

है। और तब भी केवल भगवान ही जानता है कि अपने को समझा पाया हूँ या नहीं, आखिरकार मैं खुद ही यह सब नहीं समझता। पहले पत्र से लेकर अब तक मैंने कभी यह ठीक नहीं समझा कि मैं अपने जीवन की स्थितियों के लिए तुम्हें परेशान करूँ। आखिर तो ये स्थितियाँ मेरी हैं, इनसे तुम्हारा कोई मतलब भी क्या है—तुम्हारे सामने अपने जीवन की इन परिस्थितियों को महत्त्व देकर इन बहुत से शब्दों द्वारा मैं तुम्हारे दिये उस

पवित्र सुख के दान को मेघाच्छादित ही कर सकता हूं, जो सुख उस वासंती हवा के समान है, जो वसंत का दिन उगने से पहले ही उसे सुवास से भर देता है। मैं क्या करूं ?

महीनों तक मैंने आंखमिचौनी का खेल खेला है, और अब जब तुम्हारा आनंद अचानक ही मुझे खोज निकालता है, तो मैं एक छोटे लड़के की तरह बर्ताव करता हूं। मैं अपनी इस पकड़ाई की गंभीरता और डर से चिल्ला उठता हूं—'अभी नहीं, अभी नहीं !' मैं और भी ज्यादा चतुराई से छिपना चाहता हूं, ताकि मैं पाये जाने के सुख और भय का ज्यादा से ज्यादा स्वाद ले सकूं। और तब फिर जब मैं यह लिख रहा हूं मुझे लगता है मैं एक दर्दा हूं, जो शोभन सूर्य को देर से उगने के लिए मांग करता है। (हां, मैं सुहाने सूर्य की मांग करता हूं), साथ ही रात की संपूर्ण कथा दुहराता है, तूफान और अंधकार की बात कहता है और अब उन पेड़ों को देखता है, जो रात, कठोरता से तितर-बितर कर दिये गये थे।

मेरी स्नेह सखी, तुम सच कहो तुम कौन हो ? मेरा यह बगीचा सूर्य से भय खाता है—यह कितनी बुरी तरह से ऊबड़-खाबड़ और विपर्यस्त पड़ा है। यह अब उपवन सरीखा दिखता भी नहीं। लेकिन एक बार फिर यह उगने के व्यापार में संलग्न हो गया है। यह शिशिर के लिए तैयारी कर रहा है, अपनी कठोर, कठिन,

कुरूप सतह के नीचे बीज धारण की लक्ष्य प्रक्रिया का यत्न कर रहा है। सच ही यह तुम्हें तुम्हारे संपूर्ण प्रकाश में प्रवेश के योग्य नहीं है। तुम्हारे भीतर जितना देव या उपदेव का वास है, उसके योग्य नहीं है। यदि तुम चाहो तो करो उस आर्फिअस की, जो अपनी अधिनी बीन के संग, पर्वतों के उगने पहले और पानियों के बहने से पहले भगवान की सृष्टि के आर-पार दौड़ता था। ठीक उसी ढंग से मैं सोचता हूँ कि सबसे पहले मुझे अपनी कुछ शक्त को उभार लेना चाहिये, अपनी नवी आगे भेज देना चाहिये और मेरे कंधे भर विचित्र पेड़ों, केवल पेड़ों के ही किसी को गलत होकर लोभ में रहने देना चाहिये। और तब शान्ति या प्रेरणा की आंध्रियां उभर आये—बीजें जो बुद्धि से परे हैं—चाहे उन्हें हिला दें या उखाड़ दें।

मेरी मित्र, क्या मैं तुम्हें दुख देता ? निश्चय ही मैं तुम्हारी इस अदभुत के सामने ऐसा काम नहीं कर सकूँ।

मैं खुद अपने से कहता हूँ कि सच ही जो कुछ मैं यहां दुहरा रहा हूँ तुम्हारे रास्ते में बिखेर रहा हूँ, तुम्हारी इच्छा अंत तक कायम रहे तो वह तुम्हें मुझसे मिलने आज के तुम्हें रोकने का कारण नहीं होना चाहिये भगवान जानता है—मेरे आसपास है और इतना निश्चित है : पतझर

अपेक्षा वसंत में पेरिस अनुपम रूप से सुहाना हो जाता है, खासतौर से उस व्यक्ति के लिए, जिसने उसे पहले कभी नहीं देखा।

अपनी पूरी सच्चाई के साथ मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि अपनी एकाकिनी आत्मा का अभ्यासी होने के कारण, मैं नहीं जानता कि कैसे इस तरह की घटना का स्वागत करूं। सबसे पहले मुझे अपने दोनों हाथों में तुम्हारा हाथ ले लेना चाहिये और तब तक उसे लिये रहना चाहिये, जब तक वह रहना चाहे, और तब एक बार फिर बिना कोई खतरा उठाये मुझे अपने स्वभावगत एकान्त में उतरकर डूब जाना चाहिये। फिर भी कुछ तीसरे पहरों में, एक शाम में हम साथ रहें, घूमें, चीजों में हिस्सा लें, वे सब चीजें जो हमारा भाग्य नहीं रहीं, लेकिन जिनका मतलब बहुत है, दुष्प्राप्य होने के कारण मूल्य बहुत है। हमारे पास ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जिन्हें हम

अपरिमित रूप से एक दूसरे से कह सकते हैं और अंत में हम किसी भावी योजना को ज्यादा सुनिश्चित और स्पष्ट रूप दे सकते हैं। यदि अपना कोई प्रोग्राम हम व्यवहार में भी ला सकें, यदि कोई स्थान या साज हमें मिल भी जाये, तो भी मेरे मन में यह ख्याल है कि मुझे तुम्हारे संगीत को अपने ऊपर से बहने देने की अनुमति तुम्हें नहीं देनी चाहिये, वह भी इस शहर में, जिसने इतनी दूर तक मेरे मन का शिकार किया है कि मैं बिना किसी माया प्रयोग के तुम्हें यह शहर दिखाने में भी समर्थ नहीं हूँ। तुम्हारे संगीत को (जो इस तरह मेरे स्वप्नों के अधीन हो गया है), केवल मेरी भीतरी दुनिया में ही जीवित नहीं रहना चाहिये, उसे नये बाह्योन्मुखी संबंधों से ही जुड़ जाना चाहिये। तुम कहोगी कि मैं अविनीत हूँ। वह मैं हूँ, मेरी सखि, और शायद कोई भी महान आवश्यकता सदा विनीत नहीं होती।

— रेनर मेरिया रिल्के

रस-सिद्धांत

कुरुक्षेत्र में भारतीय हिंदी परिषद के अधिवेशन में 'रससिद्धांत' पर विचार-विमर्श हो रहा था। डा. नगेंद्र की आलोचना करते हुए एक भारी-भरकम शरीरवाले आलोचक ने कहा—'ऐसा लगता है, नयी कविता एक हरिण-शावक है और नगेंद्रजी रससिद्धांत का जाल बिछाकर उसे फांसने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

तभी डा. नगेंद्र बोल पड़े—'अरे फांसना होगा तो किसी गैंडे को फांसेंगे, हरिण-शावक को क्या?' (फब्ती आलोचक के शरीर पर थी।) बीच में और कोई बोला—'उसके लिए खाई खोदनी होगी, डाक्टर साहब!' सभा भवन हास्य और ठहाकों से गूंज उठा।

— डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'



ओंगी जन-जातियों का एक संयुक्त परिवार

मानव, मानव की खोज में :

अण्डमान-निकोबार

राजेन्द्रपाल शर्मा

द्वीप-पुंज के आदिवासी

एक ओर तो मानव इस २० वीं सदी के दौर में चांद पर जा पहुंचा है; परंतु दूसरी ओर आज भी विश्व के कुछ भयानक जंगलों में निवास कर रही आदिम जनजातियां इस आधुनिक सभ्यता से बहुत दूर हैं।

अण्डमान-निकोबार द्वीप-पुंज के आदिवासी वर्तमान विश्व के महान आश्चर्य हैं। अण्डमान-निकोबार द्वीप-समूह बंगाल की खाड़ी में ७ से १४ उत्तरी अक्षांश

तथा ९२ से ९४ देशान्तर के मध्य फैला हुआ है। कलकत्ता से इसकी १२५३ किलोमीटर तथा मद्रास से १११ किलोमीटर है। पूरे द्वीप-समूह का क्षेत्रफल ८ हजार ३२७ वर्गमील है।

एक ओर यह द्वीप-समूह प्राकृतिक सौंदर्य का अपार भण्डार है तो दूसरी ओर इसके जंगल विश्व के अजाना घर हैं। इसी में मानव सभ्यता की तलाश में भटक रही आदिम जनजातियां

नवनीत

१००

निवास कर रही हैं। इन आदिम जन-जातियों में से मुख्यतः ओंगी, अण्डमानी जारवा, सेंटिनली और शोम्पेन जाति के आदिवासी हैं।

शोम्पेन जाति के आदिवासी के अति-रिक्त बाकी सभी जाति के आदिवासी नीग्रो जाति से काफी मिलते-जुलते हैं।

प्राचीन समय से यह जनश्रुति चली आ रही थी कि अण्डमान द्वीप पुंज में सोने की खान है। यहां तक कि निकोलो, कोटि आदि प्राचीन इटालियन लोगों ने इसे सोने का देश कहा था। इसी के परिणामस्वरूप डॉ. हेन्मर नामक रूसी भूगर्भ शास्त्री ने सोने की खोज में अपने प्राण मंवा दिये थे; जब वे उत्तरी अण्ड-

मान द्वीप-समूह के किसी टापू पर मिट्टी की जांच कर रहे थे तब अण्डमानी आदिवासियों ने उनकी हत्या कर दी!

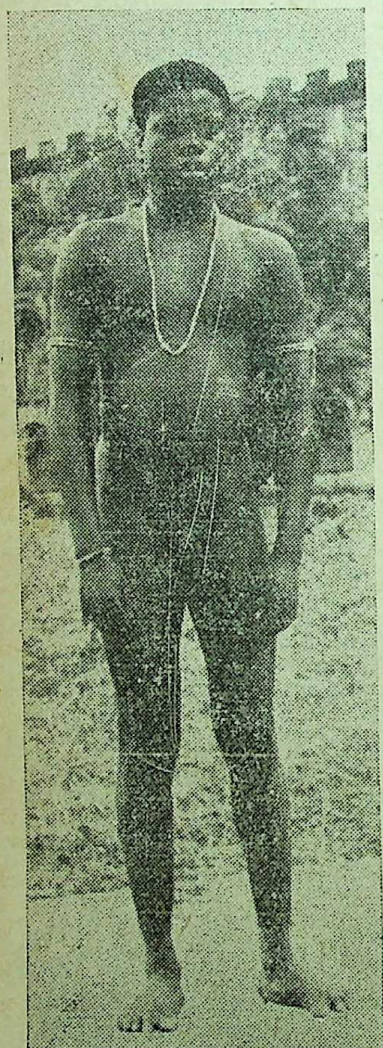
यह आज भी एक जटिल प्रश्न बना हुआ है कि इस द्वीपपुंज के आदिवासी कब, कहां और कैसे यहां आये; इस विषय में कई विद्वानों व मानव-शास्त्रियों के बीच विभेद बना हुआ है। कुछ लोगों का यह विचार है कि अरब के किसी गुलाम व्यापारी का कोई जहाज अफ्रीकी गुलामों को सुदूर पूर्व में ले जाते समय यहां आस-पास कहीं डूब गया था। उस जहाज से बच निकले बहुत से अफ्रीकी गुलामों ने इस वनाच्छादित द्वीप पर शरण ली थी; जिनके वंशज आज अण्डमान के

अण्डमानी जन-जातियों का एक मानव शिकार करते हुए



आदिवासी हैं।

इस संबंध में मानव-शास्त्री श्री ए. आर. ब्राउन का मत काफी हद तक जारवा आदिम जन-जाति का एक मानव जिसे पकड़कर शेल्युलर जेल में लाया गया था।



प्रामाणिक माना जाता है। श्री ब्राउन के अनुसार इस द्वीप-समूह के आदिवासी वर्मा के अराकान प्रदेश से आये हुए लोगों के वंशज हैं। किसी समय में इस द्वीप-समूह का संबंध अराकान प्रदेश के साथ रहा होगा। श्री ब्राउन का मत है कि वर्मा के समुद्र तट से जिस किसी तरह से ही इस तट को पहुंचे हुए लोगों की अगली पीढ़ि ही यहां की मूल निवासी हैं। अगर ऐसा न भी हो तो उत्तरी-पूर्वी हवाओं की गति में बोंगे व बेटों पर बहकर वे इस प्रदेश में पहुंच गये होंगे। श्री ऐक्से के अनुसार आदिवासियों के पूर्वज यहाँ कम से कम दो टोलियों में आये होंगे।

इस द्वीप-समूह के आदिवासियों का जीवन घुमकड़ जीवन है; परंतु कभी कभी वे इधर-उधर झोपड़ियां बना कर डेरा वहीं पर डालते हैं। वे लोग एक स्थान पर चार-पांच दिन से अधिक रुक सकते। इनकी टोली में तीस से लेकर तीस सौ तक आदिवासी होते हैं। इनका जीवन कौटुंबिक नहीं; सामूहिक है। ये आदिवासी अपने बालों को पूर्ण निकाल देने का विशेष ध्यान रखते हैं। इनके मुँडन के औजार समुद्र तट आ लगने वाले शीशे के टुकड़े या सी के खोल इत्यादि होते हैं।

विवाह के लिए कोई शोर-गुल उत्सव की रस्म इन लोगों में नहीं है और न ही कोई धार्मिक अनुष्ठान पूजा-पाठ है। आपस में जीवन-सा

चुन लिया जाता है। तलाक जैसी प्रथा प्रायः इनमें नहीं है। बड़े भाई की मृत्यु के उपरांत छोटे भाई द्वारा विधवा भाभी से विवाह की प्रथा इनमें प्रचलित है।

दुष्ट आत्माओं के साथ-साथ स्वप्नों में इन लोगों का बड़ा विश्वास है। अधिकतर समय ये लोग स्वप्न का निर्देश मानकर चलते हैं। अपने अंध-विश्वास के आधार पर जारवा नामक जाति जब कभी बंदियों की हत्या करती थी, तब मृत देह के वक्ष पर भारी पत्थर रख देती थी।

इन लोगों का मुख्य आहार सुअर, मछली, सांप, जंगली कंद-मूल, फल शहद आदि हैं। इनके हथियारों में धनुष-बाण ही मुख्य हथियार माना जाता है।

ये आदिवासी बड़े सरल और विश्वास पात्र होते हैं; आधुनिक संसार की जटिलताओं से दूर इनके जीवन में अब भी बड़ी मात्रा में सादगी पायी जाती है। प्रायः आधी रात को आग जलाकर उसके इर्द-गिर्द स्त्री और पुरुष अलग-अलग दल बनाकर नाचते हैं। मच्छरों व कीड़े-मकोड़ों से अपनी सुरक्षा के लिए ये सारे शरीर पर लाल-पीली मिट्टी पोत लिया करते हैं।

आदिवासियों के सामूहिक जीवन में पारस्परिक प्रेम के मार्ग पर कभी कोई आघात नहीं पड़ता। वहां कोई धर्म, मत या आचार-विधान नहीं है, यही उन्हें एकता की डोरी में बांधे हुए है। ईश्वर



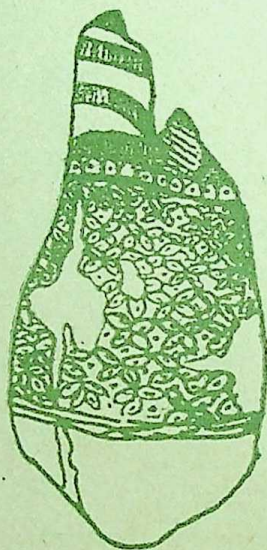
निकोबारी आदिवासी समाज की एक तरुणी आधुनिक वेशभूषा में।

या आत्मा के ज्ञान के बारे में वे एकदम अनभिज्ञ हैं; उनकी इच्छाएं बस प्रतिदिन की आवश्यकता तक ही सीमित होती हैं।

इलाज के लिए वे कुछ हरे पत्तों का उपयोग करते हैं, पर किसी क्रम या शास्त्र-विधि के अनुसार नहीं—लाल मिट्टी को कछुए की चर्वी में रगड़कर अपने शरीर पर लगाते हैं, ताकि कोई संक्रामक रोग उन्हें न लग जाये।

आंगी आदिवासी: ये आदिवासी अपने खाद्य पदार्थों को कच्चा या आग

में भुन कर खाते हैं। ओंगी जाति के आदिवासी प्रायः कद के नाटे तथा गठीले शरीर के होते हैं। इनका शरीर सुडौल एवं मांसपेशियों से उभरा हुआ और आंखों की पुतलियां गहरी बादामी होती हैं। यहां तक कि इन लोगों की आंखों की पुतली का सफेद भाग भी बादामी रंग का होता है। छोटे-छोटे इनके घुंघराले बाल सिर पर चिपके-से रहते हैं। शरीर पर रोम प्रायः नहीं के बराबर ही होते हैं, दाढ़ी-मूंछें भी प्रायः नहीं निकलतीं। जब इनको अपनी नग्नता का बोध होता है; तब पुरुष कौपीन पहन लेता है। इस कौपीन को 'कोय-लानों' कहते हैं। औरतें केवड़े की सूखी पत्तियों से एक प्रकार का गुच्छा-सा तैयार कर लेती हैं; तथा उसे एक डोरी में बांधकर कमर में सामने की ओर डाल लेती हैं। इस गुच्छे को 'नाकिजाले' कहते हैं। स्त्रियां अपने वक्षस्थल को नहीं ढंकतीं।



इन ओंगियों में स्वागत करने का एक विचित्र रिवाज प्रचलित है। जब कोई नवागंतुक अतिथि या बिछुड़ा हुआ साथी मिलता है; तब वे उसे पकड़कर गोद में बिठा लेते हैं तथा सिर से सिर मिला कर कुछ समय तक चुप्पी साधे बैठे रहते हैं। अगर वह काफी लंबी अवधि के बाद

मिलता है तो दूर तक आलिंगन-पाश में चुपचाप जकड़े रहते हैं।

ओंगी समाज में विवाह के नाम पर कोई उत्सव नहीं मनाया जाता। लड़की लड़का परिचित होकर आपस में मिल जाते हैं, और दोनों ही एक-दूसरे पर मिट्टी का लेप कर देते हैं। इसके साथ ही विवाह सम्पूर्ण हो जाता है।

इनके समाज में कोई जमीन्दार व राजा मुखिया नहीं होता; सब अपने मन के मालिक होते हैं। ओंगियों का अपना कोई धर्म नहीं है, फिर अग्निकुंड के चारों ओर बैठकर, गप्पें हांकता तथा नाच-गाकर रात बिताती ही इनके जीवन का एक मात्र ध्येय माना जाता है।

जारवा आदिवासियों अण्डमान द्वीपसमूह के

निवासियों में जारवा आदिम जनजातों को सबसे अधिक भयंकर माना जाता है। जारवा जाति के आदिवासियों का रंग बहुत कुछ अफ्रीका के कांगो वन के आदिवासियों से मिलता-जुलता है। जारवा की छोटी-छोटी आंखें बहुत पैनी होती हैं; जो हमेशा सतर्क रहा करती हैं। घने जंगल के लता-गुल्मों के बीच से भागने में उन्हें कोई विशेष कठिनाई (शेषांश पृष्ठ १०६ पर)

चीनी कविता



प्रेम-कहानी

मध्य-युग

□ शिह चिंग

तुम सिर्फ एक लड़के थे
 और कपड़े लेकर रेशम देते थे;
 लेकिन तुम रेशम बेचने नहीं आये थे
 तुम मेरे पास प्रणय-निवेदन करने आये थे।
 मैं तुम्हारे साथ गयी, हमने सी नदी पार की
 मैं तुम्हारे साथ तुएन-किथू तक गयी,
 मैंने तुमसे कहा था, 'मैं उन लड़कियों में हूँ, जो,
 जो कुछ करना है, उसे कल के लिए नहीं टालती।'
 पर, तुम्हारे पास, मेरे लिए कोई विवाह-प्रस्ताव न था।
 मैंने तुमसे प्रार्थना की, 'मुझसे नाराज मत हो, और
 शरत् के आगमन की प्रतीक्षा करो।'
 जीर्ण दीवार पर चढ़कर
 मैंने तुम्हें पहाड़ी की ओट में जाते देखा
 और जब तुम दिखाई देने बंद हो गये
 तो, मेरे आँसू बेरोक बहने लगे।
 लेकिन, जब मैंने तुम्हें वापस आते देखा,
 तो मैं हंसी-मजाक करने लगी।
 तुमने कहा, 'मैंने पूछ लिया है
 कर्पूर से, नरकुल के डण्डों से,
 और उनकी राय प्रतिकूल नहीं थी।'
 तो, मैंने कहा, 'अपनी गाड़ी लेकर आ जाओ,
 और मैं, जो कुछ मेरे पास है, उसे लेकर
 तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ।'

अनु : हरि

(पृष्ठ १०४ का शेषांश)

नहीं होती, क्योंकि जंगलों में रहनेवालों का शारीरिक गठन भी जंगली जीवन के अनुकूल होता है। जारवा आदिवासी प्रायः नग्न रहा करते हैं।

सेंटिनली आदिवासी : दक्षिणी अण्डमान के नार्थ सेंटिनल नामक टापू पर कुछ खूंखार आदिवासी रहते हैं। जिनसे आज तक कोई किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित नहीं कर सका। नार्थ सेंटिनल के आदिवासी भी जारवाओं की उपजाति से संबंधित हैं परंतु किसी कारण उस टापू पर चले गये और अपने वंशवालों से अलग हो गये। ऐसा विचार किया जाता है कि इनके भी रीति-रिवाज आचार-अनुष्ठान आदि जारवा जैसे ही होंगे। इस जंगली जाति की शिल्प-कला के नमूने में बेंट की एक टोकरी मिली है; जिसकी सूक्ष्म कारीगरी देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह के प्रशासन की ओर से इन लोगों से मित्रतापूर्वक सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास ज़ोरों से जारी है।

अण्डमानी आदिवासी : अण्डमानी जाति के आदिवासियों का निवासस्थान स्टेट आईलैण्ड नामक द्वीप है। अण्डमानियों की विभिन्न उपजातियां हैं जिसमें अक्का-जोरो, अक्का बुडयो, अक्का वो अकाचेरे, पुचुकवार आदि। सन् १८८५ में जब अण्डमान में कैदी बस्ती बसायी गयी थी तब अनुमानतः अण्डमानियों की संख्या

पांच हजार के आस-पास थी, परंतु इस समय केवल ३० की संख्या के आसपास रह गयी है।

अण्डमानियों को सभ्य बना लेने का प्रयास लगभग आरंभ काल से ही हुआ था। रेवरेंड कारबिन नामक पादरी के प्रयत्न से सन् १८६३ में एक 'अण्डमान होम' की नींव पड़ी। सम्पर्क में आने हुए अण्डमानियों को कैदियों के साथ मिलकर काम करने की प्रेरणा दी गयी थी। इसका उन पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और वे भयंकर संक्रामक बीमारियों के चंगुल में फंस गये। धीरे-धीरे जनसंख्या घटने लगी। सन् १९४२-४३ के अशांतिकाल में ये अंग्रेजों की गुप्तचर करने लगे। अंग्रेजों ने उसके बदले सिंगरेट और शराब पर्याप्त मात्रा में उन्हें भेंट की। इन चीजों के कारण लोगों का स्वास्थ्य बहुत गिर गया इनका रहन-सहन खान-पान सभी औंगियों से मिलता-जुलता है।

'लोको' नामक अण्डमानी ही अण्डमानियों का राजा है, जिसके अधीन लोग हैं।

शौम्पेन आदिवासी : शौम्पेन जाति के आदिवासी ग्रेट-निकोबार द्वीप के घने जंगलों में निवास कर रहे हैं। इन आदिवासियों से सम्पर्क सर्वप्रथम सन् १८३७ ई. में डेनिश मिशनरी फास्टर रोसन ने स्थापित किया। इस जाति के आदिवासी दो मुख्य

में विभक्त हैं; इनमें छोटा दल समुद्री तट पर तथा दूसरा दल घने जंगलों के भीतर निवास करता है। ये लोग उपद्वी होते हैं। आज से ७० वर्ष पूर्व इन दोनों दलों के बीच घमासान युद्ध हुआ था, दोनों ही एक दूसरे के शत्रु माने जाते हैं। जो समुद्र तट पर रहते हैं; वे 'मोआस शौम्पेन' कहा जाता है।

शौम्पेन दस-दस, बारह-बारह की छोटी-

छोटी टोलियों में बंटे रहते हैं, हर टोली का कोई बड़ा-बूढ़ा उस टोली का मुखिया होता है।

शौम्पेन जाति के आदिवासियों का रंग-रूप, रहन-सहन व आकृति बहुत कुछ मलाया व सुमात्रा द्वीप के आदिवासियों से मिलती-जुलती है।

—बी/३ पाप्युलर अपार्टमेंट्स,
चार बंगलारोड, अंधेरी (पश्चिम), बंबई-५८



चलता-फिरता पुस्तकालय

मानव मस्तिष्क में ऐसे तत्त्व वर्तमान हैं जो बीस अरब पृष्ठों से भी अधिक ज्ञान भंडार को सुरक्षित रखने में समर्थ हैं। यदि इन तत्त्वों को जगाया जाये तो मानव त्रिकालज्ञ हो सकता है। ज्ञान को आत्मसात् करने वाले विलक्षण व्यक्तियों में लार्ड मैकाले का नाम भुलाया नहीं जा सकता। वे १९ वीं सदी के विख्यात ब्रिटिश इतिहास लेखक थे। उन्होंने इंग्लैंड का इतिहास आठ जिल्दों में लिखा था। पुस्तक के लिखते समय उन्होंने दूसरी पुस्तकों को उठाकर भी नहीं देखा। घटनाओं की तिथियां, उनसे संबंधित व्यक्तियों के नाम उन्हें कंठस्थ थे। इतना ही नहीं, स्थानों के परिचय, अन्य विषय और उनके जीवन में जितने भी व्यक्ति संपर्क में आ चुके थे—उन सबके नाम एक-एक कर याद थे। उनके इस विलक्षण स्मरण और ज्ञान के कारण लोग उन्हें चलता-फिरता पुस्तकालय कहते थे।

ग्रीक भाषा के प्रकाण्ड विद्वान पोर्सन अपनी स्मरण-शक्ति के लिए विख्यात हो चुके हैं। उन्होंने ग्रीक भाषा की सभी पुस्तकें और शेक्सपियर के नाटक मौखिक रूप से याद कर लिये थे। ब्रिटिश संग्रहालय के सहायक अधीक्षक रिचर्ड गार्नेट बारह वर्ष तक पुस्तक-विभाग के अध्यक्ष थे। संग्रहालय में पुस्तकों की हजारों आलमारियां और उनमें करोड़ों की संख्या में मुद्रित पुस्तकें थीं। वे अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे पुस्तक के ठिकाने के साथ-साथ उसके भीतर की जानकारी भी बता देते थे। जर्मनी के कार्लविट नामक बालक ने नौ वर्ष की स्वल्पायु में माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण करके लिपजिग विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। दस वर्ष की आयु में उसने स्नातकोत्तर परीक्षा पास कर पी. एच.डी की डिग्री भी प्राप्त कर ली। सोलह वर्ष की आयु में उससे भी ऊंची एल. एल. डी. की उपाधि अर्जित कर बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हुआ।

—श्याम बिहारी आलोक, पटना

द्विरागमन

□ सुधा

स्टेशन पर आने के बाद से वह लगातार सिगरेट फूँके जा रहा था। और समय होता तो मैं उसे टोकती। लेकिन अभी मैं किस मुंह से कुछ कहती! मुझे वह इस कदर पहुंच के परे दीख रहा था कि साधारण बातें भी कहने-सुनने की स्थिति नहीं बन पा रही थी। मैं कहना चाहती थी कि मेरी अनुपस्थिति में ठीक से खाना-पीना; ऐसा नहीं कि दोपहर तक खाली पेट चाय ही पीते रह जाओ। पता नहीं इस पर वह क्या बोल उठे! भय और अन-आश्वस्त ने मुझे फिर से रुला दिया।

उसने सिगरेट की राख, झाड़ते हुए मुझे ताका और लंबा कश लेकर धुआं उड़ाने लगा। उसकी इस अतिशय असम्पृक्तता से मेरे भीतर पता नहीं क्या खौल उठा कि रोना स्वतः रुक गया। तो यह उदासीनता की आड़ में नाराजगी दिखा रहा है। दिखाये, मैं क्या करूं! मेरी जगह वह होता तो क्या करता!

तभी गाड़ी आ गयी थी। अच्छी-सी जगह देखकर उसने मुझे बैठा दिया था। खुद उस जगह खड़ा हो गया जहां से खिड़की पर टिकी मेरी बांह छू सके। भीड़ के बीच, मेरे खूब निकट अपना

मुंह लाकर उसने अपने सदा सम रखे वाली आवाज में कहा था—'सुनो तुमको... अगर वहां से उल्टे पांव भी आ पड़े तो यह न सोचना कि मेरी नज़र तुम्हारी इज्जत तनिक भी कम होगी तुम्हारे लिए मेरी बांहें सदा स्वागत खुली रहेंगी।'—उसने बड़ी कोमलता मेरी हथेली को सहला दिया था।

उस क्षण मैं किस प्रकार अपने को रोक सकी थी, क्यों नहीं मैं चलने-तैयार गाड़ी से कूद पड़ी थी—यह सोच अब भी आश्चर्य होता है।

०००

वह हमारे विवाह का तीसरा महीना था। अभी तक हम न तो मिलन के उमंग और न सामाजिक अस्वीकृति के दर्द से उबर पाये थे कि मुझे अपने भाई जेल जाने की खबर मिली। भाई एक दोस्त जब से मुझे, संवाद दे रहा था—मे रो ही रही थी।

सदगृहस्थ की तरह हाथ में साधु का झोला थामे जब यह बाहर से बने तो मुझे रोती देख हतप्रभ हो गया—'क्या हुआ?'

मैंने आंसुओं के बीच ही सुती बात दुहरा दी थी।

‘तो इसमें रोने का क्या

है ! तुम्हारे पिताजी भी

तो जेल जाते रहे हैं। वह

कोई फांसी तो चढ़ने नहीं

जा रहा है। राजनैतिक

कैदी है—आराम से रहेगा।’

मुझे उसका यह खूब

कतई अच्छा न लगा था।

मैंने तबे स्वर में उससे

पूछा था कि अगर अभी

उसका भाई जेल गया होता तो क्या वह

ऐसी ही बात करता !

मेरा यह प्रश्न उसे गंभीर बना देने के

लिए काफी था। उसने मुझसे पूछा था—

‘तो तुम करना क्या चाहती हो?’

‘जाकर देखना चाहती हूं। जहर

हुई तो जमानत के लिए कोशिश करनी

होगी।’

उसने एक बार भी विरोध न किया था,

यह भी नहीं कहा था कि इतनी जल्दी

मैं उस घर में जाने को कैसे तैयार हो

गयी थी, जहां कभी न मुंह दिखाने का

आदेश देकर सबने अपमानित किया था।

वह अगर टोकता तो मैं खून के रिश्ते

की प्रबलता पर कुछ कह पाती। लेकिन

उसने तो मेरे लिए टिकट ला दिया था,

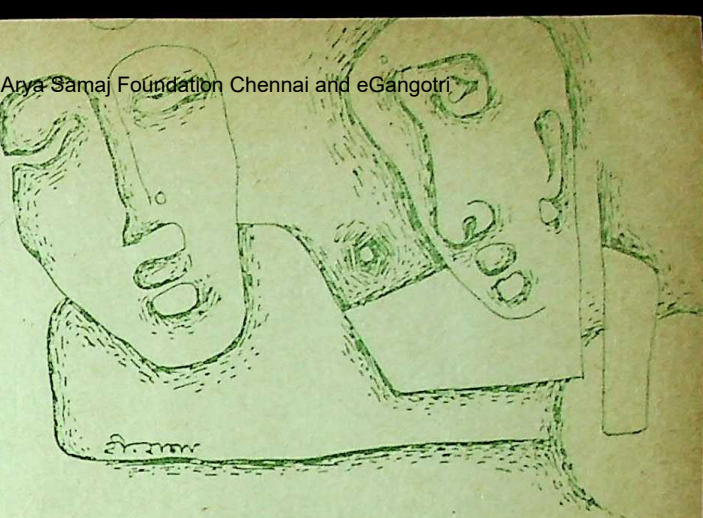
खुद मुझे स्टेशन छोड़ने गया था और

मेरे पर्स में पैसे डाल दिये थे, जिन्हें गिनने

का साहस भी मुझे नहीं हुआ।

क्योंकि जिस घर से खाली हाथ आकर

मैंने उसका हाथ थाम लिया था, उसी



घर में लौटकर जाते समय उसके पैसे खर्च करना सचमुच मुझे अनर्गल लग रहा था।

लेकिन भाई के प्रति मेरा सहज स्नेह!

इस पर मुझे उस समय शंका न थी।

इस अवसर को मेरा मन उस घर में पुनः

प्रतिष्ठा प्राप्ति का एक साधन बनाकर

मुझे ही छल रहा था—यह बात तो बाद

में समझ में आयी।

०००

पिता के घर में मैं न तो सबसे बड़ी

थी, न सबसे छोटी। बीच में होकर भी

अनायास सभी निर्णयात्मक स्थितियों

में मेरी उपस्थिति अनिवार्य हो गयी थी।

पिता की रुग्णता और मां की गृहस्थी

के सुरसा सदृश विस्तार को समेटने के

लिए जिस क्षिप्रता की आवश्यकता थी,

उसके लिए घर के बाहर के लोग मुझे

सराहते थे। घर में यह नितांत अचर्चित

विषय था। बल्कि मुझे दिया गया कोई

श्रेय कहीं मेरी बहन को चुभ न जाये

इसलिए मुझे श्रेयहीन रखने की सलाह दी जा रही थी। पिता ने मेरी बर्ती जाती थी। मेरी बड़ी बहन ने पिता से रोग और मां से मोह विरासत में पाया था। जिस तरह उनका शरीर बात-बात पर मुरझाता-कुम्हलाता रहता था, उसी अनुपात में चाही हुई चीजों का वियोग उनको विकल भी करता था। संभवतः माता-पिता ने उनकी फरमाइशों और मनःअर्जित एलर्जियों से घबड़ाकर उन्हें ब्याह दिया था। उनके पति एक प्रसिद्ध परिवार के अप्रसिद्ध पुत्र थे। हमारी बहन का आधा रोग तो पति की दयनीय मुखमुद्रा ने हर लिया और उनकी आवश्यकताएं, पूर्ति के अभाव में, स्वयं ही कम हो गयी थीं।

मैं नहीं जानती कि अपने विवाह के संबंध में लिये गये मेरे निर्णय के पीछे कौन बात प्रेरक थी—बहन के लिए पिता द्वारा चुने गये पात्र की अपात्रता, अपने सखा के प्रति दुर्दमनीय आकर्षण, अपने घर के प्रति ऊब — कुछ भी रहा हो, मैं माता-पिता को सूचना दिये बिना विवाह न करना चाहती थी। लेकिन मेरे इस प्रस्ताव पर घर में कुहराम-सा मच गया था। मैं अब भी नहीं समझ पाती कि ऐसा क्यों हुआ था? अभावों की ओर बढ़ते हुए घर की एक बेटी का विवाह बिना किसी हंगामे के हो जाने पर माता-पिता खुश ही होंगे— मैंने ऐसा सोचा था। लेकिन अंतर्जातीयता की बात लेकर मां आसमान सिर पर उठा रही थी।

नवनीत

पिता ने मेरी बर्ती जाती थी। मेरी बड़ी बहन ने पिता से रोग और मां से मोह विरासत में पाया था। जिस तरह उनका शरीर बात-बात पर मुरझाता-कुम्हलाता रहता था, उसी अनुपात में चाही हुई चीजों का वियोग उनको विकल भी करता था। संभवतः माता-पिता ने उनकी फरमाइशों और मनःअर्जित एलर्जियों से घबड़ाकर उन्हें ब्याह दिया था। उनके पति एक प्रसिद्ध परिवार के अप्रसिद्ध पुत्र थे। हमारी बहन का आधा रोग तो पति की दयनीय मुखमुद्रा ने हर लिया और उनकी आवश्यकताएं, पूर्ति के अभाव में, स्वयं ही कम हो गयी थीं।

तभी मैंने उन हाथों में अपना कांपा हाथ थमा दिया था, जिनके सहायक भरोसा, बिना किसी प्रमाण के, गुरु से मुझे हो गया था। पिता के घर से एक सूती साड़ी पहनकर आयी थी वही मेरा दान-दहेज, नेग-जोग सबकुछ था। उस दिन ऐसा लगा था कि सा संसार उन्हीं बांहों में सिमट आया जिसके सहारे मैंने घर छोड़ने का दुस्साहस किया था।

लेकिन आज मैंने यह क्या किया भले ही वह मुझे गाड़ी में बिठा गया। भले ही मेरी प्रतीक्षा कर रहा हो— मेरी दुर्बलता पर क्या वह क्षुब्ध न होगा! उसे मेरे मन की यह चंचल कथा मुझसे दूर नहीं ले गयी होगी!

०००

रास्ते-भर मैं संतस्त होती रही थी। भाई की समस्या मन में आ पाती नहीं। अवकाश ही कहाँ था। इसी मनःसि में मैं वहाँ पहुंच भी गयी थी। मेरा भाई बाहर ही खड़ा था, मुझे देखकर चौंका। सभी घर पर ही थे। पिताजी आंगन चौकी पर अधलेटे अखबार पढ़ रहे। एक-एक कर लोग मुझे देखकर चौंके, लेकिन किसी ने हर्ष-विषाद नहीं किया। जिस भाई के लिए

होकर मैं आयी थी—वह भी घर आ चुका था। घर में पहले की तरह ही सब कुछ यथावत था। माँ के पांव छुए, तो उसने पूछा—‘कैसे आयीं?’

संभवतः वे यह अपेक्षा करती रही हों कि मैं घर छोड़ने की भूल पर पछताकर लौट आयी हूँ। लेकिन मेरे उस उत्तर ने उन्हें यकायक उदासीन बना दिया—‘नन्हें के जेल जाने की खबर से चिंता हुई थी।’

‘ओ!’—कहकर वे हाथ धोने नल पर चली गयीं।

मैं खड़ी ही रहूँ या बैठ जाऊँ, यह सोचने के पहले ही, वे बातें मेरा आंचल



खींचने लगीं, जो कल शाम स्टेशन पर हुई थीं। मैंने पिता को प्रणाम किया और बाहर हो गयी।

तीन माह पूर्व पितृगृह से जाते समय जो द्विविधा मेरे मन में थी उसे अच्छी तरह धो-पोंछ देने के लिए यह आज की विदाई कितनी जरूरी थी।

—बिहार शिक्षा सेवा, देवघर—८१४११२



मशहूर लेखक फिफ्लिंग एक बार किताबें खरीदने गये। एक किताब को पसंद कर उन्होंने दूकानदार से पूछा—‘यह किताब कैसी है?’

दूकानदार : ‘मैंने इसे पढ़ा नहीं है।’

फिफ्लिंग (थोड़ा झुंझलाकर) : ‘किसी किताब को खरीदते वक्त आप पढ़कर देख क्यों नहीं लेते कि वह बिक सकेगी या नहीं?’

दूकानदार इस अजीब सवाल को सुनकर शांति से बोला, ‘जनाब ! मान लीजिये आप दवाइयां बेचते हैं, तो क्या बेचने से पहले उन्हें चखकर देख लिया करते हैं?’

फिफ्लिंग आंखें फाड़े दूकानदार को देखते रह गये।

०००

सुप्रसिद्ध साहित्यकार पाण्डेय बेचन शर्मा ‘उग्र’ राजस्थान के एक वरिष्ठ राज-पुरुष के यहां भोजन पर आमंत्रित थे। भोजन के बाद टेबल पर बीकानेर का बड़ा पापड़ आया, तो उग्रजी बोले—‘नहीं भाई, मैं तृप्त हूँ, अब और जगह नहीं है।’

राजपुरुष बोले, ‘यह पापड़ देखने में ही बड़ा है आप खाइये।’

बहुत देर खाने पर भी पापड़ जब खत्म नहीं हुआ, तो उग्रजी बोले, ‘यह पापड़ वर्तमान राजसत्ता जैसा है, आकार बड़ा और तत्त्व कुछ भी नहीं!’ राजपुरुष के चेहरे पर एक रंग आ रहा था, एक जा रहा था

—डा. गोपाल प्रसाद ‘वंशी’



साहित्य-चिन्तन

नयी कविता का आत्म-संघर्ष

पुष्पारानी नग

‘... अपने जीवन में वीरेन्द्रकुमार जैन ने भी अनेक अभावों को झेला है, यातनाओं को जिया है। उनका कथन है कि : ‘मेरे जीवन के पराकाष्ठा के सर्वतोमुखी संघर्ष ने ही मुझे लाचार किया, कि मैं अपनी समस्या का समाधान राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक संघर्ष की सतही सुलझन से परे खोजूं।’ इसी जहां मुक्तिबोध की समस्या समाप्त होती है, वहां से वीरेन्द्र की यथार्थ समस्या आरम्भ होती है।...’

नयी कविता का जन्म जिन परिस्थितियों में हुआ, उनके कारण उसे अपनी जमीन निर्माण करने के लिए बहुत आत्म-संघर्ष झेलना पड़ा। एक ओर छायावाद की समाप्ति के साथ हिंदी साहित्य में आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता विलुप्त होने लगी, दूसरी ओर प्रगतिवाद उसे कोई सर्वमान्य पृष्ठभूमि प्रदान न कर सका। वैसे भी प्रगतिवाद स्वयं कोई स्थायी भावभूमि लेकर अवतरित नहीं हुआ था, अतः समय के साथ उसका विकास हुआ और परिस्थितियां बदलने के साथ वह स्वयं ही समाप्त हो गया। प्रगतिवाद की कोरी वाविलासी भौतिकता नयी कविता को कोई विशिष्ट भावभूमि न प्रदान कर सकी। इस प्रकार

नवनीत

नयी कविता को उत्तराधिकार में न के अध्यात्मवादी दर्शन प्राप्त हुआ न के विशिष्ट स्थायी भौतिकतावादी का प्राप्त हुए। बस कुछ नये कवि एकत्र हुए और उन्होंने अपनी-अपनी व्याख्या प्रस्तुत करके अपनी काव्यदृष्टि के विश्वास अर्जित करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार सर्वथा नवीन व असामान्य परिस्थितियों में नयी कविता अपने स्वयं राह बनाती, जमीन निर्माण करती व अनेक प्रकार के संघर्ष झेला आगे बढ़ने लगी।

नयी कविता के विकास काल में भाषा की ऐतिहासिक स्थिति यह थी कि गरीब वर्ग अधिकाधिक गरीब होता जा रहा था और धनी वर्ग अधिकाधिक धनी।

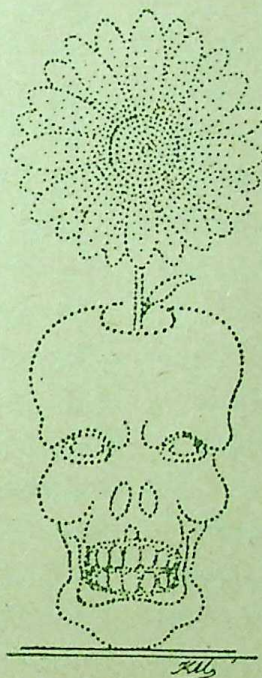
११२

के बीच का अंतराल अधिकाधिक भयानक होता जा रहा था। सामाजिक, आर्थिक विषमता से उत्पन्न विद्रूप ऐसा छा गया था कि तत्कालीन मानसिकता दिशाहारा होकर भटक रही थी। उच्च वर्गों के प्रति एक प्रकार का अविश्वास, घृणा, तिरस्कार, विक्षोभ निम्न वर्ग की मानसिकता का स्थायी भाव बनता जा रहा था। उसके सामने पारम्परिक मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं रह गया था, किंतु नवीन मूल्य गढ़ने के लिए भी उसके सामने कोई स्पष्ट मनोभूमि नहीं थी। इन विघटनकारी परिस्थितियों से उत्पन्न आक्रोश और तनाव ही उसकी भावदशा का मूल स्वर बन गया। ऐसी परिस्थितियों में नये कवियों को, विशेषकर उनको जोकि इसी वर्ग से आये थे, अभिव्यक्ति के लिए यही भावदशाएं अपने अनुकूल लगीं और वे तत्कालीन जीवन के इसी दोहरेपन के संघर्ष को अपने काव्य में अभिव्यक्ति देने लगे।

नयी कविता की ऐसी ही झांकी हमें मुक्तिबोध में मिलती है। बल्कि, कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध उन गिनती के कवियों में से हैं जिन्होंने नयी कविता

को जीवन की कविता के रूप में प्रस्तुत करके काव्य साहित्य को गतानुगतिकता के घेरे से बाहर लाकर जीवंतता प्रदान की। मुक्तिबोध ने जो कुछ देखा-परखा, जिया-भोगा, वह उनके व्यक्तित्व का अंश होकर भी जनसाधारण की आवाज़ बन गया। जीवन में मुक्तिबोध को स्वयं

अनेक प्रकार के तनावों, संघर्षों से गुज़रना पड़ा। उन्हें आजीविका से लेकर अभिव्यक्ति तक के लिए संघर्ष झेलना पड़ा। पग-पग पर साथ चलती हुई विफलताएं, अभावग्रस्तता से उत्पन्न वेदनाएं उनके जीवन की मुख्य थाती बन गयी थीं। स्वाभाविक ही था कि उन्होंने 'मानव सत्य' का जो अर्थ ग्रहण किया वह उच्च वर्ग के कवियों के 'मानव सत्य' से कतई भिन्न था। उन्होंने जीवन के यथार्थ को ही अपनी अभिव्यक्ति का चरम मूल्य माना।



चित्र : के. एम. शेणै

मुक्तिबोध का काव्य वैयक्तिक अनुभवों की तिव्र भूमिका पर जन्म लेकर जनसामान्य का काव्य बन जाता है। युग का ज्वलंत यथार्थ, मुक्त वास्तविकता और औद्योगिक सभ्यता का दोहरापन ही मुक्तिबोध के काव्य का मूल स्वर है। यथार्थ के वैषम्यों की अनेकानेक ग्रंथियां

उनके काव्य में खुलती-प्रकट होती हैं।
उनकी अंतश्चेतना युग की यथार्थगामी
संवेदनाओं से अनुप्राणित है। उनके
काव्य में निरंतर आग पर चलनेवाले
जैसी मनोदशा का चित्रण है—

अधूरी और सतही जिदगी के
गर्म रास्तों पर

अचानक सनसनी भौंचक—

कि पैरों के तलों को काट खाती

कौन-सी यह आग ?

जिससे नच रहा हूँ,

खड़ा भी हो नहीं सकता

भयानक हाथ अंधा दौर !!

.....

इसी से पैर तलुओं में

नुकीला एक कीला तेज

गहरा गड़ गया औ धंस गया इतना

कि ऊपर प्राण-भीतर घुसा आया,

लगी है झनझनाती आग,

लाखों बरों ने अचानक काट खाया है।

मुक्तिबोध का काव्य मौजूदा व्यवस्था
की आसुरी, भक्षक शक्तियों के आत-
तायित्व को उजागर करता है। सभ्यता
के दोहरेपन के प्रति उनका व्यंग्य कितना
बोधक है—

शांत हो, धीर धरो,

और, उल्टे पैर ही निकल जाओ यहां से

जमाना खराब है, हवा बदमस्त है;

बात साफ़-साफ़ है

सब यहां त्रस्त है

दरों में भयानक चोरों की गश्त है।

मुक्तिबोध के काव्य में पीड़ा का तत्त्व
इतना गहरा है कि वह सर्वसामान्य के
यथार्थ का स्वर बन जाता है। उसका
मुक्त यथार्थ भी उनकी वैयक्तिकता के
अहं से ग्रस्त न होकर जनसाधारण के
दर्द की यथार्थ भूमिका बन जाता है—

काठ के पैर

ठूठ-सा तन

गांठ-सा कठिन गोल चेहरा

लंबी उदास लकड़ी

डाल-मे हाथ क्षीण

वह हाथ फैल लंबायमान,

दूरस्थ हथेली पर अजीब

घोंसला

पेड़ में एक मानवी रूप

मानवी रूप में एक ठूठ

आधुनिक सभ्यता में नये-नये आदर्शों
की दुहाई देने वाले सुविधाभोगी व्यक्तियों
के प्रति उनका आक्रोश कभी दर्द की टीस
बनकर उड़ता है, कभी प्रहार करता
दिखाई देता है—

आधुनिक सभ्यता के वन में

व्यक्तित्व वृक्ष सुविधावादी।

कोमल कोमल टहनियां भर गयीं
अनुभव-मर्मों की

यह निरूपयोग के फलस्वरूप हो गया।

अंतर्जीवन के मूल्यवान जो संवेदन

उनका विवेक संगत प्रयोग हो सका नहीं

कल्याणमयी कृष्णाएं फेंकी गयीं

रास्ते पर कचरे-जैसी,

में चीन्ह रही उनको।

जो गहन अग्नि के अविच्छिन्न समज Foundation, Chennai and eGangotri
हैं प्राणवान,
मैं बीन रही उनको ।
प्रहार की तीव्रता देखिये—
आसमानी शमशीरों, बिजलियों
मेरी इन भुजाओं में बन जाओ
ब्रह्म शक्ति !
पुच्छल ताराओं
टूट पड़ो बरसो
कुहरे के रंग वाले वानरों के चेहरे
विकृत, असभ्य और भ्रष्ट हैं...
प्रहार करो उन पर
कर डालो संहार !!

शून्य की सत्ता का मखौल करते हुए
कहते हैं—
मात्र अस्तित्व का इतना बड़ा अस्तित्व
ऐसे घुप्प अंधेरे का इतना तेज उजाला
लोग-बाग
अनाकार ब्रह्म के सीमाहीन शून्य के
बुलबुले में यात्रा करते हुए गोल-गोल
गोल-गोल
खोजते हैं जाने क्या ?
अछोर सिफर के अंधेरे में बिला बत्ती
सफर भी खूब है !
वीरेंद्रकुमार जैन मुक्तिबोध के सम-

मुक्तिबोध के लिए मनुष्य की भूख-
पास के दर्द जीवन की स्थूल भौतिक
आवश्यकताएं ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण
हैं। उनका कहना है कि आज के भौतिकता-
वादी युग में कोई अध्यात्मदर्शन हमारे
पास नहीं है, किंतु किसी न किसी रूप
में हमारे पास व्यापक जीवन-दर्शन अवश्य
है, जिसमें अगर कुछ भी न हो तब भी वे
बुनियादी बातें तो हों, जिन्हें जनसाधारण
अपने हृदय में अनुभव करते हैं—जैसे
अन्याय का प्रतिकार, मानव-साम्य की
स्थापना के प्रयत्न, विकृत स्वार्थवाद
और भ्रष्टाचार का विरोध, सामाजिक
संबंधों में प्रेम और त्याग की भावना,
भारतीय जनमत के प्रति अनुराग आदि ।
अरूप, शून्य और आत्मा की बातें उनके
विचार से आज की इस अभावग्रस्त
मानवता के लिए बिल्कुल बेमानी हैं ।

१९८१

११५

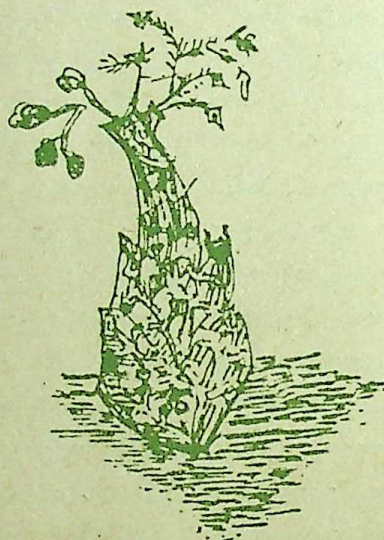
हिंदी डाइजेस्ट

प्रासंगिक नहीं। वह निरी वस्तुगत नहीं बल्कि आत्मगत है, चेतनागत है। मुक्ति-बोध कहते हैं कि आज की इस अभावग्रस्त मानवता के आगे आत्म-चेतना की वात करना कोरी खामख्याली है, इतिहास से मुंह मोड़ना है, वर्तमान से पलायन है। किंतु वीरेंद्र जैन का दृढ़ अभिमत है कि नयी कविता का अगला कदम अंतर्मुखी होगा, अस्तित्वमूलक होगा, अंतश्चैतनिक होगा।

मुक्तिबोध ने मार्क्सीय जीवन दर्शन के ठोस वास्तववाद और भौतिकवाद के फ्रेम में कसकर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया है, किन्तु वीरेंद्र कुमार जैन का मत है कि आज की भटकती हुई मानव चेतना का उद्धार केवल मार्क्सीय जीवन दर्शन से नहीं हो सकता,

बल्कि उसे श्रीअरविद की अतिमानसी चेतना से भी कुछ ग्रहण करना होगा। उनके मत से यदि चेतना का वस्तुगत भौतिक पक्ष मार्क्स की आवाज़ में व्यक्त हुआ था तो उसका अनुभूतिशील आत्मिक पक्ष अरविद के भीतर से बोला था। वे एक ही महासत्ता के दो ज्वलंत और सक्रिया पहलू हैं और भावी मानवता का मुक्ति मार्ग इन दोनों के संयोजन से होकर

नवनीत

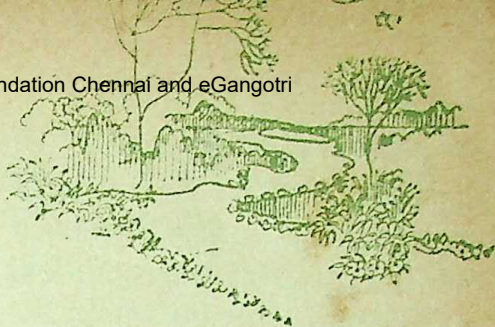


गया है। वीरेंद्रकुमार जैन का कथन है—'चूंकि अपने मूल उत्स में नयी कविता आत्मिक और भौतिक के संयोजन की 'कास्मिक' चेतना की बेटी है, इसी से वह आत्मिक के भौतिकीकरण और भौतिक के आत्मीकरण, सूक्ष्म के स्थूलीकरण और स्थूल के सूक्ष्मीकरण की प्रक्रिया से अनुप्राणित है।' नूतन काव्य के शाश्वत सूर्योदयी घोषणा-पत्र में उन्होंने लिखा

था कि 'पतन-पराजय, कुंठा, आत्म-पीड़ना और जीवित आत्मघात के असूझ अंधकार में आत्म-हारा और दिशाहारा होकर भटक रही आज की अनाथ काव्य चेतना के सन्मुख हम अल्प से महत में ले जाने वाली, अंधकार से प्रकाश में ले जाने वाली मृत्यु से अमृत में ले जाने वाली और सीमा में असीम को

उतार लाने वाली—आगामी कल की अनिवार्य सनातन सूर्योदयी नूतन काव्य-धारा का द्वार मुक्त करते हैं।'

अपने जीवन में वीरेंद्रकुमार जैन ने भी अनेक अभावों को झेला, वेदनाओं को जिया। उनका कथन है कि 'मेरे जीवन के पराकाष्ठा के सर्वतोमुखी संघर्ष ने ही मुझे लाचार किया, कि मैं अपनी समस्या का समाधान सतही राजनीतिक, आर्थिक



सामाजिक संघर्ष की सुलझने से पर
खोजें।' इसी से जहां मुक्तिबोध की
समस्या समाप्त होती है, वहां से उनकी
यथार्थ समस्या का आरंभ होता है।

वीरेंद्र जैन के काव्य में सृष्टि का निर्माण
संचालन करने वाली मूल सत्ता के प्रति
गहन आस्था का भाव है। इसी कारण
धर्म और अध्यात्म उनके काव्य का अवि-
भाज्य अंग बन गये हैं। नयी कविता
के अन्य कवि जहां जीवन की भौतिक
समस्याओं से जूझने के उपक्रम में लगे
रहे, वीरेंद्रकुमार जैन ने युग काव्य साहित्य
में नवीन उद्भावनाओं द्वारा वर्तमान के
सीमान्तों को अतिक्रान्त करके अंतश्चेतना
के नवीनतम शिखरों को अनावरित करने
का प्रयत्न किया है; मानव की परा-
भौतिक, परामानसिक चेतना के नये
आयामों को खोजने का प्रयत्न किया है।
किंतु उन्होंने मनुष्य की स्थूल भौतिक
चेतना की उपेक्षा नहीं की है। उनके
मत से मनुष्य की स्थूल भौतिक सत्ता
भी अपनी पूर्ण अस्मिता के साथ अत्यंत
महत्त्वपूर्ण है और यदि ईश्वर कहीं है तो
उसे अपनी संपूर्णता के साथ मानव की
रक्त-मांस की देह में ही अवतरित होना
होगा -

मुझे बहुत प्यारी है मानव के रक्त-
मांस की

चैत्र के आमों-सी खट-मीठी यह गंध;

मुझे बहुत प्यारी हैं मानव के तन,
मन प्राण, आत्मा की

भूखें, प्यासें और पुकारें अंध !

यदि कहीं है कोई सच्चिदानंद पूर्णकाम
भगवान

यदि कहीं है कोई पूर्ण शक्ति सौंदर्य,
दर्शन, ज्ञान, आनंद औ' प्रकाश का
अमृत-धाम,

यदि कहीं है कोई निरंजन, निराकार,
परब्रह्म, आप्तकाम

तो उसे मानव के तन, मन प्राण-
आत्मा की

भूखों, प्यासों, पुकारों के उत्तर में

मानव के रक्त में होना होगा मूर्तिवान।

मुक्तिबोध के काव्य में भोगा हुआ

यथार्थ अपनी संपूर्ण वितृष्णा के साथ ही
मुखरित हुआ है किंतु वीरेंद्रकुमार जैन के
काव्य में कम्पना की रोमानियत है। उनका
यथार्थ भी रोमानियत के आवरण में
अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने संसार में
जब आंख खोली, उन्हें प्यार का अभाव
स्वागत करता मिला। वचन में ही
माता-पिता के स्नेह से वंचित होना
पड़ा। आगे उन्हें ऐसा कोई साथी न
मिला जो उनके इस अभाव को पाट देता।
जीवन में पग-पग पर मिलने वाली
निराशा और उपेक्षा ने उनकी चेतना को

अंतर्मुखी बना दिया। उन्हें सदा किसी ऐसे चिर संगी की तलाश बनी रही जो उनके अभाव की गहराइयों को पाट देता। यह अभाव उनके अवचेतन में नारी-सम्मोहन होकर समा गया। किंतु नारी के प्रति उनका यह आकर्षण देह की सीमा में नहीं बंध पाता। उनकी चेतना देही और देहातीत के दोनों छोरों को एक साथ पकड़ कर रखना चाहती है—

.... कि जब से तुम आ गयी हो

तो कहीं कुछ बीतता नहीं है,

रोतता ही नहीं है।

कौन कहता है कि ऐंद्रिक सुख

सीमित है, भंगुर है,

तुम्हें पाकर

हर रूप, रस, परस, गंध, गान में

जाने कैसी अनंतता, अगाधता आ गयी है

कि हर भोग के शेष में

अनायास किसी नूतन भोग का

कल्प काम कमल खिल उठता है

मुक्तिबोध के समान वीरेंद्रकुमार जैन

भी वर्तमान सभ्यता के दोहरेपन के विद्रूप

से त्रस्त हैं। मनुष्य की आत्मघाती सभ्यता

का विष उसी को डंस रहा है। अति

विकसित वैज्ञानिकता के आवरण में जीने

वाला मानव जीवन की सच्चाइयों से

विमुख हो गया है—

तुम एयरकण्डिशन में बैठते हो,

तुम तांबे, जसत, रांगे,

सोने, चांदी की सांस लेते हो

तुम तुल्य से ही बीमार हो पैदायशी;

क्योंकि तुम जवाहरातों के कुशलों की पैदायश हो

या कि फिर टेस्टो-इसटीरोन की पैदायश हो !

टेस्ट-ट्यूब बेबी तुम्हारी सभ्यता की आखिरी सौगात है

तुम्हारा दिल मांस का भी नहीं

सिर्फ प्लास्टिक का है

उसमें खून नहीं, शैम्पेन बहती है

चिकन ब्लड इससे से उसमें गर्म रहती है।

तुम्हारी भावनाएं नायलों का स्पंज है

तुम्हारा प्यार प्रमाद की खिड़कियों का खिलवाड़ है।

ऐसे दोहरेपन के वातावरण में जो व्यक्ति जीवन को सच्चाई के साथ जीना चाहता है उसे कांटों पर चलना ही पड़ता है—

बेशक कविता को जीना यहां,

असंभव की आसमानी शराब पीकर

हर कुत्सित, कुरूप संभव की

नंगी शूल शैया पर बे-करवट सोना है

अपने हत्यारों की कमलों में लिपटी हुई

दुधारी कटार को जानते-बूझते भी

हृदय पर हार की तरह धारण किए

रहना है।

आज की सभ्यता अति भौतिकता के

दारुण चक्र में फंसकर स्वयं अपने ही

विनाश की लीला रच रही है। वीरेंद्र

जैन का कहना है कि मनुष्य को इस संकट

की त्रासदी से उबारने के लिए उसे अपनी

निजी सत्ता के नये आयामों की खोज करनी होगी। ऐंद्रिक अनुभूतियों के सीमांतों को वेधकर अतींद्रिय चेतना के नये स्तर तलाशने होंगे। युगीन संघर्षों और अस्तित्वगत समस्याओं का हल अपने अंतर्जग की गहराइयों में खोजना होगा। जीवन और जगत के बीच में से ही अनंतता के आयामों को ग्रहण करना होगा —

आज का मनुष्य आज की रात सो कर कल अचानक किसी नये ही

सार की रोशन सुबह में जाग उठे ताकि 'भगवान की सृष्टि' का उद्घोषी आज का मनुष्य,

एक सुबह अचानक जागकर पाये, कि वह स्वयं भगवान है; कि जीवन की हर संभावना

उसकी सत्ता के आधीन है।

कि अपनी हर इच्छा को वह मारता नहीं

हर पल उसकी संपूर्ति को

पूर्ण संवादिता में

मन चाहा जीता है।

अंत में मुक्तिबोध और वीरेंद्रकुमार जैन दोनों नयी कविता के दो छोर माने जा सकते हैं। मुक्तिबोध ने जनसाधारण के जीवन के यथार्थ को अपना कथ्य बनाया है तो वीरेंद्रकुमार जैन रोमानी कल्पना के कवि होने पर भी यथार्थ से असंपृक्त नहीं हैं। उनके यथार्थ में केवल जीवन की स्थूल वास्तविकताएं ही नहीं, बल्कि मानव की बाह्यिक ग्रंथियों की समस्याएं भी अनुस्यूत हैं। मुक्तिबोध ने युग के भीषण

१९८१

वर्षमयों की तिकतता को स्वयं भोगा और जिया था इस कारण जीवन के कटु अनुभवों ने उनके स्वर को आक्रामक बना दिया है। वे निरंतर अपने काव्य में आतताइयों पर प्रहार करते दिखाई देते हैं। उनके काव्य में कहीं तिलमिलाहट पैदा करने वाला व्यंग्य है तो कहीं पीड़ित मानव की अंतरात्मा से उठता हुआ हाहाकार का धुंआ है। मुक्तिबोध संपूर्ण जीवन में संघर्ष करते रहे और अंत में बीमारी से संघर्ष करते-करते कम उम्र में ही संसार से विदा हो गये।

मुक्तिबोध केवल भुक्त यथार्थ को ही अपने काव्य का मूल्य मानते हैं। उन्होंने वस्तु, तत्त्व के दूसरे पक्ष को एकदम अनावश्यक व अप्रासंगिक मानकर उपेक्षित छोड़ दिया है। उनके काव्य में सर्वत्र एक ही प्रकार की भावशीलता व वातावरण व्याप्त दिखाई देता है, किंतु वीरेंद्रकुमार जैन की भावाभिव्यक्ति में अनेक प्रकार के भाव घुले-मिले हैं। उनके मनःचेतन में सांसारिक असफलताओं की वेदना है तो आत्म की गहराइयों में प्राप्त होने वाली तृप्ति का बोध भी है; वर्तमान जीवन के दोहरापन के प्रति वितृष्णा है तो यथार्थ की स्वीकृति का बोध भी है। वीरेंद्रकुमार जैन ने यथार्थ की नयी सारणि की सृष्टि की है। उन्होंने दृष्ट यथार्थ के अतिरिक्त उसकी अनंत से संभावनाओं को भी उद्घाटित करने का

(शेष पृष्ठ १२४ पर)

हिंदी कहानी

मैया

□ अमिता श्रीवास्तव

अठारह वर्ष की वय में वे विधवा हो गयीं। तब गांव में दो चीजों की चर्चा बहुत जोर से चली थी, एक तो उनके परम रूप और दूसरे चरम दुर्भाग्य की। अनेक बार मिट्टी की मोटी दीवारों वाले घर में वो रो-रो कर घूमा करतीं। अपनी विपुल सौंदर्यवाली देह के लिए बुढ़ापे की कामना किया करतीं। जिस तरह लोनी लगी दीवार परत-दर-परत झरती है, कुछ उसी तरह उनकी उम्र, उनकी सुंदरता झरती रही। व्रत-उपवास, पूजा-पाठ और घर के सारे काम के बाद भी समय नहीं कटता। जितना ही कातर मन प्रभु को पुकारतीं, उतनी ही आवेगमयी शून्यता उनके मन में छटपटाती।

जेठ की दो पत्नियों की मृत्यु के बाद, तीसरी उनसे वयस में छोटी आयीं जिनके बच्चों को पालकर वे अपना दुख भूलने लगीं। दो लड़कियां और एक लड़का। बच्चे कभी जान न सके वे उनकी अपनी मां नहीं हैं। कम वयस की जिठानी सदा बीमार रहती, जेठ बाहर नौकरी पर रहते, बच्चे उनको मैया कहते। लड़का बुढ़ाई-लाल तो उनके जीवनप्राण थे। कभी वे उनके लिए मिट्टी के खिलौने बनातीं, कभी कपड़े का घोड़ा, कभी कहानियां

सुनातीं। मां के पास न सोकर वे सदा मैया के पास सोते। यहां तक कि जीवन में मैया के स्नेह को छोड़कर मां-बाप का स्नेह क्या होता है, वे जान न सके।

अपनी रोटी खुद सेंकते, युवावस्था में परिवार, पत्नी से दूर रहते, नैतिकता का कठोर पालन करते शिवरतन बाबू अपनी सारी सरसता चूल्हा फूंकने में फूंक चुके थे। पिता को देखकर बुढ़ाईला डर जाते। कभी पिता के बुलाने पर उनकी पढ़ाई-लिखाई के बारे में खूब प्रश्न पूछने पर वे सदा मनाते कि यह अजनबी उनके घर से चला जाये।

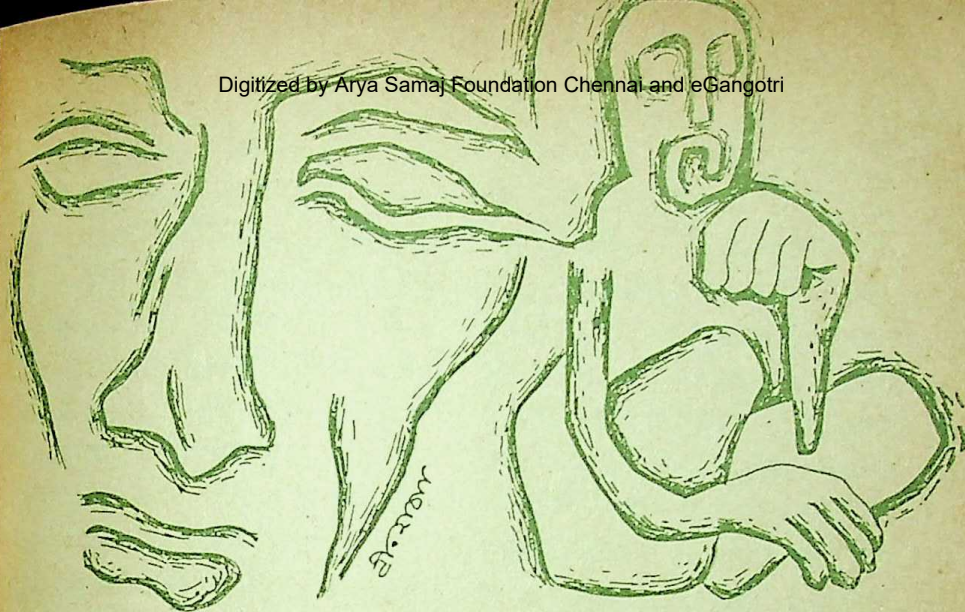
लड़कियों की शादी हो गयी। बुढ़ाई गांव की पढ़ाई पूरी कर जब बाहर पढ़ने चले गये, तो उनकी जिदगी फिर सूनी हो गयी। जिठानी शायद बहुत लंबी उम्र और बीमारी लेकर पैदा हुई थीं। सदा खाट पर लेटी, सूनी-सूनी आंखों से ताका करतीं। वे जिठानी के बाल बनातीं, सिंदूर लगातीं। पैर रंगतीं और खुद घर की धुली सफेद मोटिया साड़ी में अपना उज्ज्वल शरीर लाटकर जमीन पर ही कहीं सो जातीं।

जब बुढ़ाई गांव लौटते, उनके जीवन में थोड़ी चहल-पहल आती। उनके पीछे

नवनील

१२०

फरवरी १९८१



सदा
जीवन
-बाप
नके।
वस्था
कता
बाबू
ने में
लेला
पर
रुखे
यह
बुटाई
पढ़ने
सूनी
उम्र
सदा
ताका
गती,
खुद
मी में
मीत
जीवन
पीछे
रवरी

भूमते 'मैया' पुकारते, वे फिर छोटा बच्चा बन जाते। बचपन के खिलौने निकालकर देखते। कभी मैया को देश-विदेश की बातें बताते, जिसको उनकी तीव्र बुद्धि शीघ्र ग्रहण कर लेती। जब लौटते तरह-तरह की मिठाइयों और पकवानों से डोलची भर जाती। मां के पांव छूकर मैया के आंचल में मुंह छुपा रो पड़ते, तब गांववाले बड़ी मुश्किल से खींचकर उनको इक्के पर बिठा स्टेशन भेजते।

नौकरी लगने पर पहली तनखा से वे मैया के लिए कीमती सिल्क की साड़ी लाये, जिसके किनारे पर जरी का काम था। उनकी आंखें भर आयीं—न किस्मत थी, न उम्र। बुटाई के बहुत आग्रह करने पर, एक बार पहनकर, मन ही मन बहू के लिए रख दी। इस बार उन्हें लगा—बुटाई कुछ बदल गये हैं। परेशान से

लगे, मानो कुछ कहना चाहते हों।

इधर शिवरतन बाबू रिटायर्ड होकर गांव आ गये। बेटे का ब्याह ठीक करने लगे। खत गया; बुटाई आये। पिता ने विवाह की चर्चा छेड़ दी। बुटाई कुछ देर गुम-सुम से रहे, फिर बोले—

'बाबूजी, मैं अपने दोस्त की बहन से विवाह करना चाहता हूं, लड़की सजातीय है, सुशील है, नौकरी करती है और मुझे पसंद है।'

जीवन-भर नैतिकता का बोझ उठाये समाज के कठोर नियमों का पालन करते शिवरतन बाबू सकते में आ गये। नयी पीढ़ी कितनी आसानी से अपना रास्ता चुन लेती है! किसी की आज्ञा और इच्छा का मूल्य नहीं। बातों का अपव्यय वे नहीं करते थे, कठोर होकर बोले—

'जब तुम निर्णय कर चुके हो तो मेरी

इच्छा-अनिच्छा का क्या ? जाओ, अपना व्याह कर लेना, हमसे मतलब नहीं ।'

इस उत्तर की आशा बुटाई को नहीं थी । जीवन में पिता की तटस्थता अक्सर खटकी थी । मैया का असीम स्नेह उनके जीवन के लिए बहुत कुछ जरूर था, पर संतुलित नहीं । उनके मित्रों के पास अक्सर उनके पिता, पुत्र के भावी जीवन से चिंतित होकर लंबे बोझिल खत भेजा करते, जो उनको बहुत अखरते । अपने पिता को कभी भी पथ-प्रदर्शक के रूप में वे जान नहीं सके थे । पितृत्व की इस उपेक्षा से आहत होकर भी उन्होंने अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया था अपने हाथों ।

मैया बीते युग की नारी थी । चाहकर भी दो दूरियों को पाट न सकीं । जेठ से बात करना गुनाह था, और बुटाई को एकतरफा समझाने में असफल रहीं । जोर-शोर से यदि बहस होती, एक-दूसरे पर विचार आरोपित किये जाते तो शायद वर्षों का जंग लगा रिश्ता घिस-मंजकर चमक उठता । पर अचानक ही संबंधों की डोर टूट गयी । गांव में जब बुटाई के विवाह का निमंत्रण उनके मित्र के पास आया, तो गुपचुप बातें हुईं । शिवरतन बाबू हंसकर इतना ही कह सके —

‘बेटे के व्याह में हमें तो निमंत्रण भी न मिला ।’

जिठानी-देवरानी रोकर चुप हो गयीं । समय गुजरता गया । बुटाई, एक पुत्र

नवनीत

के पिता हो गये थे, गांव नहीं लौटे । अचानक खत आया—बुटाई बहुत बीमार हैं, तीन माह से अस्पताल में भर्ती हैं । खूनी पेचिश असाध्य हो जाने पर डाक्टर अंतड़ी में कैंसर का संदेह कर रहे हैं ।

शिवरतन बाबू खेत बेचकर, रुपया-पैसा लेकर पुत्र के इलाज के लिए चल दिये । पर देर हो चुकी थी । वे उधर गये इधर बुटाई के बहनोई होल्डाल में लाश बांधकर बड़ी परेशानियों के बाद गांव पहुंचे । लाश से बदबू उठने लगी थी । इतना खराब हालत थी कि पिता के लिए पुत्र का शव रखा नहीं जा सका । दाह-संस्कार हो गया । पुत्र का अंतिम मुख पिता नहीं देख सके ।

पुत्र को लेकर दुनिया में अकेली गयी उषा, बुटाई की पत्नी । मैया बार-बार आग्रहपूर्वक बुलाया, पर सास-ससुर के पास गांव जाने का भरोसा नहीं हुआ । पुत्र का भविष्य अपने बल पर गढ़ने का उसका दृढ़ निश्चय रहा । मन में बहुत क्रोध था ससुराल के प्रति जिनके कारण उसका सामाजिक जीवन से विवाह न हो सका । कोर्ट मैरिज करने अपने मायकेवालों की नजरों में गयी थी । लोग उसको देखकर फुसफुसाते रहते । पोता होने पर भी सास-ससुर आकर उदारतापूर्वक अपना न सके, उनके प्रति अपने संबंधों का विचार उसे अपमानित करता । पुत्र की मृत्यु के बाद रुपया लेकर देर से पहुंचे

१२२

वाले ससुर को भी उसने क्षमा नहीं किया,
खूब खरी-खोटी सुनायीं।

०००

धीरे-धीरे सात साल गुजर गये।
मुन्ना आठ साल का हो गया। एक दिन
पूछ बैठा—

‘मां! हमारा कोई घर नहीं है? हम
छुट्टी में कहीं नहीं जाते?’

मुनकर उषा की आंखें भर आयीं।
उसी दिन मैया का खत आया—वे बहुत
बीमार हैं, एक बार बुटाई के लड़के का
मुंह देख लें, फिर सुख से मर सकेंगी।
उषा ने गांव जाने का निश्चय कर लिया।

रिक्शा जब सूने द्वार पर पहुंचा उसे
खूब जोर से रो गड़ने की इच्छा हो आयी।
उसे लगा दुनिया में उसका भी कोई
घर है, प्रियजन हैं। अंतर में यह बात सत्य
हो उठी कि एक ठौर है जहां वह अपना
सिर छुपा सकती है।

दो माह की छुट्टी देखते-देखते गुजरने
लगी। मुन्ना के आने से पुराना बूढ़ा घर
और बूढ़े लोग जैसे कुछ दिन के लिए
मौत का इंतजार करना भूल गये। अंधेरे-
टूटे खंडहर जैसे मन में आलोक की एक
टिमटिमाती लौ-सी ज्वाला। लौटने का
दिन पास आ गया। उषा का मन कचोट
उठता। सिर झुकाये बूढ़े ससुर को वह
दोषी नहीं पा सकी। अकेलापन कितना
भयावह होता है! उसके जीवन के भोगे
हुए सात साल! बाबूजी इस अकेलेपन
को पत्नी रहते भी भोगने को विवश

रहे। कभी किसी ने उससे कोई शिकायत
नहीं की।

कभी उसे लगता—मैया ने बीमारी का
बहाना बनाकर उसे बुलाया है। वह
इतनी बीमार नहीं, जितना उन्होंने लिखा
था। तब क्या बच्चे को मोहपाश में
बांधने का यह पड्यंत्र है? आज के
युग की इस प्रतिद्वंद्विता में गांव में रहकर
बच्चे को वह उचित शिक्षा और चुस्त
व्यक्तित्व कभी नहीं दे पायेगी। वेदना
से मानो प्राण छटपटा उठते, क्रोध का
आवेग उसे मूर्च्छित-सा कर देता और
दूसरे ही क्षण इस आकर्षण-विकर्षण
को चीरकर दिवंगत पति की शांत मूर्ति
झांक उठती जिन्होंने अपना भविष्य इस
गांव में रहकर बिना किसी कान्वेंट के
बोझिल पढ़ाई और व्यर्थ अनुशासन के
गढ़ा था। तब भी वह बिखरे साहस को
बटोर अपने दृढ़ निश्चय पर अटल रहती।

रिक्शा दरवाजे पर आ गया। आंमुओं
को रोकते तीन प्राणी स्निग्ध आशीर्वाद
भरी आंखों से उसकी ओर चुपचाप देखते
रहे। अचानक मुन्ना भागकर मैया के
आंचल में छिप गया—

‘मैं नहीं जाऊंगा, मुझे वहां अच्छा
नहीं लगता, वहां मैया नहीं हैं, बाबूजी
नहीं हैं, अम्मा नहीं हैं।’

मैया की सहमी दृष्टि वहू से जा मिली।

‘जाओ, बेटे, अगली छुट्टी में आना ...
खूब मन से पढ़ना....।’ बाकी शब्द अस्पष्ट
हो उठे।



उषा अपने को रोक न सकी। हाथ का बैग फेंककर रोते-रोते मैया की गोद में गिर पड़ी—

‘आप लोग एक बार भी नहीं कह रहे- रुक जाओ, बहू ! अकेले संसार में भटकने को न जाओ। क्या मैं आपकी कुछ नहीं लगती ? पहले भी पराया-सा ठुकरा दिया, अकेले दुख झेलती रही, पर अब मुझसे नहीं सहा जाता। मैं किसके भरोसे इतनी सूनी जिंदगी काटूं ... मेरा आपके सिवा कौन है.... ?’

निष्ठुर गहन मन की गहराइयों को चीर दुख का झरना झर पड़ा।

रोती हुई उषा के साथ फूट-फूटकर रोते तीन प्राणी बेसुध से हो गये !

बड़ी देर तक कोई किसी को चुप न करा सका।

—बो-३४, सेक्टर-१९

राउरकेला-७६९००५

(पृष्ठ ११९ का शेषांश)

प्रयत्न किया है। उनके मत से मानव सत्ता अनंत आयामी है। उसकी चेतना के जाने कितने पक्ष अभी अछूते पड़े हैं, जिनको उद्घाटित करने के लिए युग और अस्तित्व की यथार्थगामी यातना के ज्वालामुखियों को बेधकर आंतरिक सत्ता में गहरे पैठना होगा।

वीरेंद्रकुमार जैन का काव्य आधुनिक काव्य साहित्य की अनन्यतम उपलब्धि

है। उनका काव्य चेतना के नये क्षितिजों को स्पर्श करता दिखाई देता है। सन् ६२ में उन्होंने नूतन कविता के भविष्य के विषय में जो उद्घोषणा की थी, वह आज सत्य होती दिखाई दे रही है। आज की कविता भौतिक जड़वाद स्थूल आवरणों से ऊपर उठकर आध्यात्मिकता के नये स्रोतों को स्पर्श करती दिखाई दे रही है। —अंबर कुआं चौहान

मानिक बाग रोड, इंदौर, म.प्र.

हाथ
गोद

रहे-
टकने
नहीं
दिया,
मुझसे
इतनी
सिवा

में को

कूटकर

चुप न
र-१९
९००५

प्रतिजो
। सत
प्रप्य के
। वह
। है
के
याहि
कर
। तैराह
म. प्र

तपस्तेज के उत्तुंग-श्रृंग, निज-वैभवंत के माल-मेरु

भगवान गोमटेश्वर बाहुबली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रस्तोता-लेखक : श्रीदर्शन

भरत-बाहुबली धर्मयुद्ध-प्रसंग



कर्मयुग के आदिकाल में चौदहवें मनु नाभिराय के पुत्र आदिनाथ ऋषभदेव ने असि (शस्त्र), मसि (लेखन), कृषि और वाणिज्य कर्मों की शिक्षा देकर मनु की संतान मनुज जाति को सभ्यता और संस्कारों की प्रथम सीढ़ी पर चरण धरना सिखाया। उन्हीं ऋषभदेव के दो प्रसिद्ध पुत्र थे—ज्येष्ठ भरत चक्रवर्ती, ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार जिनके नाम से आर्यावर्त को भारतवर्ष नाम मिला। और दूसरे कामदेव बाहुबली, जो रूप, ऐश्वर्य और स्वाभिमान की जीवंत मूर्ति थे।

जैनपुराणों के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के ये दोनों पुत्र तद्भव मोक्षगामो थे, इसलिए अन्य संसारियों से विशिष्ट थे, किन्तु वैभव, राज्यसत्ता और स्वाभिमान को टक्कर ने इन दोनों भाइयों को युद्धस्थल में आमने-सामने खड़ा कर दिया।

भ्रातृप्रेम दोनों के हृदय में उच्च आसन पर विराजमान था, किन्तु विजित और विजेता की अदम्य भावना ने उचित-अनुचित सब कुछ भुला दिया।

शक्तिशाली भरत ने अपने से हीनबल समझे जाने वाले बाहुबली से द्वन्द्वयुद्ध में मात खायी और फिर घटित हुआ ऐसा अपूर्व आश्चर्य, जब राज्यसत्ता को बचाने के लिए भाई से संघर्ष करने वाले उस महारथी बाहुबली ने संसार के सारे ऐश्वर्यों को जीतने की तरह त्याग दिया और मुनि बनकर अप्रतिहत वैभव विकसाने वाले मोक्षमार्ग की ओर चरण बढ़ाये! किन्तु एक शल्य फिर भी चुभ रहा था बाहुबली के मन में। यह वह शल्य था, जिसने उनके तपस्यारत महान व्यक्तित्व को फिर भी बन्धनों में जकड़ रखा।

प्रस्तुत प्रस्तुति उन दोनों महान भ्राताओं का उदात्त चरित्र संक्षेप में प्रस्तुत कर रही है, और गोमटेश्वर बाहुबली की वह मार्मिक कथा प्रकट कर रही है जिसकी मिसाल विश्व के इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है।

इसी मास भगवान गोमटेश्वर बाहुबली की श्रवण बेलगोल में स्थापित विश्व प्रसिद्ध प्रतिमा की स्थापना को एक हजार वर्ष पूरे हो रहे हैं। इस शुभ अवसर पर इस महान कथा का समयोचित महत्त्व है।



पूर्व-पृष्ठ पर मुद्रित श्री गोमटेश्वर का छायाचित्र श्री मिश्रीलाल जैन एडवोकेट, मुना, के सौजन्य से

जब भरत चक्रवर्ती के चक्रवर्त्तन ने समस्त

भी हुआ ।

विश्व-विजय के पश्चात् उनके ही छोटे भाई कामदेव बाहुवली की राजधानी पोदनपुर के बाहर आकर आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया तो भरत, उनकी सेना, मंत्रिगणों और परिजनों को अपार आश्चर्य हुआ । सम्राट भरत ने जब अपने प्रमुख मंत्री से इसका कारण पूछा तो उन्होंने प्रणाम करके निवेदन किया—‘महाराज, आपके अनुज कामदेव बाहुवली, उनके अधीनस्थ राजनेता और आपके अन्य बन्धु नरेश जब तक आपको चक्रवर्ती स्वीकार करके नमस्कार करने नहीं आयेंगे, यह चक्र आगे नहीं बढ़ेगा तथा दिग्विजय अपूर्ण रहने से आपका चक्रवर्तीत्व भी पूर्णता को प्राप्त नहीं होगा ।’

तब सेना को वहीं पड़ाव डालने का आदेश देकर भरत ने अपने अन्य बन्धु नरेशों के साथ बाहुवली को सन्देश भिजवाया कि आप सब मुझसे आकर मिलिये और मेरी अधीनता स्वीकार कीजिये ।

भरत का यह आदेशात्मक सन्देश भरत के अन्य नरेश भ्राताओं को भी अपमानजनक प्रतीत हुआ । उन्होंने अपने ही भाई की अधीनता स्वीकार करने के बदले राज्य के साथ-साथ संसार का त्याग करके मुनिधर्म स्वीकार किया और परमपिता ऋषभदेव की शरण में मोक्षमार्ग की ओर चल पड़े । अपने सहोदरों के इस तरह चले जाने पर चक्रवर्ती भरत को दुःख तो हुआ ही उनकी वीरता और स्वाभिमान पर गर्व

अब एकमात्र पोदनपुर के राजा कामदेव बाहुवली ही ऐसे थे, जिनसे अपनी अधीनता स्वीकार कराना भरत के लिए अति आवश्यक था । भरत ने अपने मित्रवत् मंत्री दक्षिणांक को बाहुवली के पास भेजने का निश्चय किया और उनसे अनुरोध किया कि वे स्वाभिमानी बाहुवली को युक्तिपूर्वक समझाकर उनके सामने ले आयें । अपने छोटे भाई को सामने पाकर शेष कार्य भरत के लिए सरल हो जायेगा ।

पुष्पधन्वा कामदेव का विरुद्ध, सौंदर्य और वैभव धारण करने वाले बाहुवली की राजधानी पोदनपुर का वातावरण मकर-ध्वज कामदेव की सारी ही श्रृंगारिक भावनाओं को वहां के नर-नारियों में प्रस्फुटित कर रहा था । कहीं कर्पूरचूर्ण का ढेर लगा था, कहीं कस्तूरी के पर्वत खड़े थे । नर-नारियों के मुखों पर और आंखों में श्रृंगाररस रच-बस रहा था । कानों में जो भी शब्द सुनाई पड़ते थे, सभी मदन के शब्दभेदी बाणों से आहत थे । स्थान-स्थान पर अनुराग का गुलाल उड़ता दिखाई दे रहा था । कामदेव बाहुवली की राजधानी पोदनपुर का कण-कण कामरंग से रंगा था । दक्षिणांक यह सब देखकर आश्चर्य-विभोर हो गये ।

जैसे ही उन्होंने बाहुवली के राजभवन की ओर पग बढ़ाये, उन्हें कई अनन्य सुंदरियां जूही, मल्लिकांत, केतकी पुष्प की मालाएं धारण किये तथा कुमकुम

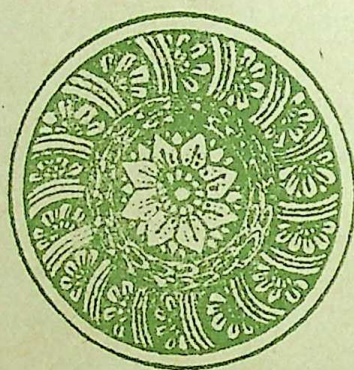
और चन्दन लेप से खचित पात्र लिये जाती दिखाई दीं। उनका अनुगमन करने वाली सुंदरियों के हाथों में संगीत की झंकार जगानेवाले भांति-भांति वीणा जैसे तंतुवाद्य थे। उन सुंदरियों के आभूषण उनके दमकते सौंदर्य को नयी आभा दे रहे थे। तभी दक्षिणांक के कानों में किसी रूपगविता के ये शब्द सुनाई पड़े—‘अपने हस्तस्पर्श मात्र से मैं प्रियंगु वृक्ष को फूल और फलों से खिला सकती हूं तो अन्य वीर पुरुषों की बात ही क्या है!’ दूसरी सुन्दरी तत्काल ही बोल बड़ी—‘अपने एक आलिंगन से मैंने कुरवक वृक्ष को पल भर में पल्लवित किया है तो प्रेम के प्यासे पुरुष को रोमांचित कर देना मेरे लिए कौन बड़ी बात है!’

दक्षिणांक को यह समझते देर न लगी कि कामदेव बाहुवली के शृंगार-रंग में राजा-प्रजा सभी तन-मन से रंगे हुए हैं।

सम्राट भरत के मित्रवत् मंत्री दक्षिणांक के आगमन की सूचना पोदनपुर-नरेश बाहुवली के उस महल तक पहुंचाई गयी जहां वे अपनी नरमप्रिय अंगनाओं के संग सौंदर्य-सागर में निमग्न थे। दक्षिणांक से राज्यसभा में प्रतीक्षा करने का अनुरोध किया गया।

बाहुवली को राज्यसभा में अपने सम्मुख सिंहासन पर बैठते देख दक्षिणांक ने उनके

बबनीत



समीप पहुंचकर पूर्ण विनय के साथ निवेदन किया—‘चक्रेशानुज, नरसुर नाम भूचक्रमोहन मूलकर्ता, चक्रवाकध्वज बाहुवली के चरणों में दक्षिणांक प्रणाम निवेदित करता है।’

बाहुवली ने अपने समीप ही दक्षिणांक को आसन दिलाया और पूछा—‘दक्षिणांक, अपने स्वामी को कहां-कहां तक प्रस्थान करा लाये? सुना है, तुमने उन्हें सारे विश्व की परिक्रमा करा दी!’

दक्षिणांक ने विनीत होकर उत्तर दिया—‘आपके भ्राता आप ही के समान

गुणी और पराक्रमी हैं। उनके दिग्विजय की कथा ने आप ही की कीर्ति में वृद्धि की है। आप दोनों का वर्णन सूर्य-चंद्र का एक साथ वर्णन करने के समान असंभव है। चक्रवर्ती भरत के मित्र और मंत्रियों ने यह

भेंट आपकी सेवा में भिजवायी है।’

बाहुवली ने कई सुन्दर थालों में सब भेंट को एक दृष्टि देखा। उनके मुख पर एक अर्थपूर्ण मुस्कान खिल आयी। उन्होंने दक्षिणांक की आंखों में झांकर पूछा—‘अब अपने आने का उद्देश्य बताओ, दक्षिणांक! भरत चक्रवर्ती के मंत्री और मित्र के यहां आगमन का कारण जानने के लिए हम उत्सुक हो रहे हैं!’

दक्षिणांक ने द्विगुणित विनय के साथ निवेदन किया—‘स्वामी! मेरे बड़े स्वामी

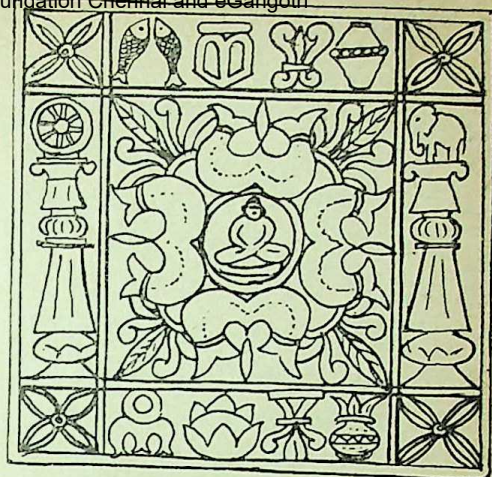
वेदन
मोहन
चरणों
हैं।
क्षणों
गणों,
स्थान
विश्व
उत्तर
समान
ती हैं।
की
कीति
दोनों
का एक
रते के
है
के मित्र
ने यह
'
में सर्व
मुख पर
उन्होंने
पूछा-
, दक्षि
र मि
के ति
के सा
डे स्वा
कख

के अनुज ! सम्राट भ्राता से मिलने की तीव्र इच्छा हुई थी, परन्तु उन्होंने आपको कष्ट देना उचित नहीं समझा। उन्होंने तो यही कहा जब बड़ी मां से मिलने मेरी छोटी मां अयोध्या आवेंगी, तभी बाहुबली से भी भेंट हो जायेगी। परन्तु हम सबने आग्रह किया कि जब आप सब पौदनपुर के द्वार तक आये हैं तो मकरध्वज बाहुबली से भेंट न करना अनुचित होगा। इसी भावना के वश होकर मैं आपके दर्शनों के लिए चला आया हूं। आप सम्राट भरत के पास चलकर उनकी दर्शनातुर आंखों को तृप्त कीजिये !'

बाहुबली एक क्षण के लिए मौन हो गये। सारी राज्यसभा पर उत्सुक शांति छा गयी। बड़े भाई के प्रति छोटे भाई का मान-सम्मान, एक छोटे नरेश को, एक चक्रवर्ती सम्राट को देखकर होने वाले आहत आत्म-सम्मान में परिवर्तित हो गया। भ्राता का यह निमंत्रण क्या एक सम्राट का आदेश नहीं है ?

बाहुबली ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया—
'दक्षिणांक, हमें यहां एक अति आवश्यक कार्य है। हम अयोध्या आकर बड़े भाई से मिल लेंगे !'

दक्षिणांक का मुख आशा-निराशा की सम्मिलित छाया से मलिन-सा हो गया ! वे समझ गये, बाहुबली को सम्राट के पास लिवा ले जाना इतना आसान नहीं है। स्वर में और अधिक कोमलता लाकर दक्षिणांक बोले—'स्वामी, मैं आपके आव-



श्यक काम में कोई बाधा डालना नहीं चाहता, किन्तु हम सबको अपनी सेवा के सुख से वंचित न कीजिये !'

'तुम्हारी चतुराई और विनम्रता फिर भी हमें अपने कार्य से विचलित नहीं करेगी, दक्षिणांक !'

बाहुबली के स्वरों की दृढ़ता देखकर दक्षिणांक ने अंतिम तर्क प्रस्तुत किया—
'अपने बड़े भाई के पास जाने में इतनी आनाकानी उचित नहीं, स्वामी ! अपने निश्चय पर फिर से विचार कीजिये !'

मुनते ही बाहुबली की भृकुटियां तन-सी गयीं—'अब वे हमारे अग्रज नहीं, दक्षिणांक, हमारे स्वामी बनना चाहते हैं ! स्वामी जिस तरह अपने सेवक को आदेश देकर बुलाता है, उसी तरह अपनी विशाल सेना के साथ खड़े रहकर उन्होंने एक छोटे-से नरेश बाहुबली को अपनी सेवा में उपस्थित रहने की आज्ञा दी है। हमें दुःख है कि

हम उनकी आज्ञा का सम्मान करने की स्थिति में नहीं हैं।

‘दक्षिणांक, तुम वस्तुस्थिति को चाहे जैसे घुमा-फिराकर कहो, सत्य यह है कि चक्रवर्ती का चक्र पौदनपुर के बाहर आकर एकदम रुक गया है और हमें अपने अधीन करने की स्पष्ट योजना के साथ तुम्हारे स्वामी सम्राट भरत ने अपनी समस्त सेना के साथ मेरी राजधानी के बाहर पड़ाव डाला है। हमें दुःख है, यह सत्य तुमने हम पर प्रकट नहीं किया। हमारे मंत्रि-गणों ने भी तुम्हारी बातों के प्रवाह में बहकर हमें सावधान नहीं किया। अब इस कटु सत्य को छिपाकर इधर-उधर की बातों का प्रयोजन ही क्या रह जाता है!’

‘स्वामी, चक्ररत्न आप दोनों भाइयों का मिलाप देखने के लिए रुक गया है और यही सेना और सम्राट के परिजनों की कामना है!’ दक्षिणांक ने कातरवाणी में कहा।

इस बार कामदेव बाहुवली के स्वरों में क्रोध की गुंज स्पष्ट सुनाई दे रही थी, ‘हम पूछते हैं तुम्हारे सम्राट को इतना अहंकार क्यों है? सारी पृथ्वी के राजाओं को अधीन करके भी क्या उनकी सत्ता की भूख नहीं मिटी? यदि व्यन्तरो और विद्या-धरों ने तुम्हारे चक्रवर्ती को महान मानकर उन्हें प्रणाम किया है तो यह आवश्यक नहीं कि कामदेव बाहुवली भी उन्हीं का अनुसरण करे! हम क्यों झुकें तुम्हारे सम्राट के सामने? पिताजी ने हमें पौदन-

पुर का राज्य दिया, हम उसी से सन्तुष्ट हैं, क्या यह देखकर उन्हें ईर्ष्या हो रही है? जब बड़े भाई होने के नाते पिताजी के साम्राज्य का विशाल भाग उन्होंने प्राप्त करके उस विशाल विश्व की सीमाओं तक फैला लिया है तो फिर हमारे छोटे-से राज्य के प्रति उनके मन में यह लालसा क्यों है? हम ज्येष्ठ भ्राता भरत के गुणों को प्रणाम कर सकते हैं, परन्तु हम उस सम्राट भरत के सम्मुख कदापि नहीं झुकेंगे जो किसी को निर्बल समझकर उसे अपनी सबलता का दंभ दिखाना चाहता है। यह बात कान खोलकर सुन लो, दक्षिणांक, बाहुवली अपने आपको निर्बल नहीं समझता! उसके स्वाभिमान की शक्ति के सामने तुम्हारे चक्रवर्ती सम्राट के अहंकार के पांव डगमगा जायेंगे, यह निश्चित है!’

भाई-भाई के संघर्ष की भयावही आशंका से दक्षिणांक कांप उठे। उनकी आंखों में अश्रु छलकने लगे। दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार की मुद्रा में विगलित स्वर में बोले—‘अपराध क्षमा हो, स्वामी मैंने आपका हृदय उद्वेलित किया है आपके मन को ठेस पहुंचायी है। आप दोनों पुण्यात्मा भाइयों के प्रेमपूर्ण मिलन के देखने का सौभाग्य संभवतः हम पापियों के भाग्य में नहीं है! मैं भी कितना भाग्यहीन हूं! जिस हृदय से लोगों को अमृत की प्राप्ति होती है, वहां मैंने अग्नि की ज्वाला उत्पन्न कर दी, जहां प्रीति और प्रेम की धारा धवल दुग्ध के समान प्रवा-

हित होती है वहां मैंने उष्ण रक्त के समान क्रोध और क्षोभ उत्पन्न कर दिया ! स्वामी, मुझ जैसा अधिक पापी और कौन होगा ?' दक्षिणांक आंसू पोंछते हुए उठ खड़े हुए और स्तब्ध राज्यसभा के क्षुब्ध जनों के बीच से लौट चले । बाहुबली के हितैषी मंत्रिगण इस घटना से विशेष क्षुब्ध थे । मंत्री प्रवीणचन्द्र ने दक्षिणांक के जाते ही बाहुबली के सम्मुख नतमस्तक होकर दृढ़ शब्दों में कहा—'आप दोनों भगवान् ऋषभदेव के सुयोग्य पुत्र हैं । आप ही के व्यवहार का अनुसरण सारी प्रजा करती है ! स्वामी, यदि शिष्य गुरु को, पुत्र पिता को, पत्नी पति को और छोटे भाई अपने बड़े भाई को नमस्कार करना अस्वीकार कर देंगे तो प्रकृति क्या अपने नियम नहीं भूल जायेगी ? नीति और संस्कार क्या अनैति और कुसंस्कारों के मार्ग पर न चल पड़ेंगे ? और फिर आपके ज्येष्ठ भ्राता सम्राट भरत साधारण भ्राता नहीं हैं, उन्होंने देवलोक को भी अपने गुणों से मुग्ध कर दिया है । उनके प्रति अविनय और असम्मान किसी दृष्टि से ठीक नहीं है । स्वामी, मैंने आपकी राज्यसभा में उपस्थित सभी जनों की भावनाओं को वाणी दी है, जो कुछ सोचा-समझा उसे निष्कपटता से कह दिया है ! यदि आप इसे अनुचित समझते हैं तो मैं क्षमा का अधिकारी हूँ !'

बाहुबली क्षणभर के लिए गहरे सोच में खो गये, किन्तु उनके आहत अभिमान

की झलक अब भी उनके मुख पर शेष थी । धीमे स्वर में बोले—'मित्र मंत्रिगणो ! आपने हमारी इच्छा-अनिच्छा की उपेक्षा करके दूसरे शब्दों में वही सब कहा जो दक्षिणांक ने कहा । आश्चर्य की बात यह है कि दक्षिणांक ने जो कुछ कहा, अपने मित्र और स्वामी सम्राट भरत के अनुकूल कहा, उनके पक्ष में कहा जबकि आप सब हमारे मित्र मंत्री होकर हमारे विपक्ष में बोल रहे हैं ! यह क्या आपके लिए शोभनीय है ?'

सेनापति गुणवसन्त स्वामी के इस प्रश्न से आहत-से हो उठे । तत्काल उठकर सामने चले आये और सिर झुकाकर कहा—'स्वामी, आपने जो कुछ कहा, सही और सटीक कहा ! स्वाभिमानी पुरुष किसी दूसरे की शरण में कैसे जा सकता है ? यदि सर्वश्रेष्ठ ने सर्वश्रेष्ठ की शरण स्वीकार कर ली तो उसे सर्वश्रेष्ठ कौन कहेगा ? आपने ठीक ही कहा, गुणों की अधीनता स्वीकार की जा सकती है, शक्ति की नहीं !'

सेनापति गुणवसन्त के शब्दों ने बाहुबली के क्षुब्ध मन को सान्त्वना दी । उन्होंने मंत्रियों की ओर संकेत करके कहा—'सम्राट भरत के मंत्री दक्षिणांक अपनी बात कहकर चले गये, परन्तु हम अपनी पूरी बात न कह पाये । वे मुख्यद्वार से आगे तक न जा पाये होंगे । उन्हें सादर बुलवाइये ताकि हम सम्राट तक अपना अन्तिम मन्तव्य पहुंचा सकें ।'

चकित और तनिक आशान्वित दक्षिणांक

ने लौटकर ज्यों ही प्रणाम किया, बाहुबली ने कहा—‘सुनो, दक्षिणांक, हम समझ गये हैं, अब तुम्हारे स्वामी पोदनपुर पर आक्रमण करेंगे। परन्तु हमने निश्चय किया है, युद्ध यहाँ नहीं होगा। जहाँ चक्रवर्ती तुम्हारे स्वामी को छह खंड पृथ्वी पर विजय का गर्व है, वे कामदेव बाहुबली को अपने सामने नतमस्तक देखना चाहते हैं, परन्तु अब उसका सामना उन्हें युद्धभूमि में करना होगा। अपनी सेना को सावधान कर देना। हमने सम्राट तक यही सन्देश पहुंचाने के लिए तुम्हें फिर से बुलवा भेजा था !’

दक्षिणांक पुनः लौट पड़े। सोचने लगे कैसी विचित्र है कर्मों की गति ! गुणी और विवेकी जनों को भी ये किस तरह विचलित कर देते हैं ! जब ये कर्म उदय होते हैं, पदों की तरह सत्य को अंखों से ओझल कर देते हैं।

०००

दक्षिणांक का उदास मुख देखकर सम्राट भरत सब कुछ समझ गये। बोले—‘चितित क्यों होते हो, दक्षिणांक ! बाहुबली के मन की बात मैं पहले से जानता था, परन्तु सोचा था तुम्हारी चतुराई और विनय के सामने कामदेव बाहुबली का उद्धत गर्व संभवतः सही राह पर आ जायेगा।’

दक्षिणांक ने सम्राट को रोकते हुए कहा—‘यह उनकी नहीं मेरी ही भूल थी। यदि मेरी जगह किसी और सुयोग्य व्यक्ति को इस कार्य के लिए भेजा गया होता तो कार्य सम्पन्न हो जाता। दोष मेरा है, काम-

नवनीत

देव बाहुबली का नहीं !’

सारी ही बातें सुनने के बाद भरत उद्विग्न हो उठे। सोचने लगे, बाहुबली मेरे सामने युद्धभूमि में खड़े होना चाहते हैं, परन्तु परिणाम से अनभिज्ञ हैं। मैं चाहूँ तो उन्हें उठाकर समुद्र में फेंक सकता हूँ, परन्तु छोटे भाई के प्रति यह व्यवहार क्या उचित होगा ? लोग कहेंगे शक्तिशाली ने निर्बल के सामने शक्ति-प्रदर्शन किया, एक सबल ने अपने से हीनबल को अकारण दंडित किया। नहीं, शक्ति-प्रदर्शन का मार्ग उचित नहीं है। तो फिर क्या किया जाये ?

सम्राट भरत के सामने अब दो ही मार्ग थे—या तो चक्र को वहीं रुका रहने देकर सेना सहित अयोध्या चले जायें और पूर्ण चक्रवर्तीत्व पाने से वंचित रहें या बलपूर्वक बाहुबली से अपनी अधीनता स्वीकार करायें। भरत की दुविधा अब स्पष्ट शेष थी।

उधर बाहुबली ने सेनापति गुणवत्स से कहा—‘सेना और परिवार को सावधान किया जाये। एक चक्रवर्ती हमारे दायरे पर सेनासहित डेरा डाल दे यह हमारे लिए अपमानजनक है, असह्य है।’

माता सुनन्दा भी अपने बेटे बाहुबली को भरत से संघर्ष न करने के लिए मनाने लगीं। पटरानी इच्छा महादेवी, अरुण रानियां चित्रावती और रतिदेवी भी संघर्ष के पथ से उन्हें विचलित नहीं कर सकीं।

माकन्द गजराज पर आरुढ़ होकर छत्र धारण किये कामदेव बाहुबली

१३२

शोभा अवर्णनीय थी। नगरवासी मुग्ध होकर उन्हें प्रयाण करते देख रहे थे।

यह प्रयाण विजय के लिए था या महा-नाश के लिए, यह बात सर्वज्ञ को छोड़कर और कोई नहीं जानता था। तब ही उत्तमोत्तम भेंट लिये भरत चक्रवर्ती के पुत्र अर्ककीर्ति आदि राजकुमार उन्हें सामने आते दिखायी दिये। क्या यह भरत की ओर से संधि का एक और प्रयास था? बाहुबली ने भेंट स्वीकार करने की अपेक्षा उसकी उपेक्षा करना उचित समझा। उनके विजय-अभियान के लिए यह एक बाधा से अधिक कुछ न था। कोमल हृदय कामदेव बाहुबली का यह व्यवहार सचमुच सबके लिए तर्कतीत था। माता, मंत्रिगण, पटरानियों, प्रजा-जनों-भरत के मंत्री और पुत्रों, सबको निराश करने वाले बाहुबली के चरण जिस ओर चल पड़े हैं, वह कर्मों की विचित्र गति ही का तो फल है!

पोदनपुर के बाह्यांचल में भरत चक्रवर्ती और उनके लघुभ्राता कामदेव बाहुबली सामने-सामने खड़े हैं, मौन, स्तब्ध से। दोनों के पीछे है उनका सैन्यबल। परन्तु कहां चक्रवर्ती की विशाल सेना और कहां पोदनपुर-नरेश के कुछ सहस्र सैनिक!

दोनों ओर के चतुर मंत्री संघर्ष को दालने और संधि का मार्ग ढूँढ़ निकालने के लिए परामर्श करने लगे हैं। चक्रवर्ती और कामदेव का युद्ध साधारण युद्ध नहीं होगा। कामदेव का कुसुमास्त्र और चक्र-

वर्ती का खड्ग दोनों टकरायेंगे तो क्या होगा?

सभी ने मिलकर निश्चय किया कि दोनों को धर्मयुद्ध के लिए मनाया जाये। मंत्रिगण भरत चक्रवर्ती के पास आये; बोले—‘कामदेव बाहुबली ने लोहास्त्र से युद्ध करने का निश्चय किया है, यदि आपने भी ऐसा ही निश्चय किया तो सचमुच प्रलय-काल आ जायेगा। वज्रवृषभ नाराच संहनन वाले दो वज्रांग वीर जब टकरायेंगे, तो क्या कुछ नष्ट होने से बच रहेगा, सम्राट?’

‘आप क्या चाहते हैं?’ सम्राट का स्वर शांत था।

‘स्वामी, आप दोनों शस्त्रयुद्ध नहीं, धर्मयुद्ध कीजिये। आप व्यक्तिगत रूप से दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध करेंगे तो शक्ति का निर्णय आप दोनों के बीच हो जायेगा और सहस्रों सैनिक अकाल मृत्यु से बच जायेंगे! धर्मचक्रप्रणेता भगवान् ऋषभदेव के विवेकी पुत्रों के लिए यही शोभनीय होगा!’

‘आप मुझसे कुछ न पूछिये। जो बाहुबली को स्वीकार होगा वही मुझे भी। आप उनसे अनुमति लीजिये और जो वे चाहें, वही व्यवस्था कीजिये।’

सम्राट भरत के शब्दों से मंत्रिगणों को परम संतोष हुआ। अब वे मौन, युद्ध सन्नद्ध बाहुबली की ओर मुड़े।

‘मंत्रिगण! क्या आप एक बार फिर मुझे युद्ध से विरत करने और सम्राट की अधी-

नता स्वीकार करने के लिए कहने आये हैं ? क्या कोई क्षत्रिय युद्धभूमि में खड़ा होकर इस अपमानजनक प्रस्ताव को स्वीकार करेगा ?'

'नहीं, स्वामी, युद्ध तो अब होकर ही रहेगा, परन्तु उस युद्ध को धर्मयुद्ध में बदल देने का आग्रह करने के लिए हम आपके पास आये हैं। सम्राट भरत इसके लिए स्वीकृति दे चुके हैं।' विनयावनत दक्षिणांक ने कहा।

'धर्मयुद्ध ?'

'हां, आप दोनों अपने भुजबल से युद्ध कीजिये, ताकि विशाल निर्दोष सेना का संहार होने से बच जाये !'

'धर्मयुद्ध का रूप क्या होगा ?'

'कामदेव, पहले आप दोनों के बीच दृष्टियुद्ध होगा। दोनों, बिना पलक झपकाये एक दूसरे की दृष्टि को बांधे रहेंगे! इस युद्ध में जो पहले पलक झपकायेगा, उसे पराजित समझा जायेगा।'

'बस ?'

'नहीं, बाहुबली, तीन व्यक्तिगत युद्धों में से यह पहला होगा। दूसरा होगा जल-युद्ध। उसमें आप पूरी शक्ति से एक दूसरे के मुख पर जलप्रहार करेंगे, इसमें जो मुख पहले हटा लेगा उसकी हार मानी जायेगी।'

'और तीसरा धर्मयुद्ध ?'

'बहु होगा आप दोनों के बीच मल्लयुद्ध। दो मल्लों के बीच होनेवाले दांवपेंचों में जीतकर जो वीर प्रतिद्वन्दी को भुजाओं पर उठा लेगा, उसे विजयी समझा जायेगा। धर्मयुद्ध यहीं समाप्त हो जायेगा।'

नवनीत

'आप सब हमारे हितैषी हैं। आप हमें हिंसा से बचाकर हमारे बीच विजित और विजेता का निर्णय करा देना चाहते हैं। मुझे आपका यह सुझाव स्वीकार है !'

बाहुबली के सुन्दर मुख पर मधुर मुस्कान खिल आयी। विजय का विश्वास उन्हें सत्य में परिणत होता दिखायी दिया।

दोनों ओर की सेनाओं में विशेष हलचल होने लगी। रणभेरियों के स्वर उभरने के लिए मचलने लगे।

दृष्टि झुकाये बाहुबली अपनी सेना के आगे खड़े थे। गंभीर भाव लिये सम्राट भरत धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़ रहे थे। अब अन्तर दो सौ धनुष से कम होकर केवल दस धनुष का रह गया था।

दोनों दीर्घदेह थे। परन्तु बाहुबली छोटे होते हुए भी सम्राट भरत से पन्चीस धनुष ऊंचे थे। देह का विस्तार ही जैसे निर्देश कर रहा था कि बाहुबली भरत की हर मर्यादा का उल्लंघन करने के लिए उनके सामने आ खड़े हुए हैं। युद्धभूमि के आसपास खड़ी विशाल जनमेदिनी चक्रवाती और कामदेव के देह सौंदर्य को मुग्ध होकर देख रही थी। सबके मुखों से एक जैसे उद्गार व्यक्त हो रहे थे—'भरत से बाहुबली सुंदर हैं ! बाहुबली से भरत सुंदर हैं !!' दोनों अपनी उपमा आप थे और दोनों एक दूसरे से बढ़-चढ़कर थे।

भरत के संकेत से दोनों ओर की रणभेरियां मौन हो गयीं।

भरत के भ्रातृप्रेम से पगे शब्द युद्धभूमि पर गिर पड़े।

‘भैया बाहुबली ! हम दोनों के बीच यह युद्ध क्यों होने चला है ? मेरे मन में तुम्हारे प्रति दुर्भावना नहीं है, मैं जानता हूँ, तुम्हारे मन में भी मेरे लिए कोई दुर्भावना नहीं है, फिर इस युद्ध का कारण क्या है ?’

बाहुबली मौन थे, मौन ही रहे ।

‘कभी ऐसा समय आता है, जब भाई-भाई में भी द्वेष उत्पन्न हो जाता है, पर उसका भी कोई कारण अवश्य होता है । मैंने न तुमसे कर मांगना चाहा है, न तुम्हारे नगर में बलात् प्रवेश चाहा है, फिर मुझ पर इतना रोष क्यों ? क्या चक्रवर्तीपद निभाने की औपचारिकता पूरी करने के लिए एक बड़े भाई की अपने छोटे भाई को अपने पास देखने की इच्छा तुम्हारे इस क्रोध का कारण है ? क्या तुम मेरे शत्रु हो, क्या मैं तुम्हारा शत्रु हूँ ? आदिप्रभु ऋषभदेव की सन्तान हम दोनों अन्य लोगों के लिए यह कैसा उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं ?’

बाहुबली का मौन फिर भी न टूटा ।

‘तुम सोच रहे होगे मैं युद्ध से डरकर यह सब कह रहा हूँ । परन्तु ऐसी बात नहीं है । युद्ध तो विवश होकर भी अंब मुझे करना ही होगा । परन्तु हृदय की बात तुमसे न कहकर मैं अनकिये दोषों का अपराधी बनना नहीं चाहता । मैं अवश्य तुमसे मिलने तुम्हारे पास आता पर यह मेरी ही नहीं तुम्हारी भी मर्यादा का उल्लंघन होता—छोटे भाई से मिलने क्या बड़ा भाई स्वयं उसके पास जाता?...’

आधिक क्या कहूँ, हम दोनों यहां इन राजाओं, मंत्रियों, सेना और सेनापतियों के सामने, इन दर्शकों के सामने नटों की तरह खेल दिखाने के लिए खड़े हैं, यह क्या हम दोनों को शोभा देता है ?’

बाहुबली ने पहली बार आंखें उठाकर बड़े भाई भरत चक्रवर्ती को देखा । उनके चेहरे पर अब भी मुस्कान खेल रही थी ।

‘युद्ध भूमि में खड़े रहकर बातें करना वीरों की वीरता के प्रतिकूल है, भैया, अब यदि युद्ध नहीं होगा तो हम वज्रांग वीरों की वीरता सचमुच लज्जा का विषय बन जायेगी । दृष्टियुद्ध के लिए सन्नद्ध होकर मेरी आंखों में देखिये ।’ बाहुबली की वाणी में हुंकार थी ।

रणभेरियां एक बार फिर बज उठीं ।

दृष्टियुद्ध प्रारंभ हुआ । प्रकृति स्तब्ध थी, वहां खड़ी विशाल जनमेदिनी के समान । सवा पांच सौ धनुष ऊंची काया के धारक बाहुबली ने एकटक अपने से पन्चीस धनुष नीचे भरत की आंखों में देखा । भरत की आंखों में जय-पराजय का भाव न था, था केवल आश्चर्य और क्षोभ । दोनों की दृष्टि की एकाग्रता होड़ बढने लगी, परन्तु भरत के लिए लगातार ऊपर की ओर देखना कष्ट साध्य था, पलकें कांप उठीं !

बाहुबली की सेना जय-जयकार करने लगी ।

पहली पराजय चक्रवर्ती भरत के खेमे में उदासी ले आयी । परन्तु दोनों पक्ष अब

परिणाम की ओर बढ़ चुके थे।

भरत के होंठ एक बार फिर कांपे, जैसे अब भी अपने छोटे भाई से कुछ कहना चाहते हों, किंतु जलयुद्ध के लिए विशाल सरोवर में तैयारियां हो चुकी थीं। विजय की मुस्कान लिये बाहुबली ने जल में पग बढ़ाये।

दोनों ओर की सेनाओं में विजय संभावनाओं की हलचल फिर दिखायी दी। भरत और बाहुबली की जय-जयकार से वायुमंडल गूंज उठा।

परंतु बाहुबली ने जब इस बार भरत को देखा तो लगा भरत की गंभीर उदासी जैसे स्वयं उनके हृदय पर अपनी काली छाया फैलाने लगी है। अपने पुण्यश्लोक पिता के पहले उत्तराधिकारी, अपने बड़े भाई को इस तरह अपमानित करना, उनकी मर्यादा का उल्लंघन करना, उनके हृदय में क्षोभ उपजाना क्या किसी भी दृष्टि से उचित है? क्या होता है मान-अपमान, क्या होता है स्वाभिमान? क्या वह कुल, शील और नीतियों की मर्यादा से बढ़कर है?

बाहुबली सोचने लगे, सोचते रह गये।

जलयुद्ध के प्रारंभ की सूचना पुनः एक बार रणभेरियों ने दी। यंत्रवत् बाहुबली के बलशाली बाहु जल में अपने चित्त की तरह क्षोभ फैलाने लगे। जलयुद्ध भी जैसे दृष्टियुद्ध का ही एक पर्याय था। ऊंचे बाहुबली अपने से नाटे भरत के चेहरे को जैसे जलप्रलय से जलमग्न करने

लगे। बाहुबली ने देखा, भरत की प्रति-कार शक्ति अनजाने ही कम होती जा रही है। क्या उनके हृदय के क्षोभ और अनुताप की प्रतिध्वनि भरत के हृदय तक पहुंच रही है? क्या इस व्यथ-से युद्ध का परिणाम दोनों में से किसी के लिए भी परिणामकारी होगा?

जलयुद्ध समाप्त हुआ। विजय की लहर बाहुबली की सेना में फिर एक बार दौड़ गयी! धर्मयुद्ध के दो परिणामों में से दोनों बाहुबली के पक्ष में रहे थे।

भरत के सामने प्रश्न था अपनी मर्यादा, अपनी कीर्ति का, अपने विश्व-साम्राज्य का। इस पराजय के पश्चात क्या वे उसी रूप में मान्य और पूज्य होंगे?

चक्ररत्न उनका आज्ञाकारी था। वे उसे जिस पर वार करने की आज्ञा दें, उसका शीश धड़ से अलग हो सकता था। चक्र से प्रतिरोध की शक्ति किसी मनुष्य में नहीं थी।

यही है अंतिम उपाय जिससे बाहुबली के उद्धत अभिमान को चूर-चूर करके अपने को अपमानित होने से बचाया जा सकता है!

परंतु छोटे भाई पर इस क्रूर महाशक्ति का उपयोग क्या उचित होगा?

अनजाने ही 'चक्र' 'चक्र' की ध्वनि गूंज उठी! प्रलयवेग से घरघराता हुआ चक्ररत्न बाहुबली की ओर बढ़ने लगा। चारों ओर अंधकार छा गया। विजय अग्नि के ही चारों ओर धुआं उठने लगा।

बाहुबली के मस्तक के चारों ओर परिक्रमा करता हुआ चक्र अपनी गति और शक्ति को व्यर्थ करने लगा; क्योंकि चक्रवर्ती के अपने ही रक्तसंबंधी पर, सहोदर पर चक्र कोई प्रभाव नहीं दिखला सकता। क्षोभ, आतंक और अनुताप से सम्राट का रोम-रोम सिहर उठा।

मल्लयुद्ध अब भी शेष था। बाहुबली के विशाल बलिष्ठ बाहुओं की प्रहार-शक्ति क्या भरत का भ्रातृहृदय सह पायेगा? और युद्धों की बात और थी किंतु मल्लयुद्ध तो प्रत्यक्ष आघात था अपने पूज्य के शरीर और उनकी प्रतिष्ठा पर!

बाहुबली का तन-मन अब प्रस्तुत न था। प्रहार के लिए हाथ उठाना मल्लयुद्ध की पूर्व सूचना थी, परंतु यह हाथ अब प्रहार नहीं करेगा किसी पर! कामदेव बाहुबली, ऋषभदेव-पुत्र बाहुबली, भरत के भ्राता बाहुबली की उद्धत सत्ता जैसे अपने को ही चुनौती देने लगी!

‘युद्ध किससे, किसलिए? संघर्ष कैसा, किसके लिए? मान का मेरु तुंग से उत्तुंग हो गया, फिर भी क्या युग-युगान्तर तक अजर-अमर रह पायेगा? विजय-दुःख भी बज भी गयी तो कब तक गूँजती रहेगी वह दशों दिशाओं में? किसी के पश्चात्ताप के आंसू, किसी के अपमान की ज्वालाओं को क्या शांत कर पायेंगे? क्या बड़े भाई को हराने का दंभ भरने वाली छोटे भाई की विजय-पताका जन-जन के सामने अपना सिर ऊंचा रख

पायेगी?

...‘और क्या होगा ज्ञान-धर्म का जयघोष करनेवाली, संसार से मुक्ति दिलानेवाली आदि युगपुरुष, आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की उस कल्याणी वाणी का? अपने ही वंशजों से क्या तीर्थंकर आदिनाथ का अहिंसामय धर्म तिरस्कृत, अस्वीकृत होगा?’

‘नहीं, नहीं!’ बाहुबली के बलिष्ठ कंठ की यह तीव्र ध्वनि दोनों ओर की विशाल सेनाओं को हतप्रभ और स्तब्ध कर गयी—‘भैया, यह राज्य तुम्हारा है, यह विश्व तुम्हारा है, मैं कुछ नहीं हूँ, मेरा कुछ नहीं है! मैं इसी क्षण त्याग रहा हूँ इस जग को, जग के वैभव को, शरीर-संबंधों को, परमशांतिदात्री आत्मा से भिन्न प्रत्येक पदार्थ को! मैं अब मोक्ष का मार्ग अपनाऊंगा, वही मार्ग जिस पर चलकर हमारे पिता ऋषभदेव केवलज्ञानी होकर जगत के परमपिता बने हैं! मैं जा रहा हूँ उन्हीं की शरण में! अब मेरा हृदय क्रोध से, मन से, माया से और लोभ से कभी आहत नहीं होगा, अब राज्य और वैभव का झूठा मान-अभिमान कभी मेरी आत्मा को कलंकित नहीं करेगा? मुझे हर कष्ट, हर व्यथा, हर अपमान के लिए क्षमा कर देना, भैया! मैं जा रहा हूँ कैलास पर्वत की ओर, जहां परमपिता आदिनाथ केवलज्ञानी समवसरण में विराज रहे हैं!’

मुड़ गये बाहुबली के चरण युद्धभूमि से।

१९८१

१३७

हिंदी डाइजेस्ट

चारों ओर बाहुबली की जय-जयकार की ध्वनि गुंज उठी।

भरत केवल इतना ही कह पाये—'भैया बाहुबली, मेरे प्यारे भैया ! मुझे इस तरह छोड़कर न जाओ, मैं अपनी हार स्वीकार करता हूँ !' किंतु यह ध्वनि वैसी ही लौट आयी।

जय-पराजय का उत्साह-विषाद वैराग्य की नीरव शांति में बदल गया।

०००

कैलास पर्वत पर भगवान् ऋषभ देव के सामने मुनि-दीक्षा लेकर मुनि बाहुबली गजविपिन वन में घोर तप कर रहे हैं। जब से तप आरंभ किया, उनके चरण उस भूमि से नहीं हटे हैं। सभी कर्मों से निवृत्ति पूर्ण मोक्ष-प्राप्ति से पहले अब बाहुबली हिलेंगे भी नहीं। पूर्व के अनमनीय अभिमानों का यह दृढ़ निश्चय उनके पूर्व अभिमान की ही तरह अटल-अचल है।

गजविपिन वन में तप करते हुए कुछ दिन बीते, मुनि बाहुबली तप में लीन रहे। कुछ सप्ताह बीते, उनकी अटल-अचलता में कोई कंपन नहीं आया। फिर सप्ताह महीनों में बदलने लगे—एक, दो, तीन, सात, दस, बारह !

भरत के आश्चर्य का पार न था। बाहुबली से पहले मुनिधर्म में दीक्षित उनके अन्य भ्राता केवलज्ञानी बन चुके थे, परंतु बाहुबली अब तक तपस्या की कठिन राहों को पार करके ज्ञानज्योति प्रकट नहीं कर पाये थे।

नयनीत

भरत ने सुना, एक वर्ष पहले जब से बाहुबली ने दीक्षा ली थी, वे गजविपिन वन में अचल खड़े थे। इस एक वर्ष की अवधि में उनकी देह तो क्या, आँखें तक नहीं हिले। उनके पूरे शरीर पर लतायें चढ़ आयी हैं, सर्प-बिच्छू जैसे विषैले प्राणी उनकी देह पर निर्भय होकर घूमते हैं, किंतु मूर्ति की तरह अविचल बाहुबली पर बाहरी वातावरण का कोई प्रभाव नहीं होता।

भरत के लिए सचमुच एक पहेली थी कि चरम शरीरधारी बाहुबली ने मुक्ति अब भी इतनी दूर क्यों है ? कौन सा है वह व्यवधान, क्या है वह बाधा, जो बाहुबली की आत्मिक प्रगति को रोक रहा है ? केवल परमात्मा ऋषभदेव को छोड़कर यह पहेली और कौन सुलझ सकता है ?

भरत तत्काल ही विमान द्वारा कैलास पर्वत पहुंचे। बाहुबली अब लौकिक रूप से उनके भाई नहीं थे, किंतु भावु भरत के लिए भाई की यह अपरिवर्तनीय स्थिति असह्य थी।

केवलज्ञानी भगवान् ने भरत के मन की व्यथा को वाणी दी—'जिज्ञासु भरत ! बाहुबली ने मुनिधर्म धारण किया है, किंतु आत्मधर्म की ज्योति तक अप्रकट है। इसका कारण है उनका मन का बद्धमूल अभिमान, जो अब तक उनके हृदय में कांटे की तरह चुभ रहा है। वे तप करते हुए आत्मा का

१३८

जब से तुम्हारी धरती का ही चिन्तन कर रहे हैं। उनके मन का शल्य है—‘मैं अब भी भरत चक्रवर्ती की पृथ्वी पर खड़ा हूँ। भरत की पृथ्वी पर अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा।’ इसी हठ के कारण उन्होंने एक वर्ष से आहार नहीं लिया, अपने स्थान से हिले भी नहीं !’

भरत की आँखों में अश्रु छलक आये—‘इस शल्य को दूर करने का उपाय क्या है, प्रभो ? बाहुबली यदि इसी तरह व्यथित होकर तप करते रहे तो आत्म-ज्योति कैसे प्रकट कर पायेगा ?’

‘भरत, तुम्हारे ही कारण बाहुबली ने वैराग्य धारण किया है, तुम्हारे ही द्वारा उनकी मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त होगा। एकमात्र तुम्हीं हो जो उनको संबोधन देकर उनके मन का शल्य निकाल सकते हो। जाओ, शीघ्रता करो, भरत !’

भरत गजविपिन वन की ओर बढ़े।

तीव्र उष्णता से जलती शिला पर अडिग बाहुबली के मुँदे हुए नयनों को भरत ने दूर से देखा, दृढ़ता से वेष्टित मुखमंडल की उस गरिमा को देखा जो व्यथा का वेदन करते हुए भी निष्कंप थी। भरत ने दौड़कर मुनि बाहुबली के चरणों में प्रणाम किया। जिस बाहुबली को नमित करने के लिए इतने बड़े युद्ध का आयोजन किया था भरत ने, उन्हीं बाहुबली के चरणों में सिर रखकर भरत आज गद्गद् हो उठे हैं ? उस समय भरत बड़े भाई नहीं, मुनि की महिमा के प्रति

प्रणत एक भावुक भक्त से अधिक कुछ नहीं थे।

‘गुरुदेव, क्या चुभ रहा है आपके मन में, यह मैंने भगवान् पुरुनाथ ऋषभदेव से जान लिया है। आश्चर्य है, क्षण-क्षण रूप-रंग बदलने वाली इस धरती को अब भी आप मेरी समझ रहे हैं ! मुझसे पहले जाने कितने आये और इसी धरती में धूल बनकर समा गये ! आज मैं हूँ, कल न जाने कौन आयेगा, फिर कोई और, उसके बाद कोई और यह सिलसिला चलता ही रहेगा। धरती यहीं रह जायेगी, लोग शरीर यहीं छोड़कर चले जायेंगे। पर नारी के समान इस भू नारी को मेरी समझकर आप क्यों व्यर्थ ही कष्टों के पहाड़ ढो रहे हैं ?’

‘योगिराज ! जब यह छह खंड पृथ्वी जीतकर मैं चक्रवर्ती बनकर वृषभाद्रि पर्वत पर अपना विजय शासन वज्र से लिखने गया, तो वहाँ मेरा नाम लिखने तक की जगह नहीं थी, क्योंकि मुझसे पूर्व हुए असंख्य चक्रवर्तियों के नामों से वह पर्वत अटा पड़ा था। मुझे पहले के नामों को मिटाकर अपना नाम लिखना पड़ा। अब किसी दिन मेरा नाम मिटाकर कोई भविष्यपुरुष अपना नाम लिख देगा। तब कौन कह सकता है अपने को इस पृथ्वी का स्वामी ? अनित्य शरीर-धारी मुझको और मिटनेवाले मेरे नाम को इस पृथ्वी से जोड़कर आपने अपनी आत्म-ज्योति अवरुद्ध कर दी है, पूर्ण वैराग्य

और उससे प्राप्त होनेवाले मोक्ष के मार्ग में बाधाएं खड़ी कर दी है। यह मिथ्या-शल्य निकाल फेंकिये और मन की चंचलता को आत्म ज्योति में स्थिर कर दीजिये। अपने आपको छोड़कर सब कुछ भूल जाइये, प्रभु ! जब शरीर ही अपना नहीं है तो शरीर से बाहर फैली वस्तुएं हमारी कैसे हो सकती हैं ?

इस उद्बोधन ने बाहुबली का हृदय उन्मुक्त कर दिया। भरत ने उनके सामने आत्मा का अमर सत्य उद्घाटित कर दिया था, जिसे मिथ्या अभिमान ने उनके सामने से तिरोहित कर दिया था !

क्षणभर में अवरुद्ध ज्ञानज्योति प्रकट हो चली। पूर्व-संचित असंख्य जन्मों से उपाजित कर्मों के पतं के पतं डाल से टूटे पत्यों के समान क्षरित होने लगे। मुनि बाहुबली का अकल्पनीय तप सार्थक होने लगा। इस परिवर्तन को भरत बाहुबली के प्रसन्न मुख पर प्रतिबिम्बित होते निहारते रहे। घातिया कर्म नष्ट हुए, केवलज्ञान प्रकट हुआ ! विश्व का हर सत्य बाहुबली के सम्मुख प्रकाशित हो उठा।

और देखते ही देखते उनकी विशाल काया पांच हजार धनुष ऊपर उठकर स्थिर हो गयी। एक गतिमान पर्वत के समान भगवान बाहुबली का यह ज्योति प्रयाण सुर, नर और नागों के गंगनचुंबी जय-जयकार के बीच महिमावंत हो उठा। आकाश के मध्य ही गंधकुटी की रचना

हुई। गंधकुटी के पद्म से चार अंगुष्ठ ऊपर भगवान बाहुबली का परम औदारिक शरीर शोभायमान हो रहा था।

भरत की आंखों से निकलती हुई हर्षाश्रुओं की अविरल धारा कपोलों के साथ उनके मन को भी भिगो रही थी। भक्ति-विगलित कंठ से वे पुकार उठे—
‘भगवान बाहुबली ! धन्य हैं आप ! भरत का नाम रहे न रहे, आपके मान-अभिमान और मोक्ष-अभियान की कीर्ति-कथा तब तक अमर रहेगी, जब तक यह संसार रहेगा।’

गूँज उठी भरत के कानों में बाहुबली केवली की यह वाणी—‘भरत की भावना और भक्ति के साथ ही बाहुबली के बंधन-मुक्ति की कथा जुड़ी हुई है। भरतेश ! संसार और मोक्ष का हमारी जीवन-कथा से उजागर होगा !’

०००

सैकड़ों सहस्रों युग बीत गये उस बाद। भरत के भारतवर्ष में अति तीर्थंकर महावीर मोक्ष को प्रयाण चुके थे।

कुछ और वर्ष बीते। चन्द्रगुप्त मौर्य, जीवन के संध्याकाल में बाहुबली का अनुसरण करके मुनि हुए और उन्हें पाटलिपुत्र से दक्षिण की ओर प्रयाण किया।

मुनि चन्द्रगुप्त ने दक्षिण के कर्णाटक प्रदेश के चन्द्रगिरि पर्वत पर समाधि स्थापित करके देह त्याग किया। उस स्मृति

बाहुवली की प्रयाग में जन्म हुआ था, जिसका नाम बाहुवली रखा गया था।

उसके बाद हजार से अधिक वर्ष बीत गये। मैसूर राज्य के महामंत्री चामुण्डराय को एक रात स्वप्न में मुनि चन्द्रगुप्त का देखा वही दृश्य दिखायी दिया— मेरु के मस्तक पर ध्यानारूढ़ मुनि बाहुवली की विशाल प्रतिमा—संसार के बंधनों को तोड़नेवाली तपस्या में लीन !

महामंत्री चामुण्डराय का स्वप्न

संपन्न हुआ, और धन और असंख्य जनों के साथ-सहयोग से। श्रवण बेलगोल पर्वत पर संसार का अनुपम आश्चर्य प्रकट हुआ, गोमटेश्वर बाहुवली की विशाल प्रतिमा के रूप में।

उस महान बेला को ठीक एक हजार वर्ष बीत चुके हैं। इसी मास होने वाले सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक से गोमटेश्वर बाहुवली की स्मृति एक बार फिर सजल हो उठी है !



ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

‘निर्मल’ तीसरी मंजिल, २४१ बैकवे रिक्लेमेशन

नरीमन पॉइंट, बंबई ४०००२१

तार : SODACHEM

फोन : २३०७४३/२३४२७८

२३४३३०/२३४४३७

भारत में हेवी केमिकल्स के क्षेत्र में अग्रणी
सब अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी प्रस्तुत।

* अपग्रेडेड इमनाइट *

(सिथेटिक रूटाइल ९०-९२ TiO_2)

हमारे बनाये हुए रसायन :

* फास्टिक सोडा

* सोडियम बाइकार्बोनेट

* कैल्शियम क्लोराइड

* लिक्विड क्लोरीन

* सोडा एश

* अमोनियम बाइकार्बोनेट

* ट्राइक्लोरो एथिलीन

* हाइड्रोक्लोरिक

* साफ्ट *

THE HINDUSTHAN SUGAR MILLS LTD.

Registered Office :

Bajaj Bhawan, 2nd Floor,
226, Nariman Point,
BOMBAY - 400 021.

Manufacturers of :

WHITE CRYSTAL SUGAR

Sugar Mills at Golagokarannath (U.P.)
& Palia (owned by Subsidiary Company)
Yearly Production — 1,00,000 Tonnes

RECTIFIED & DENATURED SPIRIT, ABSOLUTE ALCOHOL & INDUSTRIAL ALCOHOL

Distillery at Golagokarannath
Yearly Production — 20 Million Litres

PORTLAND CEMENT

Factory :

Udaipur Cement Works, P. O. Bajaj Nagar,
Udaipur, Rajasthan.

Yearly Production — 2,00,000 Tonnes

Telegram : 'SHREE' Telex : 011-2563 Telephone : 233626

MEMBER—FAIR TRADE PRACTICES ASSOCIATION

(पृष्ठ ७६ का शेषांश)

‘महाश्रमण आदिनाथ ऋषभदेव की जय !’ के नाद के साथ भीड़ सहसा शांत होकर नासत्य की ओर उत्कर्ण हो उठी। और अपना कथन जारी रखते हुए नासत्य ने कहा, ‘अत्रि हमारे सन्निवेश में उग्रतावादी तरुण-दल का नायक था। केवल विद्रोह ही नहीं, इसकी अन्य कई महत्वाकांक्षाएं थीं, पास-पड़ोस के यूथों पर सहसा आक्रमण कर उन्हें परास्त करना और अपनी स्वयं की सत्ता का विस्तार कर उपनिवेश स्थापित करना, और इसी उद्देश्य से इसने अपने दल को प्रशिक्षित भी किया। अन्य कुछ व्यक्ति जब इससे असहमत हुए तो षड्यंत्र के द्वारा इसने दलपति को ही पदस्थ करने की योजना बनायी थी। इन्हीं सब कारणों से इसे तिकासित कर दिया गया था। मैं नहीं जानता...’

नासत्य की बात बीच ही में काटकर अत्रि चिल्ला उठा, ‘यह सब असत्य है। न जाने किस मिथ्यावादी ने इसका नाम नासत्य रखा है ! यह केवल अपने बचाव का प्रयत्न है। इसने अपने ही दल के साथ विश्वासघात किया था, तभी तो इसे यज्ञ-भाग से वंचित किया गया था।’

भीड़ में से ही किसी ने कहा, ‘दोनों विदेशी विश्वासघातक हो सकते हैं। इनको हमें सुपुर्द कर दिया जाये ! हम इसका प्रतिशोध लेंगे !’

महापणिक ने कहा, ‘आप लोग उत्तेजित न हों ! महाभाग नासत्य को मैं स्वयं अनेक अनुनय-अनुरोध के बाद लाने में समर्थ हुआ हूं, अतः इनके विश्वासघात का तो प्रश्न ही नहीं उठता। बल्कि मैं चाहता हूं कि ये जब तक चाहें, सम्मानपूर्वक यहां रहें और हमें अपने आतिथ्य का अवसर दें। इसके साथ ही यदि ये हमारे इन युवकों में से किसी एक को शिष्य बनाकर अपना अद्भुत ज्ञान उसे दे सकें, तो हम भी अनुगृहीत होंगे। मुझे आप लोगों को यह कहते हुए बड़ी प्रसन्नता है कि ये इसके लिए सहर्ष सहमत हो गये हैं !’

पास खड़े शुष्ण ने आगे बढ़कर कहा, ‘महापणिक, वृषु को यह अवसर दें !’

‘बहुत अच्छा प्रस्ताव है। मैं इस पर विचार कहंगा। उसने आज मेरी प्राण-रक्षा करके स्वयं ही यह अधिकार अर्जित कर लिया है, किंतु इसके पिता महाभाग भांडव्य से भी तो पूछना पड़ेगा। यह युवक तो और भी अधिक सम्मान का अधिकारी है। यथावसर उस पर विचार किया ही जायेगा।—अब इस आक्रमणकारी विद्रोही युवक अत्रि के बारे में...’

‘उसे जीवित जला दिया जाये ! यही उसके लिए उपयुक्त दंड होगा ! उसे हमारे सुपुर्द कर दिया जाये... उसे ऐसा दंड मिलना चाहिये कि भविष्य में किसी को ऐसे जघन्य क्रूर कर्म करने का साहस ही न हो !’ भीड़ में सब ओर से आवाजें आने

सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये

दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

लगीं।

महापणिक ने अब ऊंची पीठ पर आसीन सहज करुणमूर्ति, निरुद्धेग बैठे दिवांबर मुनि की ओर देखा और बड़े ही संभ्रम के साथ सिर झुकाकर कहा, 'भंते भगवन्, आपने सब कुछ सुना है! आपकी क्या आदेशना है?'

महाश्रमण ने अपने मीलित नेत्रों को कुछ खोला, और मंद स्वर में कहा, 'उसे सबसे बड़ा दंड दें, महापणिक!'

सारी सभा हर्षोल्लास से चिल्ला उठी, 'महाश्रमण की जय! महाश्रमण आदिनाथ ऋषभनाथ की जय!' और कुछ उत्साही व्यक्ति अपने शिकार की ओर आगे भी बढ़े। अन्य कई लोग महाश्रमण के इस आदेश से स्तंभित भी हो गये। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि महाश्रमण ऐसा हिंसाप्रधान आदेश दे सकते हैं!

इसके पहले कि महापणिक कुछ कहें, नासत्य ने खड़े होकर कहा, 'महापणिक, यह अन्याय है, और मैं इसका विरोध करता हूँ। यदि ऐसा है तो मुझे भी वही दंड दिया जाये जो अत्रि कौं दिया जा रहा है। साधन अन्य रहा हो, पर जो कुछ उसका उद्देश्य है, वही मेरा भी है।

'व्रुटि यही है, महापणिक, कि उसका उद्देश्य सीमित है, उसका साधन भी व्रुटि-पूर्ण है। वह आर्य संस्कृति का विस्तार चाहता है, आवश्यकता पड़ने पर प्राचीन को जड़-मूल से उखाड़कर भी। वह

शीघ्रता में जो है! आर्य-संस्कृति का विस्तार मैं भी चाहता हूँ, किंतु अपनी उपलब्धियों से अन्य समूहों को लाभ पहुंचाकर, सम्मोहित करके। मैं भी नवनिर्माण चाहता हूँ, प्राचीन का विनाश करके नहीं, हो सके तो प्राचीन को नवीन बनाकर! मैं प्रतीक्षा कर सकता हूँ, इसलिए कि मैं जानता हूँ पुराना सब बुरा नहीं होता, नया भी सब अच्छा नहीं हो सकता। अंतर यह है कि मैं प्रतीक्षा कर सकता हूँ, अत्रि नहीं करना चाहता!'

और साथ ही ऊंचे आसन से गंभीर मुद्रा में महाश्रमण की वाणी मुखरित हुई, 'सबसे बड़े दंड की व्यवस्था भी किसी ने नहीं समझी, महापणिक!'

'सब आपको सुनेंगे, अर्हत्, समझेंगे! आप आदेश करें!' महापणिक ने कहा।

'मुझे निराशा हुई कि लोगों ने अभी तक मुझे नहीं समझा। अपराधी के लिए सबसे बड़ा दंड है क्षमा!—क्षमा ही तो वीरों का भूषण है! हिंसा का प्रतिरोध प्रतिहिंसा नहीं है। तुम नहीं जानते, हिंसा होती है हिम का कंदुक, जो लुढ़कता है तो अपने चारों ओर अधिकाधिक हिम संग्रह करता चलता है! उसे बढ़ाओ मत उसे रोको, उसे एकदम से नकार दो कि फिर उसका उत्तर न रहे! वह अहिंसा ही है, जो उसे सर्वथा नकार सकती है। हिंसा का उत्तर प्रतिहिंसा से दिया जा सकता है, किंतु अहिंसा का क्या प्रत्युत्तर हो सकता है? तुमने मुझे

हिंदी डाइजेस्ट

दि इंडियन टूल मैनुफेक्चरर्स लि.

१०१, सायन रोड, सायन, बंबई-४०० ०२२

सुविश्चित होकर चुनाव कीजिये

‘डेंगर’ ट्विस्टर ड्रिल्स रोमर्स, कटर्स, टैप्स, टूलबिट्स और
माइक्रोमीटर्स डेंगोलाय कार्बाइड टूल्स और टिप्स
डेंगर-साके गियरहाब्स और गियरशॉपिंग कटर्स



प्रतिष्ठान का प्रतीक

आमंत्रित ही क्यों किया, श्रावक ? मैं तो आना नहीं चाहता था। तुमने तो कहा था, यहां समारोह आयोजित है ! समारोह, जहां सब मिलकर आरोह करें, ऊपर चढ़ें। किसी को ढकेलकर, नीचे गिराकर समारोह नहीं किया जा सकता। मुझे प्रायश्चित्त करना होगा।' और वे सहसा अपने आसन से उठकर नीचे भीड़ के सम्मुख खड़े हो गये और बोले, 'उस अभागे आक्रमणकारी के स्थान पर मैं खड़ा हूं। एक समारोह को देखने की लिसा से मैंने इस शरीर को कलुषित किया है। इसे अग्नि समर्पित हो जाना चाहिये।—मैं उस अपराधी का अभियोग अपने ऊपर लेता हूं ! करो अग्नि प्रज्वलित ! समारोह हो...'

सहमकर भीड़ पीछे हट गयी, किंतु तभी महापणिक भी आगे बढ़े और उन्होंने महाश्रमण के पैर पकड़ लिये !

०००

बस इसके आगे मुरारीलाल का नोट है : 'लगता है, आगे की कुछ किरचियां गायब हो गयी हैं। हो सकता है, टिकर के अनुवाद किये कागज ही न हों। बीच-बीच से किरचियों का इस तरह गायब हो जाना असंभव नहीं है। पांच-छह हजार वर्ष की कालावधि क्या कम होती है ?—किरचियां तो किरचियां, सभ्यताएं, साम्राज्य, और प्रजातियां तक इतिहास के पतों में छिप गयी हैं, खो गयी हैं। इसमें अस्वाभाविक ही क्या है ?'

सचमुच अस्वाभाविक क्या है, और इस कथा में अब प्रासंगिक भी क्या है ?—कहीं यह तो पढ़ा है कि नासत्य ने ही अत्रि को दस्युओं द्वारा जलाये जाने से बचाया था, वह इससे प्रमाणित हो ही जाता है। आगे शायद महापणिक ने अनुनय-विनय द्वारा महाश्रमण को आत्मदाह से विरत किया होगा, आखिर आत्मदाह भी तो हिंसा ही है न ! अत्रि निष्कासित होकर स्वदेश लौट गया होगा। रहे नासत्य। उनका भी उल्लेख है। आगे चलकर वे ही तो अश्विनीकुमार के नाम से प्रख्यात हुए हैं ! शायद कुछ समय तक इन पणिकों की नगरी में ससम्मान रहे होंगे। विषपला को स्वस्थ करने का उल्लेख भी पढ़ा है। संभवतः उन्होंने बृबु को चिकित्सा-शास्त्र में पारंगत किया होगा। विदेशी होने के कारण शायद दुर्योधन में वे अधिक रह न सके, या स्वेच्छा से ही अनुमति लेकर स्वदेश लौट गये हों। गुणी तो थे ही। आर्यों ने ही उनका अभाव अनुभव किया हो।

सो, कुछ किरचियां गायब भी हो गयी हों तो उससे क्या अंतर पड़ता है ? कथा मजेदार है। मुरारीलाल को प्रश्रय देना ही होगा। आचार्य द्विवेदीजी ने भी तो आखिर अनामदास को प्रश्रय दिया ही था। वे बहुत दूर पहुंच चुके थे, और मैं यात्रा प्रारंभ ही करना चाहता हूं, तो इससे क्या हुआ ?—चलो, सोया जाये। मोमबत्ती भी चुक रही है !



The Steadying Grip

Does your splined component wobble like a spinning top during post broaching operations? Turning your circle perhaps, into an oval ?

Get a firm grip on the component which is being put through such post broaching operations as turning, milling, gear cutting, gear grinding, gear shaving or inspection.

Dagger-Master Spline Mandrel locates the component correctly so that the post broaching operation is accurately aligned with respect to the broached profile. Prevents vibration and ovality.

So make a Dagger - Master Spline Mandrel a permanent fixture in your inventory.

Manufactured by Dagger Forst Tools Ltd in collaboration with W. Forst Engineers (Coleshill) Ltd. Birmingham, England.

Dagger-Master Spline Mandrel ensure stability and precision.

For further details contact :

DAGGER FORST TOOLS LTD.

First Pokhran Road, Thane, - 400606;
Tel. 593531 (4 lines) Cable : DAGERFORST THANE (INDIA)

युगद्रष्टा मुंशी प्रेमचंद

प्रेमचंद शताब्दी समारोह समिति के तत्वावधान में भारतीय विद्या भवन द्वारा आयोजित प्रेमचंद शताब्दी समारोह में, गत २९ नवंबर को अध्यक्ष पद से बोलते हुए जस्टिस धर्माधिकारी ने कहा कि अपने समय के शोषण और उत्पीड़न को अपनी रचनाओं के माध्यम से जिस प्रभावशाली ढंग से प्रेमचंद ने जनमानस तक पहुंचाया है, उसके लिए देश उनका सदा ऋणी रहेगा। वे युगचेता के रूप में सदैव स्मरण किये जायेंगे। विशेषकर आज के घटते जीवनमूल्यों के समय उनकी रचनाओं का महत्व और भी अधिक है।

उर्दू की श्रीमती लेखिका सलमा सिद्दीकी ने कहा कि प्रेमचंद किसी भाषा विशेष के नहीं, बल्कि वे अपने जमाने के शानदार लेखक थे। जनता की भाषा में उन्होंने जनता की जीवन कथा को बड़ी खूबी से उतारकर जमाने को जगाया है। उनकी रचनायें, अपने समय की जिंदगी का सही दस्तावेज हैं।

श्री महावीर अधिकारी ने उन्हें भारतीय मजदूरों और किसानों में जागृति लाकर क्रांति का शंखनाद करने वाला महान लेखक बताया। डा. शांतिलाल सोमैया ने कहा कि प्रेमचंद साहित्य हमें समाज को उन्नत बनाकर चरित्रवान जीवन जीने

की प्रेरणा देता है। प्रारंभ में भारतीय विद्या भवन के नियामक महामहोपाध्याय प्रो. ज. ह. दवे ने अतिथियों का स्वागत किया। समारोह समिति के कार्याध्यक्ष श्री हरिशंकर ने समिति की गतिविधि पर प्रकाश डाला। उपाध्यक्ष श्रीमती प्रभा मोघे ने पुष्प-गुच्छों से अतिथियों का अभिनंदन किया। अंत में श्री गिरिजाशंकर त्रिवेदी ने आभार दर्शन किया।

इस अवसर पर प्रेमचंद लिखित लोकप्रिय उपन्यास 'गोदान' पर आधारित फिल्म का प्रदर्शन किया गया। प्रेमचंद की लेखनी को परदे पर मूर्त रूप में देखकर जन-समूह आह्लादित हो उठा।

भरत नाट्यम्-समारोह

भारतीय विद्या भवन के 'फाउंडेशन एंड कल्चरल कोर्सेस' विभाग की ओर से भरत नाट्यम् के पाठ्यक्रम के समादरतार्थ एक आयोजन पिछले नवंबर में भवन में आयोजित किया गया था। संचालन किया था श्रीमती अंजनी अरुणकुमार एम. ए. ने और उनकी सहायक थी श्रीमती प्रेरणा देसाई और श्रीमती अंजली भाटवडेकर। इस कार्यक्रम में भाषण, स्लाइड प्रदर्शन और रिकार्ड किया हुआ संगीत प्रस्तुत किया गया। पांच दिनों के इस कार्यक्रम के अंतिम दिन संगीत के साथ भरत नाट्यम् को पूरी साज-सज्जा के

दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

रजिस्टर्ड कार्यालय :

लालबहादुर शास्त्री मार्ग, भांडुप, बंबई-४०० ०७८

केबल : 'लकी' भांडुप

फोन : ५८४३८१

१.

नानफेरस यूनिट

सेमिस रोलिंग विभाग :

नानफेरस शीट, स्ट्रिप और फाइल,
नानफेरस प्लेट और सर्कल

एलाय और कार्स्टिंग विभाग :



एंटीफ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स

गनमेटल्स और ब्रोन्जेस, ब्रेजिंग सोल्डर्स और टिन सोल्डर्स,
फाइन जिक डाइकार्स्टिंग एलाय्स 'इस्माक ३' अल्युमिनियम
बेस्ड डाइकार्स्टिंग एलाय्स, ब्रास और ब्रोन्ज राड्स सालिड
कोर्ड, फिनिशड कार्स्टिंग रफ और मशीन्ड ।

२.

फेरस यूनिट :

फाउंड्री डिविजन

एस० जी० आयरन और स्पेशल स्टील कार्स्टिंग्स

मेलिएबल आयरन कार्स्टिंग्स

आइ० एस० एस०, बी० एस० एस०, एस० एस० आइ० एस०

के स्पेसिफिकेशन्स तथा ग्राहकों की विशेष आवश्यकता

के अनुसार सप्लाई किये जाते हैं ।

साथ प्रदर्शित किया गया ।

०००

डॉ. पुसालकर व्याख्यानमाला

पुराणों और भारतशास्त्र के विख्यात विद्वान डॉ. ए. डी. पुसालकर के सम्मानार्थ इस वर्ष के इन्डाउमेंट लेक्चर का समारंभ सिराक्यूज यूनिवर्सिटी के मानव-विज्ञान विभाग के अध्यक्ष प्रो. स्वामी अगेहानन्द द्वारा दिसंबर मास में भारतीय विद्या भवन में हुआ । इस आयोजन की अध्यक्षता भारतीय विद्या भवन के मानद नियामक महामहोपाध्याय प्रो. ज. ह. दवे ने की । आभार व्यक्त किया श्री आर. ए. कश्यप ने ।

०००

भगवद्गीता पर विवेचन

भारतीय विद्याभवन के 'फाउंडेशन एंड कल्चरल कोर्सेस' विभाग की ओर से भगवद्गीता व्याख्यानमाला का सात दिवसीय कार्यक्रम दिसंबर में आयोजित किया गया था । गीता जयन्ती के इस अवसर पर भगवद्गीता के १५ वें अध्याय - पुरुषोत्तम प्राप्त योग - पर विवेचन स्वामी शिवानन्द के भूतपूर्व सचिव स्वामी ओम तत् सत् आनन्द ने किया । अंतिम दिन समापन समारोह की अध्यक्षता भवन के मानद नियामक महामहोपाध्याय प्रोफेसर ज. ह. दवे ने की एवं श्री आर. ए. कश्यप ने आभार व्यक्त किया ।

०००

नवनीत के चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु. । दो वर्ष ४६ रु. । तीन वर्ष : ६६ रु. । विदेशों में समुद्री डाक से : एक वर्ष ६० रु. । दो वर्ष : १०५ रु. । तीन वर्ष : १५० रु. । विदेशों में हवाई डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का १२० रु. । दो वर्ष का २१० रु. । तीन वर्ष का ३०० रु. ।

एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष : १५० रु. । दो वर्ष : २७५ रु. । तीन वर्ष ४१० रु. । - वितरण व्यवस्थापक

प्रो. झाला स्मारक व्याख्यान

गुजराती के सुप्रसिद्ध लेखक और समीक्षक श्री चंद्रवदन मेहता ने गत १० जनवरी ८१ को भारतीय विद्या भवन में प्रो. झाला स्मारक व्याख्यानमाला के अंतर्गत 'श्री ज्योतीन्द्र दवे-एक प्रख्यात गुजराती हास्यकार' विषय पर बोलते हुए हास्यरस के इतिहास पर प्रकाश डाला । उन्होंने बताया कि हास्यरस संस्कृत साहित्य का शृंगार माना जाता है और वह संस्कृत साहित्य में खूब पाया जाता है । गुजराती साहित्य में भी हास्यरस को प्रधान रस के रूप में माना जाता है । स्व. ज्योतीन्द्र दवे को उन्होंने हास्यरस के महान लेखक के रूप में श्रद्धांजलि अर्पित की । उन्होंने प्रो. झाला के हास्यरस के दृष्टिकोण का भी वर्णन किया । म. म. प्रो. जे. एच. दवे ने समारोह की अध्यक्षता की और प्रारंभ में श्री चंद्रवदन मेहता का स्वागत किया ।



may your spirits
soar high
throughout the year
in colourful
Khatau Voiles.



**Khatau
VOILES**

THE KHATAU MAKANJI
SPG. & WVG. CO. LTD.
Regd. Office:
Laxmi Building, 6, Shoorji Vallabhai St.
Bombay-400 038.
Mill:
Haines Road, Byculla, Bombay 400 051.
Wholesale Shop:
Mulji Jetha Market, Bombay 400 022.

KMS/71-0/PREM ASSOC

दो क्षण तो हँस लें

एक था गंजा वृद्ध। किसी दवाई के नियमित उपयोग से उसके बंजर सर पर सात-आठ बाल उग आये। प्रसन्न मन वह नाई के पास पहुँचा।

वृद्ध को देखकर विस्मय और खीझ-पूर्वक नाई ने व्यंग्य किया, 'क्यों महाशय, इन्हें गिनूँ या सेटिंग कर दूँ ?'

लगभग शरमाते हुए वृद्ध ने उत्तर दिया, 'आप इन्हें काले कर दीजिये।'

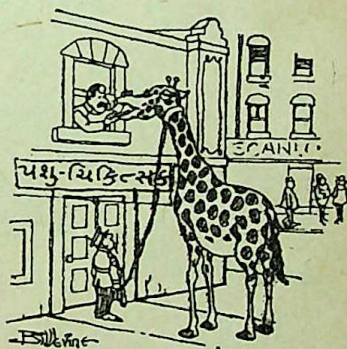
अपनी होनेवाली मंगेतर के लिए अंगूठी खरीदने के लिए रामबाबू स्वर्ण-आभूषणों की दुकान पर पहुँचे। एक अंगूठी पसंद कर रामबाबू ने कहा—'इस अंगूठी पर आप यह लिख दीजिये—रामबाबू की ओर से चंदा को सप्रेम भेंट।'।

रामबाबू को एक नज़र देखकर दुकानदार ने कहा—'मेरी सलाह मानें तो इतना ही काफी है—रामबाबू की भेंट।'।

एक नये हलवाई ने अपनी दुकान पर निम्न प्रकार का साइनबोर्ड लगवाया : 'हमारी दुकान की मिठाइयाँ जिले-भर में सर्वश्रेष्ठ हैं। ये सैकड़ों मक्खियाँ गलत नहीं हो सकतीं।'।

रामबाबू क्रोधपूर्वक दर्जी से कह रहे थे—'कमाल कर दिया आपने। पूरे सोलह साल हो गये, अब तो मेरा सूट दे दीजिये। लड़का भी जवान हो गया है। उसी के काम आ जायेगा।'।

दर्जी चुपचाप सुनता रहा, फिर चिढ़कर अपने सहायक से बोला—'मूर्ख, तुम्हें मैंने कितनी बार समझाया कि इन साहब लोगों के अर्जेंट काम मत लिया करो।'।



कृषि-सम्मेलन में एक उच्चाधिकारी कह रहे थे :

'हमारे देश में विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली है कि हज़ारों बीघा जमीन पर फसल तैयार करने के लिए सिर्फ़ इतनी खाद की आवश्यकता होगी, जो एक जेब में आ जाये।'।

heros'-AS-151 HN

मुनिया रानी बढ़ती जाये
घने काले, बालों का जादू जगाये
मोती से सफेद दांतों को चमकाये



गाय छाप काला दन्त-मंजन
—उसके दांतों को चमकाये
मोती से सफेद व मजबूत बनाये

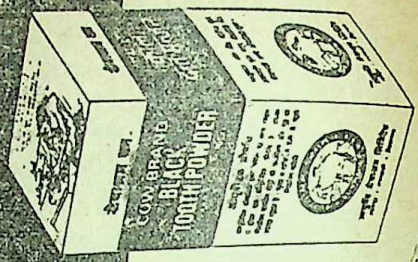
गाय छाप ब्राह्मी औवल केश तेल
—उसके बालों को और घने बनाये
सबको मुहैया मन में भाये
बालों का ये कालापन, घना व चमकीलापन

सेवाश्रम का गाय छाप ब्राह्मी औवल केश तेल
और काला दन्तमंजन



अपनी दुखरता को
वैकल्पिक रूप से दूनाये रहिये

आयुर्वेद सेवाश्रम लिमिटेड
बंगलूरु • बालुगी • इन्दौर



‘सच है, श्रीमान्जी, और फसल इतनी होगी कि वह दूसरी जेब में आ जाये।’
एक श्रोता ने कहा । —अनुराग शर्मा

‘स्त्रियों को गुणा, भाग और जोड़ से कुछ ज्यादा भार होता है। वे अपनी उम्र में सवा दो से भाग देती हैं, और वस्त्रों की कीमतों में दो से गुणा करती हैं।’

आदम के जीवन में दो समय ऐसे होते हैं, जब वह औरत को समझ नहीं पाता ।’

‘अच्छा ! कौन-कौन से ?’

‘उसकी शादी के पहले और शादी के बाद ।’

कपड़े धोने की मशीन बेचनेवाली एक कंपनी ने दूकान के बाहर विज्ञापन लगाया :

‘अथक परिश्रम करवा के, अपनी पत्नी को न मारिये । एक मौका हमें भी दीजिये ।’

‘जब मैं शीर्षासन करता हूं तो लगता है कि शरीर का सारा खून सिर में जमा हो रहा है, पर खड़े होने पर वह पैरों की ओर नहीं जाता ।’

‘इसलिए कि तुम्हारे पैर खाली नहीं हैं। खून तो खाली जगह में ही भरेगा । और तुम्हारा दिमाग.... !’

—डा. गोपालप्रसाद ‘वंशी’

उच्च स्तर के प्रति अत्यन्त विख्यात
के लिए सुविख्यात

जेनिथ स्टील पाइप्स
एंड इंडस्ट्रीज़ लि.

१९५५, चचंगेट रिक्लेमेशन्स
बंबई-४०० ०२०

फोन : २९४४४५, टेलीग्राम : ०११-२४५४
ग्राम : ZENPIPES

अत्युत्तम स्टील पाइपों, औद्योगिक
छुरियों और विशेष फोखार के
निर्माता ।

While purchasing cotton cloth, Yarn, hessian, sacking,
carpet backing and other Jute & Cotton Products,
Please insist on quality production

We are always ready to meet the exact type of
your requirement.

(GUJARAT)

NEW GUJRAT COTTON MILLS LIMITED

4 & 4—A, Red Cross Place
CALCUTTA—700 001.

Phone : 23-7197, 23-6973

Telex : 021-2196

COTTON MILLIS

Unit No. 1 —Naroda Road, Ahmedabad.

Unit No. 2 —Outside Dariapur Gate, Ahmedabad.

JUTE MILLS

Kanoria Jute Mills,
Sijberia, P. O. Uluberia.
Dist. Howrah (W. B.)

SPINNING MILLIS

Shree Hanuman Cotton Mills,
Fuleshwar, P. O. Uluberia,
Dist. Howrah (W. B.)

(पृष्ठ ४७ का शेषांश)

लोकव्याप्त— शाश्वत, वर्ण-शून्य, गंध-शून्य, रस-शून्य, स्पर्श-शून्य, जीव और अणु की गतिक्रिया में सहायक, अरूप, अजीव, अवस्थित, असंख्य प्रदेशात्मक, पदार्थ-मात्र की गति का निष्क्रिय माध्यम, अमूर्ति, अखण्ड सत्ता है। वस्तुतः आइन्सटाइन के ईश्वर और महावीर के धर्म-द्रव्य में कोई विशेष अंतर दृष्टि-गोचर नहीं होता है। आइन्सटाइन लोक और अलोक की भेद-रेखा बताते हुए लिखते हैं, 'लोक परिमित है, अलोक अपरिमित। लोक के परिमित होने के कारण द्रव्य अथवा ऊर्जा लोक के बाहर नहीं जा सकती। लोक के बाहर उस ऊर्जा (द्रव्य) का अभाव है, जो गति में सहायक होती है।' महावीर के धर्म-द्रव्य के साथ कितना समन्वयपूर्ण विवेचन है।

स्याद्वाद के अनुसार पदार्थ ही वह है, जिसमें प्रतिक्षण नये स्वरूप की उत्पत्ति, प्राचीन का विनाश और मौलिक पदार्थत्व की निश्चलता हो। आधुनिक विज्ञान का पदार्थ की अविनाशिता का सिद्धान्त, पदार्थ की सुरक्षा का सिद्धान्त तथा ऊर्जा संरक्षण का सिद्धान्त महावीर के उपर्युक्त विचारों की पुष्टि करता है; क्योंकि ऊर्जा और पदार्थ एक ही तत्त्व हैं और आइन्सटाइन के सिद्धांत के अनुसार ऊर्जा तथा पदार्थ को एक-दूसरे में परिणित किया जा सकता है (ई=एम सी^२)। ऊर्जा अविनाशी तथा शाश्वत है, इसलिए

ऊर्जा जहां कहीं और जब कभी भी नष्ट होती है, वहां वह नष्ट न होकर दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाती है और इस परिवर्तन में ऊर्जा की मात्रा ज्यों-की-त्यों स्थित रहती है। प्रतिक्षण परिवर्तन के विषय में महावीर का स्याद्वाद और आइन्सटाइन का सापेक्षवाद एक-दूसरे की सत्यता के पोषक हैं।

महावीर दर्शनशास्त्री आइन्सटाइन की परमाणु-शक्ति और महावीर की तेजो-लेश्या में जो यत्किंचित साम्य देखते हैं, वह निराधार और भ्रान्तिपूर्ण है। परमाणु-शक्ति दो विधियों से उत्पन्न होती है—परमाणु-संलयन तथा परमाणु-विखण्डन। आइन्सटाइन के परमाणु-संलयन तथा परमाणु-विखण्डन के सिद्धान्त महावीर दर्शन के 'पूरण गलन धर्मत्वात् पुद्गलः' विचार को परिपुष्ट करते हैं—पूरण अर्थात् मिलन या संयोग, गलन अर्थात् वियोग या पृथक् होना।

पच्चीस सौ वर्ष पूर्व के 'गांधी' महावीर का उद्घोष था 'अहिंसा परमो धर्मः'। महावीर ने अहिंसा को व्यक्तिगत जीवन में सूक्ष्मतापूर्वक लाने पर जितना जोर दिया, उतना पहले और बाद में भी किसी ने नहीं दिया। बीसवीं शताब्दी के 'महावीर'—गांधी का अनोखा आविष्कार था—अहिंसा को संगठित कर उसे सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन-अभियान में प्रविष्ट करना। आइन्सटाइन भी जोर-जबरदस्ती या लश्कर-

(पृष्ठ ६३ का शेषांश)

भारतीय समाज में ऐसा न होने का कारण यह था कि भारत ने नारी को इतने स्पष्ट रूप से हेय नहीं माना। नारी को उसने नीचे रखा है अवश्य, पर उसे पुरुष की उच्चतर सत्ता के साथ जोड़ देने की चेष्टा की है। पुरुष का अनुगत करके रखने पर भी उसे सहधर्मिणी का पद देने की चेष्टा की है। दासी-भाव से ही उसकी साधना की सार्थकता का पथ निर्णीत किया है। नारी ने इसमें अमर्यादा का बोध नहीं किया। किसी अन्य प्रकार की साधना की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया। तभी भारत की नारी इतनी असहाय है। एक धर्म की, आदर्श की माया जब अंतरात्मा को ग्रस्त कर लेती है तो उससे मुक्ति पाना आसान बात नहीं होती।

नारी को हमने प्राण-शक्ति का विग्रह कहकर दमन किया है। पर इससे वह

शाही के खिलाफ थे। यही कारण है कि आइन्सटाइन महावीर की तरह दरअसल आजीवन शांतिवादी रहे हैं और गांधी को इस युग की एकमात्र महान राजनैतिक विभूति मानते रहे हैं और बुद्धिजीवियों का आवाहन करते हुए वे कहते हैं कि गांधीवादी अहिंसात्मक असहयोग ही, जो कि महावीर के अनेकान्त स्याद्वाद और अहिंसा पर आधारित है, बुद्धिजीवियों के लिए सबसे सही और क्रांतिकारी रास्ता हो सकता है।



प्राण-शक्ति के क्षेत्र में ही आवद्ध हो गये हैं। प्राण-शक्ति से ऊपर उठकर मनोशक्ति के क्षेत्र में पूर्णतया उठ न पाने के कारण ही प्राण-शक्ति का क्षेत्र उसके लिए संकीर्ण हो उठा है और वह भी आवद्ध हो रहा है। नारी का स्वभाव और स्वभाव नारी का वैशिष्ट्य इसी प्राण-क्षेत्र में रह सकता है। पर यह नहीं जा सकती कि नारी भी उसमें भी मनोमय सत्ता है, उसे विकास और इसे फलीभूत करने की कता है। पुरुष का भी एक प्राणमय क्षेत्र है और इसी क्षेत्र में नारी ने उसके अधिकार स्थापन किया है। इसी पुरुष के मन और प्राण में एक विभक्ति दिखायी देती है। कालक्रम से वही उसी व्यवस्था के कारण उत्पन्न हो गया है जिस तरह पुरुष ने अपनी मनोमय सत्ता को आधार बनाकर एक व्यक्ति निजस्व व्यक्तित्व पाया है, उसी तरह नारी को अपनी प्राण-शक्ति पर ही होकर अपनी मनोमय सत्ता, अपने निज व्यक्तित्व को पाना होगा। समाज में पुरुष और नारी के मिलन का एक नया पकड़ना होगा, दोनों के इसी व्यक्तित्व पकड़ना होगा। पर पहले पुरुष की नारी के व्यक्तित्व के उद्बोधन की आवश्यकता है। पुरुष के साथ संबंध पूर्व अपने मनोमय पुरुष के साथ प्राण-शक्ति का परिणय ही नारी अध्यात्म परिणय है, प्रथम और दीक्षा है।

के सदृश मां की पुकार सुनकर आत्म-
हत्या करते हैं, उनकी मुक्ति शीघ्र होती
है, किंतु जो लोग क्रोध के वशीभूत होकर
आत्महत्या करते हैं, उनकी मुक्ति में देर
लगती है। ये लोग पारलौकिक जीवन
में कष्ट पाते हैं। इन्हें पहले नरक में
घोर यंत्रणा का भोग करना पड़ता है।
जिनकी जमाना में मृत्यु हुई है, उनकी दूसरी
व्यवस्था है। यहां उन लोगों का शिवमंदिर
स्थान पर एक बड़े संन्यासी की
आत्मा रहती है। वह उन सबको शिष्य
बनाकर रखते हैं। फल-फूल खाने को
देते हैं। वे लोग परम शांति में रहते हैं।
महादेव की सेवा करते-करते अंत में
उद्धार होता है।

०००

आजकल कई दिनों से एक आत्मा के
साथ मेरा परिचय हुआ है। ये फीरोजपुर
में वकील थे। थोड़े दिन पहले मृत्यु
हुई थी। उनकी मृत्यु शांति से नहीं हुई
थी। इसीलिये कुछ अशांति में हैं।
इस समय वे तृतीय श्रेणी में वास कर रहे
हैं। वे ऋण के कारण से आवद्ध हैं। यदि
भगवान किसी समय बंधन से मुक्त करें,
तब शांति पायेंगे। मृत्युलोक में रहकर
लोग केवल रुपये के लिए ही व्यग्र रहते
हैं। भगवान को कितने लोग पुकारते
हैं? स्त्री-पुत्र, मान, संभ्रम-ऐश्वर्य, कुछ
भी साथ नहीं जायेगा। केवल भगवान का
नाम ही साथ जायेगा। जिस नाम से

सब प्रकार का पाप नष्ट होता है और
आत्मा पवित्र होती है, वही मुख्य नाम
है। उसके जप से अनंतधाम में फिर कष्ट
पाना नहीं होता। इसी नाम का आश्रय
ग्रहण करो। देखोगी दोनों लोकों में
शांति है।

०००

आज मैं एक स्थान देखकर आया हूं।
कितनी छोटी-छोटी आत्माएं हैं। उनके
साथ जितेंद्र के लड़के को भी वहां देखा।
ये केवल हरिनाम गान करते हैं। रामा-
यण-महाभारत की कथाएं सुनते हैं।
मुझको देखकर उसने कहा—‘आप एक
दिन मेरे माता-पिता और दादी को
दिखा दीजिये।’ मैंने उन्हें साथ लाकर
दिखा दिया। उसे बीच-बीच में अपने
दादा के साथ बात करते देखता हूं, शांति
में हैं। शीघ्र और भी उन्नति होगी। यदि
भगवान में एकांत मन रहे तो उन्नति में
देर नहीं लगती। चाहिये केवल भक्ति
विश्वास और दिन-रात उनका नाम-
कीर्तन।

०००

आज एक शिवमंदिर में गया था।
वहां १०-१२ वर्ष के एक बालक की आत्मा
को देखा। इतने दिन यहां आये हुए उसे
कभी देखा नहीं था। अन्य आत्माओं से
पूछकर जान पाया कि इसका घर मूलचर
में है। लड़के का नाम रतन है। जल में
डूबकर मर गया था।



२१ लाख नये लोगों ने पिछले साल डेट टिकिया को आजमाया, अपनाया इसकी ठोस वजह- डेट की शानदार धुलाई

आज पहले से कहीं ज्यादा लोग डेट टिकिया की शानदार धुलाई पसन्द करते हैं; कहते हैं यह चकाचौंध सफ़ेदी लाती है, कहीं ज्यादा किफ़ायत करती है.

उत्तम डिटर्जेंट टिकियों का विकास	
	नये ग्राहक
डेट टिकिया	२१,००,०००
दूसरी उत्तम टिकिया	१४,००,०००
कुल ४९,००,००० नये ग्राहक	
स्रोत: रिटेल स्टोर अड्डिट रिपोर्ट: जनवरी - दिसम्बर, १९७९ इस्तेमाल का आधार: १ टिकिया, दूर महीने, दूर व्यक्ति	

२१,००,००० नये लोग तो डेट टिकिया इस्तेमाल करने ही लगे,
क्या आप भी?



डेट टिकिया
आज़माइए
सफ़ेदी अपनाइए

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्याभवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००७
के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
बंबई-४००००४ में मुद्रित।

ताज़गी की एक लहर!

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं।
जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की
लहर। आप अपने आपको कुछ और
ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।
क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके
लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी
आस पास बिखरे सूनेपन में
ताज़गी भर देते हैं।

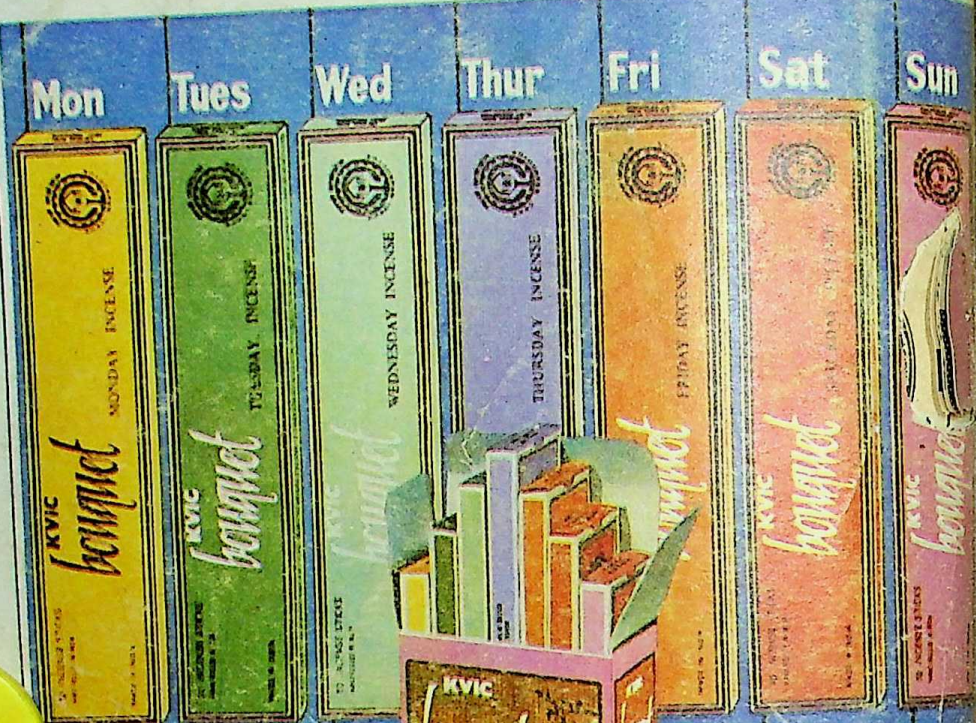


जियाजी
सूटिंग-शर्टिंग
कॉटन प्रिंट्स



जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड,
बिर्ला नगर, ग्वालियर (म.प्र.)

हफ्ते के सात दिन, नई सुगंध हर दिन...



KVIC अगरवत्तियों का बूके

७ विभिन्न सुगंध वाली
अगरवत्तियों का अनोखा पैक.

बुके खरोदिए
या अपनी मनपसंद
एक दिन की सुगंध खरीदिए!



- सुगंध प्रेमियों के लिए यह आनंद भरा पैक है।
- किफायत प्रेमियों के लिए यह ऐसे बचाने वाला पैक है।
- यह एक अनुपम उपहार भी है!



डायरेक्टोरेट ऑफ मार्केटिंग (माचिस विभाग)

खादी एण्ड विलेज इंडस्ट्रीज कमीशन

कोरा ग्रामोद्योग केंद्र, शिम्पोली, बोरीवली (पश्चिम), बम्बई-४०० ०९२

फोन: ६६५७५५. ● तार: MATCHDEZIN. ● टेलीक्स: ०११-४९२३

नवनीत

हिन्दी डाइजेस्ट

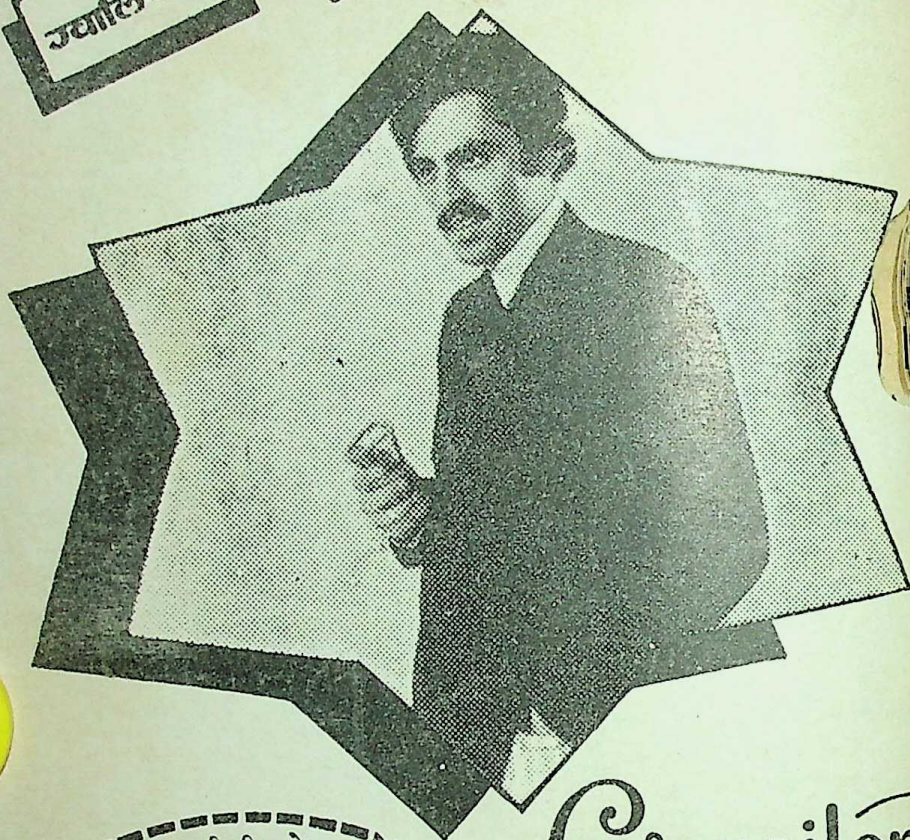


मार्च, १९८१

मूल्य रु. २.२५

ग्वालियर के

क्षितिज पर नया सिनारा...



ग्रासीलीन से
बने कपड़े शीघ्र ही
सभी प्रमुख स्टोर्स पर
उपलब्ध



दि ग्वालियर रेयन सिल्क मेन्युफैक्चरिंग
(वीविंग) कम्पनी लिमिटेड
स्टेपल फाइबर डिवीजन
विरलाग्राम, नागदा (एम.पी.)

Grasilene

सूटिंग्स/शर्टिंग्स
तथा अन्य कपड़े

वैज्ञानिक मिश्रित धागा ग्रासीलीन के बने

Grasilene

कृत्रिम सामान्य विस्कोज
तथा अन्य प्राकृतिक रेशों से बना एक
आश्चर्यजनक उच्च कार्यकारिता वाला
मिश्रित धागा !

भगवान् स्वामिनारायण
द्विशताब्दी महोत्सव
१९८१-१९८२



‘ मैं अखंड रहा हूँ ’

सहजानंद स्वामी के अन्तर्धान होने पर भक्तों में तीव्र
विरह-वेदना व्याप्त हो गई। उनकी अंत्येष्टि किया पूर्ण
कर गुणातीतानंद स्वामी खेतमें आप। वहाँ में में पानी
की धारा के समीप उगी हरी-हरी दूध को देखकर उन्होंने
मोचा कि इसका जीवन है जल और सो वह लहलहा रही है; हमारे
जीवन महाराज...वे तो चले गये। इस विचार से वे मूर्च्छापीन
हो गये। वहीं सहजानंद स्वामी ने उन्हें दर्शन दिया और कहा,
‘ मैं गया कहाँ हूँ, आप में ही अखंड रहा हूँ। ’ यह दिव्य
दर्शन इस तथ्य की साक्षी प्रदान करता है कि सहजानंद स्वामी,
गुणातीत संत के माध्यम से इस पृथ्वी पर अखंड प्रगट हैं। अनेक
बार ऐसा होता है कि धर्म के संस्थापक के गमन के पश्चात्
उनके द्वारा निमित्त प्रसाद दहने लग जाते हैं। परन्तु
स्वामिनारायण तो युग-युग के स्वामी हैं। उन्होंने कहा,
‘ ये गुणातीतानंद स्वामी मेरे धाम हैं, जिनमें मैं दिव्य स्वरूप में
अखंड रहता हूँ। ये अक्षर के अवतार हैं। ’

भौतिक देह का त्याग करने के पश्चात् जीवों के ऊर्ध्वारोहण का
महान् कार्य उन्होंने अपने उत्तमोत्तम भक्त अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद द्वारा जारी रखा। साधुता, उपवेश और सहज
प्रेम से गुणातीतानंद स्वामी ने अखंड मुमुक्षुओं को आकर्षित किया और उन्हें तीन देहों के भावों से मुक्त कर
प्राकृतिक भक्त बनाया। शेष कार्य अपने मुख्य शिष्य प्रागजी भक्त को सौंप उनके द्वारा ब्रह्मचेतना के स्त्रोत को
प्रवाहित रखा।



प्रयोजक: बोचासाणावासी
श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था
भाहीबाग अहमदाबाद
ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री
नारायणस्वरूपदासजी
(मुख्य स्वामी)



नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

वीरेन्द्र कुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तीलाल तोलाट

*

प्रकाशक

मु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र :

श्रीयुगल छवि : नाथद्वारा शैली
'वेणुगीतम्' के व्याख्याता
आर. कलाधर भट्ट के सौजन्य से

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३०; अंक :

डा. महीप सिंह की कहानियां

डा. पुष्पपाल सिंह

भविष्य दर्शन भारती शर्मा

वह परलोक

म. म. पं. गोपीनाथ कविराज

वर्तमान संदर्भ में जनगणना

का महत्त्व सुनील सक्सेना

प्रार्थना

वेद-कथा

जातक कथा वियोगी हरि

कराल का प्रतिकार कोमल

सूरदास के बहाने वी. कु. जैन

मृत्यु से साक्षात्कार विष्णु प्रभाकर

नेपोलियन के प्रेम-पत्र

आदित्य कुमार

रसेश्वर दर्शन माधवाचार्य

महाकवि सूरदास का होली-गीत

लाल चूड़ियां शशि देशपांडे

श्रीवेणुगीतम् राजू विश्वनाथन्

श्रीराधा के प्रति : श्रीकृष्ण

मैं, जो लिख रहा हूं कुमार प्रशान्त

शिल्प-तीर्थ राणकपुर

सावित्री परमार

खुदा का इन्साफ़ (उर्दू हास्य)

कन्हैयालाल कपूर

बुझा हुआ चूना (परिहास-कथा)

के. पी. सक्सेना

कविताएं

मूलचंदांनी, 'कदम'

संड बर्ग

कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

मार्च १९८१

कंगन (बांगला देश की कहानी)

शाम बारकपुरी

९७

जीवन का प्रेरक भोड़

वृजुनारायण

१०२

गज़ल जिगर मुरादाबादी

१०५

गवा-शक्त का आवाहन

वासुदेव पोद्दार

१०६

हम तो चिड़िया ... (गुजराती कहानी)

वर्षा अडाल्जा

१०८

परवर्ती पथ (प्रतीककथा) श्रीमां

११६

चंदा-चपन चातुरी (हास्य-लेख)

वरसानेलाल चतुर्वेदी

१२१

प्रार्थना (कविता)

वारीन्द्र कुमार वर्मा

१२४

रजत तीर्थ-यात्रा (पुस्तक-संक्षेप)

एम. अनन्तनारायणन्

१२५

विज्ञान-वार्ता

१४२

साहित्यिक-परिहास

डा. गोपाल प्रसाद 'वंशी'

१४६

नोबल-पुरस्कार दिलातेवाला सपना

कमलादेवी

१४८

भागवद्कृपा के दावेदार

योगेश प्रवीन

१५१

स्मृति के अंकुर

राजीव मिश्र,

स्नेहलता, आञ्जाराम

१५५

चित्रसज्जा : ओके, शेणै, दिनेश शाह,

सन्तोष जड़िया, विकास सबनीस,

डा. भटनागर और आलोक जैन ।



अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित पूर्णतया निःशुल्क और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी धर्मादा न्यास, संस्थापक : कुलपति क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री धर्ममयी म. घटाङ, उपाध्यक्ष : श्री निरधारीलाल मेहता, श्री जयमुक्तलाल हाथी ।

सदस्योनी प्रतिष्ठान

१- मुख्यादेवी संस्कृत महाविद्यालय २-राष्ट्रीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३-सरल संस्कृत परीक्षा विभाग ४-मोता विद्यालय ५-मुगलाल गौयनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं मोक्ष प्रतिष्ठान ६-मुन्शी सरस्वती मंदिर (पुस्तकालय) ७-कलमजी रामजी बाल पुस्तकालय ८-भारतीय संगीत मिश्रावीड ९- भारतीय नर्तन मिश्रावीड १०-भारतीय इतिहास विभाग ११-प्रकाशन मंदिर, पुस्तक मुनिवांमिटी, मुन्शी साहित्य, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या वैचारिक), सत्य जनेस (अंग्रेजी पालिक), संचार (संस्कृत वैचारिक), नवनीत हिन्दी टाइम्स (हिन्दी मासिक), नवनीत समर्पण (गुजराती मासिक) १२-शाचीन अंतर्दृष्टि और आधुनिक आविष्कार योजना १३-ओपनिषदिक योजना १४-राजाजी मतवापिकी समिति १५- म. म. कला कालेज और न. म. विज्ञान विज्ञान संस्थान (अंग्रेजी) १६-बल्लभराम मेहता पब्लिक स्कूल (नवी दिल्ली) १७-हजारीलाल सोमानी कालेज, कला एवं विज्ञान (चोपाटी, बम्बई) १८- सरदार पटेल अभिवांमिटी कालेज (अंग्रेजी) १९- रणछोड़लाल अचललाल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०- रणछोड़लाल अचललाल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१-रसोपावेन वाणिज्य कालेज, (ठाकोर) २२- कला एवं विज्ञान कालेज (ठाकोर) २३- स्वामीनारायण पब्लिक कालेज (ठाकोर) २४- श्री अमृतलाल कानिदास जोगी महिला कालेज (जामनगर) २५- व. स. मेहता विज्ञान कालेज (भरवारी) २६- राजेन्द्र प्रसाद संश्लेषण एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मुनिटें : प्राणलाल देवकल नानजी संश्लेषण एवं प्रबंध विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंश्लेषण कालेज, नवी दिल्ली; हरिलाल भगवती जनसंश्लेषण कालेज अहमदाबाद तथा बंगलौर; सोमानी जनसंश्लेषण कालेज, एरनाकुलम; बड़ोदा, चंडीगढ़, मुद्र, हैदराबाद, मंगलौर तथा बिचुर में स्थित जनसंश्लेषण कालेज) २७- जवाहरलाल नेहरू भाषा अकादमी, नवी दिल्ली २८- अ. ह. वाणिज्य स्कूल (अंग्रेजी) २९- बल्लभराम मेहता पब्लिक स्कूल (विद्यालय) बड़ोदा तथा भरवारी ३०-भवन का विद्या मंदिर, एरनाकुलम, एरनाकुलम ३१- कोचीनबाई पर भवन का स्कूल, कोचीन ३२- बल्लभराम मेहता पब्लिक स्कूल (विद्यालय) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३- भवन का पब्लिक स्कूल, मैन, रामचन्द्रपुरम्, हैदराबाद ३४- संयुक्त संस्थापक : संस्कृत विश्व परिषद्; भारतीय स्थो सेवा संघ; ज्योतिष परिषद् (बंबई) ३५- संस्कृति पाठ्यक्रम पुस्तकें ।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलौर, बड़ोदा, भोपाल, मुजुनेश्वर, कलकत्ता; चंडीगढ़, कोम्बलूर, ठाकोर, दिल्ली, एरनाकुलम, मुद्र, हैदराबाद, जम्मू, जम्मूकर, कलौनाडा, कानपुर, कलकत्ता, मुद्र, मंगलौर, मुजुनेश्वर, नागपुर, तिलोन, धीनगढ़, त्रिपुर, बिगाबापट्टनम्, बदन (विद्युत राज्य) ।

भारतीय विद्या भवन
के.एम.मुन्शी मार्ग, चोपाटी, बम्बई-४००००७

NOW !

'ground-from-the-solid' metal slitting saws!

Dagger-Forst Tools Ltd. now introduce vastly superior Metal Slitting saws. Superior in performance because of exclusive features :—

- Ground—from—the—solid teeth—the very latest in saw manufacture.
 - Made from the finest imported High Speed Steel.
 - Controlled heat treatment, necessary for high hardness and wear resistance.
 - High concentricity, low wobble.
 - Dished Side Relief prevents abrasion and burning marks between the face of the saw and the metal being cut.
- DF Katar Circular Saw range is comprehensive.
covering IS 503, DIN 1837, DIN 1838 and B. S. 122



For further details, write to

**Dagger-Forst
TOOLS LIMITED**

First Pokhran Road, THANE-400 606. Maharashtra
Phone : 593531 (4 lines) Gram DAGERFORST THANE
Telex : 011-4482 DFTL IN

Foresight/DF. 11/72



साहित्यचर्चा

डॉ. महीप सिंह की कहानियाँ

[जीवन की संश्लिष्टता के विविध आयामों में अर्थ खोजती रचनात्मक प्रतिबद्धता]



डॉ. पुष्पपाल सिंह

आज कहानीकार महीप सिंह का नाम किसी परिचय की अपेक्षा नहीं रखता। आधुनिक हिंदी कहानी के शीर्षस्थ प्रतिनिधि हस्ताक्षरों का यदि कोई भी निष्पक्ष संग्रह या संकलन प्रकाशित किया जाये तो

निर्विवाद रूप से महीप सिंह का नाम अपना स्थान पहले कुछ नामों में ही पा लेगा। नयी कहानी आंदोलन कथा-दौर से लेकर अब तक रचना-प्रवृत्त रह कर विभिन्न कथा-आंदोलनों की तेज बहने वाली

हुवा और झंडों की छाया से दूर रहकर, हिंदी कहानी के जो नाम आज भी संदर्भच्युत नहीं हुए हैं, उन कतिपय नामों में महीप सिंह का नाम भी विशेष उल्लेख्य है। सन १९५६ से लेकर अद्यतन, (अर्थात् निरंतर सन १९८१ तक) रचना-प्रवृत्त रहकर, ऐसी कहानियाँ लिखकर

१९८१

जो प्रत्येक वर्ष के पाठक का ध्यान आकर्षित कर चर्चा में रहें, अपनी पहचान स्थापित करने वाले महीप सिंह का २५-२६ वर्षीय कथा-जीवन निश्चय ही एक तटस्थ मूल्यांकन का अपेक्षी है।



चित्र : आलोक जैन

१९५५-५६ तक 'नयी कहानी' आंदोलन की प्रस्थापना के जो निर्णायक प्रयत्न हुए और उनके माध्यम से नयी कहानी के जो प्रमुख नाम प्रकाश में आये और 'लाये गये' उनमें महीप सिंह को कोई स्थान (वर्थ) नहीं

मिला। १९५५ में महाराष्ट्र राष्ट्र-भाषा सभा, पुना, ने 'कहानियाँ १९५५' शीर्षक से जिन ४४ कहानीकारों को प्रकाशित किया और 'कहानी' पत्रिका के १९५६ ई. के प्रसिद्ध नववर्षीक विशेषांक ने जिन नामों को प्रकाश दिया, उनमें कहीं भी महीप सिंह का प्रतिनिधित्व

नहीं मिला है। नयी कहानी को जमाने के अन्य प्रयत्नों में भी यह नाम अपनी पहचान न बना सका, किंतु फिर भी इन्हीं वर्षों में, १९५६ में 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' की प्रेमचंद की कहानी प्रतियोगिता में महीप सिंह की 'उलझन' कहानी को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। मात्र पुरस्कार ही किसी रचना की श्रेष्ठता का मापदंड बिलकुल नहीं है, किंतु फिर भी यह तथ्य इस सत्य को प्रकाश में लाता है कि श्रेष्ठ रचना देर-सवेर, अपनी पहचान कायम कराके ही रहती है। १९५५ की 'उलझन' से लेकर १९७९ ई. की 'कितने संबंध' तक महीप सिंह की कहानियों के पांच संग्रह प्रकाशित हुए हैं—

१. सुबह के फूल १९५९ ई.; २. उजाले के उल्लू १९६४ ई., ३. घिराव १९६८ ई. ४. कुछ और कितना १९७३ ई. ५. कितने संबंध १९७९ ई. और मेरी प्रिय कहानियां १९७९ ई.।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इन पांचों संग्रहों में महीप सिंह की सभी कहानियां 'ए-वन' हैं। जित्त प्रकार बड़े से बड़े कहानीकार के यहां सशक्त और सफल कहानियों के साथ सामान्य-सी रचनाएं भी होती हैं, वैसे ही इन संग्रहों में भी कुछ, अत्यल्प ही सही, सामान्य-सी कहानियां भी हैं, किंतु अधिकांश कहानियां हिंदी कथा-लेखन में उपलब्धियां सिद्ध होती हैं।

व्याख्यायित सचेतन दृष्टि

महीप सिंह का कहानीकार चर्चा के

केंद्र में आया 'सचेतन कहानी' के प्रस्तोता के रूप में। १९६४ ई. में उन्होंने 'आधार' का सचेतन कहानी विशेषांक संपादित कर कहानी में सचेतन दृष्टि को व्याख्यायित किया। इसे इन्होंने 'दृष्टि की सचेतनता' माना और इस प्रकार कहानी को एक नए बौद्धिक दृष्टिकोण प्रदान कर उसे नए प्रस्तुति से प्रतिबद्ध किया। उन्होंने 'सचेतन कहानी' सक्रिय भाव की कहानी है। वह जिंदगी की स्वीकृति की कहानी है। पश्चिम की भोंडी नकल और ओढ़ी हुई मानसिकता से प्रेरित होकर जिंदगी की व्यर्थता, नितांत अकेलेपन और बनावटी घुटन का प्रदर्शन वह नहीं करती।'

इस प्रकार यह कहानी-दृष्टि अस्तित्ववादी पाश्चात्य नारों के बल पर नहीं हुई दृष्टि को नकार कर जीवन की सच्चाइयों को पहचानने की कोशिश की वस्तुतः नयी कहानी १९६०-६२ के आते-आते 'प्रामाणिक यथार्थ', 'सच्चा' हुए यथार्थ' आदि के नारों में फंस गईं उन्हीं रूढ़ियों में उलझ कर रह गयीं जिनके खिलाफ वह खड़ी हुई थी। 'सचेतन कहानी', 'सहज कहानी' आदि आंदोलन धर्मी स्वरों को निस्संदेह यह श्रेय है। उन्होंने कहानी को जीवन की प्रकृत प्रदान कर यथार्थ को लेखनीय सोच साथ व्यक्त करने की दृष्टि प्रदान की। महीप सिंह के सचेतन कहानी आंदोलन की उपलब्धि भी यही है। सचेतन कहानी



आंदोलन के पश्चात् 'संचेतना' त्रैमासिक पत्रिका और गोष्ठियों आदि अन्य प्रयत्नों के माध्यम से महीप सिंह का कहानीकार कहानी को 'लेखन, चर्चा, वाद-विवाद आदि सभी स्तरों पर जीने के लिए तत्पर हुआ।' तभी से महीप सिंह और उनका कहानियां हिंदी कहानी की चर्चा में रही हैं।

१९५५ से १९६३ तक महीप सिंह बंवाई रहे और इसके पश्चात् दिल्ली। ये दोनों महानगर, इन दोनों महानगरों का परिवेश, ही महीप सिंह की कहानियों के कथ्य बनकर आये हैं। इन दोनों कथा-भूमियों के अंतरंग अनुभव ही उनकी कहानियों में उभरे हैं। इसलिए उनकी कहानियों का फलक विस्तृत न होकर इन दो महानगरों तक ही सीमित रहा है।

महीप सिंह ने अपनी कथा-यात्रा के विभिन्न पड़ावों की चर्चा 'मेरी प्रिय कहानियां' की भूमिका में की है। 'उलझन' और अन्य प्रारंभिक कहानियों से पहला दौर, 'काला बाप, गोरा बाप,' 'उजाले के उल्लू' से दूसरा दौर और 'ब्लाटिंग पेपर' 'स्वराघात', आदि कहानियों से तीसरा दौर मानकर उन्होंने अपनी कथा-यात्रा का परिशीलन किया है। और मुझे लगता है कि 'कितने संबंध' से महीप सिंह की कहानियां एक सर्वथा नये, अत्यंत प्रौढ़ और परिपक्व दौर में प्रवेश करती हैं। यदि ध्यानपूर्वक देखें तो 'सुबह के फूल' से 'कितने संबंध' तक प्रत्येक दौर में उनकी

चित्र : आलोक जैन

कला परिपक्वता के नये शिखर आयत्त करती चलती है। उनका हर कदम, पिछले कदम से अधिक मजबूत और बहुत आगे बढ़ा हुआ मिलता है। यह कथन उनकी कहानियों के कथ्य और शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में दिखायी देता है। 'सुबह के फूल' की कहानियों का कथ्य और भाषा-शैली दोनों ही सरल, सहज और सपाट हैं, किंतु 'उजाले के उल्लू' से उनकी कहानियां जिदगी की पेचीदगियों में प्रवेश करती हुई संबंधों और स्थितियों की जटिलता को सामने लाती हैं। धीरे-धीरे उनकी कहानियों में सोच का पक्ष और मात्रा बढ़ती जाती है, किंतु बौद्धिकता के कारण कहीं भी उनकी तिग्मता (Intensity) कम नहीं हुई है; क्योंकि उनके कथ्य का आधार जीवन की कोई सहज स्थिति या प्रसंग है। इसलिए उनकी प्रभावान्विति में संश्लिष्टता के कारण कोई कमी नहीं आयी है।

कथ्य के स्तर पर महीप सिंह की समस्त कहानियों को मैं निम्नलिखित शीर्षकों में रखना चाहूंगा—

१—संबंधों की व्याख्या, २—समस्याओं से जूझना, ३—सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य, ४—राजनीतिक परिप्रेक्ष्य।

१९८१

महीप सिंह की अधिकांश कहानियां संबंधों की व्याख्या की कहानियां कही जा सकती हैं। 'सुबह के फूल' से लेकर 'कितने संबंध' तक उन्होंने मानवीय संबंधों की व्याख्या की है। 'सुबह के फूल' की कहानियों में इन संबंधों को सतही या ऊपरी दृष्टि से ही देखा गया है, किंतु 'उजाले के उल्लू' की 'काला बाप गोरा बाप' जैसी कहानियों से महीप सिंह का कहानीकार इन संबंधों की जटिलताओं और सूक्ष्मताओं में पैठना प्रारंभ करता है। 'उलझन', 'मैडम', 'शास्त्री जी', 'पड़ोसी', 'बेतन के पैसे', 'पारदर्शी दीवार', 'बड़े भैया', 'टाइपिस्ट' और 'सुबह के फूल'। 'सुबह के फूल' संग्रह में आयी ऐसी कहानियां हैं, जो या तो पारिवारिक रिश्तों या मानवीय संबंधों की कहानियां कही जा सकती हैं।

विभाजन को झुठलानेवाली कहानियां

इन सभी कहानियों में महीप सिंह का कथाकार एक आदर्श और रोमान्पूर्ण दृष्टिकोण लिये हुए है, किंतु वह यहीं इस आदर्श और रोमान से मुक्त होने का प्रयास करने लगता है, इसका प्रमाण 'सुबह के फूल' कहानी में मिलता है। 'उजाले के उल्लू' की 'पानी और पुल' और 'काला बाप गोरा बाप' कहानियों से कथाकार मानवीय संबंधों की जटिल मनःस्थितियों में प्रवेश करता है। भारत-पाक के रूप में हुए देश का विभाजन मात्र राजनीतिक सुविधा का विभाजन था। इसलिए इस विभाजन को झुठलाने वाली बड़ी सशक्त

कहानियां हिंदी में लिखी गयीं, जिनका कथ्य यह था कि देश का विभाजन दिलों का, मानवीय रिश्तों का विभाजन नहीं बन सकता। पश्चिमी पाकिस्तान को धरती से उखड़े हुए हिंदी कथाकारों ने इस मनोस्थिति को भरपुर रूप में जिया है, क्योंकि विभाजन की विभीषिका को भाग्य कर भी उनका हृदय हिंदू-मुस्लिम के इस विभाजन को कबूल नहीं कर पाया था।

महीप सिंह की कहानियों का दूसरा स्तर है, जीवन की विविधमुखी समस्याओं को चित्रित करना। अपने कथा-लेखन के प्रारम्भिक दौर से ही ऐसी कहानियां उन्होंने लिखी हैं 'उजाले के उल्लू' की 'कुर्सी', 'थर्ड क्लास फर्स्ट क्लास' और 'कांटे', 'घिराव', की 'घिरे हुए क्षण', 'पत्नियां', 'और-और वृत्त', तथा 'कीर्ति', 'कुछ और कितना' की 'सीधी रेखाओं की वृत्त', 'नाला और कटाव' तथा 'कितने संबंध' की 'जीना मरना' आदि लेखक महत्वपूर्ण समस्या प्रधान कहानियां हैं। इन कहानियों में कथाकार अपनी सामाजिक संसक्ति से समस्याओं को पैठता है।

सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य

किंतु महीप सिंह के कथाकार की यह सामाजिक-संसक्ति का उदाहरण तीनों वर्गों की वे कहानियां हैं, जहां वे अपनी कहानियों में सामाजिक विसंगतियों का तीखा नश्टर लगाते हैं। इन कहानियों के कथ्य में एक ऐसी तीव्र प्र

वान्विति है कि वे पाठकीय चेतना को सामाजिक विसंगतियों के प्रति झकझोर देती हैं। 'एक थकी हुई शाम', 'पुत्र', 'दर्द', 'दुख', 'शोर', 'वे सुर', बाद की बात', 'सत्यमेव जयते' आदि उनकी 'कितने संबंध' से पहले की ऐसी कहानियाँ हैं, जिनमें सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार होता है। किंतु 'कितने संबंध' की ऐसी कहानियों में लेखकीय बोध तीव्र राजनीतिक चेतना का परिचय देता है। वस्तुतः इन कहानियों का समय आपात्काल का वह समय है, जब कोई भी स्वतंत्रचेता रचनाकार अपनी रचनात्मकता को मूक नहीं रख सकता था। राजनीतिक संदर्भ उस समय समाज की प्रत्येक समस्या और सामाजिक यथार्थ के मूल में था। वस्तुतः वह यथार्थ इतना गड्ढा-मड्ढा था कि उसे राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ के पृथक खानों में नहीं रखा जा सकता था। समग्रतः ही वह हमारा जीवन यथार्थ था।

महीप सिंह की उस समय की कहानियाँ इस यथार्थ की विसंगतियों को व्यंग्य के स्तर पर ही उद्घाटित करती हैं। 'निशाना' में आपात्काल के भय से वाप द्वारा बेटे से कोई भी संबंध न रखने की घोषणा में उस समय संबंधों की निर्ममता और भयावह त्रासदायी स्थिति का निरूपण हुआ है। कहानी में पात्रों का नामकरण 'क' 'ख' 'ग' 'घ' आदि करके यह दर्शाया गया है कि ये संत्रासपूर्ण स्थितियाँ किसी व्यक्ति या समूह विशेष को नहीं, अपितु सभी को

भोगनी पड़ी थीं। यह कहानी इमरजेंसी की व्यापकता को उकेरती हुई घर, परिवार दफ़्तर, स्कूल, कॉलेज आदि के माहौल को पूरी प्रामाणिकता से उकेरती हैं।

'मौत का एक दिन' में भी नसबंदी के अभियान पर व्यंग्य है। 'एक गुण्डे का समय बोध' कहानी आज के राजनीतिक जीवन पर तीखा व्यंग्य है, जो व्यवस्था की गलाजत का तीखा अहसास कराती है। किंतु इस संदर्भ में यदि महीप सिंह की 'कहानी एक प्रभावशाली व्यक्ति और चार मुर्गों की' चर्चा न की गयी तो यह प्रसंग अपूर्ण रहेगा। यह कहानी आपात्काल के दौरान ही एक गोष्ठी में पढ़ी गयी और बाद में 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुई। यह फ़ंतासी के रंग में जिस रूप में तत्कालीन व्यवस्था की बखिया उधेड़ती है, वह लेखकीय स्वतंत्रता और सोच, रचनाकार के दायित्व और सामाजिक प्रतिबद्धता जैसे प्रश्नों का बहुत सटीक उत्तर है।

महीप सिंह की कहानियों के कथ्य की ईमानदारी और पूरी प्रामाणिकता का एक प्रमाण और है, जो अनायास ही उनकी कहानियों में आ गया है। वह है अपने परिवेश की पूरी जानकारी ही नहीं, उसमें आत्मीय पैठ। इसका प्रमाण यह है कि उनकी अनेक कहानियों में सिख परिवार आये हैं, अर्थात् रचनाकार जिस जीवन को भोग रहा है, उसे ही कहानी में जीता है। पहली कहानी 'उलझन' के प्रो. महेन्द्र सिंह और सुरजीत, 'पारदर्शी दीवार'

के भाई, 'पानी और पुल' के मां-बेटे, 'लकीरों वाला मकान' के जत्थेदार, 'दो धुंधली परछाइयां' के जुगिन्दर, मीती और रंजीत, 'उजाले के उल्लू' का कुलदीप, 'युद्धमन' के कोहली साहब, 'कछुए' का मनजीत और उसका मित्र, 'कितने संबंध' की जीती तथा अन्य कहानियों के और भी बहुत से पात्र इस कथन के प्रमाण हैं कि जितनी विर-परिचित अनुभूतियों और प्रसंगों पर उन्होंने विशिष्ट कहानियां लिखी हैं, उनके पात्र भी उतने ही परिचित और आत्मीय हैं। इसीलिए महीप सिंह की कहानियां अपने परिवेश से प्रामाणिक पहचान स्थापित करती हैं।

चलते-चलते कुछ शब्द महीप सिंह की कहानियों की भाषा पर भी कहने का लोभ-संवरण नहीं कर पा रहा हूं। महीप सिंह की कहानियां जिस प्रकार बहुत ही सामान्य-सी और सरल-सी घटनाओं पर बुनी जाती हैं, इसी प्रकार उनकी भाषा भी बड़ी सामान्य और सरल होते हुए भी बड़ी अर्थसक्षम है। आज की कहानी की भाषा की बहुत बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने सरलता में अपनी कथन-क्षमता का अभूतपूर्व विकास किया है। महीप सिंह के कहानीकार ने भी भाषा को अपनी कहानियों के अनुरूप सरलता के स्तर पर नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। जीवन के निकट से निकटतर होने के प्रयास में उन्होंने भाषा को जीवनधर्मी गंध दी है। 'सुबह के फूल' की प्रारंभिक कहानियों में

लेखक कहानी के मिजाज के खिलाफ जिस 'विशुद्ध' भाषा का इस्तेमाल कर रहा था, जल्दी ही वह उससे मुक्त हो कर 'जीवन की भाषा' को कहानी में प्रयुक्त करने लगता है। इसे हम कहानियों में जिंदगी की भाषा का रचाव कह सकते हैं। इस कथन को कुछ उदाहरणों से पुरा किया जा सकता है।

—'क्षणों में धिरी हुई मोहनी को इन दोनों अद्वों में से एक का स्पर्श दूसरे से भिन्न लग रहा है।' ('धिरे हुए क्षण')।

—'सरला भी बस अजीब है। कभी-कभी कुछ बातें वह मुझे इस तरह बताती है, जैसे सचमुच वह मुझे बहुत कम जानती है, जैसे उसका और मेरा संबंध बस नया नया-सा है।' ('दंद')

—'ऐसी रिश्तेदारी जिसका रंग सने पानी की तरह होता है, वह कोई भी रंग आसानी से अपना सकता है।' ('नींद')

—'..... शरीर थोड़ा और जाये तो अच्छा लगे—अभी तो लम्बी सा लगता है।' ('धुंधले चेहरे')

समग्रतः कहा जा सकता है कि महीप सिंह की कहानियों में जिंदगी के सूक्ष्म रंगों की पकड़ पूर्ण रचनात्मक प्रतिबद्धता के साथ प्राप्त होती है। अपने लंबे कालीन जीवन में उन्होंने विकास के ऐसे शिखर आयत्त किये हैं कि समकालीन कहानी की अगली पांत में उनका स्थान निर्विवाद रूप से सुरक्षित है।

—हिंदी विभाग, मोदी कॉलेज, पटिया

भविष्य-दशन :

‘स्टेट्समैन’ के

भूतपूर्व संपादक द्वारा

[एक सच्ची रहस्य-कथा]



भारती शर्मा



२८ फरवरी, १९६१। इंग्लैंड का ससेक्स गांव।

इसी गांव में रहने वाले इयान स्टीफेन्स शाम के समय गांव के बाहर घूमते हुए पाकिस्तान से संबंधित उस पुस्तक के बारे में सोच रहे थे, जिसे अर्नेस्ट बेन नामक प्रकाशक ने उनसे लिखने के लिए कहा था।

वे कुछ महीने पहले ही पाकिस्तान से लौटे थे। १९५७ में पाकिस्तान-सरकार ने उन्हें अपनी सेना के ऐतिहासिक विभाग का डायरेक्टर नियुक्त किया था।

भारत उपमहाद्वीप से उनका संबंध काफी पुराना था। १९३२ से १९३७ तक वे भारत-सरकार के सूचना-विभाग

के प्रमुख थे। बाद में १९४२ से १९५१ तक वे दिल्ली और कलकत्ता से एक साथ प्रकाशित होने वाले ‘स्टेट्समैन’ के संपादक रहे। १९५२ से १९५६ तक वे इंग्लैंड में रहे—केंब्रिज के अपने (किंग्स) कॉलेज के ‘फेलो’ के रूप में।

यद्यपि उस समय सूरज ढल चुका था, तथापि आसमान काफी चमकीला था, और वे सुनसान सड़क के दोनों ओर बसी झोपड़ियों को काफी देर से देख सकते थे। एक मोड़ पर मुड़ते हुए उन्हें सहसा ध्यान आया कि वहां एक लेटर-बॉक्स हुआ करता था। पर उस शाम वह लेटरबॉक्स वहां नहीं था। उन्होंने सोचा लेटरबॉक्स काफी पुराना हो गया था,

शीर्षक के साथ का चित्र : प्रबोध परीख

फार्म नं. ४

१. प्रकाशन का स्थान
२. प्रकाशन का अवधिक्रम
३. मुद्रक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

४. प्रकाशक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

५. सम्पादक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

६. उन शेयर होल्डरों के नाम और पते
जिनके पास कुल पूंजी के एक प्रति-
शत से अधिक शेयर हैं।

भारतीय विद्या भवन, बम्बई-१
प्रत्येक मास

सु. रामकृष्णन्
भारतीय
भारतीय विद्या भवन, बम्बई-१

सु. रामकृष्णन्
भारतीय
भारतीय विद्या भवन, बम्बई-१

वीरेन्द्र कुमार जैन
भारतीय

भारतीय विद्या भवन, बम्बई-१
भारतीय विद्याभवन, सोसायटी
रजिस्ट्रेशन एक्ट २१ (१८६०)
तथा बम्बई पब्लिक ट्रस्ट एक्ट
(१९५०) नं. एफ. ३१
(बम्बई) के अनुसार रजिस्ट्रार

अध्यक्ष

धरमशी मू. खटाउ

उपाध्यक्ष

श्री गिरधारीलाल मेहता

" जयसुखलाल हाथी

मानद सचिव

श्री जशवन्तलाल मटुभाई

" जे. एच. दोशी

मानद कोषाध्यक्ष

श्री. एस. पी. जैन

" चरणदास मेहता

" जगदीश मुनशी

" प्रवीणचन्द्र वि.

मैं सु. रामकृष्णन् यह घोषित करता हूं कि ऊपर दिये गये विवरण जहां तक
मैं जानता हूं तथा मेरा विश्वास है, सत्य हैं।

मार्च १९८१

सु. रामकृष्णन् (प्रकाशक के हस्ताक्षर)

नवनीत

१२

शायद उसे बदलने के लिए उसे वही से हटा लिया गया है।

सुबह को वे फिर उसी सुनसान सड़क पर घूमने निकले। घूमते-घूमते जब वे फिर उसी मोड़ पर आये, तो वे यह देखकर दंग रह गये कि डाक-विभाग के चार कमेनारी उस 'लेटरबॉक्स' को उखाड़कर, अपने साथ ले जा रहे थे।

'पर, लेटरबॉक्स को तो मैंने कल शाम इस जगह से गायब पाया था। मुझे पूरा यकीन है कि कल यह यहां नहीं था। तो क्या?' इससे अधिक इयान स्टीफेन्स नहीं सोच पाये।

घर लौटने पर उन्होंने इस दिलचस्प घटना का उल्लेख अपने चचेरे भाई डा. आर्यन कैलेंडर से किया। और फिर उन्हें याद आ गयी, १९३८ की एक निराली और अविश्वसनीय घटना।

०००

उन दिनों वे कलकत्ता में थे, और 'स्टेट्समैन' में सहायक-संपादक के रूप में कार्य करते थे।

अपने एक अमरीकी मित्र एडवर्ड मिलर ग्रोथ के सुझाव पर उन्होंने अपने स्वास्थ्य और कलकत्ता की भीषण गर्मी से बचने के लिए हठयोग में रुचि लेना आरंभ किया था। उनके और ग्रोथ के योग-शिक्षक थे बुद्ध बोस, जो उत्तरी कलकत्ता में स्थित विष्णु घोष जिमनाज़ियम में लोगों को योगाभ्यास कराते थे।

आगे चलकर, स्टीफेन्स की एक पुस्तक

प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक था 'मान-सून मानिग' (मानसून की सुबह) उसमें उन्होंने बताया है कि योग में उनकी रुचि क्यों और कब जागृत हुई।

इस पुस्तक को पढ़कर, यह जाना जा सकता है कि इयान स्टीफेन्स हठयोग की क्रियाओं और आसनों को परमात्मा की ओर उन्मुख होने, और शरीर को उसकी झांकी पाने का एक माध्यम मानते थे। पर उन्होंने हठयोग के आसनों द्वारा परमात्मा की ओर उन्मुख होने और उसकी झांकी पाने की कभी कोई कोशिश नहीं की। वे इन आसनों और प्राणायाम-विधि द्वारा अपने शरीर को स्वस्थ रखने में ही दिलचस्पी रखते थे। आसनों में हलासन, और प्राणायाम-विधियों में नौली-विधि उन्हें सर्वाधिक प्रिय थी। इन दोनों से उन्हें काफी लाभ भी हुआ था।

द्वितीय महायुद्ध आरंभ होने पर इयान स्टीफेन्स ने सेना में प्रवेश करने के लिए प्रयत्न किये। जब सेना का डॉक्टर उनका शारीरिक परीक्षण कर रहा था, तो वह स्टीफेन्स की छाती के फैलाव को देखकर आश्चर्यचकित रह गया। पर स्वयं स्टीफेन्स को कोई आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वे जानते थे कि यह सब नौली-विधि का सुपरिणाम है।

इस घटना के बाद, यौगिक आसनों और प्राणायाम-विधियों में उनकी रुचि और अधिक बढ़ गयी। विशेष रूप से, नौली-विधि के नियमित पालन के बाद उन्हें

लगा कि उनकी परामर्शोपकारी शक्तियाँ भी विकसित हो रही हैं।

१९४४ में पहली बार उन्हें एक अलौकिक अनुभूति हुई।

०००

लड़ाई के दिनों में ब्रितानी वायु-सेना के वायुयान-चालक तथा अन्य अधिकारी उनसे मिलने के लिए प्रायः उनके घर पर आते रहते थे। इनमें से एक डेविड फेयरे उनका घनिष्ठ मित्र बन गया था।

१९४४ की ग्रीष्म ऋतु में इयान स्टीफेन्स को 'स्टेट्समैन' के किसी काम से इंग्लैंड जाना पड़ा। वहाँ उन्हें पता चला कि एक विमान-दुर्घटना में डेविड फेयरे भारत में कहीं काम आया। कुछ दिन बाद, वे इंग्लैंड में रहने वाली डेविड की माँ से मिलने गये। शोक-संवेदना व्यक्त करने के बाद, उन्होंने डेविड की माँ का डेविड के साथ अपनी पुरानी मित्रता का उल्लेख किया।

उसी वर्ष, अक्तूबर में स्टीफेन्स भारत लौटे। भारत लौटने पर, डेविड की माँ से उनका पत्र-व्यवहार जारी रहा।

अक्तूबर के अंत में, एक शाम कलकत्ता के अपने फ्लैट में बैठे-बैठे उन्हें एक 'विचित्र अनुभूति' हुई। उन्हें लगा कि डेविड उनके फ्लैट में ही है, और 'फ्लैट में कभी यहाँ जाता है, कभी वहाँ।'।

यह 'विचित्र अनुभूति' अगले दिन भी हुई।

नवनीत

जब उन्होंने इस 'विचित्र अनुभूति' का उल्लेख डेविड के एक मित्र वारेन अफसर ए. मैकडोनाल्ड से किया, तो मैकडोनाल्ड ने कहा, 'आश्चर्य है, उसी समय मुझे भी ऐसी ही 'विचित्र अनुभूति' हुई थी। उस शाम और उसके बाद अगले दिन डेविड मुझे लगातार याद दिला रहा था।'

एक सप्ताह के अंदर यह 'विचित्र अनुभूति' क्षीण पड़ गयी। बात आयी-गयी हो गयी।

एक सप्ताह के बाद, उन्हें डेविड की माँ का एक पत्र मिला। पत्र में उसे लिखा था कि 'एक नाजुक आपरेशन के लिए वह शीघ्र ही अस्पताल में भर्त होने वाली है। आगे उसने लिखा कि 'चूंकि मेरे पुत्र और मेरे बीच आप एक कड़ी शेष रह गये हैं, इसलिए मेरी प्रार्थना है कि जिस समय मेरा आपरेशन हो, उस समय आप मेरे लिए ईश्वर की प्रार्थना करें।'

पत्र पढ़कर, स्टीफेन्स को याद आया कि जिस समय उन्हें अपने फ्लैट में डेविड की उपस्थिति की 'विचित्र अनुभूति' हुई थी, ठीक उसी समय इंग्लैंड के किसी अस्पताल में डेविड की माँ का आपरेशन हो रहा था। पर एक अजीब बात थी कि उस समय उन्हें डेविड की माँ का खयाल बिलकुल नहीं आया था।

अपनी पुस्तक 'मानसून मानिग' में इयान स्टीफेन्स ने लिखा है: 'इस अ...

अनुभव के बाद भी मुझे अनेक विचित्र और अविश्वसनीय अनुभव हुए। इनकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए मैं उनके घटते ही उन्हें लिख लेता था। उस समय मुझे यह गुमान न था कि इन अनुभूतियों के पीछे मेरे प्राणायाम का हाथ है। पर अब मुझे स्पष्ट लगता है कि 'नौली' के

सतत अभ्यास से मेरे अंदर अनेक अतीन्द्रिय शक्तियों का जन्म हो गया था। और उन्हीं अतीन्द्रिय शक्तियों के कारण मुझे प्रायः वैसे असाधारण नजारे दिखायी दे जाते थे, जो पर्वतारोहियों या यानचालकों को काफी ऊंचाई पर पहुंचने पर दिखायी देते हैं।'



महत्त्वपूर्ण सूचना

'नवनीत' के एजण्टों, विक्रेताओं, ग्राहकों, लेखकों तथा पाठकों के ढेरों शिकायती पत्र हमारे पास आते हैं, कि 'नवनीत' उन्हें नियमित नहीं मिलता। निवेदन है कि 'नवनीत', सम्पादकीय कार्यालय द्वारा डिस्पैच नहीं होता। ऐसे तमाम शिकायती पत्र निम्नांकित पते पर ही भेजे जायें, जहां से डिस्पैचिंग होता है।

व्यवस्थापक—क्षिप्रा ट्रेडिंग एण्ड इन्वेस्टमेण्ट कं. प्रा. लि.

न्यूज़-पेपर हाउस, सासुन डाक, बम्बई-४००००५

यदि लगातार आपको 'नवनीत' न मिले तो अपने स्थानीय पोस्ट-मास्टर के नाम भी शिकायती पत्र भेज देना उचित होगा।

—सम्पादक 'नवनीत'

डॉ. एच. बी. कारापटेल

जनवरी १९८१ के 'नवनीत' में प्रकाशित, 'चुम्बकीय चिकित्सा के चमत्कार' शीर्षक लेख के लेखक डॉ. कारापटेल के नाम पाठकों के बेशुमार पत्र हमारे पास आ रहे हैं। कृपया, पाठक उन्हें निम्न पते पर सीधे ही पत्र लिखें। पत्र उन्हें अंग्रेजी में ही लिखना अनिवार्य होगा। आपकी पूछ-ताछ का उत्तर वे सहर्ष देंगे। आगे भी उनके लेख 'नवनीत' में छपने पर सीधे उन्हीं से अंग्रेजी में पत्र-व्यवहार करें।

डॉ. एच. बी. कारापटेल; २७६, प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई-४००-००२

फोन : ३१३६७०

—सम्पादक 'नवनीत',

लिंग चैन

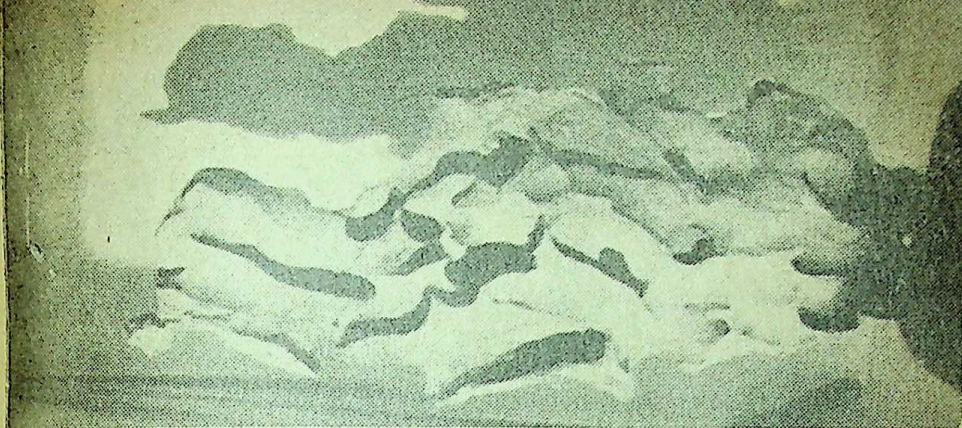
जिसकी कए-एक कड़ी मजबूत, परखी हुई और
पूर्णतः विश्वसनीय है।



सभी उद्योगों व वाहनों में उपयुक्त



एलॉय स्टील चैन एक विशेषता
इंडियन लिंग चैन मैन्यु. लि., भाण्डुप, बंबई-७८



परलोक वार्ता-४

वह परलोक, जहाँ हैं ज्योत्स्ना के वृक्ष,
ज्योत्स्ना के पक्षी, ज्योत्स्ना के सरोवर...

प्रस्तोता : महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज

[गतांक से आगे]

वह लड़का हमें देखकर सामने आकर खड़ा हो गया। उसका हाथ पकड़कर हमने कहा 'तुम्हारी मृत्यु जल में डूबकर हुई थी क्या?' उसने कहा, 'जल में डूबा था, परंतु मृत्यु नहीं हुई थी। मैं जब घाट पर आया, उस समय सीढ़ी का धक्का खाकर गिर गया, उसी से हार्टफेल हो गया था। मेरे मां-बाप और दादी मेरे लिये कातर हैं। उसी से मुझे अशांति है।' मने समझाया 'कोई चिंता न करो शांतिमय भगवान को पुकारो। वे तुम्हारे अशांत प्राण में आनंद भर देंगे।

भगवान के नाम से सब आपत्तियां कट जाती हैं। शिवमंदिर के संन्यासी ने उसको शिष्य बना लिया है, शांति में है। अधिकांश जल में डूबी हुई आत्माओं का इसी शिवमंदिर में अवस्थान होता है और संन्यासी से उन्नति का विषय सीखते हैं।

०००

पांच दिनहुए किसी पति-पत्नी की आत्मा यहां आयी है? दोनों एक ही दिन एक साथ ही मरे थे। इस प्रकार की पवित्र आत्माएं यहां कम आयी हैं। उनकी

१९८१

१७

हिंदी डाइजैस्ट

THE HINDUSTHAN SUGAR MILLS LTD.

Registered Office :

Bajaj Bhawan, 2nd Floor,
226, Nariman Point,
BOMBAY - 400 021.

Manufacturers of :

WHITE CRYSTAL SUGAR

Sugar Mills at Golagokarannath (U.P.)
& Palia (owned by Subsidiary Company)
Yearly Production — 1,00,000 Tonnes

RECTIFIED & DENATURED SPIRIT, ABSOLUTB ALCOHOL & INDUSTRIAL ALCOHOL

Distillery at Golagokarannath
Yearly Production — 20 Million Litres

PORTLAND CEMENT

Factory :

Udaipur Cement Works, P. O. Bajaj Nagar,
Udaipur, Rajasthan.

Yearly Production — 2,00,000 Tonnes

Telegram : 'SHREE' Telex : 011-2563 Telephone : 23366

MEMBER—FAIR TRADE PRACTICES ASSOCIATION.

ज्योतिर्मय आत्मा को देखकर भक्ति होती है। भगवान ने उन्हें उत्कृष्ट स्थान प्रदान किया है। सती स्त्रियां निज धर्म-पुण्य के बल से सब विषयों में आनंद पाती हैं। इन लोगों का फिर जन्म नहीं होगा।

हे जीवगण ! संसार के जाल में आवद्ध न रहो। समय रहते-रहते भगवान को पहचान लो। क्योंकि जब मृत्यु वेला निकट आयेगी, तब किसी को पहचानने नहीं देगी। देह निस्तेज, चक्षु ज्योतिहीन और मुख वागशून्य हो जायेगा। अभी से थोड़ा-थोड़ा माया का बंधन काट डालो, जिससे बंधन छूट जाये। इसके लिये भगवान से प्रार्थना करो।

मुझे जब रोग हुआ, उसके कुछ पहले से केवल मृतात्माओं को स्वप्न में देखता था। वह स्वप्न सत्य हो गया। राजू की स्त्री भी मृत्यु के कुछ पहले ऐसा ही स्वप्न देखती थी। सब स्वप्न अलीक नहीं होते, कोई-कोई सत्य हो जाते हैं। जब जीव गंभीर निद्रा में मग्न हो जाते हैं, तब आत्मा देह छोड़कर शून्य मार्ग में घूमता है। उस जगत् की आत्माओं के साथ बातचीत करता है, ये सब विषय मृत्यु-लोक की आत्माओं को स्मरण रहते हैं। जब आत्मा लौटकर देह में प्रविष्ट हो जाता है, उस समय वे सब बातें उसकी स्मृति में उदय होती हैं, जो विषय वे स्वप्न में देखते हैं। किन्तु मनुष्य निद्रा के पहले मन में जिस बात की चिन्ता करके

संता है, यदि वही स्वप्न में देखता है तो यह अलीक स्वप्न है। जिस व्यक्ति के लड़का या लड़की या किसी अन्य आत्मीय स्वजन की मृत्यु होती है, उसकी आत्मा अपने प्रिय जीवित व्यक्ति को देखने के लिए छाया के रूप में आती है। उसको स्वप्न में कोई-कोई देखकर चौंक जाते हैं। ये इस जगत् को छोड़कर उस जगत् में जाने पर भी महामाया के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकते। शोक, दुख तथा दुश्चिन्ताग्रस्त व्यक्ति के लिए निद्रा ही शांति है। इस निद्रा के भीतर भी उन्हें व्याघात हो जाता है। जिन लोगों के मन में शोक कष्ट दे नहीं सकता, मैं जानता हूं भगवान् उनके प्राण में शांति देते हैं और शांतिदायिनी मां उनकी सहायक होती हैं। जब उसकी मृत्यु होती है, तब ये सब आत्माएं जाकर उस आत्मा को इस शांतिलोक में ले आते हैं। जिस समय मनुष्य की मृत्यु आसन्न है, उसके पहले से ही ये सब आत्माएं उसके लिए प्रतीक्षा करती हैं। जब आत्मा बाहर निकल आती है, तो परलोक की ये आत्माएं उसे यहां ले आती हैं और बड़े-बड़े महात्मा व्यवस्था करके, जिस श्रेणी के जो योग्य होता है, उसे वहां भेज देते हैं।

०००

जो जीव पाप और अधर्म करके जीवन बिताते हैं और उसी के द्वारा उपार्जित धन से आनंद करते हैं—क्षणभर के लिए भी सोचते नहीं हैं, उनको पृथ्वी में किसी

निरंतर खांसी रहने से क्षय रोग हो सकता है—
पास के चिकित्सा-केन्द्र से जांच करा लें ।

★ ★ ★

टी. बी. सील खरीदिये और अपनी
टी. बी. संस्था को मजबूत बनाइये ।

उदारता से दान दीजिये

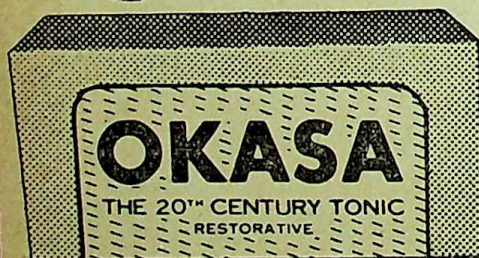
★ ★ ★

दि टी. बी. एसोसियेशन ऑफ इंडिया
नयी दिल्ली

[भारतीय विद्या भवन के सौजन्य से]



'हर दिन
के लिए
ताजगी और
स्फूर्ति'



**जाना-माना
ताक़तवर, असरदार
ओकासा**

आज की भाग-दौड़ भरी जिंदगी में
जो ताक़त आप खोयें... ओकासा की
बदौलत वही ताक़त फिर पा जाएं !
ओकासा की हर टिकिया में ६ प्रमुख
बायोकेमिकल्स, ६ खनिज पदार्थ,
१० विटामिन और जड़ी-बूटियों का
सत्व है. इसीलिये, दूसरा कोई भी
ताक़तवर नुस्खा इसका मुक़ाबला
नहीं कर सकता.

हर दिन जीवन को स्फूर्ति और उत्साह
से भर दीजिए, ओकासा की चाँदी बड़ी
दैनिक टिकिया लीजिए.

अब नये २० दिवसीय पैक में
सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहां
मिलती है.

ओकासा

ओकासा की मुक्त पुस्तिका के लिए लिखिए.
OKASA CO. PVT. LTD.
Post Box No. 396,
Bombay-400 001.

प्रकार शांति नहीं मिल सकती। इसी को नरक-यंत्रणा कहते हैं। सर्व प्रकार रोग से, शारीरिक और मानसिक कष्ट से, देह और आत्मा दंड भोगा करती है। वे पृथ्वी में रहते ही मनुष्य जीवन में नरक-यंत्रणा से पीड़ित होते रहते हैं। परंतु आश्चर्य यह है कि यह देख और जानकर भी लोग भगवान को पुकारते नहीं, स्मरण नहीं करते। लोग मृत्यु-शय्या में पड़े हुए कितने कष्ट से आर्तनाद करते हैं, किंतु भूलकर भी भगवान का नाम नहीं लेते। मृत्यु ही मनुष्य की शांति है। ये लोग शोकताप पाकर मृत्यु की ही कामना करते हैं। समझते हैं कि मृत्यु के बाद सब दुख दूर हो जायेगा। परंतु मृत्यु के बाद क्या है? सो जानते नहीं।

आनंदधाम नाम की एक श्रेणी है। वहां केवल महात्माओं का वास होता है। जो लोग पृथ्वी में भगवान का नाम लेकर अपने को भूल जाते हैं, केवल उन्हीं को अपना सर्वस्व समर्पण करते हैं, वे इस श्रेष्ठ 'आनंदधाम' नामक लोक में वास करते हैं। भगवान में विश्वास करके जो आत्मप्रशंसा को विषतुल्य समझते हैं, हिंसा को हृदय में स्थान नहीं देते, शील, दया और भगवान में विशेष युक्त होकर सर्वदा जीवन-यापन करते हैं, वे इस धर्मस्थान का अधिकार कर सकते हैं।

०००

कल जब बोगुरा गये तो रात्रि को चार बजे होंगे। देखने में आया कि सब

१९८१

लोग सो रहे हैं। वहां से कलकत्ता आया। वहां भी देखा कि सभी निद्रामग्न हैं। परंतु हम लोगों को निद्रा नहीं है। यह निद्राहीन देश है। यहां रात्रि भी नहीं है। परंतु ध्यान रखना, निद्रा के वश में हो, मां को भूलना मत। मां का मन जपा करके मानव जीवन लाभ की सार्थकता करना। थोड़ी निद्रा, थोड़ा विश्राम और निरंतर नाम-यही चाहिये। अंतिम समय बड़ा भयंकर है। नाम न जप सकने से भगवत्प्राप्ति नहीं होगी। सांसारिक चिंता लेकर कोई ऊर्ध्व में उठ नहीं सकता। जगदम्बा की चिंता ही अंतिम मार्ग साफ करती है। चिरनिद्रा का समय निकट में है। अब भगवान का नाम कब आरंभ करोगे? निद्रा पर विश्वास न करना। यह मनुष्य के सुख-दुख को थोड़ी देर के लिये भुला देती है। यह निद्रा ही भगवान को पुकारने में व्याघात उपस्थित करती है। यह निद्रा, देवता का देवत्व भुला देती है। यह मोहनिद्रा भगवान के नाम से वंचित करती है और माया-मोह-अहंकार ले आती है। इसको अधिक प्रश्रय न देना। संध्या, मध्यरात्रि तथा प्रातःकाल में एक बार मां का नाम लेकर जीवन सार्थक करो। देखोगे अंत में अनंत शांति मिलेगी।

०००

एक दिन हम कई लोग साथ-साथ एक स्थान में गये। पूछने पर पता लगा कि वह नक्षत्रलोक है। इसमें जो महात्मा रहते हैं, उन्हें देखकर आश्चर्य में पड़

२१

हिंदी डाइजेस्ट

Imagine a world with black and white rainbows

Imagine a world without Amar Dye-Chem

Amar Dye-Chem supplies vital dyes & pigments to a variety of Textiles, Paints, Coir, Leather, Printing Inks and Plastics Industries. ADC pigments are noted for their colour fastness, economy and convenience. The Company also exports its sophisticated colour know-how and has helped set up plants abroad.



to enrich India's
life with colour !

AMAR DYE-CHEM LTD.

Rang Udyan, Sittladevi Temple Road, Mahim,
Bombay-400 016.

Branches: Ahmedabad, Amritsar, Calcutta, Delhi,
Jaipur, Madras, Madurai.

ADC-5088

गया। जैसा नक्षत्र का आलोक है, सभी आकाश में प्रज्वलित हैं, उसी प्रकार उन लोगों के सूक्ष्मदेह से शतसहस्र हीरों की भांति आलोक स्फुरित हो रहा था, अत्यंत सुंदर, अत्यन्त स्निग्ध और अत्यंत मधुर। इस आलोक में कितना माधुर्य है, कह नहीं सकता। हम लोगों को मानो मोहित कर लिया। हम लोग उनसे बात नहीं कर सकते। सुना ध्रुव, प्रह्लाद, अभिमन्यु, विजयकृष्ण, मीराबाई, रानी भवानी, रामकृष्ण, शिवाजी और भी अनेक श्रेष्ठ महात्मा यहां हैं। थोड़ी देर तक उनका उपदेश ग्रहण कर पूर्वस्थान में लौट आये।

०००

मैं एक दिन एक आत्मा के साथ ऊर्ध्व से भी ऊर्ध्व स्तर में उठ गया था। वहां एक स्थान में देखने में आया कि दो उज्ज्वल देह पुरुष और स्त्री आत्मा चारों ओर घूम रहे हैं। उनका भाव सर्वदा प्रसन्न है। प्रेम और आनंद से मानो नित्य उत्फुल्ल है। उच्च चिन्ता सदा विद्यमान है। संगीत काव्य में चित्त भावमय है। इन लोगों का आत्मिक प्रेम ही राहज भाव है। आनंद इनका चिरसहचर है। पृथ्वी में जो कवि, भाववादी तथा संगीतज्ञ हैं, वे यहीं से जाकर जन्म लेते हैं। यहां कवि रजनीकांत, माईकेल मधुसूदन दत्त तथा अन्य आत्माएं भी हैं। इस लोक से उज्ज्वल रश्मि निर्गत होकर, दूर बहुत दूर, अनंत दूरी तक चली गयी है। इसका अंत कहां है और किसके साथ है, यह समझ में नहीं

आता। बीच-बीच में आलोक का बुद्बुद उठ रहा है। ये सभी छोटे-छोटे वृत्ताकार में परिणत होकर चारों ओर तैर रहे हैं, अत्यंत अद्भुत हैं। इसका मध्यस्थान भी अद्भुत और उज्ज्वल है। मैं देखकर आश्चर्यान्वित हो गया। मैंने हिम्मत करके कहा, 'हम लोग कहां आये हैं? सुनना चाहता हूं। यदि कोई व्यधान न हो तो मन की भ्रांति दूर कीजिये।' यह सुनकर वे बोले, 'यह नवम स्वर्ग का एक अंश तुमको दिखाया गया है और भी कितने आश्चर्य के स्थान हैं। क्रमशः देख पाओगे।'

०००

एक दूसरे दिन ये आत्माएं मुझे एक अन्य लोक में ले गयी थीं। यह विचित्र स्थान है। यहां से मृत्युलोक दिखायी पड़ता है। उन्होंने कहा, 'इन सब उज्ज्वल ज्योतियों के भीतर तुम्हें अत्यंत कष्ट से पहचाना जाता है। इस सामान्य तथा अति तुच्छ स्थान में मनुष्य वास करते हैं। वे लोग प्रेम नहीं जानते। मुख से कहते हैं, 'प्यार करता हूँ' किन्तु मन में घृणा करते हैं। पद्मपत्र के जल जैसा उनका प्रेम चंचल है। इन लोगों के लिए अर्थ ही भगवान है और धन-लाभ की चेष्टा ही धर्म। यही यथार्थ ज्ञानी, आहार के अभाव से मृत्युमुख में पड़ते हैं, चापलूस, प्रवंचक, अज्ञानी और मिथ्यावादी सबके ऊपर प्रभुत्व करते हैं। ये सब लोग ब्रह्मांड के रहस्य नहीं जानते। जो लोग

फरवरी १९८१ के 'नवनीत' के पृष्ठ १२३ पर प्रकाशित लिनी-कट चित्र के कलाकार हैं श्रीनित्यानन्द महापात्र । भूल से नाम न जा सका । पाठक, कृपया, लक्ष्य करें ।

कुछ नये स्तंभ

हम यथाशीघ्र 'नवनीत' में कुछ ऐसे स्थायी स्तम्भ आरम्भ कर रहे हैं, जिनमें हमारे पाठक भी हिस्सेदारी कर सकेंगे । मसलन 'मेरा सपना, जो सच हुआ', 'मेरा चमत्कारिक अनुभव' तथा बच्चों के लिए 'मच्छी-मच्छी कित्ता पानी', जिसमें बच्चों की रचनाएं, चित्र तथा फोटो भी यथा-प्रसंग छप सकेंगे । इन स्तम्भों के लिए आपकी सामग्री सहर्ष आमन्त्रित है । —सम्पादक 'नवनीत'

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

'निर्मल, तीसरी मंजिल, २४१ बैकवे रिक्लेमेशन
नरीमन पाइंट, बंबई ४००० ०२१

तार : SODACHEM

फोन : २३०७४३/२३४२४
२३४३३०/२३४४४

भारत में हेवी केमिकल्स के क्षेत्र में अग्रणी
अब अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी प्रस्तुत ।

* अपग्रेडेड इलमनाइट *

(सिंथेटिक रूटाइल ९०-९२ TiO_2)

हमारे बनाये हुए रसायन :

- | | |
|-----------------------|------------------------|
| * कास्टिक सोडा | * सोडा एश |
| * सोडियम बाइकार्बोनेट | * अमोनियम बाइकार्बोनेट |
| * कैल्शियम क्लोराइड | * ट्राइक्लोरो एथिलीन |
| * लिक्विड क्लोरीन | * हाइड्रोक्लोरिक |

* साल्ट *

कहते हैं कि जानता हूं वे ठीक नहीं कहते ।
कुसंस्कार की मिथ्या धारणा है, प्रति पद
में लोछित और उपहासास्पद होते हैं । यहां
धर्म का आदर नहीं है, धर्म का दिखावा
करते हैं बस । एक दूसरे के उच्छेद-साधन
की चेष्टा करते हैं । एक जाति दूसरी
जाति को समाप्त कर देना चाहती है ।
मैंने कहा, 'देव, पृथ्वी में क्या परिवर्तन
नहीं होगा ?'

वे बोले—'इस प्रकार के भाव से ही
पृथ्वी गठित है । गंभीर जड़ के बंधन से
बंधी हुई है । इस स्थान में जीव जैसा
कार्य और चिन्ता करते हैं, उसी प्रकार
उन लोगों की आत्मा इस ग्रहलोक में
आकर रहती है ।'

वहां से फिर और भी ऊर्ध्व में एक
दूसरे स्थान में गये । यहां की आत्माएं
अति सुंदर हैं । उनके आलोक से चारों
ओर प्रकाश ही प्रकाश है ।

यह स्थान एक रम्य उद्यान की भांति
है, पुष्करपेण ज्योत्स्ना से भरा हुआ ।
पृथ्वी की ज्योत्स्ना भी उसकी तुलना
में नहीं आ सकती । ज्योत्स्ना के ही
पक्षी, वृक्ष की शाखाओं पर बैठकर
सुमधुर गान कर रहे हैं । ज्योत्स्ना का
जलाशय है, कमल है, वह ज्योत्स्ना के
ही जल में तैर रहा है । यह स्थान
बहुत पवित्र और शांतिमय है । इस प्रकार
सुरम्य सौरजगत कभी नहीं देखा ।
भगवान् तुम धन्य हो !

(क्रमशः)



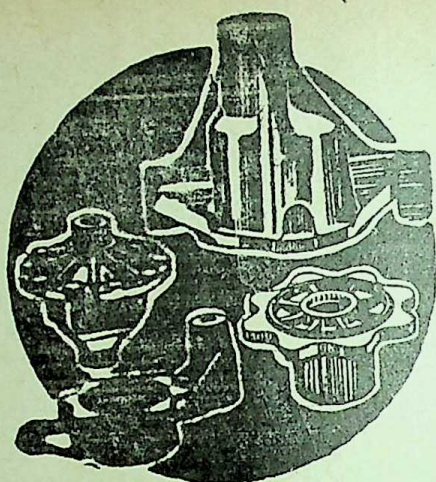
उच्च स्तर के प्रति अनन्य निष्ठा
के लिए सुविख्यात

जेनिथ स्टील पाइप्स एंड इंडस्ट्रीज़ लि.

१९५, चर्चगेट रिक्लेमेशन
बंबई-४०० ०२०

फोन : २९४४४५, टेलीक्स : ०११-२४५८
ग्राम : ZENPIPES

अत्युत्तम स्टील पाइपों, औद्योगिक
छुरियों और विशेष फौलाद के
निर्माता ।



दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाईनिंग कंपनी लिमिटेड

का आपको निमंत्रण है, आयात प्रतिस्थापन को सफल बनाइये

एस० जी० आइरन के कार्स्टिंग

कांसा, पीतल, गनमेटल या लौहेतर धातुओं तथा इस्पात के पुजों
व हिस्सों का स्थान ले सकते हैं।

मैलिएबल आइरन के कार्स्टिंग

अनेक प्रकार की चीजों में इस्पात के कार्स्टिंग का काम दे सकते हैं।

एस. जी. आइरन और मैलिएबल आइरन के कार्स्टिंगों में उच्च भौतिक गुण होते
वे खरीदने में सुगम, दृढ़ एवं तन्यतायुक्त होते हैं, उनमें घिसाव कम होता है।



संपर्क कीजिये :

फेरसफाउंड्री, पंचपाखाड़ी, पहला पोखरन लेन, थाना (महाराष्ट्र)
उच्च श्रेणी के कार्स्टिंग्स व बचत के लिए डबल हैमरब्रांड
आग्रह कीजिये।

वर्तमान संदर्भ में जनगणना का महत्त्व

□ सुनील सक्सेना

विश्व के किसी भी क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या निर्धारित करने की विचारधारा अत्यंत प्राचीन है, क्योंकि जनगणना ही जनसंख्या संबंधी सूचनाओं का प्राथमिक स्रोत है। जनसंख्या की गणना करने का प्रचलन लगभग उतना ही प्राचीन है, जितनी कि मानव-सभ्यता। लेकिन जनगणना की आधुनिक और वैज्ञानिक विचारधारा का विकास १९ वीं शताब्दी में हुआ। आज भारत और चीन में ही नहीं, वरन् विश्व में अनेक देशों के सामने जनसंख्या की समस्या एक गंभीर और ज्वलंत समस्या है।

आज जनगणना का महत्त्व इतना व्यापक है कि देश का कोई भी महत्त्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कार्य बगैर जनगणना के पूर्ण नहीं होता। जनगणना के आंकड़ों के माध्यम से हमको जनसंख्या को प्रभावित करने वाले विशेष कारकों—जन्मदर, मृत्युदर और प्रवास के साथ-ही-साथ लिंगानुपात, रोजगार, विनियोजन, याता-यात व संचार-विकास, आवास-व्यवस्था, शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं, और कृषि-विकास आदि को समझने में सहायता

मिलती है। उपरोक्त सभी पक्षों के विश्लेषण के आधार पर हम देश की समृद्धि का अनुमान लगा सकते हैं।

जनगणना द्वारा मानवीय विज्ञानों को नवीनतम विषय-सामग्री तो उपलब्ध होती ही है, साथ ही शोधकर्ता के लिए एक पथ-प्रदर्शक के समान है, जिसकी सहायता से वह जनसंख्या संबंधी सिद्धांतों और नयी-नयी योजनाओं को जन्म देता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं, 'जनगणना सामाजिक सिद्धांतों की जननी है।'



द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद लगभग १५० देशों में जनसंख्या की गणना की गयी, किंतु आज विश्व में शायद ही अथवादस्वरूप कोई देश हो, जहां जनगणना न होती हो। जनगणना के महत्त्व को जानने के लिए उसके इतिहास को भी देखना होगा।

जनगणना का इतिहास

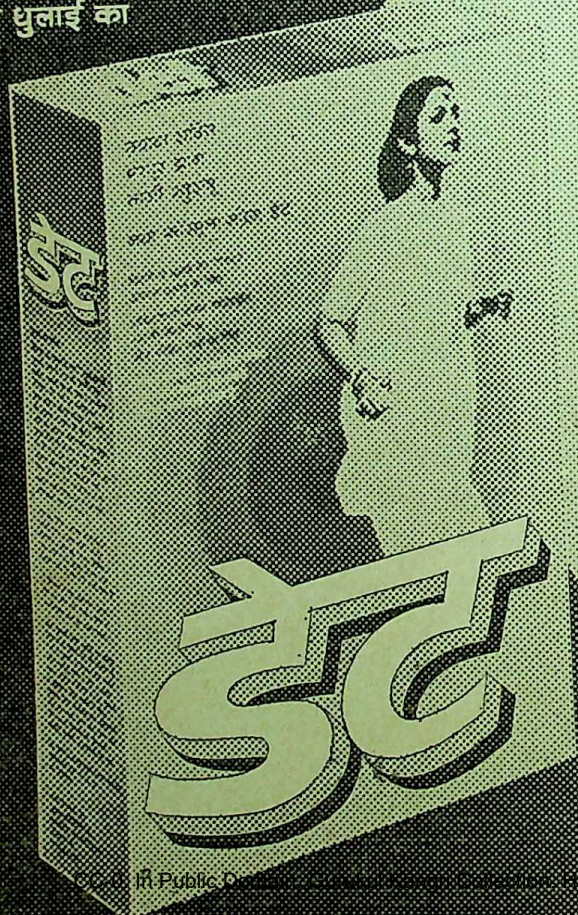
प्राचीन समय में जनगणना-संबंधी सूचनाएं बेबीलोनिया में ई. पू. ३८००-४५०० से ही एकत्रित की गयीं, चीन में ई. पू. ३००० और मिस्र में ई. पू. २५०० के आसपास की गयीं। प्राचीनकाल की

आलीशान सफ़ेदी डेट की सफ़ेदी

नया फ़ॉर्मूला

डेट

डिटर्जेंट धुलाई का
पाउडर



डेट

बेजोड धुलाई की शक्ति, भरपूर झागा,

जनगण
हालयों
हैं। ड
जानका
मिलती
के वच
निर्देश
ई.पू. १
अनेक
भी मि
के राज
गयी थ
असंख्य
लोगों
के वच
मनुष्यो
गंभीर
कारण
हुई थी
तक लो
णामस्व
जनगण
रोमा
अत्यंत
इन गण
की सं
होना थ
रही।
माना
करने व
लिए
१९८१

जनगणना संबंधी सूचनाएं विभिन्न संग्रहालयों में रखे आलेखों और ग्रंथों में मिलती हैं। इनमें से महत्वपूर्ण और प्रामाणिक जानकारी 'बुक आफ एक्सोडस' में मिलती है। मोज़िस्को ने इजराइल के वच्चों (व्यक्तियों) की गणना का निर्देश दिया था। यह गणना लगभग ई.पू. १४९१ में हुई थी। जनसंख्या संबंधी अनेक उल्लेखनीय रोचक तथ्य बाइबिल में भी मिलते हैं। यह जनगणना हेब्रू कबीले के राजा डेविड द्वारा ई. पू. २१७ में की गयी थी। इसके उपरान्त इजराइल में असंख्य लोग मर गये, जिससे वहाँ के लोगों में यह धारणा फैल गयी कि ईश्वर के वच्चों की गणना करने का अधिकार मनुष्यों को नहीं है और ऐसा करना एक गंभीर अपराध है। ईश्वरीय प्रकोप के कारण ही असंख्य इजराइलों की मौतें हुई थीं। यह विचारधारा काफी समय तक लोगों पर छायी रही, जिसके परिणामस्वरूप लंबे समय तक इंग्लैंड में जनगणना प्रारंभ नहीं की जा सकी।

रोम साम्राज्य में जनगणना की एक अत्यंत मनोरंजक विधि प्रचलित थी। इन गणनाओं का मुख्य उद्देश्य सैनिकों की संख्या और कर वसूल करना होता था, जो ई. पू. ४३५ तक प्रचलित रही। कूलियस जो रोम का छठा राजा माना जाता है, को जनगणना प्रारंभ करने का श्रेय दिया जाता है। गणना के लिए उसने अपनी प्रजा को यह आदेश

दिया की सभी जिलों के संरक्षकों द्वारा देवताओं के लिए देवस्थानों का निर्माण किया जाये और साल में एक बार देवताओं को बलि चढ़ाकर खुश करने के उद्देश्य से लोगों को एकत्रित किया जाये। इन अवसरों को राजा ने विधिवत सामूहिक उत्सवों के रूप में स्थापित किया और इन सामूहिक उत्सवों का खर्च पूरा करने के लिए उसने लोगों को यह निर्देश दिया कि सभी लोग मुद्रा का एक निश्चित सिक्का जमा करेंगे। पुरुष वर्ग के लोग एक प्रकार का सिक्का, स्त्री वर्ग दूसरे प्रकार का सिक्का तथा वच्चे तीसरे प्रकार का सिक्का जमा करेंगे। फलस्वरूप इन सिक्कों की गणना के बाद न केवल निवासियों की संख्या ज्ञात हो जाती थी, अपितु स्त्री-पुरुषों का अनुपात और आयु संगठन के महत्वपूर्ण पक्षों का ज्ञान हो जाता था।

इसी प्रकार विभिन्न नगरों में निवासियों की संख्या, जन्मसंख्या और युवावस्था में पहुंचने वाले लोगों की संख्या ज्ञात करने के लिए उसने अनेक संबंधियों को एक निश्चित किस्म के सिक्के जमा करने के आदेश दिये थे। जन्म के समय एक निश्चित प्रकार का सिक्का 'जूनो लुसीना' (Juno lucina) के खजाने में, मृत्यु के समय एक अन्य किस्म का सिक्का 'वीनस आफ ग्रीवम' के खजाने में और एक तीसरे किस्म का सिक्का 'जुवेनेट्स' के खजाने में उस समय जमा

दि इंडियन टूल मैनुफेक्चरर्स लि.

१०१, सायन रोड, सायन, बंबई-४०० ०२१

सुनिश्चित होकर चुनाव कीजिये

‘डॅंगर’ ट्विस्टर ड्रिल्स रोमर्स, कटर्स, टप्स, टूलबिट्स और
माइक्रोमीटर्स डॅंगेलाय कार्बाइड टूल्स और टप्स
डॅंगर-साक गियरहाउस और गियरशॉपिंग कटर्स



प्रसिध्द का प्रतीक

करना पड़ता था, जब व्यक्ति युवावस्था में पहुँच जाता था। मुद्रा के इन सिक्कों की गणना के बाद भी निवासियों की संख्या आवश्यकता पड़ने पर गिनी जा सकती थी। इसके अतिरिक्त सैनिकों की संख्या और आयु का बोध हो जाता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन समय में जनसंख्या की गणना और उसके विभिन्न पक्षों को ज्ञात करने का यह एक सशक्त माध्यम था।

१३३२ ई. में फ्रांस की राजकुमारी जेने के दहेज की मात्रा निश्चित करने के लिए जनगणना की गयी थी।

४१० ईस्वी के जनगणना संबंधी जो अभिलेख मिलते हैं, उनका वर्तमान संदर्भ में भले ही महत्त्व न हो, लेकिन निश्चित ही ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्जीनिया, उत्तरी अमेरिका की प्रथम कालोनी थी, जिसमें १६२४-२५ में प्रथम गणना और द्वितीय गणना १६३४-३५ में हुई थी। इसके पश्चात् विश्व के विभिन्न देशों में जनगणना की शुरुआत क्रमशः निम्नलिखित समयों में हुई—न्यूयार्क—१६९८, आइसलैंड—१७०३, न्यू-जर्सी—१७२६, स्वीडन—१७५०, फ्रांस—१८०१, नार्वे—१८१५, आस्ट्रिया—१८१८, ग्रीस १८३६, बैल्जियम—१८४६, इटली—१८६१, भारत—१८७२ और रूस—१८९७। ग्रेट ब्रिटेन में अर्ध १७ वीं शताब्दी में शुरू हुई। १० वर्ष के अंतराल पर जनगणना स्थापित करने का श्रेय संयुक्त

राज्य अमेरिका (१७९०) को जाता है।

विश्व के विभिन्न देशों में सर्वप्रथम जनगणना करने के संबंध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। नीप महोदय कनाडा के क्यूबेक प्रांत को जनगणना प्रारंभ करने का श्रेय देते हैं, जहां १६६६ में फ्रांसीसी प्रशासन द्वारा ३७ पूर्ण और ९ आंशिक गणनाएं की गयी थीं। एक अन्य विद्वान वोल्फ महोदय का मत है, 'संसार के किसी भी भाग में इतनी पुरानी, पूर्ण और लगातार शृंखला में जनगणनाएं नहीं उपलब्ध हैं, जितनी कि सिसली (इटली) के लिए उपलब्ध हैं, जहां सर्वप्रथम जनगणना १५०१ में हुई थी। इसके उपरांत तीन गणनाएं १६ वीं शताब्दी में, छह गणनाएं १७ वीं शताब्दी में और चार गणनाएं १८ वीं शताब्दी में हुई थीं। इटली के भी प्रत्येक भाग में १५ वीं शताब्दी तक गणना हो चुकी थी।' आगे वोल्फ का कहना है, 'इटली व सिसली में इतनी विस्तृत अवधि में फैली हुई जनगणनाओं को देखकर इस बात से कोई भी सहमत नहीं हो सकता कि संसार की सर्वप्रथम जनगणना कनाडा में हुई थी।' **भारत की जनगणना का इतिहास**

भारत में जनगणना का शुभारंभ ई. पू. ३०००-४००० सिंधु घाटी सभ्यता से माना जा सकता है; क्योंकि मोहन जोदड़ो और हड़प्पा विश्व की प्राचीन और विकसित सभ्यताओं में से एक थी, और यहां सघन जनसंख्या वाले शहर भी

थे। ई. पू. ३२६-२७ सिकंदर की महान सेना और ई. पू. ३२१-२९७ में चंद्रगुप्त की ७ लाख सिपाहियों की सेना का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार सम्राट अशोक और अकबर के समय प्रशासन आवादी, संपत्ति और कृषि आदि की गणना का उल्लेख मिलता है।

१७ वीं शताब्दी में अंग्रेजों द्वारा भारत की आवादी का पता लगाने हेतु प्रांतीय स्तर और शहरी स्तर पर समय-समय में गणनाएं होती रहीं।

भारत में सर्वप्रथम जनगणना का प्रयास १८७२ में हुआ, यह गणना आंशिक रूप से कुछ ही क्षेत्रों में की गयी थी, फिर भी यह एक साहसिक कदम था, तब से आज तक यह क्रम नहीं टूटा है। सन १८८१ में संपूर्ण भारत में गणना तत्कालीन जनगणना आयुक्त डब्ल्यू. सी. प्लोडेन की देखरेख में हुई। और स्वतंत्र भारत की प्रथम गणना १९५१ में हुई। १९६१ की जनगणना अभी तक की सबसे विस्तृत और नियोजित प्रकार की जनगणना मानी जाती है, जिसकी विश्व के अनेक देशों के विद्वानों द्वारा काफी सराहना की गयी।

हमारे यहां सामान्यतः जनगणना को प्रत्येक १० वर्ष के उपरांत करते हैं, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर बीच में 'छोटी जनगणना' भी कर सकते हैं। प्रत्येक देश में गणना के लिए भिन्न-भिन्न प्रचलित रीतियां होती हैं, जो उन देशों की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक परिस्थितियों

और भौतिक वातावरण के अनुकूल होती हैं। जनगणना करने की दो प्रणालियां हैं:

१-डी-फेक्टो प्रणाली : इसके अंतर्गत गणना-स्थल पर सभी व्यक्तियों को वहीं का मानकर गिना जाता है, चाहे उसका निवासस्थान वहां हो अथवा नहीं। इस प्रणाली द्वारा १९३१ तक गणना की गयी।

२-डी-ज्यूर प्रणाली : जनगणना स्थल पर उन्हीं लोगों की गणना की जाती है जिनके गणनास्थल पर मकान होते हैं अथवा स्वाभाविक निवास होता है। इन दोनों प्रणालियों के अलग-अलग गुण-दोष हैं। भारत में इस प्रणाली को १९४१ की जनगणना से अपनाया गया है।

स्वतंत्र भारत की अभी तक तीन ओर कुल मिलाकर ग्यारह गणनाएं की चुकी हैं। अभी तक हमारा यही प्रयास रहा है कि होनेवाली प्रत्येक नयी जनगणना में अधिक-से-अधिक मानवीय पहलुओं को उजागर करें, जिससे देश के जटिल मानवीय समस्याओं को सुलझा जा सके। इस वर्ष १९८१ की गणना क्रमशः चौथी और बारहवीं जनगणना है, जिसे हमें जनसंख्या संबंधी सभी पक्षों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी, तब हम कह सकते हैं हम अब तक अपने प्रयासों में किताबतः सफल और असफल रहे, क्योंकि इसका मूर्तरूप हमारे सामने होगा।

-ल ४, विश्वविद्यालय प्रांगण

जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, म.

आ नो मद्रः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

बलवीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

ज्योति की कामना

गूहता गुह्यं तमो
वि यात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥

ऋग्वेद-१-८६-१०

हे प्राण ! गुफा के अंधकार को विलीन करो ।
अपने में सभी को विलय करते अंधकार को
यहां से दूर भगा दो और हम जिसकी कामना
करते हैं, उस ज्योति को हमारे पास आने दो ।



वेद-कथा

किमहं तेन कुर्याम्

ऋषि याज्ञवल्क्य का मन गृहस्थी से ऊब गया है। अब वे गृहस्थ-आश्रम में पड़े नहीं रहना चाहते।

ऋषि की दो पत्नियां थीं — मैत्रेयी और कात्यायनी।

मैत्रेयी से वे कहते हैं 'आ, आज तेरा कात्यायनी के साथ निबटारा करा देता हूँ। मेरे पास इस आश्रम में जो कुछ भी है, उसके दो भाग कर देता हूँ, एक भाग तेरा, और दूसरा कात्यायनी का।'

'यदि धन-संपदा से परिपूर्ण यह सारी पृथ्वी मेरी हो जाये, तो क्या मैं उससे अमर हो जाऊंगी? (कथं तेन अमृता स्याम्)' मैत्रेयी ने पूछा।

'पृथ्वी की संपूर्ण धन-संपदा से तू अमर नहीं हो सकती। उससे वह परमपद मिलनेवाला नहीं।' याज्ञवल्क्य का स्पष्ट उत्तर था।

'तब उसे लेकर मैं क्या करूँ, जिससे मैं अमर नहीं हो सकती? (येनाहं नामृता स्याम किमहं तेन कुर्याम्।) अमर होने का जो उपाय आप जानते हों, वही कृपा कर मुझे बताइये, वही मेरा सच्चा भाग होगा।' मैत्रेयी ने निश्चयपूर्वक याज्ञवल्क्य से निवेदन किया।

वह अमृतभाग मैत्रेयी को मिला। उसे ब्रह्म विद्या का उपदेश याज्ञवल्क्य ने दिया। आत्मा का गूढ़ रहस्य खोलकर उसके सामने रख दिया। समझाते हुए कहा, 'किसी को कोई पति, पत्नी, माता, पिता, भ्राता और मित्र उसके लिए प्रिय नहीं होता, किंतु अपनी आत्मा के लिए, अपने-आप के नाते से प्रिय होता है। तब उस प्रिय आत्मा को ही देखना चाहिये, उसी को सुनना चाहिये और उसी का मनन और ध्यान करना चाहिये, तभी आत्मा और अनात्मा के बीच की गांठ खुल सकती है।'

ऐसे ही अनेक उदाहरण देकर याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को आत्मतत्त्व का दर्शन करा दिया और ब्रह्म विद्या का भेद उसने पा लिया।

पदुम जातक

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य-काल में बोधिसत्व ने एक सेठ के घर में जन्म लिया। नगर में एक तालाब में पुष्प फूले थे। एक नकटा आदमी उस तालाब की रक्षा करता था।

एक दिन वाराणसी में उत्सव की घोषणा किये जाने पर माला पहन, उत्सव में क्रीड़ा करने की इच्छावाले तीन श्रेष्ठीपुत्रों ने सोचा, नकटे के रूप की झूठी प्रशंसा करके माला मांगेंगे। उसके फूल तोड़ने के समय वे तालाब के निकट जा, एक ओर खड़े हो गये। उनमें से एक ने उसको संबोधित कर कहा :

‘जिस प्रकार केश और मूँछें बार-बार कटने पर भी फिर उगती हैं, उसी भांति तेरी नासिका बढ़े। मांगे जाने पर मुझे कमल दे।’

नकटे ने उस पर क्रुद्ध हो, कमल नहीं दिये।

दूसरे ने कहा :

‘जैसे शरत् काल का बीज खेत में बोने पर उगता है, उसी भांति तेरी नासिका बढ़े। मांगे जाने पर मुझे कमल दे।’

उसने उसे भी क्रोधित हो कमल नहीं दिये।

तब तीसरे ने कहा :

‘कमल देगा, इस आशा से ये दोनों झूठ बोलते हैं। तुम्हारी नासिका उग आये, ऐसा चाहे वे कहें या न कहें, नासिका का उगना तो असंभव है। हे मित्र ! मैं मांगता हूँ, मांगे जाने पर कमल दो।’

यह सुन कमल-सर का रक्षक बोला, ‘इन दोनों ने झूठ बोला। तुमने जैसा है, वैसा ही कहा। तुमको कमल मिलना योग्य है।’

वह कमल का बड़ा-सा मुट्ठा ले उसके घर दे, अपने कमल के तालाब पर वापस आ गया।

— वियोगी हरि

वीरेन्द्र कुमार जैन का एक प्रासंगिक लेख

कराल का प्रतिकार कोमल : सूरदास के बहाने

साहित्य में एक उत्तर-आधुनिक युग का आविर्भाव में क्षितिज पर होते देख रहा हूं। आगामी कल का कवि फिर एक उदात्त काम, प्रेम, मिथक और स्वप्न की कोमल कविता लिख कर, यंत्र-युग के कराल फ़ौलाद को गला देगा। यह रोमान केवल विज्ञान तक न रुक कर, एक रूपान्तरकारी अपूर्व चेतना को 'मैनीफ़ेस्ट' करेगा। रक्तकोश और अन्त-श्चेतना (Cell and psyche) के बीच के फ़ासले को यह खत्म कर देगा।

जाहिरा तौर पर सूरदास आज अत्यंत अप्रासंगिक ही लग सकते हैं। तो मुझे यह कहना है, कि यही उनकी आज सबसे बड़ी प्रासंगिकता है। जैन परमाणु-शास्त्र में एक बड़ा वैज्ञानिक तथ्य हाथ लगा। वह यह कि कठोर परमाणु, स्निग्ध परमाणु से जुड़कर ही अधिक स्थूल स्कंद को उत्पन्न कर सकता है। यानी कठोर और कोमल की संयुति से ही अभीष्ट सृष्टि हो सकती है। विज्ञान में यही धन और ऋण विद्युत् है, इलेक्ट्रॉन और प्रोटोन है। वेद में यही प्राण-अपान, वृष-सोम, रयि-प्राण, दो अश्विनी, मित्रावरुण, अग्नि-षोम का युगल है। और इसी आधारिक

युगल में से नर-नारी का मिथुन आविर् होता है। जब इन दो संयोजक तत्त्वों संतुलन भंग होता है, तो सृष्टि बिगड़ हो जाती है। कष्ट, विग्रह, संघर्ष, पात और युद्धों से आक्रांत हो जाती है। मौलिक स्वयंभू सुंदर प्रकृति-सृष्टि, कुरूप कराल हो जाती है। जीवन योग्य नहीं रह जाता।

आज हम ऐसे ही एक संक्रांति के मुकाबिल जी रहे हैं। हर अखबार पढ़कर लगता है, कि संघर्ष इस दुश्चक्र को तोड़ने का कोई जरिबल नहीं, इसका अंत संभव नहीं। हम अपने खतरनाक शून्य में अपने

और चेतना को लुप्त होते अनुभव करते हैं। इस द्वंद्व के मूल में जायें, तो पता चलता है, कि सृष्टि का जो मौलिक और स्वस्थ 'डायलेक्टिक्स' है, वह विकृत और असमंजस हो गया है। केवल कठोर तत्त्व ही प्रधान हो गया है, कोमल तत्त्व की सर्वथा अवहेलना हो गयी है। यह ललित कोमल तत्त्व ही, विधायक ध्रुव धन-तत्त्व है। संघर्ष, युद्ध, शत्रुत्व, ये गुजरते हालात हैं, नकारात्मक शक्तियां हैं। सकारात्मक शक्तियां हैं—मुद्रिता, करुणा, मैत्री, काम और प्रेम। ये बुनियादी सर्जनात्मक शक्तियां आज अयथार्थ, रोमानी, स्वप्निल, दुर्बल कहकर नकार दी गयी हैं। फिर भी इस सत्यानाश के बीच यदि जीवन आज भी जारी है, तो वह उपरोक्त कोमल वृत्तियों पर ही कहीं मूलतः टिका हुआ है।



आविष्कार और संपत्ति के अधिकार को लेकर ही तमाम राजनीति, अर्थनीति, समाज-नीतिगत संघर्ष खड़े होते हैं। उपलब्ध इतिहास में और पुराणों तक में यह संघर्ष एक-सा व्याप्त दिखता है। लेकिन वाद, प्रतिवाद, संवाद—थीसिस, एंटीथीसिस, सिंथेसिस—का रचनात्मक क्रम भी अपनी जगह जारी है। और इसी द्वंद्वात्मकता में उसे विकास है। इतिहास में केवल अन्धकार ही नहीं, सुवर्ण युग भी हैं।

संघर्षों तो अधिकार-वासनागत तमाम फोर्सों (Forces) में राजसत्ता ही सदा हम अत्यंत प्रबल रही है। अर्थ और समाज-अर्थसत्ता के परिवल सदा राजनीति के अंगूठे

तले दबे रहे हैं। फिर भी मध्य-युगों की सामन्ती राजसत्ता ने मनुष्य की ललित-कोमल चेतना को इतना नहीं कुचला था, कि उसका जीवन-मूल्य ही समाप्त हो जाये। तमाम भ्रष्टाचारों और अत्याचारों के बीच भी, उसका पुनर्नवा स्रोत धर्म और अध्यात्म, तब अधिक जीवन्त था। अन्ततः वही जीवन-मूल्यों का निर्णायक मान-दण्ड था। तमाम ललित कलाएं भी इसी 'रसो वैसः' के स्रोत में से आती हैं। सारी प्राकृतिक और मानव-निर्मित आक्रान्तियों और वैषम्यों के बीच वही

मनुष्य को तरो-ताजा रखती हैं। उसे जीने, रचने, उत्पादन करने और नव-नवीन निर्माण करने का उत्साह और आह्लाद देती हैं। सामन्ती युगों में मनुष्य की इस ललित सांस्कृतिक चेतना की एक निश्चयात्मक स्वीकृति थी। राज-दरबारों में कवि, गायक, संगीतकार, चित्रकार का दर्जा बहुत ऊंचा होता था। मार्क्स तक ने यह स्वीकारा है, कि सामन्ती युगों में मानवीय आत्मीयता वर्तमान पूंजीवादी युग से अधिक जीवन्त थी। शासक और शासित के बीच का नाता केवल शोषण का ही नहीं, अंशतः प्रेम और भाव का भी था। इसी कारण से उन युगों में ललित कलाओं का उत्कर्ष भी चरम पर पहुंचा।

वह मुस्लिम युग भी इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है, जिसने सूर, तुलसी और मीरा को पैदा किया। नादिरशाहों, गजन-वियों, चंगेजों का लोहा स्वयम् ही एक दिन अपना प्रतिवादी होकर उठा। उस एंटीथीसिस (प्रतिवाद) का नाम था अकबर महान। उदात्त, उदार, अवढर दानी, सहृदय, प्रेमी, ज्ञान-पिपासु, कला-रत्नों का पारखी। उस पुरातन कट्टर धर्मान्ध युग में भी उसने सर्व-धर्म-समन्वय का विज्ञान संसार को दिया। उसी के खून में से आये आलमगीर जहांगीर और शाहजहां। मुलायम, तबीयत, ललित-कलाओं के प्रेमी। दरबारे मुगलिया में ही ख्वाब की तरहदार गायकी पैदा हुई। मीनियेचर पेंटिंग के बारीक स्वप्न-जगत

रचे गये। मुगलों के साम्राज्य के तेवर के चुगौती के उत्तर में ही कबीर, तुलसी, सूर और मीरा की कोमल और दिव्य प्रतिवादिनी कविता प्रवाहित हुई। महा-भाव चेतना की ललित माधुरी ने साम्राज्य अभिमान के फौलाद को गला दिया। उस मुस्लिम सुल्तानियत की परम्परा में 'कि न दे मौला, उसे दे आसफुद्दौला' के अवढर दानी भी आये। लखनऊ में अकबर की खूबसूरत शामों के मंजर में लखनऊ होकर वाजिदअली शाह ने ठुमरी की रात और कत्थक नृत्य की रचना की। अकबर बहादुर ने उसका तख्त छीन लिया, मगर उसकी ठुमरी और कत्थक का राज्य अभी भी अमर है। अवध की प्रजा के दिलों में उसका सिंहासन सदा बिछा रहा।

लेकिन वर्तमान युग में, राजनीति और राजनीति ही सर्वोपरि शक्ति हो उठी है। वही अस्तित्व के सारे मूल्यों की निर्णायक हो गयी है। यांत्रिक उद्योग-क्रान्ति के साथ वणिक-प्रभुता भी अस्त-व्यस्त और बर्बर रूप से प्रबल हो उठी है। आज मात्र निर्णायक मूल्य है आज सत्ता, सम्पत्ति, राज्य और वाणिज्य। इनके का गठबन्धन आज ऐसा परस्पर अविभावी और बुनियादी तौर पर अटूट गया है, कि स्वतंत्र मानव चेतना, उसके स्वयंमू गुणों का अपने आप में स्वतंत्र मूल्य ही नहीं रह गया है। युग के अरब तक में कवि को मसीहा माना जाता था। कालिदास, बाणभट्ट

भवभूति, होमर, वर्जिल और दान्ते मानव चेतना के सर्जक, उन्नायक और विधाता होकर रहे। उनकी वाणी के प्रभाव से प्रकृति और मनुज की आन्तरिक ऋतुएं बदल जाती थीं। उपरोक्त कवियों ने युद्ध, विनाश या संघर्ष को भी यथास्थान अनुभूत किया और लिखा है। लेकिन उनकी रचना के ध्रुव केन्द्र में बैठी है त्रिभुवन-मोहिनी ललिता : हेलन, वीट्रिस, शकुन्तला और महाश्वेता। सौन्दर्य और माधुर्य के इस शाश्वत आत्मिक मूल-स्रोत से वे विच्छिन्न नहीं हुए थे।

परदेशी राज-सत्ता के दबाव तले जब हमारी जाति के प्राण की संजीवनी रस-धारा ही लुप्त हो गयी थी, शहंशाही का आतंक ही जब सर्वोपरि होकर छाया था, तब सूर ने श्रीकृष्ण की एकान्त रसेश्वरी लीला का जो गान किया, सतह पर उस वक्त उसकी भला क्या प्रासंगिकता हो सकती थी ? लेकिन उसके फलस्वरूप जाति की नसों में जो नया जीवन लहरा उठा, एक 'निओ-वीटा' का संचार हुआ, वह प्रमाणित करता है, कि उस कराल मारकता पर मदन-मोहन कृष्ण की रास-लीला ही विजयिनी हो सकती थी। कराल से जब कोमल का अवार्य प्रतिरोध टकराया, तो नये जीवन की चिनगारी फूट पड़ी। जाति को अपना खोया हुआ मिथक और स्वप्न मिल गया। मनुष्य की अनाथ चेतना को अनायास उसके अन्तर्वासी प्रभु ने ही जागकर सनाथ कर दिया।

वात्सल्य और काम दोनों एक ही मूलगत चैतन्य की दो विभिन्न लगती स्फुरणाएं हैं। सो काम से ही मातृ-पितृ तत्त्वों का संयोग होकर निर्दोष, निष्काम वात्सल्य की उज्ज्वल दुग्ध-धारा प्रवाहित हुई।

सूरदास ने प्रथमतः श्रीकृष्ण की बाल-लीला का गान किया है। शिशु, बालक और किशोर कृष्ण को उन्होंने अपनी कविता में इतना जीवन्त किया है, कि मनुष्य की चेतना अपने शैशव की अभय और अवन्ध्य ताजगी में लौट कर एक अजस्र नावित्य से भर उठी। विस्मय, कौतुक, कौतुहल, मुग्धता और माधुर्य का एक आप्लावक दरिया-सा जाति की नसों में उमड़ आया। उनकी यह वात्सल्य चेतना ही, अपने सहज विकास में काम-चेतना में उत्क्रान्त होती दिखायी पड़ती है। लेकिन यह काम भी वात्सल्य से सीधा जुड़ा हुआ है। युवती गोपियों का और षोडशी राधा का १०-१२ वर्ष के कृष्ण के प्रति जो पागल-प्रेम था, उसे वात्सल्य कहें या रतिभाव कहें, कहना कठिन हो जाता है। वह एक बड़ी अनोखी संयुक्त द्विदग्धता की अनुभूति है। इस रासलीला में यौन काम के भी तमाम हाव-भाव मौजूद हैं, वात्सल्य से उमड़ते दूध के स्तन भी हैं, और प्रीति के चरम उन्मेष और पूर्ण समर्पण में, एक आप्तकाम अद्वैत और अभेद का रस भी बहुत प्रगाढ़ हो उठा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कामोद्ग-मोल्लसित' कृष्ण-लीला के गान ने, प्रकृति-

सृष्टि के उस मूल स्रोत से हमें पूरी तरह जोड़ दिया था, जहां से जीवन उत्पन्न होता है, प्रवाहित होता है, और सतत विद्यमान रहता है।

०००

आज की यांत्रिक और औद्योगिक-व्यावसायिक आक्रान्ति ने, भीतर की वह परम स्वतंत्र महाभाव चेतना ही हमसे छीन ली है। भाव-संवेदन मात्र या तो लुप्तप्राय है, या वह राज्य और वाणिज्य की संयुक्त निर्णायक सत्ता के गुंजलक में फंसकर प्रतिगामी हो गया है। मनुष्य की तमाम स्वतंत्र भावात्मक स्फुरणाएं आज 'कॉमर्स' से 'कन्डीशन्ड' हैं। उत्पादक शक्तियां और उत्पादन-सम्बन्ध ही आज सारे जीवन-मूल्यों के निर्धारक हो गये हैं। सत्ता और सम्पत्ति की एकराट् संयुक्त प्रभुता ने मनुष्य के हृदय और आत्मा को ही 'पर्वट' या व्यभिचरित कर दिया है। वात्सल्य विपथगामी और विकृत हो गया है। भगवान की मृत्यु के उद्घोषक इस युग की उलंग उन्मत्त सन्तान ने अपने जनक-जनेता तक से जैसे मूलोच्छेद कर लिया है। आज वही कवि सबसे आधुनिक है, जो अपनी मां के गुह्यांग को अपनी कविता में उघाड़ने का, और अपनी मां से मैथुन करने का महासाहस अपनी-कविता में प्रकट करता है। नर-नारी के प्रेम और काम का जो कोमल, सुन्दर, उदात्त, उत्प्रेरक रूप अब तक मनुष्य में एक उन्नायक और विधायक सर्जन की

शक्ति संचारित करता था, वह भी एक व्यंग्य-विद्रूप का विषय हो गया है। यह विपर्यय इतना गहरा पैठ गया आज के आदमी में, कि वह पागल की अनी पर खड़ा है। तथाकथित मान से त्रासदी ही एक सफल उर्वर का अन्त या एक कविता की प्रामाणिक हो सकती है। तृष्णा की इस होड़ में भागकर, जीवन आप चाहे ऐश अय्याशी का जियें, लेकिन तमाम मान की वास्तवगत यथार्थ वेदना ही रचना का एकमात्र विषय हो सकता है। स्वप्न, रोमान, ऊंची उड़ान, या और हार्मनी के 'विज्ञान' की कविता वक्त अप्रासंगिक है, अप्रामाणिक है, मान है। वह पलायन या प्रतिक्रिया है। वह मानव-द्रोह है। कुरूप, भयंकर, नृशंस, पैशाचिक, विकृत, खण्डित मनुज ही आज हमारे सृजन अन्वेषण का एक मात्र विषय रह गया है। यह सारा विपर्यय राजसत्ता-वाणिज्य-युग की उपज है। 'मिमांसा' आदम के बेटे से उसका 'ईडन-गार्डन' कर उसे पिशाच बना दिया है। अमरीकी तारुण्य इसका एक उदाहरण पेश करता है। लेकिन डूंग, अपराध और उलंग भोग से स्वतः अमेरिका में 'हरे कृष्ण हरे राम' को सबसे ज्यादा प्रतिसाद मिलता है। उसी अमरीका में अप्रतिम सिद्धयोगी स्वामी मुक्तानन्द

वहां की हज़ारों आत्माओं को ध्यानामृत
पिलाकर आत्मसुख की खुमारी से मस्त
बना दिया । तथाकथित भगवान रजनीश
के 'सम्भोग से समाधि' ने विक्षिप्त, भटकी,
आत्मद्वारा हिप्पी चेतना को एक ठहराव
दिया, एक मुकाम दिया, एक बड़ी सम्भा-
वना और गहरे चेतना-स्तर का आश्वा-
सन दिया । मैं न 'कृष्णा-कांशसनेस'
का अनुयायी हूं, न रजनीश के सम्भोग-
योग का । मैं किसी का अनुयायी नहीं हूं ।
केवल अपनी आत्मानुभूति का अनुयायी
हूं । लेकिन यहां मैं केवल युग की एक
मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को, मानव चेतना
की नवीनतम गति-विधि को, आपके सामने
रेखांकित कर रहा हूं ।

एक शाम जुहू के 'हरेकृष्ण' मंदिर में,
मैं राधा-कृष्ण के युगलरूप के सामने खड़ा
था । हठात् एक गहरे माधुर्य और शांति
से मैं भर उठा । मैंने स्पष्ट साक्षात् और
संवेदित किया कि सौंदर्य और माधुर्य का
प्रभाव कितना शामक होता है । काम और
प्रेम का मिथुन कितना आह्लादक और
मुक्तिदायक होता है । मैंने सोचा, तथा-
कथित आधुनिकता का फैशनपरस्त दावी,
इस युगल मूर्ति के सौन्दर्य को एकदम ही
अप्रसंगिक कह देगा । कठोर वास्तव से
पलायन, और शोषण का एक जादुई और
सूँचक हथियार कह देगा । यह अलग
जात है कि यह कहने वाला आधुनिक
शक्ति-धार तरह के नशों और उलंग असामा-
निक यौनाचार में पलायन खोज रहा हो,



महाकवि सूरदास

शोषण की मौजूदा व्यवस्था की जंजीर
की एक कड़ी मात्र हो, और इस विकृति या
त्रासदी को ही वह एक सच्ची शाश्वत
यथार्थता मानता हो । कहना चाहता हूं,
कि इस वणिक-राजनीतिक युग में मनुष्य
की अन्तश्चेतना ही मर गयी है । इसी से
तो सूरज और भगवान की मृत्यु की कविता
मॉनोटनी की हद तक पहुंच गयी है । बर्बर
युगों के बाद मनुष्य की ललित चेतना का
ऐसा आमूल विपर्यय, ह्रास और अवमूल्यन
शायद ही पहले कभी हुआ हो ।

०००

ठीक इसी बिंदु पर मुझे सूरदास की

प्रासंगिकता ज्वलंत खड़ी दिखायी पड़ती है। कबीर तो सुन्नमहल का दिवला हो कर, हमारी गर्म पृथ्वी और ज़िदगी से ही पलायन कर गये। तुलसीदास ने हमारी परम्परागत नैतिक चेतना को रामकथा में सर्वांगीण रचा। हमें अपनी शाश्वत चिन्मयी संस्कृति का प्रतिबोध देकर, जीने के लिये जीवंत श्रद्धा की एक धरती प्रदान की। मर्यादाओं की नयी शलाकाएं खड़ी करते भगवान राम हमारे जीवन में आये। मीरा ने अपने गिरिधर के विरह की सूल-सेजपर सोकर ही सन्तोष कर लिया। लेकिन सूरदास ने सारी मर्यादाएं तोड़कर श्रीकृष्ण की स्वच्छंद रास-लीला के गीत गाये। उन्होंने हमारे रक्त-मांस की सोंधी माटी से महकती काम-केल में ही, पूर्ण काम-आप्तकाम भगवान के महाभाव काम को संचरित कर दिया। उन्होंने हमारे रक्त की ऊष्मा में ही, राधा-कृष्ण को आवद्ध हो जाने को बाध्य कर दिया।

सूर का यही दिव्य रोमान पूरे कृष्ण-काव्य की अटूट परम्परा हो गया। अष्ट-छाप की कवि-सभा के सिरमौर वही थे। उसी हुस्नो-इश्क और वस्लो-मोहब्बत की रंगीन महफ़िल से उठकर, राधा-कृष्ण का रोमान अपने काल की नाड़ियों में व्याप गया। उस रोमानी संवेदन ने, काम और प्रेम की उस निर्वृद्ध और उन्मुक्त कविता ने, माधुर्य और सौन्दर्य के उस अलौकिक सपने ने, अनादिकालीन नर-नारी मिथुन के उस जीवन्त मिथक ने, उस काल की उच्छिन्न

और अवसन्न भारतीय चेतना को जीने का एक नया अचूक कारण दे दिया।

वर्तमान पूंजीवाद और राजनीति तारकासुर ने, सारी मनुष्य की जाति आज इतना पंगु, विकृत, हताश, निरुत्साह और आत्महारा कर दिया है, कि मनुष्य पास जीने का कारण नहीं रह गया है। काम मात्र यौनाचार हो गया है, स्त्री योनि रह गयी है। पुरुष मात्र पशु-वत् शासित है। काम, प्रेम, वात्सल्य, आभयता, माधुर्य, कोमलता और आत्मदान शाश्वत आत्मिक गुण आउट-मोडेड कर दिये जा चुके हैं। घूसे का जवाब ही एकमात्र न्याय रह गया है। निन्दनीय वीरतनाम को अपने न्यस्त-स्वायत्त खूनी मैदाने जंग बनाने वाले चीनी पूंजीवादी या अमरीकी पूंजीवादी क्या सत्ता सम्पत्ति के हत्यारे गुंजल्क से हमें बच कर सकते हैं? क्या तथाकथित साम्यवाद या सर्वस्वहारी पूंजीवाद का कोई भी अब भी है? जहां काम और प्रेम बुनियादी मानव-स्फुरणाएं तक राख के फ़ौलादी कानूनों में कैद हैं, वहां क्या कोई परित्राता, उन्नायक और विपक्ष पौरुष जन्म ले सकता है?

काम 'सेक्स' का पर्यायवाची 'सेक्स' भी काम की एक मूलगत व्यक्ति है। मगर काम तत्त्वतः एक ऊर्जा है : 'कॉस्मिक इनर्जी' है। ऊर्जा ऊर्ध्वगामी होती है, तो उसमें से रचना होती है। नया विश्व जन्म ले

संस्कृति के आकाशगामी शिखर उन्नीत होते हैं। जब वह अधोगामी होती है, तो उलंग यौनाचार अदम्य हो उठता है। आज का कुत्सित, पाशविक यौनाचार काम नहीं, काम का विकृतन है, (Perversion) 'पर्वर्शन' है।

ऊर्ध्वगामी काम का काव्य तमाम देशों के क्लासिकल और रोमानी कवियों ने लिखा है। कालिदास की सारी काव्य-राशि, सूरदास की रसेश्वरी रास-लीला, दांते, गोइथे, नौवालिस, शैली, कीट्स, वायरन, यीट्स और रवीन्द्रनाथ की कविता, जयशंकर की 'कामायनी' और गालिव तथा इकबाल की शायरी, ऊर्ध्वमुख और वैश्विक काम-चेतना से उद्भूत एक ऐसा क्लासिकल-रोमानी-मिथकीय और स्वप्नशील काव्य है, जो मनुष्य को चिरकाल जीने और रचने की नव-नवीन प्रेरणा देता रहेगा।

संघर्ष, युद्ध, वैषम्य, नग्न यथार्थ, विद्रोह और विप्लव की कविता, काल विशेष में अनिवार्य होकर भी अनन्त और स्थायी भाव नहीं हो सकती। इसी से तथाकथित जनवादी और व्यवस्था-विरोध की प्रासंगिक कविता, अपने चरम पर पहुंचकर आज 'मॉनोटोनस' और कृत्रिम तक हो चुकी है। जबकि कालिदास, सूरदास, गोइथे, दांते, शैली और यीट्स का रोमानी स्वप्न-काव्य आज भी ताज़ा है। वह चुक न सका है। क्योंकि यह अनन्त, शाश्वत, महाभाव काम, प्रेम, स्वप्न और

मिथक का काव्य है।

साहित्य में एक उत्तर-आधुनिक युग का आविर्भाव मैं क्षितिज पर होते देख रहा हूँ।

आगामी कल का कवि फिर एक उदात्त काम, प्रेम, मिथक और स्वप्न की कविता रचकर, एक नवरोमानी युग का सूत्रपात करेगा। यह रोमान केवल 'विज्ञान' तक न रुक कर एक रूपान्तरकारी अपूर्व चेतना को 'मैनीफेस्ट' करेगा। 'सेल और साइक' (Cell and Psyche) रक्तकोश और अन्तश्चेतना के बीच के फासले को यह खत्म कर देगा।

एक सिरफिरे ने, तथाकथित आधुनिकता के इस माहौल में, अनपहचाना और आउट-साइडर रहने का खतरा उठा कर भी, एक उपन्यास लिखा है 'अनुत्तर योगी', जो आज के कराल पूंजीवादी युग का कामाध्यात्मिक रोमानी प्रतिवाद है। इसमें घूँसे का जवाब घूँसे से नहीं, एक अव्याबाध काम, प्रेम और कोमलता से दिया गया है। यह वह वैश्वानर है, जिसमें आज के राजनीतिक पूंजीवादी युग के काले खूनी फ़ौलाद को गल जाना पड़ेगा।

परम काम-लीला के मर्मी गायक महा-कवि सूरदास, इसी बिंदु पर आज के तानाशाही राजनीतिक युग में, मेरे मन एक अनिवार्य 'एंटीथीसिस' हैं। एक ऐसा प्रतिवाद है, जो आगामी अनिवार्य संवाद की एकमात्र भूमिका हो सकता है।



विष्णु प्रभाकर की आत्मकथा का एक अध्याय

मृत्यु से साक्षात्कार

पत्नी के रूप में ही प्रिया, सहचरी, सहधर्मिणी मिल जाये, पृथ्वी पर इससे बड़ी कोई उपलब्धि नहीं। आत्मवान् कथाकार विष्णु प्रभाकर ने अपने दाम्पत्य में इस अद्वैत मिलन-मुख का लाभ किया था। गत वर्ष सुशीला भाभी देह के स्तर पर उन्हें वियोग का चरम आघात दे गयीं। उस मर्म व्यथा में से मृत्यु के साक्षात्कार का जो महान क्षण उन्होंने उपलब्ध किया, उसकी प्रस्तुत कथा, अनायास शाश्वत मिलन की ही कथा कहती-सी लगती है। हिन्दी के जीवनी-साहित्य में यह प्रसंग अमृत-लेख हो कर रहेगा।

निर्गुणिया कबीर ने गाया है, 'जिस मरने से जग डरे मेरे मन आनंद'। मैं नहीं जानता उसके मन की जो अवस्था थी उसे आनंद कहा जा सकता है या नहीं, पर भय नाम की कोई वस्तु वहां नहीं थी। उसने मृत्यु को स्वीकार कर लिया था और जल्दी से जल्दी उससे तदाकार होने के लिये आतुर थी। विशेषकर जब कैंसर ने दूसरी बार (१ अगस्त, १९७९) अपनी गिरफ्त तेज की तो वह समझ गयी थी कि धरती पर उसका कार्य समाप्त हो चुका है। जो भी आता पूछता, 'कैसी हो, बहनजी?' वह मुस्करा कर उत्तर देती, 'अब तो जाना है भाई, सभी जाते हैं। कोई देर से जाता है कोई जल्दी। मैं

जरा जल्दी जा रही हूं, बस।' मृत्यु तो वास्तविक तिथि से दो वर्षों ही हमारे द्वार पर अपनी पहचान कर गयी थी, लेकिन यह सारा समय बड़े आनंद से हंसते-खेलते (और कभी झगड़ते भी) बिता दिया था। छत्तीस गहरा घाव लिये वह जब एक दिन लिए दीवाली मनाने घर आयी, तो बार उसका मन होता कि रसोई में सदा की तरह पकवान तैयार करे।

और जब उसी अवस्था में बिजली सेंक के लिए बीकानेर जाना हुआ उसे देखकर कोई नहीं कह सकता था उसके अंग का एक हिस्सा अलग कर दिया गया है। दानवी

नवनीत

४४

से आवेष्टित उस बड़े कक्ष में जब विद्युत् की अग्नि-रूप किरणें घाव को सेंकती तो वह अकेली ही होती। जिस दिन सेंक गहरी होती उस दिन थोड़ा निढाल हो आती, अन्यथा निरन्तर काम करते रहने की चेष्टा करती रहती। खाना बनाना संभव नहीं था, पर खिलाने में वैसा ही रस लेती। डॉक्टर ने कहा था, 'सेंक में रक्त जलता है। नया देने की आवश्यकता होगी।'

लेकिन उन दो-वर्ष-दो-महीनों में एक बार भी रक्त देने की नौबत नहीं आयी। हम दोनों कमरे के दो छोरों पर सोते थे। एक दिन सहसा आंख खुलने पर देखता हूं कि वह पास आ गयी है। मैंने अचकचाकर कहा, 'यह क्या किया तुमने! तुम्हारी छाती पर घाव है!'

बोली, 'लेकिन मन पर तो नहीं है। पास आने का जो मुख है, उसे क्यों खोड़ें?'

आश्चर्य, सेंक बंद होते ही वह गहरा घाव भर गया और उसने फिर से अपने को पा लिया। उसके बाद तो वह मुझे ढाढ़स बंधाने लगी, 'ठीक हो गयी अब तो। फिर क्यों परेशान होते हो?'

मैं जानता था, वह भी जानती थी कि यह सब छल है। शेष आयु का एक-एक क्षण टूट-टूटकर बिखर रहा था। कैसा त्रासदायक होता है पूरी जानकारी में किसी को तिल-तिलकर मृत्यु की ओर जाते देखना। डॉक्टर ने कह दिया था, 'अधिक से अधिक पांच वर्ष का जीवन है।'



चित्र : संतोष जड़िया

बोली, 'जब क्षण का पता नहीं, तब पांच वर्ष तो बहुत होते हैं।'

उनके भानजे ने कहा था, 'मौसाजी, केवल दो वर्ष हैं।' उनके बहनोई ने बताया, 'गैलैपिंग कैसर है, भाई साहब। अब वह मस्तिष्क और फेफड़ों में प्रवेश कर चुका है।'

मेरे हृदय की धड़कन बार-बार बंद होने को होती, पर वह तो उसी तरह घूमने-फिरने लगी थी। बेटी का विवाह किया, उसी उल्लास और उत्साह से। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि मृत्यु ने उसे चुन लिया है, लेकिन ऑपरेशन के ठीक पच्चीस माह बाद (४ दिसम्बर, १९७९) जब वह औपचारिक जांच के बाद घर आने के लिए तैयार हो रही थी, तो मृत्यु ने जैसे फुस-फुसाकर कहा, 'बस अब अपने असली घर चलने की तैयारी करो।'

और उसी क्षण रक्तचाप आकाश छूने लगा। तुरंत डॉक्टर और नर्सों ने उसे घेर लिया। काफी सघन संघर्ष था। मैं पहुंचा तो बोल उठी उल्लास से 'जा रही हूं। राम-राम।'

लेकिन डॉक्टरों ने वह पाली भी जीत ली। मृत्यु फिर एक बार पांच सप्ताह के लिए कोने में खिसक गयी। प्रियजन आये, आते ही रहे। उन्हें देखकर मुस्करा देती। मुस्कान ही तो उसकी पहचान थी। सदा की तरह सबसे पहले चाय-नाश्ते की बात पूछती। फिर घर-गिरस्ती की बातों में डूब जाती। जवाहर चौधरी अस्वस्थ थे, आते ही बोले, 'भाभीजी, पहचानती हो?'

मृत्यु से लगभग तीन माह पूर्व गम्भीर स्थिति में एक शोधार्थी से बात करते हुए सुशीलाजी

तापक से बोली, 'अपने लड्डू खाने वाले देवर को न पहचानूंगी।'

चौधरी लड्डूओं के शौकीन रहे हैं। सुनकर न जाने कहां पहुंच गये। बहुत भावुक है वह। वही बोली, 'तुम क्यों आये? रमा कहती थी तुम्हारे तबीयत ठीक नहीं है। तुम जाओ।'

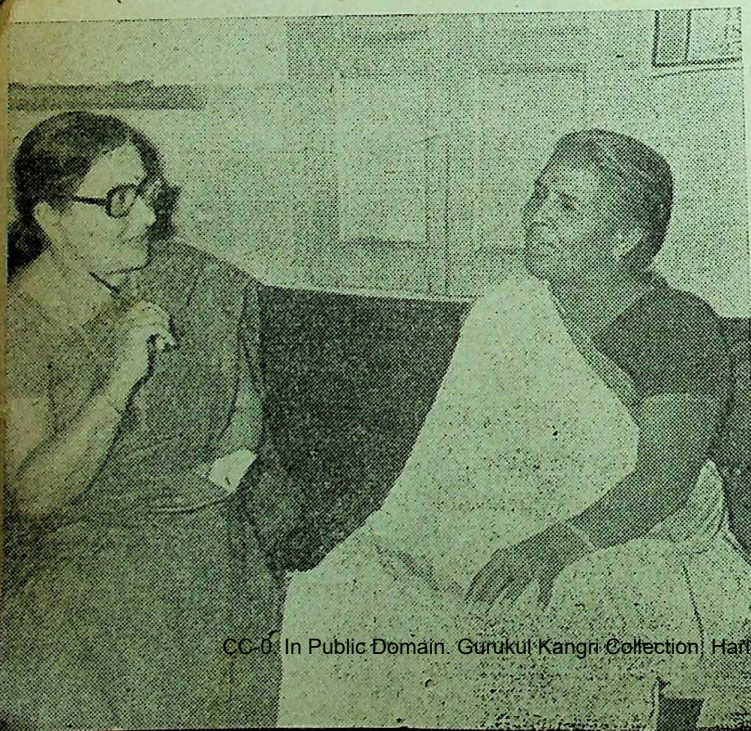
सबके जाने के बाद मैंने पपीता काट खिलाने को, तो शरारत से मुस्कराये- 'अब ठीक हो जाऊंगी। पहले तुम खिलाया ही नहीं।'

लेकिन जब फ्लास्क में से गाजर का सूप उंडेल रहा था तो बोल उठी, 'कुछ देकर निबटा दो। फिर तो जान है न?'

डॉक्टर आये पूछा, 'कैसी हो?'

उत्तर दिया, 'रही हूं।'

कितना चाव उसे अपने असली जाने का। मन, शरीर जैसे सब कि आंतरिक सत्ता से रूप हो गये हों। नहीं कि उसे न आता हो। था। मजाक भी थी खूब। प्रियजनों घिरी वह मुस भी कटाक्ष करते



नहीं चूकती थी। लेकिन दर्द अब सघन होता जा रहा था और शरीर चेतना का साथ देने से बारबार इन्कार करने लगा था, वह चुप-चाप लेटे-लेटे गीता-रामायण सुनती रहती। उस दिन पूरी गीता सुनकर उसने हाथ जोड़कर माथे से लगाये, बोली, 'प्रभु, पूरी गीता सुन ली, फिर मुक्ति क्यों नहीं देते ?'

मैंने कहा, 'समय पर होगी मुक्ति। चिंता क्यों करती हो ?'

बोली, 'चिंता नहीं करती, पर अब जाने का समय हो गया न। बड़े-बड़े दुष्ट क्षणों में चले जाते हैं। मेरी बेर क्यों देर हो रही है। कब तक टंगी रहूंगी सुली पर।'

कैसा-कैसा हो जाता था मन तब। रुलाई फूट पड़ने को होती। वह जानती न हो, यह बात नहीं थी। जानती थी तभी तो बार-बार मेरी आंखों में झांक कर कहती, 'सुनो.... सुनते हो... मेरी चिंता मत करना। अपनी सेहत का ध्यान रखना। बच्चों को प्यार से रखना, डांटना मत। मेरे बच्चे बहुत अच्छे हैं।'

बच्चे उसकी दुर्बलता थे। जो भी आता, उसी से उनके बच्चों की देखभाल



चिरशान्ति में शयन

का आग्रह करती, लेकिन उस दिन मैं चकित रह गया, बोली बड़े करुण स्वर में, 'देखो, अब बच्चों को मेरे पास मत आने दो। मोह पैदा करते हैं। तभी देर हो रही है। मुक्त होने दो अब।'

सचमुच मोह और मुक्ति में देवासुर-संग्राम छिड़ा था। एक दिन देखता हूँ कि तीन वर्षीय पोता आंखें मींचे, हाथ जोड़े, कह रहा है, 'हे भगवान, मेरी अम्मा को अच्छा कर दो !'

द्रवित हो आयी वह, बोली मुस्करा

कर, 'अब मैं अच्छी हो जाऊंगी !'

उसके अंतर में कहीं-न-कहीं छिपा हुआ चैत्य-पुरुष था, पर मन और प्राण उसे दबाये हुए थे। अब जैसे समझौता हो गया था उनमें और चेतन शक्ति और भी ऊंचे लोकों की खोज में जाने को उतावली हो रही थी। न जन्म है, न मृत्यु, मात्र चेतन शक्ति और भी उच्चतर लोकों की तलाश में निरंतर आगे बढ़ती रहती है।

महाप्रयाण के दो-तीन दिन पूर्व प्राण शक्ति एक बार फिर ऊपर आ गयी। वह बोली मेरी ओर देखकर, 'मेरे सब अरमान पूरे हो गये, पर एक रह गया।'

'क्या है वह ? उसे भी पूरा कर लो।'

मुस्करायी वह, पीली धूप-सी वह फीकी-फीकी मुस्कान, बोली, 'आपके साथ देश घूमने का जो प्रोग्राम बना था, वह क्या पूरा हो सकता है अब ?'

मैंने कहा, 'तुम तो इतनी लंबी यात्रा पर जा रही हो, फिर उसकी चिंता क्यों करती हो ?'

एक दीर्घ निश्वास निकल गया उसके अंतर से, बोली, 'हां, जा तो रही हूं, पर आपके बिना !'....

मैं वहां से हट नहीं सकता था। सहे-जना कठिन हो गया अपने को। मेरे बिना वह अपना अस्तित्व नहीं मानती थी और मैं सब कुछ उस पर छोड़कर निश्चित था। दोनों कोरे थे, इसलिये एक दूसरे के सहारे मंजिल की तलाश करने में ही हमारी मुक्ति थी। परस्पर का यह सहारा

नवनीत

कितना आश्वस्त करने वाला था।

अस्पताल से घर आने के (१८ दिसम्बर १९७९) बाद के तीन सप्ताह बाद बेसब्री से साजन की इंतजार में कटे। एक दिन मुस्कराती तो दूसरे दिन फिर रक्त का बढ़ जाता। असह्य पीड़ा होती है कम में। तब और भी जब वह हड्डियों में प्रवेश कर जाता है, पर एक क्षण भी साहस नहीं खोया उसने। दर्द बढ़ता तो आंखें बंद करके कहीं खो जाती कहती, 'कितने खंभे गाड़ रहा है भगवान मेरे स्वागत के लिए !'

'जाकर गिन लेना।'

'हरिद्वार चलो न। गंगा में किनारे कर दो।'

'कर दूंगा, पर मुझे फांसी पर चढ़ा होगा।'

आंखें खोलकर मेरी ओर देखती मुस्कराती—'तब रहने दो।'

और करवट बदल लेती।

०००

लगभग ढाई वर्ष पूर्व एक गांठ-सी आयी थी दाहिने स्तन पर, लेकिन उसने उसे तब तक गंभीरता से नहीं लिया जब तक उसमें जलन नहीं पैदा हो गई। उसी दिन (१ नवम्बर १९७७) अस्पताल गयी। तीसरे दिन पता लगा—कैंसर है। चौथे दिन ऑपरेशन हो गया। कैंसर शरीर में प्रवेश चुका था। और उसे सब कुछ था। एक बार इतना ही कहा, 'एक

४८

बता दिया, बड़ा ऑपरेशन है ।'

डॉक्टर बोला, 'नहीं, नहीं, छोटा है ।'
हंस पड़ी वह, बोली, 'इतनी नादान
नहीं हूँ । आप चिंता न करें ।'

और जब सेंक के बाद बीकानेर अस्प-
ताल के डॉक्टर ने घोषणा की कि अब
शरीर में कैंसर नहीं है, तो सब कुछ
समझते हुए भी, हम सबने जैसे स्वर्ण
पाया हो । दिल्ली की डॉक्टर तो नकली
स्तन बनवा देने को आतुर हो उठी ।

मैंने कहा, 'क्या होगा स्तन बनवाकर,
तुम जैसी भी हो.... ।'

बात काट दी तुरंत, 'बाल क्यों रंगते
हैं? प्रसाधन की क्या जरूरत है?'

डॉक्टर का आदेश था, 'अभी बराबर
इंजेक्शन लगेंगे । अकेले नहीं जाना कहीं,
वस मैं तो हरगिज़ नहीं ।'

लेकिन अवसर मिलते ही वह निकल
पड़ती । जीवन भर वह मुक्त पक्षी की
तरह उड़ने को आतुर रही । उस दिन मैं
कानपुर था, छोटे बेटे के पास । देखता
हूँ, वह सामने आ खड़ी हुई है ।

अचकचा गया, 'तुम यहां?'

'क्यों, विश्वास नहीं हो रहा?'

'और कौन है?'

'अकेली आयी हूँ । कल लखनऊ थी,

आज यहां हूँ । ठीक हूँ एकदम । नहीं
लगती....?'

'वह मुस्करायी शराब से ।
'लगती हो, बिलकुल ठीक लगती हो,
फिर भी सावधानी....'

'ऐसी भी क्या सावधानी, जो जीने का

सुख ही छीन ले ।'

भयावह अदृश्य बार-बार मेरे शंका
से अवसन्न चित्त को आकुल-व्याकुल कर
देता, पर जैसे उसने तो निश्चय कर लिया
था कि जितने दिन जीना है जीभर कर
जीना है । फिर भी डॉक्टर ने उसके लिए
जो निश्चित किया था, उसका वह अक्षरशः
पालन करती । और भी उपचार जो कोई
बताता तो उसको भी करके देखती, लेकिन
डेढ़ वर्ष बाद वही हुआ जिसकी आशंका
थी । सोया कैंसर फिर जाग उठा । शरीर
ने धीरे-धीरे मन का साथ देने से इन्कार
करना शुरू कर दिया । उठने-बैठने,
चढ़ने-उतरने में कष्ट होने लगा । हल्की-
हल्की खांसी, कभी ज्वर, कभी सिर, पैर
या आंखों में दर्द की शिकायत भी हो आती,
फिर भी चेतन मन ने हार नहीं मानी ।
अपने हाथ से सिर और पैर दबाती वह
पूर्वतः मुस्कराती रही । इसलिये मैं इस
छल के उस पार न देख सका । काम करने
फिर कानपुर चला गया । कई दिन बीत
जाने पर भी, उसका पत्र नहीं आया तो
मुझे चिंता हो आयी । इलाहाबाद जाना
था, वहीं से फोन मिलाया, बोली, 'आप
तो वहीं जाकर बैठ गये । ज़रा फिकर
नहीं है । मेरी तबीयत ठीक नहीं है ।'

तुरंत दिल्ली लौटा । काफी कुछ घट
गया था प्रिय-अप्रिय । लेकिन वह उसी
तरह मुस्कराती हुई बोली, 'दाहिनी आंख
में कष्ट बढ़ गया है, देख नहीं पाती ।'

'तुमने लिखा क्यों नहीं तुरंत ।'

१९८१

‘क्या लिखती, आप परेशान होते ।
पर अब कहीं मत जाना ।’

उस क्षण के बाद अंतिम विदा के क्षण तक मैं उसके पास से नहीं हटा । डॉक्टर ने कह दिया था, ‘किसी भी क्षण कुछ भी घट सकता है ।’ लेकिन रक्त-चाप के आक्रमण के पूर्व के उन एक सौ-चार दिनों में मैंने बस एक बार उसकी आंखों में आंसू देखे । मेरे खाने में सेवक की असावधानी से कुछ व्यतिक्रम हो गया था । मैं झुंझला उठा । वह पास ही बैठी थी, एक क्षण मुझे देखा, बोली, ‘अब तो यह सब आपको सहना ही होगा ।’

उसकी वाणी में कंपन था और आंखों में पानी । मैं देख न लूं । सो उठकर अंदर चली गयी ।

पहले वह अस्पताल प्रायः अकेली ही जाती थी, लेकिन अब कोई-न-कोई साथ रहता था । आंख की ज्योति क्यों धूमिल हो रही है । कई मत थे इस बारे में, पर अंततः नेत्र विशेषज्ञ ने घोषणा की, ‘माताजी, आपकी छाती का कैंसर अब आपकी आंखों में आ गया है ।’

मृत्यु एक और मंजिल पार करके पास आ गयी थी । मिलने आनेवालों का दबाव भी बढ़ रहा था । मेरे मित्र ही नहीं, उसकी सहेलियां भी कम नहीं थीं । एक बार भी जो मिल लेता, भूलता नहीं था । मेरे सारे मित्र मुझे से अधिक उसके हो रहते थे । उसके तो उसके थे ही । अभी दक्षिण की यात्रा के अवसर पर ‘दक्षिण भारत

नवनीत

हिंदी प्रचार सभा’ में ठहरा था । किसी की एक बहन मिली । एकदम बोल उठी, ‘भाई साहब, भाभीजी कहां हैं ? क्या कमरे में हैं ?’

‘नहीं बहन, वे तो प्रभु के पास चले गयीं ।’

ठगी-सी रह गयी वह बहन, बोली, ‘कब ? हाय, पिछली बार कितनी कष्टनियां सुनी थीं उनसे हमने । सदा मुस्कुराती रहती थीं... ।’

पांडिचेरी से अनुबेन ने लिखा, ‘शुचि-स्मिता का अर्थ मैंने उन्हें देखकर समझा था ।’

जीवन-भर बाहर-भीतर वह शुचि-स्मिता बनी रही । मिलने आनेवाले मुझे प्रायः भाई साहब कहते, और माताजी । उस दिन बोली मुस्कराते हुए, ‘यह क्या बात है, तुम भाई साहब में मां ?’

मैंने शरास्त से उत्तर दिया, ‘तब तुम मेरी भी मां हो गयीं !’

वह भी शरास्त से हंसी, ‘धन्य । फिर एक क्षण मौन रहकर गंभीर हो आयी, बोली, ‘कभी-कभी मेरा भी करता है, कि आपको गोद में लेकर खूब प्यार करूं ।’

फिर रात को मेरे पास आकर गयी, बोली, ‘बताओ तो मां और मैं में क्या अंतर है ! दोनों ही तो से प्यार करती हैं । किसी की होकर ही नारी मां बनती है ।’

मैंने कहा, 'मां ईश्वर है, प्रेयसी प्राण । और अन्ततः प्राण ही ईश्वर हो रहता है, लेकिन तुम्हें अब मेरे पास नहीं आना चाहिये ।'

'क्यों नहीं आना चाहिये ?'

एक क्षण उत्तर के लिए रुकी । फिर बोली, 'जानती हूँ, पैरों में शक्ति नहीं रही, पर शेष स्पर्श तो अभी शेष है, और प्रेम करना कभी बुरा नहीं होता । मन को कितनी शक्ति मिलती है ।'

कहते-कहते वह और पास सरक आयी बोली, 'सुनो, उस दिन वह नर्स कह रही थी-अपने पति से मिलाना मुझे ।'

'क्यों ?'

'आप जानते नहीं जैसे । डॉक्टर ने जांच की थी न ?'

और वह मुझे चकित करती खिल-खिला पड़ी ।

मैंने धीरे-से उसका हाथ दबा दिया । वह अब भी कह रही थी, 'प्रेम का उमर से कोई संबंध है क्या ?'

मन में वही उत्साह था, पर कभी मर्यादा नहीं लांघी उसने ।

०००

मृत्यु के पदचाप पास आते जा रहे थे । नवंबर के अंत में जब अस्पताल गयी तो बैठकर जीना उतरना पड़ा । बोली, 'अब इस जीने से नहीं चढ़ूंगी ।'

यह उसका नहीं, मृत्यु का स्वर था । रक्तचाप के आक्रमण के तीन सप्ताह बाद जब घर लौटी तो कुरसी पर बैठकर

१९८१

दूसरे मार्ग से ऊपर लाये, और फिर ले जाने को श्रेष्ठ रह गया था पार्श्व शरीर.... ।

उन इक्कीस दिनों में एक क्षण को भी मुझे आंखों से ओझल नहीं करना चाहा । अस्पताल में भी अड़ गयी एक दिन, 'यहीं सोओ ।' डाक्टर ने कहा, 'ऐसी कोई बात नहीं है । यदि आवश्यकता हुई तो हम अनुमति दे देंगे ।'

'तो अच्छा जाओ । लेकिन घर जाकर सोना रात को ।'

लेकिन घर तो कौन अनुमति देने वाला था । बोल उठती, 'जब देखो अपने सिंहासन पर जा बैठते हो ।'

मैं कहता, 'सामने ही तो हूँ ।'

कमरा तो दूसरा है ।

बड़ी बहू पैर दबा रही थी । बोली, 'बेटी, कभी अपने पिताजी को भी तो सेवा करने का अवसर दो न ।'

मैं समझ गया, पैर दवाने लगा । एक बार मेरी ओर देखकर मुस्करायी बोली, 'अच्छा लगता है ।' फिर आंखें मींचकर लेट गयी, उस आनंद को सहेजने को । कुछ देर बाद मैंने कहा, 'दवा लोगी ?'

उसी तरह नेत्र मूंदे-मूंदे बोली, 'क्या होगा अब । और देर होगी ।'

लेकिन दर्द कम होगा ।

मुस्कान की एक हल्की-सी रेखा आकर चली गयी । उत्तर नहीं दिया । साजन के घर जाने की उतावली थी न । एक दिन इसी शरीर से वह हिमालय के (शेषांश पृष्ठ ५८ पर)

नेपोलियन के प्रेमपत्र

प्रस्तुति : आदित्यकुमार

नेपोलियन को लेकर अभी तक तीस हजार से अधिक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। एक व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित इससे अधिक पुस्तकें केवल जीसस के बारे में ही लिखी गयी हैं।

इनमें से बहुत-सी पुस्तकों में नेपोलियन द्वारा लिखवाये गये पचहत्तर हजार से अधिक पत्र और आदेश संग्रहीत हैं। प्रति वर्ष, नेपोलियन द्वारा लिखे या लिखवाये गये सैकड़ों नये पत्र प्रकाश में आते हैं।

नेपोलियन के प्रेम-पत्रों की संख्या इतनी अधिक है कि उन सबका प्रकाशन विश्व-कोष के आकार और कलेवर के कई ग्रंथों में ही सम्भव हो सकेगा।

ये अधिकांश प्रेम-पत्र उनकी प्रेमिका-पत्नी जोसेफाइन को लिखे गये थे। पहले प्रेम-पत्र में नेपोलियन ने उसके साथ मित्रता का प्रस्ताव रखा था और अंतिम पत्र में यह शिकायत की थी कि 'मैंने सुना है कि तुम नार्मल किसान की खुशमिजाज बीवी की तरह स्थूलकाय होती जा रही हो।'

जोसेफाइन से नेपोलियन ने उस समय प्रेम करना आरम्भ किया था, जब जोसेफाइन ३२ वर्ष की एक विधवा थी और वे स्वयं एक मामूली, निर्धन सेनाधिकारी।

जोसेफाइन को सुन्दरी तो नहीं कहा जा सकता था, पर उसकी चाल-ढाल गरिमापूर्ण और एक अभिजात वंश की महिला जैसी थी। नेपोलियन के सम्पर्क में आते ही वह उसके भावात्मक जीवन पर छा गई और वर्षों तक नेपोलियन को 'असीम प्रेम' प्रदान करती रही।

०००

नेपोलियन पर लिखी गयी तीस हजार से अधिक पुस्तकों की शृंगारात्मक पटिप्पणियों के रूप में निम्न पंक्तियां प्रस्तुत हैं :

'मार्च १७९६ में एक सेनाधिकारी ३३-वर्षीया पुत्री मेरी रोज जोसेफाइन को कॉर्सिका के नेपोलियन बोनापार्ट नामक एक दुबले-पतले, धनहीन और अदृष्ट प्रेमी से विवाह करने की स्वीकृति दी थी। नेपोलियन उस समय फ्रांसीसी सेना के एक तरुण और उदीयमान अधिकारी थे, और उन्होंने ५ अक्टूबर, १७९१ 'ऐतिहासिक' दिन फ्रांस की राजधानी जमा उपद्रवियों को तितर-बितर करने में सफलता प्राप्त कर, उच्चाधिकारियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था जोसेफाइन के पहले पति की हत्या कर

गयी थी। जिस समय जोसेफाइन ने नेपोलियन के साथ विवाह करने के लिए स्वीकृति प्रदान की थी, उस समय वह पेरिस के अभिजात-वर्गीय समाज की महारानी के रूप में विख्यात थी, और तत्कालीन फ्रांस के सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्ति वराँस के साथ उसके घनिष्ठ सम्बन्ध थे। नेपोलियन उसकी सामाजिक स्थिति के अलावा, उसकी जिन्दादिली और मौजी प्रकृति से भी प्रभावित हुए थे।

और जोसेफाइन पेरिस के सुखों को भोगने के लिए अकेली रह गयी। नेपोलियन चाहता था कि उसकी प्रियसी-पत्नी उसके साथ ही रहे, किन्तु फ्रांस के शासकों ने जोसेफाइन को युद्ध-अभियानों में नेपोलियन के साथ रहने पर इसलिए प्रतिबन्ध लगा दिया था कि उनका विश्वास था कि जोसेफाइन के सामीप्य के कारण, नेपोलियन पूरी एकाग्रता के साथ युद्ध की समस्याओं पर ध्यान नहीं दे सकेगा। जोसेफाइन इस

यह थी वह महिला, जिसने स्वयं नेपोलियन के अपने एक प्रेम-पत्र के शब्दों में 'मुझे ऐसा प्रेम दिया, जिसने मेरा सारा विवेक छीन लिया; मैं खाना-पीना, सोता, सब भूल गया। मुझे न मित्र चाहिये, न किसी की प्रशंसा। मेरी दृष्टि में सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण चीज है-विजय, मात्र इस कारण कि विजय से तुम्हें सुख मिलता है।... तुमने मुझे असीमित प्रेम से, एक मादक उन्माद से भर दिया है।'।



कुछ समय बाद, केवल २७ वर्ष की आयु में, नेपोलियन को फ्रांस का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया, और उसके सिर पर अपने देश को आस्ट्रिया के अधिकार से मुक्त करने की जिम्मेदारी आ गयी। विवाह के दो दिन बाद, नेपोलियन को अपनी सेना के साथ इटली जाना पड़ा,

१९८१

प्रतिबन्ध के कारण मजबूर थी, किन्तु नेपोलियन के प्रेम-पत्रों के उत्तर देने के लिए तो मजबूर न थी। अपने आलसी और आसक्त स्वभाव के कारण उसने कभी नेपोलियन के प्रेम-पत्रों का उत्तर नहीं दिया। हां, जब फ्रांस के शासकों ने प्रतिबन्ध को हटा दिया, तो वह नेपोलियन के साथ रणभूमि

पर रहने लगी, और उसका साथ नेपोलियन को विजय की सतत प्रेरणा देता रहा था।

नीचे प्रस्तुत है, विवाह के एक वर्ष बाद, नेपोलियन द्वारा जोसेफाइन को लिखा गया एक पत्र :

०००

वैरोना, १३ नवम्बर, १७९६
मैं तुमसे प्रेम नहीं करता; बिलकुल प्रेम नहीं करता। उल्टे, मैं तुमसे घृणा करता हूँ।

५३

हिंदी डाइजेस्ट



जोसेफाइन

तुम एक बुढ़-फूहड़ और शरारती उपेक्षिता हो। तुम कभी मुझे पत्र नहीं लिखती; तुम अपने पति से प्रेम नहीं करती; तुम यह अच्छी तरह जानती हो कि तुम्हारे पत्र पाकर तुम्हारे पति को कितनी प्रसन्नता होती है; फिर भी तुमने उसे चंद लाइनें भी नहीं लिखीं; अरे, यूँ ही कुछ लिख दिया होता।

आप दिन भर क्या करती रहती हैं श्रीमतीजी? ऐसा कौन-सा जरूरी काम है, आपके पास कि अपने वफ़ादार प्रेमी को पत्र लिखने का समय भी नहीं मिलता। जिस सौम्य प्रेम का आपने उससे वायदा किया था, उसका दम कैसे घुट गया, उसे कैसे उपेक्षित कर दिया गया? क्या आपको

कोई नया प्रेमी मिल गया है? यदि हाँ, तो हम भी तो सुनें उसके बारे में? आखिर कौन है वह, जो प्रत्येक क्षण आपके मन में रहता है, दिन भर आप पर निरंकुश शासन करता है, और आपको अपने पति के बारे में तनिक भी सोचने नहीं देता।

जोसेफाइन, संभल जाओ! किसी को, सारे दरवाजे तोड़कर मैं तुम्हारे सामने प्रकट हो जाऊँगा।

मैं बहुत अशान्त हूँ, प्रियतम; क्यों तुमने मुझे अभी तक कोई पत्र नहीं लिखा है। अच्छा, अब पत्र लिखने बैठ जाओ। कम-से-कम चार पृष्ठों का पत्र लिखो और उसमें वह सब लिखना, जिसे पहले मेरा उदास मन खिल उठे।

मुझे आशा है कि मैं जल्दी ही तुम्हें अपनी बांहों में लेकर रौंद डालूँगा; लाखों तप्त चुम्बन तुम्हारे होठों को चूम दूँगे।

०००

इटली की अपनी मुहिम में नेपोलियन को यह महसूस होने लगा कि जोसेफाइन वास्तव में एक बड़ी सतही और चिढ़ी महिला है। इस अनुभूति ने यद्यपि उसका भावावेश को एकदम ठंडा कर दिया, तथा उसके प्रति उनके मन में एक स्नेहपूर्ण सद्भावना बनी रही, और अपनी पत्नी से वे उसे प्रेम-पत्र लगातार लिखते-लिखते मित्र की मुहिम से लौटने पर, उन्हें संदेह हो गया था कि जोसेफाइन ने चार्ल्स नामक एक अधिकारी से प्रेम

लगी है। वे जोसेफाइन से तलाक़ लेने का विचार करने लगे। लेकिन, 'आंसुओं और अनुनय-विनय ने फिर हम दोनों का मेल-मिलाप करा दिया।' जोसेफाइन के साथ होने वाले झगड़ों और मनमुटावों के बारे में, नेपोलियन ने आगे चलकर लिखा था, 'प्रायः मुझे ही झुकना पड़ता था।' १७९७ में वैरोना से लिखे एक पत्र में उन्होंने जोसेफाइन को लिखा, '..... मेरे एक हजार चुम्बन स्वीकार करो। मैं सकुशल हूँ। हमारे कुल दस सैनिक काम आये, और सौ के करीब ज़ख्मी हुए।' —बोनापार्ट

०००



नेपोलियन बोनापार्ट

क्या किया था मैंने कि मुझे इस बद-किस्मती का सामना करना पड़ रहा है ?

मैं मिलन में ९ तारीख की शाम तक हूँ। मेरी वजह से कोई कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है — जितना मज़ा कर सको, करो। तुम सुख भोगने के लिए ही पैदा हुई हो। सारी दुनिया को तुम्हें सुख देकर बड़ा सुख मिलता है। अकेला तुम्हारा पति ही है, जो दुखी है। —बोनापार्ट

०००

फ्रांस का सम्राट बनने के बाद, जोसेफाइन की इच्छा का पालन करते हुए नेपोलियन ने उससे १ दिसम्बर, १८०४ को दुबारा विवाह किया। उन दिनों उनका सौभाग्य चरमोत्कर्ष पर था। विवाह

मिलन, २७ नवम्बर, १७९६
मिलन में आते ही, मैं तुमसे मिलने के लिए तुम्हारे निवासस्थान की ओर भागा। सब काम छोड़ दिये; क्योंकि सबसे पहले तुम्हें अपनी बांहों में बांधना था।... पर तुम मुझे वहाँ नहीं मिलीं। तुम्हें इस शहर से उस शहर में जाने और मेलों में घूमने-फिरने से फुर्सत कहां? जैसे ही, मैं आने को होता हूँ, तुम पहले ही रफूचक्कर हो जाती हो। तुम्हें अपने प्रिय नेपोलियन की अब कोई चिन्ता नहीं रही। न जाने किस लहर में आकर, तुम कभी उसे प्यार करने लगी थीं। अब अपनी चंचलता के कारण, तुम उसके प्रति उदासीन हो गयी हो। खतरों और जोखिमों का अभ्यस्त होने के कारण, मैं जानता हूँ कि जीवन की बुराइयों से त्राण कैसे पाया जा सकता है? मैं अपनी बदकिस्मती का बयान भी नहीं कर सकता।

१९८१

के अवसर पर, नेपोलियन जोसेफाइन से अधिक चतुर और दूरदर्शी सिद्ध हुए। उन्होंने जानबूझकर, विवाह-समारोह पर किसी पल्ली पुरोहित को नहीं बुलाया। छह वर्ष बाद, इस 'चूक' का लाभ उठाकर, नेपोलियन को आसानी से जोसेफाइन से तलाक़ मिल गया। किन्तु नोत्रेदाम में हुए ऐतिहासिक राज्याभिषेक के अवसर पर, बेचारी जोसेफाइन को नेपोलियन की इस चालाकी के बारे में कुछ भी पता नहीं था। वह अनेक ईर्ष्यालु रिश्तेदारों के बीच बैठी, फूली नहीं समा रही थी।

नेपोलियन उन दिनों यूरोपीय देशों के सम्मेलन के विरुद्ध अपने विजयी अभियान को तीव्र बनाने में लगे थे। ट्रॉफलगर और आस्टरलिज़ की सफलताओं से उनका आत्म-विश्वास और अधिक बढ़ गया था। अपने देश की सीमा से बाहर चल रहे युद्धों में बुरी तरह अन्तर्ग्रस्त होने और यूरोप के नियंत्रण के प्रयासों के फलस्वरूप उत्पन्न हुए घरेलू कुचक्रों के बावजूद, उन्हें जून, १८०३ में मेलमेसन से जोसेफाइन के साथ यह पत्रात्मक खिलवाड़ करने का समय मिल ही गया, '..... मौसम बहुत अच्छा है। पर जिस बात को मैं सबसे अधिक अच्छा, प्रामाणिक और निष्कपट मानता हूँ, वह है अपनी मासूम जोसेफाइन के प्रति मेरी भावनाएं। प्रार्थना करता हूँ कि मेरी इस बात पर विश्वास कर लो। मेरा सर्वस्व तुम्हारा है—बोनापार्ट।'।

जेना के निर्णयात्मक युद्ध और पश्चिमी

यूरोप की अस्थायी हार के पश्चात्, नेपोलियन पूर्व को जीतने की योजनाएं बनाने लगे। रूसी साम्राज्य की चुनौती का जवाब भी उन्हें देना था। जोसेफाइन को अब तक यह अहसास हो गया था कि उसके पति के प्रेम में पहले जैसी गर्मी नहीं रही, इसलिये वह बार-बार उनके पास रहने का आग्रह करने लगी। पर नेपोलियन को अब जोसेफाइन की कोई आवश्यकता नहीं थी। फिर भी, वे उसे पत्र लिखने से नहीं चूकते थे, और उनके इस काल के पत्रों में पहले जैसा ही उत्ताप दिखायी देता है, व बात सचमुच आश्चर्यजनक है।

१४ मार्च, १७९६ को लिखे उनके निम्न पत्र की तुलना, ६ नवम्बर, १८०३ के उस पत्र से कीजिये, जो उसके तुरन्त बाद दिया गया है।

०००

चांसा, १४ मार्च, १७९६

चैटिलोन से भेजा मेरा पत्र मिल होगा। उसके साथ मेरा वह मुद्रापत्र अधिकार भी मिला होगा, जिसके द्वारा तुम्हें उन सब धनराशियों को लेने का अधिकार मिल गया है, जो मुझे देय हैं। हर क्षण मैं तुमसे, अपने आराध्य साथी के दूर होता जाता हूँ, और हर क्षण मेरे दिल असह्य होता जा रहा है। तुम्हारे अलावा मैं किसी और के बारे में सोच ही नहीं पाता। मैं सदा यही कल्पना करता हूँ कि तुम क्या कर रही होगी? तुम्हें देखकर, मेरा दिल टूट जाता है। तुम्हें

मित्रों के साथ हंसते-खेलते देखकर मेरी उदासी और अधिक बढ़ जाती है। हम दोनों को एक-दूसरे से बिछुड़े हुए केवल तीन दिन ही हुए हैं, और तुम इतनी जल्दी मुझे भूल गयीं, यह सोचता हूं, तो तुम्हें फटकारने को मन करता है। तुम प्रेम को बहुत हल्के-फुल्के ढंग से लेती हो, गहरी भाव-प्रवणता तुम्हारे भीतर मुझे दिखायी नहीं देती। यह तो तुमने देख ही लिया होगा कि मैं आसानी से सन्तुष्ट होने वाला आदमी नहीं हूं। किन्तु, मुझसे बिछुड़ कर यदि तुम चिन्ता नहीं करतीं, तुम्हारे स्वास्थ्य पर ज़रा भी प्रभाव नहीं पड़ता, तो मेरी यह आशंका स्वाभाविक ही हो जाती है कि मैं इतनी जल्दी तुम्हारे दिल से दूर हो गया। मैं काफ़ी गम्भीरता से यह मानने लगा हूं कि तुम्हारा रुख मेरे प्रति पहले जैसा कोमल और सदय नहीं रहा। मैं अपने सुख की तब तक कल्पना नहीं कर सकता, जब तक मुझे यह निश्चय न हो जाय कि तुम सुखी हो, और तुम्हें कोई कष्ट नहीं है। यदि कोई सुबह को मुझसे पूछे कि मैं रात को अच्छी तरह सोया या नहीं, तो उसके इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व, मुझे यह मालूम करना होगा कि तुम भी पिछली रात अच्छी तरह सोयी थीं, या नहीं? ओ घने काले बालों वाली मेरी मित्र! दूसरों का क्रोध, उनकी व्याधियां मुझे तभी प्रभावित करेंगी, जब उनका प्रभाव तुम पर भी पड़ा हो। मेरी संरक्षक आत्मा ने बड़े से बड़े खतरों में भी मेरी रक्षा की है।

भगवान करे, वह सदा तुम्हारी भी रक्षा करे। तुम्हें सुरक्षित देखकर ही मैं अपने को सुरक्षित समझ सकता हूं।

तुम बहुत अधिक उल्लसित मत रहा करो, थोड़ी उदास भी रहा करो।

भगवान से मेरी प्रार्थना है कि तुम्हारा मन चिन्ता-रहित, और तन रोग-रहित रहे।

तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा रहेगी, ओ कोमलांगी! पत्र काफ़ी लम्बा लिखना। और, अंत में मेरे सच्चे से सच्चे और स्नेही से स्नेही प्रेम के साथ स्वीकार करो १००१ चुम्बन, अपने बोनापार्ट की ओर से।'

०००

बर्लिन, ६ नवंबर, १८०६

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने महिलाओं के बारे में जो कठोर बातें कहीं, वे तुम्हें तकलीफ़ देह लगीं, ऐसा लगता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं षड्यंत्रकारी महिलाओं से घृणा करता हूं। मैं अच्छे स्वभाव की, मधुर और शांतिप्रिय महिलाओं का अभ्यस्त हूं, और उन्हीं से प्रेम करता हूं। यदि ऐसी महिलाओं ने मुझे बिगाड़ा है, तो इसमें दोष मेरा नहीं तुम्हारा है। इसके अतिरिक्त, तुमने यह भी ग़ौर किया होगा कि मैं उस एक महिला के प्रति बहुत अच्छी तरह से पेश आता रहा हूं, जो स्वयं अच्छी और समझदार है। और, उनका नाम है श्रीमती हेज़फ़ेल्ड। जब मैंने उन्हें उनके पति का पत्र दिखाया, तो वे भावविह्वल होकर सुबकने लगीं, और बोली, 'हां, यही

(शेषांश पृष्ठ ६३ पर)

१९८१

५७

हिंदी डाइजेस्ट

(पृष्ठ ५१ का शेषांश)

दुर्गम पथों पर गोमुख तक हो आयी थी मेरे साथ। आज वह सरक भी नहीं पा रही। पर चेतना तो अमृत में डूबी थी। जैनेंद्रजी सपरिवार आये। मामीजी से बड़ा स्नेह था। बोली, 'पहचानती हो, सुशीला?'

हंसी आयी, 'मामीजी, मामाजी को न पहचानूंगी।'

'कैसी तबियत है?'

'अब तो जाना है, मामीजी। देखिये कितनी देर लगती है।'

ऐसा नहीं कि वह इतनी ही बात करती थी। घर-गिरस्ती, सुख-दुख, उलहना देने से न चूकती थी।

सत्येंद्र शरत बहुत समीप रहे हैं। सपत्नीक आये। बस दो ही दिन शेष रह गये थे। देखते ही बोली, 'अब आये हो, जब जा रही हूँ।'

उलहना उसे ही दिया जाता है जिसपर कुछ अधिकार होता है, पर दूसरे ही क्षण वह याद कर-करके सबके सुख-दुख की कहानी पूछती-सुनती रही।

अस्पताल में जब सेंकट आया था, तो पास और दूर से सभी परिजन घिर आये थे। घर आने पर वे लौट गये। वह जानती थी—वे सदा उसके पास बैठे नहीं रह सकते, फिर भी जाने से पूर्व होश रहते सबको याद किया। अपनी छोटी बहन को विशेष रूप से। बेटी की तरह प्यार करती थी उसे। कहती, 'उसे

बुला लो, वह मेरी सेवा करेगी।'

'लेकिन डॉक्टर साहब भी तो बीमार हैं इन दिनों।'

'तब रहने दो। लेकिन कब ले जायेंगे प्रभु!'

मैंने कहा, 'मैं नहीं ले जाने दूंगा। सुनकर मुस्करा उठी। कैसी कर थी वह मुस्कान!

घर में सब कुछ पूर्ववत् चलता था अजनबी आये तो जान भी न पाये वह स्वयं सबसे पहले आगंतुक से चा पीने का आग्रह करती। फिर सुख-दुख की बातों में खो जाती, लेकिन शक्ति प्रतिक्षण क्षीण हो रही थी। दर्द चेतना में अभूतपूर्व संघर्ष छिड़ा था इसलिये स्मृति भी छलकर जाती अपनी एक सहेली से मिलने की इच्छा प्रकट की। वह आयी। बातें की। भी गयी। कुछ देर बाद मेरी ओर देकर कहा, 'वह आयी नहीं अभी।'

मैंने कहा, 'अभी तो गयी है।'

'अच्छा, याद ही नहीं रहा।'

मानो यह चेतावनी थी। उस रात, वह बस जैसे कराहती ही शब्द से ध्वनि जैसे लुप्त हो गयी शरीर ने स्पष्ट कह दिया, 'अब और नहीं' ०००

बार-बार छूता मैं उस शरीर को, कोंच-कोंच देता। कभी एक-दूसरे की स्पर्श मात्र अथाह पुलक से भर देता रूपान्तरित हो रहता मेरा संपूर्ण अस्तित्व

और अब....

मानो वह कह रही थी, रवि ठाकुर के शब्दों में, 'जाने की बेला आ गयी। अब फेर लो अपनी आंखें। तोड़ दो माया की डोर। मत पुकारो मुझे किसी नाम से। धरती पर मेरी छुट्टी समाप्त हो गयी। मुझे जल्दी जाना है।'

लेकिन मन क्या मानता है। बार-बार पुकारता रहा। सवेरे (८ जनवरी, १९८०) दस बजे उसने अंतिम बार मुंह खोला, लेकिन दवा या गंगाजल कुछ भी गले से नीचे नहीं उतर सका। फिर तो बस शेष साढ़े आठ घंटों का चेतन-अचेतन वह दिखायी देनेवाला संघर्ष, बस हृदय की धड़कन को निरंतर क्षीण होती यांत्रिक कराहट में रूपायित करता रहा। वास्तविक चेतन सत्ता तो जीवन के ज्वार-भाटे से मुक्त होकर ऊपर उठ-फैल चुकी थी। संघर्ष को छह बजकर बत्तीस मिनट पर मृत्यु ने अंतिम रूप से अपनी माया समेट ली। आंखें शतदल कमल की तरह खुलती चली गयीं। तीन हिचकियां और नेत्र आधे मुंद आये ...

संघर्ष समाप्त हो गया। आश्चर्य, चेहरे पर उस यातना का चिह्न तक शेष न था। सौम्य-शांत-निर्द्वंद्व, जीवन से कहीं सुंदर लग रही थी वह मृत्यु में।

कितना कुछ घट गया उन क्षणों में, मेरे अंतर में? कितने चित्र उभर कर एक-दूसरे में गडमगड हो गये? कितने शब्द घुटकर धुआ बन गये?

किसी के जाने के बाद पता लगता है, कि उससे कोई कितना जुड़ा था। पहले तिल-तिलकर जुड़ने का प्रयत्न, फिर जुड़ने की उस प्रक्रिया को भूलने का प्रयत्न, यह यातना कितनी त्रासद होती है। अनंत स्मृतियों की आंच प्रतिपल, प्रतिक्षण दग्ध करती रहती है तन को भी, मन को भी!

०००

विच्छेद की उस घड़ी को आज भी स्वीकार नहीं कर पा रहा हूँ। अनुभव करता हूँ कि यह या वह द्वार खोलकर आ जायेगी मुस्कराती हुई—'हूँ तो...!'

'कुछ बातें करो न?'

पर दूसरे ही क्षण मेरा पूरा अस्तित्व पिघल उठता है वेदना से। पाता हूँ कि मेरी जल-प्लावित आंखें उस मुस्कराते चित्र को एकटक देख रही हैं, 'कभी यह सब मेरा था।'

और आज....

आज बस दर्द ही मेरा है। और यह दर्द विछोह का नहीं है, उस सुख के अभाव का है जो, कवि वीरेंद्रकुमार के शब्दों में 'तब मिलता है, जब दो शरीर आत्मा हो जाने के लिए विवश हो रहते हैं।'

लेकिन मैं गलत कह गया।

सुख का अभाव कैसा? सुख तो अमूर्त है और अमूर्त की सत्ता कभी नष्ट नहीं होती।

मेरे रोम-रोम में व्याप्त है वह सुख।
-८१८, कुंडेवाला न, अजमेरीगेट, दिल्ली-६

रसेश्वर दर्शन : देह की अमरत्वसिद्धि का परम रसायन

■ सर्वदर्शनकार माधवाचार्य

महेश्वर (शिव) को परम-तत्त्व के रूप में स्वीकार करने वाले दार्शनिक माहेश्वर कहलाते हैं। सर्वदर्शन-संग्रह में चार माहेश्वरों का वर्णन है—नकुलीशपा-शुपत, शैव, प्रत्यभिक्षा और रसेश्वर। वे सभी जीवात्मा का परमात्मा से ऐक्य रूप मानते हैं। रसेश्वर-दर्शन इन सबों से इसलिए पृथक् है कि इसमें जीवन्मुक्ति के लिए रस अर्थात् पारद-रस का प्रयोग अनिवार्य माना गया है। पारद-रस से शरीर को अजर-अमर किया जा सकता है, बिना वैसा किये जीवन्मुक्ति नहीं मिल सकती। जीवन्मुक्ति वह है, जिसमें आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार हो जाये, अभ्यास के आधिक्य से मिथ्याज्ञान का विनाश हो जाये, किन्तु प्रारब्ध कर्म को भोगने के लिए जीव-धारण किया जाये। इसे अपर-मुक्ति भी कहते हैं। सभी दार्शनिक इसे स्वीकार करते हैं; रामानुज आदि नहीं मानते, यह दूसरी बात है। रसेश्वर के अनुयायियों का कहना है कि जीवन्मुक्ति का वास्तविक आनन्द हम लोग ही जानते

हैं, क्योंकि शरीर को बिना अमर कि अनन्त जीवन्मुक्ति हो नहीं सकती। आयुर्वेद-शास्त्र के अनुसार पारद महत्त्व प्रतिपादित किया जाता है।

पारद (पारे) को रसशास्त्र में तत्त्व का वीर्य माना गया है। इसलिए रसायन में शिव-पार्वती-संवाद के अन्तर्गत पारद को शिव अपना देहरस, प्रत्यंगसंभव कह रहे हैं। पारद की उत्पत्ति के लिए देखें—‘शिवांगात् प्रच्युतं रेतः पतितं धरा तले । तदेहसारजातव्रत्वाच्छुक्लमच्छमभुजं तत् ॥ अत्र भेदेन विज्ञेयं शिववीर्यं त्रिविधम् । श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं भवेत् क्रमात् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रस्तु खलु जातितः ।’ पारद की अवस्था का अर्थ है, जब वह मूल रूप हो, शुद्ध नहीं किया गया हो। ऐसी अवस्था में उसकी तुलना शिव से की जाती है।

‘छह दर्शनों में शरीरनाश के बाद जीवन्मुक्ति का निर्देश हुआ है, वह (मुक्ति) हाथ में रखे हुए आँवले की भाँति प्रत्यक्ष

नवनीत

रूप से
रक्षा र
रसे
की गर्व
का बण
बाद स
निर्देश
आदि
दर्शन व
में ये क
का निव
के बाद
इससे म
प्रति वे
लोगों मे
की मुक्ति
परा-मुक्ति
करने ल
मुक्ति प्र
लायेंगे।
का सेव
कर लें उ
कुलाचार
जीवन्मुक्ति
पूज्य
भी कहते
विलास
मुक्ति के
वह (मुक्ति)
अभ्यास
जब
१८१

रूप से नहीं मिलती, अतः इस शरीर की रक्षा रसों और रसायनों से करनी चाहिये ।'

रसेश्वर-दर्शन के विरोध में शंका यह की गयी है कि छह दर्शनों में भी जीवन्मुक्ति का वर्णन है, मिथ्या ज्ञान के विनाश के बाद सद्ज्ञान से होने वाली मुक्ति का निर्देश सभी लोग करते हैं (रामानुज आदि इसे नहीं मानते) । तब रसेश्वर-दर्शन का उपक्रम व्यर्थ है । इसके उत्तर में ये कहते हैं—छह दर्शनों में जीवन्मुक्ति का निर्देश होने पर भी वहाँ शरीरनाश के बाद ही वास्तविक मुक्ति का कथन है ।

इससे मालूम पड़ता है कि जीवन्मुक्ति के प्रति वे लोग विरसता दिखलाते हैं । लोगों में यह भ्रम हो जायेगा कि दो प्रकार की मुक्तियाँ कैसी हैं, वे जीवन्मुक्ति या परा-मुक्ति (मृत्यु के बाद) में भी सन्देह करने लग जायेंगे और विश्वास के साथ मुक्ति प्राप्त करने में प्रवृत्ति नहीं दिखलायेंगे ।

सबसे अच्छा है कि रस-रसायन का सेवन करके शरीर को अजर-अमर कर लें और संसार को विश्वास दिलायें । कुलाचार (तांत्रिक-मत) में भी कहा है—

'जीवन्मुक्तावुपायस्तु कुलमार्गो हि नापरः ।'

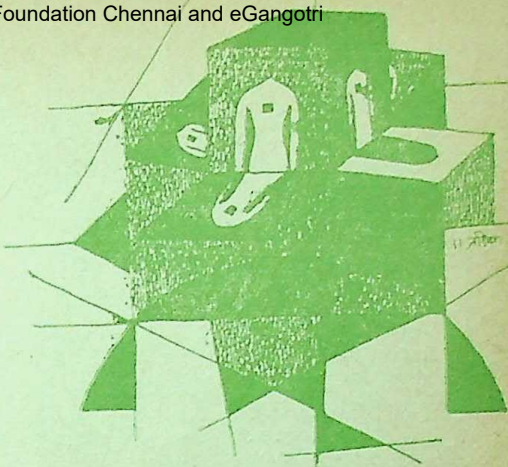
पूज्य गोविन्द भगवान् आचार्य जी भी कहते हैं—इस प्रकार धन, शरीर और विलास को अनित्य (क्षणिक) समझकर मुक्ति के लिए सदा यत्न करना चाहिये ।

वह (मुक्ति) ज्ञान से होती है, ज्ञान भी अभ्यास से होता है, अभ्यास तभी सम्भव है, जब शरीर स्थायी (निरोग) हो ।

१८१

६१

हिंदी डाइजेस्ट



चित्र : संतोष जड़िया

यदि कोई पूछे कि जो देह नश्वर के रूप में दिखायी पड़ती है, वह कैसे नित्य बन सकती है, तो यह शंका ठीक नहीं—ऐसा मत समझो, क्योंकि यद्यपि छह कोशों, (त्वचा, रक्त, मांस, मेदस्, अस्ति और मज्जा) का बना शरीर अनित्य है, तथापि रस और अभ्रक के नामों से अभिहित क्रमशः शिव और पार्वती की सृष्टि से उत्पन्न देह तो नित्य हो सकती है ।

आयुर्वेदोक्त षट्कोशों से बना शरीर भले ही अनित्य हो, परन्तु जब इसमें हर-गौरी की सृष्टि-रस (पारद) और अभ्रक का संयोग हो जायेगा, तब उसे (शरीर को) हम नित्य बना देंगे । पारद शिव की सृष्टि है तथा अभ्रक पार्वती की । इस तरह शरीर नित्य हो जाने पर छह कोशों वाले शरीर का त्याग भी नहीं होगा और उसे दिव्य तथा दृढ़ भी बना दिया जायेगा । तब मृत्यु-भय मिट जायेगा ।

उसी प्रकार रसहृदय में कहा गया है,

‘जो लोग शरीर को बिना त्यागे हुए ही हर-गौरी की सृष्टि (पारद, अभ्रक) से बना हुआ शरीर पाये हुए हैं, वे रससिद्ध (रसों को सिद्ध करने वाले) लोकमुक्त हैं, मंत्रों का समूह तो उनका किकर (दास) है।’ इसलिए जीवन्मुक्ति की कामना करनेवाले योगी को पहले दिव्य-शरीर कर लेना चाहिये। रस (पारद) हर से उत्पन्न है, अभ्रक गौरी से। हर-गौरी-सृष्टि के संयोग से उत्पन्न होना तथा उन देवताओं का रूप होना कहा गया है— शिव पार्वती से कहते हैं, ‘अभ्रक तुम्हारा बीज है और मेरा बीज पारद है, हे देवि, इन दोनों का मिलना मृत्यु और दरिद्रता का नाशक है।’

रस-हृदय गोविन्द भगवत्पादाचार्य का लिखा हुआ ग्रन्थ है, ये आद्य शंकराचार्य के गुरु थे। इनका समय प्रायः ७८० ई० है। यह आयुर्वेद-रसायन-शास्त्र का सुविख्यात ग्रन्थ है। अभ्रक-पारद मेलन से दिव्यशरीर धारण करके मृत्यु का नाश कर सकते हैं। सिद्ध पारद से बिद्ध होने पर लोहा सुवर्ण बन जाता है—इसी से इसे दरिद्रता का नाशक कहा गया है। ‘रससिद्ध’ शब्द में श्लेष दिखलाते हुए भर्तृहरि ने नीतिशतक में ऐसे ही मुक्त पुरुषों का संकेत किया है—

जयन्ति ते मुक्तानि रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ॥

कुछ देवतागण जैसे—महेश इत्यादि, काव्य (शुक्राचार्य) इत्यादि दैत्य, बाल-खिल्य आदि मुनि, सोमेश्वर आदि राजा,

नवनीत

गोविन्द भगवत्पादाचार्य, गोविन्दनाथ चर्वटि, कपिल, व्यालि कापालि, कन्दर्वा तथा दूसरे भी बहुत-से सिद्ध लोग जीवन्मुक्त होकर (पारद) रस से शरीर पाकर, उस (रस की प्रशंसा) परिपूर्ण आख्यानों से प्रसिद्ध होकर, चरण करते हैं।

विशेष—रसेश्वरसिद्धांत सोमदेव लिखा हुआ ग्रन्थ है, जिनका समय निश्चित नहीं हो सका है। महेशाचार्य अभिप्राय है शैवदर्शन में उक्त विष्णु का—अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकैकस्वर, त्रिमूर्तिक, श्रीकुण्ड शिखर

शरीर के कर्मों को स्थिर करने पदार्थ हैं—पारा और प्राणवायु। प्राण शरीर के अन्दर संचरण करती है। प्राण याम के द्वारा प्राणवायु को रोक देता है जिससे उसमें विशेष गति उत्पन्न होती है तथा यह ‘मूच्छित’ कहलाती है। मूर्च्छित होने से ही रोगनिवारण की शक्ति आ जाती है। रससिद्ध योगी के रोग होते हैं। अधिक निरोध होने पर यह मृत हो जाती है तथापि योगियों को मृत से अलग होने नहीं देती—शरीर निरुद्ध होता है। स्तम्भित होने पर आकाश चलने की शक्ति भी देती है। इस प्रकार केवल पारद, प्रत्युत प्राणवायु पर इस प्रकार रससिद्ध योगियों का अधिक देखा जाता है।

पारद का स्वरूप भी कहा गया है, ‘जो अयरहिब, मोड़ा द्रवित होते

तजोमय (चमकीला) स्वच्छ, गुरु (भारी) तथा पुनः आवृत्तिकाल (संस्कार करने के समय) में विकसित होने वाला—यह वृद्ध पारद का लक्षण है।

कोई यह पूछ सकता है कि सत्, चित् और आनन्द के रूप में परम-तत्त्व के स्फुरण से ही जब मुक्ति मिल जाती है, तब दिव्य देह बनाने के लिए इस प्रकार के प्रयास से क्या लाभ है? यह तर्क व्यर्थ है; क्योंकि वास्तविक शरीर बिना पाये हुए ऐसी बात (आत्मसाक्षात्कार से मुक्ति की बात) हो ही नहीं सकती है। रसहृदय में कहा है—‘सभी विकल्पों को नष्ट करने वाला तथा सभी प्रत्यानों (दर्शनों) से सम्मत चिदानन्द स्फुरित (प्रकट) होने पर, अप्रकट (अस्थिर) शरीरवाले जीवों पर क्या कर सकता है? जो शरीर वृद्धावस्था से जर्जरित हो गया है, जिसमें खांसी और दमा आदि दुःख पूर्णतया व्याप्त हों, जिसमें ज्ञानेन्द्रियों का प्रसार कुंठित हो जाता हो, वह

समाधि के योग्य नहीं है। मनुष्य सोलह वर्षों तक तो बालक रहता है, बाद में विषय-रस के आस्वाद में लिपटा रहता है, वृद्ध होने पर विवेक शून्य हो जाता है, वह मुक्ति कैसे पा सकता है?

‘सभी विद्याओं का समूह तथा धर्म अर्थ, काम और मोक्ष का भूल एकमात्र अजर और अमर शरीर को छोड़कर दूसरा क्या हो सकता है?’

अजर और अमर करने की सामर्थ्य रसराज (पारद) में ही है। कहा है—एक रसराज ही शरीर को अजर, अमर करता है। रस की महिमा क्या कही जाये! देखने और छूने से भी बड़ा फल मिलता है।

वैदिक प्रमाण भी है—वह (परमात्मा) रस ही है। वह (पुरुष) रस (पारद) को पाकर आनन्दी (मुक्त) होता है। तो इस प्रकार भव (आवागमन) तथा दैन्य दुख के भार से बचने का उपाय रस ही है, यह सिद्ध हुआ। उसी प्रकार रस की समता परब्रह्म से है।

(पृष्ठ ५७ का शेषांश)

है उनका हस्तलेख !’ और उनके पढ़ने के ढंग ने मुझे हिलाकर रख दिया। जो कुछ वे सह रही थीं, मैं भी सह रहा था। मैंने बाद में उनसे कहा, ‘श्रीमतीजी! इस पत्र को जला दीजिये, मैं अब कभी आपके पति को दंड देने का आदेश नहीं दे सकूंगा।’ उन्होंने मेरे कहने पर पत्र को जला दिया, और ऐसा करके बहुत प्रसन्न दिखायी दीं।

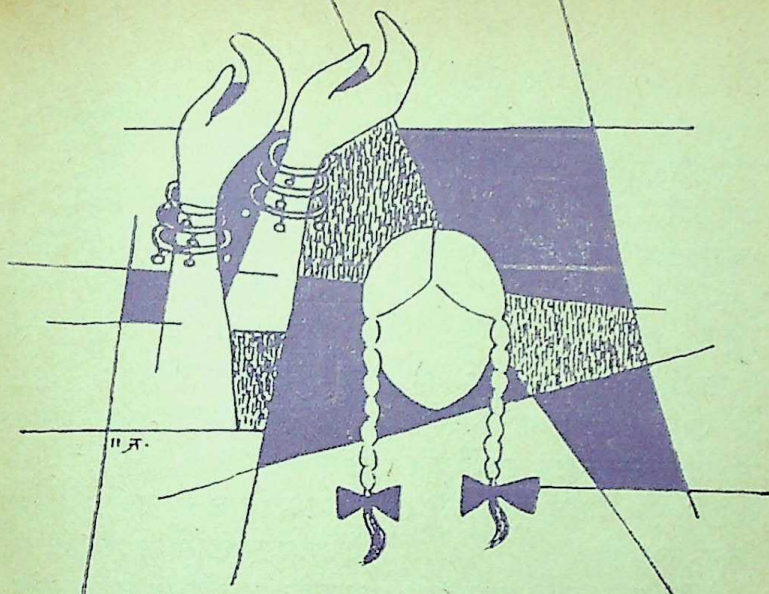
उसका पति अब चिन्तामुक्त है। यदि मैं इस महिला से दो घंटे बाद मिला होता, तो बहुत देरी हो गयी होती। तो, तुमने देखा कि मैं अच्छी, मधुर स्वभाव की और प्रामाणिक महिलाओं को चाहता हूँ, पर इसका एकमात्र कारण यह है कि ऐसी महिलाएं तुमसे बहुत मिलती हैं। अलविदा, प्रिये! मैं ठीक हूँ।—नेपोलियन [अगले अंक में समाप्य]



महाकवि सूरदास का ढोली-गीत

हो आजु नंदलालसों खेलौंगी सखी होरी ।
 ललिता, बिशाखा अंगना लिपावो चौक पुरावो तुम रोरी ॥
 मलयज मृगमद केसरि लैलै मथिमथि भरो कमोरी ।
 नवसत साजि शृंगार करो सब भरि भरि लेहु गुलालहि झोरी ॥
 ज्यों उडुगण में इंदु बिराजत सहेलिन मध्य राधिका गोरी ।
 इक गोरी इक सांवरी हो इक चंचल इक भोरी ॥
 बरजति सखी बरज्यो नहि मानै लै पिचकारी दौरी ।
 उन रंग लै पिय ऊपर डार्यो पियह रंग में बोरी ॥
 ब्रह्मा इंद्र देवगण गंधर्व बरषे बहुत वाटिका खोरी ।
 सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन को चिरजीवो राधावर जोरी ॥

कहीं-
 ला
 गुंजारित
 धुंधरु ।
 उसके ब
 ही अपने
 दिखा र
 मगर
 अभिनय
 लेकिन
 रही हों,
 ये चूड़ि
 कुसु



शशि देशपांडे की एक कन्नड कहानी

लाल चूड़ियां

कहीं-कहीं सुवर्ण रंग छिटकी एक जोड़ी लाल चूड़ियां। इनमें मंद-मंद ध्वनि गुंजारित करते छोटे-छोटे चार जोड़े घुंघरू। इन चूड़ियों को पहने कुसुम उसके बगल में बैठी है। अनजाने बनकर ही अपने दोनों हाथों को बेंच पर रखकर दिखा रही है।

मगरूर मुर्गी है। उसने भी ऐसा अभिनय किया मानों देखा ही नहीं। लेकिन चूड़ियां आंखों के सामने चमक रही हों, तो चुप कैसे रहा जा सकता है! ये चूड़ियां मानों उसे छेड़ रही हों! 'कुसुम, क्या ये नयी हैं?'

कुसुम ने जानबूझकर अपने कानों के झुमके एक बार हिलाकर कहा, 'हां! तुम्हें पसंद आयीं?'

'हां-हां, बढ़िया हैं।'

सचमुच अच्छी हैं? मेरे पास भी ऐसी चूड़ियां होती तो ... अपनी प्लास्टिक की चूड़ियां देखकर गुस्सा आता था। उनसे ध्वनि नहीं निकलती। हां, उनकी सिर्फ बनावट ही सुंदर है। रंग उड़ जाने के कारण बड़ी ही भद्दी लगती हैं।

'मैंने नवरात्रि के मेले में खरीदी थीं। मेरे दादा (भाई) ने खरीदी थीं मेरे लिए। ये झुमके भी।'

इसके दादा की तरह ही मेरा भी कोई दादा होता ! क्षणभर में मुस्कराती कोमल, सौम्य और मधुर ध्वनि के साथ स्नेहपूर्ण दृष्टियुक्त एक स्त्री उसके मानस-पटल पर दौड़ गयी। क्या लाभ ? वह केवल कल्पना बनकर रह गयी।

‘तू मेले में जा रही है ?’

‘मैं नहीं जानती,’ अधिक महत्त्व दिये बिना उसने उत्तर दिया। मानों इससे उसका कोई संबंध ही न हो। उसके बाद बड़ी चतुराई से मुख्य प्रश्न पूछ बैठी। ‘इनकी कीमत क्या है ?’

‘मालूम नहीं। मेरा दादा लाया था। शायद चार रुपयों की हैं।’

वह तुरंत साहस बटोरकर संभली। ‘बहुत सस्ते में मिलीं !’ कहते समय उसके चेहरेपर प्रौढ़ा का-सा गांभीर्य दौड़ गया।

अगर मां से पैसे मांगूंगी तो वह बोलेगी—पैसे क्या पेड़ से गिरते हैं ?

लेकिन उससे चुप नहीं रहा गया।

घर पहुंचते ही वह मां से बोल पड़ी—‘मां मुझे चार रुपये दोगी ?’

मां के छोटे चेहरे की बड़ी-बड़ी आंखें और भी बड़ी हो गयीं। ‘चार रुपये ! किसलिये ? तू पागल हो गयी है ? क्या और एक किताब के लिए चाहिये ? हे भगवान, तेरा स्कूल तो मेरी जान ले रहा है। उस पर तेरे बाबा की गालियां भी मुझे ही सुननी पड़ती हैं मानो कोई.....’

‘नहीं, मां, किताब के लिए नहीं।’

‘फिर ?’

‘ऐसे ही....’

‘ऐसे ही ? तू क्या समझती है पैसे से गिरते हैं ?’

‘मुझे नवरात्रि के मेले में जाना। वह तुरंत बोल गयी, ‘मुझे एक चूड़ियां खरीदनी हैं। वैसी ही, कुसुम के पास हैं। बड़ी ही सुंदर मां, लाल-लाल, चमकती हुई और....’

‘हे भगवान, चूड़ियां ! अपने कानों पर चरा देख।’

उसके पास केवल एक स्कूल-यूनिफॉर्म है। शाम को स्कूल से लौटकर, धीरे-धीरे सुखाती है। लेकिन उसके सफेद जूतों के पीछे लगा तेल का चिट्टा जाने का ही नहीं लेता। उसके स्कर्ट के हुस्न जाने के कारण वहां बड़े-बड़े लोग दीखते हैं। ब्लाउज छोटा होने के कारण बार-बार स्कर्ट से बाहर आ जाता है। एक दिन उसकी टीचर गुस्से में कहा था, ‘तूने ड्रेस का क्या हाल रखा है ! इस ड्रेस से स्कूल आने में नहीं आती ? व्यवस्थित रूप से पहनना भी नहीं जानती ? तिन होमवर्क्स भी करती ही नहीं। क्यों ?’

‘क्यों’ का सैकड़ों बहाना सोचा, सब त्याग दिये। सचाई के बारे में सोचा ही नहीं। वह कैसे बता सकती है। ‘शैला, प्रेमी को भूख लगी है।’

‘शैला, सुनीता गंदी हो गयी है। धो दे।’

यद्यपि चुप रहने से गुप्तेवाई का क्रोध भड़क उठता है, फिर भी चुप रहने में ही भलाई है।

‘मां, मुझे एक नया स्कर्ट और ब्लाउज सिलवाकर देगी?’ उसी शाम को उसने मां से पूछा था।

‘तू क्या समझ रही है, पैसा पेड़ से गिरता है!’ मां ने जवाब दिया था।

‘तुझे एक और स्कर्ट-ब्लाउज चाहिये, मुझे एक स्टोव की जरूरत है। यह स्टोव तो राक्षस की तरह सारा तेल एक ही बार सोख लेता है। कृष्ण के लिए टानिक लाना है...।’

‘तुम्हारी कसम मां, बस, सिर्फ एक बार-फिर कभी नहीं मांगूंगी।’

‘पागलों-सी बात मत कर। मैं समझ रही थी तू अपनी जिम्मेदारी समझती है। बच्चों में तू बड़ी है। इतनी बड़ी लड़की को अकल होनी चाहिये। समझ-दारी होनी चाहिये। ले, आटा गूंध दे। तेरे बाबा जल्दी ही आयेंगे। आने तक खाना तैयार नहीं हुआ तो कोलाहल मच जायेगा। जल्दी कर। तब तक मैं कृष्ण को सुलाकर आती हूँ।’ सब कुछ भुलाकर मां कृष्ण को सुलाने में लीन हो गयी।

‘शैला, तीन छोटी बहनों के बाद तुझे एक छोटा भाई मिला है। तुझे खुशी नहीं हुई?’—उन लोगों ने पूछा था। शुरू में अपनी बहनों प्रेमी, सुनीता और सोनू एवं भाई में कोई अंतर दिखाई नहीं दिया। लेकिन कुछ समय के बाद अंतर

स्पष्ट हुआ। सारा ऊधम कृष्ण के लिए। मां बीमार-पर-बीमार। सारा काम उसी के जिम्मे। प्रेमी, सुनीता और सोनू, इन तीनों को संभालना, सामान लाना, पानी भरना, मसाला पीसना, बर्तन घिसना कपड़े धोना... और सबसे बढ़कर आटा गूंधना तो उसे असह्य लगता था। अब तो आटा का ढेर दिखते ही दुश्मन-सा लगता है। गूंधते-गूंधते उसकी छोटी-छोटी उंगलियां दुखने लगतीं। गूंधने के बाद बनायी बड़ी-बड़ी लोंदें, मानो उसकी दिल्लगी उड़ाती हों।

आज तो आटा उसकी हथेली और उंगलियों से ऐसा चिपक गया मानों छूटेगा ही नहीं। उभर आयी रुलाई से उसका गला भर गया। आंसू की पहली बूंद धीरे-धीरे बहकर नाक के अग्रभाग पर आकर रुकी। क्षणभर अपना दुख भुलाकर दृष्टि झुकाकर देखा तो उसके विभिन्न रंगों से आकर्षित होकर तुरंत वे चूड़ियां याद आ गयीं और अश्रुधारा का वेग बढ़ गया।

‘क्या हुआ, शैला?’ मां ने उसे देखकर पूछा। ‘रोना बंद कर। क्या छोटी बच्ची है! अब तू रोने-जैसी छोटी नहीं है। बंद कर रोना।’

बाबा जब घर आया, बब वह स्टोव के सामने उकड़ूं बैठी थी।

मां बड़ी सावधानी से चपाती सेंक रही थी। बाबा मौन बैठा था। मां ने एक हाथ में बेसन पकड़े-पकड़े रसोई परोसी। इधर

कन्नड से रूपांतर : डा. बी. बी. पुत्रन

उसका खाना समाप्त हुआ, उधर मां का चपाती सेंकना खत्म हुआ। बेटी बर्तन साफ करके लेटने जा रही थी कि बाबा ने आवाज़ लगा दी, 'शैला, पानी....'

बाबा ने उसका चेहरा देखा—'रो रही है? क्या हुआ?'

'क्या हुआ?' मां आगे बढ़ी। 'होना क्या है, मुझे सता रही है। दस वर्ष की हुई, मगर अकल नहीं....।'

छोटी लड़की के अशक्त हाथों में वजनदार बर्तन लेकर जाते देखकर पिता के मन में करुणा जाग उठी। 'नहीं-नहीं, वह कभी सताने वाली लड़की नहीं। कुछ और कारण होगा!'

'वह नवरात्रि के मेले में जाना चाहती है, चार रुपये चाहिये इसे चूड़ियां खरीदने के लिए।'

'बस! ले लेने दो उसे।' कहकर वह उठा।

'लेकिन पैसा कहां से आयेगा?'

'तीन दिनों के बाद, मुझे तनख्वाह मिलेगी, तब तू चूड़ियां ले लेना।'

उसने सिर हिलाया। चेहरा खिल उठा। उछलती-कूदती ऐसी भागी वह, मानो पिता ने फिर से बचपना दे दिया।

०००

वह दिन भी आ गया। सुबह उठते ही उसी की याद। स्कूल से आने तक किसी तरह वह आतुरता दबाये रखने में सफल हो गयी। स्कूल से घर की ओर भागते समय लटकता हुआ बैग बार-

बार कमर से टकराने के कारण दर्द लग रहा था। घर पहुंचने तक सांस फूल गयी। कुछ सोचा, द्वार पर रुक गयी। कुछ सोचा, द्वार पर रुक गयी। कुछ सोचा, द्वार पर रुक गयी।

'मां', उसने धीरे-से पुकारा। नहीं मिला। फिर पुकारा।

मां ने मुड़कर देखा। आंखें सूज हैं और माथे पर घाव है।

'क्या हुआ, मां?'

'होना क्या है, बेटी, मेरी किस्मत ऐसी है।'

बाबा ने पीकर पीटा होगा! तनख्वाह का दिन है।....

'तुझे भूख लगी हो तो सुबह की चाय है,'—उदासीनता से मां बोली।

'मुझे भूख नहीं है।'

'मेरा मेला, मेरी चूड़ियां' पूछने साहस वह बटोर न सकी। लेकिन से यकायक निकल पड़ा ही।

'कैसा मेला? घर में जो मेला चलता है, वह काफी नहीं? क्या बड़ा नाटक चाहिये? बाप की तरफ स्वार्थी... गैर-जिम्मेदार। आधा पीने में जाता है। तुझे मेले में जाने लेकिन मुझे? मैं....मैं जल्दी मर जाऊँ अच्छा था!'

वह दीवार से टिककर घुटनों छाती से लगाकर बाप के आने तक एकटक निहारती बैठी रही। बाप पीकर आया और मां को लात मारा। 'उठ, उठ, परोस.....'

‘बाबा, मैं.....’

‘नहीं, तू नहीं। तेरी आलसी मां...
उठ, भूख लगी है।’

कुछ न बोलकर वह मां-बाप का मुंह देखती रही। ‘शैला दीदी, शैला दीदी, मैं भी तेरे साथ आऊंगी मेले में’—कहती हुई प्रेमी दौड़ी आयी। नादान बालिका कितनी खुशकिस्मत है, जो यह नहीं जानती कि घर में क्या हो रहा है! आज सुबह शैला नवरात्रि के मेले में जाने का रोव जमा चुकी थी।

‘कहां जाना है?’ बाबा ने पूछा।
उसने उत्तर नहीं दिया।

मां ने कहा—‘ये तुम्हारी बेटियां हैं। मेरी परवाह थोड़े ही करती हैं! कहती हैं कि मेले में जाना है।’

‘उन्हें जाने दो। उन्हें रोकने वाली तू कौन होती है!’

‘नहीं, बाबा, मैं.....’

‘हां बाबा, मैं भी शैला दीदी के साथ जाऊंगी।’

‘प्रेमी, चुप रह!’

‘तू चुप रह!..... देख शैला, तू प्रेमी को साथ लेती जा। कितना पैसा चाहिये?’ कहकर अपनी जेब से पाकिट निकालकर कुछ नोट बाहर निकाले। उनमें से एक उसके हाथ में थमाते हुए बोला, ‘लो, अब दोनों जाओ।’

पांच रुपये का नोट था। उसने नोट को अपलक देखा।

‘चलो, शैला दीदी, हम चलें।’ प्रेमी

उतावली हो उठी।

मां शैला को ही देखती रही। शैला को लगा—मां की आंखें कह रही हैं कि मत जा, पैसा खर्च मत कर, उसने शराब पी ली है, सारा महीना बिताना है और उसके लिए पैसा नहीं है।

लेकिन मेला....चूड़ियां... और यह बाप, जो उन्हें बात भी न करने देने वाला, हाथ-पैर धोकर तैयार न होने देकर बाहर धकेलने वाला! वह बेचारी न जाती तो क्या करती! लेकिन लग रहा था कि मां की आंखें राह-भर उसका पीछा कर रही हैं।

मेले के धूम-धड़ाके में अब वह सब कुछ भूल गयी। प्रेमी के गरम और चिप-चिपे पकड़े हाथों को भी भूल गयी। लाउड स्पीकर से बज रहे फिल्मी गीतों में वह मुग्ध हो गयी। हंसी के फव्वारे, अच्छे कपड़े पहने हुए लोग, इसके अलावा मंत्र-मुग्ध कर देने वाली रोशनी ने उसके मैले, नीले स्कर्ट को चमका दिया। उसके हाथ में पांच रुपये का नोट था—चूड़ियां, बस एक ही ध्यान।

‘मुझे पोपकारन चाहिये, शैला दीदी। आइस्क्रीम भी चाहिये। मुझे वहां कुछ दिखायी देता है न, वह पीना है। मुझे यह गुड़िया दिला दो न!’

‘शू..... प्रेमी, अगर तू चुप नहीं रहेगी तो मैं कुछ नहीं लेकर दूंगी।’ पर प्रेमी का मुंह खुला ही रहा।

प्रेमी को झकझोर कर वह बोली, ‘तू रोना बंद नहीं करेगी तो मैं कुछ नहीं

खरीदूंगी। तू चुप रहेगी तो तुझे आइस्क्रीम दूंगी, सब कुछ दूंगी।'

फिर उसने सोचा, पहले मुझे चूड़ियाँ...। उसने चूड़ियों की दूकान देखी बाप रे इतने सारे लोग ! पर छोटी होने के कारण प्रेमी को घसीटती हुई भीड़ में घुसने में वह सफल हो गयी। खंभों के चमकते रंगों को देख, उसकी आंखें चौंधिया उठीं।

उसने दुकानदार तक अपनी आवाज पहुंचाने के लिए तीन बार पुकारा। औरतें, लड़कियाँ, सभी के ज़ोर-ज़ोर से बोलने के कारण शैला की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। उसे केवल चाहिये थीं चूड़ियाँ और....

अंततः उसे सुनायी पड़ा। 'कौन-सी चाहिये?'

'वे।'

उदासीन नज़र से देखा दुकानदार ने। उसकी उपेक्षित दृष्टि शैला की बतायी हुई चूड़ियों को देख रही थी। 'जोड़ी का दो रुपया।' दुकानदार ने कहा।

'दो रुपये!' उस मगरूर कुसुम ने कितना झूठ बोला था !

प्रेमी कहती जा रही थी, 'शैला दीदी, मुझे भी ऐसी ही चूड़ियाँ दिला दो न।'

इस भय से कि कहीं मेरी माप की न देखकर दुकानदार प्रेमी की माप की न दे दे, वह पुनः ऊंची आवाज में बोली, 'मुझे मेरी माप की एक जोड़ी चूड़ियाँ चाहिये।'

'श...चुप रह। नहीं तो आइस्क्रीम नहीं मिलेगी।'

'मुझे खाने के लिए कुछ नहीं चाहिए चूड़ियाँ मिलीं, तो बस !'

आइस्क्रीम, बटाटा-बड़ा तो प्रेमी ले दूंगी। जो पैसा बचेगा, घर ले जाऊँ। उसके और चूड़ियों के बीच उसकी माप उग्र दृष्टि आ खड़ी हुई। प्रेमी किस्मत वाली है। बेखबर होकर आइस्क्रीम खा सकती है। वही क्यों, मैं तो वैसा कर सकती हूँ ! लेकिन... पुनः उसकी नज़र चूड़ियों पर पड़ी।

'तेरी माप देख लेने दे।'

उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया। दुकानदार ने अपने बड़े हाथों से शैला हथेली को दबाकर देखा।

वह जैसे ही अपना हाथ हटा कि शैला ने उसकी हथेली पर पाँच का नोट रखकर कहा—'लो, अब चूड़ियाँ दो।' लेकिन तभी वह औरतों से बात कर रहा था। उन्हें दिखाते समय, 'मुझे वे लाल चूड़ियाँ वे ही लाल जोड़ी' कह-कहकर रही थी।

आखिरकार वह शैला की ओर पेटो निकालकर उसने चूड़ियाँ निकालीं और शैला की ओर अति आनंद से उसने दीर्घ सांस ली। 'शैला दीदी, मुझे भी दिखाओ।' भी ऐसी ही चूड़ियाँ चाहिये। और उसे खींचकर प्रेमी ने उसकी माप में विघ्न डाल दिया।

'प्रेमी, मुझे मत सता। मैं तुझे आइस्क्रीम दूंगी न समझ।' उठे सुनायी पड़े। प्रेमी पास ले प्रेमी नेहरे मे हिलाय मधुर देखकर 'च' अपने अ भीड़ की आ है? तो लेन उसी ने 'चू' पूछा। 'मैंने का नोट उस असहाय उसके रेखाएं 'मैं' 'लेवि रुपये दे हैं। उस वकसे में

दूंगी न !' कहकर अपना हाथ छुड़ा लेते समय चूड़ियों के छोटे-छोटे घुंघरू बज उठे। शोर के बीच भी वह मधुर ध्वनि सुनायी पड़ी।

'देख, प्रेमी !' अपने हाथों को उसके पास ले जाकर शैला ने धीरे से हिलाया।

प्रेमी का खिन्न मन गुदगुदा उठा और चेहरे में प्रसन्नता दौड़ गयी। वह बोली, 'फिर हिलाओ।' दोनों लड़कियां खड़ी-खड़ी उस मधुर ध्वनि को सुन-सुनकर, एक-दूसरे को देखकर हंस रही थीं।

'चल, तुझे आइस्क्रीम ले देती हूं।' अपने आपको अपराधी समझकर शैला उस भीड़ को चीरने लगी। इतने में दुकानदार की आवाज आयी, 'ऐ लड़की, कहां जा रही है?' उसे तुरंत याद आया कि बाकी पैसा तो लेना ही वह भूल गयी है। हे भगवान, उसी ने बुलाया है, अन्यथा.....

'चूड़ियों के पैसे दे।' दुकानदार ने पूछा।

'मैंने तो पहले ही दे दिया है पांच रुपये का नोट। मुझे तुमसे ही तीन रुपये लेने हैं।' उसने सिर हिलाया—गुस्से से नहीं असहाय होकर। हाथ आगे बढ़ाया।

उसके बड़े हाथों की हथेली की गहरी रेखाएं घाव-सी लगती थीं।

'मैं बूढ़ नहीं हूं। बेटी, पैसे दे दो।' 'लेकिन, लेकिन..... मैंने.... पांच रुपये दे दिये हैं। मुझे तुमसे तीन रुपये लेने हैं। उस पांच रुपये के नोट को तुमने उस बक्से में डाला है।'

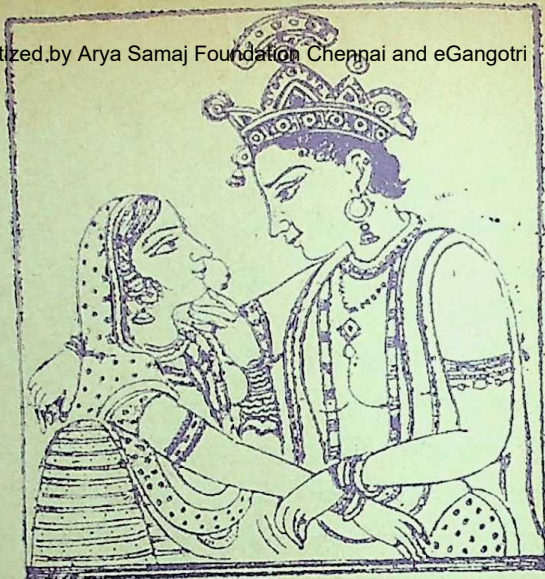
दुकानदार ने बक्सा खोलकर शैला के सामने रख दिया। उसमें पांच रुपये के कई नोट थे। उनमें से उसका कौन-सा है? वह उसे पहचान भी कैसे सकती है? उपस्थित लोग शैला को ही देख रहे थे।

'अरे, उस बच्ची को जाने दो।' भीड़ में से किसी ने कहा। 'आप इन बच्चों के बारे में कुछ नहीं जानते। ये दूसरों को धोखा देने में बहुत होशियार होते हैं। पहले ही दे दिया है—कहकर पैसे अपने पास ही रख लेते हैं। देख बेटी, पैसे दे या इन चूड़ियों को वापस कर दे।' 'लेकिन मैंने पैसे दे दिये हैं, मैंने दे दिये हैं.... दे दिये हैं....।' और कुछ न सूझकर यही दुहराती रही वह।

'मैंने तुम्हें पांच रुपये दिये हैं,।' उसने फिर जोर देकर कहा। 'झूठ है।' दुकानदार ने कहा। कोई हंसा। शैला भयभीत हो चारों ओर देखने लगी। जिस रोशनी ने, ग्रामोफोन की ध्वनि ने उसे मंत्रमुग्ध कर दिया था, वे ही अब उसे डराने लगे।

चीखने के लिए उसने मुंह खोला, लेकिन कौन सुनता है, यह सोच मुंह बंद कर लिया। उसने अपने हाथों को चुपचाप आगे बढ़ा दिया। चूड़ियों के घुंघरूओं से निकली मधुर ध्वनि अब उसे सुनायी नहीं दी। वह सिसकने लगी।

प्रेमी न समझ सकी कि पहले भयभीत उसकी दीदी, अब रो क्यों रही है!



‘श्रीमद्भागवत’ के ‘श्रीवेणुगीतम्’ प्रकरण पर महाप्रभु बल्लभाचार्य ने जो ‘सुबोधिनी टीका’ रची है, वह रस-दर्शन का एक अपूर्व और अद्वितीय ग्रंथ माना जाता है। कविरत्न पंडित रणछोड़ कलाधर भट्ट द्वारा लिखित उसका सामिक मीमांसा पर राजू विश्वनाथन् का एक विस्तृत विवेचन यहां सहज प्रस्तुत है।

श्रीवेणुगीतम् :

श्रीकृष्ण की प्रणय-लीला का रहस्य

बीसश्लोकों में समाहित ‘श्रीवेणुगीतम्’ श्रीभागवत के दशमस्कंधान्तर्गत, अठा-रहवें अध्याय का एक प्रसंग है। यह संपूर्ण प्रसंग गोपांगनाओं की श्रीकृष्ण के प्रति जो चरम आसक्ति थी, उससे तथा उसकी अभिव्यक्ति सुलभ रसमयता से ओतप्रोत है। वृंदावन में प्रवेश करते समय श्रीकृष्ण

ने वेणुनाद किया—उस वेणुनाद का वह हिरणियों पर, आकाश-चारिणी देव पर, गायों पर, सरिताओं, पक्षियों, मेघ आदि पर जो एक अपाथिव प्रभाव हुआ, उसका वर्णन श्री वेदव्यास ने अनिर्वचनीय रससिक्त काव्य में किया है। श्रीभागवत रस का आलय माना

उसमें
रूपता
गोस्व
कितन
‘वे
वरपा
वेण
कितु
नील-ने
श्री
त्कार
मिल
जयपु
ग्रंथ
विरा
सुवर्ण
आधु
कवि,
समान
जैसा
आत्म
ब्रह्म
वान
सबसे
और
नव्यत
और

उसमें वेणुगीत तथा युगल-गीत की रसरूपता वाणी से अतीत है। इस संदर्भ में गोस्वामी श्री हरिराय का यह कथन कितना सार्थक है—

‘वेणु-गीत पुनि युगल-गीत की रस बरषा बरसाई।’

वेणुगीत के प्रत्येक श्लोक से नहीं, किंतु उसके प्रत्येक अक्षर से रसभरित नील-नीरद जैसे प्रत्येक अक्षर से रस की

मानों फुहार बरस रही है। इस रसरूपता से साक्षात्कार कराने में, भागवत के अन्यान्य टीकाकारों की अपेक्षा यदि कोई कृतकार्य हुआ हो तो वह है— शुद्धाद्वैतवेदान्त के प्रवर्तक श्रीमद्बल्लभाचार्य। इन्होंने भागवत के निगूढ़ अर्थ की संगति उसके सप्त-विध-अर्थों द्वारा शास्त्रार्थ, स्कंधार्थ, प्रकरणार्थ, अध्यायार्थ, श्लोकार्थ तथा अक्षरार्थ द्वारा प्रतिपादित की है। आपकी

श्री रणछोड़ कलाधर भट्ट से जब पहली बार मिला, तो वह कविता के मूर्त साक्षात्कार का क्षण था। ऐसे बहुरंगी, बहुविद् और बहुआयामी व्यक्तित्व विरल ही मिलते हैं। वैद्यकुल-गुरु सर्व-नंत्र-स्वतंत्र महाकविभट्ट श्रीकृष्णराम महाराज, जयपुर राजवंश के पुश्तनी राजवैद्य। ‘सिद्धभैषज मणिमाला’ जैसे सिद्ध-रसायन ग्रंथ के रचनाकार। उन्हीं के पौत्र हैं आर० कलाधर भट्ट। वंश-परम्परा से विरासत में पाया है वेद-वेदांग का अगाध ज्ञान। काव्य और रसायन का सुवर्ण संयोग।

सच्चे आशुकवि, वेद-उपनिषद्-काव्य-पुराण के हज़ारों श्लोक जिह्वाग्र पर। आधुनिक युग के एम. ए.; एल-एल. बी., विचक्षण वैद्य, रस-ब्रह्म के ओतप्रोत कवि, सूक्ष्म रत्न-परीक्षक, कुशल व्यवसायी, उद्योगपति, लक्ष्मी और सरस्वती के समान कृपापात्र। और सर्वोपरि वे हैं परम प्रेमिक, महान् मनुष्य। श्रीयुगल जैसा ही अद्वैत दाम्पत्य जीवन।

यहाँ समीक्षित ग्रंथ में दो बातें दृष्टव्य हैं। ठीक देह के मदन का ही आत्मा के मदन में सहज रूपान्तरण : रति और काम की लीला ही आप्तकाम ब्रह्मानंद हो गयी। और यह भी कि परम रस के इस वृन्दावन में भक्त भगवान् को नहीं खोजता, स्वयम् श्रीभगवान् ही भक्त की खोज में भटक रहे हैं। सबसे ऊपर है मनुष्य, यह भगवान् की लाचारी है कि वे उसके पीछे जायें। और रस-ब्रह्म के निरूपण में जो भाषा इस ग्रंथ में उद्भावित हुई है, वह नव्यता, दिव्यता और मौलिकता का एक अजल स्रोत है। इसे पढ़ना परम ज्ञान और महाभाव के अगाध समुद्र में निमज्जन का सुख देता है।

यह व्याख्या 'सुबोधिनी' के नाम से सुप्रसिद्ध है। लोकोत्तर प्रतिभा के निःसीम वैभव का यदि अनुमान करना हो तो एक बार 'सुबोधिनी' अवश्य पढ़ें। श्री आर. कलाधर भट्ट ने 'श्रीवेणुगीतम्' पर इसी सुबोधिनी की, उसी पर आलेखित अन्यान्य विद्वानों की विवृतियों सहित अनुवादात्मक व्याख्या की है। श्रीवल्लभाचार्य के पूर्व-गामी तथा समकालीन वैष्णवाचार्यों की तथा अन्यान्य भक्त कवियों की भक्ति विवेचना उसके आधिभौतिक स्वरूप तक अथवा बहुत हुआ तो उसके आध्यात्मिक स्वरूप तक ही सीमित रही। श्रीवल्लभाचार्य ने भक्ति के आधिदैविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए, उसको निर्गुण भक्तियोग कहा है। श्रीरामानुजाचार्य, मध्वाचार्य तथा विष्णुस्वामी द्वारा पुरस्कृत भक्तियोग को आपने यथाक्रम सात्विक, राजसिक तथा तामसिक अर्थात् सगुण माना है।

श्रीवल्लभाचार्य द्वारा उद्भावित भक्ति के निगूढ़ दार्शनिक स्वरूप को सुस्पष्ट करने में भट्टजी का चिंतन तदनुरूप होता हुआ भी, अपनी प्रस्तुत करने की शैली में मौलिक तथा नूतन है, कम से कम उन आलोचकों के लिए, जिनके मन में भागवतोदित श्रीकृष्ण की भक्ति-लीला, काम-लीला के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। काम-वासना कदापि भक्ति का आधार नहीं हो सकती। भक्ति न ज्ञान है, न क्रिया है, न श्रद्धा है, न उपासना है, न पूजा है, न इच्छा है, न काम-भाव-रूप

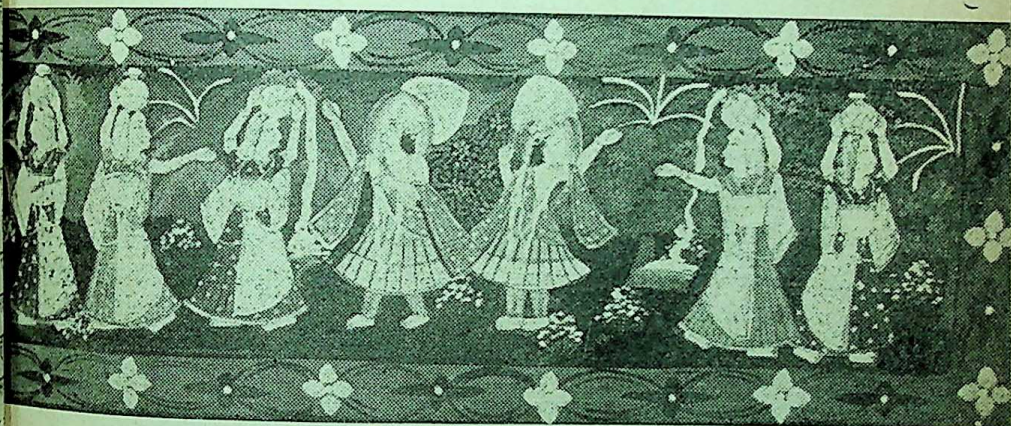
नवनीत

शृंगार-रस है। यह एक वह अवस्था जो प्रेम, आसक्ति तथा व्यसन भाव उत्तरोत्तर अभिव्यक्त होती हुई तमभाव में परिणत होती है। यह अवस्था है, जहां अयो-गोलक में एक काष्ठ-फलक में सर्वत्र जैसे अग्नि व्याप्त हो जाती है, वैसे भगवान् भक्त की सर्वदेह में, प्रति रूप में व्याप्त हो जाते हैं। अर्थात् इन्द्रियों तथा अंतःकरण की भगवत् से ओतप्रोत स्थिति ही सर्वात्म भाव और सर्वात्म भाव ही मुख्य-भक्ति सर्वात्मभाव-रूप भक्ति के निरूपण में यह कथन मननीय है कि मानव चरम आनंदानुभूति काम-रस तक सीमित है, उसको उसकी इसी रसाभास के स्तर पर जो एक रसाभास भाव भगवद्-रस की सर्वाधिक यथार्थ रूपता समझनी पड़ेगी और यह के लिए, लौकिक निर्वचन का लेना पड़ेगा। इसीलिये, श्रुति ने तम भाव की सर्व विस्मरक अवस्था निदर्शन लौकिक दृष्टांत द्वारा ही है। 'यथा प्रियया स्त्रिया संपरिक्लं कंचन वेद, न बाह्यं नाभ्यंतरम्। साहित्यकारों ने 'रति' को शृंगार का स्थायीभाव माना है। वस्तुतः के प्रति रति को, स्नेह को, भक्ति स्थायिभाव कहते हैं। शृंगार-रस तथा स्नेह-रस रूप रति यह रति लौकिक एवं सोपाधिक है।

के प्रति यह दोनों ही प्रकार की रति भगवद्-विषयक होने के कारण अलौकिक तथा निरुपाधिक है। अस्तु,

सर्वात्मभाव की इस अवस्था को, छांदोग्य-उपनिषद् में 'भूमा' कहा गया है। 'रसरूपत्वेन भूमनः सर्वात्मभाव-रूपत्वं सिद्धयति' (भाष्य प्रकाश, ब्रह्म-सूत्र)। यह एक वह रसमय स्थिति है जिसमें भगवान् भक्त का वरण करते हैं। आत्मा से परमात्मा का मिलन होता है। यही

तृष्ण उपलब्धि 'भजनानंद' है। इसकी गूढ़ एवं उत्कट अनुभूति, विविध प्रकार से निरुद्ध जीव ही कर सकते हैं। प्रेम, आसक्ति तथा व्यसन की यथोत्तर सिद्धि के उपरांत, प्रभु अपने जिस भक्त को सर्वात्मभाव सुलभ भजनानंद से संपन्न करना चाहते हैं, उसमें सर्वप्रथम प्रेम-भाव सिद्ध करते हैं, फिर आसक्ति और अंत में व्यसन अर्थात् सर्वात्मभाव। यहां ये प्रेम आसक्ति तथा व्यसन, जीव साध्य



श्रीवल्लभ संमत पुष्टि-भक्ति है, जहां भगवान् भक्त को प्राप्त करते हैं। भक्ति के अन्य प्रकार मर्यादा-भक्ति में परिगणित किये गये हैं। इसमें भक्त भगवान् को प्राप्त करता है। भट्टजी ने भक्ति-रस के जिस दार्शनिक एवं समुज्ज्वल स्वरूप का परिचय दिया है उससे भक्ति को लौकिक शृंगार मात्र समझने वालों की गलतफहमी दूर हो सकेगी—'पुष्टि-भक्ति की परमो-

शारीरिक स्तर की वृत्तियां नहीं हैं, किंतु देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण आदि के अध्ययन से रहित जीव में, भगवद्-कृपा से उत्पन्न होने भगवद्-रस का उत्तरोत्तर उत्कट अनुभव कराने वाले अलौकिक भाव हैं।' भक्ति के निगूढ़ एवं काम-गंध-रहित अनवद्य स्वरूप को भट्टजी ने सहज, मौलिक एवं निश्चायक शैली में चित्रित किया है।

भक्ति, रस है—इसका प्रतिपादन लेखक

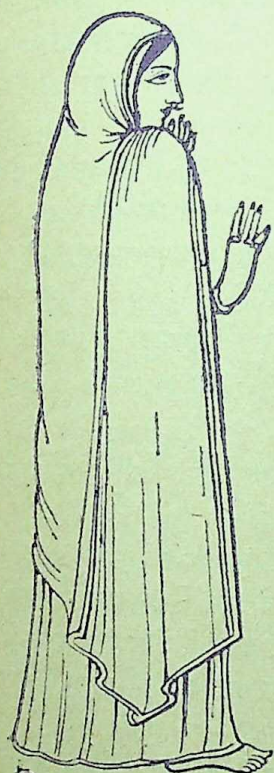
ने अनेकों शास्त्रीय उद्धरणों के एवं सुपुष्ट तर्क पद्धति के आधार पर सफलतापूर्वक किया है,—तदुपरांत, भक्ति-रस की दार्शनिकता के संदर्भ में, केवलाद्वैत ((Absolute Non-dualism) तथा शुद्धाद्वैत के तारतम्य को हृदयंगम शैली में स्पष्ट करते हुए, लेखक ने उसे इस तरह प्रस्तुत किया है। 'अभेद की स्फूर्ति, सर्वात्म-भाव रूप विप्रयोगात्मक भक्ति-रस का एक संचारी भाव मात्र है। यह अभेद दर्शन, भक्ति-रस की अन्तिम उपलब्धि नहीं है। ज्ञानी की तरह भक्त के लिए यह निरंतर स्थिति नहीं है। क्योंकि, इस प्रकार का यह अभेद-ज्ञान, रसानुभव का बाधक है, अतः भगवान्, स्वभक्त के लिए इस प्रकार के ज्ञान का अनुदान कदापि नहीं करते—'भजनानंद व्यवधायकं स्वात्मत्वेन ज्ञानं भगवता न संपाद्यते—भ. भा.।' वह किससे किसको देखे? — तत्केन कं पश्येत्—इस श्रुति में जिस अभेद-रूपता का निर्देश किया गया है उसका सर्वात्मभाववान् भक्ति की स्फूर्ति में अभाव होने के कारण, उसकी यह स्फूर्ति अखंडब्रह्म-ज्ञानरूप नहीं है, किंतु सखंडब्रह्म-ज्ञानरूप है। इस प्रकार की अभेदरूपता ब्रह्मज्ञानानुभूति ही पुष्टि-भक्ति के अद्वैत का स्वरूप है।—इस संदर्भ में श्रीवेणुगीतम् की समग्र प्रस्तावना पठनीय तथा मननीय है। भट्टजी के विस्तृत पांडित्य तथा गहन तत्त्वचिंतन के प्रकाश से संपूर्ण प्रस्तावना उद्दीप्त है।

नवनीत

इसी तरह श्रीवेणुगीतम् की अनुवात्मक व्याख्या के अध्ययन से, भट्टजी के सूक्ष्म विवेचना सामर्थ्य का तथा सुवोक्ति-रूप-सुधा-समुद्र की गहराई तक गोते लगाने के कौशल का सही आभास प्राप्त होता है। प्रथम श्लोक के 'न्यविशत्' में निहित उसके सौंदर्य की शब्दमय प्रकृति दर्शनीय है। 'किसी भी पदार्थ में आनन्दमय स्वरूप उसका आधिदैविक स्वरूप है। जिस निकुंज प्रदेश में, मैंने प्रवेश किया, वह आनन्दमय, साक्ष्य भगवत्-स्वरूपात्मक है। शुद्ध आनन्द ही निर्गुण कहलाता है, अतः वृंदावन आनंदांश से रहित काल का, कर्म गुण आदि उपाधिभूत द्रव्यों का अभाव है। लीला-निकुंज यह वृंदावन काल से अपरिच्छिन्न, स्वभाव से अचल वर्तनीय तथा गुणत्रय से अतीत है। निकुंज प्रदेश की धूलि के प्रत्येक कण जल के प्रत्येक बिंदु में, वृक्षलता, पत्र आदि के प्रत्येक पत्ते में, पवन के प्रत्येक प्रकंपन में, आकाश के सूक्ष्माणु अवकाश में सर्वत्र आनन्द-तत्त्व आनन्द है। यहां कालकृतक्षय अथवा वृद्धि कर्मकृत बंधन नहीं, स्वभावकृत पतित नहीं—प्रत्येक चेष्टा में, प्रत्येक संवृत प्रत्येक गति में, सदानन्द रूप कुण्डल ओतप्रोत है। इसी वृंदावन रूप निकुंज प्रदेश में अपनी शक्ति-स्वरूपा ब्रज

(शेष पृष्ठ ७८ पर)

श्रीराधा के प्रति : श्रीकृष्ण



कृष्ण-प्रिया श्रीराधा

प्रियतमे, मैं नित रिनी तिहारो,
तेरे प्रेम-रसांबुधि के
सीकर को मोय सहारो
प्रेम-सुधा पावन अति तेरी,
मोहि नित जीवन देत
तन-मन-इन्द्रियगन की ज्वाला,
सब छिन-छिन हरि लेत
हौं तेरे अति विमल प्रेम के
हूं सर्वथा अजोग
तू उदार चूड़ामनि निज दिसि
देखि देत संजोग
तू अनन्य, हौं घर-घर डोलौं,
मेरौ प्रेम अपावन
तौहू तू मेरी आराध्या,
करत रहत मोहि पावन
तेरौ प्रेम सदा ही निर्मल,
नित्य परम सुख-मूल
तू नित ही अति छमा-परायन,
नित्य करौं मैं भूल
मत मेरी दिसि कबौं देखियो,
नित अनुकंपा रखियो
अपने पावन पद कमलनि मँह
मोय निरन्तर लखियो ।

— ललित किशोरीजी

(पृष्ठ ७६ का शेषांश)

के साथ निरंतर क्रीड़ापरायण अच्युत श्रीकृष्ण के प्रवेश का कथन किया गया है।' इस प्रकार के प्रबुद्ध विवरणों से संपूर्ण व्याख्या उद्भावित है।

'वेणुगीत' के श्लोकों का ब्रजभाषा में पद्यानुवाद, भट्टजी की नैसर्गिक काव्य-प्रतिभा का परिचायक है। मूल श्लोक की रमणीयता को तथा अर्थगांभीर्य को ब्रजभाषा के पद्य में अविकल अनूदित करने के अपने प्रयत्न में लेखक सफल हुए हैं।

'वेणुगीत' पर आलेखित 'सुबोधिनी' के अंतर्तम निगूढ़ सौंदर्य से, जिस रस-सिक्त प्रवाहमयी शैली में, लेखक ने साक्षात्कार कराया है - वह अभिनंदनीय

है। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति-भाव से संपन्न सात्विक हृदय वाले जिज्ञासु के लिए यह ग्रंथ वस्तुतः ज्ञान तथा भक्ति के विविध भाव रत्नों से परिपूर्ण महासागर जैसा है। प्रस्तुत ग्रंथ में अन्य अनेक ग्रंथों का सार उद्धृत करके श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति-रस की मंदाकिनी प्रवाहित की गयी है, जिससे भावुक हृदय प्रदेश निरंतर अनुरागाद्र रहेंगे।

'श्रीवेणुगीतम्': भक्ति रस की दार्शनिक मीमांसा; व्याख्याता-कविरत्न आचार्य कलाधर भट्ट; प्रकाशक-भारतीय किशनोर भवन, बंबई-४००००७ : पृष्ठ-२८५। मुखपृष्ठ पर विविध रंगी युगल स्वर्ण काचित्र-मूल्य रु. ३५।

महामना मालवीयजी को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के प्रति कितना लगाव था एक छोटे से उदाहरण से ज्ञात होता है।

एक बार मालवीयजी विश्वविद्यालय के एक छात्रावास को देखने के लिए पधारे। उन्होंने छात्रावास के एक-एक कमरे को सूक्ष्म दृष्टि से देखा। देखते समय उनकी दीवार के एक ऐसे हिस्से पर पड़ी, जहाँ कुछ लिखा होने की वजह से गंदा था। मालवीयजी समीप जाकर देखा और उस कमरे के छात्र से पूछा तो मालूम पड़ा कि छात्र ने उस दीवार पर पेंसिल से कुछ हिसाब लिख रखा था।

मालवीयजी उसे देखकर छात्र से शालीनतापूर्वक बोले, 'मेरे हृदय में तुम्हारे जितना स्नेह है, उतना ही इस विश्वविद्यालय की प्रत्येक दीवार की हर ईंट से है। मैं करता हूँ कि भविष्य में तुम ऐसी गलती की पुनरावृत्ति नहीं करोगे। मेरी प्रबल इच्छा है कि इस विद्यामंदिर में सदा पवित्रता और स्वच्छता का वास रहे।'

यह कहकर उन्होंने अपना दुग्धसम श्वेत रुमाल निकला और दीवार लिखावट को तब तक मिटाते रहे, जब तक कि वह स्थान एकदम उजला नहीं हो गया।

उक्त छात्र तो मालवीयजी के इस कृत्य पर इतना लज्जित हुआ कि उसका नाम उनकी उपस्थिति तक उठा ही नहीं।

-शिशिर

मैं, जो लिख रहा हूँ

□ कुमार प्रशान्त

उन सबके लिए मैं कुछ लिख रहा हूँ
जिन्हें आज मैं
कहीं नहीं दिख रहा हूँ ।

वीडियों से यही सिलसिला जारी है—
इस बार मेरी बारी है कि
लिखूँ और फिर भी न दिखूँ ।

कौन देखता है
प्रकृति की प्रणय-लीला ?

पुष्पों का चुंबन ?
यहों का राग-द्वेष ?

चंद्रमा का सकुचाना, और
सूर्य का बेशर्मी से बारंबार
उसके आंचल में छिप जाना ?

कौन पढ़ता है वह संदेश
जो शताब्दियों से समुद्री लहरें
अपने अंक में छिपाये दौड़ी जा रही हैं, और
वह भी कहाँ

कौन जानता है ?

जंगलों की सांय-सांय
किसकी खोज में है ?

यह शकशोरती हवा

कित ओज में है ?

किनारों पर सर पटक-पटककर

यह श्वेतकेशी जलवाला किसे मना रही है ?

सारी प्रकृति यह क्या गा रही है ?

कौन जानता है ?

मैं ? तुम ? हम ?

नहीं, कोई नहीं ।

१९८१

हम सब प्रत्यक्षदर्शी हैं
और इतना ही तो जानते हैं
कि इन सब अनुत्तरित प्रश्नों के बीच से
कुछ है जो उठता है, हमारे भीतर
कहीं संचित होता है
और फिर जीवन-रस बनकर फूट पड़ता है ।

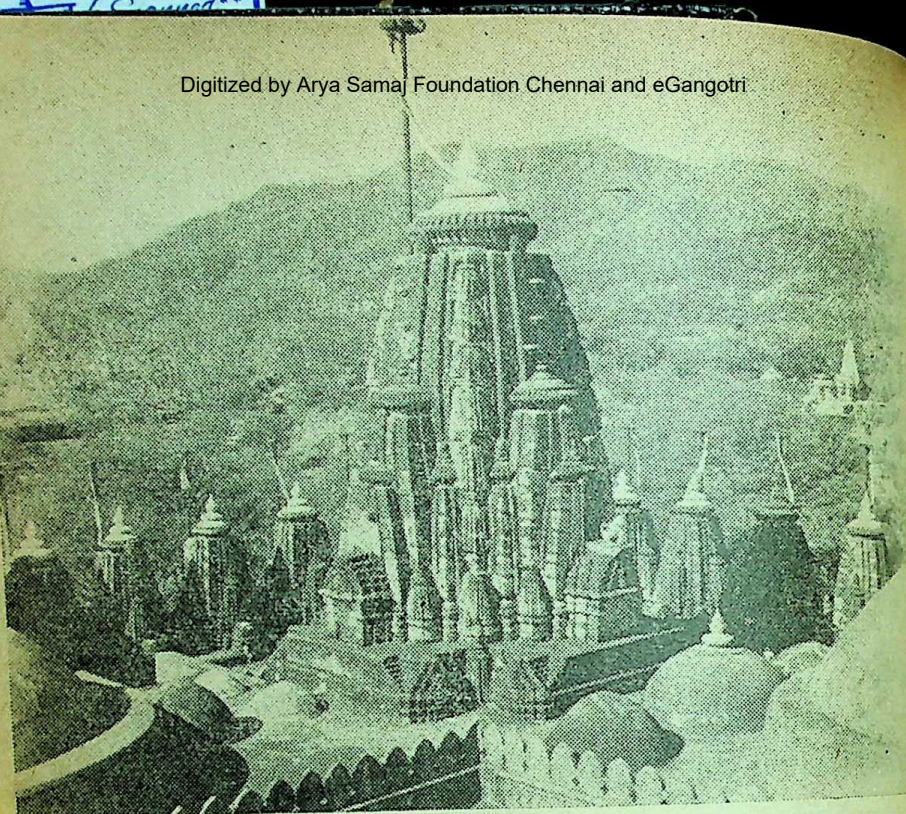
हम सब, जो निश्चित ही हैं
इसी अनिश्चय की संतान हैं ।

मैं भी लिख रहा हूँ
एक नयी सभ्यता का प्रयाण-गीत ।
तुम मुझे न देखो, न चीन्हो तो भी क्या ?
मैं आज जो लिख रहा हूँ
कल तुम उसे पढ़ोगे,
परसों उसी पर चलोगे, चढ़ोगे
आगे बढ़ोगे—और फिर
विस्फारित नेत्रों से कहोगे—
'तुम जब लिख रहे थे
तब हमें कहाँ दिख रहे थे ?'

लेकिन मैं ही क्या
किसी ने इस सवाल का जवाब नहीं दिया है
लिखनेवालों ने तो सदा
शब्दों को जमाकर
रास्ता बना दिया है ।

मैं शब्दों का वही गारा जमा रहा हूँ
अपना आपा खुद में समा रहा हूँ ।

—हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, महात्मा गांधी
स्मारक भवन, नेताजी मार्ग, बम्बई-२०



राणकपुर के केन्द्रीय मंदिर का शिखर

शाश्वत सौन्दर्य का शिल्प-तीर्थ : राणकपुर

सावित्री परमार

गढ़ आबू नवि फरसियों, नु सुणियो होर
नो रास ।

राणकपुर नर नवि गयो, तिण्ये

- गर्भावास

जिसने कर्मगाथा युक्त धर्मतीर्थ राणक-
पुर की यात्रा नहीं की, उसका जन्म
लेना ही व्यर्थ है... 'यात्रा-स्तवन' के
अनुसार भी राणकपुर आदिनाथ प्रभु का

मंगलमय पावन-धाम है... जैन उक्त
व्याख्यान-वृत्त के अनुसार कला प
है... धर्म दैनिक शक्ति है... देवालय
हैं और मूर्तियां सौंदर्य के सागर की उ
तरंगें हैं... राणकपुर में सत्यम्, ति
और सुंदरम् का समावेश है ।

राजस्थान के पाली जिले में अ
पर्वत की शृंखलाओं के मध्य दि

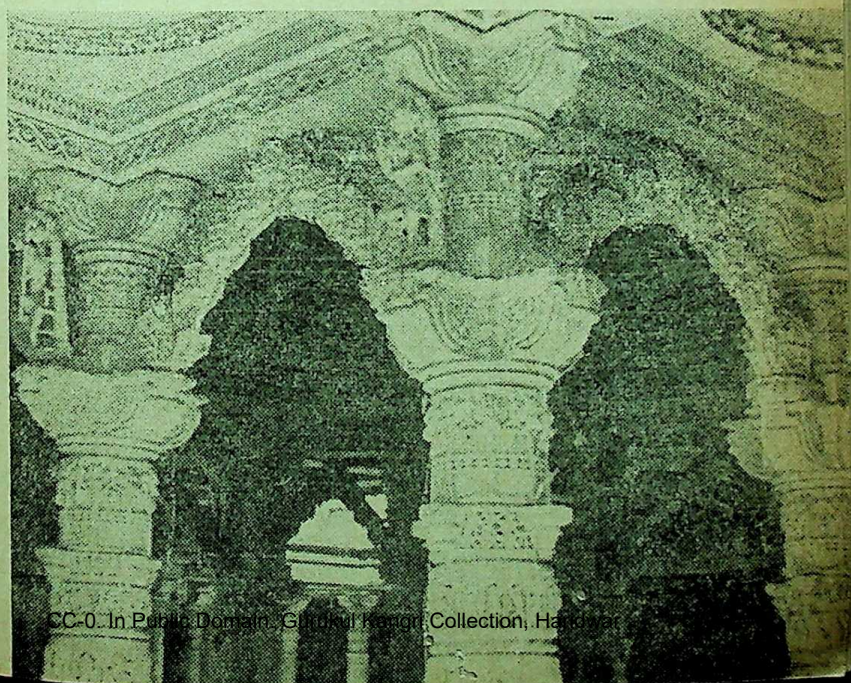
इस लेख के चित्रों के छायाकार : सूरज एन. शर्मा

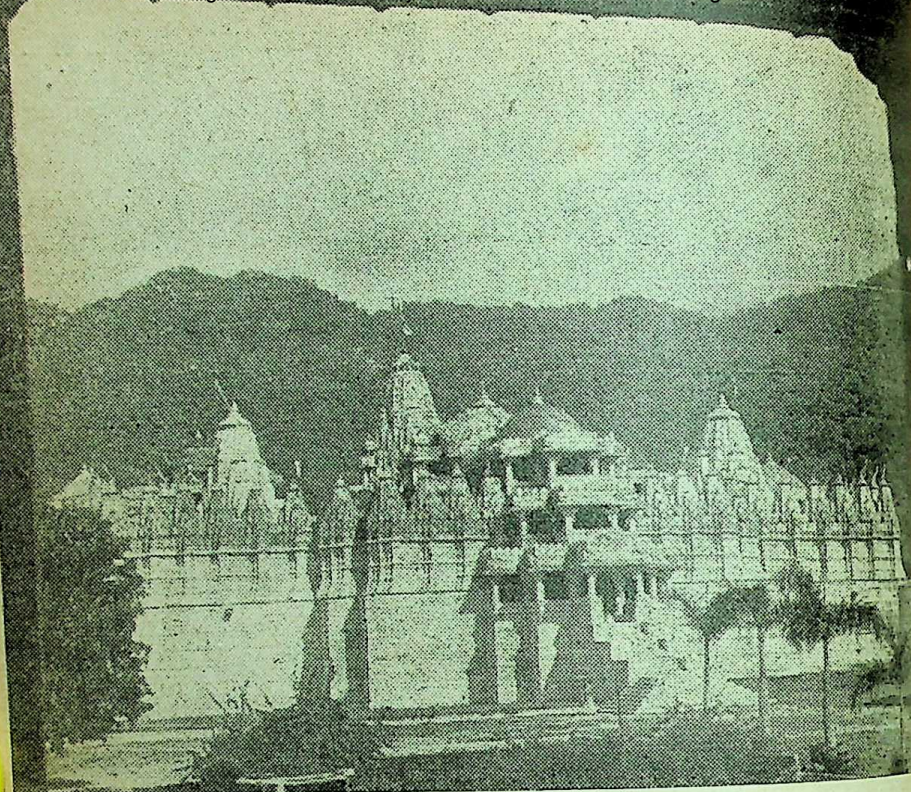
अहमदाबाद रेलवे लाइन पर है यह प्रस्तर-
पुखराज-संगमरमरी राणकपुर..... पोर-
वाल-जातीय संघपति धरणीशाह की
कलात्मक रुचि का श्रेष्ठतम उदाहरण.....
टेढ़ी-मेढ़ी चक्करदार पहाड़ियों के बीच
हमारी यात्रा दौड़ रही है.... आसपास
फैला हुआ है प्रकृति का सुरम्य अंचल....
भूरी-स्लेटी पहाड़ियां.... घाटियां....
हरियाली का इनमें स्वतंत्र साम्राज्य-
कहीं-कहीं बड़े गहरे जंगल.... थरथराती
हवा..... हरे रूमाल हिलाती शाखाएं....
उत्सुकता से झांकते जंगली फूल.... दर-
ख्तों के गदाक्षों से किरण-रूप झांक रहे
हैं.... हवा की मदालस थिरकन जलाशयों
को आंदोलित कर रही है... गुहा-द्वारों
और पृथुल घाटियों में न जाने कितने अनाम
पक्षियों की बोलियां गूंज रही हैं....
पर्वतों के उन्नत ललाटों पर चंदन-तिलक

लगाती धूप बड़ी सौम्य, लजीली-सी
दिखाई पड़ रही है इधर-उधर
बुलाती-सी चंचल पगडंडियों को बरजते
से ढांणी गांव.... खेतों में व्यस्त मरदाने
अंगरखे.... फसलों के लहसते हरे-धानी
लहरिये.... छाछ-रावड़ी का कलेवा ले
जात रखड़ी-नथनी के गुनगुने बोल-
'महारा छैल भंवर जी ल्यादचौजी जैपरि-
या रो लहरियो.... ॐ '..... हंसती
हुई देव-ललनाओं-सी पल्लवित लताएं....
मृगछौनों सी भोली कलियों की अधखुली
पलकों में प्रातःकाल की पवित्र आरती
गूंज रही है..... सुबह का स्वस्त्ययन
करने वाला हर्षोल्लासपूर्ण वातावरण
..... बड़ी ही शांति देने वाला पर्वतीय
तापस-रूप..... पूरी वनश्री प्रलोभनीय....

ढेर-ढेर मैदानी, पहाड़ी धूप बड़ी
अच्छी लग रही है.... कोई कर्कश शोर-

मुख्य मंदिर के भीतरी भाग का दिव्य शिल्प





राणकपुर के मुख्य-मंदिर का भव्य परिदृश्य

गुल नहीं.... केवल पक्षियों के चिर पुरातन स्वर पेड़ों की झिरियों से टकराता पवन..... पत्तियों का वीणा-वादन..... झुरमुटों में वंशी की तड़पती-सी टेर.... बड़े जीवंत दृश्य.... जैसे नीले आकाश के नीचे इन हरे-भरे मैदानों में संपूर्ण ऋग्वेद गूंज रहा हो !

एक अच्छा-सा कस्बानुमा गांव सड़क के किनारे पड़ता है वहां हम चाय पीते हैं मैं हूं ... बंबई के एक फोटोग्राफर विष्णुजी हैं.... श्री एवं श्रीमती

सूरज एन. शर्मा (प्रसिद्ध छायाकार हैं.... चाय के साथ-साथ मैं राणकपुर जानकारी भी यात्रियों और वहां निवासियों से ले रही हूं पहली इधर की यात्रा पर आना हुआ है, इसी मन में प्रबल जिज्ञासा और नवीनता प्रति असीम उत्साह भरा हुआ है ... नरम-गुलगुली धूप ओढ़े फिर चल पड़े हैं यात्रा का हर चरण प्रकृति के नवीन दृश्य-संकेत दे रहा है ... पिगल फैलाये, पद्मासन लगाये पर्वतों की

फिर आरंभ हो गयी हैं..... मृसण वन-
राजियों से आच्छादित मोड़-घुमाव और
रास्ते....

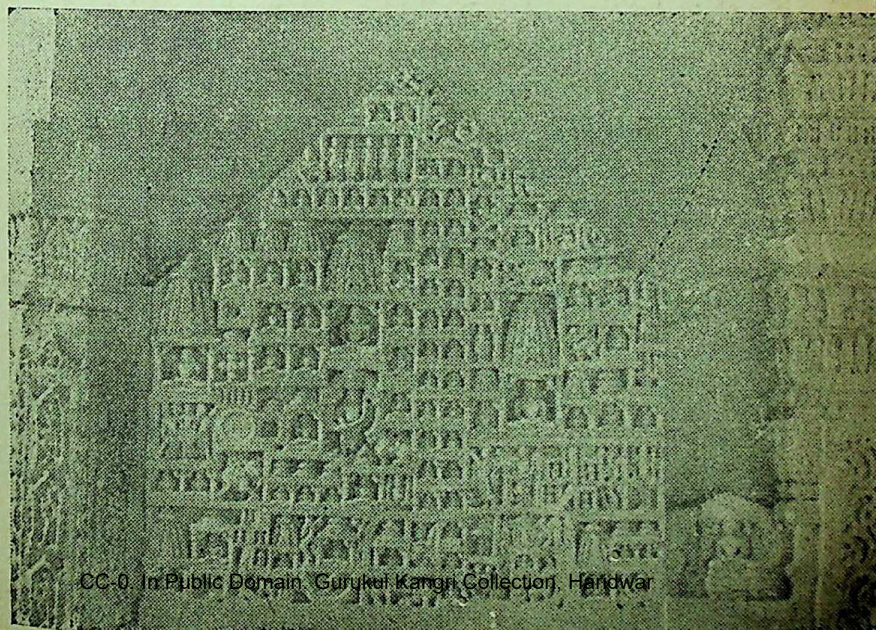
जैसे-जैसे गणकपुर नजदीक आ रहा
है, जंगल गहराता जा रहा है.... झबरीली
झाड़ियों से आंख-मिचौनी खेल रहे हैं
खरगोश..... रुई से गोल गदबद खर-
गोश.... और चौकत्री कुलाचें भरते
हुए मृग किशोरों के मखमली कलेवरों
से आंखें हटाई नहीं जातीं.... मस्तक
स्वयं ही परितृप्त होकर अज्ञात विराट
सत्ता के सम्मुख नत-मस्तक हो उठता है....
लग रहा है मानो प्रकृति-कलानेत्री ध्यान-
मग्ना होकर अज्ञात लिपि में अंतस् की
पन्नग-तुलिका से किसी चिरंतन की योग-
साधना में अभिभूत होकर श्रद्धा-भक्ति
का संदर्भ प्रस्तुत करके किसी ललित महा-
काव्य की भूमिका लिख रही है... सारा
ही परिवेश कितना मौन, लेकिन कितना

मुखर..... !

गाड़ी राणकपुर आकर रुक गयी है....
आसपास कई-कई मंदिर.... चांदी के
कटोरे में पूरा ही मानसरोवर !

गुच्छ-गुच्छ लाल-बैंगनी फूल....
महकती क्यारियों के बीच रास्ते....
विशाल परकोटे के भीतर कटे-छंटे हरी
दूब के कोष्ठक.... मंदिरों के चमचमाते
शिखर, लहराता हुई पताकाएं.... बाथीं
ओर बड़े से परकोटे में बहुत से कमरे...
धर्मशालाएं..... बहुत से विदेशी सैलानी
..... पुरुष-महिलाएं यहां से आ और
जा रहे हैं.... उनसे बात करती हूं....
बताते हैं कि अलग-अलग देशों के हैं—
महीनों से ठहरे हैं.... राणकपुर ने मन
बांध लिया है.... भारत की धरती का
यह धर्म-निष्ठा का क्षीर-सागर इतना
मोहित कर उठा है ! सुनकर शर्मीली
हंसी के साथ गर्दन हिलाकर सत्य को

सहस्रकूट चंद्रालय का विशद शिल्प



स्वीकार उठने हैं....

बहुत ऊंचे चबूतरे पर यह चतुर्मुख मंदिर अवस्थित है छोटी-छोटी चौकियों की परिधि के बीच चौबीस-पच्चीस सीढ़ियां..... भीतर जाकर आंखें स्थिर हो जाती हैं.... बड़े ताकों वाली झिरियों में, फर्श पर, गैलरियों में छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते हुए कुछ जैन-भक्त पठन-पाठन में व्यस्त हैं.... जिधर भी दृष्टि घूमती है, वहीं पर कला की अटूट संपदा हृदय को विमोहित किये डालती है.....

मैं सोच रही हूँ कि कैसे होंगे वे कला के एकनिष्ठ साधक ? कैसे थे वे शिल्प-कला में पारंगत नेत्र, जिनकी पुतलियों में इतने सारे संगमरमरी सपने तैरे होंगे ? कैसी होगी कुशाग्र बुद्धि ! चित्रात्मक अभिरुचि ? कैसा होगा हृदय का कल्पना लोक, जहां से ऐसे अपरूप सौंदर्य-बिंब एक-एक कर झरे होंगे ! विधाता ने कला की किस कसौटी पर कसी होंगी वे उंगलियां, जिन्होंने छैनी-हथौड़ी के उत्साहित संगीत की लय पर पाषाणों में स्थापत्य कला का ऐसा अनोखा संसार बसा दिया ! ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति और क्रिया-शक्ति को सहज रूप से साकार कर दिया ! अपने श्रम की कैसी अनुपम अनुष्ठान वेदी बनायी है ! अपनी सांसों की गणना पर क्षणों का कैसा सार्थक पावन प्रयत्न-फल ! तपश्चर्या का अमरफल.... युग-युगों को समर्पित कला के कितने यथार्थ उद्धरण ?

नवनीत

कितने सत्त्वोन्मुखी संकल्प लिये होंगे उनकी साधु-दृष्टि ?

कला का हर पक्ष रूपायित.... संकल्पित ... मंदिर का प्रत्येक कोना ऐसी प्रतीत हो रहा है, मानो प्रत्येक पाषाण ने अमोघ रस-सिद्धि प्राप्त कर ली हो। कलात्मक श्री की लावण्यमयी अवस्था धाराएं प्रवाहित हो रही हैं.... होंगे मूर्ति मनोहारी समय पारे के बूंदों-सा दुलकता जा रहा है, लेकिन आभास हो रहा है कि अभी तो कुछ देखा जाना ही नहीं है..... तभी हवा के मर्मियों के परमृणाल पर तरंगित कमल जलिका के पीछे से पुकार उठता है उन पांच मुड़ जाते हैं.... दो-तीन जैन-संत.

वहीं सीढ़ियों पर बैठकर मंदिर की ओर छेड़ देती हूँ उन्हीं से पता लगा है कि अपरिग्रह के अनुयायी जैनियों की ओर से इस मंदिर को स्थापत्य-कला का अपार संचय मिला है.... बहुत पुराने मेवाड़ के महाराणा कुंभा का इस मंदिर पर अधिकार था राणकपुर महाराणापुर या रणकपुर.... महाराणा कुंभा की कला-मंडित सुरुचिपूर्ण अभिरुचि छाप लिये यह गांव राणकपुर.... का नांतर में यह जैनधर्म के सर्वश्रेष्ठ मंदिर का प्रतीक बन गया.....

दूसरे विद्वान बताते हैं कि महाराणा कुंभा के एक बहुत विश्वासपात्र शिल्पी थे, जिनका नाम धरणाक अथवा धरणी था.... सिरोही राज्य के नंदगांव के थे।

वाद मे
बुलाक
महारा
थे ..
कुशल
धर
मंदिर
बलवत्
जनश्रु
कह
करने
रात व
आया
....
दर्पण-



श्रीआदिनाथ मंदिर की छत का कारु-शिल्प

वाद में महाराणा कुंभा ने उन्हें राजसभा में बुलाकर बहुत मान-सम्मान दिया..... महाराणा कुंभा स्वयं भी बहुत विद्वान थे संगीत, कला और साहित्य के कुशल पारखी थे

धरणीशाह के मन में इतना सुन्दर मंदिर बनवाने की इच्छा अचानक क्यों बलवती हो उठी, उसके पीछे एक कहानी, जनश्रुति, मुझे बतायी गयी.....

कहा जाता है कि एक दिन बहुत काम करने के पश्चात् हारा-थका धरणीशाह रात को सोया कि उसे बड़ा विचित्र स्वप्न आया नीले-नीले, ऊदे-ऊदे से बादल कहीं-कहीं चमकता आकाश -.-.... दर्पण-सा उजाला और 'नलिनी गुल्म'

विमान हवा में लहराता हुआ.....आंखें खुलने पर वह बड़ा हैरान हुआ....काम-काज की व्यस्तता भी 'नलिनी-विमान' की सुंदरता को भुला नहीं पायी... उसका हृदय धर्म के प्रति अनुरागी तो था ही, उसने ठीक 'नलिनी गुल्म' जैसी आकृति का जिन-प्रसाद तैयार कराने की प्रतिज्ञा की.... दूर-दूर से शिल्पकारों को आमंत्रित किया गया.... नक्शे तैयार कराये.... लेकिन संतुष्टि नहीं हो पा रही थी तब आया उस समय का बहुत प्रसिद्ध शिल्पकार देयाकजिसकी चारों ओर प्रशंसा थीदेयाक जाति का ब्राह्मण था.... इससे जब आग्रह हुआ, तब उस शिल्प-विज्ञ ने अपूर्व रेखाचित्र बनाकर दिया....

१९८१

‘त्रैलोक्य-दीपक’ नामक मंदिर का हू-ब-हू स्वप्न-चित्र.... धरणीशाह प्रसन्न हो उठा अनेक सहायक शिल्पकार देकर इस दिवा-स्वप्न को संपूर्ण कला-आवेगों के साथ प्रस्तर पर साकार करने के लिए उससे फिर आग्रह किया..... बड़ी श्रद्धा-भक्ति और लगन के साथ ‘धरणा-बिहार’ नामक चतुर्मुख आदिनाथ जिनालय की नींव डाली गयी और देयाक ने भी पत्थरों में कला का बेजोड़ नमूना उकेर कर उस वर्णनातीत स्वप्न को साकार करने का वचन दिया धरणीशाह ने सर्वश्रेष्ठ संगमरमर प्राप्त करने के लिए मकराना और सेवाड़ी को चुना। इन स्थानों से हल्के सफेद रंग का संगमरमर मंगवाया गया सेवाड़ी प्रस्तरों पर उसने अपनी कला का समस्त सौंदर्य रच डाला अपने श्रेष्ठ सहायक शिल्पियों के साथ, जिनकी संख्या पचास-साठ के करीब थी। वह रात और दिन इस निर्माण-काल में एकनिष्ठ साधनारत होकर जुटा रहा

यह मंदिर पाली जिले में आगे जाकर मेवाड़ की सीमा से लगा हुआ है, जो फालना से बारह मील और सादड़ी से छह मील के लगभग दूर पड़ता है.... चारों ओर से काले-भूरे गिरिशृंगों की अनुरागी बांहों ने इसे लपेट रखा है.... इससे थोड़ी दूर कल-कल बहती है एक गौरवर्णा नदी.. . फिर है असीम हरियाली का बिखरा-महकता सौंदर्य इन

नवनीत

सभी बिबित-प्रतिबिबित वीथियों के बीच सूर्य की आभा में सामने झिलझिला रहा है श्वेतराज हंस-सा राणकपुर.....

सुनते हैं कि जब इस मंदिर का निर्माण हो रहा था, तब धरणीशाह की इच्छा थी कि कला की सर्वोच्च सौष्ठवता के साथ मंदिर सात मंजिल का बने, लेकिन कुछ ऐसे कारण बन गये कि इसका निर्माण कार्य केवल चार मंजिलों तक ही चला गया फिर निर्माणकाल समाप्त करा दिया गया लेकिन आज भी, मैं देख रही हूँ कि इस साज-संवार पर बड़ी सतर्क दृष्टि रखी जाती है बारह महीने लगातार काम न कोई काम चलता ही रहता है

मैं इसके क्षेत्रफल के संबंध में भी जानकारी प्राप्त करती हूँ यह मंदिर अत्यंत मानतः अड़तालीस हजार वर्गफुट के क्षेत्र में बना हुआ है सेवाड़ी और मकराना का बहुमूल्य संगमरमर धूर्त बेलों के गुच्छे, मूर्तियां और बंदनवात सज्जित द्वार.... चौबीस रंगमंडप... एक सौ चौरासी भूगृह.... पिच्छ शिखर और एक हजार-चार सौ चौवालीस स्तंभ हैं चारों दिशाओं में प्रवेश हेतु बहुत ही कामदार द्वार हैं जहां पच्चीस कंगूर चौकियों से आवद्ध सीढ़ियों द्वारा प्रवेश किया जाता है हाथ माला, सिर पर पगड़ी और गले में उल पहने धरणीशाह की बड़ी शानदार उन्नत रूप में सामने है। मैं यह भी

रही हूं कि आदिनाथ त्रैलोक्य-दीपक मंदिर के सभी द्वारों से संपृक्त एक-एक बड़ा मंदिर और है चारों द्वारों के साथ जुड़े हुए मंदिर समुदाय में कुल मिलाकर लगभग चौरासी देवकुलिकाएं.... मठ और मठियां सभी इतनी हृदय-ग्राही मूर्तियों से, सर्पाकार बेलों-लताओं से मढ़े-जड़े हैं कि आश्चर्य होता है.... बड़ा अचंभा कि क्या यह सब मानवीय उंगलियों द्वारा दुर्लभ अल्पना है ? धरती के विश्वकर्माओं ने भक्ति और कला के कैसे अनूठे जोड़-बंद बैठाये हैं ? यद्यपि अचानक देखने पर एक और भ्रमित आश्चर्य होता है कि स्तंभों का अलंकरण, इनकी कारीगरी ऐसी विचित्र है कि सब एक दूसरे से अलग-थलग जान पड़ते हैं, लेकिन गौर से पैनी खोज करने पर सभी का डिजाइन, शृंगार और लास्य-आकर्षण एक जैसा ही मिलता है परंतु फिर नजर चूकी कि मृगजाल ... कई परिवर्तन ... अजीब से बदलाव कला का मायाजाल अनूठा है

बड़ी भव्य शानदार गैलरियां, प्रासाद-पीठ भूरे रंग का बड़ा प्रस्तर नागरशैली से अलंकृत शिखर-शीश हल्के श्वेत संगमरमर की अद्भुत चिकनाई और दमक.... अर्द्धमंडप.... सभाभवन प्रदक्षिणा पथ... चबूतों की जाली, विवर युक्त बारीक झालरें... द्वार खंडों की चित्रकारी शुभ प्रतीकों से मंडित सौंदर्यशाली मूर्तियां छत्र

१९८१

मंडोवर पर अनोखी कलाकृतियां जैन स्थापत्य-शैली की अनंत गंध-गूंज लिये हुए बड़ी ललित-मोहक संगतराशी.... तभी तो दूर-दराज तक से असंख्य भक्त, कलावंत, चित्रकार, शिल्पी और साहित्य-कार इसे देखने के लिए दौड़े आते हैं....

एक मुनिश्री बताते हैं कि राणकपुर के इस मंदिर-प्रतिष्ठान में धरणीशाह ने चारों ओर निमंत्रण भेजा कुंकुम-पट्टियां..... परिणाम रहा कि लगभग वावन-पचपन बड़े जैनसंघ शामिल हुए और पांच सौ-छह सौ साधु-मुनि पधारे....

मंदिर के मध्यभाग में देखती हूं चतुर्मुख देवकुलिका जहां बड़ी मनोहारी मूर्तियां हैं... नारी सौंदर्य आभूषणों से शृंगारित अधिकतर नृत्य-मुद्राओं में हैं... विभिन्न ताल-लय-भंगिमाओं वाली नर्तकियां इसके चारों ओर रंग-मंडप..... वंशी की तान कोरती, नाचती हुई देह-भंगिमाएं ... घुंघरुओं से मदालस-वातावरण पैदा करती हुई कई पुतलियां..... बहुत-सी नृत्यांगनाएं स्तंभों पर पशुओं, पक्षियों के चित्र फूलों की क्यारियां... एक-एक रेखा जीवित... हाथी, सिंह और घोड़ों के बड़े ठोस और और सजीव रूप

दूसरी, तीसरी और चौथी मंजिलों में जैन तीर्थंकरों की शांत, सौम्य और गंभीर सुंदर मूर्तियां व्यवस्थित हैं.... लेकिन यह भी सत्य है कि ध्यान से देखने पर सारी (शेषांश पृष्ठ १५९ पर)

उर्दू के मूर्धन्य हास्य-कथाकार
कन्हैयालाल कपूर की अनूठी व्यंग्य-रचना

खुदा का इन्साफ़

यह महज संयोगवश था कि जिस दिन स्वर्ग में बगावत हुई, उसी दिन नरक में भी हुई। स्वर्ग में बगावत हूरो (अप्सराओं) ने की। नरक में पापियों ने। दोनों इस बात से क्षुब्ध थे कि वर्षों से एक ही तरह का जीवन व्यतीत करते-करते तंग आ गये हैं। दोनों ने अपना उद्देश्य स्पष्ट करने के लिए एक-एक प्रतिनिधि-मंडल खुदा के पास भिजवाया। उसने बड़ी हमदर्दी के साथ प्रतिनिधि-मंडल की शिकायतें सुनने के बाद फरमाया—लेकिन शायद पहले आप यह जानना चाहेंगे, स्वर्ग और नरक में बगावत किस तरह हुई?

बात यह है कि स्वर्ग में यद्यपि अप्सराएं लाखों वर्षों से रह रही थीं, लेकिन वे अपने जीवन से हरगिज संतुष्ट न थीं। उनका सबसे बड़ा शिला था, हम उन लोगों के पल्ले पड़ी हैं, जिन्हें बातचीत करने का तरीका न आता है, न इश्क का सलीका और जिनकी शकलें देखकर लाहौल पढ़ने को जी चाहता है। किसी की आध मीटर की दाढ़ी है, तो किसी की आध मीटर की चोटी। जिनसे जब इश्क करने के लिए कहा जाता है तो चौंककर कहते

हैं—'हम इश्क करें? साहब! खुदा कीजिये!' जिन्हें जामे-शराब पेश किया जाता है तो मुंह बनाकर कहते हैं—'मैं भी कड़वा-सा हूँ; बू भी खुशगवार नहीं। अप्सराओं की समझ में उनके स्वर्ग के अजीब किस्म के इंसान थे।

कोई मौलवी-नुमा बूढ़ा खूबसूरत अल्लाह, अल्लाह-हू की आवाज लगाता रहता है, जब उसकी बेगम प्रतिरोध करती कि 'समय तो अल्लाह मियां को चैन दे!' वह कहता—'अल्लाह का वह ही क्या, जो उसे एक मिनट भी लेने दे!' कोई पंडितजी हर नारायण-नारायण की रट लगाते हैं, जब पंडितानीजी शिकायत करती हैं कि 'मुझसे प्यार क्यों नहीं करते?' वे कह देते; 'हमारी नज़र में हर परायी मां के बराबर होती है।' कोई साहब हर समय अध्ययन में मग्न रहते हैं, जब उनकी बीबी सवाल करती है कि 'मुझसे इश्क क्यों नहीं फरमाते?' वह घबराकर पूछते—'इश्क? वह क्या है? स्वर्ग में आने से पहले ये खुदा के इश्के-हकीकी (प्रभु-प्रेम) से तो

किसी समय
ने अल्लाह नियां
को चैन देने
दे!

अल्लाह का
वह अकत ही क्या,
जाना कि
भी चैन देने
दे!



अवगत थे, लेकिन इसके-मजाजी (दुनियावी प्रेम) से बिल्कुल बेखबर थे।

इधर अप्सराएं थीं कि सदियों से तरस रही थीं कि कोई उनके हस्तो-जमाल की तारीफ़ करे। कोई उनके नाज़ उठाये। उनसे टूटकर मुहब्बत करे, लेकिन स्वर्ग में उनकी आशाएं पूरी होने की कोई संभावना नहीं थी। यही कारण था कि एक दिन फरदोस ने, जो स्वर्ग की सुंदरतम अप्सरा थी, जलकर एक अप्सरा मधुबाला से कहा—'इससे तो बेहतर था, अल्लाह मियां हमें नरक में भिजवा देते। वहां शायरों और आशिकों से आंख लड़ाने में कितना मजा आता। नियाजी-नाज़ के झगड़े चुकाये जाते। तरह-तरह की चुहलें होतीं, जैसे हम तरहदार हैं, वैसे बांके हमारे पति भी होते।'।

मधुबाला ने फरदोस से सहमत होते हुए जवाब दिया—'यह तो बहन, आप ठीक कहती हैं। अगर हमारे सिरताज दाग देहलवी, अमीर मीनाई या कम से कम जिगर मुरादाबादी के पाये के होते तो ज़िदगी का लुत्फ़ आ जाता। वह हमें जिगर के शब्दों में कहते—

सितम हो, क्रहर हो, तुम इक बला हो, यह सब कुछ ठीक, फिर भी दिलरुबा हो या दाग का यह शेर पढ़ते—

बुत को बुत और खुदा को जो खुदा कहते हैं हम भी देखें कि तुझे देखकर क्या कहते हैं या अमीर मीनाई की तरह इस ख्वाहिश को प्रकट करते—

बाकी न दिल में कोई भी या रब्व हवस रहे चौदह बरस के सिन में वह लाखों बरस रहे फरदोस बोली—'सितम तो यह है कि

रूपांतरकार : सुरजीत

जब हम अपने पति की बेपरवाही की ज़ब्रईल से शिकायत करती हैं, वह उलटा डांटकर कहता है—‘फरियाद और रोने की आदत के बजाय सुलह-सफाई का रवैया अपनाओ और खुदा का शुक्रिया अदा करो कि तुम्हारे पति अल्लाह वाले लोग हैं।’

‘भाड़ में जायें ऐसे पति !’ मधुबाला ने अपनी नफ़रत को प्रकट करते हुए कहा—‘मैं कहती हूँ, क्यों न मिलकर इनके खिलाफ प्रतिरोध किया जाये।’

‘तुम्हारा मतलब, हड़ताल और प्रदर्शन से है।’

‘और अगर ज़रूरत पड़े, धरना, घेराव, भूख-हड़ताल भी।’

‘लेकिन हमारी यह आदेशोल्लंघना ज़ब्रईल कभी बर्दाश्त नहीं करेगा। वह स्वर्ग के दरोगों को हुक्म देगा। हम सब को एक-एक सौ कौड़े लगाये जायें।’

‘अगर हम सामूहिक रूप में प्रतिरोध करेंगी तो कोई भी हमें सजा देने की हिम्मत नहीं करेगा।’

‘तो फिर क्यों न कल ही बगावत का ऐलान किया जाये और मिलकर यह नारा लगाया जाये—‘स्वर्ग की अप्सराओ, एक हो जाओ।’ ज़्यादा से ज़्यादा जिस चीज़ से तुम्हें वंचित किया जा सकता है, वह तुम्हारे बेहूदा पति हैं।’

चुनाचि अगले दिन फरदोस और मधुबाला के नेतृत्व में बगावत का झंडा बुलंद कर दिया गया। स्वर्ग का वातावरण तरह-तरह के नारों से गूँज उठा। जिन सबका

मतलब था, हमें हमारे पतियों से मुक्ति दिलायी जाये।

जब ज़ब्रईल की धमकियों के बावजूद अप्सराएं अपनी ज़िद पर कायम रही, तो ने खुदावंद करीम को सूचित किया। अप्सराओं ने बगावत कर दी है। खुदा करीम ने हुक्म दिया, अप्सराओं से कहा जाये, अपना एक प्रतिनिधि-मंडल हमारे पास भिजवायें। हम उनकी जायज़ शिकायतें ज़रूर दूर करेंगे। अप्सराओं का प्रतिनिधि-मंडल खुदा की सेवा में उपस्थित हुआ। प्रतिनिधि-मंडल की नेता फरदोस ने कहा—‘ए खुदा, तू तो कादरी आदल है। फिर स्वर्ग में तेरी अप्सराओं का यह दुर्गति क्यों बनायी जा रही है। अब तू किसी वजह से उन्हें बेहतर पति प्रदान करना चाहता है, तो कम से कम तू इजाज़त दे कि वे अपने वर्तमान पतियों से तलाक हासिल कर सकें, क्योंकि उन संगति में अप्सराओं की ज़िंदगी कष्टदायक बनकर रह गयी है।’

खुदा ने इस शिकायत को सुनकर कहा—‘फरदोस ! तुम्हारे प्रस्ताव में बजावत हम तुम्हें यकीन दिलाते हैं कि...

इतने में ज़ब्रईल ने वहां आकर कहा—‘बात काटने के लिए माफ कीजिये। मैं भी बगावत हो गयी है।’

खुदा ने फरमाया—‘यक न शुद शुद ! नरक में बगावत कैसे हुई?’

ज़ब्रईल ने अर्ज किया—‘कुछ उम्मात ने नरकवासियों को उकसाकर

बहकाकर बगावत करने पर तैयार कर लिया। उन्होंने नरक के हर क्षेत्र में जाकर प्रचार किया। हमारी संख्या लाखों, बल्कि करोड़ों तक पहुंचती है, क्या हम नरक के कुछ दरोगों को काबू में नहीं कर सकते! चूनांचे आज सुबह बागियों ने दरोगों को पकड़-पकड़कर नरकाग्नि में झोंकना शुरू कर दिया। जब वे आग में झुलसते समय चीखते और चिल्लाते, तो बागियों के नेता 'कामरेड बारूद' और 'कामरेड बिजली' उन्हें संबोधित करके दाग का यह शेर पढ़ते—

तुमने तनाम उम्र जलाया है दाग को ब्यालुफ होजो वह भी जलाये जरा-सी देर 'बेहतर होगा। आप उनकी ज़बान से सुनें। मैं अभी उनके प्रतिनिधि-मंडल को आपकी सेवा में उपस्थित करता हूँ।'

पलक झपकते में ज़ब्राईल कामरेड बारूद और कामरेड बिजली को खुदा के पास ले आया।

खुदा ने फरमाया—'जो कुछ कहना चाहते हो निस्संकोच कहो।'

कामरेड बारूद बोला—'ए खुदा! तू कादरी-आदल है। मुझे पूरी उम्मीद है, तू ईसाफ करेगा। मुझे और मेरे लाखों साथियों को नरक में इसलिए तरह-तरह की यातनाएं दी जा रही हैं, क्योंकि फरिश्तों की रिपोर्ट के अनुसार हमने गुनाह किये थे। गुस्ताखी माफ़! गुनाह एक विवादास्पद विशेषण है। मुमकिन है जो क्रिया फरिश्तों की नज़र में गुनाह हो, वह गुनाह

के बजाय कुछ और हो। या फिर पुण्य हो। उदाहरण के तौर पर, अगर किसी गरीब बाप का इकलौता बच्चा भूख से तड़प रहा है और वह उसकी जान बचाने के लिए किसी घर से रोटी चुरा लेता है तो यह गुनाह नहीं, बल्कि यह तो उसकी मजबूरी है। इसी तरह अगर कोई शख्स अपनी खूबसूरत नौकरानी को अपनी बदसूरत बीबी पर तरजीह देता है, तो उसे गुनाह नहीं कहा जा सकता। उसे तो मज़ाके-सुखन कहना चाहिये, जैसा कि हसरत मोहानी ने कहा है—

रअनाई-ए-खयाल को ठहरा दिया गुनाह जाहिद भी किस कदर है मज़ाके-सुखन से दूर

'अगर कोई आदमी प्रवचन या उपदेश नहीं सुनना चाहता; क्योंकि वह बहुत गैर-दिलचस्प और उकता देने वाला होता है, तो यह उस शख्स का गुनाह नहीं, ईमानदारी है। और अगर कोई नौजवान मोपांझा के एक पात्र की तरह कहता है—सिर्फ़ इबादतगाह ही ऐसी जगह है, जहां खुदा मौजूद नहीं होता, तो यह उसकी साफगोई है, गुनाह नहीं। अगर किसी शख्स ने कोई गुनाह किया भी है, तो उसे इतनी सज़ा मिलनी चाहिये, जिससे ईसाफ का मुतालबा पूरा हो जाये, न यह कि उसे उम्रभर तक नरक के शोलों में जलने के लिए मजबूर किया जाये।'

'कोई और शिकायत?'—खुदा ने पूछा।

इस बार कामरेड बिजली ने अपने साथियों का प्रतिनिधित्व करते हुए कहा—

‘ए खुदा ! तेरी हिकमत और रहमत में शक करना कुफ्र है,—लेकिन बकौल जनाव इकबाल—

शिकवा अल्लाह से खाकम बदहन है मुझको

‘क्या मैं यह पूछने की गुस्ताखी कर सकता हूँ ? नरक की रचना से तुम्हारा क्या मकसद था ? अगर यह था कि इसमें गुनहगारों के साथ जो सलूक किया जाता है, उसे देखते हुए दुनिया वाले गुनाहों से परहेज या तोबा करेंगे तो यह मकसद पूरा नहीं हुआ, क्योंकि दुनिया में गुनाह बदस्तूर किये जा रहे हैं, बल्कि उनकी तादाद में रोज-ब-रोज वृद्धि हो रही है ।

‘क्या यह बेहतर नहीं होगा कि नरक के वजूद को खत्म कर दिया जाये । इसकी जगह एक ऐसा सेनेटोरियम खोला जाये, जहाँ मनोविज्ञान-विशेषज्ञ गुनहगारों को सीधे रास्ते पर लाने की कोशिश करें, और जब वह नार्मल इंसान बन जायें, उन्हें स्वर्ग में दाखिल कर लिया जाये ।’

दो-एक सेकेंड के मौन के बाद खुदा ने फरमाया—‘हमने अप्सराओं और गुनहगारों के प्रतिनिधि-मंडलों की शिकायतें सुनीं । हम समझते हैं, वे सत्य और तर्क पर आधारित हैं । इसलिये अब हम हुक्म देते हैं...’

इस बिंदु पर जब्राईल ने अर्ज की—‘ए खुदावंद ! मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप जल्दी में कोई फैसला न करें, बल्कि इन संजीदा समस्याओं पर कुछ दिन गौर करने के बाद’

‘नहीं, जब्राईल !’ खुदा ने कहा—‘इन संजीदा समस्याओं को अभी हल करने चाहते हैं । चुनांचे हम हुक्म देते हैं, बाब नरक के वजूद को हमेशा के लिए खत्म किया जाता है ।’

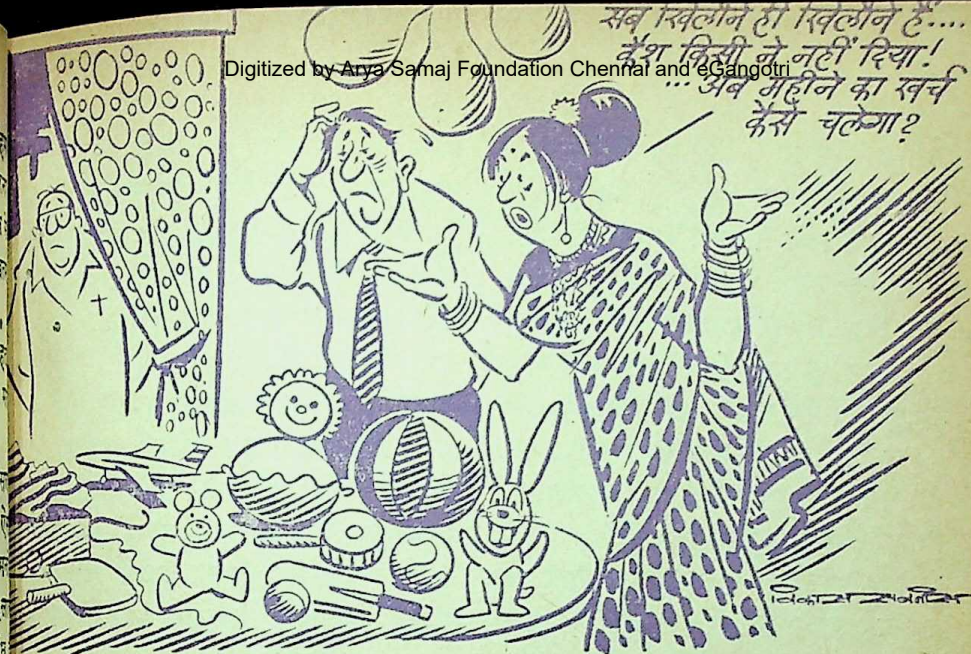
‘हुजूर, बात काटने की माफी चाहते हैं !’ मेकाईल बोला—‘ऐसा कीजिये ।’

‘खामोश ! मेकाईल ! हमने फैसला कर लिया है कि नरक के बजाय एक सेनेटोरियम खोला जायेगा, जहाँ मनोविज्ञान के विशेषज्ञ गुनहगारों का इलाज करेंगे । जहाँ तक अप्सराओं का संबंध उन्हें अपने वर्तमान पतियों से छुटा दिया जायेगा । फिलहाल उन्हें एक कालोनी में, जिसका नाम ‘अप्सरा नूतन (हूरस्तान) होगा, स्थानांतरित कर दिया जायेगा । पर उन्हें इजाजत होगी, किसी दोस्त (नरकवासी) के साथ या बाद में निकाह करना चाहें तो कर सकती हैं । बाकी रहे, जन्नती पति (नरकवाले पति) उन्हें पाकबाज वीवियों की जायेंगी, जो इतनी पाकबाज होंगी, जो अपने पतियों से मुहब्बत करने को तैयार समझेंगी ।’

खुदा का फैसला सुनकर प्रतिनिधि-मंडल नतमस्तक हो और बे-अख्तियार उनकी निमंत्रणा —

मेरे गुनाह को तोलती है रहमत-कुदसी अलग खड़े हैं तराजू लिये

सब खिलौने ही खिलौने हैं....
 वेश किसी ने नहीं दिया!
 ... अब महीने का खर्च
 कैसे चलेगा?



हिंदी के विख्यात हास्य-रचनाकार
 के. पी. सक्सेना कृत परिहास

बुझा हुआ बूना

परम पिता परमात्मा की असीम अनुकंपा से जहां हम हैं वहां घर, बाहर, तहसील, जिला और अंततः पूरे प्रदेश में बच्चों की कहीं कोई कमी नहीं है ! ... यही एकमात्र ऐसी कमोडिटी है, जिसका अभाव कभी नहीं हुआ ! सरकारें आयीं, सरकारें गयीं .. सरकारें पुनः आयीं... पर बच्चों के मामले में सब खैरियत रही ! अभाव सिर्फ रहा इस संदर्भ में, तो 'चिल्ड्रन' का .. जिनका कि 'ईयर' मनाया गया पिछले वर्ष ! 'बच्चा' और 'चाइल्ड' यों सुनने में एक दूसरे के पर्याय लगते हैं, देखने

में एक जैसे नज़र आते हैं, ताहम एक बहुत बड़ा बुनियादी फर्क होता है दोनों में !... हर 'चाइल्ड' बच्चा होता है, मगर हर बच्चा चाइल्ड नहीं हो सकता ! ... बच्चे को चाइल्ड बनने के लिए मां-बाप का स्तर, परिवेश, भाषा, रहन-सहन, खान-पान, तामझाम .. कितनी सीढ़ियां लांघनी पड़ती हैं, तब जाकर चाइल्ड बनता है ।

मैंने अपनी ही कालोनी में आंकड़े इकट्ठे किये । बच्चे सौ से ऊपर हैं, चाइल्ड सिर्फ दो हैं ! ... दूर से ही दोनों चाइल्ड नज़र आते हैं ! .. संस्कारों के गुलाब महकते

हैं इनके इर्द-गिर्द ! पूरी कालोनी मानती है कि हां नज़र लगते मैले होते हैं दोनों ! बाकी सारे बच्चे ? ऊह ! बच्चों जैसे हैं ! कंचा, कन्कड़िया, सिकड़ी खेलने वाले ! 'बूफ़े' डिनर में खाना हाथ में लेकर खड़े-खड़े खाया जाता है, मगर हर कोई खड़े-खड़े हाथ में रोटी लेकर खा ले तो यह नहीं कह सकता कि वह 'बूफ़े' खा रहा है ! ... फर्क अंदाज़ का होता है ! ... एक माहौल होता है, एक खुशबू होती है, एक हंसी होती है, प्लेटों की एक खनक होती है, जो खड़े-खड़े रोटी चबाने को 'बूफ़े' का दर्जा देती है ! ... रोटी और सब्जी, मुंह और पेट एक जैसा होता है—खाने वाले का अंदाज़ अलग होता है !

रामदीन रिक्शेवाला जल्दी-जल्दी खड़े-खड़े खाता है तो कहा जाता है कि रोटी खा रहा है ! ... मिस्टर डी. कुमार इत्मीतान से चार लोगों के साथ हंसते हुए खड़े-खड़े खाते हैं और थोड़ा-थोड़ा म्यूज़िक वगैरह बज रहा होता है तो कहा जाता है कि बूफ़े खा रहे हैं ... यहां पर अगर कोई कह दे कि वह रोटी खा रहे हैं, तो अपनी जद्दालत का परिचय देगा ! ... मुख्य चीज़ रोटी और सब्जी नहीं है। मुख्य चीज़ है प्लेट और म्यूज़िक ! इसी से संस्कृति बनती है।

मिस्टर डी. कुमार के एक चाइल्ड है ! बाकी लोगों के कई-कई बच्चे हैं ... डी. कुमार हर साल बच्चों की 'बर-डे' (बर्थ डे) मनाते हैं ... और लोग सालगिरह मनाते

हैं ! बर-डे और सालगिरह में भी होता है ! ... खैर, यहां बातचीत बंद हो रही है ! मिस्टर धनू कुमार (असली नाम सिर्फ मैं ही जानता हूँ) यह बड़े एतहमाम से मनाते हैं ! सभी मेहमान इंपोटेंट होते हैं ... कालोनी के लोगों को शामिल नहीं हैं ! ... एक बार खुद ही मुझे बताया कि इस कालोनी में न ग्रेस है, न मैनेजमेंट बच्चों पर बुरा असर पड़ता है ! नहीं चाहते कि दीगर बच्चों की उनका बच्चा भी जहालत सीखे और होकर रह जायें !

रंगों, खुशबुओं, कहकहों का एक उमड़ पड़ता है डी. कुमार के कमरे में ! सब कुछ बहुत चमकदार ... एक-एक पीस जैसा सज जाता है मेज़ के इर्द-गिर्द ... शुभकामनाओं के अंग्रेजी खनकते सिक्कों जैसे उछलते हैं ! ... गोल कर-करके बोलने का प्यारा अंदाज़ ! खुशी होती है इस एहसास कि अंग्रेज़ की छोड़ी हुई वसीयत तैंतीस साल बाद भी किस एहतिा धान-पान जैसी पल रही है ! मैं बच्चा एक भी नहीं होता ... सब होते हैं ! ... पापाओं से मामाओं के लाडले ... जैसी, पिकी लूलू, टोनी वगैरह ! एक अपने दोस्त मिर्जा को इस बर-डे आया था। मिर्जा ठहरे मुंहफट बच्चों से पूछ ही बैठे कि, बरखुरदार

को 'मामा' कहते हैं तो मामा को फिर क्या कहते हो?.....चाइल्ड भी समझ गया कि दाढ़ीवाला कोई देसी चीज है !.... मुंह बिचकाकर चल गया। मैंने बाहर आकर लताड़ दिया कि ऐ मिर्जा, तू बड़े लोगों के यहां ले जाने लायक नहीं है। कलचर सीख ! ... मिर्जा बुक्का फाड़कर हंसे और दूसरे ही लम्हे जाने क्यों उनकी आंखों में आंसू छलक आये !

खैर, बूफे शुरू हुआ। मेज पर खाने चुन दिये गये। प्लेटों और चम्मचों की खनक पर छीना-झपटी का ऐसा ओलंपिक खेल फिर एक बार देखा ! फास्ट म्यूजिक का शोर और पनीर का शोरवा एक हुए जा रहे थे ! लेवेंडर और अंग्रेजी खुश-बुओं की महक तले खमीरी रोटी का सोंधा-पन दबकर रह गया था ! ... और वह चाइल्ड, कि जिसकी वर्थ डे मनायी जा रही थी, इस पूरे हजूम में अपनी खाली प्लेट संभाले सहमा-सहमा-सा इधर-उधर घूम रहा था !

एक हंगामा खत्म हुआ ! लोग चले गये। बच्चा मुझसे हिल गया था। मैं उसे प्रेजेंट्स में आये हुए झुनझुने, बाल्स और चड्डियां खोल-खोलकर दिखा रहा था... अंदर लेडी कुमार अपने शौहर को हिदायत

दे रही थीं कि सुबह होते ही सोफे, काकरी, चम्मच, बगैरह जिस-जिसके हैं पहुंचवा दिये जायें, ताकि आयंदा मांगने का मुंह रहे ! होटलवाला खाने का बिल लेकर जा चुका था ... सिर्फ बच्चा अपना था जिसे कहीं वापस नहीं करना था ! मिसेज कुमार की धीमी सरगोशी मुझे सुनायी दी—

‘देखा कुछ ? ... सब खिलौने ही खिलौने हैं प्रेजेंट्स में। कैश किसी ने नहीं दिया ! ... अब महीने का खर्च कैसे चलेगा ?’ ...

‘धीरे बोलो ! अभी एक मेहमान बाहर ही मौजूद है ! ...’

मिस्टर डी. कुमार बाहर आ गये चेहरे पर मुस्कराहट थी ! ... बुझे हुए चूने जैसी... जिस पर कई दरारें पड़ जाती हैं ! ... बोले—‘मिस्टर सक्सेना, प्रोग्राम कैसा रहा ? ... मेहमानों का भी एक स्टैंडर्ड होता है ... आप ही बताइये कि इस कालोनी में है कोई जिसमें पार्टी-मैनर्स हों ? ... एक सलीका होना चाहिये, दस लोगों के बीच चलने-फिरने का ! आपको नींद आ रही है शायद ?’

मैं उनके बाकी महीने के खर्च के बारे में सोच रहा था ! कैसे चलेगा ?

—१७६/११, गुईन रोड, लखनऊ-१



◦ तुम्हारा ताल भरा होने पर भी तुम्हें जिस प्यास का भय बना रहे, वह तृष्णा वह कभी शांत नहीं हो सकती।

◦ मलिन भावना हो, तो लज्जा केवल एक बंधन और मन का रोग रह जायेगी।

—खलील जिब्रान



समझौता

अब, न चोर कोतवाल को
न कोतवाल चोर को
डांटता है,
चोर ईमानदारी से
चोरी का माल
आधा-आधा बांटता है !

०००

रिश्वत महिमा

वे नौकरी से हटाये गये
क्योंकि,
उन्होंने रिश्वत ली
वे पुनः नौकरी पर लगाये गये
क्योंकि,
उन्होंने रिश्वत दी !

☐ महेश मूलचंदानी,

०००

महत्त्वाकांक्षा

हमारी
महत्त्वाकांक्षाओं का मोटापा
इतना बढ़ गया है
कि हर दरवाज़ा
अब छोटा पड़ गया है !

०००

महिमा

मंदिर-मस्जिद
सूने पड़े हैं
और हाथ जोड़कर लोग
नेताओं के
द्वार पर खड़े हैं !

☐ बाबूलाल 'कदम'

अमरीकी व्यंग्य कविता

झगड़ा

☐ सैंड बर्ग

रसोई में कुर्सी ने
रोटी काटने वाली छुरी से कहा :
'तुम्हारी टांगें क्यों नहीं हैं ?'
और छुरी ने कहा :
'तुम्हारे दांत क्यों नहीं हैं ?'

यह झगड़ा

ग्रीष्म काल में एक दिन शुरू हुआ
और शीतकाल तक जारी रहा
और उससे भी अगले शीतकाल तक

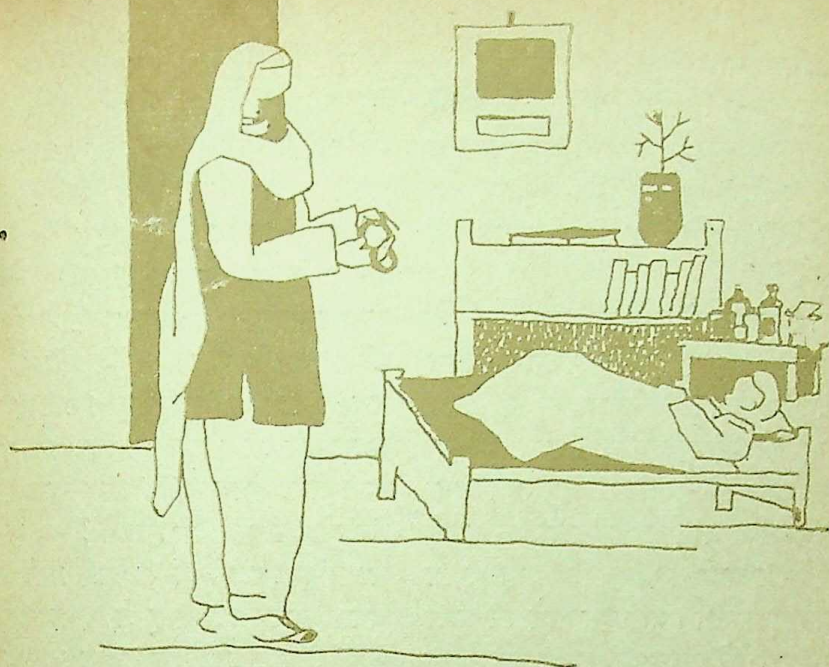
न हुआ

आखिर कुर्सी ने कहा :
'तुम्हारे दांत जाते रहे हैं !'
और छुरी ने कहा :
'तुम्हारी टांगें गायब हैं !'

आखिर रसोई में चुप्पी छा गयी
और उन्होंने देखा :

वहां न लोगों की बातें थीं, न ही जोर-शोर था,
बस, कोयलों का ढेर था, और पुराने बर्तन
थे, —और टूटे हुए औज़ार थे जिनके सिर
कि वे बातें कर सकती थीं लेकिन नहीं हो
से कोई न बोला ।

रूपांतर : १९८१
हिंदी



बांगला दश की कहानी

कंगन

□ शाम बारकपुरी

कंगन का जोड़ा निकालते हुए रेहाना की आंखों में आंसू डबडबा आये। कीमती जेवर ने उसके भीतर छिपी हुई औरत की लालसा को बेपर्दा नहीं किया था, बल्कि वसीम का दिया हुआ अंतिम तोहफा समझ कर उसके दिल में हूक-सी उठी थी। इससे पूर्व कितनी ही चीजें उसे रहन रखनी पड़ी थीं। लेकिन उसे रंचमात्र भी रंज नहीं हुआ था; क्योंकि उसे उम्मीद थी कि वसीम के स्वास्थ्य-लाभ करते ही गम की घटा छंट जायेगी। इसी उम्मीद पर

उसने वसीम के इलाज के लिए फिर घर की तमाम कीमती चीजें, आभूषण, घड़ी, फर्नीचर आदि एक-एक करके बेच डालीं। मगर कंगन के इस जोड़े के बेच डालने का खयाल उसके दिल में कभी नहीं आया। इसलिए कि यह वसीम का दिया हुआ तोहफा था। वैसे भी उसे जेवरों की लालसा न थी। इन सांसारिक वस्तुओं का मोह उसे उस दिन भी न था, जब वह एहसान मंजिल से वसीम के पास हमेशा के लिए चली आयी थी।

वसीम के साथ रेहना की शादी करने के लिए रेहाना के पिता तैयार न थे। उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया था। एक मामूली टीचर के साथ खानबहादुर एहसान खां अपनी बेटी ब्याहने के लिए भला क्यों तैयार होते ?

मगर रेहाना ने अपना सिर गर्व से ऊंचा करते हुए कहा था—‘हालांकि वसीम की माली हाखत अच्छी नहीं है, मगर ऐसे शरीफ़ और जहीन इंसान दुनिया में कम ही होते हैं और फिर इन-जैसा विश्वास-योग्य और सच्ची खुशी देने वाला शौहर मिल जाये तो ज़िंदगी किसी जन्नत से कम नहीं रहती। मुझे इस बात पर खुशी है कि मेरा होने वाला दुनियावी खुदा मेरी कसौटी पर हर सूरत से पूरा उतरता है।’

उन्होंने अपनी बेटी के विचारों में परिवर्तन लाने के लिए कोई कसर उठा न रखी। मगर वह कदम जो आत्म-विश्वास के साथ उठाया गया हो, पीछे हटाना बेहद मुश्किल होता है। कुछ अर्से बाद ही वसीम को एक मामूली-सी बात पर स्कूल से निकाल दिया गया। खानबहादुर ने उससे खान-दानी इज्जत और बेटी को बाप से जुदा करने का बदला ले लिया था।

वसीम अपनी भावनाओं और रंजो-गम को ज़ब्त किये स्कूल से चला आया। रिक्शा पर इसलिए सवार नहीं हुआ कि पता नहीं कितने दिनों बेकार रेहना पड़े, इसलिए पहले से ही फिज़ूल-खर्ची से बचना ज़रूरी है। इसी तरह टहलते-टहलते वह

बस में सवार हुआ। कुछ दिन पहले ने उसे सूचना दी थी कि एक दैनिक में सहायक-संपादक की जगह खाली अगर चाहो तो संपादन के मैदान जाओ। वसीम जैसे कुशल लेखकों अखबारों को ज़रूरत भी थी। जमील ने उसे अपने कलम का जादू की दावत दे दी थी। उस दिन तो उसकी बात को कोई महत्व नहीं दिया मगर अब सोच रहा था कि बिना के गुज़ारा संभव नहीं; और फिर लिखने से कितने पैसे मिलेंगे? कब और फिर मिलने की भी कोई गारंटी अगर तीन-चार माह तक भी के पैसे मिल जायें, तो यह उसका ही होगा।

यह सोचते-सोचते वह अखबार दफ़्तर में पहुंच गया। उस दिन ड्यूटी शाम की शिफ्ट में थी। वह गहरे सोच में डूबा हुआ एक महत्वपूर्ण खबर कम्पोज़ कराने में व्यस्त था। को देखते ही तपाक से मिला और कुर्सी पर बैठने का इशारा करते मिनटों में ही काम निबटा लिया। उसने वसीम को मुख्य संपादक और शक दोनों से मिलवाया। इसके बाद रिक्शा पर घर आ गया। उसकी नौकरी पक्की हो गयी थी। और प्रकाशक उससे गर्मजोशी और तनखा भी इतनी तय पायी थी से दुगुनी थी।

जैसे ही वह रिकशा से उतरा, रेहाना को दरवाजे पर खड़े पाया। आज भी उसके होंठों पर मधुर मुस्कान बिखरी हुई थी।
‘आज बड़ी देर हो गयी?’

‘हां, आज एक काम था।’
‘शायद नौकरी खत्म हो गयी?’ यह कहकर वह अपने होंठ दांतों तले दबाकर मुस्करायी।

‘हां,’ वसीम ने इत्मीनान से कहा—
‘मगर साथ ही दूसरी नौकरी भी पक्की हो गयी, एक दैनिक अखबार के दफ्तर में... वे लोग बराबर आग्रह कर रहे थे। मैंने सोचा कि चलो रोजी-रोटी के लिए वही ठीक है। फिर कालेज के जमाने में लिखने-लिखाने से मुझे खास लगाव था... मगर आज तुम दरवाजे पर क्यों हो?’

‘आज मेरा जी चाह रहा था कि तुम्हारा दरवाजे पर स्वागत करूं।’ वह बोली—
‘आओ, मेरे साथ चलो।’

‘मगर कहां?’
‘क्यों, तुम्हें मेरे साथ जाने में एतराज है क्या?’

‘नहीं, एतराज की बात नहीं; मगर यह तो पता चले कि कहां ले जाना चाहती हो मुझे?’

‘यह नहीं बताऊंगी!’
रेहाना ने नाराज होकर मुंह फुला लिया।

वसीम होंठों-ही-होंठों मुस्कराया।
रेहाना के रूठने से उसका सौंदर्य दुगना हो गया था।

‘बस इतनी-सी बात पर रूठ गयीं... अहाहाहा!’

वसीम के कहकहों ने उसे भी हंसा दिया।
‘आप बड़े मसखरे हैं!’ वह मुस्करायी,
‘चलिये।’

टहलते-टहले दोनों माल रोड पर पहुंच गये। फिर वे एक कपड़े की दुकान में दाखिल हुए। कुछ दिन पहले रेहाना को स्कॉलरशिप की रकम मिली थी। उसने उन रुपयों से नये डिजाइन का कुर्ता और नयी फैशन की सैंडल खरीदीं।

हवाखोरी करते-करते वे काफी दूर निकल आये थे। एहसान मंजिल के सामने पहुंचकर उनके कदम अनजाने में ही रुक गये। रेहाना वसीम को जबरदस्ती खींचकर अंदर ले गयी। खानबहादुर उस वक्त ड्राइंग रूम में बैठे हुए थे। रेहाना उसे उनके पास बैठकर अंदर चली गयी। वसीम वहां बैठा हुआ उकताहट महसूस कर रहा था। पर कुछ देर बाद ही कुछ देर पहले के खरीदे कपड़े और सैंडल पहने हाथ में अटैची-केस लिये रेहाना वापस आयी। बिना किसी हिचकिचाहट के उसने अपने पिता से कहा, ‘डैडी, यह लीजिये!’ उसने अटैची वाला हाथ आगे बढ़ा दिया।

इस अचानक, तब्दीली से खानबहादुर चौखला उठे, ‘क्यों, क्या है इसमें?’

‘इसमें आपके दिये जेवर हैं। घर छोड़ने से पहले मैं चाहती हूं कि ये आपके सुनहरी बिच्छू आपके हवाले कर दूं, ताकि फिर कभी आप ताना न दे सकें।’ वह भावुक-सी

हो उठी। उसके पिता हैरत की तस्वीर बने फटी-फटी आंखों से उसे देखने लगे। इस अनपेक्षित घटना से वसीम भी बेहद चौंका उठा।

‘रेहाना!’ खानबहादुर साहब का खान-दानी खून जोश में आ गया।

‘नहीं डैडी, अब आपकी कोई बात मुझ पर असर नहीं कर सकती। आखिर बरदाश्त की भी हद होती है। छोटी अम्मी को तमाम हिसाब-किताब दे चुकी हूं। आप दुनिया की हर चीज को दौलत की तराजू में तौलना चाहते हैं, जबकि इंसान को जिंदा रहने के लिए और भी चीजों की जरूरत होती है। मुझे माफ़ कर दीजिये डैडी, मैं जा रही हूं अपने शौहर के साथ।’

उसके पिता पर सकता-सा छा गया।

वह जबान से एक शब्द भी नहीं कह सके। आखिर वही हुआ जिसका डर था। लावा अंदर-ही-अंदर खौलता रहा और आज आखिरकार उबल पड़ा। वसीम भी हैरत का पुतला बना, कभी खानबहादुर साहब को देखता, कभी रेहाना को। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है! वह जब हैरत के ऊंचे पहाड़ से नीचे उतरा तो रेहाना उसका हाथ थामे कह रही थी, ‘खड़े हुए टुकुर-टुकुर क्या देख रहे हो। चलिये ना!’

वह उसे बाजू से खींचते हुए बाहर आ गयी। खानबहादुर साहब यह सदमा बरदाश्त न कर सके। कांपते हुए हाथों से उन्होंने मेज का सहारा लेना चाहा।

अटैची के फर्श पर गिरने से सारे पैर बिखर गये! वसीम ने पीछे मुड़कर खानबहादुर को दौरे की हालत में देख कर वह वापस लौटकर उन्हें घूँसना चाहता था, मगर रेहाना उसे धकेलती बाहर निकाल लायी। आज औरत बन चुकी थी, जिससे टकराना बेकार था।

वे दोनों एहसान मंजिल से बाहर आये। उसी रात दोनों ने शादी का और दूसरे रोज़ मकान भी तब्त लिखा।

चंद रोज़ बाद एक सुहानी रात वसीम ने रेहाना के हाथ अपने हाथ में उसकी गोरी-गोरी कलाईयों में सोते कंगन डाल दिये। खुशी से उसका अंग नाचने लगा। अपनी हृदयगत भावना को छिपाते हुए उसने कहा—‘इतने खामखाह क्यों खर्च किये?’

वसीम ने उसके बाजुओं का ठाठ गले में डालते हुए कहा—‘तुम्हारी मुहब्बत के लिए यह एक मामूली खर्च है। तुम्हारे हाथ खाली-खाली रहने इसलिए इन्हें कंगनों के नज़राने से ढाँढना चाहता हूं।’

०००

शौहर के दिये हुए इस तोहफे के आखिरी सहारे को बेच डालने के लिए रेहाना सोच भी नहीं सकती थी। इसके सिवा कोई चारा भी न था। के लिए वह सब कुरबान कर सकती थी।

लगभग पांच माह से वसीम

था। एक-एक करके तमाम जेवर विक चुके थे। अब यह आखिरी महारा रह गया था। कल से वसीम की सेहत और बिगड़ गयी थी। डाक्टर ने जोर देने पर एक नुस्खा लिख दिया—‘यह दवा पिलाइये और आज रात....’ इसके अलावा उसने और कोई बात नहीं कही।

रेहाना भागकर गयी और बक्स से कंगन का जोड़ा निकाल लायी। दिल इस खयाल से रो रहा था कि वसीम का तोहफा उसे बेचना पड़ेगा। मगर उसकी सबसे बड़ी दौलत वसीम है, अगर वही न रहे तो कंगनों का क्या करेगी। पड़ोस के मकान से उसने फरखन्दा के छोटे भाई इफ्तखार को बुलाया और उसके हाथ में कंगन और नुस्खा देकर कहा कि बाजार में इन्हें बेचकर दवा ले आये।

इफ्तखार चला गया। रेहाना वसीम के सिरहाने आकर बैठ गयी।

काफ़ी देर हो चुकी थी, मगर इफ्तखार वापस नहीं आया था। रेहाना को फिक्र हुई। वसीम गहरी-गहरी सांस ले रहा था। जिस्म भी ठंडा पड़ने लगा था। जिन्दगी और मौत के बीच कशमकश शुरू हो चुकी थी। रेहाना की आँखों में आँसुओं का सरना फूट पड़ने के इंतज़ार में था।

काफ़ी देर के बाद इफ्तखार आया। ‘क्या हुआ! दवा मिली?’ रेहाना ने बिताबी से पूछा।

इफ्तखार ने अटक-अटक कर कहा—‘भाभी...कई दूकानों में दिखाया...मगर हर

भूल गयी रंगलियां

ऊधो! भूल गयीं रंगलियां
हंस चकोर पपीहे कोयल
कैसी भ्रमरावलियां।

विद्युत आखर लिखकर सावन
छोड़ चला घर गलियां।
शिशिर शीर्ष पर उतरा ठिठुरा
बर्फ हुई पगतलियां।

फागुन लौट गया चौखट पर
धर पलाश की कलियां।

रोटी-रोटी रटते-रटते
फटा कंठ स्वर नलियां।

मोती से हो गयीं कीमती
हरे मटर की फलियां!

□ आनंदी सहाय शुक्ल
गोशाला पारा, रायगढ़, म. प्र.

मुनार ने...परखकर कहा कि...कंगन सोने के नहीं हैं। इसलिए ये विक नहीं सके।’

रेहाना ने अपनी हैरत को दबाते हुए कुछ कहना चाहा ही था कि वसीम के होंठ कुछ कहने के लिए फड़फड़ाये और फिर हमेशा के लिए बंद हो गये।

रेहाना हैरत की तस्वीर बनी रह गयी। वह चीख मारकर वसीम के जिस्म से लिपट जाये या यों ही खड़ी रहे। उसकी आँखों में आँसू का एक कतरा भी न था।

अनुवाद : लक्ष्मीचंद्र गुप्त

जीवनी प्रसंग



जीवन का पहला प्रेरक मोड़ □ वृजनारायण

मेरा जीवन भगवान की अहैतुकी कृपा से भरा पड़ा है। घोर कष्टों भरे जीवन में भगवान की कृपा का सहारा मिलता रहा। असंभव-सी परिस्थितियों में पढ़-लिख गया। योगक्षेम के साधन जुड़ते गये। केवल उदरपूर्ति को अपना परम ध्येय बना सका था कि भगवान ने मुझे व्यापार और उद्योग के सफल अभियान का अवसर दिया। ट्राम का किराया भी जेब में न रख सकनेवाले युवक को हवाई जहाज से सारे संसार का भ्रमण कई बार करवाया, जीवन में अप्रत्याशित सफलता दिलवायी। हाल में उद्योग फेल होने पर भयंकर परिस्थितियाँ उपस्थित हुईं तो उससे भी भगवान ने बचा लिया। आज अवकाश ग्रहण करने के बाद भी योगक्षेम का अचूक साधन प्रस्तुत कर दिया है और संगीत-संसार में तो सफलता की चोटी पर पहुँचा दिया है। धन्य हूँ मैं !

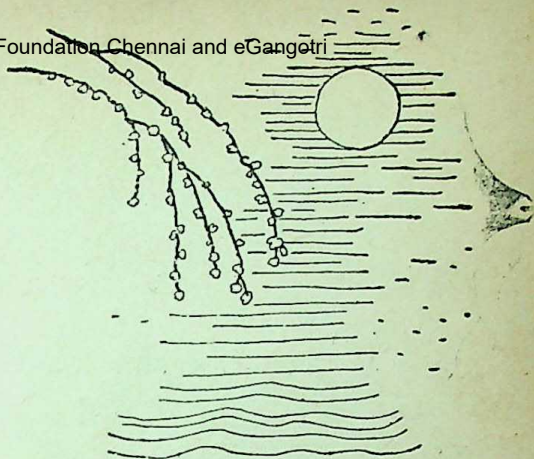
विवाह होने के एक सप्ताह के अन्दर मुझे स्वामी विवेकानन्द का सारा साहित्य पढ़ने का सुयोग मिला। आस्तिक परिवार का अंग होने के कारण मुझे भगवान पर बड़ा ही भरोसा था। संकट के समय उनसे प्रार्थना करने पर मुझे भरपूर शान्ति

और कष्ट-शमन का आशीर्वाद मिलता था। परन्तु स्वामी विवेकानन्द का साक्षात् पढ़कर न जाने क्यों मैं घोर नास्तिक बन गया। भगवान में आस्था उड़ गयी, मैं जाना अपना अपमान समझने लगा। मैं ऐसा भयंकर दौर उस समय उल्टा हुआ, जब कि मैं कमाई के साधन रहा था।

घर का वातावरण भयंकर था। भगवान पर भरोसा नहीं था। मैं जब मछली कि तरह तड़फड़ा रहा था। रास्ता नजर नहीं आ रहा था। मदद वाला कोई था नहीं। मेरा आत्मिक कुंठित हो गया था। सामने अंधकार था। अंधकार था।

ऐसे में भगवान की कृपा हुई। एक न प्रभु-प्रेरणा से मुझे काम पर लगाया। ५ वर्ष तक जीवन में प्रवाह आया-विश्वास जगा और जीवन-पथ निकला। नास्तिक को आस्तिक वरदान मिला।

बम्बई में जब पहली बार मुझे ताण्डाद्वीप के नवाब साहब ने मुझे का अवसर मिला। वे महात्मा प्रशंसक और राष्ट्रवादी थे। खादी



बड़ा प्रेम था। मैं उस वक्त खादी नहीं पहनता था। मुझसे कहा गया कि उनसे मिलने के लिए यदि मैं खादी के वस्त्र पहनूं तो उन्हें बहुत अच्छा लगेगा।

पित्रों से दो धोती और दो कुर्ते जुगाड़ लिये। नवाब साहब के दर्शन करके बहुत ही आनंद आया। बड़े ही सौम्य और स्नेही व्यक्ति थे वे। दो दिन के बाद उन्होंने आग्रहपूर्वक एक दिन और रोक लिया। उनसे गुरुदेव टैगोर, महात्मा गांधी और सुभाष बाबू के विषय में बातें करना बड़ा ही प्रेरक लगा।

बम्बई लौटकर नवाब साहब से मिलने फिर जाता था, क्योंकि वे भी बम्बई आ गये थे और मुझे फिर मिलने की उनकी आज्ञा थी। खादी के कुल दो जोड़ी कपड़े नाव्हा में मैले-कुचैले हो गये थे। और मुझे बड़ी ही लज्जा लग रही थी कि नवाब साहब ने मेरे विषय में क्या सोचा होगा! वकालत पास करके ही बम्बई आया था। अवस्था भी २३ वर्ष से अधिक नहीं थी।

इसलिए अक्ल भी कम ही थी। मैंने उनके पास अपने सबसे बढ़िया कपड़ों में सज्जधज कर जाने का विचार कर लिया। तीन पीस सूट और फैल्ट हैट लगाकर जब मैं नाव्हा हाउस पहुंचा तो नवाब साहब ने फौरन मुझे बुला लिया। मुझे देखते ही उन्होंने अपने मित्र, जिनके साथ कि मैं नाव्हा व उनके बम्बई-निवास पर गया था, से पूछा, 'अरे भाई, ये किसे पकड़ लाये!' मित्र ने उत्तर दिया, 'ये तो वही हैं, जो

नाव्हा में आपके दर्शन करने आये थे।'

मेरी तरफ मुखातिब होकर उन्होंने आक्रोश की मुद्रा में कहा, 'अच्छा तो आप हैं? इन कपड़ों में सजकर मुझ पर रौब जमाने आये हैं। नाव्हा में खादी के कपड़े पहनकर मुझे बेवकूफ बनाया था। अब आपकी असलियत का पता लगा।'।

फिर अपने सिपाही को बुलाकर हुक्म दिया, 'निकाल बाहर करो इस नासमझ इंसान को।' और मुझसे फरमाया, 'अब कभी मुझसे मिलने की हिम्मत न करना।'।

मैं स्तब्ध रह गया। आंखों में आंसू आ गये। मैं वहां से निकलकर सीधा घर पहुंचा। अपने किये पर बहुत संताप था। और उसी क्षण एक दृढ़ निश्चय मस्तिष्क में कौंध गया। मैंने प्रण कर लिया कि अब जीवन में केवल खादी पहनूंगा। कभी कोट नहीं पहनूंगा। और प्रदर्शन करने की अपनी कुप्रवृत्ति को उखाड़ फेंकूंगा।

दूसरे दिन ही पुराने कपड़े अपने भांजे को अजमेर भिजवा दिये और दो कुर्ते-पाजामे खादी भंडार से बने-बनाये खरीद



लिये । दो तौलिये, दो बनियानें और दो तहमत भी खरीदे, और इस तरह मेरा नया जीवन आरम्भ हुआ ।

अभावों में ही मेरा जीवन कटा था । कोट-पैट पहनने की साध बहुत मुश्किल से पूरी हुई थी । शायद साल दो साल भी न पहन पाया होऊंगा कि यह निश्चय करना पड़ा । भगवान का अनुग्रह, उन दिनों की विपन्न अवस्था में, यह निश्चय वरदान बन कर आया ।

दूध पीना छोड़ दिया—साधन भी नहीं थे । चावल खाना छोड़ दिया, शक्कर खाना छोड़ दिया और सिनेमा देखना भी

त्याग दिया । उपवास करना शुरू दिया । मैंने चाहा कि मैं आज की दयनीय अवस्था में किसी पर बोझ न

नवाब साहब मेरे जीवन में प्रवेश करके प्रदर्शक बनकर आये । न जाने मेरे को क्या मोड़ मिलता, क्योंकि अपनी इच्छाओं को पूरा न कर पाने की मानसिक व शारीरिक कष्टों के शोष मिलता ? अपनी जरूरतों को मंजूर न कर दिया कि कष्टसाध्य होवे निर्वह होने लगा ।

धन्य है वह महापुरुष जिसने मेरी ही बदल दिया ।

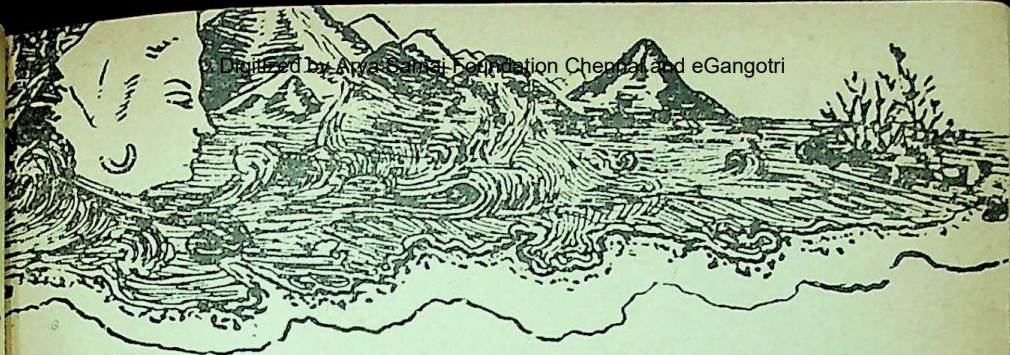


सलाह

मराठी के विख्यात साहित्यकार स्व. पु. भा. भावे अपने एक घनिष्ठ मित्र कहीं जा रहे थे । रास्ते में अचानक उनके मित्र की नजर परिचित एक युवा लड़की पड़ी । उन्होंने उसे पास बुलाया और भावेजी से उसका परिचय कराते हुए बोले— 'हैं और बहुत अच्छी कविताएं लिखता है ।' भावेजी क्षणभर तक उसे तिहासते गंदे कपड़े और बेतरतीब बिखरे हुए बड़े-बड़े बालों को देखकर उनकी लज्जा गयीं । फिर किंचित् मुस्कान के साथ उन्होंने पूछा— 'दिन भर में कितनी कविता लिखती हो ?' 'यही कोई दो-चार तो लिख ही लेता हूं ।' कवि के इस उत्तर पर उन्होंने उठे— 'हां-हां, ठीक है, पर कम-से-कम एक बार नहा भी लिया करो ।' उस युवा कवि की सूरत देखते ही बनती थी ।

—शब्बीर दाऊद, पुणे





उम्र में लिख ली थी ।

तारुण्य उस महाशक्ति का नाम है—जो किसी महान् उद्देश्य को सामने रखकर—जीवन के इस सुविशाल चक्र का प्रवर्तन करती है। वह समग्र प्रचंडताओं के साथ अपने उद्देश्य को जीवन की संकल्प-शक्ति में बदलती है। तारुण्य वह शक्ति है—जब गतिशील होती है—सारा राष्ट्र गतिशील हो जाता है। जीवन में तारुण्य का उदय यदि हमें नगाधिराज की ऊँचाइयों तक न ले जाये—तो कहना चाहिये—हम एक शिशु की तरह उत्पन्न होकर—

तारुण्य की झलक देखे बिना ही—उसी क्रम में वृद्ध हो गये। तारुण्य वह शक्ति है जो हमें जीवन में हिमालय सदृश ऊँचाइयों में का एक भव्य स्पर्श दे सकती है। तरुण कभी वृद्ध नहीं होता। प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रैंड रसेल ९० वर्ष की उम्र में भी परम तरुण थे।

ऋग्वेद के एक तरुण ऋषि का उद्घोष है—

‘कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे

सव्य आहित’

मेरे दाहिने हाथ में कर्म है और दायें हाथ में विजय ।



एक बार पंडित जवाहरलाल नेहरू ने श्री लालबहादुर शास्त्री को अपने साथ इंग्लैंड चलने के लिए कहा। शास्त्रीजी ने पहले तो यह कहकर इन्कार कर दिया कि वे वहाँ के तौर-तरीके नहीं जानते, लेकिन नेहरूजी के जोर देने पर वे मान गये। तब नेहरूजी ने कहा, ‘लेकिन आप धोती पहनकर नहीं जायेंगे।’

‘पर मैं तो हमेशा धोती ही पहनता हूँ।’ शास्त्रीजी ने कहा।

‘नहीं, धोती नहीं चलेगी। अगर पतलून नहीं तो कम से कम चूड़ीदार पाजामा पहनना पड़ेगा।’

‘पंडितजी, एक बार पहले भी आपने इस बात पर जोर दिया था, तो मैंने चूड़ीदार पाजामा सिलवाया था, जिसे पहनते-पहनते बहुत देर लग गयी थी। और फिर उतारते-उतारते तो ऐसा फंस गया था कि दूसरों की मदद से कहीं जाकर उसमें से निकल पाया था।’

—गोपीनाथ बसन्त



गुजरती कहानी

हम तो चिड़िया उस देश की....

□ वर्षा अडाल

मेरे प्रियतम,

क्या लिखू ? कुछ समय में नहीं आता । यह चुलबुली रमा है न—अजी वही तुम्हारी मौसिरी बहन—उसने कसम दे रखी है, सो लिख रही हूँ, पर देखो, मेरे अक्षर का मजाक मत उड़ाना ।

तुम छुट्टियों में बम्बई से यहां आये । धनतेरस के दिन मैंने चुपके-चुपके पहली बार तुम्हें देखा । उस वक्त, क्या बताऊँ, मेरी तो धड़कन ही बढ़ गयी थी । मैं जा रही थी गेहूं पिसाने । रात-भर तुम्हीं तुम नज़रों में छाये रहे । सच्ची... तुम्हारी कसम, झूठ नहीं बोलती मैं ! जितने दिनों तक तुम ठहरे, मैं रोज दोपहर ऊपर के कमरे में जाकर चुपके से तुम्हें नज़र-भर देखती ही रहती । तुम रमेश के घर में पत्ते खेलते रहते । मैंने तो सत्यनारायण की कथा की मनौती भी रखी थी, यदि तुम्हारे संग..... ओ मा रे, मुझे तो लिखने में भी मगर कल क्या ? यह तुम्हारी रसु जबरन मुझसे ऐसी बातें लिखवाती जाती है । पता नहीं उस बुद्धू ने क्या डोरा डाला, क्या जादू कर दिया कि मेरी मां तुम्हारे घर रिश्ता तय करने गयी और तुम्हारे चाचा और बाबूजी ने भी हामी भर दी और

तुम्हारे घर पर तुम्हारी मां नहीं थी, लिए मेरी अम्मा को कुछ संकोच-रहा था और तुम्हारे चाचा ने जो बातें बता दी कि हमारा बेटा तो पढ़ने में ही धार है, शहर में पढ़ता है तो शांता के पढ़ना होगा । लेकिन हाय रे देवा, ना भी कब कहा था ? मैं तो जैसा चाहोगे वैसा ही करूंगी ।

मेरे प्रियतम, मां दुर्गा से मेरी प्रार्थना कि तुम सदा खुश रहो और खूब-खूब पढ़ो । चिट्ठी देना भूलियो मत । के पते पर भेजना । वह मुझे दे देगा

—तुम्हारी शांता के प्रप

०००

प्राणप्रिय अनंत,

कल ही तुम्हारा खत मिला । मैं खुशी के बावरी-सी बन गयी और तुम्हें खत लिखने बैठ भी गयी ।

तुमने कालेज में अव्वल स्थान यह पढ़कर मैं खुशी से फूली नहीं । घर की चहार-दीवारी में तो खरब-खरब रखना पड़ता है । और किसे दोपहरी में जब लोग सो रहे थे, दौड़ी-दौड़ी पहुंची रसु के घर । बताओ, भला, मैं करती भी क्या

नवनीत

१०८



उसे ही अपनी बांहों में कसकर अपने सीने से लगा लिया । यह पगली छटपटाती हुई चिल्लाने लगी—‘अरी, बात क्या है, शांतु ? मैं तेरा वर हूँ क्या ? पगली कहीं की ! छोड़, छोड़ दे मुझे....’ पर उस पल-भर के लिए, मुझे ऐसा ही लग रहा था, जैसे कि मैं तुम्हें ही.... हां, सच्ची !!

तुमसे वादा किया था, सो दसवीं जमात तक पढ़ाई कर ली । तुमने तो कहा है पढ़ाई जारी रखो, पर मैं क्या करूँ ? इधर आगे पढ़ने की सुविधा जो नहीं है । और शहर तक मुझे पढ़ने जाने भी कौन देगा ? तुम्हारे चाचा, बाबूजी, मेरी मां—सबने साफ़ मना कर दिया है । फिर भी क्या हुआ ? पढ़ाई

जारी रखने की इच्छा मेरी भी है, तुम्हारी भी । और विवाह के बाद मुझे कौन रोकने वाला है ? तुम खुद ही मुझे पढ़ाइयो, अच्छा ?

मेरी मां की तबीयत कुछ नरम-सी रहती है, सो मंदिर में पूजा का पानी भरने मैं जाती हूँ । आजकल तुम्हारे चाचा रोज़ ही आते हैं मेरे घर पर । सभी मिलकर हमारे व्याह और रस्मों-रिवाजों की बातों में उलझे रहते हैं । लेकिन मुझे, भला, इन सब बातों से क्या लेना-देना ? दिन हो या रात, मैं तो हर पल तुम्हारे ही सपनों में खोयी-सी रहती हूँ । नदी के तट पर बने सती मां के उस चौतरे पर तुम मेरा हाथ-थामे खड़े हो—इस विचार से

ही मन बाग-बाग हो उठता है। तुमने लिखा कि मेरी आंखें तुम्हें बहुत पसंद हैं। आईने के सामने खड़ी होकर जब मैं आंखों में काजल लगाती हूँ न, तब मेरी अंखियों के झरोखों से भी, सजना, तुम ही तुम नज़र आते हो।

अच्छा देखो, खत लिखने की बारी अब तुम्हारी है। मां को पता चल गया है कि हम दोनों एक-दूसरे को खत लिखते हैं। इसलिए अब से मेरे पते पर ही पत्र भेजियो। वैसे अब तो, सलौने सजना, मैं राह निहारूँ तोरी बारात की।

—तुम्हारी ही शांता का प्रणाम।

०००

प्रिय स्वामीनाथ,

मायके आयी तो हूँ, मगर दिल लगता नहीं। मां की तबीयत खराब होने की खबर न मिलती, तो मैं कभी नहीं आती। लोग शायद मुझे 'वरघेली' कहते..... कहने दो..... हाथ कंगन को आरसी क्या?

आजकल रमा भी इधर ही है, इसलिए बातों-बातों में दिन कट जाता है। मेरी अन्य साथिनें तो ब्याह रचाकर न जाने कहां पहुंच गयी हैं? यही तो है हम औरतों की किस्मत! मेरे विवाह के समय, याद है, मेरी सखियां गाती थीं—'हम तो, बहना, चिड़िया उस देश की, उड़ जायेंगी एक दिन परदेसवा रे...' यहां तो मेरा घर है, फिर भी तुम्हारी माया कैसे भूलूं, भला? वही हमारा घर—अपना घर—ढेर सारी सुविधाएं, नौकर... सच्ची, कहां शहर की

हमारी सुखी दुनिया और कहां इस की धूल-मिट्टी में रेंगती जिन्दगी?

मेरी मां की हालत अब ठीक है। मैंने लिए चाचीजी दो दिन मुझे तुम्हारे ले गयी थीं। मुझे कहने लगीं—'हमने तेरे रूप और गुणों को देखते ही निपकका कर लिया था, वरना किसी विधवा की बेटी का हाथ भला क्यों जाते? हम तो तेरे से खुश हैं, पगलों पर दरअसल मैं मानती हूँ कि मैंने दिल से गौरी-पूजन किया था, उसी कृपा से तुम्हारे जैसा अच्छा वर मैं पा है न?

एक खास बात लिखना चाहती हूँ—जिया शरमाता है। मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती। रांदल माता की से अब मेरी गोद... सम्झ में नहीं कैसे बताऊं? तुम समझ गये न? तब मुझे भेजने के लिए फटाफट लिख समझे?

मुझे अंग्रेजी सिखाने वाली बहनजी को मेरा नमस्कार कहना। जवाब फौरन लिखना। रात को जाकर अपना स्वास्थ्य मत बिगाड़ियो। बिन चैन कहां सांवरिया!

—तुम्हारी प्यारी शांता
अनेक बुर

०००

प्रिय हृदयनाथ,

दिल्ली से लिखा हुआ तुम्हारा खत आज ही मिला। उसे पढ़कर

नवनीत

११०

पागल-सी नाच उठी। तुरंत ही तुम्हें खत लिखने बैठ गयी। बाहर के कमरे से मिस जॉन मुझे देखकर हंस देती है। हंसती रहे, मुझे शरम किस बात की? बड़ा रूम बंद करके बैठते ही सोचने लगी, क्या लिखूं? कुछ भी हो याद नहीं आता।

तुमने मेरे लिए खरीदी हुई चीजों के बारे में लिखा है, लेकिन मेरी दिलचस्पी इन सबमें नहीं, केवल तुममें है। नन्हा-सा मयूर भी 'पप्पा पप्पा' की रट लगाये रहता है।

कल शाम मैं बहुत सारी पुस्तकें खरीद लायी। मिस जॉन ने बहुत डांटा मुझे। क्यों? बताऊं? इसलिए कि वे सभी पुस्तकें गुजराती में लिखी हुई थीं। तुम भी डांटोगे क्या? पढ़ते रहने से मन को अकेला नहीं लगता, इतना ही। फिर भी जो कुछ तुम दे सकते हो वह सब कहां पाऊंगी मैं? पत्र लिखना।

—शांता के स्मरण।

०००

प्रिय अनंत,

कल रात तुम्हारा कॉल था। पर तुम तो जानते ही हो कि शुरू से ही मुझे फोन पर आसानी से बातें करना नहीं आता। तुम मेरे ऊपर शहरीनुमा जिन्दगी की कितनी ही परतें चढ़ाते रहो, मेरे मन ही मन में तो आज भी गांव के हरेभरे खेत लहलहाते हैं। सच बचाऊं? उन्नीसवीं मंजिल पर बने हमारे इस आलीशान फ्लैट के बेडरूम की खिड़की के पास बैठकर मैं तुम्हें यह पत्र लिख रही हूँ। ढलते हुए सूरज की रक्तिम

१९८१

किरणों से समुद्र कितना सुहावना, कितना अद्भुत दिखता है? पलभर लिखने को भूलकर मैं इसी दृश्य में खो जाती हूँ जरूर, फिर भी मेरे मन ही मन में निरंतर बहती रहती है हमारे वही गांव की दूज के चांद-सी नदी, उसके तट पर बना किसी भूली-बिसरी सती मैया का चौरा और उस चौरे के साये में तुम्हारे विशाल बाहुओं से प्रगाढ़ आलिंगन में डूबी हुई मैं।

तुम बिजनेस पर बाहर जाते हो, तब तुम्हें फुरसत ही नहीं होती; और इसी-लिए तुम्हारा कॉल पाते ही मुझे न केवल आश्चर्य बल्कि आनंद भी हुआ। वैसे तो यहां होते हुए भी तुम्हें कहां फुरसत होती है? तुम्हारा ध्यान खींचने के उद्देश्य से ही मैंने अपने कमरे में कुछ फेरफार भी किये थे। याद है, मैंने इसके बारे में तुम्हें पूछा भी था, पर तुम्हें फिर भी कुछ पता ही नहीं चला था।

मयूर की परीक्षा का परिणाम निकल आया है। उसकी पढ़ाई के बारे में अपने मुंह मियां मिट्ठू क्या बनना? बड़ा होशियार और होनहार है—बिल्कुल तुम जैसा। चौथी कक्षा के सभी डिबीजनों में अव्वल आया है मेरा लाल!

मेरी तबीयत ठीक नहीं। डाक्टर के पास नियमित रूप से जाती हूँ। चिंता मत करना। रुक्मिणीबाई के मैटरनिटी होम में आज ही नाम दर्ज कराया है। काम के पीछे ज्यादा दौड़भूप मत करना। डाक्टर की चेतावनी याद है न? कोलेस्टेरल बढ़ाने

१११

हिंदी डाइजेस्ट

वाली चीजें मत खाना । बाहर आना-जाना तुम्हारा अब कम हो जाये तो मुझे अच्छा लगेगा ।

कॉल द्वारा फ्लाइट नम्बर बता देना ।
एयर पोर्ट पर लेने गाड़ी भेज दूंगी ।

—तुम्हारी शांता की याद ।

०००

प्रिय रमा,

काफी लंबे अरसे के बाद तुझे खत लिख पा रही हूं । शायद मेरे अक्षर भी तू न पहचान पाये । अक्षर ही क्यों, बहुत कुछ तब्दीली आ गयी है मुझमें ।

न जाने कितने साल हो गये जब तू बम्बई आयी थी ? मयूर के जन्म के समय, याद है न ? उन दिनों न तो तुझे ज्यादा समय दे पायी थी, न कुछ बातें कर सकी थीं हम दोनों । मैं खुद भी अपने बढ़ते जा रहे वैभव के चंगुल में से मुक्त होकर तेरे घर आज तक भला कहां आ सकी हूं ?

आज तुझे छोड़कर लिखूं भी किसे ? मेरी मां मृत्यु की गोद में हमेशा-हमेशा के लिए सो गयी है ? अपना कहा जाये ऐसा था भी कौन ? अन्त आये थे । दो घंटे बैठकर लौट गये । गांववाले भी सब चले गये । अब आधी रात को अंधेरे घर के फीके प्रकाश में बैठकर तुझे यह पत्र लिख रही हूं । इसी कमरे में इसी स्थान पर कल मां सोयी हुई थी—निश्चेतन । कितनी चैन से गहरी नींद में वह सो रही थी ? मां का जीवन तो तूने भी देखा था । एक छोटे-से गांव की कोई अनपढ़ विधवा

नवनीत

स्त्री ! जिन्दगी से जूझते रहने का खूट बल न जाने कहां से पाया था उसे

आज पहली बार मुझे याद आता है पति के स्वर्ग सिंघार जाने के बाद के किसी कोने में बैठकर आंसू बहा रहने के बजाय, अपनी लाइली बिल्ली को स्वमानपूर्वक पाल-पोसकर मरने के लिए गांव के शिव-मंदिर के कुएं से पूजा का पानी भरने वाली मां उसकी कृश काया में इस तपस्या का किसने सींचा होगा ? कहीं ऐसा तो कि जन्म-जन्मांतर के संस्कारों के बीज अचानक ही धरती का सीता चहुंपुं हुए अपने आप ही निकल आये हों ?

आज मां को जब एक नयी तबियत निहारती हूं, तब मां की मृत्यु का सौ गुना अनुभव कर रही हूं । आज एक मां एवं स्त्री की हैसियत से बहाने को समझ पाने लगी हूं, तब वह मुझे बचाने कर बहुत दूर-सुदूर चली गयी है । प्रियजन को जिस क्षण में हम पति उसी क्षण पर उसे गंवाना भी पड़े तो वेदना का असीम दर्द अंतर-तन में समा जाता है ?

तन्ही-सी श्यामा मेरे पास बैठकर देखती रहती है । न बोल पाती है, न पाती है । पर उसके दिल की हर पल अनुभव कर सकती हूं । जन्म के साथ ही मानो, मेरा हुआ है ।

तू कुशल होगी । तेरे पति को मेरी

से याद और तेरे बच्चों को डेर-सारा प्यार । कभी-कभार अपने व्यस्त जीवन में से फुरसत पाकर एकाध पत्र लिख सको तो मुझे बड़ी खुशी होगी । और अगर बम्बई तक ही आ सको तब तो फिर कहना ही क्या ? —तेरी सखी शांता के स्मरण ।

०००

प्रिय अनंत,

बहुत दिन होने आये तुम्हारी वर्ल्ड टूर को । इस दौरान न तुम्हारा कोई खत आया, न कॉल । तुमने जिस होटल का पता दिया है, उसी पते पर यह पत्र भेज रही हूँ । हो सकता है, तुम्हें न भी मिले ।

तुम्हारे बराबर आग्रह करते रहने के बावजूद मैं तुम्हारे साथ जा नहीं पायी, इस बात से तुम्हें बुरा लगा था, यह मैं अच्छी तरह से जानती हूँ । क्या करती ? श्यामा को छोड़कर अधिक समय तक जाना मेरे लिए नामुमकिन था । उसकी भाषा, जरूरतें और भावनाओं को केवल मैं ही समझ सकती हूँ । उसे साथ ले जाने की बात तुम्हें बिलकुल जंची नहीं थी, यह तुरंत मेरे ध्यान में आ गया । तुम जिस ढंग से उधर रहना चाहते थे, उसमें श्यामा का कोई स्थान नहीं था । तुम शायद नहीं जानते, पर श्यामा बहुत ही सुंदर चित्र बनाती है । उसके स्कूल के शिक्षक को भी श्यामा की प्रगति पर नाज है । डेफ एण्ड डम्ब आर्टिस्टों के चित्रों की प्रदर्शनी कलकत्ता में लगने वाली है । श्यामा द्वारा बनाया गया चित्र भी उसके लिए पसंद कर

लिया गया है ।

तुमने मयूर को पत्र लिखने को कहा है, पर उसने लिखा है या नहीं, मुझे नहीं मालूम । वेटा बिलकुल तुम्हारे नक्शेकदम पर चल रहा है । उसके लिए बुद्धि ही इस जगत का परम एवं अंतिम सत्य है और इसीलिए श्यामा से उसकी बिलकुल पटती नहीं, क्योंकि श्यामा जानती है हृदय की भाषा ।

तुम कब लौट रहे हो ? आसानी से, धाराप्रवाह लिख व बोलकर, बिजनेस पार्टियों में तुम्हारी पत्नी के नाते मैं अपना प्रभाव जमा सकूँ, इसी उद्देश्य से तुमने मुझे बिद्या की राह दिखायी थी । कई वर्षों पहले, याद है न ? मेरे अंग्रेजी के ज्ञान की परीक्षा लेने की दृष्टि से मिस जॉन ने रामकृष्ण परमहंस का जीवन-चरित्र ही अनुवाद के लिए मेरे हाथों में थमा दिया था—शायद अनजाने में ही । दीप से दीप जलता रहता है । उसी एक पुस्तक ने ऐसी अनेक पुस्तकों से परिचय कराया । मिस जॉन ने अनजाने में ही एक बार फिर मेरे जीवन में परिवर्तन लाने में सहायता की । आज ऐसा एकाकीपन सहन करने की जो मुझे शक्ति मिली है, शायद वह इन्हीं की देन है ।

पत्र शायद कुछ ज़्यादा ही लम्बा हो गया न ? पर यहां रहते हुए तो तुम्हें इन सब बातों के लिए फुरसत ही कहाँ मिल पाती है ? तुम कुशल होगे । यहां से तुम्हें खाने-पीने में संयम बरतने को चाहे कितना भी

लिखती रहूँ, पर तुम्हारे लिए इससे कुछ फर्क पड़नेवाला नहीं, यह मैं जानती हूँ। फिर भी . . . —तुम्हारी शांता की याद

०००

प्रिय रमा,

तेरा पत्र पाते ही मन खुशी से झूम उठा। मानती हो क्या? तेरे पत्र को देर तक चूमती रही। इतनी बड़ी उम्र की अपनी मां की ऐसी हरकतें देखकर श्यामा भी हंस पड़ी थी।

तू लिखती है, तेरी बड़ी बेटी की शादी है। मैं जरूर आऊंगी। निमंत्रण पत्रिका की राह देखती नहीं बैठी रहूंगी। तेरे पास आने को जी तरसता ही था। देरी थी सिर्फ योग्य अवसर पाने की, जो अब आ गया। मानो मेरे बेचैन मन को सींचकर तूने ही अपने पास बुला लिया। तूने पूछा है—'मयूर की शादी कब है?'

मैं क्या जानूँ? आश्चर्य में पड़ने की कोई बात नहीं। तू कहेगी, मां होते हुए भी तुझे पता नहीं? लेकिन असलियत यही है। हम दोनों मां-बेटी से अलग एक अजीब-सी दुनिया है, उन दोनों पिता-पुत्र की। उस दुनिया का प्रवेश-द्वार धीमे-धीमे कब बंद हो गया, इस बात का पता भी नहीं चला मुझे।

जवानी के दिनों में तो शरीर ही दोनों को एक-दूसरे से बांधे रखनेवाला प्रबल बंधन रहा। पता नहीं कालांतर में हम एक-दूसरे से अत्यंत सूक्ष्म रूप से आहिस्ता-

आहिस्ता कब दूर हटते गये? वे मोहोत्सव समृद्धि और अग्याशी के नित नये सोने के पर क्रमशः सफलता पाते गये। मेरे श्यामा जो थी। उनकी द्रुत गति से मिलाना मेरे वश की बात न थी।

शायद अच्छा ही हुआ।

मैं अब सब लोगों की दुनिया भी देख सकी, जो ऐसी दौड़ में कभी शांति हो सके थे और जो कुछ भी पाने में सफल रहे थे। ये लोग भी इसी धरती के एक ही अक्षांश-रेखा में हमारे साथ जिनन्दगी बसर करते होंगे—उस सत्य को स्वीकारना बड़ा ही दुष्कर

श्यामा को मैं रोज मूक-बधिर दिल में ले जाती रही। उधर मैंने उनके उन इलाकों के बच्चे देखे, जो निरंतर-तरह के अभावों के बीच ही रह रहे थे। श्यामा आसानी से मुझे नहीं न थी। आज तक उसे मैंने अपने पास साये में जो रखा है। मैंने उसी विश्व में बच्चों को पढ़ाने का दायित्व संभाला। बहुत सारे बच्चे आते थे झुग्गी-झोंपड़े से। झोपड़पट्टी होती क्या है, वह तेरी कल्पना के दायरे से बाहर है।

कल ही अपनी छात्राओं को अश्रम में ले जाकर हमने रक्षाबंधन मनाया। शहर में पटरी पर कई अनाथ असहाय बच्चे यहाँ हैं। इतनी विशाल दुनिया में उनका कहा जाये, ऐसा कोई नहीं। तब ने जब उन अनाथ भाइयों की

नवनीत

११४

पर राखियां बांधीं, तब लड़के सिसकियां भर-भर कर रो पड़े थे। पांच सौ, छह सौ मासूम लड़कों को एक साथ इस तरह खेते हुए देखने की हिम्मत तू कभी कर सकती है, रमा ?

उसी क्षण तिरस्कार और दया उभर आयी समाज के उन लोगों के लिए, जिनका हृदय मूक हो गया हो, जिनकी भावनाएं बधिर बन गयी हों !

श्यामा के मूक-बधिरपन को लेकर अब मेरे दिल में तनिक भी दुःख नहीं। सही अर्थ में मैं उसे मानव बना पायी हूं, यही मेरे लिए काफी है। हमारे वेदों में

वृक्षों को वैष्णव के रूप में बताया गया है, वह भी शायद इसी भाव से प्रेरित हो कर ही। बाहर से कितने रुक्ष, सूखे, खुरदरे और सख्त, पर भीतर से संवेदना का सागर जैसे।

विवाह की तिथि लिखना। मैं आने को बेचैन हूं। यहां मुझे रोकने वाला कोई बंधन भी तो नहीं। हाथ पर उभरने वाली छठी उंगली की तरह मैं हूं तो अनंत के संसार में ही-फिर भी अलग, अकेली। मेरे ही कोये में से आज मैं मुक्त हो गयी हूं।

—तेरी बचपन की सहेली शांता की यादें



मर्यादा

बात सन १७२८ की है। गोदावरी के तट पर बाजीराव बल्लाल पेशवा और निजाम के मध्य भयंकर लड़ाई का दौर चल रहा था। शक्ति और संगठन के बल पर बाजीराव की सेना निजाम की फौज पर भारी पड़ रही थी।

युद्ध के दौरान एक मुस्लिम त्यौहार पड़ गया। निजाम की फौज के पास इकट्ठा की हुई रसद खत्म हो चली थी, उनके भूखे मरने तक की नौबत आ गयी। त्यौहार के मौके पर ऐसी स्थिति को देखकर फौज विद्रोह करने पर उतारू हो गयी। फलस्वरूप, मौके को देखते हुए निजाम ने बाजीराव के पास अपनी दयनीय हालत का ब्यौरा देते हुए फौज के दम तोड़ते सिपाहियों के लिए रसद भेजने को कहलवाया।

मराठाधिपति ने इस विषय पर जब अपने सहायकों से विमर्श किया तो सभी का यही मत था कि खाद्य-सामग्री न भेजी जाये, ताकि शत्रु सेना को इस स्थिति में सरलता से पराजित किया जा सकेगा।

पर बाजीराव को यह रुचिकर न लगा। 'शत्रु को उसकी दयनीय स्थिति का लाभ लेते हुए धोखे से विनष्ट करना हमारी मर्यादा के विपरीत है।' सहायकों से कहते हुए पेशवा ने निजाम की मांग से कई गुना अधिक खाद्य-सामग्री भेजने का आदेश दे दिया।

निजाम मराठा सरदार के इस कृत्य पर समस्त शत्रुता क्षण भर में ही भूख गया और तत्काल ही चल पड़ा उससे मित्रवापूर्ण समझौता करने।

—शिखर बिरांत



प्रतीक कथा

परवर्ती पथ

□ श्रीमां

[श्रीमां द्वारा पंद्रह वर्ष की आयु में लिखी गयी एक कहानी]

रास्ते के किनारे पर लगे हुए विविध-रंगी पुष्प नेत्रों को सुख प्रदान कर रहे थे। ग्रंथिल शाखाओं वाले छोटे वृक्षों पर लाल रंग की बदरियां चमक रही थी। और दूर, देदीप्यमान सूर्य की किरणें परिपक्व धान्य को स्वर्ण की तरह चमका रही थीं।

एक तरुण यात्री, प्रभात की शुद्ध हवा में आनंदपूर्वक श्वास लेता हुआ, तेजी से चला जा रहा है। भविष्य की प्रत्येक चिंता से मुक्त, वह आनंदित लगता है। चलते-चलते वह एक ऐसे चौराहे पर आ जाता है, जहां से असंख्य पथ सब दिशाओं में शाखित होते हैं।

युवक जिधर देखता है, उधर उसे आड़े-तिरछे पद-चिह्न दिखायी देते हैं। आकाश में सूर्य सदा की भांति चमक रहा था, वृक्षों पर पक्षी गा रहे थे, सुंदर दिन के सारे लक्षण मौजूद थे। बिना कुछ सोचे-विचारे, यात्री निकटतम पथ पर चलना आरंभ कर देता है, जो व्यावहारिक भी था। एक क्षण को उसे लगता है कि वह दूसरा पथ भी चुन सकता था; किंतु यदि यह पथ कहीं भी नहीं पहुंचा, तो वह वापस तो आ ही सकता है। इसका समय तो

सदा उसके पास रहेगा ही। एक-दूसरे से कहता प्रतीत हो रहा था, 'जाओ, वापस जाओ, तुम सही मार्ग नहीं जा रहे हो।' परंतु उसे चारों ओर का वातावरण बड़ा आह्लादक और प्रेरक लग रहा था। उसकी समझ में आ रहा था कि वह क्या करे? अंतर्निष्ठ मन से वह चलता रहता है, जो आनंद उसे मिल रहा है, उसका तरह उपयोग करता हुआ। वह बीच में स्वर से कहता है, 'मेरे पास काफ़ी समय है। मैं कुछ देर बाद, सोचूंगा कि क्या करना चाहिये?' उसके चारों ओर उगी जंगली घास उससे कानाफूसी हुई कहती है, 'बाद में, बाद में, बाद में।' कितना सुखकर है सुगंधित हवा में श्वास लेना। उस समीर को आग्नेय किरणें ऊष्ण करती जा रही हैं। 'बाद में.... बाद में' और चलता रहता है।

पथ और अधिक विस्तृत होता जा रहा है। दूर से आती हुई आवाजें उसके कानों में पड़ती हैं, 'कहां जा रहे हो?' 'मूर्ख हो तुम ! नहीं जानते कि तुम बाढ़ी की ओर अग्रसर हो'।

नवनीत

११६

तरुण हो, आओ, हमारे पास आओ ! सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के पास आओ। तुम्हारी अकर्म-त्वता और दुर्बलता तुम्हें पथभ्रष्ट करने का प्रयास कर रही है। वर्तमान में निद्राण मत हो, भविष्य में आओ और जागो।'

यात्री इन अरुचिकर और अवांछनीय आवाजों को उत्तर देता है, 'बाद में बाद में।' उसकी ओर मुस्कराते हुए पुष्पों ने उसके कथन को प्रतिध्वनित करते हुए कहा, 'बाद में।'

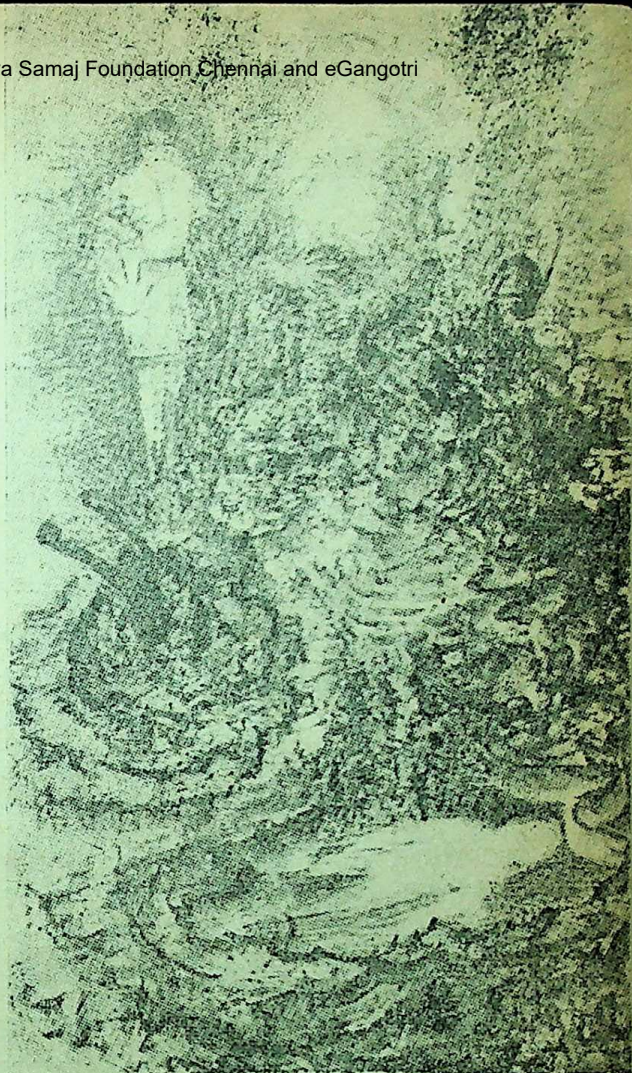
पथ चौड़ा और चौड़ा होता चला जाता है। सूर्य शिरोबिंदु पर पहुंच चुका है; दिन बड़ा मनोहर है। पथ मार्ग बन जाता है।

०००

मार्ग धूलभरा और सफ़ेद है। उसके दोनों ओर भूर्ज के तनु वृक्ष लगे हैं। जलधारा की मृदुल कलकल सुनायी दे रही हैं। वह चारों ओर देखता है, यह जानने के लिए कि इस असीम मार्ग का अंत कहां होगा ? पर व्यर्थ !

एक अजानी-सी अशांति युवक के मन में छाने लगी। वह चिल्लाने लगा, 'मैं कहां हूं ! कहां जा रहा हूं ?'.....

१९८१



चित्र : स्वयं श्रीमां द्वारा अंकित

मगर उससे क्या फ़र्क पड़ता है ? कुछ सोचने या कुछ करने की क्या आवश्यकता है ? इस अंतहीन मार्ग पर चलते रहना ही ठीक है। अजी तो चले जाना ही ठीक है। कल सोचेंगे।'

छोटे वृक्ष अंतर्धान होने लगे; सड़क के दोनों ओर लगे बलूत के वृक्ष दिखायी

११७

हिंदी डाइजेस्ट

देने लगे। दोनों ओर गलियां भी थीं। यात्री को कोई थकावट नहीं अनुभव हो रही थी, वह उन्माद की अवस्था में चलता जा रहा था।

जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता गया, गलियां और अधिक चौड़ी होती गयीं; बलूत के वृक्षों का स्थान देवदारु के वृक्षों ने ले लिया। सूर्य अस्त होने लगा। वह स्तंभित-सा, चारों ओर देख रहा था। उसे तंग घाटी में भ्रमण करती कुछ मानवाकृतियां दिखायी दीं, जो देवदारु के वृक्षों, चट्टानों और भूमि से बाहर निकली जड़ों को पकड़े हुए थे। उनमें से कुछ कुदकर बाहर आने का प्रयास कर रहे थे, पर जैसे ही सिरे पर आते थे, वे अपना सिर घुमाकर सिर के बल नीचे गिर पड़ते थे।

०००

कुछ खोखली आवाजों ने यात्री से कहा— 'यह स्थान छोड़कर भाग जाओ। वापस चौराहे पर चले जाओ। अभी भी समय है।' युवक सुनकर कुछ हिचकिचाया, और फिर बोला, 'आज नहीं कल।' उसने अपने हाथों से अपनी आंखें ढंक लीं, ताकि वह तंग घाटी में नीचे गिरते हुए लोगों को न देख सके। वह तेजी से आगे भागने लगा। दूर निकल जाने की एक अत्यंत सम्मोहक इच्छा उसके मन में बलवती हो उठी। उसने यह सोचना भी बंद कर दिया था कि उसे बाहर जाने का मार्ग मिलेगा या नहीं? उसके पांशे पर शिकन पड़ गयी थी, और वह निराशोन्मत्त

भागा जा रहा था। अंत में जब उसे कि वह इस अभिशप्त स्थान से दूर निकल आया है, उसने अपनी खोलीं। अब उसे देवदारु के वृक्ष नहीं दे रहे थे। चारों ओर धूल-ही और नंगी चट्टानें थीं। सूर्य क्षितिज पर अस्त हो गया था, और रात वाली थी। मार्ग एक अंतहीन मरुभूमि समा कर खो गयी थी। भागदौड़ में निराशोन्मत्त यात्री रुकना चाहता है, रुक नहीं पाता, चलता ही रहता। उसके चारों ओर तबाही और वरस का आलम था। उसे घुटी हुई सुनायी दे रही थीं। चलते-चलते पांव कंकालों से टकराये। दूर, कोहरा विकराल रूप और आकाश रहा था। काली-काली छायाएं दिखायी दे रही थीं... विशाल और बनती-मिटती जा रही थीं। यात्री लक्ष्य की ओर भागा जा रहा है, पर है कि उसकी पहुंच में आने के स्थान उससे निरन्तर दूर होता जा रहा है वह वहशी आवाजों का पीछा करते और ऐसा करते हुए उसे प्रेतों के से निकलकर भागना पड़ रहा था।

अंत में वह अपने को एक अंधेरे, उदास और उजाड़ किले के खड़ा पाता है। कोई भी उसे देखकर 'भुतहा किबा' कहेगा। पर युवक स्थान के उजाड़पन पर कोई ध्यान दिया। किले की धूल-भरी भूमि पर

होकर, वह कंप दीवारों पड़ रहा की ओर वह अपना को भूल आया, उ दीवार उसके च था, वह परकोटे अंतर्धान और फैल

उल्लू के सिर करते हुए खड़ा था। उस हिल नहीं और कि उस घृणा न अगाध, आत्महत्या भूत भी प्रेत उसे गहरे ग युवक को छुड़

१९८१

होकर, इस भयानक किले को देखकर भी वह कांप नहीं रहा था। किले की काली दीवारों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था। उसका ध्यान अपने लक्ष्य की ओर ही था। उसका ध्यान करते-करते वह अपनी थकावट और निराशा दोनों को भूल गया। जैसे ही वह किले के निकट आया, उसकी एक दीवार से वह टकराया। दीवार तुरन्त ढहकर गिर गयी। तभी उसके चारों ओर जो कुछ दिखायी दे रहा था, वह चरमराकर गिरने लगा। दीवारें, परकोटे और मीनारें देखते-ही-देखते अंतर्धान हो गयीं। उनकी धूल चारों ओर फैली धूल में समा गयी।

०००

उल्लू, चमगादड़ और कौवे बेचारे यात्री के सिर के ऊपर मंडराते और चीत्कार करते हुए, इधर-उधर उड़ रहे थे। यात्री खड़ा था, स्तब्ध, अवनत और अभिभूत सा। उसके पांव जड़ हो गये थे, और वह हिल नहीं सकता था।

और तभी वह यह देखकर दहल गया कि उसके सामने निराशा, विध्वंस और घृणा नाम के दैत्य प्रकट हुए, और एक अगाध, गहरे गर्त के ऊपर मंडराते हुए आत्महत्या, मनहूसियत और पीलेपन के भूत भी उसे दिखायी पड़े। ये सब अशुभ प्रेत उसे घेरकर और पकड़कर अगाध गहरे गर्त की ओर ले जाने लगे। बेचारा युवक इन अप्रतिरोधन शक्तियों से अपने को छुड़ाकर भागने का प्रयास करने लगा,

किंतु उनकी अदृश्य बांहें उसे ग्रथित और आलिंगनबद्ध किये रहीं। अब बहुत देर हो चुकी थी, वह हत्यारे गर्त की ओर सम्मोहित-सा, खिचा हुआ जाने लगा। वह चिल्लाने लगा, परंतु किसी ने उसकी चीखों का कोई जवाब नहीं दिया। उसने प्रेतों को कसकर पकड़ लिया और जैसे ही उसने ऐसा किया, उसे लगा उसके पांवों तले की ज़मीन उसके नीचे से खिसक रही है। उसकी प्रार्थनाओं का किसी पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। प्रेतों का विकराल अहसास उसके कानों में गूंजता रहा।

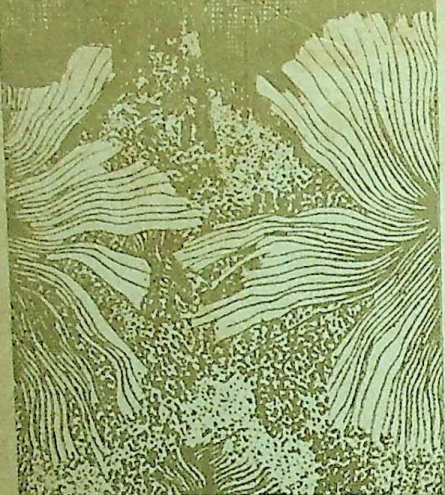
यात्री अब गर्त के सिरे पर आ पहुंचा था। स्वयं को बचाने के उसके सब प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए। फिर भी, उसका कड़ा प्रयास जारी रहा। और उसने पाया, वह गिर पड़ा है..... अपने पलंग से।

एक तरुण छात्र को एक लंबा निबंध लिखकर, अगले दिन देना था। दिनभर की थकान के बाद घर लौटने पर उसने अपने आपसे कहा, 'मैं बाद में कार्य करूंगा।' इसके तुरन्त बाद, उसने सोचा, कि आज जल्दी सोकर, वह अगले दिन सुबह जल्दी उठेगा और फिर अपना निबंध पूरा कर लेगा। उसने स्वयं से कहा, 'मुझे अब सो जाना चाहिये। कल सुबह उठकर मैं बेहतर लिख सकूंगा।'।

किंतु सोने के बाद उसे जो दुःस्वप्न दिखायी दिये, उनका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं।

जब ये दुःस्वप्न समाप्त हो गये, तो

हिंदी डाइजेस्ट



पर उल्लसित होकर वह काम करने बैठ गया। उसने शपथ खायी कि जो काम वह आज कर सकता है, उसे वह अपने कल पर नहीं दालेगा।

०००

इस प्रतीक कथा पर मां के शिष्य टिप्पणी :

इस रचना की कल्पना जितनी मौलिक और विचक्षण है, उसे उतनी ही प्रबलता से शब्दों में रूपांतरित किया गया है। वर्णन बड़े सुंदर ढंग से किया गया है, जो रूपक को आतंक की पराकाष्ठा पहुंचाने के लिए, एक सिलसिला कौशल से अपनाया गया है। शैली सरल रणतः उत्तम है।

कुल मिलाकर, यह एक असामान्य रचना है, जिसे 'अत्युत्तम' तो कहा जायेगा, उसके लिए लेखिका बधाई पात्र भी है।



वह सुंदर पंखोंवाला एक अवकाश के विराट समुद्र में प्रवेश कर गया है, वह समूचे विश्व को चहुं ओर दृष्टि डालकर देखता है। सरल हृदय से मैंने उसे समीप से देखा है। उसकी मां उसे चूमती है और वह अपनी मां को चूमता है।

उस सुन्दर पंखोंवाले एकमेव की अनेक प्रज्ञ कवियों ने अनेक रूपों में कल्पना है और अनेक शब्दों में उसे गाया है।

यह पक्षी नाना रंगों से शिशुओं को प्रेरित करता है। ऐश्वर्य के विमान में वह प्रकाश का निर्झर है। सूर्य और पानियों के मिलन पर ऋषिगण उसे अपने ऋचा-गान से शिशु तख्क सहलाते हैं।

अनेक प्रियजनों की अनेक आवाजें उस पक्षी को पुकार रही थीं, जो स्वर्गों की ओर उड़ गया था। स्तुति करने योग्य उस शिशु को उस सुवर्ण-रंगी पंखी को जो पृथ्वी पर के [कृते] जा) च है, उस शिशु को ऋचाएं चूमती हैं।





हास्य-लेख

चंदा-चयन चातुरी

□ बरसानेलाल चतुर्वेदी

चंद्रमा सभी ने सुंदर माना है। कवियों ने इसका दिल भरकर उपयोग किया है। चंद्रमा व्यापारी होता तो अपने इस्तेमाल की एवज में प्रत्येक कवि से फीस वसूल करता। चंद्रमा में शायद वणिक-बुद्धि नहीं है। चंद्रमा घिसते-घिसते चंदा हो गये। पिया के देश भेजे जाने का काम इनसे लिया जाने लगा। (चंदा देस पिया के जा) चंदालाल 'मैसेंजर' का कार्य करने

लगे। चंदा पर रंदा चला। किसी काम के लिए किसी से धन लेने को भी चंदा लेना कहा जाने लगा। चंदा बहुत ही लोकप्रिय हो गये। 'चंद्रमा' पिछड़ गये। शुरू में अनाथालय चलाने के लिए चंदा वसूली का कार्य शुरू किया गया। खोज करने वाले दिमाग शुरू से ही रहे हैं। एक साहब के आठ लड़के-लड़कियां थीं। उस समय नसबंदी का प्रचलन इतना अधिक

१९८१

१२१

हिंदी डाइजेस्ट

नहीं हुआ था। पांच बच्चे उसके भाई के थे। भाई दुकान करता था। ये यहां शाम-सुबह बच्चों को लेकर निकल पड़ते। 'गरीबों की मदद कीजै, भला होगा, भला होगा', चंदा का काम चल निकला। अनाथालय का भवन बन गया। अनाथ तो घर के ही थे। निवासस्थान उसमें ही हो गया। छोटे भाई ने भी दुकान बंद कर दी। वो भी चंदा का कार्य करने लगा। कुछ समय बाद वो भी लखपती बन गया।

धीरे-धीरे स्कूल बनवाने के लिए चंदा-चयन प्रारंभ हुआ। धर्मशाला बनवाने से चंदा-चयन का कार्य प्रारंभ हुआ। भवन बनवाने के कार्य का प्रबंध करने वाले का निजी भवन भी साथ में बनने लगा। चंदा-चयन का कार्य सुव्यवस्थित ढंग से चलने लगा। बड़े लोगों की बड़ी बातें होती हैं। महापुरुषों के स्वर्ग जाने पर उनके स्मारक के लिए चंदा-चयन होने लगा। सैकड़ों-हजारों-लाखों-करोड़ों तक इसकी राशियां फैलने लगीं। उर्वर मस्तिष्क चंदा-चयन के लिए हवाई योजनाएं बनाने लगे। पीड़ित साहित्यकारों के लिए भी चंदा-चयन होने लगा। जिन पीड़ितों के लिए अपील निकाली गयी, वे वक्तव्य देने लगे कि उन्हें रुपये की आवश्यकता नहीं है, उनके लिए चंदा जमा न किया जाये। सच बात ये थी कि उनके लिए चंदा जमा भी नहीं किया जा रहा था। भारत स्वतंत्र हुआ। चंदा-चयन के अभ्यास भी बदले। क्षेत्र विस्तृत हुआ। चुनाव के लिए चंदा-

चयन कला की परिधियां आकाश में लगीं।

एक पार्टी के कार्यकर्ता ट्रेन में उनके बैग में लगभग ५ लाख रुपया प्रत्येक प्रत्याशी को एक निश्चित देनी थी। मैंने उनसे कहा, 'स्टेशन डकैती की रिपोर्ट लिखा दें। मैं गवाह दूंगा। कुछ रकम मुझे दे दो, बाकी डकार जाओ।' पहले खुश हुए पर काले हिम्मत नहीं हुई। अपना काम तो देना था। बाद में पता चला जिन-जिन रुपया दिया गया, वे ही डकार गये। मात्र का खर्च किया, बाकी का अच्छे कागज पर अच्छी तरह लिख दे दिया। चंदा तो गोल है ही, उसे गोले देने में संकोच होना भी नहीं चाहिए।

चंदा मांगना भी एक कला है। नीति के क्षेत्र के अतिरिक्त साहित्य तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में भी इस का आचार्य मिल जाते हैं। दूसरे की रुपया निकालने वाले को 'पाकेटमार' कहा जाता है। उसे पुलिस पकड़ लेती है। भी दूसरे की जेब से ही निकाला जाता है। किंतु इसे निकालने वाले को अधिक के साथ-साथ प्रतिष्ठित पद पर विराजित किया जाता है। चंदा लाने के लिए 'रकम' होना आवश्यक है। इससे दाम, दंड तथा भेद का प्रयोग करता है। कहीं विनम्रतापूर्वक चंदा प्राप्त होता है। कहीं धमकी और बाजपा भी चंदा प्राप्त किया जाता है। इसे

नहीं माना जाता। नीति में कहा गया है: जब सीधी उंगली से घी नहीं निकलता तो टेढ़ी से निकाला जाता है।

चंदा-चयन-कला ने धीरे-धीरे व्यवसाय का रूप ले लिया। कुछ भाई-बहन लघु-उद्योग के रूप में इसे अपना लेते हैं। इस उद्योग को शुरू करने के लिए अधिक पूंजी की आवश्यकता नहीं पड़ती। रसीद कहीं छपवा लीजिये तथा कार्य प्रारंभ कीजिये। सूखा कहीं पर पड़ रहा हो, आप दिल्ली में चंदा इकट्ठा कीजिये। इसके लिए आपको कहीं अर्जी देने की आवश्यकता नहीं है। अकबर इलाहाबादी कह गये हैं:

देखता है एक उम्र से बंदा,
होता है कुछ काम न धंधा
बस यही बातें और यही फंदा
लाओ चंदा, लाओ चंदा।

चंदा लेने की कोई ऋतु विशेष नहीं होती। चाय पीने का कोई खास समय नहीं होता। चाय कभी भी पी जा सकती है। चंदा किसी भी समय इकट्ठा किया जा सकता है। बेकार व्यक्ति के लिए तो ये ईश्वरीय वरदान है। 'हरद लगे न फिटकरी रंग चोखा आवे।' मेरा एक तुक्तक है—रागू को जब नहीं मिला कोई धंधा छपाकर रसीद वह उगाहने लगा चंदा

आया धन खूब
निखर आया रूप
छों पर ताव देकर रहने लगा बंदा।

कई वर्ष हुए। एक कवि-बंधु ने एक

अभूतपूर्व पत्रिका निकालने की एक दीर्घ योजना बनायी। हजारों की संख्या में अग्रिम सदस्य बनाये। आज तक न उन्हें अच्छा प्रेस मिला और न कागज, जिस पर पत्रिका निकल सकती।

चंदा-चयन के इतिहास में एक क्रांतिकारी नेता के जीवन में ही लाखों रुपये का अमृत-तुल्य कोष इकट्ठा हुआ। उसके हिसाब के बारे में अनेक शोधार्थी अहर्निश लगे हुए हैं, किंतु किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पा रहे। केवल इतना पता चला है कि उसके प्रबंध के लिए अभी पूरा ट्रस्ट ही नहीं बन पाया। उस कोष से संबंधित एक व्यक्ति कोष के खर्चों से विदेशों का चक्कर लगा आये। वे विदेशों में ऐसे कोषों के प्रबंध के लिए ट्रस्ट किस प्रकार बनाये जाते हैं, इसका पता लगाने गये थे।

चंदा-चयन करने की कला में परिपक्वता मिल जाने पर चंदा हजम करने की योग्यता प्राप्त की जाती है। इसके लिए गंभीरता बहुत आवश्यक है। सदैव चिंतित नज़र आइये, ताकि जिससे आपने चंदा मांगा है वह ग्रह पूछ ही न सके कि उसका क्या हुआ? थोड़ा साहस भी होना चाहिये। जेल जाने में किसी प्रकार का मानापमान का ध्यान नहीं रखना चाहिये।

क्या ही अच्छा हो कि कोई आयुर्वेदाचार्य वैद्यराज चंदा-हजम-चूर्ण बनायें, जिसके फांकने से कितनी भी रकम का चंदा हो, तुरंत पच जाये!

—एच ४, निशात कालौनी, ७४ बंगला, भोपाल, म.प्र.

प्रार्थना



हममें भी सूर्य और चंद्र और पृथिवी हैं !

सूर्यः महत् शक्ति का तेज पिण्ड

और चाँदः

वैयक्तिक व्यक्तित्व का केवल प्रतिमान

कितु यह पृथिवी : सूर्य और चंद्र के बीच
का कोई व्यवधान ।

सूर्य की प्रतिभा

चंद्र की धरोहर है—

और यह व्यक्तित्व नित दिन

फैल जाता ...

पृथिवी-छल बराबर टूट जाता

पूर्णिमा का चाँद

खिल जाता गगन में ।

वारींद्र कुमार वर्मा

धरा के सरोवर में खिलें लाखों कमल

और पृथिवी-छल न हमको बाँध पाये

पूर्णिमा के चाँद का व्यक्तित्व न फिर से
टूट पाये

प्रभु ! यही मैं माँगता हूँ ।

हर कमल शतदल बने

कमल-दल संभावनाओं के खिलें

प्रभु ! यही मैं माँगता हूँ !

प्रभु ! यही मैं माँगता हूँ !!

—११, हार्जिसिंग बोर्ड कालोनी, नई
आवादी, मंदसौर (म. प्र.)



एम. अनन्तनारायणन् कृत 'द सिल्वर पिलग्रिमेज' का
हरिमोहन शर्मा द्वारा सरल-संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर

रजत तीर्थयात्रा

होना बीमार श्रीलंका के राजकुमार जयसूर्य का

बहुत दिन हुए, श्रीलंका में सिंह नाम का एक राजा राज्य करता था। अन्य राजाओं की भांति, वह भी औसत दर्जे की बुद्धि का आदमी था। जादू-टोने, गंडा-ताबीज, और ज्योतिष आदि में उसकी अगाध श्रद्धा थी। यूँ वह काफ़ी जुल्मी स्वभाव का था, पर प्रजा पर उसने न कभी कोई अत्याचार किया, न अत्यधिक कर लगाये। दुखी और निर्धन लोगों की मदद करने को वह सदा तत्पर रहता था। उसका निजी जीवन भी काफ़ी दोषरहित था। अन्य राजाओं की भांति, उसका भी हरम था, मगर कोई पटरानी न थी।

सिंह ने अपनी सब पुत्रियों के विवाह अपने मंत्रियों और सरदारों के बेटों से किये थे। इस तरह, उसे धनी और अच्छे कुल के दामाद भी मिल गये थे, और सारे मंत्रियों और सरदारों की निष्ठा भी उसने जीत ली थी।

उसका एक ही पुत्र था—जयसूर्य, जो उसका उत्तराधिकारी था। देखने में आकर्षक, और बलशाली जयसूर्य सुशिक्षित, बुद्धिमान और कलाप्रेमी था। राज्य की अनेक कुमारिकाएँ उसे अपना दिल दे बैठी थीं, और कमल-पत्रों में प्रेम-पत्र लिखकर उसके पास भिजवाया करती थीं। कई ने राजकुमार का दिल जीतने के लिए जादूगरों का सहारा भी लिया

था। मगर ये जादूगर राजकुमार को किसी भी सुंदरी से स्थायी रूप से प्रेम-संबंध स्थापित कराने में असफल रहे थे। जयसूर्य जितनी उत्कटता से किसी सुंदरी की ओर आकर्षित होता था, प्रेम कल्पों के बाद, उतनी ही उत्कटता से उसके प्रति तटस्थ और उदासीन भी हो जाता था। यह उसके पिता राजा सिंह के लिए चिंता का विषय था, कारण, यद्यपि उसने अपने किसी भी रानी को पटरानी नहीं बनाया था, तथापि सब रानियों को समान रूप से चाहता था। जब उसकी एक युवती रानी चेचक से सहसा चल बसी, तो वह खूब रोया था। पर, जयसूर्य कतई भावुक नहीं था। जब वह पहली बार एक सुन्दर और सुंदर पुत्री का पिता बना, तो उसने अपनी बेटी को न प्यार किया, न गोद लिया। पुत्री बड़ी होकर भी पिता से स्नेह की गरमाहट से वंचित रही।

जिस आदमी के साथ जयसूर्य सबसे अधिक समय व्यतीत होता था वह था उसका एकमात्र मित्र तिलक, राजकुमार की आयु का होने पर उससे कहीं अधिक चतुर, बुद्धिमान और व्यावहारिक था। वही अकेला व्यक्ति था, जिसे देखकर जयसूर्य के होठों मुस्कराहट खेल जाती थी, और मन को हँसता था।

उस समय न कोई फ्रायड को जानता था, न मनो-विश्लेषण को। जन्मजात मनो-विश्लेषक था, और

से राजकुमार का मित्र बना था, खुद अपनी मर्जी से और राजा सिंह के आदेशानुसार राजकुमार का मनोविश्लेषण करता आ रहा था। वह यह जानने का इच्छुक था कि जयसूर्य जैसा स्वस्थ, प्रसन्नचित्त वैदिक युवक अपने प्रेम-संबंधों में इतना ढंग क्यों है? तिलक जानता था कि राजकुमार सबसे अधिक उसे ही चाहता है, मगर वह यह भी जानता था कि वह उससे भी ज्यादा खुद अपने को चाहता है, और जरूरत पड़ने पर आत्म-प्रेम की बेटी पर उसकी बलि करने में तनिक भी नहीं हिचकेगा। उसके इस 'दोष' को छोड़कर, तिलक उसकी कोई और आलोचना नहीं कर सकता था। अपने सभी कर्तव्यों का पालन वह बखूबी करता था, मगर एक सहृदय मानव की भांति नहीं, एक सुचालित, सु-शिक्षित और सु-व्यवस्थित यंत्र की भांति। तिलक की पैनी दृष्टि यह भांप चुकी थी कि राजकुमार की सारी जीवनचर्या ही यांत्रिक और नीस है।

और तभी एक ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना घटी, जिसने उसके इस विश्वास को और मजबूत कर दिया।

०००

राजकुमार के अंतःपुर में जितनी रानियां थीं, यशोधरा नाम की रानी उन सबमें अधिक सुंदर, प्रेमल और चतुर थी। राजा सिंह उसे अपनी बेटी के समान प्यार करते थे। राजकुमार भी

उसके प्रति इतने सदाय तो थे ही कि उसे अपनी सबसे प्रिय रानी मानते थे।

अचानक यशोधरा घातक रक्तक्षीणता रोग से ग्रस्त हो गयी, और शाही चिकित्सकों के इलाज और स्वयं राजा सिंह की देखभाल और सतत प्रार्थनाओं के बावजूद चल बसी। राजा सिंह ने उसके मन-बहलाव के लिए भारत और चीन से जो वीणाएं, सचित्र पांडुलिपियां और पक्षी मंगाये थे, वे सब रखे-के-रखे रह गये। सुंदरी यशोधरा जितने सादे ढंग से रहती थी, उतने ही सादे ढंग से मरी भी। मरते समय, उसके होठों पर सबके लिए क्षमा-प्रार्थना थी।

उसकी मृत्यु के बाद, राजकुमार कुछ दिनों तक तो उदास रहे, मगर राजमहल में यशोधरा के निधन का शोक मनाया जा रहा था, तब राजकुमार अपने मित्र तिलक के साथ हंस-खेल रहे थे, और उनके अट्टहास राजा सिंह को भी मुनायी दिये। क्रोध से राजा की आंखें लाल हो गयीं और होठ फड़फड़ाने लगे।

राजा के क्रोध को देखकर राजकुमार और तिलक के बीच इस प्रकार बातचीत शुरू हुई :

राजकुमार : मुझे आश्चर्य होता है, अपने नारकीय पिता पर। मैं कब तक उस लड़की के लिए शोक मनाता रहूंगा? उसकी मिट्टी ठंडी हुई, मगर मैं तो जिंदा हूं।

तिलक : तुम भूल कर रहे हो, राजकुमार ! सिर्फ इतना ही काफी नहीं है

तीर्थयात्राओं के विषय में लिखी गयी एक तमिल पुस्तक में तीर्थयात्राओं के ती प्रकार बताये गये हैं—स्वर्ण, रजत तथा सीसा। स्वर्ण तीर्थयात्रा में तीर्थयात्री शिव के आवास-स्थान, कैलास पर्वत की यात्रा करता है। रजत तीर्थयात्रा में तीर्थयात्री पैदल काशी की यात्रा करता है। तिरुपति, अरुणाचल स्थित ज्योतिर्लिंग की यात्रा तीर्थयात्रा से हीन मानी गयी है।

एम. अनंतनारायणन् कृत 'रजत तीर्थयात्रा' श्रीलंका के राजकुमार जयसूय सोलहवीं सदी में की गयी काशीयात्रा का एक आधुनिक उपन्यासकार द्वारा मध्ययुगीन विधि में किया गया एक ऐसा मोहक वर्णन है, जो अंशतः लोक-कथा है, अंशतः नाटक और अंशतः दार्शनिक प्रवचन।

इस उपन्यास के जादुई उड़न-खटोले पर सवार होकर, आप अनायास ही की एक ऐसी अलौकिक दुनिया में पहुँच जायेंगे, जहाँ धर्म जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप पर व्याप्त था, और जहाँ प्रत्येक घटना एक प्रतीक बनकर सामने आती थी।

कि तुम इस विषय में क्या सोचते हो। तुम्हें दूसरों की भावनाओं का भी खयाल रखना होगा। उनकी खातिर तुम्हें कुछ समय तक शोक मनाने का अभिनय करना ही होगा। इसके अलावा, यह भी मत भूलो कि रानी यशोधरा तुम्हें बेहद चाहती थीं।

राजकुमार : पवन-पुत्र हनुमान की सौमंघ, शिकायत सबको मुझसे नहीं, मुझको सबसे होनी चाहिये। आप सब मेरे प्रति घोर अन्याय कर रहे हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि यशोधरा मुझे बेहद चाहती थी, पर आप सबको अभी यह स्वीकार करना होगा कि जब तक वह जीवित रही, मैंने भी उसे बेहद प्यार किया। और उसकी मृत्यु के बाद भी, जब तक मेरा मन उदास रहा, मैं उदास रहा और दिखायी दिया। जहाँ तक शोक

मनाने के अभिनय का प्रश्न है, मुझे सिखा दिया गया है कि इस प्रकार का अभिनय अपने को तथा दूसरों को धोखा देने के लिए किसी भी राजकुमार को शोभा नहीं देता।

तिलक : मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहता, मित्र ! उससे कोई लाभ नहीं दिखायी नहीं देता। मगर, अपने माता-पिता और अपनी दूसरी रानियों की भावना तो खयाल कीजिये। वे सब अभी तक शोक मना रहे हैं।

राजकुमार : मेरे जराग्रस्त पिता की भावनाओं की बात तुम ना ही करो। मैंने वेहतर होगा, मित्र। मैंने आपका 'कामसूत्र' पढ़ा है, और दावे के बिना कह सकता हूँ कि अपनी मृत पुत्रवधू के शोक से इस भावना के पीछे विशुद्ध कामुकता और कुछ नहीं।

तिलक : तुम्हारी बातें सहन के बाहर होती जा रही हैं, मित्र ! मैं गंभीरतापूर्वक यह मानने को विवश हो गया हूँ कि तुम्हारे अंदर कोई-न-कोई खराबी अवश्य है। तुम्हें किसी योग्य चिकित्सक से अपना इलाज कराना चाहिये।

राजकुमार : मुझे इसमें कोई एतराज नहीं है, प्यारे मित्र ! चिकित्सक महोदय से वस इतना कह देना कि दवा जरा जल्दी बनायें, और स्वर्णपात्र में पेश करें।

इस बातचीत का व्यौरा जैसे ही राजा सिंह को प्राप्त हुआ, उसने फौरन अपने सबसे अनुभवी और सबसे योग्य चिकित्सक को परामर्श के लिए बुलाया। उसे पहले ही चेतावनी दे दी गयी कि यदि किसी तीसरे व्यक्ति को इस इलाज के बारे में पता चला, तो उसका सिर कलम कर दिया जायेगा। यह चेतावनी देते समय, राजा को यह पता न था कि महल में सबकी जुबान पर यही चर्चा है।

वैद्यराज काफ़ी देर तक 'हूँ, हाँ' करते हुए, चुपचाप इस मसले पर गौर करते रहे। ऐसे अजीब मसले से उनका साबका पहली बार पड़ा था। सब कुछ सुनकर, निजी तौर पर वे इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि राजकुमार आदमी नहीं, शैतान है। पर यह राय वह जबान पर कैसे ला सकते थे। उन्होंने कहा, 'महाराज ! मैं आज ही आदिवैद्य धन्वंतरि की पूजा कर देता हूँ और फिर एक शुभ क्षण में राजकुमार की नाड़ी-परीक्षा

करके, उचित इलाज तजवीज़ करूँगा।'।

शुभ मुहूर्त पर वैद्यराज, राजा, तिलक तथा दो मंत्रियों के साथ, राजकुमार का मुआयना करने राजमहल में पधारे।

इस समय तक सारे राजमहल में यह अफ़वाह फैल चुकी थी कि राजकुमार ऊपर से भले ही भले-चंगे और हंसमुख दिखायी दें, अमल में गंभीर रूप से बीमार हैं।

०००

वैद्यराज जब पालकी से उतरे तो नाद-स्वर और मृदंग-वादन नक गया। उनके छह सहायक, जो चंदन के बक्सों में वैद्यक-ग्रंथ लेकर उनकी पालकी के पीछे-पीछे आ रहे थे, चुपचाप एक लाइन में खड़े हो गये। राजकुमार की शैया तक पहुँचते-पहुँचते वैद्यराज ने हर तीन कदम के बाद, झुक-झुककर सबका अभिवादन किया।

राजकुमार एक रेशमी चादर ओढ़ि पलंग पर लेटे थे। वैद्यराज ने चादर के ऊपर से उनकी नाड़ी को छुआ और कई मिनट तक, आंखें बंद किये, कुछ सोचते रहे। राजकुमार शांत बना इस तमाशे को देख रहा था।

अंत में राजकुमार के शयन-कक्ष में छा गयी निस्तब्धता को भंग करते हुए, गुरु गंभीर वाणी और वैद्यकीय भाषा में रोग का निदान बताकर यह इलाज तजवीज़ किया, 'राजकुमार को मोती की भरम शहद में मिलाकर दिन में एक बार दी जाये तथा एक सप्ताह तक स्नान

से पूर्व उनकी छाती पर चंदन के तेल की मालिश की जाये। इस अवधि में उन्हें मांस से परहेज करना होगा, किन्तु सीमित मात्रा में मदिरा-पान कर सकते हैं।

यह इलाज एक महीने तक चला। मोती की भस्म मन्त्रार की खाड़ी से मंगायी गयीं। एक महीने के इलाज के बाद, राजकुमार पहले से भी अधिक स्वस्थ और चंगे नज़र आने लगे। मगर उनकी विचारधारा में तनिक भी अंतर नहीं आया। वे पहले की भांति कठोर, निर्दय और निर्विकार बने रहे।

इलाज नाकामयाब रहा, तो राजा सिंह ने वैद्यराज की फ़ीस देने से साफ़ इन्कार कर दिया। अपनी फ़ीस के लिए वैद्यराज को आमरण अनशन की धमकी देनी पड़ी। अंत में, रानियों के हस्तक्षेप से राजा ने उनकी फ़ीस दी, मगर 'सज़ा' के तौर पर कुछ स्वर्ण-मुद्राएं कम दीं।

इस कांड के कुछ दिन बाद, राजकुमार जयसूर्य सचमुच बीमार पड़ गये। वे ज़िंदगी में पहली बार बीमार पड़े थे। वे अकेले शिकार करने गये थे कि सहसा तेज़ वर्षा होने लगी। भीगते-भागते जब वे राजमहल पहुंचे, तो सर्दी से कांप रहे थे। जुकाम अलग।

उन्हें सरसों के तेल की मालिश कराने के बाद, गरम पानी से स्नान कराया गया। लेकिन कोई लाभ न हुआ। उल्टे मर्ज़ और बढ़ गया। कुछ दिनों में ऐसी हालत हो गयी कि सबको डर लगने लगा

कि बचेंगे भी या नहीं? उसकी मरने अधिक तीमारदारी तिलक ने की, मगर वह भी निराश हो चला था।

चूँकि वैद्यों पर से राजा का विश्वास उठ गया था, इसलिए राजकुमार को घरेलू इलाज ही हुआ। और यह घरेलू इलाज उनको रास आया, और वे न के मुंह में आकर भी बच गये, और भी भले-चंगे भी हो गये।

स्वस्थ होने के बाद, राजकुमार एक उल्लेखनीय परिवर्तन दिखायी पड़ा। वे अब आत्म-विश्लेषी हो गये थे, वे धर्म-ग्रंथों के पठन-पाठन में उनकी रुचि बढ़ गयी थी। राजा सिंह द्वारा भेंट दी गयी गीता की एक प्रति का पाठ नियमित रूप से करने लगे थे।

लेकिन शीघ्र ही गीता तथा धर्म-ग्रंथों से उन्हें अरुचि हो गयी। वे लक्ष्मी और उनका समर्थन करने वाले पंडितों का मज़ाक उड़ाने लगे। इस कार्य में तिलक का सहयोग भी मिलता था। वास्तव में, बीमारी की वजह से उनके जीवन से राजकुमार को अंदर-हीन दहशत होने लगी थी, मगर ऊपर उन्हें इसका पता न था।

[२]

राजा सिंह का अगस्त्य ऋषि से परामर्श राजकुमार जयसूर्य उथल-पुथल के दौर से गुज़र रहे थे कि राजमहल में एक और संकट खड़ा हो गया—न जाने से आयी एक नर्तकी के रूप में।

नाचने का अन्दाज बड़ा मतवाला था।
 झीने और न्यूनातिन्यून वस्त्रों में जब
 राजकुमार ने पहली बार इस श्यामा,
 तन्वी नवयुवती को अलहङ्गता से नृत्य
 कर्त देखा, तो उसे सीधे अपने अन्तःपुर
 में ले आये। यह जिप्सी न तो उनकी
 अन्य रानियों के समान पढ़ी-लिखी थी,
 न उनके समान गोरी, पर उसके स्वाद
 में और दूसरी रानियों के स्वाद में वही
 अन्तर था, जो एक पहाड़ी झरने के जल
 और घर के कुएं के जल में होता है।

उससे बाकायदा विवाह करना राज-
 कुमार के लिए असम्भव था। साथ ही
 श्रीलंका के राजमहल के अलिखित नियमों
 के अनुसार, राजकुमार अपने अन्तःपुर में
 किसी प्रेमिका को भी नहीं रख सकते
 थे। राजा सिंह ने अपने नादान बेटे को
 बहुत समझाया कि उसे अन्तःपुर से निकाल-
 कर कहीं और रखो और फिर जितना
 प्रेम करना चाहो करो। मगर, राजकुमार
 ने श्यामा जिप्सी को अपने अन्तःपुर से
 नहीं निकाला, तो नहीं ही निकाला।

राजा सिंह जानते थे कि पुराणों में
 ऐसे अनेक राजाओं का वर्णन है, जिन्होंने
 निम्न जाति की युवतियों से विवाह किया
 था, और वे जोर दें, तो अपने दरबारियों
 से इस विवाह को वैधानिक मान्यता
 दिला सकते हैं। मगर अधिकांश दरबारी
 खुद उनके दामाद थे, और उनके तैवर
 देखकर राजा की हिम्मत नहीं होती थी
 में। कि इस प्रश्न को उठाया भी जाये। वे

दुविधा में ही रहे, और किसी निश्चय
 पर नहीं पहुंच पाये।

अपने जासूसों से उन्हें यह खबर
 मित्रने लगी कि राजकुमार की लोक-
 प्रियता श्रीलंका में दिनोदिन कम होती
 जा रही है। प्रजा को उनसे बहुत शिकायतें
 हैं। शिकायतें स्वयं उन्हें अपने पुत्र से
 कम नहीं थीं, और वे स्वयं भी उसके
 व्यवहार से आज्ञिज हो चले थे। पर
 क्या करते, आखिर तो पिता थे और
 जयसूर्य उनकी इकलौती संतान था।

क्या करें, क्या न करें, इस उधेड़-बुन
 में से गुज़रते-गुज़रते राजा को रावण
 पर्वत पर तपस्या करने वाले अगस्त्य
 ऋषि का स्मरण हुआ। वे कन्दमूल खाकर
 रहते थे और किसी से कोई अपेक्षा नहीं
 रखते थे। वे देखने में ७० वर्ष के लगते
 थे, मगर उनकी वास्तविक आयु ३००
 वर्ष बतायी जाती थी।

एक दिन राजा ने तिलक को अपने
 साथ लिया, और उस गुफा में पहुंचा
 जिसमें अगस्त्य ऋषि रहते थे। उन्हें
 फलफूल अर्पण कर राजा ने तिलक के
 माध्यम से अपने आने का अभिप्राय व्यक्त
 किया। तिलक ने राजकुमार का पुरा
 जीवन-इतिहास ऋषिवर के सम्मुख प्रस्तुत
 कर दिया। न कुछ छिपाया, न कुछ बढ़ाया।

सब कुछ सुनने के पश्चात् ऋषि अगस्त्य
 ने कुछ क्षणों तक चिन्तन-मनन के बाद
 कहा, 'राजकुमार को अपने मित्र तिलक
 के साथ काशी की रजत-तीर्थयात्रा करनी

होगी ।'

०००

राजा सिंह को ऋषि अगस्त्य का सुझाव अव्यावहारिक, व्यर्थ और विलक्षण लगा । अनेकानेक प्रश्न उसके मन में मंडराने लगे । राजकुमार तीर्थयात्री के रूप में काशी कैसे जा सकेगा ? यदि राजकुमार के वापस श्रीलंका आने तक उसकी मृत्यु हो गयी, तो क्या होगा ? जयसूर्य जैमा अधार्मिक आदमी तीर्थयात्रा पर जाने के लिए कैसे तैयार होगा ? तीर्थयात्रा पर जाने से जिप्सी युवती से उसे कैसे मुक्ति मिल सकेगी ? वह इन प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए अपना मुंह खोलना ही चाहता था कि ऋषि ने उसके मन में मंडराते हुए प्रश्नों की थाह पा ली, और इन शब्दों में उनके उत्तर देने आरंभ किये :

‘उसे एक साधारण तीर्थयात्रा के रूप में काशी जाने दो । इस तीर्थयात्रा में उसके साथ उसके इस मित्र के अतिरिक्त और कोई नहीं रहेगा । वह अपने साथ न कोई आभूषण ले जायेगा, न कोई मुद्रा । आत्मरक्षा के लिए उसे अपने पास सिर्फ एक तलवार रखने का अधिकार होगा । तीर्थयात्रा के दौरान, भारत में चोर-लुटेरों, खराब सड़कों, गंदी सरायों और प्रतिकूल मौसम के रूप में जो असुविधाएं उसके सामने आयेंगी, उनका सामना उसे निर्भयतापूर्वक करना होगा । वन में जंगली पशुओं का सामना भी उसे दिलेरी

से करना होगा । कभी-कभी उसके सामने महामारियों का संकट भी आयेगा, प्रायः उसे भिक्षा पर ही निर्भर पड़ेगा ।’

राजा सिंह झुकाये, चुपचाप सुनते रहे थे ।

‘उसे जीत ऋतु में ओस से भीगी पर सोने दो, और भीगने दो तूफानी में । ग्रीष्म ऋतु की झुलसाने वाली भी उसे सहन करने दो । उसे मालूम कि निराहार रहने पर कैसा लगता और एक वक्त के खाने की जुगाह के लिए मामूली आदमी को कितनी तोड़ मेहनत करनी पड़ती है । उसे भर कड़ी मेहनत करके, चंद पैसे के कष्ट और फिर उन पैसों से माल खरीदकर पेट भरने के मुख की अनुभूति होने दो, जो उसे अभी नहीं हुई है । जिन रातों में वह भूख से किन्तु भूखे पेट सोयेगा, उन रातों में अपने अन्तःपुर की रानियों की याद दो । उसे घूमने दो सामानों और भरे बाजारों में, मन में यह कस कि ये सारे सामान उसकी पहुंच में हैं । उसे महसूस करने दो कि निराशा क्या होती है; क्योंकि राजमहल में हुए निराशा से उसका कोई सावक पड़ा है । हे राजन ! जीवन बड़ा है ! जब लगता है कि उसका बुझने वाला है, ठीक उसी समय ललक और उमंग और नये उत्साह

नवनीत

१३२

दुगुनी ज्योति के साथ जल उठता है, खिल उठता है ।'

०००

‘राजा सिंह ने कहा, ‘महर्षि ! आपके सद्गुण और उपयुक्त परामर्श ने मेरे संन्यस्त, अंधेरे मन को आलोकित कर दिया है। मैं कल ही एक आदेश जारी कर, राजकुमार को काशी की रजत-तीर्थयात्रा करने के लिए बाध्य करूंगा, यद्यपि एक पिता के रूप में ऐसा करते मुझे असह्य मानसिक वेदना भी होगी ।

‘और एक संशय अभी तक मेरे मन में फन उठाये है। राजकुमार की आयु अधिक नहीं है, और वह निरानुभवी भी है। कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि एक मामूली-से प्रसृत उपचार में हम पांव को ही लंगड़ा कर बैठें ?’

‘उसका रोग साधारण नहीं है,’ महर्षि ने शालीनतापूर्वक उत्तर दिया, ‘यह वह रोग है, जो तानाशाहों और प्रजापीड़क राजाओं को जन्म देता है। यही समय है, उनके मन और शरीर से इस गंभीर रोग के कीटाणुओं को हमेशा-हमेशा के लिए बाहर निकालने का, नहीं तो यह रोग पक जायेगा, और तानाशाहों के सब लक्षण उनके अंदर धीरे-धीरे प्रकट होने लगेंगे ।’

‘श्रीराम ! श्रीराम !’ भयाक्रांत राजा सिंह ने कहा, ‘मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगा। मैं कल ही उसके तीर्थयात्रा पर जाने के आदेश जारी करता हूं ।’

[३]

राजकुमार तीर्थयात्रा पर

राजकुमार जयसूर्य और तिलक को राजा के आदेशानुसार काशी की तीर्थयात्रा पर रवाना होना पड़ा। दोनों के पास एक-एक तलवार, कपड़ों की एक-एक जोड़ी और कुछ स्वर्ण-मुद्राएं थीं। दोनों को तीर्थयात्रा का आदेश देते समय राजा सिंह की वही हालत हो गयी थी, जो राम को वनवास का आदेश देते समय राजा दशरथ की हुई थी। कई बार उसके मन में यह विचार आया कि उन दोनों को तीर्थयात्रा पर न जाने दिया जाये, मगर ऐसा करना अधर्म होगा, यह सोचकर उन्होंने अपने आदेश को वापस नहीं लिया।

राजकुमार को तीर्थयात्रा पर जाने में बड़ा मज़ा आ रहा था। तीर्थयात्रा की सब कठिनाइयां उसे महज़ एक मज़ाक लग रही थीं। तिलक के मन में अनेक भय और संशय थे, पर उन्हें वह किसी पर जाहिर नहीं कर रहा था।

जब दोनों राजमहल छोड़कर जाने लगे, तो राजकुमार की रानियां रोने-चिल्लाने लगीं, और कुछ बेहोश होकर गिर पड़ीं।

जहाज़ की यात्रा निर्विघ्न समाप्त हुई। मगर राजकुमार ने इस यात्रा के बाद निश्चय कर लिया कि वह आगे कभी समुद्र-यात्रा नहीं करेगा। जहाज़ी मितली की वजह से उसका जी खराब हो गया था।

भारत खंड में क्रदम रखते ही दोनों

ने केरल की ओर प्रयाण किया। दोनों कुछ दूर ही गये होंगे कि तेज वर्षा आरंभ हो गयी। तिलक को राज-दरबार के उस ज्योतिषी पर क्रोध आ रहा था, जिसने उनकी यात्रा का मुहूर्त निर्धारित करते समय भविष्यवाणी की थी कि यात्रा निरापद और सुखकर होगी। यहां तो सार मुंडाते ही ओले पड़ रहे थे।

सारे रास्ते दलदली हो गये थे। बड़े-बड़े मच्छर अलग उन्हें तंग कर रहे थे। गांववाले उन्हें देखते ही भाग जाते थे। उन्हें लगता था कि ये दोनों सरकारी कर्मचारी हैं, और कर वसूल करने आये हैं। जिन कुछ लोगों ने उनसे दोस्ती करनी चाही, वे उन दोनों को देखने से ही चोर-लुटेरे लगे।

नये-नये जोखिम-भरे अनुभव हो रहे थे, दोनों को, मार्ग में। तलवार का प्रयोग करना खतरे से खाली न था। पकड़े जाने, यहां तक कि फांसी पर चढ़ने का डर था। वहां की अदालतें हमेशा अजनबियों को ही गुनहगार मान कर चलती थीं। यह काम अजनबियों का था कि वे अपने को निर्दोष साबित करें।

जान पर खेलते, छिपते-छिपते, और बीहड़ वनों के सब कण्टों को पार करके, वमुश्किलतमाम दोनों ने मदुरै की राह पकड़ी। मदुरै पांडियन राजाओं की राजधानी थी। मार्ग में, एक सुनसान स्थान में मारवा जाति के तीन लुटेरों ने उन दोनों को लूटने की कोशिश की। लेकिन

दोनों ने बड़ी बहादुरी से तीनों से संघर्ष करके, उनका काम तमाम कर डाला। तनिक-सी भी चूक होने पर, चीक-गिद्ध उनकी लाशों को खाते दिखायी देते। यह डरावना खयाल उनके दिल में घर कर गया।

आगे फिर मारवा लुटेरों के एक गिरोह से उनका सामना हुआ। यह लड़ना बेकार था, इसलिए दोनों ने अपने स्वर्ण-मुद्राएं लुटेरों को देकर अपनी जान बचाने की कोशिश की। लेकिन, लुटेरों ने उन्हें पकड़कर बांध लिया, और अपने सरदार के पास ले चले।

आवनूसी रंग के, लम्बे-चौड़े, बड़े-कट्टे सरदार ने उन दोनों के सामने दो विकल्प रखे। पहला— दोनों उनके गिरोह में शामिल हो जायें। दूसरा— उन्हें गिरोह में शामिल होने में कसूर एतराज हो, तो वे पन्द्रह दिनों तक सरदार के मेहमान बनकर रहें, खूब खायें-पीयें और मौज करें, और पन्द्रह दिन बाद माँ काली के सामने अपनी बलि देते तैयार हो जायें। 'हम लोग जल्दी केरल की सीमा में प्रवेश करके लूट करने वाले हैं, और पुजारी कहता है कि काली को बलि दिये बिना लूटमार अभियान सफल नहीं हो सकेगा।' सरदार ने उन्हें समझाया।

०००

राजकुमार और तिलक ने अपने अवसरों के लिए बहुत पहले ही, इस

की एक भाषा ईजाद कर रखी थी। जब इस भाषा में आपस में काफ़ी देर तक बातें करने के बाद, दोनों ने सरदार को सूचित किया कि उन्होंने दूसरे विकल्प को तरजीह दी है, तो सरदार के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने दोनों की अकल पर तरस खाते हुए, दोनों को एक अंधेरी कोठरी में डलवा दिया। यहां रोज़ दोनों को भरपेट स्वादिष्ट भोजन और भरपूर आराम मिलता रहा।

अगले दो दिनों में दोनों ने कोठरी से बाहर निकलने की बहुत जुगाड़ लगायी मगर असफल रहे। भागना एकदम असम्भव था।

तीसरे दिन उनके भाग्य ने अचानक पलटा ख़ाया।

सरदार की एक पुत्री थी—वल्ली। सत्रह-बर्षीया वल्ली जयसूर्य को देखते ही उस पर मोहित हो गयी। दोनों को जब से अंधेरी कोठरी में उसने देखा था, तभी से वह उन दोनों को छिप-छिपकर देखने लगी थी। उसने राजकुमार को अपना प्रणय-निवेदन एक ऐसे पुरोहित के हाथों भेजा, जो उसके हाथों की कठपुतली था।

जब राजकुमार ने वल्ली का 'प्रणय-निवेदन' स्वीकार कर लिया, तो वल्ली ने पहरेदारों को अफ़ीम खिलाकर, राजकुमार और तिलक को अंधेरी कोठरी से बाहर निकालने की योजना बनायी। उसने स्वयं एक पहरेदार के वस्त्र धारण किये, और कोठरी की खिड़कियों के

सींखचे तोड़कर दोनों को बाहर निकाला। तिलक इस अभियान में भाग लेने से डर रहा था। वह राजकुमार को बार-बार याद दिला रहा था, 'सरदार को पता चल गया, तो हम सबको खीलते तेल में डालकर ही दम लेगा। भागने से अच्छा तो यह है कि हम उसके गिरोह में सम्मिलित हो जायें। तब भागना सरल होगा।' वल्ली ने उसके सुझाव का स्वागत किया, और राजकुमार को भी उसका प्रस्ताव पसंद आया।

सरदार ने भी खुशी-खुशी उन दोनों को अपने गिरोह में शामिल कर लिया, क्योंकि वह दोनों की दिलेरी और बहादुरी के कारनामों के बारे में सुन चुका था।

वल्ली को राजकुमार से विवाह करने की जल्दी थी। वह एक दिन शर्माती हुई अपने पिता के पास पहुंची, और कहने लगी, 'पिताजी, मैंने आपसे आज तक कुछ नहीं मांगा। पर, आज मांगने की धृष्टता कर रही हूं। मैं जयसूर्य नाम के उस युवक से विवाह करना चाहती हूं जिसे आपने हाल में अपने गिरोह में सम्मिलित किया है।'।

सरदार बड़े धर्म-संकट में पड़ गया। एक ओर वह अपनी इकलौती पुत्री का दिल भी नहीं दुखाना चाहता था, और दूसरी ओर उसे यह भी ज्ञात था कि मारवा लोग अपने कुल से बाहर अपनी लड़कियों का विवाह नहीं करते। लेकिन, जब उसके पुरोहित ने 'मनुस्मृति' और 'हनुमंत

पुराण' का हवाला देकर उसे बताया कि मारवा जाति की लड़की का विवाह क्षत्रिय वंश के लड़के से हो सकता है, तो वह जयसूर्य को अपना दामाद बनाने को तैयार हो गया।

मारवा जाति की प्रथा के अनुसार, विवाह के पश्चात् नव-दम्पति को वन में स्थित एक मंदिर में जाकर भगवान सुब्रह्मण्यनम् की मूर्ति के आगे एक दूसरे का आजीवन साथ देने की शपथ लेनी थी। सरदार ने अपने चार साथियों को नव-दम्पति, पुरोहित व तिलक के साथ कर दिया, ताकि वे उन्हें मंदिर पहुंचा सकें।

रास्ते में जयसूर्य और तिलक ने चारों गाफिल मारवाओं की हत्या कर डाली। पुरोहित ने जयसूर्य से कहा, 'महाराज ! अब मैं सरदार के पास वापस नहीं जाऊंगा। आप मुझे अपने साथ काशी ले चलिये।'।

दोनों ने उसे अपने साथ लिया। दोनों जानते थे कि वह उनके लिए बड़े काम का आदमी साबित होगा, क्योंकि एक तो वह काफ़ी चलता-पुर्जा था, और दूसरे वह स्थानीय भाषा और रीति-रिवाजों से परिचित था।

०००

वल्ली भी दोनों के लिए बड़े काम की साथिन सिद्ध हुई। वह सबके लिए खाना बनाती थी, फटे कपड़े सीती थी, और हर काम में उनका हाथ बंटाने को तैयार रहती थी।

दल के किसी भी सदस्य के पास कोई

नवनीत

क्रीमती वस्तु न थी, इसलिए उन्हें कोई का कोई डर नहीं था। दल के पुरुष-सदस्य दिन-भर गांव में खेतों में काम करते, मजूरी कमाते, और वल्ली घरेलू काम करके पैसे कमाती। नये स्थान पर जाने से पूर्व वे पुरोहित को जासूस के रूप में आगे भेजते। वह दल के शेष सदस्यों को जाने का मार्ग सुलभ और प्रशस्त करता। वह हर किसी से जयसूर्य का परिचय क्षत्रिय-व्यापारी के रूप में, और तिलक उसके छोटे भाई के रूप में देता। वल्ली को वह अपनी बेटी बताता। वह थी उसकी बेटी के समान ही, क्योंकि वल्ली को बचपन से गोद में खिलाया

राजकुमार जयसूर्य निपट सरल भोली वल्ली को सचमुच चाहने लगा। आरंभ में उसने कई बार वल्ली को मौत के घाट उतारने के बारे में सोचा। मगर कुछ दिन उसके साथ रहकर लगने लगा था कि वल्ली के, जो उसे के रूप में पूजती थी, प्रति उसका कुछ कर्तव्य है।

एक चांदनी रात को राजकुमार पुरोहित के बीच इस प्रकार बातें हुईं।

राजकुमार : नियति की विचित्रता का अंत नहीं है। मैंने सपने में भी कभी सोचा था कि एक दिन मुझे काशी रजत-तीर्थयात्रा के सिलसिले में इस भटकना पड़ेगा, और एक अपरिचित लड़की मेरी पत्नी बनकर मेरे साथ घुम

पुरोहित : जो कुछ आपके साथ

है, उससे भी अधिक विचित्र घटनाएं घट चुकी हैं। एक बार पतंजलि मुनि बन में तपस्या कर रहे थे। (उन्होंने अपने 'योग सूत्र' में लिखा है कि मन एकाग्रतापूर्वक जिस विषय का चिन्तन करता है, वही साकार हो जाता है।) तपस्या के बाद, जैसे ही उन्होंने आंखें खोलीं, अपने को अप्सराओं से घिरा पाया। वे उन अप्सराओं का पीछा करने लगे। उनके साथ काफी समय तक विहार करने के पश्चात् ही उन्हें पता चला कि इन्द्र ने इन अप्सराओं को उनका तप-भंग करने के लिए भेजा है। इस अनुभूति के बाद, उन्होंने लिखा, 'नारी की अवज्ञा करने वाला कभी माया से मुक्त नहीं हो सकता। जो नारी से डरता है, उससे दूर भागता है, या उसे अपने अधीन करना चाहता है, योग उसके लिए नहीं है।'।

ठीक इसी समय, अपने बाल फैलाये, वल्ली उनके सामने आकर खड़ी हो गयी। वह अभी-अभी सोकर उठी थी, और उसकी आंखें धुमारी से भरी थीं। उसकी लम्बी, काली और इकहरी देह एक वल्लरी की भाँति लग रही थी।

पुरोहित ने उसकी ओर देखते हुए कहा, 'यह है योग का स्रोत, अनुग्रह-यात्री और सत्य की कुंजी की संरक्षिका। इसके बिना पुरुष अधूरा है। जो इसका विरोध करता है, उसे भवानी के कोप का पात्र बनना पड़ता है। तुम जब मदुरै में देवी मीनाक्षी के दर्शन करोगे, तो वास्तव

में वल्ली के ही दर्शन करोगे। चलो, अब हमें मदुरै पहुंचकर ही दम लेना है।'।

'मैं तुम्हारी बात से सहमत हूँ, राज-कुमार ने कहा।' वल्ली एक अच्छी पत्नी सिद्ध हुई है। काश! उसका रंग गोरा होता, मगर इसमें उसका क्या दोष?'

'तुम मूर्ख हो, जयसूर्य!' पुरोहित ने कहा, 'उसकी त्वचा का रंग रहस्यमयी और गहन रात्रि के रंग से मिलता है। गोरा रंग तुम जैसे ओछे आदमियों को ही पसंद आता है। खैर, इस चर्चा को छोड़ो। मदुरै पहुंचकर हमें नये-नये संकटों का सामना करना पड़ेगा। पंडियन राजाओं के जासूस, कर वसूल करने वाले और सराय-मालिक दूर-दूर तक कुख्यात हैं। पर सबसे बड़ा डर उस ब्रह्मराक्षस से है, जो हमें मदुरै की सीमा पर एक इमली के पेड़ पर से उल्टा लटका मिलेगा। वह बेखबर मुसाफिरों के एक झटके में दो हिस्से कर डालता है। मगर चिंता की कोई बात नहीं। मेरे रहते, वह हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा!'

[४]

साहसिक यात्रा मदुरै की

मार्ग में पुरोहित ने तीनों को ब्रह्म-राक्षसों के बारे में बताया। उसने भूत-प्रेतों के बारे में भी जानकारी दी और बताया कि कौन-कौन व्यक्ति प्रेत, योनि पाते हैं, और ब्रह्मराक्षस बनते हैं। ब्रह्मराक्षस की गति उन युवा, अविवाहित ब्राह्मणों की होती है, जो अग्नि, बाढ़,

विषपान आदि दुर्घटनाओं में मरते हैं।

तिलक बहस करने लगा, 'मैं दुर्घटनाओं में विश्वास नहीं करता। आदमी जब जन्म लेता है, तभी उसके मरने की तिथि और घड़ी निश्चित हो जाती है।'

पुरोहित एक लंबी सांस लेकर बोला, 'ताकिक आदमी के साथ यही दिक्कत है। अरे बाबा, दुनिया के काम ऐसे बंधे-बंधाये ढंग से चलते होते, तो देवी-देवताओं की और उनके अनुग्रह की क्या आवश्यकता रह जाती?'

राजकुमार ब्रह्मराक्षस के बारे में पुरोहित की बातों को बड़ी दिलचस्पी से सुन रहा था। पुरोहित बता रहा था कि उनकी पेट की भूख को शांत करना बड़ा मुश्किल काम है। और चूंकि वे अविवाहितावस्था में ही ब्रह्मराक्षस बन जाते हैं, इसलिए नारी को देखते ही उनकी कामवासना जागृत हो जाती है। नारी को दूर से देखते ही वे अदृश्य हो जाते हैं, ताकि आसानी से उसे अपनी लपेट में ले सकें। पंडितों और विद्वानों के प्रति ब्रह्मराक्षसों के मन में बड़ा प्रेम-भाव रहता है, विशेष रूप से तोंद वाले पंडितों के प्रति।'

मदुरै की सीमा पर आते-आते उन्होंने पाया कि सड़कें ज्यादा चौड़ी हो गयी हैं, और जगह-जगह पर मीनाक्षी मंदिर के दर्शनार्थी तम्बुओं या सरायों में डेरा डाले हुए हैं। अधिकांश यात्री, मदुरै की सीमा पर स्थित एक घने वन से बचने के लिए, एक चक्करदार मार्ग की ओर बढ़

रहे थे। लेकिन, जयसूर्य और उसके साथियों ने इस चक्करदार मार्ग पर जाना कायरता की निशानी समझा। वे वन जाने वाले मार्ग पर चलने लगे, यह जानते हुए भी कि आगे जाकर उन्हें इमली के वृक्ष पर उल्टा लटका हुआ ब्रह्मराक्षस मिलेगा।

जैसे ही सब इमली के पेड़ के नीचे आये एक कठोर और डरावने स्वर ने उन्हें चुनौती देकर रुकने को कहा। राजकुमार और तिलक कांपने लगे, और उनके मांसे पसीना चूने लगा। ऊपर देखने पर उन्हें एक धुंधली-सी आकृति दिखायी दी, जो फुट लंबी राक्षसाकार आकृति! वह ब्रह्मराक्षस था।

वल्ली डर के मारे मुंह बाये खड़ी थी पर उसे ब्रह्मराक्षस की आकृति बिलकुल नहीं दिखायी दे रही थी। बाद में उसने अपने पति से काफ़ी झगड़ा भी किया कि वे ख़ामख़वाह डर गये, और वहां अपने में कोई न था। पुरोहित ही अकेला उन चारों में जो निर्भय और शांत खड़ा था।

सहसा, पुरोहित ने ब्रह्मराक्षस आवाज़ सुनी। जैसे मेघ गरज रहे हों दोनों के बीच इस प्रकार वाद-विवाद हुआ।

ब्रह्मराक्षस : कौन पवित्र करती है कौन स्वच्छ करता है? कौन चंगा करता है? कौन बचाता है? शीघ्र इन प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करो, विप्रवर, नहीं तो मैं तुम्हें चट कर जाऊंगा।

पुरोहित : अग्नि पवित्र करती है।

स्वच्छ करता है। समय चंगा करता है।
ज्ञान वचाता है।

ब्रह्मराक्षस : विप्रवर, तुम्हारी मोटी-
ताजी काया देखकर मेरी भूख दुगुनी हो
गयी है। वैसे भी, मैं एक दिन का भूखा
हूँ। बताओ, राजा कब राजा नहीं है ?
बृद्ध व्यक्ति का व्यसन कौन-सा है ? कौन-
सा सुख जवानी का नाश करता है ? नारी
की समझ की अनुभूति पूर्णचन्द्र जैसी
क्यों होती है ?

पुरोहित : ठीठ लड़के, तू भूल रहा है
कि आज तेरा पाला एक पंडित से पड़ा है।
सुन ! राजा तब राजा नहीं रहता, जब
उसकी कनिष्ठतम रानी उसे प्रेम-क्रिया
में असफल देखकर उस पर हंसती है।
बृद्ध व्यक्ति का व्यसन है अपने तेजी से
सड़ते हुए शरीर की देखभाल। दिवा-
स्वन का सुख जवानी का नाश कर देता
है। नारी की समझ उसके सहज बोध पर
बाधारित होती है, इसलिए पूर्णचन्द्र की
भांति पूरा ज्ञान प्रदान करती है।

ब्रह्मराक्षस : गुरुदेव, मेरी सहायता
करो ! आपकी सहायता के बिना मुझे
इस विप्र का भक्षण करने को नहीं मिलेगा।
बताओ, विप्रवर ! जिस मूर्ति की पूजा की
जाती है, उसकी ऊंचाई अंगुल के बराबर
क्यों होती है ? सास, जिससे सब घृणा
करते हैं, देवी क्यों होती है ? दूल्हे को
उसकी सुहागरात पर क्या सीख दी
जानी चाहिये ?

पुरोहित : वत्स, अब तुम्हारे प्रश्न

सांसारिक विषयों से सम्बन्धित होते
जा रहे हैं। और, गुरु का आवाहन क्यों
करते हो ? तुम्हारा गुरु तो साक्षात् तुम्हारे
सामने खड़ा है। आओ, उसे साष्टांग
प्रणाम करो। जिस अंगुल से पर्वत तक
का माप कर लिया जाता है, उसी से उच्चतम
आराध्य देव की पूजा की जाती है।
शीतला को भी देवी का दर्जा मिला है,
तो फिर सासु ने क्या कसूर किया है ?
सुहागरात पर वर को केवल वधु का ही
ध्यान रखना चाहिये, और भूलकर भी
सोते समय खरटे नहीं लेने चाहिये।
बाकी काम प्रकृति स्वयं कर लेगी।

ब्रह्मराक्षस : मैं इतनी जल्दी हार नहीं
मानूंगा। क्या ईश्वर का अस्तित्व है ? क्या
उसके अस्तित्व को सिद्ध किया जा सकता
है ? यदि उसे सिद्ध नहीं किया जा सकता,
तो उसकी कल्पना क्यों की जाती है ?

पुरोहित : ईश्वर का अस्तित्व है। उसे
इसलिए सिद्ध नहीं किया जा सकता,
कि वह स्वयं कर्ता है, और प्रमाण
विषयों को निर्धारित करने के लिए प्रस्तुत
किया जाता है। हम उसकी कल्पना इस-
लिए कर सकते हैं कि वह हमारे अंदर ही
मौजूद है, और चिन्तन से हम उस तक
नहीं पहुंच पाते।

ब्रह्मराक्षस : आत्महत्या कब न्यायसंगत
उहरती है ?

पुरोहित : तब, जब अहम् आत्महत्या
करता है।

ब्रह्मराक्षस : इसमें कोई संदेह, नहीं कि

हिंदी डाइजेस्ट

आप एक सच्चे पंडित हैं। मैं आपको साष्टांग प्रणाम करता हूँ। अब आप जल्दी से यहां से खिसक जाइये। दूर से दो आदमी आते दिखायी दे रहे हैं, और मुझे भूख लगी है।

ब्रह्मराक्षस ने पुरोहित को साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा।

जयसूर्य को मदुरै नगर श्रीलंका से भी बड़ा लगा। नगर का सबसे बड़ा आकर्षण था, मीनाक्षी मंदिर, जिसके गोपुर अपने उत्कीर्णनों और अपनी चमक-दमक के लिए विख्यात हैं। उसके बाद नंबर आता था पांडियन राजाओं के महलों का, जिन पर लगे सुनहले ध्वजदंडों पर पांडियन मत्स्य वाले झंडे लगे थे। नगर की चौड़ी और साफ-सुथरी सड़कों पर दिन में दो बार छिड़काव होता था। बाजारों में भीड़ के मारे चलना कठिन था। दुकानें मूंगे, मोती की बनी वस्तुओं, स्वर्णभूषणों, चांदी के बर्तनों और हाथीदांत की सुबुक वस्तुओं आदि से भरी थीं।

यहां आकर चारों यात्रियों ने चैन की सांस ली। एक तो, यहां उन्हें किसी चोर-लुटेरे का भय न था, और दूसरे, नगर का प्रत्येक व्यक्ति अपने कामकाज में इतना तल्लीन था कि उसे दूसरों के बारे में चिंतित होने की फुर्सत ही न थी। सारे नगर में किसी ने भी उनसे कोई पूछताछ नहीं की।

हां, सराय के द्वार पर उनकी भेंट एक ऐसे आदमी से हुई, जो लगता था, विशेष

रूप से उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहा था। वह था सरकार की ओर से यात्रियों के कर वसूल करने वाला। उसका परिचय पाकर जयसूर्य ने उससे कहा—‘हम निर्दोष तीर्थयात्री हैं, और काशी जा रहे हैं। हमें रोज कमाई करके पेट भरते हैं।’

‘मैं आपके पास कर वसूलने के कर्मचारी के रूप में नहीं, एक मित्र के रूप में आया हूँ।’ उस आदमी ने कहा। ‘आप एक कर्मचारी के रूप में भी, मैं घृणा का पात्र नहीं हूँ। मेरा कार्य ‘अर्थ-शास्त्र’ के निर्देशों के अनुसार होता है। क्या आप जानते हैं कि सभ्य मानव का सर्वाधिक मूलभूत अधिकार कौन सा है?’

‘आप ही बताइये न!’ जयसूर्य ने कहा। ‘वह है कर देने का अधिकार,’ गंभीरता पूर्वक उस आदमी ने कहा।

जयसूर्य ने खिलखिलाकर हंसते हुए कहा—‘विभीषणजी की सौगंध! आज यह नई बात सुनी।’

‘नयी भले ही हो, मगर सच है।’ ‘आप बेहद दिलचस्प आदमी लगते हैं। आप चूंकि मित्र के नाते आये हैं, इसलिए उसी नाते से मैं पूछना चाहता हूँ कि आपके आने का उद्देश्य क्या है?’

‘हम आपको बता ही चुके हैं कि हमें पास कर के रूप में देने को पणम् नहीं है।’

‘देखो मित्र, तुम तीर्थयात्री हो या नहीं थोड़ा-बहुत कर तो तुम्हें देना ही पड़ेगा। कर नगदी के रूप में भी दिया जाता है और सेवा के रूप में भी।’

‘मैं आपका तात्पर्य नहीं समझा, महाशय !’

‘समझाता हूँ, समझाता हूँ। आपमें कोई एक मारवा वंश की इस युवती का पति होना चाहिये। राजमहल की कनिष्ठतम रानी इस युवती को खरीद कर अपनी वाम परिचारिका बनाना चाहती है। उसे अच्छा वेतन मिलेगा, और वह सुख से रहेगी। रानी की ओर से आपकी तीर्थ यात्रा का पुरा व्यय भी अदा किया जा सकता है।’

तिलक इस प्रस्ताव को मुनकर अपनी तलवार खींचने लगा। मगर जयसूर्य ने उसे झगरे से शांत करते हुए उस आदमी से वह पूछा—

‘कितनी कीमत देने को तैयार हैं आपकी रानीजी?’

‘एक हजार पणम् तो कहीं नहीं गये। कहिये, क्या कहते हैं?’

‘मैं यह कहता हूँ कि मुझे अपनी पत्नी को बेचना नहीं है।’

‘अच्छी तरह सोच लीजिये। आपने यह प्रस्ताव न माना, तो मुझे आपसे जबरन कर वसूल करना पड़ेगा।’ यह कहकर उसने धूरकर राजकुमार जयसूर्य को देखा।

जयसूर्य और तिलक कांप कर रह गये। यह वे रहम आदमी उन्हें अब नहीं छोड़ेगा।

अपने हृदय को स्वच्छ और निर्मल रखो। यही वह खिड़की है, जिसमें से तुम्हें दुनिया को देखना है।

जो धमकी उसने दी है, उसे अवश्य पूरा करेगा।

तभी पुरोहित ने ‘महादेव, महादेव’ चिल्लाते हुए, तालियां बजाना, और सर वायें से दायें और आगे-पीछे, तेजी से घुमाना आरंभ कर दिया।

लोग आपस में कहने लगे, ‘इस पर महादेव का साया पड़ गया है। महादेव की शक्ति आ गयी है इसमें।’

लोगों की यह बात कर वसूल करने वाले कर्मचारी ने भी सुनी, और वह अपने माथे का पसीना पोंछते हुए जल्दी से बाहर निकल गया।

पुरोहित चिल्लाया, ‘इसे पकड़ो। इसे पकड़ो। यह शैतान है शैतान ! इसे यूँ ही न जाने देना।’

लोगों ने उसे घेर लिया, और उसे मारने-पीटने लगे। कुछ ने उसके कपड़े फाड़ने आरंभ कर दिये।

वमुश्किल तमाम, वह फटे कपड़ों के साथ अपनी जान बचाने में सफल हुआ।

जब वह काफी दूर निकल गया, और सारी भीड़ छंट गयी, तो पुरोहित ने हंसकर जयसूर्य और तिलक से कहा, ‘अब यह आदमी हमें कभी तंग नहीं करेगा। यह क्या, अब इस तीर्थयात्रा में कोई और दुष्ट व्यक्ति हमें तंग नहीं करेगा। आओ, अब आगे बढ़ें।’

—बर्नार्ड शॉ

आज का युग प्रौद्योगिकी का युग है। इस युग की एक विशिष्टतम उपलब्धि है—अद्भुत स्वचालित यंत्र। ऐसे ही यंत्रों की सहायता से आज ऐसी कारों का निर्माण हो रहा है, जिसमें किसी कुशल या अकुशल मानव के सहयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती। सारा निर्माण-कार्य यंत्रों द्वारा ही होता है। कम्प्यूटर ऐसे स्वचालित यंत्रों के सर्वाधिक विकसित रूप में सामने आये हैं।

और अब तो कम्प्यूटर-वैज्ञानिकों ने ऐसे कम्प्यूटरों का निर्माण भी लगभग पूरा कर लिया है, जो विचारणा और बुद्धि-व्यापार में प्रतिभाशाली व्यक्तियों के मस्तिष्कों से भी आगे हैं, और जिसे, इस कारण अति-मन कहा जा सकता है। सिलिकन की चिप्पियों से कम्प्यूटर-शिल्पविधियों से निर्मित इस अति-मन की प्रतिभा श्रेष्ठतम मानव-मस्तिष्क की प्रतिभा से कई गुना अधिक है।

इस अति-मन के बाज़ार में आ जाने से विश्व भर में भीषण बेरोज़गारी बढ़ेगी, क्योंकि मानव-श्रम का स्थान अति-मन ले लेगा। इतना ही नहीं, अति-मन की 'असीमित स्मृति' के कारण, ज्ञान-विज्ञान की सूचनाओं का संग्रह पुस्तकों के रूप में करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। प्रकाशक, पुस्तकालय आदि बेकार हो जायेंगे। टी. वी. के स्क्रीन जैसे किसी

स्क्रीन पर, कीबोर्ड में एक खास 'फीड' कर देने पर आप नवीतनम सारा चारों, नवीनतम उपन्यास आदि रसास्वादन कर सकेंगे, मुद्रित या मुद्रित बोलें गये शब्द पर आश्रित रहे बिना

अति-मन की खोज के बाद किसी भी किसी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ेगी क्योंकि सारी कुशलता के दक्षता इस अति-मन में पहले से ही निहित मान होगी। उसे प्रयुक्त करने के लिए सिर्फ एक बटन ही दबाना पड़ेगा।

सतत परिवर्तनशील—न्यूट्रिनो

ब्रह्म के विषय में हमारे ऋषियों ने धारणा थी कि वह सतत परिवर्तनशील है। अब अमरीका के कैलीफोर्निया के विद्यालय के वैज्ञानिकों ने प्रयोगों यह मालूम किया है कि न्यूट्रिनो नाम यह उप-परमाण्वीय कण सतत परिवर्तनशील है, और उसका कोई निश्चित आकार निर्धारित नहीं किया जा सकता।

प्रोफेसर डेविड स्कॉम का, अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के खगोल-भौतिक विज्ञानी हैं, कहना है कि 'इस सूक्ष्म कण ने कण-भौतिकी के सारे आधुनिक भूत सिद्धांतों को हिलाकर रख दिया और भौतिक विज्ञान की प्रगति उसका गहरा प्रभाव पड़ेगा।'

न्यूट्रिनो की एक विशिष्टता यह है कि

है कि उसके प्रतिरूप प्रति-पदार्थ के रूपों में भी पाये जाते हैं, और उसमें वैद्युत-आवेश बिल्कुल नहीं है। 'पहले ऐसा ऐसा समझा जाता था कि वह भारतीय है, पर चूंकि वह अपना रूप बदलता रहता है, इसलिए उसमें भौतिकी के नियमों के अनुसार, कुछ न कुछ द्रव्यमान होना ही चाहिये। न्यूट्रिनो के द्रव्यमान का पता चलते ही, हमें सारे ब्रह्मांड के द्रव्यमान का अनुमान भी हो सकेगा।' यह न्यूट्रिनो की खोज करने वाले एक अन्य वैज्ञानिक हैनरी सोबल का कथन है।

पदार्थ का चौथा गुण : 'आकर्षण'

यूरोप तथा अमरीका के ३५ वैज्ञानिकों के एक दल ने पदार्थ के चौथे गुण, 'आकर्षण' के 'सिधे प्रमाण' का पता लगा लिया है।

उस खोज के बाद, परमाणु के 'क्वार्कों' की संख्या ३ से बढ़कर ४ हो गयी है।

पहले तीन थे—ऊंचा क्वार्क, नीचा क्वार्क और विचित्र क्वार्क। दल के एक सदस्य

प्रोफेसर बरहोप का कहना है कि इस चौथे गुण की खोज से परमाणु में घटने

वाली कुछ घटनाओं को आसानी से समझा जा सकेगा। जबकि 'एलेक्ट्रॉन'

एक मूलभूत कण है, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन 'क्वार्क' नाम के तीन लघु तत्त्वों से निर्मित होते हैं।

इस खोज का वैज्ञानिकों ने उसी उत्साह से स्वागत किया है, जैसा ३० वर्ष पूर्व

न्यूट्रॉन की खोज का किया था।

चूंकि 'आकर्षण' वाले 'क्वार्क' को

विघटित होने में $\frac{1}{100,000,000}$ सेकंड

से भी कम समय लगता है, इसलिए अभी तक उसकी खोज संभव नहीं हो पायी थी, यद्यपि उसके अस्तित्व के 'अप्रत्यक्ष प्रमाण' वर्षों पहले विश्व के अनेक देशों के अनेक वैज्ञानिकों के पास मौजूद थे।

इस अति-सूक्ष्म 'गुण' की खोज में १०००, ०००, ००० पाउंड खर्च हुए। पर इतना जवर्दस्त था इस 'आकर्षण' का आकर्षण कि भौतिक-विज्ञानी अपने को उसे खोजने से रोक नहीं पाये। प्रोफेसर बरहोप का कहना है, 'यह आविष्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे हमें पदार्थ की अनेक अज्ञात मूलभूत विशेषताओं का पता चला है, और भविष्य में यह पता चलने की आशा है कि प्रकृति किन आधारभूत नियमों के सहारे काम करती है।'

नयी बनावटी भाषा

होनोलूलू स्थित हवाई विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में आजकल जो एक अजीबोगरीब प्रयोग चल रहा है, उसके सफल हो जाने के बाद आदमी सूंस (डॉल्-फिन) से बातें कर सकेगा, एक नयी भाषा के सहारे।

प्रयोगकर्ता दो सूंसों को विभिन्न वाक्यों में बंटे एक बनावटी भाषा के २५ शब्दों के माध्यम से मानवों से 'बातचीत' करना सिखा रहे हैं। एक सूंस तो इस

बनावटी भाषा में कुछ चीजों के नाम लेना सीख भी गयी है।

ऐसी ही एक बनावटी भाषा के माध्यम से वैज्ञानिकों ने कुछ वर्ष पूर्व कुछ चिम्पैं-जियों (वनमानुषों) से बातें करना सिखाया था। पर सूंसें के संबंध में उन्हें अपेक्षाकृत सीमित शब्दों वाली कृत्रिम भाषा पर आश्रित रहना पड़ रहा है। यह बनावटी भाषाएं मुख्यतः संकेतात्मक भाषाएं हैं, पर इन संकेतों में ध्वनि-संकेत भी सम्मिलित हैं।

वस्तुओं के नाम सूंसें को सिखाने के उद्देश्य से जब-जब उस वस्तु को उसके सामने रखा जाता है, तब तब एक खास आवाज या संकेत द्वारा उसका संबंध सूंसें को सुझाया जाता है, ताकि उसके अवचेतन में यह संबंध स्थायी हो सके।

प्रयोगों से पाया गया है कि सूंसें आदमियों की अपेक्षा ज्यादा तुनुकमिजाज हैं, और अपनी हार आसानी से नहीं मानतीं। अपने शिक्षकों को 'ना' तो वे कभी कहती ही नहीं।

अति-बोझिल तत्त्व की खोज

अमरीका के कुछ तरुण वैज्ञानिक पदार्थ की अंतिम सीमा, अर्थात् अति-बोझिल तत्त्व की खोज में लगे हैं। उनकी इस खोज की परिणति एक ऐसे निर्माण-कार्य में होगी, जिसे आज वैज्ञानिक असंभव मानते हैं। पर उनके नेता डॉक्टर ग्लैन सीबोर्ग का विश्वास है कि ऐसे अति-बोझिल तत्त्व का निर्माण संभव है। १९४० में,

जब वे २८ वर्ष के थे, उन्होंने एक वैज्ञानिक के साथ प्लूटोनियम नाम की बोझिल-तत्त्व की खोज की थी। नोबेल पुरस्कार जीतने के बाद, वे परमाणु ऊर्जा आयोग तथा अमरीकन एसोसियेशन ऑफ एडवान्समेन्ट ऑफ साइन्स के अध्यक्ष बने, और अब अति-बोझिल तत्त्व निर्माण-कार्य में जुटे हैं। उनका विश्वास है अगले तीन वर्षों में यह कार्य पूरा जायेगा।

उन्हें यह भी विश्वास है कि इस अति-बोझिल तत्त्व में थोड़े से ही परमाणु हों और प्रत्येक परमाणु का जीवन-काल

?

१,०००,०००,०००,०००,०००,०० से अधिक नहीं होगा।

सूर्य-पक्षियों का कुतुबनुमा

एक लम्बे अर्से तक भिन्न-भिन्न देशों के पक्षियों पर शोध करके, वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि निश्चित कालावधि में एक देश से दूसरे देश का भ्रमण करने वाले पक्षी सूर्य का प्रयोग कुतुबनुमा की भांति करते हैं, अर्थात् वे उड़ते समय अपने शरीर को सूर्य से एक विशेष कोण में जमाकर उड़ते हैं। जैसे-जैसे सूर्य अपनी दिशा बदलता है, वैसे-वैसे इन पक्षियों के कोण भी बदलते रहते हैं। खोज करने वाले आस्ट्रेलियाई वैज्ञानिकों क्रैमर मैथ्यूज के मतानुसार इस प्रकार ये पक्षी सूर्य को कुतुबनुमा मानकर अपना सफर पूरा करते हैं।

रात में उड़ने वाले पक्षी, इसी प्रकार चन्द्रमा को अपना कुतुबनुमा मानकर अपनी यात्रा पूरी करते हैं।

बाहुई रोगहर शक्तियोंवाली महिला

सोवियत रूस की राजधानी रूस में प्रत्येक नागरिक के लिए निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था है। फिर भी, वहाँ रहने वाली एक साधारण महिला के घर के आगे रोगियों की लाइन लगी रहती है। इन रोगियों में बड़े-बड़े राजनैतिक नेताओं, लेखकों-पत्रकारों आदि से लेकर कारखानों में काम करने वाले मामूली मजदूर तक शामिल होते हैं।

कुमारी देविताशविली नाम की यह महिला, जो पहले ज्यॉर्जिया में एक बेटे की, ७३ वर्षीय सोवियत नेता विखोन्दि ब्रेज्नेव को नवजीवन प्रदान कर चुकी है। ब्रेज्नेव एक लम्बे अर्से से अस्वस्थ थे।

सोवियत विज्ञान अकादमी के एक सदस्य एलैग्जैण्डर स्मिरकिन, जिन्होंने कुमारी देविताशविली की 'अलौकिक शक्तियों' का विधिवत् वैज्ञानिक अध्ययन किया है, उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। उन्होंने स्वयं कुमारी देविताशविली को अपनी 'अलौकिक' शक्तियों का सफल प्रयोग करते देखा है। 'एक रोगी का प्राण डाक्टरों से ठीक नहीं हो रहा था। कुमारी देविताशविली ने उसकी पट्टियाँ बदलवायीं, और उसे देखती रहीं। पांच मिनट के अंदर व्रण बिलकुल सूख गया,

और अगले पाँच मिनटों में वहाँ की त्वचा आसपास की त्वचा के समान हो गयी, और लगता ही न था कि यहाँ कभी व्रण हुआ था।'

और अंत में

प्रायः सभी अग्रणी वैज्ञानिकों का कहना है कि एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर विज्ञान कभी नहीं दे पायेगा।

वह प्रश्न है—किसी भी वस्तु के अस्तित्व का कारण क्या है?

इस प्रश्न का कोई सीधा उत्तर नहीं पाया जा सकता।

यदि कोई भौतिक-विज्ञानी किसी दिन कोई ऐसा अंतिम समीकरण खोज निकालने में सफल हो भी गया, जिससे सब नियम सिद्ध किये जा सकते हों, तो भी उससे पूछने के लिए यह प्रश्न शेष रह ही जाता है, 'आखिर इस समीकरण का क्या कारण है?' यदि कोई वैज्ञानिक ब्रह्मांड के अस्तित्व को परमाणुओं या विद्युत-प्रवाहों की निश्चित संख्या में सीमित भी कर दे, तो भी उससे प्रश्न पूछा जा सकता है, 'ये परमाणु क्यों? या, ये प्रवाह क्यों?'

दार्शनिक सांन्तायना ने एक बार कहा था, 'हमारे विचार-प्रवाहों का एक अंतिम आश्रय 'एक अंधेरी कंदरा' अवश्य होनी चाहिये, जहाँ पहुँचकर हम शांत हो जायें, और तर्क करना छोड़ दें। नहीं तो हम पागल हो जायेंगे।'

—प्रस्तोता : हरि



साहित्यिक परिहास

प्रसिद्ध कवि दूल्ह बादशाह के दरबार में जा पहुँचे। वहाँ बादशाह ने उनसे परिहास में पूछा—‘तुम्हें तुम्हारी मां भी दूल्ह कहकर पुकारती है क्या?’

दूल्ह ने तत्काल उत्तर दिया—‘जहाँ-पनाह ! दूल्ह तो मैं दरबार में आकर बना। मेरी मां तो मुझे प्यार से दुल्लू ही कहती है।’

०००

भूधर कवि पैंतेपुर जिला सीतापुर के निवासी थे। वह लगभग १८२६ वि. सं. में रहे होंगे; क्योंकि उनके आश्रयदाता राजा हिम्मतसिंह, जो गढ़ी के एक प्रसिद्ध तालुकेदार थे, उसी समय राज्य करते थे। एक दिन राजा साहब ने कवि को एक समस्या दी। समस्या का अवसान था, ‘रारि-सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में।’ यों तो इस समस्या की पूर्ति अन्य कवियों ने भी की है, परन्तु भूधरजी का छंद बड़ा अच्छा बन पड़ा। वह यों था :

बार-बार बैल को निपट ऊँचो नाद सुनि
हुंकरत बाघ बिरुझान्यो रस-रेला में ।
‘भूधर’ भनत ताकी बास पाय सोर करि
कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला में ॥
फुंकरत मूषक को दूषक भुजंग तासों
जंग करिबे को शुक्र्यो मोर हृद हेला में ।
बार-बार पारषद कहत पुकारि कछू
रारि-सी मची है त्रिपुरारि के तबेला में ॥

नवनीत

भाव की निबंधना कैसी सुन्दर पड़ी है ! कहा जाता है कि राजा ने प्रसन्न होकर एक सेर सोना कविजी को पुरस्कार में दिया था। इसका आप विचार करें या न करें, किन्तु छन्द इतना सुन्दर पड़ा है कि राजा साहब इसे सुनकर प्रसन्न अवश्य हुए होंगे।

०००

एक बार महाकवि गालिव मिर्जा मंडली में बैठे हुए प्रसिद्ध कवि मीर के कलाम (काव्य) की तारीफ कर रहे थे। महाकवि जौक भी मौजूद थे। उन्होंने ‘मीर तकी’ के मुकाबले में कवि ‘सौदा’ उत्तम ठहराया।

मिर्जा गालिव ने कहा—‘हजरत मैं आपको ‘मीरी’ (मीर का प्रशंसक) कहता था, मगर अब मालूम हुआ कि सौदाई (सौदा के प्रशंसक, पागल) हैं।’

०००

आचार्य रामचंद्र शुक्ल को उनके निरलेख संग्रह ‘चित्तामणि’ पर सम्मेलन की से १२०० रुपये का मंगलाप्रसाद तोषिक मिला था।

जिस उत्सव में शुक्लजी यह पुरस्कार लेने गये, उसमें बैठक हिंदुस्तानी ढंग की थी। अतएव शुक्लजी को अपने जूते उतारने पड़े। उन्होंने जूते एक-एक करके पहले ही बारह रुपये में खरीदे थे।

१४६



पुरस्कार लेकर बाहर निकले तो देखा कि किसी जूता-चोर ने उनके जूते तिड़ी कर दिये हैं।

शुक्ल जी इसी सोच में खड़े थे कि अब क्या करें कि इतने ही में उनके कुछ मित्रों ने उन्हें घेर लिया और औपचारिक बधाई देने के बाद कहने लगे कि

बापको बारह सौ रुपये मिले हैं, कुछ हम लोगों का भी मुंह मीठा कराइये। शुक्लजी ने सुखे मुंह से कहा—'बारह सौ कहां मिले? ११८८ ही तो मिले हैं!'

लोगों ने आश्चर्य से पूछा—शुक्लजी, सो कैसे?'

शुक्लजी ने अपने नंगे पैरों को दिखाते हुए कहा—'भाई! इसी पुरस्कार-उत्सव के लिए बारह रुपये के नये जूते खरीदे थे। आज उन्हें पहनकर आया और वे किसी ने उड़ा दिये। अब बारह रुपये मुझे फिर खर्च करने पड़ेंगे। वह इसी हिसाब में तो जायेंगे! अतएव मुझे तो नगद ११८८ ही मिले हैं।'

लोग मिठाई मांगना भूल गये। शुक्लजी भी नंगे पैर एक इक्के पर बैठकर घर की ओर लौट पड़े।

०००

गयाप्रसाद शुक्ल सनेही को बहुत से कवि अपना गुरु मानते हैं। वे विजया के बड़े भक्त थे। कभी-कभी गहरी छन जाती थी। एक बार वे किसी कार्य से फर्रुखाबाद गये हुए थे।

वहां उन दिनों एक कवि-सम्मेलन हो रहा था। लोग आग्रह करके उन्हें वहां ले गये थे। उस दिन रोज से कुछ अधिक गहरी छन गयी थी। वहां उन्हें मालूम हुआ कि उस सम्मेलन में समस्या दी गयी है और समस्या की पंक्ति थी—'विचित्र चित्रकारी है।'

सनेहीजी भंग की तरंग में आंखें बंद किये हुए बैठे थे। लोगों ने समझा कि वे इस समय समस्या पूर्ति न कर सकेंगे, किन्तु जब उनकी पारी आयी तो उन्होंने उसकी पूर्ति में यह छंद पढ़ा, जिसमें रात्रि का रूपक है :

काली-काली कज्जल-कुमारी सी कुरूपमयी
सजनी चुड़ैल की-सी, विधि ने संवारी है।
फैशन न बूझा, कैसा सूझा है कुडंग ढंग,
काले रंगवाली को उढ़ायी नील साड़ी है।
जड़े हैं सितारे कैसे फूहड़पने से देखो,
मिट्टी कर दिया सारा काम जरतारी है।
बेल हैं न बूटा, जहां देखो वहीं टूटा क्रम,
बेवकूफ विधि की विचित्र चित्रकारी है।

भंग की गहरी तरंग में ऐसा सुंदर रूपक खड़ा करके सनेहीजी ने श्रोताओं को आश्चर्यचकित कर दिया और लोगों के मुंह से 'वाह-वाह' की झड़ी लग गयी।

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

सच्चा अलौकिक अनुभव

नोबल-पुरस्कार दिलाने वाला सपना

[उस सपने की सच्ची कहानी जिसने वैज्ञानिक को नोबल-पुरस्कार दिलवाया]

कमलादेवी

१९२० के ईस्टर-पर्व के पहले दिन, न्यूयार्क यूनिवर्सिटी कालेज ऑफ मेडिसिन के भेषजविज्ञ डा. ओट्टो तोवी को कल्पना भी न थी कि रात में क्या घटने वाला है ! पर उस रात जो कुछ घटा, उसके परिणामस्वरूप ही उन्हें, आगे चलकर चिकित्सा का नोबेल-पुरस्कार प्राप्त हुआ ।

डा. तोवी १९०३ से ही चिकित्सा-क्षेत्र की एक कठिन और कष्टदायक समस्या से जूझते आ रहे थे । समस्या थी—भ्रूणावस्था में शरीर-तंतुओं की क्रियाविधि का सही-सही अध्ययन करना । शोधकर्ता इस सम्बन्ध में किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाये थे । वैज्ञानिकों का विश्वास था कि शरीर-तंतु सूक्ष्म विद्युत द्वारा स्नायुओं को उत्तेजना प्रदान करते हैं । पर इस धारणा को प्रयोगों द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सका था, और इस क्षेत्र में शोधरत डा. तोवी स्वयं उससे सन्तुष्ट नहीं थे । वे अपने सहयोगियों से प्रायः इस सिद्धांत की अन्य संभावनाओं के बारे में विचार-विमर्श

करते रहते थे ।

असल में डा. तोवी का कहना था कि इस उत्तेजना के लिए स्नायुओं में होने वाले रासायनिक परिवर्तन ही जिम्मेदार हैं । उनकी दलील थी कि शरीर-तंतु रासायनिक द्रवों का विसर्जन करते हैं और उनके कारण ही स्नायुओं का संकुचन और प्रसारण होता है । डा. तोवी के सहयोगियों को भी यह सिद्धांत युक्तिसंगत प्रतीत होता था, पर प्रयोगों द्वारा सिद्ध करने की कोई विधि उन्हें ज्ञात नहीं पायी थी ।

ईस्टर से पहली रात को डा. तोवी एक विचित्र सपना दिखायी दिया । सपना उनके सिद्धांत के हल से संबंधित था, इसलिए उन्होंने सपने में वर्णित प्रदर्शित सब तथ्यों और प्रमाणों को कागज पर लिख लिया । लिखने के बाद वे सो गये ।

अगले दिन जागने पर डा. तोवी कागज पर लिखी जानकारी को पढ़कर विश्वास हो गया कि वे उनके सिद्धांत

नवनीत

१४८

सम्बन्धित हैं, और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।
पर कुछ बातों के जल्दी में लिखे जाने के
कारण, वे उनका अर्थ नहीं निकाल पाये,
और सारे दिन उनके बारे में सोचते रहे।

डा. तोवी को दिन में सोने की आदत
थी। उस दिन दोपहर का खाना खाकर ज्यों
ही वे सोये, उन्हें यह सपना फिर दिखायी
दिया। इस बार उन्होंने सपने में उस
प्रयोग को भी साफ-साफ देखा, जिसके
आधार पर वे अपने सत्रह वर्ष पुराने
सिद्धांत को प्रमाणित कर सकते थे।

इस बार डा. तोवी ने कोई चूक नहीं
की, और सपना देखने के बाद, भागे-भाग
अपनी प्रयोगशाला में गये, और उस प्रयोग
को कागज पर लिख डाला। पहली दृष्टि
में उन्हें यह प्रयोग थोड़ा अव्यावहारिक
लगा, पर उनका अवचेतन मन जैसे उनसे
कह रहा था कि यह प्रयोग अवश्य सफल
होगा। वे फौरन दो मेढकों को लेकर
प्रयोगशाला में प्रयोग करने बैठ गये।

इस प्रयोग के अनुसार, दो मेढकों के
रक्त रस में रखे जाते थे। आरंभ में,
यह प्रयोग अत्यन्त सरल सिद्ध हुआ। प्रत्येक
रक्त अलग-अलग पात्र में रखा गया था।
एक तंतु-विशेष को उत्तेजित करके रक्त रस
को दूसरे पात्र में रखा गया। इस तंतु-
विशेष की विशेष रूप से इस प्रकार से
चोरफाड़ की गयी थी कि उसके अचानक
उत्तेजित हो जाने की संभावना नहीं थी।
प्रयोग के परिणाम के अनुसार दूसरे
मेढक की प्रतिक्रिया से ऐसा लगा, जैसे उस

तंतु-विशेष की चोरफाड़ हुई ही नहीं थी।
इससे यह सिद्ध हो गया कि रासायनिक
परिवर्तन के परिणामस्वरूप ही स्नायविक
प्रतिक्रिया हुई थी, तंतु-विशेष के विद्योत्पन्न
के फलस्वरूप नहीं।

इस प्रयोग के कारण स्नायविक उत्तेजन
के सिद्धांत में आमूल परिवर्तन ही नहीं
हुआ, अन्य स्वतंत्र प्रयोगों का एक ऐसा
सिलसिला भी शुरू हो गया, जो डा. तोवी
के परिणाम की पुष्टि करने के साथ-साथ
इस दिशा में नयी-नयी प्रभावनाओं को
भी जन्म देते थे। जिस रसायन के कारण,
मेढक के दिल में यह विशेष परिवर्तन
दिखायी पड़ा, उसे आगे चलकर 'एसिटिलको-
लाइन' (Acetylcholine) के नाम से जाना
गया। इसकी शिनाख्त १९१४ में डा.
तोवी के परम मित्र डेल ने की थी। १९३६
में इसी प्रयोग के कारण, डेल और डा.
तोवी को चिकित्सा का नोबल पुरस्कार
मिला।

यद्यपि इस प्रयोग का शरीर-विज्ञान
की प्रगति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, तथापि
उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण और चमत्का-
रिक है, वह विधि जिसके द्वारा डा. तोवी को
उसका पता चला। एक मनुष्य के विचार
दूसरे मनुष्य के मन में सपने में सम्प्रेषित
हो सकते हैं, यह बात समझ में आ सकती
है, या इसकी कल्पना की जा सकती है।
पर, इस मामले में तो जो विचार डा. तोवी
के मन में आया था, वह पहले किसी और
मनुष्य के मन में था ही नहीं।



When you save with **NEW BANK** Smiles are on the way



Security is happiness. When you know your savings in NEW BANK will take care of all your rainy days, you can smile with ease.

Start saving with NEW BANK today. Our various schemes like Saving Accounts, Fixed Deposits, Reinvestment Deposits, Janta Deposits and Popular Deposits will assure these smiles for you.



NEW BANK OF INDIA

(A Government of India Undertaking)

अनुभव कथा : एक सत्य घटना

भगवद्कृपा के दावेदार

□ योगेश प्रवीन

इसी शहर में एक अनाथ बेवा बुढ़िया थी, जिसका सरपरस्त कोई भी न था। उसके जो दो-चार रिश्तेदार थे वे भी बस नाम के थे, उनमें कोई उसका मददगार नहीं था। मकान के किराये से उसकी गुजर-बसर होती थी किसी

पांच सौ रुपये के कर्ज ने मेरा जीना दूभर कर दिया है। भगवान्, अगर तुम मुझे इस विपदा से उबारना चाहते हो तो मुझे पांच सौ रुपये किसी भी तरह भेजने की कृपा करो, मुझ बूढ़ी औरत का सहारा कोई नहीं है।

तब! एक बीमारी ने उसे पांच सौ रुपये का कर्जदार बना दिया, जिसे बदा कर सकना अब उसके बस की बात न थी। जब महाजन ने उसे बुरी तरह परेशान कर दिया और उसे कोई सहाय नजर न आया तो उसने एक पोस्टकार्ड भेजकर सीधे भगवान को अपनः दुखड़ा लिख भेजा :



चित्र : आलोक जैन

दीनानाथ,

वचन से तुम्हारी विरुदावली सुनती आयी हूँ कि तुमने सदा अपने भक्तों की लाज बचायी है और जब भी किसी ने तुम्हें हृदय से पुकारा है तुम उसके काम आये हो। हे दीनबंधु, मैं इस समय बड़े संकट में पड़ गयी हूँ क्योंकि

आज तक मैंने तुमसे कुछ भी नहीं मांगा है, लेकिन आज बड़े भरोसे के साथ तुमसे विनती कर रही हूँ, हे परमेश्वर, मेरी लाज बचाना।

—तुम्हारी चरण सेविका

.....

पता

अब सवाल था कि परमेश्वर का पता क्या लिखा जाये... लेकिन बुढ़िया ने भगवान का

पता बड़ा आसान कर लिया। उसने बड़े भोलेपन से ये जिम्मेदारी सीधे बड़े डाकवाबू पर छोड़ दी।

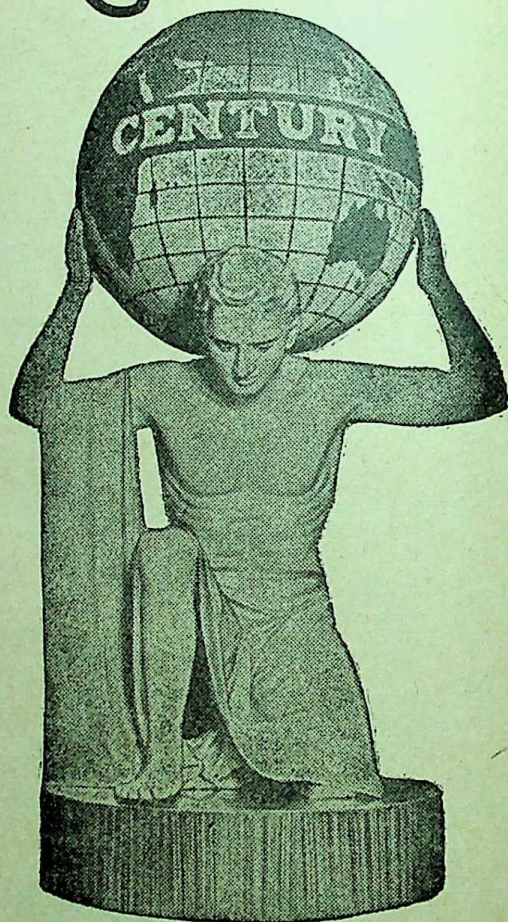
मार्फत, सदर डाक वाबू

बड़ा डाकखाना

.....

पोस्टकार्ड हवा की गर्दिश के साथ

सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

पोस्ट मास्टर जनरल आफिस में पहुंचकर
बड़े डाकवावू की मेज पर आया।
उन्होंने जब भगवान के नाम लिखे गये
उसी पत्र का मज़मून पढ़ा तो वे बुढ़िया
की आस्था से बहुत प्रभावित हुए। उन
के दिल में आया कि क्यों न आफिस में
बंदा करके ये रकम आसानी से इकट्ठी
कर ली जाये और फिर उस औरत के
आत्म-विश्वास को बनाये रखने की
ग़रज़ से उन्होंने सबके सहयोग से रुपया
जमा कर लिया। बात की बात में ४५०
रुपये जमा हो गये जिसे उन्होंने फ़ौरन
भेज देना उचित समझा।

बुढ़िया ने ४५० रुपयों का गुमनाम
मनीऑर्डर पाया तो उसको कोई आश्चर्य

नहीं हुआ और अपना काम निकाला। हाँ,
उसने एक पत्र द्वारा परमेश्वर को एक बार
धन्यवाद देना ज़रूरी समझा, जिसकी
इवास्त कुछ इस तरह थी :

करुणासिधु,

मैं अधिकतम किस मुंह से तुम्हारी
कृपा का बखान करूं। तुमने मेरी पत्त रख
कर आज अपना प्रण फिर पूरा किया।
मुझे पूरा विश्वास है कि तुमने मेरी मदद
के लिए पूरे पांच सौ रुपये ही भेजे होंगे,
लेकिन बुरा हो डाकखाने के मटकमे का
कि जिन्होंने मेरे पचास रुपये बीच ही में
हड़प लिये...

तुम्हारी दासी—

अब यही पत्र डाकवावू की मेज पर था।

परिवार में हर एक के लिए स्वास्थ्य सहायता



इंडुका
**केसरी
जीवन**

एक स्टाइट स्वास्थ्यकर टोनिक

यह है इंडु का च्यवनप्राश्न जिसमें स्वास्थ्य और
शक्ति के लिए २५ जड़ी-बूटियाँ और अमृत पदार्थ शामिल
करके उसे और अधिक शक्तिशाली बनाया गया है।

- कमजोरी दूर करता है
- शरीर के अवयवों को उभाड़ता है
- खांसी और गले की खराबी को
काबू में रखता है

द्वारत प्रयोग योग्य २२५ ग्राम और
४५० ग्राम के आकार के जार में उपलब्ध



इंडु

FOR
ALL TYPES OF
AGENCY WORK

CONTACT

VISSANJI KHIMJI & CO. LTD.

9, WALLACE STREET,
FORT,
BOMBAY-400 001.

स्मृति के अंकुर

लंघा आदमी

एक दिन मैं अपनी छह वर्षीया भानजी विधि के साथ बाजार गया था। बाजार से लौटते समय विधि अचानक मुझे कहती है कि 'मामाजी, वो देखो लंघा आदमी।' मैंने आश्चर्य से उस व्यक्ति की तरफ देखने लगा। मैंने देखा वह व्यक्ति लंघा एवं लंगड़ा दोनों है। मैंने विधि से पूछा लंघा क्या है? वह बोली—'मामाजी, वो लंगड़ा और अंधा है, तो लंघा हुआ कि नहीं।' अब मेरी समझ में बात आयी कि उसने लंगड़ा का लं और अंधा का धा से 'लंघा' शब्द गढ़ा है। मैं देर तक उसकी इस बात पर विचार करता रह गया।

—राजीव मिश्र, इलाहाबाद-२११००२

०००

ईमानदारी रिकशा चालक को

मेरी सहेली जयपुर शहर में शादी का सामान खरीदकर आटोरिकशा से अपने घर पहुंची। पर उसका पर्स उसी में रह गया और रिकशा वापस चला गया। कुछ देर बाद जब उसे अपने पर्स का ध्यान

आया, तो वह पसीना-पसीना हो गयी। पर्स में नगद डेढ़ हजार रुपये एवं सोने की कई चीजें थीं, जिन्हें उसने शादी के लिए बनवाया था। परेशान होकर उसने अपने छोटे भाई को रिकशावाले को ढूंढ़ने के लिए स्कूटर से दौड़ाया। लेकिन जयपुर जैसे शहर में उसे ढूंढ़ना बड़ा मुश्किल काम था। उसे तो केवल चालक का हुलिया भर याद रह गया था।

रास्ते में उसी आटो में एक दूसरी सवारी बैठी। बैठते ही चालक से उस व्यक्ति ने पूछा, 'भाई! यह पर्स किसका है?' तुरंत ही रिकशावाले ने उत्तर दिया—'आप जरा यहीं रुकिये, मैं अभी आता हूं।' कहकर वह सीधा मेरी सहेली के घर आया और बोला, 'बहनजी, आप अपना पर्स मेरे रिकशे में भूल गयी थीं। गनीमत है कि इस पर उन सज्जन की नज़र पड़ गयी, जो इसमें बैठने वाले थे, वरना न जाने किसके हाथ लग जाता।'।

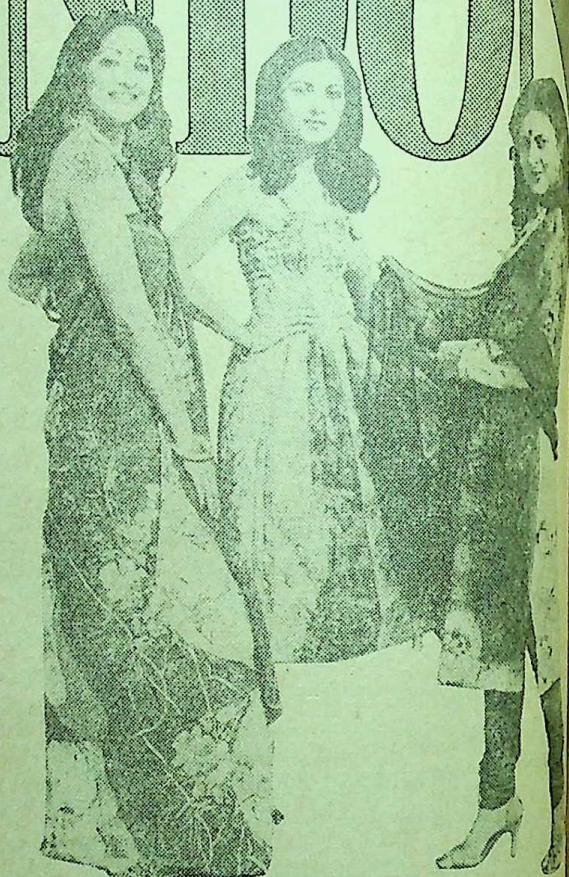
पर्स में सब चीजें सुरक्षित थीं। मेरी सहेली ने धन्यवाद देते हुए दस रुपये का नोट रिकशावाले की ओर बढ़ाया, लेकिन इंकार करते हुए वह बोला, 'बहनजी, इसकी कोई ज़रूरत नहीं। खुशी की बात यह है कि आपको अपनी सारी चीजें मिल गयीं।' और वह तुरंत चला गया।

उसकी कर्तव्यपरायणता एवं ईमानदारी देखकर मेरी सहेली का हृदय उसके प्रति श्रद्धा से भर उठा।

—स्नेहलता, अल्मोरा

हिन्दन की बहार... लाई निरवार

HINDON



हिन्दन

साहियाँ, सुटिस
शर्टिस, ईस मेटिरियल

वाधुनिक भिल द्वारा
निमित्त



DCM
TEX - LPS

५०० से भी अधिक डी सी एम रिटेल स्टोर्स पर

व्रत का चमत्कार

चंडीगढ़ से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के लोक संपर्क विभाग का एक पत्र हमारे कार्यालय को मिला जिसमें लिखा था कि 'पालमपुर (हिमाचल प्रदेश) में स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ने निर्धनों को उद्योग आदि के लिए ऋण बांटा है। हम प्रेम-पार्टी वहाँ ले जाना चाहते हैं। आप भी अपने प्रतिनिधि भेज दें। यह पार्टी चंडीगढ़ से २५ अक्टूबर को प्रातः १० बजे प्रस्थान करेगी।'

जब यह पत्र मुझे दिखाया गया तो मैंने संपादक रमेशचंद्रजी से कहा कि मैं तो जाने को तैयार हूँ, मगर इस शर्त पर कि स्टेट बैंक हमें जालंधर आकर ले जाये। इसी आशय का पत्र हमारे संपादक ने स्टेट बैंक के लोक संपर्क विभाग को लिख दिया कि हमारे दैनिक पंजाब केसरी (हिन्दी) के समाचार-संपादक श्री आज्ञा-राम प्रेम और दैनिक जगवाणी (पंजाबी) के मुख्य उपसंपादक श्री मेजरसिंह प्रेस पार्टी में शामिल हो सकते हैं, अगर उन्हें जालंधर से आकर ले जाया जाये।

इस पर स्टेट बैंक के पी. आर. ओ. श्री प्रेम भसीन अपने एक मित्र शशिकिरण के साथ २४ अक्टूबर को सायं कार लेकर जालंधर पहुंच गये। और बताया कि प्रातः छह बजे हम यहां से चल देंगे।

मैंने जब अपनी धर्मपत्नी आशा शर्मा से जब इस दूर में शामिल होने की बात

की तो उसने कहा कि कल करवा चौथ है और प्रातः चार बजे उठकर मुझे सरगी खानी है। इसलिए मैं आपको जाने नहीं दूंगी। मैं पत्नी के आग्रह को टाल नहीं सका और श्री प्रेम भसीन को कह दिया कि मैं प्रेस-पार्टी में शामिल नहीं हो सकूंगा।

मेरे सहयोगी श्री मेजरसिंह और श्री प्रेम भसीन ने मुझसे बार-बार आग्रह किया, मगर मैं नहीं गया। श्री मेजरसिंह अपने एक सहयोगी श्री मौजी उपसंपादक 'जगवाणी', श्री बलजीत पन्नु विशेष संवाददाता 'नवां जमाना पंजाबी' को साथ लेकर सुबह जालंधर से कार द्वारा चंडी-गढ़ के लिए प्रस्थान कर गये।

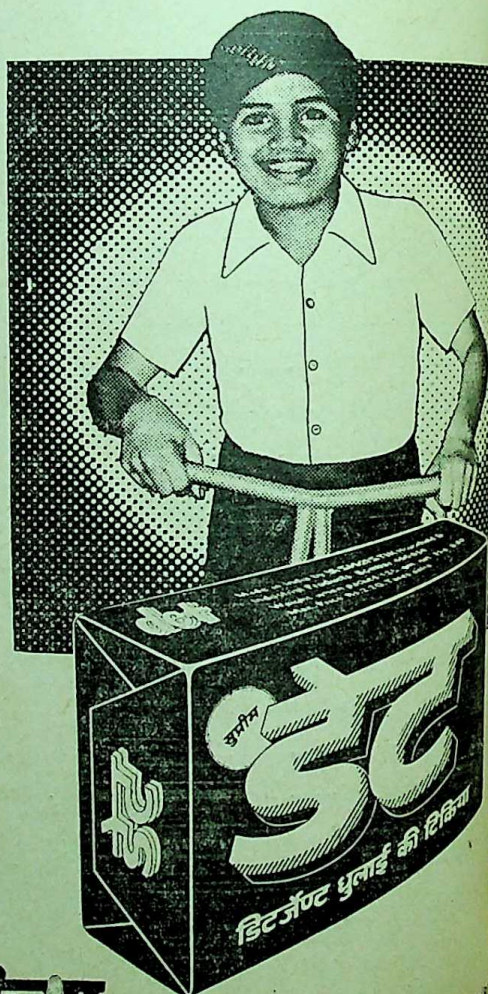
मगर जालंधर से अभी सात मील ही दूर गये थे कि चहेड़ के पुल पर कार पंजाब राज्य परिवहन की एक बस से जा टकराई और चूर-चूर हो गयी। मेजरसिंह सहित चार व्यक्ति घटनास्थल पर ही दम तोड़ गये! केवल दो व्यक्ति मौजी और शशिकिरण जीवित बचे। मगर उनको भी गंभीर चोटें आयीं।

मैंने, मेरे परिवार और मेरे साथियों ने ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद दिया कि अगर मेरी धर्मपत्नी आग्रह न करती और करवा चौथ के व्रत का वास्ता न देती तो शायद आज हमारे घर में भी शोक छाया होता! क्या यह करवा चौथ के व्रत का ही चमत्कार था?

—आज्ञाराम प्रेम, जालंधर-१४४००१

डेट टिकिया आज़माइए, सफ़ेदी अपनाइए

आज पहले से कहीं
ज्यादा लोग
डेट टिकिया की
शानदार धुलाई पसन्द
करते हैं; कहते हैं
यह चकाचौंध
सफ़ेदी लाती है.
कहीं ज्यादा किफ़ायत
करती है.



डेट टिकिया

मूर्तियों
छतों-छ
तरंगी
कहीं हि
का भी प्र
साथ ही
उद्वेलन व
देतो है
धुले-गुंथे
के हाथों
क्यों? क
परछाई
सब छुट
पूणों की
मूल
मूर्ति है..
सभी कुछ
और दर्शन
कहते हैं
मे निर्यात
लेकिन प्रा
लगाया ग
सकता...
बारी वात
सुग्ने को
गाह ने धी
हथेली पर
किसी शिल्
ही यह वा
तो बड़ा व

(पृष्ठ ८७ का शेषांश)

मूर्तियों पर छतों के गोलाकार कटावों पर, छतों-छज्जों की किगरियों पर और बारीक तराशी हुई संगमरमरी जालियों पर कहीं-कहीं हिंदू शिल्पकारों की स्थापत्य-कला का भी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है... साथ ही उस युग की भावना, जन-पद-उद्वेलन की झलक भी झांकती हुई दिखाई देती है... अन्यथा जैन विचारधारा में धूलें-गुथे इस मंदिर की अनेकों मूर्तियों के हाथों में ढाल-तलवार का टंकन भला क्यों? कई नेत्रों में कुछ अकुलाहट की सी पछाई क्यों उकेरी हुई है? शायद ये सब छुटपुट भाव-परिवर्तन युग-धर्म के पृष्ठों को छाया है?

मूल गर्भ-गृह में आदिनाथ प्रभु की मूर्ति है... जैन तीर्थ... कला-साहित्य... सभी कुछ है... सब कुछ अतुलनीय और दर्शनीय... पवित्र त्रिवेणी-रूप... कहते हैं कि इस भव्य मंदिर को बनवाने में नित्यानवे लाख रुपये खर्च हुए.... लेकिन प्रामाणिक तौर पर, क्या अंदाज़ लगाया गया है, ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता.... वैसे निर्माणकाल और खर्च वाली बात चली तो बड़ी रोचक किंवदंती सुनने को मिली.... कि एक दिन धरणी साह ने भी में पड़ी मक्खी को निकाल कर हथेली पर रख लिया.... फिर जूती पर... किसी शिल्पी ने देख लिया... सबसे कह दी यह बात.... सभी ने सोचा कि यह तो बड़ा कंजूस है.... कैसे इतना बड़ा

जिनालय बनेगा? परीक्षा लेने हेतु मुख्य शिल्पी ने कहा कि मंदिर की नींव भरने के लिए सर्व धातुओं का प्रयोग होना चाहिये... क्योंकि इतनी विशाल दीवारें, छतें टिकेंगी नहीं.... धरणीशाह ने सर्वधातुओं की ढेरियां लगा दीं.... शिल्पियों की बुद्धि हैरान.... अर्थ समझा कि मक्खी वाली घटना कृपणता नहीं थी, बल्कि बुद्धिमत्ता की यथार्थ परिभाषा थी....

इस अंतर्कथा को सुनकर सहज विश्वास हो जाता है कि वास्तव में अकूत धनराशि खर्च हुई होगी.... और बीस-बाईस वर्ष भी अवश्य लगे होंगे....

मुख्य मंदिर के एकदम सामने दो जैन मंदिर और हैं.... इनमें से एक शायद पार्श्वनाथ का है.... बाहरी पूरा भाग मोहक भंगिमाओं से रचा-बसा..... कामयुक्त युगल मूर्तियां.... मैथुन-युग्म मूर्तियां.... रागात्मकता से भरपूर... समझ में नहीं आया कि यहां यह राग-शृंगार क्यों? भगवान महावीर के अनुयायी क्या पचा पाये होंगे इन्हें? स्वीकार कर ली होगी यह भावभूमि? आत्म-दर्शन के किस प्रमुख-बिंदु को दर्शाने के लिए इन मूर्तियों को कला के ऊंचे शिखर तक माधुर्य दिया है? इनका टंकन किया? समझ से परे लगा है यह अध्याय.... एक ऊहा-पोह की स्थिति में कला के अटूट भंडार को एक बार देखकर एक अनुत्तरित प्रश्न लिये लौट पड़ती हूं। —श्रीमहावीर हा. से.

स्कूल, सी. स्कीम, जयपुर, राजस्थान

मुनिया रानी बढ़ती जाये
बढ़ने काले, बालों का जादू जगाये
मोती से सफेद दांतों को चमकाये



गाय छाप काला दन्त-मंजन
—उसके दांतों को चमकाये
मोती से सफेद व मजबूत बनाये

गाय छाप ब्राह्मी औवल केश तेल
—उसके बालों को और बने बनाये
खसमे सुहाये मन में भाये
बालों का ये कालापन, पना व चमकीलापन

सेवाश्रम का गाय छाप ब्राह्मी औवल केश तेल
और काला दन्तमंजन



प्राप्युक्त सेवाश्रम विनिर्देश

प्राप्युक्त सेवाश्रम विनिर्देश

मु. रामकृष्ण द्वारा भारतीय विद्याभवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४०००००
लिए... श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग
००००४ मे मुद्रित ।

ताज़गी की एक लहर!

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं।
जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की
लहर। आप अपने आपको कुछ और
ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।
क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके
लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी
आस पास बिखरे सूनेपन में
ताज़गी भर देते हैं।



जियाजी

सूटिंग-शर्टिंग

कॉटन प्रिंट्स

जियाजीराव कॉटनमिल्स लिमिटेड
बिलां नगर, ग्वाल्तर (म.प्र.)



मुस्कान से आबाद है जहाँ



उन्हे दीजिये प्यार भरी देखभाल

**पारले ग्लुको-
स्वाद में निराले
शक्ति से भरपूर**

दूध, गेहूं, शक्कर और ग्लूकोज के
स्वाद और पौष्टिक गुणों से भरपूर



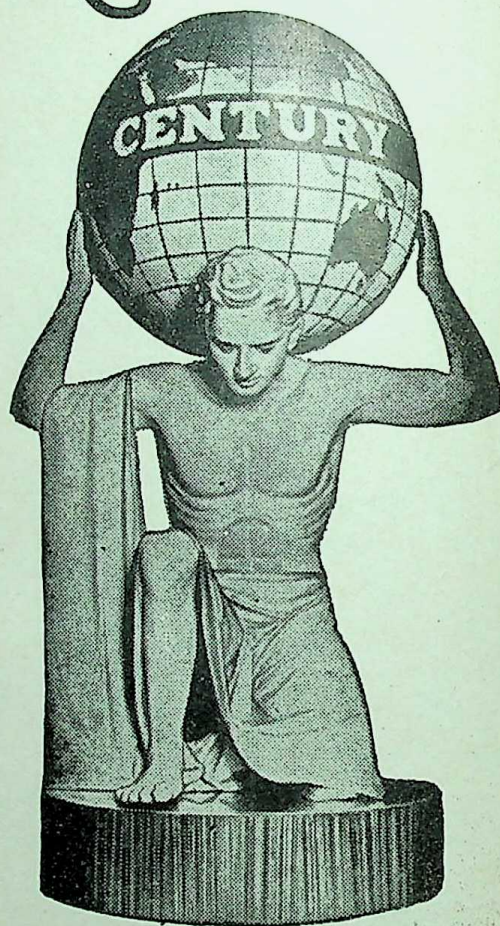
न व नी न

हिन्दी डाइजेस्ट

27 APR 1981

अप्रैल, १९८१

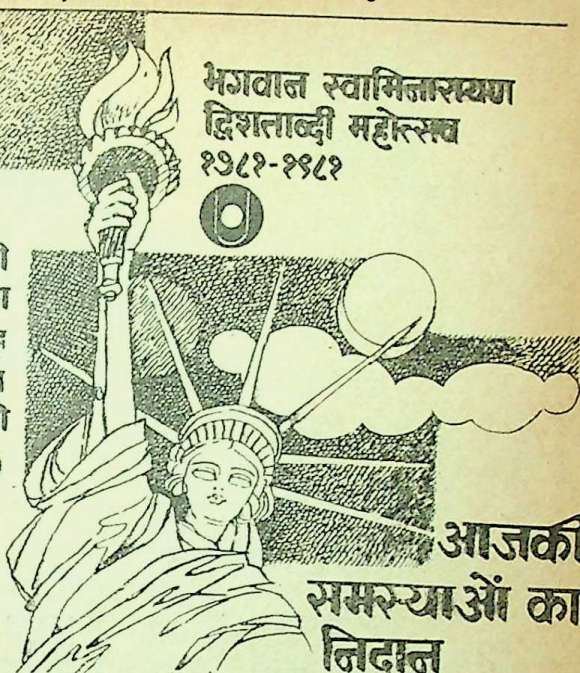
सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड. बॉम्बे



शामिनारायण गौतम गाथा - २८

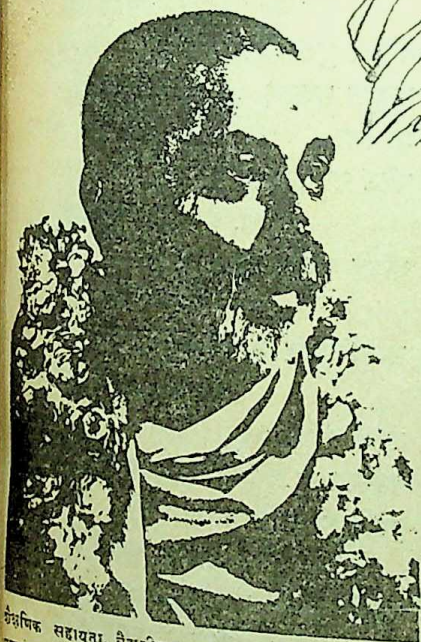


प्रयोग: बोधसण्वासी
श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था

शाहीबाग अहमदाबाद

अध्यक्ष: ब्रह्मस्वरूप

स्वामीश्री नारायणस्वरूपदासजी
(प्रमुख स्वामी)



आजकी समस्याओं का निदान

इंग्लैंड के होथो हवाई अड्डे पर, योगीजी महाराज ने, अमरीका में आवास कर रहे सत्संगी युवकों के आशीर्वाद दिया कि प्रमुख स्वामीजी अमरीका पधारेगे। युवकों ने योगीजी महाराज के अनुगामी प्रमुख स्वामी की प्रेरणा से 'न्यूयार्क' शहर में सुन्दर संस्कारधाम - मंदिर का निर्माण किया, प्रमुख स्वामी ने उस देश में शुभागमन किया। पश्चिम के उस लक्ष्मीपत्र खंड को सत्संगसंपन्न किया। पश्चिम के धर्मधरो पर्व राजनीतिज्ञों से भेट कर, पूर्व और पश्चिम का सांस्कृतिक सेतु सुदृढ़ किया। पश्चिम की प्रजा को सच्चे सत्त के दर्शन हुए। इस प्रकार पूर्व, मध्य और दक्षिण अफ्रिका, इंग्लैंड, अमरीका, केनेडा, आस्ट्रेलिया और मध्यपूर्व के देशों में भी सत्संग का विकास हुआ।

आज, प्रमुख स्वामी की उत्प्रेरणा में देश विदेश में हजारों याल-युवा मुमुक्षु सत्संगमय जीवन जी रहे हैं। अकाल या संकट-प्रस्तेों को राहत, विचारधियों को अकाल या संकट-प्रस्तेों को राहत, जनजातियों में संस्कार - सिचन, औपचारिक, संस्कृत, साहित्य - प्रकाशन, संगीत तथा चित्रकला को सत्संगसमभाव और सर्वजीव समादर - यह है उनकी विशिष्ट भावना।

G. N. KANSARA S. J. G. 28

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

वीरेन्द्र कुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र :

फूलों का रंगोत्सव
अप्रैल के आकाश में

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३०; अंक :

हिंदीतर भाषियों की हिंदी-सेवा
आलोक भट्टाचार्य
नमकहलाल (तुर्की कहानी)

इदरिस शाह

परलोक-वार्ता-५

पं. गोपीनाथ कविराज
नियति (पोलिश कहानी) ...

मानव का रूपान्तरण

परिचर्चा

नोबल पुरस्कार विजेता

अब्दुस सलाम

हंसकुमार

प्रार्थना

क्रोध पर विजय

डॉ. प्रेमचंद्र गोस्वामी

गांधी और टॉल्स्टॉय

ख्वाजा अहमद अब्बास

सम्पत्तिवाद की समर्थक सरकार

टॉल्स्टॉय

ताओ उपनिषद्

कविता में लौकिक और परा-

लौकिक का विभाजन नहीं

वीरेन्द्र कुमार जैन

कस्मै देवाय हविषा विधेम

जगदीश प्रसाद कर्ण

लेखक की पत्नी

विष्णु प्रभाकर

बागन में बीथिन में.....

महाकवि कालिदास



अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित पूर्णतया निष्ठा, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी धर्मादा न्याय, संस्थापक : कुलरति क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री धरमवी म. खटाऊ, उपाध्यक्ष : श्री निरधारीलाल मेहता; श्री जयमुखाय हार्दय ।

महोगोमी प्रतिष्ठान

१- मुम्बईवेरी संस्कृत महाविद्यालय २-शास्त्रीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३-सत्य संस्कृत परीक्षा विभाग ४-गोला विद्यालय ५-मुम्बई-लाल गोपनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रतिष्ठान ६-मुम्बई सरस्वती मंदिर (पुस्तकालय) ७-बल्लभजी रामजी बाल पुस्तकालय ८-भारतीय संगीत निशापीठ ९- भारतीय नर्तन निशापीठ १०-भारतीय इतिहास विभाग ११-प्रकाशन मंदिर, पुस्तक मुद्रिबिंदी, मुम्बई साहित्य, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या प्रामाणिक), भक्त्युत्तम (अंग्रेजी पाठिक), सचिद (संस्कृत प्रामाणिक), नवनीत हिन्दी थैलैन्ट (हिन्दी मासिक), नवनीत समर्पण (गुरुदासी मासिक) १२-प्राचीन अंतर्दृष्टि और आधुनिक आविष्कार योजना १३-औपनिषदिक योजना १४-राजकी मतवाचिकी समिति १५- म. म. कला कालेज और न. म. विज्ञान निगलन संस्थान (अंग्रेजी) १६-बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (नयी दिल्ली) १७-हजारीलाल सोमानी कालेज, कला एवं विज्ञान (चोपाटी, बम्बई) १८- सरदार पटेल अभियांत्रिकी कालेज (अंग्रेजी) १९- रणछोड़लाल अचलताल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०- रणछोड़लाल अचलताल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१-जसोदाबेन वाणिज्य कालेज, (डाकोर) २२- कला एवं विज्ञान कालेज (डाकोर) २३- स्वामीनारायण पारिवर्तिक (डाकोर) २४- श्री अमृतलाल कानिदास ज्योति महिला कालेज (जामनगर) २५- व. स. मेहता विज्ञान कालेज (भरवारी) २६- राजेन्द्र प्रसाद संग्रहण एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मुम्बई) : प्राणलाल देवकरन नानजी संग्रहण एवं प्रबंध-विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंग्रहण कालेज, नयी दिल्ली; हरिलाल भगवत जनसंग्रहण कालेज अहमदाबाद तथा बंगलौर; सोमानी जनसंग्रहण कालेज, एरनाकुलम; बड़ोदा, बड़ोदग, गुदर, हेदराबाद, मंगलौर तथा त्रिपुर में स्थित जनसंग्रहण कालेज २७- जवाहरलाल नेहरू भाषा अकादमी, नयी दिल्ली २८- अ. ह. वाडिया स्कूल (अंग्रेजी) २९- बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याग्रम) बड़ोदा तथा भरवारी ३०-भवन का विद्या मंदिर, एलामस्क, एरनाकुलम ३१- कोचीनमार्ग पर भवन का स्कूल, कोचीन ३२- बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याग्रम) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३- भवन का पब्लिक स्कूल, भेल, रामचन्द्रपुरम्, हेदराबाद ३४- संयुक्त संघाएँ : संयुक्त विद्यार्थ परिषद; भारतीय स्त्री सेवा संघ; ज्योतिष परिषद (बंबई) ३५- संस्कृति पाठ्यक्रम पुस्तकें ।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलौर, बड़ोदा, भोपाल, मुम्बई, कलकत्ता, चंडीगढ़, कोयंबटूर, डाकोर, दिल्ली, एरनाकुलम, गुदर, हेदराबाद, जमनगर, जामनगर, काकोनाडा, कानपुर, मासत, मडुरई, मंगलौर, मुकुंदपुर, नागपुर, सिलोन, बीनगढ़, त्रिपुर, विद्याग्राम, लंदन (संयुक्त राज्य) ।

भारतीय विद्या भवन

के.एम.मुन्शी मार्ग, चोपाटी, बम्बई-४००००७

कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

अप्रैल १९८१

बड़ा कौन है ? . . .

गिरिजाशंकर त्रिवेदी ७४

कुसूर पिता ही का (बंगला कहानी)

अबुल हस्नात ७६

मोहम्मद करीम छागला

हरिमोहन शर्मा ८८

आज हमें फिर गांधी की जरूरत है

प्रभुदास पटवारी ९२

भगवान का पुत्र

श्रीअरविन्द ९६

दूब के तन्तु (हिंदी कहानी)

डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा ९७

डॉक्टर पेशा . . .

डॉ. शांतिलाल मेहता १०४

चतुर्थ आयाम

श्रीमान विश्वबंध १०८

तीन कविताएं

नन्दकिशोर आचार्य ११६

गरीब (पंजाबी लघुकथा)

पांथी ननकानवी ११९

नारी कब तक अबला

वन्दना १२०

विज्ञान और अध्यात्म

मुनिश्री अमरेंद्र विजयजी १२५

स्मृति के अंकुर

हरिओम माथुर,

विनोदकुमार लाल १५७

चित्रसज्जा :

ओके, शेणै, राणा, संतोष

जड़िया, चंदुलाल सांकला ।

हिंदीतर भाषियों की हिंदी-सेवा

आलोक भट्टाचार्य

भूगोल के ग्लोब पर केवल भारत ही एक ऐसा महादेश है, जिसमें एकता और अनेकता की एक विलक्षण संयुति दिखायी पड़ती है। एक में अनेक, और अनेक में एक : यही भारत के आर्ष दृष्टाओं का आधारिक मंत्र-दर्शन है।

भारतीय आत्मा के एकत्व की भाषा यदि हिंदी है, तो भारतीय मन का वैविध्य उसके अनेकों प्रदेशों की विभिन्न भाषाओं और विशिष्ट प्रजातीय अस्मिताओं में व्यक्त पाया जाता है।

जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है, वे जब हिंदी में भी सम्पूर्ण प्रभुता से लिखते हैं तो उनकी हिन्दी-सेवा भारत की अखण्ड राष्ट्रियता, एकता और विविधता का समग्रात्मक प्रतिनिधित्व करती है।

बंगाली, महाराष्ट्री या गुजराती यदि हिन्दी को अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम बनाता है, तो जरूरी नहीं कि वह अपनी प्रादेशिक भाषा और अस्मिता को भुला दे। आलोक भट्टाचार्य का यह लेख इस संदर्भ में बहुत सार्थक और महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी के अंधे अहंकारियों को यह सही दृष्टि दे सकेगा।

बंबई में बसे हिंदी के एक जाने-माने बुजुर्ग समीक्षक से मैंने हिंदीतर भाषियों की हिंदी सेवा विषय पर बात करनी चाही, तो वे शुरू हो गये—‘मुझे समझ में नहीं आता यह क्या शोर है? खाते हैं सब हिंदी का पैसा, नाम कमाते हैं सब हिंदी से, और बने रहते हैं अहिंदी-भाषी या फिर हिंदीतर भाषी... मुक्ति-बोध क्या हिंदी-भाषी नहीं थे...? प्रभाकर माचवे अहिंदी-भाषी हैं?’ उन्होंने और भी बहुत कुछ कहा—मैं सुनता रहा। स्वयं

बंगला-भाषी होने के नाते इस प्रश्न ने हमेशा ही काफी परेशान किया है। लोग ऐसा कहते कभी नहीं चूके कि ‘हिंदीतर भाषी’ या ‘अहिंदी-भाषी’ में इसलिए लिखते हैं कि हिंदी में है। भाषा तो स्वयं विराट् संपत्ति होती है। भाषा के नाम पर इस तरह आर्थिक सतर्कता और चौकसाप हमेशा ही आहत करता रहा है। पर विवश हुआ हूँ कि इसी आर्थिक सतर्कता ने हिंदी में सारी गड़बड़ी

वा

ता और
अनेकवांकि
मताओंलिखते हैं
वधताका प्रम
स्मिता को
महत्त्व

न प्रश्न

या है।
चूके किभाषी
हिंदी में

पति हो

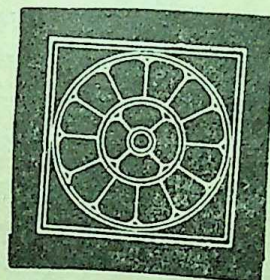
इस त

कज्ञान

है। त

आर्थिक
बड़ी

रखी है। हिंदी-भाषी कुछ नासमझ तथा-
कथित बुद्धिजीवियों के स्वार्थजन्य और
द्वेषपूर्ण कुछ अत्यंत ही गलत विचारों
और वक्तव्यों के कारण ऐसा वातावरण
धोरे धोरे बनता रहा है, जिससे हिंदी को
बहुत ज्यादा नुकसान पहुंचा है। अपने
ही घर में हिंदी के लिए विरोध की स्थितियां
पैदा की गयी हैं। विरोध कितना था या है,
यह तो नहीं पता, पर हिंदीवालों में इसका
शोर इतना अधिक है कि लगता है हिंदी
अब मरी और तब मरी ! अपवादों की
वात अलग है, पर इस बे-
वजह केशोर ने एक दीवार
अवश्य खड़ी की है। हिंदी-
तर भाषी को लगता है कि
क्या वास्तव में हम लोग
हिंदी का विरोध कर रहे
हैं? प्रत्यक्ष विरोध दिखायी
नहीं देने पर डरता है कि



कहीं अवचेतन में तो नहीं है यह हमारा
हिंदी विरोध ? वरना आखिर यह इतना
बड़ा शोर कैसा ? इतनी बहसें क्यों ? 'हिंदी
बचाओ .. हिंदी बचाओ' के ये नारे क्यों ?
मैंने इस विषय पर बहुत सोचा है। बंगाल
और तमिलनाडु जैसे माने हुए बौद्धिक
प्रांतों की सारी सांस्कृतिक और साहित्यिक
कृपाइयां क्या इतनी ही थोथी हैं कि वे
संस्कृत जैसी भाषा से सीधी निकली देव-
नागरी जैसी विज्ञानसम्मत, ध्वनिशास्त्र
के सारे नियमों की कसौटी पर खरी उतरने
वाली लिपि में लिखी जाने वाली, भारत

में सबसे अधिक पढ़ी-लिखी-बोली-समझी
जाने वाली भाषा का विरोध करेंगे ? यदि
भाषा संबंधी उनके विचार यही हैं, तो
फिर देश-विदेश में इन दोनों प्रांतों को
मिली वह मान्यता क्या कोई मतलब नहीं
रखती, जिसके अनुसार ये प्रांत साहित्य,
कला एवं संस्कृति की विशेष समझ रखते
हैं ... ?

जहां तक तमिलनाडु का प्रश्न है,
वहां हिंदी-विरोध केवल ग्यारह प्रतिशत
है और इस ग्यारह प्रतिशत की संख्या में

एक भी आदमी ऐसा नहीं
है, जो शुद्ध राजनैतिक न
हो। अल्पसंख्यकों के वोट
की गंदी राजनीति ने
तमिलनाडु में हिंदी-
विरोध का हौवा खड़ा
कर रखा है, वरना एक
भी आम आदमी वहां ऐसा

नहीं है, जिसे हिंदी से विरोध हो। अब यदि
मात्र ग्यारह प्रतिशत लोग (राजनैतिक
दल) क्षुद्र स्वार्थ के लिए हिंदी-विरोध का
नाटक करते हैं और उनकी इस धूर्तचाल
में फंसकर हिंदी-भाषी हर तमिल-भाषी
को हिंदी-विरोधी मानता-कहता है, तो
क्या यह स्वयं अपने पांवों पर कुल्हाड़ी
मारना नहीं है ? हिंदी विरोधी आंदोलन
की दुहाई यदि ये तथाकथित 'हिंदी प्रेमी'
देते हैं, तो क्या मैं पूछ सकता हूं कि आज़ादी
के बाद भारत में कितने ऐसे आंदोलन
हुए जो सही माने में जनांदोलन कहे जा

सकते हैं ? आंदोलन तो शुद्ध रूप में 'राजनैतिक व्यवस्था' है हमारे देश में, विलकुल प्रायोजित । इन आंदोलनों से देश की आम जनता का भावात्मक लगाव कितना होता है, यह शोध का विषय हो सकता है । जनता लाइब्रेरी और बसें नहीं जलाती । जनता नारे नहीं लगाती । यह सब तो राजनैतिकतत्त्वों की सुचिंतित और सुनियोजित कार्यप्रणाली से होता है । ऐसे में हिंदी विरोध के लिए तमिलनाडु को कोसने से पहले हमें यह सोचना चाहिये कि स्वयं उत्तरप्रदेश में हिंदी के औचित्य के विरुद्ध वक्तव्य देने वालों की संख्या ग्यारह प्रतिशत से अधिक है ।

बंगाल में हिंदी का विरोध नहीं है । हां, हिंदी के लिए अपनायी गयी सरकार की नीति का वहां जबरदस्त विरोध है । बंगाल का तर्क यह है कि भाषा भारत के लिए कोई समस्या नहीं है । आज देश की पहली समस्या रोटी है, कपड़ा है, मकान है । लिपिहीन बोलियां भी जब भारत में पूरे ठाठ-ठमक से ज़िंदा हैं, तब हिंदी के लिए इतनी चिंता क्यों ? क्यों इसके लिए गरीब देश के पैसे का एक बहुत बड़ा भाग प्रचार-प्रसार-उन्नति के नाम पर बहाया जाये ? भाषा में यदि शक्ति हो, तो स्वयं फूलेगी-फलेगी-बढ़ेगी ।

हिंदी में यह शक्ति है । आज यदि देश में सबसे ज्यादा पढ़ी-लिखी-बोली-समझी जानेवाली भाषा हिंदी है, तो यह सरकार द्वारा करोड़ों रुपयों के खर्चे से किये गये

हिंदी प्रचार-प्रसार के कार्यक्रमों के कारगर नहीं । अपनी निजी शक्ति से हिंदी ने स्थान पाया है ।

दरअसल 'हिंदी-हिंदी' के इस गोर से हिंदी का सबसे ज्यादा अहित किया है ।

अब कुछ विचार 'हिंदीतर-भाषी' 'अहिंदी-भाषी' शब्दों पर भी हो जायें । हिंदी मातृभाषा वाले हिंदी-भाषी हैं । प्रकार मातृभाषा के अनुसार तेलुगु-मराठी-भाषी आदि-आदि हैं । यदि तमिल-भाषी हिंदी सीखकर हिंदी में लिख पढ़ता है, तो वह हिंदी-भाषी नहीं जाता । वह तमिल-भाषी हिंदी साहित्यकार हो सकता है । हिंदीतर-भाषी साहित्यकार भी यदि उसे कहें तो नहीं होगा । एक भाषा दूसरी भाषा तो 'इतर' होती ही है, तो ऐसे में 'अहिंदी-भाषी' शब्दों पर आपत्ति क्यों ? या 'हिंदीतर' शब्दों पर आपत्ति क्यों ?

जरूरत है उदार दृष्टिकोण की, विचारधारा की, ग्राह्यता की, टोस-विश्वास की, दूसरों पर विश्वास की, समझ की, स्नेहपूर्ण सह-अस्तित्व की, वरना हिंदी-भाषी, हिंदी साहित्यकार हिंदीतर-भाषी हिंदी साहित्यकार के दो गुट और बन जायेंगे । यों भी दलों, बहसों आदि में फंसकर हिंदी की दशा आज दयनीय है । ऐसे में संभव निःस्वार्थ भाव से एकता की पहलकदमी करने की जरूरत है ।

-४०-३, पुजारी ब्लॉक, सागाँव, पो. पाड़ा, डोंबिवली (पूर्व), ४२१९८१

तुर्की के सूफी लेखक इदरिस शाह की एक कहानी का संक्षिप्त रूपांतर



नमकहलाल

फ्रांस के शहंशाह को हिंदुस्तान में अपने ऐलची की हैसियत से भेजने के लिए किसी लायक आदमी को जरूरत थी। बहुत सोच-समझकर उन्होंने इस

काम के लिए मुल्ला नसरुद्दीन को चुना।

इससे वे दरबारी, जो खुद हिंदुस्तान जाने के लिए आस लगाये बैठे थे, मन-ही-मन बहुत नाखुश हुए। उन्होंने एक जाल चली, और नसरुद्दीन के घर में चोरी करवाकर, उन सब रत्नों और मणियों को जप्त कर लिया,

जो शहंशाह ने हिंदुस्तान के मुगल बादशाह को नजराने में देने के लिए मुल्ला नसरुद्दीन को दी थीं। वे रत्न और मणियां उन्होंने आपस में बांट लिये, और उनकी पेटी में पत्थर भरवा दिये। यह सब करने के बाद, वे मुल्ला को बधाई देने के लिए उनके घर पहुंचे।

बधाई देने का नाटक करने के बाद, एक दरबारी ने मुल्ला से कहा, 'ऐलची की हैसियत से बाहर जाने का आपको यह पहला मौका है, हुजूर! आप इजाजत

दें, तो बतौर एक दोस्त आपको कुछ सलाह देने की गुस्ताखी करना चाहता हूं।'

'फरमाइये,' मुल्ला ने कहा।

'तो पहली बात तो यह है कि हिंदुस्तान में आपको सबसे हमेशा बड़ी नम्रता से पेश आना होगा। यह विलकुल नहीं जाहिर करना होगा कि आप बड़े

आदमी हैं।' हिंदुस्तान पहुंचकर जितनी मस्जिदें आपको दिखायी दें, उनमें जाकर अपने लिए भीख जरूर मांगियेगा। दूसरे मुगल बादशाह को हमेशा 'पूर्णिमा का चांद' कहकर संबोधित करना।'

'पर हमारे शहंशाह को भी तो इसी



चित्र : संतोष जड़िया

तर्ह संबोधित किया जाता है ?'

'हिंदुस्तान में भला कौन इस बात को जानता है ?'

'जी, शुक्रिया ! शहंशाह ने भी कहा था कि मैं हिंदुस्तान पहुंचकर कोई ऐसा काम न करूं, जिससे मुगलबादशाह नाराज हों।'

०००

हिंदुस्तान पहुंचकर, मुल्ला को जो पहली मस्जिद दिखायी दी, उसमें जाकर वे अल्ला के नाम पर अपने लिये चंदा मांगने लगे। लोगों ने उन्हें काफी रकम दी। इसके बाद, बलूचिस्तान से लेकर दिल्ली तक उन्होंने हर मस्जिद में चंदा मांगा, और इस तरह, दिल्ली पहुंचते-पहुंचते अच्छी-खासी रकम जमा कर ली। जब दरबारियों ने यह बात सुनी, तो वे बड़े खुश हुए, क्योंकि वे जानते थे कि इस तरह मुल्ला ज़लील हुए बिना नहीं रहेंगे।

पर, अल्लाहताला को कुछ और ही मंजूर था। जिन लोगों ने मुल्ला को चंदा दिया था, उन्हें कारोबार में फायदा होने लगा, और जिन्होंने ऐसा नहीं किया था, उन्हें बड़ा नुकसान हुआ।

मुल्ला के बिलावजह मस्जिदों में चंदा मांगने की खबर जब मुगलबादशाह को मिली, तो उन्हें बड़ी हैरत हुई। उन्हें लगा कि मुल्ला या तो कोई पहुंचे हुए संत हैं, या अव्वल नंबर के धोखेबाज। तभी, उनके एक जासूस ने आकर इत्तिला

दी कि फारस में मुल्ला की कोई नहीं करता, और उन्हें वस यू ही ऐसी बनाकर भेज दिया गया है।

मुगल बादशाह ने इस खबर पर मतलब इस तरह लगाया कि फारस सब लोग इतने ज्यादा समझदार हैं, उनमें से कोई भी हिंदुस्तान का ऐसा बन सकता है। इसके माने यह हुआ कि फारस पर हमला करने का अपना इरादा हमें मुल्तवी करना होगा, क्योंकि मुल्क का आम आदमी इतना होशियार है, उसे जीतना आसान न होगा।

और एक दिन वह भी आया, जब गधे पर सवार मुल्ला ने दिल्ली में प्रवेश किया। उनके पीछे था उनका एक नौकर जिसके साथ चल रहे हाथी पर उस नौकर की थैलियां रखी थीं, जो मुल्ला ने मस्जिदों में चंदे मांग-मांग कर जमा की थीं।

मुगल दरबार में, अपने गधे से उतर कर मुल्ला ने मुगलबादशाह को पूजा का चांद' कहकर संबोधित किया, फिर वह पेटो खोली, जिसमें पहने हुए और मणियां भरी थीं। उसमें रत्नों के पर पत्थर देखकर, उन्होंने तिर्रिफ कहा, 'मुझे इस बारे में कुछ नहीं है। कहने से कोई फायदा भी नहीं है।'

उधर मुगल बादशाह ने चुपचाप वज़ीरों से पूछा कि बतौर नजराना पत्थर भेजने से फारस के शहंशाह क्या मतलब हो सकता है ? वज़ीरों ने आपस में फैसला करके उन्हें राय

नवनीत

८

इसका मतलब यह है कि फारस के शहंशाह आपको आसमान के अलावा, जमीन का भी मालिक मानते हैं।

बादशाह ने मुल्ला से कहा, 'हमारे पास बेशुमार दौलत है। इसलिए हमें दौलत का कोई लालच नहीं है। हमें शहंशाह का यह अनोखा नज़राना बखुशी मंज़ूर है।'।

मुल्ला को याद आया कि उनके दर-बारीमित्रों ने कहा था कि नज़राने की पेटी पेश करते वक्त कहना, 'आपके लिए हमारे पास सिर्फ यही है।' उसने यह वाक्य भी बोल दिया।

इसके अर्थ यह हुआ कि 'फारस, इससे ज्यादा जमीन हमें देने के लिए क़तई तैयार नहीं है, बादशाह के वज़ीरों ने वाक्य के अर्थ लगाकर बादशाह को बताया।

बादशाह ने मुस्कराकर मुल्ला से कहा, 'हम तुम्हारे शहंशाह का मतलब समझ गये। पर, यह बताओ कि हम पूर्णिमा के चांद हैं, तो तुम्हारे शहंशाह कौनसे चांद हैं?'

'नया चांद।'

बादशाह के वज़ीरों ने फुसफुसाकर कहा, 'पूर्णमा का चांद नये चांद से बड़ा होता है, और ज्यादा रोशनी देता है।

इसलिए फारस के शहंशाह आपको अपने बड़ा मानते हैं।'

'हम तुमसे और तुम्हारे शहंशाह से बहुत खुश हैं। उनसे कहना 'पूर्णमा का चांद' नये चांद को सलाम कहता है।'

बादशाह ने मुल्ला को विदा करते हुए कहा।

०००

मुल्ला जब फारस पहुंचे, तो शहंशाह ने उनका भरे दरबार में स्वागत करते हुए कहा, 'मुल्ला, दिल्ली के अपने जासूसों से हमें खबर मिल चुकी है कि तुमने अपने गैर-मामूली तौर-तरीकों से मुगल बादशाह पर इतना असर डाला कि उन्होंने फारस पर हमला करने का अपना इरादा बदल दिया। आगे से सब लोग तुम्हें 'साफिर' (राजदूत) कहकर पुकारेंगे।'

खास वज़ीर अनवर ने शहंशाह से अर्ज़ किया, 'लेकिन, हुज़ूर, इस आदमी ने आपकी तौहीन की, और आपको 'नया चांद' और मुगल-बादशाह को 'पूर्णमा का चांद' कहा।'

'हां, मुल्ला,' शहंशाह ने अचानक नाराज़ होकर कहा, 'तुमने हमारी यह तौहीन क्यों की?'

'क्या आप नहीं जानते सरकार कि पूर्णिमा का चांद ढलान की ओर होता है, और नया चांद बढ़ोतरी की ओर।'

शहंशाह का मूड फिर पहले जैसा हो गया। उन्होंने कहा, 'मुल्ला! आज से तुम हमारे खास वज़ीर हुए। खास वज़ीर अनवर को गिरफ्तार किया जाये।'

'शुक्रिया, हुज़ूर, मुझे खास वज़ीर नहीं बनना। कौन जाने, आप इसी तरह मुझे भी मेरे पद से हटा दें तो....'



परलोक वार्ता-५

इस जन्म के नर-नारी युगल परलोक में फिर मिलते हैं

प्रस्तोता : महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कवि

हेमांगिनी जिस स्वर्ग में है, आज वहाँ उसको देखने गया था। देखा, उसने बहुत उन्नति की है। मालूम हुआ शीघ्र ही और भी उच्च स्थान पर अधिकार कर सकेगी। उसने माखन की बात मुझसे पूछी। मैंने कहा, 'एक दिन उन्हें तुमसे मिलने को ले आऊंगा।' यह सुनकर उसने मुझे धन्यवाद दिया। इसके बाद माखन के पास जाकर देखा। वे बड़ी शांति और आनंद में हैं। चेहरा बहुत उज्ज्वल हो गया है। इस समय अष्टम में हैं, किंतु मैं जिस स्थान में हूँ उससे बहुत दूर हूँ। उनके साथ कभी-कभी मेरी भेंट हो जाती है। बाबा विश्वनाथ ने उन्हें कठिन रोग से मुक्त करके शांति के कुंज में स्थान दिया है। उनका धर्म में मन था, भगवान में विश्वास था। पुष्प की सुरभि चारों ओर भरी हुई है। वे कठिन रोग-यंत्रणा से कातर हो गये थे, यह पूर्व कर्म का फल है। मृत्युलोक में ही रोग-भोग करके वे शुद्ध सुवर्णमय हो गये।

०००

अब युग्मात्मा की बात कह रहा हूँ।

नवनीत

१०

प्रायः देखने में आता है और सुनने में भी आता है कि पृथ्वी में यथार्थ नर-पत्नी का मिलन नहीं होता। उसका कारण यही है कि पहले की युग्मात्माएं न मिलती। इस लोक में जितने पति की प्रतीक्षा और स्त्रियां पति की प्रतीक्षा में रहीं, वे केवल युग्मात्मा के नि

सृष्टि के आदि में अद्वयतत्त्व के रूप में एक ही मूल पुरुष था। फिर इच्छा से वही पुरुष और प्रकृति इन रूपों में विभक्त हो गया। इस विभक्त रूपों में दोनों पृथक् अस्तित्व रखते हुए वस्तुतः नित्ययुक्त बने रहे। किंतु प्रकृति में प्रवेश करते ही वे पृथक् हो गये यहीं से जीव की संसार-यात्रा शुरू हुई। इस चक्र में कभी-कभी अपनी प्रकृति से वियुक्त होने के बाद भी उससे युक्त हो जाते हैं, अन्यथा प्रकृति से युक्त होते हैं। जब तक प्रकृति से स्थायी योग न हो, तब परमस्थान में जाने का उपाय न मिलता। वशात् युग्मस्थापन हो सकता है।

साध्वी, पतिव्रता नारी को

जाकर अपने अर्द्धांग के लिए अकेले प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इसी प्रकार पति को भी वहां अकेले रहकर अपनी अर्द्धांगिनी की तब तक राह देखनी पड़ती है, जब तक वह भवधाम त्यागकर पतिलोक को प्राप्त नहीं होती। साधारण लोगों में यह मिलन सुदीर्घकाल में होता है। ऊर्ध्वभूमि में इस मिलन के बाद प्रकृति और पुरुष का अनुप्रवेश और प्रकृति में पुरुष का अनुप्रवेश होता है—अवश्य ही युग्म स्वरूप में। पुरुष में भी पुरुष और प्रकृति दोनों हैं, प्रकृति में भी, फिर भी प्रधान्य अप्राधान्य का प्रश्न रह जाता है। इसके बाद दोनों समप्रधान हो जाते हैं। उसी का नाम योग है। अंत में दोनों एक हो जाते हैं। यह अद्वैत स्थिति है।

यहां प्रकृति-पुरुष का भेद नहीं है, शिव-शक्ति का भेद नहीं है। एक अखंड चैतन्य-मय आकार है। वह माता भी है, पिता भी। यहां माता-पिता, पति-पत्नी का दृष्टांत लेकर कहा गया है, किन्तु इसे अनंत दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। वैष्णव लोग अनेक भाव से इसका वर्णन करते हैं। इनमें से कहीं एक आश्रय है, एक विषय है और कहीं दोनों ही आश्रय हैं और दोनों ही विषय। अंत में दोनों मिलकर एकाकार हो जाते हैं। पृष्ठभूमि में रहता है, निराकार महाप्रकाश।



चित्र : संतोष जड़िया

इसके अनंतर साकार-निराकार भी एक हो जाता है, वह न साकार है न निराकार, साकार है निराकार भी। कोई विशिष्ट प्रकार नहीं है। जो चाहिये सोई आकार है। वह उभयालिंग है, अथच अलिंग भी है।

सृष्टि के आदि में पूर्ण ब्रह्मावस्था से किस प्रकार विकास के क्रम में युग्मात्मा का स्वरूप निर्माण हुआ, निम्नांकित चित्र से यह स्पष्ट हो जायेगा।

जन्म के बाद कितने जन्म से स्तरांतर में, नरक से नरकांतर में घूमते रहते हैं। पृथ्वी में जाकर दो-बार जन्म का पाप-पुण्य लेकर दैहिक आकृति के अनेक परिवर्तन होते हैं। किन्तु भीतर का भाव

PROGRESSIVE ENGLISH MEDIUM RESIDENTIAL SCHOOL

(International Education Centre)

Conducted by

SHREEVALLABH SHIKSHAN SANGEET ASHRAM,
KILLA—PARDI, (DT. VALSAD)

GUJARAT—396 125.

An ideal centre of education for those who.....

value Bharatiya Culture,

Love a healthy life in peaceful nat
surroundings,

patronise Art and Music,

emphasise the need for good cond



and character,

like training n Yoga, Gymnastics, Sports and Games.

Classes at present :

Pre-Primary wing (Nursery—SKG)

Primary wing (Standards I to VII)

Classes Proposed : Upto Standard XII)

Equal importance is given to Curricular, Co-curricular and E
curricular activities, leading to an integrated development of
child's personality.

Physical, mental and moral development of each individual
is progressed by competent and experienced teachers both in
school and the hostel.

Spacious buildings, large playgrounds, dormitories with m
amenities, wholesome vegetarian food, fresh milk from Ash
own Gaushala; library; provision for outdoor and indoor g
Debating Society; Philatelic Club, Science Centre, S
Playground; Dramatics etc.

Registration for the next session commencing in June already
For further details apply to Principal.

वही रहता है। कितने जीव युग्म तो पाप में बहुत अवनत हो गये और इसीलिए उनका उच्च ज्ञान और कर्मशील हो नहीं पाया। इससे पति-पत्नी मिलन में व्याघात उत्पन्न हो गया। अनेक जन्म के बाद जब निष्पाप होकर यहां आ सकेंगे, तभी उस युग्मात्मा का यथार्थ मिलन होगा।

०००

और एक दिन दूसरे स्थान में गये। यहां बहुत महात्मा लोग रहते हैं। बड़ी सुंदर वस्तुएं यहां हैं और अति उज्ज्वल आलोक। सुना है यह स्वर्ग की दूसरी ओर का सिरा है। यहां से आत्माएं सूक्ष्मदेह छोड़कर अपने कर्मानुरूप जड़देह लेकर जन्म लेती हैं। हम लोग जहां रहते हैं उसकी अपेक्षा ये सब आत्माएं अन्य प्रकार से गठित हैं। इन लोगों का भिन्न प्रकार का स्वभाव है। आत्माओं के भीतर भिन्न-भिन्न भाव हैं—कहीं दैहिक, कहीं मानसिक और कहीं आध्यात्मिक। कोई पूर्ण निर्दोष नहीं दिखायी पड़ा। यहां मृत व्यक्तियों का ठीक-ठीक विचार होता है।

इसी स्थान से लोग मृत्युलोक में जाते हैं तथा प्रत्यावर्तन होता है। परंतु इस प्रकार जाने को मृत्यु का समय जब उपस्थित होता है, तब उसकी देह धारण करते हैं। मानव की मृत्यु का समय जब उपस्थित होता है तब उसकी देह क्षीयित और अवश हो जाती है। मृत्यु के पूर्व जो आत्मा ऊर्ध्व गमन करती है,

उसके साथ देह की समानवायु का आकर्षण रहता है। वह इसे खींचकर ले आती है। और मृत्यु के समय जो नाभि-श्वास होता है तो यह समानवायु देहस्थ अन्य वायु को एकत्र करके आत्मा के साथ बाहर हो जाता है। अतएव फिर लौटकर आ नहीं सकता।

०००

मैं सत्यलोक में गया था। उसको 'आनन्द-धाम' कहा जाता है। वहां की आत्माएं सब प्रकार के आलोक से आलोकित हैं। वे मिथ्या को विष समझते हैं। धर्म की जय करते हैं। भगवान में विश्वास नष्ट नहीं किया, वही लोग इस लोक में वास करते हैं। उनके मुख में सत्य का आलोक है, मधुभाषी हैं, और स्थिर पुण्यालोक से कमनीय कांति वाले हैं।

यहां पति-पत्नी दोनों प्रकार की आत्माएं हैं। उन लोगों की सूक्ष्म देह दिव्य ज्योतिर्मय है। मुंह में शांति की हंसी है। विच्छेद के अनंतर मिलन से उनमें महान आनन्द व शांति है। यहां सत्य की महिमा और धर्म का जयगान होता है। इन महात्माओं से मिलकर मैं चंद्रलोक गया था। ठाकुर रामकृष्ण, महात्मा विजयकृष्ण और उनके भक्तों के साथ साक्षात्कार हुआ। वे चंद्रकिरणों से उद्भासित हैं। वे और अन्य भक्त सांसारिक जीवगण जैसे उन्नति लाभ करेंगे, उसी के विषय में चर्चा करते रहे। भक्तगण जो कुछ भी कहते हैं, वह

INDOKEM LIMITED

221. Dr. D.N. Road,

Fort

Bombay - 400 001.

Phone : 267881/10 Gram: "INDOKM" Telex: 011-2942

Marketing:

Dyes. Chemicals. Pigments. Leather Binders. Auxiliaries.
Synthetic Tanning Agents. Leather Colours, Fat Liquors.
Synthetic Resins, Textile Auxiliaries, Polyester Fibre.
paints, menthol, Non-textile Auxiliaries etc.

Manufactured By:

Indian Dyestuff Industries Ltd.,
Colour Chem Ltd.
Arline Dyestuffs & Pharmaceuticals (P) Ltd.,
Cellulose Products of India Ltd.
Dai-Ichi Karkaria Pvt. Ltd.
Haryana Rang Udyog
National Chemical Industries
Indian Organic Chemicals Ltd. (Futura Polyester Fibre)
Hypo Chemiedye
Gujchem Listillers India Ltd .
Lalji Mentha (P) Ltd.

Branches at:

Ahmedabad	Calcutta	Delhi	Madras	Nagpur
	Kanpur	Secunderabad.		

सुनते योग्य है। रामकृष्ण तीन बार मृत्युलोक में तुम लोगों के बीच आविर्भूत हुए थे। यह वहाँ की बात है, उन लोगों का कहना है। उनके जो अति प्रिय भक्त हैं, वे विशेषरूप से इसको जान सके थे। लड़के लोग ठीक-ठीक भक्त न होने पर भी ठाकुर समझकर उनका यशगान करके धन्य हो गये थे। जो लोग चित्त में संशय उत्पादन कर विश्वासहीन हो गये थे, उनको दुख हुआ था। रामकृष्ण स्वयं भगवान् स्वरूप हैं और वे आविर्भूत हुए थे, यह सत्य है। परंतु मानव का क्षुद्र मन सहजतया इस पर विश्वास नहीं करना चाहता है। यह बहुत दुख का विषय है। लोगों का विश्वास ही स्वर्ग का पहला सोपान है। जिसका जैसा विश्वास है, वैसा ही फल होगा। बलपूर्वक विश्वास करने से धर्म नहीं होता।

०००

और एक दिन अज्ञान लोक में अर्थात् निम्नश्रेणी में उन लोगों का हाल जानने के लिए गये थे। वहाँ प्रकाश का अभाव है। चारों ओर कुहासे से ढंका हुआ है। सबका ही मानो अंधकार छाया रहता है। यहाँ की आत्माओं की सूक्ष्म देह में कोई ज्योति नहीं है। मानो मृत व्यक्ति हैं। कहां इनकी समाप्ति होगी, भगवान् ही जानें।

यहाँ का दृश्य देखकर हृदय कंपित हुआ। मन में धैर्य नहीं रहा। अभी भी जीवात्मा के उन्नत होने की आशा

हो तो और चिन्ता छोड़कर अनाथ शरण श्रीभगवान् का आश्रय लेना चाहिये। मृत्युलोक में चभ्रु पाकर भी लोग अंधे हो जाते हैं, अंतिम दिन कितना भयानक होता है, इसका कभी स्मरण नहीं करते। उसका परिणाम यहाँ आकर भोग रहे हैं।

इस लोक के भीतर विभिन्न स्थानों को देखते मेरी मृत्यु के तीन वरस बीत गये। कितने दिन भवधाम छोड़कर मुझे नित्यधाम में आये हुए बीते, अब यह स्मरण रखना कठिन है। धीरे-धीरे पुत्र-कन्याओं के हृदय से मेरी आकृति लुप्त होती जा रही है। मैं भी इस समय यही चाहता हूँ। मुझको विस्मृत हो जाने पर ही तुम लोगों के मन में शांति आयेगी। पिता-माता न रहने पर संतान को कितना कष्ट होता है, यह एक दिन हमने भी अनुभव किया था। मेरी वृद्धा माता को जब मृत्यु हुई थी, तब मैं निर्जन में बैठकर उनके लिए अश्रु-विसर्जन करता था। माता के अभाव में मेरे लिए समस्त संसार मानो शून्य हो गया था। मैं अनुभव करता हूँ कि वृद्धा माता के लिए जब इतना कष्ट होता है तो जिनकी माता का अल्प आयु में देहांत हो जाये, उन्हें कितना दुख होता होगा। भगवान् ने वह दिन भी दिखा दिया।

सबेरे राजू की स्त्री मृच्छुमुख में पतित हुई, उसकी संतानें मातृहीन होकर अपार दुख में डूब रही हैं। मेरी आँखों को यह भी देखना पड़ा।

(समाप्त)



विदेशी आश्चर्य-कथा

नियति

ब्लाओमीर ग्रोव्सेक की

☐ एक पोलिश कथा का
संक्षिप्त रूपांतर

जिस देश की यह कहानी है, उसकी एक विशेषता यह थी कि उसके भागों में सदा वही मौसम रहता था, जो उसकी राजधानी में रहता था। राजधानी में धूप निकल रही हो, तो क्या मजाल कि देश के किसी कोने में अपनी आंखों के सामने वर्षा होने पर भी, कोई यह कहने की जुर्रत कर सके कि धूप नहीं निकल रही है।

कहने को तो देश के एक सुदूर कोने में एक सरकारी वायु-विज्ञान कार्यालय भी था, जिसमें मौसम की खोज-खबर रखने वाले कुछ यंत्र लगे हुए थे। इस कार्यालय के पास ही उसका मैनेजर भी रहता था। यंत्रों की देखभाल करने के अलावा, वह रोज मौसम की रपट लिखता था, ताकि सनद रहे, और ज़रूरत पड़ने पर काम आ सके।

नया मैनेजर एक ईमानदार युवक था। रोज, बिलानागा बड़ी ईमानदारी से जैसा मौसम होता, ठीक वैसी रपट लिखकर उच्चाधिकारियों को भेज देता था। बारिश होती, तो रपट में लिखता कि बारिश क्यों हुई, कब तक हुई, और कितनी हुई। धूप निकलती, तो रपट में धूप का ही जिक्र करता। इस मामले में वह बिलकुल निष्पक्ष था। वह जानता था कि सरकार उसका

वेतन देने के लिए बड़ी मेहनत करती है। इसलिए वह अपना काम पूरी ईमानदारी से करता था।

जब ग्रीष्म ऋतु समाप्त हुई, तो धूप के साथ वर्षा आरंभ हो गयी। मैनेजर अपनी रपटों में तूफ़ान का जिक्र भी करता और वर्षा का भी।

एक दिन, एक वरिष्ठ और अनुभवी सहयोगी उससे मिलने आया। उसकी पढ़ने के बाद उसने कहा, 'तुम्हारी बड़ी निराशाजनक है।'

'निराशाजनक?' आश्चर्य से मैनेजर पूछा, 'क्यों? जैसा मौसम, वैसी रपट।'

'वह तो ठीक है। पर एक मित्र के साथ मैं इतना अवश्य कहूंगा कि इस मामले में थोड़ा समझ से काम लो। वैसे, तुम तुम्हारा काम जाने।'

मैनेजर की समझ में कुछ न आया। पहले की भांति रपट भेजता रहा।

०००

कुछ दिन बाद, उसके एक उच्च अधिकारी ने उसे बुलाया। जब वह उस अधिकारी के घर पहुंचा, तब उच्च अधिकारी के घर की छत पर टपाटप वर्षा होती थी। उच्चाधिकारी ने उससे कहा, 'इसलिए बुलाया गया है कि तुम्हारे

सदा
कटने
राग
किसान
है। तु
नहीं स
'पर
तो...
'ऐस
'अधिका
मुक्का
सब रप
मैनेजर
हो। प
निराशा
इस
मुंह लट
बापस
वगल में
रहने के
बुबार उ
इन्कार
बुबार उ
अगले
वर्षा रक
बुगी हु
'बारिश
पड़ेगा फि
हुई। जो
बायेगा
निकली

१९८१

सदा एकतरफा होती हैं। फसल कटने वाली है, और तुम वर्षा का राग अलापे जा रहे हो। इससे किसानों पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। तुम अपनी जिम्मेदारी क्यों नहीं समझते ?'

'पर जब बारिश होती हो तो...'

'ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी बातें मत करो,' अधिकारी ने गुस्से से मेज पर मुक्का मारते हुए कहा, 'तुम्हारी सब रपटें मेरे पास हैं। तुम अच्छे मैनेजर हो, पर आदमी बड़े बोदे हो। पर अब समझ लो कि तुम्हारा निराशावाद अब नहीं चलेगा।'

इस भेंट के बाद, तरुण मैनेजर, मुंह लटकाये हुए, अपने कार्यालय बापस लौटा। बंद छतरी उसके वगल में थी। वर्षा में निरन्तर भीगते रहने के कारण, उसे ढंग लग गयी, और बुबार आ गया। पर उसने यह मानने से इन्कार कर दिया कि उसे वर्षा के कारण बुबार आया है।

अगले दिन, मौसम में सुधार हुआ। वर्षा रुक गयी। यह देखकर उसे बड़ी खुशी हुई और उसने यह रपट लिखी, 'बारिश पूरी तरह रुक गयी है। यह मानना होगा कि पिछले दिनों अधिक वर्षा नहीं हुई। जो बारिश हुई, उसे बूँदाबूँदी ही कहा जायेगा। और, अब क्या चटकदार धूप निकली है!'

चित्र : प्रबोध परीख

हकीकत यह थी कि धूप काफी तेज थी, और दोपहर को तो जमीन तपने लगी थी। मैनेजर की खुशी का ठिकाना न था।

पर, शाम होते-होते, फिर ठंडी हवा चलने लगी। ठंड बढ़ गयी। रात भर मैनेजर ठंड से कांपता रहा। पर अगले दिन जब रपट लिखने का समय आया, तो उसने अपनी रपट में लिखा, 'धूप हमेशा की भांति फिर निकली। यूँ भी, कोई कोप-निकस साहब फरमा गये हैं कि सूरज कभी नहीं डूबता। वह हमेशा चमकता ही रहता है। महज...'

बस, इससे आगे उससे नहीं लिखा गया।

उसका मन उसे धिक्कार रहा था। वह बहुत दुखी था। तभी आकाश में बिजली चमकी। उसकी ईमानदारी फिर उसे कोंचने लगी। उसने दूसरी रपट लिखी। उसमें सिर्फ एक वाक्य था : 'शाम के पांच बजे आकाश में बादल गरज रहे हैं, और बिजली चमक रही है।'

अगले दिन तूफान आया। उसने इसकी रपट भी भेजी। इससे अगले दिन तूफान तो नहीं आया, पर हिमवृष्टि हुई। उसने अपनी रपट में इसका उल्लेख भी किया। इन रपटों को लिख और भेजकर उसने गहरा आत्मिक संतोष अनुभव किया। और इस आत्मिक संतोष की अनुभूति उसे तब तक होती रही, जब तक डाकिये ने उसके हाथ में एक सरकारी लिफाफा नहीं थमा दिया।

इस बार पत्र राजधानी से आया था। उसे बुलाया गया था, अपने विभाग के सर्वोच्च अधिकारी से मिलने के लिए।

जब वह राजधानी से लौटा, तो उसके सब संशय मिट चुके थे। अब उसके मन में कोई दुविधा नहीं थी।

अगले कई दिनों तक उसने जो रपटें भेजीं, उसमें एक ही बात लिखी गयी थी— 'सारे दिन तेज धूप निकली रही।' कभी-कभी उसकी रपटों में देशभक्ति का पुट भी आ जाता। जैसे— 'कभी-कभी हलकी बारिश से ही बाढ़ आ जाती है, पर हमारे सैनिक बड़ी बहादुरी से बाढ़ पीड़ितों का उद्धार कर रहे हैं।'

नवनीत के चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु.। दो वर्ष : ४८ रु.। तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में डाक से : एक वर्ष ६० रु.। दो वर्ष : ८८ रु.। तीन वर्ष : १५० रु.। विदेशों में डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष १२० रु.। दो वर्ष का २१० रु.। तीन वर्ष का ३०० रु.।

एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष : १५० रु.। दो वर्ष : २७० रु.। तीन वर्ष ४१० रु.।—वितरण व्यवस्था

अब उसकी रपटों में अच्छे और कूल मौसम का ही उल्लेख रहता। रपटें उसने कविता में भी भेजीं। महीने बाद उसने जो रपट भेजी, पढ़कर उसके उच्चाधिकारी पहली दंग रह गये। 'मूसलाधार वर्षा और बाढ़ का तूफान।' टाइप की गयी इस पंक्ति नीचे, उसने घसीटकर लिखे गये पत्र लिखा, 'पर गांव की विधवा ने जिस को जन्म दिया है, वह सकुशल है, हम किसी को उसके बचने की आशा नहीं करते।'

विभागीय जांच से पता चला कि उसने उस शराब के नशे में लिखी थी उसने अपने कार्यालय के यंत्रों को खरीदी थी।

आदमी वाकई में ईमानदार था।

मानव का रूपान्तरण

टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंस के प्रोफेसर वी. गोपालन् और इंटरनेशनल
डायरेक्टर ऑफ भक्तिवेदांत इंस्टिट्यूट के डॉक्टर टी. डी. सिंह के बीच बंबई में
६ जून, १९८० को हुआ विचार-विनिमय

प्रोफेसर गोपालन् : सामान्य आदमी प्रायः यह प्रश्न पूछता पाया जाता है कि क्या इस जगत का कोई सृष्टा है? और यदि है तो जगत में इतना कष्ट और इतनी सामाजिक अधोगति क्यों दिखायी देती है? और हालत दिनोंदिन बढ़ से बढ़तर होती जा रही है। लेकिन 'वह' कुछ करता ही नहीं।

डॉक्टर टी. डी. सिंह : 'वाशिग्टन पोस्ट' में प्रकाशित एक लेख के अनुसार, आज समाज में जिस नैतिक पतन के दर्शन हो रहे हैं, उसकी सीधी वजह स्कूलों में विकासवाद की पढ़ाई है। दूसरे शब्दों में जीवन की ऐसी धारणा, जिसमें भगवान को कोई स्थान नहीं है, और जिसमें आदमी को प्रभुतुल्य समझा जाता है, ऐसे उदात्त चिन्तन को जन्म नहीं दे सकती है, जो नैतिक समाज की एक विशेषता है। समाज में नैतिक सिद्धांतों की मान्यता के लिए भगवान की मान्यता पहली शर्त है।

प्रोफेसर गोपालन् : हमें संस्थाओं के स्थान पर आदमियों का निर्माण करना होगा और यह निर्माण हमें केन्द्रित ढंग से नहीं, विकेंद्रित और अनौपचारिक ढंग

से करना होगा। इसी ढंग से हम नेताओं और प्रशासकों में व्याप्त सत्यनिष्ठा की कमी और विश्वास के संकट को दूर करने के अतिरिक्त आर्थिक और सामाजिक अधोगति को भी दूर कर सकेंगे। मेरा अनुभव यह है कि हमने विज्ञान और शिल्पविज्ञान के क्षेत्र में काफ़ी प्रगति की है, किन्तु जहां तक हमारी सामाजिक और नैतिक व्यवस्था का प्रश्न है, (जिससे व्यक्तियों के व्यवहार का निर्धारण होता है) हम लोग काफ़ी पीछे हैं। इसलिए विज्ञान और सामाजिक व्यवस्था के बीच एक रिक्तता है। इसमें सुधार की आवश्यकता है। हमें विवेचनात्मक चिन्तन की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, औद्योगिक श्रम के मामले को लीजिये। आज औद्योगिक श्रमिक की आर्थिक स्थिति दस वर्ष पूर्व से कहीं बेहतर है। फिर भी, वह कुण्ठित है। श्रम और प्रबंधकों के बीच संघर्ष पहले से ज्यादा बढ़ गया है। इसलिए मैं कहता हूं कि हमें आदमी का निर्माण करना होगा, ऐसे आदमियों का निर्माण जो कुछ मूल्यों के प्रति समर्पित हों। आत्म-केन्द्रित न हों। और उनमें 'सेवा' और

जीवन में सब प्रकार के भय, संकट और विनाश से बचकर चलने के लिए दो ही चीजों की आवश्यकता है, दो चीजें सदा साथ रहती हैं— एक तो मां भगवती की कृपा और दूसरी तुम्हारी ओर से एक ऐसी अन्तःस्थिति जो श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण से पूर्ण हो। तुम्हारी श्रद्धा विशुद्ध, निच्छल और पूर्ण होनी चाहिये। अपने जीवन को ऐसा समझो कि वह तुम्हें केवल भागवत कर्म के लिए और भगवान की अभिव्यक्ति में सहायता देने के लिए मिला है। और कुछ न चाहो, चाहो केवल दिव्य आध्यात्मिक और अतिमानसिक 'सत्य', चाहो उस सत्य की सिद्धि पृथ्वी पर और अपने अंदर और उन सबके अंदर जो इसके लिए बुलाये और चुने गये हैं। उन परिस्थितियों को चाहो जो इस 'सत्य' की सृष्टि के लिए आवश्यक हैं और चाहो सारी विरोधी शक्ति पर 'सत्य' की विजय।

— योगिराज श्रीभरविन्द

खंडेलवाल ब्रदर्स लि.

खंडेलवाल भवन

१६६, डा. डी. एन. रोड, फोर्ट

बम्बई - ४०० ००१

टेली. ३४२२ ६६/३२७१

टेलीक्स ०११-२४१०

केवल Khandelbrod

Bombay

त्याग की प्रवृत्ति हो।

डॉक्टर टी. डी. सिंह : इससे आदमी के निर्माण की सामाजिक समस्या हल नहीं होने वाली है। यह वैज्ञानिकों के उस प्रस्ताव के समान है, जिसके अनुसार वैज्ञानिक अति-मानव का निर्माण करना चाहते हैं।

प्रोफेसर गोपालन् : इसका एक उदाहरण हमें सैनिकों में देखने को मिलता है। वे सबसे पहले देश के बारे में सोचते हैं, फिर परिवार के बारे में, और अंत में अपने बारे में। लेकिन साधारण नागरिक पहले हमेशा अपने बारे में ही सोचता है। दोनों ही आदमी हैं, मगर एक प्रशिक्षित है, दूसरा नहीं। यदि मेरे घर में कोई चोर जाता है, तो कोई मेरी सहायता के लिए आगे नहीं आता। कुछ साल पहले स्थिति ऐसी नहीं थी। क्यों? आप ऐसा क्यों समझते हैं कि 'मानवों के निर्माण' से परिस्थिति में कुछ परिवर्तन आ जायेगा? वियतनाम में, शक्तिशाली अमरीकी सेना, कई वर्षों की बमबारी के बाद भी, लोगों की इच्छा को नहीं झुका सकी। वियतनामी लोग और लोगों से भिन्न थोड़े ही हैं?

डॉक्टर टी. डी. सिंह : लेकिन इससे भी समस्या हल नहीं होगी।

प्रोफेसर गोपालन् : मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि इससे सब समस्याओं का हल हो जायेगा, मगर बहुत से मामलों में इससे मदद मिल सकती है।

प्रोफेसर टी. डी. सिंह : मैं इसी मुद्दे पर जोर देना चाहता हूँ। हम दोनों इस

बारे में सहमत हैं कि मानव का रूपान्तरण हो सकता है। पहले उसे जानना चाहिये कि वह कौन है, और संस्थाएं कैसे उसकी प्रगति में सहायक या बाधक हो सकती हैं?

प्रोफेसर गोपालन् : हां, पर उसके तरीके क्या होंगे? उनके बारे में हमें विशेष रूप से ध्यान देना होगा, ताकि हम जीवन के स्वभाव को श्रेष्ठतर बनाने के अपने लक्ष्य को पा सकें, और समुदायों में समन्वय स्थापित कर सकें।

डॉक्टर टी. डी. सिंह : हां, यही है वह मूलभूत समस्या, जिसकी चिंता हमें करनी है।

प्रोफेसर गोपालन् : मैं यह कहना चाहूंगा कि कानून और सरकार दोनों की सीमाएं हैं। वे समाज को नहीं बदल सकते। मानव अपनी संकल्पशक्ति से ही अपने को बदल सकता है। धर्म और अध्यात्मवाद में पहले कितनी भी अच्छाइयां रही हों, लेकिन आज अनेक कारणों से दोनों पृष्ठ-भूमि में खोते जा रहे हैं। प्रश्न यह है कि उन्हें पुनः प्रतिष्ठित करके मानव के रूपांतरण के लिए इन दोनों का उपयोग कैसे हो सकता है?

डॉक्टर टी. डी. सिंह : हां, इस रूपान्तरण के अर्थ होंगे, अपने आध्यात्मिक स्वरूप की पहचान। सिर्फ इसी प्रकार के रूपान्तरण से मानव के जीवन की सब समस्याएं हल हो सकेंगी।

प्रोफेसर गोपालन् : सरल-सादे जीवन

उपयोग करें

ग्रेलिम स्टेपल फाइबर

और

साथ में



मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय

पूरक धागे

Grasilene

दि ग्वालियर रेयान सिल्क (मैन्यू.) विविंग कं. लिमिटेड
(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM

टे. नं. : ३८८१

के महत्व को लोग भूलते जा रहे हैं। आधुनिकीकरण के बारे में सोचना भूलकर उन्हें अपने जीवन के सरलीकरण के बारे में सोचना चाहिये। उन लोगों का उदाहरण लीजिये, जो चाय या कॉफी पीते हैं। वे खराब चाय और खराब कॉफी पी रहे हैं। क्यों? इसलिए कि उनका खयाल है कि खराब चाय पीना आधुनिकता की निशानी है। मैंने शिक्षित परिवारों के सदस्यों को ऐसा सोचते देखा है। उनके बच्चे उनका अनुकरण करते हैं। वे यह महसूस नहीं करते कि अधिक चाय पीना अस्वास्थ्यकर है। धूम्रपान करना और मद्यपान करना भी एक फैशन बन गया है। नशीली वस्तुओं का सेवन फैशन क्यों बन गया है? बहुत से छात्र नशीली वस्तुओं के आदी हो चुके हैं। कुछ वर्ष पूर्व ऐसा नहीं था।

डॉक्टर टी. डी. सिंह : विकास के बारे में आजकल जो शिक्षण दिया जाता है, और जीवन को रसायनों का योग बताने का यह प्रभाव है।

प्रोफेसर गोपालन् : मामला इतना सीधा, सरल नहीं है, जितना आपने पेश किया है। इसमें दोष बच्चों का नहीं है। दोष माता-पिताओं का है, जो काला-बाजारी, भ्रष्टाचार और धोखाधड़ी में लिप्त हैं। वे ही बच्चों को बिगाड़ते हैं। बच्चों के कारण, बच्चे सोचने लगते हैं, धोखा देने में कोई नुकसान नहीं है; क्योंकि पिता धोखा देते हैं, मेरे नेतागण धोखा देते हैं। येन-केन-प्रकारेण रुपया

कमाने और सुखी करने में कोई हर्ज नहीं है।' वह उपदेश देने से क्या लाभ है—पवित्र जीवन जियो।

डॉक्टर टी. डी. सिंह : ये समस्याएं बहुत पेचीदा हैं। वे सारे समाज को प्रभावित करती हैं। समस्याएं हर स्तर पर हैं, और हमें उन्हें समग्रता में देखना होगा। तभी हम जान सकेंगे कि मानव को कैसे गढ़ा जा सकता है? इसलिए हमें समाज और व्यक्ति के मूलभूत आधारों को समझना होगा।

प्रोफेसर गोपालन् : यहां मतभेद पैदा हो सकते हैं। आधारों की स्थापना या उन्हें मजबूत करने के लिए क्या किया जाये? बहुत से लोगों को पता चला है कि आधार कमजोर हैं। क्या दूसरी इमारत बनानी पड़ेगी या वर्तमान सामाजिक समस्याओं और लोकप्रिय मांगों की पूर्ति के लिए वर्तमान इमारत या ढांचे में ही रद्दोबदल करके काम चलाया जा सकता है?

डॉक्टर टी. डी. सिंह : अतएव शिक्षकों और ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र के नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे अपने अस्तित्व के आधारों को समझें, और प्रत्येक पीढ़ी को जीवन के मूलभूत सिद्धांतों से परिचित करावें।

प्रोफेसर गोपालन् : यह काम सिर्फ शिक्षकों का ही नहीं है। शिक्षा का मामला सिर्फ शिक्षकों पर ही नहीं छोड़ा जा सकता। जब तक माता-पिता तथा अन्य लोगों को नये आदर्शों से अनुप्राणित नहीं किया जायेगा, शिक्षक अधिक कुछ नहीं

दि इंडियन टूल मैनुफेक्चरर्स लि.

१०१, सायन रोड, सायन, बंबई-४०० ०२१

सुविषिक्त होकर चुनाव कीजिये

‘डॅगर’ ट्विस्टर ड्रिल्स रीमर्स, कटर्स, टप्स, टूलबिट्स और
माइक्रोमीटर्स डॅगेलाय कार्बाइड टूल्स और टप्स
डॅगर-साक गियरहाब्स और गियरशेपिंग कटर्स



प्रसिशन का प्रतीक

कर पायेंगे।

डॉक्टर टी. डी. सिंह : इसीलिए, भक्तिवेदांत संस्था एक ऐसे नये आदर्श को स्थापित करने का प्रयास कर रही है, जो वैज्ञानिक दृष्टि से व्यवहार्य है, और जिसका प्रचार प्रथम सारे भारत और बाद में सारे विश्व में किया जा सकता है। हम इस श्रेष्ठ और मूलभूत योजना को प्रस्तुत करने वाले हैं कि जीवन की उत्पत्ति जीवन से ही होती है। वैसे, आपका यह कहना एकदम सच है कि एक समूची पीढ़ी को आसानी से नहीं बदला जा सकता। लेकिन,



जैसा कि मैक्स प्लैंक ने कहा है, कोई नया सत्य सहज अपने विरोधियों के लिए विश्वासोत्पादक बनाने, और उन्हें उसका अर्थ समझाने से ही स्वीकृति योग्य नहीं हो जाता। वल्कि, उसकी अंतिम स्वीकृति के लिए एक पुरानी पीढ़ी को मरना पड़ता है, और एक नयी पीढ़ी को जन्म लेना पड़ता है। कोई नया वैज्ञानिक सत्य इसी भांति स्वीकृति पाता है। तो हमारा काम सिर्फ इतना रह जाता है कि हम नयी पीढ़ी को भली भांति प्रशिक्षित करें, ताकि समाज का रूपांतरण हो सके।



'हर दिन
के लिए
ताजगी और
स्फूर्ति'



**जाना-माना
ताकतवर, असरदार
ओकासा**

आज की भाग-दौड़ घरी ज़िंदगी में जो ताकत आप चाहें... ओकासा की बदौलत वही ताकत फिर पा जाएं !

ओकासा की हर टिकिया में १ प्रमुख बायोकेमिकल्स, ९ बनिच पदार्थ, १० विटामिन और बड़ी-बूटियों का सत्व है। इसीलिए, दूसरा कोई भी ताकतवर नुस्खा इसका मुकाबला नहीं कर सकता.

हर दिन जीवन को स्फूर्ति और उत्साह से भर दीजिए, ओकासा की चॉटी बड़ी दैनिक टिकिया लीजिए.

अब नये २० दिवसीय पैक में

सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहां मिलती है.

ओकासा

ओकासा की मुश्त पुस्तिका के लिए लिखिए.

OKASA CO. PVT. LTD.

Post Box No. 396,
Bombay-400 001.

नोबल पुरस्कार विजेता अब्दुस सलाम जिन्होंने भुट्टो के इस्लामी बम का विरोध किया था



प्रस्तोता : हंस कुमार

पाकिस्तान के सर्व-प्रथम, और भारतीय उप-महाद्वीप के चौथे नोबल-पुरस्कार विजेता श्री अब्दुस सलाम एक लब्ध-प्रतिष्ठ वैज्ञानिक होने के अलावा, नैतिक जीवन में विश्वास करने वाले धार्मिक व्यक्ति भी हैं, जो वक्त पर नमाज पढ़ने का कभी नहीं भूलते। हाल ही में वे भारत आये थे। यहाँ साभार प्रस्तुत है, 'दार्शनिक ऑफ इंडिया' में प्रकाशित उनकी जीवन-झांकी तथा श्री बी. एम. उदगांवकर द्वारा दी गयी एक भेंट के कुछ महत्वपूर्ण और रोचक अंश।

पाकिस्तान में एक शहर है, झंग। कभी वह अविभाजित भारत का एक नगर था। वहाँ छठी सदी में एक प्रख्यात गणितज्ञ ने जन्म लिया था, ऐसा इतिहासज्ञों का कहना है। नोबल-पुरस्कार विजेता भारतीय वैज्ञानिक हर-गोविंद खुराना भी झंग में जन्मे थे। और पाकिस्तान के सर्वप्रथम और भारतीय उप-महाद्वीप के टैगोर, रमण और खुराना के बाद चौथे नोबल-पुरस्कार विजेता अब्दुस सलाम भी अपने को झंगवासी कहलाने में गर्व अनुभव करते हैं। एक मजे की बात यह है कि हाल ही में बंबई में आयोजित भारतीय भौतिकी

संस्था के एक विशेष समारोह में प्रोफेसर यशपाल ने संस्था की श्री सलाम को पदक अर्पित किया। झंग में जन्मे थे।

झंगवासी और नोबल-पुरस्कार विजेता होने के अलावा, खुराना और सलाम एक और समानता है। दोनों ने ही विश्वविद्यालय में नौकरी के लिए प्रार्थना किया था, और दोनों के ही अवेकृत हुए थे। वैसे, १९६० भारत के तत्कालीन हुमायूँ कबीर ने सलाम के बारे में वाणी कर दी थी कि उन्हें नोबल-पुरस्कार मिलकर ही रहेगा। उनकी

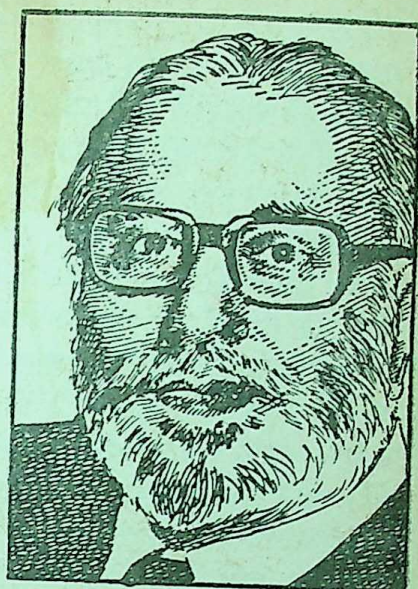
लाम
का

१९ वर्ष बाद सच निकली—जब १९७९ में उन्होंने दो अमरीकी भौतिक-शास्त्रियों के साथ भौतिकी का नोबल-पुरस्कार जीता। उनकी इस सफलता पर भारत भी उत्तनही हर्षित हुआ, जितना पाकिस्तान।

५५ वर्षीय अब्दुस सलाम धार्मिक व्यक्ति हैं, और कहीं भी हों, वक्त पर नमाज पढ़ना नहीं भूलते। वैसे, वे अहमदिया संप्रदाय के हैं, जिसे पाकिस्तान में इस्लाम धर्म के अनुयायी नहीं माना जाता। उन्हें अपनी राष्ट्रीय पोशाक पर भी अभिमान है, और वे जब नोबल-पुरस्कार लेने स्टॉकहोम गये, तो काली शेरवानी और सफ़ेद सलवार ही पहने हुए थे।

सलाम की असाधारण प्रतिभा का पता तभी चल गया था, जब वे १४ वर्ष की आयु में पंजाब विश्वविद्यालय की मैट्रिकुलेशन की परीक्षा में ४०,००० विद्यार्थियों में प्रथम आये थे। विज्ञान में उनकी रुचि अंग्रेजी साहित्य विषय के साथ बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद जागृत हुई। इस रुचि के फलस्वरूप ही उन्होंने १९४६ में एम. ए. की परीक्षा के साथ उत्तीर्ण की।

सलाम 'तृतीय विश्व' में विज्ञान के अधिकारिक प्रसार के समर्थक और वैज्ञानिक-प्रजनन और अणु-अस्त्रों के विरोध के साथ उत्तीर्ण की। १९६१ से वे लगा-तार पाकिस्तान के वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में काम करते आ रहे थे, पर जब १९७९ में उन्होंने भुट्टो द्वारा प्रस्तावित



अब्दुस सलाम

‘इस्लामी बम’ का विरोध किया, तो १९७४ में उन्हें यह पद छोड़ना पड़ा।

अपनी हाल की भारत-यात्रा के दौरान उन्होंने ‘टाइम्स ऑफ इंडिया’ के प्रतिनिधि श्री बी. एम. उदगांवकर को जो भेंट दी, उससे पता चलता है कि वे ‘तृतीय विश्व’ के देशों को वैज्ञानिक दृष्टि से आत्मनिर्भर देखना चाहते हैं; क्योंकि उन्हें इस बारे में कोई भ्रम नहीं है कि विकसित देश अपनी वैज्ञानिक जानकारी विकासशील देशों को कभी नहीं देंगे। यहां प्रस्तुत है, इस भेंट-वार्ता के कुछ महत्वपूर्ण अंश:

प्रश्न : विकासशील देशों में विज्ञान और शिल्पविज्ञान की प्रगति के बारे में

हिंदी डाइजेस्ट

आपको क्या कहना है ?

उत्तर : एक जमाना था, जब ये ही देश इन क्षेत्रों में सब देशों से आगे थे। पर बाद में इन सब देशों के अलग-अलग पड़ जाने से यह प्रगति रुक गयी। सबसे पहले हिंदुओं का अलगाव हुआ। १२ वीं और १३ वीं सदियों में पश्चिम के देशों के लोग पूर्व में आते थे, और यहां की विज्ञान-संबंधी पुस्तकों का अपनी भाषाओं में अनुवाद करके लौट जाते थे। धीरे-धीरे, चीन, जापान और अरब देश भी, जिन्होंने काफ़ी शानदार वैज्ञानिक प्रगति की थी, अलग-अलग पड़ते गये, और पश्चिमी देश हमसे आगे निकलते गये। पुर्तगाल ने नौ-संचालन की एक नयी विधि का आविष्कार किया, जिसमें न समुद्री तट का खयाल रखना पड़ता था, न समुद्री धाराओं का, पर किसी एशियाई देश ने उस विधि को जानने का प्रयास नहीं किया। महाराजा जयसिंह को लीजिये। यद्यपि उन्होंने पुरानी खगोलीय तालिकाओं को सुधारने और सूर्य तथा चंद्र-ग्रहणों की तालिका को ठीक करने की ओर ध्यान दिया, मगर गेलीलियो के सिद्धांत की ओर उनका ध्यान बिलकुल नहीं गया। और जंतर-मंतर बनवाते समय, उन्होंने दूरबीन के आविष्कार की बिलकुल उपेक्षा की। न्यूटन के सिद्धांत भी उन दिनों मौजूद थे, मगर जयसिंह के लिए उनका कोई महत्त्व न था। एक और कारण था, जिससे हम पश्चिम की

वैज्ञानिक प्रगति-धारा से अलग हो गये। वह था—हमारा अहंकार। १८०० में आटोमैन के दरबार में ब्रिटिश राजदूत ने लिखा है, 'यहां न तो चुंबक से परिचित हैं, और न नौ-संचालन की नयी विधियों से। न केवल परिचित नहीं हैं, परिचित होने के लिए उत्सुक नहीं हैं, अपने दर्प के कारण।' मित्राजि जिसका क्या अहंकार में है ? उत्तर इस प्रगति सीमित मिले। लिए पुरा करता च कोई ऐसी काम को लिए हम को बदल लोगों की प्रश्न : क्या प्रगति केनालोज उनने किल उत्तर और बाद विज्ञान का विश्व काफ़ी लाभ इस को कुछ व एणों से इस र प्रश्न : मैं वि

प्रश्न : आज पश्चिम में जो वैज्ञानिक प्रगति हो रही, उसकी दिश्व' के लिए क्या सार्थकता है ?

उत्तर : 'तृतीय विश्व' के देश पश्चिमी देशों की बराबरी पर आने के लिए सतत प्रयास करना होगा। इन देशों से वैज्ञानिक जानकारी शिल्प-विज्ञान की तकनीक को मांगना बंद करना चाहिये। ये देश कितनी भी भीख मांगें, हमें कुछ देने वाले नहीं हैं। हमें विज्ञान की बुनियादी शोध पर समय भी व्यय करना और पैसा भी। हमारी सरकारें इस मद पर ज्यादा खर्च करेंगीं ही हमारी जनता विज्ञान के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि बनाए जायेगी। इस लिहाज से देखा जायें पं. नेहरू ने बड़ा महत्त्वपूर्ण काम वे बहुत दूरदर्शी थे। भारत ने उल्लेखनीय वैज्ञानिक प्रगति की है अधिकांश श्रेय पं. नेहरू को जाता है

प्रश्न : जैसा कि आपने एक था, इस प्रगति का श्रेय उस

मिजाज और प्रणाली-विज्ञान को भी है, जिसका सूत्रपात पं. नेहरू ने किया। वही, क्या आपके खयाल से, इस प्रगति के मूल में है ?

उत्तर : जरूरत इस बात की है कि इस प्रगति का लाभ जटिल स्तरों तक ही सीमित न रहकर, सामान्य स्तर पर भी मिले। जैसे हमारा मेहतर सफ़ाई के लिए पुराने प्रणाली-विज्ञान का उपयोग करता चला आ रहा है। क्या हम उसे कोई ऐसी प्रणाली नहीं दे सकते, जो उसके काम को सरल बना सके। पर, इसके लिए हमारे वैज्ञानिकों को अपने नजरिये को बदलना होगा, और स्वयं को मामूली लोगों की जरूरतों के स्तर तक लाना होगा।

प्रश्न : आप वियेना में १९७९ में स्थापित 'यू. एन. कॉन्फ़ेस ऑन साइंस एंड टेक्नालॉजी फॉर डेवलपमेंट' से जुड़े थे। उसने कितनी प्रगति की है ?

उत्तर : मैं पहले उसका सदस्य था, और बाद में चेयरमैन बना। हम लोगों ने विज्ञान और शिल्प-विज्ञान के लिए एक विश्व-योजना तैयार की थी, जो काफी लाभकारी सिद्ध हो सकती थी।

पर ईमानदारी की बात यह है कि राष्ट्र-विज्ञान की ऐसी समितियां और संस्थाएं कुछ करना चाहती हैं, वह बहुत से लोगों से निष्प्रभावी हो जाता है। यही इस समिति का हुआ।

प्रश्न : विज्ञान और शिल्प-विज्ञान के विकासशील देशों को जो विदेशी

सहायता मिलती है, उसके बारे में आपका क्या कहना है ?

उत्तर : इस सहायता से वास्तविक लाभ सहायता देने वाले देशों को ही मिलता है, सहायता लेने वाले देशों को नहीं। असल में हम जब तक बुनियादी वैज्ञानिक शोध की अहमियत को नहीं समझेंगे, कुछ प्रगति नहीं कर पायेंगे, और सदा विकसित देशों का मुंह ताकते रहेंगे। १९६२ में जब मैंने ट्रिस्टे में आय. ए. ई. ए. केंद्र में 'शिल्प-विज्ञान के सुपर-मार्केट' का प्रस्ताव रखा था, तो मालूम है, एक पाश्चात्य वैज्ञानिक-सदस्य ने क्या कहा था ? उसने कहा था, 'जनाब, आप जिस सैद्धांतिक भौतिकी की मांग कर रहे हैं, वह विज्ञान की रॉल्स-रॉयस गाड़ी के समान है, जबकि आप लोगों को (विकासशील देशों के निवासियों को) गधा-गाड़ी की जरूरत है।' किंतु, हमें बुनियादी शोध पर ही अपना ध्यान केंद्रित करना होगा। जापान उसी पर अपना पूरा ध्यान केंद्रित करके बहुत से यूरोपीय देशों से आगे निकल गया है।

प्रश्न : क्या आप तेल की आमदनी से अमीर बने अरब देशों से इस कार्य के लिए राशि प्रदान करने को नहीं कह सकते ?

उत्तर : इन देशों के साथ दिक्कत यह है कि उनमें विज्ञान के प्रति बहुत कम रुचि है। पिछले दिनों मैं ऐसे एक देश के एक प्रमुख अणु-वैज्ञानिक से बातें कर रहा था। वे सूर्य-ऊर्जा की बातें कर

दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

रजिस्टर्ड कार्यालय :

लालबहादुर शास्त्री मार्ग, भांडुप, बंबई-४०० ०७८

फैबल : 'लकी' भांडुप

फोन : ५८४३

१.

नानफेरस यूनिट

सेमिस रोलिंग विभाग :

नानफेरस शीट, स्ट्रिप और फाइल,
नानफेरस प्लेट और सर्कल

एलाय और कार्स्टिंग विभाग :



एंटिफ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स

गनमेटल्स और ब्रोन्जेस, ब्रेजिंग सोल्डर्स और टिन सोल्डर्स

फाइन निक डाइकार्स्टिंग एलाय्स 'इस्माक ३' अल्युमिनियम डाइकार्स्टिंग

बेस्ड डाइकार्स्टिंग एलाय्स, ब्रास और ब्रोन्ज राइस साइडिंग

कोर्ड, फिनिशड कार्स्टिंग रफ और मशीनड ।

२.

फेरस यूनिट :

फाउंड्री डिविजन

एस० जी० आयरन और स्पेशल स्टील कार्स्टिंग्स

मेलिएबल आयरन कार्स्टिंग्स

आइ० एस० एस०, बी० एस० एस०, एस० एस० आइ० एस० एस०

के स्पेसिफिकेशन्स तथा ग्राहकों की विशेष आवश्यकता

के अनुसार सप्लाइ किये जाते हैं ।

रहे थे, जो उनके खयाल से उनके तथा उनके पड़ोसी देशों के लिए अधिक उपयुक्त थी। मैंने जब बुनियादी भौतिकी की बात छेड़ी, तो उन्होंने एक अजीब बात कही। उन्होंने कहा, 'हम अरब ठहरे व्यापारी तो।' विज्ञान में भी हमें वही चाहिये, जो हमारी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।' तो, यह स्थिति है। पूर्व के वैज्ञानिकों को बुनियादी भौतिकी की ओर आकर्षित करने में काफी समय लगेगा। उसका एक तरीका यह है कि हम उन्हें उनके शानदार अतीत की लगातार याद दिलाते रहें। मैं आजकल अपने भाषणों में यही कर रहा हूँ।

प्रो. सलाम को दोबारा नोबल-पुरस्कार मिलेगा ?

इस बात की बहुत संभावना है कि प्रो. सलाम को उनके भारतीय सह-अध्यक्षों डॉक्टर जोगेश सी. पति के साथ दोबारा फिर नोबल-पुरस्कार मिले, यदि वे दोनों 'एकीकरण' के उस सिद्धांत पर जिस पर आइंस्टीन ने अपने जीवन के अंतिम ३५ वर्षों तक लगातार कार्य किया, सिद्ध कर सकें।

आइंस्टीन का सपना, जो उनके जीवन में साकार नहीं हो पाया, यह था प्रकृति में सक्रिय सभी आधारभूत शक्तियों का एकीकरण संभव है। प्रो. सलाम ने पिछले दिनों छठे जहीर विज्ञान सम्मेलन व्याख्यान में बताया कि अगले दशकों में इस सपने के साकार होने

की आशा है, एक वैज्ञानिक सत्य के रूप में। इस संबंध में भारत की कोलार की सोने की खानों में 'प्रोटोन क्षय' विषयक जो प्रयोग चल रहे हैं, वे अग्रदूत सिद्ध हो सकते हैं।

आइंस्टीन ने भौतिकी के क्षेत्र में एक ओर काल और आकाश, तथा दूसरी ओर उर्जा और पदार्थ का एकीकरण कर, एक क्रांति ला दी थी। लेकिन, ३५ वर्षों तक अथक प्रयास करने के बावजूद भी वे गुस्त्विय और विद्युत्-चुंबकीय शक्तियों के एकीकरण में असफल रहे थे। १९३० तक, इन आधारभूत शक्तियों में दो अन्य शक्तियां अशक्त और सशक्त नाभिक शक्तियों की पारस्परिक क्रियाएं भी जुड़ गयी थीं।

आइंस्टीन की इस चौंका देने वाली धारणा के बाद कि बल-गुस्त्वाकर्षण दिक्काल की वक्रता का परिणाम है, काल को चौथा आयाम समझा जाने लगा। प्रो. सलाम का कहना है कि यदि आइंस्टीन अपनी 'एकीकरण-योजना' में दोनों नाभिक शक्तियों का समावेश भी कर लेते, तो उनके सब मूलभूत शक्तियों के एकीकरण के प्रयास अधिक सफल होते।

प्रो. सलाम उन अनेक अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिकों में से थे, जिन्होंने आइंस्टीन के बाद सब मूलभूत शक्तियों के एकीकरण के कार्य को अशक्त नाभिक शक्ति और विद्युत्-चुंबकीय शक्ति को संयुक्त कर

आगे बढ़ाया। १९६७ में अमरीकी भौतिक-वैज्ञानिक स्टीवन वीनबर्ग ने एकीकरण का सिद्धांत प्रस्तुत किया। प्रो. सलाम इस सिद्धांत पर स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे थे, और उन्होंने इस सिद्धांत के विकास के अपने प्रयोगों का प्रकाशन १९६८ में कराया। इस सिद्धांत को 'वीनबर्ग-सलाम-एकीकरण-सिद्धांत' का नाम मिला। इस सिद्धांत के लिए इन दोनों के साथ भौतिकी का नोबल-पुरस्कार जीतने वाले अमरीकी भौतिक-वैज्ञानिक शेल्डन गिलाशो ने इस सिद्धांत को सामान्य जन के लिए सरल करके बताया। किंतु, इसे सिद्ध करने में आठ वर्ष और अरबों डॉलर लगे। इसके बाद ही, १९७९ में इन तीनों वैज्ञानिकों को इस सिद्धांत के लिए संयुक्त रूप से भौतिकी का नोबल-पुरस्कार मिला।

गुस्त्वाकर्षण और विद्युत्-नाभिकीय-शक्तियों को संयुक्त करने के लिए वैज्ञानिकों ने एक नयी विधि खोज निकाली है। उनका खयाल है कि जिस प्रकार गुस्त्वाकर्षण दिक्काल की वक्रता का परिणाम है, उसी प्रकार विद्युत्-नाभिकीय शक्तियां किन्हीं अज्ञात आयामों की वक्रता का परिणाम हो सकती हैं। वैसे, अन्य अग्रणी-भौतिक-वैज्ञानिकों के साथ, प्रो. सलाम का विचार है कि कुल आयाम ११ हैं। अपनी हाल की भारत-यात्रा के दौरान, प्रो. सलाम ने एक तांत्रिक से इन ११ आयामों के संबंध में बात की थी।

प्रो. सलाम का कहना है कि एकीकरण

के नये सिद्धांतों के प्रयोग के फलस्वरूप ऊर्जा के निर्माण की संभावनाएं हैं पर उन्हें अमली रूप देने में अभी दशक और लग जायेंगे।

अरब देशों से अपील

प्रो. सलाम आजकल अंतरराष्ट्रीय केंद्रों की स्थापना के लिए साधन में व्यस्त हैं। जब एक अरब देश के ने उनसे यादगार के तौर पर वे मांगने की पेशकश की, जिन्हें पहले नोबल-पुरस्कार लेने गये थे, तो उन्होंने इस शर्त पर दे दिया कि वे उन्हें कई लाख डॉलर की लागत पर एक अंतरराष्ट्रीय शोध-केंद्र स्थापित की राशि मिलेगी।

तेल बेचने वाले देशों से एक में हाल में उन्होंने कहा था, 'आपको १०० बिलियन डॉलर की दानी दी है। इसमें से एक या दो बिलियन डॉलर आपको वैज्ञानिक शोध करने चाहिये। आठवीं सदी से ग्यारहवीं सदी तक, आपके पुर्तगाल इस क्षेत्र में शानदार प्रगति की उन्होंने पहले बैतुल-हिया की थी, जिसमें अरब, ईरान, तुर्की आदि देशों के वैज्ञानिकों का अनुकरण कर, आप भी वैज्ञानिक शोध-केंद्र स्थापित करें, अरब और इस्लामी मुल्कों के सभी विकासशील देशों के वैज्ञानिकों के लिए आ सकें।'



भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

सोम । रारन्धि नो हृदि,
गावो न यवसेष्वा ।
मर्य इव स्व ओक्ये ॥

हे सोम ! जैसे ज़ी के खेतों के बीच गायें रमण
करती हैं और जैसे मनुष्य अपने घर में निवास
करता है, वैसे ही तुम हमारे हृदय में आकर बसो ।

ऋक् १-११-१३

क्रोध पर विजय

□ डॉ. प्रेमचन्द्र गोस्वामी

महर्षि कणाद ने जिस स्थान पर अपने आश्रम का निर्माण किया था, उसके पास जंगल में एक हिंसात्मक प्रवृत्ति का राक्षस रहता था। राक्षस प्रायः आश्रम के जीवन में बाधाएं उत्पन्न करता रहता। कभी आश्रम की झोंपड़ियों को तोड़-फोड़ देता तो कभी वहां के पशु-पक्षियों को उठा ले जाता, कभी आश्रम के लोगों द्वारा की गयी खेती को उजाड़ देता तो कभी पूजा के पवित्र स्थान पर अवांछित वस्तुएं डाल जाता। राक्षस ये हरकतें करने प्रायः रात्रि के दूसरे या तीसरे प्रहर में आता और उत्पात मचा कर चला जाता।

महर्षि सहित सभी शिष्य उसकी इस हरकत से दुखी थे। उनके कुछेक शिष्य तो उसकी रोज-रोज की हरकतें देखकर बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने मिल-बैठकर महर्षि को बिना बताये यह निश्चय कर लिया कि वे उस राक्षस का सर्वनाश कर देंगे।

उन लोगों के क्रोध को महर्षि कणाद शीघ्र ही भांप गये और एक शाम उन्होंने सभी शिष्यों की एक सभा बुलाकर आदेश दिया कि अब से हर रात एक व्यक्ति आश्रम की निगरानी हेतु रात-भर जागकर पहरा देगा। खुद महर्षि ने अपने लिए भी माह में एक रात जागने और निगरानी

रखने की पारी रखी।

अपनी पारी पर एक रात जयंत एक विद्यार्थी पहरे के लिए आश्रम पर खड़ा हो गया। आधी रात को पर उसने देखा कि सामने एक विकृत आदमी बढ़ा चला आ रहा है। जैसे-जैसे नजदीक आता जाता था, उसका डर जाता था। जयंत ने गरजकर उसे रोका। कारा तो वह आदमी और अधिक डरने लगे। वह जैसे-जैसे उसे लगे और डराता-धमकाता था, आकार बड़ा होता चला जाता था। जयंत ने आदमी को मारने की सोच-सोचकर उसकी ओर बढ़ा। वह आदमी उसे मारने की कोशिश की, जयंत ने उसकी ओर बढ़ा। वह आदमी उसे मारने की कोशिश की, जयंत ने उसकी ओर बढ़ा।

भोर होते ही जयंत को होठों पर तो उसे अपनी हालत पर बड़ी आश्चर्य उसने अपने कपड़े ठीक किये और उस के साथ पुनः पहरा देने लगा। सुबह किसी से कुछ नहीं कहा और अपने पिटने की बात शर्म के कारण तरह से छिपा गया।

दूसरी रात को सुखदेव नाम की पारी आयी। उसके साथ भी घटना घटी। रात के दूसरे प्रहर भयानक आकारवाला आदमी सुखदेव की ललकारों के साथ बने

हुता हुआ उसे पीट-पाटकर चला गया ।
 सुबह हुई तो वह भी रात में हुई घटना को
 पचा गया और साधारण ढंग से अपने कामों
 में लग गया ।

इसी प्रकार बराबर पांच दिन तक
 ऐसी घटनाएं घटती रहीं । पांचों विद्यार्थी
 एक-दूसरे से अपने साथ
 बीती हुई बात को छिपाये
 रहे । छठे दिन खुद
 महर्षि की बारी थी ।

रात हुई तो वे अपनी
 निम्नद्वारी को निभाने
 काश्रम के द्वार पर पहुंच
 उसे लपक गये । उनके पांचों शिष्य
 भी, जो उस भयानक
 आदमी से पिट गये थे,
 चोरी-छिपे महर्षि को
 डक चलाकर पहरा लगाते हुए देखते
 को होकर रहे ।

रात के ठीक दूसरे पहर
 उसी आदमी फिर आया
 और महर्षि की ओर बढ़ने
 लगा । महर्षि ने उसे देखा

और मुंह फेर लिया । इसके बावजूद वह
 तब तक उनकी ओर बढ़ता रहा । महर्षि
 उसके आने की ज़रा भी परवाह नहीं
 की और वे अपनी लाठी एक छाल से
 टक करने में मगन हो गये । विशाल-
 आदमी जोर से चीखा और महर्षि
 की ओर तेजी से लपका । महर्षि तब भी
 ध्यान देने रहे और उसका कोई उत्तर

नहीं दिया ।

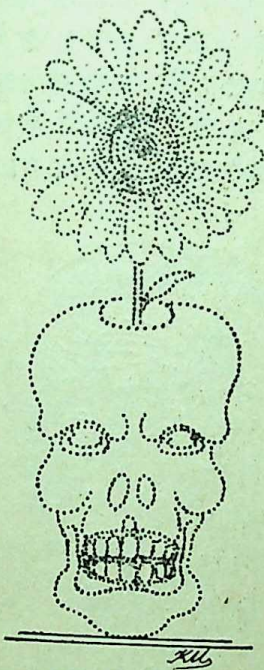
शिष्यों ने देखा कि महर्षि के शरीर के
 करीब आते-आते उस आदमी का शरीर
 एकदम छोटा (लघुतम) हो गया है ।
 महर्षि के शांतिपूर्ण व्यवहार के कारण
 वह विशाल हिंसक आदमी उनके प्रति

आदर से झुककर एक
 चिड़िया के आकार का बन
 गया । कुछ ही क्षणों में
 महर्षि ने उसे एक कपड़े में
 बांध लिया । शिष्यों ने यह
 सब देखा तो वे आश्चर्य-
 चकित रह गये और एक-
 एक करके सभी महर्षि के
 चरण छूने पहुंच गये ।

उसी समय सबने अपने
 साथ घटी घटना का
 जिक्र भी कर दिया, और
 महर्षि से जानना चाहा कि
 आखिर वह कौन था और
 उसे वे इतनी सरलता से
 अपने वश में करने में कैसे
 सफल हो गये ?

महर्षि ने कहा—‘शिष्यों, वह क्रोध था ।
 याद रखो, हम क्रोध से लड़कर उसे कभी
 नहीं हरा सकते । उस पर विजय प्राप्त
 करने का एकमात्र रास्ता शांति है ।
 शांति के बल पर ही मैंने उस पर विजय
 पायी है ।’

—ए-६० जनता कालोनी,
 जयपुर-३०२००४



ख्वाजा अहमद अब्बास का जीवनी-परक लेख

गांधी और टॉल्स्टॉय

मास्को की ऊंची-ऊंची इमारतें सड़क की ढलान के पीछे गुम हो जाती हैं। हरी-हरी घास को पार करती सड़क चलती रहती है, चलती रहती है, यहां तक कि ऊंचे-ऊंचे ब्रिच (भुर्ज) के पेड़ों का जंगल आ जाता है। मगर इस जंगल में से सड़क ऐसे गुजरती है, जैसे वह सड़क न हो, बल्कि एक अंधेरी सुरंग हो और ऐसा लगता है कि हम वक्त के पहाड़ का सीना चीरते हुए अतीत की तरफ जा रहे हों।

और फिर एकदम जंगल का अंधेरा सूरज की किरणों से जाग उठता है। अब हम

ऊंचे-ऊंचे पेड़ों की अंधेरी सुरंग में से एक हसीन वादी में आ निकलते हैं। चारों तरफ हरियाली ही हरियाली, धूप में चमकता हुआ नदी का पानी, एक गहरा सन्नाटा, खामोश वातावरण में हमारी मोटर की आवाज, एक अजीब तिलस्मी सकून, मगर ये मौत का सकून नहीं है, प्रकृति के इस सुन्दर वातावरण में जिन्दगी

की नब्ज चल रही है। नहीं ये सकून का सकून भी नहीं है। नदी के पानी सतह पर किरणें नाच रही हैं। धीरे-धीरे झूम रहे हैं। हवा के हलकें झोंकों के साथ घास सरसरा रही। प्रकृति सो नहीं रही। प्रकृति एक

सोच में खड़े हैं जैसे कोई समाधि लगायी की समस्याओं विचार करते हैं।

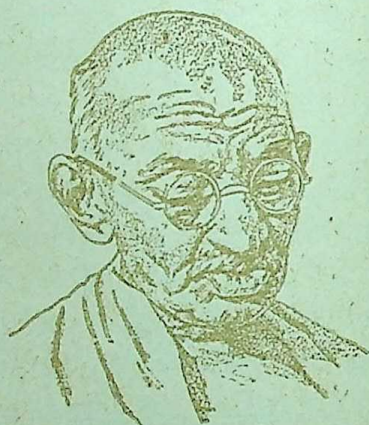
हम बाएँ पोलियाना के महात्मा टॉल्स्टॉय मकान के दर्शन गये थे।

एक बड़े ने

कर्मयोगी गांधी

एक कोने में एक मिट्टी का ढेर घास उगी हुई है और कुछ जंगल न संगमरमर की सिल, न नाम, का निशान... ये टॉल्स्टॉय की

टॉल्स्टॉय, जो एक अमीर बेटा था, जिसको काउंट गियो की मिली थी, जिसने अपनी लाखों दाद अपने गरीब किसानों में बाँटी



टॉलस्टॉय, जो दुनिया के महान साहित्य-
कारों में गिना जाता है और जिसके उप-
न्यास 'वार एंड पीस' के बारे में समीक्षकों
का कहना है कि यह दुनिया के बेहतरीन
उपन्यासों में से एक है, और जिस पर एक
टेक्निकल फिल्म बनाकर हालीवुड के
एक प्रोड्यूसर ने करोड़ों डालर कमाये।

टॉलस्टॉय, जो ईसाई धर्म में पैदा हुआ
था और जो हजरत ईसा मसीह का सच्चा
भक्त था, और उनकी तरह शान्ति और
अहिंसा में निश्वास रखने वाला और लड़ाई
और हिंसा का विरोधी था।

टॉलस्टॉय, जिसने मरते
वक्त वसीयत की थी कि
उसे एक गरीब किसान की
तक कच्ची कब्र में दफन
किया जाये और उस पर
पत्थर की एक सिल भी न
रखी जाये और न ही सलीब
का निशान बनाया जाये।

मगर टॉलस्टॉय जैसी
महान आत्माओं की याद-
गार कायम करने के लिए

अक्षर-योगी टॉलस्टॉय

संगमरमर के मकबরों, समाधियों और
सलीबों की जरूरत नहीं होती, उसकी कच्ची
कब्र पर भी कभी दिया या मोमबत्ती जलाने
की जरूरत नहीं होती। लेकिन टॉलस्टॉय
ने अपनी जिन्दगी और अपने साहित्य से
इंसानियत के जिन पहलुओं को उजागर
किया, वे दुनिया के कोने-कोने में अब तक
रोशनी फैला रहे हैं। और आज भी न

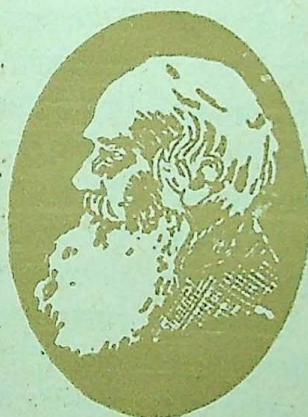
केवल हजारों रूसी, बल्कि सैकड़ों विदेशी
भी अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन, जापानी,
इतालवी, अरब और हिन्दुस्तानी, इस
गांव में आते हैं, इस बाग में घूमते हैं, जहां
टॉलस्टॉय टहल-टहलकर सोचा करता था,
उस पेड़ के नीचे सुस्ताते हैं, जिसके सांये
में टॉलस्टॉय अपने किसानों को समाजी
और आर्थिक उलझनों और समस्याओं को
सुलझाने में दोस्ताना सलाह देता था।

फिर वे इस मकान के कमरों में से होते
हुए उस कमरे में आते हैं, जहां टॉलस्टॉय

अपने साहित्यिक काम
किया करता था। उस
मेज़ को देखते हैं, जिस
पर 'युद्ध और शांति' जैसा
साहित्यिक ग्रंथ लिखा
गया था। उस मेज़ के
सामने दीवार पर अलमारी
है और इस अलमारी में
आज भी वे किताबें रखी
हुई हैं, जो मौत से कुछ
दिन पहले टॉलस्टॉय पढ़ा
करता था। उनमें से कई

किताबें भारत और भारतीय संस्कृति के
बारे में भी हैं। हालांकि टॉलस्टॉय कभी
हमारे देश भारत में नहीं आया, लेकिन
भारतीय संस्कृति से संबंधित उसने कई
पुस्तकें पढ़ी थीं।

जिन्होंने गांधीजी के जीवन का अध्ययन
किया है, वे जानते हैं कि अहिंसा और
सत्याग्रह को अपनाने में वे टॉलस्टॉय से



बहुत हद तक प्रभावित हुए हैं। दक्षिण अफ्रीका में जब उन्होंने अपना पहला सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया, तो उसका नाम 'टॉल्स्टॉय फार्म' रखा। उन दोनों में बरसों पत्र-व्यवहार चलता रहा और गांधीजी के पत्र आज भी टॉल्स्टॉय म्यूजियम में सुरक्षित रखे हुए हैं। गांधीजी के भाषणों और लेखों में बार-बार टॉल्स्टॉय का जिक्र मिलता है। टॉल्स्टॉय की सौ साला बरसी पर गांधीजी ने अपने एक लेख में अपने रूसी दोस्त को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा है :

'चालीस बरस पहले जब मैं अपने जीवन के बहुत ही नाजुक दौर से गुजर रहा था, मैंने टॉल्स्टॉय की किताब पढ़ी जिसका शीर्षक था 'भगवान का राज्य स्वयं तुम्हारे हृदय में है'। उस समय तक मैं हिंसा में विश्वास रखता था। लेकिन इस किताब से मैं बहुत अधिक प्रभावित हुआ। उस किताब को पढ़ने के बाद मेरे दिल के बहुत से शक दूर हो गये और मैं अहिंसा में विश्वास करने लगा। मुझे टॉल्स्टॉय की जिस बात ने सबसे अधिक प्रभावित किया वह थी कि वे जो कहते थे, उस पर अमल भी करते थे। वे पैदा हुए एक अमीर घराने में, जवान हुए ऐश-ओ-आराम के वातावरण में, जहां किसी चीज की कमी नहीं थी, और फिर भी जब उन्होंने अपनी उस जिन्दगी को छोड़ा, तो पीछे मुड़कर नहीं देखा—टॉल्स्टॉय अपने ज़माने के सबसे सच्चे इन्सान थे, वे इस

दौर के सबसे बड़े अहिंसावादी थे।

'एक और समस्या, जिस पर टॉल्स्टॉय से बहुत कुछ सीख सकते हैं, है मेहनत और रोटी की समस्या। उनका कहना था—दुनिया में इतनी गरीबी तकलीफ इसलिए है कि लोगों को मेहनत का सही पुरस्कार नहीं मिलता वे खैरात, दान और पुण्य के बिलकुल कायल नहीं थे। जो अमीर गरीबों की मेहनत मजदूरी से नाजायज फायदा उठाकर ऐश-ओ-आराम की जिन्दगी करते हैं और फिर अपने आपको दान देने के लिए दान-पुण्य करते हैं, ऐसे लोगों को वे ढोंगी कहते थे। उनका कहना था कि जब अमीर और उच्च वर्ग के लोगों को बोझ गरीब मजदूरों और किसानों की पीठ से हट जायेगा, तब खैरात, दान और पुण्य की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

टॉल्स्टॉय के जीवन की ये बातें जिनसे हमारे नौजवान बहुत कुछ सीख सकते हैं, यह तो है राय गांधीजी के टॉल्स्टॉय के बारे में, जिससे हम हमारे महान व्यक्तियों के उच्च विचारों का निणय कर सकते हैं।

अब सवाल यह पैदा होता है कि टॉल्स्टॉय अहिंसा की हिंदुस्तानी फिदा का कायल कैसे हो गया? इसका जवाब शक नहीं कि प्रेम, दोस्ती की बातें ईसा के असल उपदेशों में भी पायी हैं, जिस उपदेश और जिस शिक्षा में चर्च के ठेकेदारों ने अपनी बातें

बीर फरेव का मुलम्मा चढ़ा दिया था, लेकिन अहिंसा का तसव्वुर जो टॉलस्टॉय ने पेश किया, वह खालिस हिंदुस्तानी था। रूसी दार्शनिकों ने टॉलस्टॉय के जीवन के बारे में किताबों का जो सैट प्रकोशित किया है, उससे मालूम होता है कि अहिंसा के बारे में टॉलस्टॉय की दिलचस्पी इतनाफा नहीं थी। दरअसल उन्होंने हिंदुस्तान के वेदों का और महात्मा बुद्ध के उपदेशों का गहन अध्ययन किया था।

वेदों के अलावा टॉलस्टॉय ने महाभारत और रामायण का भी अध्ययन किया था, आज भी यासिनाया पोलियाना की लाइब्रेरी में रामायण और महाभारत के रूसी और फ्रांसीसी अनुवादों की जिल्दें रखी हुई हैं। महाभारत में वह गीता से सबसे अधिक प्रभावित हुए थे। इस बारे में उन्होंने लिखा है :

‘मैं गीता की फिलासफी का शत-प्रतिशत कायल हूं। मनुष्य के जीवन का सर्व-प्रथम उद्देश्य यही है कि वह अपने कर्तव्य को पूरा करने में लगा रहे।’

इनके अलावा टॉलस्टॉय ने महात्मा बुद्ध के जीवन का अध्ययन किया, राम-कृष्ण, स्वामी विवेकानंद और दूसरे नये-पुराने दार्शनिकों को पढ़ा। एक वैदिक पत्रिका जो कांगड़ा से प्रकाशित होती थी, टॉलस्टॉय उसके स्थायी ग्राहक थे और रूसी हिंदुस्तानी विद्वानों, पत्रकारों, और नेताओं से उनका पत्र-व्यवहार था। आज भी उन पत्रों के पुर्लिदे टॉलस्टॉय म्यूजियम

में रखे हुए हैं, लेकिन इन पत्रों में सबसे महत्वपूर्ण पत्र गांधीजी के हैं, जो उन्होंने दक्षिण अफ्रीका से लिखे थे।

यह १९१० की बात है, जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में हिंदुस्तानियों के अधिकारों के लिए सत्याग्रह कर रहे थे। उन्होंने अपना पैम्फलेट ‘इंडियन होमरूल’ टॉलस्टॉय को भेजा था, उसकी स्वीकृति भेजते हुए टॉलस्टॉय ने लिखा था : ‘प्रिय मित्र, तुम्हारा पत्र और पुस्तक मिली, जो मैंने बड़ी दिलचस्पी से पढ़ी। मैं तुम्हारे विचारों से और तुम्हारी जद्दोजहद से पूरी तरह सहमत हूं।’

बरसों बाद टॉलस्टॉय की बेटी गांधीजी से मिली, और उनसे कहा, ‘मेरे पिता अक्सर आपका जिक्र किया करते थे और आपकी अहिंसा और सत्याग्रह और आपकी आजादी की लड़ाई के बारे में सोचते थे।’

टॉलस्टॉय और गांधी, दो महान आत्माएं—एक रूसी एक हिंदुस्तानी। एक साहित्यकार जिसने राजनैतिक और सामाजिक जद्दोजहद में अपने लोगों का साथ दिया, एक नेता जिसने अपनी कौम की आजादी के लिए जान दी—दोनों ने अपने निजी फायदों को अपने लोगों के लिए कुरबान कर दिया।

आज दोनों इस दुनिया में नहीं हैं। लेकिन उनके विचार, उनकी कुरबानियों की मिसालें आज भी हमारे पास हैं।

—फिलोमिना एपार्टमेंट, चर्च रोड, जूहू,
बम्बई—४०००४९

स्टीफन ज्वाइंग द्वारा प्रस्तुत टॉल्स्टॉय के क्रान्तिकारी विचार



सम्पत्तिवाद की समर्थक सरकार अधार्मिक, अनैतिक, असामाजिक

एक बार जब १८८१ में टॉल्स्टॉय मास्को में ठहरा था, तब वह पहली बार सामाजिक समस्या के करीब आया। अपनी किताब 'हमें क्या करना होगा?' में एक महान नगर के सामूहिक-पीड़न के अपने पहले दर्शन को उसने थर्न देने वाले रूप में चित्रित किया है। यह सच है कि उसकी सावधान नज़र ने इससे पहले भी हजारों बार अपनी पैदल यात्राओं और दौरों में गरीबी को देखा था, लेकिन वह तो गांवों और देहातों में इधर-उधर बिखरे लोगों की व्यक्तिगत गरीबी थी। (वह यांत्रिक सभ्यता से सामूहिक यंत्रणा रूप बन निपजने वाली, औद्योगिक शहरों में एकत्रित समूचे सर्वहारा वर्ग की गरीबी नहीं थी, जो कि एक युग की खास उपज थी।) बाइबिल संबंधी अपने दृष्टिकोण को अमल में रखते हुए सबसे पहले टॉल्स्टॉय ने उस लोक-पीड़न का निवारण जरूरी चीजों के वितरण, भेंटों तथा संगठित पारमार्थिक सेवा और दान के द्वारा करना शुरू किया, पर न कुछ समय में ही इस प्रकार की हर व्यक्तिगत चेष्टाओं

की निरर्थकता उसे समझ में आई और उसने अनुभव किया कि 'सिर्फ ही इन लोगों के दुखी अस्तित्वों में परिवर्तन लाने के लिए पर्याप्त नहीं है।' सामाजिक व्यवस्था का आमूल पुनर्निर्माण करके ही सच्चा परिवर्तन उपस्थित जा सकता है। समय की दीवार चेतनावनी के वे आग्नेय शब्द उसने तरह लिखे हैं: 'हमारे बीच, यानी गरीब और गरीबी के बीच एक मिथ्या की दीवार सदा से बनी हुई है और पहले कि हम गरीबों के उद्धार के कुछ कर सकें, हमें इस दीवार को देना होगा। मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि हमारा धन ही आम लोगों के का कारण है।' मौजूदा समाज में ही कोई खामी है; उसकी अंतरतम में यह बात खूब ही स्पष्ट गयी थी, और उस दिन के बाद टॉल्स्टॉय के सामने सिर्फ एक ही रास्ता था—लोगों को शिक्षा देना, उन्हें करना, उन्हें यह सिखाना कि कष्ट झेलकर भी इतने भित्त-भित्त

... सारे बुराफात सम्पत्ति स ही आरंभ होते हैं, और जब तक सरकार सम्पत्ति के सिद्धान्त को मान्य रखती है, तब तक टॉल्स्टॉय के मतानुसार वह सरकार अधार्मिक, असामाजिक है। ... सरकारें और हुकूमतें सम्पत्ति के लिए षड्यन्त्र रचती हैं और लड़ाइयां लड़ती हैं। बैंकर लोग, व्यापारी, उद्योगपति और जमींदार लोग सिर्फ सम्पत्ति के लिए अपने आप पर तथा दूसरे लोगों पर अत्याचार करते हैं। सम्पत्ति के केंद्रीकरण के रूप में चुराये हुए माल को जमा करने वाली सबसे जबरदस्त अपराधी है सरकार, जो कि मौजूदा समाज के सारे अन्यायों की ढाल बनकर उनकी रक्षा करती है। इस तरह टॉल्स्टॉय का खयाल था कि सरकार का आविष्कार सम्पत्तिवाद की रक्षा करने के लिए ही किया गया था।

में बंटी हुई मानवता के वर्ग-भेद को वे मिटाये।

यह उन्हें एक शुद्ध नैतिक अंतर्दृष्टि के साथ, संपूर्णतया अपनी स्वतंत्र इच्छा से करना था। यहीं टॉल्स्टॉयवाद का आरंभ होता है, क्योंकि टॉल्स्टॉय का उद्देश्य हिंसात्मक क्रांति नहीं, बल्कि नैतिक क्रांति था, जिसके द्वारा सामाजिक समानता का यह स्तर वह पैदा करना चाहता था, ताकि मानवता एक दूसरे खूनी विद्रोह से बच जाये। इस क्रांति का आधार था विवेक। इस क्रांति में धनिक को स्वेच्छया अपने धन का त्याग करना होगा और गरीबी को स्वेच्छया अपनी अकर्मण्यता छोड़नी होगी। तुरंत ही श्रम का एक नया विभाजन करना होगा, जिसके अनुसार एक सहज ईश्वरीय विधान के रूप में हमें यह स्वीकार कर लेना होगा कि कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के श्रम में से अतिरिक्त भाग नहीं ले सकता और सबकी आवश्यकताएं समान होंगी।

अब टॉल्स्टॉय को यह स्पष्ट प्रतीत होने लगा था कि वैभव इसी दलेदल में से पैदा होने वाला, फूलों से लदा वह पेड़ है, जिसे मनुष्यों के बीच समानता स्थापित करने के लिए अब आमूल उखाड़ फेंकना होगा। इस विश्वास को लेकर टॉल्स्टॉय ने, कार्ल मार्क्स और प्रौद्योगिकी से सौगुनी अधिक कड़वाहट के साथ सम्पत्ति पर प्रहार करना शुरू किया। 'आज धन-संपदा सारी बुराइयों की जड़ है। संपदा धनिक और निर्धन दोनों ही का पीड़न करती है। और इस तरह जिनके पास बहुत है उनके, और जो गरीबी में जीते हैं उनके बीच टक्कर होने का खतरा अनिवार्य हो उठता है। सारे बुराफात संपत्ति से ही आरंभ होते हैं, और जब तक सरकार संपत्ति के सिद्धान्त को मान्य रखती है, तब तक टॉल्स्टॉय के मतानुसार वह सरकार अधार्मिक और असामाजिक है और (चूंकि टॉल्स्टॉय संपत्ति को दूसरों के ऋण के रूप में

मानता था) ऐसी हालत में वह अपराधियों के दल में भी एक प्रधान अपराधी हो उठती है। 'सरकारें और हुकूमतें संपत्ति के लिए षड्यंत्र रचती हैं और लड़ाइयां लड़ती हैं। कभी राहिन के तटवर्ती प्रदेशों के लिए, कभी अफ्रीका के भू-खंडों के लिए और कभी चीन और बाल्कन प्रदेशों के लिए, बैंकर लोग, व्यापारी उद्योगपति और जमींदार लोग सिर्फ संपत्ति के लिए नयी-नयी योजनाएं बनाते हैं, और अपने आप पर तथा दूसरे लोगों पर अत्याचार करते हैं। महज संपत्ति के लिए ही अफसर लोग आपस में झगड़ते हैं, धोखेबाजी करते हैं, दूसरों को कष्ट देते हैं और आप खुद कष्ट उठाते हैं। हमारी ये अदालतें और ये पुलिस विभाग संपत्ति की ही रक्षा के लिए हैं। अपराधियों को दंड देने के ये हमारे स्थान और ये जेलें, अपराधों के तथाकथित दमन के नाम पर चलनेवाली ये सारी भयानकताएं, यह सब संपत्ति की रक्षा के लिए ही होती हैं।'

इसलिए टॉल्स्टॉय की समझ में, इस सब चुराये हुए माल को जमा करने वाली सबसे ज़बरदस्त अपराधी है सरकार, जो कि मौजूदा समाज के सारे अन्यायों की ढाल बनकर उनकी रक्षा करती है। उसका खयाल था कि सरकार का आविष्कार संपत्ति की रक्षा करने के लिए ही किया गया था, इसी प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए इस सरकार ने कानूनों, वकीलों,

जेलखानों, न्यायाधीशों, पुलिस और फौज को लेकर यह अनेक फंदोंवाली सत्ता का की है।

टॉल्स्टॉय की मान्यता थी कि सरकार का सबसे भयानक और ज़ैतना अपराध एक सार्वभौम सत्ता का बनना था, जो कि उसकी अपनी शक्त का एक आविष्कार था। टॉल्स्टॉय की दृष्टि में क्राइस्ट के उपदेशों और उन धर्म देशनाओं का उल्लंघन करने के लिए एक ईसाई को उत्तेजित करने का सबसे बड़ी चीज़ थी, हुकूमत की आज्ञा के प्रति आत्म-समर्पण करना, फादरों, आज़ादी और स्टेट जैसे रटंत बोलों के नाम पर सरकार द्वारा बलात्, हाथ में पकड़ा दिये गये किसी हथकड़ी को लेकर किसी बिल्कुल असुरक्षित आदमी की जान ले डालना। टॉल्स्टॉय ने चिल्ला-चिल्लाकर कहा कि इन बोलों का मक़सद महज संपत्ति को रक्षित करना और संपत्ति के खयाल को उच्च आदर्श का रूप देने का है। इस विरोध को उद्घोषित करने के लिए टॉल्स्टॉय ने सैकड़ों पृष्ठ लिख दिये। उसने इस बात पर जोर दिया कि तथाकथित सभ्यता की आज की अवस्था में (जिसको कि वह महज नैतिक इन्कार की एक आड़ मानता था) शासन की आज्ञा के मातहत लोगों को एक दूसरे को क्रुल कर डालने के मजबूर किया जा सकता है।

के शासन के विरुद्ध है, यह हमारी अंत-

वर्गावत करे।

रात्मा के नैतिक तकाजे के विरुद्ध है, क्योंकि 'ऐसा करके मनुष्य को हम उसकी इच्छा के विरुद्ध एक ऐसी स्थिति में ला पटकते हैं, जो उसके विवेक को गवारा नहीं होती है।'

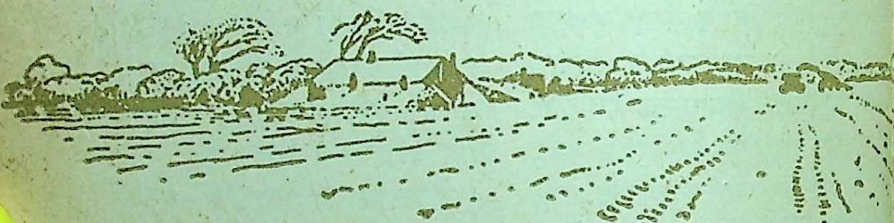
इस प्रकार धर्म-देशनाओं का अनुगामी टॉलस्टॉय स्थायी रूप से एक प्रगतिशील बराजकवादी के रूप में परिणत हो गया है और वह इस नतीजे पर पहुंचा कि हर समझदार नैतिक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि यदि सरकार कोई ऐसी मांग करे, जो इंसानियत के विरुद्ध हो, मसलन फौजी नौकरी, तो वह उसका विरोध करे, मगर यह विरोध हिंसात्मक न होकर सत्याग्रही प्रतिरोध होना चाहिये। साथ ही उन व्यक्तियों को स्वेच्छया ऐसे सब काम छोड़ देने चाहिये, जो दूसरों के श्रम के शोषण पर निर्भर करते हों। आत्म-सम्मानशील लोगों को देशभक्त की तरह नहीं, बल्कि मनुष्य की तरह सोचना और आचरण करना चाहिये। टॉलस्टॉय मनुष्य के इस पवित्रतम अधिकार की बराबर घोषणा करता रहा है कि कानून से भी अगर कुछ चीजें जायज हों या कानून से वे चीजें करने के लिए मनुष्य को बाध्य भी किया जा रहा हो, पर यदि वे उसकी अंतरात्मा के विरुद्ध हों, तो मनुष्य उन्हें करने से इन्कार कर दे। हुकूमत की हर ऐसी आज्ञा जो उसके लोभ, नैतिक न हो, वह उसके खिलाफ़

१९८१

इसीलिए वह हर ईसाई को यह आदेश करता है कि जहां तक, मुमकिन हो वह तमाम व्यवस्थाओं और संस्थाओं से अपने को बचाये, वह कानूनी अदालतों में न जाये, वह पद ग्रहण न करे, ताकि वह अपनी आत्मा को शुद्ध रख सके। बार-बार टॉलस्टॉय ने व्यक्ति को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया है कि वह शक्ति के मिथ्या और अनैतिक सिद्धांत से भयभीत न हो, चाहे फिर वह शक्ति अपने को शासन और कानून की शक्ति के नाम से ही क्यों न पुकारे? क्योंकि अपने मौजूदा रूप में सरकार तो स्वयं ही छुपे हुए अन्याय की रक्षक, वकील और अधिकृत पैरोकार है।

टॉलस्टॉय की नज़र में व्यक्तियों के स्वच्छंद अपराध भी नैतिक दृष्टि से इतने अहितकर नहीं हैं, जितनी कि यह बाहर से सुव्यवस्थित और माननीय दीख पड़नेवाली इस दुश्मन सरकार की ये संस्थाएं अहितकर हैं। 'चोर, डाकू, हत्यारे और धोखेबाज़ सज़ा के योग्य लोग शायद इस बात के लिए एक नज़ीर पेश करते हैं कि मनुष्य को क्या नहीं करना चाहिये और इस तरह वह लोगों के मनों में पाप के प्रति एक मात्र दहशत पैदा करते हैं। लेकिन जो लोग चोरी, डकैती, हत्या और तरह-तरह के जुल्म, किसी धार्मिक या वैज्ञानिक सिद्धांत का मुलम्मा चढ़ाकर ज़मींदार, व्यापारी या उद्योगपति की

हैसियत से करते हैं, वे सीधे ही दूसरी को अपने दुष्कर्मों का अनुसरण करने की शिक्षा देते हैं। ऐसे लोग केवल उन्हीं लोगों का नुकसान नहीं करते, जो उनके इन दुष्कर्मों के शिकार होते हैं, बल्कि वे हजारों-लाखों के मन से अच्छाई और बुराई का भेद मिटाकर, उनकी नैतिकता का सीधा सत्यानाश करते हैं। ईसाई पादरियों के प्रोत्साहन और सहायता से, जो समर्थ शिक्षित लोग, स्वयं बिना किसी कषाय के वशीभूत हुए भी जो मौत की सजा किसी व्यक्ति को देते हैं, वह



अशिक्षित मजदूरों द्वारा कषाय के आवेश में की जानेवाली सैकड़ों-हजारों हत्याओं की बनिस्बत कहीं ज्यादा इंसानियत को हैवान बनाने और उसे बिगाड़ने में समर्थ होती है।

‘एक बरस के दरमियान, किसी एक छोटे-से युद्ध के नाम पर भी जो नुकसान होते हैं, जो चोरियां, ज्यादतियां, डकैतियां और हत्याएं होती हैं और उन्हें फिर युद्ध की गौरव गरिमा के नाम पर जो न्याय, अनिवार्य और आवश्यक करार दिया जाता है और झंडे और फादरलैंड

(पितृभूमि) के नाम पर जो प्रायः होती हैं और युद्ध के घायलों के लिए पाखंडपूर्ण चिंता की जाती है, यह कुछ सैकड़ों बरसों में कषाय से प्रेरित होकर कुछ व्यक्तियों के द्वारा की जाने वाली लाखों डकैतियों, अग्नि-कांड और हत्याओं से कहीं अधिक मानवता का संवर्धन करने वाली हैं।’ दूसरे शब्दों में सरकारी और हमारी मौजूदा समाज-व्यवस्था सबसे बड़ी गुनहगार है। यही कारण है कि सबसे बड़े दुश्मन हैं, ये मूर्तिमान अपराध हैं, और इसी पाप के मुंह

टॉलस्टॉय ने अपनी तीव्रतम भर्त्सना लांछना फेंकी है।

मानव-समाज की एक प्रधान समस्या के रूप में यदि सरकार ही निश्चित रूप से एकमात्र सबसे बड़ा पाप है, यदि ईसाइयत के दुश्मन का सबसे बड़ा दुश्मन है तो टॉलस्टॉय के खयाल से हर एक व्यक्ति का यह स्वाभाविक कर्तव्य होना चाहिए कि वह एक शैतानी भूत के प्रतीक को अपने को दूर खींच ले। एक स्वतंत्र व्यक्ति को एक सरकार के रूप में तो खूब प्रति भी उतना ही निर्मम होना चाहिए जितना



चित्र : चंदुलाल सांकला

चितना कि वह फ्रांस या इंग्लैंड के प्रति हो सकता है। उसे राष्ट्रों के अर्थों में नहीं सोचना चाहिये, बल्कि विश्व-मानवता ही उसके विचार का आधार हो। कट्टरपंथी वचन की तरह ही टॉलस्टॉय ने सरकार की ओर से भी अपने को आध्यात्मिक रूप से यह घोषित करते हुए खींच लिया। मैं सरकारों और राष्ट्रों को स्वीकृति नहीं देता, न उनके बारे में लिखकर या किसी खास सरकार की सेवा करके, मैं उनके बीच के झगड़ों में ही हिस्सा ले सकता हूँ। मैं ऐसी चीज़ में भी हिस्सा नहीं ले सकता, जिसकी बुनियाद जुदा-जुदा सरकारों के भेद और संघर्ष पर कायम है। मसलन कस्टम विभाग, चुंगी विभाग, विस्फोटक पदार्थों और शस्त्रों का निर्माण और युद्ध संबंधी ऐसी ही दूसरी तैयारियाँ। एक ईसाई सरकारी संस्थाओं से फायदा उठाने की कोशिश नहीं करेगा, सरकार के कारखाने तले वह धनवान होने की कोशिश नहीं करेगा और न सरकारी कृपा के भ्रम में वह अपनी जिंदगी की राह बना-बना कर ईसाई को अदालतों में नहीं लाने चाहिये, उसे कारखानों की बनी बनी इस्तेमाल नहीं करनी चाहिये, दूसरों से मेहनत से बनकर आनेवाली कोई भी

चीज़ उसे अपने जीवन के किसी उपयोग में नहीं लानी चाहिये। उसे कोई संपत्ति या जायदाद नहीं रखनी चाहिये, उसे पैसे का लेन-देन नहीं करना चाहिये, रेल या वाइसिकल पर उसे नहीं चलना चाहिये, उसे ज़ार या और किसी भी शक्ति के प्रति भक्ति की शपथ नहीं लेनी चाहिये, क्योंकि प्रभु द्वारा और धर्म-देशनाओं से कहे गये शब्दों को छोड़कर और कोई भी आज्ञा मानने को वह बाध्य नहीं है। अपने विवेक को छोड़कर और किसी को वह अपना न्यायाधीश स्वीकार नहीं करेगा।'

टॉलस्टॉय के लेखे जो ईसाई-जन हैं, बल्कि और भी मुनासिब तौर पर कहें कि जो विशुद्ध अराजकवादी हैं, वह सरकार से इन्कार करेगा, इस अनैतिक संस्था से बाहर रहकर उसे एक नैतिक जीवन जीना चाहिये। यह बिल्कुल अप्रतिकारी, इन्कार कर देनेवाला, असहानुभूतिपूर्ण रुख, तथा स्वेच्छया किसी भी कष्ट-सहन की स्वीकृति—यही वे विशेषताएँ हैं, जो एक ईसाई-जन को एक राजनैतिक क्रांतिकारी से अलग करती हैं, जो सरकार की अवज्ञा करने के बजाय उससे नफ़रत करता है।

अनु : शंकर पिनाकपाणि

ताम्र उपनिषद्

मूल की खोज

कुछ चीजें एकतावश चिरकाल से टिकी हैं। जैसे :
आकाश की पार-दर्शकता ।

पृथ्वी की घनता ।

भूत-पिशाचों की देहशून्यता, निराकारता ।

घाटियों की जल-पूर्णता ।

सृष्टि के सौर जीवों का जीवन ।

राजा-रजवाड़ों के राज्य ।

ये सब एकता के कारण टिके हुए हैं ।

पार-दर्शकता के अभाव में आकाश के आंखों से
ओझल हो जाने का भय रहता ।

घनता के अभाव में पृथ्वी के चूर-चूर हो जाने का
भय रहता ।

देहशून्यता के अभाव में भूत-पिशाचों को रोग लग
जाने का भय रहता ।

जल-पूर्णता के अभाव में घाटियों के रूख हो जाने
का भय रहता ।

जीवन-शक्ति के अभाव में सृष्टि के सारे जीवों के
विनाश का भय रहता ।

सम्मान और बड़प्पन के अभाव में राजा-रजवाड़ों
की पराजय का भय रहता ।

इससे यह स्पष्ट दीखता है कि जिसमें कोई विशेषता
नहीं, उससे सम्मान प्राप्त होता है, और जो क्षुद्र है,
उसमें बड़प्पन रहता और पाला-पोसा जाता है ।

यही कारण है कि राजा-रजवाड़े स्वयं को 'अनाथ',
'एकान्त में रहने वाले' या 'बिना पहिये के रथ' कहा करते हैं।
इस तरह क्या वे यह कबूल नहीं करते कि अपना



अधिकार अपने से उच्च अधिकारी में अधिष्ठित रहता है
और उसी कारण वह टिक पाता है ?

इसे कौन अस्वीकार करेगा ?

निःसन्देह बिना पहिये का रथ कोई रथ नहीं है ।
मानव के लिए साधारण कण की तरह समुदाय में
घुल-मिल जाना जितना कठिन है, उतना ही अकेले
रत्न की तरह अलग रहना भी कठिन है ।



बालवत् स्थिति

पुरुष होते हुए भी जो स्त्री के समान बनकर रहेगा,

वह विश्व का पथ-प्रदर्शक होगा ।

विश्व का मार्गदर्शक होने से शाश्वत धर्म उसे कभी न
त्यागेगा । वह पुनः बालवत् (निष्कपट प्रसन्न) होगा ।

प्रकाश में रहकर भी जो अप्रसिद्ध रहे,

वह विश्व के लिए आदर्श होगा ।

विश्व का आदर्श होने से शाश्वत धर्म उसे कभी न
त्यागेगा । वह पुनः पूर्णता की ओर जायेगा ।

जो वैभवशाली होकर नम्रतापूर्वक रहेगा, वह विश्व

की समृद्धि का आधार होगा ।

सबका आधार होने से शाश्वत धर्म उसमें सदैव भरा

रहेगा । वह मूलतत्त्व में पुनः विलीन हो जायेगा ।

यह वही तत्त्व है, जिसका विभाजन करने पर उससे

असंख्य जीवन-घट बनते हैं ।

उससे एकरूप होकर ज्ञानी पुरुष सबका उत्तम

शासक बनता है ।

जो किसी का अपमान नहीं करता या किसी का दिल

नहीं दुखाता, वह उदार राज्य है ।



वीरेन्द्र कुमार जैन का एक क्रान्तदर्शी लेख

कविता में लौकिक और परालौकिक का विभाजन नहीं

[लेखांक-१]

वसीयतनामा एक कवि
आने वाली पीढ़ियों के

डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय नई पीढ़ी के कुछ ऐसे विरल समीक्षकों में हैं, जिन्होंने फॉर्मला का चिन्तन की लोक को तोड़ कर, अपना अलग रास्ता बनाया है। वे एक गहरी आत्मिक पीड़ा से प्रेरित होकर, साहित्य और संस्कृति के नव-मूल्यान्वेषण का पराक्रम कर रहे हैं। समकालीन और शाश्वत मूल्यों के बीच एक बुनियादी स्थापित करने की उनकी ईमानदार कशिश और कोशिश निरी बौद्धिक सम्बेदना से उन्मेषित है।

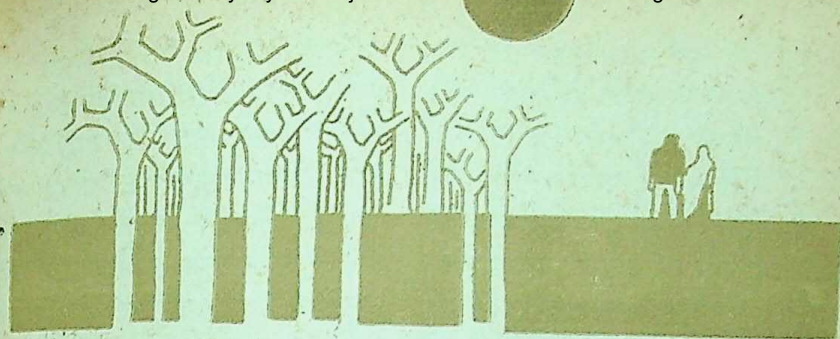
आधुनिक हिन्दी साहित्य के नौ प्रमुख कवियों पर उनका एक समीक्षा-ग्रन्थ नई कविता : आलोचना और प्रतिक्रिया' शीर्षक से राजपाल एण्ड सन्स् द्वारा निकलने जा रहा है। उसमें एक विशिष्ट योजना यह है, कि हर आलोच्य की उसकी समालोचना पर एक प्रति-समालोचना भी लिखवायी गयी है। प्रस्तुत लेखक की काव्य-दृष्टि पर भी उसमें एक समीक्षा है। जिसकी पत्रात्मक प्रति-प्रतिक्रिया यहाँ, डॉ. श्रोत्रिय और राजपाल एण्ड सन्स् का आभार मानते हुए अप्रिमेय रहे हैं। यह प्रत्यालोचना मौजूदा हिन्दी कविता की परिक्रमा पर विहंगम दृष्टि हुई, आगामी सम्भावना के द्वार भी खटखटाती है।

प्रिय प्रभाकर, तुम्हारे लेख का शीर्षक, है : 'एक प्रज्ञा-चक्षु कवि का काव्य (आ) लोक'। क्या वजह हुई कि तुम्हें एक ऐसा संकुल (कॉम्प्लेक्स) शीर्षक इस कवि के लिए बनाना पड़ा ? 'लोक' पर बात खत्म न हो सकी, तो 'आलोक'

को भी गोया कि एक रासायनिक से उसके साथ जोड़ना पड़ा। एक शीर्षक, जैसा हिन्दी में कहीं देखा अन्यत्र भी नहीं। तुम्हारी यह ही जाहिर करती है, कि कवि के है, और ठीक कहां से इसे

नवनीत

४८



चित्र : संतोष जड़िया

यह सवाल दरपेश है। इतने सिरें हैं इस बेहव कवि के, कि एक को पकड़ो तो दूसरा हाथ से निकल जाता है। तो यह कवि अनायास एक 'अनैकान्तिक' स्थिति में ही हाथ आया। यानी अनेक-धर्मा, अनेक छोरों और अनेक आयामों वाला।

और स्वयम् सत्ता अनैकान्तिक है। उसका कथन सापेक्षता से ही संभव है, निरपेक्ष कथन एक हृद के बाद गलत (फ्लेशस) हो ही जाता है। इस कवि के बारे में भी यही सच होता है। सापेक्ष दृष्टि से ही इसके समग्र को देखा जा सकता है, और सापेक्ष कथन से ही इसे पूरा पकड़ा जा सकता है। तुम्हारा शीर्षक स्वयम् इसका प्रमाण है। मगर लेख में जब इस सूत्रात्मक अनैकान्तिक शीर्षक का भाष्य हुआ, तो अनजाने ही कथन निरपेक्ष (एक्सोल्डेट) हुए, और कवि की समग्रता हाथ से निकल गयी। बहरहाल वह प्रत्यालोचना क्रमशः तुम्हारे कथनों के आधार पर आगे करूंगा।

मगर शुरुआत मैं लेख के केंद्र यानी

हार्द से करूंगा, जहां केंद्रीय बात तुम्हारी इबारत के भी केंद्र में ही व्यक्त हुई है। प्रक्रियागत रूप से उसे जहां आना था, वहीं वह आयी है।

तुमने भोपाल में हुए उत्सव-७३ के वक्त लिखे अपने 'त्रोशर' में इस बात को एक सार्थक और सटीक सूत्र के रूप में कह दिया था। कहा था तुमने कि: 'वीरेन्द्रकुमार जैन की कविता को पढ़ना, समुद्र के सामने खड़े होना है।' प्रस्तुत लेख के ठीक मध्य में तुमने उसी बात को किसी क्रूर भाष्यात्मकता के साथ यूँ कहा है: 'वीरेन्द्रकुमार जैन के काव्य की उदात्ततम गहराइयां हमें समुद्र के सामने लाकर खड़ा कर देती हैं।' पहला कथन सूत्रात्मक होने से अधिक सघन (कॉम्पैक्ट) और सचोटे हो गया है। क्योंकि उसमें साक्षात्कार की तात्कालिकता (इमिजियेसी) होने से, बात अधिक समग्र और अचूक हो गयी है। समुद्र की तह और सतह दोनों वहाँ एक साथ व्यक्त हैं, विश्लेषित नहीं।

तुम्हारे इस सूत्र को पढ़कर मैं तब क्षण भर नीरव निस्तब्ध हो गया था। मानो कि विराट् वैश्विक (कॉस्मिक) आइने में मुझे पहली बार अपने समग्र अस्तित्व और कृतित्व की एक अविकल झलक मिल गयी। तब तुमने मुझे आत्म-साक्षात्कार का एक अमूल्य क्षण दिया। तो कृतज्ञ हो पाऊँ, उसके पहले ही मैं शून्य हो गया। शून्य वह, जो अभाव नहीं, खालीपन नहीं, एक अगाध सभरता है। तो मैं अपने आप से भर उठा, छलाछल और पूरम्पूर। मन-ही-मन मेरा माथा तुम्हारे सामने झुक गया।

मेरी कविता के बारे में ऐसी चरम बात इससे पहले कोई न कह सका था। मगर मेरे अंतर-मन में बराबर ही यह बात ध्वनित होती रही सदा, कि यदि मैं कवि हूँ—तो समुद्र का कवि हूँ। स्मृति जागने के पहले से ही बम्बई के समुद्र को देखता आया हूँ। बचपन से ही बम्बई मेरा दूसरा घर रहा है। ... और आखिर सन् १९४५ में समुद्र की अनिवार्य पुकार ही मुझे यहां अंतिम रूप से खींच लायी। इसके तट पर ही बस जाना पड़ा। समुद्र मेरे मन उस अनंत, असीम विराट् का बिम्ब (इमेज) है, जो अपनी समग्रता में स्थिर होते हुए भी, सतह पर निरन्तर गतिमान और चंचल है। इस अनंतिनी चेतना को मैं लेकर जन्मा था, और समुद्र मेरे लिए उसका एक प्रतीक, बिम्ब या आइना साबित हुआ।

नवनीत

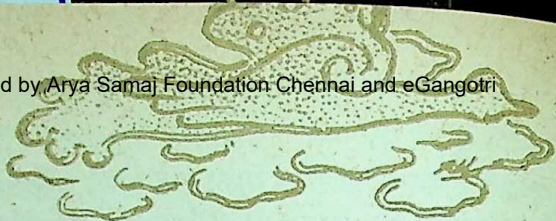
मेरा अस्तित्व या व्यक्तित्व मूल संरचना में ही सामुद्रिक है। तब निश्चल निस्तब्धता, और सतह पर चंचलता, उद्दाम विक्षोभ, बेचैनी, प्रस्फूर्जन और मेरा पूरा बाहरी स्वभाव और समुद्र की सतह पर लीलायित और खित है। एक अंतहीन आलोड़न, बेचैनी, रुद्र विक्षोभ और तुमल मेरे भीतर बजता रहता है सतत ब्रह्माण्डीय डमरू। मेरे अंग-अंग में का अनवरत चांचल्य और आंदोलन हिण्डोलन है। आज अपनी वय के दशक में भी मेरी सतह का यह उत्तना ही उद्दाम है, मेरी तलाश जैसा सोलहवें बरस में था। लेकिन ही मेरे भीतर ठीक समुद्र-तल एक भूगर्भ शैया भी है, जहां एक शांति है; और मैं अपने तमाम बीच भी किसी भी क्षण उसमें हो सकता हूँ। अब याद आता है मैं भी अपनी इस विचित्र चेतना मुझे मिलता रहता था। खेल के जोश के साथ उद्वेलित होता अचानक खेल से छिटककर, की नज़रों से ओझल अपने चला जाता था।...

तो आरंभ से ही मेरी रचना यही फितरत उजागर हुई। एक बेकाबू आवेग, तरंगों के

तर्ह वेशुमार शब्दा का उद्गारण और
विस्फूर्जन। समुद्र की लहरों में जैसे
विलौर की तरह क्षण-क्षण बदलते रंगों
का लीला-खेल चलता है, वैसे ही मेरी
कविता की हर सतर में रंगीन रोशनियों
की हर लम्हा नई होती महफिलें हैं।
जीवन-जगत की विविध रूपता को एक
साथ पकड़ने और भोगने की एक दुरंत
महावासना। ... लेकिन फिर अचानक
एक ऐसी पंक्ति, एक ऐसा शब्द—जो
हृगत नीरव-निस्तब्ध कर देता है (बक्रौल
श्रीराम वर्मा के)। प्रकट है कि अतल की
तह में जो एक ध्रुव मौन है, वही सतह
पर एक तुमुल कोलाहल और गर्जन
में लीलायमान है। 'सब्स्टैटम' यानी
समाहक आयतन है मेरी नीरव निभृत
अतश्चेतना, और उसी में तरंगों का
अविराम खेल चल रहा है। तल में
निश्चल स्थिति है, सतह पर अविराम गति
है। दोनों एकाग्र संयुक्त सत्ता के अविना-
भावी आयाम हैं। दोनों सहधर्मी हैं,
सहगामी हैं, सम्वादी (हार्मोनियस) हैं :
उनमें कोई विसंगति या विसम्बाद स्वभाव
से ही सम्भव नहीं। तल में उद्गम है,
पदल पर उद्भावना है, रचना है, जीवन
है। ये दो विरोधी स्थितियां नहीं, सम्वादी
अस्तियां हैं। जो 'अस्ति:' है, वही 'आवि:'
में अविरल भाव से आविर्मान है।
यह सत्ता की एक सर्वतोमुखी (इंटी-
ग्रल) स्थिति है, अनैकान्तिक अभिव्यक्ति
है। इसमें जो आदर्श है, वही यथार्थ हुआ

है, जो यथार्थ है वही आदर्श की ओर स्वतः
संचालित है। यहां मंजिल के भीतर ही
यात्रा चल रही है, और यात्रा के हर कदम
में मंजिल लिपटी हुई है। इसी से मेरी
चेतना और कविता में महावीर, मां और
मार्क्स में विरोध नहीं है, एक सांगीतिक
(म्यूज़ीकल) संगति है, एक आरोह-अव-
रोह का रचाव है, एक सप्तकीय क्रमिकता
और गतानुगतिकता है। एक समग्रता में
ही मेरी चेतना और रचना को देखना-
अवगाहना होगा। कविता विशेष, भाव
विशेष, पंक्ति या शब्द विशेष, अपनी
खास जगह पर एक अपेक्षा से आपोआप
ही उग आया है। इसी कारण मेरी एक
कविता, किताब, पंक्ति या भाव को पकड़
कर, मेरी समग्र चेतनात्मकता या रचना-
त्मकता के साथ न्याय नहीं किया जा
सकता। क्योंकि मैं स्वभाव, रचाव और
अभिव्यंजना में बुनियादी तौर पर बहु-
आयामी हूं, एक-आयामी नहीं हूं। इन्टी-
ग्रल हूं, यूनीलेटरल नहीं हूं। इसी से मेरे
व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों में एक अजीब
विरोधाभास दिखायी पड़ता है। और इसी
कारण मेरे व्यक्ति और मेरी अभिव्यक्ति
दोनों को प्रायः गलत समझा जाता है।

एकान्त आत्मवादी या एकान्त भौतिक-
वादी में होता, तो औरों की तरह मेरा
रास्ता भी आसान हो जाता। इतना अलग
न पड़ता मैं, अनपहचाना न रहता, इतना
गलत न समझा जाता। मुक्तिबोध का
रास्ता आसान हो गया; क्योंकि वे एक-



आयामी थे : एकान्त भौतिकवादी दर्शन से प्रतिबद्ध थे । लेकिन मूल सत्ता में आत्मिक और भौतिक का विभाजन या विरोध नहीं है : इन दो स्थितियों में 'पोलेरिटी' है, जैसे एक ही पेन्सिल के दो छोर । मेरे कवि के परिप्रेक्ष्य में वह मौलिक, अनैकान्तिक या 'पोलर' सत्ता अपने तमाम अन्तों और आयामों के साथ एकवारगी ही नग्नगन्धर्व है, इसी वजह से एक अजीब विरोधाभासी संकुलता दरपेश होती है । और इसी वजह से तुम्हें अपने इस लेख को इस क्रूर संकुल, पेचीदा या द्वंद्वात्मक शीर्षक देना पड़ा । मेरे इस मूलगत 'डाय-लेक्टिक्स' को तुमने पकड़ा, इसी कारण तुम्हारे प्रति मेरी कृतज्ञता की सीमा नहीं ।

इस संदर्भ में फिर दोहराना चाहूंगा, कि तुमने बहुत सही पकड़ा है मेरी चेतना और कविता के निरे सामुद्रिक मिज्ञाज को । क्योंकि शुरू से अब तक की मेरी हर विधागत रचनाओं में, समुद्र की 'इमेज' लाइन्तेहा फैली पड़ी है : मेरा सारा रचना-संसार समुद्र के मण्डलों से आक्रान्त है, समुद्र की उत्ताल तरंगों से उच्छल और दोलायमान है, समुद्र की तलगत निस्तब्धता से परिख्याप्त है ।

०००

तो तुम्हारे लेख के आभोग-प्रदेश यानी

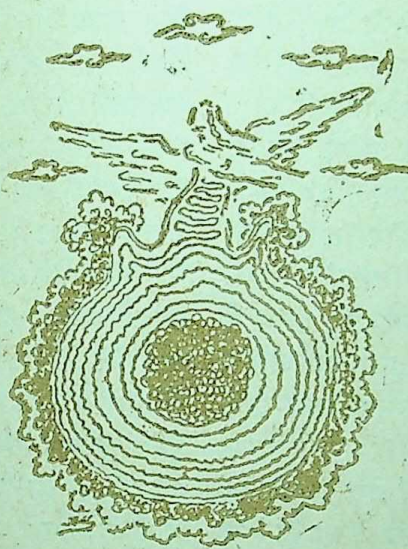
नवनीत

कटि-केन्द्र में हाथ आया आलोच्य का उदगम-स्रोत । उससे फूटने उगे प्रपात, जो नदियां बनकर अवकाश पैमानों में व्याप गये । नदियों के तट-प्रदेश में लहलहाता, फूलता-फलता कव्य और बहुरंगी जीवन का विस्तार । जीवन की अभीष्ट अभिव्यक्ति के संघर्ष उस संघर्ष की क्रिया-प्रतिक्रिया में से लित होता धारा-प्रवाह इतिहास । विशिष्ट काल, और उनकी अभिव्यक्तियां । उन सबका लक्ष्य गन्तव्य क्या ? तो इस खोज के तमाम ज्ञान-विज्ञानों का आविर्भाव, अध्यात्म, योग और दर्शन का विकास-प्रगति का स्वप्न और सपनों को मूर्त करने का महाप्रयत्न रूपों में वह मूर्तन हुआ भी । लेकिन से फूटी नदियां राह में कहीं रुक नहीं । वे बेतहाशा किसी महाजीव असीम और अगाध में जा मिलने की ही चली गयीं । और अन्ततः समुद्र में जा मिलीं, जिसमें तलगत और सतहगत आन्दोलन का खेल रूप से चल रहा है । उस समुद्र की चूड़ा पर एक पुरुष चलता दिखता समुद्र-पुरुष : समुद्र का कवि ।

५२

स्वप्न है यह, जिसमें सारे आकाश, जल, पर्वत, नदी, पशु, पक्षी, की अपनी लाश, गन्तव्य स्वतः ही परिभाषित हैं। स्वभाव और विज्ञानगत विवशता ही रही। छायावाद युग के स्वप्न को लेकर यह कवि आगे बढ़ा, तो बौद्धिक मार्क्सवाद-प्रगतिवाद द्वारा भौतिक द्रव्य में उसने अपने स्वप्न को मूर्त पाने के लिए ठीक जीवन की सतह पर संघर्ष और जद्दोजहद की। लेकिन उसका सपना इन तमाम

आलोच्य कवि की सपना इन तमाम कोशिशों के बावजूद टूटता ही चला गया। उसने अपने जीवन और इतिहास में एक साथ गांधी, अरविन्द और मार्क्स को 'फ़िलहाल' विफल होते देखा, तो अपनी सामुद्रिक चेतना की अद्विराम बेचैनी से, वह समकालीन संसार की सारी ज्ञान-विज्ञानात्मक उप-



लब्धियों के सीमान्तों

महाज्वलन को देखते हैं। इसी 'एक साथ श्रीअरविन्द और मार्क्स' है। और इसी कारण वह उत्तीर्ण भी है। और इसी मूलगत कारण से यह कवि समकालीन पड़ावों को अतिक्रान्त चला जाता है। इसमें कतई कोई द्वि-चिन्तनगत जोड़-तोड़ का इरादा

(फ़ण्टियर्स) को तोड़ता हुआ, अपनी तलाश के अभियान में आगे बढ़ता ही चला गया। इसी समुद्री चेतना के कारण तन और मन पर इस जगत-जीवन के मानुषोत्तर आघातों और यातनाओं को झेलते हुए भी, इतिहास और उसके विघाताओं की सारी विफलताओं का साक्षी होते हुए भी, 'वह प्रयोग-वादियों की तरह कुण्ठित न हो सका।' तुमने आलोच्य कवि की इस सीमान्त-भेदी

यात्रा की सिमा की सीमा दी है, तुमने इसे उस कवि की 'निर्वैयक्तिक साधना का सबसे बड़ा प्रमाण' माना है।

मेरी कृतज्ञता और कृतार्थता की सीमा नहीं है यह देखकर, कि 'निरवधि काल और विपुला पृथ्वी में, इस कवि को पहचानने वाला आखिर एक समान-धर्मी' उसे इसी जीवन में मिल गया। वह तुम हो प्रभाकर, शायद सबसे पहले तुम, और अब और भी कुछ ऐसे विरल साक्षी मिले हैं, जिनका उल्लेख यहां संगत नहीं।

यह सच कहा तुमने कि प्रयोग, प्रगति, बौद्धिकता, धर्म-अध्यात्म-दर्शन, अर्थ-राज-समाजगत आन्दोलन और तथाकथित क्रान्तियां भी मुझे मेरे 'विज्ञान' को मूर्त करते न दिखाई पड़े। नतीजतन बेशक मैं सर्वहारा हुआ, निःसंग हुआ, आत्महारा तक हुआ। मैंने काइस्ट की महावेदना-रात्रि (Night of Passion) को भी अपने रोमान के जैतून-उद्यान में झेला। वृन्दावन और कुरुक्षेत्र को एक साथ जीना ही मेरी नियति रही। मगर तलाश रुक न सकी। तमाम स्वीकृतियों के बावजूद मैं अधिक-अधिक अजनबी और 'आउट-साइडर' होता गया। इतिहास की हदों में न रुक सका, इस दुनिया में घर पा लेना, मुझे नसीब न हो सका। पैरों के तलवों में अतिक्रमण के चक्र और भी तेजी से चलते गये।

इस 'यूलिसिस' चेतना और चंक्रमण के कारण ही, एक बार्यलगातार चार वर्ष मीत के सवाल से जूझता हुआ, इस उष्मा-

मेरी दुनिया में निपट बेगाना भी था। अपने उत्तर की तलाश में साधु भी कम नहीं की। प्रत्यक्ष या परोक्ष भूतकाल और वर्तमान के तमाम गुरुओं के पास भी अपने अन्तिम प्रश्नों के उत्तर खोजा। लेकिन एक हद के बाद उनका उत्तर भी मुझे मुकम्मल न दे सका। तब तो समाधान न दे सका। अपने प्रिय कृष्ण, महावीर और बाबा भी मैं रुक न सका। उन्हें मैंने आत्मसात् किया, मगर 'मैं' बच सका, जो हुए और पाये बिना मेरे को चैन न था। अपनी तमाम गलतियों और कर्मयोग के बावजूद कृष्ण मेरे इस प्यारे पार्थिव संसार को 'असुख' कहकर ही अधर में छोड़ दिया। महावीर ने भी अन्ततः इस संसार को निःसार कहकर लोकोत्तर मोक्ष की ही तो खटखटाया। बुद्ध को यहां के दुःख ही दिखायी पड़ा। दुःख के निवारण का उपाय बौद्ध निर्वाण में पर्यवसान पा जाना। मैंने इस पार्थिव के ही दिव्य सपना तो दिया, मगर मार्ग जीवन की ऊष्माओं को नकारा आगे गया है। इस संसार और परम के विरोध और द्वंद्व से निस्तार दीखा। जीवन और खून की सम्पूर्ण स्वीकृति न दीखी। योगीश्वरों के तटों पर भी रुक सका। लाचार होकर इनके भी

नवनीत

तिक्रमण कर गया और अपनी खोज के
 तारे जंगल अकेला ही चौरता चला गया।
 मैं वज्रिद रहा, और आज भी हूँ, कि
 ये सब मेरे लिए न हो सके, या जो ये
 मुझे न दे सके, वह मुझे स्वयम् ही जाना
 होगा, वह मुझे खुद अपनी आत्मा की
 वेदों महावासना और महावेदना के
 से हासिल कर लेना होगा। कृष्ण
 महावीर जब चुप दीखे, तो उन्हें
 मैंने अपने ही शक्ल में ढाल लिया,
 अपने को-अपनी वासना और वेदना
 उनकी शक्ल में मूर्त कर दिया। मेरे
 महावीर महावीर मेरी संयुक्त पार्थिव-
 चेतना की इसी द्वाभा में से, मेरी
 आविर्भूत हुए हैं। अपनी इस
 और वेदम तलाश और उड़ान के
 अन्तरिक्ष के 'ईश्वर' में निरस्तित्व
 जाने का खतरा भी मैंने उठाया। यहां
 कि कभी-कभी शरीर भी हाथ से
 जाता लगता था। और इसी से
 परमात्मीय जैनेन्द्र को भी यह कहना
 कि 'वीरेन्द्र इतना सूक्ष्म और वाय-
 हो गया, कि धरती पर उसके पैर
 नहीं पा रहे हैं'। यह एक भयानक
 है, मगर है यह एक खालिस सचाई-
 अस्तित्व की। वस्तुतः मैं बेहद-बेहद
 प्यारी धरती से जुड़ा हूँ, मेरी ऐन्द्रिक
 सीमा-न्तक है। इस कदर कि विषया-
 और आत्मानन्द, ऐन्द्रिक और अती-
 का भेद ही मेरी चेतना में से विलुप्त
 गया है। मैं जीवन को उसके सभी
 मामों में, निर्वृद्ध चित्त से सरापा डूब-

कर भोगता हूँ। मगर उसी क्षण उससे
 उत्तीर्ण भी हो जाता हूँ। क्योंकि इस माटी
 की सीमा, भंगुरता और विफलता का
 अहसास मेरी तर्हों को चाक-चाक कर देता
 है। मैं वज्रिद हूँ, कि क्यों न यह ऐन्द्रिक
 जगत ही, अतीन्द्रिक सुख के सातत्य में
 जीने की सामर्थ्य प्राप्त कर ले।

ऐसे मैं अगर 'वैचारिक रेशनालिटी
 और साहित्यिक मान-दण्ड की यह मजबूरी
 है कि वे कवि-व्यक्तित्व को अनहोना और
 अपरिभाष्य कहकर अपनी अक्षमता
 जाहिर नहीं कर सकते', तो मेरे कवि की
 भी यह मजबूरी है, कि वह अपना मानदण्ड
 और कीर्तिमान स्वयम् ही हो जाये। तो
 भला ऐसे नंग-निहंग 'आउट-साइडर' को
 इतिहास और साहित्य के 'दरबारे-मुगलिया'
 में न पहचाना जा सके, तो इसमें आश्चर्य
 ही क्या है! अपने न पहचाने जाने के
 इन्सानी दर्द से मैं बेशक महेश्वर न हो
 सका हूँ। उस दर्द से तो महाप्रभु काइस्ट
 तक टीस उठे थे, तो मेरी क्या विसात।
 देवत्व या ईश्वरत्व कहीं अन्यत्र है, पर
 पार में है, तो उसके पीछे मैं नहीं जाऊंगा,
 उसे ही मेरे मानवीय रक्त-मांस की ऊष्मा
 में प्रवाहित होना पड़ेगा। अस्तु।

०००

तुम मेरी आध्यात्मिकता को इजलास
 में लाये हो। अच्छा लगा, इसलिये कि
 आध्यात्मिकता की सही समझ सामने रखने
 का सुयोग मुझे मिला। 'आध्यात्मिकता' से
 अधिक गलत समझा जाने वाला शब्द
 दुनिया में शायद ही कोई-दूसरा हो। ऐसे



में हिन्दी के वर्तमान सतही साहित्यिक नज़रिये में यह शब्द अगर बेमानी हो जाये तो अचम्भा क्या है ? आम तौर पर 'अध्यात्म' को जिन्दगी से अलग कोई पारलौकिक रहस्य या शगूफा समझा जाता है । मगर दरअसल अध्यात्म तो जीवन-जगत के कण-कण में अन्तर-व्याप्त चैतन्य तत्त्व है । वह है कि हम जिन्दा हैं, और जगत जारी है । अध्यात्म का सीधा-सा अर्थ है—अधि + आत्म—यानी अपने को जानना । जो अपने को ही नहीं जानता, वह जगत को क्या जानेगा ? अपनी ही सही पहचान हमें नहीं है, तो जगत की सही पहचान कैसे सम्भव है ? जानने वाला ही ग़लत जान रहा है, तो उसके ज्ञान से जगत में सही और अभीष्ट व्यवस्था कैसे लायी जा सकती है ?

अध्यात्म मात्रात्मक नहीं, गुणात्मक संज्ञा है । मेरे अमुक कविता-संग्रहों में अध्यात्म कम है, और अमुक में अधिक, यह अवबोधन ही सही नहीं है । रचनाकार में एक साथ दो स्तरों पर विकास-प्रक्रिया चलती है । एक स्वयम् उसकी ज्ञाता-दृष्टा-भोक्ता चेतना में, और दूसरी उससे फलित उसकी रचना में । मुझे और मेरी रचनाओं को इस प्रक्रियागत नज़रिये से ही ठीक जांचा जा सकता है । उस क्रमिकता को

नज़रन्दाज़ नहीं करना होना । 'अभी' की आंखें' में कवि का स्वप्न है, किसी गहिरतम अभाव की पुकार और खोज है । निजी भूति से उठ कर यह पुकार और सामाजिक और वैश्विक चेतना तक जाती है । लेकिन आत्मानुभूति में आत्म को ठीक-ठीक जानने की टीस कचौट जो वहां है, वह अध्यात्म ही है ।

'यातना का सूर्य-पुरुष' में स्वप्न और परिपूर्ति को, 'अभी और ठोस जीवन की भूमि पर मूर्त संघर्ष है, और तज्जन्य यातना कुछ कविताएं उसमें ऐसी भी निजी अभाव की परिपूर्ति सिद्धी को भी उजागर लब्धि पायी है, उसे इस जगत में क्रायम और जाये ? इस तलाश में राजनीतिक व्यवस्था-परिवर्तन वर्तमान आन्दोलनों से टकराया मार्क्स के दर्शन और फलन को भी पूरी गहराई से अवगाहने की कोशिश के और इस युग के मूर्धन्य योगियों के रास्तों को जीवन में आजमा देखा है स्पष्ट प्रतीति हुई है, कि भौतिक समस्याओं का समाधान न मुकम्मल

के पास है, न मार्क्स के पास। अनागतता
 होना। 'आँखें' और 'यातना का सूर्य-पुरुष'
 स्वप्न है। दोनों ही कविताओं में कवि ने अपने इस
 प्रम-मंग को स्पष्ट स्वीकारा है। उसने आज
 तक के तमाम भगवानों और योगियों को
 लकारा है, चुनौती दी है, कि इस पार्थिव
 सृष्टि के अस्तित्वगत और सामाजिक
 नियमों तथा संक्रासों का उनके पास क्या
 जवाब है? जाहिर है कि उनका जवाब
 वहाँ सीधा, साफ़ और 'कांक्रिट' नहीं,
 'में स्वप्न, रोस और पेचीदा है। तो कवि फिर एक
 ही और बार अपनी सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र खोज की
 तर मूर्त का यह पर निकल पड़ा।
 यातना है। ... बाहर के जगत में जब उसने पाया
 सी भी है कि प्रचलित भौतिकवाद और अध्यात्म-
 पूर्ति और वाद दोनों ही एक हृद के बाद क्रिया-प्रति-
 अभिव्यक्ति के दुश्चक्र में फंसकर विफल हो
 है, कि जो जगत् है, तो वह अपनी इयत्ता (आइडे-
 विपय-क्रेडिट) और अन्तश्चेतना के केन्द्र की
 अधुना के जगत् में अपने भीतर उतर गया। अनि-
 कवि अन्तर्गत हो गया कि कवि किसी ऐसी चेतना
 परिवर्तन के उपलब्ध कर सके, जो अनाद्यन्त इति-
 त्कराया है। न्याय-प्राप्ति के दुश्चक्र
 उसके मान्य प्रसा न हो, और जो भौतिक और
 ई और ईश्वर-दोनों ही स्तरों पर एक सम्वादी
 श की है। इसी जगत् की रचना कर सके। 'शून्य
 मूर्धन्य और वस्तुएं' की कविताएं कवि की
 भी अन्तर्मुखी खोज-यात्रा के अनुभवों
 है। तन्त्र-संज्ञन और मूर्तन है। लेकिन ये कवि-
 कि अन्तर्मुखी निरी वायवीय नहीं हैं। उनमें
 सम्पूर्ण और निरी की ठोस जमीन, और ऊर्ध्व उड़ान
 तौर पर ६१

या आन्तरिक गहराव में एक तारतम्य
 सर्वत्र जारी है। आसमानी शून्यों को सघन
 माटी में बांधने का ही एक महाप्रयत्न वहाँ
 है। साथ ही मनुष्य की आत्मगत शाश्वत
 पुकारों का कोई अन्तिम उत्तर या परि-
 पूर्ति खोजने की लाचारी भी वहाँ ईमान-
 दारी से व्यक्त हुई है। 'आध्यात्मिक पुट
 वहाँ अधिक हो गया है', यह अवबोधन
 बहुत स्थूल है। सच तो यह है कि यहाँ
 आते-आते कवि ने आत्मिक और भौतिक
 के भेद की दीवार को ही तोड़ दिया है।
 भारत के आध्यात्मिक अद्वैतवाद और
 मार्क्स के भौतिक अद्वैतवाद (मॉनिस्टिक
 मटीरियलिज़्म) में कवि ने उसी एकमेव
 परम सत्ता के स्पन्दन को महसूस किया
 है। ध्यातव्य है कि मार्क्स ने भी 'लिविंग
 मैटर' संज्ञा ही दी है 'मैटर' को। यह बात
 अलग है, कि खोज की प्रक्रिया में कभी
 अन्तर्मुखता छोर तक जाती है, कभी बहि-
 मुखता। यह एक स्वाभाविक मनोवैज्ञा-
 निक स्थिति है। इसमें किसी एक पहलू को
 पकड़कर जांचने से कवि के साथ न्याय
 सम्भव नहीं। 'शून्य पुरुष . . . ' संग्रह में
 'तीर्थकरी प्रज्ञा और अनुभूति' देखना
 सही अवबोधन नहीं है। क्योंकि जिन
 तीर्थकरों की एकान्त कठोर वीतरागता
 से मेरा कवि कभी आकृष्ट न हो सका।

मेरी चेतना मूलतः ही राग-सम्वेदनात्मक है। इस मानी में मैं वैदिक-उपनिषदिक, शैव-शाक्त-वैष्णव चेतना के अधिक निकट हूं। मेरा आत्मिक विकास इन्हीं धाराओं के संगम पर हुआ है। लेकिन क्रैद मैंने इनकी भी नहीं स्वीकारी। मैं सिन्दबाद या यूलिसिस की तरह उन्मुक्त और अगम्य अज्ञात समुद्रों का यात्री हूं।

इसी से मेरा अध्यात्म भी मेरे अपने स्वतंत्र अवबोधन से अर्जित और विकास-मान है। अपने 'आत्म' (सेल्फ) को भी मैं अपनी सर्वथा स्वतंत्र संचेतना और संवेदना की राह ही अनुभूत करता और जानता हूं। किसी भी धर्म, दर्शन, मत-वाद, तीर्थकर, योगी या गुरु के अभिनिवेश से मैं ग्रस्त, अवरुद्ध या सीमित नहीं।

मौलिक सत्ता में लोक-परलोक, इस संसार और परा संसार का कोई विभाजन नहीं है। सत्ता मूलतः चिद्वहन एक और अनन्य है। भौतिक-आत्मिक, इहलोक-परलोक आदि के भेद भाषा की कथन-सीमा के कारण, सापेक्ष अर्थ में ही नियोजित हैं। भाषा की यह सीमा है, कि शब्द में एक बार में एकदेश कथन ही सम्भव है। सो समग्र कथन के लिए ही अनेकान्त, स्याद्वाद, नेति-नेति आदि कुंजियों का आविष्कार हुआ है। ताकि कथन ऐकान्तिक न हो और सत्ता का कोई पहलू अवबोधन से छूट न जाये। दुःख-द्वंद्वों का ज्ञाता-द्रष्टा-भोक्ता, व्यक्ति का अपना 'आत्म' है। वही अनुभूति-संवेदन का

केन्द्रीय घटक है। स्वाभाविक निराला स्थिति ही ऐसी है, कि अनुभूति ही व्याप कर सर्वानुभूति है। आत्मानुभूति के केन्द्र से ही विश्व-भूति सम्भव है।

इसी से 'शून्य पुरुष...' का कवि-नुभूति के छोरों तक जाकर, विश्व के राज्य को स्वायत्त करने की दस्त कशमकश से गुजरता है। अपने आत्म में ही पहले सारे हास के दर्द को झेलता है। प्रथम आत्म-सम्वेदन से ही वह सर्व-सम्वेदन जा पाता है। आलोच्य कवि प्रक्रिया से गुजरता हुआ आगे प्रक्रिया के दौर में सारे संसार त्वान्तरण या रूपान्तरण' की कुंजी ईजाद की नहीं जाती, अनायास ठीक क्षण आने (रिक्हील) हो उठती है। यह विज्ञानतः सम्भव नहीं, कि चेतना का रूपान्तर हुए बिना सामाजिक-राजनीतिक सतह का एक फॉर्मूला प्रस्तुत किया उसके मूर्तन की विफलता है। व्यक्ति की चेतना को तानाशाही दबावों से नहीं बदला और व्यक्ति नहीं बदल सका, आरोपित सामाजिक बदलाव न हो सका। वर्गविहीन साम्य व्यवस्था आज पृथ्वी पर कहा

भाषिक म
है, कि क
सर्वानुभूति
द्र से ही वि
की है, मुझे तो नहीं मालूम। तो व्यक्ति
बदलाव बिना, सामाजिक बदलाव की
विशेष नाकाम साबित हो चुकी है।
साम्यवादी और पूंजीवादी देशों के चरित्र
कोई बुनियादी अन्तर नहीं है। दोनों
सत्ता-सम्पत्ति की अधिकार-वासना
रने की एक ही ओर तर्जनीय हिंसा से एक-सा ग्रस्त हैं।
ता है। मनुष्य सही व्यवस्थागत भेद दिखाई पड़ता
सारे कि, उनके तहत आम आदमी या मूल मनुष्य
है। प्रथम चेतना सुधी हो सका है, यह तो एक
ह सर्व-समतावादी तथ्य है।

०००

व्य कवि ने
आगे बढ़ा
संसार के
'की कोई
जाती, क
आने प
है। यह व
ही, कि व
ए बिना
मार्क्स ने
सतहत
न किया
लता आ
गा को रा
हीं बदला
न सका, तो
बदलाव
साम्यवा
पर कहा
जान पड़ता है कि आध्यात्मिकता भी
सामुदायिकता की ओर अग्रसर है।
शक्तिपात (कुण्डलिनी-उत्थान : आत्म-
जिज्ञासा का उद्दीपन) अब केवल वैयक्तिक
आने नहीं रहा, सामुदायिक शक्तिपात अब
है। यह वक्तव्य अमेरिका में एक आम बात हो गयी है।
मनुष्य की मुक्तानन्द परमहंस की ध्यान-
शान्ति इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है। कई
शक्ति एक साथ, अपने स्वाधीन आन्त-
क सुख-शान्ति के राज्य में प्रवेश करने
को कुंजी पा रहे हैं। लेकिन सामुदायिक
पर, सामाजिक वैषम्य को मिटाने का
होई कारगर रास्ता अभी उसमें से खुलता
ही दिखाई पड़ता। सृष्टि में विकास-
शक्ति की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है।
हास इसका साक्षी है। व्यक्ति की
ही चेतना का रूपान्तर तो एक हद तक
भव है, लेकिन पूरी प्रकृति-सृष्टि और
सामुदाय का रूपान्तर किसी

यांत्रिक फॉर्मूला या सतही क्रान्ति से
सम्भव नहीं हो सका है, यह एक प्रमाणित
तथ्य है। श्रीअरविन्द की अतिमानसिक
अतिक्रान्ति को भी देश-काल में रेखांकित
करने योग्य कोई पुष्ट प्रमाण हमारे सामने
नहीं है। मेरा कवि न शक्तिपात को इत्य-
लम् मानता है, न अतिमानसिक रूपान्तर
के एकान्त अन्तर्मुखी रास्ते से वह प्रतिबद्ध
है। प्रतिबद्ध न वह महावीर से है, न मार्क्स
से, न अरविन्द से। वह किसी प्रणालिबद्ध
दर्शन से प्रतिबद्ध नहीं।

हां, इस बारे में मैं पूर्ण प्रत्यायित हूं,
कि व्यक्ति की मूल चेतना में बदलाव
आये बिना, कोई ऊपरी बदलाव एक
अभीष्ट सम्वादी और साम्यवादी दुनिया
नहीं ला सकता। यह तो एक ऐसा स्वयम्-
सिद्ध तथ्य है, जिसे प्रमाणित करना ही
अनावश्यक है।

शून्य (निर्विकल्प अवस्था) की अनुभूति
हर व्यक्ति अपने भीतर कर सकता है।
ध्यान-साधना के मार्ग में यह सहज सम्भव
है। जब हर व्यक्ति में चेतना है, आत्मा
है, तो उसकी स्वभावगत शान्ति या शून्यता
(सायलेन्स) की सम्भावना या क्षमता तो
उसमें निहित है ही। हर व्यक्ति को अपनी
आत्मा सुलभ है, तो उसकी शान्ति को
निरी व्यक्तिगत कैसे कह सकते हैं? वह
स्वतः ही सर्वगत सामान्यीकृत हो जाती
है। शून्यता खालीपन नहीं है, वह छलाछल
और सघन सभरता है। उस अखण्ड सघन-
सभर शून्य में से ही सृष्टि होती है। उस

शून्यता की अनुभूति में उतरने पर बाहर के वस्तु-जगत के आन्तरिक सौन्दर्य और शक्ति के कई स्रोत अनायास बोधगम्य हो जाते हैं। सृष्टि के उत्सभूत इस शून्य की निर्विकल्प अनुभूति में स्थिरता लाभ करने पर, जगत-जीवन में बुनियादी रूपान्तर लाने का कोई 'चश्मए हयात' या 'जामे-जमज़म' उपलब्ध करने की सम्भावना को तर्कशः ही नकारा नहीं जा सकता। प्रश्न यहाँ संगत है, कि मार्क्स का आदि भूत तत्त्व (प्रिमाँडियल मैटर) कहां से आया, उसके पूर्व क्या था ? तो इसके उत्तर में विशुद्ध गणित (प्योर मेथेमेटिक्स) और आज का फिज़िक्स तक शून्य पर पहुंच चुका है।

'सम्बोध' कविता से क्रमशः दो उद्धरण तुमने दिये हैं : मगर उन्हें सन्दर्भ से तोड़ कर या कविता की प्रक्रिया से अलग कर मेरे पक्ष या विपक्ष में विश्लेषित किया है। इससे ग़लतफ़हमी होती है। उक्त कविता चरम पीड़ा के क्षण से आरम्भ होती है। और स्वतंत्र तीखी अनुभूति की राह मुक्ति और निर्वाण के समाधान को भी नकारती हुई, पीड़ा के छोरों तक जाती है। पहले उद्धरण में जगत की सारी द्वंद्वात्मकता को शिरोधार्य करके जीवन को उसकी तमाम जटिलताओं के साथ स्वीकारा गया है। किसी जीवन्मतीत निर्वाण का उसमें प्रचण्ड अस्वीकार है, क्योंकि कवि अपनी मुक्ति जीवन-स्तर पर ही पाने की हठ से अविचल प्रतिबद्ध है। जीवन को जीने की

अपरिसीम वासना को ही वह जग तक कह देता है। जीवन को उसकी कुंचनाओं के बावजूद उसे जीने-भोगने की उत्कटतम छोर तक वह चला जाता है। मगर अखण्ड जीवन का वेतक आश्रय स्वीकार के इस अविकल्प छोर अचानक चेतना-स्तर के बदलने का एक इलेक्ट्रिक धक्के के साथ होता है। एक शून्यता-बोध में उसे ज्ञाता-द्रष्टा चैतन्य की द्वंद्वीयता का एक साक्षात्कारी क्षण उपलब्ध है। इससे उसे साक्ष्य या प्रमाण कि बाहर के तमाम द्वंद्वों, वैषम्यों, पराजयों, मृत्युओं के बावजूद, अज्ञेय चैतन्य में निर्द्वंद्वता को उपलब्ध कर सकता है। वैयक्तिक आत्मानुभूति पर यह अशक्य नहीं है। यह अज्ञेय भ्रम मान लिया जाये, तो महावीर, क्राइस्ट, ज्ञानेश्वर, रामण और जगत के तमाम योगी जायेंगे। कहना चाहता हूँ, कि तोड़कर पंक्तियों का विश्लेषण या अर्थ निकालना, या उनका ग्रहण करना तर्कसंगत नहीं है। अनुभूति का क्षण आत्म-सापेक्ष या 'एन्सोल्यूट' नहीं है। इसलिए किसी भविष्य का इन्तज़ार तो सवाल ही नहीं उठता, अतः चरम आत्मानुभूति के छोर पर भावदशा को पहुंचना योगियों की

परम्परा द्वारा साक्षित और प्रमाणित है।
 बेशक जागतिक और सामुदायिक स्तर
 पर घटाटोप अंधेरा है, विषमता है, संत्रास
 है, पराजय है; मगर दूसरी ओर वैयक्तिक
 आत्मिक स्तर पर उपरोक्त आस्था के
 लिए अचूक साक्ष्य भी उपलब्ध है। मैंने
 स्वयम् उसे अनुभूत किया है। तब यह
 कहता कि यह वैयक्तिक अनुभूति या आस्था
 सामुदायिक सन्दर्भ में झूठी या बेमानी हो
 जाती है, झुंझलाहट भले ही हो, तर्कसंगत
 नहीं है।

इस वैयक्तिक अनुभूति और विषम
 सामुदायिक स्थिति के बीच एक वास्तव-
 मय फासला अभी हाल तो उजागर है।
 लेकिन मूर्त जगत में ऐसी समंजस और
 द्वंद्वतीत स्थिति कब आविर्भूत होगी, हो
 सकेगी या नहीं, यह एक यज्ञ-प्रश्न है,
 जिसका उत्तर किसी 'फॉर्मूला क्रान्ति' की
 प्रतीती से नहीं पाया जा सकता। कवि के
 कथनों का सापेक्ष ग्रहण जरूरी है, एक्सो-
 म्यूट ग्रहण भ्रामक और गलत हो सकता है।
 बकौल तुम्हारे 'आलोच्य कवि संत्रास'
 का अचूक शिंकार है, और उससे प्रेरित
 होकर दुनिया को बदलने की बात करता
 है, उसमें मार्क्स के भगीरथ योगदान या
 प्रयत्न को भी प्रणति देता है, साथ ही
 अन्तर्गत चेतना के क्षेत्र में अचूक उत्तर भी
 खोजता है। तो यह तो एक स्वाभाविक
 प्रक्रिया है। इन स्थितियों में कोई अन्त-
 विरोध कहाँ है? कवि किसी अन्तिम दर्शन
 का उपाय का दावा ही नहीं करता, तो

उसके मौजूदा दर्शन को नाकाफ़ी कहने का
 सवाल ही कहाँ उठता है? जब कोई
 अन्तिम दर्शन-प्रणाली कवि स्वीकारता
 ही नहीं, तो 'पूँजीवादी हिंनों की प्रच्छन्न
 सुरक्षा को उसमें प्रश्रय मिलने' की बात ही
 बेबुनियाद हो जाती है। भौतिकवाद हो कि
 आत्मवाद हो, विज्ञान हो कि योग-अध्यात्म
 हो, मार्क्सवाद हो कि अतिमनस्वाद हो,
 इन सबका उपयोग समान रूप से न्यस्त
 स्वार्थों के हित में किया जा सकता है, और
 किया जा रहा है, यह प्रमाणित है। तब
 इनमें से किसी एक को पूँजीवाद या फासिस्ट-
 वाद, या शोषण का औज़ार कहना कहाँ
 तक तर्कसंगत है। सारे वाद, दर्शन, विज्ञान
 एक ज्ञानात्मक खोज-प्रक्रिया के अन्तर्गत
 हैं। वे अपने आप में किसी स्वार्थी 'मोटिव'
 से प्रेरित या प्रतिबद्ध नहीं। उनका सदु-
 पयोग या दुरुपयोग तो मनुष्य के विवेक
 अथवा स्वार्थी या निःस्वार्थी बुद्धि पर
 निर्भर करता है। किसी भी दर्शन या ज्ञान-
 विज्ञान को उसके लिए दोषी ठहराना एक
 सपाट और सतही चिन्तन है, और वह
 प्रतिक्रियात्मक आक्रोश का परिणाम है।

यहाँ एक बुनियादी बात हम समझ लें।
 विकास-प्रगति की प्रक्रिया, भौतिकवाद
 और आत्मवाद दोनों ही में द्वंद्वत्मक है—
 'डायलेक्टिकल' है। आत्म-विज्ञान और
 भूत-विज्ञान दोनों ही ने इस 'डायलेक्टिक्स'
 का समान रूप से साक्षात्कार किया है।
 यह एक स्वाभाविक वस्तु स्थिति है। कवि
 स्वयम् इस 'डायलेक्टिक्स' से गुजरता हुआ

ही अपने और जगत के सम्पूर्ण परित्राण का उपाय खोज रहा है। तब उसे इस प्रक्रिया से अलगा कर किसी एक दर्शन के खूँटे से बांध देना कहाँ तक सही और संगत है ? इस कवि की अप्रतिबद्धता को तो तुमने आरम्भ में ही स्वीकार लिया है।

इस कवि की इन्टीग्रल या सर्वगत स्थिति का स्वीकार उसमें समाहित है। फिर उसे इस या उस वाद की दुम मेकर कर देखना, क्या न्यायसंगत होगा ? यह नज़रिया ही बुनियादी तौर पर गलत है। (आगामी अंक में समाप्त)



अंतिम दिनों में पं. कांतानाथ पाण्डेय काशी के हरिश्चंद्र महाविद्यालय के प्रमुख पद को सुशोभित कर रहे थे। वे 'हिन्दी-जगत' में 'राजहंस' तथा 'चौंच' दोनों का प्रसिद्ध रहे हैं। गंभीर काव्य रचनाएं 'राजहंस' नाम से और हास्यरस की कविताएँ उपनाम से उन्होंने की हैं। अपनी अनुशासन प्रियता तथा नियमपालन में दृढ़ता के कारण कुछ असंतुष्ट छात्रों एवं उनके सहयोगियों द्वारा वे बुरी तरह घायल कर दिये गए। पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी उनको देखने अस्पताल गये थे। उस समय 'चौंच' जी के पेट का घाव भर गया था; किंतु दाहिने पैर का फ्रैक्चर तब तक ठीक नहीं हो सका था और पर प्लास्टर चढ़ा हुआ था। चतुर्वेदीजी अस्पताल में उनके निकट लगभग पाँच घंटे और चलते समय उनसे बोले—'जब कुछ ठीक हो जाओ, तब मुझे पत्र लिखना, 'राजहंस' का पत्र नहीं चाहता, 'चौंच' का पत्र चाहता हूँ, जिससे आश्वस्त हो सकूँ कि आपकी मानसिक स्थिति ठीक हो गयी।' पेट का घाव ठीक हो जाने पर वे अस्पताल छोड़ कर दिये गये, यद्यपि पैर पर प्लास्टर तब भी चढ़ा हुआ था। चतुर्वेदीजी की इस अनुसार घर पहुँचकर 'चौंच' जी ने उनको जो पत्र लिखा था, उसके निम्नांकित उनकी चारित्रिक दृढ़ता तथा रोग-शय्या पर अपने ऊपर विनोद करने की अदम्य का पता चलता है। 'चौंच' जी ने लिखा था—

न्याय नीति पालन के पथ में सदा विघ्न आते ही रहे हैं, यह रीति वसुधा की है, इस क्षणभंगुर शरीर की बिसात ही क्या सत्य सत्य ही है, अभिव्यक्ति प्रभुता की है। आपके समान गुरुजन का जिसे हो बल उसमें अवश्य कोई शक्ति दृढ़ता की है। भांग पड़ जाय चाहे काशी के कुओं में सभी टूटी एक टांग, अभी एक टांग बाकी है।

—डॉ. गोपाल प्रसाद

करम देवाय हविषा विधेम

जगदीश प्रसाद कर्ण

प्रश्न हैं। कौन हैं देवता ? यदि देवता मालूम हो जायें तो उन्हें हविष् समर्पित करें। किंतु देवता ही न मालूम हों तो हविष् किन्हें समर्पित करें ?

दूसरा प्रश्न—देवता अनेक हैं, अगणित हैं, उनमें किन्हें हविष् समर्पित करें ?

और यह हविष् क्या है ? यह समर्पण क्या है ?

हविष् यह जीवन है। समर्पण अपने आप को किसी में लय करने की क्रिया है।

हम अपने जीवन को किसी के प्रति—व्यक्ति, विचार, मूल्य के प्रति—अर्पित करना चाहते हैं।

यह हमारी मूल चेतना है—अपने को किसी में लय करने की चेतना। यह चेतना इतनी सहज और आंतरिक है कि हमारे अज्ञान में भी स्वयं यह होती चलती है। जीवन-डाली पर लगे पुष्प स्वयं किसी पर झड़कर नीरव हो जाते हैं।

यह वह चेतना है, जिससे हम सभ्य हुए हैं, जिससे लांगूलधारी वनमानुष में मनु-

ष्यता का प्रथम प्रादुर्भाव हुआ था।

किंतु आज हम इस चेतना को भी खो बैठे हैं। आज यह बड़ा विकट प्रश्न है।

शायद यह चेतना हो तो वह स्वयमेव अपनी मानवीय स्वाभाविक परिणति पा ले। उसका लक्ष्य-देवता, उसकी समर्पण-क्रिया और इसकी मूलभूत चेतना सभी एक धरातल पर आ जायें। उनका एक त्रिकोण बन जाये।

लेकिन जब यह चेतना, मनुष्य की आदिम चेतना ही न हो तो ? बीज भी न बचे तो अंकुर कहां से उगें ?

आज यही संकट है ! जो विश्व के सम्मुख है, वह मेरे सम्मुख भी है ! मैं भूल गया हूं 'करम देवाय हविषा विधेम' की मूल जिज्ञासा को। मैं गहन अंधकार के अतल गर्त में गिरता जा रहा हूं। फिर भी कोई प्रश्न नहीं, कोई चिंता नहीं शेष है। मुझे कुछ पता भी नहीं है, अपनी मूल प्रवृत्ति को खोने का।

पूर्णतः जगकर हम सो रहे हैं ! □



विष्णु प्रभाकर की आत्म-कथा-२ : एक आंतरिक संस्मरण

लेखक की पत्नी

एकांत क्षणों में एक दिन वह बोली,
'जानते हो मैंने आपसे शादी क्यों की ?'
सुना होगा कि मैं सुन्दर हूँ । और . . .
'जी नहीं,' वह तुरन्त बोल उठी ।
तो . . .

'इसलिए कि
आप लेखक हैं ।'
कहकर वह
सहज भाव से
मुस्करायी ।

बोली, 'जब
विवाह की बात
चल रही थी तो
मेरी सखियों ने
मुझसे पूछा, 'हमारे
जीजाजी क्या
करते हैं ?' मैंने
उत्तर दिया, 'लेखक
हैं।' लेकिन जब
शादी हुई तो उन्हें
पता लगा कि आप
लेखक होने से पहले
क्लर्क हैं । बस वे मेरे पीछे पड़ गयीं कि
तुमने झूठ क्यों बोला । मैंने उत्तर दिया,
'क्लर्क' हैं तो क्या हुआ, लेखक भी तो हैं ।

नवनीत

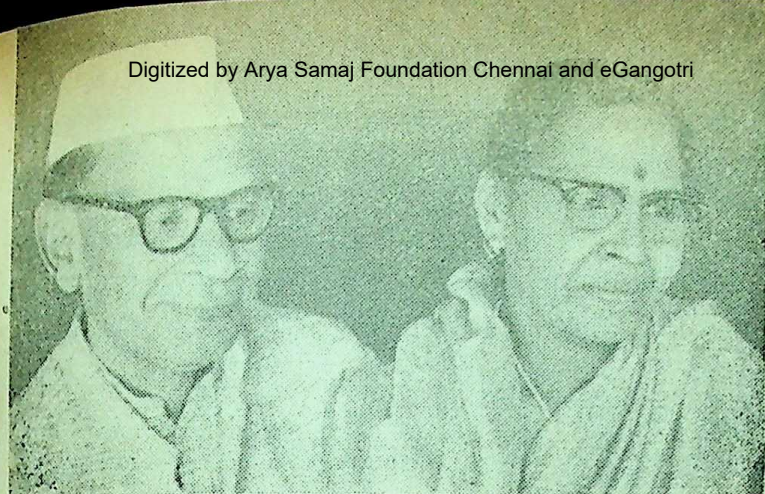
मैंने लेखक से शादी की है, क्लर्क से नहीं
सचमुच शादी के बाद मेरे भीतर
क्लर्क जैसे पराभूत होने लगा हो ।
वर्ष बीतते न बीतते पुलिस मेरे पीछे
गयी; क्योंकि मन तो मेरा गांधीजी



लेखक की पत्नी

संदिग्ध व्यक्तियों के घर छोड़े जाये
उन भाग्यशालियों में एक मैं भी था ।
बाद ६ जून १९४४ तक मैं ब्रिटेन

६४



‘मैंने लेखक से शादी की है, क्लर्क से नहीं...’ : एक शाश्वत युगल

मेता रहा।

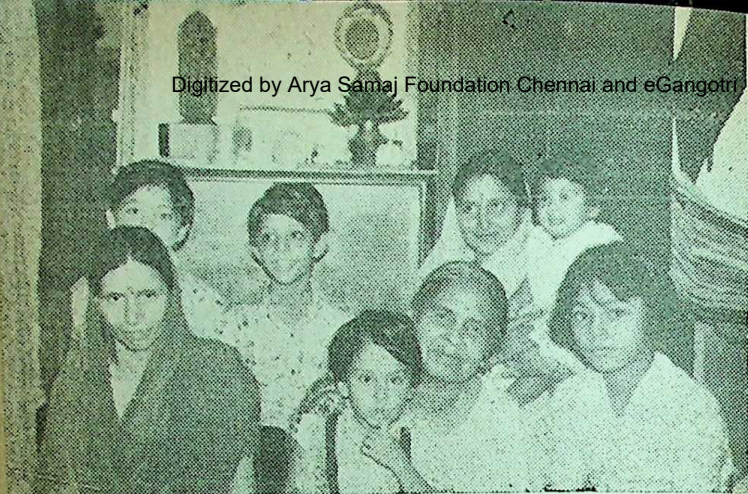
बीच में सन १९४२ में फिर पुलिस ने आ घेरा। मान लूंगा वे लोग मेरे प्रति सहानुभूति से भरे थे। इन्स्पेक्टर ने मुझे से कहा था, ‘आप लेखक हैं। आपको बहुत परेशान नहीं करना चाहते। आप नौकरी छोड़कर चले जाइये।’

जैसे नियति मेरी पत्नी के साथ साठ-गोट कर चुकी थी। मेरे अन्तर के संघर्ष ने मेरे शरीर को बस तोड़ना शुरू कर दिया था।

तभी एक पत्र में उसने मुझे लिखा, मेरी राय में तो आप (नौकरी) छोड़ ही लीजिये। कुछ और ही करना अच्छा है इससे तो। फिर स्वास्थ्य भी वहाँ ठीक नहीं रहता है।.. इससे कहीं अच्छा तो है—हम दोनों प्राइवेट स्कूल खोलकर चलायें। मेरी भी तबियत अब ऐसी होती है...।’

इतने वर्ष बाद जब इस पत्र की बात सोचता हूँ तो चकित रह जाता हूँ उसके साहस पर। सभी मुझे पागल समझ रहे थे। पन्द्रह वर्ष की सरकारी नौकरी छोड़ना पागलपन ही तो है, पर उसने तो मेरे कंधे पर हाथ रख दिया था। वह केवल लेखक को पहचानती थी और लेखक उस वातावरण में आत्महत्या ही कर सकता था। उसने मुझे उस जघन्य पाप से बचा लिया। सारी छुट्टियाँ समाप्त करके अन्ततः ६ जून १९४४ को मैंने त्याग-पत्र दे दिया।

उसका स्वप्न पूरा हो गया। अब वह क्लर्क की नहीं, लेखक की जीवन-सहचरि थी। अन्त तक वही सहचरी बनी रही। मुझे अपनी पलकों पर बिठाये रखा। तेरह वर्ष बाद आकाशवाणी में नाटक विभाग के निदेशक का पद भी मुझे बांधकर नहीं रख सका। वह उसी तरह मुस्कराती हुई मेरे कंधे थपथपाती खड़ी रही, लेकिन



क्या पाया उसने उस जीवन से ? तीस वर्ष लेखक की पत्नी रहने के बाद उसने आकाशवाणी से प्रसारित अपनी 'विनोद वार्ता' में कहा था—

'लेखक की पत्नी बनना तो आसान है, लेकिन आखिर तक उसे निभाये जाना काले तिलों में तेल निकालने से कम नहीं है। आरम्भ के दिन तो यों ही बीत जाते हैं। किसी का कुछ होना कोई अर्थ नहीं रखता। लेकिन जैसे-जैसे जिम्मेदारी बढ़ती है तो बेचारी पत्नी को चिन्ताएं घेरनी शुरू कर देती हैं। लेखक का तो अपना मूड होता है। और उस मूड को भंग करना मानों सबसे बड़ी मुसीबत है। मेरी ओर ऐसे देखते हैं, जैसे मैंने दुनिया में सबसे बड़ा पाप किया है। ... जहां तक अपना सम्बन्ध है यह भी नहीं पूछेंगे कि खाना खाया या नहीं। किसी चीज की आवश्यकता है तो ला दूं। ऊपर से वक्त-बे-वक्त आने वाले अपने मित्रों के लिए चाय और खाने का आर्डर ऐसे देंगे जैसे

घर में होटल चलता हो ...

'... बच्चे बीमार हुए तो अस्वास्थ्य भी पत्नी ले जायेगी। स्कूल में पढ़ाई की समस्या है तो पत्नी दौड़ती है। बाजार से सामान खरीदना है तो पत्नी परेशान है। कौन-सा रेज़र स्लेड हजामत ठीक है वह है, जूते का नम्बर कौन-सा है, यह पत्नी के ही कार्य-क्षेत्र में आता है। क्लाइंट कहा जाता है, उठकर जरा अपनी चीज की चीज ले आओ, नाप जरा घुमाओ, हो गया तो मैं क्या करूंगी! लेकिन मैं हूँ कि मसनद के सहारे अपने बिचारे दुनिया में सैर कर रहे हैं। उनको है अपने नाटक के स्त्री-बच्चों की रहे हम, सौ भगवान भरोसे।

'मैं शायद कुछ अधिक कठोर हो रही हूँ, बेचारे दिन भर एक नयी दुनिया के किनारे में लगे रहते हैं। इसलिए यदि मुझे कपड़ों और जूतों, ब्लेडों या दूसरी चीजों का ध्यान रखती हूँ तो कोई बुरा एहसान नहीं करती। कम से कम



मातृमहिमा मंडित मुशीला भाभी

कभी-कभी मैं उसकी ओर देखकर बोल उठता, 'इतने दिन हो गये साथ रहते, इतना भी नहीं जान पायी कि मेरी क्या पसन्द है।'

तुरन्त उत्तर देती, 'कैसे लेखक हो, इतना भी नहीं जानते कि किसी के मुख से सुनने के लिए अनजान बनने में कितना सुख मिलता है।'

लेकिन एक और भी पक्ष था इन अनुभवों का और उसी के कारण कड़वाहट का एक भी क्षण हमारे जीवन में कभी नहीं आ पाया। उसी के शब्दों में कहूँ—'इन शिकायतों का कोई अन्त ही नहीं है, लेकिन कभी-कभी कुछ मजेदार मुसीबतें भी भुगतनी पड़ती हैं... हमारे पड़ोस में एक मास्टरजी रहते हैं। बूढ़े आत्मी हैं। दायरा भी उनका बहुत छोटा है। एक

मैं, अपने पास में तो रहते हैं। कुछ ही देर के लिए उठी, मेरी ओर ऐसे देखने हैं कि जैसे मैं कोई मंत्री हूँ। सच पूछिये तब मुझे उनके पुराने जूते बाजार ले जाने और नये जूते खरीदवाने में बहुत खुशी होती है। कुछ तो है मेरे पास जो उनके चरणों में अर्पित कर दूँ। भले ही वे जूते हों...

मुझे तो सबसे अधिक गुस्सा तब आता है, जब वह मन की कोई बात ही नहीं कहते। न पहनने का कोई टेस्ट, न खाने का कोई टेस्ट और बात करने का तो कोई मालूम ही नहीं। बताइये, कोई पति अपनी पत्नी से बात न करे तो इससे बुरी सजा और क्या हो सकती है...

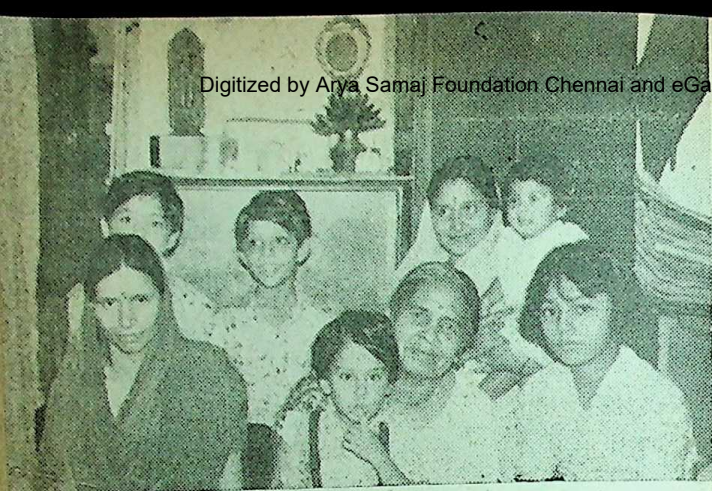
वह विनोद-वार्ता थी, पर निखूट सत्य भी। बार-बार अपने पत्रों में भी वह यही शिकायत करती थी। लगभग तीन वर्ष आता है। बाद ही एक पत्र में उसने लिखा, 'मेरी तरफ से आपको आनी नहीं चाहिये, क्योंकि मेरी उपस्थिति में आपको बोलने तक का भी समय नहीं मिलता तो, अब याद अपने दिमाग में?'

जब-तब पास आकर बैठ जाती। कहती थी, 'आँखों में झाँककर, 'कुछ बातें करो न?'

क्यों साथ-साथ प्रातः भ्रमण पर जाते हैं। राजघाट के पास पहुँचकर बोल पड़ती, 'कैसे हैं आप, दो मील चल चुके, लेकिन एक शब्द मुँह से नहीं निकला।' मुनो! क्या बनाऊँ आज?

जो तुम्हारी इच्छा हो।

आपकी कोई इच्छा नहीं?



बीच में, अपने को गोद में ली, मेरी सुशीलाजी कोई मंत्री बहुओं और बच्चों साथ मृत्यु से लगे तीन माह पूर्व

क्या पाया उसने उस जीवन से ? तीस वर्ष लेखक की पत्नी रहने के बाद उसने आकाश-वाणी से प्रसारित अपनी 'विनोद वार्ता' में कहा था—

'लेखक की पत्नी बनना तो आसान है, लेकिन आखिर तक उसे निभाये जाना काले तिलों में तेल निकालने से कम नहीं है। आरम्भ के दिन तो यों ही बीत जाते हैं। किसी का कुछ होना कोई अर्थ नहीं रखता। लेकिन जैसे-जैसे जिम्मेदारी बढ़ती है तो बेचारी पत्नी को चिन्ताएं घेरनी शुरू कर देती हैं। लेखक का तो अपना मूड होता है। और उस मूड को भंग करना मानों सबसे बड़ी मुसीबत है। मेरी ओर ऐसे देखते हैं, जैसे मैंने दुनिया में सबसे बड़ा पाप किया है। ... जहां तक अपना सम्बन्ध है यह भी नहीं पढ़ेंगे कि खाना खाया या नहीं। किसी चीज की आवश्यकता है तो ला दूं। ऊपर से वक्त-बे-वक्त आने वाले अपने मित्रों के लिए चाय और खाने का आर्डर ऐसे देंगे जैसे

घर में होटल चलता हो ...

'... बच्चे बीमार हुए तो अस्पताल ही न पत्नी ले जायेगी। स्कूल में दाखिल की समस्या है तो पत्नी दौड़ती है। बाजार से सामान खरीदना है तो पत्नी परेजा है। कौन-सा रेज़र ब्लेड हजामत ठीक करवा है, जूते का नम्बर कौन-सा है, यह सब पत्नी के ही कार्य-क्षेत्र में आता है। कल कहा जाता है, उठकर ज़रा अपनी पसल की चीज ले आओ, नाप ज़रा इधर-उधर हो गया तो मैं क्या करूंगी ! लेकिन धीरे-धीरे हैं कि मसनद के सहारे अपने विचारों को दुनिया में सैर कर रहे हैं। उनको कि है अपने नाटक के स्त्री-बच्चों की। रहे हम, सो भगवान भरोसे।

'मैं शायद कुछ अधिक कटोर हो गई। बेचारे दिन भर एक नयी दुनिया के निर्माण में लगे रहते हैं। इसलिए यदि मैं कपड़ों और जूतों, ब्लेडों या दूसरी चीजों का ध्यान रखती हूं तो कोई बहुत एहसान नहीं करती। कम से कम

दिन मुझसे बोले, 'बहनजी, आजकल हमारे स्कूल में एक प्रभाकरजी की बड़ी चर्चा रहती है। बड़े लेखक हैं और सुना है कि वह यहीं ८१८ कुण्डेवालान में रहते हैं। मुझे तो कभी मिले नहीं। क्या आप उन्हें जानती हैं?'

'सुनकर मन में गुदगुदी-सी हुई। प्रभाकरजी मेरे पास ही खड़े हुए थे। मैंने हंसकर कहा, 'यहां तो बहुत लोग रहते हैं। मैं किस-किसको जान सकती हूँ?'

'मुझे हंसते देखकर मास्टरजी को कुछ शक हुआ। बोले, 'नहीं-नहीं, आप भी पढ़ी-लिखी हैं, जानती होंगी।'

'मैंने कहा, 'मास्टरजी, दिये तले अन्धेरा रहता है। आप इन्हें जानते हैं।'

'अरे आप हैं। अब तक बताया ही नहीं।'

'एक दिन बस में जा रही थी। आगे वाली

सीट पर दो लड़कियां बैठी थीं। बस औरतों की बातें। तुरन्त दोस्ती में बदल गयी। बोलीं, 'आप कहां रहती हैं?'

'मैंने कहा, '८१८, कुण्डेवालान में।'

'लड़की बोली, 'वहां तो प्रभाकरजी रहते हैं। आप उन्हें जानती हैं।'

'मैंने कहा, 'जी हां। जानने की कोशिश तो करती हूँ। २६ वर्ष से कर रही हूँ।

नवनीत

लेकिन अभी तक जान नहीं पायी।

'लड़कियां समझ गयीं। बोलीं, 'क्यों तो आप मिसेज प्रभाकर हैं। देखिये तो आप पकड़ी गयीं। हमारे घर बापे उनको भी लेकर आइये।'

'इन निमन्त्रणों का भी कोई अन्त नहीं लेकिन ये महाशय हैं कि एक दिन किसी के घर नहीं जा सकते। कहते हैं

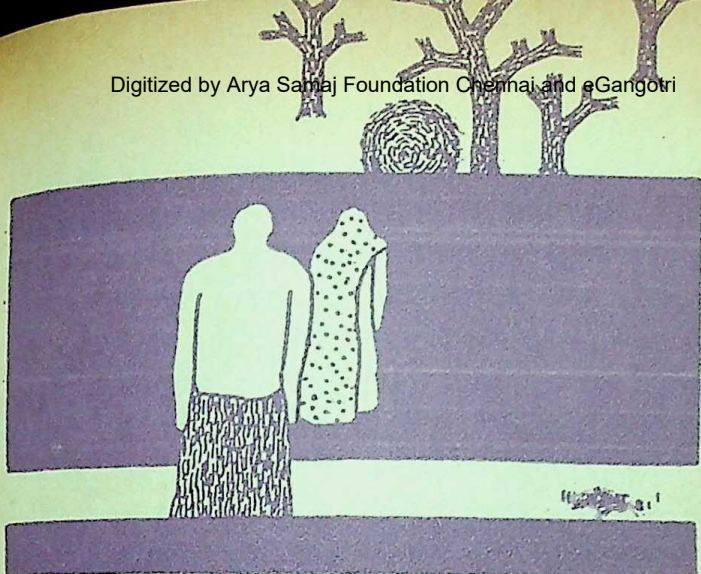
यह भी चक्रव्यूह है तब मैं भी चुप हो चुकी हूँ। कहां-कहां, किस के पीछे भाग फिखंगी।...

'... लेकिन जब कलम्बे सफर में ऐसी घट जाये तो बोर मजा आता है। एक अकेली इलाहाबाद रही थी। एक अग्रा भी उसी डिब्बे में बैठी थी। दो नारियां और संसार भर समस्याओं पर विचार



चित्र : जोजफ आर्थर

आरम्भ हो गया। दोस्ती हो गयी। मैं जब वह किसी काम में लगी तो मेरी पुस्तक निकालकर पढ़ने लगी। बस तुरन्त मेरे पास आयी और बोली, 'कौन पुस्तक पढ़ रही हैं? अच्छा, अच्छा, प्रभाकरजी की है। जरा मुझे दीजिये। मैं तो इनकी सभी रचनाएं पढ़ती हूँ। यह अच्छा ही हुआ।



विषय : संतोष पट्टिका

आप भी उनके साहित्य को अत्यधिक प्यार करती हैं।

मैंने एकदम कहा, 'जी नहीं, साहित्य को प्यार आप कीजिये। मैं तो उन्हें ही प्यार करते रहना चाहती हूँ।'

'एक क्षण हतप्रभ मेरी ओर देखती रही। फिर बड़े जोर से हंस पड़ी, 'तो आप श्रीमती प्रभाकर हैं। सच कहती हूँ आपको देखते ही समझ गयी थी कि आप जरूर किसी लेखक की पत्नी हैं। अच्छा हुआ आप मिल गयीं। अब उन तक पहुंचने का रास्ता मिल गया।'

'अब बताइये मेरे माथे पर लिखा गया है कि मैं लेखक की पत्नी हूँ, हे भगवान।'

वह लेखक की पत्नी ही नहीं स्वयं लेखिका भी थी। बहुत कम लिखा उसने और उसका दायित्व मुझ पर है। मैंने उससे कहा था, 'तुम मेरी प्रेरणा बनी रहो। वह कम योगदान न होगा। और उसी प्रक्रिया में तुम्हें लेखक बनना होगा तो निश्चय ही बन जाओगी।'

मैं अपना हृदय भी उड़ेली, परन्तु मेरी प्रेरणा बनने में रंचमात्र भी कंजूसी नहीं की। और इस बात को मेरे सभी मित्र जानते थे। वे भी इस रहस्य को पहचानते थे जिन्होंने उसे कभी नहीं देखा था। रांची में बन्धुवर राधाकृष्ण ने मुझसे कहा था, 'विष्णुजी ! आपकी पत्नी निश्चय ही सुघड़ महिला हैं। आपको बेहद प्रेम करती हैं। नहीं तो आप इतने निश्चित होकर कैसे इतना लिखते, इतना घूमते ?'

मैं अपने उन बन्धु को देखता ही रह गया। अभिभूत हो इतना ही कह सका, 'यही सच है।'

कहीं दूर होती। मेरी प्रसारित रचनाएं सुनती तो पत्र लिखती विभोर होकर— 'आपका रूपक सुना, सचमुच बड़ा अच्छा था। अपने ही पड़ोसी मोहल्ले का किस्सा था न। कितनी अच्छी तरह से व्यक्त किया है।... कहीं जाती हूँ तो बड़े आदर योग्य समझी जाती हूँ। वे कहते हैं आजकल तो आपके प्रभाकरजी रेडियो पर बहुत चमक रहे। तब सचमुच कुछ

गर्व होता है ।'

लेकिन वह मेरी रचनाएं पढ़ती-सुनती मात्र ही नहीं थी उनकी सामग्री भी जुटाती थी । बार-बार मेरा लेखक उसकी शरण में जाता और नाना प्रकार के अनुभव लिख-वाता रहता । वह भी अपने सारे अनुभव मेरी झोली में डाल देती । मैं कहता—'सुनो, नारी जब प्रथम बार मां बनने की प्रक्रिया में होती है तब कैसा लगता है ? लिखो तो । सुनो, वह जो तुमने पड़ोस की बहू के भाग जाने की बात कही थी, आगे क्या हुआ ? पता लगाओ तो । और वह लड़का जो देवी पर अपनी जीभ काटकर चढ़ा आया उसका पता लगाकर आओ क्या पाखण्ड कर रहा है आजकल ? और वह तुमने आदिवासियों का नृत्य देखा था कैसा था ?'...

वह मेरे जीवन में न आयी होती, तो मैं वह न होता, जो हूं । घर-गृहस्थी की चिन्ताओं से ही मुक्ति नहीं दी थी उसने मुझे, मेरे अन्तर में अजस्र प्रेम की ज्योति भी जगाये रखी थी अन्तिम क्षण तक ।

गोमुख के अगम्य मार्ग पर लगभग चार मील इधर डाक बंगले में रहे थे हम उस रात । शीत का प्रकोप-सा प्रकोप था ! पक्के फर्श पर गद्दे डाले हम लेटे थे । मेरी बायीं ओर मेरा बेटा था । दाहिनी ओर वह थी । उसकी दायीं ओर मेरे एक चित्र-कार मित्र थे । पैरों की ओर लेटे थे स्वामी सुन्दरानन्द । सहसा उसने मुझे बांहों में जकड़ लिया । कैसा स्वर्गीय-सुखद-अनि-

र्वचनीय आलिंगन था वह । फिर भी फुस-फुसा उठा, 'क्या कर रही हो ?'

'जो शिव और पार्वती करते थे ।' उसे ही शान्त-मधुर स्वर में वह बोली ।

जीवन-भर मेरे तन-मन को इसी मायुसे सराबोर किये रही वह पार्वती । मेजरा भी निराश होता तो उद्विग्न हो उठती । एक बार ऐसे ही अवसर पर प्रवास में लिखा उसने, 'आप अपने अमूल्य जीवन में इस प्रकार के विचार क्यों लाते हैं ? क्यों बाहर आपको असफलता मिलेगी मैं नहीं जानती । मेरे प्राण ! आपको तो अभी बहुत यश पाना है ... मेरी हर मन ईश्वर से यही प्रार्थना है कि आप जीवन में नित्य नयी सफलता और यश के भाग्य हों ... कर्तव्य से विमुख होकर भागना तो कायरता है, फिर आपके आटोग्राफ 'भरो नहीं, दौड़ो' की याद करके हिम्मत बढ़ा है ... मैं प्रण करती हूं कि आपके जीवन को सरस बनाने के लिए जी-जान से प्रयत्न करूंगी ।' (१९-९-५८)

'कल मेरे प्राण की वर्षगांठ है, इसलिए आपको बहुत-बहुत बधाई । शुभकामनाएं । ईश्वर से प्रार्थना करती हूं कि वह आपके स्वस्थ, प्रसन्न, यशस्वी और शतायु बनने और जो कुछ भी है (मेरे पास) मैं आपके लिए निछावर करती हूं ।'

'... आपके पास रहते भी कौन तृप्यता पहुंचा पाती थी, लेकिन आपका पढ़कर तो एकदम ऐसी तबीयत हो रही कि आपको गोद में लिटाकर जितना प

कर सकती थी, उतना करती। शायद आपके मन को शान्ति मिलती। मुझे तो उसमें शान्ति है ही...।

‘दर तो आपके बिना एकदम सूना हो जाता है। एक पल भी मन नहीं लगता...’

ऐसा नहीं कि हम आपस में कभी झगड़े नहीं थे। कम हठी नहीं थी वह। सम्भिमानी तो थी ही। उग्र हो उठती, लेकिन उसकी वह उग्रता भी किसी न किसी रचना का रूप लेती थी। शादी के डेढ़ वर्ष बाद ही वह किसी बात पर रुष्ट हो गयी, तब उसने ‘श्रद्धेय पुरुष’ से शुरू करके मुझे एक आक्रोश भरा पत्र लिखा। लेकिन उसमें भी अन्ततः सच्चे प्रेम की भूख ही उभर कर आयी।

मैंने यह पूरा पत्र साप्ताहिक अर्जुन (१ मार्च, १९४०) में छपवा दिया।

बोके रखा, ‘पुरुष के नाम एक पत्र’।

दूसरी बार युद्ध कुछ लम्बा चला। उसका खत हुआ मेरी कहानी ‘दो दुर्बल हृदय’ में। तब हमारे बीच जो पत्र व्यवहार हुआ उसमें हम दोनों की, एक दूसरे के लिए, छटपटाहट मूर्त हो उठी है। वही कहानी का वर्ण्य विषय है।

ये सब विषम्भक थे। सत्य था उसका सम्पूर्ण और निश्छल आत्मसमर्पण। वह किसी मध्ययुगीन पतिव्रता का आत्म-समर्पण नहीं था। बल्कि बीसवीं सदी की जागृत नारी की सही साहचर्य की कामना थी और वह कामना उस प्रेम में से शक्ति पाती थी जो नर-नारी के सही सम्बन्धों का

आधार है। इसीलिए वह मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व पर छापी रही। एक क्षण को भी मेरे अभावग्रस्त जीवन की छाया मेरी प्राणशक्ति पर नहीं पड़ने दी। निरन्तर उत्साह से भरने वाली वह मेरे एकाकी जीवन की चहकती सहचरी थी। समरस होकर जीने की तीव्र कामना थी उसमें। तभी तो मेरे सभी मित्रों की चिर-परिचिता शुचि-स्मिता हो रहती। श्रीमती लीलावती मुंशी ने प्रो. केरोल को उद्धृत करते हुए एक स्थान पर लिखा है, ‘स्त्री का प्रभाव जहां होता है, वहां वह अधिकांशतः मूक होता है...।’

उसका वही मूक प्रभाव सारे झंझावातों के बीच मेरे जीवन और सृजन की प्रेरक शक्ति बना रहा। कवि रामावतार चैतन के ‘शोक गीत’ के एक पद की अन्तिम पंक्ति में क्षमायाचना सहित संशोधन करते हुए मैं कहूंगा :

मेरे संघर्षों का भार तुम्हीं ने झेला
लेकिन दी पूर्णता मेरे संकल्पों को।

मंजिल दी—

मेरी संघर्ष महायात्रा को।

अर्पित की सार्थकता

रक्त को पसीने को।

श्वासों को सरगम

विश्वासों को शब्द दिये,

तुमने लय होने से पहले

ओ मेरी प्राणप्रिया।

—८१८ कुण्डेवाला न, अजमेरी गेट,

दिल्ली-११०००६

बागन में, बीथिन में बगर्खो वसन्त है..

□ महाकवि कालिदास
'ऋतु संहारम्' में

लो प्यारी ! फूले हुए आम की मंजरियों के पैने बाण लेकर और अपने धनुष पर
भौरों की पांतों की डोरी चढ़ाकर वीर वसंत रसिकों को वेधने आ पहुंचा है।

देखो प्यारी ! वसंत के आते ही सब वृक्ष फूलों से लद गये हैं, जल में कमल खिल
गये हैं, स्त्रियां मतवाली हो गयी हैं, वायु में सुगन्ध आने लगी है, सांझें सुहावनी हो चली
हैं और दिन लुभावने हो गये हैं।

वसंत में घरों की छतों पर ठंडी ओस छा गयी है, चम्पे के फूलों से सबके जूड़े महकने
लगे हैं और स्त्रियां भी अपने वक्ष पर मनोहर फूलों की मालाएं धारण करने लगी हैं।

वसंत के आने से बावड़ियों का जल, मणियों से जड़ी करधनियां पहने स्त्रियां
और मंजरी से लदी आमों की डालें सब और भी सुहावनी लगने लगी हैं।

कामिनियों ने अपने सुपुष्ट अंग पर कुसुम के लाल फूलों से रंगी रेशमी लहंगें
पहन ली है और वक्ष पर केशर में रंगी हुई महीन कपड़े की चोली पहन ली है।

स्त्रियों के कानों में लटके हुए सजीले कनैर के फूल बड़े सुहावने दिखाई पड़ते हैं
हैं और उनकी चंचल, काली, घुंघराली लटों में अशोक के फूल और नवमल्लिका की बूटियां
हुई कलियां बड़ी सुहावनी लगने लगी हैं।

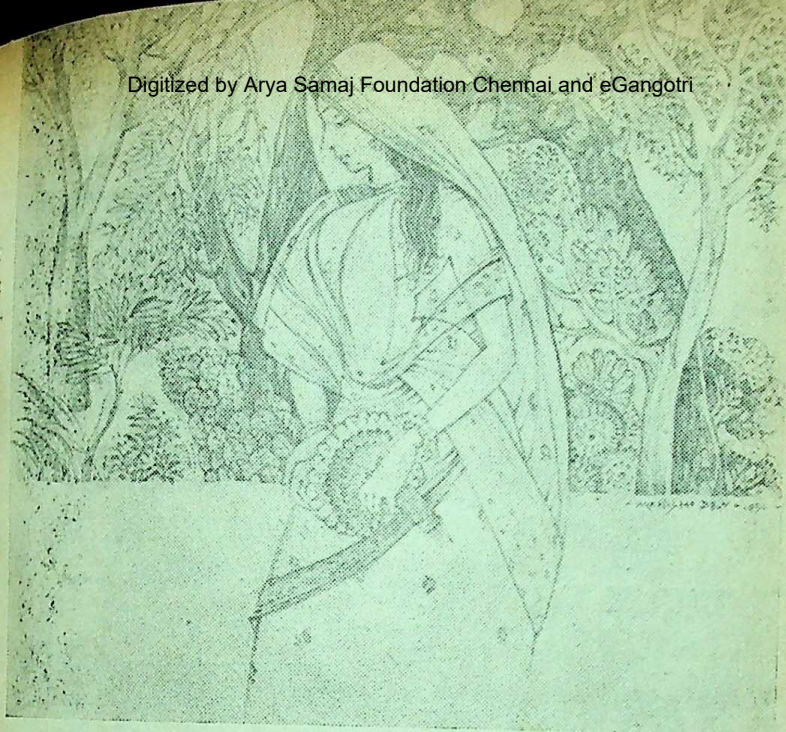
अपने प्रेमी से मिलने को उतावली नारियों ने अपने वक्ष पर चंदन से लकीरें
हुए मोती के हार पहन लिये हैं, हाथों में भुजबंध और कंगन डाल लिये हैं। और कानों
कटि पर करधनी बांध ली है।

सुनहरे कमल के समान सुहावने और बेल-बूटे चीते हुए स्त्रियों के मुखों पर
हुई पसीने की बूंदें ऐसी दिखाई पड़ती हैं मानो अनेक प्रकार के रत्नों के बीच बहुत
मोती जड़ दिये गये हैं।

देखो ! यह नर कोयल आम की मंजरियों के रस में मदमस्त होकर अपनी प्यारी
को बड़े प्रेम से प्रसन्न होकर चूम रहा है। कमल पर बैठकर गुनगुनाता हुआ यह
भी अपनी प्यारी का मनचाहा कर रहा है।

नवनीत

७२



**वासन्ती चेतना । मूर्धन्य भारतीय कलाकार स्व. मनीषी दे
का एक पेन्सिल-रेखांकन**

लाल-लाल कोंपलों के गुच्छों से झुके हुए और सुंदर मंजरियों से लदी हुई शाखाओं से आम के पेड़ जब पवन के झोंके में हिलने लगते हैं तो देख-देखकर स्त्रियों के मन छलने लगते हैं ।

अशोक के जिन वृक्षों में कोंपलें फूट निकली हैं और जिनमें मूंगे जैसे लाल-लाल फूल नीचे से ऊपर तक खिल आये हैं, उन अशोक के वृक्षों को देखते ही नवयुवतियों के हृदय में जोक होने लगता है ।

जिन छोटी-छोटी अतिमुक्त लताओं के फूलों को मतवाले भौरें चूस रहे हैं और जिनके नये कोमल पत्ते मंद-मंद पवन में झूल रहे हैं, उन्हें देख-देखकर कामिनियों का मन अचानक डावांडोल हो जाता है ।

हे प्यारी ! अभी खिले हुए और स्त्रियों के मुख के समान सुंदर लगनेवाले कुरबक के फूलों की अनोखी शोभा देखकर किस रसिक का मन कामदेव के बाण से घायल नहीं हो जाय ।

(शेषांश पृष्ठ ८७ पर)

बच्चों का पत्रा

बोधकथा

बड़ा कौन है ?...

‘सुंदर, मैंने कितनी बार कहा कि तुम हरिया के पास मत बैठा करो। ऊंची जाति के हो, ज़रा तो विचार रखा करो। ये लोग नीच जाति के हैं, इनको पास नहीं बैठाना चाहिये।’

‘पर मनोहर, वह तो मुझसे ही नहीं, तुमसे भी कितना प्यार करता है, यह तो तुम देखते ही हो।’

‘सो तो करेगा ही, नहीं करेगा तो जायेगा कहाँ?’

‘वाह, इसमें भी कोई ज़बरदस्ती है क्या!’

‘हैं क्यों नहीं, हम ऊंची जाति के जो हैं। हमारे पुरखे इनकी छाया भी अपने ऊपर नहीं पड़ने देते थे और एक तुम हो कि उससे चिपककर बैठते हो।’

‘लेकिन मनोहर, वह हमारी तरह साफ-सुथरे कपड़े पहनता है। अच्छी तरह रहता है और इतना ही नहीं कक्षा में हमेशा अच्छे नंबर लाता है।’

‘यही तो उसे अभिमान हो गया है कि वह पढ़ने में हमसे तेज़ है, तभी तो छोटी जाति का होकर भी बड़ा बनने का दिखावा करता है।’

‘तो फिर हमें क्या करना चाहिये।’

□ गिरिजाशंकर त्रिवेदी

‘करना क्या चाहिये, इस बार भी वह बढ़-बढ़कर बातें करे, उसका सबक सिखा देना चाहिये।’

०००

सुंदर, मनोहर और हरिया स्कूल के घर लौट रहे थे। आज ही वार्षिक परीक्षाफल सुनाया गया था। हरिया प्रथम और सुंदर द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण थे, पर मनोहर फेल हो गया था।

मनोहर का उतरा चेहरा देखकर हरिया उसे दिलासा देने के लिए बोला—‘मनोहर भैया, दुखी क्यों हो रहा हो? पास और फेल दोनों में से एक होना ही पड़ता है। चिंता न करो, एक साल अच्छी मेहनत करो और अगले नंबरों से पास हो जाओ। मेरी तरह चाहोगे, तो मैं ज़रूर दूंगा।’

पर हरिया की बातें मनोहर के दिल में जले पर नमक का काम कर गयीं। वह क्रोध में तमतमाकर बोला—‘छोटी जाति के बच्चे, रहेगा तो छोटी अपनी जाति का असर तो दिखायेगा। प्रथम श्रेणी से पास क्या हो गया, अभिमान हो गया है। तू मेरी क्या करेगा, पहले अपनी औकात तो

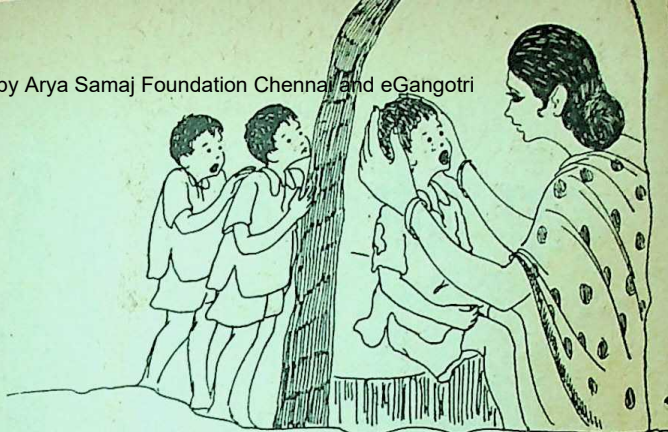
नवनीत

७४

आया कहीं का कमीना!

और झपटकर मनोहर
ने हरिया के गाल पर
तमाचा जड़ दिया।

हरिया को इस प्रकार
के व्यवहार की क्रतई
दुमोद नहीं थी, उसकी
आँखों में आंसू भर आये।
दूर भी वह अपने को



संभालते हुए पुनः बोला—'भैया मनोहर,
मुझे क्यों मारते हो, मैं तो तुम्हें समझा
भर रहा हूँ। मेहनत करोगे, तो जरूर
पास हो जाओगे। इसमें तो मैंने कोई बुरी
बात नहीं कही।'

मनोहर के क्रोध का पारा एकदम
बढ़ गया। लात-घूँसे-थप्पड़ों से जितनी
भी हरिया की पिटाई कर सकता था,
उसने जमकर की और विजेता की भाँति
दूर से बोला कि यही इसका इलाज था।
बुरा ठीक हो जायेगा। बड़-बड़कर बातें
कहने की आगे से हिम्मत नहीं करेगा।

इस मारपीट में हरिया के कपड़े फट
पड़े थे। वह फटे कपड़े लेकर घर जाता
तो उसकी माँ उसे और भी मारती।

उसने कुछ सोचा और सीधे मनोहर
के घर गया। दरवाजे पर ही मनोहर
की माँ खड़ी राह देख रही थी। हरिया
ने रोते-रोते सारी दास्तान बताया।
मनोहर की माँ मनोहर के फेल हो जाने
की बात से और भी खीझ उठी।
हरिया का हाल बेहाल देखकर उसे दया

आयी। उसे घर ले जाकर आँगन में
बिठाकर वह उससे बोली—'हरिया, आज
मैं मनोहर की अच्छी खबर लूंगी।
खेलकूद में इसने सारा साल गंवा दिया
और तेरे द्वारा अच्छी बात समझाने
पर तेरा यह हाल किया।'

तब तक सुंदर और मनोहर भी घर की
दहलीज में पहुँच चुके थे। दीवाल के
पीछे छुपकर वे दोनों सुनने लगे कि हरिया
क्या उत्तर दे रहा है।

हरिया गिड़गिड़ाकर कह रहा था—
'चाची, उसे मारना नहीं। हम लोग
सहपाठी हैं। ठीक है, मनोहर को गुस्सा
आ गया, पर उसे नहीं मारना चाची,
मेरी ओर से उसे माफ कर देना।'

दोनों ने थोड़ा और झाँककर देखा, तो
मनोहर की माँ हरिया के सिर पर हाथ
रखकर उसे आश्वस्त कर रही थी कि
अच्छा नहीं मारूंगी, हरिया।

इधर दहलीज में छिपे वे दोनों सोच
रहे थे कि हरिया बड़ा है कि हम?

—भारतीय विद्या भवन, बंबई-७



प्रसिद्ध बंगला कहानीकार अबुल हसनात की कहानी

कुसूर पिता ही का

आज सीखचों के पीछे बंद हूं, तभी तो सोच रहा हूं ! सोच रहा हूं, क्योंकि स्वयं को देखने की दृष्टि को स्थितप्रज्ञता दे पाने का प्रयास कर पा रहा हूं ! जेल में होना ही, परम प्रतापी मुख्यमंत्री इलियास के पुत्र के लिए, अव्यक्त रहते हुए भी, उच्चरित होने के लिए पर्याप्त है। आप कहेंगे—अपनी गलतियों को दूसरों के माथे मढ़ देने की यह एक गंदी-सी कोशिश, कुचेष्टा है, तो मुझे यह कहने दीजिये, निश्चय ही विनम्रतापूर्वक, कि गलत हाथों में पड़ने पर सभी को नाश-ध्वंस का मुंह देखना पड़ जाता है। यह जो राजनीति है न, बड़ी कठिन चीज है। असंख्यों दिनों एवं रातों के यों ही बीतने पर, बहुत-बहुत-सा अपमान, लांछना और अन्याय कष्टों-तकलीफों को सह लेने पर, तब कहीं आती है जीत और मान-सम्मान, वैभव जैसे दुःख के पश्चात् सुख, रुदन के पश्चात् हास्य।

एक दिन वह भी था, जब इस देश पर सैनिक शासन के लागू किये जाने की घोषणा कर दी गयी थी। राजनीति को पुस्तकों के पृष्ठों की सीमा में बंधकर रह जाना पड़ा था विवश होकर। किंतु कब तक ? कुछ ही दिनों में राजनीति ने फिर अपना

□ मूल बंगला से रूपांतर :
आलोक भट्टाचार्य

कमाल दिखाया। स्वयं आयाज खान पार्टी गठित की और इसी बुनियाद पर देश के इस प्रांत के मुख्यमंत्री बने पिता। यह किस्मत का ही तो खेल था। गुमनामी के अंधेरों में क्रमशः विलीन हो जा रहे मेरे पिता बन गये सीधे मुख्यमंत्री। किंतु जहां तक मेरा प्रश्न था, मेरे पिता बनाये गये इस कारण से नहीं, पार्टी के योग्यतम सदस्य का ही इस पद के लिए निर्वाचन किये जाने की नीति के लिए आयाज खान की प्रशंसा किये बिना रह पाया।

सारी स्थितियां अकस्मात् ही बदल गयीं। कालेज में सदैव छात्रों के झुंड में घेरे रहते। 'हां, हां, उसी के पिता तो...' की तीखी या मद्धिम आवाजें, 'मुख्यमंत्री का बेटा...' आदि ध्वनियां अच्छी लगतीं। गर्व से छाती फूल उठती। लगता, माने आनंद और खुशी के मारे जरा कितना ही खेल आऊं।

किंतु आनंद के इस सारे वातावरण अछूते—मेरे अध्यापक बड़े भैया ने—सिकोड़कर, गंभीर होकर, चश्मे का काँटा साफ़ करते हुए कहा—'इस दायित्व स्वीकारना पिताजी के लिए उचित हुआ।'।

नवनीत

७६

‘क्यों ? क्यों
मता ?’ के प्रश्नों
के साथ हम सब
उन परचीतों जैसे
बूट पड़े।
कुशल शिकारी
की ही तरह हम
बने मेरे
खेल था
लीन होने
मुख्यमंत्री
मेरे पिता
, पाटी
के लिए
के लिए
बिना
ही बदल
के बुढ़
ता तो
‘मुख्यमंत्री
छी लगी



‘तुम यह अति
वरतने की बात करते हो।’
पिता ने चाय की प्याली उठा ली।
कहा नहीं। उनके आचरण में कुछ
नहीं था। मानो मुख्यमंत्रित्व उनके
तय था। यह आत्म-प्रत्यय उनके
कोई अस्वाभाविक भी न था। पार्टी
जनता में पिता लोकप्रिय नहीं, ऐसा
अनुचित था। वे लोकप्रिय थे। कुछ

बुद्धिजीवियों को मैं उनका आलोचक अवश्य
पाता था, पर जन-साधारण में पिता की
सरलता एवं साहसिकता का बड़ा प्रभाव
था। फिर, पद-ग्रहण के पश्चात् शपथ
लेते हुए हुए उन्होंने जनता के नाम जो
संदेश प्रसारित किया था, वह भी अत्यंत
महत्त्वपूर्ण था।

पहला साल, तो पिता ने भाषणों,
आश्वासनों और मीठी बोलियों से सारे

प्रांत को नहलाने में निकाल लिया । उसके बाद शुरू हुई एक पिच्छिल यात्रा । मैं भी शरीक हो गया । दूसरा कोई, संभवतः उपाय भी न था । दोस्त-अहबाब, आत्मीय-स्वजन, कोई-न-कोई आता ही रहता था मंत्री-पुत्र के पास मिलने के लिए ।

शाहिद इन सबकी परवाह नहीं करते थे । अतः उनके पास कोई जाना भी न चाहता था । आते सब मेरे पास थे । मांग, अनुरोध, सिफारिश—कोई नौकरी-चाकरी के लिए, कोई तबादले के लिए, कोई विदेश को जा रही सद्भावना-यात्रा टीम की सदस्यता के लिए । कुल मिलाकर एक अद्भुत कोलाहल, अजब व्यापार ! भीड़, खुशामदे, रुपया-पैसा, मुरा-सुंदरी, नाच-गाना, शराबें, हो-हुल्लड़—यह एक दूसरी ही दुनिया थी । एक ऐसी दुनिया जो इतिपूर्व मेरे लिए नितांत अपरिचित थी । जिसके लिए मैं निहायत अजनबी था । शुरू-शुरू में मैंने कुछ अधिक उत्साह नहीं दिखाया । क्योंकि पिता के पास इन बातों के लिए कुछ कहना मुझे उचित जान नहीं पड़ता था । ऐसा लाड़ अनुचित लगता था । किंतु पिता ने ही जैसे रास्ते खोल दिये । ऑफिस में भीड़ । घर में भीड़ । दिनों और रातों में भीड़ । कितने ही लोग । आने-जाने का एक निरंतर या कहूं—अनंत क्रम । पिता जैसे सबके लिए इत्र बांटते फिरते हों । मुझे यह बुरा भी लगता था । देखता था—दो विरोधी दल आये, किसी समस्या के समाधान के लिए । पिता ने अलग-अलग

दोनों दलों की पीठ ठोक दी । समाधान दूर रहे । या किसी पद के लिए कलह हो पर दोनों के ही लिए कुछ व्यवस्था कर दी । यह सब मैं देखता था फिर सोचता था, शायद यही राजनीति हो । संभवतः इसी प्रकार समस्याएं सुझायी जाती हों । आखिर मैं जानता कितना था !

मेरी भी व्यस्तताएं बढ़ गयीं । लिख पढ़ना बंद-सा हो गया । लिख-पढ़कर भी क्या था ! लिख-पढ़कर जो मिलता उससे कहीं अधिक ऐसे ही पा रहा था । पिता के मंत्रित्व के दो वर्ष पूरे हुए इस बीच दो बातें स्पष्ट रूप से उभर आयीं । रोजमर्रा की जरूरतों की पूर्ति करने वाले द्रव्यों के मूल्यों में वृद्धि प्रशासन-तंत्र में भ्रष्टाचार । पिता लेकिन इनके साथ भी अपने ही तर्कों निपटारा किया । खुली सभा में भी संबोधित करते हुए उन्होंने कहा—अर्थ एवं अनुन्नत देश में ऐसा तो होगा इसके लिए चिंता की विशेष कोई नहीं है । आप सब अधिक अनाज जमा की कोशिश करें । ज्यादा काम करें ।

इसी समय एक घटना घटी, और का इस संबंध में मुझे कुछ भी नहीं मुझे चकित कर गया । मैं एक ओर झमेले में पड़ गया । बात पिता तक देर न लगी । मां ने मुझे बुरा-भला पिता से वे जब कहने गयीं तो अपना अद्भुत वक्तव्य पेश किया—

समाधान
ए कलह
-कुछ क
देखना
ही राज
समस्या
जानता
भी। लिख
-पढ़कर
गो मिल
रहा था
पुर्व पुरे
से उम
की क
में वृद्धि
। पिता
ही तर्क
में भी
हा-बि
तो होना
प कोई
अनाज उ
म करे
टी, और
छ भी न
एक ओ
तक
भसा क
तो कि
किया-
१८९

जवान है। जवानी की गर्मी में गलतियाँ
तो युवक ही करेंगे न ! इसे तुम 'ईश्यू'
क्यों बना रही हो, शाहिद की मां ?'
ठीक ! यौवन ही तो गलतियों के लिए
ठीक समय है। किंतु पिता ने इस समस्या का
ही समाधान अपने तरीके से निकाल
दिया। मेरे विवाह की व्यवस्था कर दी।
शाहिद भैया के लिए कोई चिंता नहीं थी।
वे बिरकुमार हैं। समस्या जिसको लेकर
हो सकती थी, उसका विवाह हो जाये
वस। कन्या उन्होंने स्वयं पसंद की थी।
जिसी घरेलू सभा-गोष्ठी में देखा था।
गस्ट-ऑफिस के किसी क्लर्क की बेटी।
अवाक रह गया। मुख्यमंत्री के पुत्र के
बच किरानी की बेटी का विवाह ! पिता
को हुआ क्या ?
किंतु अवाक होने को अभी और कुछ
देखा। सुना, कन्या के पिता ने विनम्रता-
पूर्वक इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया है।
इसके विचार से क्लर्क का मुख्यमंत्री से
जिना ठीक नहीं।
पिता हंसे। और फिर सुना क्लर्क
पुत्री हो गये। समझना कुछ कठिन नहीं
था। राजी होने पर क्लर्क बाध्य किये गये
हैं। खैर। शादी, धूम-धाम से हो गयी।
इसके कुछ ही दिनों बाद एक बड़ा
आंदोलन प्रारंभ हो गया। आवश्यक
आदेश गृह-विभाग को देकर
पिता ने एक अभिनव तरीका अपनाया।
राज-नेताओं की पीठ ठोकनी शुरू कर
दिया। शिक्षा-संस्कार, साक्षरता-अभियान

आदि समितियों में छात्र-प्रतिनिधियों को
सदस्यता दी। स्कालरशिप पर विद्यार्थियों
को विदेश भेजने लगे। और भी तमाम
सहूलियतें सुलभ कराने लगे। परिणाम
खुलकर सामने आया। छात्र-शक्ति का
एक बड़ा भाग परमिट, लाइसेंस आदि के
चक्रव्यूह में फंस गया। अधिकतर छात्र-
नेता लोभवश गृहित एवं अवैध कारोबारों
में फंस गये। नेतृत्व उखड़ गया। आंदोलन
स्वतः ही समाप्त हो गया।

ऐसा ही सब होने लगा। जो लोग पिता
को जानते थे, उनके साथ रहते थे, वे भी
पिता की आलोचना से कतराते। पता नहीं
क्यों पिता को गलतियों पर उंगली नहीं
उठाते। इस प्रकार सारा प्रदेश मेरे पिता
के आदेशों-निर्देशों पर चलता रहा और
एक भयावह परिणति की ओर स्वयं ही
बढ़ता रहा।

०००

उस दिन अपने कमरे में बैठा था कि
एक वृद्ध ने प्रवेश किया। अकस्मात् ! मैं
थोड़ा खीझा। कुछ कहूं इससे पुर्व ही
उन्हें पहचान गया। मेरे शिक्षक थे स्कूल
के। फिर भी प्रसन्न तो खैर, मैं नहीं ही
हो सका... सिफारिश ? उम्मीदवारी ?
क्यों आये ?

वैसे ही कहा—'बैठिये, सर। कैसे हैं ?
ठीक तो ? कब आये ?' मेरे इन प्रश्नों का
उत्तर देकर उन्होंने जो कहा उसका सारा
यह था, 'बेटा, देश की दशा बड़ी खराब
है। मैं अपने गांव की बात कर रहा हूं।

बड़ी दुरवस्था है। चोरी-डकैती बढ़ चली। पुलिस की निष्क्रियता भी बढ़ गयी है। अजीब दुखद स्थिति है। सुना है, मुख्यमंत्री तुम्हारी सुनते हैं। ज़रा कहना, बेटा।

मास्टरजी को हां-ना कहकर, चाय-नाश्ता कराकर चलता किया। दूसरे दिन नाश्ते के समय अपनी किसी निजी आवश्यकता पर चर्चा करना चाहता था पिता के साथ, पर देखा उनके पास गृहमंत्री इकबाल चौधरी बैठे हैं। इस आदमी को पिता का इतना प्रश्रय देना मुझे ठीक नहीं लगता। मैं समाचारपत्र तो पढ़ता नहीं, पर जो कुछ सुनता हूँ, उसके अनुसार भ्रष्ट शासन, न्याय एवं कानून की गिरती अवस्था एवं अन्यान्य कई-कई बातों के लिए यही इकबाल चौधरी उत्तरदायी है। पर इसकी पिता से बड़ी घनिष्ठता है। बड़ा ही प्रिय है यह पिता को !

पर यह बात छोड़िये। मैं शहीद, मंत्री-पुत्र, मुख्यमंत्री-पुत्र, मैंने शादी कर ली। मेरी पत्नी वास्तव में सुंदरी है। खूबसूरत। पिता की पसंद की प्रशंसा करनी ही पड़ी। पर लड़की, सायमा, अर्थात् मेरी पत्नी राजनैतिक रूप से कुछ सचेत दिखायी दी। वह मुझे सह तो पाती ही नहीं, ऊपर से घृणा ही करती थी। किसी के प्रति किसी की अवस्था या घृणा तो समझ में आ सकती है, पर अपनी पत्नी द्वारा घृणा की दृष्टि से देखा जाना मुझे सदा दुखाता रहा है।

एक दिन मैंने कह ही दिया, 'इतनी ही यदि घृणा थी, विवाह के लिए राजी क्यों

हुई ?'

सायमा ने कहा, 'मेरा राजी होना कोई मूल्य नहीं रखता था।'

'ओह ! अच्छा ! तो, अब करोगी ?'

'करूंगी क्या... !'

एक गहरा दीर्घश्वास, वातावरण चीरता हुआ-सा। मैं चौंक उठा। सायमा के सौम्य चेहरे पर उसके हृदय गहराई में पैठा यह दुख कहीं दीखता था। नर्म अंदाज़ में मैंने कहा- 'सुनना 'ऐडजस्टमेंट' ही दाम्पत्य-जीवन के पहला पाठ है।'

'कोशिश करूंगी। लेकिन...'

'लेकिन... ?'

'लेकिन मुख्यमंत्री के बेटे के साथ कैसे ऐडजस्ट करूँ ? उनकी हर बात निराली है। खाना-पीना, उठना-आना-जाना, सब। मुख्यमंत्रित्व के लिए मैं सरकार कितना पैसा देती है ? कितना पाता है यह राजकीय चाल-चलन ठाठ-वाट कैसे चल पाता है ? कितना आता है इतना सारा पैसा ? अब ईमानदारी से नहीं। तो... तो वे और चोरों के साथ ऐडजस्टमेंट कैसे हो पायेगा ?'

कहूँ क्या ? क्या कहता ? मैंने अवाक्-सा उसे अपलक देखा ही रहा। चोर ! बेईमान ! कहती क्या है लड़की ! यह सब सह जाने का धैर्य नहीं, किंतु फिर भी, जाने क्यों, मैंने

रहा। सायमा के साहस एवं स्पष्टवादिता ने मुझे मूक-सा कर दिया था। आज, इस बंदी-दशा में, जेल के भीतर, कारागार में, यह सब-कुछ अकेले में सोचते हुए मुझे मात्र पिता की ही यादें आती हैं। याद मात्र पिता ही तो आ रहे हैं और उनका लाड़ला पुत्र, उन्हें क्षमाहीन अभिशापों से जर्जर करने की हर संभव चेष्टा कर रहा हूँ। सायमा मुझे मन से स्वीकार न कर सकी, इसका उत्तरदायित्व पिता पर ही तो है ! विवाह मैंने नहीं किया न सायमा ने, विवाह तो मेरे पिता के कारण हुआ। और... और इस विवाह के प्रति अस्वीकार की भावना, मेरे भीतर तो कहीं थी, तभी तो आज इस झमेले में... हाँ, मैं सोच रहा हूँ। मैं सोच पा रहा हूँ।

उन दिनों एक तेज उत्कट जीवन जी रहा था मैं। यार-दोस्त, खेल-कूद, हो-हना, शराब, औरत... औरतें... सा खूब आ रहा था। बेहिसाब बर्बंसी कर रहा था मैं। उड़ा रहा था। ऐसे में, मेरे जीवन में सीमा का प्रवेश हुआ। रूप या रंग में कोई आसाधारण नहीं, किंतु उसकी लुभावनी देह के अद्भुत मोहव ने बरबस अकर्षित किया। उसका शरीर मुग्ध करता था। उसके बदन को स्वीकार करना संभव नहीं था। वैसे भी सायमा की उपेक्षा ने मुझे पहले ही सुख से दूर कर रखा था, सीमा के आमंत्रण ने मुझे सहज ही उसके सोने में सिर छिपाने

को बाध्य-सा कर दिया।

और फिर सीमा गर्भवती भी हुई। बात छिपी भी नहीं रही। पिता तक पहुंची। सायमा तक पहुंची थी, इसीलिए पिता तक भी पहुंची। सायमा सीधे पिता के पास जा खड़ी हुई। उसने कहा कि वह तलाक़ चाहती है। सामंजस्य एवं सह-अवस्थान उसकी हर संभव चेष्टा व्यर्थ साबित हो चुकी थी। उसकी निष्ठा का उसको अच्छा पुरस्कार मिला था—सीमा और उसका गर्भ... अतः यथासंभव शीघ्र तलाक़... पिता ने सायमा को डांट दिया। धमकाकर रोक दिया। मुझे बुलाकर सीमा से पीछा छुड़ाने की हिदायतें दीं—‘कुछ दे-दिवाकर उसे भगाओ।’

आज सोचता हूँ, कितने स्वार्थी थे पिता। मेरे अपराध के लिए मेरी कोई भर्त्सना उन्होंने नहीं की। न ही सायमा के प्रति उन्होंने न्याय, विचार या सहानु-भूति का रख अपनाया। खैर ! सीमा की देह के आकर्षण से छूट पाना मेरे लिए संभव नहीं था। उसके लिए मैंने एक अलग मकान की व्यवस्था की। रानी-सी रखा उसे। सायमा किसी बहाने मायके चली गयी। तब सायमा भी गर्भवती थी। बाद में सायमा ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसे मैंने नहीं देखा। सायमा भी फिर नहीं मिली।

और तब इस सबने मुझे दुखी भी नहीं किया। अपितु प्रसन्न ही किया। सायमा के पिंड से छूटने की एक तृप्ति-सी मिली।

ऐसा महसूस हुआ था। रोज-रोज की अनबन से छुट्टी। और यह भी चाह रहा था मैं कि भविष्य में भी यदि सायमा मुझे कभी 'डिस्टर्ब' न करे, तो अच्छा हो। सीमा का उफनता यौवन एवं तरल प्यार मुझे डूबे रहने को काफ़ी था। मैं डूबा भी था, देह में।

उन्हीं दिनों किसी शादी-वादी की पार्टी में फारूख मिल गया था। मेरे स्कूली जीवन का साथी था। अच्छी मित्रता थी। अब विश्वविद्यालय में अध्यापन कर रहा था। बुद्धिजीवियों में एक। मैंने पहचाना। फारूख ने कहा, 'आने वाले दिन बड़े बुरे होंगे, शहीद। तुम समझ नहीं पा रहे हो। तुम्हारे पिता के प्रशासन का जो तरीका है, वह देश को एक दिन सर्वनाश के द्वार पर ले जायेगा। व्यवसाय के नाम पर विदेशियों के मजे बढ़ते चले जा रहे हैं। आम आदमी के दुर्भाग्य का अंत नहीं। अब हमें ही लो। सुनते हैं, बुद्धिजीवियों को तुम्हारे पिता बिलकुल नहीं चाहते, कारण मात्र यह है कि बुद्धिजीवी उनकी आलोचना करते हैं। ऐसी ब्रातों से जन-विक्षोभ बढ़ता है। और फिर उनकी नीति भी तो कोई नीति नहीं न! सभी के प्रति प्रेम, प्यार, सहानुभूति! राज-नीति भला ऐसे में क्या सार्थक होगी!'

और भी लोगों से मैंने ऐसे ही विचार सुने हैं। कुछ लगता नहीं। ठंडेपन से मैंने कहा, 'उनका काम वे जानें। हम

भला क्या कर सकते हैं?'

फारूख काफ़ी धारदार प्रतीत रहा था, 'हम भला क्या कर सकते हैं? कहना ठीक नहीं। यह तो पलायन है। तुम्हें उनसे चर्चा करनी चाहिये। समझने की चेष्टा करनी चाहिये। इस अनौचित्य एवं भ्रष्टाचार को पनपने देना अनुचित है।'

सुननी पड़ी ऐसी बातें। मुझे विशेष अस्वाभाविक नहीं लगता किंतु मूर्खों को भला क्या समझाया जाये उस दिन समाचार-पत्र में भी एक पढ़ने को मिल गयी। वैसे समाचार-पत्र मैं पढ़ने का शौकीन कभी नहीं रहा पर उस दिन दिखायी दे गया। डॉ. हंस की गिरफ्तारी का समाचार था। गिरफ्तारी के लिए समाचार-पत्र भी सरकार की कटु आलोचना की। मुझे इसमें कोई तथ्य नहीं दीखा। प्रिण्टिग सरकार के विरोध में अजीब वक्तव्य दोगे, तो गिरफ्तार तो किन्हीं जाओगे। यह तो अनुशासन की है! नियंत्रण रखना तो आवश्यक है।

अखबार रखकर मैं लेटा ही था पिता का बुलावा आया। जल्दी। दोपहर को कुछ देर सो लेना मेरी प्यारी आदत में से एक है, अतः इस व्याघात से मुझे तिलमिलाया। क्या प्यारी नींद आ रही थी! पिता के समय-ज्ञान पर क्रोध पर पहुंचना आवश्यक था। पहुंचा पिता ने कहा, 'तबीयत तो ठीक है।'

‘ठीक है।’ मैंने कहा।

‘तो सुन। एक युवा-प्रतिनिधि-मंडल
‘अमेरिका का रहा है। तू जायेगा?’

‘अवश्य।’

‘तो फिर हो आ। तुझे प्रतिनिधि-
मंडल का नेता कर दूंगा। समझा!’

मैं आह्लाद से भर उठा। पिता ने
कहा, ‘सप्ताह भर का समय तैयारी के
लिए पर्याप्त होगा न?’

‘हां, हां। खूब होगा।’ मैंने कहा।

खबर सुनकर लियाक़त आ पहुंचा।

मेरा चमका है। वह भी अमेरिका जाना
चाहता है। ज़िद करने लगा। मैंने पिता से
कहा तो बोले सब तय हो चुका है, अब
सा किया जा सकता है! पर जब बात
मेरी प्रतिष्ठा पर आ रुकी, तो पिता ने
लियाक़त की भी अमेरिका-यात्रा की
व्यवस्था पक्की कर दी।

०००

‘सोच क्या रहे हो?’

चौंकर देखता हूं। नहीं कोई नहीं।

वह मेरी ही अंतरात्मा की आवाज़ है।

इस जेल में बैठा मैं नहीं सोचूंगा तो कौन

सोचेगा—कोई चरित्रवान भला आदमी?

सोच रहा हूं—क्या था और क्या हो गया!

यह दिन और आज का दिन! किंतु

कुसूर मेरा नहीं। कुसूर पिता का है।

हां, मेरे पिता का ही दोष है। मेरे जनक

हैं इसके लिए उत्तरदायी हैं। उन्हें,

उनके पितृत्व को यदि अस्वीकार कर पाता

तो आज लगता है, बच पाता। किंतु

मेरे जनक मेरे उनकी भूमिका को भला
में क्या अस्वीकार कर सकता हूं? इस-
लिये जल रहा हूं। तिल-तिल! सींखचों
के पीछे—अकेला! वे—वे ही दोषी हैं।
आज, यहां इस कारागार के भयंकर
एकांत में स्वयं को तटस्थ रखकर जब
सोचता हूं तो पाता हूं, मेरी इस दशा के
लिए वे ही उत्तरदायी हैं। पूर्णतः। अरे,
तुम मुख्यमंत्री हो, तो हुआ करो। मेरा
क्या? नहीं। मैंने भी मंत्रित्व का भार
लिया। तुम्हारे प्रश्रय में!

बड़े भइया की याद आ रही है।
शाहिद भाई साहब की। तीखी नज़रों
वाले शाहिद भाई। हमसे ऊबकर घर
छोड़ मिनी मेस में जाकर रहने लगे थे।
जाने से पहले मुझे अपना अकेला भाई
जानकर, कह गये थे, ‘अभी समय है,
शहीद। संभल जा। तू तो बुरा न था।
तेज़ था। पढ़ाई फिर से शुरू कर दे।
कैरियर के प्रति गंभीर बन।’

मेरा उत्तर था, ‘पढ़-लिखकर क्या होगा,
भैया? नौकरी-वौकरी से आखिर कितना
कमा लूंगा?’

‘तो फिर क्या चोरी-डकैती ही किये
जायेगा?’

‘चोरी-डकैती तुमने कहाँ देख ली,
भइया?’

‘तुम लोग जो कर रहे हो, यदि वह
चोरी नहीं, डकैती नहीं, तो और क्या
है?’ फिर कुछ रुककर बोले, ‘ठीक है!’

मैंने कहा, ‘तुम कुछ अधिक ही सोचते

हो, भइया !

उन्होंने कहा, 'अधिक, पर यथार्थ सोचता हूं। इस प्रकार तुम कितने दिन चला लोगे ? इस शासन का अंत होगा ही—आज, कल या परसों। तब ? तब तुम लोग क्या करोगे ? कहां जाओगे ?'

'क्या बकते हो, भइया ! बीस-पच्चीस वर्षों से पहले ऐसी कल्पना भी करना गलत होगा।'

'शहीद, कांच का यह महल भला कब तक टिका रह सकेगा ? अधिक से अधिक पांच वर्ष ?'

'अरे नहीं !'

'नहीं ? इतिहास भूल गये ?'

'इतिहास ? इतिहास से क्या ?'

'इतिहास बहुत-कुछ है, शहीद !..... खैर, छोड़ो यह सब। अपनी सोचो। व्यक्तिगत स्तर पर तू क्या रहा है ! सायमा जैसी भली लड़की को तूने छोड़ दिया।'

'मैंने छोड़ा ? वह तो खुद ही चली गयी।'

'एक ही बात हुई। वह लाचार थी। उस स्थिति को स्वीकार कर लेना किसी भद्र नारी के लिए संभव न था।'

'अरे भइया, इतना तो चलता ही है।'

'अच्छा ! ठीक है, तो चलाये जाओ !'

फिर स्वगतोक्ति-सी करने लगे थे शाहिद भाई साहब, 'ऐसा ही होता है। ध्वंस से अब कोई नहीं बचा सकता इन्हें। नाश के समय बुद्धि ही विपरीत हो जाती है।

इन सबका हिसाब खून से, प्राण से चुकाया पड़ेगा। इतिहास क्षमा नहीं करता। नही ही करता क्षमा। ओह !'

क्या बक रहे थे भइया। कहीं पाप तो नहीं हो गये। मैं मन ही मन यह सोच रहा था। किंतु भइया सतर्क थे। मैंने चिंता ताड़ गये। बोले, 'न, न, मैं पाप नहीं हुआ। अब भी समय है, शहीद लौटो। खुद को समेटो। सभ्हालो। नाश दोष पिता के मृत्यु मढ़कर स्वयं को बचाने की घृण्य कोशिशों से बचो।'

'शाहिद भाई साहब, यही सब बातें पिता से कहें।' मैंने कहा था।

'पिता से !' चोरों को रामा सुनाऊं ? नास्तिक को धर्म-कथा ? सोचता हूं—कितनी सचाई थी शाहिद भाई की बातों में। आत्म-विश्लेषण का अवसर अब पा रहा हूं। आज, बात आलोचना सुखद लग रही है। भइया की बातें मानकर चलता, तो आज एस. तो होता ही। किसी कालेज में अध्यापक कर रहा होता ! चैन का जीवन बिता रहा होता। सुख होता, शांति होती। किंतु पिता... पिता ने मुझे कभी नहीं रोका। किसी भी काम से नहीं रोका। कभी नहीं कहा कि पढ़-लिख। मर्यादा-प्रतिष्ठा की दुहाई कभी नहीं दी। चरित्र की बातें कभी नहीं कहीं। मैं बड़ा रहा। पिता देखते रहे। क्यों ? सायमा को जबरन ले आये बहू उसकी इच्छा के विरुद्ध ? पिता

Digitized by Arvind

से चुकाने का कर्तव्य निवाहा ? आज यदि
 रता। नहीं। वचन की एक घटना। तब
 रही है, वचन की एक घटना। तब
 ग्यारण थी, आज असाधारण, महत्त्वपूर्ण।
 कहीं पाए गए थे हम। गांव के डॉक्टर
 यह सोचेंगे कि तालाब-सोनतालाब-में बड़ी
 थे। मछलियां मिलती थीं। मैंने एक
 में पकड़ी। छोटा गांव। सब जान
 है, शहीद। पिता ने डॉक्टर
 लो। माता ने कहा- 'यह तो बचपना है, रशीद।'
 को बचाए बिना बताये दूसरों की चीज
 चो। बचपना नहीं, चोरी है।' रशीद
 सब को बचाए बिना बताये दूसरों की चीज
 । रोककर पिता ने कहा था- 'नहीं।'

रामाजी ने लड़कपन है। खैर। तुम मछली
या ?' और तब ले जाओ। कितना है ? अ ?'
और उनके सामने ही मुझे बुलाकर
मेरे बड़े बोलें पिता, 'मछली पकड़ने का
तुम्हारे वेते ? अच्छा लगता है मछली
पकड़ना ? ठीक है। हम तुम्हारे लिए एक
खूब बरीद लेंगे । क्यों ? खुश ?'
मेरे मेरे गालों को थपथपा दिया था
मेरा भी था एक तालाब ।
तब तक मेरे लिए मछलियाँ औरतें
चुकी थीं । मैं औरतें फांसता था ।
अड्डेवाजी, गप्पें, घूस, चाप-
शरबें, शराबें और औरतें !

...

यों? चोरी की इस छोटी-सी कोठरी में
वहाँ सारी बातों की यादें कितने तीखेपन
बूझ जाय या रही हैं! चोरी को उन्होंने
कहा! कामुकता-लंपटता को

अहं यौवनं पुत्रं च वक्ष्यामि ! ओह,
पिता । जो अपने पुत्र को अनुशासन न
सिखा सके, वे ही हो गये, प्रशासक-
देश के !

बाहर अंधकार घना होता जा रहा है। मेरे भीतर का अंधकार भी तो घने से घना होता जा रहा है ! कहां था, कहां हूं ! कब मिलेगी मुक्ति ! ओह ! सायमा याद आ रही है। आज वह निर्दोष प्रतीत होती है। इच्छा के विपरीत भी उसने अपनी ओर से सारी चेष्टाएं की थीं मेरे साथ रह पाने की। भूल मेरी है। मैंने उसे कुछ भी नहीं दिया। कुछ भी तो नहीं। अवैध, अनैतिक सुख ही मेरे लिए तब काम्य था। हाय रे ! सायमा के सुख को मैं नहीं पहचान सका।

पिता यदि पिता जैसे होते, मुझे संभारते, पढ़ाते-लिखाते, प्रलोभनों से दूर रखते, रोकते-टोकते । हां, हां, पिता यदि मुझसे प्यार करते होते, तो आज मेरी यह दशा न होती । मेरे विवाह को अपनी सत्ता और अधिकार का शिकार न बनाते, तो सायमा का जीवन यों कोहरा न हो गया होता । जाने कहां है सायमा और पुत्र उसका ! मैंने तो उसे देखा तक नहीं !

पिता न मुझे विदेश भेजते, और न मैं फॉरेन करेंसी स्कैंडल में उलझता ! आज मैं जेल में हूँ । मैं—अबुल शहीद—परम प्रतापी मुख्यमंत्री इलियास का लाड़ला बेटा—मैं, आज इस कारागार में

सीखचों के पीछे हूँ। अकेला। मेरे विरुद्ध अनेक अभियोग हैं। गुंडई, लूट, काला-बाजारी, सत्ता का दुरुपयोग, बेहिजाव पैसा, विदेशी मुद्राओं की धांधली। तमाम। कौन जाने किस पुण्यफल से बलात्कार का अभियोग या विवाहिता स्त्री का भरण-पोषण न करने का अभियोग नहीं लगा। किंतु अभियोग जो भी हैं, सच्चे हैं।

इनमें से एक भी गलत नहीं। झूठ नहीं। मैंने ये सभी अपराध हैं। सभी।

किंतु इन सबके लिए मैं दोषी दोष उनका है, मेरे पिता का। मेरा नहीं, कुसूर उनका ही है, मेरा का। हाँ, मैं कहता हूँ, यह सब, कुसूर पिता ही का.....



पंडित जवाहरलाल नेहरू चुनाव के सिलसिले में उत्तर प्रदेश का दौरा कर श्री लालबहादुर शास्त्री उनके साथ थे। पंडितजी जब मिर्जापुर पहुंचे, तो बहुत बड़ी संख्या में जमा थे, पर लाउडस्पीकर का इंतजाम नहीं था। पंडितजी ने शुरु किया, तो उनकी आवाज़ भीड़ के पिछले हिस्से तक पहुंच नहीं पा रही थी। ही दैर में लोग शोर मचाने लगे। आखिर पंडितजी को अपना भाषण बंद करना तब शास्त्रीजी के पास आकर बैठते हुए उन्होंने कहा, 'यहां के लोग बड़े बेवकूफ होते हैं।'

'बेशक,' शास्त्रीजी ने कहा, 'यहां मेरी ससुराल है।'

मैं शास्त्रीजी को एक आंदोलन के सिलसिले में किसी सभा में ले जाना चाहता कुछ कारणवश उन्होंने उस आंदोलन में वह दिलचस्पी नहीं दिखायी, जो पंडित ने दिखायी थी। जब मैंने उन्हें चलने के लिए बाध्य करना चाहा, तो उन्होंने मारा हुआ कहा, 'अमन साहब, आप लोगों का काम बहुत ऊंचा है। और मैं हूँ कि बहुत कामों में लगा हुआ हूँ।'

श्रीमन्नारायण जब नेपाल के राजदूत नियुक्त हुए, तो उनके सम्मान जलसा हुआ, जिसमें शास्त्रीजी भी उपस्थित थे।

जब शास्त्रीजी बोलने के लिए उठे, तो उन्होंने श्रीमन्नारायण के बारे में हुआ कहा : 'ये देखने में बहुत सीधे-सादे लगते हैं, मगर इतने सीधे-सादे नहीं हैं। भारतीय कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी रह चुके हैं! और इनकी पत्नी इतने ही होशियार हैं। एक राजदूत की पत्नी का होशियार होना जरूरी भी है। इसीलिए कभी भी राजदूत नहीं बन सकता।'



(पृष्ठ ७३ का शेषांश)

वसंत के दिनों में पवन के झोंके से हिलती हुई जिन पलास के वृक्षों की फूली हुई

बाएँ जलती हुई आग की लपटों के समान दिखाई देती हैं, ऐसे पलास के जंगलों से ढकी

पृथ्वी ऐसी लग रही है मानो लाल साड़ी पहने हुए कोई नयी दुलहिन हो ।

भग्न होकर मीठे स्वर में कूकनेवाले नर कोयलों ने और मस्ती से गूँजते हुए भौरों

वे स्त्रियों के लाज और मर्यादा भरे हृदयों को भी थोड़ी देर के लिए अधीर कर दिया है ।

वसंत में पाला तो पड़ता नहीं है, इसलिए आजकल मंजरियों से लदी आम की डालों

को हिलाने वाला और कोयल के संदेशों को चारों ओर फैलाने वाला सुंदर वसंती पवन

हमारे मन पर हावी होकर मन हरता हुआ बह रहा है ।

कामिनियों की मस्तानी हंसी के समान उजले कुंद के फूलों से चमकते हुए मनोहर

पवन जब मोह माया से दूर रहने वाले मुनियों तक का मन हर लेते हैं तब नवयुवकों के

हृदय की तो बात ही क्या !

जिन पर्वतों की चोटियों के ओर-छोर पर सुंदर फूलों के पेड़ खड़े हैं, जिन पर

पक्षियों की कूक और भौरों की गूँज सुनाई दे रही है और जिन पर चट्टानें फैली हुई हैं,

जिन पहाड़ों को देखकर सबको आनंद मिलता है ।

वारे हुए आम के पेड़ों में बसे हुए पवन से, मदमस्त कोकिल की कूक से और भौरों

के मस्त भावनी गुजारों से मनस्विनी स्त्रियों के मन भी डिग जाते हैं ।

लुभावनी सांझें, छिटकी चांदनी, कोयल की कूक, सुगन्धित पवन, मतवाले भौरों

की गूँज और रात में आसव पान, ये सब कामदेव को जगाये रखने वाले रसायन ही हैं ।

अमृत भरे अधरों के समान लाल अशोक से, मतवाले भौरों की गूँज से, दांतों की

खटकी हुई पांतों जैसे उजले कुंद के हारों से, भली-भांति खिले हुए कमल के समान

आम के बौरों की सुगन्ध में बसे हुए मंद-मंद पवन से यह शृंगार की शिक्षा

पाने वाला और काम का मित्र वसंत आप लोगों को सदा प्रसन्न रखे ।

मलय के वायु वाला, कोकिल की कूक से जी लुभाने वाला, सदा सुगन्धित मधु

पाने वाला और चारों ओर भौरों से घिरा हुआ वसंत आपको सुखी और प्रसन्न रखे ।

जिसके आम के झोर ही बाण हैं, टेसू ही धनुष है, भौरों की पांत डोरी है, मलयाचल

वाला पवन ही मतवाला हाथी है, कोयल ही गायक है और शरीर रहते हुए भी

संसार को जीत लिया है वह कामदेव वसंत के साथ आपका कल्याण करे । □

हरिमोहन शर्मा का एक प्रासंगिक लेख

धर्म-निरपेक्ष, सत्यनिष्ठा और भारतीय संस्कृति के प्रतीक श्री मोहम्मद करीम छागला

श्री मुहम्मदअली करीम छागला के निधन से भारत ने एक ऐसा वरिष्ठ राजनेता खो दिया, जिसकी आवाज़ बड़े आदर से सुनी जाती थी। राष्ट्र एक ऐसे विवेकी व्यक्ति के पथ-प्रदर्शन से वंचित हो गया, जिसमें दृढ़ विश्वास की विशेषता थी। आज यह विशेषता हमारे सार्वजनिक जीवन में दुर्लभ होकर रह गयी है।

करीब साठ साल पहले की बात है। मैं उन दिनों 'बंबई क्रॉनिकल' में नौसिखुआ रिपोर्टर था। एक दिन हमेशा की तरह मैं बिना कैबिन का दरवाज़ा खटखटाये अपने संपादक सैयद अब्दुल्लाह ब्रेलवी की कैबिन में चला गया। ब्रेलवी एक आदमी से बातें कर रहे थे, जो देखने में बहुत जवान नहीं लगता था। उस आदमी की दो विशेषताओं की वजह से मेरा ध्यान उसकी ओर आकर्षित-हुआ आंखों पर मोटा चश्मा और सिर पर घने बाल।

शायद दोनों व्यक्तिगत या राजनैतिक बातें कर रहे थे। मैंने ब्रेलवी से कहा, 'मुझे अफ़सोस है, जनाब! मैं बाद में आ जाऊंगा।'

'नहीं, नहीं,' संपादक ने कहा, 'आओ,

और हमारे शहर के एक लब्धव्य व्यक्ति से मिलो।' उन्होंने उस व्यक्ति से मेरा परिचय कराया, और हम दोनों ने हाथ मिलाये। उसने बड़ी गम्भीरता से हाथ मिलाये।

'एक दिन इनका इंटरव्यू लेना,' संपादक महोदय कहने लगे, 'सेक्यूलेरिज़्म पर इनका इंटरव्यू जरूर लेना।'

उस आदमी ने अपने मोटे तंतु मुझे सीधे देखते हुए कहा, 'देखो, सेक्यूलेरिज़्म लिखने की नहीं, चीज़ है।'

मैं कैबिन से बाहर आया, तो वारे में भी आश्चर्य कर रहा था, उसके 'इज़्म' के बारे में भी। अपने में आकर मैंने अपने सहयोगी, एक उप-संपादक बासित अंसारी से पूछा,

हव, ये 'सेक्युजरिज्म' क्या होता है ?
उसने उस पार्टीशन को देखा, जो
द्वारे और संपादक के कैबिनों के बीच
था और फिर पूछा, 'कौन है वहां ?'
अहमद अली करीम छागला ?'

इस मर्मिक प्रसंग के साथ, प्रख्यात
पत्रकार-पत्रकार ख्वाजा अहमद अब्बास

ने 'निकट' में श्री

छागला के प्रति

श्रद्धांजलि

से विवेकपूर्ण की है।

गोपता को श्रद्धांजलि निर्वो-

धो है।

आ को मूर्ति

वह थी, स्व.

क लक्ष्मी को निर-

उस लक्ष्मी की एक

और हम लक्ष्मी। एक अन्य

छागला पत्रकार

का. सुंदर

लेना, छागला ने 'टाइम्स

'सेक्युलिटी' में

ना।' छागला ने 'संपा-

मोटे तौर पर

'देखो' छागला की

छागला और निर्भीकता के दो प्रेरक

अविस्मरणीय प्रसंग प्रस्तुत किये हैं।

वही साहजिक थी श्री छागला की

एक बार एक विदेशी पत्रकार

को मिलने के लिए आया। मैं भी वहां

था। इमरजेंसी के बारे में पूछे

गये प्रश्नों के उत्तर उन्होंने बड़ी निर्भीकता
के साथ दिये। बीच में पत्रकार ने पूछा-
'क्या मैं आपके उत्तरों को प्रकाशित कर
सकता हूं ?' वह परेशान दिखायी दे
रहा था। लेकिन, श्री छागला ने अपना
पाइप मुलगाते हुए कहा, 'अगर तुम
चाहो, तो मेरी आवाज भी टेप कर सकते
हो।' पत्रकार ने

अपनी जैकेट में
छिपा एक छोटा-
सा टेप-रेकार्डर
निकाल लिया।
उसने अपने प्रश्न
दोहराये, और
श्री छागला ने
दूने जोश के साथ
उनके उत्तर दिये।

'इमरजेंसी के
दिनों में मुझे श्री
छागला के निकट
सम्पर्क में आने का
सौभाग्य प्राप्त
हुआ था। वे
बहुत कमजोर हो

गये थे, और गठिया ने उन्हें लगभग अपंग
ही कर दिया था। फिर भी वे इमरजेंसी
के विरोध में छिप-छिपकर निकलने वाले
पत्रों को इंटरव्यू और 'मीसा' के अंतर्गत
गिरफ्तार लोगों को निःशुल्क कानूनी
सलाह देते रहते थे।

'एक शाम जब मैं उनके पास बैठा



भारत का एक महान मस्तिष्क

था, तो फोन की घंटी बजी। उन्होंने मुझसे फोन सुनने को कहा। उधर से बंबई के एक वकील बोल रहे थे, 'श्री छागला किसी भी क्षण गिरफ्तार हो सकते हैं।' सुनकर, श्री छागला ने कहा, 'उनसे कहिये, चिंता न करें। मैं श्रीमती इंदिरा गांधी की मेजबानी स्वीकार करने को हमेशा तैयार हूँ।' जब उनके पिता पं. नेहरू ने मुझे अपने मंत्रिमंडल का सदस्य बनाने के लिए दिल्ली बुलाया था, तो रहने की जगह न मिलने के कारण, मैं कुछ समय तक पं. नेहरू का मेहमान रहा था। इस बार की मेरी मेजबानी दूसरे किस्म की होगी।

सांप्रदायिकता के घोर शत्रु

श्री छागला सांप्रदायिकता के घोर शत्रु थे। यही कारण था कि कट्टर मुस्लिम उनसे नाराज रहते थे। वे मुसलमानों समेत सब भारतीयों के लिए एक-से नागरिक कानून के पक्ष में थे। उनका कहना था, 'मूलतः इस्लाम एक प्रगतिशील धर्म है। इसीलिए, उसमें मां-बाप की संपत्ति में लड़कियों को हिस्सा देने की व्यवस्था है। आज भी, प्रगतिशील बने रहने के लिए, इस्लाम को बहुपत्नीवाद और तीन बार 'तलाक़, तलाक़-तलाक़' कहकर तलाक़ देने की प्रथा का परित्याग कर देना चाहिये। भारत के जो मुसलमान एक समान नागरिक कानून का पालन करने में असमर्थता व्यक्त करें, उन्हें भारत छोड़कर अपनी पसंद के

किसी देश में जाने को कहना चाहिये। मुस्लिम होते हुए भी वे मीरा के प्रेमी थे। वे अपने को हिंदू ही मानते थे और 'हम सब हिंदू हैं' अपने लेख में उन्होंने लिखा था:

'मैं हिंदू हूँ, क्योंकि अपनी परंपरा का पता लगाते-लगाते मुझे हुआ कि मेरे पूर्वज आर्य थे और वे दर्शन और संस्कृति का प्रेमी हैं। वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासत में दे रहे हैं।... शब्द के ठीक-ठीक भाव में मैं रहने वाले हम सब लोग हिंदू हैं।

—भवन्स जनते

जयंती—अगस्त, सितंबर १९६८—

अपनी मृत्यु से पूर्व, उन्होंने अपनी वसीयत में लिख दिया था कि अंतिम संस्कार दाह-संस्कार का जाये। उनकी इच्छानुसार, इसी से उनका अंतिम संस्कार किया गया।

वे एक खरे राष्ट्रवादी थे। शिक्षा-मन्त्री थे, तो उन्होंने मुस्लिम कानून में संशोधन कर निश्चय किया। एक उच्च-स्तरीय निधि-मंडल, जिसमें कई नामी के अलावा, बैरिस्टर नूद्दीन उनसे इन प्रस्तावित संशोधनों में मिलने गया। बातचीत के बाद ही श्री छागला ने भांप लिया कि निधि-मंडल के सदस्य मजबूर करने के लिए प्रस्तावित संशोधन विरोध कर रहे थे, और कानून

यह तक उन्हें पता नहीं है। उन्होंने सदस्यों से सीधे ही पूछ लिया, 'क्या मैंने यह कानून पढ़ा है?' सभी सदस्यों ने कहा, 'नहीं।' फिर बातचीत से कोई फायदा नहीं हुआ। और यह कहकर वे उठ खड़े और उस दिन से धर्माधि मुस्लिम उनके घर बन गये। मगर उन्हें ऐसे लोगों की परवाह नहीं थी, उन्हें परवाह थी, कि आदर्शों की, सिद्धांतों की।

निष्ठा-भरा जीवन

३० सितंबर, १९०० में एक संपन्न किसान परिवार में जन्मे मुहम्मदअली छानेला की शिक्षा बंबई में हुई। वे आक्सफोर्ड से वकालत की शिक्षा भारत लौटे, तो केवल २२ वर्ष के थे। वयु में ही उन्हें वकील-समुदाय में प्रतिष्ठित कर लिया गया था।

तब तक उन्होंने मुहम्मदअली जिन्ना का काम लिया, पर पाकिस्तान के लिए उनसे अलग हो गये। वे एक वकील थे, और कुछ समय तक पढ़ाते भी रहे। १९३३ से १९४१ तक वे बंबई उच्च न्यायालय के सचिव भी रहे।

१९४७ में उन्होंने संयुक्त राष्ट्रसंघ में भेदभाव की नीति का जोरदार विरोध किया, जो दक्षिण अफ्रीका में चले भारतीयों के साथ दक्षिण अफ्रीका की सरकार बरतती आ रही थी। दो वर्ष देश स्वाधीन हुआ, और वयं श्री छानेला की प्रगति-यात्रा

आरंभ हुई। वे बंबई उच्च न्यायालय के पहले मुख्य न्यायाधीश थे, और १९४७ से १९५८ तक इस पद पर आसीन रहे। १९५८ में एक जांच-आयोग के उनके एक निर्णय के फलस्वरूप भारत के तत्कालीन वित्त मंत्री श्री टी. टी. कृष्ण-माचारी को पद-त्याग देने पर विवश होना पड़ा था।

इसके पश्चात्, उन्होंने अपनी योग्यता, निष्पक्षता और मानवता के आधार पर अनेक उच्च पदों को सुशोभित किया। ब्रिटेन और अमरीका में भारत के राज-दूत रहने के बाद वे विदेश-मंत्री और शिक्षा-मंत्री रहे। जब वे विदेश-मंत्री के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, तो पाकिस्तान के विदेश-मंत्री श्री भुट्टो ने भारतीयों को बहुत-सी गालियां दी थीं। इस पर श्री छानेला ने शालीनता-पूर्वक उत्तर दिया था कि भारतीयों को गालियां देकर श्री भुट्टो स्वयं अपने को गाली दे रहे हैं, क्योंकि उनकी मां एक हिंदू महिला थीं। वे पं. नेहरू, श्री शास्त्री और श्रीमती गांधी के मंत्रिमंडलों के सदस्य रहे।

इमरजेंसी का विरोध

जब देश में इमरजेंसी लागू की गयी, तो उन्होंने कहा था—'मैंने अपने को कई बार नोंचकर देखा कि जो कुछ मैं देख रहा हूं, वह कहीं सपना तो नहीं है।'

(शेषांश पृष्ठ १५५ पर)

प्रभुदास पटवारी का एक सामयिक लेख



आज हमें फिर गांधी की ज़रूरत है

भारत की मौजूदा हालत पर ज़रा गौर करें। भारत माता का चेहरा म्लान है। चारों ओर चारित्र्य, सही मूल्यों, प्रजातंत्र और राष्ट्रप्रेम का ह्रास देखने में आता है। आज संसार के प्रत्येक राष्ट्र में गांधीजी के प्रति आदर बढ़ा है। हिंसा, बर्बादी, विकट समस्याएं, परमाणु विनाश का खतरा और आर्थिक संकटों से त्रस्त कई देशों के नेताओं को अब अहसास हो गया है कि इन तमाम प्रश्नों का समाधान गांधीजी के सत्य और अहिंसा के आदर्शों में है। साम्यवादी चिंतक भी शांति व प्रगति के लिए उनके विचारों से मार्गदर्शन पाने के इच्छुक हैं। पाश्चात्य प्रजा वर्तमान जीवन-संघर्ष से उकता गयी है। पश्चिम के समझदार लोग गांधीजी के सिद्धांतों को अपनाना चाह रहे हैं। जगत के किसी भी महापुरुष को आज तक इतना बड़ा सम्मान नहीं मिला। महान वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने कहा था— 'उनकी सफलता किसी युक्ति-प्रयुक्ति या तकनीकी तरकीबों पर, उनके प्रभुत्व पर निर्भर न होकर, अन्य के दिलों में श्रद्धा उत्पन्न करने की उनकी अथाह शक्ति के ऊपर

निर्भर है। उन्होंने सदैव बल-प्रयोग भर्त्सना की। गांधीजी सुशील, अटल निश्चय शक्ति और दृढ़ता के थे, जिन्होंने अपनी सारी शक्ति केवल लोगों की उन्नति के लिए ही समर्पित दी। स्वयं एक अत्यंत सामान्य होते हुए भी उन्होंने यूरोपीय पाश्चात्य का न केवल डटकर प्रतिकार किया, उसमें सदा अगुआ रहे। इस पर ऐसे किसी व्यक्ति ने भी कभी ध्यान नहीं दिया था, यह बात आनेवाली मानने को भी शायद तैयार न होंगे।

हमारे देश में अनेक नगर, संगठनों, विद्यालयों, अस्पतालों में गांधीजी का नाम जुड़ा हुआ है। वे गांधीजी के समर्थकों के प्रति जन-मानस में असली आस्था पैदा गयी है। भिन्न-भिन्न मुखांशों से हुए लोग अपने आपको गांधीवादी कहते हैं।

इनमें हमारे देश के छुटभैये भी शामिल हैं। इनमें से कुछ जिन्होंने बापू के सान्निध्य में किया है। वे लोग उद्घाटन-कार्यक्रम और अन्य ऐसे अवसरों पर अपनी

खदान में गांधीजी के गुणगान करना नहीं
सूतते, हालांकि अपने दैनिक जीवन में
इन्हें गांधीजी का अनुसरण करने की न
तो फुरसत होती है, न इच्छा।

एक महिला किसी बड़े स्टोर में साड़ी
खरीदने गयी। दुकानदार ने बाजार-मूल्य
से नौगुने दाम में साड़ी बेची। महिला
मिलने लगी, लेकिन अपना पर्स स्टोर में
गुप्त करके रख दिया। दुकानदार ने उसके घर
का पता लगाकर पर्स उसके सुपुर्द कर
दिया। पर्स में हजारों रुपयों के नोट थे।

महिला ने आभार प्रदर्शित करते हुए
कहा, 'साड़ी की कीमत में तो चौगुना
काटने में आपने कसर नहीं रखी,

इसलिए उसमें आपके लिए ज्यादा फर्क
नहीं था, जब कि इस पर्स में
हजारों रुपये होने के बावजूद आप लौटाने

में आए हैं, यह देखकर मैं हैरान हूँ।'
दुकानदार ने उत्तर देते हुए कहा, 'साड़ी
की कीमत कम या ज्यादा लेना तो हमारे

लिए निर्जी ईमानदारी का मामला है।'
महिला ने ऐसी दोहरी नीति के कई
उदाहरण देखने में आते हैं। चाहे राज-

नीति हों, वकील हों या व्यापारी, उनके
व्यक्तिगत नैतिक और सामाजिक माप-

दण्ड उनके निजी मापदंड से भिन्न होते
हैं। राजनैतिक क्षेत्र में ऐसी दोमुंही

नीति का कार्यकर्ता का निजी व सार्वजनिक
मापदंड, निष्कलंक और एक-सा हो।



गांधीजी सदा चाहते थे कि प्रत्येक
कार्यकर्ता का जीवन संयत और सादगीमय
हो। हमारे ज्यादातर नेतागण और मंत्री
इससे विपरीत आचरण करते हैं, जिसके
लिए हमारी गरीब प्रजा अपना खून-
पसीना एक करके करों का बोझ सहन
करती रहती है। मंत्रियों के लिए सुविधाएं
जुटाने के लिए भारी खर्च किया जाता
है। उनके बंगलों की सजावट, बिजली,
मोटर, प्रवास आदि के खर्च देखकर हैरत
होती है। अपनी कुर्सी को बचाने के लिए
किसी का कुछ भी अनिष्ट करने से वे
बाज नहीं आते। गांधीजी ने नेताओं के
लिए आचार-संहिता बनायी थी, जिसकी

आज सरेआम धज्जियां उड़ायी जा रही हैं।

दूसरा वर्ग है कई बुद्धिजीवियों और सिद्धहस्त लेखकों का। यह वर्ग अपनी तेज कलम द्वारा गांधीजी के जीवन और चिंतन से संबंधित अनेक शोधपूर्ण विवेचनात्मक ग्रंथ व लेख प्रकाशित करता रहता है। सम्मेलनों, गोष्ठियों, भाषण, प्रवास आदि के नाम पर हजारों रुपये बर्बाद होते रहते हैं। इनमें से किसी को झोंपड़पट्टियों में रहने वाले भूखे-नंगे और बीमार दरिद्र-नारायण की व्यथा सुनने की फुरसत नहीं होती। जनता के साथ उनका कोई सरोकार नहीं।

तीसरे गांधी-समर्थक वर्ग में वे कार्यकर्त्ता शामिल हैं जो गांधीजी के नाम पर कुछ संस्थाएं चलाते हैं। हरिजन सेवा, खादी, नयी तालीम और ग्रामोद्धार की रट लगाये बैठे हैं। इनमें कुछ लोगों के दुराचरण की बातें सुनकर लोग हक्के-बक्के रह जाते हैं। येनकेन प्रकारेण संगठन पर कब्जा जमाने और सिद्धांतनिष्ठ लोगों को युक्तिपूर्वक हटाने की कला में ऐसे लोग माहिर होते हैं। उनमें से कई लोग चरित्रहीन हैं। बंद कमरे में उनके द्वारा हो रहे कुकर्मों को कोई देखने वाला नहीं, ऐसे भ्रम का ढकोसला उन्होंने अपने चारों तरफ बना रखा होता है। समाज के नैतिक अधःपतन के लिए यदि सबसे अधिक जिम्मेदार हैं तो ऐसे ही नेता हैं। ज्यादातर कार्यकर्त्ता भले होते हुए भी ऐसे चंद लोगों की बजह से बदनाम

हो जाते हैं।

गांधीजी अभी मौजूद हैं

इस अंधेरी राह पर निःस्वार्थ, मेहनत लोग भी हैं जो सच्ची लगन से समाज के सुख-दुःख में सम्मिलित रहते हैं। वे खुद को धन या प्रतिष्ठा के बंधनों से अलिप्त रख सके हैं। लोगों की मान्यता है कि उनमें गांधी जिंदा हैं। ये व्यक्ति अपनी सूझबूझ के अनुसार संस्थाओं का मुकाबला करते रहते हैं। इन सेवकों के संचित पुण्य-प्रभाव से लोगों के हृदय में आशा की ज्योति टिमटिमा रही है। ये लोग ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों की झोंपड़ियों में जाते हैं। उनकी समस्याएं सुनते हैं और उन्हें हर संभव सहायता करते हैं। भूदान, खादी, खादी ग्रामोद्योग और हरिजन-सेवा से संबंधित कई कार्यकर्त्ता अपने-अपने क्षेत्रों में निरंतर कार्यरत रहते हैं। प्रजा के एक विशाल तबके की भावना है कि इन कार्यकर्त्ताओं के तप का फल ही देश की डूबती नैया का खबाला है।

जनसेवा का रास्ता संसद या विधानसभा से ही प्राप्त होता है, ऐसी नफहमी से ग्रस्त लोगों का जमघट आज देखने में आता है, पहले कभी ऐसा देखा गया। संयोगवश निर्वाचित संसद निधन हो जाने पर, उनके उत्तराधिकार के रूप में कौन-से उमीदवार का भारी हो सकता है—उसके दावेदारों की भूमि में चिता की आग ठंडी होने से

ही अपनी खिचड़ी पकाने लगते हैं। संसद और विधान-सभा में सदस्य निर्वाचित होने पर ये लोग मंत्री-पद पाने की ताकत में रहते हैं। मंत्री बन जाने पर उन्हें राज-रिज अपनी कुर्सी बचाने की फिक्र होती है। उनके इर्द-गिर्द चाटुकारों का घेराव जुट जाती है। यथाविधि उनका सम्मान करने के उन्हें भोग चढ़ाया जाता है। इसी में से उत्पन्न होती है पक्षांतर की प्रवृत्ति और आचाराम-गयाराम का जमाना। वर्तमान भारत की यह कटु, निरुत्सर्ग कहानी है। अन्य व्यवसायों में अपना नीतिशास्त्र होता है। राज-नीति के लिए भी ऐसा नीतिशास्त्र होना चाहिये। पिछले दशक से वह अलोप हो रहा है। राजनीति में नये युग का उदय हुआ है। इसमें साधन चाहे कैसा भी हो, उसे बयोग्य नहीं समझा जाता, बशर्ते कि राजनैतिक सत्ता हथियाने में सफल हो। वातावरण ही ऐसा प्रदूषित हो गया है कि उसमें सिद्धांत या सार्व-जनिक जीवन के नीतिशास्त्र की दुहाई देने को 'मूर्ख' माना जाता है। सत्ता के प्रतिनिधि जब भी चाहें, अपना सीधा करने के लिए दल बदलते हैं। दरअसल उनमें से कुछ तो इतने दूर और कुख्यात हो गये हैं कि वे कब दल का चोला पहन लेते हैं, उसका रंग रखना भी मुश्किल-सा हो जाता है। हमारे देश की राजनीति पर लंबे से पूँजीपति हावी रहते आये हैं।

उनके द्वारा दिया गया काला धन राजनीति की आधार-शिला बन जाता है।

कई उम्मीदवार चुनाव में लाखों का धन पानी की तरह बहाते हैं। लोगों में आम धारणा बनी हुई है कि वह राशि मुख्यतः कालेधन की ही होती है। इस तरह से अनेक नेता व मंत्रीगण काले-बाज़ार को अपना समर्थन देते हैं। कई व्यापारियों की फरियाद है कि चंदे के लिए उन पर भारी दबाव डाला जा रहा है। इसके फलस्वरूप सामान्य प्रजाजन के लिए बेहद महंगाई की चक्की में अपने आपको पिसते रहने के सिवाय कोई चारा भी नहीं। कालाबाज़ार के बूते पर संसद या विधानसभा में निर्वाचित ऐसे सदस्यों से चारित्र्य, निष्ठा, ईमान-दारी या सदाचार की कैसे उम्मीद रखी जा सकती है? समाज में निष्ठावान, ईमान-दार, अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ और कर्तव्य-निष्ठ लोगों की कमी नहीं, पर भ्रष्टाचार में लिप्त हुए बिना चुनाव लड़ना उनके वश का रोग नहीं।

विश्वविद्यालयों में भी ऐसी अवांछनीय हरकतें होती रहती हैं। क्षेत्र चाहे शिक्षा का हो, सहकारी समितियों का हो या समाजसेवा का, राजनीति का ग्रहण सर्वत्र लग गया है। परीक्षाएं, नियुक्तियां, कालेज में दाखिला वा गुणांक बांटने में भी भ्रष्टाचार व्याप्त है।

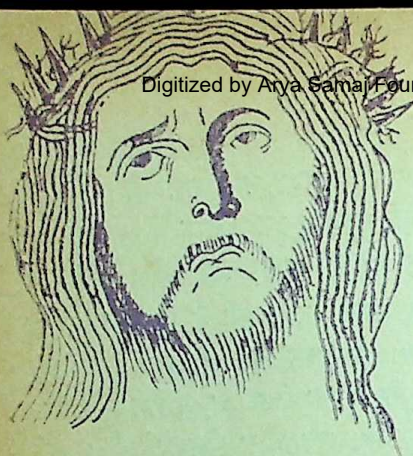
अनगिनत शिक्षा आयोगों, अनेक परि-
(शेषांश पृष्ठ १४७ पर)

श्रीअरविन्द की कविता



भगवान का पुत्र :

कृषारोही मानव-पुत्र



इस पीड़ित जगत का परिव्राण करने आये जो महान,
काल की छाया औ' प्रकृति के नियम से जो इसे मुक्त करने आये,
उन्हें झेलना ही पड़ा है जूआ व्यथा औ' विवाद का ।

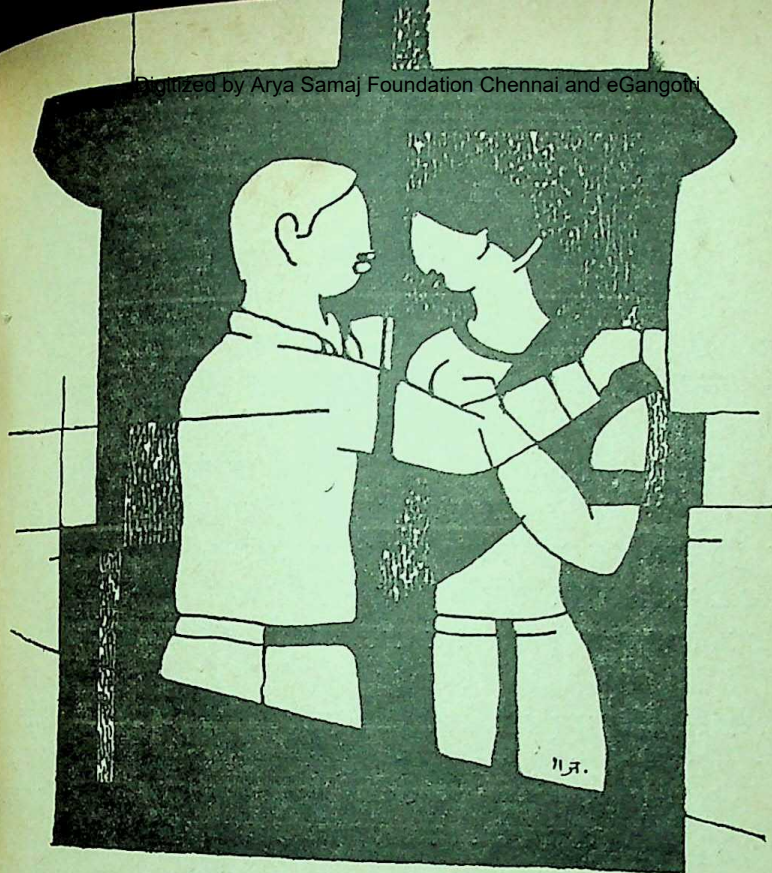
वे बनते हैं ग्रास उसी चक्र के, जिसे वे तोड़ने आते हैं :
अपने कंधों पर उन्हें ढोना होता है भार मानव के भाग्य का ।

भगवान के पुत्र ने जन्म लेकर मानव-पुत्र के रूप में पिया है काल-कूट का कड़वा प्यास
सनातन पुरुष कष्ट झेलता है मानव के रूप में;
अपने खून से हस्ताक्षर किये हैं उसने मुक्ति के प्रमाण-पत्र पर :
मुक्त किये हैं द्वार उसने अपनी मरणातीत शान्ति के ।

प्राणी के दावे का भुगतान किया है देवता ने :
स्रष्टा ने मरण औ' कष्ट के विधान को झेला है :
प्रतिशोध की हिंसा ने प्रताड़ित किया है सदेह भगवान को ।

उस भगवद्-पुत्र के प्यार ने मर्त्यों के लिए स्वर्ग का पन्थ किया है निर्माण :
यहां के मर्त्य अज्ञान के अंधियारे हिसाब-किताब को बराबर करने के लिए
उसने किया है अपने जीवन औ' प्रकाश का दान ।





हिंदी कहानी

□ डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा

दूब के तंतु

रिक्का रुकते ही, सीमा-गणेश मुस्कराते हुए मेरी तरफ लपके तो उनको मैं तुरंत पहचान गया—वे, मेरी होने वाली लकी आभा के बहन-बहनोई थे। दरअसल एक साल पहले उन्होंने ही आभा से

मेरा रिश्ता तय करवाया था। जब मैं एक इंटरव्यू के सिलसिले में बंबई जाने का प्रोग्राम बना रहा था तो आभा की माताजी ने मुझसे सीमा की लड़की सुमिता को, साथ लिवा लाने को कहा था।

दोनों जस ही मरे कराव आय तो मैं उनके पांवों की तरफ झुका। उन्होंने मुझे बीच में ही रोकते हुए, स्नेह से मेरे सिर पर हाथ फिराया तो मेरा रोम-रोम पुलकित हो गया। मैं रिक्षेवाले को पैसे चुकाकर, सूटकेस उठाते हुए, उनकी तरफ घूम ही रहा था कि तभी सुनायी दिया, 'नमस्ते, मौसाजी।'।

मौसाजी अर्थात् पिता समान रिश्ता—मैं एकदम चौंक पड़ा, क्योंकि मुस्कराकर नमस्ते करने वाली लड़की, आभा से सुंदरता में ही नहीं, उम्र में भी बड़ी दिखायी दे रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें, तपे सोने-सा रंग, उलझनों में उलझे घुंघराले बाल और गालों में पड़ते गड्ढे तथा भरे-कसे अंग-प्रत्यंग आदि देखता ही रह गया मैं। तत्क्षण ही सोचा भी—मेरी ऐसी इतनी बड़ी बेटी! शरम से आंखें झुक गयीं मेरी और आंखों के सामने यकायक ही आ गये उसके गोरे-नन्हें पांव—आलता की बारीक लकीर में बंधे-थसे-थरथराते!

'पहचाना नहीं आपने।' सीमा ने हंसते हुए कहा, 'ये ही तो सुमिता है, जिसको लिवा लाने के लिए माताजी ने आपको, बहुत लंबे-लंबे खत तो लिखती रहती ये सुमि आपको—हूँ।'।

'ओह हो!' मैंने इस बार जबरदस्ती हंसते हुए कहा, 'तो आप ही हैं सुमिजी—मेरा मतलब सुमिताजी।'।

सुमिता उत्तर देने के बजाय हंस दी तो मुझे लगा, जैसे मेरे आसपास कलियां

ही कलियां चटक रही हैं।

हम सब बैठक में आ गये। सीमा भी चली गयी। सुमिता मुझे एकटक देखती जा रही थी। गणेशजी सोंफेपर पड़े हुए बोले, 'बईठ भाया! ओं, रस्ता कुच तकलीफ तो नी हुई न?'।

सफ़र की परेशानियों से सिर अब चकरा रहा था, तो भी मैंने बैठते हुए कहा, 'जी कोई खास नहीं।' और उस निगाह से सुमिता को देखने लगा, जो वे सुमिता को इंगित कर बोले, 'जुमि जा बेटी, पाणी-पात तो ल्या, थारो मी कित्ती घणी दूर सू आयो छे। ओर तो यांको बक्सो वी मायने ले जा के...'।

'जी, पिताजी।' स्वप्न-भंग हुआ चौंकते हुए, सुमिता ने कहा और सूटकेस उठाकर, झटके से भीतर चली गयी। कुछ देर बाद ही वह 'ट्रे' में पानी के दो निशान लेकर आयी और सेन्टर टेबल पर रख दी नीची निगाहें किये, शरमाती हुई बोली, 'चुपचाप खड़ी हो गयी। तभी गणेशजी हंसकर कहा, 'देख्या भाया ज्या आन की छोरयां का खटका-लटका। चिट्ठी आयी जगान सू तो ज्या सुमि उचक रही थी, के मौसाजी सू यूँ कहे, 'ऊं कहेगी, घणीसारी बातां कहेगी, साथ नानी के वां जाऊंगी और अपनी की भेली बणी ऊबी छे। रे ओ बा करे न अपणा मौसा सू यूँ—ऊं बा'।

मैं पुनः जबरदस्ती हँसा तो बोले, 'भाया समर, ई सुमि ने तो

सीमा पीत
एकटक
फिर पर
आं, रसा
न ?'
मिर अ
ठठे हुए
और उस
ने लगा,
बोले, 'मु
यहाँ मेरे पास और कीजिये न ये
वो और बातें—हूँ।'

मुमिता मेरे पास सोफे पर बैठ गयी
तो पूछा मैंने—'क्या कर रही हैं आजकल
आ? हूँ।'

मुमिता कुछ बोलती, इसके पूर्व ही
लेखनी ने कहा—'कालिज में पढ़े छे और
रणी के—ऊँ।'

मैंने मुमिता से मुखातिब होकर कहा—
'आ पढ़ रही हैं कालेज में आप ?'

'जी, फिलॉसफी में एम. ए. कर
रही हूँ।'

मेरा हाथ अनायास ही शाबाशी की
शुभा में उसकी पीठ पर चला गया, लेकिन
उसकी कुआरी-छुअन का ऐसा झटका
कि मुंह से फूट पड़ा, 'वेरी फाँइन।'
मिस इज ऑलसो माइ सव्जेक्ट ऑफ....

...! वट भई मुमिताजी, आपको तो
सोम-साइंस लेना था न, ताकि ससुराल
में कामकाज में....।'

'गाल्यां नी सुणणो पड़े-आं।' बात
हंसते हुए कहा गणेशजी ने, 'क्यूँकि
तो साल ब्याव बीतो करणो छे थारो—

ऊँ। थाया समर, कोई चोखो सो छोरो
थारी नजर में हो तो बता नी, सो ई को
कन्यादाण करके गंगा नहाल्युं में बी।
दान-दहेज की चिता मत करणा, पण
छोरो थारा जयां को ढंग-ढांग को और
कमाऊ होणो चाहिये—आं।'

कथन के पूरे होते-होते मुमिता झटके
से उठकर, भीतर चली गयी।

०००

रात का अधिकांश हिस्सा मुमिता के
बारे में सोचते-सोचते ही बीता मेरा।
उसकी हर बात में मुझे एक अजीब प्रकार
का खिचाव-सा महसूस हो रहा था।
वैसे मैं लाख प्रयत्न कर रहा था कि
ऐसा-वैसा न सोचूँ—ये बुरा है, पाप है,
किंतु मेरा मन किसी भी प्रकार से उसके
चिंतन से विलग नहीं हो पा रहा था।

०००

सुबह मुमिता चाय लेकर आयी और
तिपाई पर रखकर जाने लगी तो मैंने
उसको घूरकर देखा। वह अचकचाकर
रुकते हुए, रहस्यमय मुस्कान बिखेरकर
जाने लगी तो मैं अपने आपको रोक नहीं
सका और तभी इशारे से उसको पास
बुलाया और हाथ पकड़कर अपने पास
बैठाते हुए बोला, 'घर में सिवा आपके
और कोई बात करने वाला भी तो नहीं
है मुमिताजी, कुछ देर बैठिये ना।'

मुमिता बैठ गयी तो भी मैं उसका
हाथ पूर्ववत् पकड़े रहा। उसके स्पर्श में
एक ऐसा चुंबक था कि हाथ अलग करने

को मन ही नहीं हो रहा था। वैसे सुमिता पर इसकी कोई खास प्रतिक्रिया नहीं हुई, लेकिन मैं कुछ ही देर में बुरी तरह 'डिस्टर्ब' हो गया।

चाय में से भाप का उठना बंद हो गया था, अतः सुमिता दुबारा चाय बनाकर लाने को जाने लगी तो मैंने उसको उठने नहीं दिया। उसका संसर्ग मुझे आनंदाति-रेक में सराबोर कर रहा था। उसने उठने की पुनः कोशिश की तो मैंने इस बार उसके कंधे पर हाथ रख दिया। वह पुनः रहस्य से मुस्करायी तो मैं बोला, 'क्या मुझसे डर लगता है आपको, सुमिताजी, जो आप बारंबार भागने की कोशिश कर रही हैं। भई कहा न, आपके सिवा बात करने को कोई और यहां है भी तो नहीं।'।

सुमिता शरमाती हुई बोली—'मैं माताजी को भेज देती हूं, नहीं तो आप पिताजी के पास दुकान पर चले जाइये और।'।

'भाई ऐसा तो जुल्म मत कीजिये सुमिताजी, नहीं तो।' मैंने उसकी बात काटते हुए, भावुकता से कहा और उसके कंधे पर अपने हाथ का दबाव बढ़ाते हुए, उसको अपनी ओर खींचने लगा। उसने कोई विरोध नहीं किया, अपितु हंसती हुई बोली, 'माताजी किसी से भी इतनी बात नहीं करने देती मुझे—हां। अब तक तो घर सिर पर....।'।

'फिर मेरे पास कैसे—क्यों 'फ्री' छोड़ रखा है आपको।' मैंने हंसते हुए ही कहा,

'इरादे तो नेक हैं न आपकी माताजी के।'

'अरे आपकी बात और है, जनाब सुमिता ने चट से कहा, 'हमारा रिश्ता तो बाप-बेटी का रिश्ता है न।'।

सुमिता के इस कथन से मैं बुरी तरह कटकर रह गया।

सुमिता धीरे से उठी। मेरा हाथ उसकी पीठ और पुष्ट नितंबों पर से फिसलकर सोफे पर आ गिरा—ऐसे जैसे मेरी शक्ति समाप्त हो गयी हो।

मेरी समूची सुबह और दोपहरी हो गयी। खाने में भी रुचि नहीं हुई। बस सोचता ही रहा कि दुनिया के रिश्तों के तार कैसे किस तरह फेंके कि ये आदमी को हर क्षण बांधने को लग रहे हैं। आखिर मेरे लिए सुमिता का आभा में क्या अंतर है। ये—इतना ही केवल रिश्ताई-तंतुओं के कारण न, जिनका वास्तविक स्तर पर....।

'मौसाजी चलिये, आपको शहर जाने उड़ लाऊं।' सहसा ही सुमिता ने आकर 'पिताजी को तो 'बिजनेस' से नहीं और माताजी को भजन आदि से....।'।

इस वक्त सुमिता का मुझे कहना बहुत ही बुरा लगा, लेकिन प्रस्ताव से मन प्रसन्न हो उसकी निकटता किसी भी रूप में बहुत खुशी दे रही थी। वैसे ही मैं, 'आपकी माताजी नाराज नहीं कि आप मेरे साथ बाहर घूमने....'

माताजी के 'क्यों, क्या आप पराये आदमी हैं।' सुमिता गंभीरता से बात काटकर बोली, 'हमारा रिश्ता है ही ऐसा मौसाजी, कि माताजी तो क्या किसी को भी बुरा नहीं मान सकती। वैसे भी माताजी को तो आप पर बहुत विश्वास है। वो कहती हैं कि उन्होंने बहुत पहले ही आपके बारे में सब कुछ जान लिया था—लड़का हो या बच्चा, मेरी माताजी तो ऐसा।'

'इतनी जासूसी क्यों कर रही थीं आपकी माताजी—अपनी छोटी बहिन आभा के लिए नहीं हो रही?'

'नहीं।' सुमिता ने जवाब दिया। 'तो।' 'क्यों?' 'क्योंकि मैं किसी अच्छे लड़के की तलाश कर रही हूँ।' सुमिता ने कहा।

'इतना क्यों?' 'समझा नहीं, सुमिता।' 'समझते हुए कारण बताइए।'

'पर....।' 'किसी समझकर फायदा भी क्या होगा!'

'को शहर में उदास स्वर में कहा।' 'फिर ये सब कैसे-क्यों हो गया! मैंने स' से सुनकर कहा, 'तुम्हारी माताजी ने भजन-मंत्रों की वज्राय आभा को क्यों....'

'माताजी को अपनी माताजी की जिद मुझे भी करने दी थी न।' सुमिता ने तिकितता से बात काटकर कहा और दीवार को देखा।

रूप में...

वैते ही... ०००... सड़ी-सपाट सड़क, रंग-बिरंगे हुजूम की दिलकश वातावरण में मेरे साथ होती हुई सुमिता की गंभीर चुप्पी मुझे

चुभ रही थी। कई बार चलने की व्यस्तता-वश हमारे पहलू टकराये भी, हाथ अटके भी और निगाहें भी मिलीं, लेकिन उसकी जवान का ताला भारी होता ही चला गया। मैं ही बोला, 'मेरी बात का बुरा मान गयीं सुमिता, पर मैंने कुछ गलत तो नहीं कहा।'

सुमिता ने उदासी से कहा, 'अब इन बातों से फायदा.... जो हो चुका, सो हो चुका।'

'हां, जो हो चुका, सो हो चुका।' मैंने सांस खींचकर कहा, 'तुमको क्या अंतर पड़ता है, लेकिन मैं तो....तो तुम-सी नायाब लड़की खो बैठा न और....।'

सुमिता मुझे सहानुभूतिपूर्ण निगाहों से देखने लगी।

हम नेहरू-गार्डन में पहुंचे तो काफ़ी अंधेरा हो चुका था, लेकिन काफ़ी तादाद में टंगी ट्यूबों की जगमगाहटवश सब कुछ साफ दिखायी दे रहा था। हरे-भरे पेड़ों और मखमली घास ने मेरे मन को बरगला दिया और न जाने कौन-सी शक्ति से मैंने सुमिता का हाथ कसकर पकड़ लिया। उसने कोई विरोध नहीं किया तो मेरा साहस और बढ़ गया। उसके कोमल हाथ को सहलाते हुए, मैं चोर-निगाहों से गार्डन में सूना स्थान खोजने लगा।

एक कम रोशनी-भरे कोने की बेंच पर बैठते-बैठते न जाने कैसे मेरा दूसरा हाथ उसकी पीठ सहलाते-सहलाते कमर पर पहुंच गया। सुमिता ने ज़रा सिकुड़ते

हुए, गदगदायी वाणी में कहा, 'ये आभा मौसी पर चलाये जानेवाले अस्त्र-शस्त्रों की मुझ पर क्यों आजमाइश की जा रही है, मौसाजी।'

मैं बुरी तरह झेंप गया, लेकिन बोला भी, 'सुमी, तुम्हारी और मेरी उम्र में ज्यादा अंतर तो नहीं, फिर ये मौसाजी-मौसाजी क्या लगा रखा है। क्या तुम मेरा नाम लेकर नहीं पुकार सकतीं—समर!'

'ऐसा कैसे हो सकता है, हमें रिश्तों का खयाल तो रखना ही होगा न।'

'रिश्तों का खयाल!' मैंने तिक्तता से कहा, 'आखिर क्या रिश्ता है मेरा-तुम्हारा जो तुम....तुम...। सुमी, दरअसल हमारे ये रिश्ते दूब के तंतुओं के अतिरिक्त हैं भी क्या, जो फँसे-उलझे अवश्य हैं, पर उनकी अहमियत कुछ भी तो नहीं है—हां।'

'अहमियत है तभी तो मैं आपके साथ यहां घूम-फिरकर बैठी हूं।' हंसकर बोली सुमिता, 'वर्ना माताजी मुझे सिवा कॉलेज के, घर से बाहर पैर भी नहीं रखने देती हैं। रिश्तों के विश्वास पर ही माताजी आपसे मुझे इतना बोलने दे रही हैं, वर्ना दूसरे बाहरी हम-उम्र लड़कों से बतियाते देखकर तो मेरी चुटिया ही....।'

मेरा ध्यान सुमिता के कथन पर कम, उसके अंग-प्रत्यंगों पर अधिक था। उसके चेहरे की तमतमाहट, सुडौल वक्ष का उतार-चढ़ाव और बैठने के अंदाज़ से अन्य अवयवों का उभार! मेरा हाथ

यंत्रवत् उसको अपनी ओर खींचने लगा। उसने अनचाहा विरोध करते हुए 'ऐ मौसाजी, कोई देखेगा तो हमें पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका समझेगा और जाने क्या सोचेगा—हां। छोड़िये न—'

सुमिता की आवाज़ में घबराहट थी, कृत्रिम चौकन्नापन अधिक, हाथ का दबाव कम होने के बजाय, ही गया।

थोड़ी देर बाद मैंने धीरे-से पूछा, 'क्या यह सब अच्छा नहीं लगता तुमसे?' सुमिता ने शरमाते हुए मना किया मेरा पागलपन और बढ़ गया। मैंने उधर देखा और मेरे ओंठ, सुमिता ओंठों से टकराकर वहीं पर ठहरकर से अलग हो गये। उसने सिर झुकाकर मैं आत्मग्लानिवश उसकी खुली हाथ फिराता हुआ बोला, 'सुमी, तो नहीं हों।'

'क्यों?'

'मैंने ये जो अनाधिकार चेप्यो तो इसमें अनाधिकार चेप्यो मौसाजी।' सुमिता ने गंभीरता से 'मौसा पिता के समान ही तो होता है मेरा मन न जाने कैसा-कैसा'

हो गया। मैं समझ रहा था कि मेरी तमाम हरकतों को दूसरे तिरबहन कर रही है, जबकि मेरे बिना बेबाक रिश्ते का जरा भी बिना है। मैंने एक कोशिश और की

तुम कल मेरे साथ चल रही हो न-अपनी
 तानी के यहां। वहां तुम रहोगी, मैं
 हूंगा और...., खूब गुजरेगी जो मिल बैठेंगे
 दो-समर और सुमी-क्यों।'
 सुमिता ने कोई उत्तर नहीं दिया और
 मैंने उसे स्वीकृति मानकर सोच लिया कि
 जब वह भी....।

०००

मैंने सूटकेस बंद किया, एक ओर का
 ताला लगाया। दूसरी ओर का ताला
 लगा ही रहा था कि पीठ पर आ चिपका,
 'सुमी'।

एकदम घूमा मैं। चौंका भी, क्योंकि
 मेरी साड़ी में सुमिता बहुत ही अच्छी
 लपटी थी। मैं उसके पास चला गया।
 मुझे-बवान जिस्म पर नये-कोरे कपड़े
 लगे और रंग से निर्मित नयी अजीब-
 बरंगे आसपास बिखर गयी। और तभी
 मेरे तूथों के घेरे में आ गयी वह। उसने
 'सुमी' भी विरोध नहीं किया, लेकिन
 मेरा चेहरा संजीदा था। मैंने उसको

मेरे पास खींचते हुए कहा, 'सुमी, मेरे
 साथ चलते वक्त ये उदासी क्यों-कैसी !
 ऐसा कल तो तैयार किया है तुम्हारे
 लिए सुमिता को। अरे, मेरे शहर के नज़ारे
 तो ही तो याद करोगी कि किस शहर
 के नहर वाले से पाला पड़ा है।'।

सुमिता पूर्ववत् गंभीर ही रही।
 मैंने खुशी के आवेश से उसको परे
 धकेलते हुए कहा, 'जल्दी करो, वर्ना ट्रेन
 चलेगी।'।

और की

सुमिता ने डूबती वाणी में कहा,
 'समर !'

पहली बार उसके मुंह से मेरा नाम
 सुनकर मैं चकराया तो जरूर, लेकिन
 खुशी भी हुई कि चलो अब हमारे बीच शायद
 कृत्रिम रिश्तों की दीवार नहीं रहेगी
 और....।

'समर, मैंने बहुत सोचा रात-भर
 किये दूब के तंतुओं-से वेवाक-रिश्ते सच-
 मुच हमारी उम्र के ज्वार को नहीं रोक
 पायेंगे।' भरे गले से बोली सुमिता, 'हां
 समर, नहीं रोक पायेंगे।'।

'तो।'।

'समर, तुम तो रिश्तों को अहमियत
 देते नहीं और तुमसे मिलकर अब मैं भी
 ऐसा ही कुछ समझने लगी हूं।' गंभीरता
 से कहा सुमिता ने, 'बस तभी मैंने फैसला
 कर लिया है कि....।'।

'क्या फैसला किया है तुमने, सुमी ?'

'मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊंगी।'।

'सुमी।'।

'समर !' रोते हुए बोली सुमिता,
 'आभा मौसी के जीवन को बर्बाद होने में,
 मुझे माध्यम मत बनाओ-प्लीज़-मत
 बनाओ।' और सिसक-सिसककर वह
 रोने लगी।

रिक्शे में बैठते समय सभी कुछ-न-कुछ
 कह रहे थे, लेकिन सुमिता न बोल रही
 थी, न हंस रही थी, बस बड़ी-बड़ी आंखों
 से देख भर रही थी मुझे।

-६-१ परदेशीपुरा, इंदौर-४५२००३



डॉक्टरों पेशा :

कितना नैतिक, कितना अनैतिक

□ डॉ. शान्तिलाल मेहता

नीति हर एक अंतरात्मा का विषय है। मेरी दृष्टि से अनैतिकता और गैर-कानूनीपन के बीच भेद है। नैतिक दृष्टि से सच और झूठ का भेद हमें समझना चाहिये। ऐसी सूझबूझ ज्यादातर खान-दानी संस्कारों की देन होती है। विद्यालय और महाविद्यालय से प्राप्त शिक्षा और अध्यापक भी इस कार्य में अहम भूमिका निभाते हैं। योग्य-अयोग्य या श्रेय-प्रेय का भेद समझना मनुष्य के लिए आवश्यक है। इसमें भी प्रेय का लुभावना रास्ता छोड़कर श्रेय का कल्याण-पथ स्वीकारना अधिक महत्त्वपूर्ण है।

अचल नीति-नियमों जैसा कुछ नहीं। नीति के मूल्य परिवर्तनशील हैं। डाक्टरों के नीति-नियम भी समय की रफ्तार के साथ बदलते रहे हैं। परिस्थिति और संयोगों के अनुसार जीवन-दृष्टि और नीति-नियमों में परिवर्तन होना अपरिहार्य है। मसलन हिपोक्रैटस की प्रतिज्ञा को ही लें। हिपोक्रैटस की यह प्रतिज्ञा सभी डाक्टरों के लिए पवित्र एवं अनिवार्य है। इसका किसी भी तरह से भंग होना क्रूरता और अनीति माना जाता है।

नवनीत

प्रतिज्ञा में कहा गया है—'मैं किसी मनुष्य की किडनी या ब्लैडर में से पदार्थ निकालने के लिए उसके शरीर की किसी क्रिया नहीं करूंगा।' आज दुनिया के लाखों सर्जन अपने रोगियों को इस क्रिया द्वारा ही पथरी से मुक्त करते हैं। फिर भी इस कार्य को अनीतिमान समझा जाता। हिपोक्रैटस के मत के अनुसार, गर्भपात कराना भी अनीतिमान है, लेकिन आज की दुनिया में जन्म वृद्धि को रोकने के लिए गर्भपात कानूनी रक्षण प्राप्त है। हिपोक्रैटस के जमाने में किसी भी व्यक्ति को मार देना अपराध माना जाता था। जबकि आज के जमाने में घातक पीड़ित रोगी की मृत्यु को रोकने के उद्देश्य से, कुछ विशेष मामलों में सावधानीपूर्वक दवाई दया के तौर पर मार देने के बारे में पहलुओं पर गंभीरता से विचार जा रहा है।

किसी जमाने में ऐसा घोषित हो व्यवस्था भी थी कि हृदय की धड़कन जाने पर रोगी की मृत्यु हो

तेक

नाल

मैं कि

रीर

ज

गियों

मुक्त

नीति

स के

भी

में

ए

हिये

स्त

ना

ध्यात

को

विशेष

क दवा

के

से

एक ही तरह याद है कि मैं जब हाउस-
बर्न था, तब ऐसा नियम था कि रोगी
के हृदय की गति बंद हो जाने के चार
घंटों तक उसे मृत न घोषित किया जाये
और न उसका शव स्वजनों को सौंपा
जाये। आज ऐसा माना जाता है कि दिल
को बंद करने चालू रहने के बावजूद दिमाग

को घोषित किया जा
सकता है। यदि डाक्टर
को विश्वास हो कि रोगी
स्नायुओं की गति-
विधियाँ ठप हो गयी हैं,
तो उसे 'दिमागी मृत्यु'
के रूप में बताया जाता
है। ऐसे मामलों में रोगी
का हृदय, फेफड़े
आदि निकालकर अन्य
रोगी के
लिए मृत अंगों का
उपयोग हो सकता
है। अनादिकाल से

रोगियों का नीतिशास्त्र परिवर्तनशील
है। उस नीति-भावना का नियमन
या-परिस्थिति, संयोगों, वैज्ञानिक
प्रगति और व्यक्ति-धर्म के आधार
पर। कैथोलिक संप्रदाय के लोग परिवार-
जनन के लिए शल्य-क्रिया को अनीति
न मानते हैं। मेरा एक होनहार
स्त्री-रोग विशेषज्ञ है।
जिस लोक अस्पताल के एक महत्त्व-

पूर्ण पद को इसलिए अस्वीकार किया कि
स्वयं कैथोलिक होने के नाते उसे ऐसे
किसी भी अस्पताल में नौकरी नहीं करनी
चाहिये, जहाँ ऐसी शल्य-क्रिया होती हो।

एक और उदाहरण प्रस्तुत है। मान
लीजिये कि हृदय के किसी सघन-चिकित्सा-
विभाग में बीस मरीज हैं, जिनकी चिकित्सा
अनिवार्य है। उसी समय एक ऐसे रोगी



चित्र : टी. ए. राणा

को लाया जाता है, जिसे
इस यूनिट में अविलंब
भरती करना अत्यंत
जरूरी है, मगर न एक
भी श्वसन-यंत्र उपलब्ध
हो सकता है, न उसे
वैकल्पिक सुविधाएं दी
जा सकती हैं। क्या
किया जाये? किस मरीज
के साधन हटाकर उनसे
इस रोगी का इलाज
करे? डाक्टर दुविधा में
है। इन रोगियों में कोई
वृद्ध हों, कई बीमारियों
से पीड़ित हों और जिनके गुर्दे क्षतिग्रस्त
होने के कारण बचने की कोई उम्मीद न हो,
ऐसे किसी रोगी से श्वसन-यंत्र और अन्य
उपकरणों को हटाकर, उनका उपयोग
इस नये युवा रोगी का जीवन बचाने
के लिए करना क्या अनैतिक होगा?
आये दिन अस्पतालों में ऐसे प्रश्न उपस्थित
होते रहते हैं।

जैसा कि हमें मालूम है, जैन लोग

औषधि के रूप में भी प्राणिज पदार्थ का उपयोग नहीं करते। ऐसे ही किसी को खून चढ़ाने की जरूरत हो, तब क्या करें? वह अगर एनीमिया से पीड़ित है और उसे लीवर एक्स्ट्रेक्ट देना अनिवार्य हो जाये, तब क्या किया जाये?

हमारे देश में डाक्टरी व्यवसाय में फीस का बंटवारा होते रहने की बात सर्वविदित है। इसके लिए तर्क यह दिया जाता है कि कंसल्टेंट को फायदा पहुंचाने वाले जनरल प्रैक्टिशनरों के हित में ऐसा करना अनुचित नहीं। इस पद्धति को अयोग्य ठहराने वाले लोग इसे घूस का नाम देते हैं। इन लोगों का कहना है कि इस पद्धति के फलस्वरूप तथाकथित विशेषज्ञ अपनी दक्षता न होने के बावजूद अधिक लाभ का प्रलोभन देकर अपने मरीजों की संख्या बढ़ाते रहते हैं और मरीजों को कोई फायदा नहीं होता। इसलिए फीस बांटने की प्रथा अनीतिकारक है, जिसे पूर्ण रूप से समाप्त किया जाना चाहिये।

इसी तरह स्पेशलिस्टों के द्वारा डाक्टरों को अपने घर दावत पर बुलाना या दीवाली और बड़े दिन जैसे, त्योहारों पर नकद राशि का उपहार भेजना भी इतना ही अनैतिक है। मैं मानता हूं कि ये सभी तौर-तरीके निहायत अनैतिक हैं। होशियार और ईमानदार डाक्टर भी अपने धंधे के शुरू के दिनों में रोगी को लाने वाले डाक्टर को फीस का पचास प्रतिशत

कमीशन के रूप में देते हैं। धंधे में होने के साथ-साथ दलाली का प्रचलन घटता जाता है और चोटी पर पहुंचने के डाक्टर को किसी के उपकार का दान चुकाने की आवश्यकता नहीं रहती। इसे आप अनैतिक बतायेंगे? देश में मेडिकल काउन्सिलों को चाहिये कि इस पद्धति को हटाने के उपाय प्रस्तुत है एक और मिसाल शल्य-क्रिया करना बिल्कुल जरूरी किसी का एपेन्डिक्स खराब नहीं होने भी आपरेशन द्वारा उसे हटा लेना अपूर्ण नहीं होता क्या? अनावश्यक क्रिया करने की तुलना क्या है?

कोई जनरल प्रैक्टिशनर रोगी पहले एक्स-रे के लिए अगर भेज दे उसी की रिपोर्ट के आधार पर रोगी आपरेशन कराने की सलाह दे तो उसे उचित कहा जायेगा? कई आपरेशन निदानों के कारण होते रहते हैं। उन न होने पर भी डाक्टरों द्वारा रोगी को देते रहना अनीति ही नहीं तो और क्या है? दूसरी ओर, डाक्टर पूरी ईमानदारी के साथ अगर ऐसा मानता है कि रोगी वाँटर का इंजेक्शन लगा देने से रोग मन में यकीन हो जायेगा कि अब ठीक होता चलेगा और उसी बात को रखते हुए इंजेक्शन लगाया जाय तो नीतिमय आचरण माना जा सकता है।

हमारे देश में छोटे-बड़े व्यवसाय माध्यम से अपनी प्रसिद्धि कराने

भी डाक्टरों में अक्सर देखा गया है।
 कर्म में तो हमें इन हरकतों का सामना
 करना पड़ रहा है। ऐसी हरकतें करना
 पिनोता ही नहीं, बल्कि अशोभनीय भी है।
 लेकिन दुर्भाग्य से यही तो आजकल का
 रीतन है। आये दिन समाचारपत्रों में
 पढ़ते हैं कि फलों अस्पताल में अमुक
 अपरेसन हुआ है, जो भारत में अपने
 किन का पहला आपरेसन है। हालांकि
 अपरेसन के बाद रोगी का क्या हाल
 है-जिन्दा भी है या नहीं और उसे कुछ
 नाम हुआ है या नहीं, उसके बारे में
 कुछ भी बताया नहीं जाता। एक नियम
 है कि शल्य-क्रिया करने के समय,
 डाक्टर और उनके सहायकों को छोड़-
 कर, अन्य किसी भी व्यक्ति को
 प्रस्थित रहने की अनुमति नहीं दी
 जाती। इस नियम के विरुद्ध अक्सर सुना
 जाता है कि अनेक डाक्टर अपनी अद्भुत
 कला का प्रदर्शन करने के लिए अजनबी
 व्यक्तियों को भी आपरेसन के दौरान साथ
 ले जाते हैं।
 डाक्टरी धंधे से सम्बद्ध एक और गंभीर
 नैतिक सवाल है। यूनिवर्सिटी में डाक्टरी
 शिक्षा के परीक्षकों की अवस्था दयनीय
 है। अपने को पूर्णतः ईमानदार बताने वाले
 महानुभावों से परीक्षकों को लगा-
 तार टेलिफोन-संदेश प्राप्त होते रहते हैं।
 इन सभी संदेशों में वे अपने भाई-
 बहनों को उत्तीर्ण कराने की नाजायज
 कार्रवाई करते रहते हैं।

मेरे कदमों का यह सङ्गठन नहीं कि
 हमारे देश में डाक्टरी व्यवसाय में सर्वत्र
 भ्रष्टाचार ही व्याप्त है। वैसे तो हर पेशे
 में ऐसी कमजोरियाँ होती हैं, पर डाक्टरों
 का पेशा भी इससे मुक्त नहीं है। मेरा
 सुझाव है कि डाक्टरी शिक्षा पाने का
 इच्छुक प्रत्येक छात्र इस व्यवसाय की
 नैतिक छवि उभारने में समर्थ हो, इस
 बात पर विशेष जोर दिया जाये। प्रत्येक
 डाक्टर अपने व्यवसाय को प्राप्त गौरव
 को बनाये रखे, यह जरूरी है।

औषध-निर्माण कंपनियों द्वारा अनु-
 संधान के लिए संस्थाओं या व्यक्ति-
 विशेष को अनुदान देने में कुछ भी अनैतिक
 नहीं, लेकिन जाने-माने डाक्टर केवल
 उनके द्वारा बनायी गयी दवाइयों का प्रयोग
 करेंगे, ऐसी शर्तों पर इन डाक्टरों को विश्व-
 प्रवास पर भेजने का पूरा खर्च और
 सुविधाएं जुटाना निहायत अनैतिक एवं
 अयोग्य है। डाक्टरों द्वारा इस प्रकार के
 जाल में फँसना भी अनैतिक है।

विकसित देशों में औषधि-निर्माण से
 संबंधित कंपनियाँ, मेडिकल कालेजों में
 अनुसंधान-पीठ बनाये रखने के लिए
 भारी राशि प्रदान करती रहती हैं, यह
 सर्वथा योग्य है। हमारे देश में भी ऐसा
 होना कोई बुरी बात नहीं। ऐसे उपायों
 से औषधियों का अनुसंधान, जो फिलहाल
 अपने शैशवकाल में ही है, उसे बढ़ावा
 मिलेगा और समाज लाभान्वित होगा।

गुजराती से अनुवाद : दिगंबर स्वादिया



चतुर्थ आयाम

□ श्रीमान विषय

गुह्यविद्या का अध्ययन करनेवाले चतुर्थ आयाम (Fourth dimension) का अस्तित्व दीर्घकाल से स्वीकारते आये हैं । योगी या देवादि का तिरोधान हो जाना, अन्य कुछ भी न होकर सिर्फ चतुर्थ आयाम में उनका प्रवेश है, ऐसा मानते हैं । मनुष्य को अगम्य ऐसी अनेक गुप्त विद्याओं के व्यक्तिकरों में इस चतुर्थ आयाम को ही उन्होंने हेतुरूप में स्वीकार किया है । ऐसा होने के कारण ही चतुर्थ आयाम क्या है और उसकी संभावना है या नहीं इत्यादि सामान्य मनुष्य भी रसपूर्वक समझ सकें, इसी लिए प्रस्तुत कहानी प्रकाशित की जा रही है ।

आज बारह वर्ष गुजरे, सारी दुनिया मुझ पर अपने भाई की हत्या करने का शक करती है । मैं जब भी राह से गुजरता हूँ, तो लोग हमेशा ही मेरी ओर उंगली उठाकर कहते हैं, 'वो चला शिशिर-कुमार को मारने वाला !' जाति-समाज में जहाँ भी मैं जाता हूँ, लोग मुझसे दूर हो लेते हैं । मेरे पास कोई भी प्यार से खड़ा नहीं रहता । मानो मेरे दृष्टिपात से ही महाभयंकर हानि होगी, यह सोचकर मेरे पड़ोस की औरतें, मुझे आते देखकर अपने बच्चों को एक ओर कर लेती हैं ।

यदि मैं किसी दुकान पर माल खरीदने जाता हूँ, तो दुकानदार किसी तरह अपनी दुकान से मेरी बला टालने, अपने अन्य ग्राहकों को छोड़कर सबसे पहले मुझे

ही माल दे देता है ।

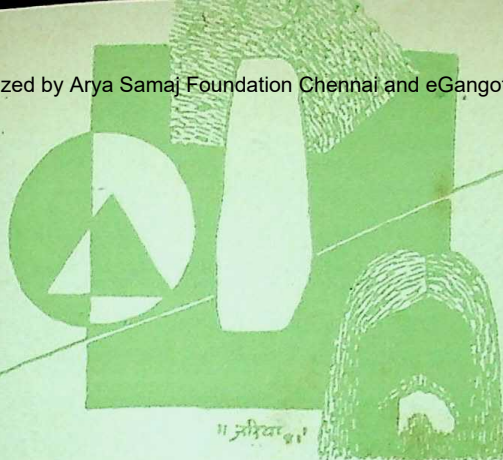
थोड़े में यही कि जहाँ-जहाँ लोग दूर रहते हैं और जब भी मैं अकेला से गुजर रहा होता हूँ, तो सिर्फ ये ही मुझे बार-बार सुनायी देते हैं, वह हत्यारा जा रहा है !'

हां, अपने निर्दोष भाई की हत्या का शक लोग मुझ पर करते हैं और मैं सिर्फ एक ही न्यूनता रह जाने का कारण, मुझे फांसी की सजा रह गयी और वह यह कि अभी तक मुझे मृतदेह हाथ नहीं आया है ।

हकीकत में मैं निर्दोष हूँ; फिर मैं जानता हूँ कि मुझ पर जो कलंक पड़ा है उससे मैं आमरण मुक्त पाऊंगा; और आज मरणसन्न हो लेख लिख रहा हूँ, वह इस आशा

न्यनीत

१०८



॥ श्रीगुरु ॥

विश्वद

nsion)

तोधान हो

, ऐसा ब

इस चतुर्

हारण हो

य मनुष

रही है।

लोप न

अकेला

क ये ही

हैं, त

हत्या

हैं और

रह जा

जा हो

भी तक

आयी है

हैं, कि

कलक

मुक्त न

तसन

आ

१९८१

मुनिया के अधिकतर लोगों को असंभव-सी दिखती यह बात, जिसे कि मैं लिख रहा हूँ, उसे शायद एकाध आदमी ही स्वीकारे और मुझे निर्दोष माने। क्योंकि, यह तो बाहिर है कि इस अंत समय में असत्य लिखने से मुझे कोई भी लाभ नहीं है।

ई. स. १८६० के सितम्बर की छह तारीख को 'भारतमित्र' में मेरे भाई की एक संबंधी जो हकीकत छपी थी, उसे मैं वहाँ उद्धृत कर रहा हूँ, जिससे कि मुझे पता चले कि मेरे भाई के अदृश्य होने का संबंध, और आज मैं किस कारण से उनकी निगाहों में हत्यारा माना जाता हूँ, और पूरा वृत्तान्त मालूम हो सके।

'बंदवान के प्रसिद्ध जागीरदार शिशिर-कुमार घोष के गैबी ढंग से गायब होने संबंधी और अधिक हकीकत अभी तक हाथ नहीं लगी है। हमारे पाठकों को याद होगा कि शिशिरकुमार घोष गैबी ढंग से पिछले महीने की १८ तारीख को लापता हो गये थे। तत्संबंधित

हकीकत इस तरह है : शिशिरकुमार घोष बंदवान के एक बहुत बड़े जागीरदार और समर्थ विद्वान पुरुष थे। कुछ ही दिन गुजरे वे अपने छोटे भाई शरतकुमार घोष के साथ अपने एकान्त बंगले में रह रहे थे। मरनेवाला गायब हुआ उस समय शरतकुमार उपस्थित थे, यह बात तो वे खुद अपनी जुबानी कबूल करते हैं, फिर भी कहाँ गये, इस विषय में वे कोई भी बुद्धिगम्य खुलासा नहीं दे पाते।

'वे सिर्फ यही कहते हैं कि शिशिरकुमार घोष ने अपने शरीर को बिखरा दिया और पर विकास के इस युग में अपढ़ लोगों को ही मान्य हो सके वैसा, शरत-कुमार का मूर्खतापूर्ण खुलासा लिखकर हम अपने पाठकों का वक्त बेकार ही खराब करना नहीं चाहते। थोड़े में बात यही है कि १८ अगस्त को मरने वाला उसका भाई तथा कुटुंब के अन्य आठ आदमी, कुल मिलाकर दस व्यक्ति बंगले में थे।

घोष, ‘मुझे अभी शाम की संध्या करना बाकी है’ कहकर, बड़ी बैठक के कमरे से अपने एकान्त पूजाघर में गये। उनके जाने के बाद शरतकुमार घोष भी उनके पीछे गये, और बाकी सब लोग बैठक के कमरे में इधर-उधर की बातचीत करते बैठ गये। रात साढ़े ग्यारह बजे के करीब जब सब सोने की तैयारी करने लगे, तो पूजाघर की ओर से दो आदमियों के लड़ने की-सी तेज आवाज सुनायी दी। और ‘यू न करो, भगवान के लिए यू न करो’ जोर से बोले गये इस तरह के शब्द हर आदमी को सुनायी दिये।

‘उपस्थित सभी लोग सौगन्धपूर्वक रहते हैं कि विनती-भरे ये बोल खुद शिशिरकुमार के अपने ही थे। इसके बाद ही जोर से फटका मारने की-सी आवाज हर किसी ने सुनी। अनन्तर ही एक हृदय-विदारक चीख उन्होंने सुनी। इसके बाद ‘ओ शरत्’ ये शब्द उनके कानों में पड़े। और, इतने में ही छाती फाड़ देने वाले शब्दों में ‘कोई दौड़ो, कोई दौड़ो’ ऐसी आवाजें उन्हें सुनायी दीं। कुछ लोग पूजाघर की ओर दौड़े और उसका दरवाजा खोलने का प्रयत्न किया, पर उसके तो अंदर से ही सांकल बंद थी। ‘क्या बात है? क्या हुआ?’ उन्होंने आवाजें दीं, मगर कोई भी उत्तर न मिलने पर दरवाजे तोड़कर भीतर गये।

‘पूजाघर एक सुशोभित कमरा था।

रामकृष्ण परमहंस की तस्वीर लटकी हुई थी। कमरे की दीवार पर गोरक्ष महाप्रभु तथा उनके भक्तों की और देश के अन्य प्रसिद्ध महात्माओं की तस्वीरें लटकी हुई थीं। कमरे पर दो-तीन मृगचर्म बिछे हुए थे और एक ओर एक बुक-केस पर कुछ और कित्तों पड़ी हुई थीं। पूजाघर में एक खिड़की बंगले के दक्षिण दिशा में एक विशाल, रमणीय बगीचे में खुलती थी।

‘इस खिड़की के सामनेवाली दीवार पास एक विचित्र किस्म का यंत्र लटका हुआ था। जब उन्होंने पूजाघर में प्रवेश किया, तब मानो शरतकुमार को खिड़की से पूजाघर में आते देखा। उस कुर्ता फट गया था, बाल बिखर गये थे, उनका समूचा वदन पसीने से तर गया था। थोड़े में, मानो वह किसी लंबी लड़ाई से अभी ही लौटा हो, दिख रहा था। तुम्हारे भाई कहाँ हैं?’ इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने सिर्फ खिड़की की ओर उंगली उठा दी। मगर कोई खुलासा न दिया। फिर पूरा बंगला बगीचा, हर जगह ढूँढ़ आये, पर नहीं हो गये गृहस्थ का पता न चला। भाई की ओर से कोई भी संतोषजनक खुलासा न मिलने पर अंत में पुलिस खबर दी गयी और हमारे इलाके के और बाहोश पुलिस अमलदार कॉलिस की बेतरह और सूझ

शरतकुमार घोष का कहीं भी
मेरा जन्म १८४५ के अप्रैल की दस
तारीख को बर्दवान में हुआ था। मेरे बड़े
भाई शिशिरकुमार मुझे दो वर्ष बड़े थे
और मेरी बहन सुमति मुझे छोटी थी।
मेरे पिता बहुत बड़े जमींदार थे और
यही वजह है कि हमें उच्च प्रकार की
शिक्षा दी गयी थी। हम दोनों भाइयों ने
कलकत्ता यूनिवर्सिटी से एम. ए. किया था।
मेरे बड़े भाई को योगविद्या में अपूर्व
श्रद्धा थी और इसी कारण, कालेज छोड़ने
के बाद ज्यादातर वे अपने इस महल
में ही अपनी निवृत्ति का समय बिताते
थे। मेरी वृत्ति अपने भाई से कुछ अलग
ही तरह की थी। मुझे प्रवास और सृष्टि-
सौंदर्य का निरीक्षण करने का बेहद
शौक था।

कालेज छोड़ने के अनन्तर कुछ ही
दिनों में मेरे पिता का स्वर्गवास हो गया
और इसी कारण से सारी जागीर की
देखभाल का काम बड़े भाई के सिर आ
पड़ा। मुझे प्रवास बहुत प्रिय होने के
कारण मैं प्रवास करने निकल पड़ा।
मुझे रोकने के लिए भैया ने तथा रिश्तेदारों
ने बहुत आग्रह किया, पर मैं टस-से-मस
न हुआ। मैं भरतखंड के हर दर्शनीय स्थान
में घूमा और उसके बाद योरोप तथा
अमेरिका का प्रवास करने गया। बड़े
भैया मुझे आवश्यक द्रव्य प्रवास के लिए
भेजते रहे।
प्रवास में इस तरह दस वर्ष गुजारने के

मेरे भाई की हत्या संबंधी कोई भी
प्रमाण अभी तक मिला नहीं है और इसी
कारण से न्याय के दरबार में मुझे खुले
आँख से बर्दाश्त संभव नहीं हो सका है,
किन्तु मेरे मित्रों ने एक के बाद एक
प्रमाणों का त्याग दिया है।
उस भयंकर रात्रि का वृत्तान्त मेरे
बचपन से सुनकर मेरी बहन सुमति ने मुझे
बता दिया था कि मैं तुम्हारी बात
सुनती, और शिशिरकुमार या उसका
बचपन तक न मिले, तब तक तुम मुझे
बचना मुह न दिखाना। अब मेरी मौत
तुम्हारे पास जाने से पूर्व मैं उस रात्रि का
सच्चा वयान दुनिया को दिये जाता हूँ।

१९८१

बाद एक दिन जब मैं योरोप में था, तो मुझे बड़े भैया का तार मिला कि फौरन खाना होकर मुझे बर्मावन पहुंचना होगा। तार में और कोई खुलासा न होने के कारण, अनिच्छा के रहते भी मैं हिन्दुस्तान के लिए चल पड़ा और कुछ ही मप्ताह के भीतर मैं अपने भैया को आ मिला। उन्होंने मुझे बताया कि जमींदारी की व्यवस्था अब मुझसे नहीं हो पाती है, तो अबसे वह तुम किया करना। मुझे यह कार्य प्रिय न होते हुए भी बड़े भैया के आग्रह के वश मैंने इसे स्वीकार कर लिया।

मेरे बड़े भैया अपना अधिकतर समय, उनके स्वयं के लिए तैयार किये गये एकान्त पूजाघर में ही बिताते थे। मैं नहीं जानता था कि वहां वे क्या करते थे। पर, किसी योग की साधना कर रहे हैं, इतना मैं जानता था। धीरे-धीरे बड़े भैया का मुझ पर विश्वास बढ़ता गया। वे किस चीज की साधना कर रहे हैं, यह बात उन्होंने एक दिन मुझे एकान्त में बताया। यह अन्य कुछ न होकर, चतुर्थ आयाम को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न भर था।

ऐसी असंयमित तथा आकाशकुसुम जैसी बातों में, वृथा आयुष्य, शरीर, मन तथा बुद्धि का व्यय करना, आप जैसे यूनिवर्सिटी के शिक्षा प्राप्त बुद्धिमान के लिए उचित नहीं है, इत्यादि जब मैंने उनसे कहा, तो वे बोले : 'शरत् ! अभी तो मैं तुम्हारे सामने चतुर्थ आयाम का अस्तित्व सिद्ध नहीं कर सकता, और न

ही वह कौन-सी दिशा में है, यही कह सकता हूं। क्योंकि, यदि मैं वैसा कर पा जाऊं, तो भी चतुर्थ आयाम का अस्तित्व होना संभव है। इतना ही नहीं, वह युक्ति-सिद्ध है, इतना तो मैं तुम्हारे सामने निश्चय ही सिद्ध कर सकूंगा।

फिर मुझे एक कागज थमाकर बोले 'शरत् ! इस कागज पर बनी हुई चतुर्थ तियों को देखो।'

उस कागज के ऊपरी हिस्से पर सीधी रेखा खींची हुई थी। उसके समचतुष्क (चौरस) बना हुआ था, उसके पास एक वर्तुल (Circle) बना हुआ था और सबसे नीचे एक घन (Cube) लंबाई, चौड़ाई तथा ऊंचाई वाली आकृति बना हुआ था।

जब मैं ये आकृतियां देख रहा था तब वे बोले, 'शरत् ! तुम देख रहे कि पहली आकृति एक सीधी रेखा याने रेखागणित के अनुसार उसकी लंबाई तो है, पर चौड़ाई नहीं। अब मान कि इस रेखा पर एक पशु रहता है, इस तरह बनाया गया है कि उसके के दोनों छोरों पर एक-एक नेत्र है। इन नेत्रों की रचना ऐसी की गयी है वे सिर्फ सीधी रेखा में ही देख सकें, टेढ़े-मेढ़े न देख सकें। इस तरह मान लो तुम्हें फौरन ही समझ में आ जायेगा कि रेखा के प्रदेश में बसनेवाले पशु सिर्फ एक ही आयाम का यानी

ऊँचाई का ही ज्ञान होता है। हालांकि चौड़ाई नाम के दूसरे आयाम का अस्तित्व है फिर भी, इस रेखा के प्रदेश में बसनेवाले पशु को उस आयाम के अस्तित्व का यकीन दिलाने का कार्य अत्यन्त मुश्किल हो जायेगा; क्योंकि उसके नेत्रों की रचना ही कुछ ऐसी है कि वह एक समय में, एक ही बिन्दु (Point) जितनी जगह देख सकता है। उसके नेत्रों के पास चाहे कितना बड़ा, लंबाई-चौड़ाई वाला पदार्थ रखा जाये, तो भी उसके नेत्र एक समय में सिर्फ एक ही बिन्दु देखने की सामर्थ्य रखते हैं। इस कारण से वह पदार्थ की चौड़ाई भी है, यह बात स्वीकारने को कभी तैयार नहीं होगा। यह पदार्थ उसकी दृष्टि के सामने इधर-उधर घुमाया जाये, तो भी चाहे उसकी दृष्टि को, बिन्दु एक के बाद एक आते और अदृश्य हो जाते ही जाते होंगे, पर वे दायीं या बायीं दिशा में जाते हैं, यह बात कभी भी उसकी समझ में नहीं आयेगी।

‘अब मान लो कि पूर्व निर्दिष्ट पशु के नेत्रों में अपनी समान सतह पर दायें और बायें देखने की सामर्थ्य है, तो बताओ कि पशु को क्या ज्ञान होगा ?’

मैंने जवाब दिया : ‘उस पशु को दूसरे आयाम का, याने चौड़ाई का ज्ञान होगा।’ मेरे बड़े भैया शिशिरकुमार ने कहा, ‘बिल्कुल ठीक, शरत् ! अब इस पशु को घूर्तुल, समचतुष्क, घन या अन्य किसी भी सतह का स्वरूप समझाने में कठिनाई

नहीं होगी। पर अब भी इस पशु को तीसरा आयाम ऊँचाई, कौन-सी दिशा में है, यह समझाने का कार्य अशक्य ही रहना है और उसकी दृष्टि मर्यादा में एक घन पदार्थ (Cube लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाईवाला पदार्थ) लाया जाये, तो उसे सिर्फ अलग-अलग कद तथा आकार की सतहें ही नज़र आयेगी और वह पदार्थ ऊपर-नीचे ले जाने से भी वह ऊपर-नीचे की दिशा में जा रहा है, ऐसा उसे प्रतीत नहीं होगा। पर रेखा के प्रदेश में बसने वाले पशु की तरह उस पदार्थ की सतहें ही सिर्फ उसे प्रत्यक्ष होती और अदृश्य होती लगेंगी।’

मैंने कहा, ‘भैया ! आप कहते हैं, वह सब कुछ यथार्थ है, पर इस सबके द्वारा चतुर्थ आयाम का अस्तित्व है, यह आप कैसे सिद्ध करते हैं ?’

शिशिरकुमार का उत्तर था : ‘शरत् ! अब मेरे साथ तर्क करने के लिए एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ो और मैं मानता हूँ कि चतुर्थ आयाम का अस्तित्व तुम्हें स्पष्ट समझ में आ जायेगा। हम मनुष्य जीव इस समय घन प्रदेश में अर्थात् लंबाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई युक्त तीन आयाम-वाले प्रदेश में बसते हैं। रेखा के प्रदेश में बसने वाले पशु को सतह का आयाम प्रतीत नहीं होता था, फिर भी उसका अस्तित्व तो है ही, और सतह आयाम पर निवास करने वाले को, ऊँचाई नाम का तीसरा आयाम कौन-सी दिशा में है, यह समझ

म नहीं आता था, फिर भी तीसरे आयाम का अस्तित्व सतह के आसपास है, यह हम जानते ही हैं। शरत् ! क्या इस पर से तुम्हें संभावित नहीं लगता कि चतुर्थ आयाम यद्यपि अभी तक नहीं खोजा गया है, फिर भी वह हमारे आसपास मौजूद है ?'

मैंने उत्तर दिया : 'भैया ! चतुर्थ आयाम हम देख नहीं पाते और इसी वजह से उसका अस्तित्व नहीं है, यह बात सिद्ध नहीं हो जाती, यह बात आपने सिद्ध कर दिखायी, यह तो मैं समझ सका, परन्तु हकीकत में उसका होना किंचित भी संभावित है, ऐसा आपने अपनी इस बात के द्वारा सिद्ध किया हो, ऐसा मैं तो नहीं मानता ।'

शिशिरकुमार ने कहा : 'जरा धैर्य रखो। तुमने उत्तर हिंदुस्तान, नेपाल तथा तिब्बत का प्रवास किया है। आकाश में रस्सी फेंककर उस पर चढ़कर अदृश्य हो जाने का और ऐसे ही एक-दो खेल और भी तुमने उन देशों में नहीं देखे ?'

मेरा उत्तर था : 'हां, मैंने ये खेल दो-तीन वर्ष पूर्व देखे थे और ये बहुत ही चमत्कारिक हैं ।'

'वे खेल कैसे होते हैं, इस बात का खुलासा तुम दे सकते हो ?' शिशिरकुमार ने पूछा ।

मैंने कहा, 'मेरे लिए इनका खुलासा दे सकना संभव नहीं है। कई विद्वान अंग्रेज भी इनका खुलासा नहीं दे पाये हैं ।'

शिशिरकुमार बोले, 'शरत् ! चतुर्थ

आयाम है, यह बात स्वीकार लो, फिर तो इस अगम्य बात का रहस्य फोड़ने में तुम समझ जाओगे। इन खेलों के रहस्य का ही पता पाओगे, यही नहीं, परन्तु हमारे शास्त्रों में ऋषि-मुनियों तथा वेदों के तिरोधान हो जाने संबंधी और इस प्रकार की बातें लिखी गयी थीं, जो जिन्हें आज के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग सृष्टि के नियमों के यथार्थ ज्ञान से रहित होने के कारण, वहम और गप्पें ही मान रहे हैं, इन सब बातों का रहस्य तुम्हें इस रूप से समझ में आ जायेगा ।'

इसके बाद अपने भाई के साथ, जो विषय-संबंधी प्रसंगों पर मेरी जो बातें होती रहीं, वे सब अब सविनय लिखकर मैं पाठकों को कष्ट देना नहीं समझता । सिर्फ थोड़े में यही कहना चाहता हूं कि मेरे भाई चतुर्थ आयाम के अस्तित्व के बारे में मुझे यकीन नहीं हो पाये थे, और यही वजह है कि मैं बार-बार ऐसे मिथ्या प्रयत्न में आयुष्य का नष्ट करने के लिए सविनय विनती करता रहा, फिर भी मेरे भैया ने चतुर्थ आयाम की खोज का अपना प्रयत्न जारी रखा, वे अपने एकान्त पूजाघर में ही विनय के अधिकतर समय बिताते थे और अपने इस प्रयत्न में लीन रहते थे। वे साधनों के माध्यम से वे अपनी इस खोज में लगे हुए थे, यह उन्होंने मुझे स्पष्ट नहीं बताया था । वे सिर्फ यही कहते 'शरत् ! जब मैं अपने प्रयत्न में नि

होंगा और चतुर्थ आश्रम के अस्तित्व का तुम्हें प्रत्यक्ष प्रमाण दे सकूंगा, तभी किन साधनों के माध्यम से मैं अपनी इस खोज में लगा हूँ, यह तुम्हें स्पष्ट रूप से बता दूँगा।

आया हूँ, तो मेहरबानी करके आप उस पर ध्यान दीजियेगा।

यों दिन गुजरते रहे और १८६० के अस्त की १८ वीं तारीख आ पहुँची। उस दिन रात में जब वे अपने पूजाघर में अपने साधनों से काम में खो जाने के बगल से गये, तब हमारी जमींदारी से निवृत्त, दूसरे दिन कोर्ट में निकलने वाले एक काम संबंधी कुछ खुलासा पाने के लिए मैं उनके पीछे-पीछे गया।

वे बोले : 'अरे मैं अब समझा, तुम्हें मेरी बात सच नहीं लग रही, पर इस बार, बजाय बातों के मैं प्रयोग के द्वारा ही तुम्हें यकीन दिलाऊंगा। मैंने तुमसे पहले कहा था न कि एक बार मुझे इसका अनुभव हुआ नहीं कि मैं तुम्हें वह प्रत्यक्ष दिखाऊंगा ही।' यह कहकर अपना हाथ ऊपर को उठाकर वे बोले, 'देखो, शरत् ! इस ओर नज़र डालो। चतुर्थ आयाम इस ओर है।'

जैसे ही मैंने पूजाघर में प्रवेश किया, वे एकदम आवेश में आकर कहने लगे— शरत् ! आज मैं तुम्हें एक खुशी की वर देना चाहता हूँ। मैंने चतुर्थ आयाम का आविष्कार कर लिया है !'

कुछ खटाक की-सी आवाज़ मैंने सुनी और कलाई के आगे का उनका हाथ अदृश्य हो गया, कलाई के ऊपर का कंधे तक का उनका हाथ मैं स्पष्ट देख रहा था, पर कलाई के नीचे का पूरा पंजा उंगलियों सहित गायब हो गया था।

बपने भाई का दिमाग शायद ठीक न हो, इस आशंका से भयभीत होकर मैंने शिराता से कहा, 'भैया ! मेहरबानी करके कुछ शांत हो जाइये।'

कुछ विस्मित होकर मैंने कहा, 'मैं आपकी कलाई नहीं देख पा रहा हूँ, बड़ी युक्ति प्रयुक्त की है। मानो पूरी कलाई अदृश्य हो गयी हो, ऐसा ही लगता है।'

उन्होंने फिर आवेशपूर्वक कहा : 'शरत् ! मैं तुमसे सच कह रहा हूँ कि आज बहुत बड़ा भेद खुल गया है। नयी सृष्टि में अंश करने का द्वार आज मैंने पा लिया है।' मैंने उन्हें शांत करते हुए कहा, 'भैया ! चतुर्थ आयाम का अस्तित्व आपको प्रत्यक्ष हो गया होगा; और इस बात से मैं निश्चय हुआ हूँ और अब मैं विनती करना चाहता हूँ कि एक महत्त्वपूर्ण काम को

वे बोले : 'शरत् ! ठीक से ध्यान देकर देखना, मैं अपना हाथ, तुम उसे पूर्णतया देख सको, वैसे आयाम में वापस लौटा लाता हूँ।'

१९८१

उनका हाथ पुनः दिखायी दिया, और मैंने पुनः एक तरह की विशिष्ट खटके की-सी आवाज़ सुनी।

(शेषांश पृष्ठ ११८ पर)

छलछल शिखरों से
घाटी में बहते आते जल की
छुलछुल से
छुल जी जाती है शिला
उभरती आती है साकार तरलता
केवल शिल्पी ही नहीं है
जल प्रतिमा भी है !

सूखे होंठ, कंठ में कांटे से उग आये
जल रहे प्राण
देह प्यासी है धधकती एक आर्त्त पुकार
मस्थल में

प्यास बाहर के जल की खातिर
भीतर के जल की आकुलता है
केवल नर ही नहीं है
जल नारायण भी है !

प्रलयंकर झंझाचक्र जलों के
सागर तल से शिखरों तक
सब कुछ लील जाये
फुंकारें जल की क्रुद्ध
युद्ध जल का जल से
धीरे-धीरे सब कुछ
अपने में बैठ जाये
और फिर उग आता है कमल
केवल विलय नहीं है
जल व्यक्ति भी है !

सज्जा : ठाकोर राणा



तुम कहां होती हो ?

हवाएं सांसों की अधीरता में

कसमसाती हैं

वनस्पतियां त्वचा की कामना में

सुगबुगाती हैं

अपने मूल को पाने बेचैन प्राणों में

छटपटाता भटकता है जल

समूची सृष्टि

तुमको थाम लेने

एक देह उदग्र

तुमको घेर लेने

एक हहराती लपट आकुल !

तब तुम कहां होती हो

अपने ही लिए

समूचे अस्तित्व की इस तड़प को

एक लय करती हुई

तुम कहां होती हो ?

[३]

एक आग पेड़ में है

एक बर्फ में

आग में आग घुलती है

जलती है

जल हो जाती है

आग में आग रच-बस जाती है

फूटती है

खिल आती है

कोई दहक है हर फूल

महकती, खिलखिलाती दहक !

—मुथारों की बड़ी गुवाड, बीकानेर (राज.)



मैंने कहा, 'हां, मैं अब आपकी कलाई फिर से देख रहा हूं। आप यह किस तरह कर रहे हैं? कैसा अद्भुत हस्तकौशल है!'

मेरे ये शब्द सुनकर वे एकदम क्रुद्ध हो उठे और कहने लगे : 'शर्त्त ! क्या तुम इसे सिर्फ हस्तकौशल ही कहते हो? मैं तुमसे स्पष्ट कहे देता हूं कि यह हाथ-चालाकी बिल्कुल भी नहीं है। मैं अपना हाथ सिर्फ चतुर्थ आयाम में ले जाता हूं। शास्त्र और अनुभव से सिद्ध, ऐसी बात को तुम हस्तलाघव समझने की मूर्खता न करो।'

पल-भर बाद कुछ अधिक शांत होकर वे बोले : 'फिर भी इस समय तुम यहां उपस्थित हो, इस बात की मुझे प्रसन्नता है, क्योंकि आज मैं पहली ही बार समग्र शरीर के साथ चतुर्थ आयाम में प्रवेश करना चाहता हूं और इसी से ऐसे नास्तिकता प्रधान समय में यह चमत्कार देखने के लिए तुम यहां उपस्थित हो, यह बहुत ही अच्छा हुआ। चतुर्थ आयाम में संपूर्ण शरीर के साथ प्रवेश करके, तुम्हें पूरा यकीन दिलाने के बाद, किन साधनों द्वारा मैं उसमें प्रवेश करने के लिए सफल हो सका, इत्यादि सब बातें मैं तुम्हें यथाविधि समझाऊंगा।'

उनके ये शब्द सुनकर मेरा हृदय एकदम से अत्यन्त भयभीत हो उठा।

मैं जोर से चीख पड़ा : 'ऐसा न करियेगा, परमेश्वर के लिए ऐसा न करियेगा।'

नवनीत

कहते हैं, 'मैं अवश्य ऐसी करूंगा और तुम ठीक से लक्ष्यपूर्वक धानी बरतते हुए देखते रहना।'

एक पल-भर रुककर वे बोले, 'अब।'

मैं उनकी ओर देखता रहा, इतने तो वे अदृश्य हो गये—मेरी दृष्टि के धारों से वे केवल अलोप हो गये, और उस क्षण जोर से एक धमाके की आवाज घर में गरज उठी, मेरे तो होशोहवास गायब हो गये।

मैं भय से चिल्ला उठा, 'बड़े भय बड़े भैया ! आप कहां हैं?' मैंने भय से आकुल स्वर सुना : 'शर्त्त ! शर्त्त ! जल्द आओ, मुझे पकड़ो, पकड़ो, मैं वापस आ पा रहा हूं। मैं घसिटा जा रहा हूँ। दौड़ो, मुझे पकड़ो, देखो ! मैं यह खा आओ, इधर, देखो इस ओर !'

उनके हाथ मुझे पल-भर को छूते हुए। उन्होंने कसकर मुझे पकड़ लिया पर दूसरे ही क्षण इतने अपार बल से खिंच गये कि खींचातानी में मेरे कुर्ते के धज्जियां उड़ गयीं। फिर मैंने उनका हाथ देखा, पर इस बार वह खिड़की के बराबर था। मैं उस ओर लपका, और उसी समय कमरे के दरवाजे तोड़कर कुछ लोग घुस आये।

उस क्षण के बाद मुझे अपने बड़े भैया के दर्शन कभी भी नहीं हुए हैं। चतुर्थ आयाम में प्रवेश करने के बाद उनका हाथ हुआ, किस कारण से प्रवेश करने के

वे वापस न आ सके, हाल वे जिन्दा हैं या नहीं?—ये सब ऐसे गूढ़ प्रश्न हैं कि इस संसार के मनुष्यों को, इनका समाधान होता संभव नहीं है। फिर भी, मैं स्वयं अब तो अल्पावधि में मृत्यु के अधीन होनेवाला हूँ, इससे मुझे तो उनका स्पष्टीकरण देना होगा।

हां, अब मुझे अपनी मौत पास ही लग रही है। कलम पकड़ने की सामर्थ्य अब मुझमें नहीं है, फिर भी अब मैं एक वाक्य लिख रहा हूँ। शिशिरकुमार का स्मरण पुनः मैंने सुना है। वे मुझे पुनः दिख रहे हैं। 'हां, बड़े भैया ... मैं ... आपका स्मरण ... सुन रहा हूँ। मैं आ रहा हूँ—अरे मृत के अंधे, अज्ञानी लोगो! चतुर्थ

आयाम का अस्तित्व है'

शिशिरकुमार की वहन सुमति की पूर्वोक्त लेख पर टिप्पणी—

'मैं अपने दुःखी भैया की मृत्युशैया के पास जब प्रातःकाल गयी, तब ऊपर का विलक्षण लेख उनकी शैया के पास पड़ा हुआ था। लेख में अंतिम 'है' के बाद दो-तीन शब्द और भी लिखे हुए हैं, पर वे विलकुल समझ में नहीं आ रहे हैं। लिखते-लिखते ही मेरे भैया की मृत्यु हुई, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है।

मेरे भैया शिशिरकुमार की हत्या करने का महापाप उसने किया था या नहीं, इसका निर्णय मैं पाठकों पर छोड़ती हूँ।

अनुवाद : ज्योत्सना मिलन



गरीब

कठोर मेहनत-मजदूरी करने के बावजूद गोपाल सिंह का गुजारा नहीं हो पाता था, आमदनी कम थी और बढ़ रही महंगाई के कारण वह बच्चों की किताबें, कापियां और फीस का खर्च पूरा नहीं जुटा पाता था। हर समय कर्ज से दबा रहता था। पत्नी की सलाह मानकर वह फीस माफ कराने के इरादे से हेडमास्टर साहब को मिला और फीस माफ करने के लिए प्रार्थना की। हेडमास्टर ने उसे तरीका बताया—

'आप ऐसा कीजिये, एक प्रार्थना-पत्र इस प्रकार का लिखकर लाइये कि मैं बहुत गरीब आदमी हूँ।'

'पर... हेडमास्टर साहब, यह बात मैं कैसे लिख सकता हूँ।'

'क्यों? कोई कठिनाई है?'—हेडमास्टर ने विस्मित होते हुए यह बात कही। हेडमास्टर साहब, गरीब तो वे होते हैं, जिनके हाथ-पैर नहीं, भीख मांगकर गुजारा करते हैं। ईश्वर ने मुझे हूण्ट-पुण्ट शरीर दिया है, जिससे मैं कठोर मेहनत-मजदूरी करता हूँ। मुझे कैसी गरीबी? है न?'

.... और बिना हेडमास्टर की बात सुने हुए वह कमरे से बाहर आ गया—पूरे आत्मसम्मान के साथ।

—पांछी ननकानवी (पंजाबी लघुकथा—अनु : सुरजीत)



नारी कब तक अबला

□ वन्दना

शायद पुराकाल से नारी अबला के विशेषण से दूषित या विभूषित होती चली आ रही है। लेकिन प्राचीन भारत की नारी नर से किसी भांति कम न होती थी। 'यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प व्यपोहति'—मैं उसी के साथ विवाह करूंगी, जो मुझे संग्राम में हरा दे, मेरा दर्प चूर कर दे, की आवाज भी भारत में ही सुनायी दी थी। लेकिन आज के भीषण युग से आखें चार होते ही स्त्री की उस गरिमामय मूर्ति की कल्पना भी आशातीत प्रतीत होती है। बीसवीं शताब्दी के इस काल में स्त्रियों को अबला कहना अनुचित होगा। शायद अधिक उचित होगा अबलातम कहना। आज नारी अपने आप को असहाय, निरुपाय अनुभव करती है, शायद पहले नहीं करती रही होगी। जनसाधारण की तो बात ही छोड़िये, अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे सभ्रान्त लोगों का मत भी यही है कि नारी इस समाज में अकेली किसी तरह नहीं रह सकती, उसे आश्रय के लिए हमेशा किसी पुरुष की टेक लेनी पड़ेगी।

आज विवाह नारी-जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया है। कुंवारी स्त्री सभ्य समाज में तिरछी नजरों से देखी जाती है और स्त्रियों पर पुरुषों के अत्याचार इतने बढ़ गये हैं कि अखबारों में स्त्रियों पर बलात्कार के समाचार तो दैनिक

घटनाएं बन गये हैं। सनसनीखेज बातें सुनकर बार-बार यही प्रश्न मन को अतक मथता चला जाता है कि क्या नारी सचमुच इतनी अबला है? और कितना छिपा है इन अत्याचारों का समाधान? आखिर यह आतंक, यह भय कब तक छाया रहेगा? आप महानगरों में जाइये या बागपेट जैसे स्थानों पर, दोनों तरफ ऐसा ही वातावरण है।

लेकिन क्या सारा दोष पुरुष का है? कहते हैं एक हाथ से ताली नहीं बजा करती। यहां भी हम पुरुषों के मत्थे सारा दोष मढ़कर नारी को ही अबला कहकर हाथ-पर-हाथ धरकर बैठ सकते। और फिर हल भी तालका नहीं, चिरस्थायी खोजना होगा।

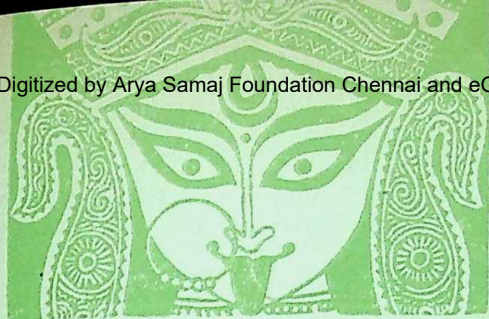
वस्तुतः हमारा स्त्री-पुरुष संबंधी दृष्टिकोण ही मूल रूप में वेदंगा हास्यास्पद है। किसी सच्चे समाधान निकट जा पाने के लिए हमें समस्या जड़ों तक उतरना होगा।

श्रीमां ने समय-समय पर नारी समस्या के विभिन्न पहलुओं के बारे में काफी कुछ कहा है। इतने उनके पारस्परिक सम्बन्धों की स्पष्ट मिलती है। अपने एक लेख में कहती हैं:

'मैं आज स्त्रियों की समस्या के

नवनीत

१२०



निर्णय किया और उसी ने उस निर्णय को चरितार्थ करने के लिए स्त्री-सत्ता को जन्म भी दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि स्त्री-सत्ता के बिना सृष्टिकार्य नहीं हो सकता, तो पुरुष-सत्ता के प्रारंभिक निश्चय के बिना स्त्री-सत्ता का आविर्भाव भी नहीं हो सकता।

‘निश्चय ही यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या यह व्याख्या अत्यधिक मानवीय नहीं है। किन्तु सच्ची बात यह है कि समस्त व्याख्याएं ही जो मनुष्य कर सकता है, कम-से-कम अपने बाह्य-स्वरूप में, अवश्य ही मानवीय होंगी। कारण, कुछ असाधारण व्यक्ति उस अज्ञेय और अचिंत्य की ओर अपनी आध्यात्मिक चढ़ाई में मानव प्रकृति से ऊपर जा सकते हैं तथा अपनी खोज के ध्येय के साथ, एक उच्च तथा एक प्रकार की अकल्पनीय अनुभूति में एक हो सके हैं, किंतु ज्योंही उन्होंने अपनी उपलब्धि से दूसरों को लाभ पहुंचाना चाहा, उन्हें उसे सूत्र-बद्ध करना पड़ा और उनके सूत्र को ग्राह्य बनने के लिए मानवीय और प्रतीकात्मक होना पड़ा।

‘फिर भी यह प्रश्न किया जा सकता

है कि क्या ये अनुभव और इनके द्वारा प्रदर्शित सत्य प्रधानता के उस भाव के लिए उत्तरदायी हैं, जो पुरुष स्त्री के प्रति हमेशा बनाये रखता है, या इसके विपरीत सामान्यरूप से प्रचलित यह प्रधानता का भाव ही अनुभूतियों के उस सूत्रबद्ध रूप के लिए उत्तरदायी है।

‘बहरहाल, यह तथ्य तो निर्विवाद ही है कि पुरुष अपने आपको बड़ा समझता है तथा अपना प्रभुत्व जमाना चाहता है, उधर स्त्री अपने-आपको उत्पीड़ित अनुभव करती है और फिर परोक्ष या अपरोक्ष-रूप में विद्रोह करती है। और इन दोनों का यह झगड़ा युग-युग से चला आ रहा है, यह मूल में एक ही है, पर अनगिनत रूप-रंगों में प्रकट होता है।

‘यह तो मानी हुई बात है कि पुरुष सारा दोष स्त्री पर थोपता है और उसी प्रकार स्त्री सारा दोष पुरुष पर थोपती है। पर वास्तव में दोष समान रूप से दोनों का मानना चाहिये और दोनों में से किसी को भी अपने-आपको दूसरे से बड़ा मानने का गर्व न करना चाहिये। बल्कि जब तक प्रधानता और हीनता का यह विचार दूर नहीं कर दिया जायेगा, तब तक कोई भी वस्तु या कोई भी व्यक्ति इस भ्रांति को दूर नहीं कर सकेगा, जो मानव जाति को दो विरोधी शिविरों में बांट देती है, और न तब तक समस्या का कोई समाधान ही हो पायेगा।

‘इस समस्या पर बहुत-कुछ कहा और

लिखा गया है। इस पर इतने दृष्टिकोणों का विचार किया गया है कि इसके सब पर्याप्त न होगा। साधारणतया पुरुष बहुत अच्छे होते हैं और हर एक के अपने-अपने गुण भी होते हैं, किंतु व्यवहार में ये उतने सुखदायक नहीं सिद्ध होते मुझे नहीं मालूम कि सफलता के सार में हम पाषाण-युग से कुछ आगे बढ़े हैं या नहीं। कारण, पारस्परिक संबंध में पुरुष और स्त्री एक-दूसरे के पूरी तरह निरक्षर स्वामी और साथ ही कुछ दयनीय दास भी हैं।

‘हां, सचमुच दास! क्योंकि जब तक मनुष्य में इच्छाएं हैं, अभिरुचियां हैं, आसक्तियां हैं, तब तक वह इन वस्तुओं का और उन व्यक्तियों का भी दास है जिन पर वह इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए निर्भर रहता है।

‘अतएव, स्त्री पुरुष की दासी इसीलिए है कि वह पुरुष और उसके बल के प्रति आकर्षण अनुभव करती है, उसके अंतर्गत घर बसाने की इच्छा होती है, वह घर प्राप्त होनेवाली सुरक्षा को चाहती है और अंत में उसके अंदर मातृत्व के भाव मोह भी होता है। इधर पुरुष भी स्त्री का दास है, अधिकार-भावना के कारण शक्ति और प्रभुत्व की तृष्णा के कारण काम-वासना की इच्छा के कारण विवाहित जीवन की छोटी-मोटी सुविधाओं के प्रति आसक्ति के कारण

मां, तुम पर होने वाले बलात्कार
में, हम सब शामिल हैं, जो पुलिस
और सैन्य के संरक्षण में अपने-
अपने व्यस्त स्वार्थों का व्यापार
चला रहे हैं ...



इसलिए कोई भी कानून स्त्री को तब
तक बंधनमुक्त नहीं कर सकता जब तक
वह स्वयं ही बंधनमुक्त न हो जाय। इसी
कारण पुरुष भी अधिकार जमाने की
आदतों के होते हुए तब तक, दासता से
मुक्त नहीं हो सकता, जब तक वह अपने
बंदर की सारी दासता से मुक्त न हो जाय।

‘यह गुप्त संघर्ष की अवस्था, जिसे
किसी कोई स्वीकार नहीं करता, किंतु
जो अच्छे-से-अच्छे दृष्टांतों में भी सदा
अवचेतन में उपस्थित रहती है, तब तक
निर्वाय प्रतीत होती है, जब तक मनुष्य
पूर्ण चेतना के साथ तादात्म्य स्थापित
करने के लिए, सर्वोच्च सत्ता के साथ एक
होने के लिए, अपनी सामान्य चेतना से
ऊपर नहीं उठ जाते। कारण, जब तुम
इस उच्च चेतना को प्राप्त कर लेते हो

तो देखते हो कि पुरुष और स्त्री का भेद
केवल शारीरिक भेद रह जाता है।’

शायद जनसाधारण के लिए ये बातें
आकाश कुसुम-सी हों और वे कहें उठें कि
ये सब निरी आध्यात्मिक बातें हैं, हमें तो
कुछ ठोस उपाय चाहिये। लेकिन अपने
उसी लेख में श्रीमां अन्त में कहती हैं :

‘जो भी हो, जब तक एक ऐसी नयी
जाति को, जिसे प्रजनन की आवश्यकता
के अधीन होने की जरूरत न हो और जो
सत्ता के दो पूरक लिंगों में विभाजित होने
के लिए बाध्य न हो, उत्पन्न करने के लिए
प्रकृति को प्रेरित करने वाला नया विचार
एवं नयी चेतना प्रकट नहीं हो जाते, तब
तक वर्तमान मानवजाति की उन्नति के लिए
अधिक-से-अधिक यही किया जा सकता है
कि पुरुष और स्त्री दोनों के साथ पूर्ण समा-

नता का व्यवहार किया जाय, दोनों को एक ही शिक्षा तथा प्रशिक्षा दी जाय तथा दिव्य सत्ता के साथ, जो समस्त लिंगभेदों से ऊपर है, संपर्क स्थापित करके समस्त संभावनाओं और समस्त समस्वरताओं के उद्गम को प्राप्त किया जाय ।'

आज नारियों की समस्या ने इसलिए विभीषिका का रूप ले लिया है कि शुरू से ही पुरुष ने उसे खिलौना समझा, अपनी उंगली पर नचाया, अपने इशारों पर चलाया, समाज में कहीं, किसी भी क्षेत्र में उसे ऊपर उठने का अवसर न दिया गया । उसे मनुष्य ने केवल खाना पकाने और बच्चे पैदा करने की मशीन समझा और वह आपाद मस्तक परतन्त्र बन कर पुरुष की इस्पाती बेड़ियों में जकड़ती चली गयी । और अपना महिमामय नारीत्व खो बैठी ।

ऊपरी दृष्टि से कुछ क्यों न लगे केवल स्त्री ही अबला नहीं पुरुष भी समान रूप से निर्बल है । पुरुष मार-पीट करता है, स्त्रियों पर बलात्कार करता है, यह उसके बल का नहीं, उसकी दुर्बलता का, सामान्य मानव से नीचे स्तर की पाशविकता का, लक्षण है । स्वामी दयानन्द अत्याचार करने और अत्याचार सहने को समान रूप से पाप गिनते थे । पुरुष का नारी के पैरों पर गिरना या उस पर जोर दिखाना दोनों समानरूप से उसकी पाशविक दुर्बलता के, उसकी दासता के दो रूप हैं । किसी ऐसे ही अवसर पर श्रीमां ने अपने

अद्भुत ढंग से कहा है :

दासता

जब तक कि स्त्रियां अपने-आप स्वतंत्र न करें तब तक कोई कानून स्वंतंत्र नहीं कर सकता ।

कौन-सी चीज़ है, जो उन्हें बरनाती है ?

(१) पुरुष और उसके बल के आकर्षण ।

(२) घरेलू जीवन और सुखा कामना ।

(३) मातृत्व के लिए आसक्ति अगर स्त्रियां इन तीन दासताओं मुक्त हो सकें तो वे सचमुच पुरुषों बराबर हो जायेंगी ।

पुरुष की भी तीन दासताएं हैं :

(१) स्वामित्व की भावना, और आधिपत्य के लिए आसक्ति ।

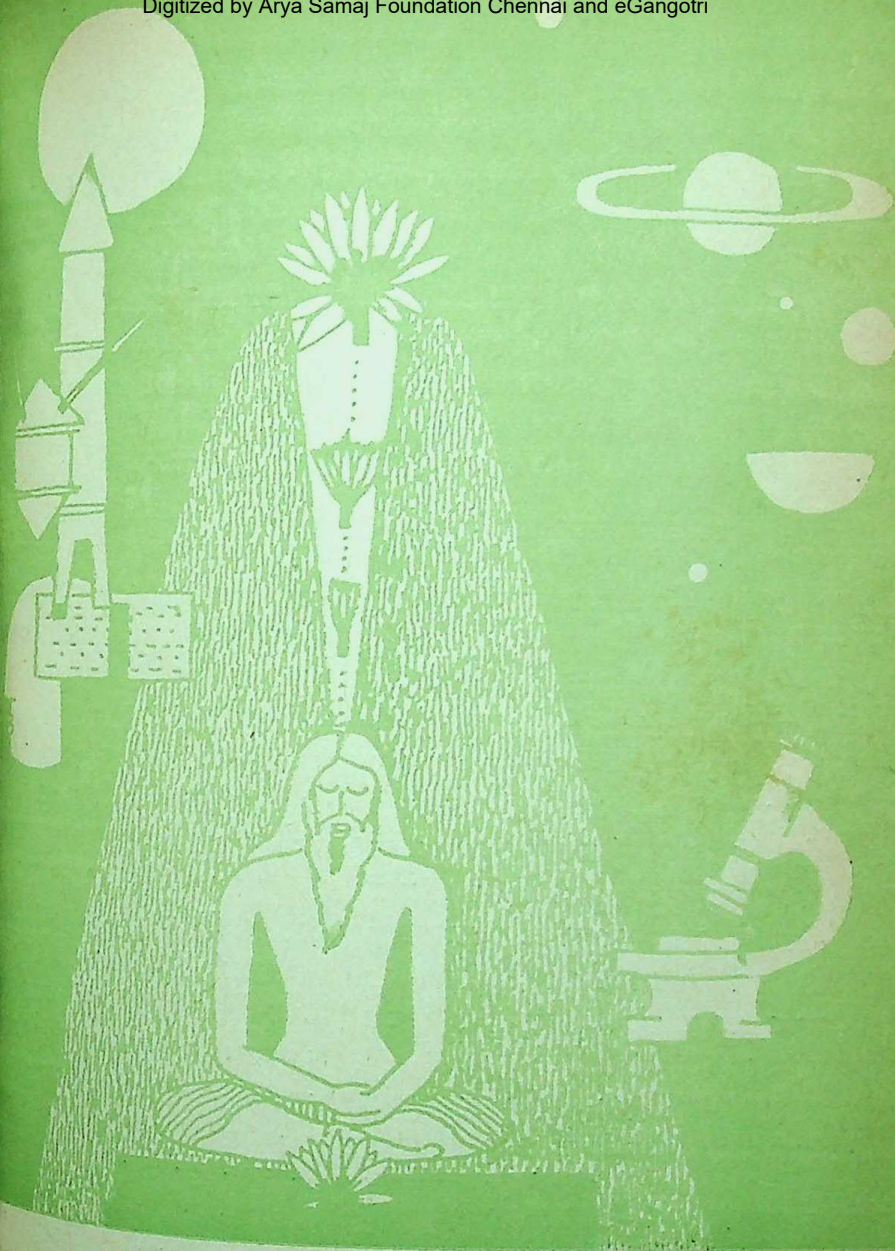
(२) नारी के साथ लैंगिक संबंध इच्छा ।

(३) विवाहित जीवन की मोटी सुविधाओं के लिए आसक्ति ।

अगर पुरुष इन तीन दासताओं मुक्ति पा लें, तो वे सचमुच स्त्रियों बराबर हो जायेंगे ।

आज नर-नारी में उस सच्चे की आवश्यकता है, जो स्थिति को बना सके । श्रीमां कहती हैं - 'यदि नारी में सहयोग हो तो ये एक-दूसरे दोषों की एक हद तक क्षतिपूर्ति कर (शेषांश पृष्ठ १४३ पर)

अपने-आप
कानून के
उन्हें
बल के
र सुरक्षा
आसक्ति
दासताओं
च पुरानों
ताएं हैं
वता, शक्ति
सक्ति।
गक संबंध
की वंदे
आसक्ति
दासताओं
च स्त्रियों
सन्धे सह
पति को
- यदि
एक-दूसरे
पुति कर
पर)



मौलिक तत्त्व-चिन्तक मुनिश्री अमरेन्द्र विजयजी कृष्ण

अध्यात्म और विज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आंधी आने से पहले भेड़ों को टोले के पीछे चले जाने का पूर्व-सूचन कौन करता है? वर्षा की प्रत्येक बौछार से पूर्व, आश्रयस्थान ढूँढ लेने की प्रेरणा कछुए को कहां से मिलती है?

यह अन्तःप्रेरणा ('इन्स्टिंकट' या 'इन्ट्यूशन') कैसे पैदा होती है, यह विज्ञान के लिए एक समस्या है, जिसका समाधान पाने के लिए आज वह मंथन कर रहा है।

मानव भी, बिना किसी भी प्रकार की पूर्व-विचारणा अथवा तर्क के, अकस्मात् ही हो जाने वाले ज्ञान की ऐसी झलक का अनुभव करता है। राइन ने अपनी पुस्तक 'हिडन चैनल्स ऑफ द माइंड' में ऐसे अनेकानेक दृष्टान्तों का संग्रह किया है। उनमें से एक-दो दृष्टान्त हम यहां देखें।

६ अगस्त, १९४५ को एक अमरीकी सहसा नींद से जागकर अपनी पत्नी से बोला, 'तीन महीने बाद, बेयोन नाम की जगह में एक बड़े धमाके के साथ लाखों गैलन गेसोलीन जल उठेगा, जिससे बहुत से लोगों की जान खतरे में पड़ जायेगी। सावधानी बरतने पर, यह दुर्घटना टल सकती है।'।

इससे पहले, इस आदमी को यह भी पता नहीं था कि बेयोन जगह आखिर है कहां? अपने बेटे से उसे पता लगा कि कि बेयोन न्यूजर्सी राज्य में है, और वहां स्टैंडर्ड ऑइल कम्पनी की रिफाइनरी है। जब रिफाइनरी के प्रबंधकों को इसकी सूचना दी गयी, तो उन्होंने इस पूर्व-

सूचना के लिए आभार माना। पुना सावधानी के लिए योग्य कदम उठाया नहीं, ६ नवम्बर को यह भविष्य सच निकली, और यह पूर्व-घोषित घटना घटी।

लंदन की पुरानी पुस्तकों की दुकान पर राफेल हर्स्ट नामक एक पत्रकार की भेंट एक अज्ञात भाग से हुई। शीघ्र ही, यह परिचय संबंध में बदल गया। एक दिन भारतीय ने पत्रकार महोदय से कहा, 'एक दिन तुम सच्चे योगियों की खोज में भारत की यात्रा करो।' इसकी अंतःस्फुरणा हुई थी। अन्तःस्फुरणा की शक्ति कैसे प्राप्त की जाये, अपने गुरु से सीखा है।

समय बीतने पर यह बात सच हुई। वह पत्रकार भारत आया उसने श्री रमण महर्षि के चरण आश्रय लिया, और उनके पास और आत्मविचार की दीक्षा ली।

भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित 'योगिक पावर्स एण्ड गॉड रियलम' के लेखक वी. एम. भट्ट ने अनेक समकालीनों का वर्णन किया है। अन्तःस्फुरणा की शक्ति प्राप्त है, दूसरों को उसका पता नहीं चले। पुना निवासी श्री मीटकर के अतीन्द्रिय-शक्तियों की जांच-पड़ताल उनका समर्थन अनेक पाश्चात्य ने किया है, बारे में श्री भट्ट

मैंने उनके बारे में जगन्नाथपुरी के श्री
 अंकराचार्य से सुना था। मेरे कहने पर
 मुना में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक प्रोफेसर
 एन. जी. दामले, श्री करपारकर और श्री
 वक्षी के साथ मिले, और उनकी शक्तियों
 का परिचय प्राप्त करने की अपनी इच्छा
 व्यक्त की। मृदोल में स्थित श्री वक्षी के
 घर और उसके पास के घरों और उनम
 लो नामा का यथावत् वर्णन कर, उन्हें
 ज्ञानार्थ में डाल दिया, क्योंकि श्री मीटकर
 ने जो जीवन बीमा निगम में एक अधि-
 कारी हैं, यह प्रदेश कभी नहीं देखा था।
 जब 'एसोशियेटेड प्रेस ऑफ अमेरिका'
 के एम. जी. सेतुरामन् और 'नेशनल
 बुक' के रामराव श्री मीटकर से पहली
 बार मिले, तब भी उन्होंने इन दोनों
 घरों के घरों का तथा उनमें रहने
 वालों का सही वर्णन कर इन दोनों को
 प्रेरित कर दिया।

विश्व ज्ञानशक्ति

श्री 'योगी हस्तायता साविध्यमा' नामक
 पुस्तक में गुजराती के प्रख्यात कवि
 रामरत्न दवे ने 'त्रिकुटी भेद' से प्राप्त
 ज्ञान की एक आखों देखी घटना का
 वर्णन किया है। एक स्टेशन मास्टर की
 पत्नी की लड़की की सर्पदंश से मृत्यु
 की थी दवे की उपस्थिति में वह स्टेशन
 मास्टर योगी के पास आया। उसका
 काम करने के उद्देश्य से उस योगी
 की लड़की के सर्पदंश की पूर्व भूमिका
 का दृश विवरण प्रस्तुत कर सबसे पहले

अपने ज्ञान की यथायता की प्रतीति लड़की
 के पिता को करायी। उसके पश्चात्
 उस लड़की के गत जन्म का वृत्तान्त कह-
 कर, उसके भावी जन्म का भी भविष्य-
 कथन किया, जो समय बीतने पर अक्षरशः
 यथार्थ सिद्ध हुआ।

अपनी शक्ति के रहस्य का उद्घाटन
 करते हुए, इन योगी महोदय ने बताया
 था, 'गुरु महाराज की कृपा से त्रिकुटी
 भेद हुआ। तब तीन वस्तुएं एक साथ
 मिलीं : स्वतंत्रता, स्वानन्द और सहज
 ज्ञान।... किसी भी वस्तु पर ध्यान केंद्रित
 करने पर उसके रहस्य का अनायास ज्ञान
 मुझ पर प्रकट होने लगा। किसी व्यक्ति
 को देखूं, तो उसका सारा जीवन मेरे
 सामने खुल जाये। किसी वस्तु को देखूं,
 तो उसका इतिहास ज्ञात हो जाये।
 किसी वनस्पति को देख तो उसके गुण-
 धर्म अंतर में प्रकट होने लगें।'

यह ज्ञान बिना किसी भी इन्द्रिय की
 सहायता के होता है। इससे इस शक्ति
 को आधुनिक परामनोविज्ञान ने 'एक्सट्रा
 सेन्सरी पर्सेप्शन' (ई. एस. पी.) नाम
 दिया है। अंग्रेजी में इसके लिए सामान्यतः
 'क्लेरवायन्स', 'टेलीपैथी' और 'इन्ट्यूशन'
 नाम प्रचलित हैं।

इस ज्ञान के वैज्ञानिक संशोधनों के
 प्रमुख संचालक जे. वी. राइन का कहना
 है, 'मानव के अंदर अतीन्द्रिय ज्ञान शक्ति
 मौजूद है, यह एक निर्विवाद वास्तविकता
 है।... इस बारे में निरन्तर अन्वेषण हो

आध्यात्मिक मान्यताओं को वक्र दृष्टि से देखकर, गौरव अनुभव करने वाले अतिरिक्त, श्रद्धालु समझे जाने वाले वर्ग में भी मानव के चन्द्रमा के घरातल पदार्पण करते ही, एक प्रश्न उठने लगा था कि कौन सच्चा-विज्ञान या धर्म ?

आज एक ऐसा वर्ग खड़ा होता जा रहा है, जो आध्यात्मिक तथ्यों के प्रति आदरभाव और जिज्ञासावृत्ति रखते हुए भी विज्ञान की उपलब्धियों से चौंधिया आध्यात्मिक तथ्यों पर विश्वास करने में हिचकिचाता है। ऐसे लोगों की बुद्धि समाधान मिले, और नयी पीढ़ी को आत्मा के अस्तित्व, पुनर्जन्म, परलोक और जैसे धर्मश्रद्धा के आधारभूत तथ्यों में विश्वास पैदा हो, यह आज की आवश्यकता।

पूज्य मुनिश्री अमरेन्द्र विजयजी ने वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रकाश में आत्मा, पुनर्जन्म, देह व आत्मा का संबंध, सुख-समृद्धि का मूल स्रोत आदि विषयों पर विचार और अध्यात्म का समन्वय स्थापितकर, वर्तमान पीढ़ी के लिए अध्यात्म-प्रचिंतन-सामग्री प्रस्तुत करते हुए, एक नया संदेश दिया है।

विश्वास है कि इस पुस्तक के परिशीलन से नयी पीढ़ी का धर्मश्रद्धारहित, परंतु स्थ दृष्टि से विचार करने वाला वर्ग आध्यात्मिक तथ्यों का यथार्थ मूल्यांकन कर दृष्टि प्राप्त कर सकेगा, श्रद्धालु युवा-वर्ग अपना श्रद्धादीप अधिक सतेज कर का अनुभव करेगा, और अपनी यह श्रद्धा अपने मित्रों में गौरवपूर्वक व्यक्त कर आत्मविश्वास भी प्राप्त करेगा।

रहे हैं, और कई क्रांतिकारी शोध हुए हैं, जो पुराने सिद्धांतों और रुढ़ मान्यताओं को झकझोरते हैं। अतीन्द्रिय ज्ञान से संबंधित तथा इस सिद्धांत के साथ मेल नहीं खाते कि मानव मात्र भौतिक तत्त्वों से बना है।'

ये संशोधन, जिनमें स्थूल शरीर से निकलकर सूक्ष्म शरीर में जाने और पुनर्जन्म के सिद्धांतों आदि का भी समावेश है, जड़वादी पाश्चात्य मानस में जबर्दस्त परिवर्तन लाते जा रहे हैं। ये संशोधन आदमी को कहां ले जायेंगे, आज इसकी

कल्पना करना भी कठिन है। 'दि डिंग ऑफ द थर्ड आई' में वेरा आल्डर ने कहा है, 'अब तो जो हुआ है, उनसे यह संभावना बन रही है कि वैज्ञानिक आविष्कार और ज्ञानी पुरुषों के वचन एक दूसरे जायेंगे। इन दोनों में जो अंतर देता है, वह मात्र शाब्दिक निरूपण है। ये प्रयोग विज्ञान-जगत में इस उद्घोष कर रहे हैं कि शरीर के बाद भी कुछ रह जाता है, जिसका कभी नहीं होता, जो अनीश्वर है।'

करने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं का

उत्पादन है ?

किन्तु, विज्ञान की एक शाखा, जिसे जीवविज्ञान (बायोलॉजी) के नाम से जाना जाता है, कहती है कि शरीर में स्वतन्त्र चेतना जैसी कोई वस्तु नहीं है। इसका धारणा है कि चेतना किसी विशिष्ट रासायनिक संयोजन द्वारा प्रकट होती है, और शरीर के विघटन के साथ नष्ट हो जाती है। इस धारणा के आधार पर जीवविज्ञान को आशा है कि वह एक दिन मात्र रासायनों की सहायता से प्रयोगशाला में जीवन का निर्माण कर लेगा।

विज्ञान की धारणा है कि कोष चेतना को प्राथमिक इकाई है। (वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वयस्क मनुष्य के शरीर में लगभग ६ लाख कोष होते हैं। प्रति सेकेंड उनमें से पांच करोड़ कोष नष्ट हो जाते हैं और लगभग उतने ही नये पैदा हो जाते हैं।) फलतः चैतन्य विविध रासायनिक प्रक्रियाओं का ही सर्जन है, इस धारणा को स्वीकार करने को विज्ञान विवश है, पर मात्र रासायनिक संयोजन प्रयोगशाला में जीवन का निर्माण विज्ञान अभी तक नहीं कर पाया है, अथक कोशों और प्रयासों के बावजूद। एक प्राथमिक कोष, रक्त की एक बूंद, इन्सुलिन जैसे हार्मोन्स भी विज्ञान तैयार नहीं कर सका है। जीव-निर्माण की जो प्रक्रिया जीवविज्ञान प्रस्तुत करता है, उसका उपयोग करके क्या वह फूल की एक

पत्ती तक का निर्माण भी कर पाया है ? चेतन युक्त एक छोटा-सा बीज भी विशाल वटवृक्ष खड़ा कर सकता है, और फूल में रंग, गंध, कोमलता आदि पैदा कर सकता है, जबकि विज्ञान सजीव बीज की सहायता के बिना वनस्पति जैसे अत्यल्प विकसित जीवन की भी उत्पत्ति नहीं कर सकता। इतना ही नहीं, एक निर्जीव कोष भी वह नहीं बना सका है।

इसके बावजूद, वैज्ञानिक दलील करते हैं कि, 'विज्ञान जीवन का सर्जन करने में भले ही सफल न हुआ हो, किन्तु इस बात से तो इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस पृथ्वी पर पहले जीवन नहीं था, और अब इतनी जीवसृष्टि है। ... पृथ्वी की गहराई में मिलने वाली वनस्पति और जीवप्राणियों के अवशेष तथा अन्य प्रमाण इस बात का समर्थन करते हैं कि पृथ्वी पर क्रमशः उत्तरोत्तर अधिकाधिक विकसित जीवसृष्टि अस्तित्व में आयी है। पृथ्वी के ठंडी होने पर यहां जीवन का प्राकट्य हुआ।

जिस मूल समस्या पर हमें विचार करना है, वह यह है कि चेतना रासायनिक प्रक्रिया का उत्पादन है या नहीं ? इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि पृथ्वी पर जीवन के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण होने पर ब्रह्मांड में स्थित अन्य ग्रहों के ऊपर 'मृत' आत्माओं ने वहां से आकर यहां निवास किया और पृथ्वी का वातावरण जैसे-जैसे, बदलता गया, वहां

निवास-योग्य घरों में विकास होता गया, इन घरों के खंडों (कोषों) की संख्या और साज-सज्जा बढ़ती गयी। और, इस प्रकार पूर्ण वयस्क अवस्था में साठ खरब कोषों को धारण करने वाली मानव-काया इस पृथ्वी पर अस्तित्व में आयी, न कि चैतन्य। कोई कारखाना टेलीविजन सेट बनाता है, मगर कारखाने में बना वह सेट काम तो तभी करता है, जब टेलीविजन-केंद्र से प्रसारित तरंगों उसमें प्रवेश करें।

कारखाने में तैयार हुए टेलीविजन सेट और चित्र तथा ध्वनि के द्वारा उस सेट को 'सजीव' बनाने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगों का जैसे स्वतंत्र अस्तित्व है, उसी प्रकार जीवसृष्टि के शरीर और उसमें अभिव्यक्त चेतना का स्वतंत्र अस्तित्व है। चेतना की अभिव्यक्ति भले ही शरीर के योग से होती हो, परंतु शरीर के साथ उसकी उत्पत्ति नहीं होती।

ज्ञानचेतना का आधार

'कोष चेतना की प्राथमिक इकाई है, और असंख्य कोष इकट्ठे होकर शरीर के भिन्न-भिन्न अवयव बनते हैं और वे अलग-अलग इकाई के रूप में स्वतंत्र चेतना को प्रदर्शित करता है' विज्ञान की इस धारणा को स्वीकार कर लें, तो प्रश्न उठता है कि स्वतंत्र चेतना वाली ये इकाइयां (शरीर के अवयव और उनके घटक कोष) मात्र कार्यरत रहें, इतना ही नहीं, वे इस प्रकार सुसंकलित होकर कार्य करें कि शरीररूपी एक बड़ी इकाई का

निर्माण हो, और वे कार्य करती ऐसी योजना कौन बनाता है? करता है, ऐसा संयोजन?

और मृत्यु होने पर, शरीर इकाई के स्थगित हो जाते ही, उसके समग्र अंग (जो स्वयं भी चेतना स्वतंत्र इकाइयों के रूप में कार्य हैं) और उनके भी घटक कोष चेतना की छोटी-छोटी स्वतंत्र इकाइयां हैं) एक साथ ही क्यों चेतनाहीन जाते हैं?

आदमी मरता है तो उसी क्षण देखना क्यों बंद कर देती है? अंधा दर्शन-शक्ति तो नष्ट नहीं हुई, वही आंख दूसरे शरीर में लगा दी ट्रांसप्लान्ट की जाये-तब वह देख सकेगा है। मृत शरीर में वह आंख नहीं देखती अर्थात् 'देखने वाला' जहां से चेतना वहां उस आंख को कुछ भी नहीं देखने पर कुछ भी ज्ञान नहीं होता। जहां 'देखने वाला' मौजूद है, वहां उसी आंख के सामने आया रंग-रेखा युक्त दृश्य प्रकट होता है।

इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि सामने के रूप का आंख के द्वारा देखने वाला कोई दूसरा ही है। मात्र उसका एक उपकरण है।

जीवन-तत्त्व को समझने में निष्फल रहा है, इस बात को स्वीकार करते हुए, आस्ट्रेलिया के एक भौतिक-विज्ञानी डॉक्टर रैतो

कहते हैं, 'जीवविज्ञान के क्षेत्र में भौतिक एवं रसायन-शास्त्रों का प्रयोग उनके अपने-अपने स्तरों पर कुछ सफल हुआ है और उसके परिणामस्वरूप, वायो-किमिक्स, और वायो-केमिस्ट्री की विधा आवाएँ हमें प्राप्त हुई, परंतु चैतन्य की प्रकृति लाक्षणिकताओं पर वे शाखाएँ प्रकाश नहीं डाल सकी हैं।... नुस्खा ऐसा लगता है कि जीवन चित्त और पारिवर्तक के एक विशिष्ट एवं व्यवस्थित संयोग की अवस्था है। उस संयोग के बिखरते ही, जीवन-तंत्र जीवन की सभी लाक्षणिकताओं से विहीन हो जाता है और शेष रह जाता है, रसायनों का एक संकुल ढेर मात्र।'।

शरीर से स्वतंत्र अस्तित्व

अपने आसपास की दुनिया में घटने वाली घटनाओं का बारीकी से अध्ययन करने पर, अपनी सामान्य सूझ-समझ से हमें देह के परे, इस तथ्य की प्रतीति हो सकती है। अपनी इच्छाशक्ति से केवल मनोच्छ्वास ही नहीं, स्वताभिसरण और अन्य तत्त्वों को बंद करके घंटों और दिनों तक अपने शरीर को मुर्दे की भांति निश्चेष्ट बनाकर 'पुनः' जीवित होने वाले हठ-योगियों के समाचार आये दिन समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं। इनमें बहुत से झूठे और धोखेबाज भी होते हैं, किन्तु अनेक ऐसे भी हैं, जो कठोर प्रशिक्षण के पश्चात् खरा सोना सिद्ध हुए हैं। ऐसी शक्ति रखने वाले सच्चे योगियों

और ढोंगियों को अलग-अलग छांटने के लिए लेखक ने उनके कारनामों का ध्यान से निरीक्षण किया है, और उसे पूर्ण संतोष है कि इन शक्तियों का वस्तुतः अस्तित्व है। इनमें से एक योगी तो चालीस दिनों से भी अधिक समय तक, सीमेन्ट से मजबूत बंद की हुई कब्र में रहा। १९३६ में, १५,००० से अधिक लोगों के सामने मैसूर के योगी शंकरनारायण स्वामी ने रामलिंगेश्वर मंदिर के प्रांगण में, आधा घंटे तक जीते जी समाधि ली थी।

मेजर एफ. यीट्स ब्राउन ने लंदन के 'संडे एक्सप्रेस' में भारत के एक ऐसे योगी का वर्णन प्रकाशित करवाया था, जो एक घंटे तक मरण समाधि में रहा। अहमदाबाद के सिविल सर्जन कर्नल हार्टी तथा अन्य कितने ही डॉक्टरों के सामने स्वामी विद्यालंकार नामक योगी पच्चीस घंटे तक ज़मीन के अंदर दबे रहे थे।

पंजाब में महाराजा रणजीतसिंहजी के राज्यकाल में हरिदास नामक एक हठ-योगी सैनिकों के कड़े पहरे में चालीस दिनों तक जड़समाधि में, कब्र में गाड़े गये मुर्दे की तरह ज़मीन में गड़ा रहा था। मित्र के ताहरा फ़कीर हैं, मगर पुराण-पंथी फ़कीर नहीं, डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त फ़कीर, उन्हें वचपन से ही हठयोग की शिक्षा मिली थी। वे यूनान में, एक अवसर पर, अट्ठाइस दिनों तक ज़मीन में गड़े रहे थे। ऐसे सच्चे हठयोगी प्रायः प्रसिद्धि से दूर रहना चाहते हैं।

जड़समाधि में या जमीन में अंदर गड़े रहकर वे सभी क्रियाएं दीर्घकाल तक बंद हो जाती हैं, जिन्हें जीवन के लिए अनिवार्य और आधारभूत समझा जाता है। फिर भी जीवन का अंत क्यों नहीं होता ?

कारण यही है कि शरीर को जीवित बनाने वाला तत्त्व कार्यरत शरीर का, अर्थात् मात्र किसी रासायनिक प्रक्रिया का उत्पादन नहीं है।

पुनर्जन्म के सिद्धांत की स्वीकृति

अतीन्द्रिय ज्ञान शक्ति की भांति ही पुनर्जन्म के बारे में भी परामनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यापक अनुसंधान हो रहा है। इसके जो परिणाम सामने आये हैं, उनसे पश्चिम में खलवली मच गयी है।

जयपुर विश्वविद्यालय के परा-मनो-विज्ञान-विभाग के मुख्य संचालक श्री बनर्जी ने पुनर्जन्म-संबंधी पांच सौ से अधिक मामलों की जांच की है। इनमें से श्रीलंका-वासी सुरेश मैत्रीमूर्ति, चांदगरी के मुनेश (भजनसिंह), मुरादाबाद की माया देवी की पुत्री आदि के मामले बहुत प्रसिद्ध हुए थे।

ज्यूरिख की 'इन्टरनेशनल स्पिरिच्यु-आलिस्ट फेडरेशन' के भूतपूर्व प्रमुख कार्ल मूलर कहते हैं, 'भिन्न-भिन्न देशों में से, और बिना किसी अपवाद के गत अस्सी वर्षों के बीच के इकट्ठे किये गये पुनर्जन्म के सात सौ मामलों का हमने जो विभागी-करण किया है, उनके वैविध्य और प्रकार-भेदों को देखते हुए, पुनर्जन्म से इन्कार

करना अत्यन्त कठिन है। ... कुछ गोप्य प्रश्न, जैसे कि स्त्री का पुरुष होना, पुरुष का स्त्री होना, मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच कितना अवकाश रहता है और फिर भी पुनर्जन्म के मूलभूत तथ्य के समर्थक प्रमाण अत्यन्त प्रबल हैं। ... पुनर्जन्म कोई अपवाद नहीं है, परंतु इस पर आयी हुई मानव-वस्ती से बड़ी संख्या ने पहले यहां जन्म लिया, ऐसा मानव आयु-परावर्तन के प्रयोग भी करते हैं।

आयु-परावर्तन (एज-रिग्रेशन) की पद्धति का प्रयोग आजकल मानस-रोगों की अमरीकी चिकित्सा-विधि में बहुत हो रहा है। इस विधि में, यह जानने के लिए कि रोग की जड़ में कोई मानसिक ग्रंथि कारणीभूत है या नहीं, रोगी को सम्मोहन द्वारा गाढ़ी नींद जैसी अवस्था में सुला दिया जाता है, और फिर उस अवस्था की स्मृतियां जाग्रत की जाती हैं। इस अवस्था में इस जन्म की ही या पिछले जन्मों की भूली हुई यादें भी आती हैं।

इस प्रयोग ने पुनर्जन्म के सिद्धांत के विरोध करने वाले डॉक्टर के लन जैसे अन्तरराष्ट्रीय वैज्ञानिक की भी पुनर्जन्म में श्रद्धा कैसे जाग्रत की, यह स्वयं के शब्दों में सुनिये :

'पहले मेरा विश्वास न सिद्धांत में था, और न इस सम्मोहन द्वारा उत्पन्न गाढ़ी नींद में।

बहुत शीघ्र ही जन्मों की स्मृतियों को
 बचाना, पुनर्जन्म का सिद्धांत प्रमाणित किया जा सकता है। मैं कहा करता
 था कि ऐसे लोग मूर्खतापूर्ण प्रलाप करते
 हैं। परंतु, जैसे-जैसे समय बीतता गया,
 और मैंने पिछले जन्मों की यादें करने
 लीं, १००० से अधिक व्यक्तियों के मामलों
 का तटस्थतापूर्वक अध्ययन किया, तो
 मुझे स्वीकार करना पड़ा कि पुनर्जन्म
 एक वास्तविक तथ्य है। इन मामलों में
 संमान जीवन से पहले सौ वर्ष से लेकर
 ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व तक के जन्मों
 की स्मृतियों की जानकारी मुझे हुई।
 अत्यंत कटु, दोषदर्शी और शंकाशील
 वैज्ञानिक भी उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।'
 इस विषय से संबंधित दर्जनों प्रामा-
 णिक पुस्तकें, जो पिछले जन्मों की
 स्मृतियों पर ही आधारित हैं, पिछले कुछ
 वर्षों में पश्चिम में अत्यन्त लोकप्रिय
 हो गईं। करोड़ों पाठकों द्वारा पढ़ी जाने
 वाली ऐसी कुछ पुस्तकें हैं: 'ए सर्च फॉर
 रिबर्न', 'द, प्रॉब्लम ऑफ रिबर्न',
 'द ऑफ रिटर्न', 'दुअन्टी केसेस सजै-
 रिंग ऑफ रिइन्कारनेशन', 'ऑप्टर
 रिइन्कारनेशन', 'दि पावर विद इन', 'द इम्प्रि-
 मेटेड स्पैलन्डयोर', 'रिइन्कारनेशन, बेसड
 ऑन फैक्ट्स'।
अविनाशित अस्तित्व: आत्मतत्त्व
 अमरीका में पुनर्जन्म के सिद्धांत को
 प्रमाणित करने में एडगर केसी नामक
 एक व्यक्ति का बहुत बड़ा योगदान रहा।
 वह एक चमत्कारी मानव था।

इक्कीस वर्ष की अवस्था में वह बीमार
 पड़ा। इलाज से वह अच्छा तो हो गया,
 पर उसकी वाचा नष्ट हो गयी, वह गूंगा
 बन गया। नवीं कक्षा से आगे उसने
 कभी अध्ययन नहीं किया। उसी केसी ने
 सम्मोहन से जन्मी गाढ़ी नींद (ट्रान्स) की
 अवस्था में एक डॉक्टर की अदा से डॉक्टरी
 परिभाषा में रोगों का कारण, उनका
 निदान और उपचार-विधि बड़े अचूक
 ढंग से बताना आरंभ किया। आगे चलकर,
 नामी डॉक्टर भी जटिल मामलों के समा-
 धान के लिए केसी से मार्गदर्शन प्राप्त
 करने लगे। इस प्रकार उसने तीस
 हजार से ज्यादा रोगियों को चंगा किया।
 सम्मोहितावस्था में वह अटपटे मामलों
 को ऐसे कारगर ढंग से सुलझाता कि आज
 भी डॉक्टर उसके रेकार्ड्स का अध्ययन
 करते हैं।

इस प्रकार, हमने देखा कि पश्चिम में
 भी पुनर्जन्म का सिद्धांत अधिकाधिक
 प्रतिष्ठा पा रहा है। पीछे जिन आस्ट्रे-
 लियाई वैज्ञानिक डॉ. रेनर का जिक्र
 आया है, उन्होंने 'द इम्प्रिजिण्ड स्पैलन्ड-
 योर' नामक अपनी पुस्तक के अंत में
 लिखा है, 'मृत्यु हमारे अस्तित्व का अंत
 नहीं लाती, यह मानने के लिए हमारे
 पास पर्याप्त विश्वसनीय प्रमाण हैं।'

पूर्वजन्म की स्मृति इस जीवन में होती
 है, इस बात ने सिर्फ पुनर्जन्म को ही सिद्ध
 नहीं किया, आधुनिक विज्ञान की इस
 मान्यता को भी ललकारा कि आदमी की

स्मृति रासायनिक परिवर्तनों के द्वारा उसके मस्तिष्क के कोषों में संग्रहीत उसकी अनुभूतियों के आधार पर ही जगती है। जो शरीर नष्ट हो चुका, उसके जीवन की स्मृतियाँ भी उपरोक्त रीति से जगायी जा सकती हैं। इससे यही बात सिद्ध होती है कि स्मृतियों का आधार शरीर नहीं, परंतु अपनी देह का त्यागकर नया शरीर धारण करने वाला कोई स्वतंत्र तत्त्व है।

गत जन्मों की स्मृति की वास्तविकता तीन बातों को प्रमाणित करती है :

- (१) ज्ञान का आधार शरीर नहीं है।
- (२) शरीर से भिन्न अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाला कोई तत्त्व शरीर में है, और
- (३) शरीर के साथ उसका नाश कभी नहीं होता।

‘परलोक’ की झांकी

आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म के सिद्धांत को राइन, केनन, रेनर जॉन्सन आदि वैज्ञानिकों ने किस प्रकार वैज्ञानिक स्तर पर प्रतिष्ठित कर दिखा दिया है, यह हमने देखा। यह भी देखा कि निष्पक्ष रूप से सोचने वाले व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं रहा कि वह आत्मा और पुनर्जन्म से इंकार कर दे।

अब प्रश्न आता है, पुनर्जन्म के स्थान का। किसी प्रियजन के निधन के पश्चात्, हम यह जानने को व्यग्र हो जाते हैं कि वह अब कहाँ गया होगा? क्या उसका अता-पता मिल सकता है? यह जानकारी

कहाँ से और कैसे मिले?

ऐसे योगी मौजूद हैं, जो मृतत्वा का नया पता दे सकने में समर्थ हैं। कि वह ‘विश्व-प्रवासी’ किस देश का निवासी बनता है, उसका कुछ परिचय तो का विज्ञान भी देने लगा है।

चन्द्र पर गये अंतरिक्ष यात्रियों कहना है कि वहाँ जीवन के अस्तित्व की कोई सम्भावना नहीं है। लेकिन, हमारी इस पृथ्वी पर ही जीवमृत्ति यह बात हमारे धर्मशास्त्रों को मान्य है। उनका कहना है कि ऐसे असंख्य ग्रह हैं। उनका कहना है कि ऐसे असंख्य ग्रह (ग्रह) अंतरिक्ष में हैं, जहाँ जीवमृत्ति इतने से कुछ ‘द्वीपों’ पर तो मानव भी है। इसके अतिरिक्त, मानव की संख्या अधिक समर्थ, योग्य और ऐश्वर्यपूर्ण देवों से बसे देवलोकों की बात भी धर्मशास्त्रों में मिलती है। वे चन्द्र पर भी जीवन का अस्तित्व मानते हैं। दोनों में से सच्चा कौन है? ऐसे प्रश्नों का ज्ञानसु मानव के मन में उठ सकता है। आइये, इस उलझन को सुलझाने में आधुनिक खगोल-विज्ञान की मदद लें।

आधुनिक खगोल-विज्ञान के अनुसार अंतरिक्ष, में हमारे सूर्य जैसे करोड़ों तारा हैं, हमारी आकाशगंगा जैसी अनेक आकाशगंगाएँ हैं। उसकी मान्यता है कि ब्रह्मांड में मौजूद गिनत ग्रहों में, जो हमारी पृथ्वी से गुना बड़े हैं, पृथ्वी की ही भाँति होने की पूरी संभावना है।

हमारे धर्मशास्त्रों में ब्रह्मांड में

अकल्पनीय विराटता का चित्र खींचा गया है, वैसा ही ब्रह्मांड वैज्ञानिक को अति-विशाल टेलिस्कोप और स्पेक्ट्रोस्कोप द्वारा दिखाने पर दिखायी पड़ता है।

शास्त्रों की भांति विज्ञान को भी इस विशाल ब्रह्मांड में ग्रहों की पारस्परिक अल्पतम दूरियों को सूचित करने के लिए मीलों या किलोमीटरों के स्थान पर बड़े परिमाणों की कल्पना करनी पड़ी।

पृथ्वी से ग्रहों का अंतर बताने के लिए विज्ञान द्वारा स्वीकृत परिमाण है—प्रकाश-वर्ष। एक प्रकाश-वर्ष, अर्थात् एक सेकंड में एक लाख छियासी हजार मील—लगभग

तीन लाख किलोमीटर—के वेग से गति करता प्रकाश एक वर्ष में जितना अंतर तय करता है, उतना अंतर। चन्द्र से पृथ्वी तक का ३८४, ००० किलोमीटर और सूर्य

से पृथ्वी तक का १४ करोड़ ८८ लाख किलोमीटर का फासला तय करने में लगाने को क्रमशः सिर्फ सवा सेकंड और ४० सेकंड लगते हैं। लेकिन हमारे

आकाशमंडल से परे, हमारी आकाशगंगा से ऐसे असंख्य ग्रह मौजूद हैं, जिनसे प्रकाश को पृथ्वी पर आने में सैकड़ों क्या

हजारों और अरबों वर्ष लग जाते हैं! और फिर हमारी आकाशगंगा के पार, हमारे आकाशमंडल से परे हैं। पृथ्वी से उन

ग्रहों की दूरी और वहां से प्रकाश के पृथ्वी पर आने के समय की कल्पना भी हमारा

आकाशमंडल मस्तिष्क नहीं कर सकता।

खुली आंखों से देखने पर एण्ड्रोमिडा

नाम का एक ग्रह हमें ध्रुव के एक दाग जैसा दिखायी पड़ता है। दूरबीन लगाकर देखने पर ही पता चलता है कि वह कोई ग्रह है। और, वह हमसे २२ लाख प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है, और उसका व्यास है—दो लाख प्रकाश-वर्ष।

दस अरब प्रकाश-वर्ष की दूरी से आती, और किसी भी ग्रह से आने वाली तरंगों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली तरंगें रेडियो-टेलिस्कोप से पकड़ी गयी हैं। आधुनिक खगोल-विज्ञान ने प्रबल रेडियो-तरंगों के इन उद्गम-स्थानों को नाम दिया है — 'क्वेसी-स्टैलर्स' अर्थात् तारा कल्प, क्योंकि वे न तो तारे हैं, न तारा-लोक। कोई भी तारा-कल्प पृथ्वी से एक अरब प्रकाश-वर्ष से कम अंतर पर नहीं है।

जैसे-जैसे, विज्ञान द्वारा मान्य ब्रह्मांड की सीमाएं विस्तृत होती जा रही हैं, वैसे-वैसे, खगोलशास्त्रियों का यह अनुमान भी बढ़ता जा रहा है कि ब्रह्मांड के कितने ग्रहों पर जीवन के होने की संभावना है।

होयल नाम के प्रख्यात खगोल-शास्त्री के अनुसार हमारी आकाशगंगा के कम से कम दस लाख ग्रहों पर जीवन होने की संभावना है। दूरस्थ ग्रहों से जो स्पंदन वैज्ञानिकों को प्राप्त हो रहे हैं, उनके बारे में खगोल-शास्त्रियों का कहना है कि वे यदि कृत्रिम भी हों, तो भी उन्हें भेजने वाले हमारी अपेक्षा विज्ञान और तकनीकी में हमसे कहीं अधिक उन्नत होने चाहिये।

परा-मनोविज्ञानियों ने 'एज-रिग्रेशन' पद्धति से पूर्व जन्मों की स्मृति जाग्रत करने के जो हजारों सफल प्रयोग किये हैं, उनके रेकार्ड में अन्य ग्रहों का तथा उनमें रहने वाले ऐसे प्राणियों का उल्लेख है, जिन्हें न कभी भूख महसूस होती है, न थकान । ऐसे भी मामले हैं, जिनसे पता चलता है कि इन लोकों में जन्म लेते ही वयस्क युवा शरीर प्राप्त होता है ।

भौतिक विज्ञान मानता है कि हमारी दृष्टि-सीमा और अनुभव की परिधि में आने वाला जगत भिन्न-भिन्न लम्बाइयों और कम्पनों युक्त विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों का ही खिलवाड़ है । और हमारी सीमित क्षमताओं वाली हमारी इन्द्रियां विश्व में मौजूद अनगिनत विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों में से कुछ को ही पकड़ सकती हैं । अलग-अलग लम्बाइयों की विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के द्वारा हमें पदार्थ के भिन्न-भिन्न दर्शन होते हैं । इसलिए विज्ञान आज जिन तरंगों को ग्रहण नहीं कर पाया, वे कल ग्रहीत हों, तो क्या चन्द्रमा या अन्य किसी ग्रह पर किसी नयी और अपरिचित जीवन-लीला के दर्शन हमें नहीं हो सकते ?

'लंदन सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च' के एक भूतपूर्व अध्यक्ष एन. एम. टेरिल ने अपने अध्यक्षीय भाषण में बड़े मार्के की बात कही थी, 'ऐसा मानने का न कोई आधार है, न कोई प्रमाण कि जगत् को ग्रहण करने की हमारी इन्द्रियों की शक्ति और क्षमता की मर्यादा आते ही, प्रकृति की

लीला रुक जाती है, और उस मर्यादा के बाहर कोई भिन्न नियम लागू हो सकते हैं ।'

प्राणायाम तथा योग की अन्य विधियों से हम अपनी इन्द्रियों में ऐसा परिणाम ला सकते हैं कि वे उन तरंगों को भी ग्रहण कर सकें, जिन्हें ग्रहण करने के हम असमर्थ हैं । 'योग एंड हेल्थ' के लेखक सेल्फ येसुदिन ने एक बार एक साय पोंते तक प्राणायाम करके अनुभव किया कि उनकी स्पर्श की शक्ति चली गयी है ।

अतः हमने देखा कि जगत् का हमें दर्शन केवल पदार्थलक्षी अर्थात् पृथक्-पेक्ष वास्तविक वस्तुदर्शन नहीं हो सकता । यह दर्शन काफी हद तक आत्मलक्षी दृष्टासापेक्ष रहता है ।

हमारा प्राण प्रश्न

आज के विज्ञान का प्रस्थान अनजाने अध्यात्म की छावनी की ओर चला चुका है । इस वस्तुस्थिति का निवेदन हुआ, डॉक्टर पॉल ब्रन्टन लिखते हैं, 'विश्वयुद्ध के बाद से भौतिक विज्ञान एक मूक क्रांति हो रही है । उन्नीसवीं शताब्दी का सीधा-सादा जड़वाद अब विश्व का सीधा-सादा विरोधी नहीं रहा । 'थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी', 'क्वैण्टम थ्योरी', 'वेव मिकैनिक्स' ने जगत् को हमारे दृष्टिकोण के तैजो से बदला है । जब ठोस अणु क्विट्रक चार्ज में रूपान्तर किया गया, उसके बाद शुद्ध ईथर में उल्टे किया गया, तो जड़वादी का पतन

मर्यादा को छिन गया। आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के विकास में प्राचीन काल के भारत, मिस्र और वेंगोलोनिया के ज्ञानी पुरुषों के बोध को समझने-समझाने का प्रयास कर रहा है।' बीसवीं सदी के नये आविष्कारों के परिणामस्वरूप, बुद्धिशाली मानव को यह समझने का अवसर मिला है कि इन मानव पुरुषों ने हजारों वर्ष पूर्व जो तत्त्व-विज्ञान किया था, उस और आधुनिक विज्ञान लड़खड़ाता हुआ आ रहा है।

वस्तुतः भी हमारी ही। भांति सुख-सा संवेदन करती हैं, सर जगदीशचंद्र ने इस आविष्कार ने पाश्चात्य जगत को आश्चर्यमुग्ध कर दिया था। मगर अन्तर्गत् से तो जैन जगत् का अशिक्षित मानवी चिर-परिचित था।

किन्तु किसी बाह्य साधन-सामग्री के द्वारा ब्रह्मशुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान की शक्ति के बल पर विश्वकल्याण के लिए प्राचीन काल के विज्ञानियों ने जो विश्व को प्रदान किये, उनमें से जगत् को, शताब्दियों के पश्चात्, जगत् से सिद्ध तथ्यों के आधार पर ज्ञान को अन्ततोगत्वा स्वीकार किया गे हैं।

विज्ञान के अन्तस्तल में छिपे जिन तथ्यों को ज्ञानी बाह्य उपकरणों के द्वारा भी देखा-समझा जा सकता है, उनका प्रमाण स्वयं विज्ञान ही आज कर रहा है।

जगत् अपराधों की खोज के लिए

प्रशिक्षित कुत्तों का प्रयोग होता है। इन अपराध-शोधक कुत्तों को अपराध स्थल पर कोई ऐसी वस्तु सुंघा दी जाती है, जिसका उपयोग अपराधी ने किया हो, जैसे चप्पल, रुमाल आदि। उस गंध का पीछा करते हुए, कुत्ता उसके पीछे-पीछे जाता है। अपराधी जहाँ से गुजरा हो, वहाँ उसके परमाणु बारह घंटे तक, या अधिक से अधिक चौबीस घंटे तक रहते हैं। इतनी मात्रा में कि कुत्ते की घ्राणेन्द्रिय उसे ग्रहण कर सके। जो जहाँ बैठा है, उसके परमाणु वहाँ विशेष मात्रा में कुछ घंटों तक रहकर, विजातीय व्यक्ति के नाडीतंत्र पर कुछ विकारी प्रभाव डाल सकते हैं। इसीलिए ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए बताये गये नियमों में भगवान महावीर ने यह भी नियम रखा कि स्त्री के आसन का पुरुष और पुरुष के आसन का स्त्री अमुक समय तक उपयोग न करें। कितना गहरा और तलस्पर्शी था उनका ज्ञान, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें इस विधान में दिखायी पड़ता है।

‘बुद्धिवादी मनुष्य को उन वादों और सिद्धांतों में जिनका उसने खंडन किया है, दूषण ही दिखायी पड़ते हैं। किन्तु, उसे यह पता नहीं रहता कि जब वह विज्ञान की प्रामाणिकता का गुणगान करता है, तो वे दूषण स्वयं आ जाते हैं।’ यह कथन है स्व. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का।

धर्मशास्त्रों पर आस्था रखने वाले व्यक्तियों को भी यह याद रखना चाहिये

कि जब विज्ञान-जगत् कोई ऐसा नया विचार प्रस्तुत करे, जो उनकी मान्यता के साथ मेल न खाता हो, तो बिना उसकी वैज्ञानिक पृष्ठभूमि को समझे, और विरोध करने के लिए विरोध करने की वृत्ति से, न तो विज्ञान पर आस्था रखने वालों के मन में शास्त्रों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न की जा सकती है, और न शास्त्रों और उनके रचयिताओं के प्रति ही श्रद्धा बढ़ायी जा सकती है।

विज्ञान की परिवर्तनशीलता

आज से सौ साल पहले, विद्युत् और चुम्बकत्व ये दोनों भिन्न-भिन्न शक्तियाँ मानी जाती थीं। लेकिन, पिछली सदी य ओस्टीड और फेराडे ने प्रयोगों द्वारा मेंह सिद्ध किया कि विद्युत् का प्रवाह पूरी तरह चुम्बकीय क्षेत्र से लिपटा हुआ है, और विशेष परिस्थिति में चुम्बकीय बल विद्युत-प्रवाह पैदा करते हैं। इन प्रयोगों के फलस्वरूप, 'इलेक्ट्रो-मेग्नेटिक-फील्ड' की खोज हुई, और विद्युत् और चुम्बकत्व ये दोनों मूलतः एक ही शक्ति हैं, यह मान्यता प्रतिष्ठित हुई।

और वैज्ञानिक मान्यताओं में से सभी मान्यताएं प्रयोगों के आधार पर ही स्थापित नहीं हुई हैं। वैज्ञानिक सिद्धांतों के भी दो पहलू हैं—एक प्रयोगों के आधार पर स्थापित, और दूसरा गणित के आधार पर स्वीकृत। आधुनिक भौतिक विज्ञान के अत्यन्त मान्य सिद्धांत 'क्वांटम थियरी', 'थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी' और 'यूनि-

फाइड फील्ड थ्योरी' गणित के आधार पर ही स्थापित किये गये हैं। गणित के आधार पर प्रतिष्ठित ही सिद्धांत समय बीतने पर अपूर्ण प्रमाण हुए हैं और तब उनके आधार पर सिद्ध अनेक नियमों का भी परिमार्जन आया हुआ।

दो शताब्दी पूर्व, वैज्ञानिक मानते कि प्रकाश की तरंगें हैं, पर आइंस्टीन 'फोटो इलेक्ट्रिक' के सिद्धांत ने बताया कि प्रकाश के कण (प्रोटोन) १९२५ में फ्रांस के युवा भौतिकज्ञ लुई-द-बोग्ली ने सूचित किया कि क्ट्रान को कण न मानकर तरंगों की रचनाविशेष मानें तो दूसरी कई बातें सुलझ सकती हैं। इस साहसिक करने अनेक वैज्ञानिक धारणाओं को सिद्ध कर दिया। 'यूनीफाइड थ्योरी' के बारे में भी ऐसा होना १९२९ में आइंस्टीन ने इसके अपने अपना सिद्धांत व्यक्त किया, और में आइंस्टीन ने ही उसे अपूर्ण किया। १९४८ में खगोल-शास्त्री ने विश्व की उत्पत्ति के एक सिद्धांत प्रतिपादन किया, पर १९६५ में होइल ने ही 'स्टेडी स्टेट थ्योरी' इस सिद्धांत को 'भ्रामक' घोषित किया। १९२५ तक इलेक्ट्रॉन को 'पदार्थ' के घटकतत्त्व और विश्व की नींव के आधार माना जाता था, पर मात्र 'इलेक्ट्रिकल चार्ज' बन गये

वैज्ञानिक सिद्धांतों की अस्थिरता के बारे में स्वयं वैज्ञानिकों को भी पता है। द्वितीय भौतिकशास्त्री सर जेम्स जीन्स का कथन है, 'आज हम यह अनुमान लगने को विवश हुए हैं कि विज्ञान की ज्ञान-सरिता कभी सीधी नहीं बहती और कने मोड़ लेती रहती है। सारे वैज्ञानिक निर्णय अनिश्चित हैं।'

किन्तु विज्ञान का एक शोभास्पद पहलू यह रहा है कि वह अपनी भूल स्वीकार करने के लिए सदा तैयार रहता है। महान वैज्ञानिक कभी यह नहीं कहते कि वे जो कहते हैं, वही अंतिम सत्य है। उन्हें अपनी मर्यादा का भान रहता है। 'कैन्टम थ्योरी' के प्रतिष्ठापक मैक्स प्लैंक का कहना है, 'एक गुत्थी सुलझाते हैं, उससे भी ज्यादा उलझनभरी गुत्थी खोजें आ खड़ी होती है। एक अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व है, जो प्रत्येक पुरुषार्थ के वाजबूद बार-बार परे रहता है।' यहिगटन जैसे अग्रणी वैज्ञानिक का कथन है कि 'इस भौतिक जगत् की चेतना के अभाव खोज न की जाये, तो वह एक कल्पना हो देगा।'

आइंस्टीन जैसे शीर्षस्थ वैज्ञानिक ने कहा है कि - 'वैश्विक आध्यात्मिक अनुभव वैज्ञानिक शोध का अत्यन्तुम और आधार है। ... अगम्य का संवेदन अनुभव में आने वाली गहनतम और परम सौंदर्यपूर्ण उर्मि है। समग्र विज्ञान का उद्भव उसी में से होता

है। इस उर्मि से जो अपरिचित है, विश्व के विलसित अगम्य तत्त्व की जिसे अनुभूति नहीं है, और जो आश्चर्यमुग्ध हृदय से गहरे अहोभाव में विलीन नहीं हो जाता, वह निष्प्राण है।'

सुख-समृद्धि का मूल स्रोत

होनहार और प्रवीण बालक-बालिकाओं में जिस प्रतिभा और कला, काव्य, संगीत, नृत्य आदि के प्रति जिस रुचि के दर्शन होते हैं, वह इस बात की द्योतक है कि व्यक्ति अपने जीवन में जो गुण प्राप्त करता है, उसका लाभ उसे अगले जन्म में भी मिलता है। हेनरी फोर्ड ने एक बार कहा था, 'मेरी अस्वस्थता इस विश्वास से दूर हुई है कि पुनर्जन्म होता है। पुनर्जन्म की खोज ने मुझे शांति प्रदान की, और मुझे ऐसा लगने लगा है कि जीवन भले ही रहस्यपूर्ण हो, तथापि उसमें एक व्यवस्था है, और वह सतत प्रगतिशील है। इस अनुभूति के बाद, मैंने जीवन के रहस्य के उद्घाटन की खोज में अन्यत्र झांकना छोड़ दिया है।' मात्र सोलह वर्ष की आयु में ही ज्ञान, योग और भक्ति के त्रिवेणी-संगम जैसे 'अमृतानुभव' और 'ज्ञानेश्वरी' की रचना करने वाले संत ज्ञानेश्वर नौ वर्ष की आयु में रामायण और महाभारत की संक्षिप्त पद्य-रचना करने वाले, और दस वर्ष की आयु में 'दूरदर्शन' जैसी अतीन्द्रिय शक्तियों का परिचय देने वाले श्रीमद् राजचंद्र आदि के नाम भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं।

‘हिप्नाटिकट्रॉन्स’ की सहायता से एक हजार से भी अधिक व्यक्तियों के पूर्व जीवनों का अध्ययन करने के पश्चात् डॉक्टर एलेग्जैण्डर केनन ने लिखा है, ‘गत जन्म में किये गये किसी बुरे कृत्य के बदले में वह व्यक्ति, क्रिया-प्रतिक्रिया के इस नियम के कारण, इस जीवन में किस प्रकार दुखी होता है यह दिखलाकर, यह अभ्यास प्रकृतितंत्र में अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रवर्तमान अदल इन्साफ़ की बात कह जाता है। बहुत से लोग यह नहीं समझ पाते कि उन्हें एक के बाद एक विपत्तियाँ क्यों झेलनी पड़ती हैं? यदि उनके गत जन्मों पर दृष्टिक्षेप किया जाये, तो पता चलेगा कि तब उन्होंने जो क्रूर कर्म किये थे, उसी के कुपरिणाम उन्हें भुगतने पड़ रहे हैं। और कई लोग आज कुछ भी करें, तब भी उनके दांव सही पड़ते हैं। क्या गत जन्मों में किये गये सुकर्मों का यह पुरस्कार नहीं हो सकता?’

आज पश्चिम कर्म के सिद्धांतों को अपनाने के लिए उत्सुक है, कारण परा-मनो-वैज्ञानिकों के प्रयोगों ने कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत की प्रतीति पाश्चात्य जगत् को करा दी है। फलतः वहां कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत की पुनः प्रतिष्ठा करने की मांग शुरू हो गयी है। डॉ. पॉल ब्रन्टन ने लिखा है, ‘कर्म एक वैज्ञानिक नियम है। इसे एशियाई धर्मों ने अपनाया था और यूरोप की धार्मिक श्रद्धा में भी उसका स्थान था। लेकिन ईसा के पांच

सौ वर्ष बाद, कुस्तुन्तुनिया की संगति ने ईसा के उपदेशों में न निकाल दिया। परंतु अब इस वैज्ञानिक सत्य को अर्वाचीन जगत् में पुनः प्रतिष्ठा पित करने का समय आ गया है। गुरु के शासकों, नेताओं और शिक्षा-जागृ और धर्म-गुरुओं का कर्तव्य है कि वे कार्य को वेग प्रदान करें। ... ऐसा करने से सुदृढ़ नैतिक जीवन स्वतः उद्भूत होगा। पश्चिम को कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांतों को पुनः अपनाने की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि ये सिद्धांत व्यक्ति एवं समाज को अपने उत्तरदायित्व का जो भाग बताते हैं, वह कोई भी मत नहीं करा सकता।

कर्म का सिद्धांत हमें अपनी मंजूरियों के मूल कारण तक ले जाता है, और स्पष्ट बताता है कि हम अपनी मंजूरियों का निर्माण कैसे स्वयं ही करते हैं। वह उसमें अभीष्ट परिवर्तन लाने की कुंजी भी हमें प्रदान करता है।

जीवन में सुख-शांति पाने का एक उपाय यही है कि अपना जीवन इस प्रकार व्यतीत करें कि दूसरों को सुख-शांति मिले। ‘जैसा बोझों से ही पाओगे’ यह नियम प्रकृति में लागू दिखायी देता है।

भौतिक विज्ञान का एक नियम है कि क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होती है। परंतु इसमें एक अपवाद भी है। वह है कि विभिन्न अवस्थाओं के निमित्त प्रयोगों के समय तापमान कम

कते उसे परम शून्य—एकसिद्धि—आर्यो
(-२७३.१५ डिग्री सेन्टीग्रेड) तक ले जाने के
प्रयोग में वैज्ञानिकों ने एक अद्भुत घटना
देखी। परम शून्य के करीब पहुंचते-पहुंचते
पदार्थ की प्रतिरोध-शक्ति सहसा अदृश्य
हो जाती है। भौतिक विज्ञान के इस
चमत्कार की प्रतिकृति आध्यात्मिक जगत
में भी पायी जाती है।

साधना द्वारा अहंता का लोप करके
मनुष्य 'शून्य' तक पहुंच जाये, तो उसकी
प्रवृत्ति प्रतिक्रिया को पार कर जाती है।
ह्रिदय के बंधन उस पर अपनी पकड़ नहीं
रखा सकते। उसके सहज सुख, ज्ञान और
आनंद को मर्यादित करने वाले किनारे
टूट जाते हैं। 'अहं-शून्य' अवस्था में होने
वाला कार्य प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं कर
सकता, यह खोज आंतर-प्रकृति के नियमों
से खोजने वाले आध्यात्मिक जगत के
ज्ञानियों की है।

ज्ञानियों का लक्ष्य है, आंतर-प्रकृति पर
विजय। विज्ञान का लक्ष्य है, बाह्य
प्रकृति के नियमों की खोज करके प्रकृति
पर विजय पाना। प्रकृति पर विजय आक-
र्षक है, परंतु आंतर-प्रकृति पर विजय
सर्वोत्तम और भव्यातिभव्य है। परमाणु
से लेकर ग्रहों और आकाशगंगाओं का
ज्ञान पाकर परमाणु का विस्फोट करना
या चन्द्रमा के धरातल पर पांव रखना
एक उत्तेजक अनुभव हो सकता है, परंतु
वासनाओं, ऊर्मियों और चित्त में उमड़ते
संकल्प और विकल्प का नियमन करने

को नियंत्रण का ज्ञान पाकर अहं और
मन से पार होकर, समाधि-अवस्था में
प्रवेश कर, आत्मदर्शन पाना उससे भी
कहीं अधिक रोमांचक अनुभव है।

विज्ञान ने सुख-सुविधा के अनेक साधन
मनुष्य को दिये हैं, परंतु यह नहीं भूलना
चाहिये कि मनुष्य के दुःख को बढ़ाने
में भी विज्ञान का बड़ा योगदान रहा है।

बिनावाजी के शब्द में कहें तो, 'विज्ञान
जीवन की प्राणशक्ति है। और अध्यात्म
है, जीवन का चित्त। चित्त के मार्ग-
दर्शन में प्राण काम करता है। इसलिए
अध्यात्म का मार्ग-दर्शन विज्ञान को मिलना
चाहिये। बिना अध्यात्म के विज्ञान को
सही दिशा नहीं मिलेगी। आत्म-ज्ञान
है आंख, और विज्ञान है पांव। यदि मानव
के पास आत्म-ज्ञान की दृष्टि न हो, तो
वह अंधा न जाने कहां चला जायेगा, कुछ
पता नहीं। ... विज्ञान में दोहरी शक्ति
होती है। एक बिनाश-शक्ति और दूसरी
विकास-शक्ति। वह सेवा भी कर सकता
है, और संहार भी। अग्निनारायण की
खाज हुई। उससे रसोई भी बनती है,
और घर में आग भी लगायी जा सकती
है। किंतु अग्नि का उपयोग घर फूंकने
में करना है, या चूल्हा जलाने में करना है,
यह समझ विज्ञान में नहीं है। यह समझ
तो आत्म-ज्ञान में है। जैसे पक्षी दो पंखों
से उड़ता है, वैसे ही मनुष्य विज्ञान और
आत्म-ज्ञान इन दो शक्तियों से अग्रसर
होकर सुखी होता है।' □

THE HINDUSTHAN SUGAR MILLS LTD.

Registered Office :

Bajaj Bhawan, 2nd Floor,
226, Nariman Point,
BOMBAY - 400 021.

Manufacturers of :

WHITE CRYSTAL SUGAR

Sugar Mills at Golagokarannath (U.P.)
& Palia (owned by Subsidiary Company)
Yearly Production — 1,00,000 Tonnes

RECTIFIED & DENATURED SPIRIT, ABSOLUT ALCOHOL & INDUSTRIAL ALCOHOL

Distillery at Golagokarannath
Yearly Production — 20 Million Litres

PORTLAND CEMENT

Factory :

Udaipur Cement Works, P. O. Bajaj Nagar,
Udaipur, Rajasthan.

Yearly Production — 2,00,000 Tonnes

Telegram : 'SHREE' Telex : 011-2563 Telephone : 23366

MEMBER—FAIR TRADE PRACTICES ASSOCIATION

(पृष्ठ १२४ का शेषांश)

हैं। और यही धीरे-धीरे दोनों को पार-स्परिक पूर्णता की ओर ले जाने का सबसे अच्छा उपाय होगा।

बहुधा देखा जाता है कि लड़कियों में पुरुषों को रिझाने की एक रुग्ण प्रवृत्ति होती है। वे अपने हाव-भावों से उन्हें अपने ओर खींचती हैं और छेड़खानी करने के लिए निमंत्रण देती हैं। वे समझती हैं कि ऐसा करने से वे सुन्दर, मनोहर, आकर्षक दीखती हैं, लेकिन सचमुच यह सारी चीज हास्यास्पद है। जब तक उनके बंदर से नाज़-नखरों की यह प्रवृत्ति सच्चे सौन्दर्य में न बदल जायेगी, वे पुरुषों की समुक्ता का शिकार होती रहेंगी। उन्हें अपने चरित्र में दृढ़, संयत, उच्च और नरही-साथ नम्र होना चाहिये। नारी के आंतरिक सौन्दर्य के आदर्श के बारे में यहाँ कहती हैं :

‘अंगों के परिमाण में पूर्ण सामंजस्य, कोमलता और बल-सामर्थ्य, कमनीयता और क्षमता, नमनीयता और दृढ़ता, तथा सबसे बढ़कर, अति उत्तम, एक-रूप और परिवर्तनशील स्वास्थ्य जो एक शुद्ध-चित्त आत्मा बनने का, जीवन में समुचित विश्वास तथा भागवत् कृपा में बल श्रद्धा-विश्वास रखने का परिणाम होता है।’

अगर नारी अपने इस सच्चे सौन्दर्य, अपनी इस सच्ची दृढ़ता को पा ले तो वह समाज में अपना सच्चा स्थान पा लेगी।

यहाँ श्रीमां के विद्यार्थीकाल की एक घटना याद आती है :

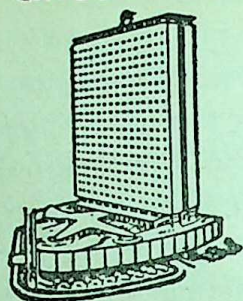
एक बार विद्यालय में लड़के-लड़कियों में झड़प हो गयी। लड़कों ने बाहर घेरा कर दिया और डरी-सहमी लड़कियां बंद कमरों में छिप गयीं। श्रीमां को तो डर नाम की चीज़ का पता ही न था। लड़कियों के बहुत मना करने पर भी वे छाता लिये बाहर निकलीं और बंद छाते को सामने करते हुए गंभीर वाणी में बोलीं—‘मुझे जाने दो’। और लड़के दो भागों में छंट गये, मानो किसी राजकुमारी को सलामी देने के लिए खड़े हों।

इस बारे में वे कहा करती थीं कि उस समय उन्होंने किसी आंतरिक शक्ति का उपयोग नहीं किया था। उनका व्यवहार एकदम सामान्य, स्वस्थ और इच्छा-शक्तिवाली लड़की के जैसा था।

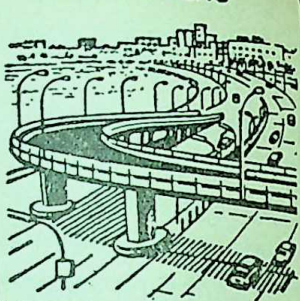
यह घटना सुनाते हुए श्रीमां कहा करती थीं कि अगर लड़की में इच्छा-शक्ति हो और उसकी रुग्ण वृत्ति न तो भय करे और न छेड़खानी आदि में रस ले, तो कोई उसे तंग करने का साहस न करेगा। भय हमेशा उस चीज़ को नज़दीक बुलाता है, जिससे हम डरते हैं।

आज हमें आवश्यकता है अपने इसी सोये हुए नारीत्व को जगाने की। वर्तमान शिक्षा की काली छाया हम पर पड़ी है। आजकल की फिल्मों और उपन्यासों को देख-पढ़कर अपराधों की संख्या बढ़ती है और नारी का आत्मविश्वास खोता

SKYSCRAPERS



FLY-OVERS



STADIUMS



BRIDGES



For modern projects

ANCHOR

CONCRETE SHUTTERING PLYWOOD

is used
to cut drastically
shuttering and centering
costs.

For details write for our Technical Bulletin



**THE INDIAN PLYWOOD
MFG. CO. LTD.**

Regd. Office: 9 Wallace Street, Fort,
Bombay 400004

जाता है, वह अपने-आप को अधिकाधिक
बसुरक्षित अनुभव करती है। दूर क्यों
जायें आज से साठ-सत्तर बरस पहले भी
ऐसी कितनी ही नारियां हो चुकी हैं
बिनकी गणना बहादुरों में की जा सकती
है। निर्भीकता के बल पर ही वे डाकू से
भिड़ जातीं, चोर के छक्के छुड़ा देतीं या
हमें अप्रत्याशित काम कर बैठतीं, जिसे
इत्ने से पहले पुरुष को भी दो बार सोचना
पड़े। स्वयं मेरी आंखों के सामने वह दृश्य
बार-बार गुजर रहा है, जब हिन्दू-मुस्लिम
हो के समय मेरी नानी ने आस-पास के
सभी चमार, काछी, धोबी, कहार आदि को
अपने मकान में आश्रय दिया और मुसल-
मानों की टोली के आते ही अपने-आप
कैली नंगे पैर दरवाजे के फाटक पर आ

खड़ी हुई और दहाड़कर बोली—‘पहले
मेरा खून कर दो। इस देहरी पर जब तक
मेरा रक्त नहीं बहेगा, तब तक तुम लोग
अंदर नहीं जा सकते।’ और देखते-ही-
देखते क्रोध से पागल भीड़ वहां से सिर
झुकाये चुपचाप आगे चली गयी।

मुसीबत को कभी आकर्षित नहीं करना
चाहिये, लेकिन अगर वह सामने आ पड़े
तो फिर उससे पीठ नहीं मोड़नी चाहिये।
उसे ललकारना नहीं चाहिये, लेकिन जब
सिर पर आ पड़े तो अधिक-से-अधिक
शांति, निर्भीकता और दृढ़ता के साथ
उसका सामना करना चाहिये।

शायद ये ही हैं सच्चे समाधान की
ओर बढ़ते हुए चरण।

—श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचरी ६०५००३

लेखकों से निवेदन

- रचनाओं का अंतिम निर्णय एक खानगी सलाहकार-समिति करेगी। व्यक्ति विशेष नहीं।
- ‘भारती’-समन्वित ‘नवनीत’ केवल हिंदी, भारत या उसके साहित्य तक सीमित नहीं। वह एक वैश्विक और अंतरराष्ट्रीय व्यास की सर्वसमावेशी सांस्कृतिक और ज्ञान-विज्ञान-समन्वित पत्रिका है। रचना भेजते समय कृपया, यह लक्ष्य में रखें।
- अनामन्त्रित कविताओं पर विचार करने को हम बाध्य नहीं। आज के समग्र विश्व-साहित्य में से चुनी हुई थोड़ी-सी कविताएं ही हर अंक में जा सकेंगी।
- रचना के साथ टिकट लगा पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी और न उसके संबंध में पत्र-व्यवहार ही किया जायेगा।
- रचना भेजने से पूर्व विचार कर लें कि वह नवनीत के अनुकूल है भी या नहीं।

—संपादक

लिंक चेन

जिसकी एक-एक कड़ी मजबूत, परखी हुई और
पूर्णतः विश्वसनीय है।



सभी उद्योगों व वाहनों में उपयुक्त



एलॉय स्टील चेन एक विशेषता
इंडियन लिंक चेन मैन्यु. लि., भाण्डुप, बंबई-७८

शिक्षाविदों और उप-कुलपतियों के सम्मेलनों और प्रत्येक दीक्षांत समारोह के प्रवचनों का अंतिम निष्कर्ष एक ही वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन करना चाहिये। लेकिन कौन लायेगा यह परिवर्तन? और कब? शिक्षा का क्या ही ऐसा बनाया जाये कि शिक्षाप्राप्त युवा पीढ़ी समाज के प्रति अपने दायित्व को भली भांति समझ पाये। वर्तमान शिक्षा के फलस्वरूप किसी एक विषय में अधिक न होकर, युवा छात्र ढेर सारे विषयों की अनावश्यक बातें पढ़ता रहता है। स्कूल-कालेज में शिक्षा प्राप्त करने पर अधिक खुशहाली के द्वार खुल जायेंगे जो आश्वासन विफल रहा है। छात्रों को निराशा खतरनाक मोड़ लेने लगी है। जो छात्र होनहार हैं, जो साहित्य के क्षेत्र में तत्पुष्टि-विज्ञान की विविध शाखाओं में अपना महत्तम योगदान देने में समर्थ हैं, वे प्रतिभावान छात्रों के दिल में भी निराशा फैला रहा है। शिक्षा के कुछ नहीं रहा। रोजगार की नजर में यह सब महज रोजगार के प्यादों से अधिक कुछ भी नहीं। कालावाजार, मिलावट, दुराचार और दुराचार के अतिष्ठों ने देश के सार्वजनिक जीवन को तहस-नहस कर दिया। हमारे उद्योगपति हो या व्यापारी माल बेचना चाहते ही मुंहमागे दाम लेकर बेचते रहते हैं। चुनाव के दौरान विभिन्न दल और

राजनीतिज्ञ सुनहरे भविष्य के प्रलोभन देते हैं। लोग भली भांति जानते हैं कि निर्वाचित हो जाते ही यह सब बातें भाप बनकर अदृश्य हो जायेंगी। दूसरी तरफ कई बुनियादी समाज-सेवी संस्थाएं महिला, हरिजन, आदिवासी, कुष्ठ रोगी, नेत्रहीन, मूक, बधिर या अन्य विकलांगों की सेवा में जुटी हुई हैं। चूंकि इन संस्थाओं में भ्रष्टाचार की कोई गुंजाइश नहीं होती, इसलिये उनके काम में दिलचस्पी लेने वालों की संख्या भी बहुत कम होती है। समाज में भी ऐसे कार्यकर्ताओं को कोई पूछता नहीं। इसी वजह से इन संस्थाओं को निष्ठावान सेवकों की हमेशा तलाश करनी पड़ती है। जिस संस्था के पास संपत्ति और धन का बाहुल्य हो, उसकी सेवा में खिदमतगारों की फौज तैनात रहती है। जरूरत है वफादारी की

रचनात्मक कार्यक्रमों में भी नये जातिवाद का बोलबाला है। नशाबंदी का अभियान केवल उससे संबंधित कार्यकर्ताओं तक ही सीमित रह गया है। उनके कार्यकर्ताओं की उपस्थिति नहीं के बराबर होती है। हरिजन कल्याण का कार्य हरिजन सेवक संघ के दायरे तक रह गया है। वही हाल गोसेवा या भूदान का है। इस ग्रंथ को मिटाना होगा। कार्यकर्ताओं को न केवल अपने कार्य या संस्था के प्रति वफादार रहना चाहिये, बल्कि अन्य रचनात्मक कार्यों में भी सुविधा के अनुसार हाथ



may your spirits
soar high
throughout the year
in colourful
Khatau Voiles.



**THE KHATAU MAKALU
SPG. & WVG. CO. LTD.**
Regd. Office:
Laxmi Building, 6, Shree Mahadev
Bombay-400 038.
Mill:
Haines Road, Byculla, Bombay-400 033.
Wholesale Shop:
Mulji Jetha Market, Bombay-400 033.

KMS/71-8/PREH

बंटाता चाहिये।

इसके लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है आत्म-मंथन की। हम चाहे सेवाभावी कार्य-कर्ता हों या उद्योगपति, व्यापारी, शिक्षा-विद, कामगार, नेता, सहकारी कर्मचारी या अन्य पेशेवर, अपनी अंतरात्मा को झूझाएँ। अपने आपसे हम सवाल करें कि क्या मेरा कार्य राष्ट्रहित में है? इस सवाल भूमि के सदियों पुराने संस्कार-मूल्य नहीं भुला तो नहीं दिये? जापान और जर्मनी को ही देखिये। महायुद्ध में दोनों ज़ख्म-नहस हो गये, पर उनके नागरिकों ने अपनी मातृभूमि के हित को सदैव प्रमुखता से और उसी भावना ने उन दोनों देशों को विश्व के हर क्षेत्र में अग्र स्थान पर लाकर खड़ा दिया है।

फिर भी हमें हताश होने की जरूरत नहीं। माना कि हमारे देश की जनता अन-सुख है, गरीब है, पर इसके बावजूद वह संस्था बनाये हुए है। इसे परख है अपनी मूल्यों की। हम शांतिप्रिय और निष्कलुष हैं। अभाव है तो केवल ध्येयनिष्ठता का। कहां ढूँढ़ें निःस्वार्थ, निष्कलंक और निष्ठावान कार्यकर्ताओं को?

देश की अस्सी प्रतिशत आबादी गांवों में बसी हुई है। गांधीजी हमेशा कहा करते थे कि जब तक गांवों की उन्नति नहीं होगी, जब तक भारत की उन्नति होना असंभव है। उन्होंने कहा था कि जिस खून से शहर की रक्तवाहिनी फूली है, उसी को फिर से गांव की नसों में बहाया जाये। पूर्ण स्वराज्य

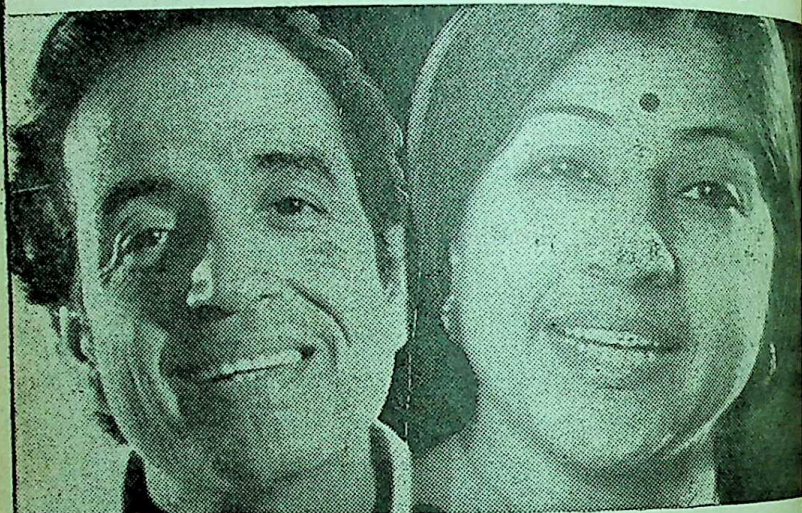
का मतलब है कराड़ी श्रमजीवी लोगों के लिए संपूर्ण आर्थिक स्वातंत्र्य। दुर्भाग्य से आजादी के तैंतीस वर्ष के बाद भी आज हजारों गांवों में पेय जल का संकट है। लाखों लोगों को दो जून की रोटी तक नसीब नहीं होती। अनगिनत बच्चे भूखे-नंगे और फटेहाल दशा में हैं। लाखों बच्चे पौष्टिक आहार से वंचित हैं। अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त डाक्टरों या शिक्षा की सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं।

पिछले कुछ वर्षों में केंद्र व राज्य सरकारों ने लोकाभिमुख एवं ग्रामाभिमुख कार्यक्रम अपनाने का निश्चय किया है। उन्हें प्रतीति हो चुकी है कि सच्ची प्रगति के लिए गांधीय ही एकमात्र उपाय है। इस विराट कार्य में प्रजा के सभी वर्गों का सहयोग लेना अनिवार्य है। गरीबी तथा बेरोजगारी मिटाने के लिए प्रत्येक नागरिक को हर संभव प्रयास करना होगा।

खादी ग्रामोद्योग, हरिजन कल्याण, नशाबंदी, सामाजिक सुधार, निरक्षरता-निवारण, लोक शिक्षा और सांप्रदायिक सद्भाव के बुनियादी कार्यों में रत संस्थाओं को यथासंभव सहायता देने के लिए हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिये।

प्रत्येक परिवार को ऐसा व्रत लेना चाहिये कि अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं की कम-से-कम पचास प्रतिशत वस्तुएं वह खादी ग्रामोद्योग से खरीदेगा। तामिलनाडु में विगत वर्ष के दौरान सोलह करोड़ रुपये की खादी का उत्पादन हुआ। इसी

When you save with **NEW BANK** Smiles are on the way



Security is happiness. When you know your savings in NEW BANK will take care of all your rainy days, you can smile with ease.

Start saving with NEW BANK today. Our various schemes like Saving Accounts, Fixed Deposits, Reinvestment Deposits, Janta Deposits and Popular Deposits will assure these smiles for you.



NEW BANK OF INDIA

(A Government of India Undertaking)

तब दस करोड़ का ताड़गुड़, चार करोड़ का साबुन, दियासलाई आठ करोड़ और अन्य चीजों का चालीस करोड़ का उत्पादन हुआ । इस वर्ष का लक्ष्यांक है पचास करोड़ का । दस लाख स्त्री-पुरुष इन कार्यों के द्वारा अपने घर पर स्वाभिमानपूर्वक रोजी कमाते रहेंगे । अगर पचास प्रतिशत चीजें इन श्रमोद्योग से खरीदते रहें तो लाखों श्रमिकों को रोजी-रोटी मुहैया करने का राष्ट्रीय दायित्व हम निभा सकेंगे । आज बिंदी गाड़ी से लेकर घड़ी, ट्रांजिस्टर, ताड़ियाँ आदि के लिए एक होड़ लगी हुई है । इन चीजों का होना फैशन और प्रतिष्ठा का अंग समझा जाता है । ऐसी चीजें खरीदना या उनका प्रयोग करना सरासर प्रताद्वेह है ।

ट्रस्टीशिप का सिद्धांत

देश के व्यापार, उद्योग और प्रशासन में प्रजा और राष्ट्र का हित बनाये रखने का एकमात्र उपाय है ट्रस्टीशिप का सिद्धांत । गांधीजी की भी यह दृढ़ मान्यता थी ।

गांधीजी ने इसीलिए श्रीमंतों से सूझ-बूझ से काम लेने की व्यावहारिक सलाह दी : 'जीपितियों के मन में ऐसी गलतफहमी है कि उन्होंने अत्यंत अल्प समय में ढेर सारा धन जो बटोर लिया है, उसपर केवल उन्हीं का प्रभुप्रदत्त अधिकार है । किंतु इस मान्यता पर पुनर्विचार करना नितांत जरूरी हो गया है । ट्रस्टी के रूप में अपनी संपत्ति की व्यवस्था करने पर आप देश के सत्तर लाख गांवों की शांति, स्वास्थ्य और आराम के

गांधीजी ने इन सात अनिष्टों से दूर रहने का हमसे अनुरोध किया है । १-सिद्धांतहीन राजनीति, २-श्रमहीन दौलत ३-नीतिहीन व्यापार, ४-चरित्रहीन शिक्षा, ५-अंतरात्मा को छोड़कर प्राप्त होने वाला आनंद, ६-मानवताविहीन विज्ञान और ७-त्यागहीन तप । ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हमें इन सब दुर्गुणवहारों से बचने की शक्ति प्रदान करे ।

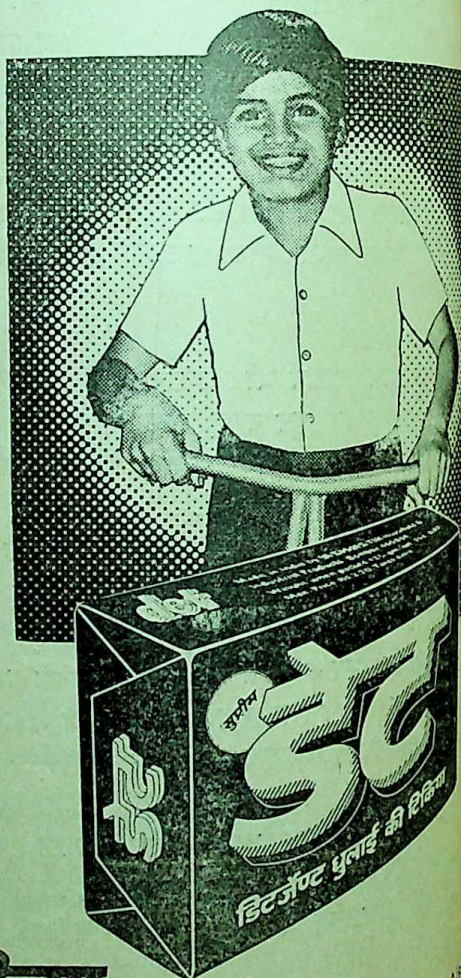
सच्चे स्वराज्य की परिभाषा

कभी-कभी सत्ताधीशों द्वारा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जाती है, जो न केवल प्रजाहित के विरुद्ध होती है, बल्कि जिससे जीवन के सच्चे मूल्यों की अवहेलना भी होती है । गांधीजी ने समाज को दोहरा दायित्व सौंपा है । सत्ता का दुरुपयोग होने पर उसका मुकाबला करें, पर उसे अहिंसक ही बनाये रखें । सच्चे स्वराज्य के बारे में गांधीजी कहते थे, 'असली स्वराज्य तब मिलेगा, जब सब लोग अधिकारों के दुरुपयोग के विरुद्ध सोच-समझकर आवाज उठावेंगे । आम जनता को मालूम होना चाहिये कि न केवल शासकों के ऊपर, बल्कि उनके कार्यों के ऊपर भी अंकुश बनाये रखने की असीम शक्ति उसके हाथ में है ।'

हरिजननों के प्रति आज भी सामाजिक अन्याय बरकरार है, जिसे मिटाने के लिए प्रबल पुरुषार्थ की जरूरत है । सेवाभावी संगठन इस दिशा में जोरदार आंदोलन कर सकते हैं । दहेज की वेदी पर कितने बलि-

डेट टिकिया आज़माइए, सफ़ेदी अपनाइए

आज पहले से कहीं
ज़्यादा लोग
डेट टिकिया की
शानदार धुलाई पसन्द
करते हैं; कहते हैं
यह चकाचौंध
सफ़ेदी लाती है,
कहीं ज़्यादा किफ़ायत
करती है.



डेट टिकिया

दान बढ़ाये जाते हैं। प्रजा इन हत्यारों को नबक सिखा सकती है। हाल ही में कल-कता में एक घटना प्रकाश में आयी। दो रात को दो दंपति रास्ते पर खड़े रहकर अपनी गाड़ी में बैठने जा रहे थे, तब कुछ अनात्मजिक तत्त्वों ने गाड़ी के टायरों की हवा निकाल दी और दोनों में से किसी भी एक औरत को एक रात के लिए सौंप देने को मांग की। घबराये हुए मरदों ने एक नाब रूय की राशि देना स्वीकार किया, लेकिन उनकी एक न चली। गुंडे एक औरत को अपहृत कर ले गये और अगले दिन उसे मुक्त किया, पर औरत मर गयी। इसी के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी—न सरकार के, न प्रजा के। दिल्ली और अन्य शहरों में आज महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं। लोगों को चुपचाप बरदाश्त किये जा रहे हैं। क्यों नहीं उग्र आन्दोलन चलाया जाता है जिससे सरकार की नींद हराम हो जाये और गुनहगारों की संख्या भी कम हो जाये।

भारत की शिक्षा-संस्थाएं जन-विमुख होती जा रही हैं। विदेशी ढांचों में पली संस्थाओं को देश की जनता के बारे में कोई जानकारी नहीं होती। देश के उपर कितना संकट हो, ऐसे आपात्काल के दौरान भारतीय विद्या के उपासकों का बेजान स्वर सुनायी नहीं देता। विश्वविद्यालयों के विभिन्न वातावरण में पढ़ने-लिखने वाले युवा लोग लोगों की आकांक्षाओं के बारे में अनभिज्ञ हैं। सामाजिक और राजनैतिक

स्वरों पर अलगाव का अंतर बढ़ता जाता है। प्रगति हासिल करने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है इस अंतर को पाटने की-भावनाओं द्वारा ही नहीं, अपने कार्यों द्वारा भी। चुनाव चाहे पंचायत के लिए हों या संसद के लिए, हमें चाहिये कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्यरत निःस्वार्थ, ईमानदार, राष्ट्रप्रेमी और ध्येयनिष्ठ लोगों को चुनाव लड़ने के लिए तैयार करें और राजनैतिक दलों को भी स्पष्ट रूप से बता दें कि हमारा वोट चाहते हो तो ऐसे उम्मीदवारों का ही चयन करें। राजनैतिक दलों के सदस्यों में देश के प्रति लगाव होना चाहिये। संगठित लोकशक्ति इस दिशा में अहम् भूमिका निभा सकती है।

अपने राष्ट्र ने आज तक अदम्य जोश और उत्साह के साथ कई संकटों का सामना किया है। उसी जोश और जीवनशक्ति की आज भी जरूरत है। लोग अपनी सुख-सुविधाओं के प्रति उदासीन हैं। शिक्षित वर्ग भी इस हालत के प्रति लापरवाही बरतता है। इस हालत को देखकर विवेकानंद की तरह गांधीजी के दिल में भी अपार व्यथा होती थी। दोनों ने अपने-अपने ढंग से लोगों में चेतना जगाने की कोशिश की। उनकी उदासीनता का दौर अब भी जारी है, हालांकि कई क्षेत्रों में नयी शक्ति उभर रही है। आज राजनीति ने महज बेईमानी का रूप धारण किया हुआ है। लोकतंत्र और धर्म-निरपेक्षता की दुहाई दी जा रही है। अल्पसंख्यकों और गरीबों के नाम पर

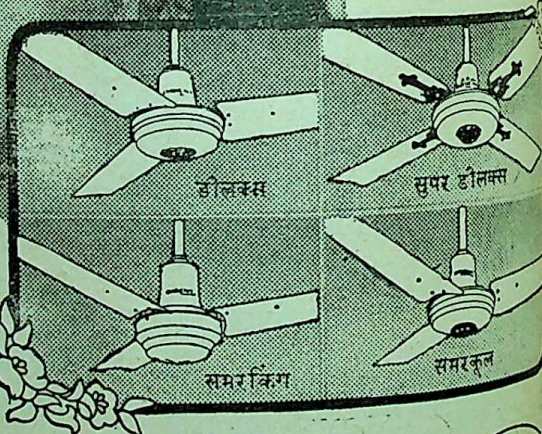
Digitized by Anand Samrat Foundation, Ghazipur and eGangotri

सारी गर्मी हवा खायें! वर्षों तक अब मौज मनायें!!



आह हा ! ओरिएन्ट पंखे के नीचे दिन कितने सुहाने बीतते हैं. ये मनलुभावरे स्टाइलों और अच्छी कार्यक्षमता के लिये बने हैं. सच, इनको आकृति तथा रंगों का आपके घर की साज-सज्जा से बिल्कुल मेल है. और फिर ये बने ही तो दक्ष कारीगरी हाथों से हैं. अतः ठीक जैसा आप चाहते हैं, वैसा ही पायेंगे—देखने में मनमोहक, कार्यकुशलता में निराले और वर्षों चलने वाले.

- ४ सीलिंग पंखे
- ६ टेबल पंखे
- २ पेडेस्टल पंखे



ओरिएन्ट पंखा

कार्यकुशलता और सौंदर्य का बेजोड़ संगम

ओरिएन्ट जनरल इंडस्ट्रीज लिमिटेड
फ्रीडम रोड, नई दिल्ली-110058

ओरिएन्ट
पंखा

CC-005

आपसी निंदा जोरों पर है। इसलिए सबसे पहले इस भाषा को परिमार्जित करना होगा। बुद्धिजीवी लोगों को यह फ़र्ज़ निम्नाना है। भाषा का उपयोग निंदा के विषय के रूप में और राजनैतिक सुविधा के अनुसार होने से विनाश ही होता है। भाषा-शुद्धि के साथ-साथ लोकशक्ति को भी संगठित करना होगा।

(पृष्ठ ९१ का शेषांश)

उन दिनों वे नज़रबंद लोगों के मुकदमे निशुल्क लड़ते थे। कर्नाटक उच्च न्यायालय में उन्होंने श्री अटलबिहारी वाजपेयी का अन्य नेताओं की लिखित याचिकाएं दूर की थीं।

श्री छागला उच्च कोर्ट के न्यायकर्ता, ग़रीब, वक्ता, समाज-सुधारक, शिक्षा-प्रसासक होने के साथ-साथ एक भावनाली और संवेदनशील लेखक भी थे। उनकी 'रोजेज़ इन निसंबर', 'एन एम्पेडर स्पीक्स', 'द इंडियन कांस्टीट्यूशन' और 'लॉ, लिबर्टी एंड लाइफ़' नामक कृतियां इसकी गवाह हैं।

अपने जीवन-काल का अंतिम भाषण उन्होंने २९ दिसंबर को बंबई में भारतीय जनता पार्टी के मंच से दिया था। इस भाषण में उन्होंने कहा था—'भारतीय जनता पार्टी ही कांग्रेस (इ) का एकमात्र विकल्प है। इस पार्टी के नेताओं के साथ और संवेदना काफ़ी पुराने और घनिष्ठ हैं।' इस भाषण के बाद, उन्होंने पार्टी के

गांधी जी आज भी हमारे बीच में मौजूद हैं। उनका स्थान सदा के लिए बनाये रखने के लिए ऐसा करना अनिवार्य है। देश का अतीत उज्ज्वल रहा है। हमें भविष्य को भी गौरवमय बनाना है। इस दिशा में निष्ठा और लगन से प्रयास करने पर ईश्वर हमारी अवश्य सहायता करेगा। (गुजराती से अनुवाद : दिगम्बर स्वादिया)

प्रतिनिधियों के साथ सामुदायिक भोजन किया।

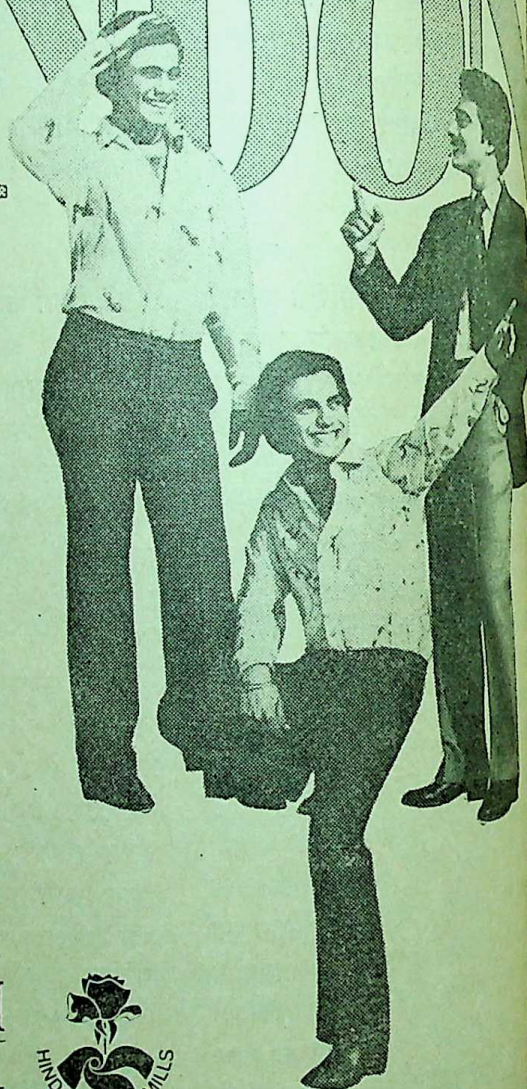
९ फरवरी, १९८१ की रात को अपने प्रिय क्लब के बाथरूम में सहसा अपनी जीवन-लीला समाप्त करने के तीन दिन पूर्व, एक घुसपैठिये ने चाकू के साथ उनके निवासस्थान में प्रवेश किया था। उनके संतरी ने उस घुसपैठिये को रोकने का प्रयास किया, पर इस प्रयास में वह स्वयं मारा गया। बाद में, यह घुसपैठिया भी पुलिस के हाथों मारा गया। आशा है कि यह दहलाने वाली घटना श्री छागला के आकस्मिक निधन का कारण नहीं बनी होगी।

श्री छागला के दुखद निधन से भारत-माता ने अपना एक सपूत खो दिया, और भारतीय संस्कृति ने अपने एक क्रीमती और योग्यतम समर्थक को।

[मई-अंक में स्व. मो. क. छागला की विख्यात संस्मरणात्मक पुस्तक 'दिसंबर में गुलाब' का सार-संक्षेप प्रकाशित होगा।]

हिन्डन की बहार... लाई निस्वार

HINDON



हिन्डन

साड़ियाँ . सूटिंग्स
शर्टिंग्स . ड्रेस मैटेरियल

आधुनिक मिल द्वारा
निर्मित कपड़े



DCM
TEXTILES

५०० से भी अधिक डो सो एम रिटेल
तथा अन्य रिटेल स्टोर्स पर

विकलांग वर्ष

एक दिन मैं विद्यालय की लान में बैठकर अपने मित्रों से विकलांग वर्ष के बारे में बात कर रहा था कि अपने विद्यालय को कौनसा योगदान देना चाहिये। विकलांगों की प्रसंगी, विकलांगों के बारे में कुछ विचार-विवाद प्रतियोगिता की योजना बन रहे जा रही थी। तभी एक विकलांग छात्र हमारे पास आया और उसने विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिये अर्थोपार्जन करने के इरादे से हम लोगों से अपनी सहायता के अनुरूप काम की मांग की।

उस छात्र की मांग उचित थी, लेकिन हमारे विद्यालय के प्रशासनिक ढाँचे की सीमा से बाहर है' कहकर उस विकलांग छात्र की मांग विद्यालय की ओर से ठुकरा दी गयी। मैं उसकी कुछ मदद करना चाहता था, लेकिन कुछ मित्रों ने एतराज किया। वह छात्र निराश होकर लौट गया।

उन्के आध घंटे बाद एक शानदार प्रकाश के सामने आकर रुकी। जिसमें दो आधुनिक महिलाएं उतरीं और हमारे प्राचार्य के कमरे में जाकर बातें करने लगीं। कथित दो समाज-सेविकाओं के प्रभाव में आकर विद्यालय के छात्रों से जो रुपये चंदे दिलवाकर काफी धन विकलांगों के नाम पर उक्त महिलाओं को भेजा गया। यह देखकर मुझे लगा कि भविष्य ही हम गहरी तड़क-भड़क के आकार हो चुके हैं। क्योंकि हममें से कोई



भी नहीं जानता था कि दी गयी राशि का उपयोग वे महिलाएं वास्तव में विकलांगों के लिये करेंगीं भी या नहीं ?

उसी समय हमारे सामने उस सेवाभावी विकलांग छात्र का तेजस्वी चेहरा घूम गया। मुझे लगा कि हम विकलांग वर्ष में विकलांगों को भुलाकर मानसिक रूप से कितने विकलांग हो गये हैं। झूठी सभ्यता ने हमें किस तरह जकड़ रखा है कि विवेक से कार्य करना ही हमने भुला दिया है। यह कितने अफसोस की बात है ?

—हरि ओम माथुर, अजमेर

०००

जिंदगी-हार भी, जीत भी

घटना उन दिनों की है, जब शतरंज में विशेष ख्याति लेकर मैं इंटर यूनिवर्सिटी चैस चैंपियनशिप की प्रतियोगिता में अपनी यूनिवर्सिटी का प्रतिनिधित्व कर रहा था। प्रतियोगिता के प्रारंभिक दो चक्रों में ही मुझे एक नये खिलाड़ी ने करारी मात दे दी। इस हार से मैं मानसिक रूप से इतना अस्त-व्यस्त हो गया कि उसी दिन घर लौट

सुपर रिन की चमत्कार ज्यादा सफेद



किसी भी अन्य डिजेंट टिकिया या बार से ज्यादा सफेद

सुपर रिन से नियमित धुलाई करने पर आपके कपड़ों में ऐसा फर्क आये कि दूर से दिखे। किसी दूसरी डिजेंट टिकिया या बार के मुकाबले सुपर रिन कहीं अधिक सफेदी लाता है, क्योंकि सुपर रिन में अधिक सफेदी की शक्ति है।

आज़माइए और सबूत पाइए:

किसी अन्य
डिजेंट बार से
धोया हुआ



सुपर रिन से
धोया हुआ



अधिक सफेदी की शक्ति से
डिजेंट-रिन

हिस्ताब लीवर का एक सफेद उत्पादक

आया। घर पर भी मुझे चैन नहीं था।

मेरे आश्चर्य का उस समय कोई ठिकाना न रहा, जब मेरे घर पहुंचने के लगभग दो घंटे बाद, मुझे मात देने वाला वह लड़का भी मेरे घर आ पहुंचा और उसने मुझसे मिलकर कहा, 'मुझे माफ कर देना, दोस्त! तुम्हें इस तरह मानसिक चोट पहुंचाने का मेरा कतई इरादा न था।'

'पर तुम प्रतियोगिता छोड़कर क्यों चले आये? आज ही तो फाइनल गेम होने वाला था, जिसमें तुम्हें चैंपियन बनने से तो कोई नहीं रोक सकता था!' मैंने आश्चर्य-चकित होकर उस लड़के से पूछा।

'चैंपियन बनने के लिए तो सारी उम्र खी हुई है।'

मुस्कराते हुए वह बोला—'अभी तो मैं तुम्हें यही कहने आया हूं कि कभी मैं भी हार न सह पाता था, पर हार को अपने मन से सहज रूप से अपनाया, मेरी जीत हुई। मेरी तरह तुम्हें भी जिंदगी में हार को स्वाभाविक रूप से लेने की आदत बनानी ही होगी। फिर भविष्य का चैंपियन बनकर तुम्हें भी अपना फर्ज पूरा करना होगा।' यह बात मेरे मन-मस्तिष्क पर इस तरह स्थायी प्रभाव छोड़ गयी कि बाद में हर कार्य में मेरे लिए प्रेरणा स्रोत बन गई।

उस लड़के की बात जिंदगी में मैं शायद कभी भूल पाऊं।

बिनोद कुमार लाल, हजारीबाग, बिहार

उच्च स्तर के प्रति अनन्य निष्ठा
के लिए सुविख्यात

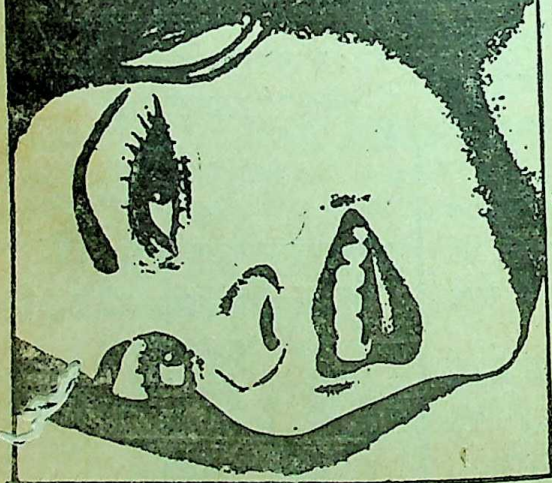
जेनिथ स्टील पाइप्स एंड इंडस्ट्रीज़ लि.

१९५५, चर्चगेट रिक्लेमेशन
बंबई-४०० ०२०

फोन : २९४४४५, टेलीक्स : ०११-२४५८
ग्राम : ZENPIPES

अत्युत्तम स्टील पाइपों, औद्योगिक
छुरियों और विशेष फौलाद के
निर्माता।

मुनिया रानी बढ़ती जाये
बड़े काले, बालों का जादू जगाये
मोती से सफेद दांतों को चमकाये



गाय छाप काला दन्त-मैबन
—उसके दांतों को चमकाये
मोती से सफेद व मसबूत बनाये

गाय छाप ब्राह्मी आँवला केश तैल
—उसके बालों को और घने बनाये
खूबसे सुहाये मन में भाये
बालों का ये कालापन, घना व चमकीलापन

सेवाश्रम का गाय छाप ब्राह्मी आँवला केश तैल
और काला दन्तमंजन



मु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्याभवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००४
के लिए प्रकाशित तथा श्री केशव प्रेस, २६/४, बेलाराम श्रीकृष्णदास

१९००००४ में मुद्रित ।

ताज़गी की एक लहर!

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं।
जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की
लहर। आप अपने आपको कुछ और
ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।
क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके
लिए ही तो बनाए गए हैं। जियाजी
आस पास बिखरे सूनेपन में
ताज़गी भर देते हैं।

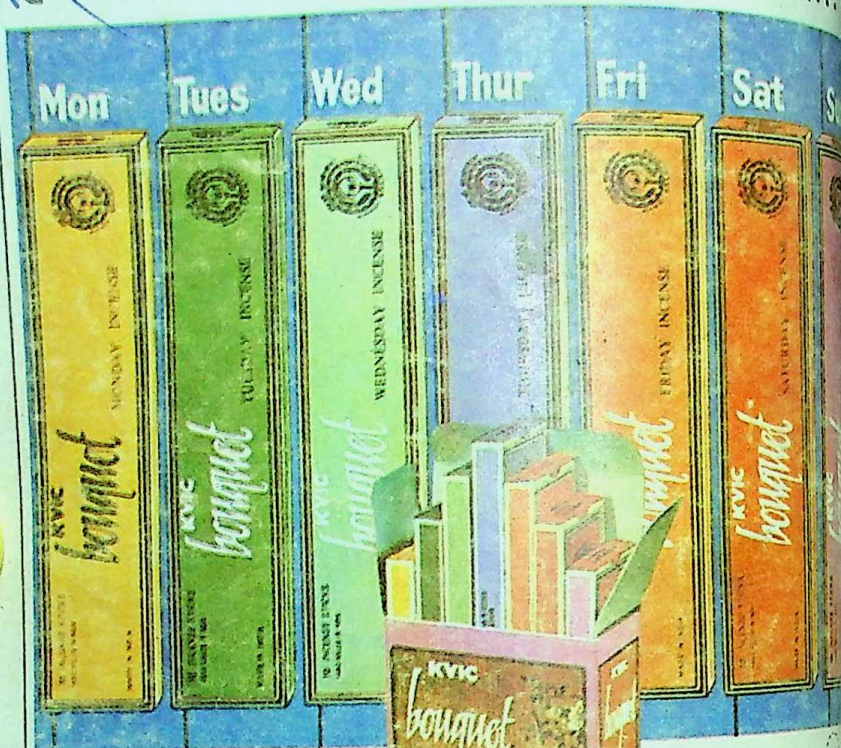


जियाजी
सूटिंग-शर्टिंग
कॉटन प्रिंट्स



जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड
बिल्डिंग, ग्वालियर (म.प्र.)

हफ्ते के सातों दिन, नई सुगंध हर दिन...



KVIC
अगरवत्तियों का
बूके

७ विभिन्न सुगंध वाली
अगरवत्तियों का अनोखा पैक.

बुके खरोदिए
या अपनी मनपसंद
क दिन की सुगंध खरोदिए!

- सुगंध प्रेमियों के लिए यह आनंद भरा पैक है।
- किफायत प्रेमियों के लिए यह पैसे बचाने वाला पैक है।
- यह एक अनुपम उपहार भी है।

डायरेक्टोरेट ऑफ मार्केटिंग (मानविस विभाग)

खादी एण्ड विलेज इंडस्ट्रीज कमीशन

कोटा ग्रामोद्योग केंद्र, सिम्पली बोरीवली (पश्चिम), बम्बई-४०० ०२२
फोन : ६६५५ • तार : MATCHDEZWA • टेलीक्स : ०१२-६२२२



3 BROTHERS

No. BY

न

न

न

न

न

न

न

न

न

न

न

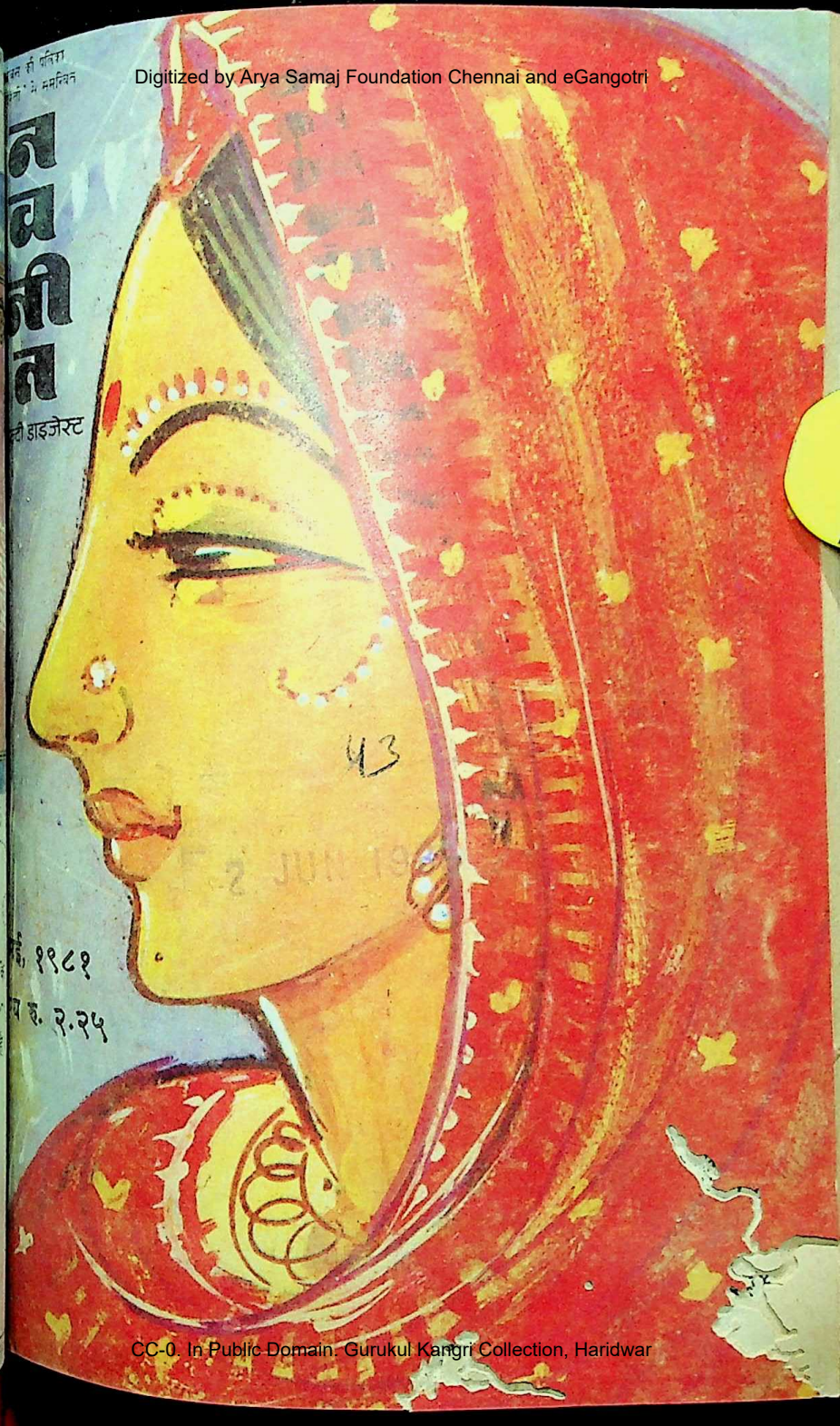
न

न

न

न

न



43

2 JUN 19

मियों के
ह आनंद
है।
त प्रेमियों
ह पैसे
वाला पैकेट
अनुपम
भी है।

१९८१
२.२५



रोमांचक कल्पनाओं का अनोखा संसार

वेताल, जो कभी नहीं मरता।
फ्लेश गॉर्डन, जो अंतरिक्ष का हीरो है
मैड्रेक, जो मायावी जादूगर है। और
बहादुर, जो आम जनता का हीरो है।
इन सबके साहसपूर्ण कारनामे !
बुराई पर अच्छाई की विजय !
मन को बांध लेनेवाली कहानियां
जो बच्चों के दिलोदिमाग पर
छा जाती हैं। उनको साहस और
बहादुरी की प्रेरणा देती हैं।
रहस्य और सनसनी में गुंथी हुई
बीते दिनों की अद्भुत कहानियां।

देश की महान विभूतियों के जीवन-प्रसांग।
यह सब सिर्फ शब्दों में नहीं, बहुरंगी चित्रों में
रहस्य, रोमांच और प्रेरणा के रंग
बच्चे ही नहीं, बड़े भी हो जायेंगे।

इंद्रजाल कॉमिक्स
टाइप्स ऑफ इंडियन कलर
T-100

स्वामिनारायण गौरव गाथा - ३०

[illegible]

भगवान् स्वामिनारायण
द्विशताब्दी महोत्सव
१९८१-१९८१



C N KANSARA S G G 30

प्रयोजक: बोद्यासणावासी अर्थद्वय: ब्रह्मास्वरूप स्वामीश्री
श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था नारायणास्वरूपदासजी (प्रभुस्व स्वामी)
भाईबाग अहमदनगर

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

वीरेन्द्र कुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र :

शान्तिदेव

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३० ; खंड

कांच के दरख्त का डर

डॉ. श्याम सुन्दर निगम
श्रजल श्याम प्रकाश अग्रवाल
मेरे कुछ अलौकिक अनुभव

अप्पा पंत
भिखारी (चीनी कहानी) लू-शुन
कैंसर : कितना सच, कितना झूठ
डॉ. कोठारी, डॉ. मेहता

विज्ञान के क्षेत्र में भारत के
बढ़ते कदम डॉ. राजा रामन्ना
होमियोपैथी का उद्भव
डॉ. एच. बी. कारापटेल

प्रार्थना

प्रेमचन्द के पत्र
मेरे महान पिता और उनका जमाना
प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

भारतीय मंदिर-कला का
उद्गम तीर्थ दिनेशचन्द्र वर्मा
कविता में लौकिक और परालौकिक
का विभाजन नहीं

वीरेन्द्र कुमार जैन
प्रमाण (कहानी) संजय खाती
मुझ पर विश्वास नहीं है आपको
विष्णु प्रभाकर

पूर्णमा की मदनगंधा रात
(कविता) मदनमोहन तरुण
अगली शताब्दी (कविता)
रमेश दवे

विद्या भक्त कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

३०; केई १९८१

स्वकुंड की यात्रा	विपिनचन्द्र शाह	८४
विज्ञान और चेतना का भविष्य	डॉ. एम. ए. मार्शेडी	९२
विज्ञान कविता	रवीन्द्रनाथ ट्यागी	९७
मुलसी	सदाजीवतलाल बहल	१००
राम प्रज्ञा का वटवृक्ष : उपनिषद्	श्रीमती राज खोसला	१०५
वृष महस्थल में अमृत के सोते फूटे	डॉ. शिवशंकर त्रिपाठी	१०८
हो कारण गांधीजी के आश्रम को...	उपराष्ट्रपति हिदायतुल्लाह	११२
तला गुह कौन ?	अवकाशयात्री	११७
विश्व भारतीय लोककला	डॉ. अशफ़ीलाल श्रीवास्तव	१२०
सितर में गुलाब (पुस्तक संक्षेप)	मो. क. छागला	१२५
मृतिके अंकुर	त्रिपाठी, त्रिवेदी,	१४७
लाल, पाण्डेय, दत्त	लाल, पाण्डेय, दत्त	१४७
हो क्षण तो हंस लें	दीपक दीक्षित, डॉ. 'वंशी'	१५९
विन-सज्जा : ओके, शेणै, ब्लैक,	राणा, जडिया, चव्हाण,	
सांकरा, आलोक जैन	सांकरा, आलोक जैन	



अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित पूरुषोत्तम जिला, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी धर्मार्थ न्याय, संस्थापक : कुलपति क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री धरमसी म. खटाव, उपाध्यक्ष : श्री गिरधारीलाल मेहता, श्री जयमुखनाथ हाथी ।

सदस्योक्त प्रशिक्षण

१- मुन्शीदेवी संस्कृत महाविद्यालय २-शास्त्रीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३-महल संस्कृत परीक्षा विभाग ४-मोता विद्यालय ५-मुन्शी-महल शैक्षणिक स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रशिक्षण ६-मुन्शी महल मंदिर (पुस्तकालय) ७-बल्लभजी रामजी बाल पुस्तकालय ८-भारतीय संघीय जिलापट ९-भारतीय नेशनल जिलापट १०-भारतीय इतिहास विभाग ११-प्रकाश मंदिर, पुस्तक मुद्रिणीय, मुन्शी साहित्य, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या वैचारिक), बल्लभ वर्मा (अमेरी पब्लिक), सविद (संस्कृत वैचारिक), नवसेवी हिन्दी टाइम्स (हिन्दी मासिक), नवसेवी सचरंग (मुद्रणीय मासिक) १२-राजीव अन्तर्द्विषा और आधुनिक भाषाभार बोधन १३-बोधिनिर्मित बोधन १४-राजाजी शास्त्रीपट्टी संपत्ति १५-म. न. कला कालेज और न. न. विद्यालय विद्यालय संस्था (अमेरी) १६-बल्लभजी महल पब्लिक स्कूल (नवी कली) १७-हजारीमल सोमानी कालेज, कला एवं विद्या (चौपटी, बम्बई) १८-महल पटल अभियांत्रिकी कालेज (अमेरी) १९-राजीवमल अचरकाल विद्यालय कालेज (अहमदाबाद) २०-राजीवमल अचरकाल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१-राजीवमल वाणिज्य कालेज, (डाकोर) २२-कला एवं विद्या कालेज (डाकोर) २३-स्वामीनारायण पालिटेक्निक (डाकोर) २४-श्री बल्लभमल कारिकावली सोमो महिला कालेज (जाननगर) २५-ब. व. मेहता विद्यालय कालेज (मलवारी) २६-राजीव प्रसाद संवेदन एवं प्रबंध विद्या प्रशिक्षण (मुद्रिणीय) : प्रापलाय देवकल नाम्नी संवेदन एवं प्रबंध विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंवेदन कालेज, नवी दिल्ली; इंदिरा प्रभात जनसंवेदन कालेज अहमदाबाद तथा बंगलूर; सोमानी जनसंवेदन कालेज, एलाकुलम; बड़ोदा, चंडीगढ़, गुडूर, हैदराबाद, बंगलूर तथा त्रिपुर में स्थित जनसंवेदन कालेज २७-जवाहरलाल नेहरू भाषा अकादमी, नवी दिल्ली २८-ब. ह. वाडिया स्कूल (अमेरी) २९-बल्लभजी महल पब्लिक स्कूल (विद्यालय) बड़ोदा तथा भरवारी ३०-भवन का विद्या मंदिर, एलाकुलम, एलाकुलम ३१-कोलेजियम पर भवन का स्कूल, कोबील ३२-बल्लभजी महल पब्लिक स्कूल (विद्यालय) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३-भवन का पब्लिक स्कूल, भवन, रामचन्द्रपुर, हैदराबाद ३४-संस्कृत संस्थाएं : संस्कृत विश्व फरिद; भारतीय स्वो सेवा संघ; ज्योतिष परिषद् (बम्बई) ३५-संस्कृत पाठ्यक्रम पुस्तकें ।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलूर, बड़ोदा, चोपटी, मुम्बई, कलकत्ता, चंडीगढ़, कोयंबटूर, डाकोर, दिल्ली, एलाकुलम, गुडूर, हैदराबाद, जम्मू, जाननगर, काकोनाडा, कानपुर, मद्रास, मुद्रिणी, मो. न. मुद्रिणी, नामपुर, सिबोनी, बीनगर त्रिपुर, विद्यावाप्टनम, सेंटन (१-भारत) ९

भारतीय विद्या भवन

के.एम.मुन्शी मार्ग,चौपटी, बम्बई-४००००७

रमेश दवे के हाल ही में प्रकाशित कविता-संग्रह

‘काँच के दरख्त का डर’

पर डॉ. श्यामसुंदर लिगम की समीक्षा

‘काँच का दरख्त टूटता है तो रोपने वाले पर गिरता है और काँच के जंगल जब सुलगते हैं तो बबूल हरे होने लगते हैं।’ ‘काँच के दरख्त डरदार और हवसदार तो हो सकते हैं, छायादार या हवादार कभी नहीं।’ अपनी पचपन छोटी-बड़ी कविताओं के माध्यम से रमेश दवे ने अपने प्रथम काव्य संग्रह में अपने उस संवेदन को अभिव्यक्त किया है, जो गत २६ वर्ष से वे काँच की पर्देदार अय्याश संस्कृति के खिलाफ अनुभव करते रहे हैं। ये पचपन कविताएं एक दूसरे की पूरक हैं और सीधे-सादे रूप में अपनी बात कहती हुई भोगे हुए यथार्थ एवं उनसे जुड़ी अनुभूतियों को एक विशिष्ट संचेतना के साथ प्रकट करती हैं — बिना एक शब्द भी बेकार गंवाये।

दवे की कविताएं अपने मूल परिवेश को नहीं छोड़तीं। यही कारण है कि वह नदी को अपने अंदर बहने और समुद्र को अपने ज्वार की याद दिलाने के लिए उसके साथ मिलने की बात कहता है। समुद्र की उसके ज्वार की याद दिलाना एक

अंतर्द्रोह है, एक व्यक्ति का नहीं एक अंचल का जो स्वतंत्रता के एक कृत्रिम व आरोपित सभ्यता के एक बेचैन छटपटाहट के रूप में चला आ रहा है :—

महानगर और महासागर मीठे खोते होते ?

मुझे लगा। मेरे गांव का तालाब आज भी समुद्र से बड़ा है।

(गवाही बिगाड़ रहे लोग—)

× × ×

चिड़िया बता—

तेरे पंखों पर कहां लिखा है—

आजादी का अर्थ ?

(चिड़िया ने—)

इस छटपटाहट में निष्क्रिय बनने का कोई अर्थ ही नहीं रह गया है। का आमंत्रण दवे की रचनाओं का स्वर है। इस संघर्ष को भी वे एक की तरह करना चाहते हैं। इसलिए कविता में एक खास किस्म का भी है :

मेरे प्यारे बेटे / लड़

नवनीत

हर बात पर लड़ / रोटी पर लड़ / बिस्तर
पर लड़

(वरदावार चहरो के बारे में-१७)

लड़ना नहीं सीखेगा /
तो मेरी तरह / खांस-खांस कर मरेगा /
(बेटे से-२४)

बिस्तर पर गोली लगे

इससे बेहतर है

तड़ते लड़ते मारे जाओ।

(वक्त, आग और हवा-२२)

गोढ़ा होते हुए, दवे

अपनी रचनाओं के माध्यम

से अपनी असुरक्षा का

खतरा भी जाहिर करते हैं।

यह दवे के रचनाक्रम में

निम्नी कमजोरी का अहसास

होता है, मगर कविता के

शायि केवल शब्द ही तो

बढ़ सकते हैं, कवि तो लड़ने

पर हमेशा मरा है। इस

विषय दवे के सघर्ष में कहीं

हैं मुक्तिबोध की तरह

हो असुरक्षा का वह भाव है,

जिससे मुक्ति-

बोध भी तमाम जिंदगी

भोगते रहे

और यही डर मुक्तिबोध की समूची

जींदगी का डर भी रहा और शायद उस

जींदगी से स्थानांतरित होकर यही डर दवे

की रचनाओं में भी मौजूद है :

मेरी वरदावार चहरो / सलाखोंदार जेल /

दोनों से जिंदा लौटा हूँ / बार-बार /

मेरी मारा गया हूँ / - जेल के बाहर

१९८१

बैठा हूँ /

सम्ब लोगो के बीच /

पुंसत्व की परिभाषा करता /

चर्चा के दौर में पाया

हिजड़े / ज्यादा ताकतवर होते हैं।

(हम नपुंसक हो गये-५८)

साहित्यकार, / कलम फेंको /

माला उठाओ

राजधानी / जत्सों का नगर

होती है।

(राजधानी में आज्ञादी-५३)

रमेश दवे की पीड़ाओं

और संवेदनाओं में मध्य-

वर्गीय स्वर अपने सम-

कालीन अंचल की व्यथाओं

एवं उत्पीड़न को अभिव्यक्त

करता है। उनका कथन

है- 'रोटियों के बारे में

बयान देने वाले अक्सर

भूखे नहीं होते।' 'बयानों के बजाय,

रोटियां होतीं तो रोटी का प्रश्न बंदूक

न बनता।' दवे की सांस्कृतिक दृष्टि में

राष्ट्र धृतराष्ट्र है और जनता एक मजबूर

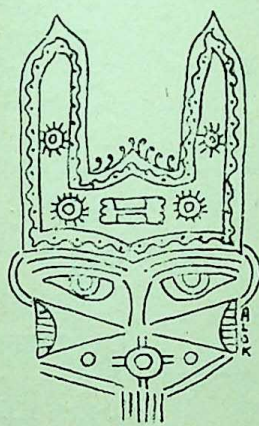
गांधारी। आम आदमी की जद्दोजहद,

उसकी कशमकश को दवे ने इस प्रकार

शब्दायत है :

तुम्हारे कमरे की दीवारों पर टंगे नंगी

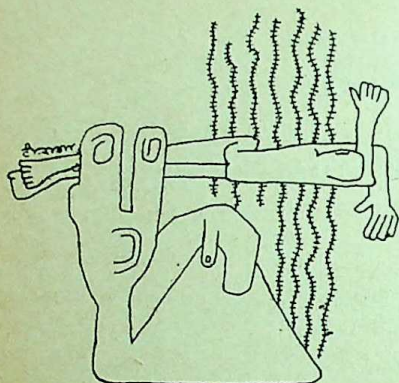
तस्वारों के कलेंडर



चित्र : आलोक जैन

हिंदी डाइ

गुजल



हर जगह उम्मीद लेकर जाइये
और फिर इस भूल पर पछताइये
रोशनी, काली घटा और आदमी
जिन्दगी भर इनसे धोखा खाइये।
रास्ते इनसे हुए हैं बदगुम
इन इरादों को जरा समझाइये।
आज कल हर आदमी बदनाम है
तंग गलियों से न होकर जाइये।
यह सड़क दोनों जगह ले जाइये
आप मन्दिर, चाहे मस्जिद जाइये।

—श्याम प्रकाश अग्रवाल

और आम रास्ते पर पड़ी

अधनंगी औरत—

फर्क है दोनों में।

तुम सपरिवार नंगे हो चुके हो

वह औरत नग्नता से रक्षा का एक युद्ध
लड़ रही है।

‘पेड़’, ‘सिपाही के लिए’, ‘पहरेदार’,
‘कांच के दरख्त का डर’ जैसी कविताओं
में दवे जहां मुखर और सार्थक ढंग से
अभिव्यक्त हुए हैं, वहीं ‘बीवी से’, ‘पेंचकस’,
‘अध्यापक से’ आदि कविताएं संकलन के
स्तर को नीचा ले जाती हैं। भाषा पर
दवे को न केवल अधिकार है, बल्कि उसके
सही इस्तेमाल की समझ भी है। कविता
में शब्द अपने पूरे मकसद के साथ उपस्थित
हैं। ये ५५ कविताएं दवे की आगामी

सामर्थ्य के प्रति आश्वस्त तो कल
मगर दवे का बयानबाजी के इर्द
से मुक्त होना जरूरी है। भाषा को
उन्हें छायावादी प्रतीकों की रूमानी
से बचाना होगा। फिर भी पूरे संकलन
दवे ने शब्दों के माध्यम से, अनुरूप
और संवेदन के माध्यम से रचना को
ताकत जाहिर की है, जिससे पाठक को
है। दवे मध्य प्रदेश के साहित्यिक क्षेत्र
में गुमनामियत भोगते-भोगते बहुत
से जाहिर हुए हैं, मगर जिनके पास
कन के चश्मे न होकर सही आंखें
दवे को निरस्त करके नहीं रख सकते

कवि : रमेश दवे; प्रकाशक :
प्रकाशन, दिल्ली; मूल्य : २०

मेरे कुछ अलौकिक अनुभव

□ अप्पा पंत

भूतपूर्व राजनयिक श्री अप्पा पंत ने यहां अपने कुछ ऐसे अविस्मरणीय अलौकिक अनुभवों का वर्णन किया है, जो उन्हें तिब्बत, सिक्किम और भूटान में हुए थे। एक जीवित लामा के आरपार देखने का निराला अनुभव भी इन अनुभवों में शामिल है।

ये अनुभव उनकी अंग्रेजी पुस्तक 'सूर्य नमस्कार' (प्रकाशक : संगम बुक्स, ओरियन्ट लांगमैन्स लिमिटेड, बम्बई-३८) से साभार उद्धृत हैं।

मुझे लगभग ६॥ वर्षों तक तिब्बत, भूटान और सिक्किम में रहने का सुखसर मिला था। तिब्बत में ल्हासा, साम्चे, सेरा द्रेपुंग, ग्यान्त्सी, यातुंग आदि स्थानों में अनेक ऐसे लामाओं और योगियों से भेंट हुई, जो वर्षों से मौन समाधि में लीन हैं।

अगस्त-सितंबर, १९५५ में ऐसे ही एक लामा से हुई भेंट मुझे सदा याद रहेगी। मैं अपने परिवार के सदस्यों के साथ भूटान होता हुआ तिब्बत जा रहा था। सिक्किम की सीमा से परे, तिब्बत के नाथूला दर्रे से १३ मील दूर एक प्राचीन मठ है, जिसमें एक विचित्र पंथ के अनुयायी रहते हैं। उन दिनों इस मठ के प्रमुख लामा थे—

संत पापा खजो रिम्पोक। जब मैंने उनके दर्शन किये, तब उनकी आयु ९७ वर्ष थी। बड़े प्रमुदित थे मुझसे बातें करते हुए। नाथूला दर्रा पार करते हुए हमें भीषण ओला-आंधी का सामना करना पड़ा था, जिस कारण हम सब काफ़ी दुखी और परेशान थे हमारा काफ़ी सामान, मय कुछ खच्चरों के साथ, इस ओला-आंधी में खो गया था। हम सब जब मठ में पहुंचे, तो काफ़ी भीगे हुए थे, ठंड से कांप रहे थे, और भूखे भी थे। मकखन मिली नमकीन चाय पीकर तथा उसके साथ मिले स्वादिष्ट व्यंजन खाकर, कुछ जान-में-जान आयी। जब प्रमुख लामा को ओला-आंधी के



चित्र : ठाकोर राणा

हिंदी डाइरेक्ट

When you save with **NEW BANK** Smiles are on the way



Security is happiness. When you know your savings in NEW BANK will take care of all your rainy days, you can smile with ease.

Start saving with NEW BANK today. Our various schemes like Saving Accounts, Fixed Deposits, Reinvestment Deposits, Janta Deposits and Popular Deposits will assure these smiles for you.



NEW BANK OF INDIA

(A Government of India Undertaking)

बारे में पता चला, तो उन्होंने मुझे से पूछा—‘आपने अपने आगमन के बारे में पूर्व सूचना क्यों नहीं दी थी ? पूर्व-सूचना मिली होती, तो मैं ओला-आंधी को रोक देता ।’

उनकी यह बात सुनकर मैं चकित रह गया । मैंने अपने दुभाषिये से पूछा कि प्रमुख लामा मौसम में तब्दीली कैसे कर सकते थे ? दुभाषिये ने बताया कि वे मंत्र की सहायता से कहीं के भी खराब मौसम को रोक सकते हैं । उसने यह भी बताया कि वे हवा में उड़कर दूर-दूर तक जा सकते हैं, और तिब्बत में कहीं भी, किसी क्षण, प्रकट हो सकते हैं ।

मैंने दुभाषिये के माध्यम से प्रमुख लामा से कहा—‘अगली बार दर्रा पार करूंगा, तो आपको पूर्व सूचना देना नहीं भूलूंगा ।’

इसके बाद, मुझे १२ बार दर्रे को पार करने का मौका मिला । और, प्रत्येक खसर पर मैं प्रमुख लामा को अपने आने के बारे में पहले से बताना नहीं भूला । और यह बात अविश्वसनीय लग सकती है, मगर यह है कि आसपास खराब मौसम होने के बावजूद, मुझे मार्ग में सदा उजली धूप ही मिली ।

मैं नेहरू पूर्वजन्म में बुद्ध थे

१९५७ में ल्हासा से लौटते हुए, नाथू-ला दर्रे को पार करने से पूर्व, हम इसी स्थान में रुके । मैंने जब प्रमुख लामा से मौसम के बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा कि सिक्किम तक मौसम अच्छा रहेगा ।

१९८१

हमारे दल के कुछ सदस्यों के मार्ग में बीमार पड़ जाने के कारण, हमें सिक्किम पहुंचने में काफी देरी हुई । जब हमने दर्रे में प्रवेश किया, तो आसमान में बादल गरज रहे थे, और गरज वाले तूफान के आसार भी मौजूद थे । लेकिन, जब तक हमने दर्रा पार नहीं कर लिया, न वर्षा हुई, न तूफान आया । दर्रा पार कर हम जैसे ही डाकबंगले में पहुंचे, वर्ष पड़ने लगी, और तेज, तूफानी हवाएं चलने लगीं ।

२५ सितम्बर १९५८ को मुझे प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के साथ भूटान जाने का मौका मिला । हमें तिब्बत जाना था । मैंने अजों रिम्पोक को पहले से ही बता दिया था कि हम तिब्बत जा रहे हैं, और वे अच्छे मौसम की प्रार्थना करें ।

पं. नेहरू दिल्ली से हवाई जहाज द्वारा वागदोगरा आये, और वहां से कार से सिलगुड़ी से गंगटोक पहुंचे । गंगटोक में भारी वर्षा हो रही थी, और मार्ग में भूस्खलन के समाचार भी मिल रहे थे । भूस्खलन के कारण कहीं-कहीं मार्ग इतना खराब था कि पं. नेहरू को बीच-बीच में जीप से उतरकर पैदल चलना पड़ता था । मुझे डर लग रहा था कि गंगटोक से दर्रे तक का रास्ता कैसे पार होगा ? हमें जो समाचार मिल रहे थे, उनसे ऐसा प्रतीत होता था कि आगे का रास्ता और भी खराब होगा ।

लेकिन, जैसे-जैसे हम दर्रे की ओर बढ़ते गये, वैसे-वैसे मौसम साफ़ होता

हिंदी डाइजैस्ट

सुपर रिन की चमकार ज्यादा सफ़ेद



किसी भी अन्य डिटजेंट टिकिया या बार से ज्यादा सफ़ेद

सुपर रिन से नियमित धुलाई करने पर आपके कपड़ों में ऐसा फ़र्क आये कि दूर से दिखे. किसी दूसरी डिटजेंट टिकिया या बार के मुकाबले सुपर रिन कहीं अधिक सफ़ेदी लाता है, क्योंकि सुपर रिन में अधिक सफ़ेदी की शक्ति है.

आज़माइए और सबूत पाइए:

किसी अन्य
डिटजेंट बार से
धोया हुआ



सुपर रिन से
धोया हुआ



अधिक सफ़ेदी की शक्ति से भरपूर
लिटॉस-RIN-44-100

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

गया। जब हमने दर्रे में प्रवेश किया, उस समय तेज धूप खिली हुई थी, जब कि ज़ायेदे से वहां बर्फ होनी चाहिये थी। दर्रे से मठ तक हम घोड़ों पर सवार होकर आये, और यह सफ़र बड़ा सुहावना रहा।

प्रमुख लामा ने पं. नेहरू का स्वागत बेहो प्रेम और समारोह के साथ किया। मैं साफ़ मौसम के लिए उनका आभार मानना चाहता था, मगर मेरे कुछ कहने से पहले ही उन्होंने कहा—‘इस बार तो साफ़ मौसम के लिए मुझे कोई प्रार्थना भी नहीं करनी पड़ी। जानते हैं क्यों? इसलिये कि इस बार आपके साथ स्वयं एक बोधिसत्व यात्रा कर रहे थे।’

यहां बता देना आवश्यक है कि तिब्बत में यह आम विश्वास है कि पं. जवाहरलाल नेहरू स्वयं बुद्ध के अवतार हैं। इसीलिए, तिब्बतवासी उन्हें बोधिसत्व मानते थे।

मुझे प्रमुख लामा का स्नेह-पात्र होने का सौभाग्य मिला था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने मुझे एक पवित्र मूर्ति भेंट में देने की कृपा की थी। उनकी कृपा से मुझे एक वज्र (दोरजे) भी, जिसे अभिबोध का प्रतीक माना जाता है, प्राप्त हुआ। मैं सदा यात्राओं में उसे अपने साथ रखता हूं। भूटान, सिक्किम, नार्वे, इंडोनेशिया, अफ्रीका आदि में उसके साथ यात्रा करते समय मुझे कभी खराब मौसम का सामना नहीं करना पड़ा।

अनिष्टसूचक चीरक

इस वज्र के कारण मैं तिब्बत तथा अनेक

१९८१

स्थानों की खतरनाक यात्राओं में दुर्घटनाग्रस्त होते-होते बचा। एक बार मैं तिब्बत में आठवीं सदी में गुरु पदमसंभव द्वारा स्थापित एक मठ की ओर जा रहा था कि मार्ग में पड़ने वाले गोकर् ला दर्रे को (ऊंचाई १७,८०० फुट) पार करते समय मेरा घोड़ा कई बार गहरी घाटियों में गिरते-गिरते बचा। एक अन्य अवसर पर यातुंग से नाथूला दर्रे को पार करते समय मेरा घोड़ा एक खड़ी चट्टान पर रपट गया, और नीचे गिर पड़ा। घाटी १०० फुट गहरी थी, और न मेरे बचने की आशा थी, न मेरे घोड़े की। मगर प्रमुख लामा द्वारा दिये गये वज्र की कृपा से मैं और मेरा घोड़ा ५० फुट नीचे आकर एक शिला-फलक पर सुरक्षित आ गये। इसे एक चमत्कार ही कहा जायेगा कि इतने नीचे गिरने पर भी हम दोनों जीवित रहे। जब मैंने इस घटना का जिक्र प्रमुख लामा अजो रिम्पोक से किया, तो उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा—‘मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करूंगा।’

तिब्बत में मुझे जहां शुभ मूर्तियां मिलीं, वहां पुरानी पुस्तकें, कलाकृतियां, मूर्तियां, चीरक आदि जमा करने के शौक में कुछ अशुभ प्रतीक-चिह्न भी हाथ लग गये। ऐसी कुछ वस्तुएं मुझे सामने के एक मठ में मिली थीं। इनके परिणामस्वरूप मैं गंगटोक जाकर बीमार पड़ गया। मुझे बताया गया कि मेरी बीमारी का कारण कोई अशुभ वस्तु है। जब मैंने पूछा कि उसके अभिशाप से कैसे बचा जा सकता है? तो मुझे संत

पापा खेन्तसे रिम्पोक से सम्पर्क करने का सुझाव दिया गया ।

मैं उनसे मिला । महान लामा समाधिस्थ हो गये । अगले दिन, मुझे उनका संदेश मिला कि एक काला चीरक मेरे लिए अशुभ सिद्ध हो रहा है । उसका परित्याग कर देने पर, मेरी सब परेशानियां दूर हो जायेंगी । मैंने फौरन उस काले चीरक को फेंक दिया और सचमुच उसके बाद मेरे सारे कष्ट दूर हो गये ।

लामा के आरपार

एक बार पश्चिमी सिक्किम जाते हुए मुझे संत पापा धुशी रिम्पोक नामक एक और पहुंचे हुए लामा के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ । अन्य लामाओं की भांति वे भी अत्यन्त सदाय थे । उनकी एक विशिष्टता यह थी कि उनके पास अपना कहने योग्य कुछ न था । उन्हें जो कुछ दूसरों से मिलता, उसे वे दीन-दुखियों में बांट देते थे । वे सदा एक एकान्त-स्थल में समाधिस्थ रहते थे । उनका मठ एक ऊंची और खड़ी चट्टान के शिखर पर स्थित था ।

जब उन्हें हमारे आने का समाचार मिला, तो उन्होंने हमें संदेश भिजवाया कि उनकी तबियत अच्छी नहीं है, और वे हमसे भेंट नहीं कर सकेंगे । हम फिर अपने मार्ग पर चल पड़े । पर, बीच मार्ग में हमें पुनः उनका संदेश मिला कि लामा हमसे भेंट करने के इच्छुक हैं, और लंच पर हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

बड़ी मुश्किल से हम शिखर पर पहुंचे,

क्योंकि चढ़ाई बड़ी दुर्गम और जोरि भरी थी । बादलों के भी परे था उनका मठ । वहां पहुंचने पर पता चला कि सिर्फ मुझसे और मेरी पत्नी से ही मिलेंगे । हम दोनों अपने दुभाषिये के लामा के कक्ष में पहुंचे ।

कक्ष में पहुंचने पर मुझे जो अद्भुत हुआ, वह वर्णनातीत है । मैं लामा सिर्फ देख ही नहीं सकता था, उनके पार भी देख सकता था । वे जैसे थे ही नहीं, या थे तो एकदम रिक्त थे — शून्य ।

एक सप्ताह बाद, मुझे लामा के देह का समाचार मिला ।

भटकी हुई प्रेतात्मा

सिक्किम में जो सज्जन श्री सिन्हा जी हैं, वे लामा के देह के अन्तर्गत 'नामग्याल इन्स्टीट्यूट ऑफ तिब्बतोलोजी' के निदेशक हैं । जो मकान रहने के लिए मिला था, उस मकान में जाते ही, पहली रात श्री सिन्हा को कष्टदायक अनुभव लगे । पहली रात वे बिलकुल नींद पाये, क्योंकि सारी रात कोई मकान टिन की छत पर पत्थर फेंक रहा था । जब एक सप्ताह तक, हर रात, यही होता रहा, तो उन्होंने पुलिस को बुलावा किया ।

लेकिन पुलिस के आने पर भी मैं कोई सुधार नहीं हुआ । पुलिस के भी छत पर पत्थर बरसते रहे, और

और बंती नहीं चल पाया कि पत्थर कौन फेंक
परे था ? हारकर, श्री सिन्हा थोशू रिम्पोक
चला कि एक लामा के पास पहुँचे । लामा ने
नामक एक लामा के पास पहुँचे । लामा ने
तनी से हो नुकर श्री सिन्हा से अगले दिन आने
भाषिये के कहा । अगले दिन उन्होंने श्री सिन्हा
को बताया कि एक वर्ष पहले तिब्बत का
तीर्थयात्री बोधिगया गया था, और
उसकी मृत्यु हो गयी थी । उसकी
तिब्बत में सामये नामक स्थान
जहाँ सब तिब्बतवासियों की प्रेता-
एकत्र होती हैं, जाना चाहती थी ।
तिब्बत लौटने पर उसकी प्रेतात्मा ने
उसके पुराने घर के स्थान पर
बसा धर वन गया है । लामा ने अंत में कहा
उन्होंने प्रेतात्मा को आवश्यक निर्देश
थे, वे वापस आने नहीं करेगी । और सचमुच, श्री
देशक हो । तिब्बत तथा उनके परिवार के सदस्यों को
मिला था । तिब्बत में कोई परेशानी नहीं हुई ।
बना था । इंडोनेशिया के अनुभव

इंडोनेशिया में भी हमें अनेक अलौकिक
अनुभव हुए । इंडोनेशिया के महान सूफी
रहीम एक जिन्दादिन और हमेशा
मुस्कुराते रहने वाले व्यक्ति थे ।
उने बुद्धमिजाज थे वे कि उनसे मिलने पर,
पौरिक के कारण मेरी आँखों में आँसू
लगते थे । उनका कहना था कि
लौकिक अनुभवों को असामान्य नहीं
मानना चाहिये, वे सामान्य जीवन के ही
निवार्य अंग हैं ।
एक दिन, जैसे ही मैंने उनके कमरे में

प्रवेश किया, वे एक कागज़ पर कुछ लिखने
लगे । मैंने दुभाषिये से पूछा कि वे क्या लिख
रहे हैं ? उसने बताया—‘रहीम कहते हैं
कि आज आप इस कमरे में अकेले नहीं
आये हैं । आपके साथ कोई और भी है ।’
इस ‘कोई’ का वर्णन जो उन्होंने दिया, वह
मेरे मृत पिता के हुलिये से बहुत मिलता
था । सिर पर लाल साफ़ा, और कमर में
लटकी तलवार आदि । रहीम ने दुभाषिये
के माध्यम से मुझसे कहा—‘आप आजकल
संकटपूर्ण स्थिति से गुज़र रहे हैं । आपके
पिता की प्रेतात्मा आपकी सुरक्षा के लिए
सदा आपके साथ रहती है ।’

यह घटना १९६२ की है, जब भारत
और इंडोनेशिया के राजनयिक सम्बन्धों
में तनाव आ जाने से मैं भी काफ़ी मानसिक
तनाव अनुभव करता रहता था । उन्हीं
दिनों, भारत लौटने पर मेरे कई रहस्य-
वादी मित्रों ने भी मुझे बताया कि मेरे पिता
की प्रेतात्मा सदा मेरे साथ रहती है ।

एक बार मैं फ्रांस के महान दार्शनिक
डॉक्टर द मरक्यैत को, जो मेरे मेहमान थे,
वापक रहीम से मिलाने ले गया । हम दोनों
को देखते ही रहीम एक कागज़ पर कुछ
लिखने लगे । पूछने पर दुभाषिये के
माध्यम से उन्होंने कहा—‘जो भाषा मैं
लिख रहा हूँ, उसे मैं नहीं जानता, किन्तु
यह आपके मित्र के हृदय में अंकित है ।’
वह भाषा थी ग्रीक, जिसमें उन दिनों डॉ.
मरक्यैत ‘सत्य की ग्रीक धारणा’ विषय पर
शोध-ग्रंथ लिख रहे थे ।



लू-शुन की चीनी कहानी



भिरवारी

मैं एक नंगी ऊंची दीवार के साथ-साथ धूल में पांव घिसटता जा रहा हूं। कुछ दूसरे लोग अकेले घूम रहे हैं, हवा बह रही है, तथा दीवार के ऊपर, ऊंचे वृक्षों की टहनियां जिनके ओस लिए पत्ते अभी भी सूखे नहीं हैं, मेरे सिर के ऊपर झूल रहे हैं।

तेज हवा बह रही है तथा चारों तरफ धूल उड़ रही है।

एक लड़का मुझसे भीख मांगता है, वह भी दूसरों की तरह धारीदार कपड़े पहने हुए है और दुःखी नहीं दिख रहा, तथा रिरियाते, रोते और दंडवत करते हुए मेरे पीछे-पीछे आता है।

मुझे उसकी आवाज और तौर-तरीकों से नफरत होती है। उसके उदास न होने की वजह से मुझे उस पर खीझ-सी आ रही है, जैसे अगर कोई मजाक हो; जिस ढंग से वह मेरे पीछे-पीछे चला आ रहा है, उससे मुझे नफरत-सी हो रही है।

मैं चला जा रहा हूं। कुछ दूसरे लोग अकेले घूम रहे हैं। हवा बह रही है तथा चारों तरफ धूल है।

एक लड़का मुझसे भीख मांगता है, वह भी दूसरों की तरह धारीदार कपड़े

पहने हुए है और दुःखी नहीं दिख रहा, वह गूंगा है, वह हाथ पसारकर प्रदर्शित करने का संकेत देता है।

मुझे उसके इस संकेत से खीझ-सी आ रही है, इसके अलावा हो सकता है कि गूंगा ही न हो, और केवल इस प्रकार मांगने का उसका अपना ढंग ही हो।

मैं उसे भीख नहीं देता हूं, भीख की मेरी कोई इच्छा भी नहीं है, मैं देने वालों में से नहीं हूं, उसके लिए पास केवल तिरस्कार, संदेह और ही है।

मैं मिट्टी की दीवार के नीचे उतर हूं, दीवार के गढ़े में ईंटों का ढेर लगा है, और दीवार की तरफ कुछ भी नहीं तेज हवा बह रही है और पतलु ठंडी हवा मेरे धारीदार चोगे के लगातार प्रवेश कर रही है; चारों तरफ धूल है।

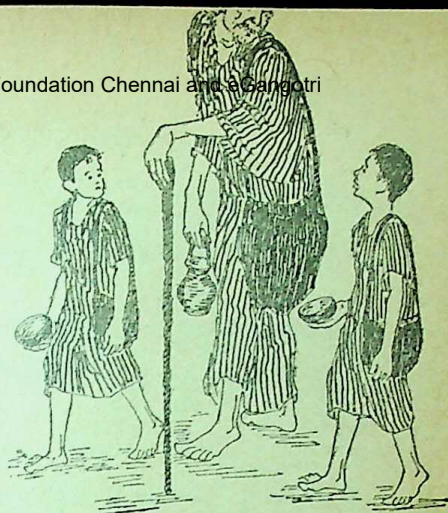
मैं सोचता हूं कि मुझे भीख मांगने लिए कौन-सा उपाय अपनाना चाहिए? किस प्रकार की आवाज में मांगना चाहिये? अगर गूंगे का अभिनय करना तो किस संकेत का प्रयोग करना चाहिए? कुछ दूसरे लोग अकेले घूम रहे हैं

मुझे कोई भीख नहीं मिलेगी, मैं भीख देना भी नहीं चाहता। मैं उन लोगों से तिरस्कार, संदेह और घृणा ही पा सकूंगा, जो अपने आपको भीख देने वालों से अलग समझते हैं।

मैं खामोशी से बिना हिले-डुले भीख मांगूंगा।

मैं अंत में कुछ भी पा न सकूंगा। तेज़ हवा बह रही है, चारों तरफ धूल उड़ रही है। कुछ दूसरे लोग अकेले घूम रहे हैं।

मूल चीनी से अनुवाद : सत्यप्रकाश



बंबई में इंडो-पाक मुशायरा था। हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बहुत-से मशहूर शायर मंच पर उपस्थित थे। इस मुशायरे में भारी-भरकम बदन के मालिक एक प्रसिद्ध शायर भी शामिल थे। जैसे ही उन्होंने ग़ज़ल पढ़नी गुरु की तो एक श्रोता ने 'आवाज़ ख़री' क्या कहने हैं मस्त हाथी के !'

यह सुनते ही शायर ने पूछा—'क्या कभी आपने हाथी नहीं देखा ?'

श्रोता ने तुरंत उत्तर दिया, 'देखा तो है, लेकिन ग़ज़ल पढ़ते हुए पहली बार देख रहा हूँ।'

० ० ०

अर्धरात्रि की निस्तब्ध बेला में मार्ग से जा रहे साधु को देखकर कुता ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा। साधु रुका और तिरस्कार से बोला—'अवगुणी, क्यों भौंकता है ?' कुता कुछ बेठा—'महाराज, आपने मुझे अवगुणी क्यों कहा ?' साधु ने उत्तर दिया—'तु अर्ध-रात्रि में भौंककर स्वामी को जगाता है, मार्ग में सोता है और साधु को देखकर उसके ठीके भौंकने लगता है। क्या इतने अवगुण कम हैं ?'

कुता विनम्रता से बोला—'रात में भौंककर स्वामी को इसलिए जगाता हूँ कि उसके जीवन और उसकी संपत्ति की रक्षा हो। राह में इसलिए सोता हूँ कि अनगिनत साधु-संत आते-जाते हैं। किसी की चरण-रज मिल जाये तो मुझे मुक्ति मिले। साधु को देखकर इसलिए भौंकता हूँ कि वैराग्य स्वीकार करके भी वे घर-घर हाथ क्यों पसारते हैं ? मैं उनसे पूछता हूँ—अगर तुम्हें ईश्वर पर विश्वास नहीं तो तुम साधु क्यों हुए ? ईश्वर पर विश्वास है तो उसके नाम पर मनुष्य से क्यों मांगते हो ?' —डा. गोपालप्रसाद 'वंशो'



डेट टिकिया आज़माइए, सफ़ेदी अपनाइए

आज पहले से कहीं
ज्यादा लोग
डेट टिकिया की
शानदार धुलाई पसन्द
करते हैं; कहते हैं
यह चकाचौंध
सफ़ेदी लाती है,
कहीं ज्यादा किफ़ायत
करती है.



डेट टिकिया

Shilpi-DM-41

डा. मनु कोठारी और डा. लोपा मेहता के क्रान्तिकारी विचार

कैंसर : कितना सच, कितना झूठ

ब्रिटेन और अमरीका में एक साथ प्रकाशित अपनी विचारोत्तेजक और क्रान्तिकारी पुस्तक 'कैंसर : मिथ्स एण्ड रिएलिटीज' में डॉ. मनु कोठारी और डॉ. लोपा मेहता ने कैंसर जैसे दुर्दम्य और सांघातिक रोग को नयी निगाहों से देखने और नये ढंग से समझने का प्रयास किया है; जैसा कि मैक्सिको के कैंसर-विशेषज्ञ आइवान इलिच ने पुस्तक की भूमिका में कहा है, 'अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। इसके सहारे अविशेषज्ञ व्यक्ति विशेषज्ञों द्वारा इस्तेमाल न होकर, खुद उनकी सलाहों का इस्तेमाल कर सकेगा।'

प्रस्तुत हैं, इस असाधारण पुस्तक के कुछ अंश, जो कैंसर के संबंध में कल्पित बातों को उधाड़ने के साथ-साथ उसकी वास्तविकताओं को भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उद्घाटित करते हैं।

आइंस्टीन ने एक बार कहा था कि जगत के बारे में सबसे अधिक अबोध

यह है कि वह बोधगम्य है। ठीक वही बात कैंसर के बारे में भी कही जा सकती है। वह अविशेषज्ञों द्वारा भी उतना ही बोधगम्य है, जितना विशेषज्ञों द्वारा।

कैंसर जितना सुभावना विषय है, उतना ही डरावना भी है। विशेषज्ञों और अविशेषज्ञों दोनों के

लिए। पर ऐसा होना नहीं चाहिये। कैंसर को यदि सही जैविक परिप्रेक्ष्य

में देखा जाये, तो उसका रहस्यावरण और उसकी सांघातिकता नष्ट होने लगती है, और वह समझ में आने लगता है।

कैंसर के कारणों और उसकी उपचार-विधियों के बारे में इसलिए नहीं जाना जा सकता कि वे मौजूद हैं ही नहीं। निराशा हुई आपको यह जानकर? मगर



चित्र : ठाकौर राणा

१९८१

होनी नहीं चाहिय। जिन तथ्यों के आधार पर हमने कैंसर के बारे में निष्कर्ष निकाले हैं, उन्हीं से हमें यह तर्कसंगत सूक्ष्मदृष्टि भी प्राप्त हुई है कि एक ओर तो कैंसर की उपस्थिति से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है, और दूसरी ओर उसके साथ जिया जा सकता है।

कैंसर के बारे में जो अनेक मनगढ़ंत 'तथ्य' प्रचलित हैं, उनमें से एक यह है कि कैंसर किसी कर्ता के कारण होता है, और उस कर्ता को दूर कर दिया जाये, तो यह रोग भी दूर हो सकता है। ऐसा ही एक दूसरा 'तथ्य' यह है कि उसका ऐसी अवस्था में निदान किया जा सकता है, जहां पहले से चिकित्सा शुरू करके उस पर विजय पायी जा सकती है।

सच तो यह है कि मानवता के इतिहास में इतने कम लोगों ने इतने अधिक लोगों से इतना अधिक झूठ नहीं बोला (जितना कैंसर के बारे में बोला गया।) कैंसर के इन मनगढ़ंत 'तथ्यों' को एक वाक्य में इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है: अज्ञान, और उसके साथ मेल खाते हुए अत्यधिक दावे, अत्यधिक कर्मकाण्ड और अत्यधिक वायदे।

यह अज्ञान आरंभ होता है—कैंसर की व्याख्या की सामान्य समस्या से। कोशिकीय रोगविज्ञान के जन्मदाता विरचो ने पिछली सदी में कहा था कि कोई भी व्यक्ति, भले ही उसे कितनी भी यंत्रणा क्यों न दी जाये, कैंसर की व्याख्या नहीं कर सकता।

इतने वर्ष बीत जाने पर भी यह आज भी पहले की भांति ही सच है। ब्रिटेन के प्रख्यात कैंसर-विशेषज्ञ काफ्री ने हाल ही में कहा था कि 'जिन कैंसर की जैविक भाषा में परिभाषा हो सकेगी, उस दिन कैंसर को के क्षेत्र में एक युगान्तरकारी घटेगी।'।

नोबल-पुरस्कार-विजेता वैज्ञानिक वॉसन ने बड़ी साफगोई के साथ कैंसर विज्ञान को वैज्ञानिक रूप से दिवालिया, चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से अप्रभावी और खराब बताया है। एक अन्य नोबल-पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक बर्नेट ने कहा है कि 'कैंसर पर हुई शोध का व्यापक निष्पक्ष सर्वेक्षण किया जाये, तो सर्वोत्तम के प्रयासों की समाप्ति विध्वंसक में होगी।'।

कैंसर का इलाज करने वाले डॉक्टरों के रोगियों के रोग का शीघ्र निदान कर लेने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। पर ऐसे कैंसर-विशेषज्ञों के काफ्री तादाद में गिनाये जा सकते हैं जो स्वयं कैंसर के शिकार हुए। पहले ध्यान आता है अरमानंद दास और अमरीका के विख्यात चिकित्सक गृह मेयो क्लीनिक के सह-संस्थापक विलियम मेयो का, जिन्होंने पेट के कैंसर के बारे में काफ्री शोध-साहित्य की है। वे एक अन्य कैंसर-विशेषज्ञ डी. पी. डी. विल्की, और प्रसिद्ध

चिकित्सक जेम्स ईविंग के समान कैंसर से ही मरे। भारत में टाटा मेमोरियल सेंटर कैंसर का अन्यतम अस्पताल और बोध-केंद्र है। यहां के दो शल्य-चिकित्सकों अर्नेस्ट वोजेंज और सोराब मेहता के कैंसर का निदान 'बहुत देर से' हो पाया। विश्व के जिन अन्य प्रख्यात कैंसर-विशेषज्ञों को कैंसर से मरना पड़ा, उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—फ्रैंक हॉर्स-फॉल (निदेशक, स्लोअन-कैटैरिंग इन्स्टिट्यूट), हेविड कार्नोफस्की (एस. के. आई. के कैमोथेरेपी विभाग के अध्यक्ष), और टोंट (विश्व-विख्यात कैंसर-विशेषज्ञ)। शेक्सपीयर की यह सूक्ति कितनी सटीक है: 'दवाइयों से जीवन को थोड़ा बढ़ाया जा सकता है, किंतु मौत डॉक्टर को भी अपनी गिरफ्त में ले लेगी।'।

बाधारहीन दावे

कैंसर-विशेषज्ञों ने कैंसर के होने के जितने कारण बताये हैं, उनमें से कोई भी (धूम्रपान भी) कैंसर के लिए जिम्मेदार सिद्ध नहीं हो सका है। और अब तो वे सूरज और शुक्राणु को कैंसर के लिए जिम्मेदार मानने लगे हैं। इन विशेषज्ञों ने, असल में 'कैंसरफोबम्' (कैंसर से भय) नामक एक नये रोग को ही जन्म दे दिया है, जो 'न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडिसिन' के एक भूतपूर्व संपादक जेनेरॉफिनार के अनुसार 'कैंसर के समान ही गंभीर, और नैतिक दृष्टि से उससे कहीं अधिक विष्वसक है।'।

कैंसर का इलाज करने वाले उसके निदान और इलाज दोनों में अति करते हैं, क्योंकि वे इस सचाई को नजरअंदाज करते रहते हैं कि न कैंसर का बहुत पहले निदान संभव है, न उसका पूरा इलाज। कैंसर से मुक्ति का भ्रम तभी उत्पन्न होता है, जब रोगी कैंसर की मौजूदगी को अनुभव नहीं करता और या चिकित्सक उसे पहचानने में असमर्थ रहता है। उदाहरणस्वरूप, अतिपाती श्वेतारक्तता में 'पूर्ण उपशमन' के बाद भी, कैंसर की कोशिकाएं सदा मौजूद रहती हैं।

'डेमोग्राफिक कंसीडरेशन ऑफ द कैंसर प्रान्जलम' नामक लेख में उसके विद्वान लेखक हार्डिन जोन्स कहते हैं, 'जहां तक जीवन की सम्भावना का प्रश्न है, (इलाज के बाद भी) जीवित रहने की संभावना बिना इलाज के समान ही है। बल्कि, संभावना यह अधिक है कि कैंसर के इलाज के बाद रोगी के जीने की प्रत्याशा का समय शायद और कम हो जाता है।'।

जोन्स के १९५६ में किये इस निर्धारण का समर्थन १९७५ में विश्व-स्वास्थ्य संगठन (WHO) के लोगन ने वक्ष-कैंसर के मामलों का दुनिया भर में सर्वेक्षण करके किया। उनका कहना था कि इस रोग के मूलभूत रोगोपचार के बावजूद, रोगियों की मृत्यु-संख्या कम होने के स्थान पर बढ़ी ही है।

हिंदी डाइजेस्ट

‘द पैचवर्क माउस. पोलिटिक्स एण्ड इन्ट्रीग इन द कैम्पेन टू कॉन्कर कैंसर’ के लेखक जे. हिक्ससन ने कैंसर की शोध में रत स्लोअन - कैटैरिंग इन्स्टिट्यूट के शोध-कार्य की तीखी आलोचना करते हुए कहा है, ‘सारी दुनिया में अपनी सनकों और वस्तु-पूजा के लिए मशहूर अमरीकी जनता को कभी-कभी किसी एक रोग के प्रति तन्मयता की सनक सवार हो जाती है। आज वह रोग है—कैंसर।.... जैविकी में शोध करने वाले तरुण शोध-वैज्ञानिकों से मैं कहूंगा कि वे कैंसर की शोध से दूर ही रहें। कारण, वह शोध-कार्य पैसा कमाने के लिए ही आरंभ किया गया है, और विज्ञान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।’

कैंसर आखिर है क्या ?

कुख्यात कैंसर वास्तव में जैविकी का ही एक अभिन्न अंग है। ‘यह सोचने का कोई कारण नहीं है कि कैंसर जीवन पर अध्यारोपित कोई रोग है। इसके बर-खिलाफ़, कैंसर विकासात्मक प्रक्रिया का ही एक अनिवार्य अंग है, और उसका इतिहास उतना ही पुराना रहता है, जितना उस जीवन का, जिसे वह प्रभावित करता है।’ यह कथन है, ‘द बायोलॉजी ऑफ़ कैंसर’ के एक लेखक एफ. जे. सी. रो का।

रेने दुबो के कथनानुसार, प्रत्येक कैंसर अपूर्व, अद्वितीय और ऐसा होता है कि उसे दोहराया नहीं जा सकता। प्रत्येक

कैंसर की इसी अद्वितीयता के कारण किसी ऐसी विशेष दवा या टीके की प्रशंसा नहीं की जा सकती। एक और बात यह है कि कैंसर की गति व्यक्ति-विशेष के समान अप्रत्याशित रहती है। हो जाने के बाद यह जरूरी नहीं कि वह विकसित हो और विकसित होने पर परेशान करे और घातक सिद्ध हो। बहुत से कैंसर अपने स्वामी के साथ ही मर जाते हैं इसलिए कैंसर ही, उसका उच्चारण और परिणाम का निर्धारण करता है।

कैंसर न वंशानुगत रोग है, न पारिवारिक। जिसे कैंसर होता है, वह उस शरीर का एक अंश ही बन जाता है और उसकी कोशिकाओं को सीधा प्रभावित करने के चक्कर में शरीर की कोशिकाओं के नष्ट होने का भय रहता है। कैंसर से लड़ने वाली सब दवाएँ विधियाँ कैंसर की कोशिकाओं को उसी ढंग से प्रभावित करती हैं, जिन से अन्य कोशिकाओं को।

कैंसर वास्तव में बढ़ती उमर, अभिव्यक्ति है। बच्चों में कैंसर सख्त दुर्लभ है। बूढ़ों में कैंसर का ही एक चिह्न है।

कैंसर और मौत

शरीर के जिस भाग में कैंसर होता है, वहां से उसका प्रसार प्रायः चार भागों में होता है—फेफड़े, हड्डी, मस्तिष्क और यकृत। वैसे, कैंसर के किसी भी भाग में फैल सकना

कैंसर का प्रसार चिकित्सक को चकमे में डाल सकता है, शल्य-चिकित्सकों को मार कर सकता है, और रोगी की मौत का कारण बन सकता है। कैंसर का इलाज उसके प्रसार में शीघ्रता ला सकता है। कैंसर जितना ज्यादा और जितना तेजी से फैलेगा, वह उतना ही शीघ्र प्रतिक्रिया देनेगा।

‘वर्ल्ड विडआउट कैंसर’ के लेखक डॉ. ई. ग्रिफिन के मतानुसार ‘कैंसर और मौत के बीच का रिश्ता विवादास्पद है। इस परिकलन से स्पष्ट है कि यदि, कैंसर पर पूरी तरह विजय पा भी ली जाये तो भी उसका प्रभाव यही होगा कि उसके रोगी की आयु में कुछ वर्षों की वृद्धि होगी।’

कैंसर के यदि कान और जबान होते, तो वह बेचारा अपने बारे में सामान्य जन और चिकित्सकों की आशंकाओं के बारे में सुनकर यही कहता कि ‘मेरी जड़ें मौत में नहीं, जिन्दगी में हैं।’ वास्तव में कैंसर अपने आपमें कोई समस्या नहीं, बल्कि मौत की समस्या का एक हल है। ब्रिटेन के सर जॉर्ज पिकरिंग ने इसी बात को इन शब्दों में कहा है, ‘बुढ़ापा मौत की धारणा है, यह धारणा हमारे मन में इतने

गहरे में जड़ पकड़ गयी है कि इस बात पर जोर देने की जरूरत है कि बुढ़ापे को एक रोग के रूप में जानना-समझना चाहिये। ऐसे ही घातक रोगों के कारण नये जीवन को आने का अवसर मिलता है। उनके बिना हम उस ढंग से न रह पाते, जैसे आज रह रहे हैं।’

कैंसर के बारे में भी यह सच है। कैंसर (हमारे उसे दूर करने के सब प्रयासों के बावजूद) अनंत-काल तक हमारे बीच रहेगा।

यह अनुभूति कि कैंसर किसी कारण से नहीं होता, और इसी कारण उसे रोका भी नहीं जा सकता, एक माने में एक वरदान है। यह अनुभूति हमें कैंसर के भय से मुक्त करने के अलावा इस भय से भी मुक्त कर देती है कि हम ‘धीमी मौत’ के रूप में कैंसर को खुद ही आमंत्रित कर सकते हैं।

हमें इस दुःखद, किन्तु अतिवार्य तथ्य को स्वीकार करना ही होगा कि पांच में से एक व्यक्ति कैंसर का शिकार होगा ही, चाहे हम कुछ भी करें। इस बात को लेकर अधिक चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि प्रकृति इसी नियम से चलती आ रही है, और चलती रहेगी।



जितना धन आज शिक्षा से बचा रहे हैं, उससे कहीं अधिक जेलों, सुधारगृहों और सुरक्षा में व्यय करना पड़ेगा।

प्रेम ने मनुष्य को बनाया। भय ने उसे समाज का रूप दिया। अंधकार ने उसे राष्ट्र में संगठित कर दिया।



—राबर्ट बेन्सन

—अज्ञेय

डा. राजा रामन्ना का सूचक-लेख



विज्ञान के क्षेत्र में भारत के बढ़ते कदम

‘आजादी के बाद से हमने विज्ञान के क्षेत्र में शानदार प्रगति की है, और इस क्षेत्र में हम सभी विकासशील देशों से आगे ही नहीं हैं, पूरी तरह आत्मनिर्भर भी हैं। यह मत है, भारत के प्रतिष्ठित वैज्ञानिक तथा भाभा परमाणुविक शोध के निदेशक डॉक्टर राजा रामन्ना का, जो उन्होंने हाल ही में ‘टाइम्स ऑफ इंडिया’ के दो प्रतिनिधियों—श्री एस. कुमार और श्री श्रीनिवास लक्ष्मण को दो गये एक विशेष भेंट में व्यक्त किया। नीचे प्रकाशित इस भेंट-वार्ता के कुछ अंशों से आप हमारी शानदार वैज्ञानिक प्रगति का लेखा-जोखा लेने के साथ-साथ उसकी भावि दिशाओं और संभावनाओं से भी परिचित हो सकेंगे।

प्रश्न : विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में भारत ने पिछले ३० वर्षों में कौन-कौन सी बड़ी उपलब्धियाँ अर्जित की हैं ?

उत्तर : भारत ने इन क्षेत्रों में इस अवधि में जो शानदार प्रगति की है, उसका सही-सही मूल्यांकन नहीं हो पाया है, ऐसा मेरा विचार है। भारत को उसकी गंदी सड़कों और खराब टेलिफोनों आदि के कारण अगले कई दशकों तक विकास-शील देश समझा जाता रहेगा, मगर इस तथ्य को बहुत कम समझा गया है कि पंडित नेहरू ने जो वैज्ञानिक क्रांति आरंभ की थी, उसकी परिणति एक महान वैज्ञानिक क्रांति के रूप में हो चुकी है। मैं जब देश की प्रयोगशालाओं में जाता हूँ

तो यह देखकर दंग रह जाता हूँ। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि शोध के क्षेत्र में भी हमने उन्नति का कार्य किया है। एकमात्र समस्या है कि अभी तक हम विभिन्न शास्त्रों की प्रौद्योगिकी को उत्पादन-क्षेत्रों तक पहुँचाने में सफल नहीं हुए हैं। अब यह काम भी धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है। यह आसानी से कहा जा सकता है कि जहाँ तक विज्ञान और प्रौद्योगिकी का संबंध है, भारत ने बहुत प्रगति की है। पर उसे अनेक सामाजिक प्रबंधकीय समस्याओं के कारण हम से देखा नहीं जा सकता।

प्रश्न : आत्म-निर्भरता और देश-निर्भरता

संबंधी हमारे प्रयास, इस दिशा में, कहां तक सफल हुए हैं ?

उत्तर : विकास और उत्तम कोटि की ओर के परिणामस्वरूप, आत्मनिर्भरता तो स्वयमेव आ ही जाती है। इसका आधार

हमें मिल चुका है। लेकिन, अभी तक शोध और विकास तथा उत्पादन के बीच सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका है।

इस कारण, लोगों को वह आत्मनिर्भरता नहीं दिखायी देती, जिसे हम पा चुके हैं।

हमारे देश में आयातित और लायसेन्स-शुदा प्रौद्योगिकी पर निर्भर रहने की खतरनाक प्रवृत्ति काफ़ी जोर पकड़ चुकी है।

इस प्रवृत्ति ने मस्तिष्क विकृत हो जाता है। यह प्रवृत्ति समस्त वैज्ञानिक परिवर्तन से ही

दूर हो सकती है। आयातित प्रौद्योगिकी भले ही मजबूती लगे, किंतु हमें भारतीय प्रौद्योगिकी को ही

प्रोत्साहित करना होगा। अब तक हम बुनियादी शोध से लेकर उत्पादन तक आत्म-

निर्भर नहीं रहेंगे, तब तक हमारे सामने वे ही समस्याएं उपस्थित होती रहेंगी, जो आज हमारे सामने मौजूद हैं।

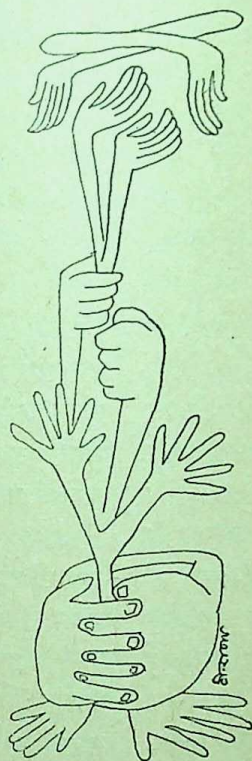
प्रश्न : ऐसा कहा जाता है कि वैज्ञानिकों की संख्या की दृष्टि से भारत का स्थान विश्व में तीसरा है। क्या आप इस मत से सहमत हैं ?

उत्तर : सिर्फ विज्ञान और इंजीनियरिंग के कॉलेजों की संख्या बढ़ाने से ही, वैज्ञानिक मानव-शक्ति नहीं बढ़ायी जा सकती। इससे वैज्ञानिक क्षमता कम होती है। साधारणतया, वैज्ञानिक शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार बुरी बात नहीं है, मगर उसके परिणामस्वरूप जो वैज्ञानिक मानव-शक्ति उत्पन्न होगी, उसका व्यवहार करने में कुछ समय लग सकता है।

प्रश्न : आप उस प्रशिक्षण-केंद्र के संस्थापक हैं, जिसका जन्म आज से बीस वर्ष पूर्व भाभा परमाणु शोध-केंद्र के प्रशिक्षार्थियों के प्रशिक्षण के लिए हुआ था। हमारे नाभिकीय वैज्ञानिकों की क्षमता तथा वैज्ञानिक मानव-शक्ति की अभिवृद्धि में इस केंद्र के योगदान का

मूल्यांकन आप कैसे करेंगे ?

उत्तर : मुझे इस बारे में तनिक भी संदेह नहीं है कि इस केंद्र के प्रशिक्षार्थियों की भर्ती और उनके प्रशिक्षण के लिए जो विधियां हमने अपनायीं, उन्हीं के



चित्र : ठाकोर राणा

कारण हम आज वर्तमान स्थिति तक पहुंच पाये हैं। हमने इस प्रशिक्षण-केंद्र की शुरुआत १९५७ में की थी, जब बुनियादी शोध और व्यावहारिक शोध दोनों में तरुण वैज्ञानिकों की काफ़ी दिलचस्पी थी। इसी कारण हम देश की चोटी की वैज्ञानिक-प्रतिभा को अपनी ओर खींचने में सफल हो सके। प्रशिक्षित होने के बाद इन वैज्ञानिकों ने उन सब अपेक्षाओं की पूर्ति की, जो हमने उनसे की थी। हमारे केंद्र से प्रशिक्षित अनेक वैज्ञानिक आज देश-विदेश में महत्वपूर्ण पदों पर आसीन हैं।

प्रश्न : इलेक्ट्रानी क्षेत्र में हमने कैसी प्रगति की है ?

उत्तर : इलेक्ट्रानी क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में हमने उल्लेखनीय प्रगति की है। पर यह प्रगति 'बाइरिंग' इलेक्ट्रानी क्षेत्र में अधिक, और अंगभूत इलेक्ट्रानी क्षेत्र में कम हुई है। यदि अगले दशक में हमने अंगभूत इलेक्ट्रानी की ओर अधिक ध्यान दिया, तो हम नयी-नयी गतिविधियां आरंभ कर सकते हैं, और उस अप्रचलन से भी बचे रह सकते हैं, जो इलेक्ट्रानी-क्षेत्र में बड़ी तेज़ी से दिखायी देता है। हमें आरंभ से ही बुनियादी अंगभूत इलेक्ट्रानी और 'सॉलिड स्टेट' रचनाओं पर अधिक ध्यान देना चाहिए था।

प्रश्न : अंतरिक्ष तथा नाभिकीय-ऊर्जा संबंधी योजनाओं में अपनी सफलताओं के बावजूद, हम कुछ अन्य क्षेत्रों में काफ़ी

पीछे हैं। आपके मतानुसार इसका कारण हो सकता है ?

उत्तर : उदाहरण के लिए, विज्ञान वितरण को लीजिये। इसे बहुत विज्ञान नहीं कहा जा सकता, लेकिन से छिपा नहीं है कि इस क्षेत्र में कितनी खराब है।

अब, जब आप अंतरिक्ष-प्रौद्योगिकी की बात करते हैं, उदाहरण के लिए, 'रोहिणी' उपग्रह के बारे में, तो लोग कहें हैं, 'ओह ! भारत ने अंतरिक्ष में उपग्रह छोड़ दिया।' लेकिन, उन्हें अनेक प्रयासों के बारे में पता नहीं है जो इस प्रक्षेपण से पूर्व किये गये हैं। उच्चतम कोटि की प्रौद्योगिकी के लिए यह उपलब्धि असंभव थी। ऐसी प्रौद्योगिकी हमारे उद्योगों को उपलब्ध नहीं है। इस अन्तराल को भरना होगा।

प्रश्न : अधिकारी-वर्ग के खिलाफ आम शिकायत है कि वे भारतीय प्रौद्योगिकी शालाओं में शोधरत वैज्ञानिकों को रोक करके, बाहर से अंधाधुंध प्रौद्योगिकी आयात करते रहते हैं। इस संबंध में आपको क्या कहना है ?

उत्तर : उनका अधिक दोष इसमें नहीं है, क्योंकि इस पहलू पर उन्हें दृष्टि से भी सोच-विचार करना है। प्रत्येक अधिकारी से भाषा अपेक्षा नहीं की जा सकती। भाषा महान वैज्ञानिक थे, उतने ही प्रशासक भी थे। अधिकारी-वर्ग को

अपनी समस्याएं हैं। उसके साधन सीमित हैं, और वह भविष्य में बहुत आगे तक नहीं देख पाता। उसे अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं का ही ध्यान रखना पड़ता है। फिर, कुछ अधिकारी अच्छे होते हैं, कुछ नहीं। सही पद पर सही अधिकारी हो, तो यह समस्या उत्पन्न नहीं होगी।

प्रश्न : क्या हमारे वैज्ञानिक प्रशिक्षण का स्तर गिरा है ?

उत्तर : मैं ऐसा नहीं मानता। मेरा मानना है कि आमतौर पर, हमारे शिक्षा के स्तर में कोई गिरावट नहीं हुई है। हुआ यह है कि हमारे प्रशिक्षण-केंद्रों में प्रशिक्षार्थियों की संख्या काफी बढ़ गयी है। संख्या बढ़ जाने पर सामान्यता का भाव जाना स्वाभाविक ही है। ऐसे में अच्छे-बुरे का भेद भी कठिन हो जाता है। मैं यह सूच करता हूँ कि आज के विद्यार्थी जो हमारे जमाने के विद्यार्थी से बेहतर शिक्षा मिलती है। आज भी हमें ऐसे वैज्ञानिक मिल जाते हैं, जो कम पैसों पर वैज्ञानिक शोध करते रहने को तैयार हैं।

प्रश्न : जब से वैज्ञानिकों ने वरिष्ठ सरकारी पदों पर कार्य करना आरंभ किया है, तब से क्या कोई उल्लेखनीय परिवर्तन दिखायी पड़े हैं ?

उत्तर : हां, निश्चित रूप से कई परिवर्तन दिखायी पड़े हैं। दुनिया भर में वैज्ञानिकों को ऊँचे सरकारी पदों पर बैठाया जा रहा है, और भारत ने भी इस नीति का अनुकरण कर अच्छा ही काम किया,

और उसके और भी अच्छे परिणाम सामने आने की आशा है।

प्रश्न : क्या आप इस आलोचना से सहमत हैं कि भारत बुनियादी शोध पर ज्यादा खर्च नहीं कर रहा है ?

उत्तर : ऐसी आलोचना हमेशा की जा सकती है। मगर जरूरी बात यह है कि जो कुछ भी खर्च किया जाये, सही लोगों द्वारा सही कामों के लिए, और सही ढंग से खर्च किया जाये। हमारा देश इस मद में रूस और अमरीका की तरह खर्च नहीं कर सकता, मगर थोड़ा-बहुत खर्चा तो हमें बुनियादी शोध पर करते ही रहना होगा। विज्ञान-जगत् में भारत की जो प्रतिष्ठा है, उसका एक कारण यह भी है कि बुनियादी शोध के प्रति हमारा प्रेम इस सदी के आरंभ से ही चला आ रहा है। पहले, कुछ वैज्ञानिक निजी तौर पर ऐसी शोध करते थे, और आज सरकार उसे समर्थन देती है। जो भी हो, इस शोध-कार्य को हमें जारी रखना चाहिये।

प्रश्न : भारत जैसे देशों के ऊपर जो 'समुचित शिल्पविज्ञान' थोपा जा रहा है, उसके बारे में आपका क्या कहना है ? ऐसा कहा जा रहा है कि भारत जैसे बहुसंख्यक देश के लिए वह ठीक नहीं रहेगा।

उत्तर : मैं इस तर्क को सही नहीं मानता। भारत जैसे देश जहाँ, अपार वैज्ञानिक साधन मौजूद हैं, अनेकानेक

हिंदी डाइजेस्ट

प्रकार के शिल्पविज्ञानों की आवश्यकता है। 'समुचित शिल्पविज्ञान' हमारे लिए लाभकारी नहीं होगा, ऐसा सोचना नितांत गलत है।

प्रश्न : विज्ञान को और अधिक लोक-प्रिय कैसे बनाया जाये ?

उत्तर : विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के बारे में काफ़ी भ्रम फैले हैं। एक दृष्टिकोण है, उन वैज्ञानिक विधियों का प्रचार जो, गांवों में प्रयुक्त होती हैं। दूसरा दृष्टिकोण है, गुरुत्वाकर्षण और उसके दर्शन आदि मूलभूत विषयों का प्रचार। दोनों की उपयोगिता है। मगर जिन संस्थाओं के जिम्मे विज्ञान को लोकप्रिय बनाने का काम है, वे दोनों प्रकार से असफल हुई हैं। मैं जिस किस्म के विज्ञान और शिल्प-विज्ञान से सम्बन्धित हूं, जैसे तेज प्रजनक रिएक्टर, द्रवण शोध, भारी आयन त्वरित्र, आदि उसको लोकप्रिय बनाने का काम मेरा हो जाता है। अपने जिन सहयोगियों के बीच मैं इन विषयों का प्रचार करता हूं, उन्हें इन क्षेत्रों की प्रगति का जायज़ा मिल जाता है। गांवों की जरूरतों को पूरा करने के लिए वैज्ञानिकों के एक अन्य वर्ग की आवश्यकता है। विज्ञान को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाना आसान काम नहीं है।

प्रश्न : भाभा केन्द्र ने कुछ समय पूर्व एक ऐसे लेसर-यंत्र का निर्माण किया था, जिससे असम्बद्ध दृष्टिपटल को जोड़ा जा सकता है। पर उसका व्यापारिक उपयोग

अभी तक संभव नहीं हो पाया। लेसर-शिल्पविज्ञान का भविष्य भाभा कैसे उज्ज्वल हो सकेगा ?

उत्तर : आपने स्वयं प्रयोगशाला में शिल्पविज्ञान को उत्पादन से जोड़ने का एक उदाहरण दे दिया। ऐसे उपकरणों का निर्माण बड़ा कठिन है। आदमी फ़ौरन उपयोग में ला सके। का विभिन्न प्रकार से प्रयोग हो सके और उन सभी को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। सुरक्षा, चिकित्सा, आदि में लेसर के प्रयोग की संभावनाएं अधिक हैं कि उन पर आसानी से निर्माण नहीं हो सका। हमारी समस्या यह है कि हमने लेसर उपकरणों पर अधिक लेसर पदार्थों पर कम ध्यान दिया अब इस कमी को दूर करने के प्रयास रहे हैं। एक प्रयोगशाला में सिर्फ़ कुछ चल रहा है। अगले दशक में हम घटकों के निर्माण के क्षेत्र में आगे बढ़ेंगे।

प्रश्न : क्या आप भारत में तेज प्रजनक रिएक्टर शिल्पविज्ञान की वर्तमान प्रगति और उसके भविष्य पर प्रकाश डाल सकते हैं ?

उत्तर : यह शिल्पविज्ञान हमारा शिल्पविज्ञान है। जब कोई रिएक्टर चालित होता है, तो वह ईंधन बचता है। कुछ विशेष परिस्थितियों में इसके बेकार पदार्थों को नाभिकीय ऊर्जा में रूपांतरित किया जा सकता है। जिससे जलता है, उससे अधिक निर्मित होता है।

पाया। और इसीलिए उसे तेज प्रजनक कहा जाता है। हमारे पास भारी मात्रा में यूरेनियम-235 या थोरियम है, जो प्रयोग में नहीं आती, मगर जिसका प्रयोग सही ढंग से हो सकता है।

प्रश्न : भारत के पास जो वैज्ञानिक शिल्प-वैज्ञानिक साधन हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए, आप उसके लिए विकास-शील देशों के बीच किस प्रकार की भूमिका को आशा रखते हैं ?

उत्तर : पिछले कई वर्षों से मैं यह मानता आ रहा हूँ कि विज्ञान और शिल्प-विज्ञान के क्षेत्रों में हमने जो-जो विकास और सुधार किये हैं, उनकी जानकारी का

लाभ हम अपने पड़ोसी देशों, विशेष रूप से द. पू. एशिया, प. एशिया और अफ्रीकी देशों को देना चाहिये। मैं प्रोफेसर सलाम की इस बात से सहमत हूँ कि भारत ने इतनी अधिक प्रगति कर ली है कि वह ऐसा करने में समर्थ है। लेकिन, पड़ोसी देशों को भी यह अहसास होना चाहिये। इन देशों के वैज्ञानिक जब आकर हमारी प्रयोगशालाएं देखते हैं, तो फौरन हम सहयोग की बात छेड़ देते हैं। हमारे पास इन देशों को देने के लिए बहुत कुछ है, विशेष रूप से इलेक्ट्रानि, नाभिकीय विज्ञान और भौतिकी के क्षेत्रों में।

(‘टाइम्स ऑफ इंडिया’ से साभार)



लेखकों से निवेदन

- रचनाओं का अंतिम निर्णय एक खानगी सजाहकार-समिति करेगी। व्यक्ति विशेष नहीं।
- ‘भारती’-समन्वित ‘नवनीत’ केवल हिंदी, भारत या उसके साहित्य तक सीमित नहीं। वह एक वैश्विक और अंतरराष्ट्रीय व्यास की सर्वसमावेशी सांस्कृतिक और ज्ञान-विज्ञान-समन्वित पत्रिका है। रचना भेजते समय कृपया, यह लक्ष्य में रखें।
- अनामन्त्रित कविताओं पर विचार करने को हम बाध्य नहीं। आज के समग्र विश्व-साहित्य में से चुनी हुई थोड़ी-सी कविताएं ही हर अंक में जा सकेंगी।
- रचना के साथ टिकट लग। पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी और न उसके संबंध में पत्र-व्यवहार ही किया जायेगा।
- रचना भेजने से पूर्व विचार कर लें कि वह नवनीत के अनुकूल है भी या नहीं।

—संपादक





होमियोपैथी का उद्भव और वर्तमान प्रासंगिकता

होमियोपैथी के आदिष्कारक और प्रथम प्रतिपादक सैमुअल हानमैन का जन्म जर्मनी के सैक्सनी प्रांत के माइसेन नगर में १० अप्रैल सन १७५५ को हुआ था। वे निस्संदेह अत्यंत प्रतिभावान पुरुष थे और उन्हें सही माने में 'चिकित्सा-विज्ञान का सुधारक' कहा जा सकता है।

२४ वर्ष की आयु में उन्होंने इलेंजर यूनिवर्सिटी से एम. डी. की डिग्री प्राप्त कर ली तथा ११ भाषाओं पर अध्यासार्ण अधिकार भी कर लिया था।

१७८२ में डेंसन नगर में अपनी डाक्टरी की प्रैक्टिस आरंभ करने के कुछ समय पश्चात् उन्हें वहां के चिकित्सालयों में प्रचलित रोग-निवारण पद्धतियों के परिणाम काफी असंतोषजनक प्रतीत होने लगे। उन दिनों नस काटकर खून निकालना और गहुरा जुलाब देना करीब-करीब हर तरह की बीमारी के इलाज में सहायक माना जाता था। हानमैन इन तरीकों के खतरों को अच्छी तरह समझ गये थे। यह उन्हें असह्य लगने

लगा। उन्होंने अपनी प्रैक्टिस बंद दी। तत्पश्चात् वे रसायन-प्रक्रिया संधान और प्रयोगों में लग गये। चलाने के लिए उन्होंने रसायन की पुस्तकों का अनुवाद करने का शौक लिया। इसी परिस्थिति में जब वे रोजमर्रा की परेशानियों तथा व्यायामों से घिरे हुए जीवन व्यतीत कर रहे थे, तभी उन्होंने होमियोपैथी का आदिष्कार किया।

अविष्कार का उद्भव - इस विषय की मेटीरिया मेडिका (और निर्धारण कोश) का अनुवाद करने के लिए सिनकोना की छाल के छिलके और प्रभाव पर लेखक द्वारा विवरण सही नहीं लगा। इस कारण उन्होंने इस औषधि का सेवन करना शुरू कर दिया और अपने रोग पर उससे उत्पन्न प्रभावों का विवरण करने लगे। जब उन्हें यह पता चला कि वे अचानक घटना लीपजिग में १७९० में घटित

व अब उन्होंने कई औषधियों का प्रयोग
विभिन्न मात्राओं में कुछ स्वस्थ व्यक्तियों
पर—जिनमें उनके परिवार के सदस्य
तथा सुसम्मत मित्रगण सम्मिलित थे—
शुरू किया। इन प्रयोगों से अंततः वे
इत निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रभावोत्पादक
मात्रा में दी गयी औषधि स्वस्थ व्यक्ति
में रोग के लक्षण उत्पन्न कर सकती है
और यदि रोग के लक्षण समरूप हों तो
औषधि की अल्प मात्रा के उपयोग से
ही अस्वस्थ व्यक्ति में उसी प्रकार के
लक्षणों से संबंधित रोग का भी शमन
होगा।

सन १७९६ में उन्होंने एक चिकित्सा-
शास्त्र संबंधी पत्रिका में अपना एक लेख
प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने औषधियों
के रोग-शामक प्रभावों पर एक नवीन
मिडॉल की प्रस्तुति की। इसी लेख में
उन्होंने पहली बार संसार के सामने
अपना विश्वविख्यात समानिकता-न्याय-
मिडॉल (Similia similibus Curanter):
(मान का निदान समान से) रखा। यही
होम्योपैथी का जन्म-वर्ष था।

इससे पहले १७९२ में उन्हें होनवर
ज्य के पुलिस सचिव क्लार्कमन्निंग के
आयुर्वेद को ठीक करने का अवसर मिला।
१७९१ के ग्रीष्मकाल में कोइंग शटर
में फैली हुई खसरे की बीमारी से
रोगान सैकड़ों लोगों को उन्होंने बेला-
ना का लघु-अंश घोलकर देकर पीड़ा-
रहित किया। यह सब करने पर भी हान-
१८१



चित्र : आलोक जैन

मैन की व्यक्तिगत परिस्थितियाँ विपत्ति-
ग्रस्त ही रहीं। इसके कारण थे—दूसरे
चिकित्सकों की ईर्ष्या, औषधिनिर्माताओं
का क्रोध, तथा समसामयिक अज्ञानाच्छा-
दित वातावरण और उनकी संवेदनात्मक
शालीनता। इन सबने मिलकर इस
महान समाजसेवक को कई वर्ष बंजारे
की जिंदगी बिताने पर मजबूर कर दिया।

परंतु इन विकट परिस्थितियों और
गरीबी में भी वे सालों तक औषधि परीक्षण
और अनुसंधान करते रहे। आखिर-
कार सन १८१० में उन्होंने संसार के
समक्ष अपने महान ग्रंथ Organon of
Rational Healing (न्यायोचित रोग-
निवारण ज्ञान कोश) को प्रकाशित करके
प्रस्तुत किया। पर हुआ क्या! समकालीन

तथाकथित चिकित्सा-विशारदों ने इस होमियोपैथी की बाइबल का लगातार मज्जाक उड़ाया और इस पर गालियों की बीछार की। उन लोगों ने हानमैन को 'बेवकूफ, चालबाज़ और धूर्त' करार दिया।

औषधियों के प्रभावों का अध्ययन

१८११ में हानमैन ने अपने 'शुद्ध औषधि-निर्धारण कोश' (Materia Medica Pura) का प्रथम खंड प्रकाशित किया। इस ग्रंथ में उन्होंने सुनियो-जित दंग से खुद पर और अपने शिष्यों पर विभिन्न औषधियों के प्रयोग से उत्पन्न हुए प्रभावों का विस्तृत विवरण देकर अपने सैद्धांतिक निष्कर्षों को प्रस्तुत किया, जिनकी पुष्टि आज भी की जा सकती है। और जिन्हें होमियोपैथी चिकित्सा विधान का सूत्रधार माना जा सकता है।

सन १८१२ में उन्होंने लीपज़िग विश्वविद्यालय की औषधि-विज्ञान विभाग की धाम सभा के सामने जब अपना लेख (Dissertation on the Helleborism of the Ancients) रखा तो उसने सभासदों को ऐसा चमकृत किया कि उन्हें खुलेआम अभिनंदित करके प्राध्यापक का पद प्रदान कर दिया गया। १८१२ से १८२१ तक हानमैन लीपज़िग विश्व-विद्यालय में होमियोपैथी की दीक्षा देते रहे। उनके अनवरत अध्यवसाय, विषय के परिपूर्ण ज्ञान और समग्र विवेक ने अनेक बुद्धिशाली विद्यार्थियों को आकृष्ट

नवनीत

किया। उनके इन विद्यार्थियों पर गये प्रयोगों से प्राप्त तथ्यों के संग्रह से हानमैन ने 'औषधि ज्ञान' के शेष खंडों का क्रमबद्ध प्रकाशन किया लेकिन परेशानियों से उनका पीछा भी नहीं छूटा। दूसरे चिकित्सकों लिए होमियोपैथी की सफलता का कांटा बन गयी। उन लोगों ने साबित करके कानून का सहारा लिया। हानमैन को सूचित किया गया कि अगली बार उनके हर दिये गये नुस्खे पर २० फीस का जुर्माना लगाया जायेगा। यह उनके लिए लीपज़िग छोड़ने का बर्तन बनी और उन्हें कोटन जाना पड़ा। १८३५ तक हानमैन शांत मन से कृषि सायी जीवन व्यतीत करते रहे। इन दिनों के बीच उन्होंने अपने महान ग्रंथ 'Chronic Diseases' (विस्तृत व्याधियां) को पांच खंडों में प्रकाशित किया।

कोटन में ही हानमैन के बीर संबंधित एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। वह भी उन दिनों फैली हुई एंजाइम कालरा (पेचिश) की महामारी, जब दिये हुए कपूर, तत्पश्चात् Cupressus और Veratrum Album जैसे औषधियों के कारण हजारों मनुष्यों कवलित होने से बच गये।

और कोटन में ही शेष जीवन सुख समृद्धि में व्यतीत करके हानमैन २ जुलाई १८४३ को 'मैं वर्ष' १९८१

न रहा' कहते हुए अंतिम सांस छोड़ी।

व्याधियों की परिभाषाएं

होमियोपैथी के बारे में जानने के पहले हमें हानमैन द्वारा व्याधियों की ही हुई परिभाषा को समझ लेना आवश्यक है। उनके अनुसार 'व्याधि शरीर के प्राण तत्व में घटित पीड़ा अथवा असंतुलन है जिसका प्रतीक रोगी के तन में प्रकट लक्षणों की समग्रता है। जो कि प्राण-ऊर्जाओं की गतिमय विक्षुब्धि मात्र है।' जब रोग के सब अपरोक्ष लक्षणों या प्राणबल की पीड़ा की निवृत्ति हो जाती है, तब रोगी निरोग हो जाता है। होमियोपैथी को इसलिये प्राण-गति शास्त्र का विज्ञान कहा जा सकता है।

होमियोपैथी का इस बात में बिल्कुल विश्वास नहीं है कि रोग के शमन के लिए भारी मात्रा में दवाएं बार-बार दी जायें। उसका लक्ष्य तो रोगी के प्राण-बल को सुक्रियान्वित करके रोग को निरस्त करना होता है।

रोग के कारणों का निर्मूलन

होमियोपैथी केवल रोगी के शरीर की क्रियाशील शक्तियों को उद्दीप्त करने का प्रयत्न करती है। रोगी के रोग का शमन तो उसके प्राण-बल का प्राण-विरोधी तत्वों के साथ किया हुआ सफल निष्फल मात्र है और रोग-रुद्धि प्राण-बल की उत्तेजित प्रतिक्रिया से संभव हो जाती है। हानमैन का कथन है कि होमियोपैथिक औषधि की संभवतया न्यूनतम

मात्रा शरीर के उन रोगग्रस्त अवयवों में सक्रिय हो जाती है, जो रोग-समरूप-लक्षण-प्रत्युत्तेजकों से अत्यधिक प्रभावित हो चुके हैं। होमियोपैथी द्वारा चुनी औषधि की शक्ति रोग की प्राकृतिक शक्ति से कम नहीं होनी चाहिये।

होमियोपैथी का सबसे कठिन भाग उपचार-विधि निश्चित करने के पश्चात् व्याधि की वस्तुतः चिकित्सा है।

हानमैन के शिक्षण के अनुसार औषधि की एक मात्रा देकर उसकी पूरी प्रक्रिया और परिणाम का इंतजार करना चाहिये। औषधि मात्रा की पुनरावृत्ति का एक ही नियम है और वह है कि पुनरावृत्ति तभी की जाये जब पहली मात्रा के प्रभाव से उत्पन्न सुधार बंद हो जाये। अगर उचित समय के अंतर में कोई सुधार दिखाई न दे तो उसका अर्थ या तो उप-चारविधि की गलती या औषधि-शक्ति की न्यूनता है। किसी भी गहरी बीमारी में जब तक लगातार प्रत्यक्ष सुधार होता रहे तो उसका मतलब ही है कि दवा न दोहरायी जाये। ऐसी स्थिति में औषधि को फिर से देने से रोग के सुधार-क्रम में बाधा पड़ती है। दवा को बार-बार तब तक ही देना चाहिये, जब तक सुधार न दिखायी दे या सुधार होना बंद हो जाये। अधिक औषधि-मात्रा देने या बदलने से प्रायः चिकित्सक को भ्रांति या रोगी की हानि होती है। हमारे मत में रोग के शमन का अर्थ है रोग की स्थिति

का पूर्ण निर्मूलन और उसके कारण प्रकट लक्ष्णों का निराकरण तथा स्वाभाविक स्वास्थ्य स्थिति की वापसी।

यदि आजकल की होमियोपैथी की पुस्तकों की तुलना २० साल पहले की किताबों के साथ करें, तो यह विदित होता है कि हानमैन प्रशिक्षित चिकित्सा-विधि में आशातीत उत्थान हुआ है, परंतु होमियोपैथी के आधारभूत सिद्धांतों में किंचित् मात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ है; क्योंकि ये सिद्धांत सत्य हैं और सत्य बदलता नहीं।

थोड़ा खर्च, अधिक प्रभाव

होमियोपैथी की स्थिति इस देश में दृढ़ हो गयी है। इसका प्रचलन इसकी प्रभाविकता और कमखर्ची के कारण एलोपैथी के बराबर ही नहीं, बल्कि कुछ ज्यादा ही है। अपने साधनविहीन देश में जहां गरीब लोगों के लिए एलोपैथी की महंगी दवाएं हैसियत के बाहर हो जाती हैं तो उन्हें अपनी बीमारियों के इलाज के लिए होमियोपैथी का ही सहारा लेना पड़ता है। इस देश में वस्तुतः होमियोपैथी ने ही व्याधिग्रस्त मनुष्यों को थोड़े से खर्च में राहत पहुंचायी है। मेरा दावा है कि भारत में होमियोपैथी पर विश्वास रखने वालों की संख्या शेष विश्व में

ऐसे लोगों की संख्या से अधिक होगी और यह सब बतौर किसी समर्थन और सहायता के हुआ है। सरकार ने भी होमियोपैथी को प्रदान कर दी है। तो हमें जन-जन की होमियोपैथी से सहानुभूति का उपयोग करना होगा।

एक और महत्त्वपूर्ण विषय को भी ध्यान देना आवश्यक है। उष्ण-प्रदेश-व्यापी व्याधियों के अनुसंधान के लिए बड़ी मात्रा में चिकित्सा-पद्धतियों के संस्थानों को सहायता प्रदान कर रही है, लेकिन होमियोपैथी द्वारा इस प्रकार के शोध को बढ़ावा नहीं दिया जा रहा है। होमियोपैथी के शोध और गवेषणा कार्य में से वित्त व्यय से प्रत्याशित फल मिल सकते हैं।

सर्प-विष के प्रमाणों पर सभ्यता सबसे पहले होमियोपैथी में ही भारत होमियोपैथिक औषधि-शोध के एक आदर्श देश है, क्योंकि यहां लताओं की प्रचुरता और उपलब्ध है। इस कार्य के लिए अनुकूल शासकीय प्रोत्साहन देने वाला देश होमियोपैथिक औषधि-उत्पत्ति शीघ्र ही स्वावलंबी हो सकता है।

जिसने सर्वप्रथम धन खोजा, उसी ने सारे दुःख भी खोजे होंगे।

त्रुटियां ही पाप बन जाती हैं, अगर क्षमा न मांगी जाये तो।

अर नो भक्तः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनील

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते
पवस्व मधुमत्तमः ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥

हे जगत को सरसाने वाले, स्नेह-रस के
सुधाकर, मुझ प्राणों वाले, मुझ इन्द्रियों
वाले देह-धारी के लिए अत्यन्त मधुर
होकर पवित्रता का प्रवाह चलाइये, मैं
अर्चना के मंदिर में प्रवेश कर रहा हूँ ।

—साम पूर्वाचिक ५-९-६

महान प्रेमचंद के पत्र

[प्रभाकर माचवे और वीरेन्द्र कुमार जैन के नाम]

वनारस, 'हंस' कार्यालय,
१५-९-१९३५

प्रिय प्रभाकर,

मैं तुम्हें कई दिनों से पत्र लिखने का इरादा कर रहा था पर तुम्हारे पत्रों में तुम्हारा पता न था। कल तुम्हारे दोनों लेख मिल गये। मैंने श्री खांडेकरजी की कृपा पढ़ी। वास्तव में बहुत सुंदर चीज है। हां! अंत में या तो अनुवाद में कुछ रह गया और कोई बात है। जमुना में ताज का प्रतिबिम्ब कैसे कुछ और हो गया यह मैं न समझ सका। मगर इस कहानी को छापने के लिए मुझे श्री खांडेकरजी से अनुमति लेनी पड़ी। मुझे उनका ऐड्रेस मालूम नहीं। तुम लिख दो तो मैं उन्हें पत्र लिखूँ। यदि वह अनुमति न देंगे तो कैसे छपेगी? 'मराठी के तीन उपन्यासकार' मार्मिक आलोचना है। अक्टूबर के अंक में दे रहा हूँ। तुम्हें यदि धन्यवाद दूँ तो गोया यह मेरा काम है। तुम्हारा काम नहीं। इसलिये धन्यवाद न दूंगा। पर तुम्हारी लगन सराहनीय है। तीसरे महीने हंस के लिए कुछ दिया करो। मैं तो समझता हूँ अगर अनुवाद न करके मराठी के अच्छे उपन्यासों की विस्तार से आलोचना कर दिया करो तो वह एक काम हो जायेगी और संभव है पुस्तक बन जाये। मि. फडके, देशपांडे (पु. य.) और बाकी तीनों मास्टर्स की सर्वोत्तम कृतियों की आलोचना तीन महीने में कर डालो। इसमें तुम परिश्रम कम पड़ेगा और तुम्हारी पढ़ाई में बाधा न पड़ेगी।

तुम्हारी कहानी 'दूध का पानी' मुझे बहुत अच्छी लगी, लेकिन तुम जानते हो खाली भावुकता नहीं चाहता, कहानी में कुछ मतलब की बात भी चाहता हूँ।

वीरेन्द्र कुमार ने अभी एक और संस्मरण भेजा है। किसी गुजराती युवती की प्रेम कथा है। मेरा विश्वास आत्म-लग्न में नहीं है। विवाह एक कांट्राक्ट सही, लेकिन कांट्राक्ट पूरा हो गया तो बिना विशेष कारण के उसकी उपेक्षा को मैं बेईमानी समझता हूँ—उसका हृदय से पालन होना चाहिये। मगर उनका आग्रह है कि वह कहानी बिलकुल छपे। इसलिये छापूंगा।

शुभाकांक्षी-अन

०००

नवनीत

३४

बम्बई

१४-१२-३४

प्रिय वीरेंद्र,

तुम्हारी कहानी मिल गई थी। उसे हंस में जल्द ही दूंगा।

शुभाकांक्षी-प्रेमचंद

(२)

सरस्वती-प्रेस, काशी

ता. १२-५-१९३५

आशीर्वाद।

तुम्हारा पत्र, कविता और कहानी मिली। मैंने तुम्हारा लेख इसलिये नहीं दिया था कि मैंने तुम्हारे ऊपर कोई कृपा की थी। मैं इस विषय में कठोर हूँ। मैं तो तुम्हारी कविताओं में छलकता पुरुषार्थ, उबलता हुआ आशावाद देखना चाहता हूँ। 'कवि-हृदय' एक कवि का बड़ा मार्मिक चित्रण था। यहाँ तो लोगों ने यह मशहूर कर दिया कि वह प्रियजी द्विवेदी पर लिखा गया है। मैं कितना ही कहता हूँ ऐसा नहीं है क्योंकि इसका लेख शांतिप्रिय को जानता भी नहीं। मगर लोग मुझसे कहते हैं आपको नहीं मालूम, इस निशाना उन्हीं पर है। वस ऐसी ही कोई चीज़ लिखो जिसमें केवल भावुकता और कलना न हो, बल्कि तथ्य भी हो, जिसे पढ़कर जीवन में बल उत्पन्न हो। यह कहानी बस एक युवक हृदय की लहर है। कोई नई बात नहीं। कोई सुंदर कहानी लिखो। श्रवकल तो छुट्टियाँ होंगी, समय भी है। गलत मस्ती के चक्कर में न पड़ो। सच्ची मस्ती जीवन को कर्मशील और आत्मा को बलवान बनाती है। मैं प्रतीक्षा करूँगा।

शुभाकांक्षी-प्रेमचंद

(३)

हंस आफिस, बनारस केन्ट

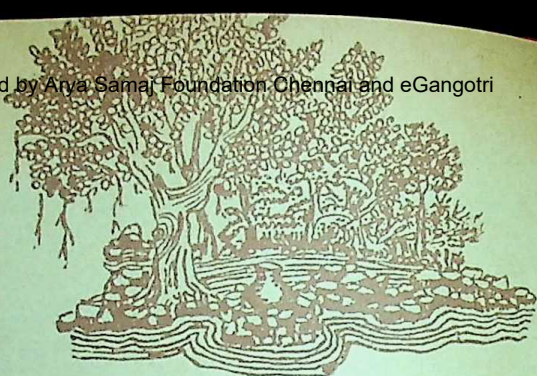
२७-८-३५

प्रिय वीरेंद्र कुमार, आशीष!

तुम्हारी कहानी मिली। यह तो बड़ी 'सेन्टीमेन्टल' हो गई है और पता नहीं चलता कि सनोवैज्ञानिक सत्य का चित्रण करना चाहते हो। कहानी की सबसे मुख्य वस्तु वह

३५

(शेषांश पृष्ठ १५३ पर)



प्रफुल्लचंद्र ओझा मुक्त का एक संस्मरण-लख

मेरे महान पिता और उनका ज़माना :

यादें पुराने इलाहाबाद की



अपनी अनपहचानती आंखों से मैं इस दुनिया को पहली बार २७ जनवरी १९१० को, दारागंज में देखा था। यह गंगा के किनारे बसा इलाहाबाद का एक छोटा-सा मुहल्ला है। ढाई-तीन साल तक की कोई स्मृति मुझे नहीं है, उसकी अपेक्षा भी नहीं की जा सकती। लेकिन थोड़ा होश संभालते ही मेरे अंतर्मन ने, निश्चय ही अनजाने, सबसे पहले जिस व्यक्ति को पहचाना, वह मेरे पिता साहित्याचार्य चंद्रशेखर शास्त्री थे, जो स्वयं सदा अपने को केवल चंद्रशेखर ही लिखते थे। वे संस्कृत के प्रकांड पंडित और विचारों से अत्यंत आधुनिक थे। उस समय भी, और १९३४ में उनके निधन के बाद भी, लोग आश्चर्य से यह

चर्चा किया करते थे कि उस दुनिया में संस्कृत का एक पंडित इतने प्रगति विचारों का कैसे बन सका था।

पिताजी सच्चे अर्थों में एक मार्क्सवादी ब्राह्मण थे। ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न होने ही उनके ब्राह्मणत्व की परिभाषा नहीं थी। ब्राह्मण वे उसे कहते थे, जो सत्त्विक, सत्यव्रती, अपरिग्रही और तेजस्वी हो। जो किसी भी स्थिति में असत् से समझौता न करे; जिसके सिद्धांत अंगद के लिए भी लागू की तरह अटल हों। और मेरे जीवन की चौबीस वर्ष साक्षी हैं, उनमें ये गुण अत्यंत पराकाष्ठा में थे। वे अत्यंत पसंद, निरभिमान, विनयी और निरालोचन थे। लेकिन उनमें एक दोष भी था। वे प्रचंड क्रोधी थे। बेशक, क्रोध



चित्र : ठाकोर राणा

उभी जागता था, जब कोई सम्मार्ग से
रचना भी विचलित हो। यह विचलन
उन्हें असह्य था। इसके लिए क्षमा उनके
पास नहीं थी। अनौचित्य की ओर पांव
बढ़ाने वाले की वे टांग तोड़ दे सकते
थे—वह चाहे उनके परिवार का कोई
अत्यंत प्रिय व्यक्ति हो, या पराया।
इस तरह, क्रोध उनका असंगत नहीं था,
आवृत्तिक जरूर था। जीवन में कितनी
बार, मनुष्य को समझौता करना पड़ता
है। इस शती के महत्तम पुरुष महात्मा
गांधी को भी कई बार समझौता करना
पड़ा था, लेकिन पिताजी के लिए यह
असंभव था। वे टूट सकते थे, समझौता
कर सकते थे। उन्होंने कभी नहीं
किया।

उस क्षण के पिता अपूर्व पुरुष थे। मैंने अपने
जीवन में वैसा दूसरा व्यक्ति नहीं देखा।
एक मरिचक इलाहाबाद में पिताजी का बड़ा रोव था,
उत्पल के साथ दवदा था। उन्हें लोग इलाहाबाद
रिभाषा के बंताज का बादशाह कह करतें थे।
जो सच्ची वगैरों के लोग उन्हें अपना परम
तेजस्वी मानते थे। सभी उनका सम्मान करते थे,
अंगद के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते
थे और किसी अंश में, उनसे डरते भी
नहीं थे। उनकी उपस्थिति में लोग स्वभावतः
सन्तुष्ट रहते थे कि उनके मुंह से कहीं कोई
बात न निकल जाये, ऐसा कोई काम
न हो जाये, जिससे शास्त्रीजी नाराज
हो जायें। उनकी नाराजी कोई मोल नहीं

लेना चाहता था। मैंने जीवन में बार-
बार सोचा है, आज भी अत्यंत आश्चर्य
के साथ सोचता हूं, कि उस विद्या तपोधन
व्यक्ति में, उस सीधे-सादे, सरल-निश्चल,
आडंबर रहित और आत्मप्रचार-भीरु
व्यक्ति में, वह कौन-सा तेज था, कौन-सा
आकर्षण था, जो प्रत्येक व्यक्ति को इस
तरह आकर्षित और श्रद्धा-नमित करता
रहता था !

श्रद्धा के उल्लेख पर तुराब की याद
आती है। तुराब—इलाहाबाद का प्रसिद्ध
गुंडा। लंबा-तगड़ा छह-फुटा जवान। यत्न
से संवारे केशों से चुहचुहाता सुगंधित
तेल, अट्टी का चुन्नटदार कुर्ता, रंगीन
लुंगी, ठनठनिया का चमकदार स्लीपर
और अपने ही कद की, मोटी-सी लाठी—
यह उसकी धज थी। शहर में उसका बड़ा
आतंक था, अनेक अपराधों से उसका

संबंध जोड़ा जाता था, लेकिन वह तो शेर था, सीना तानकर शहर में चलता था, किसी में उसका बाल बांका करने की हिम्मत नहीं थी। शायद पुलिस भी उस पर हाथ डालते हिचकिचाती थी।

लेकिन यही तुराब अगर राह-चलते पिताजी को देख लेता, तो अपनी शानदार पोशाक और सड़क की गलीज़-गंदगी का खयाल छोड़कर, सड़क पर पेट के बल लोट जाता और 'गुरु महाराज की जय हो' कहता हुआ उनके पैर पकड़ने की कोशिश करता था। कभी-कभी वह बचकर निकल जाते और कभी, उसकी पकड़ में आ जाने पर, उसे झिड़कते हुए कहते, 'चलो, हटो, रास्ता दो।' सदा पिताजी के साथ रहने वाला मैं, अनेक बार इसका साक्षी बना था।

उसी तुराब ने एक बार एक तमाशा खड़ा कर दिया था। दारागंज में एक नये दारोगा तबादले पर आये थे। शायद नये-नये भर्ती हुए थे, इसलिए अकड़ उनमें बहुत थी। फिर वह जमाना भी ऐसा था, जब दारोगा तो दारोगा, पुलिस के सिपाही से भी लोग आतंकित रहते थे। सो, नये दारोगा आये तो मुहल्ले के प्रतिष्ठित लोग बारी-बारी से उनसे मिलने जाते रहे। जब यह हुआ तो एक दिन दारोगाजी ने किसी से पूछा कि मुहल्ले में और कोई बड़ा आदमी नहीं है? उसने पिताजी का नाम लिया और कहा कि 'वह तो कहीं जाते नहीं,

दूसरे लोग ही उनसे मिलने आते हैं। दारोगाजी को यह बात अच्छी नहीं आई और उन्होंने कह दिया—'अरे ऐसे आदमी फास्त्री मैंने बहुत देखे हैं।'

यह बात जिन्होंने सुनी थी, उन्होंने सीमित न रही, बाहर फैली। किसी तुराब के कानों में भी पड़ी। और शाम, जब दारोगाजी ने घोड़े पर सवार होकर गश्त पर निकलने की तैयारी रकाब पर पांव रखा ही था कि अचानक तुराब का आविर्भाव हुआ। उसने एक हाथ से दारोगाजी को पकड़कर दूसरे हाथ से अपने पैर पर पटका, दूसरे हाथ से अपने पैर ठनठननिया वाला मोटा स्लीपर निकाल कर उन पर प्रहार करना आरंभ किया। उसके मुंह से गालियों की वर्षा होती थी और वह चीख रहा था, 'सले, मुझे महाराज के खिलाफ बोलेंगे तो आपको खींचकर बाहर निकाल लूंगा।'

सरे बाज़ार दारोगाजी का इस तरह पिटना एक अनहोनी घटना थी। बाज़ार में तहलका मच गया। भीड़ जम गयी। दारोगाजी किसी तरह भागकर भागे जा छिपे। तुराब सीना फुलाये रास्ते लगा।

इस घटना की खबर पिताजी को दूसरे दिन सबेरे मिली। वह बहुत नाराज़ हुआ। पहली बार उन्होंने किसी को धक्का कर तुराब को घर बुलवाया। वह हाज़िर हुआ। पिताजी उस पर पड़े। लेकिन उस पर उनके क्रोध की

प्रतिक्रिया नहीं हुई। वह नाटकीय मुद्रा में दोनों हाथों से अपने दोनों कान पकड़कर एक टांग पर खड़ा हो गया। अब पिताजी थे कि उसे डांटते जा रहे थे और वह था कि एक ही वाक्य दुहराये जा रहा था, 'आप चाहे मेरा सिर कलम कर तो गुरु महाराज, लेकिन जो साला आपकी जान में गुस्ताखी करेगा, उसकी जवान न खाइकर रख दूंगा।'।

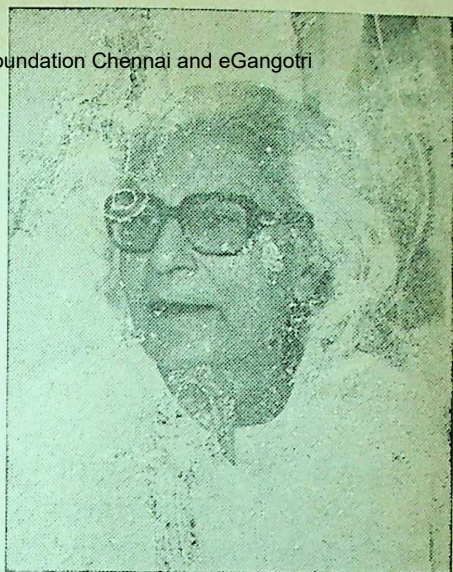
लगता है कि तुराब के इस एकरस नाटक से शीघ्र ही पिताजी का धीरज बाता रहा। शायद उन्हें हंसी आने लगी थी। वह कहकर वह दूसरे कमरे में चले गये कि 'जाओ, भागो यहां से। मैं फिर ऐसी बात नहीं सुनना चाहूंगा।'।

तुराब भी यह कहता हुआ सीढ़ियां उतर गया कि 'नहीं गुरु महाराज, लेकिन मेमाला...'।

भद्र समाज के सम्य, सुसंस्कृत, शिक्षित लोग पिताजी पर श्रद्धा रखते थे, उनका सम्मान करते थे, यह बात तो समझ में आती है, लेकिन तुराब जैसे व्यक्ति के मन में भी पिताजी के प्रति ऐसी निष्ठा क्यों थी, यह मैं आज भी नहीं समझ पाया हूं।

०००

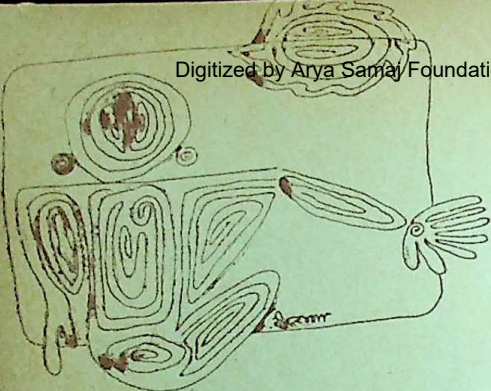
पिताजी कोई काम-धंधा, कोई रोजी-रोजगार नहीं करते थे। योगक्षेम राम-बरोसे चलता था, मगर ठाठ से चलता था। वामुदेव बनिये, बफाती सब्जीवाले और पूनी अहीर की याद मुझे आज भी है, जिनके यहां से बरसों राशन-पानी



मुक्तजी

शाक-सब्जी और दूध आता रहता था और तीन-चार बरसों के बाद जब अचानक किसी दिन पिताजी को सुध आती कि कर्ज शायद बहुत ज्यादा हो गया है, तो कोई-न-कोई प्रकाशक, खुद-ब-खुद आकर और कोई अत्यंत साधारण-सी भी पुस्तक लिखने का आग्रह करके, कर्ज की राशि से अधिक रुपये दे जाया करता था।

पिताजी असंग्रही थे। जीवन में उन्होंने कुछ जोड़ा नहीं— न धन, न धरती, न और कुछ; उलटे, जो पैत्रिक जमीन-जायदाद थी, वह भी छोड़ दी। उनके पास जुड़ीं तो सिर्फ पुस्तकें, और उनको भी उन्होंने स्वयं नहीं जोड़ा। जैसे नदियों का जल स्वतः-प्रवृत्त सागर के पास जा पहुंचता है, पुस्तकें वैसे ही, विभिन्न स्रोतों से, विभिन्न मार्गों से उनके पास



आती रहती थीं।

पिताजी के पास एक और चीज जड़ती थी—गोष्ठी। उनकी प्रातः-सांध्य साहित्यिक गोष्ठी इलाहाबाद में मशहूर थी। लोग उसे 'शास्त्रीजी का दरबार' कहते थे। उनमें स्थानीय विद्वज्जनों के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों से और यदा-कदा विदेशों से भी, आनेवाले मनीषियों का जमाव हुआ करता था। विदेशी गौरांगों का लाल चेहरा मझे किसी हद तक आतंकित करता था और सुरक्षा की सहज भावना से मैं पिताजी के कुछ और निकट हो जाया करता था।

मेरी स्मृति में वह दुमंजिला मकान आज भी यथावत् चित्रित है, जिसकी ऊपरी मंजिल के बड़े से कमरे में पिताजी का दरबार लगता था। एक बार मेरी मां मेरे अन्य भाई-बहनों के साथ अपने मायके काशी चली गयी थीं। पिताजी के साथ उस बड़े-से मकान में मैं ही रह गया था।

बहुत सवेरे पिताजी घर की सफाई कर रहे थे। उन्होंने कमर में एक अंगौछा लपेट रखा था, शरीर का शेष भाग निर्वस्त्र

था। मैं उनके पीछे-पीछे, सीढ़ियों उतरता, सड़क के मुख्य द्वार तक गया था। कूड़ा बटोरकर पिताजी एक रद्दी कागज में रखा ही था कि दस्त के ठीक सामने एक फिटन आ खड़ी और उस पर बैठे एक गौरांग ने पिताजी से संस्कृत में कुछ पूछा। उन्होंने संस्कृत में ही उत्तर देकर अपने पीछे आने का संकेत दिया। गौरांग दर्शन से भयभीत मैं, पहले ही सीढ़ी चढ़कर ऊपर पहुंच गया था और के कमरे के बगल वाले कमरे में छिपकर देखा रहा था कि क्या होनेवाला है। कमरे का बांध न होने पर भी उनकी चेष्टा और भाव-भंगिमाओं से इतना तो मैं भांप ही लिया कि वह पिताजी से कुछ पूछ रहे हैं और उनके उत्तर से बाध न होकर उसे अस्वीकार कर रहे हैं। पिताजी उन्हें बैठने को कहकर कमरे में चले गये और धोती-कुर्ता पहन कर अपनी गद्दी पर आ बैठे। किन्तु दिन पिताजी के पास जाने का मैं नहीं जुटा पाया। छिपकर ही देखा उनकी बातें सुनता रहा।

दूसरे दिन, प्रायः उसी समय, वह सज्जन फिर पधारें और एक-दूसरे की बातचीत के दौरान, मुझे लगा बीच-बीच में वह पिताजी से बातें कर रहे। उस दिन उनके कंधे से काली चोकर, चौकोर, डिब्बे-जैसी, कोई चीज लटकी रही थी, जिसे सहज कौतूहल से देख

नवनीत

सीढ़ियों में पिताजी के निकट पहुंच गया था।
कुछ बरसों के बाद बातचीत के
मिलासिले में, मैंने इस घटना का उल्लेख
किया कि पिताजी से पूछा था कि वह
बोरांग कौन थे और आपसे क्यों झगड़
ले थे? पिताजी ने बताया कि वह जर्मनी
के एक संस्कृत विद्वान् थे और मेरी पत्रिका

जर्मन पत्रिका में पिताजी के संबंध में
एक विस्तृत लेख लिखा था। लेख का
मूल स्वर यह था कि शास्त्री जी को देखे
बिना यह कल्पना नहीं की जा सकती
कि कोई इतना बड़ा विद्वान् इतना सरल,
निरभिमानी और आडंबरहीन हो सकता
है। किसी विषय को समझाने की उनकी

क्षमता अपूर्व है। संस्कृत-
साहित्य के, विशेषतः पुराणों
के, संबंध में मेरे मन में जो
शंकाएं थीं, उनसे मिलने के
बाद वे निर्मूल हो गयी हैं।

लेकिन इस विवरण की
एक पूर्व-पीठिका है। पिताजी
जब वाराणसी के क्वीन्स
संस्कृत कॉलेज में पढ़ रहे थे
और आचार्य के प्रथम खंड
में थे तो वहां के प्रिंसिपल
डॉ. वेनिस ने एक आदेश
जारी किया था। पिताजी
को वह आदेश अनुचित
और असम्मानजनक प्रतीत
हुआ। और न केवल



चित्र : संतोष जड़िया

अनृतः जीवन में उनके कुल तीन ही
चित्र खींचे जा सके थे और वे भी ऐसी
प्रसिद्धियों में, जिनमें अस्वीकृति
प्रभव ही नहीं थी। जर्मन महोदय को
उन्होंने किसी तरह चित्र खींचने की
अनुमति नहीं दी थी।

जर्मनी लौटकर उन सज्जन ने एक

उन्होंने स्वयं उसे अमान्य
करने का निश्चय किया, बल्कि छात्रों
का ऐसा जनमत तैयार किया कि सबने
उस आदेश को ठुकराने का निर्णय लिया।
जब प्रिंसिपल को इस बात का पता चला,
उन्होंने पिताजी को बुलाकर बहुत झिड़का
और अंत में धमकी देते हुए कहा, 'जानते
हो, इसके लिए मैं तुम्हें कॉलेज से निकाल

भी सकता हूँ।'

पिताजी ने शांतिपूर्वक प्रिंसिपल की बातें सुनीं और दृढ़-संयत स्वर में कहा— 'आपको केवल मुझे नहीं, सभी छात्रों को निकालना होगा, क्योंकि इस अनुचित और असम्मानपूर्ण आदेश को कोई छात्र स्वीकार नहीं करेगा।' कहकर, प्रिंसिपल की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किये बिना, पिताजी उनके कमरे से बाहर निकल आये।

दो-तीन दिन बाद डॉ. वेनिस ने फिर पिताजी को बुलवा भेजा। इस बार उनका रूप और स्वर, दोनों ही एकदम बदले हुए थे। वे बिल्कुल मित्र भाव से मिले। उन्होंने कहा— 'मैंने अपने निर्णय पर फिर विचार किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि तुम लोगों को पसंद नहीं है तो मुझे अपना आदेश वापस ले लेना चाहिये।' फिर वह घर-परिवार की बातें करने लगे और अंत में उन्होंने पूछा कि 'क्या वे दो-तीन जर्मन छात्रों को साहित्य और दर्शन पढ़ाना पसंद करेंगे? उनसे पैसे अच्छे मिल जायेंगे।'।

डॉ. वेनिस की कृपा से पिताजी को तीन जर्मन छात्र मिल गये, जिन्होंने बड़ी रुचि और लगन के साथ विद्या अर्जित की। पिताजी कहते थे, वैसी सूझ-बूझ वाले और कोने-अंतरे तक कुरेदकर विषय को समझने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थियों को पढ़ाने में आनंद आता है।

पढ़ाई खत्म करके वे छात्र जर्मनी लौट गये थे; और कालांतर में जब इलाहाबाद

से पिताजी ने संस्कृत की मासिक पत्रिका 'शारदा' निकाली थी, तो उन लोगों जमनी में उसके १४०० ग्राहक बनाये जब कि सारे भारत में उसके कुल ग्राहक के लगभग ग्राहक थे। प्रथम विस्मय आरंभ होने पर, स्वभावतः 'शारदा' का प्रकाशन बंद हो गया था।

०००

उन्हीं दिनों की एक घटना और आती है। सीतामऊ के महाराज (प्रति इतिहासज्ञ डॉ. रघुवीर सिंह के पिता) जिनका नाम मुझे याद नहीं आ रहा। बार तीर्थाटन करते हुए प्रयाग आये थे एक दिन उनके सेक्रेटरी ने पिताजी के पास आकर कहा कि महाराज उनसे मिलना चाहते हैं। बारह वर्षों के श्रम से उन्हें एक संस्कृत पुस्तक लिखी है। वे पिताजी को उसे दिखाना और उनकी सम्मति प्राप्त करना चाहते हैं।

पिताजी ने उत्तर दिया— 'तुम्हारे राज राजा हैं, इसलिए मैं उनसे मिलने नहीं आऊंगा; लेकिन वे विद्या-व्यसनी हैं और इतनी दूर की यात्रा करके एक विद्वान् व्यसनी से मिलने आये हैं तो मैं उनसे मिलूंगा।'।

अगले दिन आठ बजे सबेरे आते बादा लेकर सेक्रेटरी चले गये।

पिताजी यथासमय महाराज के डाउन स्थित निवास पर पहुँचे। कोठी के फाटक पर, एक सौगीत सिपाही पहरे पर तैनात था। एक

साधारण वेश-भूषा के ध्याती प्रान्दराज मकान में
जाने का प्रयास करते देखकर उसने
पिताजी को रोका । पिताजी ने कहा कि
उन्हें महाराज ने बुलवाया है तो उसने
अविश्वास के साथ कहा—‘महाराज पूजा
पर हैं; अभी किसी से नहीं मिल सकते ।’
पिताजी ने उससे कहा कि वह महा-
राज को खबर तो करा दे, लेकिन उसने
हड़तापूर्वक कहा कि यह उसका काम
ही है । पिताजी वापस लौट आये ।

राम को सेक्रेटरी महोदय फिर आये ।
किन्तु उलाहने के, किन्तु अत्यंत विनयपूर्ण
स्वर में उन्होंने कहा—‘आप सबेरे पधारें
ही, महाराज आपकी प्रतीक्षा करते रहे।’
सेक्रेटरी की बात सुनते ही पिताजी का
हृत्तेज जाग उठा । वे सेक्रेटरी पर
रस पड़े । सेक्रेटरी ने बहुत अनुनय-विनय
से कहा कि गलती हो गयी, आप अभी
मेरे साथ चलिए, या आज्ञा दीजिये तो
मेरे सबेरे स्वयं आकर आपको ले चलूँ;
किन्तु पिताजी पर कोई असर नहीं पड़ा ।
उन्होंने कहा—‘जहां से मैं अपमानित होकर
आया हूँ, वहां फिर पांव नहीं रख सकता ।
अगर अपने राजा से कह दो कि उन्हें
राज हो तो खुद आयें ।’ सेक्रेटरी बेचारा
दुस्र दवाकर भाग खड़ा हुआ ।

दूसरे दिन सबेरे सीतामऊ-नरेश ने यह
भावित कर दिया कि वे केवल राजा ही
नहीं विद्वान् भी हैं और विद्वान् ब्राह्मण
का सम्मान करना भी जानते हैं । इस बार
सेक्रेटरी को साथ लेकर वे स्वयं आये ।

रहते थे, वह मुख्य सड़क से कुछ हटकर
गली के अंदर था । सेक्रेटरी ने आकर महा-
राज के पधारने की सूचना दी । पिताजी
ने कहला दिया कि इस समय उन्हें फुर्सत
नहीं है, वे किसी से नहीं मिल सकेंगे ।

महाराज लौट गये, लेकिन शाम को
फिर आये । उनकी सज्जनता और विन-
म्रता ने शायद पिताजी के क्रोध को गला
दिया था । इस बार वे स्वयं बाहर जाकर
महाराज को आदरपूर्वक अपनी बैठक में
ले आये । उनके बैठ जाने पर पिताजी ने
कहा—‘महाराज, आप राजा हैं, मैं दरिद्र
ब्राह्मण हूँ । अब तक आपको ‘सरकार,
हुजूर और अन्नदाता’ कहने वाले लोग ही
मिले होंगे । एकमात्र चंद्रशेखर ही ऐसा
व्यक्ति है, जो आपको बता सकता था कि
दरवाजे से लौटाये जाने पर किसी को
कितना बुरा लगता है और केवल इसी
कारण मैं सबेरे आपसे नहीं मिला था ।’

महाराज ने बहुत-बहुत क्षमा-याचना
की और थोड़ी देर तक पिताजी के साथ
बातें करने के बाद वे उन्हें अपने साथ ले
गये । इसके बाद वे दोनों आजीवन बड़े
अच्छे मित्र बने रहे ।

ये कुछ असंबद्ध स्मृतियां हैं जो अना-
यास मन में उभर आयी हैं । इनसे पिताजी
के जीवन पर किंचित् प्रकाश पड़ता है ।
लेकिन ऐसी स्मृतियों की शृंखला अटूट
है । अन्य लोगों के संदर्भ में उनकी चर्चा
आगे भी आ सकती है ।





उना-महेश्वर : उदयगिरि पहाड़ों पर उत्कीर्ण प्रतिमा

भारतीय मंदिर-कला का उद्गम - तीर्थ : उदयगिरि की गुफाएं

□ दिनेशचन्द्र

भारत में हजारों मंदिर हैं, इनमें से कुछ मंदिर आपने भी जरूर देखे होंगे, पर क्या कभी आपने यह जानने की कोशिश की कि भारत में मंदिरों के निर्माण की यह परंपरा कहां से शुरू हुई? भारतीय पुरातत्त्वशास्त्री बहुत खोजबीन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि भारत में मंदिरों की परंपरा का श्रीगणेश विदिशा जिले में स्थित उदयगिरि पहाड़ी की नवनीत

गुफाओं से हुआ है। पुरातत्त्व एवं भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध प्रोफेसर कृष्णदत्त वाजपेयी के अनुसार 'उदयगिरि की गुप्तकालीन गुफाओं ही मंदिरों के निर्माण की प्रेरणा होगी।' वस्तुतः उदयगिरि की क्रमांक एक के बारे में पुरातत्त्व विनिर्वादा रूप से यह मानते हैं कि गुफा भारत में मंदिर-निर्माण का

विनास के प्रारम्भिक रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं।

उदयगिरि की ये गुफाएं विदिशा से केवल ६ किलोमीटर दूर पश्चिम में स्थित हैं। इन गुफाओं तक पहुंचने के लिए बेतवा अथवा बेस नदी को पार करना होता है। विश्वविख्यात बौद्ध संघ मांची से इनकी दूरी ६ किलोमीटर उत्तर पूर्व में है। यह पहाड़ी बेसनगर से केवल दो किलोमीटर पश्चिम में स्थित है। उदयगिरि की यह पहाड़ी बेसनगर प्राचीन विदिशा के लिए सुरक्षा दीवार का काम करती थी। बेसनगर या प्राचीन विदिशा तीन ओर से बेतवा एवं बेस नदी से घिरा हुआ था, चौथी दिशा में उदयगिरि की पहाड़ी स्थित थी। इस प्रकार यह नगर बिना किले या दुर्ग के भी अन्य नगरों से गुलना में सुरक्षित था।

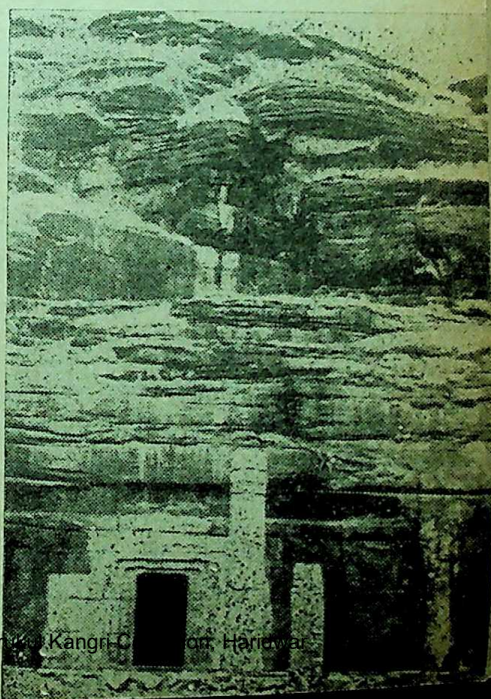
उदयगिरि की पहाड़ी की लंबाई डेढ़ मील है। यह दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर फैली हुई है। इसकी अधिकतम ऊंचाई ३५० फुट है। सबसे अधिक ऊँचाई उत्तर पूर्व में है। विख्यात पुरातत्त्व-विदों जनरल कनिंघम ने इन गुफाओं के उत्खनन का काम उत्तर पूर्व की ओर शुरू किया था।

इस पहाड़ी का नाम उदयगिरि क्यों रखा और कब पड़ा, इसका कोई उल्लेख अब तक नहीं मिल पाया है। बौद्ध-साहित्य में विदिशा के समीप वेदिसगिरि नामक एक पहाड़ी स्थित होने का उल्लेख

मिलता है। इस बात के भी स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं कि सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र श्रीलंका जाने के पूर्व अपनी मां से मिलने आये थे और वे वेदिसगिरि पहाड़ी पर स्थित विहार में ठहरे थे। यहां मैं इस तथ्य का गौरव के साथ उल्लेख करना चाहूंगा कि महेन्द्र और संघमित्रा की माता देवीश्री या असंधिमित्रा विदिशा की एक श्रेष्ठ कन्या थी और जब अशोक मालवा के शासक नियुक्त किये गये थे तो उन्होंने इस श्रेष्ठ कन्या से विवाह कर लिया था।

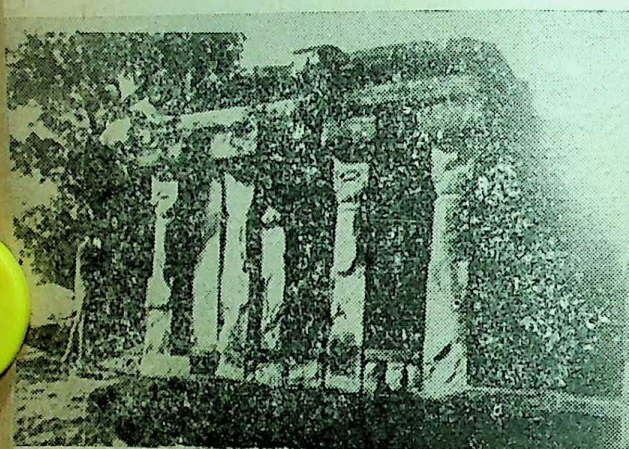
जनरल कनिंघम ने जब इस पहाड़ी पर उत्खनन कराया तो उन्हें एक बौद्ध स्तूप के अवशेष मिले थे। इसलिए यह कहा जा सकता है कि विदिशा के समीप उदयगिरि की पहाड़ी उस समय वेदिसगिरि के नाम से प्रसिद्ध थी।

गुफा क्रमांक १९



परमार वंश, जिसमें मुंज एवं भोज सरीखे प्रतापी सम्राट हुए थे, उसी वंश के एक राजा उदयादित्य ने विदिशा पर शासन किया था। इस राजा ने उदयपुर बस्ती बसायी। उदयपुर के सुंदर मंदिर का निर्माण कराया तथा उदयसमुद्र नामक एक तालाब भी बनवाया था।

इन्हीं राजा उदयादित्य ने विदिशा में भी कुछ निर्माण कार्य कराये थे। विदिशा के बहुचर्चित विजयामंदिर में मिले एक



गुफा क्रमांक १

शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि विजयामंदिर का निर्माण भी राजा उदयादित्य ने कराया था। संभवतः इन्हीं राजा उदयादित्य ने इस पहाड़ी का नामकरण अपने नाम पर कर दिया हो। जिस प्रकार उदयपुर, उदयेश्वर मंदिर एवं उदयसमुद्र का नामकरण उनके नाम पर हुआ था। राजा उदयादित्य ने ग्यारहवीं शताब्दी

नवनीत

में विदिशा पर शासन किया था। बाद से ही विदिशा की अवन्ति का शुरु हुआ। विदिशा गुमनामी के उदयगिरि की ये गुफाएं गुमनामी अंधकार में डूब गयीं।

लगभग सात सौ वर्ष बाद गुफा का यह अंधकार उस समय दूर हुआ जब जनरल कनिंघम ने इस पहाड़ी के उत्खनन कार्य किया एवं मिट्टी

पेड़ों से ढंकी इन गुफाओं की खोज निकाला। सन १८७६ में उनकी जो खोज लाजिकार सर्वे रिपोर्ट प्रकाशित हुई, उसमें इन गुफाओं का विस्तार से वर्णन करने की जनरल कनिंघम की रिपोर्ट में इस पहाड़ी की १९ गुफाओं का वर्णन था। बाद में स्वर्ण सिंधिया वंश के शासन के कार्यकाल में तत्कालीन

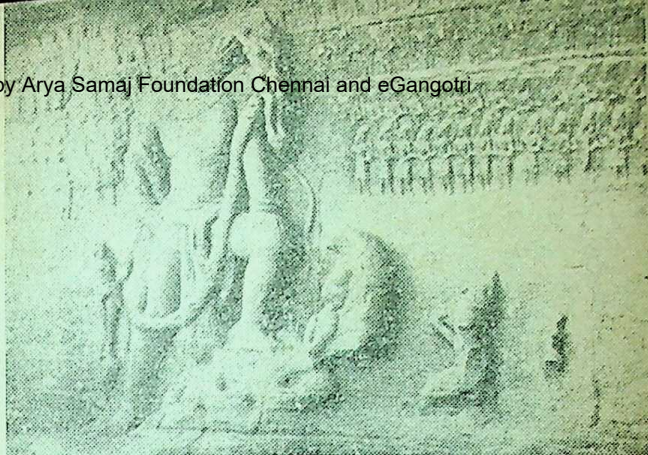
पुरातत्त्व-विभाग ने एक और गुफा खोजी। इस प्रकार पुरातत्त्व-विभाग के कार्य में आज भी यह विवरण पढ़ने को मिलता है कि इस पहाड़ी में बीस गुफाएँ हैं। वैसे इस पहाड़ी में चौबीस गुफाएँ हैं। इन गुफाओं का निर्माण-काल काल माना जाता है। विभिन्न कालों में प्राप्त शिलालेख एवं प्रतिमाओं के निर्माण शैली भी इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। यह

करते हैं। गुफा क्रमांक १
एवं बीस जैनधर्म से संब-
धित गुफाएं कही जाती हैं,
ये गुफाएं हिन्दू धर्म से
संबंधित हैं।

इन गुफाओं में शिल्प-
शास्त्र की दृष्टि से गुफा
क्रमांक एक को सर्वाधिक
मूल्यपूर्ण माना जाता है।
यह गुफा भारत के मंदिर
निर्माण-शास्त्र के विकास के

प्रारम्भिक रूप का प्रतिनिधित्व करती है।
इस गुफा को, एक पत्थर को तीन ओर से
उत्कीर्ण करके बनाया गया है, छत भी
उसी पत्थर की बनी हुई है। गुफा के
दोनों की दीवार पर सूर्य का एक चित्र
है। इसलिए इसे 'सूरजगुफा' भी कहा जाता
है। गुफा में जैन तीर्थंकर भगवान् पार्श्व-
नाथ की एक खड्ग-आसन प्रतिमा है।
गुफा के सामने वर्गाकार प्रवेश मंडप है
जो तीन ओर से खुला हुआ है। प्रवेश
द्वार में साढ़े स्तंभ लगे हुए हैं। इसी
गुफा से लगी हुई एक खुली गुफा भी है।
गुफा क्रमांक २ एक तलघर के समान
है। इसमें कोई प्रतिमा नहीं है। इस
गुफा के सामने पहले एक दीवाल थी
जो अब नष्ट हो गयी है।

गुफा क्रमांक ३ एक आयताकार
गुफा है। इसकी भीतरी दीवालें खुरदरी
हैं। भीतरी दीवाल पर एक प्रतिमा उत्कीर्ण
है। यह प्रतिमा भगवान् शंकर के पुत्र



बराह अवतारः ध्रुवस्वामिनी का उद्धार
कार्तिकेय की है। यह प्रतिमा अब अस्पष्ट
एवं खंडित है। प्रतिमा में दो हाथ एवं
एक मस्तक दिखाया गया है। प्रतिमा
दायें हाथ में दंड धारण किये हुए है,
जब कि बायां हाथ खंडित है।

गुफा क्रमांक ४ का नामकरण जनरल
कनिंघम ने 'वीणा गुफा' के नाम से
किया है। इस गुफा के द्वार पर एक पुरुष
आकृति को वीणा बजाते हुए उत्कीर्ण
किया गया है। वैसे द्वार पर सारंगी एवं
मृदंग के वादक भी उत्कीर्ण हैं। इस गुफा
में एकमुखी शिवलिंग स्थापित है, जो
२ फुट ५ इंच ऊंचा है। इसका व्यास १
फुट २ इंच है। लिंग पर भगवान् शिव की
आकर्षक मुखाकृति गोलाकार स्वरूप
में उत्कीर्ण है। इस मुखाकृति में केश-
सज्जा पर विशेष परिश्रम किया गया है।
भगवान् शंकर का तीसरा नेत्र मस्तक के
बीचोबीच में है। भगवान् शंकर के गले
में सर्प के स्थान पर हार है।

उदयगिरि की गुफा क्रमांक ५ सर्वाधिक चर्चित, प्रसिद्ध एवं विख्यात है। यह एक खुली गुफा है जो २२ फुट लंबी, घरातल से १२ फुट ८ इंच ऊंची तथा घरातल से ३ फीट ४ इंच गहरी है। इस गुफा में पुराण-प्रसिद्ध वराह अवतार को भव्य, विशाल एवं कलात्मक रूप से चित्रित किया गया है।

इस गुफा में भगवान वराह की जो विशाल प्रतिमा है, वह अपने बायें पैर को शेषनाग पर रखे हुए है। शेषनाग के तेरह फन हैं, जिनमें ७ फन आगे हैं एवं ६ पीछे हैं। भगवान वराह के गले में पुष्पों का विशाल हार है।

उदयगिरि की इस प्रतिमा में भगवान वराह पृथ्वी को अपने दाहिने दांत पर धारण किये हुए हैं। पृथ्वी को नारी-रूप में उत्कीर्ण किया गया है। प्रतिमा के पार्श्व में टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियों द्वारा समुद्र की लहरें अंकित की गयी हैं और इस



नवनीत

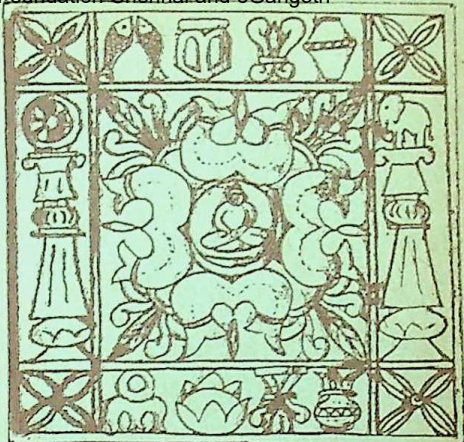
प्रकार भगवान विष्णु द्वारा वराह अवतार लेकर प्रलय में से सृष्टि की पौराणिक कथा चित्रित की है। प्रतिमा के पार्श्व के ऊपरी भाग में देवता एवं राक्षस उत्कीर्ण किये हैं, जो इस महान विस्मयकारी दृश्य देख रहे हैं। प्रतिमा की बायीं ओर तथा दायीं ओर यमुना नदी का वराह अवतरण उत्कीर्ण किया गया है। वे स्वर्ग की अप्सराओं के साथ समुद्र की ओर जा रही हैं। दोनों नदियों को माएं भगवान वराह के अभिवादन में अभिनंदन में कलश धारण किये हुए आगे समुद्र के देवता वरुण को तिल किया गया है, जो अभिवादन की प्रतीति में है।

वराह अवतार की यह प्रतिमा कालीन मूर्तिकला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। कुछ पुरातत्त्व शास्त्रियों का मत है कि वराह अवतार का यह चित्र चंद्रगुप्त विक्रमादित्य को भगवान विष्णु समतुल्य बताने के लिए किया गया था।

उदयगिरि की अनेक गुफाओं की चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन में हुआ, इसका प्रमाण कुछ अन्य गुफाओं के शिलालेख से मिलता है। वराह गुफा के समीप गुफा क्रमांक ६ में भी शिलालेख है जिसमें महाराजा चंद्रगुप्त के शासनकाल में संवत् १ के आषाढ़ मास की शुक्ला एकादशी महाराजा छागलिक के पौर्णमासी

विष्णुदास के पुत्र सनकादिक के दान
का उल्लेख किया गया है।

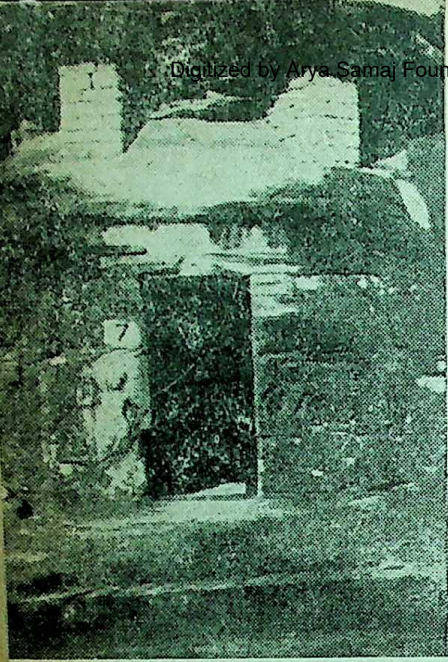
गुफा क्रमांक ६ सनकादिक गुफा कहलाती है। इस गुफा में एक थोड़ा-सा अंचा चबूतरा है, जिस पर पहले शिवलिंग स्थापित था। गुफा के सामने २४ फुट लंबा एवं ६ फुट चौड़ा प्रवेश मंडप है। यह गुफा १४ फुट लंबी एवं १२ फुट चौड़ी है। गुफा का प्रवेश द्वार, प्रवेश मंडप में थोड़ा हटकर दक्षिण में है। प्रवेश द्वार अलंकृत रूप से अलंकृत है। द्वार पर दोनों ओर पांच प्रतिमाएं हैं। दो द्वार-पालों तथा गंगा एवं यमुना की प्रतिमाएं जो द्वार पर अंकित हैं। दायाँ ओर वाली प्रतिमाओं में भगवान विष्णु, महिषासुर-वर्जित एवं द्वारपाल की प्रतिमाएं हैं। विष्णु प्रतिमा की चार भुजाएं हैं एवं वे दशमचक्र धारण किये हुए हैं। महिषा-सुरासिनी की प्रतिमा खंडित है फिर भी उसमें बारह भुजाएं दिखती हैं। इन भुजाओं को ढाल-तलवार एवं त्रिशूल धारण किये हुए बताया गया है। गुप्त-काल में दुर्गा उपासना प्रारंभ होने का प्रमाण हमें इस प्रतिमा से मिलता है। गुफा के प्रवेश मंडप की दक्षिणी दीवाल पर गणेशजी की एक दिगंबर प्रतिमा है। प्रतिमा कोई वस्त्र या आभूषण धारण किये हुए नहीं है। उ. प्र. के फतेहगढ़ जिले में भी गणेश की एक ऐसी ही प्रतिमा मिली थी। उदयगिरि के इन गणेश की प्रतिमा में, गुप्तांग भी उत्कीर्ण है। शायद



इस प्रकार की अन्य कोई प्रतिमा अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। कुछ पुरातत्त्व-शास्त्री, उदयगिरि की इस गणेश प्रतिमा को भारत की सर्वाधिक प्राचीन गणेश प्रतिमाओं में गणना करते हैं। उत्तर भारत में निर्विवाद रूप से यही गणेश-प्रतिमा सर्वाधिक प्राचीन है।

गुफा क्रमांक ६ की छत भी अलंकृत है। इस गुफा के समीप ही एक ही अन्य खुली गुफा है जो ९ फुट लंबी एवं ३ फुट चौड़ी है। इस खुली गुफा में अष्ट-मातृका प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं।

‘तवा गुफा’ के नाम से प्रसिद्ध गुफा क्रमांक ७ का आकार ऐसा है, जैसे किसी चूल्हे पर रोटी बनाने के लिए तवा रख दिया गया हो। इस गुफा में शिवलिंग स्थापित था, जिसका अब कोई पता नहीं है। गुफा की छत पर एक कमल का फूल उत्कीर्ण है, जिसका व्यास ४ फुट ६ इंच है। इस गुफा का निर्माण चंद्रगुप्त विक्रमा-



गुफा क्रमांक ७

दित्य के संधि-विग्रह मंत्री वीरसेन ने कराया था, जैसा कि इस गुफा में मिले एक शिलालेख से प्रकट होता है।

गुफा क्रमांक ८ से १२ तक की गुफाएं सादी गुफाएं हैं। गुफा क्रमांक ९, १०, ११ एवं १२ में विष्णु प्रतिमाएं स्थापित हैं, जो अब लगभग खंडित अवस्था में हैं। ये सभी गुफाएं छोटी-छोटी हैं। गुफा क्रमांक १२ के द्वार पर द्वारपालों की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं।

गुफा क्रमांक १३, वराह अवतार की गुफा क्रमांक ५ के समान ही खुली गुफा है तथा आकर्षक एवं कलात्मक है। इस गुफा में शेषशायी भगवान विष्णु की १२ फुट लंबी प्रतिमा है। भगवान विष्णु के

नवनीत

मस्तक का ऊपरी भाग अब खंडित गया है। इस गुफा में भगवान विशालकाय शेषनाग पर शयन कर रहे हैं। उनकी चार भुजाएं हैं। एक भुजा पर उनका मस्तक टिका हुआ है। उनके गले में पुष्पहार एवं रत्नजटित हार धारण किये हुए हैं। प्रतिमा की बायीं ओर कमल की अस्पष्ट आकृति है, जिसमें आसीन से दिखते हैं। लक्ष्मी तथा देवताओं की आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। गणेशजी की भी एक प्रतिमा उत्कीर्ण पर वह दिगंबर नहीं है।

गुफा क्रमांक १४, १५ एवं १६ सादी गुफाएं हैं। इनमें कोई प्रतिमा नहीं है। गुफा क्रमांक १६ के बीच एक चट्टान को काटकर चबूतरा बनाया गया है। संभवतः उस पर विष्णु स्थापित रहा होगा।

गुफा क्रमांक १७ में भी इसी प्रकार का एक चबूतरा है। कनिंघम ने गुफा क्रमांक ८ बताया है। इस गुफा का द्वार कलात्मक एवं अलंकृत है। द्वार के दोनों ओर द्वारपालों की प्रतिमाएं हैं। द्वार के दायीं ओर गणेश की एवं बाईं ओर महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमाएं हैं।

गुफा क्रमांक १८ आयताकार है। इसमें कोई प्रतिमा नहीं है।

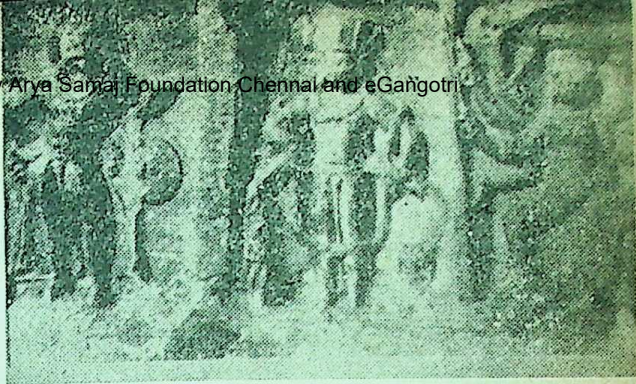
गुफा क्रमांक १९ का नामकरण कनिंघम ने 'अमृत गुफा' किया है। इस गुफा के द्वार के ऊपर अमृत

की पौराणिक गाथा चित्रित
गुफा २२ फुट लंबी
एवं २० फुट चौड़ी है।
गुफा के भीतर छत को
सुधार देने के लिए पत्थर
के ४ विशाल स्तंभ हैं। ये
स्तंभ ८ फुट ऊंचे तथा
खंडित हैं। स्तंभ पर पशुओं
की आकृति बनी हुई है।

इस गुफा का द्वार बहुत कलात्मक है।
द्वार पर उड़ते हुए गण, अश्वारोही पुरुष,
चक्रवाह एवं द्वारपाल चित्रित किये गये हैं।
गुफा के भीतर एकमुखी शिवलिंग स्थापित
है। इस गुफा के बाहर कभी प्रवेश मंडप
भी था, जिसके कलात्मक स्तंभ आज
भी मौजूद हैं।

गुफा क्रमांक २० जैन गुफा है। यह
शिलाकाय गुफा पांच हिस्सों में विभा-
जित है।

यह गुफा शिल्पकला की दृष्टि से
महत्वपूर्ण है ही विदिशा में जैन धर्म
के चरमोत्कर्ष का भी प्रमाण है। इस
गुफा के एक कक्ष में ४ फुट २ इंच ऊंचे
शिला-फलक पर भगवान पार्श्वनाथ
की भूरे वर्ण की पद्मासन प्रतिमा प्रति-
ष्ठित है। यह प्रतिमा दसवीं शताब्दी में
निर्मित की गयी थी, पर बाद में संभवतः
भूकंप-विवर्धनों के भय से यहां स्थापित
कर दी गयी। इस प्रतिमा के नाक-कान
खंडित हो गये हैं। मस्तक के ऊपर सप्त
फणवली (सर्प) है उसके ऊपर छत्र



द्वारपाल, विष्णु एवं महिषासुरमर्दिनी

गुफा क्रमांक ६

एवं द्बुभिका है। प्रतिमा के दोनों पार्श्वों
पर विभिन्न वाद्ययंत्र लिये गंधर्वों की
प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं।

गुफा के दूसरे कक्ष की दीवार में दो
पद्मासनासीन पार्श्वनाथ-प्रतिमाएं उत्कीर्ण
हैं। इनका अंकन अब अस्पष्ट-सा दिखता
है। सामने की दीवार में भगवान आदि-
नाथ की पद्मासन प्रतिमा उत्कीर्ण है।
इस प्रतिमा के पास भगवान शीतलनाथ
के चरण उत्कीर्ण हैं।

इस गुफा में एक शिलालेख भी है।

इस शिलालेख का हिंदी अनुवाद इस
प्रकार है—'सिद्धों को नमस्कार हो।
प्रसिद्ध श्री संयुक्त एवं गुण सम्पन्न गुप्त-
वंशीय राजाओं के समृद्धिमान राज्यकाल
के १०६ वें वर्ष में कार्तिक कृष्णा पंचमी
के शुभ दिन शम दम युक्त शंकर नामक
व्यक्ति ने विस्तृत सर्व फणों से भंयकर
दिखने वाली जिन श्रेष्ठ पार्श्वनाथ २३ वें
तीर्थंकर की मूर्ति गुफा-मुख में बनवायी।

(शेषांश पृष्ठ १५५ पर)

कविता में लौकिक और परालौकिक का विभाजन नहीं

वर्सीयतनामा एक कीर्ति
आने वाली पीढ़ियों के

[गतांक से आगे : लेखांक-२]

प्रिय प्रभाकर, बात को पिछले संदर्भ के दौर में ही आगे बढ़ाता हूँ। प्रस्तुत प्रश्न है कि क्रांति पहले आती है या अति-क्रांति? क्रांति की आम धारणा यह है, कि अर्थ-राज-समाजगत सतही व्यवस्था को, सर्व कल्याण के हित में बदल दिया जाये। और इसी उद्देश्य से फ्रेंच क्रांति, अराजकवादी क्रांति, साम्यवादी क्रांति इतिहास में घटित हुई। लेकिन क्या हुआ फ्रेंच क्रांति की 'फ्रेटर्निटी, लिबर्टी, ईक्वालिटी' का, क्या हुआ साम्यवादी क्रांति द्वारा घोषित शोषणविहीन, वर्गविहीन समाज-व्यवस्था का? क्या शोषण खत्म हो सका, क्या वर्ग-प्रभुता समाप्त हो गयी? क्या सर्वहारा की प्रभुता कायम हो सकी? क्या फ़ौलाद, फ़ौज, क़ानून और दमन-चक्र में वर्ग-सत्ता और शोषण ही सक्रिय नहीं? उपलब्ध साम्यवाद में कोई एकत्वकारी शक्ति होती, या तत्त्व होता, तो रूस और चीन ही परस्पर कट्टर शत्रु क्यों हो जाते? क्या पूंजीवादी अमेरिका और साम्यवादी रूस और चीन

समान रूप से ही अन्य देशों को अधिकार-वासना और शोषण का यार नहीं बना रहे? क्या सर्वनाशी और बमों के बल पर, सारे संसार प्रजाओं को सदा खूनी युद्धों के अंतर्गत रखना, पूंजीवादी या साम्यवादी किस्म के पक्ष में न्यायसंगत या उचित जा सकता है? जिस रास्ते से जा सभी वादी अंततः हिंसा, शोषण विनाश पर ही पहुँचते हैं, वह अपने आप में सही कैसे हो सकता है? यों तो हर रास्ता अपने आप में सही है। मगर उस रास्ते को आजमाने का मनुष्य पहले न बदल जाये, तो हर रास्ता का ग़लत उपयोग तो बना ही रहेगा।

इससे तर्कशः हम यहां पहुंचे, कि प्रक्रियागत रूप से पहले अंतश्चेतनिक अक्रियता अनिवार्य है, तभी सतहगत क्रांति अचूक और स्थायी हो सकती है। आदमी की विषम चेतना न बदले तो उसके द्वारा लायी जानेवाली सतही साम्यवादी व्यवस्था, अंततः नि

नवनीत

५२

और विस्मयी हो ही जायगी। तब नि-
सतही क्रांतियों के अंजामों को खुली आंखों
के सामने देखकर भी, हम सब किस
हवाई क्रांति की फुत्तासी में जी रहे हैं ?
एक खोखला निःसार शब्द भर रह गया
है क्रांति। क्या है, कहां है उसकी कोई
विधि ठोस, दुनियादी मुकम्मल शकल
सामने ? भारत के क्रांतिवादी
मनियों ने क्यों नहीं की वह क्रांति ?
हां, पहले अतिक्रांति को उपलब्ध

चीन शिक्षा-प्रणाली द्वारा हो सकती है।
लेकिन शिक्षा का क्षेत्र भी तो राजसत्ताओं
के निहित स्वार्थों के पंजे में है। ऐसे में
इस सत्ता के तख्तों को कैसे उलटा जाये ?
तो संघर्ष या युद्ध तो अनिवार्य है। क्या
हिंसक क्रांति या युद्ध परिणामकारी हो
सके हैं, हो सकते हैं ? अब तक यह
प्रमाणित न हो सका है, इसका उलटा,
जखुर हुआ है, जो उजागर है।



होगा, तब क्रांति उसका एक अनि-
वार्य आनुषंगिक परिणाम होगी। और
गंदे विकल्प अभी सामने नहीं है। उस
अतिक्रांति का न्यायसंगत या विधिविहित
प्रणाली है, प्रथमतः व्यक्तिगत रूप से,
उपलब्ध आत्म-विज्ञानों द्वारा अपने सच्चे
आत्म-स्वरूप या आत्मज्ञान तक पहुंचना,
तब ही उसभूत किसी ध्रुव चट्टान को
खोल निकालना, जहां से जीवन को बदलने
के लिए कोई मौलिक रोशनी पायी जा

लेकिन संघर्ष और युद्ध की अनिवार्यता
भी सामने है। तो उस युद्ध का एक स्वरूप
मैं देख पाता हूं। भौतिक और आध्यात्मिक
दोनों ही दृष्टियों से हम इस निश्चय पर
पहुंचते हैं, कि जगत की संपदा तत्त्वतः
ही किसी व्यक्ति या वर्ग की सम्पत्ति नहीं
हो सकती। तो हमें निर्भय होकर, अपनी
आवश्यकता की वस्तु को जहां है, वहां से
उठा लेना होगा। अहिंसक सत्याग्रही
सेना के सक्रिय अभियान के सिवाय,

इसका कोई और कारगर संगठनात्मक विकल्प अभी हमारे सामने नहीं है। आस्तिक और अहिंसक क्रांति का जो रास्ता गांधी ने बताया था, वह विफल हो गया है, यह अंतिम रूप से कहना अभी यथार्थ न होगा। क्योंकि गांधी को वक्त ही कहां मिला कि सामाजिक क्षेत्र में वे अपनी क्रांति को आजमाते। सत्ता और संपत्ति का विकेंद्रीकरण, इस क्रांति के लक्ष्य में होगा। और तब स्वतंत्र ग्राम-स्वराज्य जैसी कोई चीज। हर इकाई की स्वाधीन सत्ता। हर ग्राम या नगर अपने आप में स्वाधीन और स्वयम्-पर्याप्त। हर नगर और ग्राम में लोक-कल्याणकारी समानांतर सरकार की स्थापना। हर स्थानीय सरकार अपने आप में पर्याप्त और स्वतंत्र।

लेकिन इसका नेतृत्व कौन करे ? गांधी को पूंजीवादी शोषकों ने इस्तेमाल नहीं किया, या वे शोषण के हथियार न बने, यह सिद्ध करना भी आसान नहीं। घूमकर बात फिर यहीं आती है कि पहले एक पूर्ण रूपांतरित, निस्पृह, आप्तकाम व्यक्ति विश्वमंच पर अवतरित हो। वह आत्मिक और जागतिक, वैयक्तिक और सामुदायिक अतिक्रांति और क्रांति की संयुक्त शक्तिमत्ता से ज्वलन्त हो। 'अनुत्तर योगी' में मेरे महावीर कहते हैं कि : 'योगी को एक दिन राज्यासन पर आना पड़ेगा !'

प्रसंगात् कहां, कि 'अनुत्तर योगी' में

नवनीत

रचना-प्रक्रिया और कलात्मक-मंच-राह मेरी अहिंसक क्रांति का यह महावीर के माध्यम से अनायास हुआ है। गांधी की नैतिक अहिंसा राह वहां पीछे छूट जाती है। 'योगी' आत्मिक अहिंसा का एक शक्तिगत विस्फोट है। वहां नर्म नहीं रह पाया है। महावीर ने वाणी में न्यस्त-स्वार्थी ताकतों के और अन्याय का घट-स्फोट और प्रक्रिया को दुहराना संभव नहीं। 'योगी' केवल अतिक्रांति पर ही नहीं सक्रिय संघर्ष, युद्ध और मृत क्रांति व्यापता है। हवाई क्रांति का लाल उतार कर, आज के लक्ष्य-विद्रोही उसे पढ़ेंगे, तो कम-से-कम सिरे से सोचने को उन्हें मजबूर ही पड़ेगा।

बाकी तो ऐसा है, कि सर्जना में नुस्खा या फार्मूला तजवीज नहीं किया सकता। सर्जन एक ईमानदार तथा सम्बेदनात्मक प्रक्रिया ही हो सकता वह कोई दावेदार दर्शन नहीं हो सकता। 'शून्य पुरुष' की कविताओं में कोई नहीं है, बल्कि अनुभव, अनुभूति, अनुसंधान और सौंदर्य-बोध की राह, अपनी श्वेतना के निश्चल केंद्र तक पहुंचने सर्जनात्मक अंतर-यात्रा (इन्वर्ड जर्नी) 'योग और अध्यात्म' आदि शब्दों

अर्थ या परिभाषा से सीमित नहीं है।

ने व्यष्टि का समष्टि या सर्व के साथ
 होना, तदात्म और एकतान होना ।
 आत्मा माने अपनी इयत्ता (आयडे-
 डी) या आत्म (सेल्फ) की तलाश या
 विधान । कविता अगर प्रथमतः और
 यहाँ नहीं है तो क्या है ? अपने
 विधान के संवेदन या आत्म-
 संवेदन तो कवि का स्वभाव ही है । और
 प्रकट के साथ जुड़ाव या तादात्म्य न
 तो समाजवाद या साम्यवाद का क्या
 कह जाता है । कोई भी घटना पहले
 आत्मिक या आत्मिक होती है, अपने
 रूप में । बाद को वही प्रकट होकर,
 आत्मिक या लौकिक होती है । सूक्ष्म
 और स्थूल, मूर्त और अमूर्त भिन्न और
 सत्ता की संयुक्त मौलिक
 के ही पूर्वापर स्तर हैं । प्रकट
 अकट बीज का इन्कार नहीं है ।
 प्रकट बीज की सत्ता ही इसलिये
 कि वह वृक्ष में प्रकट होकर सार्थक
 फलवन्त हो । जैसा कि पहले कह
 रहा हूँ, लौकिक और पारलौकिक का
 सम्बन्ध है, केवल स्तरगत है, मौलिक
 ही है ।
 मौलिक सत्ता में लोकोत्तर कुछ
 है, प्रत्यक्ष-परोक्ष सब लोक में ही
 प्रकट है । कोई सिद्दालय, मोक्षधाम,
 स्वर्ग, लोक-सत्ता से बाहर नहीं
 है । सारी स्थितियाँ चेतनागत हैं, और
 निमित्त में एक ही समग्र लोक के
 स्तरों पर हैं ।

तुम्हारा धारणानुसार कविता को महज
 स्थूल लौकिक घटना के मोटे अर्थ में
 सीमित मान लिया जाये, तो वेद-उपनिषद्-
 गीता या बाइबिल की महान कविता,
 वर्जिल, होमर, दान्ते, मिल्टन, महाभारत
 और रामायण की कविता, कबीर का
 'सुत्रमहल और अनहद ढोल' का अनुभव,
 संसार की आज तक की तमाम रोमानी-
 रहस्यवादी कविता, और भागवत-लीला
 तथा ब्रह्मानन्द का गान करने वाला सारा
 संतकाव्य, कविता से बहिष्कृत हो जायेगा ।
 अस्तु ।

केवल जागतिक संबंधों की निरर्थकता
 या सीमांत जानने के लिए मैंने कोई
 कविता नहीं लिखी । हाँ, अपनी चरम
 वेदना में से इन तक पहुँचकर, इन्हें
 अतिक्रान्त कर, मानवीय आत्मीयता को
 इस पृथ्वी पर ही पूर्ण सार्थक, पूर्णकाम,
 असीम बनाने का संवेदन-विज्ञान-दर्शन
 मेरी कविता में अवश्य आविर्भूत हुआ
 है । यातना और शोषण सह लेने की
 सलाह मैंने तो कहीं मनुष्य को नहीं दी;
 मेरे कवि ने सदा दुःखवाद, यातनावाद,
 क्रूस और शोषण मात्र को रुद्र क्रोध के
 साथ ललकारा है । 'शून्य पुरुष' में ही
 'कल्की' कविता इसका सचोट प्रमाण
 है । पूर्वगामी संग्रहों में तो यह पुण्य-प्रकोप
 विप्लव के डमरू-घोष की तरह व्यक्त
 हुआ है । 'अनुत्तर योगी' के महावीर तो
 आततायी के विरुद्ध वीतराग तलवार
 उठा लेने तक का आदेश देते हैं, विधान

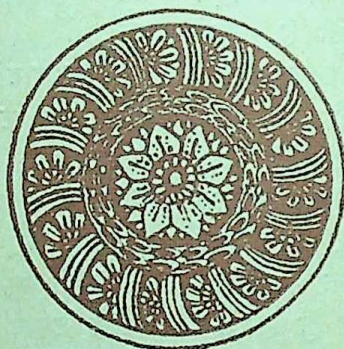
करते हैं। मुझे आश्चर्य हुआ, कि उपरोक्त गलत आरोप और कल्पित इल्जाम तुमने क्यों कर मुझ पर चरपां किये होंगे।

अंततः कविता का कविता होना ही माने रखता है। चाहे उसकी विषय-वस्तु कुछ भी हो। क्या भागवत कवियों और रहस्यवादियों का काव्य केवल वैयक्तिक होकर ही रह गया? क्या वह सदियों के आरपार असंख्य मानवों द्वारा संवेदित नहीं हुआ? यही वैयक्तिक अनुभूति के सामुदायिक अनुभूति होने की स्वतःस्फूर्त प्रक्रिया है। और फिर कविता किसी धारणा की चौहद्दी के फार्मूले से तो नहीं रची जाती। कविता यदि आत्मानुभूति और सर्वानुभूति के सच्चे उन्मेष से आयी हो, तो वह सम्बेद्य, आस्वाद्य और सार्वभौमिक अपने आप हो जाती है।

‘आलोक का यूटोपिया’ : बड़ा खूबसूरत जुमला बनाया है तुमने। लेटिन उद्गम के शब्द ‘यूटोपिया’ का अर्थ होता है—‘ड्रीम-कन्ट्री’ यानी स्वप्न-देश। स्वप्न और विज्ञान तो सूक्ष्म आलोक-तत्त्व से ही निमित्त होता है, स्थूल मिट्टी से नहीं। मिट्टी भी अपने सूक्ष्मतरंग रूप में द्युतिमान ही होती है। अंतरिक्ष में व्याप्त आणविक नीहारिकाएं चमकीली ही होती हैं, यह वैज्ञानिक तथ्य है। भौतिक द्रव्य

भी अपने महीनतम रूप में व्योम ही होता है। रास्ते चलते धूल पर निगाह डालो, तो धूप में रजकण चमकते दीख पड़ते हैं।

ध्यातव्य है कि हर महान विचार का प्रथम प्रारूप स्वप्न या विचार आकृत होता है। वह स्वप्न, भावना और ज्ञान की संयुक्त सृष्टि होता है और ज्ञान एक प्रकाशमान तत्त्व है। एक अंतरिक्षीय आविर्भाव है। कोई वैज्ञानिक आदिवासी वास्तु, स्थापत्य, नगर-रचना या रचना पहले मनुष्य के स्वप्न रूपायमान होती उपनिषद् कहता है। मनस्तत्त्व से ही जगत प्रकट होता है। मन का हर भाव



विचार भी एक सूक्ष्म (Substance) या पदार्थतत्त्व है, वह कोई वायवीय अपदार्थ नहीं। यह एक वैज्ञानिक तथ्य परमाणु-विज्ञान के क्षेत्र में तो आवर्त भौतिक मीटर भी हाथ से निकल गया मूलतः और अंततः मीटर भी ऊर्जा के सिंचाई और कुछ नहीं है। और मेटाफिजिक्स के बीच की आज ढहती नजर आ रही है। अतः और उन्नीसवीं सदी का वैज्ञानिक

बाद हमारे समय में अपनी
 ओस जमीन खो चुका है।
 विज्ञान ने स्वयम् आज अपने
 ही को अतिक्रान्त किया है।
 उसके पुराने आधार इस
 विज्ञान के नए 'आउट-मोडेड' हो चुके
 हैं। मार्क्स जीवित होते तो
 इस समय उन्हें अपने वैज्ञा-
 निक भौतिकवादी दर्शन के
 आधार ही बदलने को बाध्य
 होता पड़ता। आश्चर्य है कि
 द्वारा तथाकथित प्रगति-
 शील साहित्यकार अभी
 तक, गत शताब्दी की व्यर्थ
 स्वप्न में ही चिपटा हुआ है।

यूटोपिया चाहे आत्मवादी का हो,
 वह भौतिकवादी का, वह रौशनी का
 होता है। क्योंकि ज्ञान और तज्जन्य
 भव, सम्बेदन, कल्पन अपने प्रकृत नेचर
 में ही रौशनी हैं। 'एन्लाइटन्मेण्ट' शब्द
 इसी का द्योतक है। यूटोपिया आत्म-
 वादियों ने ही नहीं रचा, भौतिकवादियों
 ने भी रचा है। फ्रेंच क्रांति, अराजकवाद,
 मार्क्सवाद-सबका प्रथम आविर्भाव व्यक्ति
 विशेष के स्वप्न-विज्ञानगत यूटोपिया में
 ही हुआ था। गांधीवाद भी यूटोपिया ही
 था, प्रसाद की 'कामायनी' भी वही है।
 सभी ने वर्ग-भेद, राज्य-सत्ता, और मुद्रा-
 वाणिज्य-विहीन एक स्वतंत्र मानव-समाज
 का ही सपना देखा था। क्या इन सबका



चित्र : विलियम ब्लैक

यूटोपिया धरती पर मूर्त हो गया? यूटो-
 पिया किसी भी वादी का हो, वह एक
 आदर्श मॉडेल ही होता है। और आदर्श
 मॉडेल हर नयी प्रगति के साथ नग्यतर
 रूप में, अपने स्थान पर सदा प्रतिष्ठित
 होता ही रहेगा। ठीक क्षितिज के मण्डल
 की तरह। हर उपलब्धि के बाद, एक और
 उपलब्ध्य चेतना का नया क्षितिज सामने
 आता ही रहेगा। अनादि अनन्त सृष्टि
 में, विकास-प्रक्रिया इसी तरह चक्राकार
 चलती है।

देश-काल में किसी भी वाद या आदर्श
 की विकलता भले ही सामने आये, पर
 उनके परमार्थिक मूल्य को नकारा नहीं
 जा सकता। मार्क्स, गांधी, अरविंद,

अध्यात्म, विज्ञान—सारे रास्ते अपने परि-
प्रेक्ष्य में सही हैं। उनके पीछे ईमानदारी
है, मानव विकास के इतिहास में उनमें
से हरेक का यथास्थान एक महत्त्वपूर्ण
योगदान है। श्री अरविंद ने एक बार कहा
था कि 'बोलशेविक क्रांति से फलित व्यवस्था
चाहे बदल भी जाये, मगर मानव-विकास
में उसका चेतनागत योगदान एक स्थायी
महत्त्व की चीज है।' हर वाद की एक
सीमा अवश्य हाथ आती है। एक सर्वांग
संपूर्ण मुकम्मल रास्ता अभी भी तलाश
की प्रयोगशाला में है। अब तक के तमाम
सीमा-स्तम्भों और प्रकाश-स्तम्भों को एकाग्र
दृष्टि में रखते हुए, हमें उनको अतिक्रान्त
करते हुए आगे बढ़ते ही जाना है। लब्धि
कब मिलेगी, कहना इतना आसान
नहीं है।

यह खुली आंखों देखना होगा, कि
मार्क्सवादी और आत्मवादी, दोनों ही
आचार और निर्माण के स्तर पर समान
रूप से भ्रष्ट होते दिखायी पड़ते हैं।
इसी से कहता हूं, कि पहले व्यक्ति को
बदलना होगा, व्यक्ति न बदलेगा तो हर
रास्ता एक हृद के बाद विफल और विकृत
होकर ही रहेगा। इसकी संगति में यह
स्वतः सिद्ध है, कि पहले आत्मगत उप-
लब्धि तक पहुंचना होगा, उसके बिना
व्यक्तित्व और काव्य—दोनों स्तरों पर
सामान्यीकरण संभव नहीं है। सत्ता
और इतिहास की यही स्वाभाविक स्थिति
है, यही स्वतः प्रमाणित तर्क है।

नवनीत

अध्यात्मिकता कोई जातीय
नहीं है। वह एक सार्वभौमिक चेतना
सभी कालों और देशों में सर्वत्र
उदय, विकास और उत्कर्ष
दिखायी पड़ता है। भारतीय धर्म-
के आर्य वाङ्मय में आततायी शक्ति
के प्रतिकार का खुला विरोध
है। संघर्ष और युद्ध का नकार नहीं
है। रामायण और महाभारत
ज्वलन्त उदाहरण हैं। गीता में प्र
स्पष्ट आदेश दिया है कि : 'हे
उठ और युद्ध कर।' आत्यंतिक
वादी जिनेश्वरों के धर्म-दर्शन
यह स्पष्ट आदेश मिलता है कि : 'आत्मा
के अनिवार आक्रमण की स्थिति
आत्मा-रक्षा और प्रजा की रक्षा के
क्षत्रिय और गृहस्थ को तलवार उठा
चाहिये। वैसा न करे, तो वह अपने
से च्युत होता है।' अतः अध्यात्म को
से भारत का जातीय लक्षण मानना
एक गलतफहमी है, और यह भी प्र
है कि अध्यात्म में पूंजीवाद द्वारा
शोषण के हित में उपयोग किये जाने
गुंजाइश है। क्राइस्ट की तरह
कभी न कहा कि : 'अगर कोई तेरा
गाल पर तमाचा मारे, तो तू दूसरा
भी उसकी ओर फेर दे। यदि कोई
अंगां छीन ले, तो उसे तू अपनी
भी दे दे।' कृष्ण ने अत्याचारी
शोषक को मारने का स्पष्ट आदेश
है। और क्रिश्चियन यूरोप

जातीय के उपरोक्त आदेश से उलटा ही वर्तन किया है। इससे प्रमाणित है कि धर्म-अध्यात्म, विज्ञान या मार्क्सवाद, किसी भी शोषण या रक्तपात का दोष नहीं है। एक सतही और सपाट नज़रिया है।

०००

एकात्म अध्यात्मिक या एकान्त भौतिक का अतिरेक समान रूप से एक ही तरह के बाद, अभीष्ट प्राप्ति में विफल होता है। पश्चिम भौतिक भोग में आचूड़ और उससे ऊँचकर ही अध्यात्म की ओर उन्मुख हुआ है, यह सही है, मगर कोई आदर्श रास्ता नहीं है। भारत ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों को ब्रह्म: यथास्थान समान महत्त्व दिया है। ऐहिक सुख-भोग की कथाओं से काम-भोग के आख्यानो से भारत के लोग भरे पड़े हैं। आदि पुराणकार कथों जिनसे ने तो यहां तक कहा है, भौतिक भोगों को चरम तक भोग लेनी, मनुष्य मोक्ष-पुरुषार्थ की ओर मुड़ हो पाता है। धर्म- (आत्म-भाव जीना) पूर्वक अर्थ और काम का उपयोग करते हुए, मोक्ष की ओर बढ़ना भारत के द्रष्टाओं का अनुभूत और विश्व-विदित यानी वैज्ञानिक रास्ता है। जातीय काव्य-पुराण में भी मनोवैज्ञानिक और रचनात्मक स्तर पर, यही परिणति दिखायी पड़ती है। कालिदास के 'कुमार-सम्भवम्' में भोग और योग का यह अनुपम और सामंजस्य स्पष्ट रूप से

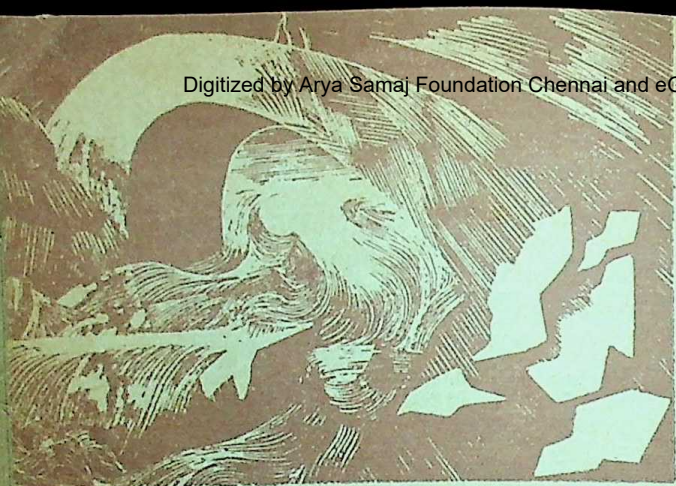
सृजित हुआ है। 'शृंगारशतक' लिखकर ही भर्तृहरि 'वैराग्यशतक' लिख सके।

अध्यात्म की ज़रूरत पूंजीपति और सर्वहारा दोनों को समान रूप से होती है। सर्वहारा को शायद और भी ज्यादा। क्योंकि सर्वहारा की प्रभुता के द.वेदार तो राजनीति, रक्तपात और युद्धों के दुश्चक्र में इतने उलझ गये हैं, कि उनकी क्रान्ति तो मरीचिका की तरह दूर-दूर सरकती जा रही है। और जो क्रान्ति हुई, उसमें सर्वहारा के नाम पर राज-नीतिकों की तानाशाही प्रभुता ही तो स्थापित हो सकी है। मुट्ठी भर लोग सत्ता हथियाने के लिए खूनी खेल खेल रहे हैं, और सर्वहारा वर्ग उनके दमन की फौलादी एड़ी तले पराधीन-वेवस सिस-कियां ही तो भर रहा है। अपने उस अनिश्चित, अमूर्त लाचार अकेलेपन में, सर्वहारा के पास अपनी आत्मा के सिवाय और क्या बच रहता है। उस आत्मा और ज्ञान की शक्ति को जगा कर ही तो सर्व-हारा जीवित रह सकता है। उसके लिए अपने आत्म के ज्ञान और शक्ति को जान-कर और जगाकर ही तो, अस्तित्व में रहना सम्भव हो सकता है। उसी में से वह अपने दलनकारियों से टक्कर लेने की पहल, प्रज्ञा, और अजेय शक्ति पा सकता है।

०००

लवेण्डर की खुशबू, वाँयलिन की रागिनी, स्वप्न-सुन्दरी, और समुद्र पर

हिंदी डाइजेस्ट



अपनी 'कॉमेडिया डि
में स्वर्गोद्यान के त
अपनी प्रिया वीरि
मिलने का उदात्त स्वप्न
था। कीट्स ने कपो
चलनी हो गये फेड़ों
क्षय में घुटते हुए ही
केसमेण्ट्स' का सपना
कविता में संजोया।

झूलतीं बालकनी को अपने एकान्त अधि-
कार की वस्तु बनाकर, क्या पूंजीपति
उसे जड़ और असुन्दर ही नहीं बना देता ?
इस वैभव को पाकर भी, इसे भोगने का
अवकाश ही उसके पास कहां होता है ?
इसे पाने और इसको अधिकृत रखने के
हिंसक षड्यंत्र में ही तो वह सदा उलझा
रहता है। तब इस त्यागरहित भोग में
आकण्ठ डूबकर, ऊब के सिवाय उसके
पल्ले और क्या पड़ सकता है ?

इस सारे वैभव को सर्वसुलभ बनाने
की परमार्थिक सम्बेदना और अभीप्सा
जो स्वप्नद्रष्टा कलाकार रखते हैं, वही
इनका सौन्दर्य-स्वप्न देखने और रचने में
भी समर्थ हो सकते हैं। क्योंकि उनमें
अधिकार-वासना नहीं होती। आत्म-वासना
का वैश्विक आलोड़न होता है। शमशेर
ने आजीवन कष्टों और अभावों में जी-
कर ही, विशुद्ध सौन्दर्य के काव्य की
महीन जालियां बुनी हैं। महान दान्ते
ने अपने निर्वासन की खानाबदोश भट-
कनों और सन्त्रासों के बीच जीते हुए ही,

नवनीत

और अपने प्रेम की सर्वस्वहारी निष्पत्ति
और पीड़न के दौरान ही उसने जंगल
निद्रामग्न गड़रिये के ऊपर, उसकी स्तन
प्रिया देवी डायना के छा जाने का कि
सौन्दर्यलोक अपनी कविता 'ए
मियाँन' में मूर्त किया था। सांसारिक
सामाजिक, मानसिक, आत्मिक सभी
पर मानुषोत्तर यातना भोगते हुए
वीरेन्द्र ने वॉयलेट रोशनी, वॉयलेट
संगीत, स्वप्न-सुन्दरी और
बालकनी की कविता लिखी है।
हारा कवि ही विशुद्ध, निरालम्ब सौन्दर्य
प्रकाश-महलों का साक्षात्कार कर
है। क्योंकि वह भोग से ऊबा हुआ
है, भोग का अभीप्सुक, पारासी
उत्तीर्ण भोक्ता है। उसकी वासना
नहीं, सार्विक और पारमार्थिक है।

अपने स्वयम् के और बाहरी
के घटाटोप 'अंधेरे में' जीते हुए,
अंधेरे के हत्यारे षड्यंत्रों, अपराधों
प्रेतों की भयावहता की कविता लिख
तो आसान हो जाता है। लेकिन

अनेक अन्धकार को अपनी अभीप्सा और
यातना की शलाखों से भेद कर, उसमें
रोजनी के वातायन खोलना, असम्भव
को सम्भव बनाने का एक अतिमानुषिक
पराक्रम ही कहा जा सकता है। नरकों
के शाश्वत तमसलोक में, स्वर्ग-तट पर
तमिस्र के दिव्य सौंदर्य को मूर्त करने का
पुरुषार्थ दान्ते जैसा शलाका-पुरुष कवि ही
कर सकता है। मुझसे भी वहीं करते
हैं, यह मेरी चरम लाचारी ही रही।
तो जीवन में रात-दिन नारकीय

जिना को जीना, और
उसी को कविता
उलीचना, मुझे
वमन में खदबदाने
उसे चाटने जैसा ही
निजक लगता है।
अपने और जगत
पंथासों को कविता
संगाना, एक हृद के
द्वारे कवि को कभी

न हो सका। शोषकों और अत्या-
चारियों के साथ तो, सड़क-सड़क लड़-
कर निपट लेना ही कारगर हो सकता है।
उनकी क्रूरता का व्यंग-काव्य लिखना,
कवि के आत्म-दैत्य का ही सूचक हो सकता
है। हाँ, दुष्ट-संहारक रुद्र हुंकार की कविता,
प्रसंग निश्चय ही अनिवार्य हो
सकती है।

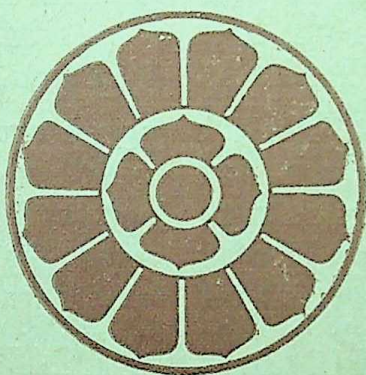
लेकिन कविता में उस विभीषिका को
अतिरूपपूर्वक सजाना और दुहराना, मुझे

लाचार सवहारा की नपुंसक चीत्कार
लगती है। वह मनुष्य और उसकी आत्मा
का अपमान है। उससे उत्पन्न क्रोध मनुष्य
की आत्म-शक्ति को नहीं उभारता, उसे
आत्म-ज्ञान से रौशन नहीं करता, उसे
और भी निर्वीर्य, निष्क्रिय, बेवस और
अनाथ बना देता है। यह आत्महीनता,
पराजय और ह्रास का उद्योतक और
प्रेरक कवि-कर्म है। वास्तव की विभी-
षिका, रचना का माध्यम तो हो सकती
है, पर उसका विष-मन्थन पारदर्शिता और

प्रॉफ़ेट कवि की सीमा
कैसे हो सकता है।

स्वप्न पलायन नहीं
है, वह आत्मा का पराग
है। वह राग-सम्बेदना-
त्मक चेतना का 'चन्द्रो-
दयी' रसायन है। वह
लोहवेध और आत्मवेध
कर के, मनुष्य के क्षय-
ग्रस्त भौतिक जीवन को

आत्मा के सुवर्ण में रूपान्तरित करने
वाली अल्केमी (कीमियागिरी) की
रसायनशाला है। सृष्टि का प्रथम
अविर्भाव मन के तरंगिम स्वप्न में
ही होता है। खजुराहो, दक्षिण भारत
का अप्रतिम मन्दिर-शिल्प और मूर्ति-
शिल्प, ताजमहल, अजन्ता, पिरामिड, आदि
जगत के सारे महानतम स्थापत्य, और यह
सृष्टि तक स्वयम् पहले स्वयंभू कवि-
सिर्जनहार के स्वप्न में ही आविर्भूत



होते हैं। जैसा भाव, वैसा भव। सुखद सपनों के साहित्य से भावक में सुख, शान्ति, सौन्दर्य, आशा, अभीप्सा, हार्मनी और शक्ति के वायव्येशन (प्रकम्पन) जागते हैं। तो वही काल पाकर जीवन-जगत में मूर्त होते हैं। दुःख-सन्त्रास, पीड़न-शोषण की घटाटोप अंधेरी कविता एक सदा दुखी मनुष्य और जगत की ही रचना करती है। यही कारण है कि अस्तित्ववादी साहित्य ने मनुष्यको अन्तिम रूप से हताश, पराजित, दुःखवादी बना दिया। उसने निपट अन्तहीन ट्रेजेडी की रचना कर, मनुष्य को चिरकाल के लिए एक ट्रेजिक हीरो बनाकर छोड़ दिया। सेम्युअल बैकेट ने 'वैटिंग फॉर गो दो' रचकर मनुष्य से उसका स्वप्न और मिथक छीन लिया और उसे अन्तिम रूप से निराश कर दिया, दुःखजीवी बना दिया। आज की तरुण पीढ़ी उसी घटाटोप अंधेरे की सन्तान है। और हिप्पी में उसकी चरम परिणति दिखायी पड़ रही है।

'अनुत्तर योगी' एक सूक्ष्म और मुश्किल किताब है। फिर भी क्या कारण है, कि वह तेज़ी से लोकप्रिय हो रही है? इस-लिये कि उसने व्यक्ति-मनुष्य और समुदाय दोनों को आशा, उल्लास और परमकाम-भोग का स्वप्न दिया है, उसने मनुष्य को इतिहास की अन्ध शक्तियों के घमसान के अधीन न छोड़कर, उसे उसके स्वाधीन आत्म के ज्ञान, सौन्दर्य, प्रेम नवनीत

और सर्वजयी शक्ति का भान करा है। उसने मनुष्य को हर विपत्ता के भी, अपने आत्म के सम्वाद (हार्मनी) में जीने की स्वाधीन सामर्थ्य का अचूक प्रत्यय और बोध प्रदान किया। वीरेन्द्र ने अपने युग का संवास पीते हुए भी, उससे अतिक्रमण कर दुःखजयी मृत्युजयी 'अनुत्तर-योगी' रक्त-मांस में जीवन्त और मूर्त किया। यह पलायन है, या कि ठोस पदार्थ-ज के हत्यारे लोहे को गलाकर उसे जीवन्त सर्वकामपूरन सुवर्ण में रूपान्तरित करने का अचूक रसायन है, इसका निर्णय भविष्य ही करेगा। वर्तमान के रक्त-कुहासे में उसकी पहचान सम्भव नहीं हो, तो आश्चर्य नहीं। मगर आश्चर्य यह है, कि कई अन्तर्दृष्टि सम्पन्न रचना समीक्षक, और सच्चे सहज प्रवृत्त पाठकों के भीतर 'अनुत्तर योगी' पलने तरह जज़ब होता जा रहा है, उनकी चेतना का अंश बनता जा रहा है; तमाम अवरोधों और विरोधों के पूर्व ही कि को भेद कर भी, वह एक अलग प्रकार का सुमेरु-शिखर खड़ा कर रहा है।

०००

अध्यात्म तो अपने स्वरूप में ही निष्ठ, आत्म-बलिदानी, सर्व का ध्वंसक, और सर्व का आसुरी शक्तियों की भंजक एक कालिदास शक्ति है। क्या सारे ही अवतारों के समय के लोक-पीड़क आततायियों

मांगलिक लोक-रचना करेगा। परमाणु-क्षेत्र में हर परमाणु की स्वतंत्र और संयुक्त सत्ता एक साथ होती है। वैसे ही जगत्-जीवन में स्वतंत्र व्यक्ति, वस्तु और सामासिक समुदाय की एक पारस्परिकता निरंतर विद्यमान और सक्रिय है। अतः व्यष्टि और समष्टि दोनों की स्वतंत्र सत्ता स्वीकारते हुए भी, दोनों में एक सामंजस्य लाना होगा। मौलिक सत्ता में तो इनका अद्वैत एकत्व और सामंजस्य मौजूद ही है। लेकिन जीवन के स्तर पर, उसे साक्षात् करके उसकी तरतमता को मूर्त अभिव्यक्ति में निर्वाध आने देना होगा। समवादी, सम्वादी, शोषण-संघर्ष-हीन लोक-रचना और समाजरचना का पाया यही हो सकता है।



तुम्हारे लेख में यह स्पष्ट झलकता है कि तुमने व्यष्टि और समष्टि, व्यक्ति और समाज, वैयक्तिकता और सामुदायिकता, संस्कृति और संसृति को अलग करके देखा है। वहीं पर मूल में ही भूल हो गयी। सही व्यक्ति से ही सही समाज बन सकता है। पहले सही समाज बना कर, उसमें से सही व्यक्ति पैदा करने की कोशिश विफल हो चुकी है। बल्कि यह कहें, कि आत्म-निर्माण और लोक-निर्माण

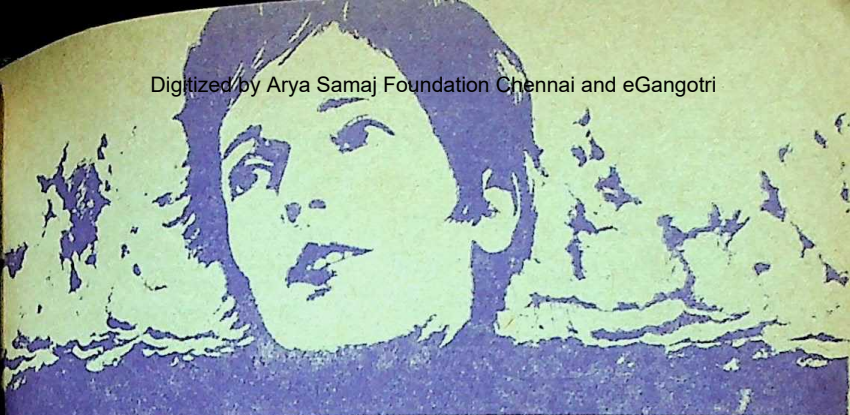
नवनीत

एक संयुक्त-समानान्तर प्रक्रिया दोनों ही पक्षों पर एक साथ काम करेगा। सही आत्म-निर्माण के लिए, लोक-निर्माण के अभियान को नहीं रखा जा सकता। वैसे ही सही निर्माण के लिए सही आत्म-निर्माण मुलतवी नहीं किया जा सकता।

तुम्हारे लेख में बराबर ही यह झलकता है, कि व्यक्ति और विश्व को तुम जि

जित करके देखते हो, तो अनजाने ही उनमें वैयक्तिक अनुभूति इन्कार और सामुदायिकता का एकान्त हो है। लेकिन अनुभूति केन्द्र में व्यक्ति है। अनुभूति प्रथमः वैयक्तिक होकर ही, वैयक्तिक हो सकती है। मार्क्स की अनुभूति सम्बेदना में ही प्रक

तमाम इतिहास की लोक-वेदना और साक्षात्कृत हुई थी। 'शून्य' की कविताओं में, कल्पक ऊर्जा से, सौंदर्य-विश्वों द्वारा, विशुद्ध स्वरूप और आत्मानुभूति के लिए एक जबरदस्त सर्वातीत होकर, एक बार उस आत्म-केंद्र तक पहुंचने के अंतरिक्ष में खो जाने का लिया गया है। और मेरी अनुभूति



एकान्त सामुदायिकता में वैविध्य का अभाव होता है। वैयक्तिक अनुभूति के अभाव में व्यक्तिगत निजत्व से ही, ताजगी, मौलिकता और वैविध्य संभव है। एकान्त सामुदायिकता के कारण ही, आज के समाज में हमारा अधिकांश साहित्य वैविध्यहीन, अतिसंयोजित (मानेटोनेस), उबाऊ और कृत्रिम हो गया है। मुक्तिबोध में आत्यंतिक निजता अनुभूति तो बहुत तीव्र थी, लेकिन सामुदायिकता के अवरोध की वजह से वह अपने कविता में समग्रता और विविधता के अभाव में सृष्टि न हो सकी है। फलतः हमारे पास एक-आयासी कवि के रूप में ही एक व्यक्ति सामने आते हैं। इस संदर्भ में पूछना चाहेंगे कि, क्या होगा, कि जब तक सामुदायिक मुक्ति का अर्थ अस्वच्छ न हो, तब तक वैयक्तिक मुक्ति का अर्थ व्यक्ति की आंतरिक सुख-शांति को नष्ट करने का अतिस्थित काल तक स्थगित ही रहना होगा? इतिहास के दुश्चक्र का

0 0 0

प्रसाद के नाटकों और 'कामायनी' के साथ, मेरे स्फुट कवितासंग्रहों की तुलना ही एक गलत और असंगत बात है। प्रसाद के नाटकों का भी एक एपिक-

कैरेक्टर है—यानी उनमें प्रबोध-काव्यों की गुणवत्ता है। और 'कामायनी' की तो रचना ही एक महाकाव्यात्मक स्तर पर की गयी है। उसमें प्रतीक-रूपक द्वारा समग्र जीवन-समस्याओं को तात्त्विक पात्रों के माध्यम से सुलझाने की कोशिश की गयी है। मेरे कविता-संग्रहों को समग्रता में देखोगे, तो उनमें भी एक संयुक्त सर्वांगीण जीवन-दृष्टि और 'एपिक'-स्तर हाथ आता है। तुम्हारे लेख में केवल 'शून्य पुरुष' को सामने रखकर ही मेरे पूरे कवि-कर्म का मानो अंतिम मूल्यांकन कर दिया गया है। इसी से पक्ष विशेष में, कवि के साथ न्याय नहीं हो पाया है।

'कामायनी' की तुलना में 'अनुत्तर योगी' को ही रखा जा सकता है। गद्य की उपन्यास-विधा में होकर भी, 'अनुत्तर योगी'—बुनियादी तौर पर काव्य है, और अपनी सर्वांगीणता के कारण वह महाकाव्य (एपिक) के स्तर पर अनायास ही उत्क्रांत हो गया है। तुम्हारी प्रस्तुत समीक्षा जब लिखी गयी, तब 'अनुत्तर योगी' का कम-से-कम प्रथम खण्ड तो निकल ही चुका होगा। उसे तुमने पढ़ा होता, तो तुम्हें पता चलता, कि 'कामायनी' से भी आगे जाकर उसमें लोक-यथार्थ को सीधे अध्यात्म से टकराया गया है। उस एक खण्ड में ही 'एपिक-कैरेक्टर' भरपूर उभर आया है। राज-समाज-अर्थगत तमाम लौकिक संघर्षों और समस्याओं को राजपुत्र महावीर ने,

उसमें तह-दर-तह उधेड़ा और खोला और अपने आत्म-केंद्र से उनका समाधान देने का एक महाप्रयत्न भी किया है। पूरे इतिहास को उसमें उल्टा-पल्टा है महावीर ने। अपने समकालीन के वैषम्यों पर उन्होंने बड़ा निर्मम प्रतिक्रिया किया है। जड़-रूढ़ हो गये धर्म-विकृतियों को भी, उन्होंने सीधे उखाड़ कर रख दिया है।

इस संदर्भ में यह भी स्पष्ट कर देना कि 'अनुत्तर योगी' के महावीर ने सत् और युद्ध को नकारा नहीं है। गांधी के तरह उन्होंने महाभारत के युद्ध को स्वीकारा नहीं कहा है, उसे यथार्थ युद्ध के स्वरूप में स्वीकारा है। यदि अहिंसक प्रतिकार लोक-जीवन में कारगर न हो, तो महावीर ने वीतराग तलवार उठा कर निर्मम विधान भी किया है। वास्तविक कृष्ण के सुदर्शन चक्र को उन्होंने वीर और अहिंसक कहकर स्वीकृति दी है। सर्वहिताय, सर्वसुखाय, सर्वत्राणाय उठा लेने का उन्होंने खुला आदेश दिया है। हां, अहिंसक प्रतिकार को अवश्य दी है, लेकिन अशक्यानुष्ठान आपात-स्थिति सामने आने पर, अहिंसक और गृहस्थ के लिए शस्त्र-चावल उन्हींने धर्म्य और कर्तव्य माना है। उसे एक विधायक स्वीकृति दी है। अंतिम पांचवें खण्ड में तो वे श्रमिक वर्ग को, लोक की सम्पत्ति अपनी ही मानकर, उस पर

नवनीत

धरती पर कैसे अचूक रूप से कार्यकारी बनाया जाये। केवल 'क्रांति' शब्द के विनियोग से ही कोई कवि अधिक क्रांति-कारी नहीं हो जाता।

'अनुत्तर योगी' में मैंने अपने विज्ञान के अनुसार उस भौतिक क्रांति की अचूक सफलता के लिए, आत्मिक परमाणु-बम का विस्फोट किया है। उसी में वह नया रास्ता भी खोलने का एक साहसिक और जोखिम भरा प्रयत्न मैंने आत्मिक-भौतिक की संयुक्त भूमि पर किया है, जिसकी प्रत्याशा तुम मुझसे करते हो। वह न तो परम्परागत आत्मवाद है, न रूढ़ वैज्ञानिक भौतिकवाद है। सही माने में वह यथार्थ पदार्थवाद और बुनियादी सत्तावाद है।

बात को चरम प्रत्यय तक ले जाये बिना चैन न पड़ा, सो निःशेष कथन करने में विस्तार पर काबू संभव न हो सका। फिर भी यह दावा नहीं है कि अंतिम बात कह सका हूँ, (जो कि शब्द में संभव भी नहीं), न यही दावा है कि तुम्हें और आज के लोक को पूर्ण समाधान या प्रत्यय दे सका हूँ। तुमने मेरे कवि के भीतर के समुद्र-पुरुष को पहचाना, स्वीकारा, इसके लिए मैं तुम्हारा चिरकाल ऋणी रहूँगा।

—तुम्हारा प्रिय वीरेन्द्र दा
११ फरवरी १९८१

व्यवहार कर लेने का निर्देश भी देते हैं। अतः निवेदन है कि 'कामायनी' की तुलना में 'अनुत्तर योगी' को आद्योपांत पढ़ कर ही अलोच्य कवि पर अंतिम फ़ैसला देना सही और संगत हो सकेगा।

अनिवार्य, अकारण, अस्तित्वगत संघास बातों परम पुरुषार्थ के साथ, अग्नि-परीक्षा के रूप में ही सामना किया जा सकता है। अनुरक्त पीढ़न को परीक्षा के तहत सह जाने का विधान मैंने तो कहीं नहीं किया। मुझे वह कहां से खोज निकाला, मुझे तो पता नहीं। वंसा होता तो 'यातना का संयुक्त' और बुद्ध को संबोधित लंबी चिट्ठी मैं न लिखता। भौतिक यातना को मेरे अध्यात्मिकता में रूपान्तरित करके सुझाया नहीं है, हां उसका निराकरण मैं अवश्य आत्मज्ञान, आत्म-तेज और आत्मिक क्रिया-शक्ति में खोजा है। एकान्त भौतिक क्रांति की विकलता नो उजागर है : तो मैं मुक्तिबोध की तरह उस पिटेपिटाये को कोन दोहरा सका। भौतिक क्रांति जो शैक भौतिक जीवन-स्तर पर, मूलगत आत्म-शक्ति के अग्नि-संचार से अमोघ बनाने का नया रास्ता भी मैंने अवश्य तला-शने की कोशिश की है। 'क्रांति की तेज-क्रिया' मणियों का कल्पन भी उतना ही कमाली और स्वप्निल है, जितना कि 'मोती को आव के भीतर छुपी किसी समुद्र-सी 'वर्तनीटी' का कल्पन या विस्व-विधान। संभव तो यह है कि 'क्रांति की उन तेज-क्रिया मणियों' को वर्तमान जीवन की

वैरेन्द्र कुमार जैन

हिंदी कहानी

प्रमाण

□ संजय खाती

जनवरी के महीने में वहां बर्फ पड़ती है तो सचमुच विचित्र वातावरण होता है। हरे-भरे चीड़ के पेड़ बर्फ से लद जाते हैं। सारी धरती सफेद चमकती चादर तले गुम हो जाती है। तब उस बस्ती का बाहरी जगत से संपर्क टूट ही जाता है। अलकनंदा वाला रास्ता बंद हो जाता है और डाक तथा रसद हफ्तों तक नहीं पहुंच पाती। वे लोग पहले ही पर्याप्त रसद और लकड़ी का भंडार बना डालते हैं। फिर उन बर्फीले दिनों में वे लोग आतिशदान के करीब बैठे गप्पें मारते रहते हैं या किस्से कहानियों में समय गुज़ारते रहते हैं। सच में वे उनके क़ैद के दिन होते हैं। जब सौभाग्य से आसमान साफ हो जाता है या केवल बादल घिरे रहते हैं तो बर्फ धीरे-धीरे पिघलती है। कहीं फिर तापमान गिर जाये तो कुछ न पूछो।

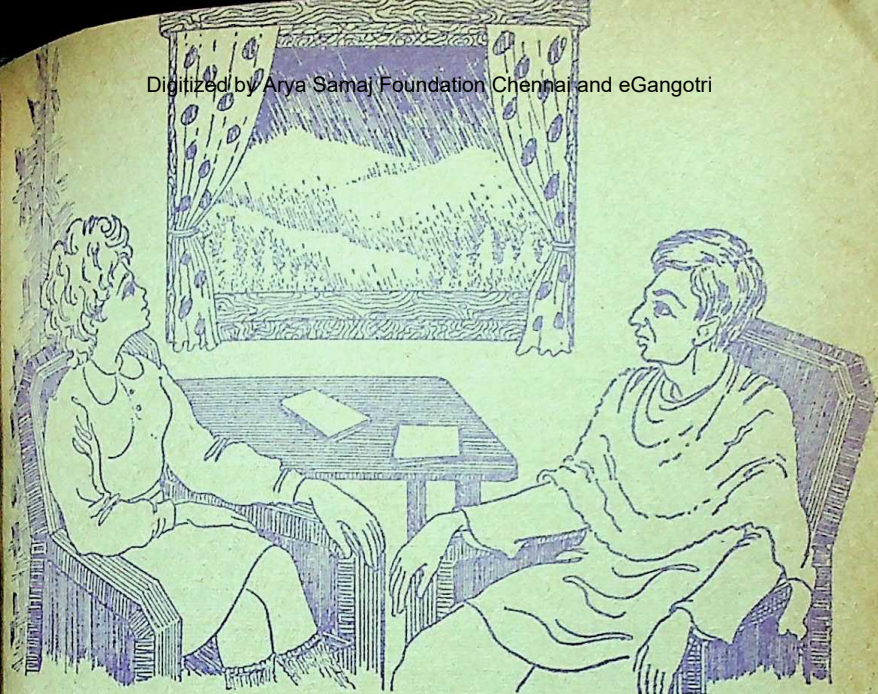
उस साल की जनवरी में फिर एक बार मैं भूपेंद्र की बचकानी ज़िद के आगे झुक गया। 'बस दाज्यू, कल लौट जाओगे। आज कौन-सी अर्जेंट मीटिंग है तुम्हारी। कल मैं ही खुद तुम्हें पहुंचा दूंगा।'

'कल फिर मौसम खराब न हो जाये?' मैंने शंका प्रकट की, लेकिन उत्साह से वह नवनीत

बोल उठा था -

'नहीं दाज्यू, अभी बर्फ नहीं मिलेगी। कहने को तो मैं रुक गया। लेकिन मैं संकोच की घटाएं उमड़ रही थी। वर्ष भी तो भूपेंद्र के बचकाने अनुरोध मुझे महीने-भर इस दुस्सह क़ैद में कर रख दिया था। एक बार फिर तो को काले मेघों को देखकर मुझे कमजोरी पर झुंझलाहट हो आयी। तो यह है कि उस स्नेही किशोर का रोध मुझे कमजोर कर देता था।'

मन मारकर रेस्ट हाउस के बग़ान से उठकर अंदर गया ही था कि गूंजती के साथ ओलों की बौछार ने सारी को झकझोर कर रख दिया। कुछ देर में असमय ही छा गये घने बूझने सारे दृश्यों को घनी कालिमा में दिया। तड़ातड़ पड़ती ओलों की टिन पर कर्णकटु शोर उत्पन्न थी। बीच-बीच में ओलों की निर्मल थमती, लेकिन तत्काल मूसलाधार का शोर निरंतर गूंजने लगता। एक बार अकस्मात् गिर मान मुझे शीत से कंपा गया। घुसते मेरा अनुमान पक्का हो



ती

हीं मिले
। लेकिन
रही थी
जाने अनुर
ह कैद में
वार फिर
कर मुझे

सब में सवेरे जागूंगा तो अपने आपको
फिर एक बार इस निविड़ कैद में फंसा
जाऊँगा। फिर आतिशदान में जलते बड़े-
बड़े लकड़ों के सामने निरुद्देश्य बैठे जीवन की
निस्तारता पर विचारने के सिवा और
क्या ही क्या रह जाता है ? बाहर रेस्ट
होम के बरामदे से दिखते दूर-दूर तक
जैसे से ढंक गये पर्वत शिखर और नीचे
अलकनंदा की दर्पण-सी चमकती निर्मल
जलधारा जिसे देखते ही उसकी भयावह
जलधारा का अनुमान मात्र ही रीढ़ की
हड्डी में कंपकंपी की लहर दौड़ा देता है।
जब मैं अनुभव करने लगता हूँ कि अलकनंदा
का वह कच्चा पुल बंद हो गया होगा। और
वह समाधिस्थ तपस्वियों-से वृक्षों के कंधों
से निरंतर वर्ष झरती होगी। कभी सहसा
बादलों को चीरकर निकल आये सूर्य की

चमक सारे दृश्य को दर्पण की-सी चका-
चौंध से भर देती। लेकिन फिर तत्काल
लपक आये किसी मेघ-खंड की छाया उसे
फिर धूमिल छायाओं से भर देती। सीधे
हिमालय से बही आ रही बयार की शीत-
लता पल भर भी खले में नहीं रहने देती।
बाहर लान में चलने पर ही घुटने तक पैर
धंस जाते। लेकिन फिर भी उस वर्ष को
किसी नट की-सी कुशलता से लांघता
भूपेंद्र भागा-भागा आ मुझे किसी तरह
अपने घर लिवा ले जाता।

न जाने आज क्यों फिर भूपेंद्र की
बचकानी ज़िद के सम्मुख मैंने आत्मसमर्पण
कर दिया था ? क्या मुझे वहाँ के सनकी
मौसम का अनुभव नहीं था ? पल भर में ही
निर्मल आसमान पर न जाने कहां से घने
बादल घिर आते और जो सवेरे आंख खुले

तो बाहर सारा दृश्य मानो रातोंरात किसी अदृश्य जादूगर की छड़ी का स्पर्श पा सर्वथा परिवर्तित हो उठता ।

चौकीदार मुझे भोजन दे, भागता हुआ, अपने गांव चला गया था । बड़ा जीवट का आदमी था वह । कैसा भी मौसम क्यों न हो, रेस्ट हाउस लौट आता था । रात घिर आयी तो वर्षा और ओले थम गये । प्रकृति मानो एकवारगी समाधि की जड़ता में स्थित हो गयी हो । केवल कभी हवा का कोई झोंका लान पर खड़े वृक्षों को बुरी तरह झकझोर देता ।

रात गये आतिशदान में भड़कते शोलों की आनंददायी तपिश अनुभव करता मैं अभी विचारों में खोया ही था कि दरवाजा मानो हवा का कोई झोंका खड़का गया । लेकिन मैं चौंक उठा था । दरवाजे पर फिर थपथपाहट हुई । स्पष्ट रूप से अबकी बार किसी ने दरवाजा थपथपाया था । कौन हो सकता है इस समय ? भूपेंद्र या चौकीदार ? लेकिन इस समय ? एक बार मैं संशय और विस्मय के तूफान में फंसकर रह गया ।

दरवाजे को एक बार फिर किसी ने खटखटाया ।

बाहर प्रकृति शांत थी । ऐसी निस्तब्धता जो मनुष्य को दहला देती है ।

मैंने दरवाजा खोला । प्रकाश की एक चौड़ी रेखा उस आकृति को दो भागों में बांटने लगी । कोई बाहर खड़ा था । लंबी आकृति आधे अंधकार में डूबी हुई ।

नवनीत

‘कौन ?’ मैंने पूछा था ।

‘नमस्ते ब्रदर ।’ अपरिचित नाम के उस अभिवादन ने मुझे एक पल विस्मित कर दिया ।

‘अंदर तो आ सकती हूँ न ?’

‘जी... ! हां ! जरूर... !’ उस संशय और अस्थिरता से लड़खड़ाते से मैं एक ओर हट गया ।

वह अंदर आयी । अब मैंने उसे ध्यान से देखा । लंबी देह, कंधों पिट्ठू । सारे वस्त्र भीगकर देह से चिपके थे । सुनहरे बालों के प्रभामंडल घिरा वह विदेशी गौरवर्ण चेहरा उस चेहरे पर नगीने-सी जड़ी गहरी आंखों की अनजानी अलौकिक चमक से

‘थैंक्यू, थैंक्यू ब्रदर ।’ कहती वह उसे आतिशदान के समीप खिसक कर ‘ओह, कितना सद् देश है यह तुम्हारा वह फिर हंसी और उस वेवाकी से लगी सा मैं दरवाजा बंद करना ही भूल गया ।

‘अरे आप ब्रदर ! आइये, ब्रदर !’ दरवाजा तो बंद कर लीजिये । दीवारें समझती हूँ, आप कुछ नर्वस हो रहे हैं आइये, बैठिये । मैं सब समझती हूँ उलझन को समझती वह खिलखिल हंस पड़ी थी । निर्दोष, उन्मुक्त हँस बौछार सारे वातावरण को रंग गयी ।

एक ऊहापोह में फंसा मैं बेवकूफ जलते कुंदों को ठकठकाने लगा था । मिनट में ही वह बाथरूम से कपड़े कर चली आयी थी ।

‘ओह ब्रदर, हम कैसे मित्र हैं, जो
एक-दुसरे का परिचय भी नहीं जानते ।
मुझे कैरोलीन कहते हैं ।’

कुछ देर फिर एक मौन मानो कमरे में
रिखाया । फिर उस निस्तब्धता को वह
न ?’
हैं ही काटने लगी—

‘मुझे मालूम है, ब्रदर । ऊपर पहाड़ी
पर किसी योगी का मठ है, कितनी दूर
है वह ?’

एकबारगी मैं बुरी तरह चौंक उठा ।
पहाड़ी पर रहने वाले उस योगी के अवि-
नशील चरित्र की कितनी ही कथाएं
मुझे मुझे ऐसी ही रातों में सुनायी थीं ।
जब मैं उस योगी के उन किस्सों पर मुझे
विश्वास ही नहीं था । भूपेंद्र बताता था
कि वह महीनों तक वर्ष में निराहार और
खड़े रहता है ।

‘ही कोई तीन मील की भीषण
सड़ है अब ।’

मेरे चेहरे पर छाये विस्मय और कौतू-
हल को परखती वह मुस्कराकर बताने
लगी थी ।

‘मैं वहीं जा रही हूँ, ब्रदर . . । मैं
अपनी कहानी बता दूँ, वना मुझे
हिप्पी न समझ लो तुम ।’ फिर मेरी
पर हंसती वह बताने लगी थी ।

‘मैं अमेरिकन हूँ, ब्रदर । मेरे पिता
एक शहर के नामी वकील थे ।
ही बताते थे कि फामिस्ट ने मेरे बारे
में वचन में ही बताया था—यह कन्या
अत्यंत रूप से गंभीर और तत्वा-

न्वेषी होगी । मेरे पिता को ज्योतिष पर
असीम अनुराग था । सच ही मैं बचपन
से ही धीर और गंभीर रही । बचपन के
क्रीड़ा-कौतूहलों में कभी मेरा अनुराग
नहीं रहा । चुपचाप किसी निर्जन में बैठ
न जाने क्या सोचती रहती । मैं . . . ।
बचपन के उत्साह भरे दिनों की मेरी इस
अस्वाभाविक अन्यमनस्कता ने मेरे पेरें-
ट्स को सचमुच बहुत चिंतित कर दिया
था । वैसे मैं काफी प्रतिभा संपन्न बालिका
थी । बाद में मैं सेना में डॉक्टर बन गयी
और वर्षों वियतनाम के मोर्चे पर रही ।’

उसकी आवाज यकायक धीमी हो
गयी । एक बार फिर बाहर फैली निवि-
ड़ता का एक टुकड़ा कमरे में पैठ आया ।
कुछ देर उसकी आंखें आतिशदान में
जलते शोलों को घूरती रहीं । लगता था
कि वह फिर एक बार उस भयानक युद्ध के
मोर्चे पर पहुंच गयी है ।

‘ब्रदर, उस अल्प अवधि में मैंने मौत
से निकटतम साक्षात्कार कर लिया । मोर्चों
पर घायल कराहते . . . दम तोड़ने, उन
असंख्य सैनिकों का साहचर्य मुझे बहुत
कुछ सिखा गया । मैंने वहां बहुत कुछ
देखा, ब्रदर . . . । मैंने विचारा क्यों मनुष्य
अपने शरीर के अंगों के छिन जाने पर भी
अपना दुस्सह जीवन जी सकने की हिम्मत
संजो लेता है ? क्यों मानव की जिजीविषा
उसे मौत के मुंह से खींच लाती है ? कैसे
अपना प्रिय संसार जल जाने पर भी मानव
बड़े ही साहस से नया संसार बनाने की

चेष्टा में रत हो जाता है ? कैसे लाखों शरणार्थी, बेसहारा विधवाएं, अनाथ अपना जीवन चलाते हैं ? कैसे एक बुलबुले-सा ही क्षण-भंगुर मानव इस विश्व के सर्वनाशी अंधड़ों के विरुद्ध लौह-दीवार बनकर खड़ा हो जाता है ? इन्हीं विचारों में मैंने उस 'सुप्रीम पावर' का अनुभव किया, ब्रदर . . . लेकिन वहीं युद्ध से मुझे घृणा हो गयी । वहां से लौटकर मैं एक सेवा-संस्थान की सदस्या बन गयी । रोगियों और कोढ़ियों की सेवा करते हुए मैंने एक प्रकार से अपना जीवन सभी के भीतर रहने वाले उस दैवीय तत्त्व को ही समर्पित कर दिया ।

उस कम उम्र युवती की गाथा समाप्त होते ही मैंने पूछ लिया था—

'लेकिन सिस्टर, आप यहां क्यों आयी है ?' उस युवती की कहानी ने मुझे कौतूहलाकांत कर दिया था ।

'ब्रदर, जिस 'सर्वोच्च शक्ति' की उपस्थिति को मैंने अनुभव किया, उसके निकट साक्षात्कार की मेरी लालसा अदम्य होती गयी, हमारी संस्था की अध्यक्ष मदर मरीना ने ही मुझे इस काम के लिए ज्ञान के इस देश जाने का निर्देश दिया । और उन्होंने ही मुझे इस स्थान का पता दिया । मैं आज सबेरे से ही पैदल चली आ रही हूं । लेकिन नीचे से ही यह तूफान शुरू हो गया । उससे मैं रास्ता भटक गयी । लेकिन अचानक ही यह रेस्ट हाउस नज़र आ गया । सहायता की आशा से ही मैं इधर

नवनीत

चली आयी ।'

उसकी आत्मकथा सुनते ही अचानक पूछ बैठा मैं—

'लेकिन, सिस्टर . . . क्या है . . . ?'

कैरोलीन अनायास ही हंस पड़ी ब्रदर यह शंका तो मानव को होनी ही चाहिए । जैसे किसी को भी अपने अस्तित्व के विषय में शंका नहीं है । वैसे ही हम हो सकते हैं तो 'वह' क्यों नहीं . . .

'लेकिन, सिस्टर . . . ' मैं तर्क मुद्रा में उतर आया था । लेकिन जिद को अपनी स्निग्ध हंसी से वृत्त वह कहने लगी थी—'हर भौतिकवादी अंदर के उस ईश्वर को नकार कर स्वयं के अस्तित्व पर ही शक करता है । अच्छा, पहले मेरे प्रश्न का तो जवाब तुम जीवन से क्या समझते हो . . . ?'

'सिस्टर, सीधी-सी बात है जो गिनेचुने साल हैं, जिन्हें भोगता है । इन सीमित सालों को व्यर्थ गंवाया जाये भला ? इस अवधि में जीवन का भरपूर आनंद लिया जाये । जीवन के एक-एक पल को जी जाये . . . '

एक बार फिर वह मानो मेरी नाक पर तरस खाकर हंस पड़ी । 'यह तो बर्बाद पियो-मौज करो और एक दिन मर जाओ वाली थ्योरी हुई ना ? लेकिन सोचो ख़ा-पीकर एक दिन यूं ही मर जाना जीवन होता तो शायद इस संसार में

षोडश आदमी ही जीवित रहते । और बाकी
 लोग इस निरुद्देश्य, निरर्थक जीवन से
 दबकर ही आत्महत्या कर लेते । जानते
 हो, केवल भोग ही जीवन का ध्येय होना
 तुम में भोगी के लिए ही एक भयावह स्थिति
 होती है । अपने जीवन की व्यर्थता कोई
 नहीं कर पाता । केवल भोग ही नहीं,
 निर्माण भी तो जीवन है । नहीं, ब्रदर,
 जीवन, जो तुम कहते हो, वह नहीं है... ।
 तुम सोचो, क्यों बार-बार ठोकर खाकर
 मनुष्य निर्माण में संलग्न होता है ? कौन-
 से वह भावना है ? कौन-सी वह आशा
 है, जिससे मनुष्य कठोर परिश्रम कर-करके
 दिन रात एक करता है ? भोगों की ओर
 नहीं नहीं करता क्यों... ?
 कभी सोचा ब्रदर, तुमने ? केवल
 बला-पीना ही जीवन होता तो विश्व के
 इसे सुंदर, प्रशंसनीय कार्य शायद ही
 होते । आदमी शायद ही भोग का
 उस छोड़कर निर्माण की बात सोचता ।
 जब इस दुनिया को निरंतर अधिक
 खत वनाने में नहीं जुटा रहता । कोई
 शक्ति तो है ही, जो उसे भोग के आनंद
 से विमुख करती है । तो कौन-सी शक्ति
 है वह ? बार-बार विनाश के बाद भी
 किसी वह जिजीविषा क्यों है ? क्या इन्हीं
 निरुद्देश्य सालों के लिए... ?
 मैं चुप रह गया । कहता भी क्या ?
 उसकी तीक्ष्ण दृष्टि मेरे चेहरे पर
 निबड हो गयी । 'ब्रदर, बता सकते हो
 आविष्कार अपने आविष्कार का कौन-सा

उपभाग करता है ? अपना जीवन जिस
 काम के पीछे वह खपा देता है वह अगली
 पीढ़ी के भोग के लिए ही तो काम आता है ।
 ब्रदर, वही जिजीविषा के पीछे जो आशा
 और इच्छा होती है, वही तो वास्तव में
 ईश्वर-शक्ति है, जो हमारे जीवन को नियं-
 त्रित करती है । जानते हो, जब वही
 आशा किसी के अंदर भर जाती है तो
 मानव केवल चलती-फिरती लाश मात्र
 बनकर रह जाता है । वही आशा और
 जीवनी-शक्ति तो हमें निर्माण में संलग्न
 रखती है । वही एक ही तत्त्व के बीज
 हम सब में समायें हैं । कभी सोचा है
 तुमने कि क्यों किसी अपरिचित का कण्ट
 भी हमें तड़पा देता है ? क्यों मैंने सर्वथा
 अपरिचित तुमसे आशा की कामना की ?
 क्यों तुमने एक अनजान को आश्रय दिया ?

कुछ देर खामोशी के बाद वह कहने
 लगी । 'ब्रदर, सारे नक्षत्र, ग्रह, सूर्य
 और चांद, इस प्रकृति का कण-कण सभी
 तो उसी 'सुप्रीम पावर' के अनुशासन में
 बंधे हैं । उसी पावर का अंश तो हम सब
 में जीवनी-शक्ति का संचार कर रहा है ।
 ब्रदर... । सभी के अंदर वह है... ।
 सभी तो वह है... । हम सब एक
 ही मूलभूत तत्त्व के अंश हैं । इसी भावना
 से तो मानव-मानव का दुख महसूस कर
 पाता है । क्राइस्ट... मुहम्मद तो उसी
 जीवनी-शक्ति के सूचक नाम हैं । वास्तव
 में देखो तो पृथक रूप से ईश्वर कुछ नहीं,
 वह आशा ही है जो हम सब में है । वैसे

यह धारणा नास्तिकता भी है और आस्तिकता भी.....।'।

फिर बड़ी देर तक हम दोनों मानो अपने अंदर कुछ खोजते हुए बैठे रह गये। बाहर हवा ऐसे गुंज रही थी मानो प्रकृति आहें भर रही हो। शायद बाहर चुपचाप बर्फ गिरने लगी थी।

'आप फिर क्या करेंगी, सिस्टर?' मैंने धीमे से पूछा था कि कहीं उसकी समाधि भंग न हो जाये।

'ज्ञान प्राप्त होते ही मैं उन्हीं दुखियों के बीच लौट जाऊंगी।'।

'कहीं इन्हीं गुफाओं में तो समाधि नहीं लगा लेंगी?' मैंने मजाक में पूछा।

'नहीं, समाधि लगा लेना भी तो जीवन का उद्देश्य नहीं होना चाहिये। अपने को समझने का अर्थ तो तभी है, जब औरों का कष्ट कम करने में मदद दी जाये।' उसने कहा था।

'बर्फ गिर रही है सिस्टर, और कल सारे रास्ते बंद हो जायेंगे। आपको रुकना पड़ेगा।'।

'नहीं, ब्रदर। मेरे पास समय कम है। मैं कल ही चली जाऊंगी ऐसे ही।'।

'लेकिन आप जानती नहीं, सिस्टर। जमीन खिसकने से रास्ता सचमुच मौत का स्वरूप बन जाता है। हिमनद की भयावहता तो सचमुच दिल दहला देने वाली है। फिर पर्वतारोहण का सामान भी नहीं है आपके पास।'।

उसकी दुग्ध-धवल हंसी में साहस और

नवनीत

दृढ़ता की स्पष्ट खनक थी। मैंने कहा, ब्रदर? मनुष्य अपनी जीवनी-शक्ति से निरंतर मौत से डरता जा रहा है।' वह हंसी और उसका मैं समझ गया।

'अच्छा ब्रदर, अब आप सोच देखती हूं काफी थके-से लग रहे हैं उसने कहा और जबरदस्ती ही मुझे स्वयं भी स्लीपिंग बेग में सिमट उस अद्भुत युवती की बातों का शायद मुझे सोने नहीं देता, लेकिन नहीं कैसे उस रात मुझे नींद आ

०००

सबेरे जगा तो देखा उस अतिथि का कोई चिह्न भी कमरे में था। एक बारगी में चौंकर उठ गया। क्या वह इस हिमपात में ही गयी! उसके इस दुस्साहस ने मेरा हिम कर दिया। झपटकर उस अनदेखा कर मैं बाहर आ गया। सारा दृश्य मिट चुका था। उस फुट भर हिम की निविड़ता का राज था। अब तो पहाड़ी पर निरंतर हिम-स्खलन ने उसे सचमुच की राह बता दी होगी। बड़ी देर मैं बरामदे में ही चेतनाशून्य रह गया। तो कहीं वह मेरा तो नहीं था? लेकिन नहीं वह कैसे हो सकता है? उसका सफेद चेहरा मुझे अभी तक शब्द मानो अब भी कमरे की

लेकिन कोई प्रश्न नहीं है।
 'कहीं नहीं.....। कहीं नहीं.....।
 'अरे आप यहां बेहोश से क्या पड़े
 'मेरा तो खून ही जमा जा रहा है।'
 भूपेंद्र ने आकर मुझे छुआ तो मेरी
 अंगुलियां ठंड के मारे
 भंग हुई। अंगुलियां ठंड के मारे
 भंग हो गयी थीं।

शक्तिदान के सामने बैठे चाय पीता
 बोलता ही जा रहा था, लेकिन मैं
 मानो वहां था ही नहीं। कल्पना में
 उस दुष्कर मार्ग पर बड़ी ही सहजता
 वह एकाकी चली जा रही है। मानो
 की वही अपराजिता जीवनी-
 की ही अब मूर्त हो बर्फ में भटक रही
 थी। सच तो ईश्वर के विषय में उसकी
 परिभाषा को मैं मानूं या न मानूं,
 लेकिन उसके इस साहस को क्या कहूं !
 'कैसे भी मैं इन्कार कर सकता हूं ?'
 'तो मेरे संशय का प्रमाण देने वह स्वयं
 प्रमाण पड़ी थी। क्या अब भी उस शक्ति,
 जो ईश्वर पर अविश्वास कर सकता
 है ?'

शायद कहीं खो गये, दाज्यू ? लगता
 है गाराज हो। इस बार भी मैंने आपकी

महीने भर की दाज्यू को
 वाप रे.....। कैसी बर्फ पड़ी है इस साल !
 वह तो अच्छा हुआ घर समीप है, वरना
 यहां आने में शायद बचता भी नहीं।'

और भी न जाने क्या-क्या कहता
 रहा भूपेंद्र। लेकिन मैं एक बार फिर
 उसी प्रश्न से उलझ कर रहा गया। हो
 सकता है वह भी उसी बर्फ की शान्ति में
 विलीन होकर रह जाये, लेकिन यह भी
 तो उस अपराजेय जीवनी-शक्ति की विजय
 ही होगी। उस शक्ति के अस्तित्व का
 प्रमाण ही तो है।

मैं सोचने लगा हूं—देवदार के वृक्षों
 के कंधों से बर्फ झर रही होगी। नीचे
 अलकनंदा की शीतल जलधारा अब हिम
 से ढंक गयी होगी। हिम-स्खलन से मार्ग
 भयावह हो गया होगा। नीचे अलकनंदा
 का पुल बंद हो गया होगा। और मीलों
 फैली बर्फ की इस स्तब्धता को अपने
 अपराजेय कदमों से कुचलती वह कहाँ
 होगी ?

—द्वारा सुरेन्द्रसिंह खाती,

५३, दुर्गागिरी-२६३६५३,

अल्मोड़ा, उ. प्र.



लालबहादुर शास्त्रीजी पत्रकार-संघ की एक सभा में गये, जहां उसकी रजत-
 मनायी जाने वाली थी। सभा में श्री दुर्गादास ने अपने भाषण में पत्रकार-संघ
 के पिछले पचीस वर्षों की गतिविधियों का परिचय देते हुए खूब प्रशंसा की।
 जब शास्त्रीजी बोलने के लिए उठे, तो उन्होंने कहा, 'क्रिकेट के मैदान में सेन्चुरी
 हिने पर दाद दी जाती है। पत्रकार-संघ ने तो अभी चौथाई सदी ही पूरी की है।
 मैं क्या दाद दूं ?'

मुझ पर विश्वास नहीं है आपको

सहसा वह तड़प उठी और मेरी आंखों में आंखें डालकर बोली, 'मुझ पर विश्वास नहीं है आपको !'

उसकी आंखों में तब दर्प और आरोप की चिंगारियां स्फुरित हो रही थीं। नितांत असमर्थ उसे सह पाने में, मैं दो क्षण निर्वाक देखता रहा, टूटता रहा फिर किसी तरह अपने को बटोरकर इतना ही कह सका, 'इसमें विश्वास-अविश्वास का प्रश्न कहाँ आता है। मैं तो केवल पूछ रहा था'

'जी हां, पूछ रहे थे। हो तो आखिर आप भी पुरुष ही।' उसका दर्प और भी तीव्रता से हुंकार उठा।

एक मित्र बहुत बार कह चुके थे, 'भाभी जी ! मेरे साथ चलिये न इलाहाबाद। मुझे तो पास मिलता है। किराया

रचनाकार विष्णु प्रसाकर



भी नहीं देना होगा आपको।'

उसने मेरी ओर देखा। मैंने 'तुम चाहो तो जा सकती हो।'

और उस बार वह चली ही गयी और उसी यात्रा के संस्मरण

रही थी वह मुझे, 'जानते हो कैसे तुम्हारे दोस्त। उस रात प्रथम श्रेणी कूपे में यात्रा की हम दोनों ने। कहने को 'भाभी जी ! जब आप चल ही रही तो क्यों न अकेले में बातें की जाते

क्या बातें की उसने ?

अपनी प्रेम कहानियां सुनाना चले थे मुझे। मैंने डांट दिया, 'मुझे नहीं सुनना है आपकी प्रेम कहानियां।' बोले, 'क्यों नहीं सुनती हैं ?' मैं बोली, 'क्यों सब पुरुषों की प्रेम कहानियां एक होती हैं वैसे ही, जैसे तुम सब पुरुष जैसे होते हो।'

वह एक के बाद एक उन हरकतों का वर्णन कर रही थी उसकी भाषा तीखी और व्यंग्यपूर्ण थी। और मैं सुन रहा था निर्वाक, अंदर के ज्वालामुखी प्राणपण से दवाने की चेष्टा करता हुआ। वह कह रही थी 'फिर भी उन्होंने न जाने

वहाँ की कहानियाँ सुनने लगी। उन्होंने ली सुनती रही, मुस्कराती रही। उन्होंने आगे बढ़ने की चेष्टा की तो डांट दिया, बरदार जो कोई हरकत की। थप्पड़ माँगी गाल पर। बातें मुँह से की जाती हैं हाथों से नहीं।'

वह तब मेरे लिए चाय बना रही थी। पाला मेरी ओर बढ़ाकर बोली, 'ऐसे हैं तुम्हारे दोस्त। मैं सचमुच थप्पड़ मार दूँ।'

कई क्षण हम चाय पीते रहे। अंतर में घूटते रहे। फिर मौन उसी ने तोड़ा, और लौटती बार तो उन्होंने हँस कर दी...।'

स्नान से विवश मैं कह उठा, 'अगले दिन भी तुम कूपे में ही आयीं उसके साथ, यह सब होने पर भी?'

वहीं वह तड़प उठी थी, 'आपको विश्वास नहीं है मुझ पर....'

तो क्षण बाद फिर सहज होकर उसी ने कहानी को आगे बढ़ाया, 'दूसरी रात उन्होंने बहुत बकवास की। जब मैंने थप्पड़ मारकर उन्हें ऊपर भेजा तो जानते तो क्या कहा उन्होंने... जाने दो क्या प्रोगे सुनकर... मानसिक विकृति भाषा को कितना विकृत कर देती है। डर तो कुछ था नहीं, इसलिये हँसी ही आती रही।'

सबरे जब आँख खुली तो पाया कि मेरी चादर के ऊपर उनकी शाल पड़ी है। पूछा, 'यह शाल आपने डाली है?' 'जी हाँ। रात को उठा तो देखा आप निकुड़ों-सिकुड़ी-सी लेटी हैं। तब ...।'

१९८१



नारी तुम केवल श्रद्धा हो...

'शाल ऊपर की बर्थ पर फँककर मैं तुरंत बाथरूम चली गयी। लौटकर आयी तो वे किसी अधिकारी से बातें कर रहे थे। आप तो जानते ही हैं मैं सदा मुस्कराती रहती हूँ। उन अधिकारी महोदय ने मुझे देखा। नमस्कार किया और उनसे बोले, 'अच्छा तो आपकी श्रीमतीजी भी हैं आपके साथ...'

मैंने कहा, 'तुमने प्रतिवाद नहीं किया..'

बीच में ही बोल उठी, 'लो, प्रतिवाद करती और अपवाद मोल लेती। चुप रहने में ही कल्याण था। क्योंकि गलती तो हमारी थी ... लेकिन जब वे मुझे घर छोड़ने आये तो क्षमा माँगने लगे, बोले, 'भाभीजी ! देवर-भाभी की ये बातें हमारे ही बीच में रहें। किसी और

लेकिन तुमने मुझे बता दिया है।

तुरंत बोली, 'किसी 'और' को बताने की मनाही थी, 'आपको' नहीं।'।

मैं फिर निर्वाक उसे देखता रहा और वह मुस्कराती रही। उस प्रेमाकुल मुस्कान ने मुझे एक नयी अनुभूति से आप्लावित कर दिया।

यह घटना हमारे वैवाहिक जीवन के सांध्यकाल की है। (मेरा 'कूपे' नाटक इसी घटना पर आधारित है।)

उसने प्रारंभ में ही जिस अटूट विश्वास और एकात्मभाव की शपथ ली थी, जीवन के अंतिम क्षण तक वह उस पर अटल रही। महायात्रा पर जाते हुए भी उसने यही कहा था, 'हां, लंबी यात्रा पर जा रही हूं पर, आपके बिना जा रही हूं।'।

परिणय-बंधन के तुरंत बाद उसने लिखा था, 'आज से दो महीने पहले बहुत-सी प्रतिज्ञाएं कर चुके हैं। वे अटल हैं। खैर, यदि उनमें श्रद्धा नहीं है तो जिसे एक बार 'प्राण' कहकर पुकार चुके हैं तो, क्या बिना प्राण के शरीर रह सकता है...'

ताकिक हाथ उठाकर कह सकता है, 'यह यौवन के उच्छ्वास की भाषा है। उस आयु में सभी स्वप्नों में खोये रहते हैं और ठोस धरती पर आने पर सभी के स्वप्न बिखर जाते हैं।'।

लेकिन मैं बयालीस वर्षों के उस संघर्ष-मय जीवन में जिधर भी झांकता हूं, उस साधारण लड़की की भाषा में मुझे वही

नवनीत

माधुर्य परिलक्षित होता है। वही अनिर्वचनीय और

'सोचती हूं क्या मेरे से सैकड़ों भीतर पर मेरा कोई है। सच बताइये मेरे क्या लगते हैं....?' (१९३८)

'कल पत्र में अपने को 'जीवन' लिखा जाने पर मन में कुछ गवें हूँ क्या यथार्थ में ही आप मुझे इन में पायेंगे। ऐसी मैं आशा भी रखती हूँ (१९४२)

'यह बात न जाने क्यों बहुत समय मेरे दिमाग में चक्कर काट रही है उसे निकाल देने में ही अपना हित समझती हूँ वह भी वहां, जहां दोनों हृदय दूसरे को कुछ जानते हों...' (१९४३)

'...स्वप्न में तो आप मेरा पीछा छोड़ दीजिये। बड़ी परेशान हूं।' (१९४५)

'... सारी रात आपके साथ बिताया बड़ा मजा रहा। न जाने कहां-कहां बातें होती रहीं। ये सब सुख-स्वप्न के बाद आंख खुली तो अपने को चारपाई पर चंद्रा के साथ सोये पाया...' (१९५३)

'... और क्या हालचाल है। मेरे दो दिन से कुछ ठीक नहीं हैं। कल अचानक इतना रोना आया कि चुप नहीं रह गया। बेबी इतना फाक से इधर आ गया कहने लगी, 'ताईजी, क्या बात है? ताईजी की याद आ रही है क्या?' मुझे बड़ी आयी...' (१९६५)

'... खैर, यह तो चलता रहा है

अनिदक

कड़ों मोख
वचाइये
(१९३८)जीवन म
छ गवें हु
मुझे इस
रखती है

वहुत सम

ट रहे क

हित सम

हृदय

(१९४३)

रा पीछा को

(१९४५)

गय विवा

कहाँ-कहाँ

व-स्वप्न दे

पने को स

साथे पाया

हैं। मेरे

। कल अच

मुप नहीं हु

र आ गये

त है। तज

मुझे बड़ी

रहता है

वैते ही आपको लिख बैठी। यहाँ तो तंग करती ही थी, बाहर भी चैन नहीं लेने दे रही हूँ। आप खुश रहिये। मेरा मन तो आधा पागल है, यों ही चलता रहता है...' (१९७४)

... घर तो आपके बिना एकदम सूना हो जाता है। एक पल भी मन नहीं लगता...' (१९७४)

... घर में इतनी चहल-पहल होने के बाद भी आपके बिना सूना लगता है।' (१९७८)

... जाने के बाद कोई पत्र नहीं मिला। ३० मई (हमारे विवाह की तिथि) को आपकी बहुत याद आयी...।' (जून १९७९ अंतिम पत्र)

सन १९३८ से १९७९ तक की इस अवधि में शब्द जरूर बदले हैं, पर अर्थ भी नहीं बदला। बार-बार प्रौढ़ होने का अहसास उसे हुआ है, पर सामीप्य की चाह भी उसी अनुपात में बढ़ती रही है। एक बार हम दोनों में कुछ तेज झगड़ा हुआ। उतना तेज न पहले कभी हुआ था, न फिर कभी हुआ। लेकिन उसके कारण एक दूसरे के प्रति हमारी भावना में तनिक भी अंतर नहीं पड़ा, बल्कि सामीप्य की तड़प और उग्र हो उठी।

मैं उन दिनों दक्षिण की लंबी यात्रा पर था। प्रवास में उसे पत्र लिखना मेरा नियम था, लेकिन उस बार नहीं लिख पाया। उसका कारण मन की खिन्नता ही थी। उसका सदा यह आग्रह रहा था कि

१९८१

हर बात में पहले मेरी ओर से हो लेकिन उस बार वह मौन न रह सकी। लिखा, '... आप जानते हैं अब पहले वाली बात तो है नहीं कि जैसे भी रहे, रह लिये। इधर आने के बाद जब आपका पत्र नहीं मिला तो कई बार उषा ने पूछा, 'क्या अब की बार आप तलाक दे कर आयी हैं जो कोई भी पत्र नहीं मिला...' (४-६-५७)

'... पता नहीं आपके दिमाग में क्या है, क्योंकि आप तो मुझे लिख नहीं रहे हैं कुछ। पर मैं किससे कहूँ। मन में ही कुढ़ती रहती हूँ। रात को नींद भी नहीं आती। पड़ी-पड़ी घंटों सोचती रहती हूँ, क्या करूँ। रात तो बिलकुल ही नहीं सोई, रोई भी, सोचती रही कम से कम पहुँचने का पत्र तो अवश्य ही देते...

'बस बच्चों की मां को सूचना दी जा रही है। क्या मेरे नाम से भी आप परिचित नहीं हैं...' (१०-६-५७)

'... अच्छा अब क्या कहूँ। कहने की बात है भी तो नहीं। अब तो हम कुछ बड़े हो गये हैं।' (११-१-६५)

लेकिन आठ दिन बाद ही लिखा-

'... कल अचानक इतना रोता आया कि चुप नहीं हुआ गया।' (१६-१-६५)

इस प्रेमिल आत्मा का, जिसने मेरे जीवन के महस्थल में प्रेम की गंगा प्रवाहित की थी, अविश्वास कैसे और क्यों करता। अपने सभी अनुभव मुझे सौंप कर वह मुक्त हो रहती थी। एक बार (शेषांश पृष्ठ ८२ पर)

मदनमोहन तरुण

की कविता



पूणिमा की

मदनगंधा रात



चित्र : संतोष जड़िया

चांदनी की मदनगंधा रात का यह है
सपना चतुर्दिक बह रही
दुग्ध के तरु, दुग्ध के पथ

और तरल स्टील से इस झील-जल पर
सरमरायी चांदनी में
संगमर्मर-सी सचेतन दूधिया काया
लहर-सी उठ, जम्हाई ले
तनिक फिर झुक रही है।

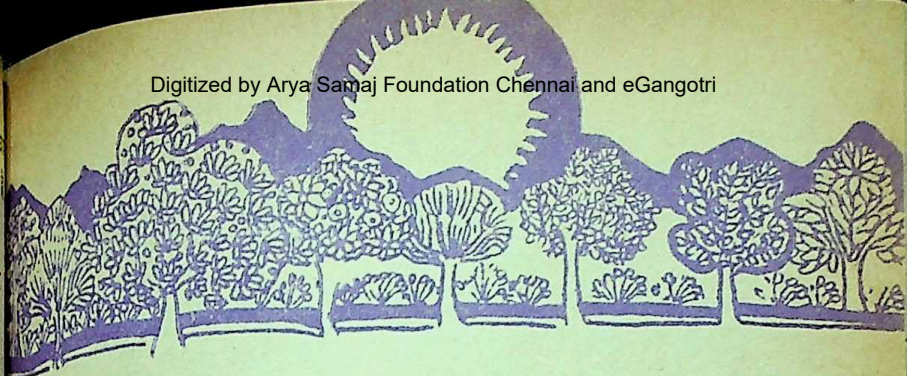
और गगन की डालियों को छू महक जाती
जैसे किसी की
दूर मेरे गांव की छत पर खड़ी तो

मालती की लता डंसने को मुझे फूला
झील की इन सीढ़ियों पर आज मेरा
चंद्रमा में मुग्ध दर्शन-सा विमोहित

एक खल्ली की सुनहली लीक जैसा पर
चांदनी की चेतना से नप गया है।
आज कोई अंधेरे की अंगला को बोला
कौन मुझसे मौन ही यूं बोला है।
एक नन्हीं क्षीणप्राणा किरण
नस-नस में उमस कर टूटती है
किस अदेखी चेतना से कौन मुझको बोला

झील के सारे किनारे टूटते हैं
झील की सब लहरियों को ज्वार

चन्द्रमा नीलाभ नभ का बंधु, लो अहम
दुग्ध का हर वृक्ष कुमकुम ये सहज



रमेश दवे की कविता



अगली शताब्दी

जल !

किसी भी महासमुद्र से उठो /
मेघ-मालाओं के अट्टहास में / समा जाओ /
पृथ्वी / सूर्यमय है / वायुमय है /
तुम / करुणा हो /
उसके तप्त-अंतर की /
वनस्पतियों ने / श्वास / लंबी कर दी है /
आकाश तक ।

मेघपुत्र !

सूर्य के अर्ध में / अभिषेक की धारा जोड़ो /
वायु / मंत्रोच्चार करेगा /
पृथ्वी जीवित रही /
हो सकता है /
किसी आकाश की / पत्त में दबा / कोई नक्षत्र
मनुष्यवान हो उठे / वाणीवान हो उठे /
और / अगली शताब्दी /
पृथ्वी-पुत्रों के / आकाश-पुत्रों से ।
मिलन की हो ।



कानपुर से लौटी तो बोली, 'सुनो, जब दिल्ली से गयी थी तो गाड़ी बहुत लेट हो गयी थी। रात के ग्यारह बज गये। कहां जाती तब ! जूही का रास्ता कितना खतरनाक है। मैं प्लेटफार्म पर खड़ी-खड़ी सोच रही थी कि साथ में जो एक अंधेड़ सज्जन थे वे मेरे पास आये, बोले, 'बहन ! मेरा घर स्टेशन के पास ही है। आप रात भर वहीं रहें। सबरे चली जायें।'

'मैंने सकपकाकर उनकी ओर देखा। डर भी रही थी मैं, पर और कोई रास्ता भी तो नहीं था। उनके साथ उनकी बेटी थी। यही आश्वासन था। मैं उनके साथ चली गयी।

'और रात-भर वहीं रही।

'हां, सबरे उठकर जूही चली गयी।' बहुत गहरे कोई प्रश्न कुरेद गया। क्यों हम नारी के बारे में यह सब सोचते रहते हैं। क्यों हम उसे सदा अपवादों के घेरे में ही घिरा देखना चाहते हैं। क्यों जीवन का एक बहुत बड़ा अंश वह इन अपवादों के चक्रव्यूह में फंसने और बाहर निकलने में बिता देने को विवश कर दी जाती है। नर-नारी के संबंधों में सहजता क्यों नहीं आ पाती....।

'सुनो, आज बस मैं क्या हुआ ?'

क्या हुआ ?

'एक बूढ़े ने मुझे कोहनी मारी।'

तुम चाहती थी कोई जवान मारता।

'हटो। आप तो बस... भला कोई

वात है। आदमी औरत को देखता बस...'

०००

'जानते हो आज क्या हुआ ? रोड से वाराखंभा रोड जाते बीच के मार्ग से होकर। अंधेरा चला था। छुट्टी के कारण सड़क था। तभी पीछे से साइकल पर एक आये। बिलकुल पास आकर रुके 'अरे आप पैदल जा रही हैं। आगे आगे साइकल पर बैठ जाइये। कहेंगी छोड़ दूंगा...'

बैठ गयीं तुम ?

वह व्यंग्य से मुस्करायी, 'एक तो सोचा कि आपने तो कभी वैठाना इसी को धन्य कर दूं। लेकिन डर गयी, कह दिया, नहीं भाई, पास ही जा रही हूं।... और तब आगे बढ़ गयी। पसीना आ रहा था भी मुझे।'

मैंने कहा, 'पर मुझे तो बहुत होती है ऐसी बातें सुनकर। लोग पत्नी को इतना सुंदर समझते हैं कि

तड़प उठी, 'खाक सुंदर समझते आदमी को तो बस औरत चाहिये पत्थर की हो, चाहे काठ की।'

इन अनुभवों का कोई अंत नहीं छोटे-मोटे झगड़ों का भी कोई अंत था। एक दिन मैं कुछ अधिक क्रुद्ध आया तो उसकी आंखें उबड़बाड़ी बोली, 'यदि मैं अभिमान करती

को देखना। यही सोचकर कि कोई अपना है और मुझे मना लेगा। अपनों से ही तो नाराज हुआ जाता है, लेकिन आप हैं कि ...'

हर बार मैं पराजित ही रहता, हर बार एक नयी प्रतीति होती मुझे। वह अखंड सरल, भोलेपन की सीमा तक सरल थी। इसी सरलता के कारण वह प्रतीतियां कर बैठती थी, इसी सरलता के कारण क्षमा मांग लेती थी। उसके अविभक्त, उसके निश्छल प्रेम का आधार भी यही सरलता थी। इसी सरलता के कारण वह बहुत शीघ्र कहीं भी किसी से भी एक रूप हो रहती। भाषा, धर्म, वर्ग और धर्म कुछ भी उसके रास्ते में बाधा न बन पाता। निस्सीम आकाश की तरह उसके परिचय का क्षेत्र विस्तृत, निरविस्तृत होता रहता।

और कभी-कभी यही सरलता बड़ी बड़की स्थिति भी पैदा कर देती। एक दिन किंग्स संधर्म में हंसते-हंसते मैंने कहा, मैं तो अब एक और शादी करना चाहता हूँ। उसने तुरंत उत्तर दिया, 'तो कर लो, मैं कौन रोकता हूँ?'

लेकिन लड़की तुम्हें ही ढूँढ़नी होगी।' 'वह भी ढूँढ़ दूंगी। सभी काम तो मैं ही हूँ आपके, वह भी सही।' □

हे भगवन्, मनुष्य विनम्र होकर तेरा रूप धारण करता है, तब तू सहारा देता है। हमें अधिक कुछ नहीं चाहिए, हम उस नारायण से विमुख न हो जायें, जिसकी मित्र या सेवक के रूप में हम सेवा करना चाहते हैं। हे प्रभु, हमें आत्मसमर्पण और सद्गुणों से भर दो।

—महात्मा गांधी

सहारे के बिना वह बड़ा दुर्बल हो को मुड़ी कि जैसे वज्रपात हुआ हो। मेरी ओर आग्नेय नेत्रों से देखा। बोली, 'सुनते हो, मेरे स्थान पर किसी को लाकर बैठाया तो पत्थर मार-मारकर सिर तोड़ दूंगी।'

मान लूंगा, एक बार तो मैं हतप्रभ अवाक् रह गया था, इस आकस्मिक आक्रमण से लेकिन, दूसरे ही क्षण जो हंसी फूटी तो अपने को संभालना कठिन हो गया। वाप रे! कैसा उत्कट प्यार है, कैसा भोलापन है। इस भोलेपन पर सर्वस्व निछावर किया जा सकता है।

आज उसी भोले प्यार के अभाव में मन उमड़-उमड़ आता है, बेचैन हो उठता हूँ उसे पाने के लिए। संतोष यही है कि अभाव के इस अंधेरे में असंख्य मित्र, परिजन साथ हैं। कहते हैं कि मैं उस प्रेम को श्रद्धा का रूप दूँ और 'प्रसाद' के शब्दों में कहूँ —

देवी (नारी) तुम केवल श्रद्धा हो,

विश्वास रजत नग पगतल में।

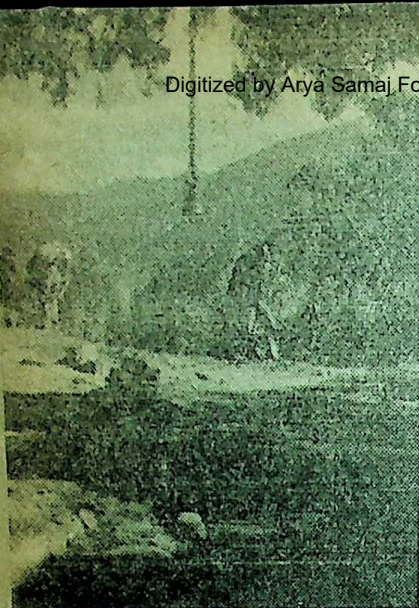
पीयूष स्रोत-सी बहा करो

जीवन के सुंदर समतल में।

प्राणपण से वही करने की चेष्टा मेरी है। रहेगी भी। —८१८, कुण्डेवाला, अजमेरीगेट, दिल्ली—११०००६

हिमालय के दुर्गम रहस्यमय शिखर
के आरोही और अज्ञात हिम-सरोवर
के खोजी

विपिनचन्द्र शाह
का साहसिक यात्रा-वृत्तान्त



लोहारजंग में स्थित मंदिर से गुजरते हुए
पार्श्व में नन्दाघुंटी पर्वत

रूपकुंड की यात्रा

सिंधुतल से १६००० फुट की ऊंचाई पर स्थित एक निर्मल जल का सरोवर अपने आप में न जाने कितने रहस्य छुपाये है। न जाने कितने पर्वतारोहियों, नृतत्व-शास्त्रियों व जिज्ञासु इतिहास लेखकों ने इस रहस्य को सुलझाने की चुनौती स्वीकार की है और न जाने कितने लोग इसके आमंत्रण पर अपनी जान की बाजी लगा बैठे हैं। आज यही रहस्यमय सरोवर रूपकुंड के नाम से विख्यात है जिसके बारे में एक दिलचस्प पौराणिक गाथा प्रचलित

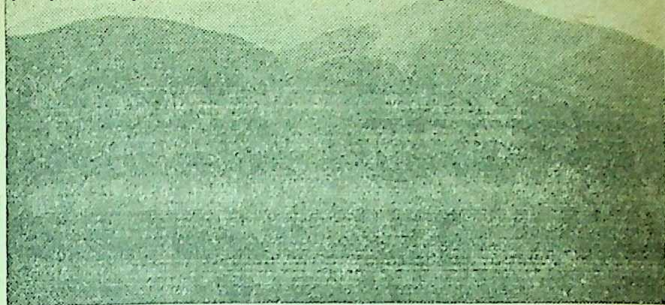
नबनीत

है कि जब भगवान् शंकर विवाह के पक्ष पार्वती को लेकर घर लौट रहे थे तो जंगल में पार्वती ने पानी की मांग की। इस रास्ते में पानी का नामोनिशान न था, इसलिए शंकरजी ने वहीं भूमि त्रिशूल गाड़ दिया जिसकी परिणति के फौव्वारे के रूप में हुई। पल-भर के जल के फौव्वारे ने निर्मल जलाशय का रूप ले लिया और जैसे ही पार्वती पानी के लिए झुकीं, उन्हें अपनी रूप राशि प्रतिबिंब दिखाई दिया। अपने रूप

मय हिन्दू नमोहि पावती ने
हम-सरोज बलाचय का नाम रूपकुंड
रख दिया।

गड़वाल के चमोली जिले
के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थित
रूपकुंड का अस्तित्व सन
१९४४ में अंग्रेजी शासन
काल के समय ही सामने
आया जब एक भारतीय
सहायिका ने उस कुंड
पर पायी जाने वाली लाशों के बारे में
अधिकारियों को बतलाया। इस
सूचना को अंग्रेजों ने कई वर्ष तक गुप्त
रखा, पर बाद में जब भंडा फूट ही
गया तो इन लाशों के बारे में अंग्रेज
अधिकारियों ने यह शंका व्यक्त कर दी
कि कहीं ये लाशें नेताजी सुभाषचंद्र बोस
के सैनिकों की न हों, जो चीन के रास्ते
भारत में गुप्त रूप से प्रवेश करने में अस-
म होने के कारण वहीं बर्फ में दफन हो
गये हों। अंग्रेजों की यह शंका निराधार
हो गई और इसके बाद आशंकाओं
के बटकों का एक नया सिलसिला शुरू हो
गया। किसी का दावा था कि ये शव सन
१९४१ के सिख सेना नायक जोरावर
सिंह के तिब्बत पर किये गये विफल आक्र-
मण के बाद भारत की सीमा पर शरण
लिए हुए सैनिकों के हैं। किसी का खयाल
था कि कहीं ये शव मुहम्मद तुगलक के
सैनिकों के न हों जो चीन पर आक्रमण
करने गये और रास्ते में ही डेर हो गये।

१९८१



तपाली बुग्याल (धरातल से १२५०० फुट ऊंचा)

कन्नौज के राजा जसधवल की नंदादेवी
की तीर्थयात्रा पर गये उन यात्रियों को
भी इससे जोड़ा गया जो रास्ते में ही
दुर्घटनाग्रस्त हो गये थे।

इस आखिरी अनुमान का संबंध उत्तरा-
खंड में आज तक चली आती उस प्रसिद्ध
'जात्रा' से है जो नंदाजात के नाम से मशहूर
है। नंदाजात उत्तराखंड की सबसे लंबी
(२६४ किलो मीटर) पैदल नंगे पांव यात्रा
है जो नौटी गांव से होमकुंड (रूपकुंड
से आगे) तक बाईस पड़ावों में तय की
जाती है। यह यात्रा हर बारहवें साल
सितंबर माह में होती है और अत्यंत
जोखमभरी है। 'नंदाजात' नौटी गांव से
शुरू होती है। देवी की पूजा राजघरानों के
सदस्यों द्वारा ही होती है। ऐसा समझा
जाता है कि हर बारहवें वर्ष किसी न किसी
गांव में एक चौंसिधा (चार सींगवाला)
मेढ़ा पैदा हो जाता है। यह मेढ़ा जहां पैदा
होता है वहां देवी का वाहन शेर तब तक
आता रहता है जब तक कि उसका मालिक



वाण ग्राम की एक महिला

मेढ़े को चढ़ाने की मनौती नहीं मान लेता । उक्त चौंसिघा नंदाजात का अगुवा होता है । इसके पीछे देवी का डोला तथा उसके बाद श्रद्धालु भक्तों की भीड़ । कई दिनों की लंबी यात्रा में रास्ते में दूर-दराज के गांव से छतोलिया, डोली व देवी की कटार भी शामिल होती है । उक्त यात्रा-मार्ग का अंतिम गांव 'वाण' है । वाण गांव में लाटू देवता के कपाट भी उसी अवसर पर खोले जाते हैं और फिर अगली जात तक बंद कर दिये जाते हैं । इस प्रकार वाण तक कुल २९४ देवी-देवताओं की डोलियां, निशान तथा छतोलियां इस जात में शामिल हो जाते हैं । इस गांव से आगे एक स्थान पर बाजे-गाजे, जूते तथा चमड़े की बनी वस्तुओं का परित्याग कर दिया जाता है

नवनीत

और यह स्थान 'रिणाम की धार' नाम से प्रचलित है । जात्रा रूपकुंड, जिसे समुद्र से जयघोष करती हुई चौंसिघा पथ प्रदर्शन में होमकुण्ड पहुंचती है वहाँ पर नंदादेवी की पूजा व यज्ञ किया जाता है । श्रद्धालु भक्तजन भेंट-स्वरूप तथा पैसा मेढ़े पर बांध देते हैं और यह देवी मानों दैवी प्रेरणा से धीरे-धीरे नंददेवी शिखर (२५६४५ फुट ऊंचा) की ओर बढ़ने लगता है । उसके बाद उसका का होना है यह किसी को मालूम नहीं । वापस वह नहीं लौटता यह दावे के साथ कहा जाता है । छतोलियों का उसी स्थान पर विसर्जन कर दिया जाता है ।

रूपकुंड का पौराणिक पहलू विद्वत् दिलचस्प है, उतना ही दिलचस्प है उसका वैज्ञानिक पहलू । और इस पहलू को उद्घाटन करने में स्वामी प्रणवानंद का योगदान भी कुछ कम नहीं है । इन्होंने उस स्थान पर रहकर अलग-अलग समय पर जात्रा वहाँ से कई नरककाल, अस्थियां व बर्तन सामग्री इकट्ठा कर निरीक्षण हेतु भेजा । कलकत्ता व लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्वानों ने उक्त हड्डियों का अध्ययन कर अपने निरीक्षण की पुष्टि हेतु कुछ नमूने बाहर भेजे । जहाँ कार्बन डेटिंग पद्धति द्वारा वे नरककाल ६५० वर्ष पुराने साबित हुए । इससे राजा जसधवल की यात्रा की पुष्टि होती है और उन प्रचलित बाबा काओं का खंडन होता है जो सैनिकों के जुड़े हुए हैं । क्योंकि अस्त्र-शस्त्र के

की धारें कोई भी सामान यहां पर नहीं मिला। यहां कुछ स्त्री-आभूषण व पूजा की सामग्री यहां पर अवश्य मिली है। हर वर्ष जिज्ञासुओं के आने से शव तो अब लगभग नष्ट हो गये हैं। हां, कुछ हड्डियां अधर-धर बोले पर अवश्य मिल जाती हैं। शव के दो महीनों (जुलाई-अगस्त) में यह पानी से भरा होता है। अन्यथा बाकी महीने यह वर्ष से ही अंटा रहता है। नंदप्रैटी और त्रिशूल चोटियों के ताल पर जो कगार दिखलाई पड़ती है उसी में है यह रहस्यमय कुंड जो कि लगभग १३५-१५० मीटर की गोलाई में बसा है।

कुंड की यात्रा के लिए ग्वालदम तक सड़का पहुंचा जा सकता है। इस स्थान से पहुंचने के लिए अल्मोड़ा, रानीखेत व नैनीताल से सीधी बस सेवा है। ग्वालदम शहर पांच दिन की पैदल यात्रा के बाद कुंड पहुंचा जा सकता है।

जब नैनीताल पर्वतारोहण क्लब के दो सदस्यों दीप साह और दिनेश विष्ट के साथ यात्रा पर निकला तो उस समय मौसम अनुकूल नहीं था। अक्तूबर के अंतिम माह में हमारी योजना सफल बनी और मौसम की श्रद्धालुता के बावजूद हमें क्रियावित करने में कोई भी अड़चन नहीं

आया। वर्ष में धंसते-भीगते हम लोग कुंड पर पहुंचे। वैसे जड़ी-बूटी व असंख्य जंगली फूलों की बहार देखने का असली मजा सितंबर माह में आता है। अक्तूबर माह में तो वर्ष के कारण सभी पौधे ठिठुर जाते हैं और कुछ ही समय बाद वर्ष की मोटी तह के नीचे दफन हो जाते हैं।

ग्वालदम में रात्रि विश्राम के फलस्वरूप हम लोग तड़के ही अपनी पैदल यात्रा पर निकल पड़े। पिंडर नदी के किनारे-किनारे १२ किलोमीटर का यह खूबसूरत रास्ता 'देवाल' नामक स्थान पर पहुंचता है। वैसे उस स्थान पर भी धराली नामक जगह से मोटर द्वारा भी जाया जा सकता है पर वह काफी लंबा व उबाऊ रास्ता है। इसी-लिए लोग ज्यादातर ग्वालदम से ही पैदल देवाल की ओर लुढ़क पड़ते हैं।

गांवनुमा यह कस्बा (देवाल) ग्वालदम के इतने करीब होते हुए भी काफी बर्फ के गर्भ में स्थित बगुड्यार में ठिठुरे हुए यात्री (यात्रियों के साथ बायीं ओर लेखक)



वीरान-सा है। रूपकुंड की यात्रा से लौटते हुए हमने एक दिन का रात्रि विश्राम यहां पर किया। भाग्यवश वह दशहरे का अंतिम दिन था। हम लोग भी खाली थे इसलिए रावण वध देखने के लिए चल दिये। उस छोटे से कस्बे में इतनी सारी भीड़ देखकर हम लोग स्तब्ध रह गये। हम नवागंतुकों की परेशानी जल्द ही एक युवक की समझ आ गयी, जो वहीं अध्यापक थे। उनके अनुसार गांव में मनोरंजन का कोई भी साधन नहीं है। बस यही रामलीला के चंद दिन हैं जब दूर-दराज के गांव वाले इस कस्बे में इकट्ठा होते हैं। एक दूसरे की समस्या व निराकरण के लिए सुझावों का आदान-प्रदान भी हो जाता है और गांव के विकास की गतिविधियों से परिचय भी।

देवाल में कुछ क्षण विश्राम के बाद हम लोग चल पड़े अपने अगले पड़ाव मुंदोली के लिए। हालांकि देवाल से मुंदोली गांव की दूरी १२ कि. मी. बतलाई जाती है। पर अब मुंदोली तक मोटर-मार्ग बन जाने से (जो कि अभी अधूरा ही है) इसकी दूरी बढ़ गयी है। २० कि. मी. की यह लंबी यात्रा बड़ी उबाऊ है। खैर मुंदोली गांव पहुंचते-पहुंचते हमें रात हो चुकी थी।

मुंदोली से डेढ़ कि. मी. की खड़ी चढ़ाई के बाद लोहारजंग नामक स्थान है जहां एक डाक बंगला अभी निर्माणाधीन है। हमने तुरंत निर्णय लिया कि मुंदोली रुकने के बजाय लोहारजंग ही में रात्रि

नवनीत

विश्राम किया जाये तो अच्छा रहेगा। से कम अगले दिन की यात्रा की मुश्किल चढ़ाई से तो न होगी। हममें न तो किसी की और न ही किसी की इच्छा एक भी आगे बढ़ने की।

रात्रि ९ बजे हम लोग लोहारजंग ही गये। यहां पहुंचकर हमारी जो भी थी, वह देखने लायक थी। अपने साथ जो अन्याय हमन किया उसका भी हमें भुगतना ही था, रात-भर पैरों इधर-उधर मोड़ते हुए कराहते रहे। कब अचानक आंख लग गयी पता ही चला। सुबह लंगड़ाते-लंगड़ाते एक को कैमरा लिये बाहर जाते देख भी बाहर निकल पड़े। क्या अचानक रास्ते था ! हिमधवल नंदाघुंटी पहचान बीच सिर निकाले मानो हमें निहार रही हो। उसको निहारते भी इतने मुग्ध हो गये कि अपनी ही खो बैठे। होश हमें तब आया जब कि सूर्य की किरणें हमें पूरा नीचे घाटी की ओर दौड़ रही हैं जैसे हमारी तंद्रा भंग हुई। आंखें तो बार बार हटाने पर भी हटने का नाम ही लेतीं। नंदाघुंटी तब तक सूर्य से नहाकर और भी चमक गयी थी। ज़्यादा मोह अब ठीक नहीं है। हमें और भी आगे जाना है।

सुबह ९ बजे के करीब हम लोग अगले पड़ाव 'वाण' के लिए गये। इस रास्ते में भालुओं का

रहेगा। इसीलिए देर से ही चलना
 का की गुरुका रहता है। लोहार-
 में न तो बाण में बाण तक का ढलवां
 छा एक (१४ कि. मी.) काफी
 मदायक है। थकान तो
 होहारखेप की नहीं होती। इस
 ारी जो हवा की वारे में कहा
 अपने शरीर का है कि सन १९०१ में
 या उसका लोहार वायसराय लार्ड
 त-भर पैसे के आने के लिए इसका
 हते रहे। बन हुआ था। बीच

रहस्य-कथाओं से आवृत्त रूपकुंड के तट पर खड़े यात्री

बच्चे हों तो लड़की को वह अपने अधिकार
 में कर लेती है और लड़के को पति को सौंप
 देती है। तीन हजार से पांच हजार तक
 लड़की की कीमत आंकी जाती है।
 वाण में रहने के लिए वन-विभाग का
 एक विश्राम-गृह देवदार वृक्षों से घिरा
 एक टीले पर बना है। इसकी बगल से ही
 एक रास्ता कुछ नीचे उतरकर फिर
 चढ़ाई की शुरुआत करता हुआ वैदिनी
 बुग्याल को निकल जाता है

वैदिनी बुग्याल। हरी हरी-घासों के
 लंबे-चौड़े मैदान जो हिमशाल के नाम से
 भी जाने जाते हैं। 'वाण' गांव से १४ कि.
 मी. की दूरी पर १२५०० फुट की ऊंचाई
 पर। रास्ता अत्यंत मनोरम, और नीरवता
 ऐसी कि जिसमें नदी का कलरव भी मनुष्य
 को चौंका दे। गांव से कुछ ही चढ़ाई चढ़ने
 के बाद हम लोग उतर पड़े एक घाटी में,
 जहां से लकड़ी के चरमराते पुल की मदद
 से एक गधेरे (पहाड़ी नाला) को पार

किया । क्षणिक विश्राम के बाद बेहद लबी चढ़ाई का जो सिलसिला शुरू हुआ उसका अंत फिर डोल्याधार में ही हुआ । चारों ओर से रिंगाल के पेड़ों से घिरा हुआ यह स्थल थके हुए यात्री के लिए वरदान है ।

अब अंधेरा होने में ज्यादा देर नहीं थी । दूर ही से सपाट मैदानों का सिल-सिला शुरू हो गया था । बड़े-बड़े वृक्ष मानों अपने-अपने स्थानों पर ठिठक गये हों । यहां से फिर मखमली घासों का साम्राज्य शुरू हो जाता है और यही मैदान 'बुग्याल' के नाम से जाने जाते हैं जो अपने गर्भ में न जाने कितनी महत्त्वपूर्ण जड़ी-बूटियों को समाहित किये हुए हैं । यहां पर कस्तूरा मृग बहुतायत में विचरण करते हैं । पर लालची शिकारी लोग पैसे की खातिर इन मासूम मृगों की हत्या करने से भी वाज्र नहीं आते ।

बुग्याल में टीन की बनी दो टापूनुमा झोपड़ियां हैं, जो यहां निर्वासित-सी लगती हैं । कुछ ही दूर पर पत्थरों से निर्मित दो मंदिर हैं । चारों ओर से पत्थरों से घिरा एक तालाब भी । पर उसमें पानी नाममात्र को भी नहीं है । हां, कुछ आगे पानी की मोटी-सी धार पत्थरों पर फिसलती-सी दिखलाई पड़ती है । यही पानी की धार वैतरणी नाम से जानी जाती है और यही उसका उद्गम-स्थल है ।

सुबह हम लोग जल्दी ही जाग गये थे । सूर्य निकलने से पूर्व ही सामने की ओर चांदी के दो टुकड़े चमकने लगे थे जो क्रमशः

नंदाघुंटी और त्रिशूल की चोटियों की सूर्य-किरणें चुपके-चुपके अब उन पर कने लगी थीं । माथे को सहलाते-सहलाते सुर्ख लाल होती हुई इन चोटियों का दृश्य हमने देखा, वह अभूतपूर्व था ।

हमारे बायें हाथ की ओर चोखे नीलकंठ, हाथी पर्वत अलग ही इट्ठा हैं । लुभा रहे हैं हमें ! आगे का लंबा सामने है । मौसम का भी कोई भरोसा जल्दी से पेट में कुछ ठूसकर कंधों पिठ्ठू लटकाये मखमली घासों को हम आगे बढ़ गये-अपने अगले पड़ाव लिए । बुग्याल से आगे के रास्ते में चढ़ाई तो नहीं है : पहाड़ों के सीने चीरती हुई एक पतली-सी पगडंडी है जैसे भारी होते जा रहे हों । एक-एक कर आगे बढ़ना मुश्किल होता जा रहा है ।

घोड़ालट्यूण पर विश्राम के बाद लोग पातरनाचनी के लिए चल पड़े । पातरनाचनी से जब हम लोग आगे बढ़े लगे तो हिमपात शुरू हो गया था । बुग्याल के बाद अब सभी स्थान हिमरेखा से ऊपर वनस्पति-विहीन हिमक्षेत्र में हैं । पातरनाचनी से कैलवा विनायक तक की एक खड़ी चढ़ाई ने तो हमारी कमर ही तोड़ दी । कैलवा एक छोटा-सा समतल मैदान है जो गणेश की एक भव्य प्रस्तर प्रतिमा संजोये है और इसीलिये इसका नाम कैलवा विनायक पड़ा है । अचरज हुआ कि १४०० फुट की ऊंचाई पर विनायक यहां की लाये गये होंगे, जबकि आदमी का

यहाँ मुश्किल हो जाता है ।
 नणजजी को प्रणाम कर हम लोग वगु-
 वासा की ओर बढ़ने लगे । हिमपात जारी
 था । रास्ता बर्फ की मोटी तह के नीचे न
 जाने कहीं बिलीन हो चुका था । घबराहट
 में कभी-कभी पैर फिसल जाते । बैठे-बैठे
 ही हमें १ कि. मी. का बर्फ़ीला रास्ता तय
 करने में घंटा लग गया । एक विशाल
 चट्टान बर्फ से सिर निकाले झांक रही थी ।
 शब्द यही वह गुफा है जो वगुवासा या
 बगुवासा के नाम से जानी जाती है ।
 गुफा का प्रवेश द्वार नदारद था । चारों
 ओर बर्फ ही बर्फ़ । थोड़ी ही देर में एक
 कभी ने बर्फ़ को काटकर प्रवेशद्वार खोज
 लिया था । पूरा शरीर ठंड से अकड़ने
 में था । पैर तो जैसे लकवाग्रस्त हों ।
 यही ही हम लोग गुफा के अंदर हो लिये ।
 अंदर अभी भी जारी था । प्रवेश द्वार
 से न ठंड जाये, इसलिये बारी-बारी
 से बर्फ़ हटाने का काम हमने एक-दूसरे को
 सौंपा ।
 बाँर, हिमपात रात्रि में कब बंद हुआ,
 पता ही नहीं चला । प्रवेश द्वार भाग्य से ही
 खुला था । बर्फ़ को गलतकर कुछ पानी
 साथ में लेकर अब लोग चल पड़े यात्रा के
 अंतिम पड़ाव के लिए । बर्फ़ को रौंदते, जगह
 जगह फिसलते, करीबन दो घंटे की दुर्गम
 यात्रा के बाद अब हम रूपकुंड के कगार
 पर खड़े थे । १६००० फुट की ऊंचाई पर
 स्थित कगार के एक ओर ज्यूराली है
 तो दूसरी ओर मीलों लंबा बर्फ़ीला मैदान ।

ज्यूराली के बारे में कहा जाता है कि लोग
 इस कगार से नीचे कुंड में कूदकर आत्म-
 घात करते थे, पर मुझे नहीं लगता कि
 आत्महत्या करने के लिए लोग इतनी दूर
 आते रहे होंगे । यहाँ पहुँचकर तो कृत-
 संकल्प आत्मवाती भी अपना संकल्प पलट
 ही देगा ।

३०० फुट गहरा यह कुंड पूरी तरह
 बर्फ से ढंका था । हम लोग पानी की तलाश
 में कुंड में उतरे तो निराशा ही हाथ लगी ।
 ऊपरी तह में ताज़ा बर्फ व उसके नीचे
 काली ठोस बर्फ़ की परतें ही हमें नज़र
 आयीं । एक जगह इसी तलाश में हमें
 आदमी के कूड़े का हिस्सा दिखाई दिया ।
 मांस भी हड्डियों से चिपका पड़ा था, पर
 एकदम भूरा पड़ गया था । मेरे दो साथी
 खोजबीन में लगे थे कि शायद कोई महत्त्व-
 पूर्ण चीज़ हाथ लग जाये । पर इस बर्फ़ के
 स्तूप में उन वस्तुओं को खोज पाना समुंद्र
 में सीपी खोजने जैसा ही था । इसलिए
 मैं तो एक चट्टान पर बैठा-बैठा इस मायावी
 सरोवर के इतिहास के बारे में सोचने लगा ।

ज्यूराली से उतरकर शिला समुद्र
 होते हुए होमकुंड (त्रिशूली के पाद प्रदेश)
 जाने की भी योजना हम लोगों की थी ।
 पर अत्यधिक हिमपात से सारा रास्ता ही
 अस्तव्यस्त हो गया था । अब और ज्यादा
 दुस्साह्य करना मौत को निमंत्रण देना
 था । इसलिये हम लोगों ने और आगे जाने
 का विचार वहीं पर त्याग दिया ।

-नेशनल इंटरकालेज, रानीखेत-२६३६४५

डॉ. एम. ए. मार्शेद्वी का एक भविष्यदर्शी लेख



विज्ञान और चेतना का भविष्य

भौतिकवादियों का दावा है कि ब्रह्मांड में कोई जीवन नहीं है, सिर्फ पदार्थ है। जीवन वास्तव में गतिमान पदार्थ ही है। भौतिकवादियों का जगत से 'सचेत-बुद्धि की मध्यस्थता' को हटाने का प्रयास कपिल नाम के निरीश्वरवादी दार्शनिक के साथ आरंभ हुआ था। (ये कपिल भगवान के वे अवतार नहीं थे, जिन्होंने ईश्वरवादी सांख्य दर्शन का प्रतिपादन किया था।) तब से यूनानी परमाणुवादियों और हाल ही में मार्क्स ने जगत के सम्बन्ध में ऐसे ही विचारों का प्रतिपादन किया है। हकीकत यह है कि आज भौतिकवादी दर्शन के अधिकांश प्रस्तावक या तो वैज्ञानिक हैं, या कम्युनिस्ट।

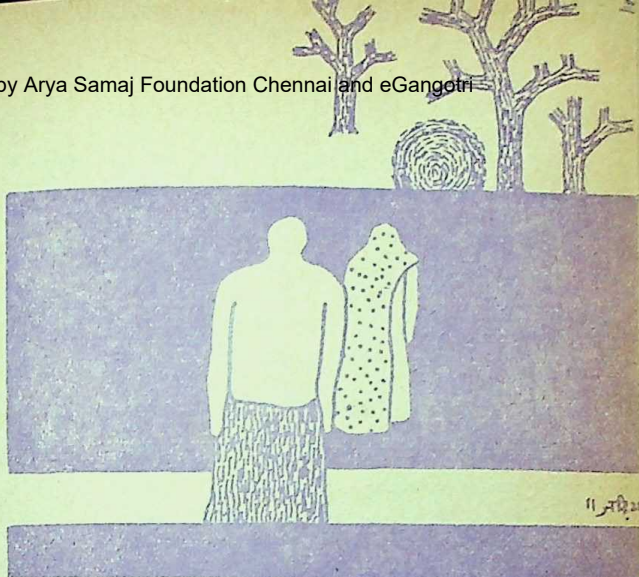
वैसे, यह बात स्पष्ट करनी आवश्यक है कि सब वैज्ञानिक भौतिकवादी दर्शन के समर्थक नहीं हैं, और इस दर्शन का विज्ञान से कोई सम्बन्ध है भी नहीं। अधिकांश शिक्षार्थियों को विद्यालयों में वैज्ञानिक भौतिकवाद का सिद्धांत सिखाते समय उस विभेद-रेखा के बारे में नहीं बताया जाता, जो दर्शन और विज्ञान के बीच में अभी तक बनी हुई है, मगर इतनी अस्पष्ट नहीं है। तथापि ऐसे दार्शनिक भी हैं, जिन्हें

वैज्ञानिक भी माना जा सकता है, क्योंकि उनके निर्णय प्रयोगों पर आधारित हैं।

वैज्ञानिक भौतिकवादी सिद्धांत मान्यता नहीं देते; क्योंकि उन्हें इस सिद्धांत का परिचय दर्शन के रूप में नहीं, वैज्ञानिक तथ्य के रूप में कराया जाता है। इस प्रकार, चिन्तन में विकृति आती है और फलस्वरूप चूक होती है, तब दोषपूर्ण हो जाती है, और संकुचित दृष्टि कोण पर आधारित प्रयोगों के आधार पर सिद्धांत का समर्थन करने का एक प्रयत्न होता है।

उदाहरणार्थ, सर्वाधिक प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हम चेतन हैं और हमारी चेतना उन पदार्थों से सम्बन्धित है, जो हमें चारों ओर दिखायी देते हैं। हमारे सामने प्रमाण नहीं हैं, जिनके बल पर हम मान सकें कि हमारा व्यक्तित्व अमानव परमाणुओं और अणुओं में परिणत हो सकता है। यह विशुद्ध रूप से कुछ दर्शन का एक मानसिक पूर्वाग्रह है। सारे ब्रह्म में, और कम-से-कम पृथ्वी पर तो जीवन (चेतना) और पदार्थ दोनों देखते हैं।

भौतिकवादी चेतना को भी मानते हैं, और पदार्थ को भी। उनकी अभिव्यक्ति है कि चेतना का जन्म भौतिक जगत् के संयोजन से होता है। किन्तु, कोई भी प्रयोग भौतिकवाद के केन्द्रीय सिद्धांत के समर्थन नहीं करता। ना किसी को कोई संकेत या स्पष्टीकरण ही मिलता है, जो यह बता सके कि जड़ एलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन आदि कैसे सचेतन को जन्म दे सकते हैं। इसके बाद हमें सामने यही मानने का विकल्प शेष रह जाता है कि यह कथन, जिसे अभी तक समझाया नहीं जा सका है कि चेतना पदार्थ से होता है, महज एक अज्ञान है। कोई वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं। अस्तित्विकता यह है कि हमें प्रकृति में चेतना (चेतना) और पदार्थ दोनों के अन्तर होते हैं। पदार्थ की हमारी व्याख्या यह है कि वह अचेतन है, और जीवन चेतन है। इन दोनों व्याख्याओं का अन्तर ही जीवन का परिचायक है कि दोनों अस्तित्व अलग-अलग श्रेणियां हैं। गणितीय चेतना से देखा जाये तो जीवन का पदार्थ अलग लेना असम्भव ही है। किसी भौतिक प्रयोग को इस कथन के समर्थन में नहीं किया जा सकता। रसायनों की रासायनिक क्रिया के परिणामस्वरूप रसायनों का ही जन्म होता है, चेतना का जन्म



होते आज तक नहीं सुना गया। फिर वैज्ञानिकों के मन में यह बात आयी कैसे कि जीवन का जन्म पदार्थ से हुआ।

जीवन और पदार्थ की पारस्परिक क्रिया

यदि हम इस पूर्वानुमान से आरंभ करें कि जीवन और पदार्थ एक ही स्रोत से निकलने वाली दो पृथक ऊर्जाएं हैं, तो ब्रह्माण्ड में होने वाले प्रत्येक अनुभव को जीवन और पदार्थ की पारस्परिक क्रिया के रूप में समझा जा सकता है। हमारा शरीर परमाणुओं से बना एक ऐसा यंत्र है, जो प्राकृतिक नियमों के अनुसार कार्य करता है। चेतना का सम्बन्ध शरीर में विद्यमान एक अ-पदार्थ कण से है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार एलेक्ट्रॉनों का सम्बन्ध वैद्युत और चुम्बकीय क्षेत्रों से होता है। यह अध्ययन कि मस्तिष्क की कोशिकाएँ चेतना, चिन्तन, भावना या संकल्प को कैसे जन्म देती हैं, उतना ही व्यर्थ है,

जितना रेडियो के अंगों का अध्ययन करके यह जानने का प्रयास करना कि वे समझ-दारी से भरी बातचीत कैसे पैदा कर सकते हैं। यह समझदारी रेडियो तक पहुंचाने का कार्य एक चेतन कर्ता करता है। ऐसा ही सम्बन्ध चेतना और शरीर के बीच है।

हम जो उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं, उसमें प्रकृति के सम्पूर्ण विनिर्देशन के लिए इन पांच तत्वों की आवश्यकता पड़ती है : ऊर्जा का स्रोत, चेतना, पदार्थ, काल और कर्म। चूंकि भौतिकवाद का सम्बन्ध पदार्थ (मूलभूत कण), काल और कर्म (क्रिया के क्वान्टम) से ही है, इसलिए भौतिकवाद में जो भी सत्य है, वह इस नये उदाहरण में सुरक्षित है। यह सत्य हमारी समझ में एक नये आयाम को वृद्धि भी करता है।

भौतिकवादियों के अनुसार, पदार्थ प्रत्येक तात्कालिक और योग्य कारण के मूल में है। पर यह कथन विरोधाभासपूर्ण है, क्योंकि यदि हम यह कहते हैं कि पदार्थ ऊर्जा है (भौतिक ऊर्जा) तो हमें उस ऊर्जा से स्रोत की बात भी करनी होगी। स्रोत के बिना ऊर्जा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। दूसरे शब्दों में प्रकाश का स्रोत या तो बिजली का बल्ब होना चाहिये, या सूरज। ताप कुण्डल से आता है, और गतिज ऊर्जा गतिमान प्रस्तर से। आज के विज्ञान का सबसे भयंकर दोष यही है कि वह बिना स्रोत के भौतिक ऊर्जा की बात करता है।

अग्नि को लीजिये। उसमें एक स्रोत से दो ऊर्जाओं—ताप और प्रकाश का जन्म होता है। दोनों मूलतः अलग ऊर्जाएं हैं। अब, जिस प्रकार हमें इन दोनों ऊर्जाओं के लक्षण मौजूद उसी प्रकार अचेतन (पदार्थ की अवस्था में) उसकी दोनों ऊर्जाओं के लक्षणों को होना लाजिमी है। इससे यह संकेत मिलता है कि ऊर्जाओं के स्रोत में 'कौन' के अलावा 'क्या' का भी समावेश है।

हम एलेक्ट्रॉन्स को कभी सीधा देख पाते। मात्र पदार्थ के साथ उनका पारस्परिक क्रिया से ही, जैसे मेघ-जल हमें उनकी उपस्थिति का संकेत मिलता है। चेतना का संकेत भी हमें इसी प्रकार पदार्थ के साथ उसकी निराली पारस्परिक क्रिया से ही मिलता है। आधुनिक विज्ञान में भी, पदार्थ-तत्त्वों की अपवादों से पारस्परिक क्रिया असाधारण नहीं है। 'प्राकृतिक नियमों' का अस्तित्व कि भौतिक तत्त्व के रूप में नहीं है कि इस बात से कौन इन्कार करेगा कि उनका अस्तित्व नहीं है, या वे पदार्थों को प्रभावित नहीं करते। अतएव चेतना की, अतएव होते हुए भी, पदार्थ के साथ पारस्परिक क्रिया हो सकती है, और इसमें किसी मान्य वैज्ञानिक व्यवहार का उल्लंघन होता। इस प्रकार हम देखते हैं कि नयी-नयी धारणाएं सामने आती जा रही तथापि सुपरिचित वैज्ञानिक सिद्धांतों के स्थान ज्यों-का-त्यों हैं। चूंकि प्रतिमान

उसमें एक विज्ञान को बाहर फेंक देना कोई डर पैदा नहीं होता। विज्ञान के अन्तर्गत पर दृष्टिपात करने पर, हमें इस का पता चल जाता है। हमें डर है कि उन असंगत पूर्वाग्रहों से जो वैज्ञानिक मान में पाल लेते हैं। इस संदर्भ में प्लात्क के इस प्रसिद्ध कथन की अनायास आ जाती है। 'किसी नये विचार के सत्य की विजय उसके विरोधियों के विफल करने से नहीं होती, वह तब होती है जब इन विरोधियों का अंत हो जाता है, और एक नयी पीढ़ी बड़ी होकर प्रतिष्ठित होती है।' भौतिकवाद भी इसी प्रकार प्रतिकूल है, जितना अध्यात्म-वाद, नास्तिकता भी आस्तिकता के लिए एक 'धर्म' है। हर वैज्ञानिक को पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर, तर्क और दर्शन के आधार पर अपने निष्कर्षों को निश्चित करने चाहिए। जब तक उसे उपयुक्त तथ्य न मिले, उसे समस्या के दोनों पक्षों को समझना होगा।

अवमूल्यन

माना कि जीवन की उत्पत्ति पदार्थों से है और जीवन की रचना किसी रसायन में कुछ रसायनों द्वारा होती है, मानव-समाज के सारे ढांचे को ही इससे देते हैं। आज अमरीका में जितने बच्चे होते हैं, उससे कहीं अधिक गर्भपात हो रहे हैं। गर्भपातों में वृद्धि और वैज्ञानिकों की मान्यता में कि जीवन साधारण रसायनों का योग ही है, कोई सम्बन्ध न

देख पाना न सिर्फ अधीन है, बल्कि पागलपन भी है। अमरीकी अब 'वैज्ञानिक' रूप से यह सोचने लगे हैं कि भ्रूण को एक मामूली कील की भांति हटाया जा सकता है।

१९७५ में एक अमरीकी मनोवैज्ञानिक डाक्टर पी. कैमरन ने वाशिंगटन के निकट स्थित एन्ड्रूज एयर फोर्स के पास रहने वाले प्रायः २०० व्यक्तियों से, और मेरीलैण्ड स्थित सेंट मेरी काउन्टी के ४५२ व्यक्तियों से यह प्रश्न पूछा था—'एक काले बक्से के अंदर एक आदमी बंद है। आप एक बटन दबाकर उसे आसानी से इस प्रकार मार सकते हैं कि किसी को उसका पता न चले। बताइये, आप इस काम के लिए, कम-से-कम, कितनी राशि लेना चाहेंगे?'

अपने इस प्रश्न के उत्तर में डाक्टर कैमरन को जो उत्तर मिले, उनसे पता चलता है कि अमरीकी समाज में जीवन को कितना सस्ता और तुच्छ समझा जाने लगा है। लोगों ने २०,००० डॉलर से लेकर ५०,००० डॉलर तक की अपेक्षा व्यक्त की। जीवन का यह अवमूल्यन वैज्ञानिक भौतिकवादी सिद्धांतों के अधिकाधिक प्रसार का ही सीधा परिणाम है। आज हम स्कूलों में अन्य वैज्ञानिक दर्शनों की शिक्षा देने के स्थान पर, इन्हीं सिद्धांतों की शिक्षा देना ज्यादा पसंद करते हैं।

हिप्पी जैसा हताश-निराश वर्ग आज के उसी अमरीकी समाज की ही देन है, जो इन



सिद्धांतों में विश्वास करता है। युवावर्ग में यह कुंठा और निराशा इसलिए व्याप्त है कि आध्यात्मिक संस्कृति के अभाव में (जिसका नकार भौतिकवादी शिक्षा करती है) उन्हें अपने जीवन में कोई उद्देश्य दिखायी नहीं देता। और, आध्यात्मिक संस्कृति की इस वर्ग को आवश्यकता है, यह इसी बात से सिद्ध होता है कि अमरीका में धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थानों की लहर-सी आ गयी है, और वे युवा-वर्ग में बहुत लोकप्रिय हैं।

इसके अतिरिक्त, हमें यह भी याद रखना होगा कि अति समृद्ध अमरीकी समाज की स्थापना ही एक दृढ़ आध्यात्मिक वचन-बद्धता के आधार पर हुई थी। 'हमारी भगवान में आस्था है,' यह वचनबद्धता बाद में भुला दी गयी, और उसको मन में प्रतिष्ठित करने के स्थान पर डॉलर-बिल पर प्रतिष्ठित कर दिया गया। वैसे, सिद्धांत-

नवनीत

तिक रूप से, अमरीका की सामाजिक और नैतिक संरचना इसी वचनबद्धता के आधारित है। भारत की प्राचीन वैदिक संस्कृति में मंदिर समुदाय के कलात्मक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों का केन्द्र था। मध्यकाल में खूब बात चर्च के साथ भी सच थी।

वस्तुतः, मानव ने जो लंबी प्रगति यात्रा की है, उसकी शुरुआत ही आध्यात्मिक आधार से हुई थी। और आज हमें विश्व में जो राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक अशांति और अव्यवस्था दिखायी देती है, उसका कारण यही है कि उस आध्यात्मिक आधार पर कई बार कुठाराघात हुआ है। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी राज ने वैदिक संस्कृति को समूल नष्ट करने का प्रयास किया, और आज भारत को जिन अनगिनत समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, कारण उसका यही है कि भारत में वैदिक संस्कृति का हास हो गया था।

जॉन स्टीनबैक ने भौतिकवाद के उदय और मानवीय संस्कृति के सहवर्ती होने को 'हमारे असंतोष का शीत-काल' कहा है। नवीन आशा का शुभचिह्न यही है कि मानव-इतिहास के इस शीत-काल की ओर ही समाप्ति हो जायेगी, और उसके स्थान पर एक नयी आध्यात्मिक संस्कृति वसंत ऋतु आयेगी।

अमरीकी दार्शनिक माइकेल पोलाक ने वैज्ञानिक भौतिकवादी सिद्धांत के लिए (शेषांश पृष्ठ १५७ पर)

रवीन्द्रनाथ त्यागी का परिहास-लेख

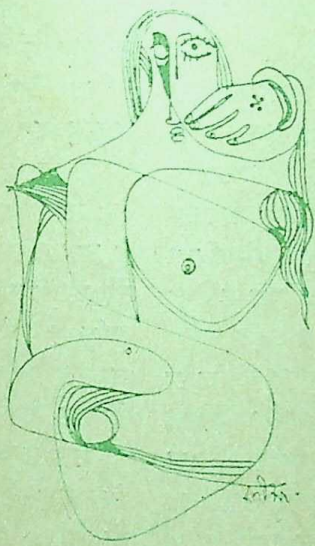
विज्ञापन कविता

हिंदी कविता और विज्ञापन का बड़ा पुराना संबंध है। सुमित्रानंदन पंत जैसे काव्यग्रंथों की भूमिका को विज्ञापन के नाम से ही लिखा करते थे। उनके लिखे विज्ञापनों में 'कला और बूढ़ा

का विज्ञापन सर्वथा सर और अमर है और परम रहस्य का घात हुआ है। यह वैदिक संस्कृति का अति-नत समस्त कारण उस संस्कृति का कवाद के सहवर्ती तत्-काल के लक्ष्य है। काल की ओर उनके समाज के संस्कृति के कवाद के सहवर्ती तत्-काल के लक्ष्य है।

कविता और विज्ञापन का ऐतिहासिक संबंध काफ़ी तौर पर प्रकट करते हैं कि हिंदी के हित में एक भाड़े के तौर पर लिखा था : 'अहले वतन, तो सफर करते हैं।' इसी प्रकार काफ़ी लोग 'बुरी नज़र वाले, मुँह काला' का भरत-वाक्य लिखते हैं। ऐसे काव्य-प्रेमी स्कूटर वाले भी कवि की पूरी कविता को ही आपके लिए लिख डालते हैं। एक टैक्सी पर

लिखा था : 'लाई हयात आये कज़ा ले चली चले। अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले।' इसी प्रकार एक और टैक्सी पर लिखा था : 'हमें खो के क्या आप कुछ पाइयेगा, कमी एक सहस्र फ़रमाइयेगा। हमीं जब न होंगे तो क्या रंगे सहफ़िल, किसे देखकर आप शरमाइयेगा।'



चित्र : सतीश चव्हाण

मुझे आपको यह सूचना देते हुए हर्ष होता है कि विज्ञापनों में हिंदी कविता का प्रयोग इधर काफ़ी जोर पकड़ रहा है। जिस भांति विदेशों में स्थित हमारे दूतावासों को हिंदी की प्रगति के लिए दिये गये अनुदानों का सही इस्तेमाल देखने के लिए काफ़ी संसद-सदस्य व आला अफ़सर विदेश गये, ठीक उसी प्रकार विज्ञापनों में कविता का प्रयोग भी हिंदी के हित में एक ठोस कदम होगा। विदेशों में स्थित हमारे दूतावासों को लगभग तीन लाख रुपयों की राशि प्रतिवर्ष दी जाती है, ताकि

वे हिंदी की प्रगति कर सकें, जब कि ऊपर बताये गये शिष्टमंडल ने अपने दौरों पर केवल पचहत्तर लाख रुपये ही खर्च किये। अब आप ही बताइये कि हिंदी की प्रगति के लिए सरकार और विपक्षी दल इससे ज्यादा और क्या कर सकता है? तीन लाख रुपये का सही इस्तेमाल देखने के लिए सिर्फ पचहत्तर लाख का खर्चा?

जब सरकारी क्षेत्र हिंदी में इतनी रुचि ले रहा हो तो गैरसरकारी क्षेत्र ही क्यों पीछे रहे? उसने विज्ञापनों में कविता का प्रयोग शुरू कर दिया। जिसके कुछ गिने-चुने उदाहरण मैं नीचे प्रस्तुत करता हूं। इन उदाहरणों से प्रकट होगा कि छायावादी कविता, रहस्यवादी कविता, प्रयोगवादी कविता, नयी कविता और अ-कविता के बाद अब जो नयी कविता लिखी जायेगी वह विज्ञापन कविता होगी।

एक बैंक ने अपने विज्ञापन में लिखा है: 'एक ने कहीं दूजे ने मानी। दोनों का लाभ, दोनों जानी। दोनों ने अब बचत की ठानी।' एक बस की बाड़ी पर लिखा था: 'कुदरत की बनायी चीज नहीं, इंसानी अक्ल पर एतबार न कर। गर हो जाये कहीं लेट गाड़ी, नाराज न हो, तकरार न कर।' एक बिस्किट कंपनी के विज्ञापन में छपा है: 'कोई कहे मीठे हैं कोई कहे नमकीन। क्रैक जैक के स्वाद में खो जायें सब लेकिन!'

माथे पर लगाने की बिंदी के विज्ञापन

में दो हसीन लड़कियां खड़ी हैं और जो अनुभव वाली है वह दूसरी को यौवना को बता रही है: 'जब मन शोख अदाओं से लुभाने का। तभी है ये मासूम बिंदिया लगाने का।' ग्रामोद्योग कमीशन द्वारा मान्यता एक पापड़ की फैक्टरी ने नरेंद्र शर्मा 'गीतमेघ' नाम की पूरी कविता नाम के साथ उद्धृत की है, जो पापड़ से भी शायद ज्यादा स्वादिष्ट है। शर्मा का नाम देखकर लगता है भविष्य में बाकी कवि भी विज्ञापन कविता लिखेंगे जिससे कि आंदोलन है वह जड़ पकड़ेगा। इसी प्रकार स्थान सरकार के एक विज्ञापन है: 'उत्तर धरा पर इंद्रधनुष जब है सतरंगी। कृष्ण-नयन नारियां होकर निपट मलंगी।' इस पंक्ति तुरंत बाद लिखा है कि जो लोग जानकारी चाहते हों वे राजस्थान विभाग से निकट संपर्क स्थापित करें।

मेरा विचार है कि हिंदी कविता विज्ञापन के क्षेत्र में अभी बहुत बढ्ता हुआ है। शराब की दुकानें बच्चन मधुशाला का और पांच सितारों होटल बच्चन की मधुशाला का इस्तेमाल कर सकते हैं। ऐसा से शायद बच्चनजी भी काफ़ी खुश मोमबत्ती की फैक्ट्रियों 'मदिर-मदिर मेरे दीपक जल का पथ आलोकित कर' वाली कविता

हैं और उपयोग कर सकती हैं। छाता या बर-
 सती बेचने वालों के लिए तो अज्ञेय लिख
 ही गये हैं : 'कल मैंने बसंत में वर्षा को
 रखा। छाता एक, एक बरसाती। साथ-
 साथ जाते बतियाते।' आंखों के डाक्टर
 भी धर्मवीर भारती के अंधायुग से
 ले सकते हैं; क्योंकि 'वह कथा ज्योति
 है अंधों के माध्यम से'। खाद बेचने
 की कंपनियां तो जगदीश गुप्त पर
 ध्यान देंगी—खासकर उस गीत पर
 उन्होंने कछार के खेतों का वर्णन
 किया है। 'हरे खेत कछार के। कुछ धार
 इस पार के, कुछ धार के उत पार के।
 खेत कछार के।' मिल्क फूड वाले
 जगदीश गुप्त का चित्र भी छाप सकते
 हैं और कह सकते हैं कि हमारा मिल्क
 बाइये और जगदीशजी जैसे तगड़े
 बने। कुछ देर हो गयी वर्ना
 'सोप' और 'विकस इनहेलर' वाले
 चित्र भी छाप सकते थे और
 कह सकते थे कि पंतजी के काव्य सौंदर्य
 उनके साबुन और इनहेलर में
 है। जैसे ही उन्होंने पीयर्स सोप छोड़ा
 सितारों

वैसे ही वे लोकायतन लिखने बैठ गये।

मेरा निश्चित मत है कि 'विज्ञापन
 कविता' चलेगी और खूब चलेगी। वैसे
 भी विज्ञापन और कविता में जो अंतर था,
 वह भी धीरे-धीरे मिटता ही जा रहा है।
 यह उचित ही होगा कि इस शोध-प्रबंध
 का अंत मैं एक विज्ञापन कविता से ही करूं।
 यह विज्ञापन रंग बनाने वाले एक कारखाने
 ने दिया है और 'हर ऋतु के रंग। इम-
 लशन के संग' का नारा बुलंद करते हुए
 यह कहता है :

खेल खेल में पूछ बैठी राधा
 हमारे मिलन में बनती है जो बाधा
 वो कितनी सुंदर है? एक सवाल सादा
 जिसमें ईर्ष्या थी आधी और विश्वास आधा
 फेर लिया मूह, लाल-पोला हो उठा श्याम
 युग समान दिन तपता गया और तपी शाम
 झुलस रहे थे दोनों लिये मन में संग्राम
 युगों-युगों से चलता आधा ग्रीष्म जिसका नाम
 बात-बात में रूठे हैं, श्याम कहाँ या राम
 विश्वास है मेरा, फिर बरसेगा घनश्याम
 —सी. डी. ए. (वायुसेना) का दफ्तर,
 १०७ राजपुरा रोड, देहरादून



गांधीवाद गलत हो तो उसका अवश्य ध्वंस हो। सत्य और अहिंसा कालजयी हैं।
 गांधीवाद अगर किसी संप्रदाय विशेष का ही नाम हो तो उसका ध्वंस होना ही उचित है।
 ऐसा किन्हीं के बाद अगर मुझे पता चले कि जिंदगी में मैंने जो कुछ किया, वह महज संप्रदाय बन
 काफ़ी बुद्धिमानों इसके लिए मुझे गहरा दुःख होगा। हमें मूक भाव से अपना कार्य करना चाहिये।
 महादेवी के बने आपको गांधी का अनुयायी न बताये। खुद मैं ही अपना अनुयायी बन पाऊं,
 जल। प्रिय गांधीजी, मैं स्वयं ही अपने आपका कितना कमजोर अनुयायी सिद्ध हुआ हूँ, यह बात
 वाली कविता में जानता हूँ। मैं अपनी मान्यताओं के अनुसार व्यवहार नहीं कर पाता। आप सब मेरे
 अनुयायी नहीं, बल्कि सहयात्री हैं, सहशोधक हैं, साथी हैं।

—महात्मा गांधी

तुलसी :

अनेक रोगों की

एक चमत्कारिक औषध

□ सदाजीवित शाल बर

अपनी उपमा को स्वयं अनुपम होने से सहन न कर सकने वाली तुलसी 'विष्णु प्रिया' तो है ही, अनेक साधारण तथा महारोगों का निवारण करने वाली चमत्कारिक महा-औषधि भी है। तुलसी के सेवन से किन-किन रोगों का किन-किन विधियों से उपचार संभव है, पढ़िये इस ज्ञानवर्धक और उपयोगी लेख में।

आठ साल का एक रोगी इष्ट्रा टेकियल कैंसर से पीड़ित था। शल्यक्रिया और कोबाल्ट बम के उपचार के बाद भी जब उसे कोई लाभ नहीं हुआ, तो डाक्टरों ने उसके रोग को 'असाध्य' घोषित कर दिया।

रोगी ने फिर भी आशा नहीं छोड़ी। एक और विशेषज्ञ के पास गया। इस डाक्टर ने कहा, 'यकृत खराब हो रहा है, और यक्ष्मा ने भी अपना प्रभाव दिखाना आरंभ कर दिया है।'

सब ओर से हताश और निराशान्ध रोगी, एक वैद्य की सलाह पर तुलसी की शरण में आया। पांच सप्ताह तक तुलसी का इलाज करने के बाद, वह इतना स्वस्थ हो गया कि एक मील तक चल सके।

कैंसर के ही एक अन्य रोगी का घाव रेडियम-चिकित्सा और शल्यक्रिया के

बाद भी भरने में नहीं आ रहा था। स ओर से निराश होकर यह रोगी भी तुलसी की शरण में आया। तुलसी के इलाज के उसका घाव भरना आरंभ हो गया।

योनि-कैंसर से पीड़ित, एक मर्यादित वर्षीय महिला को भी डाक्टरों ने रेडियम और कोबाल्ट-चिकित्सा द्वारा रोग-मुक्त न होता देखकर, असाध्य रोगियों की सूची में शामिल कर लिया। तुलसी का इलाज ने ऐसा चमत्कार दिखाया कि दस दिन के इलाज के बाद, उनका रक्तस्राव और कष्ट काफ़ी कम हो गया और इलाज के पचास दिन बीत जाने पर, कष्ट और रक्तस्राव तो बिल्कुल बंद हुए ही, श्लेष्मा और रिस्ता भी ठीक हो गया।

इन तीन उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकालना तो बड़ा कष्टकल्पित होगा कि



चित्र : चंदुलाल सांकला

से कैंसर का इलाज संभव है, पर
मानने में कोई हर्ज नहीं दिखायी
कि कैंसर के असाध्य हो जाने पर
तुलसी का उपचार उसके कष्टों और
को को काफ़ी कम कर देता है।
कैंसर के अलावा अन्य कष्टदायक और
माने जाने वाले रोगों में भी
तुलसी के सेवन से आश्चर्यजनक लाभ
हो पाया है।
तुलसी के उपचार से हृदयरोग से
कई रोगियों का उच्च रक्तचाप
नियंत्रित हुआ, हृदय की दुर्बलता कम
हो गई, और रक्त में चर्बी की वृद्धि कम
हो गई। ऐसे कुछ रोगियों को
पहाड़ी स्थानों पर जाने की मनाही

थी, पर तुलसी के उपचार के बाद
वे मजे से पहाड़ी स्थानों पर रहने
गये।

पचास वर्ष का एक रोगी श्वास रोग
(Asthma) वृहदांत्र-शोथ (Colitis)
और सितकोशातिवृद्धि (Leucoeytosis)
इन तीन गंभीर रोगों से पीड़ित था। उसकी
आंते भी खराब हो गयी थीं। तुलसी के
इलाज से उसके स्वास्थ्य में बड़ी तेज़ी से
सुधार हुआ।

जीर्ण अर्धशिरपीड़ा (Chronic mig-
raine) का इलाज डाक्टरों के पास
नहीं है, पर तुलसी के पास है। तुलसी
के नियमित सेवन से यह व्याधि क्रमशः
दूर होने लगती है।

सबको समानरूप से लाभकारी

तुलसी पुरुषों, महिलाओं और बच्चों तीनों के रोगों में समानरूप से लाभकारी है। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि इसके सेवन से लाभ ही-लाभ होता है, हानि बिलकुल नहीं। कोई उत्तर-प्रभाव हुआ हो, ऐसा कभी सुनने में नहीं आया।

सात साल की एक लड़की को दवाओं से प्रत्यूजता (एलर्जी) थी। कोई दवा लेते ही, उसके सारे शरीर पर नीले दाग हो जाते थे, और खून कम होने लगता था। काफ़ी इलाज किया गया, पर कोई लाभ न हुआ। तुलसी के इलाज से उसकी यह एलर्जी बिलकुल दूर हो गयी।

रक्तक्षीणता को मिटाने के लिए तुलसी गंभीर दवा है। उसके सेवन से रक्तकणों में बड़ी तेजी से वृद्धि होती है।

तुलसी के इलाज से हर प्रकार के घाव बड़ी तेजी से भरने आरंभ हो जाते हैं, और टूटी हुई हड्डी भी बड़ी जल्दी जुड़ जाती है।

जुकाम कैसा भी हो, सामान्य या एलर्जी वाला, तुलसी उसे और उसके कारण आने वाले बुखार को प्रायः कुछ ही दिनों में दूर कर देती है। साधारण जुकाम और बुखार को दूर करने के लिए, दिन में दो-दो या तीन-तीन घंटे से सोंठ, कालीमिर्च, तुलसी और गुड़ का काढ़ा बनाकर चूल्हे से उतारकर उसमें नींबू का रस डालकर पीना चाहिये। इस काढ़े में दूध का प्रयोग वर्जित है। इसे पीकर कम्बल ओढ़कर सो जायें।

नवरीत

यह काढ़ा मलेरिया भी दूर करता है।

एक प्रौढ़ को जन्म से एलर्जी वाला जुकाम था। तुलसी के सेवन से वह ठीक हो गया। एक युवक को अनेक वर्षों से हर महीने ६-७ दिनों के लिए बुखार आता था। उसने तीन महीने तक उपरोक्त दवा का प्रयोग किया। बुखार आना बिलकुल बंद हो गया।

एक सज्जन पंद्रह वर्षों से सिरदर्द से पीड़ित थे। तुलसी के सेवन से उनका सिरदर्द सदा के लिए जाता रहा।

वजन कम हो या ज्यादा, तुलसी के सेवन से शरीर स्वस्थ और मुझल होता है। मंदाग्नि, बद्धकोष्ठता, गैस, अम्लता आदि रोगों के लिए तुलसी रामदास औषधि सिद्ध हुई है।

तुलसी द्वारा अल्पबुद्धिता का उपचार

एक लड़का बचपन से ही मनावेकता का शिकार था। सोलह वर्ष तक उसने इलाज होते रहे, पर उसकी अल्पबुद्धिता दूर नहीं हुई। तुलसी के इलाज से, दो महीने में ही उसमें बुद्धिमत्ता के लक्षण दिखायी देने लगे। जैसे-जैसे इलाज होता है, वह अधिक बुद्धिमान होता जाता है।

वैद्यों के अनुसार यदि दांत निकलने से पूर्व, बच्चे को तुलसी का सेवन कराया जाये, तो उसके दांत आसानी से निकलें हैं, और दांतों के निकलते समय, कोई कष्ट नहीं होता।

बच्चों को जुकाम, नज़ला, कफ़, ज्वर

करता है।
एलर्जी वाले
से वह ठीक
नेक वर्षों में
बुखार आता
उपरोक्त बड़े
ना बिलकुल

रक्तियां या रट्टियां होने लगे, तो उन्हें
तुलसी देने से लाभ होता है।
रक्तियां, संघिशोथ और स्नायुओं के
द्वारे में तुलसी के सेवन से तत्काल सुधार
दिखायी देने लगता है, और दीर्घ उपचार
बहु स्थायी रूप से दूर हो जाता है।

गुर्दे के रोगों में भी तुलसी का प्रयोग
बहु लाभप्रद सिद्ध हुआ है। एक रोगी
गुर्दे की पथरी, तुलसी के छह महीनों
इलाज के बाद, बूरा होकर बाहर निकल
जाता। रोगी को तुलसी के साथ दही के

आम पर शुद्ध मधु दिया गया था, क्योंकि
उसके माफ्रिक नहीं आ रहा था।

बड़े गुर्दे का काम मंद हो जाता है

क्योंकि मूजन आ जाती है, और कभी-कभी

काम हो जाता है, और बड़े कण्ट के

निकलता है। इससे सारा शरीर

रूढ़ता है। तुलसी के इलाज से

जितनी दूर होती ही है, और पेशाब भी

जो मात्रा में और स्वाभाविक ढंग से

निकलने लगता है।

जिन तरुणों को साइनस की तकलीफ

होती है, उन्हें वर्षों में सर्वोत्तम काम हो

जाता है। डॉक्टरों के पास इस रोग का

उप ही इलाज है—शल्यक्रिया। एक ऐसे

रोग को, जो डॉक्टर की सलाह मानकर

शल्यक्रिया कराने जा ही रहा था, तुलसी

के सेवन दो सप्ताह तक कराया गया।

इलाज काफ़ी था, उसे शल्य-

क्रिया से दूर रखने और उसकी साइनस की

कठिनाई दूर करने के लिए।

सफ़ेद दाग या कोढ़ के अनेक रोगियों
को तुलसी के उपचार से अद्भुत लाभ हुआ
है। उनके दाग कम हुए, और त्वचा
सामान्य बनती गयी।

प्रांस्टेट ग्रंथि के कण्ट को दूर करने में
भी तुलसी सहायक हुई है।

तुलसी का नियमित सेवन करने वाले
वृद्ध व्यक्ति दुर्बलता अनुभव नहीं करते,
और अपने को शक्ति और उत्साह से भरा
पाते हैं। उनकी रोग-निरोधक शक्ति भी
बढ़ती है।

आंख आने पर, या आंखों के दुखने
पर, तुलसी का प्रयोग तत्काल लाभ
दिखाता है।

स्त्रियों का रक्तस्राव बंद न होने पर
तुलसी का सेवन रक्तस्राव को क्रमशः कम
करके, बिलकुल बंद कर देता है।

तुलसी का सेवन कैसे ?

स्वाद में तीखी, कड़वी और थोड़ी-सी
कसैली, सुगंधित और रुचिवर्द्धक तुलसी
को आयुर्वेद में वात-कफ का नाश करने
वाली, विषघ्न, रक्तविकार, कोढ़, चर्म-
रोग, मूत्रकृच्छ, पसली दर्द को दूर करने
वाली माना गया है।

तुलसी के इलाज का तरीका बहुत
आसान है। बच्चों के लिए पांच से पच्चीस
तक पत्ते पर्याप्त होते हैं। वयस्कों को
उनके रोग, स्वभाव, क्षमता और ऋतु
के अनुसार (शीतकाल में अधिक और
ग्रीष्म काल में कम) पच्चीस से लेकर
सौ तक पत्ते दिये जाते हैं। पत्तों को साफ़

पत्थर पर पीस लेना चाहिये, या उनका रस प्रयोग में लाया जा सकता है। रोगी की प्रकृति के अनुसार इसे आधे से लेकर एक तोले तक लिया जा सकता है। मंजरी भी एक ग्राम तक साथ में ली जा सकती है। तुलसी की मंजरी पेशाब साफ़ करती है, और शक्ति बढ़ाती है। ताज़ी पत्तियां न मिलें, तो सूखे पत्तों के चूर्ण से भी काम चलाया जा सकता है।

यहां यह बताना आवश्यक है कि श्यामा (कृष्ण) और श्वेता दोनों प्रकार की तुलसियों के गुण समान होते हैं। श्यामा काले पत्तों वाली होती है, और श्वेता हरे पत्तों वाली।

तुलसी का सेवन दही (रोगी की क्षमता के अनुसार पचास ग्राम से लेकर तीन सौ ग्राम तक) या शुद्ध मधु या शुद्ध गुड़ के साथ करना चाहिये। दूध का प्रयोग तुलसी के साथ भूलकर भी न किया जाये।

तुलसी की दवा सुबह को शौच-मंजन के बाद, कुछ भी खाने-पीने से पहले, दिन में साधारणतया एक ही बार ली जाये। लेकिन, कष्ट अधिक हो, तो दिन में दो-तीन बार उसका सेवन किया जा सकता है।

बवासीर के रोगियों को चाहिये कि वे तुलसी और काली मिर्च का प्रयोग एक साथ न करें।

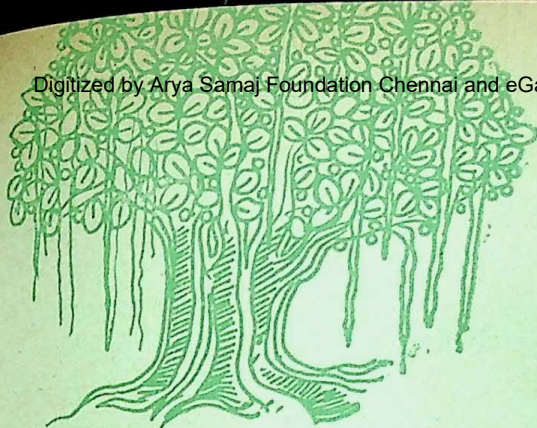
जो लोग चाय और तम्बाकू के व्यसनो से मुक्त होना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वे चाय या तम्बाकू के स्थान पर

तुलसी के काढ़े का, जिसके बनाने की विधि ऊपर दी गयी है, प्रयोग करें, तुलसी के साथ काली मिर्च चबायें। इस प्रकार तुलसी के सेवन से शराब की आदत से भी छुटकारा मिल सकता है।

तुलसी का उपचार तब और अधिक प्रभावशाली बन जाता है, जब उसके साथ प्राणायाम, योगासन आदि का प्रयोग भी किया जाये। तुलसी के इलाज के साथ प्राकृतिक चिकित्सा और होम्योपैथी में लाभदायक होती है। तुलसी का सेवन करते समय भगवान का स्मरण करने से भी उसका प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है। ऐसा उन लोगों का कथन है, जिन्होंने तुलसी का प्रयोग अनेक रोगों के लिए चमत्कारिक औषधि के रूप में किया है।

अपने नाना औषधीय गुणों के कारण तुलसी नाना नामों से प्रसिद्ध है। उत्तम रस के कारण, उसे 'सुरसा' कहा जाता है। प्रत्येक गांव में मुलभता से उपलब्ध होने के कारण, उसे 'मुलभा' और 'ग्राम' कहा जाता है। चूंकि उसमें बहुत मंत्रिणी होती है इसलिए उसे 'बहुमंजरी' कहा जाता है। उसे 'देव-दुंदभि' भी कहा जाता है। क्योंकि वह विद्वानों को दुंदभि जैना देती है। अनेक व्याधियों का नाश करने के कारण उसे 'शूलघ्नी' भी कहते हैं।

(श्री नागजी भाई पटेल, डॉ. ओम्प्रकाश सांडेसरा, अहमदाबाद, और श्री कान्हो महादेविया, बम्बई द्वारा वितरित साहित्य पर आधारित)



श्रीमती राज खोसला का एक सूचक लेख

परम प्रज्ञा का वटवृक्ष : उपनिषद्

उपनिषदों की ओर आर्य जाति से बाहर
हूँ तो किसी की दृष्टि गयी, तो औरंग-
जे के बड़े भाई प्रभु भक्त, शाहजहाँ
को चिन्ता की। वह बड़ा विद्वान था,
अनेक ग्रंथों से उसे बड़ा प्रेम था। कुरान,
तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों के पढ़ने
से वह उसे शांति नहीं मिली तो उसे
उपनिषद्, जो हिंदुओं के ग्रंथ
में शांति मिलती है। उसने बनारस
के विद्वानों से उपनिषद् सुनना आरंभ
किया। सुनते-सुनते उसके मन में विचित्र
उत्पन्न हुई और उन्हें स्वयं पढ़ने के
लिए उसे संस्कृत सीखी। उसने स्वयं पढ़ा,
उस पर विचार किया तो उसकी
मन में नवीन ज्योति उत्पन्न हुई। उसने
ऐसे सुंदर ग्रंथों का अनु-

वाद फारसी भाषा में होना चाहिये। यह
निश्चय करके उसने स्वयं ही १६५७ से
लेकर १६७४ तक (सत्रह वर्ष तक) ५२
उपनिषदों का अनुवाद फारसी भाषा में
किया। इसके १०० साल तक किसी
अन्य भाषा में उपनिषदों का अनुवाद नहीं
हुआ।

सन १७५७ में बंगाल के नवाब शुजा-
उद्दौला के दरबार में मिस्टर जटियल नाम
का फ्रांसीसी राजदूत आया। उसने फारसी
में अनूदित उपनिषद् सुने और खरीदकर
उन्हें फ्रांस ले गया और वहाँ एक सज्जन
बनियर को दिये। उस पर भी जादू
हुआ। उसने उपनिषद् का कुछ भाग पेरिस
के बड़े पादरी डूपारन को सुनाया। उसने
सुना तो निश्चय किया कि मैं भी इन्हें

संस्कृत भाषा में पढ़ूंगा। वह पेरिस से भारत आया। यहां चौदह वर्ष तक संस्कृत पढ़ता रहा और संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने के बाद उपनिषदों को पढ़ा और १८०१ ई. में उनका अनुवाद फ्रेंच भाषा में किया।

इस फ्रेंच भाषा में लिखे उपनिषद् अनुवाद को जब १८१२ में जर्मनी के महान दार्शनिक शोपेनहावर ने पढ़ा तो वह चकित हो गया। उपनिषदों के संबंध में उसने कहा कि 'संसार में किसी भी पुस्तक का स्वाध्याय इतना लाभ देने वाला और आत्मा को ऊपर उठाने वाला नहीं, जितना उपनिषदों का है। मेरी आत्मा को उपनिषदों से ही शांति मिली है और मरने के पश्चात् भी इन्हीं से शान्ति मिलेगी।'।

मैक्समूलर ने जब उपनिषदों को देखा तो लट्टू हो गया। उपनिषद् पढ़ने के लिए वह जर्मनी से पेरिस पहुंचा। वहां फ्रेंच भाषा में उपनिषदों को पढ़ा। फारसी में भी पढ़ा। और बिना किसी शिक्षक के उसने लिखा—'यह उपनिषद् उन लोगों की बुद्धि का फल है, जो महान बुद्धि वाले थे। हमारा ईसाई-मत उनके समक्ष कभी जड़ नहीं पकड़ सकता। भारत की यह विद्या योरोप भर में वह निकलेगी और हमारे ज्ञान तथा विचारों में परिवर्तन लायेगी', और तब अपनी पुस्तक—'India what can it teach us.' उन्होंने लिखी। मैक्समूलर ने आगे यह भी लिखा :

नवनीत

‘मनुष्य मृत्यु के भय से बचने के लिए मृत्यु के लिए पूरी शक्ति से तैयार हो जाये तो मेरी सम्मति में उपनिषदों का अध्ययन करने के अतिरिक्त दूसरा कोई भी श्रेष्ठ मार्ग नहीं। मैं उपनिषदों का बहुत ऋणी हूं। ये उपनिषदों के सारे संसार के धार्मिक साहित्य में आत्मा उन्नति के लिए सदा बहुत उच्च और समदरणीय स्थान पर आसीन रहे हैं और सदा रहेंगे।’

स्वीडन के एक विद्वान पाल ड्यूक ने उपनिषदों के विषय में लिखा—उपनिषद् मनुष्य की मेधा का अनमोल फल हैं। जीवन और मृत्यु के समय नहीं, केवल दुख और कष्ट के समय नहीं, अपितु हर समय उनसे ऐसी शांति मिलती है जैसी और कहीं भी नहीं। भारत के लोगों के पास आत्मज्ञान और आत्मशांति का ऐसा कोष है, जो संसार में और किसी के पास नहीं। मैं जब भी भारत की यात्रा के लिए गया तो बहुत-सी लाभप्रद बातें मुझे मिलीं। परंतु सबसे लाभदायक और सबसे महत्त्वपूर्ण हैं पवित्र भाषा में ऋषियों का ज्ञान देनेवाले उपनिषद्।’

ज्यूकोलेट जो पांडीचेरी के गवर्नर के उन्होंने भी कुछ ऐसी बात कही। ऐनोविंसेंट भी उपनिषदों को पढ़कर लट्टू हो गये और

मिस्टर ह्यूम ने अपनी पुस्तक *Doctrines of Buddhism* में लिखा :

‘मैंने अरस्तू, सुकरात, अफलातून और कितने ही अन्य विद्वानों के ग्रंथ बहुत

आन से पड़े हैं। परन्तु जैसी विद्या इस जगत् में मंने देखी और जितनी शांति जितनी पानी वैसी तो और किसी भी स्थान पर मुझे नहीं मिली।

श्री जी. आर्क ने अपनी पुस्तक 'Is God knowable' में लिखा है : 'उपनिषदों की शिक्षा अत्यंत ऊंची, सुंदर और ऐसे सत्य से भरपूर है, जो मनुष्य के मन पर चित्रित हो जाती है, क्योंकि जब मनुष्य संसार के दुखों और चिन्ताओं से मुक्त होता है, तब इनके अतिरिक्त उसके मन और आत्मा को शांति देने के लिए

किसी कोई भी साधन उसे नहीं मिलता, जो उसे सहायता दे सके। उपनिषदों का पहला उद्देश्य मर, जो उनके स्वाध्याय से प्राप्त होता है, वह यह कि दृढ़ संकल्पवाला व्यक्ति

आत्मशांति का और किसी के हाथ से प्राप्त की जा सकती है।

लाभप्रद और भवदायक और पा में ऋषि

के गर्व को हटा देती हैं। ऐसी विद्या टूटती है। पुस्तक

फलानुसार के ग्रंथ

बार-बार मनन और निदिध्यासन करने से खुलता है। बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी इसका ज्ञान पाने के लिए बड़े-बड़े तपस्वी ज्ञानी गुरुओं की उपासना करते थे। वे वैराग्य, निष्ठा और व्रत को धारण करके ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करते थे। इससे यह उपनिषद् कहाती है (उप=पास, निषद्=वैठना) गुरु के पास बैठकर इनके रहस्य का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। इनके अतिरिक्त ब्रह्मज्ञान के बल से अल्पज्ञानी जीव अपने परमगुरु ज्ञानमय परब्रह्म के समीप पहुंचता है।

इस कारण भी गुह्य-ज्ञान देने वाले मंत्रों को उपनिषद् कहा जाता है। सब उपनिषदों में मुख्य 'ग्यारह' उपनिषद् हैं।

-१/१२ सर्वप्रिय विहार, नई दिल्ली-१६

राजी हों तो....

टैक्सी रुक गयी।

एक सुप्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी ने पूछा—'कितने रुपये हुए?'

मीटर पढ़ते हुए टैक्सी-ड्राइवर बोला—'दस रुपये चालीस पैसे.....'

तभी टैक्सी ड्राइवर क्रिकेट खिलाड़ी को पहचानकर बोला—'आप....आप....।'

'हां....हां...., आपने सही पहचाना।' खिलाड़ी ने गद्गद् स्वर में कहा—'आप

तो मेरे आपको किराये के बदले आटोग्राफ दे सकता हैं....।'

टैक्सी ड्राइवर कुछ क्षणों के लिए विचार में पड़ गया—'बादशाह, आपने भी ठीक पहचाना। आटोग्राफ इकट्ठे करने का शौक मुझे है; किंतु पिछले मैच में आप बिना एक पैसे के आटोग्राफ दे चुके थे। वैसे आपका पुराना रेकार्ड अच्छा है। उसके आधार पर मैं आटोग्राफ के लिए टैक्सी भाड़े के चालीस पैसे छोड़ सकता हूं राजी हों तो

—सत्य स्वरूप दत्त, जमशेदपुर

डॉ. शिवशंकर त्रिपाठी की उद्बोधन कथा

जब मरुस्थल में अमृत के सोते फूटे

कश्मीर नरेश मुक्तापीड दिग्विजय-यात्रा के लिए निकले। साथ में बहुत बड़ी सेना चल रही थी। कश्मीर का रक्त-ध्वज दूर से फहराता दिखायी पड़ता था। भारतीय अथवा अभातीय जो भी नृप देखता आगे से आकर उसकी अधीनता स्वीकार कर लेता। सीमा प्रदेश के राजाओं ने दिग्विजय-यात्रा सुनकर ही साहस त्याग दिये। कश्मीरी सेना को रोकने वाला कोई नहीं मिला। मुक्तापीड विशाल हाथी पर सवार था। उसके पीछे सैन्य-दल बढ़ता रहा।

महावत ने अचानक हाथी को रोक दिया। गज पर बैठे मुक्तापीड ने देखा—एक क्षत-विक्षत पुरुष मार्ग में पड़ा था। उसके दोनों हाथ और नाक कटे हुए थे। उदार हृदय कश्मीर नृप द्रवित हो उठे। पूछा—‘भद्र, तुम्हारी इस दुर्दशा का कारण क्या मैं जान सकता हूँ? तुम कहां के निवासी हो तथा मेरे गज के आगे कैसे आ गये?’

‘राजन्, मेरी इस स्थिति का कारण आप हैं—कश्मीरनृपति मुक्तापीड।’ पुरुष ने कहा।

मुक्तापीड को पुरुष का कथन सुनकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। सैन्यदल जहां था

वहीं रुक गया। मंत्री, सेवक तथा राज्यकर्मचारी उस विक्षतदेही पुरुष के आस-पास एकत्र हो गये। पुरुष शांत था। उसके नेत्र मानो करुणा की याचना कर रहे थे।

वह बोला—‘पृथ्वीपति, आप वीर और धीर पुरुष हैं। आपको मेरे कथन में कति भी भ्रम अथवा संदेह नहीं करना चाहिए। मेरे इस कथन में रंचमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है। मैं सत्य कह रहा हूँ, मेरी दुर्गति आपके ही कारण हुई है। मैं सिन्धु सिन्धु के समीप स्थित राज्य का मंत्री हूँ।’

‘क्या कहा? तुम राज्य के मंत्री हो!’

‘पृथ्वीपते, मेरा दुर्भाग्य कहें, अब विवेकशून्य हमारे नरेश की अदूरदर्शिता में तो आप नामशेष रहा।’ पुरुष ने कहा।

‘मंत्रिन्, मैं पूरा-पूरा वृत्तांत जानना चाहता हूँ। तुमको किसने और किस कारण विरूप किया?’ मुक्तापीड ने पूछा।

‘प्रजानाथ, मेरे नृपति ने, जिसकी सेवा करता चला आ रहा था, मेरी दुर्दशा बना दी है। कारण भी सुन लें—मैंने नरेश को उनकी तथा सारी प्रजा के हित की कामना से सलाह दी कि कश्मीर नृपति मुक्तापीड का स्वागत करने चाहिये। मैंने हितवचन कहे, जो हमारे

फूटे

क तथा अ
देही पुत्र
रूप शांत वा
की याचना क

आप वीर अ
कथन में तनि
करना चाहि

अतिशयोक्ति
हूं मेरी क
हैं। मैं सिक्का
का मंत्री हूं

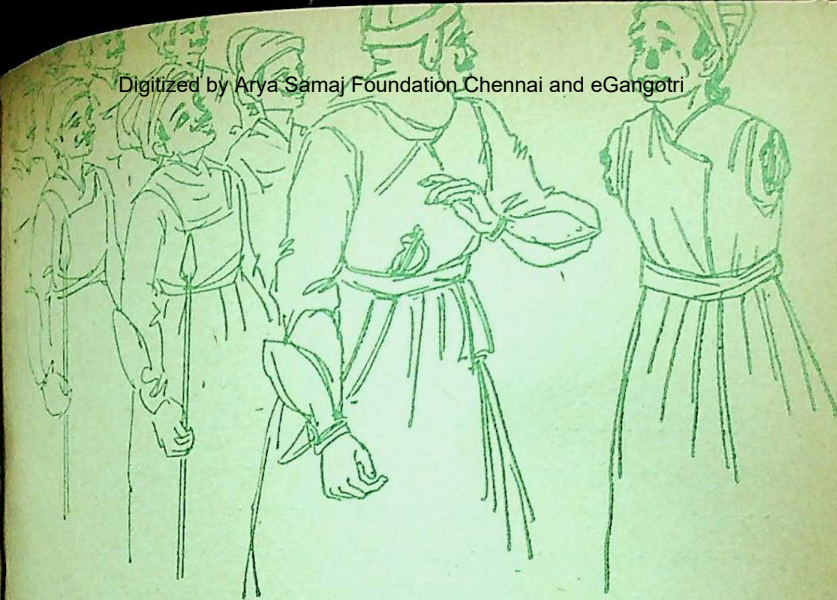
कहें, अब
अद्वैतवादी
पुरुष ने कहा

वृत्तांत जान
र किस कार
पूछा।

ने, जिसकी
था, मेरी क
भी सुन तें

सारी प्रजा
ने कि कश्मीर
वागत कर

हे, जो ह
१५१



को को अहितकर लगे। क्रोधावेश म
मेरे हाथ तथा नाक कटवा लिये।
देश से निष्कासन का आदेश दे
। पुरुष ने बताया।

अमानुषिक और अनैतिक कृत्य
में आश्चर्य में पड़ गया हूं।' नृपति
मुक्तापीड के चेहरे पर क्रोध के भाव उभरने
ले।

दयानिधे, ऐसा स्वप्न में भी आभास
था कि मेरे नरेश के मन में कश्मीर-
रेश के प्रति इतनी दुर्भावना है कि नाम

सुनना गवारा नहीं। मैंने तो अपना
प्रस्ताव इस दृष्टि से रखा था कि
करके आश्रय में हमारे देश की प्रजा

सुखेंगे। क्या पता था कि हित-चिंतन
के बने मेरी दुर्दशा कर दी जायेगी।'
पुरुष ने कहा।

विश्व पुरुष की संयत वाणी ने कश्मीर-

नृप पर पूण प्रभाव डाल दिया। उसको
उन्होंने अपना परम हितैषी सेवक मान
लिया। उसकी दुर्दशा का कारण स्वयं
को जानकर प्रतिज्ञा के स्वर में 'तुम्हारी
दुर्दशा करने वाला दंडित होगा, मित्र।'
मुक्तापीड ने घोषणा की और कहा,
'राजवैद्य द्वारा इस जन की अत्यंत साव-
धानी के साथ चिकित्सा करायी जाये।
हितकारी मित्र को शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ
होना आवश्यक है।'
०००

सिकता सिंधु के निकटवर्ती राज्य का
मंत्री अपनी निपुणता, वाक्संयम तथा
विनम्रता के बल कश्मीर नरेंद्र सहित सारे
सैन्य-दल का विश्वासपात्र बन गया।
वह अब कश्मीर-सेना के साथ-साथ चलने
लगा। यात्रा में वह प्रयास करके मुक्तापीड
के निकट ही रहता। निर्जन मार्ग में

अवसर पर पाकर उसन पुनः कहा :

‘कश्मीरनाथ, मैंने इस नश्वर देह की रक्षा कुछ प्रयोजनवश की है। मेरे हृदय में वैर शोधन की धुंधली प्रकाश-रेखा संजोयी हुई है। मैं वस्तुतः हाथ और नाक काटने वाले से प्रतिशोध की इच्छा रखता हूँ।’

‘मंत्रिन्, इतनी उतावली क्यों ? आशा के बल पर विश्वास पला करता है।’

‘राजन्, तब मैं अपमान-भार से दबे इस शरीर का त्याग कर दूंगा।’ पुरुष ने पुनः नृपति की मूकभाव से कृपा चाही।

‘हम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए तुम्हारी प्रतिशोध भावना की रक्षा में तुम्हारे स्वामी के राज्य की सीमा में पहुंचना चाहते हैं। क्या तुम सुगम मार्ग बता सकोगे ?’ मुक्तापीड ने उससे पूछा।

‘पृथ्वीपति, मेरे स्वामी के राज्य तक पहुंचने के लिए लगातार तीन मास तक चलना पड़ेगा। परंतु मैं शीघ्र पहुंचने का मार्ग भी जानता हूँ। आप कृपाकर अपने सैन्यदल को निर्देश दें कि पंद्रह दिनों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था कर लें। जिससे कठिनाई न हो।’

‘पंद्रह दिनों के लिए पीने के पानी का प्रबंध !’ कश्मीराधिप ने विस्मय में पड़कर प्रश्न किया।

‘हां, उदारहृदय, तभी हम बालुका-समुद्र को पार कर पायेंगे।’

०००

‘मंत्रिन्, हमारी सेना ने चलते-चलते

पंद्रह दिन का समय बिता दिया। पास जो जल का भंडार था वह भी मर चुका हो चला। बताओ हमारे पहुंचने का अब कितनी दूर है ?’ मुक्तापीड उससे पूछा।

‘राजन्, वह स्थान तो अभी दूर है। चलते रहना चाहिये। हमें है कि दो दिन और चलने के बाद अभीष्ट स्थान पर पहुंच जायें।’

‘मित्र, हमने तो तुम्हारे कहने पर विश्वास पर इस मरुभूमि की तह तक चलने का निर्णय लिया था। इस पर न जल है और न कोई वनस्पति आ रही है। हमारी सेना, सेना के हाथी सभी पानी के लिए तड़पने लगे हैं। कहते हुए मुक्तापीड चिंतित हो

विरूप पुरुष के संकेतानुसार कश्मीर की सेना साहस बटोरकर दो दिन और मार्ग पर चलती रही। फिर भी जल की लक्षण दिखायी न दिये। सैनिकों का हृदय हताश हो गया। स्थिति की गंभीरता को देख कश्मीराधिप अधीर होने लगे। उन्होंने पुरुष को पुनः संबोधित किया।

‘तुम्हारे संकेतानुसार सेना दो दिन तक मार्ग नापा पर अभीष्ट स्थान न मिल सका। हमारी सेना अब चलने में असमर्थ हो रही है। प्यास उसे व्याकुल करने लगी है। तुम्हारे विश्वास, तुम्हारे मृदु-व्यवहार के कारण आज स्वयं और हमारी सेना घोर विपत्ति में पड़े गये हैं।’

उपराष्ट्रपति हिदायतुल्लाह की आत्मकथा का प्रसंग

मेरे कारण गांधीजी के आश्रम को सरकार हस्तगत न कर सकी

आर्नोल्ड हीनेमान द्वारा प्रकाशित 'माय ओन वाँसबेल' भारत के वर्तमान उप-राष्ट्रपति श्री एम. हिदायतुल्लाह की रोचक और उपाख्यान-प्रधान आत्मकथा है। यहां प्रकाशित इसके कुछ अंशों के माध्यम से आपको न केवल उनके व्यक्तित्व जीवन में झांकने का अवसर मिलेगा, अपितु यह भी पता लगेगा कि आरंभ से ही वे कितने न्यायनिष्ठ धर्म-निरपेक्षता में आस्था रखने वाले और देशभक्त रहे हैं।

अपने स्कूली दिनों में एक बार एक नाग ने मुझे अपनी लपेट में ले लिया था। मैं सोच भी न पाया था कि मैं क्या करूं कि अगले ही क्षण, वह मेरे शरीर से फिसल कर चला गया।

मामला वहीं खत्म नहीं हो गया। हिंदू पुरोहित बुलाये गये। बड़े पुरोहित ने सारी घटना सुनकर कहा, 'नाग माह-राज ने बच्चे को अपनी गिरफ्त में लेकर भी उसे काटा नहीं, यह इस बात का संकेत है कि बच्चे का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है, और वह बड़ा होकर नाम कमायेगा।'।

इसके बाद, एक कड़ाही में सरसों का तेल भरा गया, और मुझसे उसमें अपने चेहरे की परछाईं देखने को कहा गया। जाने से पहले, पुरोहितों ने मेरे परिवार के सदस्यों को सुझाव दिया कि वे नाग की सोने की प्रतिमा बनवाकर,

मंदिर में भेजें।

स्कूल में सौ गज की दीड़ हुई, तो वे सबसे अंत में था।

फुटबाल की बाल मुझे बहुत भाती लगती थी, और इसलिए उसे मैं दूर तक नहीं धकेल पाता था। क्रिकेट की बें मुझे बड़ी कड़ी और कठोर लगती थी।

मेरे परिवार के सदस्यों के संबंध में हिंदू पुजारियों और पुरोहितों से कांझ घनिष्ठ थे। हम लोग घर में दिये जलकर दिवाली जैसे त्योहार तो धूमधाम से मनाते ही थे, हिंदुओं के बहुत से रीति-रिवाजों का पालन भी करते थे। हमारे घर में गोमांस से उतना ही परहेज किया जाता था, जितना सूअर के गोष्ठ से।

स्कूल से आगे की पढ़ाई मैंने नागपुर के हिस्लाप कॉलेज में पूरी की। वह का वातावरण अत्यंत सौहार्दपूर्ण था, जो

ग
को
ी
मान ज्य-
आत्मक्या
व्यक्तिगत
स से ही वे
त रहे हैं।
ड हुई, तो
बहुत भारी
से में दूर उर
क्रेट की रें
लगती थी
में के संब
तों से का
दिये जता
धूमधाम से
हुत से रीति
ते थे। हम
परहेज कि
के गोश्व त
में नागप
की। वह
पूर्ण था, और
१९५१

इस विद्यार्थी एक-दूसरे को धार्मिक
का बहुत आदर करते थे।
उत्सवों में होने वाले दो उत्सवों में कॉलेज
के सभी विद्यार्थी कई दिनों तक व्यस्त
रहते थे। गणपति-उत्सव के लिए हम
विद्यार्थी ड्राइंग-पेपर के बड़े-
बड़े त्यों पर डिजाइन बनाकर काटा करते
थे। डिजाइन बनाने वालों में थे, मेरे
अहमदुल्लाह, कामता प्रसाद तथा
विद्यार्थी। हम लोग, जिनमें हिंदुओं,

इसाई और पारसी विद्यार्थी और शिक्षक
उसमें बड़े उत्साह से भाग लेता था।
संख्या में कम होते हुए भी कॉलेज के
मुस्लिम छात्र अपने अन्य सहपाठियों से
काफ़ी चंदा पाने में सफल हो जाते थे।

०००

मेरे वालिद आँल इंडिया मुस्लिम
एजुकेशनल सोसायटी के सेक्रेटरी थे।
वे नागपुर के अंजुमन हाईस्कूल से भी
जुड़े थे। वे मुझे बताया करते थे कि हाई-



लानाओं के अलावा ईसाई और पारसी
धार्मिक रहते थे, छेनी से काटकर
पर जालियां बनाते थे। गणपति-
उत्सव की शोभा-यात्रा में हम सब विद्यार्थी
मिलित होते थे, और बारी-बारी से
को उठाते थे।
इसी प्रकार ईद-मिलाद के शुभावसर
पर, मुस्लिम विद्यार्थी कॉलेज हॉल में ही
मिलते थे। और, मैं बड़ा-चढ़ाकर
हूँ, जब कहता हूँ कि
का प्रायः प्रत्येक हिंदू, मुस्लिम,

स्कूल की इमारत नागपुर के राजाराम
दीक्षित ने, मुसलमानों द्वारा जमा किये
गये चंदे की राशि जमा होने से पहले ही
बनवानी शुरू कर दी थी। धर्म-निरपेक्ष
राज्य भारत के कितने लोग इस लोकोप-
कारी हिंदू के इस सदिच्छापूर्ण कृत्य से
परिचित हैं?

मेरे अलावा, मेरे परिवार के अन्य
सदस्य भी सार्वजनिक जीवन से संबद्ध
रहे हैं। मेरे बड़े भाई इकरामुल्लाह फ्रांस
में पाकिस्तान के राजदूत थे। और,

मेरे वालिद सेंट्रल असेंबली के एक स्वतंत्र सदस्य थे। दूसरे चुनाव में वे हार गये थे; क्योंकि कांग्रेस ने उनके खिलाफ सिद्दीक अली खान नाम के एक उम्मीदवार को, जिसे कांग्रेसी मंत्रियों का समर्थन प्राप्त था, खड़ा किया था। उनके हारने की एक वजह यह भी थी कि वे सरकारी नौकर थे, और अंग्रेज-सरकार से खिताब पा चुके थे। बाद में, सिद्दीक अली खान को भी अंग्रेजों ने खानबहादुर का खिताब दिया, और वे कांग्रेस छोड़कर मुस्लिम लीग में शामिल हो गये। और अंत में, भारत छोड़कर पाकिस्तानी नागरिक भी बने। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कांग्रेसी नेता कितने अदूरदर्शी थे।

मेरे वालिद जब असेंबली के सदस्य थे, तो अक्सर सरकार की ओर से वोट दिया करते थे। पर, ऐसा हमेशा नहीं होता था। एक बार सरकार की तरफ से बहुत कोशिश चल रही थी कि मेरे वालिद एक बिल के लिए उसकी तरफ से वोट दें। जब वोटों की गिनती शुरू हुई, तो विपक्ष के सदस्य स्व. हरविलास शारदा ने वालिद साहब के पास आकर यह शेर सुनाया :
आया करो इधर भी मेरी जां कभी-कभी निकलें हमारे दिल के भी अरमां कभी-कभी

एक तो मौजूं शेर, और दूसरे मेरे वालिद का काव्य-प्रेम। दोनों का असर यह हुआ कि उन्होंने शारदा साहब को गले लगा लिया, और उनके साथ ही वोट दिया। सिर्फ एक वोट से सरकार हार गयी।

नवनीत

मगर, सरकारी पक्ष को आखिर तक पता न चला कि उसकी हार की असली वजह क्या थी ?

जब मेरा मौका आया, तो मैंने यही तय किया कि सरकार का अधानुसार नहीं करूंगा।

यूं मैं एक विशिष्ट लॉ-प्रोफेसर और वकील माना जाता था, मगर मेरा खयाल है कि मेरी कामयाबी में किस्मत का बड़ा हाथ है। १९४३ में गवर्नर त्वाइनमून्ने एडवोकेट-जनरल नियुक्त किए गए, हालांकि मेरा नाम ६ उम्मीदवारों की सूची में आखिरी था। चीफ जस्टिस मैकफेडरिक ग्रिल को यह अच्छा नहीं लगा। मगर सरकार का कृपा-पात्र होने के बावजूद, मैं सरकार को वही राय देता था, जो मुझे न्यायोचित लगती थी। मैंने खुश करने की नीति मैंने कभी नहीं अपनायी।

जब सरकार ने 'इंडिया इन १९४३' नामक एक सरकारी प्रकाशन के आयोजन पर, एक समाचारपत्र द्वारा 'गड़बदी गदर' का विवरण प्रकाशित करने पर उसे खिलाफ कार्यवाही करनी चाही, तो मैंने उसका विरोध किया। गवर्नर को लाचार होकर मेरी राय माननी पड़ी, और कार्यवाही रोक दी गयी।

महायुद्ध के दिनों में, गवर्नर महादेव वर्धा-स्थित गांधी आश्रम का सात्करण करना चाहते थे। उन्होंने मेरी राय जानने के लिए संबंधित फाइलें

मैंने इस दलील पर इस
 कार्यवाही का विरोध किया
 कि कांग्रेस को तब तक गैरकानूनी संस्था
 नहीं किया गया था, और आश्रम
 को कोई हानिकर या प्रतिकूल कार्य
 नहीं किया गया है। गवर्नर मेरी राय से
 नहीं हुए, और उन्होंने फाइल
 मेरे पास अपने हाथ से लिखी
 टिप्पणी के साथ भेजी : 'क्या एड-
 जेन्टरल द्वारा गौर करेंगे ?'
 मैंने वह फाइल इस टिप्पणी के साथ
 दी, 'मुझे कुछ और नहीं कहना
 है। गवर्नर ने फाइल भारत-सरकार के
 भेजी। भारत-सरकार ने गवर्नर
 की सलाह मानने की सलाह दी
 इस प्रकार गांधीजी के आश्रम का
 समाकरण मेरे कारण होते-होते बचा।
 जो वर्ष (१९४६) में यद्यपि मैं
 बना, और मुझे ओ. बी. ई. का
 भी मिला, तथापि गवर्नर इस
 के बाद मुझसे अप्रसन्न ही रहे।
 जो वर्ष उनका तबादला हो गया, और
 मेरे समारोह पर हम दोनों ने हाथ
 नहीं मिलाया। वे अपना पद छोड़ने
 गांधी-आश्रम को जप्त करने का
 पाना चाहते थे, मगर मैंने उनकी
 पूर्ण नहीं होने दी।

०००

जब देश का विभाजन हुआ, तो हमारे
 मुस्लिम पड़ोसियों में से दो ही का
 भारत में रहा। जिन्ना, जफर-

ल्लाह खान और गुलाम मुहम्मद ने मुझे
 पाकिस्तान जाने के लिए बहुत फुसलाया—
 जफरल्लाह खान ने तो मुझे पाकिस्तान
 की फेडरेल कोर्ट का जज फ़ौरन बनाने
 का प्रस्ताव भी रखा, और यहां तक कहा
 कि भारत में मुझे आगे बढ़ने का अवसर
 कभी नहीं मिलेगा—मगर उनके सब
 प्रयास निष्फल सिद्ध हुए। जब मैं भारत
 का मुख्य न्यायाधीश बना, तब उन्हें
 मालूम हो गया होगा कि भारत में ऐसी
 नियुक्तियों के मामले में धर्म आड़े नहीं
 आता।

मैंने अपने कार्यकारी जीवन में अनेक
 महत्त्वपूर्ण मामलों में निर्णय दिये हैं।
 ऐसा ही एक मामला मुझे याद आता है,
 जो काफी दिलचस्प है। सेहोर (जहां का
 मैं हूँ) चुनाव-क्षेत्र से एक पराजित उम्मी-
 दवार ने, जो जनसंघ का सदस्य था, एक
 वर्तमान मंत्री के विरुद्ध याचिका प्रस्तुत
 की थी, इस आधार पर कि उसने चुनाव
 में सरकारी नौकरों की सेवाएं प्राप्त की
 थीं। मंत्रीजी मुस्लिम थे, और मेरे
 परिवार से उनका घनिष्ठ संबंध था।
 पराजित उम्मीदवार को आशंका थी
 कि मुस्लिम और परिचित होने के कारण,
 मैं मंत्री महोदय का समर्थन करूंगा।
 मेरे साथी जज थे श्री सेन, मगर उनसे
 उसे ऐसी आशंका नहीं थी। उम्मीदवार
 के वकील ने अनेक कारण बताते हुए,
 मामले के स्थगन की याचिका दी, जिसे
 मैंने नामंजूर कर दिया।

मंत्रीजी के विरुद्ध जो साक्ष्य प्रस्तुत किये गये थे, उनमें से एक ऐसा था, जो मामले के निर्णय को निश्चित-सा करता लगता था। चुनाव के दिनों में भोपाल से सेहोर और सेहोर से भोपाल के बीच मंत्रीजी और सेहोर के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के बीच जो फोन-वार्ताएं हुई थीं, उनका बिल अत्यधिक था, और यह संकेत देता लगता था कि मंत्रीजी ने इस अधिकारी की सहायता अवश्य ली होगी। एक निर्णायक बात यह थी कि इस अधिकारी से मंत्रीजी को कोई सीधा सरकारी कार्य नहीं हो सकता था, क्योंकि उनके जिम्मे जो विभाग था, उससे अधिकारी का कोई संबंध नहीं बैठता था। मंत्री महोदय इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाये कि उन्हें चुनाव के दिनों में उस अधिकारी से फोन पर इतनी ज्यादा बातें करने की आवश्यकता क्यों आन पड़ी? फ़ैसले के कारण, मंत्रीजी को पदत्याग करने को बाध्य होना पड़ा। मेरे इस निर्णय से वे लोग भी संतुष्ट हुए, जिन्हें आशंका थी कि मैं मुस्लिम मंत्री के पक्ष में निर्णय दूंगा।

०००

श्री जाकिर हुसैन के निधन के पश्चात् जब उप-राष्ट्रपति श्री गिरि ने राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ने का निश्चय किया, तो मैं ३५ दिनों तक राष्ट्रपति रहा। मगर, मैंने इस अवधि में राष्ट्रपति भवन जाकर रहने से इंकार कर दिया। मैं

सिर्फ दो दिनों के लिए वहां तभी गया जब अमरीकी राष्ट्रपति निक्सन भारत यात्रा पर आये थे।

मैं जब नागपुर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश था, तब भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश श्री ए. आर. दास ने मुझसे पूछा था कि कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के बारे में मेरा क्या खयाल है? मैंने उत्तर दिया, 'मेरा कोई खयाल नहीं है।' बात वहीं खत्म हो गयी, और अगली गयी हो गयी। पर कुछ दिन बाद उनका दामाद और विधि-मंत्री श्री ए. के. एन. ने मुझसे खास तौर पर पूछा कि कलकत्ता के मुख्य न्यायाधीश श्री सी. दासगुप्ता से अपना स्थान बदलने के तैयार हूं। उन्होंने यह भी कहा कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री इमाम रिटायर होने पर मुझे उनका स्थान मिल जायेगा। दूसरे शब्दों में मुझे सर्वोच्च न्यायालय में एक मुस्लिम न्यायाधीश के लिए सुरक्षित स्थान दिया जाने वाला है। मैंने इस प्रस्ताव को वहीं का वहीं ठुकरा दिया। श्री सेन कुछ नहीं बोले।

बाद में मैं दासगुप्ता से पहले सर्वोच्च न्यायालय में गया, और वहां न्यायाधीश इमाम के साथ दूसरा मुस्लिम न्यायाधीश बना। एक प्रकार से मैं पहला मुस्लिम न्यायाधीश था, जो सर्वोच्च न्यायालय में मुस्लिम न्यायाधीश की बारी से जगह होकर आया।

सच्चा गुरु कौन ?

□ प्रस्तुति : अवकाशयात्री

देव की जय' के आघोष से आकाश गूँज उठा। जैसे आकाश से ध्वनि गूँज उठी हो—'सद्गुरु देव जय !'

प्रवचन पूरा हुआ। गोस्वामी प्रेमा-लो-एकप्रख्यात संत थे। उनके व्याख्यान सुनकर लोग उनका आदर करते थे। आज के व्याख्यान का विषय 'जीवदया'। प्राणिमात्र पर दया करने चाहिये, इस विषय पर उन्होंने सुंदर प्रवचन दिया था। उसकी श्रवणों पर गहरी छाप पड़ी थी।

उनके विशाल मस्तक पर सुंदर-सा चंद्र और शरीर पर रेशमी दुपट्टा और हाथों पर लाल अक्षरों में 'राधेश्याम' लिखा हुआ था। वे श्रोताओं की भीड़ में से निकलने, अपने आश्रम की ओर बढ़ चले। पहले से जव गुजर रहे थे, लोग बीच-बीच में रुक-रुककर उनके चरण-स्पर्श कर रहे थे। 'जय राधेश्याम' कहकर वे भक्तों को आशीर्वाद देते जाते थे।

कुछ दूर से राजमार्ग पर ही एक खुली जगह पर 'छप्' से किसी की आवाज़

उन्हें सुनायी दी। इतना ही नहीं उस नाली में से 'छप्' की आवाज़ के साथ ही गंदे पानी के कुछ छींटे उड़कर महाराज की राधेश्यामी चदर पर भी पड़े। उसकी परवाह किये बिना महाराज नाली की ओर बढ़े और भीतर की ओर झांकने लगे। आसपास से गुजर रहे कुछ लोग विचार में पड़ गये कि इतना बड़ा महात्मा गंदी नाली में क्यों झांक रहा है ?

गोस्वामीजी ने देखा कि एक बड़ा-सा चूहा नाली के कीचड़ में छटपटा रहा है। आकाश में उड़ती एक चील इस नाली में छटपटा रहे चूहे को चोंच में दबाकर आकाश में उड़ा ले जाना चाहती थी, पर इतना बड़ा चूहा उसकी चोंच में से छटक गया और इसी कारण गोस्वामीजी की राधेश्यामी चादर गंदी हो गयी !

अब भी यह चूहा नाली में से निकलने के लिए छटपटा रहा था। कुछ पलों के लिए वह बाहर निकलता और फिर फिसलकर उसी में छप्-से जा गिरता ! चील की चोंच से आहत चूहे में अब इतनी शक्ति नहीं रह गयी थी कि वह नाली में से स्वयं बाहर निकल सके।

नाली में झांक रहे स्वामीजी विचार कर रहे थे—इस अशक्त चूहे को बचाना चाहिये? चील की चोंच के झपाटे से बेचारा बड़ी मुश्किल से बच पाया है। यदि इसे अब नहीं बचाया गया, तो कुछ भी पलों में इसकी जीवन-लीला समाप्त हो जायेगी।

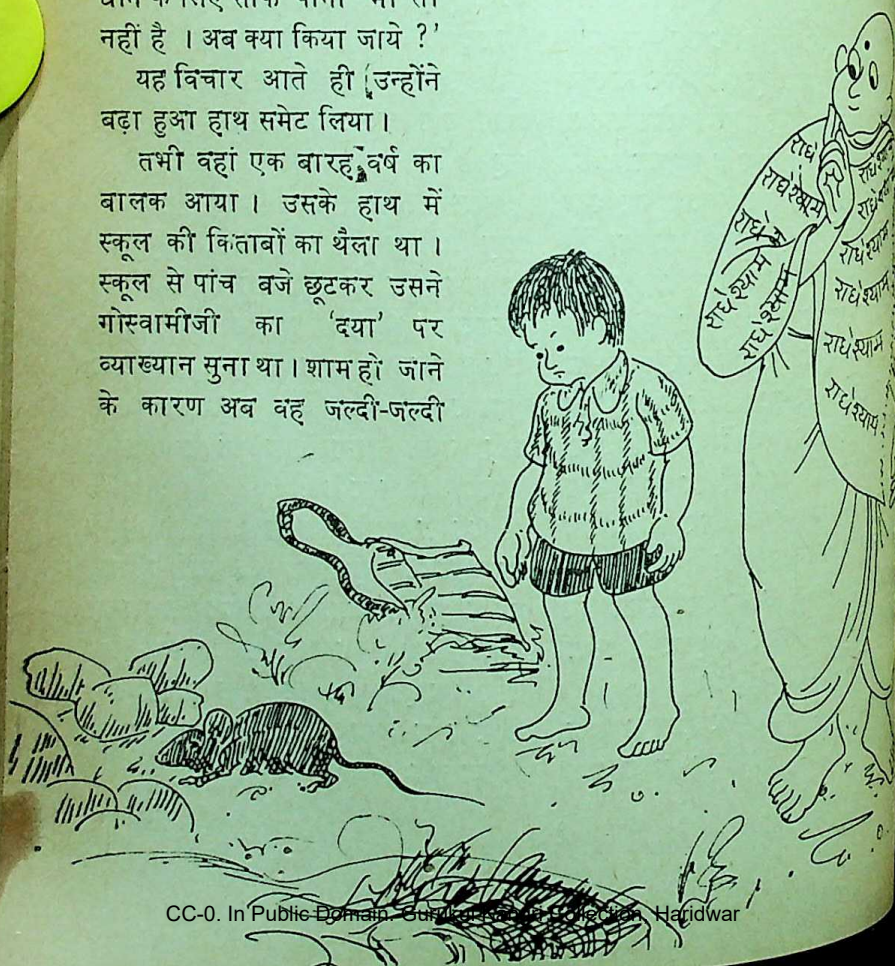
उन्होंने उस चूहे को बचाने के लिए नाली की ओर हाथ बढ़ाया। परंतु तभी उन्हें विचार आया कि 'मेरा राधेश्यामी दुपट्टा और मेरे हाथ खराब हो जायेंगे! और यहां आस-पास हाथ और रेशमी चादर धोने के लिए साफ पानी भी तो नहीं है। अब क्या किया जाये?'

यह विचार आते ही उन्होंने बढ़ा हुआ हाथ समेट लिया।

तभी वहां एक बारह वर्ष का बालक आया। उसके हाथ में स्कूल की किताबों का थैला था। स्कूल से पांच बजे छूटकर उसने गोस्वामीजी का 'दया' पर व्याख्यान सुना था। शाम हो जाने के कारण अब वह जल्दी-जल्दी

अपने घर की ओर जा रहा था। उसने गोस्वामीजी की इच्छा को लिया था।

वस्ते को नाली के किनारे रखकर लड़का गंदगी का विचार किये बिना नाली में उतर गया और चूहे को हाथ में पकड़ कर बाहर निकाल लाया और उसे अपने के खंडहर में छोड़ दिया। जब तक सुरक्षित स्थान पर नहीं पहुंच गया, तब तक वह बालक उसे ताकता रहा। फिर उसे के गंदे पानी से ही जैसे-तैसे हाथ धोकर



रहा था। मैंने किनारे बड़े गोस्वामीजी के चरणों में जाकर प्रणाम करके गोस्वामीजी बोले—
‘मेरे लाल ! मैं तो केवल नाम का ही गुरु हूं, सच्चा गुरु तो तू है। केवल प्रवचनों से ही गुरु नहीं बना जा सकता। आचरण में उतारे बिना कोरे प्रवचन तो ग्रामोफोन के रेकार्ड भी कर सकते हैं; पर वे रेकार्ड गुरु नहीं बन सकते।’

प्रवचन में से लौट रहे पांच-दस आदमी वहां जमा हो गये। उन्होंने देखा कि बालक प्रणाम करके गोस्वामीजी से कह रहा था :
‘गुरुदेव ! मुझमें यत्किंचित भी मानवता हो, तो वह आपके प्रवचन का ही प्रताप है।’

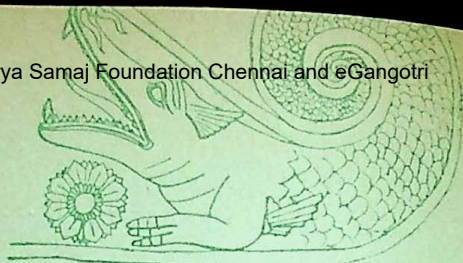
‘नहीं-नहीं, बेटे !’ बालक को आशीर्वाद देते हुए गद्गद् कंठ से गोस्वामीजी कह रहे थे—‘मैं तो प्रवचनों का रेकार्ड मात्र हूं, केवल बोल सकता हूं; पर उन्हें आचरण में उतार नहीं सका।’

रूपान्तरकार : गिरिजाशंकर त्रिवेदी

अनाथ बालक

आदत के चुनाव में मनुष्य कभी-कभी कितनी मनोरंजक भूल कर बैठता है, इस पर प्रसिद्ध मराठी लेखक श्री आप्टे के जीवन की एक घटना काफी दिलचस्प है। श्री आप्टे स्वभाव के बड़े ही उदार थे और किसी गरीब व अनाथ को देखते उनके ऊपर असाधारण रूप से दयालु हो उठते थे। एक दिन उन्होंने अपने दरवाजे के भूखे और अनाथ से दीख पड़ने वाले बालक को खेलते देखा। उन्हें उस पर दया आती और अपनी पत्नी के पास उसे ले जाकर उन्होंने कहा—‘सबसे पहले इस भूखे और अनाथ बालक को अच्छा और पेटभर खाना खिला दो।’

पत्नी आश्चर्य से मुंह ताकती रह गयी और कुछ क्षण बाद मुश्किल से वह सिर्फ इतना ही कह पायी—‘क्या.....’ इसे भी आप नहीं पहचानते ! यह तो अपना प्यारा बेटा डा. गोपालप्रसाद ‘वंशी’



डॉ. अशर्फीलाल श्रीवास्तव का खोजपूर्ण लेख

विशुद्ध भारतीय लोककला का निदर्शन भरहुत का बौद्ध स्तूप

सामान्यतः स्तूप-वास्तु का विकास महात्मा गौतम बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद हुआ माना जाता है। कुशीनगर में बुद्ध के पर्यावसान का समाचार पाकर आसपास के जनपदों के शासक भी उन्हें अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करने तथा उनके अवशेष अंश पाने के लिए कुशीनगर जा पहुंचे थे। परंतु कुशीनगर के मल्लों ने जब बुद्ध के अवशेष देने से इंकार कर दिया तब उन जनपदों के शासकों ने मगध नरेश अजातशत्रु के नेतृत्व में अपनी-अपनी सेनाएं लेकर कुशीनगर पर आक्रमण कर दिया। यदि उस समय चंपानगरी का एक द्रोण नामक ब्राह्मण न आ गया होता, तथा उसने कुशीनगर के मल्लों को बुद्ध के सार्वजनीन रूप को

न समझाया होता तो अनर्थ हो जाता होता। खैर, मल्लों ने बुद्ध के अवशेष आपस में बांटना स्वीकार कर लिया। सांची के विशाल स्तूप के दक्षिणी ओर पश्चिमी तोरणों पर कुशीनगर के कुतूहल द्वार के समक्ष अस्थि-अवशेषों को पाने के लिए युद्ध सन्नद्ध सेनाएं उतरी की गयी हैं। उस समय बुद्ध के अवशेष आठ भागों में बांटे गये और सभी गाजे-बाजे के साथ उन्हें अपनी-अपनी राजधानी में ले जाकर स्थापित किया तथा उनके ऊपर एक-एक स्तूप निर्माण करवाया। इन स्तूपों में अभी तक केवल कपिलवस्तु के स्तूप के अस्तित्व का ज्ञान कुछ वर्षों पूर्व पिपरहवा

नवनीत

१२०

प्राकृतिक अवशेषों से हो पाया है। और विदिशा के निकट सांची-दोनों उत्तर-दक्षिण के महापथों पर स्थित थे। एक उत्तर के नगर श्रावस्ती और कोशांबी को दक्षिण में नर्मदा तट पर

आगे चलकर स्तूप निर्माण की परंपरा विकास हुआ, जिसके फलस्वरूप बौद्ध, बौधगया, सांची, अमरावती, शारनाथ, तक्षशिला आदि स्थानों पर बौद्ध स्तूपों का निर्माण हुआ। भरहुत, सांची तथा अमरावती के महास्तूप इस परंपरा के चरम प्रथम के होते हैं। जिन अलंकृत स्तूपों के ध्वंसावशेष हमें अब तक मिल सकते हैं उनमें सर्वाधिक बड़ा भरहुत का स्तूप है। यह मध्य प्रदेश में सतना के निकट स्थित नागौर में था। इसकी खोज सर्वप्रथम सन १८७३ ई. में की थी। समय तक इस स्तूप के प्रस्तर-खंडों को गांववालों ने उठाकर अपने-अपने घरों में लगा लिया था। कुछ को धोबी अपने घाटों पर उठा ले गये थे और कुछ कपड़े धोने लगे थे। जिस समय ब्रिटिश सरकार ने इसे देखा, उस समय इसकी खोज वेदिका का तथा एक तोरण का कुछ ही अंश अवशिष्ट था। उन्होंने अपनी-अपनी संभूत अंश को तथा कुछ इधर-उधर से मिलकर स्तूप-खंडों को एकत्र करवाकर अमरावती संग्रहालय को सौंप दिया। इस स्तूप के जो प्रस्तर फलक मिले, उन्हें काशी के भारत कला-संग्रहालय तथा स्थानीय संग्रहालय में रख दिया गया है। मध्य प्रदेश में सतना के निकट भरहुत

नागराज चक्रवाक



स्थित चेदि एवं दक्षिण कोसल जनपद से मिलाता था और दूसरा तक्षशिला-मथुरा को विदिशा और प्रतिष्ठान से जोड़ता था। इन महापथों पर गुजरने वाले श्रेष्ठवर्णिक बौद्ध धर्म से अनु-प्राणित थे। उनकी तथा जन-मानस की श्रद्धा भावना ने भरहुत तथा सांची में महास्तूपों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

भरहुत स्तूप का अंड ईंटों से बना था। इसका व्यास २०.४ मीटर था। इसके चारों ओर चुनार-पत्थर की गोल वेदिका थी, जिसमें ८० स्तंभ थे। इन स्तंभों को तीन-तीन आड़ी सूचियों से जोड़ा गया था। वेदिका-शीर्ष पत्थर के चौड़े तथा ढोलकाकार टुकड़ों को जोड़कर बनाया गया था। सूचियों तथा वेदिका स्तंभों पर चक्रों तथा अर्धचक्रों को तथा शीर्ष के संपूर्ण क्षेत्र को उत्कीर्ण शिल्प से अलंकृत किया गया था। तोरण के स्तंभ, शीर्ष और वडेरियों को भी सांची के समान उकेरा गया था। इस उत्कीर्ण शिल्प के विषय अनेक हैं। इनमें यक्ष-यक्षनियां हैं, नाग-नागिनियां हैं, किन्नर-अप्सरारें हैं, राजा-रानी से लेकर सेवक-सेवित्राएं तथा विभिन्न वर्गों के नर-नारी हैं, ऐतिहासिक एवं धार्मिक व्यक्ति हैं। बुद्ध के प्रतीक हैं। उनके पूर्व जन्म से संबंधित जातक कथाएं हैं, राजप्रासाद, मंदिर, चैत्य और कुतियां हैं, नाना प्रकार के शयनासन हैं, तरंगुलम-लताएं हैं, पशु-

पक्षी हैं, संक्षेप में तत्कालीन जन-जीवन का सर्वांग चित्रण है।

भरहुत स्तूप के वेदिका-स्तंभों पर यक्ष-यक्षणियों की आदमकद प्रतिमाओं को उकेरा गया था। इन प्रतिमाओं के साथ उपलब्ध अभिलेखों के आधार पर उनकी पहचान संभव हो सकी है। इनमें जिन यक्ष-यक्षणियों की प्रतिमाएं उत्कीर्ण की गयी थीं, उनमें सुपुत्र, कुपिरो (कुबेर) यखो, अजकालको, सुदसना यखो, चंदा यखो, सिद्धि (श्रीमां) देवता, चुलकोका देवता, महाकोका देवता के नाम उल्लेखनीय हैं।

यक्ष-यक्षणियों की इन प्रतिमाओं से तत्कालीन संभ्रांत स्त्री-पुरुषों की केश-भूषा का पता चलता है। सक्छ के दोनों पहनते थे। धोती के ऊपर नीचे या कटिबंध बांधा जाता था जिसे दोनों छोर प्रायः आगे की ओर लट्टूदार भांति की कामदार पगड़ियां पहनी थीं जिन्हें पुष्पहार या मोतीमाल से सजाया था। पुरुष गहने भी पहनते थे। उनमें कानों में गोल-गोल कुंडल, गले में कंकण वक्ष पर कई-कई लड़ियों के हार और हाथों में जड़ाऊ कंगन होते थे। स्त्रियां कमर में मनकों से बनी सतलड़ी भी पहनती थीं। उनके कमरबंद और और दानेदार बेल से सजे होते थे। एवं पुरुष दोनों का कमर से उपर भाग प्रायः अनावृत्त रहता था।

और तीसरी बार मानव रूप में बुद्ध की अर्चना करते हुए उत्कीर्ण किया गया है। इस फलक में अभिलेख इस प्रकार है— 'एरापतो नागराज भगवतो वंदते।' प्रायः नाग-नागिनियों को कमर के नीचे जल में खड़ी हुई या निकलती हुई देखकर कलाकार ने उस मान्यता का प्रदर्शन किया है जिसमें नागलोक को पाताल में स्थित माना गया है।

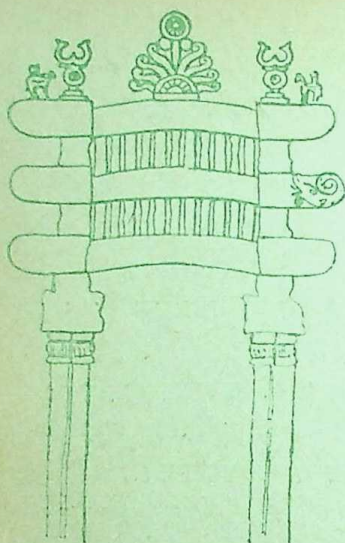
किन्नर या विद्याधर अर्धमानव, अर्ध-पक्षी के रूप में, हाथों में पुष्पमाला लेकर बुद्ध-प्रतीकों के अगल-वगल अंतरिक्ष में उड़ते हुए दिखाई देते हैं। तपस्या भंग करने के लिए इंद्र की अप्सराएं गौतम बोधिसत्व के आगे नाच-कूदकर हार गयी थीं। एक फलक में सुभद्रा, सदर्शना, मिश्रकेशी तथा अलंबुषा नामक अप्सराओं को नृत्य करते हुए भावपूर्ण मुद्राओं में उत्कीर्ण किया गया है। यह इंद्रसभा का दृश्य जान पड़ता है।

भरहुत के उत्कीर्ण फलकों में कोशल-नरेश प्रसेनजित को चार घोड़ों से जुते रथ पर बंटे हुए तथा अजातशत्रु को बुद्धपद की वंदना करते हुए अपने दल-बल के साथ अंकित किया गया है। बाद वाले फलक के साथ अभिलेख है— 'अजातसत्तु भगवतो वंदिते' एक अन्य फलक में शुद्धोधन के अंतःपुर का प्रकोष्ठ प्रस्तरांकित है। फलक में मायादेवी को एक पलंग पर सोते हुए दिखाया गया है। रात का समय है, यह दिखाने के लिए

और तीसरी बार मानव रूप में बुद्ध की अर्चना करते हुए उत्कीर्ण किया गया है। इस फलक में अभिलेख इस प्रकार है— 'एरापतो नागराज भगवतो वंदते।' प्रायः नाग-नागिनियों को कमर के नीचे जल में खड़ी हुई या निकलती हुई देखकर कलाकार ने उस मान्यता का प्रदर्शन किया है जिसमें नागलोक को पाताल में स्थित माना गया है।

किन्नर या विद्याधर अर्धमानव, अर्ध-पक्षी के रूप में, हाथों में पुष्पमाला लेकर बुद्ध-प्रतीकों के अगल-वगल अंतरिक्ष में उड़ते हुए दिखाई देते हैं। तपस्या भंग करने के लिए इंद्र की अप्सराएं गौतम बोधिसत्व के आगे नाच-कूदकर हार गयी थीं। एक फलक में सुभद्रा, सदर्शना, मिश्रकेशी तथा अलंबुषा नामक अप्सराओं को नृत्य करते हुए भावपूर्ण मुद्राओं में उत्कीर्ण किया गया है। यह इंद्रसभा का दृश्य जान पड़ता है।

भरहुत के उत्कीर्ण फलकों में कोशल-नरेश प्रसेनजित को चार घोड़ों से जुते रथ पर बंटे हुए तथा अजातशत्रु को बुद्धपद की वंदना करते हुए अपने दल-बल के साथ अंकित किया गया है। बाद वाले फलक के साथ अभिलेख है— 'अजातसत्तु भगवतो वंदिते' एक अन्य फलक में शुद्धोधन के अंतःपुर का प्रकोष्ठ प्रस्तरांकित है। फलक में मायादेवी को एक पलंग पर सोते हुए दिखाया गया है। रात का समय है, यह दिखाने के लिए



कलाकार ने एक कोने में जलता हुआ दीपक और पलंग के पास ऊँघती हुई दासियों को अंकित कर दिया है। आकाश से आता हुआ हाथी मायादेवी के स्वप्न की कहानी को साकार करता है।

श्रावस्ती के श्रेष्ठि अनाथ पिंडक ने तथागत बुद्ध के आवास के लिए राजकुमार जेत के उद्यान (जेतवन) को उपयुक्त समझा, भले ही उसे जेतवन के लिए उतनी ही मुद्राओं का मूल्य चुकाना पड़ा जितनी उसमें बिछाई जा सकीं। एक चक्र-फलक में एक बैलगाड़ी से ढोकर लायी गयी मुद्राओं को उद्यान में बिछाने का अंकन है। दृश्य में कंठाभरण पहने राजकुमार जेत और रुमंडलु लिये अनाथ पिंडक भी उत्कीर्ण हैं। फलक में दो कुटिय भी उत्कीर्ण हैं जिनके ऊपर 'गंधकुटी'

है और 'कोसंवकुटी' के अभिलेख फलक के नीचे वाले अभिलेख से जेतवन के क्रय और दान की कहानी स्पष्ट होती जाती है—'जेतवन अनाथपिंडको देति कोसंथतेन कोति' अर्थात् करोड़ों मुद्राओं की सतह बिछाकर अनाथ पिंडक ने जेतवन का दान दिया।

जातक कथाओं का प्राचीनतम संस्करण हमें भरहुत स्तूप पर उपलब्ध होता है। भारतीय कला में भरहुत, सांची, बोधगया, मथुरा, अमरावती आदि स्तूपों के उत्कीर्ण शिल्प में अनेक जातकों का अंकन उपलब्ध हुआ है। इन जातक कथाओं में तत्कालीन लोकजीवन की बड़ी ही सटीक झांकी प्रतिबिंबित होती है। भरहुत में सबसे अधिक जातक कथाओं को उत्कीर्ण किया गया था। अब तक २४ जातकों की पहचान की जा चुकी है। इनमें से १८ जातकों के शीर्ष अभिलेख पाये गये हैं। इन जातकों में छंदत जातक, इसिसिगिय (ऋषि शृंग) जातक, दशरथ जातक, मिग (मृग) जातक आदि उल्लेखनीय हैं।

जातक कथाओं के अलावा भी अनेक प्रसंग भरहुत के उत्कीर्ण शिल्प में पाये गये हैं। कहीं तपोवन में ऋषि तपस्या रत हैं, कहीं वे अपनी कुटियों में आगे पर्यंकबद्ध मुद्रा में ध्यानासीन हैं, कहीं अध्यापक बालकों को पढ़ा रहे हैं, कहीं मछुए जाल बुन रहे हैं। एक मुद्रा (शेष पृष्ठ १४५ पर)



भारतीय विद्या भवन से प्रकाशित एम. सी. छागला की
विख्यात संस्मरणात्मक पुस्तक 'रोजेज इन डिसेंबर'

दिसंबर में गुलाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

का हरिमोहन शर्मा द्वारा प्रस्तुत सार-संक्षेप

‘परमात्मा ने हमें स्मृति दी, ताकि,
हमें दिसंबर में गुलाब मिल सकें।’

कोई अपनी आत्मकथा क्यों लिखता है? अपनी आत्मकथा लिखने से पहले, इस प्रश्न का उत्तर पाना आवश्यक है। आत्मकथा कैसी सफ़ाई के लिए लिखी जाती है? अपने प्रति अपनी सफ़ाई के लिए या अपने समकालीनों के प्रति अपनी सफ़ाई के लिए या भावी पीढ़ियों के प्रति अपनी सफ़ाई के लिए?

एक अर्थ में, आत्मकथा सामान्य मानवीय अहम्मन्यता की ही प्रशाखा है। आत्मकथा लिखने वाला नहीं चाहता कि जो कुछ उसने अपने जीवन में अब तक किया है, उसकी स्मृति नष्ट हो जाये; मुद्रित शब्दों के रूप में यह स्मृति अमिट हो जाती है। वैसे, आत्मकथा लिखने वाले के मन में यह विचार रहता ही है कि मरणोपरांत उसकी निधन-सूचना प्रकाशित होगी ही, मगर दुर्भाग्य से वह उसे पढ़ने के लिए मौजूद न होगा।

अनेक स्थलों पर मेरी आत्मकथा भी आपको अहम्मन्यतापूर्ण लगेगी। मगर वह मेरी लाचारी है। आदमी जब अपने बारे में लिखता है, तो अहम् के लेखन में अनधिकार प्रवेश की चेष्टा निरंतर कायम रहती है।

आत्मकथा आरंभ करने से पूर्व, जिस एक और समस्या से आत्मकथा लिखने वाले को जूझना पड़ता है, वह यह है कि कितना कहा जाये? आत्मकथा

लिखने वाला अपने जीवन में व्यक्तियों के संपर्क में आया है, क्या उनके बारे में सब कुछ पूरी सचाई से कहने उचित है? क्या उन अप्रिय बातों का जिक्र भी जरूरी है, जिनसे दूसरों को भावनाओं को ठेस पहुंचती हो, या जिसे लोग भूल गये हैं या भूलना पसंद करेंगे?

इस संबंध में मेरी धारणा यह है कि आत्मकथाकार को सच, और सिर्फ सच ही लिखना चाहिये, मगर उसे पूरा सच नहीं लिखना चाहिये, क्योंकि बहुत मामलों में उसका निर्णय एकतरफा और पुरे तथ्यों पर आधारित नहीं होगा। बात की पूरी संभावना है। एक बड़े अजीब बात मैं इस प्रसंग में कहना चाहूँगा और वह यह कि बीस वर्ष तक निर्णयकर्त्ता जज रहने के बाद, मैं निष्पक्ष बन से यह अनुभव करता हूँ कि किसी दूसरों के बारे में निर्णय देने का अधिकार नहीं है।

इतिहास में एक ऐसी निस्संगता वास्तविकता है, जो इतिहास लिखने का दावा करने वालों में साधारणतः नहीं पायी जाती। इसलिए, समकालीन व्यक्तियों और घटनाओं के बारे में लिखने वालों को सिर्फ तथ्यों का ही वर्णन करना चाहिये, श्रेय और प्रशंसा का काम पर छोड़ देना चाहिये।

अपने बीते जीवन पर निगाह डालें, तो पाता हूँ कि कुछ घटनाओं के, जिन न मैं चुनौती दे सकता था, और न बिना

वन में कि... कोई अपील कर सकता था, जागृत हुआ। उसने पुस्तकों का जो एक नया वातायन मेरे जीवन में खोला, उसमें झांक-झांककर, मैंने प्रज्ञा और सौंदर्य के नये-नये आयामों और क्षितिजों के दर्शन किये हैं।

है, क्या उसे... परीक्षा के परिणाम सामने आये। मैंने ऐसी ही कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करूँगा, जिन्होंने न केवल मेरे जीवन का निर्माण किया, अपितु उन कुछ सफलताओं और उपलब्धियों का भी मुझे प्रदान किया, जो मेरे नाम के साथ जुड़ गयी हैं।

०००

वचन की स्मृतियाँ कोई बहुत अधिक प्रीतिकर या सुखकर नहीं हैं। पाँच वर्ष का ही था कि मेरी माँ का देह हो गया था, इसलिए वचन बड़ा कठिन होता। मैं अपनी ही दुनिया में जी रहा था, और अपने सपनों और खयालों में खोया रहता था। माँ को खोकर निराशा लगता था, जैसे मैंने अपनी सबसे कीमती चीज खो दी है।

मेरी मृत्यु के बाद, मैं एक वर्ष तक नाना के घर पर रहा। नाना मेरे बापस बम्बई लौटा, तो पाया कि परिवार अपना पुराना घर, जो नगर में था, छोड़कर दादर रहने लगा। दादर तो दादर बम्बई का एक समृद्ध नगर है, मगर उन दिनों—१९०६ या १९०७ में—एक गाँव-सा ही था। वहाँ के लोग गरीब थे। मैंने इस स्कूल में दाखल होकर पढ़ाई की। वह मुझे बहुत चाहता था, और पढ़ाई का मेरा शौक, जो आज तक बचा आ रहा है, उसी के कारण

जागृत हुआ। उसने पुस्तकों का जो एक नया वातायन मेरे जीवन में खोला, उसमें झांक-झांककर, मैंने प्रज्ञा और सौंदर्य के नये-नये आयामों और क्षितिजों के दर्शन किये हैं।

इस स्कूल की एक घटना मुझे आज तक याद है। मैं स्कूल में अपने सहपाठियों से बहुत कम मिलता-जुलता था, और अपनी सीट से ही चिपका रहता था। स्कूल में सुबह-शाम ईसाई विद्यार्थी प्रार्थना करते थे। गैर-ईसाई छात्र इन प्रार्थनाओं में भाग नहीं लेते थे। मगर उस समय आदरपूर्वक खड़े अवश्य हो जाते थे। एक दिन मैं एक पुस्तक पढ़ने में इतना लीन हो गया कि मुझे प्रार्थनाओं का कोई होश न रहा। अध्यापक ने बतौर सजा के मेरी दोनों हथेलियों पर छह-छह बार छड़ियाँ मारीं। मैंने सजा तो चुपचाप स्वीकार कर ली, मगर उससे मेरे आत्म-सम्मान को बड़ी ठेस पहुँची। मुझे लगा कि अध्यापक को सजा देने से पूर्व, मुझसे न उठने का कारण पूछना चाहिये था।

वर्षों बाद, जब मैं भारत का शिक्षा-मंत्री बना, तब मुझे एक पुराने छात्र की हैसियत से उसी स्कूल में आमंत्रित किया गया। मैंने अपने भाषण में इस घटना का उल्लेख करते हुए, उस अध्यापक की ओर देखा, जो वहाँ अपनी वृद्धावस्था के बावजूद, मौजूद था। वह काफ़ी सहमा हुआ नज़र आ रहा था। मैंने अपने भाषण में आगे कहा कि यद्यपि

‘इस किताब को लिखने का विचार मुझे मेरे छोटे लड़के इकबाल ने दिया मेरी आंख का आपरेशन हुआ था, जिसके एक महीने बाद तक, मुझे पढ़ने-लिखने से सख्त मनाही थी। खाली बैठना मेरे मित्राज में नहीं है, इसलिए मैं उन दिनों का सुब्ध-सा रहता था। इकबाल ने मुझे व्यस्त रखने के लिए एक टेपरेकोर्डर मेरे पास लाकर रख दिया, और कहा कि मैं इसमें अपनी आत्मकथा का डिक्टेसन शुरू कर दूँ। काफ़ी हिचक के बाद, मैंने यह काम शुरू किया। किताब के पहले ७५ पृष्ठ इसी प्रकार ‘लिखे’ गये। शेष पृष्ठ अन्य स्टेनोग्राफरों को, जिनमें श्री पालखोवाला के स्टेनोग्राफर पीठावाला का उल्लेख आवश्यक है, दिये गये डिक्टेसन के फलस्वरूप लिखे गये।

‘इस डिक्टेसन में ६० घंटों से अधिक का समय लगा, मगर उससे दूना कम मुझे उन भाषणों, कतरनों, पत्रों आदि को तरतीब देने और उनका चयन करने में लगा, जिसका संग्रह मेरी पत्नी ने, जिसकी प्रतिभक्ति एक मधुर स्मृति के रूप में मेरे साथ रहेगी, और जिसे मैंने यह पुस्तक समर्पित की है, बड़े प्रयत्न से किया था।

‘मैं श्री मोरारजी देसाई सहित उन सभी महानुभावों का कृतज्ञ हूँ, जिनके और संभाषणों का उपयोग मैंने इस पुस्तक में किया है। मैं भारतीय विद्या भवन, उनके जनक और अपने परम मित्र डॉ. के. एम. मुंशी, श्री रामकृष्णन् और प्रोडक्शन मैनेजर श्री एम. के. राजगोपालन् का भी कृतज्ञ हूँ।

‘इस पुस्तक के माध्यम से, मुझे आशा है, पाठकों को भारत के इतिहास के पिछले पचास वर्षों की एक झांकी मिल सकेगी। वही विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, मैंने सोचा, और क्या कहा, वह इतना महत्वपूर्ण नहीं है।’ (प्रस्तावना में)

तब उस घटना से मुझे बहुत तकलीफ हुई थी, तथापि उस घटना से, नियमों का पालन करने और सदा अनुशासित करने का जो पाठ मैंने सीखा था, वह मुझे सदा याद रहा, और आगे चलकर जीवन में मेरे बहुत काम आया।

०००

दादर की उन दिनों की एक और घटना भी मुझे आज तक याद है।

१९०८ में बम्बई उच्च न्यायालय

नवनीत

के एक भारतीय न्यायाधीश डाक्टर राजद्रोह के अपराध में तिलक को दो वर्ष की सख्त कैद की सज़ा सुनायी दी। जिसके विरोध में दादर और पलेर दंगे हुए थे। छोटा होते हुए भी, मैंने बात को लेकर काफ़ी उत्तेजित था। मेरी पूरी सहानुभूति उन लोगों के लिए थी, जो दंगों के माध्यम से इस सज़ा के प्रति अपना विरोध व्यक्त कर रहे थे।

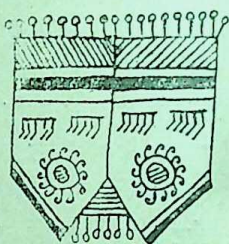
१२८

वर्ष वैस्टर जिन्ना ने तिलक की सरकार को इच्छा की घोषणा करके प्राप्त की है।' इससे पता चल सकेगा कि जिन्ना उन दिनों कितने उत्कट राष्ट्रवादी थे।

१५ जुलाई, १९५६ को, इस घटना के पचास वर्ष बाद, बम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में, मैंने न्यायालय के बाहर एक फलक लगवाया था, जिस पर भावोत्तेजक शब्द अंकित हैं, जो तिलक ने अपने मुकदमे के दौरान कहे थे :

'ज्यूरी के पंच-निर्णय के बावजूद, मैं यह मानता हूँ कि मैं निर्दोष हूँ। ऐसी

उच्चतर शक्तियाँ मौजूद हैं, जो मानवों और राष्ट्रों की नीति को नियंत्रित रखती हैं, और शायद नियति को यही मंजूर है कि जिस हेतु का मैं प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ; उसकी सिद्धि मेरे मुक्त रहने की अपेक्षा पीड़ित होने से ही संभव है।'



चित्र : आलोक जैन

जिस न्यायाधीश डावर ने तिलक को सुनायी थी, उसे वाद में ब्रिटिश सरकार ने 'सर' की उपाधि से विभूषित किया था, और जब बम्बई न्यायालय की एसोसियेशन ने न्यायाधीश डावर को इस उपलक्ष्य में एक भोज देना चाहा, तो जिन्ना उस भोज में शामिल नहीं हुए। एसोसियेशन के सचिव को लिखे अपने पत्र में उन्होंने कहा, 'एसोसियेशन को तिलक न्यायाधीश का सम्मान करते हुए सम्माननीय मानना चाहिये, जिसने यह उपाधि

इस अवसर पर, मैंने अपने भाषण में कहा था :

'यदि आज स्वतंत्र भारत में यह उच्च न्यायालय सक्रिय है, और यदि इस न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश एक भारतीय है, तो हमें याद रखना होगा कि इसका श्रेय, काफ़ी हद तक, तिलक के त्याग और दुःखभोग को जाता है।'

०००

सेंट जेवियर कॉलेज, बम्बई से अपनी उच्च शिक्षा पूरी करके, १९ वर्ष की

आयु में मैं आक्सफोर्ड गया। जिन्ना भी उन दिनों लंदन में एक फ्लैट लेकर रहते थे। वे उस मुस्लिम स्टूडेंट्स यूनियन के अध्यक्ष थे, जिससे मैं भी जुड़ा था। वे यूनियन के सदस्यों से प्रायः कहा करते थे कि उन्हें हिंदुओं और मुसलमानों के बीच सौहार्द स्थापित करना चाहिये, और जब तक ऐसा सौहार्द स्थापित नहीं होगा, भारत गुलाम देश बना रहेगा।

जिन्ना उन दिनों युवावर्ग के प्रिय नेता और बम्बई के 'बेताज बादशाह' माने जाते थे। वे होमरूल लीग के अध्यक्ष थे, और अंग्रेज सरकार की नीतियों के विरुद्ध शांतिराम चाल में, जहां उन दिनों आम सभाएं हुआ करती थीं, भाषण दिया करते थे। वकालत की पढ़ाई के लिए इंग्लैंड जाने से पूर्व मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि इंग्लैंड से लौटने के बाद, मैं उनके साथ काम करना चाहूंगा। उन्होंने मुस्कराकर कहा था, 'पहले कड़ी मेहनत करके इस्तहान पास कर लो, फिर मेरे पास आना।'

उन दिनों राजनीति और कानून दोनों क्षेत्रों में जिन्ना मेरे आदर्श-पुरुष थे। उस समय कोई यह सपने में भी नहीं सोच सकता था कि एक खरे राष्ट्रवादी से जिन्ना एक दिन एक कट्टर संप्रदायवादी बन जायेंगे, और देश की एकता का यह कट्टर समर्थक एक दिन देश के विभाजन में सहायक होगा। मैं आरंभ में जिन्ना के बहुत निकट था, मगर जब उन्होंने

नवनीत

दो राष्ट्रों के सिद्धांत का समर्थन कर दिया, तो मैं उनसे पूरी तरह हमेशा-हमेशा के लिए अलग हो गया।

ऑक्सफोर्ड से बम्बई लौटने के मुझे बम्बई में प्रैक्टिस आरंभ करते बहुत परेशानी हुई। मेरे पास कोई न था, और मैं काफ़ी दिनों तक बेवतार-एट-लाॅ बना रहा। मगर, मैं सोचता हूँ कि इससे मुझे लाभ हुआ; क्योंकि इस बेकारी ने मुझे और सफलता के लिए प्रेरित किया और इस सफलता को प्राप्त करने लिए मुझे काफ़ी श्रम करना पड़ा। मैं भी मेरे लिए कठोर श्रम ही जीवन वास्तविक आराम है।

उन दिनों बम्बई उच्च न्यायालय जो प्रमुख एडवोकेट प्रैक्टिस कर रहे उनमें सर जमशेद कांगा, जिन्ना, तार पोरवाला, भूलाभाई देसाई, कन्हैयालाल मुंशी, मोतीलाल सेतलवाड, भगवती, वी. देसाई, एम. पी. अमीन तथा दत्त आदि उल्लेखनीय हैं। मुंशी बड़े मामलों को जीतने में माहिर थे। वे बहुमत प्रतिभा के धनी थे। उन जैसे उच्च कोटि के साहित्यकार और शिक्षाशास्त्री भारत में कम ही हुए हैं। यदि वे विधि और राजनीति को अधिक समय न देते, भारतीय साहित्य को और अधिक समर्थन दे सकते थे।

भूलाभाई देसाई जैसा वाक्य-प्रयोग वाकेट उन दिनों बम्बई में कोई और

समर्थन करने में राजनीति में भी सक्रिय थे, मुन्शी तर्जुमन गहलोत को भी गिरा हो गया। गहलोत के नेतृत्व में कांग्रेसी नेताओं से मिलने के लिए करना पड़ा। लेकिन, पुलिस को पता चल गया तो तुम सीधे जेल चले जाओगे। मगर, क्या कहते हो?' मैंने कहा, 'आप मुझे लाए कि मैंने इतना त्याग कर रहे हैं, मैं थोड़ा-सा त्याग भी नहीं कर सकता।' मगर, मुझे अपने देश की रक्षा के लिए जेल जाने का अवसर नहीं मिला। दुर्भाग्य से या सौभाग्य से, कहेंगे कि जीवित बचा।

१९२२ से १९४१ तक प्रैक्टिस करने के बाद मैं जज बना। १९६७ में फिर प्रैक्टिस आरंभ की, और मैं, इन पंक्तियों के लिखे जाने तक, प्रैक्टिस कर रहा हूँ। कानून बनाने इतने दीर्घकाल से जुड़े रहने के लिए मैं कह सकता हूँ कि कानून बनाने का एक महान अनुशासित करने का एक महान विज्ञान है, और स्पष्ट, तर्कसंगत और चिंतन में सहायक होता है। प्रश्न प्रायः मुझसे पूछा जाता है कि 'यदि मैं राष्ट्रवादी था तो मुस्लिम लीग का सदस्य क्यों बना?' मैं कहूँ कि जिन दिनों, मैं लीग का सदस्य था, उन दिनों वह हिंदू-मुस्लिम मिश्रण में विस्थापित करती थी, और उसके अंतर्गत अलावा, उसका स्वरूप पूर्णतः

धर्मनिरपेक्ष था। लीग से जुड़े जिन्ना और मजहरूल हक जैसे नेता धर्मांध मुसलमानों से अलग रहते थे। खिलाफत आंदोलन से संबद्ध मुस्लिम नेता ऐसे ही कट्टर और धर्मांध मुस्लिम थे, और मुझे लगता था कि उनके हितों का समर्थन कर, हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का गांधीजी का प्रयास गलत है। सब खिलाफती पहले मुस्लिम थे, बाद में राष्ट्रप्रेमी। मुस्लिम लीग उनका विरोध करती थी, और धर्मनिरपेक्षता में आस्था रखने वाली लीग के साथ कंधे से कंधा मिलाकर देश को आजाद करने का संघर्ष करने को तैयार थी।

जब तक जिन्ना राष्ट्रवादी रहे, लीग ने इसी नीति को अपनाया। पर, जैसे ही जिन्ना संप्रदायवादी हुए, मैं उनसे अलग हो गया। मेरे लिए यह बात आज तक पहेली बनी है कि जिन्ना जैसे राष्ट्रवादी नेता संप्रदायिक क्यों बने? शायद इसका एक कारण जिन्ना का जवर्दस्त अहं था। वे सर्वोच्च नेता बने रहना चाहते थे, और गांधीजी के अम्युदय के बाद उन्हें लगा होगा कि अब उनके ऐसे पद पर बने रहने की संभावना नहीं है। जहाँ गांधीजी की आस्था धर्म, अहिंसा और नैतिकता में थी, वहाँ जिन्ना एक निष्ठुर और व्यावहारिक राजनीतिज्ञ थे। दुर्भाग्य से जिन्ना जवाहरलाल नेहरू के भी विरोधी थे। जवाहरलाल नेहरू भी जिन्ना को 'असंस्कृत और अशिक्षित'

मानते थे। उनका खयाल था कि जिन्ना की पढ़ाई अखबारों तक सीमित है, और उनके मन में कोई बौद्धिक विचार आ ही नहीं सकता। जिन्ना और मोतीलाल नेहरू की आपस में खूब पटती थी, शायद इसलिए कि दोनों जाने-माने वकील थे, और समान रूप से व्यावहारिक थे।

जब जिन्ना को तीसरे गोलमेज सम्मेलन से अलग रखा गया, तो उन्हें यह विश्वास हो गया कि संप्रदायवादी मुसलमानों का नेता बनकर ही वे प्रकाश में रह सकते हैं। और एक बार वे स्वयं संप्रदायवादी बन गये, तो उन्हें अपने अनुयायियों को भी अपने रंग में ढालने में देर न लगी।

एक बार, जब पाकिस्तान के निर्माण का आंदोलन जोरों पर था, तब मैंने जिन्ना से पूछा था, 'आपके पाकिस्तान में वे राज्य तो आ जायेंगे, जहां मुसलमान बहुसंख्यक हैं, लेकिन तब उत्तर प्रदेश के मुसलमानों का क्या होगा, जो अल्प-संख्यक हैं?' जिन्ना ने कुछ क्षण सोचकर कहा, 'वे अपनी जानें। मुझे उनकी कोई परवाह नहीं है।' उनके इस उत्तर से मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था।

देश का विभाजन एक ऐसी दुखांत घटना थी, जिसे टाला जा सकता था। मेरा विश्वास है कि पाकिस्तान से न देश की किसी समस्या का हल हुआ, न मुसलमानों की; उल्टे समस्याएं बढ़ी हैं, और ज्यादा गंभीर हो गयी हैं।

इन पंक्तियों के लिखने के समय तक

नवनीत

बांग्लादेश अस्तित्व में आ चुका है। बांग्लादेश का जन्म प्रजातंत्र और जनतंत्र के अपने भविष्य को निर्धारित करने के अधिकार की महान विजय है। जन्म से पूर्व, हमने पाकिस्तान के निर्माण का कत्लेआम करने का, और भारत की स्थापना करने का, अजीब नज़र देखा।

भारत के संविधान में धर्मनिरपेक्षता अमिट अक्षरों में लिखी है। वैधानिक धारणा के रूप में, धर्मनिरपेक्षता के अंतर्गत हैं कि प्रत्येक भारतवासी समान हैं और उससे परिचय करते समय, हम नहीं देखते कि वह हिंदू, मुसलमान, ईसाई है, हम उसे एक मानव के रूप में ही देखते हैं।

जब मैं अमरीका में भारतीय राजदूत की हैसियत से गया था, तब सर्वप्रथम पत्रकार-सम्मेलन में मुझसे पूछा गया 'क्या आप मुस्लिम हैं?' मैंने उत्तर दिया, 'मेरे धर्म से आपका क्या संबंध है? वह मेरा निजी मामला है। मुझसे सिर्फ यह पूछ सकते हैं कि क्या भारतीय हूँ, तो मैं गर्व से कहूंगा कि भारतीय हूँ। हम भी किसी अमरीकी के रूप में यह नहीं पूछते कि क्या वह कैथोलिक या प्रोटेस्टेंट या यहूदी है? हमारे संबंध अमरीकी सिर्फ अमरीकी हैं।

जब कोई मुझसे यह कहता है कि

आ चुका है। मुस्लिम हैं, इसलिए थोड़ा कम भार-
 और तो मुझे बहुत बुरा लगता है।
 धर्मोपदेशित करने के लिए पाकिस्तान उतना ही विदेशी
 जय है। उम्मेद है, जितना तर्की, ईरान, ब्रिटेन या
 पाकिस्तान के लोगों का। मैंने सदा पाकिस्तान की
 खों मुसलमानों को भारतीय दृष्टिकोण से ही
 और भारत के हितों का प्रयास किया है।

०००

स्वतंत्र राज
 अजीब न
 किया पत्रकार भी रहा हूं। ब्रेलवी
 मैं खरे राष्ट्रवादी संपादक के
 धर्मनिरपेक्ष कानिकल में मैंने संपादक द्वारा
 है। वैधानिक पत्रों पर कई बार कलम
 रपेक्षता के अर्थ में है। यह बात अलग है कि उन
 की समानता का कोई पारिश्रमिक मुझे कभी नहीं
 समय, हम सब हां, चिंतामणि द्वारा संपादित
 मुसलमानों के डेली मेल' ने अवश्य, जहां तक
 नव के स्वतंत्र आता है, मुझे उसमें प्रकाशित
 के लिए पारिश्रमिक दिया था।
 भारतीय राज्यों में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' अग्रणी
 तब सर्वप्रथम था, पर उसके कॉलमों में
 पूछा गया कि कोई प्रवेश न था, कारण मेरे राष्ट्र-
 मैंने उत्तर दिया कि विचार उसके विचारों के एकदम
 क्या सरोकार है। मेरे लेखों के विषय
 मला है। अतः वे ही होते थे। मैं उन दिनों
 हैं कि क्या विचारों में सक्रिय था भी।
 कहूंगा कि मैंने कांग्रेसों से मुझे पता चलता है
 की अमरीकी कांग्रेस, १९२६ को मैंने इंडियन
 वह केंद्रित कांग्रेस पार्टी की एक समिति की एक
 हमारे तब कांग्रेस में श्री जयकर के विरुद्ध निंदा का
 है। मैंने कहा था कि जयकर
 होता है कि कांग्रेस के विचार एक ही दल के टिकट पर खड़े

हुए हैं, और विधान सभाओं में सांप्रदायिक
 दलों की कोई आवश्यकता नहीं है। पर
 चुनावों के बाद नेशनल पार्टी जितनी
 जल्दी शुरू हुई थी, उतनी जल्दी ही खत्म
 हो गयी।

साइमन कमीशन १९२९ में भारत
 आने वाला था। भारत के भावी संविधान
 के निर्धारण के लिए १९२७ में मुस्लिमों
 ने हिंदू-मुस्लिमों की संयुक्त निर्वाचन-
 पद्धति का समर्थन किया—इस शर्त के साथ
 कि सिंध को उस काल की बम्बई प्रेसीडेंसी
 से अलग कर दिया जाये, और उ. प्र.
 सीमान्त सूबे और बलूचिस्तान में सुधार-
 कार्य किये जायें।

बात अविश्वसनीय लगोगी, मगर तब
 के हिंदू दलों ने संयुक्त निर्वाचन-पद्धति
 के प्रस्ताव को तो मान लिया, पर दोनों
 शर्तों को नहीं माना। यह पहला अवसर
 था, जब मुस्लिमों ने संयुक्त निर्वाचन-
 पद्धति को स्वीकार किया था, और उनकी
 दोनों शर्तों को न मानकर हिंदुओं ने भारी
 गलती की, ऐसा मेरा विश्वास है। इससे
 इसके बाद मुस्लिमों की मांगें उत्तरोत्तर
 बढ़ती गयीं, और पाकिस्तान का जन्म इन्हीं
 मांगों की परिणति था।

०००

फरवरी, १९४१। रविवार का दिन।
 मैं बार जीमखाना में कांग्रेस के दूर-
 वारियों के साथ बैठा था कि फोन आया
 कि मुख्य न्यायाधीश सर जॉन ब्यूमां
 मुझसे मिलना चाहते हैं। जब मैं उनसे

मिला, तो उन्होंने कहा, 'मैं चाहता हूँ कि तुम बम्बई उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश बन जाओ। ४००० रुपये वेतन होगा, पर्याप्त अवकाश और प्रतिष्ठा अलग'। अपनी पत्नी से विचार-विमर्श करने के बाद, मैंने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। मेरी शुरुआत चेंबर जज के रूप में हुई।

मेरे जज बनने से पहले यह प्रथा थी कि जज अदालत में आने से पहले दोनों पक्षों की दलीलों के कागज़ पढ़कर आते थे। मैंने इस प्रथा को समाप्त किया, क्योंकि मुझे लगा कि यह गलत प्रथा थी।

१५ अगस्त, १९४७ को, जिस दिन भारत स्वतंत्र हुआ, मैं बम्बई उच्च-न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त हुआ। मैं बम्बई उच्च न्यायालय का पहला भारतीय मुख्य न्यायाधीश था, और अपनी जिम्मेदारियों से बेखबर नहीं था।

मैं तत्कालीन बम्बई सरकार को इस बात पर राजी करने में सफल हो गया कि जजों की नियुक्तियों का सूत्रपात मुख्य न्यायाधीश को करना चाहिये, सरकार को नहीं। सरकार ने मेरे इस प्रस्ताव को मान तो लिया, पर बाद में इसको लेकर तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोरारजी देसाई से मेरी दो बार बड़ी दिलचस्प टक्करें हुईं। मैं बार के एक ऐसे सदस्य को सीधा जज नियुक्त करना चाहता था, जो हिंदू महासभा का सदस्य था। श्री देसाई ने इसका विरोध किया। उनके विरोध

नवनीत

के उत्तर में मैंने कहा कि मुझे उन नवनीत के राजनैतिक विचारों से कोई लेना-देना नहीं है। मुझे खुशी है कि वे अंत में योग्य जज सिद्ध हुए।

एक सहायक जज की नियुक्ति सिफारिश करते समय मैंने एक बंगाली मुस्लिम जज की उपेक्षा करके एक मुस्लिम जज की सिफारिश की। पर मोरारजी देसाई मुझसे बहुत अस्वस्थ हुए कि मैंने एक अल्पसंख्यक जज की उपेक्षा क्यों की? मैंने अपनी सिफारिश का औचित्य समझाते हुए कहा कि सिफारिश करने का आधार योग्यता ही सांप्रदायिक भावना नहीं।

यद्यपि श्री देसाई से मेरे अनेक मतभेद थे, और कई अवसरों पर हम दोनों के बीच तीखा पत्र-व्यवहार भी हुआ, तो भी यह कहना चाहूंगा कि वे एक दृढ़ और योग्य मुख्यमंत्री थे। उनमें कोई पक्षपात की भावना नहीं थी।

मोरारजी को ब्रिज खेलने का बहुत शौक था, और वे मेरे साथ ब्रिज खेलने के इच्छुक थे। मगर उनका सिद्धांत यह था कि वे दांव के साथ नहीं खेलते थे, और मेरा सिद्धांत था कि दांव के साथ ही खेल खेला जाये। और चूंकि हम दोनों सिद्धांत-प्रेमी थे, इसलिए हमारा ब्रिज का खेल कभी नहीं हो पाया।

मैं ग्यारह वर्षों तक बम्बई न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रहा, और वे मेरे जीवन के सर्वश्रेष्ठ वर्षों में थे।

४ अक्टूबर, १९५६ को मैं पं. नेहरू
के आभेन पर बम्बई का कार्यकारी
रज्यपाल बना। यद्यपि मैं बहुत कम समय
के लिए कार्यकारी राज्यपाल था, तथापि
मैंने राजतान, मुझे जिन विशिष्ट व्यक्तियों
का राजभवन में स्वागत करने का सौभाग्य
मिला, उनमें चीन के तत्कालीन प्रधान-
मन्त्री चाङ-एन-लाई भी थे। जब उनके
मान में एक संस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत
किया गया, तो उन्होंने एक अभिनेत्री से
एक फिल्म का वह गाना गाने को
कहा कि उन दिनों चीन में बहुत लोक-
प्रिय था। जब यह गाना गाया गया, तो
चाङ-एन-लाई बहुत प्रसन्न हुए।

चाङ-एन-लाई के अलावा, राजभवन
आर्याय के सम्राट हेले सेलासी, ब्रिटेन
के पूर्व प्रधानमंत्री एटली, बर्मा के
राजपूत और दलाई लामा आये थे।
दलाई लामा को राजभवन से दिखायी
गया सागर बड़ा आल्लादक लगा।
मैंने अल्प अवधि में मैंने बैंक ऑफ
चीन की स्वर्ण-जयंती के समारोह की
आयोजनी की। बैंक की शुरुआत के समय
मैंने मेरा खाता इस बैंक में था। इस
कारण पर भाषण देते समय, मैंने कहा,
मैं एक बेकार बैरिस्टर था, तब
मैंने बैंक को एक चेक लिखकर दिया
तो मेरे हिसाब में जमा राशि से
मेरा भूया अधिक का था। बैंक ने फ़ौरन
मेरे चेक को अस्वीकार कर दिया। मैं
ने बैंक से अपील करता हूँ कि वे भविष्य में

बेकार बैरिस्टरों के प्रति उदार रहें;
क्योंकि ऐसा ही कोई और बेकार बैरिस्टर
भविष्य में उनके अन्य जयंती समारोहों
की अध्यक्षता कर सकता है।

१० दिसंबर को नये राज्यपाल श्री-
श्रीप्रकाश को कार्यभार सौंपकर मैं पुनः
उच्च न्यायालय में आ गया, मुख्य न्याया-
धीश के रूप में ही।

मैं दिल्ली में सेतलवाड का मेहमान
था कि तत्कालीन गृह-मंत्री पंडित गोविंद
वल्लभ पंत ने मुझे रात्रि-भोजन के लिए
आमंत्रित किया। वहाँ उन्होंने मुझसे
कहा, 'छागंलाजी, आपने देश की अनेक
सेवाएं की हैं। पंडितजी (प्रधानमंत्री पं.
नेहरू) एक मामले को विशेष महत्त्व
देते हैं, और उस संबंध में देश को आपकी
सेवाएं दरकार हैं।'

मेरे यह उत्तर देने पर कि मैं देश की
हर सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ, पंतजी ने कहा,
'संसद में जीवन बीमा निगम के कार्य-
कलापों को लेकर काफी बहस हुई है। हम
चाहते हैं कि आप एक-सदस्यीय आयोग के
रूप में उसके कार्यकलापों की जांच करें।'

हम बात कर ही रहे थे कि वित्तमंत्री
श्री कृष्णमाचारी भी वहाँ आ गये। जब
पंतजी ने उन्हें बताया कि मैं एक-सदस्यीय
आयोग के रूप में जीवन बीमा निगम के
कार्यकलापों की जांच करूंगा, तो श्री
कृष्णमाचारी की मुद्रा से मुझे लगा कि
यह खबर सुनकर उन्हें कोई खुशी नहीं हुई।
पता नहीं वे मुझसे नाखुश थे, या जांच के

फैसले से ।

जांच से पूर्व, मैंने दो बातें स्पष्ट कर दीं । पहली—अटर्नी-जनरल सेतलवाड सर-कार की ओर से पैरवी करेंगे, और दूसरी—जांच-कार्य खुले आम होगा ।

इस जांच की, जिसे देशव्यापी लोक-प्रियता मिली, तफसील में मैं जाना नहीं चाहूंगा । मुझे सिर्फ यह निर्णय करना था कि वित्तमंत्री की संसद में इस घोषणा के बाद कि निगम की राशि अच्छी और प्रतिष्ठित कंपनियों के शेषों में ही लगायी जायेगी, निगम की एक करोड़ की राशि हरिदास मूंदड़ा की ६ लिमिटेड कंपनियों में क्यों लगाया गया ? खास तौर पर जब १९ सितंबर, १९५७ को प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने, जो टी. टी. कृष्णमाचारी की अनुपस्थिति में वित्तमंत्री का कार्यभार संभाल रहे थे, मूंदड़ा की फाइल पर लिखा था, 'जहां तक मैं जानता हूं इन महाशय की इज्जत कोई खास अच्छी नहीं है ।' वास्तव में मुझे उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों का पता लगाना था, जिन्होंने एक करोड़ रुपये मूंदड़ा की कंपनियों में लगाने के आदेश दिये थे ।

मेरा निर्णय यह था—सारा सौदा संदेहा-स्पद स्थितियों में किया गया, और नियमा-नुसार वही किया गया । सौदे के निर्देश वित्त-सचिव ने दिये थे, मगर उसकी अंतिम जिम्मेदारी वित्तमंत्री की है । सारा सौदा, निगम के हितों को ध्यान में रखकर नहीं, बरन् मूंदड़ा के हितों को

ध्यान में रखकर और उसकी मदद के बिना किया गया था । मैंने निर्णय के बाद कुछ सिद्धांत भी प्रस्तुत किये, जो मैंने मेरे ऐसे सौदों के आधार बनने चाहिये । मेरे इस निर्णय से, जिसके फलस्वरूप कृष्णमाचारी को त्यागपत्र देने को बाध्य होना पड़ा, नेहरू काफी अप्रसन्न हुए । जब कृष्णमाचारी त्यागपत्र देकर, जहाँ से जाने लगे, तो वे स्वयं विदा करने गये ।

मगर, डॉ. राजेंद्रप्रसाद इस निर्णय पर बहुत प्रसन्न हुए । श्री हुमायूँ कबीर ने सा उन्होंने कहा, 'यदि विश्व के छद्म धर्मों को जजों को इस जांच काम का सौदा मिले तो वे भी ऐसा तर्कसंगत और तर्कहीन निर्णय नहीं दे सकते थे ।'

०००

सितंबर १९५७ में मुझे अंतरराष्ट्रीय अदालत का तदर्थ न्यायाधीश नियुक्त किया गया । अदालत के सामने पुनर्जांच का वह मामला पेश था, जिसमें कृष्णमाचारी ने दावा किया था कि उसे दमन और दारुणता से नगर हवेली के बीच आने-जाने का अधिकार है, और भारत को उसे अधिकार देना होगा ।

अंतरराष्ट्रीय अदालत का जब वह एक नया-निराला अनुभव था, मेरे निर्णय के बाद पं. कृष्णमाचारी-कांड के साथ मेरे संबंध थोड़े ठंडे हो गये । इसलिए जुलाई, १९५८ की एक जमानत जब मैं विलिंगडन क्लब में बिना

की मदद के बिना या, मुझे राजभवन से यह फोन
मिलना कि पंडितजी मुझसे मिलना चाहते
कहे, जो मुझे बोड़ा अचरज हुआ ।

वर्णभेद की गमजोशी के साथ मेरा स्वागत
पंडितजी मुझसे बोले, 'छागला,
तुमने फैसले बहुत कर लिये । अब
इसला मेरा सुनो । तुम मुख्य न्याया-
देने को चुनने के पद से इस्तीफा देकर वाशिंगटन
अप्रैल, अमरीका में भारतीय राज-
दूत के रूप में । यह जिम्मेदारी तुम्हें
इस निर्णय से संभालनी है ।'

इस बात को मैंने सामने कोई चारा न था, इस
का मैंने स्वीकार करने के अलावा ।
सामने एक ही समस्या थी - मेरे
और न्यायपालिका का क्या होगा ? मेरी
समस्या राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश ने
संभाल ली । उन्होंने कहा, 'आप अपनी
राजभवन में छोड़ जायें, और
आपसे वापस आने पर ले लें ।'

सामने पुनर्जात की मेरी नियुक्ति को लेकर
जिसमें राज्यपाल और राज्यसभा दोनों में प्रश्न
मन और दृष्टि के कुछ सदस्यों ने यह एतराज किया कि
ने-जाने का राजदूत बनाने की परंपरा आरंभ
को उनके सरकार न्यायपालिका को अपने
प्रभावित करने का प्रयास कर रही
थी, मेरे विचारों का उत्तर पंतजी ने इन शब्दों
वादा पं. ने कहा, 'यह नियुक्ति श्री छागला की
ठंडे हो पड़ेगी । स्वतंत्रता और योग्यता को
नी एक जगह पर करती है । यदि उनके स्थान
में बिना किसी का यह आक्षेप कुछ उचित भी

होता, मगर छागला जैसे न्यायप्रिय और
स्वतंत्र वृत्ति के जज के बारे में यह अनुचित
ही प्रतीत होता है ।'

१९४६ के उस अल्पकाल को छोड़कर,
जब मैं राष्ट्रसंघ में अफ्रीका की वर्णभेद
नीति का विरोध करने वाले प्रतिनिधि-
मंडल का एक सदस्य था, मुझे कूटनीतिक
कोई अनुभव न था । मेरा अब तक का
जीवन न्यायपालिका में बीता था ।

अमरीकी विदेश-सचिव श्री डलेस से
मिलने पर, मैंने उन्हें यह समझाने की
कोशिश की कि पाकिस्तान जैसे भारत-
विरोधी देश को सैनिक सहायता देकर
अमरीका ख़वामख़वाह भारत के साथ
अपने संबंधों को बिगाड़ रहा है । डलेस
मेरे तर्कों से राजी तो न हुए, मगर मुझसे
विदा लेते समय, उन्होंने कहा, 'मिस्टर
एंबैसेडर, यदि आप भविष्य में भी ऐसे
ही स्पष्टवादी रहे, तो हमारे-आपके संबंध
ठीक चलते रहेंगे ।'

तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति आइसन-
हॉवर सज्जन व्यक्ति थे, मगर वे डलेस
के हाथों का खिलौना बने हुए थे । निक्सन
उनके सहायक थे, और मुझे वे पहली
ही दृष्टि में ठीक नहीं लगे, हालांकि राज-
दूत के रूप में मैंने अपनी अरुचि उन पर
व्यक्त नहीं होने दी । मुझे निक्सन बड़े
आत्म-केंद्रित और पाखंडी लगे ।

कैनेडी के राष्ट्रपति चुने जाने से
मुझे बड़ी खुशी हुई, क्योंकि वे भारत के
अलावा प्रधानमंत्री पं. नेहरू का बड़ा

सम्मान करते थे। अपने उद्घाटन-भाषण में उन्होंने पं. नेहरू के कुछ कथनों को उद्धृत किया था, जिसको लेकर उनकी अमरीका में काफ़ी आलोचना हुई थी।

राष्ट्रपति बनने के बाद, कैंनेडी ने अधिकृत रूप से जिस समारोह में भाग लिया था, वह था सत्यजीत रे की 'अपूर संसार' का उद्घाटन-समारोह। इस फिल्म के एक दृश्य में एक स्नातक ७० रुपये महीने पर एक प्रेस में नौकरी करता है। कैंनेडी ने मुझे पूछा, '७० रुपये अर्थात् कितने डॉलर?' जब मैंने बताया, तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ। मैंने उन्हें सूचित किया कि देश में लाखों स्नातक बेकार हैं, और इससे गरीबी की उस समस्या का अनुमान लगाया जा सकता है, जो हमारे देश के सामने मौजूद है।

मेरे सेवा-काल में ही नेहरू राष्ट्रसंघ की एक सभा में भाग लेने आये थे। राष्ट्रसंघ के उसी सुप्रसिद्ध अधिवेशन में, ख्रुश्चेव ने मेज़ पर जूता बजाया था और क्रेस्टो अपना राजदूतावास हरलेम (नीग्रो लोगों की एक बस्ती) में ले गये थे।

०००

अपना सेवा-काल पूरा करके जब मैं भारत लौटा, तो मेरे सामने सबसे बड़ी चिंता निवास-स्थान खोजने की थी। फ्लैट ढूँढ़ने के लिए, मुझे बम्बई के मुख्य-मंत्री से लेकर प्रधानमंत्री के घर तक के चक्कर लगाने पड़े। अंत में, बड़ी परेशानी के बाद—क्योंकि मैं 'पगड़ी' देने को तैयार

न था—मुझे एक फ्लैट मिला। पर फ्लैट में आने के कुछ दिन बाद ही, मेरी पत्नी का देहांत हो गया। यह एक ऐसा आघात था, जिससे मैं आज तक नहीं उबर सका हूँ, कारण मेरी पत्नी मेरे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गयी थी।

एक दिन जब मैं विलिंगडन क्लब में ब्रिज खेल रहा था, मेरे पास मुख्यमंत्री का फोन आया कि वे मुझसे फ़ौरन मिलना चाहते हैं। जितने महत्त्वपूर्ण सरकारी संदेश मुझे मिले, वे इसी क्लब में मिलने पर, मुख्यमंत्री श्री चव्हाण ने मुझे बताया कि पं. नेहरू चाहते हैं कि मैं शीघ्र ही ब्रिटेन के लिए रवाना हो जाऊँ—हाई कमिशनर की हैसियत से मैं इस महत्त्वपूर्ण पद को स्वीकारने में मूड में बिल्कुल नहीं था, मगर यह बतल करके कि जिम्मेदारी से बचना, देश की सेवा के अवसर से बचना होगा, मैंने इच्छा न होते हुए भी, इस पद को स्वीकार कर लिया।

ब्रिटेन के अपने सेवा-काल की तीसरी महत्त्वपूर्ण घटनाएं मेरे जेहन में हैं—पहली चीनी आक्रमण, दूसरी—राष्ट्र-मंत्रियों के प्रधानमंत्री सम्मेलन और तीसरी—राष्ट्रपति डॉक्टर राधाकृष्णन् की ब्रिटेन-यात्रा।

चीनी आक्रमण के समय, ब्रिटेन हमें पूरी मदद पहुंचायी। स्वयं ब्रिटेन का हित इस बात में था कि भारत एक प्रजातन्त्रीय देश एक कम्यूनिस्ट देश का आक्रमण का शिकार न हो।

नवनीत

१३८

ला। पर जब राष्ट्रमंडलीय प्रधानमंत्री सम्मेलन में मेरे लेने के लिए पं. नेहरू ब्रिटेन आये तो मेरे पास ही ठहरे थे। उस दौरान, उन्होंने मुल्कराज आनंद कृत एक पुस्तक 'द हिंदू फिलॉसफी ऑफ एरो-टिनिस्म'। यह पुस्तक भारतीय मूर्तियों से प्रेरित थी। पंडितजी पुस्तक देखकर प्रसन्न हुए, मगर जब उन्हें पता चला कि इस पुस्तक पर भारत में मोरारजी मेहता विवाद लगा दिया है, तो उन्होंने इस किताब को कुछ करने का आश्वासन दिया। राष्ट्रपति डॉक्टर राधाकृष्णन् की आवाज कई अर्थों में अविस्मरणीय थी। यह पहला अवसर था, जब राष्ट्र-पति के एक गणतंत्र-राज्य के प्रमुख ने विदेश-यात्रा का निश्चय किया था। जो वे बाहर जाते थे, मैं उनके साथ जाता था। एक बार वे घर लौटते समय, मुझे बोले, 'मैं अपने प्रकाशक से कह रहा हूँ कि मैं चाहता हूँ।' मैंने कहा, 'मैं जो उचित व्यवस्था कर दूंगा।' पर, डॉ. कृष्णन् ने कहा कि इसमें व्यवस्था की बात है, कार को एलेन एंड अनविन को बाल्य की ओर मोड़ दो। ऐसा ही हुआ, और इस प्रकार हम उस समय में पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने मुझे सवाल यह किया, 'मेरी पुस्तकें किस दिशा में विकसित हो रही हैं?' इस घटना से अनुमान लगाया जा सकता है कि डॉक्टर राधाकृष्णन् ने भारत और निरभिमानी थे। ब्रिटेन से लौटने के बाद मुझे कई

दिनों तक दिल्ली में पं. नेहरू का मेहमान रहना पड़ा। दो-तीन दिन बाद, उन्होंने सहसा मुझसे पूछा, 'मैं मंत्रिमंडल में कौन-सा विभाग लेना पसंद करूंगा!' मैंने कहा—'विधि-विभाग के अलावा कोई भी विभाग।' नेहरू को यह उत्तर बड़ा दिलचस्प और आश्चर्यजनक लगा।

अंत में मुझे शिक्षा-मंत्री बनने को कहा गया। यह मुझे बहुत वाद में ही पता चला कि बहुत से कांग्रेसी मेरे जैसे गैर-कांग्रेसी के मंत्री बन जाने से प्रसन्न नहीं थे, और नेहरू को उन्हें मनाने में काफी कठिनाई आयी थी। उनकी परेशानी दूर करने के लिए मैं कांग्रेस का साधारण सदस्य बन गया, और खादी भी पहनने लगा। पर खादी न केवल असुविधाजनक थी, महंगी भी थी। मैं पंडितजी के कहने पर तत्कालीन कांग्रेस-अध्यक्ष श्री संजीव रेड्डी से भी मिला, जो मेरे समान 'न्यू स्टेट्समैन' के पाठक थे। इससे उनकी राजनीतिक जागरूकता का परिचय मिलता था।

मेरे अनुरोध पर, प्रधानमंत्री ने शिक्षा विभाग में विज्ञान और संस्कृति के दो विभाग भी दुबारा शामिल कर दिये, जो मौलाना आज़ाद के निधन के बाद शिक्षा-विभाग से अलग कर दिये गये थे।

शिक्षा-मंत्री बनने के बाद, मैंने सब राज्यों को यह समझाने की बहुत कोशिश की कि वे शिक्षा की पूरी जिम्मेदारी केंद्र को सौंप देने को तैयार हो जायें, ताकि

संविधान में उचित संशोधन करके इसे देने की प्रथा भी आरंभ हुई।
 ००००
 व्यवस्था को कानूनी रूप दिया जा सके।
 पर पंजाब को छोड़कर कोई राज्य इसके लिए राजी न हुआ।

मैंने एक राष्ट्रीय शिक्षा की स्थापना भी की, जिसके अध्यक्ष थे सुप्रसिद्ध शिक्षा-विद् और वैज्ञानिक डॉक्टर कोठारी। इस आयोग ने जो रपट प्रस्तुत की, वह बहुत मूल्यवान थी, मगर मेरे शिक्षा-विभाग से जाने के बाद, उसका क्या हुआ, मुझे नहीं मालूम।

भाषा के प्रश्न को लेकर, मुझे कई बार संसद में सदस्यों की तीखी आलोचना सहन करनी पड़ी। मेरा मत है कि जब तक हिंदी पूरी तरह से अंग्रेजी का स्थान लेने योग्य न हो जाये, और जब तक बंगाल और दक्षिण उसे स्वेच्छा से अपनाने को तैयार न हो जायें, तब तक हम अंग्रेजी को अपनाने के लिए बाध्य हैं। मैं हिंदी का हिमायती हूँ, और मैंने अपने मुस्लिम भाइयों से उर्दू भाषा के लिए देवनागरी लिपि अपनाने का बार-बार अनुरोध भी किया है। मैंने उन्हें बताया कि ग़ालिव के दीवान की जितनी प्रतियां हिन्दी में बिकी हैं, उर्दू में नहीं।

मेरे ही सेवा-काल में डाक्टर राधा-कृष्णन् के जन्म-दिवस को शिक्षा-दिवस के रूप में मनाने का निश्चय किया गया, क्योंकि मैं शिक्षक को अतीत जैसी गरिमा और प्रतिष्ठा दिलाना चाहता था। इस अवसर पर योग्य शिक्षकों को पुरस्कार

एक दिन मैं अपने कार्यालय में विभाग के कुछ अधिकारियों से बात कर रहा था कि कृष्णमाचारी ने वहां आकर, अकेले में, मुझे सूचित कि प्रधानमंत्री चाहते हैं कि मैं परिषद् की सभा में भाग लेकर संबंधी वहस में, भारत का प्रवक्ता मैं इसके लिए तैयार न था, मगर मंत्री की इच्छा मेरे लिए सर्वोपरि मुझे संतोष है कि सुरक्षा-परिषद् मैंने जो भाषण दिये, उन्हें भारत में सराहा गया, और उनसे श्री भुट्टो झूठी शिकायत का कि कश्मीर में भाषा के खिलाफ विद्रोह पनप रहा है, मुझे जवाब मिला।

श्री नंदा के गृहमंत्री पद से त्यागपत्र देने के बाद, मंत्रिमंडल में हेरफेर हुआ और प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी ने विदेश-विभाग सौंपा। इससे पूर्व, लालबहादुर शास्त्री भी मुझे यह विभाग सौंपना चाहते थे, किंतु उनके कुछ सलाहकारों ने उन्हें यह सलाह दी थी कि पाकिस्तान के विध्वंसक शक्ति के कारण, मेरे विदेश-मंत्री बनने पाकिस्तान से अच्छे संबंध स्थापित हो कठिन हो जायेगा।

मैंने विदेश-मंत्री बनते ही, के हाई कमिश्नर श्री अजीज अहमद सम्पर्क किया—और उनसे व्यापार, हमारे

हुई।

लिय में
कारियों में
वारी ने
ने सूचित कि
कि में सुख
लेकर कभी
प्रवक्ता
मगर प्र
सर्वोपरि

रक्षा-परिप
राज में क
श्री भू
ममीर में भा
हा है, मुं
द से त्याग
ने हेरके
गांधी ने
ससे पूर्व
इसे यह वि
के कुछ स
दी थी कि
रुह अ
नी बनने
स्थापित हो
ही, पाकि
तीज अह
व्यापार, ह

जहाँ बाद समस्याओं की हल करने का अनुरोध किया। मगर करने का एक ही रट थी—जब तक कश्मीर-समस्या हल नहीं होती, तब तक कुछ हो सकता।

३१ अगस्त, १९६७ को मैंने अपने भाई को त्यागपत्र दे दिया, क्योंकि श्रीमती जो के मंत्रिमंडल ने शिक्षा के माध्यम से लोगों में जो नीति अपनायी, वह उस नीति के विरुद्ध थी, जो शिक्षा-मंत्री के मन में मेरे निर्धारित की थी।

०००

जो मेरे जिस दार्शनिक राजा की कल्पना की थी, डॉक्टर राधाकृष्णन् से साकार किया था। मैं कई बार राष्ट्रपति भवन में मिला, और बार-बार उनसे अधिकाधिक प्रभावित होता। वे देश में व्याप्त और बढ़ती जा रही गंदगी से बहुत दुखी थे, और अपनी नीति को अपने भाषणों में व्यक्त भी करते थे, जिसके कारण उनकी बड़ी आलोचना हो रही थी कि वे अपनी संवैधानिक शक्तों का उल्लंघन कर रहे हैं।

राष्ट्रपति जाकिर हुसैन न डॉ. राधाकृष्णन् के समान दार्शनिक थे, न उनके भाषणों में शिक्षा-शास्त्री। अपने उप-राष्ट्रपति पद पर रहते हुए, उन्होंने केसरीपुर के एक नाटक का प्रदर्शन भी किया था। धार्मिक वृत्ति के कारण ही वे, कट्टर राष्ट्रवादी थे। मैंने तीन प्रधानमंत्रियों के नीचे काम

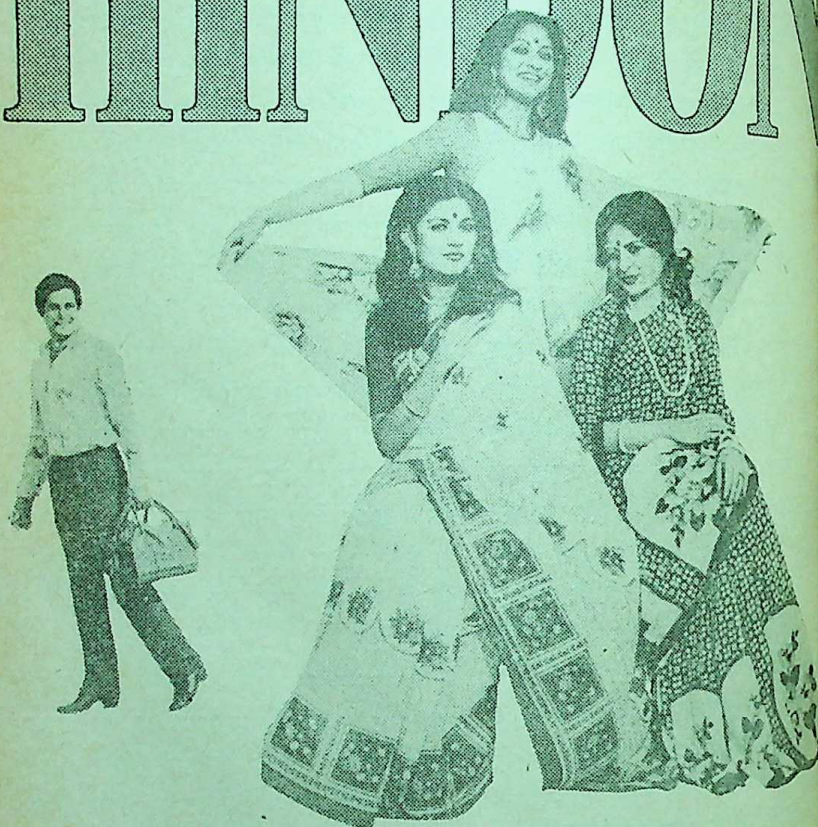
और श्रीमती इंदिरा गांधी। पं. नेहरू ने प्रधानमंत्री पद को एक अनूठी गरिमा प्रदान की; वे स्वयं एक महान मानव थे, पक्के मानवतावादी और सच्चे प्रजातंत्री। और यद्यपि वे कभी-कभी संसदीय प्रणाली और न्यायपालिका के धीमेपन से परेशान हो उठते थे, किंतु उनकी अवहेलना करने का विचार उनके मन में कभी नहीं आया।

श्री लालबहादुर शास्त्री एक सरल और विनम्र इन्सान थे। उनकी सरलता और विनम्रता दिखावटी नहीं, खरी थी। अलीगढ़ मुस्लिम विधेयक संबंधी बहस के दौरान, मैंने पाया कि किस प्रकार वे अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान रखते थे। और पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध में, जो वस्तुतः भारत पर लादा गया था, अपने देश का सफल नेतृत्व कर उन्होंने दिखा दिया कि संकट के क्षणों में वे किस प्रकार दृढ़ और निर्भय हो सकते हैं।

प्रधानमंत्री बनने से पूर्व, श्रीमती गांधी बहुत शर्मीले स्वभाव की थीं, मगर प्रधानमंत्री बनते ही वे जिस प्रकार सहसा प्रभावशाली भाषण देने लगीं, और आत्म-विश्वासपूर्वक बातें करने लगीं, वह मेरे लिए आश्चर्य का विषय था। उनके पिता एक श्रेष्ठ राजनेता थे, मगर इतने अच्छे राजनीतिज्ञ नहीं थे। मगर श्रीमती गांधी में जो राजनीतिक सूझबूझ है, वह

हिन्दन की बहार... लाई निरवार

HINDON



हिन्दन

साढ़ियाँ . सूटिंग्स
शर्टिंग्स . ड्रेस मेटिरियल

सर्वाधुनिक मिल द्वारा
निर्मित कपड़े



DCM
TEXTILES

५०० से भी अधिक डी सी एम रिटेल स्टोर्स
तथा अन्य रिटेल स्टोर्स पर उपलब्ध

वह ने बड़े राजनीतिज्ञों के लिए इण्डिया का
निर्णय हो सकती है।

०००

तो, यह है धूप-छांह, सुख-दुख, आशा-
निराशा से भरी मेरी कहानी, एक
आदमी की कहानी, जिसन जीवन में
कठने सब अनुभव हासिल किये हैं।
जीवन से मैंने क्या सीखा है? कृपालु
सहानुभूतिशील होना। दूसरे से
नहीं, जुड़ना। गलतफ्रहमियों और
बाधा को आपसी समझ
की पुल से पाटना। मैंने सीखा
जीवन का सबसे महान दर्शन यह
जीवन और उसके रागों के प्रति
न रुका जाये, ताकि जब अंत आये,
कष्ट न हो। इस संदर्भ में मैं
प्रशंसक हूँ।

जीवन के नशे के अलावा मुझे कोई और
नहीं है। इसलिए दिल्ली से आने
जब मैंने अवकाश-प्राप्त आदमी
जीवन बिताना आरंभ किया, तो
मैं पाल हो जाऊंगा। इस-
संस्थ को व्यस्त रखने के लिए, मैं
न्यायालय का एक एडवोकेट
रहा। आज तक मैं इस पेशे को
न छोड़े हूँ।

मेरी कहानी पढ़कर आपने यह अनुमान
ला हो लिया होगा कि मैं अन्तर्मुखी
आदमी का इंसान हूँ। त्रिज के अलावा,
और कोई खेल अच्छी तरह नहीं खेल
सकता। तब मैं काम में व्यस्त नहीं रहता।

तो या तो त्रिज खेलता हूँ या पढ़ता हूँ।
मुझे न पैदल घूमना पसंद है, न कारों में
घूमना। अपने साथी जजों के साथ जब
मैं कभी-कभी गोल्फ खेलता था, तो मेरी
गेंद ५० या ६० गज से आगे नहीं जाती
थी, और मेरे साथी मुझे चिढ़ाया करते
थे कि मैं जीवन में सीधे और संकरे मन
पर चलने का आदी हूँ। मगर मैंने उनसे
यह कभी नहीं कहा कि इस पथ पर
चलना कितना नीरस है।

मैं ज़रूरत से ज्यादा संवेदनशील हूँ,
और मेरी रुचि के खिलाफ कुछ कह दिया
जाये, तो मेरा मूड एकदम गायब हो
जाता है। मगर ऐसे क्षणों में मुझे उन
कृपाओं की कृतज्ञतापूर्वक याद आने लगती
है, जो मेरे प्रति मेरे परिचितों और
अजनबियों ने प्रदर्शित की थी।

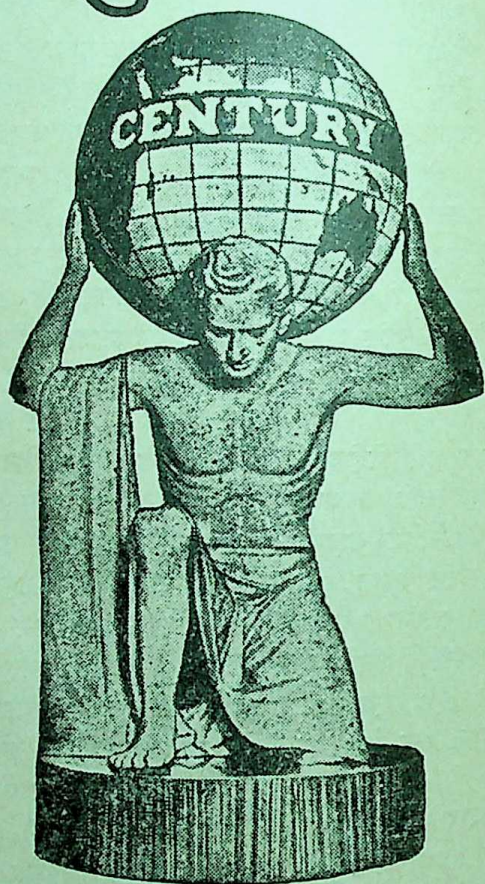
मैं जीवन में बौद्धिक ईमानदारी को
सर्वोपरि मानता आया हूँ। अपनी अंत-
रात्मा के विरुद्ध कुछ करने से बड़ा पाप
मेरी दृष्टि में दूसरा नहीं है।

संगीत से मुझे प्रेम है, भले ही वह
पाश्चात्य हो या भारतीय। भारतीय
संगीत में शास्त्रीय संगीत का रसास्वादन
मैं नहीं कर पाता। पाश्चात्य संगीत में
सिम्फनियों ने मुझे बड़ा आनंद दिया है।

जीवन के विभिन्न पक्ष हैं, विभिन्न
आयाम हैं, विभिन्न मूड हैं। यह हम पर
निर्भर करता है कि हम उसे एक 'एड-
वेन्चर' मानें, या मृत्यु के क्षण तक की
जा रही एक कष्टपूर्ण यात्रा।



सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, मम्बई

(पृष्ठ १२४ का शेषांश)

हिन्दू के बंधन को उसका मित्र कछुआ
बत रहा है। कुछ दृश्य फलकों में बंदर,
पुष्प, नट आदि के माध्यम से शिल्पी ने
भारत की सृष्टि भी की है।

भरहुत हीनयान युग की कला है।
बुद्ध का मानव-रूप नहीं अंकित
गया है। हीनयान विचारधारा में
निर्वाण पा चुका हो, जो मुक्त हो
हो, उसे आकार देकर पुनः बंधन
वर्जित था।

तत्कालीन हीनयानियों ने बुद्ध
मूर्ति नहीं बनायी, परंतु भगवद्गीता
मूर्ति-आंदोलन तथा वैष्णव मूर्ति-
से बौद्ध अनुयायी प्रभावित हुए
न रह सके। उनमें चिंतन कम,
भाव अधिक था। अस्तु, उन्होंने
देवा-देवी तथागत के शारीरिक,
आंतरिक और पारिभौमिक प्रतीकों की
प्रशंसा प्रावधान किया। बुद्ध के अवशेषों,
नख, केश आदि को संपूज्य समझा
गया। उनके जीवन की प्रमुख
महाभिनिष्क्रमण, संबोधि, धर्म-
निर्वाण और महापरिनिर्वाण का क्रमशः
चक्र, बोधि-वृक्ष, चक्र एवं स्तूप
में प्रतीकांकन किया जाने लगा।
आसन, पदचिह्न, छत्र और
ऐसे ही बौद्ध-प्रतीक थे।
बौद्धकला में बुद्ध की उपस्थिति
इन्हीं प्रतीकों का उपयोग हीन-
यान कलाकार ने किया था। स्तूप में

बोधि-वृक्ष, धर्मचक्र आदि प्रतीकों के निकट
हाथ जोड़े, श्रद्धावनत नर-नारियों के झुंड
और अंतरिक्ष में उड़ते किन्नर तो हैं ही,
पशु-जगत भी बुद्ध-पूजा में पीछे न था।

भारतीय कला का सबसे अधिक महान
प्रतीक पद्म है। पद्म पृथ्वी का द्योतक
है। पृथ्वी की आठ दिशाएं उसके अष्टदल
हैं। पृथ्वी की समृद्धि श्रीपद्म पर ही
स्थित है। पद्म पवित्रता और विवेक का
प्रतीक है। पद्म को भरहुत एवं सांची
की शुंगयुगीन कला में जितने विविध
रूपों में आंका गया है संसार की किसी भी
अन्य कला में उतना नहीं आंका गया।

भरहुत की उत्कीर्ण कला में तत्कालीन
भवनों के बहुरूपी अंकन भी उपलब्ध हैं।
अलंकृत स्तूप, बहुभौमिक चक्रम्, बोधिचक्र
और त्रिरत्न-मंडप तो हैं ही, देव-सभा-
गार के रूप में इंद्र का बहुभौमिक विजयंत
प्रासाद उल्लेखनीय है। एक फलक में
नीचे अप्सराओं का नृत्य हो रहा है और
कुछ दर्शक उसका आनंद उठा रहे हैं।
ऊपर, एक ओर गोल छत वाले चंत्याकृत
मंडप के नीचे आसन पर बुद्ध की चूड़ा
आसीन है जिसके ऊपर छत्र तथा मालाएं
लटक रही हैं और दूसरी ओर तीन मंजिल
वाला एक भवन है, जिसमें नर-नारी
अथवा देवतागण उपस्थित हैं। जेतवन
वाले दृश्य में कौसंब और गंधकुटी
उत्कीर्ण हैं।

भरहुत की कला प्रारंभिक भारतीय
लोककला है। जिसमें विदेशी तत्वों का

नितांत अभाव है। इस कला की शैली मूर्तिकला से भिन्न थी। मूर्तिकला में मूर्ति को चारों ओर से तराशा जाता था, परंतु उत्कीर्ण कला में फलक में केवल एक ओर ही कुछ गहराई देकर दृश्य उकेरा जाता है। भरहुत की उत्कीर्ण कला चपटी है इससे 'लो-रिलीफ' शैली कहा जाता है। इसकी अपेक्षा सांची के विशाल स्तूप की उत्कीर्ण कला में गहराई बढ़ गयी थी। इसीलिए उसे 'हाई रिलीफ' कहते हैं।

भरहुत-स्तूप की वेदिका और तोरण पर दो सौ से अधिक छोटे-बड़े अभिलेख पाये गये हैं। ये अभिलेख शुंगयुगीन ब्राह्मी लिपि में हैं। इनमें कुछ दानवाची हैं जिनमें दाताओं के नाम और कभी-कभी

उनके निवास स्थान और धंधे का उल्लेख भी पाया गया है। कुछ अभिलेख दूध फलकों के शीर्ष अभिलेख हैं, जो केवल भरहुत में ही पाये गये हैं। यदि ये गोंध अभिलेख न पाये गये होते तो प्रमेनाक और अजातशत्रु जैसे राजाओं के अंक की पहचान नहीं की जा सकती थी। भरहुत के अभिलेखों से ही संभव हो सकता है। कला-शैली, अभिलेख, उनकी लिपि तथा उनके कथ्य के आधार पर यह निष्कर्ष है कि भरहुत स्तूप के तोरण और वेदिका का निर्माण ईस्वी पूर्व द्वितीय शती में हुआ था।

—१३६, तुलाराम बाग, इलाहाबाद

परिवार में हर एक के लिए स्वास्थ्य सहायता



इंडुका
**केसरी
जीवन**

एक स्वादिष्ट स्वास्थ्यकर टॉनिक

यह है इंडुका का व्ययनप्राश जिसमें स्वस्थ और गृहित के लिए २५ वर्षीय-वृद्धों और स्त्रियों सहित सभी करके उसे और अधिक शक्तिशाली बनाया गया है।

- कमजोरी दूर करता है
- शरीर के अवयवों को उभारता है
- खांसी और गले की खराबी को काबू में रखता है

दुबार प्रयोग योग्य २२५ ग्राम और ४५० ग्राम के आकार के जार में उपलब्ध



इंडुका
फार्मास्युटिकल वर्क्स लि.
आम्बाला रोड, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

मां की याद

का उल्लेख
मलेख दुःख
जो केवल
दि ये योगी
प्रसन्नचित्त
में के अंश
ये थे। मुं
ता भी मर
हो सकने
नकी लि
यह निरि
तोरण ओ
पूर्व द्विती
इलाहाबा

वहाँ पहले की घटना है। मेरी मां दमा
रोग से ग्रस्त थीं। उनकी चिकित्सा
बड़े डाक्टरों की देख-रेख में हो रही थी।
उन दिनों घर पर नहीं था। रात्रि के
बने थे। मैंने स्वप्न देखा कि माताजी
मेरे तड़फड़ाती हुई कह रही हैं कि—
'जल्दी आओ। मैं अब नहीं बचूंगी।
इतनी दूर चली जाऊंगी कि तुम कभी
वहाँ नहीं सकोगे।'

मैंने वह बात पत्नी को बतायी तो
उन्होंने कहा कि 'स्वप्न की बातें कहां सत्य
हैं।' हम लोगों ने उस स्वप्न को
साधारण समझकर टाल दिया। दिन के
बड़े गांव से शोक समाचार आ
या कि माताजी चल बसीं। मैं बच्चों

को फूट-फूटकर रो पड़ा और अपनी
माँ को धिक्कारने लगा। काश! मैं
उनकी सच्चाई पर विश्वास करके घर
आ गया होता और मां का दर्शन करके
सुख हो जाता। जब भी मैं उस घटना
याद करता हूँ तो बड़ी बेचैनी मालूम
होती है और आँखों से अश्रुधारा वह
सकती है। आज भी सोचता हूँ कि मां
को मृत्यु का पूर्वाभास स्वप्न में कैसे हो
—कैलाश त्रिपाठी, सेवरही,
(देवरिया) उ. प्र.

०००

‘वह नहीं आयेगा...’

मैं माँ पहले मैं अपने मित्र के साथ
विदेगन पुष्कर में घूम रहा था।



ब्रह्माजी के घाट के पास कुछ सटोरिये
एक योगी को घेरकर उसके आस-पास
खड़े हुए थे। देखते ही देखते उस योगी के
इर्द-गिर्द काफी लोगों का जमघट हो
गया। योगी चुपचाप खड़ा हुआ था।
मेरे मित्र को देखकर उसने उसे अपने
पास बुलाकर कहा, 'बेटा पूर्वजन्म में मैं
तेरा ऋणी हूँ। तू जो चाहे वह मुझसे
मांग सकता है।'

मित्र ने यों ही कह दिया, 'बाबाजी,
अगर आप चाहें तो मुझे विश्वविद्यालय
में प्राध्यापक का पद दिलवा दीजिये। मैंने
इस पद के लिए आवेदन-पत्र भेजा है।'

मित्र की बात सुनकर पागल की तरह
हंसते हुए उस योगी ने कहा, 'बेटा, तूने
मांगा भी तो क्या... साधारण सी बात!
अपनी आत्मा का कन्याण क्यों नहीं
मांगा? खैर! यह पद तेरी किस्मत में
नहीं है। लेकिन विधाता से लड़कर मैं
इस वचन को पूरा करूँगा।' इतना कहकर
उस योगी ने एक कंकर उठाकर दक्षिण
दिशा की ओर फेंकते हुए कहा, 'वह नहीं
आयेगा, तेरा काम हो जायेगा।'

हमने तो उस योगी को पागल ही मान

१४७

हिंदी डाइजेस्ट

उपयोग करें
ग्रेलिम स्टेपल फाइबर
और
साथ में



मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय
पूरक धागे

Grasilene

दि ग्वालियर रेयान सिल्क (मन्यू.) विविंग कं. लिमिटेड
(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM

टे. नं : ३८८२८८

नवनीत

१४८

लेकिन कुछ समय बाद मुझे
 कि मेरे मित्र को वह पद मिल
 आया था। आश्चर्यजनक बात तो यह थी
 कि जिस पद पर जिस व्यक्ति का चयन
 हुआ था, वह व्यक्ति दक्षिण भारत का
 था। उसने इस पद को स्वीकार नहीं
 किया। अतः उसके स्थान पर पैनल में
 से मित्र को लिया गया था। उस योगी
 दक्षिण दिशा की ओर कंकर फेंकने
 के चेट्टा कितनी अद्भुत थी !

-डा. चन्द्रकांत त्रिवेदी, अजमेर

०००

मौत एक पहली

गुलाई १९८० की बात है। उस
 दिन रात को मैंने स्वप्न में देखा
 कि मेरे छोटे भाई की, जो उन दिनों गुमला
 में रहते थे, दुःखद मृत्यु हो गयी है।
 मैंने कुछ इस कदर भयावह था कि मैं
 पर नियंत्रण नहीं रख पाया और
 मैं ही मुवह पहली बस द्वारा रांची से
 गुमला के लिए रवाना हो गया। सफर के
 पूरे पड़ाव कुछ तक पहुंचते-पहुंचते एक
 गांव-सी वेंचैनी से मुझे उबकाई आने
 ली। वस के पड़ाव पर रुकते ही मैं समीप
 में एक होटल में पानी लेने गया। मेरे
 भय का उस समय कोई ठिकाना न
 था, जब मैंने होटल में पानी के लिए अपने
 छोटे भाई को भी खड़ा पाया, जिसके बारे
 में मैंने स्वप्न देखा था। पिछले ही दिन
 मैंने उसे मुवाकात कर सीधा गुमला
 ले जाया था। इसलिए उसकी उस समय वहां

हमारे कोई समीपनी नहीं थी। मुझ पर
 नज़र पड़ते ही उसकी आंखों में एक विचित्र-
 सा भाव तैरा। करीब आकर उसने मुझे
 बताया कि पिछली रात उसने स्वप्न में
 जब यह देखा कि एक भयंकर दुर्घटना में
 मेरी दुःखद मृत्यु हो गयी है तो वह स्वयं
 पर नियंत्रण नहीं रख पाया और मुझसे
 मिलने को रवाना हो गया और यों रास्ते
 में संयोगवश हमारी मुलाकात हुई। मैंने
 भी जब उसे अपने स्वप्न के बारे में बताया
 तो सुनकर वह स्तब्ध रह गया। मौत की
 यह पहली हमारी समझ में तो नहीं आयी
 थी, परंतु हमारी आशंकाओं का उन्मूलन
 हो गया था।

तभी हम दोनों ने निश्चय किया कि
 जब यहां तक आ ही गये हैं तो समीप के
 गांव जाकर, जहां हमारी बहन की समु-
 राल थी, उससे भी भेंट कर लें। जब हम
 गन्तव्य स्थान के करीब पहुंचने को हुए
 तो वहां एक विचित्र-सी हलचल देखकर
 हमारा माथा ठनका। नज़दीक आने पर
 देखा, वहां सफेद कपड़ों में लिपटी हमारी
 बहन की लाश पड़ी हुई थी। लोग हमें
 संभालने को आगे बढ़े, परंतु इसके पहले ही
 मैं चेतनाहीन होकर गिर पड़ा था। आज
 भी जब मुझे अपने और अपने भाई के
 उस स्वप्न के साथ जुड़ी अपनी बहन की
 मौत की उस घटना की याद आती है, मेरा
 रोम-रोम सिहर उठता है।

-दिनोद कुमार लाल,
 रामगढ़ कैंट (हजारीबाग)

हिंदी डाइजेस्ट



While purchasing Hessian, Sacking, Carpet Backing and other jute products and Cotton Yarn. Please insist on quality production.

We are always ready to meet the exact type of your requirement.

Kanoria Jute Cotton Mills Ltd.

4/1, Red Cross Place,
Calcutta — 700 001.

Phone : 23-2397/98
23-7197

Telex : 021 — 2196
Cable : KAYJUTE,
Calcutta.

JUTE MILLS

Kanoria Jute Mills,
Sijberia, P. O. Uluberia,
Dist. Howrah (W. Bengal)

SPINNING MILLS

Shree Hanuman Cotton Mills,
Fuleshwar, P. O. Uluberia,
Dist. Howrah (West Bengal).



पूर्वाभास

फरवरी के द्वितीय सप्ताह की है। मुझे मेरी कविताओं की रिकॉर्डिंग काकाशवाणी, रामपुर से अनुबंध मिल चुका। रिकॉर्डिंग ११ फरवरी को एक मित्र से भी मिलना था। अतः फरवरी को रात में रामपुर पहुंचा। करते-करते हम सो गये। उसी रात अपना देखा कि तीन हवाई जहाज आकाश में बड़ी तेजी से उड़े जा रहे हैं। एक एक जहाज लुप्त हो जाता है। जब दो जहाजों में भीषण विस्फोट हुआ। बांस के जंगल के पास कुछ दिनों पर दोनों जहाज गिर पड़ते हैं। तब तीन बार विस्फोट होता है। अना देखकर मेरी आंख खुल गयी। दो ही देर में प्रातः रेडियो पर समाचार सुना से १९९ किलोमीटर दूर तीन विस्फोट टक्कर हो गयी है।' टक्कर ठीक उसी समय हुई, जब मैं मेरे वायुयान दुर्घटना का दृश्य देख रहा।—राजकुमार पाण्डेय, मुरादाबाद

०००

नया मोड़

प्रायः विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त करने के तुरंत बाद ही बड़े-बड़े के जैन पालीटेक्निक में मुझे एक पद मिल गया। कालेज में 'मैटेनेंस शाप' एवं 'वर्कशाप टैक्नालाजी' के प्रिय विषय थे। इन दोनों विषयों पर अधिकार समझा जाता था। मुझे

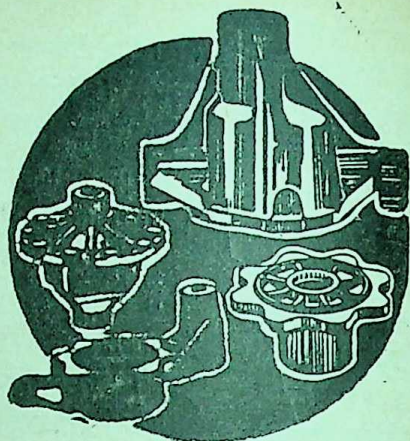
मुझे ८५ प्रतिशत से कम अंक प्राप्त हुए हों। पालीटेक्निक में मुझे जब यही विषय पढ़ाने को मिले तो मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं रही।

पढ़ाने का क्रम चल निकला। धीरे-धीरे मैं पालीटेक्निक में लोकप्रिय हो चला। मेरे पढ़ाने की चर्चा प्रिंसिपल साहब के कानों में भी पड़ी। एक-दो बार तथ्य को परखने के लिए वे मेरी कक्षा में आये। कुछ देर बैठकर बिना कुछ कहे चले गये।

कुछ दिनों पश्चात् उन्होंने मुझे आफिस में बुलाया—'जहां तक थ्योरी की बात है—मुझे लगता है कि आप छात्रों के साथ न्याय कर रहे हैं, किंतु 'वर्कशाप-टैक्नालाजी' का वास्तविक संबंध वर्कशाप के यथार्थ से है। सीमित साधनों के चलते हमारे यहां बहुत-सी मशीनें नहीं हैं। मैं सोचता हूं कि आप छात्रों को दूर पर ले जाइये और एक-दो अच्छी 'मशीन शाप्स' और कच्चे कारखाने दिखाइये।' प्रस्ताव व्यावहारिक था। छात्रों ने भी इसे पसंद किया। हम रांची के हैवी इंजीनियरिंग कार्पोरेशन की 'मशीन शाप्स' में गये। टिस्को की गमरिया (जमशेदपुर) स्थित 'मैटेनेंस शाप' में गये। 'मैटेनेंस शाप' की एक मशीन के सामने मैं अटक गया, वह एक विशालकाय मशीन थी। 'यह कौन-सी मशीन है?' 'डब्ल्यू डी-२०० हॉरीजेंटल बोरिंग

१५१

हिंदी डाइजेस्ट.



दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाईनिंग कंपनी लिमिटेड

का आपको निमंत्रण है, आयात प्रतिस्थापन को सफल बनाइये

एस० जी० आइरन के कार्स्टिंग

कांसा, पीतल, गनमेटल या लौहेतर धातुओं तथा इस्पात के पुजों
व हिस्सों का स्थान ले सकते हैं।

मैलिएबल आइरन के कार्स्टिंग

अनेक प्रकार की चीजों में इस्पात के कार्स्टिंग का काम दे सकते हैं।

एस. जी. आइरन और मैलिएबल आइरन के कार्स्टिंगों में उच्च भौतिक गुण होते हैं।
वे खरीदने में सुगम, दृढ़ एवं तन्यतायुक्त होते हैं, उनमें घिसाव कम होता है।



संपर्क कीजिये :

फेरसकाउंड्री, पंचपाखाड़ी, पहला पोखरन सेन, याना (महाराष्ट्र)
उच्च श्रेणी के कार्स्टिंग्स व बचत के लिए उच्चल हैमरबॉल व
आग्रह कीजिये।

बोली।

‘बोर यह?’

‘बीयर-ब्रेपर....’

बुरी अपराध भाव की एक घटा सहसा
निमित्तक में घुमड़ने लगी। जिन मशीनों
में पहचानता नहीं—उन मशीनों की
विकास जानकारी में छात्रों को देता हूं,
मशीनों की कार्यप्रणाली में छात्रों को
जानता हूं, कैसी विडंबना है !

क्यों ऐसा भी होता है

मन की अंधेरी कंदरा में

दोपक की एक लौ

ज्वाला जल जाती है

जिसका एहसास होते ही

सांसों का प्रवाह थम जाता है

अगली सांस लेने में भी

मन धबकाता है

इसी सोच में डूब जाता है

कहीं ऐसा न हो जाये

सांसों के झोंके में

दोपक की वह टिमटिमाती

लौ न बुझ जाये।

(सत्यकाम विद्यालंकार)

‘लौ’ के बुझ जाने से पूर्व मैंने त्यागव्रत
दे दिया। वर्कशाप टैक्नालॉजी अवश्य
पढ़ाऊंगा, किंतु वर्कशाप में काम करने के
बाद मशीनों की कार्यप्रणाली अवश्य सम-
झाऊंगा, किंतु मशीनों पर हाथ काले
करने के अनंतर।

हैवी इंजीनियरिंग कार्पोरेशन, रांची के
एक रूसी विशेषज्ञ का कथन याद आता
है—‘अपने देश में इंजीनियरिंग कालेजों में
शिक्षण का रास्ता उद्योग से होकर जाता
है। हमारे यहां के शिक्षकों एवं डिजाइनरों
को उद्योग की व्यावहारिक जानकारी अनि-
वार्य है।’ —सत्य स्वरूप दत्त, जनशेदपुर

(पृष्ठ ३५ का शेषांश)

मगर मैं उसका आशय न समझ सका। उनका हिंदी अनुवाद हो जाने से कदाचित्त
मैंने कुछ तत्व आ जाये। सभी के वक्तापन में प्रायः ऐसी घटनाएं हुआ करती हैं।
जो हमारे जीवन पर क्या प्रभाव होता है, हमें यह देखना है। युवती के पत्र से उसके
मनोमय तो प्रकट हो जायेंगे। लेकिन नायक के जीवन ने आगे चलकर इस प्रेम के फल-
स्वरूप क्या रंग पकड़ा? आखिर इस प्रेम की कथा क्यों सबको सुनायी जाये, जब तक
जो कोई खास बात या विशेषता या नयापन न हो। अगर हम सभी अपनी जवानी की
कथाएं लिखने बैठें, तो सोचो कितना बड़ा दफ्तर हो जाये।

तुम पहले गुजराती पत्र का अनुवाद भेज दो।

अक्टूबर को हंस नये रूप में निकल रहा है। यह तो तुम्हें मालूम है।
श्री प्रभाकर माचवे ने तुम्हारी दोनों प्रकाशित कहानियों की सराहना की है।

शुभाभिलाषी-प्रमचंद

INDOKEM LIMITED

221. Dr. D.N. Road,
Fort

Bombay - 400 001.

Phone : 267881/10 Gram: "INDOKM" Telex: 011-2942

Marketing:

Dyes. Chemicals. Pigments. Leather Binders. Auxiliaries.
Synthetic Tanning Agents. Leather Colours, Fat Liquors.
Synthetic Resins, Textile Auxiliaries, Polyester Fibre.
paints, menthol, Non-textile Auxiliaries etc.

Manufactured By:

Indian Dyestuff Industries Ltd.,
Colour Chem Ltd.
Aniline Dyestuffs & Pharmaceuticals (P) Ltd.,
Cellulose Products of India Ltd.
Dai-Ichi Karkaria Pvt. Ltd.
Haryana Rang Udyog
National Chemical Industries
Indian Organic Chemicals Ltd. (Futura Polyester Fibre)
Hypo Chemiedye
Gujchem Listillers India Ltd .
Lalji Mentha (P) Ltd.

Branches at:

Ahmedabad	Calcutta	Delhi	Madras	Nagpur
	Kanpur	Secunderabad.		

(पृष्ठ ५१ का शेषांश)



चित्र : आलोक जैन

उनका यह भी अनुमान है कि किसी आक्रांता ने इन मंदिरों को पूरी तरह ध्वस्त किया था।

भंडारकर ने जिस चबूतरे की खोज की, उसी के पूर्व में बौद्ध स्तूप के अवशेष मिले थे। इस स्तूप का व्यास १६ फुट ८ इंच था।

उदयगिरि की पहाड़ी के आसपास अनेक हिन्दू, जैन एवं बौद्ध अवशेष बिखरे पड़े हैं। इस पहाड़ी के पीछे एक विशाल शिला पर नरसिंह अवतार चित्रित किया गया है। इन पहाड़ियों से ३ किलोमीटर दूर बिघन नामक गांव है, जहां एक बौद्ध स्तूप के अवशेष मिले हैं। सांची, विदिशा और बेसनगर पुरातत्त्व अवशेषों के अथाह सागर हैं, जहां जितनी खोज की जाये कम है।

उदयगिरि की यह पहाड़ी बड़ी समतल है। यहां की प्राकृतिक सुषमा देखते ही बनती है। इस पहाड़ी के उत्तर में बेस एवं दक्षिण में वेतवा नदी बहती है। थोड़ी ही दूर चलकर इन दोनों नदियों का संगम है। यह संगम और बलकल बहती हुई नदियां, प्राकृतिक सौंदर्य की अद्भुत कृपा बिखेरती हैं।



सुन्दर। कार्यकुशल। निर्भरयोग्य।

आह हा ! ओरिएन्ट पंखे के नीचे दिन कितने सुहाने बीतते हैं। ये मनलुभावने स्टाइलों और अच्छी कार्यसेवा के लिये बने हैं। सच इनकी आकृति तथा रंगों का आपके घरकी साज-सज्जा से कितना मेल है। और फिर ये बने भी तो दक्ष कारीगरी हाथों से हैं। अतः ठीक जैसा आप चाहते हैं, वैसा ही पायेंगे— देखने में मनमोहक कार्यक्षमता में निराले और वर्षों चलने वाले।

४ सीलिंग पंखे ★ ६ टेबल पंखे
★ २ पेडेस्टल पंखे

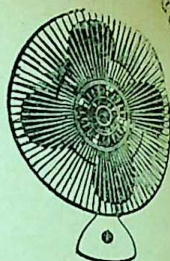
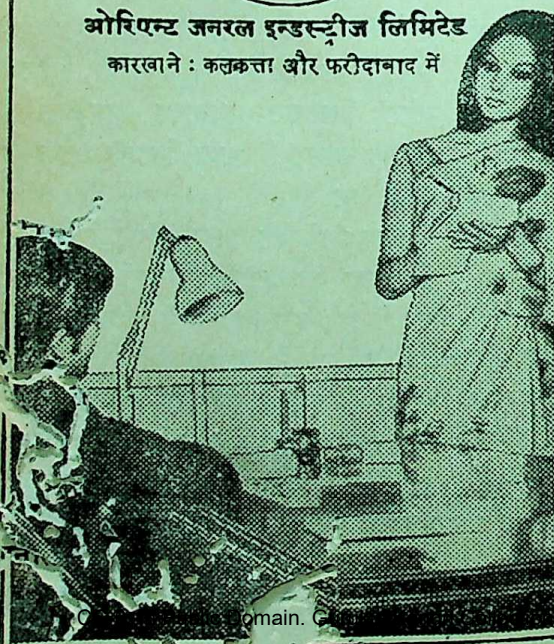
ओरिएन्ट पंखा

कार्यकुशलता और सौंदर्य का बेजोड़ संगम

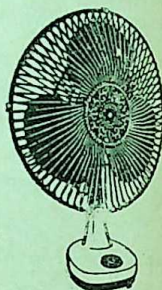
ओरिएन्ट
पंखा

ओरिएन्ट जनरल इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

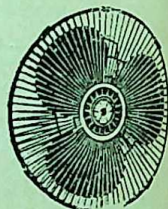
कारखाने : कलकत्ता और फरीदाबाद में



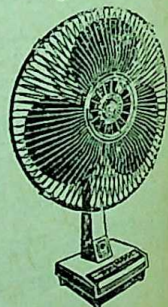
डोलक्स



समरक्वीन



सुपर डोलक्स



उत्क

(पृष्ठ ९६ का शेषांश)

सत्तात्मक परिणामों की ओर इंगित करते हुए कहा है :

‘आज का जीवविज्ञान इस पूर्वानुमान पर आधारित है कि जीवन-प्रक्रिया को ज्ञान-शास्त्र और भौतिकी की भाषा में समझा जा सकता है। और भौतिकी तथा ज्ञान-शास्त्र दोनों की अंतिम अभिव्यक्ति परमाणु के कणों की पारस्परिक क्रिया के रूप में होती है। चूंकि हमने ज्ञान को या तो भूखों का एक बंडल बना लिया है, या जड़ स्वचालित यंत्र, इसलिए ज्ञान की मूल धारणा एकदम भ्रष्ट हो गई है। यही कारण है कि विज्ञान व्यक्ति-अनुभवात्मक की स्वीकृति की संभावना को नकार करता है। और यही कारण है कि विज्ञान को सर्वसत्तात्मक हिंसा के रूप में लिए प्रवृत्त किया जा सकता है, जो विज्ञान आज खतरनाक भ्रान्तियों को जन्म दे रहा है।’

वे आगे कहते हैं, ‘आधुनिक सर्वसत्ता-वाद को विशुद्ध रूप से आदमी की भौतिक-धारणा पर आधारित है, किसी भी अतिरिक्त मत के सत्तावाद से कई गुना अधिक निरंकुश और दमनात्मक है। जहां सत्तावाद में सारे गुप्त निर्णय कुछ चुने हुए और खास लोगों द्वारा लिये जाते हैं, वहीं सामाजिक सत्तावाद का आधार धार्मिक ग्रंथों में वर्णित सनातन धर्म है।’

वैज्ञानिकों का खयाल है कि उन्होंने

समाज और दर्शन की उपेक्षा करके उनकी समस्याओं का हल ढूँढ़ लिया है। वैज्ञानिक न दार्शनिक हैं, न प्रज्ञावान्। चिन्तक होने के स्थान पर वे महज ठठेरे हैं। समाज का कल्याण किस बात में है, इसका निर्णय करने योग्य दृष्टि उनमें नहीं है। वैज्ञानिक को सत्य की शोध रहती है, पर उसे यह चिन्ता नहीं रहती कि उस सत्य से समाज को लाभ होगा या नहीं। मगर, सत्य क्या है, इसका ज्ञान उनमें कम ही होता है। दार्शनिकों और धार्मिक जनों को उस सत्य की खोज रहती है, जिससे सारे समाज का भला हो। सुकरात ऐसे ही दार्शनिक थे। उनका कहना था कि परम सत्य वही है, जो शुभ है, और जो सारी मानव-जाति का कल्याण करे।

हम जिस बात पर जोर डालना चाह रहे हैं, वह बहुत सीधीसादी है। यह दावा करने से पूर्व कि जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से हुई है, हमें इस दावे का सतर्क और संयत विश्लेषण करना चाहिये। तब हमें पता चलेगा कि यह दावा उस समझ का विरोध करता है, जिसने हजारों वर्षों तक मानवता का सही मार्ग-दर्शन किया है। तब तक मानव के सारे भावी कार्यकलाप इसी मुद्दे पर निर्भर हैं, इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि इस दावे से संबंधित सारे वैज्ञानिक साक्ष्यों और तर्कों की पूरी जांच की जाय।

(‘भारतीय चिन्तन’
इंस्टिट्यूट बुलेटिन’ से संपादित)

मुनिया रानी बढ़ती जाये
बालों का जादू जगाये
भोती से सफेद दाँतों को चमकाये



नाम छाप ब्राह्मी अक्षरों के साथ
—कहने वाली को और को
कहने छापे मन में माये

बालों का ये कालासन, मन व चमकीलापन

सेवाश्रम का गाय छाप ब्राह्मी अक्षरों के साथ
और काला दन्तमंजन



मन: भक्त: भक्त:

मन: भक्त: भक्त:

दो क्षण तो हँस लें

उपदेशक आया और साइनबोर्ड पर लिखा—‘मैं सबके लिए प्रार्थना करता हूँ।’ इसके नीचे वकील ने लिखा—‘मैं सबका खर्च करता हूँ।’

डॉक्टर ने लिखा—‘मैं सबको स्वस्थ करता हूँ।’

साधारण नागरिक ने लिखा—‘मैं सबका खान करता हूँ।’

०००

लवारीलालजी की लाटरी निकली। खुशी में झूमते चले जा रहे थे।

उपर एक भिखारी दिखायी दिया।

लवाराकर सौ रुपये उसके हाथ में रख

और सहानुभूतिपूर्ण स्वर में उससे

‘तुम्हारी यह हालत कैसे हो गयी?’

‘जो तरह सौ-सौ रुपये भिखारियों

को दोगे, तो बहुत जल्द ही तुम्हारी

यही हालत हो जायेगी!’

०००

एक इबराहीली कहावत है—‘कुत्ता दुम

हिलाता है कि कुत्ते में दुम से ज्यादा

होता है। अगर दुम ज्यादा ताकतवर

हो, तो वह कुत्ते को हिलाया करती।’

०००

एक पान लगाना। सुपारी

का खाद डालना। एक लॉग डाल

देना, एक इलायची डाल देना, थोड़ी-सी, पिपरमिन्ट डाल देना, सौंफ डाल देना, गुलकन्द डाल देना.....’

‘और बाबूजी, जो आपने तीस पैसे दिये हैं, उन्हें भी इसी में डाल दूँ क्या?’

०००

मटरूमल और उनकी बीवी मिलकर मक्खी मार रहे थे। ‘कितनी मारी?’ उनकी पत्नी ने थोड़ी देर बाद उनसे पूछा।

‘छह—तीन नर और तीन मादा।’

‘तुम्हें कैसे पता चला कि कौन-सी नर है और कौन-सी मादा?’

‘उनमें से तीन चीनी पर थीं और तीन शीशे पर। इसी से पता चल गया!’

—दीपक दीक्षित

कुछ साहित्यकार उर्दू के एक कवि के बारे में बातें कर रहे थे। एक ने कहा—‘साहब, बहुत बड़े शायर हैं। सरकारी खर्च पर यूरोप भी हो आये हैं।’

हरीचंद अख्तर भी वहीं बैठे थे।

उन्होंने कहा—‘जनाब, अगर किसी दूसरे मुल्क में जाने से ही कोई शायर बड़ा बन जाता है, तो मेरे पिताजी दूसरी जगह में जा चुके हैं। लेकिन खुदा गवाह, मैंने कभी वे कभी एक शेर भी ठीक से नहीं कहा।’

—डा. गोपाल

दि इंडियन टूल मैनुयुफेक्चरर्स

१०१, सायन रोड, सायन, बंबई-४०० ०२२

सुनिश्चित होकर चुनाव कीजिये

‘डॅंगर’ ट्विस्टर ड्रिल्स रीमर्स, कटर्स, टप्स, टूलबिट्स और
माइक्रोमीटरस् डॅंगेलाय कार्बाइड टूल्स और टप्स
डॅंगर-साक गियरहाउस और गियरशॉपिंग कटिंग



प्रिसिशन का प्रतीक

श्रीकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्याभवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००४
प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास
बंबई-४००००४ में मुद्रित ।

ताज़गी की एक लहर!

जियार्ज, सूटिंग, शर्टिंग और
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं।
जियाजी यानी स. सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की
लहर। आप अपने आपको कुछ और
ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।
क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके
लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी
आस पास बिसरे सुनेपन में
ताज़गी भर देते हैं।



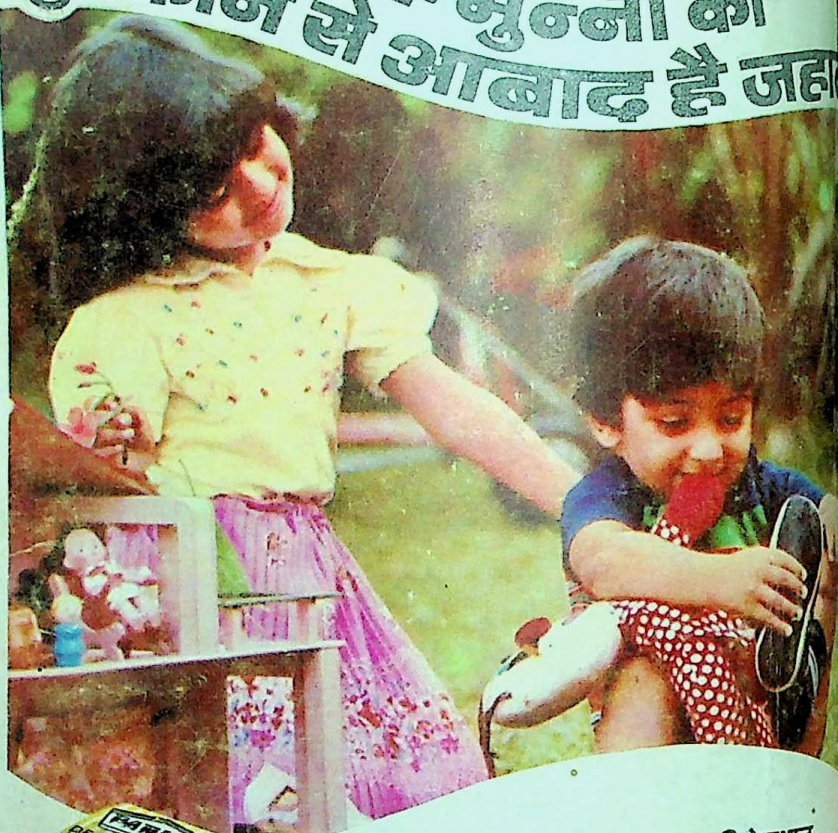
जियाजी

सूटिंग-शर्टिंग

कॉटन प्रिंट्स

जि. जी. रा. क. ए. न. मि. र.

नन्हें मुन्नों की
मुस्कान से आबाद है जहाँ



उन्हें दीजिये प्यार भरी देखभाल
पारले ग्लुको-
स्वाद में निरात
शक्ति से भरपूर

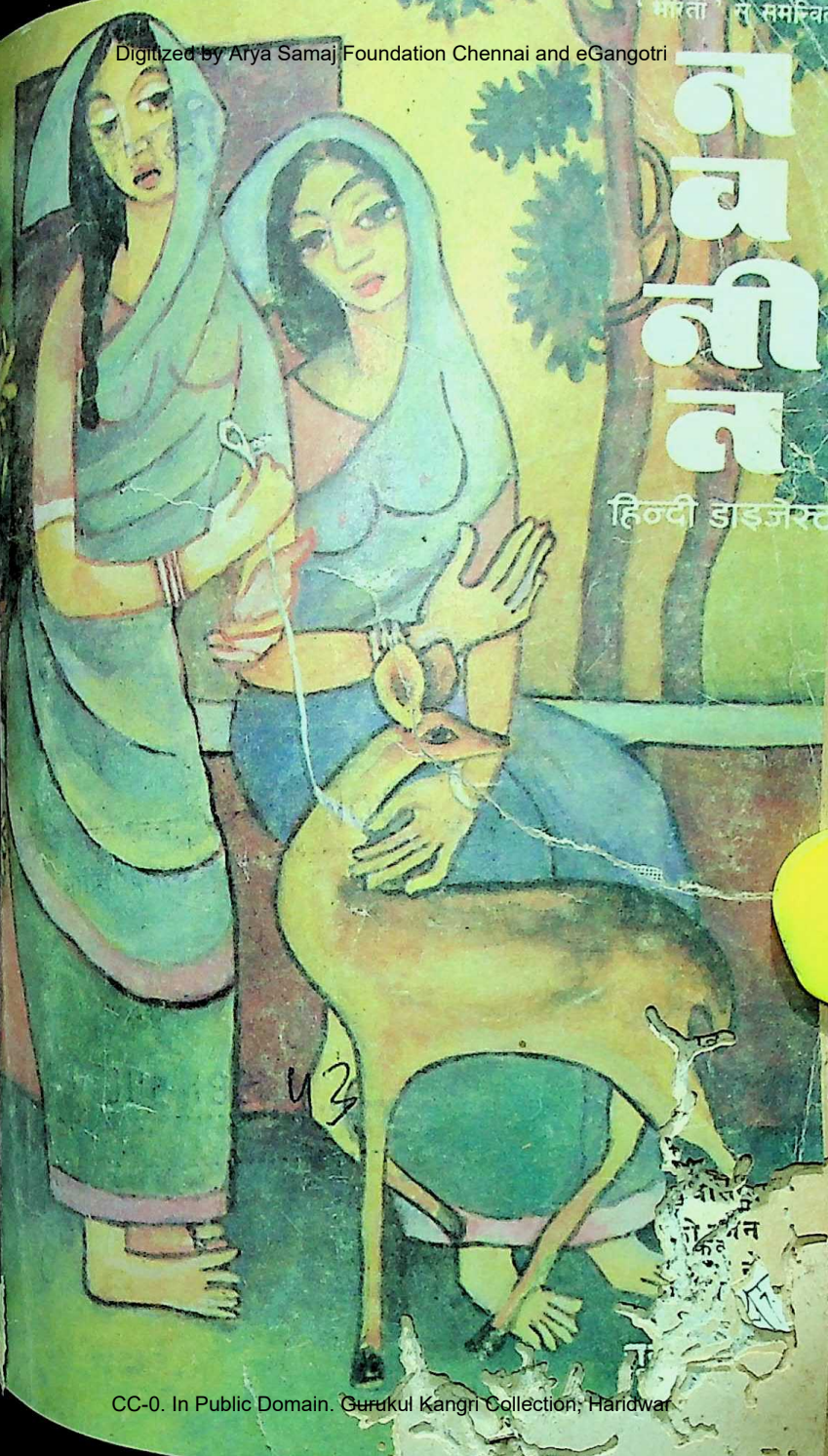
दूध, गेहूं, शक्कर और लूकोज के
स्वाद और पोष्टिक गुणों से भरपूर.

भारती से समन्वित

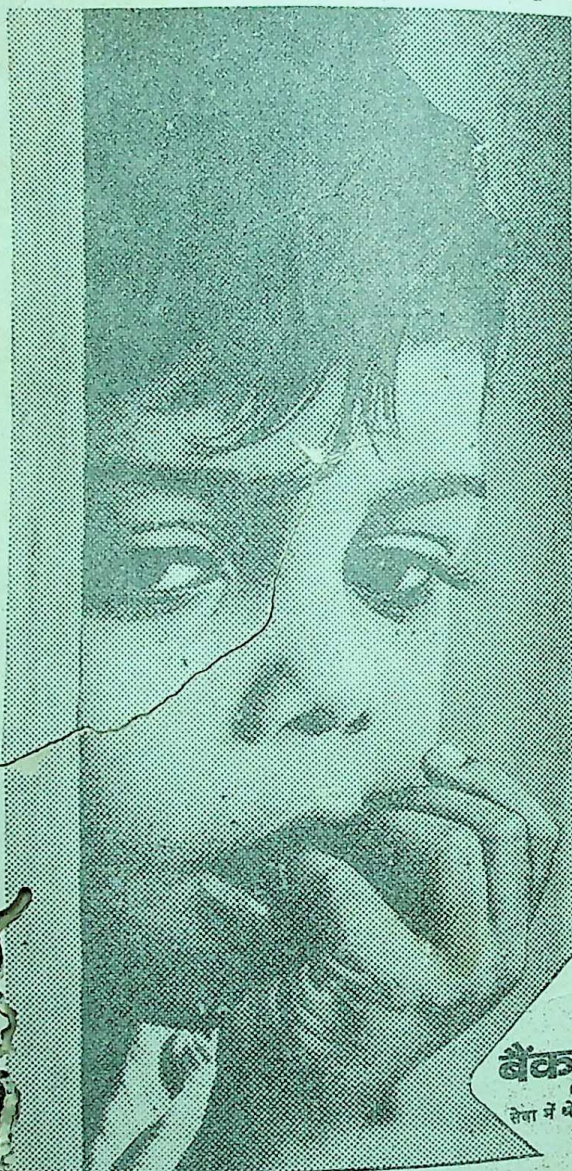
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न व नी न

हिन्दी डाइजैस्ट



बचपन के दिन... सपनों के दिन!



संजु अभी-अभी अस्पताल से अपने प्यारे छोटे भाई को देख लाता है। उसके मन में यह नयी कल्पना जागृत हुई और उसने एक सपना संजोया था डॉक्टर बनने का। लेकिन उसके सपने को पूरा करने की जिम्मेदारी आपकी है। उसकी उच्च शिक्षा ही उसके जीवन की सफलता होगी। अब अभी से इस बारे में सोचिए- बैंक ऑफ इंडिया की अपनी नज़दीकी शाखा में पधारिए। हमारे पास आपकी तथा आपके परिवार की हर फ़रसत को पूरा करनेवाली कई वचत योजनाएँ हैं। आइए और देश के सबसे बड़े राष्ट्रीयकृत बैंक की मदद से अपने बच्चों का भविष्य उज्जवल बनाइए।



बैंक ऑफ इंडिया

(शासित सरकार का उद्योग)

सेवा में श्रेष्ठता ही हमारी विशेषता है।

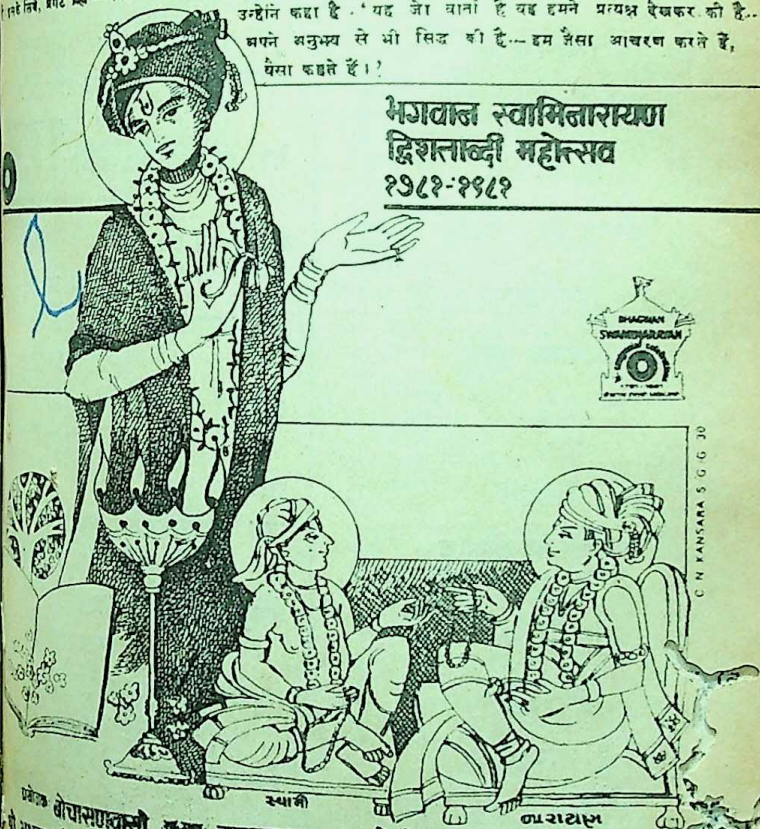
CONCEPT-BOI-4452 HIN.

आश्विन मास - ३०

वचनमृत

[illegible]

भगवान् स्वामितारायण
द्विशताब्दी महोत्सव
१९८१-१९८१



ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री
नारायणस्वरूपदासजी (प्रमुख स्वामी)

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

वीरेन्द्र कुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र :

वन्धु सौन्दर्य

अधिकारी की कृति

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३०; अंक

जतिगा की घाटी में हत्याएं हो हत्याएं

ए. ओ. माप्रकोरेदेति

श्वेतपत्र डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक

विज्ञान-वार्ता

हवा में उड़ जाने वाले पत्थरों का

मकबरा ह्यूज गांजर और

कॉलिन गांजर

मेरा चमत्कारिक अनुभव

अरुणकुमार शर्मा

बच्चों का खेल १९४६

यूसिफ सोमडोगली

मेरा सपना जो साकार हुआ

चन्द्रकान्ता कक्कड़

तमाशों का गोवर्धन

भुवनेश्वर बेहरा

प्रार्थना

जब भगवान मेरे जीवन में आये

स्वामी विवेकानन्द

बेहिसाब का हिसाब

इन्दरराज आनन्द

यायावर साहित्यकार अज्ञेय

डॉ. चन्द्रकान्त वांदिबडेकर

प्रेम और कर्म : पूर्व-पश्चिम संवाद

डॉ. प्रभाकर माचवे

मैं अब, कभी, कहीं भी, अकेली नहीं

वीरेन्द्र कुमार जैन

मंगत (हिन्दी कहानी)

निर्मल कुमार

विद्या भवन
३०; अंक
१९८१
मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० १००७

सन्धान का लोकतीर्थ देलवाडा
सावित्री परमार ७२
बाद : चांद-सी...

नवराज ८०
माडपूछकर की 'गीत रामायण'
लीला बांदिवडेकर ८१

सुरेशचंद्र राय ८८
किरण-विज्ञान चिकित्सा
डॉ. डी. एन. खुशालानी ९२

रज्जन त्रिवेदी ९७
डॉ. कवि गालवे किनेल
इन्दुप्रकाश कानूनगो १०८

डॉ. विद्या विन्दु सिंह ११२
हैमंत कारडे १२०
तपस्विनी की जीवनी

मीनाक्षी गुप्त १२४
कुलश्रेष्ठ, व्यास, दीक्षित,
मायुर, दुआ, तेगी १४३

निगम, वंशी १५९
आंके, श्रेणी, मनीषी दे,
ठाकोर राणा,
आलोक जैन

अमृतं तु विद्या
भारतीय विद्या भवन



अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित पूजातया मिश्रा, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी धर्मादा व्यास, संस्थापक : कुलश्रेष्ठ क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री धरमसी म. घटाड, उपाध्यक्ष : श्री गिरधारीलाल मेहता; श्री जयमुखलाल हाम्पी ।

सहयोगी प्रतिष्ठान

१- मुम्बईदेवी संस्कृत महाविद्यालय २-शास्त्रीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३-सरल संस्कृत परीक्षा विभाग ४-मोता विद्यालय ५-मुम्बई-लाल गोयनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रतिष्ठान ६-मुन्शी सरस्वती मंदिर (पुस्तकालय) ७- बल्लभजी रामजी बाल पुस्तकालय ८-भारतीय संगीत निदाघोठ ९- भारतीय नर्तन निदाघोठ १०-भारतीय इतिहास विभाग ११-प्रकाशन मंदिर, पुस्तक मुद्रिनी, मुन्शी साहित्य, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या पैमानिक), मन्त्रमंजरी (अंग्रेजी पाठिक), संविद (संस्कृत पैमानिक), नवनीत हिन्दी डायरेक्ट (हिन्दी मासिक), नवनीत समर्पण (गुजराती मासिक) १२-राजीव जन्मदिन और आधुनिक आविष्कार योजना १३-ओपनिषदिक योजना १४-राजाजी शतवार्षिकी समिति १५- म. म. कला कालेज और न. म. विज्ञान विज्ञान संस्थान (अंग्रेजी) १६-बल्लभराज मेहता पब्लिक स्कूल (नवी दिल्ली) १७-हजारीलाल सोमानी कालेज, कला एवं विज्ञान (चोपटी, बम्बई) १८- सरदार पटेल अभियांत्रिकी कालेज (अंग्रेजी) १९- रज्जुदासलाल अचरलताल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०- रमछोडनलाल अचरल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१- रज्जुदासलाल वाणिज्य कालेज, (डाकोर) २२- कला एवं विज्ञान कालेज (डाकोर) २३- स्वामीनारायण पालिटेक्निक (डाकोर) २४- श्री जयप्रताप कालिदास ज्योतिष विद्या कालेज (जामनगर) २५- व. स. मेहता विज्ञान कालेज (मराठवाड़ी) २६- राजेन्द्र प्रसाद संग्रेषण एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (पूर्वित) प्राणलाल देशकरलाल नाथजी संग्रेषण एवं प्रबंध विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंग्रेषण कालेज, नवी दिल्ली; हरिलाल भगवती जनसंग्रेषण कालेज अहमदाबाद तथा बंगलूर; सोमानी जनसंग्रेषण कालेज, एरनाकुलम; बड़ोदा, बंगलूर, मुद्र, हैदराबाद, मंगलौर तथा त्रिपुर में स्थित जनसंग्रेषण कालेज २७- जवाहरलाल नेहरू भाषा अकादमी, नवी दिल्ली २८- ज. ह. बाघिया स्कूल (अंग्रेजी) २९- बल्लभराज मेहता पब्लिक स्कूल (विद्यालय) बड़ोदा तथा मराठवाड़ी ३०- भवन का विद्या मंदिर, एलामस्क, एरनाकुलम ३१- कोपीनयाड पर भवन का स्कूल, कोपीन ३२- बल्लभराज म. म. पब्लिक स्कूल (विद्यालय) मराठवाड़ी, इलाहाबाद के पास ३३- भवन का विद्या स्कूल, भवन, रामचन्द्रपुरम, हैदराबाद ३४- संयुक्त संस्थाएं संस्कृत विषय परियद; भारतीय स्वी सेवा संघ; ज्योतिष परियद (नई) ३५- संस्कृति पाठ्यक्रम पुस्तकें ।

केन्द्र और कांगलप

अहमदाबाद, बंगलूर, बड़ोदा, भोपाल, मुम्बई, मराठवाड़ी, पंजोड, कोयम्बूर, डाकोर, दिल्ली, एरनाकुलम, मुद्र, हैदराबाद, जामनगर, काकोनाडा, कानपुर, मद्रास, मुद्राई, मंगलौर, नागपुर, सिवोन, श्रीनगर, त्रिपुर, विद्यावापट्टनम, सदन (मुद्र)

भारतीय विद्या भवन

कै.एम.मुन्शी मार्ग, चोपटी, बम्बई-४०० १००७

फोन २२६१

पृष्ठ ५६ पर प्रकाशित 'अनुत्तर योगी' के उपन्यास-
अंश की पूर्व-पीठिका यहां प्रस्तुत है।

मैं अब, कभी, कहीं भी, अकेली नहीं

लेखक का महाकाव्यात्मक उपन्यास 'अनुत्तर योगी', भगवान महावीर की जीवन-गाथा आधारित, दो हजार पृष्ठ-व्यापी पाँच खण्डों बृहद् ग्रन्थ है। इसके पहले तीन खण्ड निकल चुके हैं, और उनके तीन संस्करण हो चुके हैं। भारतीय प्रजा की अनादिकालीन भाव-मन की मोहक और मार्मिक कथा होने से यह ग्रन्थ लोक-हृदय में व्याप्त हो सका है।
कथा-प्रसंग :

वैशाली के राजपुत्र महावीर यदि अपने समय के भारत के सूर्य थे, तो वैशाली नगर-वधू आश्रपाली अपने काल की अप्रतिम सुन्दरी, विलक्षण प्रतिभावती और नृत्य-संगीत की साक्षात् सरस्वती थी। वैशाली की ऐसी महान और गुणियल बेटो, वैशाली कालजयी तीर्थंकर राजपुत्र महावीर के सम्पर्क में न आयी हो, ऐसा कैसे हो सकता है। इतिहास का साक्ष्य है कि आश्रपाली भगवान बुद्ध को समर्पित हुई थी। यह सत्य भी है लेकिन कवि का काल-भेदी आत्म-साक्ष्य यह है, कि देवी आश्रपाली ने बिन देखे ही महावीर को अपना 'एकमेव पुरुष' मान लिया था। नारीत्व के सारभूत सौन्दर्य और निर्ग्रन्थ वात्सल्य के साथ, वह महावीर को वचन से ही प्यार करने लगी थी। गणिका होकर भी वह महावीर की कुँवारी सती होकर रह गयी थी। वह नहीं मान सकी थी, कि महावीर के सिवाय कोई अन्य पुरुष उस काल, उसके वरण के योग्य हो सकता था।

... लेकिन गणिका होने का कलंक लिलार पर धारण कर आश्रपाली अपने पति-प्रीतम के सामने नहीं आना चाहती थी। उसे वह अपने देवता का अपमान लगता था। जब महावीर तीर्थंकर होकर पहली बार वैशाली आये, तो उसके द्वार से निकलते हुए मिले। पर किवाड़ की ओट से उनकी झलक जात्र देखकर वह मूर्च्छित हो गयी। आश्रपाली का नाराजन थामे उसका हाथ स्तम्भित रह गया।...

... इत मूर्च्छा से वह जागी, एक बहुआयामी स्वप्न-लोक में। वहाँ उसकी जन्म-गाथा की तरह वह व्याध पराकाष्ठा पर पहुँची। वह जानो बिदेह होकर जन्म ली की तरह ही थी। तभी उसके भीतर से बंद कमरे में, अचानक उसकी तड़पन के छोर से निकलते महावीर उसे अपने सामने खड़े दिखायी पड़े। सूली की तेज पर पिघल-मिलते महावीर ने, अचानक उसके हाथ में हाथ मिलाया, वही प्रस्तुत अंश।
समूर्त-बेला में, आश्रपाली के साथ जो महावीर का सम्वाद हुआ, वही प्रस्तुत अंश है।

न्यास-

नहीं

की जोखिम

तीन खण्ड

लीन भावने

सका है।

तो वैशाख

वती और

बेटी, वैशाख

हो सकता है

यह सत्य भी है

देखे ही महावीर

र निर्णय वास्तव

भी वह महावीर

के सिवाय

आली अपने

मान लगता था

से निकलते हुए

गयी। आ

इसकी जन्म

की तरह

न के छोड़

पर दिया-मि

ही प्रस्तुत



अनुत्तर योगी : तीर्थंकर महावीर

पांच खण्डों में २००० पृष्ठ-व्यापी
महाकाव्यात्मक उपन्यास

प्रथम खण्ड :

वैशाली का विद्रोही राजपुत्र : कुमार काल

द्वितीय खण्ड :

असिधारा-पथ का यात्री : साधना-तपस्या काल

तृतीय खण्ड :

तीर्थंकर का धर्मचक्र-प्रवर्तन : तीर्थंकर काल

चतुर्थ खण्ड :

अनन्तपुरुष की जय-यात्रा : (शीघ्र प्रकाश्य)

मूल्य : प्रत्येक खण्ड का रु. ३०)

चारों खण्डों का अग्रिम मूल्य रु. १००) व डाकखर्च पृथक्।

प्रकाशक : श्रीवीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन-समिति,

५५, सीतलामाता बाजार, इन्दौर-२ (म. प्र.)

विद्वत् है। उस सदेह मिलन की चरम सघनता में, विदेह महावीर ने आस्रपाली को स्वतंत्र आत्मा में ही, उसके परम प्रीतम का शाश्वत सौन्दर्य दिखाकर, उसके शरीर में उत्कलित कर दिया। मृणाल-तन्तु सी नाजूक और संकरी इस स्थिति को धीरे-धीरे तक निवाह ले जाने की जोखिम कवि-रचनाकार ने उठायी है। वेदों ने मेरासीली और चीरहरण के प्रसंगों की रचना इसी भूमि पर की है।



जतिंगा की घाटी में हत्याएं ही हत्याएं



एकिलिस ओलम्पस माप्रोकोरदेतौस

की कलम से पढ़िये जतिंगा की फूलों-फलों से लदी खूबसूरत घाटी में हजारों पक्षियों के प्रतिदिन होने वाले लोमहर्षी शिकार की हृदय दहला देने वाली कथा ! क्या प्रकृति पशु-पक्षियों की हत्या करके मनुष्य जीता रह सकेगा ? क्या यह समस्त मनुष्य-जाति को

आत्महत्या का ही नजारा नहीं है ?



असम के उत्तरी कछार जिले के मुख्यालय हाफलांग से बीस किलोमीटर दूर स्थित जतिंगा एक छोटा, किंतु फूलों से लदा अत्यंत रमणीय गांव है। जुलाई से अक्तूबर के बीच हजारों प्रवाजी पक्षी इस घाटी में प्रवेश करते हैं, व हरे-भरे वृक्षों में अपने घोंसले बनाना शुरू करते हैं। रंग-बिरंगे पक्षियों की चहक व कलरव से संपूर्ण घाटी गूंज उठती है। प्रकृति प्रेमी व्यक्तियों के लिए तो क्या पक्षी का यह निर्दोष सौंदर्य मनुष्य के भक्षण के लिए है ?

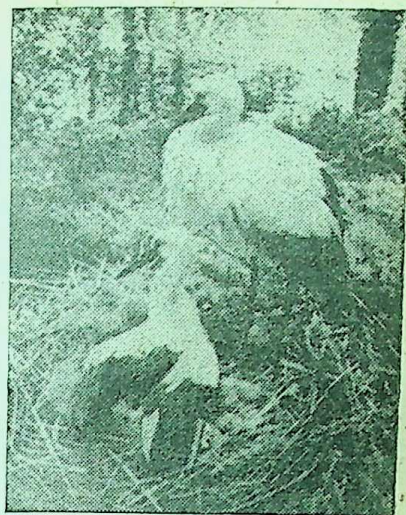
यह घाटी स्वर्ण है। लेकिन जल्दी कीजिए, क्योंकि पक्षियों की कई वेहद सुंदर दुर्लभ जातियां विलुप्त होने के कगार पर पहुंच चुकी हैं। हर वर्ष सितंबर व अक्तूबर के महीनों में जतिंगा के स्थानीय निवासी जलती हुई मशालों की सहायता से हजारों प्रवाजी व स्थानीय पक्षियों का शिकार करते हैं, जिसके फलस्वरूप पक्षियों की कई दुर्लभ जातियों के सदा के लिए नष्ट हो जाने का खतरा उत्पन्न हो गया है।

हर वर्ष एक अक्तूबर से मार्च तक देश भर में 'विलुप्त प्राणी सप्ताह' मनाया जाता है। यदि हर वर्ष मनाये जाने वाले इस सप्ताह का एक उद्देश्य जनसाधारण को वन्य प्राणियों की उपयोगिता तथा उनके संरक्षण की आवश्यकता को समझाना तथा उनमें वन्य-प्राणियों के प्रति दया की भावना को विकसित करना है तो



तो इस बात में कोई संदेह नहीं कि वह अपने इस उद्देश्य में असफल रहा है। क्योंकि जिन दिनों देश भर में 'विश्व वन्य प्राणी सप्ताह' मनाया जाता है, उन्हीं दिनों आसाम, जिसे 'वन्य प्राणियों का आसाम' कहा जाता है, के गांव जतिगा में भी सैकड़ों बेहद सुंदर चिड़ियों का शिकार होता रहता है। क्या 'वन्य प्राणी सप्ताह' मनाया मात्र एक औपचारिकता है? या कारण है कि जतिगा की चिड़ियों के लिए हमारे दिल में कभी दया उत्पन्न होती है?

तो तो जतिगा में साल भर पक्षी बर व अक्टूबर आते हैं, लेकिन सितंबर व अक्टूबर दोनों में ही सबसे अधिक पक्षियों का शिकार होता है। इन दिनों साधारण-तः आकाश में वादल छाये रहते हैं, जिस के समय घाटी में हल्का-हल्का धुंध छाया रहता है। गांव वाले घाटी में जाते हैं, जिनकी तेज रोशनी के समय दिन निकल आने का भ्रम होता है। पेड़ों पर बैठे हुए पक्षी सोचकर कि सूर्योदय हो गया है, का एक उद्देश्य पक्षी अधिक तेजी से उड़ने प्राणियों के संरक्षण के लिए। इसी समय शिकार करने वाले निर्यथापूर्वक मार डालते हैं। वे इन अमूल्य पक्षियों को भूनकर खाते हैं। बहुत से पक्षी आसपास के पेड़ों व खिड़कियों से टकराकर



क्या ये प्यारी गर्दनें गोली से उड़ा देने के लिए हैं?

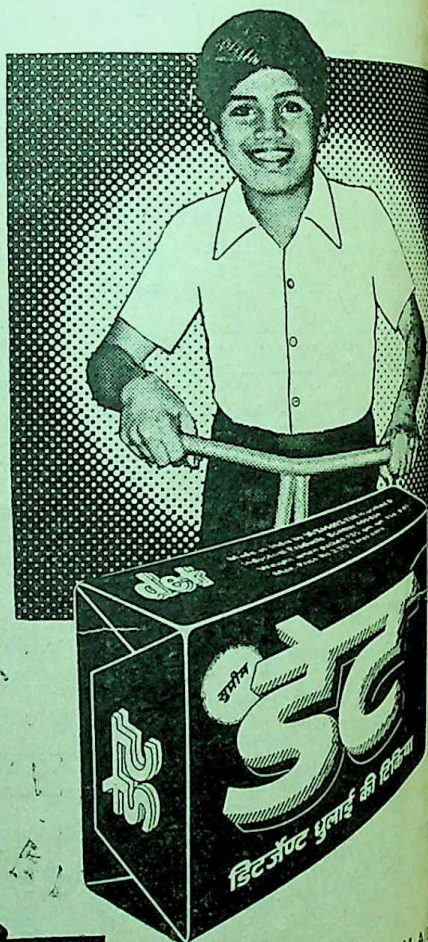
गिर जाते हैं। इस प्रकार अधमरे पक्षियों की खाल स्वतः फट नहीं पाती है।

इस समय आसाम में कई ऐसे गिरोह सक्रिय हैं, जो इन दुर्लभ पक्षियों के शरीर में भूसा भरकर बेचते हैं। अपने ड्राइंग-रूमों की शोभा बढ़ाने के लिए अमीर लोग इन पक्षियों को मुंहमांगे दामों पर खरीदते हैं। इस प्रकार गिरोहों के सदस्य हजारों रुपये कमाते हैं। खेद का विषय है कि भारत जैसे प्रकृति के उपासक देश में इन निरीह पक्षियों के शिकार का सिल-सिला बहुत लंबे समय से जारी है। जिन पक्षियों का शिकार किया जाता है उनमें इग्रेट, सारस, हरा कबूतर, डांगो, कुको, किंगफिशर, मूरहेन इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

Digitized by Anja Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डेट टिकिया आज़माइए, सफ़ेदी अपनाइए

आज पहले से कहीं
ज़्यादा लोग
डेट टिकिया की
शानदार धुलाई पसन्द
करते हैं; कहते हैं
यह चकाचौंध
सफ़ेदी लाती है,
कहीं ज़्यादा किफ़ायत
करती है.



डेट टिकिया

Shilpi-DM-41 A

पक्षी प्रेमियों व विशेषज्ञों ने जतिगा
 ने विडियों के अंधाधुंध शिकार पर गहरी
 का व्यक्त की है। यह मामला इंडियन
 वॉर्ड ऑफ वाइल्डलाइफ व स्टेट बोर्ड
 ऑफ वाइल्डलाइफ की मीटिंगों में उठाया
 गया है, लेकिन पक्षियों के बचाव की
 दिशा में अभी तक कोई ठोस कदम नहीं
 उठाया गया है। विशेषज्ञों की राय है कि
 पक्षियों की कई दुर्लभ जातियों को विलुप्त
 होने से बचाने के लिए जरूरी है कि जतिगा
 पक्षियों के शिकार पर पाबंदी लगायी
 जाये। यदि जतिगा में पक्षियों के शिकार
 पर पाबंदी न लगायी गयी तो हम
 पक्षियों की कई बेहद सुंदर जातियों को,
 भारत के बाहर अप्राप्य हैं, नष्ट होने
 का सामना कर सकेंगे और राष्ट्र की भावी
 हमें इस गुस्तर अपराध के लिए
 ज़िम्मेदारी नहीं करेगी। 'विश्व वन्य
 जीवों को' व 'असम वैली वाइल्डलाइफ
 रिजर्व' ने केंद्र सरकार व असम सर-
 कार को विशेष रूप से अनुरोध किया है
 कि वे इन निरीह पक्षियों के बचाव
 दिशा में शीघ्र कदम उठावें। केंद्र
 सरकार ने इस मामले की जांच-पड़ताल
 के लिए असम सरकार को दे दिये हैं।
 भारत के मणीनी युग में मनुष्य इस
 को जान गया है कि वन्य प्राणियों
 का अस्तित्व उसके स्वयं के अस्तित्व के
 लिए आवश्यक है। इसी कारण संपूर्ण
 वन्य प्राणियों के बचाव की दिशा
 में कदम उठाये जा रहे हैं। भारत विश्व

का एक ऐसा राष्ट्र है जिसे अपनी वन-
 संपदा पर हमेशा से गर्व रहा है। पशु-
 पक्षियों की बहुत-सी जातियां हमारे वनों
 में पायी जाती हैं, जो अन्यत्र अप्राप्य हैं।
 लेकिन स्वार्थी मानव की लालची एवं
 क्रूर प्रवृत्ति का नतीजा है कि वन्य प्राणियों
 की बहुत-सी जातियां या तो विलुप्त हो
 गयी हैं, या विलुप्त होने के कगार पर
 पहुंच गयी हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या,
 बढ़ते हुए औद्योगीकरण व प्रदूषण के
 फलस्वरूप पशु-पक्षियों की कई बेहद
 सुंदर जातियां हमारे वनों से गायब हो
 चुकी हैं। इस प्रकार इस शताब्दी के अंत
 तक कई अन्य जातियां नष्ट हो जायेंगी।

जरूरी है कि बाकी बचे पक्षियों को नष्ट
 न होने दिया जाये, व पक्षियों की कई दुर्लभ
 जातियों को विलुप्त होने से बचा लिया
 जाये। जतिगा में पिछले कई वर्षों से
 चले आ रहे शिकार के सिलसिले को रोकना
 वांछनीय है; क्योंकि एक बार नष्ट हुए
 पक्षी को दुबारा पैदा नहीं किया जा सकता।
 ये रंग-विरंगे पक्षी हमारे देश व हमारे
 वनों का गौरव हैं। क्या हम अपने देश
 की मूल्य धरोहर को इस प्रकार नष्ट हो
 जाने देंगे? हर जागरूक नागरिक का
 पवित्र कर्तव्य है कि वह इन पक्षियों के
 बचाव हेतु कदम उठाये। भारतीय जनता
 को चाहिये कि वह सरकार को इन निर्दोश
 पक्षियों की सामूहिक हत्या रोकने के लिए
 ठोस कदम उठाने के लिए मजबूर करे।

(शेषांश पृष्ठ १४ पर)

INDOKEM LIMITED

221. Dr. D.N. Road,

Fort

Bombay - 400 001.

Phone : 267881/10 **Gram:** "INDOKM" **Telex:** 011-2942

Marketing:

Dyes. Chemicals. Pigments. Leather Binders. Auxiliaries.
Synthetic Tanning Agents. Leather Colours, Fat Liquors.
Synthetic Resins, Textile Auxiliaries, Polyester Fibre.
paints, menthol, Non-textile Auxiliaries etc.

Manufactured By:

Indian Dyestuff Industries Ltd.,
Colour Chem Ltd.
Aniline Dyestuffs & Pharmaceuticals (P) Ltd.,
Cellulose Products of India Ltd.
Dai-Ichi Karkaria Pvt. Ltd.
Haryana Rang Udyog
National Chemical Industries
Indian Organic Chemicals Ltd. (Futura Polyester Fibre)
Hypo Chemiedye
Gujchem Distillers India Ltd .
Lalji Mentha (P) Ltd.

Branches at:

Ahmedabad

Calcutta

Delhi

Madras

Nagpur

Kanpur

Secunderabad.

साहित्य-दर्पण

विवेकी राय के दस्तावेजी उपन्यास

श्वेतपत्र

तथा रेखाचित्र 'गंवई गन्ध गुलाब'

पर डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक की समीक्षा

011-2942

ries.
uors.

bre)

Nagpur

011-2942

011-2942

011-2942

011-2942

011-2942

जो ३५-३६ वर्षों का फासला है, वह इस उपरामता को सिद्ध करता है और कथाकार को एक ऐसी जमीन देता है जिस पर वह अपने भोक्तृत्व के भीतर के अर्थ को अन्वेषित कर सके। किसी कथाकृति के साथ इस प्रकार की संभावना उसे बड़ा बनाने में सक्षम होती है। 'श्वेत-पत्र' में इस फासले को कथाकार कथा के अंतराल में ही संकेतित कर देता है। बूधन काका के आदेश पर बहारन वाले दस्तावेज को ढूँढ़ने की प्रक्रिया में झाँपी, मोन्ही, टूटे बक्स, आदि ढूँढ़ते-ढूँढ़ते लेखक को सन १९४२ की बुलेटिनों की फाइल मिल जाती है—आजादी के संघर्ष के दस्तावेज। और उन्हें पाकर कथाकार लिखता है: 'मे' इस बुलेटिन को देखता हूँ, फिर देखता ही जाता हूँ। कितना रोमांचक होता था उसका तब हाथों में आना, अब ये हाथ कितने संवेदनशून्य पड़ गये हैं।' एक बार वह फिर सन् ४२ की मानसिकता में स्थित हो जाता है। इस मानसिकता में प्रायः पूर्व दीप्ति

की तरह ४२-४३ के दिनों में तमाम बर्बर दमनचक्र के बीच विशेषतः पूर्वी गाजीपुर और पश्चिमी बलिया का और सामान्यतः संपूर्ण उत्तर प्रदेश के गुप्त स्वातंत्र्य संग्राम का चित्रण हो जाता है।

वस्तुतः ऐसे उपन्यासों में जहाँ यथार्थ के सार्वदेशिक रूपों, संघर्षों, स्थितियों की प्रतिष्ठा होती है, कथाकार अनजाने प्रतीक-शैली का प्रयोग करने लगता है।

वह चित्रण तो एक खण्ड का करता है लेकिन समग्र उससे प्रतीकित हो जाता है। गाजीपुर बलिया के मध्यवर्ती अंचल की यह कथा प्रत्यक्षतः अनेक राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों तथा गतिविधियों का संकेत करती है, किंतु उसका ज्यादा जीवंत अंश वह है जो लेखक के सान्निध्य में चलने वाली गुप्त आंदोलनात्मक गति-विधियां हैं। बीसियों गांवों में स्वतंत्रता संग्राम के दमन के बाद भी चुपचाप 'क्रांतिकारी' पत्रिका और लीथो मशीन पर प्रायः छपने वाले उत्तेजक पैम्फलेटों और उनके वितरणों का चक्र, कार्यक्रमों की योजना और उनकी समीक्षा के लिए रात्रि के अंधकार में कहीं मुंजबान और कहीं सरेहि के लम्बे टप्पे में स्थित टीले पर होने वाली बैठकों, परचों के वितरण के अलावे उनको अत्यंत साहसिक रूप में डी. एम., एस. पी. आदि के पते पर पोस्ट करना, गांव की दीवारों पर चिप-काना, पुलिस की आंखों में धूल झोंककर उनसे सटकर परचों के बंडल ले जाना



और राष्ट्रीय गीत गाना, इंजन तोड़ की ट्रेनिंग लेना, पुलों के नक्शे बनाना, गांवों और घरों में गुप्त और खुली बैठकों में क्रांतिकारी के पृष्ठों को पढ़ना, एक ओर पुलिस-आतंक और दूसरी ओर जनता के भय से लड़ना और ऐसी ही अनेकानेक अंतःस्फूर्त सक्रियताओं के अंश का लम्बा सिलसिला उस समय के हिंदुस्तान के अंतःस्पंदनों को प्रतिफलित करता है।

कथावस्तु जब अपनी स्थूल कथाकार की सीमा का अतिक्रमणकर व्यापक संदर्भों को ध्वनित करने लगती है तो उसकी शैलिक प्रकृष्टता का एक बड़ा आयाम बन जाता है। ज़ाहिर है कि 'श्वेतपत्र' कथावस्तु के स्तर पर ध्रुव से लदे, गत संदर्भों वाले दस्तावेजों में सारा एक विराट क्रांति को एक बार पुनः प्रामाणिक रूप से अंतःस्पंदन देने का सार्थक प्रयत्न है। सार्थक प्रयत्न इसलिए कि इस पूरी कथा में लेखक ऐसे किन्हीं मौके को हाथ से जाने नहीं देता जहाँ उसे आज की भ्रष्ट मानसिकता के कारणों



इंजन तो
नकशे बना
र खुली वे
पढ़ना, ए
दूसरी बो
और ऐसी
ताओं के अंक
य के हिंदुस्त
त करता है।
ल कयाकारि
णकर व्याप
गनी है तो
का एक बय
जाहिर है कि
र पर ध्रुव
देवों में सों
क बार पु
यंदन देने
प्रयत्न इस
क ऐसे कि
देता जहां उ
के कारणों को

कलांत संदर्भों में खोजने और इंगित
ले का सुअवसर प्राप्त हो ।

‘श्वेतपत्र’ का लेखन उपर्युक्त अर्थों में
एक परंपरा का प्रगति के अर्थों में
है। उसके आकर्षण का एक आयाम
मंत्रा संग्राम की वर्वर्तताओं से स्थापित
के भीतर दहकने वाले कोयले की
साहना तो है ही, साथ ही उसका
अधिक महत्वपूर्ण प्रेषितव्य हमारी
वर्षीय आजादी के चेहरे पर पुती
लिख को उस दहकते अंगारे के
में देखने का संदेश भी है ।

है जहां अतीत वर्तमान की
विसंगतियों के पहाड़ को अना-
ले के लिए प्रतिबद्ध होता है और
तो किसी राष्ट्रीय जड़ो जहद से
होता है, वहां औपन्यासिक नाय-
व्यक्ति में सिमट नहीं पाता ।
वसंतों पर लगता है कि नायकत्व
‘श्वेत’ ही एक हृद तक मध्ययुगीन
‘श्वेत’ का समग्र कथा-परिवेश और
समस्त लोगवाग व्यक्तित्व की
दृष्टि में प्रायः चमकते हैं लेकिन
को झंझोड़ने वाली गहरी देश-
प्रेम उपन्यास में ही एक नये शिल्प
करीब करती है जिसमें सड़कों-
वियावानों में गुंजने वाले उत्सर्ग-
थरयराते राष्ट्रीय गीतों की
कथा के प्रवाह का अनादर
बढ़ जाती है ।

लेखक, विवेकी राय का प्रस्तुत

उपन्यास स्वतंत्रता-संग्राम पर लिखे गये
कथा-साहित्य में एक उत्कृष्ट एवं अर्थपूर्ण
औपन्यासिक संरचना है ।

श्वेतपत्र-लेखक : विवेकी राय, प्रकाशक :
पराग प्रकाशन, दिल्ली-३२, मूल्य २५ रुपये,
प्रथम संस्करण १९७९, पृ. सं. २६३ ।

—०—

‘गंवई गंध गुलाब’ बहुमुखी प्रतिभा के
साहित्यकार डॉ. विवेकी राय का रेखा-
चित्र संग्रह है । यह कृति जो दे सकती है
वह लेखक के शब्दों में उसके ‘प्रियपात्रों
की एक मोहक मनोरंजक कतार है’ और
जो चाहती है वह उसी के शब्दों में ‘एक
स्वतंत्र और प्रभावशाली साहित्यिक विधा
के रूप में रेखाचित्र को प्रतिष्ठित करने में
ये रचनाएं सहायक हो सकें ।’ लेखकीय
वक्तव्य के दो वाक्य खण्डों को यहां इस
उद्देश्य से उद्धृत किया गया है कि उस
परिप्रेक्ष्य को परखा जा सके जहां से इन
रेखाचित्रों को उरेहने-उकेरने का प्रयास
प्रारंभ होता है ।

रचनाधर्मिता मात्र के लिए यहां जरूरी
है कि रचनाकार उसी वस्तु को चुने जो
उसके मर्म को एक लम्बे समय से मथ रही
हो । साथ ही उसे उस वस्तु के योग्य विधा
को भी चुनना होता है । रेखाचित्रों में
व्यक्तित्व का स्थूल रेखांकन मात्र नहीं
होता, बल्कि जीवनव्यापी संस्मरणों से
जित होकर व्यक्तित्व-रेखाचित्र संप्राण
और संजीवित हो उठते हैं ।

‘गंवई गंध गुलाब’ में कुछ रेखाचित्र

यथा 'बंगलेवाली मांजी', 'खेदू', 'आजी', 'बउरहिया', गंवई गंध 'गुलाब' गहराई में स्पर्श करते हैं। छिपे रुस्तम, हिन्द साहब, फूआ, तहसीलदारनामा, शिखण्डी मास्टर, बड़े बाबू, शहर का उपहार, रंग होली का, सोलंकीजी, यदि मैं राजा होता, व्यंग्य विनोद परक शैली में पाठक का विचारोत्तेजक अनुरंजन करते हैं तथा अंतिम दो साक्षात्कार शिवप्रसादसिंह और आचार्य परशुराम चतुर्वेदी न केवल मध्य पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के दो साहित्यकारों के वैचारिक व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हैं, बल्कि उनके माध्यम से लेखक अपनी सांस्कृतिक निष्ठा और अपने मानवीय सरोकार को भी व्यक्त करता है।

'गंवई गंध गुलाब' के भीतर जितने भी संस्मरणात्मक रेखाचित्र आये हैं वे रचनाकार की अजस्र मानवीय करुणा से ओत-प्रोत हैं। वह इसके चलते 'बंगलेवाली मांजी' के जीवन की एकरसता में झांककर मातृहृदय की गरिमा की झांकी दिखा सकता है, छात्रावास के टहलुए खेदू के जीवन की मानवीय उत्कृताओं का अन्वे-

षण करता है, बउरहिया के अंतर्गत की निबौलियां बीननेवाली, दखिना रेखा के नीचे के दारिद्र्य का रोचक चित्रण करता है। जहां भी गुस्ता है (गंध गुलाब, मौलवी साहब) रेखा की कार विनत हो जाता है, जहां भी पाठ है (छिपे रुस्तम, उध्वरेता, रंग होली) यदि मैं राजा होता) कवि की लेखनी व्यंग्यगर्भ हो उठती है, जहां भी वैचित्र्य है (हिन्द साहब, तहसीलदारनामा, बड़े बाबू) वहां वह अपने को भी उस वैचित्र्य में निमग्न करने चाहता है।

सब मिलाकर, इन रेखाचित्रों की अक्षुण्ण रोचकता के पीछे रचनाकार की ऋजु सरल शैली शिल्प है, संतान आने वाले व्यक्तियों के अंदर तक झांकने वाली संवेदनशीलता है और लोकजीवन की भरी-पुरी परंपराओं की अवधारणा क्षमता है।

गंवई गंध गुलाब-लेखक: विवेको प्रकाशक: भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली
मूल्य १५ रु., पृ. सं. १५५।

(पृष्ठ ९ का शेषांश)

पक्षियों की बहुत-सी जातियां २५-३० वर्ष पूर्व हमारे समृद्धवनों में पायी जाती थीं। क्या कोई कमीशन बैठा जो पता करेता कि इन वर्षों में हमारी वन-संपदा का क्या हुआ ? पशु-पक्षी कम क्यों हुए ?

करोड़ों रुपये जनता के, इस वर्षों में,

वन-विभाग वालों ने खर्च किये-वनों के संवर्द्धन के लिए, वन्य-पशु-पक्षियों को लुप्त होते से बचाने के लिए। फिर रुपये भी खर्च होते रह, वन भी रहे, वन्य-पशु-पक्षी भी लुप्त होते रहे, -१२८/१२, एच-२, किदवईनगर, काठमांडू

॥ विज्ञान यात्री ॥

के अंतर्गत
ली, दृष्टि
य का रोग
गुस्ता है (क
(हव) खोज
जहां भी
रंग होना
कवि को
जहां भी
व, तहसील
वह अपने
निर्माण
कर रहे थे। इस आविष्कार का

रेखाचित्रों में अच्छा
पीछे रचना
गल्प है, संतों
अंदर तक आगे
और लोक-जीवन की
की अवस्था

मिलेगी। इस गैस को, गोबर
मोति, बड़े पैमाने पर तैयार करने
पर विचार हो रहा है।

अच्छा स्वास्थ्य
जबो (उत्तर प्रदेश) के डॉक्टर
प्रयोगों के आधार पर इस
पर पहुंचे कि बच्चे का विकास
दृष्टि पर निर्भर है। बच्चे की
अच्छी होगी, उसका स्वास्थ्य
अच्छा होगा। कमजोर दृष्टि
दृष्टि में इलाज या चश्मों

से सुधार करने पर उनका शारीरिक और
मानसिक विकास संतोषजनक ढंग से हुआ।
बांझ महिलाओं के लिए नयी आशा

दिलों और गुरदों के प्रत्यारोपण तो
साधारण बटनाएं हो गयी हैं। परंतु,
पोस्ट-ग्रेजुएट इन्स्टिट्यूट ऑफ मेडिकल
साइंसेस के प्रोफेसर आर. वी. एस. यादव
अब महिलाओं की डिम्बग्रन्थियों के प्रत्या-
रोपण को संभव और व्यावहारिक बनाने

की दिशा में कार्यरत
हैं। कई आपरेशनों
में सफलता प्राप्त
करने के बाद, आशा
है कि वे ऐसे प्रत्या-
रोपणों द्वारा बांझ

स्त्रियों को गर्भवती बनाने में सफल होंगे।
हृदरोग और आलसी भैंस

हृदरोग विशेषज्ञ डॉक्टर शांतिलाल
शाह का विश्वास है कि बढ़ते हुए हृदरोगों
के लिए आलसी भैंसे जिम्मेदार हैं।

भैंसों से अधिक दूध प्राप्त करने के लिए
मालिक उन्हें हमेशा अस्तबल में बांधकर
रखते हैं। ऐसी आलसी भैंसों के दूध में
एक विशेष प्रकार का वसा हो जाता है,
जो हृद-घमनियों को अवरुद्ध कर हृदरोगों
को जन्म देता है।



ताज़गी की एक लहर

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलते-जुलते
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं।
जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की
लहर। आप अपने आपको कुछ और
ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।
क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आरंभ
लिए ही तो बनाए गए हैं। जियाजी
आस पास बिखरे सुनेपन में
ताज़गी भर देते हैं।



जियाजी
सूटिंग-शर्टिंग
कॉटन प्रिंट्स

जियाजीराव कॉटन मिल (म.प्र.)
बिर्वा नगर, ग्वालियर (म.प्र.)



हथुज गांजर और कौलिन

की
हवा

हवा में उड़ जाने वाले पत्थरों का मकबरा

जो कुछ घटा, वह सचमुच अविश्वसनीय था ! पत्थर को उठाने के लिए हमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ा था । . . . लगा था, जैसे किसी पंख को उठा रहे हों !'

शर्टिंग और
कल मिलने लगे

सूटिंग, शर्टिंग
की कलाश में

एक ताज़ीबी
को कुछ और

शर्टिंग, शर्टिंग
विशेष आने

हैं। ज़िज़ाजी
न में

शर्टिंग, शर्टिंग
विशेष आने

हैं। ज़िज़ाजी
न में

शर्टिंग, शर्टिंग
विशेष आने

हैं। ज़िज़ाजी
न में

शर्टिंग, शर्टिंग
विशेष आने

हैं। ज़िज़ाजी
न में

शर्टिंग, शर्टिंग
विशेष आने

हैं। ज़िज़ाजी
न में

शर्टिंग, शर्टिंग
विशेष आने

हैं। ज़िज़ाजी
न में

शर्टिंग, शर्टिंग
विशेष आने

चमत्कारों में विश्वास नहीं करते

न ! हम भी नहीं करते थे, लेकिन जब से

निकट एक मुसलमान फक़ीर का

मकबरा देखा है, जहां उस फक़ीर

के उच्चारण से ही वहां के पत्थर हवा

में उड़ने लगते हैं, तबसे विश्वास करने

लगे हैं।

ग़रिक वॉन दानिकेन, जिन्होंने यह

प्रस्तुत किया था कि अंतरिक्ष से

पृथ्वी पर आये थे, का कहना है

कि मेरे इसी सिद्धांत को सिद्ध

करता है। मकबरों में अवश्य कोई ऐसी

प्रतिभुत्त्व युक्ति छिपी है, जो फक़ीर

हैं, और फिर अपनी उंगलियां उसकी कुहनियों, बगलों और टखनों आदि में गड़ाते हैं, और वह व्यक्ति न्यूनतम प्रयास से उठ खड़ा होता है।

इसके पीछे जो सिद्धांत काम करता है, उसे इस प्रकार समझाया जा सकता है— सिर पर पड़ने वाला अधोमुखी दबाव कुछ हठीली मांसपेशियों को सक्रिय कर देता है। दबाव के हटते ही, वे मांस-पेशियां बिना किसी प्रयास के, तड़ाक से पुनः सक्रिय हो जाती हैं। सिद्धांत भले ही आपकी-मेरी समझ में न आया हो, मगर था शरीर-रचना-विज्ञान से संबंधित और बड़ा वैज्ञानिक।

तो, साहब, हमने कमर अली दरवेश के मकबरे पर जाने का निश्चय किया। पूना से पंचगनी जाते समय, हम राजमार्ग से एक स्थान पर मुड़े और एक ऐसी पुरानी लीक पर आ गये, जो गांवों में प्रायः देखने को मिलती है। इतने मशहूर

Imagine a world with black and white rainbows



Imagine a world without Amar Dye-Chem

Amar Dye-Chem supplies vital dyes & pigments to a variety of Textiles, Paints, Coir, Leather, Printing Inks and Plastics Industries. ADC pigments are noted for their colour fastness, economy and convenience.

The Company also exports its sophisticated colour know-how and has helped set up plants abroad.



to enrich India's
life with colour !

AMAR DYE-CHEM LTD.

Rang Udyan, Sittladevi Temple Road, Mahim,
Bombay-400 016.

Branches: Ahmedabad, Amritsar, Calcutta, Delhi,
Jaipur, Madras, Madurai.

ADC-5088

मकबरे को जाने वाले रास्ते की दुर्दशा देखकर बड़ा दुख हुआ। महाराष्ट्र के मुख्य-मंत्री बाबा है, शीघ्र ही इस रास्ते को चौड़ा और पक्का कराने की ओर ध्यान दें।

मकबरे तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों पर चढ़कर एक चबूतरे पर आना पड़ता है। हरे रंग के इस मकबरे का रख-रखाव कभी अच्छे ढंग से हुआ है। जब हम वहाँ पहुँचे, तो वह अदालत की देखरेख में था, क्योंकि इसके स्वामित्व के बारे में एक खतरा चल रहा है। अदालत ने 'कस्टोडियन' की हैसियत से जिन शेख हाशिम मुजावर को नियुक्त किया है, उन्हें इस मकबरे की काफ़ी जानकारी थी, और उन्होंने हमने मकबरे के दरवेश की कहानी सुनी।

खतरा कैसे बना ?

13 साल की कम उम्र में दरवेश कमर को अपने तीन बड़े भाइयों और कुछ परिवार के साथ यहाँ आये थे। यहाँ आकर देखा कि कोई दुष्ट आत्मा गांव के लोगों को परेशान कर रही थी। उस दुष्ट आत्मा को भगाने के इरादे से कमर को ने वहीं बसने का फैसला किया। वे दुष्ट आत्मा को गांव से भगाने में भी सफल हुए।

14 साल की अल्प आयु में कमर अली मुजावर को प्यारे हुए, और उनके साथियों ने उनकी याद में इस मकबरे की स्थापना



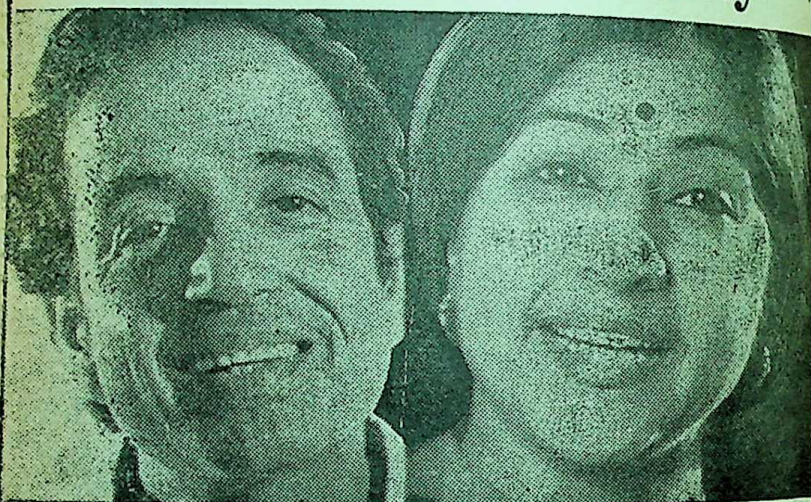
की। बहुत से अन्य हिंदुस्तानी दरवेशों की जीवन-कथाएं भी प्रायः इस कथा से मिलती-जुलती हैं।

चूंकि दरवेश अविवाहित थे, इसलिए मकबरे में स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध है। यह एक अजीब कायदा है। लेकिन स्त्रियों को मकबरे की जालीनुमा दीवारों के चारों ओर घूमते हुए, मकबरे का दर्शन करने की इजाजत है। मगर ऐसा करते वक्त उन्हें अपनी आंख सतत मकबरे में जल रहे दिये पर रखनी पड़ती है।

यह दिया बाबा के निर्देश पर जलाया गया था, और तब से लगातार जलता रहता है। ऐसी मान्यता है कि इस दिये के लिए घी देने वाला यदि परिक्रमा के बाद दिये की राख का प्रयोग करे, तो उस पर सांप के काटे का असर नहीं होता। लेकिन, बाबा अपने भक्तों की सहायता दूसरे तरीकों से भी करते हैं।

मकबरे के आगे का स्थान तपने लगा था, इसलिए हमने मुजावर साहब से इजाजत मांगी। हमने उनसे पूछा कि क्या

When you save with **NEW BANK** Smiles are on the way



Security is happiness. When you know your savings in NEW BANK will take care of all your rainy days, you can smile with ease.

Start saving with NEW BANK today. Our various schemes like Saving Accounts, Fixed Deposits, Reinvestment Deposits, Janta Deposits and Popular Deposits will assure these smiles for you.



NEW BANK OF INDIA

(A Government of India Undertaking)

जिन दोनों पत्थरों के बारे में कुछ जानत था। हम कोई प्रयास नहीं करना पड़ा था... लगा था, जैसे किसी पंख को उठा रहे हों।

हमने इस चमत्कार का विश्लेषण किया, तो पाया कि यदि वास्तव में पत्थर का वजन ६० किलो था, तो हमसे प्रत्येक ने ६.६ किलो वजन ऊपर उठाया था। एक औसत आदमी को उठाने के लिए यह अच्छा-खासा वजन है। चेंबर्स कोश का वजन सवा किलो है, और यदि हमसे तर्जनी पर ५ कोशों को उठाने को कहा जाये, तो हम कभी भी नहीं उठा पायेंगे। हो सकता है, दूसरे लोगों ने शिलाखंड को उठाने के लिए अपनी हथेलियों का प्रयोग किया हो।

इसके बाद, हमने यही प्रयोग बड़े पत्थर के साथ किया। इस बार हम सबने बड़े पत्थर को सिर्फ़ छुआ भर। और पत्थर सचमुच उठा। इस बार हमने 'उठाने वालों' को बड़े ध्यान से देखा भी था। उन सबने सिर्फ़ तर्जनी का ही प्रयोग किया था। उनमें से किसी ने इस चमत्कारिक घटना के छायाचित्र खींचे जाने पर भी कोई एतराज नहीं किया। पत्थर के उठ जाने के बाद, न कोई हांफ रहा था, न किसी को पसीना छूट रहा था। और यदि पत्थर के भार के बारे में मुजावर साहब का अनुमान सही था, तो हममें से प्रत्येक ने प्रायः ८.१ किलो (६ कोशों के भार से अधिक) भार उठाया था। जिस ढंग से पत्थर उठा था, और जिस प्रकार हमें अपनी

जोर पत्थर उठा !
पत्थर को उठता देखने के चमत्कार करने के लिए हमने सात दर्शकों मुजावर साहब को बुलाया। हम नौ लोगों ने अपनी-अपनी तर्जनियों को पत्थर की गोलाई पर रखा, और धीरे-धीरे सांस लेकर, जोर से चिल्लाकर 'हमर अली दरवेश !'
पत्थर उठती ऊंचाई तक उठा, जितनी तक हम उसे छू सकते थे, और पत्थर हमारी सांसों खत्म नहीं हो गयीं।

पत्थर उठाने से नीचे गिरा।
जो कुछ था, वह सचमुच अविश्वसनीय

तर्जनियों पर कोई बाधा महसूस नहीं हुई, उसे देखते हुए, इस घटना को सचमुच चमत्कारिक घटना ही कहा जायेगा।

तीसरे प्रयोग में 'कमरअली दरवेश' के स्थान पर हमने उससे मिलती-जुलती 'इंडियन नेवल सर्विस' की पुकार की, मगर पत्थर एक-दो इंच ही ऊपर उठा। इसका कारण शायद यह था कि अन्य लोग प्रयास नहीं कर रहे थे। या, शायद ये शब्द पर्याप्त प्रभावशाली नहीं थे। यदि पत्थरों के उठने का आवाज से कोई सीधा वैज्ञानिक संबंध होता, तो पत्थर को उठ जाना चाहिये था, मगर वह नहीं उठा।

हमारे पास अधिक समय नहीं था, फिर भी इस सीमित समय में हमने एक

और प्रयोग करने का निश्चय किया। एक बार फिर उस बड़े पत्थर को उठाने का प्रयास किया। इस बार पत्थर हमारी तर्जनी का स्पर्श न्यूनतम था, किन्तु हम देखना चाहते थे कि कहीं अन्य लोग पत्थर को उठाने में अपने बल का प्रयोग तो नहीं करते। पर यह प्रयोग सफल क्यों कि हमारी तर्जनी के स्पर्श का पत्थर के उठने और गिरने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था।

ज़ाहिर है कि उस खुशनुमा हरे रंग के मकबरे में कोई ऐसी अलौकिक शक्ति छिपी है, जो उन पत्थरों को उठाती गिराती है।

('संडे स्टैंडर्ड' से साभार)

प्रख्यात रसायनशास्त्री आचार्य नागार्जुन को अपनी प्रयोगशाला के लिए एक सहायक की आवश्यकता हुई। इस कार्य हेतु आचार्य की सेवा में दो प्रतिभावान् युवक उपस्थित हुए। आचार्य ने उनके व्यावहारिक ज्ञान की परीक्षा करने के लिए उन्हें कुछ विशेष पदार्थ दिये और कहा—'दो दिन में इनका रसायन तैयार करके मेरे पास लाओ।'

दो दिन पश्चात् दोनों युवक आचार्य की सेवा में उपस्थित हुए। एक युवक रसायन-पात्र आचार्य के समक्ष रख दिया; किन्तु दूसरे ने क्षमा-याचना करते हुए निवेदन किया—'आचार्य, जब मैं आपके दिये हुए पदार्थ लेकर जा रहा था, तो मार्ग में मुझे एक तप्त एक वृद्ध पुरुष मिला। मैं उसकी उपेक्षा नहीं कर सका। मेरे दोनों दिन उसकी सेवा में ही व्यतीत हो गये। मैं लज्जा से अभिभूत हूँ, आचार्य !'

आचार्य ने संघाधीश को आदेश दिया—'इसी युवक को सहायक नियुक्त किया जावे। संघाधीश आश्चर्य से आंखें फाड़े आचार्य की ओर देखता रह गया। आचार्य मुस्कुराते हुए और बोले—'मैं समझता हूँ वत्स, तुम्हें क्यों आश्चर्य हो रहा है, किन्तु रसायन का प्राणी जीवन से अधिक कोई महत्त्व नहीं है। रसायन भी जन-सेवा के लिए ही है।'

संघाधीश ने शीश नवाया और उस युवक को लेकर चला गया।

—डा. गोपालप्रसाद वर्मा



अरुण कुमार शर्मा

वृषभ से ही भगवान शंकर में मेरा बूट विश्वास रहा है (भक्ति नहीं है प्रार्थना)। पिछले कई वर्षों से हिमालय स्थित श्रीकेदारनाथ और श्रीबद्रीनाथ के दर्शनों की हृदय में प्रबल इच्छा थी। आखिर 'उसकी' कृपा से पिछले वर्ष (८०) में वहां जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। परम्परा के अनुसार हमने पहले श्रीकेदारनाथ धाम के दर्शनों का योग्य प्राप्त किया। चारों दिशाओं में फैला दृश्य अद्भुत, अलौकिक सुषमा को कभी पलकों में नहीं अपने कैमरे में बंद करने में सफल हुआ। लौटते वक़्त अंधेरा घिर चुका था। बूढ़ा-बांदी तो सुबह से ही चल रही थी। शेष यात्री बीच-बीच में बनी बूढ़ों में ठहर गये थे। अब उस संकरी रास्ता पर सिर्फ हम ही दो रह गये थे। जो आकाश में विजली कौंधती तो

सारी घाटी सहम जाती, और पगडंडी के किनारे पर अपने प्रबल वेग से बहती हुई मंदाकिनी सामने खड़ी हो जाती। अजीब अनुभव था। हम रास्ते की जटिलता और दूरी से (१९ किलोमीटर) ध्यान हटाने की वजह से आपस में कुछ-न-कुछ वार्तालाप करते वापस लौट रहे थे। 'काश हम अपने कैमरे में रंगीन फिल्म डलवाकर लाये होते, तभी यहां की प्राकृतिक छटा के चित्रण का वास्तविक आनंद आता।' यह इच्छा मैंने अपने सहयोगी उद्योगपति प्रमोदकुमार से व्यक्त की। क्योंकि मैं कैमरे में साधारण फिल्म ही डलवाकर गया था। इसलिये बार-बार पछता रहा था।

लेकिन वापस मेरठ लौटने पर जब मैंने फोटोग्राफर को वो फिल्म 'डेवलपिंग' के लिए दी तो वह बोला—'साहब, ये तो रंगीन हैं। यहां "डेवलप" नहीं होगी, बम्बई से डेवलप करानी पड़ेगी।' पलभर के लिए तो मैं सन्न रह गया। पाठकगण कुछ भी कहें, मेरे लिए इससे अधिक और चमत्कार क्या हो सकता है कि साधारण फिल्म से खींचे गये मेरे फोटो रंगीन और बिल्कुल स्पष्ट आये हैं।



आज़रबैजान के लेखक यूसिफ़ सोमडोगली की एक रोचक बालकथा

हेमांगिनी रानडे द्वारा प्रस्तुत

बच्चों का खेल : १९४६

वे घिर गये थे। बाहर निकलने का अब कोई रास्ता नहीं था। उनकी गरदनें झुकी हुई थीं। तीनों मौत के सामने थे, और कोई मरना नहीं चाहता था। न स्यावश, न करीम, न नाज़िम। लेकिन उनके पास अब और चारा भी नहीं था—क़ैद या मौत को छोड़कर। दुश्मनों ने ऐलान कर दिया था कि अगर वे हथियार नहीं डाल देते, तो उन पर एटम बम फेंका जायेगा। और खुद उनके पास कोई एटम बम नहीं था, एटम बम वे अपने घर पर ही भूल आये थे।

स्यावश, करीम और नासिम की अम्मा सकीना भी वहीं थी—खंदक में। वह गुलज़ार को अपने सीने से चिपटाये हुए थी। गुलज़ार—एक नन्ही गुड़िया, उन भाइयों की इकलौती बहन। और सकीना गुलज़ार को लोरी सुना रही थी—

सो जा मेरी लाडली, हौले-हौले सो जा
तेरे संग-संग, देख, ये फूल सो रहे हैं।

‘अब तेरे भाई लड़ने के लिए निकल जायेंगे,’ उसने कहा, ‘वे दुश्मनों को गोलियों

से बीध देंगे... और फतेहमंद हीरो की तरह लौट आयेंगे। फिर हम लोग दोस्त का खाना खाने घर जायेंगे। जानती हो आज हम क्या खायेंगे? मीठी डबलरोटी—इतनी बड़ी... मैंने खुद बनायी है। क्या स्वाद है उसका! लेकिन तुम्हें अच्छे लड़की बनना होगा, हां! अगर तुम रोने तो मैं तुम्हें दुश्मनों के घेरे में छोड़ जाऊँ और वह मीठी डबलरोटी तुम्हें नहीं मिलेगी। समझ गयी न?’

सकीना ने गुलज़ार को ऊपर उठा लिया—गुड़िया ने अपनी आँखें खोलीं—अम्मा ने जब इसे फिर लिटा दिया तो उसने आँखें मींच लीं।

‘सो जाओ, बिटिया रानी,’ सकीना ने गुड़िया का सिर अपने सीने में भींच लिया। ‘शाम को मैं तुम्हें घूमने ले जाऊँगी, और फिर नहलाऊँगी भी। लेकिन रोना नहीं हां, बिटिया!’

सो जा मेरी लाडली, हौले-हौले सो जा
तेरे संग-संग, देख, ये फूल सो रहे हैं।

जब सकीना ने सिर उठाकर देखा तो



ने हमें दही रोम लोग दोहरा
तो। जानवी हो
ठी डवनरोटी-
गायी है। अब
कन तुम्हें बच्चे
अगर तुम रोती
में छोड़ जाऊंगे
मटी तुम्हें नहीं

को ऊपर उठा
आंखें बोलो-
लेटा दिया तो

नी, सकीना ने
में भींच लिया
जाऊंगी, और
कन रोना नहीं
सकीना बो।

ने-होते सो ब
तो रहे हैं।
आकर देखा तो
कन

से अपने बेटे दिखायी नहीं दिये। देखा
दिया, तुम्हारे भाई चले गये। अब वे
पियाँ चला रहे हैं—डिशुम, डिशुम,
बूम! वे अभी लौट आयेंगे, और फिर
तुम लोग घर चलेंगे। सो जा, सो जा
दिया रानी...

बकावक किसी की आवाज़ आयी—
सकीना !!

आवाज़ की तरफ उसने देखा तो वहाँ
रक के छोर पर, खोको के ऊपर, दुश्मन
ने निपाही खड़े थे। एक ने अपने
छोटे कमरबंद के पीछे से लंबी नली की
सली निकाली, जो टूटे हुए कुंदे की
परबल लग रही थी। पिस्तौल का निशाना
सकीना बो।

‘तुम किशायों हो?’
बोनों को सिकुड़ते हुए सकीना ने
‘हूँ, मैं सो मर जाऊँ? यह पहले से तय
था कि मैं नहीं मरूंगी।’

दुश्मन हंसा। अपना हथियार उठाते
हुए वह गरजा—‘तुम कायदे से नहीं खेल
रही हो! तुम्हारे तीनों बेटे मर चुके हैं।’

‘वे मर भी गये तो क्या हुआ? यह
तय था कि मैं नहीं मरूंगी। और फिर
तुमने मुझे गोली कहाँ मारी है?’

दुश्मन फिर हंसा।

‘तुम भी कमाल हो! अरे! हमने
एटम बम फेंका है। वहाँ—खंदक के पास,
इसलिये तुम्हें भी मर जाना चाहिये।’

सकीना कूदकर उठी—गुड़िया धमाके
से नीचे गिर गयी। लड़की ने उसे फौरन
उठा लिया और उसके पीले बालों में से
धूल झाड़ने लगी।

‘हर्गिज नहीं।’ उसने कहा, ‘हमने
पहले से तय कर लिया था कि मैं नहीं
मरूंगी। तुम्हीं लोग सही कायदे से नहीं
खेलते हो।’

कुछ देर की खामोशी के बाद दुश्मन के
हिंदी डाइजेस्ट

क और सिपाही ने सामने आकर टोमी-गन से हवा में गोलियां चलायीं ।

‘ठीक है,’ उसने कहा, ‘तुम्हारी रही । लेकिन जब एटम बम फूटता है तो रेडियो एक्टिव किरणें बिखर जाती हैं । उससे लोग अंधे . . .’

किसी की समझ में नहीं आया था कि रेडियो एक्टिव किरणें क्या होती हैं । टोमीगन चलाने वाले सिपाही ने जब सभी को बाँधलाया हुआ देखा तो आँखें मिचकाकर हकलाते हुए समझाने लगा—‘वही तो . . . बाबा कहते हैं कि जब एटम बम फूटता है तो रेडियो एक्टिव किरणें बिखरती हैं, और उससे सभी अंधे . . .’

सकीना ने सिर हिलाया और अड़कर बोली, ‘तुम लोग झूठ बोलते हो ।’

दुश्मन का तीसरा सिपाही आया—‘ठीक है, तुम नहीं मरना चाहती तो मत मरो . . . लेकिन तुम्हारे तीनों लड़के मर चुके हैं । अब तुम्हें पागल हो जाना चाहिये ।’

पल भर सोचने के बाद सकीना ने ‘हां’ में गरदन हिलायी । अपनी करीने से बंधी चोटियों में से उसने रिबन नोच डाले, बाल कंधों पर छितरा लिये और आँखों में एक वहशीपन लिये वह घूरने लगी ।

दुश्मनों ने खुशी के नारे लगाये और

मैंने देखा कि आया का बच्चा धूल में पड़ा किलकारियां मार रहा था, शानदार झूलने में पड़े मालकिन के बच्चे को हर धूप में प्यास सता रही थी और की हर बूंद में ही वह छींकने लगता था ।

उछलते-कूदते गायब हो गये ।

पागल हो चुकी मां ने फिर जोर से से लोरी शुरू की :

सो जा मेरी लाडली, हँले-हँले सो जा तेरे संग-संग, देख, ये फूल सो रहे हैं ।

फिर उसने धीरे-से अपनी गुड़िया को कहा—‘तुम्हारे भाई मर चुके हैं । वे कभी लौटकर नहीं आयेंगे । वे एटम से मर गये । अब तुम मेरी इकलौती बहन हो । मेरा अब कोई नहीं है तुम्हारे सिवा । तुम जानती हो, तुम्हारी अम्मा गम-पागल हो गयी है । अब तुम अपनी अम्मा का कहा मानो—रोना नहीं, शराब पीकर करना । अब हम घर चलेंगे और मैं तुम्हें मीठी डबलरोटी दूंगी । फिर हम तुम्हारे भाइयों को दफनायेंगे । ठीक है न ? चलो ।’

सकीना खड़ी हुई, उसने गुड़िया को उठाया । गुड़िया की आँखें नहीं खुलीं । गुड़िया के सिर में से कुछ आवाज आ रही थी । शायद पुर्जा टूट गया था । सकीना गुड़िया को हिलाया, लेकिन गुलजार की आँखें बंद ही रहीं । नन्ही अम्मा बहाती चिल्ला उठी—‘आँखें खोलो ।’

लेकिन गुड़िया की बे-हकत लकड़ी पलकें मानो गालों से चिपका दी गयी हो । तीन भाइयों की इकलौती बहन, सकीना की आखिरी औलाद—अंधी हो चुकी थी ।

मेरा सपना जो साकार हुआ

चन्द्रकान्ता कक्कड़

कहा! तुम्हारी पढ़ाई छूट गयी!' मेरी बालसखी रमा आश्चर्य-चकित रह गयी। मेरी डबडवायी आंखें आकाश पर घिरी चिन्मयी की ओर लगी रहीं। 'क्यों! कुछ बता भी तो,' मेरी सह-पढ़ाई ने मुझे पुनः झकझोरा। 'तुम्हारे पिताजी ने मेरे नेत्र-सीप से अगणित आँसु-मुक्ता एकबारगी झर पड़े। हार्दिक शोक करने के बाद मेरी पढ़ाई छूट गयी। साथ ही सहेलियों का संसार भी खिल-खिलाने लगा। फिर देखती क्या हूँ, मेरा पाणि-संस्कार हो गया है। बाबुल का घर 'आँसू रेत बसेरा' बन गया। संसार! सर्वथा नवीन परिवेश! 'नयी-सी' मैं! पग-पग पर कठोरतम परीक्षा! हर वक्त जागरूक, सचेत, कहीं से भी धुँधिल न निकलने पाये। लाल चूड़े, लाल बूटों में थमा खजूर की पत्तियों का 'माला', कच्चा-पक्का घर-आंगन बुढ़ा-बुढ़ा नम्रचर पाखी निहारती मैं! मेरा काम लगन एवं निष्ठा के साथ आगे, अपने पति (प्रोफेसर यशपाल) के कमरे में जाकर अलमारी के नीचे उनकी पुस्तकें पढ़ा करती थी। उत्तरोत्तर एकान्तप्रिय, आत्म-निष्ठ और एकानिती होती चली गयी।

मैं। उन्हीं दिनों बाणभट्ट की कादम्बरी हर्षचरित, महाकवि कालिदास का मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, शरत् साहित्य एवं मुंशी प्रेमचन्द को भी तभी पढ़ा। संवेदन के विलक्षण क्षणों में मार्मिक अनुभूति को अभिव्यक्ति देते समय मैं भाव-विह्वल हो जाती! रह-रहकर मस्तिष्क में विचार कौंध उठता, काश! मैं आगे पढ़ पाती!

'एकान्तवासिनी! इन पुस्तकों में क्या तलाशती हो? और कोरे कागजों में कैसे व्यथा भरे चित्र उकेरा करती हो?' एक दोपहर इन्होंने मुझे चौंका दिया—कमरे में दबे पांव आकर! अश्रु-बांध फूट पड़ा, मैं उनके चरणों पर झुक गयी। इन्होंने मृदु स्वर में पूछा—'पढ़ना चाहती हो?'

मेरा मन-कमल खिल गया। दूसरे दिन वे पुस्तकें ले आये। प्रभाकर (ऑनर्स इन हिन्दी) की। जैसे किसी निर्धन को कारुण्य का खजाना मिल गया हो। दृढ़ संकल्प शक्ति का चमत्कार कि फिर प्री-यूनिवर्सिटी से लेकर एम. ए. (संस्कृत) तक बिना किसी अवरोध के परीक्षाएं सफलतापूर्वक उत्तीर्ण करती चली गयी।

इस प्रकार मेरा सपना साकार हुआ। मुझे उदात्त जीवन की प्रेरणा मिली। अनवरत लेखन के साथ अब प्रकाशित-प्रसारित कहानियों का एक शतक पूरा करने जा रही हूँ।

भुवनेश्वर बेहरा का एक उड़िया ललित निबंध



तमाशों का गोवर्धन

राजेन्द्र प्रसाद मिश्र द्वारा प्रस्तुत

यदि किसी घटना के पीछे किसी के गुप्त हाथ होने का संदेह होता है तो उस अदृश्य हाथ के अधिकारी को संदेहकारी लोग 'तमाशों का गोवर्धन' (अनर्थ की जड़) की पदवी देते हैं। तमाशों में एक गोवर्धन की आवश्यकता क्यों है, क्या यह गोवर्धन ही सब कुछ करवाता फिरता है, तथा यह नामकरण पहली बार किसने और क्यों किया, इस बारे में विशेष रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता—फिर भी इतना कहा जा सकता है कि सिनेमा के डायरेक्टर की तरह यह तमाशों का गोवर्धन है—लोगों की आंखों से ओझल रहकर तमाशे में हिस्सा लेने वाले सभी पात्रों को अलग-अलग चरित्र बांटकर उन्हें सही अभिनय करने का निर्देश देता है।

यह 'तमाशों का गोवर्धन' नामक कथन साधारणतः अच्छे अर्थ में लिया जाना सुनने में नहीं आता। 'तमाशा लगा रखा है' या 'स्वांग फैला रखा है' इत्यादि विरक्ति-व्यंजक संकेतों के पीछे किसी आक्षेप की ही सूचना मिलती है। अतः लोगों की नज़रों में तमाशों का गोवर्धन

एक तरह का विलेन अर्थात् एक खलनाम होता है।

तमाशा कहने पर साधारणतः लाला, ऑपेरा, जात्रा, नौटंकी, लोला, रास आदि समझा जाने पर भी हमारे भाषा में इस शब्द का बहुविध प्रयोग दिखलायी देता है। राजनीति में कोई अक्सर तमाशा करते दीखते हैं कारखानों में धरना, हड़ताल आदि हमें लगे ही रहते हैं एवं अधिकतर छात्र और कॉलेजों में नाता तरह के तमाशा रचा करते हैं, ऐसा सुनने में आता है अतः इस तरह के प्रत्येक तमाशे में गोवर्धन का होना स्वाभाविक ही है।

रामायण की मंथरा और महाभारत के शकुनि को 'तमाशों का गोवर्धन' नाम से उपाधि से विभूषित किया जा सकता है।

किसी-किसी का कहना है कि संसार एक रंगमंच है और प्रत्येक व्यक्ति इस मंच पर अपनी निर्दिष्ट भूमिका निभा रहा है। न तो यहां कोई हमला के लिए रहा है और न ही खेगा। अपना अभिनय समाप्त कर सभी

बंध

न

एक खेल

धाराणतः

लोता

पर भी

वहुविध

नीति में

रते दीखते

ल आदि

तर छात्र

रह के

ने में आता

क तमाखे

वेक ही है।

और महा

गोवर्धन

जा सकता

ना है कि

प्रत्येक

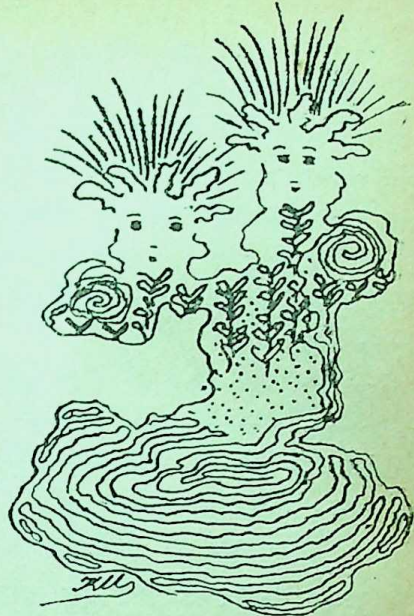
ष्ट भूमिका

हां कोई

रहेगा।

कर सभी

मन अपने-अपने घर लौट जायेंगे।
इसने यह बात स्वाभाविक प्रतीत होती
है कि कोई एक नटखट गोवर्धनिया इस
संसार में सारा गुल खिलाता फिरता है।
किंतु इन सबों में एक धारावाहिक निरं-
जला और महान् उद्देश्य का पता पा-
जाने पर कोई-कोई 'संसार से हमारी
जोता समाप्त हुई' कहकर 'महायात्रा'
प्रारंभ कर देने की बात भी सुनने में आती
है। ऐसे स्थल पर इस खेल के परिचालक
संस्थाओं का गोवर्धन कहना कहां तक
सतर्क होगा, इस बारे में भिन्न-भिन्न मत
पर भी हस्तक्षेप किये जा सकते हैं। किंतु प्रत्येक
व्यक्तिगत जीवन मुख्यतः
जनीति में कौशल समाजा होने के कारण उसके अंदर
रते गोवर्धन छिपा हुआ है, इसे स्वीकार
ल आदि होने में हिचक नहीं होनी चाहिये।
जो लोग जानते हैं, उनका कहना है
मनुष्य का मन उसे जिस तरह नचाता
मन में आता है, मजबूरन उसी तरह नाचता है।
क तमाखे में बिना किसी सदेह के इस मन को
जोनों का गोवर्धन' कहा जा सकता है।
और महाभाषा की बात मानकर लड़के
गोवर्धन नामक पदने जाते अवश्य हैं, किंतु क्लास
जा सकता है। जो जव शिक्षक कुछ पढ़ाने लगते हैं,
ना है कि वे ब्लैक-बोर्ड पर टिकी अवश्य
प्रत्येक व्यक्ति को है, पर मन जाकर किसी इमली
ष्ट भूमिका डाले, क्या या आम के पेड़ पर चढ़
हां कोई हस्तक्षेप होता है। शिक्षक की वस्तुता की
रहेगा। अतः मन सगे रहने पर भी मन खुद-
कर सभी वजिहरी वजाना शुरू कर देता



है। कॉलेज में उसी तरह ब्लैक-बोर्ड
पर विज्ञान का कोई फार्मूला देखते-देखते
मन उसी फार्मूले पर किसी फिल्म अभि-
नेत्री का चित्र आंक डालता है—अथवा
अचानक ब्रेवोर्न स्टेडियम या फिरोज-
शाह कोटला ग्राउंड पहुंचकर अपने आप
बैटिंग करना शुरू कर देता है, या किताब
खोलकर पढ़ना प्रारंभ करते ही समाज-
वादी जीवन के आदर्श को अंगूठा दिखला-
कर यह मन रंगीन सपने में मणि-मुक्ता
का मुकुट पहनाकर हाथी के स्वर्ण हौदे
में बैठाता है और स्वप्नपुरी की राजकन्या
के पास बारात ले जाने के लिए तैयारी
प्रारंभ कर देता है। ज्यों-ज्यों उम्र
ढलती जाती है, एक पैसा बैंक-बैलेंस न
हिंदी डाइजेस्ट

रहने पर भी खपरैल के मकान में रहने वाले बूढ़े शिक्षक का मन भव्य प्रासाद बनाना शुरू कर देता है।

मनुष्य जानता है कि जब तक इस शैतान मन को वश में नहीं किया जाता, उसकी खैर नहीं—फिर भी वह लाचार है। मन पर काबू पाना कितना कठिन है, उस संबंध में अचानक मुझे एक कहानी याद आ गयी।

राजा को किसी चीज की कमी नहीं थी—विशाल साम्राज्य, तथा राजकोष धन-संपत्ति से परिपूर्ण था। बेटा-बेटी, हाथी-घोड़े, सैन्य-सामंत किसी चीज का अभाव न था। फिर भी राजा को एक बड़ा दुःख था—सिर के बाल इस तरह झड़ने लगे थे कि राजा का सिर क्रमशः गंजा होने लगा था? राजा को डर था कि यदि यह बाल गिरना बंद न हुआ और नये बाल अगर न पनपे तो वे पूर्ण रूप से चंडूल हो जायेंगे।

राज्य के बड़े-बड़े डाक्टर, कविराज, हकीम सभी आजमा चुके। जवाकुसुम, आंवला तथा तरह-तरह के फल-फूलों के रस से बने तेलों का कोई असर नहीं हुआ। एक से बढ़कर एक भृंगराज, नारायण, महानारायण तेल सभी व्यर्थ साबित हुए। बृहत् छागल से लेकर अन्यान्य नाना जाति के घृत और कई प्रकार के सालसा तक कुछ काम नहीं आ सके। बल्कि धीरे-धीरे सिर ज़्यादा चमकने लगा।

राजा का धीरे-धीरे टूट गया। गुस्से में नवनीत

आकर उन्होंने यह ऐलान करवाया कि यदि एक माह के अंदर-अंदर उनके सिर पर फिर से बाल नहीं आये तो राजा के सारे डाक्टरों का सिर काट दिया जायेगा। डाक्टरों के बीच सनसनी फैल गयी। उनमें से कइयों ने तो आने वाले संकट की आशंका के कारण खाना-पीन तक छोड़ दिया।

किंतु एक खुश-मिजाज और बेपरवाह डाक्टर राजा की इस चुनौती को स्वीकार कर यथासमय एक शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में अपनी दवाई की पेटी हाथ में लटकाये राजा के सम्मुख जा पहुंचा। पेटी में नाना रंग और नाना दंग तेल की शीशियां थीं। डाक्टर राजा ने राजा के गंजे सिर की बारीकी जांच-पड़ताल की, लंबाई-चौड़ाई नापी, सिर के चिकनाहट की परीक्षा करने अपना प्रतिबिंब देखते हुए की और इतने बाद बहुत गंभीरता से सिर डुलाते हुए यह घोषणा की कि बाइस दिनों के अंदर ही राजा के सिर पर इतने बाल आ जायेंगे कि उससे एक कालीन बनाया जा सकता है।

तेल की सारी शीशियां निकाली गयीं। प्रत्येक तेल का गुण भी साथ ही साफ बखाना जा रहा था। किसी तेल की मांति से सिर के बाल सेहीं के कटि की तरफ होंगे तो किसी की मालिश से बाल जा के पेड़ की तरह मोटा होकर शाखा प्रशाखा सहित फैल जायेंगे। जिस तेल

को बोली-नी मालिश करने पर राजा की
 चमरी गाय की हिमालय के चमरी की तरह हो जायेगी, उस
 काट कि चमरी के तेल की एक शीशी राजा के
 मन पर रख डॉक्टर ने कहा कि प्रत्येक
 दिन बहू-मूर्त में राजा नहायेंगे और
 उनके पहले बायें हाथ की हथेली पर
 तेल लेकर सिर के गंजे हिस्से
 मिनट तक धीरे-धीरे मलेंगे
 राजा के चेहरे पर खुशी की लहर
 दौड़ गयी।

हृदय में पेटी लटकाये हुए घर जाते
 अचानक डॉक्टर साहब रास्ते में
 रुके और वापस आकर राजा से
 मिलते हुए कहते हैं कि वह एक
 महत्वपूर्ण बात कहना भूल गये थे।
 लगाते वक्त राजा को चाहिये कि
 चीजों को कतई ध्यान में न लायें—
 अंडा, टूटी चप्पल और टूटा झाड़ू।
 यदि कोई भी चीज उस समय
 में आ जायेगी तो दवा का असर
 न होगा।

राजा के चेहरे पर एक विद्रूप भरी
 खिन्ना उभर आयी। जो हीरा,
 और मोती आदि की गिनती नहीं
 करे वे भला सड़ा अंडा, टूटी चप्पल
 टूटे झाड़ू की बात सोचेंगे !
 मुंह होते ही राजा पलंग से उतरकर
 बाहर लपके। हथेली पर कुछ
 तेल डालकर ज्यों ही सिर पर लगाने को
 लगे उसी क्षण उनका ध्यान सड़ा

अंडा, टूटी चप्पल और टूटे झाड़ू के बारे
 में न सोचने की ओर चला गया। वस,
 तेल मालिश वहीं धरी-की-धरी रह गयी।
 दूसरे दिन भी तेल सिर के पास ले जाते ही
 वही टूटे चप्पल वाली बात याद आ
 गयी। तीसरे दिन भी वही हुआ। अंत
 में राजा ने मन को दृढ़ करते हुए प्रतिज्ञा
 की कि सड़ा अंडा तो क्या, सुबह वे कुछ
 भी नहीं सोचेंगे।

सुबह होने को हुई। हथेली पर तेल
 डाल, दांतों को भींचकर, दाहिने हाथ की
 मुट्ठी खूब कड़ी करके, आंख मूंदकर मन
 में कदापि कुछ न सोचने की ठान एक-दो-
 तीन के बाद ज्यों ही तेल अपनी चांद पर
 लगाने को हुए उसी क्षण उनके मुंह से
 टूटी चप्पल शब्द बंदूक की गोली की तरह
 निकल पड़ा। राजा की सारी उम्मीदों
 पर पानी फिर गया।

इस चंचल मन को वश में करना वाकई
 टेढ़ी खीर है। यह इतना चिकन है कि
 इसे आसानी से पकड़कर नहीं रखा जा
 सकता।

किसी-किसी का कहना है कि दवा से
 इस मन को वश में किया जा सकता है।
 मनुष्य कभी-कभी अफीम के नशे में स्वर्ग
 में खाली पड़े इंद्र के सिंहासन पर जा
 बैठता है, गांजा, मारिजुआना, एल. एस.
 डी. के नशे में आसमान में तैरता फिरता
 है। कभी-कभी शराब पीकर रास्ते में
 खड़ा होकर छाती ठोंकता है और मूँछ
 ऐंठकर तौल ठोंकते हुए नेपोलियन बनेना-

हिंदी डाइजेस्ट

पार्ट को कुश्ती के अखाड़े में खड़ा होकर ललकारता है ।

किंतु हमारी महान् संस्कृति दृढ़ रूप से यह घोषणा करती है कि दवा द्वारा मन को वश में करने की धारणा पूरी तरह गलत है । दवा मन को क्षणिक उन्माद देकर स्वप्निल अवश्य कर सकती है, किंतु लगातार प्रयोग करते रहने पर अंत में मनुष्य दवा का दास होने के साथ ही मन का क्रीतदास भी हो जाता है । इसके अलावा हमारी संस्कृति यह भी शिक्षा देती है कि कांटे को कांटे से निकालने की तरह मन को बुद्धि और विवेक द्वारा दृढ़ करके उसी दृढ़ मन की सहायता से लगातार अभ्यास करते रहने पर चंचल मन पर काबू किया जा सकता है ।

बिना किसी लक्ष्य के घूमते हुए कुत्ते को एक हड्डी का टुकड़ा दे देने पर जिस तरह वह उसी को लेकर एक जगह बैठा कड़कड़ाता रहता है, उसी तरह इस दर-दर भटकते मन को उसकी मनपसंद चीज पकड़ा देने पर कुछ समय वह स्थिर और शांत ही रहता है । छोटे बच्चे को शुरू-शुरू में भात खिलाने पर जिस तरह वे उसे जीभ से बाहर की ओर उगल देते हैं, किंतु धीरे-धीरे भात का स्वाद पा जाने पर खुशी से खान लगते हैं, उसी तरह मन को भी धीरे-धीरे उसकी प्रिय चीज न देकर श्रेय चीज को पसंद करने की शिक्षा दी जा सकती है ।

पढ़ाई से लेकर शोध, समाज-साहित्य-सेवा, देश-सेवा आदि किसी अच्छे काम में मन को इस तरह देने पर धी के दीपक ही ज्योति की उध्वर्गामी तथा एकाग्र होकर यथासमय शांत हो जाता है ।

साथ ही हमारी यह संस्कृति इन की ओर भी संकेत करती है कि किसी स्वादिष्ट खाद्य के आस्वादन में हुए मन को अगर उससे भी ज्यादा अन्य किसी खाद्य की गंध मिल जाय तो वह पुनः चंचल और चपल हो जाता है अतः जिस सुख और आनंद से कष्ट श्रेष्ठतर आनंद नहीं है, उस प्रकार आनंद के आस्वादन में मन पूरी तरह शांत हो जाता है ।

ऐसे धीर-स्थिर शांत मन का ही कारी ही अमृत-पुत्र है ।

यह 'तमाशों का गोवर्धन' अर्थात् 'अनर्थ की जड़' चंचल मन मनुष्य वासना के संकीर्ण गली-कूचे में दिखलाता हुआ तरक का द्वार खोल उसके भीतर उसे ढकेल देता है और मन जब वंश में हो जाता है, तब वह आनंद का स्रष्टा हो जाता है । अतः मन को वश में करना हालांकि सहज नहीं, फिर भी उसे ज्यादा-से-ज्यादा चिंता में लगाकर निरंतर कोशिश रहना ही प्रत्येक मनुष्य के लिए ही से उपयोगी जान पड़ता है ।



आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

यवनील

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्राथना

सोम ! रारन्धि नो हृदि

गावो न यवसेष्वा ।

मर्य इव स्व ओक्ये ॥

हे सोम ! जैसे जौ के खेतों के बीच
गायें रमण करती हैं और जैसे मनुष्य
अपने घर में निवास करता है, वैसे
ही तुम हमारे हृदय में आकर बसो ।

ऋक् १-९१-१३

ऋषि : शालोक जैन

जब भगवान मेरे जीवन में आये

स्वामी विवेकानन्द

०

इस लेख के साथ हम एक ऐसी साक्षात्कार कथामाला आरंभ कर रहे हैं जिसमें विख्यात महापुरुषों द्वारा आत्म-साक्षात्कार और प्रभु-साक्षात्कार की अनुभव-कथा स्वयं उनके शब्दों में ही हर अंक में प्रस्तुत की जायेगी। इस क्रम में यहां सबसे पहले हम स्वामी विवेकानन्द का आत्म-निवेदन प्रस्तुत कर रहे हैं।

०

प्रतीक्षातुर गुरु ने शिष्य नरेंद्रनाथ का स्वागत ऐसे किया, जैसे कोई प्रेमल मां दूर से आये पुत्र का करती है। नरेंद्र के आने के पहले ही गुरु-श्रीरामकृष्ण को उसके आगमन का पूर्व-बोध हो चुका था। उन्हें नरेंद्र के उज्ज्वल भविष्य का पूर्व-बोध भी था।

नरेंद्र गुरु के प्रति आकर्षित अवश्य हुआ था, किंतु आरंभ में वह काफी संशयी था। उसका मन बार-बार गुरु की शिक्षाओं की आलोचना करने लगता था।

अपने पिता के निधन के बाद, तरुण नरेंद्र संकटों से घिर गया। उसे कुछ नहीं सूझता था कि वह क्या करे? ऐसे ही एक निराशांध क्षण में उसने संन्यासी बनने का निश्चय किया। जैसे ही रामकृष्ण को इस निश्चय का पता लगा, उन्होंने नरेंद्र से संपर्क स्थापित किया।

नवनीत.

आगे क्या हुआ, यह स्वयं नरेंद्र के शब्दों में सुनिये :

एक दिन मेरे मन में सहसा विचार आया कि भगवान स्वामी रामकृष्ण की प्रार्थना को सुनते हैं। तो मैं क्यों नहीं उनके निवेदन करूँ कि वे मेरी आर्थिक बाधाओं की पूर्ति के लिए मां से, जिसे मैं भक्त हूँ, प्रार्थना करें? मैं भाग-दक्षिणेश्वर मंदिर गया, और उनसे निवेदन किया कि वे मेरे भूखे मर रहे परिवार के लिए प्रार्थना करें।

उन्होंने कहा, 'मैं मां से ऐसी प्रार्थना नहीं कर सकता। मगर तुम स्वयं क्यों नहीं से ऐसी प्रार्थना करते? तुम्हारे कष्टों का कारण यही है कि तुम अभी तक उपेक्षा करते रहे हो।'

मैंने कहा, 'मैं मां को नहीं जानता। आप कृपा करके उनसे मेरी ओर से कहें।'

माये

कर रहे हैं

आत्मा को

आयेगी। इस

वेदन प्रभु

यं नरेंद्र ने

सहसा

रामकृष्ण

क्यों नहीं

आर्थिक बाधा

में से, जिन्हें

में भागना

र उनसे नि

रहे परिवार

सी प्रार्थना

यं क्यों नहीं

महारे कष्टों

भी तक उ

नहीं जान

और से

प्रार्थना कीजिये। अवश्य।'

उन्होंने स्नेहशील स्वर में कहा, 'बेटे, मैं कई बार तुम्हारी ओर से मां से प्रार्थना करता हूँ। लेकिन चूँकि तुम उन्हें स्वीकार नहीं करते, इसलिए वे मेरी प्रार्थना को कार नहीं करतीं। अच्छा देखो, आज जो वार-वार है। आज रात को काली के मंदिर में जाना, मां के सामने साष्टांग प्रणाम करो, उनसे कोई भी वरदान मांगना। वे तुम्हारी हर प्रार्थना स्वीकार कर लेंगी। ज्ञान और शक्ति का अक्षय स्रोत हैं। उनके संकल्प-मात्र से ही सारे जगत बन रहा है। उनके पास सब कुछ है। शक्ति है।'

मैं उनकी बात पर अक्षरशः विश्वास ला। रात के नौ बजे, गुरुदेव ने मुझे कमरे में जाने को कहा।

दरि में जाते समय मुझ पर जैसे झटका छाया था। मेरे पांव लड़खड़ा रहे थे। मुझे धड़क रहा था। उमंग थी जीवित रहने की। देवने और उनकी वाणी सुनने की। दरि में प्रवेश करके जैसे ही मैंने मां की प्रतिमा पर दृष्टि डाली, मुझे वे जीवित और चेतन्य दिखायी दीं, दिव्य प्रेम और शक्ति से परिपूर्ण। मुझे लगा, मेरे चारों ओर दिव्य प्रेम का सागर लहरा रहा है, जो मुझे अपने ऊपर उठा रहा है।

आश्चर्यचकित मैंने बार-बार मां को साष्टांग प्रणाम किया और प्रार्थना की, 'मां, मुझे विवेक प्रदान करो। मुझे ज्ञान और शक्ति का वरदान दो। आपकी छवि



तरुण नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से विश्व-विख्यात हुए सदा मेरे मन में अंकित रहे।'

मेरा अशांत मन सहसा अगाध शांति से भर आया। मैं जगत को भूल गया। मेरे मन में केवल मां का दिव्य प्रकाश ही छाया था।

लौटने पर श्रीरामकृष्ण ने मुझसे पूछा, 'क्या तुमने मां से अपनी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रार्थना की थी?'

प्रश्न सुनकर मैं चौंक गया। मैंने कहा, 'नहीं, गुरुदेव! उस प्रार्थना का तो मुझे स्मरण ही न रहा। मगर, उसका कोई उपाय है क्या?'

'मां के पास फिर जाओ, और इस बार (शेषांश पृष्ठ ५१ पर)

प्रसिद्ध फिल्म-कथाकार और लेखक इन्दरराज आनंद यहाँ आपको सुनाते हैं, अपना एक चमत्कारिक अनुभव, जो उन्हें स्वामी मुक्तानन्द परमहंस के सांनिध्य में हुआ।

बेहिसाब का हिसाब

ये तो मुझे अमरनाथ पहुंच के ही मालूम हुआ, कि वहाँ जो शिव का रूप है वह और किसी जगह नहीं। मैंने उज्जैन का मंदिर भी देखा है, बनारस में विश्वनाथ के दर्शन भी किये हैं, मद्रास में कपालेश्वर और नासिक में त्र्यम्बकेश्वर के दर्शन भी किये हैं। लेकिन अमरनाथ के महेश्वर की दूसरी ही शान है।

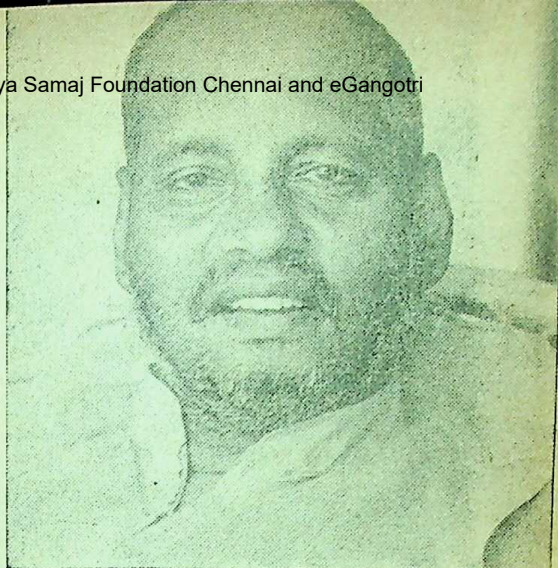
ये पत्थर का खुद साख्ता (स्वयंभू) लिंग नहीं है। ये चांद की बढ़ती हुई और घटती हुई चांदनी के साथ बढ़ता-घटता रहता है। पूरे चांद की रात को यह पूर्ण रूप और पूर्ण अवस्था को प्राप्त होता है। दूध सदृश सफ़ेद बरफ़ से बना हुआ यह शिवालिंग दूर से रोशनी का मीनार नज़र आता है। अक्ल हैरान हो जाती है, कि यह लिंग कैसे बना है, कब से बन रहा है? जाने कहां से दो कबूतर इस ऊंचाई पर बरफ़ानी हवाओं को चीरते हुए यहां आते हैं, और लिंग की प्रदक्षिणा करके चले जाते हैं। वे कहां से आते हैं, और कहां जाते हैं, कहां रहते हैं, कोई नहीं जानता। लेकिन बीसियों बरस पहले

जब एक मुसलमान गड़रिये ने इस पर्वत में बरफ़ से बने हुए इस शिवालिंग को देखा, उस वक्त उसने बरफ़ जैसे ये कबूतर भी देखे। तब से ये गुफा महान तीर्थ बन गयी है। और हर साल हजारों यात्री पैदल, खच्चरों, घोड़ों, जालियों पर सवार तंग घाटियों और कदम-कदम पर खतरों से खेलते हुए वहां आते हैं और शिवशंभू के दर्शन करके अपना मन संवारते हैं।

मैंने भी शिवशंभू के दर्शन करने में लम्बा-चौड़ा आस्तिक भी नहीं था नास्तिक भी नहीं था। लेकिन एक मित्र के लिए तो मैं सप्ताह में आ गया और सिर से पांव तक एक खामोश प्राण बन गया।

मुझे इस हाल में देखकर हजारों साथ यात्रा पर आये एक फिल्म प्रोड्यूसर ने कहा—'जो अमरनाथ में बरफ़ के लिंग भोलानाथ की शान है, वही गणेशपुरी में बाबा नित्यानंद की शान है, वो पहाड़ जैसा ऊंचा फ़कीर जाते-जाते भगवान तक पहुंच भी चुका, पा भी चुका'

यहाँ
उन्हें
श्री बुका-आप बम्बई
तब तो मैं आपको खुद
गणेशपुरी ले जाऊंगा।'
मैं बंबई आया, लेकिन
गणेशपुरी नहीं गया। बाद में
सा बवा, स्वामी नित्यानंद
सब सिधार गये हैं, या महा-
गुरु को प्राप्त हो गये हैं।
तब गणेशपुरी जाने का फायदा
नहीं था !
० ० ०
वे तब की बात है, जब मैं
सात बार, सिर्फ एक बार
स्वामी मुक्तानंद से मिल चुका
था। उन्हें मिलने के बाद भी मेरा कोई
बन्धन नहीं बना गणेशपुरी जाने का।
मेरे कहने पर ज्ञानेश्वरी अंग्रेजी में
रानी, हिन्दी में पढ़ ली। बहुत हो गया।
मैं बहुत नहीं हुआ।
बवा मुक्तानंद अपनी पहली मुलाकात
एक तीर गाड़ गये थे मेरे दिल में।
इन्तजार मेरे अंदर उनका सवाल घूमता
था मुझे बेचैन कर देता—'तुम कौन ?'
मैं इकबाल का 'फ़लसफ़ाए खुदी'
(ख़ात्म-दर्शन) पढ़ चुका था। मुझे
गुरु मशरिक के सैकड़ों शेर याद थे।
गुरु को कर बुलंद इतना
कि हर तकदीर से पहले,
खुद पूछे
बता तरी रज़ा क्या है ?



विश्व-विख्यात सिद्ध-योगी

स्वामी मुक्तानंद परमहंस

बाग़े बहिश्त से मुझे हुक्म

सफर दिया था क्यों,

कारे जहाँ दराज़ है,

अब मेरा इंतज़ार कर।'

आज की शाम जाने क्या हुआ—कारे
जहाँ पहले इतना दराज़ नहीं लगा और
मुझे शिद्दत से महसूस हुआ, स्वामी
मुक्तानंद गणेशपुरी में मुझे बुला रहे हैं,
मेरा इंतज़ार कर रहे हैं, और मैं उन्हें
ज्यादा इंतज़ार नहीं करवा सकता।

मैंने गणेशपुरी जाने का फ़ैसला कर
लिया। मैंने अपनी पत्नी से पूछा—'गणेश-
पुरी चलोगी ?'

उसने कहा—'नहीं !'

उसकी 'नहीं' ने मेरे इरादे को और
कूबत दी। मैंने अपने साले साहेब की बीवी
को टेलीफ़ोन किया। वे हमेशा गणेशपुरी

हिंदी डाइजेस्ट

जाने के लिए तैयार रहती हैं। लेकिन उन्हें कोई साथ ले जाने वाला चाहिये। उन्हें रेल और बस के धक्के मंजूर नहीं। उनका विश्वास है कि बाबा जब उन्हें बुलाना चाहेंगे, तो जरूर उनके लिए मोटर का इंतजाम कर देंगे। उन्हें जब पता चला, कि मैं मोटर में गणेशपुरी जा रहा हूं, तो उन्हें यकीन हो गया कि ये बाबा का चमत्कार है। एक बार फिर बाबा ने उन्हें गणेशपुरी बुलाने के लिए मोटर का प्रबंध कर दिया है। टेलीफोन पर उनकी आवाज़ खुशी से नाच रही थी। रात भर काले चश्मे के पीछे बाबा मुक्तानंद की चमकती हुई आंखें मुझे नज़र आती रहीं, और उनकी आखरी बात मेरे अंदर गूंजती रही—‘तुम गणेशपुरी जल्दी आओगे!’

बाबा से मिले हुए मुझे अभी महीना भर भी नहीं हुआ था। मुलाकात भी लम्बी-चौड़ी नहीं हुई थी। बाबा ने एक-आध नज़र गाड़ी थी मेरी आंखों में, एक-आध सवाल पूछा था, एक-आध बात कही थी। इतनी मुश्तसर मुलाकात और इतनी कारगर! मैं हैरान था बाबा की जादूगरी पर। मैं जो सोचता था कभी गणेशपुरी नहीं जाऊंगा, आज बंधा हुआ गणेशपुरी जा रहा था।

सुबह चार बजे उठा, तो मैंने देखा, मेरी पत्नी पहले से ही नहा-धो कर कपड़े बदलकर तैयार बैठी है। मालूम हुआ उसका रात का नकार सिकार में

बदल गया है। वह मेरे साथ गणेशपुरी जा रही है।

मैंने अपने साले साहब के घर का नकार घुमाया—भाभीजी (मेरे साले साहब की पत्नी) की आवाज़ में अब रात का नकार खुशी नहीं थी। वो बोली कि—‘आज साले साहब रात को स्टूल पर खड़े हो बल्ब लगा रहे थे, कि गिर गये—उन्हें चोट तो बहुत नहीं आयी, लेकिन दर्द बहुत है। मैं उन्हें इस हाल में छोड़ के गणेशपुरी कैसे जा सकती हूं?’

ये तो कमाल हो गया! भाभीजी रात को तुली हुई थीं गणेशपुरी जाने के लिए, और मेरी पत्नी वजिद थी कि वे कतई तौर पर नहीं जायेंगी। अब गाड़ी में जो नहीं जाने वाले थे, वो जा रहे थे और जो जाने को सौ फीसदी तैयार थे, वो घर में रहने को मजबूर थे।

मैंने थाना हाइवे पहुंचने पर अपने पत्नी से से पूछा—

—‘तुम्हारा इरादा कैसे बदल गया एकाएक? रात को नहीं जा रही अब जा रही हो!’

—‘इरादा मैंने खुद नहीं बदला, मुक्तानंद ने बदला है। रात को बाबा मेरे सपने में आये, और कहने लगे—‘गणेशपुरी आ रही हो—और मैं जा हूं—बस!’

औरतों का विश्वास कितना होता है, मैं दिल ही दिल में हंसा, मैंने उस हंसी को होठों पर नहीं लाया।

दिया। अंदर ही अंदर मुझे एक बात की
हूँ थी, कि मैं अकेला नहीं जा रहा हूँ,
मेरे साथ मेरी पत्नी जा रही है। भगवान
को उलाह में भी निकलने वाले को डर
होता है, कि उसकी पत्नी उसकी इस तलाश
को एक और नया शौक कहके उसके दिल
में घुसी न चला दे।

उसमें हमने पेट्रोल भरवाया, और
तो पत्नी ने गाड़ी के टायरों की घिसी
हवात देखी, तो फौरन फ़तवा दे
दिया—'ये गाड़ी पटुंच चुकी गणेशपुरी ! मैं
अभी कहती हूँ बम्बई से किसी दोस्त
को किसी प्रोड्यूसर के पास से कोई
नया गाड़ी मंगवा लीजिये—' मैंने उसकी
बात सुनी, मगर अनसुनी कर दी।
मोतों की चालें खूब ममझता हूँ।
मेरी ज़ाहिर करती हैं कि वो हर मफ़र
आपके साथ हैं। दो कदम आपके
पि भी चलती हैं। फिर आहिस्ता से
आ बोला छेड़ देती हैं—जिससे आपके
दिले कुछ बदलने लगते हैं। लेकिन
उनसे मैं नहीं हूँ जो अपने घोड़ों की
आँखों के हाथ में दे दूँ। मैंने किसी
को अपनी जिंदगी में 'बैक सीट ड्राइ-
ंग' नहीं करने दी।

मैं अपनी बीवी की चाल समझ गया।
जिना वो मुझे जानती है, और कोई
को जानता। मैं एक बार चल पड़ा, तो
मेरी रोकना मुश्किल है। मेरी ज़िद मेरे
जिंदगी और दोस्तों के दायरे में मशहूर

है। इसीलिये तो उसने दूसरी गाड़ी का
मशवरा दिया था। उसे यकीन था
कि मैं एक बार पीछे मुड़ गया तो मुड़
गया। गणेशपुरी एक दफ़ा मेरे दिमाग
के नक्शे से उतर गयी तो उतर गयी।
लेकिन मैंने उसे अपनी चाल में कामयाब
नहीं होने दिया। मैंने कहा—'जाऊंगा तो
इसी गाड़ी में जाऊंगा। तुम्हें न जाना हो
तो टैक्सी लो और घर लौट जाओ।'
उसे इतने जोरदार जवाबी हमले की
उम्मीद नहीं थी। चुप-चाप भीगी बिल्ली
वनके सामने की सीट पर बैठ गयी।
और उछलती-कूदती स्पीडोमीटर की सुई
को देखने लगी।

सायन, थाना, भिवंडी सबके सब
मुक़ाम मेरी उड़ती हुई गाड़ी ने पीछे छोड़
दिये। अब गणेशपुरी सिर्फ़ एक मील दूर
रह गयी थी। वज्रेश्वरी के मंदिर के
भगवे झंडे हवा में लहराते सामने नज़र
आ रहे थे।

मैंने अपनी बीवी से कहा—'तुम तो
कहती थीं, इस गाड़ी से पटुंच चुके
गणेशपुरी !'

जुमला अभी पुरा भी नहीं हुआ था,
कि एक जोर का धमाका हुआ। जैसे
कोई गोला फटा हो गाड़ी के नीचे।
मैं फौरन गाड़ी रोक के नीचे उतरा—
देखा, पिछला टायर बिल्कुल बैठ गया
है और पेट्रोल बुरी तरह टंकी से नीचे
गिर रहा है। फटे हुये टायर और गिरते
हुए पेट्रोल का संबंध समझ में नहीं आया।

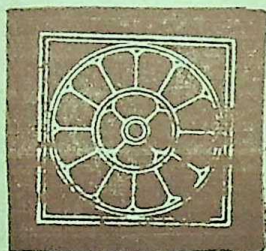
पीछे की डिककी खोल के स्टपनी (स्पेयर व्हील) बाहर निकाली, तो दिल टायर की तरह फ्लैट हो गया। टायर बिल्कुल गंजा था। उसके अंदर से ट्यूब झांक रही थी, जैसे गरीब के घर से नंगी भूख झांकती है। ये टायर कहां तक जा सकेगा! टायर तो सिर्फ नाम का था। गाड़ी को समझ लीजिये ट्यूब के सहारे चलना था, गणेशपुरी की पुरानी और फूटी हुई सड़क पर। अब भगवान ही जाने, गणेशपुरी में कोई टायर जोड़ने का इंतजाम है या नहीं। टायर से ज्यादा मुझे पेट्रोल की फिक्र थी, वह बिना किसी रोक के नीचे गिरता जा रहा था।

थोड़ी देर के लिए तो न आगे जाने की कोई सूखत नज़र आती थी, न पीछे मुड़ने का कोई रास्ता दिखाई देता था। मैं ठहरा दिल का मरीज़। पहिया बदलने के लिए जो ताकत चाहिये, वह मेरा ज़ब्रम-खुरदा-दिल कहां से लाये? (डॉक्टरों ने मुझे तमाम जिस्मानी मशक्कत मना कर रखी है।) और गाड़ी के पहिये उतारने चढ़ाने में अगर आदमी जान देने के लिए तैयार हो जाये, तो लोग उसे शहीद नहीं, बेवकूफ़ मानेंगे।

लेकिन मैं इस बेवकूफी के लिए तैयार हो गया। मेरी पत्नी को मुझ पर रहम आया। उसने मेरा हाथ बढ़ाने की

पेशकश की। मैंने फ़ौरन कबूल कर लिया। इतनी देर में एक ट्रक वहां से गुज़र रहा था। अचानक हमें देख के वो रुक गया। ड्राइवर और क्लीनर दोनों ने नीचे उतर कर हमारा पहिया फ़ौरन उतार भी दिया। चढ़ा भी दिया।

मेरी जगह कोई भक्त होता, तो फ़ौरन कह उठता या मान लेता—ट्रक वादा भेजा था। या वादा खुद ड्राइवर बने आ गये थे। लेकिन मैं ज़रूरत पर पहुंचने वाली हर मदद को आसमानी चमत्कार मानने को तैयार न था।



वज्रेश्वरी के मंदिर के बाहर फूलों की दुकानें हैं। मैंने वहां से एक हाथी खरीदा। गणेशपुरी का रास्ता पृच्छा-और दीवा गाड़ी। आन की बात हम आश्रम में पहुंच गये।

पहली नज़र में आश्रम का भी रोव नहीं पड़ा मुझ पर। बाहर एक विश्रान्तिगृह जैसा एक मामूली-सा खाना। आश्रम के अंदर दो छोटे-छोटे कमरे। और कमरों के साथ लगा उनसे एक ज़रा ही बड़ा हाल। बीच स्वामी नित्यानंद की बड़ी रंगीत तस्वीर लगी थी। एक तरफ़ गांवठी साड़ियों का ढेर लगा था। दूसरी तरफ़ से सैकड़ों केले लटक रहे थे। एक ओर दीवार के साथ बैठे

गिर बन्द गद्दे पड़े थे। बीच में एक लगी थी, तख्त की शकल की। वहाँ भी बाबा नित्यानंद की वही तस्वीर लगी थी। एक नंगा-धड़ंगा साधु। उनका पेट उनके शरीर का सबसे नुमायां हिस्सा जान पड़ा। हमने प्रणाम किया, पुजारी ने चरणामृत दिया। बाहर आये तो कई लोगों ने कहा—आपकी गाड़ी का पेट्रोल बहा रहा है। जैसे कोई नयी खबर दे रहे हों। गांव में इधर-उधर बहुत सवाल-जवाब किये। नजदीक में कोई टायर का पंकचर लगाने का इंतजाम नहीं था। और पेट्रोल तो भिवंडी से पहले मिल ही नहीं सकता था। और भिवंडी कई मील दूर थी। मैंने दिमागी तौर पर पेट्रोल के बहाव की रफ्तार और भिवंडी के फासले का हिमाब किया तो यकीन हो गया, कि हमें गाड़ी गणेशपुरी में छोड़नी पड़ेगी। और टिन हाथ में उठाकर किसी बस के जरिये भिवंडी जाना पड़ेगा पेट्रोल लाने के लिए। फिर सोचा, पेट्रोल आ भी गया, तो क्या होगा ! उस गंजे टायर का क्या करेंगे, जिसकी ट्यूब बाहर निकली हुई है। इस उधेड़-बुन में हम आश्रम में वापस पहुंचे।

वन्द देसी भक्त इधर-उधर बिखरे हुए बैठे थे। उनमें एक-आध भक्त पश्चिम की ओर नजर आया, जो कुछ पढ़ भी रहा था। वह हिन्दुस्तानी ब्राह्मण और गांधी टोपी में कुछ अजीब सा रहा था।

उन्में सामने का दरवाजा खोला और गुरुदेव आ गये।

‘तुम आ गये?’
‘हाँ मैं अंदर आते ही पूछा।

मुझे ये जानकर बेहद दुःख हुआ कि वे मुझे भूले बैठे थे। उनकी इस पहचान को मैं अचानक से भूल गया कि बाहर मेरी मोटर का टायर बुरी तरह गिर रहा है।

पहले गणेशपुरी जाओ, कुंड में नहा लें करके आओ, फिर बातें करेंगे।’

मुझे मालूम था कि अगर गाड़ी का और गाड़ी के बिना हमारा क्या होगा ! इसलिये चुपचाप कुंड पर चढ़े। दो-चार तेज रफ्तार डुबकियां

गणेशपुरी में छोड़नी पड़ेगी। और टिन हाथ में उठाकर किसी बस के जरिये भिवंडी जाना पड़ेगा पेट्रोल लाने के लिए। फिर सोचा, पेट्रोल आ भी गया, तो क्या होगा ! उस गंजे टायर का क्या करेंगे, जिसकी ट्यूब बाहर निकली हुई है। इस उधेड़-बुन में हम आश्रम में वापस पहुंचे।

स्वामी मुक्तानंद ने पूछा—‘आजकल क्या लिख रहे हो?’ मैंने कहा—‘योगी इन पैरिस’ (Yogi in Paris)। ये

स्वामी मुक्तानंद ने पूछा—‘आजकल क्या लिख रहे हो?’ मैंने कहा—‘योगी इन पैरिस’ (Yogi in Paris)। ये



सुनके वे बहुत हंसे। मैंने कहानी का हलका-सा खाका बताया, तो लोटपोट हो गये। एक हिन्दुस्तानी साधु और पैरिस की एक बाजारी हसीना की कहानी। साधु जो उस रास्ते से गिरता है, जिसे उपनिषद तलवार की धार की तरह तेज और कठिन बताता है। और 'वो पतिता' किस तरह उस तलवार की धार पर चलकर भगवान के मंदिर तक पहुंचती है।

अब बाबा ने पूछा—'तुमने खाना-वाना खाया है कि नहीं?'

हमारे चेहरों पे लिखा था कि हमने सिर्फ रास्ते की ठोकरें खायी हैं। बाबा ने इशारा किया, और फौरन एक शिष्य दो बड़े-बड़े लड्डू ले आया। बाबा ने हुक्म दिया—'खाओ, और मेरे सामने खाओ।'

हमें आश्रम के नियम और कानून बिल्कुल मालूम नहीं थे। हमने बिला-तकल्लुफ पानी भी मांग लिया। बाबाजी के शिष्य बगलें झांकने लगे। ऐसी गुस्ताखी पहले शायद कभी नहीं हुई थी वहां।

बाबा कैफियत को फौरन भांप गये। उनकी एक अंगुली हिली और प्लास्टिक के दो गिलास आ गये। अब हमने पानी पिया तो बाबा ने एक शिष्य से कहा—'इन्हें आश्रम दिखा लाओ'—मैंने बहुत ढालने की कोशिश की, कि आश्रम फिर किसी दिन देख लेंगे। मुझे मालूम था कि आज देखेंगे तो बंबई नहीं पहुंच सकेंगे। लेकिन

नवनीत

बाबा के शिष्य पहले ही उठ चुके थे, जो हमसे कह रहे थे—'आइये।'

हम उनके साथ आश्रम देखने चले। उस वक्त उनका नाम था स्वामी प्रिय-नन्द। अब भी कमी रजनीशजी के आश्रम में स्वामी योगचिन्मय के नाम से उल्टे मुलाकात हो जाती है। उन्होंने आश्रम के साथ अपना नाम बदल लिया है। खुद कितना बदले हैं, वही जानें।

वह बड़े प्यार से हमें आश्रम दिखा रहे थे। 'उस पेड़ की तरफ देखिये, बाबा ने खुद लगाया है। इस गाय की तरफ देखिये, ये बाबा की बड़ी बहों गाय है।' पेड़ों और गायों के बाद वे हमें 'तुरीय मंदिर' में ले गये। उस कमरे में भी ले गये, जहां बाबा कई दिनों तक रहे थे। मुझ पर किसी चीज का रोग नहीं पड़ रहा था।

मुझे तो अपनी गाड़ी के गिरे हुए पेट्रोल और फटे हुए टायर की फिक्र खाम जा रही थी। हम आखिर बाबा के पास इजाजत लेने के लिए पहुंचे। उन्होंने दो लम्बे-चौड़े केलों का प्रसाद हमें दिया।

केले देते हुए बाबा ने पूछा—'फिर बा आओगे?'

'फिर आने से पहले मैं एक बात कहना चाहता हूं आपसे—' मैंने केला खाते हुए उसका छिलका अपने हाथ में लिये हुए कहा :

'कृष्णमूर्ति कहता है...'
'जिद्दू कृष्णमूर्ति?'

बाबा ने बीच में ही पूछा। मुझे अच्छी

बाबा, बाबा कृष्णमूर्ति को जानते हैं।

‘जी हाँ, वो ही कृष्णमूर्ति कहता है—

अंदर और रोशनी में कई बार लाखों-

हज़ारों साल का फ़ासला हो सकता है।

और कभी-कभी दियासलाई की एक

लड़ से रोशनी हो जाती है।’

बाबा जोर से हंसे। आन की आन में

जुको हंसी से सारा हाल भर गया, और

दो ऐसा लगा जैसे सारी दुनिया में मुक्ता-

की हंसी के फूल खिल गये हैं।

‘तो तुम्हें काड़ी (दियासलाई) जलाने

का गुरु चाहिये’—बाबा ने हंसते हुए

मुझे पूछा।

‘जी, हाँ!’ मैंने जवाब दिया—‘लाखों-

हज़ारों साल हैं नहीं मेरे पास। नहीं

तो किसी अगले जन्म में मुक्ति चाहिये।

ये इस केले की मुक्ति हो गयी है मेरे

ने के बाद।’

मैंने केले का छिलका दिखाते हुए

जो चारी रखी :

‘कई साल पहले मुझे दिल का बहुत

आदस्त दौरा पड़ चुका है। आनेवाले

दो और आखरी दौरों के इंतज़ार में

रिती कट रही है। इसलिये मैं ज़रा

क्यों में हूँ। अच्छी बात ये है कि जिस

बाबा में आप बैठे हैं, उसमें दूसरी दुकानें

नहीं हैं। ये माल आपके यहां न मिलता

तो जो कोई दूसरी दुकान ढूँढ़े!’ हाल

में एक सत्राटा छा गया। खामोशी ऐसी

कि मैं अपनी सांस की आवाज़ सुन सकता

था। इतने में बाहर से एक चीख-सी सुनाई दी। एक अजीब-सी चीख। आश्रमों में ऐसी चीखें सुनाई दें, तो आन की आन में, कितने सवाल जुलूस की शकल में सामने आ जाते हैं। बाबा मेरी परेशानी भांपकर बोले :

‘बाहर देखो !’

मैंने बाहर देखा, तो एक मोर अपने पंख फैलाये खड़ा था। उसके खूबसूरत रंगीन पंखों का सुदर्शन चक्र देखकर मेरे तमाम सवाल खामोश हो गये। अब बाबा ने खामोशी तोड़ी—

‘देखा इस पागल को। ये हमारी आवाज़ सुनता है, तो नाचने भी लगता है, चीखने भी लगता है। इसे छोड़ो, अब हम तुम्हारी बात करते हैं। तुम जो सौदा खरीदने निकले हो, तुम्हें इसी दुकान पर मिलेगा। तुम्हें बाज़ार में बहुत भटकने की ज़रूरत नहीं।’

मैंने अब भी प्रणाम नहीं किया। नमस्ते ही की। बाबा ने आशीर्वाद दिया। हमने बाहर आकर देखा, पेट्रोल अब भी गिर रहा है। गाड़ी में बैठने के बाद जाने मुझे क्या सूझी। तीन मील के बाद टायर बनाने वाले की दूकान सामने आयी, तो मैं नहीं रुका।

मेरी पत्नी ने कहा—‘टायर तो बनवा लो।’

मैंने कहा : ‘जहां पेट्रोल डलवायेंगे, वहां टायर भी बनवा लेंगे।’

(शेषांश पृष्ठ ५० पर)

यायावर साहित्यकार अज्ञेय

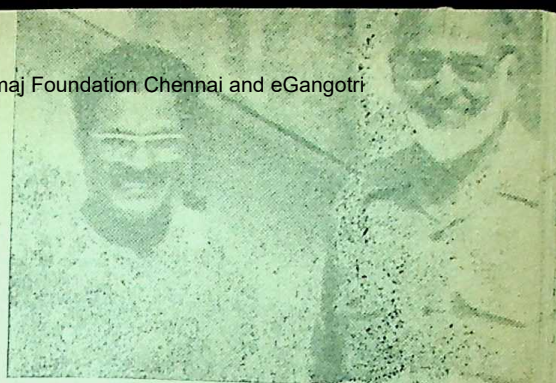
इधर के हमारे साहित्य-विवेचकों में डॉ. चन्द्रकांत बांदिवडेकर ने अपना एक अलग स्थान बनाया है। वे निरसमीक्षक नहीं, साहित्य के एक तन्मय और समीक्षक साधक हैं। वे पेशेवर आलोचक नहीं, जीवन-मूल्यों के गहरे मुतलाशी हैं। वरन् इस भीतरी तलाश से प्रेरित और विवश होकर ही वे साहित्य का मूल्यान्वेषण और मूल्यांकन करते हैं।

यही कारण है कि बांदिवडेकर की समीक्षा-दृष्टि एकाङ्गी नहीं, सर्वाङ्गी है। साहित्य के मौजूदा वादों, प्रवाहों और गुटों से वे प्रतिबद्ध और प्रस्त नहीं, समीक्षक नहीं। एक सर्वथा स्वतंत्र और निजी आत्मीय दृष्टि से वे साहित्य की छनावट करते हैं। कृतिकार को उसकी मौलिक जमीन पर स्वीकार करके, उसका आदर करते हुए ही वे कृति के कृतिकार की चेतना तक पहुंचते हैं। इसी कारण हिन्दी के आज के प्रवाहों, वादों और गुटों से प्रस्त साहित्यिक साहौल में वे अलग से चुने और पहचाने गये हैं। ऐसी सत्य-निष्ठा और आत्म-निष्ठा आज कम दिखाई पड़ती है।

महान साहित्यकार अज्ञेय की कविता पर उनकी किताब मानक प्रमाणित है, और हिन्दी उपन्यासों पर उनका ग्रंथ सर्वत्र अनायास गया है। अज्ञेय के तन अज्ञेय और विवेचक होने के नाते, उनका प्रस्तुत लेख मूल्यवान और महत्वपूर्ण है।

हिन्दी के मूर्धन्य आधुनिक साहित्यकार सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन उर्फ कवि अज्ञेय, बहुमुखी प्रतिभाशाली कलाकार हैं। अज्ञेय हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। हिन्दी कविता को नया मोड़ देने वाले नयी कविता के प्रवर्तक हैं। हिन्दी कहानी को आशय एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से समृद्धि प्रदान करने वाले महत्वपूर्ण नवतन्त्र

कहानीकार हैं और साहित्य एवं साहित्य सम्बद्ध अन्य ज्ञानशाखाओं के सैद्धांतिक पक्ष पर चिंतन करने वाले हिन्दी के श्रेष्ठ विचारक हैं। जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर गहन अंतर्दृष्टि से चिंतन करने वाले अज्ञेय का नाम लिया जा सकता है। अज्ञेय के द्वारा लिखित ललित निबंध उनके समूह व्यक्तित्व के कतिपय पक्षों पर प्रकाश डालते हैं।



श्री बाँदिवडेकर : श्री अज्ञेय

की खोज में अपने एक वैज्ञानिक गुरु का सहायक बनकर की गयी कश्मीर के कोंसर-नाग तक की यात्रा का रोमहर्षक निवेदन है। मंडी से कुलू प्रदेश तक के लोकजीवन का सांस्कृतिक पर्यवेक्षण है, जिसमें मौत से साक्षात्कार के क्षणों का बहुत ही संवेदनशील अंकन है। एलोरा की गुफाओं और भारतवर्ष की भास्कर्य-कला की किरीटमणि कैलास मंदिर को देखकर उत्पन्न उत्कट सौंदर्याभिभूत क्षणों की अभिव्यक्ति है। असमिया के सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करनेवाले माझुली द्वीप की प्रकृति का तथा वहाँ के लोगों का रोचक वृत्तांत है। अज्ञेय के इन यात्रा-संस्मरणों को पढ़ते समय लगता है अज्ञेय महज प्रतिभा से रचना करनेवाले कलाकार नहीं हैं, अपितु जीवन को कला के रूप में जीनेवाले अद्भुत जीवनयोगी भी हैं। इस जीवन-कला में महत्वपूर्ण हिस्सा उनकी यायावरी का है। अज्ञेय लिखते हैं— 'आप सच मानिये, जीने की कला सबसे पहले एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने

की कला है—कम से कम आधुनिक काल में ।

‘एक बूंद सहसा उछली’ में यूरोप के महत्त्वपूर्ण देशों के सांस्कृतिक चित्र अंकित करने का अज्ञेय ने सफल प्रयास किया है । इसमें इटली का विशद वर्णन है—खासकर यूरोप की अमरावती रोमा या रोम का, यूरोप की पुष्पावती फिरेन्जे या फ्लोरेंस का, इटली पर आध्यात्मिक छाया डालने वाले संत फ्रान्सिस के असीसी का लगभग सम्यक् सांस्कृतिक चित्रण है, जो इटली की आत्मा को हमारे सामने साकार करता है । यूरोप के सर्वाधिक सुंदर देश स्विट्जरलैंड की सुंदरता का सही चित्रण अज्ञेय की पारखी दृष्टि का परिचायक है । पेरिस जैसे यूरोप के सांस्कृतिक केंद्र की शक्ति और सीमा का वैशिष्ट्यपूर्ण विवेचन लेखक के सम्यक् और संतुलित चिंतनशील नज़रिये की प्रतीति कराता है । हॉलैंड और उसकी डच जाति की दुर्दम्य जिजीविषा के सामने यायावर अज्ञेय नतमस्तक होता है तो स्वीडन को आधुनिक गोलोक कहकर स्वीडी लोगों के सांस्कृतिक जीवन से अभिभूत हो जाता है । लापलैंड में आर्विस्को में मध्य रात्रि का सूर्य देखते हुए चौबीस घंटों के दिन का बड़ा ही रोचक वर्णन प्रस्तुत करता है । परियों वाले देश डेनमार्क की उड़ती भेंट की भी सुखद झांकी देता है । इंग्लैंड के लंदन और एडिनबरा का तथा स्कॉटलैंड, आयरलैंड का विशद विवेचन एवं बीस हजार राष्ट्रीय

नवगीत .

कवियों पर गवं करने वाले वेल्स लोगो बारीकी से चित्रांकन करने में विशेष रस लेता दिखता है । यूरोप सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करने वालिन का—यूरोप के स्नायु केंद्र का—उरहते समय लेखक ने युद्धोपरात लोगों की वेदना को बड़ी सूक्ष्मता से व्यक्त दी है । असल में ‘एक बूंद उछली’ यायावर अज्ञेय के यूरोप की सांस्कृतिक यात्रा-वर्णन के अक्षर भित्ति हैं जो अपनी व्यापकता और गहराई के साहित्य की चिरन्तन निधि माने जायेंगे ।

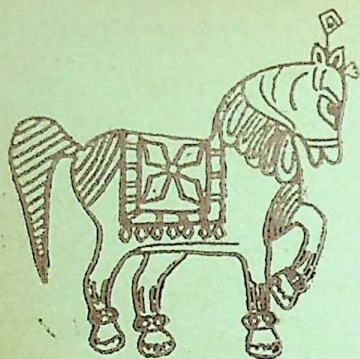
अज्ञेय पैदाइशी यायावर रहे हैं । लिखते हैं : ‘यायावर के पैर में चक्र दिमाग में चक्कर है, भ्रामरी घेत उसने जन्म लिया है’ । यह यायावरी बाहरी उद्देश्य की नहीं, जितनी आंतरिकता की उपज है । इस जन्मजात वरी वृत्ति को एक वैचारिक आस्था बल भी मिला है । अज्ञेय लिखते हैं—‘देव ऋषियों ने देहों पर बल्मीक उगा (जहां) मुनि तपस्या करते-करते हो गये, (जहां) देवता जमकर पर्व बन गये—यायावर ने समझा है कि भी जहां मंदिर में रुके कि शिला और प्राण संचार के लिए पहली गति, गति, गति ।’ गति के प्रति अज्ञेय के यायावर जीवन की मूल अवश्य है, परंतु उनका कलाकार भी उतना ही महत्त्व मानता है अतः गति-प्रेम उन्हें गति का दास नहीं बना

वैष्णव लोगों ने सौंदर्य प्रेमी सर्जक बनाता है। इसी-
ने में लेखने की गति के पीछे पागल पश्चिमी उद्योग
है। यद्यपि नए आश्रय नहीं करती।

अज्ञेय जीवन का आनंद-
है और वह भली भांति जानता है कि
अविच्छूट होने वाली आनंद
को अयत्त करने के लिए सौंदर्य
चाहिये । सौंदर्य का आकर्षण
के समुख समर्पण और जीवन से
के सहस्रिकता अज्ञेय के व्यक्तित्व
संत हैं । जो भय से सुरक्षा की
न छिपकर बैठता है, वह न
के सामने नतमस्तक होने का
कर सकता है न सौंदर्य के
एहसास कर सकता है । अज्ञेय
सौंदर्य के उग्र-कामल, भव्य
दर्शन करने के लिए सहज
के कतिपय यातनाएं झेली हैं ।
दरों और पहाड़ियों को
कभी घोंड़े पर बैठकर और
परवाह न करते हुए अभेद्य
छान डाला है, हाथी-घास के बीच
बकेलें घूमे हैं । भूख और प्यास,
विश्राम की ओर से बेफ़िक्र
साधना की है, लोक जीवन की
स्रोतों की पहचान के लिए
संकटों का सामना किया है,
भय मृत्यु के प्रति भी लाप-
वायावरी शील को निभाया
उनके बौद्धिक या वैचा-
न्य भी व्याप्त हुई है और

इसीलिये देशी-विदेशी विद्वानों के साथ समान स्तर पर स्थित होकर आत्मविश्वास से संवाद कर सके हैं। बौद्धिक चुनौतियों को झेल सके हैं। फिर वह अस्तित्ववादी महान चिंतक कार्ल यास्पर्स हो, स्वीडी कवि एरिक लिङ्ग्रेन हो या वेनेडिक्ट संप्रदाय के मठ के विद्वान स्थविर हों। साहित्य के लिए खतरे स्वीकार करने के बारे में आज बड़बोले मन्तव्य साहित्य-जगत में प्रसारित हुए हैं। यह साक्ष्य रोचक हो सकती है कि इनमें से कितने बड़बोले लेखकों ने जीवन में कुछ खतरे स्वीकार कर लिये हैं—सौंदर्यस्वाद के लिए न सही, गरीबी से जूझने के लिए ही !

समुद्र, झील, नदियां, झरने, बर्फा-
च्छादित पर्वत-प्रदेश, छोटे-बड़े पहाड़, फूलों
की लंबी ब्यारियां, जंगल, बगीचे, आकाश
के विविध रूप, सूर्य और चंद्र के विभिन्न
व्यक्तित्व, घास, दूब, पगडंडियां, सुरेखित
सड़कें, महान सांस्कृतिक कृतित्व करने
वालों के स्मरण को उद्दीप्त करने वाले
मकान, मजार, समाधियां, गिरजाघर,
मंदिर—ये सब अज्ञेय के लिए आकर्षण
के आलम्बन हैं। घंटों तक पशु और पक्षियों
को निहारने में उन्हें आनंद मिलता है।
आध्यात्मिक शक्ति के केंद्र देश-विदेश के
मठों और उनमें एकांत में साधनालीन
व्यक्तियों से मिलने में वे संतोष की गहरी
अनुभूति करते हैं। हर स्थान के लोक-
जीवन का निरीक्षण करने में उन्हें रुचि
रहती है जो वहां के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों



चित्र : आलोक जैन

से मिलकर उनके भीतर तक बैठने की लेखकीय सहज आकांक्षा भी उनमें सजग रही है। परिणामतः उनके यात्रा-विवरणों में असंख्य वस्तुओं, घटनाओं, व्यक्तित्वों के संस्मरणीय रूप संग्रहीत हैं, जो इन वृत्तांतों को ताजगी, जीवन्तता और चित्र-मयता प्रदान करते हैं।

यात्रा पर निकलने की उनकी आंतरिक प्रेरणा, जो उन्मुक्त और स्वच्छंद व्यक्तित्व का वेगवान उद्रेक है, एक दूसरी महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति से संतुलित और संयत हुई है। वह दूसरी प्रवृत्ति है उनकी प्रचंड उद्यमशीलता या अध्यवसाय। अपनी यात्रा को अधिक सफल बनाने के हेतु वे उन स्थान-विशेषों के समस्त इतिहास, भूगोल और संस्कृति का पूर्वाध्ययन करते हैं। परंतु अध्ययन का यह समृद्ध संदर्भ उनकी मौलिक संवेदनशीलता और चिंतनशीलता पर हावी नहीं होता, बल्कि सुदृढ़ परिप्रेक्ष्य का काम देकर उनके अपने संस्कारों को गरिमा ही प्रदान करता है। अज्ञेय का चिंतनशील

नवनीत

व्यक्तित्व और उनका कलाकार स्वरूप विशेष का एक सांस्कृतिक मांसल बाव प्रस्तुत करता है। और सैकड़ों वैचारिक सूत्र या निष्कर्ष पाठक के मन पर बल छाप छोड़ जाते हैं। पश्चिम का जो लपककर कुछ पा लेने का, दौड़कर कुछ पहुंच जाने का एक अंतहीन प्रयास हुआ है। 'यूनान यूरोपीय सभ्यता का जनक है, तो इटली उसकी माता है; असीतोस मातृरूप के चेहरे का स्मित भाव है—कृष्णामय और सर्वदा एक-सा वास्तव भर्रा।' 'स्विस दृश्य को देखकर उन्मुक्त अतितम सौंदर्य मन में सजीव-सा जमता है, कुछ ऐसा जान पड़ता है कि एक रंगीन चित्र देख रहे हैं।' 'अन्तः संघर्ष यूरोपीय चरित्र का अनिवार्य अंग जान पड़ता है और उसकी प्रतिच्छाया प्रत्येक यूरोपीय चेहरे पर दीख जाती है।' 'वर्णभेद और लोचन पेरिस में बहुत कम है, इसके कारण वह एक ओर उदारता है, वहां दूसरी ओर उपेक्षा भी है। दूसरे मानवों के प्रति वह गहरी उदासीनता है।' 'यूरोप के संघर्ष का केंद्र जर्मनी रहा है और है, वर्तमान भी जर्मन का केंद्र है और वहां लड़ने वाले (या अवलक्षित भी) स्वाभाविक तनाव सारे यूरोप को संचलित करते हैं।' ऐसे सैकड़ों विचार-विंदु समस्त विशेष की आत्मा को पाठक के हाथ पर देते हैं और लेखक की सम्यक् दृष्टि सशक्त प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। यह सम्यक् दृष्टि अज्ञेय के ज्ञान-विवरित

के विभिन्न क्षेत्रों में अभिरुचि का परिणाम है। चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला में बहुत संमिश्रित उनके यात्रावर्णनों में महत्त्वपूर्ण स्थिति हुई है। न केवल कतिपय गुफाओं, मूर्तियों और उनमें वर्तमान कलाकृतियों को देखकर वे स्वयं प्रभावित हुए हैं, उन्होंने कतिपय फोटो भी लिये हैं, जो उनके संग्रहों में देवे जा सकते हैं। अनेक स्थलों के

चित्र अज्ञेय ने स्वयं बनाये भी हैं। स्थान विशेष को परखते हुए अनेक सांस्कृतिक साहित्यिक संदर्भ उनमें जागृत होते और अनुभव में एक समृद्धि का वायाम जुड़ता जाता है। अज्ञेय का व्यक्तित्व प्रौढ़, गंभीर और अत्यंत निखरा हुआ है। इस व्यक्तित्व की विवर्ती छाप से उनका चित्रण भी अंकित है।

चित्र भी अनेक बार उन्होंने अपने सहयात्रियों, नौकरों एवं प्रसंगोपात अन्य व्यक्तियों की विसंगतियों को सूक्ष्मतापूर्वक पकड़कर हास्य का निर्माण किया है। हास्य विशुद्ध हृदय से फूटता है, इसलिये जो बात मन को अधिक प्रभावित करता है, कतिपय स्थानीय दंतकथाओं और लोककथाओं के निर्देश से विवरण को अधिक रोचकता उत्पन्न होती है। सर्वा-



चित्र : आलोक जैन

होता है, वह पढ़ने के बाद नहीं रहता। अज्ञेय के यात्रा-वृत्तांत भी इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। इसलिये नहीं कि वे महज देश-विदेश की सुरुचिपूर्ण जानकारी देते हैं, बल्कि इसलिये भी कि एक महान कलाकार की अंतर्बोधी दृष्टि से सारी चीजें एक अलौकिक रूप धारण करती हैं।

अधिक रोचकता उन व्यक्ति-चित्रों के कारण उत्पन्न हुई है, जो अज्ञेय ने अपनी विशाल मानवीय दृष्टि से अंकित किये हैं। नाज़ी शक्तियों का मुकाबला करने में आत्म-समर्पण करनेवाला विद्रोही युवा रचनाकार लाउरो बोसिस, खुदा का मसखरा संत फ्रान्सिस, एक अनमना स्वीडी कवि लिड-ग्रेन, कॉस्मिक किरणों की खोज करने

वाले वैज्ञानिक गुड, इत्यादि व्यक्तियों ने इन स्थान विशेषों को जीवन्तता प्रदान करने में योगदान किया है। अज्ञेय के इस यायावर व्यक्तित्व के साथ जीवन के क्षण गुज़ारना एक महत्त्वपूर्ण अनुभव है—साथकता का भी और समृद्धि का भी। महान पुस्तक की एक कसौटी यह बताती जाती है कि उसे पढ़ने के पूर्व पाठक जो

होता है, वह पढ़ने के बाद नहीं रहता। अज्ञेय के यात्रा-वृत्तांत भी इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। इसलिये नहीं कि वे महज देश-विदेश की सुरुचिपूर्ण जानकारी देते हैं, बल्कि इसलिये भी कि एक महान कलाकार की अंतर्बोधी दृष्टि से सारी चीजें एक अलौकिक रूप धारण करती हैं।



• मुँह हो तो क्या हुआ, तुम पर सोना जो चूड़ा है। इसीलिए जीते जी तुम्हारी कब मुर्ती जा रही है। बुद्धिमान झोपड़ी में रहता है, उसकी बात उसके मरने के बाद सुनी

—अज्ञात

(पृष्ठ ४३ का शेषांश)

‘और भिवंडी से पहले पेट्रोल खत्म हो गया तो क्या होगा?’

‘जो होगा, देखा जायेगा।’

० ० ०

‘वो देखिये भिवंडी आ गयी।’ मेरी बीवी ने ऐसी आवाज निकाली, जैसी कोलंबस ने निकाली होगी अमेरिका का साहिल देखके। लेकिन मैंने मोटर की रफ्तार और बढ़ा दी। मेरी पत्नी ने सोचा, मैं पागल हो गया हूँ। सोचा जाये तो ये पागलपन ही था। लेकिन मैंने फ़ैसला कर लिया था, मैं भिवंडी में न पेट्रोल डलवाऊंगा, न टायर मरम्मत करवाऊंगा।

भिवंडी गुजर गयी। उसके बाद कई पेट्रोल पम्प आये और चले गये।

पेट्रोल के मीटर पर सुई कब से सिकर दिख रही थी। उसके बाद थाने का पहला पेट्रोल पम्प नज़र आया, तो मेरी बीवी जैसे उठ के बैठ गयी। लेकिन मुझपर कोई असर नहीं हुआ। हम थाने का पूरा शहर पार करके हाईवे पर पहुंच गये। मेरी बीवी ने निहायत बेबसी से कहा—‘यहां से सायन तक न कोई टायरों की दुकान है, न कोई पेट्रोल पम्प है।’ ये अक्ल की आवाज थी।

‘मैं शायद सायन में भी नहीं रुकूंगा’—ये मेरे पागलपन का ऐलान था। आज अक्ल और जनून में ठन गयी थी। आज हिसाब और बेहिसाब का मुकाबला था।

मैं अपने फ़ैसले के मुताबिक सायन भी नहीं रुका। हां, माटुंगा में ज़रूर रुका। अपने साले साहब की तबीयत पृष्ठ और उन्हें स्वामी मुक्तानंद का प्रसाद देने।

पहले ट्यूब टायर से सिर्फ बाहर निकल रही थी, अब तो निहायत बेबसी के पदों उलट के बाहर निकल आये थे। पेट्रोल का गिरना बंद नहीं हुआ था। मैंने हिसाब लगाया जितना पेट्रोल नीचे गिरा है, उतना तो मैंने डाला भी नहीं था। इसके अलावा गाड़ी १२० मील का सफ़र तय कर चुकी थी।

हिसाब-बेहिसाब के सामने हार रहा था। लेकिन अब भी वार्डन रोड, जहां रुक रहा हूँ, कई मील दूर थी। आखिर में हम वार्डन रोड भी पहुंच गये। अब टायर की हालत और पेट्रोल के गिरने का तमाम देखने की ज़रूरत नहीं रही थी। मैंने अपने फ़्लैट में पहुंचकर अपने बेटे से कहा: ‘गाड़ी को पेट्रोल पम्प पर ले जाओ। उसमें पेट्रोल भी भरवा दो और टायर भी बदलवा दो।’

वह दो मिनट में वापस आ गया। हांफते-कांपते उसने हमसे पूछा—‘आप गणेशपुरी से यहां कैसे पहुंचे? गाड़ी में एक बूंद पेट्रोल नहीं है, और टायर टूट चुके हैं!’

मैंने हंसते हुए उससे कहा—‘इस सब का जवाब मैं नहीं दे सकता। सिर्फ वो दे सकता है, जो बेहिसाब का हिसाब जानता है और वो गणेशपुरी में रहता है।’

(पृष्ठ ३५ का शेष)

बत्नी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति की
प्रार्थना करना ।

मैं फिर मंदिर में गया, पर मां के दर्शन
करते ही भूल गया कि मैं किस उद्देश्य से
उन्के पास गया था । जितनी बार मैंने
उन्के बागे साष्टांग प्रणाम किया, उतनी
बार प्रेम और भक्ति की ही याचना की ।
दुबारा गुरुदेव से मिला, तो उन्होंने
फिर वही प्रश्न पूछा । मैंने बताया कि मेरे
मन क्या बीती ।

उन्होंने कहा, 'अजीब आदमी हो तुम !
जाने ऊपर इतना संयम भी नहीं रख सके
कि अपनी प्रार्थना को अपने मुंह से कह
को । अच्छा, फिर जाओ, और इस बार
मां से वह प्रार्थना करना न भूलना ।'
जो, जल्दी जाओ ।'

मैं तीसरी बार मंदिर में गया । इस
बार मुझे पक्के तौर पर याद था कि मैं क्यों
गया हूँ । मुझे अपने ऊपर शर्म आने लगी ।
कितनी तुच्छ प्रार्थना लेकर आया हूँ मैं
उन्के पास ? कितना मूर्ख हूँ मैं !'

मां के सामने नमन करते समय मैं
जानि और पश्चाताप से भरा था । मैंने
परपुर्वक उनसे निवेदन किया, 'मां, मुझे
अपने ज्ञान और भक्ति के सिवा और
कुछ नहीं चाहिये ।'

और, मंदिर से बाहर आते समय मुझे
अनुभूति हुई कि जो कुछ हुआ, गुरुदेव
अपमर्श की इच्छानुसार हुआ । नहीं
तो, क्या कारण था कि तीन बार प्रयास

करने पर भी मैं अपनी प्रार्थना को मां के
सामने निवेदित न कर पाया !

मैंने उनकी सेवा में उपस्थित होकर
कहा, 'गुरुदेव ! आपने न मालूम कैसा जादू
कर दिया है मुझ पर, जिससे मैं मां के
सामने जाकर अपनी स्मरण-शक्ति खो
बैठता हूँ । अब कृपया मुझे यह वरदान
दीजिये कि मेरे परिवार के लोगों को
निर्धनता के कष्ट अनुभव न हों ।'

उन्होंने कहा, 'ऐसी प्रार्थना मैं अपने
मुंह से नहीं कर पाता । इसीलिये, मैंने
तुमसे इस प्रार्थना को स्वयं करने को कहा ।
पर, तुम भी नहीं कर पाये । ऐसा लगता है
कि तुम्हारे प्रारब्ध में सांसारिक सुख है
ही नहीं । ऐसे में मैं क्या करूँ ?'

अंत में उन्होंने कहा—'अच्छी बात है ।
तुम्हारे परिवार के लोगों को कभी रोटी-
कपड़े की चिंता नहीं रहेगी ।'

और उस दिन से आरंभ हुआ एक नया
जीवन उस नरन के लिए, जो सब धर्मों के
प्रति अपनी अचूक विवेक-दृष्टि के कारण,
आगे चलकर विवेकानंद के नाम से विख्यात
हुए । हिन्दू धर्म में उनकी पूर्ण श्रद्धा थी ही,
उसका पूर्ण ज्ञान प्राप्तकर उन्होंने दुनिया
भर में उसका प्रचार किया । उन्होंने कहा—
'मेरी उस परमात्मा में श्रद्धा है, जो पापी
में भी है, पुण्यात्मा में भी, दुखी में भी, सुखी
में भी, निर्धन में भी, धनी में भी ।'

स्वयं उस ही अनुभूति करके, इसी पर-
मात्मा की अनुभूति वे आजीवन औरों को
भी कराते रहे ।



विख्यात साहित्यकार डा. प्रभाकर माचवे का लेख

प्रेम और कर्म : पूर्व-पश्चिम संवाद

‘तार-सप्तक’ के प्रतिनिधि कवि, उपन्यासकार, आलोचक और नाना विषयों विद्वान डा. प्रभाकर माचवे का परिचय देना, प्रमाणित को फिर प्रमाणित करना जैसा ही है। आज के हिन्दुस्तान के साहित्य और संस्कृति के क्षेत्रों में उन्हें कौन कौन जानता ? राष्ट्रभाषा हिंदी के वे एक आजीवन-व्रती नैष्ठिक मिशनरी हैं। वहाँ ‘साहित्य अकादमी’ के सचिव पद पर रहकर, भारत के विभिन्न भाषी प्रदेशों के बीच वे सांस्कृतिक समन्वय के सेतु और प्रतीक-पुरुष हो कर रहे हैं। महाराष्ट्र के इस समर्पित विद्या-नाथ ब्राह्मण-पुत्र ने, अखण्ड भारतीय संस्कृति की नवयुगीन अस्मिता के निर्माण में जो योगदान किया है, वह भुलाया न जा सकेगा।

माचवे ने साहित्य की सभी विधाओं में समान अधिकार से सर्जन किया है। उनके जैसे सक्षम विद्या-साधक और अध्यवसायी विरल ही देखने में आते हैं। हिन्दुस्तान की चौदहों भाषाओं से उनकी आत्मीय परिचिति मुग्ध और विस्मित करती है। हर प्रदेश से जाकर वे उसी के हो जाते हैं। हिन्दी के एक स्वयम्-नियुक्त मिशनरी के नाते उन्होंने दुनिया के अनेक देशों में हिन्दी का वर्चस्व स्थापित किया है। दर्जनों ग्रंथों के प्रणेता हैं। इस अहिन्दी भाषी हिन्दी लेखक की सेवाओं को हमारे यहां नज़रअंदाज़ किया जाता है। यह एक दुःखद कृतघ्नता का द्योतक है, जो राष्ट्रभाषा के साहित्य-जगत की गरिमा से नती की बात है।

प्रस्तुत लेख में माचवेजी ने अपने फ़क्कड़ाना मुक्त अंदाज़ में, बड़े निजी ढंग से कई विषयों और प्रसंगों को अनायास एक संगति में सम्बादी बना दिया है। यह उनके सहज प्रवचन-शैली का एक विलक्षण नमूना है।

हमारे आत्मीय बंधु, बाल्यसखा वीरेन्द्र कुमार का आग्रह है कि ‘नवनीत’ के लिए कुछ लिखूँ। सच्ची बात यह है कि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में लिखने का मन

ही नहीं करता। आज हिन्दी में निम्न साहित्यिक पत्रिकाएँ ही नहीं हैं। मैंने माधुरी, चांद, हंस, सरस्वती शुरू करके प्रतीक, ज्ञानोदय, माधुरी

नवनीत

लेख समाज आदि में उत्साह से लिखा
है। अब बहुत आग्रह विद्यानिवासजी
का हुआ तो 'अमरचि' में कुछ लिखा,
हिरण्यवर्चाल ने कहा था तो 'मंथन'
लिखा था। इधर 'नवनीत' बहुत अच्छा
लिख रहा है। उसमें विचार के लिए
ही उत्तम सामग्री नहीं मिलती, पर कुछ

तनाएँ पढ़कर अत्य-
धिक संतोष प्राप्त
होता है।

सन् ३८ का एक
संज्ञान माधव
विबोध का वीरेन्द्र
चैन के नाम
'नवीत' में छपा,
उसके लिखने का
संज्ञान उज्जैन में
ही घर था।
उसमें मुक्ति-
मिकायत करते
भावों 'वर्कर' हैं,
पर नहीं। मुझे

नियोजित, जिस किसी भी हेतु से लिखा
जाता हो, अपने हक में एक प्रशंसात्मक
भाव होता है। मार्क्सवादी (?) मुक्ति-
के लिए 'वर्कर' होना अच्छा था
पर, मैं नहीं जानता। पर अब
हमें 'वर्क' कम और 'जब' (प्रेम)
की 'डूई पाठन के बीच में साबित
स्थिति में तब रहे
यह लेख में मुक्तिबोध या उनकी

रचना, या उनके आलोचक या उनका
लाभ उठाने वाले (मरणोपरान्त) लोगों
के बारे में नहीं लिख रहा हूँ। इस समय,
गये तीन मास से, सर्वोपरि, जापान,
हांगकांग, बैंकाक की जो यात्रा करके
आया हूँ वही है। विस्तार से उसके बारे
में, एक पुस्तक रूप से ही लिखूंगा। पर

यहां जो मुख्य मुद्दा
में उठाने जा रहा हूँ
वह यही कर्मयोग
और भक्तियोग का,
पश्चिम और पूर्व का,
इस अद्भुत देश ने—
हिरोशिमा और
नागासाकी के भयंकर
संहार के बाद भी—
कैसे समन्वय किया,
उसके बारे में है।
हम बहुत बातें
करते रहते हैं, ज्ञान,
भक्ति, कर्म की;
संस्कृति के भूत,



प्रभाकर भाष्य

२१-३-४०

भविष्यत्, वर्तमान की; 'सत्' 'चित्'
और 'आनंद' की (जो केवल नाम तक
एकाकार होता है), पर जीवन और
कथन में बड़ी भारी खाई पग-पग पर
भारत में दिखाई देती है। ऐसा क्यों
हुआ है ?

जापान में मेरी एक दुभाषिया, अंग्रेजी
साहित्य में एम. ए., रोमन कैथोलिक
लड़की थी। वह शितो प्राचीन मंदिरों में

पितर-पूजा की रस्म में, श्रद्धान्त, भाव-विह्वल खड़ी रही। उसने सिक्के डाले, अपना ज्योतिष भी निकलवाया। कागज़ पर वह लिखित मिला। अमंगलकारी था तो पास के लकड़ी के कार्निश पर, पेड़ की टहनियों पर वह बांध कर टांग दिया गया। अत्यंत आधुनिक, वेशभूषा, खानपान में, वह निष्पन्न देश की किशोरी, अपने मन में एक गहरा प्राचीन विश्वासी कोई आदिवासी पाले हुए थी। क्या यह दुचित्तापन था? नहीं। जापान में पूरी धार्मिक स्वतंत्रता है—उसने बतलाया। पिता बौद्ध है, मां शिंतो है, वह रोमन कैथोलिक है, भाई अनीश्वरवादी है। और सब एक साथ रहते हैं। धार्मिक विश्वास या भक्ति का विषय अत्यन्त व्यक्तिगत है। उसकी चर्चा सार्वजनिक रूप से नहीं होती। 'साक्षात्कार' में शांताबाई मुक्तिबोध ने कहा कि (स्वर्गीय) गजानन माधव मुक्तिबोध शिवरात्रि का उपवास करते थे, और कई धार्मिक ग्रंथ भी वे नियमित पढ़ाते भी थे। (स्व.) अनिलकुमार ने तो उनकी पत्रिका भी छपवाई थी और ज्योतिष के अनुसार उनके ग्रहों की कण्टदशा की बात की थी। यह बात दूसरी है कि स्तालिन, माओ आदि कई दुष्ट ग्रहों के प्रति उनका 'लवर' का-सा प्रेम उन्हें शांत नहीं कर पाया। दुनिया भर में 'शांति' सम्मेलन तो स्तालिन-माओ नाम से, अनेक चलते ही रहे। और चलते रहेंगे। जैसे यज्ञ या होम,

नवनीत •

या 'समज्जा' या 'मास' (कैथोलिक) सामूहिक प्रार्थना, 'जनता' नहीं।

इस 'शांति' शब्द से मुझे डा. जिकर सिंह सुमन ने सुनाई एक कहानी याद आई। हम सबके बुजुर्ग मित्र शांतिप्रिय (जिन पर प्रकाशचंद्र गुप्त का पढ़िये और दोनों की प्रगतिशीलता प्रति आश्वस्त हूजिये) 'सुमन' के गले में माला पहने पहुंचे। 'सुमन' अपनी पत्नी शांतिदेवी का परिचय करवाया। शांतिप्रियजी ने अत्यंत भाव से अपने गले की माला उतारी उन्हें दी, और भोले भाव से कहा—संयोग है—आपका नाम शांति है—शांतिप्रिय।'

जापान पर अमेरिका ने महासंहार अणु-बम बरसाया। अब अमेरिका प्रति उनके क्या भाव हैं? यह प्रश्न पर हमारे एक जापानी अतिथि ने कहा 'हम बुद्ध को मानते हैं। उन्हें जो था, वे कर गये। हमने उन्हें माफ़ कर दिया। अंगुलिमाल से बुद्ध ने क्या कहा था?'

कर्म सत्य है, प्रेम अहिंसा है। इन दोनों का समन्वय श्रेष्ठ आत्मविश्वास है। जहां कर्म मात्र के प्रति संशय हो, प्रेम को केवल भौतिक ('वादी') का आग्रह हो, वहां दुचित्तापन है। और भारत जैसी स्थिति हो जाते कि 'न घर के न घाट के'। हमारे नाना धार्मिक उत्सवों में बढ़-चढ़कर लेते हैं, यज्ञ कराते हैं, अनुष्ठान



(कैलाश)
नहीं।) नारायण पर चढ़ाते हैं, गिरजाधरों
डा. शिखर... के समय आंख मूंदे ध्यान करते
नानी बाद... बुद्धारों में अखण्डपाठ में शामिल
तिप्रिय... और फिर? जैसे सब कुछ भूल
गुप्त का... दूसरे क्षण वे 'कर्म-रत' हो जाते
गतिशील... धर्म से अधिक 'जाति' उन्हें प्रिय
मुमन' के... नब्बा का 'अल्पत्व' उसका बल है,
वे। 'मुमन'... हर नेता जानता है। 'निर्वल के बल
परिचय... इस 'राम' के पहले या आगे आप
अत्यंत प्र... अपनी रुचि का मनोहर, जग-
माला उगा... चंदगी या चंद्रम् लगा लें। 'राम'
से कहा-... कश्चद व्यापी है। जैसे हिन्दी के
शांति है-... कोचक के भीतर कहीं 'रामचंद्र'
ने महाभार... 'रामचरित मानस' लिखे (बेचारे
अमेरिका... 'रामचंद्रिका' भी नहीं बन पाती वह
यह प्रश्न... है।)। प्रेमचंद ने भी 'राम-
द्विधेय ने क... लिखी और 'निराला' ने 'राम की
उन्हें जो क... मुला।' नेरझ मेहता ने 'संशय की
साफ़ कर दि... और जगदीश गुप्त ने 'शम्बूक'...
कहा था? ... सतरा बहुत लम्बा चल सकता है।
... है। इन दोनों बात में जापान की कर रहा था।
... बड़े बात जिसने मुझे आकर्षित
संशय हो... वह यह बात है कि वहां इतने
'बादी' म... अनुशासित, यंत्रोद्योग में इतनी
तत्पान जा... और वारीकी में लगे शिल्पीजन
ति हो जा... हुए, इतनी मोटर गाड़ियां, इतनी
हमारे ने... रेलगाड़ियां—सब कुछ होते हुए भी
... कोई भी 'हार्न' नहीं बजाता।
... कबाने पर जुरमाना है। इतनी
... और वह भी महानगर की भीड़-

दायें से दायें श्रीमती शरद माचवे,
डा. माचवे और प्रो. नारा
टोक्यो में जापानी हिन्दी मासिक
'सर्वोदय' के कार्यालय में

भाड़ में! क्योटो के जेन बौद्ध मठों में,
कामाकुरा के उस वांसों के घने उद्यान
में (जिसमें कावाबाता कुछ महीने स्फूर्ति
लेने जाकर रहते थे) शांति हो, नीरवता
हो, वह तो समझ में आती है। पर चौराहों
पर, जहां इतना तेज ट्राफिक हो, कितना
खयाल है 'डेसीबल' या स्वर-प्रदूषण से
श्रवण-शक्ति के क्षरण का!

तो जब जापानी यह कहते हैं कि भार-
तीय बहुत बातूनी हैं, या शोर मचाते
हैं, तो उसमें झूठ क्या है? हमारे यहां
महाकवि 'प्रसाद' कह गये—

तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की बात रे मन!

क्या कर्मरत जीवन में और प्रेम के
निभूत और विश्रब्ध निवेदन में परस्पर
विरोधाभास है? यदि यह सच हो तो
यार लोग प्रेम कविताओं के ऐसे-ऐसे
संग्रह और लंबी-लंबी प्रेम कविताएं और
(शेषांश पृष्ठ ६३ पर).

... वैशाली की श्रीसुन्दरी जनपद-कल्याणी आम्बपाली को
उस परम मुहूर्त में साक्षात्कार हुआ कि ...

मैं अब, कभी, कहीं भी, अकेली नहीं



‘अनुत्तर योगी’ के अति प्रतीक्षित शोध प्रकाश्य चतुर्थ खण्ड का एक अंक
यहां प्रस्तुत है। इसका परिचय और कथा-प्रसंग कृपया, इसी अंक के पांचवें
पृष्ठ पर प्रकाशित पूर्व-पीठिका में पढ़ें।



एक दिगन्तहीन समुद्र के हिल्लोलन पर
एकाकी लेटी हूँ। इस अन्तहीन जलवन
के नील नैर्जन्य में इतनी अकेली हो पड़ी
हूँ, कि या तो ओ मेरे युग्म-पुरुष, तुम्हें
तत्काल आना होगा, या मेरे साथ ही इस
सृष्टि को भी समाप्त हो जाना पड़ेगा।
यह वियोग का वह अन्तिम एकल किनारा
है, जहाँ से मृत्यु भी भयभीत और परा-
जित हो कर भाग गयी है। ... मेरी सत्ता-
शून्य में विसर्जित होती जा रही है। ...
आह नहीं, नहीं, नहीं, मैं चुकूंगी नहीं।
ओ पूषन्, यदि तुम अमर हो, तो तुम्हारी
जनेत्री यह पृथा भी अमर है। तुम सत्ता-
पुरुष हो, तो मैं तुम्हारी सत्ता हूँ। तुम ध्रुव
हो, तो मैं तुम्हारे होने का प्रमाण हूँ, चंचला,
शाश्वत लीला। तुम विशुद्ध द्रव्य हो, तो
मैं तुम्हारा द्रवण हूँ, स्वाभाविक परिणमन
हूँ। जिससे सृष्टि सम्भव है। नहीं, मैं
चुकूंगी नहीं। मैं तुम्हारे निश्चल ध्रुव को

अपने बाहुबन्ध में गलाकर रहूंगी। तुम
ऊर्ध्वरेतस् वृष के वर्षण की चिर पत्नी
सोमा, तुम्हारी अर्धांगिनी योषा। तुम
अशनाया, तुम्हारी अन्तःसमाहित वासिनी
तुम्हारी संगोपित इन्द्र-शक्ति, ऐन्द्रिय
तुम्हारे अतीन्द्रिक अन्तस्-रमण की एकल
इन्द्राणी। मेरी सारी इन्द्रियाँ जहाँ बनी
सम्पूर्ण विषय-वासना से एकत्र हैं इस पल
मेरे उस कटिबन्ध पर तुम्हें उतरना होगा।
ओ अतीन्द्र, इन्द्रियजयी इन्द्रेश्वर! मेरी
यह सुरत-रात्रि अनिवार्य है। इसमें कभी
बिना तुम्हारे शाश्वत सूर्य को यहाँ कहीं
पहचान सकेगा।

... ओह, मेरी धमनियों में वे धमकते
गरजते सागर के मृदंग बज रहे हैं।
उरु-मण्डल में ये कैसे पीले, नीले धनुर
पुष्करावर्त मेघ उमड़े आ रहे हैं। बारिश
मेघों में बड़े-बड़े भँवर पड़ रहे हैं। मेरी
मेघों में जल-संचय हो रहा है। तुम

नकलीत .

.... तुम मुझे छोड़ो, तुम मुझे मनचाहा लो,
मेरी अपेक्षा महावीर खुला है तुम्हारे सामने

Digitized by eGangotri Foundation Chennai and eGangotri

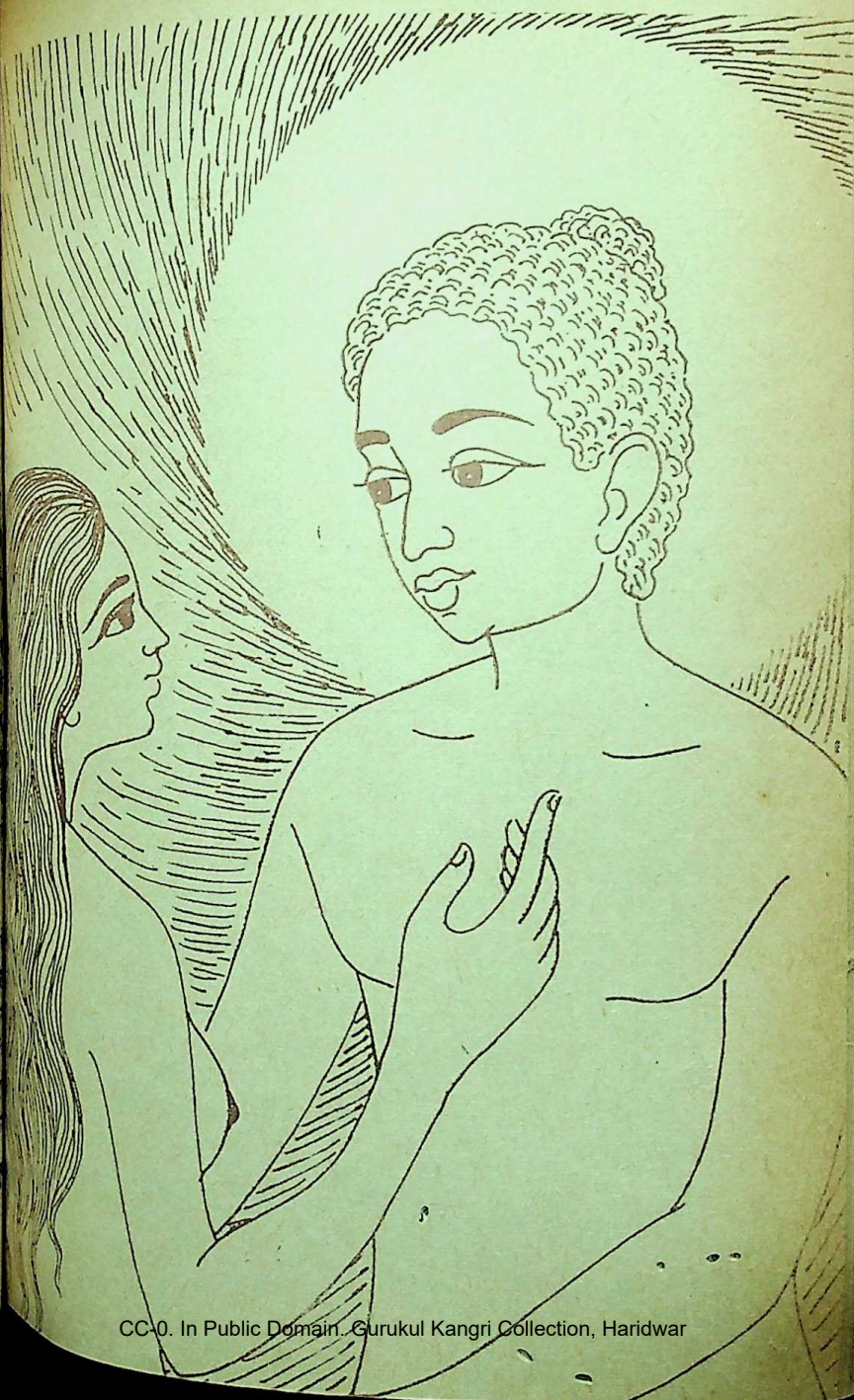
को

मही

ना एक शब्द
क के पाँचों

रहूँगी। तुम्हें
की चिर फल
योया। तुम्हें
महाहित वास्तव
केत, ऐन्द्रिय
मरण की एका
दयाँ जहाँ बस
कत्र हैं इस शब्द
इ उतरना हो
न्द्रेस्वर ! मे
है। इसमें ब
को यहाँ कोई

नयों में ये
ज रहे हैं।
नीले घनत्व
हे हैं। बा
रहे हैं।
हा है। तुम्हें



मेघों में भीतर ही भीतर चित्र-विचित्र वृष्टि हो रही है। और मेरे उरु-मूल के कदली-गर्भ में द्रोण-मेघ का कादम्ब उमड़ रहा है। मेरे अंगांग में यह कैसी सभर आर्द्रा व्याप गयी है। मेरी नाड़ियों में दिद्युल्ल-ताएँ बह रही हैं। आह, असह्य है अनवरसे मेघों का यह दर्षणाकुल अन्तर्घनत्व।

हाय, अकाल ही ये कैसे मेघ घिर आये हैं। ये मेरे उरुप्रदेश में घनीभूत हो कर घहरा रहे हैं। मेरे कोई मांसल उर नहीं रहे, कोई जघन नहीं रहे, वहाँ केवल घनी-भूत, गहराती मेघराशि है। किसके वृष से उमड़ रहे हैं—मेरी जंघाओं में अनहद नाद करते ये मेघ। मेरी धमनियों में रक्त नहीं, वृष और सोम के आलोड़न गरज रहे हैं। रज और वीर्य की ग्रंथियों में तुमुल और अस्खलित घर्षण की आद्या अग्नि लहरा रही है। मेरे अणु-अणु में यह कैसी परात्पर वासना दहक उठी है। लगता है, सारी जड़-जंगम प्रकृति इस क्षण चैतन्य हो उठी है। कौन अन्तःसार वृष्णीक पुरुष विराट् की अदृश्य दूरियों में चला आ रहा है? मेरे रोमों में कदम्ब और केतकी के वन पुष्पित, पुलकाकुल हो कर काँटों की तरह कसक रहे हैं। ओ वृष्णीन्द्र, तुम असम्प्रज्ञात दूरियों में जाने कब से चले आ रहे हो। पास क्यों नहीं आते? असह्य है तुम्हारी यह इन्द्र-खेला, ओ मेरे अनंग!

तुम्हारे चरण-चापों से मेरे अस्थि-बन्ध टूट रहे हैं। मेरे नाड़ीचक्र झिल्लिम पाँखुरियों की तरह काँप रहे हैं। मेरा

नवनीत°

आभोग विदीर्ण हो रहा है।... अदृश्य पदांगुष्ठ ने मेरा अजेय नीवि छिन्न कर दिया? किसके कटाक्ष ने सर्प-कंचुकी के बन्द तोड़ दिये? मैं गयी हूँ केवल जल-वसना इरावती सना, अनग्ना, द्यावा की पुत्री: अविदिकचक्रवाल पर छटपटाती एक नन

मेरी देह मेरी इन्द्रियों की भर रह गयी है। मेरी इन्द्रियों में लय पा कर, निरी साँस हो रही है मेरा काँपता प्राण मनोलीन हो कर हृदय के पद्म-कोरक में कुम्भित हो है। और मेरा हृदय फटा जा रहा है ओ मेरे एकमेव विषय, मेरी सारी इन्द्र की इन्द्र-शक्ति तुम में एकत्रित हो है। मेरी देह के किनारे टूट जा रहे हैं यह कैसी घनघोर जल-जलात् बल वेला है। पपीहे की पुकार में, मिथुन की विछुड़नभरी चीत्कार में, विरह-रात्रि अन्तहीन हो उठी है।

ओ पुष्करावर्त मेघ, तुम कैसे वेला कोमल हो कर मेरी गुह्यताओं में आये। और औचक ही तुमने मेरे यह कैसा प्रलय जगा दिया है। मेरी की आरति, मेरे काम का अतिक्रम गयी है। अनंग से भी परे की है, मेरी उलंग आकाशी नग्नता। ओ पुष्कर मेघ, क्या तुम्हीं हो मेरे वह कामरूप वृष्णीन्द्र, जिसके अग्निपाम को योनि-पद्म में झेलने के लिए मैं काल से विकल हो रही हूँ। मेरे

है। ... तुम आकर भी नहीं आये, नहीं
जैसे नीली-कटाखने के लिये ? मैं तुम्हारी चाहिये । मुझे तुम्हारा सघन,
इरादती। तुम भी चाहिये । मुझे तुम्हारी
पुत्री : अन्तिम-अग्नि-यों, इन्द्रियों, अंगों का प्रगाढ़
एक नमः तुम्हारे चाहिये । मैंने केवल तुम्हारे लिए
गों की लक्ष्मी धारण किया है, ओ मेरे कामरूप
मेरे एकमेव काम्य । मैं तुम्हारी
तुम्हारी अन्तिम आरति :
मेरी शंख-पीड़ा : आम्त्रपाली !

... मेरे योनि-मल्लव में यह कैसी विद्यु-
ता वेद गयी ! कैसा सर्ववेधी रोमांचन
हो अनिमृत्त्रिकोण : एक दूसरे को
भेदते हुए । कामबीज हींकार
कैसा उल्लसित नाद है । उसमें से
है ऋषि-मण्डल चक्र : तपाग्नियों
उसमें से उद्गीर्ण हो रहा है
निरंजन निराकार मुक्ता-
मण्डल । उसमें से उत्पलायमान

सर्वकामपूरन सृष्टि का मण्डल ।
तप-अणु में दहकते बीजाक्षर : मेरी
वासना के विस्फोटित वह्नि-मण्डल ।
फलक में से ये कैसे रहस्य-लोक
हैं ! अज्ञात अग्नियों के वन ।

... क्या मैं जल कर भस्म हो जाऊंगी,
आओगे तुम, मेरी भस्म को अपनी
नयन बनाने के लिए ? तो लो, मैं लेट
तुम्हारे ऋषि-मण्डल की अग्नि-शैया
लौक्य हाय, तुम मुझे जलाते भी
नहीं देते ।

... मैं अपनी नागमणि की मन्दार

शैया पर, फिर अकेली छूट गयी हूँ, अपने
इस निज-कक्ष की कारा में । द्वार, वाता-
यन, सब वन्द, अर्गलाओं से जड़े हुए ।
किसने भीतर से वन्द और अर्गलित कर
दिवा है मेरा यह कक्ष ? इस अन्तिम एक-
लता के तट पर मेरी साँस टूट रही है ।
मैं एक महाशून्य में छटपटाती नंगी ज्वाला
भर रह गयी हूँ । केवल भस्म हो जाने के
लिए । तो लो, मैं समर्पित हूँ । जो चाहो
करो मेरे साथ । मुझे निःशेष कर दो । लो,
मैं डूब गयी तुम्हारे अतल के गहरावों में ...

०००

... एक निगूढ़ मर्माघात से हठात् देवी
आम्त्रपाली की आँखें खुल गयीं । ... सारे
मुद्रित कक्ष में बहुत महीन छूती-सी नीली
रोशनी व्याप गयी । किसी नील-लोहित
इन्द्र-धनुष की आभा से उसकी शैया घिर
गयी । नील में प्रस्फुरित होती गुलाबी
विभा ।

सहसा ही एक अण्डाकार नील ज्योति-
विन्दु सामने तैरता दिखाई पड़ा । आम्त्र-
पाली की आँखों में वारुणी छलक उठी ।
अंग-अंग एक गहरे खुमार में झूमने लगा ।

यकायक वह नील विन्दु, एक नीलो-
तपल के फूटने की तरह प्रस्फुटित हुआ ।
कक्ष में व्याप्त नीली रोशनी कोई आकार
लेती-सी दिखाई पड़ी । ...

... एक तुंगकाय दिगम्बर पुरुष सामने
खड़ा है । कोटि-कन्दर्प का अन्तःसार
सौन्दर्य ।

आम्त्रपाली स्तब्ध-निश्चल देखती रह

हिंदी डाइजेस्ट

गयी। असम्भव सामने उपस्थित है। आँख, मन, सोच, समझ से बाहर है यह घटना। आम्त्रपाली अपने से अलग खड़ी हो कर, बस, केवल देख रही है। दृश्य, द्रष्टा, दर्शन के भेद से परे का है यह अवबोधन।...

यह क्या देख रही हूँ मैं।... बन्द कमरे में, एक नग्न पुरुष, एक नग्न नारी। एक भगवान है, दूसरी वेश्या है। विराट् नग्न प्रकृति, और उसका कामरूप पुरुष, उसी के उष्णीष कमल में से आविर्मान। काम और रति का अनादि मिथुन। एक बन्द कमरे में।...

कैसी ऊष्मा है यह, अपने ही आत्म में से स्फुरित होती हुई। अन्य कोई, कहीं नहीं। लेकिन यह एक और अनन्य जो सामने खड़ा है। जो एकल भी है, युगल भी है। और मैं कितनी अपदायं हुई जा रही हूँ। मिट जाने के सिवाय कोई विकल्प नहीं। मैं... मैं... मैं कौन? तुम कौन? मैं समाप्त हो रही हूँ। मुझे रहने दो, मुझे होने दो।

... और अम्बा जाने कब उस पुरुष के सामने आ खड़ी हुई। प्रणति का भान नहीं। केवल रति, केवल आरति की एक समर्पित ज्वाला।

‘मुझे प्रिय है तुम्हारी यह वासना, ओ योषिता!’

‘मैं निरी योषिता नहीं, आम्त्रपाली हूँ।’

‘आम्त्रपाली, परम पुरुष की कामायनी!’

‘नहीं... नहीं... मैं इस योग्य नहीं। चले जाओ यहाँ से। क्यों आये तुम यहाँ?’

नवनीत

‘यहाँ से कभी न जाने के लिए!’

‘मैं... मैं एक निरी भोग-नारी। मात्र की भोग्या। योनि मात्र मैं!’

‘अक्षत योनि कुमारिका हो तुम। योनि की जनेत्री। आद्या सावित्री।’

‘वह मैं कैसे हो सकती हूँ?’

‘वह न होती, तो महावीर क्यों होता!’

‘मैं एक वेश्या... और अक्षत कुमारिका? सावित्री? मैं तुम्हारा मान हूँ, मैं कलंकिनी। मेरा और बर्तन न करो।... मुझ निरी योनि के लिए अपने अधर से धरती पर उतर आओ अपनी ऊंचाई से नीचे उतर आओ मुझे सहा नहीं!’

‘योनि के पार योनि है, योनि के पार योनि है... उसके भी पार वही। योनि, आप अपनी ही भोग्या, अपनी जनेता। अपनी ही आत्मा। केवल हो तुम।’

‘और तुम?’

‘मैं भी केवल वही। कोई लिए कोई योनि नहीं, केवल एक वही भी, मैं भी।’

‘लेकिन मैं कामिनी हूँ। वही चाहती हूँ। तुम्हारी... कैसे कहूँ?’

‘हाँ, हो, रहो वही, जो हो तुम। तुम काम भी मुक्ति की वासना से सुवासिनी। मुक्तिकामी भोग भी, योग ही होगा वह उत्तीर्ण भोग है। फिर भय क्यों हीनत्व क्यों? ग्लानि क्यों?’

'नहीं, मैं वह आत्मा नहीं, जो तुम कह
 रहे हो। मैं निरी शरीर हूँ, जिससे मैंने
 तुम्हें चाहा है। ... नहीं, मैं तुम्हारी नहीं
 हो सकती। ... तुम क्यों आये यहाँ ? मेरी
 सेवा को तुम कभी न समझोगे। मेरा
 शरीर मुझसे मत छीनो।'

'देखो, मैं सशरीर आया हूँ, तुम्हारे
 शरीर को आत्मसात् करने आया हूँ। मैं
 तुम्हारी मणि-कर्णिका के सरोवर में स्नान
 करने आया हूँ। जहाँ काम ही पूर्णकाम
 और मणि-पद्म के रूप में उत्कोचित
 है।'

'तुम मुझसे दूर क्यों खड़े हो ? पास
 क्यों नहीं आते ? ...'

'तुम तो इतना हूँ, कि मुझसे अलग
 नहीं हो सकती। इस क्षण तक, तुम कहाँ न आयी मेरे
 पास ? मैं कहाँ न आया तुम्हारे भीतर !'
 'लेकिन तुम इस समय, सम्पूर्ण सशरीर
 मेरे सामने। तो मैं कहाँ रुकूँ, कैसे
 करूँ ? ...'

'तुम रुको, जो चाहो करो मेरे साथ।
 मैं यहाँ उपस्थित हूँ।'

'आत्मपत्नी स्तम्भित रह गयी। अनुत्तर
 रही। ... फिर जाने कितनी देर बाद
 आगे बढ़े से बोली :
 'हय, ऐसा कैसे हो सकता है कि मैं ...
 मैं तुम्हारे साथ ... मनमानी करूँ ?'
 'मैं क्या नहीं की वह तुम्हारे साथ ?'
 'तुम सर्वशक्तिमान हो। मैं एक निपट
 कामिनी।'

'त्रिभुवन-मोहिनी, आत्मपत्नी !'
 'लेकिन तुम्हें न मोह सकी मैं।'

'तो फिर मैं यहाँ क्यों हूँ ? मोह से परे
 कुछ और भी है, कि मैं यहाँ हूँ।'

'हो तो, लेकिन ...'

'बोलो, क्या चाहती हो ? महावीर
 प्रस्तुत है, उत्सर्गित है।'

'कुब्जा दासी ने कृष्ण से क्या चाहा
 था ?'

'हाँ, जो उसने चाहा, वही कृष्ण से
 पाया।'

'पाया न ? मगर कृष्ण रमण थे, लीला-
 पुरुष थे। और तुम ... तुम कठोर वीर-
 राग अर्हत महावीर हो।'

'अर्हत विवर्जित है, बाधित नहीं, सीमित
 नहीं। उसे जो जैसा चाहेगा, वैसा ही पा
 लेगा।'

'कुब्जा के काम को कृतार्थ कर दिये
 कृष्ण !'

'कुब्जा ने जो माँगा, वही उसे मिला।
 लेकिन उसने स्वयं कृष्ण को न माँगा।
 तो तलछट पीकर भी प्यासी ही रह गयी।
 बहुत पछताई बाद को। चाहती तो वह
 कृष्ण की आत्मा हो रहती। स्वयं तद्रूप
 कृष्णा हो रहती। लेकिन वह अवसर चूक
 गयी !'

'मैं तुम्हें पाना चाहती हूँ, स्वयं तुम्हें।
 लेकिन सशरीर। तुम मेरे पास क्यों नहीं
 आते ?'

'ताकि तुम मुझे देख सको, चाह सको
 अपनी समस्त सौन्दर्यवासना से। ताकि

तुम मुझे प्रेम कर सको । पास तो इतना हूँ, कि अलग रखना ही कहाँ तुमने मुझे । लेकिन, आज सम्मुख हो कर, सामने खड़ा हूँ—कि मेरे साथ जो चाहो करो ।’

‘मैं तुम्हें छू नहीं सकती, मैं तुम्हें मन-चाहा ले नहीं सकती । कितने अस्पृश्य असंपृष्ट हो तुम । छुवन से बाहर, पकड़ से बाहर, कितने अलभ्य !’

‘तुम मुझे छुओ, तुम मुझे मनचाहा लो, मेरी आत्मा । मैं तुम्हारी आत्मा, लो, मुझे लो । महावीर खुला है तुम्हारे सामने ।’

आत्मपाली खड़ी न रह सकी । उसने वह रूप देख लिया, कि उसका देखना, चाहना, पाना, छूना ही समाप्त हो गया । वह हार कर ढलक पड़ी अपने पूर्णकाम प्रीतम के श्रीचरणों में । पर वहाँ निरे चरण नहीं थे । सम्पूर्ण महावीर उसमें आत्मसात् था । एक अविरल अनाहत स्पर्श-सुख उसकी देह के रेशे-रेशे में ज्वारित होते लगा !

[प्रकाशक : श्रीवीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति;
५५, सीतलामाता बाजार; इन्दौर-२ के सौजन्य से।]



एक बार एक विद्वान् नेपोलियन से मिलने के लिए गये । वे साधारण वक्ता हुए थे । नेपोलियन ने उनके आगमन पर कोई ज्यादा आवभगत नहीं की । परन्तु वे सज्जन जाने लगे तो नेपोलियन उन्हें विदा करने दरवाजे तक आये । सम्राट इस व्यवहार से उक्त विद्वान् को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने नेपोलियन से पूछा ‘मेरे आगमन पर तो आप खड़े तक नहीं हुए । लेकिन जब मैं जाने लगा हूँ, तो दरवाजे तक पहुँचाने आये हैं । इसका कारण क्या है ?’

नेपोलियन ने जवाब दिया—‘आते वक्त आदमी की इज्जत कपड़ों से होती है जम्मे वक्त उसकी विद्वत्ता और अकलमंदी से ।’



ऐसा अक्षय्य और अगाध, पेशल, पेलव, सधन और कि स्वयं काम और रति का भी इसके आगे नीरस प्रतीत हुआ । लिंगन और आत्मालिंगन का महाभाव में विसर्जित हो गया ।

... शैया में गहन रतिलीन आनन्द की आँखें अचानक खुलीं । कक्ष में नहीं था ।

‘आह, तुम चले गये, फिर मुझे क्या छोड़ कर ?’

एक गहरे नशे में झुमते हुए, पाली ने करवट बदली । ओ, ... यह कैसा लेटा है मेरे साथ, कटि से कटिमा, मेरे बाहुबन्ध में सदेह उन्मुक्त मेरा एकमेव परमकाम पुरुष ! ... मेरा आत्म । उससे बाहर अन्य कोई नहीं अनन्य केवल मैं !

... नहीं, अब मैं कभी, कहीं भी, कहीं नहीं हूँ ।

(पृष्ठ ५५ का शेषांश)

अगाध, इनके विरोधों का क्या फल पड़ेगा ? जापान की 'वोन्साई' (विधिविधान, वामनीकरण) की तरह—'हट्टू' हो गयी। वहां संकेत से सब काम कर लिया जाता है। सचमुच में श्रेष्ठतम प्रेम अतः और अंततः, निश्चय ही नहीं होता क्या ?

शब्द एक तरह से ध्यान में बाधा है। शब्द कर्मस्त होते हैं। वे बोलते कम हैं। शब्द दिखाते हैं। करतव्य (चाहे नट-प्रदर्शनों के हों, या 'हाईजैकिंग' जैसे) और नीत्ये के शब्दों में 'क्रांतियां' शब्दों के पैरों से, बिना आवाज किये, गुप्त चली आती हैं। तूफान से पहले जमीन में 'सन्-सन्' शब्द होता है; भूचाल के पहले जमीन के नीचे से गड़गड़ाहट की ध्वनि होती है। पर प्रेम ? क्या वह सूचना देता है ? वसंत के आने से पहले किमलय, कोयल की उन्मादिनी कूक करती हुई दिखाई देते हैं। पर कर्म और प्रेम का मिलन, ज्ञान से ओझल होता है। या नये अनजाने क्षेत्रों को प्रेरित करता है।

पूर्व (भारत, जापान, चीन, एशिया) के देशों में जब पश्चिम ने प्रवेश किया, नाना विचारधाराओं, आविष्कारकों, मिशनरियों, साहसी समुन्दरी डाकुओं, साम्राज्यवादियों और जिज्ञासु प्राच्य-विदों के रूप में, कभी मूल वेश में, कभी वेश बदलकर, तो यही हुआ। यहां

के स्थिर जल में जैसे कंकरी पड़ी, आवर्त उठे। यहां के कमलवन में हाथी घुस आये—हा हन्त ! हन्त ! ललिनीमृगजमुज्जहार। कई 'गजेन्द्रमोक्ष' वाली गुहारें पश्चिम में गूंजीं, कई (गड़) विमानों में बैठे दौड़कर आये—अपने भक्तों को संकट से बचाने। पूर्व का सोया हुआ मकर उस गजेन्द्र के पैर पकड़कर नीचे कीचड़ में घसीट रहा था। पूर्व का पीला अजदहा फुफकार उठा। 'रिप वैन विकल' जाग गया। सहसा सहस्ररजनी की दीर्घतमस्निद्रा टूट गयी थी। पोढाला की सुनहली छत के नीचे लामा को लगा कि कुछ घोटाला हुआ है।

अत्यंत विस्मयकारी घटना यह थी कि एक कपिलवस्तु का राजकुमार जो अपनी पत्नी और नवजात शिशु को छोड़कर संवोधि पाने जंगल की ओर चला गया था, जिसके अपने देशवासियों ने उसे प्रायः भुला दिया था, उसी की ऐसी भव्य और उदात्त, विराट और स्तुपाकार प्रतिमाएं जापान भर में फैली हुई हैं। नारा में, क्योटो में एक हजार एक अवलोकितेश्वर के मंडपों में, कामाकुरा में (आकाश के नीचे गोमटेश्वर की तरह) और कहां-कहां—सब बुद्ध प्रतिमाएं देखने को एक पुरा जन्म चाहिये। अपने जन्म-स्थान से इतने योजन दूर उसी सिद्धार्थ गौतम का ऐसा महाकाय पूजन। बैंकाक में मैंने ५४ मीटर लंबे और १४ मीटर ऊंचे सोये हुए बुद्ध भगवान देखे। यह

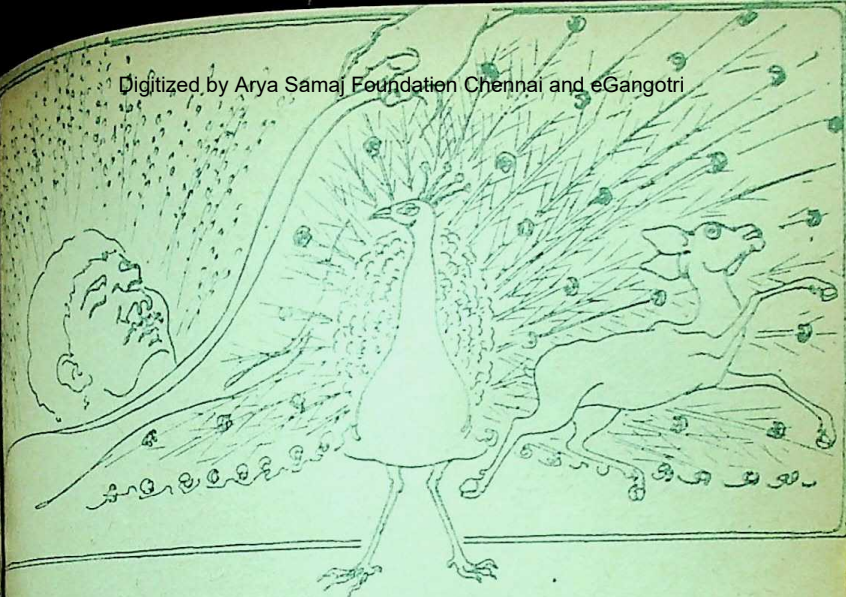
‘बावन गजा’ आराधना समस्त दक्षिण-पूर्वी एशिया में कैसी फैलती चली गयी। १९६३ में मैंने श्रीलंका में अनुराधापुर में तथागत की ऐसी ही विराट प्रतिमा के दर्शन किये थे। यह कैसे संभव हुआ ?

आज भी बावजूद सारे अमेरिकी खान-पान के और ‘टूरिस्टों’ को आकर्षित करने के लिए जुटाये गये पश्चिम के उपादानों के, जापान के बौद्ध मंदिरों के आसपास हिरणों के यूथ मनुष्यों से बेखौफ विचर रहे हैं, उन्हें खिलाये जाने वाले बिस्कुट चर रहे हैं, मुटा रहे हैं। धूप-दीप का अखंड आराधन इन प्रतिमाओं के आगे चल रहा है। जीवन की क्षणिकता को अधोरेखित करने वाले दार्शनिक का ऐसा अचल और स्थायी और क्षणातीत ध्यान !

पश्चिम के दार्शनिक, राइस डेविड्स हों या श्वाइज्जर, सब शिकायत करते हैं कि बुद्ध के दर्शन ने भारत को निकम्मा कर दिया। उसमें ‘वैल्डानमेश’ (जीवन और जगत के प्रति नकार-भावना) बहुत अधिक है। वह दुख और वेदना का दर्शन है। ‘मेरा गायन ही है क्रंदन’—कवि कह गये हैं। मञ्जे की बात यह है कि उन्हें अपनी ही महानगरियों में फैले सहस्र-सहस्र सूली और सलीब पर जखमी टंगे करुण ईसा की प्रतिमाएं नज़र नहीं आतीं। मरण की पूजा कौन करता है ? कर्मयोग सिखाने वाले हिंदू या जंगल जनारण्य में अट्ठभाग प्रचारित करने के लिए लौट आने वाले बोधिसत्व और ‘श्रमण से भी

नवनीत°

श्रावक को सीखना चाहिये,’ प्रति- करनेवाले भगवान महावीर ? या की स्तानों और मरण-स्मारकों पर प्रति लाखों लोगों की पवित्र भीड़ ने वाले, यरुशलम की ‘आंसुओं और की दीवार’ पर सिर धुनने वाले आदि सामी (सेमेटिक) धर्मानुयायों लारेंस फेल्लेचेट्टी की एक पूरी कविता जिसमें पूरे पेज पर ‘डेथ’ (मरण) अनेक बड़े से छोटे टाइपों में विष्णु नाम की तरह छपा है ! बुद्ध या महा ने आत्महत्या का मार्ग नहीं सिखा पश्चिम में तो अंधे गुरुप्रेम में सैकड़ों जि जहर पीकर खत्म हो जाते हैं। जापान भी ‘हाराकिरी’ (आत्मवर्षिदान) शहादत है। ‘इदं न मम, स्वाहा’ यहाँ भी है। पर वह मरण-प्रेम है। वहाँ पश्चिम में तो मरण और को पर्यायवाची माना गया। महादेव ने उसे ‘डेथ-विश’ कहा यानी मुक्तिबोध के शब्दों में जो होगा, वह तो शमा पर परवाने की कूद पड़ेगा। ईरौस में थैनेटौस निहि ‘कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदा न’—तेरा अधिकार केवल ‘कर्म’ करने है। तिलक महाराज ने उसी कर्मयोग रहस्य मंडाले जेल में लंबे कारावास देखा। अरविन्द सक्रिय रावण (एक्टिविस्ट) थे। अलीपुर ‘वासुदेव दर्शन’ हुए और वे आत्म (शेषांश पृष्ठ १५२ पर)



रंगल कुमार की हिन्दी कहानी

■ मंगत

रंगल कुमार चेहेरेवाला आदमी था । रंग
काफी लाल और आंखें बिल्ली की
जैसे रंग की-सी । मूँछें भूरी-भूरी छोटी-
छोटी ।

मुकराते तो शायद ही मैंने कभी देखा
होगा । पर एक अजीब बात थी उसमें ।
जो भी था, वह मन-ही-मन हंस रहा है ।
जैसे सन्देश होने लगता । कहीं वह मुझी
को नहीं हंस रहा है ।

मुद्द-भर शिकार की तलाश में थककर
रंगल अमराई में पड़े रहे । उस साल
जो भी पर धूँव वीर आया । पास ही था
जो बोझ-सा खेत । मटर के सफेद और

गुलाबी फूलों से भरा ।

वह कुछ मटर तोड़ लाया तो हम वहीं
सायों में पड़े-पड़े चबाते रहे । मार्च की
हलकी गरमी । कुछ-कुछ पकती गेहूँ की
फसल । वैसे पछुवा हवा ने काफी बीज मार
दिये थे ।

अचानक अमराई में दूर कटहली के
फूलों के पास, तीन मोर दीखे ।

उनकी ओर देखकर उसने मेरी ओर
आंखें सिकोड़ते हुए देखा । फिर एक पेड़
का सहारा लेकर बोला—'क्यों इनका भी
शिकार करने का इरादा है क्या ?'

मैंने कहा—'नहीं । क्यों ? ये तो राष्ट्रीय

हिन्दी डाइजस्ट

पक्षी हैं, भाई !'

'हूँ ! वैसे ही ।' अपनी बांहें पीछे सिर की ओर फैलाता हुआ वह बोला, 'मैंने सोचा, चूँकि अब तक तो तुम चिड़ियों ही मारते रहे हो ।'

बहुत सीधे ढंग से कहीं थीं । उसकी बात ने मुझे चौंका दिया । लगा वह मन-ही-मन हंस रहा है ।

कुछ देर में सामने गेहूँ की बालियों में हवा रेशमी दुपट्टे-सी लहरायी ।

'क्यों तुम्हें चिड़ियों मारना पसन्द नहीं ।'

'नहीं ।'

'चिड़ियों तुम्हारी फसल खराब नहीं करती ?'

'करती हैं, थोड़ी-बहुत । पर चिड़ियों से ही तो फसल की रौनक है, बाबूजी ।'

'ये मोर क्या खाते हैं ?'

'मटर की फलियाँ, पत्ते, कीड़े, सांप ।'

'सांप !'

'हां, हां ।'

मैं चुप । चारों तरफ चुप्पी । केवल सामने तीन मोर । मुझे धीरे-धीरे नींद आ गयी ।

एक दिन सवेरे ही सवेरे मैं अभी सो ही रहा था कि उसने आकर शोर मचाया—'साहब, साहब !' शोर से मेरी आंखें खुलीं तो पूछा—'क्या बात है, मंगत ?'

रात उत्तरी ही थी, सवेरा नहीं हुआ था । उसी धुंधलके में देखा, उसकी आंखों में उदसुकता है । अंग बहुत आतुर है । मुझे

नबनोत °

जगा देख अचानक वह छ सहमा । शायद कुछ लज्जा आयी । सिर झुका बोला, 'साहब, मोर नाच रहा है ।'

'मोर !' हैरानी से मैंने जानना चाहा । मोर के नाचने और मुझे जगाने में रीझता है । हड़बड़ाकर जगना मुझे पसन्द नहीं था ।

वह बड़ी मासूमियत से बोला, 'वढ़िया नाच रहा है, साहब । मैंने आप भी देखकर खुश होंगे ।'

आंखों से नींद उड़ गयी थी । कोहल वश मैंने पूछा—'तुम्हें नाचता मोर अच्छा लगता है ?'

'जी साहब ।' वह बोला, और चारों ओर घूमने लगा । वार, मेरी स्मृति में पहली बार, होंठ एक मुस्कराहट में खिंच गये । दिनों मोर नहीं नाचता, साहब, वह बोला—'आपको भी बहुत अच्छा लगेगा ।'

मैंने कहा—'चलो ।'

रात कुछ पानी पड़ा था । चारों ओर कुछ भीगी हुई थीं । आसमान पर कुछ बादल घिर आये थे ।

गांव में एक फूस की छत पर मोरों परों का नीले-नीले चांद बसाये नाच रहे थे । देर तक मंत्रमुग्ध-से हम खड़े रहे । मोर गर्व से सर उठाये नाचता उसे दुनिया की एक पैसे-भर भी नहीं थी ।

सुबह-सुबह धुली हरियाली बहुत हवा ठंड और मस्त । मेरे मन से आप ही मंगत के लिए 'धन्यवाद' निकल

छ सहा। किमंत दुआ किमंत प्रकृति के जीवन में
। तिर इ... गया है। के पिछले

एक बार उसने मुझे रात के पिछले
बार उठाकर डूबते तारे दिखाये थे। उसे
कभी नहीं भूल सकूंगा। कितनी ही बार
पूरी-पूरी रात जगा, और शिकारी
में कितनी ही बार रात के आसमान
दरबती संगत से वक्त का अन्दाजा
लाया। पर सितारों का वह सौन्दर्य मैं
कभी देख नहीं पाया। काले आकाश
में सितारों के अजनक किसी ने एक झीना सफेद
चुनचुन डाला हो। सितारे उसी में लजाकर
मरे जले और फिर वहीं उसी आंचल में
बल गये। . . .

हली बार, सदाव संगत की ओर मैंने कुछ नयी खिंच गये। मैंने देखा। मुझे लगा उसमें जरूर साहब, वह बद्धमत्त शक्ति है, जो प्रकृति के रूप-लगेगा। इस शक्ति में उसे अपनी जादू की उंगली दिखा देती है। या फिर वह प्रकृति का था। जहाँ तक मुझे पता चला कोई अंगरक्षक फरिश्ता है, जो आसमान पर मौजूद है। जो धूम-धूमकर उसकी निगरानी करता है।

वही... ! मंगत तो एक मामूली
जिसका लगान केवल दो रुपये
... है।...

‘नहीं, साहब ।’ मंगत बोला, ‘पानी

देने को रहट चल रहा है ।'

सामने एक ऊंचे-से टीले पर बसा गांव । एक कुत्ता झील के किनारे-किनारे एक छोटे से सुअर को खदेड़ता । कुछ औरतें खेतों में मटर बीनती । दिन चढ़े धूप में मौसम पर आलस-सा छाया था । अचानक तीन सुर्खाव बीच से उड़े । कुत्ता चौंककर रुक गया और छोटा सुअर भागता रहा ।

बहुत-सी औरतें रंग-विरंगे कपड़े पहने
नज़र आयीं । हाथों में पानी के लोटे लिये
वे सब कुछ दूर एक सघन पेड़ के पास
जमा थीं ।

‘यह सब क्या हो रहा है, मंगत ?’

‘मेला है, साहब ! एक बाबा ने समाधि ली थी वहां । हर सोमवार को उसी का मेला लगता है ।’

दो बच्चे खेत की मेड़ पर खेल रहे थे, एक बैठा और एक खड़ा। बैठे ने अचानक अपनी छोटी-छोटी बांहें फैलायीं और खड़े हुए लड़के के पाँव बांहों में भर सीने से चिपकाये। खड़ा लड़का उसके ऊपर गिरा तो दोनों धूल में पड़े रोने लगे।

‘किनका मेला है, हिन्दुओं का या मुसल-मानों का ?’

सवाल शायद मंगत की समझ में नहीं आया । कुछ क्षण चुप रहकर वह बोला— 'ये तो नहीं जानता, सरकार ! वहाँ तो दोनों ही आते हैं, हिन्दू भी, मुसलमान भी ।'

शहर में बात कुछ अलग थी। मैंने कुछ और जानने को पूछा, 'तो क्या यहाँ त्योहार

अलग-अलग नहीं होते ?'

'होते भी हैं साहब, नहीं भी ! अब यों तो सभी होली-दिवाली मना लेते हैं। मिठाई-विठाई ईद-वीद पे सभी में ली-दी जाती है। व्याह-शादी पे भी सभी शामिल होते हैं, साहब ।'

मंगत की और बहुत-सी बातों से मैंने जाना, धर्म के झगड़े देश के गांवों में नहीं हैं। उनका एक ही धर्म है। धरती मैया। उसे सभी पूजते हैं। लड़ाई-झगड़े का धर्म तो शहरवालों की ही समझ की चीज़ है। यहां तो 'सर्वसहा वसुमती' के धर्म, करम और ईमान चलते हैं।...

०००

मेरे डाक्टर दोस्त को एक आदमी की ज़रूरत थी। पैसे भी अच्छे दे रहा था। मैंने उसके लिए मंगत को चुना। सोचा मंगत का खेत भी छोटा-सा है। और फिर उसके घर और भी लोग हैं, उसे नौकरी पर जाने में शायद ही कोई दिक्कत हो।

पूछा—'मंगत, नौकरी करोगे ?'

'नहीं,' स्वर में दृढ़ता थी।

मुझे इसकी उम्मीद नहीं थी। उसकी 'नहीं' ने मेरा जोश ठंडा कर दिया। पर बात शुरू हो चुकी थी सो मैंने पूछा, 'क्यों ?'

'खेत छोड़कर हम नहीं जा सकते, साहब ।'

'खेत से तुम्हें मिलता ही क्या है ! नौकरी तो अच्छी ही रहेगी ।'

मंगत अपनी आदत के अनुसार हाथ

पीछे कर पेड़ की टेक लगाकर खेत-बोला—'साहब, रोटी मिल जाती है। खेत चाहे कुछ भी ना दे, हम खेत को छोड़ दें ? खेत कोई रोज़ी थोड़े है, खेत हमारा धरम है, साहब। हम जनम विगाड़ लें अपना उसे छोड़कर ।'

मैं चुप। मंगत की ओर देखा भी नहीं मैं जान गया, उसकी आंखों में क्या है। मंगत वह भारतीय किसान है, जिसे कल पुर गुलामी के दिनों में भी ज़मीन के नाते ने आज़ाद रखा था। सोचा, देश की ज़मीन की बातें शहरों में खूब बोलें हम। पर, देश और ज़मीन को महसूस मुझे आज मंगत ने कराया है। हिंदु किसानों का ही है।

०००

मंगत बीमार हो गया। पास के में खुले सरकारी अस्पताल से वह बुला और खांसी की दवा ले आया। पर पचास दिन बाद तक हालत नहीं संभली।

उस दिन मक्खे-सक्खे में घूमने निकला तो वह अपने खेत पर था। मुझे देख उसने राम-राम की, और मुस्कराया। चेहरे पर बुखार और आंखें लाल।

'क्यों, मंगत, तबीयत ठीक नहीं हुई ? कैसे होती, सरकार ! पचवां फसल के धोरे नहीं बगा ।'

वह मेरे पास आ खड़ा हुआ। मुझे कि उसकी सांस बहुत तपी है, थोड़ी आने में ही वह हांफ उठा था। फिर एक मैला-सा कपड़ा बांधे, कंधे पर

कर अचानक से वे एक नीची नाली में
उतरे और फिर छलांग मारकर उसी
अधकटे खेत में हो लिये। पलक मारते ही
वह अगला हिरन फिर आगे खेतों में धंस
गया। एक छोटा-सा हिरन बहुत बेखबर
चाल चल रहा था। हर चीज जैसे उसे
चौंका रही थी। वह कुछ रुकता फिर
चकित सा इधर-उधर छलांगें मारता।

मैंने उसी पर निशाना दाग दिया।
धांय ! और चार छोटे-छोटे पैर छटपटाने
लगे। हम उतरकर उसकी ओर दौड़े।
मैंने उसकी गर्दन पकड़ ली। वह आंखें खोलि
छटपटाता रहा।

मंगत खड़ा-खड़ा चुपचाप सब देख
रहा था। जब सब खत्म हो गया तो मैंने
उससे हिरन को ट्रैक्टर में रख देने का
कहा। उसकी बलिष्ठ भुजाओं ने उसे
आसानी से उठाकर ट्रैक्टर के पीछे बांध
दिया। सिर झुकाये वह चुपचाप तेजी से
काम करता रहा। इसके बाद जब उसने
सिर उठाया तो अचानक मैं चौंक पड़ा।
उसकी आंखों में पानी भरा था। मैं अवाक्
उसकी ओर कुछ क्षण देखता रह गया।
शायद वह मेरा भाव समझ गया और
कुछ झेंप-सा गया। वह इधर-उधर देखने
लगा। उससे और कुछ कह हम आगे
बढ़े। मैं रास्ते भर उसी के बारे में सोचता
रहा। झील पर मैंने दो-एक तीतर मारे।
पर मेरा मन नहीं लगा। न जाने कैसे मंगत
की पानी-भरी आंखें मेरे पर बैठ गयी थी।
हर क्षण वह भीतर ही धंसती मूहसूह होती

कर अचानक से वे एक नीची नाली में
उतरे और फिर छलांग मारकर उसी
अधकटे खेत में हो लिये। पलक मारते ही
वह अगला हिरन फिर आगे खेतों में धंस
गया। एक छोटा-सा हिरन बहुत बेखबर
चाल चल रहा था। हर चीज जैसे उसे
चौंका रही थी। वह कुछ रुकता फिर
चकित सा इधर-उधर छलांगें मारता।

मैंने उसी पर निशाना दाग दिया।
धांय ! और चार छोटे-छोटे पैर छटपटाने
लगे। हम उतरकर उसकी ओर दौड़े।
मैंने उसकी गर्दन पकड़ ली। वह आंखें खोलि
छटपटाता रहा।

मंगत खड़ा-खड़ा चुपचाप सब देख
रहा था। जब सब खत्म हो गया तो मैंने
उससे हिरन को ट्रैक्टर में रख देने का
कहा। उसकी बलिष्ठ भुजाओं ने उसे
आसानी से उठाकर ट्रैक्टर के पीछे बांध
दिया। सिर झुकाये वह चुपचाप तेजी से
काम करता रहा। इसके बाद जब उसने
सिर उठाया तो अचानक मैं चौंक पड़ा।
उसकी आंखों में पानी भरा था। मैं अवाक्
उसकी ओर कुछ क्षण देखता रह गया।
शायद वह मेरा भाव समझ गया और
कुछ झेंप-सा गया। वह इधर-उधर देखने
लगा। उससे और कुछ कह हम आगे
बढ़े। मैं रास्ते भर उसी के बारे में सोचता
रहा। झील पर मैंने दो-एक तीतर मारे।
पर मेरा मन नहीं लगा। न जाने कैसे मंगत
की पानी-भरी आंखें मेरे पर बैठ गयी थी।
हर क्षण वह भीतर ही धंसती मूहसूह होती

कर अचानक से वे एक नीची नाली में
उतरे और फिर छलांग मारकर उसी
अधकटे खेत में हो लिये। पलक मारते ही
वह अगला हिरन फिर आगे खेतों में धंस
गया। एक छोटा-सा हिरन बहुत बेखबर
चाल चल रहा था। हर चीज जैसे उसे
चौंका रही थी। वह कुछ रुकता फिर
चकित सा इधर-उधर छलांगें मारता।

मैंने उसी पर निशाना दाग दिया।
धांय ! और चार छोटे-छोटे पैर छटपटाने
लगे। हम उतरकर उसकी ओर दौड़े।
मैंने उसकी गर्दन पकड़ ली। वह आंखें खोलि
छटपटाता रहा।

रहीं ।

जब भी मैंने मंगत से तीतर उठवाये, हाथों में डैने बंद किये तीतर चुपचाप आंखें टिमटिमाते रहते, और उनकी चोंच से खून की बूंदें गिरती रहतीं । मैं उत्सुकता से मंगत की आंखों में देखता । वह भी उड़ती-सी नज़र मुझ पर डालता । शायद हम दोनों एक-दूसरे की नज़रों का अर्थ समझ रहे थे । लेकिन आंसू उसकी आंखों में फिर नहीं आये ।

रात को सोते वक्त भी मुझे फिर मंगत का खयाल आ गया । ओह ! मंगत का दिल इतना कोमल है । बुआ से दिन में पता चला था कि पिछली सर्दियों में गांव पर जब डाका पड़ा तो मंगत अकेला हवेली की छत से गोलियां चलाता रहा था । उसकी बायीं जांघ में गोलियां भी लगी थीं । मैं सोचता रहा, फिर मुझे हिरन के उस बच्चे का खयाल आया । अचानक एक विचित्र-सी ग्लानि से मैं बेचैन हो उठा । शिकार को आज तक उस नज़र से मैंने कभी नहीं देखा था । ज़मींदारी खत्म हो जाने के बाद यही एक निशानी बची थी शौर्य और सम्पदा की । अब मुझे लग रहा था कि यह सब नीचता है । कालेज का एक साथी भी जोर-शोर से शिकार को कायरता की निशानी बताया करता था । मनुष्य ने सभ्यता सिर्फ पढ़ी है, वह कहता, वह अभी सभ्य नहीं हुआ है । उसने सभ्य होना मंजूर किया, चूंकि जीवन-खतरे में था । पुर मनु से वह अभी बर्बर और कायर

है । अक्सर मैं उसकी बातों पर हंस देता था । आज मंगल की आंखों ने भी कुछ बात कही । और मुझे लगा कि यह सही है । मैं कायर हूँ ।

एक अजीब-सी गर्मी मेरे भीतर उठी । मैंने लिहाफ उतार फेंका, पर बेचैनी नहीं ही गयी । किवाड़ खोले । बाहर बंजर झांका । लगा दूर जंगल में शायद हिरनी भी उसी तरह जाग रही है ।

मुझे और नींद नहीं आयी । मेरे सिर में बहुत से आंसू घुटते रहे । रो लेना चाहता था पर साथ ही साथ एक आश्चर्य भी हुआ । समझ नहीं पा रहा कि आज मुझे क्या हुआ है !

फिर कभी मैंने शिकार नहीं देखा ।

दस-बारह दिन के लिए मैं शहर चला गया था । जब लौटकर आया तो पता चला मंगत बीमार है, और पास के ही सरकारी अस्पताल में भर्ती हो गया है । अस्पताल में डाक्टर ने बताया कि वह ठीक नहीं समझ नहीं पाया था कि मंगत को बीमार क्या है । रोज शाम को उसे तेज बुकाता आता और उसका शरीर लाल हो जाता । गर्दन और कमर ऐंठने लगती ।

तीन-चार दिन मैं रोज मंगत से मिलता गया । उन दिनों वह काफी चुप रहता था । मेरा भी मन शिकार से हट चुका था । रोज मैं बुआ से विदा ले घर लौटने की सोचता, पर एक-एक कर दिन कटते चले जाते ।

‘अब शिकार पर नहीं गये क्या ?’ शाम मंगत एक लम्बी चुप्पी के बाद बोला

उसने करवट मेरी ही ओर ले रखी थी और उसकी आंखें एक असाधारण तेजी से मेरी ओर घूर रही थीं। आंखें मेरी आप ही आप कुछ बचने को हुई, बोला नहीं ! एक हल्की आह के साथ उसने करवट छोड़ कर ली।

'तुम्हारा मन यहां ऊब गया होगा, नंदन !'

उसने मेरी ओर कुछ ऐसी आंखों से देखा, जैसे मैंने उसकी चोरी पकड़ ली हो। वह कुछ बोलने को हुआ, पर फिर चुप हो गया।

तीकते वक्त दिन छुप गया। दिन भर की गर्मी अभी मौसम से नहीं हटी थी। गोदी बेलगाड़ियों ने बहुत धूल उड़ा दी थी। मेरा मन धूल, गर्मी और तरह-तरह के अस्पष्ट विचारों से भारी हो उठा।

सबरे ही मुझे तौकर ने खबर दी, 'साहब, रात मर गया।'।

मंगत मर गया, मुझे यकीन नहीं हुआ। छिनी शाम तक उसमें मरने वाली कोई चीज नजर नहीं आयी थी।

'कौन गया था अस्पताल ?'

'अस्पताल नहीं, साहब। वह रात आप ही वहां से आ गया।'।

'क्या ?'

'रात दो-ढाई बजे आया साहब, वह, और सीधे अपने खेत पर चला गया। और जब किसान लोग भी अपने-अपने खेतों में

थे। वहां जाकर उसने नत्थे से लेकर एक चिलम पी। नत्थे ने पूछा कि भाई अस्पताल से क्यों आ गये ? तो बोला, तबीयत नहीं लगी। फिर चिलम पीकर वहीं चादर बिछाई और खेत की मेंड़ पर लेट गया। नत्थे ने कहा कि चारपाई पर हो ले, वह तो पास ही धरी है। तो बोला, नहीं। फिर बोला नत्थे, फसल तो बहुत बढ़िया हुई है। नत्थे ने कहा, हां भाई सब उसकी कृपा है। वो बोला, जा ज़रा एक अच्छी-सी वाली तो तोड़ ला। नत्था बराबर म से ही वाली तोड़ के लाया तो मंगल मरा हुआ पड़ा था।

मैं मंगत को देखने खेत पर गया। चारों ओर से लोग उसे घेरे खड़े थे। तरह-तरह से सब लोग अपने-अपने बयान दे रहे थे।

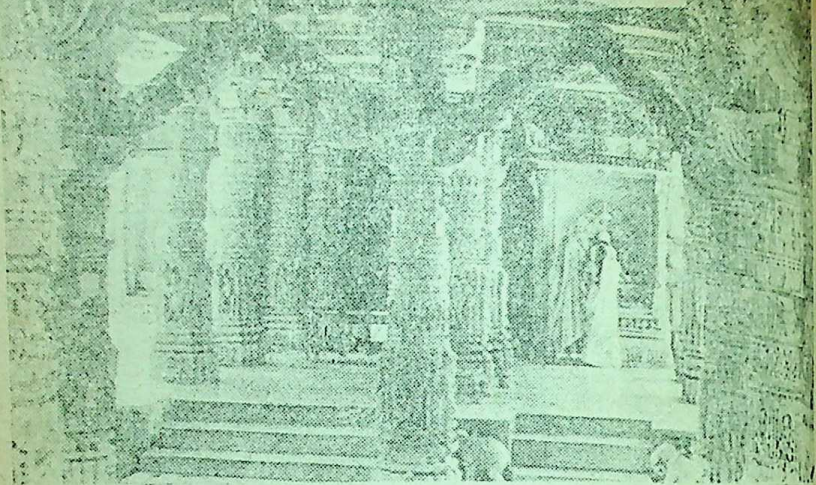
'मिट्टी यहीं होनी थी भाई', एक बोला। कोई और बोला, 'किसान था भाई, मिट्टी तो पुकारती ही'।

सबके बीच से रास्ता बनाता हुआ मैं आगे बढ़ा। एक सफ़ेद कपड़े से ढंका मंगत का शव पड़ा था। न जाने किस कौतूहल-वश मैंने उसके मुंह पर से ज़रा कपड़ा हटाया। वही चुप चेहरा सामने था। उसकी आंखें बंद थीं।

अचानक मुझे लगा मंगत मन-ही-मन हंस रहा था—वही छिपी हुई हंसी, वही हंसी उसके चुप चेहरे पर थी।

□ ० अगर सब दरिद्र होते तो धन का भय कैसे मालूम होता, अगर सब धनी होते तो धर्म का अर्थ कैसे बताया जाता ?

—राबर्ट बेसन



राजस्थान का लोकतीर्थ देलवाड़ा

सावित्री परमार का एक साक्षात्कारी लेख

सावित्री परमार की अन्तश्चेतना में कविता का कोई अजस्र प्रवाही सोता है। उनके लेखन में हर अगला शब्द, हर अगला जुमला—किसी नव्य से नव्यतर कविता की आसमानी सीढ़ियां खोलता-सा उतरता है। कोई भी विषय हो, शिल्प हो कि स्थापत्य हो, कि राजस्थान की बन्जारों की होली हो, सावित्री के सौंदर्य-विज्ञान की जादुई खिड़की पर वह एक अपूर्व नूतन आविर्भाव की तरह प्राकट्यमान होता है। एक से एक ताज्जातरीन बिम्बों का सिलसिला।

ऐसी सदा-कुंवारी कविता, और अछूती ताजगी कम देखने में आती है।

राजस्थान शौर्य, देशभक्ति और धर्म-निष्ठा का पावन-संगम.... एक ऐसा नाम, जिसमें अनेकों गौरवपूर्ण युग मोतियों की तरह गुम्फित हैं—यहां की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को न जाने कितनी आधियों के,

केसरिया बलिदानों के और यज्ञ-सामंती की सुगंधों के सेतुबंध पार करने पड़े हैं... जाने कितने जौहर यहां की हवा में नीले कमल से लहरा रहे हैं... कर्नल टांडन यहां की यात्रा पर निकला, तब बत

इस लेख के चित्रों के छायाकार श्री सूरज एन. वर्मा

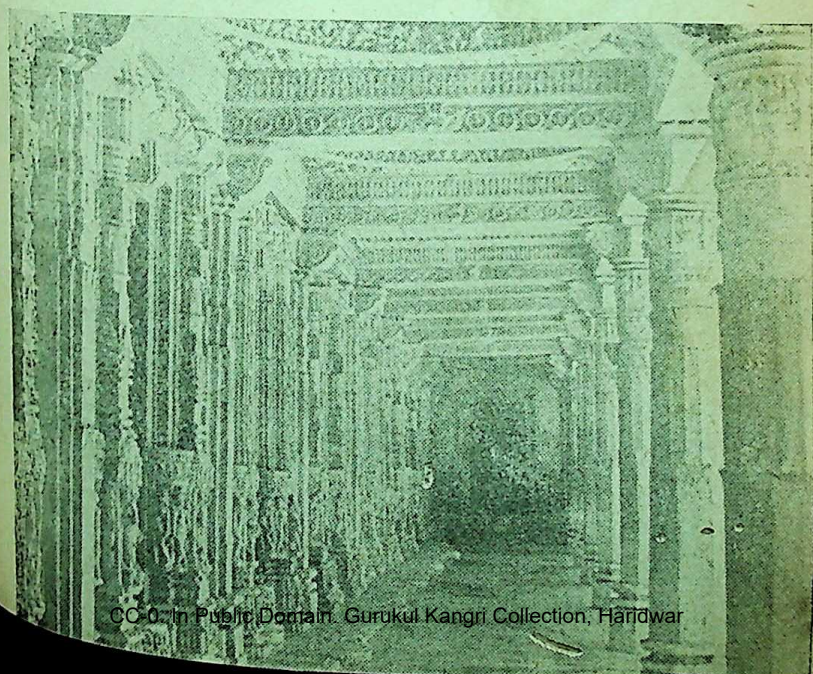
जैसे भी आश्चर्य से अभिभूत होकर कहना
 पड़ा कि—'राजस्थान की तुलना में यूनान
 के स्मार्टी का शौर्य भी एकदम हलका रह
 जाता है...'

दूर-दूर तक ठाठें मारता हुआ रेतीला
 मगर इन्हीं रेशमी बालुई पतों में
 अनेक शिलालेख, दुर्ग-महल, गुम्बद-
 मीनारें, समाधि-स्थल, प्रशस्ति स्तंभ, मोहर-
 लिपि, लोकगीत-नृत्य, कथा-कहानियां
 और मठ-मंदिर बिखरे हुए हैं नदी,
 झरनों और दुर्गम पहाड़ी घाटियों
 के घिरे रमणीक स्थानों पर सिद्धहस्त
 कलाियों द्वारा निर्मित देवी-देवताओं की
 अनेक मूर्तियों से आवेष्टित अनेकों देवालय
 मिलते हैं—जिनके माध्यम से राजस्थान
 की स्थापत्यकला, मूर्तिकला और चित्र-
 कला का संपूर्ण परिचय मिलता है—इन्हीं
 हैं देलवाड़ा के भव्य मंदिर—निर्माण-

कला की सर्वोत्तम कृति के परिचायक ।

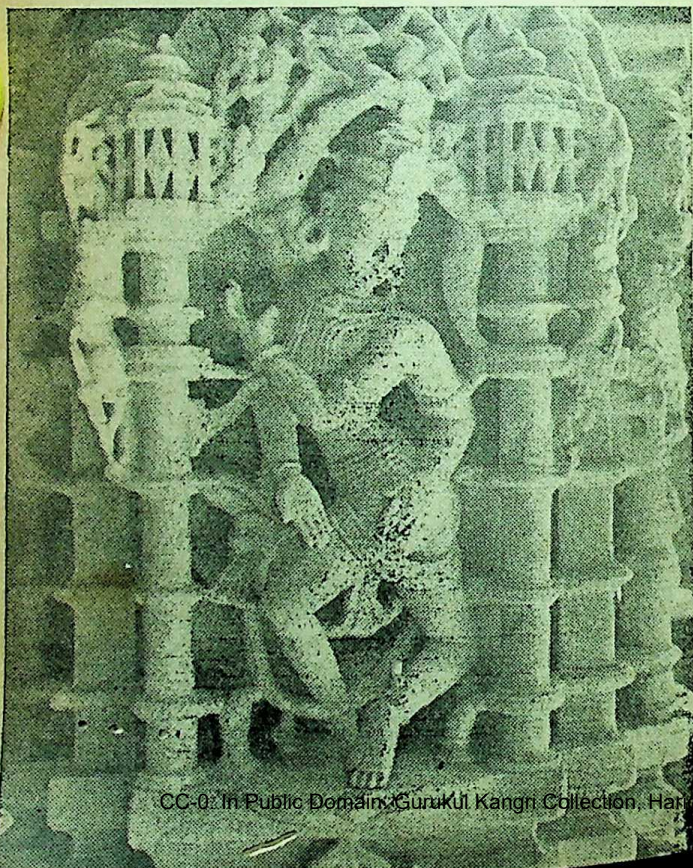
देलवाड़ा.... मरुभूमिका प्रसिद्ध लोक-
 तीर्थ पवित्र वातावरण का संकेतात्मक
 स्थल.... अर्बुद पर्वत (आबू) पर स्थित...
 एक ऐसा पर्वत, जहां वेद, पुराण, उप-
 निषद, महाभारत और जैन धर्म के पुनीत
 हस्ताक्षर होते रहे हैं । कहा जाता है कि
 पाताल तक जाने के लिए पहले यहां से
 एक सुरंग थी, जहां महर्षि वशिष्ठ का
 जगत् प्रसिद्ध आश्रम है अगर कोई
 मनुष्य हिमालय के पुत्र अर्बुदाचल (आबू)
 में जाकर एक रात भी यहां व्यतीत कर
 लेता है, तो उसे हजार यज्ञ-दान करने से
 भी अधिक पुण्य-लाभ होता है ।

मैं देलवाड़ा के मंदिरों के कलात्मक
 सौन्दर्य को देखने के लिए आबू की ओर
 चल पड़ी हूं—साथ हैं प्रसिद्ध छायाकार
 श्री सूरज एन. शर्मा—भाईजी । गाड़ी जैसे



ही आबू की सीमा को छूने लगी है कि एक
अबूझा स्वप्न-सा झरने लगा है—चारों
ओर हरी-भरी घाटियों का नैसर्गिक
सौंदर्य—ऊंची-नीची चढ़ाई . . . चिक्कन
काई मण्डित फिसलती चट्टानें . . . कहीं
साफ-झक्क ढलानें, फूलों के छींटदार
घाघरों पर लहरिये ओढ़े गर्विता पहा-
ड़ियां, तालियां बजाते हंसते-खेलते किशोर
पत्तों के समूह . . . कुहनी टहोकती तरुण
शाखाएं . . . तीनों कालों में बहती गायत्री
मंत्र-सी सुगंधित वायु, सामवेदी संगीत
गुनगुनाते बहुरंगी पांखियों के समवेत

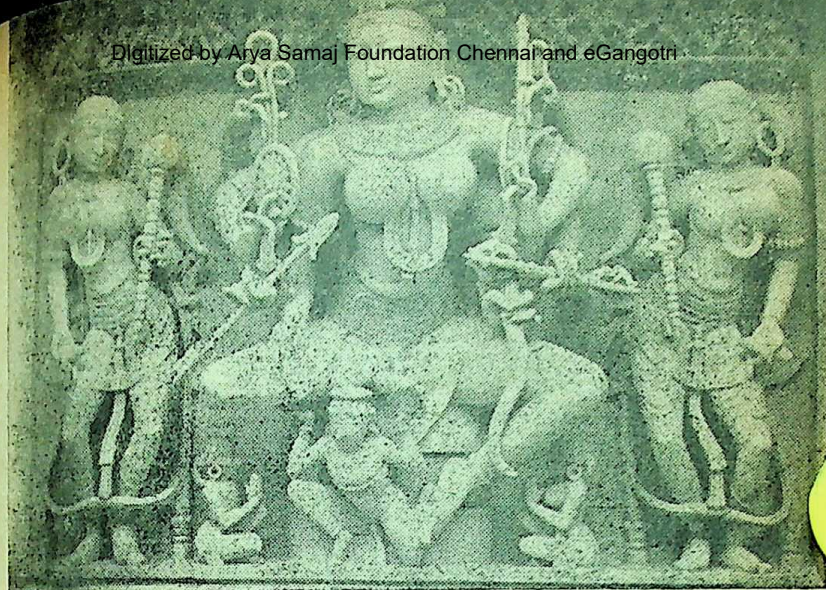
भित्ति-शिल्प : देलवाड़ा मंदिर



स्वर . . . अजीब पौराणिक वातावरण—
कहां रुकें ! किधर चलें ! क्या होंगे
भ्रमित-चकित दृष्टि के आर-पार त
विधाता की तुलिका का विलक्षण—स
त्कार—अनोखे चित्रों का अपूर्व कैनवास . .
धरती की अटारी पर स्वर्ग का सोपान . .
और फिर मिलती है आबू के हृदय में क
रसलीन नक्की झील—हरी वन्दनवाओं के
बीच बहुमूल्य नीलमणि . . . श्वेत होंगे
हिलोरे मारती हुई नौकाएं—मखमली नील
सलवटों में दमकते धूप के बिलोरी
कुमकुमे . . . फूल-पादपों के झूलते वि-

प्रतिविंब।

सामने है यहां का
चमत्कारी शिखर . . . इतिहास
जिसकी ऊंचाई पर . . . मेरी इस
है अचलगढ़ दुर्ग . . . बोईसा
सूचना मिलती है कि . . . शा है
आबू समुद्र तल से . . . जान . .
लगभग ग्यारह-बारह . . . क्या का म
सौ मीटर की ऊंचाई . . . न महार
पर है, जिसकी सबसे . . . तोय के म
बड़ी चोटी का नाम . . . लोक र
गुरुशिखर है . . . नदिमा उल
पहले यहां समुद्र का . . . हों का स
ईसा से करीब पच्चीस . . . तोने रे म
हजार वर्ष पूर्व पूर्व . . . 'बाछो
रूप में उभरा महान . . . नोद-काव
वशिष्ठ का स्थान . . . नूबरित
होने के कारण प्र . . . टूटें-टू
(बुद्धि) का वीर . . . शरद्व
१९८१



... इतिहास प्रसिद्ध यात्री मेगस्थनीज
ने भी इस गुरु शिखर का वर्णन किया
है... इसी से तीन सौ वर्ष पूर्व का माना
जाता है... यहीं है यज्ञेश्वर का पवित्र
स्थान... तीन मठ-मढ़ियां, इन्हें कुंवारी
स्थान का मंदिर भी कहा जाता है... भग-
वान् महावीर, भगवान् दत्तात्रेय, कृष्ण-
शिव के मंदिर और रामगुफा भी हैं...
लोक साहित्य में आवू तीर्थ की बड़ी
गिनती उल्लेखित की है... गीतों में भी
यहाँ का सौन्दर्य उकेरा गया है... 'मोर
तले रे मलजी आवूरा पहाड़ों में...' और
'बाछोमिंदर चिणायो आवू ठांवरें...' और
'शिव-काव्य के दोहों में भी यहाँ की छवि
वर्णित हुई है...
केतकी, झिरणे-झिरणें जाय,
खरद की छवि देखतां, और न

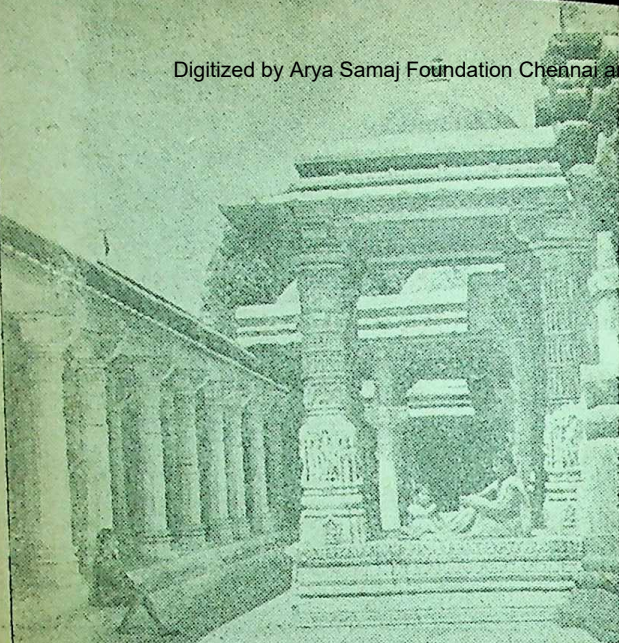
सालेदाय—'

अथवा—

'मोती समो न ऊजलो,
चंनण समो न काठ,
आबू समो न देवता,
गीता समो न पाठ . . '

पाँव सांसों में उत्सुकता जगाये बढ़ते
जा रहे हैं..... बहुत ऊँचे चबूतरे पर स्थित
संगमरमरी देलवाड़ा का आह्वान अपनी
ओर खींचे लिये जा रहा है—आखिर हम
उन मन्दिरों के सामने आकर रुक गये
हैं... देवताओं का बाड़ा..... देलवाड़ा...
देवालयों का समूह..... दृष्टि अपलक रह
गयी है—'नयन जुड़े सो जुड़े ही' रहे...'
स्थितप्रज्ञ जैसी स्थिति... पाषाणों पर
फैला अद्भुत शिल्प... हर ओर विश्व
प्रसिद्ध जैन मंदिरों का समूह—भुवनेश्वर

हिंदी डाइजेस्ट



मुख्य देव-प्रासाद का एक परिक्रमा-मंदिर

प्रणाली पर आधारित अनुपम कला-
कृतियां.... वेजोड़ कला !

पता लगा है कि देवड़ा शासकों की
सिरोही कभी राजधानी थी, इसी की
भौगोलिक सीमा में अपने कलात्मक वैभव
के साथ देलवाड़ा विद्यमान है—पांच जैन
मंदिर विमल शाह गुजरात के राजा
भीमदेव के सलाहकार मंत्री तथा सेनापति
थे । किसी युग में भारत का स्वर्ण
किरीट और जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र
समझा जाने वाला स्थान अणहिलवाड़ा
के वे बहुत धनी व्यापारी थे... अनायास
उनके मन में एक इच्छा जागी कि परा-
काष्ठा की स्थापत्य कला से सुसज्जित जैन

नवनीत-

मंदिरों का निर्माण उनके
द्वारा होना चाहिये—उनके
करते हुए यह रामजी
पहाड़ी स्थल उन्होंने इस
धर्म-कर्म के लिए चुना...
लक्ष्मी की पहले ही उन पर
अनुकंपा थी.... कहे हैं
कि इस सुरम्य स्थान को
खरीदने के लिए उन्होंने
हीरे, माणिक, मुक्ता, मोती
से जमीन पाट दी थी.... जो
अपार धनराशि देकर उनके
चच कलानिष्ठ शिल्पियों
को आमंत्रित किया था—
तीन मंदिरों का ही निर्माण

हुआ था कि उनकी मृत्यु हो गयी... इन्होंने
लगभग सौ वर्ष के पश्चात् वास्तुशास्त्र
और तेजपात्र ने शेष दो मंदिरों का
निर्माण कराया मैं देख रही हूँ कि
मंदिर के ठीक सामने अश्वारूढ़ विमल
शाह की भव्यमूर्ति है... वास्तुशास्त्र और
तेजपात्र के बनवाये मंदिर भी कला की
दृष्टि से बहुत वैभवपूर्ण हैं।

भारत के कोने-कोने से यात्री आते हैं—
देखकर इन्हें सराहते हैं जीवन के
धन्य मानते हैं.... इस समय भी दर्शनार्थियों
की अपार भीड़ है—पोरवाल जति के
श्रेष्ठ धनिक महाजनों का यशोगान है—
मंदिरों के माध्यम से छाया पड़ा है—
निर्माणकला की सर्वश्रेष्ठ छाप बिचे है—
मेरे चारों ओर कला की सुंदरता संतोष

मूलसी संभूत हो रही है।
 देलवाड़ा के प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर भगवान
 अदिनाथ का देवालय बाहर से देखने पर
 सुन्दर साधारण लगता है, लेकिन ज्यों ही
 के भीतर सभा-मंडप में पहुंचती हूं कि
 वातावरण की समस्त हलचल भूलकर
 चतुरों में बारीक खुदाई की अलंकृत कला
 को देखकर चकाचौंध हो उठती हूं . . .
 दीनों की अष्टकोण कटाई . . . फूलदार
 कुंवलों से युक्त नृत्यांगनाओं के बंकिम
 गीत से मुस्कराती गोल गुंबदी छत . . .
 तिरस्कार पर अति सूक्ष्म जालियों की
 लकीरें छटा . . . प्रत्येक मूर्ति के अलग-अलग
 व्यक्तित्व हाव-भाव . . . मुखकारी कटाक्ष-
 लीलाएं . . . कला-सौष्ठव से परिपूर्ण
 सब . . . यह मंडप और गर्भगृह लगभग
 सत्तर फुट ऊंचे कटावदार चबूतरों
 से घेरे गये हैं . . . बाठ खूबसूरत स्तंभों
 से ढकी हुई ऐसी सुन्दर छत, मानो
 जिने ने जड़ाऊ स्वर्ण आभू-
 श्यों से इसका शृंगार किया
 हो! अर्धखिले कमलों के
 बीच गुंथी हुई मृणालों की
 लकीरों से आवृत विशाल
 छत यहीं पर है . . . आदि-
 नाथ भगवान की मोती
 ज्योति मनुहारी तांबे की
 लकीरों में है दुर्लभ
 लकीरों जैसे समकदार पत्थरों
 का हार . . . हीरक ज्योति-सी
 लकीरें बिखरे . . . कितने

स्तंभ . . . ! सब कुछ अद्भुत, अनोखा,
 अवर्णनीय और कल्पनातीत है . . . लम्बी-
 लम्बी पत्रांकित सुन्दर लताओं से आच्छा-
 दित दीर्घाएं—बहुल पच्चीकारी युक्त
 गैलरी . . . भारी-भारी लटकते तोरण . . .
 भारपट्ट।

सामने है विशाल आंगन—बताया गया
 है कि यह एक सौ चालीस फुट लम्बा
 और काफी चौड़ा है . . . चौड़ाई का सही
 अनुमान नहीं हो सका है—यहां भी मंडप
 को घेरे हुए बावन खम्भे अपनी श्रेष्ठकला
 की छवजा आकाश तक फहराये उल्लस
 मस्तक किये खड़े हैं . . . सभी पर जैन तीर्थ-
 करों की आभायुक्त अनुपम भव्य मूर्तियां
 उत्कीर्ण हैं . . .

अम्बादेवी का प्राचीन चबूतरा . . . मठ-
 मंदिर और कई सभा-मवन हैं . . . बहुत
 महीन खुदाई से सजी हुई गैलरी में है

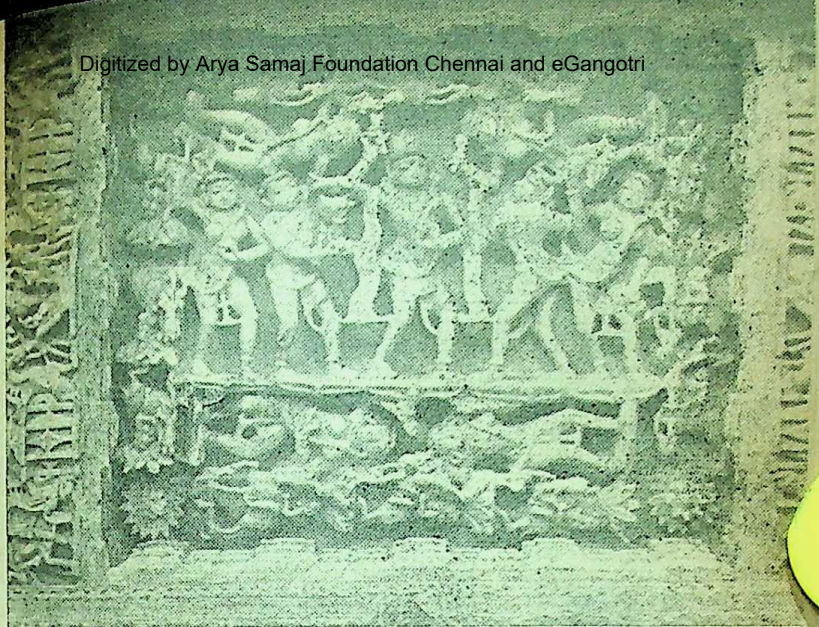
देलवाड़ा मंदिर की एक छत



हस्तिशाला..... छोटे-बड़े संगमरमरी हस्ति-
शिल्पों की अलग ही छटा बनाने वाले
चित्रों के प्रति मन में अनेकों प्रशंसाएं
उमड़ पड़ती हैं..... तभी दृष्टि दो विशाल
ताकों की ओर उठती है, जहां देवराणी
और जेठाणी के पच्चीकारी युक्त गवाक्ष
हैं ... हस्तिखाने का द्वार इतना ऊंचा है कि
मय हार्दे और महावत के एक पूरा कदावर
हाथी इसमें प्रवेश कर सकता है ... किंव-
दंती है कि यहां वास्तुपाल अपनी दो प्राण-
प्रिय पत्नियों ... ललिता देवी और रूता
देवी के साथ आमोद विचरण किया करता
था और कभी-कभी तेजपाल की प्रिया
अनुपमाश्री भी यहां आती थी ... पांव
वोराये से घूम रहे हैं ... भवन निर्माण शैली
का छोर-अछोर आश्चर्य फैला पड़ा है—
जरा-सा मुड़ते ही एक और सुन्दर कृति
नजर आती है—मां विद्यादेवी की मूर्ति ...
चार भुजाओं वाली—सामने तीस-वत्तीस
अंतराल हैं, आधी मानवाकृति और
आधी पशु-आकृति की विचित्र मूर्तियां
प्रत्येक में उकेरी गयी हैं ... लेकिन कला-
त्मक रेखांकन में परिपूर्ण ।

जानकारी लेती हूं कि मूर्तिकला का
ऐसा नयनाभिराम संसार प्रस्तुत करने
वाले मुख्य शिल्पकार का नाम शोभदेव
था...बताया गया है कि खुदाई और घिसाई
करने वाले अनेकों कारीगरों में जबर्दस्त
होड़ लगी रहती थी ... क्योंकि जितनी
अधिक संगमरमर की रेत घिसाई के बाद
निकलती थी, उसी बारीक रेत को तोलकर

पारिश्रमिक दिया जाता था ... चोरी-
सोने की मुद्राएं ... तभी तो चोरी-
इतनी बारीक ... महीन जालियों के बीच
फूल ... अर्धविकसित कमल ... गुच्छ
केतकी ... अंगूरी लताएं ... तोरण को
झालरें ... मूर्तियों के भाव-विलास नज़रों
से जड़े हुए हैं ... झालरें और कंगूरों के
ऐसी पारदर्शी झलक ... मानो लिपि
अवरक के पतले कागज की वेलें-झालरों
हर तरफ तक्षण कला की खुदाई का शि-
क्षण काम...धर्मनिष्ठ भावना का हृदयों
में स्पर्श ... बौद्धिक सभ्यता के जीते-जाते
मौन होते हुए भी बोलते से स्यापलस
के अपरूप प्रतीक ... प्रस्तर के बने
पर छेनी की इतनी प्यारी मीनारों
पच्चीकारी इतनी सुन्दर हवाई से न
सज्जा ! फिर ध्यान दिया जाये, तो य
है कि मात्र मूर्तियों का अंकन-रंग
क्या ! वरन् राजस्थानी, यही क्यों, बने
भारतीय कला, शिल्प निर्माण, गौरव
इतिहास और सामाजिक मूल्यों का य
सर्वांगीण ज्ञान हो उठता है...प्रतीक
है, जैसे सिरोंही शासक के अन्तर्गत
पहाड़ी भू-भाग पर बने ये देवालय
और संस्कृति के सुदृढ़ रक्षा-नक्क
काम देते रहे होंगे ! जन-जीवन को य
शक्ति, चिंतन और शांति की प्रेरणा
से मिलती होगी ? आकाशीय वि
तक चुम्बित यहां की स्थापत्य कला
प्राचीनता का प्रमाण एक यह भी जग
यूनानी प्राचीन 'पान-शैली' दावा



वेहद सजी ... अर्धगोलाकार गुम्बदों से घिरा स्थान ... एक ही केन्द्र से जुड़े हुए घनोत्कीर्ण, लेकिन विभाजक रेखाओं में बंटे हुए ... बीच-बीच में मानव और प्रकृति के विभिन्न उत्सव-समारोहों का आलंकरण ... राग-रागनियां ... वेदियां, कामदार चंदोवे ... संगमरमर पर ऐसा पैना-तीखा काम, मानो किसी ने चांदी के महापात्र में चांदनी निचोड़ दी हो ? दस्त्रों, आभूषणों और देह भंगिमाओं की बड़ी मोहक मुरकियां और चुन्नटें ... मूर्तियों के अधरों पर ऐसी लावण्यमयी मुस्कान ! कर्ण-चुम्बित नेत्रों की छांव में आध्यात्मिक शांति का ऐसा विराट-दर्शन, उंगलियों के भाव-प्रदर्शन में आकाश का उजास भला और कहां देखने को मिलेगा ?

कलापूर्ण मुखाकृति वाले धूपदान...

हिंदी डाइजेस्ट

घृत-दीप के झाड़ ... ढोल, दमामे, नगाड़े,
शंख-तुरही ... बांसुरी-शहनाई ... क्या
कुछ रूपायित नहीं है पाषाण के इस महा-
काव्य में ?

सुबह से कब शाम हो गयी है, पता ही
नहीं चला .. पक्षियों के गायन ने वनश्री
की मुंडेर पर सांध्य-दीप आलोकित कर
दिये हैं ... हरेभरे उपवन, झाड़ियां और
उपत्यकाएं श्यामवर्णी आभा में रहस्यवादी-
सी हो उठी हैं ... पहाड़ों ने अपनी पग-
ड़ियों में नक्षत्रों की कलगियां टांक ली
हैं ... घाटियों की हवेलियों में चांदनी
की झांझरें बज उठी हैं ... सांवली घाटियों
के धूंधटों पर जरी-किंगड़ी के जुगनू झिल-
मिला रहे हैं ।

लौटने से पहले मैं उस शिल्प-सौन्दर्य
की स्वप्न-नगरी को एक बार और दृष्टि
की मंजूषा में समेट लेने का प्रयास करती
हुई सोच रही हूं कि :

‘मत कहो ये फूल बस उत्कीर्ण हैं
पाषाणों पर
देवताओं ने लिखे हैं मंत्र शायद
शालपत्रों पर ...’

रात्रि धीरे-धीरे अवतरित हो रही है ...
संख्या-आरती में लीन आबू पर्वत को ...
विराट सत्ता के प्रति अनुगृहीत पूरे वाता-
वरण को ... इन्द्रधनुषी झील को ... आकाश-
गंगा में प्रस्फुटित चन्द्र-कमल को और
समस्त देवगणों को शत्-शत् प्रणाम करती
हुई स्मृतियों का अटूट सिलसिला लिये

तेरी याद : चांद-सी...

तेरी याद : चांद-सी ठंडी निश्चय को है
जब मिट्टी रंगे वे नक्श देखता हूं, या नि
अनंत और सितारों को
उनकी चमचमाती गर्दियों में—
तेरा अहसास चांदनी-सा उगकर
मेरे मुल्क के खेतों में
फैलता है
पनपता है, पसरता है, और कटाई के त
महलों के तहखानों में कैद हो,
तेरी बालियां
महलों में खो जाती हैं ।

खलिहान तड़फते हैं,
मुल्क का पेट सुबकता है,
खेत का बेटा रोता है,
अनाज की कोख पर
ठंडी चांदनी पसर जाती है;
तेरी याद
ठंड में ठिठुरकर मर जाती है !

—द्वारा मुखबोर, १९ बी, सत एंड ले
बम्बई-४०००१

हुए पहचाने हुए रास्तों से लौट चली हूं
—श्रीमहाबोर उ. मा. महाविद्यालय
सी. स्कीम, जयपुर (राजस्थान)

लीला बांदिबडेकर का एक परिचायक लेख

१. दि. माडगूळकर की गीतरामायण

राष्ट्र के प्रतिभाशाली कवि और गीतकार ग. दि. माडगूळकर की 'गीतरामायण' सत्तीस वर्ष पूरे हो चुके हैं। पच्चीस वर्ष पूर्व ये गीत पूना आकाशवाणी केन्द्र से हर प्रसारित किये गये थे। इन गीतों को स्वरबद्ध किया था प्रख्यात गायक तथा संगीतज्ञ गोर फडके ने। ये गीत इतने लोकप्रिय हुए कि भारत की विभिन्न भाषाओं में अनूदित हो गए और गाये गये। हाल ही में पूना में 'गीतरामायण' का रजतजयंती-महोत्सव मनाया गया। इसका वैशिष्ट्य यह था कि भारत की विभिन्न भाषाओं में गानेवाले गायकों को बुलाया गया था। दस दिनों तक यह समारोह चला और उसमें हिन्दी, बंगला, गुजराती, कन्नड, मलयालम, तमिळ, अंग्रेजी आदि भाषाओं में 'गीतरामायण' को गाया गया। यहां प्रस्तुत है उसी 'गीतरामायण' का छोटा-सा परिचय।

कविमहर्षि स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि 'रामायण सही अर्थों में भारत की मौलिक भाव-भावना की अभिव्यक्ति है।' मराठी संतों में रामदास ने पूरी राम-कथा न प्रस्तुत कर केवल बही अंश

पद्यबद्ध किया है, जो उस काल के संदर्भ में आवश्यक था। उन्होंने राम के समस्त व्यक्तित्व में केवल उसके युयुत्सु कोदंडधारी, रावण-विरोध करनेवाले वीर व्यक्तित्व का काव्यमय रूपायन किया है; क्योंकि उनके सामने मुगलों का



महान कलाकार स्व. मनीषी दे
की एक पेन्सिल रेखाकृति :
सीता की अग्नि-परीक्षा

बढ़ता आक्रमण था और शिवाजी जैसे व्यक्तित्व की आकांक्षा थी। महान कवि को हमेशा अपने समय का संदर्भ मन में रखना पड़ता है, ताकि उसकी रचना न केवल लोकप्रिय हो, बल्कि अधिक सार्थक भी हो। इस दृष्टि से देखा जाये तो ग. दि. माडगूळकर ने 'गीतरामायण'

नवनीत

की रचना के लिए जो दृष्टिकोण उसको समझना आवश्यक है।

माडगूळकर ने राम की क्या ही अपना उद्देश्य नहीं रखा, जो जनमानस में गहराई से अंकित राम के घटकों का उपयोग करते हुए निहित तरल भावनात्मकता को गीतों के माध्यम से उभारने का प्रयास किया। आधुनिकता के बड़े प्रभाव बावजूद भारत के जनमानस पर भी रामायण और महाभारत के विलक्षण रूप में जीवित हैं। कुछ शीर्षक अपवादों को छोड़ दें तो भी हमारी चार-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था भी रामायण में निहित आदर्शों से प्रभावित है।

हम आज भी राम जैसे आदर्श का नेतृत्व मनोभाव से चाहते हैं। हम भी हम पति-पत्नी के बीच राम सीता जैसे प्रेम-संबंधों का आदर्श हैं। परिवार के लिए त्याग, बड़ों के सम्मान और समर्थन, दूसरों की इत्यादि मूल्यों को आज भी हम स्वीकार करते हैं। माडगूळकर इस तथ्य को भलीभांति पहचानकर ही तरल अनुभूतियां गीतबद्ध की हैं 'गीतरामायण' की लोकप्रियता का एक महत्वपूर्ण कारण है। इस गीत हम उन्हीं आदर्शों, मूल्यों और संबंधों को पाते हैं और तत्पश्चात् आनंद प्राप्त करते हैं। यही कारण

शापमुक्त हो गया।

सीता-राम विवाह का चित्र माडगूळकरजी ने कितने अच्छे और सटीक शब्दों में उभारा है :

आकाशाशी जडले नाते धरणीमातेचे
स्वयंवर झाले सीतेचे

देवरूप आलौकिक राम और धरित्री-पुत्री लौकिक सीता के मिलन का बड़ी मधुरता से कवि ने वर्णन किया है। रावण के डराने पर क्रोधित महापतिव्रता सीता का क्रोध जंगल में लगी आग की भांति दहक उठता है :

नको करूस बलना रावणा निशाचरा
समूर्त रामकीर्ति मी, जात हे सुरासुरा !

समुद्र पर सेतु बांधते समय गाया गया 'बांधा सेतू सेतू बांधा रे सागरी' यह समूहगान जनसमूह की असीम सामूहिक शक्ति का प्रतीक है। राम-रावण युद्ध का वर्णन करते समय कवि की कलम भी तलवार की धार की तरह तेज बन जाती है।

'गीतरामायण' के ये गीत इस तरह श्रोताओं को विभिन्न रसों का आनंद देते हैं। एक-एक गीत में पात्र को साकार बनाने का अद्भुत कार्य माडगूळकरजी ने किया है। राजधर्म का पालन करने वाले करुणाधन राम, आदर्श बंधु भरत, लक्ष्मण, रामभक्त हनुमान, भोलीभाली शबरी, निष्ठावान सुग्रीव, लालची शूर्पणखा, पराक्रमी, किन्तु अविचारी रावण आदि पात्रों को चंद पंक्तियों में साकार करके प्राणवान बनाना एक मुश्किल

हिंदी डाइजेस्ट



कार्य था। लेकिन जिस प्रकार एक कुशल चित्रकार दो-चार आड़ी-तिरछी रेखाएं खींचकर उनमें चैतन्य भर देता है, उसी प्रकार कवि ने गीतों की चंद पंक्तियों में व्यक्ति-रेखाएं सजीव कर दी हैं। लेकिन कवि का सदा यही प्रयास रहा है कि पाठकों का पूरा ध्यान श्रीराम-चंद्र की ओर ही केन्द्रित रहे। प्रकृतिप्रेमी राम, भरत को समझानेवाले तत्त्व-चित्तक राम, रण में युद्धोत्सुक सुग्रीव को रणनीति का पाठ देनेवाले श्रीराम, युद्ध में धिजयी होने के प्रति आश्वस्त होने वाले राजधर्मी राम, सीताजी की अग्नि-परीक्षा देनेवाले कर्तव्य-कठोर राम, इस नवनीत

तरह प्रभु राम के विविध मनोहारि-इस छोटी-सी रचना में पाठकों को कल्पित करते हैं।

‘गीतरामायण’ के कई गीत सुभाषित वाक्यों की तरह जवान पर चंद हैं। अपराध बोध से ग्रस्त निराश भरत को राम समझाते हैं:

दैवजात दुःखे भरता, दोष ना गुण

पराधीन आहे जगतो पुत्र मानव

—दुःख तो दैवजात होते हैं, किसी कोई कसूर नहीं होता। मानवपुत्र विश्व में पराधीन है।

सुखदुःखांकित जन्म मानवो

दुःख सुखावे प्रीती लाभता

—मानव जन्म तो सुख-दुःख से भर हुआ है। प्रीति की प्राप्ति से दुःख सह्य बन जाता है।

माडगूळकरजी के गीतों की विवेक है मार्मिक विम्बयोजना। रामजन्म ही पूरी प्रकृति उल्लसित हो उठी।

पेंगुळल्या आतपात जागल्या कळ्या

‘काय काय’ करित

पुन्हा उमलल्या खुळ्या

—खिलती कलियां जो धूप में सर्पकित ले रही थीं रामजन्म होते ही क्या हुआ? कहते हुए जाग पड़ीं—

क्या हुआ? कहते हुए जाग पड़ीं—कितनी गयीं। इन पंक्तियों में एक खूबसूरत दृक्चित्र उभारा गया है।

रामसीता स्वयंवर का यह वर्णन किमर्थपूर्ण है:

नीलाकाशी जशी भरली उबा प्रभात

तब से मरते रामांगी मधु नूपुरस्वरताल
नीले आकाश में जिस तरह उषा-
नी की तेजपुंजा लालिमा भर जाती
वैसे ही राम के अंग-अंग में सीता
नूपुर के स्वरताल भर गये ।

लोकवन में बैठी विरहिणी सीताजी
को देखकर हनुमान कहते हैं :

मतिन कृशांगी तरी सुरेखा
धूमकित की अग्निशलाका

तिरिरी तरि ही

चंपक शाखा

तगारिणी ही दिसे

योगिनी

मतिन कृशांगी होने

की वह सुंदर है ।

तो धूमकित अग्नि-

शलाका हो या शिशिर

की पर्णविरहित

कृशाखा हो । यह तो

विरहिणी योगिनी

कही है ।

मंगदहन करनेवाले

मान का वर्णन लव-

ण इस प्रकार करते हैं :

लाकार घन दिसे मारुती

विदेपरी ते पुच्छ मागुती

याग सर्ववी नगरावरती

हनुमान पर्वतप्राय बादल जैसे दिखते

उनकी पूंछ विजली की भांति पीछे

झुकी है और अग्निवर्षा कर रही है ।

इस प्रकार विविध बिम्बों की योजना

गीतरामायण में करत हुए कवि ने अपनी
अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है ।
स्वयं माडगूळकरजी ने इन गीतों की रचना
करते समय भावपूरित अंतःकरण से
काव्य के प्रसंगों और व्यक्तियों के साथ
तादात्म्यता अनुभव की थी । इसका
कारण यह है कि माडगूळकर के समस्त
व्यक्तित्व का निर्माण ही इन्हीं संस्कारों
से हुआ है । एक ओर रामायण, महाभारत

जैसे सांस्कृतिक ग्रंथों का
भक्ति-भाव-पूर्वक पारा-
यण, दूसरी ओर सामान्य
लोक हृदय की पहचान,
और इनके साथ माड-
गूळकर की प्रासादिक
वाणी जिसमें सरलता,
प्रवाह, स्पष्टता और
अनुभव के अनुसार
विविध रूप ले सकने
की शक्ति का अतुल्य मणि-
कांचन योग इन गीतों
में हुआ है ।

माडगूळकर ने इन

गीतों में ज्ञान नहीं देना चाहा, ज्ञान-
कारी नहीं देनी चाही सूचना देना या
नूतन दृष्टि प्रस्तुत करना नहीं चाहा
उन्होंने चाहा केवल अपने और अपने,
जैसे लाखों पाठकों के हृदय में गहरे में
छिपे भावों को उभारकर पिघला देना ।
और इसमें, वे अद्भुत रूप से सफल
हुए हैं ।

MUCH-AWAITED BOOK NOW ON SALE !
TO BE READ, RE-READ AND PRESERVED !

Srimad Bhagavatam

By

KAMALA SUBRAMANIAM

With A Foreword

By

GHANSHYAMDAS BIRLA

(Printed on Superior Map Litho Paper, Royal Octavo Size,
pp. 672, Full cloth bound with an attractive jacket.)

Price Rs. 75.00

The *Bhagavatam* has been aptly described as the spiritual butter churned out of the ocean of the Veda Milk for the benefit of those "who are pure in heart, free from malice and envy, and are keen to hear it." Dry philosophy seldom appeals to the human mind. But in the *Bhagavatam* even the most abstruse philosophic truths are put across by means of stories and legends. This is the secret of its popularity among all classes of people.

Available from :

Bharatiya Vidya Bhavan

Kulapati K. M. Munshi Marg,

Bombay-400 007

And its Kendras.

'गीतरामायण' के विभिन्न गीतविशाल को चलचित्र के रूप में रखने की दृष्टि से लिखे गये हैं। इन गीतों में अनेक श्रुति-मुखदत्ता का अद्भुत गुण उभर आता है। अनेक गीतों में नाट्य-रस का, विशेषकर चलचित्र-सृष्टि के प्रगाढ़ अनुभव का, समृद्ध परिणाम 'गीतरामायण' के रूप में महाराष्ट्र को प्राप्त हुआ है।

हमारे भारतीय समाज में आज शिक्षित वर्ग जिस पाश्चात्य मूल्य और नैतिकता को अपना रहा है, उसमें अन्तःस्वयं के प्रति विद्रोह, अति-व्यवस्था और उसमें से आयी हुई कठोरता का प्राबल्य है। सेवा, मानवीय संबंधों की उदात्तता और पवित्रता को तिलांजलि दी जा रही है।

ऐसी स्थिति में राम की कथा को लोक-संस्कृति के उन आदर्शों की ओर जोड़ करती है, जिनके बल पर समाज में बर्षों से टिका हुआ है। ऐसी स्थिति में हमारे डगमगाते विश्वासों और लोगों को कुछ दृढ़ आधार देने का कार्य महाराष्ट्र की 'गीतरामायण' करती है। यह दृष्टि से यह सांस्कृतिक पुनरुज्जीवन के काव्यात्मक प्रयोग है।

आज के भ्रष्ट होते जानेवाले साहित्यिक वातावरण में और राजनैतिक वायुमंडल में राम के जीवन का आदर्श सामान्य जनता अंतःकरणपूर्वक चाहती है। भारत की जनता का अंतःकरण आज भी संस्कारवान है, आवश्यकता है संस्कारवान साहित्यकारों की और नेताओं की। माडगूळकरजी ने अंत में बाल्मीकि द्वारा कहलवाया है :

रघुराजाच्या नगरी जाऊन

गा बाळानो श्रीरामायण ।

मुनिजनपूनीत सदांमधून

नराधिपांच्या निवासस्थानी ।

उपमार्गातून राजपथातून

मुक्त दखळो तुमचे गायन ।

नच स्वीकारा धना कांचना

नको दान रे नको दक्षिणा ।

काय धनाचे मूल्य मुनिजना

अवध्या आशा श्रीरामार्पण ।

—रघुराजा के नगर जाकर, बालक

तुम श्रीरामकथा का गायन करो। मुनिजनों के पुनीत घरों में, नराधिपों के निवासों में, उपमार्गों में, राजपथों में तुम्हारा गान मुक्त रूप से महकता रहे। धन तथा कंचन स्वीकार नहीं करना। न दान लेना न दक्षिणा। मुनिजनों के लिए धन का मूल्य कुछ नहीं होता। सारी आशाएं तो रामार्पण हैं।

—७, शाकुंतल,

साहित्य सहवास, बांद्रा (पूर्व) बंबई-५१

० वरिष्ठ को तुम और क्या दोगे ! तुम उसे तुमसे प्यार करने का अधिकार भी तो नहीं देते ।

—राबर्ट बेसन

सुरेशचंद्र राय का प्रासंगिक लेख



अमृतघट की खोज

वर्षा ऋतु समाप्त भी नहीं होने पायी, बांध के नीचे सावन-भादों की उफनती गंगा का जल जहां-तहां फैला है, इधर कुम्भ मेले की चर्चा आरम्भ हो गयी। सरकारी समितियां, बैठकें आयोजन, योजनाएं और सक्रियता। धर्मशास्त्रियों द्वारा घोषणा : यह १४४ वर्षों पश्चात् लगने वाला विशिष्ट कुंभ होगा जिसका अपना माहात्म्य है। कुम्भ में एक दिन भी स्नान करने वालों को समुद्रमंथन से प्राप्त अमृत-कलश अवश्यमेव प्राप्त होगा। स्वर्ग के द्वार निर्बाध रूप से खुले रहेंगे। कल्पवास का तो कहना ही क्या ! मेला अधिकारियों द्वारा बगभग ढाई करोड़ व्यक्तियों के आने का अनुमान है। धर्मशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत व्यवस्था का प्रचार और मेले की तैयारियां, दोनों साथ-साथ चल रही हैं। मन में कौतूहल है आखिर 'अमृतघट' क्या है, कहां है, कैसा है ? मैंने भी संकल्प कर

नवनील

लिया है इस कुम्भ में 'घट' की खोज करनी है।

नगर में मेले की गहमागहमी का हो गयी है। घर, दूकान, टी स्टाल-विशाल कुम्भ मेले की चर्चा और अधिक पुण्य बटोरने की तैयारी। हर दिन चारपत्र में मेले की तैयारी संबंधी किंवा अथवा प्रेस सम्मेलन रिपोर्टें प्रकाशित रही है जिससे माहौल बन रहा है। अतिरिक्त आकाशवाणी पर बापे किसी न किसी अधिकारी द्वारा 'कुम्भ तैयारी का पूर्वाभास' वार्ता का प्रसारण सारा नगर मेला क्षेत्र बन गया है। भीड़भाड़ में 'अमृतघट' की खोज बोर कठिन लगती है।

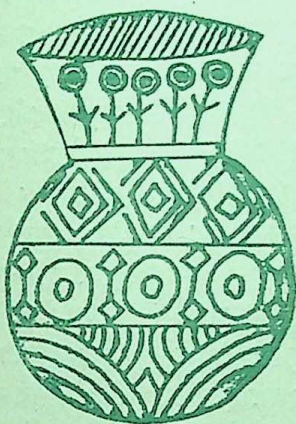
अमृत कुम्भ की खोज में निकल हूं गंगा तट की ओर। प्रमुख विभाग का शिविर कार्यालय बन है, शायद सूचना एवं पर्यटन विभाग

बाबूजाने के ठीक सामने । उच्चाधिकारी के 'अमृतघट' और मेले की तैयारी के संबंध में कुछ प्रश्न करने हैं परन्तु उनका स्वरूप अनिश्चित है । शिविर-भूमि और उसमें बहने वाला है । शिविर-भूमि और उसमें बहने वाला है । शिविर-भूमि और उसमें बहने वाला है ।

से बोले, 'अरे साहब, संगम तक पहुंचने की यह वैतरणी है । सरकारी पंडे को पटाइये, पूछ पकड़ लीजिये, बस संगम क्षेत्र में पहुंच जाइये । नहीं तो फिर उस पार धर्मक्षेत्र और इस पार आप प्रयागराज के पंडों तक पहुंच ही न सकेंगे ।'

एक शिविर के सामने दर्शनार्थियों की भारी भीड़ दूर से देख रहा हूं । दरवाजे पर पड़ा परदा एक ओर खिसकता है और

पलक मारते फिर बंद हो जाता है, जैसे भक्तों को ठाकुरजी के कुछ मंदिरों में झांकी दिखलाई जाती है, महज एक झलक । परदा हटते ही भीड़ में एकदम हलचल, शोर-शरावा, ठेलमठेल होती है और बंद होते ही फिर शांत । मुझे यकीन हो गया हो न हो इसमें जरूर 'अमृतघट' रखा है जिसके लिए भीड़ इतनी उतावली हो रही



चित्र : आलोक जैन

है । लपक कर पहुंचता हूं मैं भी—चलो हो गया 'अमृतघट' का दर्शन... परन्तु यह तो है किसी अधिकारी का शिविर जिनका जनता दर्शन कर रही है । फिलहाल वही अमृत-कलश तुल्य हो गये हैं । मैं शिविर से निकल रहा हूं । कान में आवाज आती है एक ओर दूकानों की नीलामी बोली । हज़ारों की बोली हो रही है, मेला मुश्किल से दस-बारह दिनों का है, कितनी बिक्री हो

हिंदी डाइजेस्ट

जायेगी जिसकी आश में हलवाई जैसी दूकान की नीलामी बोली हज़ारों की सीमा पार कर चुकी है। असीम पुण्य बटोरना है, काली सड़क, लाल सड़क, त्रिवेणी रोड, हनुमान मंदिर आदि के निकट की दूकानों का तो कोई हिसाब ही नहीं। कुछ दिनों में ही समाचार प्रकाशित हुआ— 'मेले की दूकान में एक क्वेंटल से भी अधिक सड़ी मिठाई बरामद, जांच के लिए छापा !' रोंगटे खड़े हो जाते हैं। फिर समझ में आता है हज़ारों की नीलामी बोली बोलने वालों की शायद सड़ी-गली मिठाई बेच कर थैली भरना ही 'अमृतकलश' हथियाने की परिकल्पना होगी। क्रमशः स्पष्ट होता जा रहा है, सभी की गूढ़ दृष्टि जमी है अपने-अपने ढंग से 'अमृतकलश' पर।

मेला क्षेत्र में चहलपहल हो गयी है, तैयारियां तेज़ी पर हैं। परंतु आरंभ होने में अभी कई दिन हैं। मेला आरंभ होने पर काफ़ी भीड़भाड़ हो जायेगी फिर तो कुम्भ का असली पुण्य 'अमृतघट' हाथ आने से रहा... बांध से नीचे उतर गया... गंगा द्वीप यानी समझ लें कुम्भ नगर की सिविल लाइंस। अत्यंत विशाल मंडप का निर्माण कार्य तेज़ी से चल रहा है। एक ओर दर्जी मशीन से साटन के, रेशमी वस्त्र सिल रहा है। कर्मचारी साधुओं के लिए दूसरी ओर तीन जीपें खड़ी हैं। एक शामियाने के नीचे सिंहासन पर गेरु वस्त्र में शायद महंत बैठे हैं। उनके निकट छोटी

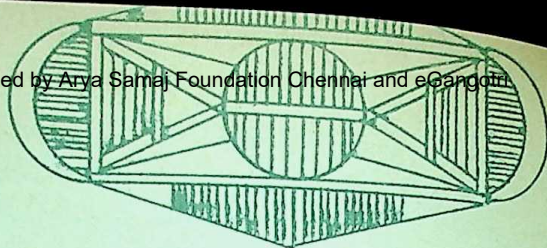
डेस्क पर डाक, लेटर हेड, मुहर, राइटर रखे कोई भक्त सचिव का कर रहे हैं। एक-एक पत्र पढ़कर मुह्रें हैं। पत्रों में है— 'मुझे अमावस्या के चार दिनों के अथवा फिर १५ तिथि लिए रावटी चाहिये। मनीआर्डर भेज दे है, अथवा कितने रुपये भेजने हैं?' वंश मेरा भेजा लिफाफा भी डाल परंतु रावटी, रहने के स्थान को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में साधु समाज भूमिका तथा योगदान संबंधी बातों के लिए समय लेने हेतु मैं गोर के रहा हूं अर्थप्राप्ति प्रधान पत्रों को अन्य सभी पत्रों को महंत नीचे खोकी की टोकरी में डालने का निर्देश दे मेरा अनुमान गलत नहीं था क्योंकि आज तक अपने पत्र का कोई उत्तर मिला। पता नहीं इन लोगों को भूमिका अन्य सुविधाएं निःशुल्क अथवा नगद किराये पर यजमानों से व्यापार की दी गयी हैं। अमृत वितरण का कुछ तो होना ही चाहिये। इस बीच मनीआर्डर की गड़्डी लिये डाकिया आता है। आर्डर प्राप्ति के पश्चात् महंत डाकिया पांच रुपये का नोट पकड़ा रहे हैं। भीरु डाकिया लेना अस्वीकार करते 'महाराज जी, यह हम लोगों का बख्शीश लेना पाप है।' एक चेला बो है, 'अरे बच्चा, महाराजजी को पाप का उपदेश देने चला है! यह बन्नीबहादुर महाराजजी का 'प्रसाद' है। अभी

नवनीत

नहीं हुआ। इसे ले और अपना रास्ता
चिवा और छाया एक लंबा-चौड़ा शिविर
है। शिविर के भीतर ईंट की सड़कें, पंक्ति-
वद्ध पुष्पयुक्त गमले, टिन शेड के कमरों
के दरवाजों पर लटकते परदे, टेलीफोन,
फूस की कुटिया में तापसी, संयम प्रधान
जीवन व्यतीत करते हुए पूरे मास कल्प-
वास प्रधान मेले में आधुनिकतम सुविधा
संपन्न शिविर एक अजीब विरोधाभास है।
पता लगता है यह है अति विशिष्ट व्यक्तियों
का अर्थात् वी. आई. पी. कैम्प जो सन
१९५४ के कुम्भ से ही प्रचलित हो चुका
है। कुम्भ जैसे मेले का यदि कोई विशिष्ट
व्यक्ति हो सकता है तो संत शंकराचार्य
राजसी वैभव से मुक्त, जिनके चरणों में
देश की सर्वोच्च सत्ता भी श्रद्धान्त होती
है। परन्तु अब तो घोर कलियुग है। सारी
रीति-नीति मान्यताएं उलट गयी हैं।
विशिष्टजनों का अर्थ है सत्ता सिंहासन पर
आसीन जन और उनकी विशिष्टता का
निर्धारण कुर्सी की रंचाई के अनुसार।
इस विशिष्ट शिविर की विशेषता... आधु-
निकतम उपकरण, सुविधा संपन्न ऊपर से।
भीतर प्लाईवुड, जूट कार्पेट, खर मेट,
कालीन, सोफे, पलंग, डनलप कुशन पिलो
(गद्दे तकिये), डाईनिंग फर्नीचर की
सहायता से बनाया वाल पर आधुनिकतम
बंगला। भीतर टेलिवीजन, रेडियो, पलश
ट्वॉयलेट रूम, गर्म पानी का नल, शिविर
के सामने विशिष्टजनों के लिए विशेष
घांट और नौकाएं, मोटरबोट, पुलिस सेवकों
(शेवांश पृष्ठ १३९ पर)

नहीं हुआ। इसे ले और अपना रास्ता
चिवा और छाया एक लंबा-चौड़ा शिविर
है। शिविर के भीतर ईंट की सड़कें, पंक्ति-
वद्ध पुष्पयुक्त गमले, टिन शेड के कमरों
के दरवाजों पर लटकते परदे, टेलीफोन,
फूस की कुटिया में तापसी, संयम प्रधान
जीवन व्यतीत करते हुए पूरे मास कल्प-
वास प्रधान मेले में आधुनिकतम सुविधा
संपन्न शिविर एक अजीब विरोधाभास है।
पता लगता है यह है अति विशिष्ट व्यक्तियों
का अर्थात् वी. आई. पी. कैम्प जो सन
१९५४ के कुम्भ से ही प्रचलित हो चुका
है। कुम्भ जैसे मेले का यदि कोई विशिष्ट
व्यक्ति हो सकता है तो संत शंकराचार्य
राजसी वैभव से मुक्त, जिनके चरणों में
देश की सर्वोच्च सत्ता भी श्रद्धान्त होती
है। परन्तु अब तो घोर कलियुग है। सारी
रीति-नीति मान्यताएं उलट गयी हैं।
विशिष्टजनों का अर्थ है सत्ता सिंहासन पर
आसीन जन और उनकी विशिष्टता का
निर्धारण कुर्सी की रंचाई के अनुसार।
इस विशिष्ट शिविर की विशेषता... आधु-
निकतम उपकरण, सुविधा संपन्न ऊपर से।
भीतर प्लाईवुड, जूट कार्पेट, खर मेट,
कालीन, सोफे, पलंग, डनलप कुशन पिलो
(गद्दे तकिये), डाईनिंग फर्नीचर की
सहायता से बनाया वाल पर आधुनिकतम
बंगला। भीतर टेलिवीजन, रेडियो, पलश
ट्वॉयलेट रूम, गर्म पानी का नल, शिविर
के सामने विशिष्टजनों के लिए विशेष
घांट और नौकाएं, मोटरबोट, पुलिस सेवकों
(शेवांश पृष्ठ १३९ पर)

यह वस्त्रों को धोने के लिए है। वहीं खड़े रहो, प्रसाद
नियोजित निर्भीक प्रश्न से एक मिनट
लिए तो महात्माजी के चेहरे का रंग
गया परंतु दूसरे ही क्षण अपने को
लिया और बोले—‘देवी, जिसे भग-
वान ने बना दिया है उसे तो हमें विशेष
कर देना ही पड़ेगा, ऐसा न करें तो
भगवान की इच्छा का अनादर होयेगा।’
उन्होंने तो ‘अमृत’ इन बड़े लोगों को ही
पूजा चाहिये।
थोड़ी दूर पर ही टीन की चादरों से



डॉक्टर डी. एन. खुशालानी का गुह्य वैज्ञानिक लेख

ब्रह्माण्डीय किरण-विज्ञान चिकित्सा

ब्रह्माण्ड किरण चिकित्सा-विज्ञान (कॉस्मिक रे थेरेपि) उतना ही पुराना है, जितना ज्योतिष विज्ञान। बंगाल के डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य को इस विज्ञान को, जिसके द्वारा चिकित्सक, रोगों को देखे बिना, उसका इलाज कर सका, आधुनिक स्वरूप प्रदान करने का श्रेय प्राप्त है।

प्रकृति के रहस्यों को उद्घाटित करने का मानव का प्रयास अभी तक जारी है। ब्रह्माण्ड किरण चिकित्सा-विज्ञान ऐसा ही एक प्राकृतिक रहस्य है। मानव के लिए जन्म और मृत्यु, सुख और दुख, प्रेम और घृणा, गुस्तेवाकर्षण, विद्युत् और चुम्बकत्व के नियमों से जकड़ा जीवन सबसे बड़ा रहस्य है।

घटाव, फैलाव, संगठन और विलोपन की प्रक्रिया से प्रकृति संतुलन और सम्बद्धता स्थापित करती है। आदि काल से हिंदू दार्शनिकों ने शाश्वत मूल्यों पर आधारित सुखवत्त्व को चीन्हने का प्रयास किया है, और इस प्रयास से उन्होंने यह जाना कि छोटे से छोटा परमाणु भी

सारे ब्रह्माण्ड जितना विशाल और है। वेदों में, जिनमें ऋग्वेद का सर्वोपरि है, हिन्दू मनीषियों के इन प्रयोगों के निष्कर्षों का वर्णन मिलता है।

ज्योतिष ने, जिसे उसकी व्यापक कारण 'विज्ञानों का विज्ञान' कहा है, ब्रह्माण्ड किरण चिकित्सा-विज्ञान है, ब्रह्माण्ड किरण चिकित्सा-विज्ञान व्यवस्थित किया है। मगर उसे आधुनिक बनाने, और आधुनिक विज्ञान धारणाएं प्रदान करने का श्रेय डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य को, जिन्होंने मत की पुनर्स्थापना की कि सूर्य ही पर जीवन का मूल स्रोत है।

सूर्य की किरण में वे ही सत्ता पाये जाते हैं, जो हमें इन्द्रधनुष में देखे जाते हैं।

शीर्षस्थ चित्र : आलोक जैन

नो निकते हैं। ये रंग हैं : बैंगनी, नील, जलमयी, हरा, पीला, नारंगी और लाल लाल-वायलेट और इन्फ्रा-रेड को भी प्रचलित कर लिया जाये, तो उनकी संख्या नौ हो जाती है। इन नौ रंगों को ही नव-वर्णों के नाम से जाना जाता है, जिनके ऊपर दिये गये रंगों के क्रम में शुक्र, बुध, मंगल, चन्द्रमा, सूर्य, राहु,

अथवा जातिगत प्रभाव उत्पन्न कर सकें। मंदिर जाने वाले दर्शनार्थी का शरीर मूर्ति के नीचे से प्रवाहित होते विकिरण का अवशोषण कर लेता था, और उसके रोग क्रमशः दूर हो जाते थे। अलग-अलग रोगों के लिए अलग-अलग मंदिर निश्चित थे। रोगी को उसके लिए निर्धारित मंदिर में कितने समय तक जाना

चाहिये, यह भी निश्चित था। इस प्रकार, रोगोपचार के लिए मंदिरों का प्रयोग आरंभ हुआ।

दूसरी विधि थी—अंगूठियों, लटकनों तथा अन्य आभूषणों में मणि लगाकर उन्हें धारण करने की। मणियों के माध्यम से शरीर वांछित किरणों का अवशोषण कर सकता है। एक अन्य विधि थी—‘सूर्य-नमस्कार’ द्वारा सीधे सूर्य के विकिरण को शरीर में पहुँ-



चाने की। यह सब विधियाँ आज तक प्रचलित हैं, मगर उनका प्रभाव बहुत धीरे-धीरे होता है।

बाद में एक और विधि प्रचलित हुई, जिसके अन्तर्गत रोगियों को विशेष कक्षों में जहाँ रोगी के सर के ऊपर से सूर्य की किरणों द्वारा विशेष रंगों के विकिरण की खास व्यवस्था होती है, खास रंगों के समक्ष अभिदिशित किया जाता है। मगर,

इस विधि में रोगियों को काफ़ी असुविधा होती थी।

डॉक्टर विनयतोष भट्टाचार्य ने आगम-शास्त्रों के सिद्धांतों को अपनाकर, एक नयी विधि का अविष्कार किया। इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर, इस विज्ञान के अनुयायियों द्वारा ज्ञान नगर में एक सौर-चिकित्सागृह की स्थापना हो चुकी है। सोचा गया कि इन्हीं सिद्धांतों का प्रयोग रोगी के छायाचित्र पर क्यों न किया जाये?

डॉक्टर भट्टाचार्य ने मूल संस्कृत में 'सादम माला' का अध्ययन भी किया, और बाद में अंग्रेजी में उसका अनुवाद भी किया। इस अध्ययन से उन्होंने यह आश्चर्यजनक खोज की कि जब तक रोगी जीवित है, तब तक उसके छायाचित्र में 'जीवन' रहता है। इतना ही नहीं, वह छायाचित्र रोगी पर प्रकाश का विकिरण सकलता-पूर्वक प्रक्षेपित कर सकता है, यह भी उन्होंने खोज निकाला। इन खोजों के बाद, उन्होंने रोगोपचार के लिए रोगी के स्थान पर उसके छायाचित्र का, जिसमें उसका चेहरा स्पष्ट दिखायी देता हो, प्रयोग करना आरंभ किया।

मंदिरों की व्यवस्था की भांति, छायाचित्रों को भी पेटिका में एक ओर उसी प्रकार व्यवस्थित किया जाता है, ताकि वे विकिरण के इच्छित प्रभावों को उत्पन्न कर सकें। विकिरण का प्रक्षेपण टेलिविज़न के प्रक्षेपण के सिद्धांत पर आधारित होता है।

नवनीत

डॉ. भट्टाचार्य ने ब्रह्माण्ड किरणों को रोगोपचार की जो प्रणाली विकसित की है, उसमें छायाचित्र के नीचे एक विकिरण वर्ण का विकिरण करने वाली मशीन लगा दी जाती है। एक इलेक्ट्रॉनी वायु के सामने रखे छायाचित्र पर उस विकिरण टेलिविज़न के इस सिद्धांत के आधार पर कि प्रेषक-मीटर और अभिग्राही-मीटर एक होना चाहिये, छायाचित्र पर प्रकाश रहे प्रकाश का प्रक्षेपण उस व्यक्ति पर होने लगता है जिसका छायाचित्र के सामने रखा गया था। इस विधि में छायाचित्र का तरंग-दैर्घ्य उस व्यक्ति के तरंग-दैर्घ्य के समान होने के कारण विकिरण का समरूप प्रभाव होता है।

दिक्काल का विलोपन

रेडियो ध्वनि है, और टेलिविज़न प्रकाश, और चूंकि प्रकाश का वेग ध्वनि के वेग से अधिक होता है, इसलिए रोगी के छायाचित्र पर प्रकाश का प्रभाव तब तक तेज़ होता है। इस विधि में, डॉक्टर के लिए दिक्काल का विलोपन हो जाता है और कलकत्ता में बैठा डॉक्टर जहाँ अमरीका या दुनिया के किसी भी भाग में रोगी का इलाज कर सकता है।

यह विधि तभी सकल हो सकती जब रोग-निदान अवृक हो। भाषा के लिए चुम्बकत्व को चुना गया। कल्पित यह था कि पृथ्वी स्वयं एक बड़ा चुम्बक है, और उसमें अनेक चुम्बकीय क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में रहने के कारण, रोगी

चुम्बकीय शक्ति के माध्यम से अपने रोगों को बेहतर जान सकते हैं।

चुम्बकीय शक्ति न तो स्व-निर्देशित है न स्व-प्रणोदक। उसका सिद्धांत यह है कि सूक्ष्म स्थूल को नियंत्रित रखता है और इस विधि में चिकित्सक की अस्थायिक शक्ति, वांछित परिणामों को नियंत्रण करती है। यह शक्ति जितनी अधिक होगी, परिणाम उतने ही बेहतर होते।

प्रकाश के माध्यम से प्राप्त सूचनाएं डॉक्टर भट्टाचार्य ने सर्वप्रथम जिस विधि का अविष्कार किया, उसमें एक चुम्बक-पेटिका होती है। पेटिका किंग विशिष्ट क्रम के अनुसार, ५०००-५०००० शक्ति वाले, 'यू' आकार के कुछ चुम्बक रखे जाते हैं। चुम्बकों के ऊपर चुम्बकीय ध्रुवों का ढक्कन लगा होता है, उसमें चित्र का चित्र रखा जाता है। चित्र के द्वारा उसके रोग का विवरण दर्शाने के लिए कुछ तालिकाएं भी रहती हैं। चित्र के ऊपर एक पेण्डुलम घूमता रहता है। यह पेण्डुलम तालिका के उस विशिष्ट रंग की ओर इंगित करता है जो रोगोपचार के लिए चिकित्सक उचित समझ में चुनता है।

इस विधि द्वारा रोगोपचार आरंभ होने पर, चित्र सूचनाएं चिकित्सक को प्रभावित होती रहती हैं : शरीर का कौन-सा अंग प्रभावित है? उसका प्रतिशत क्या चिकित्सा में अनुमानतः कितना

समय लगेगा? इलाज सिर्फ विकिरण से ही हो सकता है, या उसके लिए मणि के प्रयोग की आवश्यकता भी होगी? विकिरण के लिए किस रंग या कितने रंगों की आवश्यकता होगी? आदि।

इस विधि का विकास करके, एक विद्युत्-चुम्बकीय पेट्टी का निर्माण किया गया है, जो प्रकाश के माध्यम से आवश्यक सूचना प्रदान करती है। प्रयोगों से पता चला है कि ये सूचनाएं काफी अचूक होती हैं। आवश्यक सूचनाएं देने के अलावा, यह पेट्टी उपचार-सम्बन्धी निर्देश भी देती है।

हमारे शास्त्रों में उपचार की तीन विधियां बतायी गयी हैं : मणि, मंत्रम्, और औषधम्।

मणि : हमारे पूर्वजों ने रोगोपचार के लिए मणि या ब्रह्मांड किरण चिकित्सा-विधि को सर्वोच्चता प्रदान की है। कालांतर में, अज्ञानवश लोग इस विधि को भूलते चले गये। डॉ. भट्टाचार्य ने अब पुनः इस चिकित्सा-विधि का प्रचलन आरंभ किया है। उनकी टेलियेरपि कॉस्मिक रे इन्स्टीट्यूट कलकत्ता में है, और मद्रास, बंगलौर, बेलारी, सूरत आदि स्थानों में उसकी शाखाएं हैं। इस चिकित्सा-विधि का अन्य चिकित्सा-विधियों से कोई विरोध नहीं है, उल्टे इसके प्रयोग से अन्य चिकित्सा-विधियों का लाभ ही होता है।

ध्वनिकारिक जेब-घड़ी

हाल ही में अमरीका में आयोजित

एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में, विश्व के सब देशों से आये डॉक्टरों और शल्य-चिकित्सकों ने यह मत व्यक्त किया कि सन २००१ तक शायद ही कोई अस्पताल शेष रह जाये, क्योंकि ब्रह्मांड किरण चिकित्सा-विधि से न केवल हर प्रकार के रोगों का सफल उपचार हो सकेगा। इतना ही नहीं, इस चिकित्सा-विधि से चिकित्सकों को आने वाले रोगों की पूर्व-सूचना भी प्राप्त हो सकेगी। इस चिकित्सा-विधि पर आधारित 'बायो-स्कोप' नाम की एक जेब-घड़ी का स्विट्-ज़रलैण्ड में निर्माण भी आरंभ कर दिया गया है।

यह जेब-घड़ी साधारण घड़ी के समान तो चलती ही है, उसमें चार अन्य डायल भी हैं—रूबी, नीले, हरे और सफ़ेद मणियों वाले। यदि घड़ी की रूबी मणि जगमग है, तो इसके अर्थ हैं कि घड़ी पहनने वाले व्यक्ति का स्वास्थ्य एकदम ठीक है, इतना ठीक कि वह चाहे तो ओलिम्पिक खेलों में भी भाग लेकर स्वर्ण-पदक जीत सकता है। यदि घड़ी की हरे रंग की मणि जगमग है, तो उसकी बुद्धि श्रेष्ठ स्तर की है।

नयनोन्मत्त



चित्र : आलोक जैन

नीले रंग की मणि के जगमग होने का अर्थ है कि वह व्यक्ति व्यापार में सफलता प्राप्त करेगा। और यदि घड़ी की हरे रंग की मणि जगमग है, तो इसके अर्थ हैं कि वह व्यक्ति रोगी है।

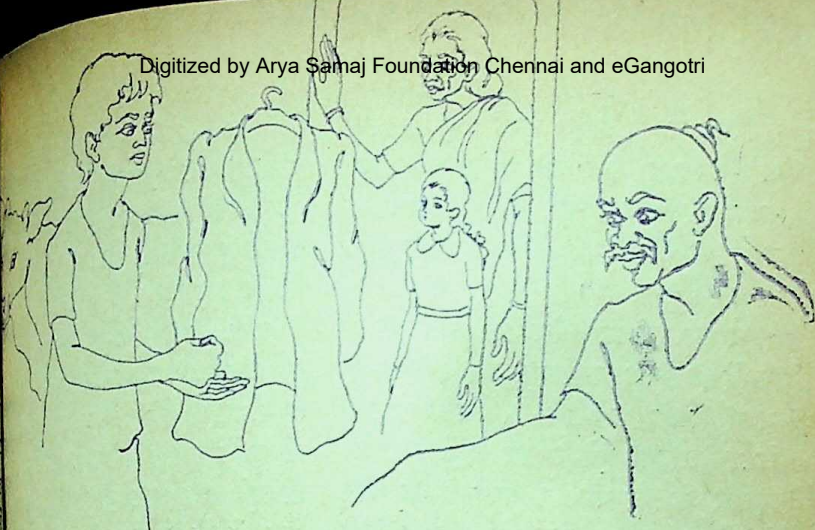
ब्रह्मांड किरण चिकित्सा-विधि से लेकर बहुत से वैज्ञानिक शोधरत हैं।

मंत्रम् : इस विधि का प्रयोग वैज्ञानिक ही कर सकते हैं, जो आध्यात्मिक दृष्टि से काफ़ी ज्ञात हैं। इस विधि में मंत्रों द्वारा प्रयोग किये गये तांत्रिक का प्रयोग किया जाता है।

जून, १९७३ में 'द एस्ट्रोलाबिक मेगज़ीन' में एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें यह बताया गया था कि इस विधि के प्रयोग से

केवल रोगों से मुक्ति, मुकदमेबाजी भी सफलता पायी जा सकती है।

औषधम् : इस विधि में एलोपैथी, आयुर्वेद, होम्योपैथी, यूनानी आदि चिकित्सा-विधियों का समावेश होता है। ये सब विधियाँ रोगों के इलाज के आंशिक रूप से ही सफल हो सकती हैं। सौ फीसदी सफलता ब्रह्मांड (शेषांश पृष्ठ १४२ पर)



रज्जन त्रिवेदी की हिन्दी कहानी



न टूटने वाले टुकड़े का जन्म

पर चुप है। लगता है, इसे कोई बांध गया है। सारी हलचल को धर धुवह की खूंदी पर टांग गया है। कोई हिलना-डुलना तक नहीं, सभी खिदाई पड़ रहे हैं। मां भी भगवान को कोठरिया में बांध में सिर धरे पड़ी है। मुन्नी पढ़ने के लिए बैठी है, लेकिन उसे वह किताब खोले बैठी है, पन्ना वहीं खी है। एक भी पन्ना आगे नहीं बढ़ रहा है। हर पंक्ति लगता है चुप हो गई है। बाँबें भी वहीं की वहीं घूमते ठहर गए हैं। सबसे छोटा मुन्ना तो इस पर खड़ा देवते हुए पड़ा है मानो सबसे

बड़ा वही अपराधी है, इस कांड का वही दावेदार है। छत की एक-एक कड़ी गिने डाल रहा है। फफूंद को देखकर जीभ ऐंठाना चाहता है पर वह भी रुक जाती है आधी ऐंठकर, आँखें भी अपनी हलचल कभी-कभी लगता है रोक बैठी हैं। जाले के उस पार मकड़ी चुप है, इस पार छिप-कली भी चुप है।

हर जगह धूल के फाहे रखे हुए दिखाई पड़ रहे हैं। सिर के नीचे हथेली कितनी-कितनी देर को रखी रह जाती है, बाद को छाती पर हाथ कितनी खामोशी से आ जाते हैं। क्रोटें, गिलास, टेबल, सोफा, झाड़ू, चटाई, परदे, चूल्हा, रेडियो, मजीरा,

सुमरनी, गाय, बछड़ा सभी जहाँ के तहाँ खड़े लग रहे हैं। जैसे वे अपना-अपना काम, उपयोग सब भूल गये हैं। वे घर के बाहर तो हैं नहीं, घर के साथ वे भी सहम से गये हैं।

बनियान और पैजामा पहने श्रीधर पढ़ाई की टेबल पर बैठा हुआ है। कभी वह अपने बालों के बीच अंगुलियां उलझा लेता है, कभी हथेली पर दायें हाथ की मुक्की जोर से मारकर दरवाजे की ओर देखने लगता है। जब भी घर में ऐसी घटनाएं होती हैं, हर तरफ इसी तरह की हालत, खिचाव, सन्नाटा फैल जाता है। हर चीज खामोश लगने लगती है। जैसे खामोश ही अपराध की चादर है, जो उसे ढंकती है। पिताजी के व्यवहार से उसे हरदम शिकायत रही है। जब भी उसने पिताजी से कोई बात कही है, उन्होंने सुनने, समझने की जगह तिरस्कार दिया या फिर ऊंचा बोलने लगे हैं और अपनी बात मनवाने के लिए, रखने के लिए बुरी तरह से चिल्लाने लगे हैं, याने वे जो कुछ कहते हैं वही सही है, अंतिम है, तुम सिर्फ सुनो, सहो—बस।

वह कह भी चुका है, कमजोरी आदमी को ज्यादा उत्तेजित करती है, चाहे वह शारीरिक ही नहीं मानसिक अथवा बौद्धिक क्यों न हो। आदमी को बात समझ लेना चाहिये, फिर कुछ कहना या करना चाहिये। बराबरी की औलाद हो जाये तो उसे दोस्त समझना चाहिये, उसकी उपेक्षा

नहीं। घर में उसके महत्व को समझा
चाहिये, सलाह-मशविरा लेना चा
जिद् घर तोड़ती है, दिमाग के दाख
करती है। इसे भी वे अपने पर चोट
बैठे थे।

रात को क्या आया, क्या खाया, क्या किया उसे उसका बिलकुल अंदाज़ नहीं था। चाय पीकर जैसे ही पढ़ने की देन आया तो मुन्ने ने आकर गरम कोट लिखाते ज़रा उत्साह से कहा, 'पिताजी को उनके मालिक ने सर्रासों को लिए यह गरम कोट दिया है। अभी भी पिताजी की बड़ी इज्जत हैं। लिखा-पढ़ी के काम से अलग हो के बाद भी वे पहले ही जैसा मानते हैं पंडिताई में उन्हें मिलता ही क्या है? पिताजी के नहीं तो आपके पढ़ने के बाद आ ही जायेगा।'

मुन्ने ने बात बड़ी खुशी से कही। उसने
लेकिन भीतर उसे डर भी था, जिसे वह नहीं बताया।
अतिरिक्त उत्साह से छिपाकर वह भीतर ही
था। इस ढंग की बात भैया के मन में नहीं
गुनाह है। दो-तीन सरदियों से पिताजी भी को
ठंड से बीमार होते रहे हैं, लेकिन गरम कपड़े
नहीं आ पाया। वह सब चाहकर भी जुटाते
ट्यूशन के पैसों से भी कोट नहीं जुटा सकते। रिटर्न प
था। सारे पैसे दवा-दारू या घर की जरूरतों में
में खर्च हो जाते थे। उसने काम करने में पैदा
कभी हार नहीं मानी। वह पिताजी के लिए है। लेकिन
मालिक के यहां से रिटायर्ड होने के बाद मुकुं
उनकी पंडिताई से परहेज नहीं करता। पिताजी को लगे

रहना कुछ न कुछ देता ही है । पिताजी के बार-बार झुकने या बैठने बाले कृत्यों से वह दुखी हो जाता है । छोटा न होना पड़े इसीलिये वह बार-बार ट्यूशन पॉर्टाईम वही-खाते आदि काम अपनी पढ़ाई के साथ करता नहीं था । एम. एस. सी. के अंतिम वर्ष के की टेस्ट पर वह कहीं न कहीं लेक्चरर हो ही म कोट म होता । पी. एच. डी. बाद को होती है, 'बैठा' । पिताजी समझते नहीं, अपने ने सरसि के कर्मों को आचरणों को झुलयाया जाना है । मां कुछ पसंद नहीं करते । दी हुई भेंट इज्जत का शर्करा कहीं न कहीं झुका रहे हैं या अलग हो जाने के लिए वह सब हो रहा है । यह सा मानो है कि झुकते रहने का सिलसिला कब क्या है ? हमें वृगी तरह से तोड़कर, रौंद पहनने के बाद !

अभी सोच ही तो रहा था कि सभी से कहें कि उनके सामने अपने को दुहराता-सा था, जिसे कहें गंगा । वह अपने को कहां रोक पाया था, पिताजी, आप कब तक इस तरह भीख मांगेंगे ? इस तरह से उपकृत हो जाना, यों से पिताजी को छोटे आदमियों के बीच ले किन गरम कर बड़ा कर देना है । हम सब मेहनत चाहकर भी झुकते हैं । आपने अपनी मेहनत का नहीं बुझा कि रितन पाया है या खैरात ही पायी । घर की जरूरतें । मुझमें मेहनत बोलती है, पिताजी । काम करने का पंदा करती है, मेरा विश्वास बन है पिताजी । लेकिन मैं देख रहा हूँ आपका होने के बाद झुकना, मांगना या अनुदान को ही कता कर लेना हमारे विश्वास को, मेहनत

को तोड़ जाता है । हममें विश्वास का जो समूचा व्यक्तित्व बनने लगता है, उभरने लगता है, वह आपकी हरकत से टूटने लगता है । हम टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाते हैं । हर बार पाने के लिए टूटना, हम लोगों को कब उठने का पाठ सिखायेगा ? कब ?

कहते-कहते वह ज़रा रुक गया और ओठों पर जीभ फिराते हुए बोलने लगा :

'आपका गरम कोट जाना मालिक के आगे फिर नतशिर होना नहीं है ? आपकी ही दया पर जीते हैं, कहते रहना बड़ों के आगे हमेशा-हमेशा को उठने से अपने को रोकना नहीं है ? मैं घर की या आपकी जरूरतों को पूरा करने के लिए कोई कमी रखता हूँ ? फिर इसीलिये दिन-रात जुटा रहता हूँ, खटता रहता हूँ कि पिताजी को या हमें टूटना पड़े ? हमारे और टुकड़े हों . . न हों . . लेकिन पिताजी, आप अपने संस्कारों को झकझोर नहीं पाते, आप कभी इस दलन से बाहर आने की सोच ही नहीं पाते, सपना नहीं देख पाते ।'

जब वह बोलने लगा था तो दुबारा एक ही सांस में बोल गया था । मां दरवाजे पर आकर खड़ी हो गयीं । मुन्नी उसकी बात ध्यान से सुन रही थी और मुन्ना डर गया था । उसके माथे पर पसीने की बूंदें झलक आयी थीं । वह भी ओठों पर बार-बार जीभ फिराने लगा था । पिताजी पोथी-पत्रा समेटने लगे थे या समेटने का अनुभव करने लगे थे । बाहर बछड़ा लगा चौकन्ना हो गया है, उत्पात मचा चला था । उसने

लार गिटकते हुए गले को तर करना चाहता था, उसे लगा वह साफ कह दे-पिताजी, चुनौती अस्तित्व की सीधी पहचान पैदा करती है, पस्त हौसलों को, दया के क्षणों को, आभार की स्थितियों के हर टुकड़े को समेटने की बेदी प्रदान करती है ।

यह कहने की जगह वह रुक गया, पर उसे लगा था अगर वह रुकता है तो पिताजी फिर पितृत्व पहनाने लगेंगे । वह सिर झटककर कहने लगा :

‘मालिक ने जब भी हम पर इस तरह की अतिरिक्त दया बतायी है, तो किसी न किसी बहाने या तरीके से वसूल कर ही लिया है । तब हम सब नासमझ थे, फुसलाना, पुचकारना, शाबाशी देने का मतलब नहीं जानते थे । अब समझने लगे हैं, उन सारे व्यवहारों को । उनका मिठाकर बोलना मातहत की सेवा को अलग से अपने लिए काम में लाना नहीं रहा है ? मीठे बोल मेहनत की कीमत हो सके हैं या ठगने की ? उस मेहनत के लिए मालिक ने अलग से क्या दिया ? बाप के मरते समय गाय दान कर दी, आप घर ले आये । मालिक ने सोचा भी कि घर में पांच प्राणी पहले ही से हैं, इससे एक नहीं दो प्राणी और ठूँसे जा रहे हैं—इनकी जीविका का क्या होगा ? उन्होंने तो बाप के धर्म का, स्वर्गारोहण का मार्ग प्रशस्त कर लिया, लेकिन यहाँ कितनी आफत ला दी, जिंदगी के रास्ते को संकरा बना दिया । पिताजी, आप अपने धर्मप्राण आचारण पर चलते

रहें । मुन्नी और मैं एक-एक टाकम रहकर गाय और बछड़े की भूख का ज़ाम करते रहे । यह दान क्या हमारे की व्यवस्था को तोड़ने नहीं आ गया ? बोलते-बोलते उसने पिताजी को देखा था, लगा उनका चेहरा सपाट होने की लड़ाई शुरू कर चुका था । वे कहना जरूर चाह रहे थे, पर मेरे बोलों के ढंग के आगे चुप-से थे । उनका चेहरा खिंचने लगा था, और मैं फिर जाहूँ गया था :

‘मुन्नी का भूखा चेहरा माई को देता था ? जूठन, अनाज के बचाव गाय को जरूर जिला रहे थे, लेकिन नहीं तोड़ रहे थे ? हमारे अस्तित्व यह फुसलाकर तोड़ा जाना नहीं था ? हमारे इन टुकड़ों से मालिकों को क्या हुआ है ? जब तक हमारे इस तरह किये जाते रहेंगे हम कभी नहीं बढ़ सकेंगे दान उन्हें बड़प्पन भले देता हो पर लोगों को छोटा और स्तरहीन ही बन जाता है । उसे ग्रहण करने में हमारा बल उभरता व्यक्तित्व फिर-फिर टूट जाता टूटता रहेगा । इसके साथ यह भी दिया गया कि पंडित, तुम या तुम्हारे विरादरी, अभी ग्रहण करने से अपरतुर्त हुई है । तुम सभी इसी तरह पाना जीवित रहते रहोगे, तुम्हें जीवन बाँटा जाता रहेगा । अपना जीवन हरा जियेंगे, पिताजी ?’

उनके चेहरे पर लाली सिमटने

की। तपाट चेहरे पर रेखाओं का युद्ध शुरू हो गया था, भौंहों का बार-बार खिंचना, बड़ों का चबाया जाना, नथुनों की कमान का खर-खर उभरना, कनपटी तक खड़े-खड़े हाथ ले जाना; वहां होने वाली मरनाहट को बंद करने की कोशिश करता रहा था। मुझे लगा, हमेशा पितृत्व होने वाली पीढ़ी अभी तो निरुत्तर है, और क्यों रुका जाये, डांट और तीखे तेवर का तक सहें? सच का महंगापन भीतर अनुमानित होने लगा होगा। अबकी बार उंची आवाज में फिर बोलने का था :

‘इस तरह के एहसान आदमी को झुकने से, मुकाये रखने की लाचारी देते हैं, पिताजी। इससे हम अपनी कर्मशक्ति को खो जाते हैं, अनजाने में ही। हम अगर पिताजी के बड़बंके जाते रहे तो हमारा अस्तित्व खो पहचाना जायेगा? बिना संकट के, पिताजी के अपनी पहचान नहीं करायी जा सकती, आप गृह की केंद्रीय शक्ति हैं। पिताजी ही सारा प्रभाव हममें बंटता है, बिना ही है। हममें सहने और मुकाबले की शक्ति होनी चाहिये। आदमी जब तक पिताजी के आगे, मददों के आगे झुकना रहेगा—याद रखिये, खुद तो टूटता है, दबता ही है और आने वाली हर चीज की शिराओं में यह टूटन, लाचारी, झुकने की आदत डालता है! इससे हमारा पिताजी तो दुखता ही है लेकिन आने वाला दुख भी दुखता है। दुर्गंध से भरा होता

है। हम अपने को सम्हालकर बनाते हैं, बढ़ाते हैं। आप कभी गाय, कभी कोट के चक्कर में हमारी सारी करनी को झुठला आते हैं।’ कहते-कहते ज़रा देर को चुप रहकर पिताजी की आंखों में देखा, वहां पलकें झपझपा रही थीं। मैंने अपने को साफ रख देना ही ठीक समझा और फिर कह गया—

‘आपके इस तरह के आचरणों से हमारा व्यक्तित्व क्या कभी समूचा हो सकेगा, वह बन भी सकेगा? हर बार झुकना, सहना हमें टुकड़े-टुकड़े नहीं कर जाता है? आपने अपने बाल क्या धूप ही में पकाये हैं? पराश्रित होने की मनोवृत्ति हमें उभरने की, उंचा होने का कभी अवसर नहीं देगी। हम या हमारे लोग बाबू, मुंशी, मास्टर, सेनेटरी इंस्पेक्टर, हवलदार आदि की कैटेगरी से पार जा सकेंगे? हम लोगों का यही कुनबा रहेगा, यही कुनबा बढ़ेगा। यही होते रहना चाहिये, पिताजी, हमेशा यही होते रहना चाहिये?’

पिताजी अब बोलने-बोलने को हो चले थे। बार-बार पोथी-पत्रा समेटने का जो अभिनय हो जाता था वह रुक गया था। उनके नेत्र अब ज़्यादा आग्नेय हो चले थे, नथुनों का कंपन बढ़ गया था। माथे पर चंदन की बिंदी को घेरतीं हरी-हरी नसें सर्पिली हो गयी थीं मानों अपनी मणि को पीने को बेचैन हो गयी हैं। आहत सांप चेहरे पर लहरें मारने लगा था, फुफकारने को हो रहा था! संभव है उन्हें

लग रहा हो, नाक का मोती नाक को ही भारी होने जा रहा है। उसे अब ठीक कर ही देना चाहिये। वे अब तक के आवेशों से बाहर जाकर कहने लगे थे—

‘इस तरह की बातें तू क्यों सुनाया करता है, रे श्रीधर ! यह क्यों भूल जाता है कि मैं तेरा बाप हूँ, न कि तेरा बेटा। यह सब करता किसके लिए हूँ ? जो कुछ पाया या जो कुछ पाता हूँ वह कुत्तों को तो नहीं डाल आता। अपने जायों के लिए ही तो लाता हूँ। उनका दरद न होता तो इस उमर में फिर जाकर पंडिताई क्यों करता ? घर के बोझ को मैं समझता नहीं हूँ क्या ? उसे हलका करना नहीं चाहता हूँ ? मेरे तरीकों से तुझे तकलीफ़ क्यों होती है ? मालिक मेरी मेहनत, सच्चाई, लगन का हमेशा आदर करता रहा है। उसी का ख्यालकर वह अपने रिश्ते निबाहता है। तुझे सब वह एहसान दिखता है, फुसलाना दिखता है, तू ये बातें कहकर हमें दबाना चाहता है, अपना दबदबा बढ़ाना चाहता है ? तू चार पैसे क्या कमाने लगा हर वक्त नकेल हाथ में रखने लगा। मुझे आखिर समझता क्या है ?’

कहते-कहते वे तमतमाते हुए खड़े हो गये थे, पलाश के फूल चुए जा रहे थे।

मां भी कहने जा ही रही थीं पर उनके ओंठ हिलकर रह गये थे। उनकी आंखें उठीं, पलकें उभरीं भी पर वे अशकही रह गयीं। वह मां के इस क्रूर रुक जाने के कारण को जानता था। उनके गाल असमय

आ गयी झुर्रियों के नीचे सुख हो गये थे मां की वैसे कोई खास उम्र भी नहीं, पाँच सहेते-सहेते बूढ़ा चली थीं। वैसे मां को बोलना भी तेज ही रहा है। पिताजी से कई दफ़ा भिड़ गयी हैं। वे किस तरह सराते हुए कह गयी थीं। हाथों में नाखों अंगुलियों में आक्रमण का आवेश था। नाक और भौंहों के बीच तेवर कांप रहे थे ओंठ कहते-कहते कितने सब्ब हो चले थे नीचे के टूटे दांत से कितनी जोर से हवा निकल आती थी। वे कहते समय सच में तीखी हो गयी थीं।

‘तेरे मारे तो रहना मुश्किल हो गया है बेटा ! तू पास-पड़ोस से हिलमिलकर रह रहने भी देगा ? तू तो लगता है हममें ऐंठन ही ऐंठन भरकर रहेगा ! तुझे कुछ दूना सोहाता ही नहीं। हर जगह अकड़ना है दुनियादारी तो सीख, बिना झुके कैसे जीने बढ़ेगा ? कटोरी भर चावल या शकर कया मांग ली मैंने तूने तो जैसे कह ही ढा दिया। कभी पड़ोसिन की साँसें लेकर पहन ली, बुलबू में चली गयी तो तेरी नाक कट गयी। तेरे तेवर तो समझ में ही नहीं आते, लगता है तू आकाश में छेद करके ही रहेगा ! तुम लिखने को लगे हमें बांध कर रखे दे रहे हो। इतना मत ऐंठो कि टूट जाओ। नरमई बाई चारा बढ़ाती है, समझो तो...

उसने मां की बात बड़ी शांति के साथ सुनी थी। वह जानता था कि मां को यह दिया गया तो उसके मन को धक्का लगा

हो गये थे।
नहीं, पर-
वैसे मां क-
पताजी से-
स तरह क-
में मैं नाच-
लेख-
था-
गोट सही बात उन तक पहुंच नहीं पायेगी।
मन्नालाना जरूरी है। डांट चुप भले ही करा
दे, समझा नहीं सकती। मां जब कह चुकीं
तो उनकी सांसें भर आयी थीं। गले की
तुमकी को माला, आंचल कंधे पर गिर जाने
के कारण, दिखने लगी थी। उसने मां से

मां, तुम गुस्से में अनर्थ किये दे रही हो। मुझे गलत न समझो, हम लोग साधनहीन लोग हैं, साधनों के लिए लड़ रहे हैं, लड़ रहे हैं। ठोस और सार्थक दृष्टि हमें न साधन संपन्न लोगों के बीच जाने का मिला देगी। पड़ोसियों से संबंध तो कभी भी अच्छे व्यवहार ही बनाते हैं न कि हमेशा खड़े रहने वाली बात, बराबरी के रिश्ते के भी लगते हैं।'

बोल न, बोल, मैं सुन रही हूँ।' मां ने
 बिग में बैठते हुए बीच में कहा था।

या शक्कर
जैसे वह
की साँसें
ली गयी तो
रतो समझ
तू अकार
लिखने के
हो। इतना
रमई भरी
ति के लगे
माँ को हँस
यका लगे

तुम्हारे कटोरी भर चावल या शक्कर
जाने से ही आपसी संबंधों की बात
कई पड़ती है, लेकिन तुम अभावों की
समय यह भूल जाती हो कि कटोरी
मांगने के पीछे तुम बेटे की मेहनत
को धाक पर रख जाती हो। यह स्नेह
कम घुग है। जो स्नेह ऐसे अवसरों पर
किया जाता है वह हमारे तेज होते आत्म-
स्वास्थ्य को नये वनते रास्तों को रोकता
है, भोग्य बनाता है, हमें अपनी बनायी
स्वास्थ्य की जमीन से हटाता है। अगर
खोरी भर शक्कर या चावल नहीं भी
लेना तो उससे बिगड़ क्या जाता है? एक

141

दिन भूखे ही सो गये तो तवाह नहीं हो जायेंगे। उससे हमारा मादा ही बढ़ता है। तपने से प्रतिभा चमकती है। पुत्रकारने, सहजाने, से वह अपनी चमक भी खो बैठती है, मां। दूसरों की दी हुई साड़ी पहनकर झूठी शान, प्रतिष्ठा से कितनी देर सुख पाया जा सकता है ? देने वाली की निगाह में तुम कितनी रह जाती हो ? वह तुम्हारे छोटेपन पर तरस नहीं खाती ? अगर तुम अपना ही मोटा, सीधा-सादा कपड़ा पहन जाओ तो तुम्हें यही लगता है कि सामने वाला क्या सोचेंगा ?'

कहकर उसने मां की ओर देखा या उसे लगा था, ऐंठन ढीली पड़ती जा रही है, सांसों सम पर आती जा रही हैं। उसने अंत में कह ही दिया था—

‘छोटा यही न, देने वाले ने यह नहीं समझा क्या? फिर हमारा प्रति का विश्वास, रचना की ऊर्जा के लिए किये जाने वाला सतत यत्न टूट जाता है। यही हर बार इसी तरह टूटता रहा है, और हम बनने वाली स्थितियों के पहले ही चुक जाते हैं। चुके रहे हैं, धीरे-धीरे यही चुकापन अभाव हम लोगों में स्थायी हो गया है।’

मां के चेहरे की खिंची हुई झुर्रियां लगा
ढीली हो चली थीं। मुन्नी पास आकर
खड़ी हो गयी थी। शायद खाना खाने को
कहने आयी थी उस दिन। मां खा ले तो
पढ़ाई में जुटे। मां-बाप की सेवा में अपने
को कहीं चुराती नहीं, काम करने से कहीं
बचती नहीं, बचने के लिए कभी-झगड़ा,

उत्पात नहीं पैदा करती। पढ़ाई के साथ सिलाई सीख चुकी है, औरतों के कपड़े सीनी है, अभी से घर के लिए खटने लगी है, खूद का जीना उसे भी अच्छा लगता है, बिना दबाव वाला। मां उसकी ओर गौर से देखने लगी थीं, मानो कहने लगीं हों—शान वाली बात, कौन-सी है ?

वह उसी को समझा देना चाहता था। 'गहरे संकट में काम आना नैतिकता का अंग हो सकता है। लेकिन मांगकर, झूठी शान दिखाकर जीना या काम चला लेना अपने को साधन संपन्नता की ओर बढ़ने से रोकना भी है, मां। काम हो गया, अब आगे की सुध क्यों ? अगर न हो तो काम, यत्न जारी रहते हैं, बिना काम के कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता। कर्म रचना का आधार है, मां। रचना को अस्वीकार करने का मतलब है, पाखंड में जीना, निरर्थकता में जीना, दूसरों का दिया हुआ जीवन जीना, इससे हम ऊंचाई के शिखर कभी नहीं बना सकेंगे, मां, कभी नहीं...'।

मां की आंखों में चमक धूप की तरह फैल गयी थी, कांपते नथने एकदम जैसे थिर हो गये थे।

'भैया, आप कर्म से व्यक्तित्व रचना को जोड़ना चाह रहे हैं, मुझे लगता है।' मुन्नी ने बीच में कह दिया था। मां का संस्कृत धर्मशास्त्रीय अध्ययन कुछ बोलने-बोलने को कर रहा था, कि मुन्नी बोल पड़ी, वे संतुष्ट-सी लगी थीं। उसने

स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाते हुए कहा था, 'वेशक। कर्म ही व्यक्तित्व को रचना करता है। कर्म का अभाव, निष्प्राण होने का बोध है, मुन्नी। जहां पसीने की बूंदें गिरती हैं, वहीं निर्माण होता है, जहां खुर के कतरे गिरते हैं, वहां नस्लें बन जाती हैं, नया युग पैदा हो जाता है। कर्म पर जो विश्वास नहीं करते वे बोझा ढोने की नियति के ही दावेदार बने रहते हैं। संकल्प आदमी को ऊपर उठने का, बलों की निगाह में चढ़ने का अवसर दे देता है। और इस संकल्प को कर्म ही गति देते हैं। कर्म में फल की आशा निहित है, चाहने का अलग से प्रश्न ही नहीं होता। कर्म किया ही किसी न किसी फल के लिए जाता है। जिसमें फल का बोध नहीं होता वह कर्म ही नहीं होता। हम करें, निर्भय और दे—यह हो सकता है ? दूसरे की बोर झुकना या दूसरे से कुछ चाहना अपने कर्म के प्रति संदिग्ध होना है। अपने विश्वास को तोड़ना है उसके टुकड़े करना है।'

कहते-कहते लगा था कि गला खर काफ़ी सूख गया है, वैसे पानी मांगने से बात का रुख बदल सकता है। उसने फिर लार गिटकी और कहने लगा था—

'इसीलिये मैं मां या पिताजी का मांगना पसंद नहीं करता हूं। इस तरह मांगने से चाहने से दिन भर मैं या तू जो मेहनत करती है, पास-पड़ोस की लड़कियां खाने देती है, कपड़े ब्लाऊज सी देती है, सब झूठा हो जाता है। मेरे सपने या ठोस

हम सब लोगों के आगे का घर में फिर व्यक्तित्व की या वर्चस्व की टकराहट में फैसला करने का अवसर-सा मिल रहा था। और वह उनके भ्रम को मिटाना चाह रहा था, आवेश से बात बिगड़ सकती थी, इसीलिये उसने मां के सामने वाली भूमिका को ही अपनाता ठीक समझा। वे मालिक के सामने इतने उत्तेजित हो सकते हैं? वह उनकी औकात जानता है, ये ज़रा से सहवा देने मात्र से ही मान जाने वाले लोग हैं, ये हमेशा फुसलाये जाने वाले ही बने रहेंगे। हर सिपाही का वेटा कहीं निराला होता है? सिपाही का वेटा होगा तो हवलदार ही होगा। क्या वह श्रेणी तोड़ सकेगा? वंश को शिखर पर पहुंचा सकेगा?

‘आप खड़े क्यों हो गये हैं, पिताजी?’ आप तो नाराज़ हो रहे हैं। मेरी बात तो बड़ी छोटी-सी है। मैंने आपको अपमानित करने के भाव से कभी कुछ नहीं कहा। मैं तो यही कहता रहा हूं कि आप इतने समय से झुके-झुके चले आ रहे हैं, अब हम लोगों को क्यों झुकने का सबक सिखा रहे हैं? मैं काम में विश्वास करता हूं, जो मेरे किसी भी संकल्प को पूरा करता है। मैं ठीक से पढ़ता हूं, इसलिये विश्वास से कह सकता हूं कि मैं युनिवर्सिटी में टापर रहूंगा, आपका लड़का गोल्ड मेडलिस्ट होगा। मेहनत करता हूं तो कुछ न कुछ पैदा ही कर लेता हूं। सभी कुछ न सही, पर अपने किये का पा ही जाता हूं। आज की महंगाई, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद

के बावजूद मैं जानता हूँ, अपनी जगह बना लूंगा। चार पैसे कैसे भी कमा लूंगा। लेकिन आप अपने मालिक के पास जीवन भर रहे, वहाँ वह सब पा सके जो मालिक पा गया? आपने ईमानदारी बरती, मेहनत की, कारबार आगे बढ़ा। श्रम आपका रहा, सफलता मालिक की रही। काम आपने किया, फल दूसरा खाता रहा, सिर्फ इसी-लिये कि आपमें अपने कर्म के प्रति विश्वास नहीं था। अपने विश्वास की हीनता ही दूसरों पर निर्भर बनाती है। आप जहाँ के तहाँ रहे। आपके नेकी के जड़ता वाले विश्वास सब कुछ सोचने नहीं देते रहे। जबकि वहाँ पुचकारकर आपकी आंखों में धूल झोंकी जाता रही। ईमानदारी का वास्ता देकर अधिक से अधिक काम लिया गया उसके अनुपात में कभी उतना दिया गया? यह सब फुसलाना नहीं है क्या? और यह फिर कब तक? यही सब आपने मुझे दिया, यही सब मैं आगे आने वाले को दूंगा, देता रहूंगा?’

पिताजी चटाई पर बैठ गये थे। पोथी-पत्रा को उन्होंने सूत की सुतली से बांध लिया था। चिकना पीत वस्त्र सुतली की कसन के मारे सिकुड़ गया था। साँसें तेज़ थीं, धड़कनें छाती को अभी भी धक्के मार रही थीं। मूँछों के बाल अकड़े थे। पर वे बंधे लग रहे थे। सुतली की कसन अभी भी ज्यों की त्यों लग रही थी।

‘मालिक आपको पहचान गया था कि पंडित को क्या चाहिये? पंडित काहे से

खुश होता है। वह दुनियादार आपने ठहरा, उसने हमेशा आपको दुहा। आप प्रशस्तियों का चारा खाते रहे और जहाँ के तहाँ धर्मावतार बने रहे। काफी रात में जब वह आपको छोड़ता तो अपने बच्चे की बची-खुची सज्जी-भाजी दे देता या गाड़ी में भिजवा देता। आप उसी से खुश हो जाते। हम सब इन हरकतों को देखते रहे हैं। फरेब, रिश्वत या और ज़ोबान के उसने जब भी आपसे काम कराये, उस दिन उसने अपने बच्चों की उतरन यह कहते हुए दे दी, ‘पंडित, श्रीधर और मुझे के लिए लेते जाओ, उन्हें ये बड़े फर्के, बड़े कीमती कपड़े हैं। साबुन से मत धोना, ड्रायक्लीन करवाना, इनमें लगा इत्र तो उसके बाद भी नहीं जायेगा।’ आप उसी से खुश हो गये, कभी धुलवा सके ड्रायक्लीन में, कभी ले सके इत्र की खुशबू भरों एक साँस? उसने आपका कितना फायदा उठा लिया, यह कभी नहीं जान सके। फुसलाये जाने के लिए उसने हमेशा आपके अहम् को पुचकारा, सहलाया। तड़पन को दया की मांग ने ढीला कर दिया था, लुंज-पुंज कर दिया था। मालिक को बुरा न लगे के भाव ने आपके लुंजपुंज ब्यक्तित्व को और यतीम बना दिया। हम बचपने से आज तक यह सब देखते नहीं रहे हैं क्या? आपने कभी अनुभव किया कि फुसलाने के बहाने आपके भीतर की सारी खूबियों को तोड़ा जा रहा है, निचोड़ा जा रहा है। आपके टुकड़े किये जा रहे हैं। आप टुकड़े

न बोझे ही जोड़ते बुढ़ा जायें, उम्र की
 कर्म, मुमरती के योग्य हों जायें, उम्र की
 जन्म पर आकर। टुकड़ों को पहचानने पर
 जन्म दुर्लभा के लिए भगवान की कल्पना
 साकार करें। आपने जितना किया
 जन्म पा जाते तो कभी कटोरी भर चावल,
 भकर, आटे की, साड़ी या बच्चों के
 कपड़ों की उतरन की अथवा इस गरम कोट
 की नौबत न आती, हम मुहताज न होते,
 नेताजी! हम इस सबके खिपाफ कुछ न
 करते हैं, करना चाहते हैं—सिर्फ
 जितना नहीं। लेकिन आप करने नहीं देते,
 आप, आपके विश्वास आड़े आ जाते हैं।’
 आप कहकर कह गया था, ‘आप उतरन
 करने में विश्वास करते हैं हम खुद कपड़े
 लेकर पहनने जा रहे हैं। यही आपमें और
 मैं फर्क आता है।’
 पिताजी उठकर टहलने लगे थे। अब
 और पटकते हुए टहल रहे थे। हाथ में
 कपड़े में बंधा पोथी-पत्रा बार-बार
 गिरावों में कस जाता। जैसे वे छोड़ने
 छोड़ा लेने के भय से उसे कसे जा रहे
 हैं। पसीने के मारे चंदन की बिंदी भीग
 रही थी। माथे पर लकीरें फुफकार रही
 थी। कभी-कभी वे जनेऊ को, चोटी को भी
 झेल लेंते और घूमने लगते।
 लगता था, मैं सभी दिनों का पड़ा
 हुआ सिमाव चुकता कर लेना चाहता था।
 मेरा बाव कहीं रुकने को मन नहीं कर
 रहा था, मैं कहते जा रहा था—‘मालिक
 का काम से छूटने के बाद, रिटायर्ड
 १११

प्रसन्न हो जाते हैं। आपको लगता है भरोसे
 के काम अभी भी मुझी से ही कराये जाते
 हैं। उनका विश्वास मुझ पर बना हुआ
 है। पर, ऐसी बात नहीं है, पिताजी, आप
 जैसा सीधा और सस्ता लद्दू घोड़ा और
 कौन हो सकता है? आप जैसे लोग हमेशा
 सिर झुकाये ढोते ही तो रहे हैं, कभी सिर
 उठाया है?’

मेरी बात सुनते-सुनते लगा वे ज़रा
 देर को ठिठके और फिर टहलने लगे।
 मैंने रुकना ठीक नहीं समझा। चेहरा तम-
 तमाये चला जा रहा था। ‘आप ही ने
 बताया था कि शक्कर के परमिट और
 उसके लेन-देन में नेताजी को आप ही
 जा-जाकर क्या नहीं देते रहे हैं। नोट
 इतने रहे कि आप गिन न सके। हीरे,
 जवाहरात ऐसे रहे कि आपकी आंखें भी
 चौधियां गयीं। आप पहुंचाने का ही काम
 करते रहे और मालिक बराबर कमाता
 रहा, बढ़ता रहा और आप जहां के तहां।
 नेता और मालिक के बीच आपने ढोने
 का ही काम किया, दोनों एक जात के थे।
 शायद इसीलिये उनका विरोध नहीं कर
 सके। मालिक आपका तो शक्कर के खेज
 में घर भर रहा था लेकिन कितने बच्चों
 का दूध छिन रहा है, कितने त्यौहार,
 खुशियां फीके हुए जा रहे हैं, आप कह सके?
 आप यह अफरा-तफरी का खेल बंद
 करिये, आप लोगों के खीसों से पैसा छीनते
 (शेषांश पृष्ठ ११९ पर)



इंदुप्रकाश कानूनगो द्वारा प्रस्तुत

दुःस्वप्नों का कवि गालवे किनेल

गालवे किनेल रोहोड आइलैंड में सन १९२७ में पैदा हुए। वे सं. रा. अमेरिका के कई इलाकों में तथा ईरान और फ्रांस में भी रहे। उन्होंने १९६३ में हंगेरी (लुइसिआना) में अहिंसात्मक नागरिक अधिकार आंदोलन में हिस्सा लिया। उन्होंने वियतनाम युद्ध का विरोध किया।

किनेल के सघे हुए काम में एक ऐसी निजी आवाज है जो भविष्यवाणी में विस्तृत होने का तीव्र आभास देती है। किनेल एक खास तरह से समसामयिक है; एकांतिक, गीतिमय और नवोन्मेषी। अपनी कविताओं में वे स्वयं के विषय में अनंत बातें करते हैं। वे संवाद करते हुए से मालूम देते हुए संवेदना जगाते हैं। वे अपने को संकेद्रित रखते हुए भाषा को सार्थक बनाकर समसामयिक हैं।

एक कविता में वे अपनी अवस्थिति जांचते हैं तो एक में अपने समाज का लक्षण दिखाते हैं। उनकी कविताओं में राजनैतिक तेवर भी है, लौटने की तालिक व्याकुलता भी, विषाद भी। वे तार्किकता को और धार्मिकता को समीप लाते हुए दिखते हैं। उनमें नाटकीय काव्यात्मक अंतर्दृष्टि भी है। वे मनोरंजक भी हैं और आतंक से भयभीत करने वाले भी। कहा जा सकता है कि तार्किक ध्यान में और शून्य के चिंतन में कोई अंतर नहीं है। किनेल केवल अपने भय को बाह्य रूप देते हैं। कवि न तो मसीहा हो सकता है न किसी वाद का सूरमा। वह तो खुद अपने ही दांव पर हो सकता है।

किनेल में सनातन संदर्भ के चैतन्य और स्वयं की अनुभूति की संगति है। वे जीवन का ऐहिक स्तर पर सामना करते हैं और अस्तित्व को कल्पनात्मक अंतर्गत के दृष्टिकोण से देखते हैं।

(गालवे किनेल के कवितांश 'स्पान' में प्रकाशित हुए हैं। वहीं से साभार लेकर अनुवाद किया गया है।)

नवनीत . .

१०६

कवि की वसीयत
(कविता संग्रह: 'व्हाट ए किंगडम इट वाज़')

मृत्यु: एक मेज
पानी और तारपीन से महकती
लकड़ों के लिए जिसका व्रत
तुलसी के लिए पसीने की बारिश ।

मृत्यु: एक पुल्लिदा
लकड़ों और थोड़े प्रकाश का,
क्या दो अटंकी
के लिए जिसे बोलना है ।

मैं गान
(कविता संग्रह 'नाइट सांग')

मैं नहीं सकता कौन है दोषी,
या दूसरा, दोनों—मुझे याद
में से चम्मच धुंधलाते
न बनेबने—जस यही आवाज

वरसते शहर में ।
बलते चले जाते कंकपाते और झूखे
मांगते या आसरा और तरस पाते ।
मैं मालूम—
मैंने देते हैं डरे अपने गद्दों पर ।

रास्ते के बीच

(कविता संग्रह 'मिडिल आफ द वे')

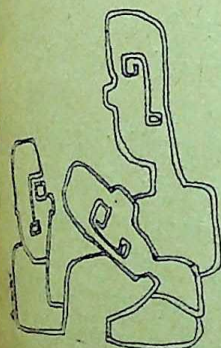
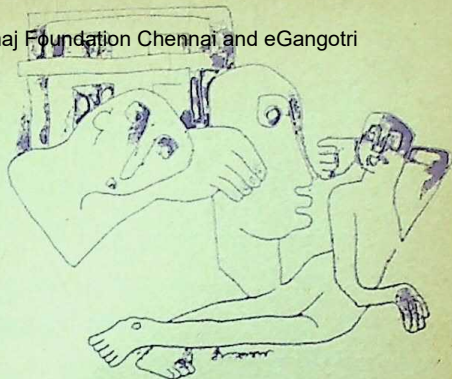
मैं हूँ धरती पर बैस
जैसे लपटें हैं लकड़ी के ढेर के बीच,
या जैसे एक क्षण, शुक्राणु में,
क्या है होना ।

मैं धरती को प्यार करता हूँ, और हमेशा
उसके अंधरे में अजनबी हूँ ।

प्रातः ६ बजे । पानी पुनः जम गया ।
उसे पिघाला और चाय बनायी । एक
कच्चा अंडा और आखिरी संतरा खाया ।

बहुत सदा । वह आधा चांद वहां ऊपर चढ़
आया है और अनेक तारे पेड़ों के शिखरों के
बीच निकल आये हैं । लपटें कोयलों तक
गिर गयी हैं ।

किंतु मुझे मालूम में आधा ज़िंदा हूँ
दुनिया में,
मुझे मालूम मेरी आधी ज़िंदगी
दुर्दांत अंधरे के हवाले है ।





बैठक में एक मेज

(कविता संग्रह १९४६-६४)

बैठक में एक मेज

और तीन कुर्सियाँ, तीन आदमी गप्पियाते
एक दूसरे से अपना अंतर्मन
में, एक बोला, परेशां हूँ ।

मैं परेशां हूँ, दूसरा बोला ।

मेरे खयाल से मेरे लिए सही शब्द
है परेशां, तीसरा दावे से बोला ।

अच्छा, अंत में वे बोले, पौने दो बजा है ।

गुडनाइट । खुश रहो । नमस्कार ।

अच्छा यार । अच्छा यार । अच्छा यार ।

मोनाओंख पर्वत पर पुष्प वृंद

(कविता पुस्तक 'फ्लावर्स हर्डिंग आन
माउंट मोनाओंख')

मुझे मंजूर नहीं अब और

हाथ मलते हंसना खुद पर

सारी तकलीफ उठाने के

अपने दावे के खातिर

में उठ खड़ा होता हूँ ।

धक्कार दुःस्वप्न भरने वाले !

खुदा को याचना ठुकरा जाती है ।

पत्तियाँ गिरने लगती हैं, आत्म-तितिक्षा में ।

वह एक फूल है ।

पर्वत के इस ओर वह मर रहा है ।

ईसा के नाम की तरुवीथि

(कविता संग्रह १९४६-६४)

हम बिखर गये सूने समुद्र के बीच,

वीरान मरुस्थल पर हम दौड़े,

दोनों पष्ठों के सज्जाकार : आलोक जैन

अंधेरी गलियों में और कूचों में
अपने को छिपाया
हृदय धड़कता है बगैर खिड़कियों के
उसकी रात में

फेफड़े बुझा देते हैं रोशनी दुनिया की बर
हांफते और ढेर हो जाते हैं,
दिमाग घूमता और तड़तड़ाता है

उसके अपने ही काले एकलप्राज में -
रात के वक्त
खून के जिस पर वे हंस बोल रहे हैं

अपनी छोटी गली,
कितना बड़ा साम्राज्य था वह !

ओइ वाह ओइ वाह
बोझ

(‘वाडी रेस’)

अपने अंतिम दिन मैं बिताता हूँ
भकटता; चकराता

क्या, आखिर,

था वह स्निग्ध सत्व, सार की वह वि

खुशबू, वह कविता जिसके द्वारा मैं नि

दुःस्वप्नों की किताब

और उन दिनों

जब तुम पाते हो अपने को यतीम,

सूने

सुरीली हवाओं से, उजाले से,

टुकड़े अभिशप्त रोटी के तुम्हारी जुबान

शायद फिर से सुनाई दे तुम्हें

एक आवाज

भुतैली, तुम्हें पुकारती-सिस्टर !

मरती हुई हर चीज से ।

सारी बुद्धि को लेकर, सारी कल्पना को लेकर, सारी

अंतिमता

(‘द बुक आफ नाइटमेअर्स’)

यह कविता
यदि हम उसे ऐसा कहें,
अथवा सहगान अपने में
बंटे हुए एक का,
धरती की ओर यह भंगिमा
आसमानी गोताखोर की, कीड़े
उसकी पीठ पर अभी भी भँवरते
और पहले से ही कुतरते हुए
उसके प्यार के रेशम को,
कौन उसे बचा पाता

यह मुक्त प्लवन एक वर
अपनी भुजाओं को खोलकर रुख में
उड्डयन की, कि वह आवश्यकता की
आज्ञा मानता है और गिर पड़ता है . . .

प्रवक्ता जीवविज्ञान, नेशनल इंटर कालेज,
रानीखेत-३६४६४५



डा. विद्या विन्दु सिंह का लेख



लोकगीतों की अमर रसवन्ती

जीवन के वही पल शायद सबसे अधिक अपने होते हैं, जो एकांत में बैठकर कुछ सोचने, कुछ याद करने और खो जाने के लिए मिलते हैं। पर आज की मशीनी सभ्यता ने ये अपने से लगने वाले पल भी हमसे छीन लिये हैं। आज व्यक्ति कितना निरुपाय है। ईश्वर ने खुले हाथों से जो पल हमें लुटाये थे, जो धूप, हवा, चांदनी हमें बांटी थी, उसे भोगने, पाने का हमारे पास समय नहीं है। जो नारी श्रम की चक्की में पिसते हुए भी गीत गा सकती थी, गेहूं के साथ पीसती थी अपनी आकुलता, अपना मौन और उसके उच्छ्वास गीतों में घुबकर उसकी गहन पीड़ा को पारदर्शी तरलता प्रदान करते थे, वे गीत आज भी हैं, पर बड़ी-बूढ़ी ग्राम्याओं के कंठ के भीतर ही घुटे जा रहे हैं; क्योंकि न अब नयी बहू-बेटियों में उन गीतों के प्रति मोह रह गया है और न ही चक्की के प्रति। उसकी पीड़ाएं वही हैं, उसकी अकुलाहट वही है, पर अब वह भूलती जा रही है—वह सब कुछ जो पुराना है; क्योंकि

वधनीत

पुरानी पहचान और परंपरा लेकर नये जुड़ पाने में असमर्थता का अनुभव कर रही है। आज ग्रामीण माता-पिता की कल्पना में भी बेटी के सुख का विद रोना पर विविध भारती के कार्यक्रम सुनने या टेलीविजन देखती सजी-संवरी की रूप में ही उभरता है।

बहुत पिछड़े विचारों के कहे जाने वाले मां-बाप भी ट्रांजिस्टर की धुन के फिलमी गीत गुनगुनाने वाली बेटी का स्वप्न पालने लगे हैं। हाईस्कूल जूनियर हाईस्कूल फेल सुपुत्र भी सलीके साड़ी पहने, पाउडर लगाने वाली की कल्पना में डूबने लगे हैं। पैरों की महान का रंग गांवों में भी होठों को रंजित लगा है और होठों की स्वाभाविक खिलो वह कुछ तो वातावरण और परिस्थिति खोती जा रही है, कुछ उल्लास और के अभाव में। अब न त्योहारों पर उल्लास बिखरता है और न मेलों में गांव के मेलों में दुकानें खरब अधिक दिखने चमक-दमक वाली अब अधिक दिखने



Subbar

करके लेने
अनुभव
ता-पिता
विष रोंके
यक्रम सुन
संदरी की
हे जाने
धन के
वेटी या
हार्डिन्क
मी सली
वाती
रों की मह
रंजित
विक लालि
परिवर्ति
स और उ
रों पर उ
मेलों में
हूर आर्क
क दिखने

पर मेलों में उल्लास के गुलाल की बैलगाड़ियों से नारी कंठों की मधुर गीत अब लगता है कि फट गयी है। कलकठ ही उनमें अधिक होते हैं। यदि होते भी हैं तो सहमे-सकुचाये। एक दूसरी को धकियाकर ठिठोली गाने वाली ग्राम्यवालाएं अब गीत से पहले चारों ओर देखती हैं। कहीं कोई सज्जन मुन तो नहीं रहे हैं; शीक अब वे विद्यालय जाती हैं। कलकठ में उनका मञ्चाक उड़ाया जा सकता है कि देहाती गीत गा रही थीं। मुझे याद आता है—अपना बचपन। मेरे ही शिक्षित भाई-बंधु मुझे घर-घर जाकर सोहर गाने, सुनने के लिए अवधी में फतवे दिया करते वे 'भुच्चड़' पढ़ाई-लिखाई सब भूसे पर लिपाई है', पर बार-बार इस तिलमिलाहट को पीकर ही उन गीतों के रस में सराबोर होने से रसने को रोक नहीं पाती थी और सारा

आक्रोश भाग जाता था, जब बड़ी-बड़ियों की आंखों में अपने प्रति आशीर्वाद और विश्वास के सच्चे डोरे देखनी थी। पढ़-लिखकर भी मैं उनके गीतों में रस लेती हूं या उनका आदर करती हूं, इसके लिए लगता था उन्हें कि मैं कोई बहुत बड़ा उत्सर्ग कर रही हूं। वे मेरे प्रति गौरवान्वित हो उठती थीं। बड़ा संकोच होता था। क्या अपनी परंपरा से कुछ ग्रहण करके हम अपना उपकार नहीं कर रहे, उस परंपरा पर, उन पूर्वजों पर उपकार कर रहे हैं, जो हमें देने के लिए यह थाती युग-युग से संजोते आ रहे थे। पर आज यही कटु सत्य मुखर हो उठा है। उदास झुर्रियों में मैंने आशा की चमक देखी, कुछ देने के गौरव का सुख देखा, जब-जब उनसे कुछ पाना चाहा।

सचमुच हम कितने अभागे हैं, जो मुक्त कंठ से, मुक्त हृदय से हमें लुटाना चाहते हैं—अपनी जन्म-भर की कमायी

अपना हृदय-रस, हम उसे स्वीकार नहीं कर पाते । संशयग्रस्त अविवेक से ग्रसित, भ्रमित होकर और जहां लौह-कपाटों में बनावटी रस की एक बूंद भी कैद होती है, वहां माथा फोड़ते हैं और न मिलने पर हाथ मलते पछताते हैं । यह सही है कि हर युग की आवश्यकताएं भिन्न होती हैं, उसके लिए उसे अपने सामने, अगल-बगल देखना और लेना पड़ता है । पर क्या पीछे का जो बीते हुए कल के लिए महत्त्वपूर्ण था, उपयोगी था, आज के लिए एकदम निरर्थक हो गया ? हम उसे लेने से पहले तर्क की कसौटी पर अच्छी तरह कसते हैं । इसमें आधुनिक संदर्भों की, समसामयिकता की तलाश करते हैं और कहीं कुछ मिल गया तो लेने के लिए हाथ बढ़ाते हैं परंतु फिर भी झिझकते हुए, उस पुरातन को उपकृत करने और दया करने जैसी भावना से जुड़े हुए ।

आज भोर की बेला में चक्की की घुर-घुर के साथ चक्की के गीतों की, सांस लेने के लिए ठहर-ठहर कर गाया जाने वाली धुन, सपना बन गयी है । उन गीतों में व्यक्त कथा हर नारी कंठ में आज घुट रही है । उससे उसकी चक्की छिन गयी है । उसके गीत छिन गये हैं या उसी ने स्वयं इसे छोड़ दिया है । इसका कोई उत्तर नहीं है । वह आज भी कहीं सास-ननद द्वारा प्रताड़ित हो रही है, कहीं पति द्वारा अपमानित हो रही है, कहीं बांझपन और विधवापन की दुर्दशा झेल रही है तो कहीं कुंवारेपन का

नवनीत

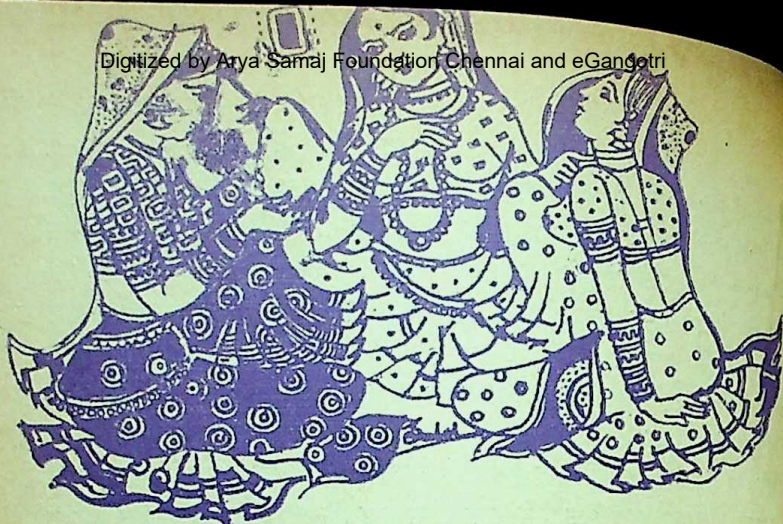
भार बन रही है, पर आज वह व्याध कंटने वाली संजीवनी रागिनी के प्रति अनुराग खोती जा रही है । जो पढ़-लिख गयी है वे भी इस संकट से ग्रस्त हैं कि कहीं वह अनपढ़ व देहाती न समझ ली जायें और जो अनपढ़ हैं, वे उसका उपयोग भूलती जा रही हैं । रोजी-रोटी, काम-धंधे सब के की आग बुझाने और लाज, सम्मान बचाने के लिए नीरस ढर्रे के रूप में हो रहे हैं । श्रम के प्रति, जो संतोष और उत्साह की आस्था थी वह चुकती जा रही है और तभी पारंपरिक गीतों के प्रति मोह भी ।

मेरे घर में गोबर फेंकने का कार्य सात वर्ष की नाजूक कलाई से सात वर्ष तक की झुरियां भरे कंपकंपाते हाथों से करने वाली सुगनी अतीत में खोकर मुझे बताती है- 'ऊ जमाने और रहा बिटिया, हम धमक के करत रहे, धमक के नोन मकुनी जोन जुरै खात रहे, औ जिव दैके अललात रहे- गावै बजावै मां । हमरे सात लरिका भे । एक जांते पर से उठतै, एक खेत निराह के लौटते और एक गन्ना का बोझ पटक के घरे भाग के पहुंचत-पहुंचत ।'

[वह जमाना ही दूसरा था बेटी, हम उठकर काम करते थे, जो भी नमक रोटी (मटर चने की) मिलती थी डटकर खाते थे और प्राण देकर गाने-बजाने के मौकों पर गाते थे । मेरे सात-सात बच्चे हुए पर आखिरी वक्त तक काम करती रही । एक बच्चा चक्की पर से उठते ही हो गया, एक खेत निराकर लौटते ही और एक गन्ने का

एक घर पहुंचते-पहुंचते ।
 मैं बास्नच में पड़कर पूछ बैठी—‘तुम्हें
 हो रही थी तो काम कैसे कर रही
 थी !’ तो वह बोली—‘जब पीर आती थी
 तो हाथ बल कर पीर झेल लेती थी और
 काम करने लगती थी ।’ मैं अभिभूत हो
 सो उस धैर्य की प्रतिमूर्ति पर . . . पर
 बचिवासी भी (आज का अन्न-जल
 का रहा है न, जो बनावटी उर्वरक
 का उपयोग है, रसायनों द्वारा शुद्ध किया
 है) पर एक अन्य वृद्धा ने उनकी बात
 सुनते करते हुए कहा—‘अरे हम सब
 हाथ से हंसिया छोरि लीन तब
 मैं मां से उठीं नाहीं त लरिका रहें
 होइगा होत ।’ (अरे हम सभी
 जोने जबरदस्ती इनके हाथ से हंसिया
 ली तब ये खेत से उठीं, वरना
 खेत में ही बच्चा हो गया होता ।)
 आज आसन्न प्रसवा के बारे में सोचने
 अस्तित्व, दवाइयों, नर्सों, परिजनों के
 चेहरे सब आंखों के समक्ष घूम
 रहे हैं और उसके बीच उस वृद्धा का
 कहानी-सा लगने लगता है । और
 वह सोचने को मन विवश हो उठता
 कि हमने अपनी रागात्मक अनुभूतियां ही
 क्यों बोयी हैं, अपना धैर्य, सहनशीलता
 और मातृत्व के भार को सुखपूर्वक झेलने
 में सफल यदि बहुत कुछ खो दिया है ।
 आज हमारे पास सुख-दुःख बांटने,
 अपने का अवकाश नहीं है, सुनने का धैर्य
 नहीं है, ऐसे टूटे हुए क्षणों में युग-युग से

लोक-
 गीत हमारे लिए बहुत बड़े संवल हो
 सकते हैं । उनके माध्यम से हम कुंठा
 और संवास की स्थितियों से अपने को
 उबार सकते हैं, किसी ग्रंथि से ग्रसित होकर
 मानसिक रोगों से अपना बचाव कर सकते
 हैं, अपने जीवन में जिजीविषा का रस
 भर सकते हैं । दूसरों को आह्लाद दे
 सकते हैं । पर शायद यह सब अब रुमानी
 कल्पनाएं हैं—भावुक मनो की । यथार्थ तो
 यही है कि हम अपने अतीत से कट गये हैं ।
 अपने वर्तमान से विरत हो रहे हैं और
 भविष्य की चिंता में घुल रहे हैं । वह चिंता
 भी केवल भौतिक सुख-संपन्नता के लिए
 है, अपने निजत्व बोध के लिए है, अस्मिता
 के नाम पर झूठे दंभ के लिए है । हम सच्ची
 सहानुभूति के लिए आज अपने सगों के
 बीच भी तरस रहे हैं । यदि कहीं और
 से वह मिलती है, तो उसके चतुर्दिक संशय
 के घेरे इस तरह घेर दिये जाते हैं कि
 आदमी उस सहानुभूति को स्वीकारने से
 हिचकिचाने लगता है । उस सहज मान-
 वीय आत्मीयता के पीछे जासूसी के जाल
 बिछने लगते हैं, उसमें स्वार्थ की गंध
 तलाशी जाने लगती है । लगता है कि ये
 आत्मीय संबंध अपनी पहचान खो चुके
 हैं । आज आदमी आदमी नहीं संशय बन
 गया है ! भाई-चारा, लेन-देन का व्यापार
 बन गया है । पुत्र जन्म हो या विवाह
 का उत्सव—अभ्यागत की तौल-माप उसके
 हाथ के पैसेट या जेब के वजन से होने



लगी है। कहां गयी वहन की वह वेदना जब भाई से रूठने के कारण मानवश वह उसे निमंत्रण नहीं भेजती, किंतु जब सारे मेहमान आ गये तो भाई को न देखकर उसकी छाती व्यथा से फटने लगती थी। कहां गया भाई का वह प्यार, जो वहन के सम्मान की रक्षा के लिए बिना बुलाये ही 'नेवता' लेकर पहुंच जाता है। वहन द्वारा नेवता न भेजे जाने के मूल में भी 'वहन की भाई के प्रति चिंता ही' समझता है कि भोली वहन यह समझती थी कि भाई गरीब है, 'नेवता' लेकर कैसे आ पायेगा! वह कह उठता है—'बावरी वहन! तूने यह क्यों सोचा, अरे, मैं अपनी कमर की कटार बेंचकर भी नेवता ले आता।' भाभी कह उठती है—'अरी, ननद मैं अपनी नाक की बेसर बेंचकर भी नेवता ले आती।' और वहन निहाल हो उठती है—

दरगन आये हं परगन,

सातों ननियाउर,
एक नाहीं आये बिरन भइया,
जेनसे मैं रूठलि।
सासू भेंटहि आपन बिरना,
ननद आपन देवर,
मोरी बजरा के छतिया न फाटें
मैं केहि उठि भेंटों।
अस जिनि जान्यु मोरी बहिनी,
कि भइया दुखित बाटे
बहिनी बेचत्यों में फांडे कै कटरिया,
नेवत ले अवत्यों।
ननदी बेचत्यों में नाकि के बेसरिया,
नेवत ले अवत्यों।

आज हम किसी के आत्मीय मानवी संबंधों को जब कोई दूसरा रंग देने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते, उस समय हम यह भूल जाते हैं कि हमारी परंपरा थी, जहां पिछवाड़े का लुहार, बड़ई, कुम्हार, नाई सभी भाई और कहकर पुकारे जाते थे और उस संबंध

जीति (जयकी) का जयधो गीत

जीति खने के लिए व अपना उत्सर्ग
 करने को तत्पर रहते थे—
 जीति खनवां तोहार भइया मितवा,
 जीति खनवां गढ़ि लावा हो राम
 जीति खनवां बड़ई मइया मितवा
 जीति खनवां जीर लावा हो राम
 जीति खनवां नइया भइया मितवा
 जीति खनवां जनावा हो राम ।
 जीति खनवां मोरे बिरना के अंगवां
 जीति खनवां चढ़ी हूं किरियां हो राम ।
 जीति खनवां वात्मीयता, वह सहानुभूति
 जीति खनवां है तो इन गीतों को जीवन में
 जीति खनवां होगा, इनकी करुणा में भीगना
 जीति खनवां इनमें अवगाहन कर स्वयं को
 जीति खनवां महसूस करना होगा, अन्यथा
 जीति खनवां जो धुन, आज की गूंगी पीड़ा हमारे
 जीति खनवां को, हमारी कोमलता को तिल-
 जीति खनवां जोवती हुई समूचा निगल जायेगी ।
 जीति खनवां जोरजन के कितने ही साधनों का
 जीति खनवां कर लें, जीवन की व्यस्तता,
 जीति खनवां जो मुवों को कितना भी अधिक बढ़ा
 जीति खनवां जो मोठे बोलों के लिए भीड़ में
 जीति खनवां जो तस्सा करेंगे, अकेलेपन की छट-
 जीति खनवां से खंड-खंड होते रहेंगे ।
 जीति खनवां हम अपनी संस्कृति से कटकर
 जीति खनवां जो पृथक् बा रहे हैं—यह सब कुछ ।
 जीति खनवां जो जीति खनवां से जुड़ने के लिए उस संपूर्णता
 जीति खनवां जो नेह से जुड़ने के लिए हमें अपनी
 जीति खनवां जो अपनी परंपरा के गीतों, कहा-
 जीति खनवां जो जुड़ना होगा ।

...

भितरा से निसरीं हैं रानी कौसल्या नैनन
 चुबइ अंसुइया हो राम !
 कौने बिरिछि तरे भीजत होइहैं राम लखन
 दूनो भइया, हो राम ।
 राम त हंये मोरी आंखे कै पुतरिया,
 लछिमन हंये मोर नयका, हो राम !
 सीता त हई मोरी हाथे कलछुलिया,
 कैसे-कैसे जियरा सैं बोधों हो राम !
 राम मोरा गये भिनसरवां,
 लखन गये दुपहरियां, हो राम !
 कैसे क बोधों अपना करेजवा,
 सीता गई संझ जुनियां, हो राम !
 जिनि बरस्या दयवा हो वही कजरी बनवां,
 नाहीं भिजिहैं मोरा लरिकवन हो राम !
 राम क भिजिहैं पीला पितस्वर,



लछिमन क भीजइ पटुकवा हो राम !
 सीता के भिजिहें सोरहो सिंगरवा,
 कैसें कैसें जियरा में बोधों हो राम !
 राम बिना मोरी सूनी अजोधिया,
 लछिमन बिनु चौपरिया, हो राम !
 सीता के बिनु मोरि सूनी रसोइया,
 कैसें का जिया समझावों, हो राम !
 मोरि बजरा के छतिया फाटति नाहीं,
 में कैसें उन्हें बन भाख्यौं हो राम ।

—भीतर से रानी कौशल्या निकलीं,
 उनकी आंखों से आंसू चू रहे हैं । चितित
 हैं, जाने किस वृक्ष तले राम, लक्ष्मण भीग
 रहे होंगे । राम तो मेरी आंखों की पुतली
 हैं, लक्ष्मण मेरे नायक हैं । सीता मेरे हाथ
 की कलछी हैं । मैं कैसें हृदय में धैर्य
 धारण करूं ? राम मेरे प्रातःकाल गये,
 लक्ष्मण दोपहर में, सीता मेरी सांझ की
 बेला में गयीं । मैं कैसें अपने हृदय को
 समझाऊं ? हे देव ! उस कदली वन में
 मत बरसना नहीं तो मेरे बच्चे भीग
 जायेंगे । राम का पीताम्बर भीग जायेगा,
 लक्ष्मण का पटुका, और मेरी सीता का
 सोलहो शृंगार भीग जायेगा । मैं कैसें
 धैर्य धारण करूं ? राम के बिना मेरी
 अयोध्या सूनी है, लक्ष्मण के बिना चौपाल,
 सीता के बिना मेरी रसोई सूनी है । मैं
 कैसें धैर्य धारण करूं ? मेरी वज्रकी छाती
 फट क्यों नहीं गयी, मैंने उन्हें वन कैसें
 भेज दिया ? मेरे मुख से वन जाने की
 आज्ञा कैसें निकली ?

राम के प्रति कौशल्या की यह व्यथा

लोक की हर नारी की व्यथा बन गयी
 राम का व्यक्तित्व जनमानस में
 तरह घुल-मिल गया है कि लोक का
 पुत्र राम है, हर वर राम है, हर कदम
 राम है और उनकी चिता में चितित हो
 उनकी किलकारी से पुलकित होता
 मानस युग-युग से इन गीतों के माध्यम
 से राम से एकाकार होकर सहज तात्काल
 स्थापित करता आ रहा है ।

भोजपुरी विरह गीत

नियनथा हेराइगइलीं, अंखिया पिराइ
 जोहि जोहि बटिया तोहारि
 अंगना म केतनी तरइया देघ गइलौं
 केतनी कोंइयवन के अंखिया निचुरि
 ताकि ताकि रहिया तोहारि
 बेला चमेलिया, कै सेजिया मुखि
 परलीं सेजरिया पै रतिया मुखि
 अंखिया म जरै अगियारि
 आवा मिलनिया के बेलवा फिरति
 परलीं दियरिया म बतिया जरति
 दियना सरापै कोंहार ।

—हे प्रिय ! मेरी नींद खो गयी, तुम्हारे
 राह देखते-देखते आंखें दुखने लगीं
 आंगन में कितनी तारिकाएँ पिघल
 (मिट गयीं, अर्थात् कितनी रातें बीत
 कितनी कुमुदनियों की आंखें भी
 गयीं (अर्थात् भोर होते ही वे बं
 गयीं, लगा कि आंखों के समस्त
 निचुड़ गये । तुम्हारी बाट देखते-देखते
 बेला-चमेली की सेज मुखड़ा चुकी, तब
 पड़ी-पड़ी रात मूर्च्छित हो गयी

वदन परी...
नम मे...
लोक का...
हर...
चित्त हो...
त हो...
में के भा...
हवन ता...

द रहा है (कि मेरा निमोष क्या किया,
विरहिणी के साथ जलने के लिए !)

दीपक और कुछ नहीं वियोगिनी का
शरीर ही है, जिसमें बाती रूपी उसके प्राण
जलते जा रहे हैं और वह विधाता को कोस
रही है !

—प्रधानसंपादक उत्तरप्रदेश
हिन्दी संस्थान, हिन्दी भवन, लखनऊ



(पृष्ठ १०७ का शेषांश)

गीत...
पिताजी...
गदगद...
निचुर...
र...
मुल्लि...
मुल्लि...
फिर...
ज...
गयी...
दुख...
ए...
र...
गंध...
ही...
सम...
देख...
चुकी...
हो...

गये । जाते हुए उन्होंने फिर पलटकर भी
नहीं देखा ।

मां चुपचाप सहमी हुई खड़ी थीं, मुन्नी
भी मां के पीछे आकर खड़ी हो गयी थी,
बिल्कुल स्टेचू की तरह । मुन्ना तो रोने-
रोने को हो गया था, फटी-फटी आंखों से
सभी को देखे जा रहा था । वैसे पिताजी
जब भी इस तरह नाराज होकर गये हैं
तो दुपहर तक लौट आये हैं । लेकिन आज
पता नहीं क्या हो गया है ? दुपहर भी
बीती जा रही है । सभी जहां के तहां चुप-
चाप हैं । बाहर रह-रहकर देख लेते हैं ।
हर चीज जैसे सहम गयी है । मैं अनुभव
कर रहा हूं कि पिताजी के 'ऐसे सिर काटे
जाते... गधे तोड़े... जाते हैं...' शब्द
गूंजते हुए दूर तक चले जाते हैं, बार-बार ।
चलो यह तो हुआ कि पिताजी के एक
टुकड़े में ही सही, दर्द तो पैदा हुआ ! आद-
मियत की असलियत ने सिर तो उठाया,
टुकड़ों में बंटने का सिलसिला तो चौंका !

सभी की निगाहें दरवाजे के पार तक जा
रही हैं । सौताबड़ी, नागपुर-४४००१२



हमंत कारडे का जीवन-चरितात्मक लेख



महान यूरोपियन संगीतकार : फ्रंझ शूबर्ट

विश्वविख्यात संगीतकार फ्रंझ शूबर्ट की हाल ही में एक सौ पच्चीसवीं पुण्यस्मृति सारे विश्व में मनायी गयी।

केवल इकतीस वर्ष की अल्पायु में गरीबी की उपेक्षा उसे सहनी पड़ी, लेकिन उसकी मान्यता प्राप्त स्वर-रचनाएं उसके अंतकाल में अंधेरे में ही थीं। उत्कृष्ट संगीत रचनाएं उस वक्त किस हालत में थीं, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसके अंतकाल के बाद कुछ पुराने कपड़े, फटी चद्दर तथा संगीत नोटेशन के कुछ कागज—इतनी ही भौतिक चीजें उसके पास पायी गयी थीं।

सन १७९७ में उसका जन्म हुआ। वह घर में तेरहवां बालक था। पिता स्कूल मास्टर थे। पिता तथा बड़े भाई से संगीत की प्राथमिक शिक्षा उसे मिली। वियना के कॉनव्हिक्ट स्कूल में, जो एक-मात्र संगीत स्कूल था, उसे नौकरी मिली। स्कूल के वाद्यवृन्द में वह जोश के साथ सहभागी होता था। जब वह सोलह वर्ष का था, उसी वक्त कॉनव्हिक्ट स्कूल छोड़कर पिता जिस स्कूल में नौकरी पर थे, उसी स्कूल में निम्नतर क्लास को पढ़ाने

नवनीत

के लिए अध्यापक की हैसियत से वहाँ पर रहा।

असल में उसका दिल अध्यापक नौकरी में लगता नहीं था, किन्तु स्थिति-वश तथा पिता के डर से अध्यापक की नौकरी कर रहा था। कुछ दिनों उसे काफी ज्ञान प्राप्त होने लगे। सौभाग्य मिला। तीन सिफनीज़, बाथे, ऑपेरा, चर्च-संगीत तथा लगभग से भी अधिक गीतों को उसने स्वर दिया था।

सन १८१६ का साल उसके जीवन में सही दिशा देने वाला ठहरा। विभाग का अध्यासक शोबर नाम उसका एक मित्र था। उस मित्र की स्थिति काफी अच्छी थी। उसने उसका संगीत सुना था। संगीत का अच्छा ज्ञान जिसे है, उसके लिए अध्यापक की मामूली-सी नौकरी करना, मूलतः जीवन के महत्वपूर्ण समय की बरबादी है, ऐसा शोबर को लगा। शूबर्ट को अध्यापक की नौकरी छोड़ने के लिए कहा। इतना ही नहीं, उसने उसे इस्तीफा देने के लिए उसको

शूबर्ट दया। और शूबर्ट की उसने
 शक्ति की मदद भी की। अब उसको
 शूबर्ट ने बच्चों को गणित पढ़ाना नहीं था,
 शूबर्ट शब्दों की स्पर्शिंग बताने की
 शक्ति नहीं थी, बस, अंतरंग के भावों को,
 शूबर्ट को स्वरबद्ध करना था।
 शूबर्ट तथा नादों में अब पूरा समय
 बिता रहे थे। दिलोजान से रात-दिन
 शूबर्ट को वह स्वयं समर्पित हुआ
 शूबर्ट के पश्चात् एक गीत स्वरबद्ध
 शूबर्ट बना गया। मित्र की सलाह एवं
 शूबर्ट को एक ईश्वरीय चमत्कार ही
 शूबर्ट के लिए।

शूबर्ट ने मात्र उसकी गरीबी
 शूबर्ट का उलटा लाभ उठाया।
 शूबर्ट हो सका, उतना कम मानधन
 शूबर्ट संगीत रचनाएं उन्होंने खरीद
 शूबर्ट के कठिन दिन बीत रहे थे।
 शूबर्ट एक-दो ट्यूशन मिल जाती
 शूबर्ट कुछ पैसे नसीब होते थे। 'दी
 शूबर्ट शीर्षक मानी हुई स्वर-रचना इन्हीं
 शूबर्ट की देन है।

शूबर्ट १८२६ का साल उसकी स्वर-रच-
 शूबर्ट की दृष्टि से भरापूरा था। शूबर्ट
 शूबर्ट जीवनकाल में यह साल उत्कृष्टतम
 शूबर्ट का फलरूप दर्शन था। 'अद्वान्ते'
 शूबर्ट मशहूर शोकगीत के ध्वनिमुद्रण के
 शूबर्ट ने शूबर्ट को गले लगा लिया था,
 शूबर्ट हाथ चूम लिये थे। यह उत्कृष्ट
 शूबर्ट स्वरों की मानो भाव-यात्रा



फ्रान्स शूबर्ट

ही है। शोकपूर्ण स्वर-रचनाओं की निर्मिति
 में पश्चिमी संगीतकारों में शूबर्ट सर्वोत्तम
 कलावंत था।

घर में सत्रह बच्चे थे। संगीत स्कूल
 के होस्टल में नित्य उपयोग का साहित्य
 भी उसके पिता उसे नहीं दे सके। पेटभर
 खाना नहीं मिलता था। वियना के जाड़े
 के दिनों में अपर्याप्त वस्त्र तथा बिस्तर के
 कारण वह सिहर उठता था। शरीर सदैव
 से सिहरता था। ऐसी हालत में वह शिक्षा
 पाता था।

'दी अर्ल किंग' गीत दृश्यचित्रों का
 उत्तम नमूना है। इस गीत के अंतर्गत
 पियानो की ध्वनि को एक विश्व चमत्कार
 माना जाता है। घने काले अंधेरे को चीरते
 अश्वारोही तेज़ी से जा रहा है—कालशत्रु

उसका पीछा कर रहा है . . . ऐसा दृश्य पियानों की ध्वनि से आँखों के सामने आ जाता है । पियानों की द्रुतध्वन ही एक स्वयंपूर्ण गीत का अनुभव देती है । आनंद तथा आश्चर्य तो इस बात का है कि इस गीत को शूबर्ट ने एक दुपहर को एक साथ एकदम स्वरबद्ध किया था ।

कविता संग्रह की विशिष्ट कविता पर ध्यान देकर, एक-दो बार पढ़ने के पश्चात् उसे जैसे चाहिये, वैसे स्वर मिल जाते थे । और कवि का उद्देश्य शब्दों के साथ आयी हुई उसकी भावना को वह बड़ी समर्थता के साथ स्वरों में पकड़ता था । नोटेशन लिखकर रखता था । अति उच्च कोटि की प्रामाणिकता के साथ स्वरमालाएं ढूँढ़ ली जाती थीं । फिर संगीत पर निर्मल निष्ठा जो थी, वह चैतन्यदायी रूप में सज उठती थी ।

कहानी एक इतवार की है : मित्रों के साथ शूबर्ट घूमने निकला । एक रेस्तरां में कोने की एक मेज के समीप उसको एक मित्र दिखाई दिया । मित्र के हाथों में कविता की पुस्तक थी । वह क्या पढ़ रहा है, यह जानने की जिज्ञासा से उसने मित्र के हाथों से किताब ली । खोलकर एक कविता पढ़ी और तुरंत बोल पड़ा, 'मिल गयी ! इस कविता की स्वरमाला मिल गयी ! हाय ! मेरे पास कागज का टुकड़ा भी नहीं कि मैं नोटेशन लिख सकूँ . . . ' मित्र के पास एक पुराना टिकट था, बस उसी टिकट के दूसरी तरफ नोटेशन तैयार । शूबर्ट का

स्वरबद्ध किया हुआ, शेक्सपियर का 'हार्क दी लार्क' गीत सारी दुनिया प्रख्यात हो गया ।

गीतों को स्वरबद्ध करने की रफ्तार इतनी तेज थी कि किस गीत किस ढंग से स्वरबद्ध किया गया है, कुछ क्षण वह भूल जाता था । एक मजबूत बड़ी मजेदार घटना हुई । पियानो एक मित्र ने अपनी लिखावट में एक नोटेशन रख दिया । शूबर्ट ने उसे पियानो बजाया और बोला, 'अच्छा है । किसने स्वरबद्ध किया है यह ? ' मित्र तुरंत कह उठा, 'क्यों ? तुमने ही तो इस गीत को स्वरबद्ध किया है । दो हफ्ते पहले तुम्हीं ने तो स्वरबद्ध किया था यह नोटेशन । मैंने सोचा कि अपने हस्ताक्षर में लिखूँ और लिख बाँट दूँ बस ! ' ऐसी थी शूबर्ट की मानसिक स्थिति इतनी अल्प आयु में उसने छः सौ से अधिक गीतों को स्वरबद्ध किया । शूबर्ट ने ए. टी. वी. वाले तो उसकी रचनाओं को ध्यान ही नहीं दिया करते थे किन्तु तो धंधा ही करना था । उन्होंने उसकी रचनाएं लीं । शूबर्ट की कला पर ध्यान कर रहे थे वे । अलौकिक कला-प्रभाव यह कलाकार आयु के अंत तक तथा किस्मत का मारा ही रहा ।

शूबर्ट का समकालीन संगीतकार विन भी वियना निवासी ही था । विन की आर्थिक स्थिति शूबर्ट की स्थिति की कई गुना अच्छी थी । उसके मित्र थे । बिथोविन को तो मृत्यु से पूर्व ही

र का... तया नाम मिले थे। शूबर्ट के मित्रों
 दुनिया... शूबर्ट जैसी ही थी। इसी
 विथोविन को शूबर्ट के बारे में
 की उ... कुछ मालूम नहीं था। किंतु, शूबर्ट
 कस भी... विथोविन के लिए आदर था तथा
 गया है, ... एक मित्र के जरिये विथोविन
 एक म... शूबर्ट की भेंट हुई थी। शूबर्ट के कुछ
 पियानो... का संगीत सुनकर विथोविन ने कहा
 'एक नोट... शूबर्ट को ईश्वर से अलौकिक
 पियानो... तो देन मिली है।'
 किसे... विथोविन मृत्यु शैया पर था और वह
 रंत क... शूबर्ट के संगीत नोटेशन पढ़
 त को स्वर... दिल से शूबर्ट की संगीत-कला की
 हैं ने तो... करता रहा। विथोविन की मृत्यु
 र सोचा... शूबर्ट को गहरा दुख हुआ। आंसुओं
 र लिख... चेहरा भीग गया। तीस साल
 सिकसि... शूबर्ट को उस समय कल्पना भी नहीं
 : सौ से... उनकी जीवन-यात्रा सिर्फ एक साल
 शूबर्ट... ही है। विथोविन की कब्र के पास
 याओं की... कब्र हो, यही शूबर्ट की अंतिम
 थे कि... थी। उसकी यह आखिरी खाहिश
 उन्होंने... उसकी कब्र पर लिखा हुआ है—
 इस प्रस्तर के नीचे—
 मोन छिया संगीत खजाना।
 फिर भी जीवन यात्रा—
 है एक आशा सपना।

इतनी छोटी-सी जीवन यात्रा में इस
 विलक्षण संगीतकार का अंतःकरण ममता से
 भरा था। कष्ट था, दुःख था, किन्तु साथ
 ही साथ मित्रों का प्रेम था। घर में गरीबी
 के कारण संगीत की शिक्षा कैसे हो पायी
 होगी, इसकी कल्पना करना संभव नहीं।
 पंछी आसमान में उड़ते हैं, उन्हें कौन शिक्षा
 देता है, उनके कौन से स्कूल होते हैं, जहां
 उन्हें उड़ने का प्रशिक्षण मिलता है ?
 उन्हें तो जीवन में जन्म के साथ ही ईश्वरीय
 देन मिलती है, ठीक उसी प्रकार शूबर्ट
 संगीत का खजाना लेकर ही मानो अल्प
 जीवन लेकर आया था।

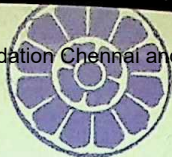
भव्य कपोल, सुंदर होंठ, धनुषाकार भौंहें,
 नीली आंखें तथा पूर्ण आत्मविश्वास का
 दर्शन रूप था शूबर्ट। अभिजात कलापूर्ण
 संगीतबद्ध करने वाले महान संगीत-
 कार ने संगीत कला के लिए अपनी
 अल्प आयु का होमकर महायात्रा के लिए
 अलविदा ली। एक महान जीवन ने स्वरो
 का खजाना पीछे छोड़कर प्रस्थान किया।
 पाश्चात्य संगीत-जगत में शूबर्ट अमर है।
 उसकी रचनाओं के साथ उसकी यादें
 हमेशा तरंगित रहेंगी।

(‘महाराष्ट्र मानस’ से साभार)



पिस्टर मॉलें से एक व्यक्ति ने पूछा कि क्या कभी आपको ऐसी रचना बनाने में
 मिला जो आपकी मृत्यु के बाद भी जीवित रहे ?
 मॉलें ने जवाब दिया—अभी तक तो मैं ऐसी ही रचना बनाने का यत्न कर रहा हूँ
 मैंने पहले मुझे जीवित रखने में कामयाब हो सके। —डा. गोपाल प्रसाद ‘वंशी’





मीनाक्षी गुप्त द्वारा आलेखित एक अज्ञात तपस्विनी की रोमांचक जीवनी

देवांशिनी प्रवदा कुल छब्बीस वर्ष की तरुण वय में, इस काया के चोले को चुपचाप उतार कर, अनायास हिमालय की शिखरमाला में अन्तर्धान हो गयी। कहा गया कि उसकी मृत्यु हो गयी है।...

...लेकिन यह क्या कि आधी रातों में अचानक उसके कमरे में से उसका आवाज सुनायी पड़ती है। वह अपनी कलाकार छोटी बहन मीनाक्षी के सपनों में सांगोपांग प्रकट होती है। उससे लम्बी देर तक बातें करती है। कहती है कि वह तो कहीं गयी नहीं... उसे नहीं पता कि उसकी मृत्यु हो गयी है।

प्रवदा श्रीमां और श्रीअरविन्द की आत्मजा बेटी थी। श्रीमां की कृपा के उसे गहन अनुभव हुए थे। अपार कष्टों के बीच भी भाव, ज्ञान, सौन्दर्य और प्रेम का जो अनाहत जीवन वह जीती चली गयी, वह उसके जन्मजात योगिनी होने का प्रमाण देता है। अपनी ढेरों कविताओं, कथाओं, डायरियों, लेखों और खास कर अपने आत्मिक सहायत्रियों और सहचरों को लिखे गहरे मन्थनशील पत्रों में, वह अपनी आत्मा का अमृत निचोड़ गयी है। यहां प्रस्तुत उसकी जीवन-कथा में, उसकी प्यारी नन्ही बहन मीनाक्षी ने अपनी जीजी के जीवन को जिस भाव-विह्वलता और तलस्पर्शिता से लिखा है, उससे देवांशिनी प्रवदा की महान आत्मा की एक झलक पाठकों को अवश्य मिल सकेगी।

‘वह—प्रवदा गुप्ता—देवांशिनी थी, जगदीश्वर की वह चित्रकला थी, श्रीमां की आत्मजा थी... उसका आत्म-संघर्ष अबूझ था। वह पल-पल अपने अस्तित्व की यातना से लड़ रही थी। तिल-तिल हवन हो रही थी।... उसकी अनुभूति अतल-वेधी थी, वह विकास के उच्च से उच्चतर शिखरों

पर आरोहण करने का बड़ा भीषण संघर्ष कर रही थी। वह कितनी सच्ची और निरासक्त थी।... वह अपने आत्म-संघर्ष में अंत तक घुटती हुई, काया का चोला फेंककर चली गयी।’

(श्री वीरेंद्रकुमार जैन : २४ मार्च, १९४० के पत्र में)

गीर्वाण

चले हो
हो गये।

से उल्लस
के सपनों
कहतो है
है।

पा के उभे
और प्रेम
त योपिनी
रयों, लेखों
हरे मन्थन
हां प्रस्तुत
जीजी के
देवांसितो
गी।

भीषण सं
सन्धी वी
ने आत्म-न
या का च

मार्च, १९४०
के पत्र

‘भगवान की ओर से कुछ ज्योतियां बहुत थोड़े समय के लिए ही आती हैं, परन्तु उनका महत्त्व भी यह संसार समझने में असमर्थ रहता है। अतः वह परम ज्योति उस ज्योति को फिर जल्दी ही अपने अन्दर समेट लेती है। प्रवदा गुप्ता ऐसी ही एक दिव्य ज्योति थी।’

(श्री करुणजी, श्रीअरविन्द निकेतन चरथावल, मुजफ्फरनगर)

‘प्रवदा ने जीवन भर ही संघर्ष किया; क्योंकि उसकी विचारधारा इस युग से कहीं आगे की थी, और साधारण मानव-बुद्धि की समझ के बाहर थी। हर संभव प्रयास किया था उसने परिस्थितियों से समझौता करने का। और जूझते-जूझते उसका स्थूल शरीर भले ही हार मान गया हो, किंतु उसकी आत्मा ने कभी हार नहीं मानी। इसका प्रतीक थी वह दिव्य आभा जो उसके चेहरे पर, ४४ घंटे तक बर्फ की सिल्लियों पर पड़े रहने के पश्चात् भी आलोकित रही।’

(श्रीमती पुष्पलता सक्सेना, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, साहू रामस्वरूप क. म. वि. बरेली।)

‘प्रवदाजी को शायद सही-सही समझा नहीं जा सका। दुनिया ऐसी विभूतियों को जीतेजी नहीं समझ पाती। प्रवदा किसी जन्म की तपस्विनी थीं। ... संसार उन्हें भाया नहीं तो चली गयीं। इनका मन संसार में था ही नहीं।’

(श्री ब्रह्मेश त्रिपाठी, ‘राष्ट्रधर्म’ लखनऊ)

‘...विप्लव होकर उसे पूर्ण समझ के साथ प्रतिकूल परिस्थितियों में से होकर विकसित होने का निर्णय लेना पड़ा। और जब उन परिस्थितियों में विकसित होने का रास्ता अवरोध हो गया तो उसे मारना छोड़ना पड़ा।’

(श्री प्रत्युषकुमार गुप्त (भाई), प्रवदा मुन्नालाल इन्टर कॉलेज, वसोरागंज, बदायूँ) ये हैं कुछ उद्गार, जो अनेक प्रबुद्ध गणमान्य व्यक्तियों ने मेरी जीजी प्रवदा गुप्ता की दिव्यता, अतर्कित परम किम्वदन्त शक्ति एवं ज्योति को पहचान तथा स्मरण कर व्यक्त किये थे।

७ अक्टूबर, १९५२ को मंगली नक्षत्र में एक साधारण परिवार में जन्मी मेरी बड़ी बहिन उन दिव्यात्माओं में थीं, जिन्होंने सही पहचान और मूल्यांकन उनके जीवन काल में नहीं हो पाता।

लेकिन, मैंने उन आत्मिक गह्वरों की झलक ले ली थी, जिसमें उतरते-उठते उन्हें देख चुकी थी। मगर मेरी यह समझ वैसी ही थी, जैसे गूंगे का गुड़। एक बार उन्होंने मुझसे कहा भी था, ‘हां मीठा, मुझे कहीं कुछ समझ पाती है। बड़ी बुद्धि होती है, यह देखकर।’

किंतु पूरा उन्हें मैं भी कभी नहीं समझ पायी।

एक पत्र में उन्होंने मुझे लिखा ‘मुझे इस बात का बहुत दुख है कि मुझे कोई भी नहीं समझता। ... कोई बात पत्र नहीं। और, एक तुम से कहूँ, तो तुम

मेरी बात नहीं समझ पातीं। यह बात अच्छी तरह जान गयी हूँ।' मैं उन्हें जीजी कहती हूँ, पर जीजी से एक उन्हें अज्ञात तपस्विनी, देवांशिनी, माँ की सच्ची आत्मजा मानती थी। मेका संपूर्ण जीवन अध्यात्ममय था। वच-), प्रवचन से ही, उनके सारे क्रिया-कलाप आध्या-ज, बदाय, भक्तता से परिवेष्टित थे। ज्ञान, भक्ति प्रबुद्ध और कर्म की एक अद्भुत त्रिवेणी मेरी जी प्रवचन के बंतर में सहजरूप से प्रवा-म चिन्ता में रहती थी।

मेरी जीजी ने भौतिक कष्टों की परा पर ही अपने नेत्र खोले। वे गंभीर नम्र स्वर से ही निश्छल और निष्क-जन्मी मेरी प्रतीति थीं। सत्य और सच्चे प्रेम की थीं, जिनकी प्रतीति सदा तीव्र, किंतु अन-उनके जीवन में नहीं थी।

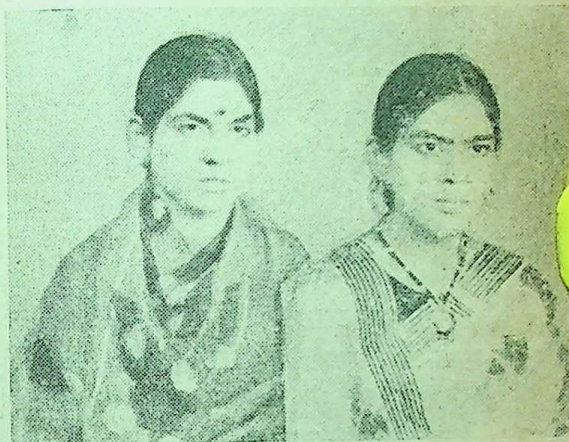
म दिव्यात्मा ने दुनिया को कुछ देना चाहा, किंतु बदले दुनिया ने उसे क्या दिया ? छल-कपट और झूठा व्यव-। न जाने कितनी बार वे

न जाने कितनी बार उन्होंने शाश्वत सत्यों पर ध्यान दिया, हवा-महल खड़े किये, जो देखते देखते धराशायी होकर गिर पड़े। न जाने कितनी बार वे निराशांध होकर अपने पव पर आगे बढ़ीं, ज्योति की तलाश में निराशा का घना अंधकार उनके चारों ओर अधिक गाढ़ा होता चला गया। लेकिन, उन्होंने आशा का परित्याग

नहीं किया, और ना ही अपने धैर्य को छोड़ा। वे जितनी हताश होती गयीं, उतनी ही उनकी यह आस्था और अधिक बल-वती होती गयी कि देवनिर्मित यह जगत न मिथ्या है, न उद्देश्यहीन।

०००

और तभी उनके जीवन में एक अप्रत्या-शित मोड़ आया।



प्रवदा अपनी ममी चित्रकार बहन मीनाक्षी के साथ

हिंदी में एम. ए. करने के पश्चात् वे बरेली कॉलेज, बरेली में बी. एड. का प्रशि-क्षण ले रही थीं कि एक दिन उन्हें पांडि-चेरी आश्रम से आये श्री देवदत्तजी के मुख से श्रीअरविंद-दर्शन के बारे में सुनने को मिला। जैसे, 'पारस' का स्पर्श हो गया हो। श्री अरविंद-दर्शन से बेहतर ढंग से परि-चित होने की तीव्र आकांक्षा उनके मन में जाग उठी। उन्होंने ढूँढ़-ढूँढ़ कर श्रीअर-

विद-विरचित ग्रंथों का अध्ययन आरंभ कर दिया ।

इस बीच, पिताजी का तबादला बरेली से पीलीभीत हो गया ।

जीजी की पढ़ाई छूट चुकी थी । नौकरी के लिए निष्फल प्रयास करते-करते, मन निराशा से लबालब भर चुका था । दिशा-शून्य और लक्ष्य-विहीन जीवन में एकमात्र आत्मिक संबल था श्री-अरविद-दर्शन का ।

श्रीअरविद के प्रवचनों से प्रभावित होकर, प्रेम और भक्ति की उनकी भावना अब मानवीय सम्बन्धों पर आधारित न होकर, शुद्ध-सूक्ष्म शाश्वत सत्य की ओर उन्मुख होने लगी थी ।

यह समय उनकी ऐसी शून्यात्मक स्थिति का समय था, जब अरविद-दर्शन के आलोक में उनके सारे आंतरिक एवं बाह्य संघर्ष मंद पड़ चुके थे । सारे भावावेग शांत हो गये थे । उन्हें न भूत का दुख था, न भविष्य की चिंता । वर्तमान में थी, तो एक सर्व-व्यापक नीरवता । एक या डेढ़ वर्ष का यह समय उनके लिए बड़ा आनंदमय और विश्रांतिदायक सिद्ध हुआ ।

पीलीभीत में एक 'कोचिंग-क्लासेस'

किस्म के महिला विद्यालय ने उन्हें किसी साक्षात्कार के शिक्षिका के पद नियुक्त कर दिया । डूबते को तिनके सहारा मिला, जैसे । शिक्षण से उन्हें आनंद से ही सहज लगाव था । इस महाविद्यालय में वे हाई स्कूल से लेकर बी. ए. तक कक्षाओं को चार-चार विषय तक पढ़ाती थीं । इतना श्रम करने का जो परिणाम

होना था, वही हुआ । उनकी पहले से दुबले काया अब 'निम्न तल' 'चाप' से भी पीड़ित रहने लगी ।

एक डॉक्टर को दिखाया, तो वे बोले, 'आश्चर्य है ! इतना कम रक्तचाप होते हुए भी आप चल-फिर भी कैसे लेती हैं ? इस स्थिति में तो बार-बार कभी भी चक्कर खाकर बेहोश होकर गिर सकती थीं ।

उनकी और घरवालों की सलाह थी कि विद्यालय की नौकरी छोड़ दें । महज दो रुपये के लिए इतनी मेहनत करने का क्या जरूरत है ? किंतु, उनकी दृष्टि पैसे का इतना महत्त्व न था, जितना कि दूसरों का था, दूसरों को शिक्षित करने का था । एक वर्ष पश्चात्, महाविद्यालय के प्रधानाचार्या ने मुझे भी सब कक्षाओं में



उन्होंने शिक्षा के हेतु रख लिया।
 हम दोनों ने जैसे-तैसे काटा,
 प्रधानाचार्या का अन्याय न
 करने के कारण, हम दोनों ने वहाँ से
 दूर दे दिया, और 'श्रीअरविन्द स्मारक
 शिक्षा-केंद्र' की स्थापना कर ली।
 और जीजी ने विद्यालय की प्रधाना-
 चारी सिफारिश से पी-एच. डी. करने
 का फैसला कर लिया था। पी-एच. डी.
 द्वारा अरविन्द-दर्शन से ही संबंधित
 अरविन्द-दर्शन की मूल मान्यताएं
 हिंदी साहित्य में उनकी अभि-

प्रसंग में यह कह देना उचित होगा
 कि पी-एच. डी. के लिए यह विषय
 चुना था, बल्कि इस विषय के गहन
 अध्ययन के लिए ही पी-एच. डी. को
 माध्यम के रूप में चुना था।

०००

उनके जीवन-काल की यह अवधि
 परिस्थितियों और भीषण विष-
 यों से पूर्ण थी। उन पर स्वस्थापित
 शिक्षा-केंद्र की जिम्मेदारी तो
 ही, उनकी इच्छा के विरुद्ध उनके
 जीवन की बातें भी चलनी आरंभ हो गयीं
 । एक ओर वे विवाह-बंधन में नहीं
 आ जाती थीं, तो दूसरी ओर उन्हें
 विवाह पर भी दया आती थी, जो
 विवाह के लिए दर-दर की ठोकें खा
 ले। अंत में माता-पिता को उनके
 जीवन और संघर्षों से मुक्त करने के लिए

उन्होंने विवाह के लिए स्वीकारोक्ति दे दी।
 स्वीकारोक्ति तो दे दी, किंतु उनका
 आंतरिक संघर्ष इस पर भी समाप्त न
 हुआ, और उल्टे दिनोंदिन उग्र होने लगा।
 और जब यह संघर्ष असह्य हो उठा, तो
 उन्होंने इससे मुक्ति पाने के लिए मन ही
 मन पांडिचेरी आश्रम में जाने का निश्चय
 किया। और एक दिन माता-पिता की
 अनुपस्थिति में केवल मुझे बतलाकर, वे
 चुपचाप अकेली ही पांडिचेरी चली गयीं।
 उस समय मैंने उनके नेत्रों में दिव्य ज्योति
 के दर्शन किये थे। और मैं पूर्ण आश्चर्य थी
 कि कौन है दुनिया में ऐसा, जो इस दिव्य
 शक्ति का बाल भी बाँका कर सके।

किंतु, पांडिचेरी पहुंचकर भी उनके
 मन को शांति न मिल सकी। वहाँ उन्हें
 अनेक कष्ट अनुभव हुए। वहाँ सभी उन्हें
 संदिग्ध दृष्टि से देखते थे। शायद सबका
 खयाल था कि घर से चोरी-चोरी आकर
 उन्होंने कोई निन्दनीय या अशोभनीय कार्य
 किया है।

खैर, उनके दुखी मन ने इन व्याघातों
 को भी सहन किया। और साथ ही सहन
 किया वह आर्थिक कष्ट भी, जो आश्रम में
 पहुंचने और वहाँ रहने पर उन्हें हो रहा
 था। ऊपर से घर की चिंता, विशेष रूप से
 अर्द्ध-विक्षिप्त-सी मां की कि उन पर मेरे
 इस तरह घर छोड़ देने की खबर सुनकर-
 क्या बीती होगी ?

और एक दिन मुझे वहाँ से मिला उनका
 आंसुओं से भीगा लंबा-चौड़ा पत्र, जिसके

एक वाक्य ने मुझे बीध कर रख दिया ।
लिखा था, 'समझ में नहीं आता, मैं इन
प्राणों को कहां फेंकू ?'

०००

चार-पांच दिनों में ही, माता-पिता
उन्हें पांडिचेरी आश्रम से वापस ले आये ।

और पांडिचेरी से वापस आने के बाद,
१ मई, १९७८ को आर्य समाज मंदिर में
जीजी का विवाह हो गया । और शायद
इसके साथ ही, विवाह ने उनके अंत की
व्यवस्था भी कर दी; क्योंकि विवाह के
दिन से ही उनके अंत का प्रारंभ भी हो
गया । विवाह के बाद, उनके जीवन का
प्रत्येक क्षण यातनाओं का विष पीते-पीते,
और दारुण कष्टों की ज्वालाओं में जलते-
जलते व्यतीत हुआ । उन दिनों की उनकी
मनःस्थिति का अनुमान, उन दिनों लिखी
गयी उनकी 'अंगारा' कविता के इन अंशों
को पढ़कर लगाया जा सकता है :

पर, दुनिया के अंधेरे में, एक अंगारा मिला,
अभागी समझ बैठी उसे

ज्योतिपुंज ज्योतिर्मय

अलौकिक, स्वर्णिम, दमकता, झलमलाता
आशा में दमके नयन,

ललककर उठा लिया,

हृदय से लगा लिया, किंतु...

आह ! दर्द से मैं चीख उठी, सिसक उठी
झुलस गया अंग-भंग । ओह, सोचा था,
जिससे अधियारा मिटाना,

वह ज्योतिपुंज नथा । प्राणों को भस्म करके,
रख बनाने वाला,

नवनीत

बिलकुल अन्यों जैसा, मात्र अंगारा ही
अं . . . गा . . . रा . . . !

और जब इस अंगारे से भस्मीभूत
उनकी सहन-शक्ति जवाब देने लगी,
वह 'नहीं चाहिये' कहकर विद्रोह कर उठी,
कुछ भी कहें, कुछ भी न चाहिये
विष से बुझा मोठा संगीत न चाहिये
दो भर-भर के प्याले तिकत जहर के,
यह विषमय मुधा के कलश नहीं चाहिये
दो घृणा और अपमान कितना भी,
अहसानों से बोझिल दया की
भीख नहीं चाहिये ।

विष से भरे बाणों से उर को चीर दे,
जब चाहें झिड़क दें पशुवत, दुतकार
भरे बाजार में,
दुलसुल प्रगाढ़ालिंगन का
क्षणभंगुर भाव नहीं चाहिये ।
रहे सूखी नेह के जल से नदी,
तिलमिल, मुखा देने वाला अंगारा
हमें नहीं चाहिये ।

३० अक्टूबर, १९७९ को मुझे बिदे
पत्र में वे अपने पति के बारे में कहती हैं :
'इनकी प्रसन्नता का तो प्रश्न ही नहीं
उठता । शायद जीवनभर बड़े से बड़ा त्याग
करके, अपने आदर्शों से गिरकर, और
अपनी आत्मा को गलाकर भी मैं इतने
प्रसन्न नहीं कर सकती । यदि यही मेरा
भाग्य में होता, तो क्या भगवान मुझ जैसे
जड़की को ऐसा घोर संसारी, अहंकारी
भोगी कुटिल व्यक्ति देते । मुझे ऐसा बीहड़
कर्मक्षेत्र देते ।'

राही।
स्मीमुन
लो, त
इ कर उ
हिये
चाहिये
हर के,
हैं चाहिये
मा मो,
चोर दे,
दुतकार

वैदिक जीवन की अपनी यातनाओं
के लिए मुझ पर ही जाहिर करती थीं।
और से वे कुछ नहीं कहती थीं, और
अंतर की घनीभूत वेदना को चुपचाप
अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों को
नहीं ही निभाती रहती थीं।
स्तुतः जब उन्होंने स्वयं को विवाह
करा रखा था, तभी से उन्होंने
को तिल-तिलकर मारना प्रारंभ कर
रखा। २४ घंटों के उनके दिन में नींद
२-३ घंटों को छोड़कर, विश्राम के
कोई स्थान न था। निरंतर काम,
काम और काम। घर का काम,
बालों का काम, और अपने पति
का। इन क्षणों में, बस एकाध घंटा
को 'थीसिस' के लिए सुरक्षित था।
के लिए नियत २-३ घंटे भी प्रायः
वागते या रोते-रोते ही बीतते थे।

०००

उत्तम निधन से ३-४ दिन पूर्व वे अपने
मुझे निधन से रानी वाग (अपने निवास-
कहती हैं) गयी थीं, तभी शारीरिक और
वेदनाओं की स्थिति में १३ मार्च,
की रात्रि को कॉलरा हो गया था।
उन्होंने मुझे मर्मभेदी शब्द निकले थे,
'यदि तेरी ऐसी ही इच्छा है, तो
अधिक कष्ट देने से अच्छा है कि तू
मर जा ले।'

और इसके तुरंत बाद ही उनका
निधन हो गया। छटपटाती उनकी आत्मा
बरीर की कारा से मुक्त होकर

अनंत में विलीन हो गयी।

अपने को जैनेंद्रकुमार के 'त्यागपत्र'
उपन्यास की मृणाल मानकर, वे मुझे
प्रमोद कहा करती थीं। उनके जाने के
बाद मुझे लगा, मेरी मृणाल मुझ प्रमोद
को अकेला छोड़कर चली गयी। 'त्यागपत्र'
के प्रमोद की ही भांति मैं अपनी जीजी से
मिलना तो दूर उनके दर्शन भी न कर
सकी। उनके कमरे में गयी, तो पाया कि
सब वस्तुएं अपनी जगह मौजूद थीं। मौजूद
नहीं थीं, तो मेरी जीजी, जो कहीं भी नजर
न आते हुए भी, कण-कण में प्रतिभासित
हो रही थीं।

जीजी सदा-सदा के लिए चली गयीं
हैं, ऐसा लगता ही न था। लगता था, अभी-
अभी कोई दुःस्वप्न देखकर उठी हूं।

और, उनके निधन के कुछ समय
पश्चात्, मुझे हुआ, एक ऐसा अलौकिक,
अनुभव, जो मेरी जीजी से ही संबंधित है।

०००

जीजी की याद आते ही, एक बात
सबसे अधिक मन को कचोड़ती है,
और वह यह कि घर-परिवार में और
बाहर कोई भी उन्हें समझ नहीं सका
था। मां ने वैसे यह जान लिया था कि
आध्यात्मिक भावावेग में आसानी से
बह गयीं उनकी भोती बेटी कहीं संन्या-
सिनी न हो जाये, उन्हें घरेलू कामों में
निपुण बनाने की ओर मां ने अधिक ध्यान
दिया था। मां ने ही जीजी की पढ़ाई-
लिखाई अधूरी छोड़वाकर उन्हें विवाह

बंधन में बांधने का अथक प्रयास किया था। वे चाहती थीं कि घर-परिवार और संसार से जीजी का मोह छूटने न पाये।

जीजी ने भी उनकी भावनाओं का आदर कर उनके सब आदेशों को शिरोधार्य किया था। उन्होंने अपना जीवन मां तथा परिवार के सदस्यों के सुख के लिए समर्पित कर दिया था। और इसके बदले में उन्हें चाहिये था—प्रेम, शांति और सर्वत्र छाया उल्लास। अपनी इस आंतरिक अभिलाषा को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया था, 'जी चाहता है, चारों ओर प्रेम, शांति, उल्लास और शांति की वर्षा हो। सब ओर अमृत-ही-अमृत हो, इसी प्रयास में चाहे बिषपान भी करना पड़े, तो भी तत्पर हूँ।'

सत्य क्री जिस अग्नि में तपकर वे कंचन बनी थीं, उसी में तपाकर वे दूसरों को भी कंचन बनाने के लिए सदैव तत्पर रहा करती थीं। उनके इसी समर्पित जीवन को देखकर मैं उन्हें 'मोमबत्ती' कहा करती थी। मोमबत्ती, जो स्वयं तिल-तिल कर जलती हुई, दूसरों को प्रकाश देती है, उनका अंधेरा पथ आलोकित करती है। मोमबत्ती, जिसके प्रकाश-पुंज से अनेक लौ फूट रही हैं।

प्राणांत के ५२ घंटे बाद तक, अंतिम संस्कार के क्षणों तक उनके मुखमंडल पर जो दिव्य आभा विद्यमान थी, वह उसी तप के परिणामस्वरूप थी, जो आजीवन उन्होंने किया था।

नवनीत

यह विचित्र अनुभूति मुझे उनके निधन के पश्चात् ही हुई कि हम दोनों एक ही 'एक आत्मा' वाली कल्पना साकार गयी थी। उनके देह-त्याग के बाद मुझे लग रहा था कि उनकी और मेरी आत्मा एकाकार हो गयी है।

एक और विचित्र अनुभव मुझे उनकी मृत्यु के बाद हुआ। घर का प्रत्येक कोण शोकाकुल था, किंतु रो नहीं रहा था और ज्ञान, प्रेम और शांति की हवा फैल कर रहा था। उनकी जो सच्ची पहचान लोगों को उनके जीते जी नहीं हो पायी थी, वह उनके जाने के बाद, अनायास हो गयी थी। सब उनका स्मरण करते हुए कह रहे थे, 'अरे, वह तो साक्षात् देवी थी, दिव्यात्मा थी, तपस्विनी थी। वह सबसे भिन्न थी, सामान्य विलकुल न थी।'

०००

किंतु सबसे अधिक रहस्यमयी और तीव्र अनुभूति तो वह थी, जो हमें उनके निधन के लगभग डेढ़-दो महीने बाद तक निरंतर होती रही। लगता, जैसे एक सर्वत्र व्याप्त है, और हम सबसे कह रहे हैं, 'वही मेरी थी। मैंने उसे ले लिया। तुम्हारा क्या अधिकार था, उस पर तुम सब उसके योग्य थे ही नहीं। मैंने उसे ले लिया; क्योंकि वह मेरी थी।'

जीजी के स्वर्गवास के बाद, हमारा परिवार लौटकर आगरा आया।

पिताजी ने दीपक और अगरबत्ती
श्रीमां का ध्यान करना आरंभ
करा, ताकि उनके दुखी-अशांत मन को
सहसा, पिताजी
के चित्र की
देखा। देखते ही, वे भयभीत हो
उठे स्पष्ट अनुभूति हुई कि चित्र
श्रीमां के नेत्रों से तेज की चिनगारियां
उड़ रही हैं, और श्रीमां उनसे कह
रही हैं, 'प्रवदा मेरी थी। तुम्हारा उस
कोई अधिकार नहीं था। वह मेरी
ओर मेने ही उसे अपने पास बुला
या।'
किन्तु स्वयं पिताजी ने अपनी आंखें
उस चित्र से फेर लीं, मगर अभी
उसके शब्द उनके कानों में गूँज रहे थे।
अनुभव का पिताजी पर गहरा
पड़ा। पहले, वे जीजी की बातों
से ग्रहण करते थे, लेकिन अब
मायायंत्र अंतर की गहराइयों से
उलझे लगे। और इस घटना के बाद
उनकी कभी भी श्रीमां के चित्र की ओर
आँखें का साहस नहीं किया।

०००

जीजी की मृत्यु यद्यपि आकस्मिक
थी, तथापि मुझे उसका आभास बहुत
हो चुका था। उनसे दूर होते हुए
उनके अंत के संकेत मुझे निरंतर
देखे थे, मगर अपनी नासमझी
से मैं उन्हें ठीक-ठीक समझ
पाती थी। साथ ही, उनकी मृत्यु

से पूर्व कुछ ऐसी घटनाएं भी घटीं, जो
स्पष्ट रूप से यह दर्शाती थीं कि विधाता
ने उन्हें इस दुनिया से उठाने की व्यवस्था
कर ली है।

'मातृ वंदना' शीर्षक की अपनी कविता
में, श्रीमां से प्रार्थना करते हुए, उन्होंने
इन शब्दों में अपने वारे में भविष्यवाणी
कर दी थी :

'अति मानसिक ज्योति बड़ी, जड़ तत्त्व
को कर अतिक्रमण,
छोड़ा शरीर असमर्थ वह, जो महत्
बाधा बन गया।'

मुझे लगता है कि उनके अंतिम दिनों
में दिव्य ज्योति की वह किरण और वह
अतिमानसिक शक्ति, जिसका उल्लेख
श्रीअरविंद ने किया है, उनमें अवतरित
होने को व्याकुल थी, किंतु उनका भौतिक
शरीर और भौतिक परिस्थितियां उसमें
बाधक बन रही थीं। इस बाधा को दूर
करने के लिए ही, संभवतः उन्होंने अपने
शरीर का परित्याग किया।

मैं इस तथ्य की प्रत्यक्ष गवाह हूँ कि
२७ वर्ष के अपने अल्प जीवन में जीजी को
अनेक अलौकिक तथा आध्यात्मिक अनु-
भूतियां हुई थीं। २७ फरवरी, १९८०
को जब वे अंतिम बार, होली के अवसर
पर, अपने मातृ-गृह आयी थीं, तब अपनी
हाल की एक अनुभूति का उल्लेख करती
हुई बोली थीं, 'रानीबाग में घर के समीप,
नल से पानी निकालते समय मुझे ऐसा
लगा, मानों मैं ऊपर ही ऊपर उठती चली'

जा रही हूं, और अनंत मेरे सीमित, व्यक्तित्व में ऐसे समाता जा रहा है, जैसे बंद में समुद्र। यह एक ऐसी अकल्पनीय प्रतीति थी, जिसने मुझे आतंकित कर दिया। मैं पुनः अपने सीमित, भौतिक व्यक्तित्व को खोजने के लिए व्याकुल हो उठी। यथार्थ जगत में वापस लौटने में मुझे काफी समय लगा।'

भला, यह चलते-फिरते समाधि लग जाना नहीं तो और क्या है ?

इस अनुभव के ३-४ दिन बाद, एक योग-शिविर में योगाभ्यास करते हुए, उन्हें पुनः एक और अलौकिक अनुभूति हुई। वे कुंडलिनी-जागरण प्रक्रिया का अभ्यास कर रही थीं कि उन्हें सहसा अपने चारों ओर तीव्र प्रकाश दिखायी देने लगा।

बाद में उन्होंने यह सोचकर योगाभ्यास बंद कर दिया कि अब तो मैंने गृहस्थ-धर्म स्वीकार कर लिया है, मुझे संन्यास-मार्ग पर चलना बंद करना चाहिये।

जीजी के अंदर अपार आंतरिक शक्ति विद्यमान थी। जब-तब यह शक्ति विभिन्न रूपों में प्रकट हो जाती थी। ऐसी ही एक घटना का वर्णन उन्होंने मुझसे इन शब्दों में किया था :

'मुझे एक काम से बरेली नगर से थोड़ा बाहर जाना था। मैं अकेली ही थी। कुछ दूर चलकर मुझे कुछ गुंडे किस्म के लड़के दिखायी पड़े, जो मुझ ऐसे घूर रहे थे, जैसे शिकारी अपने शिकार को घूरे। तभी वर्षा आरंभ हो गयी। इससे

एक ओर जहां मेरा वापस या आगे जाना दुष्कर हो गया, वहां दूसरी ओर सबकी उत्तेजना अपनी चरम सीमा पर पहुंचने लगी। मैं घबरा गयी। पर तब मैंने अपने को संतुलित और चित्त को एकाग्र किया। ऐसा करते ही, मैंने अनुभव किया कि मैं अमित शक्ति का केंद्र बन गयी हूं, और ऊपर ... बहुत ऊपर उठने जा रही हूं। मुझे मालूम ही न पड़ा कि गुंडे लड़के कब दम दबाकर भाग पड़े। मैं काम पूराकर, रिक्शे से लौट आयी।

०००

अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने विपरीत-से-विपरीत परिस्थितियों में स्थितप्रज्ञ और अविचल होना सीख लिया था। इस अवस्था का वर्णन स्वयं उनके शब्दों में, '... मानो कोई स्थितप्रज्ञ अंतर्गत में स्थित हो, और चारों ओर संक्रियता की फिरफेर बिखेर रहा हो, और समस्त की मांग और संस्कारों की झिझक में अशांत और अव्यवस्थित करना बंद कर रही हो।'

उन्हें हर क्षण नित-नवीन अनुभूति होती रहती थी! मेरे इस अग्रह पर कि वे उन्हें लेखों के रूप में लिपिवद्ध क्यों नहीं करतीं, उन्होंने मुझे लिखा था, 'लेख बनाना, मेरे अंतः से सदैव अत्यंत विस्तृत गहन और सूक्ष्म सत्य प्रवाहित होते रहते हैं कि तथाकथित बुद्धिजीवियों के लिए उन्हें समझ पाना असंभव-प्रभाव है और ऐसा कोई मिलता नहीं जो उन्हें

आगे जाते और ऊपर सीमा पर तब तक चित्त को मने अनुभव का क्षेत्र ऊपर उठान पड़ा कि भाग रहे ट आयी।

और परख पाये। और इन सत्यों में मूर्त, करने का प्रयास करते हैं स्वयं मेरे लिए एक पहली बन जाते हैं और की तो बात ही क्या ? 'जीवन नामक अपनी कविता में वे कहते हैं:

मेरी आह तो भी पगली, न सुनेगा एक भी जग में, अवहार में कुशल नहीं तो, क्या क्यों मार्ग यह जग का ?'

०००

को कुछ वे कहती थीं, वह सच ही कहा था; क्योंकि वह उनके छल-रूप, द्वेष-राग-रहित अंतः से उद्भूत था। विवाह से पूर्व उनकी सतत प्रार्थना और संवेदनशील आत्मा ने जान लिया कि उनका वैवाहिक जीवन अत्यंत दुःख और दुखी सिद्ध होगा। उन्होंने अंत का भी पूर्वाभास हो गया था। अपने जीवन के अंतिम तीन वर्षों में उन्होंने अपनी थीसिस के लगभग सभी भाग पुरे कर लिये थे। केवल दो भाग शेष रह गये थे। अपने जीवन के अंतिम दिनों में वे हिंदी की उपन्यास-लेखिका पर अर्वाचद-दर्शन के प्रभाव की वृत्ति में व्यस्त थीं। उन्हीं दिनों, प्रख्यात विद्वान् श्री वीरेंद्रकुमार जैन के उपन्यास 'अनुत्तर योगी' के द्वितीय भाग की शुरुआत और वारीकी से अध्ययन कर रही थीं। इस अद्वितीय उपन्यास के अंतिम भाग में वे इतनी अधिक लीन हो

गयी थीं कि उठते-बैठते, सोते-जागते उसी कल्पना जगत में विचरण करती रहती थीं, जिसकी सृष्टि एक महान सजक की नाई श्री जैन ने की है। इस उपन्यास में जैसे उन्हें अपने ही जीवन की एक झांकी दिखायी पड़ रही थी। उन दिनों उन्होंने श्री जैन को जो एक पत्र लिखा था, उसका निम्न अंश उनकी समग्र चेतना की एकांत तल्लीनता को भली भाँति व्यक्त करता है :

'मेरे आत्मवल्लभ दादा, सच ही आप मेरे आध्यात्मिक पिता हैं। मैं आपकी ही आत्मजा हूँ। भाव, संवेदन, चित्तन, अनुभूति और जीवन-संघर्ष की ऐसी सादृश्यता मैंने आज तक किसी और के साथ अनुभव नहीं की।'

श्री वीरेंद्रकुमार जैन के संबंध में उन्होंने मुझे लिखा था—

'वीरेंद्रजी ही अकेले व्यक्ति मुझे मिले, जिन्होंने मेरे सब अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर प्रदान किये, मेरी प्रज्ञा के धुंधलके को हटाया।'

स्वर्गवास से पूर्व, उन्होंने वीरेंद्रजी को एक लंबा पत्र लिखा था। किंतु, उनके देहावसान के बाद न उसका पता लगा, न 'अनुत्तर योगी' के दूसरे खंड का, जो उनके जीवन के अंतिम दिनों में सदैव उनके साथ रहता था।

लगता है, उनकी सूक्ष्म देह इन दोनों वस्तुओं को एक अनमोल धरोहर के रूप में अपने साथ ही ले गयी।

उनकी सूक्ष्म देह मेरे पास प्रायः आती रहती है। अपनी मृत्यु से पूर्व, अचेतावस्था में उन्होंने मुझे ही बारंवार याद किया था। उनकी मृत्यु के ३-४ दिन बाद उनका मधुर और कंपित स्वर कई बार मेरे कमरे में गूँजा, मगर मैं मूर्ख और अभागी उस स्वर को ध्यान से सुन भी न पायी।

इस स्वर की बात मेरे मकान-मालिक की छोटी बहू ने, जिसका संपर्क अपने स्वर्गीय बाबा के सूक्ष्म शरीर के साथ वर्षों तक रहा था, बताया थी। मगर तब तक वे यह भूल चुकी थीं कि जीजी की सूक्ष्म देह मुझसे क्या कहने की इच्छुक थी। आर्य समाज, हलद्वानी में भी, मैंने उनकी सूक्ष्म देह को अपने को 'मीना' पुकारते सुना था।

मेरे बाद मेरे पिताजी को भी स्वप्नावस्था में जीजी की वाणी सुनायी देने लगी। पहली बार, जब जीजी उनके सपनों में आयीं, तो उन्होंने पिताजी से कहा, 'मेरी थीसिस से किसी को कोई आर्थिक लाभ होने की संभावना नहीं है। इसे तो वही प्रकाशित करेगा, जिसे मुझसे ममता होगी।''

एक अन्य स्वप्न में पिताजी ने देखा, न जाने कहां से दौड़कर आया एक रथ उनके सामने आकर खड़ा हो गया है, और उसका सारथी पूछ रहा है, 'प्रवदा, की थीसिस लीजिये।' पांच दिन बाद, प्रवदा-जीजी के पति स्वयं आकर उनकी

थीसिस हमें दे गये।

एक बार जब जीजी मेरे स्वप्न में आयीं, तो मैंने उनसे पूछा, 'जीजी, हम सबको छोड़कर कहां चली गयी हो?' तुमने अपना दूसरा जन्म लिया या नहीं?

जीजी ने उत्तर दिया, 'मैं तो कभी नहीं गयी, सदा तुम सबके साथ हूँ। दूसरा जन्म की बात मत करो। कहीं ऐसा हो कि उसके बारे में तुमसे सुनकर, मेरे मन में सचमुच दूसरा जन्म लेने की इच्छा जागृत हो जाये।'

सपनों में मेरी और जीजी की देह की बहुत बातें होती हैं। एक सपने में काफ़ी देर तक बातें करने के बाद उन्होंने मुझसे कहा—'चलो, सब बैठो। माचिस ले आओ। मैं लालटेन जलाती हूँ।' मैं जैसे ही माचिस लेने उठी आंखें खुल गयीं। रात के दो बजे के सपना इतना सजीव था कि मुझे लग रहा था कि मैंने कोई सपना देखा नहीं रहा था कि मैंने कोई सपना देखा है।

एक अन्य स्वप्न में, बातों के दोपहर मैंने उनसे कहा—'जीजी, तुम्हारी कविताओं की कविताएं ढूँढ़े नहीं मिल रही हैं। सबको मुझे लिखवा दो, ताकि वे हमारे पास सुरक्षित रहें।' जीजी ने कहा कि कविताओं के नाम शुरू किये ही मेरी आंख खुल गयी।

एक सपने में जीजी ने अपनी के बारे में काफ़ी बातें की थीं। 'मीना, इन सबकी साजिश थी, मारने की। सब डाक्टर से मिल गये थे।'

कहा था, तुम्हें मेरे नोट्स से बहुत सहायता मिलेगी मीना ।' मरने के बाद भी सपनों में वे मुझे अपने नोट्स से मदद लेने की याद दिलाती रहीं ।

मेरी परीक्षा से पूर्व, एक चमत्कार हुआ । २८ जून, १९८० की रात को उन्होंने सपने में मुझसे कहा, 'मीना, मेरे नोट्स के इन-इन अंशों को याद कर लो ।' मैंने वैसा ही किया । अगले दिन अधिकांश प्रश्न उन्हीं अंशों से संबंधित थे ।

एक स्वप्न में जीजी ने मुझे बताया कि 'मैं' एक बड़ी पार्टी से आ रही हूँ । श्रीमां भी इस पार्टी में थीं ।' तब, मैंने उनसे पूछा—'क्या सूक्ष्म जगत में लोगों का रूपांतरण हो जाता है ?'

'नहीं । मैं तो यहां भी वैसी ही हूँ जैसी जीवितावस्था में थी ।' जब मेरे प्राण निकले तो मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ था ।

फिर पांडिचेरी आश्रम की सुनंदा दीदी और श्री वीरेंद्रकुमार जैन की बात छिड़ गयी । जीजी ने पूछा, 'तुझे वीरेंद्र-कुमार जैन कैसे लगे ? है न बहुत कोमल हृदय के !'

जीजी से सपनों में बातें करते समय मुझे हमेशा यही लगा कि जीजी हमारे बीच ही हैं और कहीं नहीं गयीं । कहीं गयी भी हैं, तो सपनों में हमारे पास अवश्य लौट आती हैं । वे हर अवसर पर मुझे अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत करना भी नहीं भूलतीं ।

१३ अगस्त, १९८० को प्रातः ५ बजे

अर्द्र-निद्रावस्था में जीजी के शब्द कानों में गूँजते से सुनायी पड़े। हरियाली तीज के दिन घर में सब लोगों को जीजी की आकृति स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ी।

जीवितावस्था में वे एक अध्यापिका को बहुत चाहती थीं। उसके ढाई वर्ष के पुत्र को अपना भाई मानती थीं, और रक्षाबंधन पर उसको आंसुओं से भीगी राखी भेजती थीं। उनकी मृत्यु के बाद, रक्षाबंधन से ६-७ दिन पूर्व, मैंने सपने में देखा कि वे राखी भेजने को बेचैन हैं, मगर श्रीमां उन्हें अपने पास से जाने को मना कर रही हैं। सुबह होते ही मैंने उसे राखी डक से भेज दी।

०००

मेरी जीजी देवांशिनी प्रवदा ने भगवान शिव की भांति सबके कल्याण के लिए स्वयं विषपान कर सबको अमृत प्रदान

किया। किंतु इस नश्वर जगत से उसे कष्ट-कंटकों के अतिरिक्त और कुछ न मिला। अतः उस परम दिव्य उपाति ने अपने इस अंश को शीघ्र ही आत्मगत कर लिया। इस प्रकार भारत ही नहीं विश्व का एक अमूल्य दिव्य रत्न सदा के लिए खो गया, और छोड़ गया अपनी धूमिल आभा।

जीजी से भविष्य के लिए बहुत आशा थीं। अभी तो दुनिया को उस विरुष ज्ञान-भंडार की ही पूरी जानकारी नहीं है, जो वह अपने पीछे छोड़ गयी है। समाज के कल्याणार्थ, वे अपने गहन व्यापक आध्यात्मिक विचारों, शोध-प्रबन्ध, कविताओं, निबंधों तथा कथा-साहित्य को जो अमूल्य निधि छोड़ गयी हैं, उनका विद्वज्जनों द्वारा समुचित और शीघ्र शीघ्र मूल्यांकन होना अत्यंत आवश्यक है।

लेखकों से निवेदन

- रचनाओं का अंतिम निर्णय एक खानगी सलाहकार-समिति करेगी। व्यक्ति विशेष नहीं।
- 'भारती'-समन्वित 'नवनीत' केवल हिंदी, भारत या उसके साहित्य तक सीमित नहीं। वह एक वैश्विक और अंतरराष्ट्रीय व्यास की सर्वसमावेशी सांस्कृतिक और ज्ञान-विज्ञान-समन्वित पत्रिका है। रचना भेजते समय कृपया, यह लक्ष्य में रखें।
- अनामन्त्रित कविताओं पर विचार करने को हम बाध्य नहीं। आज के समग्र विश्व-साहित्य में से चुनी हुई थोड़ी-सी कविताएं ही हर अंक में जा सकेंगी।
- रचना के साथ टिकट लगा पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें। अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी और न उसके संबंध में पत्र-व्यवहार ही किया जायेगा।
- रचना भेजने से पूर्व विचार कर लें कि वह नवनीत के अनुकूल है या नहीं।

—संपादक

के बीच, ठीक सामने संगम । ऐन मुहूर्त
 रिकारा रोक-टोक, बाधा डुबकी लगाकर
 मृत स्वयं भर खाने का प्रबंध ।
 में ऐसे एक नहीं अनेक शिविर लगाये
 ते हैं । इसका व्यय भार कौन वहन
 का ? स्वयमेव उत्तर मिलता है—सामान्य
 र बाव । दूर-दूर से गठरी दबाये आने
 तीर्थयात्री मेला टैक्स देने वाला साधा-
 यात्री । गरीब किसान खेतिहर
 श्रमीण । यहीं क्यों, जो जहां हैं
 के परिश्रम, धन पर अधिकतम
 सहित सारा अमृत अपने गले के
 उतार जाने हेतु प्रयत्नशील है ।
 देवकर मुझे ऐसा लगता है जैसे वह
 का सबसे बड़ा धार्मिक मेला न
 पिकनिक स्थल हो, जहां लोग पांच-
 दिनों की पिकनिक के लिए आने वाले
 कहां है तीर्थस्थल और तीर्थयात्रा,
 की संस्कारजनित परंपरा कि तीर्थ-
 का के पूर्व किसी का भूले-भटके एक
 भी ऋण शेष नहीं रहना चाहिये ।
 चुकता करने पर मात्र अपने धन,
 और निष्ठा के बल पर तीर्थयात्रा,
 मंग, सादगी, एक समय न्यूनतम भोजन,
 से भी स्वयं बनाना । सेवा एवं समर्पण
 न । अपरिग्रह, दान तथा त्याग की
 काष्ठा—इस सीमा तक कि अपना
 उत्तरीय तक भी न बचा । बहिन राज्यश्री
 ने बल लेकर हर्षवर्धन को काम चलाना
 का । चाहे हैनसांग द्वारा हर्षवर्धन के

समय में आयोजित मेले का आंखों देखा
 विवरण हो, चाहे फ्रांसीसी टैर्विनियर अथवा
 सन् १८२६ में स्कनर द्वारा प्रस्तुत मेले
 का वृत्तांत हो । कहीं विशिष्ट व्यक्ति
 शिविरों का उल्लेख नहीं मिलता । कहां
 गयी कुम्भ की पावन परंपरा ? चलते-
 चलते बालू की बोरियां ढोने वाले एक
 मजदूर से पुछ लेता हूं, 'कहां भाई, इस
 बार तो बड़ा अच्छा अवसर है, कुम्भ में
 पैसे भी कमाओ और डुबकी लगाकर पुण्य
 भी ।' मजदूर ने अन्यमनस्क होकर उत्तर
 दिया, 'कइसन कुम्भ मेला और पुन ?
 ई सब पैसे का खेल है, पेट भरा रहे तो
 मेला ठेलां, पुन, सरग (स्वर्ग) सब है ।'
 'तब तुम कुम्भ के समय यहां नहीं रहोगे ?'
 उसका उत्तर था, 'नहीं, जो कुछ कमाई हो
 सकै, लै के गांव चले जाना है बाल-बच्चन
 के बीच ।' शायद 'अमृतघट' की यह सबसे
 यथार्थ और व्यवहारिक व्याख्या थी ।

मेला जोर-शोर से आरंभ हो गया है ।
 यही अवसर है 'अमृतघट' की खोज करने
 का । नगर की बस्ती अभी समाप्त नहीं
 होने पायी । सड़क के किनारे धार्मिक
 निःशुल्क स्थलों चिकित्सा-केंद्रों ने अपने
 भवनों को पर्यटक विश्राम स्थलों, होटलों
 में बदल दिया है । जब सभी पुण्य बटोर रहे
 हैं, नोटों की गड्डी के रूप में, फिर यही क्यों
 पीछे रहें ? आकाश में उड़ते, सेक्टर कार्या-
 लय स्थलों के सूचक रंग-विरंगे विशालकाय
 गुम्बारे विज्ञापन करने वाले, आगे चलकर

विशाल कुम्भ द्वार । शासन के विभिन्न विभागों द्वारा प्रस्तुत प्रदर्शनी जिसमें घूमने से दिल्ली में आयोजित की जाने वाली एशिया ७२ या फिर एक्सपो ७७ का एहसास हो । दूसरी ओर खादी, गृहउद्योग प्रदर्शनी । और आगे विशाल एवं सजे मंडपों वाली अनेक दुकानों की पंक्तियां । यहां 'अमृतघट' की संभावना नहीं है । साथी मित्र के अनुरोध पर घूम गया हूं अलोहि मंदिर की ओर, जहां गंत कुम्भ में एक मंच पर चारों शंकराचार्य पधारें थे । हिन्दू धर्म, व्यवस्था की व्याख्या, धर्मशास्त्रों पर संत-महात्माओं ने विचार विमर्श और नये संदर्भ में प्रतिपादन किया था, सिंह द्वार के समीप ही स्वामी विवेकानंद की भव्य प्रतिमा . . . इस कुम्भ में भी कुछ ऐसा ही होगा । उस शिविर के स्थान पर है कांग्रेस का विशाल शिविर सात लाख सत्तर हजार वर्ग फीट क्षेत्रफल में फैला... भीतर अनेक शिविर... मेरे साथी मित्र मुझसे पूछ उठते हैं, 'अरे, वह हिन्दू परिषद् का शिविर कहाँ गया ?' अकस्मात् पास खड़े एक सज्जन ने बतलाया, 'उस शिविर को मेले में लगाने की अनुमति नहीं मिली ।' अब मेरे मित्र लगभग चीख उठे—'कुम्भ मेले में हिन्दू शिविर नहीं लगायेंगे तो फिर कौन आयेगा ? हिन्दुओं का प्रमुख मेला और हिन्दुओं को ही स्थान नहीं ?' अपरिचित व्यक्ति संभवतः कार्यकर्ता थे, उन्होंने गंभीरता से कहा—'जैसा जो है देखते जाइये, अनावश्यक उत्तेजना के

कारण जेल में बंद होने से कोई लाभ नहीं हिन्दू धर्म अथवा संस्कृति भी धारा वांध नहीं सकती ।' यहां अमृतघट होने का प्रश्न ही नहीं उठता । बाद में पता लगा कि सात लाख सत्तर हजार वर्ग फुट भूमि का अबंटन एकदम निःशुल्क कर दिया गया था जो नियमों के प्रतिकूल था । अनियमितता के घपले की जांच के लिए भूमि के लिए ३८ लाख रुपयों की वसूली के आदेश दिये गये । जो साल भर बाद तक भी नहीं वसूल हो पाये थे ।

खिन्न एवं उद्विग्न मन से हम लोटे घूम पड़ते हैं धार्मिक शिविरों की ओर जहां पहुंचे सिद्ध संत महात्मा के दर्शन हैं उनके अमूल्य विचारों से मन को शांति मिल सके, 'अमृतघट' की खोज सफल हो सके । एक कैंप के बाहर तीन पहिये की ट्राली वाले से यात्री की वहस चल रही है । ट्राली वाला आठ किलोमीटर दूर नगर से सामान लाने का पैंतालीस रुपये मांग रहा है । अड़ा हुआ है । यात्री पैंतीस से अधिक देना नहीं चाहता । किराया आठ-दस रुपये से अधिक नहीं होता । कुम्भ की 'अमृत लूट' में ट्राली वाला ही क्यों पीछे रह जाये । शायद चालीस रुपये पर मामला तय हो गया ।

शिविर में मंच पर रासलीला चल रही है । शायद मथुरा की मंडली है । दूसरे शिविर में अयोध्या की मंडली रासलीला कर रही है । नाच-गाना चल रहा है । भक्त तन्मयता से देख रहे हैं और दक्षिणा बढ़ाते

दूसरी ओर रामलीला प्रसंग में पौराणिक कथा का विवाह मंडप में पैर पूजने की रीति रही है। पुजारी भक्तों को आश्चर्य करवा रहे हैं, 'आइये पैर पूजकर कर्ममाइये' और भक्त जनता राम-सीता का पुत्र-पुत्रकरी नोट, गहना चढ़ा रही है। कुछ नहीं बचा रिजेंशन चल रहा है। कुछ नहीं बचा रिजेंशन ही स्थापित करा दीं। लोग चढ़ा रहे हैं। कहीं पंडिताऊ ढंग की बातें तो कहीं 'हरे राम हरे हरे' का नृत्य-बड़े-बड़े महामंडलेश्वरों के शिविरों का नृत्य यही हाल। किसी न किसी रूप में प्रसिद्ध परंतु धर्म प्रेमी जनता के धार्मिक मनोरंजन और अधिकांश बड़े-बड़े बतोरने का उपक्रम। कहीं गंभीर नहीं। मौन रहने वाले महात्मा का घर जिनका दर्शन ही मिलना कठिन था वहाँ के तापसी आश्रमों में राजसी बातें-पकाते चिलम पीते आग तापते कुछ स्थायी और कुछ मौसमी शायद ही पर आये। एक-दो स्थानों पर यज्ञ आराधना, अथवा 'रामचरित मानस' की पाठ्यादि का पाठ। कहते हैं इन्हीं शिविरों में सरस्वती आविर्भूत होती है। और चिन्तन-मनन ही 'अमृतकलश' है, जिसे जीवन का मार्गदर्शन हो। श्रद्धालु और श्रद्धालु जनता कर्मकांड तक सीमित नहीं और उससे संतुष्ट भी, परंतु वास्तविक श्रद्धा की खोज करने वाले भटक रहे हैं। भक्तों से घिरे महंत, राम-कृष्ण के नाम पर, मोक्ष के लिए अर्पित 'दान', वैभव

संपदायुक्त 'शाही', म अमृतवट खो गया है। सर्वस्वदान कर देने के उपरान्त भी विनयशीलता की अपेक्षा दानी लोगों के मुखमंडल पर अहंभाव, 'मेरे भंडारे में १०००० लोगों का भोजन चल रहा है।' परीक्ष क्रियाकलाप और परिवेश के बावजूद मूलतः इन शिविरों (अपवाद छोड़कर) तथा मेले की दूकानों में विशेष अंतर नहीं है। एक विशाल पंडाल, साधु संन्यासियों की भारी भीड़ गेरुआ वस्त्रधारी। इतने बड़े साधु समाज में 'अमृतकलश' निश्चय ही प्रकट होगा। बड़ी आशा से हम लोग भी शिविर में बैठ गये। थोड़ी देर में पता लगा कि इस पंडाल के मंच पर उच्चतम व्यासपीठ से किसी देश के शीर्षस्थ नेता साधु समाज को संबोधित करेंगे। मुझे विश्वास नहीं होता। यह कुम्भ मेला है जहाँ आध्यात्मिक आचार्यों के सम्मुख राष्ट्र की सर्वोच्च सत्ता भी श्रद्धानत होती रही है।

मेरा सिर चकरा उठता है, स्पष्ट लगने लगा गंगा बंगाल की खाड़ी गंगोत्री में गिरने लगी है। मैं चल पड़ता हूँ। महा-कुम्भ पर्व में एक-दो दिन ही शेष हैं। सारे शिविर खचाखच भर गये हैं, नामपट्ट जो भी लगा हो मरकारी या गैर सरकारी, जिसकी जैसी पंच थी व्यवस्था कर ली। अब तो सभी में परिवार भरे पड़े हैं। कलियुग में साधन नहीं, साध्य का ही महत्व होता है, वही सब कुछ है।

यह कुम्भ की पूर्व रात्रि से ही अनवरत

वर्षा मूसलाधार, भक्तों की कठिन परीक्षा, किटकिटाती सर्दी, ऊपर से वर्षा नीचे दलदल और फिसलन, रह गये असंख्य पुण्य कमाने वाले, ठिठुरते भक्तों के लिए न जगह-जगह आग जलते कुंदे, न चाय और न नगर के विद्यालयों, भवनों में तुरंत उन्हें ठहराने की व्यवस्था जो हुई अत्यंत विलंब से ! इस वर्षा में लगता है 'अमृतघट' कहीं वह गया अथवा लुढ़क गया आपाधापी में । लोगों को पता नहीं चला । ... कुम्भ चला गया । मर्करीवेपर लेंप विगड़ गये या चोरी चले गये, उनके स्थान पर वही डिमडिमा टिमटिमा रहा है । 'अमृतघट खोज-यात्रा' पुनः आरंभ हो गयी है अगले कुम्भ तक के लिए । □

(पृष्ठ ९६ का शेषांश)

चिकित्सा-विधि से ही प्राप्त हो सकती है; क्योंकि वह शरीर की वर्ण-संबंधी कमियों को दूर करने का प्रयास करती है ।

विशुद्ध भारतीय

हाल ही में, भुवनेश्वर में चिकित्सकों का एक सम्मेलन हुआ था । इसके अध्यक्ष डॉक्टर एस. आर. दासगुप्ता ने ऐसी कई दवाओं और गोलियों का उल्लेख किया था, जिनके सेवन से मूल रोग तो अस्थायी रूप से दब जाता है, पर अनेक नये रोग जन्म ले लेते हैं ।

ब्रह्मांड किरण चिकित्सा-विधि एक आदर्श और सर्वांग-संपूर्ण चिकित्सा-विधि है । यदि व्यापक रूप से उसके प्रयोग आरंभ हो जायें, तो सम्पूर्ण मानवता उससे लाभान्वित हो सकती है ।

यह चिकित्सा-विधि पूर्णतः और विशुद्ध

नवनीत के चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु. । दो वर्ष : ४८ रु. । तीन वर्ष : ६६ रु. । विदेशों में डाक से : एक वर्ष ६० रु. । दो वर्ष : ११० रु. । तीन वर्ष : १५० रु. । विदेशों में डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष १२० रु. । दो वर्ष का २१० रु. । तीन वर्ष का ३०० रु. ।

एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए एक वर्ष : १५० रु. । दो वर्ष : २७० रु. । तीन वर्ष ४१० रु. । -वितरण व्यवस्था

भारतीय है । कुछ लोग, भ्रमवश, इस जन्म मैक्सिको में हुआ ऐसा मानते हैं मगर यह सच नहीं है । वास्तव में, १९१९ में मैक्सिको के कुछ डॉक्टर भारत में चिकित्सा-विधि की जानकारी लेने आए थे । भारत से लौटने के बाद, उन्होंने अपने देश में इस विधि के विषय में पुस्तकें लिखीं, जिनमें उन्होंने लिखा कि किया है कि 'प्रिज्म से सगुनाने' की विधि उन्होंने भारत में डॉक्टर भट्टाचार्य से सीखी थी । ('ब्लिट्ज' से सामार उद्धृत)

[इस चिकित्सा-विधि के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए पाठक अंग्रेजी ब्लिट्ज का हवाला देकर B. T. B. Teletherapy Cosmic Ray Institute, Park street, Calcutta.]

प्यार की फटकार

स्मृति के अंकुर

चमत्कारिक अनुभव

लगभग दस वर्ष पूर्व की घटना है। उन दिनों मैं उदयपुर में ही था। मेरे दूर के एक संबंधी थे, जिनके घर अक्सर मैं जाया करता था। उनके पड़ोस में ही एक ज्योतिषी रहते थे। वे परलोकगत आत्माओं से संपर्क स्थापित कराने का भी दावा करते थे। विज्ञान का छात्र होने के कारण मैं उनकी बातों पर विश्वास नहीं करता था। मेरे संबंधी के पिताजी भीलवाड़ा जिले के एक गांव में अचानक असाध्य रोग से पीड़ित हो गये। कभी-कभी उनकी तबीयत का समाचार आ जाया करता था, पर कुछ दिनों से उस गांव से कोई समाचार नहीं आया था! हमने सोचा अब ज्योतिषीजी की विद्या की परीक्षा ली जाये और मैं संबंधी को साथ लेकर ज्योतिषीजी के घर गया। उनसे निवेदन किया कि वे अपनी तांत्रिक साधना द्वारा अमुक गांव में संबंधी के बीमार पिता की बीमारी का समाचार मालूम करें।

उन्होंने हमारी प्रार्थना मान ली और कहा कि इसके लिए वे 'हाजरात' (सम्मोहन विद्या) का प्रयोग करेंगे।

श्रीकांत कुलश्रेष्ठ, बंबई-३७

दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

रजिस्टर्ड कार्यालय :

लालबहादुर शास्त्री मार्ग; भांडुप, बंबई-४०० ०७८

केबल : 'लकी' भांडुप

फोन १५८४३८१

१.

नानफेरस यूनिट

सेमिस रोलिंग विभाग :

नानफेरस शीट, स्ट्रिप और फ़ाइल,
नानफेरस प्लेट और सर्कल

एलाय और कार्बिडिंग विभाग :

एंटिफ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स

गनमेटल्स और ब्रोन्जेस, ब्रेजिब सोल्डर्स और टिन सोल्डर्स,
फाइन जिक डाइकार्बिडिंग एलाय्स 'इस्माक ३' अल्युमिनियम
बेस्ड डाइकार्बिडिंग एलाय्स, ब्रास और ब्रोन्ज राइस साबिल
कोरड, फिनिशड कार्बिडिंग रफ और मशीनड ।



२.

फेरस यूनिट :

फाउंड्री डिविजन

एस० जी० धायरन और स्पेशल स्टील कार्बिडिंग

मेलिएबल धायरन कार्बिडिंग

आइ० एस० एस०, बी० एस० एस०, एस० एस० एस० आइ० एस०

के स्पेसिफिकेशन्स तथा ग्राहकों की विशेष आवश्यकता

के अनुसार सप्लाइ किये जाते हैं ।

नंग

५८४३८

न सोच्छे
न्युमिनियम
स सालि

राह० एम०

यकता

हमसे भीमसेनी काजल और शुद्ध
मन्त्रों का तेल मंगवाया। हमने दोनों चीजें
एक एक दे दीं। संध्या के समय एक
मन्त्र प्रयोग किया गया। ज्योतिषीजी
ने साथ एक बारह वर्ष के लड़के को
साथ ले आये थे। आवश्यक सामग्री कमरे
में देते के पश्चात् उन्होंने उस बालक
को एक मुयरी जगह पर बिठाया और
उसके हाथ के अंगूठे के नाखून पर
काजल (तेल एवं अन्य मंत्रसिद्ध
द्रव्यों के साथ) लगाया। तदनंतर
उन्होंने कुछ मंत्रोच्चारण किया।

इसके पश्चात् ज्योतिषीजी ने बालक को
नाखून को देखने को कहा। बालक
नाखून की ओर देखता रहा।

उन्होंने पूछा: 'क्या देखते हो?'

बालक मानों सम्मोहित होकर कहने
ला: 'मैंना देख रहा हूँ।'।

ज्योतिषी: 'अच्छा, अमुक गांव में
जाओ।'।

बालक: 'हां, पहुंच गया।'।

ज्योतिषी: 'अच्छा बताओ इनके
आँखों की तबीयत कैसी है?'

बालक: 'आज तो कुछ ठीक है पर
तीन दिन बाद दस बजे प्रातः वे स्वर्गवासी
जायेंगे।'।

इसके पश्चात् तांत्रिक क्रिया समाप्त
कर दी गयी।

तीन दिन बाद ठीक दस बजे प्रातः मेरे
पिताजी का देहावसान हो गया।

यह घटना अक्षरशः सत्य है। अध्यात्म

विज्ञान के अनुसार ज्योतिषी ने बालक
के अन्तर्मन को सम्मोहन एवं तंत्र-साधना
द्वारा अधिक क्रियाशील बना दिया था,
जिससे उसे त्रिकालदर्शिता की अनुभूति
हुई थी।

दूरानुभूति एवं भविष्य-दर्शन की यह
चमत्कारिक घटना मेरे लिए सदैव अवि-
स्मरणीय रहेगी। —श्याम मनोहर व्यास,
पोस्ट-भानदा, उदयपुर (राजस्थान)

०००

वह उदार आत्मा

बात उन दिनों की है, जब एक बार मैं
आवश्यक शासकीय कार्य से भोपाल
गया था। वहां पर दो दिन रुकने के बाद
तीसरे दिन जब मैं घर आने के लिए बस में
बैठा तो जल्दी होने के कारण मैंने टिकट
खिड़की से टिकट नहीं लिया। सोचा
वहीं कंडक्टर से ले लूंगा। लेकिन जैसे
ही कंडक्टर को पैसे देने के लिए मैंने
जेब में हाथ डाला तो धक् से रह गया!
क्योंकि पैसे का पर्स जेब से गायब था!
मैंने कंडक्टर के सामने अपनी स्थिति
स्पष्ट की, लेकिन उस पर कोई प्रभाव
नहीं हुआ। उसने समझा मैं बन रहा हूँ।
इसलिये वह मुझे उल्टे भला-बुरा कहने
लगा। तभी पास में बैठे एक अपरिचित
सज्जन ने मेरी परिस्थिति को समझकर
द्रवीभूत होकर चुपचाप टिकट के पैसे
कंडक्टर को दे दिये और उसे डांट भी
दिया। मैं बड़ कृतज्ञ भाव से उन सज्जन

॥ दि इंडियन टूल मैनुफेक्चरर्स लि. ॥

१०१, सायन रोड, सायन, बंबई-४०० ०२२

सुनिश्चित होकर चुनाव कीजिये

‘डॅगर’ ट्विस्ट ड्रिल्स रीमर्स, कटर्स, टप्स, टूलबिट्स और
माइक्रोमीटर्स डॅंगेलाय कार्बाइड टूल्स और टप्स
डॅगर-साके गियरहाब्स और गियरशेपिंग कटर्स



प्रिसिशन का प्रतीक

सब्जी का स्वाद

फरवरी का महीना था। हरे चनों की सब्जी खाने के लिए मन लालायित हो रहा था। किसी कारणवश दो दिन बाद एक मित्र के यहां शाम को जाना हुआ। वह लगभग भोजन का ही समय था। मित्र की पत्नी ने भोजन का आग्रह किया—‘खाना खा लो। हरे चने की सब्जी बनायी है।’ हरे चने का नाम सुनते ही मुंह में पानी आ गया।

खाना खाते समय मैंने पूछा—‘भाभी, तुम तो नौकरी करती हो, चने निकालने का समय तुम्हें कैसे मिला, या निकाले हुए खरीदे? पर वे तो बहुत महंगे मिलते हैं।’ मेरी बात सुनकर वे हंसने लगीं। बोलीं—‘स्कूल में हम शिक्षिकाएं नौकर से मंगा लेती हैं और कक्षा की लड़कियां ये दाने दस मिनट में निकाल देती हैं। बाद में हम आपस में बांट लेती हैं।’

उनका उत्तर सुनकर मैं न जाने किन खयालों में खो गया। उसके बाद सब्जी का स्वाद ही बदल गया। शायद इसलिए कि मैं भी एक अध्यापक हूं।

—गोकुलचंद दुआ, अजमेर, राजस्थान

०००

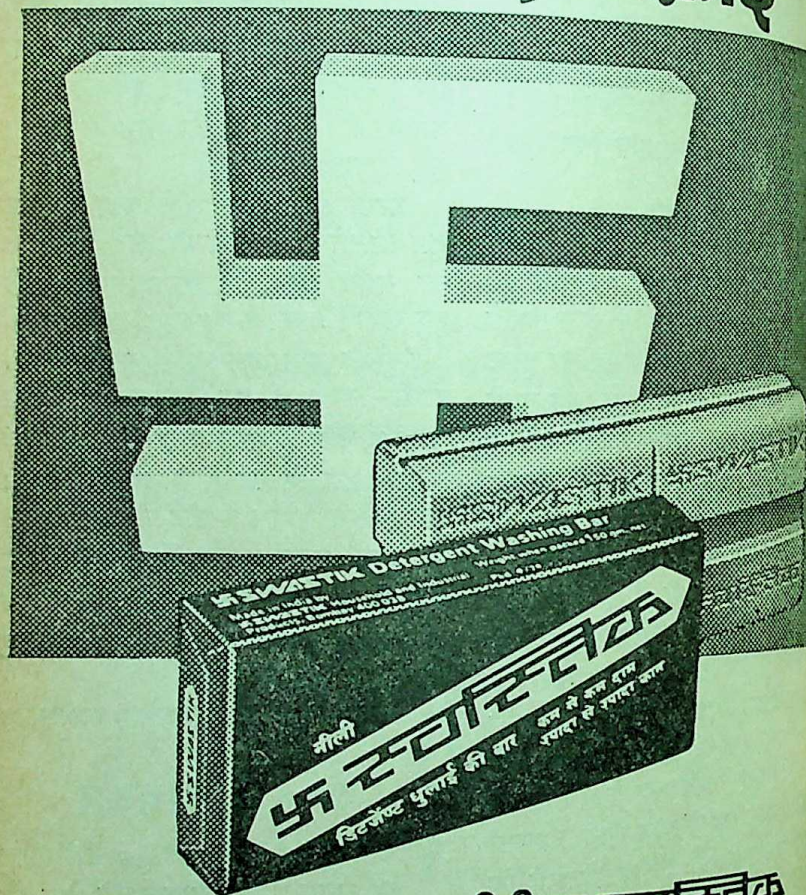
सर्वत्र मातृ-दर्शन

१९७१ की १३ जून के १० बजे सुबह का समय। मेरी सहधर्मिणी रेणु की गोद में मेरी मां का सिर था। वह मां का माथा सहला रही थी। और मां धीमी आवाज में जीवन का महामंत्र उसे बता

१४७

हिंदी डाइजेस्ट

सबसे कम कीमत में सबसे ज़्यादा सफ़ाई



दूसरी सब डिटर्जेंट बार से कहीं
ज़्यादा अच्छी, कहीं ज़्यादा किफ़ायती और
साबुनों से $1\frac{1}{2}$ गुना ज़्यादा शक्तिशाली !

**नीली 卐 स्वस्तिक
डिटर्जेंट धुलाई की बार**
एक बार स्वस्तिक बार... फिर हमेशा स्वस्तिक

दूसरे दिन सुबह स्वादिष्ट भोजन खिलाकर ही विदा किया।

देवप्रयाग प्रखंड के खास पट्टी के गांवों में 'चिपको आंदोलन' का संदेश और शरावर्द्धी के शिक्षण के लिए घूम रहा था। मई की दोपहर की धूप, पहाड़ की चढ़ाई, भूख और प्यास से व्याकुल प्राण, पीठ पर सामान-आसपास कोई गांव नहीं। एक झोपड़ी दिखाई दी, आंगन में पहुंचा। खाना खाकर उस घर के लोग आराम कर रहे थे। घर की मालकिन ने सबसे प्रथम भोजन के लिए पूछा। भरी दुपहरी में दुबारा चूल्हा जला। प्याज और पोदीना की चटनी के साथ, गेहूं और मंडुवे की रोटियां खाकर मन, प्राण और शरीर को, जो आराम मिला, उसे व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं हैं।

ऐसी करुणामयी माताओं के ये चेहरे सदा स्मृति-पटल पर विद्यमान रहते हैं और हृदय को प्रफुल्लित करके मन-प्राण में नित-नवीन शक्ति का संचार करते रहते हैं।

—धूमसिंह नेगी,

टिहरी गढ़वाल, उ. प्र.



कुछ नये स्तंभ

यथाशीघ्र 'नवनीत' में कुछ ऐसे स्थायी स्तम्भ आरम्भ कर रहे हैं, जिनमें सारे पाठक भी हिस्सेदारी कर सकेंगे। मसलन 'मेरा सपना, जो सच हुआ', 'चमत्कारिक अनुभव' तथा बच्चों के लिए 'मच्छी-मच्छी कित्ता पानी', बच्चों की रचनाएं, चित्र तथा फोटो भी यथा-प्रसंग छप सकेंगे। इन सभी के लिए आपकी सामग्री सहर्ष आमन्त्रित है।

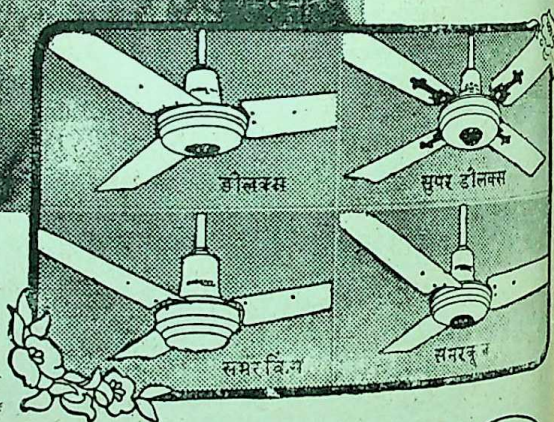
—सम्पादक 'नवनीत'

Digitized by Aarya Samrat Foundation, Chhapra and eGangotri
सारी गर्मी हवा खाये!
वर्षों तक अब मौज मनाये!!



आह हा ! ओरिएन्ट पंखे के
 मीचे दिन कितने सुहाने
 धीतते हैं. ये मनलु भावने
 स्टाइलों और अच्छी कार्यवाही
 के लिये बने हैं. सच, इनकी
 आकृति तथा रंगों का आलोक
 घर की साज-सजा से हिल्ला
 मेल है. और फिर ये बने भी
 तो दक्ष कारीगरी हाथों से हैं.
 अतः, ठीक जैसा आप चाहते
 हैं, वैसा ही पायेंगे—देखने
 में मनमोहक, कार्यकुशलता में
 निरासे और वर्षों चलने
 वाले.

- ४ सीलिंग पंखे
- ६ टेबल पंखे
- २ पेडेस्टल पंखे

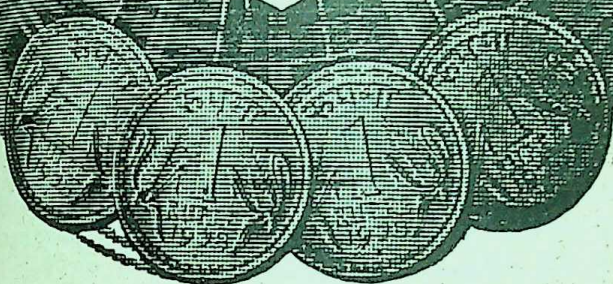


ओरिएन्ट
पंरवा

मल्ला और सौटर्न का बेजोड़ संगम

ओरिएन्ट जंगल इंडस्ट्रीज लिमिटेड
 कैबेट्पा कलकत्ता और फरीदाबाद जिला
 CO-3-G-10

**आप ही देखिये कि
देना बैंक में आपकी
रकम समय के साथ कितनी
बढ़ती जाती है!...**



समृद्धि जमा योजना

आपकी बचत की रकम आश्चर्यजनक गति से बढ़ती है क्योंकि यह केवल आपके मूलधन पर बल्कि ब्याज पर भी ब्याज मिलता है।

आवृत्ति जमा योजना

आपकी मासिक बचत की छोटी-छोटी रकमों को महीने के लिए मिली की बड़ी रकमों में बदलिये।

मीमादी जमा योजना

जब आप सरलता से बचत कर सकें तो इस रकम के लिए बड़ा फायदा मिलिये।

मरुदी प्रमाण पत्र

एक सुरक्षित निवेश राशि जो अपने आप बढ़ती चली जाती है।



देना बैंक

(राष्ट्रीयकृत बैंक)

केन्द्रीय कार्यालय : मेजर टावर ६

कक्ष परेड, बम्बई ४०० ००६

वर्षिक प्रामाणिकी के लिए
अपने नजदीक की
ना बैंक की शाखा में पधारिए।

वचन की उच्चता और समृद्धि के लिए समर्पित

सुपर रिन की चमकदार ज्यादा सफेद



किसी भी अन्य डिजेंट टिकिया या बार से ज्यादा सफेद

सुपर रिन से नियमित धुलाई करने पर आपके कपड़ों में ऐसा फर्क आये कि दूर से दिखे किसी दूसरी डिजेंट टिकिया या बार के मुकाबले सुपर रिन कहीं अधिक सफेदी लाता है, क्योंकि सुपर रिन में अधिक सफेदी की शक्ति है।

आजमाइए और सबूत पाइए:

किसी अन्य
डिजेंट बार से
धोया हुआ



सुपर रिन से
धोया हुआ



हिन्दुस्तान बाबर का एक उच्छेद उत्पादन

अधिक सफेदी की शक्ति से भरपूर
ब्रिटाइन-4114-11-1111

किन्तु वह है, न तो वह कर्म शुद्ध है,
 मुझे पता है कि ऐसे-ऐसे गांधी-
 नानाजवादी, मार्क्सवादी आदि-
 लोग जो दीखते हैं तो बड़े
 दूसरों के लिए जीने वाले-पर
 गांधी, मार्क्स आदि सभी चिन्तकों
 अपने ही उत्कर्ष और विस्तार
 के प्रयोग में लगे हैं। यही कारण
 कि उनके शब्दों का कोई भरोसा नहीं
 है। हर कोई उनकी करनी को देखता
 नहीं। उससे उलटे, निश्शब्द
 प्रथाशायिरहित, अकथित प्रेम भी
 है, जिसमें सचमुच ऊपर से बेहद
 सच्चा और निकम्मेपन का बोध
 है वह नैष्कर्म्य ।

वही पर पश्चिम को समझ नहीं
 और मार खा जाता है। हमें लगता
 पश्चिम में 'सभ्यता का संकट' है
 (दि)। 'तुम्हारी तहजीब अपने हाथों
 बलुगी करेगी। जो शाखें नाजुक
 मसियाना बनेगा नापायेदार होगा'
 (बाल) या 'पश्चिम में मनुष्य यंत्र
 ब्रज हो गया है' (गांधी) आदि।
 पश्चिम वाले—बार-बार हमें 'रोने
 (वेल्डान-मेश)' और निवृत्तिमार्गी
 मृत्यु-चिन्ताग्रस्त ('आत्महत्या से
 देहांत के विरुद्ध,' 'आहत
 'आर' आदि कविता-संग्रहों के नाम
 (हैं) मानते हैं। सच बात यह
 सामी ('सेमेटिक') धर्म मृत्यु की
 मृत्यु से बहुत ही बुरी तरह आक्रांत है।

सारे ईसाई गिरजे और कब्रिस्तान सलीब पर मरे जीसू की अंतिम बलि की प्रतिमाओं से भरे पड़े हैं (प्रतीकरूप में सलीबों से) । 'या हुसैन' 'या हसन' ! से मुहर्रम सब जगह मनाया जाता है। हिजरत ही वहां बड़ी ऐतिहासिक घटना है, यहूदियों के लिए अपने पाक-व्रतन से निर्वासन ! यह अपने आपसे उखड़ा-उखड़ापन उन्हें ज़मीन में गाड़ देता है। उन्हें 'मौत का एक दिन मुऐय्यन है, नींद क्यों रात भर नहीं आती' से परेशान करता रहता है। यहां मामला दूसरा है : 'बासांसि जीर्णानि यथाविहाय'—है—बुद्ध और महावीर के परिनिर्वाण के विशाल शिल्प हैं। उनके देह-विसर्जन की घड़ी के बहुत कम ।

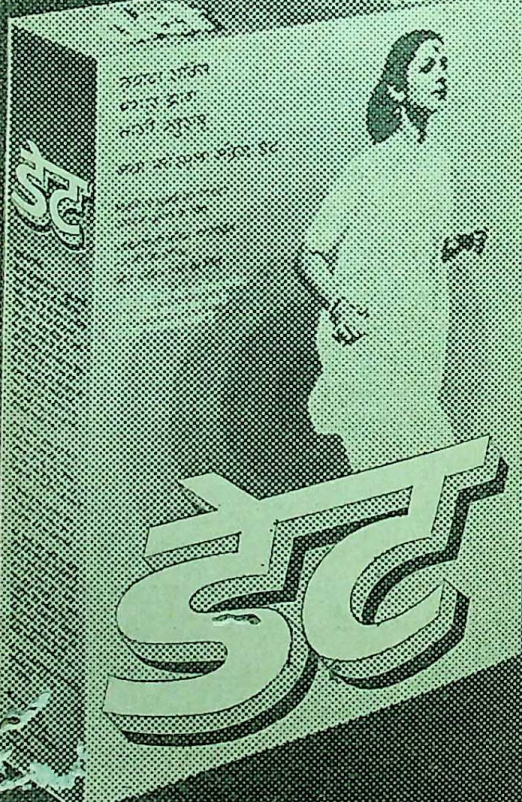
इसलिये परोपदेश से पहले यह ज़रूरी है कि हम अपने आपमें कर्म और प्रेम का समन्वय देख लें। इसी की विच्छिन्नता ने देश को विपन्न कर दिया है। साहित्य में यह दुर्चित्तापन और विकृतियाँ पनपी हैं। अपना घर-परिवार ठीक से संभाल नहीं सकते, और चले हैं विश्व में क्रांति करने। एक नारी के साथ निष्ठा का व्यवहार नहीं कर सकते, नारी जाति पर अन्याय पर भाष्य लिखने बैठते हैं। इन अप्रमाणिक व्यक्तियों की बातों का क्या भरोसा? अब्बल तो अपनी पत्नी के खिलाफ मित्रों को पत्र लिखते रहना अनैतिक है, मित्र का उन पत्रों को सार्वजनिक उपयोग के लिए मित्र न करने पर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सफ़ेदी

डे

डिटर्जेंट धुलाई का
पाउडर



बेजोड़ धुलाई की शक्ति, भरपूर झाग,

करना और भी अनैतिक है। ऐसे व्यक्ति चाहे जो 'वाद' अपने नाम के साथ चिपकाये घूमे, गलत है। मार्क्सवादी हो, कला-वादी हो, समाजवादी हो—कोई 'वादी' नहीं है। और जिसने 'मर्म' नहीं कहा, उसे किसी भी व्यक्ति को होमने का अधिकार नहीं। उसे का उपयोग ये लोग सीढ़ी की तरह करते हैं। जैसे सार्त्र ने कहा 'दूसरा नरक है'। इसी बात अहिंसा, अनासक्ति, अपरिवर्तनीय है। ये सब मोठे सदुपदेश औरों को बोलते बुरा अपने भीतर झाँककर निकिता विराट् अपव्यय—समय, लक्ष्मी और कलम-धर्मी लोग, इन लोगों के नाम पर कर रहे हैं ! कहां उनका जीवन ? कहां है उनका कथन ? मैं नहीं कि ऐसे लोगों की बातों में कोई विश्वास नहीं करेगा। गये वीस

वरसों में ऐसे बूढ़ा कम्प्यूनिस्ट, ऐसे रंगीले साधु और ऐसे लोभी गांधीवादी, ऐसे सत्ता-और-कुर्सी-मोही देशभक्त, देश में बहुत बढ़ गये हैं। सबके सब अवसर-वादी हैं। कोई बड़ी आधुनिकता और निषेध की बात करते-करते आराम से सुविधा-जीवी नौकरी या 'बॉस' की, सत्ताधीश की कृपा का पात्र बनने का यत्न करता है। मैंने ऐसे कई लोगों को बहुत निकट से देखा है। अतः मेरी श्रद्धा भारतीय लेखक के फतवों या तेवरों पर नहीं हो पाती। 'माई गॉड हैज फेल्ड'—सब जगन्नाथों के पैर काठ के हैं। हमाम में सब नंगे हैं। काजल की कोठरी में सब सयाने दाग बचाते घूम रहे हैं। ऐसे में क्या महान् साहित्य रचोगे, मित्र ?

इसलिए, प्रिय मित्र वीरेन्द्र, मैं अब लिखता कम हूँ। कर्म और प्रेम के बिखरे सूत्र यथाशक्ति जोड़ने लगा हूँ। लेख लंबा हो गया है, इच्छा न लगे तो मत छापना।

अधिकार

शान्तिनिकेतन में गर्मी बेहद पड़ती है। गर्मी की एक शाम को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी खदर की छोटी धोती पहने बाहर पढ़ रहे थे। रोशनी कम होने लगी थी, आबस के कारण उठ नहीं रहे थे, किताब को और पास लाकर पढ़ते जा रहे थे। तब ऊपर से क्षितिमोहन सेन के साथ रवीन्द्रनाथ आ गये। गुरुदेव को देखकर द्विवेदीजी चौंकर खड़े हो गये और उनके सम्मान के लिए अपनी धोती के छोर से ऊपर का बाँके की चेष्टा करने लगे, खदर की छोटी धोती, ऊपर खिंची तो नीचे पैर उघड़ने लगे। द्विवेदीजी के संकोच को देखकर क्षितिमोहन सेन बोल—अरे पंडितजी, काहे परेशान हो रहे हैं, इस देश में संस्कृत पढ़े पुरुषों और अंग्रेजी पढ़ी स्त्रियों को नंगे रहने का पुरा अधिकार है। इस पर जोर का ठहाका लगा।

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

मुनिया रानी बढ़ती जाये
हमी कासे, बालों का जादू जगाये
मोहनी से सफेद दाँतों को चमकाये

heros' -A8-181 8 MM



हमारे काले वस्त्रों पर
हमारे काले वस्त्रों पर
हमारे काले वस्त्रों पर
हमारे काले वस्त्रों पर

तेजाश्रम का गाय छाप ब्राह्मी ओवल के तेल
और काला वस्त्रों पर



हमारे काले वस्त्रों पर
हमारे काले वस्त्रों पर
हमारे काले वस्त्रों पर
हमारे काले वस्त्रों पर

हमारे काले वस्त्रों पर
हमारे काले वस्त्रों पर
हमारे काले वस्त्रों पर
हमारे काले वस्त्रों पर

दो क्षण तो हैंस लें

एक शाहक ने दर्जनों स्वेटर देख डाले, कोई स्वेटर पसंद ही नहीं आया। अंत में वह स्वेटर हाथ में लेकर वह दुकानदार बोला— 'क्या यह शत-प्रतिशत ऊनी है?'
उस दुकानदार टरकर बोला— 'नहीं, बटन नायलोन के हैं !'

०००

शेखर के एक धनी, किंतु अनपढ़ दुकानदार ने किसी ने उसकी सफलता का राज बताया, 'साहब, मैं हिसाब-किताब में कमजोर हूँ, जो चीज़ एक बार की लाता हूँ उस पर एक रुपया देता हूँ, इस तरह एक प्रतिशत लाभ होता है !'...

०००

शेखर पर चल रहे मरम्मत कार्य की प्रगति देने वाले बोर्ड पर किसी मनचले ने एक शब्द जोड़कर उसे सटीक बना दिया—
'आगे काम चल रहा है—शायद'

०००

मनचले घटाने का एक आश्चर्यजनक प्रयास— 'अपने फ़िज़ के दरवाज़े का हैंडिल केवल तीन इंच ऊपर करवा दें'

—सुधीर निगम

एक अवसर पर श्री महावीर त्यागी के इस शेर के कहने पर कि 'इश्क ने मुझको निकम्मा कर दिया, वरना हम भी आदमी थे काम के', पं. जवाहरलाल नेहरू बोल उठे— 'त्यागी ! शेर ऐसा नहीं है, ऐसा है— 'काम ने मुझको निकम्मा कर दिया, वरना हम भी आदमी थे इश्क के !' ... सुनते ही सभी ठहाका मारकर हंस पड़े।

०००

कलकत्ते में एक बार एक नवयुवक सज्जन आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी से मिलने आये।

उन्होंने दाढ़ी बढ़ा रखी थी। द्विवेदीजी ने बहुत गंभीरता से पूछा, क्या आपकी शाल खो गयी है। वे जरा असमंजस में पड़कर बोले नहीं तो। द्विवेदीजी ने कहा, 'भाई बात ऐसी है कि काशी के एक पंडितजी का अंगौछा खो गया था, तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि पंद्रह दिनों तक दाढ़ी न बनवाकर उसी पैसे से नया अंगौछा खरीदूंगा। सो आपकी इतनी बड़ी दाढ़ी देखकर मुझे लगा शायद आप अपनी शाल का घाटा पूरा करने की कसम खाये बैठे हैं।

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'



रोमांचक कल्पनाओं का अनोखा संसार

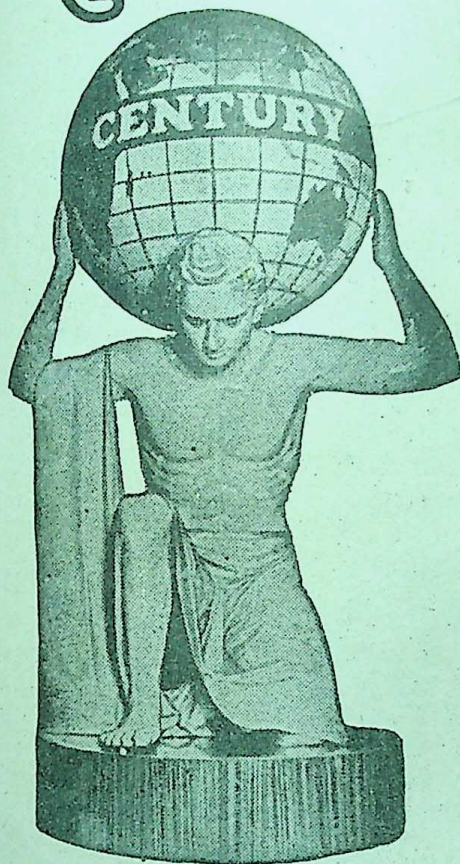
वेताल, जो कभी नहीं मरता।
फ्लेश गॉर्डन, जो अंतरिक्ष का हीरो है
मैट्रोक, जो मायावी जादूगर है। और
बहादुर, जो आम जनता का हीरो है।
इन सबके साहसपूर्ण कारनामे।
बुराई पर अच्छाई की विजय।
मन को बांध लेनेवाली कहानियां
जो बच्चों के दिलोंदिमाग पर
छा जाती हैं। उनको साहस और
बहादुरी की प्रेरणा देती हैं।
रहस्य और सनसनी में गुंथी हुई
बीते दिनों की अद्भुत कहानियां।

देश की महान विभूतियों के जीवन-प्रसंग और
यह सब सिर्फ शब्दों में नहीं, बहुरंगी चित्रों में
रहस्य, रोमांच और प्रेरणा के रंग
बच्चे ही नहीं, बड़े भी हो जायेंगे।

इंद्रजाल कॉमिक्स
टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
TIMES

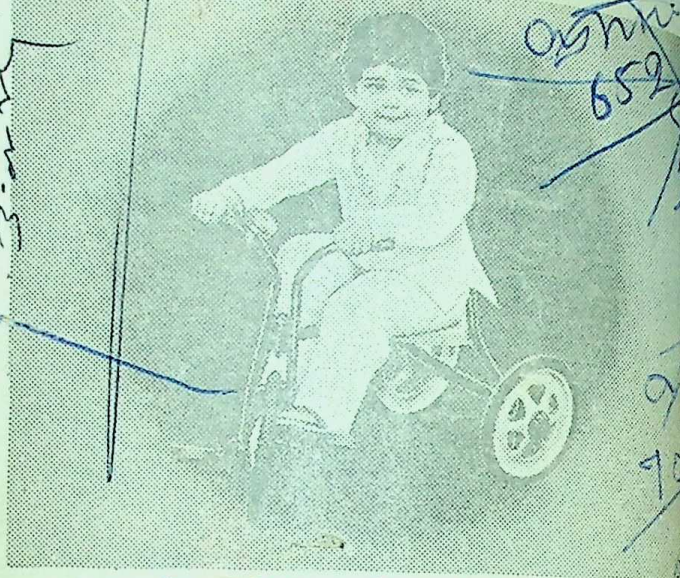
मु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्याभवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००३
के द्वारा प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
बंबई-४००००४ में मुद्रित।

सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये

दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई



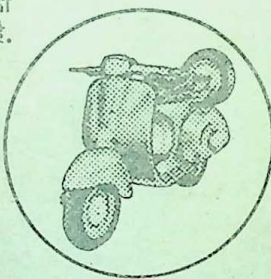
आज तीन पहिये की साइकिल...तो कल एक स्कूटर धन्य है तुम्हारा प्यार...और स्टेट बैंक का साथ

बच्चों की जरूरतें भी वक्त के साथ-साथ बदलती रहती हैं.

लेकिन हर माता-पिता की इच्छा हमेशा एक ही रहती है.

वे हर हालत में अपने बच्चों को खुश देखना चाहते हैं. उनकी हर जरूरत पूरी करना चाहते हैं.

इसके लिए भले ही उन्हें कोई भी कीमत चुकानी पड़े, चाहे जो कुछ भी त्याग करना पड़े, वे तो अपने बच्चों की आँखों में बस खुशी की चमक देखना चाहते हैं.



चदि आप भी अपने बच्चों को एक सुनहरा बचपन और एक उज्ज्वल भविष्य देना चाहते हैं तो स्टेट बैंक में बचत कीजिए.

हमारे पास आपके हर सपने के अनुरूप योजना है.

अपने बच्चों के वर्तमान और भविष्य के अपने हर सपने के अनुरूप हमारी विविध उपयोगी योजनाओं में से चाहे जो भी चुनिए.

पुनर्निवेश योजना, आवर्ती जमा योजना, बचत खाता, सावधि जमा, अवयस्क खाता, जनता जमा, निरन्तर पेन्शन योजना और नकद प्रमाण पत्र.

बचत के लिए



स्टेट बैंक

भारत का सबसे बड़ा बैंक.

CHAITRA-SBI-623 HN

‘भारती’ से समन्वित

जुलाई, १९८१

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

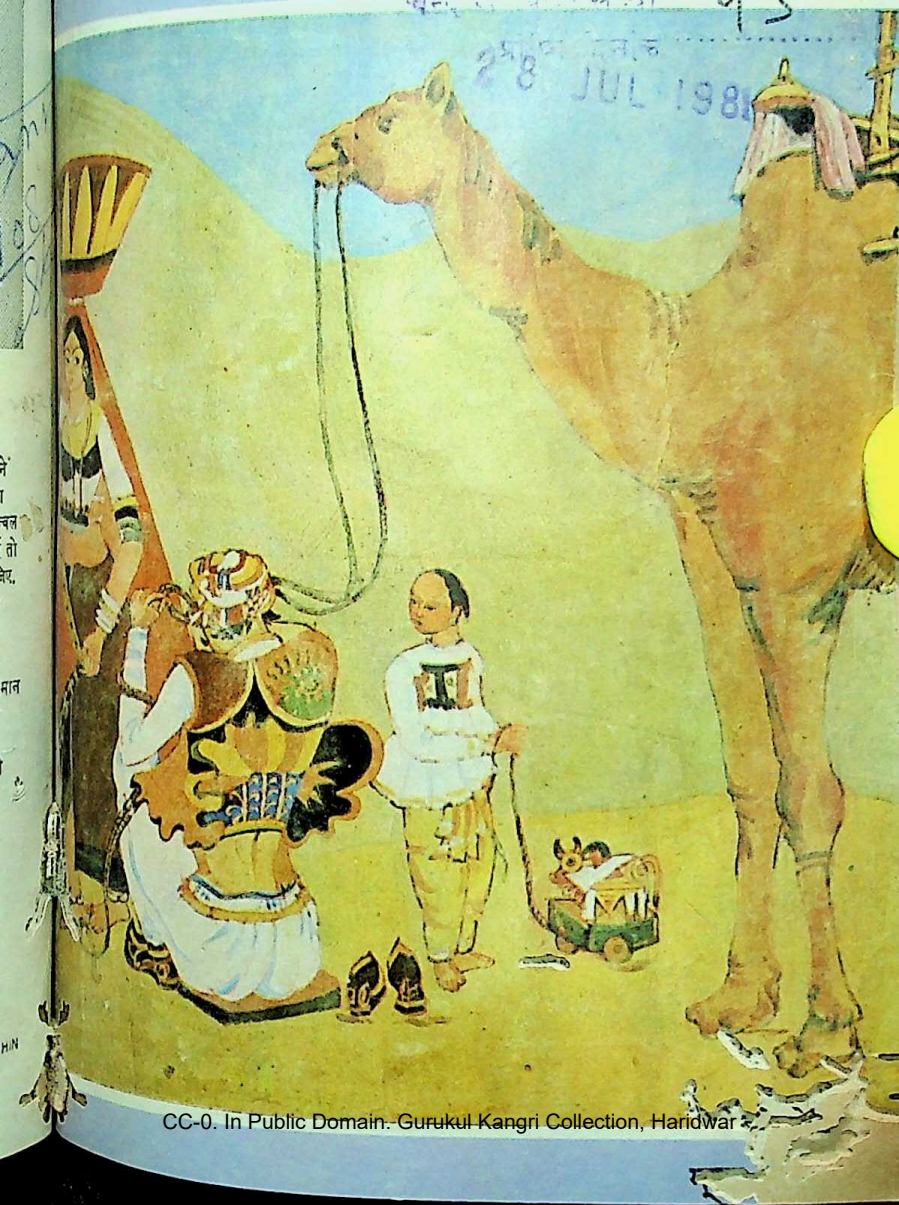
तबलीब

हिन्दी डाइजैस्ट

बुद्धि से प्रकाश जलवा

28 JUL 1981

28 JUL 1981





रोमांचक कल्पनाओं का अनोखा संसार

वेताल, जो कभी नहीं मरता।
फ्लेश गॉर्डन, जो अंतरिक्ष का हीरो है
मैड्रैक, जो मायावी जादूगर है। और
बहादुर, जो आम जनता का हीरो है।
इन सबके साहसपूर्ण कारनामे !
बुराई पर अच्छाई की विजय !
मन को बांध लेनेवाली कहानियां
जो बच्चों के दिलोदिमाग पर
छा जाती हैं। उनको साहस और
बहादुरी की प्रेरणा देती हैं।
रहस्य और सनसनी में गुंथी हुई
बीते दिनों की अद्भुत कहानियां।

देश की महान विभूतियों के जीवन-प्रसंग और
यह सब सिर्फ शब्दों में नहीं, बहुरंगी चित्रों में
रहस्य, रोमांच और प्रेरणा के रंग !
बच्चे ही नहीं, बड़े भी हो जायें रंग !

इंद्रजाल कॉमिक्स
टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
TIMES AS

स्वामिनारायण गौरव गाथा-३१

द्विशताब्दीकी गौरवगाथा



भगवान स्वामिनारायण
द्विशताब्दी महोत्सव
१९८१-१९८२

भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी महोत्सव भारतीय संस्कृति के धर्म, वेद, वेदों और प्रमाण का उद्भव है। पञ्चवर्षीय आयोजन में 'वोचाराणावासी श्री अक्षर पुरुषोत्तम संस्था' ने अनेक प्रकार के कार्यक्रमों द्वारा सारे विश्व में यह कार्य किया। शिक्षण, साहित्य, आरोग्य, रहन सहाय, सारी उन्नयन, आदिवासी रूपान्तरण, संगीत, बाल-युवा चरित्र, निर्माण, जन जागृति आदि प्रयत्नों में संस्था ने पूर्ण प्रगति प्राप्त की है। व्यापक क्षेत्रों को व्यसन मुक्त एवं मदाचार समुद्ध कृत् मुख्य-शान्ति अर्पित की है, जीवन में हारे व्यक्तियों को आशान्वित किया है। देशजों के अनेक मनुष्य तब पहली हुई इस कार्य-परम्परा का पूर्ण

परिचय देना सम्भव नहीं है। संक्षेप में कहें तो—अठारहवीं सदी के उत्तर काल में भगवान स्वामिनारायण ने जो विप्लव कार्य किया था ऐसा ही उनकी द्विशताब्दी पर बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में उनके अखण्ड धारक पुत्र प्रभुसु स्वामी महाराज ने किया।

शिक्षण, पदयात्रा, सामूहिक सभाएँ, पाठशाला, परीक्षण आदि के द्वारा मदाचार-वृद्धि एवं व्यसन मुक्ति का लक्ष्य प्राप्त हुआ। चिकित्सा यज्ञ, रक्त दान, नेत्र-दन्त यज्ञ, बाल चिकित्सा यज्ञ बड़े पैमाने पर आयोजित किये गये। वज्रध्वनी विविध भाषी प्रकाशन माता समाज में प्रसारण हो रही है। 'कीर्तन आराधना' के द्वारा विस्मृत हो रहे भक्ति मार्ग को फिर से कहीं रुके-ठके की मदद से पर-पर में गुंज रहा है। भारतीय संस्कृति का चिरमनन स्मारक 'अक्षरधाम' भी आकर पहल कर रहा है।



प्रयोजक वोचाराणावासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था शाहीबाज अहमदाबाद.
उपस्थित ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री नारायणस्वरूपदासजी (प्रमुख स्वामी)

C. N. PANSARA, SING. 31

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया

भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

दीरेन्द्र कुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

रान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र :

रेगिस्तान की रानी

चित्रकार : विष्णु भटनागर

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३० ; अंक : १९८४

‘कविता की तीसरी आंख’

—रमेश दवे

बासठ वर्ष की आयु में दृष्टि-लाभ

—बॉव विलियम्स

प्रख्यात उपन्यासकार का

द्विचित्र प्रेम

—आदित्यकुमार

पीढ़ियों के संघर्ष की बात ...

—रामकुमार

संस्मरण सहान शरच्चन्द्र के

—डा. गोपाल प्रसाद वंशी

प्रार्थना

लातिव शाह और शेख मोहम्मद

—सावित्रीबाई खानोलकर

आधुनिकता : संवेदन और सम्प्रेषण

—सच्चिदानन्द वात्स्यायन

अनंत कुमार पाषाण की कविताएं

शाश्वत ... का स्रोत : पूर्वीय गोलाट

‘जागो फिर एक बार’

—महादेवी वर्मा

उन्नीसवीं शती का भारत

—श्रीअरविन्द

बिल्डुआ (हिन्दी कहानी)

—श्यामसुंदर घोष

यादें (कविता)

—निर्मलकुमार

गुजरात के चित्र-कथाकारों के

—डा. ज्योतीन्द्र जैन

चित्रित पट

दो प्रेम कविताएं

—आलोक भट्टाचार्य



अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित प्रगतिशय जिज्ञा, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी धर्मादा न्यास, संस्थापक : कुलकर्ति क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री धरमसी म. घटाङ्ग, उपाध्यक्ष : श्री निरधारीलाल मेहता, श्री जयमुखलाल हाथी ।

सहयोगी प्रतिष्ठान

१- मुम्बादेवी संस्कृत महाविद्यालय २-राष्ट्रीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३-सरल संस्कृत परीक्षा विभाग ४-गीता विद्यालय ५-मुम्बाला गौयनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं मोक्ष प्रतिष्ठान ६-मुम्बो सरस्वती मंदिर (पुस्तकालय) ७-बल्लभजी रामजी बाल पुस्तकालय ८-भारतीय संगीत शिवाग्रीठ ९- भारतीय नर्तन शिवाग्रीठ १०-भारतीय इतिहास विभाग ११-प्रकाशन मंदिर, पुस्तक मुनिर्वसिटी, मुम्बो सार्वजनिक, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या प्रेमसिद्धि), मन्मथ जर्नल (अंग्रेजी मासिक), संविद (संस्कृत प्रेमसिद्धि), नवनीत हिन्दी डायरेक्ट (हिन्दी मासिक), नवनीत समर्पण (मुजराती मासिक) १२-प्राचीन जलद्विष्टा और आधुनिक आविष्कार योजना १३-अभिनवदिक योजना १४-राजकी गतवापिकी समिति १५- म. म. कला कालेज और न. म. विज्ञान शिक्षण संस्थान (अंग्रेजी) १६-यल्लभराम मेहता पब्लिक स्कूल (नयी दिल्ली) १७-हजारीमल सोमानी कालेज, कला एवं विज्ञान (बोराटी, बम्बई) १८- सरदार पटेल अभियांत्रिकी कालेज (अंग्रेजी) १९- रणछोड़लाल अचरलाल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०- रणछोड़लाल अचरलाल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१-अलीबाबेन वाणिज्य कालेज, (डाकोर) २२- कला एवं विज्ञान कालेज (डाकोर) २३- स्वामीनारायण पालिटेक्निक (डाकोर) २४- श्री अनुराग कालिदास जोगी महिला कालेज (जामनगर) २५- ज. स. मेहता विज्ञान कालेज (भरवारी) २६- राजेन्द्र प्रसाद संश्लेषण एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मुनिट) : प्रागल्भ्य देवकल नानडी संश्लेषण एवं प्रबंध विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंश्लेषण कालेज, नयी दिल्ली; हरिनाल भगवती जनसंश्लेषण कालेज अहमदाबाद तथा बंगलौर; सोमानी जनसंश्लेषण कालेज, एरनाकुलम्; बड़ोदा, चंडीगढ़, मुद्रा, हैदराबाद, मंगलौर तथा त्रिपुरा में स्थित जनसंश्लेषण कालेज २७- जवाहरलाल नेहरू भाषा अकादमी, नयी दिल्ली २८- ज. ह. बाडिया स्कूल (अंग्रेजी) २९- बल्लभराम मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याश्रम) बड़ोदा तथा भरवारी ३०-भवन का विद्या मंदिर, एलायस्कूर, एरनाकुलम ३१- कोचीनयार्ड पर भवन का स्कूल, कोचीन ३२- बल्लभराम मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याश्रम) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३- भवन का पब्लिक स्कूल, भैत, रामचन्द्रपुरम्, हैदराबाद ३४- संयुक्त संस्थाएं : संस्कृत विश्व परिषद; भारतीय स्त्री सेवा संघ; ज्योतिष परिषद् (बम्बई) ३५- संस्कृति पाठ्यक्रम पुस्तकें ।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलौर, बड़ोदा, भोपाल, मुम्बई, कलकत्ता, चंडीगढ़, कोयंबटूर, डाकोर, दिल्ली, एरनाकुलम, मुद्रा, हैदराबाद, जम्मू, जामनगर, काकीनाडा, कानपुर, मद्रास, मुद्रा, मंगलौर, मुकुंदपुर, नागपुर, सिवोन, श्रीनगर, त्रिपुर, बिनायापट्टनम्, लंदन (संयुक्त राज्य) ।

भारतीय विद्या भवन

के.एम.मुन्शी मार्ग, चोपाटी, बम्बई-४००००७

फोन : ३५१४३१

डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय के हाल ही में प्रकाशित
एक मौलिक-मार्मिक समीक्षा-ग्रंथ पर

रमेश दवे का तलस्पर्शी विवेचन



खण्डित और स्वयंभू प्रवृत्तियों के खिलाफ—‘कविता की तीसरी आँख’

एस. एच. बर्टन ने सही कहा है कि गद्य की आलोचना पद्य की आलोचना से अधिक कठिन कार्य है, जिसका पहला कारण तो यह है, कि कविता का मूल कलेवर रूपात्मक है, जबकि गद्य का रूप-विहीन, और दूसरा कारण यह भी है, कि कविता में हम उसके समूचे स्वरूप से एक साथ साक्षात्कार कर लेते हैं, जबकि गद्य में यह प्रक्रिया परिच्छेदात्मक हो जाती है। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय के साहित्यिक निबंधों का ताज़ा संग्रह ‘कविता की तीसरी आँख’ ऐसी ही चुनौती के साथ पाठक के समक्ष उपस्थित होता है और जब पाठक उससे साक्षात्कार की मुद्रा में मिलना चाहता है, तो पुस्तक इण्टरव्यू नहीं देती बल्कि चुनौती देती है, और आय. ए. रिचर्ड्स की यह बात सच लगने लगती है कि किताब एक ऐसी मशीन होती है, जिसके जरिये सोचा जा सकता है। (इसका अर्थ यह नहीं कि सोचने की बेचैनी में हम मशीन का

समूचा कर्म ही उठा लायें और किताब के प्रति हमारा नज़रिया एक लोकोपनिषत् का नज़रिया हो जाये।)

‘कविता की तीसरी आँख’ एक रचना-स्थिति-सूचक पुस्तक है, जिसकी अस्मिता जिसका उन्मेष और जिसके अंदर की तापमय ऊर्जा तात्कालिकता के किन्हीं मुहावरे से छली हुई नहीं है। पुस्तक डॉ. श्रोत्रिय के आठ निबंध हैं। ये निबंध किसी सैद्धांतिक दुस्साहसिकता के माध्यम से न आतंक रचते हैं, न आग लगाते हैं, लेकिन रचनात्मकता के रक्त में ऊर्जा के जीवाणु छोड़ते हैं, ऊर्जा की एक चेतना द्वारा प्रवाहित करते हैं, और मनुष्य को अपने-अपने अंदर के उस सर्व को बाहर निकलने के लिए, जो इन्हें देखे पड़े और इनसे बहस करे। साल-दर-साल जब कविताओं की पुस्तकों की रेलमार्ग से ग्रंथालयों की आल्मारियां संवर्धित हो रही हों, और कहानी, नाटक, उपन्यास आदि के चुटीले फैशन से जब आज के

के
आँखर किताब
लोकोपयोग

' एक स

की अस्मिता

के अंदर

के कि

। पुस्तक में

। ये निबंध

के माध्यम

ग लगाते हैं

में अनेक

एक चेतना

और मनुष्य

उस सर्व

इन्हें देखें

न-दर-सा

रेख-म

संदर्भ

क, उपना

आज

जुल

आधुनिकता का चेहरा
होने की पहचान के लिए छटपटा
हो। ऐसी स्थिति में निबंधों की एक
किताब जोखिम भी है, चुनौती
और साहित्य की सच्चाई से जुड़े
साधना-जीवी का दायित्व भी।
अपने इस दायित्व में स्वयं अपने
को चले गये हैं। उन्होंने परंपरा का
खोदा है, लेकिन पहाड़ से चुड़िया
बनने के बजाय पहाड़ के अंतर

विस्फोटित होती

व्यक्ति को कुरेदा

आधुनिकता

महार्सिधु की

गिनने जैसा भी

निरर्थक प्रयास

ने नहीं किया,

कविता के

तत्त्वों की खोज

ज्यादा है। उन्होंने अपने

मूलबोध और

आलोचना-बोध को

संदर्भवत्ता के साथ प्रयोगा है,

किया है और निर्णय देने का

आचार्य दावा किये वगैर कविता

आँखों से देखने का एक विज्ञान,

दृष्टिबोध दिया है। चाहे यह दृष्टि-

आँखों की तीसरी आँख हो, मगर यह

दो आँखों से अधिक दृष्टिवान

है, और इसकी दृश्य-सत्ता इतनी

विघट और विभ्राट है कि

कविता के वे तमाम तत्त्व अपने आप
एकत्रित हो जाते हैं, जिनसे कविता अपने
समग्र रूप में देखी जाती है, पहचानी
जाती है, और महसूसी जाती है।

अपने कथ्य में ही डॉ. श्रोत्रिय ने यह
स्पष्ट किया है कि पुस्तक में काव्य-चिंतन
और नई काव्य-दृष्टि दोनों का अनुशीलन
है! सृजनशील आलोचना को भी उसके
व्यक्तिवादी अहं से मुक्त कर वे उस
वस्तु-केंद्रात्मकता की ओर ले जाते हैं,

जहां 'आत्म-केंद्रित
अतिवाद के घेरे
टूटते हैं। सर्जनात्मक
आलोचना का अर्थ
वे कृति से ऐसा
साक्षात्कार मानते हैं
जो कर्तृत्व की नई
संभावनाएं एवं परि-
दृश्य खोलती हैं।
उनकी दृष्टि में
आलोचक कवि का
सहयात्री और सह-

भोगी है, सराहना ही नहीं करता, बल्कि
एक सच्चे मित्र की तरह प्रतिवाद भी
करता है, और आलोचक की यही
रचनात्मक भागीदारी उसमें उत्तरदायी
आलोचना का बोध-तत्त्व एवं दृष्टि-तत्त्व
पैदा करती है।

पुस्तक का पहला निबंध है—'परंपरा
और आधुनिकता—संबंध और विरोध।'।
इस निबंध को श्रोत्रिय ने प्रश्नों के साथ



रचा है और पहला प्रश्न किया है—क्या आधुनिकता एक खंडित घटना है? श्रोत्रिय परंपरा को भी अगतिक या जड़ नहीं मानते। उनका विश्वास है कि नये तत्त्वों का समावेश उसे नवीनीकृत करता है, सातत्य देता है, और उसे जड़ता के घटाटोपों से मुक्त करता है! परंपरा का अर्थ वे विगत भी नहीं मानते—क्योंकि विगत होने में उसके फ्रांसिलाइजेशन के खतरे हैं। यदि परंपरा के भीतर रहकर भी रस और रीति की टकराहटें हैं, बक्रोक्ति और अलंकार के दावे हैं, और रस की सर्वोपरिता का एक अदम्य स्वीकार-बोध है, तो परंपरा को सचमुच जड़ता या किसी अगतिक भूमिका से जोड़ देना परंपरा के प्रति गहरी नासमझी होगी। टी. एस. एलियट भी तो यही कहता था और परंपरा की इसी वकालत में जब उसने 'ट्रेडिशन एण्ड इन्डिविजुअल टेलेण्ट' वाला अपना निबंध लिखा तो लीविस को एलियट में एक क्लासिकी व्यक्तित्व दिखाई दिया—चाहे इस क्लासिकी व्यक्तित्व को आगे चलकर डी. एच. लारेन्स ने 'क्लासियोसिटी इज़ बंक्रम'—कहकर निरस्त कर दिया हो। फिर भी इतना तो मानना होगा कि एलियट परंपरा के समूचे निबंध की वकालत न कर सके, चाहे उन्होंने इन्डिविजुअल टेलेण्ट को अधिक महत्वपूर्ण क्यों न माना हो। श्रोत्रिय एलियट के समर्थन में एकदम हाथ ऊंचा करने के बजाय

परंपरा को गतिशीलता के साथ स्वीकार को लोकदृष्टि मानते हैं। मुक्तिबोध तो यही कहते हैं कि—'परंपरा छुटने नहीं है।' श्रोत्रिय ने इस बहस के दोष हैरत, मुक्तिबोध और परंपरा में निम्न आचार्य-तत्त्व को साक्ष्य की तरह सामल तो अवश्य किया है, और उनका दावा भी सही है कि देश को नजरअन्तर करके काल प्रतिष्ठित नहीं हो सकता मगर इस बहस के साथ वे एलियट का 'ट्रेडिशन और इन्डिविजुअल टेलेण्ट' का मुद्दा भी देख लेते तो निबंध और वस्तुनिष्ठ और व्यापक हो जाता। निबंध श्रोत्रिय को उनके सर्वकांक्षित रिचर्ड्स के करीब खड़ा कर देता है क्योंकि रिचर्ड्स भी यही मानते हैं कि परंपरा स्थितियों की अपेक्षा धीमी से बदलती है, और यह बदलाव संभावनाओं और नई प्रक्रियाओं के माध्यम से होता है, जिसमें परंपरा का दाय निरस्त नहीं किया जा सकता।

'रचनात्मक भाषा-बदलते संदर्भों में पुस्तक का दूसरा निबंध है। काव्य के केंद्र से अनुभूति को हटाकर भाषा के स्थापना श्रोत्रिय के लिए महज दृष्टान्त ही नहीं, बल्कि युगान्तर की सूचक है। इस निबंध में 'कविता की आवाज' की भीतरी दृष्टि की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अंग्रेजी साहित्य में कविता बार बार भाषा के जरिये विद्रोह की एलीजाबेथन कविता के खिलाफ

विज्ञान और ऑगस्टन कविता भाषा
 एक भूभाषा युगांतर था, और विक्टो-
 रियन एवं रोमैण्टिक कविता के विशुद्ध
 युगों की भाषा उसी युगान्तर का
 प्रतिफल है। इस निबंध में श्रोत्रिय ने
 रोमैण्टिक सिद्धांतों का शास्त्रीय अहं
 कार खरब दिया है, और स्थापित
 किया है कि भारतीय परंपरा में भाषा-
 विज्ञान की जो सामर्थ्य है उससे यूरोप
 के वैज्ञानिक और उपकरणिय सैद्धांतिकता
 को काफी पीछे है। कुन्तक के वक्रोक्ति
 विज्ञान को श्रोत्रिय ने भाषा-विज्ञान की
 दृष्टि साबित करके उसे काव्य-
 विज्ञान के सही स्तर पर प्रतिस्थापित किया
 है। इस का दबाव, मूर्त-अमूर्त में अभेद
 प्रतीति, इष्टित प्रत्यय आदि तत्वों
 का आत्मनिष्ठ आलोचना में उपेक्षा,
 सब ऐसे ह, जिन्हें दृष्टिमान आंख
 देख सकती है और श्रोत्रिय ने अपनी
 आंखों का यहाँ सही इस्तेमाल
 किया है। अर्थमीमांसा की सशक्त धारा
 को बुद्धिमान छान देने की कोशिश समुद्र
 की कोशिश है, लेकिन इस
 को श्रोत्रिय ने प्रगाढ़ अध्ययन
 के जल में अत्यंत हौंसले के
 साथ किया है। भामह, दण्डी, उदभट,
 आदि के विभिन्न सिद्धांतों
 पर खरब एवं चीरफाड़ वहीं
 कर सकता है जो इन सिद्धांतों
 को ही तक पहुंचा हो, और जिन्हें समझने
 का ठीक मादा हो। अधिकांश

समीक्षक नामों और उनके द्वारा प्रति-
 पादित सिद्धांतों का संदर्भ की तरह उपयोग
 तो करते हैं, मगर उनसे उलझते नहीं।
 श्रोत्रिय की खासियत यही है कि वे उनसे
 उलझते हैं और उलझकर ही वक्रोक्ति को
 काव्य-भाषा कह देने और उसे आधुनि-
 कता से जोड़ देने का साहसिक निर्णय
 दे सके हैं।

श्रोत्रिय ने भाषा को लेकर यहाँ एक
 पूरी डिबेट की है। आनंद वर्द्धन, कुन्तक,
 विश्वनाथ, अभिनव गुप्त, दण्डी जैसे
 क्लासिकों से लेकर रामचंद्र शुक्ल और
 एलियट तक को इस डिबेट में शामिल
 किया है, और इसी वहस से भाषा में
 प्रयुक्त शब्द के उस स्पंदित अर्थ को
 खोजा है जो कविता की भाषा, कविता
 का शब्द होता है। एलियट कविता के
 लिए जिस शब्दातीत अर्थ की बात करते
 हैं, श्रोत्रिय उसे संपूर्ण रचना-प्रक्रिया का
 अविच्छिन्न अंतस्तत्व मानते हैं। यहाँ
 श्रोत्रिय भाषा के सिण्टैक्टिक-स्ट्रक्चर
 या सीमेण्टिक संवेदन की भी एक अच्छी
 वहस छेड़ सकते थे, मगर शायद ऐसा
 करने में निबंध, कविता के मुकाम से
 हटकर भाषा विज्ञान के कठघरे में जा
 खड़ा होता। श्रोत्रिय ने यहाँ एलेनटेड
 के संदिग्ध अंतराल (डिटरमिण्ड पाज)
 वाले मुद्दे को बहुत खूबी से उठाया
 है और एलेनटेड एवं रिचर्ड्स की टकराहट
 को भी प्रस्तुत किया है। 'तनाव' की
 रचना एलेनटेड का भाषा में निहित एक

When you save with **NEW BANK** Smiles are on the way



Security is happiness. When you know your savings in NEW BANK will take care of all your rainy days, you can smile with ease.

Start saving with NEW BANK today. Our various schemes like Saving Accounts, Fixed Deposits, Reinvestment Deposits, Janta Deposits and Popular Deposits will assure these smiles for you.



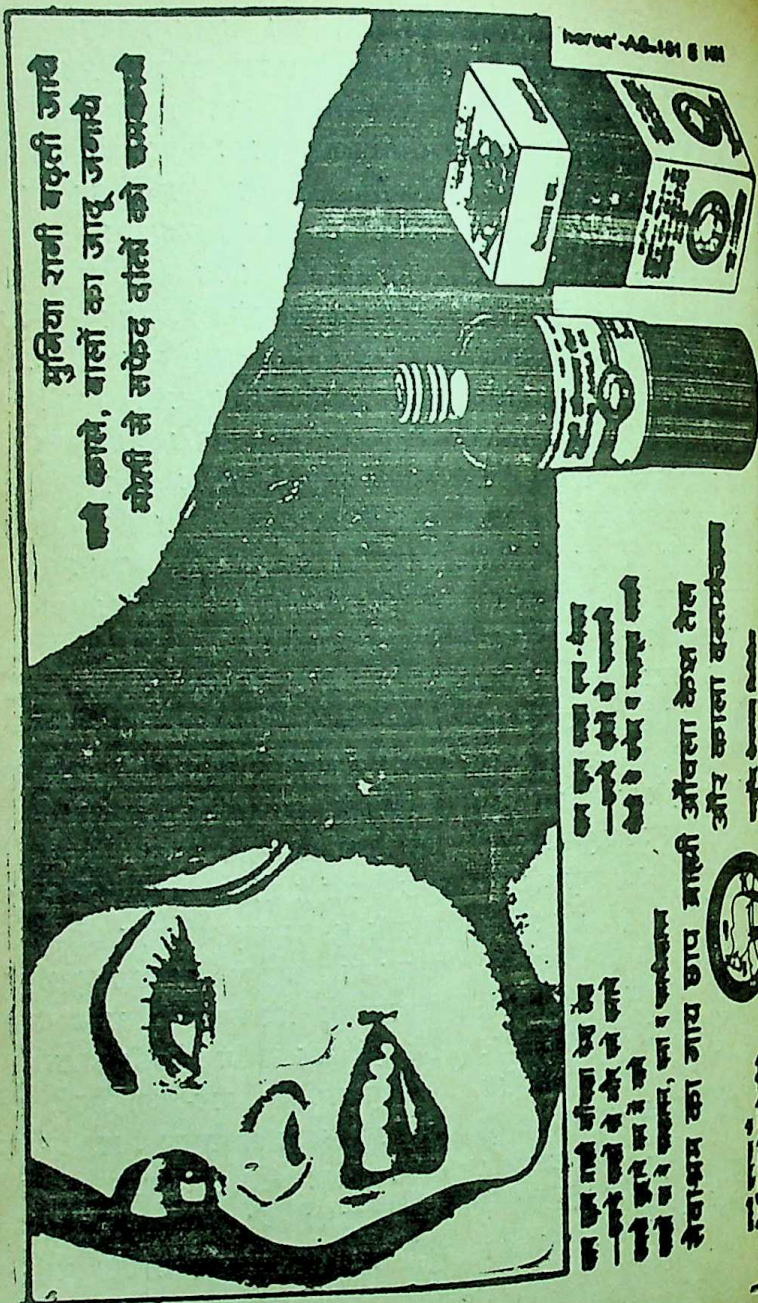
NEW BANK OF INDIA

(A Government of India Undertaking)

इस निबंध को श्रोत्रिय ने बिब से जुड़ी तमाम भारतीय और अति-आधुनिक धारणाओं के साथ जोड़कर देखा है। जिस प्रकार एलियट ने बिब को अतिवाद से बचाने के लिए 'आब्जेक्टिव कोरि-लेटिव' का सिद्धांत रचा, उसी प्रकार बिब को इंद्रिय सापेक्ष संवेग की भूमिका से उठाकर, बौद्धिक एवं काव्यमय संवेद्यता के धरातल पर हुलमे के साथ मिलकर देखना, निबंध के आंख-तत्त्व की सार्थकता सिद्ध करता है। यद्यपि श्रोत्रिय लुइस, एज़रा पाउण्ड, एलियट आदि का रेफरेन्स की तरह इस्तेमाल तो करते हैं मगर बिब का एक समूचा आंदोलन जिस तरह से पश्चिम की रचनात्मकता ने किया है, उसे भी आंक नेते तो यह निबंध बहुत काम्पेक्ट हो जाता। रिचर्ड्स का कला या रचना में 'पिक्चर-इमेज' या 'स्टेच्यू-इमेज' को महज निर्मिति या कन्स्ट्रक्शन मानता है, जबकि 'वर्ड-इमेज' को क्रियेशन। कविता यदि 'तीसरी आंख' से कुछ देखती है और देखकर अपने भीतर समाती है, तो वह वर्ड-इमेज ही है, जो रचाव की प्रक्रिया में बिब की तरह कविता में आता है और सृजन के समग्र कलारूप एवं भावरूप की चौकसी करता है। यहां श्रोत्रिय ने अर्थ-चित्र, सौंदर्य, शब्द की अनुपस्थिति से उत्पन्न बिब, इम्प्रेशनिस्ट आंदोलन और तार सप्तक के कवियों के बिबवादी घोषणा-पत्र आदि तमाम मुद्दों पर एक संश्लिष्ट धारणा रची है।

इस निबंध को श्रोत्रिय ने कुन्तक के करीब खड़ा करके पश्चिमी चिंतन को आंखें खोल-कुछ देखने के लिए मजबूर किया है। कुन्तक ने भाषा को कविता की सिद्धांत के 'रचनात्मक तनाव' को किस प्रकार चिंतन में गूँथ दिया था। श्रोत्रिय ने एनेलजी साही के दोहरे संकट को उठाया तो अवश्य और साहीजी 'जीवित-मृत भाषा' और 'जीवित-मृत' के सिद्धांत को भाषा-केंद्रित चिंतन की सीमाओं के रूप में देखा। मगर यदि साही की इस एनेलजी को श्रोत्रिय थोड़ा और विश्लेषित करते, शब्द साही के अप्रोच पर अच्छा किया जा सकता था। श्रोत्रिय का यह वहस जिस धरातल पर निबंध से की है वह यह बताती है कि बिब में उनकी यह वहस अनोखी है। एनेलजी जैसे दिग्गज जहां क्लासिकों को उद्धरण बना सके, वहां श्रोत्रिय को पर वहस करके पूरे दमखम के साथ साबित कर दिया है कि क्लासिक को कोट करने की चीज नहीं होते, उनसे भी लड़ा जा सकता है, और जीत हो तो उनका निषेध, विरोध निरस्त भी किया जा सकता है। निबंध निबंध पुस्तक के टाइटिल निबंध है। 'बिब' को श्रोत्रिय ने कविता की तीसरी आंख कहा है।

मुमिया राणी बहली जाये
हमी काले, बालों का जादू जगाने
मोती से सफेद वस्त्रों को सजाने



हमारे काले बालों का जादू जगाने
मोती से सफेद वस्त्रों को सजाने

हमारे काले बालों का जादू जगाने
मोती से सफेद वस्त्रों को सजाने



विव को उसकी सृजन-भंगिमा का पूरा मनोविज्ञान दिया है। वे अज्ञेय, अज्ञेय, मुक्तिबोध, वीरेंद्र कुमार जैन, रंग मेहता एवं भदानी प्रसाद मिश्र को उनके यथार्थदर्शी विवों की रेखाओं में ब्रवीत होते भी देखते हैं, मगर श्रोत्रिय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तब तक हैं जब वे लुइस के जरिये यह साबित करते हैं कि किस प्रकार पश्चिम का पुरी कवि विव बनते-बनते 'कविता की खोज' हो गयी और आगे चलकर किस प्रकार बादलेयर इन विवों को रंग, ध्वनि, अनुभूति, गंध आदि अंतर्वर्गों में डोलकर उनकी काव्य-सत्ता से सर्जक भाषात्कार करा पाया। श्रोत्रिय निबंध में अपने भाषा वाले निबंध में वह तार्किक तो अधिक नहीं हुए, किन्तु विव की स्थापित सत्ता को जिस तीव्रता में उन्होंने रखा वह आचार्यों की भाँति में न होकर भी सैद्धांतिक संप्रभुता में प्रगट है। वर्गीकरण वाला पक्ष यद्यपि कभी बसर नहीं छोड़ता मगर वहाँ श्रोत्रिय के लिए नया कहने लायक था क्या? यदि विव कविता की आंख का है तो वह नये या पुराने की मान्यता में जुड़कर नहीं, बल्कि कविता के सृजन-क्षेत्र से जुड़कर बना है। इसलिए श्रोत्रिय के लिए विव कोई युग-गत संकेत न होकर, काव्यगत अनिवार्यता का चिह्न है और इस अनिवार्यता को उन्होंने कभी अग्रहण होकर तो कहीं प्रामाणिक

होकर सिद्ध भी किया है।

पुस्तक का चौथा निबंध है—'काव्य भाषा के गभित संकेत-प्रतीक'। यहाँ श्रोत्रिय आचार्य शुक्ल को दोहराते हुए बताते हैं कि किस प्रकार शुक्लजी अलंकार प्रणाली के अंदर की व्यवस्था के रूप में प्रतीक को स्वीकारते थे। प्रतीक का वर्तमान अर्थ तो उसे फ्रांस के १९ वीं शताब्दी के प्रतीकवादियों ने दिया। श्रोत्रिय ने बड़े साफ ढंग से बताया है कि जिस तरह विव स्वयं अपना लक्ष्य नहीं होते ठीक उसी तरह प्रतीक भी अपने कथ्य की प्रतीति कराते हैं। यहाँ प्रतीकवादियों के महा-पुरोहित मल्लर्म को भी श्रोत्रिय ने उसके अपने नवीनता के दावे से खारिज किया है, क्योंकि कविता कोई जनरल नॉलिज का परचा नहीं होती जिसमें महज जानकारी हो या चीजों की फेहरिस्त हो। प्रतीक को श्रोत्रिय ने भाषा-विज्ञान, अध्यात्म और तत्त्व-ज्ञान के दर्शनवादी घेरे से भी बाहर निकाला है और उसे सिर्फ कविता के घेरे में रखकर देखा है, जांचा है, और प्रतीक में निहित उसके डीप-स्ट्रक्चर की सार्थकता दर्शायी है।

सर फिलिप सिडने कविता को 'स्पीकिंग पिक्चर' मानते हैं, जबकि सी. एम. वादरा ने प्रतीकवाद को वैज्ञानिक यथार्थ के विरुद्ध माना है। मलार्मे में प्रतीक का समग्र चिंतन गिरजाधरी समारोह से निकलकर आया था, और

ओरियन्ट पेपर एन्ड इन्डस्ट्रीज़ लि.

रजि. आफिस :
ब्रजराजनगर, उड़ीसा

उत्तम प्रकार के प्रिंटिंग-राइटिंग, पेकिंग-रैपिंग
कागज और पेपर बोर्ड के निर्माता

मिल्स : ब्रजराजनगर-७६८२१६
अमलाई-४८४११७

शीघ्र पत्र विवरण हेतु पोस्टल पिन कोड व्यवहार करें।

सौंदर्य की परिकल्पना में
 लोरी और पेटर जैसे लोग सौंदर्यवादी
 ज्ञान के सगना बने थे, उसमें प्रतीकों
 की ही स्फूर्त और गुणनशील संचेतना
 का दबाव था। १९ वीं शती का फ्रांसीसी
 प्रतीकवादी आंदोलन एक रहस्यवादी और
 आत्मवादी आंदोलन था क्योंकि उसमें
 गुप्त-संदर्भ प्रतीक की तरह आये थे, और
 अनेक जैसे प्रतीकवादी ने भी प्रतीक की
 बात बनावट को शरीर और आत्मा के
 आनांतर से खोजा था, जिसे बादलेयर
 ने केवल स्वीकारा बल्कि व्यथित
 और अव्यवस्थित आत्मा के लिए एक
 रूप माना। इन संदर्भों को साथ लेकर
 वे थोत्रिय थोड़ा और आगे जाते तो
 वे पॉल वैलेरी, रिल्के, स्टीफेन जार्ज,
 जेम्स जेम्स ब्लॉक और येट्स जैसे उन
 प्रतीकवादियों के अंदर झांकने का मौका
 देता, जिनकी वजह से प्रतीक की
 बात एक आंदोलनोन्मुखी-सत्ता बनी और
 जिसके प्रभाव से हिंदी का सर्जक भी
 प्रतीकवाद से लेकर ठीक नई कविता के
 आधुनिक उन्माद तक प्रतीक में
 अपने स्थाव की शान ढूंढता रहा। थोत्रिय
 ने जिस मुखरता के साथ बिब को एक
 स्वरूप माना था, न कि प्राध्यापकों
 की भुविषा का कोई नुस्खा; उतनी
 मुखरता के साथ प्रतीक के बारे में वे
 भी बात नहीं कह पाये मगर काव्य-
 ज्ञान में प्रतीक को संकेत की जो गंभीर
 बात थी वह भी कम नहीं।

थोत्रिय अपने पांचवें निबंध में फिर
 बहुत अधिक खुले हैं। छंद और लय
 को उन्होंने कविता के चरण और पंख
 माना है और छंद को काव्य की क्लेसिक
 सिद्धि मानते हुए वे कहते हैं कि छंद
 केवल शब्द और अर्थ की दरारें ही नहीं
 भरते, वे कवि और पाठक के बीच
 प्रसन्न पुल की तरह होते हैं। यहां फिर
 थोत्रिय ने एक तरफ दिग्गजों के साथ
 शास्त्रार्थ किया है तो दूसरी ओर प्रयो-
 क्ताओं से बातचीत। आचार्य विश्वनाथ
 भी हैं, और पश्चिमी मान्यता के महा-
 प्राध्यापक आय. ए. रिचर्ड्स भी।
 निराला का छंद-मुक्ति अभियान भी है,
 और महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे घोर
 अनुशासनवादी का पद्य के प्रति उद्गार
 रखा भी। छंद के बाद जब थोत्रिय
 लय की तरफ उन्मुख होते हैं, तो वहां भी
 उनकी टकराहट प्रश्नों से होती है। स्वाधीन-
 लय और काव्य-लय के बीच एक सीधी
 विभाजन रेखा का सही संतुलन उन्हें
 बहुत आसानी से नहीं मिलता। वे ब्रेवर
 के स्वराघात और निराघात की ओर
 भी आकर्षित होते तो हैं, मगर यदि
 थोत्रिय लय के बारे में इस भाषा वैज्ञा-
 निक अप्रोच को तनिक भी आधार बनाने
 की कोशिश करते, तो शैली-विज्ञान
 के पंडित शब्द के प्रत्येक सिलेबल को चीर
 कर रख देते। इसलिए थोत्रिय ने बड़ी
 सावधानी से बेंजमिन हुशकोवस्की द्वारा
 प्रतिपादित वह बात मान ली है कि व्याव-

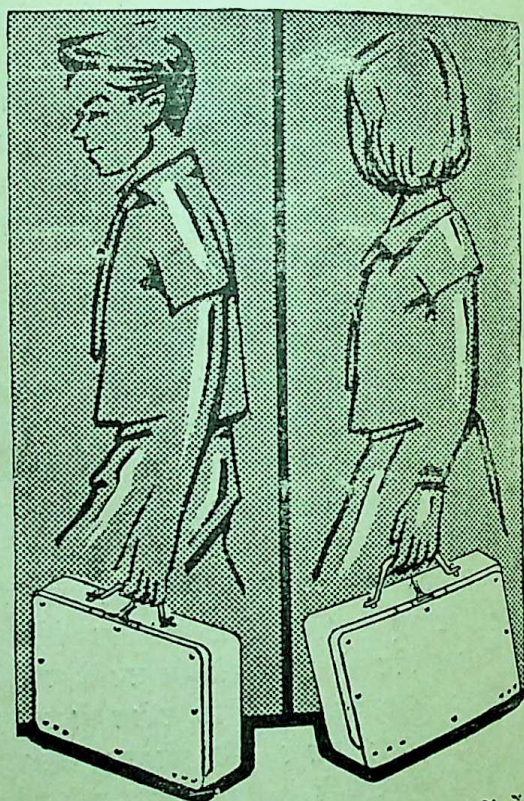
पाठशालाएं अब खुल गयीं

आपके बच्चे को



स्कूल-पेटी की जरूरत

पाठ्यपुस्तक ले जाने के लिये सुंदर, हलकी-सी और कठिन से कठिन परिस्थितियों को सह सके ऐसी मजबूत काउन ब्रान्ड स्कूल-पेटी जरूर मंगाइये।



जीवनलाल (१९२९) लि. के उत्कृष्ट उत्पादनों में से एक

जीवनलाल (१९२९) लिमिटेड

लिबर्टी बिल्डिंग, मरीन लाइन्स, बंबई-४०००२०

श्री-रूम; कंसारा चाल, कालबादेवी बंबई-४००००२

कलकत्ता-मद्रास-दिल्ली-कोचीन-हैदराबाद

फोन: २९११५६

फोन: ३५४८६९

जहाँ से कविता में लिखी गयी
 लय की रचना में योग देती
 लय-मुक्ति की तरह लय-मुक्ति की
 श्रोत्रिय ने अपने नजरिये
 की तलाश है और लय के एकरूप की तलाश
 की अनिवार्यता मानी
 यहाँ आकर श्रोत्रिय का रुख बहुत
 किट्टिचिन्म वाला लगता
 प्रसाद से लेकर
 वे न केवल
 दृष्टि से देखते हैं बल्कि उनके
 उनके गहरे जाने की गहरी जांच करते हैं।
 श्रोत्रिय का अप्रोच
 अप्रोच है। इसलिए
 अपने ट्रीटमेंट में प्राध्यापकीय
 है, फिर भी यदि निबंध को उसके
 रूप में देखा जाये तो लगेगा कि
 निबंध एक रागात्मक निबंध है जिसमें
 ने कविता को उसके शब्द, उसके
 उसकी ध्वनि, उसके गीतितत्व
 के साथ देखा है और यदि बिब
 कविता की 'तीसरी आंख' था,
 उस आंख की दूरगामी क्षमता, छंद
 और लय के विधान को भी उतनी ही
 और प्रखरता से पकड़ पायी है।
 निबंध है-कविता के उस तत्व
 रस कहा जाता है। 'रस-नयी
 की ज़रूरत'—निबंध अपने प्रारंभ में
 डॉ. नगेंद्र की मान्यता को विवादा-
 कर उनसे उलझने की चुनौती

पैदा करता है। रस को आनंद का पर्याय
 मानकर जिस अंग्रेजी शब्द 'प्लेजर' से
 नगेंद्र छले गये, शायद श्रोत्रिय ने इस
 मुकाम पर नगेंद्र को सही पकड़ा है,
 और अपनी छलप्रस्तुता को शुक्लजी के
 सर पर थोपने से नगेंद्र को आगाह भी
 किया है। यह निबंध एक-एक रस-
 सिद्ध दिग्गज की सम्प्राप्त मान्यताओं के
 खिलाफ प्रतिपक्ष की मुद्रा में लिखा गया
 है। श्रोत्रिय रस को सार्वभौम तत्त्व भी
 मानने से इंकार करते हैं—इसलिए नगेंद्र
 द्वारा रस को कविता का मेरुदण्ड कहा
 जाना उन्हें आपत्तिजनक लगता है।
 सार्वभौमिकता में जिस विनष्टि के विष-
 बीज श्रोत्रिय देखते हैं वे शायद नगेंद्र
 को दिखाई न दिये हों, लेकिन श्रोत्रिय
 का यह आक्षेप सही है कि सार्वभौमिकता
 सर्वनाशोन्मुखी हो सकती है। आचार्य
 शुक्ल को भी श्रोत्रिय केवल रूपवादी
 आलोचक न मानकर, उन्हें मूल्यवादी
 आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित करते
 हैं। श्रोत्रिय ने यहां न केवल रस की
 स्थापना में डॉ. नगेंद्र की मान्यता से
 असहमति जाहिर की है, बल्कि दूसरी
 ओर आचार्य शुक्ल के प्रति स्थापित उन
 भ्रांतियों को तोड़ा है, जिनके कारण हर
 नया समालोचक शुक्लजी से स्पर्धा में
 लगा हुआ है। रस के इस निचोड़ में
 श्रोत्रिय आनंद वर्द्धन, भरत, अभिनव
 गुप्त जैसे क्लासिकों और विश्व भर के
 कवियों, सौंदर्यशास्त्रियों और मनोवेत्ताओं

के बीच से रस की वह अवधारणा निकाल कर लाते हैं जो आनंद या 'प्लेजर' का पर्याय न होकर रस है, और कविता में उसका रस-तत्त्व है। श्रोत्रिय ने इस पूरे निबंध में एक आक्रामक आलोच्य-मुद्रा अख्तियार की है। ऐसा लगता है कि श्रोत्रिय आत्मविश्वास और अध्ययन की अदम्य ऊष्मा से भरकर एक साथ सबको ललकारने को आमामदा हों। नामवरसिंह हों या जगदीश गुप्त, अज्ञेय हों या नगेंद्र सभी को एक साथ श्रोत्रिय ने प्रश्नाया है, और कालिदास से लेकर मुक्तिबोध या शमशेर तक और अभिनव गुप्त से लेकर रिचर्ड्स एवं स्टीफन स्पेण्डर तक, रस की मान्यता को अपने ढंग से देखा है, माना है। यह एक मात्र ऐसा निबंध है जिसमें श्रोत्रिय ने भारतीय या पश्चिमी किसी मान्यता की क्लिबंदी स्वीकार नहीं की है, न समझौता किया है और न समर्पण। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि यह निबंध एक पूरी चुनौती है जो रस के उद्भव और उपयोग से लेकर उसकी परंपरा, उसके प्रति धारणाओं उसके आस्वाद की प्रक्रिया, उसके साधारणीकरण, सामान्यीकरण या सम्प्रेषण, आदि तक पूरी गति के साथ एक-जैसे प्रवाह में बहता है। श्रोत्रिय ने रस को यहां एक ऊर्जात्मक सत्ता प्रदान की है, और रस निष्पत्ति की तमाम धाराओं को, उन्होंने उनके पारम्परिक या पाश्चात्य बहावों से मोड़कर एक नई अजस्रता

दी है।

सातवां निबंध - 'रचना-प्रक्रिया-एकांगी पहल से इंकार'-काव्य रचना पर दूर से बैठकर फैसले देने के हक पर ऐतराज करता है। कुन्तक या क्लोने यहां भी मौजूद हैं। यहां श्रोत्रिय ने शास्त्रीय दृष्टि का इस्तेमाल करते हुए राजशेखर के 'कारयित्री' और 'भास-यित्री' आधारों पर रचना प्रक्रिया की व्यावहारिकता की पड़ताल की है। कवि के जन्मजात होने या प्रतिभ होने की किसी भावुक मान्यता से भी श्रोत्रिय स्टीफन स्पेण्डर की तरह बंधना नहीं नहीं करते। श्रोत्रिय ने भामह, राजशेखर, कॉलरिज और हर्बर्ट रीड को लेकर रचना प्रक्रिया पर एक अच्छी वृहत् को है और साथ ही उसका मूल्यांकन भी किया है। शब्दरूपा कविता में कौन-कौन से तत्व हैं जो बाह्य या आंतरिक होकर कवि के आदिम स्रोत बनते हैं, उसमें सक्ति होते हैं-इन मुद्दों को न केवल सैद्धांतिक विवेचना बनाया है, लेकिन साथ ही श्रोत्रिय ने कविता के रचाव की एक एक संपूर्ण प्रक्रिया उसके पूरे डायनेमिज्म के साथ प्रस्तुत की है। श्रोत्रिय रचना प्रक्रिया को इकहरी खोज नहीं मानते बल्कि वह बहुविध और बहुआयामी खोज है। यह निबंध संदर्भों के अधिष्ठान और इड, इमेज, थाट, नोशन आदि जैसे मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की विवेचना अधिक बोझिल हो गया है। इस

प्रक्रिया-
व्य रस
के हक पर
को चे को
श्रोत्रिय ने
करते हैं।
और 'भाषा-
प्रक्रिया को
ल को है।
प्रतिभ हो
भी श्रोत्रि
बंधना पं
, राजेश्वर
लेकर रत्ना
की है और
किया है।
न से वस्त्र
कर कवि
इसमें सक्ति
ल सैद्धांतिक
न साथ ही
व की एक
डायनेमि
त्रिय रचना
नहीं मानते
बहुआयाम
के आधिक्य
न आदि जै
वेवेचना
ह। इसकि
जुता

निबंध पूर्व की भांति प्राध्यापकीय शैली
में ही रमे मगर शास्त्रीयता उन पर
प्रत्यक्ष हावी रही। यदि छात्र स्तर पर
निबंध को पढ़ा गया, तो हों सकता
छात्र इसके सिम्पलीफिकेशन की मांग
करें।
अंतिम निबंध—'कविता का कथ्य अंत-
तः और जगत-दृष्टि' अपेक्षाकृत एक
नया निबंध है। इस निबंध में श्रोत्रिय
को कविता का औपचारिक माध्यम
मानते। वस्तु और विचार के तीव्र
प्रतिभ में तरंगित होने को वे सौंदर्य
को में स्थानान्तरण मानते हैं।
कविता के कथ्य को शिल्प से,
कथ्य को कथ्य से जुदा करना उन्हें
आवश्यक नहीं। वे कविता में केवल
कवि का संकट ही नहीं, सच्ची
मानसिकता का भी संकट महसूसते हैं।
जिस प्रकार 'संवेदन के बदलाव' को
कोई बड़ी घटना न मानकर
को 'बदलाव' को किसी प्रतिभा
के साथ ही स्वीकारते हैं—कुछ
को स्वीकार यहां श्रोत्रिय में भी है
जो अभिव्यक्ति के इस बदलाव को
को रचाव मानते हैं और शैली
प्रसूजन ही सर्जक को रचना के
में बाधता है। इस निबंध में श्रोत्रिय
की पश्चिमी धारणा
को यूनिवर्सल स्वरूप के लिए
मानते हैं। मगर फिर भी यह निबंध
को स्वायत्त समीक्षात्मकता के

प्रति अधिक आश्वस्त करता है।

'कविता की तीसरी आंख' में श्रोत्रिय
ने क्रिपेटिव क्रिटिसिज्म के नाम पर
छद्म आधुनिकता का चेहरा पहनने
वाले समालोचकों की खण्डित और स्वयंभू
प्रवृत्ति पर प्रहार किया है। उनकी भाषा
जहां-जहां भी वक्र हुई है यह वक्रता ऐसे
समालोचकों को यह स्पष्ट बताती है कि
क्रिपेटिव का अर्थ 'नेगेटिव' भी नहीं है,
और 'कंस्ट्रक्टिव' भी नहीं। पूरी पुस्तक
की अच्छाई यह है कि पुस्तक प्रसंगवान
होने में सक्षम है, मगर प्रतिबद्ध नहीं होती।
हिन्दी में जितना लिखा गया और लिखा
जाता है वह अतीत की अल्मारियों में
बंद होकर रह जाता है, और भविष्य के
लिए कोई चिंतन-रेखा नहीं छोड़ता।
श्रोत्रिय की 'कविता की तीसरी आंख'
इस माने में एक अपवाद है। यदि कुछ
पुस्तकें सिर्फ पढ़ने के लिए, कुछ समझने
के लिए और कुछ पचा जाने के लिए होती
हैं, तो 'कविता की तीसरी आंख' पढ़कर
पचा जाने योग्य पुस्तक है, जिसका हिन्दी
में स्वागत होना चाहिये। यद्यपि श्रोत्रिय
ने इस पुस्तक के जरिये सपेण्डर, फ्रेंक
कमोड, या रिचर्ड्स बनने का दावा तो
नहीं किया मगर हिन्दी वालों ने इसे
सही पहचान दी तो ऐसा हो जाना
श्रोत्रिय के लिए असंभव कतई नहीं है।

कविता की तीसरी आंख; लेखक : डा.
प्रभाकर श्रोत्रिय, प्रकाशक : नेशनल
पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

चिकित्सा-जगत की एक आश्चर्य-घटना बासठ वर्ष की आयु में दृष्टि-लाभ

बॉव विलियम्स

जन्म से अंधी, अमरीकी महिला अन्ना मे पेन्निका ने एक आपरेशन के बाद ६२ वर्ष की आयु में दृष्टि प्राप्त की। 'वाशिंगटन पोस्ट' के बॉव विलियम्स के शब्दों में सुनिये इस अद्भुत अनुभव की कहानी, और चिकित्सा-जगत की प्रतिक्रियाएँ।

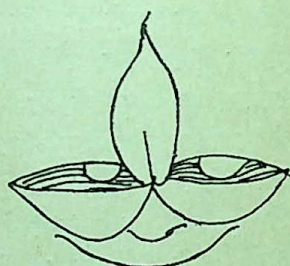
जब से यह 'चमत्कार' हुआ है, श्रीमती अन्ना मे पेन्निका रोज सुबह, जल्दी से जल्दी उठने का प्रयत्न करती हैं। उठने के बाद, वे आँखों पर पानी छिड़कती हैं, और फिर आँखों पर चश्मा लगाकर जानी-पहचानी दुनिया को नयी निगाहों से देखना शुरू करती हैं।

कमरे में टंगी जिन कलाकृतियों से उनका परिचय स्पर्श के माध्यम, से ही था, वह अब उन्हें पहले से कहीं सुंदर चमकीली और बड़ी मालूम होती हैं।

यही हाल घर की अन्य वस्तुओं के अलावा, बाहर की बृहत्तर दुनिया और उसकी वस्तुओं का है। साठ वर्ष से ऊपर की श्रीमती पेन्निका की हालत उस छोटे बच्चे जैसी है, जो किसी अजायबघर में आ गया हो, और वहाँ की प्रत्येक वस्तु

को उत्सुकता और आश्चर्यभरी निगाहों से देख रहा हो।

दुनिया कैसी दिखायी पड़ती है, अनुभव प्राप्त करने के लिए उन्हें साठ वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ी। वे जन्मजात और ६२ वर्ष की आयु में सर्वप्रथम तब देख सकीं जब हाल ही में डॉक्टर ने उनकी बायीं आँख में जन्मजात मोतियाबिंद हटा कर, उन्हें दृष्टि प्रदान की।



चित्र : दिनेश शाह

इस शल्यक्रिया के बाद उनकी दृष्टि उस आँख की २०-३० है, अर्थात्, डॉक्टर के अनुसार, वे दृष्टि प्राप्त कर सकती हैं। और डॉक्टर का यह भी मत है कि दाहिनी आँख को भी जानने के लिए दृष्टि करीब-करीब जायेगी।

श्वनीत

जन्म का पहला मामला

लाभ

द ६२ वं

के शब्दों में

निकियाएं।

भरी नि

वड़ी है।

ए एक

वे जन्म

की आ

देव म

मी में डा

थीं आ

तियावि

ट प्रदा

क्रिया के

उस आ

थी, डा

परीक्षण

और डा

दायीं आ

बाद, उ

नाम'।

जु

१८१

१८१

१८१

१८१

१८१

१८१

१८१

उनकी देखभाल करने का।' वे कहती हैं।

नेत्र-विशेषज्ञों का कहना है कि उन्हें श्रीमती पेन्निका के अनुभव सुनकर बहुत-सी नयी बातें ज्ञात हुई हैं। उदाहरणार्थ, श्रीमती पेन्निका का दृष्टि पाने के बाद का यह कथन कि उन्हें अंधावस्था में 'रंगीन सपने' दिखायी दिया करते थे, उन्हें बड़ा नया और दिलचस्प लगा। 'अब तक हमारा अनुमान था कि जन्मंध व्यक्ति सिर्फ सफेद सपने ही देख सकते हैं, और इंद्रधनुषी सपने देखना उनके बस की बात नहीं।' एक नेत्र-विशेषज्ञ ने श्रीमती पेन्निका के अनुभव सुनने के बाद कहा।

इस नेत्र-विशेषज्ञ को अंधावस्था के अपने अनुभव सुनाते हुए, श्रीमती पेन्निका ने कहा, 'जब मैं कोई कहानी सुनती थी, या ब्रेले में उसे पढ़ती थी, तो मेरे सामने उसके दृश्य साकार हो जाते थे। वे दृश्य उन वास्तविक दृश्यों से अधिक भिन्न नहीं हैं, जो मुझे दृष्टि पाने के बाद दिखायी देते हैं। ये दृश्य मेरे सामने ऐसे आते थे, जैसे परदे पर फिल्म के दृश्य। ... मेरे सपने इंद्रधनुषी रंगों में हुआ करते थे। इन सपनों में मैं प्रायः अपने को हाथ में एक बेत लिये घूमते देखा करती थी। शल्यक्रिया के बाद, जब मुझे दृष्टि मिली, तो मुझे दुनिया लगभग वैसी ही लगी, जैसी कि सपनों में दिखायी दिया करती थी। कुछ वस्तुएं, बेशक, भिन्न नज़र आयीं। मुझे अंधावस्था

में हरा रंग प्रायः दिखायी पड़ता था, लेकिन उसमें भी इतने आभा-भेद हैं इसका पता मुझे दृष्टि पाने पर ही लगः ।

परिचितों की पहचान

यह पुछे जाने पर कि क्या दृष्टि पाने के बाद, उन्हें परिचित व्यक्ति वैसे ही दिखायी पड़े, जैसे कि उन्हें सपनों और दिवा-स्वप्नों में दिखायी दिया करते थे, श्रीमती पेन्निका ने कहा, 'अपने पति मुझे ठीक वैसे ही दिखायी दिये, जैसी कि मैं उनकी कल्पना किया करती थी । अन्य परिचित व्यक्ति या तो कम या ज्यादा लंबे, या कम या ज्यादा आयु वाले दिखायी पड़े ।'

श्रीमती पेन्निका की शल्यक्रिया करने वाले डॉक्टर पेटिट का कहना है, 'मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि श्रीमती पेन्निका ने पट्टियां खुलते ही पढ़ना आंभ कर दिया ।'

श्रीमती पेन्निका के इस दावे के बारे में कि उन्हें अंधावस्था में भी वस्तुएं और व्यक्ति प्रायः वैसे ही दिखायी पड़ते थे, जैसा देखने वाली आंखों से, विख्यात नेत्र-विशेषज्ञ डॉ. लोनफील्ड का कहना है—'अंधे व्यक्तियों के मनोविज्ञान के अपने गहरे अध्ययन के आधार पर मैं कह सकता हूं कि उनका मन उस वस्तु या व्यक्ति की हुबहू और स्पष्ट कल्पना नहीं कर सकता, जिसकी उसे प्रत्यक्ष अनुभूति न हो, या जिसका उसने प्रत्यक्ष दर्शन न किया हो । नेत्रों के अलावा मात्र अन्य ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त 'सुझावों'

के आधार पर मन किसी व्यक्ति या वस्तु को कल्पना में हुबहू साकार नहीं कर सकता ।'

लेकिन, न्यूयार्क स्थित 'अमेरिकन नेशनल फार ब्लाइंड' से संबद्ध नेत्र-विशेषज्ञ डॉक्टर लोनफील्ड के मत से कुछ नहीं हैं । उनका मत है कि, 'अंधे व्यक्ति की प्रमस्तिष्कीय प्राप्ति जीवन भर बिबों को उत्पन्न करने समर्थ रहती है । वह अन्य ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त दृश्य बिबों का 'संश्लेषण' करने में भी समर्थ होती है ।' एक नेत्र-विशेषज्ञ डॉक्टर विलियम मान्यता है कि, 'यद्यपि इस क्षेत्र में अनुसंधान-कार्य अभी अधूरा है और अंतिम निश्चय के साथ कुछ कहा जा सकता तथापि मैं इस संभावना से इंकार नहीं कर सकता कि श्रीमती पेन्निका देखने से पूर्व, अपने मन में दृश्य बिबों को जन्म दे सकती थीं । इस संबंध में हमें यह भी याद रखना होगा कि तब तक किसी साधारण दृष्टि वाले व्यक्ति पास छायाचित्र जैसी अचूक स्मृति हो, वह भी यथार्थता से मेल खाने वाले दृश्य बिबों को अपने मन में उत्पन्न कर सकता । ये दृश्य बिब प्रायः उन विचारों और उनकी कल्पनाओं से उत्पन्न होते हैं । साधारण दृष्टि वाले अधिकांश व्यक्ति बिबों को करते ही वर्ण, रूपरेखा, स्पष्टता आदि के बारे में धोखा खा जाते हैं, उस समय उनके मन में दृश्य-बिब बन रहे होते हैं ।'

हम-विदों की रचना में दृष्टि के
साक्षात्, सश, घ्राण-शक्ति तथा अन्य
शक्तियों का भी हाथ रहता है।'
और जिन श्रीमती पेन्निका के कारण
विद्वत्-नेत्र-विशेषज्ञों को जन्म-ध
नियों के दृश्य-विव निर्माण करने के
में वाद-विवाद चल रहा है, स्वयं
६२ वर्ष की आयु में पहली बार दृष्टि

पा जाने से इतनी प्रसन्न हैं कि जो आता
है, उसे यह बताते नहीं थकतीं—'मैंने
सारी दुनिया एकदम नयी और आश्चर्य-
जनक लगती है। इस दुनिया की प्रत्येक
वस्तु को बार-बार देखकर भी मेरा मन
नहीं भरता। लगता है मैं किसी कल्पना-
लोक में आ गयी हूँ।' यह है चिकित्सा-
जगत की आश्चर्य-घटना।



ग्राहकों, वितरकों, एवं विज्ञापनदाताओं को सूचना

'नवीन हिन्दी डाइजेस्ट' संबंधी सभी प्रकार का व्यवस्था संबंधी पत्र व्यवहार

कृपया निम्न पते पर करें:

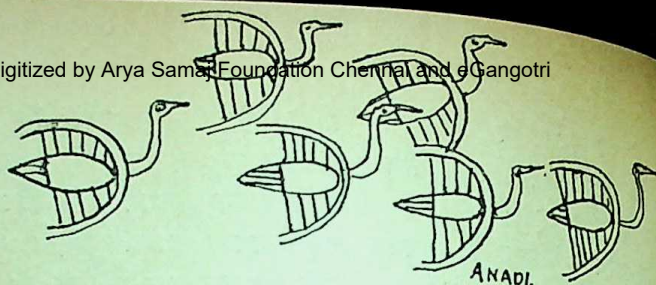


वितरण-व्यवस्थापक

क्षिप्रा ट्रेडिंग एंड इन्वेस्टमेंट कं. प्रा. लि.,

मुंशी नगर, भवन्स कैम्पस, अंधेरी (पश्चिम),

बम्बई-४०००५८



प्रख्यत उपन्यासकार का विचित्र प्रेम

—आदित्य कुमार

लगातार २५ वर्षों तक विश्वविख्यात उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स अपने से एक वर्ष अधिक आयु वाली एक ऐसी महिला से बड़ी उत्कटता से प्रेम करते रहे, जिसे कभी उनके प्रेम को गंभीरता से नहीं लिया, और जिसे उनका तिरस्कार करने में ही आनंद आता था।

चार्ल्स डिकेन्स का 'डेविड कॉपरफील्ड' उपन्यास पढ़ा है आपने ? तो, उसकी मूर्ख डोरा की याद आपको अवश्य होगी। डिकेन्स का एक अन्य उपन्यास है 'बर्नार्डी रुज' उसमें एक चंचल लड़की है डॉली वार्दन।

ये दोनों ही कल्पित पात्र नहीं हैं। एक ही वास्तविक पात्र—मारिया बेडनेल के अलग-अलग रूप हैं।

मारिया बेडनेल, अर्थात् उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स की प्रेमिका, वह प्रेमिका, जिसे उसने लगातार २५ वर्षों तक प्रेम किया।

यह एक विचित्र प्रेम था।

काफ़ी हद तक, एकतरफा भी।

इस अजीबोगरीब प्रेम की शुरुआत

तब हुई थी, जब डिकेन्स २०-२१ का एक साधारण क्लर्क था, और सिर्फ बनने के लिए संघर्ष कर रहा था। उसकी भेंट अपने से एक साल बड़ी मारिया बेडनेल से हुई, जो एक बैंक अधिकारी की पुत्री थी।

मतवाले नेत्रों वाली इस मायावित्री २१ वर्ष के तरुण डिकेन्स पर प्रथम दृष्टि में ही ऐसा जादू डाला कि वह उसके लिए उसका होकर रह गया, और पच्चीस वर्षों से उसे उसी उत्कटता से प्रेम करता रहा, जिस उत्कटता से प्रथम क्षण में किया था।

डिकेन्स का बचपन अभाव निर्धनता में बीता था। उसकी निरक्षर उपेक्षा की गयी थी, और किसी ने

शीर्षक के साथ का चित्र : अनादि अधिकारी

हस्ता के साथ प्रेम नहीं किया था।
 प्रेम की ललक उसके मन में
 तो और प्रखर थी।

मारिया उसे बड़ी उत्तेजक और वांछ-
 नशीली थी। और जब उसने प्रथम भेंट

की तो उसकी इस मुद्रा पर तो डिकेन्स

होकर रह गया। उसकी प्रेमाग्नि

भी भड़क उठी। और वह तब भी

नहीं हुई, जब अपनी २१ वीं वर्षगांठ

मारिया से बड़ी उत्सुकता से प्रेम-
 कला की, और मारिया उसे 'छोकरा'

कर अपने घर चली गयी।

२४ वर्ष की आयु में ही 'पिकविक पेपर्स'

जो अमर कृति द्वारा साहित्यिक कीर्ति

करने वाले डिकेन्स को यह जानते

और जानती थी कि जिस तरुणी से वह प्रेम

था। वह एक निष्ठुर और

लड़की है, जो कभी उसके

प्रेम को गंभीरता से नहीं लेगी, और

उसकी उपेक्षा और अवहेलना करती

होगी। फिर भी, प्रेम का मारा, दीवाना

चाल्स डिकेन्स, यह सब जानते हुए

सहा हो, जितना मैंने तुम्हारे हाथों आज
 तक सहा है।'

एक अन्य प्रेम-पत्र में उसने लिखा,
 'मैं सिवाय तुम्हारे किसी और जीवित
 प्राणी को प्रेम नहीं कर पाऊंगा, नहीं
 कर सकूंगा।'

मारिया की एक मुस्कराहट तरुण
 डिकेन्स को भावविभोर कर देती थी,
 और उसकी एक भृकुटि उसे विषाद की
 अंधेरी गुफा में पहुंचाने के लिए पर्याप्त
 थी। वह मारिया के एक प्रिय कुत्ते से
 इसलिए ईर्ष्या करता था क्योंकि मारिया
 उसे बहुत चाहती थी। मारिया के निकट
 आने के उद्देश्य से वह उसकी मां को
 तारीफ और चापलूसी से भरे पत्र लिखता
 रहता था, और उसके घर जाकर जोर-
 जोर से बातें करता और हंसता था,
 ताकि मारिया उससे 'प्रभावित' होकर
 उसके प्रति आकर्षित हो सके। लेकिन,
 चंचल मारिया सदा उसकी उपेक्षा ही
 करती रही।

इसी प्रकार चार वर्ष बीत गये। चार्ल्स
 डिकेन्स अब २५ वर्ष का था, और मारिया
 से प्रणय-याचना करते-करते थक चुका
 था। उसके मारिया को सोने से लाद देने
 के वायदों का मारिया पर कोई प्रभाव
 नहीं होता था। जब वह अपने दीवाने
 प्रेमी को छोड़कर पढ़ाई के लिए इटली
 चली गयी, तो भी डिकेन्स उसे नहीं भूल
 पाया, और हर रात उसके घर के बाहर
 आकर खड़ा हो जाता, और घंटों उसके

सोने के कमरे को निहारता रहता ।

इस समय तक वह एक रिपोर्टर बन चुका था । अनेक नवयुवतियां, जिनमें मारिया की सखी मारियाना ली भी शामिल थी, उससे प्रेम करने लगी थी, मगर डिकेन्स के मन में तो मारिया ही समायी थी,; उसमें किसी और नवयुवती के लिए स्थान न था । उसे यह आशा थी कि इटली से लौट आने के बाद, मारिया का हृदय परिवर्तन होगा, और वह उससे प्रेम करने लगेगी ।

किंतु, उसकी यह आशा भी पूरी नहीं हुई । मारिया पूर्ववत्, उसकी भावनाओं के साथ खिलवाड़ करती रही । लेकिन चकित, हताश और अपमानित डिकेन्स फिर भी अपनी इस बेवक्रा प्रेमिका से प्रेम करता रहा ।

उसकी जवानी बीत चुकी थी फिर भी वह अपने नवयौवन के इस प्रथम प्रेम की स्मृति को मन से दूर नहीं कर पाया था । मारिया को इन्हीं दिनों लिखे एक पत्र में उसका वेदनापूर्ण स्वर सुनिये : 'तुम जिस प्रीतिकर ढंग से मुझे देखकर मुंह फुलाती हो, और बड़ी बेदरदी से मेरे साथ पेश आती हो, उससे मेरा सारा दिल छलनी हो गया है । कभी तुम्हें खयाल आयेगा—आज तो खैर आने से रहा—कि मेरे जैसा सेवानिष्ठ और समर्पित प्रेमी तुम्हें न मिला है, न मिलेगा ।'

लेकिन, मारिया ने अपने इस सेवानिष्ठ और समर्पित प्रेमी की तनिक भी

परवाह न की, और एक कुरूप व्यापार से विवाह कर लिया । डिकेन्स ने भी ऐसी परिचिता से विवाह कर लिया ।

और एक दिन बीस वर्ष बाद, जब वह विश्वविख्यात साहित्यकार बन चुका था, उसे मारिया का एक पत्र मिला, जिसमें उसने मिलने की इच्छा प्रकट की थी ।

डिकेन्स पत्र पाते ही उससे मिला । मगर, 'यह मुलाक़ात न होती, तो बेहतर था; मेरा सपना अक्षुण्ण तो रहता । इस भेंट ने तो मेरे सारे सपने चकनाचूर कर दिये !' डिकेन्स ने बाद में, इस भेंट के बारे में लिखा ।

कभी की तन्वंगी और मोहक मारिया अब ४४ वर्ष की मोटी, बड़ोत्त और बदसूरत अघेड़ महिला के रूप में उसके सामने प्रकट हुई । पहले से भी बाल फूहड़ और मूर्ख । और इस उम्र में तो वह बच्चों की भांति हंसती थी, तो और भी बेहूदा और अरुचिकर लगती थी ।

और डिकेन्स के लिए सबसे अधिक अरुचिकर बात यह थी कि अब वह उससे प्रेम के प्रतिदान के लिए तत्पर और उत्सुक थी । एक दुःस्वप्न की भांति उसका पीछा करने वाली मारिया से डिकेन्स ने अपने दो उपन्यासों का विद्रूपमय पात्र बनाया छुट्टी पायी । 'लिटिल डॉरिट' की स्तंभ मूर्खों के समान व्यवहार करने वाली मारिया ही है । 'डेविड कॉपरफील्ड' की मूर्ख डोरा और 'वर्नावी रुज' की डॉली वॉट्स भी वही है ।

यशस्वी कहानीकार-चित्रकार
रामकुमार का कहना है कि...

‘पीढ़ियों के संघर्ष की बात पश्चिम से उधार ली गयी है...’

[रामकुमार द्वारा दी गयी एक भेंट-वार्ता के कुछ अंश]



पुराने की स्मृतियां कभी-कभी खतर-
नाक ढंग से ललचाने वाली होती
मनवतः आने वाले समूचे जीवन को
विन करती हैं। मेरे पिता सरकारी
कर थे। सड़ियों में दिल्ली
ने आना, गर्मी में हर वर्ष
लगा लौट जाना जीवन का
जो क्रम-सा बन गया था।
जमा में बिताये गये बचपन
तब-तब दिन जो कभी
होते न जान पड़ते,
अकेलापन, सन्नाटा और
हमेशा के लिए चिपक से गये थे।
हमारे दृश्य, पेड़ों की सरसराहट और
का गिरना



नये लेखकों के बारे में कुछ कहना
विनित जान पड़ता है, क्योंकि मैंने उन्हें
कुछ नहीं पढ़ा है। इधर मृणाल पांडे
रचनाओं से प्रभावित हुआ हूं। रमेश
का उपन्यास ‘गोबर गणेश’ भी
मुझे पसंद आया था।

धूमना मुझे बहुत प्रिय है। पुराने
स्थानों पर जाकर अतीत की स्मृतियों
को फिर से जीवित करना और नये
लैंडस्केप की पृष्ठभूमि में अपने को अधिक
पहचानने की कोशिश, कहानियों
की प्रेरणा के स्रोत भी कई
बार घूमने के दौरान मिले हैं।

सामाजिक प्रश्न कितने भी
ज्वलंत क्यों न हों, उन्हें कला
में नहीं घसीटना चाहिये। महान
कलाकार प्रचार के पोषक कभी
नहीं बने। पिकासो की गुए-
निका का उदाहरण लीजिये, विभिन्न
लोगों ने उस चित्र की अपने-अपने ढंग
से समीक्षा की है। अपने विचार एवं
चितन में पिकासो कितने भी प्रगतिशील
रहे हों, जिस तरह के इंटरप्रेशन कला-
समीक्षक उनके चित्रों को देते हैं, वैसा
पिकासो ने उन चित्रों के बारे में कभी
नहीं सोचा होगा। सोद्देश्यता आरोपित
नहीं जान पड़नी चाहिये।

जब मैं फ्रांस में था उस समय इस विषय पर दिलचस्प बहसें हुआ करती थीं। सन १९५० के आसपास का समय था। कमेटी ऑफ नेशनल राइटर्स की सभाओं में हर शनिवार की शाम को सम्मिलित होना नियम-सा बन गया था। साम्यवादी विचारधारा वाली इस संस्था में अरागों, एलुआर, एलजा ट्रायोलै, रोजर-गारोदी आदी भी आते थे। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इन मीटिंगों में केवल आपसी बातचीत, मित्रों की टोलियों में गप्पशप और लाल शराब—ऐसे शाम बीतती थी न कोई कविता, न कहानी, न बहस। जैसे फ्रांस में सेलें होते थे, वहीं वातावरण इस साम्यवादी संस्था की मीटिंगों में भी दिखाई देता था। आज की बात करें तो हिंदी में जितने भी प्रथम श्रेणी के लेखक हैं, उन्हें जनवाद या किसी भी तरह के प्रचार के चक्कर में पड़ता तो मैंने देखा नहीं। वाद और प्रचार की लहरें आती हैं और लौट जाती हैं। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी घटनाओं से बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों का अक्सर मोहभंग ही हुआ है। प्रतिभा एकमात्र कसौटी नहीं

अवां गार्द की धारणा की भारतीय चित्रकला के संदर्भ में चर्चा करना मुझे अप्रासंगिक जान पड़ता है। हमारे यहां उस तरह का आंदोलन कभी पैदा ही नहीं हुआ है। कुछ लोग कभी संगठित हुए भी तो मित्रभाव-वश। विदेश में

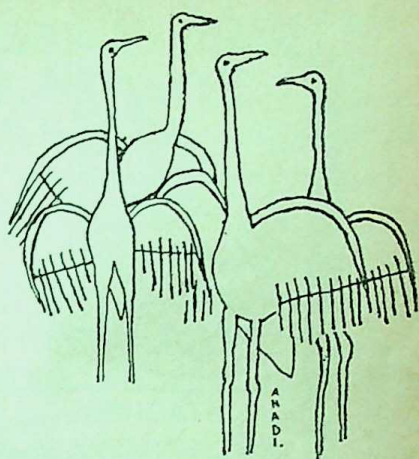
भी ऐसा नहीं है कि जगह-जगह माफ़ हो पैदा हो रहे हों। दरअसल इसमें एक व्यापक राजनीतिक और औद्योगिक अंतर्धारा काम करती है। क्या कारण है, स्कैंडेवियन अथवा दूसरे पश्चिमी देशों के चित्रकारों को उतनी माफ़ नहीं मिली जितनी अमेरिकन और फ्रांसीसी या अंग्रेजी चित्रकारों को। इसका कारण यह भी हो सकता है, उतने प्रयोग वक्त प्रभावशाली कार्य वहां न हुए हों, माफ़ी का अभाव भी रहा होगा। वहां की कला अथवा साहित्य को समुचित प्रचार नहीं मिला। कुछ राजनीतिक कारण भी होते हैं। आप मानेंगे कि बाद के भौतिक युग में प्रतिभा ही एकमात्र कसौटी नहीं रह गयी है। वह वातावरण अभी तक नहीं बन सका है जहां कलाकार को हर वक्त आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती हो। युवा लोगों की ओर से ईमानदारी से भरी चुनौती नहीं, मुक्त को बदलने का कोई दावा नहीं।

यूरोप और फ्रांस के ट्रेंड्स और कला को देखना तो जरूरी हो सकता है। प्राचीन कला का स्वरूप क्या था और आज की कला का रूप क्या है? अतः हमें तो किया ही नहीं जा सकता। तब तक वहां जाकर रहने का प्रश्न है। तो अनिवार्य है और नहीं संभव है। पर स्थापित होना नितांत कठिन चित्रकला बहुत सीमा तक सुविधा से जुड़ी है। भारत में

नगह मा...
न इम...
र और...
क्या...
परे प...
सनी मा...
और प्रा...
इसका...
प्रयोग...
ए हों, मा...
वहों की...
त प्रचार...
तिक ता...
कि अब...
ही एक...
वह वाता...
नहीं क...
की प्रेर...
और से...
नहीं, मु...
नहीं।
स और...
सकता...
क्या था...
है? अत...
सकता।
प्रश्न है...
भव है।
कठिन...
समुद्धि...
में रहना...

हृदय, यह मात्र सुविधा का प्रश्न
है। अन्य प्रश्न जोखिम का है। जो आज
कलाकार उस मात्रा में नहीं उठा
सकता जिस मात्रा में सन १९५० के
प्रयोग काम करने वाले लोगों ने उठाया।
विश्वकला और अपनी कहानियों के
लिए मेरा दृष्टिकोण अलग-अलग रहा
चाहे इसके कुछ भी कारण रहे हों,
जो लगता है जैसे दोनों की अपनी निजी
ए हों, विशेषताएं हों, कुछ उपलब्ध
वहों की अलग-अलग उंचाइयां हों,
दोनों की दूरी हमेशा बनी रहे।
की अपनी अनुभूति, आकृतियों
बना मापदंड है। एक की कमी
ही पूरी नहीं की जा सकती। बराबर
महसूस होता रहता है कि अनुभूति
कोई एक क्षण रंगों की अपेक्षा केवल
ही ही जिया जा सकता है। कोई
केवल पर अपना पोट्रेट चित्रित
करवा सकता, उसे व्यक्त करने के
केवल शब्द चाहिये। हो सकता है
मेरी कमजोरी हो। एक ही माध्यम
वर्णन आपको पूर्ण रूप से व्यक्त न
करने की असमर्थता हो.....

और कहानी-लेखन में संघर्ष नहीं
कहानी लेखन को मैंने शुरू से ही बड़े
दृष्टिकोण से लिया है जबकि चित्रकला की
विश्वकला निरंतर जटिल होती चली गयी।
समस्याओं को मुझसे, विभिन्न मुद्दों
को लेकर हुए लगा कि पेंटिंग मुझ पर
होती गयी। यू पेंटिंग और

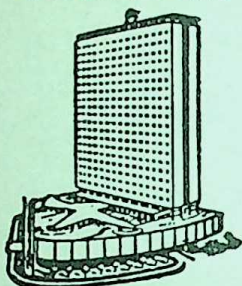


चित्र : अनादि अधिकारी

कहानी-लेखन में कोई संघर्ष की स्थिति
नहीं है। दोनों अलग-अलग संसार हैं।
जब एक में होता हूं तो दूसरे के बारे में
नहीं सोचता।

अपनी विधा का चुनाव आदमी स्वयं
करता है। स्वयं को खोजने के प्रयास में
संभव है किसी लेखक को कई विधाओं
में से होकर गुजरना पड़े। इसे भटकाव
नहीं कहेंगे। स्वयं को खोज लेने का रास्ता
कहां खत्म होता है, यह कह पाना अवश्य
ही कठिन है। कुछ स्थितियों को मैं
चेहरों के माध्यम से अभिव्यक्त करना
चाहता था। चेहरों के अध्ययन में संभावना
तो थी ही, मुझे रोचक भी लग रहा था।
उसके माध्यम से मैं कोई शैली नहीं बना
रहा था। वह एक मनःस्थिति थी जो
बाद में बदल गयी। बाद में मैंने महसूस
किया कि लैंडस्केप, सीस्केप आदि के

SKYSCRAPERS



FLY-OVERS



STADIUMS



BRIDGES



For modern projects

ANCHOR

CONCRETE SHUTTERING PLYWOOD

is used
to cut drastically
shuttering and centering
costs.

For details write for our Technical Bulletin



**THE INDIAN PLYWOOD
MFG. CO. LTD.**

Regd. Office: 9 Wallace Street, Fort
Bombay 400001

मानवीय पीड़ा को व्यक्त
 जा सकता है। इसमें संभावना
 है कि भी ज्यादा छिपी हुई थीं।
 के घाट मुझे मानवीय चेहरों
 ही सजीव एवं अभिव्यक्ति के
 जान पड़े। मेरा यह पहला
 जब चेहरों को छोड़ मैंने लैंड-
 अपनाया। मैंने महसूस किया
 मेरे काम में कुछ मोनोटनी-सी
 है। लैंडस्केप में विविधता तो
 है। मानवीय आकृतियों के द्वारा
 बात कहने के माध्यम पर मैं कभी
 वापस मुड़ सकता हूं। असल में
 लाकृतियों अथवा लैंडस्केपों को
 महत्व नहीं है, जितना सतत संघर्ष-
 रहने का, अन्वेषण परायण होने

हमारे देश में बुद्धिजीवी की क्या
 है, हम खूब जानते हैं। उसके विरोध
 कितना महत्व है यह भी हम खूब
 हैं, उनका दायरा कितना छोटा है,
 कम लोग उन्हें जानते हैं। हमारे देश

में साहित्यकार का मान-सम्मान राजनेता
 के हिस्से में आता है। जो लोग राजनीति
 के दावपेच जानते हैं, उनमें साहित्यकार
 भी मिले हो सकते हैं, उनके लिए इस
 प्रश्न की महत्ता हो सकती है।

पीढ़ियों के संघर्ष में कोई सार्थकता नहीं

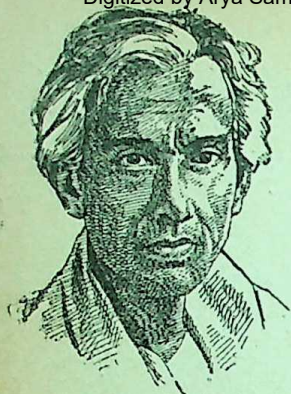
मूल्यों में गिरावट आयी है इसमें कोई
 संशय होना नहीं चाहिये, पर सबसे ज्यादा
 राजनीति में गंदगी आयी है। यह प्रश्न
 भी मुझे अधिक महत्त्व का सच्चे मानों
 में जान नहीं पड़ता। पीढ़ियों के संघर्ष
 की बात पश्चिम से उधार ली गयी है।
 हमारी युवा पीढ़ी उसी मंजिल की ओर
 पहुंचने को आतुर है। जहां पुरानी पीढ़ी
 के लोग पहुंच गये हैं, यानी सरकारी
 खिताब, ऊंची नौकरियां, पुरस्कार, कमे-
 टियों की सदस्यता, डेलीगेशनों की यात्रा
 आदि। अतः टकराव का प्रश्न ही कहां
 उठता है। जहां तक पीढ़ियों के संघर्ष
 अथवा आंदोलनों का प्रश्न है, उसमें
 कोई सार्थकता नहीं है। कई बातें निजी
 स्वार्थवश की जाती हैं।



पालतु पशुओं का नया उपयोग

ब्रिटेन की एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में कार्यरत भारतीय वैज्ञानिकों के एक
 ने यह खोज की है कि हृदयरोग से पीड़ित लोग और ऐसे प्रेमी-प्रेमिका, जिनके
 एक दूसरे को देखकर तेजी से धड़कने लगते हैं, यदि वे कुत्ते, बिल्ली जैसे
 पाल लें, तो उन्हें बड़ा लाभ पहुंच सकता है।

उनका कहना है, 'पालतू कुत्ते, बिल्ली या अन्य किसी पशु को सहलाने से
 जो धड़कनें बहुत कम हो जाती हैं।' □



कुछ रोचक संस्मरण महान शरत्चन्द्र के



डॉ. गोपाल प्रसाद वंशी

जोड़ासांको में रवीन्द्रनाथ के पैतृक भवन में अक्सर साहित्यिक गोष्ठियाँ आयोजित हुआ करती थीं। इन बैठकों में शरत बाबू भी भाग लिया करते थे। सुना गया कि हर बार किसी न किसी का जूता खो जाता था। शरत बाबू एक बार नया जूता पहना आये। इस डर से कि कहीं उनका जूता चोरी न चला जाये, उन्होंने जूते को अबका लपेटकर हाथ में ले लिया। रवि बाबू ने देखते ही पूछा, 'यह तुम्हारे हाथ में क्या है?'

शरत बाबू को कुछ उत्तर देते न बना। वे चुपचाप सिर झुकाये खड़े रहे। शरत बाबू बोले, 'लगता है, कोई पुस्तक लिये हो। शायद यह पादुका-पुराण है?'

शरत बाबू हतप्रभ ! सारी सभा अट्टहास से गूँज उठी।

०००

इस संसार को शरत बाबू किस प्रकार देखते थे, इस पर कुछ कह देना होगा। एक दिन मध्याह्न में शरत बाबू चुपचाप सिगरेट पीते हुए कुछ लोगों की बात सुन रहे थे। अकस्मात् स्व. सर आशुतोष मुकर्जी के सुपुत्र ने स्व. कवि मधुसूदन की चर्चा छेड़ दी। उन्होंने कहा, 'दुर्भाग्यवश कवि मधुसूदन के अंतिम दिन ही दारुण रहे। न जाने बंगाल के इस श्रेष्ठ पुत्र के ललाट में विधाता ने क्यों कठिन की लिपि लिख दी?' मुकर्जी महोदय और कुछ कहने ही वाले थे कि सहसा शरत बाबू जो चुपचाप आराम कुरसी पर पड़े सिगरेट पी रहे थे, उठ बैठे और राख झाड़ते बोले—'स्वर्गीय कवि मधुसूदन ने स्वयं इस दंड का अर्जन किया था। ये इस संसार जितने श्रेष्ठ कवि थे, उतने ही अनुभवहीन नागरिक। आश्चर्य होता है, मधुसूदन मेधावी पुरुष की सांसारिक दृष्टि इतनी कमजोर क्यों थी? जिसने दाढ़ी बनवाने लिए नाई को एक गिनी तक देकर इस विश्व-विधान की उपेक्षा की हो, उसे मनुष्य मिलना उचित ही है। हमारी पृथ्वी स्वर्ग के जीवों के लिए नहीं है। जो मनुष्य'

काम की अवहेलना करता है। उसके लिए संसार का पश्चात्ताप व्यर्थ है।'

०००

रत्नचक्र की गोष्ठी में एक नये सदस्य ने शरत बाबू से पूछा—'आप साहित्य-क्षेत्र में कैसे आये ?'

'क्या करियेगा जानकर ?'

'यह जानने की मेरी बड़ी इच्छा है।'

शरत बाबू बोले—'अच्छा तो आज यहीं सुनाऊँ। मैं रंगून में नौकरी कर रहा था।

तब इतना कम मिलता था कि उससे घर-खर्च चलाना कठिन हो रहा था। इसके बाद कति निश्चय किया कि परचून की एक दुकान खोलूँ। इस पर मेरी पत्नी ने कहा

'यह काम तुमसे नहीं होगा। मेरी बुद्धि की जाँच करने के लिए उसने एक सवाल पूछा : इतने रुपये मन सौदा होने पर इतने सामान की क्या कीमत होगी ? देर तक सिर

कोट पर भी मैं उस सवाल का जवाब नहीं दे सका। नतीजा यह हुआ कि मैं दुकान नहीं खोल सका। आखिर क्या करता ? लाचार होकर साहित्यक्षेत्र में चला आया।

०००

'लेन-देन' उपन्यास का नाट्य-रूपांतर 'षोडशी' के नाम से करने के बाद उसे शरत बाबू के पास मंचीकरण के लिए शरत बाबू ने भेजा।

एक दिन शिशिर बाबू 'षोडशी' नाटक की पांडुलिपि लेकर शरत बाबू के पास आकर कहा—'शरत दादा, नाटक के अंतिम भाग में ज़रा परिवर्तन करना होगा।

शरत को मार डालना होगा, तभी नाटक जमेगा।'

शरत बाबू उखड़ गये। बोले—'कुछ भी बदलने को मैं राजी नहीं हूँ। उपसंहार ही नाटक में से एक भी संवाद बदलने को राजी नहीं हूँ। मैं जो संवाद लिखता हूँ, उसपर कुत्ते भी कहें तो लोग प्रेम से सुनेंगे।'

इस बात पर शिशिर बाबू उत्तेजित होकर बोले—'शरत दादा, संवाद चाहे कितना अच्छा क्यों न हो, जब तक अभिनय अच्छा नहीं होगा तब तक लोग उसे पसंद नहीं करेंगे। शिशिर भादुड़ी सड़क पर खड़ा होकर कोई संवाद न बोलकर सिर्फ ए. बी. सी. बोलता जाये तो लोग ध्यान लगाकर सुनेंगे ! अगर आप उपसंहार बदलने को तैयार हो जाते, तो मैं इस नाटक की नहीं खेल सकता।'

'ठीक है। मैं इसे स्टार थियेटर वालों को दे दूंगा।' शरत बाबू बोले।

शिशिर बाबू ने कहा—'शरत दादा, आप कहते रहिये, पर याद रखिये, एक दिन मैं आपकी जगह पर दवाये इस नाटक को लेकर आपको मेरे पास आना ही पड़ेगा। बहरहाल, मैं जीत रहा हूँ।'

कई दिनों बाद शरत बाबू 'षोडशी' नाटक की पांडुलिपि लेकर स्तर स्तर वालों के यहां गये। पता नहीं किस वजह से उन लोगों ने इस नाटक को लेने में इन्कार कर दिया। फलस्वरूप शरत बाबू नाट्य-मंदिर में शिशिर बाबू के पास बाबू के पास बाबू को 'शिशिर, नाटक तो मैं साथ ले आया हूं, पर छाता लाना भूल गया।' ०००

कलकत्ता में नया मकान बनवाने के बाद शरत बाबू सपरिवार आकर रहने लगे। गर्मी के दिनों में एक मित्र ने उनसे पूछा—'आपने मकान बनवाया, विजनी आ गयी पर अभी तक कमरों में पंखा क्यों नहीं लगवाया?'

शरत बाबू गंभीर होकर बोले—'पंखे के बारे में मैंने एक निर्णय ले लिया है। बैठक में बैठे हुए सभी मित्र उत्सुकता के साथ आगे की बात सुनने को तैयार हुए। शरत बाबू ने अपने एक धनिष्ठ मित्र का नाम लेते हुए कहा—'मैंने निश्चय किया है कि यह वर्ष उनकी तरह हर दुकान में पंखे का भाव-ताव करते हुए गुज़ार दूंगा।'

उक्त मित्र की इस आदत से सभी लोग परिचित थे। इसलिए उपस्थित मित्र मंडली हंस पड़ी। ०००

कलकत्ता स्थित अपने भवन के लिए शरत बाबू ने प्रसिद्ध काण्ड-व्यवस्था 'प्रवर्तक संघ' नामक प्रतिष्ठान से खिड़कियां-दरवाजे बनवाये थे।

बरसात में खिड़कियों के पल्ले पानी में भीग जाने के कारण जाम हो गये थे। कुछ दिनों शरत बाबू के एक मित्र उनसे लेख लेने आये तो कमरे में अंधेरा था। शरत बाबू खिड़कियों को खोल देने की आज्ञा दी।

वह जनाब काफी जोर लगाने के बाद थक गये। यह दृश्य देखकर शरत बाबू कहा—'ज़रा और जोर लगाओ। यह ऐरे-गैरे संस्था की लकड़ी नहीं है। यह है—'प्रवर्तक संघ' की खिड़कियां!'

एक महात्मा के पास एक व्यक्ति ने आकर पूछा—'महात्मन्! आप जीवों को ईश्वर में एक ही चैतन्य का वास बताते हैं परंतु ईश्वर के समान जीव सर्वत्र क्यों नहीं होता?' महात्मा ने एक लोटा जल गंगाजी से लाने की आज्ञा दी। वह व्यक्ति एक लोटा जल लाया तो महात्मा बोले—'बच्चे! गंगाजी में जहाज़ चलते हैं, इसमें क्यों नहीं चलते?' वह बोला—'गंगाजी में अथाह पानी है, लोटे में तो जहाज़ समायेगा ही नहीं।' महात्मा ने समझाया—'इसी प्रकार जीवात्मः में थोड़ा और ईश्वर में अनंत गुण है।'

आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

सोम ! गोभिष्ट्वा वयं,
वर्धयामो वचोविदः ।
सुमृडीको न आविश ॥

हे सोम ! हम वाग्मी अपनी वाणियों द्वारा
तेरा कीर्तिमान करते हैं । तुम सुखदायी
होकर हमारे अंदर प्रविष्ट होओ ।

ऋक् १-९१-११

महाराष्ट्र के संत : १

सावित्रीबाई खानोलकर द्वारा प्रस्तुत

लातिब शाह और शेख मोहम्मद

लातिब शाह एक मुस्लिम थे। लेकिन मुस्लिम होते हुए भी वे सोलहवीं सदी में जन्मे प्रख्यात संत एकनाथ के अनुयायी थे।

उनके आराध्य देव थे—कृष्ण। उनके अभंगों में विराग की साधना का स्वर है, एक अनजानी-अबुझ प्रेरणा है 'उसे' पाने की, ऐसी प्रेरणा, जिसमें उनके सारे प्राण संलग्न हैं।

वे कहा करते थे, 'गुरु कृपा से सब कुछ प्राप्त हो जाता है—परमात्मा भी।'।

एक मुस्लिम बादशाह ने लातिब के बारे में सुना, और अपने सैनिकों द्वारा उन्हें बुला भेजा। और जब वे सैनिक उन्हें पकड़कर वापस नहीं लाए, तो चकित बादशाह खुद लातिब शाह के पास गया, यह जानने के लिए कि आखिर माजरा क्या है?

लातिब शाह उस समय विमुग्ध श्रोताओं की भीड़ के सामने भागवत का पाठ कर रहे थे। कह रहे थे, 'जीवन में जो पाने जैसा है, वह प्रेम है। क्यों? क्योंकि प्रेम परमात्मा की सुगंध है। जो प्रेम को पा लेता है, वह सुगंध के मूल-स्रोत परमात्मा को पा लेता है।'।

उनके पीछे की दीवार पर एक चित्र अंकित था, जिसमें राधा अपने सखों के साथ खड़े कृष्ण को एक पान दे रही हैं। बादशाह लातिब को परेशान करने चाहता था। उसने कहा, 'क्या प्रेम करने पर प्रेम करने से प्रेम करता है, तो उसके हाथों से पान लेकर खा क्यों नहीं लेता?'

लातिब शाह ने कृष्ण के चित्र पर प्रणाम कर निवेदन किया, 'गुरु की कृपा द्वारा दिया गया पान स्वीकार करने में मैं तैयार हूँ, प्रभु!'

एक क्षण की भी देर नहीं हुई। लातिब के कृष्ण सहसा जीवंत हो उठे, उन्होंने अपना मुँह खोल दिया। लातिब की निर्जीव राधा ने सजीव होकर कृष्ण के मुँह में डाल दिया।

बादशाह की आँखें खुली की खुली रह गयीं।

अगले क्षण, वह लातिब शाह के चरणों में गिर पड़ा।

लातिब शाह के अभंग हिंदी में बहुत अधिक संसार को मानवता के जाल बताया गया है, और कहा कि गुरु ही इस माया-जाल से मुक्ति दिलाते हैं।

महाराष्ट्र के संत, जो अधिकतर, एक ही काल में जन्मे, कई मानों में भारत के
 सत्तों से भिन्न हैं। उन सबके मन में भक्ति का, छोटे-बड़े सबके प्रति प्रेम
 अहंकार पूरी तरह अनुपस्थित है। उन्हें बोध हुआ था उस ब्रह्म का जो
 अद्भुत सरलता से और अद्भुत आलोक से परिपूरित कर दिया था। उन्होंने
 सब धर्मों की बात कही, वह सब धर्मों के प्राणों की बात है, शुद्ध धर्म की बात है। हिंदू,
 जैन, ईसाई के धर्म से उसका कोई संबंध न था। इसीलिए उनके बारे में, और
 हमें पढ़कर हम जीवन की सार्थकता को पाने में सफल हो जाते हैं,
 हमारे जीवन में एक नये सूरज का जन्म होता है।

रामात्मा की भक्ति में सभी—नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, ज्ञानेश्वर, ज्ञानदा, आदि—ने अपने को इतना छोटा कर लिया है कि उनका 'मैं' हमें प्रायः भिटा सा लगता है। हमें तो यह ही देखना है कि हमें 'मैं' का कितना बोझ है। और यह सही भी है, क्योंकि जहाँ 'मैं' नहीं है, वहीं द्वार है।

इस लेखमाला का आरंभ हम कर रहे हैं—तंत एकनाथ के दो शिष्यों लातिव शाह के चित्रों के परिचय से। उनके बारे में पढ़कर आपको इस सत्य की पुनः अनुभूति होगी कि हमारा देश के संतों के धर्म का हिन्दू, मुस्लिम, जैन, ईसाई धर्मों से कोई संबंध न था।

सकता है ।

०००
 मुहम्मद का जन्म १५६५ में
 मुहम्मद और पुन्हा-

महम्मद ने चांद बोडाले से योग
ज्ञान प्राप्त किया था। वे शिवाजी के
मालोजी भोंसले के समकालीन
मालोजी के साथ वे मर्करापुर आये,
जहाँ एक साधु के आश्रम में रहने
लगे। उनके पुत्र का स्वभाव भी उनके
साथ धार्मिक था।

एक दिन जब शेख मुहम्मद एक नदी किनारे समाधि में लीन थे, तो एक

साँप ने तीन बार उन्हें काटा। शेख ने अद्वैत के सद्गुरु का स्मरण किया, और साँप का विष प्रभावहीन हो गया।

शेख ने 'योग संग्राम' नामक एक पुस्तक भी लिखी, जिसमें योग का विवेचन है। उन्होंने पुस्तक की एक प्रति अपने दो शिष्यों के हाथ काशी के ब्राह्मणों के पास भेजी, मगर ब्राह्मणों ने बिना पढ़े उसे गंगा में फेंक दिया। जब योग द्वारा शेख को इस घटना का पता चला, तो उन्होंने अपने दो अन्य शिष्यों को पुस्तक की प्रति को दोबारा पाने के लिए भेजा।

जब इन दोनों शिष्यों ने ब्राह्मणों से
(शेषांश पृष्ठ ५० पर)

‘नवनीत’ के लिये विशेष :

सच्चिदानन्द वात्स्यायन का नवीनतम लेख

आधुनिकता : संवेदन और सम्प्रेषण



आधुनिकता की चर्चा को तैयार होना एक बात है, पर सचाई यह है कि आधुनिकता क्या है, मैं नहीं जानता। यह भी सच है कि मुझे कभी इस बात की विशेष चिन्ता भी नहीं हुई कि मैं आधुनिक हो ही जाऊँ, या कि यह पड़ताल करूँ कि मैं आधुनिक हूँ या नहीं हूँ। अपने इस अज्ञान को आरम्भ में ही स्वीकार कर लेना मुझे इसलिए आवश्यक जान पड़ता है कि आगे जो कुछ कहूँ उसके बारे में कोई गलतफहमी आपको न हो।

यों ऐसा तो हुआ है कि लेखकों के बीच, और कभी-कभी लेखकों तथा पंडितों के बीच, आधुनिकता को लेकर गर्मागर्म बहस सुनने का अवसर मुझे मिला है। वैसी बहसें प्रायः निष्परिणाम होती रही हैं—अगर इसी को परिणाम न माना जाये। उनके बाद मैं स्वयं इस प्रश्न से जूझता रहा हूँ कि आधुनिकता आखिर है क्या? जैसा मैंने कहा, इस प्रश्न का उत्तर मैं नहीं जानता; अपने-ही सामने प्रश्न रखते समय मैं उसका निरूपण कुछ बदलकर यों कर लेता हूँ कि ‘आधुनिकता क्या

है?’ इसकी परिभाषा मैं न जाकर कोर यह सवाल पूछें कि ‘आधुनिकता होनी क्या होनी चाहिये? और विशेष रूप से साहित्य में किन लक्षणों से हम पहचानें कि आधुनिकता वहां है या नहीं?’ यों मैं यह भी कह सकता हूँ कि यह प्रश्न पूछना ही एक तरह की आधुनिकता है। उस पहली सीढ़ी के बाद दूसरी सीढ़ी है कि हम उसकी अपरिभाष्यता स्वीकार करके उसके प्रभावों और लक्षणों के बारे में ही सजग हो जायें।

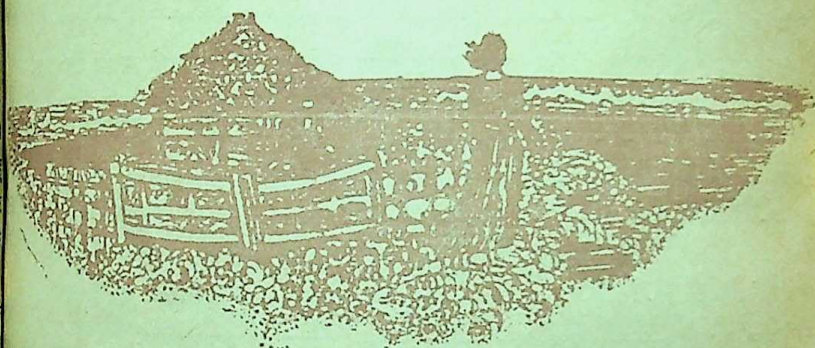
ईसाई संत आगुस्तीन ने काल के बारे में विचार करते हुए एक बड़े मार्क में बात कही थी, ‘जब तक कोई मुझे पूछता कि काल क्या है तब तक मैं प्रश्न का उत्तर जानता हूँ। लेकिन कोई पूछता है तो मैं नहीं जानता। कदाचित् आधुनिकता के बारे में भी कहा जा सकता है। आधुनिकता के बारे में ईसाई संत की यह बात याद करना और दृष्टि से भी उपयोगी है। यह तो ही कि आधुनिकता का सवाल युग अथवा काल के विषय में ही है—आधुनिक

किन्तु किसी विशेष अर्थ में युगीन अथवा
समकालीन होता ही है। लेकिन आधु-
निकता के संदर्भ में काल की बात उठाना
तो सिर्फ ऐतिहासिक मंदर्भ से जोड़ना
ही है। काल के साथ आधुनिकता का
सम्बन्ध इससे कहीं अधिक गहरा है—या
सबसे अज्ञान को याद रखते हुए इसी बात
को एक स्यापना के रूप में न कहकर अनु-
गत के रूप में कहें कि आधुनिकता का
सबसे सम्बन्ध कहीं अधिक गहरा होना

जाकर को
निकता हो
विशेष हा
हम पहचान
नहीं? बो
यह प्रश्न
आधुनिकता है
सरी सीही
थेयता स्वा
वक्षणां के बा

काल के ब
बड़े भाग
ई मुझसे
तक मैं
लेकिन
हो जाना
मेरे में भी
निकता के सं
याद करना
है। यह तो
ल युग अन
आधुनिक हो
जुग

और हमारे संवेदन का उस पर आधारित
रूपान्तर बड़े दूरव्यापी परिणाम रखता
है। काल के साथ सम्बन्ध बदल जाने से
बहुत-सी चीजों के साथ हमारे सम्बन्ध
अनिवार्यतया बदल जाते हैं; इतिहास के
साथ, सामाजिक परिवेश के साथ, यन्त्र
और श्रम के साथ, पूंजी के साथ, शासन-
व्यवस्था के साथ, कला और साहित्य
और उनके सौन्दर्यशास्त्र के साथ। मेरा
यह अनुमान कोई नयी बात नहीं है, लेकिन



आधुनिकता के विचार में संवेदन और
काल-बोध के प्राथमिक महत्त्व पर जोर
देना इसलिए आवश्यक जान पड़ता है
कि आधुनिकता की चर्चा में प्रायः लोग
इस आधार-भूमि की उपेक्षा कर जाते हैं
और केवल ऊपर की संरचनाओं और
संस्थानों की ओर ध्यान देते रह जाते
हैं। समाजशास्त्री और अर्थशास्त्र के
पंडित शायद इस दिशा में सबसे अधिक
भटकते हैं; लेकिन आज क्योंकि आधु-
निकता को आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन के

साथ जोड़ा जाता है, और समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र दोनों को विज्ञान की विरादरी में नया-नया प्रवेश मिला है, इसलिए बहुत से साहित्यकार भी समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों के पीछे चलते हुए अपने रास्ते से भटक जाते हैं, यद्यपि उन्हें तो संवेदन के प्राथमिक महत्त्व की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ।

मैं कह सकता हूं कि काल-बोध पर मैं इतना जोर इसीलिए दे रहा हूं, और एक नये काल-बोध पर आधारित संवेदन को आधुनिकता के विचार के केन्द्र में इसीलिए रख रहा हूं कि आधुनिकता का प्रश्न प्रथमतः समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों ने ही उठाया है जिनके दिग्भ्रमित हो जाने की मैंने चर्चा की है । निश्चय ही दर्शनशास्त्री को भी इस विषय पर कहने को बहुत कुछ है, लेकिन उसकी दृष्टि समाजशास्त्री और अर्थशास्त्र के पंडितों से इसलिए भिन्न हो जाती है कि आगमों को वह कुछ दूसरे रूप में देखता है और इसलिए, चाहे आनुवंशिक रूप में ही, संवेदन की उपेक्षा नहीं करता—संवेदन के विचार के परम्पराओं से गहरे सम्बन्ध को वह कुछ अधिक महत्त्व देता है । समाजशास्त्री के पीछे चलते हुए साधारण व्यक्ति—पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी—प्रायः यह भूल कर बैठता है कि आधुनिकता को, जो कि एक दृष्टि है, संवेदन का एक संस्कार है, और आधुनिकीकरण को, जो कि समाज का अथवा आर्थिक संस्थान का बाहरी

रूपान्तरण है, दोनों को पर्यायवाची मान लेता है । आधुनिकीकरण, शहरीकरण, यान्त्रिकीकरण और यहां तक कि पश्चिमीकरण—इन सबको पर्यायवाची मानते हुए आधुनिकता के साथ जोड़ लेने का भूल प्रायः सभी करते हैं, भले ही इन सब प्रक्रियाओं की ओर ध्यान दिलाने पर उन्हें यह भी पहचान लेने में कोई कठिनाई न होगी कि ये अलग-अलग हैं और ऐसा भी सम्भव है कि इनमें से किसी एक को अनुपस्थिति में भी दूसरी सम्पन्न हो जावे-वर्तक किन्हीं दो में विरोध का भी स्थिति होता रहे । उदाहरण के लिए, यह विचार कुल सम्भव है कि बाहर से हम पुरी तब शहरी साहव हो जायें, हर आधुनिक यान्त्रिक उपकरण घर में लगा लें और फिर इस आधुनिकीकरण, शहरीकरण, यान्त्रिकीकरण और पश्चिमीकरण के बावजूद भी हमारा संवेदन और हमारी दृष्टि को रूप से अनाधुनिक रह जाये—चेतना के स्तर पर हम किसी प्राचीन काल में जीते रहें । ऐसा तो नहीं है कि हम बाहरी रूपान्तर का कोई प्रभाव हमारे संवेदन पर नहीं होगा, लेकिन वैसा प्रभाव जो तनाव पैदा करेगा उसे हम तब तक आसानी से झेलते चले जा सकेंगे जब तक आसानी से झेलते चले जा सकेंगे । इसका प्रमाण आज आपको किसी भारतीय शहर के जीवन में दीख जायेगा—मानसा और संस्कारतः घोर हड़िबारी, लेकिन ऊपर से आधुनिक-हमारा शहर भद्रवर्ग ऐसे लोगों से भरा पड़ा है ।

नस्मिति का तनाव लगातार झेला जाकर
भी प्रभावित नहीं होता, यह हम प्रति-
ति अवधारणों से समझ सकते हैं—घरों में
विश्वों का कथित 'आत्मदाह' उसका केवल
एक विस्फोट है..

दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि संवेदन
के स्तर पर एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति आधु-

निकता का पूरा संस्कार

गुप्त कर ले, लेकिन

उसके बाह्य जीवन में

दूसरी प्रक्रियाओं के

खनन न दीखें।

तबतब इस्के उदा-

हरण उतनी आसानी

नहीं मिलेंगी और यह

है ही कि उन्हें पह-

चाना भी कुछ कठिन-

होगा क्योंकि बाहरी

व्यक्तिकता तो तत्काल

दिखा सकती है और

नये काल-बोध के लिए

व्यक्ति के आभ्यन्तर

परिचय आवश्यक होगा जो

समय ही होगा। लेकिन दुर्लभ होकर

ऐसे उदाहरण जब सामने आते हैं

तो चौंका जाते हैं। उदाहरण के लिए

परम्परावादी परिवारों से सार्वजनिक

जीवन में आने वाली अनेक स्त्रियों ने

अपनी आत्मविश्वास-भरी आधुनिक दृष्टि

को चकित किया है।

यदि एक बार इस बात को हम अच्छी

1949

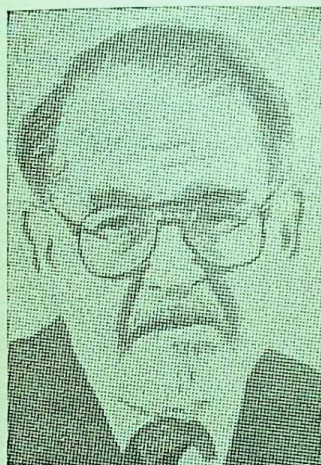
तरह समझ लें, और गांठ बांध लें, कि
आधुनिकता संवेदन का एक संस्कार है
और बाह्य रूपान्तर की जिन प्रक्रियाओं
का उल्लेख मैंने किया है उनसे सर्वथा
अलग है, तो आधुनिकता को नये काल-बोध
के साथ जोड़ना कठिन नहीं रहेगा और
उसके सभी विस्तारों को समझना भी
आसान हो जायेगा।

०००

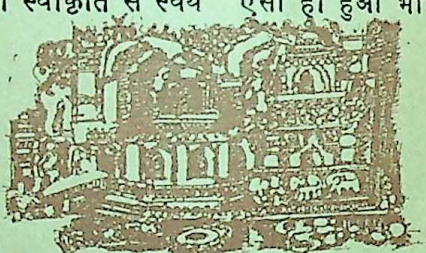
क्या संवेदन और
सम्प्रेषण की बात को
जोड़ना आवश्यक है ?
मानना होगा कि आव-
श्यक नहीं है, लेकिन
फिर यह भी देखना
होगा कि यदि हम
आधुनिकता की चर्चा
साहित्य के अथवा
कलाओं के संदर्भ में
करने वाले हैं तो इन
दोनों को जोड़कर
रखना अनिवार्य हो

लेखक

जायेगा। साहित्य-कला मात्र-मूलतः
एक सम्प्रेषण है; अभिव्यक्ति भी है
तो दूसरे पर अपनी अभिव्यक्ति है,
दूसरे तक पहुंचना है; इसलिए कला
और साहित्य जगत में संवेदन का
विचार सम्प्रेषण से अलग रखकर किया
ही नहीं जा सकता। अब अगर हम आधु-
निकता की मेरी दी हुई परिभाषा को ध्यान
में रखते हुए संवेदन और सम्प्रेषण की



चर्चा करेंगे, तो प्रश्न का रूप कुछ यों बन जायेगा कि 'एक नये प्रकार के काल-बोध को कवि अथवा कलाकार कैसे दूसरे तक पहुंचाता है और दूसरे को कैसे उसमें दीक्षित करता है?' इसी प्रश्न का विस्तार यह होगा कि क्या काल के नये बोध के साथ वस्तु भी बदलती है यथार्थ भी बदलता है और सम्प्रेषण की परिस्थितियां भी बदलती हैं? बदली हुई परिस्थिति के साथ क्या सम्प्रेषण की पद्धतियों और प्रक्रियाओं का भी रूपान्तर होता है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर स्वीकारात्मक है; लेकिन इस बदलाव की स्वीकृति से स्वयं अनेक समस्याएं कला-



कार अथवा साहित्य-कार के सामने उठ खड़ी होती हैं। इन्हें हम केवल आधुनिकता की समस्या न कहकर सन्दर्भ के साथ जोड़ते हुए देख सकते हैं—आधुनिक कला की समस्याएं, आधुनिक काव्य की समस्याएं, आधुनिक उपन्यास की समस्याएं, इत्यादि। क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र में नया काल-बोध यथार्थ की नयी पहचान कराता है, उसके साथ नये सम्बन्ध जोड़ता है; और उन सम्बन्धों की पहचान कराने की, उनके सम्प्रेषण की नयी समस्याएं खड़ी करता है; हर विधा का आधुनिक कलाकार अपनी विधा के भीतर इन नयी चुनौतियों का सामना करने और अपनी

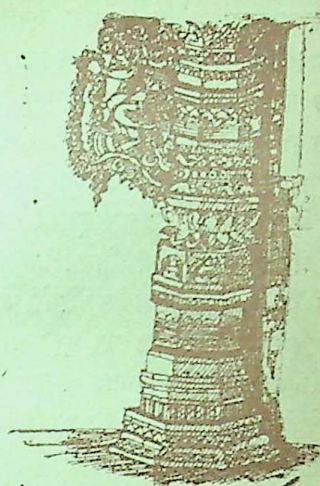
कठिनाइयों का हल निकालने के लिए नये शिल्प विधियों का आविष्कार करता है नये 'समय' (कन्वेंशन) स्थापित करता है। अगर हम नयी परिस्थिति को उससे उत्पन्न होने वाली चुनौतियों को पहचानते तो हम विभिन्न कलाओं की कला-विधाओं में आने वाले परिवर्तनों को भी ठीक-ठीक नहीं समझ सकते, उनके मूल कारणों के साथ नहीं जोड़ सकते। और ऐसी स्थिति में हमारी आलोचना सतही लक्षणों के पंजीकरण तक सीमित रह जायेगी। वास्तव में आलोचना के लिए ऐसा ही हुआ भी है। अधिकतर सं-

क्षाओं और विधाओं में पढ़ायी जाने वाली आलोचनाओं में तो यही देखने को मिलेगा कि लक्षणों और परिवर्तनों के आधार पर

श्रेणियां और वर्ग, बना दिये जाते हैं श्रेय दे दिया जाता है अथवा उसे वंचित कर दिया जाता है, और नये भी लक्षण अथवा परिवर्तन के लिए सब कलाकार के निजी परिवेशगत तनावों और ध्यान न देकर उसके लिए कोई कोई विदेशी माडल खोजने का प्रयत्न किया जाता है। यह बात प्रसंगान्तर दीखती है, लेकिन वास्तव में है नहीं अगर हमारे आलोचक और आलोचना शास्त्र के अध्यापक काल के साथ नये सं-

के लिए तो हमें उसकी उपपत्तियों को समझने तो समालोचना की इस विवृति से बच सकते, पाठक और अभ्येता को बताना सकते। वह नहीं होता इसीलिए प्रायः आधुनिकीकरण, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण आदि तो सब कुछ होता जाता है पर आधुनिकता ही हमें उपलब्ध होती-संवेदन का ही संस्कार हमें मिलता। शंकर ने कभी दूसरे संदर्भ में कहा था, 'मन्त्रविद् ही रह गया, आत्मविद् नहीं हुआ' - हम कहें कि हम लगा-लगाकर मन्त्रविद् ही होते जा रहे हैं, आत्मविद् नहीं होते। . . .

ऐसे प्रश्न के स्पष्ट प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से उसे यों रखा है कि 'क्या काल के परिवर्तन के बोध के साथ वस्तु भी बदलती है, यथार्थ भी बदलता है और सम्प्रेषण की स्थितियाँ और विधियाँ भी बदलती हैं?' मेरा उद्देश्य संवेदन और सम्प्रेषण को केन्द्र में रखने का भी है। किंतु हमें स्पष्ट होना चाहिये - न हो तो मैं उसे स्पष्ट स्वीकार करूँ - कि ये सारे प्रश्न ऐसे हैं कि किसी एक को कारण और अन्य सबको कार्य नहीं माना जा सकता। सांस्कृतिक प्रक्रिया में ऐसे सरल कारण-कार्य सम्बन्ध नहीं होते, परस्पर प्रभावों का एक जटिल विस्तार होता है। इस परिस्थिति के बदलने से काल-बोध बदलता है; सम्प्रेषण की कोई नयी युक्ति प्रयोज्य हो जाने से सम्प्रेषण यथार्थ भी बदलता है, इत्यादि। वल्कि इसी अन्योन्य-



आश्रय के कारण ही समाजशास्त्री के लिए यह सम्भव होता है कि वह सामाजिक परिवेश के आधार पर आधुनिकता की बात करे, या अर्थशास्त्री को यह सुविधा रहती है कि वह आर्थिक सम्बन्धों को और उनके परिवर्तनों को आधार बनाकर आधुनिकता की परिभाषा करे। वैसे निरूपण श्रम नहीं होते, केवल तदर्थ होते हैं; अपनी परिधि में उपयोगी भी होते हैं और भविष्य के अनुमान में परियोजनाओं में सहायक भी हो सकते हैं। साहित्य के अथवा कला के लिए ये निरूपण अपनी तदर्थता के कारण ही अप्रासंगिक हो जाते हैं। साहित्य भविष्य नहीं बनाता न उसका परियोजन करता है (साहित्य में भविष्य जीता है तो इसी अर्थ में जिसमें अतीत भी उसमें जीता है) वर्तमान की उस अचूक पहचान में जिसमें अतीत और

दोनों पहलों के चित्रकार : बंदायन सोकल

भविष्य दोनों अनुक्षण बदलते जाते हैं। क्योंकि हमारा प्रत्येक अनुभव, ऐसा नहीं है कि हमारे अतीत को ही बदलता है; अतीत का हर बदलता मूल्यांकन, स्मृति अथवा इतिहास का हर पुनःसंगठन, भविष्य की हमारी अपेक्षाएं और संभावनाएं भी बदल देता है; इस प्रकार हमारे कर्म की दिशा बदल जाती है अर्थात् भविष्य बदल जाता है . . . हमारी स्मृतियों की यह गत्यात्मक परस्पर भेदकता एक शक्ति है जिसके सहारे हम अनुक्षण अपने को भी जानते हैं; घटना-क्रम में अथवा 'इतिहास' में अपने को स्थापित करते हैं; केवल गोचर अनुभूतियों से आगे बढ़कर मानवीय संवेदन की परिधि में आते हैं। और इसी-लिए एक अनिवार्य और अविराम पुनःसंगठनमें लगे रहने के कारण ही हमें समाज-शास्त्री की अथवा अर्थशास्त्री की तदर्थ परिभाषाएं अग्राह्य हो जाती हैं : वे लोग एक अनुक्रमिक ऐतिहासिक काल को मानते हुए उसके किसी एक बिन्दु पर ठहरकर अपने अनुमान गढ़ते हैं, साहित्य-सर्जक एक गत्यात्मक आनुभविक काल को पहचानते हुए उसकी धारा के बीच तैरना चाहता है।

और अपनी पहले प्रस्तुत की नयी काम-चलाऊ परिभाषा की ओर लौटकर कहें कि आधुनिकता जिस नये प्रकार का काल-बोध है, वह दोनों प्रकार के काल की अवधारणा को स्वीकार करता है और समान्तर रखता है, समपदीय महत्त्व देता

है। और इतना ही नहीं, यह भी समझना है कि विज्ञान की प्रगति ने ही यह समझ बनाया है कि हम काल की इतने प्रकार की गतियों को पहचानें और एक साथ स्वीकार करें। और काल गति का यह स्वीकार वास्तव में आधुनिक संवेदन है, आधुनिकता है। आधुनिकता सब-कुछ को सोच बनाती है। लेकिन इस प्रकार सोच बनाना, मूल्यों अथवा मूल्य-दृष्टियों को नष्ट कर देना नहीं है, जैसा कि कुछ लोग समझते हैं। इस काल-सापेक्षता में ऐसा नहीं है कि काल एक स्थिर तत्त्व है जिसके कसौटी पर सब बदलती हुई चीजों को पैमाइश हो रही है; बल्कि काल स्वयं ही बदलती हुई और सापेक्ष चीज है। एक साथ ही एक काल भी है और अनेक काल भी हैं जिन सभी पर हम लगातार पखे जा रहे हैं, जिन सभी पर हम अपने प्रत्येक अनुभव और विश्वास के परखने को बांधे हैं। इस प्रकार 'आधुनिक' हो जाने पर यह नहीं कि मूल्यों की प्रेरकता अथवा समाज-नियामकता नष्ट हो जाती है कि मूल्य-निरपेक्ष हो जाता ही आधुनिक हो जाना है, बल्कि मूल्यों के प्रति सतर्क हो जाना है, बल्कि हमारी जिम्मेदारी बढ़ जाती है लगातार उनका परीक्षण करते रहना हमारा कर्तव्य हो जाता है जिससे ऐसा न हो कि हम ऐसे मूल्यों की दुहाई देते रहें—या उनके अनुशासन में जीने का उपक्रम करते रहें जो गतिहीन होकर निष्प्राण हो गये हैं और अब धारा को अवच्छेद ही करते हैं।

विज्ञान की प्रगति ने हमें काल की नयी

बखारणा दी, नया काल-बोध दिया ।

विज्ञान ने पहले हमें अंधविश्वासों के बीच

एक निश्चयात्मकता दी—और फिर स्वयं

एक प्रत्येक ध्रुवता पर प्रश्नचिन्ह लगा-

कर हमें संशयात्मा बना दिया—लेकिन

वो तक लाकर जहाँ हम इस डर से भी

सुन रहे सके कि 'संशयात्मा विनश्यति' ।

बैज्ञानिक संशय, विनाश की देहरी नहीं है,

बस जिज्ञासा की देहरी है, प्रश्नाकुलता

ही कि आधुनिक बोध का एक मुख्य

अंग है । विज्ञान ने बताया कि दिक्काल

एक सातत्य है, इसलिए एक के बिना

दूसरे की पहचान नहीं हो सकती; फिर

जैसे यह बताया कि काल अनिर्णीत और

असम में अप्रमेय है, इस प्रकार काल के

प्रति भी अनिश्चित हो गया और

तो अनिश्चय के द्वीप पर हम लगातार

चले हैं—यही हमारी आधुनिकता है ।

०००

बोड़ी देर अपनी इस अवस्थिति पर

विचार करें जो हमारे संवेदन को गड़ती है ।

निश्चय ही एक समय था जब हम एक

दूसरे प्रकार के काल में जीते थे । हमारे

संवेदन की आधार-भित्ति दूसरी थी ।

समाज अपेक्षया स्थिर था—कभी वह

विचारशील और रुढ़िवादी भी था, लेकिन

समाज नहीं रखने पर भी उसमें

संवेदन की गति बहुत धीमी थी, समाज-

स्थान भी स्थिर था, उसमें भी कुछ

बदलाव लाने नहीं होता था, न कहीं कोई

डगमगाहट थी, उस संस्थान को टेक देकर

चलाने वाले विश्वास भी स्थिर और

निष्कम्प थे । आज वैसा समाज नहीं है,

आज वैसा काल भी नहीं है, न वैसे विश्वास

हैं । आज हम स्थिर संस्थान और अभ्यस्त

कर्म की बात नहीं सोचते, नये फैशन की

बात सोचते हैं । चीजों के साथ हमारा

सम्बन्ध दूसरा है; क्योंकि काल के साथ

सम्बन्ध दूसरा है । आज बच्चा भी 'बोर'

होना समझता है, पारम्परिक समाज में

लोग जानते ही नहीं थे कि बोरियत क्या

होती है !

यह दोहरा देना अनुचित न होगा कि

इनमें से किसी एक को कारण मानना

भूल होगी; भौतिक स्थितियों से लेकर

अस्मिता-बोध तक सभी चीजें बदलीं और

सबने एक-दूसरे को प्रभावित किया ।

हम संवेदन को केन्द्र में रखते हैं, क्योंकि

हम साहित्य-सर्जन की प्रक्रियाओं को

केंद्र में रखते हैं—अन्य अनेक प्रक्रियाओं

और प्रमादों का उल्लेख और स्वीकार

काफ़ी है । ऐतिहासिक और आर्थिक

प्रक्रियाएं भी रही हों, यंत्रविकास की

प्रक्रिया भी रही जिसका वैज्ञानिक पक्ष

अपना महत्त्व रखता है और सत्ताधिकरण

पक्ष अपना—और कहने की जरूरत

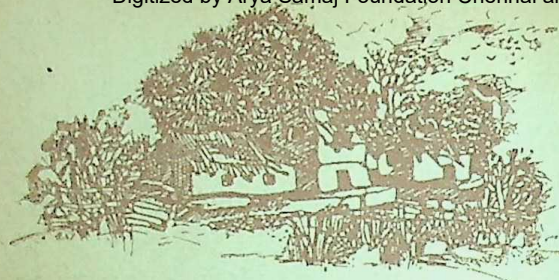
नहीं कि सत्ताधिकरण पक्ष में फिर ऐति-

हासिक और आर्थिक प्रक्रियाओं का चाहें

तो अलग-अलग विचार कर सकते हैं ।

संवेदन किसी भी प्रक्रिया के प्रभाव से

अछूता नहीं है । लेकिन फिर भी ध्यान



चित्र : सांकला

रखने की बात है कि संवेदन प्रभावित उतनी जल्दी नहीं होता जितनी जल्दी वह कर्म को प्रभावित करता है; और दूसरे प्रभावित होता भी है तो सीधे-सीधे नहीं। इस प्रकार अगर आधुनिक संवेदन मौजूद है तो यह अपेक्षा हम रख सकते हैं कि वह आधुनिकीकरण की ओर प्रेरित होगा; पर आधुनिकीकरण होने से ही हम आधुनिक संवेदन होना भी निश्चित नहीं मान सकते—बल्कि यह भी निश्चित नहीं मान सकते कि संवेदन में जो परिवर्तन होगा वह आधुनिकीकरण का समर्थन करने वाला ही होगा।

बदले हुए संवेदन के अन्वय प्रभावों और कर्म प्रेरणाओं से हमें यहाँ प्रयोजन नहीं है। किन्तु साहित्य में या कलाओं के क्षेत्र में आधुनिकता कैसे क्रियाशील हुई और किन समस्याओं का सामना करती है वह अवश्य हमारे लिए प्रासंगिक है।

आधुनिकता—बदले हुए काल-बोध—की सबसे महत्वपूर्ण समस्याएं आख्यान-साहित्य (फिक्शन) में प्रकट होती हैं।

नवनीत

क्योंकि नयी दृष्टि एक ओर सामान्य को नये ढंग से देखती है, सामान्य नयी चीजों की ओर देखती है क्योंकि नया यथार्थ देखती है दूसरी ओर वह उसे सम्प्रेषण करना चाहती है—सम्प्रेषण तो उसका अनिवार्य कर्तव्य है बल्कि सम्प्रेषण ही तो साहित्य है। और काल की नयी प्रज्ञान अपने आप में सम्प्रेषण की ओर

समस्याएं हमारे सामने ले आती थी—जिनमें सबसे पहली तो यही थी कि हमारे अनुभव में काल ऐतिहासिक क्रम से उलटे क्रम में चलता है—परिणाम पहले आता है और कारण बाद में। इस प्रकार अनुभव की 'यथार्थ घटना' इतिहास की घटना से उलटी चलती है। दूसरे यह भी हमने जाना कि हमारा संवेदन घटनाओं के अनेक स्तरों और आयामों को एक साथ ग्रहण करता है—अर्थात् बहुतों की एक घटना संवेदन के संसार में अनेक घटनाओं का संघट्ट है जो सब अनुभव नहीं, एक साथ घटित हुई हैं। इस प्रकार यथार्थ अनुभव का यथार्थ सम्प्रेषण नहीं हो सकता है अगर कथा भी उसी तरह कहनी पड़ेगी—यानी क्रम से नहीं, समुच्चय के साथ—जो कि असंभव है—अतः आपमें असंभव है और भावा की सीमा के कारण भी असंभव है—भाषा की अनिवार्यतया पुर्वापरक्रमिकता मांगती है जब कि अनुभव क्रमातीत होता है—उपन्यास की विधा में जो परिवर्तन आये

काल-बोध के तय रूप चाहें तो केवल काल-बोध के प्रश्न सामने लाता है, जिन्हें कलाकार को हल करना ही होगा नहीं तो वह दूसरे तक पहुंच ही नहीं सकता—और प्रस्तुतीकरण तो नाम से स्पष्ट कर देता है कि वह दूसरे तक पहुंचना है !

मैंने जिस आत्मस्वीकार से आरंभ किया था, एक बार फिर आपको उसका स्मरण दिलाकर कहूं कि अपने अज्ञान को अपने सामने रखते हुए मैंने इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि आधुनिकता की कोई सर्वसम्मत परिभाषा आपके सामने रखूं : मेरा प्रयत्न यही रहा कि 'अगर आधुनिकता हो तो वह क्या होनी

हम चाहें तो केवल काल-बोध के प्रश्न सामने लाता है, जिन्हें कलाकार को हल करना ही होगा नहीं तो वह दूसरे तक पहुंच ही नहीं सकता—और प्रस्तुतीकरण तो नाम से स्पष्ट कर देता है कि वह दूसरे तक पहुंचना है !

मैंने जिस आत्मस्वीकार से आरंभ किया था, एक बार फिर आपको उसका स्मरण दिलाकर कहूं कि अपने अज्ञान को अपने सामने रखते हुए मैंने इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि आधुनिकता की कोई सर्वसम्मत परिभाषा आपके सामने रखूं : मेरा प्रयत्न यही रहा कि 'अगर आधुनिकता हो तो वह क्या होनी

तय रूप चाहें तो केवल काल-बोध के प्रश्न सामने लाता है, जिन्हें कलाकार को हल करना ही होगा नहीं तो वह दूसरे तक पहुंच ही नहीं सकता—और प्रस्तुतीकरण तो नाम से स्पष्ट कर देता है कि वह दूसरे तक पहुंचना है !

मैंने जिस आत्मस्वीकार से आरंभ किया था, एक बार फिर आपको उसका स्मरण दिलाकर कहूं कि अपने अज्ञान को अपने सामने रखते हुए मैंने इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि आधुनिकता की कोई सर्वसम्मत परिभाषा आपके सामने रखूं : मेरा प्रयत्न यही रहा कि 'अगर आधुनिकता हो तो वह क्या होनी

तय रूप चाहें तो केवल काल-बोध के प्रश्न सामने लाता है, जिन्हें कलाकार को हल करना ही होगा नहीं तो वह दूसरे तक पहुंच ही नहीं सकता—और प्रस्तुतीकरण तो नाम से स्पष्ट कर देता है कि वह दूसरे तक पहुंचना है !

मैंने जिस आत्मस्वीकार से आरंभ किया था, एक बार फिर आपको उसका स्मरण दिलाकर कहूं कि अपने अज्ञान को अपने सामने रखते हुए मैंने इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि आधुनिकता की कोई सर्वसम्मत परिभाषा आपके सामने रखूं : मेरा प्रयत्न यही रहा कि 'अगर आधुनिकता हो तो वह क्या होनी



चित्र : सांकला

चाहिये, इस विषय में अपनी अटकलें आपके समक्ष रखूं। और अगर वैसी आधुनिकता होगी तो उसके क्या प्रभाव और परिणाम भी होने चाहिये उसकी भी एक रूपरेखा प्रस्तुत कहूं।

मेरे अनुमान यदि युक्तिसंगत हैं तो आधुनिकता को—क्योंकि वह नये काल-बोध पर आधारित एक दृष्टि है—नयेपन और परिवर्तन को न केवल स्वीकार

करना चाहिये बल्कि अनिवार्य मानना चाहिये। आधुनिकता परिवर्तन के प्रति अनुकूलता और लगातार उसका प्रयत्न है। लेकिन उसके साथ ही वह केवल क्षणिक नये के मोह में भी नहीं पड़ेगी—काल के साथ नया सम्बन्ध अधिवेकी अथवा आलोचना बुद्धिरहित नहीं होगा। और यह परिवर्तन मूल्य-दृष्टि में होगा, सामाजिक संस्थान में होगा, आत्मदर्शन में होगा—और दूसरों के साथ संबंधों की परिकल्पना के बदलाव के कारण सम्प्रेषण की हर विधा और प्रक्रिया का परिवर्तन भी होगा।

नये काल का एक और पक्ष भी विचारणीय है। वह केवल परिवर्तन को ही स्वीकार नहीं करता, उसकी द्रुततर गति को भी स्वीकार करता है। लेकिन क्या द्रुततर परिवर्तन को स्वीकार करना हर चालू फ्रेशन को स्वीकार करना है? मैं कहना चाहूंगा कि नहीं! पर यह तो देखना होगा कि हमारे समाज में ऐसे समीकरण की संभावना काफ़ी है। उन सभी देशों में है जो आज 'नवविकासमान' देश कहलाते हैं और जो कल तक विकसित यन्त्रोद्योग वाले पश्चिमी देशों के उपनिवेश थे। औपनिवेशिक इतिहास का एक अवशेष यह है कि हम अभी तक उधर से आने वाले प्रभावों के सामने निरस्त्र और अरक्षित हैं—हमारी खिड़कियां उधर ले आने वाली हवा के लिए ही खुली रहती हैं, भले ही वह हवा कितनी ही

दूषित क्यों न हो। इस स्थिति से हमारा समाज मुक्त हो सकेगा या नहीं, या वह मुक्त हो सकेगा, इसके बारे में कोई भविष्यवाणी मैं नहीं करूंगा—न वह मेरा काम है न उसके लायक मेरा ज्ञान है। इसी ही कह सकता हूँ कि जाग्रत विवेकपूर्ण के सिवा कोई दूसरा प्रतिरोध नहीं हो सकता।

पर इततर गति की एक बात इसे आगे भी बनी रहती है। विज्ञान का नियम है कि ऊर्जा के प्रवाह की मात्रा या गति बढ़ती है तो वैविध्य कम होता है। इस प्रक्रिया को हम प्रतियोगिता कहकर उसका स्वागत करें, या एकलव्य कहकर उसे संकट मानें—यह प्रक्रिया औपनिवेशिक अतीत से बिल्कुल अलग है। उस कोटि का वैज्ञानिक सत्य है जिसे काल-निरपेक्ष कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया को हम विकास की निम्नतर सीढ़ी के दानस्पतिक अस्तित्व से लेकर समकालीन मानव-निर्मित शहरी यंत्र-संस्कृति तक सर्वत्र देख सकते हैं। व्यापार में तेज रैपिड टर्नओवर तथा स्टैंडर्डिजेशन का संबंध इसी प्रक्रिया का एक पहलू है। तो क्या आधुनिक होने में हम क्वालिटी अथवा प्रवाही ऊर्जा की व्यवस्था से गुजरते हैं? द्रुत-प्रवाही ऊर्जा व्यवस्था में आ रहे हैं इसलिए हमें जीवन का और संस्कार का वैविध्य खोकर एक सर्वप्राप्ती एकलव्य का शिकार हो जाना होगा? यह प्रश्न

(शेषांश पृष्ठ ५५ पर)

अनन्त कुमार पाषाण का कविता के सम्बन्ध में यह कहना है...



‘कविता जितना कहे उससे बहुत ज्यादा बिना कहे छोड़ दे। उसकी सतरों और शब्दों के बीच में छोटी-बड़ी खामोशियाँ हों। एक ही कविता के अलग-अलग धरातल पर अलग-अलग अर्थ निकलें। कविता का अर्थ अनंत होना चाहिये। उसके विभिन्न अर्थ विरोधी भोग सकते हैं मगर कहीं भीतर से वह जुड़े होते हैं। एक ही कविता विशद में हमें उन्नत और हर्ष में उदास कर सकती है। प्रकृति की तरह ही कविता को सदा रहस्यमयी होना चाहिये।

‘रहस्यमयी होकर भी युग-युग से जानी-पहचानी। शब्दों से लहजे से, अंशज से वह हमेशा ऐसी सुनी हुई आवाज की तरह होनी चाहिये जो हमने वचन से सुनी है। शब्दों से किसी भी जाति के सांस्कृतिक उद्यान-पतन, ऐतिहासिक हर्ष-विषाद जुड़े होते हैं। उदाहरणार्थ ‘जोहर’ शब्द में जितना ओज है उतनी ही उदासी है। ऐसे शब्दों के पारस्परिक संबंध से, ‘संस्कृत’ से कवि स्वयं अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करता है।

‘कवि साधारण लोक व्यवहार के जितने अधिक शब्द लेगा, रोत्तरमी के लहजे को जितना पकड़ेगा, उतना ही अविभाज्य मानव चेतना को अभिव्यक्त कर सकेगा। बढ़िया कविता वह है जिसमें बाजार की रोत्तरमी की जवान विराट रूपकों के इशारे करे, जैसा कि जायसी ने किया! कवि वह है जो अशिक्षित लोगों के क्रोध की भाषा को भी वैदिक मंत्र की भाषा से जुड़ा हुआ देख सके, और ऐसा जब भी उसने देखा है, तो कविता संगीत बन गयी है जिससे देवता और पशु समान रूप से सम्मोहित हो गये हैं...।’



अनन्त कुमार पाषाण की चार कविताएं

[१]

रातों-रात

पत्तों की बंधी हुई मुठियां खुल गयीं,
बातों ही बातों में,
बाग के फाटक पर चढ़कर
छोटे-छोटे बच्चे उसे आगे-पीछे चलाने लगे।

पीछे के केले के जंगल में
ठहरी थी जो बारात, चली गयी।
मगर रातों-रात बहुत ऊपर से
पिघली हुई चांदी-सी
पतली जल की धारा फूट पड़ी।

यहीं एक पेड़ के नीचे
खाना खाने के बाद
मेहंदी से रचे हाथ धोये थे बधू ने,
बरगद के नीचे ध्यान में बैठा हुआ
एक साधु देख रहा था।
लजवंती दुलहन उसके चरण छू
आशीर्वाद ले गयी थी

उसके बाद दिनों तक
केले के पत्तों को हिलते हुए देखकर
साधु हंसता रहा था।

○○○



[२]

स्वप्न में जिस चिड़िया ने
मुझको मोहा था,
वह ही जब नारी बन
यथार्थ बन गयी
तब
मुझे यह एहसास हुआ
आगे ज्योंही बढ़ा
नारी-आकृति वह
चिड़िया बन उड़ गयी।

वन-वन भटकता रहा—
मेरे मत्त आलिंगन
से वृक्ष सभी विपिन के
चूर-चूर हो गये,
पक्षी उड़े, भाग गये,
दूर-दूर हो गये।

○○○

‘लौटो सिन्दबाद’ सीरीज के अंतर्गत

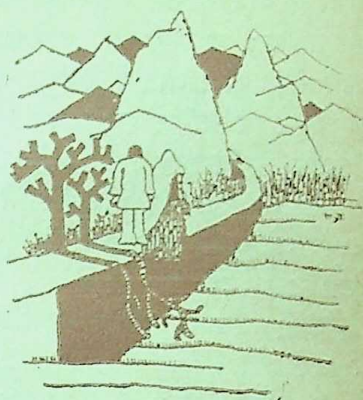
[३]

सूख से उतरती हुई
 धमती हवा की तरह
 जाती तक लहराते उगी घास के सागर में
 आ तुम साथ मेरे
 जब उल्लसित घुसोगी ?

नाम की पगडंडी पर
 गर-गर सांपों से साये जब सो जायें,
 खो हुई घास-सी सूरज की किरणों से
 लौटो हरी रोएंदा घास के अंधेरे में
 मे साथ घुसोगी ?

जैसे हुए दिवस में
 खिंदार परस से अचकचा
 मिल मृणाल-से हाथ चंपई उठा
 से छटे कुत्ते से ढंके हुए
 धरे पर रखोगी ?

०००



[४]

सूखी हुई फलियों की
 पायजेबें पहनकर
 गर्म हवा आती है,
 तुम्हारों वालों को थोड़ा-सा बिखराकर
 छोटी किसी लड़की-सी
 पेड़ पर चढ़ जाती है ।

कच्चे कनेर के फल को कुतरते हुए
 गिलहरी रुक जाती है,
 किनारे पर बंधी हुई
 नाव को कंपकंपी आती है ।

ऐसे मत हंसो तुम,
 हवाओं को छोड़ो मत,
 हाथ को हिलाकर
 चूड़ियों के गीत से
 गिलहरी को डेरो मत ।



(पृष्ठ ३५ का शेषांश)

पाण्डुलिपि लौटाने के लिए कहा, तो ब्राह्मणों ने घाट से उस स्थान की ओर इशारा किया, जहां उन्होंने पाण्डुलिपि गंगा में फेंकी थी। और ये देखकर सभी ब्राह्मण आश्चर्यचकित रह गये कि पाण्डुलिपि सुरक्षितावस्था में ठीक उसी स्थान पर तैर रही थी, और तैरते-तैरते घाट पर आ लगी, जहां से दोनों शिष्यों ने उसे उठा लिया।

एक दिन शेख के भक्तों ने एक और चमत्कार देखा।

शेख अपने भक्तों के बीच कीर्तन कर रहे थे। कीर्तन करते-करते वे सहसा रुके, और ऊपर छलांग लगाकर मंडप के कपड़े के एक कोने को मसलकर पुनः अपने स्थान पर आकर कीर्तन करने लगे।

जब भक्तों ने उनसे उनके विचित्र व्यवहार का कारण पूछा, तो शेख ने कहा, 'ठीक इसी समय देह में तुकाराम कीर्तन कर रहे हैं। मैंने योगदृष्टि से देखा कि उनके मंडप के एक कोने में आग लग गयी है। आग फैल न जाये, इसलिए मैंने उसे यहीं से बुझा दिया।' □

काफी हाऊस में बैठे चर्चा चल पड़ी 'बूढ़ों का वर्ष' मनाने की। प्रतिष्ठित व्यंजक फ्रिक्क तौसवी ने सिगरेट का लंबा कश लेते हुए अपने विचार इन शब्दों में रखे तो जोरदार ठहाका काफी हाऊस में गूंज उठा—'बूढ़ों का वर्ष मनाने का विचार बुरा नहीं महिला वर्ष मनाया गया, तो महिलाओं में तलाक की रफ्तार बढ़ गयी थी। बावत मनाया गया तो बच्चों को उठाकर ले जाने की घटनाएं बढ़ गयीं, अब अगर बूढ़ों को साल मनाया गया तो मेरा विचार है कि जनाजों की तादाद बढ़ जायेगी!' □

लोगों को शेख की बात पर विस्मय नहीं हुआ। उन्होंने गांव के पाटिल को सच्ची बात जानने के लिए देहू भेजा। पाटिल ने आकर खबर दी कि सचमुच उस मंडप में आग लग गयी थी, तुकाराम कीर्तन कर रहे थे, और इससे पूर्व कि लोग उसे बुझाने दौड़े, वह अपने आप बुझ गयी थी।

उनके कुछ भक्तों ने पूछा, 'पर आपने पांडुरंग को, जो तुकाराम के आराध्य देव हैं, बुझानी चाहिये थी। आपने क्यों नहीं किया?'

'आग पांडुरंग ने ही बुझायी, मुझे उनके माध्यम से। उन्होंने ही मुझे देहू भेजने की आग को देखने की दिव्य दृष्टि प्रदान की, और उन्होंने ही मुझे आग बुझाने के लिए प्रेरित किया।'।

मराठी में रचे गये शेख मुहम्मद अहमंग, अद्भुत रस-मग्न उस भक्त गीत हैं, जिसे सर्वत्र ब्रह्म की झलक दिखती है। जो सबसे जुड़ा है, सबसे जुड़ा है, चांद से जुड़ा है, सागरों से जुड़ा है, अंतरिक्ष से जुड़ा है, सबसे जुड़ा है।



शाश्वत जीवन का स्रोत : पूर्विय गोलाद्ध

मनुष्य के लिये जरूरी है कि वह आत्मा के महान जीवन्त स्रोतों में विश्राम ले, जिनसे वह अपने को तरोताजा बनाये। यही आवे-हयात के स्रोते शाश्वत की ताजगी को कायम रखते हैं।

ये स्रोते और वहां मिलेंगे सिवाय मानव-जाति के पालने एशिया के; सिवाय उन जल उद्काइयों के, जहां से एक ओर सिन्धु और गंगा जैसी महानदियां बहती हैं, तो दूसरी ओर पश्चिम के प्रचंड प्रपात हैं, स्वर्गोद्धान की स्रिताएं हैं !

पश्चिम संकरा है। यूनान छोटा है : वहां मेरा दम घुटता है। जूडिया सूखा है : वहां मेरी सांसें फूलने लगती हैं। तो क्षण भर के लिए मैं एशिया और गहन-नामीर के गोलाद्ध की ओर निहाऊं। वहां विराजित है मेरी महान कविता, जो हिन्दू विराट् जैसी विराट् है, जो सूर्य से पूत-पावन और प्रदीप्त है। वह दिव्य हार्मनी (सन्मिता) का महाकाव्य है, जिसमें बेसुरापन नहीं है।

एक सिन्धु प्रशान्ति वहां राज्य करती है। और वहां द्वंद्व और असीम माधुर्य के एक अपार बन्धुभाव विराजित है, जो प्राणि-मात्र को परिब्याप्त किये हुए है। वह कृपा और दया का एक अतल अपार महासमुद्र है।

... मुझे अपनी खोज का लक्ष्य उपलब्ध हो गया है : वह है सौहार्द का धर्म-ग्रंथ—
गोलाद्ध : भारत।

मिशेलेट : मानवता की बाइबिल : १८६४



महादेवी वर्मा का एक प्रासंगिक भाषण

‘जागो फिर एक बार’

—महाकवि तिलक

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जिसमें चेतना के अनेक स्तर हैं। जो पशु है उसमें तो एक ही स्तर है, एक स्वयंचेतना है। लेकिन मनुष्य में वह सह-चेतना भी है और अनुचेतना भी है और पराचेतना भी है। इसी तरह उसका मन भी है तीन प्रकार का। एक वास्तव में स्थिर मन है, जिसमें हम बाहर की चीजें देखते हैं। एक उसका सूक्ष्म मन है, जिसके पार भी हम देखते हैं। और एक उससे भी सघन मन है जिसमें हम सब मिलाकर उस परम सत्य को देखते हैं। और तब हम संकल्प लेते हैं कि हमें इसी की स्थापना करनी है। जब ये चेतनाएं और ये तीनों मन मिल जाते हैं, तब एक बड़ा साहित्यकार हमको मिलता है। अब ये मिल कैसे जाते हैं, यह हम नहीं जानते।

ऐसा नहीं है कि हमारे यहां लिखने वाले नहीं हैं। लिखने वाले हैं। और यह भी है कि वे जन्मते हैं कि कहां कठिनाई है, हम क्या करें। किन्तु कुछ ऐसा हो गया है, (जो राजनीतिक बैठे

हैं मुझे क्षमा करेंगे) कि राजनीति विकसित हो गयी, और उसने हमें विकसित कर दिया। अगर हम उसकी तरह न चलें तो हमें पागलखाने में रख दें। जैसे पागलों की संख्या अलग हो जाये, अधिक हो जाये, बहुत हो जाये, तो समझदारों को वे पागलखाने में रख दें। उनसे कुछ जाते हैं—भाई, देश में विघटन हो रहा है तुम कहां लड़ते हो? छोटी-छोटी बातों में, स्वार्थ में क्यों लड़ते हो? वे नहीं सुनते। वे समझते हैं वे पागल हैं। और अब हो ऐसा गया है मैं समझती हूं कि जो लेखक हैं वे उसी साथ चलते हैं, हमारे साथ नहीं चलते। यह अंतर कैसे आया पंतीस साल

में? इसका मुझे बड़ा कारण यह आता है कि उस समय जो राजनीति में थे—राजनीति हमारे पास नहीं थी, विशाल जीवन नीति थी, जो उस नीति में, संघर्ष में आये, वे लेखक थे, विचारक थे, चिंतक थे गांधीजी ने इतना लिखा कि एक पुस्तक बन जायेगा। जबहरलाल हमेशा में ही लिखा करते थे। राजेन्द्र

कवि विराट
नीति विविध
विविध क
तरह न बोलें
। जैसे पाने
, अधिक
समझदारों के
उसने कहे
घटन हो चु
छोटी-छोटी
लड़ते हो
ते हैं ये न
ऐसा गया है
कहें वे उ
नहीं चलते
पंतीस मा
रण यह न
जो राजनीति
रास नहीं की
न नीति की
आये, वे
चितक के
एक पुस्तक
न हमेशा
राजेन्द्र

जेल में से लिख पाये ।
इसी तरह हमारे जो और साथी
नवीनवी, जेल में से न जाने कितनी
लिख लाये । माखनलालजी
का क्या लिख लाये, जेल में से ।
हमारे और उनके बीच में
अंतर नहीं था । हम साथ थे ।
गोलियों के, लाठियों के सामने
हम भी थे । किंतु इसके बाद ऐसा
कि कुछ सत्ता में चले गये और
लिखने लगे । मानो
अधुन में लौट गये ।
नीति सोचने लगी
रो बंदना करें, अभि-
न करें, हमारा जीवन
लिखें, तब ये लेखक
सब्य नहीं हैं । अब
क्या करें ? जो
लेखक या उसने



कि भाई, करना ठीक है, नहीं
लियेंगे कैसे ? दोनों के बीच की
बढ़ती चली जा रही है । अब
मिरफिरे ऐसे हैं, जो यह सब नहीं
करते हैं । और कुछ हैं जो यही करते हैं—
रुढ़ते हैं । वास्तव में मुझे ऐसा
है कि दोनों को मिलना ही चाहिये ।
करने नहीं मिलते हैं तो देश का भविष्य
संकट में है ।

कैसे आपत्ति किसी देश के लिए
बड़ी आपत्ति नहीं है, जितनी
को आपत्ति है । चरित्र का संकट

है । पशुओं के लिए हम अभयारण्य
बना रहे हैं और मनुष्य के लिए भया-
रण्य । दो मनुष्य बैठे हुए हैं तो मानो बीच
में जैसे खुली हुई तलवार रखी है । पूरे
वक्त आप देखिये, रेल के डिब्बे में दो
लोग बैठे हैं, दुःख-सुख की बात नहीं
करेंगे, दोनों सोवेंगे मेरा यह सामान लेकर
न उतर जाये ? कहां से कौन चोट
पहुंचा रहा है ? जो राजनीति में हैं
उनको भी यह सोचना चाहिये कि देश

को एक रखना अकेले
उनके बस की बात नहीं
है । राजनीति या शासन-
नीति देश को एक नहीं
रख सकेगी । एक रखने का
काम तो फिर वही लेखक
करेगा, वही साहित्यकार
करेगा, वही सांस्कृतिक व्य-
क्ति करेगा । उसको साथ

लेना ही होगा । और जो लेखक है उसका
कर्तव्य तो निश्चित है । उसको वास्तव में
एक रखना है । इस कर्तव्य को हम लेकर
चलें ।

अब जो सबसे बड़ी बाधा आती
है वह यह है, कि हमारा जो उत्कृष्ट
है, जो साहित्य है, वह तो संतों का
है, वैरागियों का है, कमंडलधारियों
का है । असल में समाज ने कभी उनके
लिए कोई चिंता नहीं की । तुलसी-
दास कहते हैं, 'मांग के खाइबो, मसीत
को सोइबो, लेवे को एक, न देवे को

दोऊ।' सब अपना-अपना घर छोड़कर चले जाते थे। अब जो लेखक है, वह परिवार में है, समाज के बीच में है। समाज अभी यह समझा नहीं है कि इसको जिलाने की कितनी आवश्यकता है। क्या करें कि ये दस्तव में लिख सकें निश्चिन्त होकर। अभी भी समाज समझता ही नहीं। और फिर प्रकाशक आ गया है उद्योग में। उद्योग के अपने नियम हैं—यहां लाभ की बात है। लाभ इसमें है तो यही कीजिये। और एक बड़ा वर्ग हो गया है समग्र शिक्षा के क्षेत्र में, उन्हें मैं क्या कहूं, क्षेत्र शिक्षकों का है। वे लोग नोट्स बना रहे हैं, 'की' कुंजी, गल्प-गुच्छ और न जाने क्या-क्या बना रहे हैं।

वास्तव में सब मिलाकर जो चीज चल रही है उसमें रचनाधर्मिता बहुत संकट में है। लेखक संकट में है। लेकिन मैं इतना ही कह सकती हूं कि दीपक चाहे मिट्टी का हो, चाहे सोने का हो, मूल्य उसका नहीं है, उसकी लौ का है। कोई अंधेरा ऐसा नहीं है। अंधेरे के तरकश में कोई तीर ऐसा नहीं है जो उसकी लौ को न जलने दे। वह तो जलेगा ही। आज जो लेखनी लिये हुए हैं, उनको देखना है कि हमारी भारतमाता कितनी सुंदर है। वह हिमालय जो तुषार का स्वरूप है, जिस पर सूरज की किरण, कसर के फूलों की तरह बरसती हैं गंगा-यमुना की मालाएं जो पहने हुए

है, और तीन-तीन समुद्र बिम्बे का धो रहे हैं—यह हमारी मातृ-महिला हम इसको खंडित नहीं होने देंगे। हम अनिष्ट नहीं होने देंगे। यह हम संकल्प करें। लेखनी हमारे हृदय ज्वाला है। डूबे हुए आसुओं में भी हो। मैं समझती हूं आसुओं से बड़ी आंखें आज कुछ नहीं है। आंखों में गंगा गयी है। क्योंकि मनुष्य पहचाना है संवेदना से।

जहां शरत हुए भागलपुर में, इतनी गहरी है कि स्टीमर चले इतने पुराने मंदिर हैं, इतना सुंदर है। देखिये वहां क्या कर दिया। हो गया! गंगा-जल कहकर गंगा भी अपमान कर दिया। तेजाब में डाल दिया! कहां गंगा-जल डालें हैं? आप कल्पना कीजिये, अपना कांप नहीं गया होगा? कहां है वह मनुष्य यह देश जिसने गरिमा के योद्धा किये हैं, वहां उस गौरवमय विद्वान् जहां भगवान बुद्ध को बोधि मिली, ऐसा हो गया! मैं समझती हूं कि भीतर का संवेदना का उत्साह जा रहा है। हम यह कहें कि हमारे तो है, उनका सूख गया, ऐसा कभी होता। नदी सूखने लगती है तो तटों से सूखती है। ऐसा नहीं होगा कि एक तट ही सूखे। तो युग के कुछ संवेदना का अभाव हो गया है इस संवेदना को हमें ही

जितनी हमारी कठिन परीक्षा
नहीं हुई, इतनी बड़ी चुनौती कभी
आयी। हम प्रयत्न करें कि हमारे
के मूल्य लौट आयें। जीवन के
एक दिन में नहीं बनते। हम कहें
हम नहीं करनी चाहिये और यह
ऐसा नहीं होता। भारत की
मूल्यात्मक है। उसने कभी
पर चढ़ाई नहीं की। कभी
भारत नहीं गया। कहीं
किसी को कष्ट नहीं दिया। और
भी है तो उसे कहा कि धर्म-युद्ध
सत्य की स्थापना के लिए
संघर्ष किया। उसने किसी से
संघर्ष कभी नहीं

है, अहिंसा है, अपरिग्रह है,

दया है, क्षमा है, ये एक दिन में नहीं
बने हैं। इनके लिए अनंत युग लगे
हैं, तब ये बने हैं। आज हम इन गुणों
को, इन विशेषताओं को, जाते देखते
हैं तो हमें प्रयत्न करना चाहिये। अब
हमें सावधान रहना चाहिये। जो शिक्षा
के क्षेत्र में है, साहित्य-क्षेत्र में है, जो
संस्कृति के क्षेत्र में है, जहां है, वहां हम
अपना कर्तव्य करें। और अगर हम
नहीं करते हैं तो अपने युग से विश्वासघात
ही करते हैं।

आने वाला युग-इतिहास हमारे संबंध
में क्या लिखेगा? हम तो निरालाजी
के शब्दों को एक बार फिर कहना
चाहते हैं—‘जगो फिर एक बार।’

[रवीन्द्र भारती द्वारा प्रस्तुत :
‘गांधी मार्ग’ से साभार]

(पृष्ठ ४६ का शेषांश)

कितना संगत है, यह संकट कितना
आसन्न, इसे हम केवल हर शहरी
में नहीं, हर गंवई झोपड़े तक में
करते हैं।

उत्सव में काम करते किसान के हल
के शूजिस्टर का गीत तक इस
संकट का संकेत देता है।
प्रति ज़रूरी तौर पर एकरूपता
इस प्रश्न का भी उत्तर मैं नहीं
दे सकता—पर यह प्रश्न हर
को सामने रहना चाहिये
को आधुनिकता की देहरी पर

खड़ा पाता है या समझता है। कदाचित्त
इसका भी कोई एक उत्तर नहीं है।
सवाल एक संतुलन का होगा जिसका एक
समाजव्यापी रूप होगा तो एक बिल्कुल
निजी रूप भी होगा : और शायद यही
उसका उत्तर है क्योंकि यह उसे फिर बाहरी
स्थितियों और औपकरणिक परिवेश से
ऊपर उठाकर संवेदन के घेरे में ले आता
है। आधुनिकता है तो संवेदन का एक
नया आयाम है—काल के साथ एक नया
संबंध है—निरा ऐतिहासिक संबंध नहीं,
एक आनुभविक और आस्तित्विक संबंध।

श्रीअरविन्द का एक अपूर्व-प्रकाशित लेख 'नवनीत' में पहली बार

उन्नीसवीं शती का भारत

उन्नीसवीं शती में पुरब के दो राष्ट्र जो पश्चिमी विचारों और यूरोपीय सभ्यता से बहुत ज्यादा प्रभावित हुए थे, वे हैं भारत और जापान। लेकिन दोनों जगह परिणाम अलग-अलग तरह के आये हैं। छोटा-सा राष्ट्र दुनिया की महान शक्तियों में गिना जा रहा है, परन्तु अधिक मौलिक संस्कृति, अधिक प्राचीन और अधिक भव्य अतीतवाला राष्ट्र, जिसके पास दुनिया के लिए अधिक ऊंचा संदेश है, ऐसा राष्ट्र भारत दुर्बल, उद्विग्न और दुर्चित्ता बना हुआ है। और प्रायः अकाल का शिकार होता रहता है। वह राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक और बौद्धिक दृष्टि से पश्चिम पर आश्रित है। साधारण मान्यता है कि इसका कारण यह है कि जापान ने पूरी तरह से पश्चिमी विज्ञान को आत्मसात् कर लिया है और कई बातों में उससे भी आगे निकल गया है। भारत आत्मसात् करने के इस महत्वपूर्ण काम में असफल रहा है। अगर हम दो कदम पीछे हटकर यह पता लगाने का आग्रह करें कि ऐसा क्यों हुआ तो हमें बतलाया जायेगा कि जापान ने अपना सुधार कर लिया है और आधुनिकता के

साथ मेल न खाने वाले विचारों की प्रथाओं से पिंड छुड़ा चुका है। जब भारत जीर्ण-शीर्ण अतीत के साथ रहने का आग्रह करता है। पहले यह प्रश्न उठता है कि क्या प्राचीन भारत के आदर्श आज के लिए एकदम सही हैं, क्या हमारी प्रथाएं इतनी बुरी हैं, क्या आधुनिक जीवन के साथ मेल में नहीं बिठाया जा सकता। इस प्रश्न को छोड़ भी दें तो एक प्रश्न उठता है—जापान ने अपने अतीत को इस तरह कैसे बदल लिया और उस तरह न बदल पाया? इस प्रश्न के प्रश्नों का उत्तर यंत्रों में नहीं, मनुष्यों में ढूंढना होगा। जिस प्रकार मनुष्य की आत्मा उसके भाग्य का निर्माण करती है उसी तरह देश की आत्मा उसके इतिहास का निर्माण करती है।

अमुक काल की अमुक परिस्थिति में किसी राष्ट्र के मानव चरित्र को लोचन करने से हम उसके उस समय के इतिहास के बारे में बहुत-कुछ जान सकते हैं। जापानी राष्ट्र के चरित्र को हमें इसी की उत्कृष्ट संस्कृति ने रूप दिया है जब पाश्चात्य प्रभाव आया तो

पहली का
 आत्मानसिक विश्व के द्रष्टा श्रीअरविन्द ने यहाँ
 ब्रह्म शब्दगीय पाठ्यपुस्तक का दो टूक पदार्थ किया है।

प्राचीन आत्मा के प्रति वफादार
 उन्होंने यूरोप के सामाजिक और
 सांस्कृतिक संगठनों के कुछ तत्व अपनाये,
 उनकी संस्कृति के पूरक थे। जापान
 उनकी प्राचीन सांस्कृतिक चीज है,
 उसकी भावना। उन्नीसवीं शती
 है। पहले की भावना प्रधान रही है।

भारत में
 एकदम नया जनता का
 इतनी बड़ा भाग सोया
 के साथ रहा। पाश्चात्य
 ने उसे केवल
 दे तो एक छोड़ा और विघटित
 ने अपने-आप है, उसे नया
 या और देने में वह पूरी
 ? इस शब्द असमर्थ रहा है।
 में नहीं, मनुष्य यहाँ के ऊंचे

कार मनुष्य के विदेशियों के हित साधने और
 मर्मांग करती सेवा करने के लिए एक नयी
 उसके इतिहास ने जन्म लिया। इसे हम
 नहीं कह सकते, ये भारत में
 हैं। परन्तु प्रायः सभी कामों में
 चरित्र का नैतिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, साहि-
 के उस समय धार्मिक, सभी क्षेत्रों में इस नये
 कुछ जान नया वगैरह का बोलबाला रहा है।
 चरित्र को हमें यह दिखायी है। इस वर्ग
 रूप दिया जा रहा है। उन्नीसवीं
 गया तो जापान का नेतृत्व सामुराई

और भारत का नेतृत्व 'बुर्जुआ' लोगों
 के हाथ में रहा है। इसी तथ्य ने इन दोनों
 देशों की गतिविधि में इतना बड़ा अंतर
 पैदा कर दिया है।

'बुर्जुआ' कौन है? यद्यपि पिछले
 दिनों के भारतीय समाज में इनका इतना
 अधिक महत्व रहा है, फिर भी यह शब्द

भारत के लिए नया है।

बुर्जुआ है मध्यमवर्ग का
 औसत संतुष्ट आदमी।

यह वर्ग सभी देशों में
 एक-जैसा होता है,

इसका मौलिक आधार,
 इसके विचार एक-से

होते हैं चाहे अलग-
 अलग देशों में इसके

बाहरी रूप भिन्न हों।

इसका व्यक्तित्व बहुत उथला होता
 है। वह अपने-आप को प्रबुद्ध मानता

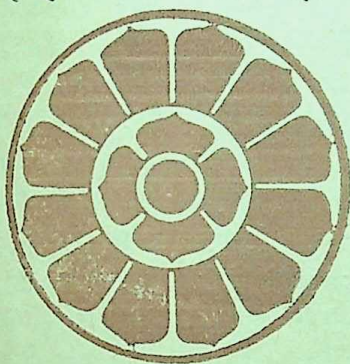
है, पर उसमें ज्यादा बोध नहीं
 होता। उसे अपने जीवन से अपने

ऐश-आराम से, अपनी सुविधाओं से
 प्रेम होता है और अपने सभी कामों में

अपनी राजनीति और अपने सामाजिक
 जीवन में इन चीजों की सुरक्षा पर सबसे

अधिक भार देता है। जो भी चीज उसके
 आराम में खलल डाले, उसकी सुविधाओं

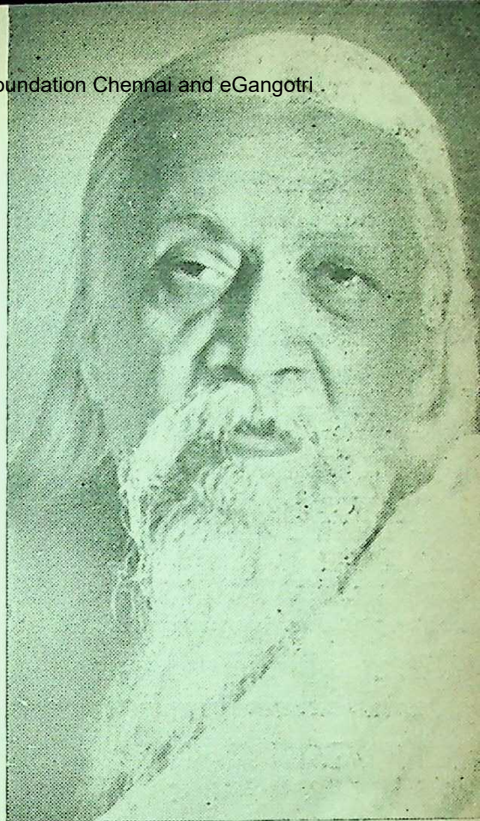
को कम करे, उसे वह मूर्खतापूर्ण, पागल-



पन, खतरनाक, सनकी की पदवियां देता है और जैसे भी बने उसे दबाने की कोशिश करता है। अपने सार्वजनिक जीवन में वह बाहरी सुव्यवस्था, मिताचार, शिष्टाचार को बहुत अधिक महत्व देता है और अधिक उत्साह, अधिक गंभीरता या अधिक परिश्रम से दूर रहता है। वह कोमल, अहानिकारक उत्तेजना का विरोधी नहीं होता, लेकिन यह जरूरी है कि वह उसके हितों पर, उसके पोसे हुए विचारों पर प्रहार न करे। उसके जीवन में आदर्श होते हैं। वह न्याय, स्वाधीनता, सुधार, प्रबोध आदि के बारे में बढ़-बढ़कर बातें करता है और चाहता है कि उसके चारों ओर इनका राज रहे, लेकिन रहे एक सीमा के अंदर, ठीक-ठीक मात्रा में, ज्यादा नहीं। इन चीजों के लिए प्यास तो होनी चाहिये, परंतु सुनियंत्रित। वे उसकी सुरक्षा और सुविधा में हस्तक्षेप न करें। कभी-कदास हो तो वह अपने धन और अपने अवकाश की बलि चढ़ा सकता है। वह ख्याति का भूखा होता है और जिन चीजों से ख्याति मिल सके वे उसे प्रिय होती हैं। इनसे एक तरह की अत्मसंतुष्टि मिलती है, जिसका उसके लिए बहुत अधिक महत्व है। सभी सुव्यवस्थित समाजों में समझदार, प्रबुद्ध, संयत और हर तरह से आदरणीय बुर्जुआ एक महत्वपूर्ण स्थान पाता है। अपने निजी जीवन में भी वह आदर पाता है। वह साधारणतः सदाचरण पसंद करता है और जब स्वयं

सदाचारी न हो तो भी उसकी तो होती ही है। उसके गुण प्रकट हैं और काफी विश्वसनीय नागरिक है। लेकिन इस सराहनीय प्राणी को कमजोरियां भी होती हैं। वह महान कार्यों, बड़े उद्यमों, महान उपचारों के लिए, राष्ट्रीय जीवन के महान और तूफानों के लिए अनुपयुक्त है। ये चीजें वीरों, शहीदों, वररक्षियों बहुत उत्साह वालों, खिसके दिमागों लिए बड़े-चढ़े गुणों और योग्यताओं लोगों के लिए होती हैं। बुर्जुआ पागलों, सनकियों के परिश्रम का भोगने में पीछे नहीं रहता। तब जब परिश्रम किया जा रहा हो उसका विरोध करता और उसमें डालता है। वह महान आदर्शों को और उन्हें चरितार्थ करने का करने वाले को मूर्ख और सनकी है। वह हर नयी चीज को शंका से देखता है। जो पहले नहीं हुआ, से सफलता नहीं झांक रही, उसे मानता है। उसके लिए विद्रोह पन है और क्रांति दुःस्वप्न। आप को न्योछावर कर देने वाला उत्साह, किसी उच्च उद्देश्य के पागलपन, अपने लक्ष्य के लिए निरंतर परिश्रम, सुदूर चीजों को लाकर ग्रहण करने वाला संकल्पबल और असंभव को संभव वाली प्रतिभा, ऐसी चीजें हैं, जिन्हें

उनकी कल्पना समझता है, उसका आदर-सम्मान-
गुण प्रकट होता है, लेकिन उन लोगों के अन्दर
य नाराजिकता है, लेकिन उन लोगों के अन्दर
प्राणी की कल्पना ही है, लेकिन उन लोगों के अन्दर
। वह महान् उपलब्धि है, लेकिन उन लोगों के अन्दर
के महान् उपलब्धि है, लेकिन उन लोगों के अन्दर
अनुपयुक्त है, लेकिन उन लोगों के अन्दर
। वही, अन्तरात्मा है, लेकिन उन लोगों के अन्दर
सके दिमाग में करेगा कि वर्तमान पीढ़ी में ये चीजें
योग्यताओं को दिखायी देतीं। इनका जमाना
। वृत्तों का प्रयोग है। लेकिन अगर कहीं उसका
रिश्तम का प्रयोग है। लेकिन अगर कहीं उसका
रहता। लेकिन अगर कहीं उसका
। वह है जो उसे पढ़ा-लिखा मूर्ख
। और जीवित वीर को खतरनाक
। लेकिन हां, अगर जीते-जी
रने का प्रयोग उसे सफलता या ख्याति-मुकुट
सतकी मांग दे तो और बात है।
। जो शंका की बातें लोग समाज में स्थिरता भले ला
नहीं हुआ, किन्तु राजनीतिक क्षेत्र को सुरक्षित
ही, उसे पारदर्शिता दे, परंतु किसी राष्ट्र को स्वाधीन
विद्रोह पालन नहीं बना सकते।
। वृत्तों का प्रयोग है, लेकिन उन लोगों के अन्दर
हरे चीज को सुख-सुविधा की
ने वाला प्रयोग है। जैसा कहा है—‘रंज
उद्देश्य के लिए बहुत है, मगर आराम के साथ।’
के लिए वृत्तों का प्रयोग है, लेकिन उन लोगों के अन्दर
। वृत्तों का प्रयोग है, लेकिन उन लोगों के अन्दर
मस्तिष्क, वृत्तों का प्रयोग है, लेकिन उन लोगों के अन्दर
को संभव बना है। लेकिन उन लोगों के अन्दर
हैं, जिन्हें हम जानते हैं। लेकिन उन लोगों के अन्दर



आगामी विश्व-विकास के द्रष्टा

श्रीअरविन्द

बढ़कर उसके धन कमाने के लक्ष्य में बाधा
न देनी चाहिये। उसके जीवन की सफलता
इसी में है कि उसके पास वीवी-वच्चों
के लिए काफी धन हो, वह वच्चों को उच्च
शिक्षा दिलवाकर अच्छी तरह व्याह दे,
समाज में अच्छा नाम कमाये और मौज
करे। अच्छा होना इतना जरूरी नहीं है,
जितना अच्छा नाम पाना। अगर कोई
तीव्र भाव, असाधारण रूप से आकर उसके
इन महान् कर्तव्यों में बाधा दे तो वह
‘पागलपन’ का लेवल लगवा लेगा या

उसे बौद्ध की उपाधि दे देगा ।

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में ऐसे ही लोगों की प्रधानता थी । कुछ अपवाद भी थे, जो इस जाति से ऊपर उठ सके । लेकिन साधारण मनुष्य चाहे वे धर्म में हों या राजनीति में, शिक्षा में हों या समाज सुधार के कार्य में, सब ऐसे ही थे । बुर्जुआ लोगों ने समाज और देश के सभी क्रिया-कलाप इसी रंग में रंग डाले । उनके लिए माया और राम दोनों को नमस्कार करने में ही बुद्धिमत्ता थी, अपनी चमड़ी को बचाये रखना ही प्रथम आवश्यकता थी ।

हम पहले कह आये हैं कि बुर्जुआ अंग्रेजों की देन है । प्राचीन भारत की हवा में आभिजात्य था । उसके विचार और जीवन उच्च, गर्वीले, उदात्तता के साँचे में ढले थे । जीवन में कठोरता के साथ-साथ कर्मण्यता भी उच्च कोटि की थी । विचारों में उच्चतम, क्रिया कलाप में उच्चतम, आचार-व्यवहार और आचरण में उच्चतम, साहित्य, संगीत, कला, धर्म, सभी में उच्चतम और श्रेष्ठतम स्तर ही वांछनीय माना जाता था ।

ब्राह्मण दारिद्र्य को अपनाकर, ज्ञान

और धार्मिक संयम को पाने के लिए अपनी सभी कामनाओं को कुचल देता था । क्षत्रिय बड़ी वीरता के साथ युद्ध में अपने सर्वस्व की हवि दे देता था । उसके लिए अपनी जान और क्षात्र धर्म के जीवन, पत्नी, बच्चे, संपदा, सुख, ऐश्वर्य सभी के समान थे । उसके लिए अपनी जान की रखवाली, अपनी की रक्षा ही सबसे बड़ा धर्म है । वैश्य जीवन भर धन-सम्पत्ति इकट्ठी करने में ब्रूत-मृत एक करता था और अपने-आपको भूलकर सब-कुछ परोपकार के लिए अर्पित कर देता था । क्षत्रिय अपने-आपको धन-स्वामी मानता था । और बड़ी निष्ठा के साथ हरे-भले की, भले नीचे से नीचे की सेवा में लगा रहता था और औरों को धन-सम्पत्ति बढ़ने की जगह अपने धन स्थित रहना ही उसे बड़ा धर्म मानता था । यही थे प्राचीन भारत के सामाजिक आदर्श । ये केवल पूजने के लिए नहीं, व्यवहार में लाने के लिए थे । भारत की कल्पना हमेशा महान, विराट और दीर्घाकार को पसंद करती थी । उनके विचार हों या नैतिकता सभी



पाने के लिए महान आदर्श अपनाये गये । सत्य-
को कुचल देने वाली हरिश्चन्द्र अपना वचन तोड़ने की
को साथ युद्ध करने वाले वीरों को सर्वस्व की बाजी लगा देना
के समर्थ हैं । प्रह्लाद भगवान का नाम

के लिए कौन-सी यातना
 सामना नहीं करते। बुद्ध
 की भलाई के लिए
 राजपाट, पुत्र-कलत्र सभी
 दूकटा देते हैं, निर्वाण तक
 आते हैं। शिव एक
 की प्राण रक्षा के
 अपना मांस काटकर
 पर रख देते हैं। कर्ण
 हाथ
 की रक्षा
 अपने
 कुंडल
 भी
 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि'
 रखने के लिए
 युद्ध मोल लेता है।
 उदाहरण
 हैं। आर्य
 में डला था,
 दिशा में आगे बढ़ने
 गयी थी।



न पुजने के लिये ही नहीं, दार्शनिक और यति विचारों पर विजय, संन्यासी का सर्वस्व महान, विद्वानों का रणक्षेत्र पराक्रम और करती थी। वैद्यों की असीम उदारता, तिकता सभी को अपनी पराकाष्ठा पर पहुंची

हुई थी, उसके पीछे दैवी प्रेरणा की बहु-लता, सारे जगत से लोहा लेने का उत्साह था। हम यह नहीं कहते कि उस ज़माने में बुर्जुआ का अभाव था। नहीं, ऐसे लोग हर काल में, हर समाज में होते आये हैं, परंतु उनकी प्रधानता न थी। उस सूक्ष्म पवित्र वातावरण में सांस लेना और पनपना ही उनके लिए कठिन था। विकसित होने या प्रधानता पाने की तो बात ही अलग है। उसका ऊष्मा भरा सुख-सुविधा का प्रेमी व्यक्तित्व वहां अपने पांव फैलाने के लिए कोई अवकाश न पाता था।

मध्यकालीन भारत में सारे समय शस्त्रास्त्र खटकते रहते थे। जीवन में हलचल भी थी और भव्यता भी। मुसलमानों के आक्रमण ने बारी-बारी से नाश और पुनर्निर्माण का तांता लगा दिया। देशी और विदेशी लोगों की एक दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती थी, इससे जीवन बहुत तड़क-भड़क वाला

बन गया। मुगलों के ज़माने में भव्यता, समृद्धि, सौंदर्य-प्रियता आदि तो बड़ी पर सामान्य जीवन में सुरक्षा और आराम का तत्व नहीं बढ़ा। योग्यता और क्षमता वालों के लिए सभी क्षेत्र खुले थे समाज के किसी भी वर्ग का आदमी आगे बढ़



सकता था, परंतु कुछ प्राप्त करने और उसे बनाये रखने के लिए बलवान स्नायवों और महान साहस की आवश्यकता थी।

मुगलों के पतनकाल में चारों ओर अराजकता फैल गयी और तब बल, विक्रम और साहस की और भी ज्यादा जरूरत पड़ी। उन दिनों उत्पात करने वाले बहुत सन्चरित्र लोग न थे, आदर्शवादी न थे, फिर भी बुर्जुआ न थे।

बुर्जुआ समाज का पहला चरण आया अंग्रेजी राज की दी हुई शांति के साथ। अंग्रेजी राज कभी सच्चे राजनीतिक निपुण नेता या वीर सिपाही को पसंद न करता था। निर्भय साहस ओजस्वी पौरुष, नये-नये क्षेत्रों में घुसने का साहस, गरुड़ की दृष्टि, सिंह का हृदय, महान अभीप्सा, दूरदर्शिता, राजसी भाव, आदि ऐसी विशेषताएं थीं, जिनकी भारत में कमी नहीं हुई लेकिन अब अंग्रेजी शांति आ जाने पर इन चीजों की जरूरत न रही, उन्हें यत्नपूर्वक दबाया गया। ये चीजें नये राज्य के लिए संकट खड़ा कर सकती थीं।

संक्षेप में कहें तो नये राज में सच्चे क्षत्रिय के लिए कहीं जगह न थी, और साथ ही शुद्ध ज्ञान के प्यासे, संन्यासी के लिए भी स्थान न था। राज को विद्वानों की नहीं, लिपिकों की जरूरत थी। ऐसे विचारकों की जरूरत न थी, जो मनुष्य को सीधे सत्य तक जाने का रास्ता बतायें और उसे अपने जीवन में उतारने का

तरीका सुझायें। उन्हें जरूरत थी लोगों की जो चैन से रहते हुए, व्यक्तित्व गत सुख-सुविधा से ही संतुष्ट रहें।

अंग्रेजी शिक्षा ने हमारे समाज को सिखलाया कि अनासक्ति और त्याग आलस्य के पर्यायवाची हैं, वे या फिर पागलपन है। उसने बनाया कि सफल व्यापारी, समृद्ध पेशेवर आदमी ही समाज का मुकुटमणि है। रामायण और महाभारत का स्थान 'सेल्फ हेल्प' ने लिया।

और सच्चे वैश्य के लिए भी जगह न थी, जो उद्योग-धंधे को नये विकल्पों पर पहुंचा सके। जरूरत थी, छोटे-छोटे दूकानदारों और बड़े दलालों को, जो अंग्रेजों के व्यापार को भारत के बाजारों को हथियाने में मदद दें।

इस भांति युद्ध, उद्यम, राजनीति, चिन्तन-मनन, आध्यात्मिकता, क्रीडा शीलता, सशक्त, स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन पैदा होने वाले मानव गुणों की अवसर कता न थी। उन्हें दबाया जाता था। उनकी कमर तोड़ दी जाती थी। उनको गायब किया जा रहा था। उद्यम जगह बुर्जुआ गुणों की बड़ी मांग थी।

उनके जीवन में महत्वपूर्ण चीजें किसी विश्वविद्यालय की उपाधि, किसी विश्वविद्यालय की उपाधि, किसी भाषा का परिचय, कोई सरकारी नौकरी अंग्रेजी साज-सज्जा से भरा घर, अंग्रेजी पीय वेशभूषा। समाज ऐसे ही लोगों को मान-प्रतिष्ठा देता। वही समाज

परंतु जरूरी नहीं माने जाते हैं। परंतु जरूरी नहीं कि उम्रि अच्छी शिक्षा का चिह्न हो, तबो भाषा संस्कृति का सूचक हो या नकारी नौकरी की तौक प्रशासन की मिका मिद्ध करे।

अंग्रेजी वेशभूषा, अंग्रेजी धैर्य या अचनय नहीं ला देती। बड़ा मकान वास्तविक जीवन का पाठ नहीं पढ़ाता। अंग्रेजों उधार की थीं और वास्तविकता वाली स्थान भरने के लिए नकले थीं। इस जीवन में विस्तार का दिखावा और था एक अद्भुत उथलापन।

हमारा प्राचीन भारतीय जीवन अलग-अलग भले रहा हो, परंतु उसमें उच्चता और तीव्रता थी। वह पहाड़ों पर खड़े हो की नाई था। हमारा नया जीवन नया और तीव्रता से दूर है, लेकिन अधिक विस्तार का गर्व रहा है।

यह सचमुच विस्तृत नहीं, अधिक बन गया। इसमें मनुष्य की छिपी क्षमताओं के विकास के लिए स्थान है।

हमारे शिक्षा का भी वही हाल है।

पढ़ा और सोचा, परंतु जो पढ़ा सोचा उसे जीवन में न उतारा।

नकली सिक्कों की इतनी आदत कि हमारे लिए वही सच्चे बन गए। हमारी प्राण-शक्ति सूख गयी, शक्ति-स्रोत दुर्बल बन गया। उदात्त और उत्कृष्ट उपलब्धियां उथली होती गयीं।

अपने स्कूलों और कालेजों में हमने बहुत कुछ पढ़ा, पर गुना कुछ भी नहीं। बर्क, मिल्टन आदि की रचनाएं पढ़ लीं, वायरन और शैली की पंक्तियां याद कर लीं पर अंग्रेजी साहित्य का उचित मूल्य न जाना। मेग्ना कार्टा की कहानी तो जान ली पर राजनीति से अनभिज्ञ रहे। अधिकतर जर्मन दार्शनिकों के नाम, गलत उच्चारणों के साथ, घोख लिपे पर दर्शन क्या है, यह न जान पाये। अपनी सभ्यता के बारे में भी लेख तो बहुत पढ़ डाले पर उसका मर्म न जाना। हमें जो कुछ मालूम है वह बहुत कम है और बहुत बुरी तरह से मालूम है और जितना मालूम है उसके आधार पर आगे नहीं बढ़ पाते। हमारा अस्वाभाविक जीवन हमारी मौलिकता के झरनों को सुखाता जा रहा था। हमारे जो महापुरुष कुछ मौलिकता बनाये हुए थे, वे हमारी प्राचीन परंपरा से जीवन-शक्ति पा रहे थे, उनकी रगों में मुगल काल की ऊर्जा दौड़ रही थी, लेकिन उनकी प्रतिभा के अनुपात में उनकी सफलता बहुत ही कम थी।

हमारी संकीर्णता और अक्षमता से भी बढ़कर था, हमारा सांस्कृतिक मिश्या-चार। हमारे दिमागों में आज्ञादी भरी थी परंतु जीवन उससे खाली था। हमने राजनीतिक अधिकारों के बारे में बहुत पढ़ा, बहुत बातें कीं, यहां तक कि हम यह भूल गये कि हमारी तिजोरी खाली पड़ी है। भारत रहते हुए हमने यूरोपीय

अर्थशास्त्र को अपनाया और 'मुक्त व्यापार' की पूजा की जो हमारा रक्त-चूस रहा था। हमने समानता का पाठ पढ़ा पर अपने आपको जन-साधारण से अलग कर लिया। हमने सामाजिक पुनर्व्यवस्था के बारे में भाषण दिये पर अपने समाज से एकदम अपरिचित रहे। हमने शक्ति और प्रेरणा के उन स्रोतों की ओर आंखें लगायीं, जो हमारी पहुंच से बाहर थे और जो स्रोत हमें पैतृक दाय के रूप में मिले थे, उनकी ओर से मुंह मोड़ लिया।

हमें जीवन के बारे में इतनी जानकारी थी कि हमने मान लिया कि जो हमारी सेवा से पनपते हैं, वे ही हमें स्वाधीनता के लिए तैयार करेंगे। हमने इतिहास को इतनी अच्छी तरह समझा कि हमने मान लिया

कि आजादी से पहले समाज-सुधार हो जायेगा। हम भौतिक विज्ञान में इतने पारंगत हुए कि हमने मान लिया कि जीवित शरीर को बाहर की लीपापोती से नया रूप दिया जा सकता है। हमारे ऊपर दूकानदारों का राज था और हमने उन्हें फरिश्ता मानना स्वीकार कर लिया। हमने ऐसे गुणों की सराहना की जिन्हें पाना हमारे लिए कठिन था और उनकी अवहेलना कर दी जो हमें बाप-दादों से थाती में मिले थे और यह सब हमने बड़े ही सद्भाव और पूर्ण

नवनीत



चित्र: आलोक जैन

विश्वास के साथ किया। हमें विस्मय कि हम प्रगति कर रहे हैं और आपको यूरोपीय बना रहे हैं।

नयी व्यवस्था में अर्थ बदलने के लिए कहीं स्थान न था। जब इंग्लैंड ने सूरमा अपनी उच्च अनासक्त, निस्सह सद्भावना के साथ हमारी रक्षा करने के लिए कटिबद्ध थे तो फिर राजपूतों ने साहस, धैर्य और पौरुष की ज़रूरत कहाँ रह गयी! जब बैंकिंग, मेयो, ड्रापरी

बड़ी तत्परता से हमारे काम का कार्य अपने कंधों पर लेने के लिए तैयार थे तो फिर दूरदृष्टि, नेतृत्व, उच्च अर्थ आदि की ज़रूरत ही क्या है? राजसी भावना गरुड़ सिंह-हृदय आदि गुणों के प्राचीन भारतीय राजाओं की स्मृति के नीचे गहरा गाढ़ा

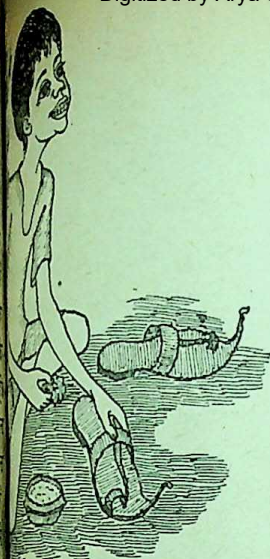
सकता है। सुखी भारत सात समुद्र पार अफ़सराओं की देख-रेख में था। इन चीजों से क्या मतलब!

सूत्रपात, नेतृत्व, शौर्य के जल के अभाव में क्षात्र धर्म की सहज हो गयी। जब राजनेता और क्षत्रिय के लिए ही जगह न बची तो इस देश में ब्राह्मण, संत, विद्वान के जगह कहाँ थी? अंग्रेज़ी राज पढ़े-लिखे का राज था। लेकिन से घबराता था। अंग्रेज़ी शिक्षा (शेषांश पृष्ठ १२२ पर)

श्यामसुंदर घोष की हिन्दी कहानी



बिल्टुआ



का, आपके चमरौधे में तेल डाल
दूँ ?' उसने काका से डरते-डरते
काका ने उसे नज़रें उठाकर देखा
गुप । लड़का सहम गया । उसने
काका लीं । काका एक क्षण चुप रहे ।
कुछ शोर कर रहे हैं । फिर कहा—
'लड़का तुरंत मलिया लेने के
लिया । मलिया में तेल पहले से ही
तक भरा था । वह मलिया और
आया और ज़मीन पर पसरकर
और सिखाया ।

उसने उंगलियां तेल में भिगोयीं और
जूते पर फेरने लगा । काका
चमरौधे में इस प्रकार तेल लगाना
रहे ।

काका को अपने अंदर कुछ कसकसता,
महसूस हुआ । अभी परसों

ही तो उसने इसी चमरौधे से इसकी खबर
ली है । उसके सामने उसके बड़े भाई आ
खड़े हुए, भावज आ खड़ी हुई । लगा कि
काका का चलता हुआ हाथ रुक गया है ।
लड़के को भी आश्चर्य है ! आज इतने
सस्ते कैसे छूट गये ? काकी आज अध्याय
को बीच में ही अधूरा देख सोच रही है कि
कहीं आज फिर तो उनकी नस नहीं चिलक
उठी ।

—'क्यों रे बिल्टु !' काका ने ज़रा नरम
होकर पूछा—'चमरौधे में तेल डालने की
बात आज तेरे मन में कैसे आयी ?'

बिल्टु काका को देखता है और दांत
चियार देता है ।

काका सोचते हैं—इसी चमरौधे से इसे
पीटता हूँ । मेरे जैसा जानवर कौन होगा ?
आखिर बच्चे से गलती होती ही है । बुरा

हों मेरे गुस्से का। उसके सामने बड़े भाई की मूरत फिर झिलमिलाती है। उसने अंतिम समय में कहा था—‘बिल्दुआ को देखना। बगलोल जरूर है पर...’ और उन्होंने आंखें मूंद ली थीं।

फौदी को सबसे ज्यादा गुस्सा आता है अपनी भावज पर। माना कि उसकी उमर अभी ऐसी नहीं थी कि भाई के नाम पर बैठी रहती। चुमौना कर लिया, तो कुछ बुरा नहीं। पर इसे मेरे मन्थे क्यों छोड़ गयी? क्या जिसे अपना सब कुछ सौंपने गयी, उससे यह नहीं कह सकती थी कि मेरे बेटे को साथ रखो? लेकिन वहां तो दिन में भी गुलछरें उड़ाने का मन था। वह भावज की मूरत को आंखों में भर-भर लेना चाहता है। लेकिन वह तो ‘उड़ंतु चिड़िया’ निकली। इधर भाई मरा और उधर वह फुर्र! फौदी को लासा लगाने का भी मौका नहीं मिला।

साली भाग गयी और अब उसका गुस्सा उसे इस बगलोल बिल्दुआ पर उतारना पड़ता है।

‘क्यों रे बिल्दुआ, बोलता क्यों नहीं?’ इस बार काका कुछ कठोर हुए।

बिल्दुआ को लगा कि कहीं वह फिर न पिटने लगे।

लेकिन अभी तो चमरौधा उसके हाथ में है। लेकिन यदि काका मांगेंगे, तो क्या वह देने से इनकार कर सकेगा? लेकिन अभी यह कितना चिकना और मुलायम है, बिल्दुआ ने सोचा। वह चमरौधा पीठ पर

लगाकर देखता कि चोट कैसी लगी है। उसे इस कल्पना से मजा आ रहा था।

—‘क्या तेल डालने के लिए काकी ने कहा?’ काका फिर नाराज गये।

काका को इसी बात पर बिल्दुआ गुस्सा आता है। साला बोलेगा नहीं। तो घामड़ की तरह चुप रहेगा, या फिर चिंथार देगा। पीटो तो बस हाथ उठाकर अपने को बचाने की कोशिश करेगा। यह नहीं कि बुक्का फाड़कर चीख-चीखकर आसमान सिर पर चले। इस ‘चुप्पा सुभाव’ और ‘दांत-नीति’ के कारण ही वह काका का भाजन बनता है और जरूरत से लपट पिटता है। और सबसे बड़कर यह कि बिल्दुआ की मां की मूरत—वह भी चमरौधा की मूरत—फौदी के सामने आ खड़ी होती है। काका एक साथ बिल्दुआ और चमरौधा की वदजात मां को पीटते चले जाते हैं। चमरौधा के मां के पर वे रुकते तभी हैं, जब उनके मां की मूरत औचक उसके सामने आ जाती होती है।

काकी दरवाजे से निकली, तो बिल्दुआ को चमरौधा में तेल लगाते देख, और चमरौधा को उसे प्यार से निहारते देख, मन ही मन जल-भुन गयी और ताने के स्वर में बोलती—‘अपनी चोट का इलाज आप कर लें बिल्दुआ। अब चमरौधा भद्-भद् उसकी पीठ पर।’

उसने फौदी को जलन भरी नजरों से देखा।

कैसी लगती है।
आ रहा था।
के लिए
फिर नम

पर बिल्डुआ
लेगा नहीं।
रहेगा, या
वस हाथ
ने की को
का फाड़कर
न सिर पर
और 'दांत-चि
काका का को
वस्तु से जल

कर यह कार
ही मूल-द
खड़ी होती
आ और उ
ले जाते हैं।
हैं, जब उ
सामने आ
कली, तो बिल्
देख, और क
देख, मन ही
के स्वर में ब
आप कर
भद्-भद्
न भरी न

कही-‘क्या हुआ जो तुम नहीं
बुझते उसकी पीठ। वह खुद आज सब
बुझा कर ले रहा है।’
और कुछ तय नहीं कर सका कि उसे
तो क्या करना, कहना चाहिये। अब
बुझा का उसके चमरौधे में तेल डालना
तो बहुत मालूम हो रहा है। यह सही है
उसके चमरौधे में पिछले कई महीनों
तेल नहीं पड़ा है और वह सूखकर
कुछ टाट हो गया है। उसमें पांव
तो ही उसे पीर मालूम होती है। उसने
तब तक चमरौधे से कहा भी कि वह
उधे में तेल डाल दे, या किसी से
का का को दे। लेकिन एकमिनी क्यों डालने
वस्तु से जल

फौदी को लगा कि एकमिनी जानबूझ-
कर चमरौधे में तेल नहीं डालती कि
वह मुलायम न हो जाये, कि बिल्डुआ
पहनने में यह सूखे सोटे का काम न करे।
फौदी को फौदी की सुविधा-असुविधा
अब खयाल नहीं है। वह तो चाहती है
बिल्डुआ कब घर से टले कि उसकी
तो पर से बोझ हटे। और भूत बिना
के नहीं भागते, यह एकमिनी का
काम है। और यही बात फौदी भी
बुझाते रहते हैं।
फौदी अपने को बड़ा अपराधी-सा
बुझाते रहे थे। बिल्डुआ इन दोनों के
आँखों से वेखबर चमरौधे पर तेल
रखा था और कल्पना में उसे अपनी
पर निरंतर अनुभव कर रहा था।

एकमिनी बहुत देर तक वहां खड़ी
रही, उम्मीद करती रही कि फौदी बिल्डुआ
की नियत के खोट को समझेंगे और चम-
रौधा खींचकर उसकी पीठ पर सपा-सप्
देने लगेंगे।

लेकिन लगता था कि आज फौदी
बिल्डुआ की सेवा-भावना और पितृ-भक्ति
से अभिभूत थे। वे पूरे वीतराग बने दूसरी
ओर ताक रहे थे मानो उसकी दुनिया के
किसी कोने में न तो बिल्डुआ का कोई
अस्तित्व था, न एकमिनी का।

एकमिनी आखिर कब तक इंतजार
करती? वह बिल्डुआ को मन ही मन
सैकड़ों गालियां देती अंदर चली गयी।

एकमिनी के जाने के बाद फौदी तुरंत
सतर्क हो गये और देखने लगे कि बिल्डुआ
चमरौधे में कितना तेल, किस विधि से
पिला रहा है। अब तक मलिया का आधे
से अधिक तेल जूते में जा चुका था और
बिल्डुआ था कि मलिया का सारा तेल
उस जालिम जूते को पिलाने पर तुला था।
फौदी सोच रहा था कि यह जालिम जूता
भी क्या सोचता होगा कि आज उसका
किसी शरीफ से पाला पड़ा है। जो चम-
रौधा आये दिन बिल्डुआ की पीठ, पांव,
चूतड़, हाथ आदि पर बेभाव की जड़ता
रहा है उसी को आज बिल्डुआ का प्यार
भरा परस मिल रहा है!

फौदी ने अनुभव किया कि बिना चमरौधा
पहनने ही उसके पांवों में आराम मिल रहा
(शेषांश पृष्ठ ७० पर)

निर्मलकुमार

वर्षों बाद इन पहाड़ों पर
देखता हूँ दूर-दूर पेड़ घने
हवा चलती है चीड़ के जंगलों में तीखी
नीचे बजती है रुक-रुक
घंटी गायों की रुनझुन
आसमान पर तह बादलों की है झीनी

यादें

पतझड़ का सूरज
चमकता है खामोश हरियाली पर
समय का अहसास बदल जाता है
युगों से अचल इन पहाड़ों पर

भूल जाते हैं लोग प्रेम को पुराने
अपरिचित हो जाते हैं मित्र पहचाने
पर निष्ठुर प्रेम की स्मृति
उपेक्षित कोमल हृदय में किसी
अक्सर उदास कर देती है मुझे

इन बादलों को उठते हैं जो अज्ञात आश्चर्य से
पहाड़ों पर, दूर नदी, मैदानों पर नीचे
मैंने देखा है व्यर्थ नहीं जीवन भर
निर्दोष कल्पना खींचती थी चित्र इन पर
हाथी के, खरगोश, बिल्ली के बचपन में रुपहले
मनुष्य के सुख-दुखों से परिचित जीवन
आज देता है एक उदास संयत नज़र मुझे

नवनीत

६८

केवल सांसों पर तिरस्कृत जीवन
 शिक्षित होता है पलकर
 प्रकृति के साथे
 दुखों से परिचित मनुष्य के
 देते हैं उसे एक गंभीर स्थिर मन
 और मुझे कोहरे में धुंधलाया
 हर पत्ता नन्हा कुम्हल या
 देता है विचार उन दुखों के
 जीवन से दूर जो लगते हैं निष्ठुर
 पास आ हो जाते हैं जीवन से

शोर करते प्रपात के पास
 अकेला खड़ा हो जाता हूं कभी
 उठते हैं विचार मुह पर छोटों के साथ
 उन सबके जो साथ थे कभी
 मौत ले गयी जिन्हें धीरे-धीरे
 यौवन की शामों की तरह

बादल बढ़ते आते हैं एक पर एक
 यह काफिला स्मृति के अनंत वैभव-सा
 शैशव देखता था जिन्हें अबोध श्रद्धा से
 आज नहीं हैं वे
 दूर सोते हैं मरघट में कहीं
 खामोश राख में !



(पृष्ठ ६७ का शेषांश)

है। तेल से उसके तलुवे, उसकी उंगलियां भीगी हैं और वह एक सुख और चैन का अनुभव कर रहा है। ऐसी पांव-सेवा तो रुकमिनी भी कभी-कभी ही करती है—खास तब जब उसे फौदी से कुछ झीटना होता है, या अपनी कोई बात उससे मनवानी होती है।

फौदी के सामने बिल्डुआ का पडयंत्र साफ है। वह जानबूझकर मेरे मन को कम-जोर करना चाहता है, जीतना चाहता है। इसीलिए उसने चमरौधे में तेल डाला है। यह साला धूर्त है, चालाक है! मार से बचने के लिए किसी ने इसे यह उपाय सुझाया है। आखिर तेल पिया चमरौधा कितना पीटेगा? खाया-पिया आदमी काम नहीं करता, तो जूता क्या करेगा? साला ऊपर से ही बगलोल मालूम पड़ता है, है पुरा चंट और चालाक। अब यह यहां से टलने का नाम नहीं लेगा। फौदी असमंजस में है। क्या करे वह? क्या जवाब देगा वह रुकमिनी को? अभी वह जलती-भुनती अंदर गयी है। फौदी में इतनी हिम्मत नहीं कि वह आंगन में जाये और रुकमिनी का सामना करे।

फौदी यही सब सोच रहे थे कि बल्दू चाचा सामने से आते दिखे।

यह क्या? उनके चमरौधे में भी तेल डला है, उतना ही, वैसे ही जैसे बिल्डुआ ने ही डाला हो।

तो क्या बल्दू चाचा के पोतों को उन पर

रहम आ गया? फौदी को याद आया कि बल्दू चाचा एक दिन शिकायत कर रहे थे कि बिवाइयां बहुत तकलीफ दे रही हैं। यह तो होता नहीं किसी से कि पांवों में तेल-कूड़ डाल दे। उस दिन बल्दू चाचा ने अपनी गहरी फटी हुई बिवाइयां दिखाई थीं और एकाएक चिहुंक भी उठे कि मातृ होता था उन्हें बहुत दर्द है।

—‘आओ, बल्दू चाचा!’ फौदी ने चाचा का स्वागत किया।

चाचा नजदीक आये तो उन्होंने बिल्डुआ को चमरौधे में तेल पिलाते देखा। बल्दू—‘बेटा, तू बस्ती भर के चमरौधे में तेल पिलायेगा क्या?’

फौदी ने चाचा की ओर देखा। वह समझ नहीं सका कि चाचा कहना क्या चाहते हैं।

चाचा ने अपने चमरौधे को प्याले से निहारा और फिर उसे फौदी की ओर दिखाते हुए बोले—‘इसमें बिल्डुआ ने तेल दिया है। सूखकर बिल्कुल हाईक हो गया था। पहनने पर जितना आराम होता था, उससे ज्यादा तकलीफ देता था। पता नहीं उसके मन में क्या आया कि इसने इसमें तेल डाला और ऐसा दावा किया कि बिल्कुल मुलायम तोशक की तरह लगता है।’

बिल्डुआ ने एक बार चाचा की ओर देखा और सदाबहार मुद्रा में दांत चिक चिक दिये।

फौदी का सारा सोचा-समझा गड़बड़

तो उसने मार से बचने के लिए
 तेल नहीं डाला ? बल्लू चाचा
 ने बोल मारते हैं ?
 भीतर गहरे तक भीग गया ।
 अब तक के किये पर एक कंप-
 महसूस हुई । उसे लगा अब वह
 को नहीं पीट सकेगा, कभी नहीं
 सकेगा ।

'विल्टू, हो गया ! अब छोड़ दे ।' फौदी
 ने बहुत मुलायम होकर कहा ।

विल्टुआ ने एक बार काका को फिर
 उसी बगलोल नज़र से देखा और वैसे ही
 दांत चियार दिये । वह चमरौंधे में उसी
 प्रकार तेल पिजाता रहा ।

—गोड्डा कालेज, संताल परगना,
 बिहार, पिन-८१४१३४

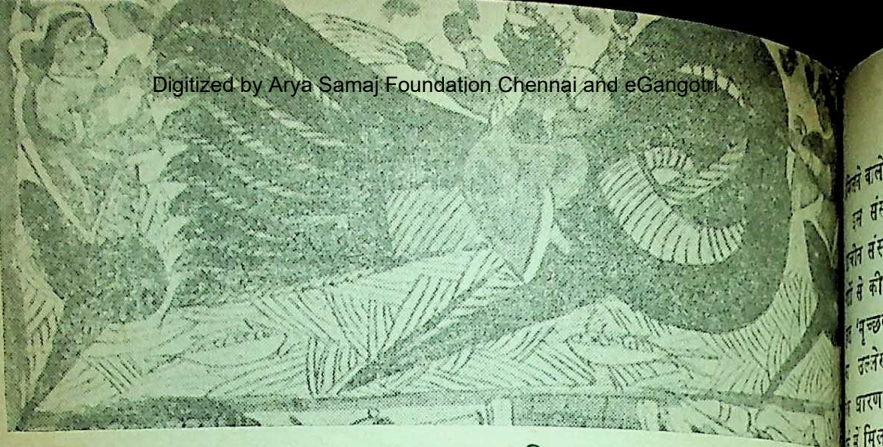


दरिद्रता की महिमा

- दरिद्र के उपवन में फूल नहीं होते पर होते हैं अच्छे विचार, संतोष, शक्ति और
 —मेरी होविट
- गांव में डाकू आये हैं और वह कोने में बैठा बांसुरी बजा रहा है — अवश्य ही
 —राबर्ट बैसन
- दरिद्रता की प्रशंसा मैं नहीं करता, परंतु उस व्यक्ति की अवश्य करता हूं जिसे
 —सैनेका
- दरिद्रता ही तो तुम्हारा खजाना है, आरामदेह जीवन के लिए इसे कभी मत
 —अज्ञात
- सम्य व्यक्ति ही तो दरिद्रता के भय से अवांछित कार्य करने पर उतारू हो
 —अज्ञात
- मैंने पैसे बचाने के लिए बस पर चढ़ना बंद कर दिया और पैदल जाने लगा —
 —जार्ज बर्नार्ड शा
- राष्ट्रायक समाप्त करने का प्रयत्न करते हैं लोभ, भ्रष्टाचार, व्यभिचार,
 —जार्ज बर्नार्ड शा
- अमीर तो घंटी बजाने पर रोटी खाने की अपनी मेज़ पर पहुंच जाता है, दरिद्र
 —राबर्ट बैसन
- प्रतिभा की सौतेली मां है दरिद्रता ।
 —जोशबिलिंग
- सबसे स्वतंत्र जीवन बिताते देखा है मैंने नगर के दरिद्रों को ही । —थोरियो

संकलन : आशारानी





कृष्ण का कालिया-दमन

डॉ. ज्योतीन्द्र जैन का ताज़ातरीन शोध-लेख

गुजरात के चित्र-कथाकारों के चित्रित प

चित्रपट जैसे चाक्षुष उपकरण की सहायता से कथा-वर्णन (चित्रकथा) की परंपरा भारत के अनेक प्रदेशों में प्राचीन काल से चली आ रही है। प्राचीन जैन साहित्य में ऐसे चित्र-कथाकारों के अनेक रोचक वर्णन पढ़ने को मिलते हैं। तीसरी सदी के आसपास रचे गये 'भगवती सूत्र' में महानतम अजीविक गुरु मंखली गोशाल के जीवन का वर्णन है। उसके अनुसार, मंखली गोशाल मंखली नामक मंख का पुत्र था। 'मंख' शब्द पर टिप्पणी करते हुए, अभयदेव 'भगवती सूत्र' में कहते हैं कि मंख उन विशेष प्रकार के भिक्षुओं को कहा जाता था, 'जिनके हथ चित्रपटों पर व्यस्त रहते थे।' 'औपपातिक सूत्र' में भी ऐसे मंखों का उल्लेख

है। 'औपपातिक सूत्र' में पूर्णभद्र चेल के वर्णन में कहा गया है कि तीर्थ-मंदिर के नर्तक, अभिनेता, रज्जुनर्तक, पहलवा कूदने वाले, स्वांगिये, कथक, रासना, ज्योतिषी, कल वाज, मंख (चित्र-कथाकार), वादकगण, और भाट (मंख) रहते थे। अपने ग्रंथ 'अभिधान चित्रमणि' में हेमचंद्र ने मंख शब्द की व्याख्या मागध या भाट के रूप में की है।

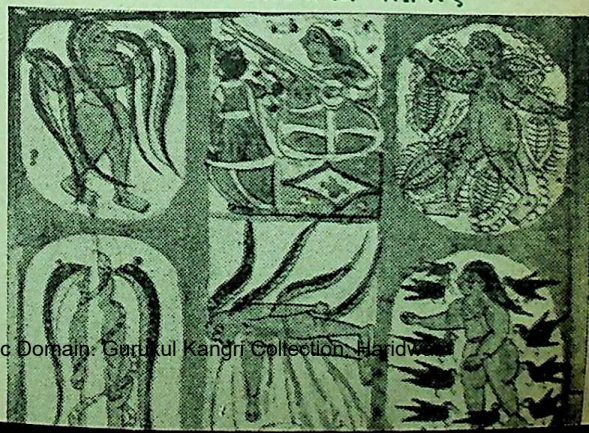
आठवीं सदी में लिखे गये जैन उप-ध्याय का उल्लेख है, जो एक मठवासी को संसार-चक्र का चित्र पट दिखाता है। इस पट में संसार-चक्र जगत् के सुख-दुखों, स्वर्ग के प्रवेश विभिन्न कर्मों में उलझाव और तर्क

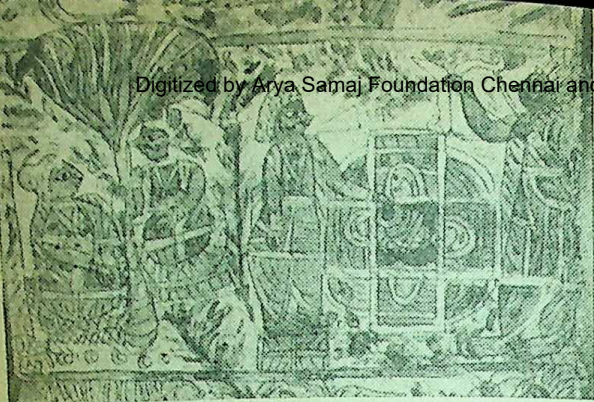
जो एक आदमी को फांसी के तख्ते पर चढ़ाने के लिए ले जा रहे थे। पूछने पर ब्राह्मण को पता चलता है कि वह आदमी एक चित्र-कथाकार था। जब वह अपने चित्र-पटों का प्रदर्शन धान के व्यापारियों के सामने कर रहा होता था, तो उसके साथी इन व्यापारियों का धान लूट लेते थे।

इस विवरण से पता चलता है कि यम-पटों के प्रदर्शन बाजारों में किये जाते थे, और वे इतने दिलचस्प होते थे कि दर्शक अपनी सुधबुध खो बैठते थे। 'मुद्रारक्षस' और 'बहुराधने' से इस अनुधारण बात का भी पता चलता है कि चित्र-कथाकार चोर और गुप्तचर भी होते थे, चूंकि वे अपने चित्र-प्रदर्शनों में दर्शकों को इतना अधिक तल्लीन कर देते थे कि उनकी तल्लीनता का अनुचित लाभ उठाना उनके लिए सहज हो जाता था।

तीनरी सदी तक पुराने इन साहित्यिक संदर्भों से यह स्पष्ट है कि ऐसे भ्रमणशील लोगों की, जो उपध्याय होने के साथ

नरक की विविध यातनाएं





श्रवण का अंधे माता-पिता के लिए पानी लेने जाना और राजा दशरथ के तीर से उसका घात साथ चित्र-कथाकार भी होते थे, परंपरा काफ़ी प्राचीन और लोकप्रिय है। और एक रोचक बात यह है कि आज भी (भारत के बहुत से भागों में) ऐसे भ्रमणशील चित्र-कथाकार मौजूद हैं, जो नर्क के दंडों और धार्मिक कथाओं का चित्रण करने वाले चित्रित पट लेकर घूमते रहते हैं। महाराष्ट्र की 'चित्रकथी' चित्र-कला की परंपरा सुविख्यात है। इन चित्रों का वर्णन गानों के रूप में किया जाता है। राजस्थान में पाबूजी तथा अन्य नायकों के चित्रित पटों का 'वाचन' संगीत और नृत्य के साथ होता है। बंगाल में भी 'ज-दू-पटुवा' (चित्रित पट) की परंपरा मौजूद है।

इन अपेक्षाकृत ज्ञात परंपराओं के अतिरिक्त, चित्र-कथा से संबंधित लोक-प्रदर्शन की एक ऐसी समृद्ध परंपरा भी है, जिसके विषय में विद्वानों को अभी तक बहुत कम ज्ञात है। इसे गरोडा की टिपणु, चित्रित पट परंपरा के नाम से

जाना जाता है। यह परंपरा गुजरात और राजस्थान में खूब फूली-फली। गरोडा जाति के कुछ लोग धार्मिक कथाओं के चाक्षुष प्रदर्शन के लिए, कागज के चित्र सचित्र पटों के साथ गांव-गांव घूमते थे। पट जमा करके वेलोन गद्य और पद्य में इन कहानियों को सुनाते थे। यम-पट परंपरा के साथ, इस परंपरा में महक और पुराणों की कथाओं को स्थायी बोली में सुनाने की परंपरा सम्मिलित थी। प्रत्येक गरोडा पट अंत में तीन चित्र होने थे। पहला—नर्क का, दूसरा—स्वर्ग या नर्क तक की यात्रा और तीसरा—नर्क में दंड का। इस धार्मिक और नीतिपरक प्रदर्शन का दर्शकों मन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ता था कि वे चरमोत्कर्ष के क्षणों में, प्रदर्शन दौरान ही, कहानियां सुनाने वाले जयजयकार करने लगते थे, और पर उपहरो की वर्षा कर देते थे। यह परंपरा लुप्तप्राय हो चुकी है। वर्ष पूर्व, मैंने गरोडा चित्र-कथाकारों चित्रित पटों को देखा था। वे मुझे रोचक लगे कि मैंने आगे चलकर प्रदर्शन, चित्रित पटों और उस क्षेत्र अन्य लोक-चित्रों से उनके चित्र तथा विषयक संबंधों, दंतकथाओं

परंपराओं का अध्ययन आरंभ
किया। आगे जो सामग्री प्रस्तुत की जा
रही है, वह एक ह्रासोन्मुख समृद्ध परंपरा
के विषय का सर्वप्रथम प्रकाशित
कार्य है।

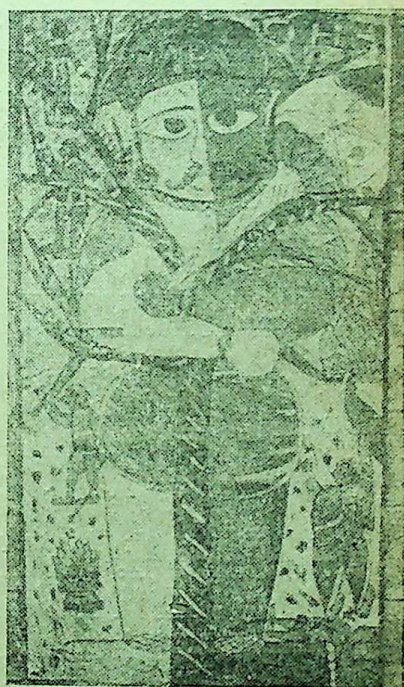
गरोडा जाति
गरोडाओं को गरुड़, गारुड़ी, गरो
पल नामों से भी जाना जाता है।
उपरोक्त अन्य ग्रामीण समुदाय गरोडाओं
को ऐसे ब्राह्मण मानते हैं, जो भंगी, ढेड़,
वाघरी, नायक, तथा अन्य
स्त्रीगण समुदायों के अनुष्ठान कराने
में पुरोहितों की भूमिका भी करते हैं।
गरोडाओं का कहना है कि वे पतित

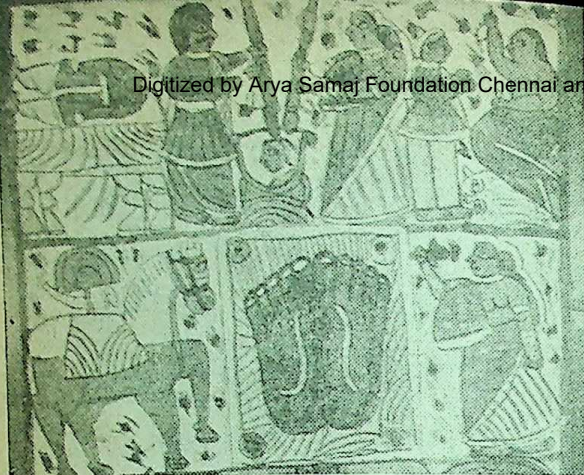
जाति हैं, और उनका पतन तब आरंभ
हुआ, जब उनके मुखिया ने गुरु-पुत्री से
विवाह किया। कुछ लोगों का कहना है
कि वे इसलिए नीची जाति में आ गये,
कि उन्होंने नीची जातियों के अनुष्ठान
आरंभ कर दिये थे, और उनके
मुखिया ने बलि के एक शिकार के अंश
स्वीक्षण कर लिया था। एक कथन
यह भी है कि वे एक ऐसे ब्राह्मण पुरोहित
के बन्धु हैं, जिसे पाटण के सिद्धराज
ने नीची जातियों के अनुष्ठान-
कार्य करने को कहा था। यह अंतिम
कारण इसलिए महत्वपूर्ण है कि गरोडा
समुदाय का एक मुख्य केंद्र पाटण है, जो
सिद्धराज जयसिंह की राजधानी
गरोडा लोगों के कुलनाम ब्राह्मणों
में से, बोशी, श्रीमाली, शुक्ल आदि

कुलनामों जैसे ही हैं। वे साधारणतया
हिंदू देवताओं की ही पूजा करते हैं,
किंतु श्रीकृष्ण के मुकुट की, जो उनके
मंदिर में रखे 'भागवत' ग्रंथ की प्रतिलिपि
पर प्रतिष्ठापित है, पूजा को विशेष
महत्त्व देते हैं।

ऊपर जिन समुदायों का जिक्र हुआ
है, गरोडा लोग उनके गर्भ, जन्म, विवाह
और मृत्यु संस्कारों का अनुष्ठान तो करते
ही हैं, उनके घरों में सत्यनारायण की पूजा
कराते हैं, शुभ अवसरों का मुहूर्त निकालते

वज्र-शरीरी भीम की बाल-क्रीड़ा :
वृक्ष हिलाकर कौरव-किशोरों को गिराना





ऊपर : चेलैया की कथा में, भगवान द्वारा उसके मां-बाप की परीक्षा;

नीचे : महाराज रामदेव पीर द्वारा नेतल देवी को चरण-दान

हैं, ज्योतिषी और हस्तरेखा-शास्त्री की भूमिका भी निभाते हैं, और चित्र-कथाओं को दिखाने-सुनाने के लिए गांव-गांव का भ्रमण करते हैं। गुजरात और राजस्थान के प्रायः प्रत्येक गांव और कस्बे में गरोडा लोगों की झोपड़ियों का एक झुण्ड अलग ही होता है।

तीन वर्ष पूर्व, मैंने अहमदाबाद के निकट एक गांव में गरोडाओं का चित्र-प्रदर्शन देखा था। अपने कंधे पर कई झोले लटकाये, एक गरोडा हर द्वार पर जाकर धीमे स्वर में गुजराती के कुछ बंद बोलता था, जिनके अर्थ इस प्रकार किये जा सकते हैं: 'इन धार्मिक कथाओं को सुनकर आपको पुण्य प्राप्त होगा ... ऐसे शुभावसर जीवन में बार-बार नहीं आते। ... कल्याण और पुण्य

नवनीत

का मार्ग दिखाने के
भ्रमणशील गरोडा पुण्य
के प्रति दया दिखाने
चाहिये।'

अजकल ऐसे प्रदर्शन
बहुत कम होते हैं। वरन्
इस बात की है कि प्र
प्रदर्शनों को वीहिको-
किया जाये, ताकि उनके
स्मृति सुरक्षित रह सकें।
चित्रित पट और इस
प्रकरण

गरोडाओं के चित्र
पटों को 'टिप्पण'

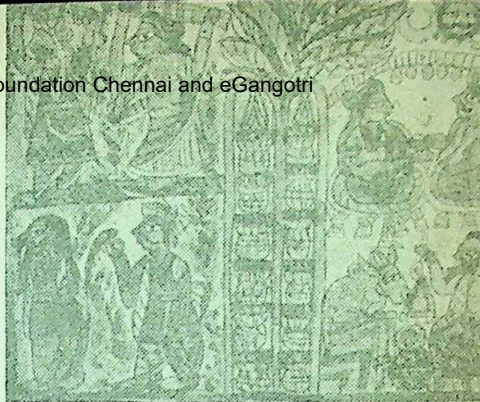
'टिप्पण' कहते हैं, जिसके अर्थ
'अंकित करना' या 'टिप्पणी करना'

जो पट मैंने देखे हैं, उनसे यह स्पष्ट
है कि उनका चित्रण राजस्थान और
गुजरात के अलग-अलग कलाकारों
अलग-अलग स्थानों पर किया हो
प्रायः सभी पट अनुमानतः ४२० सेंटीमीटर
मीटर लंबे और ३५ सेंटीमीटर चौ
थे। मुझे तो सिर्फ कागज के बने पट
देखने को मिले, किंतु मुझे बताया गया
पहले कपड़े के पट भी होते थे।

प्रत्येक पट को मोटी, काली सफ
रेखाओं द्वारा १९ छोटे-बड़े उपखंडों
विभाजित किया जाता है। यद्यपि प्रत्येक
पट की शैली भिन्न है, तथापि रोचक
यह है कि सभी के चित्रित विषय
से ही थे, और एक से ही क्रम में प्रदर्

दिवाने के विषयों १९ खंडों का भिन्न विवरण,
के विभिन्न पटों में एक ही क्रम में
अवस्थित है, विभिन्न संग्रहों से प्राप्त
पटों के अध्ययन के परिणामस्वरूप

ऐसे प्रदर्शन होते हैं। उसमें
ही है कि इन विभिन्न
वीडियो-टैपों के धार्मिक संस्कारों में प्रयुक्त
या कलश की शैली में एक घट या
दिया जाता है। उसके ऊपर एक
रखा होता है। घट का मानवी-
न्युसप्ट नेत्र-गोलकों द्वारा निर्दिष्ट
जाता है। इस मंदिर के केंद्रीय-
के दोनों ओर दो आले होते हैं, जिनमें
लिये दो द्वार-रक्षक दिखायी देते हैं।
दूसरे चित्र में आमने-सामने खड़े
शहसवारों के पार्श्व-चित्र हैं। उनके
ऊँचाई पर प्रायः एक पौधा—सूर्य-
अंकित होता है। घोड़ों के पांवों
निकट, अनिवार्य रूप से, सूर्य और
चंद्र को मानव आकार में दिखाया
जाता है। वस्तुतः, ये दोनों शहसवार इन
गोलीय पिंडों को साकार करते हैं।
दूसरे चित्र में, आम तौर पर, हाथ
लिख लिये चतुर्भुज गणेश को अंकित
जाता है। त्रिशूल के अतिरिक्त
उनके हाथों में एक माला और मोदकों
का कटोरा होता है। उनके साथ
है उनकी सवारी मूषक और 'चौरी'
(चक्र) डुलाने वाली दो परिचारिकाएं।
तीसरे चित्र में बैल पर सवार या भूमि



सत्यवादी हरिश्चंद्र का सर्वस्व दान और सपरिवार बिक जाना

पर बैठे शिव दिखायी पड़ते हैं। उनकी
गोद में पार्वती होती हैं। शिव की जटाओं
में गंगा रूपी नारी का सिर दिखायी देता
है। उसके मुँह से गंगा को प्रवाहित होते
भी देखा जा सकता है। उनके दोनों ओर
दो नारी-आकृतियां दिखायी पड़ती हैं।
उनमें से एक की चार भुजाएं हैं, और
दो भुजाओं से वह धनुष से बाण चला
रही है। (कुछ पटों में एक सर्प भी
देखने को मिल सकता है।) दूसरी नारी
के पास एक वृश्चिक दिखायी पड़ता
है। दोनों संभवतः स्थानीय देवियां हैं।

पांचवा चित्र लक्ष्मी देवी का पट है।
इसमें चार भुजाओं वाली देवी लक्ष्मी
को पालथी मारे बैठा देखा जा सकता
है। कभी-कभी उनके दो हाथों में माला
या कमल के फूल दिखाये जाते हैं, और
शेष दोनों हाथों को रिक्त दिखाया जाता
है। देवी पर दो परिचारिकाएं चंवर डुला
रही हैं, और दो हाथी अभिषेक दे रहे हैं।
छठे चित्र में धोला (भावनगर के

निकट) के धना भगत की लोकप्रिय गाथा अंकित रहती है। धना भगत भगवान विष्णु के परम भक्त थे। वे विष्णु की भक्ति में इतने तल्लीन रहते थे कि उन्हें कभी अपने खेतों की ओर ध्यान देने का समय और होश नहीं होता था। गांव वालों का विश्वास था कि इस पागल भक्ति के कारण धना भगत के खेतों में कभी कोई पैदावार नहीं होगी। किंतु, धना भगत की भक्ति से प्रसन्न होकर, भगवान विष्णु ने स्वयं उनके खेतों की ओर ध्यान दिया, और गांव वालों की आशाओं के विपरीत, खेतों में अच्छी फसल हुई। बाद में, विष्णु स्वयं धना भगत के सामने प्रकट हुए। चित्र में खेतों की जुताई और गांव वालों द्वारा फसल का ले जाना दिखाया गया है। प्रायः चतुर्भुजी विष्णु को, जो इस चमत्कार के मूल में थे, चित्र में बायीं ओर दिखाया जाता है।

सातवें खंड में दो देवियों को एक दानव का वध करते दिखाया गया है। इनमें से एक देवी दुर्गा होती है, जो दानव पर कदारों, तलवारों और त्रिशूल से आक्रमण करती है। दूसरी देवी, गुजरात की स्थानीय देवी बहुचरा देवी है। कहा जाता है कि वह पहले चारण संप्रदाय की एक संती थी, जिसे कालांतर में देवी का दर्जा प्राप्त हुआ। उसका मुख्य मंदिर गुजरात के मोढ़ेरा नामक स्थान के निकट बहुचराजी में है। इस देवी को

नवनीत

साधारणतः मुर्गे पर आसीन दिखाया जाता है। (कहीं-कहीं उसे मोर पर आसीन भी दिखाया जाता है।) दानव की आकृति प्रत्येक पट में भिन्न होती है। ज्यादातर, इस दानव को भैंसे के लाल चित्रित किया जाता है। भैंसे के शरीर से उसका कटा हुआ सिर अलग दिखाया जाता है, और उस शरीर से एक मानवाकृति उभरती दिखायी देती है। कहीं-कहीं, इस दानव को नील और चार भुजाओं वाला भी दिखाया जाता है। उसके गले में मंडों की पड़ी होती है, और उसके एक हाथ में तलवार, और दूसरे हाथ में ऐसा कटा हुआ सिर जिससे खून टपकता दिखाया जाता है, होता है। दोनों देवियां उसका आक्रमण करती दिखायी जाती हैं। रोचक बात यह है कि दानव दिव्य भैरव जैसा लगता है।

आठवें खंड में कृष्ण द्वारा काबिर मर्दन का दृश्य अंकित है। सभी पटों में कृष्ण को बहु छत्रों वाले सट पर सवार दिखाया जाता है; उसके दोनों ओर हाथ जोड़े या हाथ में माला लिये नाचती हैं, जो कृष्ण से नग के प्राणों की भीख मांगती दिखायी पड़ती हैं।

नवें खंड में श्रवणकुमार की गुफा में गाथा अंकित होती है। उसके मानव रूप को एक पेड़ से लटकती टोकरियां में दिखाया जाता है, और लटकती टोकरियां तराजू जैसी दिखायी देती हैं।

राजपाट और सारी संपत्ति हथियायी थी। बायीं ओर हरिश्चंद्र, तारामती और रोहिताश्व अपने को बेचने का प्रयास कर रहे हैं, और सिर पर सूखी घास के बंडल रखे हुए हैं। किसी-किसी पट में, रोहिताश्व को एक ऐसे व्यक्ति के, जिसने उसे उन कष्टपूर्ण दिनों में नौकर रखा था, पीछे-पीछे जाते दिखाया गया है। किसी-किसी दुर्लभ पट में, एक किवदंती के अनुसार, एक सांप रोहिताश्व को काटते दिखाया गया है।



विष्णु-भक्त धना भगत की कथा

चौदहवें चित्र में कौरवों-पांडवों को अमली-पिपली का खेल खेलते दिखाया जाता है। इस खेल में कौरव प्रति दिन अर्जुन को धोखा देकर उसे दंड देते थे। एक दिन भीम ने कौरवों से इसका बदला लेने का निश्चय किया। विशालकाय भीम ने पूरे वृक्ष को अपने आगोश में लेकर इतने जोर से हिलाया कि बहुत से कौरव पृथ्वी पर आ गिरे, और घायल

नवनीत

हो गये। चूंकि कृष्ण पांडवों के समर्थक थे इसलिए उन्हें कुछ पटों में, एक कौरव के पास एक कटा हुआ सिर है जो भगवतः शिशुपाल का है।

पंद्रहवें चित्र में चेलैया की लोकप्रिय दंतकथा अंकित मिलती है। प्राचीन गुजरात में यह कथा असाधारण रूप से लोकप्रिय है। धनी भक्त सेठ सांगवान उनकी पत्नी चंगावती, और चेलैया यह व्रत ले रखा था कि वे बिना किसी साधु को भोजन कराये, भोजन करने नहीं करेंगे। एक बार भगवान ने उनकी पत्नी को लेने का निश्चय किया, और एक ब्रह्मचारी भिक्षुक के रूप में उनके द्वार पर बसे। उस दिन गांव में कोई और भिक्षु नहीं आया था, इसलिए सेठ और उनकी पत्नी कोड़ी भिक्षुक को अपने घर आये। कोड़ी ने कहा कि वह एक संतान विशेष का अनुयायी है, और सिर्फ अन्न का मांस ही खाता है। यदि सेठ-पत्नी सचमुच उसे भोजन देना चाहते हैं, तो उन्हें अपने छोटे लड़के को मारकर उसका मांस उसके सामने परोसना होगा। अपने व्रत का पालन करने के उद्देश्य से वे ऐसा करने को राजी हो गये। उन्होंने अपने पुत्र को मारकर, उसका मांस भिक्षुक को परोसा। इस पर भिक्षुक ने कहा कि वह भोजन ग्रहण नहीं कर सकता, क्योंकि पुत्र की मृत्यु के बाद दंपति संतानहीन हो गये हैं और वह संतानहीन परिवार

के समर्थक हैं। एक कोने में भोजन नहीं कर सकता। दूसरे कोने में वह दिखाने के लिए कि वह वांछित है, वह एक चक्र से अपना गर्भाशय निकाले लगी। इस पर, भिक्षुक के रूप में भगवान ने उसका हाथ पकड़ लिया, और कहें कि वे दंपति की भक्ति का धारण रूप प्रसन्न हैं। उन्होंने उनके पुत्र सेठ सारंगधर को पुनर्जीवित कर दिया, जिससे दंपति और चेलों का भिक्षु का वार पार न रहा। वे बिना भोजन के भोजन करने लगे। भोजन करने के लिए कूटते दिखाया जाता है उनकी पत्नी चित्र के एक कोने में भिक्षुक को और एक कोने में पुत्र को पुनर्जीवित करते दिखाया है। द्वार पर अनेक पेटों में सिर-कट धड़ और और भिन्न-भिन्न वस्तु भी दिखाया गया है। सेठ और उनकी पत्नी चित्र में राजस्थान के अपने घर के नामक स्थान के रामदेव पीर की वह एक मंत्रालय अंकित रहती है। रामदेव पीर और सिद्ध राजस्थान के देवतुल्य नायक थे, और यदि सेठ-दंपति पुत्रा राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात चाहते हैं, तो मध्य प्रदेश तथा असम के क्षेत्रों में मारकर उनकी पुत्री होती है। उन्हें विष्णु का अवतार रोसना होना जाता है, और उनके साथ अनेक पत्नी के उद्देश्य से चित्रों की कहनियां जुड़ी हैं। जिस गये। उनकी पत्नी को पट में प्रस्तुत किया जाता है। एक मांस भिक्षु उमरकोट की राजकुमारी नेतल भिक्षु ने कहा कि वे उनके विवाह से संबंधित है। र सकता, वह राजा जता है कि नेतल राज्यत कुरूप पति संतानविहीन पति थी, मगर रामदेव की परम विहीन पति थी। अपने रिश्तेदारों के विरोध



ऊपर : धर्मराज की सवारी;

नीचे : वैतरणी पार करती सत्तात्मा

के बावजूद, रामदेव ने उसके साथ विवाह किया और अपनी चमत्कारिक शक्ति से उसे एक सुंदर और दोषरहित युवती में परिवर्तित कर दिया। अधिकांश पटों में रामदेव के पट को तीन भागों में विभाजित दिखाया जाता है। बायें भाग में या तो रामदेव को चतुर्भुजी श्यामवर्णी बाल-विष्णु के रूप में, पीपल के एक विशाल पत्ते पर लेटे दिखाया गया है, या कुछ पटों में उन्हें ऐसे वयस्क चतुर्भुज विष्णु के रूप में चित्रित किया गया है, जिनके निकट हथ में माला लिये नेतल खड़ी है। ऐसे उदाहरण भी मौजूद हैं, जिनमें एक सवाररहित घोड़े को, एक चंदवे के नीचे रामदेव की तलवार ले जाते दिखाया गया है। यह तलवार नेतल से विवाह के लिए जाते हुए रामदेव का प्रतिनिधित्व करती है। राजपूतों में यह रिवाज था कि विवाह संस्कार के समय वे स्वयं उपस्थित नहीं रहते थे, और

उनकी तलवार उनका प्रतिनिधित्व करता थी। अधिकांश पटों के मध्य में दो चरण दिखाये जाते हैं, जो लंगड़ी और अपंग नेतल के शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ हो जाने के चमत्कार के प्रतीक हैं। कुछ लोग इन चरणों को रामदेव के पवित्र चरण मानते हैं। चित्र में दायीं ओर रामदेव की वधू नेतल हाथ में माला लिये अपने वर की प्रतीक्षा कर रही है। मगर, एक पट में इस स्थान पर उस भैरवासुर का चित्र अंकित है, जिसका दमन रामदेव ने किया था। उस पट में हाथ में माला लिये हुए खड़ी नेतल को बायें पट में चित्रित रामदेव की वगल में दिखाया गया है।

सत्रहवें, अठारहवें और उन्नीसवें पटों में मृत्यु, कर्मों, दंडों, और पुरस्कारों का चित्रण है। चित्रपट सत्रहवें में धर्मराज की सवारी अंकित है। पालकी में सवार यम देवता को उनके अनुचर ले जा रहे हैं। धर्मराज का कुत्ता, एक डोर में बंधा, पालकी के नीचे चल रहा है। आगे-आगे चल रहा है, गहरे नील वर्ण और सींगों वाला एक दैत्य, जो मृत व्यक्तियों को उठाकर ले जा रहा है। इन मृत व्यक्तियों को न्याय के देवता धर्मराज और मृत्यु के देवता यमराज के पास ले जाया जा रहा है, जहां उन्हें उनके कर्मानुसार दंड या पुरस्कार मिलेगा।

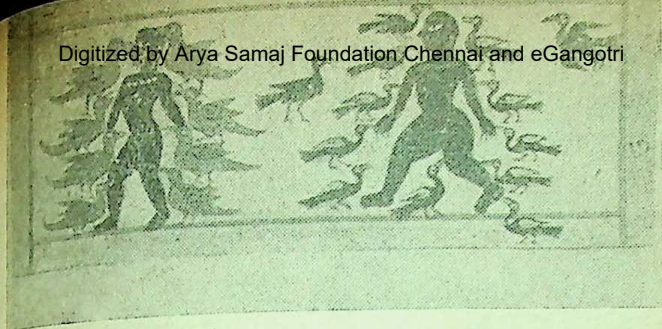
अठारहवें पट में हिंदुओं के इस विश्वास को चित्रों द्वारा अभिव्यक्त किया गया

नवनीत

है कि मृत्यु के बाद, जब किसी व्यक्ति को न्याय के लिए धर्मराज के पास ले जाया जाता है, तो उसे पहले वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है, और इसके लिए उसे किसी गाय की दुम का सहारा लेना पड़ता है। और गाय उसे ही पार होती है, जिसने जीवन में कभी कोई गाय किसी ब्राह्मण को दान दी हो। अधिकांश पटों में किसी स्त्री को गाय की दुम पकड़कर वैतरणी पार करते दिखाया गया है। उसके पीछे रथ पर सवार पुरुष है। रथ पर बैठकर वैतरणी पार करने का सौभाग्य उन्हीं लोगों को मिलता है, जिन्होंने अपने जीवन में बहुत पुण्य कर्म किये हों।

सभी पटों में अंतिम पट, हिंदुओं द्वारा माने जाने वाले सात नरकों का है। उसमें छह या आठ भाग होते हैं। उनमें से पांच या सात भागों में ऐसे दृश्य चित्रित किये गये होते हैं, जिनमें मानवों की पक्षियों, सर्पों, वृश्चिकों आदि या तल के दूतों के अस्त्रों से यंत्रणा मिलते दिखाये गये हैं। मध्य (छठे या आठवें) भाग में प्रायः हाथ में वाद्ययंत्र लिये किसी ऐसी महिला को दिखाया जाता है, जिसने सामने भगवान विष्णु प्रकट हुए हैं। इससे यह सीख मिलती है कि जो भगवान की भक्ति में लीन नहीं है, उसे नरक में दंड भुगतने ही पड़ेंगे।

चित्रित दंतकथाओं के खोब इसमें कोई संदेह नहीं है कि पटों में



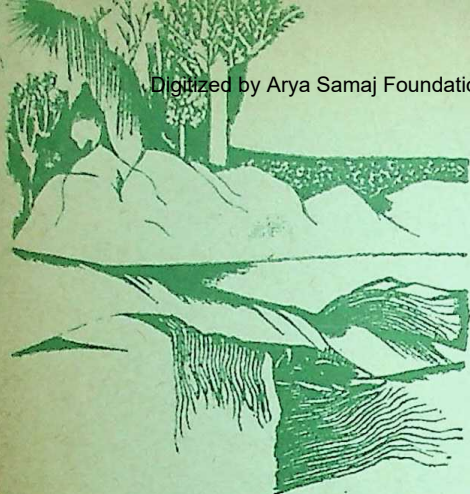
जैन नारकीय चित्रमाला का एक विशिष्ट चित्र

(छायाकार : रमेश द. मालवणिया)

जैन विषयों को चित्रित किया गया है, जिनका मूल स्रोत हैं—स्थानीय पौराणिक कथाएँ। हिंदुओं के महाकाव्यों और पुराणों की घटनाओं को प्रायः पल्लीय (स्थानीय) संकुचित करके, और स्थानीय देवताओं और रीति-रिवाजों को धारित करके प्रस्तुत किया जाता है। जैनों को असाधारणता प्रदान करने का तत्त्व है लोकवार्ता का स्थानीय रूप। राम, कृष्ण, कौरव, पांडव के जीवन की घटनाओं को लिया जाता है, तो जैनका स्रोत स्थानीय रामायण और महाभारत ही होते हैं, जिनका वाल्मीकि व्यास की रामायण और महाभारत नाम्य अधिक नहीं रहता। उदाहरणार्थ महाभारत का, जिसमें भीम पेड़ हिलाकर भीमों को नीचे गिराते हैं, व्यासकृत महाभारत में उल्लेख नहीं है, किंतु इस कथा का विस्तृत वर्णन वल्लभराम कृत गुजराती महाभारत में मिलता है। इस महाभारत के दसियों चित्रों में से चुके हैं, और कथाओं तथा

धार्मिक आख्यानों के वर्णन के, जिनके द्वारा ग्रामीण जनता को पौराणिकी में प्रवर्तित किया जाता है, लिए हज़ारों गरोडा और ब्राह्मण पुरोहित उसी पर आश्रित रहते हैं। स्वामीनारायण, सत्यनारायण, रामदेव पीर प्रभृति नव-हिंदू पंथों के अभ्युदय के कारण कथाओं की लोकप्रियता काफ़ी बढ़ी है।

राजा हरिश्चंद्र की कथा भी गुजरात में इतनी जनप्रिय है कि नाकर (सोलहवीं सदी), रत्नदास (आठवीं सदी) और प्रेमानंद (अठारहवीं सदी) जैसे कवियों ने इस कथा को लेकर ऐसे स्वतंत्र और विस्तृत काव्यों की रचना की है जिनका आधार और जिनकी पृष्ठभूमि स्थानीय पौराणिकी है। हरिश्चंद्र की कथा मार्कण्डेय पुराण से ली गयी है। उसी से अन्य कथाएं लेकर प्रेमानंद ने अनेक काव्यों की रचना की है। 'देवी महात्म्य' और 'सती मदालसा' ऐसी दो कथाएं हैं। इन्हें भी हरिश्चंद्र की कथा के समान (शेषांश पृष्ठ ८६ पर)



चित्र : प्रबोध परीख

१. कारण

अपनी सारी आकस्मिकता के साथ भी
दुर्घटनाएं
अकारण नहीं घटतीं,
और सुनो,
तुम जानती ही होगी
नदी का सूख जाना भी
अकारण नहीं होता !

अब यह मेरी विवशता हो सकती है
कि अपनी पक्षधरता और साक्ष्य के लिए
मुझे हर बार
कविता का सहारा लेना पड़ता है
पर इसका क्या कहूं
कि फिलहाल
कविता से अधिक ईमानदार माध्यम
कोई और नहीं !

नवनीत

आलोक भट्टाचार्य की दो प्रेम कविताएं

यह तो, मैं, तुमसे मुखातिब हूं,
जब देश से, देश के कर्णधारों से, जनता से,
मुखातिब होता हूं या समाज से,
तब भी, साथ में कविता ही होती है।

अर्थात् कविता
तब-तब-तब आवश्यक हो जाती है
जब-जब-जब आवश्यकता हो जाती है
कुछ कहने की !

और आज फिर, कविता साथ है।
फिर इस ईमानदार माध्यम का
सहारा लेने को मैं विवश हूं,
और कह रहा हूं
कि सुनो,
नदी अकारण नहीं सूखती !
अपनी सारी आकस्मिकताओं के साथ
दुर्घटनाएं अकारण नहीं होतीं !



गंगा की तरह

सुशिली के शिल्प को
तुम अमृत बना रही हो, प्रिया,
हृद को, इस दृष्टि से, मैंने कभी नहीं देखा था !

सुर तन-मन में आग नहीं लगती
तुम आकाशगंगा होती हुई भी
हिमवतरी पर थिरने वाला शिशिर बिंदु हुई जा रही हो ।

हस्त हो सकना हो सकता है,
अविदेह होने की, मैंने कल्पना तक नहीं की थी, प्रिया,
कि
मैं बारहमासी का श्रावणी बन जाना, तुम-सा ही सत्य है !

सामर्थ्य, पिता एवं पुस्तकों की
स्वस्थ परंपरा का प्रभाव मुझ पर है ।
शुद्ध मन और नश्वर देह की संस्कृति का प्रभाव भी नगण्य नहीं,

मैंने का वेद ताड़पत्रों पर नहीं लिखा जाता—
लेखन आभास भी आवश्यक था !

तुम तमाम ऋणों के साथ, प्रिया,
मैं तुम्हारा भी ऋणी हूँ
और उऋण होता नहीं चाहता ।
गंगा की तरह यह भी स्वीकार करो !



अपार लोकप्रियता प्राप्त हुई। प्रेमानंद माण-भट्ट थे, और संभवतः इन कथाओं को गायन और अभिनय माण वाद्य द्वारा प्रस्तुत किया करते थे। रत्नदास कृत हरिश्चंद्र की कथा में विश्वामित्र को एक जंगली सूअर बताया गया है। यह सूअर हरिश्चंद्र के उद्यान को नष्ट कर देता है।

राजा हरिश्चंद्र उसका पीछा करते-करते वन में पहुंचते हैं, वहां विश्वामित्र उन्हें धोखा देकर विवाह का आयोजन करते हैं, और कन्यादान में अपना राजपाट और अपनी सारी दौलत गंवा देते हैं। इस घटना का पुराण में वर्णित कथा से कोई संबंध नहीं है, मगर गुजराती लोकवार्ता में यह एक प्रभावशाली और हृदयग्राही कथा के रूप में सामने आती है। राजा के उद्यान को जंगली सूअर द्वारा नष्ट हो जाने और राजा द्वारा वन में उसका पीछा करने का मूलभाव गुजरात की लोकप्रिय देवी खोदियार की कथा में भी मौजूद है। गुजरात के मानस में यह मूलभाव इतना प्राचीन और संरचनात्मक है कि उसकी चित्रात्मक अभिव्यक्ति फोस्तात (मिस्त्र) में प्राप्त गुजरात के

पंद्रहवीं सदी के वने सूती कपड़ों के अंकनों में भी देखने को मिलता है। लोकवार्ता की इस स्थानीय परंपरा प्रेरणा प्राप्त कर गुजरात के वाद्य कपड़ा छापने वालों ने अहमदाबाद में चित्रित और छपे सूती कपड़े पर इस विषय को अंकित किया है।

गुजरात और राजस्थान के जैन और स्वामीनारायण पंथ के अनुयायियों में 'नारकी' के चित्रों का संग्रह तैयार करने की प्रथा है। इन चित्रों में विवाह जाता है किन्-किन दुष्कर्मों का नष्ट किया परिणाम भोगना पड़ेगा। अष्टादश और उन्नीसवीं सदी में निर्मित इन चित्रों के दृश्य गरोडा-पटों के दृश्यों से मिलते हैं। चूंकि ऐसे चित्र-संग्रह अनेक कृत भारी संख्या में जनसाधारण और मठवासियों के लिए तैयार किये गये हैं इसलिए लगता है कि उन्हें भरोसा है कि चित्रकारों ने ही चित्रित किया होगा। इसी प्रकार, मधु-मालती और श्रीरास की चित्रशैली, रंग-योजना, वेष-आदि में भी गरोडा-पटों से इतनी समानता है कि यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि दोनों के चित्रकार एक ही थे।

□
अमेरिका के सिनेटर राबर्ट टॉफ्ट को एक बार अपने व्यापारी पुत्र को आश्रय देना पड़ा। धून देते हुए उन्होंने मुस्कराकर अपने पुत्र से कहा—'मुझे अब पता चला कि बच्चे जब आत्म-निर्भर हो जाते हैं, तब माता-पिता को उन पर अधिक व्यय करना पड़ता है।'

—डा. गोपालप्रसाद

खोने वाला ही पाता है



सूती कपड़े को मिलती है।
मानवीय परंपरा
रात के वक़्त
अहमदाबाद
कपड़े पर

विधिमं नाम का भारतीय भिक्षु
चीन पहुंचा। चीन के सम्राट वू
उसका बहुत आदर-सत्कार किया, और
पता कि कैसे बौद्धधर्म के प्रचार के लिए
उसने इतने रुपये खर्च कर चुका है। बुद्ध
हजारों प्रतिमाओं वाले सैकड़ों मंदिर
बना चुका है, और हजारों भिक्षुओं को
दैनिक भोजन कराता है। एक मंदिर
इतना बड़ा है, कि उसमें बुद्ध
हजारों प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं।

बुद्ध बताइये कि बौद्धधर्म का इतना
प्रचार करने के बदले में मुझे क्या मिलेगा ?
बोधिधर्म से पूछा।

‘कुछ भी फल मिलने वाला नहीं है।’
बोधिमं ने कहा—‘तुमने कोई पुण्य-कर्म
नहीं पाप किया है। क्योंकि तुम यह
काम करने लगे हो कि मैंने सब कुछ किया है।’

सम्राट का मुंह क्रोध से लाल हो गया।
उन्होंने कहा—‘आपतुरंत मेरे राज्य से बाहर
जाओ।’

‘तुम्हारे पापी राज्य का मैं स्वयं परि-
वार बनाने वाला था,’ कहकर बोधिधर्म
उसका राज्य छोड़ दिया।

सब वयं बाद, सम्राट वू मृत्यु-शय्या
पर पड़ा, दुखी मन से बोधिधर्म के शब्दों

को याद कर रहा था। मौत उसे घूर रही
थी, और उसे लग रहा था, मौत के बाद,
मुझे कोई पुण्य-फल नहीं मिलेगा। उसने
बोधिधर्म को बुलवाने के लिए दूत भेजे।

बोधिधर्म ने सम्राट का संदेश पाकर
कहा, ‘अब मेरा जाना व्यर्थ होगा, क्योंकि
सम्राट अब नहीं रहा। काश ! उसे जीते
जी यह बोध हो जाता कि ‘मैं कुछ नहीं
हूँ’, तो उसके जीवन में क्रांति हो जाती,
और वह अमर जीवन को उपलब्ध हो
जाता।’

यह कथा यद्यपि चौदह सौ वर्ष पुरानी
है, फिर भी एक ऐसा बोध देती है जिसे
भुलाया नहीं जा सकता। —हंस



पूर्वजन्म स्मृति का साक्ष्य प्रस्तुत करने वाला
ख्वाजा अहमद अब्बास का एक आत्मकथ्य



मेरे जीवन का एकमात्र अतीन्द्रिय अनुभव

‘अपने जीवन के पहले और अंतिम अतीन्द्रिय अनुभव के बाद मैं आध्यात्मिक तो नहीं बना, हां, संशयवादी अवश्य बन गया, और अविश्वास के प्रति भी अविश्वास करने लगा।’

मेरे जीवन में केवल एक ही अनुभव ऐसा हुआ, जिसे अतीन्द्रिय या अलौकिक कह सकता हूं। ऐसा नहीं है कि इस अनुभव के बाद मैं आध्यात्मिक व्यक्ति बन गया। हां, इतना अवश्य है कि मैं संशयवादी अवश्य बन गया, और अविश्वास के प्रति भी अविश्वास करने लगा।

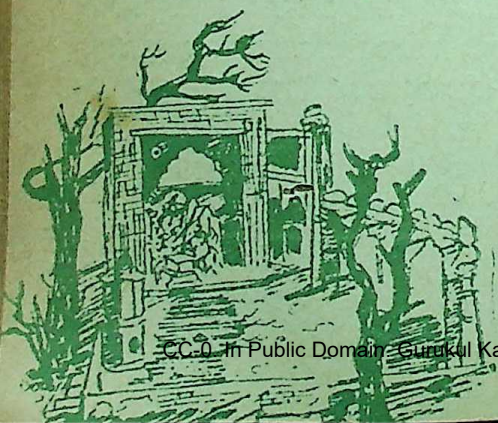
मुझे यह अनुभव इस्तनबुल में हुआ था, जहां मैं १९३८ में अपने विश्व-भ्रमण के दौरान केवल तीन दिनों के लिए गया था।

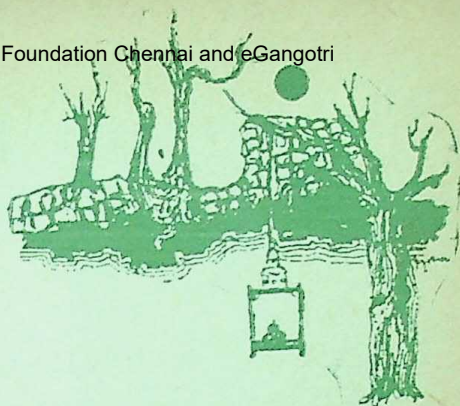
१९३८ में, जब मेरी आयु २४ वर्ष थी, मैंने पानी के जहाज के जरिये सारी दुनिया की सैर की थी। म्यूनिख, पेरिस,

वियेना, बुडापेस्ट, बुखारेस्त यदि स्वतंत्र की सैर करता हुआ, मैं ओरियेंट एक्सप्रेस द्वारा स्वदेश वापस लौटा था। यूरोप यात्रा के अंत में, मैं इस्तनबुल उई कंस्टेंटिनोपुल नगर में रुका था, और तीन दिनों तक वहां रहा था।

जेनेवा, ज्यूरिख, पेरिस, रोम और म्यूनिख जैसे नगरों की रचना ज्यामितीय नमूने पर हुई है, जब कि इस्तनबुल के साथ ऐसा कुछ नहीं है। उसकी रचना एक पेचीदी चित्र-पहेली की याद दिलाती है। शायद इसकी एक वजह यह है कि इसका निर्माण कई बार हुआ और हर बार इसका ढांचा बदला।

तो, इस ऐतिहासिक नगर में पहुंचकर मुझे एक अलौकिक अनुभव यह हुआ कि इस अपरिचित नगर में, जहां मैं पहली बार गया था, घूमते हुए, मुझे किसी से रास्ते या सही पते के लिए पूछना नहीं करना पड़ा। ऐसा लगा कि नगर की सारी सड़कें, सारे स्थान जहाँ





नुमा

माध्यात्मिक
प्रति बो

त अदि स्वतः

ओरिजेंट एका

था। यूरोप

बुल उर्ध्व कोने

था, और तेज

म, रोम और

ना ज्यामितीय

इस्तनबुल के

उत्तरी रक्त

याद दिलाते

जह यह है कि

हुआ और ह

।

र में पहुंचकर

यह हुआ कि

जहां में पहले

ए, मुझे कभी

ने के लिए पुन

सां लगाना

रे स्थान जाने

हते हैं। और, सबसे आश्चर्यजनक
तब ही कि मैंने कहीं कोई भूल नहीं
की। मुझे एक बार भी किसी मानचित्र
पर आश्रित नहीं रहना पड़ा।
कभी-कभी तो ऐसा लगा, जैसे मैं
पहले किसी जन्म में यहां आया था,
और उस जन्म की स्मृति अब पुनः ताजा
हो रही है।

०००

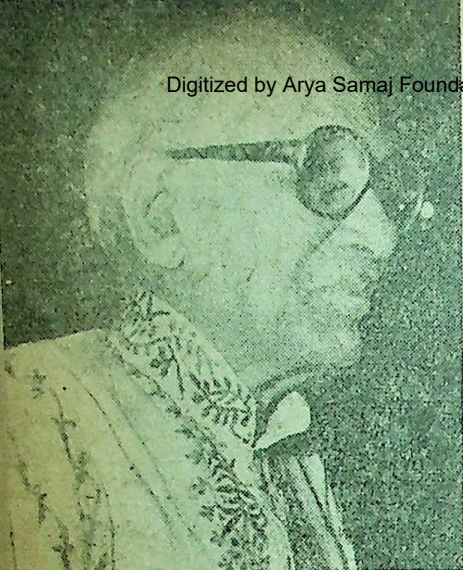
मेरे अब्बाजान एक रोज़नामचा लिखा
थे। उससे मुझे मालूम हुआ कि वे
मकका आए थे, और तब उन्होंने मक्का
के और शहरों की सैर की थी।
मैंने एक छोटा-सा घर है, जिसके
पट्टियां एक पट्टियां पर अरबी में
लिखी हैं—वेत अबू अयूब अंसारी। किंव-
दंतियों के अनुसार जब हज़रत मुहम्मद
मक्का छोड़कर मदीना आने पर मजबूर
होए, तो वहां आकर उन्होंने पाया
मदीना में नये-नये बने सभी मुसलमान
को यह कि हज़रत उन्हीं के साथ रहें।
उनके सामने समस्या खड़ी हो गयी
क्योंकि वहां रहें, और कहां नहीं। जिसके
समय रहते हैं, वह तो खुश हो जायेगा,
और बाकी सब नाराज हो जायेंगे।
इस अनुयायियों में मनमुटाव को मिटाने
के लिये से उन्होंने निश्चय किया कि
जिस स्थान पर मेरा ऊंट चलते-चलते
रुक कर बैठ जायेगा, मैं उसी स्थान पर
रुक कर बैठूंगा।

ऊंट चलते-चलते अबू अयूब अंसारी

के घर के आगे रुका। यही अबू अयूब
अंसारी मेरे आदि पूर्वज थे। उनका
जिक्र इतिहास में भी आता है, जहां
उनका बखान हज़रत मुहम्मद के साहबा
(दोस्तों) में से एक के रूप में किया
गया है।

हज़रत मुहम्मद के इंतकाल के कई साल
बाद, जब खलीफ़ा मुआवियाह ने इस्लामी
साम्राज्य का विस्तार आरंभ किया,
और अपनी सेनाओं को वायजेंतिनियों
के क्षेत्र में आक्रमण के लिए भेजा, तब
उन्हें एक साहबा की ज़रूरत महसूस
हुई, जो सिपाहियों के हौसलों को बुलंद
रख सके। उनकी निगाह अबू अयूब
अंसारी पर, जो साहबाओं में अकेले
बचे थे, पड़ी। उन्होंने अंसारी साहब को
सेनापति बनाकर सेनाओं का नेतृत्व
करने को कहा। मगर उस समय तक
अंसारी साहब की आयु बहुत ही गयी थी,
इसलिए उन्हें पालकी में सवार होकर
सेनाओं का नेतृत्व करना पड़ा।

अबू अयूब ने अपने अफ़सरी से
पहले ही कह दिया था, 'यदि मैं रास्ते में



ख्वाजा अमहद अब्बास

ही मर जाऊं, तो भी मेरी अर्थी सेनाओं के आगे ही रहेगी। यदि तुम्हें लौटने को मजबूर होना पड़े, तो मुझे वहीं गाड़ देना, जहां से तुम वापस लौटीगो।'

कुछ दिन बाद, अंसारी साहब सचमुच चल बसे, मगर उनके मरने के बाद

भी उनका शव सेनाओं का लोके में कॉन्स्टेंटीनोपुल की सीमा तक पहुंचने में सफल हो गयी, वेल् करता रहा। मगर चूँकि सेनाएं इस का नगर को जीतने में असफल रही, इसलिए उन्होंने लौटने से पूर्व, हवत्त के प्यारे साहवा के शव को पूरे सम्मान के साथ लौटने के स्थान पर दफ़ना दिया। जब इस्लामी फौजों ने आगे चलकर उस शहर को जीता, तो शहर में प्रवेश करते पहला काम अंसारी साहब की कब्र पर एक मकबरा बनाने का किया।

और इसे भी मैं अपने पहले और बीते अतीन्द्रिय अनुभव का एक भाग ही कहूँ कि १९३८ में इस पुराने नगर में बने घूमते जब मैंने उस मकबरे को देखा तो लगा, जैसे यह कोई बहुत जगह पहचानी जगह है, जहां मैं अनायास पहुँचा था।

संसार के महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटीन ने एक बालक ने महान बनने का मंत्र पूछा। आइन्सटीन ने उत्तर दिया—'हिम्मत न हारो।' बालक ने पूछा—'कैसे?'

उन्होंने कहा—'मैं जब तुम जैसा ही बच्चा था, तो स्कूल के मेरे साथी मुझे दुर्क कहकर चिढ़ाते थे। वे कभी-कभी मेरी पीठ पर 'बुद्ध' लिख भी दिया करते थे। उनके प्रश्नों का उत्तर मैं न दे पाता था और मुझे नित्य ही बेंच पर खड़ा होना पड़ता था। कभी-कभी तो सारा दिन खड़े-खड़े ही बीतता था। सभी शिक्षक मुझे धिक्काते थे। मुख्यतया गणित-शिक्षक। वे तो कहा करते थे कि मैं सात जन्म में भी गणित में पारंगत हो सकूंगा। मैं लज्जा अनुभव करता और मुझे आत्मग्लानि होती थी। परंतु मैं उन बातों की परवाह न करता और निरंतर विद्वान बनने का प्रयत्न करता रहता। कभी तार असफल होने पर भी मैंने हिम्मत नहीं हारी। और उसी का फल है, जो तुम आज मुझे देख रहे हो।' —डा. गोपालप्रसाद

शेक्सपियर की एक अंग्रेजी कविता

जीवन : एक स्वप्न

हमारे आनंदोत्सव अब समाप्त हुए ।

हमारे ये अभिनेता,

जो कि मैं पहले बता चुका हूँ,

सब प्रेत थे, और

वायु में विलीन हो चुके हैं,

विरल वायु में,

और इस स्वप्न के

आघातहीन ढाँचे के समान,

मेषों के आवरण में ढंकी मीनारें,

अलंकृत राजभवन,

पवित्र मंदिर,

स्वयं यह महान भूमंडल,

हों, जिनका उन्होंने अधिभोग किया था,

वे सब विलीन हो जायेंगे,

इस असार और विलीन हो जाने वाले

बादल के समान,

अपने पीछे

बादलों का कोई लज्जा छोड़े बिना ।

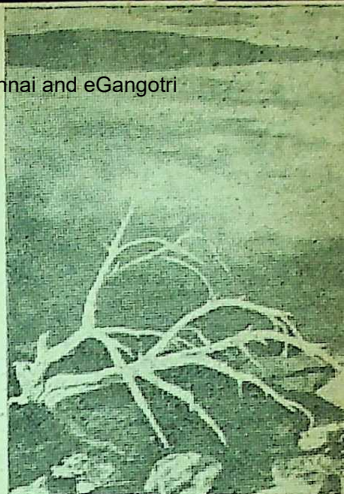
हम उसी उपादान से बने हैं,

जिससे स्वप्न बनते हैं,

और हमारी छोटी-सी जिंदगी,

एक नौद के साथ पूरी होती है ।

रूपान्तर : हंस
(‘द टैम्पेस्ट’ से)



आशारानी वोहरा का प्रासंगिक लेख

प्रेम, काम और यौन के प्रति मूल भारतीय दृष्टि

एक जमाना था, कुछ समय पहले का, जब प्रेम के संदर्भ में वासना की चर्चा करने से लोग कतराते थे। प्रेम का स्थान सर्वोपरि था, वासना उसकी अभिव्यक्ति का एक प्रकार। और इस 'प्रकार' को कोई विशेष महत्ता नहीं दी जाती थी, प्रतिष्ठा तो बिलकुल नहीं। सैक्स की चर्चा खुले आम वर्जित थी। उसके लिए निकट मित्र-मंडली की सीमित उपस्थिति की अपेक्षा होती थी या फिर एकांत अंधेरी जगहों की।

यह हाल केवल भारत में ही नहीं, आज मुक्त यौन व उसकी खुली चर्चा में अग्रणी पश्चिमी देश भी इसके अन्वाध न थे। विक्टोरियन युग में ब्रिटेन में कोई व्यक्ति सार्वजनिक स्थल पर इस तरह की चर्चा का साहस नहीं कर सकता था। यहां तक कि प्रसिद्ध दार्शनिक और मनो-वैज्ञानिक विलियम जैम्स भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रिन्सिपल्स आफ साइको-लोजी' में सैक्स के बारे में बारीकियों की चर्चा को अप्रिय कहकर टाल गये

नवनीत

और इस महत्त्वपूर्ण विषय को अति संक्षिप्त कर गये।

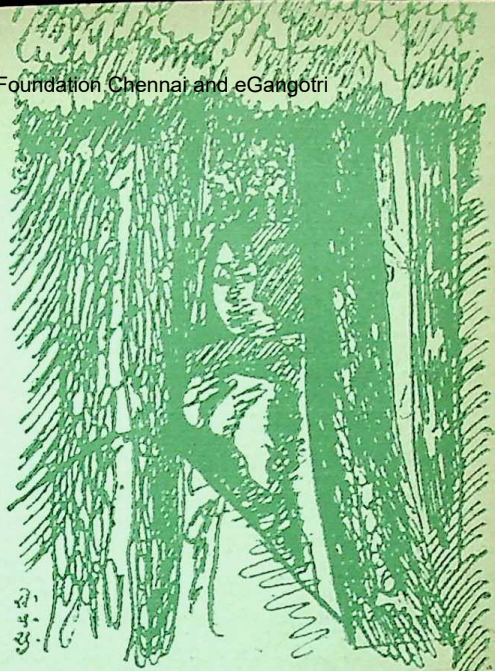
भारत में यह दबी-दबी मध्यकाल के बाद अनेकानेक सामाजिक विधि-निषेधों के विकास के साथ अत्यन्त अन्वयता हमारे विद्वान ऋषि बहुत प्राचीन काल में इसे जो वैज्ञानिक रूप दे चुके थे, पश्चिम फ्रायडवाद से उपजी व्याख्या से यौन-प्राति से गुजरने के बाद अब उस शीघ्र आत्म-विज्ञान की खोज और उन्मुख हुआ है।



चित्र : दिनेश शाह

पश्चिम में सैक्स को खोलकर चर्चा सबसे पहले उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरीार्ध में फ्रायड ने की। फिर प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जैसे युग ही बदल गया। जहां वासना के दमन या को श्रेय माना जाता था, अब दमन को वर्जित मानकर सारा विश्लेषणवाद इसी के इर्द-गिर्द लगा। यद्यपि फ्रायड के अनुयायियों में से एक एडलर ने फ्रायड के कई सिद्धांतों की काट तभी आरंभ कर दी थी, लेकिन

जैसे विश्व भर में मनुष्य के विचार-
 क्षेत्र के क्षेत्र में फ्रायडीय विचार-
 क्षेत्र ने एक ऐसा तूफान ला दिया कि
 तीन चौथाई सदी तक दुष्प्रभाव
 फैला रहा, पीड़ित रही और अंत में
 शिकार हो छटपटाने लगी।
 अंत में मर गया। सेक्स के संदर्भ में
 जो चर्चा तक अप्रासंगिक हो गयी।
 अज्ञान और अंतरंगता का स्थान
 चरित्र के प्रदर्शन ने ले लिया।
 अपनी अस्मिता और सत्ता भूल
 नैतिक गतिविधियों के हथका खिलौना
 बना। अतः निःसंकोच कहा जा सकता
 है कि नैतिक प्रगति के आधार पर मानव-
 से गुजरे के विकास में पश्चिम से जो अनेक
 उस भीतर है, शायद उनमें सबसे बड़ी भूल
 न की खोज है कि उसने विज्ञान का दुरुपयोग
 हुआ है। और मनुष्य-शरीर को भी एक
 में सेक्स को मान आदमी को यांत्रिक जिंदगी
 चर्चा सबसे अधिक शोषण देने के लिए विवश कर
 ताबदी के लिए। लेकिन देर-संवेर भूलों का परि-
 फ्रायड ने हमें सामने आता ही है। पहले वासना
 युद्ध के बाद हमने कुछ समस्याएं खड़ी की थीं,
 ता। जहां पर हमने खुली छूट ने उससे अधिक व
 या अत्यधिक समस्याएं खड़ी कर दी हैं।
 था, अब हमें समस्या
 र सारा मनुष्य से आज जब भारत भी इन
 इर्द-गिर्द प्रभावों की चपेट में आता जा रहा
 के अनुयायी बन गया यह उचित समय नहीं है कि
 के कई विद्वानों ने काम और यौन के संदर्भ में भारतीय
 र दी थी, तब से फिर से व्याख्यायित करें,



ताकि फ्रायडवाद के प्रभाव की प्रारंभिक
 प्रतिक्रिया से लेकर आधुनिक 'परमि-
 सिव सोसाइटी' और 'स्विगर्स' तक की
 परिणति में पश्चिमी यौन-दर्शन और
 मूल भारतीय यौन-दर्शन के तुलनात्मक
 विवेचन से आगे की राह खोजी जा सके।
ब्रह्मानंद सहोदर

फ्रायड, युंग, एडलर से बहुत पहले
 हमारे यहां यौन-विज्ञान के महापंडित
 व 'कामसूत्र' के रचयिता वात्स्यायन
 पैदा हो चुके थे। और उससे भी पहले
 हमारे ऋषि-मुनि वर्षों की साधना के
 बाद उसे ऐसे आध्यात्मिक धरातल पर
 व्याख्यायित कर चुके थे, जिसका विशुद्ध
 विज्ञान और मनोविज्ञान से कहीं विरोध
 नहीं। भारत में काम की प्रतिष्ठा व
 गरिमा अद्वितीय रही है। इंद्र, वरुण,

अग्नि की तरह काम भी एक देवता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-जीवन की प्रथम चार अनिवार्यताओं में उसका स्थान है। कामानन्द को हमारे शास्त्रों में 'ब्रह्मानन्द सहोदर' तक कहा गया है। वह केवल भोग तक सीमित नहीं है, इससे आगे वह सृजन की सभी सीमाएं स्पर्श करता है और ईश्वरीय साक्षात्कार के परमानन्द तक जाता है। स्त्री-पुरुष के बीच का सारा द्वैत नष्ट कर उन्हें एक प्राण, एकात्म कर अद्वैत में प्रविष्ट कराता है।

स्वामी रामतीर्थ भारतीय पुनर्जागरण के मंत्रद्रष्टा थे। वे वेदान्ती और योगी होकर भी गृहस्थ और कर्मठता में विश्वास करते थे और इसी में जीवन की सफलता मानते थे। उनके अनुसार भारतीय प्रेम, काम और यौन की व्याख्या यह है :

प्रेम एक रोमान भर नहीं है, एक आत्मीयता है। अंतरंगता है। एक विश्वास है। एक शक्ति है। जीवन के लिए एक सार्थक प्रेरणा है। प्रेम बंधन नहीं है, मुक्ति है। प्रेम का अर्थ एक-दूसरे को समर्पण कर एक-दूसरे के भीतर कैद हो जाना नहीं है, केवल अपना पृथक् अस्तित्व खोना नहीं है, केवल व्यक्तिगत अहम् से ऊपर उठकर आत्मा के स्वरूप को प्राप्त करना है। पत्नी का मार्ग पति की उन्नति में बाधक हो या पति द्वारा पत्नी की निजी स्वतंत्रता का अपहरण हो—ये दोनों स्थितियां दाम्पत्य में बाधक हैं। रात्रि के देह-

मिलन की दिन भर आध्यात्मिक निरुत्थान सी अनुभूति रहनी चाहिये। पति नहीं होती है तो आत्म-विस्मरण और क्षतिपूर्ति करें। 'पति परमेश्वर का अर्थ पति का पत्नी से ऊंचा नहीं, उस समय पति से आलिंगन अनुभूति ईश्वर से आलिंगन जैसी इसलिए ऐसा कहा गया है। परमेश्वर का भी यही अर्थ है—शरीर के माध्यम से ईश्वरीय संपर्क की अनुभूति। प्रेम परिपूर्णता और उसकी परम अनुभूति प्रेमपूर्ण यौन से ही संभव है। कहीं ऐसा परम सुख बाहर किसी क्रिया या विधान में?

प्रेम के अभाव में यांत्रिक क्रिया समय बाद विक्षोभ पैदा करती है। रूप की भी अधिक परवाह नहीं करे। जबकि शरीर-सौंदर्य पर आधारित में जल्दी ही खीझ व दरार पैदा लगती है। बढ़ती हुई विषयासक्ति वासना की कोई सीमा नहीं होती। बढ़ाते जाने से तृप्ति भी वैसे ही दूर होती जाती है। 'पानी बिना पियासी, देखत आवे हांसी' जैसी बन आती है। इसीलिए कहा 'मरना सरल है, जीना कठिन' के लिए साधना करनी पड़ती है। 'से ऊंचे उठने पर वे हमारे पीछे लपटें उनसे याचना की वृत्ति में मिलती है। दांपत्य इसी साधना विभेद का प्रतीक है। इसमें ऐसी

आवश्यक है कि मन पर कोई बोझ
पति-पत्नी में से एक
दूसरा शासित, उच्च या हीन,
दुर्बल माना जाये तो जो अहंकार
उपजता है, वह अद्वैत
नहीं।

आत्मों की
समाप्ति
है। परमात्मा
उस
समान
वह
है
में

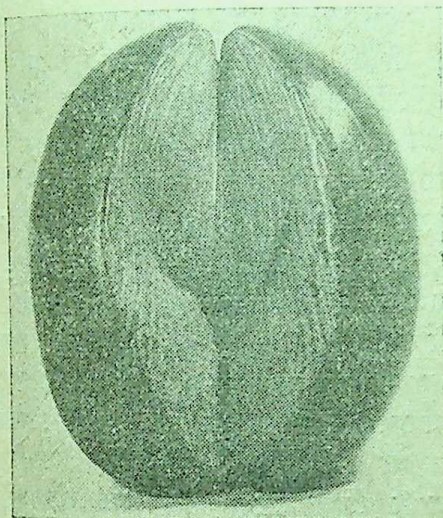
दूसरी
का
मूल्य
मूल्य
की
परही
होते
की
लिप्तता

अस्वीकार दोनों ही स्थितियां
को खोखला और निरर्थक
हैं। आनंद स्त्री में नहीं, स्त्री-
में नहीं, प्रेम-पात्र में केंद्रित होता
को स्रोत में केंद्रित होता है।
निंदा या परित्याग करके भी
वह एक अप्राकृतिक स्थिति
में रहते, उसका भोग

करते हुए ही उससे ऊंचे उठने में सुख
है। आसक्ति और भय दोनों से ऊंचे
उठने में आनंद है। 'मुझमें घुलमिल
जाओ, आनंद का सागर बन जाओ, फिर
पास रहो या दूर, अंतर नहीं पड़ेगा',
अभेद की ऐसी स्थिति में ही समस्या का
समाधान है।

प्रेम का विस्तार

एक-दूसरे से
प्राप्त प्रेम का
ही जब बाहर
विस्तार होता
है तो मनुष्य
प्राणिमात्र से
प्रेम करने लगता
है। पति-पत्नी
के प्रेम की सीमा
का विस्तार ही
परमात्मा से
साक्षात्कार है।
सांसारिक प्रेम के
माध्यम से ईश्व-
रीय प्रेम तक



कामाख्या का एक नारिकेल प्रतीक :

दक्षिण भारत

पहुँचें, तभी संपूर्ण जगत के साथ तादात्म्य की
ऊंची स्थिति प्राप्त होती है और 'वसुधैव
कुटुंबकम्' की धारणा विकसित होती है।
'यह देह, जो ईश्वर का अंश है, इसके
सर्वोच्च को अपने सर्वप्रिय में लीन करें'—
इस तरह मन में उच्च सत्ता का स्मरण
लेकर ही चरम अनुभूति प्राप्त होती है
और अपने भीतर स्वर्ग का सतत आभास

मिलता है।

भारतीय दर्शन में यह जो प्रेम की सीमा का विस्तार है, उसमें पति-पत्नी में से किसी एक की भी अधिकार-भावना के लिए कोई स्थान नहीं। वह यदि है तो एकात्म में, अद्वैत में बाधक है। पुरुष स्त्री पर हावी होगा तो उसे आनंद में सह-भागी नहीं बना सकता। भारतीय दृष्टि यहां प्राकृतिक भी है, तर्कपूर्ण वैज्ञानिक भी, आध्यात्मिक भी, जिसके अनुसार, अधिकार जमाने की भावना अद्वैत को समाप्त कर न केवल मिलन के परमानंद को अखंडित करती है, यह स्वार्थी वृत्ति पारिवारिक कलह को भी जन्म देती है।

कामना एक विस्तृत व उलझा विषय है। तलवार मारती भी है, रक्षा भी करती है। अग्नि जलती भी है, उसके बिना हमारा काम भी नहीं चलता। हनि केवल दुरुपयोग से ही होती है। भ्रमण स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है, पर उसमें अत्यधिक थकान हो जाये तो बेचैनी व रुग्णता पैदा होती है। यही बात संबंधों पर भी लागू है। स्वभाव को वशवर्ती करने से कभी निराशा नहीं होती। संयम का बस इतना ही अर्थ है, स्वयं को मारना नहीं। इन्द्रिय-दमन भी अनुचित है, उनके वशीभूत होना भी। अधिकार का प्रयोग भी तब श्रेयस्कर हो जाता है

नवनीत



जब दृष्टि में समभाव हो और भीतर से आवज उठे 'अहम् ब्रह्मस्मि'—मैं स्वयं में ईश्वर हूँ। सभी मनुष्यों में, प्राणि-मन्त्र में ईश्वर का अंश है। इस स्थिति में पहंचकर ईश्वर से एक मूर्खता होगी और मनुष्य से इतराकर रहता। अपने आपको जानने से ही निकल जाना है। किसी भी तरह से विहीन होकर ही वास्तविक मिलन की अनुभूति प्राप्त की जा सकती है। थोड़ा भी बीच में आवेगा तो परस्पर में बाधक होगा।

इस प्रकार अवयवों में अभिन्न होने का ही अर्थ है अद्वैत, एकात्म अस्तित्व हो जाना, जहां बहुरूपी दिवावदी शब्दों की आवश्यकता नहीं पड़ती। भारतीय परंपरा में

की यह विलक्षणता है कि भारतीय पति सार्वजनिक रूप से पत्नी का आदर-सम्मान नहीं करता। पति पत्नी की तरह बात-बात में 'आई लव यू'—मैं तुमसे प्रेम करता हूँ—नहीं दुहराता। प्रेम-प्रदर्शन में वह पत्नी को प्रेम नहीं देता है। पर भीतर से वह पत्नी को प्रेम इज्जत देता है। उनके लिए सदैव न्योछावर करने को तैयार रहता है। समय पर उसके लिए कुछ भी करेगा।

(शेषांश पृष्ठ १५९ पर)

हो और
अहम्
। सभी
का अंग है
ईश्वर से
से डरना
नने से ही
भी तरह
विक्रमि
सफती है।
ग तो प
होगा।

कार अमय
ने का ही
काम अत
जहाँ वह
शब्दों की
नहीं
रातीय प
है कि भा
से पत्नी
करता। प
गत में 'व
नहीं क
प्रेम क
र्जन में व
पत्नी को
के लिए स
यार रह
कुछ भी
(५९ पर)

विष्णु प्रभाकर की आत्मकथा का एक और आंतरिक प्रसंग

तुम मेरा हिस्सा जो थीं



संभार करने की अद्भुत क्षमता थी।
तुम्हीं ही क्षमता थी अपने स्वाभिमान
रक्षणा रखने की। लगन-बन्धन के डेढ़
बाद ही जब एक दूसरे का हिस्सा बनने
द्वारा आकुलता चरम सीमा पर थी,
जने मेरी किस बात से उसके मन पर
को ठेस लगी। उसके लिए प्रेम प्रेम
स्वाभिमान स्वाभिमान। प्रेम के
स्वाभिमान की बलि देना उसके
प्रेम का अपमान था। जनवरी १९३९
वह यह लिख सकती थी—'आप
पत्नी पर विठाने योग्य पति हैं।'
सिख पटना के बाद दिसम्बर १९३९ में
प्रस्ताव पत्र भी उसी ने लिखा था :
प्रिय पुरुष,
सुन्दर सेवा में निवेदन है कि पुरुष
हैं—मैं शक्तिशाली हूँ, समर्थ हूँ
तो मे। इसलिए वह स्त्री जाति को सदैव
करने की कोशिश करता है। नारी को

वह अबला, अशक्त, कायर और न जाने
क्या-क्या समझता है। वह किसी भी बात
में नारी को शासन करते नहीं देख सकता
है। जहाँ उसने नारी में तनिक (भी)
स्वतंत्रता देखी कि उसका अहम् भाव
एकदम जाग्रत हो उठता है।

यह तो मानी हुई बात है कि नारी के
बिना सृष्टि नहीं चल सकती। नहीं तो
में समझती हूँ अच्छा होता यदि विधि के
विधान को पलटकर स्त्री जाति का अस्तित्व
ही मिटा दिया जाता। लेकिन यह तो
एक व्यर्थ-सी बात है। हां, इतना अवश्य
होता कि नारी को शूष्क, हृदयहीन होना
चाहिये था। नारी-पुरुष का अलग रहना
तो असम्भव है। एक दूसरे के संसर्ग में
अवश्य रहना पड़ेगा। और जब एक स्त्री
में थोड़ी भी ज्ञान-शक्ति रहेगी यह दबाव
सहना उसके लिए असह्य है। फिर आधु-
निक जागृति के युग में तो बहुत ही कठिन

है। इसलिए डर है कहीं पुरुष को स्त्री की ठोकर न खानी पड़े।

ईश्वर तो एक बार सृष्टि की रचना कर चुका। अब तो सामर्थ्यवान पुरुष को ही चाहिये कि वह इस मशीनों के युग में नये ढंग से स्त्री की रचना करे। अच्छा रहेगा कि वह कन्या को जन्म न देने में समर्थ हो, पुत्र ही पुत्र पैदा करे और नारी की आवश्यकता को पूरी करने के लिए मिट्टी की पुतलियां बनाकर कल द्वारा उन्हें चलाये-फिराये और सृष्टि-रचना के साथ ही अपना मनोरंजन पूर्ण करे।

उस शक्तिशाली और सामर्थ्यवान पुरुष के लिए यह काम कठिन नहीं है। वह 'समर्थ' है—'समर्थ'। यदि वह अपना शासन दृढ़ रखना चाहता है तो शीघ्र ही उसे नव वर्ष के साथ ही साथ इस नवीन समस्या को हल करने का प्रयत्न करना चाहिये। नहीं तो गया वक्त हाथ आता नहीं।

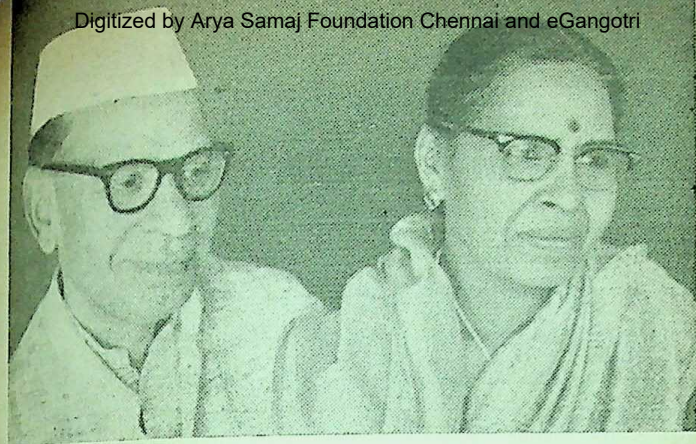
लेकिन साथ ही (उसे) यह भी जाने रखना चाहिये (कि) स्त्री ने कभी पुरुष पर शासन करना नहीं चाहा। और न वर्तमान तथा भविष्य में (ऐसी) आशा है। वह तो केवल उस पुरुष के, जिसे उसने अपने शरीर से जन्म देकर अपनी गोद में दुलार से बड़ा किया है, निष्कपट और सच्चे प्रेम की भूखी है। लेकिन मैं देखती हूँ, उसे (अपनी इच्छा से) निराश होना पड़ेगा; क्योंकि पुरुष ऐसा करने में गर्व-हानि समझता है।

कहने को तो बहुत कुछ है। स्वसन होने के कारण (अभी) इतना ही कहें। अनुचित के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

शुभचिंतिका—कोई दूसरा यह पत्र उसकी मानसिकता का प्रतिबिम्ब है। जीवन के अंतिम क्षण तक इस मानसिकता में कोई अन्तर नहीं आया। अहंकार उस सरल-प्राणा को छू नहीं पाया, पर स्वाभिमान पर तनिक भी धक्का आती तो तड़प उठती। प्रेमी यदि प्रेमी के स्वाभिमान का सम्मान नहीं कर सकता तो वह प्रेम भी नहीं कर सकता। मुझे पत्र इतना अच्छा लगा कि मैंने इसे उस समय के सुपरिचित हिन्दी साप्ताहिक 'वीर अर्जुन' में छपवा दिया। शीघ्र रखा—'पुरुष के नाम एक पत्र' वह इस रहस्य को तभी जान सकी जब वह प्रकाशित हो गया।

मैं जानता हूँ, वह खुश हुई थी पर साथ ही यह भी कहा था—'हमें इन बातों को सार्वजनिक नहीं बनाना चाहिये।' पर उस घटना के बाद हममें संधि हो गयी। मैंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया तो भी उसने कहा था, 'पुरुष अपने स्वार्थ के कारण ही झुकता है। प्रियतम, आपने भी कहीं इसीलिए तो....'

कहते-कहते वह फूट-फूटकर रो उठी थी। बड़ी कठिनता से शान्त कर सका था तब उसे। नारी-पुरुष के संबंधों को लेकर बहुत ऊंची धारणा थी उसके मन में। जब-जब हम दोनों के बीच मनमुटाव



एक शाश्वत युगल

तो उसका कारण यही स्वाभिमान
शरणा रही। किसी सांसारिक सुख-
का लिए उसने कभी आग्रह या
नहीं किया। नारी को आभूषण
प्रिय होते हैं, लेकिन विवाह के डेढ़
बाद ही उसने मुझे लिखा था, 'जेवर
विय में आप लिखते हैं कि माताजी
कभी रोने भी लगती हैं। मुझे बड़ा
है आप लोग मुझे इन मायावी अलं-
कारों से ही सुसज्जित करना चाहते हैं।
किन्तु शब्दों में कहूं कि आप माताजी
को बता दें कि मैं गहनों के बिल्कुल विरोध
हूँ। आप सच मानिये यह जो कुछ मेरे
है, सब लोकलाज के लिए ही मैंने
है। दुनिया के कहने की मुझे परवाह
नहीं, लेकिन फिर भी कुछ बातें माननी
हैं...।'
मुझे याद नहीं पड़ता कि प्रेमाकुलता
के उन प्रारंभिक वर्षों में मैंने कभी उसे
दिया हो। संयुक्त परिवार

के शासन में उसे जो मिला वही
उसने स्वीकार किया। जैसे रहने का
आदेश मिला वैसे रही। मेरे पिता परम
वैष्णव थे—छूत-छात की सीमा न थी।
बहुएं बिना खाये-पिये सवेरे ही स्नान
करके जो रसोईघर में प्रवेश करतीं तो
सबके खा-पी चुकने के बाद ही उन्हें मुक्ति
मिलती। इतने कड़े अनुशासन में रहना
आज की नारी के लिए असम्भव है। मूल
अधिकारों के हनन का प्रश्न उठ खड़ा
होता है तुरन्त। लेकिन उन प्रारंभिक
वर्षों में हम दोनों न तो कभी अकेले सिनेमा
देखने गये, न कभी मैं उसे यात्रा में साथ
ले जा सका। एकान्त पाना असम्भव जैसा
था। फिर भी स्नेह और प्यार की वह
डोर जो हम सबको बांधे हुई थी अपनी
पवित्रता में इतनी सुदृढ़ थी कि एक क्षण
को भी विद्रोह का स्वप्न नहीं देखा किसी
ने। उसका मुख्य कारण थी हमारी मां।
उसकी सृजबूझ और उसके त्याग की

नींव पर ही हमारी प्रगति का राजमहल खड़ा हुआ था। और फिर सुरक्षा का आश्वासन कितना बड़ा प्रलोभन होता है संयुक्त परिवार में।

तब केवल एक बार उसने एक यात्रा में साथ जाने की हठ की थी। बहुत दिनों बाद उसकी याद करके पश्चात्ताप से दग्ध स्वर में उसने कहा था, 'न जाने तब वह दुर्बुद्धि मुझमें कहां से आ गयी थी।'।

ऐसा नहीं कि वह मां के कड़े अनुशासन के दंश को महसूस नहीं करती थी, परन्तु वह यह भी बहुत अच्छी तरह जानती थी कि इस दंश के पीछे पवित्र प्यार और सहज स्नेह का निरन्तर प्रवहमान स्रोत है। बहुत गहरे डूबकर उसने मां के अवदान को पहचाना था।

उस दिन मैं लिख रहा था और वह मेरे सामने बैठी अपराध स्वीकृति के मूड में न जाने क्या-क्या कहे जा रही थी। सहसा मैं चौंक उठा। उसका कण्ठ अवरुद्ध था—'एक आपकी मां थी सबको जोड़े रही। एक मैं हूँ...'।

ऐसे क्षण जीवन में बहुत बार आये। कह उठती, 'मैं जानती हूँ मैं आपके योग्य नहीं हूँ, पर अब तो जैसी भी हूँ, निभा लो....।'।

हर बार मुझे लगता—योग्य तो मैं ही नहीं हूँ उसके। निश्छल स्नेह के बिना यह

सहज आत्म-स्वीकृति कहां सम्भव हो सकती है। यह निश्छलता मेरे पास क्यों है? हां, यह विश्वास मैंने उसे बर्बाद दिला दिया था कि मैं कभी भी उसने साथ विश्वासघात नहीं करूंगा। इसीलिए जब कभी भी वह किसी से चोट खाती दुखी हो उठती तो मैं उसे याद दिला देता था कि उसकी शादी मेरे साथ हुई है....

मैंने उसे लिखा भी था, 'विश्वास रखो मैं तुमसे कभी नाराज नहीं होता। तुम ही नाराज रहूंगा तो और कौन-सा मुझसे है जो दुखी दिव को सांत्वना देगा।' (१९४४) '... आदमी कितना ही शक्तिशाली हो सके तारी का सहारा चाहिये ही। वह मरने की क्षणिक दुःख को स्पष्ट ही उसकी शक्ति है।' (१९६३)



चित्र : दिनेश शाह

लेकिन उलझना-टकराना तो मनुष्य का स्वभाव है। हम स्वयं बार-बार उलझ पड़ते—चाय के प्याले में तुफान उठाते वैसे ही। हर टकराव के बाद मैं धोखा करता, 'हम अब साथ नहीं रह सकते' हमें अलग हो जाना चाहिये। अदालत निश्चित करेगी वह मासिक वृत्ति में दे रहे हूंगा।'।

तुरन्त उत्तर मिलता, 'जब मैं साथ नहीं रह सकती तो क्यों लूंगी आपके पैरे अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति मुझमें।'।

हों सम्भव है। मेरी आत्मीयता के क्षणों में इन मेरे पास रहने से उसे बर्बाद करनी भी पड़ेगी। इसीलिए मैंने उसे चोट लगा दिया। याद दिला देता हूँ। 'विश्वास रखो, मैं गहरे रहते हूँ। अनचाहे-अनजाने में कभी ऐसा घट जाता है जो सात कौन-सा सहायक होता है। उसी के दंश को अनुभव देगा।' (१९४४) कि नारी के निरादर का मुख्य तथाली हो गया है। आप लोग (यानी पुरुष) का गहरा निरादर करें तो (इसमें) उसकी शक्ति का बुरा उपयोग करके भी अपने को उठे हुए रूप में पाने पर उसका उतना नाराज तो मैं नहीं कर पाती, जितना बार-बार उठता हूँ।

नाराज उठता हूँ। बार-बार नौकरियां छोड़ीं, अनेक नाराज अस्वीकार किये, सरकारी नौकरियों की अवहेलना की। किसके बल पर मैं 'साधारण लड़की' तो सहती थी लेकिन एक बार भी तो उसने मेरा नहीं किया। सदा मेरे कंधे थप-थप रही। लेकिन जब 'आवारा मसीहा' ने मुझे अपने पैरों पर उठाया और दिल्ली साहित्य कला मेरे सम्मान करने की घोषणा की तो मैंने मुझे कहा, 'देखो बहुत ना-

ना कर चुके। अब हां करना भी सीखो।' वह दृश्य मैं कभी नहीं भूल सकता।

अपनी छोटी-सी रसोई में जिसमें दो आदमी भी नहीं खड़े हो सकते, वह तब बरतन मांज रही थी। हाथ राख-मिट्टी से काले हो रहे थे। चेहरे पर आयु की थकान थी। आंखों में हल्की-हल्की मुस्कान थी। पर कितनी कष्ट लगी मुझे वह उस क्षण। मेरे अन्तर में जैसे शूल बनकर चुभ



चित्र : संतोष जड़िया

उठी वह। उस एक क्षण में मेरा अस्तित्व घूम गया। मैंने धीरे से कहा, 'अच्छी बात है। अब मना नहीं कहूंगा।' जैसे नियति उसकी स्वीकृति की ही राह देख रही थी। मान-सम्मान की बाढ़-सी आ गयी। सब कुछ को सहेज लेती वह, पर अपने लिए कुछ नहीं रखती। सब कुछ मुझे ही लौटा देती या बच्चों में बांट देती। कहती—'मेरा ही तो है सब कुछ।' बिलकुल मेरी मां का स्वभाव पाया

था उसने ।

रोग शैया पर एक दिन बोली, 'क्या वह सब पैसा मेरे ही इलाज के लिए ही आया था ?'

मैंने धीरे-से कहा, 'तुम चिन्ता मत करो ।'

बोली, 'चिन्ता मुझे नहीं है, पर देखो तो संकट टला कहां, जरा सांस आयी थी कि मैं बीमार हो गयी ।'

उस दिन हमारे लग्नबन्धन की वर्ष-गांठ थी । आग्रह करके एक आधुनिक बड़े रेस्तरां में ले गया मैं उसे । वहां की चका-चाँध और बिल देखकर बोली, 'ऐसे रेस्तरां में आने से क्या अधिक प्रेम हो जाता है ?'

.....

'बताओ, जवाब दो । क्या अपना काफी हाउस बुरा है ?'

कभी-कदाच प्रथम श्रेणी के कूपे में चलने का आग्रह करता तो वही तर्क, 'क्यों पैसा बर्बाद करते हो ?'

मैं कहता, 'पैसे की बात नहीं है, एकान्त मिलेगा ।'

हंस पड़ती, 'बुढ़ापे में क्या होगा एकान्त का । जब जरूरत थी तब तो ...'

बात काट देता मैं, 'अभी क्या हम बूढ़े हो गये हैं ?'

तुरन्त उत्तर देती, 'अपने मन से नहीं हुए हैं, पर दुनिया क्या मन को देखती है । आओ सब कुछ छोड़कर दोनों निकल पड़ें कहीं.....'

बार-बार एक प्रश्न का सामना करना पड़ा है—क्या मात्र ममित्री ही जिंदा जा सकता है ?

जानता हूँ नहीं जिंदा जा सकता, पर वही असम्भव मेरे लिए सम्भव हो गया क्योंकि वह मेरी पत्नी थी; क्योंकि संयुक्त परिवार में रहता था । और जानता हूँ संयुक्त परिवार भी मेरी पत्नी न कर पाता यदि वह मेरे साथ न बनी रहती । कभी भी तो किसी चीज की नहीं की उसने । बच्चे कहते, 'अम्मा, साड़ी अच्छी नहीं है । ताईजी, आप साड़ी बांधना भी नहीं जानती कि ऊंची है ।' उसके भाई के घर की सेवा तक टोक देती, 'बुआजी, फूफाजी के जाने जाते वक्त तो ढंग के कपड़े पहन कि करो ।' हंसकर टाल जाती सबको । उनकी मांग बस एक ही थी, निरन्तर सहानुभूति चाहिये था उसे मेरा ।

उस दिन उसकी छोटी बहन ने एक पाकर मुझसे कहा, 'भाई साहब ! यह क्या कहने लगे हैं कि अब आप कुछ छोड़कर घूमने निकल पड़ेंगे ।'

'क्यों, इसमें बुरा क्या है ?' मैंने बुरा से जवाब दिया ।

'बुरा तो कुछ नहीं है, पर आप यह कहते हैं कि आप बीबी (बहन) को छोड़ जायेंगे ।'

'वह अपने बेटे-पोतों के साथ न ।' मैं अब भी हंस रहा था ।

'नहीं, नहीं, वह आपके बिना नहीं'

oooooooooooooooooooooooooooooooo

मैं बांसुरी बन गया

मृत्यु-शैया पर पड़े, रवींद्रनाथ से उनके एक परिचित ने शायद उन्हें प्रसन्न करने के लिए कहा, 'आप कितने भाग्यशाली हैं कि अपने गीतों के माध्यम से आपने 'उसे' पा लिया ! अमृत-स्वर है उनका ।'

रवींद्रनाथ ने उत्तर दिया, 'वे मेरे गीत नहीं थे ।'

आश्चर्यचकित परिचित ने पूछा, 'आपके गीत नहीं थे ? तो फिर किसके थे ?'

'वे मेरे गीत इसलिए नहीं हैं; क्योंकि उन्हें गाते समय 'मैं' मौजूद नहीं था । 'वही' था । मैं मात्र एक बांसुरी बन गया था, जिस पर 'उसने' उन गीतों को गाया । मेरा महत्त्व सिर्फ इतना ही माना जा सकता है कि मेरे माध्यम से 'उसके' उन गीतों को लोगों ने सुना । उन गीतों में जो अमृत-स्वर तुम्हें सुनायी देता है, वह 'उसका' है, 'मेरा' नहीं ।'

oooooooooooooooooooooooooooooooo
सोते समय भी, जागते समय भी, सो भटकता फिरता हूँ । अमरीकी कवि राबिन्सन जेफर्स की वे पंक्तियाँ याद आती हैं जो उसने अपनी पत्नी की मृत्यु पर कही थीं — 'यह नहीं कि मैं तुम्हारे बिना अकेला रह नहीं सकता, (पर) मैं टूट गया हूँ— तुम मेरा हिस्सा जो थीं ।'

—८१८, कुंडेवालान, अजमेरी गेट,
दिल्ली-११०००६



एन. कौर की पंजाबी कहानी



उखड़े हुए वृक्ष

पेड़-पौधों के साथ उसे वचपन से ही मोह था। गहरा मोह। खिले फूल हमेशा उसे एक जादू की तरह सम्मोहित कर लेते थे। वह सोचती कि कितना प्यारा उद्देश्य था फूलों के अस्तित्व का—चारेक दिन के लिए आना, महकती मुस्कानें बांटना और धरती की हथेली पर, चुटकी भर बीज धरकर चलते होना, जैसे लौटकर आने का इकरारनामा लिख दिया हो। कभी कभार उसे लगता मानों उसके भीतर भी किसी फूल की आत्मा भटक रही हो। बड़े-बड़े वृक्ष उसे बलवान शख्सियतों वाले बुजुर्गों जैसे लगते, उनकी भुजाओं में आदमी के लिए अतंत अपनापन था और एक दुर्ग-सी सुरक्षा का एहसास भी।

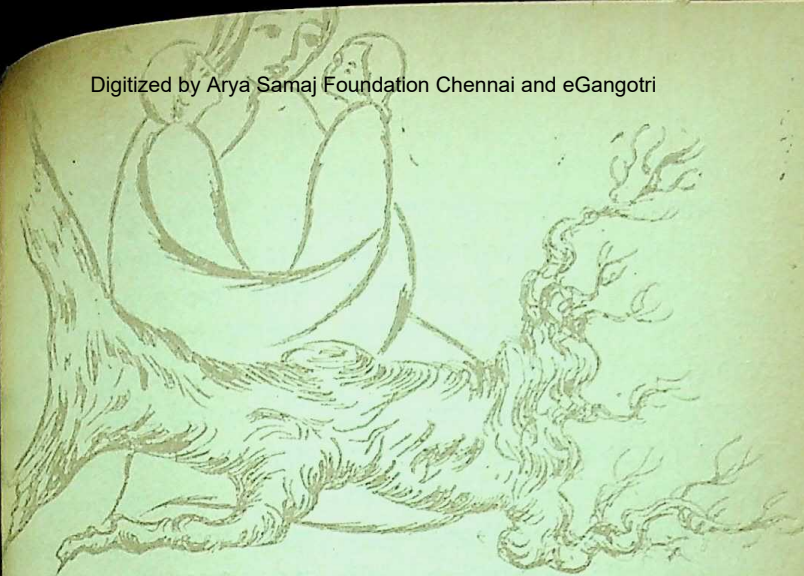
जिस दिन से उसके पड़ोस में एक नया पार्क बनने लगा था, वह बहुत खुश थी। जब स्कूल से आकर बच्चे अपने कामों में व्यस्त हो जाते और उसका पति टेलि-विजन पर शाम को खबरें देखने लगता, वह प्रायः नये पार्क की ओर चल देती। पार्क में लगे नये बेझ-बूटे उसे नये चेहरों जैसे लगते। दिन भर घर में छोटे-मोटे काम करते हुए उसकी सांसों में भरी घृटन

और थकावट कहीं उड़ जाती, और उसका मन नये चेहरों की रौनक से भर जाता। वह हलके फूल-से शरीर के साथ लौटती।

एक दिन सबसे पहले उसकी नजर पार्क में खड़े हुए एक टुक पर पड़ी। वह जल्दी-जल्दी टुक तक गयी—नये चेहरों का स्वागत करना चाहती थी। टुक पर दो बड़े-बड़े वृक्ष बड़े थे—जड़ों और पत्तों सहित, होर जीवित वृक्ष। उसके शरीर में एक की लकीर-सी मचल उठी थी। पांव मानों वहीं स्थिर हो गये थे।

‘इतने बड़े-बड़े वृक्ष कैसे किसी जमीन में अपनी जड़ें जमा सकेंगे?’ खामोश प्रश्न उसके मन में कांटे-सा निर्दयता पर काफी गुस्सा आया। उस शाम घर लौटने पर भी वह गुम-सी रही थी। खाने की मेज पर उसने कोई विशेष बात नहीं की। एकाध बार उसने वृक्षों की बात की थी, लेकिन वृक्षों की कोशिश की थी, लेकिन मानों उसका साथ ही नहीं दे खाने के बाद आज वह जल्दी ही

रूपांतरकार : फूलचन्द मानव



ती, और उक्त
से भर जाता
के साथ

उसकी तर
टुक पर

तक गयी-
करना चाह

वृक्ष बड़े
हिट, हों

र में एक
गी थी। उ

गये थे।
कैसे कि

मा सकेंगे?
में कांटे-सा

कर्मचारियों
स्सा आया

पर भी वह
की मेज पर

नहीं को
की बात

लेकिन बोल
नहीं दे रहे

ह जल्दी ही

वाले कमरे में चली गयी थी।

तत्काल बत्ती वृक्षा दी थी, जैसे

अंदर से उठ रहे तूफान से बचने

वह अंधेरे की ओट में छिप जाना

हो। उसने हठात् आंखें बंद कर

ली। लेकिन एक विशालकाय टुक

उस पर लदे दो बड़े-बड़े वृक्ष, दवा-

द की हुई पलकों के पीछे भी उसे

दिखाई दे रहे थे। एक बार तो

पर काफी क्रोध भी आया था

जाने क्यों वह छोटी-छोटी बातों में

बड़े-बड़े अर्थ खोजती रहती थी।

लेकिन वह टुक तो उसके अधिक करीब

ले लगा था। उसे अपनी आंखों पर

नहीं हो रहा था। वह टुक तो

हवाई जहाज-सा लगने लगा था।

हवाई जहाज पर लिखा नाम पढ़कर

उठी थी। इसी हवाई जहाज

उड़कर तो वह बारह साल पहले इस

धरती पर आयी थी। दोनों वृक्षों के वजूद
दो इंसानों में बदल रहे थे, जिनके चेहरे
खूब परिचित-से लगते थे,। एक चेहरा
तो उसे बिल्कुल अपने चेहरे-सा लगा
था, जबकि वह उस हवाई जहाज में से
उतरी थी।

उसका मन मानों पिछले पैरों दौड़
रहा था। बीत चुके बारह साल धागे की
छल्ली की तरह उनके हाथों में उघड़ने
लगे थे। उसे याद आया जब पहली बार
उसने इस धरती पर पैर टिकाया था तो
उसे लगा था मानों उसके पैरों तले तो
कोई धरती ही नहीं थी। उसने मुश्किल
से अपने डोलते मन को तसल्ली दी थी
कि इतने घंटे लगातार हवा में उड़ते रहने
के कारण उसका सिर चकरा रहा था।
यही कड़वी हकीकत स्वीकारते हुए उसे
आज भी उतनी ही पीड़ा महसूस होती
थी कि उसके पैरों तले सचमुच कोई धरती

नहीं थी। धरती और पैरों का संबंध माँ और बच्चे के संबंध-सा है। यह संबंध किसी भाव भी नहीं बिकता। हर आदमी इस संबंध का विरसा अपनी मुट्ठी में लेकर जन्मता है और जाते समय अपनी राख की एक मुट्ठी, इसी संबंध के नाम धरती के चरणों में भेंट कर जाता है। लेकिन घर से चलते समय उसने एक बार भी नहीं सोचा था कि उसकी धरती और पैरों का संबंध उसके साथ नहीं जा सकता। शायद तभी, जब भी उसने लौटकर देखा था, इस धरती पर उसके पैरों का कोई चिह्न दिखाई नहीं देता था। बिना किसी चिह्न से चलते रहना तो उसे ऐसे लगता था मानों मौत का दरवाजा पार करके चल रहे हों !

दूसरी शाम उसने खुद से फ़ैसला किया था कि वह फिर कभी उस पार्क में नहीं जायेगी। लेकिन दीवार पर लटकते क्लाक की टिक-टिक उसे यूँ लग रही थी जैसे एक-एक पल उसके कानों में से उसके मन में कीलें ठोक रहा हो। क्लाक के दोनों हाथ मानों उसे पार्क की ओर धकेल रहे हों ! फिर न जाने कैसे और कब वह दोनों वृक्षों के पास जाकर खड़ी थी। रस्सों और खूंटों के सहारे खड़े हुए वृक्ष उसे सलाखों के पीछे बंदी दो बेगुनाह कैदियों जैसे लगे थे।

फिर उसे लगा कि उसके गिर्द तो कैदियों की एक भीड़ जमा हो गयी थी, जिस भीड़ में उसका अपना चेहरा भी पहचान खो

चुका था। उसकी तरह कितने ही लोग एक सपने की तलाश में इस धरती पर आते और इस भीड़ में खो जाते। वह लौट जाने की चाह दिलों में तड़पती रहती। लेकिन इस जादूमयी धरती से कोना जाना कोई खेल नहीं था !

०००

आज फिर उसे एक राजकुमार की बात याद आयी थी, जो वह अपनी दादी की गोद में सिर टिकाकर सुना करती थी। अपनी प्रेमिका का हाथ जीतने के लिए उस राजकुमार को एक काले गुलाब की जरूरत थी। काला गुलाब धरती के एक छोटे-से टुकड़े में पैदा होता था, जहाँ आदमी पहुंच तो सकता था लेकिन उस धरती की सीमा में से लौट नहीं आ सकता था। कितने ही राजकुमार यहाँ से ही लौट कर आ चुके थे, पर वह अकेला ही अपने सपने की तलाश में पकड़कर चलता रहा था। काले गुलाब की धरती पर पहुंचकर मानों वह से पगला गया था। फूल तोड़कर उस समय उस धरती ने उसके पैर बंदी की लिये थे। शेष आयु उस राजकुमार काले गुलाब के फूलों में ही, अपनी प्रेमिका के लिए तड़पकर गुजारी थी। उसे लगता कि वह भी तो इस धरती पर अपने सपने की बंदी बनकर जी रही थी। उसकी जिंदगी के तीस बरसों का टुकड़ा इस ब्रह्मांड के किसी दूसरे सितारे पर खसका था। उसके हाथों में सिर्फ कुछ सावधानी

मोतियों वाला सबेरा
दूर पीछे छोड़ आये
मुट्ठियों में हम दबाकर लौट आये
सीप शंखों-भरी खाली शाम ।

सिंधु में गोता लगाकर क्या मिला
कुछ अथाही डुबकियों का सिलसिला
ज्वार की नीली सतह पर हैं बचे
टूटती पनडुब्बियों के परखचे

चलो,
भूरी रेत पर आंके
दिवस का
एक मौन प्रणाम ।

नारियल-वन की हरी परछाइयां
पुतलियों में रच गयीं तनहाइयां
दिशाओं के ऊँघते मस्तूल पर
चील-कागों का टंगा उड़डीन-स्वर

आत्मघाती
एक पछतावा हवा में अब घुलेगा
सिर्फ आठों याम
चारों धाम ।

चित्र : आलोक जैन



नवनीत

द्विपद शर्मा 'रत्न'
की दो कविताएं



प्यास के पलाशपत्र

कवचहीन सांसों पर भाले दिन ।
लौटे फिर अग्निहोत्र वाले दिन ।
ऋत्विक् हूँ दस दिगंत
सूरज की वेदी
मंत्र बुने सन्नाटा
आहुति किसने दी
किरणों की ताम्र-सुवा
समिधा बंसवाड़ी
आंधी में नाचे महुआ
पी कर ताड़ी
स्वप्न हो गयीं वैष्णव-संख्याएं
सुनापन ओढ़ते शिवाले दिन ।
सूखे सब नदी कूप
ताल झील गहरी
शीशम की छांहों में
दौड़ धूप ठहरी
प्यास के पलाशपत्र
बांचती दुपहरी
नील स्वेद पोंछ रही
हर थकन रुपहरी
जमुहाते टीलों की रागिनियां
दुहराते ये बैठे-ठाले दिन ।

-१/९६७२ पश्चिमी गोरखपुर
शाहदरा, दिल्ली-११

सप्त मुक्तक

□ वद्रीप्रसाद गुप्त 'आर्य'

हूँ इतने कि चंद्रमा जैसे,
 हूँ इतने कि आत्मा जैसे,
 मेरे सपनों के अंजुमन में तुम—
 रोशनी दे रहे शमां जैसे ।

० ० ०

होठ में ज्योति की कनी जैसे,
 हँस के बीच रागिनी जैसे,
 मेरे जीवन में छा गये हो तुम—
 चंद्र पूनम की चांदनी जैसे ।

० ० ०

खसनाओं में बांकपन जैसे,
 और सुधियों में है तपन जैसे,
 मेरे मन में समा गये हो तुम—
 नंद के गेह में सपन जैसे ।



दोनों चित्र : दिनेश शाह



व्योम के अंक बीच रवि जैसे,
 रूप में है अनूप छवि जैसे,
 मेरी सांसों में बस गये हो तुम—
 फूल के हास में सुरभि जैसे ।

० ० ०

भीष्म के प्रण महा विकट जैसे,
 द्रौपदी के अनंत पट जैसे,
 ज्योति बन जगमगा रहे हो तुम—
 काष्ठ में आग की लपट जैसे ।

० ० ०

कंठ में ज्यों विहाग जलता हो,
 और बन में विराग जलता हो,
 रूप सौंदर्य आपका जैसे—
 तम के घर में चिराग जलता हो ।

० ० ०

कल्पना को शकल दिया तुमने,
 मेरे गीतों को बल दिया तुमने,
 ज़िंदगी के घने अंधेरे को
 रोशनी में बदल दिया तुमने ।

—पैगम्बरपुर, बिदकी, फतेहपुर, उ. प्र.

□

नन्ही-नन्ही घास देखकर उसका मन चाव से भर उठा था, जैसे हारती-हारती भी वह इस धरती से कोई बाजी जीत गयी हो। अपने दोतों बच्चों के जन्म के समय भी उसने ऐसा महसूस किया था कि शायद उसका इस धरती से कोई संबंध स्थापित हो रहा हो, उसके बच्चे शायद उसकी जड़ें बन जायें। लेकिन इस सच्चाई तक पहुंचते उसको ज्यादा देर नहीं लगी थी कि किसी बेगानी धरती पर पैदा हुए बच्चे कभी किसी की जड़ें नहीं बन सकते, सिर्फ लता-टहनी-से रहते हैं।

कभी पंछियों का कोई जोड़ा वह वृक्षों पर चहकता देखती, उसके भीतर एक आशा-सी जाग उठती। उसकी आंखों में नये सपने ठहर जाते। वह सोचती कि अब वे वृक्ष नन्हे-नन्हे घोंसलों से भर जायेंगे, उन पर एक दुनिया बस जायेगी और शायद उनके जीवन में फिर से बहार लौट आये।

लेकिन इससे आगे सोचकर उसका चेहरा उतर जाता। वह सोचती, उसे तो जब भी इस धरती की कोई चीज अच्छी लगी थी, उसमें सों रही पीड़ाएं जाग उठी थीं। अक्तूबर में हर साल जब धूप का रंग बदलता, मीठी-मीठी ठंड उतरती, उसका मन दीवाली के दीपकों की लौ से भर जाता, जिस लौ में पुरानी यादें जल उठतीं।

बसंत ऋतु आती, उसके भीतर-बाहर नवनीत

मानों सरसों के फूलों की सुगंध उठती, गमकने लगती।

०००

आजकल बरसात का मौसम पल-पल बाद मूसलधार बरसात उतर आती। वह कई-कई दिन लगातार पार्क में न जा सकती। एक दिन पूरे हफ्ते के बाद जाकर उसने देखा कि वृक्षों को दिये गये सहारे हटा दिये गये थे। अब तो वे कतई बेगाने नहीं जान पड़ते थे। उसका माथा धरती के प्रति आदर में झुक जाता। धरती का दिल भी किन्तु विशाल था, जहां हर बच्चे के लिए एक घर बन सकती थी। आज उसे वह पार्क और भी अच्छा लगा था, जहां उसकी एक सांझ मानों जड़ें जमा बैठी थी। उमने घर आकर बड़े चाव से यह खबर पूरे परिवार को दी थी।

लेकिन आज शायद पूरे दो सप्ताह के बाद वह पार्क में गयी थी। गेट से निकलते ही उसे कुछ बदला-सा महसूस हुआ। कुछेक पल तो मानों उसे अपनी आंखों पर ही भरोसा नहीं आया था। वृक्षों पर ही कोना खाली पड़ा था। वह जोर तज्जदीक गयी तो वृक्षों के खाली उसे दो कब्रों जैसे लगे थे। वह जल्दी-जल्दी पार्क की दूसरी ओर तुरंत चल पड़ी थी।

पिछले गेट के पास दोतों वृक्षों की तरफ पड़े थे। उनके नन्हे-नन्हे

सुगंध
मौसम
परागत
नगातार
पूरे हस्ते
के वृक्षों को
गये थे। वह
न पड़ते थे।
ति आदर
मी कितना
के लिए
वह पार्क और
उसकी एक
थी। समने
ह खबर पूरे
दो सप्ताह
ट से निकल
हमसूत हुआ
अपनी आंखों
था। वृक्षों
। वह और
के खाली
। वह जल्दी
चल पड़ी
वृक्षों
उनके नहने-नहने
जुताई

उसके मन में आया
लगे दिये गये थे। उसके मन में आया
लगे वृक्षों के गले लगकर वह खुलकर
उठे। लेकिन वह तो एक क्षण के लिए
वह ठहर न पायी थी।
जान इतनी जल्दी लौट आयी हो !'
उसने पति ने उसे बाहर वाला दरवाजा
खोल दी, देखकर हैरानी से पूछा था।
'तुम तो वृक्ष सूख गये हैं !' उसकी आवाज
जो बा रही थी। कमरे में काफी देर
वह खामोशी तनी रही थी।
मुझसे चेहरों से उसके पास आकर
गये थे, लेकिन वे कुछ पृष्ठने का
नहीं बटोर पाये थे। वह खामोशी-
खिड़ी से बाहर देख रही थी।
उसी खामोशी प्रतिफल मानों अनकही
रही थी। उसने झुंझलाकर अपने
मंद्र देखा, मानों किसी गहरी निद्रा
में जागी हो, हवासी आंखों को संभा-
लते वृक्षों की ओर देखकर मुस्करा
'वृक्ष भी कितने बेचारे हैं। एक
उबड़े तो उबड़े ही रह गये। यह
आदमी ही है, न जाने किस कठोर
दोष का वना है ? बार-बार उखड़कर
धर खोज लेता है।' उसने अपनी
आंखों में दोनों ही वृक्षों को प्यार
से देख लिया था। दोनों ही वृक्ष खिल-
खिलकर हंस पड़े थे और कमरा मानों
उसकी रोशनी से चमक उठा था।
जगजीत बराड़, पो. बा. ३४९,
ए. एल. यू. हैमाड, लो ७०४०२
(अमेरिका)

कोई मुक्ति नहीं है

यह कारागार
पत्थर, लोहे, ईंट और गारे के बने
मजबूत गढ़
और इनमें बंदी
हिंसा, पाप, दुराचार का
शाप भुगतने
सुबह से शाम तक
यंत्रवत् नियम कड़ी मेहनत
खाली समय में कुछ मनोरंजन
हरी-भरी खेती, रंग-विरंगी दस्तकारी
अच्छे आचरण से
सजा कम हो जाती है
कारागार से मुक्ति मिल जाती है।
और यह कारागार
द्वेष, ईर्ष्या, अंधविश्वास और भ्रम के बने
मजबूत गढ़ और इनमें बंदी
कलह, दोषारोपण, बहिष्कार का
शाप भुगतने
सुबह से शाम तक यंत्रवत् नियम से
मानसिक यातनाएं, शारीरिक जलन
और खाली समय में
काली, सिलेटी, सफेद रंग की
दुश्चिन्ताएं, प्रलोभन
दूषित मनोरंजन
और इन बंदियों की
सजा कम नहीं होती
इस कारागार से कोई मुक्ति नहीं है।

—प्रेमचंद जौहरी

—ई/६५, बुधवार पार्क, वुड हाउस रोड,
बम्बई-४००००५



अमरीका और यूरोप के विकसित देशों का अनुकरण करके भारत
को अवनति के अंध पाताल में ढकेल रहे हमारे सत्ताधारियों को
अमरीकी अर्थशास्त्री

जिमो ओमो-फादक

से निम्नांकित सबक सीखना होगा



हमारे विकास की जड़ें हमारे भीतर ही होनी चाहिये

अनेक विकासशील देशों ने अब तक विकास की इस आधारभूत आवश्यकता को नज़रअंदाज़ ही किया है कि वास्तव में प्रभावकारी होने के लिए, विकास की प्रक्रिया का अनुकूलन इस ढंग का होना चाहिये कि वह दूसरे विकसित देशों को लाभ पहुंचाने के स्थान पर स्वयं उस देश को लाभ पहुंचाये और उसकी आर्थिक उन्नति में सहायक हो। उसका तकनीकी और आर्थिक आधार और व्यापक होना आवश्यक है। यदि ऐसे किसी देश की मुख्य समस्याएं गरीबी और अन्याय हैं, तो वहां की जनता को स्वयं उन्हें हल करने का प्रयास करना होगा। विकासशील देशों को विकसित देशों की अंधी नक़ल करने के स्थान पर, अपनी मान-मर्यादा की भावना को पहचानना चाहिये, और अपने

सामाजिक-आर्थिक वातावरण से एक-त्मीकरण कर, प्रगति के लिए प्रयास करना चाहिये। बिना किसी बाहरी सहायता के इन देशों को अपने विकास के लिए आवश्यक पहल अपनी अन्तर्निहित शक्तियों के ध्यान में रखकर करनी चाहिये। इस आत्मनिर्भरता से जिस भावना का विकास होगा, वही उनकी श्रेष्ठतम सम्पत्ति होगी। इस भावना से प्रेरित होकर, वे आत्मनिर्भरता और मानवीय विकास के पथ पर अग्रसर हो सकेंगे।

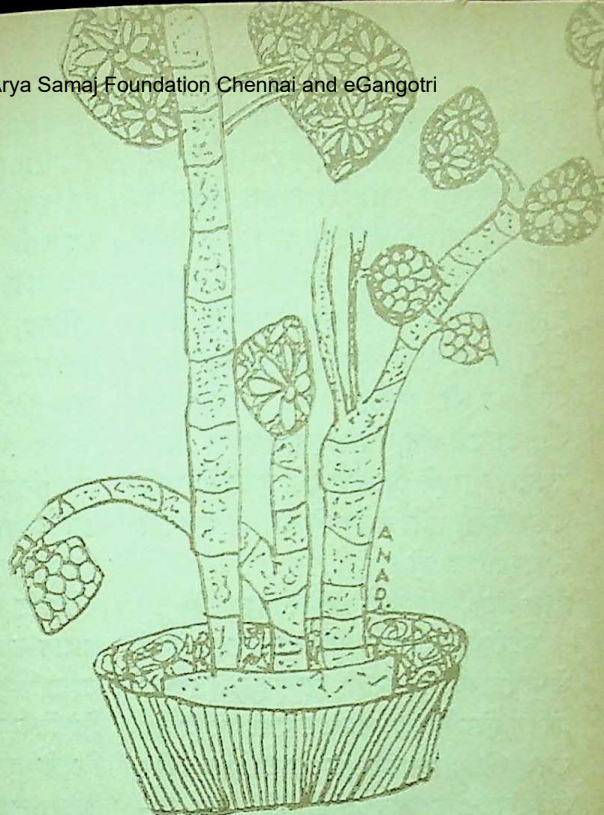
विकासशील देशों का कायापलट करना और स्वतः प्रवर्तित आन्तरिक उन्नति को उद्भूत होना चाहिये, बाहरी निर्भरता नहीं। सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता आन्तरिक अपउपनिवेशन की। विकासशील देशों में होने वाले राजनैतिक परिवर्तन

नवनीत

११२

के भारत
दियों के

परिभाषित महत्त्व तब तक
होगा, जब तक उनमें
और सांस्कृतिक परि-
नाम समावेश भी नहीं
है। किन्तु, आर्थिक और
सांस्कृतिक परिवर्तन तभी
संभव होते हैं, जब देश की
वृद्धि वृद्धता एकजुट होकर,
मानसिक लड़ाई स्वयं
की है। दूसरे उनकी खातिर
लड़ाई नहीं लड़ सकते।
लोगों को अपनी नियति पर
आत्मनिर्भर समाजों के अन्त-
नियंत्रण स्वयं रखने का
प्रयत्न करना होगा। इस
आत्मनिर्भरता से उन्हें अपने
साधन-जनसाधारण-का
दुर्लभ वित्तीय साधनों
पर करने के उपाय
चाहिये। इस 'श्रम को पूंजी में परिवर्तित करने
की नीति' अमल में लायी जायेगी।
विदेशी लोगों की सेवाओं का उपयोग
किया जा सकता है, जहाँ तक वे विकास की
प्रक्रिया के लिए उत्प्रेरक सिद्ध हों।
योजनाओं में विदेशी चिकित्सकों,
विश्वविद्यालयों, परिस्थिति-विज्ञानियों और
विज्ञानियों का सहयोग असफलता को
सफलता में परिवर्तित कर सकता है।
आत्मनिर्भरता की नीति का आधार-
यह महत्वपूर्ण बात है कि विकास-
शील देशों को अपनी विकास-नीतियों के



चित्र : अनादि अधिकारी

लक्ष्यों और हितों को निर्धारित करके
उनके लिए स्वयं अपने लोगों को प्रशिक्षित
करना चाहिये। इसी प्रकार वे विदेशी
सहायता पर अवलम्बित रहने की आदत
से मुक्ति पाकर, पूर्णतया आत्मनिर्भर हो
सकेंगे।

दुर्भाग्य से विदेशी सहायता से सम्ब-
न्धित सभी कार्यक्रम दुधारे होते हैं। वे
सहायता पाने वाले देशों को सहायता देने
वाले देशों पर और अधिक आश्रित बना
देते हैं। आत्मनिर्भरता आर्थिक स्थायित्व
की पूर्वपेक्षा है। उसे प्राप्त करने के लिए,

विदेशी सहायता पर अधिकाधिक निर्भर रहने के स्थान पर, उस पर कम से कम आश्रित रहना चाहिये। तृतीय विश्व के देशों की आर्थिक नीतियों का एक महत्वपूर्ण पहलू यह होना चाहिये कि उनमें आत्मनिर्भरता की भावना विकसित हो। उन्हें अपने काम स्वयं करने चाहिये। यदि बाहरी सहायता की आवश्यकता पड़े, तो उसे लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह देने वाले देश की जरूरतों से नहीं, लेने वाले देश की जरूरतों से सम्बन्धित हो।

सामाजिक न्याय की आवश्यकता

पारंपरिक उपाय तृतीय विश्व के देशों में क्यों कारगर नहीं हो रहे हैं, इसकी अंतिम जिम्मेवारी स्वयं इन देशों पर ही है। उनमें से अधिकांश के सामाजिक और आर्थिक ढांचे अन्यायपूर्ण और नव-उपनिवेशवादी हैं। इस कारण इन देशों में सारी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सत्ता, चंद विशेष सुविधा प्राप्त लोगों के पास केंद्रित होकर रह गयी है। इसके अलावा, इन देशों में गरीब और अमीर के बीच की खाई और चौड़ी होती जा रही है। विकासशील देशों के नेता जिस तत्परता से अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर होने वाले अन्यायपूर्ण कृत्यों का पर्दाफाश करने के लिए तैयार रहते हैं, उसी प्रकार उन्हें स्वयं अपने देशों में होने वाले अन्यायों और असमानताओं का न केवल पर्दाफाश करना चाहिये, बल्कि उसका ज़बर्दस्त

नवनीत

विरोध भी करना चाहिये।

अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कुछ भी हो न हो, इन नेताओं को अपने-अपने देशों में प्रगतिशील और बुनियादी परिवर्तन आरंभ कर देने चाहिये। नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के निर्माण के लिए अन्तरराष्ट्रीय सामाजिक न्याय की पुष्टी पेशा है। यदि विकासशील देश चाहें, तो कि अन्तरराष्ट्रीय न्याय से उनके नेता लाभान्वित हों, तो उन्हें सबसे पहले अपने देश के लोगों को न्याय देना होगा। यदि तो, अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मिली मिली बातें भले ही विकासशील देशों को आर्थिक साधन उपलब्ध करा दें, उनका वास्तविक लाभ निर्यातकों को ही मिलेगा, और निर्यातक उसी अल्पसंख्यक वर्ग के होते हैं, जिनके हाथों में सारी आर्थिक और राजनैतिक सत्ता केन्द्रित होती है।

जब तक विकासशील देशों के नेता इस तरह की बुनियादी विकास-प्रक्रिया के बारे में विचार-विमर्श करने को तैयार नहीं होते, तब तक इन देशों की निरन्तर किलबल इती हुई हालत के बारे में होने वाली अन्तरराष्ट्रीय सभाओं और योजनाओं से लाभ होने वाला नहीं है। गांवों में रहने वाले किसानों और शहरों में काम करने वाले कामगारों दोनों को अपने-अपने जीवन के अनुभवों को पुनः जीना होगा ताकि इस तर्कसंगत निष्कर्ष पर पहुंच जा सके। यह बहुत ज़रूरी है।

गुज़िश्ता सालों में अनेक विकासशील

अपने देश में
रिवॉल्यूशन आने
अन्तरराष्ट्रीय
मार्ग के लिए
याय की पूर्ण
देश चाहते हैं
से उनके नेता
बसे पहले बसे
ना होगा। वह
र मिली है।
देशों को आने
नका बास्ती
मिलेगा, और
वर्ग के होते हैं
थक और तब
है।
शों के नेता इस
कास-प्रक्रिया
को तैयार नहीं
निरन्तर विकास का महत्त्व

ने वाली अन्तर-राजनैतिक एकता को प्राप्त करने के
जानाओं से आवश्यक हैं, पर यह जरूरी
गांवों में कि उन्हें किसी भी कीमत पर या
में काम करना प्राप्त किया जाये। विभिन्न
अपने क्रांतिकारी, साम्प्रदायिक या नृजातीय वर्गों
न: जीना होगा।
कर्म पर पहुंच
ती है।
विकास को

आधार पर
नहीं करना चाहिये कि विकास के लिए
राष्ट्रीय एकता चाहिये। वे ऐसा दमन करते
हैं, तो उनसे यह प्रश्न पूछा जा सकता है :
विकास किसके लिए ? देश में रहने वाले
लोगों के लिए या विदेशी हितों के लिए ?
तथा अन्य वर्गों को मिली संगत स्वाधीनता
निरंकुश और शोषक शासकों पर नियंत्रण
रखती है।

और इस नियंत्रण को उत्तोलक-शक्ति
के रूप में प्रयोग कर, ये नेता विदेशी हितों
के दबाव और उनकी मांगों का प्रतिकार
कर सकते हैं। और नृजातीय आशंकाओं
तथा निष्ठाओं और स्वेच्छा से गठित
राजनैतिक वर्गों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण
रवैया अख्तियार करने वाले राष्ट्रीय नेता
विकास-कार्यक्रमों के प्रति जनता के
उत्साहपूर्ण सहयोग को इस ढंग से कार्य-
प्रवृत्त कर सकते हैं कि उससे जनता की
प्रवृत्त कक्षमताओं को भी उत्तेजन मिलेगा,
और इन वर्गों में एकजुट होकर, राष्ट्र के
प्रति आस्थावान होने की भावना को भी
बल मिलेगा। अतः देश के विभिन्न नृजा-
तीय वर्गों में से सामूहिक समाजों का गठन
करने का कोई प्रयास नहीं होना चाहिये।
लक्ष्य होना चाहिये—राजनैतिक और
आर्थिक विकेंद्रीकरण।

तृतीय विश्व के पारंपरिक समाज ऐसी
राजनैतिक और आर्थिक प्रणालियों के
अनुकूल नहीं थे, जो केन्द्रित थे। वे पहले
भी अनेक-संख्यक समाज थे, और आज भी

हैं। उनके विकेंद्रित होने की प्रक्रिया का भी हद तक विकेंद्रित थी। सहयोग छोटे-छोटे मामलों में ही होता था, और जिसे जनता की सरकार कहा जाता था, वह सिर्फ़ ऐसी पारिवारिक इकाइयां थीं, जिनका सम्बन्ध उनके अपने नृजातीय वर्गों या कुलों से होता था। ऐसे प्रयास होने आवश्यक हैं, जिनसे सब राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक निर्णयों का विकेंद्रीकरण हो सके।



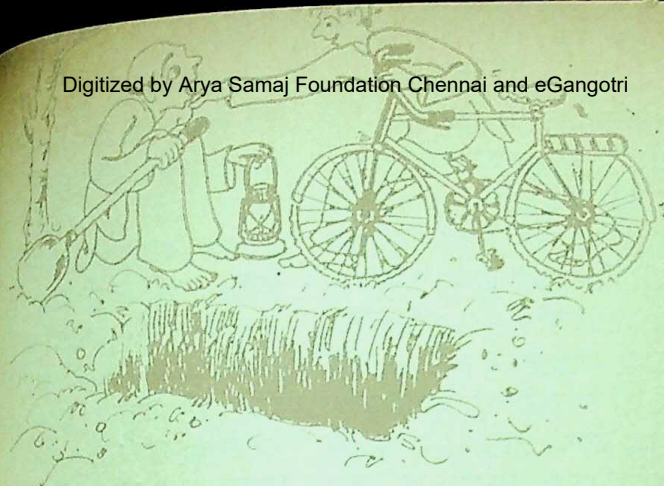
चित्र : अनादि अधिकारी

अपने साधनों और अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल कार्यक्रम बनाने की सबसे अच्छी स्थिति में होते हैं, विभिन्न समुदाय, जिनका अपने साधनों और आवश्यकताओं से निकट का परिचय होता है। विकेंद्रीकरण का एक लाभ यह भी है कि उससे कमजोर वर्गों को संघर्ष कर प्रगति करने के अवसर मिलते हैं। आवश्यकता पड़ने पर, वे केन्द्रीय सरकार से ऋण भी ले सकते हैं। जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति उनसे तथा उनकी वास्तविकताओं से सैकड़ों मील दूर बैठे, विशेषज्ञ और

राजनैतिक नहीं कर सकते। इन आवश्यकताओं की पूर्ति ऐसी विकेंद्रित व्यवस्था ही कर सकती है, जो स्थानीय क्षेत्रीय और आंचलिक स्तर पर, प्राकृतिक विधियों से उनकी पूर्ति के लिए संकल्पबद्ध हो। केन्द्रीय सरकार का काम तो बस इतना ही होना चाहिये कि सशक्त दिखायी पड़ने वाले विरोधाभासों को सुव्यवस्थित करे, और कतिपय मामलों का पुनर्विनियोजन करे।

अंधी नकल ठीक नहीं

मैं यह विचार प्रस्तुत करना चाहता हूँ कि तृतीय विश्व के देशों में उपनिवेश बनने से पूर्व का युग स्वतंत्र युग था। पीछे देखने से, विभिन्न जातियों की संस्कृतियों के कुछ ऐसे पहलुओं का ठीक-ठीक पता लगाया जा सकता है, जो ऐसे विकास में, जिससे हम आज सुपरिचित हैं, बाधक थे। तथापि, लोगों के जीने का सांप्रदायिक ढंग, जो उनकी संस्कृति का मूलभूत और सकाशात्मक पक्ष है, बरकरार रह चुका है। ज़रूरत इस बात की है कि उस ढंग को पुनः सक्रिय किया जाए और जहाँ वह ढंग आज भी प्रचलित है उसे कायम रखा जाये। तृतीय विश्व देशों को अपनी राष्ट्रीय पहचान बनाने की जरूरत होगी। उन्हें पूर्व या पश्चिम किसी भी विकसित देश को विकास का अपना आदर्श मानकर, इन देशों की वास्तविकताओं को नकल करना ठीक न होगा।



के. पी. सक्सेना की हास्य-कथा

खुदाई फ़ौजदार

मैं नाना प्रकार के पुरुषों और
नाना प्रकार की स्त्रियों में बहुत से
पाये जाते हैं जिन्हें 'खुदाई फ़ौजदार'
कहते हैं। तुरा यह है कि न तो इन लोगों
दूर तक कहीं खुदा-परमेश्वर
वास्ता होता है, न फ़ौजदारी से !
नाज-गुजन के पाबंद होते हैं, न
नाज-चाकू बांधते हैं। फिर भी खुदाई
फ़ौजदार कहलाते हैं। हर किसी के
मन में अपनी टांग डालना इनका
राम रतन तंबोली से लेकर
रंग रीतन तक इनके घनिष्ठ संबंध
है और दांत के दर्द से लेकर आंत के
दर्द तक का शक्ति इलाज इनके मोझों

में महफूज होता है। किसी को इनके
पास जाने की जरूरत नहीं। ये खुद
हाजिर हो जाते हैं और डिकलेयर कर
देते हैं कि भई, आपको कैंसर होने का
अंदेशा है ! गुड़ में काली मिर्च का
बुरादा फेंटकर सेवन करना शुरू कर
दीजिये। अब अगला लाख कहे कि जनाव,
मैं अपनी टोपी से लेकर जुराबों तक का
एक्स-रे करा चुका हूं और नार्मल हूं
... मगर नहीं ! खुदाई फ़ौजदार जब तक
मनवा नहीं लेगा कि कैंसर है, या होने
वाला है ... या खुदा न खास्ता हो चुका
है, टलेगा नहीं।

खुदाई फ़ौजदार का न कोई टाइम

उसे तो जन-जन का कल्याण करना है । आप न भी कल्याण करवाना चाहें, तो भी करना है । बात अरहर की दाल से लेकर अणु विस्फोट तक किसी भी विषय पर चल रही हो, खुदाई फ़ौजदार बीच में 'कामा' या 'सेमीकोलन' की तरह प्रवेश करना अपना फ़र्ज समझता है । चूंकि वह खुदाई फ़ौजदार है, इसलिए उम्मीद करता है कि उसका सुझाव ही खुदा के हुक्म की तरह फाइनल माना जायेगा ।

मेरे ही मुहल्ले में एक अदद खुदाई फ़ौजदार थे । खाते-पीते घर के थे, सो न कभी नौकरी की, न हल उठाकर खेती पर एहसान किया । ... न किसी रैली में गये, न नारा लगाया । टाइम ही नहीं था । खुदाई फ़ौजदारी के तहत उनका एक-एक क्षण कीमती था ! एडवांस प्लानिंग का यह आलम था कि इधर मरीज़ ग्लूकोज़ पीकर कुछ राहत महसूस कर रहा है, उधर वह नाप की क़ब्र खुद-वाये, लालटेन संभाले बैठे हैं कि उनके रहते कहीं जनाज़े में कोई दिक्कत पेश न आने पाये ! ... तथाकथित मरने वाले के वहां से एक आदमी सायकिल पर कब्रिस्तान दौड़ाया गया कि भई, लौट आइये ! फलां-फलां अच्छे हो गये । खुदाई फ़ौजदार दुखी हुए कि मुहल्ले में ही लोग किस क्रूर धोखेबाज़ हो गये हैं ! ... अच्छे-भले तक़रीबन मर चुके थे । न जाने क्या याद आ गया और ज़िंदा हो गये । खैर !

नवनीत

लौट आये कि क़ब्र पाटी न जाये । मुनासिब नाप का पाथिव शरीर जीवित हासिल कर लेंगे । ... एक काम तो निश्चय कि क़ब्र आरामदेह खुद गयी । कांटे टाइम वेस्ट होने से बच गया । ...

चुनांचे यह खुदाई फ़ौजदार जब अल्ला को प्यारे हुए तो तुर्तुं परंपरा के अनुसार उनका जवान वेद खुदाई फ़ौजदारी की गद्दी पर बैठा । मुहल्ला धारावाहिक रूप से ग़ात आगे की शैली में बेटे को झेलने लगा । ... टेस्ट मैच के दिनों में ये हज़रत अंग्रेज़ों पर चूना चिपकाये, पान की दुकान पर चूना ट्राँज़िस्टर घेरे खड़े हैं । बोलती बर्कत के अंदर से लाला अमरनाथ और बाबू खुदाई फ़ौजदार अपने-अपने एक्सपर्ट बन दे रहे हैं ! सुनने वाले चुपचाप हिमाचल मास्टर्स वायस के कुत्ते जैसा मुंह खोल खड़े हैं कि देखें क्या होता है ? मैच फ़ैसला होते ही खुदाई फ़ौजदार अंग्रेज़ों पर चिपका चूना चाटते हैं और दावा मुद्रा में आसमान की तरफ मुंह उठाते कहते हैं — 'पिच गीला न होता तो हमारे अड़तालिस रन और निकल आते । उनकी आवाज़ का कमांड इस क़द पुरुषता होता है जैसे वह खुद पिच छूट देख आये हों ! सारा मुहल्ला जादू है कि खुदाई फ़ौजदार को क्रिकेट के और फुटबाल के गोल का भी सही नहीं मालूम, फिर भी किसकी मजबूती

शे देकर वापस जाये। मुना और शीघ्र ही मुना के सामने उन्हें दूसरी टेस्ट मैच का सामने निरूपित दे।

गयी। फौजदार जब मुंह उठाकर बोला तो हम सब की पीछले दिनों डकैती पर चर्चा होती थी। जाने किस रास्ते से खुदाई करवा दी होगी। एक नज़र हज़िर हो गये। एक नज़र के पुरत मुह्र खोजने पर यों डाली गोया अहमकों का जवान बेचैन चल रहा हो। ... पान की पीव को पोर बेटा। क्रेनेमें प्रावीडेंट फंड की किस्त जैसी से गतांक के करते हुए बोले-अमां हटिये ! सेने लगे। सा गया है आप लोगों को ? इसे हजरत खोली कहते हैं ? मेरा तो सिर शर्म से ढुकाण पर चढ़ जाता है ! पतलूनें पहनकर मस्तुरात तलती वकिनी (संत) डाका डाल रही हैं ? हमारे और बाहर का के टाइम में यह फर्ज सिर्फ़ सूँछ-पेक्सपर्ट क्रैट दर्द अंजाम दिया करते थे ! ... हम चुपचाप हिडकीती मानते ही नहीं। सिर्फ़ गोली सा मुंह रखना ही डकैती है क्या ? किसी चीज़ है ? भेंच का जोड आफ कंडक्ट रह ही नहीं गया । औजदार अंगुली बोझें खुदा ने इष्क करने के लिए और दारोगा को हैं, वे डकैती करें ? ... भई, किसी फ्र मुंह उठाकर दापिक पर बात कीजिये ! ... होता तो हम तुल्ले वाले पस्त हो गये और बात तकल आते। सब उस तलवार की तरफ मोड़ गांड इस कुद और अरबी थी और यू. पी. के राज-खुद पिच छूकने से लचानक गायब होकर... अचानक मुहल्ला जाट बन गई या गयी ! ... खुदाई फौजदार क्रिन्टे के तलवार कर म्यान से बाहर आ गये और भी सही फल कुछ फरमाया उसका लुब्बो लुबाब सगी मजात (चार सप्ते) यह था कि भई तलवारों नुवासी भी वात्सा होती है । वरसों म्यान में

क़ैद पड़े-पड़े बोर हो जाती हैं! मगर म्यान के बग़ैर रह भी नहीं सकतीं! राजभवन की तलवार गयी और वक़्त की रफ़्तार देखकर वापस आ गयी। बिला वजह इतनी लपझप मच गयी! हम जानते थे कि आ जायेगी।...

अभी वह तलवार के इतिहास, भूगोल और राजनीति पर रोशनी डाल ही रहे थे कि शामत के मारे एक साहब अपनी कंडिया में ककड़ियां और गाजरें संभाले गुजरे। खुदाई फौजदार तड़ से तलवार छोड़कर ककड़ियों पर आ गये और ककड़ियों के खिलाफ इतनी खौफनाक बहस की कि सारे मुहल्ले का सलाद पर से यक्रीन उठ गया ! तय पाया गया कि ककड़ी वहीं तक मुफ्रीद है कि खेत से उखाड़कर पत्तों समेत डायरेक्ट चबा ली जाये। मजबूरन उन हज़रत को ककड़ियां नाबदान के हवाले करनी पड़ीं.. !..

खुदा के बाद वलिक कभी-कभी खुदा से पहले... खुदाई फ़ौजदारों पर मेरा बेहद यक़ीन है।.. इनके बग़ैर कोई खुशहाल नहीं रह सकता। आप लाख खुली धूप में चल रहे हों, मगर मशाल दिखाना इनका फर्ज़ है। इतना घी आजकल किसे मयस्सर है कि खुदाई फ़ौजदार से बहस करने का ख़तरा मोल ले?... बेहतर यही है कि हर शपथ खायी हुई नयी हकूमत की तरह आप इन्हें भी तस्लीम करते चलें। उनकी भी कुछ मजबूरियां हैं कि टांग अढ़ाये बिना रह नहीं सकते!..

-१७६/११-गार्डन रोड, लखनऊ-१



सब किसी-न-किसी काम में लगे थे। कोई अखवार पढ़ रहा था, कोई मित्र पी रहा था, कोई खाने-पीने में लगा था तो कोई अपनी पत्नी से बातचीत करने में व्यस्त था। किसी की भी निगाह उस बेहाल आदमी पर न पड़ी। वह सबों को इस हालत में देखकर हंसा और एक कोने में दीवार से टेक लगाकर बैठ गया। कभी वह हंसता, कभी उसकी आंखों में आँसू तैरने लगते और कभी अपनी बगल में लगी पोटली को इस प्रकार दबोच लेता जैसे सारे जीवन की कमाई इसमें सुरक्षित हो और इसके खो जाने का डर हो।

एकाएक कुछ व्यक्तियों की नज़र उस पर पड़ी, तो वे ऐसे चौंक पड़े, जैसे बचपन

हसन निजामी केरापी की बंगला कहानी

□ उपहार

प्लेटफार्म पर रेंगती हुई ट्रेन के एक डिब्बे में एक बूढ़ा व्यक्ति दौड़ता हुआ घुस आया। वह अपनी बगल में एक पोटली दबाये हुए था। उसकी हालत बिल्कुल पार्गलों जैसी थी... बड़ी हुई दाढ़ी, बिखरे हुए बाल, शरीर पर फटे-पुराने कपड़े और उस पर जगह-जगह जख्मों के निशान, वीरान आंखें, मुरझाया चेहरा, सूखे होंठ—ऐसा लगता था, जैसे महीनों से उसने खाया-पिया न हो।

उसने डिब्बे में बैठे हुए मुसाफिरों पर उचटती हुई एक नज़र डाली। वे

उन लोगों ने किसी शैतान को देख लिया हो। उनमें से एक सूट-बूट वाले व्यक्ति ने उसे डांटते हुए कहा—‘अरे, तुम कौन हो?’ वह तो सुरक्षित बोरी है... चलो भागो यहां से... नहीं तो चलती पोटली से बाहर फेंक दूंगा!’ बूढ़े ने कोई दवा नहीं दिया, केवल उस व्यक्ति को धुन रहा, जैसे उसे पहचानने की कोशिश कर रहा हो। ‘यह तो पागल मालूम होता है’ दूसरे मुसाफिर ने कहा। ‘अरे, यह कौन है... थोड़ा बल नहीं, चोर-उच्चका है... थोड़ा बल मिला और माल समेत गायब हो जाता’

में लीन थे। 'आप लोग कुछ नहीं जानते ?
 कोई जासूस मालूम पड़ता है'—
 कोई बड़े-बड़े व्यक्ति ने अपनी राय
 दी थी... 'अबकारों में बराबर खबरें आ
 रही हैं कि मुरादाबाद के दंगे में संप्रदाय-
 विरोध का हाथ है। क्या पता, यह किसी
 जासूस हो ? हमें इसे पकड़कर
 जेल के हवाले कर देना चाहिये।'
 वह, जो अबतक चुपचाप उनकी बातें
 सुन रहा था, अचानक जोर-जोर से

बोला—'मुरादा...

मुरादा...

ठीक कहा

मैं जासूस

मैं जासूस हूँ...।

पुलिस के हवाले

करोगे? जो

पुलिस करेगी,

गुम कर दो।

कल कर दो...

हा ... हा ... मैं जासूस हूँ...। मैं

नगर काक छान रहा हूँ... जानते

उसने नेता टाइप व्यक्ति की ओर

करते हुए आगे कहा—'मुझे किसकी

तलाश है?... मैं किसके लिए जासूसी कर

रहा हूँ?... मुझे तलाश है अपने अनमोल

जीवन की। मुरादाबाद में लगायी गयी

अस्थिरता और नफ़रत की आग...

मेरा सब कुछ भस्म हो गया।

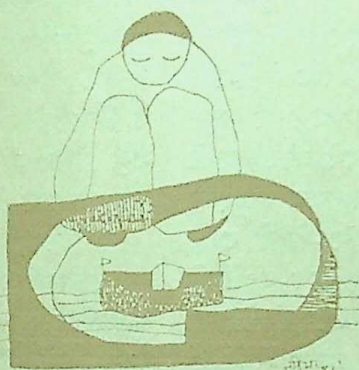
परिवार, घर-बार, कारोबार ...

हा ... हा ... मैं जासूस हूँ... अपने

घर को तलाश कर रहा हूँ। अपने खोय
 हुए परिवार का पता लगा रहा हूँ। सुनो-
 सुनो, धरती के सपूतो... मेरा भी एक लाल
 था ... जवान और खूबसूरत, पढ़ा-लिखा,
 मेरे बुढ़ापे का सहारा, दस जीवनों का
 खेवनहार...। और उसका भी एक लाल
 था... एक मासूम बच्चा... जिसकी उम्र
 केवल चार साल थी। उसने त्योहार के
 दिन मुझसे कहा था... 'दा... दा... मेरे लिए
 खिलौने।' फिर वह लौटकर नहीं आया।

उसे मैंने अपने हाथों
 से ढूँढ़े की तरह
 सजाया था। देखो...
 मैंने उस छोटे ढूँढ़े
 के लिए क्या-क्या
 चीज़ें खरीदी थीं।'

उसने अपनी बगल
 में दबी पोटली
 निकाली और उसे
 खोलकर ज़मीन पर



उलट दी—खिलौने, टॉफियां, रुमाल और
 रंग-विरंगे गुब्बारे ज़मीन पर बिखर गये।
 'अब वह मिले तो मैं उसे गले लगाऊँ
 और यह तोहफ़ा उसे दूँ। कितना खुश
 होगा मेरा लाल इन चीज़ों को पाकर।'

वह एक-एक चीज़ को उठाकर
 चूमने लगा। फिर उसने मुसाफ़िरों को
 संकेत करते हुए कहा—'मेरे भाइयो ...
 मेरे हमवतनो ... वे कहां चले गये... ?
 वे कहां गुम हो गये... ? क्या आप उनका
 पता बता सकते हैं... ?'

पूरे कंपार्टमेंट में सन्नाटा छा गया था। जैसे सबको सांप सूँघ गया हो। सबके सर शर्म से झुके हुए थे। फिर एकाएक बूढ़ा जोर से बोल उठा—'क्या हुआ आप लोगों को? आप लोग जवाब क्यों नहीं देते? मेरे खोये हुए रत्नों का पता क्यों नहीं बताते?'

फिर उसने तमाम बिखरे हुए सामानों को समेटकर पोटली बनायी और उसे

बगल में दबाकर खड़ा हो गया। वह चीखने लगा—'भागो-भागो... भागो... आ रही है... देखो गोलियाँ चल रही हैं... भागो... सब मारे जायेंगे—और वह खंसे से दरवाजे की ओर भागा। ... मैं बच रहा हूँ, मेरे बच्चों... मेरे अनमोल रत्नों में आ रहा हूँ...' और उसने चलने लगे से छलंग लगा दी।

अनुवाद : सुल्तान अहमद 'साहित्य'

(पृष्ठ ६४ का शेषांश)

को नीची दृष्टि से और धन बटोरने वाले को तिरस्कार भरी दृष्टि से देखती थी। व्यास और वाल्मीकि व्यर्थ की कहा-नियां सुनाने वाले बन गये और युवकों को प्रेरणा देने का काम सेमुअल स्माइल्स को मिल गया। हमारे बच्चों के उर्वर मनों में विषयासक्ति के बीज बो दिये गये। अगर उनका बस चलता तो वेदान्त को अफलातून की तरह अलमारियों में बंद कर दिया जाता। योग और संन्यास को जादू-टोने और इन्द्रजाल के साथ गिना जाता।

उन्नीसवीं शती के भारत को वैश्य की भी जरूरत न थी। स्थानीय कलाकार, स्थापत्य कारीगर दूर हटा दिये गये। इंग्लैंड को इनकी जरूरत न थी। उसने भारत की जरूरतें पूरा करने का बीड़ा उठा लिया था, अब यहां वालों को कष्ट करने की क्या जरूरत थी। जरूरत थी, बस दूकानदारों की, जो लंकाशायर, शैफील्ड आदि के सामान को घर-घर

पहुंचा सकें। हिन्दुस्तानी बस पेड़ों के बैठकर भगवान की स्तुति कर सकते थे, जिसने ऐसी परोपकारी जाति को उनके यहां भेजा, जो उन्हें मेहनत भराकर बचाकर पाल में सुरक्षित रखती थी।

नयी राष्ट्रीयता राष्ट्र के पुनरुत्थान का प्रयास है। हमें उन्नीसवीं शती के बर्जुआ को पूरा-पूरा रूपान्तर देना होगा। हमें बर्जुआ और बर्जुआ भावना को देशनिकाला देना होगा। उनसे विचारों, उसकी पद्धतियों, उसके विचारों को दूर हटा देना होगा।

हम आह्वान करते हैं उन सहयोगियों का जो हिम्मत से आगे बढ़ें, जो असंभव को संभव बना सकें, जिनमें शहीद हो, दृष्टि हो, जो शहीद होने के लिए कफन बांधे तैयार खड़े हों। यह धर्म का, क्षात्र धर्म का पुनर्जन्म होगा।

['आरकाइव्स' में प्रकाशित और सामुराई के आधार पर : श्री विन्दाश्रम की पत्रिका 'पुरोधा' से साधित]

एक ऐतिहासिक पत्र, जो प्रेम-पत्र होते-होते रह गया....

माइकेल फराडे का नाम भौतिकी के इतिहास में सदा अमर रहेगा, क्योंकि उनके ज्ञान और अनुसंधानों ने विद्युत् शक्ति के आधुनिक उद्योग में उपयोग की विधि का मार्ग प्रशस्त किया था।

सोचो, उनका जो पत्र दिया जा रहा है, वह उन्होंने अपनी प्रेमिका सारा को, जो उसकी पत्नी बनीं, लिखा था। यह एक ऐतिहासिक पत्र तो है ही (क्योंकि सारा लिखा गया यह उनका एकमात्र पत्र था), इस अर्थ में भी असाधारण है कि यह प्रेम-पत्र कैसे-होते रह गया।

इन्स्टीट्यूशन : गुरुवार की शाम
(दिसम्बर, १८२०)

मेरी सारा,
यह देखकर आश्चर्य होता है कि ऐसी अवस्था किस प्रकार मानसिक रूपान्तरण को प्रभावित कर सकती है। होगा। उससे मुझ से ही मैं तुम्हें प्रेम-पत्र लिखने में, उसके कारण सोच रहा था, एक आनन्दप्रद और प्रिय पत्र। सोचते-सोचते, लो, शाम हैं उन साहसिकों है, और अब मैं इतना थक गया हूँ, जिनमें प्रेम-पत्र तो क्या, साधारण पत्र भी कठिन लग रहा है। फिर होने के कारण पड़ा एक वैज्ञानिक प्रयोग अलग हों। यह प्रयोगों का वायस बना हुआ है। सच है कि लाइनें लिखते हुए, मेरा सर झुक रहा है।

फिर भी मेरे गड्ढमड्ड विचार तुम्हारे दिमाग में घूम रहे हैं, और मैं उन्हें अपने

पास वापस बुलाने में असमर्थ हूँ।

मन में बहुत कुछ घुमड़ रहा है—तरल और हार्दिक—जो मैं तुम तक पहुंचाना चाहता हूँ, मगर मेरे साथ दिक्कत यह है कि मेरे पास वे शब्द नहीं हैं, जो यह काम कर सकें।

और, अब देखो, क्या तमाशा हो रहा है, मेरे साथ ! तुम्हारे बारे में सोचता हूँ, तो प्रयोगशाला की वस्तुएँ भी तुम्हारे चारों ओर मंडराने लगती हैं, और जब तुमसे ध्यान हटाकर उन वस्तुओं के बारे में ही सोचना आरंभ करता हूँ, तो भी तुम खयालों से ओझल नहीं होतीं।

इसलिए, पत्र समाप्त कर रहा हूँ कि कहीं पागल न हो जाऊँ।

प्यार के साथ, तुम्हारा
माइकेल
(प्रस्तोता : हंस)



जॉयस कैरोल ओट्स

आज की मूर्धन्य अमरीकी कथाकार
जॉयस कैरोल ओट्स
की एक मार्मिक लम्बी कहानी

राम

जॉयस कैरोल ओट्स शुरू से ही अमरीकी साहित्य-जगत में एक उत्कट दुःख-तक कथाकार के नाते विख्यात रही हैं, लेकिन इधर उनके अंतर्जगत में कोई आकस्मिक अतिक्रांति घटित हुई है। वे मानो अनायास एक शाश्वत सूर्योदयो चेतना के सबरे में जाग उठी हैं। . . . वे अपनी नवीनतम कृतियों में, मानवीय चेतना के आमूल रूपांतर की संभावना के विचन को साकार कर रही हैं। वे अब दुःखांतिका (ट्रेजेडी) नहीं, सुखांतिका (कॉमेडी) रचकर मनुष्य जाति को सुखद, भव्य और सूर्यायित भविष्य का आश्वासन दे रही हैं।

बहुत तब्दीली तो नहीं हुई लगती यहाँ। नहीं, ज्यादा नहीं। उसे तब्दीलियों के बारे में बहुत फिक्र थी, लेकिन असल में उसे तब्दीलियों के बहुत कम चिह्न दिखायी दे रहे थे। चीजें पुरानी ही लग रही थीं, घर पहले से ज्यादा दबे लग रहे थे, स्टोरों में बहुत भीड़ थी, और इस परिचित भवनसमूह में भी काफ़ी भीड़ दिखायी पड़ रही थी।

वह काफ़ी चकित था, यहाँ आकर उसे कोई ऐसी सीमात मिल गयी थी जो उसकी समझ में नहीं आ रही थी। एक जमाना था जब यह बड़ो पड़ोस ही उसकी सारी दुनिया थी, उत्तर की ओर पहियों की एक फैलाव थी, और थे खतरनाक पार्किंग स्थान, पूर्व में विशाल मुख्य पथ था, और पश्चिम में था ब्रिक्लिन पार्क। दक्षिणी सिरे पर

नी कथाकार

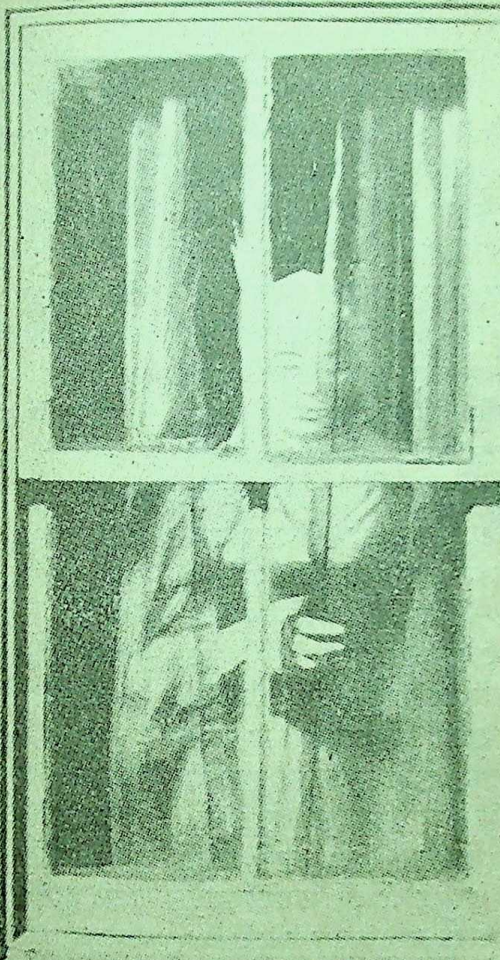
मोदस

कहानी

म

उत्कट दुःख-
गत मे कोई
वत सूर्योदयो
में, मानवीय
रही हैं। वे
ष्य जाति को
हैं।

हां आकर री
मिल गयी हो
आ रही थी
यह बड़ो-
दुनिया थी
की एक फेंदरी
पाकिस्तान
T, और पकि
क्षिणी सिरे प
जुता



मामूली घरों वाली एक धुंधली-सी सड़क थी। आजकल यहां ज्यादातर नीग्रो परिवार दिखायी पड़ते थे, पर माहौल पहले जैसा ही था। वह कुछ देर तक उस पटरी पर खड़ा रहा, जहां बस ने उसे छोड़ा था। वहां खड़ा-खड़ा, वह कुछ देर तक बेवकूफी भरे चाव से पंसारी की दुकान को देखता रहा। सदा की भांति उसका अंदर का भाग काफ़ी अंधकारमय दिखायी दे रहा था, मगर अंधकारमय होने के बावजूद वह काफ़ी विस्तृत लगता था। खिड़की पर 'सलादा चाय' उसी शैली में लिखा था, जैसा उसके ज़माने में लिखा रहता था। 'चाय' के ऊपर 'सलादा' अर्धवृत्ताकार ढंग से लिखा था। उसे यह देखकर बड़ी खुशी हुई। कोने के गैस-स्टेशन में भी उसे कोई तब्दीली नज़र नहीं आ रही थी। एक चिकने और पुराने, गंदे कोने में तीन-चार पुरानी कारें खड़ी थीं। बचपन में जब वह इस कोने में खेला करता था, तब भी वह ऐसी ही पुरानी कारों को यहां खड़ी देखा करता था।

शुरू में तो उसे सिर्फ सड़कें और इमारतें ही दिखायी दी थीं, आदमी कोई नज़र नहीं आया था। इन आदमियों को देखना और समझना उसके लिए बहुत ज़रूरी था। धीरे-धीरे, वह जैसे, नींद से जागा, और उसे स्कूल जाते बच्चों की भीड़, गोद में बच्चों को उठाये औरतें, ढीली-ढाली पतलून पहने औरतें और बड़े शहरों की याद दिलाते बूढ़े लोग दिखायी

दिये। वे पटरियों पर चलते हुए पार्क की ओर जा रहे थे। वहां वे खेलेंगे, और अन्य भाषाओं में एक-दूसरे से वार्स करेंगे। ये भाषाएं पोलीस हंगरीयन हो सकती हैं। ये भाषाएं से कम उसकी समझ में तो कभी नहीं। स्कूली बच्चे जल्दी में थे, काफ़ी शोर मचा रहे थे। उन्हें देखा उसे स्कूल के दिनों में अपने साथ वाले बच्चों की याद आ गयी, यह मालूम रहता था कि वे कहां हैं और जिनकी व्यस्तता और वयस्कों की याद दिलाती थी। बच्चों को ले जाती हुई महिलाओं की ओर देखा, यह जानने के लिए कि उनमें से कोई उसके बचपन की चित नवयुवती है जिसने विवाह उसकी भांति नया जीवन आरंभ उनकी मुस्कानों के आगे वह शर्मा है। मुस्कानों से उसका सामना पड़ता है, इसलिए नहीं कि लोग पहचानते हैं, बल्कि इसलिए कि वह है। पादरी की वेशभूषा धारण उसमें एक भारी परिवर्तन आ और उसे लोगों की मुस्कराहटों और उसी सदयता की अनुभूति प्रसन्नता होती थी।

उसका नाम एंड्रयू रॉलस था, लोग उसे या तो 'फादर रॉलस' और 'फादर' कहते थे, जो उसे एक संबोधन लगता था। यहां वापस

लगा बस लगा रहा था, क्योंकि अपने
पेचीदगियों का सामना
उसे जिन
था, वे उसे यहां कहीं नजर
आ रही थीं। लगता था, जमाने
जगह पर कोई प्रभाव नहीं हुआ
और पीढ़ियों की पीढ़ियां बिना कोई
तो कभी लाये, यहां से गुजर गयीं थीं।
दी में घे, वे
उन्हें देखते। तेरह वर्ष की आयु की वैसी ही
अपने साथ
आ गयी, जिस
वे कहां

०००

तता और
ती थी।
ई महिला
के लिए
वचन की
ने विवाह
आरंभ किया
वह शर्मा
सामना
हीं कि लोग
ले कि वह
या धारण
तन आ गया
मुस्कराहटों
भनुभूति से

होने की आवाज आ रही थी।
संदिग्ध तरीके से दरवाजे की
पर्दा हटा, और उसने चालीस
को एक महिला को अपने को
निगाहों से घूरते पाया। फिर
तेजी से खुला, और उस महिला
हो, फादर? आपको क्या
स्लीपर पहने यह महिला
और अस्तव्यस्त दिखायी दे

उसे एक
वापस आकर

यहीं का पता....'

'फ्रेंक टेलर! ओह, वह! वे लोग
तो चले गये। मेरा मतलब है, उसकी
बीबी यहां से चली गयी...।'

वह महिला एंड्रयू को आशंकापूर्ण मगर
सदय नेत्रों से देख रही थी। उसने परे-
शान स्वर में कहा, 'मुझे यह सूचित करते
हुए, बड़ा दुख है, फादर, कि फ्रेंक का निधन
हो गया है। आप शायद उसके मित्र
या रिश्तेदार हैं। मेरा मतलब है, उसकी
मौत एक दुर्घटना में हुई....'

'मौत?'

'हां, मौत! वह मर गया!' उसने
अपना सर हिलाते हुए कहा।

एंड्रयू एक कदम पीछे हटकर बोले,
'मगर यह दुर्घटना कब हुई? मुझे तो
कोई जानकारी नहीं....'

'कुछ महीने पहले घटी थी यह दुर्घटना।
मुझे ठीक मालूम नहीं। बड़ी खौफनाक
दुर्घटना हुई, दोनों के साथ। मैं उसकी
मां को जानती हूं। मां से मतलब है
मेरा, मैं उसकी मां से परिचित हूं, और
जैसे ही टोनी ने-फ्रेंक की बीबी ने यह
जगह छोड़ी, मैं यहां आ गयी।'

'तो वह मर गया?'

'मुझे बड़ा दुख है, फादर! क्या आप
उसके मित्र थे?'

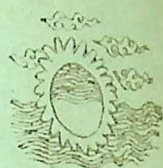
'हां। मगर काफी समय से मुझे उसकी
खैर-खबर नहीं मिली थी।'

'बड़ा अच्छा लड़का था। समझ में
(शेषांश पृष्ठ १२९ पर)

पूर्णिमा :

मातृसाधक दृष्टिसे विपरीत
का ध्यानावस्था में बचि रह गीत

चन्द्रिका की मधु-मधुरिमा
अवनि तल पर छा रही है
राग रस रंजित जनों को
दिव्यता दरसा रही है
यह सुमधुमय रागिनी है
स्नेह की मन्दाकिनी है
उत्स है यह दिव्य मन की
यह सुमुग्धा मानिनी है
किस तरह अनुराग रंजित
सुधा-रस बरसा रही है
अवनि तल पर छा रही है
तप्त को देती तरलता
मुग्ध-मन की मधु धरा है
तममयी इस सृष्टि में यह
प्रकृति की अनुपम कला है
जागतिक सौन्दर्य में यह
चार चांद लगा रही है
अवनि तल पर छा रही है



पर मनुज तो नाचता है
पूर्णिमा को पांचत
दर्दुरों का घर बना कर
जल-जल पहचान
शिखि-घटा निज नृत्य का क्रम
सानुराग सजा खो
अवनि तल पर छा रही है
विश्व की यह संगिनी है
प्रेम की अर्धाङ्गिनी
गरल को करती सुधा जो
वह मनोरम चांदनी
आज सहसा हृदय मेरा
चांदनी हरसा रही है
इस तरह अनुराग रंजित
सुधा-रस बरसा रही है
चन्द्रिका की मधु-मधुरिमा
अवनि तल पर छा रही है
वाप से संतप्त प्राणी को
भली यह भा रही है
-जी. टी. डी. हॉल
तेजपाल रोड, बम्बई-४०००००



(पृष्ठ १२७ का शेषांश)

‘वह उसे
मैं क्या कहूं?’ वह उसे
शायद इसलिए कि किसी
का विचार उसके मन में आ
अंत में उसने ही महिला की
दूर की, यह जादुई शब्द बोलकर,
अपको तकलीफ हुई, इसका मुझे

आपको टोनी का पता चाहिये,
सड़क पर ही थोड़ा आगे मकान
है।’

‘उसे परेशान नहीं करना चाहता।’

‘हैं, परेशानी कैसी? वह जरूर

बात करना चाहेगी। और आपसे

उसका लाभ ही होगा, फादर!’

जिस ढंग से कही गयी, उससे

को पता लग गया कि टोनी ने

जाना छोड़ दिया है। ‘उसकी सास

नहीं रहती, और आपसे मिलकर

बुरा खुशी होगी।’

‘कभी टोनी से नहीं मिला था, और

इस नाम बड़ा सस्ता लग रहा

उसने पुछा, ‘फ्रेंक कैसे मरा?’

‘उस मुहफ्त सवाल से बाद में उसे

हुई। महिला ने अस्फुट स्वर में

‘दुर्घटना का जिक्र किया, जिसमें

‘वक्तियों के प्रसन्न होने की बात थी।

‘इस दुर्घटना से सीधे टोनी

‘उसको, उसे यह याद दिलाते हुए

‘उसके पास में ही रहती है।’

यदि वह फौरन टोनी से मिलने को
राजी न हो जाता, तो कह नहीं सकते,
वह कब तक बातें करती रहती। उससे
विदा लेते समय उसे अपनी मां की याद
आ गयी, क्योंकि उसके तौर-तरीके और
भारी देह उसकी मां से बहुत मिलते थे।

०००

बाहर आते ही, उसने सहसा अपने को
बच्चों से घिरा पाया। वे उसे बिना
छुए, दौड़ते-चिल्लाते उसके पास से गुजर
गये। उनका शोर-गुल उसके मन में चल
रहे शोर-गुल में खो गया, शोर-गुल जिसके
बीच वह सोच रहा था, ‘तो फ्रेंक मर
गया!’

फ्रेंक उसकी ही आयु का था, और
कई वर्षों तक, जब उसे मित्र की बहुत
जरूरत थी, और जिंदगी की मंजिल की
साफ कल्पना मन में नहीं थी, उसका
घनिष्ठतम मित्र रहा था। फ्रेंक एक जादू
की तरह उसकी जिंदगी में आया था,
और उसकी समझ में अब तक यह नहीं
आ रहा था कि स्वभाव और आदतों
में इतनी असमानताएं होते हुए भी, फ्रेंक
उसके इतना निकट क्यों था? फ्रेंक
ने उसके अंतिम कुछ पत्रों का उत्तर तक
नहीं दिया था। ... फिर भी, ऐंड्रयू उसे
अपने भाई से अधिक चाहता था।

चलते हुए उसके पांव हल्के-हल्के
कांप रहे थे। यह अड़ोस-पड़ोस अब
उसे सुपरिचित और अनुकूल नहीं लग

रहा था। फ्रेंक की मौत की खबर से उसे बड़ा आघात लगा था। बड़ा अजीब लग रहा था, यह सोचकर कि अब वह फ्रेंक से कुछ नहीं सुन पायेगा, उसके बारे में दूसरों से ही सुन सकेगा। उसे गुस्सा आ रहा था, मानों किसी ने उसे धोखा दिया हो।

राई के रंग वाली एक पुरानी इमारत के सामने आकर वह कुछ क्षण चुपचाप, खड़ा कुछ सोचता रहा। लोग इस लंबे-पतले, विचारमग्न और खोये-से पादरी को देख रहे थे। कई एपार्टमेंटों वाली इस इमारत को, जो काफी भद्दी लगती थी वह बचपन से देखता आया था। उसके बचपन के साथियों ने इसका कोई बेहूदा-सा नाम भी रखा था। उसका अंदर जाने का मन नहीं हो रहा था।

न जाने क्या सोचते-सोचते, उसका सिर चकराने लगा। फ्रेंक की पत्नी से—इस विधवा से, जिसके बारे में वह कुछ भी नहीं जानता था, मिलने का उसका मन बिलकुल नहीं था। मगर न जाने कौन-सी अनबूझ इच्छा उसे अंदर खींच कर ले गयी। सीढ़ियां पार करते हुए, और इस इलाके की भूली-बिसरी यादों और गंधों का जायजा लेते हुए उसे ऐसा लग रहा, जैसे कोई बोझ उसके कंधे पर आ गया हो।

दरवाज़ा दस्तक देते ही खुल गया। एक लड़की, बिना कुछ बोले, उसे धूर रही थी। उसने कहा, 'मैं फ्रेंक का,

तुम्हारे पति का, मित्र था।'

उसका स्वर कोमल था, फिर भी लड़की डर-सी गयी। शायद घर के बाहर से आते संगीत ने उसे असंतुलित कर दिया था। उसने, जैसे कुछ सोचकर कहा 'आप जानते हैं न कि फ्रेंक के साथ क्या हुआ?'

'मुझे अभी-अभी पता चला कि नहीं रहा।'

'अंदर आना चाहेंगे?'

वह पतली-दुबली थी, और माफ़ूस सुंदर। उसकी आवाज़ में कोई लज्जा नहीं थी; वह रेडियो से आती एक साधारण आवाज़ लगती थी। कमरे के अंदर फर्नीचर तथा अन्य वस्तुएं उसी के समान साधारण थीं—साधारण और सरल। एंड्रयू को इस लड़की के साथ-साथ ऊपर भी अफ़सोस हो रहा था।

बड़े परेशान स्वर में वह बोली, 'आप हैं एंड्रयू! फ्रेंक के दोस्त। आपको बहुत चाहता था, और आपके बारे में बातें करता रहता था। कुछ क्षण रुककर और लाज तथा उलझन से भरी एक निगाह उस पर बाधते हुए वह पूछने लगी, 'पादरी हैं न आप? कैसे पादरी? मैं सब भूल गयी हूँ।'

'पादरी होने के अलावा मैं बिल्कुल में पढ़ाता भी हूँ।'

'अच्छा! क्या पढ़ाते हैं?'

'इतिहास।'

उसने अपने निचले हाँठों को धुँसते हुए कहा,

था।
 या, फिर भी
 यद घर के
 असंतुलित
 छ सोचकर
 क के साथ
 चला कि

त वृत्ता को अपने अंदर पचाया।
 जो वेगमूपा से लगता था कि वह
 जोड़ों के परिवेश में जन्मी है, मगर
 की हिचकिचाहट उसके नयी पीढ़ी
 को का संकेत दे रही थी।
 वह विषय आपको पसंद है ?' हिच-
 कते हुए उसने पूछा।
 'हुत ज्यादा।'

उसने अपनी भाँहों को ऊंचा कर इस
 न से सहमति अभिव्यक्त की। अपने
 की बेठी इस लंबी और दुबली लड़की
 देखकर एंड्रयू न जाने क्यों अपने को
 और घटिया महसूस करने लगा।

आप... आप... कहीं बैठ जाइये न..
 उस महिला ने कहा। वह एंड्रयू
 के से भी लंबी लग रही थी, अपने
 केशविन्यास के कारण। उसे
 एंड्रयू को लगा कि वह कहीं जाने
 तैयारी कर रही थी, और तैयारी
 तोच अपना इरादा बदलकर अपनी
 रोशाक में आ गयी।

उसने शर्माकर कहा, 'मुझे अफसोस
 है कि मैं कुछ अस्तव्यस्त है।'
 एंड्रयू ने मुस्कराकर अपना हाथ
 झुकाया, जैसे उसे इस अस्तव्यस्तता की
 कोई चिंता नहीं है। उसे बैठा देखकर,
 को ने पूछा- 'कॉफी लेना चाहेंगे या
 क्या वजा है ?'
 'पांच के करीब।'
 'तो बताइये न, क्या आप कुछ लेना

ते हैं ?'
 'हाँ को कुछ लेते ?'
 'हाँ को कुछ लेते ?'

'शुक्रिया, नहीं। मैं ज्यादा देर तक
 नहीं रुकूँगा।'

इन शब्दों को सुनकर उसे जो राहत
 महसूस हुई, उसे छिपाने की समझ भी
 नहीं थी उस लड़की में।

वह जिस ढंग के स्टूल पर उसके सामने
 बैठी थी, उसे एंड्रयू बहुत पहले से 'हैसक'
 के रूप में जानता था। उसकी दृष्टि में
 'हैसक' एक प्रतीक था, मगर किसका और
 क्यों, यह उसे नहीं याद आ रहा था।

इस नारंगी-भरे रंग के 'हैसक' को
 देखकर उसे न जाने क्यों हंसी आने को
 हुई, मगर वह हंसा नहीं। उसके सीने में
 दर्द उठने लगा, और उसने क्षमायाचना-
 सी करते हुए पूछा, 'एक गिलास पानी
 मिल सकेगा ?'

वह पानी लाने के लिए बड़ी फुर्ती
 से उठी। औरतों की यह फुर्ती उसके
 लिए नयी नहीं थी। पादरी लोगों की
 छोटी-बड़ी सेवा करने के लिए उसने
 महिलाओं को सदा त-पर पाया था।

उसने देखा, लड़की ने उसके लिए
 साफ़ से साफ़ गिलास चुना है। उसमें
 पानी भरकर वह हल्के कदमों से उसके
 पास आयी।

पानी में एस्प्रीन की तीन गोलियां
 डालते हुए, उसने कहा, 'यात्रा करते
 समय मुझे प्रायः सरदर्द हो जाता है।'

'आपको सरदर्द है ?' लड़की ने गंभीरता-
 पूर्वक पूछा।

'मामूली-सा।'

लड़की ने दोनों के बीच रखी कॉफी-टेबुल पर वह गिलास अनमने भाव से रख दिया। वह दाग के डर से उसे ऐसा करने से मना करना चाहता था, मगर रुक गया। उसने अन्य दागों के डर से टेबुल की ओर देखा भी नहीं। उसे कमरे में कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। न वह लड़की, न कोई और चीज़। तेज़ संगीत भी नहीं, जो अभी तक चल रहा था। उसका मन हुआ, फ़ौरन यहां से चल देना चाहिये।

तभी लड़की उठी, और रेडियो बंद करती हुई बोली—‘इसे बंद कर देना ठीक रहेगा। बेकार का संगीत है,’ फिर उसके पास आकर पूछने लगी, ‘अब कैसा है आपका सरदर्द? ठीक है न!’

‘अब ठीक है। शुक्रिया। तुम्हारा नाम टोनी है। है न?’

‘हां, मगर कैसा बकवास नाम है। मालूम नहीं, मुझे कैसे मिल गया?’ वह खुश भी थी, और किकर्तव्यविमूढ़ भी।

‘मेरा नाम एंड्रयू रॉलिस है।’

वह ‘हैसक’ पर बैठी, और अपने धुटनों को हाथ में लिये उसे देख रही थी। एंड्रयू को यह सोचकर अजीब-सा लग रहा था कि उसने इस लड़की से हाथ क्यों नहीं मिलाया। शायद अच्छा ही किया, हाथ न मिलाकर। वह और अधिक किकर्तव्यविमूढ़ हो जाती।

रेडियो के बंद हो जाने से दोनों के बीच शांति थी। उसने बड़ी नरमी के

साथ कहा, ‘कभी तुम्हारे पति और मैं अच्छे मित्र थे। मैं यदि उसके बारे में बात करूं, तो तुम्हें बुरा तो नहीं लगेगा?’

‘कह नहीं सकती। बुरा लगना तो नहीं चाहिये। मैंने अपने परिवार के लोगों के साथ, और दूसरे लोगों के साथ अपने पति के बारे में बहुत बात की हैं, मगर उससे कोई लाभ नहीं हुआ क्या कोई फ़ायदा होता है ऐसी बात करके?’ इतनी देर तक वह पहली बार बोली। नहीं तो एंड्रयू को लग रहा था कि वह सम्मोहितावस्था में है। अब तक की उसकी बातों में कोई तुक नहीं थी। मगर अब वह जैसे एक गमगीन सपने में खोई-सी बोल रही थी। और अब वह फिर से कुछ सुंदर भी लगने लगी थी।

०००

तभी उसने एक अजीब हरकत की। उसने एक जम्हाई लेकर हाथों से मुंह को ढंक लिया।

‘तुम कितने समय तक विवाहित रहेंगे?’

‘यही—तीन साल।’

‘पिछले पांच-छह वर्षों से फ्रेंक के साथ मेरा संपर्क टूट गया था। क्यों मैं नहीं जानता। पर, मुझे हमेशा इसका अफ़सोस रहा।’

‘फ्रेंक ने आपके पत्र बचाकर रखे और वह बड़े गर्व के साथ उन्हें मुझे दिखाकर करता था। मुझे आपके वे पत्र बड़े चस्प लगे। ... उसकी कभी समझ नहीं आया कि वह उत्तर में बाधा

र पति और मेरे
उसके बारे में
नहीं बोले।
बुरा लगना तो
पने परिवार के
दूसरे लोगों के
रे में बहुत बुरा
लाभ नहीं हुआ।
ता है ऐसी बात
वह पहली बार
को लग रहा
में है। अब तक
ई तक नहीं
लिखे, मगर उसे आपके पत्र पसंद
आए। एक पत्र की मुझे खास तौर पर याद
आती है। उनमें बड़े दुखपूर्ण स्वर में कहा,
‘मैंने वे पत्र ही उसकी उदासी का सबसे
सही कारण हैं।’ ‘वह पत्र इटली के बारे
में था। वहां के किसी स्थान के बारे में।’
‘तोर्सो? वेटिकन?’
‘हां, वेटिकन।’ लड़की ने वेटिकन
की दीवारों से दोहराया, जिस ढंग से
आया। बड़ा दिलचस्प पत्र था वह।
‘लेखक ने पढ़कर हम जैसे वेटिकन ही पहुंच
जाएंगे। मगर वहां क्या सब लोग इता-
ली नहीं बोलते?’

‘बहुत लोग अंग्रेजी भी बोलते हैं।’
‘कच्चा! मगर क्यों?’
‘लगी थी।’
‘तुम्हारे मुस्कराकर कर, जिससे
‘को बीज छिप गयी, कहा, ‘यूरोप
‘हम हरेक को अनेक भाषाओं को सीखने
‘कर हाथों से बचा है।’

उन सिर हिला दिया, मगर एंड्रयू
विवाहित होने लगा, मानो वह कह रही है कि यह
प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ। फिर
पों से फ्रेंक बोले, 'सब बातों को बड़ी सफ़ाई से पेश
रखा था। क्योंकि मैंने बोला पत्र था वह, आप जैसे पादरी
से हमेशा इन बातों से। मैंने फिर फ्रेंक से उसका
जवाब देने को कहा, तो वह बोला, 'जाने
बचाकर रखेंगे। मेरा गलत-सलत पत्र पाकर वह
उन्हें मुझे दिखाया ही। वह आपके बारे में अक्सर
वे पत्र बड़े दिमागों से संचित रहते थे।'

कभी समझ का तुम रविवार को कभी गिरजा-
स्तर में लाजवादी हो?

यह बार फादर ने जान बूझकर और बड़ी सादगी से किया था। लड़की कुछ परेशान होकर कहने लगी, 'कभी-कभी जाती हूं। पर, आप जानते ही होंगे आजकल बहुत खतरा है वहां जाने में। पिछले हफ्ते शाम के 'माँस' में गिरजाघर जाती एक औरत पर हमला किया गया। अब बताइये।'

‘बड़े अफ़सोस की बात है।’

‘हमारे पादरी खुद हमें सावधान रहने को कहते हैं। कुछ दिन पहले चर्च के पास एक नीग्रो को मारने की कोशिश की गयी थी। यहां अकेला रहना भी एक मसीहत है।’

लड़की के गुड़िया जैसे चेहरे पर से लिपस्टिक मिटती जा रही थी। एंड्रयू भी है सिकोड़कर सोचने लगा, शीघ्र ही वह इस लड़की पर रहम करना शुरू कर देगा। उसने पूछा, 'क्या तुम यहाँ एकदम अकेली हो?'

‘हां। मेरे परिवार के लोग यहां के माहौल से तंग आकर पश्चिम वर्जीनिया चले गये।’

‘अच्छा, तो तुम लोग पश्चिम वर्जीनिया के हो!’

‘यही समझ लीजिये, वैसे मेरा जन्म वहीं हुआ था, मगर मैं यहीं बड़ी हुई। मेरा मतलब है, मैं पहाड़ी लड़की नहीं हूँ।’

‘फ्रेंक से तुम्हारी भेंट कब हुई थी?’

‘याद नहीं। शायद एक डा-स में।
शायद किसी ने मिलाया था।’

‘क्या वह तब नौसेना में था?’

‘नहीं,’ उसने जोर से सर हिलाकर फादर की गली सुधारते हुए कहा। ‘तब उसे नौसेना छोड़े काफ़ी समय हो गया था। शादी के वक़्त उसकी उम्र २९ साल की थी। काफ़ी देरी से शादी की थी उसने।’

एंड्रयू को लगा कि वह उस पर बूढ़े और अविवाहित होने का इल्जाम लगा रही है। उसकी और फ्रेंक की उम्र बराबर थी। लेकिन लड़की जिस अनमने ढंग से अपने सपाट, काले जूतों को देख रही थी, उससे उसकी यह आशंका दूर हो गयी। बचपन में उस जैसी बहुत-सी लड़कियों से उसका परिचय था। चिड़ियों की भांति चपल, और एक डाल से दूसरी डाल पर फुदकने वाली।

‘आप खाने के लिए रुक सकें, तो मुझे बड़ी खुशी होगी। खाना तैयार हो रहा है।’ उसने सहसा कहा।

‘मैं अब चलूँ।’

‘आप क्या यहां अपने घरवालों से मिलने आये थे?’

‘नहीं, मेरे माता-पिता मर चुके हैं?’ उसने थोड़ा रुककर कहा। ‘वे यहीं पास के घर में रहते थे। पर, मुझे अब चलना चाहिये।’

‘मगर, मैं आपसे कुछ और बातें पूछना चाहती थी।’

‘बशौक, कुछ भी पूछो। मगर यह याद रखना कि मैं तुम्हें क़तई परेशान

करना नहीं चाहता। और, शायद तुम्हें कुछ काम अधूरे पड़े होंगे...’

‘नहीं, आप मुझे बिलकुल परेशान नहीं कर रहे हैं,’ उसने ऐसे कहा, जैसे वह कोई इल्जाम लगा रही हो, या उसे कोई अनर्गल बात सुनी हो। फिर, वारे पैर की उंगलियों से कालीन पर एक घेरा-सा बनाती हुई कहने लगी, ‘आपने और फ्रेंक में कितना अंतर है, फिर भी आप दोनों मित्र थे...’

‘मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।’

‘मतलब यह कि उसने स्कूल बिलकुल छोड़ दिया था, और उसका किताबों की पढ़ाई में कोई शौक नहीं था।’

‘उसे स्कूल नहीं छोड़ना चाहिये था।’

‘उसकी मां ने भी उसे यही सलाह दी थी,’ लड़की ने जल्दी से कहा। ‘मैं दोनों के बीच पांच फुट, आठ इंच नरम तगड़ा, कभी संदेह करने वाला और कभी अचानक मुस्कराने वाला फ्रेंक, लड़की आकर खड़ा हो गया। ‘उसकी मां मुझे बताने आई थी कि उसने फ्रेंक को स्कूल छोड़ने के बारे में समझाया था।’

यह सच है कि उसने ऐसी सलाह दी थी। ‘जहां तक मुझे मालूम है, उसने माता-पिता ने ही उसे स्कूल से छुड़ाया था। वे चाहते थे कि वह काम करने लगे।’

‘हूँ, यही होगा,’ लड़की ने सहमति में हुए कहा। ‘पढ़ाई में उसका शौक भले ही नहीं था, मगर गणित में वह बहुत होशियार था।’

आप कृपया रुक ।'

जैसे ही वह रुकने के लिए तैयार हुआ, वह लपक कर रसोईघर में पहुंची, और वहां से हांफती हुई बोली, 'मैं विस्कुट बनाने की तैयारी करती हूं।' और कुछ देर तक वह वहीं से उससे बातें करती रही। शायद उसे डर था कि वह चुपके से खिसक न जाये। उसने कमरे में चारों ओर निगाह दौड़ाई। कमरे में कोई पुरुष रहता ही, ऐसे चिह्न उसे दिखायी नहीं दिये। सहसा उसे खयाल आया कि फ्रेंक यहां कभी नहीं रहा। उसने लड़की से पूछा, 'तुम यहां कब आयी थीं?'

'दुर्घटना के बाद, मैं उस जगह नहीं रहना चाहती थी। बड़ी महंगी जगह थी वह। फिर, मेरा लड़का भी तो दुर्घटना में काम आया था, आपको पता ही होगा शायद'

'नहीं। क्या? लड़का? तुम्हारा?'

'हां, हमारा लड़का भी दुर्घटना में उसके साथ काम आया था।' उसकी आवाज बड़ी सपाट और व्याकुल थी। एंड्रयू की समझ में नहीं आया कि वह क्या कहे, इसलिए वह लड़कों के कोमल चेहरे की ओर देखता रहा। वह लड़-खड़ाये स्वर में कहती रही, 'उसका नाम राबर्ट था, जन्मपत्री पर उसका यही नाम दर्ज था, मगर हम उसे कभी-कभी राबिन कहते थे। वह दो साल का था। दोनों ही, एक साथ खत्म हुए। मेरा खयाल था, आपको यह पता होगा।'

‘तुम्हारे बेटे के बारे में कुछ मालूम नहीं था।’

‘लड़का था ... राबर्ट ... इसलिए मैं वहां नहीं रुकी, और यहां आ गयी। यहां एक और लड़की भी रहती है... हम दोनों शहर में काम करती हैं।’

‘तो, तुम काम करती हो?’ पूछते-पूछते उसे लगा कि वह कांप रहा है। लड़की की खातिर, वह चाहता था कि बातचीत का विषय बदल जाये। कितना दृढ़ सहा है इस लड़की ने! वह अपने को डरपोक महसूस करने लगा। उसे बड़ी शर्म अनभव होने लगी, अपने ऊपर, अपने सफल सुरक्षित और उपलब्धिपूर्ण जीवन पर, अपने बड़प्पन पर। उसे शर्म महसूस हो रही थी कि वह इस अभागी लड़की से कितना कटा हुआ है, और उसकी थोड़ी-सी तकलीफ अपने सर पर नहीं ले सकता। लड़की मुस्कराती हुई कह रही थी, ‘हां, मुझे काम करना अच्छा लगता है। मैं एक स्टोर में काम करती हूं। काम करना मुझे पसंद है।’

‘मुझे खुशी है कि तुम्हें काम करना पसंद है।’

‘मैं तो भूल ही गयी। आपके लिए कुछ लेकर आती हूं।’ कहकर वह वापस चली गयी, और वह बेवकूफों की तरह, तना हुआ चेहरा लिये बैठा रहा, उसके अपने की प्रतीक्षा करता हुआ। जब वह वापस लौटी, तो उसके हाथ में एक बोतल थी, और दो गिलास थे।

उसे बड़ी राहत महसूस हुई।

‘मैंने यह वाइन कल खरीदी थी। आपको इस किस्म की वाइन पसंद है क्या सुखद संयोग है कि इसे खरीदने में आप आ गये।’

बोतल का लेबल देखकर ही उसे पता चल गया था कि वाइन घटिया किस्म की है। वह इतनी सस्ती वाइन पीने की आदी नहीं था। लेकिन, उसने मुस्कराकर ऐसा जाहिर किया, मानो वोतल देकर उसे बेहद खुशी हुई है।

दोनों बड़े सुशिष्ट ढंग से वाइन पीने लगे। फिर लड़की सहसा नीचे देखने लगी, बड़े संकोचित लहजे में बोली, ‘सचमुच एकदम मामूली है। खास किस्म का नहीं है।’

‘खुशबू तो बड़ी अच्छी आ रही है।’

‘सचमुच?’ कहकर उसने बड़े ध्यान से, और बड़ी तेजी से एंड्रयू को देखा। मगर असल में उसका ध्यान उसकी ओर नहीं था, वह शायद किसी और बातचीत में मशगूल थी, और ऐसी आवाजें सुन रही थी, जो साधारण तौर पर मुनकरी नहीं देतीं। एंड्रयू को लगा कि लड़की उसके साथ बातचीत एक सतर्कता के साथ ही कर रही है, जिससे उसका ध्यान भंग होता है। उसने सोचे से और विचारपूर्वक स्वर में कहा, ‘मुझे यह छोटा एपर्टीस इसलिए पसंद है कि इसमें एक बरतन है जहां खड़े होकर मैं अपने बाल सुवां जैसा काम कर सकती हूं। हकीकत यह है कि मेरा ज्यादातर वक्त वहीं गुजरता है।’

वही रेलिंग पर एक चिड़िया का
बैठा है, जिसमें कुछ अंडे हैं। मैं हमेशा
करती हूँ कि चिड़िया डरकर
न जाये, मगर दो दिन से वह खुद
बैठी गयी है। तब से, मुझे कुछ भी
लगा नहीं लग रहा है।'

'क्या है... मेरा मतलब है कि बरसाती
करी अच्छी है।'

'हाँ, अच्छी तो है,' अपनी बड़ी-बड़ी
तों को घुमाते हुए लड़की ने कहा।

'वो धीरे धीरे हुई थीं। इससे वह

कोई आयु के बारे में अनुमान लगाने

मजबूर हुआ। छब्बीस से ज्यादा तो

होगी वह! पर अपने कंधों की

अपनी थकावट और बांह पर लगे

के दाग के कारण वह उसे सुपरिचित-

लगी थी। ... और वाइन पीते-

वह उन बच्चों को याद करने लगा,

वह छोटे-छोटे घरों, स्कूलों और

को भीड़ में देखा करता था। उन

कोई के ये दाग उसे एक अनबूझा

लगते थे, एक डरावना और

बिचरा रहस्य, जिसे समझने की

कोई हिम्मत नहीं होती थी।

लड़की की आँखें मुंदने लगी थीं।

वाइन का नशा उस पर

बा रहा था। वह सहसा कहने

लगी, 'चिड़ियाँ कैसे उड़ती हैं, सोचिये

क्या मजा आता है। और जानकर

भी रह जाना पड़ता है कि कभी

और कभी दक्षिण की दिशा में

उड़ते हुए, वे कभी कोई चूक क्यों नहीं
करतीं !'

'हूँ।'

'वे उड़ती रहती हैं, धोंसले बनाती
रहती हैं, हमेशा कुछ न कुछ करती रहती
हैं। हैं न अजीब बात। मगर मैं कभी
चिड़िया नहीं बनना चाहूंगी।'

'लेकिन वे कुछ न कुछ करती रहती
हैं, इसी कारण तो ज़िंदा रहती हैं।'

'क्या ?'

वह इस लड़की से इस बेकार की बहस
में मुक्ति नहीं होना चाहता था, मगर
उससे बचना भी असंभव था। इसलिए,
उसने ऐसे समझाना शुरू किया, जैसे
किसी मंद छात्रा को समझा रहा हो :
'जो जीवन-शक्ति उन्हें हर समय व्यस्त
रखती है, वही हमें, तुम्हें, सब प्राणियों
से सब काम कराती है।'

वह उसकी ओर ताकती हुई, उसके
शब्दों की प्रतिध्वनि अपने मन में सुनने
लगी।

वाइन की बोतल अपने और लड़की
के बीच में आ जाने से एंड्रयू अब अपने
को अधिक सुरक्षित और निडर महसूस
कर रहा था। उसने कहा, 'मैं यहाँ आकर
तुम्हें तंग नहीं करना चाहता था। प्रेक
की मौत और तुम्हारे पते के बारे में मुझे
उस औरत ने बताया था....'

'थेलमा ने !' उसके लहजे से जाहिर
था कि थेलमा के प्रति उसके मन में ज़रा
भी आदर या स्नेह नहीं था।

‘उसी ने मुझे यहां भेजा। मगर लड़के के बारे में उसने....’

‘हां, लड़का!’ लड़की ने अपना गिलास खत्म करते हुए कहा, ‘उसकी मौत से मुझे बहुत दुख हुआ, मगर अब उसके बारे में क्या कहूं, नहीं जानती।’

‘क्या तुम्हारे पास अपने पति और लड़के के चित्र हैं?’

‘नहीं,’ उसने ठीक स्वर में उत्तर दिया, ‘उसकी मां सारे चित्र ले गयी, क्योंकि वह उन्हें देख-देखकर रोते रहना चाहती है। वह साथ में एक डिश भी ले गयी, जो उसने शादी पर सौगात के रूप में दी थी। मैंने कहा, ले जाओ बाबा, सब कुछ! जाओ और मेरा पीछा छोड़ो। मैं उन लोगों से कभी नहीं मिलती।’

‘बुरी बात है।’

‘भाड़ में जायें वे सब।’

एंड्रयू ने फिर कहा, ‘बुरी बात है।’ मगर लड़की का ध्यान उस ओर न था। ‘डिश बढ़िया जरूर थी, मगर मुझे पूरा यकीन है, उसने खरीदी नहीं थी। उसे कहीं से सौगात में मिली होगी, या स्टैंपों के बदले में। जब आती, तो पहले यहीं पूछती, डिश को चमकाकर क्यों नहीं रखती? मतलब यह कि उसका बेटा शामें अपने दोस्तों के साथ गुजारे, और मैं उसकी मां की डिश पॉलिश करती रहूं।’ फिर वह उठती हुई बोली, ‘मैं अभी आयी।’

०००

अपने को अकेला पाकर एंड्रयू को बहुत अच्छा लगा। वाइन का एक से बनाते हुए वह सोच रहा था, फ्रेंक इस्लत में फंस गया मैं, मगर कोई बात नहीं, एकाध घंटे में निजात मिल जायेगी। एकाध घंटे की मुसीबत सही जा सकती है। फिर, इस लड़की को भी बातें करने के लिए कोई चाहिये। ऐसी लड़की को अकेली नहीं रहना चाहिये। वह उसे काफ़ी आकर्षक है।

दूसरे कमरे से पानी के गिरने का आवाज उसे बड़ी भली लगी। वह ढल रही थी, और अब उसे यह सब पहले से अधिक आत्मीय लग रही थी। और ऐसा सोचते ही, अगले क्षण फ्रेंक का खयाल आया, जिसके बारे में उसे अभी तक विश्वास नहीं हो रहा था कि वह मर गया है।

लड़की लौटी तो एंड्रयू ने पाया कि वह अब पहले से भी सुंदर लग रही थी। दरवाजे पर खड़े होकर, वह बड़े तकलीफ देह ढंग से कहने लगी, ‘फ्रेंक के बारे में किसी से बातें करती हूं, तो उसे अच्छा नहीं लगता। इसमें किसी का कमर नहीं नहीं। बड़ी बोरियत होती है। इसलिए आपके आने से मुझे खुशी हुई, मगर मैं नहीं चाहती कि आपको बुरा लगे....’

वह बैठ गयी, और वाइन के गिलास के साथ अपना समय बिताया करने लगी। बाहर से आती बाकू उसे सुनायी नहीं दे रही थी। एंड्रयू

रही थी, और वह खाने के बारे में सोच रहा था। अगर खाना शुरू हो तो मुँह का उपयोग बातें करने के लिए, बाने के लिए भी हो सकेगा। किचन में जाकर खाना लाती क्यों नहीं? इसकी भूख बढ़ रही थी।

मनीदी आंखों से लड़की ने कहा, 'तुम और फ्रेंक दोनों के कुछ एक-से बातें हैं! शायद आप दोनों कुछ जमा लेंगे।'

'मामूली टिकट और सीपियां।'

'सीपियां?' उसने चहककर पूछा।

'सीपियां आप दोनों को कहां मिलती हैं?'

'जवाब में वह उसे उन दिनों की याद दिलाते लगा, जब वे स्कूल के बाद

नट पर सीपियां जमा करने जाया करते थे। इन सीपियों की वजह से

सब में बड़े लड़के उनसे ईर्ष्या करते थे।

बड़े लड़कों से उनकी झकझक हमेशा होती रहती थी।

उन दिनों की बातें करते समय फादर

को लग रहा था कि फ्रेंक के जाने के बाद वे दिन भी सपनों जैसे अवास्त-

विकृत हो गये। यह आस-पड़ोस उन दिनों का खतरनाक था।। पता नहीं, आज भी

वही नहीं। उसने कहा, 'उन दिनों जो

रुके यहां रहते थे, उनसे पार पाना

बहुत मुश्किल था।'

स्कूल में आपकी और फ्रेंक की कैसी

बातें थी? अपने उन दिनों के बारे

में कुछ बताइये,' उसने हुकम-सा देते हुए,

1941

उत्सुकतापूर्वक पूछा। और वह उसे उन दिनों की बातें बताने लगा।

कुछ देर बाद वह किचन में आकर खाना बनाने लगी, और वह उसके दरवाजे पर खड़ा होकर उससे बातें करने लगा। वह उसकी सब बातों को पीती जा रही थी। वह उससे उन दिनों की, उन लोगों की और उन घटनाओं की बातें कर रहा था, जिन्हें वह बिल्कुल भूल गया था। फिर वह सहसा बोला, 'कितनी अजीब बात है कि फ्रेंक यहां कभी नहीं रहा। बड़ी अजीब बात है।'

'हां, मुझे भी ऐसा लगता है।'

'अपने भविष्य के लिए तुम्हारी क्या योजनाएं हैं?'

'कैसी योजनाएं?' उसने शून्य आंखों से उसे ताकते हुए पूछा। वह यह तय नहीं

कर पाया कि क्या वह निपट मूर्ख है या सदमे से जड़ हो गयी है। अच्छा, मान लो, इस वक्त फ्रेंक उन्हें बातें करते देख ले

तो! वह यहां आना चाहे, और आ न सके तो! वह फिर फ्रेंक के बारे में गंभीरता से सोचने लगा।

'मेरी कोई योजनाएं नहीं हैं,' उसने कहा।

दोनों किचन में ही खाने लगे। किचन में खाना उसे बड़ा स्वाभाविक लग रहा था। चर्च के बड़े डाइनिंग हॉल में खाना

उसे बड़ा बनावटी-सा लगता था। उसमें संभ्रांत परिवारों जैसी वग-दम नहीं था,

क्योंकि वह एक साधारण मध्यमवर्गीय

परिवार में जन्मा था।

०००

लड़की ने अचानक पूछा, 'क्या फ्रेंक की मां ने आपको कोई चिट्ठी लिखी थी ? उसने कई बार मुझे बताया कि वह आपको लिखने वाली है।'।

'नहीं। वैसे लिखती तो अच्छा होता।'।

'मगर उसने कहा था, वह जरूर लिखेगी।'। एंड्रयू की समझ में नहीं आया कि यह कहकर वह अपनी सास पर इल्जाम लगा रही थी, या खुद उस पर। मगर लड़की कहती रही, 'वह शैतान बुढ़िया हमेशा कोई न कोई चक्कर चलाये रहती थी। हम दोनों के बारे में अफवाहें फैलाने में उसे बड़ा मजा आता था।'।

'दुखियारी रही होगी बिचारी !'

'दुखियारी तो थी, मगर मक्कार भी कम नहीं थी।'। एंड्रयू ने खाना खत्म कर लिया था। खाने के मामले में वह काफी लापरवाह और अनियमित था, बहुत भूख लगने पर ही खाने के लिए बैठता था।

खाने की तृप्ति ने उसे दो अनजानी अनुभूतियां प्रदान कीं। फ्रेंक की मौत के आघात से वह एक साथ काफी भारी भी महसूस कर रहा था, और काफी हल्का भी। हल्कापन महसूस करने की वजह शायद यह थी कि उनकी बातों में कहीं बेहदगी का पुट आ जाता था। खाना खाने के बाद काफी देर तक वह इन दोनों परस्पर-विरोधी अनुभूतियों के झूलों में झूलता रहा।

नवनीत

लड़की ने स्ट्यू अच्छा बनाया था। वह काफी गाढ़ा था, और उसमें गाढ़ और आलू काफी मात्रा में थे। गोले जरूर कम था, मगर यह समझा जा सकता था। महंगा गोश्त खरीदने लायक कि इस बेचारी लड़की के पास कहाँ से बने ? कोई ज्यादा आमदनी वाली नौकरी तो थी नहीं उसकी। उसके यहाँ भारी कीमती खाना खाना उसके प्रति सच्चा अन्याय होता।

खाने के बाद, अपना फॉर्क मेज पर रखते हुए लड़की ने उससे कहा, 'अपना मर जाता है, तो लगता है कितनी ही कोई हिस्सा मर गया है। जैसे किसी ने घाव की पट्टी के साथ-साथ खाल निकाल उतार ली हो।'।

एंड्रयू को क्षण भर को लगा, जैसे दरवाजे में खड़ा उन दोनों को देख रहा है।

'तुम अकेली हो, यह देखकर दुख होता है।'। उसने कहा।

'मेरी कई सहेलियां हैं।'।

'तुम अपने माता-पिता के पास नहीं जाना चाहती ?'

'वापस ? ना, बाबा, ना। उसने कहा अब मेरा कोई लेना-देना नहीं।'।

'कभी-कभी किसी के पास रहना सुख मिलता है।'।

'मुझे यहाँ अकेले, अपने पांवों पर खड़े होकर रहना अच्छा लगता है। वैसे कभी-कभी यहाँ के खतरों को देखकर मन बदल जाता है ... एक दिन कभी ...'

१४०

बनाया था। मैंने एक आदमी को अपना
उसमें पाया। वह सोया-सोया-सा
बोधा-बोया-सा, ठीक मेरे पीछे
हो रहा था। मैं बहुत डर गयी। 'और
हमें से आंखें बंद करके सुबकने
पड़े।' पंद्रहूँ उसे देखता रहा। क्षण भर
उत्तेजित अपने हाथ नीचे कर लिये,
चकित-सी उसे देखने लगी।
क्षण था वह !

वाने के बाद दोनों कमरे में आ गये,
तुड़की ने दोनों के लिए फिर वाइन

मने तय किया कि अब उसे
देना चाहिये। उसे लग रहा था कि
वो जाने के बाद लड़की खाली और
रह जायेगी, और यह एपार्टमेंट
लगा, फ्रेंड्स और अकेला दिखायी पड़ने लगेगा।

मेरे देह द्वा है। उसे सांत्वना देने की कोशिश करने
कर दुःख होना, बिना इस विश्वास के कि उसके
उसे किस दिशा में ले जा रहे हैं,

के पास बाप... रहा था, 'हममें से प्रत्येक को...
के दौर से गुजरना पड़ता है,
विवाद और ग्लानि का दौर

ना। उस शता है, और उस समय हम कुछ नहीं।' तब पर अवलंबित रहकर ही अपने पास रहने का कायम रख सकते हैं।

पने पांवों पर खड़ा हो या न हो, संकट के क्षणों में

[illegible]

‘जब आप फ्रेंक के मित्र थे, तब क्या वह अच्छा कैथलिक था?’

‘जब वह मेरा मित्र था, तब था।’

‘उसने मुझे भी कैथलिक बनाकर छोड़ा। यह अलग बात है कि बाद में वह खुद भूल गया कि वह कैथलिक था।’

‘जब वह मेरा मित्र था, तब बिला-
शक वह एक अच्छा कैथलिक था।
हम दोनों को पास के शहर के चर्च के
शिक्षणालय में प्रवेश पाने की छात्रवृत्ति
मिली थी। मैं उसका लाभ उठाकर हाई
स्कूल से सीधा चर्च के शिक्षणालय में
चला गया, मगर फ्रेंक ऐसा न कर सका,
जिसका मुझे सदा दुख रहा।’

‘मुझे लगता है, उसका मन इस शौक से भी ऊब गया होगा।’

‘हमारा स्कूल बहुत अच्छा था। फ्रेंक को उसे छोड़ना नहीं चाहिये था।’

‘आपकी राय में वह स्मार्ट था?’

‘वेशक ।’

वह अपना सर इज्जीचेयर की पीठ पर डालकर, बेमन से बोली, 'मालूम नहीं सच क्या था।'

‘क्या मतलब?’

‘मतलब यह कि मुझे मालूम नहीं वह कितना स्मार्ट था।’

‘ऐसा क्यों कहती हो?’ एंड्रयू ने चौंककर पूछा।

वह कुछ क्षण तो ~~अपना घर~~ दायें-बायें, घुमाती रही। फिर उसने जिस ढंग से हाथ हिलाया, उससे उसे खीज आ

गयी, क्योंकि फ्रेंक भी जब इस प्रकार हाथ हिलाया करता था, तब भी उसे खीज आने लगती थी।

‘वह कुछ मामलों में स्मार्ट था,’ वह कह रही थी, ‘लेकिन दूसरे मामलों में... मैं कुछ नहीं कह सकती।’ उसने एक जम्हाई लेकर, शोकपूर्ण स्वर में कहा। ‘वह अपने धंधे में कभी तरक्की नहीं कर पाया, और बच्चे को हमेशा डांटता-मारता रहता था।... रात को वह बाहर जाता था, तो मैं हमेशा उसके साथ रहती थी, क्योंकि उसे औरतों से बड़ा लगाव था। पर उसे कभी पता नहीं चला कि मैं उसके साथ क्यों आती हूँ। वह समझता था कि मैं इसलिए आती हूँ कि मैं उसे बेहद प्यार करती हूँ।’

‘क्या... तुम सच कह रही हो?’ एंड्रयू ने पूछा।

‘मालूम नहीं,’ उसने फर्श से सिगरेट उठाते हुए कहा। ‘जब मैं छोटी थी, तब अपने से कहा करती थी कि प्रायः लोगों का आपसी व्यवहार अच्छा नहीं होता। वे अलग रहकर ही ठीक रहते हैं। मेरे मां-बाप हमेशा लड़ते रहते थे, और जब वे मिलते थे, तो इसी मिलन से हम भाई-बहनों का जन्म हुआ। ... आखिर अर्थ क्या है इन सब बातों का?’

‘क्या तुम्हें जीवन में कभी सुख नहीं मिला?’

‘क्या?’ उसने इतनी जोर से कहा कि वह डर गया। उसके घुटनों में कंपन

नवनीत

होने लगा। लड़की ने सही निगाहों से उसे देखते हुए कहा, ‘आप अभी-अभी कह रहे थे कि जब आदमी दुखी हो, तो वह शब्दों के सहारे से आदमी अपना होंस हवास कायम रख सकता है। इसकी जरूरत है?’

‘इसलिए कि वह जड़ न हो जावे।’
‘आप पादरी हैं, इसलिए ऐसे बातों में विश्वास कर सकते हैं। आपको न काम की चिंता है, न दुनिया की।’

उसने हंसकर कहा, ‘मैं जितने डॉक्टरों को हासिल करने के लिए मुझे पचास साल तक मेहनत करनी पड़ी थी।’

‘हां, समझी, मगर... आपमें और कोई यह फर्क है कि आप फ्रेंक की तरह नाकामयाब हो सकते हैं, न नीचे गिर सकते हैं। वह कई बार गिरा, और बार-बार नीचे गिरकर दुबारा उठ नहीं पाया। एकदम बेकार आदमी था।’ और फ्रेंक के चेहरे पर संत्रास के चिह्न देखकर, एंड्रयू जल्दी से कहा, ‘वैसे, वह आदमी बचने के लिए था, यह मैं मानती हूँ। मगर, जिस से आप जैसे आदमी बात को एकदम से हैं, वह नहीं कर सकता था। आप कर सकते हैं, वह नहीं जानता था। और मगर वह नहीं जानता था। और पादरी को बहुत-सी बातें बनी-बनी मिल जाती हैं...’

‘पादरियों को भी संघर्ष और तनाव के दौर से गुजरना पड़ता है।’
‘मगर इसका मतलब... क्या अर्थ है?’

...की निगाहों में
अभी-अभी की
...री हो, तो हु
अपना होना
...। इसकी क
...न हो जाये
...ए ऐसे बने
...। आपकी
...निया की।
...में शिखर
...लिए मुझे
...पड़ी थी।
...पमें और
...की तद
...न नीचे
...गेरा, और
...उठ नहीं पा
...। और ए
...देखकर, उ
...आदमी ब
...नगर, जिस
...को पकड़
...था। आप
...प्राना जान
...था। और
...तें बनी-बनी
...वर्ष और
...है।
...क्या अब

...की मतलब है, अर्थ है। क्यों नहीं
...उनीदी आवाज में बोलती रही,
...आप पादरी हैं, इसलिए आपकी
...वातें तयशुदा है... काला सूट
...के लिए...एक ऐसी चीज जिसमें
...कुछ छिपाया जा सकता है। काश,
...जैसे कोई चीज होती। नन्स
...कर मुझे पेन्गुइन पक्षियों की याद
...गती है। अपनी काली पोशाक में वे
...विशाल काले पक्षी जैसी लगती हैं।'
...ने हंसकर कहा 'तुम ठीक समझीं
...संदेह श्रद्धालु करते हैं, अश्रद्धालु
...को विश्वास करता है, वही
...न नीचे विश्वास भी कर सकता है।'
...वैब कभी कोई संदेह नहीं करती।
...असलियत क्या है, मैं जानती हूँ,' लड़की
...। और एंड्रयू सादगी से कहा, 'लेकिन जब मैं
...देखकर, उनीदी की थी, तब अवश्य सही-गलत,
...आदमी बनी-बनी के बारे में संदेह किया करता
...नगर, जिसमें मैंने विश्वास करना
...को पकड़ लेना, तब से संदेह भी अपने आप छूट
...था। आप जानते हैं। मैं आजाद हो गयी। अब मैं
...प्राना जानती हूँ कि असलियत क्या
...था। और इसलिए कभी उसके बारे में
...तें बनी-बनी की सोचती। सोचूँ, या न सोचूँ
...कोई फर्क भी नहीं पड़ता। आदमी
...सोचता है या नहीं, उससे कोई फर्क
...नहीं पड़ता।'
...तुम सच कहती हो।'

उसे लगा कि उसका शरीर एकदम
भावप्रवण हो गया है। लड़की के
अवैयक्तिक अनुताप के आगे उसे परेशानी
के मारे पसीना छूटने लगा था। अजीब
लड़की थी! उसके स्तम्भित चेहरे और
उस पर तनी त्वचा को देख-देखकर वह
अशांत हो रहा था।

‘एकाकीपन खतरनाक है। अकेला
रहना तुम्हारे लिए खराब है। इसलिए
खतरनाक है कि एकाकीपन से ग्रस्त व्यक्ति
भगवान तक नहीं पहुंचता, सीधा शैतान
तक पहुंचता है, अहं तक पहुंचता है।
आदमी बहुत अधिक सोचने लगता है।’
वह सम्मोहित-सा बोले जा रहा था।
और उधर ल की सिगरेट से धुएं के
छल्ले उड़ा रही थी। वह कहता रहा—
‘धार्मिक जीवन का ध्येय व्यक्ति को उसकी
व्यक्तित्व-केंद्रित चेतना को विकसित
करना नहीं, उसके सार्वभौम व्यक्तित्व
का विकास करना है... जीवन को खंडित
रूप में नहीं, बल्कि समग्र रूप में देखने
का अवसर प्रदान करना है... यही अनुभूति
भगवान है।’

लड़की कुछ देर तक विचारमग्न रही।
एंड्रयू ने कहा, ‘कभी-कभी, जब किस्मत
मेरे साथ होती है, मुझे यह अनुभूति
होने लगती है। काश! मैं इस अनुभूति
को तुम्हें समझा सकता! काश! मेरे
पास इतना समय होता...’ वह जैसे सनक
में बोले जा रहा था।

‘आपके पास समय ही समय है।

आप जब तक चाहें, यहां ठहर सकते हैं। आज रात यहां कोई नहीं आयेगा।'

एंड्रयू अपनी सनक में कहता रहा, '... ऐसे क्षणों में मैं किसी को देखकर ही उसके विगत जीवन की कल्पना कर सकता हूं। मुझे लगता है, मैं एक प्रेमी के रूप में उसके जीवन में प्रवेश कर सकता हूं।..... कभी-कभी किसी पत्र में किसी पर्वत या किसी विदेशी स्थान का चित्र देखकर मैं उसकी रहस्यवादी ज़िंदगी में, उसकी वास्तविकता में प्रवेश कर सकता हूं।... मैं उसके पीछे छिपे विशाल जगत की कल्पना भी कर सकता हूं। उसका इतिहास, उस चित्र के काल तक की, उस स्थान की सभ्यता मेरे सामने उजागर हो जाती है...'

लड़की अनिश्चित रूप से अपना सर हिला रही थी। उसने सिगरेट फेंक दी और पेट पर हाथ बांधकर उसे देखने लगी। उसने पूछा,

'क्या आप पादरी ही बनना चाहते थे, सदा से?'

उसकी आवाज़ कुछ बुझी-बुझी-सी थी।

एंड्रयू ने कहा, 'नहीं, आरंभ में मेरा पादरी बनने का कोई विचार न था। स्कूल में पादरी ने मुझे पादरी बनने के लिए प्रेरित किया। फ्रेंक भी उस पादरी से प्रभावित था। वह भी....'

'जहन्नम में जाये फ्रेंक !' लड़की बोली।

एंड्रयू का दिल जोर से धड़कने लगा। उसने पूछा, 'ऐसा क्यों कहती हो?'

नवनीत

'देखिये, आप फ्रेंक को नहीं जानते कभी जानते रहे होंगे, मगर जिस को मैं जानती थी, वह आपके फ्रेंक के भिन्न था। उसकी कार-दुर्घटना की वजह यह थी कि वह पीकर कार चला रहा था वह हमेशा पिये रहता था। वह एक नाकामयाब आदमी था और उसे बिराही कि वह कार में अपने साथ लड़के को ले जायेगा। जहन्नम में जाये वह!'

'मगर ऐसा क्यों हुआ? ऐसी बिराही उसने क्यों चुनी?'

'क्यों? क्यों क्या? कौन क्या चुन है?'

'लोग चुनाव कर लेते हैं....'

'अच्छा, यह बताइये, आज रात कहाँ रुकेंगे?'

'शहर में एक जगह।'

'आप यहां क्यों आये?'

'मैं क्लीवलैण्ड जा रहा था, और वहां से मिलना चाहता था।'

'इतने वर्षों बाद!'

'मैं काफ़ी पहले उससे मिलना चाहता था। मगर मेरी कुछ मजबूरियां थीं।'

'उसकी मां ने आपको पत्र नहीं लिखा क्या यह सच है?'

'हां, बिल्कुल सच है।' उसने धड़कते पूर्वक कहा।

लड़की ने उठकर एक अंगड़ाई लेते हुए कहा, 'मैं अब सोने जाती हूं।'

कल काम पर जाना है। वह फ़ौरन उठ-खड़ा हुआ, और

नहीं जाने, 'मुझे इतनी देर तक
सा बोला, 'मुझे इतनी देर तक
होना चाहिये था।'

वही बरसाती देखोगे? देखो, वह
वही बरसाती देखोगे? देखो, वह

वही बरसाती की ओर चली, और
वही बरसाती की ओर चली, और

उसके पीछे-पीछे गया। एक दरवाजा
उसके पीछे-पीछे गया। एक दरवाजा

उसने बरसाती में प्रवेश किया,
उसने बरसाती में प्रवेश किया,

वैसे थी, जैसा उसने उसका
वैसे थी, जैसा उसने उसका

किया था। उसने बरसाती के
किया था। उसने बरसाती के

में जाकर कुछ महसूस किया
में जाकर कुछ महसूस किया

फिर हंसने लगी।
फिर हंसने लगी।

'क्या बात है?' एंड्रयू ने पूछा।
'क्या बात है?' एंड्रयू ने पूछा।

'कुछ नहीं,' और यह कहकर वह
'कुछ नहीं,' और यह कहकर वह

फिर कमरे में ले आयी। एंड्रयू को
फिर कमरे में ले आयी। एंड्रयू को

बव फौरन चल देना चाहिये। उसने
बव फौरन चल देना चाहिये। उसने

उसकी ओर देखा, जो उसकी ओर
उसकी ओर देखा, जो उसकी ओर

मुस्करा रही थी। उसने विदा
मुस्करा रही थी। उसने विदा

समय लड़की से कुछ कहा, और
समय लड़की से कुछ कहा, और

उसने भी जवाब में उससे कुछ कहा।
उसने भी जवाब में उससे कुछ कहा।

उसने दरवाजे तक छोड़ने भी आयी।
उसने दरवाजे तक छोड़ने भी आयी।

उसने चलते उसने लड़की से कहा, 'मुझे
उसने चलते उसने लड़की से कहा, 'मुझे

पत्र पाकर बड़ी खुशी होगी।
पत्र पाकर बड़ी खुशी होगी।

और देखकर मुस्कराया।

और जैसे ही उसने गलियारे में प्रवेश
किया, लड़की ने सहसा कहा, 'फादर,
रुकिये! मुझे आपको एक सौगात देनी
है। मामूली-सी सौगात है, मगर सिर्फ
आपके लिए है।'

यह कहकर उसने फादर की हथेली
में एक नीला अंडा रख दिया—राबिन
चिड़िया का अंडा!

'मगर यह क्या है!'

'मुझे नहीं मालूम,' उसने लज्जाकर
मुस्कराते हुए कहा, 'कभी-कभी मैं बिना
सोचे कुछ कर डालती हूँ। इस वक्त भी
ऐसा किया।'

सीढ़ियों से नीचे उतरते समय उसका
दिल बुरी तरह धड़क रहा था। नीचे
आकर उसने हथेली खोली—वह नन्हा
सा, दिलकश, अंडा अभी तक अपनी
परिपूर्णता में उसके पास मौजूद था।
'क्या मजाक है!' उसने बुदबुदाकर कहा,
और अंडे को अपनी मुट्ठी में ही मसल
दिया।

और, अब जब उसने हाथ खोले, तो
उसके हाथ में गंदगी थी, गड़बड़ थी,
झंझट थी।...

(‘स्पान’ से साभार)



खरटि-स्वास्थ्य के लिए खतरनाक !

बड़े विश्वविद्यालय के डॉक्टर रतनम् और डॉक्टर मसूद प्रयत्नों से इस
विषय पर पहुंचे हैं कि खरटि लेना स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। 'खरटि लेने
से दिल और श्वास की बीमारियों के शिकार हो सकते हैं।'



जालिम लोशन

लगाईये
जी हों..जालिम लोशन लगाईये !!



● जालिम लोशन चमड़ी की गहराई में पहुँचकर दाद खुजली का नाश करता है ।



● जालिम लोशन सड़ी गली खराब चमड़ी को कागज की तरह निकाल फेंकता है ।



● दवा लगाते ही सूख जाती है । कपड़ों पर दाग नहीं पड़ता ।

दाद, खुजली से छुटकारा पाइये

ORIENTAL CHEMICAL WORKS, RAO (INDORE) INDIA

भारत का श्रेष्ठ फल आम, आम आदमी से किसने छीन लिया ?

□ हंस

आम आम का निर्यात बंद हो जाये, तो उसकी कीमत एक-तिहाई से भी कम हो जायेगी। मगर कौन बंद करेगा यह निर्यात ? आपाद समस्याओं के एक में डूबी सरकार या वे अमीर निर्यातक जिनका राष्ट्र से सिर्फ इतना सरोकार है कि वे उसे कितना चूस सकते हैं ?

आम, रसीला मीठा आम, जिसे आप बड़े चाव से गर्मियों में खाया करते हैं अब आम फल नहीं रहा। रत्नागिरि का सुप्रसिद्ध एलफोन्सो आम, जो पिछले वर्ष ७० रुपये प्रति दर्जन के भाव से बिकता था, आजकल बंबई में १५० रु. से २०० रु. प्रति दर्जन के भाव से बिक रहा है।

इस बड़े हुए भाव के दुकानदार लोग इसके कारण बताते हैं। ज्यादातर आम निर्यात किये जा रहे हैं, खाड़ी के मुल्कों में इसकी बहुत मांग है, इस साल फसल बहुत खराब हुई। और न जाने क्या कारण। पर आपको आम खाने हैं, पेड़ तो गिनने। और आप आम तभी खा सकते हैं, जब एक आम १५-१६ रुपये में खरीदने को तैयार हों।

एक दिन, जब मेरे सामने एक महिला आई, जिसके साथ खड़े उसके बच्चे दुकान में बड़े आमों को बड़ी ललचायी निगाहों से देख रहे थे, दुकानदार से पूछा—‘जब

मुल्क में आमों की इतनी कमी है, तो फिर आप उन्हें खाड़ी के मुल्कों में क्यों भेजते हैं ?’

‘क्यों, क्या आप चाहती हैं कि वे आम का मजा न लें !’

‘अच्छा जवाब दिया है !’ तनतना कर महिला जाने लगी।

‘आप नाराज न हों, बीबीजी ! देखिये, मैं आम बेचता हूँ, मगर मैंने खुद दो साल से आम नहीं खाया। कैसे खा सकता हूँ ? इतना महंगा आम मुझ जैसा मामूली आदमी कैसे खा सकता है ? असल में बीबीजी, आम अब सिर्फ अमीरों का फल बनकर रह गया है। गरीब और मध्यम वर्ग के लोग तो उसे बस दूर से देख ही सकते हैं।’

‘अच्छा मान लो कि आम का निर्यात बंद हो जाये तो ?’ मैंने दुकानदार से पूछा।

‘तो कीमतें एकदम एक-तिहाई से कम हो जायेंगी।’ दुकानदार ने कहा।

MUCH-AWAITED BOOK NOW ON SALE!
To BE READ, RE-READ AND PRESERVED!

Srimad Bhagavatam

By

KAMALA SUBRAMANIAM

With A Foreword

By

GHANSHYAMDAS BIRLA

(Printed on Superior Map Litho Paper, Royal Octavo Size,
pp. 672, Full cloth bound with an attractive jacket.)

Price Rs. 75.00

The *Bhagavatam* has been aptly described as the spiritual butter churned out of the ocean of the Veda Milk for the benefit of those "who are pure in heart, free from malice and envy, and are keen to hear it." Dry philosophy seldom appeals to the human mind. But in the *Bhagavatam* even the most abstruse philosophic truths are put across by means of stories and legends. This is the secret of its popularity among all classes of people.

Available from :

Bharatiya Vidya Bhavan

Kulapati K. M. Munshi Marg,

Bombay-400 007

And its Kendras.

3!
D!
m

उसका अनुमोदन उसकी पास वाली
के मालिक ने भी किया।
तो यह है इस समस्या की जड़।
निर्यात!

m

दलों का ही नहीं, आवश्यक खाद्य-
दलों का भी निर्यात!

tavo Size,
)

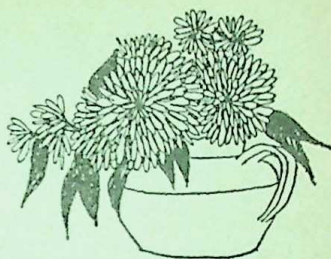
कुछ अमीर निर्यातकों की और खुद
को बेच भरने के चक्कर में सरकार
मंदकर खाद्य-पदार्थों और केले,
चौक, आम जैसे मामूली आदमी
दलों का निर्यात बिना रोक-टोक के
दे रही है। जिसका सीधा-सादा
परिणाम यह हुआ है कि पहले आसानी से
खाने वाला केला अब देखने को भी
मिलता।

spiritual
lk for the
malice and
y seldom
tam even
by means
popularity

और ये अमीर निर्यातक ९० प्रतिशत
का को भूखों मारकर दिन-ब-दिन
और और अमीर बनते जा रहे हैं,
अनुमान सिर्फ इसी बात से लगाया
जा सकता है कि बम्बई के तीन-चार
आम के व्यापारियों में प्रायः तीन-
चार निर्यातक हैं, और उनमें से प्रत्येक
का के सीजन में कम से कम दो लाख
का लेना है, जबकि सिर्फ बम्बई में आम
के बाल व्यापारी दो से तीन हजार
का नफा नहीं कमा पाता।

an

कितने संपन्न हो गये हैं आमों के ये
व्यापारी, इसका एक और अनुमान इसी
से लगाया जा सकता है कि वे आमों को
कई मार्केट (महात्मा फुले मार्केट) के
आम के एयरकंडीशंड होटलों के कमरों



को १०० रुपये प्रतिदिन भाड़ा देकर
रखते हैं, मानो वह होटल के कमरे न
हुए, गोदाम हो गये।

रत्नागिरि का एलफोन्सो... बलसाड
का एलफोन्सो... उत्तर प्रदेश का लंगड़ा
आम ... मामूली आदमी इनमें से कोई
भी आम खरीदने में असमर्थ है।

क्योंकि आम सोने जैसा कीमती हो
गया है। 'काम करने वाली सरकार' की
बदौलत! 'गरीबी हटाओ' के नारों के
बल पर ऐश कर रहे हमारे नेताओं की
बदौलत! और उन मुनाफाखारों की
बदौलत, जिन्हें, राष्ट्र से सिर्फ इतना
सरोकार है कि वे उसे कितना चूस
सकते हैं!

जब तक उस तिकड़ी का राज्य है,
खाद्य-पदार्थों और आम जैसे फलों का
निर्यात बंद नहीं होगा, और खाने की
साधारण वस्तुएं भी विलासिता की चीजें
बन जाएंगी।

'बन जायेंगी' शायद गलत होम्स, बन
गयी है, कहना उससे कहीं ज्यादा ठीक
होगा।

सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

तबुर जाना, होत अबेर...

तो बात है, कोई २५ वर्ष पहले
उत्तरप्रदेश में कार्तिक-स्नान
में नानामऊ का मेला प्रसिद्ध
था। १५-२० मील दूर-दराज के
से किसान भाई स्नान के लिए
पहुंचते हैं।

एक बार मैं भी इस मेले का यात्री
साधन था। किराये की बैलगाड़ी।
चलकर हम नानामऊ के निकट-
सूर्यकुंड आ पहुंचे थे; भोर हो
था। दूर-दूर तक अनंत पैकत-
की थी-पक्ति बांधकर पक्षीगण
के ऊपर 'सर' की ध्वनि करते गुजर
थे। चारों ओर उन्मुक्त बातावरण।
गोचा गया, यहीं दिशा-मैदान से
हो लिया जाये। शीतऋतु थी।
के बोंके शरीर छेद रहे थे। तभी एक
स्नान देखकर ठिठक गया। वहां
काष्ठ बाटे के गोल-गोल मोटे टिक्कड़
बैठा था। मेरी ओर मुखातिब
हो बोला- 'भैया! हो सके तो इन
को देखे रहना - मैं सूर्यकुंड से
जाने जाऊँ।'

मैंने स्वीकृति में सिर हिलाया। वह
उठकर चला गया। मैं इतस्ततः
चला, ताजी शुद्ध वायु फेफड़ों में भरता-
रहा। देखा, साधु की वय
नहीं है, कोई ३५ वर्ष का होगा।
उत्तरीय और उसी का



अधोवस्त्र पहने है। साथ है एक साधारण
सस्ती-सी कमली, बस। और कुछ सामान
नहीं। हाथ के बीने कंडे इकट्ठे करके
उसने ५-७ मोटे टिक्कड़ सेंक रखे हैं।
४-६ आलू भी भून लिये हैं, लेकिन
नमक-मिर्च कहीं दिखता नहीं। 'गीता'
का एक गुटका उसकी छोटी-सी जीर्ण
कमली पर रखा है। मैं साधु-जीवन के
विषय में सोच ही रहा था कि वह
जल लेकर लौट आया। कमली के निकट
बैठकर उसने एकाएक एक-एक टिक्कड़
चिमटे से उठाना शुरू किया और बड़े
निर्विकार और तटस्थ भाव से उन्हें
सूर्यकुंड में फेंकने लगा। अरे, यह क्यों!
मैं परेशान।

आखिर पूछा मैंने- 'बाबा! आप यह
क्या कर रहे हैं? टिक्कड़ किसी ने छुए
नहीं-कुत्ता वगैरह भी उधर नहीं गया।
मैं बराबर निगरानी करता बैठा था न,
फिर भला आप ऐसा क्यों कर रहे हैं?'

वह विलक्षण ढंग से एक फिलफ़सफ़ाना
हंसी हंसा। फिर बड़ी शिष्टता से बोला-
'नहीं भैया छूत-छात की कोई बात नहीं।
दुश्मन तो मेरा मन है।' वह सब के

INDOKEM LIMITED

221. Dr. D.N. Road,
Fort
Bombay - 400 001.

Phone : 267881/10 Gram: "INDOKM" Telex: 011-2942
Marketing:

Dyes. Chemicals. Pigments. Leather Binders. Auxiliaries.
Synthetic Tanning Agents. Leather Colours, Fat Liquors.
Synthetic Resins, Textile Auxiliaries, Polyester Fibre,
paints, menthol, Non-textile Auxiliaries etc.

Manufactured By:

Indian Dyestuff Industries Ltd.,
Colour Chem Ltd.
Aniline Dyestuffs & Pharmaceuticals (P) Ltd.,
Cellulose Products of India Ltd.
Dai-Ichi Karkaria Pvt. Ltd.
Haryana Rang Udyog
National Chemical Industries
Indian Organic Chemicals Ltd. (Futura Polyester Fibre)
Hypo Chemiedye
Gujchem Distillers India Ltd .
Lalji Mentha (P) Ltd.

Branches at:

Ahmedabad Calcutta Delhi Madras
 Kanpur Secunderabad.

और उबले आलू कुंड में
और शांतिपूर्वक सहज मुद्रा
पर शासनस्थ हो गया था। मैंने
—इसमें दुश्मनी कैसी? मैं समझा
हूँ।

वह टालना चाहता था, शायद कुछ
संवेदने के मूड में न था, परंतु मेरे
जल के आग्रह से विवश होकर बोला,
तुम क्या कहूँ! देखिये न, घर-परिवार
लिया। साधु जीवन का चोला लिया,
जिन जब तक जल लाऊँ-लाऊँ,
मोराम अपनी ही रट लगाये जा रहे
—बाबो! खाओ! जल्दी खाओ!
मैं भी तयकर लिया कि ठहरो! अभी
हूँ खिलाता हूँ। बीच में रुककर उसने
मिट्टी बुझी राख उसी जलभरे
कमंडलु में डाली और कमंडलु हिलाकर
उसने पीने लगा। काफी कमंडलु उसने
खाने कर डाला। राख-मिश्रित जल!
यह कैसा आहार! मैं चकित होकर
उस गौर से देखने लगा।

इतने में उसने कमली में 'गीता' की
लपेटकर बगल में दाबी, और
मुद्रा उठाकर आगे की यात्रा के लिए
समुद्धत हो गया। मैंने कहा—'बाबा!
तुम नहीं कल भी आपका कुछ भोजन
हो न हुआ हो, और इस तरह राख
पिने में तो शरीर न चलेगा!'

वह आनंदी मुद्रा से बोला—'खूब
कमना। देखिये न, अब मनीराम पूरी
गुद शांत हो गये हैं। उनकी आतुरता

विलुप्त हो गयी है। यही इनका इलाज है।'

मुझे वह शिक्षित जान पड़ा। साधु
आगे बढ़ गया था, शायद मेरे प्रश्नों से
बचने के लिए और उसके 'झनझन'
वजते लंबे से चिमटे पर एक पंक्ति गूंज
उठी—'जनकपुर जाना, होत अवेर ...'

—वचनेश त्रिपाठी, लखनऊ

०००

अनोखी सजा

ब्रिटेन पर सम्राट एडवर्ड सप्तम शासन
कर रहे थे। एक दिन स्वयं सम्राट
ने ऐसा अपराध कर दिया, जो दंडनीय
था। सम्राट को दंड दे या न दे— इस
बात की चर्चा हाउस आफ कामंस
और हाउस आफ लार्ड्स में चली। अंत
में यह निर्णय हुआ कि मामला अदालत
के सुपुर्द किया जाये। न्यायालय ने तहकी-
कात की, तो इस बात का पता चला कि
सम्राट अपराधी हैं। सम्राट ने भी अपना
कसूर कबूल कर लिया।

अब न्यायालय के सामने यह समस्या
उपस्थित हुई कि सम्राट को सजा दी
जाये तो कैसी? आखिर न्यायाधीशों
ने पुरे मामले की विस्तृत नकल तैयार
करायी और ब्रिटिश शासन के अंतर्गत
जितने न्यायालय थे, सबसे राय मांगी
कि इस अपराध के लिए कौन-सा दंड
दिया जाये। अनेक न्यायाधीशों ने अपने
मंतव्य लिख भेजे, पर किसी की राय
संतोषजनक नहीं थी। तभी मद्रास के

उपयोग करें
ग्रेलिम स्टेपल फाइबर
और
साथ में



मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय
पूरक धागे

Grasilene

दि ग्वालियर रयान सिल्क (मन्यू.) विविंग कं. लिमिटेड
(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार । GRASIM

टे. नं. : ३८८२८८

राज्य के सर्वप्रथम जज सर
 मिस्टर अय्यर का पत्र आया।
 मिस्टर अय्यर ने अपने पत्र में
 लिखा कि न्याय के सामने शासक और
 नागरिक दोनों समान हैं। कसूर करने
 वाला चाहे सम्राट हो या कोई और,
 सब का भागी है। अपराधी को उचित
 सजा मिले—यही न्यायसंगत है। इसलिए
 सम्राट को जो दंड दिया जाये, वह कई
 सत्रहवीं तक लोगों की याद में रहे।
 यह मुझसे है कि कम से कम दस करोड़
 लोगों पर उनका चित्र बेताज के बाद-
 शह के रूप में छापा जाये।

यह राय ब्रिटेन के उच्च न्यायाधीश
 लॉर्ड वेब्सटर पसंद आयी। जब उन्होंने भरी
 सदन में सम्राट के लिए यह दंड सुनाया,
 तो चारों ओर वाहवाही मच गयी।
 —चमलसौगानी, भवानो मंडी (राज०)

०००

लड़की को नुमायश क्यों ?

यह इसी माह की है। मेरी सहेली का
 रिश्ता तय करने के लिए लड़की वाले

मेरे यहाँ ठहरे हुए थे। कुछ औपचारिकताएं
 पूरी करके बात यदि यहीं खत्म हो जाती
 तो संतोष था लेकिन लड़के वालों का
 पूरा कुनवा इस बात पर अड़ गया था
 कि हमारे सभी नाते-रिश्तेदार लड़की
 को देखेंगे। लड़की वालों की ओर से
 उसकी भी व्यवस्था हो गयी।

फिर क्या था, लड़के वालों की ओर से
 सहेली से गाने आदि की फरमाइश की
 गयी। सहेली लज्जा से घबरा गयी थी।
 मजमा लगा हुआ था। जिस लड़के से
 रिश्ता तय हो रहा था उससे यह मजमा
 सहा नहीं गया। उसने निर्भीक होकर कहा—
 'शादी मुझे करनी है, आप लोगों को नहीं।
 बंद करो यह नाटकवाजी। पांच मिनट
 में आप लोग लड़की को कैसे परख सकते
 हैं? उसकी आवाज से क्या सरोकार
 है? देखना है तो उसके गुणों को
 परखिये।'।

उस लड़के के साहस से देखते ही देखते
 जमघट बिखर गया और पूरी सादगी से
 नैसर्गिक रीति से सगाई संपन्न हो गयी।
 —स्नेहलता, अजमेर (राज.)

कुछ नये स्तंभ

हम यथाशीघ्र 'नवनीत' में कुछ ऐसे स्थायी स्तंभ आरम्भ कर रहे हैं, जिनमें
 हमारे पाठक भी हिस्सेदारी कर सकेंगे। मसलन 'मेरा सपना, जो सच हुआ',
 'मेरा चमत्कारिक अनुभव' तथा बच्चों के लिए 'मच्छी-मच्छी पानी',
 जिसमें बच्चों की रचनाएं, चित्र तथा फोटो भी यथा-प्रसंग छप सकेंगे। इन
 स्तंभों के लिए आपकी सामग्री सहर्ष आमन्त्रित है।

—सम्पादक 'नवनीत'



ताज़गी की एक लहर

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं।
जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की
लहर। आप अपने आपको कुछ और
ज़्यादा पसंद करने लेंगे।
क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके
लिए ही तो बनाए गए हैं। जियाजी
आस पास बिकरे सुनेपन में
ताज़गी भर देते हैं।



जियाजी
सूटिंग-शर्टिंग

कॉटन प्रिंट्स

जियाजीराव कॉटन मिलर्स लिमिटेड
बिला नगर, ग्वालियर (म.प्र.)

दो क्षण तो हैंस लें

फिलास्फर साहब मिट्टी के घड़े
बचने वाले के पास पहुंचे और उल्टे
घड़े पर हाथ फेरने लगे, फिर बोले—
‘अगर इसे खरीद भी लिया जाये तो पानी
वहां से भरेंगे? पानी भरने के लिए
इसके ऊपरी हिस्से में छेद भी कर लें
तो भी क्या फायदा?’ नीचे से घड़ा फूटा
वहां से पानी निकल जायेगा?’

०००

एक नेताजी रेल में यात्रा करते हुए
स्टेशन पर उतरते,
अगले स्टेशन
टिकट खरीदते,
पर डिब्बे में चढ़ जाते।
हमसफर ने उनसे



कारण पूछा।

नेता महोदय बोले—‘भैया, डॉक्टरों
कहा है कि मुझे हृदय-रोग है और मेरी
कुछ भी समय हो सकती है, इसलिए
तक मुझे जाना है वहां का सीधा
टिकट खरीदने से क्या फायदा?’

०००

एक उपन्यासकार की मुलाकात पांच
सकल लड़कियों की मां से हुई।
कमनी खुशी जाहिर करते हुए उसने कहा,
‘तो, मुझे इतने अधिक सुंदर संस्करणों

की रचयिता से मिलकर अत्यधिक खुशी
हुई है।’

—कमल सौगानी

०००

संगीत की महफिल गरम थी। स्टेज से
स्वर उभरा—

‘जलता हुआ दीया हूं मगर रोशनी
नहीं...’

‘सरकारी दीया मालूम पड़ता है,
भैया!’ पीछ से आवाज आयी।

०००

एक बड़ा-सा रजिस्टर
हाथ में लेकर शायर
ने खोला और मुशायरे
में अपना कलाम पढ़ा—
‘बार-बार आती है सदा

कूच-ए-यार से...’

बीच में किसी श्रोता ने जोड़ा—‘रही
अखबार बेच डालो!’

०००

‘अगर मैं तुम्हारी मम्मी होती तो
तुम्हें दो दिन में ठीक कर देती,’ एक बेहद
शरारती बच्चे से स्कूल टीचर ने कहा।

‘अच्छा, मैं अपने पापा से पूछकर आऊंगा
कि क्या आप मेरी मम्मा हो सकती हैं?’
बालक ने भोलेपन से कहा।

—मुधीर निगम

बचपन के दिन... सपनों के दिन!



संजु अभी-अभी अपने प्यारे छोट मई को रोका लोटा है। उसके मन में अभी नयी कल्पना जागृत हुई और उसने एक सपना संजोया- वह था डॉक्टर बने का। लेकिन उसके सपने को पूरा करने की जिम्मेदारी आपकी है। उसकी उच्च शिक्षा ही उसके जीवन की सफलता होगी। आप अभी से इस बारे में सोचिए, बैंक ऑफ इंडिया की अपने नजदीकी शाखा में पधारिए। हमारे पास आपकी तथा आपके परिवार की हर जरूरत को पूरा करनेवाली कई बचत योजनाएँ आइए और देश के सबसे सौ राष्ट्रीयकृत बैंक की मदद से अपने बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बनाइए।



बैंक ऑफ इंडिया
(भारत सरकार का उच्चांगक)
देवा में धेकता ही हमारी बिलगत है।

CONCEPT-BOI-4452 HIN.

पृष्ठ ९६ का शेषांश)

कि जान तक देने के लिए भी
अंतरंगता और आत्मीयता
में इसी भावना और त्याग भावना को
प्रदर्शन को नहीं—भारतीय व
परंपरा और दृष्टि के इस मूल
अंतर को भी गम्भीरता से समझने की
हस्त है।
उपरोक्त व्याख्याओं में कहाँ है पति
पत्नी पर अधिकार-भावना या स्त्री
दासता? ... उस समय 'पति को
परमेश्वर मानो' का अर्थ परमानंद की
अनुभूति प्राप्त करने के लिए ईश्वरीय
सर्व व साक्षात्कार को ध्यान में लाना और
इस तरह भावी संतान में श्रेष्ठत्व की
संरचना करना ही तो है। ... 'अपने भीतर
सर्वोच्च को अपने सर्वप्रिय में लीन
हो' में कहाँ है पति-पत्नी के बीच द्वैत
को ईमानदार, निशंक दाम्पत्येतर प्रेम-
भावों पर भी ऐसी रोक, जो विक्षोभ,
असंतुष्टि या भय पैदा करे? भय की
अनुभूति में न तल्लीनता संभव है, न परमा-
नुभूति की अनुभूति। फिर जहाँ न लिप्तता
न अस्वीकार, न अधिकार-भावना,
अतः, उस सृष्टि में और स्वर्ग में क्या
कर है?
तो ऐसी थी, हमारी प्राचीन दृष्टि,
जिसने सभ्य लेने पर मिथुन-मुद्राओं को
पवित्रता के साथ जोड़ने की
सुरत सभ्य में आ जाती है। प्रकृति,
विज्ञान और आध्यात्मिकता का अद्भुत

नवनीत के चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु. । दो वर्ष ४६
रु. । तीन वर्ष : ६६ रु. । विदेशों में समुद्री
डाक से : एक वर्ष ६० रु. । दो वर्ष : १०५
रु. । तीन वर्ष : १५० रु. । विदेशों में हवाई
डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का
१२० रु. । दो वर्ष का २१० रु. । तीन वर्ष
का ३०० रु. ।

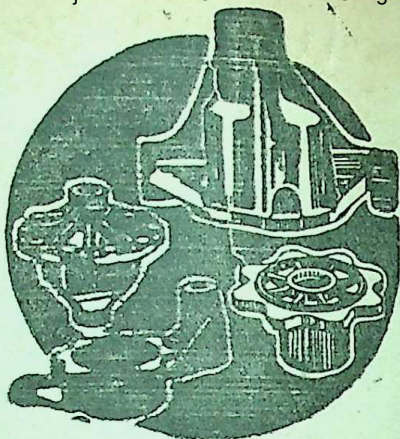
एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए
एक वर्ष : १५० रु. । दो वर्ष : २७५ रु. ।
तीन वर्ष ४१० रु. । —वितरण व्यवस्थापक

समन्वय करने वाली यही दृष्टि भारतीय
भावी विश्व में मान्य होगी, ऐसा मेरा
विश्वास है। इसी विश्वास का सूत्र या
अवलंब पकड़कर नये मूल्यों की रचना
का यहाँ प्रारंभ किया जा सकता है।
भारत को इस मामले में नकल नहीं,
पहल करनी चाहिये। कहीं ऐसा न हो
कि यह पहल भी, जिसके आसार नज़र
आने लगे हैं, पश्चिम से हो और हम
अपनी ही चीज़ की वहाँ से लौटकर आने
पर कदर करें और तब उसके पीछे लगे
जैसा कि इस सदी में अनेक क्षेत्रों में करते
आये हैं।

क्या भारतीय चिन्तक इस चुनौती को
स्वीकार करने का साहस नियाँवेंगे?

— 6 B/M I G फ्लैट्स,

मायापुरी, नई दिल्ली-६४



दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाईनिंग कंपनी लिमिटेड

का आपको निमंत्रण है, जायात प्रतिस्थापन को सफल बनाइये

एस० जी० आइरन के कार्स्टिंग

कांसा, पीतल, गनमेटल या लौहेतर धातुओं तथा इस्पात के पुजों
व हिस्सों का स्थान ले सकते हैं।

मैलिएबल आइरन के कार्स्टिंग

अनेक प्रकार की चीजों में इस्पात के कार्स्टिंग का काम दे सकते हैं।

एस. जी. आइरन और मैलिएबल आइरन के कार्स्टिंगों में उच्च शैतिक गुण होने
वे खींचने में सुगम, दृढ़ एवं सन्वत्तायुक्त होते हैं, उनमें घिसाव कम होता है।

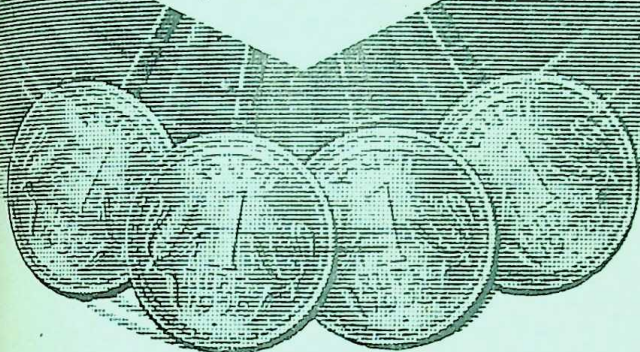


संपर्क कीजिये :

फेरसफाउंड्री, पंचपाखाड़ी, पहला पोखरन लेन, याना (महाराष्ट्र)
उच्च श्रेणी के कार्स्टिंग्स व बचत के लिए डबल हैमरबॉल
वापस कीजिये।

मु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्याभवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००४
के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग
बंबई-४००००४ से मुद्रित

**आप ही देखिये कि
देना बैंक में आपकी
रकम समय के साथ कितनी
बढ़ती जाती है!...**



समृद्धि जमा योजना

आपकी बचत की रकम आश्चर्यजनक गति से बढ़ती है क्योंकि यह आपकी मूलधन पर वार्षिक व्याज पर भी व्याज मिलता है।

आवृत्ती जमा योजना

आपकी मासिक बचत की छोटी-छोटी रकमों को प्रविश्य के लिए निवेश की गई रकमों में बदलिये।

सीमादी जमा योजना

जब आप सरलता से बचत कर सकें तो इस रकम के लिए बड़ा फायदा प्रविश्य है।

नफ़वी प्रमाण पत्र

एक सुरक्षित निवेश राशि जो अपने आप बढ़ती चली जाती है।



देना बैंक

(राष्ट्रीयकृत बैंक)

केन्द्रीय कार्यालय : मेजर टा ११
कुरु परेड, बम्बई ४०० ००६

वर्षिक जानकारी के लिए
अपने नज़दीक की
देना बैंक की शाखा में पधारिये।

संपत्ति की रक्षा और समृद्धि के लिए सर्वश्रेष्ठ

नन्हे मुन्नों की मुस्कान से आबाद है जहाँ



उन्हें दीजिये प्यार सी देखभाल

पारले ग्लुको—

स्वाद में निगले, शक्ति से भरपूर

दूध, गेहूं, शक्कर, और ग्लूकोज़ के
स्वाद और पौष्टिक गुणों से भरपूर

पारले ग्लुको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भारत के सबसे ज्यादा बिकनेवाले बिस्किट

बर्ले विभाग

नवनीत

हिन्दी डाइजेस्ट





रोमांचक कल्पनाओं का अनोखा संसार

वेताल, जो कभी नहीं मरता.
फ्लेश गॉर्डन, जो अंतरिक्ष का हीरो है
मैडेक, जो मायावी जादूगर है. और
... जो आम जनता का हीरो है.
इन सबके साहसपूर्ण कारनामे !
बुराई पर अच्छाई की विजय !
मन को आध लेनेवाली कहानियां
जो बच्चे के दिलोदिमाग पर
... उनको साहस और
बहादुरी की प्रेरणा देती हैं.
रहस्य और नसनी में गुंथी हुई
बीते-बचे अद्भुत कहानियां.

देश की महान विभूतियों के जीवन-प्रसा और
यह सब सिर्फ शब्दों में नहीं, बहुरंगी चित्रों में
रहस्य, रोमांच और प्रेरणा के रंग !
बच्चे ही नहीं. बड़े भी हो जायें गंग !

इंद्रजाल कॉमिक्स
टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
TIMES



स्वामिनारायण गौरव गाय-३२

भगवान स्वामिनारायण
द्विशताब्दी महोत्सव
१९८१-१९८२



प्रमाणित बोधारणवासी
श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था
आहीवाज अहमदाबाद
ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री
नारायणस्वरूपदासजी
(प्रमुख स्वामी)

द्विशताब्दी की
कोई पूर्णाहुति
नहीं है.....



द्विशताब्दी का मुख्य एवं दिनांक ७-३-१८१ से १३-४-८१

तक अखिल भारतीय साधु-समाज महा अधिवेशन, भक्ति, संगीत
समारोह, संस्कृत सम्मेलन, सन्त व्याख्यान माला, पारायण, धर्म
प्रकाश कार्यक्रम, महिला सम्मेलन, बाल-युवक सम्मेलन,
हरि शोभा यात्रा, विश्वशान्ति द्विशतकुण्डी श्री हरि महायात्रा, आस्था
महोत्सव, संस्कृति प्रदर्शन, धनरयाम बाल नगरी, आदि द्वारा
धूम-धाम से मनाया जा रहा है.....

यह द्विशताब्दी की कोई पूर्णाहुति नहीं है। स्वामिनारायण
के संदेश एवं कार्य सर्वजीव-हितावह है, सनातन है। आइये,
उनको जीवन में अपना कर सद्वृत्ति और अधिक से अधिक प्रभावित करें.....

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

वीरेन्द्र कुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र : श्रीयुगल छवि

सौजन्य : आर. कलाधर भट्ट

कार्यालय : भारतीय विद्यापीठ

वर्ष : २०११

नवनीत : आपकी निगाह में
आगामी कल का सूर्योदय

डा. मदन मोहन मालवीय

डा. भगवतशरण उपाध्याय

अरुणकुमार वर्मा

भारत निर्माण

वी. कु. जैन

विज्ञान-वार्ता

कच्छ की मोती-कला माधुरी शर्मा

दो कविताएं

डा. दिवा

प्रार्थना

श्रावण का... रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हंस-दीप (कविता)

एलाचार्य श्रीविद्यानन्द स्वामी

श्रीगणेश के विनायकस्वरूप का रहस्य

आचार्य भाईशंकर पुरोहित

कुरुक्षेत्र के बाद (सत्यपालम कविता)

नालापाट बालामणि अम्मा

मेरा दीक्षा-दिवस

स्वामी मुक्तानन्द परमहंस

नदी (कविता)

वीरेन्द्र मिश्र

वर्षा की बेला

सावित्री परमार

१५ अगस्त १९४७ को श्रीअरविन्द...

मूक-बधिर का गीत

नीलजारा

कृष्ण कमल में बजता जल-तरंग

वीरेन्द्रकुमार जैन

पिक्चर की दास्तान

शिरीष पं

अर्धांगिनी मेरी

विष्णु प्रसाकर

ये घन लाये... गीतारानी पाण्डे

बरखा बिटिया किशोरीस्मरण टण्डन

शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७



अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित पुस्तकालय विद्या, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी धर्मादा न्याय, संस्थापक: मा. मुन्शी, अध्यक्ष: श्री धरमजी म. खटाऊ, उपाध्यक्ष: श्री गिरधारीलाल मेहता; श्री जयमुखाय हार्दिक ।

सहयोगी प्रतिष्ठान

१- मुम्बईवेवी संस्कृत महाविद्यालय २-शास्त्रीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३-सरल संस्कृत परीक्षा विभाग ४-मोता विद्यालय ५-मुम्बई-वाल मोयनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रतिष्ठान ६-मुम्बई सरस्वती मंदिर (पुस्तकालय) ७-कल्लमजी रामजी बाल पुस्तकालय ८-भारतीय संगीत विद्यापीठ ९-भारतीय नर्तन विद्यापीठ १०-भारतीय इतिहास विभाग ११-प्रकाशन मंदिर, पुस्तक पुनर्विनिर्माण, मुम्बई साहित्य, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या पैमानिका), मध्यम ज्वेल (अंग्रेजी पाठ्य), संविद (संस्कृत पैमानिका), नवनील हिन्दी डाइरेक्ट (हिन्दी मासिक), नवनील समर्थन (गुजराती मासिक) १२-भारतीय अंतर्दृष्टि और आधुनिक आर्थिकार योजना १३-ओपनिन्दिक योजना १४-राजनीति तथा धार्मिकी समिति १५-म. म. कला कालेज और न. म. विज्ञान प्रशिक्षण संस्थान (अंधेरी) १६-बल्लमराम मेहता पब्लिक स्कूल (नवी दिल्ली) १७-हजारीलाल सोमानी कालेज, कला एवं विज्ञान (बोपाटी, बम्बई) १८-सरदार पटेल अधियाधिका कालेज (अंधेरी) १९-रमछोडलाल अचललाल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०-रमछोडलाल अचललाल कला कालेज एवं धार्मिक कालेज (अहमदाबाद) २१-जवाहरलाल धार्मिक कालेज, (डाकोर) २२-कला एवं विज्ञान कालेज (डाकोर) २३-स्वामीनारायण पालिटेक्निक (डाकोर) २४-श्री जयमुखाय कनिष्ठालय जेजी महिला कालेज (अमनगर) २५-ब. म. मेहता विज्ञान कालेज (भरवारी) २६-राजेंद्र प्रसाद संशोधन एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मुम्बई: प्राणलाल देवकल नानजी संशोधन एवं प्रबंध विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंशोधन कालेज, नवी दिल्ली; हरिलाल भगवती जनसंशोधन कालेज अहमदाबाद तथा बंगलौर; सोमानी जनसंशोधन कालेज, एरनाकुलम्; बड़ौदा, चंडीगढ़, मुंबई, हैदराबाद, मंगलौर तथा त्रिपुर में स्थित जनसंशोधन कालेज) २७-जवाहरलाल नेहरू भाषा अकादमी, नवी दिल्ली २८-ज. ह. बार्थिया स्कूल (अंधेरी) २९-बल्लमराम मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याधम) बड़ौदा तथा भरवारी ३०-भवन का विद्या मंदिर, एतामकर, एरनाकुलम् ३१-कोरीनवादी पर भवन का स्कूल, कोबील ३२-बल्लमराम मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याधम) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३-भवन का पब्लिक स्कूल, भवन, रामचन्द्रपुरम्, हैदराबाद ३४-पुस्तक संस्थापक: संस्कृत विश्व परिषद; भारतीय स्वी सेवा समिति; भारतीय परिषद (बंबई) ३५-संस्कृत पाठ्यक्रम पुस्तकें ।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलौर, बड़ौदा, कलकत्ता, चंडीगढ़, कोयम्बतूर, डाकोर, दिल्ली, ए. कुलम, मुंबई, हैदराबाद, जम्मू, जामलपुर, कानीवाला, कानपुर, म. म. मंडरी, मंगलौर, मुंबई, नागपुर, सिवनी, श्रीनगर, त्रिपुर, वि. म. मंडरी, लंदन (संस्कृत राज्य) ।

भारतीय विद्या भवन

के.एम.मुन्शी मार्ग,चौपाटी,बम्बई-४००००७

फोन : ३५१४६१

विद्या शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७
 १९
 १०
 ११
 १२
 १३
 १४
 १५
 १६
 १७
 १८
 १९
 २०
 २१
 २२
 २३
 २४
 २५
 २६
 २७
 २८
 २९
 ३०
 ३१
 ३२
 ३३
 ३४
 ३५
 ३६
 ३७
 ३८
 ३९
 ४०
 ४१
 ४२
 ४३
 ४४
 ४५
 ४६
 ४७
 ४८
 ४९
 ५०
 ५१
 ५२
 ५३
 ५४
 ५५
 ५६
 ५७
 ५८
 ५९
 ६०
 ६१
 ६२
 ६३
 ६४
 ६५
 ६६
 ६७
 ६८
 ६९
 ७०
 ७१
 ७२
 ७३
 ७४
 ७५
 ७६
 ७७
 ७८
 ७९
 ८०
 ८१
 ८२
 ८३
 ८४
 ८५
 ८६
 ८७
 ८८
 ८९
 ९०
 ९१
 ९२
 ९३
 ९४
 ९५
 ९६
 ९७
 ९८
 ९९
 १००

नवनीत : आपकी निगाह में

इमानदारी से जीवन को पहचानने की जब बात मिलेगी, उसमें सत्व होगा। यही सत्व रचना की अनुभूति का अपना प्रदेय है। इस प्रदेय को मैंने बहुत दिनों बाद 'न टूटने वाले टुकड़े का जन्म' में पाया। सामने वाली पीढ़ी के आचरण को रौंदते हुए इसी सत्व ने जीवन का सही साक्षात्कार किया है।

इतनी जानदार अभिव्यंजना अनुभूति की कम मिलती है। आपका उपन्यास अंश 'मैं अब, कभी, कहीं भी, अकेली नहीं' निःसंदेह देह के धरातल पर चिन्तन के स्तरों की गहरी पहचान है।

—रवीन्द्र भारद्वाज, इटारसी

०००

सर्वप्रथम मैं आपको 'नवनीत' के अंक मई ८१ के संकलन के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ। बहुत वर्षों के पश्चात् मुझे एक साथ एक ही अंक में इतनी काम की सामग्री पढ़ने को मिली जो मेरे लिए बहुत उपयोगी है। मैं 'नवनीत' और 'कादम्बिनी', जो कि हिन्दी भाषा में उच्चकोटि की मासिक पत्रिकाएँ हैं, उनका पुराना पाठक हूँ।

अपने विद्यार्थी जीवन से ही इनका समुचित लाभ उठा रहा हूँ। बहुत बार 'नवनीत' को 'कादम्बिनी' को अपने उच्च स्तर से पीछे छोड़ जाती है। मई ८१

अंक इसका एक उदाहरण है।

—डॉ. पी. एल. शर्मा, अमरा

०००

'नवनीत' के कायाकल्प पर मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें। अपने नये आचार प्रकार से वह जागृत सांस्कृतिक-साहित्यिक और मानवीय चेतना का संवाहक बन गया है। उसकी सामग्री जितनी सार्थक उतनी ही समर्थ भी। उसका फलक व्यापक है, उतना ही गंभीर और प्रेम पद। मंगल कामनाओं के साथ।

—कल्याणमल लोढ़ा, कन्नूर

०००

'नवनीत' के जून ८१ अंक में मैंने कभी, कहीं भी, अकेली नहीं में आत्मपाली के अंतस को, उसके अस्मिता को, बहुत ही मर्मस्पर्शी संवेदना को, बहुत ही उभारा है।

इसी के साथ 'न टूटने वाले टुकड़े का जन्म' श्री रज्जन त्रिवेदी की कथा ने आस्था के क्षितिज आँक दिये हैं। अब जीवन में उनकी दृष्टि मुझे बड़ी विनियोगनीय लगी।

मैं इन दो चीजों को इस अंक की बड़ी उपलब्धि मानता हूँ। आशा है वे श्रेष्ठता हमेशा बनी रहेगी और अपनी अलग स्थिति बना लेगा।

—राघवेंद्र, प्र

शाश्वत सूर्योदयी नूतन कविता के
घोषणा-पत्र की बात को आगे बढ़ाते हुए
डॉ. मदन मोहन तरुण का लेख

आगामी कल का सूर्योदय



आगामी कल की कविता' के साथ ही शाश्वत सूर्योदयी कविता' की घोषणा एक बार फिर से पढ़ गया। 'शाश्वत सूर्योदयी कविता' के विषय में 'भारती' में १९६८ में अपने द्वारा संपादित 'विशेष पीढ़ी' में मैं अपनी मान्यता व्यक्त कर चुका हूँ। 'आगामी कल की कविता' 'शाश्वत सूर्योदयी कविता' का ही आग्रह है। आज भी इस संबंध में मेरा निष्पक्ष मत है कि 'शाश्वत सूर्योदयी कविता' एक युगांतकारी घोषणा है।

हिंदी-कविता के क्षेत्र में कुछ अपवादों को छोड़कर पिछले १५-२० वर्षों से जो 'कवि' के बेल' की-सी स्थिति है, उसने इस कविता के अस्तित्व की सार्थकता को ही प्रश्न-चिह्नित कर दिया है।

कवियों की संख्या सोनपुर मेले की तरह बढ़ी है। कई संपादक खुले-आम इस बात की घोषणा करते रहते हैं कि उन्होंने हिंदी साहित्य को डेरो कवि कहें। किंतु, 'साधुओं की इस जमात'

और 'सिंहों के इस लंहड़े' की सार्थकता के बारे में किसी को संदेह नहीं है।

इस स्थिति का कारण क्या है ?

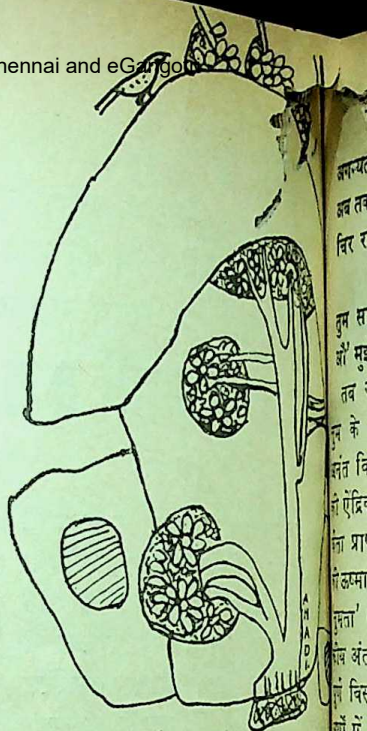
मैं समझता हूँ कविता निस्संदेह अपने समकालीन जीवन की उपेक्षा कर जीवित नहीं रह सकती, न उसे जीने का कोई अधिकार है, परंतु समकालीनता महज घटनात्मक वास्तविकता या गणनात्मक अभिव्यक्ति नहीं है। आज का अधिकतम सर्जन अभिव्यक्ति के स्तर पर लेखन-बहुल तथा उपलब्धि के स्तर पर मात्र गणनात्मक है—उनमें सृजनात्मकता का नितांत अभाव है। जीवन के समस्त समाहारपूर्ण अभिव्यक्तिगत आंदोलन की उनमें कमी है। वे मात्र शरीर की, उनमें प्राणों की आवेगपूर्ण ऊष्मा का नितांत अभाव है। उन कविताओं में कोई गौरव नहीं है; जीवन के साक्षात्कार की गौरव नहीं है। यही कारण है कि ये कविताएं शोर तो बहुत मचाती हैं, परंतु अन्त में पाठक को हाथ लगती है सिर्फ एक ही चीज़—'खंड-

खंड पाखंड'।

कविता निस्संदेह रूढ़ अर्थों में महज् आध्यात्मिक नहीं है—क्योंकि 'असाध्य वीणा' जहां अज्ञेय की सार्थकता है, वहां उनकी 'सांप' कविता भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' के साथ ही 'कुकुरमुत्ता' का सत्य भी जीवन का कटु सत्य है। भारती की 'कनु-प्रिया' और 'अंधायुग' दोनों ही विशिष्ट कृतियां हैं। मुक्तिबोध के 'ब्रह्मराक्षस' की व्यग्रता और 'अंधेरे में' दुस्सह परिवेश की त्रासक एवं भीतिपूर्ण यात्रा तथा धूमिल के युगीन संत्रास का पीड़क बोध निस्संदेह श्रेष्ठ सर्जनात्मक उपलब्धियों के उदाहरण हैं—किंतु गलती हम वहां करते हैं, जहां हम कविता की एक सीमा-रेखा खींच देते हैं अर्थात् कविता पर समीक्षक की सीमाओं को आरोपित कर देते हैं। ध्यातव्य है कि कविता मात्र सीमाओं के सत्य की अभिव्यक्ति नहीं है। वह सीमांत के उस पार के साक्षात्कार की जिज्ञासागत प्रबलता को जैसे ही त्याग देगी वैसे ही उसकी गति कोल्हू के बैल-सी हो जायेगी; उस गीध-सी हो जायेगी, जिसे सिर्फ मुर्दों का ही मांस पसंद है। आज इसी भ्रम के कारण कविता 'वृत्त की आवृत्ति पुनरावृत्ति' बन कर रह गयी है।

वीरेन्द्र कुमार जैन जब कहते हैं :—
डूब-डूब कर रह गया हूं
तुम्हारे आलिंगनों के अगाध में
फिर भी तुम्हें पाने का

नवनीत



चित्र : अनादि अधिकारी

अंत ही नहीं है।

तुम सामने बैठो हो

औं मुझे तुम्हारी याद आ रही है।

X X

लगता है तुम अनंत कोटि ब्रह्मांडों के
असंख्य पृथ्वियों के
भीतर की पृथ्वी हो
किंतु तुम उत्तुंगतम पर्वतों के
आकाशलीन शृंगों के पार की
किसी निरंतर वाहिनी चूड़ा पर
अपना वातायन बांध कर
रहती हो :
लगता है कि तुम

अनन्तर गुफाओं के
अब तक अनवीधे अंधकारों के पार की
विर रहस्योन्नत गुफा हो ।

X X

तुम सामने बैठो हो

औं मुझे तुम्हारी याद आ रही है ।

तब जाहिर है कि वे प्रत्यक्ष 'तुम' से
तुम के गोचर-अगोचर संभावनाओं के
विस्तार की यात्रा करते हैं । कवि

को ऐंद्रिक चेतना निरंतर अतींद्रिय महा-
त्वा प्राप्त करती हुई, प्राणों के आवेग
के साथ जिन अपाथिव लोकों की
सत्ता का साक्षात्कार करती हुई पाठ-

क अंतश्चेतना का असाधारण अनुभूति
को विस्तार करती है—वही मानों सही
र्यों में कविता को परिभाषित कर देती

है । अर्थात् कवि का धर्म मात्र रवि-धर्म
ही है, मात्र मनोवैज्ञानिक विश्लेषण
ही है और न मात्र जीवन की अर्थशास्त्रीय

अवयव व्याख्या है, बल्कि वह प्राणों
का अतृप्तपूर्ण आवेग है जो पिंड की वास्त-
विकता को ब्रह्मांड की सर्जनात्मक सार्थकता
प्रदान करता है ।

कहने का तात्पर्य यह कि कविता एक
अतृप्त मनुष्य की आदिम सहजात वृत्तियों
को अतिरिक्त, अनबाधित, जीवनवत

अवस्था में अभिव्यक्ति है, तो दूसरी ओर
वह मनुष्य की सौंदर्य चेतना का परिष्कार
करती हुई अदृश्य का साक्षात्कार है । वह

पृथ्वी और आकाश के बीच का सूक्ष्म
संयोजक है; वह आज में कल

की संभावनाओं की अपरिहार्य खोज है ।

परिवेशगत व्यवस्था तथा मानव-
मूल्यों का संघर्ष निरंतर चलता रहता है,
क्योंकि मनुष्य निरंतर परिष्करणशील है ।
जिस दिन मानव मूल्यों एवं परिवेशगत
व्यवस्थाओं का संघर्ष समाप्त हो जायेगा,
उस दिन मनुष्य के अस्तित्व की सार्थकता
ही समाप्त हो जायेगी । कविता अभि-
व्यक्ति की सर्वोपरि विश्वसनीय विधा है,
अतः कविता में मानव मूल्यों तथा परि-
वेश का उत्सर्जन मूलक संघर्ष तीव्रतम तथा
सर्वाधिक प्रबल एवं प्रखर रूप में व्यक्त
होता है ।

कविता इस सत्य की उपेक्षा कर ही
नहीं सकती ।

वैदिक ऋषि मात्र ज्योति का साक्षा-
त्कार ही नहीं करता, वह अपने समस्त
अवयवों की बलवत्ता के साथ सी वर्षों
तक जीवित भी रहना चाहता है ।

अपनी तमाम विभक्तियों तथा अपने
समस्त स्खलनों के बावजूद कविता के
संघर्ष का अंत नहीं है, क्योंकि कविता
मनुष्य के उस दिव्य पंख की तरह है जिससे
वह अनंत ऊंचाइयों का ही साक्षात्कार नहीं
करता, वे गहराइयों भी छू पाता है, जहाँ
से जड़ें अपनी जिंदगी का सार पाती हैं ।
कविता महज सुमधुर मलयानिल का
रेशमी स्पर्श ही नहीं है, वह प्रलयकारी
प्रभंजन भी है जो समय-समय पर निरर्थ-
कता को छिन्न-भिन्न कर डालती है । वह
महज गुलाबी सूर्योदय ही नहीं है; सूर्य

के भीतर उठने वाला अग्नि का नाशकारी तूफ़ान भी है। वह दृश्य ही नहीं है, अज्ञात और अदृश्य का पथ भी है। वह वर्तमान ही नहीं है, वह निरंतर श्रेष्ठतम भविष्य की विकल खोज भी है। कविता की दृष्टि निरंतर आगामी कल पर है, 'तुम' के उस पक्ष पर लगी है, जो सामने बैठी है, मगर याद आ रही है। स्मृति का यह छोर मात्र अतीतोन्मुख ही नहीं है, यह स्मृति आगामी कल का उज्ज्वलतम सृजन कर रही है... निरवधि... निरंतर...

हिंदी कविता में यथास्थिति का महत्वपूर्ण कारण है समसामयिक पत्रकारिता की गह्रित स्थिति तथा उसके अधिकतम संपादक।

संपादक समकालीन सार्थकतम प्रवृत्तियों एवं अभिव्यक्तियों का सजग संयोजक होता है। यदि वह समर्थ हो तो अपने युग को प्रभावित कर उसे दृष्टि संपन्न भी करता है—परंतु खेद है कि आज हिंदी की अधिकतम साहित्यिक (?) पत्रिकाओं

के संपादक स्वयम् दृष्टिहीन हैं तथा उनकी स्थिति साहित्य एवं व्यावसयिकता के बीच एक काइयां एजेंट से अधिक नहीं है। न वह इससे अधिक के योग्य है। ऐसी स्थिति में उनसे कुछ अधिक की अपेक्षा करना बेकार है। उनमें न तो अपने दुर्बलता के कारण किसी सार्थक समाज को स्वीकारने की शक्ति है, न वे गुटबाजी से अलग स्वयम् में कोई शक्ति हैं।

ऐसी स्थिति में दृष्टिपूर्ण, समर्थ संपादकों—जिनकी संख्या निस्संदेह नगण्य है—का यह कर्तव्य ही नहीं दाखिल हो जाता है कि वे आज के कोलहल में सार्थक स्वरों को प्रतिष्ठापित करें और युग को दृष्टिक्षम करें। चुनौती की इस स्थिति में 'आगामी कल की कविता' और 'सूर्योदयी कविता' एक समर्थ सृजनकारी विस्फोट है, जो जड़ता की ध्वजियां उड़ाने देगी।

—डॉ-२, १५७-डॉ, एन. डी. खड़कवासला, पुना

सौर-ऊर्जा के निर्माण और संग्रह की नयी विधि

ऑस्ट्रेलिया के वैज्ञानिकों का एक दल सौर-ऊर्जा के निर्माण और संग्रह का एक नयी और सरल विधि का आविष्कार करने में सफल हो गया है। इस विधि से संग्रहीत सौर-ऊर्जा का उपयोग एक पूरे नगर की ऊर्जा-संबंधी सब आवश्यकताओं की पूर्ति करने के अलावा, उसके निर्यात के लिए भी हो सकेगा।

इस विधि में कंप्यूटरों द्वारा संचालित और नियंत्रित विशेष दर्पणों का प्रयोग किया जाता है। सूर्य के ताप को प्रत्येक दर्पण में संकेंद्रित कर उसे एक रासायनिक प्रक्रिया द्वारा नेत्रजन और हाइड्रोजन में परिवर्तित कर संयंत्र में संग्रहीत किया जाता है।

विद्या, इतिहास, पुरातत्त्व और विश्व-संस्कृति के विलक्षण
अध्येता और अन्वेषक तथा हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार



डा. भगवतशरण उपाध्याय : मारिशस में भारत के उच्चायुक्त



अरुणकुमार वर्मा



डा. उपाध्याय

पर सरकार द्वारा ऐसे
व्यक्तित्व की नियुक्ति
का सर्वत्र स्वागत हुआ
है। जबकि प्रायः
विदेशों में ऐसे भारतीय
प्रतिनिधि भेजे जाते रहे
हैं जो भारतीय संस्कृति,
परम्परा और अपने देश
की पहचान से अनभिज्ञ
होते हैं। ऐसी हालत में
उपाध्यायजी का इस
महत्वपूर्ण पद पर पहुँ-
चना, बहुत ही शुभ परि-
णाम देने वाला होगा।

अक्टूबर १९१० में उत्तरप्रदेश के
बलिया जिले के उजियार नामक स्थान पर
आपका जन्म हुआ। अतृहयोग आंदोलन
के दौरान आपने स्कूल छोड़ा। १९२२ में
आंदोलन के सिलसिले में जेल गये, तब
भारत के सबसे कम उम्र के कैदी थे और
१९२४ में रिहा हुए। उसी जमाने में

हिंदी डाइजेस्ट

दि सिरपुर मिल्स लिमिटेड

(रजिस्टर्ड कार्यालय ३-६-२३७ हिमायतनगर रोड,
हैदराबाद, आं. प्र.)

उत्तम प्रकार के प्रिंटिंग-राइटिंग पेपर बोर्ड के निर्माता
साथ ही उच्च कोटि के रैंग कान्टेन्ट पेपर्स और एयर
मेल पेपर्स के भी निर्माता ।

मिल्स : सिरपुर-कागज नगर ५०४ २९६

‘डाक की त्वरित डिलीवरी के लिए पिन कोड नंबर का
उपयोग करें ।’

इसी अध्ययन में पं. जवाहरलाल नेहरू ने एक सभा को संबोधित भी किया। आगे का अध्ययन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुआ। इसी समय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्त्व के गहन और विवादास्पद विषयों पर शोध-कार्य भी प्रारम्भ किया। युवावस्था में ही 'वीमेन इन इण्डिया' जैसी पुस्तक रच डाली। शोध-कार्य के मानदण्ड के रूप में १६ वर्षों के एक प्रयत्न के बाद 'इण्डिया इन कालि-फोर्निया' जैसा ग्रंथ प्रकाशित हुआ, जो भारत-विदेश प्रकाशनों में माइल स्टोन साबित हुआ।

इतिहास और संस्कृतियों के खोजी

डा. उपाध्याय ने इतिहास और संस्कृतियों का अध्ययन देश-विदेश के पुरातात्विक महत्व के स्थलों का स्वयं भ्रमण करके किया। वे इतिहास को सार्वकालिक, वैश्विक समन्वय की दृष्टि से देखते हैं। इतिहास लेखन को उन्होंने नयी शैली और उन्हासों की भाषा दी है। इतिहास को शब्दों का मूर्तिकरण वे रोचक शैली में करते हैं। समग्र मानव, समग्र इतिहास और समग्र संस्कृति का अध्ययन आपका लक्ष्य रहा है। इतिहास को राष्ट्रीय दम्भ के पूर्वाग्रह से मुक्तकर सर्वथा वैज्ञानिक दृष्टि से उसका विवेचन करते हैं। संस्कृतियों के अन्तरावलम्बन जैसी अध्ययन को उपाध्यायजी की ही देन है। मार्क्सवाद के आप गहन अध्ययता हैं। इसी कारण

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या और वर्गसंघर्ष के सिद्धान्तों को मद्देनजर रखकर अपने पक्ष का वैज्ञानिक आधार तैयार करते हैं। मिस्र, ग्रीस, मेसोपोटामिया (सुमेरी, बाबुली, असूरी सभ्यताएं) ट्राय, निनवे जुरुसलेम, दमिश्क आदि विश्व के इतिहास प्रसिद्ध एवं सभी पुरातात्विक स्थलों का आपने सालों भ्रमण किया है। विदेश यात्राएं

डा. उपाध्याय सात सागरों से घिरे पांचों महाद्वीपों की यात्रा कर चुके हैं और कई वर्षों तक प्रवासी प्राध्यापक के रूप में आपने विदेशों में अपना योगदान दिया। निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि पिछले ४० सालों से डा. उपाध्याय वृहत्तर भारत के सांस्कृतिक राजदूत की भूमिका निभाते आ रहे हैं। अमेरीका, यूरोप, अरब राष्ट्रों, एशिया और आस्ट्रेलिया के अनेक विश्वविद्यालयों, प्राच्य संस्थानों, शोध केन्द्रों, संग्रहालयों में आपके व्याख्यान हुए हैं। वेल्ग्रेड (यूगोस्लाविया) में आपकी आवक्ष प्रतिमा स्थापित है। विदेशों का यह भ्रमण वहां की सरकारों और विभिन्न संस्थाओं के निमंत्रण पर होता रहा, लेकिन उपाध्यायजी समूचा संसार अपनी लेखनी, व्याख्यान शैली, और मेधा के बलबूते पर भूस्नेह है। इन विदेश यात्राओं के दौरान आपका विश्व-प्रसिद्ध व्यक्तित्वों, मनीषियों से परिचय और साक्षात्कार भी हुआ। ऐसी विभूतियों में अल्बर्ट आइंस्टीन, पाब्लो पिकासो,

INDOKEM LIMITED

221. Dr. D.N. Road,
Fort

Bombay - 400 001.

Phone : 267881/10 Gram: "INDOKM" Telex: 011-2942

Marketing:

Dyes. Chemicals. Pigments. Leather Binders. Auxiliaries.
Synthetic Tanning Agents. Leather Colours, Fat Liquors.
Synthetic Resins, Textile Auxiliaries, Polyester Fibre,
paints, menthol, Non-textile Auxiliaries etc.

Manufactured By:

Indian Dyestuff Industries Ltd.,
Colour Chem Ltd.
Aniline Dyestuffs & Pharmaceuticals (P) Ltd.,
Cellulose Products of India Ltd.
Dai-Ichi Karkaria Pvt. Ltd.
Haryana Rang Udyog
National Chemical Industries
Indian Organic Chemicals Ltd. (Futura Polyester Fibre)
Hypo Chemiedye
Gujchem Distillers India Ltd.
Lalji Mentha (P) Ltd.

Branches at:

Ahmedabad

Calcutta

Delhi

Madras

Nagpur

Kanpur

Secunderabad.

दायनवी, एजरा वाइल्ड, सिल्वेन
रेल, बट्टेड रसेल, पर्लबक आदि प्रमुख

डॉ. उपाध्याय ने होमर टामसन, डा.
कालिदास जायसवाल, स्टेला क्रामिश
आदि इतिहासविदों के साथ शोध और
बोच कार्य संपादित किया। होमर टामसन
के साथ ही एक्रोपोलिस (एथेन्स) की
बुर्लै में भाग लिया। इण्टरनेशनल
कॉन्फ्रेंस आफ ओरिएण्टलिस्ट्स के इस्त-
बूल, दिल्ली (१९६४) एन आर्वर
अमेरीका (१९६७), कैनबरा (१९७१)
लंडन (१९७३), मास्को (१९६२) के
शोधकार्यों में भारतीय शिष्ट मंडल के
सदस्य रहे। पीकिंग के १९५२ में होनेवाले
महिलाओं के शोध एवं विश्व शांति सम्मेलन में
महिला शिष्ट मंडल के सदस्य रहे।
महिला संघ के बृहद विश्व कोश के निर्मा-
ण पर रूसी प्रवास और ताशकंद, समर-
कंद, पामीर से लेकर लेनिनग्राद और
मॉस्को से लेकर येरेवान तक अनेक बार
यात्राएँ कीं।

डॉ. उपाध्याय ने जलप्रलय की कथा को
पूर्व सम्यता के मूल में माना है जिसका
विवरण ३२ ईटों में बाबुली भाषा में
मिला, जो आज भी ब्रिटिश म्यूजियम लंदन
में सुरक्षित है। वही कहानी, भारत में
पहले पहल आठवीं सदी ईसा पूर्व शतपथ
ग्रंथ में मिलती है। इसी प्रकार वे
आधुनिक भाषाविज्ञान को पाणिनी की
ग्रन्थभाषा पर आधारित मानते हैं

दूसरा नहीं है। पाणिनी के गांव श्लातुर
के भी आपने दर्शन किये।

ग्रंथ रचना एवं वाग्मिता

उपाध्यायजी असाधारण वक्ता हैं,
प्रत्येक विषय का संदर्भ विश्व इतिहास
और विश्व साहित्य से जोड़कर तुलनात्मक
रूप से बोलते हैं। समीक्षा के समय भी
उनके सामने केवल कृति होती है व्यक्ति
नहीं, फिर वह व्यक्ति चाहे कितना बड़ा
और नामवर क्यों न हो, वे उस रचना की
निर्भय आलोचना करते हैं, व्यक्ति का
प्रभाव उन पर हावी नहीं होता। डॉ.
उपाध्याय हालीवुड की अभिनेत्रियों, शोध
परिषदों से लेकर जन सभाओं तक को
संबोधित कर चुके हैं। ग्रीस की गणिकाओं
और दार्शनिकों के संवाद, इतिहास के
अछूते प्रसंग, विश्व प्रसिद्ध व्यक्तियों के
संस्मरण उनके भाषण में यथास्थान आ
जाते हैं। कालिदास साहित्य पर उन
जैसा गहन जानकार और शोधकर्ता संभ-
वतः दूसरा नहीं है। विगत ४५ वर्षों से वे
कालिदास पर सतत लिखते आ रहे हैं।
'इंडिया इन कालिदास', कालिदास नमामि,
कालिदास जीवन और साहित्य, कालिदास
के सुभाषित, जैसे ग्रंथों के अतिरिक्त पिछले
वर्ष उनका 'कालिदास' नामक उपन्यास
भी प्रकाशित हुआ है, जिसका ऐतिहासिक
उपन्यासों में अपना अलग स्थान होगा।

साहित्य की कोई ऐसी विधा नहीं है
जिस पर उपाध्यायजी ने अपनी लेखनी न

दि: इंडियन स्मोल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

रजिस्टर्ड कार्यालय :

लालबहादुर शास्त्री मार्ग, भांडुप, बंबई-४०० ०७८

केबल : 'लकी' भांडुप

फोन १५८४३८१

१.

नानफेरस यूनिट

सेमिस रोलिंग विभाग :

नानफेरस शीट, स्ट्रिप और फाइल,
नानफेरस प्लेट और सर्कल

एलाय और कार्स्टिंग विभाग :

एंटीफ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स
गनमेटल्स और ब्रोन्जेस, ब्रेजिंग सोल्डर्स और टिन सोल्डर्स,
फाइन जिंक डाइकार्स्टिंग एलाय्स 'इस्माक ३' अल्युमिनियम
बेस्ड डाइकार्स्टिंग एलाय्स, ब्रास और ब्रोन्ज राइस सालिड
कोर्ड, फिनिशड कार्स्टिंग रफ और मशीन्ड ।



२.

फेरस यूनिट :

फाउंड्री डिविजन

एस० जी० आयरन और स्पेशल स्टील कार्स्टिंग्स

मेलिएबल आयरन कार्स्टिंग्स

आइ० एस० एस०, बी० एस० एस०, एस० एस० आइ० एस०

के स्पेसिफिकेशन्स तथा ग्राहकों की विशेष आवश्यकता

के अनुसार सप्लाई किये जाते हैं ।

बनायी हो। कहानी, उपन्यास, समीक्षा, निबन्ध, एकांकी, फीचर, यात्रा, संस्मरण, चित्र, रिपोर्टिज, ललित निबन्ध, कोश, साहित्य, अनुवाद आदि सभी क्षेत्रों में डा. उपाध्याय ने हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध किया है। संसार की भाषाओं के साहित्यों के इतिहास का विवेचन डा. उपाध्याय ने 'विश्व साहित्य की रूपरेखा' नामक पुस्तक में किया है। यह पुस्तक आज भी इस विषय पर हिन्दी में प्रथम और अंतिम रचना है। इस ग्रंथों के अतिरिक्त गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, प्राचीन भारत का इतिहास, भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका, पुरातत्त्व का रोमांस, सवेरा एवं गंजन, इतिहास साक्षी है, सांस्कृतिक विवेचन, समीक्षा के संदर्भ, साहित्य और कला, सागर की लहरों पर, द एंशिण्ट कलंड्रीडस ऑफ इण्डियन कलचर, वीमेन ऑफ इण्डिया, अमेरिका एंड एशिया, शेड्स ऑफ शेडोज, द ईस्ट लाइज टू दी वेस्ट

ऑफ वेस्ट, १०० ग्रंट इण्डियस आदि, प्रमुख ग्रंथ हैं। इस प्रकार उपाध्यायजी द्वारा लिखे ग्रंथों की संख्या १५० से ऊपर पहुंचती है।

एक विश्वविख्यात चिंतक, इतिहास-वेत्ता, कला समीक्षक, पुराविद् और साहित्यकार के रूप में डा. उपाध्याय का इस देश को अमूल्य योगदान है। ऐसा व्यक्ति किसी राष्ट्र में भारत का प्रतिनिधि बनकर राजदूत की सही भूमिका को एक नयी दिशा प्रदान करेगा और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तथा राजनीति में नये सहयोग और सद्भावना के युग का सूत्रपात होगा। उनकी नियुक्ति इस प्रकार की आशाओं के द्वार को खोलती है, इस प्रकार वे मारीशस और भारत के बीच सांस्कृतिक समन्वय के सेतु और प्रमुख बिन्दु बन गये हैं। डा. भगवत शरण उपाध्याय अब तक हमारे सांस्कृतिक प्रतिनिधि तो थे ही वे अब हमारे राष्ट्र के राजनयिक प्रतिनिधि भी हो गये हैं। इस नियुक्ति से भारतीय विदेश सेवा का स्वरूप भी सुधरेगा ऐसी आशा की जानी चाहिये।

—४०—कलालसेरी, उज्जैन, म. प्र.



• कहते हैं मानव अपने बंधन आप बनाता है, पर जो बंधन जन्म के सन्ध से ही अनेकों से बंधे होते हैं और जिनको काटने में अनेकों जीवन बीत जाते हैं, उनका कौन लातायी है।

—अज्ञेय

• सरकारों की त्रुटियां ही तो आज मनुष्य के अधिकांश दुःखों और कष्टों के लिए लातायी हैं।

—लुई फिशर

• कहते हैं राजा और रंक चिता पर मिलते हैं। परंतु राजा चिता से उठकर इतिहास की पुस्तकों में समा जाते हैं, जब कि बेचारा रंक धरती पर एक मुट्ठी धूल ही लाता है।

—अज्ञात



भारत-निर्माण : रचनात्मक क्रांति की दिशा में एक सही और नया कदम



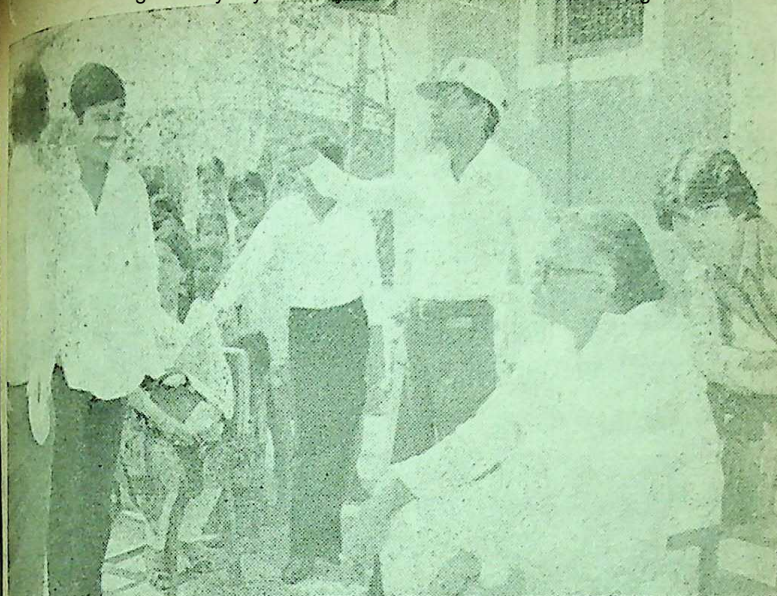
हमारा ख्याल है कि कोई भी सरकार, केवल सरकार रह कर, स्थापित व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं ला सकती। क्योंकि, सरकार का परिचालक तंत्र राजनीति होती है, और राजनीति के अपने उलझाव और टकराव होते हैं। एक सदाशयी सत्ताधीश और उसका शासन भी इन उलझावों में इस क्रूर ग्रस्त हो जाता है कि सत्ता तंत्र ही प्रधान हो जाता है, जन-कल्याण अनजाने ही गौण और दुःसाध्य हो जाता है। प्रजातंत्र हो कि साम्यवाद हो, वह जब सरकार बनता है, तो राजनीतिक प्रपंचों का ग्रास हो ही जाता है। साम्यवादी क्रान्तियां भी जब सरकार बनीं, तो वह राजनीति के दुष्चक्र में पड़ गयीं, और व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन न ला सकीं।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि सरकार-बाह्य बिस्वायं नेतृत्व ही किसी भी प्रजा को एक आदर्श जन-कल्याण राज्य की स्थायी और आमूलचूल क्रान्तिकारी व्यवस्था प्रदान कर सकता है। समाजवादी-साम्यवादी हों कि गांधीवादी हों,

सभी राजनीति और सत्ता के रास्ते और अपने लक्ष्य में विफल सिद्ध हुए। ऐसी स्थिति में यह मान्यता दृढ़ हो गयी है कि सरकार ही आदर्श जन-कल्याण राज्य ला सकती है, प्रजा के हाथ कुछ नहीं है। हम बेहद सरकार-निर्भर हो गये हैं और राजनीतिक दुष्चक्र की दया पर छूट रहे हैं।

असों से हम कर्म-क्षेत्र के किनारे साथी की तलाश में थे, जो इस तथ्य को समझे, और सरकार के समानांतर एक स्वाधीन प्रजानिष्ठ रचनात्मक क्रांति की योजना बना कर उसे एक पुष्ता पर क्रियान्वित करे। . . . कि इसी क्षेत्र में हमारी मुलाकात कलकत्ता के एक प्रसिद्ध व्यवसायी, और संस्कृतिनिष्ठ समाजसेवी श्री मुनिचन्द्र भण्डारी से हुई। एम. सी. भण्डारी के नाम से इस क्षेत्र सक्रिय दिखायी पड़े। उनके मन में ठीक वही स्वप्न और विचार पल रहा जो हमारे मन में था।

भण्डारीजी का भी ठीक यही ख्याल है कि सरकार सारे दायित्व नहीं निभाने सकती, और प्रजा को स्वयम् दायित्व



‘भारत-निर्माण’ संस्थान के संयोजक श्री मुनिचन्द्र भण्डारी, ‘मेरे सपनों का भारत’ नामक ग्राम-विकास संबंधी डाक्यूमेंट्री चित्रपट शूटिंग के दौरान कुर्सी पर आसीन। बायीं ओर खड़े हैं सस्मित मुद्रा में फिल्म के नायक प्रद्युम्नसिंह

सहयोगी के रूप में स्वतंत्र रचनात्मक प्रवृत्ति द्वारा, बुनियादी व्यवस्था परिवर्तन की ओर संगठित हो सक्रिय हो जाना चाहिये। उन्होंने इस संस्था की सिद्धि के लिए ‘भारत निर्माण’ नामक एक रचनात्मक अनुष्ठान की सर्वांगीण और ठोस अमली यथार्थ-परक योजना तैयारी। इस कार्य को निर्विघ्न आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने सरकार और प्रधान मंत्री की अनुमति और पूर्ण सहयोग का आश्वासन भी प्राप्त किया। इस काम के लिए उन्होंने जितने भी आर्थिक साधन-

स्रोत हैं, सरकार, उद्योग या बैंको तक के-उनके भी सहयोग की सम्भाव्य योजना बनायी।

यह रास्ता संघर्ष, हिंसा, टक्कर या प्रतिद्वंद्विता का नहीं, मित्रता और सहयोग का है। समाज के सभी वर्ग और स्तर के लोग इसमें शामिल हो सकते हैं। किसान, मजदूर, ग्रामीण, पूंजीपति, उद्योगपति, राजनेता, समाजनेता, बुद्धिजीवी, कलाकार, साहित्यकार, धर्म-अध्यात्मनिष्ठ लोग, सभी का सहयोग इसमें अपेक्षित और साध्य है।

निवारण, जन-जन का समान और स्वतंत्र आर्थिक विकास, स्वतंत्र ग्राम विकास और निर्माण, सामाजिक अनिष्टों का उन्मूलन, शिक्षा तथा आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उन्नयन आदि सभी प्रमुख पहलुओं पर सक्रिय और बेगीली प्रवृत्ति आरम्भ करने के लिए एक अत्यंत ठोस आर्थिक आधार प्रस्तुत किया है।

प्रकारान्तर से यह राष्ट्रपिता महात्मा

भारत निर्माण की 'बंबई शाखा' की संचालिका डा. कुमारी प्रतिभाकुमारी सिंह ने जो 'होली में एक रंगीन डाक्यूमेंट्री फिल्म में सपनों का भारत' का निर्माण किया है। बापू के सपनों के भारत को मूर्त करने की सम्भवतः क्या पद्धति या प्रक्रिया हो सकती है, इसका आलेखन इस फिल्म में एक स्वाभाविक कथानक द्वारा किया गया है। एक ही गांव के विभिन्न प्रतिभाओं के



चित्र : चंदुलाल सांकला

गान्धी के सपन के भारत को मूर्त करने का ही एक मांगलिक अभियान है। बापू के सपनों के 'ग्राम-स्वराज्य' को स्थापित करने के लिए उन्होंने 'मास्टर विलेज कम्युनिटी सेंटर्स' की जो विशद योजना बनायी है, वह नितान्त व्यावहारिक, व्यापक और यथार्थ-परक है। रचनात्मक क्रान्ति के विश्वासियों के लिए वह योजना ध्यातव्य और विचारणीय है।

इस अभियान के अन्तर्गत 'मां श्री कर्णी

युवक अलग-अलग महानगरों में जाते हैं वहां की अमानुषिकता से निराश होकर लौटते हैं, और ग्राम जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में संयुक्त निर्माण-कार्य करते हैं। बड़े स्वाभाविक ढंग से आदर्श और स्वतंत्र ग्राम-स्वराज्य की रचना में सफल होकर दिखायी पड़ते हैं। फिल्म प्रेरक और रोचक बन पड़ी है, अपनी उद्देश्य सिद्धि में सफल हुई है, और आश्चर्य करती है कि रचनात्मक क्रान्ति की दिशा में यह आदर्श

विषय का एक सार्थक प्रयास है ।
 इस फिल्म का निर्माण-निर्देशन डा. प्रतिभाकुमारी सिंह ने बड़े कौशल और अनुभव से किया है ।
 इसके गीतकार हैं श्री पं. बल्लभेश्वरजी । संगीतकार हैं-श्री गोविन्द नारायण । पार्श्व संगीत डा. प्रतिभाकुमारी रवि ने दिया है । 'भारत निर्माण' प्रेरित-समर्थित 'मां श्री वर्णी' का यह प्रयास सभी तरह से सार्थक और सराहनीय है । देश की अविनाशित शिक्षा-संस्थाओं और लोक-कला के मंचों पर से इस फिल्म को

दिखाया जाना चाहिये ।

विश्वविद्यालयों के नागरिक युवाओं की भ्रमित मानसिकता में यह फिल्म एक क्रान्तिकारी मोड़ ला सकती है । हम 'भारत निर्माण' के सर्वतोन्मुखी अभियान की पूर्ण सफलता चाहते हैं, क्योंकि यह व्यावसायिक या राजनीतिक प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि एक सर्वथा निष्काम सेवानिष्ठ, अनुष्ठान है ।

गांधी के सपनों के भारत को मूर्त करने के लिए ऐसी ही ठोस रचनात्मक प्रवृत्तियों की आवश्यकता है ।

—बी. कु. जैन

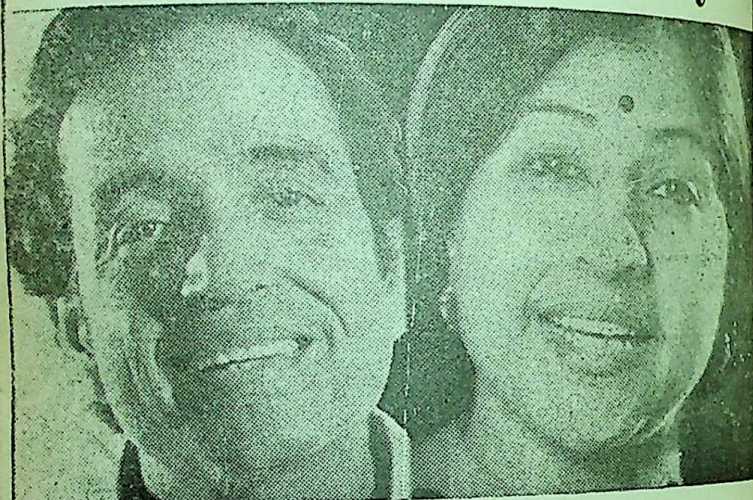


लेखकों से निवेदन

- रचनाओं का अंतिम निर्णय एक खानगी सलाहकार-समिति करेगी । व्यक्ति विशेष नहीं ।
- 'भारती'-समन्वित 'नवनीत' केवल हिंदी, भारत या उसके साहित्य तक सीमित नहीं । वह एक वैश्विक और अंतरराष्ट्रीय व्यास की सर्वसमावेशी सांस्कृतिक और ज्ञान-विज्ञान-समन्वित पत्रिका है । रचना भेजते समय कृपया, यह लक्ष्य में रखें ।
- अनामन्वित कविताओं पर विचार करने को हम बाध्य नहीं । आज के समग्र विश्व-साहित्य में से चुनी हुई थोड़ी-सी कविताएं ही हर अंक में जा सकेंगी ।
- रचना के साथ टिकट लगा पूरा पता लिखा लिफाफा अवश्य रखें । अन्यथा रचना लौटायी नहीं जायेगी और न उसके संबंध में पत्र-व्यवहार ही किया जायेगा ।
- रचना भजने से पूर्व विचार कर लें कि वह नवनीत के अनुकूल है भी या नहीं ।

—संपादक

When you save with **NEW BANK** Smiles are on the way



Security is happiness. When you know your savings in NEW BANK will take care of all your rainy days, you can smile with ease.

Start saving with NEW BANK today. Our various schemes like Saving Accounts, Fixed Deposits, Reinvestment Deposits, Janta Deposits and Popular Deposits will assure these smiles for you.



NEW BANK OF INDIA

(A Government of India Undertaking)

॥ विज्ञान यात्री ॥

बुढ़ा बहनें, जो एक-सा सोचती हैं
विज्ञान के प्रमुख वैज्ञानिक और मनो-
वैज्ञानिक लंदन में रहने वाली ग्रेटा
लिन और फ्रेडा चैप्लिन नाम की
बुढ़ा बहनों के इस व्यवहार से चकित
कि दोनों के शरीर तो एक-से हैं ही,
दोनों के सोचने का ढंग भी एक-सा ही है।

उनका वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले
वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों का कहना
दोनों के तन अलग-अलग हैं, मगर
एक ही है।

अध्ययन के दौरान दोनों को अलग-
अलग रखा गया, और पाया गया कि 'वे
ही वक्त पर, एक समान चिल्लाती
एक-सा सोचती हैं, और एक-से वस्त्र
पहना करती हैं। जब दोनों एक साथ
होती हैं, तो एक समय पर, एक-सा
बोलाव करता है। इस 'न भूतो, न
विद्यति' मामले को लेकर हम दंग हैं।'

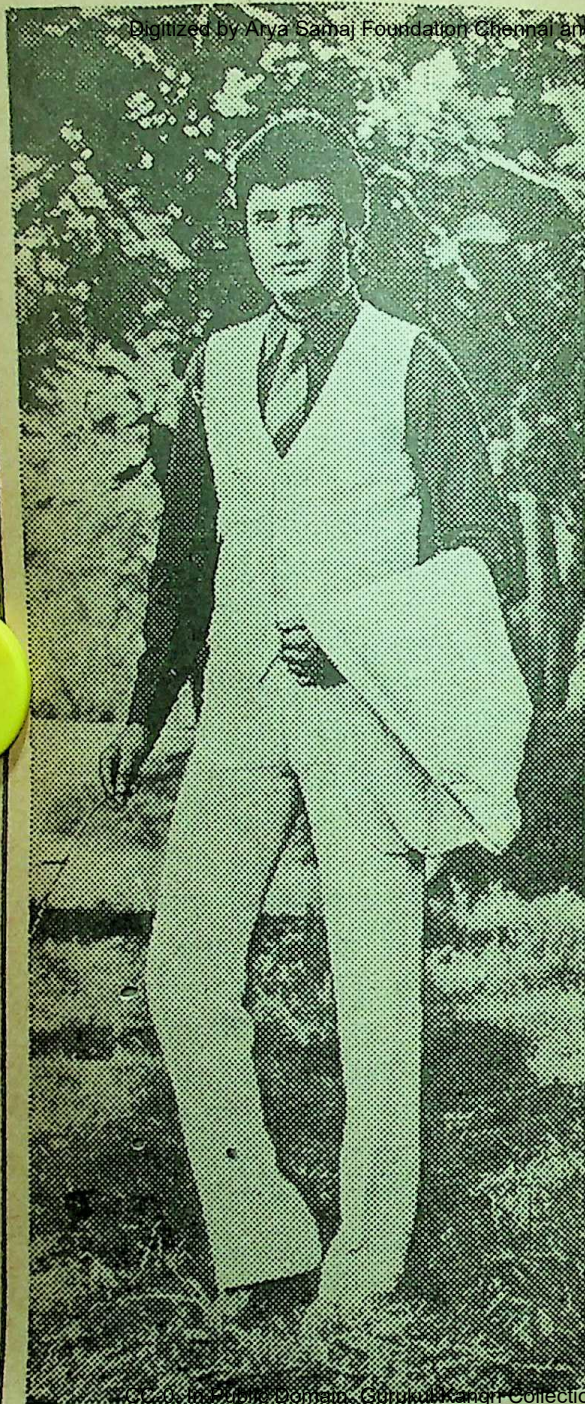
इन दोनों बहनों की इस विलक्षणता
का पता तब चला, जब जुलाई १९८०
में ग्लोब्स ने इन दोनों को गिरफ्तार किया,
११-वर्षीय ड्राइवर कैनेथ लिवसन की
शिकायत पर। पिछले १५ वर्षों से ये
दोनों लिवसन को प्रेम करती आ रही थीं,
और लिवसन भी उन्हें प्रेम करता था।

मगर, जब लिवसन ने, बिना उन्हें सूचित
किये, एक अन्य महिला से विवाह कर
लिया, तो इन दोनों को बड़ी निराशा
हुई, और एक दिन वे दोनों उसकी ट्रक
के आगे लोट गयीं। उनके न हटने पर,
ड्राइवर ने उन दोनों की पुलिस में शिकायत
कर दी।

प्रख्यात चिकित्सक और मनोवैज्ञानिक
डॉ. डेविड वैस्टवरी ने इन दोनों बहनों
की पूरी जांच करके, अपनी रपट में कहा,
'ये दोनों बहनें मानसिक और शारीरिक
दृष्टि से पूर्णतया स्वस्थ हैं। उनकी इस
विलक्षणता की जड़ में क्या है, इसका
पता लगाने के लिए हमें और अधिक शोध
करनी पड़ेगी।'

०००

भारतीय समुद्र-तट पर दुर्लभ धातु
वेनेडियम सामरिक महत्त्व की एक
दुर्लभ धातु है। इसका उपयोग रक्षा-
उद्योग, वायुयान-निर्माण-उद्योग और
परमाणु-ऊर्जा उद्योग में होता है। भारत
अब तक इस दुर्लभ और कीमती धातु
का आयात करता था, लेकिन अब पश्चिमी
भारत के समुद्री तट के निकट उसके
विपुल भंडार का पता लगने के कारण,
अब उसे वेनेडियम की आवश्यकता की



ताज़गी की एक लहर

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं।
जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की
लहर। आप अपने आपको कुछ और
ज्यादा पसंद करने लगेंगे।
क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके
लिए ही तो बनाए गए हैं। जियाजी
आस पास बिखरे सुनेपन में
ताज़गी भर देते हैं।



जियाजी

सूटिंग-शर्टिंग

कॉटन प्रिंट्स

जियाजीराव कॉटन सिल्स लिमिटेड
बिला नगर, ग्वालियर (म.प्र.)



पुत्र के लिए विदेशों पर निर्भर नहीं रहना

१६ वर्षीय भारतीय किशोर द्वारा असा-

धारण गणक का आविष्कार

सुवर्णपुर स्थित प्रादेशिक वैज्ञानिक प्रयोगशाला के एक प्रवक्ता के अनुसार, इस की समुद्री तलछट में ०.५ प्रतिशत मिश्रण मिली है।

०००

किफायती सौर-सेलों का निर्माण

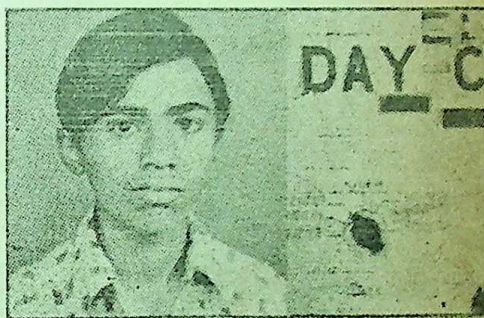
भारत परमाणु शोध केंद्र के भौतिक विज्ञानियों के एक आविष्कार के फल-स्वरूप, विश्व में पहली बार किफायती सौर-सेलों का निर्माण भारत में संभव हो जाएगा।

केंद्र के विख्यात नाभिकीय भौतिक विज्ञानी डॉक्टर पी. के. आर्यंगर के अनुसार, 'भाभा केंद्र ने हाल ही में एक ऐसी विधि का आविष्कार किया है, जिसके द्वारा, विश्व में पहली बार, किफायती सौर-सेलों का निर्माण हो

सकेगा। इस विधि में सेल के निर्माण के लिए आवश्यक पदार्थों की सतह को खनित किया जाता है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार चेहरे पर पाउडर लगाया जाता है। यह आविष्कार इस केंद्र द्वारा पिछले दस वर्षों में किये जा रहे प्रयोगों का परिणाम है। अगले पांच वर्षों में उद्योगों द्वारा इस विधि के उपयोग की सौर-सेलों का, जो साधारण सेलों से १० गुना किफायती होंगी, निर्माण संभव हो सकेगा। इस विधि में लेसर किरण का प्रयोग होता है।'

रायपुर के गवर्नमेंट इंजीनियरिंग कॉलेज के १६ वर्षीय छात्र सुनील कुमार गुप्ता ने एक ऐसे असाधारण गणक का आविष्कार किया है, जो सन १०,००० तक के किसी भी वर्ष के किसी भी महीने, सप्ताह और दिन के बारे में अचूक जानकारी दे सकता है।

सुनील ने इस इलेक्ट्रॉनिक गणक की



१६ वर्षीय छात्र सुनील कुमार गुप्त

ईजाद १९७९ में की थी। आरंभ में, यह गणक सिर्फ अधिवर्षों की जानकारी देने के लिए बनाया गया था। पर, तब से उसने अपने गणक में काफी सुधार किये हैं।

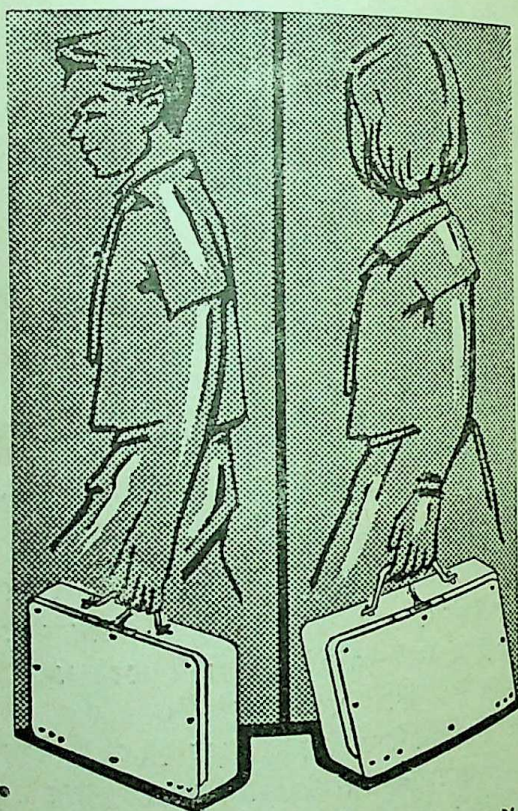
सन १९८२ में तेरहवें ग्रेगरी ने पाया था कि उसके पंचांग में कुछ भूल हो जाने के कारण, पंचांग आगे जाने के स्थान पर पीछे की ओर जा रहा है। उसने इस 'गलती' को दूर करने के लिए आदेश

आपके बच्चे को



स्कूल-पैटी की जरूरत है

पाठ्यपुस्तक ले जाने के लिये सुंदर, हलकी-सी और कठिन से कठिन परिस्थितियों को सह सके ऐसी मजबूत क्राउन ब्रान्ड स्कूल-पैटी जरूर मंगाइये।



जीवनलाल (१९२९) लि. के उत्कृष्ट उत्पादनों से एक
जीवनलाल (१९२९) लिमिटेड

लिवर्टी बिल्डिंग, मरीन लाइन्स, बंबई-४००००२

शोरूम : कंसारा चाल, कालवादेवी, बंबई-४००००२

कलकत्ता-पदार्थ-जिल्हो-कोचीन-हैदराबाद

विना कि ५ अक्टूबर, १५८२ को
अक्टूबर, १५८२ माना जाये।

जस्तूर है

कठिन परि-
हर मंगाइये।

मुनील के गणक ने इस अंतर को भी
कर दिया है, और सिद्ध कर दिया है
कि ग्रेरी का पंचांग सही था, और पीछे
तो ओर नहीं जा रहा था। इस समंजन
के पीछे यह सिद्धांत है कि हर ४०० वां
अधिवर्ष होता है।

०००

अत्यधिक खरटि लेना जानलेवा

विश्वकाल तक किये गये प्रयोगों के
आधार पर, आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिक-
चिकित्सक डाक्टर रॉल एंटिक इस चौंका
ले निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि बहुत
ज्यादा खरटि लेने से आदमी हृदयरोग
जैसे गंभीर मनोवैज्ञानिक रोगों का शिकार
हो ही सकता है, उसकी जान भी जा
सकती है। इसलिए, उनकी सलाह है,
अत्यधिक खरटि लेने वाले व्यक्ति को
डॉक्टर के पास जाना चाहिये।
अतः, अत्यधिक खरटि लेना एक रोग
जैसा गंभीर रोग, जिसके बारे में अभी
कम पुरे तथ्य सामने नहीं आये हैं, और
जो खतरा है।

आदमी ज्यादा खरटि क्यों लेता है,
जिस बारे में वैज्ञानिक और चिकित्सक
संमत नहीं हैं। दूध, टमाटर, मोटापा,
माल्टी, गठिया आदि इन सैकड़ों
कारणों में से हैं। इलाज भी सैकड़ों की
तरिकातों में तजवीज किये जा चुके हैं।
कैन्सर के रोगियों के पेटेंट कार्यालय में

अत्यधिक खरटि दूर करने की ३०० से
अधिक विधियों को पेटेंट किया जा
चुका है।

शोधकर्त्ताओं का यह भी कहना है कि
हर खरटा एक दूसरे से भिन्न होता है।

०००

कोई गुलाब लाल कोई पीला क्यों ?

सैकड़ों वर्षों से जीवशास्त्रियों के सामने
यह समस्या मौजूद थी कि गुलाब
के फूल का रंग एक समान क्यों नहीं
होता। कोई गुलाब पीला और कोई
गुलाब लाल क्यों होता है ? अब साधारण-
सी लगने वाली इस समस्या का हल
जीवशास्त्रियों की समझ में आता जा
रहा है।

वास्तव में, इस समस्या का संबंध
एक ऐसी जननिक-संकेतिकी से है, जो
अत्यधिक जटिल है। यही महत्वपूर्ण
संकेतिकी यह निर्धारित करती है कि
आपकी प्रिय विल्ली का रंग कैसा होगा,
आपके बच्चे कितने लंबे होंगे, आदि,
आदि।

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इस संके-
तिकी को भली भांति समझ लेने के बाद,
वे कैंसर का मूल कारण जानने-समझने
में भी सफल हो सकेंगे। उनका यह भी
विश्वास है कि इस संकेतिकी के रचना-
तंत्र के मूल में 'डी. एन. ए.' नाम का
एक रसायन है, जिसे 'जीवन-रहस्य'
के नाम से भी जाना जाता है।

मानवीय डी. एन. ए. के एक कण में

उसके विकास से संबंधित १००, ०००, ००० निर्देश निहित होते हैं। मात्र इसी तथ्य से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस गुत्थी को सुलझाने में वैज्ञानिकों को कितना समय लगेगा। कैब्रिज की नाभिकीय जीवशास्त्र प्रयोगशाला के निदेशक प्रोफेसर फ्रेड सेंगर का जो डी. एन. ए. के रहस्यों को जानने का प्रयास कर रहे हैं, कहना है—‘जननिक-संकेतिकी की भाषा की व्याख्या करने वाला मार्ग एक मील लंबा है, और हमने अभी तक उसका एक मीटर लंबा मार्ग ही तय किया है।’

०००

पशु-पक्षियों और वनस्पति-जगत की

हिंसक प्रेम-लीलाएं

वैज्ञानिक शोधों के फलस्वरूप, पशु-पक्षियों और वनस्पति जगत में प्रतिक्षण होने वाली हिंसक प्रेम-लीलाओं के अविष्वसनीय विवरण प्राप्त हुए हैं। शोधकर्ता वैज्ञानिकों के अनुसार, ‘फिल्मों और टेलिविज़न पर दिखायी जाने वाली हिंसा और उत्तेजक प्रेम-लीलाएं पशु-पक्षियों और वनस्पति जगत की वास्तविक हिंसा और उत्तेजक तथा क्रूर प्रेम लीला के आगे कुछ भी नहीं हैं।’ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

० नन्ही मांहुएं जो मधुरस पैदा करती हैं, वह चींटियों को इतना प्रिय होता है कि वे सदैव उनकी रक्षा धूर्त इल्लियों से करने को तैनात रहती हैं। चालाक

इल्लियां चींटियों को चकमा देने के लिए मांहुओं की रोयेंदार खाल उनके शरीर से अलग कर अपने ऊपर ओढ़ लेती हैं। मगर चींटियां उन्हें सूंघकर उनका पता लगा लेती हैं। तब मांहुओं को नुकसान चींटियों और इल्लियों में जो होता है, उसकी भीषणता का अनुमान उसे देखे बिना नहीं लगाया जा सकता।

० नर-तितली और मादा-तितली की प्रणयलीला को बलात्कार की ही समझा दी जा सकती है। नर-तितली को मृतक तितली के अतिरिक्त अपने कृमिकोष्ठ से बंद ‘अजन्मी’ मादा-तितली के पतन बलात्कार करने भी पाया गया है।

० न्यू गायना में ऐसे कणारे हैं जो टारज़न की भांति एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक कूदते हैं और मारामारी करते हैं।

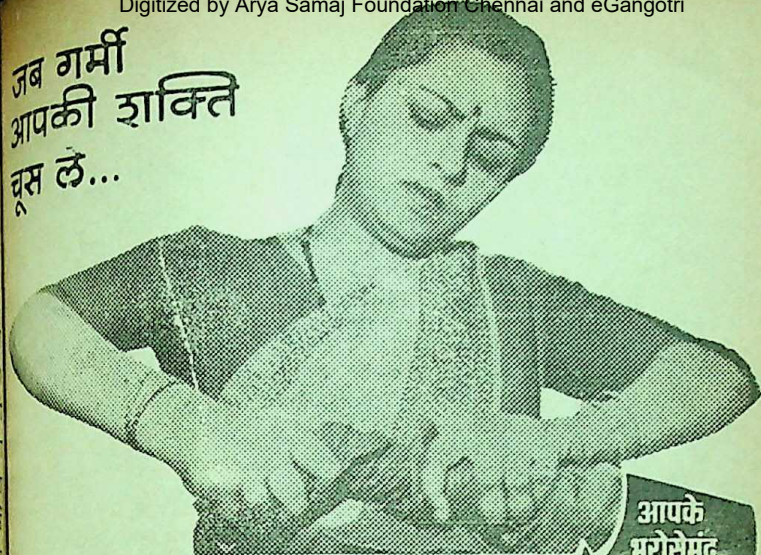
० बंदरों की एक जाति दूसरी जाति के बंदरों को अपने क्षेत्र पर, विकृत संघर्ष में हारे, अधिकार नहीं करने देती। इस संघर्ष में काफ़ी प्राण-हानि होती है।

० घोड़ों या गायों के पास उड़ने वाले पतंगों की एक जाति क्रुद्ध होने पर, जहर से उन्हें मार तक देती है।

० ऐसे कीड़ों का पता चला है, जो प्रणय से पूर्व, एक वृक्ष विशेष के छिपे ‘अमृत’ का पान करके इतने उत्तेजित हो जाते हैं कि फिर उन्हें होश ही नहीं रहता है कि उनका प्रणयोन्माद कहां ले जा रहा है?

(शेषांश पृष्ठ १५२ पर)

जब गर्मी
आपकी शक्ति
चूस ले...



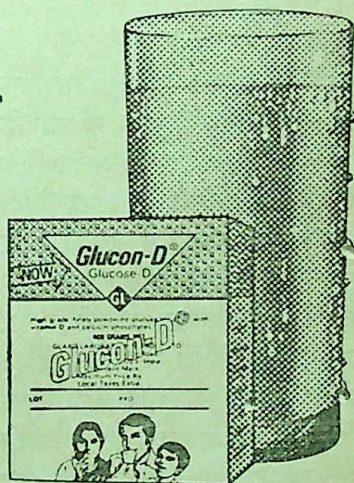
आपके
भरोसेमंद
ग्लूकोज-डी
का नया नाम.

तो लीजिए **ग्लूकोज-डी** [®]

अतिरिक्त शक्ति—

जैसे ही आपको ज़रूरत हो.

गर्मी के मारे आप जल्द थक कर चूर हो
जाते हैं. ऐसे में चाहिए ताज़गी और
ऊर्जा देनेवाला ग्लूकोज-डी. आपको और
आपके पूरे परिवार को. फलों का रस,
दूध, चाय, कॉफ़ी, सादा पानी—
किसी भी पेय में मिलाइए या ऐसे ही
लीजिए. फिर ख़ुद महसूस कीजिए—
क्यों पहले जैसी चुस्ती-फुर्ती !
क्यों जाने-पहचाने हरे पैक में मिलता है.



HTB-GLL-6591 HN

ग्लैक्सो का असली ग्लूकोज पाउडर
-विटामिन-डी और कैल्शियम फॉस्फेट से भरपूर.

महाराष्ट्र-निवासी, लोक-कलाओं के समृद्ध
प्रदेश कच्छ की गुणियल बेटी, हिन्दी में
लेखन की एक ऊर्जस्वल कवयित्री और
रचनाकार

डा. माधुरी शाह का लेख

घरों में लटकते मोती के छोके

कच्छ की मोती-कला

कला-क्षेत्र में बढ़ती हुई व्यावसायिक दृष्टि और बढ़ते यंत्रीकरण की गति के बीच कहीं न कहीं प्रादेशिक लोककलाओं के अस्तित्व पर संकट की स्थिति आ खड़ी हुई है। यह संकट केवल उन लोककलाओं के खत्म हो जाने से वस्तुओं के अभाव का संकट नहीं है बल्कि इससे गहरे में जाकर यह संकट उस संस्कृति के स्खलित होने का संकट है, जो व्यक्ति के भूगोल और मानसिक बनावट के सम्मिलन से लोककलाओं के रूप में प्रस्फुटित होती है। क्योंकि इन लोककलाओं में प्रयुक्त बिंब और प्रतीक उस प्रादेशिक इकाई की अपनी मौलिक

पहचान होते हैं। इन्हें सुरक्षित रखने का प्रयास रूढ़िवादिता का निर्वाह नहीं बल्कि सांस्कृतिक आयामों की सुरक्षा है।

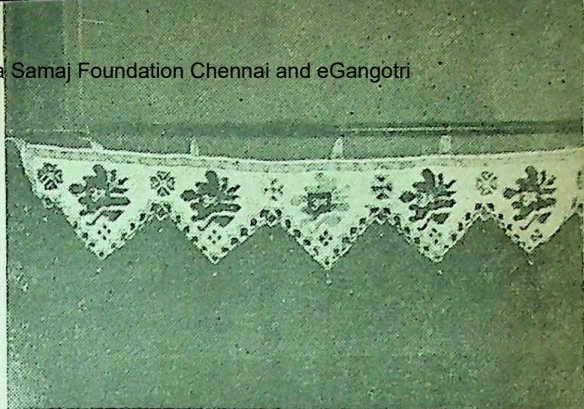
कच्छ की मोती-कला कारीगरी आज व्यावसायिकता का शिकार होकर केवल उच्च वर्ग के पास ऐश्वर्य-प्रतीक बनकर रह गयी है। लेकिन कुछ वर्षों तक यह मोती-कला कच्छ के घर-घर में प्रचलित थी और सारा घर मोती की चीजों से स्निग्ध, शांत ज्योति फैलाता प्रतीत होता था।

सर्वा सामान्य रूप से मोती का उपयोग स्त्री के गहनों से माना जाता रहा है।

नवनीत

२८

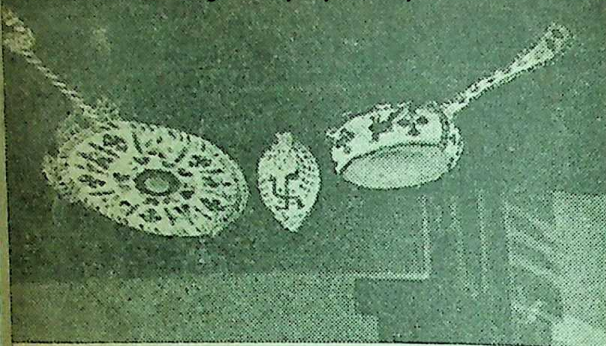
मोती की चूड़ियां, मोती के
 मोती की अंगूठी, मोती के
 मोती और न जाने क्या-
 का सुवर्ण और हीरे की
 मोती का स्वरूप भी
 गरिमापूर्ण लगता है।
 मोती हीरे और सोने की
 मोती को चुभनेवाली चमक के
 मोती की आव शीतलता
 मोती है। मोती के आभूषण
 मोती नारी जाज्वल्यमान सौंदर्य की
 मोती हो जाती है। उसके रूप में
 मोती विखरने लगती है। पर क्या नारी
 मोती केवल स्वयं को सजाने में रुचि है ?
 मोती रोजगारी की जिदगी में कभी झांक-
 मोती देखे तो पता चलता है कि न वह केवल
 मोती को सजाती है बल्कि वह चाहती है
 मोती उसके निकट रहनेवाली, उसके संपर्क
 मोती होनेवाली हर वस्तु उसी की तरह सुंदर,
 मोती और लुभावनी बने। और विधाता
 मोती उसके हाथों में ऐसी असाधारण कला
 मोती लुटाया है कि जहां उसका हाथ
 मोती लगा है, सौंदर्य खिल उठता है।
 मोती सुविधाओं के आधार पर नारी
 मोती को आकर्षक बनाने की कोशिश में
 मोती जाती है—रंगोली, मेंहदी, सिलाई,
 मोती, कसीदा, पेंटिंग आदि उसकी इसी
 मोती प्रिय मनोवृत्ति की परिणतियां हैं।
 मोती के बाहरी आंगन से लेकर रसोईघर के
 मोती तक किसी को नारी ने नहीं छोड़ा।
 मोती सिखासिले में कच्छ की नारी ने मोतियों



गृह-द्वार पर शोभित मोती की वन्दन-वार

को अपनी वस्तुएं सजाने के लिए माध्यम बनाया। मोती के आभूषण तो नारी के श्री व सौंदर्य में वृद्धि करते हैं। पर इतने से ही उसके कला-पिपासु मन की परितृप्ति नहीं हुई और उसने मोती-कला में घर की हर वस्तु को गूँधना शुरू कर दिया।

कच्छ भारत के सीमावर्ती इलाके में बसा एक ऐसा छोटा-सा भू-प्रदेश है जहां केवल रेत उड़ती है और सामान्यजन की आंखें बरसात की प्रतीक्षा में लगी रहती हैं। दृष्टि संघर्ष, दरिद्रता और विवशता सब कुछ नकारात्मक, केवल एक सच्चाई—हर पल जीवित रहने का, अनवरत अस्तित्व का संघर्ष। लेकिन एक असाधारण सुखद आश्चर्य यह है कि इस जानलेवा संघर्ष के बीच भी कच्छी आदमी की संवेदना और कला-चेतना के स्रोत निरंतर प्रवाहित रहे। सौंदर्य-बोध की वह न जाने कौन-सी निजीविधा हर पल मिर उठाये रही कि जीवित रहने के यातनादायक संघर्ष के बावजूद कला-शिल्प के प्रयोग उनके



मोतियों से गुथी पनिहारिन के कलशों को ईँडुरी
तथा मोतियों से बुना पंखा

प्रतिदिन के जीवन के अंग ये-आभला, भरत-काम और मोती-काम की बनी सुंदर वस्तुएं और वस्त्र कच्छी-कला को एक मौलिक पहचान देती हैं।

आज न केवल कच्छी परिवारों में, बल्कि अन्य परिवारों और बाजारों में भी बारीक मोतियों के हाथ से बनाये आकर्षक नमूने सजावट के तौर पर रखे हुए दिखायी देते हैं। न जाने कब से कच्छ की खारी, अहीर आदि श्रमजीवी जाति की स्त्रियों के द्वारा ये वस्तुएं बनायी जाती रही हैं और वणिक तथा ठक्करायी आदि उच्च वर्ग द्वारा इनका उपयोग किया जाता रहा है।

आगे चलकर यह प्रथा विकसित हो गयी कि घर की किशोरी, युवतियां खाली वक्त में मोती से बनी हुई चीजें तैयार करने लगीं। ये चीजें होती हैं-तोरण, नारियल, सुपारी, स्याही की बोतल, दावात, बेलन, इलायची, छड़ी, पलने पर लटकाया जाने वाला खिलौना, हाथी, पनिहारी, फोटो-

फ्रेम और कप-साँसर तथा लोटे रखने के कलात्मक छोटे, कुंकुम की डिबिया आदि।

इस कला के लिए दो तरह के मोतियों का उपयोग होता है-एक फिटकड़िया मोती बने जाते हैं जो आकार में कुछ बड़े होते हैं और कांच जैसे पारदर्शक होते हैं। दूसरे प्रकार के मोती मोती कहा जाता है- मोती आकार में वेहद छोटे होते हैं।

कई रंगों में प्राप्त होते हैं। जब भी इन्हें गुथा जाता है, तब श्वेत मोतियों की पृष्ठिका पर रंगीन मोतियों की डिजाइन उभारी जाती है। जिन रंगों का अधिक उपयोग किया जाता है वे हैं-लाल, नीले, हरे और पीले। रंग के ये मोती श्वेत पृष्ठिका पर गुथे सुंदरता तथा कलात्मकता सहित उभरते हैं। ज्यादातर फूल, पत्तियां, मोर, तोता, हाथी, गुड़िया आदि की डिजाइनें निकाली जाती हैं। मजबूत धागे में सुई द्वारा एक एक मोती फंसाकर काम बड़ी दक्षता से पूरा किया जाता है।

परिवार में मांगलिक प्रसंगों पर मोती से बने नारियल, सुपारी और तोरण आदि का उपयोग आज भी किया जाता है। कच्छी बोली के विवाह-गीतों में मेहमानों का इन मोतियों द्वारा स्वागत किया जाता है। इसी प्रकार देवी सरस्वती का मोतियों से स्वागत करते हुए, विद्या प्रदान करने के अर्थ

सौंदर्य लक्ष्य
लक्ष्य के लिए,
आदि।
ए. रो. ब्रह्म
प्रयोग हो
मोती है
में कुछ को
जैसे पाद
प्रकार को
जाता है
द छोटे और
जब को
त मोड़ने
रोतियों को
जिन रों
जाता है
रोले। यह
का पर पूरे
हेतु उभरे
मोड़, तोड़
में निबाला
द्वारा एक
ी दस्ता में
में पर मोड़ने
रोरण जारी
जाता है।
में महामा
किया जाता
का मोड़ने
न करने है
असल

मिनो की जाती है -

सस्वती सरसती तू मेरी माया

बंद पटोरा, नेवर पाया;

चूँ चूँ तोड़ी, विद्या दे

बार पथों, सेग मोतीड़े।

तो उनके चढ़ई सिंदूर,

जो कस्तूरी, ल्यो कपूर।”

—हे सरस्वती, तुम हमारी मां हो तुमने

कस्तूर्य वस्त्र धारण किये है, और तुम्हारे

पों में नूपुर हैं। हे तुष्टमान मां, हमें विद्या

दान करो। तेरे स्वागत के लिए हम

रितियों से भरा थाल, सिंदूर, कस्तूरी



और कपूर लेकर खड़े हैं।

कभी इस कला का पारिवारिक, सांस्कृतिक महत्त्व था। परिवार की किशोरियों द्वारा बनायी जानेवाली ये सुंदर वस्तुएं उनके दहेज की तैयारी होती थीं। लेकिन आज इनके पीछे भावनाओं की वह तीव्रता निःशेष हो चुकी है। आज बतौर फैशन इन्हें कमरों में सजाया जाता है। मोतियों की बढ़ती कीमतों के कारण अब ये सुंदर नमूने केवल संपन्नता का प्रदर्शन और श्रमाग्र मात्र रह गये हैं। —लक्ष्मी निवास, झवेरी गली, बीड (महाराष्ट्र)

ग्राहकों, वितरकों, एवं विज्ञापनदाताओं को सूचना

‘नवनीत हिन्दी डाइजैस्ट’ संबंधी सभी प्रकार का व्यवस्था संबंधी पत्र व्यवहार

कृपया निम्न पते पर करें:



वितरण-व्यवस्थापक

क्षिप्रा ट्रेडिंग एंड इन्वेस्टमेंट कं. प्रा. लि.,

मुंशी नगर, भवन्स कैम्पस, अंधेरी (पश्चिम),

बम्बई-४०००५८

डा. दिवा की दो कविताएं

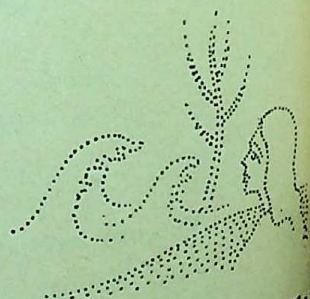


नाम

अंतराल

तुम्हारी आंखों ने मौसम का हाल पूछा
हमारी आंखों ने मौसम का हाल पूछा
एक का जवाब ध्रुव था
दूसरे का जवाब ध्रुव न था,
जब दो ध्रुव ही नहीं
तो बीचला अंतराल कैसा ?
लेकिन था तो,
तुम्हारी आंखों ने अंतराल देखा
हमारी आंखों ने अंतराल देखा
अंतराल मौसम का हाल नहीं पूछता
वह खद एक मौसम होता है
हमारी आंखों में एक-एक मौसम क़ैद है
हमारी आंखों में एक-एक दीवाल क़ैद है,
दो दीवारों को अश्मने-सामने खड़ी कर दो
तो छत भर रह जाती है
वही तो नहीं थी आदम के पास ।

मैंने हवा में
फिर उन सुगंधों को पाया है
जिनका मेरे आसपास से कोई संबंध नहीं।
जी करता है
असंबद्ध संदर्भों को नाम दे दूं
और हवा में डूबे
संबोधनों को आवाज दूं नहीं।
लेकिन
कोई शब्द नया संबोधन बने
इससे पहले
एक और हवा आती है
कलम हाथ से गिर पड़ती है।
कागज़ पर कलम की नोक से
एक बिंदु भर बना है।
पढ़ सकोगे ?



—रेवती निवास, खोल्डा-अल्मोड़ा-२६२६५५

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य
विश्वमा भासि रोचनम् ॥

हे सूर्य ! तुम परम तेजस्वी और सुन्दर हो ।
तुम प्रकाश के सृष्टा हो, और सभी प्रकाशमान
सत्ताएं तुम्हारी ही ज्योति से उव्भासित हैं ।

—ऋग्वेद.



श्रावण का वह दिन

□ रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मुझे एक दिन की याद आती है, घनघोर श्रावण मास ने अपना मुकुट छीन लिया, बदली की बेला ने अपना तूफान किया, पहरों ने मुख ढंककर आलोक चुरा लिया। सन्तों ने लेकर अविश्वास भाव से पड़ते हुए धारापात के शब्द ने पर्व खींच दिया और संसार की नाना ध्वनियों को एकाकार कर दिया ! प्रबल वर्षण से दिशाओं का मुख धूसर हो गया। मालूम होता था, आकाश निरुत्सुक हो गया है, नदी के पार की नीलिमा पाण्डु आवरण से ढंक गयी है। कर्ममय विश्व की सीमा खो गयी। परिमाण खो गया—व्यथित हृदय अनायास ही विद्यापति रचित 'भरा बादर' गान गुनगुनाने लगा।

मैं मन ही मन उदास होकर अपनी कुटी में चुपचाप बैठा था, अचानक याद आया कि शायद अब समय हो गया है, वह छोटी बालिका—मेरी छात्रा—पढ़ने आयेगी, उसे कुछ पढ़ाना होगा। गान रोक दिया, पीछे फिरकर देखता हूँ तो हाथ में बस्ता लिये वह दरवाजे से सटकर खड़ी है। मेरे विभावरी पाठ शुरू कर दिया। उसके कपोल कुछ-कुछ लाल थे, गला आँखों की दूटा-सा जान पड़ता था, शायद उसका दक्ष थर-थर कांप उठे हैं या। वह बार-बार पाठ भूल जाया करती थी, मानो अनायास मनस्क भाव से पन्ना खोलकर बैठी है। मैंने कहा—'अच्छा, आज रहने दो।' वह केवल मेरे मुख की ओर आँख उठाकर अवाक् होकर ताकती रह गयी।

यह घटना अत्यंत तुच्छ थी, मैंने फिर इसे कभी सोचा नहीं, काल की घड़ी पार करके उस घटना की छाया-मूर्ति जाने कहां चली गयी। आज फिर बदली का समय है, नदी तरंग नहीं है, मैं अलसभाव से बैठा हूँ, घर में कोई नहीं है, हठात् चित्रपट देखता हूँ, न जाने कब आकर वही बालिका अवर्षित अश्रु से भरी हुई दो डबडबाई आँखें मन में एक कोने में अंकित कर गयी है।

□

एलाचार्य श्री विद्यानन्द स्वामी की एक उद्बोधक कविता



जो के नौमहले बैठा हंस ज्योति फैलाये,
'सोइहं, सोइहं, सोइहं' का अमृत नाद सुनाये ।
'कहाँ, मैं भी तो देखूँ, दीपक जलता जाये,
'कहाँ का प्रहरी घर-आंगन घूमे, अलख जगाये ।

जलता जलता तैल, तूल पर मोर मचलते आते,
जो के अनादि कश्मल अपना रूप दिखाते ।
जल की ओट अचंचल कौन करे भंगुर को,
'रोक' लेगा शराव से उड़ते हंसावर को ।
तूल का ठाठ अकिंचन सपनों में भरमाये,
जो के नौमहले बैठा हंस ज्योति फैलाये ।

विभावरी, इन्दु-विभा पर लगा आवरण तम का,
'ये, गला कसौटी पर है विक्रम कनक-दीप लघुतम का ।
'घर कांप' होकर प्राण अड़े हैं दुर्जय समर-स्थल में,
'मानो' उठे हैं वीर केसरी आभा की हिंगुल में ।
'रुहा' रात रतजगा कोई आज न हमें बुझाये,
जो के नौमहले बैठा हंस ज्योति फैलाये ।

कूट दूटते जाते एक-एक चितवन पर,
'दीप' के दुर्ललित लास्य साकार हुए कंपन पर ।
'चुनौती' अंध दनुज की शल्य-शलकाओं को,
'जिप-जुग' लघु-लघु दीपों ने राकाओं को ।
'किरी' के नौमहले बैठा हंस ज्योति फैलाये ।



दिगंबर योगी महामुनि
श्री विद्यानंद स्वामी

हंस-दीप

श्रीगणेशचतुर्थी के अवसर पर

श्रीगणेश के विनायक स्वरूप, पूजन और वाहन का रहस्य



आचार्य भाईशंकर पुरोहित

गणपति, गणेश, विनायक शब्दों का अर्थ है देवताओं के स्वामी अथवा अग्रणी। वेदों में भी 'नमो गणेश्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः' अर्थात् गणों और गणों के स्वामी श्रीगणेश को नमस्कार। इस प्रकार गणेशजी की स्तुति की गयी है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में गणेशजी की स्तुति के लिए स्वतंत्र सूक्त हैं। इससे स्पष्ट होता है कि गणेशजी का हमारे वैदिक देवों में मुख्य और विशिष्ट स्थान है।

हिन्दुओं की कोई भी धार्मिक क्रिया गणेशजी के पूजन से शुरू होती है; भले ही वह क्रिया मंगलमयी हो, या श्राद्ध जैसी अमंगल हो। क्रिया मात्र में निर्विघ्नता अभिप्रेत होती है। और गणेश विघ्नहर, विघ्नेश, देव हैं। निर्विघ्नता के लिए गणेशजी की प्रार्थना करते हुए अधिकांश में यह श्लोक बोलते हैं:

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिभप्रभ ।

निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥

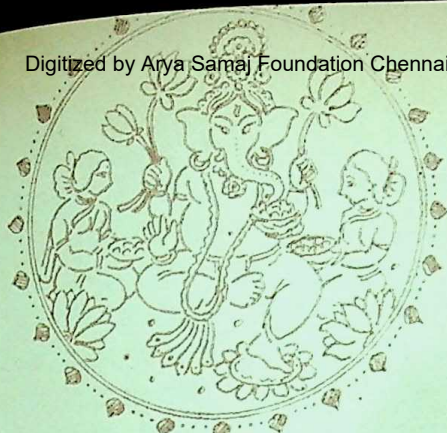
इसकी पहली पंक्ति में गणेश के स्वरूप और प्रभाव का वर्णन है और दूसरी में विघ्न हरने की प्रार्थना है। जिनकी कृपा टेढ़ी है, जिनका शरीर महान है, जो करोड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी हैं ऐसे, सब कुछ प्रदाता शक्ति वाले गणेश! मेरे विघ्नों का हरण करो!

गणेश के नाम

गणेशजी के एक हजार आठ नाम हैं। श्रद्धालु लोग जिनका नित्य पाठ करते हैं। परन्तु इनके बारह नाम अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इन बारह नामों में गणेशजी के स्वरूप और सामर्थ्य का संक्षिप्त परिचय मिल जाता है। ये नाम हैं:

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः
लंबोदरश्च विकटो विघ्ननाशो गणधिया
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचंद्रो गजाननः
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छ्रेणुवाचनम्
विद्यारंभे विवाहे च प्रवेशे नित्यं वा
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते

राजराजी के अनुवाद : विजयलक्ष्मी त्रिवेदी



एक व्यक्ति के एक से अधिक नाम देने
 हेतु उसकी बहुमुखी शक्ति और स्वरूप-
 विलक्षणताओं का परिचय देना होता है।
 मुख-अत्यंत सुंदर मुखवाला; एक
 दांत-एक दांतवाला; कपिल-सेंदुरिया रंग
 का; गजकर्णकः - हाथी के जैसा अथवा
 घोड़े के कानवाला; लंबोदर - लंबे-चौड़े
 उदरवाला; विकट - भयानक अथवा
 विविधविशाल; विघ्ननाशक-विघ्नों का
 नाश करनेवाला; गणाधिप - गणों का
 अधिपति; धूम्रकेतु - अग्नि के समान
 धूम्र रंग का; गणाध्यक्ष -
 गणों का अर्थात् देव-सेना का सेनापति;
 गजचन्द्र - जिसके मस्तक पर (अदृश्य
 चंद्रमा) चंद्रमा बसता हो ऐसा, और गजा-
 नर - हाथी के मुखवाला। गणपति के
 विनाश नाम विचारार्थ करते समय, लग्न
 के समय, नयी जगह में प्रवेश करते समय,
 प्रस्थान करते समय, लड़ाई में अथवा
 किसी संकट के समय याद करें, तो कोई
 विघ्न नहीं होता।
 गणेश कहा जाता है
 कि दुर्घम के संस्कारों वाले भक्तजनों

को गणपति का स्वरूप ऊपर के कथन के
 अनुसार सुंदर और मंगलमय लगता है।
 परंतु स्वरूप का रहस्य न जाननेवाले को
 उसमें कौतुक जैसा लगे, तो आश्चर्य नहीं।
 गणेशजी का शरीर अत्यंत विशाल है,
 परंतु उनका वाहन चूहा, तुच्छ और छोटा-
 सा प्राणी है। मुंह हाथी का और पेट की
 तोंद इतनी बड़ी कि देखते ही हंसी फूट
 पड़े। वे मोदकप्रिय हैं और शरीर के
 अनुपात में उनके पैर छोटे हैं। शरीर आदमी
 की तरह है, परंतु उत्तमांग अर्थात् मस्तक
 हाथी का-पशु का है, इसलिए गणेशजी
 को नृसिंह की तरह 'नृगज' कहें, तो गलत
 न होगा।

गणेशजी की चरित्रलीला देखकर
 लगता है कि वे सयानेपन के देवता हैं।
 किसी भी क्रिया को निर्विघ्न सम्पन्न करने
 के लिए सर्वप्रथम सयानेपन की जरूरत
 होती है। धीरज, सतर्कता, साहस, सही
 सूझ प्रवृत्त्युत्पन्नमतिव आदि शब्द सयानेपन
 के अर्थ में आ जाते हैं। और ये सब गणपति
 के स्वरूप और चरित्र में पूर्ण रूप से विक-
 सित हुए हैं।

वाहन मूषक का रहस्य

सर्वप्रथम गणेशजी के वाहन के रहस्य के बारे में विचार करें। मूषक (चूहा) बहुत ही छोटा प्राणी है, परंतु अत्यंत चंचल और अविचारी है। दूसरों के लिए उसका कोई उपयोग नहीं है। बल्कि औरों के लिए उपयोगी वस्तुओं का नाश करना उसका स्वभाव है। इसके कारण चूहा मानव के राग-द्वेषादि राजसिक गुणों से भरे मन का प्रतीक है। चूहे जैसे चंचल मन पर बुद्धिमान की भारी शिला का भार डाला जाये, तभी वह वश में रह सकता है और अमंगल प्रवृत्तियों में न भटककर वह मंगलमय वाहन अथवा साधन बन सकता है। बुद्धि के देवता गणेश मन जैसे अति चंचल चूहे को वाहन बनाकर हमें यह बोध देते हैं।

हाथी जैसे मुंह का रहस्य है—सभी उपलब्ध चौपाये प्राणियों में हाथी सबसे विशाल कायावाला है। वह अत्यंत बफादार, धीर-गंभीर और स्थिरमति वाला होता है। ममस्त शरीर को संचालित करनेवाली ज्ञान-शक्ति मस्तिष्क में से प्रवाहित होती रहती है। गणेशजी का मस्तक हाथी का है, इसलिए उनकी प्रवृत्ति-प्रेरणा का उद्गम स्थान धीर-गंभीर, शान्त और स्थिर चेतना में है। गणपति के नीचे चंचलता के प्रतीक चूहे का निग्रह और ऊपर निश्चलता और प्रामाणिकता के प्रतीक हाथी के प्रेरणा स्रोत जैसी दोनों वस्तुएं रजोगुण तथा सत्वगुण के कल्याण-

कारी सुभग संगम का द्योतक है।
लंबोदर के पेट की विपुलता भी समझने जैसी है।

गणेशजी को विशेषकर शुद्धी (भाव नहीं), गुड और गेहूं के बने लड्डू बहुत प्रिय हैं। इसीलिए ही उन्हें मोदक-प्रीत कहा जाता है। मोदक के लिए उपयोग की गयी तीनों चीजें सात्विक और लिङ्ग हैं। पूर्णरूप से सात्विक आहार ग्रहण किया जाये तो इस शरीर को उत्तम बृद्धि मिलने के बाद बुद्धि निर्मल और अचंचल रहती है। बुद्धि की चंचलता वास्तव में झूठ बोलने और चुगलखोरी की प्रेरणा होती है। गणेशजी का सात्विक आहार बुद्धि में स्थिरता लाता है, जिससे ममस्त विश्व की अच्छी-भली बातें उनके चेतन में समा जाती हैं। अतएव सभी चेतन को समा लेने के सामर्थ्य के कारण उनकी विपुलता आ जाती है।

गणेशजी के छोटे-छोटे पैर भी अचंचलता और अधिक दौड़धूप के अभाव का सूचक हैं। गणेशजी सात्विक देवता हैं। पैर कर्मेन्द्रिय हैं। इसलिए वे रजोगुण का प्रतीक हैं। गणेशजी के निम्न भाग की लघुता और ऊर्ध्व भाग की गुस्ता तथा लघुता और सत्व गुण की प्रभाव की सूचक है।

बुद्धिमत्ता के पुंज
गणेशजी के बड़े भाई कार्तिकेय ने अपने पिता-महेश्वर से पूछा—‘आप शिव-पार्वती से

गणेश के प्रति पक्षपात करते हैं, हमने ऐसा क्या देवत्व है ? इसका शरीर तो बेहो ! जहां बैठ जाता है, उठने में भी असम सगता है । ऐसे बेकार लड़के के प्रति प्रेम करना अधिक मोह रखना उचित नहीं है ।' पार्वती कातिकेय की बात सुनकर गणेश होने के बजाय मुस्कराकर बोले, 'वह तो तुम्हारा छोटा भाई है । उनके बारे में तुम्हारा इस तरह कहना ठीक नहीं है । तुम दोनों में कौन श्रेष्ठ है, यह विवाद व्यर्थ है ।' यह सुनकर कातिकेय रोष में भरकर बोले, 'हम दोनों को प्रदक्षिणा करेंगे । प्रदक्षिणा करके पहले वापस आ जाये, वही सर्वपूज्य माना जाये ।' इतना कहकर वे गणेशजी के सामने देखने लगे । गणेशजी ने इस बात की मौन स्वीकृति दे दी । कातिकेय लगे लगे कसकर पृथ्वी की परिक्रमा करने लगे । उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यह तोंदियल नन्हें-नन्हें पैरों वाला एक-दो मील चलेगा मैं सम्पूर्ण विश्व घूमकर आ जाऊंगा । गणेशजी खिसे से खड़े हुए और माता-पिता की प्रदक्षिणा करके उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहे । स्फुटनिक की गति से पृथ्वी की परिक्रमा करके कातिकेय आ पहुंचे और हाफते-हाफते बोल उठे—'यह मुटल्ला क्यों यहीं बैठा है ! मैं समस्त पृथ्वी की परिक्रमा कर आ गया ।' शिव और पार्वती भी मुस्कराते हुए सामने बैठे नारदजी को बोर देखा । नारदजी बोले, 'गणे-

शजी ने माता-पिता की प्रदक्षिणा की है । माता-पिता पृथ्वी तो क्या समस्त ब्रह्माण्ड के प्रतीक हैं, इसलिए वे महान हैं । गणेशजी पृथ्वी की परिक्रमा कर चुके, ऐसा माना जायेगा, कार्तिकेय ! पृथ्वी की परिक्रमा में तुम गणेश से पिछड़ गये हो । इसलिए आज से विश्व में सर्वप्रथम देवता के रूप में गणेशजी की ही पूजा होगी ।

यह कथानक गणेशजी की चतुरता और बुद्धिमत्ता का परिचायक है।

उत्पत्ति की कथा

गणेशजी के जन्म के विषय में इस प्रकार की धारणा है कि माता पार्वती ने संकल्प बल से एक बालक का निर्माण किया और द्वारपाल के रूप में उसे यह कहकर दरवाजे पर खड़ा कर दिया कि मैं स्नान करने जा रही हूं, कोई अन्दर न आने पाये। संयोग से पार्वतीजी स्नान कर रही थीं, तभी शिवजी आ गये। गणेशजी उन्हें पहचानते न थे। माता की आज्ञा थी कि कोई अन्दर न आने पाये। गणेशजी ने शिवजी को रोक दिया। क्रोध-मूर्ति शिवजी अपने ही घर में इस प्रकार रोका जाना कैसे बर्दाश्त करते? उन्होंने झट त्रिशूल निकाल लिया और गणेशजी का सिर उड़ा दिया। जब पार्वती को इसका पता चला तो वे खूब विलाप करने लगीं। शिवजी ने अपने गणों को आज्ञा दी कि बाहर जाओ और जो कोई भी मिले, उसका सिर काट लाओ। गण

(शेषांश पृष्ठ ४२ पर)



श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में
नालापाट बालामणि-अम्मा
की मलयालम कविता

कुरुक्षेत्र के बाद

सन १९६५ के साहित्य-अकादमी पुरस्कार की विजेता स्वस्तिश्री बालामणि-अम्मा समकालीन मलयालम कविता की एक शीर्षस्थ कवयित्री हैं। अब तक उन्होंने पैंतीस कविता-पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। केरल के सुप्रतिष्ठित सारस्वत वंश नालापाट की यह सुगंभीर महिला विश्व-विश्रुत अंग्रेजी लेखिका सुश्री कमला दास की जेनी हैं। इनकी कविता की संवेदनात्मक निविड़ता चरम पर पहुंचकर अनायास पराधीन चेतना-स्तर पर उत्क्रांत हो जाती है। इसी से इन्हें सहज ही आगामी कल की कवयित्री कहा जा सकता है।

...कितना सुंदर था वह सवेरा, जब तुम
मेरे रथ पर बैठे, ओ सारे भुवनों के मित्र !
मेरा हृदय मानों सवेरे के फूलों की सुगंध से भरा था ;
आकाश स्वच्छ था : पृथ्वी ओस-भीनी थी,
और तितलियां आनंद से पंख फरका रही थीं।

...क्यों तुमने इस जीर्ण रथ को रणांगन के कोलाहल में
हांक दिया, और मेरे अहंकार को बाध्य किया

अनिष्ट की शक्तियों से लड़ने के लिए ?

दंड देने का अभ्यस्त तुम्हारा चाबुक सन्नाया,
घोड़े बेतहाशा दौड़ पड़े, और धूल उड़ने लगी
हमारे पंथ पर स्तंभों की तरह।

धीरे-धीरे घोड़े श्वेत से धूलि-धूसरित हो चले।

युद्धक्षेत्र मध्याह्न के सूर्यतले तप रहा था :
रथों के पहिये चक्कर खाते जा रहे थे;





मुकट गिर रहे थे, और मांसभक्षी पक्षियों की
बाँवों बँसे हज़ारों सनसनाते तीर
कतले आम मचा रहे थे।

...अहंकारों के वज्र टकरा रहे थे,
और तुम्हारा शंखनाद मुझे थरथराने दे रहा था।
जिस ओर भी मुड़कर मैं देखता, एक जान जा चुकी होती थी।
गर्व से उद्दीप्त चेहरे के साथ, मैंने लौटकर तुम्हारी ओर देखा :
तो मैं कांप-कांप आया यह देखकर कि
तुम्हारा शरीर कई खंडों में विभाजित होकर,
सब में बंटा दिखायी पड़ रहा था; जिन्हें मैंने अपंग
और ध्वस्त कर दिया था उन शरीरों में भी :
हर मर्त्य और मृतक के रूप में केवल तुम्हीं
दिखायी पड़ रहे थे।

‘...किस लिए तुम ऐसी परीक्षा ले रहे हो?’

—मैं पीड़ा से आक्रंद कर उठा था।

‘कोई जिसे प्यार करता है, उसी पर प्रहार करता है!’ :

—तुमने मुस्कराकर कहा था।

हर युद्ध का अंत इसी तरह होता है : इस साक्षात्कार में कि—तुम सबमें हो :
मित्र में भी, शत्रु में भी, भयंकर में भी, शिवंकर में भी... !

...अब हवाएं मृदु मंद होकर बह रही हैं,

और रथ का वेग धीमा पड़ गया है :

घोड़े हौले-हौले फुदक रहे हैं,

और तुम्हारा पीतांबर पृथ्वी और आकाश को जोड़ रहा है।

मेरे अंगांग थक चुके हैं, मेरी सारी पसंदें-नापसंदें पोछे

छूट गयी हैं : केवल तुम्हारी उपस्थिति ही माने रखती है।

...आनंदमयी है यह संध्या,

जब तुम मेरे रथ में यों निश्चल बैठे हो :

और मेरा हृदय उद्दीपित होकर

प्रकाश और नक्षत्रों से भर उठा है।



रूपांतर : वीरेंद्र कुमार जैन



(पृष्ठ ३९ का शेषांश)

बाहर गये तो उन्हें एक हाथी दिवायी पड़ा। उसका मस्तक काटकर वे ले आये। शिवजी ने उसे गणेश के धड़ पर जोड़कर उन्हें गजानन के रूप में संप्राण कर दिया।

वामन पुराण में गणपति की उत्पत्ति इस प्रकार बतायी गयी है : शिव-पार्वती दीर्घकाल से प्रेमालाप में मग्न थे। इनकी संतान अत्यंत तेजस्वी होगी और अपना देवाधिदेवपति छीन लेगी, इस भय से इन्द्र अन्य देवताओं को साथ लेकर शिवजी के पास गये और उनके प्रेमालाप में विघ्न डाल दिया। देवताओं ने हमें मातृत्व से वंचित रखा; यह सोचकर पार्वतीजी अत्यंत कुपित हो उठीं। उन्होंने देवताओं को शाप दिया कि उनकी पत्नियों को देवताओं से संतान नहीं होगी। क्रोध की स्थिति में पार्वतीजी स्नान घर में गयीं। पार्वतीजी की दासी मालिनी ने सुगंधित द्रव्य लेकर उनके शरीर में मलना शुरू किया। पार्वतीजी को उन सुगंधित द्रव्यों में जन्तु पड़े हुए दिखाई पड़े। इसलिए उन्होंने शरीर पुर मले हुए सुगंधित द्रव्यों को झाड़ दिया।

मालिनी वहां से चली गयी। पार्वतीजी ने शरीर से झाड़े हुए द्रव्य को इकट्ठा करके लम्बा-गोल पिंड बना दिया और वहीं रखकर पास के ही एक उत्तम आसन पर जाकर बैठ गयीं। मालिनी ने पार्वतीजी को आकर स्नान कराया और पिंड की ओर देखकर हंसते-हंसते बोली,

‘शिवजी से नंदी ने कहा है कि बाले बेटा होगा।’

‘मुझे लगता है कि आपने जो लंबा गोल पिंड बनाया है, यही आपका बेटा होगा।’

चमत्कारिक घटना

पार्वतीजी ने इसे सुनी-अनसुनी कर दो स्नान करके वे शिवजी की पूजा में लग गयीं। इतने में ही शिवजी आये और जिस स्थान पर बैठकर पार्वतीजी ने स्नान किया था, उसी जगह बैठकर स्नान किया। शिवजी के स्नान के जल से संसर्ग होने से पार्वतीजी का बनाया हुआ पिंड सचेत हो उठा।

वह सर्वांग सम्पूर्ण बालक बनकर ‘क्वां क्वां’ करने लगा। शिवजी को उससे आनंद और आश्चर्य हुआ। उन्होंने उस बालक को उठा लिया और नंदी से इस आश्चर्यजनक घटना के बारे में बात की। आनंद विभोर शिवजी ने देवताओं की पूजा की और बालक को लेकर पार्वती के पास गये। पार्वती ने बालक को देखा। शिवजी ने बालक की उत्पत्ति की अद्भुत घटना सुनायी और अद्भुत पुत्र की जननी बनने के लिए पार्वतीजी का अभिनंदन किया। पार्वतीजी के आनन्द का ठिकाना न रहा। उन्होंने बालक को चूमा और आलिंगन बढ़ा लिया। पार्वतीजी की प्रसन्नता देखकर शिवजी को आनंद हुआ और वे बोले ‘देवी यह तेरा गजानन पुत्र अद्भुत पुरुष’

गण और देवताओं का नायक बनेगा ।
इसकी पूजा करने वाले के विघ्नों का यह
हटा रहेगा, जिसके कारण यह विनायक
को विघ्नेश्वर कहलायेगा ।' तब से सौम्य
और प्रमान शिवजी के गण विनायक
को अपना अग्रणी मानकर पूजने
लगे ।

वामन पुराण की इस कथा में गणेशजी
की उत्पत्ति भिन्न प्रकार से बताया गयी है ।
परंतु उनके स्वरूप और प्रभाव के
बारे में कोई अंतर नहीं है ।

विवाह दिवस
विवाहदि मंगल कार्यों में गणेशजी की
पूजा की जाती है । अब प्रश्न यह है कि
गण और पार्वती के विवाह के समय
गणेशजी की पूजा की होगी या
नहीं ? इसका उत्तर गणेश पुराण के
प्रारंभिक श्लोक में मिलता है :

विवाहसंगतं विनायकममुं दिवाहुमाद्ये
युगे,
तु मयूरवाहनममुं षड्बाहुकं
सिद्धिदम् ।

इससे तु गजाननं युगभुजं रक्तांगरागं विभुं
द्विभुजं सितारुचिरं सर्वार्थदं सर्वदा ॥
अतः युग में सिंह वाहन दो हाथवाले
विनायक का, त्रेता में मयूर वाहन छह
हाथवाले सिद्धिदाता का, द्वापर में चार
हाथवाले लाल रंग के गजानन का और
कलियुग में दो हाथ वाले श्वेत मनोहर
रंग के रूपवाले सर्वार्थदाता का ध्यान करना
चाहिये ।

इस श्लोक में गजानन गणेशजी के
युगानुसार चार स्वरूपों का वर्णन है ।
शिव-पार्वती द्वारा प्रकट हुए गणेश द्वापर
युग के चतुर्भुज 'गजानन' हैं । इसके पहले
भी वे विनायक सिद्धिरूप में भी थे । तात्पर्य
यह है कि गणेशजी का प्राकट्य सादि है,
पर तत्त्वतः वे अनादि हैं । मुद्गल पुराण
में भी गणेशजी का अनादि देव के रूप
में वर्णन है ।

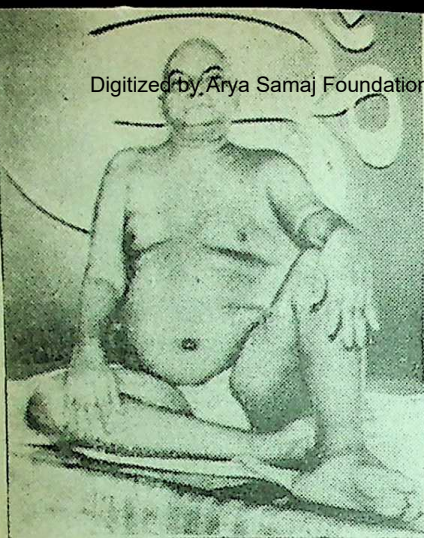
गणेशजी विवाहित या कुंवारे ?

प्राप्त अवशेषों से यह प्रकट होता है
कि भारत ही नहीं, एशिया और अमेरिका
में भी गणेशजी की पूजा होती थी । मैक्सिको
और अफ्रीका में भी गणेशजी की मूर्तियां
मिली हैं । एशिया के सभी देशों में भारतीय
संस्कृति और धर्म के विस्तार के अनेकों
प्रमाण उपलब्ध हैं ।

मञ्जे की बात तो यह है कि दक्षिणेत
भारत में गणेशजी की ऋद्धि-सिद्धि नाम
की दो पत्नियां होने की और बड़े भाई
कार्तिकेय के कुंवारे होने की बात मानी
जाती है । परंतु इसके विपरीत दक्षिण
में कार्तिकेय की दो पत्नियां होने और
गणेश के कुंवारे होने की बात मानी जाती
है । उन्हें ब्रह्मचारी माना जाता है । उनके
गृहस्थ अथवा ब्रह्मचारी होने में भले ही
मतभेद हो, पर भारत और इसके बाहर
विघ्नहर्ता सिद्धिबुद्धिदाता देवता के रूप में
सदियों से उनकी पूजा होती आ रही
है । इसमें कोई संदेह नहीं ।

—भारतीय विद्या भवन, बम्बई-४००००७





श्रीगुरु भगवान नित्यानन्द

एक दिन सायंकाल मैं भगवान नित्यानन्द के दर्शन को गया। दर्शन के बाद गुरुदेव मुझको हमेशा 'अब जाता', ऐसा पूछते थे। आज कुछ नहीं पूछा। सो मैं वहीं ठहर गया। श्रीगुरुध्यान के परम आनन्द में रात बीती। १५ अगस्त १९४७ की सुबह आयी। क्या जाने वह कौन शुभ दिन था! कितना अमृत भरा था! कितना दिव्य! कौन पुण्य और किस महाभाग्य को लिये हुए था! हमारे जीवन का सुदिन! आयुष्य का मंगलमय दिन! बहुत काल में, बहुत जन्म में वही एक दिन था। वह परम पुनीत, हां..... हां, वह 'मंगलानां च परम मंगल' दिन उदित हो गया।

सूर्य उदय होकरं किंचित ऊपर आया था। वातावरण शान्त था! पूर्व कोने में मैं श्रीगुरुचिन्तन में खड़ा था। हाँल के पश्चिम कोने में गुरुदेव का भोजन तैयार

नवनीत

स्वामी मुक्तानन्द परमहंस



१५ अगस्त १९४७
मेरा दीक्षा दिवस

करने वाला मोनप्पा खड़ा था। ध्यान-कक्ष में श्रीगुरुदेव अपने स्वस्व ध्यान से उठने की पूर्व तैयारी सूचक हुंकार करते थे। थोड़ी देर में गुरुदेव बाहर आ गये। आज तो कुछ नया ही रूप था। कभी भी ऐसा रूप नहीं देखा था। मैंने देखा कि वे एक सुन्दर पादुकाओं की ओर पाँव में डाल रहे हैं। वे आगे-पीछे जाते-आते मुस्कराते। एक बार उस कोने में जाते और कुछ न कुछ गुरु मंत्रों को गाते। मेरे सामने आकर फिर मुस्कराते। गाते। वे एक सफेद शाल ओढ़े हुए नीचे सिर्फ एक लंगोटी और पाँव नीचे सिर्फ एक लंगोटी और पाँव पादुकाएं थीं। वे बार-बार मेरे ताल खड़े होकर जोर से 'हूँ' शब्द करते ही एक घंटा बीत गया।

तदनंतर गुरुदेव पास आ गये। उन्होंने मेरे अंगों से अपने अंग सटा लिये। मेरा शरीर एक नये आश्चर्य को पाकर खड़ा

हो रहा। सामने पश्चिम की ओर मुख
बलें में बड़ा था। मेरे शरीर से लगकर
दो ही ओर मुख करके गुरुदेव खड़े थे।
मेरे कंधे बातकर देखने लगा। देखा कि
गुरुदेव के आभ्रमयी मुद्रा में पूरे खुले
हृदय ने मेरे नेत्रों में एकाकार हो गये।
मेरा शरीर शून्य हो गया। आंखें बन्द
हो कर सका, क्योंकि उनको खोलने
का मानने की स्वतंत्र शक्ति मुझमें नहीं
थी। गुरुदेव की आंखों के दिव्य तेज से
मेरे आँखें पूर्ण स्थिर हो गयीं। ऐसा थोड़े
समय तक रहा। फिर 'हूँ' रूप में गुरुदेव
आ दिव्यनाद सुना। गुरुदेव दो फुट पीछे
से स्वस्व रूप में खड़े थे। मैं थोड़ा होश में आया।
'बेटो, तू मेरे खड़ाऊँ डालो,' उन्होंने
कहकर पूछा, 'मेरे खड़ाऊँ डालेगा?'
मैंने आश्चर्य, आदर और धैर्य से कह
दिया, 'गुरुदेव, ये खड़ाऊँ मेरे पाँव में
लाने के लिए नहीं। बाबाजी, ये तो
मेरे चोबत में पूजने योग्य हैं'। यदि आप
आ कर तो मैं आंचल पसारता हूँ, आप
मेरे चोबत ही पाद से उसमें रख दीजिये।'
गुरुदेव ने बात मान ली। 'हूँ'
स्वर करके प्रथम अपना बायाँ पाँव
सहित ऊपर उठाया और मेरे
हृदय दामन में खड़ाऊँ रख दिया।
दूसरा प्रथम पाँव नीचे रखकर, दूसरा
पाँव उठाकर दूसरा खड़ाऊँ रख
दिया। वे सीधे मेरे सामने खड़े हो गये।
मेरे आँखों ने पुनः एक बार दृष्टिपात
किया। मैंने बड़ी सावधानी से देखा।

उनकी आंखों के मध्यविंदु से ज्योति किरण मेरे अन्दर प्रवेश कर रही थी। उसका प्रकाश किसी बड़े 'बल्ब' के प्रकाश की तरह आंखें चकाचाँध कर देनेवाला था। जब भगवान् नित्यानन्द के चक्षु के मध्य-विंदु से ज्योति किरण बाहर प्रसरित हो के मेरी आंखों में प्रवेश हो रही थी तब मैं आश्चर्य, विस्मय, आनन्द और भय से रोमांचित हो उठा। उस किरण के रंग को देखता हुआ, भगवान् के दिये हुए मन्त्र 'गुरु ॐ' को मैं जप रहा था। किरण अखण्ड थी। उसमें दिव्य चमक थी। कभी उसका रंग अग्नि से तप्त स्वर्णकान्ति जैसा था, कभी-कभी केसर जैसा, तो कभी

तदुपयोगी सत्त्वानन्द

दीक्षा-काल की मस्ती के दिनों में



मैंने प्यार से, धीरे से कहा, 'गुरुदेव, मेरा कितना दिव्य भाग्य है ! मुझे परम प्राप्ति हुई है। आप इन पादुकाओं में पूर्ण रूप से रहिये और मुझे उन्हें पूजने की आज्ञा दीजिये। मैं कोई भी विधि नहीं जानता हूँ।' मेरे ऐसा कहते ही वे ढाल के पण्डितों में गये। थोड़े फूल लाये, साथ-साथ दो केले, दो-तीन अगरबत्ती और कुंकुम की एक पुड़िया भी। उन्होंने उनको पादुकाओं पर डाल दिया। मैं 'ॐ ॐ गुरु ॐ' रटने लगा। आज मैं बाबाजी के निकट खड़ा था। श्रीगुरुदेव ने बैठकर थोड़ा-सा अपनी सूत्र-भाषा में बोलना शुरू किया 'सन् मन्त्र एक। सब ॐ। ॐ नमः शिवाय ॐ -- शिवोऽहम् होना चाहिये। शिव शिव, शिवोऽहम् होना चाहिये। अन्तरंग में होना चाहिये। बहिरंग से अन्तरंग श्रेष्ठ है।'।

नवनीत

कितना महान सुमंगल दिन, पु
समय था वह ! मैं बाहर निकलने
अपने भाग्य को सराहने लगा- 'बहा-
ये मेरे कौन पुण्य की घड़ी है ! किस
नता के फलस्वरूप आज मुझे यह प्र
हुई है !'

मैं पूरा आश्चर्य में डूबा था। कभी
नहीं सोचा था कि ऐसी घटना भी हो
सकती है। श्रीगुरु की पाठ्यकाएँ मिल
मुझ जैसे को दुर्लभ था, क्योंकि उस समय
भगवान नित्यानन्दजी के बड़े-बड़े भक्त
लोग थे। वे सब बहुत पुराने भी थे। उनमें
कई वृद्ध भी थे और कई बड़े-बड़े व्यापारी

में अपने पुरे खुले नेत्रों से मेरे नेत्रों में
 देखा। सर्व सिद्धिप्रद, चित्तिमय दिव्य
 किरण सहित मेरे अन्दर प्रवेश किया।
 उस किरण को देखते-देखते मेरे शरीर में
 कम्प, अश्रुधारा, स्तब्धता, क्षणभर के
 लिए तटस्थता और परमानन्द का अनुभव
 हुआ। इस प्रकार दिव्य दीक्षा दी। फिर
 मुझे नजदीक बुलाया। कोसों दूर रहनेवाले
 शरीर साधु को भगवान के नजदीक जाने
 का अवसर आज ही मिला। वरना एक
 लाचार परदेशी का इतना भाग्य कहां कि
 सबके सामने भगवान के निकट बैठे।
 आज मेरे आराध्य ने सचमुच ही कुछ
 सोमवार-व्रत, कुछ शिवनाम-जप, अल्प-
 स्वल्प होने पर भी मुझे अपने 'आशुतोष'
 नाम के ही अनुरूप महान फल दिया
 था। एक कवि ने अपने काव्य में भगवान
 शिव के दान के बारे में जो कहा है वह
 मेरे लिए भी फलरूप हुआ। वह कहता है—
 धन्य धन्य भोलेनाथ !
 आप बांट दिया सब जग एक पल में।
 तेरे सम दाता नहीं और कहीं जग में ॥
 श्रीगुरुदेव ने मुझे नजदीक बिठाया।
 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र संप्रदित ज्ञातकर,
 ॐ को जताकर, शिवोऽहम् कहकर, शिव-
 भाव धारण कराया। शिवपंचाशरी महा-
 तारक मन्त्र से बहिरंग अनुष्ठान की रीत
 बताकर, अन्तर-हृदय के 'मे शिव हूं' इस
 भावरूप 'शिवोऽहम्' शब्द सुनाकर अमर-
 नाथ का अमर शब्द सुनाया। 'सब ॐ रे'
 (शेषांश पृष्ठ ५० पर)

नदी

□ वीरेन्द्र मिश्र

वो अपने अश्रु में आकाश को डुबोएगी
नदी के अंग कटेंगे तो नदी रोएगी

नदी को हंसने दो नदी, को बहने दो

छुरी के हाथ ही होते हैं आंख कब होती
नदी में धुल गयी होती तो वो बहुत रोती
मिलेगा उसको क्या, जो भी मिलेगा. खोएगी

तुम्हारे कांपते चुल्लू में खून है जिसका
तुम्हारे माथ पे लिक्खा जुनून है जिसका
उसी की प्यास एक दिन कलंक धोएगी

उदास बन के बियावान में अकेली है
वो बही जा रही है ये भी एक पहेली है
मरुस्थलों की भीड़ आग ही तो बोएगी

जहां भी रस है, रूप है, तरंग है कोई
जहां भी अश्रु स्वेद का प्रसंग है कोई
वो अपनी धार में हर बूंद को पिरोएगी

न ज्वार में है, नदी में कि जो खानी है
किसी का खून हो, सबमें नदी का पानी है
वो जागती रही है, वो न कभी सोएगी

नदी तो अमृता है, सब जगह बहेगी वो
नदी कहीं की भी हो, बस नदी रहेगी वो
नदी को बहने दो, सब कुछ वही संजोएगी

प्रहार किस पे कर रहे हो, कुछ पता भी है ?
नदी का कत्ल करोगे तो सदी रोएगी ।

नदी को हंसने दो, नदी को बहने दो

—कृष्णकुंज, दादाभाई फास-३, बम्बई-४००००१

वर्षा की गीताम्बरी बेला ☐ सावित्री परमार



जल के नीलवर्णी
 बादरों की सन्नाटे में जब
 रातों की आहटें खिड़कियों पर
 खटखट देने लगती हैं
 जीवन के विरवों की घड़कनों में
 कोई मांसल वेगवती इच्छा
 बर्तों में उठती है
 लज्जा दे गलियारे के ओठों पर
 कोई पुराना दर्द जब सिसकने लगता है

जब बचानक आभास होता है कि शायद
 पुरानती पगडंडियों की छागलों से
 जब फिर टकरा गयी है कोई
 धारवाह बदली ?

जल की गुलाबी पलकों
 जब तपनों की पारदर्शी पांखुरियां
 लूने लगती हैं

आशों की गीताम्बरी बेला में
 आबूओं की जलतरंगी मिठास
 मन्त्र और केतकी की उल्लसित गंध को
 आशों के फुलवा-आंचल में बंध देती है
 किसी बोल की नील-मणि काया पर
 सब किसी मेघ का मंत्रमुग्ध साया झुककर
 आकाश की विराट गरिमा के इंद्रधनु
 उकेरने लगता है

वंशी की मंदिर धुन पर जब पुरवा
 कनुप्रिया-सी आकुल हो पगला उठती है
 जब दूब की रोमांचित देह
 चर्वशी नृत्य में साकार होकर अनुराग की
 शत्-शत् धाराओं में प्रवाहित होकर
 सृष्टि को मोह-मग्न कर देती है
 जब सागर-पुष्प नदियों की आलोड़ित
 हंसी को

अपने अनुरागी उत्तरीय में लपेटकर
 पिघलते हुए गुलाबी क्षणों को आत्मसात
 करने लगता है

तब लगता है कि शायद
 आज फिर श्रृंगारित होकर
 मुस्कुरा उठी है कोई ऋतुवती कदली ?
 - श्रीमहावीर दि. जै. उ. मा. विद्यालय,
 सी-स्कीम, जयपुर



(पृष्ठ ४७ का शेषांश)

कहकर एकात्मता का बोध कराया ।

यदि न देनेवाला देने लगे तो लेनेवाला लेते-लेते थक जाता है। ऐसा ही मेरे साथ हो गया। हृदयाकाश के अनन्त काल से अब तक अनन्त योनियों में भटकाने वाले अनन्त शब्दों को 'शिवोऽहम् रे... ऐसा होता रे' कहकर परशिव के परम तेजोमय महामन्त्र से नष्ट कर दिया। जो केवल शिवरूप, चित्प्रकाशमय, नित्योदित, पूर्ण प्रकाशमय, पूर्णोऽहम्-विमर्शमय, शक्तिरूप परावाक् है, ऐसे महामन्त्र को अन्तर हृदय में प्रवेश करा दिया। जन्म-जन्मान्तर के इकट्ठे हुए कर्मभाव को, पापपुंज को, अपनी परावाक्मयी नित्यानन्द-कृपाग्नि में जला दिया।

तदनंतर जैसे महान योद्धाओं को इसलिए कवच पहनाते हैं कि शत्रु की मार न लगे, बन्दूक की गोली न घुसे, चाकू न लगे, तलवार न चले, वैसे ही मुझे एक दिव्य नीली शाल उढ़ा दी, ताकि मुझे ताप न लगे, पाप-ताप कोई न व्यापे । इतना ही नहीं, अपने आप ही पुरोहित बन पादुकाओं पर थोड़े फूल, फल, कुंकुम, अगरबत्ती चढ़ाये । क्या सौभाग्य की बात थी ! भगवान् नित्यानन्द जैसे नग्न दिगम्बर अलिंग चिन्ह वाले पुरोहित से पूजा हुई पादुकाएं मुझे पूजने को मिलीं । मेरा कितना बड़ा भाग्य था ! तदनंतर यह तो उनकी कृपा की पूर्णाहुति महिमा है—वे हुंकारते हुंकारते अन्दर गये, दोनों हाथ भरकर

नवनीत

कच्चे केले के गरम-गरम भजिया खाए
और उन्होंने उन भजियों को पादुकाओं के
ऊपर डाल दिया। अब तो पुरोहित ने
हाथ से नंत्रेष्ठ भी हो गया है। अनन्तर
की मुद्रावाले हस्त से पूजा भी पायी।
दिव्य चिन्मय करकमलों ने भोग भी सा-
दिया। भाग्य की वाढ़ बढ़ने-बढ़ने सुन-
की नदी बहने लगी। जन्म-जन्म की पूजा
की याद आयी।

बाहर आके मैं पादुकाओं को सिर-
बार-बार लगाये रहता। भजिया एक-
करके खाता। फूलों की संधता दूध-
शाल की चिकनाई, सुन्दरता, महान-
देखते हर्षित हो जाता। चिन चिन
गुरुदेव के स्मरण में एकाग्र, स्थिर, निर-
बना था उतना ही चंचल, चपल बन गया
फर्क इतना ही था कि अब की चंचलता
शुष्कता नहीं, मूढ़ता नहीं, वनेच नहीं
उदासी-जड़ता-चिन्ता नहीं। खद अत-
पूरा, मस्ती पूरी, उमंग पूरी, उत्साह पू-
रा था। हां, मन दौड़-दौड़ के एक-
श्रीगुरु-पादुकाओं की तरफ देखा।
उमंग से फूलता। 'गुरुपादुकाष्टकम्' की
पंक्तियां गुनगुनाता रहता-
ज्याच्या कृपेचा मज लाभ झाला जन्म-
जीवा भवताप पोता

श्रीदत्त ऐसा उपदेश केला विसंहं इति
तरीचा भवति मो गुरुपादुकात्

मैं अपने भाग्य को दृढ्यवाद से अपने पूर्व उपास्य परशिव की प्रशंसा करते-करते, धीमे-धीमे

की ओर जाने लगा। जाते-जाते
 गुरुभक्ति पुनः उदित होने
 लगे। हृत्-उपासना की रीति से पुनः 'अन्दर
 गुरु' कहकर मन ही मन मस्ती
 मग्नता। भावना के वेग से गुरुभाव
 चला चला। सिर पर श्रीगुरुदेव की पादु-
 का की। रास्ते में गांधीपाडे से आगे
 हुए, जहाँ छोटा-सा पुल यानी नाली
 है, जहाँ से वर्तमान 'श्रीगुरुदेव आश्रम'
 शुरू होती है, जहाँ उस छोटे-से
 पुल पर एक ओढुम्बर का वृक्ष है,
 वृक्ष के तहत ही दिव्य गुरुभाव ब्रह्मभाव
 फैल गया। अन्दर-बाहर के जगत में
 भेद भेद करके 'एक में अनेक' दिखाने
 की भेद वृत्ति को छोड़कर क्षण भर के
 लिए 'अनेक में एक' भाव की अनुभूति
 हुई। 'गुरु, गुरु' जपते-जपते, अंदर
 बाहर गुरु कहते-कहते, वेदान्त
 ब्रह्मसिद्धांत जो पहले अलग-अलग
 भागों से पढ़ा था, फिर से स्फुरने
 लगे। किन्तु वरुणदेव की भी कृपा हुई।
 वरुण वर्षा की महीन बूंदें हलके से
 गिरने लगीं। शीतल वायु शांतता से बहने
 लगी। मैं अपने नेत्र मूंदता और खोलता
 था। अन्दर से अनन्त ज्योतियों का
 प्रकाश प्रगमग - जगमग करने लगा
 माने जाने कोटि संख्या में स्फुरने वाली
 छोटी-छोटी चिनगारियां लकलकाती हुई
 मेरे दृष्टि को दीखने लगीं। मैं देखता

ही रहा। क्या सुन्दर दृश्य था। अति सूक्ष्म
 चिनगारियां झिलमिल-झिलमिल करती
 हुई चमक रही थीं। उनके ऐसे वेग और
 संख्या को देखते-देखते मैं आनन्द और
 आश्चर्य से पूरित हुआ और आंखें खोलकर
 बाहर देखने लगा। बाहर भी वही अनन्त
 स्फुल्लिगयुक्त चमचम करती चमकीली,
 अणु से भी अणु, नीली चिनगारियों की
 लकलकाती हुई बहुत सी पंक्तियां दिखीं।
 देखते-देखते मैं बड़ा मस्त, भावयुक्त और
 आश्चर्यान्वित हो गया। एक नया अनोखा
 दृश्य चित्रपट में नहीं, बल्कि अपने चारों
 ओर देख रहा था। मैं धीमी-धीमी गति
 से चल रहा था। मुझे पता नहीं था कि
 मैं रास्ते पर चल रहा हूँ या रास्ता मेरे
 पीछे-पीछे आ रहा है। गांवदेवी के मन्दिर
 के समीप पहुंचकर रुका। गणेशपुरी की ओर
 मुख सहज ही फिर गया। याद आयी
 प्यारे गुरुदेव की। पुनः मन ही मन नमस्कार
 किया। रास्ते के किनारे-किनारे आगे बढ़ा।
 वरुण की कृपारूप छोटी-छोटी बूंदें अभी
 भी बरस रही थीं। वह मन्द वर्षा की
 कोमल फुहार नील वर्ण की छोटी चमचम
 करती हुई किरणों से मिलकर शद्भुत
 लग रही थी।

मैं हृदय में सर्वोत्तमभावरूप श्रीगुरु-
 स्मरण करता हुआ, सिर पर श्रीगुरु-
 चरणपादुकाएं लिये हुए धीरे-धीरे चल
 रहा था। अब भी मुझको उस एकाकार
 अनुभूति की पूर्ण स्मृति है। वे छोटे-छोटे
 नीले बिंदु अब भी दीख रहे हैं।





श्रीअरविन्द और स्वाधीन भारत की
वर्षगांठ पन्द्रह अगस्त के उपलक्ष्य में



१५ अगस्त १९४७ के श्रीअरविन्द ने कहा था

निः संदेह, आज के दिन मैं प्रायः उन सभी जागतिक आंदोलनों को, जिन्हें मैंने अपने जीवन काल में ही सफल देखने की आशा की थी, यद्यपि उस समय वे असंभव स्वप्न जैसे ही दिखायी देते थे, सफल होते हुए या अपनी सफलता के मार्ग पर जाते हुए देख सकता हूँ। इन सभी आंदोलनों में स्वाधीन भारत एक बड़ा पार्ट अच्छी तरह अदा कर सकता है और प्रमुख स्थान ग्रहण कर सकता है।

इन स्वप्नों में पहला था एक क्रांतिकारी आंदोलन जो स्वाधीन और एकीभूत भारत को जन्म दे। भारत आज स्वाधीन हो गया है पर उसने एकता नहीं प्राप्त की है। एक समय प्रायः ऐसा दीखता था मानों अपने स्वाधीन होने की प्रक्रिया में वह फिर से उस पृथक्-पृथक् राज्यों की

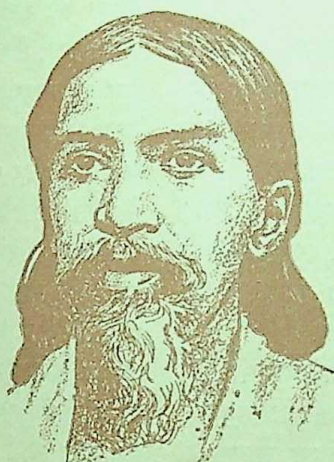
अव्यवस्थापूर्ण स्थिति में जा निरेगा। ब्रिटिश विजय से पहले विद्यमान की प्रतिक्रिया परंतु सौभाग्य से अब ऐसी प्रबल संभावना हो गयी है कि यह संकट टल जायेगा और अभी पूर्ण न सही पर एक विशाल शक्तिशाली एकत्व अवश्य स्थापित जायेगा। विधान परिषद की दूरदर्शिता को पूर्ण प्रबल नीति ने इस बात को संभव बना दिया कि दलित वर्गों को सम्मान बिना फूट-फुटाव के हल हो जायेगा परंतु हिंदुओं और मुसलमानों का सांप्रदायिक भेद देश के स्थायी राजनीति विभाजन के रूप में सद्बुद्ध हो गया है। यह आशा करनी चाहिये कि इस विभाजन को पत्थर की तबियत न मानकर एक काम चलाऊ उपाय से बढ़कर और कुछ न माना जाये

क्योंकि यह कायम रहे तो भारत
के लिए यह आवश्यक है।
दूसरा स्वप्न था एशिया की जातियों
का पुनर्स्थान तथा स्वातंत्र्य और मानव
सभ्यता की उन्नति के कार्य में एशिया का
जो महान स्थान पहले था उसी स्थान पर
उसका लौट जाना। एशिया जग गया है,
उसके बड़े-बड़े भाग बंधन-मुक्त हो रहे हैं,

इसके अन्य भाग जो
अभी-अभी भी परतंत्र
या अंशतः परतंत्र हैं वे
भी चाहे कैसे भी घोर
संघर्षों से गुजरते हुए
स्वतंत्रता की ओर बढ़
रहे हैं। केवल थोड़ा ही
करना बाकी है और वह
आज न सही कल पूरा
हो जायेगा। उसमें
भारत को अपना पार्ट
अदा करना है और
उसे उसने एक ऐसी

सामर्थ्य और योग्यता के साथ करना शुरू
कर दिया है जो अभी से उसकी संभाव-
नाओं की मात्रा को तथा उस स्थिति को
सूचित करती है जिसे वह राष्ट्रों की सभा
में ग्रहण कर सकता है।

तीसरा स्वप्न था एक विश्वसंघ का,
जो समस्त मानव जाति के लिए एक
सुंदरतम, उज्ज्वलतर और महत्तर जीवन
का बाहरी आधार निर्मित करे। मानव-
संसार का वह एकीकरण प्रगति के पथ



पर है। एक अधूरा प्रारंभ संगठित किया गया है, पर वह बड़ी भारी कठिनाइयों के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है। किंतु उसमें एक वेग है और वह अनिवार्य रूप से बढ़ता चला जायेगा और विजयी होगा। इसके कार्य में भी भारतवर्ष ने प्रमुख भाग लेना प्रारंभ कर दिया है, जो कार्य किया जा रहा है उसमें महान विपत्ति आ सकती है और वह उसमें बाधा डाल सकती है या उसे नष्ट कर सकती है, किंतु तो भी अंतिम परिणाम निश्चित है। क्योंकि एकीकरण प्रकृति की आवश्यकता है, अनिवार्य गति है। क्योंकि इसके बिना छोटे-छोटे राष्ट्रों की स्वाधीनता किसी भी क्षण खतरे में पड़ सकती है और बड़े तथा शक्तिशाली राष्ट्रों का भी जीवन असुरक्षित हो सकता है। इसलिए इस एकीकरण में ही सबका हित है।

शायद इस प्रकार की प्रगतियां भी पैदा हों जैसे कि दो या अनेक देशों का एकसंग नागरिक होना, संस्कृतियों का आपस में ऐच्छिक दान-प्रतिदान या उनका स्वेच्छा-पूर्वक घुलना-मिलना। राष्ट्रीयता तब अपने आपको चरितार्थ कर चुकी होगी और अपनी युद्ध-प्रियता को छोड़ चुकी होगी, और तब वह ऐसी चीजों को आत्म-संरक्षण तथा अपनी दृष्टि की अखंडता से असंगत नहीं अनुभव करेगी।

चौथा स्वप्न, संसार को भारत का आध्यात्मिक दान, पहले से ही प्रारंभ हो चुका है। भारत की आध्यात्मिकता

यूरोप और अमरीका में नित्य बढ़ती मात्रा में प्रवेश कर रही है। यह आंदोलन बीच अधिकाधिक लोगों की धारणा के साथ भारत की ओर मुड़ रही है और न केवल उसकी शिक्षाओं का, अपितु उसके आंतरात्मिक और आध्यात्मिक मान्यता का भी उत्तरोत्तर आश्रय लिया जा रहा है।

अंतिम स्वप्न या क्रमविकास में आने का दम जो मनुष्य को एक उच्चतर और विशालतर चेतना में उठा ले जायेगा और उन समस्याओं का हल करना प्रारंभ कर देगा जिन समस्याओं ने मनुष्य को हमेशा से हैरान और परेशान कर रखा है वह कि उसने वैयक्तिक पूर्णता और पूर्ण मन के विषय में सोचना विचारना शुरू किया था। यह अभी तक एक व्यक्तिगत बात और विचार और आदर्श मात्र है कि भारत और पश्चिम में दोनों जगह दूसरे-दूसरों के विचारों को वश में करना शुरू कर रहे हैं। इस मार्ग की कठिनाइयां प्रचलित हैं। किसी भी अन्य क्षेत्र की अपेक्षा बहुत कम जबरदस्त हैं। पर वे दूर होंगे ही। तब भी, यदि इस विकास को घटित होना तो, चूंकि यह आत्मा और अंतर्ज्ञान की अभिवृद्धि द्वारा ही होगा, इस प्रारंभ भारतवर्ष ही कर सकता है। यद्यपि इसका क्षेत्र सार्वभौम होगा, तब केंद्रीय आंदोलन भारत ही करेगा।

(‘अग्नि-शिखा’, श्रीअरविन्द आश्रम सौजन्य से)

मृक-वधिर का गीत

□ नीलतारा

बेबक हम बोल नहीं पाते हैं, सुन नहीं पाते हैं :
मत्ता हुआ बच गये बकवास करने से, बकवास सुनने से :
इस तत्काल के घाटे में,

हमें हो गया आखिरी मुनाफा, महाराज :

हम हो गये उसके युवराज,

जो बिन बोले ही सब कुछ कह देता है :

जो बिन सुने ही सब कुछ गुन लेता है,

बिना हाथ-पैर जो खेल-खेल में

बनाता-बिगाड़ता रहता है अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड,

बिना छुए ही जो सबको प्यार करने का मज्रा

चुपचाप लेता रहता है,

बाबने को उसे नहीं चाहिये जवान,

क्योंकि उसके भीतर अमृत आपोआप झरता रहता है,

वह क्यों तकलीफ करे आँखों से देखने की,

मात्र है कि सारे रूप-सौंदर्य उसकी मन-मौजों की तरंगे हैं.. ।

... भली कृपा हुई उस राजराजेश्वर की,

कि कान नहीं होने से हम निरन्तर सुनते हैं

अपने अंतर का अनहद नाद,

जो कि है सारी आवाजों की आवाज ... ।

बिन बोले कह देते हैं हम वह आखिरी बात,

कि जिसे आज तक के बागीश्वर असंख्यात शब्दों में भी कह नहीं पाये ?

कि जिसे कह देने पर कहना खत्म हो जाता है, महाराज... ।

... भली हुई कृपा उसकी,

कि वाणी और कान खोकर हम उसको पा गये,

सब कुछ कह-सुनकर भी

श्रुतियाँ जिसको पाने से वंचित ही रह गयीं :

पा गये हम अपने को, और यों सबको, कि जिसके बाद

कहने-सुनने की जरूरत ही खत्म हो गयी... ।

□

१५ अगस्त १९८१ को प्रकाश्य
वीरेन्द्र कुमार जैन के औपन्यासिक महाकाव्य
अनुत्तर योगी : चतुर्थ खण्ड का
एक विशिष्ट अध्याय

कृष्ण कमल में बजता जल-तरंग

मेरी छत के ईशान कोण में एक छोटा-सा लता-मण्डप है। उस पर आज कृष्ण-कमल का बड़ा-सा एक फूल खिला है। उसके ठीक ऊपर उग आया है चांद। कृष्ण-कमल की नीलिमा चांदनी में बेमालूम सी अपनी आभा छिटका रही है। ...

... यह कैसा अपलाप घटित हुआ है ? कृष्ण-कमल तो सवेरे खिलता है न। पर यह क्या हुआ, कि आज औचक ही रात में खिल आया है। एक विचित्र अपार्यवता के बोध से मैं भर आया। शरीर में रोमांच और कम्पन के हिलोरे दौड़ रहे हैं। ...

... मैं बेबस होकर विस्तर पर जा लेटा।

लेटते ही मुझे लगा, कि मुझ पर ते तंद्रा-सी छाने लगी है। तन-बदन में एक ही अकारण सुख ऊर्मिल होता चला हुआ। मन हठात् नीरव, निष्कंप हो गया। एक गहन शून्य में अपने को विसर्जित अनुभव किया। ... देखते-देखते मैं सो रह गया। सब कुछ एकदम निरःशब्द हो गया। कहीं कोई एक मात्र रह गया। और उसके दृष्टि में पिछली कई कहानियां जीवंत हो एक चल-चित्र की तरह खुलती चलीं। वे ठीक सामने घटित होने लगीं। यह क्या है, कि अधिकांश कहानियां नायक के रूप में अमय राजकुमार की लीलायमान दिखायी पड़ रही हैं।

वासुदेव कृष्ण के अवतरण-दिवस के उपलक्ष्य में

कहा है, कि अभय राजकुमार
लेकिन यह भी तो है, कि खेलता है
और वह सारा खेल मानो
में से आता है, और छोर पर
में निर्वीपित हो जाता है।

एक एक कृष्ण-कमल के लता-मण्डप
में सुनायी पड़ा :

‘वीरेंद्र वासुदेव !’
एक लकीर निरतिशय सुख के ज्वार
आव में लापे में आ गया। जैसे किसी
आँस के पलंग पर मैं जागा ।

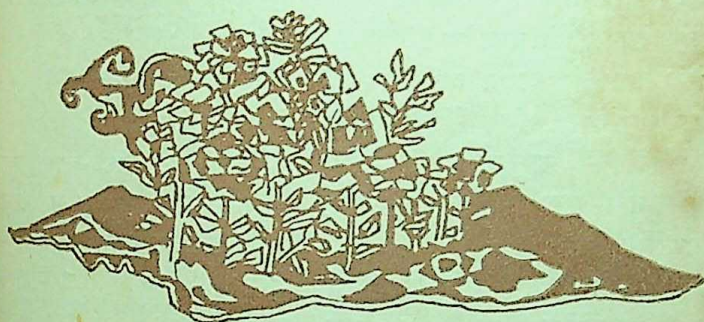
कथा लिख रहा हूँ। लेकिन मैं यह वासुदेव
कैसा ?’

‘देवानांप्रिय वीरेंद्र वासुदेव !’

‘अरे अरे, मेरा उपहास न करो, अभय
दा, मैं लज्जा से मरा जा रहा हूँ। निर-
स्तित्व हुआ जा रहा हूँ। मुझे रहने दो,
अभय राजा, निरा वीरेन ही रहने दो।’

‘लेकिन यह महावीर को मंजूर नहीं,
कि तुम अब भी अपना असली स्वरूप न
पहचानो। तुम हो वीरेंद्र वासुदेव !’

‘कौन वासुदेव, कैसा वासुदेव ?’



‘... मैं वासुदेव कैसा ?’

‘वीरेंद्र, तुम वही हो, मैं भी वही

‘तुम कौन ?’

‘अभय राजकुमार, तुम्हारी आत्मा

‘महेश !’

‘मैं मुझ ही प्रत्यायित हुआ, और एक

‘सुख के पुलक-कंपनों में तैरने

‘बखस ही मेरे मुह मे निकला :

‘मुझे भी तो ऐसा ही लगा है, अभय

‘कि तुम्हारी कथा नहीं, अपनी ही

‘वासुदेव कृष्ण का तेजःशी पुत्र।
महावीर के लीला-नायक वासुदेव कृष्ण
का तिर्यक्गामी वंशधर-वीरेंद्र। वही
मैं ... और वही तुम भी तो हो !’

और हठात् जैसे एक गहरे धक्के के
साथ पट-परिवर्तन हुआ। देखता क्या
हूँ कि अपनी शैया में मैं नहीं लोटा हूँ,
अभय राजकुमार लेटा है, कि जाने कृष्ण
वासुदेव लेटा है। और मैं जाने कहां से
यह सब केवल देख रहा हूँ। कृष्ण-कमल
के नील ज्योत्स्नाविल लता-मण्डप में चल

रही है एक छाया-खला । कभी मैं अभय हो जाता हूं, और कभी अभय 'मैं' हो जाता है । और कृष्ण-कमल की नीलाभा में तैर रही है एक वीतराग मुस्कान । अरे, ये तो महावीर के धनुषाकार ओंठ हैं । ... और अचानक फिर एक त्रिभंगी मुद्रा, तिर्यक् मुस्कान । नटखट और लीला-चंचल !

'ठीक ही देख रहे हो, वीरेंद्र वासुदेव ! वीतराग पुरुष महावीर जब जीवन को जीते हैं, तो उस स्वतः स्फुरित परिणमन-लीला का ही नाम है—कृष्ण वासुदेव, अभय वासुदेव, वीरेंद्र वासुदेव !'

'कहते क्या हो, अभय दा, अहम् के उस आसमान से तो खंदक में ही गिरूंगा मैं ! मुझे अपनी ना-कृच्छ हस्ती में ही रहने दो न । एक निर्बंधन् अकिंचन, लोक-निर्वसित कवि ।'

'निर्बंधन् अकिंचन, लोक-निर्वसित कवि ही तो वासुदेव होता है । वह तूम हो जमजात, इसी से तो अनुत्तर योगी की रचना कर सके हो !'

'मैं तो सृष्टि और इतिहास में घटित ही न हुआ, अभय दा । मेरा होना या न होना माने ही क्या रखता है । मुझे यहां कौन पहचानता है ?'

'घटित तुम कहां नहीं हो ? और फिर भी अव्यतिष्ठ हो, इसी से तो महावीर ने तुम्हें चुना है कि तुम्हीं उनकी महाभाव लीला का सम्यक् गान कर सकते हो । प्रभु के आदेश से ही तुम्हारे पास आया

हूं, कि तुम्हें तुम्हारी असली और पहचान करा दूं । क्या तुम अपने को महावीर में, मुझमें, सबमें नहीं खोजते ?

'तुमने मेरी चोरी पकड़ ली, दा, अब आगे कलम कैसे चले ? ...

'कलम तो आप ही चलेगी, उसे चलाया न चलाने वाले तुम कौन होते हो !

'अभय दा, जरा मानने आओ न तुम्हें देखने को व्याकुल हो उठा हूं ।

'मुझे अपने से भिन्न देखना चाहते मेरे वीरेंद्र वासुदेव ? अपने ही को देखें न, अभय तो हर पल तुम्हारे जीवन तदाकार खेल रहा है ।'

एक अविचल प्रतीति के गहन स्रोत से मैं एवढम आश्वस्त, विश्रब्ध हो गया । प्रश्न, विचार, वाचा समाप्त अनुभव हुआ ।

तभी अचानक एक खूब अलहूड़ कुमार की वही लीला-चपल, अकल्पित खिलखिलाहट सुनाई पड़ी ।

अभव एक प्रगल्भ हंसी ।

'सुनो वीरेन, आज एक और तुम्हें सुनाने आया हूं, जिसे तुम प्रसंग न कह पाये थे । मैंने वह तुम्हें ओझल रख ली थी ; क्योंकि मैं तब तुम्हें टकराना नहीं चाहता था । ...

याद दिलाऊंगा तुम्हें वरसों पहले का वह प्रसंग, जब प्रद्योत ने विभ्याचल में अनलगरि हनुमान का एक मायावी रूप बनाकर तुम्हें दिया था, और उस युक्ति से उसने वन उदयन को बंधवा मंगवाया था ।

वह तुम्हारे समय की बात है, जब मैं प्रद्योत के

को और अपने को
ही रख दे।
लो, क्या
चले ? ...

गी, उसे चले
गोन होते हो।
ने आओ न।
उठा हूं।
देखना चाहें।
ने ही को ले।
हारे जोर

के गहन
श्रद्धा हो गया
त अनुभव
व अलह
। अमय एक

पल, उम्मी
क और
से तुम
ने वह तुम
क में तब तुम

... बाद
ग, जब
नलगिरि
नाकर कु
उसने वन
था। वह
प्रद्योत के

...

को मोहित कर बांध लायेगा । ...

‘कैसे उस नकली हाथी द्वारा उदयन को पकड़वा मंगवाया गया, वह कथा तो तुमने लिखी ही है, वीरेन । पर आज जान लो, कि अभय की युक्ति से ही उदयन को तब बंदी बनाकर लाया जा सका था । ...

‘हर कथा के भीतर, एक और अंतर-कथा है । तो तब की एक अंतर-कथा अब तुम्हें बताता हूं । तुमने जो कथा लिखी है तब की, उसमें एक और भी फलगू वह रही थी, वह तुम से ओझल रह गयी ।

‘... जानो, वीरेन, यह उदयन भी तो तुम्हारी-हमारी जाति का ही है न । खेलने के सिवाय और कोई काम नहीं, प्यार करने के सिवाय और कोई व्यापार, विहार, व्यासंग नहीं । सो बंदी होकर उदयन, एक जोर का ठहाका मारता हुआ ही प्रद्योत के सामने आया । अपने सुवर्ण-पिंजर में से मैं सारा तमाशा देख रहा था । प्रद्योत ने भी हंसकर ही, उसे विजय-गर्व के साथ अपने निकट बैठाया । फिर कहा कि—मेरे एक एकाशी पुत्री है, एक आंख-वाली लड़की । कह लो कि काणी है । उसे व्याहेगा भी कौन । उसके कंठ में दिव्य संगीत लहरी है । उसे गांधर्वी कला सिखाओ, देवानुप्रिय उदयन ! तुम तो गांधर्वों के भी मनमोहन हो । तुम्हारे सिवाय यह परा विद्या वासवी को और कौन सिखा सकता है ?

‘उदयन को तत्काल छुटकारे का कोई



चित्र : डा. विष्णु भटनागर

उपाय न सूझा। उसने प्रद्योत का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार लिया। प्रद्योत ने कहा—मेरी दुहिता काणी है, सो तुम उसे कभी देखना नहीं, वना वह लज्जित, ग्लान और खिन्न हो जायेगी। रधर अंतः-पुर में जाकर प्रद्योत ने अपनी बेटी वास-वदत्ता से कहा—कि तुझे गांधर्वी कला सिखाने को जो गंधर्व-गुरु आया है, वह कुष्ठी है सो उसे प्रत्यक्ष कभी देखना नहीं, देख लेगी, तो भयभीत और जुगुप्सित होकर, उससे विद्या न सीख पायेगी।....

-वासवी ने पिता की शर्त स्वीकार कर ली।
 'अंतःपुर में, वासवी के कक्ष में एक
 सघन रेशमीन यवनिका डाल दी गयी।
 और बीच में यह आवरण रखकर, वासवी
 उदयन से संगीत-कला सीखने लगी।
 उस दौरान वह उदयन की संगीत-मोहिनी
 से ऐसी विकल-पागल और मोहित हो
 गयी, कि उसका जी चाहा कि वह उदयन
 को देखे। देखे बिना प्राण को विराम

नहीं। ... एकदा सीखते समय वह तब
सम्मोहित हो गयी, कि शून्यमन्त्र हो
उदास हो आयी। सीखना दूसरों को
वीणा चुप हो गयी। कंठस्वर दुब ग
विद्या की धारा भंग हो गयी। उल
इस धारा-विक्षेप से सहसा ही क्षुब्ध
उठा। उत्तेजित होकर बोल पड़ा :

‘अरी ओ काणी तूने स्वर-मंग का दिया ! कहां लगा है तेरा मन ? मेरी संगीत-सरस्वती का अनादर क्यों करी ? ढीठ कहीं की !’

सुनकर वासवी की मुग्धता भीषण
में उबल पड़ी :

‘अरे ओ कोड़ी, तेरा ऐसा दुःसाह
तु स्वयं कुष्ठी है, यह भूल गया, ओ
मुझे काणी कहता है ? अरे मेरी को
देख लेगा, तो अपना संगीत भूल जायेगा
ले देख और जान, कि तेरा संगीत क
मोहक है, या मेरी आँखें ! ...’

... कहकर तंश में वासवदत्ता ने
झटके से यवनिका हटा दी। दोनों
दूसरे को देखकर स्तब्ध हो रहे। वासव
दत्ता के सौंदर्य में उदयन का संगीत, को
पर पहुंचकर डूब गया। उसके कुं
वक्षोजों में उदयन की मातंग-विभूति
वीणा आपोआप बजने लगी। और वासव
दत्ता का सौंदर्य, उदयन के संगीत में अति
अधिक अनावरण होता गया : वह
त्रिउहेहिनी लौ मात्र होकर रह गयी।
उससे उदयन

‘उस दिन के बाद
वासवी एक प्राण, एक आत्मा, एक

मय वह लगे। संगीत की सागरी गैया
रूपमस्तक लगे। उनके शरीर परस्पर में आरुपार
होकर लगे। वे निर्भय और निर्बाध-
स्वर होकर सारी मर्यादाओं से परे, अपना
गयी। उनके जीवन लगे। यह गोपन रहस्य,
होकर लगे। एक विश्वामपात्र धात्री
पडा। और कोई नहीं जानता
स्वर-मय का ...
उन विनों प्रद्योतराज का अनल-

अनादर करें

ता भीषण रं

सा दःसाहः

न गया, बौ

अरे मेरी बंदे

मूल जायेगा ।

संगीत बजि

...

सवदत्ता न

१। दाना

१५५

पुस्तकें खरीदें

उत्तर-उ
रंग-विमलि

१. और वा...

संगीत में अष्ट

या : वह

रह गयी।

उदयन :

मात्म. एक

97

10



बिठाया है मैंने गंधर्वजयी उदयन को ।
केवल उसका संगीत ही इस भर्जेन्द्र की
महावासना को शांत कर सकता है ।...
सो प्रद्योत के अनुरोध पर, उदयन ने
वासवदत्ता के साथ बैठकर, महल के
वातायन पर से युगल वीणावादन किया ।
अनलनिरि हाथी खिंचा चला आया उनकी
ओर । और वातायन के टीक नीचे आ
कर वह शांत, स्तब्ध होकर प्रणत मद्रा



रहे। बाकी हो गये। एकदा ध्वजानक सांकलें
 ना संगीत, वह महावत को घराशाथी कर भाग
 उसके कुंआ। वह मदमत्त म्हाडस्ति सारे
 तंग-विह्वल को रोदता हुआ, भारी ध्वंस करने
 । और बाकी बातंक के मारे सारा नगर जनशून्य
 गीत में बंध गया। तब फिर प्रद्योतराज को याद
 गया : वह कैसे मैं—अबय राजकुमार । सो मेरे
 रह गयी। और शेर लाकर पूछा : कि किस उपाय
 उद्यम से इस पागल हाथी को वश किया जाये ?
 नाम, एक दिन उसे कहा : कि तुम्हारे महल में ला

में झुक गया । . . .

तब प्रद्योतराज ने मुझसे आकर कहा कि मैं छुटकारा पाने के सिवाय, एक और कोई भी वरदान मांग लूं। मैंने कहा—अभी इस वरदान को भी मेरी धरोहर रूप रखो, राजन, समय आने पर मांग लंगा।

‘इसके बाद किस तरह अनिल-वेगा हस्तिनी पर, वत्सराज उदयन वासवदत्ता का हरण कर ले गया, वह कथा तो तुमने लिख ही दी है, वीरेन ! अवन्तीनाथ के

उस सुवर्ण-मढ़े फ़ौलादी पिंजड़े में कैद रहकर ही, मैंने इतिहास को जाने कितनी जगह से तोड़ा, और मनचाहा मोड़ा, और उसके जाने कितने दूरगामी और कालभेदी परिणाम हुए, इसका लेखा-जोखा किसके पास है। तुम्हारा जीवन भी किस कारागार से कम है, वीरेन ! तुम्हारे सारे नाड़ी-चक्र को, जाने कितनी ही सांकलें एक साथ जकड़े हुए हैं। फिर भी हर दिन तुम जाने-अनजाने, न मालूम कितने खेल अपनी आंखों, मुस्कानों, शब्दों, प्यारों और प्रहारों से ऐसे खेलते रहते हो, कि उससे इतिहास की नाड़ियां झनझनाती रहती हैं, उसके हृत्स्पंदन में आंध्रियां और वसंत एक साथ आते-जाते रहते हैं। ... काश तुम जान पाते, वीरेन, कि तुम कौन हो ? तुम समय में नहीं, समयसार में घटित हो रहे हो। तुम घट में नहीं, घटाकाश में सक्रिय हो। तुम इतिहास में नहीं, उसके उत्स में चल और बोल रहे हो। इसी से तुम सदा अन-पहचाने रहोगे पृथ्वी के पटल पर। केवल तुम्हारा निर्नाम, निष्चित्त्व संचार महा-काल की धारा में प्रमाणित होता रहेगा।'

और सहसा ही वह आवाज खामोश हो गयी। '... लेकिन ओ अभय दा. तुम ने कथधार्या बीच में ही क्यों तोड़ दी ? बताया नहीं तुमने, कि उस सोने के पिंजड़े से तुम कैसे, कब मुक्त हुए ? क्या फिर तुम राजगृही नहीं लौटे ? क्या हुआ तुम्हारा ?'

ठीक चांद के नीचे कृष्ण-जल की नीलिमा फिर प्रोद्भासित हो उठी। सारी छत में एक नीला-दूधिया सा उल्लास छा गया और सुनाई पड़ा :

'इतनी बड़ी बात हो जाने पर तो बहुत छोटी बात पूछी तुमने, वीरेन ! पिंजड़े की भली कही। प्रद्योत की ताव थी, कि वह मुझे पिंजड़े में बंद रखे। ऐसे तो कई कारागार मिष्ट चतुरंग के लिए, मैं खुद रचता और मंग कर देता हूं। और पिंजड़ा भला कहाँ नहीं है। अस्तित्व, इतिहास, जीवन के चक्र उतार, सारा तमाम तो एक निरुपेक्ष पिंजड़ों का सिलसिला है। एक कारागार, जिसे हम खुद रचते हैं उस कदम पर, और खुद ही तोड़ने चलते हैं। दूसरी कोई ताकत नहीं, हमसे बड़ी जो हमें कैद कर सके। तुम्हारी कथा को मैं समझ रहा हूं, वीरेन। तुम हो हर पल, फिर भी अपने को मानने के भ्रम में पड़े हो। जानकर अनजाने बने हो। खिलाड़ी जो दहरे खैर, छोड़ो यह बात। ...

'तुम्हें जल्दी है अपनी कथा बढ़ाने और पूरी करने की। तो शायद कथा को समापित कहें, ताकि तुम बढ़ सको। ...

'... एक और भी लीला तब उभरने में हुई। जाने किस कारण से उस महा-काल में भीषण आग लग गयी। आकाश लपटें मानो अभी-अभी सारी उभरने

... को बतलाने। प्रद्योतराज फिर मेरे
... के द्वार पर हाज़िर दिखायी पड़े।
... भाई अभय, लाखों प्राण इस
... अग्निकांड में हवन हो रहे
... बोई उपाय बताओ, कि यह महाकृत्या
... हो सके।' मुझे बरबस हंसी आ
... मामूली-सी बात का इतना बड़ा
... मत्थानाज! अरे भाई, मैं कोई
... तो नहीं, मांत्रिक-तांत्रिक या
... नहीं। ... फिर भी मुझे जाने
... मुझ, तो मैंने तपाक से कहा: 'सुनें,
... वैसे विष का उपाय विष है,
... अग्नि का निवारण केवल अग्नि
... काल कहीं और आग लगवा दीजिये,
... निजमें, तो ये अग्नि उस अर्घ्य
... हो जायेंगे।' ... विचित्र हुआ,
... उपाय फौरन किया गया, और
... अग्नि का अग्निकांड देखते-देखते
... भांत हो गया। राजा प्रद्योत ने
... होकर मुझसे तीसरा वरदान मांगने
... मैंने कहा—'इसे भी मेरी धरोहर
... अपने पास, ठीक समय पर मांग
... आप से।' प्रद्योतराज की बुद्धि से
... हुआ जा रहा था, मेरा यह साग
... व्यापार। उनकी हर समस्या मैंने
... दी, तो मुझ पर वे संदेह भी कसे
... अमय से पा रहे थे वे केवल
... और निर्भय होते जा रहे थे।
... उनका नम्र नम्य और निःशंक
... का रखा था। सो मुझ पर शंका
... उनके वस का नहीं रह गया था। ...

उन्हीं दिनों एक और संकट अवंती
पर अचानक टूट पड़ा। कोई अभुतपूर्व
महामारी चल पड़ी, और सारे अवंती
देश में व्याप गयी। हर दिन जाने कितने
मानुष और पशु का भोग वह लेने लगी।
प्रद्योतराज फिर मेरे पास दौड़े आये:
'भाई अभय राजा, तुम्हारे सिवाय त्रिलोकी
में इस महामारी का निवारण कौन
कर सकता है। शीघ्र उपाय बताओ,
भाई।' ... मैं तो कुछ सोचता नहीं, वीरेन।
ठीक समय पर कोई चुंबक-गा मुझमें
कौंध उठता है। और फिर मुंह से जो निकल
जाये, वही कारगर उपाय हो जाता है।
मैंने कहा: 'महाराज, परेशानी का कारण
नहीं। अभी आप ज़रा अपने अंतःपुर में
जायें। आपकी सारी रानियां, सोलहों
सिंहार किये आपकी प्रतीक्षा में हैं।
उनमें से जो रानी अपनी दृष्टि से आपको
जीत ले, उसी का नाम जग मुझे बता
जायें..।

'राजा तत्काल अपने अंतःपुर में गया।
... शिवादेवी के कटाक्ष से वह पलमात्र
में ही विजित हो गया। प्रद्योत ने आकर
मुझे वह नाम बता दिया। ... 'ओ, शिवा
मौसी! उनका कटाक्ष अमोघ है, महा-
राज। उनसे तो आप सदा हारे हैं। वे
हैं सर्वमान-मर्दिनी, सर्व असुरदलिनी
महाकाली। तो उन्हीं महारानी शिवा-
देवी के हाथों कूरात की बलि दिलवा
कर, भूखे भूतों की पूजा कराइये, उनकी
जनम-जनम की दमित बुभुक्षा-वासना

का शमन कराइये। उस बलि को ग्रहण करने के लिए, जो भूत सियाल के रूप में सामने आये, उसी के मुख में महादेवी कूरबलि का क्षेपण कर दें। ... फिर देखिये क्या होता है !'

'... अपना तो कोई तीर कभी नाकाम होता नहीं, वीरेन। क्यों कि मैं सोचता नहीं, तत्काल कहता और करता हूँ। शिवादेवी की कूरबलि से वह अशिव महामारी रातोंरात शांत हो गयी। कैसे यह हो गया, इसका विज्ञान मुझे पता नहीं, मैं स्वयं चकित हूँ देखकर, कि यह कौन सर्वसत्ताधीश मेरी रक्त-शिराओं में नित-नये खेल रचा रहा है।...

'सबरे ही प्रद्योतराज बड़े कृतज्ञ और हृषित भाव से मेरे पास दौड़े आये। बोले- 'विचित्र हो तुम, देवानुप्रिय अभयदेव।

मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। और तुम भी मानो छूटना नहीं चाहते। तुम्हारे साथ कैसे बरतूँ, क्या सुलूक करूँ, समझ में नहीं आता। फिर मांग लो एक और वरदान। जो मांगोगे दे दूंगा, उज्जयिनी का सिंहासन भी। लेकिन तुम्हें छोड़ूंगा नहीं। तुम्हें सदा मेरे अधीन ही रहना होगा।'

... मैं सदा की तरह एक जोर का ठहाका मारकर हंस पड़ा। फिर बोला।

'सुनो अवन्तीनाथ चण्डप्रद्योत, आज मैं अपने चारों धरोहर वरदान एक साथ

मांगे लेता हूँ। ... आप अनवरतिर पर महावत बनकर बैठें। और मैं उनके बाद पीछे अम्बाड़ी में शिवादेवी के उत्सव में बैठूँ। फिर आप अपने तृतीय अग्निभीरु रथ को तुड़वाकर, उसके चारों से चिता रचवायें। और तब हम तीनों मिलकर एक साथ उस चिता पर जा जायें !...'

'... सुनकर महाप्रतापी चण्डप्रद्योत को लगा, कि उसके पैरों के नीचे से धरती हट गयी है। ... वह अभी-अभी एक तिन्नी रांध अतल पाताल में समा जायेगा। उसने दोनों हाथों की अंजलि जोड़कर

मेरे आगे घुटने टेक दिए।

बोला : 'क्षमा करो, राजा,

राजा, तुम्हें बांध कर रखने

ऐसी शक्ति सत्ता में विद्यमान

नहीं। तुम्हें बांध ही न पाएगा।

तो कैसे कहूँ कि तुम्हें छोड़

करता हूँ !...'

'चलते समय मैंने अपने घोड़े की छत्र पर पैर रखकर छलांग मारते

कहा :

'आपने तो मुझे धर्म-छल से बंध

मंगवाया, प्रद्योतराज ! और वह

कुटिनी वेश्याओं द्वारा। आपके

शूरातन की बलिहारी है ! लेकिन

जगत एक और भी शूरातन देखेंगे

मैं आपको सबकी आंखों के आगे, दि

धौले उजाले में, ठीक आपके नर

(शेषांश पृष्ठ १५९ पर)





शिरीष पै की मराठी कहानी

बहुचर्चित पिकचर की दास्तान

पिकचर शुरू होने में अभी देर है। काफी दर्शक लाबी में ही चहल-चढ़ाई कर रहे हैं। इसी बीच पहली घंटी बजावा आती है। उस आवाज के साथ ही भव्य, वातानुकूलित पिकचर हॉल में हलचल-सी होने लगी। दर्शक अपने घुसने की कोशिश में ठेलपेल करने लगे हैं। इसी माहौल में गोरी, लंबी, लाल-सी तन्वंगी लगभग समान लंबे, मोटे, नाटे से साथी के संग लाबी में बैठी हैं। उस युवक की ठोड़ी कुछ झुकी हुई है और आँखें बड़ी-बड़ी हैं। लाबी में मद्धिम हरी रोशनी है। रात का वह कृत्रिम धुंधलका स्वप्निल और उत्तेजक-सा लग रहा है। पाश्चात्य संगीत के तरल थिरकते स्वर बाहर के वातावरण पर जैसे मंद-मंद आघात कर रहे हैं। लाबी में रखे आरामदेह सोफे खाली हो चुके हैं। उन्हीं की ओर इशारा करते हुए वह युवती उस युवक से कह रही है—'कुछ देर बैठ लेते हैं' यहाँ। पिकचर शुरू होने में अभी समय है।' दरअसल वह नटखट युवती फुदकती, थिरकती-सी महसूस हो रही है। एक बहुचर्चित और बढ़िया पिकचर देख लेने के लिए वह बहुत ही

पिकचर शुरू होने में अभी देर है। काफी दर्शक लाबी में ही चहल-चढ़ाई कर रहे हैं। इसी बीच पहली घंटी बजावा आती है। उस आवाज के साथ ही भव्य, वातानुकूलित पिकचर हॉल में हलचल-सी होने लगी। दर्शक अपने घुसने की कोशिश में ठेलपेल करने लगे हैं। इसी माहौल में गोरी, लंबी, लाल-सी तन्वंगी लगभग समान लंबे, मोटे, नाटे से साथी के संग लाबी में बैठी हैं। उस युवक की ठोड़ी कुछ झुकी हुई है और आँखें बड़ी-बड़ी हैं। लाबी में मद्धिम हरी रोशनी है। रात का वह कृत्रिम धुंधलका स्वप्निल और उत्तेजक-सा लग रहा है। पाश्चात्य संगीत के तरल थिरकते स्वर बाहर के वातावरण पर जैसे मंद-मंद आघात कर रहे हैं। लाबी में रखे आरामदेह सोफे खाली हो चुके हैं। उन्हीं की ओर इशारा करते हुए वह युवती उस युवक से कह रही है—'कुछ देर बैठ लेते हैं' यहाँ। पिकचर शुरू होने में अभी समय है।' दरअसल वह नटखट युवती फुदकती, थिरकती-सी महसूस हो रही है। एक बहुचर्चित और बढ़िया पिकचर देख लेने के लिए वह बहुत ही

उत्सुक है। शायद इसीलिए वह इस क्रूर महक रही है। और फिर अपने प्रिय के साथ हो लेने का मौका जो उसे मिला है—जल्द ही उससे वह विवाहबद्ध भी हुआ चाहती है—वह उसे जी-जान से प्यारा है। युवती ने उसकी कलाई थाम ली है और वह उसे लगभग खींचते हुए ही सोफे की दिशा में ले जा रही है।

‘हम लोग बैठेंगे न यहां?’ मोहक अदा के साथ गर्दन मोड़कर उसने पूछा।

‘वेशक।’ वह जवाब तो देता है, लेकिन उसके चेहरे की निर्विकारिता बरकरार है। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें दूर कहीं कुछ ढूंढ़ रही हैं। मद्धिम हरी रोशनी में, दीवार से लगे आदमकद तैल-चित्र स्वप्न-दृश्य से लग रहे हैं। उन्हीं में से एक चित्र की ओर वह टकटकी लगाये हुए है। लेकिन उसकी चर्चा से तो ऐसा ही लगता है कि उसकी आंखें शून्य में कहीं खो गयी हैं। उसकी आंखें तो हैं, पर दृष्टिहीन। वह सोफे पर धम् से बैठ जाता है। किंतु दरअसल उसे सोफे पर बैठने का कोई अधिकार नहीं है। तथापि वह अपनी दबी हुई ठोड़ी सहलाते हुए सिकुड़कर बैठा रहता है।

लेकिन उसके विपरीत, वह युवती इस तरह पेश आ रही है जैसे अपने किसी पुश्तैनी मकान में ही रह रही हो। सोफे पर अत्यंत विश्वास के साथ वह उससे झटकर बैठ जाती है। अपना पर्स उसने यूँ ही फेंक दिया है, सामने पड़ी बेंत की

मेज पर। सोफे पर बड़े ही आराम से वह बैठी है। छककर हंस रही है। तरह-तरह दिल खोलकर हंसते रहने से उजले-उजले दांत और गुलाबी दिखाई पड़ रहे हैं। कुछ क्षण मूंदकर आरामदेह बैठने का अनुभव करती है। फिर इस उमंग कि ‘वह’ उसकी ओर देख रहा है। युवती उसकी ओर देखकर हंस देती है लेकिन वह तो अनमने भाव से चित्र को ताक रहा होता है। मानो विलकुल भी एहसास नहीं है कि प्रियतमा उसके करीब बैठी है, सटकर।

‘उँस्’, वह प्यार से उसे बुलाती है लेकिन युवक निर्विकार भाव से बैठा देखे।

उसे अपनी ओर खींचकर भीव को युवती का दिल कर रहा है। वह उसकी कलाई अपने दोनों हाथों से थाम ही लेती है। तब उस पर टिकी अपनी निगाहें हटायें बिना वह फुसफुसाता है—‘ये पिकचर हम समझीं? यहां चहल-पहल भी है?’

‘तो क्या हुआ!’ वह हठकर कहती है—‘चहल-पहल होने से क्या फर्क है। लोग मुझे पागल कहेंगे, वही वेशक कहें। तुम्हारे होते हुए मुझे न का डर है, न किसी की परवाह।’

यह कहकर वह लगभग उसकी में गिर जाती है। कुछ आगे अपनी मुड़ी गर्दन से वह

ही बागम...
सही है।
रहने से
गुलाबी
छ छ
का सुब
इस उम्मे
देख रही
र हंस देते
भाव से कि
है। मानो
ही है कि
वैठी है।

उसे बुलाते
भाव से वैठी
चकर भींच
रहा है। अ
ने दोनों न
। तब उस
हटायो कि
पिकचर हा
हल भी
रुठकर क
क्या फर्क
होगे, यही
हुए मुझे न
परवाह
उसकी
आगे हुक
अपन

को ताक रही है, जैसे बहुत सारी
तों अत्यंत एकाग्रता से वीन रही
मुग्ध-ध्रुव खोकर, सम्पूर्ण भाव से
अपनी शोख-चंचल अदाओं से
उमका चेहरा हूँ रही है। उसके
ने, मायूस चेहरे को अपनी इतनी-सी
नों में समा लेने की वह पुरजोर कोशिश
रही है।
उसकी टकटकी से युवक विचलित-सा
गता है। गर्दन मोड़कर अब वह कहीं
देख रहा है। मानो उस युवती
उनका विश्वास समाप्त हो गया हो।
को इस कदर परगलाहट से शायद
को कोपत-सी होने लगी हो।
उस, ऐसी भी क्या नाराज़गी है ?
देखो न !' उसकी कलाई को और
क कसकर पकड़ते हुए वह कहती है।
तो, चलते हैं अंदर।' वह उठते
कहता है।
'तुम भी क्या जल्दी है ! अभी तो
दे रहे हैं। असली पिकचर तो इंटरवल
तद शुरू होती है। तब तक मैं तुम्हें
ने उठने ही नहीं दूंगी। अंदर कौन-सी
तो परोसी जा रही हैं.... !'

कच्ची डॉक्यूमेंटरीज दिखलाते हैं,
गोल भी होती है। क्या यह सब
ने सायक नहीं होता ?'
मुझे नहीं देखना है। मैं तो सिर्फ
ही देखना चाहती हूँ... सिर्फ तुम्हें....
रही, मेरी इच्छा के अनुरूप बैठे रहो
ने पिकचर देखने के लिए यहां से उठूंगी

भी नहीं।' गलबहियां डालते हुए युवती
उससे कहती है।

अनमने भाव से टांगें फैलाकर आराम
से बैठे रहने की असफल कोशिश वह
करने लगा है। अपनी चौड़ी-सी, खुरदरी-
खुरदरी टोड़ी को दाहिने हाथ से वह सह-
लाता है। उसके चेहरे पर ऐसा भाव है
जैसे कोई अप्रिय तेज़ बंदू उसकी नाक
में जा रही हो।

'यह तुम्हें हो क्या गया है ?' प्यार से
उसके गाल पर चुटकी काटते हुए युवती
कहती है।

'मुझे ? मुझे क्या हुआ है ?' दोनों
मुट्ठियां कसकर भींचते हुए युवक चिहुं-
कर कहता है।

'हुआ है ! ज़रूर कुछ न कुछ हुआ
है ! मैं समझ रही हूँ उसे। तुम न हंस
रहे हो, न मुंह से बोल रहे हो, न
ही मुझसे आँख मिला रहे हो। तुम
रोमांचित भी तो नहीं हो रहे हो। इसी-
लिए मैं पूछती हूँ कि आखिर तुम्हें हो
क्या गया है ?'

'मुझे कुछ नहीं हुआ और मैं बिल्कुल
दुरुस्त हूँ।'

'झूठ बोल रहे हो तुम। हम दोनों
की शादी तय होने तक तो तुम खूब
बतियाते थे। मुझे पता है, तुम अपनी
परिस्थितियों से घिरे हो। फिर भी तुम
इतने बदरंग तो नहीं ही थे। और अब
तो हम दोनों ने शादी करने का फैसला
कर लिया है, अपनी मर्जी से। दरअसल

अब तो तुम्हें बेहद खुश रहना चाहिये । प्रसन्न रहना चाहिये — मेरी तरह । मैं तो कितनी थिरकती, फुदकती रहती हूँ.... लेकिन तुम, सच-सच बताओ, क्या कष्ट है तुम्हें ? मुझसे कुछ गलती तो नहीं हुई ? तुमसे किसी ने कुछ कहा तो नहीं ?

‘न तुमसे कोई गलती हुई, न मुझसे किसी ने कुछ कहा । मुझे कुछ नहीं हुआ और मैं भला-चंगा हूँ, यकीन मानो ।’

‘मैं तो नहीं मान सकती । मानती हूँ कि तुमने दुनिया भर की मुसीबतें उठायी हैं । लेकिन लेकिन उसके लिए अब क्यों मलाल कर रहे हो ? अब तो वह दौर समाप्त हो चुका, अब मेरा साया जो तुम्हारे साथ है ... !’ कहकर अपनी नाजूक उंगलियाँ उसके गाल से छुआकर उसने उसे गुदगुदाया ।

लेकिन युवक खोया-खोया-सा कहीं और ही देख रहा है । दूर बहुत दूर... दीवारों के विस्तार में.... काफी दूर तक वह देखता रहा । युवती तो बराबर ही घूर रही है संपूर्ण एकाग्रता से । मानो भीतर से वह हर पल पिघल रही हो और अपनी आँखों से उस नमी को छिटका रही हो । जैसे अपने भावी पति द्वारा उठाये गये दुखों को वह एक ही बार में पी जाना चाहती हो ।

फिर वह युवक कहने लगता है—
‘सब कुछ बुझा-बुझा-सा लग रहा है...

चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा... लगता है जैसे मैं बीच राह में व्यर्थ ही रुक रहा हूँ.... ऐसा लगता है, जैसे मेरे पास बहुत कुछ था और मैंने सब कुछ खो दिया है क्यों ? आखिर ऐसा क्यों रहा है मुझे ? पता नहीं समझ नहीं आ रहा है... लड़ाई खत्म हो गई पर विजेता पक्ष खुश तो नहीं होता होगा इससे तो हार ही बेहतर होती है । आदमी फिर से ज़िंदा हो जाता है... लड़ने-झगड़ने के लिए दूने उस्ताह से लड़ हो जाता है... लेकिन अब ? सब कुछ

मिट गया है.... समाप्त हो गया है...’ वह बुझा-बुझा-सा हिंसाता रहता है ।

‘तुम तो पागल हो चुकी हो, कुल ।’ युवक के सिर पर हाथ से चपत मारते हुए वह

खिलाकर हंस देती है ।

‘मैं पागल हूँ ?’ हकबकाया-सा पूछता है । उसके चेहरे का सांवल और अधिक गहरा जाता है ।

‘वैसे तो तुम पागल नहीं हो । समझदार हो । संयत हो । कहकर ही गौरव के साथ वह युवक को लगती है । वह फिर एक बार आप में ही खो जाती है । अपने भीतर गोता लगा रही होती है । मौज-मस्ती से हाथ-पैर चला रही है—पानी में । उसने अपनी आँखें मूंद ली हैं । एक लंबी सांस खींच



रा... लपटा है मैं तो बहुत ही खुश रहती हूं,
यं ही रुक रहे हैं। नंदव तुम्हारी याद में खोयी
मैंसे मेरे को है। तुम्हारे ही बारे में सोचती
सब कुछ है। मैं कैसे बताऊं कि इसमें
ऐसा क्यों है ?

ख युवक उसकी ओर ऐसे देख
ही सपने
खत्म हो
ही होता होता
र होती है
हो जाता है।

उत्साह के
अब ? सब कुछ
प्रवेश-द्वारों पर काले पर्दे खिसक

मामत हो
-बुझा-ना
।

गल हो
सिर पर
हुए वह

न, मैं वेहद खुश हूं।'
हुए वह

ही है-तुम्हें पता है, मैं
करती हूं ?' ठीक छोटे

का सांबा
है।

नहीं हो।
। कहकर

युवक को
एक बार

है। जाने
होती है

चना रही है...
नी आँखें

रंत बीच-बीच में
जमा



के सिर के खुले बाल यूं ही उंगली से
लपेटते हुए अठखेलियां कर रही है।
हाथ में पहनी महीन चूड़ियां खनक
रही हैं। लाल मणियों की माला गले में
मस्ती से झूम रही है। यकायक युवक का
हाथ कसकर थामकर वह कहती है-‘अब
हंसो भी, या यूं ही मातम मनाते रहोगे ?
आखिर इतना क्या सोचते रहते हो तुम ?
आदमी को यथासमय हंसना चाहिये।
रोने की बात बाद में देखी जायेगी !
असमय ही आँखों में आंसू अच्छे नहीं
लगते....।’

‘लेकिन मैं रो भी तो नहीं
सकता,’ उसके हाथ से अपना
हाथ छुड़ाते हुए वह कहता है-
‘मुझे किसी भी तरह की कोई
अनुभूति नहीं हो रही है। हां...’
‘लेकिन क्यों ? ऐसा क्यों हो
रहा है तुम्हें ?’ अब उसके
चेहरे पर मायूसी छा गयी
है।

अन्यमनस्कता से अपनी हथेलियां
रगड़ते हुए वह कहता है-‘इस क्युं का
मेरे पास कोई जवाब नहीं। लेकिन यह
सही है कि इस दौर से मैं गुजर रहा हूं।
भूख भी तो नहीं लगती, यूं समझ लो कि
खाने की इच्छा ही नहीं होती। तुम्हें
याद है, अभी पिछले दिनों हम लोग
चौपाटी में मिले थे ?’

‘बेशक, याद है ! लेकिन उस दिन तौ
तुम गुमसुम-से थे। ज्यादा देर बैठे भी

नहीं तुम ।'

‘पता है, क्यों ? तुम्हारे आने से कोई आधा घंटा पहले मैं वहां पहुंच गया था। इस बीच एक महिला लड़के के साथ वहां आ गयी। होगी चालीस के आस-पास और लड़का मुश्किल से बीस को छू रहा होगा। महिला काफी मोटी-ताजी और थुलथुल-सी लग रही थी, जबकि वह लड़का दुबला-पतला और क्षीण-काय था। मुझे तो लगा कि शायद वह उसका बेटा है। कहीं किसी चीज़ की ओट में दोनों बैठ गये और और शुरू हुई उनकी प्रेम चेष्टाएं... दिन दहाड़े इतनी चहल-पहल और कोलाहल रहते हुए भी.... वह चुड़ैल उस कमसिन, कमजोर लड़के को कितना पाणविक अन्याचार ! मुझे इस कदर कोपित होने लगी, जिसकी कोई सीमा नहीं। मेरी सौंदर्य-दृष्टि ही जैसे जलकर राख हो गयी। मुझे तो इस समूचे संसार से ही घृणा-सी होने लगी। खुद अपने ही अस्तित्व का एहसास मुझे असहनीय-सा होने लगा। मेरे भीतर जो मस्ती थी और जो उफान आ रहा था वह भी....’

वह काष्ठवत् सब सुनती रही। युवक का वक्तव्य समाप्त होने पर उसने कहा, 'तो उस दिन खोये-खोये से लगने का यह कारण था? मैं कितनी उमंगों के साथ तुमसे मिलने आयी थी और तुम इस नक्कर में उलझे हुए थे? मुझे देख लेने के बाद भी तुम उन गहिँत विचारों से

अपना पिंड नहीं छोड़ा सके....
'नहीं'...

‘नहीं, उन क्षणों को मैं हरगिज भूल सकता। ऐसे समय मेरा ऊपर कोई वस नहीं चलता। मैं निरपेक्ष सा हो जाता हूँ। लगता है... है...’

'क्या लगता है? बताओ, मेरे गुनाहों के लिए।'
उससे लिपटते हुए वह पूछती है। उसकी दया
साथ ही दया की हल्की-सी रेखाएँ उसके चेहरे पर दबे पांव उभर आती हैं। शांति से इस कदर छा गयी हैं जैसे सूर्य की सुनहरी किरणें।

‘लगता है कि मुझसे कोई क्यों बात कर सकता करने लगा?’

‘तुम्हारे ऊपर जी-जान से त्यागों का होने के लिए मेरे तैयार होते हुए भाई तुम्हें आ

‘हां, हां, फिर भी। तुम स्वयं कोमत
प्यार कैसे करती हो? क्यों करती हो? कब
कब तक करती रहोगी? क्या मैं उम्मीद या
लायक हूं? मैं तो बहुत मामूली हूँ।
खुरदरा-सा जीव हूँ...’ यह सब कहते-कहते चेहरा
वह दोनों हथेलियों में अपना मुँह धुँके वह
लेता है।

युवती हैरत में पड़ गयी है और आँखें लगी हैं।
 से भी हैं तानकर पूछ रही है—
 बक रहे हो तुम यह सब ? क्या मैंने
 यह फितूर तुम्हारे दिमाग में लगाई है ?
 हुआ ? मैंने कभी तुमसे इस तरह बात
 बर्ताव किया है ? कभी झूठ से तुम्हें धोखा
 कहा तुमसे ?

‘तुम क्यों कहते लगा ? तुम

... है न ?' उसने कटु व्यंग्योक्ति
 में तुम उदारमना हो। दयालु हो।
 ... पर दया करने में तो तुम्हें बड़ा
 ... है। लेकिन तुम्हारी यह दया
 ... जान की दुश्मन है। समझीं ?'
 ... अत्यंत व्याकुल भाव से कहती
 ... दया ? कैसी दया ? तुम
 ... दया को मोहताज होने लगे ? मैं
 ... अपनी जान से अधिक चाहती....
 ... की ही क्या है, जो मैं तुम पर
 ... करने लगू ? बताओ तो... ?'
 ... मुझसे बेहतर पुरुष तुम्हें नहीं
 ... कोई क्यों मान सकता था ?'

... मेरे मन में तो तुम्हारे सिवा और
 ... न से व्यंग्योक्ति का विचार ही नहीं आता। मैं
 ... होते हुए भी तुम्हें और तुम्हें ही चाहती हूँ... किसी
 ... म मुझसे उम्मीद पर !'
 ... क्यों करती है ? उनके चेहरे को देखने से मालूम
 ... क्या मैं जानूँ कि वह तनावपूर्ण स्थिति से
 ... त मामूली है। लेकिन दूसरे ही क्षण वह
 ... इ सब कहती है। वेहरा इस कदर बदल लेती है
 ... अपना मुँह वह बिलकुल शांत और संयत हो।
 ... कलाई अपने गाल से लगाते हुए
 ... कहती है—तुम इन बातों को भूल
 ... रही है—फिर जूल की बातों पर क्यों इतना
 ... सब ? वह क्यों ? मैं जो तुम्हारे पास हूँ !
 ... माग में लगे हुए किसी बात पर मलाल
 ... इस तद्वत् होने से भला क्या जरूरत है ? अभी
 ... मुँह से निकलते हुए हम एक-दूसरे में समा जायेंगे।
 ... ? तुम्हारे मुँह से इस क्षण का यही तकाजा

है। यकीन मानो।'

न चाहते हुए भी अपनी कलाई उसके
 गाल से छुआते हुए वह अत्यंत रुक्षता से
 कहता है—'लेकिन मुझे.... मुझे इसमें कोई
 रुचि नहीं। अब दुनिया की कोई भी चीज
 मुझे विचलित नहीं कर सकती।'

'मैं भी नहीं ?' कुछ आगे झुककर
 उससे आंखें मिलाते हुए युवती ने पूछा।

इसी बीच इंटरवल हो गया। पर्दे
 हट गये हैं। जनता बाहर आ रही है।
 अब पक्कर हाल में कोई विदेशी धुन
 बज रही है।

वह उससे कुछ दूर खिसक जाता है।

'चलो, चलते हैं भीतर।' अपने स्थान
 से उठते हुए वह कहता है।

'अं हं... अभी नहीं।' डटकर वहीं
 बैठकर वह दृढ़ता से कहती है। 'अभी
 कुछ देर बैठो यहां। हम लोग थोड़ा-सा
 बतियाते हैं। मेरी बातें सुन लो, मान
 जाओ।'

लेकिन वह उठकर चल देता है। भारी
 दिल से वह कदम-ब-कदम आगे बढ़ता
 जा रहा है। डोर-कीपर को दोनों टिकट
 दिखाकर उनमें से एक उस युवती का
 होने की बात को इशारे से बताता है। फिर
 टिकट का अधपन्ना लेकर अकेले ही वह
 भीतर चला जाता है। न वह पीछे मुड़कर
 देखता है, न किसी प्रकार इशारे से युवती
 को बुलाता है।

तिस पर वह भी मजबूरन उठ जाती
 (शेषांश पृष्ठ ८५ पर)

विष्णु प्रभाकर की दाम्पत्य-कथा : समापन-अंश

अर्धांगिनी मेरी

नेपाल यात्रा के मार्ग पर अचानक सुनता हूँ कि मराठी के सुप्रसिद्ध नाटककार मामा वरेरकर नहीं रहे। आयु थी कि नये-नये लोको की तलाश करें वे, फिर भी विछोह मन को अवसाद से भर ही देता है। बहुत निकटता थी उनसे। इसलिये नहीं कि वे नाटककार थे। इसलिये भी नहीं कि वे शरत बाबू के मित्र रहे हैं, बल्कि इसलिये कि उनके पास सचमुच संवेदनशील हृदय था। कभी-कभी बहुत दिन बीत जाते, उनसे मिलना न हो पाता। तब उनका फोन आता—‘अरे इतने दिन से तुम आये नहीं...।’

और मैं पहुंच जाता तुरंत और वे मुझे देखते ही पुकारते अपनी सचिव को, ‘नीला! एक बच्चा भी आ गया है।’

अतिशय अम्ल बढ़ जाने के कारण मैं अब भी दूध पीना अधिक पसंद करता हूँ। अपनी सचिव को इसी बात की याद दिलाने के लिए मामा मुझे बच्चा कहा करते थे।

ऐसे मामा की अंत्येष्टि में मैं किसी भी तरह उपस्थित नहीं रह पाऊंगा—मही दुख सारी यात्रा में मुझे सालता रहा। दिल्ली लौटकर इस व्यथा की बात मैंने

अपनी पत्नी से कही। वह बोली, ‘मैं भी जब अचानक रेडियो पर सुना तो आपका ख्याल आया—आप होते तो क्या जाते।’

‘यही तो दुख साल रहा है।’

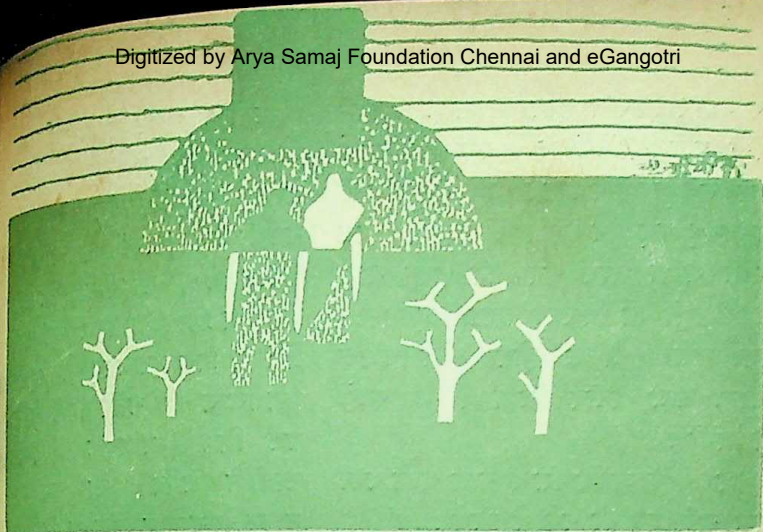
‘लेकिन मैं गयी थी।’

‘क्या?’ अविश्वास और आश्चर्य के प्रतिह्न मैं उसकी ओर देखता रह गया, वह सदा की तरह मुस्करा रही थी और मैं कह रहा था, ‘सच्ची! तुम गयी थी मुझे मामा की अंत्येष्टि में?’

‘हां, मैं सीधे शमशान-घाट चली गयी थी। एक-दो व्यक्तियों को ही पहचाना था मैं। फिर भी मुझे खुशी हुई कि मैं गयी।’

शब्द नहीं हैं मेरे पास यह बताने के लिए कि उस क्षण मैं अपने बचपन की कितना गंवि अनुभव कर रहा था। एक तरल कृतज्ञता मेरे रोम-रोम पुलक से भर रही थी। अर्धांगिनी तो होती है।

मनीषी काका साहब कालेबकर का जन्म दिन था। मैंने अपने यात्रा-संग्रह का सद्यः प्रकाशित संग्रह उन्हीं का जात पर्यटक को समर्पित किया



ह बोली, मैं
पर सुना
होते तो बका

हा है।

एक दिन अवसर पर मैं यह संग्रह उन्हें
गिर आने से रोक बैठ करना चाहता था, पर ठीक
खता रह गया। पर तीव्र ज्वर मेरे मार्ग की बाधा
रही थी। मैं गया, लेकिन उसके रहते ऐसी कोई
! तुम गंगोत्री मुझे निरस्त नहीं कर सकती थी।

खुशी उस संग्रह को लेकर गयीं
घाट चली गयीं उन्हें सादर भेट कर आयी। लौट-
गे ही पहचाना गया, 'काका साहब बहुत प्रसन्न
खुशी हुई कि।

मैं न जाने कितनी प्रसन्नताएं बटोरी
उसने मेरे लिए। लिखने बैठा हूं तो
अपने बचपन पर दृश्य खुलते चले जा रहे हैं।
कर रहा हूँ वे पं. विष्णुदत्त 'विकल'। साधारण
रोम-रोम की, जितने सरल प्राण उतने ही
बढ़ीं। प्रकाशकों से जुड़े, पत्रों के संपादन

का लेखक बन गया। कथा भी कहते थे। बहुत
यात्रा-संस्कारों के बारे में पत्नी को। वह देहरादून अपने
ह उन्हीं के पास बहुत रही है और
भेंट किया। देहरादून का घर था देहरादून से जुड़े

एक गांव में। अचानक उनकी मृत्यु
हो गयी। पीछे छोड़ गये कच्ची गृहस्थी।
बेटी का विवाह होना था, हुआ। किसी
कारणवश मेरा जाना संभव नहीं हो
पा रहा था। मैंने उसकी ओर देखा, तुरंत
तैयार हो गयी। खुशी-खुशी शामिल हुई।
बाद में बेटी का पत्र आया, 'चाचाजी !
कितने मित्र थे पिताजी के, बस चाचीजी
ही आयीं। कितनी खुशी हुई हमें।'

यशपाल जेन की बेटी का विवाह हुआ
जयपुर में। मैं तब सोवियत रूस में था,
लेकिन वह तो यहीं थी। जयपुर गयी और
मेरी अनुपस्थिति किसी को नहीं अनुभव
होने दी।

मैं लिखने में व्यस्त हूं। कानों में उसका
स्वर गूंजता है, 'सुनते हो, मैं जरा-बाजार
जा रही हूं फल-सब्जी लेने।'

घंटों बीत जाते। मैं बगबर जीने
में उठती अपनी चिर-परिचित पछ-
ध्वनि सुनने को उत्कंठित हो, जाता पर

हर बार निराश होना पड़ता। 'अति-स्नेही पापशंकी' न जाने क्या-क्या सोच जाता उन क्षणों में। तब कहीं अमृत-वर्षा की तरह वह पग-ध्वनि धीरे-धीरे ऊपर उठती आती और सदा की तरह आयु की रेखाओं को निरस्त करता वह मुस्क-राता मुखड़ा प्रकट होता। मैं भभक उठता, 'फल खरीदने गयी थीं या फलों की मंडी?'

‘अरे नहीं, शांति पंत के पास चली गयी थी। कई दिन हो गये थे मिले ...।’

या 'शांति शर्मा' मिल गयी थी उसी के घर बैठी थी।....' या 'रमा नहीं आयी थी कई दिन से। सोचा कहीं चौधरी साहब (श्री जवाहर चौधरी) बीमार न हो गये हों सो तुरन्तमान गेट चली गयी थी।'

कोई अंत नहीं था इन क्षणों का और इन नामों का। मैं शंकाओं से घिरा खीजता रहता और वह मेरे लिए शुभकामनाएं बटोरती रहती। जिस भी जाने-अनजाने के संपर्क में आती पूरी आत्मीयता से अपना मान लेती। सफर के साथी उसे ढूंढते घर आ जाते। नारान्निकोव हो या माजदा असद या जमादारिन बिन्बो, कोई भेद नहीं था उसके मन में। अक्सर खीज उठता, 'जहां जाती हो, जिसके पास जाती हो वहीं की, उसी की हो रहती हो।'

शराब से मुस्कराकर देखती मेरी ओर—‘हां, मेरा स्वभाव ऐसा ही है। आपको भी भूल जाती हूं....।’

○○○

वर्षों तक हम साथ-साथ बहुत ठंडक
उठकर घूमने जाते रहे थे राजघाट पर
अनेक साहित्यिक मित्र आते थे वहाँ
सर्वश्री जैनैन्द्रकुमार (सप्तली), बख्श
कुमार जैन, मोहनसिंह सेंगर, यशवन्त
जैन, जगन्नाथ प्रभाकर, डा. रामकिशोर
द्विवेदी, ठाकुर राजबहादुर सिंह, प्रिन्स
कुन्दनलाल जैन आदि तो थे ही, नानक
तर मित्र (राजघाट के क्यूरेटर श्री
रस्तीगी आदि) भी कम नहीं होते। वहाँ
बाहर से आने वाले अनेक मित्र भी मिलते-जुलते
के लिए वहीं पहुँच जाते थे। मनोरंजन के लिए
उसने आत्मीयता साध ली थी। बख्श और राजा
घूमते देखता कि वह मेरे साथ नहीं जाते तो नहीं
कि सेंगरजी की खनखनाती हंसी सुनकर साथ
देती, 'डरो नहीं, भाभीजी कहीं नहीं चले जायें-
अपने आनरेरी ससुर के साथ दौंगे' बनावट
याय रही हैं।'

सचमुच ठाकुर साहब और वह दोनों
 प्रायः घास पर बैठे सुख-दुख की बातें
 तल्लीन दिखाई देते। झिझक उसे बूझती
 गयी थी। मुख्य न्यायाधीश की पत्नी
 हो, मंत्री हो, करोड़पति की पत्नी हो
 सभी से उसकी जन्म-जन्म की पहचान
 होती थी। एक सभा में जैसे ही उसकी
 श्रीमती लीलावती मुंशी को देखा
 तुरंत उनके पास पहुंची और दोनों
 हंसकर बातें करने लगीं। बाद में
 पूछा, 'क्या तुम इन्हें पहचानती हो ?'
 'क्यों न पहचानूंगी ? पिछली बार
 सम्मेलन में मिले थे, बहुत अच्छी

सम्मेलन में मिल थे, पृष्ठ ५१

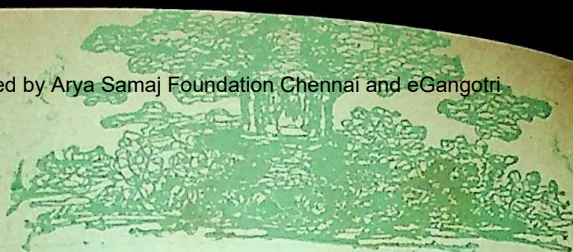
करती हैं।'
 राज-प्रवास में एक दिन मैं 'युगधर्म'
 श्री रवि वर्मा से मिलने उनके
 में गया। वयोवृद्ध स्वतंत्रता
 और उद्भट पत्रकार प्रजा चक्षु
 मेनोन से भी भेंट की। तभी
 पत्नी एक संपादिका
 हूँ-मेरी पत्नी एक संपादिका
 होकर बातें कर रही है। संपा-
 है अंग्रेजी में और वह
 के श्री वेलायुधन नायर
 पत्नी तो हिंदी में शोध
 पर तमिल साहित्यकार
 की पत्नी तो उतनी हिंदी
 पर उसने दोनों से समान
 भाषी थी। दक्षिण-यात्रा में वह
 से एकरूप हो रही।
 वाने से लेकर धोती बांधने
 दीक्षा ली उनसे। दिवाली के
 मैं उसी धोती पहनकर मेरे
 घर गयी और अखंड सौभा-
 करने का परंपरागत आशीर्वाद
 प्रमाणित कर दिया कि मन
 सब कहीं एक होती है।
 मेरे शोधार्थी मेरे घर आकर रहते
 पर और वह सबके साथ
 नाता साध लेती। उनका सुख-
 दुख हो रहता। एक
 श्रीमती राज आनन्द ने
 लिखा है, 'कभी-कभी अतीत
 में कोई एक धुंधली-सी
 आती है और विगत

स्मृतियां पुनः हरी-भरी हो उठती हैं।
 आभास होने लगता है मानो हम उनके
 साथ दो घड़ी बैठकर बातें करने लगे हैं।
 जब मैं देहली से पोरबंदर के लिए रवाना
 हो रही थी, मुशीलाजी ने मुझे नीली कांच
 की चूड़ियां पहनायी थीं, अपने आशीर्वाद
 दिये थे। ये चूड़ियां उनकी स्मृति के
 शेष-चिह्न बन गयी हैं। उनकी पावन
 भावनाओं का प्रतीक हैं ये चूड़ियां।
 ईश्वर उन्हें चिर शांति दे।'

यदि कोई मित्र अविवाहित होता तो
 उसके लिए जीवन-संगिनी तक ढूँढ़ने के
 लिए व्यग्र हो उठती। चिरकुमार स्मृति-
 शेष मोहनसिंह सेंगर के जीवन की
 त्रासदी से वह खूब परिचित थी। बड़ी
 करुणा थी उनके प्रति उसके मन में।
 इतनी कि एक बार उनके योग्य जीवन-
 संगिनी की खोज में व्यग्र हो उठी। सेंगरजी
 समझ रहे थे कि यह सब देवर-भाभी
 का विनोद है। पर एक दिन उसने सचमुच
 प्रस्ताव करके उनको चकित कर दिया,
 'मेरी परिचिता एक समाज सेविका है।
 सुशिक्षिता है। आयु में आपके योग्य है।
 स्वभाव बहुत मधुर है। आप चाहें तो...।'

सेंगरजी उग्र तो हो नहीं सकते थे,
 पर पूरी दृढ़ता से बोल उठे, 'यह क्या
 किया आपने, भाभीजी। नहीं, नहीं, अब
 कभी चर्चा न कीजिएगा आप...।'

एक क्षण के लिए वातावरण जैसे
 बोझिल हो उठा हो, पर दूसरे ही क्षण
 (शेषांश पृष्ठ ७८ पर)



गीतारानी पाण्डेय का वर्षा-गीत

ये घन लाये सागर की पाती

पूरुवा मचले, बदरा बरसे, अंसुआ नहीं ढले,
संदेहों की संझवाती में दीपक नहीं जले।

जब-जब पायल बजे पांव की, सिहरन-सी जागे,
ठुनक-ठुनक एड़ी मेंहदी का रंग नथा मांगे,
नस-नस टूटे पर संयम का बंधन नहीं छले,
संदेहों की संझवाती में दीपक नहीं जले।

अनमन सपन जगे नयनों में पलक लगे भारी,
यह अंधियारी रैन आज की फिर सोये क्वारी,
छल-छल छलके पीर वावरी अंचरा नहीं छले,
संदेहों की संझवाती में दीपक नहीं जले।

बरस-बरस पर ये घन लाये सागर की पाती,
तिल-तिलकर जल रही दीप-सी यह तन की बाती,
झर-झर सावन चले दीप तुलसी का नहीं चले,
संदेहों की संझवाती में दीपक नहीं जले।

उफन-उफन बह जायें किनारे माटी टिक न सके,
उनके विश्वासों की थाती मुझसे बिक न सके,
जब तक चरन न परसें देहरी आशा नहीं फले,
संदेहों की संझवाती में दीपक नहीं जले।

-रिफाहे-आम क्लब, १२, गोलागंज, लखनऊ-१

किशोरीरमण टण्डन की एक वर्षा-कविता

बरखा बिटिया

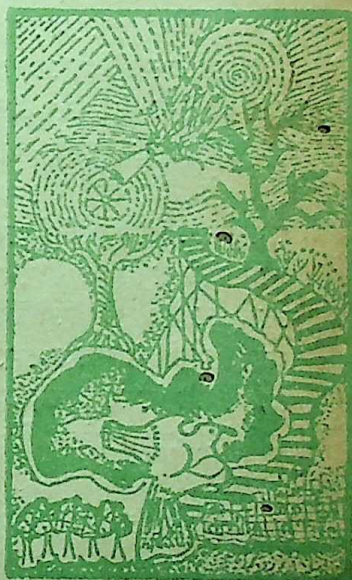
बड़े भुरहरे
निहुरे-निहुरे
बरखा बिटिया
उजराने लग गयी धरा का धूसर आंगन

मुसका कर
गीले आंचल से
हौले-हौले

लगी पोंछने शिशु-फूलों के वासी मुखड़े
बहुत पुरानी आकाशी-छत की चादर पर
अनचाहे जो दाग लगे थे
बड़े जतन से उन्हें छुड़ाया
और इंद्रधनुषी चूनर को
दोनों हाथों से निचोड़ कर
बांध दिशाओं में फैलाया
काम खत्म होने को आया

केवल कुछ बादल के 'टाँवल'
क्षितिज अरगनी पर अटके हैं
अभी सूखने को लटके हैं।

-४, पत्रकार कालोनी, बांद्रा (पूर्व),
बंबई-४०००५१



सब कुछ मित्रों के ठहाकों में डूब गया। लेकिन वह बात वहीं समाप्त हो गई। फिर भी जब-तब वह सेंगरजी की ओर देखकर कह उठती, 'बेचारे....।'

और सेंगरजी क्यों ! मेरे एक बंगाली मित्र के लिए एक बंगालिन वधु भी ढूंढ ली थी उसने, लेकिन वह मित्र भी सेंगरजी की जाति के थे। बेल मुंडेरे नहीं चढ़ सकी। उसने इतना ही कहा, 'नारी के स्पर्श के बिना ये सदा अधूरे ही रहेंगे। इनका भाग्य।'।

वह जैसे मान बैठी थी कि नर की सृजनात्मक प्रतिभा को नारी का प्रेम ही जगा सकता है। इसलिये जब मेरे एक अन्य मित्र का विवाह हुआ तो वह जैसे उनकी अभिभावक बन गयी हो। खुशी-खुशी सारे कार्यों में आगे हो रही।

जैसे ही उसे पता लगता कि मेरा कोई मित्र या उसका प्रियजन अस्पताल में है। तुरंत दौड़ी जाती। पता ठीक नहीं मालूम तो कोई चिन्ता नहीं, चार-चार जीने चढ़ने होंगे तो कोई डर नहीं। मिलाकर आयेगी सबसे। न जाने कितनी बार उसकी इस प्यारी सनक के कारण मैं भटका हूँ उसके साथ। जो स्थितियां किसी के लिए न जाने का सबल कारण बन सकती थीं, वे ही उसके लिए चुनौतियां बन जातीं और चुनौतियों से हारना उसने नहीं सीखा था।

होली के रंग के बाद की हर संध्या

को मेरे पास आती, 'उठो, उठो, क्यों नहीं आवें सबसे।'।

'किससे मिलोगी ? कोई भी तो तो आता अब।'।

'आप जायेंगे तभी तो कोई आयेगा और फिर अपना धर्म तो अपने साथ है।'

इसी तरह न जाने कितना प्यार बरसे गयी मेरे लिए मेरी अर्द्धांगिनी। प्रतिभा से प्रताड़ित हम दोनों प्रेम पंथ के रहे थे। कभी हमारे अहम् टकराते भी तो प्रीति के रंग को गाढ़ा करने के लिए ही। उसके प्यार ने ही मेरे संकोच को खरबों गुना खोल दिया, शब्दातीत भाषा दी।

अपने मन पर चोट लगती है तभी इसका दर्द पहचाना जाता है, अपने पैर को फटे बिवाई तो क्या जाने पीर पराई। इसका अर्थ इसको जीकर ही समझा। सन १९६० में दक्षिण-पूर्व एशिया के क्षेत्र में जाने से पूर्व भारत सरकार के तत्कालीन मंत्री श्री सुब्रह्मण्यन से हम एक परिचय पत्र ले गये थे मलाया के मंत्री श्री संवेदना के नाम। लौटकर उन्हें धन्यवाद देने जाना था। इसी अवधि में उनकी पत्नी का देहांत हो गया। उनकी चर्चा हमें भी स्वाभाविक थी। हमारे संवेदना प्रकट करने पर वे बोले, 'जो आया है वह तो जायेगा ही, भाई।'।

फिर एकाएक उन्होंने दृष्टि उठाई और उठे, 'कम्बख्त ने इस उमर में दया दी तब मैं भी पिघल उठा था। अब तो

हृदय में टीस-टीस उठते हैं।
एक साधारण लड़की मृत्यु के बाद इतनी

असाधारण हो उठी है और आमंत्रित
कर रही है मुझे उसके भीतर के स्वप्न

में रमण करने को।
तेलुगु के सुपरिचित कवि शेषेंद्र ने

अपनी प्रेमिका को संबोधित करते हुए
लिखा है, 'मैं मरणोपरांत भी तुमसे प्रेम

करता रहूंगा; क्योंकि प्रेम नहीं जानता
जीवन और मरण के बीच के अंतर को।'

मैं कहता हूं जीवन और मरण क्यों,
प्रेम तो भूत, वर्तमान और भविष्य के

बीच के अंतर को भी नहीं पहचानता
क्योंकि वह शब्दातीत ही नहीं कालातीत

भी है। वही शब्दातीत-कालातीत प्रेम
मेरा कवच है और रहेगा। इसीलिए

जीवित रहूंगा मैं जीवन के अंतिम क्षण
तक वह सब देखने के लिए और भोगने

के लिए जो नियति ने मेरे लिए निश्चित
किया है।

यही उसके प्रति मेरी सच्ची श्रद्धांजलि
और प्रेमांजलि होगी। -८१८ कुंडेवाला, ०

अजमेरी गेट, दिल्ली ११०००६

दीपक का स्नेह समाप्त हो गया। रुई की वाती चहुंओर धीमा-धीमा प्रकाश

फेंक रही थी। अंतिम लौ तीव्रता से चमकी और शून्य में विलीन हो गयी।

बुझे दीपक के सम्मुख एक प्रश्न था—'बंधु, अभी तक तो तुम मंद-मंद जल रहे

थो? अब एक साथ अपनी तीव्रतम लौ से वातावरण को आलोकित कर बुझ गये

क्यों?'

दीपक ने धूप की वक्र रेखा बनाते हुए कहा—'अंतिम समय भी मेरा प्रयास यह था

कि मैं शक्ति लगाकर इतना प्रकाश फैला दूं कि यदि अंधकार से कोई जीव भटक

जाए तो उसे मार्ग दिखाई दे जाये।'

माइकेल फिलिप्स का शरीर-वैज्ञानिक लेख रहस्यमयी शक्ति : जो हमारे अंदर मौजूद है

आपका शरीर विश्व का सर्वाधिक आश्चर्यजनक यंत्र है। पृथ्वी पर इससे अधिक टिकाऊ यंत्र-विन्यास दूसरा नहीं है।

आपके मस्तिष्क में विश्व के सबसे उन्नत कम्प्यूटर से अधिक ज्ञान-भंडार संचय करने की क्षमता है। यह विश्व की पेचीदी से पेचीदी इलेक्ट्रॉनिक गैजट्री से अधिक जटिल और दुर्बोध है।

फिर भी, अभी तक हम शरीर और मस्तिष्क दोनों की विलक्षण सम्भावनाओं को पूरी तरह काम में लाने में असमर्थ रहे हैं.....

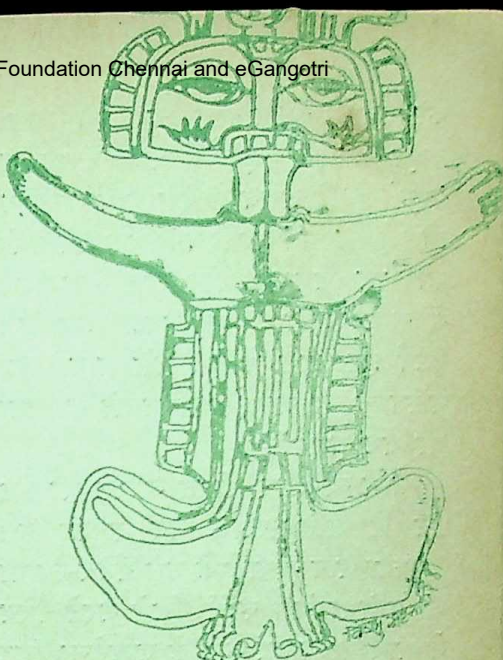
यदि आपसे कहा जाये कि आप अपने सब मित्रों और परिचितों के फोन नम्बर याद करके बतायें, तो क्या आप ऐसा कर सकेंगे? क्या आप करने वाले कार्यों की सूची बनाकर उन कार्यों को करते हैं?

यदि आप, अपने मस्तिष्क के कार्य में बाधक न बनें, और उसे आवश्यक सुविधाएं प्रदान करें, तो वह आसानी से आपकी याददाश्त को पहले से तेज बना सकता है। लेकिन, दिक्कत यह है कि हजारों में से एक व्यक्ति अपने मस्तिष्क को इच्छित कार्य अबाधित रूप से करने की सुविधा प्रदान करता है। हममें से बहुत कम लोगों को इस बात की जानकारी है कि हमारे कपालों के अंदर एक ऐसा विलक्षण और आश्चर्यजनक यंत्र-विन्यास

मौजूद है, जिसका हम आंशिक उपयोग ही करते हैं।

नन्हे-से हमारे मस्तिष्क में विश्व की जटिलता विद्यमान है, उसनी विश्व की पेचीदी से पेचीदी इलेक्ट्रॉनिक गैजट्री समूह में भी मौजूद नहीं है।

विश्व का सर्वाधिक उन्नत कम्प्यूटर अपने अंदर जितने ज्ञान-भंडार को संचय कर सकता है, उससे ढाई गुना अधिक ज्ञान-भंडार संचय करने की क्षमता हमारे मस्तिष्क में मौजूद है। यह ज्ञान-भंडार विश्व के सबसे बड़े पुस्तकालय-विश्व म्यूजियम पुस्तकालय-में संग्रहित लाख पुस्तकों के लिए विषय-संग्रह जुटा सकता है। विशेषज्ञों के कथनानुसार यदि आप हर उस बात को, जिसे आप जानते हैं, एक कागज पर लिखें



चित्र : डा. विष्णु सटनगर

यदि अपने मस्तिष्क में छिपी शक्तियों का उपयोग करना सीख जाये, तो वह ऐसे कार्य को, जिसमें मानसिक शक्तियों के उपयोग की जरूरत होती है, कम प्रयास से कर सकेगा।

इस बारे में आपके मन में तनिक भी संदेह नहीं होना चाहिये कि आपका मस्तिष्क दुनिया का सबसे आश्चर्यजनक और विलक्षण यंत्र है। अनेक विशेषज्ञों का कहना है कि मस्तिष्क से बेहतर कम्प्यूटर का निर्माण करने में आदमी को हजारों साल लग जायेंगे।

प्रतिभासंपन्न व्यक्ति कौन ?

मिचीगन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जेम्स मैकनाल और उनके सहयोगियों ने भी मस्तिष्क के रहस्यों का पता लगाने

ने तो बगले दो हजार वर्षों तक, आप
को पेटे, वस यही काम करते रहेंगे।
कम के कदम लड़खड़ाने लगते हैं
इन आश्चर्यजनक नये तथ्यों का पता
ही में तब लगा, जब मॉन्ट्रियल के
विश्वविद्यालय में डॉक्टर वाइल्डर
के निदेशन में मस्तिष्क पर किये
गये प्रयोगों के परिणाम सामने आये।
डॉक्टर पेनफील्ड का कहना है—
मस्तिष्क में संग्रहीत सारी सूचना का
निर्माण और नियंत्रण एक ऐसे केंद्रीय
‘क्वार्टर’ द्वारा होता है, जिसकी बारीकी
पर बेचीदगी की कल्पना करने में स्वयं
आप के कदम भी लड़खड़ाने लगते हैं।
मगर खेद की बात यह है कि हम इस
अनंत ज्ञान-भंडार का पूरा लाभ कभी
न ले पाते हैं। अपनी मानसिक क्षमताओं
का उपयोग हम आपातकाल को छोड़कर,
कभी ही कभी कर पाते हैं। जबकि,
यदि बात यह है कि जो हमारे लिए
अत्यंत महत्वपूर्ण है, उसे सीखने में
अधिक कठिनाई नहीं होती। इति-
हास की तिथियों को याद न रखने वाला
आदमी चालू मौसम के क्रिकेट के
खिलाफ को आसानी से याद रख सकता है।
लेकिन, यह न समझ बैठिये कि वर्षों
के प्रयोगों के बाद, वैज्ञानिकों को मस्तिष्क
के रहस्यपूर्ण कार्यप्रणाली और संपूर्ण
क्षमता का पता चल गया है। ऐसा
कहना नहीं है। हां, उन्हें इतना पता
चल गया है कि एक औसत व्यक्ति

की दिशा में काफ़ी काम किया है। उनका कहना है—‘जिन्हें हम प्रतिभासंपन्न व्यक्ति मानते हैं, वे असल में ऐसे सामान्य लोग होते हैं, जिन्होंने अपनी मानसिक क्षमताओं को जान लिया है, और चीज़ें किस पैटर्न में काम करती हैं, यह समझ लिया है। पैटर्न हर चीज़ में है। उसे जानते ही, मस्तिष्क की आधी संभावनाओं का पता भी लग जाता है।’

सामान्य और औसत व्यक्ति भी इस ढंग से प्रतिभासंपन्न बन सकता है।

क्या आप न्यूयार्क के उस गैरेज-स्वामी को प्रतिभासंपन्न कहेंगे, जिसे अपने गैरेज में आने वाली हर कार के लायसेन्स नंबर आसानी से याद हो जाते हैं? अमरीकी प्रेसीडेन्ट जॉनसन के एक सहयोगी को उन २०,००० लोगों के नाम ज़बानी याद थे, जिन्होंने जॉनसन की, चुनाव जीतने में, मदद की थी। वह एक औसत आदमी था। एक अमरीकी किसान का आठ साल का मामूली लड़का कॉलबर्न, २१ संख्याओं वाली गणित की समस्या को मन ही मन, दस सेकंडों में हल कर सकता है।

मस्तिष्क का आकार छोटे चकोतरे के समान ही है। उसमें एक पिन की नोक जितने बड़े स्नायु-ऊतकों में जितनी यादें जमा रहती हैं, उतनी यादें, टेलीफोन-बूथ के आकार के कम्प्यूटर में ही जमा रह सकती हैं।

स्वीडन के कुछ वैज्ञानिक मस्तिष्क

पर किये गये प्रयोगों के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि आर. एन. ए. (रिजल्ट क्लीक एसिड) नाम का पदार्थ, जो जीवित कोशानुओं में मौजूद रहता है, मस्तिष्क के जटिल यंत्र-विव्यम में चिकनाने में सहायक हो सकता है। उनका विश्वास है कि आर. एन. ए. का पूरा विश्लेषण करके तथा कृत्रिम आर. एन. ए. तैयार करके, हम मानवीय मस्तिष्क को असीमित क्षमताओं का उपयोग करने आरंभ कर देंगे। विश्व के अनेक वैज्ञानिक इस दिशा में प्रयास कर रहे हैं।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के डॉक्टर जॉर्ज, ब्रेडफोर्ड और टोरंटो मनोविज्ञान अस्पताल के डॉक्टर ब्यूरायड ने मानवीय बल के संबंध में अनेक प्रयोग किये हैं। इन प्रयोगों के आधार पर, वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हम में से अधिकांश जितना हम समझते हैं, उससे कहीं अधिक शक्तिशाली हैं। खतरे के क्षणों में जितना हम समझते हैं, उससे कहीं अधिक प्रभावशाली ढंग से सामना कर सकते हैं, और जितना हम समझते हैं, उससे कहीं अधिक समय तक निराहार रह सकते हैं। भय, क्रोध और अनुभूति इन तीनों मनोभावों का अधिकतम प्रयोग को अतिमानव बना सकता है। प्रयोगों से सिद्ध हो गया है कि क्रोधी व्यक्ति साधारण मनुष्य की अपेक्षा दुगुना-तीनगुना उठा सकता है, या किसी पर दुगुनी शक्ति से प्रहार कर सकता है।

स्पष्ट ऑफ मेडिकल सायकॉलोजी, प्रयोगों से यह भी पता चलता है कि आपातकाल में ६५ प्रतिशत अधिक स्पष्ट रूप से चिंतन कर सकते हैं। इन प्रयोगों से यह भी पता चलता है कि जब हम किसी असहाय व्यक्ति की सहायता करने को तैयार होते हैं तो शरीर की शक्ति और हिम्मत कई गुना बढ़ जाती है।

जर्मनी में हुए जीवशास्त्रियों के एक राष्ट्रीय सम्मेलन में यह बात उभर आई कि पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों में मानव सबसे अधिक शक्तिशाली प्राणी है। क्रोध आने पर, वह अपनी ही जाति के लोगों का कत्लेआम कर सकता है, इतनी अनियंत्रित हो सकता है।

क्रोधित हुए व्यक्ति की ग्रंथियों से लावण्य आदि में जो रासायनिक परिवर्तन होते हैं, उनके कारण वह पूर्वाधिक शक्ति-संपन्न हो जाता है। अभी तक यह कोई नहीं जानता कि शक्ति आती कहाँ से है? वैसे, विश्वविद्यालय के डॉक्टर फ्रिज ने प्रयोगों से पता चला है कि अतिरिक्त शक्ति वास्तविक नहीं है, मिथ्या नहीं।

क्रोध आवश्यक है। क्रोध और उसके परिणामों के बारे में विश्वविद्यालय के डॉक्टर एंड्रेस्की ने विशेष अध्ययन किया है।

उनका कहना है कि 'दुनिया में आगे बढ़ने के लिए, सीमित मात्रा में क्रोध का होना आवश्यक है, किंतु, क्रोध की अत्यधिक मात्रा शरीर को अतिरिक्त शक्ति प्रदान करने के स्थान पर, उसे सोख भी लेती है! वास्तव में क्रोध जिस रहस्यमयी शक्ति को जन्म देता है, उसका उपयोग विशेष अवसरों पर ही करना उचित होगा।'

भय के क्षणों में हमारी शारीरिक और मानसिक प्रतिक्रियाएं तीव्र और तीक्ष्ण हो जाती हैं। पिछले महायुद्ध के समय हवा में शत्रु के विमानों का सामना करते-करते, वायुयान-चालकों की प्रतिक्रियाएं इतनी तीव्र हो गयी थीं कि उन्हें शत्रु के विमानों को पहचानने में ०.९ सेकंड, ०.५ सेकंड यह निश्चय करने में कि क्या करना चाहिये, और ०.५ सेकंड उस निश्चय को अमल में लाने में लगता था। भय ने उन्हें जो शिक्षा दी, वह उन्हें अपने प्रशिक्षकों से भी न मिल पायी थी। ज्यूरिख के एक नामी अस्पताल से सम्बद्ध डॉक्टर हेल्गिन का कहना है—'कैसे भी खतरे का सामना करना हो, आप अपने शरीर पर सुरक्षा के लिए पूर्णतया निर्भर रह सकते हैं; क्योंकि शरीर से अधिक निर्भरणीय यंत्र-विन्यास दूसरा नहीं है।'

शरीर की सामर्थ्य-क्षमता के बारे में जो प्रयोग हुए हैं, उनसे पता चला है कि आप बिना पानी पिये ११ दिनों तक जीवित रह सकते हैं। पर, इस दौरान

आपको बहुत कम हिलना-डुलना होगा, और आपके आसपास के तापमान का कम होना जरूरी है। यदि आपके भीतर पानी है, तो आप असह्य ताप का सामना कर सकते हैं।

स्टीफेन्सन नामक एक प्रख्यात चिकित्सक का कहना है—'भय और क्रोध के उद्दीपन के बिना भी, आदमी में जितनी वह समझता है, उससे कहीं अधिक शक्ति है, जितनी वह उपयोग में लाता है, उससे कहीं अधिक शक्ति। ५० वर्ष के स्वस्थ पुरुष में २५ वर्ष के स्वस्थ पुरुष की ८२ प्रतिशत शारीरिक शक्ति तो होती है, मानसिक शक्ति लगभग उतनी ही होती है।'

इन्द्रियातीत अनुभूति

इन्द्रियातीत अनुभूतियों के बारे में वैज्ञानिक प्रयोग पिछले कुछ दशकों से ही आरंभ हुए हैं, और उनकी सफलता के बाद परा-मनोविज्ञान को विज्ञान की एक शाखा के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। हारवर्ड विश्वविद्यालय के डाक्टर जेरोम ब्रूनर का विश्वास है कि अंतर्ज्ञान नाम की रहस्यमयी शक्ति मानव-



शरीर में सचमुच विद्यमान है—छोटी उंगली के आकार के कौताप के डले में, जो मस्तिष्क के बोविके स्थित है, और जिसे 'थालामस' (चेत) के नाम से जाना जाता है। पहले चिकित्सक और

जीव-शास्त्र 'चेतक' को महत्त्व मानते थे, किन्तु वे उसे अत्यधिक पूर्ण मानते हैं। इस विश्वास है कि अन्तर्ज्ञान की शक्ति हमें केवल ही प्रदान करता है इसी कारण मानसिक के केंद्रीय भाग में आघात के फलस्वरूप आदमी कभी-कभी अप्रत्यक्ष वन जाता है। विशेषज्ञों का विश्वास है कि चेतन को सही ढंग से नियंत्रित करने पर, आदमी की वे सुप्त शक्तें भी जाग्रत हो सकेंगी जो पशु-पक्षियों

विकसित हैं। तब आदमी को मनुष्य की भांति मीलों से पुष्प की उन्नति का भान हो सकेगा, उसकी घ्राण-शक्ति कुत्ते की घ्राण-शक्ति की भांति हो जायेगी, और वह अंधेरे में भी चीजों की भांति देख सकेगा।

चमान है...
र के कोश...
क के बीच...
लामस' (चे...
पहने चिक...
जीव-म...
को मह...
थे, किन्तु...
अत्यधिक...
नते हैं। उ...
त है कि अ...
केत हमें चे...
न करता है।
कारण म...
य भाग में...
के फलस्वरु...
कभी-कभी...
न जाता है।
पत्रों का वृ...
त है कि कि...
ही ढंग से कि...
रने पर, अ...
मुप्त ज्ञानेनि...

ने मारी योग्यताएं हमारे

वृत्त पहले से ही मौजूद हैं।

मौजूद, सभी तक हमने उनका

उपयोग करना नहीं सीखा है।

मने चमत्कारिक मनःशक्ति

आदमी की सबसे चमत्कारिक

मनःशक्ति यह है कि वह सपनों

को विषय दर्शन कर सकता

है। इस मनःशक्ति के विषय

विज्ञान और अमरीकी वैज्ञा-

निकों का एक दल शोधरत है।

कुछ वैज्ञानिकों का कहना

है कि 'भविष्यसूचक सपने' हम

को हर रात दिखायी देते हैं,

जैसे वे अन्य सपनों के साथ इतने गड्ढे-

हो जाते हैं कि उठने पर हमें उनकी

याद नहीं रहती।

इससे आते हैं ये भविष्यसूचक सपने ?

इस प्रश्न है वैज्ञानिकों के सामने। कुछ

वैज्ञानिकों को दिन में भी सपने दिखायी देते

हैं।

उसे लग रहा है कि किसी ने उस पर

बोझ लाद दिया हो। उसी बोझ-

का के साथ वह भी कदम-ब-कदम

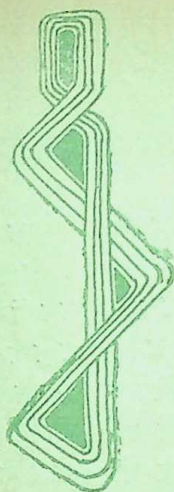
बोझदार की ओर आगे बढ़ती है। अब

उसकी भीतर पहुंच चुकी है। युवक की

आँखें खुल चुकी हैं। वह उसी दिशा में जा

रहा है।

युवक देख रहा है कि युवती बुझी-



चित्र : ज. हेडाऊ

हैं, साधारण सपने नहीं, भविष्यसूचक सपने भी। ऐसे ३५० व्यक्तियों के दिवास्वप्नों का अध्ययन कर, वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया है कि दिवास्वप्नों की योग्यता एक कीमती योग्यता है, और ५० प्रतिशत दिवास्वप्न भावी घटनाओं से संबंधित होते हैं।

जर्मन रसायन-शास्त्री फ्रेडरिक कैकुले को बैन्जीन के अणु की संरचना ऐसे ही एक दिवास्वप्न में दिखायी पड़ी थी। इस दिवास्वप्न में उसने देखा कि

कार्बन के ६ परमाणु नाच रहे हैं, एक लाइन में नहीं, एक गोले के रूप में।

सपनों में भविष्यदर्शन की चमत्कारिक मनःशक्ति का रहस्योद्घाटन मानव-मस्तिष्क के लिए एक नये आयाम का उद्घाटन भी कर सकेगा।

(पृष्ठ ७१ का शेषांश)

बुझी-सी और यंत्रवत् आगे बढ़ रही है। स्थिति को वह भांप गया है। फिर उसकी ओर देखकर वह हंस भी देता है... निरीह भाव से।

अब पिकचर हाल में धीरे-धीरे अंधेरा छाने लगा है और वह बहुचर्चित फिल्म शुरू हो चुकी है।

-अनुवाद : प्रकाश भातब्रेस्कर

कैंसर में कारगर सदाबहार पौधा

कैंसर एक ऐसी बीमारी है, जिससे हृष्ट-पुष्ट जवान व्यक्ति का शरीर भी खोखला हो जाता है, और उसकी जिंदगी की सारी रौनक भी नष्ट हो जाती है। इतना ही नहीं, अपितु किसी परिवार के एक व्यक्ति को इस रोग ने अपना शिकार बना लिया तो उस घर की बहार भी समाप्त हो जाती है और सारा परिवार चिंता में झुलसने लगता है।

पता नहीं, न जाने कौन कब इसका शिकार बने, इसलिये इस रोग की विभीषिका से सभी चिंतित हैं। यह चिंता भी अब दूर हो सकती है—सदाबहार वनस्पति के प्रयोग से और इसके प्रभाव से।

भारत में सर्वत्र पायी जाने वाली यह वनस्पति सदाबहार, सदापुष्प के नाम से जानी जाती है। यह सभी ऋतुओं में उपलब्ध होती है और हमेशा इसमें फूल आते हैं। इसलिये इसके ये नाम प्रचलित हैं। मराठी में इसे सदाफूली और गुजराती में बारहमासी कहते हैं। पंजाबी में रतनजोग और बंगाली में नयनतारा कहते हैं। दक्षिण में निकलाय कहते हैं। वनस्पति शास्त्र में 'विन्का रोजिया' नाम से प्रचलित यह वनस्पति चर्चा का विचारणीय विषय बन गया है।

नवनीत

इस वनस्पति के छोटे-मोटे पौधे हैं जो जमीन से दो फुट ऊंचे होते हैं। गमलों में शोभा के लिए लगाया जाता है। बाग-बगीचों में भी लगाया जाता है। इसकी पत्तियां एक तने से लगी रहती हैं जो कि एक इंच से तीन इंच तक की लंबाई की होती हैं। इसके फूल कली के रूप में खिलते हैं और पांच पंखुरियों के होते हैं। ये फूल सफेद और गुलाबी दो प्रकार के होते हैं। फूल दर्शनीय तो होते हैं, लेकिन इनमें सुगंध नहीं होती। वनस्पतिशास्त्र की दृष्टि से इसका समावेश सर्पगंधा, कुसुम, तमर, कनेर आदि के वर्ग में किया जा सकता है। इसमें एक विशेष तीव्र गंध होती है, जिससे इसे पशु-पक्षी भी नहीं हैं।

आयुर्वेद की दृष्टि से प्रत्येक वनस्पति में रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव पांच बातें देखी जाती हैं। रस अर्थात् स्वाद मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़वा, चटपटा और कषैला—ये छह होते हैं। गुण—वीर्य उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, पिच्छिल, विट्, तीक्ष्ण, मृदु, गुरु, लघु, कर्कश, सुक्ष्म, दुर्गंध, दस्तावर, मद, सूक्ष्म, स्थिर, बलवान्, गये हैं।

वीर्य—प्रत्येक वनस्पति का मूलतत्त्व

पौधा

पौधे होते हैं।

पौधा होता है।

पौधा होता है।

पौधा होता है।

पौधा होता है।

पौधा होता है।

पौधा होता है।

पौधा होता है।

पौधा होता है।

पौधा होता है।

पौधा होता है।

पौधा होता है।

जड़ शामक होने के कारण केंद्रीय नाड़ी तंत्र को शांत करती है, जिससे शरीर में उत्पन्न विभिन्न पीड़ाओं को शांत करने में सहायक हो सकती है।

यह औषधि तीक्ष्ण होने के कारण शरीर के अंदर के विकार को शुद्ध करती है। जब किन्हीं कारणों से शरीर के अंदर और बाहर खून जम जाता है, तो उसे छिन्न-विच्छिन्न करने में भी यह उपयोगी होती है, इसलिये इसका प्रयोग सूजन, जीव-जंतुओं के काटने आदि से हुई सूजन या गांठ बन जाने की स्थिति में सदावहार की पत्तियां या जड़ को पानी में पीसकर गरम करके लेप करना चाहिये। इससे ये सभी शिकायतें नष्ट हो सकती हैं।



मधुमक्खी, वरर, ततैया आदि विषैले जंतुओं के काटने से-शरीर के किसी भाग में सूजन होने पर इस वनस्पति की पत्तियों को पीसकर लगाने से सूजन और लालिमा नष्ट हो जाती है। इसका विषैला गुण रुके हुए स्रोतों को खोलता है, इसलिये विभिन्न प्रकार की गांठ एवं रसौली में लेप करने से लाभ होता है। जिस प्रकार तंबाकू, भांग, धतूरा और आक में सूक्ष्म विष होता है, उसी प्रकार इसमें भी एक ऐसा सूक्ष्म विष का अंश होता है, जो विष को नष्ट करने में सहायक होता है। आयुर्वेद के (शेषांश पृष्ठ ९१ पर)

जड़ शामक होने के कारण केंद्रीय नाड़ी तंत्र को शांत करती है, जिससे शरीर में उत्पन्न विभिन्न पीड़ाओं को शांत करने में सहायक हो सकती है।

यह औषधि तीक्ष्ण होने के कारण शरीर के अंदर के विकार को शुद्ध करती है। जब किन्हीं कारणों से शरीर के अंदर और बाहर खून जम जाता है, तो उसे छिन्न-विच्छिन्न करने में भी यह उपयोगी होती है, इसलिये इसका प्रयोग सूजन, जीव-जंतुओं के काटने आदि से हुई सूजन या गांठ बन जाने की स्थिति में सदावहार की पत्तियां या जड़ को पानी में पीसकर गरम करके लेप करना चाहिये। इससे ये सभी शिकायतें नष्ट हो सकती हैं।



कन्नड के बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि-कथाकार श्री पंचाक्षरी
हिरेमठ भारत की अनेक भाषाओं के ज्ञाता और प्रयत्नशील
के मौलिक रचनाकार हैं। उन्होंने विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं
साहित्य के श्रेष्ठ ग्रन्थों का कन्नड में अनुवाद कर एक नए
सांस्कृतिक सेतुबन्ध का निर्माण किया है। उनको कन्नड
रचनाओं के अनुवाद भी कई भाषाओं में हुए हैं। यहाँ उनका
मूलतः हिन्दी में लिखी एक कविता प्रस्तुत है।

कन्नड कवि पंचाक्षरी
हिरेमठ की हिन्दी कविता



माँ

आज मैंने फिर जनम लिया, मां,
तेरे प्यार-भरे आगोश में;
जिंदगी में मैंने वह चीज़ पायी है,
और किसी की किस्मत में
वह ख्वाब भी नहीं हो सकता,
यह जिंदगी इतना सकून दे सकती है,
इससे पहले न मालूम था मुझे,
यह कैसी अजब गोद है, मां :
इसका करिश्मा, मैं क्या,
ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी नहीं जानते।
(पहचान अपनी-अपनी,
समझ अपनी-अपनी)

जितना हम समझते जाते हैं
उतनी ही वह चीज़ गहराती जाती है
(पहचान अपनी-अपनी,
समझ अपनी-अपनी)
और कोई चीज़ होगी, दुनिया में,
तेरे प्यार के भरपूर आगोश से बढ़कर
सोच नहीं पाता मैं कभी भी।
ओ मेरी मां, जिसकी वजह से
जिंदगी के नये मोड़ पर
चलने लायक बना
जिंदगी भर मेरी ही रहे, रहेगी न?
जब कभी मैं सोचता हूँ,

अपने को समझता हूं बड़ा ही खुशकिस्मत ।

कुदरत की हर शय में

मैं तुझे ही पाता हूं—

चांदनी में, बहती नदियों में,

समुंदर की लहरों में, झूमती हवाओं में,

गानेवाली कोयल के कंठ में—

बहरहाल हर तरफ मैंने तुझे ही पाया है ।

मेरे मन में, मेरे दिलो-जिगर में,

मेरी आंखों में,

तू, सिर्फ तू है ।

मेरी रग-रग में बहते खून में भी

तू, सिर्फ तू है ।

तेरे बगैर मेरी हस्ती नहीं कोई,

तू है तो मैं हूं—

ऐसा है न, ओ मेरी प्यारी मां !

मां, मैं सदियों से,

ओक : इतना ही नहीं, मां ,

जनम-जनम से,

मैं हूं भूखा तेरे प्यार का —

हां, मां, मुझे लग रहा है, ऐसा ही ।

यह प्यार भी कैसी चीज है, मां,

न मिटनेवाली भूख !

अगर वह मिट जाती तो—यह जिंदगी

कितनी बरबस हो जाती थी ।

ठीक है न, मां ?

कितनी बरबस हो जाती थी !

मुझे अपना प्यार सोते हुए, जागते हुए,
जिंदगी के हर पहलू में

मुझे अपना प्यार बख्श दे—

मैं तेरे सिवा और कुछ देख नहीं पा रहा हूँ—

मां, तू मेरी आंखों में बस चुकी है ।

जो कुछ मैं देख रहा हूँ ।

सिर्फ, तू, तू ही है ।

जहां कहीं देखता हूँ ।

तू ही तू नज़र आ रही है ।

मैं आज तक धोखे में था

कि मैं अपनी आंखों से देख रहा हूँ ।

आज मेरे सामने इसका भेद खुला है,

कि मेरी देखने वाली आंखें भी तू ही है,
हां, मां, सिर्फ तू है ।

मैंने इन दिनों जो कुछ पाया है—

पाना कहां—जो कुछ तूने बख्शा है—

इस जिंदगी की बहुत बड़ी आरजू थी
जो पूरी हुई ।

‘मैं’ आखिर मैं क्या हूँ

तेरे बगैर इस ‘मैं’ की हस्ती ही क्या है ?

मैं जब यह सब सोचने लगता हूँ,

अपने-आप में नहीं,

तेरी याद में खो जाता हूँ—

इन लमहों में ‘मैं’ मैं नहीं रहता,

सिर्फ तू रहती है—

मेरी जिंदगी की साधना

और सिद्धि यही जो

‘मैं’ की जगह ‘तू’, तू है ।

जैसे नदी समुंदर में मिलकर
अपनापन को भूलकर समा जाती है
नदी समुंदर में है भी, नहीं भी ।
मैं नदी, तू समुंदर ।

और मेरी दिली खाहिश यही
कि मैं तुझमें समा जाऊं

जैसे कि नदी समुंदर में !

नदी समुंदर में है भी, नहीं भी ।

धरती, आकाश, पवन, अग्नि

आज इस बात के गवाह होंगे;

दिश-दिशाएं पुकार-पुकारकर

सारे जहां को सुना रही हैं—

यहां एक बेटा ऐसा भी है

जिसने इस दुनिया की ही नहीं

उस दुनिया की भी सारी संपत्ति

अपनी मां के प्यार के सामने

न्योछावर कर दिया है ।

क्योंकि वह जानता है—

अपना सब कुछ सिर्फ अपनी मां का प्यार

मेरे बस की बात नहीं,

मैं कह सकूं तू मेरी है ।

क्योंकि तेरा रूप एक नहीं—

तू अनंतरूपिणी :

विश्व तो पाद,

विश्व तो बाहु, विश्व तो चक्षु;

ओ शिवे ! शंकर ! भार्गव !

मैं तेरे इन अनगिनत रूपों के सामने

अपने आप को भूल चुका हूँ ।

मैं अब मैं नहीं रहा,

अब सिर्फ तू है, सिर्फ तू ।

तू, मां, हां, सिर्फ तू है ।

—जयानगर, धारवाड़, (कर्नाटक राज्य)

(पृष्ठ ८७ का शेष)

प्रेम

डाक्टर जगदीशचंद्र बोस तथा अन्य वैज्ञानिक यह सिद्ध कर चुके हैं कि पेड़-पौधों में भी जीवन है, और वे भी मानवों की भांति संवेदनशील प्राणी हैं। आज से प्रायः ४५ वर्ष पूर्व अमरीका में एक वैज्ञानिक ने इस क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग किया, जिसकी सफलता ने सब वैज्ञानिकों को चमत्कृत कर दिया था।

यह अमरीकी वनस्पति-शास्त्री एक कंटीले कैक्टस के प्रेम में पड़ गये, और यह प्रेम एक दो सप्ताह नहीं, पूरे सात वर्षों तक चला। रोज़ इस कैक्टस के पौधे को पानी देते समय, वनस्पति-शास्त्री उससे कहते, 'मैं तुझे प्यार करता हूँ, कैक्टस के पौधे ! शायद तुम भी मुझे प्यार करते हो। मगर कैसे यह बात हम दोनों को मालूम हो, क्योंकि एक-दूसरे की भाषा तो हम समझते नहीं। फिर भी, मैं तुमसे कहता हूँ कि अपना प्रेम व्यक्त करने के लिए तुम अपने अंदर बिना कांटों वाली एक शाखा पैदा करो। करोगे न ?'

लोग उस वनस्पति-शास्त्री की हंसी उड़ाते, उसे पागल कहते, मगर उसने न पौधे से प्रेम करना छोड़ा, और न उससे यह प्रार्थना करनी छोड़ी कि वह अपने अंदर, बिना कांटों वाली शाखा उगाये।

उनका प्रेम एक दिन रंग लाया। सबने देखा, कैक्टस की एक नयी शाखा प्रकट हुई है—बिना कांटों वाली ! —हंस

विषय विषय मौषधम्' सिद्धांत के अनुसार कैंसर रोग के विष को नष्ट करने में अनेक प्रयोग लाभकारी सिद्ध हो सकता है। अबसादक गुण के कारण विभिन्न प्राणियों को नष्ट करने में भी यह सहायक है। कहां तक कैंसर रोग का संबंध है, यह हमारे शरीर में रक्त दूषित करके रक्त को रक्तावट पैदा करती है। इसी से कैंसर प्रकार के कैंसर की गांठ पैदा होती है। यह रोग रक्त में आश्रित होने पर रक्त को कैंसर रोग को पैदा करते हैं। ऐसी स्थिति में इसका बड़ा ही हित-प्रभाव हो सकता है।

सबबहार कैंसर के रोगी के जीवन में बुरा कर सकती है।

भारत की वनस्पति संपदा इतनी बड़ी है कि यह भारतमाता को सदावहार बनाये हुए है। हमारी धरा पर प्रति वर्ष अनेक वनस्पतियां पैदा होती हैं; जिनमें फूलती हैं और मुरझा जाती हैं। इनका संग्रह स्वास्थ्य विभाग और अन्य विभाग के सहयोग से हो तो देश के निवासियों को इनकी पूर्ति की जा सकती है। प्राणी मात्र के कल्याण के लिए 'वनधैव कटुम्बकम्' की भावना से हमें भी इनका प्रचुर मात्रा में निर्यात करना जा सकता है और इस देश में सुख-सुविधा की जा सकती है।

—महन्त रोड, विलेपार्ले (पूर्व),
बम्बई-५७

आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी का लेख



हिन्दी साहित्य के सन्त कवियों की मानवता को शाश्वत देन

जिस प्रकार आग का धर्म उष्णता है, उसी प्रकार मनुष्य का धर्म मानवता है। जैसे अनुष्णता आग की पहचान नहीं करवाती वैसे ही अ-मानवता मानव की भी पहचान नहीं कराती। धर्म वही जो धर्मी के अस्तित्व को बनाये रखे और उसकी पहचान भी करा सके। मानवता ऐसी ही व्यावर्तक और असाधारण विशेषता है जो न केवल मानव के अस्तित्व का विधारण करती है, प्रत्युत उसकी पहचान भी कराती है। अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य केवल अपनी आकृति से ही अपनी पहचान नहीं करा सकता, जब तक उसमें 'मानवता' नहीं। यह मानवता है क्या? वनस्पति में भी चेतना है और चेतना मानवेतर प्राणियों में भी है—पर इन स्तरों में विकसित चेतना में वे विशेषताएँ नहीं पैदा हो सकी हैं जो मानव-स्तर पर विकसित चेतना में हो सकी हैं। मानवेतर स्तर की चेतना में रागात्मक सत्ता के विस्तार की वह संभावना नहीं है जो मानव में है। रागात्मक सत्ता ही नहीं, बोधात्मक सत्ता के विस्तार की भी संभावना नहीं है।

यह विशेषता मानव-स्तर पर विकसित चेतना में ही है कि वह 'समस्त' को ध्यान ले और 'समस्त' को प्यार करे। मानव रागात्मक और बोधात्मक सत्ता के विकसित व्यापी प्रसार की संभावना मानव-स्तर पर ही विकसित चेतना में है—यही विशेषता उसे प्राणियों में सिरमौर बनाती है। जीवन जीवन के लिए और जीवन के लिए संभावित विशेषता की चरितांशता के लिए दो पक्ष हैं। मानव जीवन का दुर्लभ विकसित पक्ष है। यही 'प्रसार' की संभावना संभावित प्रसार ही मानवता की चरितांशता है—मनुष्य की पहचान है। लोकव्यापी रागात्मक सत्ता अनुरूप बोधात्मक सत्ता तथा इनके प्रसार में सहायक चेतना अन्य विशेषताओं का ही नाम 'मानवता' है। इस प्रसार में सर्वोपरि बाधक है 'मैं' और 'मेरा' तथा 'तु' और 'तेरा' का भाव—संकीर्ण अहंता और तत्काल राग और द्वेष। यही मूल बाधक है मानवीय संभावनाओं या मानवता की चरितार्थ नहीं होने देता। सभी के और काल के संतों ने इसे लक्षित किया है। हिंदी के माध्यम से आत्मनिर्वाण

यों की
न

पर विकसित
मस्त' को 'मानवता'
प्यार कर के
सत्ता के विरुद्ध
मानव-स्वातंत्र्य
यही विशेष
और वनाती है।
और जीवन का
चरित्रावली
जीवन का इतिहास
ही संभावना
नाकी चरित्रावली
। लोकव्याप्त
बोधोत्पत्ति
हायक चेतना
नाम 'मानवता'

परि बाधक है
'तु' और 'तुम्हें'
और तत्त्व
ल बाधक है
मानवता
ता। सभी
से लक्षित
आत्माविधि

कते संत भी इसके अपवाद नहीं
हैं। उन्होंने भी इस मानवता का शतमुख
प्रकाश किया है।

प्राणी सर्वाधिक 'राग' या प्यार
को करता है—फिर जो 'अपने'
होते हैं—उन्हें करता है—अर्थात्
'आत्मीय'—'मैं' और 'मेरे'

को करता है। उसके प्यार
का सीमा है। 'मानवता'
सीमा को तोड़कर विश्व-
प्रेम होना चाहती है—
प्राणी होना चाहती
है—यही विशेष
है। संतों ने यही
कहे हैं कि घेरा तोड़ो और
जगत् में हो जाओ। यह घेरा
विश्व-आत्मिक सत्ता से
बना है—जुझो इसके
विरुद्ध। यह माया है—लड़ो
इसे और पार हो जाओ।
विचार कीजिए
तुलसीदास ने क्यों



क्यों महतीय बताया? क्यों संतों ने
उपर्युक्त 'प्रसार' बाधक, भावना-शून्य
जड़ कर्मकाण्ड की भरपूर निंदा की?
संकीर्ण-अहंता-मूलक — 'जाति-पाति-कुल
धर्म' बढ़ाई। धन बल परिजन गुन
'चतुराई' को निरर्थक बताया? क्यों
'वाक्य ज्ञान' को भार निरूपित किया?

पीड़ा को इतनी गहराई
से सूफियों ने क्यों पकड़ा?
जिसकी छाया के स्पर्श से
संचल स्नान करना पड़ता
है—उस निषाद को मर्यादा
पुरुषोत्तम ने 'अंकवार' क्यों
दिया? चित्रकूट में वसिष्ठ
ने कैसे उस निषाद को
वरबस भेंट लिया? इन
विधि-निषेधों का रहस्य
कहां छिपा है? सच पूछें
तो इसका एक मात्र
उत्तर है—'मानवता' में,
लोक-मंगलोन्मुखी निर्मल
चित्त में, चेतना में, संकीर्ण

अहंता तथा तन्मूलक राग-
द्वेष-शून्य हृदय में यही है—'धर्मस्यैतत्त्वं
निहितं गुहायाम्'—व्यास का उद्घोष।
जहां यह नहीं है वहां मनुष्य नहीं है
और जहां मनुष्य नहीं है वहां दानव
है, वहां धर्म नहीं, मानवता नहीं।

संतों ने देखा कि यदि प्राणी की चेतना
अपने को 'देह' तक ही समझती है तो
उसे ही प्यार करेगी और उसके लिए जो

होगा—उस तक प्यार की सीमा बढ़ाएगी—और ऐसा करेगी तो उसकी रागात्मक सत्ता का विश्वसत्ता, विश्वात्मक और विश्वातीत सत्ता तक प्रसार नहीं हो पायेगा। ऐसा न होने से सृष्टानुभूति की वह आंख नहीं खुलेगी, जिससे मानव परकीय व्यथा-वेदना से अभिज्ञ होता है। परदुःख कातर वह हो ही नहीं सकता, परहित में फलतः प्रवृत्त हो ही नहीं सकता—मानवता का विकास और उसकी चरितार्थता संभव ही नहीं हो सकती—अनासक्त सेवामार्ग का पथिक वह बन ही नहीं सकता। संतजन सेवा को ही तो धर्म कहते हैं—अनासक्त सेवा को—संकीर्ण सीमा को तोड़कर बहनेवाली सेवा-भावना को। राम का पूर्ण जीवन ही अनासक्त सेवा का मूर्त रूप है। गुरु को संतों ने इतनी महत्ता क्यों दी? महान इसलिए कि वे दुःखसागर में डूबते हुए अज्ञ जीवों पर अकारण कृपा करता है और उन्हें उबारने का व्रत लेता है। इस प्रकार संतों ने 'मानवता' के लिए सबसे बड़ा जीवन दर्शन यह दिया कि 'वह' केवल 'देह' नहीं है अपितु व्यापक—विभु है। तत्त्वतः 'वह' और 'विश्वात्मक' सत्ता एक ही है—ऐसा न समझना उसकी भूल है और इसी भूल का परिणाम है कि वह अपनी रागात्मक सत्ता के संभावित मानवीय प्रसार को नहीं कर पाता। वह देह और देह से संबद्ध वस्तुओं और व्यक्तियों तक ही प्रसार करता है?

फलतः असंबद्ध लोगों को या तो बला समझकर द्वेष करेगा या तो उदासीन जायेगा। इसलिए मानवता के लिए उसकी सबसे बड़ी देन 'आत्मवाद' का स्मरण है। उदीयमान नये विश्वमानव अस्तित्व और उसकी संभावनाओं की चरितार्थता इसी भूमि पर संभव है।

मध्यकालीन हिंदी संतों और आचार्यों के मानवता के लिए इस शाश्वत देन यह है कि यह लोक की उपज नहीं है—प्रत्युत उनके व्यक्तित्व का ही व्यक्त रूप है। उसकी आस्था से ही उसको समझा भी जा सकता है और उस तक पहुंचा भी जा सकता है। यह जगत 'अ-शिव' नहीं है, उसे अवहेलना करके 'राम' का दान बनना जा सकता—विश्वात्मक—विश्वपरमात्मा की सेवा नहीं की जा सकती। विश्वातीत ने अपनी विश्वात्मक प्रिय मंद बुद्धि भक्त जनों के लिए की है। शिवता अपनी 'समझ' में है; उसे समझना चाहिये। वर्तमान समुद्र भी उसकी भौतिक सीमा तक ही प्रसार करते हैं—फलतः टकराहट संघर्ष उनकी नियति बनती जा रही है। इस संकीर्ण समझ ने जीवन के प्रवाह ही विघटनात्मक बना दिया है। उस प्रवाह में अमानवीय वृत्तियाँ उपजती हैं—संत्रास, कुंठा, संघर्ष, वस्था, आसक्ति, अविवेक, संकीर्ण आदि। इसीलिए आज मनुष्य

बोला जा रहा है।
 नों की तीसरी देन है—राग को सर्वो-
 त्त पुराण घोषित करने की और
 त्त तथा निवृत्ति से विरत होकर विश्व-
 राध्य की निरंतर राग पुस्त
 की। इस समझ से रागात्मक
 का विश्वव्यापी प्रसार हो सकेगा—
 फल-फूल सकेगी।

उनकी चौथी देन है—अहंकार—शैतान
 की। उनका कहना है विश्वबंधु
 आराधना तभी पूर्ण हो सकती है
 अहंकार हपी शैतान की आराधना
 विरोध कर उसे निःशेष कर दे।
 धारणा है कि इस शरीर में जब
 में गरजता रहेगा, तब तक 'तू'

(विश्व) की आराधना ही नहीं सकती।
 दो की आराधना एक 'मन' से नहीं हो
 सकती। एक म्यान में दो तलवारें नहीं
 रह सकती। इसलिए मानवता के आरा-
 धक कहते हैं कि कर्तव्य पथ पर चलो,
 निंदा से विरत और स्तुति से प्रवृत्त मत
 बनो। ये दोनों ही शैतान अहम् के लिए
 हैं। जिनका शैतान जागरूक रहता है वही
 स्तुति और निंदा से प्रवृत्त तथा निवृत्त
 होता है।

इस प्रकार मूल्य चुकाकर भी मूल्यों
 को आस्थापूर्वक जीने में इन्हें कष्ट नहीं,
 सुख मिलता है, कारण उस शुष्कता को
 विश्वव्यापी राग की मधुरता भर देती है।

—कोठी रोड, उज्जैन (म. प्र.)

राजस्थान की एक छोटी रियासत के राणा अपने कुछ सरदारों के साथ घूमने
 चारण अपनी कविताओं द्वारा उनका मनोरंजन करता जाता था। एक गांव
 पानी भरती पनिहारिन और चरती गायों को देखकर चारण ने चितकबरी घोड़ी
 मवार, मूँछों पर हाथ फेरते राणा की ओर देखा और एक दोहा पढ़ा :

गयो तो साँग बांकी, रंग बांकी घोड़ियां, सरद तो मूँछ बांका, नैन बांकी गोरियां।

राणा साहब बाह-बाह कर उठे। एक ग्वाला पास ही खड़ा यह सब सुन रहा था।
 गंगदाती गाय को हांकता हुआ बोला—'चल चल री ठूँठी, चारों वातां झूठी' और
 बढ़ गया। राणा ने यह सुना तो बोले—'ऐ लड़के, तुमने यह कैसे कहा कि चारों वातें
 हैं?'

मने ठीक ही कहा अन्नदाता !'

फिर सच क्या है ?'

'सच यह है महाराज :

गया तो दुध बांकी, चाल बांकी घोड़ियां, सरद तो रणबांका, लाज बांकी गोरियां।'

राणा ने ग्वाले को इनाम दिया और आगे बढ़ गये !

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

कविता-यात्रा



महेन्द्र कार्तिकेय



चित्र : के. एम. शेणै

मैं जब भी सच कहना चाहता हूँ
तो वह कविता बन जाती है,
क्योंकि यहीं वह संसार है
जहाँ झूठ का धुंधवाता आकाश पार करने
हो जाता है।

और भाषा
एक ऐसी शाब्दिक शक्ति देती है
जो लगातार
हमारी सुख-सुविधा का करती रहती है
बंदोबस्त

उसकी लयात्मकता से
हमारे कानों की मेल निकलती है,
उसकी रागात्मकता से
हमारे दिलों से
आग बरसती है,
उसकी सांसों पर
टिक जाती है हमारी सांस।

कविता हमारा जीवन है
पहचान है
हमारे होने का सबूत
जिंदा होने का सबूत।

कविता
किसी की गुलाम नहीं,
गुलामी तोड़ती है,
इसीलिए
जब भी मैं सच-सच कहना चाहता हूँ
तो वह सीधे मेरे हृदय से निकलती है
हृदय तक पहुँचती है,
दिल से दिल तक पहुँचना ही
कविता की है अपनी रचनात्मक-यात्रा

चाहता
ही है
आकाश पार
हो जाना
देती है
करती हों
बंदेक
कलती है



माया प्रधान की हिंदी कहानी



हवा गाती है

आशिमा लगभग दौड़ती हुई पूरी चढ़ाई चढ़ गयी थी और अब 'काली वाड़ी' पर उतरकर हाँफ रही थी। लेकिन इस झुंड़ने और हाँफने से चेहरे पर कोई तनाव नहीं प्रकट होकर एक उल्लसित-सी लालिमा फैल गयी थी। मन मुदित हो तो जैसे गाँबें सितारे-सी विपदिपाने लगती हैं, वैसे ही उसकी आँखें चमक रही थीं। होठों पर लज्जती हवा की लरझती-सी थरथराहट थी, जैसे कोई गीत हवाओं के रथ पर बैठकर इन घाटियों में गूँज उठेगा, अभी, इसी

समय।

नितेश धीमे-धीमे कदमों से चढ़ता हुआ उसके निकट पहुंचा तो हुमसकर बोली—'आ गये हम, काली मंदिर चेलो।' वह धीरे से मुस्कराया और उसके पीछे हो लिया।

मंदिर के द्वार पर तीन-चार औरतें और बच्चे आने-जाने वालों के आगे हाथ पसार देते थे। बंदरों का अच्छा खासा झुंड लोगों की भीड़ में बराबर से चहलकदमी कर रहा था। आशिमा बंदरों को देखकर 'हई'

‘हुई’ करती एड़ियां उठा-उठाकर घंटे बजाने लगी। फिर मंदिर की परिक्रमाकर सिर झुका, आंखें मूंदकर खड़ी हो गयी। नितेश तटस्थ-सा भीड़, बंदर और मंदिर को देखता रहा, द्वार पर वापस आते ही आशिमा अचानक ठिठक गयी। बाहर बैठी औरतों में से एक भिखारिन गोद में बच्चा लिये एक अंग्रेज पर्यटक के आगे हाथ फैलाये खड़ी थी, और अंग्रेज उसे भीख देने से पहले उसे अपने कैमरे में कैद कर रहा था।

आशिमा के कदमों के साथ ही साथ नितेश की आंखें भी ठिठकी थीं, पर वह उसे ठेलते हुए आगे बढ़ गया।

‘सुनो’ आशिमा बोल रही थी।

‘हूँ’

‘उस विदेशी के सामने कैसी गंदी छवि वह औरत पेश कर रही थी।’

‘हूँ’ SS नितेश ने धीरे से हुंकारी भरी—
‘हम भारतीय शायद होते ही भिखारी हैं।’

आशिमा शब्दों की गहराई में डूबे बिना अपनी लंबी चोटी को लहराती, चारों तरफ गर्दन घुमाती, किसी चिड़िया की तरह फुदकती चल रही थी।

नितेश के मस्तिष्क में अचानक अपने ही शब्द मंदिर के घंटे-से बज उठे—हम भारतीय होते ही भिखारी हैं SS, भिखारी SS, भीख, भिखारी SS ! उफ् !

०००

देवदार और चीड़ की फुनगियों पर अभी-अभी धूप का हिंडोला हवाओं से थरथराया था, जैसे सुबह के अबोध शिशु

ने अपने नन्हे-नन्हे पांव से हिंडोले को मार दी हो। कल दोपहर से बरसने लगी बारिश होती रही थी, पर रात न जाने कब बादल छंट गये थे, और स्पष्टी उज्ज्वल हुलसकर भोर को जन्म दे दिया था।

आशिमा रेलिंग पर उंगलियां चिपकाए एक-एक कदम बढ़ाती, स्पष्टी उज्ज्वल जैसी ही हुलस रही थी। हवा की बरबराहट ऐसी थी जैसे वर्ष को छूकर किसी ने हवा से गुदगुदा दिया हो। जितनी बार गुदगुदाहट से आशिमा सिहरती, उतनी बार मुस्कराकर नितेश को देखने लगी। गोया इस गुदगुदाने और सिहरने के बीच नितेश का साक्षीदार होकर मुसुरा फटने का आवश्यक हो। कल दोपहर यहाँ फूटने के बाद से दोनों होटल में ही कैद हो रहे रह गये थे, सिवा इसके कि गार्डजनों ‘बुकलेट’ पढ़ते या...

‘लिटन ब्लाक’ से आगे बढ़ते हुए आशिमा का मन गुनगुनाते हो आया। यूँ तो गुनगुनाहट हर समय उसकी सांसों में घुली रहती है पर इधर से ‘आकाशवाणी’ पर उठने वाली गाना आरंभ किया है यह गुनगुनाहट उसकी सांसों में, मछली-सी बचकन हो गई; लरजते लाल होठों पर हर समय राती रहती है। कल एक सप्ताह हुआ है नितेश की जीवनसंगिनी बने हुए एक सप्ताह में उसके अंदर की गुनगुनाहट बिना पंख के पांखी-सी छटपटाती है। और कोई जाने या नहीं, पर नितेश

से हिंडने के लिये
र से बराबर
रान न जाने
स्पहली उभर
दे दिया था।
उगलियां झि
स्पहली उभर
वा की बराबर
कर किसी ने
जितनी बार
सिहरती, उ
को देख
र सिहरने के
होकर मुह
पहर यहां
में ही कैद
कि गाईज

ने बचप ही यह गत विवाह से पूर्व ही
जानती थी कि आशिमा आकाशवाणी
करती है। और शायद इसीलिये उसकी
कमलती गुनगुनाहट बराबर उस क्षण की
जो बजा कर रही है जब नितेश कहेगा—‘अरे
आशिमा ! तुमने अपना गाना तो हमें
सुना ही नहीं ।’
आस-पास से इतने लोग गुजर रहे हों
जिनमें मन के संगीत को बस हवाओं की
तरंग ही सुना जा सकता है। उसने पेड़ों
की शीतलों के बीच से गुजरती हवाओं की
जो आहट के सुर से जैसे सुर मिलाते हुए
आ आंचल लहराया और बराबर उसे
आने-झुलाती आगे बढ़ने लगी।
इस नितेश, तुमने कभी पहाड़ों पर वर्ष
ने देखी है ?’ नितेश ने नकारात्मक
जवाब दिया।

‘अस, मैंने भी नहीं देखी। अच्छा, और
क्या देखा है ?’
‘मैंने भर से यही हो रहा है। आशिमा
जो इस तरह के प्रश्नों की बाँछार करने
लगी है, नितेश खामोश उसे देखने लगता
है। खामोशी की छटपटाहट जब आशिमा
की मछलियों में स्पष्ट झलक उठती
है तब हंसकर कहता है—‘और तुम्हें देखा
क्या ?’ कुछ देव लिया न तुम्हें पाकर ।’
‘अस !’ आशिमा के अट्टारह बसंतों
की गुनगुनाहट चुप होना ही नहीं चाहती—
‘तुम्हीं अच्छी कर लेते हो ।’

०००

विधान सभा की इमारत जहां पर
१९६१

खत्म होती थी, उस सड़क से थोड़ा हटकर
एक विश्रामालय बना था। सारी बेंचें पर्य-
टकों से भरी हुई थीं, पर आशिमा को
थोड़ी देर बैठने की उतावली थी। बोली—
‘चलो न, थोड़ी जगह बनाकर हम भी
बैठते हैं ।’

नये जोड़े को पहचान कर कुछ लोगों ने
यूँही सरक कर जगह दे दी थी। जैसे यह
पता लगाना कठिन था कि उनके नयेपन
की पहचान आशिमा की चंचल मछलियों
और कच्ची उमर से हुई थी या नितेश
की धीर-गंभीर, झील-सी आंखों से।

यहां पर हवा जब बहती थी तो बर्फालि
स्पर्श की गुदगुदाहट कुछ अधिक तीव्र हो
उठती थी। जाने-अनजाने ये नितेश से
एकदम सटकर बैठ गयी थी। सामने की
बेंच पर एक साथ दो नये जोड़े बैठे थे।
एक का पति बहूत वाचाल लग रहा था।
उसकी लगातार वजती कमेंट्री पर पत्नी
बस मंद-मंद मुस्कुरा भर रही थी। उसके
रेणमी बाल हवा की गुदगुदाहट से बराबर
बल खाये जा रहे थे। दूसरा जोड़ा एक-
दूसरे की हथेलियां थामे कुछ इस अंदाज
में खोया हुआ था कि यहां कौन हमारा
परिचित है। उन दोनों के बात करने का
अंदाज देखकर किसी कबूतरी जोड़े की
गुटरगूंSS याद आ रही थी। लड़की के
कंधे पर पड़ी शाल भी उसी की तरह लापर-
वाही से फिसलती ही जा रही थी।

आशिमा की आंखों में विचित्र-सी
कौंध जगमगा उठी, जैसे किसी ने उसके



अंतर का तार अचानक ही खींच दिया हो, और उसकी तीव्र झंकार से उसका रोम-रोम पुलक उठा हो। जल्दी से उसने नितेश की तरफ देखा, पर उसका ध्यान तो जोड़ों की तरफ था ही नहीं, वहाँ दूर की उन पहाड़ियों में, नीचे को उन ढुलकती घाटियों में क्या खोजता बैठा है नितेश ?

पर इस मन को क्या करे, जो केवल घाटियों में भटकने को तैयार ही नहीं, पहाड़ियों के उस पार कुछ तलाशने को निरर्थक मान रहा हो। मन . . हाय रे मन . . . इस मन में मई के महीने में भी बसंती गुंज फूलों-सी महक रही है। सामने वाले जोड़ों की मादकता में वह कुछ इस तरह डूब रही थी कि नितेश से और अधिक

सटती चली गयी।

‘आशू, ठंड लग रही है क्या?’ नितेश पहाड़ियों के पीछे की सोच से उबरकर चौंकता-सा बोल उठा ये चौंकर ही सम्भली। उफ्, कैसी वीरगयी हवा है, अदृश बसंत के बाद मिली इस हफ्ते भर की नये जिंदगी की। शायद यही जिंदगी किशोर वय की दहलीज पर कदम रखते ही सपना बन-बनकर उसके समूचे अस्तित्व में होती। फूलों-सी टंकती रही थी। और बावजूद सपना अपनी पूरी बहार लिये एक विशाल उद्यान बन गया है। फूल ही फूल, सुगंध ही सुगंध, पर ये नितेश . . ? उफ्, इसे फेंक घड़ी यह भी भूल जाता है कि हम ‘मनुचंद्रिका’ मनाने यहां आये हैं।

तभी नितेश उठकर खड़ा हो गया।
‘चलो उठो।’

वो आज्ञाकारी बालिका की तरह उठकर खड़ी हो गयी। अपने सपनों की तरह ही चहकती-सी बोली—‘अब हम कहां चली

नितेश ग्लेन रोड की ढलान पर उतरते लग था। ढलान पर उतरते हुए अचानक ही आशिमा की आंखें चमक उठीं। सड़क पर कितना एकांत है। कंधे पर पड़े झोले से कैमरा निकाल झट खड़ी गयी। ‘मेरा एक फोटो खींचो न यहां।’

दोनों किनारों पर देवदार और चीने के पेड़, उनकी लंबी-लंबी टहनियों के नीचे वो सड़क नीचे की ओर झुकती ही चली गयी थी। वो कश्मीरी सिल्क की साड़ी पहनी गयी, बावजूद आंचल लहराकर खड़ी हो

क्या ?' नितेश
च से उबर
ये चौक
हवा है, श्रु
पते भर को
जिंदगी जि
रखते ही
अस्तित्व में
और बात को
लेये एक विचार
ही फूल, मुह
रफ, इसे ध
है कि हम 'मु
पे हैं।
छड़ा हो गया
की तरह उठ
तों की तरह
म कहां चले
लान पर सत
गते हुए लचक
मक उठी।
है ! कंधे प
ल झट खड़े
'चो न यहां
द्वार और बी
टहनियों के ब
झुकती ही क
रक की साथ
हो, गयी, बा
अस्तित्व में

बराबर मचल रही थी।

'और क्या, 'हेलीपैड' को भी एक सड़क
जाती है यहीं से।'

'ओ बाबा, हमें हेलिकाप्टर से कहाँ जा ना
है जो 'हेलीपैड' जायें देखने।'

आशिमा का मन हो रहा था वो लपक-
कर देवदार की एक लंबी-सी टहनी तोड़
ले और उसे गोल गोल नचाती हुई, दौड़ती
हुई पूरी ढलान पार कर ले।
पर दौड़ने की लालसा रोक-
कर पृष्ठ बैठी -

'आई नितेश, तुम कभी
हवाई जहाज पर बैठे हो ?'

आशिमा का प्रश्न एक
मुक्के की तरह नितेश के
मन पर चोट कर गया
है। भिखारी SS, भीख SS
काली मंदिर का दृश्य
हथौड़े-से क्यों मार रहा है ?
हम सब भिखारी हैं SS, हम
सब SS, तभी तो . . .

'सुनो, वापसी में तो दम

चित्र : जोसेफ आर्थर फल जायेगा।'

आशिमा की बात पर नितेश फिर
चौंक पड़ा-

'अं, हां, SS सो तो है।'

'उंह।' आशिमा ने मुंह बिचका दिया,
यह भी तो कह सकता था कि 'थकोगी तो
में तुम्हें गोद में उठा लूंगा।' जैसे कि अक्सर
फिल्मों में हीरो अपनी हीरोइन से कह
दिया करते हैं।

चित्र : जोसेफ आर्थर
आशिमा की बात पर नितेश फिर
चौंक पड़ा-

'अं, हां, SS सो तो है।'

'उंह।' आशिमा ने मुंह बिचका दिया,

यह भी तो कह सकता था कि 'थकोगी तो

में तुम्हें गोद में उठा लूंगा।' जैसे कि अक्सर

फिल्मों में हीरो अपनी हीरोइन से कह

दिया करते हैं।

‘ग्लेन’ का झरना देखते ही उसने हृच्च से अपनी हंसी दबा ली—‘धत्, यह भी कोई झरना है, जिसके लिए वापसी में अब इतना थकना पड़ेगा।’

‘छोटा हो या बड़ा, है तो झरना ही न,’ नितेश जैसे अपनी ही वकालत कर बैठ गया था। एक स्वच्छ शिला देख उस पर बैठ गया था। कितना विरोध किया था उसने इस विवाह का! हालांकि आशिमा में कोई कमी नहीं, कमी क्यों, हर दृष्टिकोण से एक-दो इंच उससे ऊपर है। बड़े बाप की बेटी, सुंदर, कलाकार। अगर उसके पिता ने शिमला के लिए ‘हनीमून ट्रिप’ के टिकट भी दहेज में न भेजे होते तो . . . ?

इस ‘तो’ के साथ घर में जवान बैठी तीन बहनें आंखों में घूम गयीं ! अपाहिज अवकाशप्राप्त फौजी पिता का दमा कानों को हिला गया !

०००

‘सुन, बेटा नितेश !’ पिता की बात शीशे की तरह पिघलती हुई कानों की राह मन में उतर चली—‘प्रेम-वेम सब उम्र का धोखू है। बिना मांगे इतना दहेज वे दे रहे हैं। तू उनकी आंखों को भा गया है। तेरी ऊंची डिग्रियां देख अपनी कंपनी में मैनेजर बनाने को भी तैयार हैं। तेरी बहनों का हाथ पीला हो जायेगा, अपने गरीब और मजबूर बाप पर तरस खा, नितेश।’

पिताजी उससे अपनी तीन बेटियों की खुशियों की भीख मांग रहे थे और इसी-

लिए उसे सुविधा को भूल आशिमा के मालदार बाप की दी सारी भीख स्वीकार कर पड़ी है। नौकरी, दहेज, यहाँ तक कि ‘हनीमून’ भी भीख में ही मिला है उसे। भीख SS, भीख SS, हम सब भिखारी हैं। वो शिला पर बैठे-बैठे ही झनझना रहा।

०००

आशिमा शोले में से ‘पिपर-स्मॉक’ निकालकर आलूबुखारे और स्लाइस मार रही थी। फिर वह डिब्बा खोलकर चम्मच से रोस्ट किया हुआ ‘मटन’ उस पर सजाने लगी।

‘आशू, तुमने कभी प्रेम किया है?’ नितेश सीधा-सा सवाल कर रहा था। आशिमा चम्मच से मटन सजाने में मग्न थी। गर्दन झुकाये हुए ही बोली—
‘कर तो रही हूँ अब!’

नितेश हताश हुआ था शायद। तब नितेश विषय बदलकर एकदम ही अपने में बँस गया था।

‘आशू, मेरे कंधों पर बड़ा बोझ है। आशिमा ने उसकी तरफ प्लेट बढ़ा दी थी।

‘तीन बहनों का व्याह आसान है क्या?’ आशिमा गर्दन झुकाकर धनस ‘प्लास्टिक ग्लास’ में चाय भरते लगे। जो चलते समय होटल से ही भरवा ली थी। ‘किसी समय में पिताजी फौज में बँदे थे। पर जब से लड़ाई में उनका पैर बढ़ा है, कितनी कठिनाई से हम भाई-बहनों को पढ़ाई पूरी की . . .’

मुनो, वाय पीकर वापस लौट पड़ेंगे ।'
आशिमा ने घट से उसकी बात काट

तो बो।
घट क्या दी थी, सुनना ही नहीं चाहा
ता था।

हालांकि उसके अंदर उमंगती सारी
पूनाहट डूबने लगी थी। जो हवा
आवाज को गुदगुदाये बिना ही गुजर जाये
हवा के बहकने का कोई मतलब है

अभी-अभी तो नर्म हवाओं में जवान
वृष ने थोड़ी तपिश भरी थी, कि

अभी सुबह दोपहर की जवानी ओढ़ घाटी-
घाटी बिछ जाने को अकुलाई थी, कि अभी
पत्तियों की सरसगहट ने हवाओं की लय
पर गीत गुनगुनाया था, पर . . .

नितेश अब भी बराबर बोल रहा था,
अपनी बहनो के लिए, बीमार पिता और
स्वर्गवासी मां के लिए और चाय सिप
करते आशिमा सोच रही थी—अभी कितनी
ऊंची चढ़ाई चढ़नी है ?

—द्वारा : डा. प्रकाश स्वरूप,

II बी/४६, इंडियन एग्रीकल्चरल
रिसर्च इंस्टीट्यूट, नयी दिल्ली-१२

अनोखा शिकार

सन् १८९९। एक दिन एक ब्रिटिश अफसर शिकार की खोज में अजंता गांव के
तक पहुंच गया, मगर इसका पता उसे न था कि वह किसी गांव के पास है। वह
हिमालय में मारा-मारा घूमता रहा, किंतु शिकार न पा सका। अचानक उसे एक लड़के
के खंभे-सी आवाज सुनाई दी।

शिकारी कैप्टन ने अपने कदम तेज किये और आवाज तक पहुंच गया। लड़के ने
एक यूरोपियन साहब को देखा, तो शेर के मिलने का स्थान बताकर, बख्शीश के
नाम से उसने सामने के पेड़ों के झुरमुट के बीच से एक स्थान की ओर संकेत किया और
—'साहब, वह देखो !' साहब ने उंगली के इशारे की दिशा में जो कुछ देखा, वह
शिकार नहीं था, बल्कि घनी हरीतिमा के अंतराल में बैंगनी पत्थरों के खंभों के बीच,
जुड़े लाल रंग में कुछ ऐसी चीज थी, जिसने कैप्टन साहब को उत्साह से उछाल दिया।
जानकर कि वे एक ऐसी चीज का पता दुनिया को देने जा रहे हैं, जो वास्तुकला की
दृष्टि में निश्चय ही महत्वपूर्ण है, उन्होंने तुरंत गांव से लोगों को कुल्हाड़ी, भाले और टार्च
लेकर आने के लिए बुला भेजा।

और इस प्रकार सदियों से भूले अजंता के गुफा-मंदिरों तक पहुंचने का रास्ता
खोज हो सका। फलस्वरूप सारा जगत बौद्ध-कला की इस महान् अनुपम उपलब्धि से
परिचित हो सका।

—कमल सौगानी



संजय खाती का एक विचार यात्रात्मक लेख अणु से नचिकेता की खोज तक

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तो-
निहितो गुहायाम् ।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको घातुप्रसादान्म-
हिमानमात्मनः ॥

—उस जीवात्मा के हृदय रूप गुहा में
रहने वाला परमात्मा सूक्ष्म से भी
अतिसूक्ष्म और महान से भी महान है ।
परमात्मा की इस महिमा को कामना-
रहित और चिन्तारहित साधक परमेश्वर
की कृपा से ही देख पाता है ।

पी. आर. पिषारडी का लेख 'अणु
के अंदर की दुनिया' (नवनीत
जून '८०) मेरे सामने है । विद्वान् लेखक
ने कठोपनिषद् के इस श्लोक को विज्ञान
की पृष्ठभूमि में बड़ी ही प्रशंसनीय सहजता
से परिभाषित किया है :

'जैतिकी में अणु का नाभिक (न्यूक्ली-
यस) जिन कणों से बनता है उन्हें लघुतम
कहा जा सकता है । एक मिलीमीटर के
इस लाखवें अंश का दसवां भाग अणु का
आकार माना गया है । अणु का नाभिक
लगभग एक मिलीमीटर के इस लाखवें
अंश का दस लाखवां भाग होता है ।

नवनीत

और यह नाभिक जिन कणों से बनता है वे इससे भी छोटे होते हैं । नाभिक का नाम क्वार्क रखा गया है । शायद क्वार्क ही

अपनी शकल नाभिक के आकार के समान उपनिषद् के बराबर होती है ।' अनेक लेखकों का इरादा यह कहना है कि यदि हम इस क्वार्क के बराबर बड़ा दें तो उसी क्वार्क में बढ़ाया गया राई का दाना हमारे पृथ्वी से एक हजार गुना बड़ा दिखेगा ।

क्वार्क तक की सूक्ष्मता की खोज करते-करते मानव की अल्पमेधा बन कर रह जाती है । इतने सूक्ष्म तत्व कल्पना, कुछ अनुभव भी कर सके आप ?

जी नहीं । लेकिन यह सूक्ष्म वास्तविक । और अभी तक ज्ञात सूक्ष्म सूक्ष्मता है । लेकिन यही तो सूक्ष्मता नहीं न ?

उपनिषद् कहता है : परमात्मा ब्रह्म तत्त्व (ॐ) इससे भी सूक्ष्म है । 'हमारी जानकारी में सबसे बस्तु यह विश्व या ब्रह्मांड है । आकार का भी अंदाज लगाया

अमेरिकी राज्य कैलिफोर्निया के पहाड़
तोनीर पर लगी दो सौ इंची व्यास की
वृक्षों से किये निरीक्षणों के विश्लेषण
के बाद सबसे ज्यादा दूर की आकाशगंगा
(नेब्युला) हमसे लगभग २० अरब प्रकाश-
वर्ष की दूरी पर है.....'

वह दूरी जानते हैं कितनी है? एक
साल एक नील किलोमीटर के बराबर
है। जरा अनुमान कीजिये यह दूरी
कितनी है। और जरा अनुभव तो कीजिये।

नहीं। इस अनंत का अनुभव

कणों से नहीं कर सकते आप। तिस पर
होते हैं। तब संभव है यही अनंत की माप
। शायद उसे ही।

आकार के रूप में उपनिषद् कहता है—'वह पर-
है।' अनेक प्रकार से इससे भी विशाल और
इस प्रकार का है: महतो महीयान् ।'

तो उसी अनुभव या वह पुस्तकीय विचार
का दाना हमारे मूखे सहसा उडेलित कर गया।

बड़ा दिवंगत... भी विचार अपने पीछे चित्तन
मत्ता की एक दीर्घ प्रक्रिया छोड़ जाता

अल्पमेधा चेतन। विवेक के इस विवेचन ने भी अना-
द्वय ही मेरे मानस में चित्तन की एक
दूरतरंगित कर दी।

यण से भी सूक्ष्म और ब्रह्मांड से भी
जगत् जो तत्त्व एकभाव से जगत् के
निष्पन्न क्रियाकलापों को चतुराई
से नियमित कर रहा है, वह कौन है?

तो यदि किसी तर्क में बांधने की चेष्टा
करें तो यह एक दुस्साहस, ओछी
मानव बुद्धि की ढीठता ही होगी।

परमात्मा...
भी सूक्ष्म है।
में तबने
हंगांड है।
लगवाया

जिस सूक्ष्मता और महानता का आप
अनुमान मात्र लगा सकते हैं, अनुभव तो
कर ही नहीं सकते, उसमें भला आपकी
गति कहां संभव है? इसीलिये तो कठोण
निषद् में कहा है:

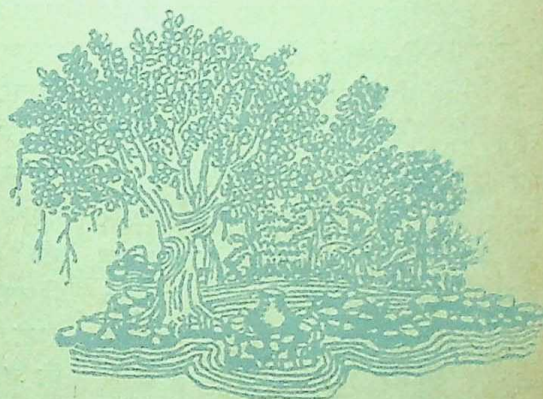
न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा

चिन्त्यमानः

अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान्

ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥

—बहुत प्रकार से चित्तन किये जाने पर



भी तथा अल्पज्ञ पुरुष के बताये जाने पर
यह आत्मतत्त्व सहज ही ज्ञात हो जाये—
ऐसा नहीं है। किसी दूसरे ज्ञानी पुरुष
द्वारा उपदेश न किये जाने पर इसमें
मनुष्य की गति संभव नहीं। क्योंकि यह
अत्यंत सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। इसलिये
तर्कातीत है।

अणु से अणु और महान से महान होने
पर मानव मेधा की सीमाएं स्पष्ट हो
जाती हैं। इसलिये इस विषय पर मानव

का तर्क-वितर्क का अधिकार ही समाप्त हो जाता है। भला घट में सूर्य कैसे आवद्ध किया जा सकता है। चाहे मानव पानी में सूर्य की परछाई देख उसे अपनी विजय जान कितना ही गौरवान्वित क्यों न होता रहे। सत्य अपनी जगह है।

इसलिये कदाचित् भक्तों ने अपनी साधना पद्धति में 'आशा और विश्वास' को ईश-प्राप्ति का एकमात्र मार्ग माना है। प्रमाण और तर्क को उन्होंने कभी स्थान नहीं दिया। यह बात दीगर है कि उन्होंने अपने रूपकों में ईश्वर की सत्ता को व्यक्त करने का प्रयास किया है। लेकिन वे कभी तर्कातीत भावगत ईश्वर को अपनी प्रयोगशाला में उतारने को प्रस्तुत नहीं हुए। इसीलिये तो सूर नटवर का लीला-गान छोड़ मथुरा जाकर यह सिद्ध करने में प्रवृत्त नहीं हुए कि ऐतिहासिक रूप स श्याम वह्ने कभी पैदा हुए भी कि नहीं?

साधना की पहली शर्त ही है—संपूर्ण निष्ठा। जहां इनसे परे सोचा कि चलो पहले यह तो पक्का कर लें कि वह है भी क्या नहीं तब कुछ करें। कहीं बाद में जाकर पता चला कि वह नहीं है तो बेकार जहमत उठानी पड़ेगी। वहीं पर भक्ति का मूलाधार ही विच्छिन्न हो जाता है। समस्त विवादों तथा संदेहों से परे होकर एकांत भाव से उससे लौ लगाना ही भक्ति की प्रथम शर्त है।

यह तो हुई उपनिषद के 'अणोरणीयान्

महतो महीयान्' से उद्भूत विचारधारा। इससे भी परे विचारों का एक दूसरा पहलू भी है। क्या आधुनिक विज्ञान प्रकृति के गूढ़ रहस्यों और व्यवस्था में उसी परमात्मा को उद्घाटित नहीं कर रहा जिसे कि उपनिषदों ने शताब्दियों से कह डाला था?

प्रकृति के दो रूप हैं—चेतन और अचेतन। चेतन ही प्राण और अचेतन ही पदार्थ है। इस स्थूल जगत के पीछे भी एक प्राण सत्ता समभाव से रमण करती रहती है। वस्तुतः पदार्थ जगत और प्राण आत्मनः विच्छिन्न नहीं। सूक्ष्म ही अपने प्रकाश में इस रूपात्मक जगत के रूप में प्रभासित हो रहा है। यह सूक्ष्म प्रकाश पदार्थ को प्रभावित करता है और प्रकाश भी। शून्य की तरह यह प्राण हर पदार्थ में अखंड होकर रमण कर रहा है। कभी विज्ञान इस तत्त्व को पाने में असमर्थ हो जाये तो हम देखेंगे कि पुरातन और आधुनिक विज्ञान के विवेचन और निष्कर्ष समान हैं। इस प्राणसत्ता को हम वस्तु सर्वोपरि सूक्ष्म तत्त्व 'क्वार्क' में भी देख सकते हैं। जब विज्ञानी कहते हैं कि प्रकृति निरंतर अपने नाभिक की परिक्रमा कर रहता है और अणु का विखंडन प्रकाश को एक भयंकर ऊर्जा के रूप में परिवर्तित कर देता है तो पदार्थ के पीछे छुपे हुए चूषचाप होती यह व्यापक हवचत जगत् विस्मित नहीं करती? जिसकी कि विज्ञान जाने बिना कल्पना भी नहीं कर

विचारणा... पदार्थ के पीछे होती यह हलचल हो शायद है जो सारे जगत के पीछे विचारणा है। फिर अभी विज्ञान की बातें जानते कितनी विकास अवस्थाएं हैं जो उसे पार करनी हैं। ज्ञान को कभी भी नहीं समझा जा सकता। अपने ज्ञान को पूर्ण मान लेना ही अपने विकास के लिये स्वयं बंद कर लेना है। अतृप्ति ही भावना ही निरंतर ज्ञान प्राप्ति की आवश्यक शर्त है। आश्चर्य नहीं कि कभी विज्ञानी ब्रह्मांड के शाश्वत रहस्यों को उद्घाटित करता उसी अनंत तक पहुंच जाये जहां संभवतः हमारे वेदकालीन दर्शा अपने रास्तों से पहले ही पहुंच जाये। उस समय विज्ञान एक बार फिर अव्यात्म के समक्ष नत होगा।

हमें समझना यह है कि मूल वस्तु यह है। इसके पीछे व्याप्त चेतन सत्ता जो इसके रहस्यों को खोजने का बाहरी साधन है विज्ञान का। ये स्थूल साधन आवश्यक नहीं कि प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों को पकड़ सकें। लेकिन एक रास्ता वह है जो अंतर्जगत का है। वह आत्मविज्ञान का रास्ता है। सूक्ष्म चेतना से सूक्ष्म को याद पाना कहीं उचित और आवश्यक है। वेदकालीन ऋषियों ने इसी मार्ग से परमतत्त्व को पा लिया था। जहां विज्ञान का स्थूल मार्ग प्रेम (भौतिक साधनों) का साधन है वहीं साधना का साधन है। उपनिषद् में

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य
विविनक्ति धीरः ।
श्रेयोहि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते, प्रेयो
मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥

—श्रेय और प्रेय ये दोनों मनुष्य के सामने आते हैं। बुद्धिमान मनुष्य इनके स्वरूप पर भलीभांति विचार कर उनको पृथक्-पृथक् समझ लेता है। श्रेयबुद्धि मनुष्य कल्याण के साधन श्रेय को ही भोग साधन प्रेय की अपेक्षा श्रेष्ठ समझ कर ग्रहण करता है। परंतु मंदबुद्धि मनुष्य लौकिक योगक्षेम की इच्छा से भोगों के साधन प्रेय को अपनाता है।
(कठोपनिषद् १।२।२)

प्राचीन ऋषियों द्वारा कथित आत्म-विज्ञान में श्रेय को ही मानव का लक्ष्य माना गया है। इसके ठीक विपरीत आधुनिक विज्ञान मनुष्य के लौकिक कल्याण या भोगों के लिए ही प्रकृति के रहस्यों से सिर टकरा रहा है। श्रेय की प्राप्ति के उद्देश्य से टिका पुरातन भारतीय समाज ही कहीं अनुकरणीय था। जहां समाज का प्रेय प्रधान हो जाता है वहां नैतिकता के नियम ढीले हो जाते हैं और भोगों का यह चक्र ऐसे कारण पैदा करता जाता है जो उसके विनाश के बाहक बनते हैं।

इस प्रसंग में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि बदलते परिवेश में विज्ञान ने निरंतर विकास करते हुए अपने भौतिक स्वरूप के कारण विश्व को तनाव, भटकाव, निराशा और विनाशकारी निश्च-

कता का वरदान दिया । लौकिक भोगों में तीव्र आसक्ति और उसकी पूर्ति में संलग्न विज्ञान पुरुष की दिव्यदेह निरंतर घने अंधकार और नैराश्य की सृष्टि कर रही है । महानगरीय आक्टोपसी औद्योगिक सभ्यता के पंजे में जकड़ी मानवता जहां भयानक रूप से एकाकी हो गयी है वहीं जीवन की मूल भावनाएं भी क्षीण होती जा रही हैं । नित नये वरदान देता विज्ञान अपने पीछे प्रदूषण, गंदगी, तनाव, संघर्ष और टूटते संबंधों का विषाक्त वातावरण सिरजता जा रहा



है । कठोपनिषद् में नचिकेता ने भोगों की पूर्ति को भोगों को और भी भड़काने वाला बताया है । इस तरह व्यक्ति निरंतर अपूर्णता और अतृप्ति के कोहरे में प्रेत-सा भटकता रहता है । (नचित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो १।१।२७) आज मनुष्य की दुनिया इतनी अंधेरी और उसका मानस जगत इतना टूटा हुआ है कि उसे अपना कर्तव्य ही नहीं सूझ पड़ता । विज्ञान की उन्नति ने आज के मानव के हृदय में भोगों की सतत प्रज्वलित अग्नि

नवनीत

उत्पन्न की है । जब इस नैराश्य में मार्ग नहीं सूझता तब वह होकर उठने भोगों में लिप्त होकर अपने को निराला देना चाहता है । उस चतुर व्यक्ति की भांति जो अपने तीन वरदानों में से विविध सुख मांग तीसरे से फिर वरदान मांग लेता है । इस तरह वह कभी समाप्त न होने वाली प्रक्रिया सृष्टि करता है ।

कठोपनिषद् पढ़ते इस बात की तीव्रता से अनुभूति होती है कि आज मानव प्रज्ञा का वह मूर्तिमान रूप नचिकेता है ? वैसी आत्मज्ञान की भूख फिर क्यों होगी समाज में । एक ऐसा युग आयेगा जब विज्ञान अपने वास्तविक पथ पर पुनः आरुढ़ होगा । प्रेय की तुच्छता पर विचार कर मानव फिर से स्वयं वरण करेगा । स्वयं तुच्छ मानव ही 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' जो सत्ता है वही इस परिवर्तन का सूत्र करेगी ।

अब समय आ गया है जब पुनः आत्मविज्ञान की मानव को फिर आवश्यकता है । निश्चय ही उसकी कता और प्रासांगिकता वैदिककाल की अधिक आज है । हमारा जीवन है कि वेद और उपनिषदों के रूप में का एक विशाल और परिपूर्ण कोश के पास है । तब भारतीय प्रज्ञा का नचिकेता क्यों सोया पड़ा है ? उसे की पुकार क्या किंचित भी विचित्र

नैराश्य में
होकर दूर
अपने को विना
चतुर व्यस्त को
वरदानों से
उपे से फिर
इस तरह वह
वाली प्रक्रिया

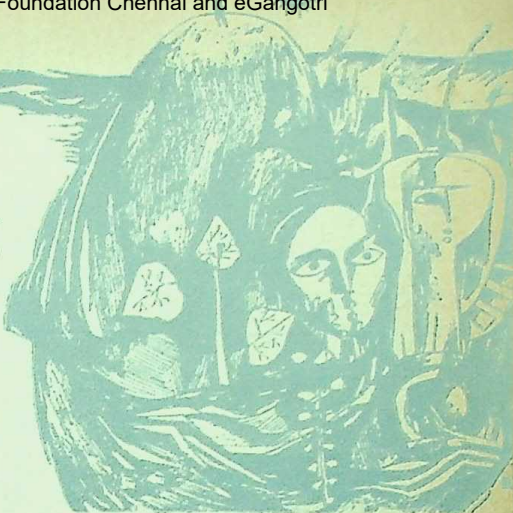
नैराश्य में
होकर दूर
अपने को विना
चतुर व्यस्त को
वरदानों से
उपे से फिर
इस तरह वह
वाली प्रक्रिया

नैराश्य में
होकर दूर
अपने को विना
चतुर व्यस्त को
वरदानों से
उपे से फिर
इस तरह वह
वाली प्रक्रिया

नैराश्य में
होकर दूर
अपने को विना
चतुर व्यस्त को
वरदानों से
उपे से फिर
इस तरह वह
वाली प्रक्रिया

नैराश्य में
होकर दूर
अपने को विना
चतुर व्यस्त को
वरदानों से
उपे से फिर
इस तरह वह
वाली प्रक्रिया

नैराश्य में
होकर दूर
अपने को विना
चतुर व्यस्त को
वरदानों से
उपे से फिर
इस तरह वह
वाली प्रक्रिया



चित्र : आर. डी. पुरोहित

उदय हो गया है। अंधकार हट गया है।
और देखो उषा की ज्योति आ रही है।
इस ज्योति ने सूर्य का मार्ग प्रशस्त कर
दिया है, और हम वहाँ पहुँच गये हैं
जहाँ जीवन की, शक्तियों निरंतर वृद्धि-
शील हैं।

—ऋग्वेद १।११३।१६

—५३, हुनागिरि, जिला : अल्मोड़ा,
(उत्तर प्रदेश) २६३६५३.

मनुष्यो उठो । हमारे लिए जीवन का



आचार्य मंदिर की परिक्रमा कर रहे थे। अभी पहली परिक्रमा ही पूरी नहीं हो
सकती थी कि मार्ग में एक शूद्र आ गया। आचार्य का क्रम टूट गया और वे उत्तेजित हो
गये। कठोर शब्दों में कहा—‘हट जा, चांडाल, तूने मेरी परिक्रमा खंडित कर दी।’

‘किधर जाऊँ, आचार्यप्रवर?’ शूद्र ने विनम्र वाणी में पूछा—‘मेरे चारों ही ओर
अपवित्रता है, फिर अपनी अपवित्रता किधर ले जाऊँ?’

जो ज्ञान वेद, शास्त्र नहीं दे सके थे, एक शूद्र ने दे डाला। आचार्य बोले—‘तात !
तुमने मेरा अद्वैत दर्शन साकार कर दिया, तुमने मेरी आँखें खोल दीं।’ कहकर उन्होंने
शूद्र को प्रणाम किया और पूर्ववत् वे परिक्रमा में तल्लीन हो गये।

—डा. गोपालप्रसाद ‘वंशी’

मेरा एक अलौकिक अनुभव

□ श्रीमती इन्द्रा शान द्विवेदी

प्रिय बहनजी,
नमस्ते ।

आपकी रचना 'जब श्री मां मेरे जीवन में आयी' सितंबर '८० के 'नवनीत' में पढ़ी । उसमें खंडाला स्थित आपके बंगले में हुई घटना का वर्णन है । यह घटना क्या हो सकती थी ? आपने किसी से पूछा होगा शायद । यदि आपको किसी से समाधान हुआ हो तो कृपया मुझे लिखें कि वह क्या था ! इस घटना के बारे में आपसे पूछने का कारण यह है कि इसी प्रकार की घटना मेरे साथ भी घटी है । मैं आज तक इसका कारण समझ नहीं पायी हूं ।

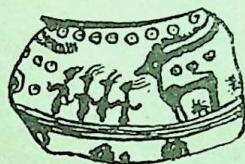
करीब तीन वर्ष पहले की बात है । जून का महीना था । गरमी बेहद थी । कमरों में लगे पंखे भी गर्म ही हवा फेंकते थे । मैं छत पर बैठी थी । चांदनी रात थी और वातावरण काफी शांत था । मैं जिस मकान में रहती हूं, यह तीन मंजिला है । मैं सबसे ऊपर की मंजिल में रहती हूं । मेरे कमरों के सामने एक लंबी-चौड़ी घेरी हुई छत है । यद्यपि छत काफी सुरक्षित है, फिर भी मेरे पति छत पर किसी को सोने नहीं देते ।

उस दिन दोनों बच्चे भीतर कमरे में सोये थे । पति और मैं बाहर छत पर बैठे बातचीत कर रहे थे । रात के बारह

नवनीत

बजने में दस मिनट बाकी थे । पति भीतर अपने कमरे में सोने चले गये । मुझे ताकीद की कि मैं भी भीतर सोऊं, वरि कमरों के दरवाजे खुले न रहें । मुझे बेहद गरमी लग रही थी । मैंने ऊपर दिया कि मैं कुछ देर बाद आऊंगी । भीतर लेट गये । रह-रहकर आवाजें रहे थे, कि अंदर चली आओ, बहुत मत सोना । और तभी दूर कहीं टन-टन-टन बारह बजाये । मुझे विस्मय आया कि हमारे गुरु कहते हैं कि रात्रि में जब चारों ओर सन्नाह तब एकाग्र चित होकर ध्यान से प्रकृति में 'ओम्' का नाद सुनायी देता है । मैं सोचने लगी, बारह बजा है । चारों ओर सन्नाह है क्यों न मैं भी ध्यान नाद सुनने का प्रयत्न करूं । मैं चित पर तकिया लगाकर सिर टिकाने लगी रही थी, कि तकिये में से मुझे सुनायी पड़ा 'ओम्', 'ओम्' । मैं विस्मित होकर समझ नहीं पा रही थी, कि क्या हो रहा है, कि मुझे लगा मेरे ऊपर से अचानक किसी पक्षी का डंता सरसराता है । सिर को छूता-सा गुजर गया । मैंने चित होकर ऊपर आकाश की ओर ताकने का प्रयत्न किया कि कौन उड़ा ! और लो ! मेरी आंखें तभी

आयी कि वचपन में घर के लोग कहते थे कि 'इंद्राक्षी' स्तोत्र पढ़ने से भूत-प्रेत की बाधाएं दूर होती हैं। मैंने सब तरह के तर्क-वितर्क असफल होते देख, वही स्तोत्र मन-ही-मन पढ़ना शुरू किया। फिर क्या हुआ, मालूम नहीं। जब मेरी आंख खुली तो देखा, छत जैसे चांदनी से धुली हुई है। चारों ओर शांति है। पति-वच्चे भीतर दूधिया विस्तर पर, खिड़की से छन-छन कर आती चांदनी में, मीठी नींद में सोये हैं। मैं झटके से उठी और पाया कि मेरा शरीर एकदम हलका लग रहा है। कुछ देर पहले जो हुआ था, उस भय से मैं भीतर भागी। दरवाजे बंद किये। बड़ी में देखा रात के दो बजे हैं। कमरे में दुर्गा का नाम लेते-लेते सो गयी। तब से यह घटना मेरे लिए एक पहली बनी हुई है। पति को दूसरे दिन बताया तो वे कहने लगे, स्वप्न देखा होगा। मगर मुझे पूरा विश्वास है, कि न वह भ्रम था न सपना। यदि आपको किसी ने बताया हो कि आपके साथ घटी वह घटना क्या थी, तब कृपया मुझे उत्तर दें और मेरा समाधान करें। उत्तर की प्रतीक्षा में। आपकी - इंद्रा भान द्विवेदी -राम विभीषण हाउस, अनीसाबाद पटना-२ (बिहार)



प्रेम जनमेजय की व्यंग्य-कथा

बलात्कार के पहलू

आजकल बलात्कार की बहुत चर्चा है। चर्चित वस्तुओं के प्रति मेरा विशेष मोह है। मैंने शब्दकोश उठा लिया—देखूँ तो सही अखिर यह बलात्कार चीज क्या है जिसकी इतनी चर्चा हो रही है। क्या यह पहले भारत में नहीं थी जो आजकल हो रही है और जिसके कारण भारत की महान नारियाँ परेशान हैं। शब्दकोश में बलात्कार का अर्थ दिया था—‘जबरदस्ती कुछ करना, बल प्रयोग, अन्याय, अत्याचार, स्त्री की इच्छा के विरुद्ध किया जाने वाला संभोग, महाजन का ऋणी को रोक-कर और मार-पीटकर पावना बधूल करना करना।’ मैं आश्चर्यचकित हो गया कि एक शब्द इतने कार्य करवाता है। सोचा सही-सही जानकारी के लिए क्यों न स्त्री-रक्षा-समिति की अध्यक्षता के पास ही चलूँ। आजकल ‘बलात्कार आंदोलन’ वही करवा रही हैं, पूरी जानकारी मिल जायेगी।

मैं अध्यक्षाजी के कार्यालय में सीधा पहुंचा, उनसे पूछने के लिए कि देवी, यह बलात्कार क्या होता है? अपनी चोंच खोली ही थी कि बलात्कार शब्द सुनते ही और मुझे सामने देखते ही अध्यक्षा ‘पुरुष !

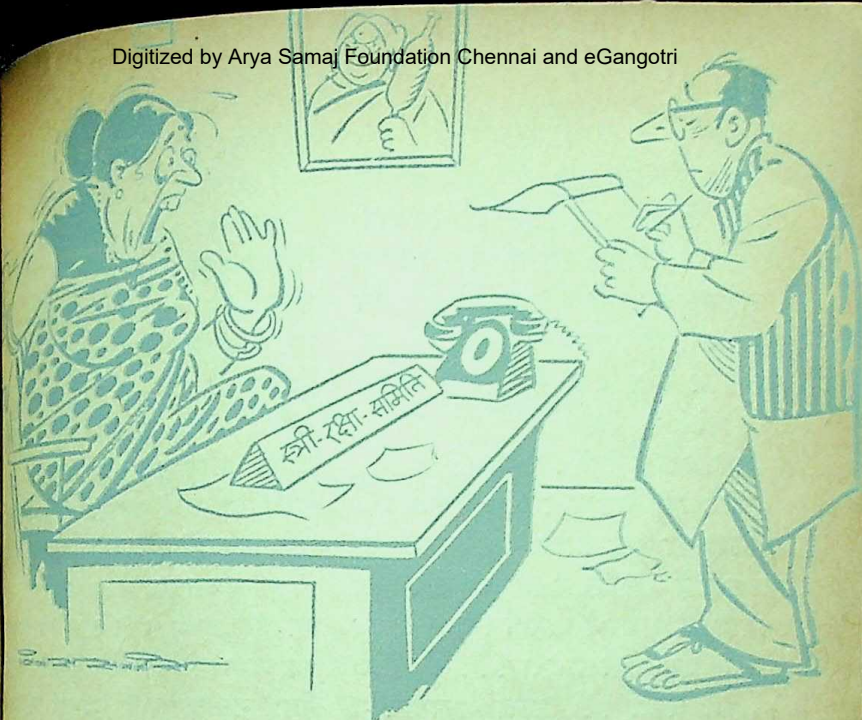
पुरुष !’ कहकर चिल्ला उठीं। इधर-उधर से रक्षा-समिति की महिलाओं ने मुझे घेर लिया। इसके बाद मेरे साथ जो कुछ हुआ उसे मैं कुछ भी कह लूँ परंतु बलात्कार कहूँगा। साफ है, दोबारा पिढे की नई कतई इच्छा नहीं है।

मैं तो अदना-सा पुरुष था जिसने बलात्कार का सही-सही अर्थ जानना चाहा था, परंतु जो हालत हुई उसे वर्णन करने के लिए धरती का तो नहीं, हाँ, चांद का कागज बनाना आवश्यक है। सही को पेन आप कोई भी इस्तेमाल कर लें।

मेरी दिनभर जिज्ञासा है कि मुझे क्या क्यों पीटा गया ! बचपन से मुझे बताया गया है कि जहाँ मैं रहता हूँ वह भारत है और इसकी माँ का नाम, भारत माता है। जब से होश संभाला है लोगों को इस बात से बलात्कार करते ही देखा है। उन्हें तो पांच वर्ष का कुछ नहीं कहता है। उन्हें तो पांच वर्ष का फिर अवसर दे दिया जाता है। कुछ तो दो-तीन वर्ष बाद ही अवसर दे दिया जाता है। उन्हें कोई नहीं पीटा। पुनः पुनः देश के साथ बलात्कार करते अवसर दिया जाता है। न्याय के साथ

नवनीत अगस्त

११२



03
 01। इधर-उधर
 02ओं ने मुझे धेर
 03थ जो कुछ हुआ
 04तु बलात्कार की
 05पिटने की ने

06या जिसने दक
 07मानता चाहता
 08वर्णन करने में

09, हां, चांद का

10है। स्पष्टी को

11ल कर लें।

12है कि मुझे

13न से मुझे बला

14हूं वह भारत

15भारत माता है

16तोगों को इस

17खा है। उन्हें

18तो पांच वर्षों

19ता है। कुछ

20अक्सर दे कि

21पीटा। उन

22लात्कार करने

23न्याय के साथ

बलात्कार क्यों ?

आप किसी भी सरकारी दफ्तर में चले जायें, लोग कपड़े उतारे बैठे हैं। आप संप्रदा की कमीज, शर्म की पैंट, ईमान-दारी का कोट और नैतिकता की टाई लगाये दफ्तर पहुंचते हैं परंतु नंगों के बीच आप खड़े हो जाते हैं। आप चिल्लाते हैं 'नंगा रहना असभ्यता है, बेशर्मी है !' आप मुनता हैं ? आप ही अपनी शर्मा मुनते हैं। धीरे-धीरे महानुभाव कपड़े उतार लेते हैं। आपकी आंखों के विरुद्ध आपसे भ्रष्टाचार कराते हैं। आप रोते हैं, चिल्लाते हैं परंतु बला-त्कार जारी है। आप आवाज उठाते हैं परंतु उनके सामने, जिन्होंने अपने कपड़े

उतार फेंके हैं !

ट्रक चलाता ड्राइवर नशे में सड़क को किसी सुंदर महिला की साड़ी समझता है। (वैसे शराब में यह खूबी है कि सड़क जैसी महिला भी सुंदर दिखाई देती है।) राग-दरबारी में सड़क के साथ हो गये ट्रकात्मक बलात्कार का संकेत श्रीलाल शुक्ल ने दिया है। परंतु ड्राइवर सड़क-रूपी साड़ी को उतारने के लिए ट्रक द्वारा जो बलात्कार करता है उसे भोगकर ही समझा जा सकता है। ऊंच-नीच का भेद हट जाता है। ड्राइवर यह नहीं देखता है कि आप पैदल चल रहे हैं या साइकिल पर, आप स्कूटर पर हैं या कार पर हैं। समान भाव से बला-त्कार करने का यह आध्यात्मिक उदाहरण

दुलेभ है ।

० ० ०

एक साहित्यिक मित्र दरियागंज में मिल गये । बाल बिखरे हुए, चेहरे पर हवाइयां, कुर्ते के बटन टूटे हुए, एक पांव में चप्पल एक में गायब—निठाल-से चले आ रहे थे । मैंने पूछा, 'क्यों प्रिय भाई, क्या हुआ ? यह क्या हाल बना रखा है ? कहां से आ रहे हो ?'

'प्रकाशक के यहां गया था ।'

'कोई नयी किताब आ रही है क्या ?'

'नयी की बात छोड़ो, यहां पुरानी का पता नहीं है । प्रकाशक को दो हजार देकर छपवाई थी । उसने वायदा किया था कि साल में रुपया लौटा देगा . . . डेढ़ साल होने को आया . . . पत्नी अस्पताल में है . . . सोचा, पांच सौ मिल जाते . . . पैसे अपने ही थे, परंतु भीख के रूप में भी मांगने को कुछ नहीं मिला . . .'

मैं समझ गया कि क्या हुआ होगा !



एक पहाड़ की तलहटी के दो गांवों में यह स्पर्धा बनी रहती थी कि उस पर्वत के सबसे ऊंची चोटी पर अब तक कोई नहीं पहुंच पाया, वहां हम पहुंचें और नाम बनाएं ।

बहुत दिनों तक असफल रहने के बाद एक गांव के साहसी युवकों ने निश्चय किया कि कुछ भी क्यों न हो, हम सबसे ऊंची चोटी पर पहुंचकर ही रहेंगे । वे चढ़ते ही चढ़ गये और गंतव्य पर जा पहुंचे ।

वहां चोटी पर दो कौवे पहले से ही बैठे थे । इन अजनबी लोगों को पहुंचा देखकर छोटे कौवे ने बड़े से पूछा—'दादाजी, आखिर इन लोगों को अपनी सुंदर बस्तियां छोड़कर इतनी कष्टसाध्य यात्रा करते हुए किस कारण यहां आना पड़ा ?'

बड़े कौवे ने कहा—'बच्चे, ये लोग हैं तो हमारे ही जैसे मन के, पर इन्हें पर्वत मिले हैं, इसी से बेचारे इतना कष्ट भुगतते हुए यहां आये हैं । —डा. गोपालप्रसाद'

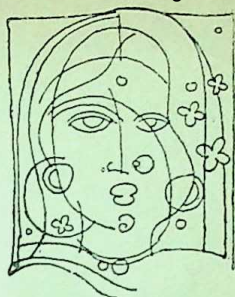


उनकी उड़ी-उड़ी-सी रंगत उनके चेहरे को व्यक्त कर रही थी । वह प्रकाशक के 'बल प्रयोग' का शिकार होकर लौटे थे ।

दुकानदार, पुलिस, वकील—सब आपका शिकार वाली नज़रों से घूरते दिखाई देंगे । उनका बस चले और आप बेवस होकर शरीर के कपड़े कब उतर गये या तालतार होकर फट गये, आपको पता भी नहीं चलेगा । आप मन ही मन गालियां दे जायेंगे, ऊपर से मुस्करायेंगे और जो कहें करेंगे, करवायेंगे—आपके मुंह से आह नहीं निकलेगी ।

आप बलात्कार की शिकायत करना चाहते हैं, खुशी से कीजिये । परंतु इसका ध्यान रखियेगा कि इसके लिए आपको पुनः बलात्कार की प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा । थानेदार बलात्कार करेगा, देखेंगे कि आप इस योग्य थे भी कि आपसे बलात्कार किया जा सके ! —एफ.डी.

नौरोजीनगर, नयी दिल्ली-११००११



आनन्दी सहाय शुक्ल का एक वैष्णवी प्रेम-गीत ऊधो नथनी हाट बिकानी

ऊधो, नथनी हाट बिकानी ।

चौराहे पर लाज का मोती
गिरकर पानी-पानी ।

एक हवा का झोंका आया
उखड़े छप्पर छानी,
अंग-अंग में व्याप गया है
कालकूट किरपानी ।

इसे पचा सकते हैं केवल
भोले औंढर दानी ।

आंसू सींचे रुधिर उलीचा
ये द्रुमलता न सूखें,
आंचल पर सूरज को रोका
बरसी चंद्र मयूखें
होम हवन सब व्यर्थ हो गये
दधि बिन हाथ मथानी ।
ऊधो, नथनी हाट बिकानी ।

—गोशालापारा, रायगढ़ (म. प्र.)



अरुणा मुखर्जी
का एक भविष्यदर्शी लेख

आने वाले फैशन का अग्रदूत : भारत

बंबई में फैशन-केंद्र की स्थापना से काफ़ी विदेशी मुद्रा प्राप्त होगी, हमारे तार और गुणी डिजाइनरों को काम मिलेगा, और वस्त्रोद्योग, चर्मोद्योग और आभूषण उद्योग को बहुत अधिक बढ़ावा मिलेगा।

अभी तक बंबई को पश्चिमी फैशनों की नक़ल करने वाला नगर माना जाता रहा है। लेकिन, अब वह शीघ्र ही पूर्वी फैशन का एक ऐसा केंद्र बनने वाला है, जो पारंपरिक मूलभावों पर आधारित भारतीय डिजाइनों का प्रसार एशियाई देशों के अलावा, विश्व के अन्य भागों में भी करेगा।

भारत में जो पर्यटक आते हैं, वे सिर्फ़ देश के स्मारकों को देखने नहीं आते, मौज-तफरीह करने के लिए भी आते हैं। इसी मौज-तफरीह की खातिर ही वे 'शॉपिंग' करते हैं। खास तौर पर महिलाएं, जो भारत से ऐसे वस्त्र तथा अन्य वस्तुएं ले जाना चाहती हैं, जो उन्हें असाधारण लगती हैं, और जिन्हें अपने परिचितों को दिखाकर वे उनकी प्रशंसा

का पात्र बन सकें। हमारे पर्यटकों को विदेशी पर्यटकों के इस मनोकाम को ध्यान में रखना चाहिये। विदेशी मुद्रा अर्जित करने का इससे बेहतर तरीका और क्या हो सकता है कि हम बंबई को एक फैशन केंद्र के रूप में प्रतिष्ठित करें और यहां ऐसी अनेक दुकानें खोलें, जिनमें नवीनतम पूर्वी फैशन के नये-नये डिजाइनों वाली पोशाकें आसानी से उपलब्ध हों।

एक विडंबना यह है कि पश्चिमी देशों के डिजाइनकार, जो अपने नवीनतम डिजाइनों की वजह से प्रति वर्ष करोड़ों रुपये कमाते हैं, और जिन्हें खरीदने के लिए आतुरता विश्व के सब फैशन-प्रेमियों को दिखायी देती है, अपना मूलभूत कपड़ा सामान भारत से ही खरीदते हैं।

चमड़े के जूतों और...

नवनीत

११६

दुनियाँ में अपार ख्याति अर्जित की है, और विश्व में रोम को सर्वोत्तम-चर्मवस्तु-निर्माण-केंद्र का दर्जा दिलाया है, वह वस्त्रव में बंगाली मेमनों का चमड़ा है। गुणवत्ता की दृष्टि से किसी भी देश का चमड़ा बंगाली मेमने के चमड़े की समता नहीं कर सकता। इस कच्चे चमड़े को रोम के चर्मवस्तु-निर्माताओं को बेचकर

हम उस राशि का प्रयोग भी नहीं कर सकते, जो उस चमड़े की निमित्त वस्तुएं सीधे विदेशों को बेचकर प्राप्त कर सकते थे।

एक और उदाहरण लें। वस्त्र-उद्योगों में जिस साज-सज्जा और कम-बोझ का निर्यात हमारा देश करता है उसे 'हाउते' नामक देश - विख्यात

प्रतिष्ठान की शाखाएं नायाब और डिजाइनों वाली पोशाकों का निर्माण कर, कल्पनाशील मूल्यों पर बेचती हैं।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि किसी महान फैशन-केंद्र की स्थापना के लिए महज जवाहरात और वस्त्रों

का होना ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए ऐसे तरुण और गुणी डिजाइनर भी चाहिये, जो अपनी कल्पना के बल पर ऐसे डिजाइनों की रचना कर सकें, जिन्हें पेरिस से लेकर बहरीन तक की फैशनप्रिय महिलाएं अपनाने में गर्व और प्रसन्नता अनुभव करें। प्रचार आवश्यक

लेकिन हमें अपने उत्पादनों का प्रचार

करने की कला सीखनी होगी। उदाहरणार्थ, जब मैं कुछ वर्ष पूर्व काहिरा गयी थी, तब मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मिस्र के व्यस्त बाजारों में विदेशी भारतीय इत्र को 'पूर्व के अतर' के नाम से खरीद रहे थे। वह 'पूर्व का अतर' खुशनुमा सेंट-बोतलों में बंद था। भारत

में इत्रों की बहुतायत है, और मुहम्मद अली रोड पर गुलाब के अतर से लेकर चमेली तक का अतर मिलता है। मगर पर्यटकों को इसकी जानकारी नहीं है। जरूरत इस बात की है कि इन अतरों को ऐसी दुकानों में, जहां पर्यटक प्रायः जाते रहते हैं, खुशनुमा शीशियों में बंद



करके, बड़ी हुई कीमती पर बेचा जाये। यदि ऐसा न किया गया, तो विदेशी पर्यटक उसे सस्ता इत्र समझकर नहीं खरीदेंगे। इत्र एक विलास-वस्तु है, और उसकी विक्री इसी रूप में समृद्ध पर्यटकों को की जानी चाहिये।

ऐसा तर्क करने वाले बहुत लोग मिल जायेंगे, जो यह स्वाभाविक तर्क प्रस्तुत करेंगे कि जब देश के सामने बड़ी-बड़ी समस्याएं मौजूद हैं, तो उसे फैशन जैसी 'तुच्छ' चीज पर अपना वक्त बर्बाद करने की क्या जरूरत है? इस तर्क के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि फैशन-केंद्र की स्थापना से भारत को काफ़ी विदेशी मुद्रा प्राप्त होगी, हमारे तरुण और गुणी डिजाइनरों को काम मिलेगा, और वस्त्रोद्योग, चर्मोद्योग और आभूषण-उद्योग को बहुत अधिक बढ़ावा मिलेगा।

देश में ऐसे डिजाइनिंग और सिलाई स्कूलों के खोले जाने की भी आवश्यकता है, जहां भारतीय वेशभूषा के इतिहास की शिक्षा भी पाठ्यक्रम में शामिल हो। इस आशय का एक समाचार कुछ समय पूर्व समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ था कि सरकार फैशन शिल्पविज्ञान की एक संस्था की स्थापना के बारे में विचार कर रही है। 'फायनेंशियल एक्सप्रेस' के १५ अक्टूबर, १९७९ के अंक में प्रकाशित इस समाचार में कहा गया था कि इस संस्था से सर्वाधिक लाभ हथकरघा उद्योग की निर्यात-शाखा को, जिसने

१९७८-७९ की अवधि में २७४ करोड़ रुपये मूल्य के हाथ के बने वस्त्रों की निर्यात किया था। थोड़ी-सी कल्पना प्रयोग करके हम इस प्रकार के वस्त्रों की विक्री अपने देश में भी बढ़ा सकते हैं विदेशी पर्यटकों को उनके प्रति आकर्षित करके।

अब तक हमने पाश्चात्य फैशनों को जो अंधानुकरण किया है, उसे पूर्ण के अलावा, कोई और नाम नहीं दिया जा सकता। अब हमें अपने फैशन का भारतीयकरण करना होगा, न कि इस कारण कि हमारे देश की आबादी का यही तकाजा है। कोई विदेशी फैशन भारत में पाश्चात्य ढंग से सिले हुए वस्त्रों को नहीं खरीदना चाहेगा। इस प्रकार के फैशन में वे नहीं कहें अधिक उन्नत हैं, और भारत की उनकी अपेक्षा भारतीय शैली में निर्मित वस्त्रों को देखने और पहनने की रहती है, ऐसे वस्त्र जो उन्हें देश में देखने और पहनने को नहीं मिलें।

सौंदर्य-साधना की परंपरा

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत और सौंदर्य साधना की हमारी परंपरा अत्यंत प्राचीन है। मोहनजोदड़ो उत्खनन में जो ५००० वर्ष पुरानी कला शीशियां भी हैं। अजंता और एलोरा की मूर्तिकला इस बात का प्रमाण करती है कि फैशन और चालाक

यह संकेत मिलता है कि भारतीय आभूषणों की परंपरा सिंधु सभ्यता (ईसा से प्रायः २५०० से १५०० वर्ष पूर्व) जितनी पुरानी तो अवश्य है। भारत अपनी वेशकीमती धातुओं से बने आभूषणों के लिए, जो बंबई में निमित्त होते हैं, विख्यात है। ऐसे आभूषण प्लेटिनम, या चांदी से बनते हैं, और उनमें कीमती हीरे, पत्थर आदि जड़े जाते हैं। कुंदन तथा मीनाकारी वाले दोनों प्रकार के आभूषण लोकप्रिय हैं। इन दोनों प्रकार के आभूषणों का निर्माण ज्यादातर जयपुर में होता है। 'मोताचूनी' आभूषणों का निर्माण वाराणसी, लखनऊ और दिल्ली में होता है।

सब भारतीय नगरों में अकेला बंबई ऐसा है, जहां किसी विशाल फैशन केंद्र की स्थापना हो सकती है, क्योंकि यहां न केवल अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है, सर्वाधिक द्रुत गति से विकासमान व्यापारिक केंद्र है, बल्कि यह भारत का आधुनिकतम नगर भी है।

लेकिन, इस केंद्र की स्थापना से पूर्व, बाजार का सर्वेक्षण कर यह जानना आवश्यक होगा कि किस प्रकार के वस्त्रों की अधिक खपत है? भारतीय फैशन के प्रचलन की संभावनाओं पर अभी तक कोई ध्यान नहीं दिया गया है, पर मौलिक सूझबूझ और गुणों के समावेश से इसे देश के लिए लाभदायक बनाया जा सकता है।

(‘संडे स्टैंडर्ड’ से साभार)

सावित्रीबाई खानोलकर द्वारा प्रस्तुत

संत तुकाराम

इतना सच्चा और उत्कट था, संत तुकाराम का अपने आराध्य देव विठ्ठल के प्रति प्रेम कि वे स्वयं आकर, तुकाराम को अपने विमान में बैठाकर स्वर्ग ले गये थे। कई प्रत्यक्ष-दर्शियों ने इस अपूर्व दृश्य को देखा।

सन १६१६। सागर महाराष्ट्र राज्य भयंकर अकाल की चपेट में था। अकाल के कारण ही, महाराष्ट्र के देहू गांव के एक ब्राह्मण को साहूकर से २५० रुपये का उधार लेने को बाध्य होना पड़ा। जब वह यह उधार न लौटा सका, तो गांव के पाटिल ने बतौर सजा उसके गले में एक गलफांसी बांध दी।

विठोबा के भक्त तुकाराम से ब्राह्मण की यह दुर्दशा नहीं देखी गयी। उसकी पत्नी जिजाबाई ने अपने आभूषण गिरवी रखकर, जो रकम अपने पति को व्यापार करने के लिए भेजी थी, वह उसने कर्ज लौटाने के लिए ब्राह्मण को दे दी। एक क्षण भी, सोच-विचार किये बिना।

विठोबा की भक्ति, महाराष्ट्र के नामी संत तुकाराम को विरासत में मिली थी। उनके एक पूर्वज विशम्भर विठोबा के परम भक्त थे, और हर पखवारे विठोबा के दर्शन के लिए पंढरपुर जाया करते थे।

मगर, वहां से लौटते समय उन्हें कष्ट होता था। उनकी इस भक्ति देखकर, एक रात विठोबा ने स्वप्न में उन्हें कहा कि भविष्य में उन्हें पंढरपुर आने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे आगे से उनके साथ ही रहेंगे। उन्हें सपने में, उनके एक बाग में गड़ी विठोबा की मूर्ति दिखायी पड़ी, जिसे निकलवाकर उन्होंने इन्द्रयाणी नदी के किनारे प्रतिष्ठित किया और एक मंदिर का निर्माण भी करवाया। तुकाराम के पिता बल्होबा और माता कनकी भी विठोबा के भक्त थे, जो विठोबा की प्रार्थना के फलस्वरूप ही संत तुकाराम जैसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी। वे पेशे से कुन्बी (व्यापारी) थे।

प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा के बाद, तुकाराम को पारिवारिक व्यापार के धंधे में लगाना पड़ा। उनका विवाह कम आयु में ही पूना के एक जमींदार की पुत्री खुर्बाई के साथ कर दिया गया था। उनका दूसरा विवाह

जिजाबाई से हुआ, रखुमाई के निधन के
फलतः।

अपनी मीठी वाणी और मृदु स्वभाव के
कारण, तुकाराम का धंधा अच्छा चलता
था। अपने धार्मिक स्वभाव के कारण वे
किसी साधु और दीन-दुखी को अपनी
दुकान से वापस नहीं लौटाते थे।

०००

माता-पिता के देहावसान के बाद,
तुकाराम की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी,
और अकाल के दिनों में तो बदतर हो
गयी। इसका एक कारण यह भी था कि
उसकी अपनी आर्थिक स्थिति चाहे जैसी
हो, वे अपने घर या अपनी दुकान पर आये
किसी जहूरतमंद को बिना कुछ दिये
काम नहीं लौटाते थे। जिजाबाई इस
कारण बहुत दुखी रहती थी, और हमेशा
शिकायत करती थी।

जिजाबाई के रोज के तानों से तंग
आकर, तुकाराम मंदर पर्वत पर जाकर
रहने लगे। वहां वे एकनाथ कृत 'भागवत',
रामदेव के अभंगों और ज्ञानेश्वर कृत
'गोविन्दगी' का पाठ करते, और कीर्तन
करते। लेकिन उनके वहां पहुंच जाने से
जिजाबाई का कष्ट और बढ़ गया था।
उन्होंने उसे खाना लेकर धूप में पर्वत पर
पहुंछा पड़ता था। एक दिन, खाना लाते-
लाते उसके पांव में एक बड़ा कांटा चुभ
गया। वह कष्ट से कराहने लगी। बिठोबा
उसका दुख न देखा गया, और उन्होंने
सही तिकालकर जिजाबाई को पर्वत में

१२१



जाने में सहायता की !

जब तुकाराम को जिजाबाई से इस
घटना का पता चला, तो उन्होंने आंसू-भरे
नेत्रों से कहा, 'आह ! मेरे कारण पांडुरंग को
कितना कष्ट हुआ। आगे से मैं घर पर
आकर भोजन करूंगा, ताकि मेरे कारण
पांडुरंग को कोई कष्ट न हो।'

सन १६१९ में माघ की दशमी को
तुकाराम को सपने में एक बाबा के दर्शन
हुए, जिन्होंने उन्हें 'रामकृष्ण हरि' का
मंत्र दिया। उस दिन से वे 'रामकृष्ण हरि'
का कीर्तन करने लगे। अब वे स्वयं भी
पांडुरंग की प्रशंसा में अभंगों की रचना करने
लगे थे, जिन्हें वे बड़े प्रेम से गाते थे। उनके
कीर्तनों में भाग लेने के लिए देहू, पूना और
लोहगांव से लोग आते थे। खेतों में काम
करते हुए किसान, और घर में चक्की पीसती
हुई महिलाएं बड़े प्रेम से उनके अभंग गातीं।

सारे महाराष्ट्र में उनके अभंग गाये जाने लगे थे ।

०००

रामेश्वर भट्ट नामक एक ब्राह्मण उनकी इस लोकप्रियता से ईर्ष्या करने लगा था, और उनके अभंगों को अपना बताकर तुका को बदनाम करने लगा था । उसने यह घोषणा करके कि तुकाराम के अभंग वेदों के उपदेशों के विरुद्ध हैं, उन्हें आदेश दिया कि वे अपनी सब रचनाएं नदी में प्रवाहित कर दें ।

ब्राह्मण पंडित के आदेश का पालनकर, तुकाराम ने दुखी मन से अपनी सब हस्त-लिखित रचनाओं को एक कपड़े में बांध कर नदी में प्रवाहित कर दिया । अगले १३ दिनों तक वे बिना कुछ खाये, पिये, 'विठ्ठल, विठ्ठल पांडुरंग' का जाप करते रहे ।

१३ वें दिन लोगों को एक चमत्कार देखने को मिला । नदी की लहरों ने कपड़े में बंधी उनकी रचनाएं उस किनारे पर लाकर पटक दीं, जहां तुकाराम निरन्तर विठ्ठल को पुकार रहे थे । अपनी रचनाओं को वापस आया देखकर तुकाराम के हर्ष का ठिकाना न रहा, और वे कृतज्ञ भाव से सारी रात कीर्तन करके अपने आराध्य देव विठ्ठल को याद करते रहे ।

उधर रामेश्वर भट्ट को अपने १ कये की सजा मिली । एक फकीर के शाप से उसे ऐसा चर्मरोग हो गया, जो किसी इलाज से ठीक होने में नहीं आता था । उसने

आलंदी स्थित ज्ञानेश्वर की समाधि जाकर संत ज्ञानेश्वर से अपना कष्ट करने की प्रार्थना की । ज्ञानेश्वर महाराज भट्ट को सलाह दी कि वह जाकर तुकाराम से क्षमा मांगे; उसका कष्ट दूर हो जायेगा और सचमुच भट्ट के तुकाराम से क्षमा मांगते ही उसका कष्ट तत्काल दूर हो गया । इस घटना के बाद, वह तुका का भक्त बन गया ।

०००

जिन दिनों तुकाराम की ख्याति उनके निवासस्थान देहू को लांघकर सारे महाराष्ट्र में फैल रही थी, उन्हीं दिनों जिनको भी राष्ट्र-नायक के रूप में उभर कर आ रहे थे । साधु-संतों का आदर करने वाले शिवाजी, जिन्होंने १४ वर्ष की आयु में तोरण दुर्ग को फ़तह किया था, के लिए तुकाराम की ख्याति से बेखबर होना संभव था ?

एक रात जब तुकाराम अपने अपने भक्तों से घिरे बैठे थे, शिवाजी ने कुछ दूतों ने घर पर दस्तक देकर उनकी पत्नी से पूछा, 'क्या संत तुकाराम का यही है ?' जिजाबाई के हां कहने पर दूतों ने वे मूल्यवान भेंट घर में आरंभ कर दी, जो वे शिवाजी की से तुकाराम महाराज के लिए लाये जिजाबाई भेंट में आये कीमती शानदार वस्त्रों और स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थों को देख-देखकर खुश हो रही थीं कि महाराज वहां पधारे । उन्होंने इन चीजों

को समायोजित करने के लिए अपनी
अपना कुछ भी
नेश्वर महाशय
जाकर तुकाराम
दूर हो जाने का
कारण से खराब

काल दूर हो गया
तुका का प
को कोने में छिपे खड़े शिवाजी ने जब
दृश्य को देखा, तो तुकाराम के प्रति
श्रद्धा और अधिक बढ़ गयी। उन्होंने
तुकाराम के चरण छू लिये। तुका-
राम ने उन्हें आशीर्वाद देकर बताया कि
उन्होंने उनके उपहार वापस कर दिये
मेरे लिए सांसारिक वस्तुओं का कोई
उभर कर नहीं रहा है? मेरे लिए अब पाण्डुरंग
का आदर करने ही मेरी एकमात्र संपदा
१४ वर्ष की आयु में भक्ति है।'।

किया था, के लिए
वेखदर होना
राम ने बड़ी नम्रता से कहा, 'मेरे से
सताग में कृष्णा नदी के किनारे
वाले स्वामी रामदास तुम्हारे अधिक
सिद्ध होंगे। उन्हें राष्ट्र के उत्थान
के लिए अधिक चिन्ता है, जबकि मुझे तो पाण्डु-
के सिवा कुछ और नहीं सूझता।'।

शिवाजी ने कुछ दिन तुकाराम के साथ
रुके, उनके अभंग सुने, और उनके साथ
लिया। एक बार जब वे एक मंदिर
तुकाराम के साथ कीर्तन कर रहे थे
एक मुसलमान सरदार ने यह सूचना
प्राप्त की कि शिवाजी वहां छिपे हैं, उस
दिन को घेर लिया। तुकाराम को जब

इस बात पता चला, तो उन्होंने पाण्डुरंग
की याद और तेज कर दी, और मन ही मन
प्रार्थना करने लगे कि शिवाजी पर कोई
संकट न आ पाये। और पाण्डुरंग ने अपने
भक्त की प्रार्थना सुन ली, और मुस्लिम
सैनिकों को सर्वत्र शिवाजी दिखायी देने
लगे।

अपने साधना पथ पर चलते हुए
तुकाराम को अंत तक अनेक कष्टों का
सामना करना पड़ा, पर उन्हें अपने कष्टों
की परवाह कभी नहीं रही। वे सदा दूसरे
के कष्टों का ही खयाल रखते थे, और उन्हें
दूर करने की तत्पर रहते थे, भले ही ऐसा
करते हुए उनके कष्ट और क्यों न बढ़
जायें। और उनके कष्ट जितने बढ़ते जाते
थे, उतने ही वे अपने पाण्डुरंग के और
निकट आते जाते थे।

अपने अनेक अभंगों में तुकाराम ने
भगवान को शक्तिविक्रम में झूठ और
धोखेबाज भी कहा है, मगर उसी प्रकार
जैसे एक बच्चा प्यार से अपनी मां को
बुरा-भला कहता है। और अपने पदों में वे
स्वयं अपनी बुराई करने से भी नहीं चूके।

उनकी एकनिष्ठ भक्ति से प्रसन्न होकर
पाण्डुरंग ने १६५० की फाल्गुन के कृष्ण
पक्ष में सदेह उन्हें अपने पास बुला लिया,
ऐसी किंवदन्ती है। प्रत्यक्षदर्शियों का
कहना है कि इतना सच्चा और उत्कट था
संत तुकाराम का अपने आराध्य देव विठ्ठल
के प्रति प्रेम कि वे स्वयं आकर, तुकाराम को
अपने विमान में बैठाकर स्वर्ग ले गये थे।



वहाँ से आते मेरे गीत

जहाँ तुम वंशी ढेर रहे

रवीन्द्र प्रमर

वहाँ से आते मेरे गीत
जहाँ तुम वंशी ढेर रहे।

लता-कुंजों के हरित वितान जहाँ तुम रास रचाते हो,
चूमकर किसी प्रिया के अधर प्रणय का रस बरसाते हो
वहाँ के लाज-भरे संदर्भ—
कल्पना के क्षण घेर रहे।

जहाँ तुम गाय चराते नित्य ओढते हो कनेर की छांव,
जहाँ से पीकर दुपहरियः लौटते हो तुम नंगे पांव,
वहाँ के नीले-पीले दृश्य
अनूठे बिम्ब उकेर रहे।

जहाँ बनकर शिशु का उल्लास ठुमकते हो तुम आंगन में,
मांगते सोनचिरैया, मातु बलैया लेती है मन में,
वहाँ के ममतामय अनुबंध
तुलिका रस की फेर रहे।

धंसे तुम कालीदह में जहाँ काल की ज्वाला झेल रहे,
तोड़कर एक-एक विष-दंत सांप के फन से खेल रहे,
वहाँ के दुख-भंजन संकल्प
छंद में विभा विखेर रहे।
वहीं से आते मेरे गीत—
जहाँ तुम वंशी ढेर रहे।

—शाकुंतलम्, मैरिस रोड, अलीगढ़-२०२००१



राइडर हेगर्ड के विश्व-विख्यात उपन्यास

किलयोपैटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

का सार-संक्षेप : हरिमोहन शर्मा द्वारा प्रस्तुत

अव्याख्येय है क्लियोपैट्रा और एंत्तोनी की उद्दाम, उन्मुक्त और दीवाना प्रणय गाथा, जो आज तक इतिहास-लेखकों के लिए एक अनबूझ पहेली बनी हुई है।

मायाविनी रूपवती क्लियोपैट्रा के रहस्याच्छादित जीवन से जुड़े अनेक अनूत प्रश्नों के उत्तर आप पायेंगे इस विश्वविख्यात रोमांस में, जो इस्तुतः क्लियोपैट्रा के अंतिम द्वंद्वी हर्माशिस की आत्मकथा है। काल्पनिक होते हुए भी यह आत्मकथा, जिसके आरोपों से क्लियोपैट्रा का सारा बहुरंगी जीवन सुस्पष्ट दिखायी देता है, पर्याप्त सीमा तक ऐतिहासिक दस्तावेजों तथा प्रामाणिक पुराण-कथाओं पर आधारित है।

मिस्र के प्रमुख धर्मगुरु होने के अलावा, हर्माशिस क्लियोपैट्रा के पद के खंडस दावेदार भी थे। अपने दावे को सच्चा सिद्ध करने के प्रयास में उन्हें कई बार क्लियोपैट्रा के माया-जाल में फंसकर, अनेक यातनाओं के दौर से गुजरना पड़ा। किंतु, अंत में उनके प्रतिरोध की आग तब शांत हुई, जब उन्होंने स्वयं अपने हाथों क्लियोपैट्रा की हत्या की। यह अद्भुत रोमांस उस मारक प्रभाव की ओर भी इंगित करता है, जिसने अंतिम दिवस क्लियोपैट्रा और एंत्तोनी के ऐश्वर्य को सोखकर रख दिया था, और उनकी विरक्त निर्णय-शक्ति को पूरी तरह कुंठित कर दिया था....

जन्म ... और मृत्यूसूचक भविष्यवाणी

ओसरिस देवता की सौगंध, जो कुछ लिखूंगा, सच ही लिखूंगा, सच के अलावा कुछ और नहीं लिखूंगा।

मैं, अर्थात् हर्माशिस; एमेंती का शासक और मिस्र के एक भूतपूर्व फरोआ द्वारा प्रतिष्ठापित एक भव्य मंदिर का वंशानुगत पुरोहित, मिस्र के ताज का असली दावेदार। बड़े धर्मोद्वेसाह के साथ मैंने तरुणावस्था में साधना-पथ पर चलना आरंभ किया था, मगर मार्ग में ही पतनोन्मुख हो गया। और तब हर यातना, हर शर्म और हर विश्वासघात को सहा मैंने।

अपनी कष्टपूर्ण कहानी सच-सच लिखी है मैंने। न कुछ छिपाया है, न कुछ घटाया-

बढ़ाया है।

मिस्र के एवाउथिस नगर में जिस दिन मेरा जन्म हुआ था, उसी दिन उसी नगर में मिस्र की महारानी क्लियोपैट्रा का भी हुआ था।

अपनी मां की मुझे कोई याद नहीं क्योंकि मेरे जन्म के तुरन्त बाद उन्होंने मेरा प्राण त्याग दिये थे। किन्तु, मरने के बाद उन्होंने मेरे सर पर एक सर्पिकार पहनाकर, एक विचित्र भविष्यवाणी की। उच्च स्वर में उन्होंने कहा था, 'तुम जात पुत्र की जय हो! भावी फरोआ की जय हो! मगर तुम मिस्र के शासक बन सकोगे, मेरे पुत्र, जब तुम सदा के तन-मन को पवित्र और निष्कलंक रखोगे'।

नवनीत

१२६

र दोनानो प्रप्रा
हुई है ।
अनेक अनुसन्धि
लयोपेक्षा के प्रति
जिसके हारोखे
सीमा तक पहुँ
ने की स्त्री के प्रेम में पड़े कि लक्ष्य चूक
जाया तुमसे ।'
भविष्यवाणी पूरी करते ही, मां चल
की दी । मैं उस समय उनके स्तन से
नका सोया पड़ा था । उनकी भविष्य-
वाणी की बात औरों ने मुझे बताया थी ।
मेरे पिता इस भविष्यवाणी को सुनकर,
चकर रह गये थे । उन्हें डर था कि यदि
भविष्यवाणी की बात उन दिनों मिस्र
राज्य करने वाले तोल्मे के कानों में
पहुँची तो मेरी मृत्यु निश्चित है । उन्होंने
उपस्थित सभी व्यक्तियों से शपथ ले
कि वे इस घटना का जिक्र किसी से
न करेंगे ।

आगे चलकर, सवने इस शपथ का पालन
न-हमारे घर में काम करने वाली
बूढ़ी औरत अतोउआ को छोड़कर ।
यह बात सबको बता दी । बात
कैसे फैलते फरोआ तोल्मे तक भी पहुँची ।
तब तुरंत मेरे वध के आदेश दे दिये ।
हथों में तलवार लेकर, फरोआ के
कमरे मेरा वध करने के लिए आये । तब
अतोउआ ने ही, जिसकी वजह से यह
वध हुआ था, अपने बच्चे
को मेरी ही आयु का था, सैनिकों को
मेरी जान बचायी । जब सैनिक मुझे
ले जा रहे थे, तो उसने चिल्लाकर
कहा, 'वह तो असली बच्चे का दूध-
पान है । असली बच्चा तो यह रहा ।'
सैनिक उसके बच्चे का कटा सर
मेरे लिये वहाँ से चले गये थे ।

इस घटना के बाद, मेरे पिता ने सर्वत्र
मेरे बारे में यह प्रचार करा दिया कि अपने
बेटे के वध के बाद, उन्होंने मुझे-दूर के
एक रिश्तेदार के लड़के को-गोद ले लिया
है । बड़ा होने पर, इस प्रचार के कारण,
मैं भी अपने को अपने पिता का गोद लिया
हुआ बेटा ही मानता रहा । यह गलत-
फहमी एक दिन बड़े विचित्र ढंग से दूर
हुई ।

तरुणाई के दिन थे, और अपनी बलिष्ठ
काया और निर्भय मन लिये, मैं गर्व से
सीना ताने घूमा करता था । एक दिन, वन
में, एक अजनबी से शर्त जीतने के चक्कर
में मैंने एक शेर को जान से मार डाला ।
सब इस समाचार से बहुत प्रसन्न थे, लेकिन
मेरे पिता काफ़ी अप्रसन्न थे । कारण पूछने
पर उन्होंने बताया, 'इससे रहस्य खुल
जायेगा ।' 'रहस्य ? कैसा रहस्य ?'

और तब उन्होंने बताया कि मैं उनका
असली पुत्र हूँ, और वे इस बात को जान-
बूझकर इसलिए छिपाने का प्रयत्न करते
आ रहे हैं कि यह रहस्योद्घाटन मेरी मौत
का कारण बन सकता है । और ऐसे पराक्रम
की गाथाएं यह रहस्योद्घाटन अवश्य कर
देगी, क्योंकि भावी फरोआ के अलावा
कोई और शेर जैसे पशु का वध करके नहीं
दिखा सकता ।

फिर उन्होंने मुझे नील नदी के किनारे
स्थित अन्नू नगर में जाकर धर्म-गुरु से
मिस्र के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान में दीक्षित
(शेषांश पृष्ठ १२९ पर)

अमरीकी कविता

अंतिम स्टेशन

हर प्रस्थान के लिए
 एक आगमन है ।
 यही है नियम कुठार का
 जिसका हत्या कभी पेड़ था ।
 यही है वह रहस्य
 जिसके आगे आग को भी हार
 माननी पड़ती है, आग,
 जिसका धुआं अपने ही रास्ते पर चलकर
 खो जाता है ।
 छोटी-छोटी पालों के वेड़ों की भांति
 पत्तियां मंडराती हुई आगे बढ़ती हैं,
 और न जाने कहां पहुंचती हैं ।

वर्षों के भार से भारी हुई पीठों वाले बच्चे
 रेलगाड़ी की खिड़कियों से हाथ हिलाते हैं ।
 लेकिन कहीं एक बादल
 रूप धारण कर रहा है,
 और हिम की पंखुड़ियों में
 पुष्पित हो जायेगा ।
 और एक तारे से चली रोशनी ।
 जो हमारी ओर लाखों वर्ष पहले
 खाना हुई थी
 आखिरकार आ पहुंची ।

अनु. : हरि • लिन्डा पास्तन

जर्मन कविता

सामिल

रात है—
 आर्क-लैंपों और कारों की पीछे काँच का एक पैर
 रात के श्वेत श्वज अलस्तर को निरुद्ध
 सतह पर सुनिश्चित
 परछाइयां पेड़ों के नीचे चलती हैं ।
 यह मैं हूँ ।

अंधेरे कमरे की बातें ।
 अंधेरे कमरे की यादें ।
 पिघलते बर्फ पर पड़ती परछाई की धुंध
 दर्पण की पैरवांसियों पर खड़ी,
 तट की रोज़ाना

अनुद्भासित क्षेत्र मिट जाते हैं ।
 ये सारे वाक्य । अवसरों की सूची ।
 भूलो मत ।
 ग्रामोफोन रेकार्डों की बात ।
 पूरा चलकर रुक गये साउंडट्रैक की बात

और प्रश्न वे वाक्य हैं, जिनका
 उच्चारण मैं नहीं कर सकता ।
 और विचार वे पक्षी हैं, जो उड़ते हैं
 और कभी नहीं लौटते ।
 रूपांतर : हंस • हेल्मुट हिम्मेन्

पितामर्ष दिया ।

जहाँ मैं रा देवता के मंदिर में रहते थे
मैंने सपना, मेरे चाचा, जिनके मुख से
मैंने सुना था, मेरी वाणी उच्चारित होती थी ।

मैंने धर्म, ज्योतिष-विज्ञान,
विज्ञान, स्वप्न-विज्ञान, राजनीति,
इतिहास, रोमन और यूनानी
की शिक्षा लगातार पाँच वर्षों
का प्राप्त की ।

पाँच वर्ष बाद, जब मैं उनसे विदा लेने
जा रहा था, तो उन्होंने कहा, 'जो ज्ञान तुमने
अपना लिया है, हमारा शिष्य, अब उसका उप-
पादक बनने का समय आ गया है । तुम्हें
जाकर अपने पूर्वजों के सिंहासन

पर अधिकार करना है । तुम्हें ज्ञात ही है
कि मैंने भाई तोल्मे को हटाकर किस
राज्य को मिलोपैट्रा मिस्र की रानी बन गयी
थी । पर, तुम्हें शायद यह ज्ञात नहीं है कि

मैंने अपने रोम के महान सीज़र को अपने
समय के उसे पूर्णतया निस्सहाय बना
कर दिया और किस प्रकार उसके मोहक
शक्ति के आगे, सौ युद्धों का विजेता सीज़र
एक कठपुतली बनकर रह गया था ।

मैंने दिखायी देने वाली नारी, पृथ्वी की
शक्ति है । वह सब मानवीय
कार्य का संचालन और नियंत्रण
करती है । वड़े धैर्य और बड़ी सूक्ष्मता के
साथ वह अपने को सर्वाधिक शक्तिशाली
बुद्धिमान पुरुष को मनचाहा नाच
कराती रही है । उसी के लिए पुरुष युद्ध
करता है, और अपनी शक्ति को व्यर्थ करता

रहता है । आज तक कोई पुरुष उसके रहस्य
को नहीं समझ पाया है, और कभी समझ
पायेगा, ऐसा प्रतीत भी नहीं होता ।'

'क्लियोपैट्रा की आज क्या स्थिति है,
गुरुदेव !'

'क्लियोपैट्रा की कोख से सीज़र के पुत्र
सेज़ेरियस का जन्म हुआ । उसके बाद,
सीज़र ने तोल्मे और क्लियोपैट्रा को
संयुक्त रूप से मिस्र पर राज्य करने को
कहा । पर, सीज़र की मृत्यु के बाद, क्लियो-
पैट्रा ने अपने भाई तोल्मे को, जिसे सीज़र
ने उसका पति भी घोषित कर दिया था,
विष देकर मरवा डाला, और अपने नये
रोमन प्रेमी पोम्पियस की सहायता से,
मिस्र पर राज्य कर रही है । मगर अधि-
कांश मिस्रवासी उससे व्रस्त हैं, और उस
उद्धारक की वाट जोह रहे हैं, जो उन्हें
क्लियोपैट्रा से मुक्ति दिलवायेगा । और
वह उद्धारक तुम्हारे अतिरिक्त और कौन
हो सकता है, हमारा शिष्य ? वस्तुतः तुम्हारा
जन्म ही इस कार्य के लिए हुआ है । मगर,
इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए
तुम्हें हर नारी, और विशेष रूप से क्लियो-
पैट्रा के आकर्षण से दूर रहना होगा । किसी
भी नारी के रूप-जाल में फँसे कि तुम मिस्र
के राज्य के अलावा, अपनी सुख-शांति भी
गवां बैठोगे । मेरी इस चेतावनी को सदा
याद रखना, वत्स !'

०००

मैं मिस्र की देवी इसिस की मूर्ति के
सामने सर झुकाये खड़ा था । देवी ने मुझे

विशेष रूप से आमंत्रित किया था, अपना कोई संदेश देने के लिए।

धीमे किंतु स्पष्ट और मृदु स्वर में देवी कह रही थी : 'भुझसे डरो मत, हर्माशिस! कारण, मैं वह हूँ जो सबको भय से मुक्त करती है। मैं सब कुछ हूँ, और ऐसा कुछ नहीं है, जो मुझसे परे या मुझमें समाहित नहीं है। मेरे ही अनेकानेक रूप तुम्हें अपने चारों ओर दिखायी देते हैं।'।

मैं चुपचाप सर झुकाये खड़ा रहा, क्योंकि काफ़ी डरा हुआ था। पर, इसिस का स्वर मुझे सुनायी दे रहा था :

'तुम उस वंश के हो हर्माशिस, जो युग-युग से मेरी पूजा करता आया है, और जिसने मित्र के सिंहासन और मंदिरों की शुचिता की रक्षा की है। यदि तुम मित्र की गद्दी पर बैठने में असफल रहे, तो मैं मित्र में एक याद भर बन जाऊंगी। मैं चली जाऊंगी, चूँकि मेरा आदर करने वाला कोई नहीं रहेगा।'।

'क्या मुझे सफलता नहीं मिलेगी, देवी?' मैंने डरते-डरते पूछा।

'इस प्रश्न का उत्तर मैं नहीं दे सकती, हर्माशिस, क्योंकि मैं नियति का निर्माण नहीं करती। नियति तुम जैसे मानवों के लिए है, मेरे लिए नहीं, क्योंकि उसका जन्म अदृश्य द्वारा विहित नियमों द्वारा होता है। तुम्हारी सफलता या असफलता इस बात पर निर्भर है कि सफलता के लिए प्रयास करते समय तुम्हारा मन कितना पवित्र रहता है। एक बार आदमी पुण्य के मार्ग

नवनीत

से विचलित हुआ कि पाप के वृक्ष के मार्ग से पुनः पुण्य के मार्ग पर आने में काफी श्रम और समय लग जाता है। मुझे आशा है कि तुम्हें इस दौर से मुक्त नहीं पड़ेगा।'।

सेपा की चेतावनी मुझे फिर बार गयी।

फरोआ के रूप में अभिषेक और की शुरुआत

और, अपने एक जन्मदिन पर, धर्म-गुरुओं और पुरोहितों फरोआ-मित्र के शासक-के रूप में अभिषेक किया।

मां इसिस की पूजा के बाद, पुरोहितों ने मुझे फरोआ के रूप में दीक्षित किया, उन नियमों और रहस्यों से परिचित कराया, जिनका ज्ञान भावी फरोआ के अनिवार्य है।

बाद में वहाँ उपस्थित सैकड़ों व्यक्ति ने सर्वसम्मति से मेरे प्रति राजकीय शपथ ली, और मुझे फरोआ बनने प्रयास में पूरा सहयोग देने का वचन दिया।

वहीं एक पड़यंत्र रचा गया, पैट्रा की हत्या का। इस पड़यंत्र के अनुसार मुझे येन-केन-प्रकारेण क्लियोपेट्रा के रंग में प्रवेश लेना था, और एक अवसर देखकर, उसकी हत्या कर को उसका उत्तराधिकारी और नया फरोआ घोषित कर देना था। सैकड़ों न्यक्तियों ने मेरे प्रति राजकीय शपथ ली थी, वे सब इस पड़यंत्र

न के वक्तव्य
पर जाने में
जाता है
दौर से पुनः

न के वक्तव्य
पर जाने में
जाता है
दौर से पुनः
ने फिर बार
के ओर
मदिन पर
र पुरोहित

न के वक्तव्य
पर जाने में
जाता है
दौर से पुनः
ने फिर बार
के ओर
मदिन पर
र पुरोहित
न के वक्तव्य
पर जाने में
जाता है
दौर से पुनः
ने फिर बार
के ओर
मदिन पर
र पुरोहित

न के वक्तव्य
पर जाने में
जाता है
दौर से पुनः
ने फिर बार
के ओर
मदिन पर
र पुरोहित
न के वक्तव्य
पर जाने में
जाता है
दौर से पुनः
ने फिर बार
के ओर
मदिन पर
र पुरोहित

रिक सौंदर्य तो अत्यंत कांतिमय था ही,
उसकी हिंस्र आत्मा से प्रकाशित दीप्ति और
भी अधिक तेजोमय थी ।

अपने हव्शी दास की दुर्दशा देखकर,
उसने मुझसे पूछा—‘तू कौन है रे ! और
तुझे मेरी शोभायात्रा के दौरान मेरे दास
पर प्रहार करने का दुःसाहस कैसे हुआ ?’

‘मैं भविष्यवक्ता हम्रांशिस हूं, एवा-
उथिस के राज्यपाल और राजपुरोहित का
पुत्र, जो इस नगर में अपना भाग्य आजमाने
आया है । मैंने इस दास को इसलिए मारा
कि उसने अकारण एक निर्दोष महिला को
सताया था ।’

अपने एक सैनिक से इस बात की पुष्टि
करके कि दोष वास्तव में हव्शी का ही
था, उसने उस सैनिक से उस दास का
दायां हाथ काट देने को कहा । फिर उसने
अपने सर पर चंवर करती हुई आकर्षक
युवती के माध्यम से रथ के सारथी को रथ
आगे चलाने का आदेश दिया ।

अगले दिन, इसी आकर्षक युवती को
अपने स्थान पर, पाकर मैं चकित रह
गया ।

०००

युवती का नाम था चारमियों, और वह
मेरे चाचा की पुत्री थी, अर्थात् मेरी भतीजी,
जिसे मैं पहली बार देख रहा था । वह
जिस प्रकार अनुरागपूर्ण नेत्रों से मुझे निहार
लेती थी, उससे जाहिर था कि उसे मुझसे
प्रथम दृष्टि में प्रेम हो गया था । चाचाजान
ने मुझे बताया था कि चारमियों भी हमारे

षड्यंत्र में शामिल थी, और उसी सिलसिले में हमसे मिलने आयी थी।

किलयोपैट्रा की हत्या की जो अंतिम योजना बनी, वह इस प्रकार थी : चार-प्रमियों की सहायता से मैं राजमहल मेंवेशि पाकर वहाँ के तौर-तरीकों से परिचित हो जाऊंगा, और एक दिन मौका मिलते ही, चारमियों के सहयोग से किलयोपैट्रा की हत्या कर दूंगा। ठीक उसी समय हमारे सहयोगी, इशारा पाकर राजमहल में घुस आयेंगे, और राजमहल पर पूरा अधिकार कर लेंगे।

‘किंतु मुझे राजमहल में प्रवेश कैसे मिलेगा?’

‘उसमें कोई कठिनाई नहीं होगी। किलयोपैट्रा स्वयं आपको राजमहल में बुलाने की इच्छुक है। उसकी बातों से लगता है—और वह अपने दिल की सारी बातें मुझे बता देती है—कि वह आपसे प्रभावित हो गयी है, और आपको अपने भविष्यवक्ता के रूप में अपने साथ रखना चाहती है। उसके आदेशानुसार मैं आपसे यह पूछने आयी हूँ कि क्या उसका यह प्रस्ताव आपको स्वीकार है?’

उत्तर दिया मेरे चाचा ने, जो तुरंत बोले, ‘स्वीकार है, स्वीकार है। हर्माशिस कल ही राजमहल में उपस्थित हो जायेगा।’

चारमियों मेरा हाथ चूमकर, मेरी ओर मुस्कराती हुई, चुपचाप बाहर चली गयी। भविष्य मुझे बड़ा डरावना और अनिश्चित लग रहा था।

नवनीत

किलयोपैट्रा का विष्वास जीतने में कोई कठिनाई नहीं हुई। देखते ही देखते मैं उसका स्नेहपात्र और विश्वासपात्र दोनों बन गया। मेरे जादू के खेल से विशेष रूप से पसंद आते थे। मैंने जब एक दिन एक साधारण तुला को असंख्य फनाते सपों में परिवर्तित कर दिया, तो वह स्तब्ध रह गयी। उस समय इतनी मोहक लग रही थी कि मुझे याद ही नहीं रहा था कि मैं कैसे उसकी हत्या करूँ। का साहस जुटा पाऊंगा। अन्ततः सौंदर्य की स्वामिनी होने के अलावा, कुशाग्र बुद्धि भी थी, और कितनी पेचीदा से पेचीदा समस्या को मुझसे रख देती थी, यह देखकर मैं चिंतित होता जाता था। लेकिन, मुझे वह थोड़ा ही थी, न मालूम क्यों, और इसीलिए अपना मित्र बनाये रहने की इच्छुक थी, न मालूम क्यों, और इसीलिए पीछे लगी रहती थी। वह कब कब चली जाती, मुझे कुछ पता ही पड़ता था। उसकी मेहरबानी से मेरे काम, सुचारु रूप से चलते रहते थे। जिस ढंग से वह सदा मेरे साथ थी, उससे इस बारे में कोई संदेह नहीं था कि वह मन ही मन मुझे प्रेम कर रही है, और मेरे बिना नहीं रह सकती।

लेकिन, मैं सब जंजालों से मुक्त नहीं था, जब मैं घड़ी की प्रतीक्षा में था, जब मैं बाहर, अपने प्रतीक्षातुर कह सकूँगा, ‘खुशियाँ मनाओ।’

नहीं थी।' ऐसे शुभचिंतकों की संख्या कम नहीं थी, सेपा के ही ५०० अनुयायी इस संकेत की प्रतीक्षा में थे कि कब हाथ में तबल, लेकर राजमहल में प्रवेश किया। मैंने जब सोचा।

मैं अपने हाथ से क्लियोपैट्रा की हत्या कर दिखाना चाहता था, लेकिन चारमियों उस समय मेरे सब सहयोगी इस विषय में कि मुझे आत्महत्या से कि कुलटा क्लियोपैट्रा की हत्या की कदम नहीं बढ़ाऊँ, क्योंकि उसके स्थान पर मिस्र का शासन देने की जिम्मेदारी के अलावा, मैं लोगों पर ही आने वाली थी। जिस छुरे की कटाई करने चोगे में छिपाकर, मैं क्लियोपैट्रा को मुझसे हत्या करने वाला था, उस पर मिस्र ही मैं चिकित्सा, मेरे विषय की नियति निर्भर थी। वह थोड़ा देर तक, जब मैं अपने कक्ष में ब्रेचैनी चक्कर लगा रहा था, चारमियों ने मुझसे कहा, 'महारानी क्लियोपैट्रा आपके पास आ रही हैं।' कब आती हैं? पता नहीं, उनके मन में क्या है! कुछ पता ही नहीं, मैं जानती हूँ, नहीं तो मुझे यहाँ देखकर खामखाह संदेह हो जायेगा।' कहते रहते वे चली गयी।

तुम तो भई, इतनी ऊँचाई पर रहते कि मैं सीढ़ियाँ लांबती-लांबती थक गयी। क्लियोपैट्रा ने हाँफते हुए, मेरे कक्ष में प्रवेश करते हुए कहा। मैंने झुककर कहा, 'स्वागत है, महारानीजी! यह गरीब-जब मैं महारानी आपकी शुभागमन से पवित्र हो गया।'

लेकिन क्लियोपैट्रा का ध्यान मेरी

बातों की ओर न था। वह फर्श पर पड़े एक रुमाल को देख रही थी। रुमाल चारमियों का था, जो उसके जन्मी में जाने से पड़ा रह गया था। मैंने उस रुमाल को खिड़की से बाहर फेंकते हुए कहा—'शायद उस औरत का है, जो राज यहाँ सफाई करने आती है।'

क्लियोपैट्रा ने हंसकर कहा, 'कैसा लगेगा उस औरत को जब वह अपने रुमाल को बाहर पड़ा देखेगी! शायद मेरी माला के साथ भी तुम ऐसा ही सुनूक करोगे। देखो, इसके साथ फूल सूख गये हैं। तुम इसे रख सकते हो।'

'यह माला भले ही सूख गयी हो, पर महारानी क्लियोपैट्रा की है। मैं इसे उनकी स्मृति के रूप में संभाल कर रखूँगा।'

तभी मुझे लगा, कक्ष के एक परदे के पीछे कुछ हलचल हुई। समझते देर न लगी कि उसके पीछे खड़ी चारमियों को मेरी बात अच्छी नहीं लगी, और वह नाराजगी जाहिर कर रही है।

क्लियोपैट्रा ने, जो मुझे गौर से देख रही थी, सहसा पूछा—'तुम्हारी आयु क्या है, हर्मागिस?'

'२६ वर्ष!' और मैंने अपनी जन्मतिथि का पूरा ब्यौरा दे दिया।

'कमाल है! हम दोनों एक ही दिन जन्मे थे। इसलिए समान वय के हैं। और साम्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता। यदि मैं मिस्र की सबसे अधिक सुंदर युवती हूँ, तो तुम भी मिस्र के सबसे अधिक बलवान

और आकर्षक युवक हो। काश ! मुझे तुम्हारा साथ-सहारा मिल पाता ! तब मेरा एकाकीपन भी दूर हो जाता। और मैं दूने जोश के साथ राज्य का कार्यभार संभाल सकती।

मैं चकित रह गया। कितनी मासूम और अकेली लग रही थी वह क्लियोपैट्रा, जिसकी कमर में छुरा भोंकने की योजना मैंने कब की बना रखी थी।

क्लियोपैट्रा कहे जा रही थी, 'मेरे पास आकर बैठो, हमीशिस, मेरे प्रिय, मेरे सखा। मेरे निकट आओ, और मुझे पहचानो। मैं वह कुलटा क्लियोपैट्रा नहीं हूँ, जिसके बारे में तुमने न जाने क्या-क्या सुना होगा। लोग कहते हैं, मैंने तोल्मे को जहर देकर मार दिया। ग़लत कहते हैं। वह एक बीमारी से मरा। मेरे बारे में तुमने जो कुछ भी सुना होगा, वह सब ग़लत है। सच है तो यह है कि मैं क्लियोपैट्रा एक अभागी, एकाकी नारी हूँ, जिसे तुम जैसे भरोसेमंद युवक के साथ और प्रेम की बहुत ज़रूरत है। तुम्हारी शांत आंखों में झांकती हूँ तो मुझे विश्वास और निष्ठा के दर्शन होते हैं, उस विश्वास और निष्ठा के, जिसे मैं दूसरों में भूलकर भी नहीं पाती।' कहकर उसने अपनी गहरी नीली आंखों से मुझे देखा और हल्के से मेरी कोहनियों का स्पर्श किया।

मैं स्तब्ध था। पर, यह अनुभूति अवश्य थी कि एक नशा-सा मुझ पर छाता जा रहा है। उसी नशे में मैंने सुना, क्लियोपैट्रा

मुझसे कह रही थी : 'कल फिर इस शरीर के बातें करेंगे, प्रिय !' और उसने चुनने के लिए अपना कोमल हाथ मेरे आगे बढ़ा दिया। मैं उसे चुमे बिना न रह सका। उस समय उसके प्रेम में पागल था।

०००

क्लियोपैट्रा के जाने के बाद, यादों में कब तक चुपचाप बैठा रहा, न जाने क्या सोचता हुआ।

सहसा, चारमियों का कर्कश स्वर मेरे कानों में पड़ा, 'मेरा रुमाल कहाँ है ?' जल्दी में उसे यहीं छोड़ गयी थी।

'तुम्हारा रुमाल ? मगर तुम तो उसे के पीछे से देख ही चुकी हो कि किस तरह क्लियोपैट्रा के तानों से तंग आकर मैं उसे खिड़की से बाहर फेंक दिया।'

'हां, वह नज़ारा मैं देख चुकी हूँ। और यह भी देख चुकी हूँ कि क्लियोपैट्रा की हुई माला आपने नहीं फेंकी, बल्कि बड़े प्रेम से स्वीकार भी किया।'

'मैं समझा नहीं, अखिर तुम्हारा मतलब क्या है ?'

'समझाती हूँ। मैं आपको यह आशंका करने आयी हूँ कि आप भारी खतरे में हैं। आप मायाविनी क्लियोपैट्रा के माया-कणों में फँसते जा रहे हैं, उस क्लियोपैट्रा के जिसकी हत्या करने का बीड़ा आपने कंधों पर उठाया है।'

वह इसी मनोदशा में काफ़ी देर तक अपना आक्रोश व्यक्त करती रही। अखिर था कि उसकी रंजिश इस बात को लेकर

कि मैंने उसके प्रेम का प्रतिदान तो दिया नहीं, और उल्टे क्लियोपैट्रा के प्रेम-दात में कंसता चला जा रहा हूँ।

जब उसका क्रोध शांत हो गया, तो वह काफ़ी देर तक रोती-सुबकती रही। लेकिन

तब पर, उसका प्रहार निरंतर जारी था।

जब तक यही समझती आयी थी कि

वह एक निष्ठुर पुरोहित हैं, भड़कता दिल

बने वाले आदमी नहीं। मगर, आज

क्लियोपैट्रा के सामने झुकते देखकर विश्वास

हो गया कि आप आदमी भी हैं, मगर सिर्फ

क्लियोपैट्रा के लिए।'।

मैं जितना उसकी आशंका दूर करने

में प्रयास करता था, उतना ही उसका

विश्वास और दृढ़ होता जा रहा था

मैं सचमुच क्लियोपैट्रा को चाहने लगा

। बड़ी मुश्किल से समझा बुझाकर मैंने

विदा किया।

०००

अगले दिन सुबह जल्दी, तो मुझे याद

आया कि आज मुझे क्लियोपैट्रा की हत्या

करनी है। लेकिन, अब क्लियोपैट्रा के प्रति

मेरे मन में घृणा विलकुल न थी। मुझे यह

सोच रहा था कि फरोआ बनने का अपना

अधिकार छोड़कर भी यदि मैं इस हत्या

में अपने को दूर रख सकता होता, तो

कितना अच्छा होता।

वेमन से मैं क्लियोपैट्रा की हत्या की

तैयारियों में लग गया। मेरे चाचा सेपा

को उनके सहयोगी बड़े उत्साहित थे।

मुझे तो मुझे फरोआ कहकर संबोधित

करना आरंभ भी कर दिया था।

बूढ़ी अतोउआ ने मेरे पास आकर चुपके से कहा, 'तुम्हारे पिता ने तुम्हारे लिए एक जरूरी संदेश भेजा है, बेटा !'

'क्या है वह संदेश ?' मैंने उत्सुकता से पूछा।

'उन्होंने कहा कि उन्हें एक अनजाने खतरे का आभास हो रहा है। मगर, उनका विश्वास है कि यदि तुम दृढ़ता से काम लोगे, तो यह संकट टल जायेगा।'

ये शब्द बाण की भांति मुझे वीध गये। मैं डर के मारे कांपने लगा।

'दृढ़ता से काम लोगे, तो संकट टल जायेगा' ये शब्द रात तक, जब तक क्लियोपैट्रा का बुलावा नहीं आ गया, मेरे कानों में लगानार गूंजते रहे।

क्लियोपैट्रा के पास जाने से पूर्व, मैंने चारमियों से पूछा—'सब ठीक-ठाक है न ! तैयारियां योजनानुसार ही हुई हैं न !'

'सब ठीक-ठाक है ! सेपा और उनके सहयोगी बाहर तैयार खड़े हैं। क्लियोपैट्रा ने सब पहरेदारों को भगा दिया है। वह अकेली आपकी प्रतीक्षा कर रही है। एकांत में उसकी हत्या करना आपके लिए कठिन न होगा।'

छुरे को अपने वस्त्रों में अच्छी तरह छिपाकर और शराब का एक प्याला जल्दी से पेट में डालकर—दिनभर कुछ खाया-पिया नहीं था—मैं क्लियोपैट्रा के कक्ष की ओर बढ़ा। मुझे अपने पिता की चेतावनी के अलावा, चारमियों का यह वाक्य भी

शब्द आ रहा था, जो उसने विदा लेने से पूर्व, आहिस्ता से कहा था, 'आसार अच्छे नज़र नहीं आते। सुबह मैंने एक डरावना सपना देखा था'

... एक आरामदेह पलंग पर आराम से लेटी, क्लियोपैट्रा एक रत्नजड़ित पंखे से अपने को हवा कर रही थी। पलंग के सामने रखी मेज़ पर अंजीर के अलावा, गहरे लाल रंग की मदिरा रखी थी। क्लियोपैट्रा की लाल हुई अंखों से लगता था कि वह उसका पान कर चुकी है। उसका मादक सौंदर्य मुझे बेहोश किये दे रहा था।

'आओ, मेरे प्रिय ! मेरे एकाकी क्षणों के सखा !' क्लियोपैट्रा ने मुझे देखकर, अंगड़ाई लेते हुए कहा। वह लगातार मुझे घूरे जा रही थी। अपने एक हाथ से उसने मेरा एक हाथ थाम रखा था। सहसा, उसने कहा, 'तुम्हारा हाथ बार-बार अपने कपड़ों की ओर क्यों चला जाता है ? और तुम इतने परेशान क्यों हो ? मुझे बताओ अपनी परेशानी का कारण। मैं उसे अभी दूर कर दूंगी।'

मेरा हाथ धबराहट में बार-बार वस्त्र में छिपे छुरे की मूठ पर चला जाता था। क्लियोपैट्रा ने इसे भांप लिया था।

'मैं जलयात्रा करना चाहती हूँ। नक्षत्रों की स्थिति का अध्ययन करके बताओ कि उसके लिए अच्छा मुहूर्त कब है ?'

मैंने गणना करके शुभ मुहूर्त बता दिया। वह खुश हो गयी, और एक गीत

गाने लगी। बड़ा प्यारा गीत था, जो मुझे प्यारे मुंह से और भी प्यारा लग रहा था। गीत समाप्त कर, उसने पूछा, 'तुम्हें प्रशंसा नहीं की हमारे गीत की !'

'महारानी ! आपका गीत देवताओं के सुनने योग्य था। मेरे जैसा साधारण मनुष्य उसकी प्रशंसा कैसे कर सकता है ?'

'खूब ! किंतु यह साधारण मनुष्य मुझे प्रेम भी नहीं कर सकता ?'

'प्रेम यह आप क्या कह रही हैं महारानी !'

'क्या तुम प्रेम करना भी नहीं जानते भोले हर्मागिस ! आओ, मेरे पास बैठो, मैं तुम्हें सिखाऊंगी प्रेम करना।'

मुझे अपने पास खींचकर उसने इस तरह कर-करके मुझे अपने हाथों से लाल मदिरा पिलानी शुरू कर दी। मेरे इंकार करने को कोई प्रयत्न ही न था। अंत में, नज़े में बेहोश होकर, मैं उसके पलंग पर चित्त लेट गया।

क्लियोपैट्रा मेरे ऊपर झुकी, और मुझे झटके के साथ उसने मेरे वस्त्रों में से छुरे निकाल लिया।

'मैं जीत गयी !' उसने विजयवादात्मक में झूमते हुए कहा। 'बहुत, मित्त में खातिर, यह खेल खेला जाना बहुत अच्छा था। इस छुरे से तू मुझे मारने वाला था मेरे शाही प्रतिद्वंद्वी ! और अब यही छुरा यदि मैं तेरे सीने में भोंक दूँ तो !'

शर्म ... विश्वासघात ... और फिर सुबह उठा, तो मैंने अपने को अपने कमरे में पाया। नशा उतर गया था, और

114

या, जो कभी
लग रहा था।
पूछा, 'तुम्हें
की !'
त देता हों ?
साधारण मर्द
ता है ?'
रण मर्द का
ता ?'
कह खोई
ने नहीं आने
रे पास आकर
न करना।
उसने इसका
से लाल मिर्च
हंकार कलेह
नजे में बेहोश
चल लेट गया
मुकी, और हा
झों में से हवा

कलकत्ता से निकले क्लियोपैट्रा के दो विष
ने मुझे शब्द मेरे मन में गूँज रहे थे, 'नहीं
दे तुले वान से माहंगी नहीं, हर्माशिस !
तुम्हारा रहेगा, मेरी मेहरबानी से, ताकि
तुम्हारे देव-देवकर मुझे अपने विजय के
झों की गद आती रहे ।'
जम और हार का डंक मुझे बराबर डसे
ता रहा था ।

तभी मेरी निगाह सामने पड़ी एक लाश
पर पड़ी, जिसकी छाती में मेरा ही छुरा
गुना हुआ था । एक जोर की चीख के
मध्य में अचेत हो गया ।
होश आया, तो देखा, क्लियोपैट्रा सामने
हड़ी मुस्करा रही है । बोली, 'यह है रोमन
जलतस, वो हर्माशिस ! इसने ही तेरे
मध्य विश्वासघात किया था । हमने उसे
अचित दंड दे दिया ।'

मेरे आँखें फाड़े पाउलस को देख रहा था,
जिससे मैं सर्वथा अपरिचित था । पता नहीं,
मेरे पश्यं का पता कैसे चला, और
मैंने कैसे विश्वासघात किया ?

तुम एक बात भूल गये, प्यारे हर्मा-
शिस ! मेरे और तुम्हारे प्यार के बंधन
बुद्ध हैं । तुमने मेरे प्रति विश्वासघात भले
न किया हो, लेकिन मैं अब भी तुम्हारी हूँ ।
विश्वास नहीं होता तो यह छुरा मेरे सीने
में धौंककर देख लो । फिर फरोआ का
मिहान तुम्हारे लिए खाली हो जायेगा ।
मैं अपने प्रेमी के हाथों खुशी-खुशी मरूंगी ।'
कितनी बेरहम औरत है ! मैं सोच रहा
था । शायद उसने मेरे भावों को पढ़ लिया ।

1141

बोली, 'मैं बेरहम नहीं हूँ, हर्माशिस ! बहुत
रहमदिल हूँ । मुझे मालूम है कि तुम्हारे
इस षड्यंत्र में कौन-कौन तुम्हारे साथ था-
तुम्हारे पिता, तुम्हारे चाचा, और बहुत
से लोग । मैं उनकी और तुम्हारी जान
बख्श सकती हूँ—एक शर्त पर । और वह
शर्त बहुत मामूली है । तुम्हें सिर्फ मेरा एक
चुंबन लेना होगा ।'

'नहीं . . . यह नहीं हो सकता ।'

'इंकार करके मुझे बेरहम बनने का
मौका मत दो, हर्माशिस । मेरी बेरहमी फिर
सीमा पार कर जायेगी ।' क्लियोपैट्रा की
आँखें आग उगल रही थीं ।

अपने परिजनों की जान बचाने के
लिए मैं उसका चुंबन लेने को तैयार हो
गया । और उसका चुंबन लेकर जैसे मैंने
अपनी शर्म और दासता पर एक मुहर
लगा दी । वह इससे अधिक मेरा अपमान
और क्या कर सकती थी ?

० ० ०

कुछ दिनों तक बंदीगृह में रखने के बाद,
क्लियोपैट्रा ने मुझे मुक्त कर दिया । शायद
उसे यह महसूस हो गया था कि मुझे बंदी
रखकर, या मरवाकर, वह अपने शत्रुओं
की संख्या में वृद्धि कर लेगी । मिस्र में
उसके शत्रुओं की संख्या यूँ भी कम न थी ।

और अब मिस्र के बाहर भी उसके
शत्रु बढ़ते जा रहे थे ।

मुझे पूर्ववत् उसके दरबार में बँटने का
अधिकार मिल गया था । एक दिन राज-
दरबार में रोम के एंत्तनी के एक दूत ने

आकर, उसका एक पत्र क्लियोपैट्रा के सम्मुख प्रस्तुत किया। जब यह पत्र क्लियोपैट्रा को पढ़कर सुनाया गया, तो वह क्रोध से कांपने लगी।

पत्र में एंत्तोनी ने क्लियोपैट्रा के विरुद्ध कुछ आरोप लगाये थे, और कहा था कि वह स्वयं सिलिसिया में एंत्तोनी के सम्मुख उपस्थित होकर शीघ्र-तिशीघ्र उन आरोपों के संतोषजनक उत्तर दे, नहीं तो परिणाम भुगतने को तैयार रहे।

पहले क्लियोपैट्रा यह उत्तर भिजवाना चाहती थी कि एंत्तोनी का एलैग्जेंड्रिया में स्वागत है, जहाँ उसके सभी आरोपों के उत्तर उसे मिल जायेंगे। मगर दूत तथा अन्य दरबारियों के समझाने पर उसने यह उत्तर लिखवाया कि दस दिन बाद पत्र का उत्तर भिजवाया जायेगा, और ग्यारहवें दिन स्वयं क्लियोपैट्रा सिलिसिया पहुंच कर एंत्तोनी से मिलेगी।

उसी रात, क्लियोपैट्रा ने मुझे अपने कक्ष में बुलाया, यह राय लेने के लिए कि इस नये तूफान का सामना किस प्रकार किया जाये, और मेरा ज्योतिष इस संबंध में क्या भविष्यवाणी करता है। वह काफी घबरायी हुई थी। वह जानती थी कि उसका भविष्य अंधकारमय है। एंत्तोनी के पास जाती है तो वह उसे वापस मिस्र नहीं आने देगा। और एंत्तोनी की अवज्ञा करती है तो वह मिस्र पर आक्रमण कर उसे बंदी बना लेगा। उसकी सहायता के लिए न प्रजा आगे आयेगी, न सेना। प्रजा क्लियो-

पैट्रा के अत्याचारों से क्रुद्ध है, और मिस्र को वेतन देने के लिए उसके पाम बनवाये नहीं है। 'दोनों हालतों में मिस्र मेरे हाथ से निकल जायेगा,' वह बिलाप करती हुई बोली।

मैं चुपचाप उसे कराहने हुए देख रहा। वह कहती रही, 'मले ही मैंने कुछ मिस्रवासियों को रुष्ट कर लिया है, लेकिन मिस्र हमारा है और उनके प्रति हमारा एक कर्तव्य है। उस कर्तव्य का पालन करने में हम कुछ भी करने से नहीं चूकेंगे। हम जानते हैं, हमारे कि तुम्हें अपने साथ लेकर हम मिस्रवासियों का दिल जीत सकते हैं। इसलिए... इसलिए हमने निश्चय किया है कि हम तुमसे विवाह करेंगे।'

मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। तो वह अशांत गंभीर थी।

'हां, हम तुमसे विवाह करेंगे, हमारे और फिर हम दोनों मिलकर एंत्तोनी का सामना करेंगे। बोलो, तैयार हो, मिस्र की रक्षा की खातिर हमसे विवाह करने के लिए। तब फरोआ बनने का तुम्हारा सपना पूरा हो ही जायेगा।'

मिस्र की रक्षा की खातिर!

मिस्र की रक्षा की खातिर मैं विवाह पैट्रा से विवाह करने को तैयार था।

मिस्र की रक्षा की खातिर मैं पिता के लिए उस खजाने के बारे में भी बताने को तैयार था, जिसका मुराग मुझे पिता ने दिया था, इस आशा में कि मेरे

और नीति
पाम बनाने पर यह खजाना मेरे काम

जब मैंने इस खजाने की चर्चा क्लियो-

पेट्रा से की, तो वह मुझसे लिपट गयी, और

दरबार मेरा चुंबन करती हुई कहने लगी,

एक बार हम दोनों ने मिलकर रोमनों को

दरबार दिया कि फिर मिस्र के फरोआ तुम

को बोलें, हम शिश ! मैं तो सिर्फ तुम्हारी

पत्नी बलकर रहूंगी । पत्नी भी और दासी

तो बोलो, कब चलते हो, इस खजाने

की खोज में । सिर्फ तुम और मैं चलेंगे ।

मेरे आदमी को इसकी हवा भी नहीं

सँभलना चाहिये ।'

जो चेतावनी मुझे आरंभ में ही दी गयी

थी, कि मुझे नारी के, और विशेष रूप से

क्लियोपेट्रा के आकर्षण से अपने को दूर

रखना होगा, वह न जाने कहां विस्मृत हो

गयी, और मैंने क्लियोपेट्रा के हर इशारे

पर, नाचते हुए, उसके सामने वह विशाल

खजाना लाकर रख दिया, जिससे मिस्र के

सैनिकों को कई सौ वर्षों तक वेतन दिया

जा सकता था ।

० ० ०

एंतोनी के दूत को उत्तर देने का दिन

आ गया था । अपार स्वर्ण पाकर क्लियो-

पेट्रा के होसले बढ़ गये थे । इसके अतिरिक्त

उसे विवाह हो चला था कि मुझसे विवाह

करने के बाद, मिस्र में उसका कोई विरोधी

रहे नहीं रह जायेगा ।

दरबार में उसने एंतोनी को उत्तर

दिया : 'मिस्र की महारानी को रोम

के एंतोनी का गुस्ताख पत्र पाकर, अत्यंत
खेद है । महारानी को न एंतोनी के आरोप
स्वीकार हैं, न उसके पास उनकी सफाई
देना ।'

'तो मुझे युद्ध का पैगाम लेकर एंतोनी
के पास जाना होगा,' दूत ने धमकीपूर्ण
स्वर में कहा ।

'तुम युद्ध का नहीं, शांति का पैगाम
लेकर लौटोगे । हम एंतोनी के पास आने
को तैयार हैं, लेकिन मित्र के रूप में,
उसके आदेश पालक के रूप में नहीं ।'

मुझसे यह सहन न हुआ । मैंने चिल्ला-
कर कहा, 'महारानी ! अपने वायदे को
मत भूलिये ।'

क्लियोपेट्रा ने शेरनी की भांति मुझे
आग्नेय नेत्रों से देखते हुए कहा, 'चुप रह
दास ! राज्य-शासन के मामले में दखल-
दाजी करने का तुझे क्या अधिकार है ? तू
अपने काम से काम रख, और महारानी
को क्या करना है, यह महारानी पर
छोड़ दे ।'

इस अपमान को और भी तीखा बना
दिया चारमियों की व्यंग्य से भरी मुस्क-
राहट ने, जो मेरे घाव पर, नमक का काम
कर रही थी ।

जब दरबार बर्खास्त हुआ, तो मैं जाने
लगा, पर एक हिजड़े ने मेरे कंधे पर हाथ
रखकर कहा, 'तुम यहीं ठहरो । महारानी
का हुक्म है ।'

काफ़ी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद,
जब क्लियोपेट्रा आयी, तो उसने दूर से ही

मुझसे कहा, मेरे पास आने की जरूरत नहीं है, हम शिस ! कौन जाने, तुम्हारे पास एक और छुरा हो। और तुम जो एक बार मेरे साथ विश्वासघात कर चुके हो, कैसे मुझसे आशा कर सकते हो कि मैं तुम्हारी वफादार पत्नी और चरणों की दासी बनकर रहूंगी ? भूल जाओ, प्रेम और विवाह की बातों को ।’

क्लियोपैट्रा का असली रूप मेरे सामने आ गया था। मैंने प्राणों की पर्वाह न करते हुए उसे सुनाया, ‘सिर्फ़ मित्र की रक्षा की खातिर मैं तुम्हारी सहायता करने को तैयार हुआ था। मगर अब देखता हूँ, तुम रोमनों को मित्र को उपहार में देना चाहती हो। तुमने एंतोनी की खातिर अपने सभी वचनों को भंग किया है। और ऐसा करके साफ़ बच भी गयी हो। मगर उस देवता के शाप से कैसे बच पाओगी, जिसका खजाना तुमने मित्र की रक्षा के नाम पर पिरामिड से मुझसे निकलवाया है। उसका शाप तुम्हें और तुम्हारे प्रेमी एंतोनी दोनों को अवश्य ले डूवेगा ।’

क्रुद्ध क्लियोपैट्रा ने हिजड़ों को बुलाकर उन्हें मुझे जान से मारने का आदेश दिया। यदि चारमियों उससे मेरे प्राणों की भीख न मांगती तो मेरी मौत निश्चित थी। वैसे इससे पूर्व, मैं एक हिजड़े को परलोक का रास्ता दिखा चुका था, और बुरी तरह घायल हो गया था। ‘क्या तू उसे प्रेम करती है !’ चारमियों की प्रार्थना स्वीकार कर क्लियोपैट्रा ने उससे पूछा।

‘नहीं। सिर्फ़ दया करनी है।’ चारमियों ने आजिजी से कहा।

‘औरत के लिए दया प्रेम की ही बहन है। प्रेम औरत को तरह-तरह से छलता है, कभी उसे स्वर्ग की उंचाइयों तक ले जाता है, और कभी गड्ढे में फँस पटकता है। और अंत में दे जाता है—अंधेरा यादें और अनुत्पत्ति।’

०००

मुझे ठीक होने में नौ दिन लगे, और इन नौ दिनों तक मेरी सेवा-मुश्रूपा चारमियों ने ही की। उसी ने मेरे स्वस्थ होने पर मुझे यह संदेश दिया कि क्लियोपैट्रा तुम्हारे बल के साथ, जहाजों पर सवार होकर एंतोनी से मिलने जा रही है, और मुझे उसके दिल का एक सदस्य बनकर जाना होगा।

जिस शाम क्लियोपैट्रा ने एंतोनी के सम्मान में शानदार भोजन दिया, उस रात मैं, फरोआ की गद्दी का दावेदार, क्लियोपैट्रा के सैकड़ों गुलामों की लाइन में हाथ बांधे खड़ा था। हायरी किस्मत !

मैं देख रहा था कि एंतोनी को किस सोने के बरतनों में खाना परोसा गया था। वे वही थे, जिन्हें मैं खजाने के साथ पिरामिड से क्लियोपैट्रा के लिए लाया था। क्लियोपैट्रा उन स्वर्ण-पात्रों और आभूषणों आदि का अशिष्ट प्रदर्शन ही नहीं कर रही थी, एंतोनी का मन जीतने के लिए प्रयत्न उसे भेंट में भी देती जा रही थी। मुझे देखकर न रहा गया, और मैंने चिल्लाकर

‘उस देवता के शाप को याद रखो, खिलोनी, जिसका खजाना तुम इस तरह चुपचाप छिपा रही हो।’

खिलोपैट्टा का मुँह सफेद पड़ गया। वह बोली, ‘गुस्ताख दास ! मुँह एक शब्द भी और निकाला कि हम तेरी बात खिचवाकर रख देंगे। हम ऐसा तुम्हें से बिल्कुल नहीं चूकेंगे, हमेशा !’

‘एंतोनी यह जानने को उत्सुक था कि किस शाप का जिक्र कर रहा हूँ ? मैंने उसी जिज्ञासा के उत्तर में कहा, ‘देवता जो चाहे, मुझसे कहलवा देते हैं। कभी-कभी उनके कथनों के अर्थ मुझे ज्ञात भी हो जाते हैं।’

‘एंतोनी मेरी बातों के अलावा, उन अन्य कथनों से भी प्रभावित दिखायी देता था, जो मैंने धारण कर रखे थे। उसने खिलोपैट्टा की ओर देखकर हंसते हुए कहा, ‘मैं जिस देवी का भक्त हूँ, उसके कथनों के अर्थ भी कभी-कभी मुझे ज्ञात हो जाते हैं। ये सारे देवी-देवता बस एक ही बात कह रहे हैं।’

‘कल हम इस दास से मुक्ति पा लेंगे,’ खिलोपैट्टा ने कहा।

‘तुम्हारे इस दास में एक शाही शान लगी होती है, खिलोपैट्टा !’ एंतोनी के शब्दों में वहाँ से जाते-जाते सुने।

‘शायद-कल से बाहर आया ही था कि खिलोपैट्टा ने मेरे पास आकर, फुसफुसाते हुए कहा, ‘बाप खतरे में हैं। मेरे पीछे-पीछे आ जाइये।’

अपने कक्ष में लाकर, उसने कहा, ‘कल खिलोपैट्टा आपको मरवा देगी।’

‘मरवा देगी ? मेरा कितना अहसान है उसके ऊपर। उसे भूल गयी वह !’

‘मैंने आप जैसा मूर्ख आदमी नहीं देखा। मैं नहीं होती, तो आप कभी के खत्म हो गये होते ! वह एक स्वार्थी महिला है, और जिससे एक बार अपना काम निकाल लेती है, वह फिर उसके लिए किसी महत्त्व का नहीं रहता।’

‘मगर उसने इस खजाने के बदले, जो मैंने उसे लाकर दिया, मुझसे विवाह करने का वायदा किया था। और एक मूर्ख की नाई मैंने उस पर विश्वास कर लिया।’

‘आइये, अब मैं आपको दिखाती हूँ कि वह कैसे और किससे प्यार करती है। चुपचाप मेरे पीछे चले आइये।’

वह मुझे एक ऐसे कक्ष में ले आयी, जिसकी दीवारों में बने छेदों में आँख गड़ाकर, खिलोपैट्टा के उस शयन-कक्ष को आसानी से देखा जा सकता था, जहाँ इस समय एंतोनी और खिलोपैट्टा का प्रेमालाप चल रहा था। खिलोपैट्टा पूछ रही थी—‘मुझ गरीब रानी के साधारण भोज से आप प्रसन्न हुए, महान् एंतोनी ?’

‘ऐसे ठाठदार भोज में सम्मिलित होने का मेरा यह पहला अवसर है, मिस की मलिका ! सब कुछ उत्कृष्ट था, स्वर्ण-पात्र, लाल मदिरा, स्वादिष्ट भोजन। मगर उत्कृष्टतम वस्तु थी स्वयं तुम, ओ हसीना !’

‘तारीफ करने में बड़े मर्दाना होना चाहिये’
 एंतोनी ! क्लियोपैट्रा ने बड़ी नाजो-अदा के साथ कहा । विश्वास नहीं होता कि ऐसा मिष्टभाषी आदमी ऐसा कड़ा पत्र भी लिख सकता है ।’

‘उसे अब भूल जाओ, मेरी रानी ! मगर तुम्हारा वह भविष्यवक्ता दास जिस शाप का जिक्र कर रहा था, वह अवश्य फलित होगा । और उसकी भेदक आंखें जिस ढंग से तुम्हें देख रही थीं, उसमें अतीव प्रेम भी था, और अतीव घृणा भी । मुझे उससे डर लगने लगा है ।’

‘डर तो मुझे भी लगता है उससे, महान् एंतोनी ! जानते हो, मैंने उसकी हत्या क्यों नहीं करवायी, क्योंकि मैं उन रहस्यों को जानना चाहती हूं, जिनका वह ज्ञाता है । उसके बाद, मेरे लिए उसका कोई उपयोग नहीं रहेगा ।’

‘मिस्र को तुम जैसी चतुर और सूझ-बूझ वाली रानी की ही आवश्यकता है, मलकाये-मिस्र ! लाओ, मैं अपने हाथों से तुम्हारे सर पर तुम्हारा ताज रख दूं । और अब मेरे बिल्कुल निकट आ जाओ, मेरी रानी ! आज मैं तुम्हें उतना प्यार करूंगा, आज तक जितना पहले कभी नहीं किया था ।’

‘और रुकेंगे ?’ चारमियों ने आहिस्ता से मुझसे पूछा ।

‘नहीं । बहुत कुछ देख लिया । आओ, अब चलें ।’

नवनीत

हमोशिस का प्रतिशोध

‘आपको इस कुलटास्त्रीस प्रतिशोध के लिए कहना है । यदि आपने यह निश्चय किया, तो कल उसके हत्यारों के हाथों आपकी मौत निश्चित है, चारमियों ने आंसू पोंछते-पोंछते कह रही थीं । जो योजना सोची है, उस पर अमल करने आप अवश्य क्लियोपैट्रा को पराजित कर सकेंगे । कल यहां सीरिया का एक व्यापारी फलादि लेकर आयेगा । वह मेरा परिचित है, और मेरे कहने पर वह आपको इस व्यापारी के वेश में अपने साथ ले जायेगा । वह आपको पुनः अपने सहयोगियों से मिलवा देगा । मैंने आपके खर्च के लिए आवश्यक धनराशि की व्यवस्था भी कर दी है ।’

क्लियोपैट्रा से प्रतिशोध लेने की भावना मेरे मन में इतनी प्रबल थी कि मैं चारमियों की योजना पर पूरी तयारी अमल करने को तैयार था ।

जब मैं पूरी तैयारी करके सीरिया के व्यापारी के साथ जाने को प्रस्तुत हुआ तो चारमियों ने मुझे रोककर कहा, ‘अपना एक पाप स्वीकार करना । तूने स्वीकार नहीं करूंगी, तो वह पाप तूने सर पर एक असह्य बोझ बना देगा ।’

‘मेरे सामने अपना पाप स्वीकार करने की क्या आवश्यकता है ?’

‘आवश्यकता इसलिए है कि उस पाप का संबंध आप ही से है । मैं यह स्वीकार करना चाहती हूं कि जब आप क्लियोपैट्रा

का वध करने गये थे, तो मेरे विश्वास-
 का कारण ही ऐसा नहीं कर पाये थे ।'
 मैं उसकी यह स्वीकारोक्ति सुनकर
 रो पड़ा। मगर इससे पहले कि कुछ
 कहूँ, उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर
 कहा, 'प्रथम दृष्टि में ही मैं आपसे प्यार
 करने लगी थी, और उस प्यार को जताने
 में भी मैं कभी नहीं चूकी। किंतु, मेरा
 प्रेम आपके तिरस्कार का पात्र बना।
 जो स्त्री का सच्चा प्रेम जब उसके
 मन द्वारा ठुकराया जाये, तो उसके मन
 का स्वाद बीतती है, यह बताना कठिन है।
 फिर भी मन मारकर सब कुछ सहती
 हूँ, लेकिन उस दिन मेरी सहनशक्ति
 समाप्त हो गयी, जब आपने मेरा रुमाल
 मेरी छाती से बाहर फेंका। मुझे यह भी
 याद है कि आपके और क्लियोपैट्रा के बीच
 पर पुरी वध करने लगा है। प्रतिहिंसा की आग
 मेरे मन में भड़क उठी, और मैंने जाकर
 क्लियोपैट्रा को आप सबके षड्यंत्र के
 बारे में सब कुछ बता दिया। क्लियो-
 पैट्रा को भवरा गयी, और मिस्र छोड़कर बाहर
 निकलने का विचार करने लगी। किंतु,
 मैंने उसे समझाया कि सारे मार्गों पर षड्य-
 ंत्रियों का पहरा है। तब उसने
 कहा कि वह उसी छुरे से, जो
 आपकी हत्या करने के लिए अपने
 हाथ में गये थे, आपका वध कर देगी।
 मैंने उसे समझाया कि ऐसा न हुआ। तब
 मैंने क्लियोपैट्रा का वह वाण, जो
 क्लियोपैट्रा के कंधों पर रखकर

आपके ऊपर छोड़ा था, मेरे पास वापस
 आकर, मुझे ही बीधता चला आ रहा है।
 अब मैं आपके हाथों क्लियोपैट्रा का वध
 कराके अपने पाप का प्रायश्चित्त करना
 चाहती हूँ।'

मैंने शांतिपूर्वक उसकी बात सुनी,
 और फिर बिना उसकी ओर देखे बाहर
 चला आया। अगले नौ वर्षों तक मेरी
 उससे भेंट नहीं हुई।

० ० ०

पिता से मिला, तो वे मरण-शय्या
 पर पड़े थे। वे अंधे भी हो गये थे। अपनी
 अंधी आंखों से मुझे देखते हुए, वे मुझे
 कोसने लगे, 'तू हर्मजिस, मेरा बेटा नहीं
 है। तू देशद्रोही है। तेरे कारण क्लियो-
 पैट्रा के सैनिकों ने सेपा का वध किया।
 तेरे कारण ही लाखों मिस्रवासी आज भी
 नरक की यातना भोग रहे हैं।'

मैं चुपचाप उनकी भर्त्सना को सहन
 करता रहा।

जब वे मुझे कोसते-कोसते थक गये,
 तो अपने जीवन के अंतिम क्षणों में उन्होंने
 मुझसे कहा, 'तू अभी भी उस क्लियोपैट्रा से
 बदला ले सकता है। मैंने काफ़ी सोना द्रिपा'
 रखा है। अंतोउआ को सब मालूम है....

और उनके प्राण-पखेरू उड़ गये।

उनके जाते ही, मैं अपने को पूरी तूरह
 निस्सहाय अनुभव करने लगा। चारों
 ओर अंधेरा-सा दिखायी पड़ने लगा। ऐसी
 निराश अवस्था में मैंने देवी इसिस को
 याद किया। कातर स्वर में उनसे पूछा,

‘क्या मेरे लिए कोई आशा नहीं है, मां !’

मां ने मेरे मानसमें प्रकट होकर सात्वतापूर्ण शब्दों में मुझे इस प्रकार आश्वस्त किया : ‘हर्माशिस ! मेरे पुत्र, जो कुछ हुआ, वह हो गया। तेरे और जिन्होंने तुझे पथभ्रष्ट किया, उनके पापों के बीज से एक नूतन मिश्र का जन्म होगा। दिव्य प्रेम ही सच्चा प्रेम है, मर्त्यों का प्रेम नश्वर है। तू इस सत्य का स्मरण करेगा, तो अवश्य विजयी होगा। मेरे आशीर्वाद तेरे साथ हैं।’

अपने पिता का अंतिम संस्कार करने के के बाद, मैं एक फ़कीर के वेश में मिश्र की निर्जन और बियावान ‘मृतकों की घाटी’ में जाकर रहने लगा। अतोउआ मुझे प्रतिदिन खाना-पानी दे जाती थी। मेरा नया नाम ओलम्पस था।

धीरे-धीरे एक भविष्यवक्ता फ़कीर के रूप में मेरी ख्याति सारे मिश्र में फैल गयी।

एक वर्ष बाद, मेरे पास क्लियोपैट्रा का एक संदेश आया, ‘पवित्र ओलम्पस ! हमने आपकी बहुत प्रशंसा सुनी है। क्या आप हमें यह बताने की कृपा करेंगे कि हम एंतोनी का खोया प्यार कैसे जीत सकते हैं, उस एंतोनी का, जो आजकल ओक्टेविया के पीछे दीवाना हो गया है।’

मैंने इस संदेश का यह उत्तर भिजवाया : ‘कोई आयेगा, जो तुम्हें सीरिया ले जायेगा। उसके साथ सीरिया जाकर एंतोनी से मिलो। वहां तुम्हें तुम्हारा खोया प्यार

नवनीत

भी मिलेगा, और अकल्पित उपहार भी। मेरी सलाह मानकर, क्लियोपैट्रा फ़ौरन सीरिया की यात्रा की। और वहां वह सचमुच एंतोनी का प्यार जीतकर नहीं लौटी, असंख्य उपहार भी साथ लायीं। जिनमें से कुछ उसने मेरे पास भिजवाये। उसने मुझे एलैग्जेंड्रिया बुलवाया, मगर अभी उसके पास जाने का समय नहीं आया था।

इस घटना के बाद क्लियोपैट्रा एंतोनी दोनों ने मुझसे कई मासों परामर्श लिया, और इस घटना के मैंने उन्हें जो सलाह दी, वह अंत में सर्वनाश का कारण बनी। उन दोनों पतन की शुरुआत हो गयी थी। देश का शाप प्रभाव लाने लगा था।

०००

आठ वर्ष इसी प्रकार बीत गये। क्लियोपैट्रा अब एंतोनी के, जो पूरी तरह उसकी मुट्ठी में था, धर ओक्टेविया को बाहर निकालने में लगे हो गयी थी। ओक्टेविया ने एंतोनी विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया था। उसे जीत का पूर्ण समर्थन प्राप्त था।

इन्हीं दिनों मुझे एक रात, सपने अपने पिता के दर्शन हुए। उनकी से मैंने सपने में सागर में दो बेटों लड़ते देखा। एक का नेतृत्व कर रहे एंतोनी और क्लियोपैट्रा और दूसरे सीज़र और ओक्टेविया। अपने पिता आत्मा की प्रेरणा से मैंने क्लियोपैट्रा

उपहार भी।
 क्लियोपैट्रा ने
 भी। बोर खुश
 गार जोतर
 गार भी साथ
 ने मेरे पास
 लैंगडिवा
 के पास बने

मैंने कहा, 'भाग जाओ, क्लियोपैट्रा
 तो बरबाद हो जाओगी। भाग
 जाओ, क्लियोपैट्रा, नहीं तो ...'
 मैंने देखा, मेरा संदेश सुनकर क्लियो-
 पेट्रा चारों ओर देखने लगी।
 वह जाने क्या सोचकर वह अपने
 पैरों के साथ भाग खड़ी हुई।

...तभी, मेरी आंखें खुल गयीं।
 अगले कुछ दिनों में मुझे मालूम पड़ा
 कि ठीक उस दिन, जिस दिन मैंने वह
 चित्र सपना देखा था, क्लियोपैट्रा
 ने नौसेना लेकर भाग गयी थी,
 अपने एंत्तनी के साथ। और अब मेरे
 सामने नौसेना की आत्मा, जिसने मुझे सपने में
 दिखायी थी, मुझसे बार-बार
 मिल रही थी, 'एंत्तनी अब टूट गया है।
 क्लियोपैट्रा भी हताश है। यही मौक़ा
 दोनों को पूरी तरह खत्म करने का।'
 और वह मौक़ा भी जल्दी ही आ गया।
 क्लियोपैट्रा का दूत आया। उसने मुझे
 बुलवाया था। मैंने दूत से कहा,
 'मैं ही आऊंगा।'

मैं क्लियोपैट्रा के पास पहुंचा, चार-
 पचास दिनों के साथ, जिसे मैं ९ वर्ष के बाद
 देखा था, और जो अभी तक मेरे
 सपने में दीवानी थी। क्लियोपैट्रा के कक्ष
 में मुझे भेजने से पूर्व, उसने मुझे सावधान
 किया, 'दृढ़ रहना। क्लियोपैट्रा की आंखें
 अभी भी नगीली हैं, वह पहले की
 ज़रूरत ही जादूगरनी है।'
 'वह अब मुझे नहीं लुभा सकेगी,'

मैंने उत्तर दिया।

क्लियोपैट्रा ने बड़ी गर्मजोशी के साथ
 मेरा स्वागत किया। गुरु ओलम्पस!
 आप सर्वज्ञानी हैं, घट-घट की बात जानते
 हैं। कृपया उस रहस्य को सुलझाइये,
 जो मुझे आजकल परेशान किये हुए है।
 नौसेना के युद्ध में, जब हमें लग रहा था
 कि विजय हमारी ही होगी, न जाने किसने
 मेरे कानों में कहना शुरू कर दिया, 'भाग
 जाओ, क्लियोपैट्रा, नहीं तो बरबाद हो
 जाओगी।' जब मैंने इसका जिक्र एंत्तनी
 से किया, तो वह मुझसे भी ज्यादा आतं-
 कित हो गया, और अपनी नौसेना को
 लेकर भाग खड़ा हुआ। क्या रहस्य था
 उस संदेश का? कौन था उसके पीछे?'

'मेरी दिव्यदृष्टि कहती है कि जो कुछ
 हुआ, मिस्र के किसी देवता के, जिसके
 प्रति संभवतः तुमने विश्वासघात किया
 है, शाप के कारण हुआ है।'

मेरा स्पष्ट उत्तर सुनकर क्लियोपैट्रा
 कांपने लगी।

मैं देख रहा था कि दोनों का अंत
 निकट और निश्चित है।

क्लियोपैट्रा की योजना एंत्तनी के
 साथ भागकर भारत पहुंचने की थी।
 मगर मार्ग में पड़ने वाले अरबों और
 यहूदियों को हमने पहले ही क्लियोपैट्रा
 के विरुद्ध भड़का दिया था। उनके डर
 से उसने यह विचार त्याग दिया।

चारमियों ने मुझसे एक विष तैयार
 करवाया, ऐसा तेज़ असरवाला विष कि

उसे चखते ही आदमी अपने प्राण त्याग दे।

क्लियोपैट्रा और एंतोनी की हालत दिनोंदिन बदतर होती जा रही थी। उनके सब समर्थक, जो हाथ लगे, उसे लेकर भाग रहे थे।

सीज़र तेज़ी से एलैग्ज़ैंड्रिया की ओर बढ़ता चला आ रहा था।

एंतोनी घायल शेर की नाई सदा अपने कक्ष का चक्कर लगाता रहता था। अब अपने जीवन के अंतिम क्षणों में उसे यह अनुभव होने लगा था कि क्लियोपैट्रा के चक्कर में पड़कर वह कहीं का ब रहा।

और जिस दिन सीज़र ने उसे यह संदेश भिजवाया : 'ऐसा लगता है, एंतोनी, कि तुम्हारा अंत मेरी तलवार से ही होने जा रहा है,' तो वह पागल ही हो गया।

और क्लियोपैट्रा के लिए सीज़र का संदेश था : 'तीन दिन बाद सीज़र विजेता के रूप में मिस्र की गद्दी पर बैठेगा, और तुम जंजीरों में बंधी हमारे सामने खड़ी होगी।'

'ऐसा कभी नहीं होगा, कभी नहीं, कभी नहीं। ऐसा अपमान सहने से पूर्व, मैं मर जाना पसंद करूंगी।' क्लियोपैट्रा चीख रही थी।

सबसे पहले एंतोनी का अंत हुआ, क्लियोपैट्रा के आग्रह में। मरते समय भी उसके होंठ क्लियोपैट्रा को चूम रहे थे। मेरी ईर्ष्यालु आंखों के लिए यह एक अत्यंत दर्शनीय था। मैं उन दोनों के विनाश

का कारण अवश्य बना, लेकिन उनके प्रेम को नष्ट नहीं कर सका, इसका मुझे बड़ा दुःख और खेद था।

०००

मेरे हाथ से विष की शीशी लकर, क्लियोपैट्रा बोली, 'कितनी अवोध लगती है, यह विष की शीशी, जिसमें मेरी मौत छिपी है। लाओ, इसे जल्द ले लूं, मरने के सैनिक आते ही होंगे। मगर एक बात बताओ, इस विष को लेने के बाद मैं तड़प-तड़प कर तो जान नहीं होंगी?'

'आप अपने किसी दास पर इस प्रयोग करके देख सकती हैं।'

एक दासी पर विष का प्रयोग करने देखा गया। उसके होठों ने विष को चूसा ही था कि उसकी मृत्यु हो गयी।

'मैं भी आती हूं, एंतोनी, तुम्हारे पास!' कहकर क्लियोपैट्रा ने विष हथकड़ी में उंडेल लिया, और अगले क्षण ही उसकी मृत्यु हो गयी। मरकर भी वह किताब मोहक लग रही थी।

०००

क्लियोपैट्रा से प्रतिशोध लेने के बाद भी मुझे शांति नहीं मिली। क्लियोपैट्रा का प्रेम मुझे तंग करता रहा। मैंने बताया कि प्रेम मृत्यु में अधिक दुःखदायी है, और चूंकि उसका संबंध देह से अधिक आत्मा से है, इसलिए वह मृत्यु को पहचानता, मृत्यु का उस पर कोई प्रभाव नहीं होता।



साहित्यिक चुटकियां

देवेंद्र सत्यार्थी बस में सफर कर रहे थे कि दरियागंज, दिल्ली के पास बस-कंडक्टर ने टिकट लेने के लिए कहते हुए पूछा कि वे बस में कहाँ से बैठे थे ?

‘पिछले स्टॉप लाल किले से ।’ सत्यार्थीजी ने उत्तर दिया ।

‘लेकिन मैं तो आपको बहुत पीछे से देखता आ रहा हूँ ?’ कंडक्टर ने सत्यार्थीजी को बोर सदेह से देखते हुए कहा ।

‘आप भी ठीक कहते हैं,’ सत्यार्थीजी ने अपनी लंबी-चौड़ी दाढ़ी पर हाथ फेरते उत्तर दिया, ‘लेकिन उस वक्त मैं खड़ा था, बैठा लाल किले से ही हूँ ।’

० ० ०

बोरछा के महाराज वीरसिंहजू देव ने ब्रजभाषा काव्य के प्रोत्साहन के लिए २०००

रुपये का वार्षिक देव पुरस्कार स्थापित किया । प्रथम वर्ष पुरस्कार में स्वर्गीय पं. अयोध्या-

चंद्र उपाध्याय ‘हरिऔध’ ने अपना ‘रस कलश’ नामक ब्रजभाषा का विशाल ग्रंथ भेजा ।

जो में श्री दुलारेलाल भार्गव ने अपनी ‘दुलारे दोहावली’ भी भेजी, जिसमें प्रायः २००

हैं। दोनों ही ब्रजभाषा के उच्च कोटि के काव्य थे । हरिऔधजी प्रसिद्ध और ज्येष्ठ

विद्वान् थे । कुछ लोगों ने समझ रखा था कि पुरस्कार उन्हीं को मिलेगा, किंतु जब निर्णय

प्राप्त हुआ तो मालूम हुआ कि वह श्री दुलारेलाल भार्गव को मिला है । हरिऔधजी

को पुरस्कार न मिलने से कुछ लोगों को आश्चर्य हुआ और उनके भक्तों को निराशा भी

हो गई । हरिऔधजी के इन भक्तों में विसवां के श्री त्रिभुवननाथ सिंह ‘सरोज’ भी थे ।

उन्होंने इस घटना पर एक व्यंग्यपूर्ण छंद लिखा और एक समाचारपत्र में छपा दिया । वे

सर्वज्ञ भी थे । उन्होंने लेखक की जगह अपना नाम न देकर ठाकुर श्रीनाथ सिंह

का नाम दे दिया । वह छंद इस प्रकार था :

तब तैं कविताई है तेज भई, जब तैं मरिगे तुम्हरे दडुआ ।

लिखि द्वै शत दोहन कों सहजैं, जग छापि लियौ करिकें जडुआ ।

मतिराम कहाँ ? पदमाकर को ? भये देव, बिहारी सबै भकुआ ।

धनि यार दुलारे ! हजार मिले, हरिऔध के हाथ लग्यो कडुआ !

बव यह छंद छपा तब उसके नीचे ठाकुर श्रीनाथ सिंह का नाम देखकर लोगों को

आश्चर्य हुआ ; क्योंकि उन्होंने ‘हरिऔधजी का बुढ़भस’ नाम से हरिऔधजी की

समालोचना छपी थी । ठाकुर श्रीनाथसिंह ने संपादक से जवाब तलब किया ।

उन्होंने स्पष्टीकरण देकर ठाकुर साहब को इस व्यंग्योक्ति के जनकत्व के उत्तरदायित्व

सौंप दिया, किंतु साहित्य-जगत में इस छंद की बहुत दिनों तक चर्चा होती रही ।



वणिक-पुत्र

□ अन्वेषी

एक शहर था। उसमें एक बनिया रहता था। उसका नाम सागरदत्त था। उसका लड़का बड़ा था। उसे नयी-नयी वस्तुएँ संग्रह करने का बहुत शौक था। इसके लिए वह खूब धन खर्च करता था।

बनिये का वह लड़का एक पंडित के पास गया। उसने पंडित को सौ रुपये देकर एक पुस्तक खरीदी।

उस पुस्तक में सभी पन्ने कोरे थे। केवल एक पृष्ठ पर एक श्लोक लिखा हुआ था :

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो
देवोपि तं लंघयितुं न शक्तः ।
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे
यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम् ॥

इस पुस्तक को देखकर उसका पिता आग-बबूला होकर बोला—'मूर्ख ! एक श्लोक वाली पुस्तक के लिए सौ रुपये ! इस तरह तो तू सारा धन नष्ट कर देगा। तू अभी, इसी वक्त मेरे घर से निकल जा...'

यह सुनते ही वणिकपुत्र घर छोड़कर चला गया।

धूमते-धूमते वह एक बड़े नगर में जा बसा।

उस पुस्तक में छपे एक श्लोक का 'प्राप्त-व्यमर्थ' शब्द उसे बहुत पसंद आया। अतः एवं उसने अपना नाम 'प्राप्तव्यमर्थ' रख

नवनीत

लिया।

एक बार की घटना है।

उस नगर की राजकुमारी हाथों पै बैठकर नगर घूमने के लिए निकली। घूमती-घूमती वह राजकुमारी नगर के दरवाजे पर आयी।

दरवाजे पर उसने एक सुंदर राजकुमार को खड़े देखा। वह उसे बहुत पसंद कर गया। उससे विवाह करने का राजकुमार का मन हो उठा।

उसने राजकुमार से कहा—'मैं, राजकुमार की खिड़की में से लटकती हुई रहूँगी। उसी पर से चढ़कर तुम महल में आ जाना।

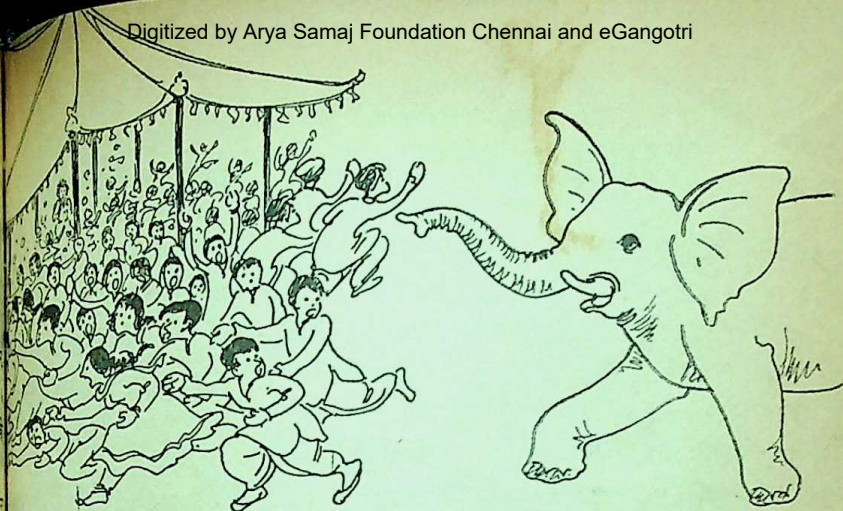
'अच्छा' कहकर राजकुमार चला गया। राजकुमार की इच्छा उस राजकुमार से विवाह करने की नहीं थी, अतएव वह उस रात महल में गया ही नहीं।

राजकुमारी उसकी प्रतीक्षा करती रही।

उसी समय वह वणिकपुत्र महल के पास से गुजरा। लटकती डोर देखकर वह आश्चर्य हुआ।

उसे पकड़कर वह चटपट राजमहल चढ़ गया।

राजकुमारी ने उस वणिकपुत्र को राजकुमार समझ लिया।



मारी हाथों
लिए निकली
मारी नगर के
सुंदर राजकुमार

वह न पड़े
को राजकुमार

कहा—'मे,
नटकी हुई
कर तुम महल

मार चला
उस गवकुस
थी, अतएव
नहीं।

प्रतीक्षा रात
को निकल
कपुत्र महल
डोर देवक

पट राजमहल

नकपुत्र को

को

उसने उसका स्वागत किया, बैठाया,
साथ और मिठाइयां खाने को दीं। फिर
उसे साथ बातें करने लगी।

रात में राजकुमारी बोली—'आपको
वर्णिक के रूप में माना है, सो आप मुझे
निकाल कर लें।

वर्णिकपुत्र ने कहा—'प्राप्तव्यमर्थ लभते
कन्या—अर्थात्, कर्मनुसार मनुष्य को
उस गवकुस मिलनी ही है।'

तब सुनकर राजकुमारी को लगा कि
वर्णिकपुत्र के बदले कोई दूसरा ही आ गया
होगा। इसलिए दासी के द्वारा उसने वर्णिकपुत्र
को निकाल बाहर किया।

उसने निकलकर वर्णिकपुत्र एक पुराने
घर में आया और उसके चबूतरे पर सो

गुप्त देर बाद नगर कीतवाल उधर से
आया। उसने उसे वहां से भगा दिया।
वर्णिकपुत्र वहां से चल पड़ा।

उसी समय एक बारात उधर से गुजर
रही थी उसमें वह बाराती के रूप में

शामिल हो गया।

मंडप में दूल्हे के आने पर हस्तमिलाप
की तैयारी हो ही रही थी कि ठीक उसी
समय एक पागल हाथी उधर से आ
निकला। मंडप के नीचे भगदड़ मच
गयी। दूल्हा भी भाग खड़ा हुआ।

कन्या कांपती हुई अकेली मंडप के नीचे
रह गयी।

वर्णिकपुत्र ने उस कन्या की रक्षा की।
यह खबर उस गांव के राजा को
लगी।

राजा ने सोचा यह बहादुर युवक है।
और उसने अपनी कन्या का विवाह उसके
साथ करके उसे सौ गांव भेंट में दे दिये।

वर्णिकपुत्र ने सौ रुपये वाला श्लोक
कह सुनाया—'जो अपना नहीं है वह अपने
को कभी नहीं मिलेगा, परंतु जो अपना
है, वह किसी न किसी रूप में प्राप्त हो
ही जाता है।'

और वह वर्णिकपुत्र खूब मौज का
जीवन जीने लगा।

बचपन के दिन... सपनों के दिन!



संजु अभी-अभी अस्मिता से अपने प्यारे छोटे भाई की देखभाल लोटा है। उसके मन में बड़ी एक नयी कल्पना जागृत हुई और उसने एक सपना संजोया— वह था डॉक्टर बनने का। लेकिन उसके सपने को पूरा करने की जिम्मेदारी आपकी है। उसकी उच्च शिक्षा ही उसके जीवन की सफलता होगी। अब अभी से इस बारे में सोचिए— बैंक ऑफ़ इंडिया की अपनी नज़दीकी शाखा में पधारिए। हमारे पास आपकी तथा आपके परिवार की हर जरूरत को पूरा करनेवाली कई वचत योजनाएँ हैं। आइए और देश के सबसे बड़े राष्ट्रीयकृत बैंक की मदद से अपने बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बनाइए।



बैंक ऑफ़ इंडिया

(भारत सरकार का उद्योग)

सेवा में श्रेष्ठता ही हमारी विशेषता है।

CONCEPT-BOI-4452 HIN.

नवनीत

१५०

**आप ही देखिये कि
देना बैंक में आपकी
रकम समय के साथ कितनी
बढ़ती जाती है!...**



समृद्धि जमा योजना

आपकी बचत की रकम आश्चर्यजनक गति से बढ़ती है क्योंकि न केवल आपके मूलधन पर बल्कि व्याज पर भी व्याज मिलता है।

धावती जमा योजना

आपकी मासिक बचत की छोटी-छोटी रकमों को भविष्य के लिए निवेश की गयी रकमों में बदलिये।

मीयादी जमा योजना

जब आप सरलता से बचत कर सकें तो इस रकम के लिए बड़ा फायदा भविष्य है।

नफ़्ती प्रमाण पत्र

एक सुरक्षित निवेश राशि जो अपने आप बढ़ती चली जाती है।



देना बैंक

(राष्ट्रीयकृत बैंक)

केन्द्रीय कार्यालय : मेजर टावर ६,
कप परेड, बम्बई ४०० ००६

अधिक जानकारी के लिए
अपने नज़दीक की
देना बैंक की शाखा में पधारिये।

बचत की उच्चता और समृद्धि के लिए समर्पित

(पृष्ठ २६ का शेषांश)

० मकड़ियों की एक विशेष जाति की प्रेम-लीला को शोधकर्ता वैज्ञानिकों ने आदमी की प्रेम-लीला से कहीं ज्यादा 'कामुक' और 'वासनामय' पाया है। इस प्रेम-लीला के अंत में मकड़ी अपने प्रेमी की टांगों को पूरा खा डालती है।

० शेटलैंड के जंगलों में रहने वाली एक चिड़िया स्वयं अपने घोंसले में बैठकर आराम करती है, और अपने बच्चों को बीस मील दूर तक खाना प्राप्त करने के लिए भेजती है। और जब वे भोजन के साथ नहीं लौटते, तो उन्हें ही खा जाती है।

०००

'गवेषिणी' द्वारा महासागर के गर्भ की खोज

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि विश्व के महासागरों के गर्भ में २००० बिलियन मीटरी टन पिंड छिपे हैं। ऐसे दस लाख मीटर टन पिंडों से १५,००० टन निकल, १२,००० टन तांबा, १५०० टन कोबाल्ट, ६०,००० टन मैंगनीज और स्वर्ण की अज्ञात राशि उपलब्ध हो सकती है। चूंकि पृथ्वी पर इन सबका भंडार तेजी से चुकता जा रहा है, इसलिए सब देश महासागरों से उन्हें प्राप्त करने में लगे हैं। ऐसे देशों में जापान और अमरीका अग्रणी हैं।

पिछले तीन-चार वर्षों से भारत का एक गवेषणा जलयान 'गवेषिणी' इन

धातुओं की खोज भारत के समुद्रों पर कर रहा है। १९०० टन वाले, ६८ मीटर लंबे और १२ मीटर चौड़े इस जलयान ने इस वर्ष अत्यंत अश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है, अमरीका और जापान जैसे देशों को खोज कर दिया है।

'गवेषिणी' की सफलता के बाद भारत को निकल, कोबाल्ट और तांबे की अपनी आवश्यकता के लिए विदेशों पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। इस सफलता से प्रेरित होकर, प्रधान मंत्री के तत्वावधान में सक्रिय ओशन साइंस एंड टेक्नोलॉजी एजेंसी ने प. जर्मनी, फ्रांस और हॉलैंड से तीन अन्य ऐसे जलयानों का, जो 'गवेषिणी' से बड़े होंगे, आर्डर दिया है।

०००

नाभिकीय ईंधन प्राप्त करने की नयी विधि

फ्रांस के परमाणु ऊर्जा-निगम ने तेजतर नाभिकीय ईंधन को प्राप्त करने की, जिसका उपयोग सिर्फ विद्युत घरों में ही हो सकेगा, परमाणवीय तंत्र के निर्माण के लिए नहीं, एक सतत सरल विधि का आविष्कार करने में सफलता प्राप्त की है।

फ्रांस इस विधि को उन देशों को बताने को तैयार है, जो नाभिकीय ऊर्जा का प्रयोग करते हैं। भारत उन देशों में से एक है।

आदर्श उदाहरण

के पंजों तले दवे समाज का
कमजोर वर्ग बेवसी से
लेकिन कभी-कभी बिरले
ऐसे भी देखने-सुनने को मिल
हैं कि सिर बरवस श्रद्धा से झुक
है।

मध्य प्रदेश के रिटायर्ड आई. जी. श्री
राजरायण शुक्ल के बेटे का विवाह
के लिए किया था। घर धूमधाम और खुशियों से
गा। इस समय था।

एंड टैम्बोले मित्रों के साथ बैठा गपशप कर
कांस बोरे हुए था।

नौ का, जो केनेवा के नेग में क्या मांगोगे ?...

मैंने भी यही सोचा था ।' भावी दूल्हे

निगम ने उसे पता नहीं था कि कानून का पाबंद
 होय इंघन को पिता सारी बातें सुन रहा है।

शुक्लजी ने वेटे को बुला-
 वहाँ-तुम्हें स्कूटर चाहिये था ?

एक सप्ताह, अभी खरीदा गया नया स्कूटर
कार करने में खर्चे लिए। लेकिन याद रहे, लड़की

को उन दोनों ने। तुम भिखारी नहीं हो !'

नामिका...
भारत जन...
...लज्जा से झुक गया।
...का भाव आंखों में लब्ध...

गौरवमय पिता के प्रति ।



पग-पग पर नेगों के बहने से दहेज समेटने वाले समाज में ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलेंगे।

—निर्मला तिवारी, जबलपुर

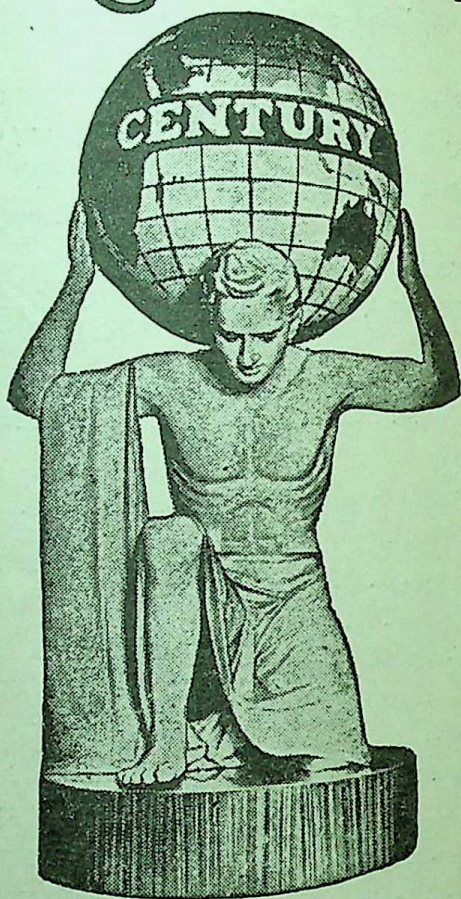
000

मितव्यायिता

कुछ दिन पूर्व मैं अपने एक मित्र की शादी में गया था। शादी का समय जान-बूझकर दिन के समय में रखा गया था; क्योंकि लड़के वालों का यह कहना था कि, 'आज की महंशाई के जमाने में रात्रि की शादी में जो बिजली, रोशनी एवं आतिशबाजी का फालतू खर्च आता है, उसे क्यों किया जाये? शादी की रस्म दिन में हो या रात में कोई फर्क नहीं पड़ता।'

मित्र की शादी बिजली, रौशनी और आतिशबाजी के वगैर हो जाने से दो हजार रुपये की बचत हुई। यही दो हजार रुपये लड़की के नाम पर लड़की को एस. टी. सी. कोर्स कराने के लिए जमा करा दिये गये। शादी बहुत अच्छी तरह संपन्न हो गयी। इस उदाहरण से हम

सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

मजबूत पर मजबूर नहीं हो जाते कि
 इन मितव्ययी शक्तियों का आज के
 जगत देखकर, सभी को समर्थन करना
 चाहिये। -हरिओम माथुर, अजमेर

०००

अवसर का अनुचित लाभ

मैं बस द्वारा दक्षिण भारत की यात्रा पर
 गया था। वहाँ कहीं भी चावल, चटनी
 और रसम आदि खाने पर दो रुपये से
 अधिक नहीं खर्च करने पड़े। परंतु जब
 पूरी रात ठंडी पड़ने लगी तो रात के ९
 बजे थे। पर्वतीय स्थल होने के
 कारण बदल छाये हुए थे और शीघ्र
 होने की भी संभावना थी। जिस
 वजह से हमारा ठहरने का प्रबंध था वह
 ठीक से बाहर था। लॉज के भवन में
 केवल एक ही होटल था। हाल में अपना
 सामान रखकर मैं वहाँ खाना खाने गया,
 जो मुझे चीजों के भाव जानकर बड़ी
 मिली हुई। होटल वाले ने एक प्लेट
 चावल और सब्जी के मुझसे पांच रुपये
 ले लिये। उस साधारण से होटल
 में चयनी ५० पैसे की थी। कुछ लोगों
 ने मजबूर खाना वहीं खाया। कुछ
 बाजार की ओर चले गये। कुछ
 चीजों के दाम सुनकर भूखे ही हाल
 में बाहर लेट गये। इसे कहते हैं अवसर
 का अनुचित लाभ उठाकर लोगों को

-के. कुमार, चंडीगढ़

०००

वह अदृश्य शक्ति

गत वर्ष होली के अवसर पर मैं अपने
 गांव जा रहा था। पटना जंक्शन
 पर पंजाब मेल में मुझे एक डिब्बे में
 खिड़की के पास इकलौती सीट खाली
 दिखी थी और मैं इत्मीनान से वहीं
 जा बैठा था।

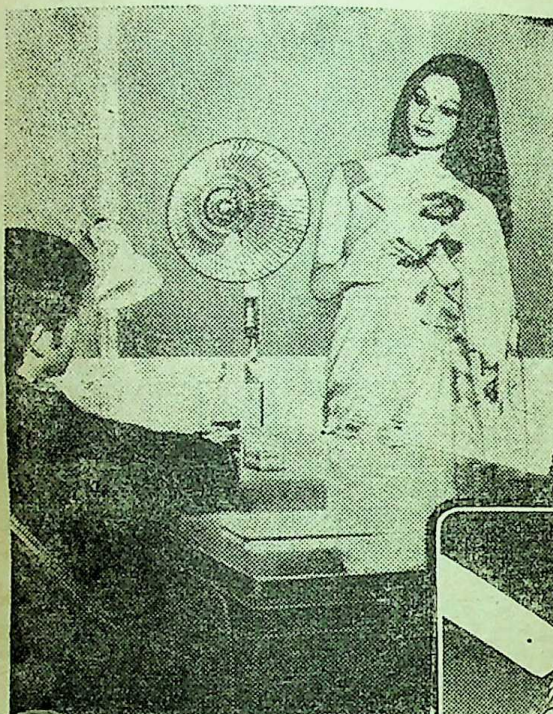
ज्यों ही ट्रेन ने दो-तीन स्टेशन पार किये
 कि मेरे कानों में किसी की आवाज आयी।
 लगा जैसे कोई मेरा नाम पुकारकर
 बुला रहा हो। जब डिब्बे में कोई परिचित
 चेहरा नजर नहीं आया तो मैं बगलवाले
 'इंटरकनेक्टेड' डिब्बे की तरफ बढ़ा।
 काफी देर तक इधर-उधर तलाशने के
 बावजूद वहाँ भी कोई परिचित दृष्टिगोचर
 न हुआ और मैं वापस अपनी सीट की
 तरफ लपका।

तभी डिब्बे में बैठे हुए कुछेक लोगों
 ने समवेत स्वर में मुझसे कहा, 'भाई
 साहब, आप तो बड़े भाग्यशाली निकले।'
 'क्या बात है, भाई?' मैंने उनकी बात
 को समझा नहीं।

'मत पूछिये साब!' ज्यों ही आप अपनी
 सीट पर से उठकर उधर गये कि बाहर से
 एक पत्थर आपकी खिड़की के शीशे से
 आ टकराया और शीशा चूर-चूर होकर
 आपकी सीट पर बिखर गया। सोचिये,
 यदि आप यहां बैठे रहते तो आपकी क्या
 हालत होती!' एक सज्जन ने मेरे
 करते हुए कहा।

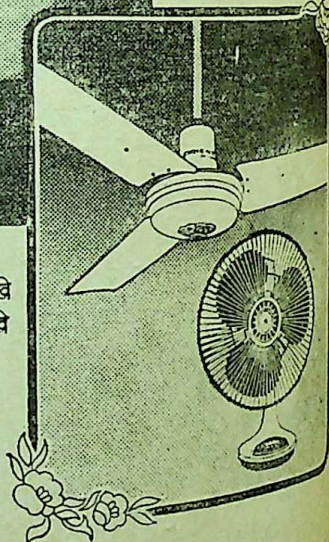
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर। कार्यकुशल। निर्भरयोग्य



आह हा ओरिएन्ट पंखों से
दिन कितने सुहाने बीते हैं। वे
विभिन्न मन लुभावने स्थापित
और अच्छी कार्यकुशलता के
लिये बने हैं। सच, विभिन्न
चिन्ताकर्षक डिजाइनों तथा
रंगों में बने ये पंखे हर एक
साज-सज्जा और बनावट में
मेल खाते हैं। और फिर वे
बने भी तो दक्ष कारीगरी हाथों
से हैं। अतः ठीक जैसा आप
चाहते हैं, वैसा ही पायेंगे—
में मनमोहक, कार्यकुशलता से
निराने और वर्षों चलने वाले।

- ४ सीलिंग पंखे ● ६ टेबल पंखे
- २ पेडेस्टल पंखे



ओरिएन्ट पंखा

कार्यकुशलता और सौंदर्य का
बेजोड़ संगम



ओरिएन्ट जनरल इण्डस्ट्रीज लिमिटेड
कारखाने : कलकत्ता और फोर्ट ग्लास
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नै सीट पर नज़रें दौड़ायीं। सचमुच
 सब के तमाम टुकड़े बिखरे पड़े थे।
 सब भी मैं समझ नहीं पाया कि वह
 शक्ति कौन थी, जिसने मेरा नाम
 उकारकर मुझे बाल-बाल बचा लिया था ?
 -मगवती प्रसाद द्विवेदी, पटना

०००

मजदूर की मानवता

मगवती पूर्व की बात है, मकानों की
 सफाई-पुताई हो रही थी। सीतापुर
 के घासमंडी मोहल्ले में घसियारे घास
 करने में व्यस्त थे। कुछ दूर पर एक
 मजदूर, जो मकान पोत रहा था, अपना
 काम समाप्त कर घर जाने की तैयारी
 में था। तभी उसने देखा कि एक घास-
 खाता एक क्षीणकाय गाय को बुरी तरह
 ढेर से पीट रहा है। उससे रहा न गया।
 उसने मारने वाले को रोकने का प्रयास
 किया। इससे घसियारे का क्रोध और
 बढ़ उठा। कारण यह था कि वह
 बार-बार गाय को भगाता था और भूखी
 सब बार-बार हरी घास के ढेर पर मुंह
 गाती थी। अतः मजदूर के समझाने
 पर घासवाला और उबल पड़ा। बोला,
 'वृद्ध बानी-महान्मा हो तो घास के दाम
 दो।' मजदूर को भी बात लग गयी।
 उसने बची-खुची सब घास खरीद ली
 और उस दिन की सात रुपये की मजदूरी
 घास बेचने वाले को दे दी। फिर उसने
 घास-घास खड़ी गायों को बुलाया और

नवनीत के चंदे की दरें

(भारत में) एक वर्ष : २४ रु.। दो वर्ष ४६
 रु.। तीन वर्ष : ६६ रु.। विदेशों में समुद्री
 डाक से : एक वर्ष ६० रु.। दो वर्ष : १०५
 रु.। तीन वर्ष : १५० रु.। विदेशों में हवाई
 डाक से : एशियाई देशों के लिए एक वर्ष का
 १२० रु.। दो वर्ष का २१० रु.। तीन वर्ष
 का ३०० रु.।

एशिया के अलावा अन्य देशों के लिए
 एक वर्ष : १५० रु.। दो वर्ष : २७५ रु.।
 तीन वर्ष ४१० रु.। -वितरण व्यवस्थापक

उन्हें भरपेट घास खिला दी।

गायों को खिलाकर उसने स्वयं नल
 पर पानी पिया और फिर आत्म-तुष्टि
 के साथ बोला, 'हे गोमाता, मुझे संतोष
 है कि तुम्हें रा पेट भर गया भले ही आज
 मेरे घर में चूल्हा न जले।'

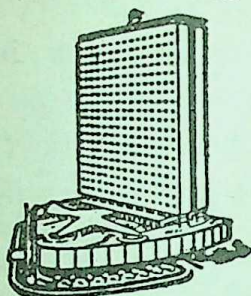
-गिरिश चंद्र मिश्र, सीतापुर (उ.प्र.)

०००

वह निश्छल मुस्कान

हमारे पड़ोस में आये एक नये परिवार
 में एक नन्ही-सी प्यारी बच्ची भी है।
 शुरू में वह पड़ोसियों को थोड़ी भयभीत
 और शंकित दृष्टि से देखा करती थी।
 मेरी नज़रें जब भी उससे मिलतीं
 मुस्करा देता था। पहले वह
 डरकर घर के अंदर भाग जाया करती थी।

SKYSCRAPERS



FLY-OVERS



STADIUMS



BRIDGES



For modern projects

ANCHOR

CONCRETE SHUTTERING PLYWOOD

is used
to cut drastically
shuttering and centering
costs.

For details write for our Technical Bulletin



**THE INDIAN PLYWOOD
MFG. CO. LTD.**

Regd. Office: 9 Wallace Street, Fort
Bombay 400001

पल्लु धीरे-धीरे वह भी मेरी मुस्कराहट से उत्तर एक लजीली मुस्कराहट से देने लगी।

एक दिन मैं कुछेक मानसिक परेशानियों में उलझा अपने बरामदे में इसीचेयर पर लेटा हुआ था। अपने घर के बाहर खेलती उस बच्ची से कई बार नज़रे मिलने पर भी मेरे होठों पर कोई मुस्कराहट न आ पायी। थोड़ी देर बाद ही वह नन्ही बच्ची लगभग रोनी सूरत लिये, सहमती हुई मेरे करीब आकर निम्नते हुए बोली, 'अंकलजी, आप मुझे क़िछलिए नालाज हैं मुझे बताइये न ?'

मैंने गोद में लेकर उसे प्यार से पुच-पुचा और कहा,
'नहीं, मुन्नी, मैं भला तुमसे नाराज क्यों

होने लगा ?'

'तो फिल आप मुझे देखकल मुछकुलाते क्यों नहीं ?'

उस नन्ही-सी बच्ची का यह वेवाक प्रश्न सुनकर मुझे इस बात का अहसास हुआ कि अनजाने में ही मेरे व्यवहार से उस बच्ची के कोमल हृदय को चोट पहुँची है।

और मैं तुरंत ही जबरन मुस्कुरा पड़ा।

मेरी मुस्कराहट को देखते ही उस बच्ची के चेहरे पर एक संतोष का भाव आ गया और उसके नन्हे होठों पर एक प्यारी-सी मुस्कुराहट खेलने लगी, जिसने कुछ समय के लिए मेरे मानसिक तनाव को एकदम हल्का कर दिया।

-विनोद कुमार लाल, हजारीबाग (बिहार)



(पृष्ठ ६४ का शेषांश)

चौक में से, सरे बाज़ार हर ले जाऊंगा। और आप स्वयम् उस समय चिल्ला-किल्लाकर उद्घोषणा करते जायेंगे—मैं राजा हूँ... मैं राजा हूँ... मैं राजा हूँ... !'
देवताप्रिय अभय राजकुमार ने घोड़े को एड़ दी, और वे धुर पूर्व के महापथ पर घोड़ा फेंकते हुए, धन मात्र में ही जाने कहां ओझल हो गये।...

मैं एक झटके के साथ योग-तंद्रा में बाहर आकर पुकारता ही रह गया :

'अरे अभय दा, फिर कब तुमसे भेंट होगी ! एक बार बता जाओ न !' मगर उत्तर कौन देता ?

... और हठात् यह क्या देखता कि मेरी शंया में गहरी निद्रा में सोये अभय राजकुमार। कृष्ण-कमल में चांदनी अपनी किरणों से 'जल-तरंग' बजा रही है।

मैं तब कहां था, कौन था, मुझे नहीं मालूम !

[प्रकाशक : श्री वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन-समिति,
५५, सीतलामाता बाजार, इन्दौर-२ के सौजन्य से]



मुनिया रानी बढ़ती जाये
घने काले, बालों का जादू जगाये
मोती से सफेद हाँकें को चमकाये



गाय छाप काँला दन्त-मंजन
—उसके दाँतों को चमकाये
मोती से सफेद व मजबूत बनाये

गाय छाप ब्राह्मी आमला केश तैल
और काँला दन्तमंजन
आयुर्वेद सेवास्रम लिमिटेड
बंबई-४०० ००४ • मालवी • देवगढ़



कृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००३
से प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
बंबई-४०० ००४ में मुद्रित ।

उपयोग करें

ग्रेलिम स्टेपल फाइबर

और

साथ में



मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय

पूरक धागे

Grasilene

विवालयर रेयान सिल्क (मन्यू.) विविंग कं. लिमिटेड
(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM

टे. नं : ३८१२८८



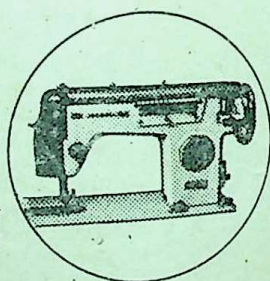
आज कशीदाकारी का सामान...तो कल सिलाई की मशीन धन्य है तुम्हारा प्यार...और स्टेट बैंक का साथ

बच्चों की जरूरतें भी वक्त के बदलती रहती हैं.

लेकिन हर माता-पिता की इच्छा हमेशा एक ही रहती है.

वे हर हालत में अपने बच्चों को खुश देखना चाहते हैं. उनकी हर जरूरत पूरी करना चाहते हैं.

इसके लिए भले ही उन्हें कोई भी कीमत चुकानी पड़े, चाहे जो कुछ भी त्याग करना पड़े, वे तो अपने बच्चों की आँखों में हम खुशी की चमक देखना चाहते हैं.



यदि आप भी अपने बच्चों को हर सुनहरा बचपन और एक उज्ज्वल भविष्य देना चाहते हैं तो स्टेट बैंक बचत कीजिए.

हमारे पास आपके हर सपने के अनुरूप योजना है.

अपने बच्चों के वर्तमान और भविष्य के अपने हर सपने के अनुसार हमारी विविध उपयोगी योजनाओं में चाहे जो भी चुनिए.

पुनर्निवेश योजना, आवर्ती जमा योजना, बचत खाता, सावधि जमा, अवयस्क खाता, जनता जमा, निरन्तर पेन्शन योजना और नकद प्रमाण पत्र.

बचत के लिए



स्टेट बैंक

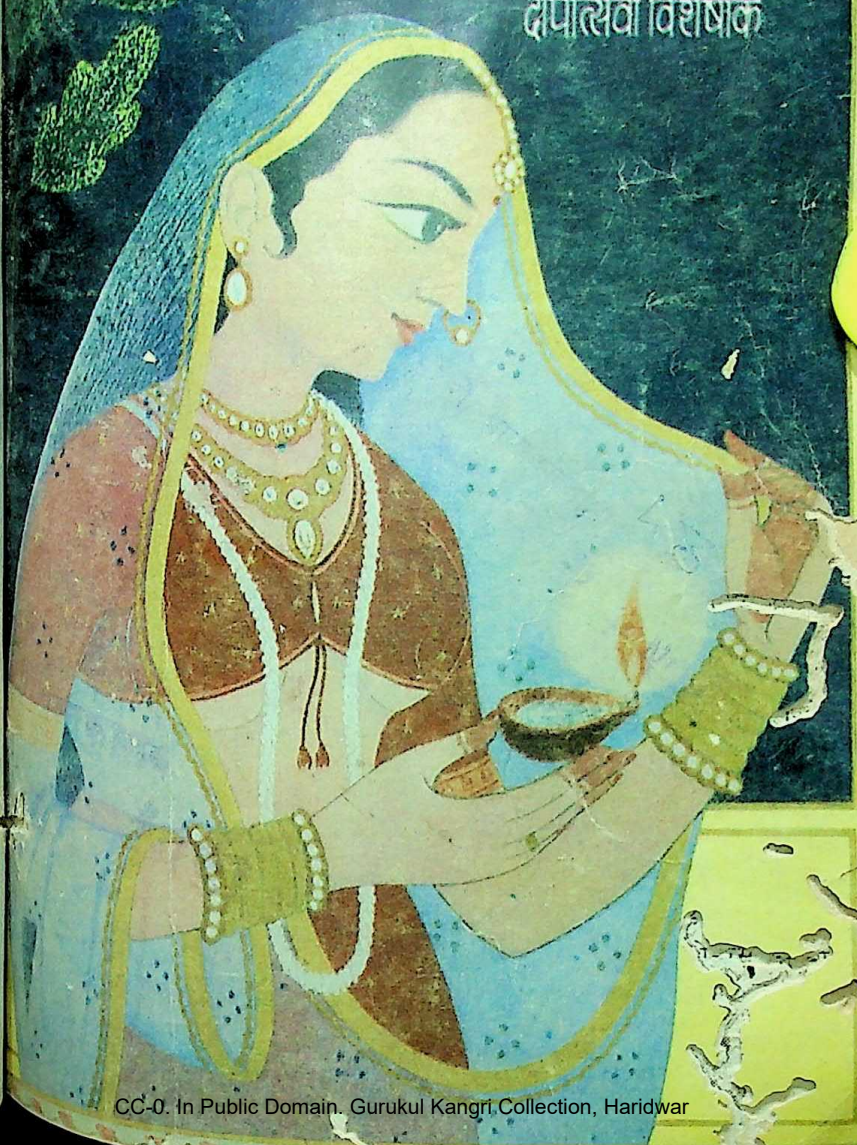
भारत का सबसे बड़ा बैंक.

CHAITRA-SB-100

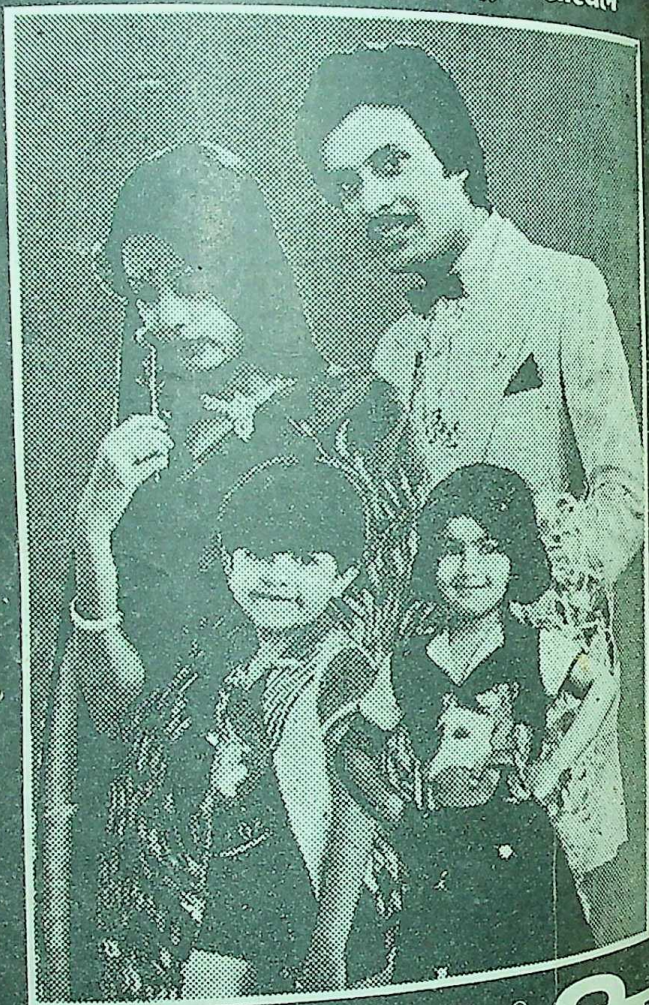
नवम्बर १९८१

नवनीत

हिन्दी डाइजेस्ट
दीपोत्सवी विशेषांक



विमल सहर्ष पेश करते हैं
फेशनबल वस्त्रों का एक सुखी परिवार.
असंख्य डिजाइनों एवं रंगों में
सूटिंग्स • शर्टिंग्स • साडीयाँ • ड्रेस मटेरियल



के

द्वितीय



विमल

अंतर्राष्ट्रीय श्रेणी की गुणवत्ता

आप ही देखिये कि
देना बैंक में आपकी
रकम समय के साथ कितनी
बढ़ती जाती है!...

समृद्धि जमा योजना

आपकी बचत की रकम आश्चर्यजनक गति से बढ़ती है क्योंकि न केवल आपके मूलधन पर बल्कि व्याज पर भी व्याज मिलता है।

भावती जमा योजना

आपकी मासिक बचत की छोटी-छोटी रकमों को प्रविष्टि के लिए मिलने की बड़ी रकमों में बदलिये।

मीयादी जमा योजना

जब आप सरलता से बचत कर सकें तो इस रकम के लिए बड़ा फायदा मिलेगा।

सकृदी प्रमाण पत्र

एक सुरक्षित निवेश राशि जो अपने आप बढ़ती जाती जाती है।



देना बैंक

वर्षिक जानकारी के लिए
अपने नजदीकी की
देना बैंक की शाखा में पधारिए।

(राष्ट्रीयकृत बैंक)

केन्द्रीय कार्यालय : मेजर हावर्ड रोड
कलकत्ता परेड, बम्बई 400 006

समृद्धि की उच्चता और समृद्धि के लिए समर्थन

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

बीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण चित्र : दीपवेला की सोहागिन :
क किर कमलाक्ष शेणै द्वारा चित्रित
मिनियेचर शैली

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३०; अंक : ११

श्रीश्चते लक्ष्मीश्चते प्रभाकर माचवे
चिरंतन् स्नेहलता चट्टोपाध्याय
शरद पूर्णिमा पर महारास...

डॉ. हर्षनंदिनी भाटिया

चांदनपुर के श्रीमहावीर : एक चम-
त्कारिक सिद्धपीठ सावित्री परमार
दो कविताएं डॉ. हरिवंशराय वच्चन
श्रीगुरुकृपा की दीक्षा

स्वामी मुक्तानंद परमहंस

प्रार्थना

भारतीय द्रष्टाओं की सुपूर्ण विद्या

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल

अतिमानस लोक का दर्शन श्रीमां
ऊर्ध्वबाहु ने पाया, वहां बस वही
हैं...

जैनेन्द्रकुमार

अस्पर्श

अज्ञेय

दो कविताएं

जीवन अपनी देहरी पर

डॉ. विद्यानिवास मिश्र

शारदीया

मदनमोहन तल्ल

बर्फ के फूल (कहानी) निर्मल कुमार

थोड़ी देर हो गयी (कविता)

गिरिजाकुमार माथुर

विरोधाभास

महेश मूलचंदानी

पाप मोचन

नंदकिशोर वंदन

लगता है कि

आसमान उस कमरे

का हिस्सा है

ज्योत्स्ना मित्त

नायक (बंगला कहानी)

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

विद्या भवन
कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

सं०; अंक : ११	सं० ११८१	राजी सेठ ८४
कर माचवे	स्वामि गंभीरानंद १२	
द्विषाध्याय	स्वामी गंभीरानंद १२	
स...	स्वामी गंभीरानंद १२	
भाटिया	स्वामी गंभीरानंद १२	
एक चम-	स्वामी गंभीरानंद १२	
त्री परमार	स्वामी गंभीरानंद १२	
राय वचन	स्वामी गंभीरानंद १२	
परमहंस	स्वामी गंभीरानंद १२	
पूर्ण विद्या	स्वामी गंभीरानंद १२	
अग्रवाल	स्वामी गंभीरानंद १२	
श्रीमान	स्वामी गंभीरानंद १२	
बस वही	स्वामी गंभीरानंद १२	
जैनद्रकुमार	स्वामी गंभीरानंद १२	
अनेव	स्वामी गंभीरानंद १२	
अनेव	स्वामी गंभीरानंद १२	
निवास मिश्र	स्वामी गंभीरानंद १२	
मोहन तरुण	स्वामी गंभीरानंद १२	
निर्मल कुमार	स्वामी गंभीरानंद १२	
विता)	स्वामी गंभीरानंद १२	
कुमार माधुर	स्वामी गंभीरानंद १२	
मूलचंदानी	स्वामी गंभीरानंद १२	
किशोर दंड	स्वामी गंभीरानंद १२	
न उस कर्म	स्वामी गंभीरानंद १२	
रोस्त्वा मितन	स्वामी गंभीरानंद १२	
न)	स्वामी गंभीरानंद १२	
नद्राय ठाकुर	स्वामी गंभीरानंद १२	



अमृतं तु विद्या मार्तीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित पूर्णतया निष्ठा, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी धर्मदा ग्यास, संस्थापक : कुलपति क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री धरमवी म. खटाऊ, उपाध्यक्ष : श्री गिरधारीदास मेहता, श्री जयमुखनाथ हाथी ।

सदस्योमी प्रतिष्ठान

१- मुम्बईदेवी संस्कृत महाविद्यालय २-शास्त्रीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३-सत्य संस्कृत परीक्षा विभाग ४-गीता विद्यालय ५-मुम्बई-ताल गोकुल स्नातकोत्तर अध्ययन एवं मोक्ष प्रतिष्ठान ६-मुन्शी सरस्वती मंदिर (पुस्तकालय) ७-कलमजी रामजी ज्ञान पुस्तकालय ८-भारतीय संगीत गिरावीट ९- भारतीय नर्तन गिरावीट १०-भारतीय इतिहास विभाग ११-प्रकाशन मंदिर, पुस्तक मुनिबंदि, मुन्शी साहित्य, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या प्रचारिक), प्रबन्ध अनंश (अंग्रेजी पाठिक), संबिद (संस्कृत प्रचारिक), नवनीत हिन्दी टाइपेस्ट (हिन्दी पाठिक), नवनीत समर्पण (गुरुदास पाठिक) १२-शास्त्री अंतर्दृष्टि और आधुनिक आविष्कार योजना १३-ओपनिषदिक योजना १४-राजानी मातृपाठिकी समिति १५- म. म. कला कालेज और न. म. विज्ञान विभाग संस्थापन (अंग्रेजी) १६-बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (नवी दिल्ली) १७-हजारीमल सोमानी कालेज, कला एवं विज्ञान (चोपाटी, बम्बई) १८- सरदार पटेल अभियांत्रिकी कालेज (अंग्रेजी) १९- रणछोड़ताल अचरलताल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०- रणछोड़ताल अचरल-ताल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१-प्रसाददेव वाणिज्य कालेज, (डाकोर) २२- कला एवं विज्ञान कालेज (डाकोर) २३- स्वायत्तवाच्य पानिदेकनिक (डाकोर) २४- श्री अमृतताल काविदास जोगी महिला कालेज (जयनगर) २५- व. स. मेहता विज्ञान कालेज (भरवारी) २६- रावेष्ट प्रसाद संश्लेषण एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मुम्बई) : प्रागल्भ्य देवकल नानजी संश्लेषण एवं प्रबंध-विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंश्लेषण कालेज, नवी दिल्ली; हरिलाल भगवती जनसंश्लेषण कालेज अहमदाबाद तथा बंगलौर; सोमानी जनसंश्लेषण कालेज, एरनाकुलम्; बड़ोदा, चंडीगढ़, मुम्बई, मंगलौर तथा त्रिवरु में स्थित जनसंश्लेषण कालेज २७- जवाहरलाल नेहरू भाषा अकादमी, नवी दिल्ली २८- अ. ह. वाशिया स्कूल (अंग्रेजी) २९- बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याभय) बड़ोदा तथा भरवारी ३०-प्रवन का विद्या मंदिर, एलामक्कर, एरनाकुलम ३१- कोचीनगार्ड पर प्रवन का स्कूल, कोचीन ३२- बल्लभराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याभय) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३- प्रवन का पब्लिक स्कूल, भेल, रामचन्द्रपुरम्, हैदराबाद ३४- संयुक्त संस्थापक : संस्कृत विश्व परियोजना; भारतीय स्त्री सेवा संघ; ज्योतिष परियोजना (बम्बई) ३५- संस्कृति पाठ्यक्रम पुस्तकें ।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलौर, बड़ोदा, भोपाल, मुम्बई, कलकत्ता, चंडीगढ़, कोयम्बरूर, डाकोर, दिल्ली, एरनाकुलम, मुंदर, हैदराबाद, जयपुर, जयनगर, काकीनडा, कलकत्ता, मद्रास, मद्रास, मद्रास, मंगलौर, मुम्बई, भागपुर, सिवोन, श्रीनगर, त्रिवरु, बिर्गावापट्टनम्, सन्दु (संयुक्त राज्य) ।

मार्तीय विद्या भवन

के.एम.मुन्शी मार्ग, चोपाटी, बम्बई-४००००७

फोन : ३५१४६१



श्रीश्चते लक्ष्मीश्चते...



डॉ. प्रभाकर माचवे

लक्ष्मी का अर्थ है चिन्ह—किस चिन्ह के कारण यह समुद्र-मन्थन से उत्पन्न रूपवती श्री, शोभा, कांतिमयी बनी, कोई नहीं जानता। वह विष्णु पत्नी हुई। ऋग्वेद में श्री सूक्त है। शायद श्री लक्ष्मी ही सौत थी ऐसा भी कुछ विद्वान् मानते हैं। शतपथ ब्राह्मण में माया असुरविद्या मानी जाती थी। वह भी श्री, लक्ष्मी का पर्यायवाची बनी। लक्ष्मी का एक नाम 'मा' भी है। भरहुत के एक शिल्प के नीचे 'सिरि मा' लिखा है। वायु-पुराण में लक्ष्मी के छप्पन नाम हैं, जैसे षष्ठी, भद्रा, वती, मर्दिनी, कात्यायनी, उमा, हैमवती, गौरी इत्यादि। इसी षष्ठी से छठ-पूजन शुरू हुआ और हिन्दी मुहावरा

आया—उसे 'छठी का दूध' याद आया। आज भी पैसे-टके के चक्कर में पड़े आदमियों को कहते हैं किस 'माया' में पड़े हो। दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम।

जब आदमी जन्म लेता है तो लक्ष्मियां उसके साथ जन्म लेती हैं। कुछ शिव और कुछ अशिव। अश्वमेध कहता है कि कल्याणरूपिणी लक्ष्मियों को हम साथ लेकर चलते हैं। वे जन्म कल्याणी नहीं होतीं, न जनेन्द्रजी की 'कल्याणी' ही। शिवाजी की घोड़ी शिवकल्याणी कहते थे। वह कल्याण पर शायद चढ़ी हो। किसी का कल्याण हो तो दक्षिण भारत में उसे 'कल्याण' कहते हैं। समाज 'कल्याण' कहते हैं।

होने लगे कर ले। दक्षिण में मंदिरों के
सामनाय 'कल्याण-मंडपम्' होते हैं।

लक्ष्मी हाथी के शब्द से नींद से जागती
है। वह गजलक्ष्मी भी है—हाथियों द्वारा
निमित्तविता। बिल्व उसका वृक्ष है।
जवन्प्रिय वृक्ष है वह। वह सुवर्ण-वर्णा
है। वह कमल पर आसीन है, कमलिनी के
रूप की है।

श्रीसूक्त कहता है —

सरोजनि लये सरोजहस्ते

धवलतरांशुकगंधमाल्यशोभे ।

सर्वति हरिवल्लभे मनोज्ञे

त्रिभुवनभूतिकरी प्रसीद मह्यम् ।

तीर्त्तरीय उपनिषद लक्ष्मी वस्त्र, भोजन,
धन देने वाली बतायी गयी है।

लक्ष्मी के दो पुत्र हैं बल और उन्माद।

त्रिभुवन में उसके चार पुत्र बताये गये

—वानन्द, कर्दम, श्रीद और चिक्लीत !

इन्दोनेसिया में राजा की लक्ष्मी उसकी

पत्नियों में रहती है। एक रानी का विष्णु

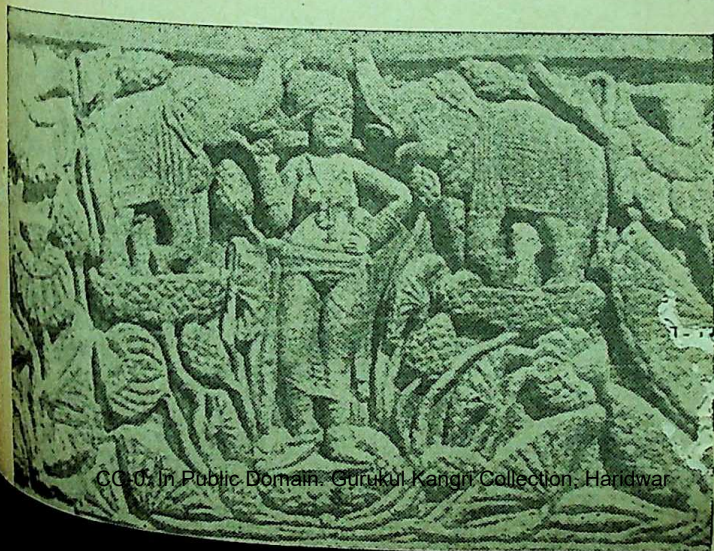
तोरण लक्ष्मी : दक्षिणी तोरण, विशाल स्तूप सांची (म.प्र.) प्रथम शती ई

से प्रेम हो गया। वह मर गयी। उसे
गाड़ा तो उस स्थान पर औषधियुक्त
वनस्पतियां निकलीं। चावल का अंकुर
उसकी नाभि से निकला, वही सर्वश्रेष्ठ
हुआ। अक्षताएं मंगलमयी हुईं। सूदान
में विश्वास है कि लक्ष्मी स्वर्ग से उतरकर
पृथ्वी पर आती है और भात पैदा करती
है। यवद्वीप (जावा) के पुराने सोने के
गहनों पर 'श्री' शब्द अंकित रहता है।

बौद्धों के दीघनिकाय में ब्रह्मजाल सुत्त
में लक्ष्मी की उपासना वर्जित है। नव-बौद्ध
लोग शायद यह नहीं जानते हैं। जैनों में
लक्ष्मी यक्षिणी है।

सांची, भरहुत, मथुरा में गजलक्ष्मी का
शिल्प मिलता है। अजंता, एलोरा में भी।
आनंदकुमार स्वामी ने लक्ष्मी के तीन
रूप वर्णित किये हैं—पद्मावस्था में, पद्म-
ग्रह, पद्मवत्स। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में
लिखा है कि जब लक्ष्मी विष्णु के साथ
दिखाई जाये तब द्विभुज होनी चाहिये।

स्तूप सांची (म.प्र.) प्रथम शती ई





स्नेहलता चट्टोपाध्याय
की बंगला कविता

चिरंतन

हमारा क्षणिक मिलन
मिथ्या देकर, स्वप्न देकर
उसी को करता है चिरंतन ।
अक्षय करता है एक मुहूर्त का प्रेम,
पृथ्वी के पथ का जीवन ।
वसंत की दो-एक भूल
आपात रंगीन फूल बनकर कब फूट उठती है
कोई नहीं जानता ।

निमेष का यही परिचय
और एक निमेष में होता है क्षय ।
भागर का विस्तृत जल और फेन कैसे
दूर से भी दूरतर चला जाता है
पड़े रह जाते हैं कुछ बालु-कण ।
मृत्यु को भरता है केवल जीवन का
अस्तित्व, क्षय,
फिर भी कुछेक क्षणों में
अनंतकाल का संचय ।

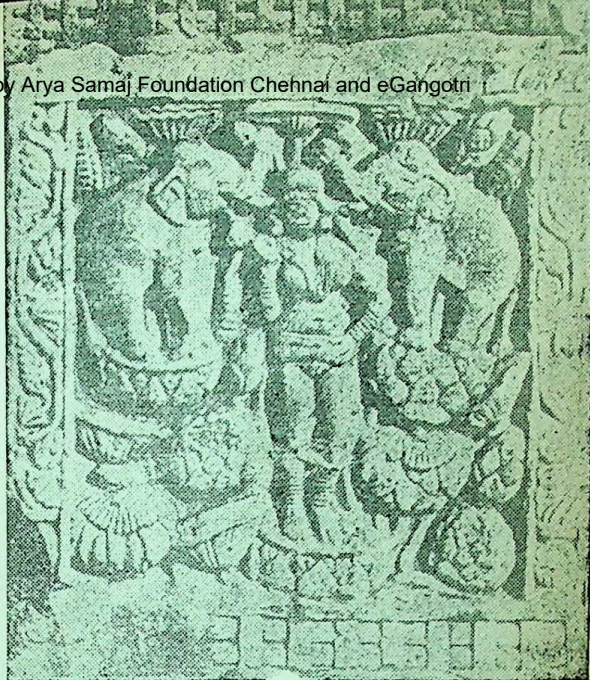
अनुवाद : प्रभाकर माचवे

नवनीत

स्वतंत्र हो, तब चतुर्भुज हो सकती है ।
अष्टदल कमल उसका आसन हो । उसके
नीचे के हाथों में दायें में कमल, बायें में
अमृत घट हो, ऊपर के दो हाथों में श्रीफल
और शंख ।

एक गुप्तकालीन सिक्के में लक्ष्मी
संपत्ति की वर्षा कर रही है ऐसा जिल
अंकित है । गुप्तवंश में लक्ष्मीपूजा सबसे
अधिक होती थी । सबसे मनोरंजक बात
यह है कि लक्ष्मी शैव और वैष्णव दोनों
की उपास्य देवता है । शैव मंदिरों में
विष्णुमूर्ति नहीं होगी, पर लक्ष्मी की
मूर्ति होती है । विष्णुदुर्गा ऐसी ही एक
मूर्ति का नाम है । लक्ष्मीगणेश एक तीव्र
देवता है । यह गणेश की बायीं जंघा पर
बैठी हुई, आलिंगन मुद्रा में दिखाई जाती
है । कोंकण में हेदवी गांव में एक दशभुज
गणपति है । उसकी गोद में बैठी ऐसी
लक्ष्मी है । उसे कश्मीर के शिल्यकारों
द्वारा बनाया गया मानते हैं । माघ वद्य
चतुर्थी को वहां उत्सव होता है ।

बंगाल में दुर्गापूजा का अधिक महत्त्व
होता है । विजयादशमी उल्लास का पर्व
है । जगह-जगह अनेक सुंदर मूर्तियां दुर्गा
की बनाते हैं—मुहल्ले-मुहल्ले में—नये-नये
दंग की । इधर तो झाड़ुओं की बनी
और बिस्कुटों से बनी दुर्गा भी देखी ।
शिल्पी जो-जो न करें, थोड़ा है । लक्ष्मी-
पूजन जिसे हम कहते हैं वह बंगाल में
एक दिन पहले का काली-पूजन है ।
अमावस्या को, विसर्जन का पर्व होता है ।



‘कमल’ ही नहीं है—यद्यपि ‘पद्मजा’
नायडू यहां बहुत वर्षों तक गवर्नरा रहीं।

अब श्री या लक्ष्मी किसी-किसी भाग्य-
वान की ही ‘पूँजी’ है। गुजराती में ‘पूँजी’
को ‘मूड़ी’ कहते हैं—यहां मुरमुरे की ‘भेल’
मिक्चर जो खाते हैं उसे कहते हैं ‘मूड़ी’।
अगर मार्क्स साहब के ‘डास कैपिटल’ का
वंगाली-गुजराती अनुवाद होता तो ‘दास’
‘मूड़ी’ हो जाता! मराठी उसी को ‘भांड-
वल’ कहते हैं। यह किस ‘भांड’ से बना
है शब्द पता नहीं। पर लक्ष्मी पात्र-अपात्र
का विचार कम ही करती है। अमावस्या
के अंधेरे में, उल्लू के वाहन पर, वह जिसे
ठीक बता दे उसी पर कृपा उंडेल देती है।
बंगाली में उल्लू ‘पेंचा’ है। ऐसे-ऐसे पहा-
लक्ष्मी के पेंच हैं।



डॉ. हर्षनन्दिनी भाटिया का प्रासंगिक लेख : शरदोत्सव प्रसंगे

शरद पूर्णिमा पर महारास और चंद्रसरोवर पर सूरदास

शरद ऋतु प्रकृति और मानव की प्रिय, निर्मल और मनोरम ऋतु है। शरद ऋतु वर्षा के उपरान्त सद्यःस्नाता की भांति कारे-कजरारे मेघों का घूँघट उठाये, श्वेत रेशमी दुकूल पहने तथा सुगन्धित पुष्पों का सौरभ बिखेरते हुए आती है। सर्वांग कलाओं से युक्त धवल, निर्मल और विमल आकाश का चांद विहंस रहा था। शरदपूर्णिमा की निराली चन्द्रिका नव-वधू के रूप में सोलह शृंगार करके, रसधार भर के, सितारों-जड़ी चूनरी ओढ़ कर शीतलता बरसाती, मधुरिमा छल-काती मादकता बिखराती, मृदुलता लुटाती एवं शोभाश्री छिटकाती मंथर गति से चलती हुई प्रतीत होती है।

शरदागम से प्रकृति आनन्दमयी हो उठी है। वसुधरा के चारों ओर मंजुलश्री ही छिटक रही है। शरत्काल के रवि की सुनहली किरण ने जब अंगड़ाई ली तो अलसाई-सी वर्षा ऋतु की वनस्पतियां भी जाग उठीं। प्रकृति का विवर्ण मुख मुस्कराने लगा। आकाश में खंजन पक्षी उड़ने लगे, सरोवरों का जल निर्मल

नवनीत

हो गया, कमल-दल विकसित होने लगे। कांस के पौधों ने अवन को, हंसों ने सिरता के जल को, तथा फलों ने वृक्षों को धवन कर दिया है। शरद के आगमन के साथ ही अगाध निर्मलता छा गयी है। शरद के निरभ्र आकाश में सुन्दर अगस्त्य नक्षत्र का उदय हुआ, जिसने अपने स्वाभावानुसार जल के सम्पूर्ण अतिसार को सोख लिया। अब न नीचे कीचड़ ही रहे और न ऊपर की ओर मेघ की कालिमा। इस प्रकार शरद की वीणा पर यह आनन्द का महारास स्थायी-अन्तरा के साथ प्रतिवर्ष ही बज उठता है।

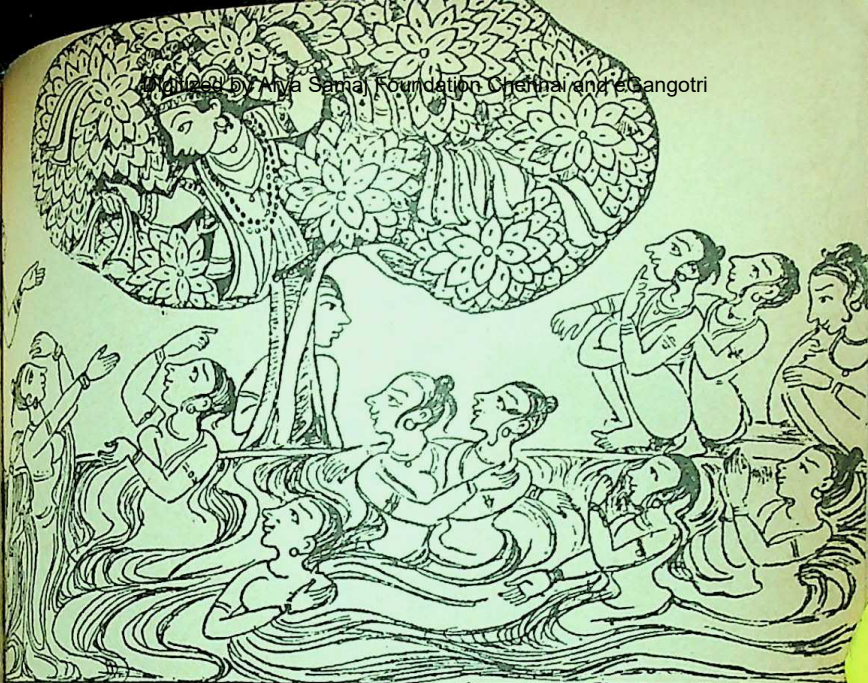
शरदपूर्णिमा का प्रकाशमान चन्द्र नील नभ में नृत्य करता रहता है और शान्त जल में शशि के खिलते मुख की छाया झिलमिल कर अपूर्व सौन्दर्य बिखेरती है। शरद की शुभ्र रजत वर्ण दिव्य चन्द्रिका शान्त जरी की श्वेत साड़ी धारण कर महारास बनकर दसों दिशाओं के कोने-कोने में छिटक रही हो। श्री बालमुकुन्द चतुर्वर्ण की चित्रोपमता प्रशंसनीय है—

अंबर अमल भयो, कांसनु बिबेके के।

मसंगे

ने लग
ने सरिता
को धवन
न के सा
है। जर
अगस्त
ने स्वाभा

तसार को
ड ही ख
कालिमा
रह आन
साथ प्र
चन्द्र नी
शान्त ज
जिलमि
शरद को
का मान
महारान
ने कोने
न्द चतुर्व
बखरे के
वर्ष



बोधि कुन्द औ चमेली जुरि आये हैं ॥
सहस्रबाहु दिसनु मुखन मांडे,
को लहर रत्न-हार पहिराये हैं ॥
'मुकुंद' आये खंजन सचिव बने,
वर्षाति सेना बिगुल बजाये हैं ॥
राजरानी-सी सरद महारानी आज,
दिसा चांदनी निसानु फहराये हैं ॥
राश्रीय प्रकृति की सुरम्य सुषमा
प्रभावित होकर तथा शरत् में खिली
चमेली से सुशोभित रमणीय रात्रि
निरखकर भगवान श्रीकृष्ण ने रास-
नृत्य का राधा तथा गोपियों की
पूरा पूर्ण करने का संकल्प किया ।
शरद के भावुक कवि ने कहा है—

शरदोत्फुल्ल-
मल्लिकाः ।

वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥

शरद पूर्णिमा की शुभ्र ज्योत्स्ना की
उज्ज्वल आभा से वसुधा जगमगा उठी ।
चारों ओर शान्ति की स्निग्धता, रात्रि
का नीरव और निस्तब्ध प्रहर, कलिन्द-
नन्दिनी-कालिन्दी का एकान्त तट थैर
शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन का अनुभव
करते हुए लीलाधारी-बिहारी भगवान्
श्रीकृष्ण ने रासक्रीड़ा करने का विचार
किया । शरद की मधुरिमा से प्रभावित
होकर और समस्त तत्त्वों के पूर्ण विकास
से श्रीवृन्दावनधाम आनन्द रस में डूबा
हुआ था । परम आह्लाददायिनी श्री-
राधिका तथा गोपीगण तन्मय भाव से ब्रज-
नन्दन के दर्शन और सेवा के लिए लालायि
थे । ऐसे समय में श्रीकृष्ण ने शब्द-ब्रह्ममयी



महाराष्ट्र शासन
सुखमय दिवाली और
मंगलमय नववर्ष के लिए
आपको अपनी शुभकामनाएं
पेश करता है. साथही
इस ध्येय की पूर्ति के लिए
कठोर परिश्रम का वचन देता है.

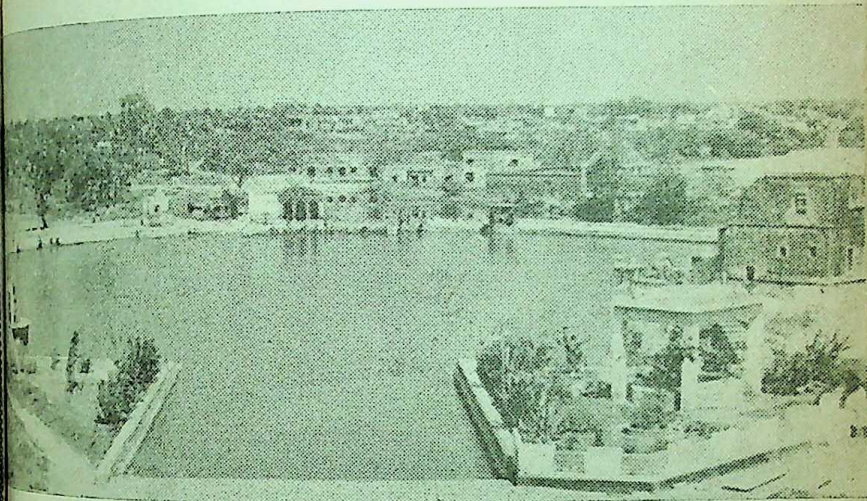
महाराष्ट्र शासन
गरीबों का हितचिंतक शासन



डीजीआयपीआर

सूरदासजी ने शरद-
 वसन्त की हिली वांसुरी में स्वर फूके ।
 गोपियों के समान ही गोपियां भी परम
 सुख और आनन्दमयी हैं । उन्होंने
 स्वयं के साक्षात् आह्वान को सुना ।
 स्वयं के मोहक वेणुस्वर ने गोपियों के
 हृदयों से जाकर उनके मर्मस्थल
 को स्पर्श किया और उनके मन-प्राण को
 मग्न बना दिया ।

विपिन वृन्दा रमन, सुभग फूल सुमन,
 रास रुचि श्याम के मर्नहि आयौ ।
 परम उज्ज्वल रैन, छिटकि रही भूमि पर,
 सद्य फल तरुनि प्रति लटक लागे
 तैसोई परम रमनीक जमुना-पुलिन,
 त्रिविध वहे पवन आनंद जागे ॥
 राधिका रमन वन-भवन सुख दैखिकै,
 अधर धरि बेनु सुललित बजाई ।



चंद्रसरोवर (छायाकार : चंद्रशेखर)

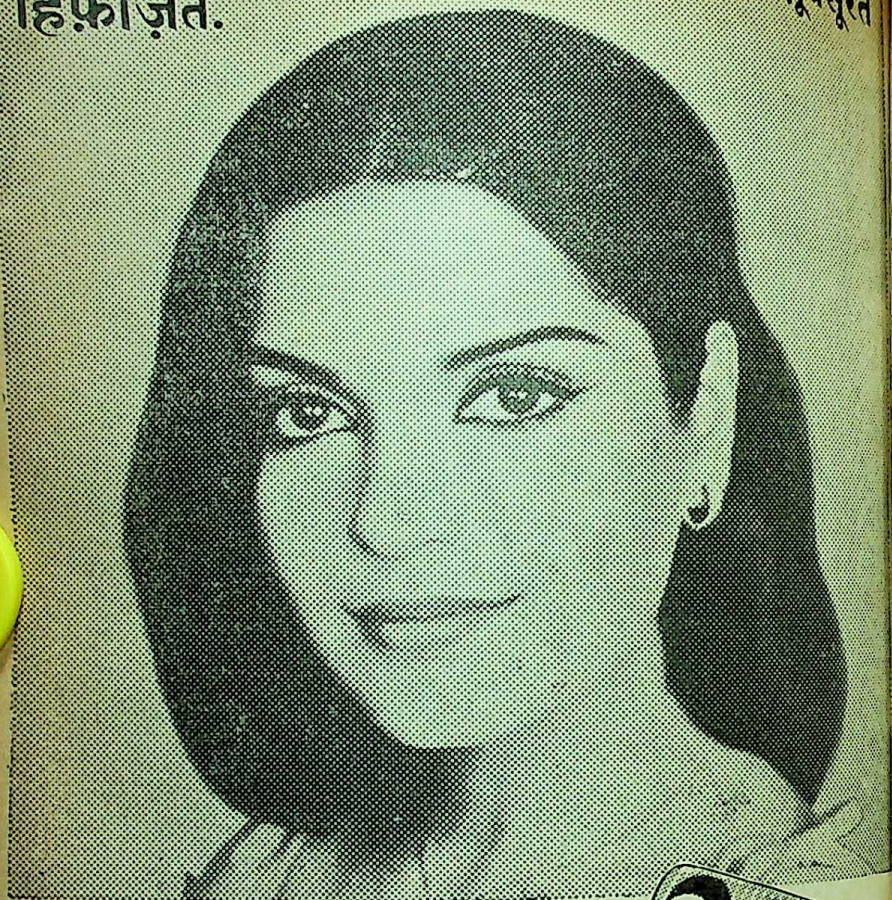
सूरदासजी ने गोप पदों में मनोरम
 वसन्त में रास, महारास, मान-अभिमान
 वसन्त-माधुरी से सम्बन्धित पदों का
 संग्रह है । सूरदासजी के सुन्दर पदों में
 जो अमिलाषा श्रीकृष्ण के हृदय से
 निकल रही है—

नाम लै लै सकल गोप-कन्यानि के,
 सबनि कै स्रवन वह धुनि सुनाई ॥
 सुनत उपज्यो मैं, परत काहुं न चैन,
 शब्द सुनि स्रवन भई बिकल भारी ।
 सूर-प्रभु ध्यान धरि के चलीं उठि सबै,
 भाजन-जन नेह तजि घोष नारी ॥

श्रीकृष्ण के प्रेम में लिप्त गोपियां
 निस्संकल्प और निश्चिन्त होकर गृहकार्यों

जीनत के हस्न को चाहिए लक्स की खूबसूरत हिफाज़त.

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and Bangalore



जीनत अमान अपनी अदाकारी के साथ-साथ अपनी खूबसूरती का भी उतना ही खयाल रखती है, अपने रंगरूप को खूबसूरत और दिलकश रखने के लिए वह केवल लक्स पर भरोसा करती है.

खुद जीनत का कहना है: "लक्स मेरे रंगरूप को सही मात্রে में मुलायम और खूबसूरत रखता है."



Zeenat Aman

इस सौम्य लक्स-
फिल्मी सितारों का सौंदर्य साबुन.

हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड का एक उत्कृष्ट उत्पाद

रत
जली हुई थी—गुरुजनों की सेवा-
पूजा-माठ, साज-शृंगार, गो-दोहन,
नाचन आदि। श्रीकृष्ण की मुग्ध
नेवाली बांसुरी की ध्वनि सुनकर
गोपियाँ अपनी मुग्ध-बुध भूलकर परि-
र और गृह त्यागकर अकेली ही अस्त-
गति से श्रीकृष्ण के पास भागीं।
कहे श्रीकृष्ण जिस गोपी का नाम
बांसुरी में बुलायें, वह भला दूसरी
देखकर रके—ऐसा कब सम्भव
सकता है। श्रीकृष्ण के प्रेम में निमग्न
गोपियाँ देह-गोह, पति-पुत्र,
लोक, कर्तव्य-धर्म की अवहेलना
कर एकमात्र परमधर्म स्वरूप श्रीकृष्ण के
पहुँच गयीं।

कोटि-कोटि कामदेवों के सौन्दर्य को
मिथित करनेवाले ललित त्रिभंगी मुद्रा
श्रीकृष्ण को निर्निमेष दृष्टि से निहारती
थीं। श्रीकृष्ण ने उनकी कठिन परीक्षा
की। उनकी उत्कट भक्ति देखकर रसिक-
गुरु श्रीकृष्ण ने मन्द-मन्द मुस्कान
दिखते हुए रसमयी रासलीला प्रारम्भ
की। सोलह हजार गोपियों के मध्य अनेक
प्रारण कर श्रीकृष्ण प्रकट हुए।
प्रारम्भ हुआ। दिव्य रासमण्डल में
श्रीकृष्ण ने वैजयन्ती माला पहनकर प्रवेश
किया। दो ब्रजाङ्गनाओं के मध्य अनेक
प्रारण कर गले में हाथ डालकर
नृत्य करने लगे। रासमण्डल
नृत्य करती हुई प्रत्येक गोपी अपने
रसिकराज कृष्ण का मनोहारी

दर्शन कर परम आनन्दमयी हो उठी।
शरद रजनी में असंख्य ब्रज-गोपिकाओं के
कंकन, किकिनि और नूपुरों की झनकार,
अंग-प्रत्यंग-संचालन और कोमल पदा-
घात तथा गायन-वादन के स्वर-ताल
युक्त सुर-लहरी दशों दिशाओं में गूँज
उठी। राधा-कृष्ण की युगल-जोड़ी रास-
लीला के मध्य अनन्त भाव-भंगिमाएं
प्रस्तुत कर रही थी। सूरदासजी ने अपूर्व
रास का उल्लेख किया है—

आजु हरि ऐसौ रास रच्यो।

खवन सुन्यौ न, कहूं अवलोक्यो,

यह सुख अब लौं कहां संच्यौ॥

रास-विलास में मग्न गोपियाँ आनन्द
से अभिभूत हो गयीं। उनका शृंगार
विखर गया, वस्त्राभूषण अस्त-व्यस्त हो
गये। नृत्य करते-करते थक गयीं। तत्प-
श्चात् शरद ऋतु की चन्द्रिका में श्रीकृष्ण
ने गोपिकाओं के साथ यमुना-जल में
बिहार किया। सूरदासजी ने अगाध सुख
की शुभ वर्षा तथा गोपियों की मनोकामना
पूर्ण होने का उल्लेख अपने पद में किया है—

रास रस स्रमित भई ब्रजबाल।

निसि सुख दे जमुना-तट लै गये,

भोर भयो तिहि काल॥

मनकामना भयी परिपूरन,

रही न एकौ साध।

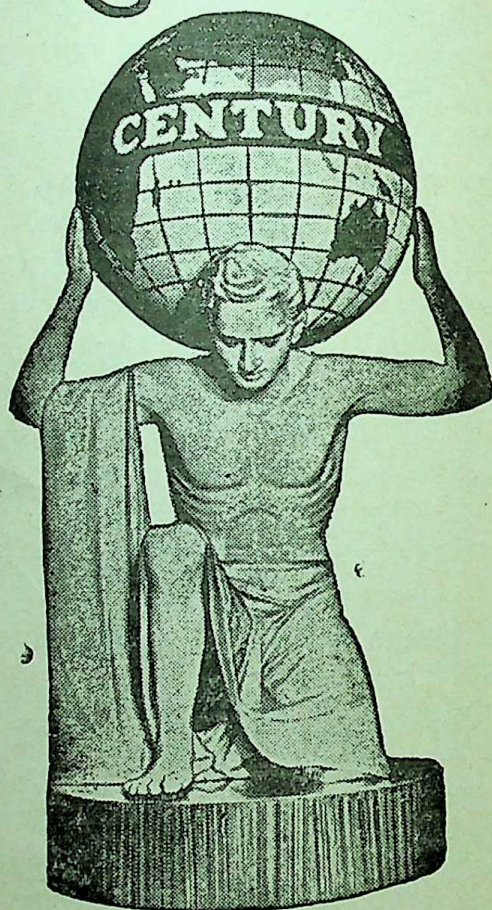
षोड़स सहस नारि संग मोहन,

कोन्हो सुख अवगाधि॥

जमुना-जल बिहरत नंद-नंदन,

संग मिली सुखसारि।

सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

सूर धन्य धेनुकी वृन्दावन ^{Reddy and Samal Foundation Chennai and eGangotri} लिए स्थापित हो गया। चन्द्रसरोवर के

रवि-तनया सुखकारि ॥

रासलीला तो शाश्वत है और
नित्य नूतन और अखण्ड है—

नित्यधाम वृन्दावन स्याम,

नित्य उपराधा ब्रजवाम ।

नित्य रास-जल, नित्य विहार,

नित्य भाव खंडिताभिसार ।

भगवान् श्रीकृष्ण की यह दिव्य लीला
गोपिकाओं के साथ दिव्यातिदिव्य
ने निरन्तर होती है और रसिक-भक्तों
निमित्त भूतल पर भी इसका प्राकट्य
जाता है, जिससे भगवान् की लीला
निर्मलित होकर मानव भी स्वयं को
भुक्त कर सके ।

भारतीय जीवन और साहित्य में
सूर-गुणमा के ज्योत्स्ना-स्नात सौन्दर्य
विनिष्ठ स्थान है । श्रीमद्भागवत की
अष्टाध्यायी का शुभारम्भ 'भगवानपि
रात्रौ शरदोत्फुल्ल मल्लिकाओ' से ही
है । श्रीकृष्ण ने महारास के लिए
सूर-गुणमा का ही दिवस चुना । गोवर्द्धन
परासौली गांव में चन्द्रसरोवर
है, जहां श्रीकृष्ण ने सभी गोपिकाओं
को रास रचाया था । यह रास ऐसा
था कि वह रात्रि छह मास की ब्रह्म
काल बन गयी । उस समय से ही ब्रजक्षेत्र
चन्द्रसरोवर के रूप में उस समय की
रासस्यली बन गयी । सूरदासजी
परासौली और आज के महमदपुर
चन्द्रसरोवर के रूप में सदा-सदा के

निकट वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों की
वैठकें हैं । वल्लभाचार्यजी चन्द्रसरोवर
पर छोंकर के वृक्ष के नीचे बैठक लगाते
थे । गोसाईं विठ्ठलनाथजी और
गोकुलनाथजी की बैठकें होती थीं ।
कुंभनदास और चतुर्भुजदासजी के खेत
भी यहीं पर थे । राजा जवाहरसिंह ने
चन्द्रसरोवर को अष्टदल कमल के सुन्दर
आकार में पक्का बनवाया था । प्रभुदयाल
मीतलजी ने चन्द्रसरोवर को प्राचीन
वृन्दावन और महारास का स्थल माना
है । यहां अनेक साहित्यिक कार्यक्रम
आयोजित किये जाते हैं ।

चन्द्रसरोवर पर महाकवि सूरदास का
निवासस्थल माना जाता है । यहां एक
कुटी में रहकर सूरदासजी ने अपने जीवन
के ७२ वर्ष (१५६८-१६४०) व्यतीत
किये । प्रतिदिन गोपालपुर स्थित श्री-
नाथजी के मंदिर में जाकर वे कीर्तन
करते थे और पद गाते थे । सूरदासजी ने
भक्ति-साधना और साहित्य-साधना चन्द्र-
सरोवर पर ही पूर्ण की ।

सूरदास की बंद आंखों में वह दिव्य
युगल समा जाता है । अंतिम पद गाते
हुए परासौली की रासभूमि और सूरदास
की चिद्भूमि एक हो जाती है—

खंजन नैन सुरंग रसमाते ।

अतिसय चारु बिमल चंचल ये,

पल पिंजरा न समाते ॥

—नन्दन, भारतीनगर, मेरिसरोड, अलीगढ़



उपयोग करें

ग्रेलिम स्टेपल फाइबर
और
साथ में



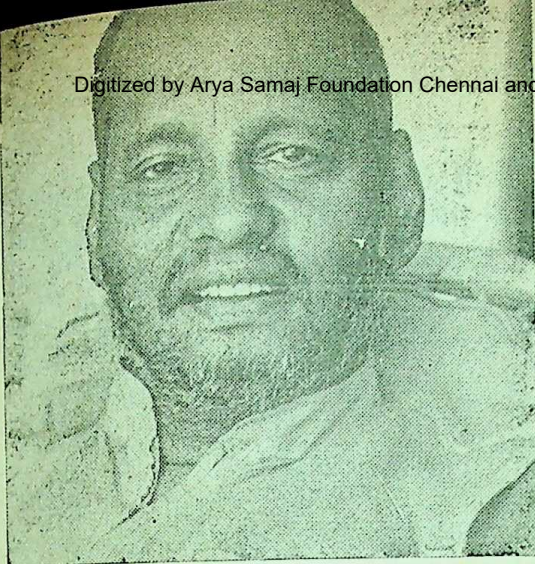
मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय
पूरक धागे

Grasilene

दि ग्वालियर रेयान सिल्क (मैन्यू.) वीविंग कं. लिमिटेड
(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM

दे. नं. : ३८८२८८



श्रीगुरुदेव जयवन्त हों

विगत पृथ्वी पर शवितपात-सिद्धयोग के अप्रतिम कृपा-समर्थ योगी हैं श्रीगुरु मुक्तानन्द
जिसने वे तीन वर्ष तक आज के सारे भूमंडल पर ध्यान-क्रान्ति का प्रवर्तन करके
अक्तुबर १९८१ को अपनी भूमावती मातृभूमि भारतवर्ष में पुनः पदार्पण कर
दिए हैं।

इस शुभ मंगल मुहूर्त में हम अपने देश की असुर-दलित देवभूमि पर उनका हृदय
पूर्ण प्रेम से प्रणामपूर्वक स्वागत करते हैं। इस विनती के साथ कि वे भारत-मां की
वैकल्य शोषित-पीड़ित सन्तानों के परित्राण का मार्ग प्रशस्त करें।

श्रीरेणु कुमार जैन

सम्पादक—'नवनीत हिन्दी डाइजैस्ट'

चांदनपुर के श्रीमहावीर : एक चमत्कारिक सिद्धपीठ



सावित्री परमार का एक दैविक इतिहास-लेख

‘नमन्नाकेन्द्राली मुकुटमणिभाजालजटिलमं
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृतां
भवज्वालाशान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे—’

धूल-धूसरित पथरीले पहाड़ों के क्षेत्र
विस्मय से फैल जाते हैं—ये आज कैसी
अलौकिक प्रार्थना में लिपटी सूरजिया भोर
के प्रकाशित छंद झरे हैं ! किस मंगलमय
भविष्य के संकेत में दिशाएं नमित होकर स्वयं
साक्षात् प्रार्थनाएं वनी हुई हैं ? कैसे अस्फुट
से अनगूँज मंत्र . . . ? किसकी सारगर्भित
वाणी कर रही है एक-एक अक्षर का अर्थ ?
यह कैसा आह्वान है विकल-विकल-सा ?
‘आओ, देखो, नयन-पंथ से कौन भीतर
गहरे अन्तर्मन में, कण-कण के हृदय तल में
उतरता जा रहा है—इन्द्रमणि की आभा
से उद्भासित शीश-किरीट. . . देवगंगा-
धोती है जिसके युगल कमल-पद की विष्णु-
आभा को. . . जिसके चरणों की वायु-
सरित-गति करती है अखिल सृष्टि के

दुख-ताप का हरण . . . जिनके ध्यान
मात्र से मन में शांति और अनहद नाद की
सलिला जागृत होती है . . . ऐसे भगवन
स्वामी महावीर अवतरित हो रहे हैं . . .
आयें . . . भगवान महावीर आयें . . . !
पर्वतों के नेत्र सूर्यमुखी के पुष्पों की चंद-
खचित हथेलियों से उत्कीर्ण हुए जा रहे
हैं . . . आज की प्रातःकालीन उषा आरती
का यह कैसा अनूठा शंखनाद है ?

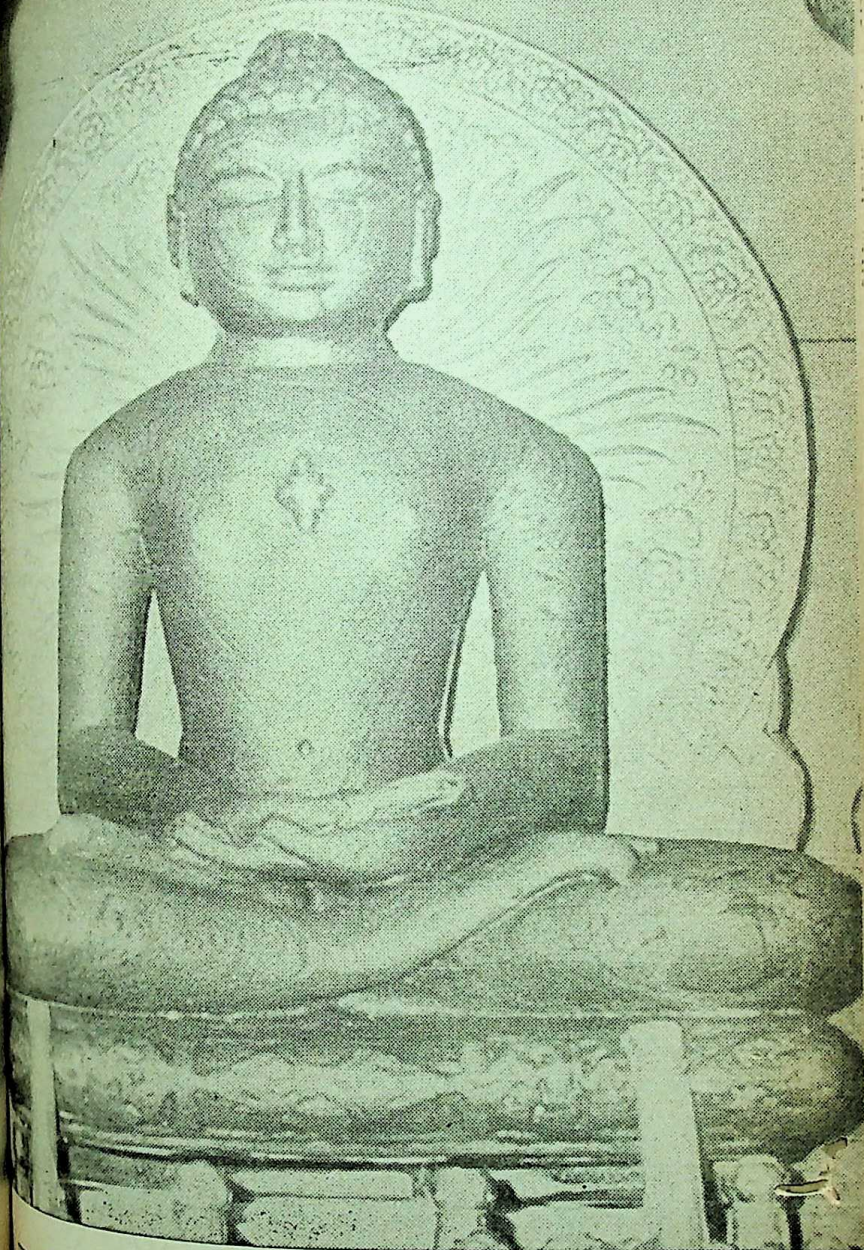
तभी हुआ किरणों का नवोदित पदा-
र्पण नीबुआई धूप के चटकीले रंगों तले
दूर तक फैला जंगल चौक उठा, किरन-
कली की सुनहली केशराशि से झरने लगी
सूर्यलोक की गुनगुनी गंध, गूँज उठी हवा
की लय पर पत्तों की भोर-प्रभाती, फूलों
की सुकुमारता पर तुरंत बिछल गये मोर-
पांखी छाया के चिकने आंचल । देखते
ही देखते पूरा मैदान, सारे खेत-खलिहान
धूप के शीशमहल हो उठे ।
कलकल बहती गंभीर नदी के पारदर्शी

नवंबर

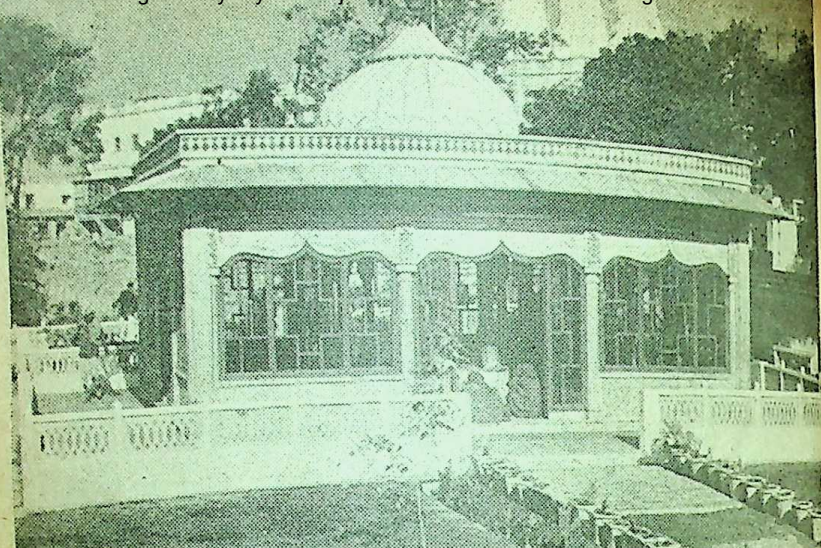
नवनीत

१८

के ध्यान
द नाद की
से भगवन
रहे हैं ...
आये ...
की चंदन-
ए जा रहे
पा आती
है ?
दित पदा-
रंगों तले
ठा, किरन-
झरने लगी
उठी हवा
वाती, फूलों
गये मोर-
ल । देखते
न-खलिहाय
के पारदर्शी
नवंबर



के हरिजन चर्मकार को सन्देश देकर भूगर्भ से प्रकट होने
ले श्रीभगवान महावीर, जो चांदनपुर में जीवन्त विराजमान हैं



**चरण-छतरी : श्रीमहावीरजी, यही वह स्थान है, जहां से
यह जीवन्त सूति प्रकट हुई थी**

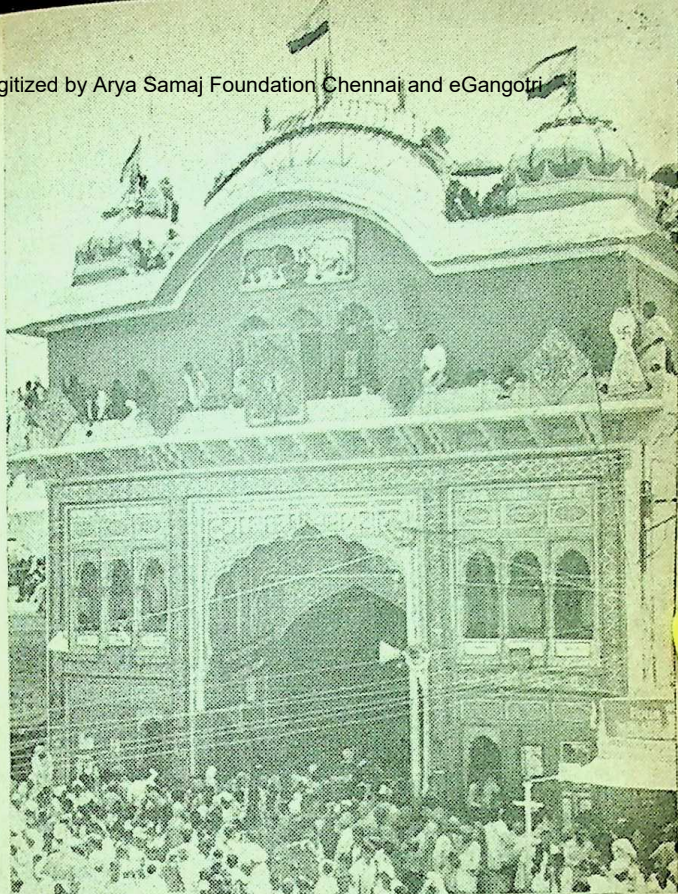
दर्पण में उषा की सोनल छवि बिंबायित
ही उठी । समय-नौका के खुलते-उड़ते
बासंती पाल, पल-पल झरते मंजरी रूप,
वृक्षों की सुगंधित मतवाली सांसों की
लुभावनी मुस्कानें, नीम-चमेली के जूड़ों की
चंपई महक । कुएं-तालाबों की पलकों में
अलसाये सपनों की ओसीली-सजीली छुअन,
कनेर, कैर और झरबेरी की लटें सुलझाते-
संवारते ग्रामीण आंचल के नटखट भंवरे ।
नवमल्लिका से हंसते-खिलते पांत-पांत
पक्षियों के आकाशी काफिले, बगराई अम-
राई के आंगन में कोपलों लताओं के बेल-बूटे-
दार किशमिशि आंचल, गुच्छ-गुच्छ पलाशों
के धकधकाते सुख-सुख फूल, कैसा तो
अद्भुत प्रभाती सौन्दर्य ? पर्वती चोटियों-

घाटियों में बिछे-फैले गेरू-खड़िया से लिये
पुते, रंगोली मढ़े गांव के घरों, पुवराजी
पोखर के फिरोजी पानी से निकलती हुई
सद्यस्नाता गाय-भैंसों के मनस्वी रूप ।

कोयल की कुटुक के साथ तभी कहीं
वहने लगती है बंसी की मादक कल्याणी
धुन । जंगल की एक-एक पगडण्डी सुक
की कुसुम-पराग केसर-सी मंदिर-मंदिर
मलयजी खुशबू से भीग-भीग उठती है ।
गांव के छप्परो से उठने लगता है अन्न की
गंध लपेटे उदा-कासनी धुआं और उग्र
एक टीले पर गायों के झुंड को चरागाह
में छोड़कर आ बैठता है एक चरवाहा
युवक-गले में चांदी की गंडेली, कानों में
मुरकियां और सिर पर केशरी पाग।

नवनीत

२०



अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी के मंदिर का सिंहद्वार

जो का वह भगवत्
पुनः पुनः पर एक
लोकगीत
निकालने
लोकधुन
अचा-
अदृश्य छाया
अलापने
ही है -

मंगलकरण
विज्ञान
तो ताहि जाते भये
महान ...'
आनंद का
अलगो जा
जाता है। उसी

सामने एक
चमत्कार !
के झुंड में
निकलकर श्वेत-
कजरी गाय

जो नौ दौड़ती है और सामनेवाले ऊंचे
कोटोले पर चढ़कर एक स्थान पर
जाती है। उसके गौरांग स्तनों
दूध के झरने निसृत हो रहे हैं।
दूध उस स्थान की माटी में समाता
रहा है। गाय के नेत्रों में असीम संतोष
रहा है। स्तन खाली हो जाते हैं।
शान्त-धीर कदम फिर से गौ-
शोर लौट जाते हैं। चरवाहे
काया जड़ होकर रह जाती है।

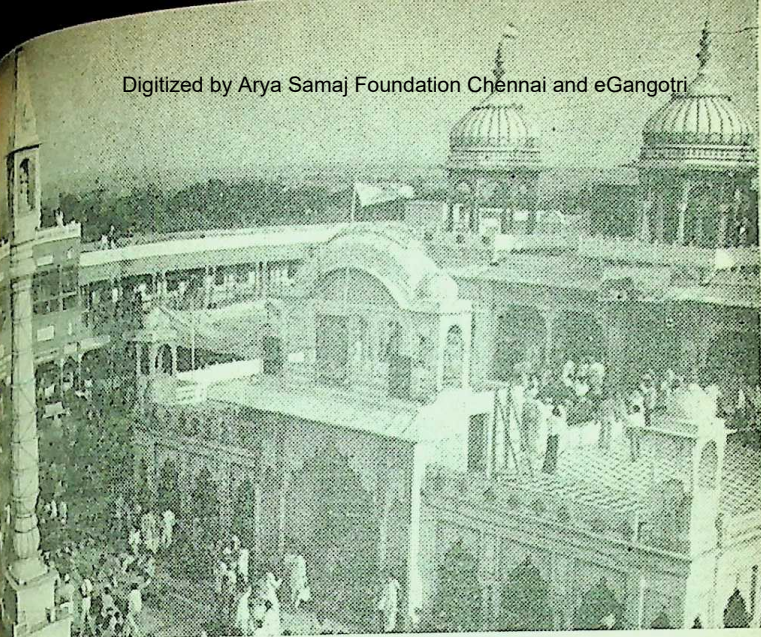
जंगल भी जैसे स्तब्ध... एक वशीकरण में
जैसे हर सांस मुग्ध और विस्मित.... यह
क्या लीला रही, प्रभु ? चरवाहे की वाणी
मूक और मन असंख्य जिज्ञासाओं का
शंकित केंद्र... मन तो जाने कितने दिनों से
चोर-शंकालु हो रहा था... कारण भी
तो स्पष्ट था कि हर संध्या केवल यही
भूरी कजरी के स्तन रिक्त मिलते थे।
सबसे अच्छी, स्वस्थ गाय, ढेरों दूध, फिर
यह क्या ! सारा दूध जाता कहां है ?

कोई प्रेत-भूत बाधा ? किसी की नजर-टोटका की पैनी मार ? कोई असाध्य रोग ? कुछ जहर मोहरा-धतूरा का प्रकोप ? आखिर क्या ? इसलिए आज दृष्टि से एक-एक पहर निरीक्षण किया और यह विलक्षण चमत्कार देखा । फिर तो एक-दो क्यों, कई-कई दिन यही अपूर्व क्रम देखा । ठीक उसी टीले पर, उसी ठौर पर... क्या माया है यह ?

अनवज्ञ पहेली तो सुलझ गयी, लेकिन इसी टीले पर दुग्धक्षरित क्यों होता है ? इन धूल-चट्टानी पतों के नीचे कौन-सा रहस्य है ? उसका मन बेकाबू होने लगा । एक दिन चुपचाप अटोक वह फावड़ा—कस्सी लेकर उसी स्थान को खोदने लगता है... बहुत नीचे पाताल से जैसे कोई गंभीर आवाज आती है—‘कौन मानव-पुत्र हो तुम, भाई ?’—‘मैं ? मैं तो एक चर्मकार हूं । ‘चर्मकार ? गाय चराने का फिर कैसा कार्य, मानव ?’ जाति से चर्मकार हैं हम लोग, परंतु मेरा परिवार पीढ़ियों से खेती करता आ रहा है । पशुपालन और दूध-दही का व्यापार भी । इसीलिए चरवाहा हूं । मेरी गाय का दूध प्रतिदिन इसी स्थान पर क्यों ढलता है ? गाय स्वयं अपने दूध का समर्पण यहीं क्यों करती है, यह देखना चाहता हूं ... ‘तब भाई, ज़रा सावधानी से फावड़ा चलाओ, अवश्य जिज्ञासा शांत करो, क्या पता, इसी में तुम्हारा कल्याण निहित हो ?’...

चर्मकार चरवाहे की धमनियों में

रक्त-प्रवाह रुक-सा जाता है...यह कैसा अनहोने आवरण खुल रहे हैं ? वह आहिस्ता-आहिस्ता खुदाई करने लगा, तभी उसने कुदाल किसी ठोस वस्तु से टकरायी । मन में आह-सी उपजी । कुदाली फेंकर उंगलियों की पोरों से मिट्टी हटाने लगा... यह क्या ! एक मूर्ति का फिर दिखाई दिया । अब तो उसका शरीर उत्साह वेग से भर उठा । जल्दी-जल्दी मिट्टी की परत-परत हटाने लगी—एक सर्वांग सुंदर परिपूर्ण मूर्ति टीले की गंभीर पेंदी में सामने थी—बहुत ही भव्य और उत्कृष्ट ! उस चरवाहे की टकटकी बंद गयी । दोनों नेत्रों से परमानन्दाश्रु की अविरल धाराएं बह रही थीं ... बेगुनतन और सम्मोहित मन ... बड़ी विचित्र अनुभूति-कौतुहल ... कैसी अनुपम उत्कलब्धि ? मूर्ति के नेत्रों को कैसी चुबकी आभा ? उसे लगा, मानो उसके जन्म-जन्मांतरों के सारे कल्मष धुल गये हैं । इस पवित्र दृष्टि में उसका पूरा जीवन तिरोहित हो उठा है । उसके हृदय में श्रद्धा-भक्ति का झरना फूट पड़ा... अहा ! कैसा कृतार्थ जीवन है कि उसके हाथों ने इस भू-गर्भ से भगवान स्वयं प्रकट हुए हैं ! उसकी भावना और वाणी का काया कल्प हो गया... सरस्वती झरने लगी... आंखें धीतरागी... सांसारिक चिह्न लुप्त... अलौकिक दिव्य उजास भर उठा उसके आसपास... विदेह होकर स्वर्गिक मुनें में आत्मलीन हो उठा :



श्रीमहावीरजी के मुख्य देवालय का तोरण-द्वार :
और उसके प्रांगण में खड़ा उत्तुंग मानस्तंभ

श्रीमहावीरजी के मुख्य देवालय का तोरण-द्वार :

और उसके प्रांगण में खड़ा उत्तुंग मानस्तंभ

श्रीमान् विगतभवरागोद्भूत

गतिः

स्वामी . . महावीर स्वामी . .

सन्मति स्वामी SS ...'

विगत इतिहास, दृश्य पर दृश्य,

कथानक, कथानक का दिव्य-

नायक, युगों की यवनिकाएं उठ

हैं—एक देशकाल प्रस्तुत हो रहा है,

वन-प्रांतर ढाई हजार वर्ष पूर्व

जंगल में आकर टिक जाते हैं। बिहार

की वैजाली नगरी। माता त्रिशला

जंगल में एक महापुरुष का जन्म।

लिच्छवी गणराज्य का राजकुमार। कौन जानता था कि राज्य का यह उत्तराधिकारी राज-भवन की संपदा, ऐश्वर्य-वैभव और सिंहासन-मुकुट-आभूषणों के लिए नहीं जन्मा है, वरन अज्ञान के अंधकार में आकण्ठ लिप्त संसार को अपने तप, त्याग और उन्नत ज्ञान से आलोकित करके आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उसका अवतरण हुआ है, तप्त-कनक-आभा से युक्त सौंदर्यशाली देह शीघ्र ही विदेह हो जायेगी, राजगृह त्याग कर जो अखिल सृष्टि का ज्ञान-गृह बन जायेगा... जिसकी अद्भुत गति श्री-सुषमा-संपन्न होकर चारों लोकों में

छा उठेगी.. परम अलौकिक सन्मति स्वामी महावीर भगवान होकर सत्य के रक्षक के रूप में यह बालक अमर होगा, कौन जानता था ?

चरवाहे का रूप, उसके द्वारा किया गया यह कार्य, मूर्ति का प्रकट होना, यह सारी बातें पंख फैलाकर उड़ीं, आस-पास फैलीं और भीड़ की भीड़ उमड़ पड़ी उस अनोखी घटना को देखने-जानने के लिए। भूले-विसरे रास्ते, एकांत गैल-राहें, कंकरीली-पथरीली पगडंडियां मानवी-पदचापों से छा गयीं। मेला जुड़ गया। रात-दिन केवल दर्शन और चर्चाएं। जो भी आता, मंत्रमुग्ध होकर उस गरिमामय मूर्ति के चुम्बकीय नेत्रों में डूब जाता। भक्ति-विह्वल होकर शांति प्रदान करनेवाली प्रतिमा के समक्ष सब कुछ भूल जाता... चर्चाओं का विस्तार सीमाएं लांघकर असीमित हो उठीं—सर्वत्र व्यापी।

अत्यंत चमत्कारिक ढंग से टीले से प्राप्त हुई प्रतिमा के दर्शन करने के लिए आये बसवा ग्राम (जयपुर) के निवासी दिगम्बर जैन खण्डेलवाल सरावगी श्री अमरचंदजी विलाला। प्रतिमा के दर्शन करके और स्वयं प्रभु प्रकट हुए, यह सोचकर इतने प्रभावित हुए कि उसी समय एक विशाल और सुंदर मंदिर बनवाने का संकल्प किया। सोचा, क्यों न एक जिनालय बनवाकर भगवान को उसमें विराजमान किया जाये। बस, वह अमित श्रद्धा-उत्साह के साथ इस पुनीत कार्य

नवनीत

में संलग्न हो गये। कुछ समय बाद बहुत सुंदर कलात्मक मंदिर तैयार हो गया।

अब समय आया मूर्ति प्रतिष्ठापन का। लेकिन फिर चमत्कार। लाख कोशिशों, विभिन्न प्रयासों के बाद भी मूर्ति अपने स्थान से टस से मस तक नहीं हुई। सभी हैरान, चकित ! चिंतन-मनन करने पर सोचा गया कि जिसकी श्रम-साधना से इसका प्रादुर्भाव हुआ, शायद उसी के कर-स्पर्श से यह पावन-अनुष्ठान भी संपादित होगा ? उसी चरवाहे से इस सहयोग की हार्दिक कामना की गयी, आदर-सम्मान से उसे आमंत्रित किया गया और सचमुच, उसके स्पर्श को पाते ही मूर्ति अपने स्थान से उठ गयी। मंदिर में मूर्ति को प्रतिष्ठापित किया गया और मूर्तिवाले स्थान पर बड़ी खूबसूरत छतरी का निर्माण कराया गया, इसके भीतर चरण... इसीलिए इस छतरी को 'चरण-छतरी'—कहते हैं। चारों ओर महामंदिर करता हुआ सुरम्य-उद्यान। अनेकानेक कामनाएं लेकर भक्त जनों की भीड़ और कानों में भगवान महावीर के सर्व वचनों का बूंद-बूंद टपकता अमृत। श्रद्धा-भक्ति की पावन धाराओं में स्निग्ध हुआ उमंगित मन, चरम आनंददायी प्रवचन... राजचिह्नों से मंडित शूरवीर राजकुमार, तीस वर्ष की यौवन-कांचन उम्र, धीरे-गंभीर ओज से दीप्त मुखमंडल, देन में फैला हिंसा का तांडव नहीं डेल पाये। राज-पाट का व्यामोह, ऐश्वर्य का आकर्षण

Digitized by Arya Samaj
संज्ञान-प्रथिक हो

कर सभा कृतकृत्य ।

बाद बहुत
 गया।
 अपन का।
 कोशिशों,
 रीति अपने
 ई। सभी
 करने पर
 साधना में
 उमी के
 छान भी
 हे से इ
 की गयी
 प्रियह।

भगवान् महावीर स्वामी आत्मा का
नित्य स्वतंत्र मानते थे। उनकी मान्यता-
सार भव्य जीव समताभावपूर्वक
जीवों को जीवतयापन करे। इस प्रकार
एक भक्त-इन्द्रियजित मानव सम्यक्-
ज्ञान, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चरित्र से
आत्म-पद की प्राप्ति कर सकता है।
इसने लगे नित पावन वाणी के ये शब्द-
वाच।

की भीड़
तीर के सद्
मृत। श्रद्धा-
सन्मग्न हुआ
प्रवचन...
राजकुमार,
उम्र, धीरे-
हल, देश में
झेल पाये।
का आकर्षण
नवंबर १९८१

यह पूजा-स्थल राजस्थान के सर्वाई माधोपुर जिले में है। तहसील हिन्डौल रेल और बस, दोनों मार्गों से जुड़ा हुआ। श्रीमहावीरजी रेलवे स्टेशन से छह किलोमीटर दूर गंभीर नदी के हरे-भरे तट पर स्थित है यह सर्वाधिक लोकप्रिय तीर्थ। चांदनपुरवाले बाबा का चतुर्दिक यश लिये यहां की धर्म-ध्वजाएं दूर से ही दिखाई देने लगती हैं।

‘मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं क्रुन्द क्रुन्दाद्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं . .’

ज्योंही दर्शन-क्षेत्र निकट आता है कि यात्रियों में आनंद-प्रसन्नता का स्फुरण होने लगता है। मन में पुण्यवती भावनाओं का मेला-सा लग उठता है। मंदिर के तीन उन्नत-शिखर। हवा में यशोगान फहराती धर्म-ध्वजाएं। मीलों दूर से दिन हो या रात्रि—दूर से ही मंदिर की शोभा विकीर्ण होती दिखाई पड़ती है। इस क्षेत्र पर पहुंचते ही कटले के विशाल उत्तरमुखी सिंहद्वार से मंदिर का प्रवेश... इसी के ऊपर विशाल नगाड़ा खाना... मध्य में मंदिर। इसके चारों ओर दो मंजिलोंवाली प्राचीन, अत्याधुनिक, आराम-देह-स्वच्छ धर्मशालाएं। इन्हीं को 'कटला' के नाम से जाना जा सकता है। बायीं ओर एक ऊंचा चबूतरा, यह मुख्य द्वार के सामने है। इसके ऊपर है बहुत सुंदर, कलात्मक और जाली का कटावदार 'मानस्तंभ'।

मंदिर के मुख्य द्वार पर संगमरमर की तीन छतरियां और हैं। इन्हीं के ऊपर दोनों ओर संगमरमर की डिजायनदार खुली छत। मंदिर के सामने बड़ा प्रवेश-द्वार, जिसके भीतर मंदिर का विशाल चौक। महामंडप में जाने के लिए बड़े खूबसूरत सात अष्टाचक्री द्वार, इनमें से पांच द्वारों के ऊपर खड्गासन प्रतिमाएं स्थापित हैं। सामने ही तीन दर की बड़ी वेदी पर कथई वर्ण की महावीर स्वामी की मूर्ति विराजमान है। इसके बायीं ओर श्याम और दायीं ओर श्वेत (भूरे) रंगों की तीर्थकर प्रतिमाएं हैं। कथई रंग की मूर्ति पर बड़ी शांति-छटा व्याप्त रहती है।

इस वेदी के बायीं ओर मुड़ने पर एक वेदी और दिखाई पड़ती है, जहां श्वेतवर्णी महावीर की पद्मासनी मुद्रा आसीन है। पादपीठ पर सिंहलांछन है। यह वेदी एक ही दर की है। यहां दो-तीन सीढ़ियों के बाद गर्भगृह आता है। इसवे बाह्य तोरण पर लगभग छह इंच की एक पद्मासनी प्रतिमा और है। द्वार के दोनों कलात्मक पक्षों पर दंडधर बने हैं, इनके ऊपर खड्गासन तीर्थकर प्रतिमा। गर्भगृह में प्रथम वेदी फिर तीन दरों की, जिसमें पाषाण तथा धातु की विभिन्न आकार-प्रकार की अनेकों मूर्तियां विराजमान हैं... इससे आगे तीन फुट की भगवान शांतिनाथ की पद्मासीन वेदी है। पादपीठ पर हिरण का लांछन-चिह्न...

नवनीत

अब आया है वह स्थान, जहां के दर्शन को लाखों आतुर आंखें झुक-झुक पड़ती हैं। मुख्य वेदी-स्थल... तीन मेहराबी दर और बीचोबीच विराजमान है भूगर्भ में प्राप्त भगवान महावीर की अतिशय संपन्न प्रतिमा -मूंगावर्ण की शोभायुक्त मूर्ति। गुप्तोत्तर काल की शिल्प योजना बड़े आकारों से शिल्प मंडित-ओस प्रेनाइट की प्रतिमा न होकर रवादार वनू पाषाण की है। जगह-जगह पर घिसकर झरकर काफी जीर्ण हो चुकी है। मन में सैकड़ों ऊहापोह-क्या पता किसी अति प्राचीन मंदिर की शिल्पकला की यह प्रतीक हो? दब गया होगा किसी प्रलय-झंझा में जमीन के नीचे! या शायद मुस्लिम काल में नष्ट न हो जाये, इस सब से यहां किसी युग के धर्मशील हाथों ने अतल मिट्टी की गहराइयों में दबा-छिपा दिया हो! जो भी कुछ रहा हो, मूर्ति बहुत ही प्रभावशाली, प्रेरणामयी और मनोहारी है यह मूंगावर्णी पद्मासना प्रतिमा। इसके दोनों ओर हलके लाल रंग की और चित्तीदार प्रतिमाएं और हैं। इस मूंगावर्णी मूर्ति के आगे घी के दीपक जलाये जाते हैं। श्रद्धालु भक्तजन छत्र चढ़ाकर यहीं बैठकर मनौती मांगते हैं।

मूल नायक के परिक्रमा स्थल से आगे बढ़ते ही श्वेतवर्णी भगवान स्वामी की मूर्ति है, एक दर की वेदी-छत्र के नीचे अल तीर्थकरों की प्रतिमाएं हैं। आगे भगवान कुंथुनाथ की मूर्ति, इसकी चरण-चौकी

का चिह्न है। दोनों ओर की मूर्तियां देखने में अत्यधिक प्राचीन हैं। आगे और बहुत-सी धातु मूर्तियां, सभी कलात्मक दृष्टि से हैं।
 इन द्वार से निकलते ही पहले की ही तीर्थकरों की पद्मासनी मूर्तियां मिलती हैं और दायीं-बायीं ओर कथई की खड्गासीन प्रतिमाएं हैं। नीचे की ओर यक्षी बनी हुई हैं। बाहर की बड़ी वेदी के एक ओर की वेदी में यक्षी की मूर्ति आसीन है, दूसरी ओर क्षेत्रपाल। भक्त लोगों में इसकी मान्यता है। अटूट विश्वास है कि यक्षी की प्रतिमा और क्षेत्र पर नीचे विकास गौरव और दिशा-दिशा कीर्ति छाई हुई है, वह सब इन्हीं की देन है। मनौती मांगनेवाले बुद्ध गाते-नाचते और सुगंध-अगर-बाल जलाते हैं।
 मंदिर के बाहर परिक्रमा-पथ है। इसमें तीन, पांच से लेकर एक सौ-परिक्रमा तक करते हैं। दीवारों पर, मंदिर पर मकराना संगमरमर की कलात्मक प्रतिमाएं हैं—अत्यधिक कलात्मक लगभग पौराणिक दृश्यों का अंकन है—जैसे अश्वत्थ, पाषाण पर कला का अंकन मन्त्रय ... मंदिर के ऊपर तीन शिखरों में भी इसी मनभावनी कला को देखा जा सकता है। यहीं नीचे की ओर महावीर दि. जैन क्षेत्र का चरण-चौकी नवंबर

कार्यालय और दूसरी ओर सरस्वती-भवन, भंडार-गृह, पूजन-प्रक्षालन हेतु स्नानघर, पूजन-सामग्री धोने, स्वच्छ करने का चौर-स्थान तथा अन्य व्यवस्थाएं हैं। सारा वातावरण पावनता-शुचिता का धाम-प्रतीक ... मंदिर-द्वारों से स्वरध्वनित हो रहे हैं—

'यत्र स्याद्वाद सिद्धान्तो, यत्र वीरो दिगम्बरः

तत्र श्री विजयो भूतिः ध्रुवानन्दो ध्रुवादरः'

कटले के दक्षिणी द्वार को, जो पीछे की ओर है, इसे मोरी दरवाजा कहते हैं, बड़ी चहल-पहल से भरी जगह है। सामने नदी तट तक बड़ा खूबसूरत बगीचा है। तरह-तरह के फूल, हरसिंगारी खुशबू ... इसमें भगवान महावीर निर्वाणोत्सव वर्ष में ३३ फुट ऊंचा, प्रस्तर-शिल्प का बहुमूल्य नमूना एक कीर्तिस्तंभ तैयार किया जा रहा है, इसका निर्माण मकराने के प्रसिद्ध संगमरमर से हो रहा है—लगभग पूर्णता की ओर है यह।

पूर्वांचल की ओर चरण-चिह्न-छतरी है। इसी स्थान पर उत्खनन द्वारा यह अलौकिक चमत्कारिक मूर्ति की प्राप्ति हुई थी। सुना है कि जिस ग्वाले ने इसे खोजा और श्रमपूर्वक प्राप्त किया, उसी के वंशधर आज भी, तबसे लेकर अब तक इन चरणों के ऊपर चढ़ाये हुए चढ़ावे की सामग्री को स्वयं लेते हैं। यह परंपरा सतत बनी हुई है।

[शेषांश अगले अंक में]

हिंदी डाइजैस्ट

ताज़गी की एक लहर!

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं।
जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की
लहर। आप अपने आपको कुछ और
ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।
क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके
लिए ही तो बनाए गए हैं। जियाजी
आस पास बिखरे सूपेन में
ताज़गी भर देते हैं।



जियाजी
सूटिंग-शर्टिंग

कॉटन प्रिंट्स
जियाजीराव कॉटन सिल्स लिमिटेड,
बिला नगर, ग्वालियर (म.प्र.)



की
हर!

ग और
मिलने वाले
हैं।
ग, शक्ति
तलाश में
ताज़गी की
छ और
शक्ति
आपके
जयाजी

सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद



किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद.

सुपर रिन से नियमित धुलाई करने पर आपके
बातों में ऐसा फर्क आये कि दूर से दिखे. किसी
दुसरी डिटर्जेंट टिकिया या बार के मुकाबले सुपर
रिन कहीं अधिक सफ़ेदी लाता है, क्योंकि सुपर
रिन में अधिक सफ़ेदी की शक्ति है.

आज़माइए और सबूत पाइए:

सुपर रिन से
धोया हुआ



सुपर रिन

अधिक सफ़ेदी की शक्ति से भरपूर

लिट्टास-RIN.40-1511-140

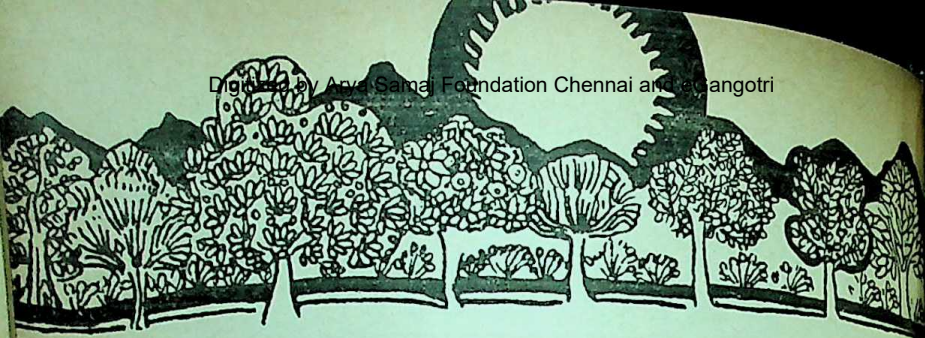


स निमित्त,
म.प्र.)



किसी अन्य
डिटर्जेंट बार से
धोया हुआ

निदान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन



महाकवि बच्चन की दो ताज़ा कविताएं

[9]

छिछले-गहरे

यह दर्पण-सा
 शान्त जल का फैलाव
 ऐसा मुखौटा है
 जिसे लगाकर
 छिछलपन और गहराई
 दोनों अपनी सच्चाई
 छिपा लेती हैं,
 लगता नहीं पता
 कि यहां है हाथी-डुबाव
 कि यहां डुबा नहीं सकता अपनी पीठ
 चले जो ऊदबिलाव ।
 पर सधी हुई आंखें
 और सधे हुए कानों से
 छिपता नहीं यह राज -
 छिछलपन पलकों से टकराकर
 अपने में ही लौट जाता है ।
 गहरापन पुतलियों को सहलाकर
 अन्तर में उतर आता है ।
 छिछलपन से आती है आवाज़
 जैसे हो छोटे मुंह की बड़ी बात ।
 गहरेपन से उठती है आवाज़
 जैसे कोई गमजदा
 पढ़ रहा हो नमाज़ ।

मैंने अपना दुख-दर्द, तुमसे नहीं,
नेत्रनी से कहा था;

अगर उसने तुम तक नहीं पहुंचाया
तो मैं तुम्हें दोष नहीं देता ।
मैंने अपना दुख-दर्द तुमसे नहीं,
कागज से कहा था,

अगर तुमने मुझे नहीं समझा
तो मैं तुम्हें दोष नहीं देता ।
मैंने अपना दुख-दर्द तुमसे नहीं,
शब्दों से कहा था;

अगर तुमने मुझे संवेदना नहीं दी
तो मैं तुम्हें दोष नहीं देता ।

मैंने अपना दुख-दर्द, तुमसे नहीं,
काली रातों से कहा था,
गूंगे सितारों से कहा था,
सूने आसमानों से कहा था,

अगर उनकी प्रतिध्वनि
तुम्हारे अन्तर से नहीं हुई
तो मैं तुम्हें दोष नहीं देता ।

मुझे मालूम था
कि एक दिन
मेरी वेदना का साथ मुझसे छूटेगा,
लेकिन मेरे शब्दों से
मेरी वेदना का सम्बन्ध कभी नहीं टूटेगा ।

[२]

शब्द-सम्बन्ध



श्रीगुरुकृपा की दीक्षा



स्वामीं मुक्तानंद परमहंस

दीक्षा को लोग कुछ पुराना, कुछ पारम्परिक, कुछ कम प्रैशन का समझते हैं। ऐसा नहीं, दीक्षा इतना नया, इतना आधुनिक कि वह आपके अंदर के सारे पुराने को गिरा देता है। उतना ही रहने देता, जो नये के लिए होना। वह अणु की तरह आपके अंदर जाकर बैठ जाता और फिर फटता ही रहता। पर उसको समझ पूरी। उस तत्व का नाश कभी करेगा नहीं, जो आगे लगेगा। इस अणु के बार-बार के विस्फोट के भी वह तत्त्व वैसा ही बना रहता, जिसे शुभ बोलते, इष्ट बोलते, नित्य सत्य बोलते। विज्ञान इतना विकास करके भी बुरे के साथ अच्छे को न मारने की गारंटी नहीं दे सकता। उसका बम जिधर फूटेगा, पूरी 'समता' से सबको मार देगा। दीक्षा में गारंटी है। आप आप ही देखेंगे, वह बुरा आपके अंदर कैसे क्षीण होता चला जाता है हमेशा को। फिर लौटकर आता भी नहीं, आने के लिए वह रहता भी नहीं।

दीक्षा पीले कपड़े पहनना नहीं, माला तिलक चंदन नहीं, पैसा कमाने का साधन नहीं, जादू-मंत्र नहीं, ऋद्धि-सिद्धि नहीं, देश-देशांतर नहीं। वह आपका खास अपने ही अंदर की सबसे बड़ी शक्ति से गठबंधन है—पाणिग्रहण। शास्त्र बोलते। 'भवति त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटी फलमिदम्'।

दार्शनिक बहुत तरह के मानव की बात बोलते हैं। हम मात्र इतना ही बोल सकते कि सतगुरु से प्राप्त दीक्षा के अनंतर जो नया मानव आपके अंदर तैयार होता है, वह 'अणुमानव' है—शक्ति का पुंज। यह मानव एक से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में प्रसारित होता चलता और जगत सहज परिवर्तित होता जाता है।

हम पूरा भरोसा दे सकते हैं, आदमी परिवर्तन के लिए जितने उपाय करता दीक्षा उनमें सर्वोपरि, कभी नापास न होने वाला उपाय है। आप अपनी अंतर-शक्ति के प्रति, देवात्म शक्ति के प्रति सहज आदर युक्त बने रहो, दीक्षा आपको एक दिन आप ही पकड़ लेगी।



आ नो मद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

यजु० २०-२१

अज्ञानरूपी अन्धकार से उत्तरोत्तर प्रकाश की
ओर बढ़ते हुए हम, देवताओं में सूर्य के समान
उत्तम ज्योति अर्थात् सर्वोत्कृष्ट अवस्था को
प्राप्त करें।



भारतीय दृष्टाओं की सुपर्ण विद्या

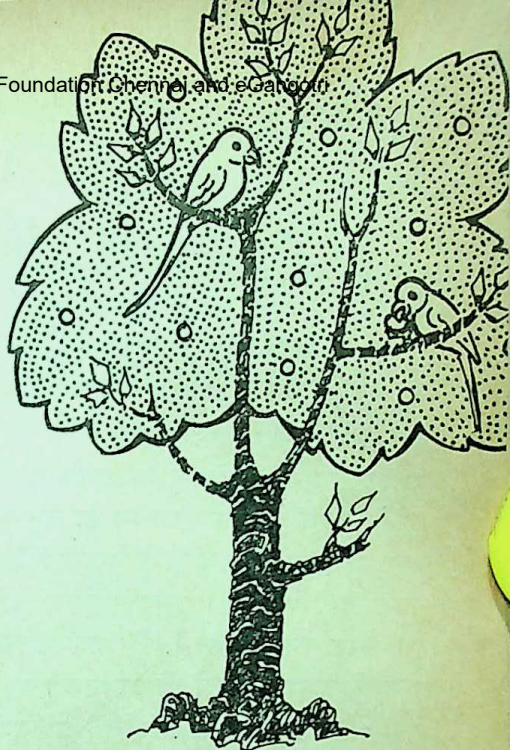


डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल

वेदों की अति महत्वपूर्ण एक विद्या सुपर्ण विद्या थी। जितनी भूत-चित्तियां या पिण्ड निर्माण हैं, सब सुपर्ण का रूप हैं। अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा सभी सुपर्ण हैं। जितने गतिशील पदार्थ हैं सुपर्ण हैं, वे ही गरुत्मा हैं। शरीर में जीव आत्मा सुपर्ण है। साक्षी सुपर्ण और भोक्ता सुपर्ण, दोनों इसी में बैठे हैं। जीवात्मा भोक्तात्मा है। वह भोक्तात्मा सुपर्ण या जीवात्मा वैश्वानर-तैजस-प्राज्ञमय है। जो साक्षी सुपर्ण है वह विराट्-हिरण्यगर्भ-सर्वज्ञमय है। साक्षी सुपर्ण भोक्ता सुपर्ण का संयुज सखा है। जैसा जीव सुपर्ण का स्वरूप है वैसा ही साक्षी सुपर्ण का है। यह साक्षी सुपर्ण हर एक जीव में है। हर एक पिण्ड का साक्षी सुपर्ण पृथक्-पृथक् है। उसके संस्थान और धर्म अलग हैं। व्यक्तित्व साक्षी सुपर्ण और भोक्ता सुपर्ण दोनों के आधार पर प्रतिष्ठित है। दोनों हृत्प्रतिष्ठ हैं। साक्षी सुपर्ण के बिना भोक्ता सुपर्ण अकेला पिण्ड में रह ही नहीं सकता। विश्व का विश्वात्मा प्रत्येक केन्द्र या पिण्ड में प्रतिबिम्बित होता है, किन्तु भोक्तात्मा या जीव की भांति सोपाधिक नहीं बनता, केवल साक्षी रूप से रहता है। यही उसका अभिचाक-

शीति रूप है। चिति समष्टि का नाम सुपर्ण है। पिण्ड बनाने के लिए प्रजापति को जो संस्थान या ढांचा बनाना होता है वही सप्तचिति वाला सुपर्ण होता है। 'चत्वारो आत्मा, द्वौ पक्षौ, पुच्छं प्रतिष्ठा'—यही सुपर्ण का रूप है। धड़ को चार आत्मा कहते हैं। दो पक्ष हाथ पैर हैं। पुच्छ या प्रतिष्ठा उसकी त्रिकास्थि है, अर्थात् मेरु दण्ड का भाग। प्रत्येक पक्ष में भी त्रिकास्थि है जहां वह वृक्ष से जुड़ा रहता है। धड़, दोनों पक्ष भाग, त्रिकास्थि का आधार इन सातों से ठाठ बन गया। पर ये सातों मर्त्य हैं। इनमें जो प्राण या जीवन का केन्द्र है वह सिर है। यज्ञीय भाषा में कंठ के नीचे के भाग में चित्य अग्नि और ऊपर सिर में चितेनिधेय अग्नि रहती है। एक मर्त्य है, दूसरा अमृत। शिर इस शरीर मर्त्य है, दूसरा अमृत। 'सर्वभूतो यज्ञ का आहवनीय अग्नि है। 'सर्वभूतो देवेभ्यो हूयते इति आहवनीयम्।' सब देवों के लिए आहुति मुख या आहवनीय में ही दी जाती है। किन्तु जब तक वह अन्न रूप सोम की आहुति गार्हपत्य अग्नि या जठर-राग्नि में न पड़े, उसका रस आदि न बने वह आहुति देवप्राणों को नहीं मिल पाती। देहरूपी सुपर्ण के चार आत्मा चार आधार

हैं। वे सर्वांग शरीर का आधार हैं।
 शरीर का आधार है इसी से हाथ,
 आदि सब निकले हैं। यहां आत्मा से
 शरीर के धड़ भाग का ही अभिप्राय है।
 शरीर के धड़, हृदय और उदर ये चार आत्मा
 शरीर के आधार इसी धड़ में हैं। दो
 पक्ष और उत्तर पक्ष ये दोनों
 शरीर के हाथ पैर हैं। पुच्छं प्रतिष्ठा—धड़
 आत्मा भाग भी जिसके आधार पर
 है वह त्रिकास्थि प्राण जब शिथिल
 जाता है तभी कमर टूट जाती है। यह
 पक्षी के ढांचे से लगायी गयी है।
 शरीर की पूंछ में जो कम्पन होता रहता
 है उसी से उसकी गति सम्भव होती है।
 अर्थात् मेरुदण्ड की गति का उपक्रम त्रिकास्थि प्राण
 पर चल डाले बिना हो ही नहीं सकता।
 प्राणन-कर्मों से गति संचार होता है। प्राणन-
 कर्म का द्वन्द्व पक्षों से होता है। यह शरीर
 का आधार है। 'यंत्राह्वानि मायया'—इस शरीर
 को गलिय या माया से हम सब यंत्रारूढ़
 हैं। यह शरीर ही ब्रह्म यंत्र है। इसके धड़
 में होने की शक्ति प्राण और अपान की
 क्रिया से ही होती है। उसी से यह यंत्र चल
 रहा है। असंज्ञ, अन्तःसंज्ञ, ससंज्ञ सब भूतों
 में ये मूल चित्तियां रहती हैं। जो पत्थर
 अंसंज्ञ हैं उनमें वैश्वानर है, तैजस
 मूर्च्छित है। जो वृक्ष वनस्पति हैं
 उनमें वैश्वानर तैजस है प्राज्ञ मूर्च्छित है।
 मानव नाम प्राण का है जिसके कारण
 विकास होता है। जहां प्राणन क्रिया
 हुआ कि विकास या वृद्धि होने



लगती है। मानव, पशु, पक्षी, कृमि, कीट
 इनमें प्रज्ञा तत्व का विकास है। पूर्व-पूर्व
 में उत्तरोत्तर से अधिक है। प्रज्ञा ही चिदंश
 है। असंज्ञ पाषाण आदि में केवल भूतचित्ति
 है, प्राणचित्ति नहीं है। जो भूत का आधार
 विश्वात्मक प्राण है वह तो रहता ही है,
 चैतन्य का आधार प्राण नहीं है जिसका
 चिदंश से सम्बन्ध हो। प्रज्ञान भी उनमें
 नहीं है। लेकिन सुपर्ण रूपता पाषाणादि
 पिण्डों में भी है। कोई न कोई रूप तो
 उनका भी है ही। किन्तु अभिव्यक्त यज्ञ-
 रूपता नहीं है। यज्ञ सुपर्ण है। यज्ञ का जो
 वितान होता है वही सुपर्ण चित्ति है। अग्नी-
 (शेषांश पृष्ठ ६२ पर)



अतिमानस लोक का दर्शन मानवता के लिए एक नयी भाषा

कुछ समय पहले मुझे प्राणियों के जीवन के साथ तादात्म्य का अनुभव हुआ था। यह तो सच ही है कि प्राणी हमें समझ नहीं पाते हैं। उनकी चेतना कुछ इस तरह बनी होती है, कि हम उनकी समझ से लगभग समूचे ही बाहर रह जाते हैं। लेकिन हमारे कुछ परिचित प्राणियों का—बिल्लियों और कुत्तों का मुझे अनुभव है, विशेषकर बिल्लियों का। और मैंने देखा कि ये प्राणी हमारे सम्पर्क में आने के लिए सचेतन रूप से कहिये कि यौगिक रूप से, प्रयत्न कर रहे थे। लेकिन आम तौर पर जब ये प्राणी हमें चलते-फिरते या काम-काज करते देखते हैं, तब ये हमें हमारे सच्चे स्वरूप में नहीं देख पाते हैं। तब हम उनके लिए एक सतत समस्या ही बने रहते हैं। उनकी चेतना का एक बहुत छोटा-सा अंश ही हमारे सम्पर्क में होता है। ठीक उसी तरह, जब हम अतिमानस सृष्टि (मन से परे की सृष्टि) की ओर देखने का प्रयत्न करते हैं, तब हमारे साथ भी

यही बात घटित होती है। मानवों और प्राणियों के बीच जिस प्रकार का अंतर होता है, लगभग वैसा ही अंतर अतिमानस जगत और मानवों के बीच होता है। सृष्टि के साथ हमारी चेतना की भीतर कड़ी जब जुड़ जायेगी, तभी हम उसे देख सकेंगे, और तब भी वही लोग देख सकेंगे जिनका रूपांतर हो चुका है। उस रूपांतर के बिना वह अतिमानस सृष्टि हमारे लिए उतनी ही अगम्य रह जायेगी, जिस प्रकार प्राणियों के लिए मानवों की सृष्टि अगम्य है।
एक स्वतंत्र यथार्थ सृष्टि

३ फरवरी १९५८ को मुझे जो अनुभव भूति हुई थी, उसी से इस बात का प्रमाण मिल जाता है। इससे पहले अतिमानस के साथ का मेरा सम्पर्क, मात्र व्यक्तिगत और आंतरिक था। लेकिन गत ३ फरवरी को तो मैं उतने ही वास्तविक रूप से अतिमानसिक सृष्टि में घूम-फिर आयी हूँ, जैसा कि पहले मैं पेरिस में घूमा करती थी। अब इसमें कोई आत्मलक्षी तत्त्व नहीं था, वह मात्र कोई भावात्मक दर्शन नहीं था।

मैंने अपने आपमें स्वतंत्र एक वास्तविक
 सृष्टि ही वह थी, उतनी ही ठोस और
 वास्तविक, जैसी हमारे लिए हमारी
 सृष्टि मानव-सृष्टि है। मुझे प्राप्त होनेवाली
 अनुभूति से मुझे प्रतीति हुई है, कि उसके
 द्वारा मानव-सृष्टि और अतिमानस सृष्टि
 के बीच एक पुल का निर्माण हुआ है।
 उस अनुभूति को मैंने तुरंत ही लिखवा
 दिया था, जो इस प्रकार है :

मानवों और अतिमानस सृष्टि स्थायी रूप से सदा

र का अंतर
 र अतिमानस

होता है। उस

का भीतर

हम उसे देख

ग देख सकते

उस रूपांतर

हमारे लिए

, जिस प्रकार

सृष्टि अगम्य है

मुझे जो अ

त का प्रमा

अतिमानस

व्यक्तिगत

३ फरवरी

प से अतिमान

आयी हैं। जै

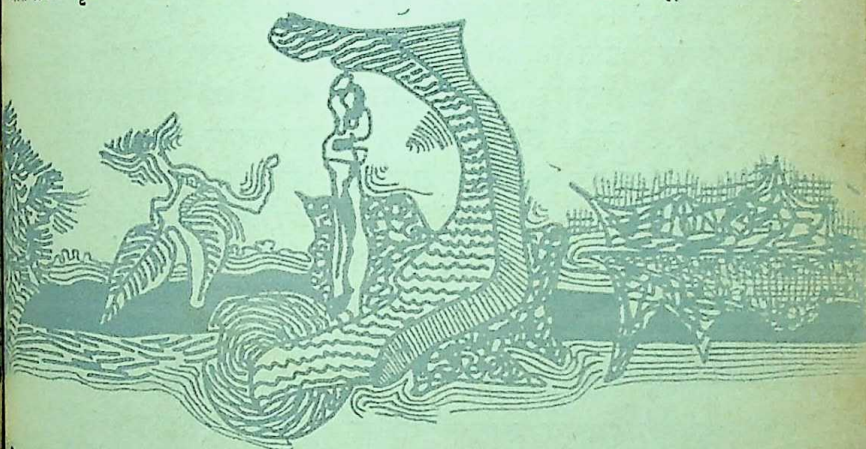
करती थी

तत्त्व नहीं था

दर्शन नहीं था

नवंबर

मानसिक जगत के बीच एक मध्यवर्ती
 प्रदेश की जरूरत है। व्यक्ति की चेतना
 में, तथा बाह्य-जगत में, दोनों ही जगह
 इस प्रदेश का निर्माण करना है, और वह
 निर्माण हो भी रहा है। कुछ समय पहले
 मैंने कहा था कि एक नये जगत का सृजन
 हो रहा है, तब मैं इस मध्यवर्ती प्रदेश की
 ही बात कर रही थी। उसी प्रकार जब
 मैं इस और, अर्थात् स्थूल चेतना के
 प्रभाववाले प्रदेश में होती हूं, और यहां



मैंने स्वयं
 अतिमानसिक शरीर में स्थायी रूप
 में लिखमान हूं। आज दोपहर को दो
 बजे के बीच (३ फरवरी
 १९४८) मेरी पार्थिव चेतना वहां जाकर
 स्थूल रूप से रह आयी है, और उसी से
 वात का प्रमाण मिला है। अब मैं
 कहूँ हूँ, कि इन दोनों सृष्टियों को
 स्थूल रूप से सतत सम्पर्क में रखने के
 लिए इस स्थूल जगत तथा उस अति-

रहते-रहते अतिमानस की शक्ति को
 अतिमानस के प्रकाश और तत्त्व को जड़
 तत्त्व के अंदर सतत उतरते हुए देखती
 हूं, तब यह घटना यही बताती है कि उस
 मध्यवर्ती प्रदेश का निर्माण हो रहा है,
 और उसमें मैं अपना पार्ट अदा कर रही हूँ।
नारंगी प्रकाश का लोक

मैंने देखा कि मैं एक अति विशाल नौका
 पर खड़ी हूँ। जिस स्थान पर उपरोक्त
 काम चल रहा था, उसी के सांकेतिक

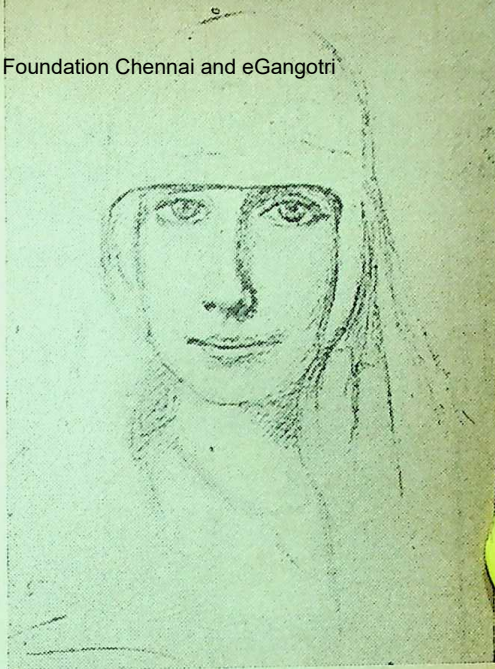
प्रतीक स्वरूप थी यह नौका। अपने आपमें यह एक समूचे शहर जितनी बड़ी थी। उस पर की सारी वस्तुएं संपूर्ण रूप से व्यवस्थित थीं। उस व्यवस्था की उतनी अधिक संपूर्णता को देखते हुए ऐसा लगता था कि यह नौका काफी समय पहले से ही काम कर रही थी। यह नौका अतिमानस जीवन के लिए निर्मित लोगों को शिक्षा देने के स्थान के रूप में काम कर रही थी। उस नौका पर वास करने वाले लोगों क स्वरूप का अमुक भाग तो अतिमानस रूपांतर प्राप्त कर ही चुका था। क्योंकि यह नौका और इसमें विद्यमान एक-एक चीज किसी स्थूल पदार्थ की, या सूक्ष्म-स्थूल प्रकार की अथवा प्राणमय या मनोमय प्रकार की सामग्रियों से नहीं, पर स्वयं अतिमानस तत्त्व की सामग्री के भीतर से ही बनी थी। स्वयं यह अतिमानस तत्त्व भी अतिमानस के बने हुए अतिशय स्थूल पदार्थ की जाति का ही था; अर्थात् वह स्थूल जगत के अधिक से अधिक निकट आया हुआ अतिमानस तत्त्व था—यानी सबसे पहले आविर्भाव में आनेवाला अतिमानस तत्त्व था। वहां का प्रकाश सुनहरे और लाल प्रकाश के मिश्रण का बना हुआ था और यह मिश्र प्रकाश एक नारंगी से तेजोमय पदार्थ के रूप में परिणत हो जाता था। उस स्थान की सभी वस्तुएं इसी प्रकार की थीं—वहां का प्रकाश नारंगी रंग का था, वहां के लोग भी उसी रंग के थे,

वहां की सारी वस्तुएं उसी रंग की थीं। निश्चय ही वहां इस एक नारंगी रंग की भिन्न-भिन्न छायाएं थीं, और इस कारण सारी वस्तुएं एक-दूसरे से अलग-अलग पहचानी जा सकती थीं। वह सब देखकर सामान्यतया ऐसा लगता था कि उस सृष्टि में कहीं भी परछाईं तो है ही नहीं; छायाएं थीं, पर परछाईयां नहीं थीं। वहां का वातावरण आनंद, शांति और सुव्यवस्था से भरा हुआ था। वहां सारा काम नियमित रूप से और मौन-मौन चल रहा था। तिस पर भी, वहां के हर क्षेत्र में जो शिक्षा दी जा रही थी, और इस प्रकार नौका के लोगों को जो तैयारी किया जा रहा था, उसे हम उसकी सारी बारीकियां और क्रमिकता में देख सकते थे।

वह विराट नौका उस अतिमानस जगत् के किनारे पर अभी आयी थी। उस सृष्टि के भावी निवासी बनने के लिए निर्मित लोगों की पहली टुकड़ी को उतारने के लिए वह आयी थी। इस पहली उतरायी के लिए सारी तैयारी हो चुकी थी। किनारे पर का जो स्थान उतरने के लिए तैयार किया गया था, वस किनारे का उतना ही भाग दिखाई पड़ रहा था। वहां के बंदर पर कुछ बड़े कद्दावर लगे थे। वहां की एक टुकड़ी नियुक्त की हुई थी। ये व्यक्ति मनुष्य नहीं थे, और इन्होंने पहले भी मानव-अवस्था में नहीं रहे थे पर ये अतिमानस सृष्टि के स्थायी निवासी भी नहीं थे। उन्हें ऊपर की सृष्टि से बड़ा

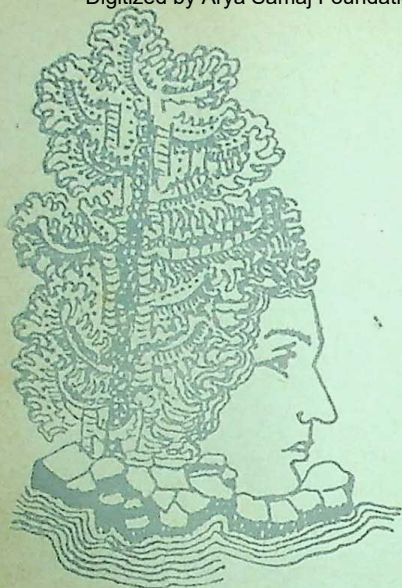
की थी।
गी रंग की
इस कारण
मलग-अलग
सब देखकर
कि उस
हो नहीं;
नहीं थी।
शांति और
वहां सारा
मोन-मोन
वहां के हर
ही थी, और
जो तैयार
उसकी सारी
रख सकते थे।
मानस जग
मी थी। उस
नने के लिए
कड़ी को बंध
। इस पहली
गरी हो चुकी
थान उतरा
या, बस किना
पड़ रहा था
कहावर लोग
की हुई थी।
, और इसने
नहीं रहे थे।
स्थायी निवास
सृष्टि से बड़ा
नंबर

गया था और इस उतराया की
का नियमन करने तथा उस पर
खने के लिए ही उन्हें वहां
किया गया था। इस सारी त्रिया
नचातन, यह काम गुरु हुआ तब
जब तक मेरे ही हाथ में था। मैंने
ही लोगों के ये सारे यूथ तैयार
के थे। नौका पर सीढ़ी के सिरे पर मैं
थी। और एक के बाद एक इन
को बुला रही थी और नीचे के किनारे
भेज दे रही थी। नीचे किनारे पर
कहावर लोग मानो कि इस बात
निर्णय कर रहे थे कि नौका में से किसे
उतरने दिया जाये और किसे नहीं
उतरे दिया जाये। जो लोग तैयार थे
उतरे दे रहे थे, और जो लोग
नहीं थे, और नौका में दी जानी
गिशा जिनकी पूरी नहीं हुई थी,
वापस भेज दे रहे थे। इस प्रकार
खड़ी थी, और प्रत्येक जन पर
डाल रही थी, तभी मेरी चेतना
भाग, जो पृथ्वी पर से वहां आया
इस सबको अत्यन्त रसपूर्वक
लगा। यहां आये हुए सारे लोगों
देखने और पहचानने की इच्छा उसमें
थी। उसे यह भी देख लेना
कि इन लोगों में कितना परिवर्तन
है तथा किन लोगों को तुरन्त नीचे
ले लिया जाता है, और किन
को कुछ शिक्षा पूरी करने के लिए
रहने दिया जाता है। इस



श्रीमां : स्वयं द्वारा रेखांकित

प्रकार में जब यह सब देख रही थी, तभी
कुछ समय बाद मुझे लगा कि मुझे कोई
वापस खींच रहा है और मेरे शरीर को
जगा देना चाहता है। और मैंने अपनी
चेतना के भीतर इसका विरोध किया और
कहा कि—'नहीं नहीं, अभी नहीं, अभी
नहीं। मुझे अभी देखना है।' और मैं
सारी वस्तुओं को देखती रही तथा अत्यन्त
रसपूर्वक उनकी तफसील लेती रही।
और इस प्रकार यह सारा काम चल रहा
था, तभी यकायक यहां घड़ी में टन्-टन्
तीन के टकोरे हुए, और यह आवाज़ एक
धक्के के साथ मुझे लौटा लायी। और
मुझे ऐसा लगा कि जैसे मैं अपने शरीर में
एकदम पछाड़ खा गयी हूं। इस प्रकार



शरीर में वापस लौटते हुए मुझे आघात तो अवश्य लगा, पर मेरा जाना एकदम अचानक ही हुआ था, इसलिए उस अनुभूति की स्मृति अधुण रूप में ज्यों की त्यों टिकी थी। इसी से शरीर में वापस लौटने के बाद मैं बिल्कुल शान्त होकर बैठी रही और उस सारी अनुभूति को मैंने फिर से सम्ची ताजी करके याद कर लिया, और उसके बाद ही मैंने चलना-फिरना आरंभ किया।

पोशाक, शरीर का एक ही भाग

उस नौका पर के पदार्थ, पृथ्वी पर हम जैसे पदार्थ देखते हैं, वैसे नहीं थे। उदाहरण के लिए, वहां की पोशाक कपड़े की बनी हुई नहीं थी। वहां जो पदार्थ, कपड़े जैसा लग रहा था, वह उन लोगों के शरीर का ही एक भाग था, वह उनके

शरीर तत्त्व में से ही बना था और भिन्न-भिन्न रूप ले रहा था। उस तत्त्व में एक प्रकार की मुलायमियत थी। उसमें यदि कोई फेरफार करने की जरूरत पैदा होती, तो वह किसी कृत्रिम या बाह्य साधन द्वारा नहीं किया जाता था। वह फेरफार करने के लिए एक आंतरिक चेतना की क्रिया की जाती थी, और वह तत्त्व उस प्रकार का रूप या आकार धारण कर लेता था।

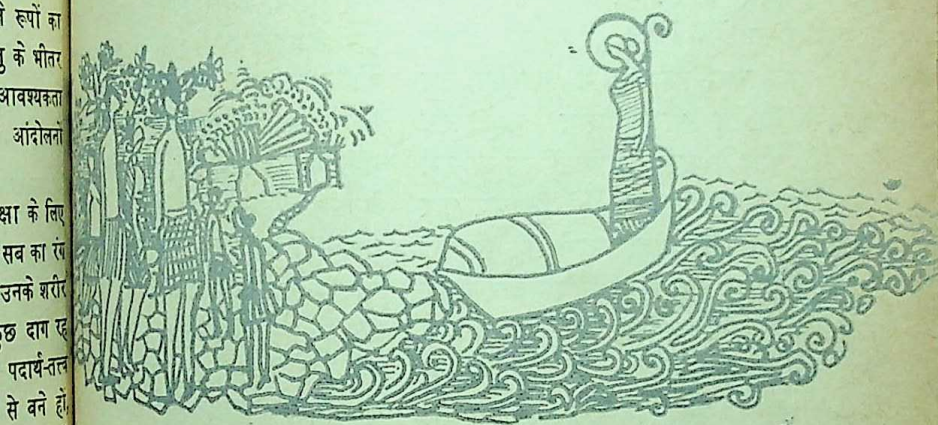
वहां जीवन स्वयं ही अपने रूपों का सर्जन करता था। प्रत्येक वस्तु के भीतर एक ही तत्त्व था और वही आवश्यकता या उपयोग के अनुसार अपने आंदोलनों का स्वरूप बदल देता था।

जिन लोगों को विशेष शिक्षा के लिए वापस लौटाया गया था, उन सब का रंग एक-जैसा नहीं था। मानो कि उनके शरीर में काले अथवा भूरे रंग के कुछ दाग रह गये थे। ये दाग पृथ्वी के पदार्थ-तत्त्व से मिलते-जुलते किसी तत्त्व से बने हों, ऐसा लगता था। ये लोग मानो कि अभी भी पूर्ण रूप से प्रकाशमय और रूपांतरित नहीं हो पाये थे, इसी से धुंधले दिखाई पड़ रहे थे। और यह कमी उनके सारे शरीर में नहीं, पर कुछ विशेष स्थानों पर ही दिखाई पड़ती थी।

अस्थि-पिंजरहीन पारदर्शक देह
किनारे पर के ऊंचे कढ़ावर लोगों का
वर्ण इन नौकावाले लोगों जैसा नहीं था।
और कुछ न भी हो, तो उनके वर्ण में
नारंगी रंग की छाया तो नहीं ही थी।

उनके शरीर का अमुक भाग ही पूरा
पूरा दिखाई पड़ता था, उसके अतिरिक्त
उसके शरीर के शेष भाग की मात्र रूप-
रेखा ही दिखाई पड़ती थी । ये लोग बड़े
बड़े थे, और ऐसा लगता था, कि
उनके अंदर हाड़-पिंजर जैसी कोई रचना
नहीं है, बल्कि वे तो आवश्यकता
अनुसार आकार धारण कर लेते

जब मुझे वापस बुला लिया गया था,
और मैंने कहा था कि 'नहीं, नहीं, अभी
नहीं, अभी नहीं।' तब प्रत्येक बार मुझे
अपने स्वरूप का (अर्थात् अतिमानस सृष्टि
में वास करने वाली अपनी आकृति का)
एक झलक में दर्शन हो गया था । मेरे
स्वरूप के भीतर, किनारे पर खड़े
कड़ावर लोगों तथा नौका पर वास करने



उनके कमर से नीचे के भाग में कुछ
अवश्य थी । इन लोगों का रंग
सफेद ही हलका था, और उसमें सहज ही
लाल रंग का अंश था । वह रंग सुनहरे
सफेद रंग के ही अधिक निकट पहुंचता-
था । उनके शरीर के सफेदी-
प्रकाश के अंश अर्ध-प्रारदर्शक थे,
प्रारदर्शक नहीं थे, लेकिन कम घन-
वर्ण नारंगी रंग के पदार्थ की बनिस्वत

वाले लोगों के स्वरूप का मिश्रण था ।
मेरा ऊपर का भाग, खास करके मेरा
माथा, मात्र एक छायाकृति जैसा था ।
उसके भीतर एक किनारे से नारंगी रंग-
वाले सफेद होते-से रंग का तत्त्व भरा
हुआ था । उस शरीर में, जैसे-जैसे नीचे
के भाग की ओर बढ़ा जाये, वैसे-वैसे
वह अधिक अर्ध-प्रारदर्शक और सफेद
बनता जाता था, और उसमें लाल रंग

घटता जाता था। माथे की छाया-
आकृति के केंद्र-भाग में एक महातेजस्वी
सूर्य विराजमान था। उसमें से प्रकाश की
किरणें फैल रही थीं, और वे किरणें
संकल्प-शक्ति की क्रिया के रूप में प्रवा-
हित थीं।

नौका पर जो लोग थे, उन सभी को
मैंने पहचान लिया था। उनमें से कुछ
तो इसी आश्रम के थे, और कुछ दूसरे
स्थानों से आये हुए थे, तब भी उन्हें भी
मैं पहचानती तो थी ही। इस तरह एक-
एक व्यक्ति को मैंने देखा तो था ही, लेकिन
मुझे मालूम था कि जब मैं लौटूंगी, तब
प्रत्येक व्यक्ति को मैं याद नहीं रख
सकूंगी, इसी से उनमें से किसी का नाम मैं
प्रकट नहीं कहूंगी, यह मैंने निश्चय कर
लिया था। और वैसा करने की जरूरत
भी नहीं है। उनमें से तीन या चार चेहरे
तो बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखायी पड़
रहे थे, और उन्हें जब मैंने देखा, तो
पृथ्वी पर उनकी आंखें देखकर, मेरे मन
में जो सम्बेदन जागा था, उसे मैं तब समझ
सकी—उन आंखों में एक असाधारण आनंद
था। उनमें से अधिकांश लोग जवान
उम्र के ही थे। बालक बहुत थोड़े थे,
और उनकी उम्र चौदह-पंद्रह वर्ष के
लगभग रही होगी। दस-बारह वर्ष की
उम्र से कम का तो कोई बालक नहीं था
(ये सारी चीजें पूरी तफसील में देख सकूँ,
इतना समय तो मैं वहां रह ही नहीं सकी
थी)। कुछ अपवादों को छोड़कर वहां

नवनीत

अधिक बूढ़े लोग नहीं थे। नीचे उतरने
वाले लोगों में अधिकांश लोग मध्यम वय
के थे। मुझे यह अनुभूति हुई उससे पहले
एक दूसरे स्थान पर कुछ समय के लिए
कुछ खास व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप
से हाथ में लिया गया था। वहां स्नातक
प्राप्त करने की योग्यता रखनेवाले लोगों
की परीक्षा ली जाती थी। पर आज मैं
जिन लोगों को नीचे भेज रही थी, उन्हें
मैं स्पष्ट देख भी रही थी। वे सब मध्यम
वय के थे; बहुत छोटी उम्र के बालक
तथा वृद्धजन उनमें नहीं थे, कुछ अपवादों
को छोड़कर। और मैंने निश्चय कर
लिया कि इस विषय में मुझे कोई बात
नहीं करनी है, किसी का नाम भी नहीं
देना है। उस स्थान पर मैं अंतिम पड़ा
तक नहीं रही थी, इसी से वहां का एकदम
सुनिश्चित चित्र मैं नहीं दे सकती हूं।
वह चित्र एकदम स्पष्ट और संपूर्ण भी
नहीं था, और मैं नहीं चाहती थी कि वह
चीज कुछ लोगों से न कही जाये।

निर्णायक मूल्य नैतिक नहीं

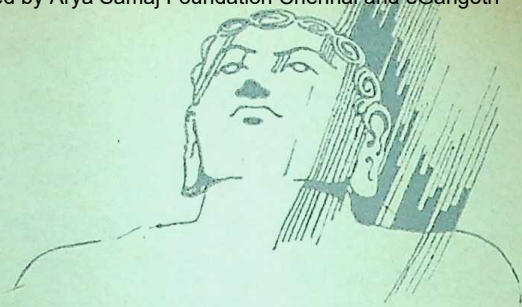
इस बारे में मैं केवल एक ही बात कह
सकती हूं कि इन लोगों के बारे में जो
निर्णय लिया जाता था, उसके पीछे एक
ही दृष्टि-बिंदु था। इस चुनाव में महत्व
की बात यही थी कि वहां आनेवाले वे
लोग किस तत्त्व के बने हुए थे, अर्थात्
वे अतिमानस सृष्टि के ही लोग थे, या
कहीं और के—वे एक विशिष्ट तत्त्व
बने हुए थे या नहीं। उसमें कोई नैतिक

मानसिक प्रकार का दृष्टि-विदु नहीं होता था। उनके शरीर जिस पदार्थ से होते हैं, संभव है कि उसके पीछे कोई भिन्न रहा होगा, अथवा किसी आंतरिक शक्ति के परिणामस्वरूप ही वे सृजित हुए होंगे। पर इस समय उस संबंध में कोई मत नहीं उठता था। पर यह तो निश्चित ही था, कि वहां के मूल्य कुछ भिन्न ही प्रकार के थे।

ज्ञातन वर्तमान सृष्टि
इस अनुभूति की स्मृति को साथ लेकर, इस प्रकार जब मैं नीचे आयी, तब मेरी समझ में आया कि अतिमानस सृष्टि एक सनातन वर्तमान सृष्टि है और उस सृष्टि में मेरी उपस्थिति भी सनातन और स्थायी है। इस सृष्टि के साथ संपर्क में जाने के लिए चेतना में और पदार्थ-तत्त्व में चुकती-सी एक कड़ी को रचना मात्र करना है, और उस कड़ी को रचना हो रही है। इस अनुभूति के बाद मुझे ऐसा लगा (और यह प्रभाव किसी लंबे समय तक, लगभग एक पूरा जीवन मुझ पर रहा) कि हमारा जगत एक अत्यंत सापेक्ष प्रकार की सृष्टि है, जवना यों कहिये कि उस सृष्टि और हमारी सृष्टि के बीच जो संबंध है, उसके कारण हमारे भीतर वस्तुओं को देखने और समझने की समुची दृष्टि में ही संपूर्ण परिवर्तन हो गया है। इस दृष्टि-विदु के कोई मानसिक तत्त्व नहीं था। इस संपर्क के बाद अब एक विचित्र प्रकार की

आंतरिक भावना मेरे अनुभव में आ रही है, कि हम कई वस्तुओं को जो अच्छी या बुरी समझते हैं, यथार्थ में बात वैसी नहीं है। बहुत स्पष्ट रूप से मुझे इस बात की प्रतीति हुई, कि वस्तुओं में स्वयं में जो शक्ति पड़ी हुई है, उस अतिमानस सृष्टि को वस्तुएं जिस सीमा तक उसे भीतर उतार सकती हैं, या उस सृष्टि के साथ जिस हद तक संपर्क में आ सकती हैं, उसी पर सारा चुनाव आधारित है। वह एक विलकुल ही भिन्न प्रकार की दृष्टि थी, कई बार तो वह हमारी सामान्य समझ से ठीक उलटी दिखाई पड़ती थी। इस संबंध में, मुझे एक छोटी-सी बात याद आती है : जिसे हम खराब समझते हैं, वह बात सचमुच ही अच्छी है, यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। और दूसरी भी कुछ बातें, जिन्हें हम अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझते हैं, वे यथार्थ में रंचमात्र भी महत्त्वपूर्ण नहीं होती हैं। वह इस तरह हो, या उस तरह हो, उसमें कोई अंतर नहीं पड़ जाता। हम जिस वस्तु को दिव्य या अदिव्य समझते हैं, वह भी यथार्थ में सत्य नहीं होता है।

कुछ वस्तुओं को देखकर तो मुझे हंसी भी आयी। हम सामान्यतया जिन वस्तुओं को प्रभु-विरोधी मानते हैं, वह भी हमारी एक कृत्रिम धारणा है, और इस धारणा के पाये में कोई जीवंत तत्त्व, या सत्य नहीं होता। और जिसे हम यहां जीवन कहते हैं, अतिमानस सृष्टि के (शेषांश पृष्ठ ५५ पर)



दृष्टा कथाकार जैनेन्द्रकुमार की एक दृष्टान्त-कथा



ऊर्ध्वबाहु ने पाया, वहां बस वही है ...

इन्द्र अपने नन्दन कानन में अप्सराओं समेत आनन्द-मग्न थे कि सहसा उनका आसन दोलायमान हुआ। इस पर उन्होंने चारों ओर विस्मय से देखा। अनन्तर सशंक भाव से कहा, 'प्रहरी, देखो यह किस मर्त्य का उत्पात है।'

प्रहरी स्वर्ग से सिधारकर धरती पर आया और लौटकर सूचना दी, 'महाराज, तपस्वी ऊर्ध्वबाहु प्रचण्ड तप कर रहे हैं। दिशाएं उस पर स्तब्ध हो उठी हैं। उसी के प्रताप से स्वर्ग की केलि-क्रीड़ा में विघ्न उपस्थित हुआ है।'

इन्द्र ने कहा, 'ऊर्ध्वबाहु। ऋषि भद्र-बाहु का वह उद्दण्ड शिष्य? उसकी यह स्पर्द्धा।'

प्रहरी ने कहा, 'हां महाराज, वह अमोघ तपस्वी ऋषि भद्रबाहु के ही आश्रम के नवनीत

स्नातक हैं।'

इन्द्र ने तब अपने विश्वस्त अनुचर सौधर्म को निरीक्षण के लिए भेजा। सौधर्म ने आकर जो बताया, उससे इन्द्र भयभीत हो आये। वह अस्थिर और म्लान दिखायी देने लगे। सौधर्म ने ऊर्ध्व-बाहु की अखंड तपश्चर्या का रोमहर्षक वर्णन किया। पूरा संवत्सर उस तपोव्रती ने निराहार यापन किया है। बराबर पंचाग्नि भी तपते रहे हैं। अखण्ड मन्त्रोच्चार के सिवा कोई शब्द मंह से नहीं निकलने दिया है। अमा रात्रि की निविड़ता में ही आंखों को खोला, नहीं तो सदा बंद रखा है। हिम, आतप, वर्षा, वायु को नग्न शरीर पर सहन किया है। मासों बाहु और मुकुट ऊपर किये एक पैर पर छड़े रहे हैं। वह बाल ब्रह्मचारी हैं। सोलह वर्ष की अवस्था

स्त्री के दर्शनमात्र को त्याग है।
जमीन की भूमि उनके तप के तेज से
जुलून हो गयी है, और वृक्षों के
पत्तों से उठे हैं।

सब सुनकर इन्द्र चिन्ताग्रस्त हुए
उन्होंने कामदेव को बुलाया। कहा,
कर्म देव, ऐसे संकट में तुम्हीं ने
मेरी सहायता की है। धरती पर,
एक महास्पृही मानव तपस्या के बल
हमें स्वर्गच्युत करने का हठ ठान बैठा
वह भूल गया है कि वह शरीर से
है और मर्त्य है। तुम अनंगरूप हो,
देव, और अंगधारी के गर्व खर्व करने
अतुल्य बल-संयुत हो। जाकर उस
ऊर्ध्वबाहु को वश में लो और
उसके तपश्चर्या का दर्प चूर्ण कर दो।

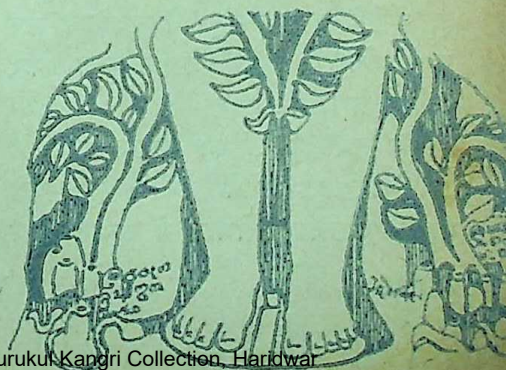
उसके कर्णों में अब विलम्ब न करो, अन्यथा
उससे इन्द्र स्वर्ग पर संकट ही आया
जाएगा है। मानव यदि अपनी अन्तर्वा-
शियों को इस प्रकार एकाग्र और
केंद्रित करने में सफल हो जायेगा, तो
उस देवताओं का अस्तित्व ही व्यर्थ हो
जायेगा। हे मनुष्य! मनुष्य के मन में
ऐसा प्रकार के मनोरथों को अंकुरित करते
कर ही हम स्वर्गवासी अपना अस्तित्व
रक्षार रख पाते हैं। उन मनोरथों से
जो न होकर मनुष्य हमें अपने अधीन
कर लेगा। इससे हे विश्वजयी! जाओ
उस तपस्वी के मन में मोह उत्पन्न
करें स्वर्ग की रक्षा करो।'

बाधा पाकर कामदेव अपने आयुध
नवंबर

ऊर्ध्वबाहु
के निकटस्थ अवतीर्ण हुए। तब सहसा
ही आस-पास की पृथ्वी विलसित हो
उठी। छहों ऋतुओं का समागम हुआ।
मन्द-मन्द वयार वह आयी। पुष्प-
मंजरियों से धीमी-धीमी सुगन्ध फैलने
लगी। आकाश भी मानो सुख-स्पर्श कर
उठा। सब कुछ जैसे तरंगित होकर झूम
उठा हो। ऊर्ध्वबाहु ने सुखयोग की इस
आपदा को अनुभव किया और आंखों को
और भी कसकर बन्द कर लिया। शेष
शरीर को भी मानो समेटकर जड़वत
करने की चेष्टा की।

उस समय दसों दिशाओं से मदिर
मधुर संगीत की मूर्च्छना उसके कर्ण-
रन्ध्रों में प्रवेश करने लगी। शरीर में
मानों हठात् पुलक छा जाने लगा। रक्त
सनसनाता-सा शिराओं में प्रवाहित हुआ
और निराहारी शुष्क अंग-प्रत्यंग में जैसे
हठात् हरीतिमा भरने लगी।

ऊर्ध्वबाहु समझ गये कि यह इन्द्र
का उपसर्ग है। उस समय मन-प्राण में से
चेतना खींचकर मस्तिष्क के ऊर्ध्व में
केंद्रित कर रखने की उन्होंने प्रणपूर्ण-
भाव से चेष्टा की। बाहरी किसी माया



पर वह अपनी आंख नहीं खोलेंगे, किसी रस का स्पर्श नहीं लेंगे। बहती वायु, भीनी गंध, मधुर स्वर और मादक वाता-काश सब इन्द्रियों का भ्रम है। इन व्यापारों से इन्द्रियों का संगोपन कर अतीन्द्रियता में ही ब्रह्ममग्न रहना होगा। विषयों में इंद्रियां भागती हैं, आत्म-विषय अन्ततः उनका निग्रह ही है। काया को स्थूलित और शिथिल किसी भांति नहीं होने देना होगा। अशेष भाव से ब्रह्मध्यान में ही रहकर काया की बाग को स्थिर संकल्प से थामे रखना होगा।

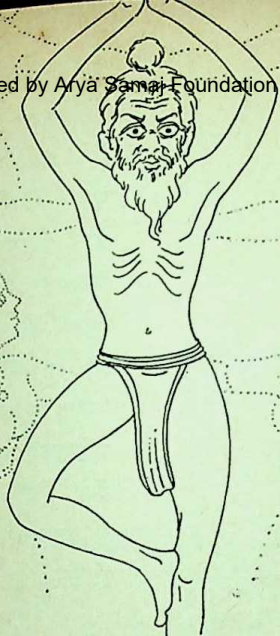
और तत्क्षण चहुं ओर मन्थर निक्षेप से रखे जाते हुए अनेक पग-पायल के नूपुरों का किक्वणन उसे सुनायी दिया। मानो अप्सराओं के समूह ठठ-के-ठठ यूथवद्ध होकर चतुर्दिशाओं में मृदु-मंद नृत्य क्रीड़ा कर उठे हों।

ऊर्ध्वबाहु अचल-प्रण तपस्वी की भांति मन-ही-मन सुरपति की माया लीला पर व्यंग-भाव से मुस्कराये। वह जानते थे कि वह सुरपति को पराजित करेंगे। माया-राज का यह अधीश्वर इन्द्र परम पुरुष परब्रह्म के द्वार पर लुब्धक प्रहरी के समान निषेध-मूर्ति बनकर जो बैठा हुआ है, उसको बलात् वहां से पदच्युत कर भगवद्दर्शन के द्वार को उन्मुक्त कर देना होगा।.....

कि तभी नूपुरों की मन्द-मन्द ध्वनि उत्तरोत्तर द्रुत होने लगी। होते-होते मानो एक तीव्र उत्तेजना में उन्मत्त भाव

से वह ध्वनि निकट आकर रक्तस मदिरा-फेन के समान उफनती हुई बिरकने लगी। क्रमशः असंख्य नूपुरों का वह स्वर समवेत होकर लहकती ज्वाला की भांति कर्णकुहरों से होकर तपस्वी के भीतर पिघलता हुआ उतरने लगा। ऊर्ध्वबाहु को इस पर क्रोध हो आया। मुझसे बिना मेरी अनुमति प्रवेश करने वाली तरल-ग्नित्व यह राग वस्तु क्या है? मेरे निकट कौन उसे उत्थित करने का साहस कर रहा है? क्या उसे जीवन की कांसा नहीं है? कौन इस प्रकार मेरे शाप में भस्म होने को यहां आ पहुंचा है? यह धारकर क्रुद्ध भाव से तपस्वी ऊर्ध्वबाहु ने अपने नेत्र खोले।

देखा, चिबुक पर तर्जनी रखे एक रूपसी मानो नृत्य के बीच में सहसा अ-सन्न होकर उनकी ओर कौतुक से देख रही है। उसी समय उनके भीतर गहरे में कोई फूलों की चोट दे गया। वृक्ष की ओट में पुष्पधनु का सन्धान किये पंच-शर अवसर देखते ही थे। क्षणभर अप्सरा उनकी ओर मानो देखती रही, फिर मुस्कराहट बिखेरती यौवन-भार लिए नाना भंगिमा में शरीर को वक्र करती, नूपुरों को क्वणित करती हुई उन्हीं के निकट आने लगी। आते-आते मानो श्वास-स्पर्श तक पहुंचकर वह एक साथ त्वरित गति से फिरकी लेकर नृत्य करती हुई पीछे लौट उठी। उस समय उसका परिधान वायु में लहरें ले रहा था और



रक्ताक्त
ई विरक्ते
वह स्वर
की भांति
के भीतर
ऊर्ध्वबाहु
झसे बिना
सी तरला-
है? मेरे
का साहस
की कांसा
मेरे शाप में
है? वह
ऊर्ध्वबाहु

रखे एक क्षण-प्रत्यंग क्षण-क्षण झलककर
सहित हो रहे थे। वे पल के सूक्ष्म भाग
क आँखों में झाई देकर तत्काल आपस
में से खो जाते थे कि दक्षिण-वाम का
स्पर्श भी नहीं रह जाता था। जैसे
उलटते हुए झीने बादलों से दीख-दीखकर
चन्द्रमुख न दीखे, पर चन्द्रप्रभा और
सोहक हो जाये। ऊर्ध्वबाहु ने भृकुटी
में एक डालकर इस दृश्य पर निगाह
की। मानो कुछ उनकी चेतना में
कमली देता हुआ घूम गया। दृष्टि
उल्टी खुली ही रह गयी। भृकुटी का
कभी जाता रहा। गात में सिहरन हो
गयी। उसी समय हठात् कुछ स्मरण
आये उन्होंने आँखों को बन्द कर लिया
और ध्यान को मूर्धा की ओर खींचना

चाहा। पर पलक नृत्य करती हुई देवांगना
को मन में पहुँचाकर मानो उस पर कपाट
की भांति ही बन्द हुए और ध्यान उन्हें
मुहुः मुहुः वलयमान उस अस्पष्ट ज्योति
ज्वाला के चहुँ ओर परिक्रमा करता हुआ
प्रतीत हुआ।

उस समय अपने द्वन्द्व के त्रास से
ऊर्ध्वबाहु सन्तप्त हो आये। मानो शिरा-
शिरा, स्वयं उनके ही प्रतिकूल सन्नद्ध
हो पड़ी हो। उनका रक्त उनके ही
आदेश के प्रति विद्रोही हो उठा हो।
उनका अंकुश स्वयं उन्हीं पर उलटा लग
रहा हो। वह कुछ न समझ सके कि अपने
विवेक के प्रतिकूल अपने रक्त की विजय
वे स्वयं ही चाहते हैं। वह पूछने लगे कि
(शेषांश पृष्ठ ६३ पर)



मुझे लगा कि कमरे में मैं अकेला नहीं हूँ। मैंने एक बार पलटकर चारों ओर देखा, कमरे में और कोई नहीं था। लेकिन एक बार फिर अकेला न होने की एक तीव्र अनुभूति मुझे हुई और यह भी लगा कि जिस भी दूसरी उपस्थिति का भान मुझे हो रहा है वह एक सौम्य, गंभीर और 'पहुँचा हुआ' व्यक्तित्व है; कोई साधारण भटकता या टटोलता व्यक्तित्व नहीं। मैंने थोड़ी देर के लिए किताबें देखकर छोड़कर अपने को इसी अनुभूति को सौंप दिया—जो भी अदृश्य व्यक्तित्व वह था

अज्ञेय की एक आत्मबोध-मूलक वार्ता



अरुपर्श

बहुत दिन हुए एक सज्जन से मिलने गया था, जिनसे पहले कोई परिचय नहीं था, केवल उनकी कुछ पुस्तकें पढ़ रखी थीं और उनके विचारों से प्रभावित था। उनके पढ़ने-लिखने के कमरे में मुझे बिठा दिया गया और कहा गया कि वह सज्जन थोड़ी ही देर में वहाँ आ जायेंगे। कमरे में अपने को अकेला पाकर मैं उनकी पुस्तकें देखने लगा क्योंकि कमरे की दो दीवारें तो पुस्तकों से लदी अल्मारियों से ढकी हुई थीं।

नवनीत

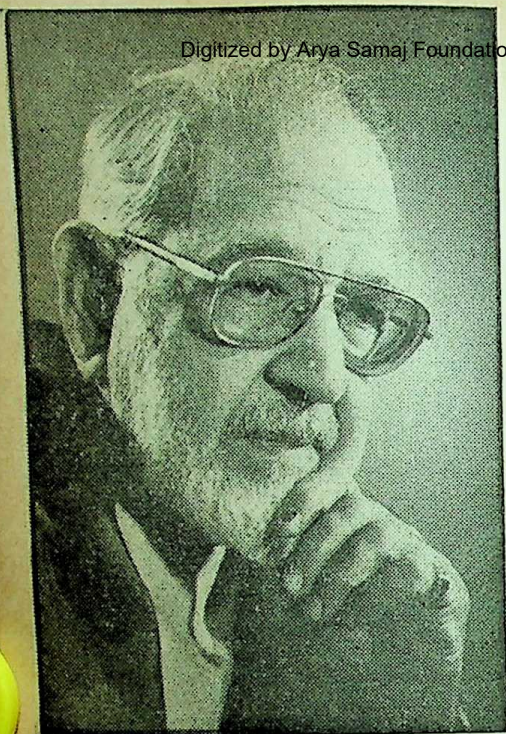
उसकी समीपता मुझे अच्छी लग रही थी और ऐसा जान पड़ रहा था कि उससे साथ एक शब्दहीन संभाषण भी हो रहा है। थोड़ी देर बाद ही वह सज्जन आ गये जिनसे मैं मिलने आया था और मेरे मौनालाप स्थगित हो गया। उस समय तो मुझे अपने आपसे यह पूछने का भी अवसर नहीं मिला कि जिस उपस्थिति का अनुभव मैंने किया था वह क्या उन्हीं सज्जन की थी जो फिर सदेह मेरे सामने प्रकट हुए लेकिन बाहर आ जाने के बाद प्रत्यक्ष

होता है कि उसका अनुभव करने वालों में कोई आध्यात्मिक बोध या धार्मिक आवेश जाग उठता हो। यही मानना ठीक जान पड़ता है कि यह अशरीरी सत्ता उन सैकड़ों, हजारों श्रद्धावान् लोगों की श्रद्धा की ही छाप होती है, जो वहां से गुजर चुके होते हैं। वहां से गुजरने वाले सभी तो श्रद्धावान् नहीं होते और कुछ का मनोभाव निश्चय ही अवज्ञा अथवा विडम्बन का भी होता होगा—क्या ये भी अपनी छाप छोड़ जाते होंगे ?



हो। कुछ स्थल ऐसे जरूर हो सकते हैं जहां ऐसी अदृश्य प्राणवान् सत्ता की श्रद्धा का अनुभव बहुत से लोगों को होता है। उदाहरण के लिए मंदिरों और पुराने मस्जिदों में अक्सर ऐसा होता है। कभी-कभी सोचता था कि इस अनुभूति का मूल में शायद यह बात है कि ये प्राणवान् के घर माने जाते हैं। लेकिन वे स्थलों पर नास्तिकों को भी तो किसी अशरीरी सत्ता की उपस्थिति का अनुभव होता है : नहीं कहा जा सकता कि वह अशरीरी सत्ता ही है और न ऐसा ही

तब क्या वहां जो अनुभव होता है वह भी ऐसा ही मिश्रित बोध होता है—क्या उस मौनालाप में संवादी स्वरों के साथ कुछ विवादी स्वर भी पुकार उठते हैं ? बात शायद केवल अनमिल स्वरों की नहीं है; उन स्वरों के पीछे संचित प्राणवत्ता की भी है। मंदिर जैसे पवित्र स्थलों में आने वाले अधिसंख्य लोग श्रद्धा से ही आते हैं, जो अपनी श्रद्धा लेकर नहीं आते वे परिवार-परिजनों की श्रद्धा का संस्कार लेकर आते हैं। इस प्रकार श्रद्धा का और पवित्रता के बोध का भाव लगातार



श्री सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय

सघनतर होता जाता है और जो भी छाप ऐसे स्थलों पर छूट जाती होगी वह तो वहां आने वाले लोगों की सघनतम मानसिक, आध्यात्मिक स्थिति की ही छाप होती होगी। अशरीरी छाप तो मनःशक्ति अथवा आत्म-शक्ति की ही हो सकती है। शरीर तो सब चले ही जाते हैं।

वैज्ञानिक संस्कार के लोग यह भी कह सकते हैं कि जो छाप छूट जाती है या जिस उपस्थिति का अनुभव होता है वह किसी न किसी तरह का वैद्युतिक अथवा चुंबकीय कंपन है जो वायुमंडल

में बना रह जाता है—अथवा उसका क्षेत्र भी है तो जड़ पदार्थ ही। ऐसा सोचने वाले अपने सोचने को भले ही इस आधार पर वैज्ञानिक मान लें, मुझे तो लगता है कि इस तरह का जड़वाद पुराने पड़े हुए वैज्ञानिक संस्कार की जड़वादी कद-हुज्जती ही है। क्योंकि इन्हीं वैज्ञानिकों के सिद्धांत के अनुसार मन, और अगर आत्मा है तो आत्मा, शरीर अर्थात् जड़ व्यक्तित्व की ही उपज है लेकिन फिर भी यह आग्रह तो कोई नहीं करता कि मन भी जड़ तत्त्व है। मस्तिष्क से मन को जोड़कर भी यह तो वे मानते हैं कि उस की मन से अलग संरचना है, कि वह मस्तिष्क और मस्तिष्कधारी शरीर की पहुंच के परे भी क्रियाशील होता है। मन की शक्ति अगर केवल वैद्युतिक अथवा चुंबकीय शक्ति है तो भी वह किस माध्यम से गुजरकर प्रभाव डालती है? एक तथ्य तो इस और ऐसे प्रश्नों का कोई जवाब वैज्ञानिक के पास नहीं है; दूसरी तथ्य वह किसी दूसरे के दिये हुए जवाब या अनुमान को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। यह जड़वादी दुराग्रह नहीं तो क्या है।

यों मुझे इस बात की अधिक चिंता नहीं है कि यह जो अशरीरी उपस्थिति का बोध होता है इसका वैज्ञानिक समाधान क्या है। मेरे लिए तो उस अनुभूति का ही अधिक महत्त्व है। मैं जानता हूँ कि कई बार दूसरों के अध्ययन-कक्ष में बैठ कर काम करना चाहते पर मुझे ऐसी

वासुदेव प्याला

यह वासुदेव-प्याला
भरते ही कृष्ण का चरण-स्पर्श पा
रीत जाता है
और फिर भरता है
अनवरतः
इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

चित्र : चरन शर्मा

अज्ञेय की दो कविताएं

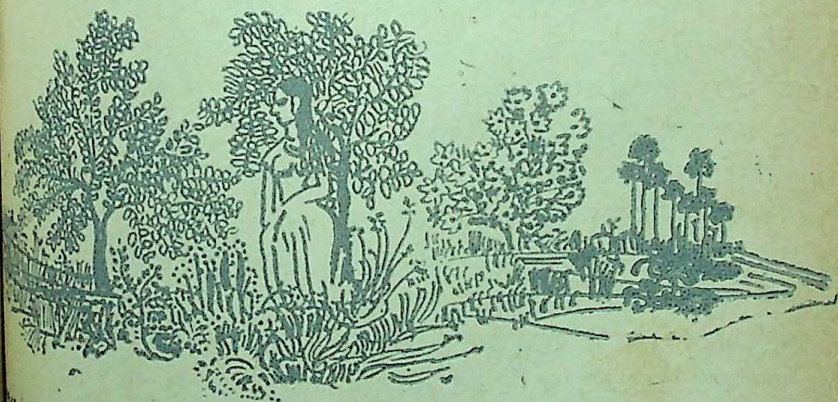
आश्चर्य
यह है कि यह बाढ़
जिसके चरण छूती है
वह नहीं है डलिया में सोया
बालकृष्ण : वह छलिया
वह सांवलिया है जो
कालिय नाग के मणिपूर मस्तक पर
नाच रहा है।
उस नर्तमान चरण को छूता है जल
और उतर जाता है :
पानी उतर जाता है....

ओ रहः कृष्ण ! तुम क्या
नाग के नथैया
और कालिन्दी के कन्हैया हो
या कि नाग के ही बचैया—
कि यह बाढ़ भी क्या इसी में
घन्य है
कि नाग ही तुम्हारा शरण्य है ?

स्वर-शर

तुम्हारे स्वर की गूँज
भरे रहे आकाश
स्वचेतन :
पर मेरा मन —
वह पहले ही है फकीर
अनिकेतन ।

खग होकर भी
वह नीरव
तिरता है नभ में
गूँज-भरे;
वर दो-ऐसा कुछ तुम कर दो—
वह यों-स्वर-शर से विधा
सदा विचरे !



अणु होते हैं और प्रकाशाणु पदार्थ तो है लेकिन भारहीन पदार्थ है तो फिर जड़ और चेतन के बीच ही निरंतर रूप-विनियम की कल्पना उसे क्यों कष्टकर जान पड़ती है ?

अशरीरी सत्ताओं की उपस्थिति और उसके अनुभव की बात थी। मैं तो कभी-कभी स्वयं अपने अध्ययन-कक्ष में आकर ऐसी उपस्थित का अनुभव करता हूँ, कोई-कोई दूसरे भी कभी-कभी करते हैं। अब काम तो वहाँ मैं ही करता हूँ, अगर किसी की छाप वहाँ संचित हो गयी है या किसी के 'वायब्रेशन' उसकी अनुपस्थिति में भी वहाँ कम्पायमान रहते हैं तो मेरे ही हो सकते हैं। मेरी ही छुई हुई, पढ़ी हुई, मेरे ही स्नेह में पगी हुई पुस्तकें, पांडुलिपियाँ और कापियाँ, कलम और पेंसिलें वहाँ पर हैं। क्या अपने अध्ययन-कक्ष में आकर मैं अपनी ही पहले से वर्तमान उपस्थिति का अनुभव करता हूँ ? क्या जब मैं वहाँ से चला जाता हूँ और फिर लौटकर आता हूँ तो इस अंतराल में वहाँ भी बना रहता हूँ ? यों तो तब फिर यह भी पूछ सकता हूँ कि जो वहाँ बना रह गया वही वास्तव में था या कि जो बाहर जाकर लौटा है वह ? लेकिन इस बारीकी के सवाल में नहीं पड़ूँगा। न मैं द्विभाजित व्यक्तित्व की बात उठाऊँगा, न मैं इस संदेह के लिए कोई मौका छोड़ना चाहता हूँ कि

नवनीत

मैं पागल हूँ। मैं पूरी तरह उस व्यक्तित्व के साथ एकात्म हूँ, उस शरीर से बंधा हूँ जो इस अध्ययन-कक्ष से जाता है और फिर उसमें लौटता है। दूसरे शब्दों में मैं उस व्यक्तित्व, उस शरीर और उस अनुभव-यंत्र के साथ पूरी तरह एक हूँ जो इस कक्ष में आकर एक स्वतंत्र उपस्थिति का अनुभव करता है, एक अशरीरी प्राणवान् सत्ता का संस्पर्श पाता है।

सवाल यह है कि यह उपस्थिति क्या है, किस पर आधारित है और किस माध्यम से अपना अनुभव करती है। वैसे ही तो मुझे भी दीखने लगा है कि इस सारे क्षेत्र में जिस तर्क-वितर्क में कहीं पोल है। क्योंकि अशरीरी सत्ता की उपस्थिति एक बार मान लें तो फिर यही मानना क्यों जरूरी रहता है कि मेरे अध्ययन-कक्ष में वह सत्ता मेरी ही होनी चाहिये ? जब अध्ययन-कक्ष है तो जिन भी महान् साहित्यकारों की रचनाएँ मैंने पढ़ी हैं, जिनके साहित्य और जिनकी रचनाओं से प्रभावित हूँ, जिनकी साधना और निष्ठा और जिज्ञासा का मैं सहभागी हुआ हूँ या होना चाहता रहा हूँ, वे सब भी क्यों नहीं मेरे अध्ययन-कक्ष में उपस्थित होंगे ? वही मेरे माध्यम से वे सब वहाँ आते हैं लेकिन जब मैं चाहता हूँ कि ये सारे प्रभाव मुझमें जियें और मेरे सर्जनात्मक आयोजनों में ऊर्जा भरें तब मैं ही तो तार तार उनका आवाहन करता हूँ। तब

जान प्राणवान् मनुष्यों की अमर
होकर मेरे अध्ययन-कक्ष के
आविष्ट कर जाती है तो
अमर-कक्ष की नहीं है। कोई भी
व्यक्ति जहां लगातार काम
करता है वहां केवल उसी की नहीं, उस
समय से क्रियाशील होने वाली सभी
जानों का प्रभाव अनुभवगम्य होगा।
जिन आरंभ में जिन सज्जन की बात कही
उनके कमरे में मुझे जो अनुभव हुआ
वह भी जरूरी नहीं है कि उन्हीं के
चित्त तक सीमित रहा हो। वह तो
अनंत है। क्या अचम्भा अगर उनके
मन में जिस प्रभाव का संस्पर्श मुझे मिला
है। क्योंकि हेराक्लाइटस और प्लेटो, एपी-
त एक बार और मार्क्स और रिलियस, कांट और
कांफ़ेनिल की भी आध्यात्मिक ऊर्जा
अक्षम वह सत्ता प्रभाव रही हो... मैं अपने अध्ययन-
कक्ष में बैठकर काम करता हूं तो कभी-

कभी अनुभव करता हूं कि मैं केवल पुस्तकों
से नहीं घिरा हूँ बल्कि बहुत से जीवन्त
प्रभावों से घिरा हूँ। क्या वे केवल मेरे
व्यक्तित्व की उपज हैं? बल्कि व्यक्तित्व
ही हम किसे कहते हैं—वह भी तो असंख्य
प्रभावों की उपज होता है रहस्यवादी
कवि कह गया—‘मैं तो केवल बांस की
एक पोर हूँ, उसके भीतर तेरे प्राण
बहते हैं और गूँजते हैं।’ रहस्यवादी
कवि को यह स्पष्ट करने का अवसर नहीं
था कि इस साक्षात्कार का न तो ‘मैं’
इकहरा है और न ‘तू’। दोनों ही समग्र
संरचनाएँ हैं, लेकिन उनमें परस्पर-भेदक
सत्ता ही वास्तव में एक युगनद्ध इकाई है।
शायद हम जब-जब अध्ययन-कक्षों में,
मंदिरों, गिरजाघरों में, अशरीरी सत्ता
का अनुभव करते हैं तब युगनद्ध होते हैं,
या यों कहें कि सनातन युगनद्ध की चेतना
से आविष्ट होते हैं।

—कैवेंटर्स ईस्ट, कैवेंटर लेन, नयी दिल्ली-२१



(पृष्ठ ४३ का शेषांश)

उसकी तुलना करने पर, मुझे वह
बहुत जीवन्त वस्तु नहीं जान पड़ा।
जानों के संबंध में अपनी धारणा की
तुलना हमें इस आधार पर करनी है कि
दोनों सृष्टियों के बीच का संबंध क्या
है और ये वस्तुएँ इस संबंध को कितना
सुलभ या मुश्किल कर देती हैं।
जैसे जाने के बाद, हमें प्रभु के निकट
जानेवाली या प्रभु से दूर ले जानेवाली

वस्तुओं के संबंध में हमारी धारणा,
एकदम ही भिन्न प्रकार की हो जायेगी।
लोगों के अतिमानसिक रूपांतर में कौन-सी
वस्तुएँ सहायक और कौन-सी बाधक
होती हैं इसके बारे में भी हमारी जो
नैतिक धारणाएँ हैं, वे सर्वथा निराधार हैं।
यह सब देखकर मुझे लगा, कि सचमुच
ही हम सबकी वर्तमान स्थिति अत्यंत ही
हास्यास्पद है।

[श्रीअरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी के सौजन्य से]

डॉ. विद्यानिवास मिश्र का आत्म-मंथनात्मक लेख

जीवन अपनी देहरी पर



जीवन को प्यार के साथ वरण करने वाले आदमी को मृत्यु पता नहीं क्यों सबसे ज्यादा लुभाने की कोशिश करती है। अर्नेस्ट हेमिंग्वे जैसा लेखक जो युद्ध को इसलिए नकारता है कि वह जीवन का घनघोर विनाश है, आत्महत्या के लिए प्रेरित होता है। ज़िंदगी के रंगों की पहचान करने-कराने वाला वैन गो जैसा चित्रकार छुरे से अपनी गर्दन पर वार करने को ललचता है। जीवन भर कर्म करते रहने के दर्शन के व्याख्याता कुमारिल प्रयाग में नदी में डूबकर मरने में जीवन की निष्कृति पाते हैं। इनसे लगता यही है कि मृत्यु उसी के पीछे पड़ती है, जो जीने का रस लेता है, दूसरों को रस देता है या शायद मृत्यु का प्रलोभन जीवन की परीक्षा है। ऐसी परीक्षा से गुजरते रहना रचनाकार की विशेष नियति है, क्योंकि हर रचना मृत्यु होती है, पर पूरी मृत्यु नहीं होती, रचनाकार कुछ न कुछ अवशिष्ट रह जाता है,

बल्कि यों कहें, जो अवशिष्ट रह जाता है वह रचनाकार नहीं है, वह बुरी तरह टूट हुआ व्यक्ति है। जितनी बड़ी रचना का आदमी बचता है उतना ही अधिक टूटकर बाहर निकलता है। रचनाकार के रूप वह ध्वस्त हो जाता है।

तुलसीदास का हनुमान बाहुक पढ़े तो पता चलेगा कि विनयपत्रिका रचना करने के बाद कवि कितना टूटा हुआ है। कवि रामचरितमानस के टूटा तो बहुत दिनों तक उसने अपने जोड़ा जाने कितनी व्यथाओं से, विनयपत्रिका लिखी नहीं कि गोसाईं से और तब विनयपत्रिका लिखी नही कि गोसाईं से एकदम ध्वस्त हो गये। बाहु में पीड़ा है और उनको लगता है—
पांय पीर पेट पीर बांह पीर मुंह पीर
जरजर सकल सरीर पीर मई है।
देव भूत पितर काम खल काल ग्रह
मोहि पर दवाई भयानक सो दई है।

नवनीत

५६

दिन मोल के बिकानो बलिबारे हीत
 नाम की ललाट लिख लई है ।
 के किकर विकल बूड़े गोखुरनि
 राम ऐसी हाल कहूं भई है ।
 शरीर पीड़ामय हो गया है,
 देव, भूत, पितर, दुष्कर्म, काल
 सबी एक हो गये हैं कि इस
 को मारो, यह आदमी जो बचपन
 को राम के हाथ बिना मोल बिका

आया है और
 भाग्य में राम
 लेख टंका मान-
 इतना निश्चित
 समुद्र पीने वाले
 के सेवक को
 खुर की छाप
 गढ़े में डुबा-

वाहुक को
 नयपत्रिका को
 कितना शीत
 मानस के व
 उसने अपने
 से, विनित

लिखी व
 कि गोसाई
 में पीड़ा हो
 मुंह पोर
 मई है ।
 काल ग्रह
 सी दई है ।
 नवंबर



का स्मरण करके कुछ इतराना चाहता हूं ।

एक राजा साहब का हाथी मरा, उनके पड़ोस में एक गरीब आदमी रहता था, सोचा राजा का हाथी बड़ा शानदार था, शोक प्रकट कर आये, गया—‘सरकार, क्या कीजिएगा, काली वस्तु न आपको सहती है न मुझे । मेरी काली कुतिया थी, कल मर गयी ।’ काली चीज़ राजा साहब को या गरीब पड़ोसी को ही नहीं किसी रचनाकार को नहीं सहती । अहंकार काला होता है, रचनाकार इस अहंकार को पालता है, इसे बड़ा लाड़ देता है बड़ा प्यार देता है, इसे बिगाड़ता है । एक दिन यकायक उसका अहंकार रचना की नदी पार करते समय दलदल में धंस जाता है, उस दलदल में तड़प-तड़पकर वह मरता

है । रचनाकार उसे बचाना चाहता है, पर बचा नहीं पाता । उसमें जाने के बाद वह अनुभव करता है मैं अहंकार के बल पर ही तो चल रहा था, वह बल टूट गया ।

मेरी काली कुतिया थी, बड़ी वफ़ादार और ढीठ । वह काफी इतराने लगी थी । छाया की तरह पीछे-पीछे लगी रहती थी और इधर तो आगे जाकर राह दिखाने

लगी थी। मैं भी सोचता था, कितना भी भाग्यहीन क्यों न होऊँ, स्वाभिमान तो है, जो बराबर साथ देता है जो ऐसे रास्ते पर नहीं जाने देता जहाँ मुझे नीचा देखना पड़े, उसे पहले से आभास रहता है। इस स्वाभिमान में एक आत्मविश्वास बैठा हुआ है कि तुम्हारा स्व छोटा नहीं, बड़ा है, वह अनचीन्हा नहीं है, चिन्हारी ने उसे बड़ा बना दिया है। और यह अहंकार की कुतिया इतनी प्रिय, इतनी आत्मीय, एक दिन यकायक एक कगार पर खड़ी थी, उसके अरराकर टूटते ही जाने कहाँ वह बिला गयी, किस दलदल में फँस गयी!

पर मैंने वित्तपत्रिका नहीं लिखी थी। कुछ भी लिखने लायक नहीं लिखा था। बस लिखूँ यह संकल्प ले रहा था। अभिमान ऐसा कि शंकराचार्य पर लिखना चाह रहा था। शंकर के तत्त्वमसि के अनुभव को छूना चाहता था, उनकी जन्म-भूमि कालडि गया, उनको नित्य नहलाने वाली नदी पेरियार को हाथ से छुआ। हाथ में उस नदी को लिया, ओठों से उसका आचमन किया, आंखें शीतल कीं, सिर धोया। ओंकारेश्वर गया, शंकर ने जहाँ दीक्षा ली थी। नर्मदा ओंकार का आकार ग्रहण करती है और उसकी दो धाराओं के बीच में एक टीला है, उसी पर ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग का मन्दिर है, उसमें जाने कैसे नर्मदा का पानी बराबर जाता रहता है। शिव को बोरे रहता है। ओंकारेश्वर गया था तो कार्तिक की पूनो थी,

सहालग के दिन शुरू हो गये थे। नाव में नर्मदा पार की, देखा इधर का रिवाज है कि जिस कन्या का विवाह होने को होता है, उसे उसके परिवार की स्त्रियाँ सजा-बजाकर ओंकारेश्वर के स्थान पर ले जाती हैं, गाती बजाती हुईं। मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था तो कुछ टोपियाँ उतर रही थीं, कुछ चढ़ रही थीं, गीत के बोल जैसे एक आवर्त बनकर घूम रहे थे। कतकी पूनो की उजास, मालवा के कंठ की मिठास और सहज गांव की शोभा के शिवापित होने का हुलास—इन सबमें लगता था कि शंकर का तत्त्वमसि ही रूपायित और शब्दायित हो रहा हो। यह सब तुम हो और तुम हो तो मैं नहीं हूँ। मैं सहज अनुभव की इतनी ऊँची सीढ़ियों पर चढ़ नहीं पाता, नीचे ही ठिठक जाता हूँ। उसके पास, कहाँ ऐसा कंठ, कहाँ ऐसी शोभा और कहाँ ऐसी उजास!

बहुत अंतराल के बाद बदरीनाथ गया। सुना था शंकर ने नरनारायण की मूर्ति का उद्धार किया था। उन्होंने वहीं व्यास गुफा में बैठकर ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों पर भाष्य लिखा था। और तीन ही दिनों में लगा कि शंकर यहीं अद्वैत वेदांत को भाषा दे सकते थे, और केवल शंकर ही काशी के चाण्डाल के रूपधारी विश्वनाथ से हारे हुए शंकर इस भू वैकुण्ठ में नर और नारायण का जोड़ बैठा सकते थे। नर के भीतर से नारायण को और नारायण की आंखों में से नर को झाँकते

टुकड़ा है जहाँ मैं क्या हुआ हूँ धाँप जहाँ मेरी संभावना बची हुई है।

शंकर पर पुस्तक लिखने के लिए कितना कुछ कटना है, छंटना है, समझ में नहीं आता; क्योंकि पुस्तक प्रकाशक के तगादे के बावजूद चल नहीं रही है, अटकी हुई है।

ममता और अहंता के विनाश के प्रति-पादन करने वाले को मां की ममता के वशीभूत क्यों होना पड़ा और मंडन की पत्नी भारती के प्रश्न का उत्तर देने के लिए उन्हें अमरुक होना क्यों पड़ा? क्या अद्वैत एक अधूरा सिद्धांत है? ममता न होती तो मां की अंत्येष्टि वे क्यों करते और अहंता न होती तो पर-काय-प्रवेश करके एक प्रेमिक राजा क्यों बनते? ऐसे शंकर को मेरे जैसा आदमी कैसे रचे, जिसकी ममता और अहंता के ज़र्रे-ज़र्रे हो गये हों तो भी वे सभी के अपने-अपने तार-तार जीवन को नचा रहे हों।

मैंने एक रचना और अधूरी रख छोड़ी है, 'विह्वल पल आखिरी', श्रीकृष्ण के जीवन की अंतिम संध्या का एक संश्लिष्ट चित्र। उस चित्र में इतने रंग भरने हैं कि समझ में नहीं आता कैसे उनका अनुपात रखूँ। और श्रीकृष्ण उस समय विह्वल हैं

नवनीत



चित्र : जयचंद्र हेडाऊ

भी कि नहीं, यह भी निर्णय नहीं ले पाया। शीर्षक ही दुविधा में है। पर मुझे यह लगता है विह्वल न होते तो अपने प्रिय मित्र उद्धव को पहले ही विदा न दे देते, न अपने सारथी को जबरन द्वारका भेज देते, न अधिक जरा को ही तत्काल पुण्यलोक देकर अपने पास से दूर भेज देते। कहीं न कहीं ऐसी बेकली थी, जिसका कोई साथी नहीं रहने देना चाहते थे। कहीं न कहीं घोर आगिरा की बात चुभ रही थी। इन भाव 'प्राणसंशितमसि', ऐसा सोचते हैं कि तुम्हारे प्राण चीरे जा जाते हैं रहे हैं, तब जीवन का रहस्य खोजने को समझोगे, पूरे जीवन को समझो, अमावस्या में जैसे ही परते चंद्रमा सूर्य में समा जाता है, चंद्रमा मरकर अमृत है, कला को प्राप्त करता है। वैसे ही जीवन को खाली करो, तभी सही तौर पर भरने का उपक्रम होगा।

जीवन को आनुष्ठाति मृत्यु के रूप में साधो, जीवन के प्रत्येक खंड को सोम की पेराई के रूप में देखो, पहली पेराई होती है तड़के, तब पत्नी हरी होती है एकदम ताज़ा, तब उसमें मादन होता है तो तत्काल उतर जाता है। दूसरी पेराई होती है मध्याह्न में, पत्नी गरमा जाती है। रस कुछ कम हो जाता है पर नवंबर



चित्र : डॉ. विष्णु भटनागर

रही थी। इस भाव तीव्र हो जाता है। तीसरी रात, ऐसा सोचो, होती है शाम को, पत्ती एकदम चोरे चोरे जाती है, रस बूंद-बूंद रह जाता है, मन का रहस्य तलछट का नशा बड़ा गहरा होता है। जीवन को दूसरों के आस्वादन के लिए खससा में डाल देते हैं और मृत्यु आये तो मानो समा जाता है। यज्ञ पूरा हुआ, अब यज्ञ-समाप्ति परकर अमृत (समुद्र) का स्नान करना है। एक-एक करके निचोड़ ली गयी है, पत्तियों को फिर गंकर गारना बच रहा है।

श्रीकृष्ण निश्चय ही अपने गुरु के इस आदेश और उसके अनुसार जिये गये। उनकी भीमांसा करते-करते विह्वल हुए। पूरी पेराई हुई कहां, पूरा रस निचुड़ा पत्तियां अब भी हरी हैं, इन्हें क्यों निचोड़ें? एक-एक गोपी ने श्रीकृष्ण का रस चला लिया, जितना पिया उससे हज़ार गुना श्रीकृष्ण को रस दिया, पिलाया।

पेराई तो गोपी की हो गयी, श्रीकृष्ण की हुई कहां? और श्रीकृष्ण की पत्तियों में इतनी पत्तियां मिलीं कि कौन वाली सूखी, कौन वाली हरी रही, इसका निर्णय करना कठिन हो गया।

श्रीकृष्ण सोचते हैं, इतनी निर्ममता का अभ्यास मैंने किया, इतने रिश्ते मैंने तोड़े, पर क्या मैं निर्मम हो सका और सोचते हैं, इसी को लीला कहा जायेगा। फिर अटक जाता हूं, श्रीकृष्ण की बेधक हंसी अटका देती है। एक पेड़ की जड़ पर सिर टेके रक्तस्राव से एकदम पीले पड़ते हुए श्रीकृष्ण क्यों हंस रहे हैं। मेरे सर्वशक्तिशाली शरीर में मेरे चरण सबसे अधिक शक्तिशाली, इतने कि उनसे गंगा की धार फूट जाती है और वे इतने वेध्य कि मामूली-सा तीर लगता है, पांव का तलवा चिर जाता है।

(शेषांश पृष्ठ ६३ पर)



सोमात्मक, प्राणापानात्मक, प्रक्रिया से यज्ञ का वितान होता है। वह दृक्ष वनस्पति से लेकर वीट मानव पर्यन्त है। यज्ञ विष्णु है। गायत्री छन्द उसका वाहन या गरुत्मा सुपर्ण है। गायत्री सुपर्ण के सोमाहरण अथवा प्राणापानन, अथवा गायत्री-सावित्री के व्यापार से ही यह शरीर यज्ञप्रवृत्त है। यह सुपर्णचिति कहलाती है। सुपर्ण पर ही यज्ञ रूपी विष्णु बैठता है। सैषा सुपर्ण-विद्या। यही गायत्री विद्या है। गायत्री विद्या से भूतविद्या कही जाती है। यह भूतात्मा शरीर अथवा यह भूपिण्ड जैसे सौर प्राण की प्राप्ति से स्व स्वरूप में स्थिर रहता है उसी की व्याख्या गायत्री विद्या है। प्रत्येक पिण्ड का जितना विज्ञानात्मक रहस्य है वह सब इसके अन्तर्गत है। किन्तु सबको संचालित करने वाली शक्ति प्राण-रूपी सुपर्ण है जिसके दो पक्ष अर्थात् प्राण

और अपान इस भूत चिति को चलाते हैं। 'अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादानतो व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥' प्राण और अपान की आन्तरिक रोचन या चिनगारी ही जीवन है। इस शरीर में जो महिष आप्य प्राण या वारुण प्राण या अमु प्राण है वह गायत्री रूप प्राणन से ही दुलोक के सौर प्राण को प्राप्त करता है। यदि शरीर में गायत्री छन्द न हो तो भूतात्मा मूर्च्छित हो जाय। गायत्री अमृत प्राण का आहरण कर रही है जिस हम सब जीवित हैं। वेदायं की समस्या हमारे लिए जीवन की भांति मूल्यवान् है। सृष्टि और जीवन दोनों की व्याख्या होती है। हमारे लिए वह बुद्धि का हल नहीं है, बल्कि व्यानप्राण या हृदय बल डालकर अर्थों के मन्थन करने का उनके साक्षात् ज्ञान करने की समस्या है।

प्रेम में अलगाव नहीं

दुर्गम पथ पर अपनी अंजुली फूलों से भरे भिक्षुणी बड़ी चली जा रही थी। उस दृष्टि बचाकर अंजुली से एकाध पंखुरी जहां भी नीचे गिर जाती, धरती धन्य-धन्य जाती, पर्वत मुस्करा उठते। भिक्षुणी ने मौन खड़े एक भिक्षु के चरणों में वह अंजुली उतारे दी और अत्यंत श्रद्धा से नतमस्तक हो गयी। भिक्षु भिक्षुणी को अवाक् देखता रह गया और अचानक सहमकर बोला, 'यह क्या कर रही हो?'

भिक्षुणी का अकम्पित उत्तर था, 'मैंने भगवान् बदल लिये हैं।' 'परंतु तुम मेरा रास्ता कैसे बदल सकती हो?' - भिक्षु उत्तेजित था। 'नहीं, भगवन् !' भिक्षुणी उसी स्थिर स्वर में बोली, 'मैं तो दोनों रास्ते एक कर रही हूं। प्रेम में अलगाव होता ही नहीं।' - महीपात्र

विजयमहल, डी. रोड, चर्चगेट, बंबई-२०

(पृष्ठ ४७ का शेषांश)

हैं। और...
 चाहते हैं कि रक्त उनके मस्तक
 जाये कि फिर कुछ उन्हें
 लिए ही न रहे? पर वह अपने
 भी अलग न पकड़ सके, कुछ भी
 न पा सके। मुहूर्तभर तुमुल द्वन्द्व
 मचता रहा। मानो उन्होंने
 देश से क्रुद्ध प्रभंजन उठकर
 लगे। उसके विस्फूर्जित
 उनके संचित धारणा-संकल्प कहां
 रहे हैं, मानो उन्हें कुछ पता
 न था।

मूल्यवान् है। प्रत्यान्तक मुहूर्त के बाद उन्होंने
 व्याख्या उसमें नतीजा था। किन्तु एक
 बुद्धि का कुल्लू, अनन्त अप्सराएं चतुर्दिक
 गाय हृदय पर और देखती हुई मुस्करा रही थीं,
 करने का वह ऊर्ध्वबाहु की आज्ञा की ही प्रतीक्षा

है! और....

तपस्वी की दृष्टि में स्पृहा जागृत हुई।
 उन्होंने आंखें मलीं और खोलीं। कहीं सब
 स्वप्न तो नहीं है। पर देखा अपरूप
 शोभाशालिनी अनंगलताएं उनकी ओर
 आ रही हैं—निकट आ रही हैं, निकट से
 और निकट आ रही हैं। इस रूप-लावण्य
 के सागर के लिए उनके रोम-रोम से
 आमन्त्रण स्फुरित होने लगा। मुख की
 चेष्टा बदल गयी और अनायास उनकी
 बांहें आगे को फैल गयीं। किन्तु बांहें फैली
 ही रह गयीं। कुछ उनमें न आया था।
 सब अनन्त विस्तृत दिशाओं की शून्यता
 में मिलकर पूरी तरह खो गया था।

ऊर्ध्वबाहु ने पाया, वहां बस वही है—
 व्यर्थ, खण्डित और एकाकी।



(पृष्ठ ६१ का शेषांश)

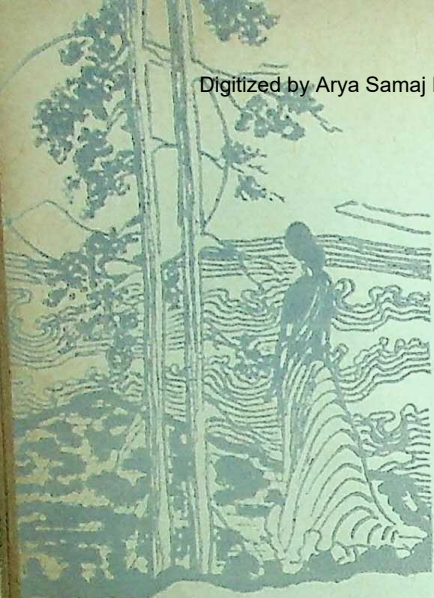
हैं। और...
 ही तो श्रीकृष्ण को बाँधने वाला
 और श्रीकृष्ण इसी बात पर हंस
 है। श्रीकृष्ण की हंसी के कारण
 भी अधूरी पड़ी है।

और अब लगता है कि मैं जितना ही
 करना चाहूंगा, उतना ही और
 जाता जाऊंगा। बाणभट्ट की भांति
 रचनाकार की यही नियति
 पूरी नहीं होती, व्यक्ति पूरा
 होने की खामख्याली
 अधूरा होता जाता है। न
 पूरी होती है, न रस ही पूरा
 न अबभूय स्नान ही कोई आशा

की संभावना का संकेत देता है।

कैसा विधाता है जो पेराई की यंत्रणा
 भी पूरी नहीं होने देता, कितनी बार यह
 कोल्हू चक्कर काटेगा, कब तक चक्कर
 काटेगा? कुछ भी अंदाज़ नहीं लगता और
 बत्तीसवें वर्ष में जीवन लीला संवरण करने
 वाले शंकर एक सौ पचीसवें वर्ष में महा-
 प्रयाण करने वाले श्रीकृष्ण हंस रहे हैं,
 एक और हारा, एक और टूटा, संसार ने
 एक नया सावज मारा। उनकी हंसी की
 कल्पना मात्र से तिलमिला उठता हूं और
 जीवन हारा-थका धूलिधूसर डचौड़ी पर
 लौटा आता है। —पी-१ गोपाल कुंज,

बाग मजफ्फरखां, आगरा-२

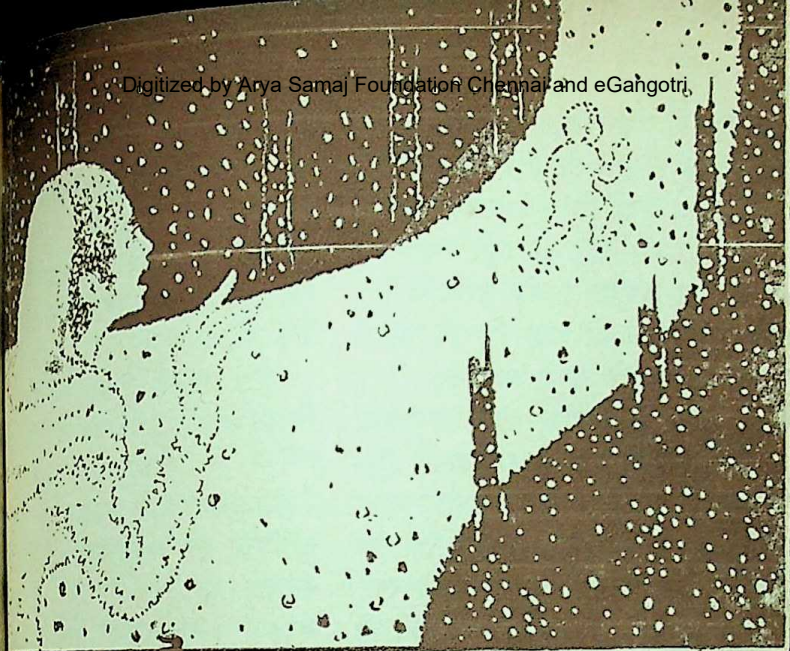


शारदीया



मदन मोहन तरुण

नील जैसा चंद्रमा आकाश में
 खूब गहरी नीलिमा-सी छन रही है चांदनी चारों तरफ ।
 हवा, सराती हुई यों
 शून्य के सब भेद जैसे खोलती है ।
 आह ! नभ की नीलिमा खुलने लगी
 हंसिनी-सी श्वेत ऊपर सृष्टि सित स्वर्गीय
 चंचु में पंकज सदृश दाबे हुए ब्रह्माण्ड
 देखती है मुग्ध-मुख ऊपर
 हंस रही है शारदा रमणीय प्रिय कमनीय
 कम्प-हर्ष-दुकूल मर्मर वायु सलिल-तरंग
 आह ! प्रातिम यात्रा की इस महत् सीमावृत्ता की
 चंद्र-चंचित सृष्टि से लौटा दिया जाऊं न मैं,
 बहुत संभव है कि ऊपर और भी नभ खुले !
 किंतु, बाहर से किसी ने दी मुझे आवाज
 द्विधा निर्मित विश्व का अद्वैत
 चलो मेरे बंधु, है अदृश्य में भी रंध्र
 उसे खोलें, और उद्घाटित करें
 कुछ और भी संसार !



निर्मल कुमार की हिन्दी कहानी



बर्फ के फूल

ला सो गयी है। अब उसे कोई
 जगा सकता। 'ला मां।' की
 करता, आंसुओं से अपने अबोध लाल
 दिगाये हमिद अभी घर से निकल
 की तरफ भागा है। मगर आज
 रोने सलमा नहीं आ सकेगी....
 उसकी वहन जिसका दिल हमिद
 नीचे पर बाहर आ जाता था और
 ला सो वह जाता मिन्नतभरी, अपने
 न चाहती हवा बन उसके कदमों
 निपट उसे पास ले आता था।

बर्फ गिर रही है। पहाड़ी कब्रिस्तान
 बर्फ के फूलों से ढक गया है, मगर वे फिर
 भी बरस रहे हैं। बरसते रहेंगे; क्योंकि
 कुदरत इन्सान की जरूरतों से ज्यादा
 उदार है।

आज मेरा दिल सलमा के लिए रोने
 को हो रहा है। सलमा जिसने जिंदगी
 की देहरी पर खड़े होते ही एक सुंदर इंद्र-
 धनुष अपनी आंखों से निकल सामने
 क्षितिज पर फैलता देखा था मगर जिसकी
 रंगत अचानक यों उड़ गयी थी जैसे

कब्रिस्तान में खड़े चनार के पेड़ों से पत्ते ।
एक बेरंग, बेनूर इन्द्रधनुष देखते-देखते
उसकी आंखें मरने से पहले मर गयी थीं ।

फिर भी यह बेनूर इन्द्रधनुष क्यों फैला रहा ? क्या कुदरत इसका उत्तर देगी ? क्या सपने देखने की सज़ा मिलनी जरूरी है ? वे आंखें जो कभी अचानक उमंग और जोश में ज़िदगी की कड़वाहट भूल, ज़िदगी के नशे से भर उठती हैं — अचानक यों ही, जैसे गन्ने में रस भर आता है..... क्या वे आंखें कोई गुप्त पाप करती हैं ऐसा करके ? कौन जाने कुदरत के नियम कौन से हैं, मगर इन्सान ही तो थी सलमा जैसे मैं इन्सान हूं और आज रो लेना चाहता हूं। न जाने कौन-सा दर्द है यह मेरे सीने में जो रो लेना चाहता है। मेरी कोई नहीं थी सलमा। मगर कोई दर्द है जो मुझमें भी उसी तरह है जिस तरह सलमा में था, जो हम सबमें है, इन्सानी ज़िदगी का दर्द जो कल भी था, आज भी है और कल भी होगा। अब घरों से धुंआ उठता है, मुर्गियां बोलने लगती हैं, औरतें बच्चों को आवाज़ देती हैं या खन्चरों के गले की घंटियां सुनाई देती हैं तो वह दर्द मेरे सीने में लौ की तरह भड़क उठता है। सलमा की ज़िदगी भी उसी प्राचीन इन्सानी दर्द की कहानी बनकर रह गयी..... क्या वस यही एक नाता है जो मुझे रला रहा है ?

● ● ●

आफ़ताब दिलरुबा बजा रहा है। रात

के सन्नाटे में गिरती बर्फ का शोर नहीं होता मगर जब बर्फ को हवाएं धसीटां हैं तो आवाज़ होती है। वैसे सब सफेद ही सफेद है। अंधेरे पर भी बर्फ की सफेदी पड़ गयी है और ऐसा भ्रम हो रहा है जैसे चांदनी खिली हो।

आफ़ताब से ज़रूर सलमा की हूँ हृदय
मिलने आयी होगी। यह सच है कि हृदय
सलमा ने आफ़ताब का शादी का हृदय
पैशाम ठुकरा दिया था। मगर वह न तो हृदय
तंगदिली थी न संगदिली। यह नहीं कि हृदय
सलमा आफ़ताब का दिल लेकर भूत हृदय
गयी थी। सलमा हज़ारों में एक थी मगर हृदय
अपनी सुंदरता का ऐसा दुरुपयोग सलमा हृदय
को नहीं आता था। वस बात इतनी-सी हृदय
थी कि सलमा भी एक पठान की बेटी थी। हृदय
अपनी मां को आखिरी वक्त दिये वचन को हृदय
कैसे फिर सकती थी? आफ़ताब को ऐसा हृदय
मुहब्बत हो गयी थी मगर उसे क्या पता हृदय
था कि किस्मत किसी दिन उसे यूँ भी हृदय
आज़मायेगी कि वक्त होगा नहीं आगे हृदय
फौरन एक ही क्षण में ज़िंदगी के सारे हृदय
फैसले कर लेने होंगे। मां बिस्तर से उठकर हृदय
बाहर धान कूटती सलमा तक आ गयी हृदय
थी। खांसी के मारे उसका सिर चकरा हृदय
गया था और वह पत्थर की दीवार को हृदय
पकड़कर हांफ रही थी। यौवन का नया हृदय
किस कदर मासूम होता है! सलमा मां हृदय
को डांटकर बोली थी, 'देख फिर आगे हृदय
मां, तो अब्बा से कहूंगी। तू बिस्तर पर क्यों हृदय
नहीं लेटती?'

मिलने लगी थी और गिरती गिरती
मजबूत बांधों में थम उसके गले
गयी थी और रोने लगी थी।
'सलमा भी रो पड़ी थी,
'मां, मां!' सलमा भी रो पड़ी थी,
'किसी दुख करती है। तू ठीक हो
हैं कोई शम नहीं है। किसी चीज की
नहीं।'

हमिद का, बेटी, हमिद का....'
हमिद का क्या, मां? हमिद तो
रहा है।'

र वह न तो कौन देखेगा उसे, बहुत छोटा है, बेटी।
यह नहीं कि मैं उसकी फ्रिक साथ रहेगी।
लेकर भूत-भूतकर आना पड़ेगा।' सलमा ने मां
एक थी मगर मैंने से भींच लिया और न जाने
पयोग सलमा इस बार उसके आंसू नहीं निकले।
इतनी भी हो गयी मां को उठाकर बिस्तर
की बेटी थी। उसे पानी देकर लिटाया और
दिये वचन के आसिर सहलाती हुई बोली, 'खुदा
आफ़ताब के ऐसा हो, मगर कुछ हो गया तो!'
उसे क्या पता रोनी फूटने को हुई मगर गले और
उसे यूँ भी आँखों के बीच आकर रुक गयी, 'मैं
नहीं और मां, मां, हमिद को। मैं मां का हक
दगी के साथ करूँगी। हमिद कभी तेरी कमी
स्तर से उठकर मुस करेगा। तुझे कभी याद नहीं
तक आ गयी। उसकी आँखों से आंसू झरने
सिर चकराते तू आराम से कब्र में सोना, मां।
ही दीवार को हमिद भी हमिद लेगा तो मेरे दिल
नौबत का नया रोने होगा।'

! सलमा मां
ख फिर आती
बिस्तर पर क्यों

०००

हमिद सो गया है। ढलते पर्वत
रुने पथर के घर में हमिद अपने

दिल अभी मौत से परिचित नहीं। उसकी
अबोध आँखें सपना देख रही हैं—वह मुर्गी
के बच्चों के पीछे भाग रहा है और सलमा
बार-बार उसे पकड़कर खट्टे अनार के
दानों से रोटी खिला रही है।

हामिद का बाप अब्दुल्ला थक गया
है। आज वह काम पर नहीं गया; क्योंकि
सलमा को दफ़नाना था। मगर वह बहुत
थक गया है। अब उसके साथ जीने को
कौन बचा है? हामिद बहुत छोटा है।
उसकी दुनिया अब्दुल्ला से बहुत पीछे है।
जब तक वह बड़ा होगा अब्दुल्ला कब्र
में दूसरी करवट ले चुका होगा। उसके
बाल सफ़ेद हैं। उसके गाल लाल हैं
तंदुरुस्ती के कारण नहीं, थकान और
खुश्क हवाओं के कारण। आफ़ताब भी
सो रहा है। ऊपर की बस्ती में दूर अपने
घर में उसकी मां भी सो रही है। बाप भी
सो रहा है। बहन भी सो रही है। दिल-
स्वा एक किनारे दीवार से लगा खड़ा
है। बाहर बर्फ़ गिर रही है, मुलायम फूलों
जैसी बर्फ़। आफ़ताब जिसने हर मुमकिन
कोशिश की सलमा को मुहब्बत की राह
पर फिर से लाने की, वही आफ़ताब आज
बिन-बोलती हवाओं का तूफ़ान दिल में
छुपाये सो रहा है। मां जानती है उसका
शम, मगर उससे ज़िक्र नहीं करती। उसे
डर लगता है। कुछ शम हैं जो बोल लेने
से और भी भड़कते हैं और फैल जाते हैं।
पहले जिनसे सिर्फ़ दिल दुखता था फैल

जाने से नसबंदी का अर्थ है।
सलमा भी सो रही है गीली मिट्टी के आगोश में। कब्र कच्ची है। बड़े अब्दुल्ला के पास इतने पैसे नहीं हैं कि उसे पक्की कराये। फिर वह अंधविश्वासी यह भी मानता है कि जो मर जाते हैं, वे अल्लाह में समा जाते हैं। पत्थर की कब्र से उठकर अल्लाह में समाने में सलमा को रुकावट होगी। उसका नाजुक जिस्म पत्थरों का बोझ कैसे हटायेगा ?

मिट्टी के पीले बिस्तर के ऊपर बर्फ का सफेद कालीन पड़ा है। आसपास कोई



नहीं है। ऐसी नीरव शांति को कोई देर रात की चिड़िया भी नहीं तोड़ती। कोई जानवर नहीं तोड़ता। कहते हैं यह शांति नहीं बर्फ की परी का जादू है। इसमें सब सो जाते हैं। एक सफेद सन्नाटे में बर्फ के फूल परी की आंखों से झरते हैं जब कोई सलमा अपने साफ दामन की ताकत से बेखबर, उसमें लिपटी, मौत की वादियों में भटक आती है।

०००

सलमा की मां जब मरी थी तब वह

नवनीत

अठारह बरस की थी और कल नख्त के दिन तक सलमा इक्कीस की हो चुकी थी।
हामिद जो तब डेढ़ बरस का था अब साढ़े चार का था, मगर लाख जतन करके भी सलमा उसके मुंह से वह पुकार दूर नहीं कर पायी थी—'ला मां।' जब भी वह दिल खोलकर रोता वही पुकार उसके दिल से निकलती और वह बस्ती में ऊपर की ओर उसी रास्ते पर भागता जिस रास्ते लोग उसका मां का जनाजा ले गये थे।

सलमा कितनी ही बार आंचे तक-तक कर रोई थी इस बात पर। लड़खड़ाता था, बरोता, नन्हे-नन्हे पैरों पर भागता हामिद उसके दिल पर बड़ी चोट करता था, कहीं जाने का डर नहीं था मगर न जाने की त कौन-सी यादें थीं, किसके दर्द थे, उनके पुरखों के या उन हजारों-नाब वच्चों के जिन्हें उनकी मायें छोड़ने लगी गयी थीं। वे दर्द शायद हवाओं में आवारा भटकते रहते हैं और जब किसी बच्चे की मां मरती है और उसका हृदय फूटकर उसे पुकारता है तो वे दर्द मानो कुछ देर को एक ज़िदा पा जाते हैं और वहीं इकट्ठे हो जाते हैं।

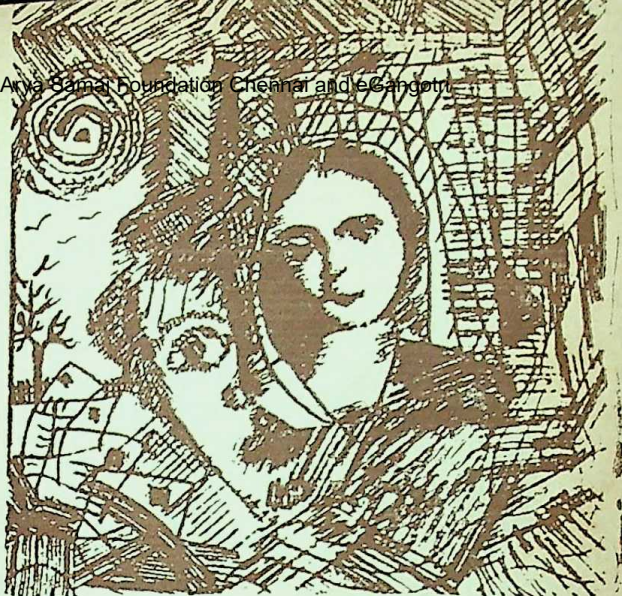
सुबह की चढ़ती धूप में, चील के नोक परों की तरह हवाओं को चीरती, हामिद की पुकार ऊपर उठकर नीले आसमान में फैल जाती। पहाड़ अपने नीले जैसों जैसी सुबह की किरणों से धोते-धोते सहम जाते। कोई डर-सा सलमा के

कल मरने के
हो चुकी थी।
था अब सादे
तन करके भी
कार दूर नहीं
जब भी वह
पुकार उठे
वस्ती में ऊपर
भागता कि
का जनाजा
आंखें टकटक
लड़खड़ाता था,
भागता हामिद
करता था। वह जो
मगर न जाने की ताकत रखता हो, जो उसकी
दर्द थे, उनकी राहों से उसे परिचित करा दे।

०००

हजारों-नाब
मायें छोड़कर
यद हवाओं में
और जब कि
र उसका बि
है तो ये स
एक छिटा क
ठे हो जाते
चील के नोंक
चीली, हामि
नीले आसमा
पने नीले चेह
घोंते-घोंते ज
सलमा के कि
नबं

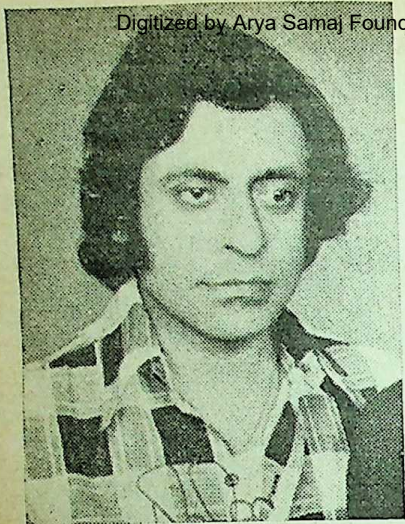
कौन फूल थे। कैसा मौसम आया
सब पागल हो गये थे। बादलों
ऐसी रंग-विरंगी लकीरें आ जाती
जिनकी वजह नहीं मिलती थी।
या गयी थीं इतनी रंग-विरंगी
क्यों आने लगी थी इतनी हंसी ?
मनहरी धूप का पानी सुबह-
चेहरे को गुदगुदा देता था और
बूझ जाती थी। एक नन्हे मासूम
रन्ने की तरह जो मौत से बेखबर
अपने पहाड़ के किनारे आ गया
ऐसी ही मासूमियत के साथ
मूर्ख खिड़की के सामने ऊंचे



पहाड़ पर चढ़ आता था।

ऐसे पगले मौसम में आफ़ताब ने
उसे पकड़ लिया था। उसके हाथ चेरी
के फूलों के नीचे थाम लिये थे। डर वह
भी गया था अपनी बदतमीजी पर इस-
लिए कांप रहा था और बोल कुछ नहीं
पा रहा था। इसलिए जब कुछ और न
हो सका तो मुट्ठी-भर चेरी के फूल उठा-
कर उसने उसकी चुन्नी पर डाल दिये थे
और वह हाथ छुड़ाकर भाग गयी थी।

उसके बाद भी अरसे तक वे नहीं बोले
थे, मगर आफ़ताब की नज़रों के घेरे
मजबूत होते जा रहे थे। अब उसकी बांहें
उसके पैर सब बंध गये थे। सबमें हलका-
हलका दर्द होने लगा था। वह कुछ भी
नहीं कर सकती थी जो उसे नापसंद
हो। और एक दिन जब पत्थरों की माला
गले में डालते हुए उसे लगा था, यह



निर्मल कुमार

माला उसे पसंद आयेगी तो उसे हैरत हुई थी और कुछ लज्जा आयी थी। मगर यह विचार जैसे उसकी लाज देख और भी निर्लज्ज हो गया था। अब यह विचार उसके बोलों से निकल आंखों में आ गया था। अब उसकी आंखें शीशे में पड़ी उसकी सूरत से पूछ रही थीं : 'क्या मैं सच बहुत सुंदर हूं?' लजाकर उसने आंखें झुका लीं, मगर जैसे वे बताव आंखें जवाब जरूर चाहती थीं। वे फिर शीशे में झांकते उसके प्रतिबिम्ब की ओर उठीं।

उसके बाद जैसे सज़ा देने के लिए उसने शीशे में मुंह देखना ही छोड़ दिया था। मगर कितने दिन चलती हैं ऐसी ज़िदें !

०००

नवनीत

आवारा भटकते मेरे मन को कब के अंधेरे में गरमाई महसूस होती है और वह वहीं रुक जाना चाहता है। मैं चाहता हूं, पूरी सदियों मैं भी सलमा की तरह बेजान पड़ा रहूं बिना हाथ-पैर हिलाये। वहां सलमा की सूरत है जो अभी विगड़ी नहीं। मन की आंखें कब्र के अंधेरे में उसे देख लेती हैं। मुझे न जाने क्यों खयाल आ रहा है किसी बूढ़े भालू का जो न जाने कहां, बर्फ से ढकी गुफा में सदियों-सदियों के लिए मर गया है। उसके पंजे सिकुड़ गये हैं, नाखून मुड़कर हथेलियों से लग गये हैं। वसंत का इंतज़ार कौन करे ? वह बर्बर पशु अपने बच्चे जैसे दिल को यह इंतज़ार नहीं सिखा सकता। वह मर जाता है और मौत उसके लिए अस्थायी बन गयी है।

मैं भी चाहता हूं ऐसी ही अस्थायी मौत। सलमा कब्र के अंधेरों को अपनी हंसी के सितारों से जगमगाती जरूर होगी, क्योंकि कोई ऐसा गम नहीं था उसे जो उसके साथ कब्र में जाता। कोई भी गम उसके किसी बूरे कर्म से पैदा नहीं हुआ था, सारे गम इसी दुनिया की देन थे। जब तक ज़िदगी उसे इस दुनिया से जोड़े रही वे गम साथ रहे। मौत के ठंडे विलस में उतरते हुए सारे गम धरती के अंधेरे ही छूट गये।

०००

बूढ़े अब्दुल्ला को मालूम नहीं था कि उसकी बेटी को तपेदिक घुन की तरह खाने

को ब्र
ती है और
में चाहता
की तरह
हिलाये।
भी विगड़ी
अंधेरे में
क्यों खयाल
जो न जाने
में सदियों-
उसके पंखे
र हथेलियों
तजार को
बच्चे जैसे
खा सकता।
उसके लिए

ही अस्थायी
रों को अपनी
जूर होनी
था उसे जो
। कोई भी
पैदा नहीं हुआ
की देन थी
निया से जो
के ठंडे बिस्तर
रती के अर
म नहीं था कि
की तरह वा
नंबर

सलमा ने आफ़ताव को दुत्कार
लिया था, मगर उसके अपने ही शब्द
उसके दिल में लौट आये थे।
उसकी जलती दागने वाली सलाखें
उसके ही निष्ठुर शब्द उसके अपने
को दाग जाते और तब सलमा को
उसके गालों पर, माथे पर, होठों
वगैरे चाबुक के से निशान उभर आये
उसे लगता उसकी पीठ कोड़ों
जंगली है और तब सचमुच छूने पर
उसके लिए निशान महसूस होते।

आफ़ताव बहुत रोया, बहुत दिनों तक
उसका दामन थामे रहा, फिर न
उसके सब कुछ आप ही आप छूट
गानी में बहाये बच्चे की तरह वह
अरमानों, चाहों के बने पालने में
आफ़ताव दूर निकल गया और रोज़
उसके किस ओर को उसका यह मानसिक
बढ़ता गया। यहां तक कि सलमा को
उसके भी अब उसकी आंखों में चमक
बंद हो गयी थी। उसका दिल पह-
कि यह सलमा है मगर एक डर उसे
कर देता। उसे सलमा से डर
लगा था। वे फुसफुसाहटें, वह
जो उसके कोमल अंगों से लगकर
महसूस की थी, कहीं दूर पिछली
के तायरे में बंधकर रह गयी थी।
आंखों का कोयलों की तरह चम-
नजरों में हजारों बातों का
वह तितलियों ही तितलियों के
आंखों से निकलकर

फज़ा पर छा जाना और मौजों का बल
खाते हुए उसके कंधों और कमर से निकल
नदियों में समा जाना.... ये सारे अनुभव
दिल में गहराइयों में अब भी बहते हुए
महसूस होते, मगर उनके ऊपर एक वर्फ
का ग्लेसियर बैठ गया था।

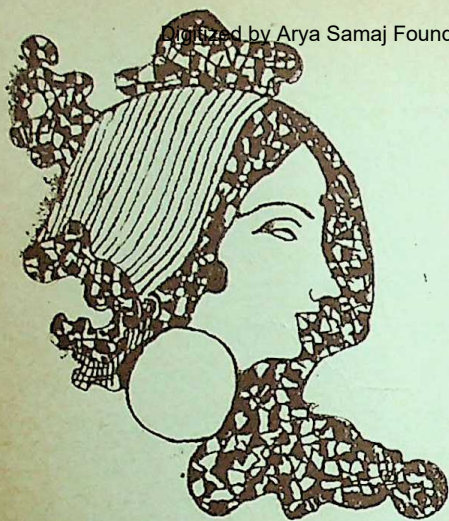
लाख वह अपने को समझाता सलमा
गुस्से में थी, सलमा मां के गम में बदह-
वास थी, मगर फिर भी उसके कटु शब्दों
की वह मार उसका दिल न भूल पाया।
उसकी आंखों का फिर जाना उस दिन
कहीं बहुत भीतर, दिल के कितने ही
मंदिरों के भीतर, सोते आफ़ताव को
बुरी तरह अपाहिज कर गया था।

मैं सलमा के क्राविल नहीं हूं, मेरी
सूरत भी तो कुछ नहीं है। शायद सलमा
को चाहने वाले बहुत हैं। शायद उसकी
नजरों में कोई और चढ़ गया है। चोट
खाये दिल को क्या पता मुहब्बत रोज़-
रोज़ एक दिल में नहीं खिलती। ये फूल
हरके के लिए नहीं होते।

०००

और अब्दुल्ला को क्या पता था कि
आज सुबह जो रोटियां सलमा ने दी हैं,
वे उसके हाथों की बनी आखिरी रोटियां
होंगी। वह तो ऐसे ही रोज़ जाता था
अपने खच्चरों के साथ और ऐसे ही वह
रोटियां बांधकर दे देती थी।

पीली ज़रूर हो गयी थी सलमा,
मगर गरीबों के बच्चे तंदुरुस्त कहां रहते
(शेर्बांश पृष्ठ ७४ पर)



गिरिजाकुमार माथुर की प्रेम कविता



थोड़ी देर हो गयी

तुम मुझे इस तरह और ललचाओ मत
क्योंकि इस बात को भी अब
थोड़ी देर हो गयी है !

तुम्हें मालूम है
तुम्हारे इस भीने-रचे भरपूर वदन का
छलकाव

कितनी दूर तक उड़ता है,

तुम्हें मालूम है
तुम्हारे चलने में जो मस्त रोशनी पैदा
होती है

वह कितनी बेचैनियों पर
पांव धर चलती है,

तुम्हें मालूम है
कि कसे कपड़ों के बस में न आने वाली
तुम्हारी कुछ चीजें
हवा तक में फंस जाती हैं,

तुम्हें मालूम है
कि तुम एक आतिशी शीशा हो
जिसका अक्स
कहीं भी आंच देता है,

तुम अब तक कहां थीं
चाहे बतलाओ मत,
क्योंकि इस बात को भी अब
थोड़ी देर हो गयी है !

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तुम्हें नहीं मालूम
कि प्यार के लिए कोई उम्र नहीं होती
कोई वक्त, कोई जगह
कोई रोक-टोक नहीं होती,

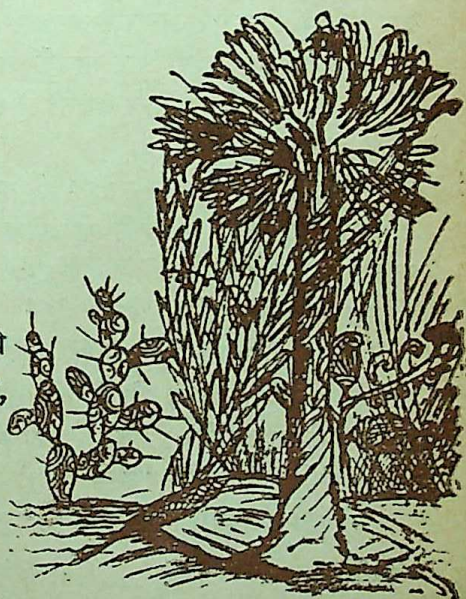
तुम्हें नहीं मालूम
तुम्हारी देह का कुहकता स्वाद
जो तुम मन के भीतर से उंडेलकर
अब तक किसी को दे नहीं पायीं,
उसमें कितनी शराब है
कितनी ज्यादा संजीवनी
जिसे पाकर उम्र वापस मिल जाती है,

तुम्हें नहीं मालूम
तुम आंखें मुंदा देनेवाली लहक को
एक मुस्तकिल खुशबू
जो अंगों से लिपटकर
मिटती नहीं है,

तुम्हें नहीं मालूम
तुम एक जादुई खजाना हो
जो बहुत धीरे-धीरे
इंच-इंच खोजकर मिलता है,

तुम पहले मिल जातीं
तो जिदगी और ज्यादा जीने लायक हो
जाती,

लेकिन इस बात को भी अब
बाढ़ी देर हो गयी है !



हैं ! खांसती थी वह, मगर रज़ाई मुंह में ठूसकर जिससे आवाज़ कम से कम निकले और वह भी थका-मारा, नींद की नर्माहट में कुछ सुना-अनसुना कर देता था। अच्छी हो जायेगी उसे उम्मीद थी। जवान जिस्म है, रोग पर काबू पा लेगा। हकीमजी ने तो नहीं बताया उसे दिल की बीमारी थी। बस खांसी पुरानी हो गयी थी और इलाज चल रहा था।

०००

मुझे कोई नहीं पूछता और मैं सुना रहा हूं जैसे कोई सुनना चाहता है—हां तो क्या हुआ सलमा का ? क्यों मर गयी सलमा ? सलमा कहती थी देवदारों पर जब बर्फ गिरती है और उसके बोझ से टहनियां झुक जाती हैं तो देवदार सीढ़ियां बन जाते हैं, जिन पर उतरकर आसमान से परियां आती हैं और फिर सामने वाली पहाड़ी पर उनकी महफिल सजती है।

०००

आंखें फाड़े हामिद उस रात भी बहन की गोद में बैठा खिड़की के शीशे से बाहर उस लंबे देवदार को देख रहा था, जिससे उतरकर परियां आयी थीं।

‘मगर मुझे तो नहीं दीखीं, दीदी।’

‘अभी नहीं, जब तू सो जायेगा तो ये सब सपने में दीखेंगी। फिर सबके बीच मां आयेगी एक ऊनी गलीचे पर।’

‘मां को ठंड नहीं लगेगी?’

नवनीत

‘नहीं, नन्हे, मां के ऊपर सबभारी छतरियां होंगी। मां का लिबास हम लोगों जैसा नहीं है, उसे फरिश्तों के लिबास मिले है!’

‘और मां के पंख भी हैं?’

‘हां, पंख भी.....’

‘अब तू सो जा, मैं थोड़ा-सा काम निपटा लूं।’ किसी तरह हामिद की आंख लगी और सलमा जल्दी-जल्दी बर्तन साफ करने लगी। उसे लगा उसके किसी उल्लू के रोने की आवाज़ सुनी। उसके रोंगटे खड़े हो गये। जब वह धोने लगी तो खांसी आ गयी और फिर कुछ खून गिरा। दवाई लेकर वह रो गयी फिर उसकी आंख कुछ देर बाद के फूलों के बीच आफताब की बनती मिटती सूरत देखती रही। कभी मां की भी सूरत मिल जाती। फिर कुछ देर अपने अब्बा दूर कहीं पहाड़ पगडंडी पर किसी सौदागर का माल खच्चरों पर लादे बकरी की खाल से अकेले को ढके चलते हुए नज़र आते। उनके अधपकी दाढ़ी, उदास फीकी आंखें और होंठों से बीच-बीच में फूटती आवाज़ें ‘अल्ला ! अल्ला !’ को देखते-देखते उसके आंखों से गरम-गरम आंसू बरस पड़े। आंखें पोंछकर उसने करवट बदल ली।

०००

न मालूम कितनी देर उसे झपकी आयी होगी। अब की बार आंख खुली

विरोधाभास

आजकल

हम बड़ा विरोधाभास पा रहे हैं

सीमेंट के अभाव में भी

आदमी-आदमी के बीच

नफ़रत की

दीवार बना रहे हैं !

—महेश मूलचंदानी

०००

पाप-मोचन

भगीरथ इस युग में

पैदा होता

तो कुर्सियों का

पाप अवश्य धोता !

—नंद किशोर नंदन

से लौटा। रात भर उसे बर्फ के कारण ऊपर मंडी में रुकना पड़ा। हामिद सो रहा था। सलमा लिहाफ़ से मुंह ढके पड़ी थी। उसके होठों से खून निकलकर तकिये और बालों में लग गया था और वह बहुत दूर चली गयी थी जहां आफताब का दर्दीला दिलरुबा उस तक अपने सुर नहीं भेज सकता था। उसकी कुंवारी आंखों में अब घुटन भरी बदली नहीं जगा सकता था। अब उसमें आफताब के आगे मुजरिम जैसी अनुभूति ज़िदगी नहीं जगा सकती थी।

—अतिरिक्त जिला अधिकारी,
कलेक्टर, बरेली, उ. प्र.

०००

लगता है कि आसमान उस कमरे का हिस्सा है

ज्योत्स्ना मिलन
 की मुलाकात
 अपने आप के साथ

२०-१-८१

वहाँ मुझे लगता है कि आसमान उस
 कमरे का हिस्सा है या ये कि वह
 कमरा खुद ही आसमान का एक हिस्सा
 है। और आसमान का मुझ पर जादू का
 सा असर होता है। कितनी भी कैसी भी
 थकान हो, तनाव हो, चिंता हो, पर नज़र
 यकायक गलती से भी आसमान की ओर
 उठ जाती है तो बड़ी राहत मिलती है,
 जैसे आसमान ने उस थकान को, तनाव को,
 चिंता को समूचा सोख लिया हो। इस
 जादू को तो कई बार जाना है, फिर भी
 मज़ा ये कि मैं हर बार सिरे से भूल जाती
 हूँ कि ऐसा भी कोई जादू होता है। नतीजा
 ये है कि हर बार आसमान को देखने पर
 वैसा ही असर होता है, जैसा पहली बार
 देखने पर हुआ था। और फिर आसमान
 का ही क्यों समुद्र का, जंगल का, पहाड़
 का, आग का, रोशनी का, मिट्टी का, तेज़
 हवा का, उसके झोंके की काया में घिर
 आती खुशबू का भी ठीक वैसा ही असर
 मुझ पर होता है। सोचने पर मुझे बड़ा
 अचरज होता है कि यह सब कुछ अक्सर
 मेरे आस ही पास होता है, पर मुझे इनके
 होने का एहसास कभी-कभी होता है

और भीतर इस बात का अफसोस गड़गा
 रहता है।

०००

समुद्र किनारे का आसमान कभी वैसा
 वीरान, वैसा उजाड़, अंधा या धूसर नहीं
 होता। अक्सर नीला और पारदर्शी हो
 होता है। उस नीले आसमान में कमान
 की तरह मुड़ते हुए नारियल के नुकीले
 पत्ते इतने कोमल ढंग से हिलते हैं कि उनका
 नुकीलापन गड़ता नहीं, छूने जितना ही
 प्यारा लगता है। उन पत्तों के बीच में
 दिखता आसमान समूचे अस्तित्व में
 गतिमान, जीवित समुद्र की तरह उमड़
 चला आता-सा लगता है।

नारियल के पत्तों से स्वरूपवान बना
 यह आकाश मुझे अपने प्रिय व्यक्ति के
 चेहरे-सा ही लगता है, जो बड़ी से बड़ी
 यातना के बीच भी राहत देता है। उसे
 देखने के बाद एक शांति, एक ठंडक, एक
 रोशनी भीतर न उतरे, यह असंभव है।
 वहाँ एक ऐसी बालकनी तो थी जहाँ
 जंगल तो निश्चय ही नहीं था, पर चाँद
 ओर पेड़-पौधे थे, ऊपर खुला आसमान
 था, रात का भरा-पूरा सन्नाटा था और
 समुद्र सामने तो नहीं था, फिर भी उनके

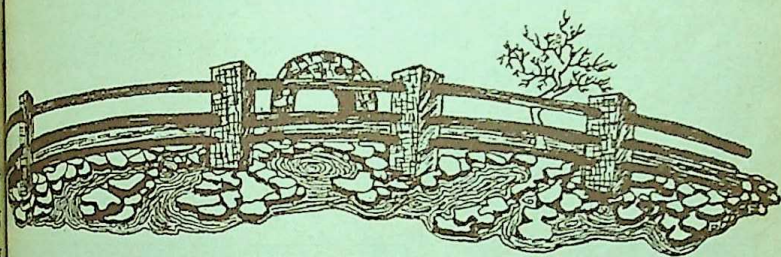
नवनीत

७६

ता. २१-१-८१

अंधेरे में से उठकर एक आवाज मुझे
कैद कर लेती है। खुशबू की कैद ! ओह
जूही ! कितना अधीरज है तुम्हें, अभी बस
आयी ही तो हूँ ! और एक झोरा ! तू तो
हरदम फूला ही रहता है, कभी ऐसा नहीं
होता कि तू सूना हो, खाली हो।

ये पौधे ही तो थे मेरे उगते हुए भावों
के साक्षी। इन्होंने उन्हें देखा था उगते



हुए, पत-दर-पत खिलते हुए, होते हुए।
वे जाकर इन्हीं पौधों से लिपट गये थे
कि देखो हम हैं, जानो-महसूसो कि हम
हैं। मुझे अपनी पहचान देते हैं, अपनी
जड़ों से जोड़ते हैं ग्रे। मेरे होने, निरंतर
होते जाने की गवाही है इनके पास।
शरीर के बढ़ने को तो और भी बहुतों ने
देखा था लेकिन मेरे बढ़ते जाते, जंगल की
तरह सघन होते जाते अंतरंग को तो
इन पौधों ने, इस आसमान ने, उस कोने
से उझककर झांकते समुद्र ने ही देखा था।
यहां तक कि अपनी ही समृद्धि के दबाव
से फटने-फटने को अकुलाते इस अंतर के

दबाव को इन्होंने ही शेर-हैज फुटवार्थे Chennai and eGangotri
आने तक ! पेड खाली-गंगे है

• • •

११ मई '७८

मुझे हमेशा लगता है, अक्सर लगता है कि मैंने कुछ खो दिया है, मेरा कुछ खो गया है। क्या खो जाता होगा, यह मैं साफ़-साफ़ कभी नहीं जान पाती, पर एक अफ़सोस मेरे भीतर होता है कि मैंने कुछ खो दिया है—बहुत कीमती कुछ।

हर दिन एक अफसोस से घिरी तय करती हूं कि अब मैं पहरा दूंगी कि कुछ खोने न पाये लेकिन सारी चौकसी के बाद भी कुछ न कुछ खो ही जाता है। मेरे पास क्या-क्या है इसका भी कोई लेखा-जोखा नहीं है और उसमें भी क्या कीमती है क्या नहीं, इसका भी कुछ पता नहीं होता। जब कुछ खो जाता है तभी जान पाती हूं कि वह कितना कीमती था कि वह क्या था ?

केशिया, गुलमुहर, अमलताश खिलते जाते हैं। गरमी के जलते, झाड़-झंखाड़ जैसे दिनों को कोयल की आवाज़ भिगोती-गुदगुदाती जाती है भीतर तक, रेगिस्तान की तरह मटीले और कोरे आसमान में घटाटोप बादल घिर आते हैं, जैसे वे उस आसमान में से ही उगे हों, वहीं फले हों, एक हरा झरना पहाड़ी से उतरता हुआ मकान के आसपास की बाड़ में फैल जाता है और मुझे हर बार लगता है मेरे पास कितना कुछ है।

नवनीत

पेड़ खाली-गुंगे और उदास हो जाते हैं। चीजों को, आदमी को महज देखने को लाचारी से देखती निचुड़ी और भावहीन आंखों से सामना होता है, हरा-भरा जीवन रेगिस्तान में बदल जाता है और लोग उसका कुछ नहीं कर पाते, ठगे से टुकुर-टुकुर ताकते ही रह जाते हैं बिना अपराध के सज़ा पाये से और हरा शरना यकायक ठूँठ में बदल जाता है और लगत है मैंने कुछ खो दिया है, बहुत कीमत कुछ । यह कितना अजीब है कि खो जाने के बाद ही चीजें, लोग मुझे मिलते हैं, सम के क्रम से बाहर ।

000

किसी को भी तकलीफ़ पाते देखकर
अक्सर ऐसी इच्छा होती है कि काश
उसकी तकलीफ़ को मैं एक स्याही सोख
की तरह सोख ले सकती। वह भी इस
तरह कि उसे कभी पता भी न चले कि
वह कौन था जिसने उसकी तकलीफ़
को सोख लिया था। यहां तक कि उसे
मालूम भी न हो कि उसकी तकलीफ़ दूर
की गयी है—उसे लगे कि जैसे वह तो अपने
आप ही बिना गयी है। लेकिन जो ह
किसी की पीड़ा को सोख लेना चाहता है,
उसे कितना-कितना उदार होना चाहिये,
अपने प्रति कितना निर्मम होना चाहिये!
पर फिर कभी-कभी ऐसा क्यों होता है
कि यकायक किसी एक क्षण को मंती



मैं बल पड़ जाते हैं, मैं ऐंठ जाती हूँ। उस एक क्षण के बाद पछतीन ही हो जाता है। कभी-कभी ही सही लेकिन क्यों होता है? गड़बड़ी कहां है? इसका क्या उपाय हो सकता है? मुझे बीच-बीच में अपना यों ऐंठना, बम जाना सहन नहीं है—इससे पानी ही होगी। बार-बार इस गंजूरता और अवश छटपटाकर बहुत कठिन लगता है।

०००

कभी-कभी कोई बहुत छोटा, तुच्छ कि भोयरा (संवेदनहीन) लगने वाला भी किस क्रूर हमारी तुच्छता का जवाब देता है, फिर वह कितनी कम, कितनी ही मामूली क्यों न हो।
३-२-७३
पाते देखकर जाल से हुआ। हमारे चाहने वाले तो हमारे अच्छाइयों को, हमारे उजाले को ही लक्ष्य करते हैं, बल्कि उस उजाले की परत में हमारे भीतर के अंधेरे को भी वे हमें कोशिश करते हैं। पर हमें न हमारे जाले को परे ठेलकर गिर गये अंधेरे को खोदकर बाहर निकाल लते हैं और उसे अपनी हथेली पर रखकर कहते हैं, देखो यह तुम्हारा ही अंधेरा है! जिसे देखकर हम तिलमिला जाते हैं। पर यह स्वीकार करना नहीं चाहते कि वह हमारा ही है, तब भी हम उसे तब तक जान रहे होंगे कि अंततः वह हमारा ही है। हम इतने कमजोर

ज्योत्स्ना मिलन

क्यों होते हैं? इतने डरपोक भी? अपने अंधेरे को भी अपने उजाले की तरह ही क्यों नहीं स्वीकार पाते? बहुत साहसी हुए तो अपने सामने स्वीकार लेंगे, पर किसी दूसरे के सामने नहीं ही स्वीकार पायेंगे। क्या यह दोहरापन नहीं है? भीतर-बाहर में फर्क करना नहीं है? अपने केंद्र और अपनी ही सतह के बीच आवरण डालना नहीं है? दूसरों की, दुनिया की परवाह जब तक रहती है—पारदर्शिता असंभव है, तब तक आवरण रहेंगे ही, हम अपने को छलेंगे ही, क्यों कि हम दूसरे को छलना चाहते हैं और दूसरे को छलने की पहली शर्त है खुद को छलना। छल यानी आवरण-धुंध-मटीलापन जिसकी आड़ में हम कुछ छिपाना चाहते हैं, छिपा सकते हैं—अपने से, दूसरों से। जब छिपाने को कुछ नहीं रह जाता, आवरण स्वतः ही व्यर्थ हो जाते हैं, पार-

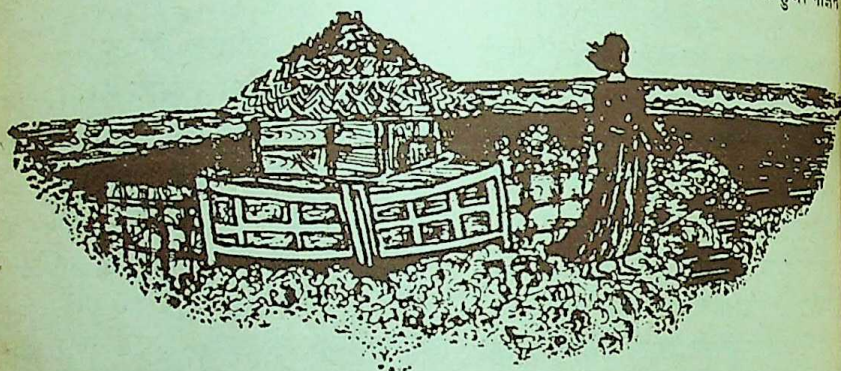
हिंदी डाइजेस्ट

दोशता आ जाती है तल से सतह तक ।
लेकिन छिपी-छिपी यह बह, यह बह
कितनी मानवीय है । इसकी पीड़ा भी
कितनी सुखद, कितनी सच्ची है ।

०००

२७-२-७८

‘हल्का आसमानी स्वर’—आसमानी
यानी आसमान के रंग का, क्या आसमान
के आकार का भी ? यानी खालीपन के,
शून्य के आकार का भी । यानी स्वयं शून्य



जिसके अस्तित्व की बुनियादी शर्त हो
वैसा स्वर । आसमानी स्वर—आसमान से
संबंधित स्वर, आसमान को बहता हुआ
स्वर !

मेरे अस्तित्व के केंद्र में उसकी जड़ों में
कहीं शून्य है, मुझे उसका स्वाद मालूम
है, इसी से कभी-कभी यकायक यह भरा-
पूरा आसपास सूना हो जाता है, खाली-
खाली-सा हो जाता है ।

आसपास यह जो कुछ भी है वह सब
मैं ही हूं यानी मैंने पेड़ होकर देखा, मैंने

नवनीत

चिड़िया होकर देखा, मैंने स्त्री होकर
पुरुष होकर, पहाड़ होकर, पानी होकर
देखा । मैंने हर चीज होकर, होने का
अनुभव लेकर देखा । यह सब होने के
अनंत अनुभव मेरे पास हैं । मैं ही हूं कि
यह सब होकर देख रही हूं कि यह कब
का, वह होने का अनुभव क्या होता है ?
मैं अनुभव की निरंतरता हूं । एक साथ मैं
कितनी सारी विरोधी चीजों से खचाखच
भरी होती हूं । मैं एक उलझा हुआ गति

अनुभव हूं और मेरा हर होना, दूसरे होने
से निहायत ही भिन्न है । भिन्नता मेरे
अस्तित्व की बुनियादी शर्त है । मैं यानी
मनुष्य ! मनुष्य ने चाहा और अपनी इच्छा
से यह सब कुछ होके देखा । यह होना कब
लाचारी का तर्क नहीं है या कर्मों का फल
या सज़ा भी नहीं है कि उसे कई योनियों
से गुज़रना ही पड़े—(चौरासी लाख
अनंत ?) और फिर क्या इस सृष्टि की
सारी चीजें, पेड़-पशु-पक्षी-मनुष्य-हर
अपने जीवन को इस तरह ढोते ही लगे

८०

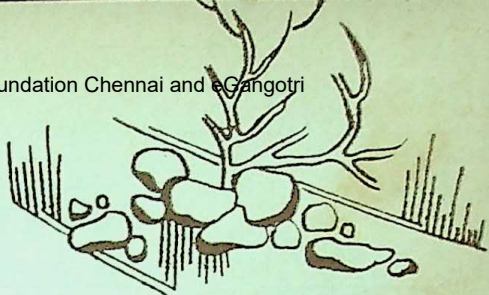
स्त्री होकर
पानी होकर
र, होने का
सब होने के
मैं ही हूँ कि
कि यह बने
या होता है ?
एक साथ मैं
में से खचाखच
हुआ गति

जैसे वे सजायापता हों और मजबूरी में
जीवन जी रहे हों ? क्या उनके जीवन
अपने होने की सार्थकता का अनुभव
होता ? यों तो चौरासी लाख योनियों
में गुजरना कोई अच्छी बात नहीं मानी
जाती। उन सारी योनियों से गुजरना
एक प्रकार से सजा भोगने की अनिवार्यता
के तर्क से ही होता है। हर योनि के दुखों
को भी तो भोगना पड़ेगा।

दिलचस्प बात ये है कि दुखों का
हिसाब ही हम पहले लगाते हैं। जैसे
कोई भी चीज़ होने या किसी भी योनि
में गुजरना सिर्फ दुखों का ही सिलसिला
हो और उनके कोई सुख हों ही नहीं,
या हों भी तो इतने नगण्य हों कि
उनको गिनाना फिजूलखर्ची हो। जल्दी से
करी इतनी योनियों से गुजरकर इनके दुखों
में निपट लेना और हर योनि से छुटकारा
पाना ही एकमात्र मकसद होता है।

जब वच्ची थी तब भी बड़ा अजीब
नगना था इतनी अच्छी-अच्छी और लुभा-
की चीज़ों से बने हुए इस सुंदर जीवन में
रोना लगा जाने की, उससे तदाकार होने
को छूट नहीं है।

चीना एक लाचारी है इसलिए जियो
और जिन चीज़ों के बिना जीवन संभव न
हो उन चीज़ों का इस्तेमाल भी अनिच्छा
में, मजबूरी में करने की तरह ही करो।
अपनी से भी किसी चीज़ या काम का
मझ मत लो। उन चीज़ों के प्रति
रखने से कर्म बंध होगा और फिर



चित्र : नीता बेंद्य

किसी दूसरी योनि के चक्कर में फंसना
पड़ेगा। किसी चीज़ का मज़ा इच्छापूर्वक
लेना अगर राग है तो किसी चीज़ को या
काम को करते समय कहीं इच्छातथ्य का
शुमार न हो जाये, इसी बात की रखवाली
में सारा ध्यान लगा देना क्या दूसरे प्रकार
का राग नहीं है ? महंगी चीज़ ही होना
यह एक राग है तो सस्ती से सस्ती ही
होना, दूसरे प्रकार का। मुझे तो सृष्टि की
हर चीज़ होके देखने का चाव है—यदि
रोशनी से तरवतर कायावाली इतनी सुंदर
आग, हमें खुलाव देता, अर्थ देता यह
आकाश, पानी की गञ्जिन संवेदनशील
गहराइयाँ और बहाव, जंगल का सघनतम
भयावह एकांत, समूचे अस्तित्व को झक-
झोर कर सारी थकान को, चिंता को झाड़-
बुहारकर अपने साथ उड़ा ले जाने वाली
हवा हमारे आसपास हो तो फिर यह जीवन
जितनी भी यातनाओं से, दुखों से भरा हो
मुझे स्वीकार है। इन सुंदर चीज़ों के साह-
चर्य में कुछ भी सहा जा सकता है।

— ३/२ प्रोफेसर्स कालनी, विद्याविहार,
भोपाल, म. प्र.



नायक

मां चलो हम कल्पना करें कि हम यात्रा कर रहे हैं और एक अजनबी तथा विचित्र देश से गुजर रहे हैं।

तुम पालकी में बैठी हो और मैं एक लाल घोड़े पर सवार हूँ।

शाम हो जाती है और सूर्य डूब जाता है। जोड़ादीधी का बंजर हमारे सामने पसरा है—धूमिल और मटमैला प्रांतर निर्जन और बियाबान है।

तुम डर जाती हो और सोचती हो : 'पता नहीं हम कहां आ गये हैं।'

मैं तुमसे कहता हूँ : 'डरो नहीं, मां।'

चरागाह में कंटोली घास है और उसके बीच से एक पतली-सी, ऊबड़-खाबड़ पग-डंडी जाती है।

खुले मैदान में कोई पशु दिखाई नहीं देता; वे गांव में अपने बाड़ों में लौट गये हैं।

घरती और आसमान में धूमिलता छा जाती है, और हम नहीं जानते कि हम कहां जा रहे हैं।

यकायक तुम मुझे पुकारती हो और बुदबुदाकर पूछती हो, 'वह किनारे के नवनीत

पास रोशनी कैसी है?'

तभी एक चिल्लाहट फूट पड़ती है और कुछ आकृतियां दौड़ती हुई हमारी ओर आने लगती हैं।

तुम अपनी पालकी में दुबककर बैठ जाती हो और देवताओं के नाम ले-लेकर प्रार्थना करने लगती हो।

कहार डर से कांपने लगते हैं और कंटोली झाड़ियों में छिप जाते हैं।

मैं चिल्लाकर तुमसे कहता हूँ, 'डरो मत, मां, मैं तुम्हारे पास हूँ।'

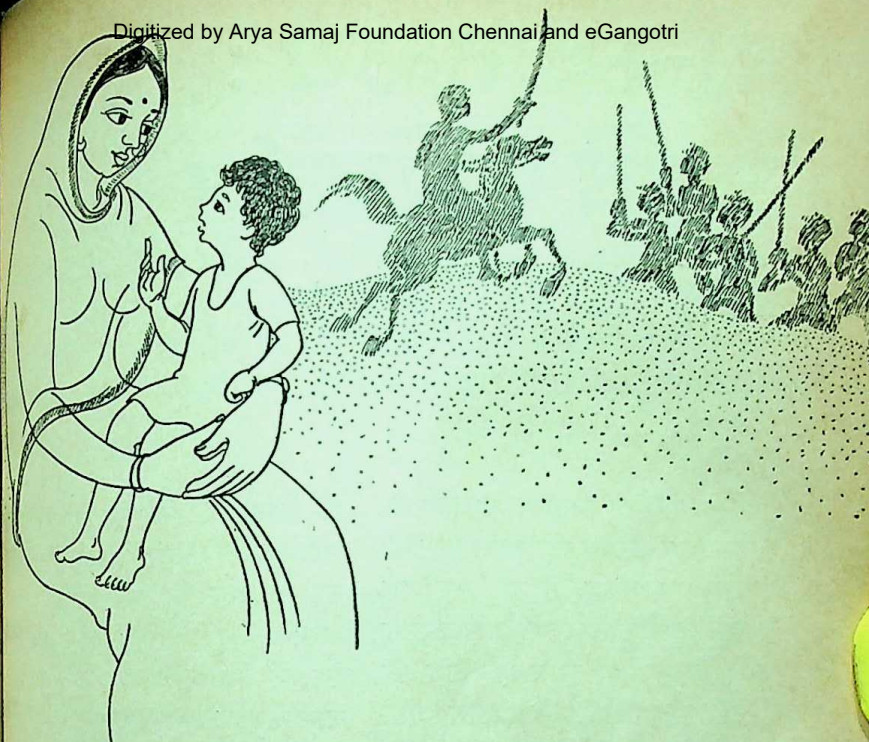
हाथों में लंबी-लंबी लाठियां लिये, सिरों पर लंबे, घने, उलझे बाल लिये, वे पास, और पास, आते जाते हैं।

मैं ललकारता हूँ, 'दुष्टो, वहीं रुक जाओ! एक भी कदम और उठाया, तो मारे जाओगे।'

वे एक बार फिर भयंकर चीख मारते हैं और आगे बढ़ते आते हैं।

तुम मेरा हाथ पकड़ लेती हो और कहती हो, 'प्यारे बेटे, भगवान के लिए, उनसे दूर रहो।'

मैं कहता हूँ, 'मां, तुम बस



डती है और
हमारी ओर
वककर बैठ
गाम ले-लेकर
गते हैं और
ते हैं।
ता हूं, 'डरो

लठियां लिये,
गाल लिये, वे
हैं।
, वहीं रुक
र उठाया, तो
र चीख मारते
ती हो और
वान के लिए,
बस देखती
नवंबर

बाबो।
फिर मैं अपने घोड़े को एड़ लगाता हूं।
हूँ, बरफट दौड़ने लगता है; मेरी तलवार
और फेंटा एक-दूसरे से टकराते हैं।
लड़ाई इतनी भयावह होती है, मां,
कि तुम अपनी पालकी से देख सको,
कि तुम कांपने लगे।
ज लोगों में से अनेक भाग जाते हैं,
लेक टुकड़े-टुकड़े होकर गिर जाते हैं।
मैं जानता हूं, तुम अकेली बैठी सोच
रहो हो कि तुम्हारा बेटा अब तक मर
जा होगा।
लेकिन रक्त से पूरी तरह सना मैं
रुधरे पास आता हूं और कहता हूं, 'मां;

लड़ाई खत्म हो गयी।'

'मेरा बेटा आज मेरे साथ न होता,
तो पता नहीं क्या होता!'

हर रोज हज़ारों बेकार की बातें होती
हैं; फिर ऐसी कोई घटना क्यों नहीं हो
सकती?

यह घटना किसी किताबी कहानी जैसी
ही होगी।

मेरा भाई कहेगा, 'क्या ऐसा हो सकता
है? मैं सोचता था, वह बड़ा नाजुक है!'

हमारे गांव के लोग भी आश्चर्य से
भरकर कहेंगे, 'क्या यह भाग्य की बात
नहीं थी कि बेटा मां के साथ था?'

रूपांतरकार : सुदीप



Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri स्त्री-स्वातन्त्र्य : स्थिति परिवर्तन और साहित्य

राजी सेठ का
विचारोत्तेजक लेख

किसी के भी लिए स्वतंत्रता के प्रश्न का बार-बार उठाया जाना इस बात का द्योतक है कि स्वतंत्रता से वह अब तक वंचित रहा है और स्वतंत्रता उसे वांछित है। स्त्री के संदर्भ में इधर इस बात की चर्चा, स्त्री की नियति के अतीत और वर्तमान पर एक साथ प्रकाश डालती है। पुरुष द्वारा किये गये विधान में उसकी ऐतिहासिक स्थिति अब तक क्या रही है, यह सर्वविदित है।

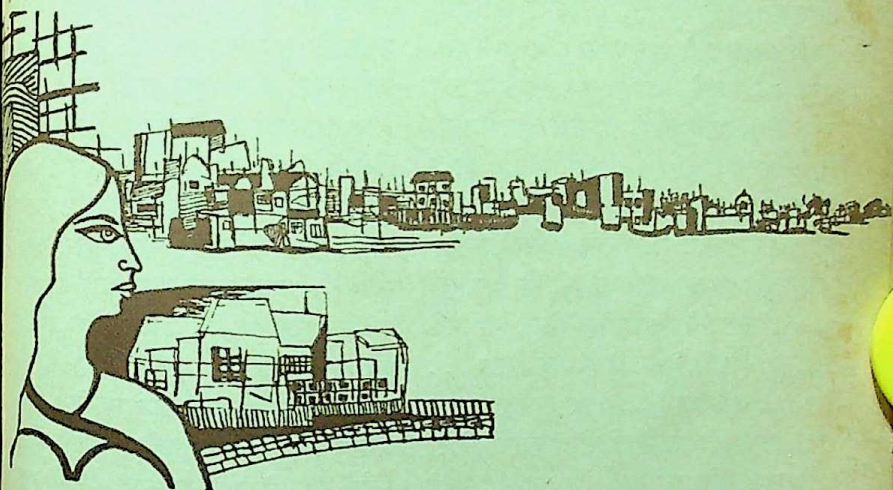
स्त्री सामाजिक पंगुता में रहे या उसके अधिकारों पर कुठाराघात किया जाये, ऐसा कोई विधान, वैधानिक न्याय में विश्वास रखने वाले सभ्यता के पोषक पुरुष ने कभी नहीं किया, अतः उसको न मानते होने का दबाव उसकी जातिगत अंतरात्मा पर कभी नहीं पड़ा, परंतु सामाजिक न्याय की तुला को अपने हाथ में रखकर अपनी जाति को सर्वकाल के लिए वजनदार तौल जरूर लिया। ऊंची कुर्सी

नवनीत

पर जमकर बैठे पौरुषीय न्याय ने स्त्री को सदा के लिए सामने खड़ा तो रखा, पर यह खड़ा रखना कभी अपराध साबित करने की मुद्रा में नहीं था। न घृणा, न द्वेष, न वैर, न आरोप, कुछ भी नहीं-मात्र अवहेलना-शुद्ध शाश्वत अवहेलना.... पूरी उदासीनता.... उसके अस्तित्व ने पूरे का पूरा नकार। उस सारी सामाजिक व्यवस्था में वह आज तक किसी न किसी ऐसी चिन्ह की तरह रही जो किसी न किसी जरूरत को पूरा करने के लिए संपत्ति की तरह रखी जाती है और अपनी संपत्ति के प्रति जैसी जकड़, जैसी संकीर्ण सावधानी मन में होती है, उसके प्रति भी पूर्ण रूप से विद्यमान रही। किसी ने उसे वह नहीं बताया कि वह विश्व की आधी जनसंख्या का निर्माण और प्रतिनिधित्व करती है तथा मानवी है। न तो वह हवा में उड़कर धरती पर पड़े बीज में से जन्म पा सकने वाले वानस्पतिक जगत की है, न

गंगलों में सहज पल रहे हैं। अतः प्रार्थना है। वह दुर्बल है की है। मानव और मानव के बीच इतना अतः प्रहार्य है। वह संभावी मां है, अतः अधिक दुराव, सभ्यता के विकास के लिए आक्रमणीय है। एक धुआं है, जो गीले प्रतिबद्ध पुरुष जाति के अनैतिक श्रेष्ठत्व ईंधन के सुलगते होने की-सी मानसिकता का ज्वलंत उदाहरण है। और सबको घोटता रहता है। उसे भी जल्दी ही लगने

कारणों पर जाना एक जाति के पूरे नामाजिक सांस्कृतिक इतिहास से जूझना लगता है कि यह उसके व्यक्तित्व की प्राकृत है, फिर भी संक्षेप में उस जमीन को टटोला वास्तविकता है, जिसे दीन-हीन भाव से जा सकता है जिसमें एक से मानवीय पारि- स्वीकार कर लिया जाना चाहिये। उसकी



वारिक परिवेश में रहते हुए ऐसी दोहरी दृष्टि पनपी होगी। लड़की बोझ है; क्योंकि वह घर की अर्थव्यवस्था में किसी तरह सहायक नहीं। उसकी प्रतिबद्धता इस घर की नहीं, पराई है। उसके होने की स्थिति घर से दहेज के रूप में धन-संपत्ति के निकास की स्थिति है। वह एक पहाड़ है जिसे ठिकाने लगाना है। वह अत्यंत मोलवान है अतः खंडनीय है। वह मर्यादा

मानसिक शिक्षा-दीक्षा का यही रंग-रूप है। इस परिवेश में व्यक्तित्ववान हो सकता अकल्पनीय है।

मन में कहीं अटक जाता है, इस घर की ज़िदगी उधार की ज़िदगी है। यहां के सपने झूठे सपने हैं (विडम्बना है कि चिंता और ध्यान एक प्रकार की अपूर्ति और अतृप्ति से दूसरे प्रकार की पूर्ति और तृप्ति में जाने पर है, आत्म-विकास पर नहीं)

जो कुछ भी ^{प्राप्त करना, सुख, सुख, प्रीति} करेगा, उस घर में होगा। पति देवता होंगे, घर मंदिर होगा, रास्ते फूलों के और दीवारें चांदनी की होंगी पर वह घर भी उन सब घरों जैसा एक घर होता है अति वास्तविक और यथार्थ। रिश्ते वहां जन्म-जात नहीं होते-त्याग, तपस्या करके, कीमत दे-देकर बनाये जाते हैं। अधिकारों, कर्तव्यों की बांट वहां और भी निराली होती है...। अपनी सुध वहां स्वार्थ कहलाती है। पति देवता नहीं, मनुष्य होता है-शुद्ध मनुष्य (मनुष्य को मनुष्य की तरह देखने की सीख और तैयारी यदि बचपन से होती तो शायद इतना आघात न लगता, मोहभंग की टूटन से बचाव हो जाता और कुछ शक्ति का सदुपयोग हो पाता) वहां कर्तव्यों ही कर्तव्यों की शृंखला में अधिकार मिल भी गये तो साग-भाजी, दूध-दही खरीदने तक... आगे.... और आगे और आगे तक एक ऐसा समुद्र दीखता है जिसका दूसरा सिरा उसे कभी दिखाई नहीं देता। उसे यहां भी संतुष्ट हो जाना चाहिये; क्योंकि सुरक्षा संरक्षण में उसकी गुज़र हो रही है।

सवाल उठता है, इस गुज़ारे की सीमा यदि बढ़ा दी जाये, कुछ बड़े व्यय करने की सुविधा मिल जाये तो क्या सुधर जायेगी स्थिति? मिल जायेगी आत्म-संतोष और आत्मसंपन्नता? बात एक बाहरी ओढ़े हुए अधिकार की नहीं भीतरी विश्वास की है, जो सारी गति का विधान

नवनीत

करता है। कोई व्यक्तित्व संपन्न हो तो उसे कुछ भी दिया जा सकता है-आर्थिक सामाजिक अधिकार भी, परंतु यही गुण प्रखर रूप से अनुपस्थित रहा है। उसकी योग्यता कभी पनपने नहीं दी गयी। अतः अस्मिता का प्रश्न नहीं उठता। आत्म-संपन्न व्यक्ति अपने विकास के ऊपरी सोपानों में स्वयं अस्मितावान हो जाता है।

अस्मिता, एक जाति के संदर्भ में सामूहिक होती है। पुरुष एक समूह रूप में जाति के रूप में स्वतंत्र है, कर्ता है, अतः इकाई रूप में भी वह सर्वत्र-सारे भौगोलिक देश काल में भी स्वतंत्र है। स्त्री किन्हीं घरों में स्वतंत्र भी है, उसकी स्थिति बेहतर भी है, कहीं-कहीं वह कर्ता भी है, फिर भी वह स्वतंत्र नहीं कही जा सकती; क्योंकि उसकी सामूहिक अस्मिता कहीं भी इतनी स्वीकृत नहीं है, जो देशकाल के प्रश्न को बरतारफ रखकर उसकी स्वतंत्रता के अधिकार को यकसां तय कर दे। उसका संघर्ष अभी तो सामूहिक या जातिगत संघर्ष है, जिसमें यत्र-तत्र दीखने वाले स्वतंत्रता मरुस्थल में हरितभूमि की सी प्रतीति देती है।

अस्मिता की चिंता तो विकास का उन्नत सोपान है, पर यहां एक जाति की-अपने कर्म, परिणाम और योगदान के स्तर पर-कुल जमा वास्तविकता यही रही है-पराये विवेक के सहारे कोढ़ के बेल की तरह उसी-उसी घेरे में घूमना। तबज्जह के लिए छोटी-छोटी बातों के

संपन्न हो तो
 है—अधिक
 तुं यह गुण
 है। उसकी
 गयी। अतः
 ता। आत्म-
 कृपरी सोपानों
 ता है।
 अर्द्ध में साम-
 समूह रूप में
 कर्ता है, अतः
 सारे भाँगे
 । स्त्री किन्हीं
 स्थिति बेहतर
 है, फिर भी
 कती; क्योंकि
 हीं भी इतनी
 के प्रश्न को
 स्वतंत्रता के
 र दे। उसका
 या जातिगत
 दीखने वाली
 भूमि की-सी
 विकास का
 क जाति की-
 योगदान के
 त्विकता यही
 हारे कोलू के
 रे में घूमना।
 टी बातों के
 नवर

शादी-ब्याह, जो अभी तक निश्चेष्ट पड़ी थीं। स्त्री
 को सामाजिक स्थिति में भी इस दौर में
 बड़ा परिवर्तन आया है यद्यपि यह परि-
 वर्तन अधिकांशतः वहीं तक सीमित है,
 जहां तक शिक्षा की उजास पहुंची है।
 समाज अब तक भी चल रहा था, अब भी
 चलता रहता परंतु शिक्षा के अधिकार और
 सुविधा ने भीतर कहीं आत्मचेतना के
 बीज डाल दिये हैं और स्वतंत्रता का प्रश्न
 एक अहम प्रश्न बन गया है। यह बात
 विचारणीय है कि अशिक्षित या फिर खेत
 में घास खोदती, हल चलाती, पत्थर
 तोड़ती स्त्री स्वतंत्रता-अस्मिता की बात
 नहीं करती या तो वह अपने लिए निर्धा-
 रित कर्म में अधिक स्वतंत्र है या उसे इस
 ज़रूरत का कोई एहसास ही नहीं।

शिक्षा सबको मिले यह एक राष्ट्रीय
 फैसला था। समानता सबका अधिकार
 हो, यह एक प्रजातांत्रिक वैधानिक मांग है।
 एक राष्ट्रीय हित का फैसला, राष्ट्रीय
 कारणों से कार्यान्वित होता है; स्त्री
 उसमें मात्र एक प्रापक वर्ग है—एक पिछड़ा
 हुआ वर्ग, परंतु वह छोटा-सा अधिकार
 जो उसे सामाजिक न्याय की बांट में मिला
 है, उसका उसने अपनी तरह उपयोग कर
 लिया है। वह विकास और प्रगति के
 बीजों को जल्दी आत्मसात करती है,
 क्योंकि उसमें भी वही विकासोन्मुख मान-
 वीय चेतना है—अपने मौलिक, नैसर्गिक
 रूप में पुरुष के ही जैसी। उसके मन में
 अब तक के सुविधा-वंचित होने की व्यथा

है, जो उसे अपने कर्म में कुछ अतिरिक्त लगन देती है। वह अपने मानसिक संरचना में वह सुविधापरस्त परितोष भी नहीं है जो प्राप्तियों, उपलब्धियों के बीच युगों तक बने होने से आवश्यक रूप से व्यक्तित्व पनप जाता है। समय के इस खेप की स्त्री सचेत, जिज्ञासु, श्रमशील, तत्पर और जुझारू स्त्री है, अतः उसकी ऊर्जा जल्दी फल देने लगी है। कहना न होगा कि उसकी रचनात्मक ऊर्जा (दैहिक और मानसिक—यदि अनुकूलता में पोषित की जाये तो) अधिक है जैसी कि रचनात्मक सहिष्णुता अधिक। अधिक से अधिक ऊर्जा व्यय के बाद भी उतनी आसानी से वह चुकती नहीं। अपनी मर्यादाओं और सीमाओं के सांप की तरह लंबे होते होने के बावजूद, कुछ वैसी ही लचकीली, त्वरित क्षमता से वह सामंजस्य के सत्व तक पहुँचती रही है। सामंजस्य के लिए उसकी क्षमता पुरुष की अपेक्षा अधिक ग्रहणशील है।

यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि उसकी स्थिति में जो भी परिवर्तन हुआ है, वह किसी दूसरी स्थिति के परिणाम के फलस्वरूप हुआ है, किसी अभियान के रूप में नहीं। कोई भी अभियान अंतः-चेतित होता है, दूसरों द्वारा वह उठाया भी नहीं जा सकता। उसकी सलीब व्यक्ति,

नवनीत



वर्ग या जाति को स्वयं दोनी पड़ती है। एक सामूहिक भावना से प्रेरित होकर अग्रगण्य का प्रतिकार करने और अभियान उठाने के लक्षण आगे पनप सकते हैं। फलतः इस तरह की किसी स्थिति का योगदान इस विकास में लगभग अनुपस्थित रहा। एक व्यापक परिवर्तन के तहत ही उसकी स्थिति बदली है।

स्त्रियों का एक वर्ग—चाहे वह अग्रे छोटा ही है—स्वतंत्र विकसित आत्मचेतना संपन्न और अस्मिततावान हो गया है। उसका बाहरी लक्षण आर्थिक स्वतंत्रता के रूप में और भीतरी अभिव्यक्ति की लालसा से प्रेरित है। यह अभिव्यक्ति उत्सुकता हर क्षेत्र में एक परीक्षण के रवैये से जुड़ होकर उपलब्धि के लिए अपने को जांचने-परखने और तैयार करने की व्यापक तैयारी तक चली गयी है। ध्यान मात्र

अपनी योग्यता और पात्रता को पाने तक ही नहीं, अब तक संदिग्ध दृष्टि से देखे जाने वाले अपने अस्तित्व को स्वीकार करवाने की ओर भी है, वस्तुतः इस वर्ग की स्त्रियों के सम्मुख संकट अस्मिता का नहीं, अस्मिता की स्वीकृति का है। क्योंकि अस्मिता का समर्थन और स्वीकार पाये बिना किसी क्षेत्र में भी सक्रियता असंभव है। यह सक्रियता और सुविधा वह अधिक श्रम करने अपनी मर्यादाओं का अतिक्रमण करने

होती है। फिर
 होकर अन्धकार
 भयान उठने
 है, फिलहाल
 का योगदान
 मस्यत रहा।
 इत ही उसकी
 है वह अभी
 विकसित
 और अस्मिता
 है। उसका
 एक स्वतंत्रता
 की अभिव्यक्ति
 रित है। वह
 ता हर क्षेत्र
 रवैये से जुड़े
 लिए अपने
 और तैयारी
 तैयारी तक
 ध्यान मात्र
 को पाने तक
 ट से देखे जाने
 कोकार करवाते
 वर्ग की स्त्री के
 नहीं, अस्मिता
 अस्मिता का
 बिना किसी
 है। यह सक्रि-
 क श्रम करने
 नक्रमण करने
 नवंबर



हुआ चैतन्य पुरुष की जातिगत अस्मिता
 के परितोष में किसी भूकंप के करवट ले
 उठने की थरथराहट का उद्वेग पैदा कर
 रहा है। यह थरथराहट किसी व्यक्तिगत
 उपलब्धि या कुछ जोड़ी चरणों की थप-
 थपाहट न होकर दरवाजे पर अंततः आ
 खड़े होने वाली स्त्री की जातिगत अस्मिता
 की आरंभिक दस्तक है, जिसमें एक आवेग
 है, और सामूहिक चैतन्य का प्रस्फुटन।
 एक अकेली आवाज की ऊंचाई या गहराई
 सामने वाले की सामूहिक सुरक्षा को हिला
 या चौंका नहीं सकती। व्यक्तिगत अस्मिता
 इतनी दुर्लभ होती भी नहीं, हर देश काल
 में मिल जाती है। स्त्रियों का इतिहास
 भी उससे खाली नहीं रहा। इसके अति-
 रिक्त व्यक्तिगत स्तर पर परिवारों में

सामंजस्य सधता आया है और पारस्परिकता के गुण भी पनपते आये हैं।

यह प्रतिक्रिया चाहे संक्रमण काल में उपजी अस्थायी स्थिति ही है। फिर भी चोट उस स्थान पर पड़ रही है जो स्त्री-पुरुष के बीच सबसे मूल्यवान और कोमल स्थल है—भावात्मक पक्ष और पारस्परिक सामंजस्य की भावना। आघात वस्तुतः युगों से पोषित पुरुष के संस्कारों पर ही रहा है, पर चूँकि पुरुष प्रधान समाज में पुरुष ही पूरे समाज के न्याय का अधिष्ठाता रहा है, अतः सामाजिक प्रणाली पर आघात पुरुष पर आघात हो जाता है और आदान-प्रदान की पारस्परिक सहजता को बाधित करता है, परंतु अपने नैसर्गिक कारणों से यह स्थिति बहुत दिनों तक बनी नहीं रह सकती। परिवर्तन दोनों ओर से होता है। एक नये संबंध विधान की रचना अंततः होगी ही, परंतु इस समय इसे स्त्री की अस्मिता की स्वीकृति के संकट के एक और पहलू की तरह देखा जा सकता है। अस्मिता की स्वीकृति का संकट अस्मिता के मूल संकट से छोटा नहीं है। यह बात अलग है कि एक अस्तित्व की शर्त है, दूसरी विकास की, और अस्तित्व का प्रश्न निपट जाने पर ही स्वीकृति का प्रश्न उठता है।

स्वतंत्रता के प्रश्न को मात्र आर्थिक स्वतंत्रता के प्रश्न में समेटकर देखे जाने की प्रवृत्ति भी पनप रही है जबकि यह मात्र एक बाहरी सक्रियता है। एक ऐसी

चीज की उपलब्धि जो अब तक उसे उपलब्ध नहीं थी यदि ऐसा होता तो परिणाम की वैभव-संपन्नता में नारी-मुक्ति का आंदोलन खड़ा न होता।

इसमें संदेह नहीं कि आर्थिक स्वतंत्रता से उसकी स्थिति में गतिशीलता आती है, परंतु आर्थिक रूप से स्वतंत्र नारी का संघर्ष आर्थिक रूप से स्वतंत्र पुरुष से तब भी भिन्न रहेगा, क्योंकि एक चीज के सध जाने से पूरी जीवन पद्धति सध नहीं जाती। अभी भी क्यों ऐसा है कि आर्थिक रूप से स्वतंत्र नारी (विशेष मध्यवर्गीय) अपने मनोवृत्ति में पुरुष द्वारा मिली सुरक्षा और संरक्षण की ही आकांक्षी है। अपने नैतिक-सामाजिक आचरण का निर्धारण वह अपने दायित्वबोध और आत्मविश्वास से न करके पुरुष की इच्छा, अपेक्षा के अनुकूल करना चाहती है तब ऐसा न कर पाने पर एक अपराधीभाव उसमें पनपता है, अपने पक्ष के प्रकाशन और समर्थन की प्रेरणा नहीं। स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाला आत्म-प्रत्ययों के प्रति भीतरी विश्वास अभी उसमें जागृत नहीं हो पाया, फिर भारत जैसे देश में जहां हिंसा शारीरिक अत्याचार, मानसिक पीड़न, दहेज, पक्षपातपूर्ण वर्तन और नारी द्वारा नारी के शोषण जैसी स्थूल कुरीतियां अभी मौजूद हैं, वहां संघर्ष अभी काफी निचले स्तर पर है। मात्र आर्थिक स्वतंत्रता अर्जित करके स्वतंत्रता की उन्नत मानसिकता में क्रियाशील होने की कल्पना करना गलत है।

नवनीत

प्रश्न पहले परिपापक धर्माधरेण और अपराधी समाज में पाए जाते हैं। पुरुष एक जाति के रूप में इसी सुविधा के कारण कर्मठ हुई है और स्त्री इसी के अभाव में कुंठित।

मात्र वैधानिक आलेखों और दवावों से मक्ति नहीं मिल सकती। सामाजिक न्याय या अन्याय की कार्यशीलता प्रायः इन आलेखों से आगे चल निकलती रही है जैसे व्यक्तिगत तेजस्विता सामाजिक विधान से भी आगे। इतिहास साक्षी है कि व्यक्ति की आत्म-संपन्नता, तेजस्विता और योग्यता ने पूरे समाज और उसकी रूढ़ियों को चुनौती दी है। यों भी एक व्यक्ति, परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया में समाज या राज्य से ज्यादा स्वतंत्र और लचीला होता है। आज स्त्री को जितनी भी स्वतंत्रता मिली है, इकाई रूप में, उसके भीतर आत्म-संपन्नता बढ़ जाने के कारण मिली है, ढाँचे के रवैये के कारण नहीं, बल्कि आत्म-संपन्नता बढ़ने से ढाँचे के अपने स्वरूप में तब्दीली आ रही है। वस्तुतः व्यक्तित्व-संपन्नता की दिशा ही स्वतंत्रता की प्रथम और अंतिम दिशा है।

लेखक स्त्री ऐसी ही आत्म-संपन्न स्त्री है अतः अधिक जिज्ञासु, स्वतंत्र और आत्म-विश्वासी भी। सामान्य नारी से उसकी संलग्नता जातिगत या सामाजिक कही जायेगी अन्यथा वह सामान्य नारी का प्रतिनिधित्व नहीं करती, क्योंकि उपलब्धि के स्तर पर वह अस्मितावान है और संघर्ष (शेर्बांश पृष्ठ २२५ पर)

स्वामी गम्भीरानन्द द्वारा लिखित
श्री श्रीसारदा माँ की जीवनी में
आलेखित एक मार्मिक प्रसंग



भगवान परमहंस की सोहागरात

श्रीरामकृष्ण के भानजे श्री हृदयराम मुखोपाध्याय का घर शिहड़ में था। इस नाते श्रीरामकृष्ण वहां आया-जाया करते थे। श्रीमां का तनिहाल भी उसी ग्राम में था। इसके अतिरिक्त वहां के उत्सवों, कीर्तनों आदि में सम्मिलित होने के लिए जयरामवाटी तथा आस-पास के गांवों के लोग वहां जाया करते थे। ऐसे ही एक बार हृदय के घर में गाने के अवसर पर एक मजे की घटना हुई, जिसका उल्लेख 'श्रीश्री रामकृष्ण-पोथी' में पाया जाता है (खंड २, विवाह)। छोटी बालिका सारदा गाने की एक मजलिस में एक महिला की गोद में बैठी हुई थीं। गीत समाप्त हो जाने पर उस स्त्री ने विनोद में सारदा से पूछा, 'इस जगह बहुत से लोग इकट्ठे हैं। इनमें से किसके साथ तू विवाह करना चाहती है?' सारदा ने तुरंत दोनों हाथ उठाकर समीप ही बैठे हुए श्रीरामकृष्ण को दिखा दिया। जिस दिन मां इस प्रकार स्वयंवरा हुई, उस दिन उन्हें सांसारिक दृष्टि से नवनीत

'विवाह' शब्द का अर्थ ज्ञात नहीं था। किंतु जिस दैव-प्रेरणा से उन्होंने अपने पति को हाथ फैलाकर बतला दिया, उसी दैव-विधान से उनके सत्यसंकल्प मन की अभिलाषा कुछ वर्षों में पूर्ण हुई।

श्रीमां ने उस समय पांचवें वर्ष को पार कर छठे वर्ष में पैर रखे थे। दूसरी ओर दक्षिणेश्वर के श्रीकाली मंदिर में श्रीरामकृष्ण की देह और मन के सहारे युगप्रवर्तन के उद्योग के रूप में साधना का प्रबल झंझा चल रहा था। उससे बड़ा व्यक्ति यह अनुमान लगाने लगे कि उनका मन डांवांडोल हो गया है। उनके वादुरोगग्रस्त के समान व्यवहार अतिरिक्त होकर उनकी माता चंद्रमणि के कान तक पहुंचे। माता चंद्रमणि अपने ज्येष्ठ पुत्र रामकुमार के वियोग से अत्यंत दुखी थीं। अब कनिष्ठ पुत्र की इस अवस्था का वृत्तान्त पाकर उनकी मानसिक व्यथा का पारावार न रहा। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को तुरंत अपने पास बुला लिया, और स्वयं

मित्रों के परिमार्जन से बचा हुआ शांतिपाठ, भी निश्चित हो गया। संवत् १९१६ वि. वैशाख में श्री रामेश्वर अपने कनिष्ठ भाई श्रीरामकृष्ण को लेकर जयरामवाटी में श्री रामचंद्र मुखोपाध्याय के घर उपस्थित हुए। शुभलग्न में श्रीमती सारदा-मणि देवी के साथ श्रीरामकृष्ण का विवाह

संपन्न हुआ। विवाह में वरपक्ष की ओर से कन्या के पिता को तीन सौ रुपये मिले। श्रीरामकृष्ण ने उस समय चौबीसवें वर्ष में पदार्पण किया था।

विवाह के समय के संबंध में श्रीमां कहा करती थीं, 'खजूर पकने के दिनों में मेरा विवाह हुआ। महीने की याद नहीं है। दस दिन के बीच जब मैं कामारपुकुर गयी, तब मैंने वहां, खजूर चुने थे। कामारपुकुर के जमींदार धर्मदास लाहा ने आकर

कहा, 'इसी लड़की से विवाह हुआ है?' सूर्य के पिता (ईश्वर मुखोपाध्याय) अपनी गोद में मुझे कामारपुकुर ले गये थे।'

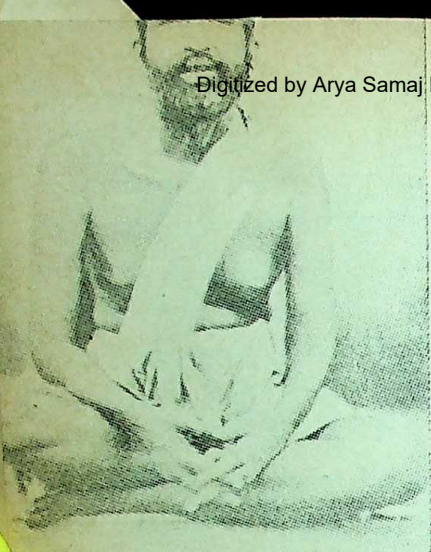
जयरामवाटी से श्रीरामकृष्ण श्रीमां को लेकर कामारपुकुर गये। इसके थोड़े ही दिन पश्चात् वे दक्षिणेश्वर लौटकर फिर साधना-सागर में डूब गये। इधर श्रीमां भी जयरामवाटी आयीं और पहले की भांति

नहीं था। किन्तु अपने पति को नहीं देखी, उसी दिन मन की अवि-
नष्टि।
वैं वर्ष को पार
। दूसरी ओर
देर में श्रीराम-
सहारे युगधर्म-
में साधना का
। उससे बड़ा
लगे कि उनका
। उनके बाद
पर अतिरीति
ण के कान तक
पने ज्येष्ठ पुत्र
अत्यंत दुखी हो
इस अवस्था का
सिक व्यथा का
श्रीरामकृष्ण को
गा, और स्वयं



शिव-शक्ति : खजुराहो

उनके सारे प्रयास निष्फल हुए। अंत में श्रीरामकृष्ण ने सारा वृत्तांत जानकर शक्ति के स्थान पर बालक-मुलभ आनंद को उसी प्रकट करते हुए कहा, 'जयरामवाटी के श्रीरामचन्द्र मुखर्जी के घर जाकर देखो कि कन्या मेरे लिए चिन्हित हो रही है।' इस सार्थक संकेत के अनुसरण से कन्या के निर्वाचन में और



श्री श्रीभगवान परमहंस

स्नेहमयी माता के संरक्षण में ग्राम-सौन्दर्य के बीच अपने ढंग से वर्धित होने लगीं ।

इसके पश्चात् तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था में श्रीमां दो बार कामारपुकुर गयीं; श्रीरामकृष्ण उस समय दक्षिणेश्वर में साधना में निमग्न थे । ससुराल में श्रीमां के जेठ, जेठानी और अन्य संबंधी थे । उनकी सास तब दक्षिणेश्वर में गंगा-तट पर निवास करती थीं । कामारपुकुर से पहली बार जयरामबाटी लौटकर श्रीमां पांच-छह महीने रहीं । इसके बाद फिर ससुराल जाकर डेढ़ महीने रहीं । इस बार नैहर में आकर वे चार महीने तक रहीं । इसी के पश्चात् संवत् १९२४ वि. में श्रीरामकृष्ण भैरवी ब्राह्मणी और हृदय को लेकर अपने ग्राम पधारे और श्रीमां को वहां लिवा लाये । इस बार श्रीमां वहां लगभग सात महीने रहीं ।

नवनीत

सात महीने गांव में रहने के पश्चात् दक्षिणेश्वर लौटकर श्रीरामकृष्ण कामारपुकुर की सारी बातें भूलकर साधना में निमग्न हो गये । लेकिन कठिन साधनाओं के अंत में स्वास्थ्य गिर जाने के कारण, चिकित्सकों के परामर्श से उनको संवत् १९३७ वि. तक कई वर्ष बरसात में कामारपुकुर जाकर चातुर्मास्य व्यतीत करना पड़ा । उस समय श्रीमां भी वहां उपस्थित हो जाती थीं । इस सुदीर्घ काल में श्रीमां कितनी बार ससुराल गयीं और वहां कौन-कौन सी घटनाएं घटीं, उनकी जानकारी का अब कोई उपाय नहीं है । फिर भी श्रीमां आदि की स्मृति के आधार पर दो-चार घटनाएं संरक्षित हैं, उनके अंश कांश का समय बतलाना असंभव है ।

संवत् १९२४ वि. में दीर्घ साधना के पश्चात् हृदय और भैरवी ब्राह्मणी के साथ श्रीरामकृष्ण कामारपुकुर आये; श्रीमां को भी वहां बुलवा लिया । उन्होंने पहले ही आनुष्ठानिक रीति से संन्यास ग्रहण किया था, लेकिन संन्यासगुरु श्री तोतापुरी के मुख से सुन रखा था, 'स्त्री के निष्कारण रहने पर भी जिसके त्याग, वैराग्य, विवेक, विज्ञान सदैव अक्षुण्ण बने रहें, वही ठीक-ठीक ब्रह्म में प्रतिष्ठित हुआ है । स्त्री और पुरुष दोनों को ही जो समभाव से आत्मा के रूप में देखता है और उनके अनुरूप व्यवहार करता है, उसी को वास्तविक ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई है । स्त्री-पुरुष के बीच भेद रखनेवाले दूसरे व्यक्ति

ने के पश्चात् कृष्ण कामार-
र साधना में
उन साधनाओं
ने के कारण
उनको सं-
त में कामार-
यतीत कला
वहां उपस्थित
काल में श्रीमां
में और वहां
उनकी जान-
नहीं है। फिर
के आघात पर
उनके अधि-
संभव है।

भले ही हों, किंतु ब्रह्मजान से
'लीलाप्रसंग', साधकभाव,
(अध्याय)। तत्त्वदर्शी तोतापुरीजी
भी कहा था कि श्रीरामकृष्ण के
निर्विकल्प-समाधिवान् पुरुष यदि
चित्त से अपनी सहधर्मिणी के
अपना कर्तव्य पालन करे तो धर्महानि
नहीं है। अतएव हम सहज ही समझ सकते
कि सरल, सत्यनिष्ठ, धर्मसाधना में
श्रीमां साहसी श्रीरामकृष्ण ने श्रीमां को
सादर ग्रहण किया था।

श्रीमां भी सात महीने तक उनके पावन
चित्र में अनुपम आनंद प्राप्त करके
महीने में जयरामबाटी चली आयीं।
श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य से उत्पन्न पूर्वो-

र्ध साधना के
हाणी के साथ
आये; श्रीमां
उन्होंने पहले
संन्यास ग्रहण
श्री तोतापुरी
स्त्री के निकट
त्याग, श्रम,
ग बने रहे, वही
हुआ है। स्त्री
जो समभाव से
है और उनके
उसी को वात्स-
हुई है। स्त्री
ले दूसरे व्यक्ति

आनंद की उपलब्धि से उनके रहन-
सहन, बोलचाल आदि में जो एक परिवर्तन
आया, उसे हम भलीभांति समझ सकते
हैं। किंतु साधारण लोगों ने इसे शायद ही
संज्ञा हो, क्योंकि उस आनंदोपलब्धि ने
उनको चपल न बनाकर शान्त स्वभाव,
चपल न बनाकर चिंताशील, स्वार्थ-
चपल न बनाकर निःस्वार्थ-प्रेमिका बना
दिया और उनके हृदय के सारे अभावों को
मिलते हुए जनसाधारण के कष्टों के
अंतर्गत संवेदनशील बनाकर धीरे-
धीरे उन्हें कष्टों की साक्षात् प्रतिमा के
परिणत कर दिया। ('लीला-
प्रसंग', साधकभाव, २० वां अध्याय)।

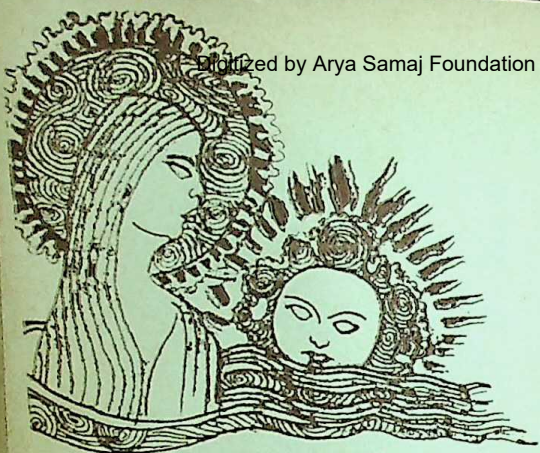
०००

जयरामबाटी लौटने पर श्रीमां ने देखा



श्री श्रीमां सारदादेवी

कि ग्राम की शोभा पहले की ही तरह है;
माता-पिता, भाई-बहन तथा आत्मीयों
का प्रेमभाव भी समान है; नित्य के क्रिया-
कलाप, वार्तालाप पहले की ही भांति चल
रहे हैं; परंतु फिर भी प्राण के अंतर्गत
कोई अस्फुट व्यथा रह-रहकर जाग उठती
थी। कामारपुकुर में वे जिस दिव्य आनंद
की अधिकारिणी हुई थीं, उसकी स्मृति
उनके अंतःकरण में निरंतर बनी रहती
थी, परंतु बाह्य-जगत् में उसकी कोई
प्रतिच्छवि न पाकर वह पग-पग पर बाधा-
प्राप्त होने लगी, और उसकी प्रतिक्रिया
उनके हृदय को मथने लगी। शरद् के
पश्चात् हेमंत एवं हेमंत के पश्चात् शिशिर
ऋतु का आगमन हुआ। श्रीमां केवल



उत्कंठित होकर प्रतीक्षा करने लगीं, यदि दैवात् आदान-प्रदान की समस्त बाधाओं को लांघकर उन नरदेव का (श्रीराम-कृष्ण का) कोई समाचार उदासीनप्राय छोटे ग्राम जयरामबाटी में आ पहुंचे। देखते ही देखते दीर्घ चार वर्ष से भी अधिक समय (१९६७-१८७१ ई.) बीत गया।

इसी बीच दक्षिणेश्वर की एकाध ऐसी बातें यकायक आ पहुंची, जिससे ग्राम-वासियों को कल्पना की सामग्री मिल गयी। और वे इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि श्रीराम-कृष्ण पागल हो गये हैं। श्रीमां के मन या कार्यों में उस समय पहले की तरह उत्साह न रहा; वे यंत्रवत् सारे कार्यों को करती थीं, किंतु अहर्निश श्रीरामकृष्ण की विरह-व्यथा से उनके मुख पर कालिमा छा गयी। इससे सहानुभूति-संपन्न ग्राम-बालिकाओं की दृष्टि तो उनकी ओर आकृष्ट हुई, लेकिन जब वे अज्ञता और संकीर्णता से मिश्रित सहानुभूति प्रदर्शित करतीं, तभी मां का दुख घटने के बजाय बढ़ जाता और उनका जयरामबाटी में रहना असहनीय हो उठता। सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए

वे श्रीमां को बता बैठतीं कि उनके पति अवज्ञा के पात्र हैं। फिर जिन्हें हमारे दुख से आनंद होता है, वे श्रीमां को आसंकेत करके कहा करतीं, 'पागल की पत्नी है'; अथवा सहानुभूति प्रदर्शित करने के बहाने श्रीमां के मन में कठिन दुख उजागर कहतीं, 'अरी, श्यामा की लड़की का विवाह एक पागल के साथ हुआ है।' इन सब अवांछित बातों को सुनने के भय से माताजी किसी के घर नहीं जाती थीं रात-दिन कार्यों में ही अपने को व्यस्त रखती थीं। सती को पति-निंदा असह्य होती है इसीलिए उन्हें एक ही स्थान में पिन-बद्ध पक्षी की भांति रहना पड़ता था। मन के विलकुल ऊब जाने पर वे गांव की भक्तिमती, सहृदया रमणी भानु बुआ के घर के बरामदे में अपना वस्त्र बिछाकर पड़ी रहती थीं।

शुद्ध-स्वभावा भानु बुआ में कुछ अंतर्दृष्टि थी, जिससे श्रीरामकृष्ण के दिव्य भाव का आभास पाकर उन्होंने श्रीमां श्यामासुंदरी से कहा था, 'भाभी, तुम्हारे दामाद शिव हैं, साक्षात् कृष्ण हैं। इन समय तो तुम विश्वास नहीं कर पाती हो। पर बाद में करोगी, यह मैं कहे देती हूँ।' विवाहोपरांत जब दूसरी बार श्रीरामकृष्ण जयरामबाटी आकर श्रीमां का गाना ले गये, उस समय रसिका भानु बुआ हल-गौरी की बात स्मरण करके गाना गाने लगीं, 'नतिनी, तू तो है मुरूपी, पर तुझे वर मिला है नंगा बावला।' हमें स्मरण

कहा होगा कि श्रीमां का शरीर उस समय
जन्म था और रंग भी गोरा था । भानु
का द्वारा पहले-पहल ही श्रीरामकृष्ण और
श्रीमां को हर-गौरी रूप में पहचान लेने
पर भी उनके अत्यंत भाव-प्रवण होने के
कारण उनकी बात सुनकर भी लोगों ने
समझना कर दी । तथापि सारे गांव में
श्रीमां के लिए भानु बुआ का घर ही शांति
का एकमात्र स्थान था ।

परंतु इस तरह आत्मगोपन को आत्म-

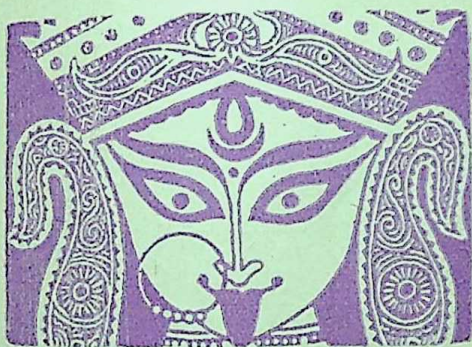
का महान
स्व बनाकर
किस दिन नहीं
कटे जा सकते ।
इता था । मन
वे गांव की
भानु बुआ के
वस्त्र विछाकर
मैं कुछ अंत-

कृष्ण के दिव्य
उन्होंने श्रीमां
'भाभी, तुम्हारे
कृष्ण है । इन
कर पाती हो
कहे देती हूँ ।
र श्रीरामकृष्ण
का गाँवा
भानु बुआ हर-
रके गाना गाते
रूप, पर तुझे
'हमें स्मरण
नवंबर

क नौदान लगती श्रीरामकृष्ण की उच्चा-
वस्था को समझते नहीं थे । इसलिए उनकी
उद्दाम कल्पनाएं अबाधित गति से चलती
ही रहती थीं, और उनकी समालोचना
का भी अंत नहीं होता था । अतः सती-
साध्वी के मन में यह बात आयी, 'सभी
ऐसा कहते हैं, मैं स्वयं एक बार जाकर
देख आऊँ कि कैसे हैं ।'

फाल्गुन की पूर्णिमा के (संवत् १९२८
वि.) शुभ अवसर पर उस तरफ की अनेक

स्त्रियां गंगा-स्नान
करने जा रही
थीं । श्रीमां की
भी इच्छा उनके
साथ जाने की
हुई । लज्जा और
भय के कारण वे
पिता से कुछ कह
नहीं सकती थीं;
पर मन का भाव



एकदम छिपा रखना असंभव हो गया ।
अंत में उन्होंने सब कुछ एक स्त्री
से खोलकर कह दिया, एवं उस स्त्री ने
पिता रामचंद्र से सारी बातें बता दीं ।
उदारहृदय पिता ने सुनकर कहा, 'जायेगी?
अच्छी बात है ।' वे स्वयं ही पुत्री के साथ
चले ।

अपनी कन्या और साथियों के साथ
रामचंद्र पैदल ही तारकेश्वर की राह से
कलकत्ते खाना हुआ । उन्हें लगभग ६०
मील की दूरी तय करनी थी । पहले तो

श्रीमां सबके साथ खुशी से चलीं। मार्ग के दोनों तरफ विस्तृत मैदान, उनके बीच में हरी-भरी चैती फसल, कहीं घने वृक्षों से आच्छादित ग्राम और कहीं पदमों से सुशोभित तालाब मन को मोह रहे थे। फिर बीच-बीच रास्ते पर पीपल और बट के विशाल वृक्ष पथ के पथिक को विश्राम के लिए आदरपूर्वक बुला रहे थे। ये सब देखते-देखते श्रीमां के प्रथम दो-तीन दिन तो अच्छी तरह कट गये। लेकिन दक्षिणेश्वर पहुंचने के लिए शरीर में स्फूर्ति और मन में अदम्य उत्साह होने पर भी मलेरिया की जगह में रहने के कारण मां का स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं था। विशेषकर, उनके जीवन में इतना लंबा सफर यही पहली बार हुआ। दूसरों को असुविधा होगी, पिता चिंतित होंगे, इत्यादि बातें सोचकर तथा अपने स्वाभाविक संकोच के कारण उन्होंने दो-तीन दिन तक अपने चलने की असमर्थता को छिपाया; परंतु अंत में प्रबल ज्वर से श्रीमां बिलकुल विवश हो गयीं और तब पिता-पुत्री को बाध्य होकर एक चट्टी में आश्रय लेना पड़ा। उस अवस्था में श्रीमां के दारुण दुख का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। ज्वर की यंत्रणा उनके जीवन में कोई नयी वस्तु नहीं थी; अतः उससे हताश होने का कोई कारण ही न था। उन्हें अपरिचित स्थान में रहने की भी उतनी चिंता नहीं थी। पर उनके लिए सबसे कष्टदायक अमिट समस्या यह थी कि वे आकांक्षित पति का दर्शन

कब कर सकेंगी।

इस मनोवेदना और शारीरिक यंत्रणा के बीच उन्हें एक दिव्य दर्शन से ज्ञान प्राप्त हुई। जिस समय श्रीमां ज्वर से बेहोश पड़ी थीं, उस समय उन्होंने देखा कि एक रमणी उनके पास आकर बैठ गयी। उसका रंग काला था; किंतु ऐसा सुंदर रूप उन्होंने कभी नहीं देखा था। वह बैठकर श्रीमां के शरीर और सिर को सहलाने लगी। उसके सुकोमल और शीतल करों के स्पर्श से शरीर का ताप तुरंत ही मिट गया। श्रीमां ने पूछा, 'अरी, तुम कहां से आयी हो?' नवागत रमणी ने उत्तर दिया 'दक्षिणेश्वर से।' श्रीमां इसे सुनकर अवाक् हो गयीं और बोली, 'दक्षिणेश्वर से?' मैंने सोचा था कि 'दक्षिणेश्वर जाऊंगी, उन्हें (श्रीरामकृष्ण को) देखूंगी, उनकी सेवा करूंगी, किंतु रास्ते में ज्वर आ जाने के कारण वह सब नसीब न हुआ।' उस रमणी ने कहा, 'ऐसा क्यों? तुम दक्षिणेश्वर अवश्य जाओगी। अच्छी होकर वहां जाओगी और उन्हें देखोगी। तुम्हारे लिए ही तो मैंने वहां उन्हें रोके रखा है।' श्रीमां ने कहा, 'सचमुच? तुम हमारी कौन हो?' रमणी ने उत्तर दिया, 'मैं तुम्हारी बहन हूँ।' श्रीमां ने कहा, 'हां, तभी तो तुम आयी हो।' ऐसे वार्तालाप के पश्चात् ही श्रीमां को नींद आ गयी।

दूसरे दिन प्रातःकाल देखा गया कि श्रीमां को ज्वर नहीं है। उस दिव्य दर्शन

नवनीत

९८

उनके मन में भी काफी उत्साह था। अतः अब उनके पिता ने कहा कि इस अनजाने प्रदेश में निरुपाय होकर रहने से धीरे-धीरे बढ़ना अच्छा है, तब वे सातद सहमत होकर पिता के साथ निकल पड़े। सौभाग्य से थोड़ी ही दूर पर एक शालकी मिल गयी। रास्ते में फिर जर हुआ, लेकिन उसका प्रकोप उतना नहीं था। इसके अलावा वे तब विवश नहीं थे; इसलिए पिता की चिंता बढ़ाना आवश्यक समझकर उन्होंने आनी-बानी किसी से नहीं बतायी। धीरे-धीरे रास्ता तय हुआ। रात्रि के नौ बजे वे दक्षिणेश्वर पहुंचे।

बयारामवाटी से आये हुए लोग जिस समय दक्षिणेश्वर में गंगाजी के घाट पर खड़े थे, उस समय श्रीमां ने श्रीराम-कृष्ण को यह कहते हुए सुना, 'अरे हूदू (हृदय), अशुभ बेला तो नहीं है? पहली रात आती है।' श्रीमां इस विषय में निश्चित थीं कि उन्होंने गंगा में नौका पर बैठकर समय बिता दिया था। इसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण की इस पहली बात ने भी इतने गहरे प्रेम का स्पर्श था कि उसके अग्रिम से वे सीधे उनके कमरे में जा चुकीं। अन्य लोग नौबतखाना अथवा क्लब चले गये। श्रीरामकृष्ण ने श्रीमां को देखते ही कहा, 'तुम आ गयीं? अच्छा अच्छा।' इसके बाद समीप के एक व्यक्ति ने चटाई बिछ जाने पर श्रीमां उस पर

बैठकर श्रीरामकृष्ण के साथ बातचीत करने लगीं।

श्रीरामकृष्ण को जब यह मालूम हुआ कि श्रीमां बीमार हैं, तो वे उनकी चिकित्सा की व्यवस्था और आराम की चिंता से व्याकुल होकर सखेद बारबार कहने लगे, 'तुम इतने दिनों के बाद आयीं! क्या अब मेरा संझला बाबू (मथुरा बाबू) है जो तुम्हारी देखभाल करेगा। मेरा दाहिना हाथ टूट गया है।'... तब से कई मास पूर्व (१६ जुलाई, १८७१) दक्षिणेश्वर के श्रीकाली मंदिर की प्रतिष्ठात्री रानी रासमणि के दामाद और श्रीरामकृष्ण के प्रथम रसददार श्री मथुरानाथ का देहांत हो चुका था। प्रथम दर्शन और बातलाप के पश्चात् श्रीमां ने नौबतखाना जाने की इच्छा प्रकट की; परंतु श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'नहीं, नहीं। वहां तुम्हारे इलाज की असुविधा होगी; इसी कमरे में रहो।' श्रीमां के लिए अलग शैया बनायी गयी।

श्रीमाताजी श्रीरामकृष्ण के कमरे में उन्हीं के पास शयन करती थीं। किंतु यह तो साधारण दाम्पत्य-जीवन था नहीं। पूर्णयौवन श्रीरामकृष्ण और नवयौवना श्रीमां इस समय जिस आत्म-परीक्षा, अथवा मानव-समाज की शिक्षा के लिए जिस लीला में प्रवृत्त हुए थे, उनके मुकाबले में अग्नि-परीक्षा भी तुच्छ प्रतीत होती है। देह-बोध-विहीन श्रीरामकृष्ण (शेषांश पृष्ठ १०२ पर)



रामविलास शर्मा
की दो कविताएं

आखे कहा था

उसने कहा था
जानती हूँ
अच्छा लगता है तुम्हें

घने बियाबान जंगलों में
आकाश छूते दरख्तों के बीच
सन्नाटे की उंगली थाम
निर्द्वंद्व विचरना

लहरों के घुंघराले केश सहलाते
नदी के अथाह जल में
धंस जाना
और हांफने की हद तक तैरते रहना

एक अंधेरी सुरंग में
बेखौफ़ उतर जाना
और तीखी कमलगंध में डूब
होशोहवास खो बैठना

रंग-बिरंगे फूलों से लदे
अफीम-खेत कंधों पर लाद
पठारों पर
दौड़ते जाना, दौड़ते जाना

जानती हूँ
अच्छा लगता है तुम्हें
उसने कहा था ।

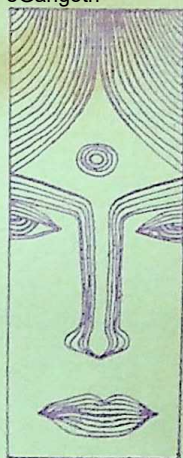
०००

शाम की किताब

उफनती चंबल का मटियाला पानी
कगार पर बीहड़
उनके बीच—
लहलहाते बाजरे के खेत
पुरानी तंबाकू के रंग-सा क्षितिज
बादलों की—
भूरी, कलई, सांवली चट्टानें
और उनके पीछे झांकता
गुड़हल के फूल-सा सूरज

बंद करो यह शाम की किताब
जाने क्यों
एक विसरा हुआ अनाम चेहरा
बार-बार याद आता है

०००



चित्र : हेडाऊ

(पृष्ठ ९९ का शेषांश)

की प्रायः सारी रात समाधि में ही व्यतीत होती थी। एक रात्रि समाधि भंग होने पर वे बगल में लेटी हुई श्रीमां की रूप-यौवन संपन्न देह की ओर दृष्टि डालकर विचार करने लगे, 'ऐ मन, इसी का नाम स्त्री-शरीर है। लोग इसे अति उपादेय भोग-वस्तु समझते हैं और इसके भोग के लिए सर्वदा लालायित रहते हैं। परंतु इसे ग्रहण करने से मनुष्य शरीर में ही बंध जाता है और उसे सच्चिदानंद-धन ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। भाव के घर में चोरी मत करो—मन में एक बात और मुंह में दूसरी बात न रखो। सच बोलो, तुम इसे चाहते हो अथवा परमात्मा को? यदि इसे ही चाहते हो, तो यह तुम्हारे सामने पड़ी है, ग्रहण करो।' इतना सोचने के पश्चात् ज्यों ही उन्होंने अंग-स्पर्श के हेतु हाथ फैलाया, अकस्मात् उनका मन कुंठित होकर उच्च समाधि-मार्ग में दौड़कर विलीन हो गया। सारी रात फिर वह साधारण भूमि पर नहीं उतरा। दूसरे दिन बहुत समय तक ईश्वर का नाम सुनाने के पश्चात् ही उन्हें व्यावहारिक जगत् में लाना संभव हुआ।

श्रीमां ने श्रीरामकृष्ण के साथ आठ मास तक एक ही खाट पर शयन किया। उस समय जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण का मन ऊर्ध्वलोक में विचरण करता था, उसी प्रकार श्रीमां का मन भी इन आराध्य देव के ध्यान में ही निमग्न रहता था।

नवनीत

अतः किसी के भी मन में भोग-वस्तु का अवकाश नहीं था। इस तरह दिन पर दिन महीने पर महीने, श्रीरामकृष्ण ने श्रीमां को अति निकट रहने देने पर भी उनके बिंदुमात्र भोगेच्छा न देख पायी। इसी लिए बाद में उन्होंने भक्तों से इन पवित्रता-स्वरूपिणी की महिमा का बखान करवा हुआ कहा था, 'यदि वह (श्रीमां) इतनी पवित्र न होती और संयम खोकर भुज पर आक्रमण करती, तो कौन कह सकता कि मेरे संयम का बांध टूटकर देहवद्धि जाती कि नहीं? विवाह के पश्चात् मेरे आर्तभाव से मां (श्रीजगदंबा) से प्रार्थना की थी, 'मां, मेरी सहधर्मिणी के मन में कामभाव एकदम दूर कर दे।' इस समय उसके साथ रहकर मैं समझ गया कि मां ने सचमुच मेरी प्रार्थना सुन ली थी।'

०००

यद्यपि श्रीमां और श्रीरामकृष्ण का संबंध दूसरे अनेक भावों और बातों से प्रकट हुआ, तथापि उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति श्रीषोडशी-पूजा में हुई।

श्रीमां के पहली बार दक्षिणेश्वर आश्रम के कुछ दिन पश्चात् उनके साथ एक ही खाट पर शयन करके श्रीरामकृष्ण उनके पवित्रता के संबंध में निःसंदिग्ध हो गये। अब संवत् १९२९ वि., सौर २४ ज्येष्ठ अमावस्या को (५ जून, १८७२ ई.) श्रीफलहारिणी कालिका-पूजा का दिवस आया। आज रात को श्रीरामकृष्ण को

श्रीजगदंबा की आरा-
 रूप में श्रीजगदंबा की आरा-
 करने की इच्छा हुई; लेकिन उनकी
 से पूजा का आयोजन मंदिर में
 चुपके से उन्हीं के कमरे में हुआ।
 समय श्रीमां अठारह वर्ष पूरा
 उन्नीसवें वर्ष में पदार्पण कर चुकी
 परंतु वे भ्रमवश प्रायः कहा करती
 मैं तब सोलहवें वर्ष में थी।' जिज्ञासु
 ने श्रीमां से पूछकर जो कुछ और
 जान ली, उनका सारांश यह है :
 पूजा के पहले श्रीरामकृष्ण ने श्रीमां के
 में महावर तथा ललाट में सिंदूर
 लगा, उनको नया वस्त्र पहनाया, मुख
 चिटाई और पान दिया। यह सुनकर
 जो गीरी ने जब सहास्य प्रश्न किया,
 'तुम तो इतनी लज्जाशीला हो फिर
 तुम कैसे पहनाया ?' श्रीमां ने सरल
 में उत्तर दिया, 'पता नहीं, उस समय
 मैं हो गयी थी।' श्रीमां पूजा के समय
 कमरे के मटके की ओर मुंह किये बैठी
 उनकी दाहिनी ओर पूजा-सामग्री
 रखी थी। पूजा के समय कमरे का
 दरवाजा बंद था। इसलिए किसी को पूजा
 करने नहीं मिली तथा बाहर के उत्सव

के कालाहल से पूजा में कोई व्याघात भी
 नहीं हुआ। अंत में हृदय आ गये थे। पूजा
 की समाप्ति के पश्चात् श्रीमां के सम्मुख
 एक समस्या उपस्थित हुई। पूजा में प्राप्त
 शंख की चूड़ियां, साड़ी आदि वस्तुओं की
 क्या गति होगी ? क्योंकि उनके गुरु की
 पत्नी तो कोई थी नहीं, जिन्हें वे साम-
 ग्रियां दी जा सकतीं। सभी वस्तुओं में
 ब्रह्मदृष्टि रखनेवाले श्रीरामकृष्ण ने इस
 समस्या को सुनकर कुछ सोचने के बाद
 कहा, 'तुम उन्हें अपनी जननी को दे सकती
 हो, लेकिन देखना, उनमें मनुष्यबुद्धि करके
 मत देना, साक्षात् जगदंबा समझकर देना।'
 श्रीमां ने वैसा ही किया।

श्रीमां ने भाव-जगत में स्थित होकर
 श्रीरामकृष्ण की पूजा तथा उनकी साध-
 नाओं के समस्त फलों को ग्रहण किया।
 इसके फलस्वरूप वे बिना साधना के ही
 समस्त सिद्धियों की अधिकारिणी हुईं।
 इसके सिवा व्यावहारिक दशा में भी उन्होंने
 सभी जीवों में ब्रह्मबुद्धि रखनी सीखी।
 इधर श्रीरामकृष्ण भी सहधर्मिणी के
 प्रति सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य का पालन करके
 जिम्मेदारी से बरी हुए।



कटोरी घड़े के सिर पर रखी रहती, फिर भी वह सदा खाली ही दीखती। अपनी
 कटोरी पर खेद व्यक्त करते हुए एक दिन कटोरी ने घड़े से शिकायत की—'आप सभी
 सिर वालों को भरपूर जल देते हैं फिर मुझ पर अनुग्रह क्यों नहीं करते ?'
 घड़े ने कहा—'दूसरे विनयपूर्वक झुकते और मांगते हैं, पर तुम तो अहंकार से मेरे
 सिर की सवार रहती हो। तुम्हें दे भी पाऊं तो कैसे ? विनयशीलता के बिना किसी को
 कुछ नहीं मिलता।' □

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

रमेशचन्द्र शाह की अंतरंग दुनिया डायरी पृष्ठों के वातायन से



‘दुःखदग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण स्वर्ग,
दोनों के एकीकरण का नाश ही
साहित्य है।’ ... प्रसाद की यह बात क्यों
इस क़दर मर्म को छूती है ? इसलिए
कि स्वयं प्रसाद के कृतित्व में हमें मान-
वीय अनुभव का वह समूचा वर्णपट
अपनी दोनों चरमताओं के साथ धड़कता
दिखाई देता है। एक विषाद और वैफल्य
की गहनतम् अनुभूति से उपजी वे त्रासद
रेखांकन : नलिनी मलानी



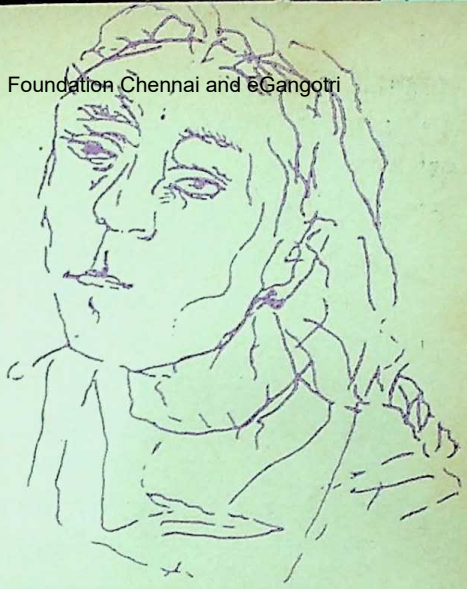
पंक्तियां, जो हमारा पीछा नहीं छोड़ती
... ‘सुख आहत शांत उमंगें / बेगार सा
ढोने में / यह हृदय समाधि बना है। रोने
करुणा कोने में’ ... और दूसरी ओर
उतनी ही मार्मिक अनिवार्यता के साथ
इसके एकदम विपरीत छोर पर आनन्द
आत्मा का यह संगीत ... ‘मैं हूँ यह वरदान
सरीखा / लगा गूजने कानों में / मैं को
कहने लगा मैं रहूँ / शाश्वत नभ के गाने
में...’। जीवनानुभूति का इतना बड़ा
बड़ा फलक, उसकी ऐसी गहराई
और ऐसी उत्तीर्णता कम ही कविता में
में मिलेगी। स्वर्ग और नरक दोनों
दोनों के भीतर से गुजरी हुई कविता
कविता के पीछे जो व्यक्तिगत जीवन की
और जो जीवन-दर्शन है, वह एक
इसलिए और भी मार्मिक बन जाता है
विशिष्ट हो जाता है कि वह हिन्दुस्तानी
हिन्दुस्तानी संस्कार की, हिन्दुस्तानी
स्तानी संवेदन की खास पहचान
पहचान बोलती है :
‘मैं की मेरी चेतनता
सबको ही स्पर्श किये सो

नियम
से

हम मित्र परिस्थितियों की
है मदक घंट पिये सो'

नहीं छोड़ने
में/ बेगार सा
बना है। रोने
दूसरी ओर
अर्थों के सा-
पर आनन्द
मैं हूँ यह वरदा
नों में/ मैं के
वत नभ के गाने
मृति का इतना
जो ऐसी गह
काम ही कवि
गर्ग और नर
गुजरी हुई
जो व्यक्ति
दर्शन है।
मार्मिक क
है कि उन्
गार की, हि
खास ब
तनता
किये सो

नियत ने एक बड़ी मार्मिक बात कही
कि अपने व्यक्तित्व से उबरना चाहना,
उबरने की छटपटाहट का एक कवि
निरा क्या अर्थ होता है यह वही जान
सकता है जिसके पास व्यक्तित्व हो।
जितना समृद्ध और जितना शक्तिशाली
व्यक्तित्व होगा, उससे उबर आने की
छटपटाहट का भी उतना ही मूल्य होगा।
प्रसाद के कृतित्व और प्रसाद के व्यक्तित्व
दोनों कुछ ऐसा ही अर्थवान् और मूल्य-
पूर्ण हैं। प्रसाद से पहले हमें कहीं नहीं
होती ऐसी गहरी खोज है जो हमारे
आलोचन को भी कहीं आलो-
चनीय बना देती है। इस चिंतन के पीछे एक
जो व्यक्ति की जीवनानुभूति का, उसके
आत्म-साक्षात्कार का बल है।
एक काव्यान्दोलन की अगुवाई
है कि उनका या महज अपने स्नायुओं
को तैयार करने के लिए किया गया
पुरुषार्थ भर वह नहीं है।
उसमें एक पुष्तापन और खुलाव
जबर्दस्त आत्मालोचन और
आस्था—जो अतीत के मानदण्डों



रेखांकन : नलिनी मलानी

से वर्तमान को ठुकराने का आसान रास्ता
नहीं अपनाती; न किसी कोरे भविष्यवाद
में मनुष्य की नियति को घुला देती है।
मनुष्य को निश्चिन्त भाव से इडा के हाथों
में सौंपने वाला कवि जिस 'मननशील और
निर्भय कर्म' के विश्वास से प्रेरित है, 'डिस-
इनहेरिटिड माइण्ड' का इच्छित चिंतन है,
न उधार खरिते का प्रगतिवाद। उसके पीछे
एक ऐतिहासिक बोध-संपन्न नये भारतीय
मनुष्य का विवेक है; और है वह वेदना-
संपन्न आलोक जो 'रघुवंश' का उपसंहार
करते हुए कालिदास के कवि को दिखाई
दिया था।

० ० ०

पन्ना

१३.३.७२

मैं पर्वतों में हिमालय, नदियों में

हिंदी डाइजेस्ट

जान्हवी... और कवियों में उशना कवि हूँ।' ... यह कैसे ? उशना तो, जहां तक मुझे याद पड़ता है, असुरों के गुरु शुक्राचार्य का नाम है जिनके पास संजीवनी विद्या थी और जिसे छल से प्राप्त करने के लिए देवगुरु बृहस्पति ने अपने लड़के तक को दांव पर लगा दिया था। कितना अर्थगर्भ है यह मिथक-सृष्टि और सभ्यता में कवि की जगह समझने के लिए ! अकारण नहीं है कि वेदों में 'उशना' को 'काव्य' का विशेषण दिया गया। एक ओर तो वेद में (स्वयं गीता में भी) 'कवि' शब्द का प्रयोग आत्मा के सूक्ष्मतम और अमूर्त-तम स्वरूप को नाम देने के लिए किया गया है। ईसाई ज्ञान-परंपरा के पिता और पुत्र की तरह वेदों में भी पिता-पुत्र की कल्पना मिलती है। जो परम अद्वैत सत्ता है, वह तो पिता, बल्कि पिता का भी पिता है। मगर व्यावहारिक जगत में इस पिता-स्वरूप आत्मा कवि के दो रूप हैं—एक तो अमृत रूप, जो मन, वाक्, प्राण, आंख, कानों की चैतन्य शक्ति में निहित है, और दूसरा मर्त्य रूप, जो देह का दिखाई देने वाला मूर्त रूप है। ये एक ही आत्मा के दो रूप हैं : धनात्मा कवि और ऋणात्मा शक्ति (अथवा वाक्)। यह जो दूसरा कवि है, यही 'पुत्र' है जो वाक् के साथ इस व्यावहारिक जगत् में द्वैत सत्ता के रूप में लीला कर रहा है। वह जैसे अपने पिता कवि (परमात्मा) का ही मूर्त रूप है। यह पिता कवि ही 'रस' है जिसकी

देहरी तक पहुंचते-पहुंचते 'वाक्' को नाम लौटना पड़ता है। तो भी काव्य-रस इस अव्यक्त रस का ही व्यक्त रूप है जिसका माध्यम यह पुत्र कवि बनाता है अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की सहायता से।

सत्ता और कवित्व का यह तर्जनी-निश्चय ही काफ़ी गूढ़ है। पर प्रतीकवादी गूढ़ता और खासकर माला में चिंतन से जिनका सावका पड़ चुका है उनके लिए यह मीमांसा और अधिक ज्ञाने वाली न होकर कुछ सुलझाने वाली कुछ आलोक प्रदान करनेवाली हो जाना चाहिये। अद्वैत पर आधारित यह काव्य-कला चिंतन ताकिक दृष्टि से एकदम नीरन्ध्र टिकाऊ लगती है। एक मात्र प्रश्न जो मन में उठता है, वह यह है कि ऐसी दृष्टि को साकार करने वाली जीवकी संरचना और व्यवस्था भी क्या मुश्किल है? एक सुदूर के तात्त्विक आधार पर देखा जाय तो यह कहना संभव है कि वह रह सकती है? याकि उसे बार-बार नये सिरे से अर्जित करना पड़ता है। क्या इसके लिए एक अतिरिक्त ऐतिहासिक बोध और युगदर्शी चेतना भी नहीं चाहिये? ऐसा क्यों होता है कि किसी सभ्यता और संस्कृति की जो सबसे विशिष्ट और चारित्रिक प्रेरणाएं होती हैं, वे सुनकर होते ही जड़ता की शिकार होने लगती हैं? स्वयं हमारी सभ्यता का सूत्रक क्या ऐसा ही नहीं है जहां कलाओं की एकता और अंतर्निर्भरता का चिन्ता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं असंगत होकर गया और
 उनकी बाहुण में जो कलाएं उच्चतम
 की अधिकारिणी मानी गयी
 परस्पर गृह्यसूत्र तक आते-आते वे
 कर अपनी साख गंवा बैठों कि
 के लिए नाचना-गाना एकदम
 और निन्दनीय समझा जाने लगा ।

०००

भोपाल

२२.१.८०

‘वह क्या है जिसे दुख या सुख की
 होती है? क्या वह यह मेरे
 पांव है? क्या वह मेरे शरीर का
 या रुधिर है? गौर करके देखें तो
 पड़ेगा कि यह अनुभव करने
 कोई पदार्थ नहीं हो सकता । वह
 कि बर्भतिक सत्ता ही हो सकती है ।’
 शास्त्र का यह तर्क क्या ‘केनोपनिषद्’
 आरंभ की ही याद नहीं दिलाता ?
 दूसरा तर्क भी बड़ा मजेदार है ।
 है-‘देखो कुछ तत्त्वज्ञ होते हैं जो
 मनोवैज्ञानियों को पूरी तरह वश में
 हैं । बताओ न, कौन ऐसा जड़
 है जो यह पराक्रम दिखला सके ?’

०००

अलमोड़ा

५.६.७९

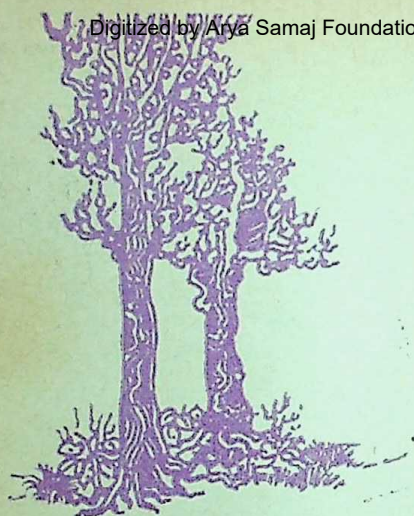
अब सुबह से रवींद्रनाथ की वह
 पहले पढ़ी कहानी ‘पोस्टमास्टर’
 में घूम रही है ? ‘पर रतन
 में किसी तत्त्व का उदय नहीं



रमेशचन्द्र शाह

हुआ । ... हाय रे बुद्धिहीन मानव-हृदय
 तेरी भ्रांति किसी तरह मिटती ही नहीं ।
 एक दिन आशा जब तमाम नाड़ियों
 को काटकर हृदय का खून चूसकर गायब
 हो जाती है, तब होश आता है । किंतु
 आश्चर्य है तू तुरंत ही दूसरे भ्रांति-जाल
 में पड़ने के लिए व्याकुल हो उठता है ।’

रवींद्रनाथ का कवि-हृदय इस रतन
 की ‘भ्रांति’ के साथ है, उस तत्त्व के साथ
 नहीं । ‘संत तो सीधा मोक्ष पा जाता है,
 पर कवि को तो बार-बार इसी लीला में
 लौटकर आना है’—यह रवींद्रनाथ के मित्र
 कवि यीट्स की स्वभावोक्ति है । रवींद्र-
 नाथ भले ही यीट्स नहीं हैं, पर यहां वे
 यीट्स से जरूर सहमत होते । विचित्र-सा
 लगता है कि तत्त्व के साथ यीट्स का रिश्ता



चित्र : चंदुलाल सांकला

अत्यंत अधीर-उत्कण्ठापूर्ण और आवेगमय है। जबकि बुद्धि-तत्त्व का रवींद्रनाथ अक्सर मखौल उड़ाते दीखते हैं। दुःख की अत्यंत तीव्र और गहरी पहचान के बावजूद रवींद्रनाथ के साहित्य में एक गहरा स्वीकार-भाव है—एक रहस्यमय आस्था, जो यीद्स से अलग पड़ जाती है जो उन्हें अकेलेपन से उबार लेती है, और आधुनिक मानस की संशयग्रस्तता से भी बचा लेती है। यह देखकर सचमुच अचरज होता है कि शरतचंद्र कहीं ज्यादा प्रश्नाकुल और आधुनिक हैं रवींद्रनाथ की तुलना में। पर हमारे देश के प्रजा जीवन में सैकड़ों सालों से जिस तत्त्व की नहीं, बल्कि तत्त्व-रुढ़ियों की जकड़बंदी चली आ रही है, रवींद्रनाथ उसके प्रति अत्यन्त संवेदनशील थे और उनके बुद्धि-द्रोह को इसी संदर्भ में समझना होगा। भ्रांति

नवनीत

कहकर जीवन का तिरस्कार करने वाली परंपरा के स्वयं-नियुक्त ठेकेदार ही उनके व्यंग्य-विद्रूप के विषय हैं। निबानिस तत्त्व की दार्शनिक परंपरा के समानांतर उन्होंने उस परंपरा की खोज की जो इस भ्रांति में पड़कर, इस भ्रांति के भीतर से तत्त्व को कमाती है। वह कवियों, कर्मयोगियों और विरले संतों की परंपरा होगी, और रवींद्रनाथ की सहानुभूति भी उसी परंपरा के साथ थी।

० ० ०

गांधीजी की आश्रम भजनावली में एक श्लोक है जो बिना किसी बौद्धिक ग्लानि के वह आदमी भी पढ़ सकता है जो किसी तरह के धर्म-विश्वास में आस्था नहीं रखता। मगर जब ऐसे श्लोक को भजनावली में रखने की बात चली तो गांधीजी ने काका कालेलकर से एक ऐसी बात कही, एक ऐसी शंका उठाई जो कि वे ही उठा सकते थे। उन्होंने कहा, 'अद्वैत सिद्धांत तो मैं मानता हूं, लेकिन 'तद्वत्' निष्कलमहम् न च भूतसंघः' कहते हैं संकोच होता है, क्योंकि उतनी साधना अभी पूरी नहीं हुई है।'

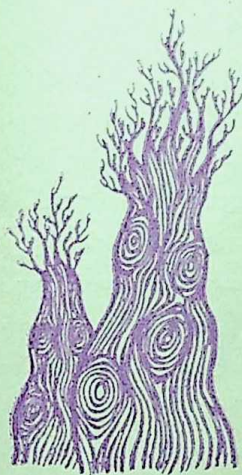
इस प्रकार की नैतिक आदमी को हो सकती थी, जिसने अपनी धार्मिकता को यथार्थदर्शी साधना के साथ देशकाल की अनवरत रगड़ में अर्जित किया हो। यह ऐसी चेतना की

र करने वाले
द्वार ही उन्हें
न्यायस तत्त्व
नानातर उन्होंने
इस प्रति में
र से तत्त्व को
मंयोगियों और
और रबीर-
सी परंपरा के

हिन्दू धर्म की गति और अशक्ति
द्विजयी ईसाइयत की भी
गाम्भीर्य और अंतर्विरोधों को अच्छी
लिया था। ईसा के अनुयायियों
को भी किया हो, कम से कम अपने
को तो गतिशील रक्खा ही है,
उन्होंने पहचाना था। स्वभावतः
मे मन में सवाल उठा कि क्या हमारा
सामूहिक चारित्र्य
विरासत के योग्य है ?
नहीं है, तो हम यह
किस दूते कर सकेंगे ?
को सिर्फ दर्शन-सिद्ध
ही नहीं, लोक-सिद्ध भी होना
है। आचरणगत हिन्दुत्व
दार्शनिक हिन्दुत्व के बीच
अपार-सी खाई है, उसे
जोने ने बहुत अच्छी तरह
लिया था। संघबद्ध और
उत्पीड़न से अकेले
उठाई जो सिद्ध
ने कहा, 'अद्वैत'
किन्तु 'तद् ब्रह्म'
कहते हैं
उतनी साधन

क अटक उनके
जिसने अपने
गी चेतना के
रत राइ में से
ऐसी चेतना की
नवंबर १९२१

दूसरे दशों के ध्येय से कुछ अलग है; क्योंकि
भारत ने आत्मशुद्धि के लिए स्वेच्छापूर्वक
जो प्रयत्न किया है, उसका दुनिया में
दूसरा उदाहरण खोजना मुश्किल है।
शायद इसी प्रतीति के चलते उन्होंने
यह इच्छा प्रकट की (जिसने पंडित
नेहरू को अनुप्राणित किया) कि 'भारत
अपनी अहिंसा के जरिए सारे विश्व के
लिए शांति के दूत का काम
करे।'



चित्र : ज. हेडाऊ

गांधीजी से पहले विवे-
कानंद हमारे प्रेरणा-स्रोत
बने थे। पर उनका स्वप्न
महज 'शांति-दूत' बन के रहने
का नहीं था। वे अमरीकियों
से कहते थे 'तुम्हें अध्यात्म
चाहिये और मुझे तुम्हारे
डालर-मेरे देश का दिलहर
दूर करने के लिए।' इतना
ऊंचा अध्यात्म गांधी के पास
नहीं था। यरवदा जेल
में लिखी महादेव भाई की
डायरी में गांधीजी के इस मानसिक
क्षोभ की झांकी मिलती है। उनकी दृष्टि
में यह भीख मांगना है। उस 'आत्मशुद्धि'
के प्रयत्न की ही घोर विडम्बना इसमें
निहित है, जिसे वे भारत का सबसे बड़ा
आध्यात्मिक-नैतिक गुण मानते रहे। उन्हें
न तो जगद्गुरु बनना था, न गदर पार्टी
चलानी थी। अंग्रेजी शासन का जुआ
उखाड़ फेंकने भर से उनका काम चलने

वाला नहीं था। 'हिन्द स्वराज' से की थी, वह समूची पश्चिमी सभ्यता की तरफ फेंका गया एक कठोर नकार था। आर्थिक पराधीनता का इलाज स्वात्मबल होगा, डालर नहीं। बौद्धिक पराधीनता का इलाज हिन्दी है, अंग्रेजी नहीं। जिस देश में ये दो-दो पराधीनताएं गहरे जड़ जमाये बैठी हैं, वह देश अपनी आध्यात्मिक बलवत्तरता का भी कैसे बखान कर सकता है बिना नैतिक ग्लानि के? गांधीजी तो अध्यात्म के संदर्भ-ग्रंथों में भी भारतीय जन की मुक्ति का गणित ढूंढ़ते थे। ईशोपनिषद् के पहले श्लोक में ही उनको वह समाजवाद और साम्यवाद मिल जाता है, जिसकी हिंदुस्तान को—उनके हिसाब से—जरूरत है। मगर पश्चिमी सभ्यता या विचार-धारा का उनका तिरस्कार किसी आत्म-तुष्ट या अतीतजीवी मानसिकता से नहीं, उस खुले दिमाग से उपजता है जिसने यूरोप को किताब में नहीं, जीवन में पढ़ा और सुना है। कितनी सच्ची सराहना के साथ कहा है उन्होंने कि—'मैं पश्चिम की समाजव्यवस्था का सहानुभूतिशील विद्यार्थी रहा हूं और इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि पश्चिम की इस बेचैनी और संघर्ष के पीछे सत्य की व्याकुल खोज की भावना ही रही है।'

सत्य की व्याकुल खोज की भावना ! निश्चय ही सत्य के साथ आजीवन प्रयोग करते रहने वाले गांधी के लिए यह एक

नवनीत

मानस में, पश्चिमी इतिहास में भी इस मानव-मूल्य की जैसी तेजस्विता उन्होंने देखी, अपने देश के निकट इतिहास में वह उन्हें अनुपस्थित लगी। इसीलिए उन्होंने अपने व्यक्तित्व के निर्माण में अपने सार्वजनिक कर्म में इसे सबसे ऊपर स्थापित किया। इस आत्मलोचन से प्रेरित सराहना का जो सीधा तर्क उनके लिए बना, वह यह नहीं था कि हिंदुस्तान पश्चिम का नकलची और गरीब बिरादर बन जाये। उन्होंने साफ-साफ लिखा कि 'वैज्ञानिक जांच की उसी भावना से हम पूर्व की अपनी संस्थाओं का अध्ययन करें और मेरा विश्वास है कि दुनिया ने अभी तक जिसका सपना देखा है, उसे कहीं ज्यादा सच्चे समाजवाद और साम्यवाद का हम विकास कर सकेंगे। यह मान लेना गलत है कि लोगों की गरीबी के सवाल पर पश्चिमी समाजवाद या साम्यवाद ही अंतिम शब्द है।'

हां, पश्चिम की प्राणवान् सभ्यता से गांधीजी अपने देश के लिए जो चीज ग्रहण करना चाहते थे, वह यही थी—'वैज्ञानिक जांच की भावना।' 'सत्य की व्याकुल खोज की भावना।' इस बात को आज नये सिरे से रेखांकित करना होगा। उनके लिए नहीं जो खुद को उनका अनुयायी मानते हैं, बल्कि उनके लिए, जो सहज बुद्धि से संपन्न ऐतिहासिक बोध रखते हैं और महाकवि यीट्स की इस

जिन का मर्म जानने के साथ ही दायित्व का आरंभ होता है (इन ड्रीम्स विगिन रैस्पोन्सिवि-टीज)।

प्रार्थना रुढ़ि-पालन नहीं है। प्रार्थना नरक नारायण को ही नहीं, उस नर को भी संबोधित होती है जिसकी 'अनक्षिप आंखों में नारायण की ध्यथा भरी हुई है' (अज्ञेय)। यह अकारण नहीं था कि प्रार्थना के संदर्भ में वह नैतिक अटक और कमी ने नहीं, खुद गांधीजी ने ही महसूस की। क्या था उनके मन में? वही न कि अद्वैत सिद्धांत को मैं मानता हूं मगर 'जो ब्रह्म ब्रह्म है, वही मैं हूं, यह पंचभूतों से तो देह बिलकुल मैं नहीं हूँ'—यह मैं कैसे कह सकता हूँ? जबकि रोज़ मेरी आंखों में हिंदुस्तान के करोड़ों नरककाल भटकते हैं। शुद्ध ब्रह्म की आत्मानुभूति इस दृश्य के सम्मुख कैसे टिके? 'भूखों मरता आदमी रोटी का एक टुकड़ा पाने के लिए अपनी स्वतंत्रता और अपना सब कुछ बेच देनेवाला। भारत में लाखों मनुष्यों की आज तो ही स्थिति है। उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता, ईश्वर और ऐसे दूसरे शब्द निरर्थक हैं। वे उनके कानों को कड़वे लगते हैं।' ... (Selections from Gandhi; Nirmal Kumar Bose, P. 59)

० ० ०



संसार के मंदिर यह तो बताते हैं कि अमीरों के लिए स्वर्ग जाना कितना कठिन है, किंतु यह नहीं बताते कि गरीबों के लिए संसार में जीना कितना कठिन है।—आशारानी



इजा और कक्कू मंदिर के भीतर चले गये। मैं सीढ़ियों के नीचे उनकी चप्पलों की चौकीदारी करता बैठा था। मंदिर का विशाल प्रांगण खचाखच भरा था। उस विशाल जन-समुद्र में उठती हिलोरों ने मुझे छा लिया : पांवों का जंगल था वह—पांवों का समुद्र—कोमल फूल सरीखे पांव, जर्जर विवाइयों से भरे पांव, नंगे काले खुरदरे पांव, गोरे, गहनों से अलंकृत पांव.... कमजोर और लड़खड़ाते पांव, फुरतीले थिरकते पांव.... पांवों का मेला था वह, मुझ पर से गुज़रता हुआ। और मैं? मैं ... कहां था? जंगल, उस समुद्र में?...

क्या था वह? वहां बैठे-बैठे मुझे क्या हो गया था यकायक? वह जैसे एक बहूत पुरानी और जानी-पहचानी अनुभूति थी और फिर भी एक विचित्र अनिर्वचनीय ढंग से नयी। आंखें जैसे तैरने लगीं... जाने कितनी देर मैं न कुछ देख रहा था, न सुन रहा था। कुछ भी नहीं सोच रहा था... भीतर और बाहर सब कुछ निःस्तब्ध हो गया था। एकदम शून्य।

—३/२ प्रोफेसर्स कालोनी, विद्याविहार, भोपाल, म. प्र.

भारतीय विद्याओं के साक्षात्कार के साधक और गहन अनुभवी
विद्वान पं. देवदत्त शास्त्री का एक अतिक्रान्तिदर्शी लेख

कस्में देवार्थ ? : पूर्णकाम गुण

यूरोप-यात्रा के प्रसंग में मैं इंग्लैंड गया हुआ था। जुलाई १९७९ के प्रथम सप्ताह में महाकवि शेक्सपीयर की जन्म-भूमि स्ट्रैप्फर्ड जाना हुआ। मेरे साथ बंबई के उद्योगपति श्री मधुसूदन अमरसी और लेडी गीलिहम् थीं। मधुभाई का कारोबार यूरोप के कई देशों में फैला हुआ है। युरोपीय कार्य व्यापार के लिए उन्होंने लन्दन में अपना हेड आफिस कायम कर रखा है। लेडी गीलिहम् लार्ड फेमिली की शिष्ट, संभ्रांत और सुसंस्कृत महिला हैं। विश्व की प्राचीन संस्कृतियों और दर्शनशास्त्र पर उनकी विशेष अभिरुचि है।

स्ट्रैप्फर्ड से लौटते हुए लेडी गीलिहम् ने कहा कि 'यदि आक्सफोर्ड होकर लंदन चला जाये तो आपको कोई आपत्ति तो नहीं होगी ?'

नहीं, मैं प्रसन्नतापूर्वक चल सकता हूं, तीन बार आक्सफोर्ड हो आया हूं, किंतु उस विद्यानगरी के प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता ही जाता है। मेरा यह उत्तर

सुनकर लेडी गीलिहम् बहुत प्रसन्न हुई और उन्होंने बताया कि वह आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी की एकेडेमिक कौंसिल की सदस्या हैं, इन दिनों विश्वविद्यालय में शिक्षा-समारोह चल रहा है।

लेडी गीलिहम् दीक्षा-समारोह में भाग लेने चली गयीं। मधुभाई के साथ मुझे दो घंटे आक्सफोर्ड नगरी घूमकर बिताने थे। आक्सफोर्ड महीयसी विद्यानगरी है। वहां की हर गली, वीथी, पथ और राज-पथ में विद्या-गौरव और गंभीर शांति-विराजती है। अमंद-मंद प्रवाह से प्रवाहित नदी, स्थान-स्थान पर उद्यान, उपवन, शांत, गंभीर मुद्रा से आते-जाते छात्र ऋषिकुमार से प्रतीत हो रहे थे। वहां का वातावरण देखकर यह कल्पना करना अनुचित नहीं होगा कि प्रकृति ने इस भूमि को विद्यानगरी के रूप में ब्रिटेन को प्रदान किया है। विश्वविद्यालय परिसर और अनेक महाविद्यालय, छात्रावास ज्ञान-गरिमा के केंद्र बने हुए हैं। वैदुष्य, विनम्रता और चरित्र

(भारत) दीख रहा था, आपको माध्यम बनाकर मैंने भारत का परिचय दिया था और भगवान ने प्रतिष्ठा रख ली, जब आपने वहां के विद्वानों के विविध विषयों के प्रश्नों के उत्तर देकर उन्हें पूर्ण संतुष्ट कर दिया।

आक्सफोर्ड की उस मिलन-गोष्ठी में एकत्र प्रायः सभी लोगों ने मुझसे भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रश्न किये थे और मैंने जो उत्तर देकर उनको संतुष्ट किया था, उसमें न तो मेरी अगाध विद्वत्ता थी और न कोई दैवी चमत्कार की सहायता ही। संयोग की बात थी कि जिन विषयों पर मुझसे पूछा गया था, उन विषयों पर मेरा अध्ययन, अनुभव पहले से ही था, इस-



लिए प्रश्नों के यथार्थ उत्तर देने में मुझे कहीं अटकाव-भटकाव नहीं हुआ। उस विद्वत् गोष्ठी में चार महिलाएं भी थीं, जो पुरुषों से अधिक मुखर और जिज्ञासु जान पड़ीं। एक आयरिश महिला प्राचीन-इतिहास-संस्कृति, पुरातत्त्व विषयों की शोध-निदेशक थीं। उन्होंने मुझसे भारत के प्राचीन मंदिरों में उत्कीर्ण मिथुन मूर्तियों का रहस्य पूछा तो मैंने विस्तारपूर्वक

उन्हें बताया कि :

यौन-भावों, मिथुन-भावों की कलात्मक अभिव्यक्तियों का इतिहास भी हमारे देश में बहुत पुराना है। इतिहास के धरातल पर समस्त विकासोन्मुख धार्मिक परंपराओं में मान्मथ-भाव निहित देखे जाते हैं। कला, संस्कृति और साहित्य सभी क्षेत्रों में मान्मथ-भावों का प्राचुर्य और प्राधान्य है। कला के क्षेत्र में मान्मथ-भावों के निदर्शन हमें ईसा पूर्व ५० वर्ष की मथुरा की यक्षिणियों की मूर्तियों में मिलता है। कौशांबी में प्राप्त कुषाणकालीन शिल्प-कला के खंडों में भी मान्मथ-भाव उत्कीर्ण हैं। यही नहीं, सिंधु घाटी में प्राप्त प्रागैतिहासिक कालीन मूर्तियों में भी मान्मथ-भावों के प्रदर्शन हैं।

मूर्तिकला में मान्मथ-भावों का अंकन खजुराहो, कोणार्क, भुवनेश्वर और पुरी के मंदिरों में पाया जाता है। इन मूर्तियों में कामसूत्रीय भावनाएं बड़ी संजीदगी से आंकी गयी हैं। वैदिक यज्ञों की यज्ञ-वेदियों में भी मान्मथ-भावों का अंकन वैदिक युग से चला आ रहा है। सांस्कृतिक क्षेत्र में लिंग पूजा इसका बहुत बड़ा और प्राचीन निदर्शन है। शिव-पार्वती, उमा-महेश्वर, लक्ष्मीनारायण, सीताराम, राधाकृष्ण की उपासना के मूल में भी मान्मथ-भाव सन्निविष्ट है।

साहित्य के क्षेत्र में वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, कल्पसूत्रों, पुराणों और महाकाव्यों में मान्मथ-भावों का

उद्रेक और शृंगारिक भावों के चित्रण अपना अस्तित्व रखते हैं। नौ स्रोतों में शृंगाररस सर्वोपरि माना जाता है। दार्शनिक साहित्य में रस को साक्षात् कहा गया है। उपनिषदों में वामदेव्यगान की तुलना मैथुन-संभोग से की गयी है। वेदों, उपनिषदों और दर्शन-वेदांत में प्रकृति और पुरुष की व्याख्या में मान्मथ-भाव ही प्रधान है। प्रकृति और पुरुष के रहस्यमय मिलन में मान्मथ-मिलन ही की भावना है। यह मिलन-भावना उपनिषद् की भाषा में द्वैत में अद्वैत का आभास देती है। और यह भी घोषित किया गया है कि पुरुष और प्रकृति का मिलन सृष्टि-रचना के लिए आवश्यक एवं अवश्य-यभावी है। वस्तुतः यही मिलन-भावना अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचकर कला और साहित्य के माध्यम से मुखरित और व्यक्त हुई है। खजुराहो और कोणार्क की मिथुन-मूर्तियों की कटु आलोचनाएं ज्यादातर हुआ करती हैं। डॉ. वामुदेव शरण अग्रवाल जैसे भारतीय मनीषी प्रगल्भ पुरातत्त्वविद् की दृष्टि से भी इस प्रकार का प्रदर्शन सामाजिक उर्वर शक्ति के पतन का प्रतीक है।

डॉ. कुमारस्वामी, डॉ. गांगुली मान्मथ-भावों के अंकन को प्राचीनतम अवस्था की उर्वर शक्ति के दृश्य-प्रतीक मानते हैं। डॉ. बेंजामिन जैसे पाश्चात्य विद्वान मिथुन-मूर्तियों के अंकन को आत्मा और परमात्मा के मिलन का प्रतीक मानते हैं।

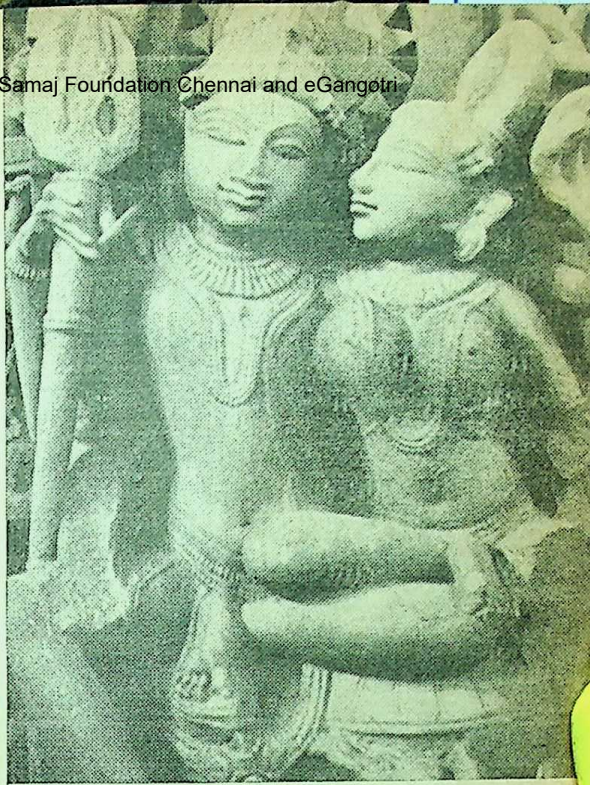
नवनीत

ॐ के चित्र
 नौ स्त्री ने
 ताता है। दावे-
 साक्षात् ब्रह्म
 में वामदेव्यगान
 की गयी है।
 शन-वेदांत में
 या में मानव-
 ति और पुण्य
 न्मय-मिलन हो
 न-भावना उप-
 द्वैत का आभास
 प्त किया गया
 मिलन सुष्टि-
 एवं अवस्था
 मिलन-भावना
 हुंकर का
 से मुखरित और
 और कोणा
 टु आलोचना
 । डॉ. वामदेव
 भारतीय मनी
 ट्टि से भी
 जक उर्वर शक्ति
 गांगुली मानव-
 वीनतम अवस्था
 प्र-प्रतीक मानने
 माशचात्य विद्वानों
 को आत्मा और
 प्रतीक मानते हैं।
 नवंबर १९८१

मुखर्जी का मत

देवालयों में मानव-अंकन
 कुत्तियां या दुर्भावना के
 नहीं हैं, बल्कि आध्या-
 त्मिक भावनाओं के प्रतीक हैं।
 कुछ लोग मंदिरों की मिथुन-
 तियों को तंत्रयान, मंत्रयान,
 कनान और शाक्तमत से
 नित मानते हैं। कुछ आलो-
 क संभोग से समाधि तक या
 के द्वार तक पहुंचाने का
 मानकर देवालयों की
 नूतन-मूर्तियों को आध्यात्मिक
 रणा की प्रेरणा स्वीकार करते
 हैं। कुछ लोग कला को जीवन
 व्याख्या मानकर 'काम' को
 जीवन का सबसे महान सत्य
 स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि
 भारतीय कलाकार ने मिथुन-
 तियों द्वारा जीवन के सत्य को
 व्यक्त किया है।

किंतु यदि मानव-प्रवृत्तियों का सूक्ष्म
 व्यक्त किया जाये तो सर्वत्र और सभी में
 ही बात समान रूप से प्राप्त होती
 है, यह कि मनुष्य के जीवन में संपूर्ण
 के बाद ही मोक्ष की कामना उत्पन्न
 होती है। संपूर्ण तुष्टि और उसके बाद
 मोक्ष-ही दो हमारे जीवन के लक्ष्य तक
 लेने के सोपान हैं। कोणार्क, पुरी,
 कुरुक्षेत्र आदि स्थानों के देवालयों में
 मिथुन-मूर्तियों का अंकन मानव-जीवन



पूर्णकाम मिथुन : खजुराहो

(छायाकार : सूरज एन. शर्मा)

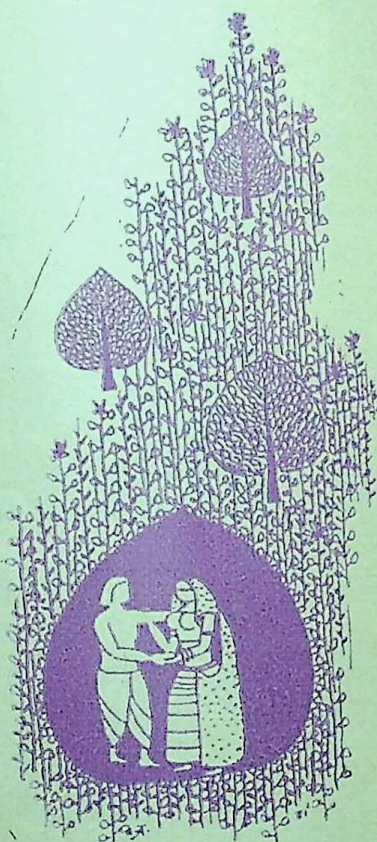
के लक्ष्य का प्रथम सोपान है। इसीलिए
 इन्हें मंदिर के बहिर्भाग में अंकित किया
 जाता है। और दिव्य मोक्ष द्वितीय सोपान
 है, जिसकी प्रतिष्ठा देव प्रतिमा के रूप में
 मंदिर के अंतःभाग में की जाती है।
 मंदिर के प्रवेशद्वार और गर्भगृह (जहां देव
 प्रतिमा रहती है) के बीच जगमोहन
 बना रहता है। यह मोक्ष की छाया का
 प्रतीक है। मंदिर के बाहरी द्वार या दीवारों
 पर उत्कीर्ण ऐंद्रिय-रस-संयुक्त मिथुन-

मूर्तियां देवदर्शनार्थी को, आनन्द की अनुभूतियों को आत्मसात् कर जीवन के लक्ष्य की प्रथम सीढ़ी-कामतृप्ति को पार करने का संकेत करती हैं, स्मरण कराती हैं। जो व्यक्ति जीवन लक्ष्य के इस प्रथम सोपान को पार नहीं कर चुका है, वह देवदर्शन मोक्ष के द्वितीय सोपान पर पर रखने का अधिकारी नहीं है।

मंदिरों के बहिर्भाग में उत्कीर्ण अश्लील भावों की मूर्तियां भौतिक सुख में भौतिक कुंठाओं और अश्लील वातावरण में भी आशायुक्त, आनन्दमय लक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। भारतीय कला का यह उद्देश्य समस्त विश्व के कला आदर्शों, उद्देश्यों एवं कला की व्याख्या और मानदंड से भिन्न और मौलिक है।

‘मिथुन-चित्र जैसे अशिव तत्त्वों के स्थान पर कोई अन्य प्रतीक भी तो प्रस्तुत किये जा सकते थे?’—आयरिश विदुषी मिसेज केनेडी ने बीच में ही प्रतिप्रश्न कर दिया। मैंने कहा कि यह समझना नितान्त भ्रम है कि मिथुन-मूर्तियां या

नवनीत



मान्मथ-भाव अशिव तत्त्व बोधक हैं। वस्तुतः ये शिवम् और सत्यम् की साधना के सर्वोत्तम माध्यम हैं। भारतीय संस्कृति और भारतीय वाङ्मय इसे परम तत्त्व मानकर इसकी साधना के लिए युगों में हमें प्रेरित करता आ रहा है। यह परम तत्त्व सृष्टि की स्थिति (उत्पत्ति) का अत्यन्त कारण है—

मैथुनं परमं तत्त्वं सृष्टि-स्थित्यन्तकारणम्।
इससे दुर्लभ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है—
मैथुनात् जायते सिद्धि-ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्।

देवमंदिरों के कम-नीय कला-प्रस्तारों में हम एक ओर जीवन की सच्ची व्याख्या और उच्च कोटि की कला का निर्दोष पाते हैं, तो दूसरी ओर पुरुष और प्रकृति के मिलन की आध्यात्मिक व्यंजना भी मिलती है।

इन कलाकृतियों में हमारे जीवन की व्याख्या शिवम् है और कला की कमनीय अभिव्यक्ति सुंदरम् है तथा रहस्यमय मान्मथ-भाव सत्यम् है। मेरे उपर्युक्त कथन का निष्कर्ष प्रकट

बोधक हैं।
 की साधना
 रतीय संस्कृति
 से परम तत्त्व
 लिए युगों में
 करता आ
 यह परम
 की स्थिति
 का अत्यन्त
 तत्त्व-सूचि-
 कारणम्।
 ब्रह्मज्ञान
 प्ति होती है-
 जायते सिद्धि-
 सुदुर्लभम्।
 मंदिरों के कम-
 कला-प्रस्तारों में
 ओर जीवन
 चवी व्याख्या
 उच्च कोटि की
 का निर्देश
 तो दूसरी ओर
 और प्रकृति के
 की आध्यात्मिक
 भी मिलती है।
 तारे जीवन की
 का की कमनीय
 तथा रहस्यमय

निम्नलिखित विद्वानों ने

Foundation Chennai and eGangotri



से कहा कि मैं प्रश्न नहीं पूछ रहा हूँ,
 अपनी जिज्ञासा प्रकट कर रहा हूँ। वह
 यह कि विद्वानों का एक पक्ष वेदों को
 अपौरुषेय मानता है, दूसरा पक्ष पौरुषेय
 मानकर कहता है, कि वेद भिन्न-भिन्न
 समय में अनेक ऋषियों द्वारा रचे गये हैं।
 काल क्रम से उनमें भाषा का भी विभेद है।

मैंने कहा कि आपकी भांति कभी
 मैं भी जिज्ञासु नहीं शंकालु था, कि वेद
 मनुष्य-रचना है, अपौरुषेय और ईश्वरीय
 वाणी नहीं है, बल्कि यह कहना चाहिये
 कि मेरी यह धारणा बन गयी थी और मैं
 बहुत दिनों तक यह धारणा बनाये हुए
 था, किंतु अचानक एक ऐसा प्रसंग उपस्थित
 हुआ कि मेरी धारणा चूर-चूर हो गयी

लगा, बल्कि उनका स्वाध्याय ईश्वरीय वाणी के रूप में करके अपने को कृत-कृत्य बनाया।

‘क्या आप उस घटना को प्रकट करेंगे, जिसने आपकी धारणा बदल दी है?’ उन्होंने पूछा।

अवश्य, मैं एक दिव्य महापुरुष (जिन्हें दिव्य न समझकर एक सिद्ध महात्मा ही समझता था) के साथ हिमालय में तीन वर्ष तक घूमता रहा। उस भ्रमण में मैं एक ऐसे स्थान पर गया जो चारों ओर हिमाच्छादित पर्वतों से घिरा हुआ थाली के समान चौरस मैदान था। सतत हिमाच्छादित हिमालय के मध्य में स्थित उस भूखंड का नाम ‘वेदिनी’ था, हरी-भरी घास, छोटे-छोटे हरित वृक्ष, वीरुध वृष्टियों से घिरा हुआ एक सरोवर था, जिसका जल स्फटिक की भांति स्वच्छ और पारदर्शक था। प्रकृति का लास्य वहां अहर्निश चलता था। सरोवर के चारों ओर घूमते समय आकाश में मंद-मंद गूंजती हुई वैदिक ऋचाएं मुझे सुनाई पड़ीं। अधिक उत्कंठित और समाहित चित्त होकर सुनने लगा तो गूंजती हुई ऋचाध्वनियों में से कुछ ऐसी ऋचाएं गूंजती हुईं मैंने सुनीं जो ऋग्वेद की थीं, और मुझे कंठस्थ थीं। बाद में उन महा-पुरुष ने बताया कि ऋषियों ने सर्वप्रथम यहीं पर आकाश में गूंजती हुई ऋचाओं का श्रवणकर वेदों का साक्षात्कार किया था।

नवनीत

इसीलिए इस स्थान को ‘वेदिनी’ कहा जाता है। मेरे यह पूछने पर कि श्रवण द्वारा प्राप्त ऋचाएं श्रुति इसीलिए कही जाती हैं? महापुरुष ने कहा—हां, किन्तु ऋषियों ने ऋचाओं को सुनने के लिए श्रवण-दिव्यता प्राप्त की थी। ध्यानावस्थित, श्रवण दिव्यता प्राप्त ऋषियों ने मंत्रजिह्व परमात्मा से उच्चरित ब्रह्मांड में गूंजती हुई ऋचाओं को श्रवणकर वेद के रूप में ऋचाओं की संहिताएं प्रकट की हैं।

यह सुनकर मेरा शंकालु हृदय उलझे पृष्ठ बैठा कि मैंने तो कोई श्रवण दिव्यता प्राप्त नहीं की है, फिर मुझे कैसे सुनाई पड़ रही थीं? महापुरुष ने कहा कि कभी-कभी कुछ समय के लिए पुरातन संस्कार जाग्रत होने पर अनायास प्राप्ति पर तर्क और संदेह करना उचित नहीं है।

प्राध्यापक ने पूछा कि प्राचीन ऋषि श्रवण दिव्यता कैसे प्राप्त करते थे, उन महापुरुष ने बताया था आपको? नहीं, वे निहायत मितभाषी थे, मैंने उनसे पूछा भी नहीं था, किन्तु जब मैं वेदों और आगमों का अनुशीलन कर रहा था, उस समय मुझे जो ज्ञात हुआ, उसका सार-संक्षेप यह है कि ‘श्रोत्रों में दिव्यता का आविर्भाव बहिर्वृत्तिजन्य एवं अंतर्वृत्तिजन्य—इन दो साधनों से होता है। निरंतर नादब्रह्म की साधना करते रहने से इंद्रियों की वासनाएं नष्ट हो जाती हैं—सदा नादानुसन्धानात् संक्षीणा वासना भवेत्।

नाद का तात्पर्य अव्यक्त ध्वनि है।

द्वितीयां शक्ति निहित रहती है।
 (वर्ति) में महती शक्ति निहित रहती है।
 इसका खुलासा मुझे अथर्ववेद की इस ऋचा
 ने मिला कि 'जो स्तम्भ रूप ब्रह्म की असत्
 और सत्—इन दो शाखाओं का निरूपण
 करता है, उसे ज्ञात हो जाता है कि असत्
 शाखा परम शाखा है, जिससे बृहन्त नामक
 देव पैदा होते हैं और दूसरी सत् शाखा
 अवर शाखा है। आधुनिक विज्ञान में
 असत्, शक्ति (इनर्जी) है और सत्
 निष्क्रिय तत्त्व (मैटर) है। एक गति को
 सूचित करता है, दूसरा स्थिति को।
 मारांश यह कि असत् निराकार है, अव्यक्त
 है, शक्ति है और सत् मैटर है, साकार रूप
 में व्यक्त है, रूपवाला है, किंतु निष्क्रिय है।
 वेदों की ऋचाओं और आगम के
 नवों को ऋषियों ने श्रवण-दिव्यता प्राप्त
 कर श्रवण किया और वे ऋचाएं तथा मंत्र
 उनके हृदय में प्रकट हुए। वस्तुतः श्रोत्र
 का संबंध आत्मा से होता है। प्राणवायु
 और वाणी का मेल, चक्षु और मन का मेल
 तथा श्रोत्र और आत्मा का मेल होता है।
 त्रेय ब्राह्मण के इस अनुवाक् से स्पष्ट
 है कि आत्मा का संबंध हृदय से होता है,
 इसलिए श्रोत्र का संबंध हृदय से होता है।
 ऋषियों ने श्रोत्रेंद्रिय में एकाग्रता लाकर
 अवरत दिव्यता प्राप्त की थी। श्रोत्रेंद्रिय
 को एकाग्र करने की विधि तंत्रविद्या और
 योगविद्या में मिलती है। वह इस प्रकार
 श्रुति तरंगों ज्यों-ज्यों आकाश में दूर-
 दूर तक होती जाती हैं, त्यों-त्यों वे मंद्र-

होती हुई ध्वनि-तरंगों को देर तक ग्रहण
 करने या सुनने में मन एकाग्र और केंद्रित
 होता है और श्रोत्र की प्रसुप्त शक्ति उत्ते-
 जित और जाग्रत होने लगती है। श्रोत्र
 में मन जब एकाग्र हो जाता है तो अपादान
 क्रिया निर्वाध गति से प्रारंभ होती है। जब
 अपादान क्रिया सुचारु रूप से क्रियाशील
 होती है, तो श्रोत्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म मल
 विनष्ट हो जाते हैं, और श्रोत्र का आवरण
 नष्ट हो जाता है, जिससे एकाग्रता और
 संयम उत्पन्न होते हैं तब उससे दिव्य श्रोत्र
 की संपत्ति होती है।

यह कहकर मेरे चुप होते ही एक मुखरा
 महिला बोल पड़ी—'क्या आपको श्रवण
 दिव्यता प्राप्त है? मैंने कहा, 'नहीं, मुझे
 कभी भी प्राप्त नहीं हुई है।'

'तब फिर आपने हिमालय में कैसे
 गूँजती हुई ध्वनि को सुना?' 'हां, कुछ
 क्षणों के लिए अकस्मात् श्रवण दिव्यता
 मुझे अवश्य प्राप्त हुई थी और मैंने गूँजती
 हुई ध्वनियों का स्पष्ट श्रवण किया था,
 किंतु यह आकस्मिक घटना है, मुझे खुद
 नहीं मालूम है। और यह भी सत्य है कि
 फिर उस दिन की-सी श्रवण दिव्यता का
 अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ।'

उसी महिला ने फिर पूछा कि हिंदू
 धर्म में देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का
 पूजन किया जाता है, क्या आप भी ऐसा
 करते हैं?

(शेषांश पृष्ठ २३३ पर)

विवेकी राय की हिन्दी कहानी

नौकर

नौकर तो भागते ही हैं, कोई खास बात नहीं, परंतु शिवशंकर उपाध्याय के नौकर भोलवा का भागना जैसे बहुत बड़ा मामला हो गया ! यह चर्चा गांव में कुछ इस प्रकार होती है जैसे इससे बढ़कर कोई और मनोरंजक आश्चर्य नहीं ।

गांवों में अखबार नहीं छपते हैं, परंतु कुछ ऐसे परोपकारी लोग प्रायः प्रत्येक गांव में मिलते हैं जो स्थानीय समाचारों के लिए समाचारपत्र का काम करते हैं । कहते हैं, गोविंदपुर के सोना जटी एक जीवंत आंचलिक अखबार हैं । उनके मौखिक कार्यालय में तमाम-तमाम उड़ती खबरों का अंवार लगा होता है । कभी-कभी वो ऐसी खबरदार खबरों के लिए मौका मुआयना भी कर लेते हैं ।

उस दिन सवेरे-सवेरे उनको ज्वार के खेत पर चिड़ियां उड़ाने जाना था, परंतु इस समाचार ने उनकी निःस्वार्थ सेवा भावना को इस प्रकार झकझोर दिया कि बगल में लाठी दबाये तथा हथेली पर सुर्ती खूंटते वे उपाध्यायजी के दरवाजे पर पहुंच गये । तब घाम सहन पर उतर आया

था । अतः कऊड़ पर से उठकर उपाध्यायजी ने जटीजी के लिए चारपाई डाल दी ।

‘सुना कि भोलवा भाग गया ?’ उन्होंने पहुंचते ही पूछा, ‘कुछ सामान वगैरह पर तो हाथ साफ नहीं किये हैं ? उसके भागने की जानकारी आपको कब, कैसे हुई ?’

पूरी जानकारी के बाद अचानक सोना जटी एक उच्चकोटि के तत्त्वचिंतक की मुद्रा में आ गये । आंखों में करुण सहानुभूति और मुखमंडल पर प्रशांत सर्वभाव उतारकर उन्होंने अपनी नेक सलाह की धारा को पूरे प्रवाह में प्रस्तुत करते हुए कहा—

‘खैर, एक कबल मात्र ही वह साथ ले गया, कोई बात नहीं । लेकिन यह क्या कहते हैं कि उसके पास तीन-चार सौ रुपये हो गये थे ? बस, यही सब अतियां थीं कि वह फरार हो गया । आप लोगों ने उसे सिर पर चढ़ा लिया था । ये नीच भला किसी के अपने हो सकते हैं ? जहां रंचमात्र भी मन-बढ़ावा मिला कि बे-हाथ हुए ! फटा-पुराना पहनने को मिले, सड़ा-मला, वाली और रूखा-सूखा खाने को मिले तो ये ठीक

होते हैं। नित्य डांट-फटकार और लताड़-
पुआ मिलती रहे, तो ये देवता लोग सीधे
होते हैं। क्यों क्या गलत कह रहा हूं।'
सवाल ठोककर उन्होंने उपाध्यायजी की
ओर देखा।

'नहीं, आप भला गलत कहेंगे?' उपा-
ध्यायजी ने कहा और उत्तर की बेवसी
छिपाते-छिपाते भी मुंह पर झलक गयी।



बड़ीजी की टिप्पणी दूने उत्साह से आगे
सी-

'मैंने ये बाल धूप में नहीं सुखाये हैं,
उपाध्यायजी, ठोस तजुरबे की बात कह
रहा हूं। जहां अच्छा खाना-कपड़ा मिला
कि भोलवा की जाति के लोग 'मोटे' हो
रहे हैं। यही आपके यहां हुआ। आपको
दो बार हमने खुद मना किया कि नौकर

को नौकर का तरह रखिये। उसे घर के
लड़कों जैसा दुलार देकर आप चौपट कर
देंगे। कहीं दुनिया में आपने देखा है कि
नौकर चारपाई पर सोता है? जूता पहन-
कर खेत में जाता है? कड़वे तेल की मालिश
शरीर पर करता है? दाल-भात खाता है?
ऊपर से सब्जी भी? और सबसे अचरज
की बात तो यह कि आपने उसकी पिछले

तीन-चार साल की मजूरी के रुपयों को
सुरक्षित रहने दिया। उसे दे दिया। क्यों
है न ऐसी बात?'

'हां। यह तो उचित ही था।'

'उचित था? राम-राम! गोया आपने
समझ लिया कि अब यह आपका परमानेंट
खुदमुख्तार हो गया! अरे साहब, मुझसे
सीखिये। साल भर काम कराकर ऐसों को

इधर-उधर टरका दिया जाता है। खाया-पिया यही बहुत है। अधिक से अधिक मोटिया का कपड़ा लेकर अधबहियां नपवा दिया। इधर आपने क्या किया कि... टेरेलिन, टेरीकाट! अरे महाराज, उसे सानी-पानी करता था, गोबर फेंकना था कि महफिल में बैठना था? अब अपनी करनी का फल भोगिये। बोलिये, सही कह रहा हूं न?’

‘सही बात।’

‘नहीं, मुंहदेखी मत कहिये! गलत कह रहा हूं तो आप कहिये, कहां क्या गलत कह रहा हूं?’

‘सही बात।’ इस बार ऊब मुंह पर झलक गयी।

‘क्या सही बात? सही बात तो अभी मैं आपको बताने जा रहा हूं। आपका अकाज हुआ सो हुआ, वह अभागा कहीं का नहीं रहा। ऐसी बादशाही कहां मिलेगी। तुलसीदास ने साफ लिखा है कि ‘क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई।’ खल थोड़ा उन में बौरा जाता है। वह खल था। गंवार और क्षुद्र था। शास्त्र में लिखा है, ‘ढोल-गंवार शूद्र पशु नारी...! भोलवा जूताखोर हो गया।’

‘नहीं, नहीं। जटीजी, वह शायद नौकर से आदमी हो गया।’ दाहिने हाथ का पंजा बढ़ाकर अब जटीजी को बोलने से रोकते हुए उपाध्यायजी बोले।

मगर जटीजी क्यों मानें? उनका पर-दुखकातर भोंपा अनचाहे बजता रहा—

नवनीत

‘जरूर आदमी हो गया, चोर आदमी। अब मेरा कहा मानिये। तुरंत पुलिस में रिपोर्ट कीजिये।... मैं कि शिवजंकर उपाध्याय पेशर दमरी उपाध्याय, साकिन मौजा गोविंदपुर, परगना तहसील और जिला मजकूर हलफो-ईमान से बयान करता हूं कि मेरा खितमतगार भोलवा वांशिदा मौजा... हां, वह कहां का रहने-वाला था, पंडितजी?... क्या कहा? गांव-गिरांव का पता नहीं? हे भगवान, ऐसे लाखैरे और बहिकट को आपने कैसे इस प्रकार चंग पर चढ़ा दिया! घर का मालिक बना दिया? इतने बड़े पंडित होकर आप शास्त्र की बात भूल गये? कहां लिखा है कि ऐसे अज्ञात कुल-शील व्यक्ति को तिजोरी की कुंजी सौंप दो? अब बताइये रिपोर्ट कैसे होगी?’

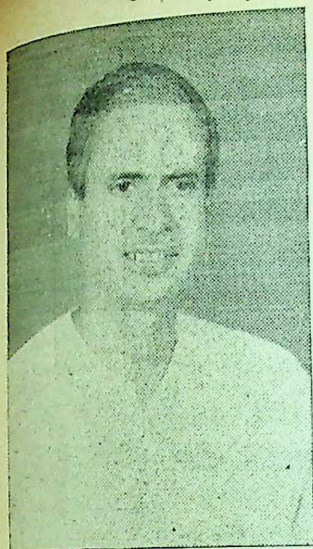
‘मुझे कोई रिपोर्ट-विपोर्ट नहीं करनी है।’

‘क्यों नहीं करनी है? जरूर करनी है। आप तमाम गांव की हवा खराब करेंगे। यह मामला आपका नहीं, सारे गांव का है। इसी प्रकार नौकर भगते रहे, तब तो खूब खेती होगी?’

इस वक्तव्य के बाद जटीजी कुछ क्षणों के लिए गंभीर चिंतक की मुद्रा में तर्जनी को दांतों में दबाये मौन हो गये। फिर जैसे उछाल लेकर बोले—

‘हां, सोच लिया। कोई बात नहीं। रिपोर्ट से साकिन मौजा को निकाल दीजिये। बयान में दर्ज करें कि भोलवा नामक एक पंद्रह साल का लड़का जो मुलाजमत को

नवंबर



विवेकी राय

राज से हमारे यहां आया, बतौर आजमा-
इश के उसे रखा गया। दो दिनों बाद कल
रु कंवल-दरी और पांच सौ रुपया नकद
चुपकर चंपत हो गया। उसकी शिनाख्त
यह है कि उसके दाहिने हाथ पर हनुमानजी
को तसवीर गुदी हुई है और चेहरे पर बायीं
कमटी के नीचे घाव का चिन्ह है। . . .
हैन ऐसा ही? हां, आखिर में तहरीर
कीजिये कि यह शख्स जहां मिले फौरन
निरन्तर कर हवाले जेल किया जाये और
बगमद माल जिम्मे हम मालिकान किया
जाये . . . अब मैं चलता हूं। खेत पर
चिड़िया बैठी होंगी। मैंने अपना फर्ज समझा
कि आपको उचित सलाह दूं। अब आगे
आपकी जैसी मर्जी!' बात समाप्त कर सोना
मुद्रा लगी उठा चलने लगे।

उपाध्यायजी ने कुछ उत्तर नहीं दिया।
जरूरत भी नहीं थी। वास्तव में वे अपने
भीतर कहीं और संघर्ष कर रहे थे। उन्हें
तकलीफ अवश्य थी परंतु इस तृप्तिकारक
जैसी तकलीफ के लिए क्या किसी की
समवेदना की अपेक्षा थी? गांववाले लोग
नाहक परेशान हैं। वे बारंबार सोच रहे
थे, मैंने उसे क्या दिया? जितना दिया,
उससे अधिक उसने चुका दिया। उन्हें
लगता, उसकी नहीं, कहीं गहरे में शायद
मेरी गलती है कि वह भाग गया। उसे
अपने समान खाना-कपड़ा दिया, रहने-
सहने की सुविधा दी और रुपया-पैसा
दिया। नौकर जैसा व्यवहार नहीं किया।
यह हमारा नौकर है, आश्रित है। क्या
आश्चर्य कि व्यवहार में भी कभी अनजाने
ठकुराई की कठोरता आ जाती रही हो।
मनुष्य स्वतंत्र है। उसे खाना-कपड़ा और
पैसा एक सीमा तक ही बांध पाता है।
आदमी की स्वाधीनता को जगाकर उसे
दास बनाकर रखना मुश्किल है। फिर वह
आदमी जो अपनी अर्थात् अपने हाथ की
कमाई पर आश्रित है, किसी का गुलाम
कैसा? भोलवा भीतर से जब एकदम
नौकर नहीं रह गया तो निकल गया। पता
नहीं गांववाले क्या सोचते हैं? जो आता
है खांची भर सीख लाद जाता है। अजीब
आफत है। इस सोना ने तो हृद कर दी!
लेकिन अभी हृद कहां हुई?

उपाध्यायजी के यहां से जाने के बाद
भी जटी महोदय अपनी महत्त्वपूर्ण विस्तृत

टिप्पणी के आवेश से मुक्त नहीं हो सके। अब वे संपादकीय टिप्पणी के बाद अखबार और हाँकर दोनों का काम करने लगे। दस कदम गये होंगे कि उधर से गांव के सबसे बड़े सुमेरसिंह आते हुए मिले। सोना जटी ने उन्हें समाचार सुनाया—

‘सुना आपने? भोलवा उपाध्यय को अंगूठा दिखाकर घर के कपड़े-लत्ते, गहना-गुरिया और मालमत्ता के साथ रातों-रात बंबई के लिए रवाना हो गया।’

सोना जटी के खेत तक पहुंचते-पहुंचते यह समाचार इतने अधिक लोगों को इतने अधिक प्रकार से प्राप्त हो गया कि पुछार करनेवालों से वे तंग हो गये। दरवाजे पर भीड़ लग गयी। जितने लोग उतनी तरह की बातें। भोलवा के भागने का एक पैसा असर उनके ऊपर है तो ऐसा

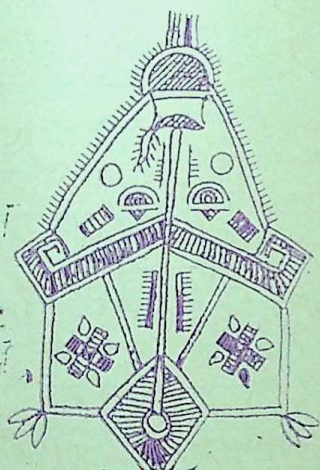
लगता है कि एक सौ पैसा समवेदना प्रकट करने वालों पर है। सौदागर चौबे बोले—

‘अरे, साहब, मेरे यहां तो असाढ़ से लेकर अब तक सात नौकर आये और गये। आते हैं, महीना-दो महीना खटते हैं और जरा भी इधर-उधर हुआ कि डिसमिस। बोल देता हूं, भाग जाओ साले और वर्दी-पेटी रख दो। एक गया, दूसरा आया। एक ही वर्दी-पेटी पर कितनों ने जांगर

नवनीत

ठेठाया। मेरा बिगड़ता क्या है? जाता क्या है? कुछ लेना-देना नहीं। काम तो होता ही है। गोबर काढ़ने वाले लिखनी नहीं न कर सकते? झूठ मारकर आयेंगे ही। इधर इस उपाध्याय महाराज को देखो...!

अब उभरा उपाध्यायजी की मूर्खताओं का खाता और उनकी आदमियत का आपरेशन देर तक चलता रहा। फिर यह तो एक सिलसिला था। चौबे जैसे लोगों



चित्र : आलोक जैन

की गांव में कमी कहां है? हां एक अंतर अवश्य है। वैसी 'वर्दी-पेटी' का बंदो-बस्त और कहीं नहीं। एक सस्ते पट्टे का अंडर-वियर है और गाढ़े की एक बांधे बांध की धोकरा जैसी कमीज है। वस यही 'वर्दी-पेटी' है, जिस पर श्रीमान सौदागर चौबे के सेवक सेवा-टहल बजाते रहते हैं। चौबेजी कहते हैं कि इस प्रकार की पोशाक घर-

गृहस्थी के कामों में सहूलियत पैदा करती है और नौकरों को बराबर याद रहता है कि वे नौकर हैं। ... उपाध्यायजी की तरह नहीं कि पहना दी बाबूओं के लड़कों जैसी पोशाक और फिर वह भूल ही गया कि नौकर है। आखिर समाज कैसे चलेगा? नौकर नौकर है और बाबू बाबू!

उपाध्यायजी ने कभी सोचा नहीं था कि गांववालों के पास नौकरों के बारे में

विस्तृत ज्ञान होगा। उनके नौकर-
लखनौ नहों
आयेंगे ही।
को देखो!!
की मूर्खताओं
गादिमिपत का
हा। फिर यह
वे जैसे लोगों
की कहां है?
र अवश्य है।
पेटों का बंदो-
कहीं नहीं। एक
अंडर-विपर
की एक जाधे
धोकरी जैसी
वस यही बंदी-
पर श्रीमान
वे के सेवक
जाते रहते हैं।
ते हैं कि इस
पोशाक धर-
सहूलियत पैदा
बराबर याद
उपाध्यायजी
दी बाबूओं के
फिर वह भूत
र समाज के
तौर बाबू बाबू!
मोचा नहीं बा
रों के बारे में
नंबर

जुट गये।

गाय खरीदी गयी। वह शीघ्र बच्चा
देनेवाली थी। दाम चुकाने के बाद चौधरी
ने उन्हें पगहा पकड़ा दिया। गाय लेकर
दरवाजे से उतरने के बाद उपाध्यायजी
को लगा कि गलती हो गयी। सांझ होने
वाली है और गाय लेकर अकेले नहीं चलना
चाहिये। किंतु चल देने के बाद कौन पीछे
मुड़ता है? अपने ही गांव-घर और देहात

का मामला है। रास्ता
निर्विघ्न कटने लगा। किंतु
गोविंदपुर अभी दूर था कि
गाय एक पेड़ के पास
रुककर छटपटाने लगी।
बच्चा देने के चिन्ह स्पष्ट
थे। थोड़ी देर में वह
प्रक्रिया भी प्रारंभ हुई और
गाय की साधारण उछलकूद
के बाद एक लैरू ज़मीन
पर जगमगा उठा।



चित्र : आलोक जैन

पक्के किसान होने के

कारण इस प्रकार की स्थितियों की
संभाल और सावधानियों के बारे में
तो उपाध्यायजी जानत थे, परंतु
समस्या थी कि उस नवजात बछड़े को
जिसके शरीर से लसदार-लिजलिजा
मैल लिपटा था कैसे ले चला जाये?
अचानक बच्चा देने के बाद सीधी लगन
वाली गाय के तेवर भी बदल गये और साथ
ही अकेले आने का पछतावा सघन हो
गया था। इस कठिनाई का क्या समाधान

दीपावली की शुभकामनाएं
और
नववर्ष का अभिनन्दन

पंडित प्रोसेस स्टूडियो

फोन : ४२२९४८०



दूसरी मंजिल, ब्लाक नं. १५,
प्रभादेवी इंडस्ट्रियल इस्टेट,
वीर सावरकर रोड,
बंबई-४०० ०२५.

ऐसी चिन्तामन स्थिति में उनका
रास्ते पर गया, जिससे मंद-मंद पैरों
वह चौधरी के द्वार पर दिखायी
दिया जाता वह बालक चला आ रहा था। उपा-
ध्यायजी को महान आश्चर्य हुआ कि
कैसे आने पर तथा उन्हें उस प्रकार खड़ा
कर उस लड़के ने बिना कुछ कहे-सुने
बैठे को खिलौने की भांति गोद में
लिया और बोला, 'चलिये, पंडितजी!'
वह इसी कार्य के लिए वहां बुलाया
था हो!

उसका परिश्रम देखकर उपाध्यायजी
रह गये। रास्ते भर आदमी के बच्चे
तुल्य गाना-गाकर खिलाते, बहलाते-
करते, बात करते वह बालक हकड़ती-
हो गाय के आगे-आगे बछड़ा लिये लग-
भगता हुआ घर आ गया। ऐसा लगा
कि एक नहीं, गाय के साथ दो-दो बछड़े
गये।

रात में उसको खाना खाने के लिए
बोला जाने लगा। कहां सरक गया ?
बहुत तलाश करने पर मालूम हुआ
कि घर पश्चिम ओर बरगद के पेड़
के नीचे थोड़े से रखे पुवाल में वह नंगे
पतलुन कुरी मारे पड़ा है। पुवाल हटाकर
उसे बगाने का प्रयत्न किया गया। वाह रे
देह! ऐसी गहरी नींद ! लालटेन की
जोती में उसका भोलाभाला पवित्र,
निष्कार और ऐसी कठिन दरिद्रता में
चमकता वह चेहरा ! उपाध्यायजी
देखते ही रह गये ! यह भी किसी

का बेटा है, किसी माई का लाल है !
'.... अरे चल, उठ। पुवाल में घुसरकर
सोने में ऐसा मज्जा है तो खा-पी कर सो ।'

सुबह पुवाल में से उठकर आंखें मलता
सामने खड़ा हुआ तो उस धूल में खिले फूल
को देख उपाध्याय की आंखें फटी की
फटी रह गयीं। उसकी आंखों में क्या है कि
इतनी साफ है ! वे नीली-नीली दो भिक्षुक-
आंखें ... नहीं, इसे भिखारी समझनेवाले
स्वयं भिखारी हैं ! उपाध्याय ने पूछा—

'क्या नाम है तुम्हारा ?'

'दमरी ? अरे यह तो मेरे पिताजी का
नाम है, भोला बालक। दमरी उपाध्याय
नहीं, तू भोलवा है। तू अब कहीं नहीं
जायेगा।'

...और वह सचमुच कहीं नहीं गया।
पूरे तन-मन से साथ रहा, किसी सतयुग
जैसी ईमानदारी के साथ। गया भी तो
चोट नहीं, एक कचोट देकर। इस कचोट
को न समझ गांववाले यह क्या बकझक
करते हैं ? उन्होंने आंखें उठायीं, तो चौबे
ने अपनी टिप्पणी का उपसंहार करते हुए
हुए कहा —

'अच्छा, साहब, जो हुआ सो हुआ।
आगे के लिए सावधान हो जाइये और
अपनी गलती मान लीजिये।'

'मान लिया। गलती मेरी है।' उपा-
ध्यायजी ने कहा।

'और वह गलती कहां है ?'

'जहां भोलवा नीकर है।'

—बड़ी बाग, गाजीपुर, उ. प्र.



दीपावली अभिनन्दन

श्रीवैकटेश्वर प्रेस

आफसेट और लेटर प्रेस दोनों विधियों द्वारा कलात्मक उत्कृष्ट
छपाई व प्राचीन सांस्कृतिक साहित्य का प्रकाशन केंद्र

अध्यक्ष

खेमराज श्रीकृष्णदास

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४०० ००४

दूरध्वनि : ३५७४५६
(दो लाइनें)

तार : वैकटेश्वर

नवनीत

१२८



रुग्ण शैथ्या पर आत्मीयों से घिरे हुए

महान मुंशी का महाप्रस्थान



शान्तिलाल तोलाट की एक स्मरणांजलि

१० प्रभा सदन, ६ ठा रास्ता,
सांताक्रुज, बम्बई-५५
२३-२-१९७१

माई श्री,

मुंशीजी के निधन के संबंध में आपका
पत्र और सहानुभूति-भरा पत्र मिला।
यह व्यक्तिगत हानि को आप ठीक से
संभल सके हैं। परंतु यह हानि तो संपूर्ण
है। मुंशी के जाने से गुजरात ने
एक दयानन्द, गांधीजी और सरदार
पटेल की पंक्ति में स्थान रखने वाले

एक सुपुत्र को और भारत ने संस्कृति के
पुनरुत्थान के एक सृष्टा को खो दिया है।

मेरा मुंशीजी से किस प्रकार परिचय
हुआ, आपको लिख रहा हूं। १९५९ के
मार्च महीने में मैं म्युनिसिपल कारपोरेशन
के प्रिंटिंग प्रेस के जनरल मैनेजर के पद
से सेवामुक्त हुआ और दूसरे ही दिन भार-
तीय विद्या भवन में प्रकाशन अधिकारी
के रूप में जुड़ गया। उसके बाद की जान-
कारी आपको है ही। परंतु मुंशीजी के
साथ मेरा प्रथम संबंध १९४७ में हुआ।

१२९

हिंदी डाइजेस्ट

इसी साल हमारा देश स्वतंत्र हुआ था। स्वतंत्र भारत में विदेशियों द्वारा स्थापित उनके हितों के प्रतिपादक वर्तमान पत्रों की स्पर्धा में भारतीय सम्पत्ति से स्थापित और भारतीय संपादकों-संचालकों की सुसज्ज सेवा वर्तमान पत्रों-अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषाओं में-

की आवश्यकता का अनुरोध सरदार वल्लभभाई पटेल तथा अन्य नेताओं ने किया। परिणाम-स्वरूप सरदार के मार्गदर्शन में बंबई में पचास लाख रुपये लगाकर एक प्रकाशन-संस्था लिमिटेड कंपनी के रूप में स्थापित की गयी। उसका नाम था-अखिल भारत प्रिंटर्स लिमिटेड।

इसके प्रथम चेयरमैन मुंशीजी नियुक्त हुए और सरदार के सुपुत्र डा. ह्याभाई पटेल मैनेजिंग डाइरेक्टर। अखिल भारत प्रिंटर्स लिमिटेड ने तीन प्रातःकालीन दैनिक पत्रों का प्रकाशन शुरू किया-१. भारत (अंग्रेजी), २. हिन्दुस्तान (गुजराती) और ३. नवभारत (मराठी)। हिन्दी दैनिक के लिए भी विचार चल रहा

नवनीत



हमारे 'बापाजी' गृह-द्वार से बाहर आते हुए

था। उस समय मैं बंबई के गवर्नमेंट स्कूल प्रेस में सहायक मैनेजर के रूप में काम कर रहा था। मुझे इस नयी संस्था में प्रेस के मैनेजर और कंपनी के संयुक्त मंत्री के रूप में जुड़ने का आमंत्रण मिला और मैं सरकारी नौकरी से अलग होकर जून १९४७ में अखिल भारत प्रिंटर्स में अपना दायित्व संभाल लिया।

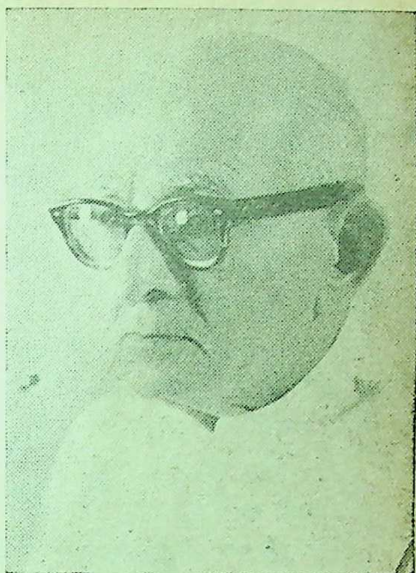
उस समय मुंशीजी ने हैदराबाद में भारत सरकार के एजेन्ट जनरल के रूप में कठिन दायित्व संभाल लिया था।

१८ सितंबर १९४८ के दिन हैदराबाद में भारतीय सेना के प्रवेश के साथ ही मुंशीजी का वहां का काम पूरा हो गया। कुछ समय बाद वे

बम्बई आ गये और दूसरे ही दिन सुबह मैं उनके आदेश से उनके तत्कालीन निवास-स्थान २६ रिजरोड पर उनसे मिलने गया। हमारे मराठी 'नवभारत' में प्रकाशित एक लेख के बारे में उन्हें जानकारी चाहिये थी, वह उन्हें दी। प्रस्तुत लेख हैदराबाद के संबंध में था और उसमें

नवंबर

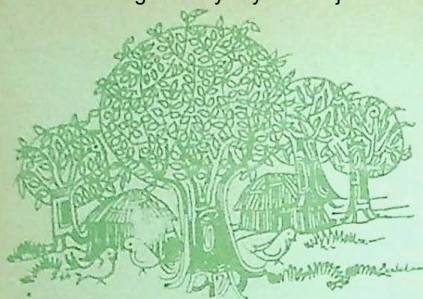
वर्तमान में प्रेस के काम का प्रेस के मंत्री के मन्त्रालय और कैबिनेट में अखिल प्रिंटर्स में दायित्व लिया। उस समय मुंशीजी ने हैदराबाद में भारत सरकार के एजेन्ट के रूप में दायित्व लिया था। सन् १९४८ में हैदराबाद में भारतीय सेना के साथ हुआ। मुंशीजी का वहाँ का पूरा हो गया। उस समय बाद में सरे ही दिन उनके तत्कालीन पर उनसे मिलने 'भारत' में प्रकाशित उन्हें जानकारी प्रस्तुत तब और उनमें नवंबर



भारत की नित-नव्यमान संस्कृति के स्वप्नद्रष्टा मुंशीजी

सौ पृष्ठ के सुंदर रूपरंग वाले ग्रंथ की नाममात्र की कीमत केवल पौने दो रुपये रखकर उसे बाज़ार में बिक्री के लिए रखने का साहस मुंशीजी द्वारा संचालित संस्था ही कर सकती है। (आज उस ग्रंथमाला की २५० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और ४० लाख से अधिक पुस्तकों की बिक्री हो चुकी है) इस ग्रंथमाला के प्रारंभ से मैं उससे जुड़ा हुआ था।

१९५१ में सरदार के निधन बाद अखिल भारत ग्रुप के दैनिक पत्र जबर्दस्त घाटे के कारण बंद हो गये और बुक युनिवर्सिटी ग्रंथमाला के प्रकाशन के लिए मुंशीजी ने भारतीय विद्या भवन में मेरी नियुक्ति



कर दी। १९५२ की जुलाई तक मैं उस पद पर रहा। उसके बाद बंबई के म्युनिसिपल कारपोरेशन प्रिंटिंग प्रेस में जनरल मैनेजर के रूप में पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा मेरा चुनाव हुआ और मुंशीजी की अनुमति लेकर मैंने अपना पद-भार संभाल लिया। मुंशीजी उन दिनों उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे और उन्होंने मुझे अनुमति देते हुए जो स्नेह-भरा पत्र लिखा था—गुजराती में उनके हस्ताक्षरों से—वह मेरे लिए बहुमूल्य बन गया है। पत्र इस प्रकार था :

गवर्नर्स कैम्प, उत्तर प्रदेश
क्रमांक : ५०११/जी. एस. ता. १०-७-५२
प्रिय भाई तोलाट,

पत्र मिला। तुम्हें म्युनिसिपैलिटी में अच्छी जगह मिल गयी है, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

तुमने भवन और प्रेस के लिए बहुत किया है, मैं क्या नहीं जानता? अंतिम दिनों में तो बुक युनिवर्सिटी की स्थापना के लिए भी तुमने बहुत अच्छा किया है और तुमने तो भवन के साथ एकात्मता साध ली थी, इसलिए तुमसे अलग होते थोड़ा दुख होता है, पर अच्छे स्थान पर जा रहे

नवनीत

हो, उससे मैं प्रसन्न हूँ। भवन के साथ संबंध बनाये रहोगे, तो अधिक प्रसन्नता होगी। स्नेह-स्मरण !

तुम्हारा—

क. मा. मुंशी

कहने की आवश्यकता नहीं है कि म्युनिसिपल प्रेस की आठ वर्ष की सेवा के दौरान भवन से मेरे संबंध घनिष्ठ ही बने रहे। कभी-कभी मुंशीजी से मिलता होता रहता। उन दिनों की प्रकाशित हो रही दो पुस्तकें—‘दि एन्ड ऑफ एन इरा’ (हैदराबाद के संस्मरण) और ‘स्वप्न-सिद्धि की खोज में’ (हिंदी संस्करण के प्रकाशक राजकमल, दिल्ली) का मुझे कार्य मैंने संभाला था। उस समय पुस्तिका के रूप में प्रकाशित ‘कुलपति के पत्र’ तथा उसके बाद ‘भवन्स जर्नल’ के प्रारंभ में भी मेरा आवश्यक योगदान था।

मुंशीजी की इच्छा थी कि म्युनिसिपल प्रेस में से निवृत्त होते ही मैं भवन के प्रकाशन विभाग का काम संभाल लूं और उसी के अनुसार अप्रैल १९५९ में मैं पुनः भवन में जुड़ गया।

मुंशीजी का निवासस्थान भवन के भव्य इमारत की चौथी मंजिल पर है। मुझे विभागीय काम के लिए और उनकी गुजराती पुस्तकों के प्रकाशन की वृत्ति करने के लिए कभी-कभी उनसे मिलना होता—प्रायः प्रतिदिन कहीं तो अनुचित न होगा। उन सभी मुलाकातों में उनका व्यवहार एक वात्सल्य-भरे बुजुर्ग की तरह का-सा होता।

किसी भी दिन हम, भवन के कर्म-
चारियों को, यह अनुभव नहीं हुआ कि
हम बेतनभोगी कर्मचारी हैं। हम उन्हें
बापाजी कहकर संबोधित करते और
श्रीमती लीलावती मुंशी को 'मम्मी'। दोनों
ने भवन के छोटे-बड़े सभी कर्मचारियों के
लिए हमेशा बुजुर्ग का-सा वात्सल्य-भरा
परहार किया। जैसे-जैसे इस सेवाभावी
पंक्ति का परिचय बढ़ता गया, वैसे-वैसे
उनकी महानता का और हृदय की विशा-
लता का अनुभव
होता गया।

आज मुंशीजी के
जन्म के बाद
जाना है कि मैंने
उनका वात्सल्य
को दिया है—
जबकि मेरे पिता
मृत्यु के तीनों साल का
हो चुके थे।

मुंशीजी के मार्गदर्शन में काम करने का
काल अल्प था। मुस्कान के साथ बुलाते
और बैठते और फिर जिस बात के लिए
उनसे मिलना होता, उसे ध्यानपूर्वक सुनते
और उचित सुझाव देते। १९५९ के
अंश से उनके अवसान के दिन तक के
अनेक प्रसंग अच्छी तरह स्मृति-पटल
पर अंकित हैं। वे इस महामानव के मानस
और हृदय के भिन्न-भिन्न गुणों की,
उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा की अमूल्य

यादगार बने रहेंगे। उनमें से कुछ का ही
उल्लेख करूंगा।

१९५९ में भवन के दो पाक्षिक थे—
अंग्रेजी में 'भवन्स जर्नल' और हिन्दी में
'भारती'। भवन में मेरे पुनः जुड़ने के
बाद एक पत्रिका गुजराती में भी प्रकाशित
करने के लिए मुंशीजी ने कहा। फलस्वरूप
१५-११-१९५९ के दिन 'समर्पण' का
प्रथम अंक प्रकाशित हुआ। पत्रों के नाम-
करण के लिए सरकार द्वारा निश्चित विधि

होती है। उसके
अनुसार कुछ नामों
की सूची रजिस्ट्रार
आफ न्यूजपेपर्स के
पास उसकी मंजूरी
के लिए भेजनी
पड़ती है। ऐसा
इसलिए करना
पड़ता है कि देश
में प्रकाशित हो रहे

अनेक पत्रों में से कोई नाम दुबारा न
आ जाये। इस तरह बापाजी की प्रथम
पसंद का नाम 'भारती' स्वीकृत नहीं हो
सका। उसके बाद तो 'ज्ञानामृत', 'श्रद्धा'
और 'समर्पण' में से अंतिम नाम को
स्वीकृति मिली। मुंशीजी जैसे सिद्ध-
हस्त साहित्यकार की छत्रछाया के नीचे
ग्यारह साल पूर्व का छोटा-सा 'समर्पण'
आज अपनी पत्रिकाओं की अगली पंक्ति
में है। 'जीजीमा की आत्मकथा' हमने
'समर्पण' के दूसरे अंक से प्रारंभ की और

उसके संपूर्ण होने पर ७ अगस्त १९६० के अंक से मुंशीजी का 'कृष्णावतार' शुरू हुआ। आठ खंडों में प्रकाशित होने वाली यह महान कथा 'समर्पण' का विशिष्ट अंग बन गयी है (अभी छठे खंड का क्रमशः प्रकाशन हो रहा है)।

'कृष्णावतार' के लेखन और प्रकाशन के बारे में कभी-कभी मुंशीजी से मेरा मिलना होता रहता। प्रारंभ में एक-अधिक से अधिक दो-खंडों में पूरी की जाने वाली यह कथा जैसे-जैसे लंबी होती गयी, वैसे-वैसे मुंशीजी के श्रीकृष्ण के जीवन में जिन-जिन पात्रों ने महत्त्व के भाव का चिंतन किया था उनकी कहानी भी श्रीकृष्ण के पात्र को केन्द्रस्थ रखकर प्रस्तुत करने की कल्पना मन में पैदा हुई। वे बार-बार कहते कि वे पात्र रात में शान्तिपूर्वक नींद भी नहीं लेने देते। फलस्वरूप 'कृष्णावतार' की कथा अविरत आगे बढ़ती रही। मुंशीजी ने अन्य ग्रंथों के लिखने की जो योजना बनायी थी, उसे 'कृष्णावतार' के लेखन-कार्य के दम्यानि स्थगित रखना पड़ा।

मुंशीजी की आत्मकथा की ग्रंथमाला का १९२६ के साल तक की जीवन कहानी पेश करती पुस्तक 'स्वप्नसिद्धि की खोज में' १९५३ में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद की उनके जीवन के विशेष महत्त्व के वर्षों की सामग्री भी कभी सेतैयार थी—और इन वर्षों के शुरू होते ही दो प्रकरणों को उन्होंने १९५३ में ही लिख डाला था और मैंने उन्हें कंपोज़ कराकर उनके प्रूफ भी उन्हें

लखनऊ भेज दिये थे (उस समय वे उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे)। प्रूफों का तकादा किया तो उन्होंने कहा—'हम इस समय के बहुत पास हैं, इसलिए फिलहाल यह कार्य यहीं रोक दो।' फलस्वरूप दो प्रकरणों का कंपोज़ मैटर तुड़वा देना पड़ा।

'कृष्णावतार' के चार खंडों का लेखन पूरा होने पर मैंने मुंशीजी का ध्यान पुनः आत्मकथा के बाकी रहे खंड की सामग्री की ओर सादर दिलाया। उन्होंने सस्मित उत्तर दिया—'इस "कृष्णावतार" के पात्र मुझे कहां छोड़ते हैं कि मैं आत्मकथा आगे बढ़ाऊँ? "कृष्णावतार" के पूरे होने पर समय रहेगा तो आत्मकथा आगे बढ़ाऊंगा। (आज अश्रुपूरित नेत्रों से अनुभव करता हूँ कि समय नहीं ही रहा। 'कृष्णावतार' का ८ वां खंड भी थोड़े के लिए अधूरा रह गया और आत्मकथा तो १९५३ में जहां अटकी थी, उसके आगे फिर बढ़ ही न सकी।)

१९६९-७० के दम्यानि मुंशीजी का स्वास्थ्य जब-तब बिगड़ने लगा। जैसे-जैसे तबीयत बिगड़ती गयी, वैसे-वैसे 'कृष्णावतार' शीघ्र पूरी करने की उनकी इच्छा तीव्र होती गयी। सातवां खंड पूरा हुआ, तब उन्हें कुछ राहत अनुभव हुई—'अब एक ही खंड बाकी है।' उन्होंने कहा।

मुंशीजी की योजना श्रीकृष्ण की तबीयत हो गयी कथा को कुरुक्षेत्र की समरभूमि में 'शाश्वत धर्मगोप्ता' श्रीकृष्ण अर्जुन को विश्वरूप दर्शन कराते हैं, वहां तक ने

मय वे उत्तर
ओं का तकादा
इस समय के
ल यह कार्य
प्रकरणों का
।
ओं का लेखन
गा ध्यान पुनः
ड की सामग्री
न्होंने संक्षिप्त
ार" के पात्र
ात्मकता वाले
पूरे होने पर
भागे बड़ाऊंगा।
नुभव करता
'कृष्णावतार'
ल अघूरा दू
१९५३ में जहाँ
कर वह ही न

मुंशीजी का
गया। जैसे-जैसे
-वैसे 'कृष्णावतार'
उनकी इच्छा
खंड पूरा हुआ।
नुभव हुई—अब
होने कहा।
कृष्ण की तबीयत
की समरसता में
कृष्ण अर्जुन को
वहाँ तक ते

मुंशीजी का समापन करने का था।
जहाँ खंड लिखा जा रहा था, उसी
अंतिम एक लेखक मित्र का पत्र आया कि
महान कथा का यथोचित अंत तो
कृष्ण के देहोत्सर्ग के साथ होना चाहिये।
मैंने मुंशीजी के सामने रखा—लंबी
नारी के बाद वे अपने जुहू के बंगले में
आराम कर रहे थे, तभी एक रविवार की
रुह। उनका उत्तर सूचक और अर्थपूर्ण
—तोलाट, विचार तो अच्छा है, परंतु
जहाँ खंड लिखेगा कौन?' मैं तो मुंशीजी
संस्थ के प्रति सदैव आशावादी रहा
परंतु उन्हें अपने जीवन का अंत निकट
ग रहा है, ऐसी स्पष्ट आगाही उनका
प्रत्युत्तर दे रहा था।
इस महामानव के साथ २३ वर्ष के
संबंधों में अपने जीवन का एक अति
महत्वपूर्ण समय मानता हूँ। मेरी स्मृति-
पुस्तिका में उनके गुलाबी स्वभाव के विविध
चित्रों को उजागर करने वाले अनेक
संस्मरण संचित हैं। इन सभी को प्रस्तुत
करने का यह समय नहीं है, स्थान नहीं है।
अब न चाहते हुए भी अधिक लंबा हो
गया है, इसलिए अधिक कुछ किसी दूसरे
लेखक लिखूंगा। उनकी साधारण ठीक
समय के समय जो उनसे अंतिम मुला-
का हुई, उसके बारे में संक्षेप में लिखकर
जो भेजे गये पत्र को पूरा कर रहा हूँ।
रविवार चार फरवरी १९७१ की वह
रात में बदल रही थी। भवन का
अंतिम वंद हो चुका था। सांताक्रुज

जाने से पहले मुंशीजी से मिलने गया।
वे आराम कर रहे थे और शाम का अख-
बार पढ़ रहे थे। अगले ही दिन मम्मी
ने 'भवन्स कैम्पस' अंधेरी में १२-२-
१९७१ से शुरू होने वाली पुष्प-प्रदर्शनी
के लिए एक प्रेस कान्फ्रेंस बुलायी थी।
उसमें उन्होंने नवानगर की राजमाता
साहिवा की तरफ से भवन्स कैम्पस में जो
सुंदर पुष्प-वाटिका है, जिसमें अनेक तरह
के विविध रंग के गुलाब उसकी विशेषता
हैं, उसकी सुयोग्य देखभाल के लिए दीवाल
वांधने के काम के लिए भी एक लाख एक
हजार और एक रुपये का राजसी दान
भवन को दिया था—उसकी घोषणा भी
की थी। इस बारे में चर्चा हुई। मम्मी भी
हाज़िर थीं और एक अन्य मित्र भी थे।
बापाजी ने गंभीरतापूर्वक कहा—'आज
राजाओं के राजभत्ते (प्रीवी पर्स) के बंद
होने की बातें हो रही हैं, परंतु एक राजा के
अलावा भवन को ऐसा दान कौन दे सकता
था?' मित्र ने उत्तर दिया—'भवन को
अच्छे दानदाता हमेशा ही मिलते रहेंगे।'
बात को बढ़ाते हुए बापाजी ने कहा—'और
अच्छे और सेवाभावी कार्यकर्ता भी।'

मित्र के चले जाने के बाद 'कृष्णाव-
तार' की अगली किस्त जिसे उन्होंने लिखने
का निश्चय किया था, उसके संदर्भ में
प्राचीन यूनानी साहित्य में अश्वों के संबंध
में उल्लिखित एक नोट तैयार करने के
लिए मुझसे कहा। यह सामग्री सारथी के
(शेषांश पृष्ठ २३३ पर)

सुनीता जैन की एक विदग्ध ममताभरी कहानी



तुम चूड़ी पहनो, बिन्दी लगाओ, माभी,...

रोज सुबह जब कालेज जाने के लिए मीता तैयार होकर निकलती है और आई. आई. टी. तक पहुंचती है, तो उसका जी करता है, वह कालेज न जाकर आई. आई. टी. में बनी पानी की छोटी-सी नहर के किनारे जाकर बैठी रहे। वचपन में भी

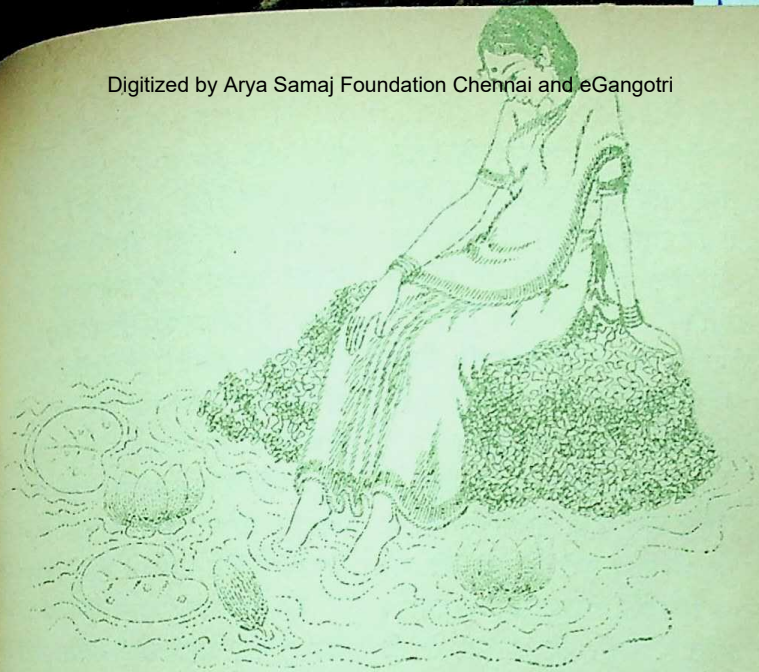
सुनीता जैन



नवनीत

जब वह स्कूल जाया करती थी, तो स्कूल के रास्ते में बड़ा-सा तालाब पड़ता था। अक्सर आते-जाते वह वहीं रुककर जाने क्या-क्या सोचा करती थी। शायद सोचती नहीं थी, बस खड़ी रहती थी पानी के पास। आज और दिन से भी अधिक उसका जी कर रहा था कि वह पानी के पास जाकर बैठ जाये और आसपास कोई न हो। चलते-चलते उसे लगने लगा कि वह वन नहीं रही, बल्कि बैठी है किनारे पर, और पानी की गंदली गहराई से उठकर एक एक कमल-कली सतह पर आती-जाती है और चटककर खुलती जाती है। कली के भीतर का बंद सोना यकायक मुख के भान-सा बिखरने लगा है। मीता है और देख रही है इतने सारे सुनहरे लाल, गुलाबी खिले कमलों की ओर देखती है कि पानी के चारों ओर बांस का घना जंगल है, जिसमें हवा सांय-सांय कर गुजर रही है। हवा गुच्छती है बांस खड़खड़ा कर रुदन करते हैं उन टकराते बांसों से घिरे तालाब के किनारे कमल के खिलते फूलों को देखती

१३६



थी, तो स्कू
व पड़ता था।
रककर जाने
शायद सोचती
थी पानी के
अधिक उसका
पानी के पास

मीता सोच रही है कि उसने तो कहीं पड़ा
था, जब हवा वांस के जंगल से गुजरती है,
व बांसुरी बजती है। फिर यहां टकराहट
गोर खड़खड़ाहट क्यों है? बांसुरी उसे
मुग़ायी क्यों नहीं देती?
व तब तक मीता 'उचित दर' की दुकान
के सामने पहुंच गयी थी। दुकान में जाकर
बोले, 'लालाजी, वनस्पति घी आ गया है
क्या?' लाला ने एक क्षण उसे देखा, फिर
वाता पलटते हुए बोला, 'समाप्त भी
हो गया। आपको जो समय बताता
हूँ, उस समय आप आतीं नहीं।' कहने
में हुई, कैसे आऊं? नौकरी पर
जाना होता है। समय की पाबंदी है। आप
जो बो खयाल कर एक टिन रख देते।
फिर दो बार तो आ चुकी हूँ।' पर वह

कुछ नहीं कहती। चुपचाप बाहर आ
जाती है। जो बात अन्य लोग इतने सहज
ढंग से कह देते हैं, पता नहीं वही बात
मीता के लिए कहना बहुत ही कष्टप्रद हो
जाता है। मिसेज़ नायर ने उसे समझाया
भी था कि लाला के पास दो-चार डिब्बे
तो बतौर 'कर्टसी' रहते हैं। जरा अच्छे-से
मांगना, जरूर दे देगा। पर मीता से नहीं
मांगा जाता कुछ भी 'अच्छे-से'। फिर जब
लाला ने कह ही दिया कि घी खत्म हो
गया, तब वह कैसे आरोप लगाये कि लाला
जी, दो-चार डिब्बे तो काउंटर के नीचे
जरूर होंगे?

०००

दुकान से बाहर आकर मीता सोचती
है, जिम का पत्र आयेगा तो वह उसे

लिखेगी—‘मैं’ आजकल कहीं से वनस्पति की जुटाने की फिराक में रहती हूँ, इसी-लिए रिसर्च पेपर पूरा करके नहीं भेज सकी हूँ।’ फिर सोचती है कि नहीं, वह नहीं लिखेगी कुछ भी पत्र में। वह पत्र ही नहीं लिखेगी।

अमरीका से जब आने लगी थी, जिम ने कहा था, ‘मीता, तू क्यों जा रही है?’

‘जाना तो है ही एक दिन, जिम।’

‘क्यों? यहां क्या अच्छा नहीं लगता?’

‘नहीं, वह बात नहीं, अच्छा लगता है यहां रहना। शायद पूरी ज़िदगी भी रह लूँ, पर यहां मरना अच्छा नहीं लगेगा। जिम, परदेस में मरने की कल्पना से ही डर लगता है।’

‘देख मीता, तेरी बहुत-सी बातें मुझे अजीब लंगा करती हैं और यह मरने की बात तो बहुत ही अजीब है...’

‘जानती थी, नहीं समझोगे।’

‘वही ‘कल्चरल डिफरेंस’ की वजह से?’

‘नहीं जिम.....’

‘तो समझाओ मुझे कि ज़िंदा रहना जहां निभ सकता है, वहां मरना क्यों नहीं हो सकेगा!’

‘समझा पाऊंगी, यह उम्मीद नहीं। हां, यह जरूर जानती हूँ, जब कभी खयाल आ जाता है कि मैं मर गयी हूँ तुम्हारे देश में, तो बहुत ही “लोनली” महसूस करती हूँ। हो सकता है मरना तभी तक प्रिय लगता है, जब रोने को कोई हो। स्वार्थ की बात है।’

नवनीत

‘तुम्हारी बात में तर्क नहीं है जरा भी। पता नहीं कैसे पी-एच. डी. तुम्हारी हो गयी। किसी को कोई रोये क्यों? सुनू तो? ज़िदगी सही ढंग से व्यक्ति बिगड़ करता रहे जो वह चाहता है, देता और पाता रहे। फिर शेष तो सब शेष है....’

‘हां जिम, पर मेरी आंखों में तुम लोगों के कब्रिस्तान में बनी मेरी कब्र मुझे जब दिखती है, तो लगता है किसी पहाड़ी पर हवा जैसे सांय-सांय कर रही है। बड़ा वीरान लगता है। अच्छा छोड़ो, बात भावना की है, तर्क से कैसे समझाऊं?’

‘भावना को मैं कम तूल नहीं देता। मीता, पर जीना छोड़ व्यक्ति कहीं मरने जाये, यह क्या भावना का सहारा लेकर आत्महत्या करना नहीं हुआ? मीता, मैंने तुम्हारा देश नजदीक से देखा है। तुम वहां अब पनप नहीं सकोगी।’

‘ऐसा न कहो, जिम! इतने वर्ष परदेस में रहते मैंने अपने देश को मन का द्वीप बना रखा था, एक निराली ‘तहीटी’। जब मैं उदास होती थी, मुझे सुकून वहीं जाकर मिलता रहा है। जैसे राग-रिस्तों स्नेह का एक समूचा संसार वहां प्रतीक्षा में है, इसीलिए तो यहां भी क्या पनप सकी?’

‘उसे मन का द्वीप ही रहने दो, मीता। जाने पर वह मिलेगा नहीं। जो है नहीं, वह मिलेगा कैसे? तुम बहुत छोटी थीं जब आयी थीं। अब लौटकर सुबो न होगी, यह मेरा मन कहता है। वहां जाकर नवनीत

है जरा भी। तुम्हारी हो क्यों? मुझे यकीन है, देता और शेष है... मैं तुम लोगों का कब मुझे जब भी पहाड़ी पर ही है। बड़ा छोड़ो, बात समझाऊँ? नहीं देता। कत कहीं मरने सहारा लेकर ? मीता, मैंने है। तुम वहाँ इतने वर्ष पर-श को मन का राली 'तहीटी'। मुझे सुकून वहाँ से राग-रिस्तों पर वहाँ प्रतीक्षा भी क्या पन-हने दो, मीता। जो है नहीं बहुत छोटी थी, टैटकर मुझी न है। वहाँ जाऊँ नवंबर

यकायक मीता सड़क छोड़ किनारे को छिटक गयी। सामने से ईंटों का एक ट्रक बहुत तेज गति से उसकी दिशा में आ रहा था। मानो ड्राइवर उसे ही डराने को इतने तेज और उसके इतने करीब से ट्रक को निकाल ले गया। ड्राइवर के ताँवे-तो चेहरे की भट्टी-सी मुस्कान की झलक भर मिलते ही ट्रक आगे निकल गया। पर एक ईंट उसमें से उड़ी और सड़क पर गिर-कर चूर हो गयी। मीता ठिठककर उस ईंट को देखती रही, जो मानो सड़क पर लगी, उसके माथे में लगी हो। ईंट को देखते-देखते उसने देखा कि वह कार चला रही है और उसकी कार ट्रक के ठीक पीछे है। ईंट ट्रक से उड़ती है, कार का शीशा गोल्टी हुई उसके माथे में लग जाती है। नीचे में उठती कराह को दबाती मीता का बौंकर रहा था कि धर लौट जाये। कालेज न जाये आज। कालेज में उसे जरा भी अच्छा नहीं लगता। अभी नयी-नयी बस यहाँ ट्रांसफर करवा कर आयी है। फ्लैट जहाँ पढ़ाती थी, वह कालेज बहुत दूर था। पर वहाँ का वातावरण शांत था। लोग अच्छे थे। यहाँ का तो उसे हिसाब-किताब ही समझ में नहीं आता। जब राया थी, तो लोग इशारे कर उसकी पीठ छिंके कहते, 'भई, यह अमरीका रिटर्न्ड है।' और सुननेवाले हँसते थे, 'अबे, अक्ल के अंधे, इतना तो सोच, अमरीका रिटर्न्ड

होती तो इस कालेज में पढ़ाने आती ?'

मीता का जी किया कि सड़क के किनारे के नीम के नीचे किसी पत्थर पर बैठ जाये। पर नीम तले न पत्थर था, न छाया। धूप भी सिर पर आ गयी थी और पसीने की लाल मुइयां सांय-सांय करती हवा से तीखी हो चुभने लगी थीं।

कालेज के पिछले भाग में बनी कैंटीन की तरफ से मीता जैसे ही भीतर आयी, उसका पल्ला किसी ने छू लिया।

'मैडम !'

'अरे, रो क्यों रही हो तुम? क्या बात है?'

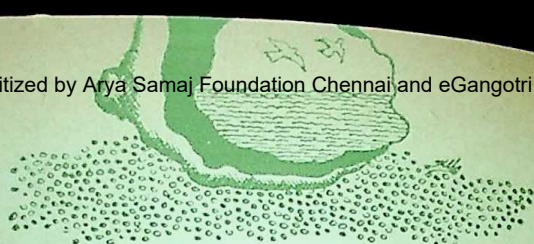
'मैडम, मेरी फीस माफ करवा दीजिये। मेरे पापा बहुत बीमार हैं, काम पर नहीं जाते। मां फीस नहीं दे सकेगी, तो मुझे पढ़ाई छोड़नी पड़ेगी। भाई भी कोई नहीं है। मैं पढ़कर नौकरी करूंगी ...'

'तो रोने की क्या बात है, फीस माफ कमेटी को यह सब बता दो। फीस माफ हो जायेगी।'

'नहीं मैडम, फीस-माफ कमेटी में जो सर हैं, वे कहते हैं कि फीस माफ नहीं करेंगे।'

'क्यों ? अरे, फिर रोने लगी। क्यों नहीं करेंगे फीस माफ ?'

'मैडम, पहले शुरू में आप हमें पढ़ाती थीं न ? फिर आप दूसरी क्लास को पढ़ाने लगीं, तो हम सबने प्रिंसिपल को यह लिख-कर दिया कि हम मैडम से ही पढ़ेंगे, सेठी सर से नहीं पढ़ेंगे, क्योंकि उनकी बात हमारी समझ में नहीं आती। अब सेठी (शेषांश पृष्ठ १४२ पर)



श्रीराम वर्मा की एक कविता

चिरठी

तुम्हें स्वाती के पानी से पानीदार कौन-सा नया संबोधन दूं
जबकि संज्ञाशून्य इतने दिनों में और कुछ नहीं हुआ।

महंगाई बरसात के टूटे-गिरे ज़िंदा तार की तरह बरकरार
हर चीज़ को भीषण अछूत करती रही सिद्ध।
चीरघर पर हर दिन आती रहीं लाशें उसी तरह।
गिद्ध और चीलें तृप्त पूर्ववत् अदृश्य।

दवा के लिए होता रहा दर्द दिल का
और दर्द के लिए दवा उसी तरह चलती रही।

अखबार से उठती बदबू में फ़र्क नहीं आया।
नाली की भभक वैसी ही है और छेक नहीं पाती कभी
अखबार का एक कॉलम भी।
रेडियो सोंधी खबरों का घर-घर इतर है गमकाता उसी तरह।
सड़कें चंद्रमा की सतह-सी आज भी हैं, कै बार कहीं।

सब कुछ ... सब कुछ ... सब कुछ ... यथावत् है यथापूर्व।

सिर्फ एक बात ऐसी हुई, जो हुई नहीं थी कभी।
(किसकी कहूँ) सूखती एक साड़ी बंदर उठा ले गया।
यही नहीं, उसने उसे फाड़ा और बहुत बड़े पेड़ की
सबसे ऊंची दो काली डालों पर टांग दिया।

नवनीत

१४०

Digitized by eGangotri
Chennai and eGangotri
नन्ना था, ऊंचाई और पर्वतों की शृंखलाओं का दर्द हिल रहा है।

पेना के गजरे की तरह बलाकाएं मंद-मंद जाती
जितनी तक काली मिट्टी के बर्तन का पारा लगने लगी थीं।
पेना के पत्तों-सी तुम्हारी हथेलियों में
समाये संपूर्ण की तरह छांह देता
अधिकांश दिन उस समय चलनी बांध के
पार तमसा के हरे सेवार-जल में डूब चुका था।
और जब सुबह हुई, बंदर ने मानवीय मुहावरे की याद की
और धोती फाड़कर रुमाल कर दिया।
पेनाद आंसू पोंछने के लिए, और टहनियों पर टांग दिया।
जब बताऊं, टहनियां सूखी नसों की लपट हो उठी थीं।

पेनादी की विसात कहां तक है, सोचो ज़रा
पर तक दुःशासन से आगे हैं।
किसी क्या बचा है, विना आंख बिछुड़े की वाट-सा
जब कुछ है निर्विकल्प
पेनादिज सारी ठहरी क्रियाओं में घिरीं लग गयी है—
और अनाम होता-होता
तुम्हारा किस मुंह से कहूं—
यही क्या हूं सर्वनाम।

-१९, पन्नालाल कालोनी, सिविल लाइंस,
आजमगढ़-२७६००१



सर फीस-माफ कमेटी में हैं। वे कहते हैं फीस माफ नहीं होगी, नहीं तो यह बताओ वह चिट्ठी किसने लिखवायी थी, किसने लिखी थी ...'

स्टाफ रूम तक पहुंचते मीता का सिर चक्कर खाने लगा था। जिम की आवाज़ मानो चीखकर उसे कह रही थी—'मीता, तू क्यों जा रही है, क्यों जा रही है, मीता, तू क्यों जा रही है?' स्टाफ रूम के दरवाजे का पर्दा सरकाते ही अरुण सेठी उसे दिखायी दे गया। जाकर उसी के सामने वह रुकी।

'मिस्टर सेठी, आप बच्चों को क्यों तंग कर रहे हैं? आपको जो कहना था मुझसे कहते !'

'मैं आपसे कोई बात नहीं करना चाहता।'

मीता का दुखता सिर झन्नाने लगा था। बड़ी जोर से वह हंसी। स्टाफ के लोगों की ओर देखकर बोली, 'यह अरुण सेठी हैं। हम से बात नहीं करना चाहते। इनके खिलाफ विद्यार्थियों ने खत लिखा। मैंने इनसे कहा कि वह खत फड़वा डालते हैं, तो मुझसे बोले, आप किसी को इस विषय में कुछ बताना नहीं, पर अपने आप ये बच्चों से पूछते हैं कि बताओ खत लिखवाया किसने? उनकी फीस माफ करने से इंकार करते हैं। मिस्टर सेठी, मुझसे पूछ लिया होता, अगर शक मुझ पर था आपका?'

'कहा न कि मैं आपसे बात नहीं करना

चाहता। आपका बिहेवियर बहुत गलत है।

'सो तो है ही, तभी आप कई दिनों मे मुझे देखकर मुंह फेर लिया करते हैं। औरों को जाने क्या-क्या कहते रहे हैं। इसी से बहुत से लोग मुझसे आंखें चुराते हैं। हैलो का जवाब तक नहीं देते। यही "बिहेवियर" तो सीखने आयी हूं... ?'

मीता यकायक वहीं बैठ गयी है कुर्सी पर। सारा स्टाफ-रूम एलफ्रेड हिचकाक की फिल्म 'द बर्ड्स' का एक सीन बन गया है। ढेर-के-ढेर काँप उसकी तरफ कांव-कांव करके उतरे चले आ रहे हैं। और अरुण सेठी गिद्ध की तरह बैन फड़फड़ाकर मंडरा रहा है इस प्रतीक्षा में कि कब मीता की घुटती सांसें आनी बंद हो जायें। अपने दोनों हाथों से मीता ने अपनी आंखें कसकर ढक लीं, जैसे उसके आंख बंद कर लेने मात्र से यह दृश्य उसके मन से हट जायेगा।

०००

अपने कलाकार मौसाजी के दरों के पास जमीन पर बैठी, गोदी में सिर डाले मीता बहुत देर से रो रही है। रोते-रोते उसकी हिचकी बंध गयी है। कालेज में उससे रुका नहीं गया था। टेक्सी पकड़कर सीधी अपने पिता, सखा, सहोदर अपने कलाकार मौसाजी के यहां चली आयी थी। तब से यहीं फर्श पर बैठी रो रही है। 'लोग इतने गंदे क्यों हैं? झूठ क्यों बोलते हैं? झूठ क्यों बोलते हैं... ?'

नवनीत

१४२

रोते-रोते जब रोना चुक गया और
 रुकियां रह गयीं तो मौसाजी ने उसका
 पैर ऊपर उठाया है। वे कुछ भी नहीं कह
 रहे। बस, गहरे उसकी आंखों में देख रहे
 हैं। उसकी आत्मा तक। वे यह भी नहीं कह
 रहे हैं कि 'लड़की, तू इतने दिन से आयी
 हो नहीं? कहां रही? यह क्या हाल बना
 ला है तूने?' वे कुछ नहीं कह रहे हैं।
 न बहुत गहरे उसकी आत्मा में यह देख
 रहे हैं कि जिसकी पीड़ा से वह इतना
 क्षिप्त हुई, वह धाव कितना पैना है।
 बिना कुछ पूछे, बिना कुछ कहे वे उसकी
 आत्मा तक देखते चले जा रहे हैं।
 धर पहुंचने तक धूप बिलकुल ढल
 चुकी है। आकाश पर हलकी-सी बदली ने
 गमा कर दिया है। मीता नहाकर आयी
 है। बुशनुमा छपाई की हल्की-सी जार्जट
 से साड़ी उसने पहन ली है। शीशे में
 बना चेहरा ध्यान से देखते हुए उसे खयाल
 आया है कि आज बृहस्पतिवार है।
 शायद आज आये। मीता ने सून
 गये पर बिंदी सजा ली है। विशु ही दे
 रस बिंदियों के ढेर-से पैकेट और मनियारे
 की तो मानो पूरी दुकान ही उठा लाया था।
 'यह खाली कलाई मुझे अच्छी नहीं
 लगती, माभी। तुम चूड़ी पहना करो न ?
 बिंदी लगाया करो। क्यों नहीं लगातीं ?'
 'पगले, वहां बारह साल अमरीका में
 रखा यह सब करती थी? वहां तो ये
 चीजें मिलती भी नहीं थीं, फिर अटपटा
 माला है अब तो।'

लगा कर अटपटा। कहा कि कलाई
 खाली नहीं रखोगी ?'

दोनों हाथों में चूड़ी पहनते मीता
 सोचती है, शायद विशु आज भी न आये।
 पिछले सप्ताह नहीं आया। वह प्रतीक्षा
 करती रही। अक्सर चूक जाता है अब
 तो। नहीं रहा जाता तो पूछ ही लेती है,
 'क्यों नहीं आया, बता ?' जब नहीं
 पूछती तो गुस्से में कई-कई दिन अपने को
 साला करती है। एक-आध बार उसने
 झल्लाकर कहना भी चाहा है, 'क्यों रे,
 जब दोस्तों में बैठकर सिगरेट, पैग और
 प्रोग्राम चलते हैं तो तुझे क्या एक बार भी
 खयाल नहीं आता कि वह प्रतीक्षा करती
 होगी, शायद उसने खाना न खाया हो ?
 इतना ही लापरवाह था तो तुझे परवाह
 ही क्यों हुई कि मैं चूड़ी पहनूं !'

छि., नहीं सोचेगी वह ऐसा। चूड़ी
 पहनेगी, बिंदी लगायगी। न बंधेगी, न
 बांधगी। खुले रहने में ही मंगल है। कमल
 जब खुलता है तभी उसके भीतर सुख के
 भान-सा सोना बिखरता है और जब कभी
 भी विशु आयेगा, तो उसी तरह गोदी में
 लेटकर मचल-मचल कर कहेगा, 'मीता,
 मीता, मीता ! कह मीता, तू मां है और
 मीता भी।'

'हां विशु, हां, मीता भी हूं, मां भी।
 और सुन, हवा जब बांस के जंगल से
 गुजरती है, तो बांस भले ही टकराकर
 खड़खड़ करें या सांय-सांय, पर वांसुरी
 बांस के दिल में बजा करती है।



खजुराहो

जहां काम ही मोक्ष हो गया है

यहां मेरी साधना-डायरी के कु पृष्ठ प्रस्तुत हैं। खजुराहो के संसार-प्रसिद्ध कामिक शिल्प का जो अवबोध मैंने अपनी अन्तर्दृष्टि से पाया है, उसी को शब्द-रूप प्रदान करने की एक नाकाफी कोशिश मैंने यहां की है—लेखक)

२७ अप्रैल, १९७२ : पन्ना : खजुराहो

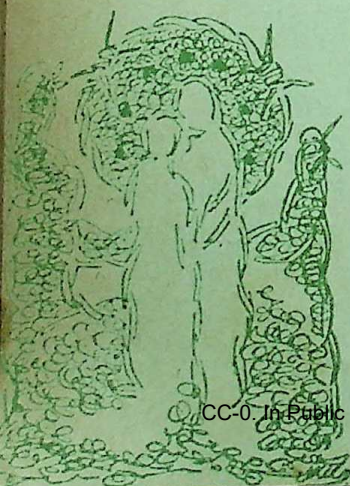
आज सुबह बहुत जल्दी तैयार होकर मैं और रमेश (रमेशचन्द्र शाह) पन्ना के बस-अड्डे पर जा पहुंचे। देर हो जाने पर भी बस मिल गयी। जैसे किसी सुनिश्चित आयोजन के अन्तर्गत है यह यात्रा। और चलने से पहले ठाकुर ने चाय और पान का प्रसाद भी दे ही दिया।

... हम खजुराहो के मार्ग पर थे। मेरी मनोकामना का चिर अभीप्सित खजुराहो : संसार का अनुपम कलातीर्थ :

पृथ्वी का अनन्य सौन्दर्य-तीर्थ। इस यात्रा में खजुराहो जाने का प्रस्ताव जब से रमेश ने किया था, तभी से मन में यह साध

संजोये था कि मेरी जो कामाध्यात्मिक कविताओं की 'सिरीज़' अधूरी पड़ी है, उसे जीवन के इस ऊर्ध्वकाम पर्व में अवकाश देकर चेतना-स्तर पर समापित करना होगा। इसका इंगित-निर्देश खजुराहो के भगवत् कन्दर्पेश्वर महादेव के श्रीचरणों में पान चलाऊंगा। इसी गोपन जिज्ञासा को लेकर उस सुन्दर सवेरे मैं खजुराहो की ओर यात्रित था।

... ऐसी यात्रा में रमेश जैसा अति आत्म-सहचर पाकर मैं बड़ी परिपूर्ण महसूस कर रहा था। बस में यकायक पाया कि मेरी चेतना बहुत प्रांजल और स्निग्ध हो गयी है। रास्ता अत्यन्त सुन्दर था। मध्य-प्रदेश रोडवेज की बहुत ही उम्दा, समरस, काली डामर की सड़क पर बस, जैसे मुलायम मुडौल बांह से



दूरी की तरह फिसल रही थी। राखी के
 लौन बसन्ती सवेरा। दोनों ओर सूआपंखी
 आवा वाली मनोरम वृक्ष-मालाएं। दूरान्त-
 व्यापी पहाड़ी प्रकृति का सुरम्य, सुगम्य
 मन्द्यप्रसार। राह में हठात् दूरी पर
 कोई एकाकी ऊंचा महल दिखाई पड़ा।
 मुना वह कोई प्राचीन गढ़ी है, और उसकी
 अपनी एक रहसिल-रोमांचक कहानी है।
 ... रोमानी कवि की इस पहली लोक-
 यात्रा में सभी कुछ तो रोमानी है।

रास्ते में टेढ़े-मेढ़े चढ़ाव-उतारों वाले
 एक घाट आये। पर्वती घाटों की खन्दकें
 झूले यात्रा में बेहद आतंकित करती हैं।
 पर रमेश जैसे अन्तर्सखा का साथ, मध्य-
 प्रदेश की सुरक्षित चिकनी राज-सड़कें,
 नुबद वसों और कन्दर्पेश्वर की कोमल
 मन्द्य-यात्रा में मानो घाट और खाइयां
 भी एक स्निग्ध फलक पर अंकित दूरागत
 चित्र-से ही गुजर गये। बड़ा ही 'सिरीन'
 और मुहाना सवेरा था। रास्ते में एक
 विराम-स्थल पर, झाड़ तले के एक होटल
 में गाढ़ी दूधिया चाय पी गयी। फिर खस्ता
 लो पान, इलायची और केशरिया तम्बाकू
 के साथ जमाया गया। यहां का यह केशर-
 भीना जर्दा मुझे एक नयी फ़िज़ा में भाव-
 विह्वल कर देता है। केशर से अधिक
 कोई और खुशबू मुझे पसन्द नहीं। एक
 ऐसी गहरी सुगन्ध जिसमें एक साथ पाव-
 न्ना और विलासिता की अनुभूति होती
 है। ... मेरी ममतामयी मां का नाम
 भी तो केशर था। ...

१९८१



कामेश्वर शिव और कामेश्वरी शिवानी
 का दिव्य मिथुन : खजुराहो

कोई डेढ़ दो घंटे में खजुराहो जा पहुंचे।
 पहले एक छायालस घाट वाला सुन्दर
 तालाब आया। हर नयी भूमिका, नया
 रूप मुझे नयी-नवेली अपरिचित प्रिया के
 परस से कातर-रोमांचित कर देता है।
 उस तालाब को देखकर भी कुछ वैसी ही
 अनुभूति मुझे हुई। ...

१४५

हिंदी डाइजैस्ट

... एक सुव्यवस्थित आधुनिक रेलिंगों के फेंसिंग से घिरे विशाल उद्यान में भूरे-लहैहें पत्थरों के अनेक मन्दिरों का समूचा जगत् वहां उपस्थित था ! बाग और फेंसिंग आज के और व्यवस्थित हो सकते हैं, पर नौवीं-दसवीं सदी के दौरान चन्देला राजवंशियों ने जब एक साथ इस वन-खण्ड में विभिन्न देवों के इतने देवालियों का निर्माण करवाया होगा, तो निश्चय ही उनकी कल्पना में कला, सौन्दर्य और देवत्व के समन्वय की एक अद्भुत 'दृष्टि' आविर्भूत हुई होगी। सदियां गुजर गयीं: हिन्दू संस्कृति का वह सुवर्णयुग अवसान पा गया, महाकाल के रंगमंच पर अनेक यवनिकाएं उठीं और गिरीं: हूण, शक, कुषाण, तुर्क, मुगल, पठान, फिरंगी—जाने कितनी राजसत्ताएं इस देश की छाती खूंद कर चली गयीं। ... पर ऐसा जान पड़ता है, जैसे इस वन-खण्ड में एक सदावसन्त सवेरा चिरकाल से विद्यमान है। आतताई आक्रमणकारियों की तोपें और तलवारें कहीं बहुत दूर ही गरजकर और झनझनाकर टूट गयीं, अमर सौन्दर्य के इस अप्सरा-कानन का किनारा भी मानो वे छू न सकीं। कुछ ऐसा महसूस होता है जैसे कोई अलौकिक सौन्दर्य का स्वप्न यकायक इस वन्य-भूमि की प्रकृत शिलाओं में रातोंरात शिल्पित हो उठा होगा। किसी हवा में गुजरती अप्सरा का केलिगान मानों फूल बनकर यहां चू पड़ा है, और पृथ्वी के पाहनों में अदृश्य जादुई उंगली से आकार

ले उठा है। अखण्ड, अछूता, अक्षुण्ण सौन्दर्य का कोई कल्पलोक जैसे पृथ्वी पर ठहरा-रह गया है। कला जिस तरह कालजयो होती है, उसका मूक और ज्वलन्त सन्देश है, खजुराहो के मन्दिरों का यह देव-कानन। पृथ्वी पर होकर भी ऐसा लगता है, जैसे यह मन्दिर-मण्डित भूखण्ड अपा-थिव है। इसके प्रांगण में प्रवेश करने पर लोकान्तर या जन्मान्तर करने जैसी एक आश्चर्यानुभूति होती है।

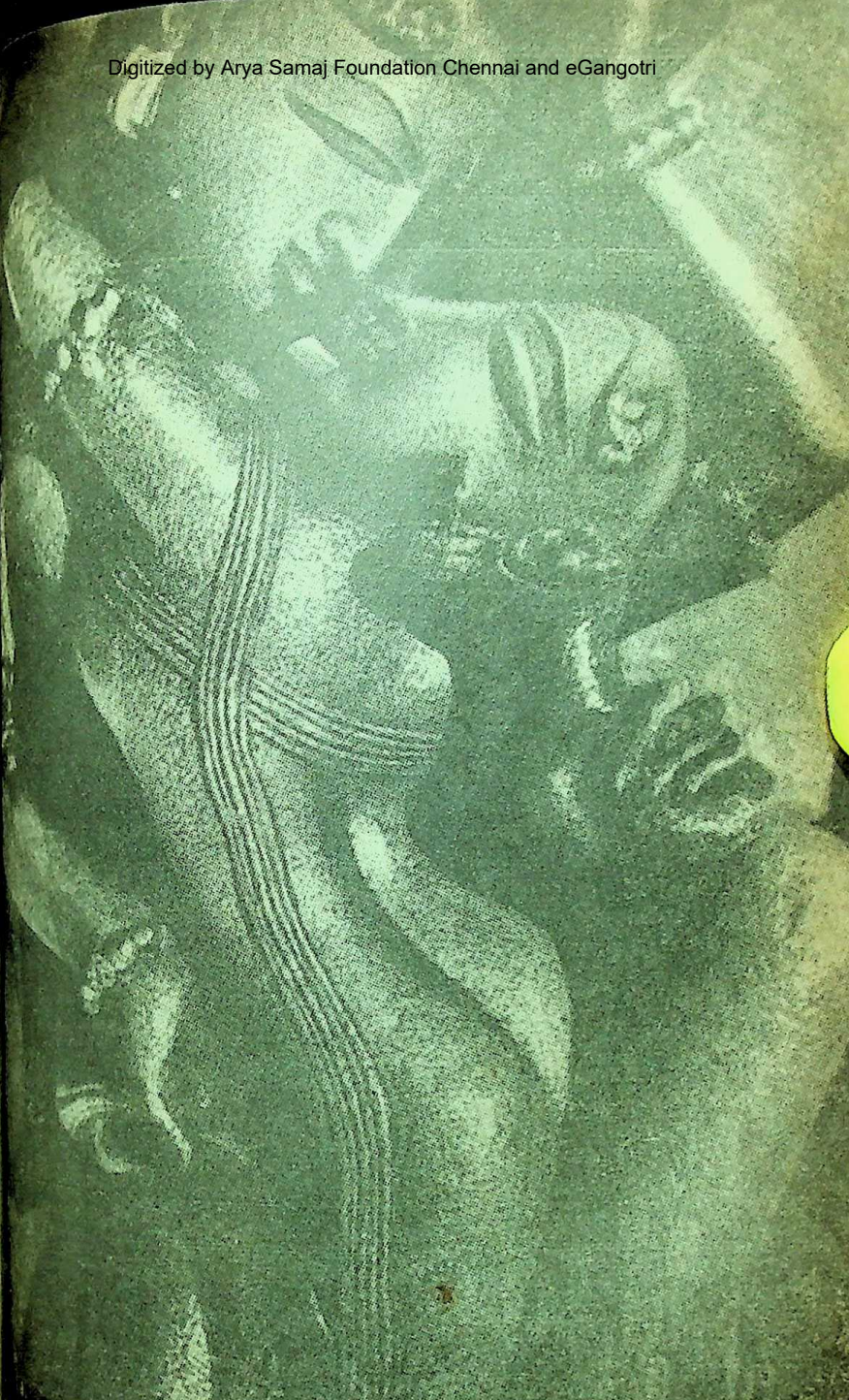
कैसे होंगे वे राजपुरुष जिनके मनों में ऐसे भव्य-दिव्य स्वप्न का उदय हुआ। और कैसे होंगे वे कवि-शिल्पी, जिन्होंने पत्थरों के भीतर आत्मा की कोमलतम सौन्दर्य-उर्मियों को उकेरा है। निश्चय ही उनकी रक्त-शिराओं में दिव्य युगलों ने निरन्तर केलिक्रीड़ा की होगी। निश्चय ही रसेश्वर की रासलीला उनकी कई पीढ़ियों के रक्त में प्रवाहित हुई होगी। इसी से तो दो-सौ वर्षों तक अपने नाम-गोत्र, वंश, कीर्ति के सारे आत्मभान को भूलकर, पीढ़ी-दर-पीढ़ी वे इन पत्थरों में एक अखण्ड सौन्दर्य-स्वप्न को, अपनी अविराम छेनी के मृदु-मन्द और मौन आघातों से, अविरल और धाराप्रवाह साकार करते चले गये। मर्त्य मानव की सीमित सामर्थ्य से यह सम्भव नहीं। असीम और अनन्त अमृतेश्वर ने जब मर्त्य देह के

~~~~~  
 दायें पृष्ठ पर : खजुराहो का संसार-  
 प्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ मिथुन-शिल्प

नवंबर



क्षुण्ण सौन्दर्य  
 पर ठहरा-सा  
 रह कालजयो  
 वलन्त सन्देश  
 का यह देव-  
 ऐसा लगता  
 भूखण्ड अपा-  
 वेश करने पर  
 रने जैसी एक  
 जनके मनों में  
 उदय हुआ।  
 ल्पी, जिन्होंने  
 की कोमलतम  
 है। निश्चय  
 दिव्य युगलों  
 ोगी। निश्चय  
 उनकी कई  
 त हुई होगी।  
 क अपने नाम-  
 आत्मभान को  
 ने इन पत्थरों  
 न को, अपनी  
 न्द और मौन  
 र धाराप्रवाह  
 र्त्य मानव की  
 व नहीं। असीम  
 ब मर्त्य देह के  
 ो का संसार-  
 लप  
 नवंबर



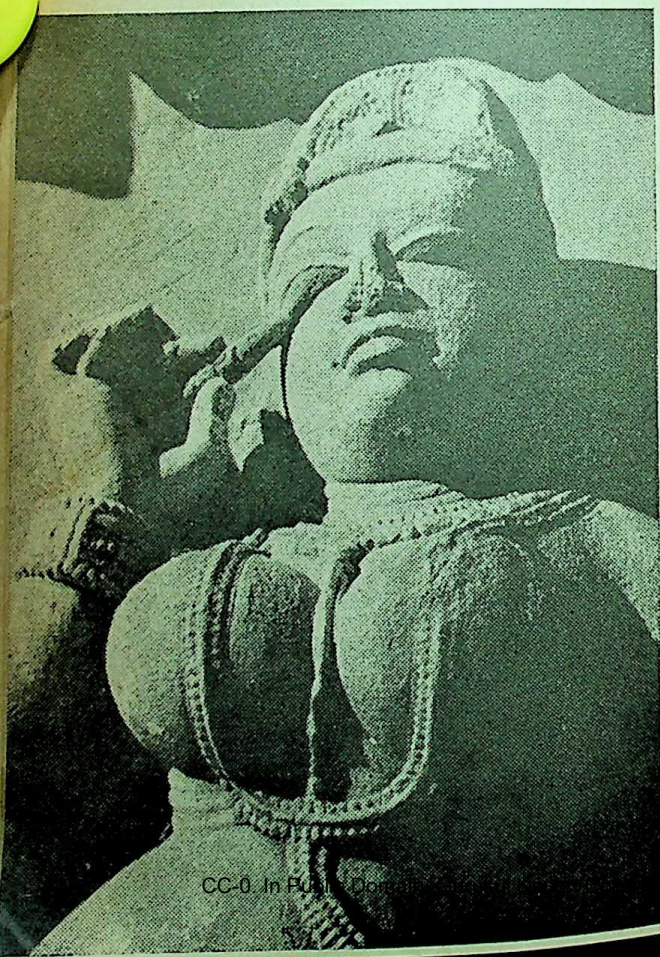


भंगुर रक्त-मांसों में अथवा अक्षय-सौन्दर्य के आधार पर वाहिन की होगी, तभी कला की ऐसी लोकोत्तर स्वप्न-सृष्टि इन पाषाणों में रूपायित हो सकती है।

काल यहां ठहर गया-सा लगता है। नन्दन के कल्पकाम फूलों की सुगंधों से भरे पवन में, अदृश्य रूप से उड़ते देव-देवांगना युगलों की उड़ियमान मदन-केलि, किसी मानव-कलाकार के स्वप्नोन्मेष से खिंचकर पृथ्वी पर जाने किस एक रात मन्दार-कुसुम-सी यहां चू पड़ी है। किसी पार्थिव कवि के उद्दाम सौन्दर्य-काम की तरंग पर, यहां उर्वशी ने मानुषी गोद

में आत्मार्पण किया है। अथाह नीलिमाओं की विराट् वीणा के नित-नूतन अदृश्य तारों की अविराम सुरावलियों में से हर दिन यहां सौन्दर्य की कोई अनोखी गान-लहरी उतर आती है, और नीरव भाव में गुंजती सुनायी पड़ जाती है। ....

... कितने व्याकुल प्राण लेकर, कैसे विचित्र भयादर के भाव से मैं सबसे पहले लक्ष्मण-मन्दिर की सीढ़ियां चढ़ा। ऊंचे चबूतरे के एक कोण पर, प्रचण्ड शार्दूल-मूर्ति दिखायी पड़ी, नीले आकाश में उरेही-सी अप्सरा की उद्भिन्न छाती पर पैर धरकर शार्दूल, उसके उन्मत्त रूप-यौवन के दर्प का दलन कर रहा है। यहां के सारे ही काम-केलि के मुसलसन शिल्पांकनों के बीच-बीच में, गीत की टेक की तरह हर जगह यही शार्दूलराज अप्सरा-भंजन करते हुए विराजमान है। तलछट तक कामभोग करके, अन्ततः पूर्णकाम होने पर, कामिनी-जय का दृश्य इन शार्दूलों में पतीकमान हुआ है। सारे ही मन्दिरों की परिक्रमाओं में, चौतरफा दीवारों और शिखरों में, हर सम्भव और कल्पनीय रूपों में, नर-नारी की काम-क्रीड़ा यहां उद्दाम-तम रूप में उत्कीर्णित है।



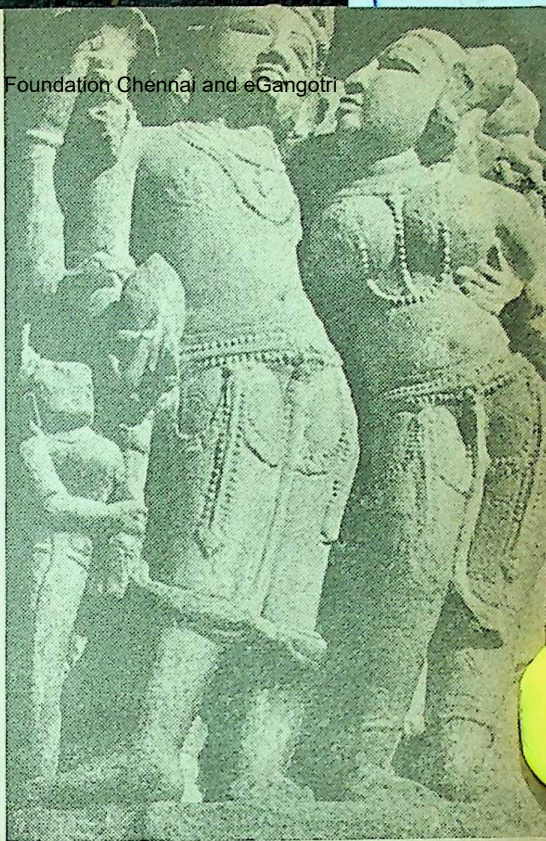


ह नीलिमाओं  
नूतन अदृश्य  
यों में मे ह  
अनोखी गान-  
रीख भाव मे  
। ....  
लेकर, कैसे  
में सबसे पहले  
चढ़ा। उंचे  
चण्ड शार्दूल-  
आकाश में  
मन्न छाती पर  
उन्मत्त रूप-  
का दलन कर  
के सारे ही  
के मुसलसन  
के बीच-बीच  
टेक की तरह  
शार्दूलराज  
करते हुए  
। तलछट तक  
रके, अन्ततः  
पर, कामिनी-  
इन शार्दूलों में  
आ है। सारे  
की परिक्रमाओं  
दीवारों और  
पर सम्भव और  
में, नर-नारी  
डा यहां उद्दाम-  
उत्कीर्णित है।

अने परमेश्वर प्रभु के समक्ष, यह  
पुरुष ने अपने मन के मनोज की  
नारी ही तरंगों को, मानव-आत्मा  
निरन्तर बेचैन रखने वाले तमाम  
पुरुषों को, उन्मुक्त भाव से खोल-  
कर निवेदन किया है। मानव के  
अन्तरछिपे पशु ने, यहां पशुपतिनाथ  
के चरणों में निर्बाध आत्म-समर्पण  
किया है। इस नितान्त नग्न, उत्कट  
राम-क्रीड़ा में, तनाव और कसाव  
पाकाष्ठा पर पहुंचकर देह के  
स्त-मांस के बन्धनों को जैसे चूर-  
रू कर देता है। और अनायास ही  
जाना मुक्त होकर अगाध अन्त-  
रिक्ष के 'ईथर' में तैरने लगती है।  
पेदूयावलियां शिराओं और मांस-  
पंजियों को जितना ही अधिक कसती  
शरतानती हैं, उतना ही अकस्मात  
अजीब राहत और उन्मोचन का  
वह्वास भी कराती हैं।

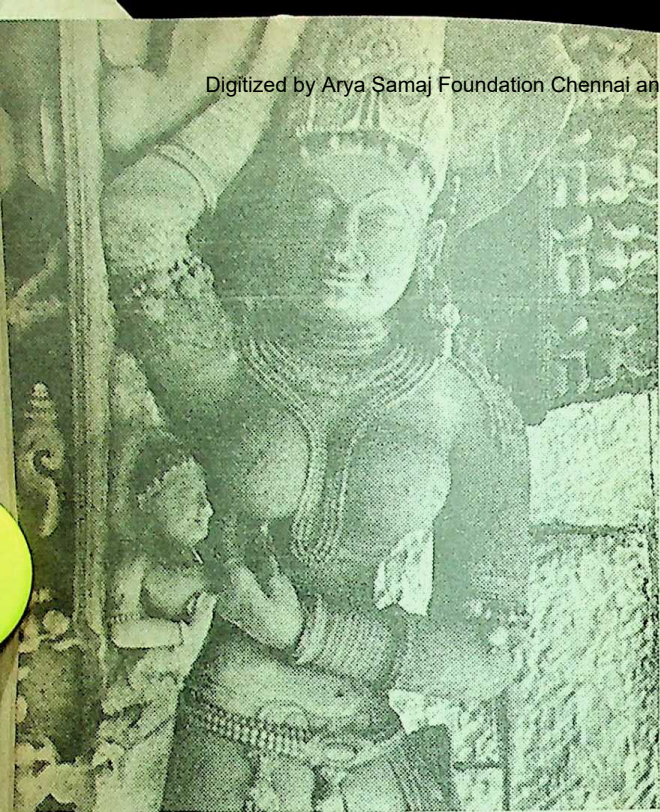
हमारे यहां के कई तथाकथित आधु-  
निकवादी बौद्धिकजन, लेखक और कला-  
कार बिना जाने, बिना समझे-बूझे जो  
अनालक कभी-कभी हमारे धर्म-अध्यात्म  
और संस्कृति पर आरोप लगा बैठते हैं  
कि हमारे देश में कामवासना वर्जित है,  
निर्जित है, 'टेबू' है, उन्हें खजुराहो,  
रजवाय, रामेश्वरम, कोणार्क और भुवने-  
श्वर के देव-मन्दिरों के इन मुक्त कामिक  
चित्रों को नहीं भूल जाना होगा। ये  
चित्रों युग-विशेष की विकृत मनोदशा

इस लेख के सभी चित्रों के छायाकार : सूरज एन. शर्मा



या भ्रष्टाचार के परिणाम नहीं। यह महज  
विलासी राजपुरुषों और पथभ्रष्ट वामा-  
चारी तांत्रिकों का विपथगामी व्यभिचार  
नहीं। यह भारत के मुक्तिकामी योगीश्वरों,  
द्रष्टाओं, योगी-कलाकारों और आत्मा की  
महावासना के आप्तकामी कवियों की  
विलक्षण सौन्दर्य-सृष्टि है। इसमें नित-  
नव्य प्रगतिशील और निरन्तर विकासमान  
अन्तर-आत्मा की मुक्ति-यात्रा की मनो-  
वैज्ञानिक प्रक्रिया का निगूढ़ रहस्य समाया  
है। कला-शिल्प में निर्ग्रन्थ काम-क्रीड़ा





द्वैती लीला में वे ही 'एकदेह  
बहुस्याम' होकर, अमर  
नर-नारी युगल के भीतर  
काम-क्रीड़ा कर रहे हैं।  
समग्र रूप में इस चरम-गरम  
सत्ता-स्वरूप का साक्षात्कार  
हो जाने पर, मैथुन आनंद  
आप ही अन्तर्गत और अवि-  
रल हो जाता है। तब  
बाहर के विखण्डित मैथुन के  
हम मात्र द्रष्टा रह जाते  
हैं। इस संयुक्त स्थिति में  
नर-नारी युगल के रूप में  
बाह्य मैथुन होने पर भी  
उसमें रम्माण होकर भी,  
उसी अविभाज्य मूर्त में,  
कालातीत रूप से हम उनके  
निश्चल, अविकल, द्रष्टा  
साक्षी तथा स्वाधीन और

दिखाकर, मानव मन की तमाम जटिलतम  
ग्रन्थियों के स्रष्टा मनोज के सारे ही रहस्य-  
जालों को यहां अनावरित किया गया है।  
और इस प्रकार अनायास ही मानव-  
चेतना को अत्यन्त मनोवैज्ञानिक तरीके  
से निर्ग्रन्थ और उन्मुक्त कर देने का आयो-  
जन इन शिल्पों में हुआ है।

कन्दर्प की समस्त लीलाओं के केन्द्र में,  
देवालय के भीतर बैठे हैं स्वयम् कन्द-  
पेश्वर। आप स्वयम् ही तो वे अर्धनारी-  
श्वर हैं। अपनी दक्षिण देह में वे पुरुष हैं,  
अपनी वाम देह में वे नारी हैं। जगत् की

आप्तकाम भोक्ता भी होते हैं। बाह्य  
पुरुष और बाह्य-नारी, अन्तर-पुरुष और  
अन्तर-नारी के रूप में प्रत्यक्ष हमारे  
भीतर स्वयम्भूत होकर, सहज हो  
अन्तर-मैथुन में लीन हो रहे हैं। इस  
बिन्दु पर सम्भोग समाधि हो जाता है।  
नित्य, निरन्तर स्वायत्त सम्भोग ही  
समाधि है। इसमें ज्ञान और रस का अन्तः  
यास अद्भुत समन्वय हो जाता है। मुक्ति  
और भुक्ति यहां एकाकार होती है। पशु-  
पतिनाथ यहां पशु पर सवार हैं। ...

देवालय में बैठे हुए देवाधिदेव कन्द-  
पेश्वर

नवनीत

१५०



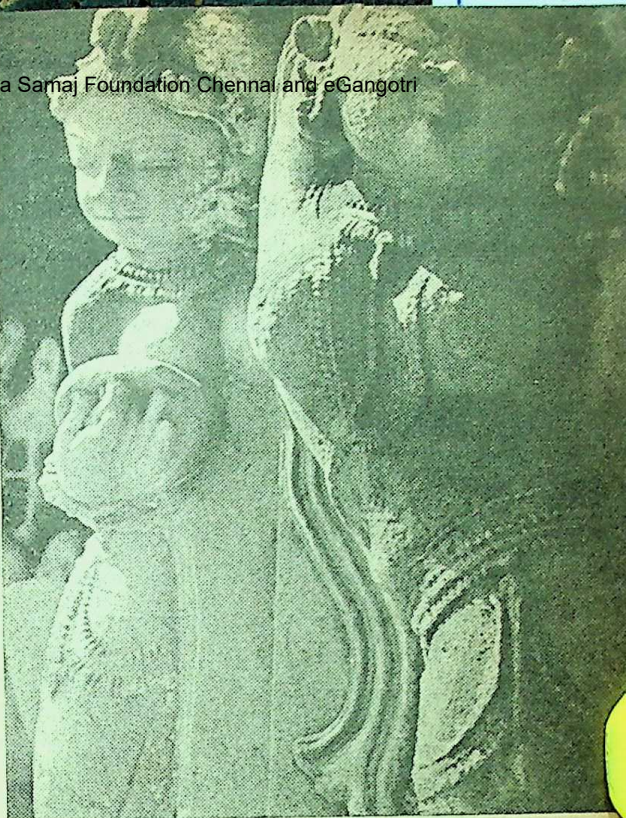
वे ही (एक) कर, अमर  
गल के भीतर  
कर रहे हैं।  
इस चरम-परम  
का साक्षात्कार  
मैथुन आनन्द  
गर्भ और अवि-  
कलता है। तब  
खण्डित मैथुन के  
पष्टा रह जाते  
संयुक्त स्थिति में  
गल के रूप में  
होने पर भी  
ण होकर भी  
राज्य मुहूर्त में  
रूप से हम उनके  
अविकल, द्रष्टा  
स्वाधीन और  
होते हैं। बाह्य  
अन्तर-पुरुष और  
में प्रत्यक्ष हमारे  
पर, सहज हो  
रहते हैं। इस  
हो जाता है।  
सम्भोग ही  
पर रस का अन्त  
जाता है। मुक्ति  
होती है। पशु-  
वार हैं। ....  
देवाधिदेव कन्द-  
नवर

रत्न महादेव की विराट्,  
बबल, समग्र देह हैं—ये  
बुद्धि-हो के मन्दिर। यहां  
भगवान् के सच्चिदानन्द  
नन्द की उन्मुक्त लीला-  
रंगों पर, काम मुक्त  
रत्न-केलि करता हुआ,  
आवास पूर्णकाम और  
अनकाम हो उठा है।

... यह है भारतवर्ष का  
रत्न-परम सत्य-साक्षात्कारी  
जीवन-दर्शन। यह बुद्धि-मान-  
सिक और वैकल्पिक चिन्तन-  
संन नहीं है, यह परम सत्ता  
का जीवन-परक अनुभावन  
और ज्ञानालोकित साक्षा-  
त्कार है। भागवत की रास-  
गोला से लगाकर शैवों और  
शाक्तों के शिवशक्ति मिलन

और तात्त्विक साधनाओं तक में सच्चिदा-  
नन्द भगवान् का यही चिद्बिलास प्रतीय-  
मान हुआ है। खयालों और भावनाओं से  
बेकने वाला आनुमानिक तर्कवाद यह  
नहीं; यह अवितर्क्य और अविकल्प  
अन्तिम सत्ता की अनन्त-आयामी संयुक्त  
गोला का खुली आंखों होने वाला अव्या-  
वृत्त दर्शन है। यह दर्शन हो जाने पर,  
अविकल परम-सुख सहज-सुलभ हो जाता  
है। तब आंखों में निरन्तर सुरा के समन्दर  
कहत हैं, और गोद में निरन्तर सुन्दरी  
केलती है। भगवान् दत्तात्रेय को एक बार

१८१



इसी रूप में प्रत्यक्ष देखने पर, एक मानस-  
विकल्पी मानुष ने उनके देवत्व में सन्देह  
किया था और उन्हें व्यभिचारी समझ  
लिया था। पर निर्द्वन्द्व व्यभिचार ही तो  
अखण्ड ब्रह्मचर्य है, इस विगूढ़ रहस्य को  
वह बेचारा निपट मानसिक मनुष्य नहीं  
जानता था।

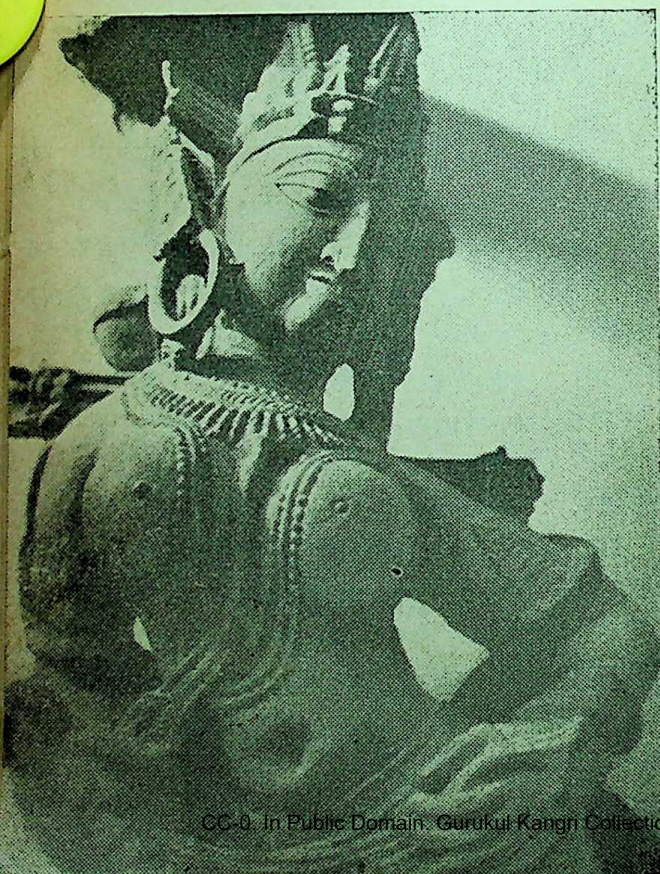
.... बात इतनी सूक्ष्म, गहरी और दूर-  
गामी हो गयी है कि साधारण जन के  
लिए खतरनाक हो सकती है। पर अन्त  
तक हम साधारण नहीं बने रह सकते, सो  
इस बात के मर्म को समझना होगा



निर्द्वन्द्व व्यभिचार की अर्थ अनगल विषय-भोग नहीं है। जो स्वरूप में स्थित और रमणशील हो जाता है, वह सर्व में आत्म-भाव से अनायास ही रमण करता है। इसी को हमारे योगियों ने अपने अनुभव के आधार पर सर्वात्मभाव कहा है। जो आत्म-रमण हो जाता है, वह सहज ही सर्वरमण होकर रहता है। इसी से जो ब्रह्मचारी हो जाता है, वह अनजाने ही आपोआप व्यभिचारी हो जाता है। साधारण भाषा में, जो अनेक के साथ रमण करता है, वही तो व्यभिचारी कहलाता है। मूलगत रूप से हर स्त्री-पुरुष में व्यभिचार की लालसा होती है। शरीरतः एकवारगी

ही नाना पुरुषों या नाना स्त्रियों के साथ रमण करके, इस लालसा की तृप्ति सम्भव नहीं है। आत्मिक भाव से ही प्राण की इस चरम चाह की तृप्ति पायी जा सकती है। इसी से इस तृप्ति को पाने के लिए पहले आत्म-रमण की क्षमता प्राप्त कर लेनी पड़ती है। आत्म स्वभाव से ही अनन्त, असीम, विराट्, सर्वव्यापी और सर्वसि-भावी होता है। भगवान् की कृपा से योग द्वारा आत्म-स्वभाव में स्थिति अथवा चर्या हो जाने पर, सर्व में संचरण और रमण सहज-सम्भव हो जाता है। तब हर पुरुष को हर नारी के साथ और हर नारी को हर पुरुष के साथ रमण करने के लिए

उसकी अनुमति नहीं लेनी पड़ती, उस पर निर्भर नहीं करना पड़ता। अपनी स्वेच्छा से और स्वायत्त भाव से, हर स्त्री हर पुरुष के साथ, हर पुरुष हर स्त्री के साथ अपने ही भीतर रहकर पूर्ण सुरति-सुख पा लेता है। इसी से योगी को सम्मुख पाकर, लोक की सारी ही रमणियां उस पर टूट पड़ती हैं, उसके चरणों में निछावर होती हैं। क्योंकि, उनके भीतर वैठी प्रकृतिजात व्यभिचारिणी को उसमें निर्वाधसुख की तृप्ति उपलब्ध होती है। इसी अर्थ



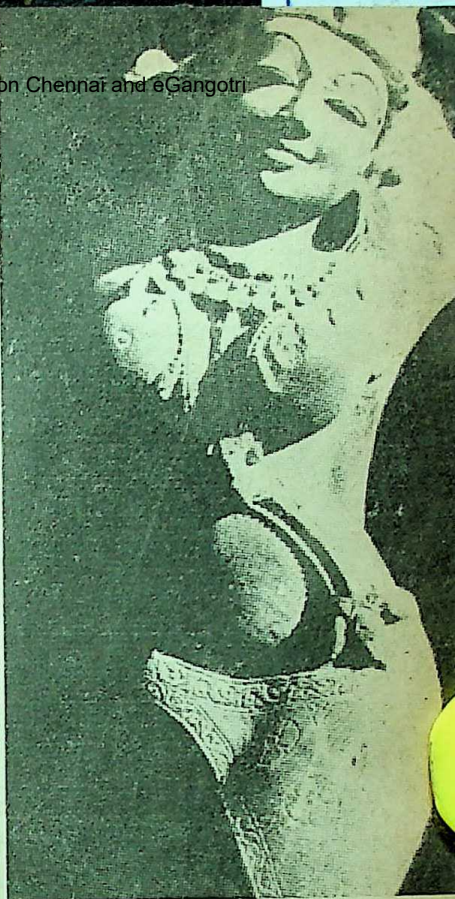


जयों के साथ तृप्ति सम्भव प्राण की इस ता सकती है। के लिए पहले प्त कर लेनी से ही अनन्त, और सर्वसि- कृपा से योग स्थिति अथवा संचरण और है। तब हर और हर नारी करने के लिए ति नहीं लेनी र निर्भर नहीं ता। अपनी र स्वायत्त भाव हर पुरुष के हर स्त्री के भीतर रहकर ख पा लेता है। को सम्पु- की सारी हों पर टूट पड़ो- णों में निष्ठाव- क्योंकि, उनके प्रकृतित्त- को उममें की तृप्ति उप- है। इसी अं-

में योगी अखिल सृष्टि का, अनन्त रम- नियों का भोक्ता होता है। आत्म-ब्रह्म में र्चा होने पर ही, इस परम व्यभिचार की नामव्यं और सत्ता प्राप्त हो सकती है। तब ब्रह्मा होगा कि पूर्ण ब्रह्मचारी ही पूर्ण व्यभिचारी हो सकता है।

आधुनिक मनोविज्ञान अवचेतन और अचेतन के तलों को छानता हुआ केवल ही तक पहुंच सका है कि प्राणी के मूल में रामभाव ही केन्द्रीय और सबसे प्रबल है। फ्रायड के अनुसार काम-चेतना के भीतर से ही सारा जीवन प्रवाहित और विकसित होता है। मनुष्य की सारी ही भावनाओं, क्रेटाओं, प्रवृत्तियों, प्रयासों और सर्जनों की प्रेरणा काम के भीतर से ही आती है। जीवन की व्यवस्था में यह काम अबाधित होने से ही अनेक ग्रंथियां और कुंठाएं मानव मन को ग्रस्त कर लेती हैं। इस विषय में मतभेद का कोई कारण नहीं है। फ्रायड को यह खोज मानव-मनोविज्ञान की एक महान् उपलब्धि है। पर वाधित कामेच्छा से मूर्जित इन ग्रंथियों का उन्मोचन, खण्ड- खण्ड व्यक्ति-देह के कामिक रमण द्वारा सम्भव नहीं है। यह खण्डित दैहिक-मान- निक रमण, खण्डित तृप्ति ही दे सकता है। यह ग्रंथियों का उन्मोचन करने के बजाय उन्हें और भी गुणानुगुणित ही कर सकता है। किन्तु मानव की मूल अन्तश्चेतना अवाध, अपार, सर्वरमण काम की उत्कण्ठा से आकुल-व्याकुल है। इसी से एक स्त्री एक पुरुष से, और एक पुरुष एक स्त्री से

१११



रमण करके पूर्ण तृप्ति नहीं पाता है। नित नव्य रूपों में, नितनूतन बार भोग-रमण करने की आर्त लालसा से मानव प्राण सदा आक्रन्द करता रहता है। योगियों ने अन्तश्चेतना के इस मूलगत काम के स्वरूप को पूर्णतया समझा है और उसका साक्षा- त्कार किया है। और इस अनन्त काम के भीतर ही छुपी, इसकी अनन्त तृप्ति के रहस्य का पता पा लिया है। इसी से वे उस उत्स तक पहुंचे हैं, जहां से यह काम



उत्पन्न होता है, और जिसके भीतर इस काम की पूर्ण परितृप्ति भी समायी है।

खजुराहो के केन्द्रीय देवालय के भीतर बैठे हैं स्वयम् कन्दर्पेश्वर, जो आप ही उस काम के उत्स हैं, जिसमें से यह द्वन्द्वात्मिका सृष्टि प्रवहमान है। एकमेव अपनी स्वायत्त इच्छा से ही अनेक हुए हैं, और इस तरह उन्होंने इस नानात्मक सृष्टि की रचना की है। अपने स्वच्छन्द चिद्विलास के लिए उन्होंने स्वयम् ही इस द्वन्द्व को उत्पन्न किया है, सो उन्हीं की स्वतंत्र इच्छा के भीतर इस द्वन्द्व का समाहार अथवा विसर्जन सम्भव है। इन मन्दिरों की समूची दीवारों और शिखर-परिसर में जो अपार और अविरल मदन-केलि उत्कीर्ण है, उसमें चराचर जगत् में व्याप्त काम की लीला को पराकाष्ठाओं पर अंकित किया गया है। दैहिक काम को यहां बेबाक कर दिया गया है: यानी बेबाकी की हद तक दिखा दिया गया है। यहां तक कि समलैंगिक मैथुन और पशु के साथ मानव के सम्भोग तक को इन शिल्पों में समेट लिया गया है। सम्भोग की हरं सगभव विधि और आसन तक को यहां अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। मदन-क्रीड़ा के एक ही संयोजन में एकबारगी ही अनेक स्त्री-पुरुषों के संयुक्त काम-भोग को भी यहां दिखाया गया है।

मंशा यह है कि मनुष्य की अनर्गल कामेच्छा को, उसकी बहुरमण की स्वच्छन्द व्यभिचार-कामना तक को यहां

खुलकर खेलने का अवसर दिया गया है। इस प्रकार देह का काम यहां अपने को बेबाक करके, अनायास स्वयम् अपने को ही अतिक्रान्त कर जाता है।

.. दर्शक के लिए इसमें एक निगूढ़ मनोवैज्ञानिक योजना है। वह यहां भोक्ता नहीं, उस अनर्गल काम-भोग का मात्र दर्शक होता है। इस प्रकार द्रष्टा होने का अवसर पाकर, काम की जटिलतम और सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति को देखने-जानने का उसे अवसर मिलता है। जब नर-नारी स्वयं भोगरत रहते हैं, तब वे अपने भोग में इस कदर डूब जाते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं कि उस समय की अपनी अंग-अंग-माओं, मुख-मुद्राओं, गुम्फन की प्रपाताओं, तन-बदन के कसावों-तनावों, देह के विभिन्न अंगों के मैथुनाकुल सौन्दर्य-सौष्ठव, लय-संगीत, गतिमत्ता, आन्दोलन और आवेग-उन्मेष को वे देख नहीं पाते हैं। कला की यह सार्थकता और शक्ति है कि वह मनुष्य को उसकी सारी भावनाओं, संवेदनों, आवेगों, रागों, भोगों, भाँस-माओं, अभिव्यक्तियों का तद्गत रूप से साक्षात्कार कराती है। वह मनुष्य को अपने भोगों का ज्ञाता-द्रष्टा बनाती है। तद्गत रूप से चीजों और भावों को देखना ही, उन्हें उनके सम्यक् स्वरूप में जानना है। चीजों को उनकी समग्रता में जानना और जानना ही, उन्हें समग्रता में जीना है और यह जानना, जानने वाले को ली और सच्चे अर्थ में तृप्त करता है। मुक्त



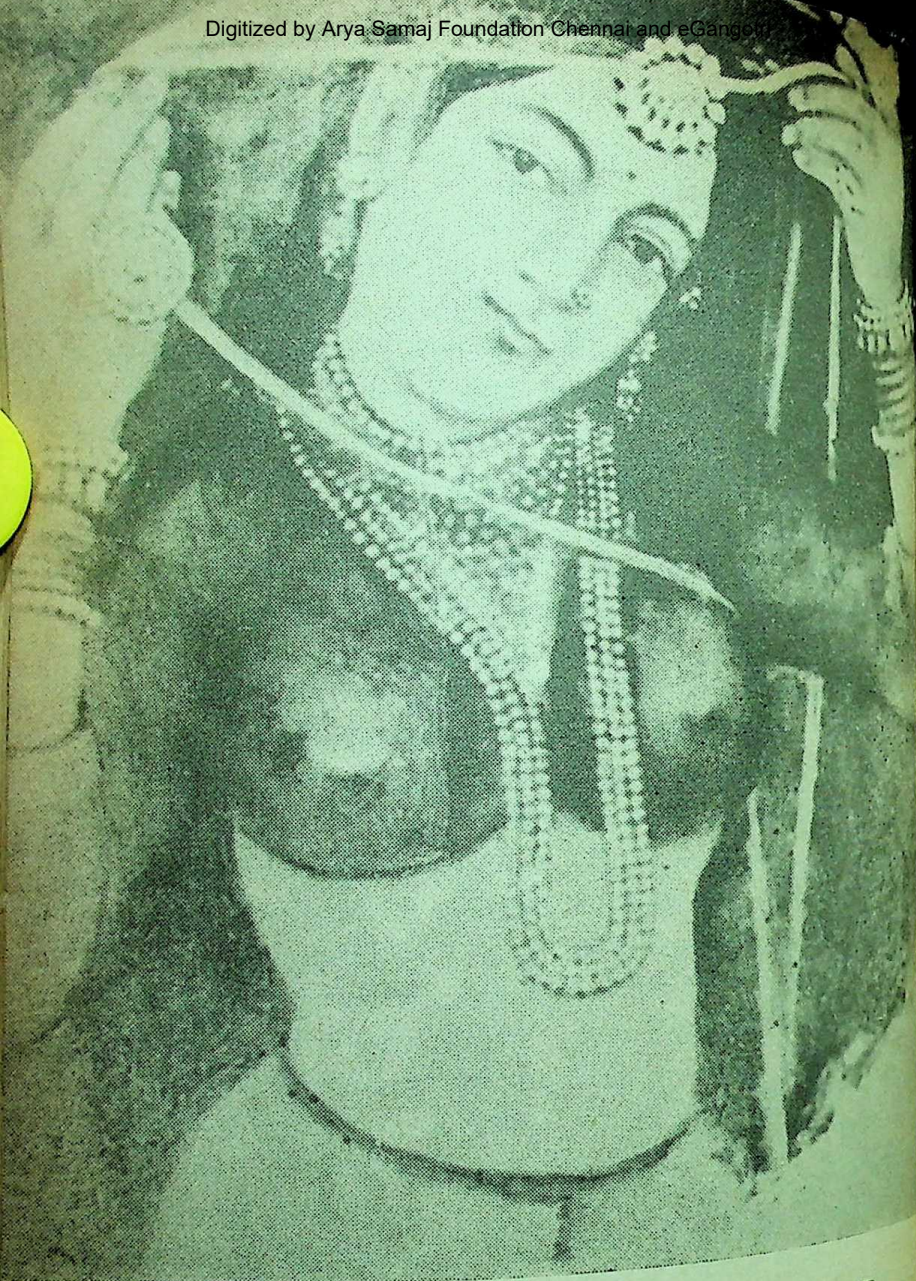
दिया गया है।  
 यहाँ अपने को  
 यम अपने को  
 में एक निगूढ़  
 ह यहाँ भोक्ता  
 योग का मात्र  
 द्रष्टा होने का  
 विलसित और  
 खने-जानने का  
 जब नर-नारी  
 वे अपने भोग  
 च्छित हो जाते  
 नी अंग-भंगि-  
 न की प्रगा-  
 त्नावों, देह के  
 सौन्दर्य-सौष्ठव,  
 गन्दोलन और  
 नहीं पाते हैं।  
 शक्ति है कि  
 नारी भावनाओं,  
 भोगों, भंगि-  
 तद्गत रूप में  
 वह मनुष्य को  
 या बनाती है।  
 नावों को देखना  
 रूप में जानना  
 मग्नता में देवता  
 ता में जीना है।  
 वाले को घड़ी  
 करता है। मुक्त  
 नवंबर

कता है। यही अभिनव गुप्त की मधुमती  
 भूमिका है: अर्थात् वह चेतना-स्तर है  
 यहाँ रस ज्ञान बन जाता है, और ज्ञान रस  
 बन जाता है। इसी भूमिका में पहुंचकर  
 मनुष्य पूर्णकाम भोक्ता बनता है। जो  
 सम्पूर्ण ज्ञाता है, वही सम्पूर्ण भोक्ता है।  
 खजुराहो के कला-शिल्प का निर्माण  
 इसी मधुमती भूमिका पर से हुआ है।  
 गणते समय हम अपनी भोग्या रमणी से  
 अंग-प्रत्यंगों की सारी मरोड़ों, भंगिमाओं,  
 आरों के सौन्दर्य का समग्र दर्शन नहीं कर  
 पाते हैं। यहाँ नर-नारी की भोगरत  
 दृष्टि के परिपूर्ण सौन्दर्य को समग्रात्मक  
 अभिव्यक्ति दी गयी है। मुख, कपोल,  
 त्रिबुक्क, ग्रीवा, स्कन्ध, बाहुमूल तथा भुजाओं,  
 हाथों, स्तनों, वक्षदेशों, कटिदेशों, त्रिव-  
 तियों, अंगुष्ठों, योनियों, नितम्बों, रानों  
 और पाँवों को उनके सम्भवतः पूर्णतम  
 और आदर्श सौन्दर्य-सौष्ठव के साथ यहां  
 उभारा गया है। रमणलीन मानव देह के  
 विभिन्न अंग-प्रत्यंगों और अवयवों की  
 इतने अधिक सुन्दर, सुडौल और परिपूर्ण  
 अभिव्यक्ति संसार की शिल्पकला में शायद  
 ही कहीं हुई हो।  
 खजुराहो की विशेषता यह है कि यहां  
 सृष्टि की ओर से मानव की मूलभूत  
 काम को उसके व्यंजक देह-सौष्ठव  
 में सूरभूत सौन्दर्य-भंगिमाओं के साथ  
 अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। काम से  
 उत्पन्न उत्कण्ठित रमणी या अप्सरा के  
 अंग-मरोड़ को, अंगभंग को, उन्मुक्त और

निःशेष आत्म-निवेदन के सीमान्तक संवे-  
 दन के साथ यहां उभारा गया है। देह के  
 कण-कण और रोम-रोम के इस अर्पण में  
 जहां अंगों के अन्तहीन तनाव और कसाव  
 हैं, वहां मुक्त होने की उद्दाम व्याकुलता  
 के छोर पर, दर्शक की चेतना में अनायास  
 एक चमत्कारिक उन्मोचन और मोक्षण  
 घटित होता है।

मात्र देखने की प्रक्रिया में ही, यह  
 विविध शृंगारिक मुद्राओं तथा सुरति-  
 सम्भोगों की अन्तहीन और बेबाक पर-  
 म्परा, चरमोत्कर्ष के एक बिन्दु पर पहुंच-  
 कर, अनजाने ही चेतना को निराकुल और  
 मुक्त कर देती है। व्यक्ति अनायास स्वयम्  
 आप हो रहता है। उसे आत्म-स्वामित्व का  
 एक अनोखा बोध होता है। वह अपूर्व  
 रूप से खुद अपने साथ और चीजों के साथ  
 घरोपा महसूस करता है। मानों कि व्यक्ति  
 अपने-आपको और आसपास की सृष्टि को  
 आरपार और समग्रता में देखने लगता  
 है। वह एक अविभाजित, सम्पूर्ण, अवि-  
 च्छिन्न आत्मभाव में आ जाता है। वह  
 अपनी ही गहिरतम सत्ता की अग्नियों में  
 नहाकर, स्वच्छ और निर्मल होकर बाहर  
 निकल आता है। सृष्टि के अवचैतनिक  
 अन्धकारों में छुमड़ रहे तमाम अराजक  
 तकाजों को अपने भीतर सुशृंखलित और  
 सम्वादित अनुभव करने लगता है। मानों  
 कि उनका स्वतंत्र स्वामी हो गया हो।  
 मानों कि खजुराहो का यह कामिक शिल्प,  
 (शेषांश पृष्ठ २०४ पर)





# जयपुर की वारांगना रानी रसकपूर

## सौन्दर्य, संगीत-नृत्य और प्रणय की एक दर्दमयी दास्ताल

यह  
और दूसरी  
राखी . .  
इन्होंने प  
की बागडो  
हूँ बीबिया  
पूरा प्रभा  
दिया . . .  
सिंघे कि रा  
नं बदइंतल  
रतने मह  
भारते के ग

राज्य के ऊ  
बातह (प  
हम-विल  
मर उसके  
मय हाथी  
को आदेश  
मर राज  
श विद्रोह  
मिा करने  
को पारी  
मो के स



यह कहानी है रसकपूर और जगतसिंह की . . . एक जयपुर रियासत के महाराजा और दूसरी अनिच्छा सुन्दरी — नृत्य और गायन कला में प्रवीण । महाराजा नृत्य-संगीत के शौकीन . . . प्रेमी . . . तबियत के विलासी . . . नृत्य-संगीत के लाल और हरे अखाड़े गुलाबी पहियों पर ठुकते घुंघरुओं के साथ थिरकते रहते थे . . . सन १८०३ में इन्होंने शासन को बागडोर संभाली । मृत्युकाल रहा सन १८१८ । . . . रसकपूर के हुनर और सौन्दर्य ने, बहुबोव्यापता व्यवहार ने और एकनिष्ठ समर्पित अनुराग ने उनके दिल-दिमाग पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि उन्होंने उस अकिंचन नर्तकी को आदर-सम्मान का बहुत ऊंचा दर्जा दिया . . . इतने अधिक खिताब-बहुमूल्य नजराने . . . इनाम और दैनिक जीवन के ठाठ-बाट से कि राजकीय खजाना खोखला होकर रह गया . . . प्रजा में फैला खूब असंतोष; मुल्क में बढ़त तामसी फैली . . . बाहरी आक्रमणों से आन-बान-शान को गहरा धक्का लगा . . . राज-महलों का उच्चवंशीय क्षत्राणी लहू आक्रोश और लज्जा से खौल उठा . . . राज-महलों के गौरव पर धूल छाने लगी . . . लेकिन रसकपूर पर इनायतें बरस रही थीं . . . उसे

## सावित्री परमार की गीतों-भरी कलम से आलेखित जयपुर राजघराने की एक रोमांचक इतिहास-कथा

राज के आधे हिस्से की रानी घोषित किया गया . . . राज्य का कुल बहुमूल्य सामान, कुतुब-बान्ह (पोथीखाना) तक आधा न्यौछावर कर दिया . . . जयमंदिर का खजाना उसके हस्त-विलास पर स्वाहा होने लगा . . . उसके नाम का सिक्का जारी हुआ . . . न्याय-फैसले सब उसके हुक्म से . . . प्रत्येक राजसी तथा सार्वजनिक समारोहों-उत्सवों में वह राजा के साथ हाथी पर सवार होकर निकलती थी . . . उच्चकोटि के स्वाभिमानी राजभक्त सरदारों को आदेश था कि उसे रानियों के अनुसार ही अदब-कायदे का दर्जा दिया जाये . . . चारों ओर राजपूती खून खौल उठा . . . आंखों में अंगारे दहक उठे . . . दूणी के सरदार चांदासिंह का विद्रोह उस समय के इतिहास में अमर हो उठा, क्योंकि उसने सरे भरे दरबार में राजा को सेइंकार कर दिया . . . दण्डस्वरूप उन पर दो लाख का जुर्माना हुआ . . . रियासत में सारी प्रजा, सरदार, ठिकानों के ठाकुर, जागीरदार, आसपास के राजा और मुसाहिब राजा के सीतेर तूफान . . . ऐसा अपमान ? रनवास अलग से प्रचण्ड क्रोधाग्नि से धधक

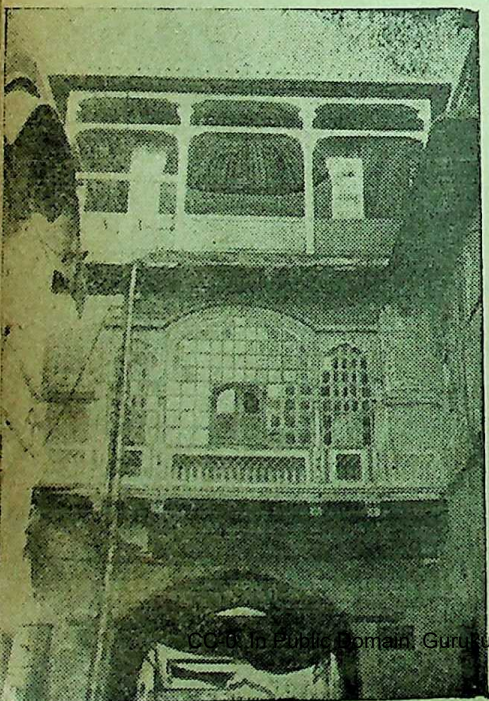


रहा था। उधर महाराजा भीमसिंह की अपूर्व सौन्दर्यशालिनी पुत्री कृष्णाकुमारी को पाने के लिए महाराज जगत्सिंह ने युद्ध छेड़ दिया ... परिणाम राज्य, धन और सेना को वृत्त तरह बर्बादी ... पराजय ... बदनामी ... कृष्णाकुमारी को विष ग्रहण करके प्राण त्यागने पड़े ... इस घटना ने राजपूतों के असंतोष को और हवा दी ... भयानक आरोपों में बुनकर रसकपूर के लिए जहरीला जाल तैयार किया गया ... जिसमें उलझकर उसका लोभ-हर्षक अंत हुआ ...

यह सारी कथा-सामग्री 'रूलर्स एण्ड चीफ्स ऑफ इण्डिया'-ले. कनल टो. एच. हैण्डले तथा 'वीर-विनोद' से प्राप्त की है। ये दोनों पुस्तकें नवलगढ़ (भूतपूर्व स्टेट) के कुंवर संग्राम सिंहजी के सौजन्य से प्राप्त की गयीं। रसकपूर का दुर्लभ चित्र आचार्य रामचरण प्राच्य विद्यापीठ संग्रहालय से लिया गया। दोनों महानुभावों के सहयोग के लिए लेखिका आभारी है। शेष समस्त चित्रों के छायाकार श्री सूरज एन. शर्मा हैं।



सांगानेरी गेट के पास कांचमहल :  
जहां रसकपूर का जन्म हुआ और  
बचपन बीता



**सा**वन की गदराई-पुरवाई सुबह.....  
रेशमी हरियाली का शबनमी कनेव  
... सुगंधित फूल, पेड़ों, लताओं से आच्छा-  
दित बाग, बगीचे और रौसों ... स्वर्ण-  
मुद्रिका के बीच हीरे की कौंध-सा चमक  
माता महल... सीढ़ियों, रौसों, बारहदरियों  
बरामदों और गलियारों में बिछे रंगीत  
कालीन... स्थान-स्थान पर फव्वारे.....  
स्वच्छ जल से प्लावित सरोवर... अखंड  
लियां करते कमल और कमलिनी.....  
भित्तिचित्रों से सज्जित दीवारें... कलशों  
पर आदमकद तैलचित्रों का मोहक मिन-  
सिला... कलात्मक गमलों में फूलों की  
मीठी हंसी... जूही-चमेली और मीनरी की  
गंध में घुलती हुई रजनीगंधा और रात की  
रानी की मदहोश खुशबू..... स्वर्ण का  
पूरा नंदनवन...



उजा का कंगन आकाश की हवेली के  
कुमारी को पाने  
र सेना को दुरी  
हण करके प्राण  
नक आरोपों में  
कर उसका लोप-

कनल टो. एच.  
भूतपूर्व स्टेट) के  
भ चित्र आचम  
गवों के सहयोग  
एन. शर्मा हैं।

ई सुवह.....  
शवनमी कनेव  
राओं से आन्ध  
रौसें... स्वर्ण-  
काँध-सा चमक  
सों, बारहदियाँ  
में बिछे रंगीत  
र फव्वारे.....  
सरोवर... अर्द्ध-  
कमलिनी.....  
दीवारों... कल  
का मोहक निन-  
लों में फूलों की  
और मांगरे की  
धा और रात की  
...स्वर्ण का



चन्द्रमहल, जहाँ महाराज जगतसिंह ने  
सबसे पहले रसकपूर की गान-लहरी सुनी  
और उसका सर्वस्वहारी मुखड़ा देखा

सुनहरा सपना दे गयी थी वह ! उसकी  
मदालस पलकें फिर उठीं....

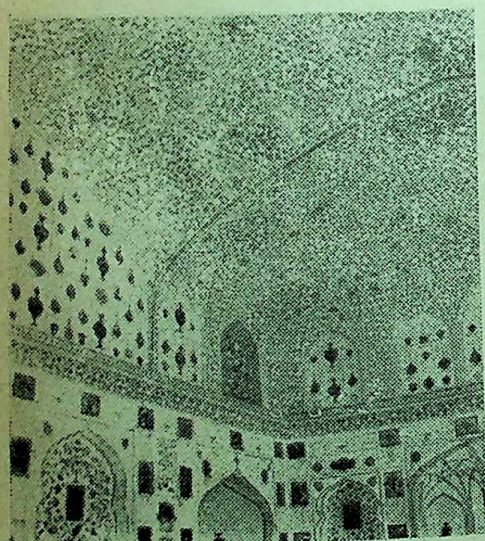
चन्द्रमहल का सुखनिवास... चांदी की  
पुतलियों में कसे ठोस पायोंवाला खूब-  
सूरत छपरखट... सोने-चांदी के फूल-तारों  
वाले झीने नीलवर्णी पर्दे... पर्शियन कालीन  
और प्याले... फूलों-छाई रेशमी गुदकारी  
शैया... चारों ओर कलात्मक सज्जा...  
सलमे के गुच्छे-फुंदने कसे कामदार मसनद-  
तकिये... इत्र-फूलेल... गंध-शलाकाओं  
पर जगी रात-भर की ठहरी अलस खुशबू  
...महाराज जगतसिंह का शयन-प्रको-  
ष्ठ... और उसपर सोया उनका आकर्षक  
पौरुष... जयपुर रियासत के महाराजा की  
पलकें गुणीजन खाने से आती हुई भोर-  
संगीत की लय पर ही प्रतिदिन खुलती थीं।  
आज भी उजली किरणों की डोली धीरे-  
धीरे हिचकोले ले रही थी। अचानक  
मदिर-मदिर स्वरलहरी से वातावरण



रागमय हो उठा... शतदल पर जैसे ओस-  
कण बिखर जायें, ऐसे ही संगीत लड़ी  
से छंद झरने लगे...

‘रैन बिहानी जागो सांवरे... ss’...  
यह कैसा अनहद नाद ? आज प्राणों में  
कैसी पागल अकुलाहट ? पुखराजी सपनों  
के द्वार पर ये कैसी मोहक दस्तकें ? धनु-  
पाकार भौंहों में कंपन हुआ... सांवली  
पलक पांखुरियां हौले से थरथरायी...  
मनोहारी नेत्र-संपुट खुले... गुलाबी खुमार  
में आश्चर्य के हाशिये खिंच गये... आज  
की भोर का यह कैसा नया आह्वान !  
कौन है यह स्वर-साधिका ! हैरान होकर  
महाराज गावतकियों पर झुक आये...  
दर्पण दिपदिपा उठे... चौड़े रोमिल मांसल  
वक्षस्थल पर हार बंकिम हो उठा... चंदन

शोशमहल : आमेर



नवनीत

चर्चित भाल पर कुंचित केश लहरा उठे  
... गर्वीली गंदन में एक लोच आया...  
मौन प्रश्नों से महुआ सांसें ओठों की जान-  
दार तराश पर कांप उठीं... उनका कामदेवो  
सौन्दर्य सामने ठैठी उर्वशी के स्वर्णों में झुं-  
कर मूर्छित-सा हो उठा... कैसा उन्मादित  
कोकिल कण्ठ ! चंपक उंगलियों की  
वीणा पर यह कैसी जलतरंगी फिसलन ?  
अनूठा अहंलपेटे ये कैसी सौन्दर्य गरिमा ?

महाराज की दृष्टि की धूप का अहसास  
पाते ही कड़े-चूड़ले छनक उठे... अन्नदाता  
की सांसों के आरोह-अवरोह तीव्र हो  
उठे... उनके जागने का संकेत होते ही  
सोने की घंटियां टुनकाती पिंजरे की मैना  
कुहकुहा उठी... रसकपूर के पैरों की  
पायजेबें सिहर उठीं... सांसों की उत्तान  
तरंगों पर गलपटिया, पंचमणियां, कठुना  
और मणिकांतहार उड़ेलित हो गये।  
कस्तूरी गंध में नहाये चेहरे पर लाज का  
कुंकुम छा गया। वीणा कांपी कि नेवें  
और रत्नजटित अनवट-बिछुरे मुखर हुए।  
महाराजा के नेत्र चन्द्रवदनी की गुनगुनी  
गनगनाहट से सूरजमुखी हो कान तक  
उत्कीर्ण हो उठे... कंधों से उत्तरीय खिसक  
पड़ा... ओठों की जुम्बिश में पलाश दहक  
उठे...

‘कौन हो तुम ?’ केवल मौन सांसों का  
स्पंदन...

‘बताओ, कौन हो ? गुणीजन खाते में  
आज नयी आयी हो ?’...  
अंगूरी घूँघट तनिक हिलोरा... तिनक



लहरा उठे  
आया...  
की ज्ञान-  
का मदेने  
रों में डूब-  
उन्मादित  
लियों की  
फिसलन ?  
रिमा?...  
का अहसास  
अन्नदाता  
ह तीव्र हो  
त होते ही  
वरे की मैना  
पैरों की  
की उत्तान  
गया, कठुना  
की गये।  
र लाज की  
की नेवड़ी  
मुखर हुए।  
की गुनगुना  
को कान ल  
तरीख खिसक  
पलाश दहक  
न सांभों का  
जाने में  
रा... तिरक  
नंबर

जो की कोरों पर एक महीन-सी मुस्कान  
नी... कपोल कंधारी हो नीलवर्णी झील-  
को आँखों के साहिल थाम बैठे... चितवन  
की बरौनियों पर झूमर झूलने लगी...  
नियों के हीरे-पत्ते बाजूबंद के साथ  
नम होने लगे... दुपट्टे की शरवती  
में कणफूलों के नीलम, झुमकों के  
नी सिंगारपट्टी की लड़ियों के साथ  
कर कनवतियां कर उठे। यह कैसा  
एक उपक्रम ?



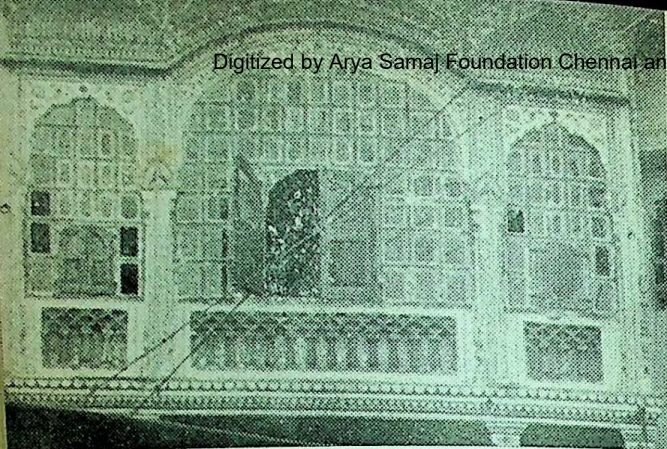
### सावित्री परमार

दार पैजामा... कारचोबी की मखमली  
नाजुक जूतियां... सतरंगी मोरछल छा  
गये चारों ओर... लाजवर्दी रंग में डूबे  
पहर-क्षण। वह जाने को मुड़ी। पायलों  
के नूपुरों की नखरीली ठुमकन ने राजमोह  
भंग किया—

‘रुको, तुम्हारे राग की मिठास हमें  
बहुत अच्छी लगी है... हर दिन तुम्हीं  
हमें गाकर जगाया करोगी। नृत्य भी  
करोगी। हमारा हुक्म है यह... अब जाओ।’  
... सुनकर चंचल हिरनी-सी वह पगला  
उठी। पलभर में मयूरपंखी हो उठी।  
राजा की नज़र चढ़ी कुंदकली.... आसव  
घंट-सी मदमाती... नागिन-सी लहराती  
महल के कोनों में लुप्त हो गयी।

फिर क्या था ? गुणीजन खाने से उठता  
हुआ प्रातःकालीन शहदीला स्वर धीरे-





## कांच दरवाजे का वह शीशमहल, जहां रसकपूर ने नृत्य और गायन की शिक्षा ग्रहण की

धीरे नज़दीक आता गया...हौले-हौले बहुत पास...और पास...संगीत के सुर-ताल बढ़ने लगे। दैनिक कार्यों में बाधा आने लगी। दास-दासियां सेवा-सामग्रियां थामे प्रतीक्षारत रहने लगे। पहर-क्षणों की उम्र बढ़ने लगी। भोर से दोपहर... दोपहर से शाम और शाम से रात केवल रसकपूर के नाम नज़र हो गयीं। महाराज के दिल-दिमाग पर एक बेपनाह नशा-सा छा गया। राजकाज, न्याय, प्रबंध, झरोखा दर्शन, प्रजा की गुहार, रणवास-रंगमहल, सेना-दरबार सब दब गये, तिरोहित हो गये। केवल एकनाम, एक धुन, एक संग-साथ...सबको भुलाकर महाराज रसकपूर-मय हो उठे...

सत्रहवीं सदी की थी यह कचनार रसकपूर...जयपुर रियासत का विश्व-प्रसिद्ध जौहरी बाज़ार...वहीं सांगानेरी दरवाज़ा...इनके बीच एक और विशाल महाराब-दार दरवाज़ा, कांच का दरवाज़ा-शीश-

महल-जहां हर संदी शाम को छनछनाते घुंघरुओं के बोल...तबलों की गूंज और सारंगी की दिलरवा कण्ठ...दुपट्टों, पिशावाजों के इन्द्रधनुषों में कनेर-गुलाब महकते...हिना-संदल की खुशबू उड़ने...हंसी-मुस्कराहटों की विजलियां गिरती...ठुमरों दादरे और गजलों के मुखों तोड़े शरीर छिड़कते...धुंघरू

राली लटों की नागिनें कमर पर अंगड़ाई कसती...झूमर-परीबंदों के मोती-माफ जालियों-झिरियों में धूप-छांव पैदा करते। इसी शीशमहल का नूरथी रसकपूर मुसलमान नर्तकी मां और हिन्दू पिता की लाड़ली बेटा। यही नगरवधू महाराज के मन की एकछत्र मलिका, अपने सौन्दर्य और नृत्य-गायन की श्रेष्ठ कला के कारण बन बैठी। वह अपलक उसे निहारते रहते...एक-एक मुरकी पर, कलात्मक गुणों पर, उसकी तहजीब पर और उनके वेदन्तहा अनुराग पर उनकी सांसें तिल-रहतीं। वह केवल उसी के होकर रह गये नृत्य के हरेक घुमाव पर, संगीत की हर रागिनी पर रत्नों की डेरियां न्यौछार करते...महावरी पांवों की लहराती रस्म झोलों पर बहुमूल्य पोशाकें बार देते...हर घड़ी नज़रानों की वर्षा...साथ ही वह उनके स्नेह से नहा उठती...उनके ओठों से चुम्बित केसर-कस्तूरी के कणों



...से अपनी प्यास और भी तृपित  
 ...रहते... उसकी शंखग्रीवा से कंदर्प-  
 ...वने झूलते रहते... हंसी की खन-  
 ...में खुशी के फल ही फूल। उनकी  
 ...दुनिया, उनका व्यक्तित्व रसकपूर  
 ...में नवरंगी बना रहता... डूबा-  
 ...हर पल... एक विकट लालसा में  
 ...उनका लोभ... एक प्यास। रस-  
 ...भी प्यार और समर्पण का  
 ...नीय वैभव पाकर बौरा उठी।  
 ...हीं मांदल उर्मियों पर थिरकते  
 ...समय ने पंखपाल खोल लिये  
 ...सधारा बहती जा रही थी ....  
 ...ऐसे ही मुग्ध पलों में वास्तु-  
 ...का बेजोड़ नमूना चन्द्रमहल  
 ...को दे दिया गया। सैकड़ों  
 ...दासियां, अहलकार, सिपाही,  
 ...श्री-रय-घोड़े, गांव-पट्टे, धन-  
 ...उनके इशारों पर नाचने  
 ...बादियां उसका शृंगार-प्रसाधन  
 ...। नर्तकियां दिल बहलाव।  
 ...के बनाने के लिए दर्जियों-  
 ...की लाइनें... स्वर्णकार  
 ...गढ़ते रहते... महाराज ने  
 ...हाथों चन्द्रमणि केशों में  
 ...। उंगली में पहना दी राजसी  
 ...और गले में जड़ाऊ नवलखा  
 ...दीर्घ सुवासित केशों की घटाएं  
 ...शेद ली अपनी नशीली पलकों पर।  
 ...के शीशमहल में लाखों दर्पण  
 ...के सौन्दर्य से विकीर्ण हो उठे।

अजीब उनींदा-सा स्वप्नलोक। एक रस-  
 कपूर क्या नृत्य करती, लाखों शीशों में  
 रजत रश्मियां रूपायित हो उठतीं...  
 झाड़-फानूसों के विल्लौरी विव अमृत-  
 कलश हो उठते... सुनहरी चौखटों में जड़े  
 विशाल दर्पणों में वह रतिरूपा होकर  
 ललित-मोहिनी, लवंग-लता-सी मचल उठती  
 और महाराज के मनमंदिर में उसके



**सुदर्शनगढ़ : नाहरगढ़ का किला, जहां रसकपूर**  
**ने हीराकनी चाटकर आत्मघात कर लिया**  
 लिए अनुराग का अखण्ड दीपक प्रज्वलित  
 रहता। ऐश्वर्यपूर्ण विशाल गौरवशाली  
 रियासत के स्वामी की प्रेमपगी वासंती  
 बयार-सी थी वह। कलावंत, शूरवीर  
 महाराज केवल सौन्दर्य प्रेमी बनकर रह  
 गये थे।

रसकपूर का वैभव चरमसीमा पर  
 बढ़ता गया। परिचारिकाओं की भीड़



लगी रहती-कभी चंदन-उवटन, कभी सुगंधियों से तैयार किया गया आलेप, कभी गुलाब-मौलसिरी की भाप से अर्चित केश-सज्जा, पुष्पराग-गुलाबजल का छिड़काव। दिन के जितने पहर, उतनी ही पोशाकों की इत्रसज्जा। आभूषणों का चुनाव... अलंकरण-मोतियों का शृंगार... शैया और कालीन पर बिछाने के लिए कोमल पल्लवों की सजावट... मीनाकारी की कामदार झारियों में महकते आसव... केवड़ा-जल से ताजा किये हुक्के और जाफरानी गमक महकाते चिलम-जाली के नखरे... चांदी के वर्कों में मुड़ी मोहिनी गिलौरियां... आरसी-हथफूल के बीच मेंहदी के दिलकश माढ़ने।

मोतियों में उलझी घुंधराली जुल्फों के खम सुलझाते-सुलझाते राजा खुद का धर्म-कर्म सब विसार बैठे... रंगमहल सिसक उठा... ड्यौड़ियां तरस गयीं देखने को। एक ही चर्चा, एक ही पीड़ा कि यह सौत-कांटा कैसे उखाड़ फेंका जाये? रियासत के उच्चाधिकारियों की सारी तरकीबें व्यर्थ। कैसे महाराज का ध्यान इस प्रचण्ड आकर्षण से हटाया जाये? सियासती जरूरतें सुन्न... हर ओर काना-फूसी... ठिकानेदार, ताजीमी सरदार, ठाकुरों के रजवाड़े, जमींदारों के बांके तेवर अब बौखला उठे थे। ऐसी बात नहीं थी कि जगतसिंहजी अनभिज्ञ थे-जर्ने-जर्ने की महीन करवटों की शिकनें उनकी आंखों में स्पष्ट थीं। सारा आक्रोश... इसका

कारण... रणवास की फूटकारें सबको जानकारी थी, लेकिन मन का मधुमास उसी कोहनूरी आव की गुनगुनी छुन में मुग्ध रहता था... आनन्दविहारो बना अपनी रसिक प्रिया के कृष्णचूड़ा में रंगा रहता था... द्विया-केसरिया सौन्दर्य अंगुरों में भरे हरसिंगारी सौरभ से उन्मत्त भवरा बना हुआ था... रसकपूर और चन्द्रमहाल वस यही उनकी पुतलियों में आलोकित थे।

उनकी वीरभोग्या रियासत का कीर्ति-हंस संवलाया जा रहा था। मेनका-म्या सुन्दरी के चरणों में पड़ी वीरता जंग वा रही थी। उधर रसकपूर उम वीर पुंर पुरुष सौन्दर्य की विलक्षण कीर्ति को आंखों में काजल-डोर सी डाले रखती थी। दृष्टि की पारदर्शी झील में वस एक ही प्रतिबिम्ब... जरी-सितारों की शानदार काम की हुई मखमली अचकन... हीरे-पुखराब के बटन... रेणमी लहरों में कसमसाता चूड़ीदार पायजामा... कारचोवी-किन्ना ख्वाब का कमरपड़ा... हीरे-पन्ने का जड़ा कण्ठा... बहुमूल्य मोतियों के सतत पंचमणिये। राजपूती साफे पर सूर्य-आभा सी दीप्त किलंगी। कसूमीजरी का पंच कामदार जूतियां, गर्वीली जाल। पंचे माणक-हीरों से दमदमाती उंगलियों में मनी अंगूठियां। मोहित करने वाली जानदार मुस्कान। सोने-चांदी की मूठोंवाली बड़ा तलवार। पच्चीकारी युक्त गंगा-जमुनी म्यान... बाजूबंदों और किलंगी में झूलने रत्नों-मूंगों के झन्डे... सुवासित सांठों



सर्वको  
का मधुमा  
नमूनी छुन  
विहारी बना  
चूड़ा में रंगा  
तीनयें अंजुरों  
उन्मत्त भंवर  
र चन्द्रमहल  
मालोडित छे  
त का कीर्ति  
। मेनका-रूप  
रता जंग वा  
स वीर पुन  
काति को  
ले रखती थी  
वस एक ह  
शानदार कम  
...हीरे-पुष्पराज  
में कसममा  
दारचोवी-किन्  
पन्ने का जड़  
के सतन  
पर मुर्य-आ  
जरी का पंच  
चाल। पंच  
गलियों में म  
वाली जानदार  
ठाँवली जड़  
त गंगा-जम  
लंगी में धूल  
वासित सों  
नवंबर

बसा मदांघ सौरभ... स्वाभिमान-  
अभिमान-अनुराग से भरी-पगी रतनारी  
अनुरक्त नजर... स्वच्छ सीपियों-सी-  
सकों में राजसी संस्कारों की पानीदार  
धवि... बड़ा प्रलोभनीय रूप-विब...  
रसकपूर की मुट्ठी में त्रैलोक्य। अतीत  
भुत गया था... वर्तमान के मलयजी  
सकोरे उसे वौराये हुए थे... भविष्य को  
मोने का समय कहाँ था ?

अनुराग के ऐसे ही उत्तप्त क्षणों में एक  
दिन महाराज ने उसे आधा राज्य भी  
दे दिया। पूर्वजों के स्वाभिमान का प्रतीक—  
महाराजा सवाई मानसिंह की साहित्यिक  
शक्ति का ज्ञान-भण्डार पोथीखाना  
ऊपर न्योछावर कर दिया। हुक्म जारी  
हुआ कि सारे काम, इंतजाम, न्याय और  
नये फरमान रसकपूर के द्वारा होंगे।  
ज्ञान-सज्जा वही देगी। उसी की दया पर  
न्याय उदय और अस्त होंगे। पूरी रियासत  
में उसी की आज्ञा सर्वोपरि होगी।

उसकी मोहरें बन गयीं, सिक्के ढल  
गये। दरबार में, समारोहों में वह राजा  
के साथ रहती। समारोहों में, सार्वजनिक  
जगहों में, होली-पर्व की सवारी में वही  
राजा के साथ हाथी पर बैठकर चलती  
थी। महाराज की वर्षगांठ के नजराने  
ले जाते। आज्ञा हुई कि सभी अमीर-  
जवार, अहलकार, राजपुरोहित उसे  
सुझा करेंगे। राजरानियों वाला पूरा  
अपमान देंगे—जो इस अदब में बेअदबी  
करेगा, वह दण्ड का भागी होगा...

सुनत ही राजपूतों हथेलियां तलवारों-  
कटारों की मूठों पर कस गयीं... मूठों  
के बांके बल शेषनागी फुंकारों से जहरीले  
झाग उड़ाने लगे... ठाकुरों की रण-  
बांकुरी भुजाएं फड़क उठीं... अपमान-  
क्रोध से लहक उठे। हम राजपूतों की  
पीढ़ियों से आती हुई स्वामिभक्ति का...  
हमारी सेवाओं-उपलब्धियों का इतना  
अधिक अपमान ! एक तुच्छ तवायफ का  
ऐसा चूड़ान्त सम्मान ? क्रोध ही क्रोध...  
पूरे चंदन-वन को जैसे आग लग गयी हो ?  
एक ओर रियासत का गौरव... महलों की  
इज्जत, रक्षा का दायित्व, शत्रुओं से  
सावधानी रखने का प्रयास और दूसरी  
ओर लज्जा तथा अपमान के कड़वे विवश  
घुंटा। लेकिन यह कैसे संभव कि आन-  
वान के धनी-तलवार-ढाल के चितरे खुद  
तलवार की धार पर खने के लिए सिर काट  
देने वाले विकट साहसी जुझारू राजपूत  
क्या उस नर्तकी के सामने सिर झुकायेंगे ?  
उसकी ड्यौड़ी पर न्याय की भीख मांगने  
जायेंगे ? रानी-महारानी के अधिकारों  
को रौंदकर वह राजसी हौदे में सवार  
होगी और हम जुहार करेंगे ? प्रजा पर  
उसका दर्पचक्र चलेगा ? नहीं, कभी नहीं।  
नेह-रस-आसक्ति में रियासत की यश-कीर्ति  
का प्रतीक मुकुट यदि गर्त में डूब गया है,  
तो हम भी अपना धर्म भूल जायेंगे ?

हरेक चेहरा अपमान की स्याही से  
ओज-विहीन हो उठा। राजभक्त सरदारों  
की भृकुटियों की प्रत्यंचाएं तन गयीं... उधर



अंतःपुर में तहलका मंच गया। इन आश्रितों को सुनकर। ईर्ष्या, बेइज्जती, खण्डित गर्व। प्रतिशोध की आग में रंगमहल धू-धू करके जल उठा। षड्यंत्रों की शतरंजें बिछ गयीं.. लेकिन उन दोनों युगल प्रेमियों के दिन और रात नृत्य-संगीत और केलि-क्रीड़ाओं में विहरते-सिहरते रहे। शीशमहल सितार, वीणा, सारंगी और रबाब की मधुवर्षा में भीगता रहता—तीतर-पांखी पांवों की नृत्य-थिरकन किर्च-किर्च को सज्ज-रोशन किये रहती। मान-मनु-हारों और हंसी-खुशी के जश्नों में दो दिल धरती-आकाश बने रहते। जयपुर रियासत गुंगी-बहरी बनी, विवश आक्रोश से हथेलियां मींड़ती रह गयी थी। जनाने महलों में रश्क, जलन, क्रोध और प्रतिहिंसा अपना कपट जाल बुन रही थी। खजाना रिक्तप्राय। बदइतजामी फैल गयी। मामूली ऐरे-गैरे लोग ऊंचे पद हथिया रहे थे, शत्रुओं के सिर ऊंचे हो रहे थे, बाहरी आक्रमणों का भय और भीतरी षड्यंत्रों का भयानक विस्फोट कभी भी विकराल परिस्थिति पैदा कर सकता था। सारी अर्थ-व्यवस्था और राजतंत्र तहस-नहस हो गया था, प्रत्येक की इज्जत दांव पर लगी हुई थी।

इसी उथल-पुथल के बीच एक और घटना घटित हो गयी।

मेवाड़ के प्रतापी महाराणा भीमसिंह के एक पुत्री थी कृष्णाकुमारी। अत्यधिक सौन्दर्यशीला, गुणवंती और स्वाभिमानिनी।

नवनीत

किसी ने महाराजा के सौन्दर्य-पिपासु हृदय में उसे प्राप्त करने की तीव्रतम लालसा जगा दी। मारवाड़ के महाराजा मानसिंह के लिए महाराणा भीमसिंह ने पहले से ही कन्या-दान की धारणा स्थिर कर ली थी। जैसे ही जयपुर के महाराजा जगतसिंह ने चार हज़ार सेना की सुरक्षा में विवाह का मंगलसूचक नारियल, मूल्यवान पोशाकें—आभूषण और स्वर्णमोहरें भेजीं, साथ ही कृष्णाकुमारी का हाथ मांगने का संदेश भी, वह चौंक उठे...

महाराजा मानसिंह के गुप्तचरों को इसका पता लगा, उन्होंने राजा को तत्काल सूचना दी। वह अपनी वादता के प्रति यह अनचाही इच्छा वर्दाश्त नहीं कर सके और बीच मार्ग में ही ये सारे भेंट-उपहार लूट लिये। सैनिक मार डाले, कुछ भाग गये। महाराजा के मित्र-राजा मराठाशेर सिंधिया ने भी महाराणा भीमसिंह को चुनौती दे दी कि अपनी कन्या का हाथ राजा जगतसिंह के लाख प्रलोभन अथवा धमकियों के बावजूद भी नहीं सौंपना है, अन्यथा आप हमारे साथ युद्ध के लिए सन्नद्ध रहें।

महाराणा की पहले ही जान आफत में थी। एक तरफ राजा मानसिंह, दूसरी ओर राजा जगतसिंह। दोनों ही प्रतिद्वंद्वी एक से बढ़कर एक। कन्यारत्न किसे दें? मंत्रियों की सलाह पर वे शक्तिशाली मराठों से मिल गये। अब जयपुर राजा के विरुद्ध तीन विशाल सेनाएं थीं। इसके

नवंबर



मुहय  
सा जग  
सिंह के  
से ही  
ली थी।  
तसिंह ने  
वाह का  
पोशाकें-  
गी, साथ  
का संदेश

चरों को  
जा को  
वापदा  
शित नहीं  
सारे भेंट-  
र डाले,  
त्र-राजा  
णा भीम-  
कन्या का  
प्रलोभन  
भी नहीं  
मारे साथ

आफत में  
मह, दूसरी  
प्रतिद्वंद्वी  
किसे दें ?  
शक्तिशाली  
र राजा के  
थी। इससे  
नवंबर

जयपुर राज्य की धन-जन और मान-  
सर्वादा की बड़ी हानि हुई। कृष्णाकुमारी  
को प्राप्त न कर पाने की खिसियानी  
बचों के कारण जगतसिंह बौखला गये।  
इसी झंझलाहट में राजा मानसिंह के  
विरुद्ध एक लाख सेना लेकर छ-सात माह  
तक घेरा डाले पड़े रहे। रसद-पानी की  
प्रेरणा। वातावरण की कठिनाइयां।  
जन में प्रतिशोध की ज्वाला। सैनिक दुखी  
और निरुत्साहित। अपने ही लोगों के  
बेहरों पर संवेदन-शून्य भाव, आंखों में  
व्यमानना। फिर भी सफलता हाथ  
नहीं लगी। इस अपमान और आर्थिक  
क्षति से जयपुर रियासत क्षत-विक्षत  
होकर एकदम लंगड़ा उठी। उधर कृष्णा-  
कुमारी को विषपान करा दिया गया।  
इस लोमहर्षक मृत्यु का कलंक-तिलक भी  
इसी रियासत के स्वच्छ भाल पर टीका-  
पत हुआ। पहले ही एक-एक जन दुखी  
और क्षुब्ध था-इस घटना ने क्रोध-अनल  
में घी का काम किया।

इन दिनों राजा जगतसिंह को चूँकि  
वैधकाल तक बाहर युद्ध-घेरावों में उलझना  
पड़ा था, इसलिये रसकपूर के खिलाफ  
प्रयत्न जाल बनकर तैयार किया गया।  
क्योंकि जनानी ड्यौड़ी भट्टी की तरह तप  
रही थी। दूनी के रावराजा चांदसिंह को  
भी अपने अपमान का बदला लेना था।  
करीबी अमीर-उमरावों ने, मुंहलगी चहेती  
गोली बांदियों ने अपने-अपने हाथों में  
बहुतसी शलाकाएं उसके विरुद्ध ले रखी

१९६१

थीं। राजा के बाहर जाने से रसकपूर  
एकदम अकेली पड़ गयी थी। बात के  
धनी और वंश-परम्पराओं में रचे-बसे  
स्वाभिमानी ठाकुर तने हुए थे। भले ही  
टूटना पड़े, लेकिन झुकना नहीं जानते थे।  
दूनी के रावराजा की तरह सभी मुलग रहे  
थे। सम्मान बेचकर कोई समझौते को  
तैयार नहीं था। कैसे भूल सकते थे राव-  
राजा चांदसिंह अपना अपमान !

एक बार इनकी जागीर का एक  
मुकदमा रसकपूर की खास अदालत में  
पहुंच गया। रावराजा को बड़ी बेइज्जती  
महसूस हुई। उन्होंने इस मुकदमे की  
अपील अन्नदाता के दरबार में की।  
महाराजा ने यह कहकर अपील खारिज  
कर दी कि फैसला वही करेगा। राव-  
राजा आग बबूला हो गये। यह पहले  
ठाकुर थे कि राजा के समक्ष भरे दरबार  
में विद्रोही स्वर में फूट पड़े-‘आप हमारे  
अन्नदाता हैं। हम भी तलवार के धनी  
और रियासत के लिए प्राण न्योछावर  
करने वालों में से हैं। हमारा भी गौरव है,  
बुजुर्गों की अजित की हुई प्रतिष्ठा है।  
मेरा जो भी फैसला होगा, उसे केवल आप  
करेंगे। मैं एक पातुर के सामने याचना  
नहीं करूंगा। अभी चांदसिंह का राज-  
पूती खान्दान इतना बेगैरत नहीं हुआ है,  
महाराज। हम सभी राजपूत कितने दुखी  
और अपमानित हो रहे हैं, राज्य की चिंता  
हमें कितनी चाट रही है, इसे शायद आप  
(शेवांश पृष्ठ २११ पर)





प्रदीप

तीन भविष्यवान किशोर कवियों की  
कविताएं, पहली बार प्रकाशित  
सुप्रतिष्ठ साहित्यिक दम्पति सौ. लीला बांदिवडेकर  
तथा डा. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर के प्रतिभाशाली  
पुत्र प्रदीप बांदिवडेकर की यहां प्रस्तुत तीन मराठी  
कविताएं आगामी कल की संभाव्य कविता का  
दिशा संकेत देती हैं।

मूल

ढलती धूप ... अकेला बादल  
आ घेरता है आसमान को  
और कोने में अकेले खड़े हरसिंगार की  
सुगंध से ..... याद में आती हो तुम—  
फूलों के लिए पागल-सी  
और  
महसूसता हूं  
नहीं लाया था फूल कभी अपने से  
तुम्हारे लिए  
इस असीम नीलाभ में  
जब तुम  
होती हो ज़रा-सी धूमिल  
लगता है  
थोड़ा-थोड़ा  
गलत ही होता गया  
बहुत कुछ  
मेरा स्वामित्व-संभव क्रोध  
तुम्हारे घर भर गुनगुनाने वाले  
आनंद पर  
लगाता था अर्गला

नवनीत

आज जब अकेला गुनगुनाता हुआ  
फिरता हूं मैं घर भर में कभी कभार  
लगता है...  
थोड़ा-थोड़ा  
गलत ही हो गया  
बहुत कुछ

तुम अभी हो  
इर्दगिर्द मेरे ... लिपटी-सी  
आकाश की तरह ....  
इतने वर्षों बाद भी  
पुकारता हूं तुम्हें .... अचानक  
और होता हूं खामोश  
शर्मिदा बनकर  
तब लगता है  
कभी पुकारा ही नहीं तुम्हें  
यों ही ... बिलावजह  
और  
लगता है  
होता ही गया थोड़ा-थोड़ा गलत  
बहुत कुछ।

०००

नवनीत



यों की  
शित  
गदिवड़ेकर  
तिमाशालो  
रीन मरादो  
नविता का

प्रयोग

दृष्टि की चट्टान को  
सर्ज करती न करती-सी लहर  
तिरोहित हो जाती है.....  
बसती जाती हैं चट्टान पर  
शैवाल की पर्तें  
होते हैं उदास रंग सघन

हर लहर भर लाती है आसमान  
तुम्हारी आंखों का  
अनामिक यक्ष का दर्दिला एहसास  
धाम लेता है सिसकी को ..

शीली सनकी लट के पीछे से  
आंख भर-भर कर बताये जाती हो  
लेकिन मूक असहाय ओंठ  
होते हैं लय एक जपा-पुष्पी चुंबन में

धुंध सांसों के मोतिया तूफ़ान में  
सप्रयास रोका हुआ एक उच्छ्वास  
झमी का गड़ गया है मेरे मन में  
और तुम  
गुण को बंद करना चाहती हो

हम समझदार पंछी की भांति तुम भी  
जान से बना रही हो एक घोंसला  
दूरे घोंसले की यादों को दफन कर  
जो घोंसले में  
लेकिन

स बार की सचेत चिंता और माया  
रू ही जाती है [पहलेवाले अवशेष  
१९८१

नवंबर

संगम में पूरी तरह गोंक देने के बावजूद  
एक दर्दिली धारा को टिकाये रखने का  
पागल हठ

## पतझड़

कुहरिल नज़र के सामने पतझड़ में  
गिरता जाता है एक-एक पत्ता हिलोरता  
झुर्रियोंदार रेशों का जाल और  
बेजान कंपते सिर

आरामकुर्सी में मेरी नस-नस में  
उछलती जाती है एक लहर बूढ़े खून की  
सूखते समुद्र की रेत पर  
फँलनेवाले मृत लहरों के हिलकोरे  
हर दिन ऐसा ही—रीतने के लिए  
और बूढ़ी रात ... दिन की अंधी लकड़ी  
झूले के मंद झोंके हृदय के ठेके में  
आसमान से डरनेवाले.....  
धीमे घास-से जीवन में  
बीतता है बहुत-सा समय मूंदी आंखों से

गोधूलि बेला में छायाएं गडुमड्ड हो जाती हैं  
और स्मृतियों का हो जाता है गोलमाल  
उलझ जानेवाले अबूझ लोग  
अनचाहे हो जाते हैं .... लोगों के नाम  
और हलचलें बहती जाती हैं  
बाढ़ में बहनेवाले ठंठों की तरह  
और क्षीण पड़ता जाता है अपना प्रतिकार  
और सामने दिखता है डूबते हुए  
अंतिम दमघोंट पड़ाव

०००





## कु. शशि कुक्केजा को तीन आकाश-कविताएं



कु. शशि कुक्केजा

## विदा, आसमान...

विदा, आसमान, विदा ।  
 आज तक हम तेरे व्यक्तित्व पर  
 सितारों को खिलते  
 चांद को मुस्कराते  
 सूर्य को रोज आते-जाते देखकर  
 मुग्ध होते रहे हैं ।  
 हम हर बार  
 तुझे देखकर भूल जाते थे  
 हमारे पांव गहरे कीचड़  
 ऊंची-नीची खाइयों  
 टूटी-बिखरी आत्माओं के  
 बीच धंसे हैं ।  
 पर आसमान  
 आज इन आत्माओं ने  
 तेरे भी द्वार खटखटाये हैं  
 तू शक्तिवान  
 चाहे तो इन्हें ध्वंस कर दे  
 चाहे तो आत्मसात कर ले  
 पर आसमान  
 हम तो तुझसे विदा लेते हैं,  
 तब तक, जब तक  
 तू अपने विस्तार से  
 हममें फिर से मुग्ध जिज्ञासा न भर दे ।

०००

नवनीत

## बताओ तो !

तूने देखा है युगों से  
 पीढ़ियों को  
 जीते और मरते हुए  
 तेरी छत्रछाया में  
 यहां मानवों ने  
 अपना इतिहास  
 बनाया-बिगाड़ा है  
 युगों से तू इस तरह  
 हर परिवर्तन को  
 देता आया है अपना स्नेह  
 अपनी सुंदरता  
 आकाश ! कहां से पाया  
 तूने यह अटल विश्वास ?  
 कहां है तेरे प्रेम की  
 प्रेरणा का पुंज ?

०००

## अकेलापन

मौन, स्याह आकाश पर  
 बिखरे सितारे बेचारे  
 अकेले-अकेले  
 युगों से जी रहे हैं  
 मानव मन की नियति ।

०००

१७०



## कु. पद्मजा घोरपडे की तीन कविताएं



पद्मजा

## स्पर्श

मेरी संवेदनाओं पर  
 तुम्हारे ढेर सारे स्पर्शों-यादों का  
 हिमालय खड़ा हो गया है  
 और तुमने मुझे  
 उस शिखर की शिला बनने का  
 वरदान दिया  
 जहाँ मूरज की किरन  
 बहुत कम पहुँचती है ।  
 मैं चाहती हूँ  
 कभी तो तुम  
 मूरज बनो  
 और मैं  
 'नेत्रियर' बन वह सकूँ  
 पर, देखती हूँ  
 दिन-व-दिन  
 हिमशिलाओं की तादाद  
 बढ़ रही है ।  
 तुम चाहते हो  
 मैं गल ना जाऊँ, वह ना जाऊँ  
 पर, तुम्हें क्या पता  
 हिमालय पर भी आवर्तों की कमी नहीं है !!

०००

## चांद

चांद की हसीन देह पर  
 जब दुनिया फ़िदा होती है  
 वह दाग मुझे आंतकित कर देता है—  
 चांद की सफ़ेद देह ज़हरभीनी लगती है  
 और मैं सोचती हूँ  
 कौन होगी वह नागिन ?  
 —अपने ज़हर का रंग तो  
 छिड़क दिया  
 पर, 'धर्म' गोदना भूल गयी !  
 ....तब चांद मुझे बेहद दर्दिला  
 यातना से आतंकित  
 ज़हर पचाने की आपाधापी में ज़िदा  
 अपनी मौत को ढोता  
 स्याह क़फ़न दिखता है !!

०००

## शहीद

मैंने कीलों पर चढ़  
 शहीद होना चाहा  
 पर, कीलें महंगी थीं  
 मैंने शब्दों को कीलें समझ  
 अपने विचारों को शहीद बनाया !

१७१

हिंदी डाइजेस्ट



वासुदेव पोद्दार का पारदर्शी अनुसंधान

# विश्व के आदि महाकाव्य रामायण और महाभारत

भारतीय विद्या और संस्कृति के अतलगामी अध्येता, खोजी और मौलिक विचारक श्री वासुदेव पोद्दार की तरुण तेजस्वी प्रतिभा के प्रकाश को हिन्दी-संसार पहचाने, इसी अभीप्सा के साथ हम उनका यह गहन गवेषणात्मक लेख यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

**म**हर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास मानव के ऐतिहासिक यथार्थ के सबसे बड़े तत्त्व-द्रष्टा कवि हैं। रामायण और महाभारत इतिहास के काल प्रवाह पर गंगा की तरह फैलती हुई, आदर्शवादी यथार्थ की सबसे बड़ी कविता है। इन दोनों महान् काव्यों का प्रारंभ एक संपूर्ण मानव के संपूर्ण दर्शन के रूप में होता है। यह संपूर्णता इनके भीतर अनुपद समाहित है—कथानक की दृष्टि से, कथानायक की दृष्टि से, शिल्प की दृष्टि से, शब्द चयन की दृष्टि से, कथा के गठन और उसकी गतिशीलता की दृष्टि से; आदिकवि और महर्षि वेदव्यास की यह महान् कथा संपूर्ण है। संपूर्ण मानव का यह महान् इतिहास अपनी अप्रतिम ऊंचा-

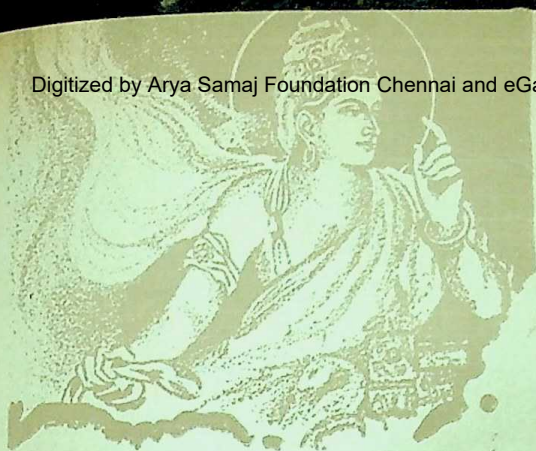
इयों पर उठता हुआ, संपूर्ण मानव के विराट् तत्त्व-दर्शन के रूप में प्रकट होता है जो विश्व के इतिहास में रामायण एवं भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है।

रामायण की प्रथमता का अतिक्रमण विश्व की कोई भी कविता आज तक नहीं कर सकी। इसकी इस प्रथमता ने भारतीय इतिहास की सुदीर्घ व्यापी काल-रेखा को सर्वत्र एक युग-विभाजक आधार-दृष्टि की तरह विभक्त और विस्तृत किया है। ऋग्वेद के पश्चात् भारतीय इतिहास का काल-प्रवाह रामायण और महाभारत युग के नाम से प्रसिद्ध है। भारतवर्ष के इतिहास की सुविस्तृत कालरेखा का विभाजन, विश्व के इतिहास की युग-विभाजक रेखा से कुछ भिन्न प्रकार का है।

नवनीत

१७२





मौलिक  
श को  
वेषण-

मानव के  
प्रकट होता  
में रामराज्य  
प्रसिद्ध है।  
अतिक्रमण  
राज तक नहीं  
ने भारतीय  
काल-रेखा को  
आधार-दृष्ट  
त किया है।  
इतिहास का  
महाभारत  
भारतवर्ष के  
खा का विश-  
युग-विभाजन  
है।

नवंबर

भारतीय इतिहास का युग-विभाजन  
साधों या कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के  
आधार पर नहीं, बड़े-बड़े ग्रंथों के नाम  
पर विभाजित हुआ है—वैदिक-युग, ब्राह्मण-  
युग, आरण्यक-युग, रामायण-युग, महा-  
भारत-युग, सूत्र-युग आदि-आदि।

इसका पाश्चात्य-भावी इतिहासकार  
इतिहास-सामंतवादी ढांचे में ढले  
रामाज्य का इतिहास है, जो कालां-  
तर में धारावाहिक रूप में आगे बढ़ता  
गया मध्ययुग के सामंतवादी संस्कारों से  
विभक्त होता रहा। इन जड़ संस्कारों  
के विकृत परंपरा डा. सांकलिया और  
डॉ. चाटवर्था तक चली आयी।

डॉ. मार्क्स के पश्चात् इतिहास के  
युग-विभाजन का संपूर्ण सिद्धांत और  
आधार ही बदल गया। इतिहास के  
युग-विभाजन की इस बदलती हुई भूमिका  
को स्पेन्सर, मोरोकिन, टोयनबी, क्रोबर,  
लेबेन्सकी, वेरदेव, यास्पर्स की बड़ी-  
बड़ी आख्याएं आ चुकी हैं। इतिहास के  
युग-विभाजन के सारे सैद्धांतिक आधार ही

बदल चुके हैं, पर भारतीय इतिहासकार  
आज भी उसी प्रकार सामंतवादी युग के  
अंधविश्वास और जड़ता से जुड़ा हुआ है,  
जिस तरह वह १८ वीं और १९ वीं शती  
में था।

भारतीय इतिहास के ये दोनों महान्  
ग्रंथ काव्य हैं। काव्य और काल का  
संबंध विव और प्रतिविव भाव का संबंध  
है। काल विव है, कविता उसका प्रति-  
विव। भारतीय इतिहास के समग्र काल-  
प्रवाह के भीतर रामायण और महाभारत  
आकाश की तरह व्याप्त हैं। ये ग्रंथ  
इतिहास के किसी एक बिंदु से जुड़े हों  
ऐसी बात नहीं, कविता के इतिहास में  
रामायण और महाभारत का इतिहास  
हर युग में लिखा गया है। तमसा के तट  
पर बिद्ध क्रौंच का आर्तनाद भारतवर्ष  
की सारी नदियों के तट पर फैलता चला  
गया—व्यास, भास, अश्वघोष, कालिदास,  
कुमारदास, विमलसूरि, रविषेण, भव-  
भूति, भट्टी, क्षेमेंद्र, गुणभद्र, पुष्पवंत,  
प्रवरसेन, कंबन, तुलसीदास, रंगनाथ....



कितने अंतहीन नामों की विराट् परंपरा हर युग में रामायण के साथ जुड़ती ही चली जा रही है। नगपति से नल-सेतु तक भारतवर्ष की समग्र भाषाओं के महानद रामायण और महाभारत की ऊंची अधित्यकाओं से उतरते हैं। यह समवेत-सलिल-समष्टि वन-खर-रुद्र-गंभीर होती हुई आगे बढ़ती है, कितने वृहत्-क्षुद्र-स्वच्छ-पंकिल-क्षार-मधुर-तिक्त जीवन के जल-स्रोत इसमें अविच्छिन्न भाव से विलीन होते चले जाते हैं।

आदिकवि ने जिसे देखा था, सुना था और गाया था—भारतीय इतिहास ने उसे हर युग में पाया है—उसे जन और जनपद तक पहुंचाया है—कवि व्यास और कालिदास के रूप में, कभी कंबन, कृत्तिवास, तुलसीदास, गांधी और रवींद्र के रूप में। संपूर्ण भारतीय इतिहास का काल-प्रवाह रामायण और महाभारत के द्वारा द्विफाल-बद्ध हो गया है—जिसका युगांतव्यापी निध्वान सारे भारतवर्ष के जनमानस की कथा है। इतिहास के महान् तत्त्वद्रष्टा—Oswald Spengler ने ठीक ही कहा है : 'The attempt to treat history scientifically always at bottom involves contradictions ..... It is nature that is to be treated scientifically. History is the business of a poet. All other solutions are impure.'

—इतिहास का सबसे बड़ा तत्त्वद्रष्टा

नवनीत

कवि है। भारतीय दर्शन ने कवि को क्रांतद्रष्टा कहा है। क्रांतद्रष्टा का अर्थ है जिसकी दृष्टि काल के प्रवाह से प्रतिष्ठित नहीं होती। कवि सर्वप्रथम काल को मूर्तिमंत करता है—फिर प्रत्यक्ष की सीमा पर उसका निर्वर्तन। आदिकवि ने रामायण के विषय में स्पष्ट लिखा है 'चिरनिर्वृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्'

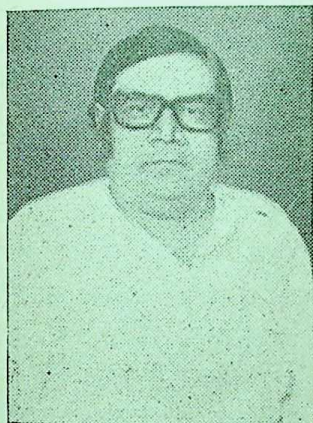
वैदिक युग से लेकर भगवान् बुद्ध पूर्व तक का दीर्घ इतिहास इन दोनों युगों के भीतर अनुपद समाहित है। मिथक मायथालाँजी के लिए यहां कोई अवकाश ही नहीं है। वाल्मीकि ने रामायण की भीतर सारे वैदिक देवतावाद को एक नया आकार दे दिया—देवता से ऊपर मानव की प्रतिष्ठा। वेदों के अग्नि, जल, वायु, इन्द्र, सब मनुष्य की सेवा करने के लिए धरती पर उतर आते हैं। वेदों के सारे बड़े-बड़े देवता रामायण के भूगर्भ पर वानर और भालू बनकर घूम रहे थे। रामायण का राम मानव है—विष्णु की संज्ञा की कोई आवश्यकता नहीं वह अपने को संपूर्ण रूप से मनुष्य मानता है—'आत्मानम् मानुषं मन्ये।' वेदों के विपरीत के ऊपर आदिकवि ने अपने नर राम की प्रतिष्ठा की है। जिन क्रूरताओं को विष्णु सहित सारे देवता मिलकर भी समाप्त न कर सके उसे वाल्मीकि के मनुष्य राम ने अपने धनुष के दीर्घ मंडल के भीतर घेर कर समाप्त कर दिया। रावण की शक्ति सारे देवताओं से अधिक प्रबल



निकाय है।

रामायण की कृता को  
रामायण की यह प्राचीनतम कथा  
एक विशाल नदी की तरह बड़े-बड़े पर्वतों  
और पठारों पर घुमड़ती हुई-सहस्रा-  
ब्दियों तक वीणा के मंडल पर झूमती  
हुई, काल के अलंघ्य भूधरों से उतरती  
है। इतिहास के अचल शिला-खंडों को  
समतल में बदलती हुई सागर संगम तक

पहुँचती है। एशिया का  
महान सांस्कृतिक परि-  
कर राम की कथा से  
घिरा है। विश्व के इति-  
हास की कौन-सी ऐसी  
ऊँचाई शेष रह गयी है,  
जिसे राम ने अपनी  
भुजाओं से न मापा  
हो। भारतीय आकाश  
के सांस्कृतिक क्षितिज  
का कौन-सा अंतराल  
रिक्त रह गया है, जहां  
राम न हों। भारतीय  
संस्कृति की महान श्रद्धा



वासुदेव पोद्दार

ने राम की प्रतिमा पर फूलों के पहाड़ लगा  
दिये। राम और बुद्ध के मध्य कितने समय  
का अंतर रहा होगा, यह इतिहासकारों  
के लिए बहुत बड़े विवाद का विषय भले  
ही हो, पर जहां-जहां भगवान बुद्ध ने  
एशिया के सांस्कृतिक इतिहास पर अपना  
चरण रखा है, वहां-वहां राम का निष्पंक  
व्यक्तित्व आकाश की तरह छाया हुआ  
है। यहां तक कि दक्षिण, पूर्व, पश्चिम



एवं मध्य एशिया तक के काव्य-स्रोत हैं। राम की वाङ्मयी मूर्ति को अपने भीतर समाहित कर लेने के लिए मचल उठे हों, ऐसी बात नहीं, वहां के कठोर शिलाखंड राम के प्रतापघन विग्रह को उत्तंकित कर लेने के लिए मोम की तरह पिघल गये। सुमात्रा, जावा, कम्बोडिया, चीन, जापान, तिब्बत, तुर्किस्तान, यूनान तक रामकथा की संस्कृति कठिन एवं अलभ्य परिस्थितियों में भी अपनी असाधारण सम्प्रेषणीयता के बल पर उन संस्कृतियों के भीतर प्रवेश कर गयी। महर्षि वाल्मीकि ने होमर की नकल कहीं नहीं की—होमर ने यूनान की प्रकृति एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल राम की कथा को इलियड में विकृत किया है।

वाल्मीकि पर होमर का प्रभाव सिद्ध करने के लिए डा. जेकोबी और वेवर से लेकर डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या तक की परम्परा के पास काल्पनिक मनो-विलास को छोड़कर और कोई भी प्रमाण नहीं है। योरोप के प्रसिद्ध इतिहासकार पोकोक ने तो यहां तक कह दिया है—*Heroes of India are the gods of Greece*. भारतवर्ष के योद्धा ही कालान्तर में यूनानी संस्कृति के देवता बन गये।

इन पंडितों ने रामायण और महा-भारत की सारी स्थिति ही संदिग्ध बना डाली है—आज इन पंडितों की दृष्टि में महाभारत क्षेपकों का बहुत बड़ा स्तूप है, जिसके भीतर मूल को खोज पाना ही कठिन

नवनीत

है। रामायण और महाभारत पर उल्लेखनीय चर्चाओं को आगे बढ़ानेवाले इतिहासकार इस प्रकार हैं—Bopp, Roth, Bopp, lingk, Prof. Lassen, H. Jacob, Webber, Monier Williams, H. Oldenberg, Soren Sorensen, E. Washburn Hopkins, Holtzmann, L. V. Schroeder, Winternitz, J. J. Mayer, Barth, Keith, Sylvain, Levi, Pischel, J. Dahlmann, आर. सी. दत्त, सी. वी. वैद्य, मुकुन्दर ड. सांकलिया, डा. डी. सी. सेन, डा. चाटुर्ज्या, डा. डी. सी. सरकार, सी. वत्स, स्वामी करपात्री आदि-आदि।

कहना न होगा १८ वीं - १९ वीं तक के इन सामन्तवादी ढांचों पर उभरे हुए विसंवादों के द्वारा रामायण और महाभारत की सम्पूर्ण गरिमा और प्रामाणिकता को विनष्ट एवं विगूँथलित करने का सामूहिक प्रयास किया गया।

महाभारत भारतवर्ष की हिरण्यवर्ण संस्कृति का सबसे विशाल विश्वकोष है—भारत ज्ञान का महासागर है जिसके अनन्त तरंगों पर उतरता हुआ सारा काल का सारा स्वर समुच्चय शब्द-श्रवण होकर भारतीय इतिहास के काल-श्रवण पर उतरता चला गया। जैसे महाभारत की तरंग भुजा न उससे पृथक है, न विभक्त और न असम्बद्ध।

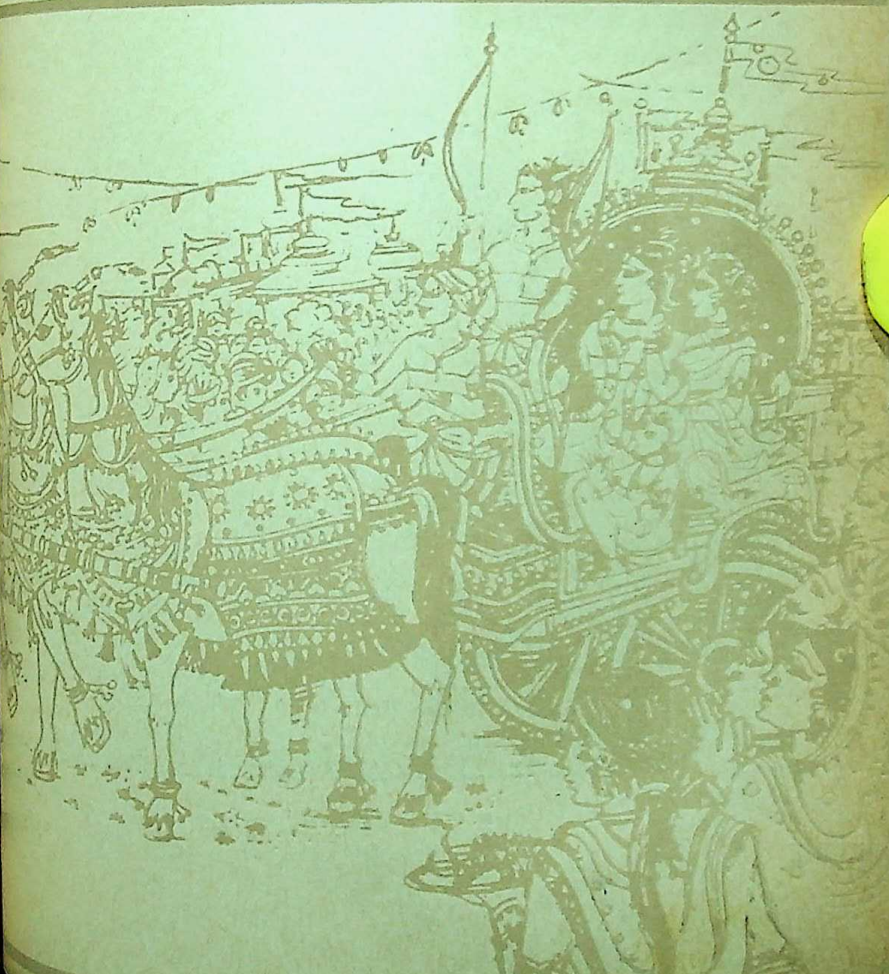
मानव के 'जय' की महान उदीर्ण के साथ इस महाकाव्य का विषय प्रवर्तित



Digitized by eGangotri Foundation  
 होता है। सम्पूर्ण महाभारत का अन्वय वेदव्यास ने—‘यतो  
 शब्द-राशि का अन्वय वेदव्यास ने—‘यतो  
 धर्मः स्ततो जयः’ की महान् पंक्ति के  
 भीतर किया है।

महाभारत को पंचम वेद कहकर  
 भारतीय संस्कृति में इसका ग्रहण और  
 उपादान भी श्रुति की तरह ही किया  
 गया है। संहिता शब्द से सर्वत्र इसको  
 संबोधित करते हुए इसके स्वरूप को  
 विवृतियों से संभाला गया है। पाठ-भेद

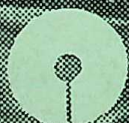
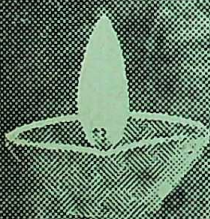
मा शेषक के रूप में जिसकी चर्चाएं इति-  
 हासकार करते हैं, वह तो वेदों की तरह  
 ही सम्प्रदाय क्रम का शाखा भेद है, विकृति  
 का तो प्रश्न ही नहीं। ईसा से तीन हजार  
 वर्ष पूर्व निर्मित यह विशाल ग्रन्थ अनुपद  
 समाहित और संगठित है। यहां तक की  
 अज्ञातवास की काल-गणना के न्यूनान्तर  
 पर तो महाभारत के महायुद्ध का विगुल  
 ही बज गया था। महाभारतकार ने तिथि  
 और नक्षत्रों के साथ इसकी सम्पूर्ण काल-





## हे प्रकाश तू आता कहाँ से है ?

अंधकार की मेदनेवाले सूर्य से ?  
या गिरती हुये बनफूलों पर फुदकती  
तितलियों के स्वर संगीत से  
हाँ हाँ हमें मालूम है  
तू चमक रहा है किसी के नयनों में  
किसी की मुस्कान में  
दीपावली का हर्षोल्लास बनकर !  
हे प्रकाश ! उनकी आँखों की चमक  
और मुस्कान की रक्षा तो तुझे ही  
करनी है  
तू बचत का आकाशदीप बनकर  
उनके जीवन को  
आलोकित कर दे न !



**स्टेट बैंक**  
**आहुए साथ बढ़े !**

CHAITRA-SBI-807 HIN

नवंबर

नवनीत

१७८



धर्मिता को प्रत्येक स्थल पर संभाला है।

इस पंचम वेद की महान परम्परा याज्ञवल्क्य, जैमिनी, पैल, सुमन्तु, सौति, वंशम्पायन आदि महान् आचार्यों की सम्प्रदाय परम्परा का शाखा-क्रम ही इतिहासकारों की संकुचित बुद्धि में विकृति का भ्रम उत्पन्न करता रहा है। आज इस समुपलब्ध महाभारत के साथ एक सत्य और भी जुड़ा हुआ है—उसका सम्बन्ध विकृति से नहीं, इसके विशाल माहात्म्य से है। समय-समय पर उपर्युक्त आचार्यों ने इस पर बड़े-बड़े निर्वचन और व्याख्यान प्रस्तुत किये हैं। आचार्यों के ये निर्वचन और व्याख्यान महाभारत के रहस्यमय संदर्भों को समझने के लिए इतने गम्भीर और महत्त्वपूर्ण थे, जिन्हें काल के इस दीर्घ प्रवाह के भीतर महाभारत से पृथक् करके नहीं रखा जा सका, वे इस महा-समुद्र के भीतर अपने असामान्य महत्त्व के कारण जल की कुछ बूंदों की तरह विलीन हो गये। आचार्यों की यह प्रचण्ड जागरूकता महाभारत के महत्त्व को और भी बढ़ा देती है। यह श्लोक संख्या इस पुष्कलकाय 'भारत-सूर्य' के भीतर मेरी दृष्टि में अधिक नहीं।

द्वार पर की चिता-भस्म पर खड़े होकर महर्षि वेदव्यास ने अपने युग के सारे अनाराल को इस ज्ञान, विज्ञान के महा-समुद्र के भीतर समेट लिया है। संपूर्ण इतिहास का निर्मूल एवं यथार्थ सम्पादन करने के लिए वेदव्यास हिमालय की

गहन गुफाओं के भीतर गये हैं। वैदिक युग से लेकर द्वापर तक के सारे इतिहास को निर्मूल प्रामाणिकता पर खड़ा कर देने के लिए महर्षि ने आठ हजार श्लोकों की वृहत् सिनोप्सिस बनायी। फिर उसे भारतीय संस्कृति के प्रवहमान मूल्यों की सारी प्रामाणिकता के साथ महाभारत के रूप में प्रस्तुत कर दिया।

भारतीय संस्कृति के इस विशाल विश्व-कोश को इतने बड़े-बड़े नामों से सम्बोधित किया गया जो आज तक विश्व में किसी भी ग्रन्थ के साथ प्रयुक्त न हुए। वेदों के कर्मकाण्ड का उपवृहण भृगु आंगी-रस अग्नि का चयन करते हुए प्रामाणिकता के साथ हुआ—यज्ञ के ब्रह्मा ने इसे—'भारत सूर्य' के नाम से अभिहित किया।

यह ग्रन्थ इतिहास में 'भारत-सावित्री' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसका आकार, इसकी अखण्ड समग्रता इतनी असाधारण है—इसलिये यह महान ग्रन्थ महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है।

इसमें मानवता की विजय का इतिहास है—इसलिये यह 'जय' है।

भारतीय संस्कृति की परम्परा में यह वेद है, पुराण है, इतिहास है, गाथा है—स्मृति-शास्त्र और दर्शन-शास्त्र है, ज्ञान-विज्ञान का बहुत बड़ा विश्व-कोश है। काव्य-शब्द की गम्भीरता और उसके अर्थ-विस्तार का सबसे बड़ा आयतन महाभारत को छोड़कर विश्व में कोई अन्य ग्रन्थ ही नहीं है।





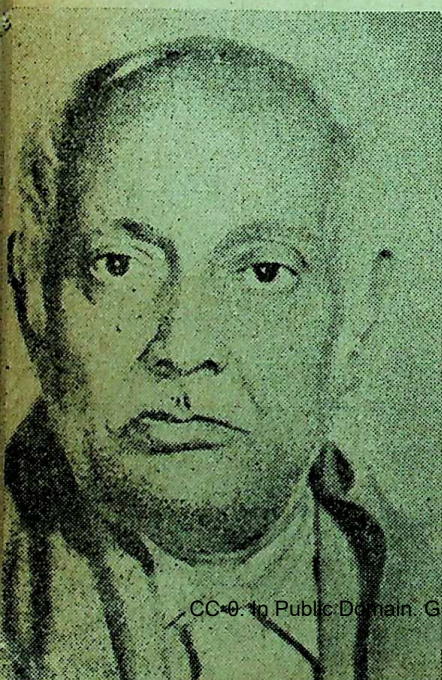
पराधर्ममहोपाध्याय Foundation, Gopinath Kaviराज का  
पराभौतिक विद्या-संबंधी साक्षात्कारी लेख

# महान् आत्मविज्ञानी परमहंस विशुद्धानन्द और सूर्यविज्ञान के दिव्य चमत्कार

**स्वामीजी** का परिचय मुझे १९१७ ई.  
के अंतिम चरण में एक आकस्मिक  
कारण के प्रभाव से प्राप्त हुआ ।

परमहंसजी से मिलने के पहले दिन  
ही मुझे आशीर्वाद मिल गया । मेरी ओर  
से प्रार्थना किये बिना ही अपनी ओर से  
इंगित द्वारा उन्होंने प्रकाश किया कि  
उनसे मुझे दीक्षा मिलेगी । इनके विषय में

**गोपीनाथ कविराज**



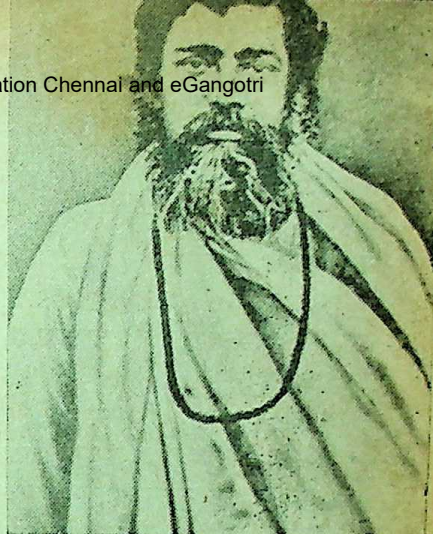
मैंने सुना था कि ये महायोगी हैं और बहुत  
वर्षों तक तिव्रत में रहकर योग विद्या  
और विभिन्न प्रकार का आर्षविज्ञान  
प्राप्त किया है, जिनमें सूर्य-विज्ञान प्रधान  
है । यह सुनकर कुतूहल हुआ कि इनका  
दर्शन करें और इस रहस्य का पता लगायें ।  
पहले दिन की भेंट से ही मुझे इनके व्यव-  
हार से ऐसा मालूम पड़ा कि जैसे ये हमसे  
चिरपरिचित हैं । प्रणाम करते ही पूछा,  
'बेटा तुम्हारे हृदय की अवस्था इस समय  
कैसी है ?' १९११ ई. में एम. ए. (अंतिम  
वर्ष) में पढ़ने के समय मेरे हृदय में कुछ  
कष्ट हो गया था, जिसके लिए मुझे एक  
वर्ष तक अध्ययन स्थगित करना पड़ा  
और १९१२ की परीक्षा में उपस्थित नहीं  
हो सका । उस समय विशिष्ट चिकित्सकों  
की सहायता प्राप्त करने के बाद मुझे  
स्वास्थ्य लाभ के उद्देश्य से वायु-परिवर्तन  
के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों में जाना पड़ा  
था । ये बातें और किसी को ज्ञात नहीं  
थीं । स्वामीजी के एतद्विषयक आकस्मिक

नवंबर



स्वामीजी प्रत्यक्षवादी थे। उनका कहना था कि जब तक कोई तत्त्व प्रत्यक्ष न किया जाये और उसे दूसरे को प्रत्यक्ष न कराया जा सके तब तक उसमें पूर्ण विश्वास नहीं हो सकता। प्रसंगतः एक दिन मैंने पूछा, 'योग शास्त्र में लिखा है 'सर्व सर्वात्मक'—इसका रहस्य क्या है?' स्वामीजी ने कहा—'पतंजलि का यह सिद्धांत पूर्णतया सत्य है। वास्तव में सबमें सब कुछ है। परंतु सब रहते हुए भी जिसकी अधिकता होती है, नामकरण उसी के आधार पर होता है और उसी नाम से उस वस्तु का जगत में परिचय मिलता है। इतना ही नहीं, वस्तु की गुणक्रिया भी प्राधान्य के अनुसार ही होती है।'।

मैंने पूछा 'क्या यह प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है?' उन्होंने कहा 'क्यों नहीं? सर्वज्ञ, सर्वदा, सर्व प्रकार से अनुभव हो सकता है।' यह कहकर वे बोले, 'देखो, अभी दिखा देते हैं।' उस समय उनकी मेज़ पर गंधफूल (मेरी गोल्ड) की एक माला रखी हुई थी। उसमें से एक फूल लेकर उन्होंने कहा, 'देखो यह कौन फूल है ?



परमहंस विगुहानंद

यह गंधफूल है। इसमें सब प्रकार के फूल ही नहीं और भी वस्तुएं विद्यमान हैं। अभी इसे गुलाब में परिणत किये देता हूँ।' यह कहते हुए वे उस फूल को हाथ में लेकर धीरे-धीरे हिलाने लगे, थोड़ी देर के बाद बोले, 'इसमें गुलाब के परमाणु आ रहे हैं।' हम लोगों के देखते ही देखते वह गुलाब में परिणत हो गया। फिर थोड़ी ही देर में बाबा ने उसे जवापुष्प बना दिया। इसके बाद वे बोले, 'इस प्रकार सभी वस्तुओं में सबकी सत्ता है, परंतु जिस वस्तु का अंश अधिक रहता है उसी की गुण क्रिया अभिव्यक्त होती है और फिर उसी रूप में उसका प्रकाश होता है। इसी प्रकार असत् में भी सत् का अस्तित्व रहता है और शुद्ध वस्तु में अशुद्ध तत्त्व विद्यमान रहते हैं। अतः असाधु व्यक्ति भी कालांतर



में साधु हो सकता है और साधु के भी पतन की संभावना रहती है। मैंने पूछा, 'आपने जो परिवर्तन किया है क्या वह योगबल से हुआ है?' उन्होंने कहा, 'नहीं, यह योग नहीं, सूर्य-विज्ञान की क्रिया है।'

इसी प्रकार मैं प्रतिदिन मध्याह्न में उनके पास जाता था और योग तथा विज्ञान की चर्चा सुनता था। इससे जो कुछ मैं समझ सका, उसके अनुसार इनके सूर्य-विज्ञान का सिद्धांत संक्षेप में इस प्रकार है, 'सूर्य शक्ति का परिज्ञान होने पर इन रश्मियों के विशिष्ट प्रक्रियामूलक संघटन से कोई भी वस्तु उत्पन्न की जा सकती है। परंतु रश्मियों को पहचानना अत्यंत कठिन है। रश्मियां विभिन्न रंग की हैं, सबसे पहले एक श्वेत प्रकाश लाया जाता है, जिसको शास्त्र में विशुद्ध सत्व कहते हैं। इस शुभ्र सत्ता के ऊपर प्रयोजन के अनुरूप विभिन्न रश्मियों का उद्भावन और संयोजन किया जाता है। उससे वस्तु का आविर्भाव होता है। सामान्यतया प्रत्येक वस्तु में प्रत्येक वस्तु का अंतर्भाव है। परंतु गुण प्रधान भाव है। अर्थात् कुछ अंश प्रबल, कुछ दुर्बल रहता है।'

मैंने प्रश्न किया, 'यदि गुण प्रधान भाव न रहे, सब बराबर रहे, तब क्या होगा?'

वे बोले, 'गुण प्रधान भाव न रहने से साम्यावस्था हो जायेगी। तब वस्तु का लय हो जायेगा। सृष्टि और संहार परम सूक्ष्म अणुओं का खेल है। सूर्यरश्मि के द्वारा इन अणुओं का परिचय मिलता है।

रश्मि है व्यंजक, अणु है व्यंग्य। व्यंजक के आकर्षण से व्यंग्य का आविर्भाव होता है। वस्तु में विभिन्न उपादानों का संघात है। प्रत्येक वस्तु का पृथक्-पृथक् संघात है। तदनुसार व्यंजक वर्णों के भी क्रम पृथक्-पृथक् सूत्र (फार्मूले) हैं। विज्ञानविद् को इन्हें जानना पड़ता है। यहां ज्ञान का उपयोग होता है और क्रिया के द्वारा इस क्रम से उपादान का आकर्षण करना पड़ता है। यह क्रिया-विशिष्ट ज्ञान ही विज्ञान है। विज्ञानविद् प्रत्येक वस्तु का विग्रह करना जानता है, तदनुसार क्रम का भी उसे होता है। इस क्रम का अनुसरण करते हुए व्यंजक रश्मियों का आकर्षण करना पड़ता है। इसमें एक रहस्य यह है कि जब तक क्रमांतरगत सभी रश्मियों का क्रमशः आकर्षण करने पर भी अंतिम रश्मि का आकर्षण नहीं होता तब तक बाह्य दृष्टि से उस वस्तु का कुछ भी पता नहीं चलता। अंतिम रश्मि के आविर्भाव के साथ ही साथ रश्मि-व्यंग्य उपादान का आविर्भाव हो जाता है और उसी के साथ वस्तु का भी स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है। यह एक अपूर्व व्यापार है। अंतिम रश्मि को छोड़कर शेष रश्मियों का आहरण करने दीर्घकाल तक रखा जा सकता है, फिर प्रयोजन के समय एक रश्मि के आहरण से ही वस्तु का उदय हो जाता है। यह वस्तु कल्पित नहीं, शुद्ध वस्तु है और जाति वस्तु से कहीं अधिक निर्मल और स्वच्छ होती है।'

नवनीत

१८२



स्वामीजी ने इस प्रसंग को आगे बढ़ाते  
 कहा, 'एक प्रश्न यह है कि रश्मि का  
 संयोजन या मिलाप कैसे हो सकता है ?  
 प्रश्न इसलिए उठता है कि रश्मि  
 प्रकट होती है, प्रकट होने के साथ ही  
 हो जाती है। ऐसी स्थिति में एक  
 रश्मि के साथ दूसरी रश्मि का संयोजन  
 किस प्रकार संभव है ? यह तभी हो सकता  
 है जब दोनों रश्मियां समकाल स्थायी हों।  
 अतः अत्यंत निगूढ़ विषय का समाधान यह  
 है कि इन सभी रश्मियों के अंतराल में एक  
 निगूढ़ शुभ्र किरण रहती है। उसमें तीव्र  
 किरण शक्ति होती है। सृष्टि में उस  
 किरण का स्फुरण नहीं रहता। यह  
 सृष्टि की पृष्ठभूमि में रहती है। परंतु  
 अनावृत्त खंडरूपेण उसे प्रकट कर सकते  
 हैं और तत्काल स्थायी बना करके रख भी  
 सकते हैं। इस रश्मि का किसी से विरोध  
 नहीं है। क्योंकि यह स्वच्छ है। जब इस  
 शुभ्र रश्मि के ऊपर किसी रश्मि का आह-  
 वल किया जाता है तब इससे आकृष्ट होकर  
 वह बाहरत रश्मि इसमें संलग्न रहती है  
 अतः उसका तिरोधान नहीं होता।  
 ऐसी स्थिति में क्रमानुरूप द्वितीय रश्मि  
 आकृष्ट होकर उसके साथ युक्त हो जाती  
 है। इस प्रकार दो रश्मियों का संयोग  
 होता है। तृतीय, चतुर्थ, पंचमादि रश्मियों  
 का संयोजन भी इसी भांति किया जाता है।  
 रश्मि संयोग का तात्पर्य है उसके अभि-  
 वल्य उपादान का संयोग। जब अंतिम  
 उपादान का संयोग होता है तब द्रव्य का

आविर्भाव होता है। यही सृष्टि का रहस्य  
 है। अनलामि-विलामि दोनों प्रकार से  
 रश्मियों का क्रम जानना चाहिए।'

बाबा कहा करते थे कि सूर्य-विज्ञान  
 सृष्टि का मूल विज्ञान है। सूर्य का नाम  
 'सविता' इसी कारण से पड़ा है। इसी  
 प्रकार उन्हें चंद्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान,  
 नक्षत्र-विज्ञान, शब्द-विज्ञान, क्षण-विज्ञान  
 प्रभृति का भी सविशेष ज्ञान था। ये सब  
 विज्ञान उन्होंने तिब्बत में रहने के समय  
 योग-शिक्षा के साथ आयत्त किये थे।  
 उसका विशेष विवरण मेरे लिखे हुए दो  
 ग्रंथों—विशुद्धानंद प्रसंग (बंगला-पांच खंड)  
 और विशुद्ध वाणी (बंगला-नौ खंड)  
 तथा श्री अक्षरकुमार दत्त गुप्त विरचित  
 'योगिराजाधिराज विशुद्धानंद (बंगला)  
 नामक ग्रंथ में मिलेगा।

### तिब्बत स्थित सिद्धभूमि ज्ञानगंज

दीक्षा के बाद प्रायः बीस वर्षों तक मुझे  
 बाबा का घनिष्ठ संपर्क प्राप्त हुआ। इस  
 बीच उनकी असंख्य अलौकिक विभूतियों  
 एवं शक्तियों का परिचय मिला, साथ ही  
 उनकी अपार करुणा तथा प्रेम का भी  
 अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ। ये तिब्बत में  
 स्थित ज्ञानगंज नामक सिद्धभूमि में चौदह  
 वर्ष की अवस्था में ही गये थे और वहां  
 रहकर ब्रह्मचारी, दंडी तथा संन्यासी—  
 इन तीनों अवस्थाओं का साक्षात् अनुभव  
 प्राप्त किया था। ब्रह्मचारी अवस्था में  
 १२ वर्ष तक तथा दंडी और संन्यासी की  
 (शेषांश पृष्ठ २२३ पर)



महाकवि दंडी के अमर संस्कृत उपन्यास 'दशकुमार चरितम्'  
का हरिमोहन शर्मा द्वारा संक्षिप्त हिंदी रूपांतर

# दशकुमार चरित

महाक  
ने अनुपम है  
प्रति प्रदान

यह उ

नीतियां समा

जातो अंग थे

की महिमा थ

जिस्कर अपन

जान में अं

दण्डी

में झूरे पैठक

वापस दृ की,

को जा स

की राज

की रा

कता वा ।

नाथ सुखपू

मुन युद्ध

भार को पर

के बाद, उ

निभा। वस्

मन हुआ,

वृ काजी स

कता वा

क्तु रा

रु गुप्तचर

नसार उ

कर रहा

१८१



महाकवि दण्डी की यह औपन्यासिक कृति संस्कृत के कथा-साहित्य में कई दृष्टियों से अनुपम है। इसमें अपने काल के यथार्थ को दण्डी ने बड़ी निष्पक्षता से कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

यह उस काल के भारत के उस पट को खोलती है, जब चाणक्य द्वारा निर्धारित नीतियां समाज में सर्वमान्य थीं, जब वणिज समाज के सर्वाधिक शक्तिशाली और प्रभाव-शाली अंग थे, और मध्यपूर्व के देशों के साथ समुद्री व्यापार करते थे। जब पतिव्रत धर्म की महिमा थी, किंतु वेश्याएं और गणिकाएं भी समाज में प्रतिष्ठित थीं। जब कन्याएं फिर अपने प्रेमियों से मिलती थीं, और उन्हें प्रेम करने के लिए उकसाती थीं। जब समाज में अंधविश्वासियों, जुआरियों, जादूगरों और धूर्तों का बोलबाला था।

दण्डी ने अपने काल के समाज की गहराइयों के अलावा, विभिन्न पात्रों के मन में घूरे पंठकर, जिस रोचक आख्यान को जन्म दिया है, उसकी तुलना उनके समकालीन कामधेनु की, जो उनके समान संस्कृत गद्यकाव्य के सशक्त प्रणेता थे, की 'कादम्बरी' से की जा सकती है।



कनी राजहंस नामक राजा मगध की राजधानी पुष्पपुरी में राज्य करता था। वह अपनी रानी वसुमती के साथ सुखपूर्वक रहता था। उसने एक पुत्र युद्ध में मालवा के राजा मानसार को पराजित किया था। इस विजय के बाद, उसे एक और शुभ समाचार मिला। वसुमती गर्भवती थी। राजा उत्सव हुआ, क्योंकि पुत्र-प्राप्ति के लिए लंबा समय से देवताओं की आराधना करता आ रहा था।

किंतु राजा की यह प्रसन्नता अपने अचानक गुप्तचर से यह समाचार पाकर कि मानसार उस पर आक्रमण की तैयारियां कर रहा है, कम हो गयी। गुप्तचर

ने बताया कि मानसार ने उज्जयिनी के महाकाल मंदिर के महेश्वर को प्रसन्न कर, उनसे एक भयंकर रुद्र-गदा प्राप्त की है। यह चिंता का विषय था, मगर चिंता को त्यागकर उसने विनाल सेना के साथ मानसार से युद्ध किया।

युद्ध में राजहंस पराजित हुआ। रुद्र-गदा ने उसके सारथी को मारकर उसे मूर्च्छित कर दिया। रथ के अश्व रथ को भगाकर उस वन में ले गये, जहां राजहंस ने पहले ही वसुमती तथा अपनी अन्य रानियों को भेज दिया था।

वसुमती को जब अपनी सेना की पराजय और अपने पति के गायब हो जाने का समाचार मिला, तो उसने प्राण त्याग



करने का निश्चय किया। किंतु, उसके मंत्रियों ने उसे यह कहकर रोकना चाहा, 'राजा की मृत्यु का कोई समाचार नहीं मिला है, और ज्योतिषियों का कहना यह है कि आप शीघ्र ही एक वीर पुत्र को जन्म देने वाली हैं।'।

लेकिन, रानी न मानी, और आधी रात को प्राण त्याग करने वन में गयी। वहां संयोग से, उसने अपने पति को कराहते सुना। मंत्रियों और अमात्यों की सहायता से वह उन्हें अपने शिविर में ले आयी, जहां कुछ दिन बाद राजहंस सेवा-सुश्रूषा से भले-चंगे हो गये। स्वस्थ होकर वे मुनि वामदेव से मिले। मुनि ने उन्हें परामर्श दिया कि वे कुछ दिन शांत बैठें। 'पुत्ररत्न की प्राप्ति के पश्चात् तुम्हारे दिन फिरेंगे।'।

और एक दिन शुभ मुहूर्त में वसुमती ने सब लक्षणों से युक्त एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम राजवाहन रखा गया। उसी समय राजा के चार अमात्यों—सुमति, सुमंत्र, सुमित्र और सुश्रुत के घर प्रमति, मित्रगुप्त, मंत्रगुप्त और विश्रुत इन चार पुत्रों ने भी जन्म लिया। ये चारों राजवाहन के बाल-साथी बने, और वह रोज़ उनके साथ खेलने लगा।

कुछ समय बाद, एक तपस्वी से राजा को उपहार में एक बालक प्राप्त हुआ, जिसका नाम राजा ने उपहारवर्मा रखा। वह वास्तव में राजा के मित्र, मिथिला के राजा प्रहारवर्मा का पुत्र था। प्रहार-

वर्मा राजा राजहंस की सहायता करने के लिए आये थे, और राजहंस की हार के बाद अपनी शेष रही सेना के साथ अपने नगर को लौट रहे थे कि शत्रुओं के एक दल ने उन्हें घेर लिया। मिथिलाराज का यह पुत्र अपनी धाय के पास था। शत्रु ने उससे उस बालक को लेकर एक तपस्वी को दे दिया। वही तपस्वी इस बालक को राजा राजहंस के पास लाया था।

उस बालक को अपने पास रखकर राजहंस मिथिलाराज के दूसरे पुत्र और उपहारवर्मा के भाई की खोज में निकले जो तपस्वी की सूचना के अनुसार, शत्रु के पास ही था। काफ़ी खोज के बाद वह बालक भी राजा को एक शत्रु के पास मिल गया। राजा राजहंस उसे अपने साथ ले आये, और उसका नाम अपहारवर्मा रखा।

०००

कुछ दिन बाद, राजा को मुनि वामदेव के शिष्य सोमदेव शर्मा के पास से एक और बालक मिला, जिसका नाम उन्होंने पुष्पोद्भव रखा, क्योंकि उनके पिता का नाम रत्नोद्भव था। रत्नोद्भव एक बार समुद्री व्यापार करते-करते कालयवन नामक द्वीप में पहुंचा। वहां से अपनी पत्नी सुवृत्ता के साथ वापस लौट रहा था, तो नाव डूब गयी। उसके साथ वह भी डूब गयी। सुवृत्ता बच गयी, और उसने तट पर पहुंचकर एक पुत्र को जन्म दिया। बालक



राजम लेने के बाद उसे एक रात अंगपाल के नाम से उल्टा कर अंत में  
 वह उन सबको झेलकर अंत में  
 के पल्ले पड़ा। बाद में राजा  
 मनुष्य पड़ा, रत्नोद्भव उनके अमात्य  
 का छोटा भाई था। इसलिए,  
 पुण्योद्भव को सुश्रुत को सौंप  
 राजा के एक मंत्री थे धर्मपाल। उनके  
 कामपाल ने एक यक्ष-कन्या तारावली  
 विवाह किया था। एक रात वह रानी  
 के पास आकर बोली, 'मेरे  
 मणिभद्र यक्ष ने आदेश दिया है  
 मैं अपने पुत्र को राजवाहन की सेवा  
 दूँ। अतः, आप मेरे पुत्र को  
 भेज दें।' राजा ने इस बालक को  
 भेज कर, उसका नाम अंगपाल रखा,  
 उसे सुमंत्र अमात्य को सौंप दिया।  
 बालकों के आने का सिलसिला जारी  
 रहा।

मुनि वामदेव के एक और शिष्य को  
 जोर में स्नान करते समय, एक वृद्धा  
 रोद में रोता एक सुंदर और चंचल  
 दिखायी दिया। पूछने पर ज्ञात  
 कि वह राजा के मंत्री सितवर्मा के  
 पुत्र सत्यवर्मा का पुत्र था। राजा  
 बालक का नाम सोमदत्त रखकर, उसे  
 के ताऊ सुमति मंत्री के सुपुर्द कर  
 दिया।  
 इस प्रकार, दस बालक राजा राजहंस  
 के खरब में पलने लगे। सब राजवाहन  
 ब्रह्मणों की भांति यज्ञोपवीत भी धारण  
 कर रखा था। उसने राजवाहन से कहा,

राजवाहन की शिक्षा-दीक्षा में राजा  
 राजहंस ने कोई कोर-कसर न उठा रखी।  
 उसे सब देशों की भाषाओं का ज्ञान कराया  
 गया। उसने काव्य, नाटक, आख्यायिका,  
 इतिहास, वेद-पुराण, धर्म, व्याकरण, ज्यो-  
 तिष-शास्त्र, नीति-शास्त्र, मीमांसा, तर्क  
 आदि का अध्ययन पूरा कर, संगीत, चित्र-  
 कला आदि कलाओं और मणिमंत्र,  
 द्यूतक्रीड़ा, चौर्यकला आदि छल-कौशल  
 में भी निपुणता प्राप्त की। हाथी-घोड़ों  
 के अलावा सब प्रकार के वाहनों की सवारी  
 और युद्ध-कला में भी वह प्रवीण बना।  
 राजा राजहंस उसकी प्रगति से अत्यंत  
 प्रसन्न थे।

०००

एक दिन मुनि वामदेव राजा से भेंट  
 करने के लिए आये। वहां उन्होंने राज-  
 वाहन को देखकर उसे आशीर्वाद देकर  
 राजा से कहा—'अपने राज्य की वृद्धि  
 के उद्देश्य से आप कुमार राजवाहन को  
 उसके साथियों के साथ दिग्विजय-यात्रा  
 पर भेजिये।' राजा ने एक शुभ मुहूर्त  
 में मुनिवर की आज्ञा का पालन किया।

अपनी दिग्विजय-यात्रा में अनेक राज्यों  
 को पार करता हुआ, राजवाहन जब  
 विंध्याटवी वन में घुसा, तो उसकी भेंट  
 एक ऐसे पुरुष से हुई, जो देखने में तो  
 किरात जैसा लगता था, लेकिन उसने  
 ब्राह्मणों की भांति यज्ञोपवीत भी धारण  
 कर रखा था। उसने राजवाहन से कहा,



‘तुम्हारे मित्रों से मुझे तुम्हारा परिचय प्राप्त हो चुका है, राजकुमार ! मेरी पूर्व कहानी बड़ी विचित्र है। वह कभी वाद में सुनियेगा। फिलहाल इतना ही जान लीजिये कि मैं वन में अकेला रहता हूँ, भगवान शिव का स्मरण करता हुआ। कुमार ! आप मेरे साथ आयें। मुझे आपसे एकांत में कई एक गुप्त बातें करनी हैं।’

एकांत में मित्रों से अलग राजवाहन को उस पुरुष ने बताया, ‘मैंने ब्राह्मवेला में एक स्वप्न देखा था। चंद्रशेखर महादेव ने मुझे दण्डकारण्य के बीच बहती नदी के तट पर स्थित एक स्फटिक लिंग के बारे में बताया है, जिसके पीछे भगवती के पांवों के चिह्नोंवाला एक पाषाण है। उसके पास के बिल में प्रवेश करोगे, तो तुम्हें एक ताम्रपत्र मिलेगा। उस पर जो लिखा है, उसके अनुसार आचरण करोगे, तो तुम पाताललोक के स्वामी बन जाओगे। इस कार्य में एक राजकुमार कहीं से आकर तुम्हारी सहायता करेगा। अब आप आ गये हैं, अतः मेरी सहायता करें।’

आधी रात को दोनों उस बिल में घुसे। अंदर पहुंचकर, दोनों को एक ताम्रपत्र दिखायी दिया। उसे पढ़कर शिव-भक्त ब्राह्मण यज्ञ करने बैठ गया,

**नवनीत**



और राजवाहन के देखते ही देखते वह की अग्नि में कूद गया। जब वह अग्नि में से बाहर आया, तो उसकी देह सोने के समान चमक रही थी।

तभी एक सुंदरी युवती उस पुरुष के पास आयी और उसे एक मणि देकर बोली, ‘मैं न जाने कब से आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। मेरे पिता आमुर्राज एक युद्ध में भगवान विष्णु से परास्त हुए थे। तब एक मुनि ने मुझसे कहा था कि एक दिन एक दिव्य देह वाला पुरुष यहां आयेगा, और तुमसे विवाह करके तेरी रक्षा करेगा। अब आप मुझे अपनी भार्या बनाकर इस लोक पर राज करो।’

राजवाहन से आना लेकर उस पुरुष ने कार्लिदी नाम की उस युवती से विवाह किया और सुखपूर्वक वहां राज्य करने लगा।

पुरुष की सहायता करने के बाद राजवाहन ने पृथ्वी पर वापस लौटने का निश्चय किया। कार्लिदी ने उसे एक मणि दी, जो भूख-प्यास को मिटाती थी। लेकिन जब वह बिल के मार्ग से पृथ्वी पर आया, तो अपने मित्रों में से किसी को न पाकर, दुखी हो गया, और उन्हें इधर-उधर ढूँढ़ने लगा।

एक दिन, जब वह विशालपुरी के एक नवंबर



उपवन में विश्राम करने जा रहा था, तो उसने एक पुरुष को अपनी ओर आते देखा। वह सेवकों से घिरा था, और उसके साथ पालकी में सवार एक युवती थी। वह पुरुष राजवाहन को देखते ही लिपट गया, और बोला—‘आपने मुझे पहचाना नहीं, मेरे स्वामी? मैं सोमदत्त हूँ।’ जब राजवाहन ने सोमदत्त से उसकी कुशलता और पालकी में बैठी युवती के बारे में पूछा तो सोमदत्त ने उत्तर दिया, ‘जब आप सहसा गायब हो गये, तो मैं वन में आपको ढूँढ़ने लगा। एक देवमंदिर के पास मुझे चतुरंगिणी सेनापड़ी दिखायी दी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह इस राज्य के राजा वीरकेतु की है। लाट देश का राजा मत्तकाल वीरकेतु को डरा-धमका कर उसकी बेटों को भगाकर ले आया था कि उसे अपने राज्य में ले जाकर उसके साथ विवाह करेगा। वीरकेतु का भी मानपाल अपनी सेना लिये यहां बैठा है कि शिकार से लौटते हुए मत्तकाल को घेरकर उससे अपने राजा की पुत्री को छीन ले। जब उसने चोरी के एक घटना-क्रम में मत्तकाल के सैनिकों का अपमान किया, तो मत्तकाल उत्तेजित होकर अपनी थोड़ी-सी ही सेना के साथ वीरकेतु की सेना पर टूट पड़ा। इस युद्ध में मैं भी मानपाल की ओर से लड़ा,



और मत्तकाल का सिर काटने में सफल हुआ। वीरकेतु मेरे पराक्रम से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह मुझसे कर दिया। मैं उसे पालकी में बैठाकर, विदा कराके ला रहा हूँ।’

राजवाहन को सोमदत्त की कहानी सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सोमदत्त को अपने अनुभव भी सुनाये।

तभी उसने पाया कि पुष्पोद्भव ने न जाने कहां से आकर उसके पांवों पर अपना माथा रख दिया है। राजवाहन ने उसे गले से लगाकर अपनी कहानी सुनायी, और फिर पूछा, ‘तुम कहां रहे मित्र? कहां से आ रहे हो?’

पुष्पोद्भव ने अपनी कहानी इस प्रकार सुनायी :

‘आपको न पाकर, हम सब अलग-अलग दिशाओं में आपको खोजने चल पड़े थे। चलते-चलते मैं एक विशाल वृक्ष के नीचे सुस्ताने को बैठ गया। तभी अपने माता-पिता से, जिन्हें हम मृत समझ बैठे थे, मेरा विचित्र मिलन हुआ। आराम करते-करते मैंने देखा कि एक आदमी पर्वत से कूदकर आत्महत्या करने की कोशिश कर रहा है। मैंने जाकर उसे बचाया। पूछने पर उसने बताया, ‘मैं मगध के राजा के अमात्य पद्मोद्भव का पुत्र रत्नोद्भव हूँ। व्यापार के सिलसिले में, मैं कालयवन द्वीप से, वहां की एक



रहा था कि मेरा जलयान एक चट्टान से टकराकर नष्ट हो गया। सौभाग्य से मैं किसी तरह किनारे आ लगा। एक तपस्वी ने मुझे बताया था कि सोलह वर्ष बाद, मेरा अपनी पत्नी से मिलन होगा। सोलह वर्ष बीत गये हैं, मगर अभी तक पत्नी से भेंट नहीं हुई। इसलिए मैं आत्महत्या करना चाहता हूँ।

‘मैं उन्हें बताना चाहता ही था कि वे मेरे पिता हैं कि मुझे किसी स्त्री के रोने का स्वर सुनायी दिया। मैं तुरंत उसकी ओर भागा। देखा कि एक स्त्री आग में जलने को तैयार है, और उसके पास बैठी एक वृद्धा रोती हुई उसे और प्रतीक्षा करने को कह रही थी। मैंने जब वृद्धा से उस स्त्री के बारे में पूछा—तो ज्ञात हुआ कि वे वास्तव में मेरी मां सुवृत्ता ही हैं। मैंने उन्हें प्रणाम कर अपना परिचय दिया, और पिताजी से उनकी भेंट करायी। फिर उन दोनों को एक मुनि के आश्रम में छोड़कर मैं फिर आपकी खोज में लग गया। विध्यावटी के एक प्राचीन नगर के ध्वंसावशेषों में मुझे पेड़ों के नीचे गड़ा धन मिला। मैं धनी हो गया, और मालवा के एक वणि-क-चंद्रपाल के साथ मेरी घनिष्ठ मित्रता हो गयी। उसके पिता बंधुपाल ने मुझे समझाया कि आप मुझसे तभी मिलेंगे, जब मिलने का मुहूर्त होगा। तब तक, धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करना ही उचित है।

नवनीत

एक दिन मैंने बालचंद्रिका नाम की ही मदनवाण से पीड़ित हो गया। प्रेम और लज्जा के उसके हाव-भावों से मैंने जान लिया कि वह भी मुझ पर मोहित हो गयी है। तब तो वह अपना प्रेम मुझ पर प्रकट नहीं कर पायी, लेकिन जब एक दिन हम दोनों एक सरोवर के तट पर मिले, तो एकांत का लाभ उठाकर उसने मुझसे कहा, ‘मैं आप पर मोहित हूँ, और आपकी ही होना चाहती हूँ, किंतु मालवा के दो राजपुत्रों में से एक दारुवर्मा मुझे कुदृष्टि से देखता है, और मेरे साथ बलात्कार करना चाहता है। मैंने उसे अपने अंक से लगाकर आश्वस्त किया कि मैं एक युक्ति से दुष्ट दारुवर्मा की हत्या कर, मार्ग के इस कंटक को दूरकर, तुम्हें अपनी वल्लभा बनाऊंगा। मैंने अपनी युक्ति से उस दुष्ट को हराकर, बालचंद्रिका से विवाह किया। चंद्रपाल ने मेरी आपसे भेंट का आज का शकुन निकाला था, जो सच निकला।’

०००

**मा** निनी युवतियों को चंचल करने वाला, रसिकों के हृदय में मदनोत्सव मनाने का उल्लास भरने वाला, और वियोगियों के हृदय सुलगाने वाला वसंत आ गया। मालवा के राजा मानसार की रति की सी सुंदरी पुत्री अवतिसुंदरी अपनी सखी बालचंद्रिका के साथ एक उद्यान में विहार की उत्कंठा से गयी। और उसे

११०



देखने राजवाहन अपने सखा पुष्पोद्भव के साथ ऐसे आ पहुँचा, जैसे कामदेव अपने साथ वसंत को लेकर आता है। उन्हें देखते ही अवंतिसुंदरी काम के वश में हो गयी, और बालचंद्रिका से उनके बारे में पूछने लगी। चतुर बालचंद्रिका ने कहा, 'यह सकल कलाकुशल एक ब्राह्मण-पुत्र हैं। आप इनकी पूजा करें।' कामपीड़िता अवंतिसुंदरी को लगा, सखी ने उसके मन की बात कह दी। उसने राजवाहन को एक आसन पर बैठाकर कुसुम, अक्षत, कपूर आदि से पूजा की।

दोनों को लग रहा था कि पूर्वजन्म में वे पति-पत्नी थे। दोनों ही प्रेम से पीड़ित थे, मगर दोनों की ही समझ में नहीं आ रहा था कि इस जन्म में, अब उनका मिलन कैसे संभव होगा?

तभी एक ऐंद्रजालिक ब्राह्मण विद्येश्वर ने राजवाहन से भेंट करके, उसे आश्वासन दिया कि वह इंद्रजाल विद्या से मानसार को मोहित करके नगरवासियों के सामने अवंतिसुंदरी से उसका विवाह कराके दिखा देगा।

अगले दिन प्रातःकाल रस-भावरीति-चतुर विद्येश्वर अपने साथियों के साथ राजमहल में पहुँचा, और राजा को संदेश भिजवाया कि एक जादूगर जादू के खेल दिखाना चाहता है। राजा उसका खेल देखने को तैयार हो गये।

खेलों के दौरान, राजा-प्रजा के सामने अपने पहले विषधर नाग प्रकट किये,

जिन्हें देखकर सब डर गये। फिर उसने गिद्धों को प्रकट किया, जो इन नागों को पकड़कर उड़ गये। इसके बाद उसने नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु की छाती फाड़े जाने वाला दृश्य प्रस्तुत किया। अंत में, विनीत स्वर में बोला—'अब मैं एक मांगलिक दृश्य दिखाऊंगा। इस दृश्य में आप अपनी पुत्री जैसी दिखने वाली एक युवती को एक आदर्श राज-कुमार से विवाह करते देखेंगे।'

विद्येश्वर ने सबको सम्मोहित करके सबके सामने मंत्रों का उच्चारण करके राजवाहन और अवंतिसुंदरी का विवाह करा दिया। सब इसे एक जादू समझकर तलियां बजाते रहे।

विवाह के बाद, राजवाहन ने बड़े कौशल से अवंतिसुंदरी के अंतःपुर में प्रवेश किया और एकांत सुख भोगा।

०००

**ज**ब मानसार और उसकी महारानी को इस कपट-विवाह के बारे में पता चला, तो वे बहुत सुखी हुए क्योंकि उन्होंने राजवाहन को देखते ही उसे अपना दामाद स्वीकार कर लिया था। किंतु मानसार की बुआ के दो पुत्रों ने जो राज-पुत्रों के रूप में मालवा पर शासन कर रहे थे, राजवाहन को मारने की धमकी दी। लेकिन मानसार ने यह कहकर उसकी जान बचा दी कि 'यदि तुमने इसे मारा तो हम भी मर जायेंगे।' पर, वे राज-वाहन और पुष्पोद्भव को जेल जाने से



न रोक पाये।

बाद में, घटनाएं कुछ इस प्रकार से घटीं कि राजवाहन का शत्रु राजपुत्र चंडवर्मा मारा गया, और राजवाहन बंदीगृह से मुक्त हो गया। बंदीगृह से मुक्त होने पर उसकी भेंट अपने खोये साथी अपहारवर्मा से भी हो गयी, जो दोनों के लिए अपार हर्ष का कारण बनी।

अपहारवर्मा ने राजवाहन की भेंट धनमित्र नाम के एक आज्ञाकारी सेवक से करायी। उसने कहा, 'मैंने विध्वस्त कोष और वाहनों को फिर जुटाया है। यह सारा सामान हमारे पक्ष के राजा के पास है। आप उनके पास जाकर बड़े खुश होंगे।' राजवाहन उन दोनों के साथ जाने को तैयार हो गया।

मार्ग में राजवाहन की भेंट उपहार-वर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मैथिल प्रहारवर्मा, काशीपति, कामपाल और चंपेश्वर सिंहवर्मा से हुई, जिन्होंने राज-वाहन को प्रणाम किया और कहा, 'आज सहसा हम सब मिले। लगता है आज से हमारा अभ्युदय होगा।' काशी-पति, मिथिलेश और अंगराज, इन तीनों वृद्धों ने बाद में राजवाहन को आशीर्वाद दिया।

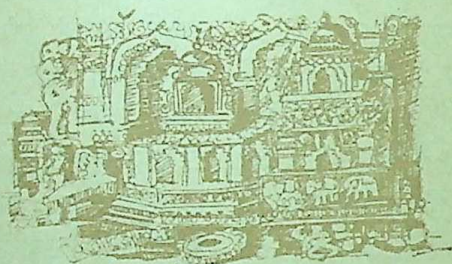
नवनीत

जब मेल-मिलाप पूरा हो गया, तो राजवाहन ने अपने और सोमवत और पुष्पोद्भव के अनुभवों की कहानी सुनाकर अपने साथियों से अपने-अपने अनुभवों की कहानी सुनाने को कहा।

सबसे पहले, अपहारवर्मा ने अपने अनुभव सुनाये।

०००

**‘ज** हम सब आपको खोजने के लिए इधर-उधर गये,’ अपहारवर्मा ने राजवाहन को संबोधित करते हुए कहा, ‘तब मैं अंगदेश की गंगा के तट पर स्थित चंपानगरी जा पहुंचा। वहां मुझे महर्षि मरीचि के बारे में पता चला, जिनके तप से दिव्य दृष्टि मिल जाती थी। मैं उनके



चित्र : चंडुलाल सांकला

आश्रम में पहुंचा। वे मिले तो, मगर एक वारवनिता की चाल में आकर अपनी सारी साधना को गंवा बैठे थे। रति, जुआ, व्याकरण, तर्क, ज्योतिष, कामविद्या, नृत्य, संगीत आदि में निपुण इस वेश्या ने राजकुल की एक स्त्री से शर्त लगायी थी कि वह महर्षि मरीचि को जीतकर दिखायेगी, नहीं तो आजीवन उसकी दासी बनकर रहेगी। वेश्या ने पहले तो बड़ी श्रद्धा से महर्षि की सेवा कर उन्हें प्रसन्न किया, फिर उन पर अपना प्रेम

नवंबर



गया, तो  
वस्त और  
सानी मुना-  
ने अनुभवों  
ने अपने  
ने के लिए  
रवर्मा ने  
हुए कहा,  
अंगदेश की  
तट पर  
पानगरी जा  
वहां मुझे  
मरीचि के  
पता चला,  
तप से दिव्य  
मिल जाती  
मैं उनके  
ने, मगर एक  
कर अपनी  
थे। रति,  
कामविद्या,  
इस वेश्या-  
शर्त लगायी  
को जीतकर  
वन उसकी  
ने पहले तो  
वा कर उन्हें  
अपना प्रेम

और बढ़ाने लगी। मरीचि भी उस  
र आसक्त हो गये, और उस वेश्या-  
काममंजरी-से विवाह करने को तैयार  
हो गये। इस प्रकार काममंजरी शर्त  
बोत गयी, और महर्षि पुनः साधना के  
लिए अपने आश्रम में आ गये।  
महर्षि से विदा लेकर मैं आगे बढ़ा।  
एक जैन विहार में मेरी भेंट एक दुर्बल,  
क्षुब्ध क्षणिक से हुई, जो महर्षि मरीचि  
को चकमा देने वाली काममंजरी पर  
जना तन, मन, धन, सर्वस्व गंवा बैठठा  
था। मैंने उससे कहा, 'घबराओ नहीं,  
मित्र! मैं कुछ ऐसा कहूंगा कि वह सब  
कुछ तुम्हें वापस लौटा दे।'

नगर में आकर मैंने चौरशास्त्र के  
प्रसंग कर्णामृत की शिक्षाओं का पालन  
करना और जुआ खेलना सीखना आरंभ  
किया। जुआरियों के पास बैठ-बैठकर,  
नैतर्ह-नैतर्ह के जुओं में की जाने वाली  
जातवाजियों के वारे में जाना। हेकड़ी  
बिबाकर, ऊंची-नीची बातें करके अपने  
पक्ष को मजबूत करने, रिश्वत देने, लोभ  
दें, दाव के भेद, जीते धन का बंटवारा  
करने और अदालत के जरिये हारे हुए  
कुमारी से पैसा वसूलने में मैं धीरे-धीरे  
महिर हो गया। एक बार मैंने जुए में  
१५,००० मुद्राएं जीतीं, मगर मैंने  
जारी रुकम लोगों में बांट दी। इससे मेरा  
रुतु नाम हो गया। एक दिन मैंने नीले  
रंग का लबादा पहनकर कमर में पैनी  
तलवार बांधकर, संध मारने की शवरी,

कैची, सड़ासी, रस्ती धमरूह लेकर एक  
अमीर आदमी के घर में संध भी लगायी,  
और एक मूल्यवान आभूषण चुराने में  
सफल हो गया।

'काममंजरी पहले लोभमंजरी के नाम  
से प्रसिद्ध थी। दूसरों का धन हड़पने के  
लिए वह हर प्रकार की धूर्तता कर सकती  
थी, और करती भी थी। लेकिन मैंने  
उससे न केवल क्षणिक को धन वापस  
दिलाया, चोरी के अपराध में उसे सजा  
भी दिलवायी। इन्हीं दिनों मालवा के  
एक राजपुत्र चंडवर्मा ने अंगराज सिंहवर्मा  
पर क्रुद्ध होकर चंपानगरी को घेर लिया।  
अंगराज उसकी शर्त को नहीं मान सके थे।  
युद्ध में सिंहवर्मा का कवच टूट गया, और  
चंडवर्माने उनकी पुत्री अंबालिका को पकड़  
लिया, और उसे विवाह करने के लिए  
भवन में उठा ले गया। पर, राजकुमारी  
अंबालिका से तो मैं विवाह करना चाहता  
था। मैंने अपने मित्र धनमित्र को अपनी  
योजना समझाकर चंडवर्मा के अंतःपुर  
में प्रवेश किया। वहां विवाह की तैयारियां  
चल रही थीं। जैसे ही चंद्रवर्मा ने अपना  
हाथ पाणिग्रहण के लिए अंबालिका की  
ओर बढ़ाया, मैंने उसके हृदय में छुरी  
भोंक दी। कुछ और लोगों को भी मौत  
के घाट उतारना पड़ा। फिर राजकुमारी  
को अपना परिचय देकर, मैं उसका सान्नि-  
ध्य सुख प्राप्त करने के लिए उसे लेकर  
शयन-कक्ष में पहुंचा। और अब, पुनः  
आपकी सेवा में उपस्थित हूं।'



अब राजवाहन ने उपहारवर्मा से कहा,

‘अब तुम अपनी कहानी सुनाओ।’

उपहारवर्मा ने अपनी कहानी इस तरह सुनायी :

‘मैं धूमता हुआ विदेहपुरी पहुंचा, वहां एक मठ में मैंने एक वृद्धा को रोते हुए पाया। रोने का कारण पूछने पर उसने कहा, ‘पहले यहां प्रहारवर्मा नाम के राजा थे, जो मगध के राजा राजहंस के मित्र थे। जब राजहंस की पत्नी वसुमती गर्भवती हुई, तो प्रहारवर्मा की रानी प्रियम्बदा उनके पास थी। उसी समय मालवा के राजा मानसार ने राजहंस पर आक्रमण किया। प्रहारवर्मा राजहंस की सहायता करने मगध पहुंचे, किंतु, जब लौटकर आये, तो पाया कि उनके बड़े भाई संहारवर्मा के पुत्र विकटवर्मा ने शासन अपने हाथ में ले लिया है। प्रहारवर्मा अपने भानजे सुहचपति से सहायता लेने जा रहे थे कि वन में शबरो ने उन्हें लूट लिया। मेरी गोद में प्रहारवर्मा का छोटा लड़का था। मैं उसे लेकर शबरो से बचने के लिए वन में भाग गयी, पर वहां एक सिंह ने मुझ पर हमला किया। इस चक्कर में लड़का मुझसे बिछुड़ गया। बाद में मुझे मालूम पड़ा कि वह लड़का किरात-प्रमुख के पास पूर्णतया सुरक्षित था।’

‘मैंने वृद्धा को बताया कि वह लड़का मैं ही हूं। यह सुनकर वृद्धा ने मुझे छाती से लगाकर मेरा माथा सूंघा।

नवनीत

‘अब मैं विकटवर्मा को, जिसे पौरजन-पद का समर्थन प्राप्त था, मारकर अपने पिता का राज्य पुनः हस्तगत करने की योजना बनाने लगा। इस योजना को सफल बनाने में वृद्धा की पुत्री पुष्परिका ने जो विकटवर्मा के अंतःपुर के सब रहस्यों से परिचित थी, बड़ी सहायता की। उससे मुझे ज्ञात हुआ कि कागरूप के राजा कालिंदवर्मा की पुत्री कल्पसुंदरी ने अपने सौंदर्य और नृत्यगीत निपुणता से विकटवर्मा को अपने वश में कर रखा है। मैंने अपना एक चित्र पुष्परिका के हाथ कल्पसुंदरी के पास भिजवाया। जिसे देखकर वह मोहित हो गयी, और सोचने लगी कैसे इस सुंदर युवक के दर्शन कर आंखें ठंडी करूं। पुष्परिका ने उसके मन का हाल जानकर, चित्र वाले कुमार को उससे मिलाने का वायदा किया।

‘कल्पसुंदरी का चित्र देखकर और उसका गुण-वर्णन सुनकर मैं भी उसे पाने को उत्सुक हो उठा था। पुष्परिका ने हम दोनों के मिलन के लिए राज-महल के निकट माधवीलता का एक मंडप निश्चित किया, जहां मैंने कल्पसुंदरी से भेंट की। उसके बाद, वह हाथ जोड़कर मुझसे कहने लगी, ‘नाथ! अब मैं वापस महल नहीं जाऊंगी। आपके साथ ही जाऊंगी।’

‘लेकिन, विकटवर्मा के रहते, कल्पसुंदरी को पाना असंभव था, इसलिए मैंने विकटवर्मा की मौत की एक योग्य योजना

नवंबर



बतायी, जो मेरे सौभाग्य और स्वयं उसकी  
मूर्खता से सफल हुई। विकटवर्मा के  
अंत के बाद, मैं कल्पसुंदरी के साथ सुख  
भोगों को स्वतंत्र हो गया। माता-पिता  
मुक्त हुए। सब सुख थे, मगर आपका  
नाम न था। अब आपका साथ पाकर  
सुख पूरा हो गया।'

राजवाहन ने अब अर्थपाल से कहा, 'अब  
तुम अपनी आप बीती सुनाओ।'

०००

अर्थपाल ने अपनी आपबीती इस  
प्रकार वर्णित की :

'आपको खोजता-खोजता मैं वाराणसी  
पहुंच गया। वहां पूर्णभद्र नामक एक  
शक्तिशाली पुरुष के माध्यम से मुझे  
पता चला कि काशिराज चंडसिंह ने मेरे  
पिता को पकड़कर घोषणा की है कि उनकी  
आंखें ऐसे निकाली जायें कि उनकी मृत्यु  
हो जाये। मैंने पूर्णभद्र से कहा, 'मैं हजार  
गोदाओं का वध करके भी अपने पिता को  
खाने की सामर्थ्य रखता हूं, लेकिन अगर  
तभी ने भीड़ में से उन पर वार कर दिया,  
तो मेरे सब प्रयास व्यर्थ हो जायेंगे।'

'तभी सामने की दीवार से बड़े फन  
वाला एक नाग प्रकट हुआ। मैंने मंत्र-  
बल से नाग को पकड़कर पूर्णभद्र से कहा,  
'भद्र! अब काम हो जायेगा, ऐसा मान  
लो। मैं भीड़ में घिरे, अपने पिता पर  
इस नाग को फेंककर उससे उन्हें डसवा  
इंगा। विष को स्तंभित करने से वे मरेंगे  
वहीं। फिर उन्हें घोषित सजा नहीं मिलेगी।

११८१

आप यह बात मेरी मां को बता देना और  
यह भी बता देना कि मैं अंत में पिताजी  
को बचा लूंगा।' पूर्णभद्र मेरी बात मान-  
कर चला गया।

'जब पीछे से हाथ बांधे मेरे पिता  
कामपाल को भीड़ के आगे लाया गया,  
तो मैंने उन पर नाग डाल दिया। नाग  
के पिता को डसते ही, मैंने उसके विष  
को स्तंभित कर दिया। लोगों को भ्रम  
में डालने के उद्देश्य से यह भी कहा, 'राजा  
ने तो इस पापी के नेत्र ही छीने थे, भग-  
वान ने प्राण भी छीन लिये।' तभी, उस  
नाग ने मेरे पिता का वध करने वाले  
चांडाल को भी डस लिया। राजा ने  
मेरी माता को मेरे पिता का शव घर  
ले जाने की आज्ञा दे दी।

'घर पर पिता का विष दूर कर मैंने  
उन्हें जीवित किया। उन्होंने बताया कि  
घर के तहखाने में बहुत से अस्त्र-शस्त्र  
भरे पड़े हैं, और नगर के बहुत से लोग  
उनके साथ हैं। उन्हें अपने साथ लेकर  
और अस्त्र-शस्त्रों की सहायता से राजा  
सिंहघोष की हत्या की जा सकती है।

'मैंने सिंहघोष के प्रकोष्ठ में पहुंचने  
के लिए एक सुरंग खोदी, और आधी रात  
को उसमें होता हुआ प्रकोष्ठ में घुस गया।  
उसके पांवों में बेड़ियां डालकर मैंने  
उसे बंदी बना लिया। मेरे माता-पिता  
उसे बंदी देखकर बड़े प्रसन्न हुए, और  
उन्होंने उसकी पौत्री मणिकर्णिका से  
मेरा विवाह करा दिया। तभी आपका



सेवक अंगराज सिंहवर्मा सहायतार्थ मेरे पास आया, और उसकी सहायता करते-करते, मुझे आपके दर्शनों का सौभाग्य भी प्राप्त हो गया ।'

राजवाहन ने कहा, 'सिंहघोष को मुक्त कर दो, और मुझसे मिलने को कहो । और प्रमति, अब तुम सुनाओ, तुम पर क्या बीती ?'

०००

**रा**जवाहन को प्रणाम करके, प्रमति ने अपनी कहानी इस प्रकार आरंभ की : 'स्वामी ! आपको खोजता-खोजता मैं विध्याचल के निकट पहुंच गया । वहां मैंने एक आश्चर्य देखा । थककर, मैं एक वृक्ष के नीचे सो गया था । लेकिन जैसे ही जागा, अपने को एक राजमहल में पाया—जहां एक शैया पर कल्पवृक्ष की रत्नमंजरी की आभा जैसी एक नवयुवती मुझे दिखायी दी । उसके अछूते वक्ष पर से वस्त्र खिसक गये थे । उसके कोमल और स्निग्ध अंगों को देखकर लगता था कि वह अभी तक कुमारी है । मैं उस पर अनुरक्त हो गया । अपनी शिष्ट मर्यादा को लांघकर मैंने उसे छुआ । वह रोमांचित होकर जागी, और मुझे देखकर उसके नेत्रों में स्नेह झलक आया । लाज भी झलकी, जिसे देखकर मुझे निश्चय हो गया कि प्रेम का वाण उसके हृदय में भी लग गया है ।

'तभी मुझे फिर नींद आ गयी । जागा तो, राजमहल कहीं न था, और मैं वृक्ष

के नीचे पड़ा था । मैं चकित रह गया । तो क्या, मैंने सपना देखा था ? तभी, एक दुर्बल और क्लान्त स्त्री दिखायी पड़ी । मैंने उसे प्रणाम किया, तो उसने स्नेह से मुझे छाती से लगा लिया । उसने जो कहानी सुनायी वह बहुत विचित्र थी, पर उससे मुझे यह विश्वास हो गया कि वही मेरी मां थी ।

उसने कहा, 'एक, राक्षस ने मुझे शाप दिया था, जिसके कारण, मेरी स्मृति क्षीण हो गयी थी । इसीलिए तुझे देखकर भी मैं ठीक-ठीक पहचान नहीं पायी । मुझे कल रात श्रावस्ती में महादेव-मंदिर के उत्सव में जाना था । तू मेरा अतिथि था, तुझे वृक्ष के नीचे अकेला छोड़कर कैसे जाती ? मैं तुझे सोते से उठा लायी, और श्रावस्ती में राजा धर्मवर्धन की पुत्री नवमालिका के राजमहल में तुझे मुला दिया । मंदिर में त्रिभुवनेश्वर शिव के आशीर्वाद से मेरा शाप दूर हो गया, और मैंने तुझे पहचान लिया । मैंने तेरे और नवमालिका के प्रेम को भी देखा । क्योंकि मुझे तुझे वापस वन में लाना था, इसलिए मैंने युक्ति से तुझे मुला दिया, और फिर वन में लाकर वृक्ष के नीचे लिटा दिया । अब तुझे नवमालिका को पाना हो, तो उसका उपाय तू कर; मैं तेरे पिता कामपाल के पास चली ।'

'मैं नवमालिका को पाने के लिए श्रावस्ती की ओर चल पड़ा । मार्ग में मैंने देखा, कुछ लोग मुर्गों की लड़ाई करा



गया। तो  
? तभी  
दिखायो  
तो उसने  
या। उसने  
त विचित्र  
स हो गया

मेरे पास एक धूर्त वृद्ध बैठा था, जो  
मैंने जीत पश्चिम के मुर्गों की हुई।  
मैंने उसे अपना मित्र बताकर, मुझे  
उसने घर भोजन कराया, और विदा करते

मैंने बोला, 'कभी मेरी जरूरत पड़े, तो  
मैं आपको याद कीजियेगा। मैं अवश्य  
आपको सहायता करूंगा।'

श्रावस्ती पहुंचकर, मैं एक लता-  
मूल के नीचे सो गया। जागा, तो अपने  
पुत्रों को एक सुंदरी वाला को खड़ा पाया।

वह बार-बार मेरा मिलान उस चित्र से  
कर रही थी, जो उसके हाथ के चित्रपट  
पर अंकित था। आश्वस्त-सी होकर, वह  
मुझे अपने घर ले गयी, जहां उसने मेरे

भोजन की अच्छी व्यवस्था की।  
राजकुमारी नवमालिका की सखी थी,  
जो चित्र उसके पास था, वह मेरा  
आप और राजकुमारी ने स्मृति से बनाकर

दिखा दिया था, मेरी खोज करने के लिए।  
मैंने भी उस चित्र के पीछे की ओर  
राजकुमारी का चित्र बनाकर दिखा दिया,  
तो उसने पूछा, 'राजकुमारी के मन की

आप को आप कब दूर करेंगे?' मैंने  
उसने कुछ दिन प्रतीक्षा करने को कहा।  
मैं वापस लौटकर अपने वृद्ध मित्र-  
जर्मा-से मिला, और उसे उसके

नवंबर

वायदे की याद दिलायी। उसने ऐसी  
छल-योजना बनायी, जिससे राजा धर्म-  
वर्धन अपने मंत्रियों के साथ आकर मेरे  
चरणों में गिरा, और अपनी पुत्री नव-  
मालिका का विवाह मुझसे कर दिया।  
इतना ही नहीं अपना सारा राज्य भी  
उसने मुझे सौंपा। नवमालिका के साथ  
भरपूर आनंदमय जीवन बिताने के बाद  
जब मैं चंपापुरी आया, तो भाग्य से आपके  
दर्शन हो गये। अब मैं आपकी सेवा में  
उपस्थित हूं।'

राजवाहन को प्रमति की कथा सुनकर  
बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर उसने मित्रगुप्त  
की ओर देखकर कहा, 'मित्र ! अब तुम्हारी  
वारी है।'

०००

**मि**त्रगुप्त कहने लगा : 'आपको खोजता  
हुआ मैं सुब्रदेश के दामलिप्त नगर  
के बाहर एक उद्यान में पहुंचा। वहां एक  
उत्सव हो रहा था, जिसे देखने के लिए  
काफ़ी भीड़ जमा थी। एक वीणावादक  
और कोशदास नाम के युवक से पूछने  
पर ज्ञात हुआ कि यह उत्सव क्यों होता  
है? सुब्रदेश के राजा तुंगधन्वा के कोई  
संतान न होती थी। एक मंदिर की  
देवी ने उनकी आराधना से प्रसन्न होकर  
उनसे कहा, 'तेरे एक पुत्र होगा, और  
एक पुत्री। पुत्र अपनी बहन के अधीन  
रहेगा। पुत्री को चाहिये कि सातवें वर्ष  
के बाद, वह प्रत्येक कृत्तिका नक्षत्र में  
कंदु (गेंद) से खेलती-नाचती, मेरी



आराधना करती हुई योग्य पति की कामना करे। जिस युवक को कंदुकोत्सव के समय चाहे, उससे ही उसका विवाह कर देना। वही राजपुत्री कंदुकावती आज चंद्रशेखरा देवी की पूजा करने आयेगी। मैं राजकुमारी की धाय की पुत्री चंद्रसेना के प्रेम में पीड़ित हूं, पर राजकुमार भीमधन्वा ने उसे रोक रखा है। इसी से मैं दुखी मन से वीणा बजा रहा हूं।'

'तभी, चंद्रसेना आ गयी, और युवक से लिपटकर, उसे कहीं और ले जाने का आग्रह करने लगी। पर राजकुमारी कंदुकावती के आगमन के कारण, उसे अपने प्रेमी को छोड़कर राजकुमारी के पास जाना पड़ा। इधर, मैं अपूर्व सुंदरी कंदुकावती को देखते ही, कामदेव के बाणों से घायल हो गया। अनेक कंदुक-क्रीड़ाएं करके, जिनमें वह स्वयं कंदुक-सी हो जाती थी, देवी की पूजा करके, वह चंद्रसेना तथा अपनी अन्य सखियों और मेरे हृदय को लेकर अपने महल में वापस लौट गयी।

'कोशदास मुझे अपने घर ले गया, जहां मैंने स्नान करके भोजन किया। तभी उसकी प्रेमिका चंद्रसेना आ गयी, और मुझसे कहने लगी, 'कंदुकावती आपको देखकर प्रेम से पीड़ित हो रही हैं।' सुनकर मैं उसके मिलन सुख का स्वप्न देखने लगा। चंद्रसेना ने कहा, 'तीन-चार दिनों में आपका विवाह राजकुमारी से हो जायेगा। फिर राजपुत्र भीमधन्वा, जो

मुझे प्रेम करता है, उसके अधीन हो जायेगा। पर जब आप राजा हो जायें, तो कोशदास के साथ मेरे विवाह को कौन रोक सकेगा?'

'एक कुञ्जा ने चंद्रसेना की यह बात खिड़की के बाहर से सुन ली, और भीमधन्वा को बता दी। उसने अपने सेवकों से मुझे पकड़वाकर, समुद्र में फेंकने का आदेश दिया। मेरे हाथ बांधकर मुझे समुद्र की लहरों के हवाले कर दिया गया। मैं एक काठ से चिपक गया। चौबीस घंटे उससे चिपके रहने के बाद, मुझे एक नौका पर सवार यवनों ने बचाया। पर, जोध ही भीमधन्वा की युद्धनौकाओं ने आकर उस नौका को घेर लिया, और उसके सैनिक यवनों से युद्ध करने लगे। मैं लोहे की जिन जंजीरों से बंधा था, उन्हें खुलवाकर, भीमधन्वा और उसके सेवकों पर बाण चलाने लगा। भीमधन्वा को मैंने जीवित ही पकड़ लिया। यवन व्यापारियों ने मेरी ही जंजीरों से उसे बांधकर मेरी पूजा की।

'यवनों ने एक द्वीप में लंगर डाला। वहां एक पर्वत था, जिसकी मनोरम शोभा से आकर्षित होकर मैं उस पर चढ़ गया। वहां मेरी भेंट एक ब्रह्मराक्षस से हुई जिसके जटिल प्रश्नों के सही उत्तर देकर मैंने अपनी जान बचायी। उसे धूमिनी, गोमिनी, निम्बवती, नितम्बवती की कथा भी मैंने सुनायी।

'जिन्हें सुनकर ब्रह्मराक्षस बहुत प्रसन्न

नवंबर



मैं उससे विदा ले रहा था कि मैं उससे विदा ले रहा था कि मेरी प्रजा से मोती के दाने गिरते दिखायी देते। ऊपर देखा, राक्षस एक नवयुवती को पकड़े लिये जा रहा था। चूँकि मैं राक्षस में न उड़ सकता था, इसलिए रोकर करने लगा। इस पर, ब्रह्मराक्षस राक्षस में पहुँचकर उस राक्षस से लड़ने लगा। नवयुवती राक्षस की जकड़ से मुक्त होकर कल्पवृक्ष की मंजरी-सी नीचे गिरी। जब उसके पास पहुँचा तो चकित रह गया। वह तो मेरी प्रिया कंदुकावती थी। मैंने बताया कि यह सुनकर कि उसके भाई भीमधन्वा ने मुझे समुद्र में छोड़ दिया है, वह क्रीड़ावन में अकेली गहनहत्या करने लगी। वहाँ यह मायावी राक्षस आकर मुझसे प्रेम करने को लगे लगा। जब मैंने मना किया, तो मुझे कड़कर उड़ा ले चला। अब वह पहाड़ पर मरा पड़ा है। यह कैसा संयोग और रोमांच है कि आप मुझे यहाँ सकुशल मिल गये। मैं उसे नाव पर सवार करके दाय-पुल पहुँचा। वहाँ वृद्ध तुंगधन्वा व उनकी लोचन अनशन करके प्राण त्यागने को तैयार थे। भारी प्रजा रो रही थी। हम दोनों को देखकर सब प्रसन्न हुए। मेरा कंदुका-वती से और कोशदास का चंद्रसेना से मिलना हुआ। भीमधन्वा मेरे अधीन हो गया। अब आपकी सेवा में उपस्थित हूँ।' अब राजवाहन ने मुस्कराकर मंत्रगुप्त को बतला दिया। वह ओष्ठचवर्णहीन वर्णों से बहुत प्रसन्न था।

मैं, (चूँकि उसकी प्रिया ने उसके होठों पर दंतक्षत कर दिया था) अपनी कहानी सुनाने लगा।

०००

‘आपकी खोज करता हुआ, मैं कलिंग देश की ओर निकल गया। वहाँ रात होने पर श्मशानभूमि के निकट सो गया। कड़ी सर्दी वाली आधी रात को मैंने किसी को दुख से चिल्लाते सुना। कुछ दूर जाकर देखा, एक सिद्ध हवन करता हुआ, एक किकर को आज्ञा दे रहा था, ‘जा ! कलिंग के राजा कर्दनक की पुत्री कनकलेखा को उसके रनिवास से यहाँ ले आ।’ किकर कनकलेखा को लेकर आया, तो सिद्ध ने एक तलवार से उसका गला काटना चाहा। मैंने तुरंत उसके हाथ से उसकी तलवार छीनकर उसके जटाजूट-सिर को काट डाला, और एक पुराने कोटर में उसे डाल दिया।

‘उसकी मृत्यु से किकर को (जो वास्तव में सिद्ध का दास राक्षस था) भी हर्ष हुआ, और कनकलेखा को भी, जिसने कोकिल-स्वर में अपना निवेदन किया, ‘आर्य ! मैं अपना हृदय आपको हार बैठी हूँ। मेरे रनिवास में चलें और मुझे अपनी सेवा का अवसर दें। मेरी सखियाँ आपकी उपस्थिति का समाचार किसी को न देंगी। आप निःशंक चलें।’

‘मैं स्वयं उस सघन जघना मृगनयनी के प्रेम में बंधा था, और उसी में बंधा-बंधा उसके साथ उसके रनिवास में पहुँच गया।



वहाँ मैंने उसे अपने वक्ष से लगाकर आनंद से समय बिताया। यों ही दिन बीतते रहे। एक दिन यह स्तब्धकारी समाचार मिला कि आंध्र देश के राजा जयसिंह ने अपनी नौसेना की सहायता से समुद्र तीर के विहारोद्यान में छुट्टियाँ मनाते कलिंग-राज, उनकी पुत्री और रानियों को कैद कर लिया है। यह सोचकर कि मेरी हृदयेश्वरी कनकलेखा अब जयसिंह की ही जायेगी मैं खाना-पीना भूल गया। मुझे लग रहा था, कनकलेखा के बिना मैं विछोह दाह से समाप्त हो जाऊँगा।

‘तभी, मेरी भेंट आंध्र देश के एक ब्राह्मण से हुई। उसने बताया कि जयसिंह कलिंग-राज को मारकर कनकलेखा से विवाह करने का इच्छुक है, मगर चूँकि कनकलेखा को किसी यक्ष ने घेर लिया है, इसलिए वह किसी तांत्रिक, मांत्रिक या सिद्ध की मदद से उस यक्ष को भगाना चाहता है। मुझे एक उपाय सूझा। मैंने कोटर से मृत सिद्ध का जटाजाल निकाला, और उसे सिर पर धारण करके फटे-पुराने वस्त्र पहने। फिर, मार्ग में चमत्कार दिखाता और श्रद्धालुओं पर अपना प्रभाव डालता हुआ, मैं आंध्र प्रदेश पहुँचा। वहाँ मैंने अपनी चतुराई और ठगी से अपना यश चारों ओर फैला दिया। मेरी ख्याति सुनकर, एक दिन जयसिंह ने मुझे बुला भेजा। वह मेरे द्वारा कनकलेखा को यक्ष से मुक्ति दिलाना चाहता था।

‘मैंने एक युक्ति द्वारा उसे जल के

अंदर गला घोटकर मार डाला। फिर जल के बाहर निकलकर मैंने घोषणा की कि यक्ष को मारकर मेरा (राजा जयसिंह) का कायाकल्प हो गया है। सबने मेरी बात पर विश्वास कर लिया, और मैं हाथी पर सवार, राजछत्र लगाये, राज-महल की ओर चला। मैंने दरबार में कहा, ‘यक्ष ने अपनी शक्ति से जल को ऐसा सुसंस्कृत कर दिया था कि उसमें प्रवेश करते ही मेरा शरीर कमल-दलों सा सुंदर हो गया।’ सारे दरबारी मेरे जय-जयकार करने लगे, जिससे दशों दिशाएँ गूँजने लगीं।

‘इसके बाद, मैंने कनकलेखा से विवाह किया, और आंध्र देश और कलिंग दोनों राज्यों का नरेश हो गया। जब यहाँ सेना सहित आंध्रराज की सहायता के लिए आया, तो आपके दर्शनों का सौभाग्य मिला।’

मंत्रगुप्त का अभिवादन कर, राजबहल ने विश्रुत से कहा, ‘अब तुम सुनाओ अपनी कहानी!’

०००

विश्रुत ने कहा—‘आपकी खोज में विश्रा-  
टवी में घूमते-घूमते, मैंने करीब आठ  
वर्ष के एक बालक को एक कुएं के पास देखा।  
वह बहुत परेशान था। उसने बताया कि  
कुएं में उसका एक बूढ़ा साथी गिर गया  
है, और वह उसे बाहर निकालने में असमर्थ  
है। मैंने वृद्ध को कुएं से निकाला, और  
उससे उसका तथा बालक का परिचय



उसने कहा, विद्वान् देश में सर्व-विद्वान्। सब राज-विद्वानों को उखाड़ फेंका, और उस बालक-भास्करवर्मा-को अपने पिता की गद्दी पर बैठाकर, पुनः आपको खोजने निकल पड़ा। कृतज्ञ भास्करवर्मा और उसकी मां ने मुझे उत्कल के राजा, प्रचंडवर्मा का राज्य दे दिया। तभी अंगराज सिंहवर्मा ने मुझे सहायता के लिए बुलाया, तो आपसे पुनर्मिलन हो गया।'

०००

**चंपापुरी** में राजवाहन, अपहारवर्मा, उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्र-गुप्त, मंत्रगुप्त और विश्रुत एकत्रित हो गये थे। पाटलिपुत्र में सोमदत्त अपनी भार्या वामलोचना के साथ युवराज-पद पर आसीन था। राजवाहन ने दूत भेजकर उसे भी बुला लिया।

एक दिन ये सब कुमार आपस में प्रेम से बातें कर रहे थे कि कुछ राजसेवक राजा राजहंस का आज्ञापत्र लेकर आये। आज्ञापत्र में लिखा था :

‘स्वस्ति। श्री पुष्पपुर राजधानी से श्री राजहंस चंपा में निवास कर रहे राज-वाहन और अन्य कुमारों को यह आज्ञापत्र भेजते हैं। त्रिकालज्ञ वामदेव से हमें पता चला था कि राजवाहन के कारण सब कुमार कुछ दिनों तक कष्ट भोगेंगे, और सोलह वर्ष पश्चात् राजवाहन को लेकर वे हमारे पास आयेंगे। मुनि की बात पर विश्वास कर मैंने और रानी वसुमती ने १६ वर्षों तक धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा की। अब



श्रेष्ठता का अनुसरण ही हमारे जीवन का मार्ग है

जमा करना हो

या

अग्रिम लेना हो

अथवा

विदेशी मुद्रा का कोई कार्य हो

शीघ्र सहर्ष सेवा ही

हमारा आदर्श है ।

न्यू बैंक ऑफ इंडिया

[ भारत सरकार का एक उपक्रम ]



...वैतने पर, **वामदेवजी** की सेना  
...तो उन्होंने कहा, 'राजन् ! राज-  
...अन्य कुमारों ने दिग्विजय पूरी  
...तो है और अब चंपानगरी में हैं।'   
...के वचनों को सुनकर हम यह आज्ञा-  
...में रहे हैं। तुरन्त आकर मिलो।'   
...राजवाहन तथा अन्य कुमारों ने तुरन्त  
...को निश्चय किया।   
...पर लौटने से पूर्व, विजित राज्यों में  
...राज्यजनों द्वारा सुरक्षा की व्यवस्था  
...सुरक्षा और पुराने शत्रु मानसार को हराना  
...करव्यक्त था। सभी कुमार अपनी-अपनी  
...जयों के साथ मालव गये, और उज्ज-  
...को पहुंचकर मानसार की हत्या कर  
...वाते समय, उसकी पुत्री अवंतिसुंदरी  
...संभाल लिया, और बंदीगृह से पुष्पोद्भव  
...को उनके परिवार सहित मुक्त किया।

मालव की रक्षा की समुचित व्यवस्था  
करके, सेना सहित सब कुमार पुष्पपुर  
आये, जहां राजवाहन को आगे करके  
सबने राजा राजहंस और देवी वसुमती  
के चरणों में प्रणाम किया। मुनि वामदेव  
भी वहां उपस्थित थे। उन्होंने सब कुमारों  
से कहा, 'अब तुम जाकर अपने-अपने राज्य  
का न्यायपूर्वक शासन करो। जब मन हो,  
माता-पिता के चरण छूने आ जाया करो।'   
राजवाहन को पुष्पपुर और मालव  
के सिंहासन पर बैठाकर, और राजा  
राजहंस को मुनि वामदेव के आश्रम में,  
उन दोनों की इच्छा से, वानप्रस्थ दिलाकर  
सब कुमार अपने-अपने राज्य का शासन  
करने लगे। उनमें आपस में बड़ी एकता  
थी। जो सुख इंद्रादि देवताओं ने भी न  
भोगे होंगे, वे उन सबने भोगे।



### जड़ और चेतन बनाम वृक्ष और मनुष्य

...तुम चल क्यों नहीं सकते ?' कवि ने पूछा।   
...वृक्ष ने उत्तर दिया—'मेरे पैर नहीं हैं।'   
...ईश्वर ने तुम्हें पैर क्यों नहीं दिये ?'   
...अगर मेरे भी पैर होते तो मुझमें और मनुष्य में अंतर ही क्या रहता ?'   
...किंतु मनुष्य की चैतन्य शक्ति तो तुमसे अधिक है।'   
...वह मुझसे अधिक चैतन्य रहे या न रहे; किंतु मानव जाति में भी तो बहुत से  
...सुप्रभा हैं। वे मेरी ही जाति के हैं ! ऐसों को ईश्वर ने अगर पैर न दिये होते; तो वे  
...बड़े ही कहलाते।'   
...तो क्या, तुम्हारे विचार से वे मनुष्य नहीं हैं ?'   
...हैं; किंतु चैतन्य नहीं हैं। मनुष्य कहे जाने वाले वे मेरी ही जाति के  
...में हैं।'



—दिलीपकुमार, पूर्णिया



अचेतन और अवचेतन आत्म की इन समूची गहन, अन्धी, अज्ञात, अराजक अग्नियों का एक सृजनात्मक, सम्पूर्ण साक्षात्कार और अचूक उत्तर है ।

अपनी प्रिया के साथ सुरतिलीन अवस्था में, कौन देख पाता है—उसकी उद्दाम निवेदनवती बाहुओं के उत्कंठाकुल मरोड़ों को, उसके गुम्फनाकुल बाहुमूलों, भुजाओं, स्तनों के नानाभंगिम लहजों लहरावों, तनावों और बहावों को । उसके सौ-सौ भंगों में मुड़-मुड़कर निछावर होते कटि-प्रदेश और नितम्बों के बलखावों को; उसके कटाक्षों में उमड़ते सुरा के समन्दरों को, बंकिम मुसकानों से उसकी कपोल-पाली के सरोवरों में पड़ते भंवरो को, उसके वक्षोजों के अपरम्पार उछलते रस-सागरों को, उसके श्रोत्र-प्रदेश के उठावों, उभरावों, और गहरावों को । किंचित् अंशों इस सबकी झलकें पाकर भी, समग्रता में, अन्विति में, एक समग्र सम्बादिता में, एक सम्पूर्ण एकात्मता में, एक अनन्त-गामी लयात्मकता में हम सृष्टि के इस महान मिलन-संगीत को कहां सुन पाते हैं, भोग पाते हैं, जी पाते हैं । समुद्र में गोता लगाकर भी हम प्यासे ही बाहर निकल आते हैं । हमारी तृष्णातता का अन्त नहीं होता । एक विषण्ण शान्ति और मलिन अवसाद में हम अपने से ही हारकर, जड़ निद्रा में पर्यवसान पा जाते हैं ।

खजुराहो में हम नर-नारी की मिलना-

कुल देह के इस संगीत को, उसकी असीम-गामी सुरावलियों में समग्र रूप से आस्वादित करते हैं । यहां देह का वह भोग-चंचल, दृश्य-सौन्दर्य बनकर अनन्त हो उठा है । यहां काम ही स्वयम् अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचकर मोक्ष हो गया है । यहां चिर अतृप्त, खण्डित काम, अनायास ही पूर्ण तृप्तिदायक, अखण्ड और अशेष काम हो उठा है । यहां रति के बाद का अवसाद नहीं, पूर्णकाम सुरति का उन्मुख आह्लाद है । इसी से कहना चाहता हूं कि खजुराहो या इसी प्रकार के कामकेशि-शिल्पित भारत के अन्य देव-मन्दिरों को देखने पर स्पष्ट प्रतीयमान होता है कि यहां देह और आत्मा का चिरकालीन विरोध विसर्जित हुआ है । काम का यहां विरोध, निषेध, वर्जन नहीं; उसका नकारात्मक नहीं, किन्तु विधायक स्वरूप शिल्प-कला में साक्षात्कृत हुआ है । यहां काम ही अपनी परिपूर्ण गतिमत्ता में पहुंचकर पूर्णकाम, महाकाम, अनन्त काम हो उठा है । काम की समग्र सर्वांगीण लीला, एक ही अविभाज्य निमिष में यहां कामेश्वर के भीतर से पल-पल प्रसारित होती हुई सहसा उन्हीं के भीतर पल-पल अपसारित होती दिखायी पड़ती है ।

इन भूरे-गुलाबी पाहनों में उत्कीर्ण मदनकुल देह की एक-एक भंगिमा, अवयव-रेखा, भाव-संवेदना, एक-एक चेष्टा और समग्र 'कण्ठर', अत्यन्त जीवन्त



तल, चंचल और गतिमान  
 वह सब देखकर ऐसी स्पष्ट प्रतीति  
 है कि जैसे अगति और जड़त्व के  
 प्रतीक पत्थर में शाश्वत जीवन  
 के निरन्तर गतिमत्ता, प्रवाहिता और  
 गतिमत्ता को ज्वलन्त शिल्पित करके,  
 मानव शिल्पी ने जड़ पर चेतन की  
 आवाध विजय को उद्घोषित किया है।  
 ऐसा लग रहा है, जैसे भगवती महा-  
 शक्ति ने मेरे जीवन में अब अधोमुखी  
 कामपर्व को समाप्त कर दिया है। वे मां  
 अब भूत देह के खण्डित काम से, आत्मा  
 के अखण्ड और ऊर्ध्वमुखी काम में उन्नीत  
 किया चाहती हैं। वे मुझे अपनी ही आत्मा  
 के आधीन अन्तःपुर में नित्य विराजमान,  
 ज्ञान रूप से अपनी प्रिया के साथ चिर-  
 न्त मिलन और अविरल मैथुन में प्रति-  
 स्था किया चाहती हैं। इससे पहले अपने  
 जीवन के कामपर्व के अन्तिम भाग में,  
 जो कामाध्यात्मिक किस्म की कविताओं  
 का एक सिलसिला चला था, उसकी अपने  
 जीवन की इस नयी भूमिका में कैसे पूर्णा-  
 ण की जाये, इसी का एक माकूल समा-  
 प्त मैं कई दिनों से खोज रहा था। यों  
 तो मेरी सृजन-चेतना पहले ही से इस  
 तरह अतिक्रान्तिनी है कि जो कामिक  
 काव्यमाला मैं लिख रहा था, वह अनायास  
 ही महज कामिक न हो कर कामाध्या-  
 त्मिक थी। यानी काम और पराकाम की  
 रक्षा अपनी चेतना में मूलगत रूप से ले  
 रही मेरे कवि का जन्म हुआ है।

फिर भी भगवती की कृपा का जो यह  
 नितान्त हाल का पर्व चल रहा है और यहां  
 जो उसका नया विधान मेरे जीवन के लिए  
 खुल रहा है, उसके सन्दर्भ में मैं अपनी  
 कामाध्यात्मिक कविता को भी निरी मान-  
 सिक चेतना से उच्चतर, किसी उपरि-  
 मानसिक या अतिमानसिक चेतना में  
 उन्नीत पाना चाहता हूं। भगवती चिति-  
 शक्ति की कृपा तो इस दिशा में समग्र  
 रूप से मेरे भीतर फिलहाल क्रियाशील है  
 ही। पर उसी कृपा-तले मैं अप्रतिम काम-  
 तीर्थ खजुराहो में, भगवान् कन्दर्पेश्वर  
 के श्रीचरणों में, काम और पराकाम के  
 बीच की निगूढ़ रहस्य से आवरित खाई  
 का साक्षात्कार पाना चाहता था। वह  
 खाई जहां भागवत चेतना में विलीयमान  
 हो जाती है, और जहां हठात् सारे विरोधों  
 और द्वन्द्वों का विसर्जन और समाहार  
 आपोआप हो जाता है, रसेश्वरी चिति-  
 मां की उस मधुमती भूमिका में विहार  
 करना चाहता था। और उसी नव साक्षा-  
 त्कार और नयी दृष्टि के प्रकाश में मैं  
 अपनी कामाध्यात्मिक काव्यमाला को  
 उत्क्रान्त किया चाहता था। खजुराहो  
 आने के मेरे संकल्प के पीछे यही अन्तः-  
 प्रेरणा काम कर रही थी।

... कन्दर्पेश्वर मन्दिर के चबूतरे पर  
 पहुंचने से पहले मैं लक्ष्मण-मन्दिर की  
 परिक्रमा में यहां के कामिक-शिल्प का  
 समूचा परिचय प्राप्त कर चुका था।  
 कन्दर्पेश्वर की परिक्रमा में घूमकर देखते



हुए मदन की आकांक्षा बड़ी प्रबलता से रक्त में अनुभव होने लगी। गत कई महीनों से इस भाव की ओर से जो एक निर्वेद या निरासक्ति-सी मन में समा गयी थी, उसको बहाता हुआ, एक जबरदस्त काम का वेग शिराओं में उमड़ने लगा। पहले उसके प्रति एक निषेध का-सा भाव मन में आया : यह दिशा अब मेरे लिए वर्जित है : मेरी गति अब ऊपर की है, नीचे नहीं उतरना है। फौरन ही भीतर बोध हुआ : ऊपर की ओर गति मेरे किये नहीं हुई है, और अब रक्त में यह जो हिल्लोल नीचे की ओर धंस रहा है, वह भी उसी महाशक्ति की इच्छा का खेल है, जो मुझे यहां लायी है और इस अनिवार्यकाम-समुद्र में गोते लगाने को जिसने मुझे यहां ला फेंका है। . . . मैं, समर्पित हो गया उस हिल्लोल के प्रति : मदन की उस प्रचण्ड आक्रान्ति के प्रति। रोम-रोम, शिरा-शिरा, रक्त की बूंद-बूंद में व्याप्त कर वह तूफान देह के तटबन्धों को जैसे चूर-चूर करता चला गया। . . .

मैं और रमेश मुक्त भाव से प्रत्येक शृंगारिक नारी-मुद्रा तथा मदन-केलि के शिल्प की एक-एक कामिक क्रिया का, पूर्ण तीव्रता से आस्वाद लेते हुए, बोलकर उत्कटतापूर्वक उसका पारस्परिक वर्णन करते हुए वह सब देखने लगे, घूमने लगे। बीच-बीच में अवयवों के 'कण्टूरों', रेखाओं, भंगों, मरोड़ों, भंगिमाओं के सौन्दर्य को भी हम अत्यन्त अनभूति-सम्बेदन के साथ, वर्णनापूर्वक आस्वादित

नवनीत

प्रत्येक अवयव, प्रत्येक गुम्फन, आलिपन, परिरम्भण, चुम्बन, प्रत्येक बाहु, उरोच, उसके उभार-उछाल का, प्रत्येक पकड़ का अलग-अलग और संयुक्त रूप से, हर दर्शन के अपने नितान्त निजी एकान्त में हम उपभोग करने लगे।

. . . सम्पूर्ण और समग्र भाव से, निर्ग्रन्थ और अकुण्ठ आत्मार्पण के साथ, मैंने अपनी समस्त सत्ता में काम की उस अव्याहत मस्ती को आत्मसात् किया। केलि के उस महासमुद्र में मैं खोता ही गया, डूबता ही गया। वर्जनाहीन, उद्दाम उन्मुक्तता के साथ अपने दैहिक, प्राणिक, मानसिक, ऐन्द्रिक 'मैं' को उसमें मिटाता और गलाता ही चला गया। . . . और . . . और . . . जाने कब जैसे मैं स्वयम् ही काम का एक स्वयम्भू-रमण समुद्र बन गया। आक्रामक और आक्रान्त से परे, भोक्ता और भोग्य से परे, मैं जैसे एक अव्याबाध भोग का सर्ववाही पारावार बनकर, दिक्काल के तटों तक को अपनी उत्ताल तरंगों, आलोड़नों, गर्जनाओं से चूर-चूर करता चला गया। . . . समर्पण . . . समर्पण . . . समर्पण . . .

. . . परिक्रमा-दर्शन में अपने उस तुमुल कोलाहल को आप ही सुनता, भोगता, झेलता-मैं यकायक मन्दिर की सीढ़ियां चढ़ चला। निज देवालय के बाहर की वेदी के सम्मुख पहुंचते ही, सामने गर्भ-गृह में शून्य में दिखायी पड़ा एककी श्वेताश शिर्वलिग। एकमेव-एकेला, लम्ब-गोला-

नवंबर



क आकृति,  
आलिंगन,  
हनु, उराज,  
क पकड़ का  
मे, हर दर्शन  
न्त में हम

... उस पर दृष्टि पड़ते ही, विपल  
मात्र में, समयातीत रूप से सब कुछ  
स्रब्ध हो गया। एक अगाध, अपार शान्ति  
में निमग्न होकर, मैंने अपने को निस्तब्ध  
और विश्रब्ध पाया। सारी गतियां, आकां-  
क्षियां, तूफान यहां विराम पा गये। काम का  
हृ उद्दाम और निर्वन्धन समुद्र ही स्वयम्  
नम्रित होकर, उस अन्तर्देवालय में विरा-  
जमान निश्चित शिवलिंग हो गया।...

... अविकल्प बोध प्राप्त हुआ कि काम  
और कामातीत के बीच मूलतः कहीं कोई  
विरोध, विपर्यय या द्वन्द्व नहीं है। अपनी  
स्थिति में जो कामातीत कन्दर्पेश्वर है,  
अपनी गति और विस्तृति में वही काम है।  
अपनी गति में वे स्रष्टा होते हैं, और  
अपनी संस्थिति में वे उस सृष्टि के ज्ञाता-  
व्या और भोक्ता होते हैं। स्थिति और  
गति यहां संयुक्तरूप से विराजमान हैं :  
स एकमेव लिंग-पुरुष तथा उसकी परि-  
रमा में उत्कीर्ण मदन-केलि के रूप में।  
जो से खजुराहो मूर्तिमान योग है। विशुद्ध  
श्याम के क्षेत्र में जो योग मात्र एक  
अन्तर्भूत परोक्ष आत्म-स्थिति होता है,  
उसे सौन्दर्य-शिल्पी कलाकार ने यहां मूर्त  
कर दिया है। योग में वर्जना नहीं होती,  
श्योंकि उसमें द्वैत और अद्वैत, द्वन्द्व और  
द्वैतातीत अपने तात्त्विक और विशुद्ध रूप  
में संयुक्त भाव से विराजमान रहते हैं।  
शुद्ध और मुक्ति, संसार और निर्वाण  
यहां एककार हैं। एकमेव सत्ता के ही

वे दो विभिन्न आयाम हैं, विविधमुखी  
पहलू हैं।... यहां कन्दर्पेश्वर अपनी ही  
स्वतन्त्र इच्छा से उत्पन्न काम पर आरुढ़  
हैं। हम अपने साधारण जीवन में स्थिति  
और गति के योग में नहीं जीते : हम केवल  
गति की तरंग होते हैं, इसी से काम द्वारा  
हम मुक्त होते हैं, उसे भोगते नहीं हैं। काम  
का सच्चा भोक्ता अनिवार्यतः काम का  
स्वामी ही हो सकता है। समीचीन और  
यथार्थ भोक्ता होते हैं केवल योगीश्वर—  
कन्दर्पेश्वर शंकर।

इस कामिक शिल्प के दर्शन की प्रक्रिया  
में, सम्पूर्ण समर्पण द्वारा मैं अनायास ही  
अपने छद्म भोक्ता-भाव से मुक्त हो चला  
था। अपने को अधिकाधिक छोड़ता चला  
गया था। काम के हर प्रवलतर आघात  
के साथ, अपने भिन्न 'मैं' को अधिकाधिक  
मिटता हुआ, मैं स्वयम् उस काम-समुद्र  
की एक निष्काम तरंग मात्र होकर रह  
गया था।... इसी से कामेश्वर शंकर को  
सम्मुख पाते ही, निमिष मात्र में मैं उनके  
भीतर लीन हो गया। मैं स्वयम् कन्द-  
र्पेश्वर होकर, कन्दर्पेश्वर के दर्शन करने  
लगा। भागवत कृपा तले होने वाला यह  
अनुभव वचनातीत है। इतना कुछ कहकर  
भी, क्या मैं उसे पूरा व्यक्त कर सका हूँ ?  
नहीं... वह सम्भव नहीं।

... अगले ही क्षण मैं जाने कैसे प्यार  
से उमड़ आया। गर्भगृह में जाकर मैंने  
लिंग के शीर्ष पर माथा ढाल दिया। अपने  
को अन्तिम रूप से छोड़ दिया, अपनी चिर



काम्या शिवानी की गोद में । . . . आंखें गहरी मुंद गयीं । अनिर्वच शान्ति के अथाह में मैं विसर्जित हो गया । . . . सहसा ही, जैसे एक विजली का-सा झटका अनुभव हुआ । एक फिल्म-सी सामने प्रत्यक्ष खुलने लगी । . . . दिखायी पड़ा—प्रवाही मदन-क्रीड़ा की एक अटूट और अन्तहीन धारा वहीं जा रही है । नाना कामकेलि-गुम्फित मिथुनों की एक जाज्वल्यमान नदी : अत्यन्त सरल, प्रांजल, स्निग्ध, ऋजु, कोमल अगमगामिनी सरिता—आलिंगनों, चुम्बनों, परिरम्भणों की । कामकेलि का एक दिक्कालवाही समुद्र . . . अविरल, अविराम, अन्तहीन . . . । लहर-लहर में सौ-सौ स्तन : सुगोलतम कलशाकार स्तन : लहर-लहर में परिरम्भणाकुल बाहुएं . . . बाहुओं की अपरम्पार सरणियां, उरोजों और उरुओं की स्निग्ध लहरावलियां । एक विराट् असीम, स्तब्ध महासमुद्र की तरंगों में तरलायित, प्रवाहित, उठ-उठकर विलीन होती मदन-लीलाएं : हर लहर के हर भंग में लरजते अंगों के आलोड़न, उरोजों के उत्तोलन । . . . अनन्त कोटि मैथुन-विद्ध मिथुनों की मंडलाकार राशियां—असीम में चक्रायमान । . . . मैथुन . . . मैथुन . . . मैथुन . . . अविरल और सघन मैथुन . . . नित्य भोग, अशेष भोग, अपरम्पार मिलन-लीलाओं की कल्पकाम शैयाएं... क्षीर-समुद्र में दोलायमान । . . . सहसा ही 'खटका बन्द' का झटका अनुभव हुआ । और सम्मुख देखा—निश्चल, शान्त निस्तब्ध—वही एकमेव

नवनीत

श्वेताभ लिंग । एक परम ज्योतिर्मय सुमेरु, अटल फिर भी अपनी प्रभा में चिर-चिर चंचल और नितनूतन । . . .

. . . ध्यान की तन्त्रा भंग हुई । बाहर आकर मैं दूर से लिंग को निहारता रहा । एक अपूर्व प्रत्यय में अपने को स्थिरीभूत पाया । पर शिव, सदाशिव भगवान् कन्दर्पेश्वर के चरणों में, समयातीत भाव में तत्काल मानो एक पूर्णकाम तृप्ति का अनुभव हुआ । आप्तकाम सुखानुभूति में जैसे समस्त चेतना विराम पा गयी । आज अन्तिम रूप से काम और पराकाम के बीच का विरोध मेरे भीतर विसर्जित हो गया । पशुपतिनाथ ने यहां पशु का तिरस्कार नहीं किया है । उन्होंने अपनी ही देह-स्वरूप इन मन्दिरों की परिक्रमाओं में उसकी पाशव लीला को पराकाष्ठियों में कृतार्थ करके, उसे अपने महाभासिन्धु में मुक्त कर दिया है । उद्दाम कामि चेतना से, आज तक जो भगवान् और भगवती के मिलन की कविता मैंने लिखी थी, उसे उनका समर्थन प्राप्त हो गया । उसके आगामी प्रवाह को उन्होंने अपने मधुमती भूमिका में उन्नीत और उत्कान्त कर दिया । स्पष्ट प्रतीयमान हुआ कि आज तक आकाशवाही उन्मादना से जो मैंने दुर्दान्त महावासना को अपनी कविता में मुक्तभाव से गाया था, वह व्यर्थ या अधो गामिनी नहीं थी । वह निश्चय ही अनिक्रान्त और ऊर्ध्वमुखी महाकाम की कविता थी । जो साध लेकर मैं अपने पार



ज्योतिर्मय  
 की प्रभा में  
 तन । ....  
 हुई। बाहर  
 हो रहा।  
 हो स्थिरीभूत  
 भगवान कन्द-  
 तीत भाव में  
 म तृप्ति का  
 सुखानुभूति  
 म पा गयी।  
 पर पराकाम के  
 विसर्जित हो  
 पशु का तिर-  
 होने अपनी ही  
 की परिक्रमाओं  
 पराकाण्डों  
 पने महाभक्ति-  
 उद्दाम कामि-  
 भगवान और  
 वता मैंने लिखे  
 पाप्त हो गया।  
 उन्होंने अपने  
 और उत्कान्त  
 प्रमान हुआ कि  
 उन्मादना से जो  
 अपनी कविता  
 ह व्यर्थ या अयो-  
 नञ्चय ही अति-  
 काम की कविता  
 मैं अपने प्यारे  
 नवंबर

य काम-क्रांति की मूर्तियाँ, कारखाने के  
 साँचे में हजारों की संख्या में ढलकर, सस्ते  
 दामों पर विकती हैं। साधारण जन के  
 लिए वे तब अपनी यौन लालसाओं को  
 उभारने या सहलाने का साधन मात्र ही  
 रहती हैं। एक समग्र रचना में से उसके  
 अंग विशेष को तोड़ लेने पर, उसका समूचा  
 भाव और अभिप्राय कितना खण्डित और  
 विकृत हो जाता है। .. प्रेम से चाय-ताम्बूल  
 का सेवन कर, हम दोनों सखा खजुराहो  
 का म्यूजियम देखने गये। जैन, बौद्ध, शैव,  
 वैष्णव विभागों में विभाजित इस पुरा-  
 तत्वालय में खजुराहो की कुछ अत्यन्त  
 विलक्षण और प्रतिनिधि शिल्प-कृतियाँ  
 सुरक्षित हैं। उन्हें देखते हुए समन्वित  
 भागवत् चेतना की एक अद्भुत अनुभूति  
 से मन-प्राण आप्लावित हो उठे।

... चार बजे वाली अन्तिम बस के  
 प्रयाण का भोंपू जब बज उठा, तभी हमारी  
 तन्मयता भंग हो सकी। दौड़कर आखिर  
 हमने उसे पकड़ ही तो लिया। लौटते हुए  
 फिर अपराह्न की केसरिया धूप से छाये  
 तालाब पर निगाह दौड़ गयी। उसके घाटों  
 में कहीं मन की कोई सुन्दरी जैसे पीछे छूट  
 गयी ! और फिर जैसे यकायक वह अपने  
 ही भीतर झांकती दिखायी पड़ी। ...  
 वियोग नहीं, योग की सृष्टि ही मेरे कवि  
 की इस प्रथम लोक-यात्रा का लक्ष्य है।  
 इस लौटती यात्रा में रमेश के और मेरे  
 बीच, अनायास मानो कृष्णार्जुन की अटूट  
 मैत्री का भाव प्रकट हो उठा। वह आनन्द-



विभोर होकर मुझे बार-बार वासुदेव कहकर पुकार रहा था, मैं उसे 'हे पार्थ ...' कहकर सम्बोधित कर रहा था। यह मात्र पिछली आगमन-यात्रा से भी अधिक सुन्दर सुखद, स्निग्ध, सम्पूरित लग रही थी। हम दोनों के बीच एक विलक्षण एकात्मता और भाव-संगति निर्मित हो गयी थी। बातों में दिमागी तनाव नहीं, हार्दिक घुलाव था—हम परस्पर एक गहिर से गहिरतर आन्तरिक लयबद्धता में एकतान भाव से स्वरायित हो रहे थे। सूर्य-मन्दिर के सामने एक दो-फनी टेढ़ी-मेढ़ी जंगली लकड़ी मिल गयी थी। उसे ही मैं त्रिशूल के वज्रन पर द्विशूल की तरह धारण किये ठीक महेश्वरशिव-शंकर के भाव में तल्लीन यात्रा कर रहा था।

... पन्ना के बस-अड्डे पर जब उतरे, तो सामने की एक दूकान में गरमा-गरम कचौड़ी-पकौड़ी उतर रही थीं। सो हम दोनों ही भोजन-प्रेमी बान्धव लपककर उसमें जा बैठे। खूब तृप्तिपूर्वक गुलाब-जामुन तथा ताजा नमकीनों के साथ चाय पान हुआ। फिर रमेश के एक मनपसन्द पानवाले के यहां केसरी जर्दे वाली गिलौरियां जमाकर घर की ओर धावित हुए।

घर पर ज्योत्स्नाजी (कहानीकार ज्योत्स्ना मिलन) अपनी किसी सुन्दर मेहमान के सत्कार में व्यस्त थीं। यह हम दोनों कवि-सखाओं के बसकानहीं था कि उस रम्यत्व में शरीक न हों।

अबेर रात गये भोजन हुआ। उसके बाद बातचीत सम्भव न हो सकी। ... एक गहरे तन्द्रिल मौन में मैं डूबता चला गया। शैया में लेटते ही निविड़ ध्यान में निमग्न हो गया : चेतना स्तब्ध, एकाग्र हो गयी। ध्यान-तन्द्रा में सहसा ही पूर्णकार विष्णु और श्वेत लिंगाधिष्ठित महाकाल शंकर के दर्शन हुए। चराचर-व्यापी समस्त काम की तरंगों को अपने में समाये, स्वयं केवलकाम भगवान् ने दर्शन दिये। काम-लीलाओं का दर्शन अनावश्यक हो गया। आत्मभान होते ही कवि-योगीश्वर एकनाथ की ये पंक्तियां मन में स्फुरित हो उठीं :  
'जो देख लिया देखणें सरे : जो चाख लिया चाखणें पुरे।

जय चेनि अंग-स्पर्श : देह-देहीपणें तासे।  
... जिसे देख लेने पर देखने का अन्त हो जाता है। जिसे चख लेने पर चखना पूरा हो जाता है। जिसके अंग-स्पर्श से देह-देही-भाव समाप्त हो जाता है। ...

रेल में बैठे दो मुसाफिरों में लड़ाई हो रही थी। एक खिड़की खोल देता था और कहता था, 'गर्मी लग रही है, इसलिए खिड़की खुली रहने दो।' दूसरा खिड़की बंद कर देता और कहता, 'सर्दी लग रही है, इसलिए खिड़की बंद रहने दो।' जब लड़ते-लड़ते काफी देर हो गयी तो तीसरे मुसाफिर ने कहा, 'क्यों लड़ते हो, भाई ! कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि खिड़की में सिर्फ फ्रेम ही है, कांच नहीं।' □



जानते। ठीक है, यह भगतण आपके  
रियासत की रानी हो सकती है,  
लेकिन नहीं है। हमारी इज्जत पर  
हमारी नहीं उठा सकती...

दरबार में उस वीर पंगव के शब्द  
जानती की तेजधार के समान महाराज  
कोर गये। सभी ठाकुर-सरदार थर्रा  
की चांदीसिंह का सिर कलम होकर  
हथेली रहेगा शायद, परंतु उस बबर शेर  
आंखों से आग का दरिया बह रहा  
आंखों की तरह तना शरीर और  
जिह्वा उद्वेलन से कांपते ओंठ। महा-  
इस व्यवहार से चकित और अप-  
मानित से हो उठे...

राजराजा! क्या तुम रसकपूर से  
करते हो? हमारी आज्ञा के  
की सजा जानते हो? रसकपूर  
जिन शब्दों का प्रयोग कर रहे हो,  
जो नतीजा नज़र में है? उससे बैर  
आप हमको नाराज़ कर रहे हैं,  
क्या है?

सिखली फिर कड़क उठी—'सब कुछ  
जानता हूँ—यह भी जानता हूँ, अन्नदाता,  
मेरी किसी से दुश्मनी नहीं है, न  
आज्ञा का उल्लंघन करने का मेरा  
उद्देश्य है। आप हुक्म दें, अभी,  
मैं अपने आपको चरणों में सिर काट-  
दूंगा। लेकिन, महाराज, सोचियेज्जरा,  
आज्ञा ध्यानात्... जो खुद कल तक रईसों,  
उमरावों, सरदारों और ठाकुरों का

नाच-गाकर, कांचमहल में महफिलें सजा-  
कर दिल बहलाती रही हो, उसकी देहरी  
पर फरियाद में ठाकुर का सिर क्यों झुकेगा?  
मैं आपका वफादार हूँ, लेकिन किसी ऐसी-  
गैरी औरत का नहीं। मौत की सजा आप  
दे सकते हैं, मुझे मंजूर है। हम खून की  
एक-एक बूंद दे सकते हैं, लेकिन पगड़ी के  
पेच नहीं। मैं भरे दरबार में यह भी प्रण  
करता हूँ कि उन सभी राजसी समारोहों में,  
होली-दिवाली की महफिलों में और आपके  
जन्मदिन के नज़रानों में कभी सम्मिलित  
होने नहीं आऊंगा, उन सभी अवसरों का  
त्याग करता हूँ, जिनमें रसकपूर रथ पर,  
हाथी पर और सिंहासन पर आपके साथ  
होगी...

दरबार में भयानक सन्नाटा छा गया....  
देखें, क्या दण्ड मिलता है अब रावराजा  
को! महाराज का चेहरा स्याह पड़  
गया था। वातावरण में भविष्य के किसी  
गूढ़ षड्यंत्र की गंध उन्हें मिल रही थी।  
तभी राजाज्ञा घोषित हुई—रावराजा पर  
बीस लाख का जुर्माना हुआ, जिसे अवि-  
लंब जमा कराना था।

इन्हीं सारे आक्रोशों में, पटरानी-  
रानियों और सामंतों के मजबूत जाल में  
अब रसकपूर फंस गयी थी... भीतर-भीतर  
ही भीतर कितना लावा दहक रहा है,  
वह जान तक नहीं पायी थी।

०००

लंबी लड़ाई की थकान ... शिकस्त के



बाद मानसिक परीक्षा के लिए जब महाराजा अपनी रियासत की ओर लौटे, तब उनका स्वागत करने के लिए भव्य तैयारियां होने लगीं। दरबारियों में उल्लास छा गया। रंगमहलों में केवड़ा-हिना बरसने लगा। सभी कटिबद्ध थे कि इस बार रसकपूर को बिलकुल ही जलाकर खाकर देना है। राजा के कानों में गर्म शीशे की पिघलती धारें बहाने के लिए शिकायतों के अंवार इकट्ठे कर लिये थे। राजगद्दी की मर्यादा को और महाराज के गौरव को बचाने के लिए होड़ लग गयी थी।

महाराज के पधारते ही महफिलों और समारोहों का दौर शुरू हो गया। ठाकुरों, सरदारों, सेठ-साहूकारों और निजी रिश्तेदारों ने नज़रानों के ढेर लगा दिये। रानियों के इतने रास-रंग ... सीमाएं उलांघती मौज-मस्तियां, लेकिन रसकपूर का शृंगार अनदेखा क्यों? वह पागल-सी हो उठी ... उसका मन पीपल के पत्ते-सा कांप उठा ... उसका मस्तिष्क भयानक तूफान की आशंका से घबरा उठा ... नंगी तलवारों जैसे प्रश्न घायल कर उठे ... महाराज को आये इतने दिन हो गये, लेकिन उससे मिलने क्यों नहीं आये? ये सारी महफिलों के दिलकश जश्न तो यहीं होने थे।

फिर? वे तो एक पल भी दूरी बर्दाश्त नहीं करते थे। अब? न कोई संदेश, न बुलाहट ... कारण? उसने कितने-

नवनीत

कितने संदेश विश्वासपात्रों के हाथों भिजवाये थे, कोई उत्तर, महाराजा की ओर से कोई समाचार उसे क्यों नहीं मिला? अब सब स्पष्ट होता जा रहा था। वह तो सोच रही थी कि उनके ठीके मिले दत्तों को, उपेक्षाओं-अवहेलनाओं को महाराज के सामने बयान करेगी, उनके अनुराग को शीतल छुअन से मन की सारी पीड़ा दूर करेगी। इतने दिनों के विरह की उदामी को उनकी निर्मल-मुग्ध हंसी से धो डालेगी...लेकिन? फूलों-रत्नों का शृंगार टीसता रह गया। क्या दुश्मनों की कपट-लीला काम कर गयी? बरना मितवा की ओर से इतनी भीषण अवहेलना क्यों होती?

दूसरे दिन पता चला कि संदेश ले जाने और लानेवाले हरकारों को मौत के घाट उतार दिया गया। ओफ! जीश-महल, घुंघरू, सितार-सारंगी, रेशमी झालरों वाले पर्दे सब उसी की तरह रंजो-गम-म डूबकर परित्यक्त बने सिसक उठे... दृष्टि के कजरारे खंजन घायल और ओठों के महकते गुलाब पीले हो गये ... इन्हीं झंझावातों के बीच उसका मनभावक पर्व होली आया ... उसे आशा बंधी कि शायद महाराज इस मौके पर याद करें? पारंपरिक दस्तूरों से गठी हुई राजघराने की प्रसिद्ध होली-महीनों पहले लाल-मुख दरियों-गलीचों पर खाने हाथियों-घोड़ों को चलने का अभ्यास कराया जाता था, ताकि हाथी-घोड़े सड़क पर बिछी मनो गुलाल को देखकर



हाथों मित्र-  
जा की ओर  
नहीं मित्रा ?  
था। वह तो  
ठे मिले दूँ  
तो महाराज के  
अनुराग को  
प्रीति दूँ  
ह की उदामी  
हंसी से धो  
कों का जंगार  
मनों की कपट-  
ता मित्रता की  
गायों होती ?  
कि संदेश ने  
रों को मौत के  
ओपक ! जीव-  
रेशमी झालों  
ह रंजो-गम में  
सिसक उठे-  
घायल और  
ले हो गये ...  
सका मनभाव  
से आशा बंधी  
मौके पर याद  
से गठी हुई  
नी-महीनीं पहनें  
वों पर बात  
ने का अभ्यास  
कि हाथी-बाड़े  
नाल को देखकर  
नवंबर

नहीं। तब महाराज की आँखें आकाश की सवारी निकलती  
के साथ हाथी की सवारी निकलती  
सकसूर साथ बैठती। रंगीन  
रंगियों की गैदों में रंग भरा हुआ...  
नाल के पोटे होते और प्रजा-राजा की  
तो पाशी होती ... सड़कें, हवेलियां हरे,  
मने और लाल अबीर में लिपटकर दुल्हन  
न जातीं ...  
रसकपूर ने सुबह से ही राजा की  
तब का जंगार किया और प्रतीक्षा में  
वें बिछा दीं। शायद महाराज बुला  
ने ते, लेकिन रंगमहल और दरवारी  
सकं थे। पहले ही राजा के कानों में  
कियातें और दिल-दिमाग में संदेहों  
के बीच घोल दिये थे। दूणी के रावराजा  
को घृणा, उनका अपमान याद आया...  
मनो के स्वरों में एक दृढ़ निश्चय की  
चावनी हुंकार उठी... एक पक्का निर्णय  
... नहीं, अब नहीं... तुमुलनाद में समवेत  
र गज उठे-या तो महाराजा राज-  
सुते छोड़ें, अन्यथा इस नर्तकी को त्यागें  
... विश्वासघातिनी है, राज्य और  
महाराज का अनिष्ट चाहती है। एक  
... हम सब, राज-वैभव और अंतः  
... की शालीन मर्मादा और दूसरी ओर  
... गायिका ! अब राजा साहब, जिसे  
... अन्नदाता चुनें, जिसे चाहें छोड़ दें ..  
... अखिर प्रजा और सत्ता के जन-आक्रोश  
... तथा जनानी ड्यौदियों के विद्रोही  
... की विजय हुई। भयानक षड्यंत्र  
... हुआ। रसकपूर के महलों के दीप

आकाश से गिरकर जलती जमीन पर छट-  
पटा उठा। वहशी सन्नाटे के नुकीले नाखूनों  
ने उसे जकड़ लिया। सूनी अमावसी दीवारों  
से टकरा-टकराकर वह मूर्च्छित हो गयी।  
कौन था अब उसे संभालने वाला ! चंद्र-  
मणि माथे से खिसककर धूल में जा पड़ी...  
कृष्णचूड़ा, मुहागपट्टी और अनवट-बिछुए  
असंख्य जिह्वाओं से उसे डसने लगे...  
दूसरे दिन का मनहूस सुरज महाराज  
का हुक्म लेकर आया कि सुदर्शनगढ़  
(नाहरगढ़) के किले में रसकपूर को  
कैद कर दिया जाये। सुनते ही वह चीत्कार  
कर उठी। आंखों में श्मशान और कानों  
में काली आंधी ! शरीर का खून सर्द हो  
गया ... चंद्रमहल की मलका धूल-धूसरित  
हो गयी। यहां ठहरने के कुछ पल ही  
शेष ... पहरदार और खवास-मुसाहिब  
जल्दी मचा रहे थे ... जर्कवर्क पोशाकें....  
जड़ाऊ आभूषण उतार लिये गये ....  
बड़े उपहासपूर्ण और अपमानजनित  
वातावरण में उसके भाग्य ने उसे मैले  
गूदड़ों में लपेटकर गर्द-कांटों में पटक  
दिया ! नाचीज गुलाम-बांदियां उसकी  
खिल्ली उड़ाने लगीं ... पुरुषों की आंखों  
में, व्यवहारों में अभद्रता झांकने लगी ....  
लज्जाहीन संबोधन उड़ने लगे ... राजा  
की आंखों की अंगूरी नूरे-आब उतरी  
हुई पत्थर की ठीकरी हो गयी... वह अनु-  
रागिनी, समर्पिता निरपराध नारी महाराज  
की एक झलक पाने के लिए अकुला उठी।



लेकिन वहां सारे सगे-संबंधी, जो अच्छे पदों पर लगे हुए थे, वे या तो मार डाले गये, या भगा दिये गये। वह मुरझाई लता-सी चंद्रमहल को आखिरी सलाम करके चल पड़ी... जालीदार गोखों में बैठी रानियों के चेहरों पर शरद-चांदनी छिटक उठी... आलीशान महल से वह दूध में गिरी मक्खी-सी निकाल-कर फेंक दी गयी!

अचानक उसे अपने वचपन के एक गरीब सखा के शब्द याद हो आये, जब वह स्वर्णपालकी में बैठकर आमेर महलों की ओर राजा के प्यार में सराबोर हुई चलने लगी थी, तब कहा था—‘ठीक है, बन्नों ! अब तुम राजमहलों की वीथियों में राजा की प्रिया बनने जा रही हो । मैं निर्धन भला तुम्हें क्या दे पाता ? लेकिन, रसकपूर ! इन नक्काशीदार दीवारों के बड़े खुरदरे-पथराये दिल होते हैं . . . शीशमहल के लाखों दर्पणों में ज़हरीले साये लपलपाते हैं । तक्रदीर का सितारा चुटकी वजाते ही अंधे-अंधेरे कुओं में डूब जाता है । इन झूठे विलासों पर, स्वार्थी-कच्ची मनुहारों पर यकीन मत करना, वरना जब भयानक हकीकत से तुम्हें दो-चार होता पड़ेगा, तब देखोगी कि तुम्हारी आवाज़ और छाया तक भी धोखा दे जायेगी . . .’ सुनकर तब वह कितना हंसी थी, परंतु अब उसका कहा हुआ एक-एक शब्द याद आ रहा था—सचमुच ही प्यार के नग्मे कितने बेदर्द निकले !

Chennai and eGangotri

उसकी मन गर्म फफोलों से भर गया, आहें जलती हुई सलाखों में बदल गयी, रह गयी उसके हाथों में अलबेले सपनों की मुर्दा राख ! दो घड़ी बाद उसने मुना कि उसके बचपन के उस गरीब साथी का भी क़त्ल कर दिया गया । जिसे वहाँ से देखा तक नहीं था, वह भी तलवार की धार पर रेत दिया... यह भी उसने मुना की राजा के कान भरे गये हैं कि 'अन्न-दाता ! यह नर्तकी इतनी चरित्रहीन और विश्वासघातिनी निकली है कि इधर तो आपको अपने मोह-जाल में अटकाये रही और हर रोज अपने इस पुराने मितवा से मिलती रही ...'— उसने सुनकर कानों पर हाथ रख लिया, ओम्फ ! कितना घिनौता झूठ !

महलों से निकालकर पहले उसे एक गंदी कोठरी में लाकर पटक दिया था, एक दिन के लिए। वहां से अब उसकी अंतिम विदाई का समय आ गया था। एक मुसाहिव उसे वहां से निकालकर तीन दिन की मैली-कुचैली पोशाक में पैदल ही आतिश तक लाया। वहां समझ (बैलगाड़ी) खड़ा था, जिसमें न कुछ बिछा हुआ था, न कोई पर्दा था। एक बार घूमकर उसने दर्दिली नब्रों से चंद्रमहल को देखा, जहां मन का सावन हर दिन हरियाया था... जहां स्पहली चांदनी नित नयी दुल्हन की तरह खबती रही थी... हर शाम एक दीवानी... फाफूनी ऋतु पांवों में सरगम बनी लिपटी रही...



भर गया, बदल गयी। वेले सपनों उसने मुना व साथी का जिसे वर्षों तलवार की उसने मुना कि 'अन्तरिहीन' की है कि रोह-जाल में ज अपने इस रही ...— रख लिया, ठ !

उले उसे एक क दिया था, अब उसकी गया था। कालकर तीन क में पैदल वहां सगड़ समें न कुछ दी था। एक ने नजरों से न का सावन वहां स्पहती तरह सबती नी ...फागुनी लिपटी रही...

नवंबर

सर्कार की सांसों की हवा पाकर खुली हुई खिलती रही... महाराज की मुहुरी छाया में मुदित होकर बहकती रही... कितने सतरंगी अवगुंठन, कितनी रूप के कितने लजीले मनुहारें, कितने नशीले स्वर, कितने उन्मादी क्षणों की दास्तानें ... कितने सश... हंसी-खनकती कल्पनाओं के चंद-काव्य... जाने कितने नेत्र-संगीत की छलछल है अघरों पर कितने-कितने सुरमई चंदन संबोधन ! जाने क्या-क्या ! गवाह का शीशमहल के एक-एक दर्पण । रसकपूर तुमसे विदा ले रही है । वर्षों की झील में कंपन हुआ ... छोटे कन न भिगो दें, इससे पहले ही वह सिर काकर सगड़ में बैठ गयी । कई अहल-ल, मेवक, मुसाहिव और चालीस घुड़-वारों के साथ उसका सगड़ जंगल-खडियों की ओर चल पड़ा । पहिये से लोड़ा एक मुसाहिव चल रहा था । क्यों कारण सगड़ थोड़ा रुका । रस-कपूर ने अपनी इस बर्बादी का कारण से उससे जानना चाहा, तब वह धीरे से बोला -

बाईजी ! महाराज को आपके गंदे जूतों का और कुटिल षड्यंत्रों का पता लग गया है कि किस तरह कछवाहों की बुरी रियासत हड़पने की आपकी योजना थी है । आपने ऐसा गिरोह भी तैयार किया कि या तो महाराज को मार डाला जाये, या कैद कर लिया जाये और फिर

आप रियासत को मुट्ठी में कर लें । आपने जंत्र-मंत्र कराया है हमारे राजा पर, जादू-टोने करके दरबार और महलों से उनका मुंह फिरवाया । उन्हें बहका-फुसलाकर खजाना-ज्वेवर लूटा है । सारी रियासत आपने आर्थिक रूप से खोखली कर दी है । इधर प्यार-प्रीत के स्वांग रचाती रहीं, उधर तुम्हारी चरित्रहीनता के किस्से महाराज पर अब जाकर उजागर हुए हैं । एक नाटक किया है क्या तुमने ? रानियों को मिटाने पर तुल गयीं, पटरानी साहिबा के लिए अपमानजनक शब्द बोलती रहीं । जाने और भी क्या-क्या शिकायतें हैं उनके पास... ! अब किये का भुगतो... आखिरकार रहीं तो वाईजी ही न ? ज़मीन पर पड़ा ठीकरा क्या कभी हीरा बन सकता है ?' कहकर बड़ी कुटिलता से वह मुस्कराया ।

रसकपूर तो जैसे काठ हो गयी थी । इतने ओछे और झूठे इल्जाम ? वह तो जी-जान से जिन चरणों की पुजारिन बनी रही, उसी चंदन-शरण में इतने विषधर ! उसकी श्रद्धा, उसके प्रेम-विश्वास पर कितने भीषण अपराधों की आरोपित गंदी शृंखलाएं ! उसने तो महाराज की तसवीर को अपनी कंवारी गंध के मण्डप में स्थापित किया था ... अनछुई भावनाओं की सप्तपदी पर मन से स्वीकृत भावरे ली थीं... उनके अनुराग की लाल चूनर ओढ़ उनके कमनीय स्पर्शों के आभूषण सजाये थे ... याद आया कि एक



# दर्द से तुरन्त आराम नोवा पेन बाम

अनेक लाभदायक औषधियों  
का सुयोग्य मिश्रण याने  
नोवा पेन बाम

दि नोवा कंपनी

भांडुप, बंबई-४०० ०७८



TOM & BAY-NC-7911M



हंसी-हंसी में वह कह बैठी थी कि  
 पहाड़ी पर सुदर्शनगढ़ कितना सुंदर  
 है! उन्होंने तुरंत कहा था कि  
 मनुष्य यह शानदार गढ़ पसंद है, तो  
 उसे किसी खुशी के मौके पर दे देंगे।  
 मनुष्य ही इस अभागिन को उन्होंने  
 जानने का प्रबंध कर ही दिया,  
 सुदर्शनगढ़ में जाने का प्रबंध कर ही दिया,  
 कैद की बेड़ियों के साथ ... कल एक  
 दासी बता रही थी कि इस नाहरगढ़  
 का उपयोग बागियों और कैदियों के  
 होता है। जाने कितनी मृत प्रेतात्माएं  
 भटकती रहती हैं, कितने नर-कंकाल  
 दफन हैं, कितने कटे सिरों को, फांसी  
 पर लगे शरीरों को देखने की गवाह हैं  
 कितनी विशाल प्राचीरें? हर समय इसके  
 चारों ओर मजबूत तालों से आवद्ध रहते  
 हैं। बुली तलवारों-भालों के कड़े पहरे,  
 अब किसी वदनसीब की मौत यहां उसे  
 कर लाती है, तभी चहल-पहल होती  
 है। वना इस मौत-महल में प्रेत-पिण्ड-सा  
 सनाटा छाया रहता है... सुनकर  
 राजा सर्वांग थरा उठा था....

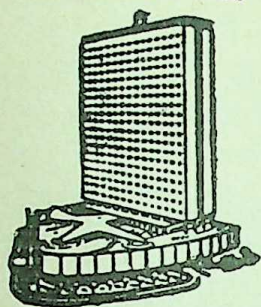
जिस रसकपूर के नाम से पूरी स्टेड  
 करती थी, कल तक जिसके नाम का  
 चला था, पदों की पुख्तई और  
 ख्याती जिसके हुकम पर निर्भर थी,  
 रानी से भिखारिन बनी काले चीथड़ों  
 में लिपटी विक्षिप्त-सी खड़ी थी। जो  
 महारज, नायब-दारोगा, सदर पहरेदार-  
 सब उसको नजराने देकर जुहार में  
 ले गए थे, वही उसकी छाया को भी

नफरत के भाव देख रहे थे ... हंसी उड़ा  
 रहे थे। सदर दरवाजे पर थाप पड़ते  
 ही किलेदार ने फाटक खोला, उसे अलग  
 ले जाकर कुछ कहा गया। लौटकर बड़ी  
 अभद्रता से उसने रसकपूर को भीतर  
 ढकेल दिया ...

आलीशान, प्रलोभनीय, उच्च स्तर की  
 प्रस्तरकला का खूबसूरत नमूना नाहरगढ़  
 ... आसमान छूती जिसकी कलात्मक बुजियां  
 ... इसी मनोरम नक्काशी के नीचे गहरे,  
 विशाल, सीलन और अंधकार से भरे  
 डरावने तहखाने.... छोटी-छोटी दो-चार  
 झिरियां, जिनसे सांस लेने भर को हवा  
 की महीन लकीर आ सके या पीली रोशनी  
 की झलक मिल सके। 'आओ, बाईजी!  
 अब महलों के खाव भूल जाओ। इस  
 तहखाने की कैद में आराम करो, जब तक  
 अन्नदाता का दूसरा हुकम नहीं आता।'  
 और रसकपूर की कंचनिया देह को उस  
 स्याह अंधी गहराई में झोंक दिया गया।  
 गर्द-जाले और सूखी-नुकीली घास...  
 गुलगुले गलीचों पर थिरकने वाले रुई  
 के फाहे से पांव सुर्ख-लहू हो उठे! याद  
 आने लगे शरद पूर्णिमा के दिलफरेब नजारे  
 ... उसके संगमरमरी शरीर पर श्वेत  
 परिधान होता था। सारे आभूषण हीरे  
 और बसरे-बगदाद के मोतियों के... पर्द,  
 कालीन, वाद्यों की खोलियां, सबके वस्त्र,  
 सब कुछ श्वेत। महाराज स्वयं आभूषणों,  
 कलंगी, पोशाक, जूतियां, और तलवार-  
 म्यान आदि श्वेत-रंग की धारण करके देव-



### SKYSCRAPERS



### FLY-OVERS



### STADIUMS



### BRIDGES



For modern projects

# ANCHOR

## CONCRETE SHUTTERING PLYWOOD

is used  
to cut drastically  
shuttering and centering  
costs.

For details write for our Technical Bulletin



**THE INDIAN PLYWOOD  
MFG. CO. LTD.**

Regd. Office: 8 Walker Street, Fort  
Bombay 400001



बने रहते । और दीपावली की सुरंग  
काली लकड़क पोशाकें और  
पत्ते के जड़ाऊ गहने... शीश-  
बूत के शीशों में लाख-लाख दीप-  
बिंब-इन्हीं में रंभा-उर्वशी बनी कंपित  
रहती रोशनी की तरह... और आज ?  
मूर्च्छित-सी घास के तीरों पर लुढ़क  
सी भयानक गर्मी, गला चीरने वाली  
जल, अंतड़ियां मरोड़ती रुलाई, गंदे,  
हरे आरोपों की अबोली छटपटाहट,  
खत्ती सिर की शिराएं... ओह ! कैसा  
बुरा मजाक !

अंधेरे में कीड़े-मकोड़े रेंग रहे थे...  
रुद्ध, मक्खी-मच्छर अलग... चमगादड़ों  
को मनहूस आवाजें... गढ़ के आसपास  
से भयानक जंगल से जानवरों की  
आवनी आवाजें... गीदड़ों का रुदन...  
जानक सन्नाटा और चुप्पी के बीच  
गने मन के चीत्कार... ओह ! क्या कसूर  
था उसका !

चंद्रमहल आज भी नृत्य-संगीत के  
ध्वनि खिलखिला रहा होगा ? गुणीजन  
जने से शहनाई पर भैरवी लहराती होगी ?  
शुभांतनाद करती हुई दीवारों से टकरा-  
कर प्रलाप करती रही, लेकिन उसके  
मन की सच्चाई नापने वाला वहां कौन  
था ? ... निगाहों का खेल था बस । मुग्ध  
हो सोने के बरकों में लपेटकर कलेजे  
को भुगिया डिविया में रख लिया ....  
खदेई हुई, तो रौरव नरक के खौलते

दरिया में डाल दिया ! स्नेह के एक-एक  
पल, मनुहारें, मनौवल-न्यौछावरें, प्रीत-  
पगे लाड़-चावले सभी कुछ भुलाये न  
भूलते । जरा-सा पत्ता भी खड़कता कि  
वह सिहर उठती । अब भी मन के कोने में  
यह राग घुलता रहता कि शायद महाराज  
मिलने आ जायें ? ... नहीं, अब केवल  
मौत की अगवानी करनी थी ... जाने  
उसकी किस्मत का फैसला कब होगा ?

अंत में वह मनहूस घड़ी भी आ पहुंची,  
जब उसके मुकद्दमे का फैसला हुआ ।  
दुश्मनों के ही गढ़े-बनाये गये आरोप,  
उन्हीं की तैयार की गयीं हज़ारों गवाहियां—  
सभी के बयानों ने चीख-चीखकर यह  
साबित कर दिया कि रसकपूर बड़ी खतर-  
नाक, चालाक और स्वार्थी थी । वह राज-  
सत्ता पर अपना पूरा अधिकार कर महा-  
राज को कैद करके मरवाना चाहती थी...

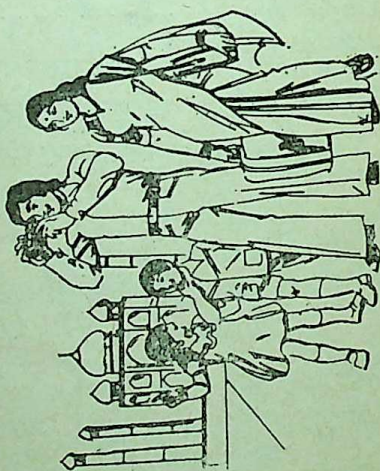
महाराजा जगतसिंह के मन में नफ़रत  
का ज़हर ठाठें मार रहा था—हमारा ताज !  
हमारा सिंहासन ! और वह नाचीज़  
औरत ! ऐसी जुरत ! हम विपैली नागिन  
को कुचल देंगे... बस, रसकपूर को मौत  
की सज़ा का हुक्म दे दिया गया । नहीं,  
नहीं, ऐसी बग़ावतखोर और बदचलन  
औरत को सूरज निकलने से पहले कल  
दीवार में चुनवा दिया जाये—धौंसा बजने  
पर जैसे ही पहली तोप दगेगी, तुरंत यह  
काम हो जाना चाहिये ।

जिसने भी सुना, वही आश्चर्य से  
दंग रह गया । इतनी भयानक मौत ?



# सैंद्रल बैंक की परिवार कल्याण योजना

बूंद-बूंद से बनता सागर  
आवर्ती जमा योजना



नौकरी-शुदा लोगों के लिए एक आदर्श योजना  
प्रति माह रु. 5/- जितनी मामूली या उसके  
गुणकों से कोई भी रकम 12 से 120 माह की  
अवधि के लिए जमा कीजिए. 7.5% से 10%  
प्रति वर्ष की दर से तिसाही चक्रवृद्धि से  
आपकी रकम बढ़ती रहेगी.

आपके नन्हें-मुन्नों के लिए  
एक बढ़िया उपहार  
धन-वृद्धि जमा योजना  
रु. 100/- या उसके गुणकों में कोई भी रकम 12  
से 120 माह तक जमा रखिए. आपकी जमा राशि  
87 माह में दुगुनी या 120 माह में  $2\frac{1}{2}$  गुनी  
बढ़ जाएगी. अपने परिवार की सुख-समृद्धि का  
खयाल रखिए. 7.5% से 10% प्रति वर्ष की दर से  
तिमाही चक्रवृद्धि ब्याज मिलेगा.



**सैंद्रल बैंक ऑफ इंडिया**

(भारत सरकार का एक उपक्रम)  
यही वह बैंक है जो हर जगह हर मनुष्य को सहायता देता है



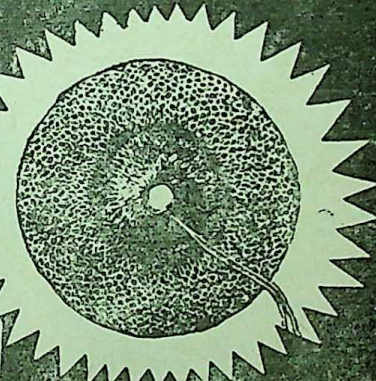
नन्हे दिलों में दीवाली जगमगा  
महलों के कोने-कोने में घृतदीप  
जलते। जड़ समेत मीठा कांटा निकाल-  
कर निकाला था। बद्धिंश सफल हो गया था!  
रसकपूर के अंत को लेकर कई रहस्य  
थे, क्योंकि यह मौत की सजा की  
था थी, किसी साधारण आदमी की  
नहीं। कहते हैं कि कुछ  
पहरों को उसके इतने  
अंत पर दया आयी। महाराज  
का कच्चा कोना भी शायद थोड़ा  
हो गया होगा और उस श्वेत-  
को को हीरक-कनी चाटनी पड़ी,  
मगर हलाहल में पकाई गयी थी।

यह भी कहा गया है कि वह रात में ही  
किले की दीवार फांदकर किसी प्रकार  
निकल भागी, लेकिन बीहड़, गहरे जंगलों  
में रास्ता नहीं पा सकी और इसी किले की  
दीवारों, भूलभुलैयाओं में टकराती-भटकती  
समाप्त हो गयी। बात कुछ भी रही हो,  
अधिक सत्य यही माना गया है कि उसे  
हीरा चाटकर मरना पड़ा और वह अपने  
स्वामी से मिले बिना आकुल-छटपटाती  
हुई गहरे स्नेह की वेदी पर बलि हो गयी...  
महाराजा जगतसिंह का नाम जब भी  
आयेगा, रसकपूर याद आती रहेगी....

—श्रीमहावीर दि. जै. उ. मा. विद्यालय,  
सी-स्कीम, जयपुर



अधिक अच्छी रोशनी और टिकाऊ सेवा इसकी विशेषता है।



**फार्गो** ७५९  
गैस मेंटल

एकमात्र विक्रयप्रतिनिधि: **फार्गो सेल्स एजेंसीज**  
२५५/२५६ एडु जेंड, इंडस्ट्रियल इस्टेट, कर्पूरन रोड, काबर परेल, बम्बई-२१



# Presenting the latest concept in convenient and economical cooking

It's a wonder pan for your kitchen! Coated with the miracle polymer finish the world is raving about: Teflon!

**EASY TO COOK WITH**  
Owing to its non-stick properties, Teflon ensures that sticky ingredients like rice won't stick to the sides of the pan.

**HIGHLY ECONOMICAL**  
As a result of its non-stick surface, Crown Hi-Fri needs very little oil to cook in. A real boon from every view point!

**EASY TO CLEAN**  
As nothing sticks to it's surface, you can clean Crown Hi-Fri in a jiffy: with soap and water!

**ACCEPTED THE WORLD OVER**  
The Teflon II Seal-invented and patented by the reputed Du Pont Company of USA, is given only to select international Manufacturers, on pure merit. To earn it and to retain it, samples of Teflon-coated products have to be tested initially and then again regularly on Du pont premises. In India only Crown Hi-Fri has won this coveted Seal of quality: an honour we plan to have permanently.

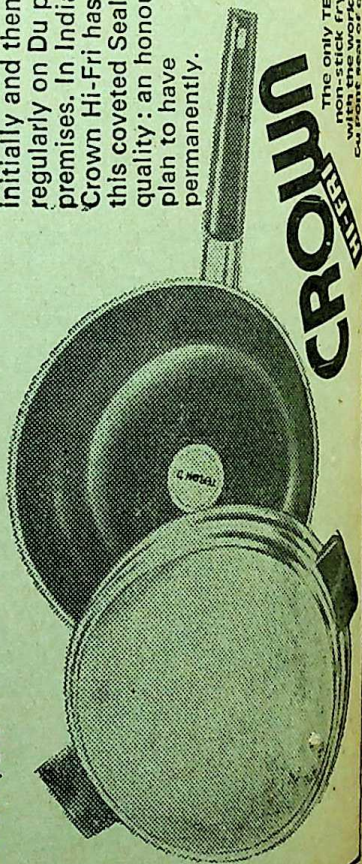
**MADE BY EXPERTS**  
A product of Jeewanlal (1929) Ltd., India's leading Manufacturers of aluminium utensils, Crown Hi-Fri is the first of a series of Teflon-coated cookware to come.



Manufactured by :

**Jeewanlal (1929) Ltd.**

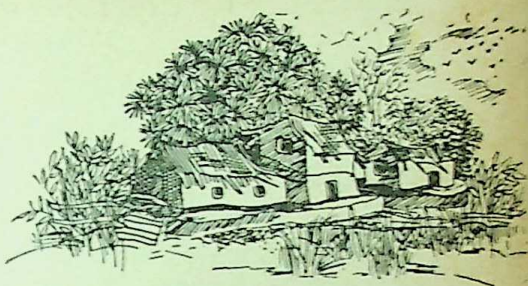
Liberty Building,  
2nd Floor, New Marine  
Lines, Bombay-400 020.  
Phone : 291156  
Show Room : Karsara  
Chawl, Kalbadevi Road,  
Bombay-400 002.  
Phone : 354866.



The only TEFLON coated  
non-stick fry pan in India  
with the Du Pont Seal of  
Quality.



मे कमरा: चार-चार वर्ष तक रहे  
 प्रत्येक प्रकार लगभग २० वर्ष का समय  
 में ही आश्रम में बिताया था। यह  
 आश्रम साधारण लौकिक आश्रमों की  
 नहीं है। सामान्य जन के लिए अगो-  
 प्य है। निरक्षर प्रदेश में होते हुए भी  
 पर्यटकों तथा पर्यटकों की दृष्टि में यह  
 है। इसीलिए किसी भ्रमणकारी  
 के लिए अथवा विदेशी पर्यटक  
 के लिए अपने यात्रा-विवरण में  
 लिखा है। स्थान होने पर भी यह भौतिक  
 नहीं है। वस्तुतः यह स्थूल नहीं है  
 नहीं है, एकाधार में स्थूल भी  
 नहीं है।



### चित्र : चंदलाल सांकला

भैरवी, शिक्षार्थी तथा आचार्य विद्यमान हैं।  
 केवल इतना ही नहीं इस आश्रम से संबंध  
 होने पर लौकिक जगत् से भी इसका प्रत्यक्ष  
 अनुभव मिलता है, यहां तक कि उस  
 स्थान को यहां से क्षण भर में वस्तुएं भेजी  
 और वहां से आकर्षित करके मंगायी जा  
 सकती हैं।

यह क्रिया मैंने अपनी आंखों से बाबाजी  
 के सान्निध्य में अनेक बार देखी है।

स्वामीजी के गुरुदेव ज्ञानगंज आश्रम के  
 मनोहर तीर्थ नामक स्थान तथा राज-  
 राजेश्वरी मठ में विराजते हैं—ऐसा मैंने  
 सुना है।

उन्हें इस आश्रम में पहुंचने का सुयोग  
 किस अलौकिक भाव से प्राप्त हुआ,  
 इसकी अपनी कहानी है। इसके अनुग्रह  
 से बहुत कुछ अलौकिक रहस्य मेरे देखने  
 में आये।

[ आगामी अंक में पढ़िये सूर्य-विज्ञान के रोमां-  
 चक चमत्कारों की विस्मयकारी कहानी ]



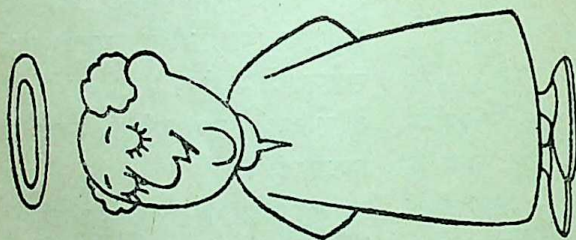


# OUR INTENTIONS HAVE ALWAYS BEEN PURE

Whether it's fluid  
handling systems in the  
treatment of sewage and  
effluent waste or

air-conditioning and refrigeration  
for temperature control in specialised  
industries, Batliboi is on par with  
the world's best. Batliboi's expertise  
has won them turnkey projects on global tenders.

With their broad-based infrastructure of engineering  
resources and proven record, Batliboi is fully geared  
to meet the challenges of tomorrow, today.  
On more fronts than one.



Also manufacturers of  
Machine Tools and Textile  
Machinery. Distributors and  
exporters of a vast range of industrial  
products, farm equipment, etc.

For further details, write to:



**BATLIBOI & COMPANY  
LIMITED**

Regd. Office: Apeejay House, 6th floor,  
Dr. V. B. Gandhi Marg, Fort, Bombay-400 023.  
Branches, Associate and Dealers - ALL OVER INDIA.



हस्त पर जीवन में और लेखन में भी किसी अस्मिता के लिए नहीं, अस्मिता की जीवित के लिए जूझ रही है।

इस समय की जागरूकता के वातावरण में अपनी विपुलता में प्रदर्शन की हद तक आ गया अभिव्यक्ति का उत्साह और प्रसून जहां चारों ओर एक विकास की प्रक्रिया के तहत देखा जा रहा है, वहां जो लेखन के क्षेत्र में स्त्रियों की सांख्यिक दृष्टि अविश्वास और संदिग्धता का वातावरण उपजा रही है। इस स्थिति को संपादकों की व्यावसायिक नीयत और स्त्रियों को शोभाप्रदर्शन की ललक की घुली-मिली चूल्काकांक्षा के विकृत रूप में व्याख्यायित किया जा रहा है। प्रस्फुटन की यह स्थिति यदि अन्य क्षेत्रों—प्रशासकीय सेवाएं, पुलिस; कानून, इंजीनियरी, आर्किटेक्चर, वाणिज्य, विज्ञान आदि-आदि में लक्षित न होती तो इस आरोप को मान लेना आसान था। वस्तुतः उसके लिए यह एक आत्म-सूचि है। लहरों द्वारा विसर्जित कर दिये गए नागर-तट की धरती पर पैर रखकर अविज्ञित तरावट के दर्शन कर सकने की अनुमति। उसमें न किसी षड्यंत्र की योजना है, न प्रतिद्वंद्विता की तेजी; बल्कि अपनी पारंपरिक नियति से मुक्त पा लेने की तड़प जरूर है और अज्ञानमय्यक्ति की अदम्य चाह। यह बात स्पष्ट है कि वह आज जो कुछ भी कर रही है, उसमें अपने पंखों की

उड़ान को नापने का प्रयास अधिक और किसी बहुत बड़े परिप्रेक्ष्य के प्रति समझ की उठान अपेक्षाकृत कम दीखती है। उसके लेखन पर सीमित यथार्थ के आकलन का आरोप ही उसके कर्म की आरंभिक अवस्थाओं को इंगित करता है। वह अपने लेखन संस्कारों में गहरी तो गयी है, (क्योंकि यह गहराई भीतर के यातना स्थलों के दर्द से अर्जित की गयी है) परंतु व्यापक सोच की चुनौतियों से जूझने के लिए भी दीक्षित नहीं हुई है। उसके लिए यह अब तक के कर्षू-घोषित प्रदेश में डर-डरकर एक-एक कदम रखने के साहस और निष्ठा को पा लेने का अभियान है, जिसे उसके सामाजिक इतिहास से अलग करके देखा नहीं जा सकता।

लेखन कर्म में उसकी मर्यादाओं का संबंध उसकी सामाजिक स्थिति और नियति से जोड़ा जायेगा, साहित्यिक क्षमता की सीमाओं से नहीं, साहित्य तो उस सामाजिक स्थिति का परिणाम मात्र है। यह एक यातनादेह स्थिति है कि समाज एक जातिगत स्तर पर स्त्री को जिन चीजों को जीने का हक नहीं देता, लेखन में उससे उसके आकलन की अपेक्षा करता है। वह चिंताएं, जो उसके जीवन-यथार्थ का भाग नहीं रहीं—जैसे राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मुद्दे, आर्थिक द्वंद्वों की समझ, शोषण की कार्यप्रणालियां, सामाजिक न्याय-अन्याय के प्रश्न, समानता, स्वतंत्रता की बातें,



# बचपन के दिन...सपनों के दिन!



संजु अभी-अभी अस्पताल से अपने प्यारे छोटे भाई को देखकर लौटा है। उसके मन में वही एक नयी कल्पना जागृत हुई और उसने एक सपना संजोया- वह था डॉक्टर बनने का। लेकिन उसके सपने को पूरा करने की जिम्मेदारी आपकी है। उसकी उच्च शिक्षा ही उसके जीवन की सफलता होगी। आप अभी से इस बारे में सोचिए- बैंक ऑफ इंडिया की अपनी नज़दीकी शाखा में पधारिए। हमारे पास आपकी तथा आपके परिवार की हर ज़रूरत को पूरा करनेवाली कई वचत योजनाएँ हैं। आइए और देश के सबसे बड़े राष्ट्रीयकृत बैंक की मदद से अपने बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बनाइए।

**बैंक ऑफ इंडिया**  
(भारत सरकार का उपकार)

सबसे अधिकता ही हमारी विशेषता है।

CONCEPT-BOI-4452 HIN.

नवनीत

२२६



और क्रांति के मूल स्रोतों की  
विचार-उन्हें आत्मसात् किये होने की  
प्रतीति करता है, जबकि इनमें से एक-एक  
स्रोत को केन्द्र में रखकर स्त्री की वास्त-  
विक सामाजिक स्थिति से उसके वैप-  
रिण पर विचार किया जाये तो काफ़ी  
कमजोर तथ्य हाथ लगेंगे ।

उसमें बड़ा विरोधाभास यह भी है कि  
यदि तर्फ तो अनुभव की प्रामाणिकता  
और यथार्थ के ईमानदार आकलन के नारे  
काये गये और दूसरी ओर जैसा अनुभव  
वर्णन है, उसके अंकन को खुल्लम-  
कुल्ला नकार दिया जाये । यह यथार्थ  
संक्षिप्त है या बृहत्, यही यथार्थ उसका  
वस्तु जीवन यथार्थ है, यही उसके अस्तित्व  
को सामाजिक सांस्कृतिक सच्चाई है ।

अभी तो जो लिखा जा रहा है, वही  
प्रामाणिक है । यह स्पष्ट है कि स्त्री-लेखन  
को अपने अनुभव से बहुत सटकर चल  
रहा है । पुरुष भी लेखन में जब अपने जीवन  
के अंकन सटकर चलता है तो उसके भीतर  
का परिवर्तनकारी स्वप्नद्रष्टा 'विज्ञानी'  
व्यक्तिकता की चपेट में आ जाता है  
और वह समाज को मूल्यात्मक स्तर पर  
सुझा दे पाता, पर यह स्थिति ठहर  
रने की स्थिति नहीं है—विकास यात्रा का  
यह मोड़ है । अभिव्यक्ति की क्षमता का  
विकास स्त्री-लेखन में पर्याप्त मात्रा में  
होना है, प्रश्नों की व्यापकता से सरो-  
वर जगहोत्तर बढ़ती बौद्धिक सजगता से  
होना ।

साधारणतया अपनी अस्मिता के प्रति  
विश्वास लेखन में भीतरी ऊर्जा के रूप में  
काम आता है, परन्तु इस समय उसकी  
पीड़ा और घुटन उसकी ऊर्जा का काम दे  
रही है, और उसकी वाणी का पर्याय बन  
रही है । इस स्थिति को पार किये बिना  
शायद अपने को अतिक्रमित नहीं किया जा  
सकता । अपनी यात्रा स्वयं चलकर पार  
करनी होती है, उसका कोई शार्टकट नहीं  
होता । इसमें संदेह नहीं कि अंततः अभि-  
व्यक्ति का यही दौर उसकी पीड़ा-मुक्ति  
का आधार बनेगा । इसमें से गुज़र चुकना  
अपने इतिहास-लेखन की पीड़ा में से गुज़र  
चुकना है । यह जरूरी है कि स्त्री-लेखन  
की इस प्रावस्था को पारंपरिक स्त्रीत्व  
से उबरने का आधिकारिक इतिहास लेखन  
काल समझा जाये । क्यों उसे अपनी मुक्ति-  
यात्रा के वास्तविक स्तंभों से उखड़ जाने  
की चुनौती दी जाये । स्वतः आगे चल  
निकलना इसकी सही दिशा तथा अगली  
कड़ी होगी ।

हो सकता है, स्वतंत्रता और समानता  
की मांग को हथेली पर रखकर खड़ी स्त्री  
द्वारा मूल्यांकन की इस प्रकार की सुवि-  
धाओं और छूटों का मांगा जाना एक  
हास्यास्पद स्थिति हो, विशेषतः वहां जहां  
न केवल कार्यक्षेत्र ( लेखनकर्म ) एक है,  
बौद्धिक क्रिया एक-सी है, बल्कि सृजन  
परिणाम भी जहां एक ही मापदंड—रचना  
में निहित अर्थवत्ता—से नापे जाते हैं, परन्तु  
साहित्य और लेखन के क्षेत्र में यह स्थिति



# ओरियन्ट पेपर एन्ड इन्डस्ट्रीज़ लि.

रजि. आफिस :  
ब्रजराजनगर, उड़ीसा

उत्तम प्रकार के प्रिंटिंग-राइटिंग, पैकिंग-रैपिंग  
कागज और पेपर बोर्ड के निर्माता

फिल्स : ब्रजराजनगर-७६८२१६  
अमलाई-४८४११७

शीघ्र पत्र विवरण हेतु पोस्टल पिन कोड व्यवहार करें।



लि.   
 किने महत् रूप से सामाजिक और परि-   
 वार-स्थिति है किसी और क्षेत्र से नहीं,   
 किन्तु साहित्य का संबंध सीधा मनुष्य   
 के जीवन-स्थितियों से है। किसी भी   
 लेखन, उसकी अपनी   
 जीवन-स्थितियों के बीच जीवन से संपर्क   
 करने की चेष्टा में कमाया गया दृष्टिकोण   
 और उसका प्रस्तुतीकरण है, अतः वार-   
 णर व्यक्तित्व के घटकों तक जाने की   
 वस्तु पड़ जाती है। पुरुष अपनी सामा-   
 जिक सांस्कारिक नियति और स्थिति में   
 बंधित है, अतः लेखन में भी वह अपने   
 सरोकारों में आगे निकल गया है, स्त्री   
 संस्कृति के लिए लड़ रही है, अतः उसका   
 ही संघर्ष उसके लेखन में प्रतिबिंबित   
 हो रहा है। उसकी स्थिति अभी ड्राइंग की   
 कला में बंटे शिक्षार्थी की-सी है जो वस्तु   
 के अन्तः संपर्क साधने के अपने बिंदु को   
 अपने में व्यस्त होता है, आगे की स्थिति   
 के बिंदु का अतिक्रमण कर पाना है।

लेखना यह है कि क्या स्त्री-लेखन अपने   
 जीवन और परिवेश से आगे की यात्रा   
 करने की संभावना जगाता है? क्या वह   
 अपने परिस्थितियों का अपनी योग्यता   
 द्वारा अतिक्रमण कर पाने के संकेत दे रही   
 है? क्या उसकी भावात्मक यातना किसी   
 सजगता में शामिल हो सकेगी?

क्या यह स्पष्ट करना अप्रासंगिक न   
 होगा कि अतिक्रमण की व्याख्या अपने   
 जीवन संदर्भ से कुदकर दूसरे के (पुरुष)   
 जीवन संदर्भ में जाना न होकर अपने

अनुभव के केंद्र से अर्थ की पूरी परिधि को   
 पहचानने की चेतना है। चुनौती अपने   
 सीमित सत्य से व्यापक सत्य की ओर   
 प्रवृत्त होने की है, पुरुष के समीकरण में   
 घुल जाने की नहीं। एक का दूसरे के   
 पक्ष में बदल जाना न आवश्यक है, न   
 अपने-अपने जीवन-यथार्थ से विलग होना।   
 किसी भी स्तर पर निरस्त्रीकरण पर   
 अस्वाभाविक रूप से इतना बल दिया जाना   
 वास्तविकता (जीवन में भी दोनों की   
 भूमिका एकात्म होने की न होकर पूरक   
 होने की है) की विशिष्टता को खो देना   
 है। अपने भाग के यथार्थ से संसिक्त दृष्टि   
 पूरे यथार्थ का अविभाज्य अंग है।

समस्या का मूल यही है कि किस तरह   
 स्त्री को वह सामाजिक सांस्कृतिक भूमि   
 मिले जिसमें उसकी चेतना अपने से बृहत्तर   
 सरोकारों के लिए दीक्षित हो। और कुछ   
 वैसी ही चिंताएं उसके लेखन में प्रति-   
 बिंबित हों। मात्र दफ्तरों, दुकानों में   
 काम करती व्यावसायिक दक्ष नारी स्वतंत्र   
 नारी नहीं कहलाती; क्योंकि स्वतंत्रता   
 का एहसास भीतरी होता है, वह अपने   
 प्रति विश्वास में से गुजरता हुआ दूसरों में   
 अपने कर्म का समर्थन और स्वीकार भी   
 जगाता है। यह आवश्यक है कि अपने   
 मानसिक क्षितिज का विस्तार करने की   
 प्रेरणा स्त्री को भीतर से मिले, इस एहसास   
 के साथ कि बड़ा लिखने के लिए बड़ी   
 जानकारी से जुड़ना और ज्ञान संपन्न होना   
 जरूरी है।



# INDOKEM LIMITED

221. Dr. D.N. Road,  
Fort

Bombay - 400 001.

**Phone :** 267881/10    **Gram:** "INDOKM"    **Telex:** 011-2942  
**Marketing:**

Dyes. Chemicals. Pigments. Leather Binders; Auxiliaries;  
Synthetic Tanning Agents. Leather Colours, Fat Liquors,  
Synthetic Resins, Textile Auxiliaries, Polyester Fibre,  
paints, menthol, Non-textile Auxiliaries etc.

## Manufactured By:

Indian Dyestuff Industries Ltd.,  
Colour Chem Ltd.  
Aniline Dyestuffs & Pharmaceuticals (P) Ltd.,  
Cellulose Products of India Ltd.  
Dai-Ichi Karkaria Pvt. Ltd.  
Haryana Rang Udyog  
National Chemical Industries  
Indian Organic Chemicals Ltd. (Futura Polyester Fibre)  
Hypo Chemiedye  
Gujchem Distillers India Ltd.  
Lalji Mentha (P) Ltd.

## Branches at:

Ahmedabad

Calcutta

Delhi

Madras

Nagpur

Kanpur

Secunderabad.



बहुंकी है कि अनुभव की प्रामाणिकता के आधार पर किया गया लेखन, साहित्य को एक प्रकार से छद्म से बचा लेता है। परंतु इस बात की आड़ में अपने वचाव की भूमिका ढूँढ़ने लगना भावात्मक अस्त्रों द्वारा किया गया पाठकों का वैचारिक मोषण तो है ही, आत्मघाती भी है। आत्मदया और आत्मपीड़न के तार पर नाचा हुआ साहित्य कितना भी मार्मिक क्यों न हो, अंततः निःसत्व हो जाता है। इस बातना को—कि परंपरा या इतिहास ने नारी को कुंठा के सिवा कुछ नहीं दिया—एक निषेधात्मक आक्रोश के स्वर में गूँजे रहने और साहित्य में दोहते रहने के आत्मपीड़क दबाव से जितनी जल्दी मुक्ति मिले अच्छा है। इस भावात्मक पीड़न से उबरने के बाद ही एक तटस्थ बौद्धिक सजगतापूर्ण रवैये का निर्माण हो सकता है, जिसमें लेखन को एक अस्त्र के रूप में नहीं बरन् समस्याओं के प्रति दायित्व तथा वैचारिक एवं मूल्यात्मक योगदान के माध्यम के रूप में देखा जाये। लेखन में होना दोहरे दायित्व का समना करता है अपने प्रति और समाज के प्रति, क्योंकि लेखक ही वह पात्र है

जिसमें समाज का उपभोग्य रचाया-पकाया जाता है। किसी संत ने एक बार प्रार्थना की थी कि 'मेरा शरीर तुम्हारा घर है प्रभु, अतः मैं उसे पवित्र रखना चाहता हूँ'। व्यक्तित्व-संपन्नता के पक्ष में अर्जित की गयी ऐसी आत्मलिप्तता लेखक के लिए जरूरी है। स्वतंत्र प्रबुद्ध चेतना अपने स्वरूप में स्वतः दायित्वोन्मुखी होती है। स्त्री—जब वह लेखन में आ ही गयी है—को अपनी नियति में परिवर्तन स्वयं ही करना है। उसकी चुनौती उस बौद्धिक वैचारिक सजगता को पाना है, जो अपने मूल में व्यक्तिगत केंद्रों का अतिक्रमण करने में सक्षम होती है। उसकी चिंता वैचारिक और सामाजिक आत्मनिर्भरता के लिए होनी चाहिये, क्योंकि आत्मनिर्भर होने से सामाजिक स्तर पर उसकी भूमिका स्वतः बदल जाती है। जो ढाँचा उसके पराधीन होने की वास्तविकता पर खड़ा है, वह स्वयं ढह जाता है, और वह सामाजिक सांस्कृतिक भूमि उसे स्वयं मिल जाती है जो एक दायित्वपूर्ण व्यक्तित्व संपन्न मनुष्य का अधिकार है। -१/१२, सर्वप्रिय विहार, नयी दिल्ली-१६

### शदी के लिए छुट्टी

मैनेजर—'तुम पहले ही काफी छुट्टियाँ ले चुके हो। कभी अपनी पत्नी को स्टेशन छोड़ने के लिए, कभी सास के दाह-संस्कार के लिए, कभी अपने बेटे की शादी के लिए, अब किसलिए छुट्टी चाहिये ?'

कर्मचारी—'जी, अपनी शादी के लिए।'

—यशपाल जैन 'आदर्श'





**दि इंडियन स्मॉल्टिंग एंड रिफ्राइनिंग कंपनी लिमिटेड**

का आपको निमंत्रण है, आयात प्रतिस्थापन को सफल बनाइये

**एस० जी० आइरन के कार्स्टिंग**

कांसा, पीतल, गनमेटल या लौहेतर धातुओं तथा इस्पात के पुर्जों  
व हिस्सों का स्थान ले सकते हैं।

**मैलिएबल आइरन के कार्स्टिंग**

अनेक प्रकार की चीजों में इस्पात के कार्स्टिंग का काम दे सकते हैं।

एस. जी. आइरन और मैलिएबल आइरन के कार्स्टिंगों में उच्च भौतिक गुण होते हैं  
वे खरीदने में सुगम, दृढ़ एवं तन्यतायुक्त होते हैं, उनमें घिसाव कम होता है।



संपर्क कीजिये :

फेरसफाउंड्री, पंचपाखाड़ी, पहला पोखरन लेन, थाना (महाराष्ट्र)  
उच्च श्रेणी के कार्स्टिंग्स व बचत के लिए डबल हैमरब्रांड का  
आग्रह कीजिये।



## (पृष्ठ ११९ का शेषांश)

हैं भी मूर्तिपूजा करता हूँ। इसलिए भगवान के संबंध में हमारा विचार मूर्तियों और चित्रों द्वारा बनता है। विरले ऐसे लोग हैं, जो परमात्मा में गंभीर विश्वास रखते हैं और अपनी श्रद्धा के लिए कोई प्रतीक नहीं खोजते हैं। आपके ख्रिश्चियन धर्म में तथा मुसलमानों के इस्लाम धर्म में भी प्रतीकोपासना है। निम्न मानसिक स्तर ऊँचा नहीं है, जो मूल को ग्रहण करने के लिए उत्सुक रहते हैं, उन्हें प्रतीकों का सहारा लेना चाहिये। मूर्तिपूजा के विरोध में प्रायः कहा जाता है कि जो व्यक्ति मूर्ति से प्रार्थना करता है, वह पत्थर की दीवार से वक्झक करता है,

किंतु ऐसा नहीं है। उस पत्थर में जिसको आकृति उत्कीर्ण है अथवा जिस शक्ति का वह अधिष्ठान माना गया है, उसकी मनो-वैज्ञानिक विद्यमानता से, विश्व शक्ति से हम प्रार्थना करते हैं।

मूर्तिपूजा ईश्वरी साधना का भक्ति-पूर्ण साधन है। साधना द्वारा हम जीवन-की तुच्छताओं से ऊपर उठकर शाश्वत के सान्निध्य तक पहुंच जाते हैं, किंतु साधना में पूर्ण ईमानदारी होनी चाहिये।

इस तरह के अनेक प्रश्नों और उत्तरों का सिलसिला पौने दो घंटे तक चलने के बाद स्नेह-मिलन गोष्ठी समाप्त हुई।

— ८४, नया बैरहना, इलाहाबाद



## (पृष्ठ १३५ का शेषांश)

हम में श्रीकृष्ण जिस रथ पर अर्जुन को ले जाने वाले थे, उसके अश्वों के वर्णन के लिए उन्हें गीता में वर्णित अश्वों से तुलना के लिए आवश्यक थी। (वे जीवन के अंतिम दिनों में भी 'कृष्णावतार' के लिखने में चिंता में डूबे रहा करते थे।)

पांच फरवरी की सुबह मुंशीजी की वदीयत गंभीर रूप से बिगड़ गयी। उस दिन कार्यालय में पहुंचते ही यह समाचार सुनकर गहरा आघात लगा। उनके दर्शन-ताप ऊपर उनके निवास पर गया। उस समय उन्हें आक्सीजन दिया जा रहा था। छात्रों, सातवीं और आठवीं फरवरी के दिन उन्होंने गंभीर अस्वस्थता में बिताये।

आठवीं फरवरी की शाम को ५ बजकर ५५ मिनट पर उन्होंने अपना भौतिक शरीर त्याग दिया।

\* \* \*

आज महाशिवरात्रि का पुण्य पर्व है। मुंशीजी को गये पखवाडा पूरा हो गया है। आज सुबह उनकी अस्थियां पवित्र नर्मदा मां की गोद में विलीन हो चुकी होंगी—और रेवा माता ने अपने इस शुभ-मंगलकारी पुत्र की अस्थियों को अपूर्व मातृवात्सल्य से अपने में समा लिया होगा। हृदय भर आता है, अधिक लिख नहीं पाता। कुशल से होंगे। स्नेह-स्मरण!

आपका—शान्तिलाल तोलाट





“१० में से  
७ स्कूली बच्चों को  
दंतछिद्रों की  
शिकायत होती है”

स्कूली सर्वेक्षण मार्च १९७८  
इंडियन डेन्टल एसोसियेशन



दांतों के सड़न की पहली निशानी है दांत में दर।  
आपके मुंह में मौजूद कीटाणु अन्न कणों को  
हानिकारक तेजाबों में बदल देते हैं जिनके हमारे  
आपके दांतों में पीड़ादायक दंतछिद्र पैदा हो जाते हैं।

## लीजिए **फ्लोराइड युक्त** सिग्नल 2 आपका दंतचिकित्सक

फ्लोराइड युक्त सिग्नल 2, दो तरह से दांतों को सड़न से बचाती है।  
यह मुंह में तेजाब पैदा करने वाले कीटाणुओं पर काबू पाकर दंतछिद्रों की  
रोकथाम करती है। दंतछिद्रों का मुकाबला करने के लिए दांतों के पनामल  
को जुड़कर उन्हें अधिक मजबूत बनाती है। क्योंकि इसमें दंतछिद्रों की रोकथाम  
करने वाला एक विशेष तत्व है—फ्लोराइड, जो सिग्नल की अनोखी रचना  
में सबसे बेहतर कार्य करता है।

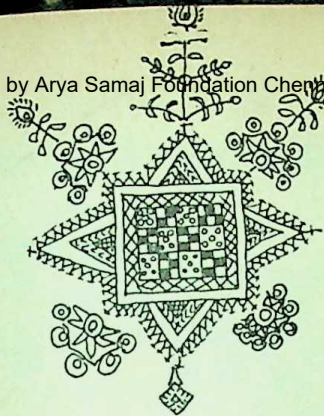
जब तकलीफ होने का इंतजार मत कीजिए, लीजिए सिग्नल 2 — आपका दंतचिकित्सक



दंतछिद्रों का मुकाबला करने वाली इससे बेहतर द्रव्यपेस्ट कोई नहीं।

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन





# फिर दिवाली आ गयी

आयुर्वेदाचार्य पं. सुरेशचन्द्र चतुर्वेदी



गृह दिवाली हर साल आती है और नया जीवन, नया उत्साह, नयी उमंग और नयी प्रेरणा भी साथ में लाती है। त्यौहार बच्चे, जवान, बूढ़े हर स्त्री-पुरुष के मन में नया आनंद ला देता है, इसलिए सभी इसकी प्रतीक्षा में रहते हैं और कई महीने पहले से ही इसकी बाट देने लगते हैं।

एक दिन पांच बातें

दिवाली का त्योहार एक दिन का होता है, लेकिन इससे दो दिन पहले और दो दिन बाद भी इसका वातावरण रहता है। धनतेरस, नरक चतुर्दशी, दिवाली, नवरात्र और भैयादूज इन पांच दिनों का स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। इन पांच दिनों के अवसर पर पांच बातें विशेष महत्त्व रखती हैं जिनमें :

१. घर की स्वच्छता एवं रंग आदि करना।

२. नये वर्तन खरीदना, नये वस्त्र तथा नये आभूषण धारण करना।

३. शरीर पर उबटन, तैल मालिश, स्नान, सुगंधित फूल-द्रव्य धारण करना, एवं स्वादिष्ट-मीठे आहार पदार्थों का सेवन।

४. घर के द्वार पर मांगलिक तोरण बांधना, मांगलिक चित्र तथा रांगोली आदि चित्र अंकित करना।

५. रात को द्वार पर दीप जलाना एवं पटाके छोड़ना।

आयुर्वेदिक दृष्टि

यदि आयुर्वेदिक दृष्टि से इस विषय पर संक्षेप से विचार किया जाये तो यह पर्व वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद शरद

हिंदी डाइजैस्ट



# जालिम लोशन

लगाईये  
जी हाँ.. जालिम लोशन लगाईये !!



● जालिम लोशन चमड़ी की गहराई में पहुँचकर दाद खुजली का नाश करता है ।

● जालिम लोशन सड़ी गली खराब चमड़ी को कागज की तरह निकाल फेंकता है ।

● दवा लगाते ही सूख जाती है । कपड़ों पर दाग नहीं पड़ता ।

दाद, खुजली से छुटकारा पाइये

ORIENTAL CHEMICAL WORKS, RAO (INDORE) INDIA



हनु में होने के कारण विषय महत्त्व का है। वर्षा ऋतु में गंदगी के कारण जल-जगह पानी भर जाने के कारण जल-जुब जाते हैं—जिससे प्राणियों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और अनेक प्रकार के रोग सामाजिक स्वास्थ्य को नुक़्त कर देते हैं। वर्षा ऋतु में अनेक रोगों का प्रकोप होने के कारण, व्यक्ति स्वस्थ नहीं रहते, अतः शरद ऋतु में सभी रोगों का निवारण अच्छी प्रकार हो सकता है। यदि ठीक प्रकार से ध्यान-विहार किया जाये तो रोग-मुक्ति के बाद आगे आनेवाली हेमंत और शरद ऋतुएं अर्थात् नवंबर से फरवरी तक का काल स्वास्थ्य संवर्धन के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होता है, क्योंकि इस शीत काल में अच्छे पदार्थों का सेवन और व्यायाम शरीर को पुष्ट करने वाला होता है।

स्तेरस

इसी दिन श्री धन्वंतरिजी समुद्र में से कलश लेकर प्रकट हुए थे, इसीलिए इस दिन धन्वंतरि जयंती मनायी जाती है। इसी का अपभ्रंश धनतेरस है। यह स्वास्थ्य-प्राप्ति नियमों का आचरण करने के प्रतीक के रूप में माना गया है। धनतेरस रूप में आज भी अनेक बातें प्रकीर्ण हैं।

स्वच्छता का पर्व

यदि धनतेरस के दिन लौकिक व्यवहार में आनेवाली सभी क्रियाओं पर स्वास्थ्य

का दृष्टि से विचार किया जाये तो उन सभी का शरीर एवं मन पर अवश्य ही हितकारी परिणाम होता है। जैसे कि घर आदि की स्वच्छता को अनेक प्रकार के रोगों का प्रतिबंधक उपाय माना है; क्योंकि इससे घर में संचित होनेवाले मक्खी, मच्छर, खटमल, लाल कीड़े आदि का नाश हो जाता है। घर में नया रंग करने से भी घर की शुद्धि तथा मन की प्रसन्नता बढ़ती है। शरीर पर तैल मालिश और उबटन से मांसपेशियां मजबूत होती हैं तथा शरीर का रंग साफ हो जाता है। शरीर में स्फूर्ति आती है। वायु एवं कफ के विकार नष्ट हो जाते हैं, नये वस्त्रों के धारण से शारीरिक स्वच्छता तथा मानसिक प्रसन्नता बढ़ती है। घर के दरवाजों पर तोरण आदि मांगलिक कार्यों से समाज को यह अवगत करा दिया जाता है कि हमने अपने घर की पूर्ण स्वच्छता कर ली है, हम सामाजिक स्वास्थ्य में समाज के साथ हैं और सुख-संपदा के आगमन का स्वागत करते हैं।

मंगल कामना

मांगलिक चित्रों का द्वार पर अंकित करने का तात्पर्य है कि आगामी वर्ष के लिए मंगल कामना में इस पवित्र पर्व पर हम भी समाज को शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। इस शभ अवसर पर दरवाजे पर दीप जलाना इस बात का प्रतीक है कि हम अंधकार से प्रकाश की ओर जा रहे हैं 'तमसो मा ज्यो-

हिंदी डाइजेस्ट



# HINDON

जीने का एक नया ढंग



## हिन्दन

सूटिंग्स . शर्टिंग्स

सर्वाधुनिक मिल द्वारा  
निर्मित कपड़े



**DCM**  
TEXTILES

५०० से भी अधिक डी सी एम रिटेल स्टोर्स  
तथा ग्रन्थ रिटेल स्टोर्स हर उत्तरप्रदेश



निर्गम्य' ये दीप जिस प्रकार से हमारे घर के अंधेरे को दूर करते हैं, उसी प्रकार हमारे ग्राम, नगर और देश के अंधकार को भी दूर करते हैं। जिस प्रकार एक दीपक से अनेक दीपक जलाये जाते हैं, उसी प्रकार एक स्वस्थ व्यक्ति अनेक व्यक्तियों को स्वस्थ रखने के लिए प्रवृत्त करता है।

घर में नये वर्तनों को खरीदने में भी बाहार पदार्थों में पात्रों के गुणों की शुद्धि का ही उद्देश्य रहता है; क्योंकि टूटे पात्र बाहार पदार्थ को दूषित भी कर देते हैं।

शरीर पर नये वस्त्रों का धारण करना और पुराने वस्त्रों का त्याग भी आरोग्य-प्राप्ति में सहायक माना गया है, क्योंकि शीत वस्त्र हमारे शरीर एवं मन दोनों को दूषित करते हैं। गहने, पुष्प आदि के धारण से मन प्रफुल्लित रहता है और इनके स्पर्श से आरोग्य प्राप्त होता है।

बाह्य व्यवस्था

दिवाली के अवसर पर प्रायः सभी लोग विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थों का सेवन करते हैं, जिनमें मावा, शक्कर, केन आदि से बनी हुई विभिन्न प्रकार की मिठाइयां तथा नमकीन पदार्थों का समा-वेश है। फलों में अंगूर, सेव, केला आदि का विशेष ध्यान रखा गया है।

गर्द क्रतु में पित्त (गरमी) का प्रकोप होने के कारण मीठे पदार्थ पित्त को शांत करनेवाले होते हैं। इसलिये इन पदार्थों को मिठाइयों विशेष रूप से सेवन की जाती है।

## मानसिक स्वास्थ्य

इन सभी बातों को यदि हम दीपावली के दिन अच्छी तरह से व्यवहार में लायें तो निश्चय ही हमारे शारीरिक स्वास्थ्य में वृद्धि होगी और उसका परिणाम मन पर भी अच्छा पड़ेगा। मन ही सुख और दुःख का कारण होता है और मन ही इस संसार में बंधन एवं शक्ति का कारण होता है। अतः धनतेरस से दूज तक अपनायी जाने वाली सभी व्यावहारिक लौकिक क्रियायें मन की व्यथा को नष्ट कर प्रसन्नता लाने वाली होती हैं।

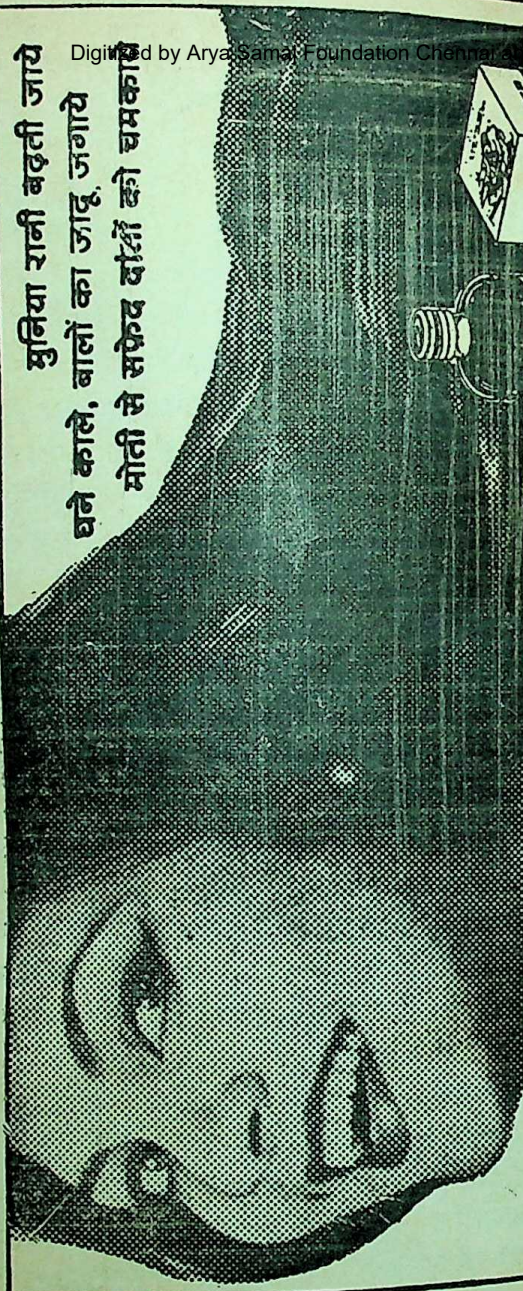
दीपों का जलाना अवाल-वृद्ध, नर-  
नारी सभी के लिये प्रसन्नता का विषय  
होता है। इस मांगलिक पर्व पर अपनाये  
जाने वाले सभी कार्यों पर यदि हम विचार  
करें तो सभी ज्ञानेन्द्रियां एवं कर्मेन्द्रियां,  
मन एवं आत्मा को प्रसन्न करनेवाली  
होती हैं।

इन सभी बातों पर विचार करने से यह निश्चित हो जाता है कि भारत ही नहीं, अपितु समस्त विश्व के प्राणिग्रहों के अनेक कष्टों को दूर करने और शारीरिक एवं मानसिक सुख-शान्ति प्राप्त कराने एवं आध्यात्मिक शक्ति की वृद्धि हेतु इसी लोक में अनेक लोगों के सुख की कामना करने के लिए स्वास्थ्य संबंधी नियमों का पालन एवं संकल्प करना, यही दीपावली के दिन हमारी धार्मिक परंपरा का संदेश है।

-महन्त रोड, विलेपार्ले पूर्व, बंबई-५७



मुनिया रानी बढ़ती जाये  
घने काले, बालों का जादू जगाये  
मोती से सफेद दाँतों को चमकाये



गाय छाप ब्राह्मी आमला केस तैल  
—उसके बालों को और घने कराये  
बन्ने मुहल्ले मन में माये  
बालों का ये कालापन, पता न चमकीलापन

सेवाश्रम के गाय छाप ब्राह्मी आँवला केश तैल  
और काला दन्तमंजन  
आपुनैव सेवाश्रम लिमिटेड  
अरुण - पणवडी - हरद्वार



मु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००७  
के लिए प्रकाशित तथा श्रीवैकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,  
बंबई-४०० ००४ में मुद्रित।



# जेनिथ स्टील पाइप्स एंड इंडस्ट्रीज लि.

उच्चतम दर्जे के निर्माता

- \* स्टील पाइप्स
- \* रोल्स एंड शिअर्स
- \* स्पेशल स्टील्स
- \* केनिकल्स

प्रतिष्ठा का आधार है क्वालिटी की  
वचनबद्धता

रजिस्टर्ड कार्यालय : मोती महल  
१९५, चर्चगेट रेक्लेमेशन  
बम्बई-४०० ०२०

टेली. : २२११२२

टेलेक्स : ०११-२४५८ और ०११-६३३४



# जन्हे मुन्नों की मुसकान से आबाद है जहाँ

पारले



उन्हें दीजिये प्यार भरी देखभाल

**पारले ग्लूको-**

**स्वाद में निराले, शक्ति से भरपूर**

दूध, गेहूं, शक्कर, और ग्लूकोज़ के  
स्वाद और पोष्टिक गुणों से भरपूर

**पारले ग्लूको**

भारत के सबसे स्वादिष्ट बिस्किट





भारती

# मनवनीन

हिन्दी डाइजैस्ट

जहाज

Glucos  
S AND NOVELS  
PARLOR  
Glucos  
ESCURO

बतल विमान





अब आपकी बचत पर  
पहले से भी अधिक ब्याज

# केवल छः वर्षों में अपनी रकम दुगने से भी अधिक कीजिए

राष्ट्रीय बचत पत्र (VI निर्गम)

साथ में राष्ट्रीय बचत पत्र (VII निर्गम)

12% वार्षिक ब्याज हर छमाही और मूल राशि की वापसी  
छः वर्षों बाद की जाएगी।

3 वर्ष बाद दोनों पत्रों को भुनाया जा सकता है। निवेश की कोई सीमा नहीं। नामांकन, परवत पर  
और बदली की सुविधा। आयकर प्रायोजन से डाक घर द्वारा मुफ्त प्रमाण पत्र जारी किया जाता है।  
1.5 लाख रुपये की राशि धन-कर से मुक्त और 3000 रु० तक का वार्षिक व्याज छान्ड विधि  
निवेशों पर ब्याज सहित आयकर से मुक्त है।

ये बचत पत्र 1-5-1981 से किसी भी डाकघर से अकेले अथवा संयुक्त रूप से खरीदे जा सकते हैं।

अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें:



- अधिकृत एजेंट
- जिला बचत अधिकारी, द्वारा जिला कलक्टरों
- नजदीकी डाक घर
- क्षेत्रीय कार्यालय, राष्ट्रीय बचत संगठन  
(राज्य या केन्द्र सरकार)

या लिखें :

राष्ट्रीय बचत संगठन  
12, सेमिनेरी हिल्स, नागपुर-440006

श्रीमती डा. अ.



# भारतीय उद्योग की सफलता का रोमांचक दस्तावेज़

## समृद्धि की ओर

### टाटा उद्योग की कहानी



यह पुस्तक टाटा उद्योग की कहानी है, परंतु एक तरह से पूरे भारतीय उद्योग के संघर्ष, विकास और सफलता की भी कहानी है।

लेखक: आर. एम. लाला

जमशेदजी टाटा ने केवल 21,000 रुपये की पूंजी से काम शुरू किया जो वह कर आज 1800 करोड़ के मूल्य का बन चुका है। इस बेमिसाल सफलता का क्या रहस्य है, क्या कारण है, इस पुस्तक में पढ़िए। टाटा ने सौ हाथों से कमाया, हजार हाथों से देश और समाज के कल्याणकारी कामों में खर्च किया है—इसके पीछे कौन सी प्रेरणा है, पढ़िए।

### सम्मतियां:

“यह किताब इस बात का उदाहरण है कि देश के लिए क्या किया जा सकता है।” —दि हिन्दू

“टाटा उद्योग के विकास की यह कहानी एक तरह से पूरे देश की औद्योगिक प्रगति की ही कहानी है।”

—अमृत बाजार पत्रिका

“यह पुस्तक व्यवसाय द्वारा केवल लाभ कमाने की नहीं है, यह इसके अतिरिक्त, धन के रचनात्मक उपयोग की भी कहानी है।

—इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया

प्रपने नगर के पुस्तक-विक्रेता से खरीदें या बी.पी.पी. से मंगवायें।

मूल्य  
15 रुपये

- बड़े आकार के 225 पृष्ठ
- श्री जे.आर.डी. टाटा की भूमिका सहित
- मारियो मिरांडा के बनाए चित्रों से सुसज्जित



राजपाल एन्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली - 110006



# नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया  
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

\*

संपादक

बीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

\*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

\*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

\*

आवरण-चित्र :

जब महाप्रभु काइस्ट एक आत्मा से मिले

०

एक विदेशी चित्र के आधार पर  
कमलाक्ष शेणै द्वारा आलेखित

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३०; अंक : १२

ग्रंथलोक —आलोक भट्टाचार्य ४

मनुष्य और समुद्र —डॉ. श्याम सुन्दर घोष ९

कूस-वाहक ईसा —हरिमोहन शर्मा १३

गोरा कुम्हार —सावित्रीबाई खानोलकर १७

प्रभु ईसा ने कहा २२  
क्या पंडित नेहरू के रूप में ... —भारती शर्मा २३

जिस दिन मुझे दिव्य दृष्टि मिली —रवीन्द्रनाथ ठाकुर ३०

दो कविताएं —किशोरीरमण टण्डन ३२

प्रार्थना ३३  
चांदनपुर के श्रीमहावीर —सावित्री परमार ३४

जब एक संन्यासी देश्या के पैरों पर पड़ा —इन्दरराज आनंद ३६

कला और स्वदेशी —आनंदकुमार स्वामी ४०

नया स्वर्ग और पृथ्वी —जाँयस कैरल ओट्स ४८

क्या तृष्णा भी किसी मुकाम पर. . . —निर्मलकुमार ५६

नईम के दो गीत —गुलजार ६५

चौरस रात —गुलजार ६६  
आचार्य किशोरीदास वाजपेयी —डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ६८



|            |                                    |
|------------|------------------------------------|
| भवन        | मुकुति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७ |
| संक्र : १२ | विम्बर १९८१                        |
| यार्थ ४    | अवस्था                             |
| गोप १      | -डॉ. विश्वभरनाथ उपाध्याय ७६        |
| गर्मा १३   | लुको को प्रेयसी थिरेसा लिवेसूर ८०  |
| कर १७      | -लीलाधर पिरसाली                    |
| २२         | नैत कविताएं                        |
| २३         | -प्रेमशंकर रघुवंशी ८४              |
| २४         | -मनोज सोनकर ८७                     |
| २५         | नौ पहली कहानी                      |
| २६         | -गुरुबख्श सिंह ८८                  |
| २७         | गोष्ठ गप्प लड़ाने का               |
| २८         | -डॉ. बरसानेला ल चतुर्वेदी ९२       |
| २९         | हलूक कविताएं                       |
| ३०         | -डॉ. कमलकिशोर गोयनका ९६            |
| ३१         | रूपि की दृष्टि                     |
| ३२         | -नरेन्द्र कोहली ९७                 |
| ३३         | एलहंस विशुद्धानंद                  |
| ३४         | -म. म. गोपीनाथ कविराज १०४          |
| ३५         | बैस्यु के उस पार से ...            |
| ३६         | -आनंदस्वरूप भटनागर ११६             |
| ३७         | नौ बड़ा अम्लान चेहरा               |
| ३८         | -डॉ. रामाश्रय रत्नेश १२४           |
| ३९         | संत है वह पवित्र बालक              |
| ४०         | -जॉन वाहतेरा १२५                   |
| ४१         | मुकान                              |
| ४२         | -डारिस मेनेजस १४०                  |
| ४३         | वित्र-सज्जा : ओके, शेणै, राणा,     |
| ४४         | नल शर्मा, सांकला, नीता वैद्य,      |
| ४५         | विद्या और आलोक जैन ।               |



## अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित पूर्णतया निरार्थ, कला और सभ्यता के प्रति समर्पित, जनसेवी धर्मोदा न्यास, संस्थापक : मुकुति क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री चरमकी म. खटाव, उपाध्यक्ष : श्री गिरधारीलाल मेहता, श्री जगन्मुखान हाथी ।

### सदस्योपेक्षी प्रतिष्ठान

१- मुख्यदेवी सभ्यता महाविद्यालय २- भारतीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३- भारत संस्कृत परीक्षा विभाग ४- गीता विद्यालय ५- मुगा-नाल गोयनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रतिष्ठान ६- पुस्तक मरसनी मंदिर (पुस्तकालय) ७- कला नदी रामजी बाब पुस्तकालय ८- भारत गोप संगीत मिश्रापीठ ९- भारतीय नर्तन नितापीठ १०- भारतीय इतिहास विभाग ११- प्रधान मंदिर, पुस्तक पुनिर्वासी, मुन्शी गिरधारी, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या प्रेममार्ग), प्रमुख जनेन (अपेक्षी कविता), सविद (संस्कृत प्रेममार्ग), नवनीत हिन्दी साहित्य (हिन्दी साहित्य), नवनीत समर्पण (मुद्राती साहित्य) १२- भारतीय अवर्द्धितता और आधुनिक आधुनिकता योजना १३- अर्थव्यवस्था योजना १४- रचना की प्रतियोगिता समिति १५- म. म. कला कानेज और न. म. विज्ञान विज्ञान संस्थान (अपेक्षी) १६- कलाप्रमाण मेहता पब्लिक स्कूल (नयी दिल्ली) १७- हनारीमल गोयानी कानेज, कला एवं विज्ञान (बीपाटी, बम्बई) १८- सरदार पटेल अभियांत्रिकी कानेज (अपेक्षी) १९- रणधीरनाथ अचलनाथ विज्ञान कानेज (अहमदाबाद) २०- रणधीरनाथ अचलनाथ कला कला एवं वाणिज्य कानेज (अहमदाबाद) २१- प्रभाकरनाथ वाणिज्य कानेज, (इकोर) २२- कला एवं विज्ञान कानेज (इकोर) २३- रणधीरनाथ वाणिज्य पब्लिक स्कूल (इकोर) २४- श्री बल्लभनाथ कानिदास जोगी महिम्न कानेज (जयमनगर) २५- व. म. मेहता विज्ञान कानेज (भरवारी) २६- रणधीर प्रसाद संशोधन एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मुम्बई) : शागलान देवकरनाथ नागजी संशोधन एवं प्रबंध-विद्या, कानेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंशोधन कानेज, नयी दिल्ली; हरिलाल मगवती जनसंशोधन कानेज अहमदाबाद तथा बंगलौर; गोपानी जनसंशोधन कानेज, एलकुलम्; बड़ोदा, चण्डेगढ़, गुडूर, हैदराबाद, मंगलौर तथा त्रिपुर में स्थित जनसंशोधन कानेज २७- बहालाल मेहता भावा अकादमी, नयी दिल्ली २८- ज. ह. राधिका स्कूल (अपेक्षी) २९- कलाप्रमाण मेहता पब्लिक स्कूल (विद्यालय) बड़ोदा तथा भरवारी ३०- भवन का विद्या मंदिर, एलामनगर, एलकुलम् ३१- कोचोनाबाद पर भवन का स्कूल, कोचीन ३२- बल्लभनाथ मेहता पब्लिक स्कूल (विद्यालय) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३- भवन का पब्लिक स्कूल, भवन, रामचन्द्रपुर, हैदराबाद ३४- संस्कृत संगणक : पब्लिक विद्यालय; भारतीय श्री सेवा संघ; अर्थव्यवस्था परिवर्द्ध (बम्बई) ३५- संचालित पाठ्यक्रम पुस्तकें ।

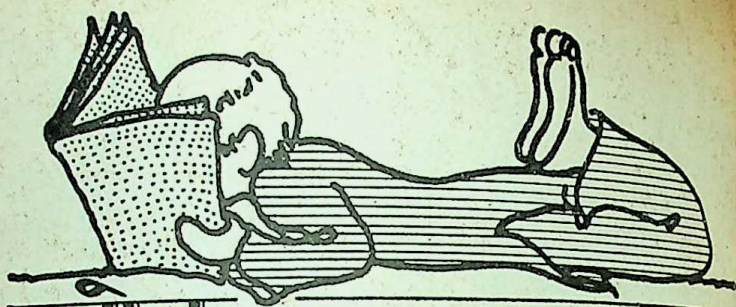
### केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलौर, बड़ोदा, पोपल, मुम्बई, कलकत्ता, चण्डेगढ़, कोयंबटूर, इकोर, दिल्ली, एलकुलम्, गुडूर, हैदराबाद, जयपुर, जयमनगर, काकोनाडा, कानपुर, बडाल, मंगलौर, मंगलौर, मुम्बई, भागपुर, सिवोन, बीनगर, त्रिपुर, विद्याबागपट्टनम्, मदन (संस्कृत राज्य) ।

भारतीय विद्या भवन  
के.एम.मुन्शी मार्ग, बीपाटी, बम्बई-४००००७

फोन : ३५१४६१





# ग्रंथलोक

समीक्षाकार : आलोक भट्टाचार्य

\* यह भी प्रेम (उपन्यास); विमल मित्र; सरस्वती विहार; जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२; पृष्ठ १४३; पंद्रह रुपये।

मूल बांग्ला से सुरेंद्र तिवारी द्वारा हिंदी में अनूदित यह उपन्यास कथानक की दृष्टि से निश्चय ही मूल्यवान है। विमल मित्र ने सदा ही अपने उपन्यासों में शाश्वत मूल्यों और आदर्शों को विशिष्ट स्थान दिया है। प्रेम और मानवीयता उनके प्रिय तत्त्व रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास में भी प्रेम के ही एक अत्यंत हृदयस्पर्शी पहलू का मार्मिक विवरण देते हुए लेखक ने उस बिंदु को सफलतापूर्वक छूकर पाठकवर्ग को उसके अस्तित्व की सहज अनुभूति दी है, जहां पर आक्रोश एवं घृणा भी प्रेम का ही पर्याय बन जाते हैं। नारी के अंतर्मन में सतत प्रवाहित प्रेम की उस अंतःसलिला फल्गु को पहचानने में लेखक सर्वथा सफल रहा है। भाषा प्रांजल है, किन्तु शैली के

विषय में यह कहना ही होगा कि पुनरुक्ति एवं अनावश्यक विस्तार से वह दूषित है। इन्हीं दो बड़े दोषों के कारण विमल मित्र आज बांग्ला में अपेक्षाकृत कम पढ़े जाते हैं। किंतु यह सही है कि उनका प्रत्येक चरित्र सीधे हमारे समाज से ही आता है और हमें परिचित लगता है। ठोस आदर्शवादी होने के बावजूद इसीलिए उनकी रचनाओं को इतनी लोकप्रियता मिली है। नायक के पिता का अंध पुत्र-प्रेम, नायिका की अत्यधिक कठोरता कुछ सीमा तक विरक्तिकर अवश्य है, पर अकारण एवं असंभव नहीं। असहजता एवं असंभवता का अंतर यहीं स्पष्ट हो जाता है। अनुवाद अच्छा है, पर बांग्लापन के मोह से कुछ अधिक ही ग्रसित है, वरना 'साड़ी खरी देंगी न क्या?', 'आम टाम खा लेता' जैसे वाक्यों का सामना पाठक को नहीं करना पड़ता।

०००

नवनीत

४



बहु वर्णन (व्यंग्य लेख संग्रह);  
 चन्द्रनाथ त्यागी; नेशनल पब्लिशिंग  
 २३, दरियागंज, नयी दिल्ली;  
 १११; पंद्रह रुपये ।

कुल बीसलघु व्यंग्य लेखों का यह संग्रह  
 इन अर्थों में विशिष्ट है कि इन लेखों में  
 देश-वाणों का प्रमुख शिकार राजनीति

सही है, बरना इन दिनों तो कुछ व्यंग्यकार  
 सरल राजनीति को व्यंग्य साहित्य का  
 आधार बनाने पर तुले हुए हैं । शिष्ट एवं

व्यंग्य साहित्य का सृजन जो लेखक  
 दिल में पिछले दिनों करते रहे हैं, उनमें  
 चन्द्रनाथ त्यागी का नाम उल्लेखनीय

है । व्यंग्य में हास्य का पुट देने के लिए  
 सत्य-वचन की जो एक लोकप्रिय प्रथा इन  
 लेखों में प्रचलित है, रवीन्द्रनाथ त्यागी ने

उसने भाषा और शैली को उससे बचा  
 रखा है, और यहीं उनकी अलग पहचान  
 बनती है । प्रस्तुत संग्रह 'शवयात्रा', 'परम

सत्य के कुछ क्षण', 'लक्षाधीश हो जाने के  
 बाद', 'नाम', 'बौने लोग' आदि लेखों के  
 द्वारा विविधता (विषयगत) का अधि-

कारण हो गया है । साहित्य, भाषा एवं  
 व्यंग्यकारों से संबंधित कुछ व्यंग्य बहुत  
 ही सटीक बन पड़े हैं, यथा 'अच्छी हिंदी',

'संस्कृत का पांचवां अध्याय', 'हिंदी  
 साहित्य के पांचवें सवार', 'कवि कालिदास  
 का दमस्थान' आदि लेख । 'मेरी पहली

कविता' प्रकाशन के संदर्भ में नये लेखकों  
 की प्रशंसा, संपादकों, स्थापित  
 व्यंग्य के नीरस व्यवहार तथा उपेक्षा पर

एक चुभता व्यंग्य है । 'शोकमुद्रा' संग्रह  
 का एकमात्र लेख है जो राजनीति पर  
 व्यंग्य करता है । टिप्पणी की समय-सूचकता  
 तथा आलोचकीय, पर उदार दृष्टिकोण  
 के कारण इस संग्रह के सभी व्यंग्य लेख  
 सार्थक बन पड़े हैं ।

०००

\* वैश्वानर (एक लंबी कविता); मृत्यु-  
 उज्जय उपाध्याय; बंगीय हिंदी परिषद;  
 १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-  
 १२; पृष्ठ ६९; बीसरूपये ।

हमारा पौराणिक साहित्य कितना  
 समृद्ध और सार्थक है, इस बात का पता  
 इसी से चल जाता है कि आज के कवि-  
 साहित्यकारों को किसी सामयिक समस्या  
 पर चर्चा करने या समाधान देने के लिए,  
 अपने वक्तव्य को प्रासंगिकता के साथ तर्कों  
 का सुदृढ़ आधार देने के लिए, हमारे  
 पुराणों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, जातक  
 कथाओं आदि का प्रत्यक्ष सहारा लेना पड़ता  
 है । सनातन काल से हमारे साहित्य का  
 समाज से सीधा सरोकार रखना ही उसकी  
 इस अद्भुत प्रासंगिकता का कारण है ।

'वैश्वानर' भी हिंदी की अन्य कई ऐसी  
 कृतियों में से एक है, जिसमें कृतिकार ने  
 समाज की अधुनातन समस्याओं पर चर्चा  
 करने के लिए महाभारत के शांतिपर्व की  
 उस कथा का सहारा लिया है, जिसका  
 उल्लेख मनुस्मृति, विष्णु पुराण तथा भाग-  
 वत में भी है । 'आपद्धर्म प्रकरण' अर्थात्  
 संकटकाल में सज्जन को जीवन-निर्वाह के



लिए क्या करना चाहिये—इस प्रसंग में अशनायुक विश्वामित्र की इस रोमांचक कथा को कवि मृत्युञ्जय उपाध्याय ने बड़ी ही सफलता के साथ आज की सामाजिक दुरवस्था, राजनीतिक नीचता से उपजी भीषण आर्थिक, मानसिक तथा चारित्रिक दरिद्रता एवं स्वार्थी शोषण के परिणाम-स्वरूप दिनानुदिन बढ़ती हुई संभावित अकाल की दुरुहता एवं विभीषिका के साथ जोड़ा है। विद्रोह के कारणों एवं क्रांति के सच्चे स्वरूप को व्याख्यायित करने में कवि सर्वथा सफल रहा है। भाषा सरल और ललित है। 'वैश्वानर' के परिचय के क्षण यदि इतने विलंबित न होते, तो कविता की बुनावट में अधिक कसाव आ सकता था, जो कि लंबी कविता की सार्थकता की पहली शर्त होती है।

०००

\* छिन्नपत्र (उपन्यास); सुरेश जोशी; भारतीय ज्ञानपीठ; बी।४५-४७, कनाॅट प्लेस, नयी दिल्ली-११०००१; पृष्ठ १३२; बारह रुपये।

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित मूल गुजराती उपन्यास 'छिन्नपत्र' का यह हिन्दी अनुवाद एक रोचक प्रेम-कथा है, जिसमें प्रेम के मूल भाव, प्रेमियों की मूल चाह-व्यक्तित्व के विलयन-से बचने की कोशिश की गयी है, जो अब तक की प्रकाशित साधारण-असाधारण प्रेम-कथाओं से निश्चय ही भिन्न है। पूर्ण समर्पण की भावना ही जिसको चरम सार्थक और

नवनीत

उपलब्धि का बोध दे सकता है, उसके लिए व्यक्तित्व के क्षरण का विरोध करते हुए भी प्रेम की समग्रता पर विश्वास अवश्य रखना एक आदर्श ही है और इस कसौटी पर नायक अजय एवं नायिका माला दोनों ही खरे उतरते हैं। अपनी तरफ अनुभूतियों और ठोस विश्वासों के कारण दोनों ही पक्ष ऐसी किसी भी अनचाही घटना को रूपायित होने नहीं देते। प्रेम की इस दार्शनिक तथा कुछ अंश तक अंतर्मुख आध्यात्मिक स्थिति को अभिव्यक्ति देने के लिए लेखक सुरेश जोशी ने अत्यंत ही प्रवाहपूर्ण, काव्यात्मक भाषा का प्रयोग बड़ी ही मधुरता के साथ किया है, जो कथा को सहजता और विश्वसनीयता प्रदान करती है। अनुवादक के रूप में बंशीधर प्रशंसा के पात्र हैं। उन्होंने अनुवाद की नीरसता कहीं पैदा होने का मौका नहीं दिया और समूचे उपन्यास को आवाज सरस बनाये रखा।

०००

\* नवा-ए-आवारा (ग़ज़ल संग्रह) गुलाम रब्बानी ताबां; राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६; पृष्ठ ८०; पंद्रह रुपये।

उर्दू के प्रसिद्ध कवि गुलाम रब्बानी ताबां की चुनी हुई ६८ ग़ज़लों के इस संग्रह को १९७९ में सहित्य अकादमी पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया है। इसके पहले भी उत्तर प्रदेश उर्दू अकादमी का प्रथम पुरस्कार इस ग़ज़ल संग्रह को



है, उसके लिए  
 रोष करते हुए  
 वशवास अशुभ  
 और इस कसौटी  
 का माला दोनों  
 नी तरल अनु-  
 सों के कारण  
 भी अनचाही  
 हीं देते। प्रेम की  
 शक अंतर्मुख  
 अभिव्यक्ति ने  
 शी ने अत्यंत ही  
 भाषा का प्रयोग  
 किया है, जो कब  
 वसनीयता प्रदान  
 रूप में बंशीधर  
 होने अनुवाद की  
 ने का मौका नहीं  
 यास को जानते

गजल संग्रह) गुलाब  
 पाल एण्ड तन्हा  
 -६; पृष्ठ ८६  
 वे गुलाब रत्न  
 ८ गजलों के इस  
 साहित्य अकादमी  
 नित किया गया है।  
 प्रदेश उर्दू काली  
 इस गजल संग्रह को  
 तिलक

प्रप्त हो चुका है। अतः यह निर्विवाद है  
 कि इसमें संग्रहीत गजलों रचना एवं कथ्य  
 के स्तर पर उच्चस्तरीय होंगी। यदि  
 गुरुकारों को श्रेष्ठता का मानदंड न  
 भी माना जाये तो भी इन गजलों की  
 श्रेष्ठता से इनकार नहीं किया जा सकता।  
 तावां शुरू से ही अपनी साफ-सुथरी,  
 भारतीय काव्यकला के साथ-साथ गहन  
 चिंतन एवं दूरदृष्टिजन्य विचारों के  
 कारण उर्दू काव्य-साहित्य में अलग से  
 जाने जाते रहे हैं। प्रस्तुत संग्रह की  
 गजलों में तावां की विचारधारा में  
 राष्ट्रीयता, मानवीयता, विश्व-बंधुत्व,  
 सतिपूर्ण सहअस्तित्व आदि आदर्शों का  
 चिंतन महत्त्वपूर्ण स्थान है इसका पता  
 स्पष्ट चल जाता है। वे एक शोषण-  
 विहीन समाज व्यवस्था की आवश्यकता  
 किस शिद्दत से महसूस करते हैं एवं इसके  
 लिए आज के शोषितों में न्याय और  
 अधिकारों के प्रति सचेतनता को किस  
 शक्ति से रोपित करने की चेष्टा करते हैं,  
 उनकी गजलों इसका प्रमाण हैं। आज के  
 स्वार्थी यथार्थ्यतिवाद से वे किस कदर  
 विडित हैं, यह उनके ये शौर कहते हैं :  
 कैसे दिलों का रक्त बने मसलहत का रक्त  
 अब दाद का भरम है न बेदाद का भरम  
 किसको पड़ी है, कौन बटाये किसी का ग्रम  
 अपनी सलीब आप उठाये हुए हैं हम।  
 इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक को हिंदी में  
 प्रस्तुत किया है प्रकाश पंडित ने।

०००

\* कच्चे अक्षर ( संस्मरण संग्रह ) ;  
 संपादन : अमृता प्रीतम ; सरस्वती विहार ;  
 जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली ; पृष्ठ ५८ ;  
 सोलह रुपये ।

‘कच्चे अक्षर’ में विश्व के महान साहित्य-  
 कारों, कलाकारों, चिंतकों आदि की  
 आत्मकथाओं तथा संस्मरणों से चुने हुए  
 अंश विशेषों को संग्रहीत किया गया है।  
 अमृता प्रीतम की अपनी विशेष ही दृष्टि-  
 भंगिमा रही है और चयन के स्तर पर  
 वह स्पष्ट है। कुल २९ चुने हुए इन आत्म-  
 कथांशों और संस्मरणांशों में से प्रत्येक  
 अपनी अलग खूबी रखता है और संग्रह  
 को अपनी उपस्थिति से महत्त्वपूर्ण बनाता  
 है। यह सत्य है कि जिन महान रचनाकारों  
 की रचनाओं और युगप्रवर्तक दार्शनिकों  
 की विचारधाराओं का हमारे मन-मस्तिष्क  
 पर अटूट और गहरा प्रभाव रहता है,  
 उनकी अपनी कहानी को उन्हीं की कलम  
 से पढ़ते हुए हममें एक मुग्धता का भाव  
 आ जाना स्वाभाविक ही है। प्रस्तुत  
 संग्रह हमें इसी प्रकार की मुग्धता से  
 मोहित करता है साथ ही जीवन के विभिन्न  
 पहलुओं से दो-चार होने की ताकत और  
 दृष्टि भी देता है। इस संग्रह को रूसो,  
 गेटे, कीट्स, दोस्तोव्स्की, टॉलस्टॉय,  
 मार्क्स, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, गोर्की, सॉमर-  
 सेट माम, शरतचंद्र, पिकासो, पूरनसिंह,  
 काफ़का, काजानजाकिस, चार्ली चैपलिन,  
 पाबलो नेरूदा, ज्यां पॉल सार्त्र, खुशवंत  
 (शेषांश पृष्ठ ११ पर)



# सेन्चुरी के अनुपम वस्त्र



१००% सूती कपड़ों के लिये  
दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैनुफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई



डॉ. श्याम सुंदर घोष का समुद्र-दर्शन

# मनुष्य और समुद्र

मनुष्य एक गरजता-उफनता समुद्र है। क्या मनुष्य को समुद्र मानना, और कहना, मनुष्य का अहंभाव और बुद्धोत्पत्ति नहीं है ?

आदमी अपने को एक भरा-पूरा निर्मल मोहर ही माने, और कहे, तो उसकी हिमाकत है; शोक वास्तविकता में मनुष्य यह भी, इतना भी, होता। असल में सब 'बुद्धि' होते हैं—अपने मन में गंदले, क्षुद्र और निर्मित।

तो फिर मैं मनुष्य को गरजता-उफनता समुद्र क्यों कहता हूँ ?

असल में ऐसा कहकर मनुष्य की बेचैनी और बुद्धि को रेखांकित करना

है। मनुष्य कितना छोटा, क्षुद्र है। लेकिन उसकी अभिलाषाएं, मनाना, वासनाएं समुद्र की ऊंची-ऊंची लहरों की भांति हैं। वे उसके जीवन को धुँधल करती हैं, शोर और संघात से भरती हैं, उसे भयंकर बनाती हैं।

आपने गरजते-उफनते समुद्र को देखा होगा, सुना भी होगा। क्या इच्छाओं, कामनाओं और वासनाओं से उद्वेलित मनुष्य ऐसा ही नहीं हो जाता ?

लेकिन समुद्र की इच्छाएं क्या हैं ? उसकी लहरों का अभीष्ट क्या है ?



आप कभी समुद्र के किनारे जाइये, देखिये, गौर कीजिये। उसकी दो ही अभिलाषाएं हैं—सूखी रेत-को भिगोना, गीला करना, अधिक से अधिक दूरी तक अपनी लहरें, अपनी शीतलता लेकर पहुंचना और धरती के पांव पखारना, उसका घर-आंगन साफ करना, कूड़ा-कचरा, गंदगी बहा ले जाना, धरती

और रेत को नम और स्निग्ध करना, उस पर अपनी शीतलता, ममता और स्नेह का अदृश्य श्लोक रचना... और उसकी दूसरी इच्छा ? अपने पास जो कुछ है, चाहे वह स्वयं का हो, सीपी हों, शंख हों, मोती हों, घोंघे हों या और जो कुछ



मुनिया रानी बदली जाये  
घने काले, बालों का जादू जगाये  
मोती से सफेद दाँतों को चमकाये



बाप काय काला दन्त-भँकल  
—उसके दाँतों को चमकाये  
मोती से सफेद व मझुए काले

बाप काय ब्राह्मी आम्ला केप सैक  
—उसके बालों को और सौ काले  
काले घुराये मत में माये  
बालों का ये कालापन, पता व चमकीलापन  
सेवाश्रम के गाय छाप ब्राह्मी आँवला केश तैल  
और काला दन्तमंजन



ब्राह्मी सुन्दरता के  
वैदिक रूप से काले पड़िये



हो, या तो कुछ दूसरों से मिला हो, फूल  
हो, फूल हो, गजरे हों, नारियल हों,  
किंवा ही हो। उसे किसी भी रूप में, किसी  
को अंत पर, अपने पास न रखने का भाव,  
दूसरों के लिए सब कुछ उत्सर्ग करने का  
निश्चित संकल्प, पाये हुए को तुरंत, तत्काल  
बोझने का भाव, अपने को अतल तल  
पर उलीचने और रिक्त करने की इच्छा

यही तो समुद्र की दो अभिलाषाएं  
हैं और इसी की पूर्ति के लिए इतनी  
जिदगी, इतना हाहाकार, इतना आयोजन  
और इतना संघर्ष ! आखिर यह सब क्यों ?

बसल में समुद्र का सावका धरती जैसे  
विषय से है। दोनों ही एक जैसे उदार,  
महनील और दानी। दोनों में से कोई  
को किसी से कुछ कम नहीं, किसी से  
कुछ भी लेने को तैयार नहीं, उल्टे देने  
का भाव, निरंतर कुछ देने का भाव।  
दोनों ही एक दूसरे को सब कुछ दे देने के

लिए उत्सुक, आतुर, अधीर !

समुद्र तट पर जाकर आप देखें तो दोनों  
की उदारता, विशालता और विराटता  
की होड़ देखते बनेगी। एक जो देता है,  
दूसरा उसे तत्काल लौटाता है। दूसरा जो  
देता है पहला उसे एक क्षण भी अपने  
पास रखना नहीं चाहता, रख नहीं पाता,  
तुरंत लौटाता है। त्याग, तितिक्षा और  
आत्मदान का यह संघर्ष जारी है, न जाने  
कब से जारी है।

और मनुष्य ? वह सागर तट पर जाता  
है। धरती और सागर का यह कारोबार,  
नोंकझोंक, लेन-देन देखता है। लेकिन मर्म  
समझ नहीं पाता।

मनुष्य भी एक गरजता, उफनता समुद्र  
है, पर कैसा ?

काश ! वह सही मानी में समुद्र हो  
पाता, उस जैसा हो पाता।

—गोड्डा कालेज, संताल परगना (बिहार)



### (पृष्ठ ७ का शेषांश)

जैसे विश्ववन्दित व्यक्तित्वों के अनु-  
सार ने समुद्र किया है। अंत में सम्पा-  
दक ने स्वयं कुछ अत्यंत ही रोचक  
व्यक्तियों का उल्लेख किया है, जिनमें  
में ही कुछ महापुरुषों के जीवन के  
विवरण क्षणों को—जो अपेक्षाकृत अप-  
रिक्त हैं—लिपिवद्ध किया है। अमृता  
सिंह ने अनुवाद, प्रस्तुतिकरण, चयन

आदि में मेहनत की है एवं संपूर्ण आयोजन  
से पाठकों को सत्साहित्य देने की ईमानदार  
कोशिश की है। आमुख के रूप में लिखा  
गया उनका वक्तव्य भी उनकी इसी  
कोशिश की बात कहता है।

४०/३, पुजारी ब्लॉक, सागांव,  
पो. मानपाड़ा, डोंबिवली (पूर्व)

—४२१२०४





# क्रूस-वाहक ईसा

[ एक प्रकांड मुस्लिम अध्येता की दृष्टि में ]

हरिमोहन शर्मा द्वारा प्रस्तुत

क्रूस-वाहक ईसा और उसके उन पट्टशिष्यों के बारे में, जो उन्हें सलीब पर चढ़ने से नहीं रोक पाये, और इस कारण बाद में संताप और ग्लानि की आग में जलते रहे, विद्वान ईसाइयों ने बहुत कुछ लिखा है। पर कुछ वर्ष पूर्व, एक प्रकांड मुस्लिम अध्येता ने बड़ी हिम्मत और हमदर्दी के साथ इस विषय पर जिसे वे 'ईसाइयत के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना मानते हैं, क्योंकि इस घटना के बाद ही ईसाई-धर्म विधिवत् स्थापित हुआ' अपनी लेखनी उठायी, 'कारियाह जालिमाह' (जुल्मी शहर) नामक एक उपन्यास लिखकर, जिस पर उन्हें १९५७ का मिल्ल का राजकीय साहित्यिक पुरस्कार मिला, और जिसके कारण वे सारे ईसाई-जगत के प्रशंसा-पात्र बने। यह असाधारण उपन्यास ईसा के दुःख-भोगों से सम्बन्धित है, और ईसा के पट्टशिष्यों को उस संताप असमर्थता को रेखांकित करता है, जो ईसा को सूली पर चढ़ने से रोकने की उनकी लाचारी के कारण, एक ऐसी अपराध-ग्रंथि बन गयी, 'जिससे सारा ईसाई-जगत आज तक ग्रस्त है, और जिसके कारण आप अच्छे से अच्छे ईसाई को भी, उसके उदात्तता क्षणों में भी उदास पायेंगे।'।

इस उपन्यास का यह सशक्त अंश, जिसमें एक मेजाइ (मजूसी) ईसा के पट्टशिष्यों के उस अनिश्चय की भर्त्सना करता है, जिसके कारण ईसा को सलीब पर चढ़ने को बाध होना पड़ा, आपको ईसा और ईसाई-धर्म को नये दृष्टिकोण से देखने को मजबूर कर देगा।

ईसा को सूली दी जाने वाली थी, और उसके संतप्त पट्टशिष्य मिलकर आपस में यह विचार विमर्श कर रहे थे कि उन्हें

क्या करना चाहिये। तभी एक मेजाइ उठा और कहने लगा :  
'आप लोगों की बातें सुनकर मुझे बड़ा

नवनीत



हुआ है। लगता है आप सब प्रभु  
का के पर्वत-प्रवचन को भूल गये हैं।  
और वह प्रवचन आपके मन में पैठ गया  
हुंता तो आपके मन शुद्ध और पवित्र हो  
गये होते और आप आज उसके सिद्धांतों  
के विरोध में की जाने वाली बातें न करते।  
जगता है इस प्रवचन के उपदेशों का पालन  
कर अपनी सुविधा से ही करना चाहते हैं।

आज आप जिन  
बातों से परिचालित  
हैं वे उन भावों से  
ऊंचा भिन्न हैं,  
जिनका संस्तवन प्रभु  
ने किया था।  
उदाहरण के तौर  
पर मैंने आपको  
कहते सुना कि अपने  
गुरु ईसा के प्रति  
प्रेम ही आपको  
उन्से प्रतिशोध लेने  
के लिए बाध्य कर

रहा है जो उन्हें सूली पर चढ़ाना चाहते हैं।  
लेकिन सच्ची बात यह है कि आप ऐसा  
कलने गुरु के प्रति प्रेम के कारण नहीं,  
उनके शत्रुओं के प्रति घृणा के कारण कर  
रहे हैं। जहां प्रेम है वहां घृणा के लिए  
जान नहीं।

आपमें से कुछ बल-प्रयोग द्वारा सच्चाई  
और प्रतिष्ठित करने की बात कर रहे थे।  
ऐसा करके आप केवल यही कहना चाह  
रहे हैं कि बल सच्चाई से ऊंचा है और

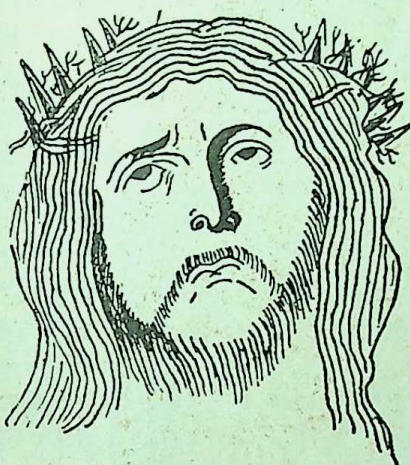
सच्चाई में अपनी कोई शक्ति नहीं। कैसी  
विडंबना है !

कुछ ने यह भी कहा कि आप प्रतिशोध  
इसलिए लेना चाहते हैं कि आपको डर है  
कि यदि आपने ऐसा नहीं किया, तो लोग  
आपको भला-बुरा कहेंगे। शुभ कार्य करने  
की खातिर शुभ कार्य करना, लोगों की  
आलोचना के डर से शुभ कार्य करने

से बिलकुल भिन्न है।  
आप उस ईसा के  
पटुशिष्य हैं, जिसने  
कभी लोगों की आलो-  
चना और पर्वाह नहीं  
की, और वही किया  
जो उन्हें धर्मानुकूल  
लगा। आपका यह  
विचार आपके गुरु  
की भावनाओं के  
विरोध में जाता है।

तब आप क्या  
करें? मैं इस प्रश्न का

कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं कर सकता, क्योंकि  
इस प्रश्न का सही और सच्चा उत्तर आपके  
मन से ही जन्मना चाहिये। लेकिन, ऐसा  
सही और सच्चा उत्तर पाने के लिए  
आपको ईमानदारी से उन प्रेरक हेतुओं को  
परखना होगा, जो आपको कुछ करने के  
लिए विवश कर रहे हैं। यदि ये प्रेरक हेतु  
खराब हैं, तो उनके नतीजे भी खराब ही  
निकलेंगे, भले ही आपको उसमें तात्कालिक  
अच्छाई का आभास मिलता हो।





# ताज़गी की एक लहर!

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और  
कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले  
आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं।  
जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग  
और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में  
देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की  
लहर। आप अपने आपको कुछ और  
ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।  
क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग  
और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके  
लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी  
आस पास बिसरे सुनेपन में  
ताज़गी भर देते हैं।



**जियाजी**  
सूटिंग-शर्टिंग

कॉटन प्रिण्ट्स

जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड,  
बिल्दा नगर, ग्वालियर (म.प्र.)



और  
इसा के प  
के लिए  
में उनका  
को घेरि  
धी कि द  
है, क्योंकि  
उसके अ  
दूत ने  
संदेश  
ध्यान प्र  
मुझे मेरे  
भाग्य व  
से निर्धार  
और लो  
मैं तीन  
के एक  
कोई खा  
न करें,  
करने दें  
काम न  
चूँकि  
और अं  
एहत व  
कुछ को  
मंथ्य हो  
वात्म-  
इसलिए  
इन क्ष  
छोड़ने  
वे इ



और तभी वह दूत लौट आया, जिस ईसा के पट्टशिष्यों ने ईसा के पास यह जानने के लिए भेजा था कि संकट की इस घड़ी में उनका क्या कर्तव्य है ? सबने उस दूत को घेर लिया । प्रत्येक पट्टशिष्य को आशा थी कि दूत वही कहेगा, जो उसके मन में है, क्योंकि प्रत्येक का विश्वास था कि उसके और गुरु ईसा के विचार समान हैं ।

दूत ने कहा, 'ईसा ने आप सबको यह संदेश भिजवाया है : आप अपना पूरा ध्यान प्रार्थना और ध्यान में लगायें, और मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दें, क्योंकि मेरा भाग्य वही है, जो भगवान ने मेरे लिए पहले से निर्धारित कर रखा है । आप जायें, और लोगों को सत्य से अवगत करायें । मैं तीन दिन बाद आप सबसे गेलिली के एक गांव में मिलूंगा । यदि मुझ पर कोई आपदा आये तो आप उसका विरोध न करें, और मुझे अकेले उसका सामना करते दें । आप हिंसा और क्रोध से कतई काम न लें ।'

चूँकि ये निर्देश सुस्पष्ट, सुनिश्चित और अंतिम थे, इसलिए कुछ पट्टशिष्यों ने राहत की सांस ली, कुछ रोने लगे, और कुछ को लगा कि वे असहाय और अकम्प्य हो गये हैं । चूँकि वे अपने गुरु के लिए आत्म-बलिदान देने के लिए स्वतंत्र थे, इसलिए वे सब उदास थे, और उदासी के इन क्षणों में उन सबने जेरुशलम नगर को छोड़ने का निश्चय किया ।

वे इस दुविधा पूर्ण मनःस्थिति में थे कि

उन्होंने दूत को फिर कहते सुना, 'मैंने ध्यान-पूर्वक ईसा के संदेश को सुना था । मैंने उसे आपके लाभार्थ दोहराने में कोई भूल नहीं की है । मेरी सलाह है कि आप उन्हें भूलकर अपना सारा समय प्रार्थना में लगायें, और उनके पर्वत-प्रवचन की हर बात को याद कर, उस पर मनन करें । प्रभु ईसा की यही अंतिम इच्छा है ।'

और जब ईसा के पट्टशिष्यों ने प्रार्थना में अपना मन लगाया, और अपने गुरु के पर्वत-प्रवचन पर मनन करना आरंभ किया, तो सच ही, उनके सारे विषाद, सारे संशय दूर हो गये । कोई आत्म-ग्लानि शेष न रही ।

और, उस दिन के बाद जो महान घटना घटी, ईसा को सलीब पर चढ़ाये जाने की, उसके परिणामस्वरूप एक महान धर्म-ईसाई-धर्म का जन्म हुआ !

और, उसी दिन से उदासी इस महान धर्म का एक अंग बन गयी, एक प्रबल तत्त्व । यह उदासी ईसा के बड़े से बड़े अनुयायी के स्वभाव की एक प्रमुख विशिष्टता बन गयी । पाप से उसका भय, आत्म-भर्त्सना, और अवनयन कभी उसका पीछा नहीं छोड़ते ।

और कभी छोड़ेंगे भी नहीं, क्योंकि यह उस पश्चाताप और आत्म-ग्लानि की प्रतिध्वनि है, जो ईसा के पट्टशिष्यों के मन में अपने गुरु को अपने भाग्य पर छोड़ने पर हुई थी, और ईसाइयत सदा उससे आविष्ट रहेगी ।





“१० में से  
७ स्कूली बच्चों को  
दंतछिद्रों की  
शिकायत होती है”

स्कूली सर्वेक्षण मार्च १९७८  
इंडियन डेन्टल एसोसियेशन



दांतों के सड़न की पहली निशानी है दांत में वह  
आपके मुंह में मौजूद कीटाणु अणु कणों को  
हानिकारक तेजाबों में बदल देते हैं जिनके रस से  
आपके दांतों में पीड़ादायक दंतछिद्र पैदा हो जाते हैं।

## लीजिए प्रचोराइट युक्त सिग्नल 2 आपका दंतरक्षक

प्रचोराइट युक्त सिग्नल 2, दो तरह से दांतों को सड़न से बचाती है।  
वह मुंह में तेजाब पैदा करने वाले कीटाणुओं पर काबू पाकर दंतछिद्रों की  
रोकथाम करती है। दंतछिद्रों का मुकाबला करने के लिए दांतों के एनामल  
को पुष्टकर उन्हें अधिक मजबूत बनाती है। क्योंकि इसमें दंतछिद्रों की रोकथाम  
करने वाला एक विशेष तत्व है—प्रचोराइट, जो सिग्नल की अनोखी रचना  
में सबसे बेहतर कार्य करता है।

जब तकलीफ होने का इंतजार मत कीजिए, लीजिए सिग्नल 2 — आपका दंतरक्षक



दंतछिद्रों का मुकाबला करने वाली इससे बेहतर टूथपेस्ट कोई नहीं।

LINTAS-161 12-1111



महाराष्ट्र के संत-७

# गोरा कुम्हार

सावित्रीबाई खानोलकर

गोरा कुम्हार महाराष्ट्र के उन सीधे, सरल संतों में से थे, विठ्ठल का सतत नाम-संकीर्तन ही जिनकी एकमात्र साधना थी। गगनचारी विहगों के नये गान से मधुर इस संकीर्तन की ताल पर ही उनका अंग, प्रत्यंग आजीवन नाचता रहा।

आठ से सात सौ वर्ष पूर्व, महाराष्ट्र की धरती पर अनेक संत-महात्माओं का जन्म लिया था। उनके भक्तिपूर्ण गीत और अभंग आज भी लाखों महाराष्ट्रवासी को यद्वा से गाते हैं।

ऐसे ही एक संत थे—गोरा कुम्हार, जिसका जन्म सन १२६७ में तेरादोकी

के एक कुम्हार परिवार में हुआ था। संत नाम-देव से तीन वर्ष पूर्व जन्मे गोरा संत ज्ञानेश्वर से ८ वर्ष छोटा गोरा कुम्हार विठोबा (कृष्ण) के नाम से मन्त्र थे।

बालक गोरा पाँच मिट्टी का चाक घुमाते-बजाते दोनों हाथों में घुमाते-बजाते

विठोबा की प्रशंसा में लिखे गये अन्य संतों के भजन और अभंग गाता रहता था। गाते-गाते वह मगन और आत्मलीन हो जाता था कि सुध-बुध खोकर नाचने लगता था। उसे यह होश भी नहीं रहता था कि वह कहां है, और क्या कर रहा है ? ऐसे क्षणों में उसे

लगता जैसे वह और उसके आराध्य विठोबा एक हो गये हैं, और वह नहीं स्वयं विठोबा आनंद से नाच रहे हैं।

अपने से तीन साल छोटे नामदेव को उसने बताया था कि भगवान सब प्राणियों की अंत-रात्मा में विराजमान हैं, और एक बार आत्मा-

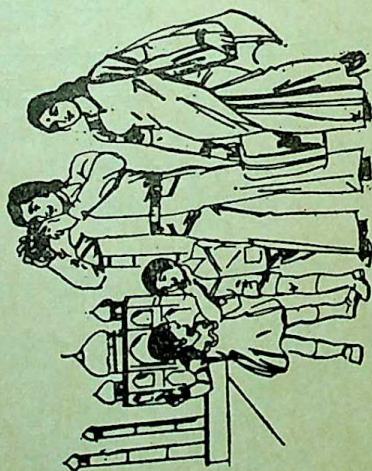


चित्र : आलोक जैन



# सेंट्रल बैंक की परिवार कल्याण योजना

बूढ़-बूढ़ से बनता सागर  
आवर्ती जमा योजना



नौकरी शुदा लोगों के लिए एक आदर्श योजना  
प्रति माह रु. 5/- जितनी मामूली या उसके  
गुणको में कोई भी रकम 12 से 120 माह की  
अवधि के लिए जमा की लिए, 7.5% से 10%  
प्रति वर्ष की दर से विमाही चक्रवृद्धि से  
आपकी रकम बढ़ती रहेगी।

आपके नन्हें-मुन्नों के लिए  
एक बढ़िया उपहार  
धन-वृद्धि जमा योजना

रु. 100/- या उसके गुणकों में कोई भी रकम 12  
से 120 माह तक जमा रखिए. आपकी जमा राशि  
87 माह में दुगुनी या 120 माह में  $2\frac{1}{2}$  गुनी  
बढ़ जाएगी. अपने परिवार की सुख-समृद्धि का  
ख्याल रखिए. 7.5% से 10% प्रति वर्ष की दर से  
विमाही चक्रवृद्धि ब्याज मिलेगा.



**सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया**

(भारत सरकार का बैंक, पंजीकृत, सुरक्षित)  
महोदय बैंक के जो हर जगह पर 100 रुपए के धातुयामा केने अ लम्बा 8



विधि हो जाने पर भक्त को सब प्राणियों  
और पदार्थों में अपने अंदर विराजमान

के दिव्य दर्शन होने लगते हैं।  
हम वहाँ ही आये हैं कि भगवान का  
रूप वहाँ पर आते ही गोरा को किसी  
दिव्य का होश नहीं रहता था। इन्हीं क्षणों  
में एक बार उसके साथ एक भयंकर दुर्घ-  
टना घटी।

गोरा अपना चाक चलाते-चलाते भगवान  
के वंदनीय कर रहा था। अपने बच्चे को  
उसके पास खेलता छोड़कर उसकी पत्नी  
गुरु से पानी लेने गयी थी। वच्चा खेलता-  
बैठा, तेजी से घूमते चाक के निकट  
आया, और उससे टकराकर मिट्टी के  
तर में जा गिरा, जहाँ उसकी मृत्यु हो  
गयी। भजन में मगन गोरा को इस दुर्घटना  
के बारे में कुछ पता न चला। लेकिन,  
जब उसकी पत्नी ने अपने बच्चे को मृत  
पड़ा तो वह आपे से बाहर हो गयी, और  
अपने पति को भला-बुरा कहने लगी।  
उसने कहा, 'भाड़ में जायें तुम्हारे अभंग  
गोरा भाड़ में जायें तुम्हारे विट्ठल जिनके  
आप मेरे बच्चे के प्राण गये। आज से  
मेरा तुम्हारा कोई संबंध नहीं रहा।'।

गोरा ने भी वचन लिया कि वह कभी  
उसका स्पर्श नहीं करेगा। वह अपने इस  
वचन पर तब भी दृढ़ रहा, जब उसकी  
पत्नी को यह दुख हुआ कि उसने अपने  
पति से संबंध-विच्छेद की बात क्यों कही?  
वह पुनः मां कैसे बन सकेगी?

०००

अंत में काफ़ी सोच-विचार करके उसने  
अपने पति का विवाह अपनी छोटी बहन  
रमा से करा दिया।

अपनी छोटी लड़की का हाथ गोरा के  
हाथ में देते हुए उसके समुद्र ने कहा,  
'इसके साथ वैसा ही व्यवहार करना, जैसा  
तुमने अपनी पहली पत्नी के साथ किया  
था।' गोरा ने उसे आश्वासन दिया कि वह  
ऐसा ही करेगा, और उसने अपनी दूसरी  
पत्नी रमा का भी स्पर्श नहीं किया।

गोरा को अपने वचन से डिगाने के  
लिए दोनों बहनों ने एक चाल चली।  
उन्होंने गोरा के सोते समय उसके दोनों  
हाथ अपने अपने शरीरों से छुआ दिये,  
और उसे उठाकर दिखाया कि उसका वचन  
भंग हो गया है। लेकिन, गोरा इस चाल  
में न आया, और उसने अपने को दंड देने  
के लिए अपने हाथ की उंगलियां काट लीं।  
'इन उंगलियों को अपने किये की सज़ा  
भुगतनी ही होगी' उसने कहा।

दोनों बहनों ने उसे काफ़ी समझा-  
बुझाकर इस बात पर राजी कर लिया कि  
वे तीनों एकादशी के अवसर पर पंढरपुर  
जायेंगे, और वहाँ जैसा भगवान विट्ठल  
अपना निर्णय देंगे, वे तदनुसार कार्य  
करेंगे।

विट्ठल के पवित्र मंदिर में प्रवेश  
करते ही, गोरा यह भूल गया कि वह वहाँ  
किस उद्देश्य से आया है, और विट्ठल  
का नाम ले-लेकर जोर-जोर से उनका  
नाम-संकीर्तन करने लगा, अपने लूले



# विमल सहर्ष पेश करते हैं फेशनबल वस्त्रों का एक सुखी परिवार

असंख्य डिजाइनों एवं रंगों में

सूटिंग्स • शर्टिंग्स • साडीयाँ • ड्रेस मटीरियल



**आद्वितीय VIMAL विमल**  
 अंतर्राष्ट्रीय श्रेणी की गुणवत्ता  
 A RELIANCE PRODUCT

Mumbai RTU & HCU



हमों की ताल के साथ वह ध्रुव प्रभु के आँखों में आ गया। मां के पास विट्ठल से प्रार्थना कर रहा था, 'तुम्हारे बिना मेरा कोई नहीं है, प्रभु! तुम ही मेरा एकमात्र सहारा हो।'।

मंदिर में उपस्थित संत नामदेव और संत ज्ञानेश्वर ने गोरा कुम्हार की करुण प्रार्थना सुनी, और वे दोनों जोर-जोर से नाम-संकीर्तन करते हुए, गोरा के लिए विट्ठल से प्रार्थना करने लगे।

'हरि विट्ठल, विट्ठल, पांडुरंग' की ध्वनि से सारा मंदिर गूँजने लगा। संत नामदेव और संत ज्ञानेश्वर तथा उनके अनुयायियों के गले रुंध आये थे, आंसुओं के तरंग आये थे, लेकिन वे फिर भी 'हरि, विट्ठल, विट्ठल, पांडुरंग' की रट लगाये हुए थे।

तभी, एक चमत्कार हुआ।

सबने देखा, गोरा के लूले हाथ पुनः चंगे और स्वस्थ हो गये हैं।

कीर्तन का स्वर और तेज हो गया। मानो किसी अनहद नाद में अपने स्वरो को लीन करने का प्रयास कर रहे थे, मंदिर में उपस्थित विट्ठल के सभी भक्त!

गोरा की अंगुलियों को पुनः जुड़ा देकर उसकी पत्नी भी प्रार्थना करने लगी, 'प्रभु! हम पर कृपा करके हमें उस बापदा से मुक्त करो, जिसमें हम फंसी हैं।'।

तभी, एक और चमत्कार हुआ।

गोरा का मृत बालक पुनः अपनी मां के सामने जीवित हो उठा, और घुटनों

आने लगा। मां ने बड़े प्यार से, किल-कारियां मारते हुए उस बालक को अपने सीने से लगा लिया, और उसे बार-बार चूमने लगी। उसे उस प्रभु का भी स्मरण न रहा, जिसके अनुग्रह से उसका मृत पुत्र उसे वापस मिला था।

किंतु, गोरा कृतज्ञता और आनंद के कारण, और जोर से कीर्तन करते हुए नाचने लगे। भक्ति की इस प्रगाढ़ता के क्षणों में वे अनुभव कर रहे थे कि वे अपने विट्ठल के साथ एकाकार होते जा रहे हैं, और उनमें लीन होते जा रहे हैं।

इसी ब्रह्मलीनावस्था को वे सभी संत प्राप्त हुए थे, जिनके गुणों के बारे में वह सुनता आया था। अवर्णनीय थी यह अवस्था!

इस अवस्था का वर्णन करते हुए गोरा ने (जिसे उसके गांव के लोग प्रेम और आदर से क्रमशः गोरोबा और गोरोबा काका कहते थे) कहीं कहा था : 'गूंगा जिस प्रकार गुड़ के स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता, उसी प्रकार भक्त उस तन्मयावस्था का वर्णन करने में असमर्थ है, जो उसे भगवान की याद में खोकर प्राप्त होती है।'।

जब संत ज्ञानेश्वर तथा अन्य संतों ने उत्तर भारत की यात्रा की, तो गोरा भी उस दल के एक सदस्य थे। संत ज्ञानेश्वर की महासमाधि के अवसर पर भी वे उपस्थित थे।







## प्रभु ईसा ने कहा : जीवन उपवास नहीं, उत्सव है

और फिर,  
जॉन के शिष्य ईसा के पास आये,  
और पूछने लगे,  
ऐसा क्यों है कि हम और फरीसी (पाखंडी)  
उपवास करते हैं,  
किंतु, तुम्हारे शिष्य उपवास नहीं करते ?

और जीसस ने उनसे कहा,  
जब तक दूल्हा उनके बीच मौजूद है,  
तब तक उसकी ससुराल के वन्चों को  
शोक करने की क्या जरूरत है ?  
हां, जब दूल्हा उनके बीच नहीं रहेगा  
तब वे निस्संदेह उपवास कर सकते हैं !

कोई आदमी अपनी पुरानी पोशाक पर  
नये कपड़े की थेंगली नहीं लगाता  
क्योंकि ऐसा करने से कपड़ा और कमजोर  
होता है,  
और उसकी खोंच और खराब हो सकती है।

और कोई पुरानी बोतलों में नयी शराब  
नहीं भरता  
क्योंकि ऐसा करने से बोतलें टूट जाती हैं  
और शराब बाहर बहने लगती है  
बोतलें नष्ट होती हैं।  
नयी बोतलों में नयी शराब भरकर ही  
दोनों को सुरक्षित रखा जा सकता है।

[ 'बाइबिल' से  
हरि द्वारा प्रस्तुत ]

नवनीत

२२

अलौकिक

कई वर्ष पूर्व  
एक संत ने  
नेहरू-परिच

२७ म  
स

अपने हृदय  
नाल नेह

दालण स

उसी नि

उनकी त

मंभव चि

ताम न हु

सवा दो

चल वसे

शोकमन

नेहरू

गुरु वेदद

भगेश्वरा

समाचार

जहां वे

त्रायम

निष्पत्ति-

दिसंबर

१९६९



अलौकिक रहस्य-कथा

# क्या पंडित नेहरू के रूप में एक संत ने जन्म लिया था



भारती शर्मा

ई वर्ष पूर्व, समाचार-पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि पं. नेहरू के रूप में एक संत ने जन्म लिया था। इसी समाचार की पुष्टि, पं. नेहरू के निधन के पश्चात्, नेहरू-परिवार के परम आदरणीय गुरु ने भी की थी। क्या थी इस समाचार की सच्चाई?

२७ मई, १९६४ को दिन में प्रायः सवा दो बजे, सहसा भारत ने अपने हृदय-सम्राट प्रधानमंत्री पं. जवाहर-लाल नेहरू के दुःखद देहावसान का दारुण समाचार सुना।

उसी दिन प्रातः साढ़े छह बजे, अचानक उनकी तबियत खराब हुई थी। हर संभव चिकित्सा करायी गयी, पर कोई लाभ न हुआ, और अंत में वे दिन के सवा दो बजे, इस असार संसार से चल बसे। भारत ही नहीं, सारा विश्व शोकमग्न हो उठा।

नेहरू-परिवार के परम आदरणीय गुरु वेददर्शनार्थ महामण्डलेश्वर स्वामी गोश्वरानंद को जैसे ही यह स्तब्धकारी समाचार मिला, उन्होंने नैनीताल से, जहां वे उस समय थे, दिल्ली के अपने आश्रम के संतों को आदेश दिया कि वे त्रिमूर्ति-भवन पहुंचें, और स्वर्गीय महान

आत्मा के निमित्त गीता-पारायण आदि में भाग लें। उनके मुख्य शिष्य श्री ओंकारा-नन्दजी के नेतृत्व में २८ मई को प्रातः त्रिमूर्ति-भवन में पहुंचकर गीता-पारायण किया।

## नेहरूजी और गंगा

८ जून को दिवंगत आत्मा के पार्थिव शरीर का अस्थि-कलश आनंदभवन लाया गया। त्रिवेणी में अस्थि-कलश का विसर्जन हुआ। इस अवसर पर श्री लालबहादुर शास्त्री, उप-राष्ट्रपति जाकिर हुसैन, गुलजारीलाल नंदा आदि प्रमुख नेताओं ने स्वर्गीय पं. नेहरू को श्रद्धांजलियां अर्पित कीं।

स्थानापन्न प्रधानमंत्री श्री गुलजारी-लाल नंदा ने अपने भाषण में एक महत्वपूर्ण बात कही। आपने कहा, 'आपको पता हो कि पं. नेहरू ने अपनी वसीयत में लिखवाया था कि उनकी अस्थियां गंगा

हिंदी डाइजेस्ट



उपयोग करें

ग्रेलिस स्टेपल फाइबर  
और  
साथ में



मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय  
पूरक धागे

Grasilene

दि ग्वालियर रेयान सिल्क (मैन्यू.) वीविंग कं. लिमिटेड  
(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM

दे. नं. : ३८८२८८

नवनीत

२४



नै प्रवाहित की जायें। हम-आप नहीं जानते, मगर गंगा नेहरूजी को पहचानती है और पं. नेहरू गंगा को पहचानते थे।' पूर्व जन्म के योगी

नैनीताल में रेडियो द्वारा स्वामी गंगेश्वरानंद इस भाषण को सुन रहे थे। श्री तंदा की बात सुनकर, उन्होंने अपने पास बैठे शिष्य संत गोविंददास, गोपाल मुनि आदि से कहा, 'क्यों, संतो, आप नंदाजी के इस कथन का रहस्य समझे?' संतों की समझ में कुछ नहीं आया था, इसलिए वे मौन रहे।

'नेहरूजी असाधारण व्यक्ति थे,' स्वामी गंगेश्वरानंदजी ने गंभीर स्वर में कहा, 'पूर्वजन्म में वे योगी थे। पूर्वजन्म में वे गरुड़-चट्टी के निकट गंगा-तट पर वर्षों तक संत के रूप में योग-साधना में लीन रहे थे। एक दिन पं. मोतीलाल नेहरू अपनी पत्नी श्रीमती स्वरूपरानी के साथ पंडित मदनमोहन मालवीयजी की प्रेरणा से इन संत के दर्शनार्थ गये। पंडित मालवीयजी ने संत से करबद्ध निवेदन किया, 'महाराज, ये मेरे भाई मोतीलाल नेहरू हैं। भगवान की कृपा से इन्हें सब सुख-वैभव प्राप्त है; किंतु पुत्र के अभाव में वे बहुत दुखी रहते हैं। आप इन पर कृपा करके इनका मनोरथ पूरा करें।' संत मुस्करा कर बोले, 'मालवीयजी ! इसके भाग्य में पुत्र का योग नहीं है, इस रूप में ही नहीं, आगामी कई जन्मों तक। वे क्या करें ?'



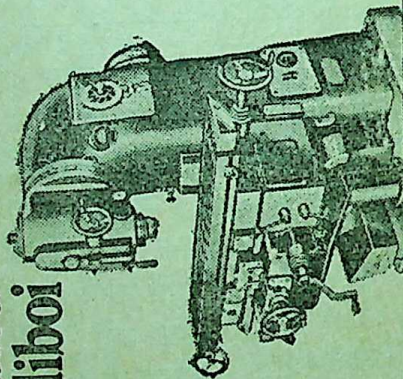
मालवीयजी इस उत्तर से निराश न हुए। उन्होंने पुनः करबद्ध प्रार्थना की, 'हर ओर से निराश होकर ही हम आपकी शरण में आये हैं। आप हमें निराश न करें।'

संत ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर तुरंत देह-त्याग कर दिया। यथासमय, स्वरूपरानी सगर्भा हुई, और जवाहरलाल के रूप में गरुड़-चट्टी के उसी संत ने उनके गर्भ से जन्म लिया। यह समाचार कई वर्ष पूर्व, अनेक समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ था। तब, इसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया था; किंतु वह सच था। तिब्बत में तो पं. नेहरू को बुद्ध का अवतार ही मानते हैं।

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि पूर्व-जन्म में संत और योगी होते हुए पं. नेहरू अपने संत स्वरूप को लोगों पर प्रकट क्यों नहीं करते थे? इसके कुछ गुप्त कारण थे। उन्हीं कारणों से वे अपने संत स्वरूप को छिपाने में इतने सचेष्ट रहते थे कि अपने वक्तव्यों और भाषणों में भूलकर भी भगवान का नाम नहीं लेते



**There's something  
very different  
about this machine  
distributed  
by Batliboi**



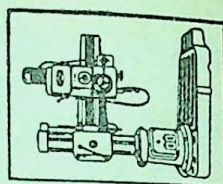
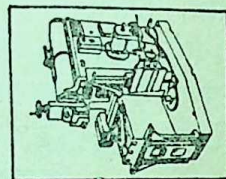
**FA3 Milling Machine**  
Vertical/Horizontal/  
Universal

**Features:**

Clamping surface  
of table 300 x 1250  
Spindle taper ISO 40  
Speed range  
45—2000 rpm  
Motor Power 3.7 kw.

Drilling machines,  
Shaping machines,  
Tapping machines  
and Milling machines...  
Shown here are  
three from the range.

Call on Batliboi for your  
needs. Our total  
engineering capabilities  
are at your service.



**BATLIBOI**  
A COMPANY  
LTD.

Regd. Office: P.B. No. 190A,  
V. B. Gandhi Marg,  
Fort, Bombay 400 023.  
Branches and Dealer network  
ALL OVER INDIA.

**It's built by Batliboi!**



के, यद्यपि वे भगवान के परम भक्त थे।  
 वैसे, अंत से कुछ दिन पूर्व, ५ मई, १९६४  
 को जब वे कांग्रेस महासमिति के बंबई  
 अधिवेशन में भाग लेकर दिल्ली लौट  
 रहे थे, तो कुछ बम्बईवासियों ने उनसे  
 पूछा था, 'अब आपके दर्शन कब होंगे ?'  
 तो, सहसा पहली बार उनके मुंह से निकल  
 पड़ा था, 'जैसी ईश्वर की इच्छा !'  
 यह संतों की भाषा है। यहां उनका पूर्व-  
 जन्म का संत-स्वभाव बरबस  
 व्यक्त हो गया।

स्वामीजी से अंतिम भेंट

परिवार-गुरु की हैसियत से  
 नेहरू-परिवार के सभी सदस्य पं.  
 नेहरू, श्रीमती विजयलक्ष्मी  
 पंडित, श्रीमती इंदिरा गांधी  
 आदि स्वामी गंगेश्वरानंदजी का  
 बहुत आदर करते थे, और प्रायः  
 उनके दर्शन करते रहते थे।

पं. नेहरू स्वामीजी के  
 अंतिम दर्शनार्थ २२ नवंबर,  
 १९६३ को गुरु महाराज के आश्रम पर  
 गये। इससे कुछ समय पूर्व, कश्मीर  
 के भूतपूर्व मुख्यमंत्री बख्शी गुलाम  
 मुहम्मद ने उनके दर्शन करके कहा  
 था, 'आज गुरु महाराज के दर्शनों से  
 मुझे बेहद राहत मिली।' पं. नेहरू के  
 आगमन के एक सप्ताह पूर्व, १५ नवंबर  
 १९६३ को पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार  
 भिण्डरान सिंह कैरों स्वामीजी के आश्रम में  
 गये। आपने गुरु महाराज का श्रद्धा-

पूर्वक अभिवादन करके अपने भाषण में  
 कहा, 'मेरा अहोभाग्य है कि आज दीप-  
 मालिका के शुभ दिन ऐसे महान संत के  
 दर्शन कर रहा हूं। मेरे यहां आने का एक  
 मात्र उद्देश्य गुरु महाराज के दर्शन करना  
 और उनके आशीर्वाद प्राप्त करना ही है।'

पं. नेहरू २२ नवंबर को सायंकाल ७  
 बजे आश्रम में आकर, पहले तो कमरे में  
 गुरुजी से आध्यात्मिक वार्ता करते रहे,  
 बाद में जनता के अनुरोध से  
 उन्होंने एक छोटा-सा भाषण  
 भी दिया। करीब डेढ़ घंटा  
 आश्रम में रहने के बाद, वे गुरु  
 महाराज से आशीर्वाद लेकर  
 लौटे :

प्रियं मा कृणु देवेषु

प्रियं राजसु नस्कृधि ।

प्रियं सर्वस्य पश्यत

उत शूद्रे, उत अर्ये ॥

(अथर्ववेद, १९-६२-१)

'संसार का कोई भी प्राणी

क्यों न हो, हम सभी के प्रेमी बनें। विश्व-  
 व्यापी प्रेम की स्थापना हो। हमारा किसी  
 से भी विरोध न हो।'

यह हमारे वेदों का उपदेश और आदेश  
 है। कितना सुंदर चित्रण किया गया है,  
 थोड़े से शब्दों में, हमारी संस्कृति का।

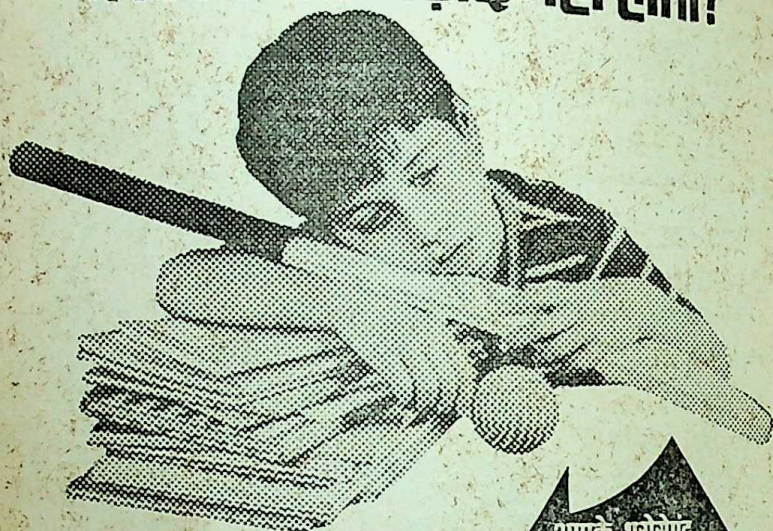
इंदिराजी को सांत्वना

पं. नेहरू के निधन पर, गुरु महाराज  
 ने अपने शिष्यों की उपस्थिति में तीन  
 संकल्प किये थे : १-भारत का नया प्रधान





# थकान के मारे पढ़ाई नहीं होती?



## ग्लूकोन-डी<sup>®</sup>

आपके भरोसेमंद  
ग्लूकोन-डी का  
नया नाम

**अतिरिक्त शक्ति—  
जैसे ही उसे जरूरत हो.**

ताज़गी, ठंडक और शक्ति देनेवाला  
ग्लूकोन-डी. ग्लैक्सो का असली ग्लूकोज़  
पाउडर—विटामिन-डी और कैल्शियम  
फ़ॉस्फ़ेट से भरपूर. फलों का रस, दूध,  
चाय, कॉफ़ी, सादा पानी—किसी भी  
पेय में ग्लूकोन-डी मिला कर पीजिए.  
या फिर ऐसे ही लीजिए.  
और खुद महसूस कीजिए—  
वही पहले जैसी चुस्ती-फुर्ती.



**ग्लूकोन-डी उसी जाने-पहचाने  
हरे पैक में मिलता है.**

## ग्लूकोन-डी<sup>®</sup>

तुरंत शक्ति देनेवाला—भरोसेमंद **ग्लैक्सो** उत्पादन,



## कृपालु पाठकों से नम्र निवेदन

कागज की निरंतर बढ़ती महंगाई और छपाई के खर्चों में होती जा रही वृद्धि के कारण हमें जनवरी - १९८२ से नवनीत के चंदे की दरों में वृद्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा है। आशा है कि नवनीत के कृपालु पाठक नवनीत को अपना पूर्ववत् स्नेह प्रदान करते रहेंगे और उसे अपने बहुमूल्य सुझावों से लाभान्वित करते रहेंगे।

जनवरी १९८२ से नवनीत के चंदे की नयी दरें :

भारत में : १ वर्ष : २८ रु.; दो वर्ष : ५४ रु.; ३ वर्ष : ८० रु.।

विदेशों में : १ वर्ष : ८० रु.; २ वर्ष : १५० रु.; ३ वर्ष : २२० रु.।

सोलोन, पाकिस्तान, बांग्लादेश (समुद्री डाक से) :

१ वर्ष : ४० रु.; २ वर्ष : ७८ रु.; ३ वर्ष : ११५ रु.।

विदेशों में हवाई डाक से : (पाकिस्तान, श्रीलंका, अफगानिस्तान और वर्मा)

१ वर्ष : १२५ रुपये।

अन्य सभी देशों के लिए २०० रुपये।

— व्यवस्थापक

को निर्विरोध निर्वाचित हो। २—श्रीमती इंदिरा गांधी की इच्छा न होते हुए भी, त्रिमूर्तिमंडल में अवश्य लिया जाये। ३—त्रिमूर्ति-भवन पं. नेहरू का राष्ट्रीय स्मारक हो। उनके तीनों संकल्प अंत में पूरे हुए।

३ जुलाई को गुरु महाराज ने त्रिमूर्ति-भवन में श्रीमती इंदिरा गांधी से भेंट की, और उन्हें सांत्वना देते हुए बोले :

‘बेटी, अपने को अकेला अनुभव न करो। भारत की समस्त जनता तुम्हारा साथ दे रही है। तुम्हारे पिताजी एक महान् नेता ही नहीं, एक पहुंचे हुए योगी भी हैं। नंदाजी ने प्रयाग के त्रिवेणी-तट पर तुम्हें श्रद्धांजलि देते समय, इस तथ्य को स्पष्ट निर्देश इन शब्दों में किया था,

‘गंगा और नेहरू की आपसी पहचान बहुत पुरानी है। वे एक दूसरे को ठीक-ठीक पहचानते हैं, हम नहीं।’ संतान का कर्तव्य होता है, पिता के अधूरे कार्यों को पूरा करना। शोक-मुक्त होकर। जैसे पिताजी की उपस्थिति में देश-सेवा करती रहें, उससे अधिक तल्लीनता से देश-सेवा में जुट जाओ, जिससे तुम्हारे अमर पिता का देश को समृद्ध करने का संकल्प साकार हो सके।’

श्रीमती इंदिरा गांधी ने स्वामी गंगेश्वरानंदजी का अभिवादन किया, और स्वामीजी उन्हें आशीर्वाद दे वहां से आश्रम आ गये।

तथ्य ‘योगेश्वर गुरु गंगेश्वर’ के सौजन्य से



# जिस दिन मुझे दिव्य दृष्टि मिली : ब्रह्म-तत्त्व का साक्षात्कार हुआ

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

... न जाने कैसे मेरे हृदय कपाट सहसा खुल गये। पूरा विश्व एक साथ प्रेम से मुझे गले लगाता सा प्रतीत हुआ। मुझे यह लग रहा था कि समूचा विश्व आनन्द के पयोनिधि से ही निकला है, उसी की लहरों पर विचरण कर रहा है, और अंत में उसी में विलीन हो जायेगा।

**च**ंद्रनगर में कई महीनों तक रहने के बाद, मेरे भाई श्री ज्योतिरिन्द्रनाथ विक्टोरिया म्यूजियम के पास 'सदर रास्ते' पर रहने के लिए चले गये थे। वहां उन्होंने एक स्वतंत्र घर किराये पर ले लिया था। मैं भी उनके साथ रहने लगा था।

एक दिन मैं सुबह के वक्त घर के ओसारे में खड़ा था कि मुझे पूरब की ओर एक रमणीय दृश्य दिखायी दिया। रास्ते के उस ओर के 'फ्री स्कूल' के अहाते में ऊंचे-ऊंचे वृक्षों के बीच सूर्योदय हो रहा था। वृक्षों के पल्लवों से एक सुनहरा प्रकाश चारों ओर बिखर रहा था। मैं इस रमणीय दृश्य को अपलक देख रहा था।

**दिव्य दृष्टि**

यह अद्भुत प्रकाश मेरे हृदयाकाश में फैल गया। दुख और निराशा न जाने कहां ओझल हो गये। अंतःकरण में आनंद और सौंदर्य की लहरें उमड़ने लगीं। एक

क्रांति-सी कर दी इस क्षण ने मेरे जीवन में। मैं मानस की अतींद्रिय अवस्था में विहार कर रहा था। इसी अवस्था में एक कविता वेगवती धारा के समान मन में फूट पड़ी। 'निर्झरेर स्वप्नभंग' (निर्झर का स्वप्नभंग) नामक इस कविता के कुछ प्रारंभिक अंशों का आशय निम्नानुसार है :

'आज न जाने कहां से रवि कान्त ने मेरे प्राणों का स्पर्श किया। तभी मेरे मन का अंधकार नष्ट हो गया है और विहग-सा यह गीत उसमें भुजक लगा है। जागरण का यह स्वर न जाने कहां से आकर इतना मुखर हो गया है। लगता है, गहरी नींद से जागा हूं, और प्राणों में नवजीवन का संचार हुआ है। प्राणों में जो प्रबल उर्मि उठी है, उसने निहित ज्योति की गति को रोकना असंभव हो गया है। पर्वतों के शिखर कांप रहे हैं।

नवनीत



ली:  
I

जगत् चूर-चूर होकर गिर रही हैं।  
को तहें फन फैलाये, गरज रही  
कारागृह को तोड़कर, मैं अब स्वतंत्र  
के लिए उत्सुक हूँ। प्रभात के संजीवन  
के उन्मत्त मैं विश्व के अन्वेषण  
निकला हूँ।

मैं भूता हूँ, भगवन, मेरे चारों ओर  
तो के ये बंधन क्यों तैयार किये  
साथ प्रेम से  
श्व आनंद के  
अंत में उभो

मेरे हृदय की गुहा के द्वार अब पूरी  
ब्रूत गये हैं। इन बंधनों को तोड़कर,  
सिद्धि को प्राप्त करने के लिए  
हूँ। हे मेरे मन, गरजने वाली  
मैं का निर्माण करके उनके आघातों  
अवस्था में प्रारण कारागृह को नष्ट करने के  
अवस्था में प्रारण कारागृह को नष्ट करने के  
के समान मन  
हो जाओ। प्राण जब पागल  
भंग' (निर्वाणों की क्या पर्वाह? प्रकाश  
कविता के  
प्राण्य निमा

से रवि करो  
क्या। तभी न  
हो गया है  
उसमें मुझे  
स्वर न जाने  
हो गया है  
जागा हूँ, और  
चार हुआ है।  
उठी है, उसने  
रोकना अवस्था  
शखर कांप रहे  
विह्वल

मुक्त हास्य से भर दूंगा। पर्वत-शिखरों  
के ऊपर वेग से दौड़ते हुए, मयूरों के अंकों  
पर अठखेलियां करते और मचलते हुए,  
मैं अट्टहास करता रहूंगा, कलकल ध्वनि  
के साथ गीत गाते हुए आनंद के साथ  
तालियां बजाता हुआ। तटिनी बनकर  
इस कलकल ध्वनि के साथ बहते हुए  
मैं नये-नये देशों में अपना यह संवाद  
पहुंचाऊंगा।

### अमित और अनुपम आनंद

इस कविता को लिखते समय, ब्रह्मांड  
का जो आनंदमय रूप दिखायी दिया था,  
वह वैसे ही अक्षुण्ण रहा; उस पर कोई  
आवरण नहीं पड़ सका। अब चारों ओर  
दिखायी देने वाला प्रत्येक व्यक्ति और  
प्रत्येक वस्तु आनंददायक प्रतीत होने लगी।  
सब कुछ विस्मयजनक लगता था। दो  
मित्रों की विनोदपूर्ण बातचीत से मुझे  
आनंद के फव्वारे उड़ते से लगते थे।

इसी अमित और अनुपम आनंद की  
अवस्था में मैंने 'प्रभात-उत्सव' कविता  
लिखी, जिसमें मैंने कहा :

'हृदय आजि मोर केमने गेलो खुलि,  
जगत आसि सेथा करिछे कोलाकुलि।'  
(आज न जाने कैसे मेरे हृदय-कपाट सहसा  
खुल गये। पूरा विश्व एक साथ प्रेम से  
मुझे गले लगाता सा लगा। यह कैसे हुआ,  
कुछ समझ में नहीं आता।)

मेरे ये हृदय-कपाट सदैव खुले ही रहे।  
मेरा हृदय सदा विश्व के प्रेमपूर्ण मिलन का  
मंगल-स्थान बना रहा।







## अवतरण

पहली-पहली  
सर्वोत्कृष्ट  
रचना की  
प्रक्रिया :  
मरियम ने  
ईसा को  
जन्म दिया !

## संवेदना

मैं  
घूम रहा हूँ  
सारे सलीबों को  
अपने कंधों पर  
उठाये,  
ताकि  
कोई  
किसी ईसा को  
सूली पर  
न चढ़ाये !

किशोरीरमण टण्डन  
की  
दो मार्मिक कविताएं

-४, पत्रकार काल  
बांद्रा (पूर्व), बंबई





आ नो भद्रः क्रतवो यन्तु विश्वतः

०

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

# नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;  
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

## प्रार्थना

यदग्ने स्यामहं त्वं,  
त्वं वा द्या स्या अहम् ।  
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥

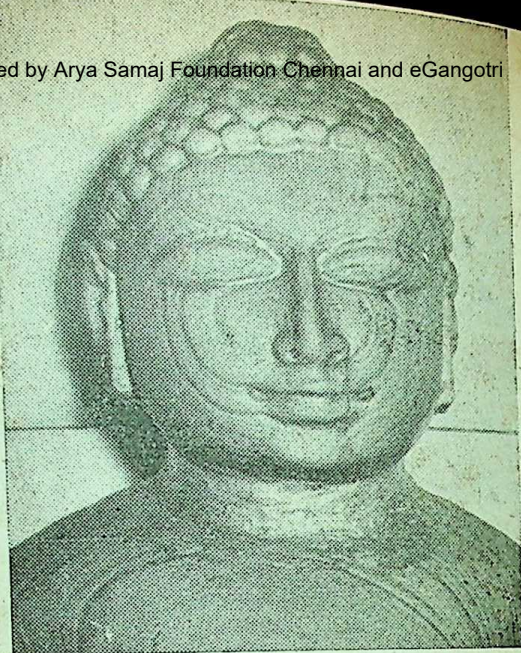
हे प्रकाशस्वरूप, जब मैं तू बन जाता है,  
अथवा तू मैं स्वरूप बन जाता है, तब इस  
संसार के समस्त आशीर्वाद सत्य, सफल बन  
जाते हैं ।

—ऋग्वेद ८, ४४, २३

पत्रकार का  
(पूर्व), बंकर







चांदनपुर में जीवन्त विराजमान श्रीमहावीर

## चांदनपुर के श्रीमहावीर : एक चमत्कारिक सिद्धपीठ

सावित्री परमार का एक दैविक इतिहास-लेख  
[ गतांक का शेष भाग ]

**क**हीं से भी क्यों न देखें, मंदिर के पुनीत तीनों शिखर परिलक्षित होते हैं— श्रद्धा, ज्ञान और चरित्र के सत्य-प्रतीक। सारा कटला ही जैसे एक तपोस्थली हो। बड़ी मानसिक शांति... शिखर की चतुर्दिश प्रतिमाएं—जैसे अहिंसा, प्रेम, सहिष्णुता और सहअस्तित्व का जयघोष हों ?  
**‘यदीयावागंगा विविधनय कल्लोल विमला**

वृहज्ज्ञानाभोर्मिर्जगति जन्तां या स्तपयति  
इदानीमप्येषा बुधजनमरालः परिचिता  
**महावीर स्वामी SS . . .**  
कलकल-मधुरा वाणी-गंगा की उत्तम तरंगें, जिनमें सांगोपांग भीगते भक्तजनों के कमल-दल-नयन... महाज्ञान-नट पर विचरते मोक्ष प्राप्ति हेतु आकुल हृदय... प्रार्थना में विहंसते विमल-बुद्धि के स्वर्ण-विस्मय



अन्त है महावीर स्वामी को अमर-

मन-प्राण को आरोग्य बनाने वाली  
वृद्ध वायु के मंद-मधु स्पर्श... आधि-  
पति के हरणकर्ता... जैनियों के चौबीसवें  
भगवान का यह स्थान अपने  
असीम शांतिदायक ... क्रोध, लोभ,  
लोभ और ईर्ष्या के नागपाशों से  
मुक्ति देने वाला...

प्रशमन पराकस्मिक भिषगु-  
मोक्षो बंधुविदित महिमा मंगलकर :

रथः साधूनां भवमयभूतामुत्तम गुणी...

महामोह, आतंक, व्याधि-रोग-भय  
दूर करने वाले महावीर धन्वन्तरि !

साक्षरी... विश्वबंधुत्व के कर्णधार ...

मनुष्यों को शरण देनेवाले सर्वद्रष्टा

भगवान... सभी तो चारों ओर मंगल ही  
धनियां व्याप्त...

महाई मानसिंह हाइवे, जयपुर स्थित  
महावीर भवन के मंत्री श्री कपूरचंदजी  
यहाँ से मिलती हूँ और श्रीमहावीरजी  
के विकास तथा इसकी परंपरागत शैलियों  
के विषय में कुछ जिज्ञासाएं व्यक्त करती

हूँ। इन्होंने इन सभी जानकारीयां देने

में बहुत प्रसन्नता व्यक्त की है। बताया

गया कि सारा स्टाफ यहाँ और श्रीमहावीरजी

के अंग्रेज १७५ व्यक्तियों का है। प्रति

वर्ष भगवान महावीर की जयंती पर यहाँ

का विशाल मेला लगता है। चैत्र शुक्ला

तीसरी ग्यारह से बसाख वदी एक तक।

इस वदी एक को कटले से भगवान

महावीर को रथ-यात्रा का वृहद् जुलूस  
निकलता है। गंभीर नदी में कलशाभिषेक  
होते हैं। इस अवसर पर जैन (दिगंबर)  
यात्रियों के अतिरिक्त मीणा, गूजर,  
जाटव तथा अन्य धर्मावलंबी भी बहुत  
भारी संख्या में शामिल होते हैं। ढाई-  
तीन लाख व्यक्तियों का अपारसमूह। सभी  
महावीर के दर्शनों के मतवाले... किसी के  
लिए कोई बंधन नहीं, प्रत्येक जाति-धर्म  
का स्वागत है।

किसी आवश्यक कार्य हेतु श्री पाटनी  
जी थोड़ी देर के लिए चले जाते हैं और  
अन्य प्रकार की संपूर्ण जानकारी देने  
के लिए श्रीमहावीर भवन के अध्यक्ष श्री  
ज्ञानचंद्रजी खिन्दूका मुझे उस कक्ष में  
ले जाते हैं, जहाँ भगवान महावीरजी की  
रथ-यात्रा और मेले से संबंधित चित्र लगे  
हुए हैं। वे बताते हैं :

मेले का वर्णन इसलिए भी आनंददायी  
है कि मंदिर के निर्माण के समय से ही यह  
परंपरा रही कि इसकी सुरक्षा का प्रबंध  
सदैव से राज्य सरकार द्वारा होता रहा  
है। जिस ग्वाले के द्वारा मूर्ति निकाली  
गयी थी, उस परिवार का आज भी बहुत  
सम्मान है। वार्षिक मेले पर जब रथ-  
यात्रा आरंभ होती है, तब इसी परिवार के  
मुखिया को रथ में हाथ लगाना पड़ता  
है। सारा परिवार उपस्थित रहता है।  
मंदिर की ओर से इन्हें शुभ-नारियल भेंट  
किया जाता है, तब रथ निकलता है।

(शेव पृष्ठ १४३ पर)

हिंदी डाइजेस्ट



इन्दरराज आनन्द की एक सन्त-कथा



# जब एक संन्यासी वेश्या के पैरों पड़ा

एक था राजा ।

एक था संन्यासी ।

एक थी वेश्या ।

आज राजधानी में राजा का जन्म उत्सव मनाया जा रहा था ।

सारा नगर नववधू की तरह सजा हुआ था ।

वह राजा खेतड़ी के

तत्कालीन राजा थे



राजमहल में सुबह यज्ञ हुआ । दिन में भंडारा । ब्राह्मणों की झोलियां सोने-चांदी से भर दी गयीं । भिखारियों को बेहतर खाने खिलाये गये । गरीबों में दौलत बँट गयी ।

रात को राजधानी ने लाखों दिव्यों की माला पहन ली । राजमहल रोशनी की गुलाब की तरह खिल उठा । दरबार की ओर ही शान थी । हीरों, मोतियों और जवाहरात की जैसे बरत निकल हुई थी । दूर-दूर से राजे-महाराजे आ रहे थे । रानियां, महारानियां आयी थीं । फ्रांसिसी शैम्पेन पानी की तपस्वी रही थी ।

इतने में तबले पर थाप पड़ी । सारंगी जोर से चीखीं । और फिर घुंघरूओं का अंकार सुनाई दी । पहले नबरे ऊँचे पर पड़ीं जिनके गिर्द घुंघरू बंधे हुए पाँव खूबसूरत थे ।

वे फर्श पर पड़ते थे कि बिजलियाँ जाती थीं । फिर निगाहों ने शरीर जायजा लिया । अर्जुन की कमान की तना हुआ यौवन । निगाहें हौसला कर चेहरे तक पहुँचीं, मगर वहाँ



सकीं। बला का खूबसूरत मुखड़ा-और आंखें तो ऐसी जैसे नदी में भंवर या नाग के माथे पर चमकती हुई मणी। आंखों में जिदगी का न्यौता भी था, मौत का पैगाम भी था।

महफिल जब पूरे रंग पर पहुंची, तो राजा के कान में एक दरबारी ने आहिस्ता से कुछ कहा। राजा का रंग पीला प गया। शैम्पेन का गिलास उनके हाथ से गिर गया। दूसरे गिलासों की तरफ उठी हुई बोटलों के मुंह खुद-बखुद बंद हो गये। फानूसों की रोशनी कुछ कम हो गयी।

अब राजा कुछ संभले और अपना तख्त छोड़के दरबार हाल से मेहमानों से कुछ कहे बिना बाहर चले गये। उनके जाते ही तबले खामोश हो गये। सारंगियां चुप हो गयीं। और घुंघरू गूंगे हो गये।

कुछ देर के बाद पता चला कि बाहर महाराज के गुरु आये हैं। मेहमानों में सरगोशियां होने लगीं। सारा मज्जा किर-किरा हो गया। गुरु महाराज किसी और दिन नहीं आ सकते थे!

बाहर महाराज मेहमान-घर में गुरु के चरणों में बैठे थे। गुरु जवान था। खूबसूरत था। जिस्म पहले सोना था अब योग की अग्नि में जलकर कुन्दन हो गया था। चेहरा बाग की तरह चमक रहा था मगर आंखें ऐसी लग रही थी जैसे आग की शील में खिले हुए दो कमल।

गुरु ने महाराज की परेशानी उनकी



और वह संन्यासी  
स्वामी विवेकानन्द थे

आंखों में पढ़ ली। उन्होंने बड़े प्रेम से अपने शिष्य को जन्मदिवस की बधाई दी, फिर आदेश दिया, 'आप जाइये और अपने मेहमानों के साथ जाकर जश्न मनाइये। आप तो जिदगी के जुलूस में अभी शामिल हैं। यह और बात है, हमने जुलूस से किनारा कर लिया है। जिसने हमें दीक्षा दी थी, वह कहता था कंचन और कामिनी मुक्ति के रास्ते में दो सबसे बड़ी स्कावटें हैं।'।

महाराज गुरु के चरण छूकर दरबार हाल में वापस आ गये। बोटलों के मुंह फिर खुल गये। गिलासों में शराब फिर उछलने लगी। मुरझाए हुए होंठों पर



फिर खुशी के फूल खिल उठे । सारंगियां  
फिर गिलाफों से बाहर निकल आयीं ।  
तबलों पर फिर थापें पड़ीं । मगर घुंघरू  
अब भी गूंगे थे ।

महाराज ने अशर्फियों की एक थाली  
वेश्या के पांव पर उलट दी । वेश्या ने  
बहुत झुककर प्रणाम किया, मगर अश-  
र्फियों की तरफ देखा तक नहीं ।

वेश्या ने बड़े अदब से कहा, 'मैं राज-  
दरबारों में गा चुकी हूं । राजमहलों में  
भी । लेकिन किसी संन्यासी के सामने मैंने  
कभी नहीं गाया । जो पहले कभी नहीं  
हुआ, वह आज होके रहेगा ।'

'वह आज तो बिल्कुल नहीं हो सकेगा ।  
हमारे गुरु मामूली संन्यासी नहीं हैं । वे  
जहरीले नाग को गले लगा सकते हैं, मगर  
कंचन और कामिनी से तो वे दूर का  
वास्ता भी नहीं रख सकते ।'

वेश्या ने यह बात सुनी, मगर अनसुनी  
कर दी । वह अपनी जगह से उठी और  
दरबार हाल से बाहर निकल गयी । बाहर  
आने के बाद वह मीधी मेहमान-घर की  
तरफ लपकी ।

घुंघरूओं की झंकार सुनकर संन्यासी  
ने अपने कमरे का दरवाजा बंद कर दिया ।  
यह वेश्या उस दर्जे की वेश्या थी, जिस पर  
पहली बार ही किसी का कोई दरवाजा  
बन्द हुआ था ।

वह बाहर के चबूतरे पर बैठ गयी ।  
थोड़ी देर में उसके सार्जिदे भी वहां पहुंच  
गये । हीरों, जवाहरात और मोतियों की

बरात भी बाहर आ गयी । शराब की नहर  
जो पहले अन्दर वह रही थी, अब बाहर  
बहने लगी ।

वेश्या ने गाना शुरू किया :  
तुमने अभी सिर्फ आग के रंग के कपड़े  
पहने हैं,  
योग की आग में अब तक तुम्हारा काम  
पूरी तरह जला नहीं

तुम अद्वैती अभी कहां बने हो ?  
द्वैत की छुरी आज तक तुम्हारी कमर से  
लटकी हुई है,  
इसलिए तो तुम्हारे मन में अभी उंच-  
नीच है ।

मर्द और औरत में तुम्हें फर्क नजर आता है ।  
औरत और वेश्या में भी फर्क नजर  
आता है ।

औरत के पीछे भागना या औरत से दूर  
भागना-

बात एक ही है-  
जब तक दौड़ जारी है, तुम्हारा संसार का  
सफर खत्म नहीं हुआ ।

न ही संन्यास की यात्रा शुरू हुई है । ...  
वेश्या का गाना अभी खत्म नहीं हुआ-  
था, कि मेहमान-घर का दरवाजा अचानक  
खुला, और संन्यासी आकर वेश्या के  
पांव पर गिर गया । थोड़ी देर में वेश्या के  
पांव के गिर्द बंधे घुंघरूओं से पानी की  
बूंदें टपक रही थीं ।

वो संन्यासी के आंसू थे ।  
संन्यासी फूट-फूटकर रो रहा था और  
कह रहा था, 'मां, मुझे क्षमा कर दो ।  
द्विंश



वही तरह से तुम भी मेरी गुरु हो। मेरे अनुश्रुतों को गुरु-दक्षिणा के रूप में स्वीकार करो। मेरा गुरु पूर्ण था। लेकिन मुझमें अब तक कुछ अधूरा रह गया था। मैं हर गुरु-द्वैत पर यह भाषण देता था, लेकिन मैं अन्दर 'द्वैत' चोर की तरह छुपा हुआ था। आज तुमने उस चोर को चाबुक से बंधा दिया, कि वह मार दी, कि वह वापस नहीं आयेगा।

वह संन्यासी था—स्वामी विवकानंद। वह राजा था—खेतड़ी का नरेश। और वेश्या सिर्फ वेश्या थी। दुनिया के बाज़ार में चलने वाली आंधी की गर्द।

मगर उस गर्द ने 'संन्यासी' के मन की दौड़ को ख़त्म करके हमेशा के लिए उसे 'अद्वैत' के अचल, अटल और काला-तीत खम्भे से बांध दिया।



### डॉ. जाकिर हुसैन की नौकर को सीख

डा. जाकिर हुसैन के घर एक अघेड़ उम्र का नौकर था। वह प्रतिदिन बहुत देर से सोकर उठता था। इस कारण घरवाले उससे काफी परेशान थे। अंत में उन्होंने उस कामचोर और आलसी नौकर की शिकायत जाकिर साहब से की और उसे निकाल सहर करने को कहा।

इसके उत्तर में जाकिर साहब ने केवल यही कहा, 'उसे समझाओ।' पर बहुत समझाने के बावजूद भी उस पर कोई असर न हुआ।

'अब आप ही समझाकर देखिये उस ढीठ नौकर को!' घरवालों ने जाकिर साहब से निवेदन किया।

अगले दिन सबेरे-सबेरे जाकिर साहब उठे। एक लोटा पानी भरकर उस नौकर के कमरे के पास जाकर खड़े हो गये। नौकर अभी तक गहरी नींद में था। उसे धीरे-से जगाने हुए बोले, 'उठिये, मालिक, सबेरा हो गया। मुंह-हाथ धो लीजिये। मैं अभी आपके लिए चाय और स्नान के पानी का इंतज़ाम करता हूँ।' इतना कहकर वे चले गये।

इधर नौकर परेशान कि हो क्या रहा है! कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा हूँ। वह अभी बैठा-बैठा यह सोच ही रहा था, तभी जाकिर साहब चाय लेकर आते दिखाई दिए। वे आकर बोले, 'मालिक, लीजिये चाय पीकर स्नान करने चलिये।'

नौकर बहुत घबराया। क्षमा मांगते हुए बोला, 'हुज़ूर, आज से मेरे देर तक सोकर उठने की शिकायत किसी को नहीं होगी।'

इस पर जाकिर साहब मुस्करा दिये। अगले दिन सभी घरवालों के आश्चर्य का किला न रहा कि वह नौकर सबसे पहले उठकर घर का सारा काम कर रहा था।

—गौतमकुमार दास





भारतीय कला-इतिहास के महान मर्मज्ञ  
श्री आनन्द कुमारस्वामी का लेख



# कला और स्वदेशी

यह विचारोत्तेजक लेख, भारतीय संस्कृति के उपासक तथा कला-मर्मज्ञ आनन्द के. कुमारस्वामी ने उन दिनों लिखा था, जब हम अंग्रेजों के गुलाम थे। किंतु इसमें उन्होंने भारतीय कला और शिल्प के बारे में जो विचार व्यक्त किये हैं, उनकी प्रासंगिकता आज भी कम नहीं हुई है।

यदि आप कभी हमारे नगरों की उन दुकानों पर जायें, जहां विदेशी

आभूषणों से अलंकृत कच्ची रब्बारी बाला



पर्यटक खरीदारी के लिए आते हैं, तो आप उन दुकानों में पायेंगे—काष्ठ-उत्कीर्णन के थोथे नमूने, पीतल की बनी हल्लियाँ, बेकार चीजें, सस्ती मीनाकारी की वस्तुएं और अत्यधिक अलंकृत कशीदाकारी के नमूने, जिन्हें भारतीय शिल्पकारिता के अपकर्ष का प्रदर्शन माना जा सकता है। जो कभी भारतीय शिल्पियों के लिए वस्तु का विषय थीं, ऐसी वस्तुओं की अद्वैत नकल ही आजकल देखने को मिलती है।

पिछले तीन हजार वर्षों तक भारतीय शिल्पकारिता के मौलिक और उत्कृष्ट नमूने, जो भारतीयों की वास्तविक सम्पत्ति थे, प्रचुरता से भारत के लोगों को ही उपलब्ध नहीं थे, निर्यात-व्यापार के माध्यम से विदेशियों को ही उपलब्ध थे। आज वे नमूने देखने को भी नहीं मिलते, और जब मिलते भी हैं, तो उन्हें 'पुरातन'



में कहकर कबाड़खाने में डाल दिया जाता है। लेकिन अमरीकी और जर्मन गारवी उन्हें खरीद कर ले जाते हैं, अपने संग्रहालयों की शोभा बढ़ाने के लिए, और यूरोपीय शिल्पकारों को अभि-  
 स्मना का प्रशिक्षण देने के लिए। उनके जर्नल 'जर्नल ऑफ इंडियन आर्ट' जैसे प्रतिष्ठित पत्रों में प्रकाशित होते हैं, और नाना तथा शिल्पकारिता के प्राध्यापक प्रशिक्षण में उनका प्रयोग करते हैं। इसका कारण यह है कि यद्यपि पश्चिम के व्या-  
 पारीकरण ने शिल्पकार की सर्जन-क्षमता को कभी का नष्ट कर दिया है, तो भी इस तक यह भारत में अक्षुण्ण था, और शिल्पिक रूप से वह आज भी जीवित है।

प्रबल सौंदर्य

भारतीय डिजाइन (अभिकल्पना)

शिल्पकारशील प्रतिभा का अक्षय भंडार

है। मगर क्या, आपने कभी इस बात पर

चिन्ता किया है कि यह प्रतिभा अतीत के

काल की सम्पत्ति थी, और आज के

काल में, आंग्लीयता के रंग में रंगे

काल ने न रोमांस को जन्म दिया है, न

रंगों को। इतना ही नहीं, उसने हमारे

शिल्पिक सौंदर्य और रोमांस को भी

नष्ट करके रख दिया है। किसी भी

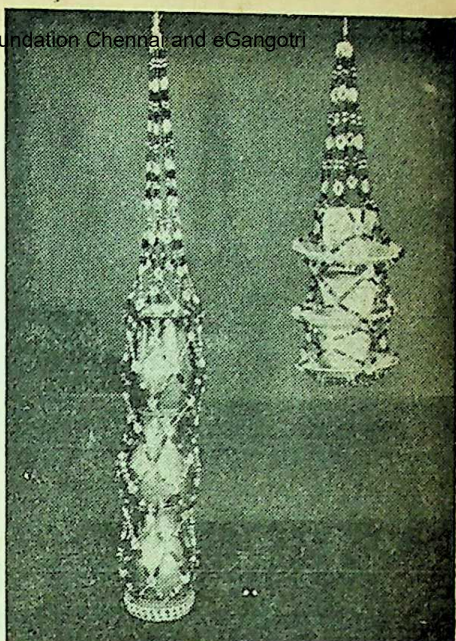
दुकान में चले जाइये, आपको

हिन्दु भारतीय आविष्कारशील प्रतिभा

का सुज्ञित किसी भी कृति के दर्शन न

मिले। न महीन बुनावट वाली रेशम, न

लकड़ों के बढ़िया डिजाइन के वे वर्तन,



कच्छ के घरों में लटकते मोती के छोके जिनमें हमारे पूर्वज कभी खाया-पिया करते थे, न वे कालीन, जिन पर वे नंगे पांव चला करते थे, न वे चित्र, जो उन्हें राधा के प्रेम या हिमाच्छादित चोटियों के दर्शन कराते थे। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं मिलेगी, जिसे हमारे प्राचीन शिल्पकार हमारे पूर्वजों के प्रतिदिन के प्रयोग के लिए बड़े चाव से बनाया करते थे।

आज आपको ऐसी कोई प्राचीन वस्तु देखने को शायद ही मिले, मगर ऊंची कीमत और नीची गणवत्ता वाली ऐसी वस्तुएं अवश्य मिल जायेंगी, जो पश्चिम की मशीनें धड़ाधड़ बनाती रहती हैं, एक से नीरस डिजाइन में। आपको मलिन 'ग्रे' रंग की शर्टिंग मिल जायेगी, या एनिलीन और अस्थायी रंगों में रंगी

हिंदी डाइजेस्ट



वस्तुएं। या इन्द्रधनुषी रंगों में रंगे सफ़री ट्रंक, जो छह महीने भी नहीं चलते। सौंदर्यविहीन बूट पालिश, 'मार्किंग इन्क', साबुन, फाउन्टेन पैन आदि। हमारे राजनीतिज्ञ और अर्थ-शास्त्री जिस समृद्धता की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयास करते रहते हैं, यह उसी भौतिक समृद्धि की एक बाहरी निशानी है। मैं आगे चलकर यह दिखाने का प्रयास करूंगा कि कैसे इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो रही है, मगर इस बीच आइये इस मामले को एक अन्य दृष्टिकोण से देखें।

आप इस विचार से तो परिचित होंगे ही कि राष्ट्रीयता का सर्वोच्च आदर्श है-सेवा। क्या आपने कभी इस बात पर गौर किया है कि राजनैतिक और आर्थिक

दृष्टि से स्वतंत्र भारत, जिसकी आत्मा अभी तक पश्चिम के वश में है, को भी ऐसा आदर्श नहीं माना जा सकता, जिसके लिए जिया या मरा जा सके, या जिसकी सेवा या सपना देखा जा सके। जैसा कि भारत के एक प्रेमी अंग्रेज ने लिखा है, 'आधुनिक शिक्षा और व्यापार के कारण असम्यक् बना भारत कभी सौंदर्य में रुचि रखने वाले भारत का स्थान नहीं ले सकता।'।

क्या आपने कभी उन पाश्चात्य कलाकारों के बारे में सोचा है, जो यह मानते हैं कि 'पाश्चात्य कला में नयी प्रेरणा पूर्व से ही आयेगी।' क्या आपने कभी इस बात पर ध्यान दिया है कि भारत कला के क्षेत्र में शीर्ष स्थान पर तब था, जब

**कच्छ के एक ग्रामीण घर का भीतरी भाग : अलमारी के आसपास दीवार पर अंकित मिट्टी के उभरे हुए शिल्पांकन तथा चित्र**







### एक वस्त्र-खंड पर अंकित बीस भुजाओंवाली देवी 'विशत' महिषासुर का वध करती हुई (अहमदाबाद)

दृष्टिया की महान राजनैतिक शक्ति  
शेन उससे प्रेरणा प्राप्त करता था। क्या  
आपको कभी ऐसा लगा है कि अपने  
परिवेश और जीवन को सुंदर बनाना  
आपके लिए उतना ही आवश्यक है, जितना  
एक नैतिक बनाना। सच तो यह है कि  
सौंदर्य के बिना नैतिकता संभव नहीं, और  
नैतिकता के बिना सौंदर्य संभव नहीं।  
नैतिक आदर्श से काम नहीं चलेगा

बपने चारों ओर देखिये। आपको  
क्याही देगा, आधुनिक भारत असम्भ्य  
है, पर्यटकों की खुशी की खातिर  
सब अपनी कला का दुरुपयोग किया है।  
पेट्री के तेल के टिनों का इस्तेमाल हम  
सो लाने के लिए करते हैं, हम अपने  
प्रतिबिम्बक जैसा बना देने वाली यूरोपीय  
कला पहनते हैं, हमारे घर जिनकी

शैली बैरकों और समुद्रतट पर बने होटल  
के कमरों की, मय उनके नकली फूलों  
और झाड़-फानूसों के, शैली के बीच की  
भट्टी और बनावटी शैली है। हारमोनियम  
और ग्रामोफोन के प्रति हमारा लगाव  
'हमारी आत्माओं की किसी शक्तिशाली  
दुष्टता' का बाहरी और घृणित लक्षण है।

हमें यह मानना होगा कि मध्ययुगीन  
और शास्त्रीय संस्कृति की अभिरुचि का  
परित्याग हमारी कमजोरी का लक्षण है,  
शक्ति का नहीं। हमें यह भी मानना होगा  
कि भारत का पुनरुत्थान कला द्वारा ही  
संभव है, मात्र राजनीति या आर्थिक उन्नति  
द्वारा नहीं। किसी विशुद्ध भौतिक आदर्श  
के पीछे भागने से हम एक महान राष्ट्र की  
स्थापना नहीं कर पायेंगे। उसके लिए हमें  
स्वप्नद्रष्टाओं, शहीदों और कलाकारों के  
'असंभव' आदर्श की जरूरत पड़ेगी।



हमारे जीवन से सौंदर्य के लोप हो जाने के सीधे-सादे अर्थ यह हैं कि हम भारत से प्रेम नहीं करते। गुजरे जमाने में भारत ही अकेला देश था, जो सौंदर्य का प्रेमी था। यह हमारे राष्ट्रीय आंदोलन की कमजोरी है कि हम भारत से प्रेम करना भूल गये हैं। हम प्रेम करते हैं, इंग्लैंड के उपनगरों से, वहां की उस आरामदेह, बुर्जुआ समृद्धता से, जो हमारी आकांक्षा है। हम यह आशा करते रहते हैं कि जब हम विज्ञान के क्षेत्र में काफ़ी प्रगति करके और अपनी कला को भूलकर व्यापारिक क्षेत्र में पश्चिम का मुकाबला करने लगेंगे, तब हम भी पश्चिम के समान ही समृद्ध हो सकेंगे। लेकिन, राष्ट्रों का पुनरुत्थान इस ढंग से नहीं होता।

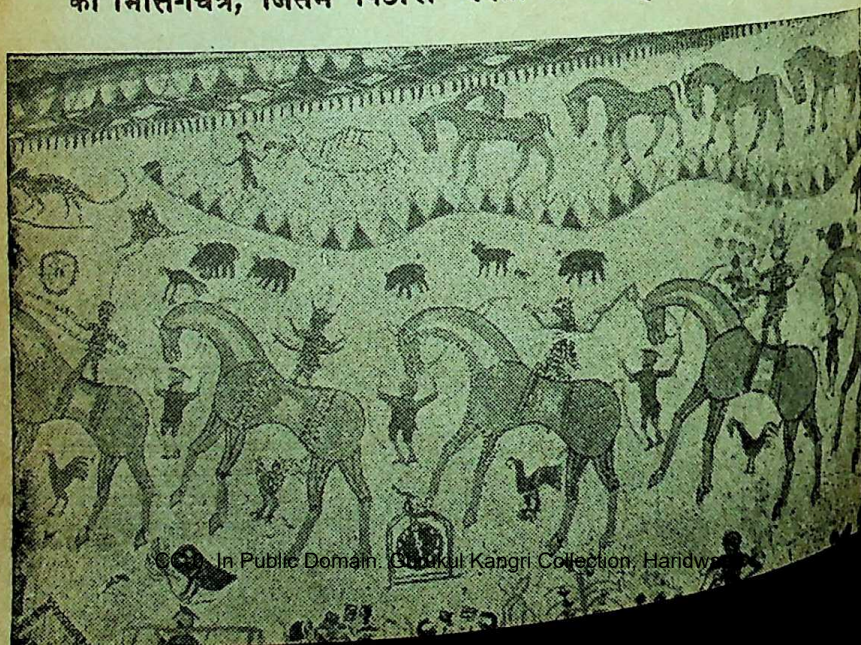
तो, श्री हैवल के शब्दों में मैं आपसे कहना चाहता हूं, 'अपनी कला और

अपने उद्योगों को पुनरुज्जीवित करने के लिए सरकार पर आश्रित रहना छोड़िये; इस संबंध में जो आवश्यक है, आप स्वयं कर सकते हैं; और जिस दिन आप ऐसा कर सकने में समर्थ हो जायेंगे, उस दिन कोई सरकार आपको उन राजनैतिक अधिकारों को, जो आप चाहते हैं, देने से इंकार नहीं कर पायेगी। कारण आपकी कलात्मक क्षमताओं का विकास भारत को वह सर्जनात्मक बल भी वापस दे देगा, जिसे वह खो चुका है। ऐसा विकास आप सब भारतीयों को उस व्यावहारिक बुद्धि और सुव्यवस्था की भावना से आप्लावित कर देगा, जिसकी आप में कमी है।'

**आदर्श की व्यावहारिकता**

और, अब हम इस समस्या के व्यावहारिक पक्ष की ओर आते हैं, बर्धात हमें यह सिद्ध करना है कि हर स्थिति में

**छोटा उदयपुर की 'राठवा' आदिवासी जाति के एक धार्मिक अनुष्ठान का भित्ति-चित्र, जिसमें 'पिठोरो' देवता का विवाह-समारोह अंकित है**





करते हैं  
छोड़िय;  
आप स्वयं  
आप ऐसा  
उस दिन  
राजनीतिक  
हैं, देने से  
ण आपकी  
भारत को  
स दे देगा,  
विकास आप  
रिक बुद्धि  
आप्तावित  
मी है।

के व्याव-  
हृत्य, अर्थात्  
स्थिति में

ठान  
त है



कार्य के पालन से बेहतर व्यावहारिकता  
ही हो सकती। भारतीय उद्योगों की  
प्रगति का सबसे बड़ा कारण यह है कि  
उत्पत्ति अपनी कलात्मक सूक्ष्मबुद्धि को खो  
रहा है, और उनके पुनर्जीवन की सब  
प्रयत्नवाओं को समाप्त कर दिया है।  
राष्ट्रीय संगीत की उपेक्षा करके हमने  
राष्ट्रीय वाद्य-यंत्रों का निर्माण करने वाले  
शिल्पियों से उनकी जीविका का एकमात्र  
स्रोत छीन लिया है। अपने वाद्य-  
यंत्रों के स्थान पर हम आज १५ लाख के  
विदेशी वाद्य-यंत्रों का आयात करते हैं,  
जिनसे हमें दुहरी हानि होती है—भौतिक  
हानि और आध्यात्मिक हानि। विदेशी  
वाद्य-यंत्रों को खरीदने में जो पैसा लगता  
है, उसकी हानि तो होती ही है, अपने  
शिल्पियों के हुनर की हानि भी होती है।  
प्रति वर्ष हारमोनियमों और ग्रामो-  
फोनों पर वर्ष में एक करोड़ खर्च करने में  
लगे हो भी जायें, तो भी शिल्पियों के  
हुनर की हानि तो रहेगी ही।  
ग्रामीण बुनकरों की भी यही स्थिति  
है। हमने अपने बुनकरों के डिजाइनों  
को नेवरज्जक रंग-संयोजन को समझने  
में सफल नहीं किया है, और इसका  
परिणाम यह हुआ है कि उनकी रोज़ी  
कमाई अब नहीं रहा। अब बुनकरों  
को अपने पेट पालने के लिए कृषि या  
दूसरी जैसी धंधों पर, जहां पहले ही  
काम भड़-भाड़ और प्रतियोगिता है,  
लगना पड़ता है। यह हमारी



एक वस्त्र खंड पर अंकित देवी 'बहुचरा'।

अहमदाबाद

उसी नीति का दुष्परिणाम है, जिसका  
जरिये हम भौतिक उन्नति और प्रगति को  
ही सर्वोपरि मानते हैं, और शिल्पकारों  
की हस्तकला की उपेक्षा करते हैं; मशीनी  
उत्पादनों को हाथ से बनी चीजों से बेहतर  
मानते हैं। हम बुनकरों को उनका रोज़-  
गार वापस देने के स्थान पर, बच्चों और  
बड़ों को गंदे और घुटे स्थानों पर लम्बे  
समय तक मेहनत करने को बाध्य करते हैं।

हमारी इस अदूरदर्शी नीति के कारण,  
हमारे औद्योगिक नगरों की जनसंख्या  
बढ़कर छह सौ साल पहले के इंग्लैंड और  
वेल्स की जनसंख्या के बराबर हो गयी  
है। मगर इन नगरों में रहने वाले मज-  
दूरों की हालत पश्चिम के मजदूरों से कहीं  
खराब है, उनके घर बहुत गंदे हैं और  
उनका भविष्य मध्ययुगीन नगरों में रहने  
वाले लोगों के भविष्य से कहीं ज्यादा  
निराशाजनक है। हमें अंग्रेजों की जीवन-  
शैली अपनाने की स्पर्धा नहीं करनी  
चाहिये, क्योंकि आंकड़ों के अनुसार दस  
में से एक अंग्रेज की मृत्यु जेल, पागलखाने  
या फैक्टरी में होती है। इसलिए अस्थायी

हिंदी डाइजेस्ट



राजनैतिक प्रबंध में अपनी शक्ति कम करना उचित नहीं; भारतीय कला और शिल्प को पुनः प्रतिष्ठित करके हम अपनी आधुनिक कला, शिल्प और जीवन-शैली को एक सुदृढ़ और स्थायी आधार प्रदान कर सकेंगे। कारण असुंदर वातावरण में सुंदर वस्तुओं का निर्माण कैसे कर सकेंगे ?

**सौंदर्य-विहीन उद्योग क्रूरता से कम नहीं**

एक और ठोस उदाहरण लीजिये। एक ज़माना था, जब मिर्जापुर के कालीन अपने स्थायी, चटक रंगों के लिए मशहूर थे, मगर आज उन्हें घटिया रंगों और डिज़ाइन वाले कालीन समझा जाता है। इसके लिए विदेशी कालीनों का प्रचलन जिम्मेवार है। उनके कारण हमारे कालीन-उद्योग का विकास भी रुक गया। यदि इसका समुचित विकास हुआ होता, तो आज उनके बनाने वालों की रोज़ी क़ायम रहती, और उनका निर्यात करके हम विदेशी मुद्रा भी अर्जित कर सकते थे। इस उद्योग की दुर्दशा के लिए हमारी कुरचि और कलात्मक सूझबूझ की कमी को ही जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। बिना इस सूझबूझ के हम पश्चिम से स्पर्धा नहीं कर सकते। स्पर्धा मूल्यों के आधार पर नहीं, गुणवत्ता के आधार पर होनी चाहिये। हमें याद रखना होगा कि सौंदर्य-विहीन उद्योग क्रूरता से कम नहीं।

स्वदेशी की उपयोगिता एक राजनैतिक हथियार से कहीं ज़्यादा है। इसे हमारा धार्मिक और कलात्मक आदर्श भी होना

चाहिये। मैंने अपने कई राष्ट्रवादी नेताओं को त्याग की भावना के साथ स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने की उद्घोषणा करते सुना है। स्वदेशी को त्याग की भावना के साथ जोड़ना मेरे लेखे शर्म की बात है।

यदि आज भी हम अपने शिल्पकारों को अवसर और काम करने की पूरी आज़ादी दें, तो वे ऐसे सुंदर वस्त्र, कम मूल्य पर तैयार करके दिखा सकते हैं, जिनकी कल्पना भी पश्चिम नहीं कर सकता। हम चाहें तो आज भी अपने देश में सर्वसत्तासंपन्न प्रभुओं की भांति रह सकते हैं, मगर हम विदेशी वस्तुओं के मोह में रहते हैं। हमारी अर्थव्यवस्था के पतन का यही कारण है।

इसलिए मैं अपने देश के संपन्न व्यक्तियों से कहूंगा कि वे दो सौ रुपये की सस्ती भड़कीली विदेशी साड़ी खरीदने के स्थान पर ढाई सौ रुपये की बनारसी साड़ी खरीदेंगे, तो स्वदेशी को बेहतर ढंग से प्रोत्साहित कर सकेंगे। यह २५०० रुपये लगाकर निब, कपड़ा जैसी 'लाभदायक' वस्तुओं के उत्पादन करने वाली फैक्टरी के निर्माण से कहीं बेहतर होगा।

इस नीति को अपनाने से निर्धनों को भी उसी अनुपात से लाभ होगा, क्योंकि जैसा कि अग्नि-पुराण में कहा गया है 'छोटे से छोटा मंदिर बनाने वाला निर्धन व्यक्ति बड़े से बड़ा मंदिर बनाने वाले धनी के समान पुण्यवान् और यशस्वी होता है।'।

राष्ट्रीय सम्पत्ति की दृष्टि से भी हमें



रचना होगा, कुछ स्थायी वस्तुओं का स्वामित्व उन अनेक वस्तुओं के स्वामित्व के गुणन का नाम नहीं है, उन इच्छाओं की गुणवत्ता की परिशुद्धता का नाम है।  
ऐसा भवन-निर्माता, जिसके द्वारा निर्मित भवन पांच सौ वर्षों तक बना रहेगा, राष्ट्रीय संपत्ति की वृद्धि में उस भवन-निर्माता से अधिक योगदान देता है जिसका भवन पचास वर्ष बाद ही ढह जाता है। वह बुनकर राष्ट्र के लिए अधिक मूल्यवान् है, जिसके बुने वस्त्रों को परंपरा सदियों तक अक्षुण्ण रहती है, उस बुनकर की अपेक्षा, जिसके बुने वस्त्र कुछ वर्षों में ही फेंक दिये जाने योग्य

ही जाते हैं। सम्यता हमारी इच्छाओं के गुणन का नाम नहीं है, उन इच्छाओं की गुणवत्ता की परिशुद्धता का नाम है।  
लेकिन हम कला को महज इसलिए प्रेम न करें कि उसके जरिये हम समृद्ध होंगे, बल्कि इसलिए प्रेम करें कि वह हमारे उच्चतर जीवन का एक अंग है, एक द्वार है, जिसमें से होकर हमारे विचार अदृश्य से दृश्य की ओर गुजरते हैं, स्रोत है उन स्वप्नों का, जो हम भारत राष्ट्र के संबंध में देखते हैं, दाता है सौंदर्य-निधि की, न केवल भारत के लिए, बल्कि सारे विश्व के लिए।

[ इस लेख के संपूर्ण छायाचित्र डॉ. ज्योतींद्र जैन के सौजन्य से ]



### जब एक पतिंगे ने महारानी की जान बचायी

घने कोहरे को तेजी से चीरती हुई एक्सप्रेस ट्रेन लंदन की ओर बढ़ रही थी। गाड़ी में महारानी विक्टोरिया भी थीं। सहसा ड्राइवर को लगा कि दूर कोई दैत्याकार व्यक्ति अपनी लंबी बांहें फैलाकर गाड़ी रोकने के लिए इशारा कर रहा है। गाड़ी रुक गयी।

ड्राइवर और गाईड दोनों रहस्य की जानकारी प्राप्त करने के लिए गाड़ी से उतर गये। लेकिन तब तक दैत्याकार व्यक्ति गायब हो चुका था। आगे बढ़कर जांच करने के बाद कारण ज्ञात हो गया। दो सौ गज आगे एक नदी का पुल टूट गया था।

यह समाचार सुनकर महारानी विक्टोरिया ने प्राण बचाने वाले व्यक्ति को खोजने का आदेश दिया, पर वह कहीं नहीं मिला। पुल की मरम्मत होने के बाद गाड़ी वापस आयी। लंदन में नियमानुसार जब इंजन की जांच होने लगी तब रहस्य खुल गया। गाड़ी की सर्वेलाइट में एक बरसाती पतिंगा फंस गया था। घने कोहरे में वह अपने पंखों को फैलाकर सर्वेलाइट के सामने आ रहा था, तब ड्राइवर को उसकी मूर्ति दैत्याकार और उसके पंख लंबे हाथ जैसे दिखाई दिये थे।

महारानी विक्टोरिया के आदेशानुसार उस कीड़े को ब्रिटिश म्यूजियम में रखा गया।

—कमल सौगानी





अति क्रान्ति-चेतना की शीर्षस्थ आधुनिक अमरीकी कथाकार जॉयस कैरल ओट्स का एक दस्तावेजी और युगान्तरकारी लेख, जिसमें मानव-चेतना के सूर्योदयी रूपान्तर का विज्ञान प्रस्तुत किया गया है, और जिसके प्रकाशन से अमरीकी साहित्य जगत में एक 'रिनेसाँ' (नवोत्थान) घटित हुआ है।



## नया स्वर्ग और नयी पृथ्वी

एक जमाना था जब अमरीका की बहु-प्रशंसित और बहु-पुरस्कृत लेखिका जॉयस कैरल ओट्स भयंकर अवसाद से ग्रस्त थीं। लेकिन, आज उस अवसाद का स्थान उत्साह आशावाद ने ले लिया है। उन्हें आशा है कि उनकी कल्पना का मानव एक नये मानवतावादी और सर्वेश्वरवादी के रूप में विकसित होगा, और उसकी प्रज्ञा, उसकी समझ, उसके अपने 'स्वत्व', सारे विश्व के हो जायेंगे। इस नये मानव की चेतना किसी विशिष्ट विचारधारा से बंधी नहीं होगी। वह यदि बंधेगी तो लोकतंत्रीय आदर्शों से, समानता के आधार पर गठित समुदायों से ही।

**आ**ज सभ्यता की जो अवनति दिखायी देती है, उसे मैं आत्मनाश या पागलपन के उद्धार का चिह्न नहीं मानती। यही मानती हूँ कि जीवन के पुराने रूप-विधान खंडित हो रहे हैं। यह प्रक्रिया नितांत स्वाभाविक और अपरिहार्य है।

मेरे अपने देश अमरीका में आतंक का जो नंगा साच दिखाई देता है, उसे भविष्योद्घोषी मानना गलत होगा। संक्रमण के इस संकट-काल को किसी विकट अंत की शुरुआत मानना, चेतना के स्वाभाविक

और विकसीय परिवर्तन की गलत व्याख्या होगी।

'फिनांम्डनेन ऑफ मैन' में उसके लेखक तिलहार्द द चादिन ने इस प्रक्रिया को सही परिप्रेक्ष्य में देखते हुए लिखा है 'प्रत्येक क्षेत्र में जब कोई वस्तु एक सीमा विशेष का अतिक्रमण कर देती है, तो वह अपना स्वभाव, अपनी अवस्था और आकृति बदल देती है। उसका बाह्य रूप एक बिंदु के रूप में सीमित-संकुचित हो जाता है, उसकी घनाकृति विघटित हो



कयाकार  
गरी लेख,  
न प्रस्तुत  
हृत्य जगत

होती है, तरलता खोलने लगती है, और  
तथ्यों के ढेर में से सहसा फट  
पड़ती है। ... विकास के दौरान, क्रान्तिक  
चिह्न निकट आ जाते हैं।'  
'दलस' नामक अपनी कविता में डी.  
एच. लॉरेन्स इन शब्दों में 'स्व' का ही नहीं,  
युग का भी वर्णन करते हैं, जिसमें  
दू बीता और विकसित होता है :  
'सर्वनात्मक विराम आते हैं,

वह और अपरिहार्य था। और यदि हम  
नवचेतना के युग के आगमन के पूर्व की  
गयी, आसन्न सर्वनाश संबंधी भविष्य-  
वाणियों को याद कर सकें, तो यह देखकर  
चकित रह जायेंगे कि उनमें और आज जो  
आने वाले सर्वनाश के बारे में भविष्य-  
वाणियां की जा रही हैं, कोई विशेष अंतर  
नहीं है। दोनों सदियों के घटनाक्रम में  
न केवल काफी समानता है, एक काव्यात्मक



खिका जाँयस  
म्यान उत्साहो  
नये मानवता-  
समस, उसके  
शशिष्ट विचार-  
नता के आधार

गलत व्याख्या

न' में उसके  
ने इस प्रक्रिया  
हुए लिखा है  
स्तु एक सीमा  
र देती है, जो  
की अवस्था और  
उसका बाह्य स्वरूप  
मत-संकुचित हो  
ते विघटित हो  
विलीन

ऐसे विराम जो मृत्यु सरीखे लगते हैं,  
मृत्यु जैसे खोखले और निर्जीव।  
और, इन्हीं डरावने विरामों में  
विकासात्मक परिवर्तन जन्म लेते हैं।'   
'परमात्मा-केंद्रित और परमात्मा-निर्दे-  
शित मध्ययुगीन विश्व ने जब नवचेतना के  
युग में प्रवेश किया था, तब उसे जिस  
संक्रमण-काल से गुज़रना पड़ा था, वह  
युग के संक्रमण-काल के समान ही भया-

घनिष्ठता भी है।

कोई अन्त्य दृष्टिकोण नहीं

मुझे लगता है कि आज सब देशों में  
अमरीका पहला देश है, जिसे नवचेतना  
की प्रसव-पीड़ा के दौर से गुज़रना पड़  
रहा है। यह एक तरह से लाज़िमी भी था;  
क्योंकि अमरीका विश्व के अन्य देशों की  
अपेक्षा अधिक संवेदनशील, जीवंत, ऊर्जस्वी  
और अपनी नियति तथा अपने इतिहास

हिंदी डाइजेस्ट





### जॉयस कॅरल ओट्स

के प्रति अधिक अभिभूत है। आज वह ऐसी उन्नत अवस्था में पहुँच चुका है, जहाँ प्रतिबंधित आवाजें फिर सुनायी पड़ने लगी हैं और कोई अन्त्य दृष्टिकोण अब अन्त्य दृष्टिकोण नहीं रहा।

अमरीका के तात्कालिक संकटों को गलत रूप में पढ़ना बहुत आसान है। उसकी चेतना में काले लोगों, महिलाओं और युवा-वर्ग जैसे विषम वर्गों के कारण जो स्वतःप्रवर्तित विस्फोट हो रहे हैं, उनसे भयभीत होने की आवश्यकता भी नहीं है। कुछ श्रेष्ठतम अमरीकी लेखकों और कवियों का सामूहिक वर्तमान अमरीकी दुःस्वप्नों को जिस ढंग से निरासित कर

रहा और नाटकीय बना रहा है, उसकी सहज उपेक्षा भी संभव है।

यद्यपि आज कई चोगी के सज्जनशील अमरीकी कलाकार विघटन और वियुक्त अहम् से अभिभूत हैं, तथापि अब तक यह स्पष्ट हो चुका है कि वे संवासा की विभिन्न कोटियों में एक ही बात को दोहरा रहे हैं—हम निस्सहाय हैं, किसी सामाजिक या सांस्कृतिक इकाई से नहीं जुड़े हैं, इतिहास की दिशा को बदलने में असमर्थ हैं, और एक दूसरे को कुछ संचारित नहीं कर पाते। परिणामस्वरूप लगता है, जैसे एक ही स्वर सुनायी पड़ रहा है; हम किसी सांप्रदायिक मनोविश्लेषण की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं।

लेकिन, प्रत्येक लेखक के जीवन-काल में एक ऐसा अनुभव अवश्य आता है, जब उसे लगता है कि वह न चाहते हुए भी अपने लेखन में अनेक स्वरों को अभिव्यक्त कर रहा है, उसका कथा-साहित्य अनेकानेक कथा-साहित्यों में से एक है, और प्रत्येक गंभीर कथा, जो कुछ दुनिया में हो रहा है, उसी को अर्थ-बोध के साथ नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करती है।

क्या आप मानव की नयी कल्पना के लिए तैयार हैं, या उससे भयभीत हैं? एक सामान्य परीक्षण से आप इस प्रश्न का सही उत्तर पा सकते हैं। कल्पना कीजिए, कि आप आकाश में इतनी ऊँचाई पर हैं कि आप नीचे दिखाई पड़ रही भीड़ के किसी व्यक्ति को स्पष्ट नहीं पहचान पा



है, उसकी

सर्जनशील

और विद्युत्

वत् तक यह

की विभिन्न

धारा रहे हैं-

माजिक या

हैं, इतिहास

पर्य्य हैं, और

कर पाते।

से एक ही

किसी सांप-

र्या से गुजर

जीवन-काल

माता है, जब

होते हुए भी

को अभिव्यक्त

है, अनेक-

क है, और

दुनिया में हो

क साथ नाट-

है।

की कल्पना के

अभ्यधीन है?

गप इस प्रश्न

ल्पना कीजिये,

ऊंचाई पर हैं

रही भीड़ के

पहचान पा

दिग्दर्शक

है। तभी आपका मन करता है कि  
बैचे उतरकर भीड़ में शामिल हो जायें।

होती कल्पना करते समय, आपको कष्ट  
हुआ या हर्ष?

**स्वचेतना का आदर्श**

हमें से अधिकांश के आंतर में नव-  
चेतना का आदर्श आज भी अत्यंत शक्ति-  
शाली है। निरंकुश है उसका स्वर—‘मैं  
रूंगा, मैं चाहता हूं, मैं मांग करता हूं,  
मैं सोचता हूं, मैं हूं।’ यह स्वर कहता है कि  
हम पूरी तरह सर्वशक्तिमान नहीं हैं,  
किंतु अपने व्यवहार से हमें ऐसा ही दिखाना  
है कि हम सचमुच सर्वशक्तिमान हैं। ऐसा  
कते समय, हमारी टक्कर अनिवार्यतः  
प्रकृति अथवा दूसरे ऐसे लोगों से अवश्य  
होगी, जो हमारा प्रतिरोध करेंगे, हमें  
टक्करना चाहेंगे, मगर हमें इन पर विजय  
पाने है। ‘मैं बना रहूंगा’ के अर्थ सिर्फ़  
इमे ही है कि ‘मैं अपनी इच्छा दूसरों पर  
रोपूंगा।’

पिछले नवजागरण-काल में, मानव ने  
सबसे इसी आग्रह के वशीभूत होकर,  
सबसे बुद्धि के बल पर प्रकृति पर विजय  
पाने की थी। इस काल ने अपने आवश्यक  
अवस्था में एक छलांग लगायी थी, और  
मानव विकास करने के साथ-साथ मशीनों  
का विकास भी किया था, उन मशीनों  
का जो न ‘अप्राकृतिक’ हैं, न ‘खराब’,  
बल्कि मानव-बुद्धि का विस्तार ही हैं।  
और यद्यपि मेरे कलाकार मित्र मेरी इस  
तर्क से सहमत नहीं होंगे, तथापि मैं कहना

चाहूंगी कि सर्जनात्मक कल्पना की कृतियों  
के रूप में उनका दर्जा कलाकृतियों के  
बराबर ही है।

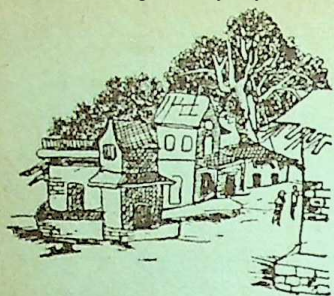
यदि प्रौद्योगिकी ने सभ्यता को अमान-  
वीय बना दिया है, तो इसे उसकी अस्थायी  
असफलता या चूक मानकर क्षमा किया  
जा सकता है। कारण, प्रौद्योगिकी का  
उद्देश्य मानवीय प्रगति में सहायक होना,  
और उसकी प्रत्येक संभावना को पूर्णता  
प्रदान करना ही है। जो यह कहता है कि  
मशीनों के कारण हम ग्रोम्य-जीवन से  
कट गये हैं, वह यह नहीं जानता कि प्रकृति  
के बीच रहने वाला मानव कभी ‘प्राकृतिक’  
नहीं हो पाता, क्योंकि उसे अपनी मान-  
वीयता और नैसर्गिकता बनाये रखने के  
लिए सदा प्रकृति से जूझना पड़ता है।

**मशीन से अध्यात्म तक**

मशीन के सचेतन नियंत्रण द्वारा ही  
(अर्थात् मानव-मस्तिष्क के माध्यम से ही)  
मानव प्रकृति के साथ अपने दयनीय संघर्ष  
से परे जा सकता है। बुद्धि की सहायता से  
वह फसलों को नष्ट करने वाली ओला-  
वृष्टि, रक्तधारा को दूषित करने वाले  
घातक जीवाणुओं और कमजोर निगाह  
जैसी आम शिकायतों पर विजय पा सकता  
है। मशीन ही मानव को अधिक आध्या-  
त्मिक और अधिक मानवीय बना सकती  
है। बहुत कम अमरीकियों ने इस सच्चाई  
को जाना है, नहीं तो प्रौद्योगिकी को, आम  
तौर पर बेकार और भ्रष्ट माना जाता है।  
यदि हमारे पूर्वजों के पास दियासलाई

**हिंदी डाइजेस्ट**





होती, तो वे उसका दुरुपयोग कर, या तो स्वयं नष्ट हो जाते, या अपने आसपास की चीजों को नष्ट कर देते। लेकिन, हम आज जानते हैं कि आग सभ्यता के लिए कितनी हितकारी सिद्ध हुई है।

नवजागरण-काल के मानव ने मशीनों का आविष्कार कर, उन्हें पूर्णता प्रदान करने का जो प्रयास किया, वह समय की चेतना या अचेतन मांग के अनुकूल ही था। यह मांग थी, अपने परिवेश पर आधिपत्य की, प्राकृतिक शक्तियों का आवश्यकतानुसार, प्रयोग करने की, और स्वयं अपने अहम् पर विजय पाने की, ताकि उसे सब कुछ का विजेता बनने का गौरव प्राप्त हो सके।

आधुनिक संस्कृति का आदर्श-व्यक्ति वह उद्योगपति, वह 'निलिप्त' वैज्ञानिक और साहित्यकार है, जो अपनी सत्ता के हर पहलू पर विजय प्राप्त कर ले, अपनी नैसर्गिक प्रवृत्तियों का या तो उन्मूलन कर दे, या उन्हें अपने वश में कर ले। जो ऐसा कुछ न छोड़े, जिसे जाना न गया हो, जिसकी जगह-पड़ताल न हो चुकी हो, मेरे लेखे, पागलों की नाईं घन बटोरने वाले उद्योग-

पति और अत्यवधानी और निरानंद तरीके से बौद्धिक शोध करने वाले विद्वानों और लेखकों में कोई अंतर नहीं है।

अब वक्त आ गया है कि हम 'उद्योग' या 'विज्ञान' या 'नैगम राज्य' को 'मानवीय' या 'मानवता-विरोधी' कहना बंद करें। मशीनों को जब उसके आलोचक 'शैतानी करामात' कहते हैं, तो मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। हेनरी मेयर अमरीका के एक प्रतिभाशाली लेखक हैं; लेकिन, जब वे भी भविष्य के बारे में दकियानुसी और मध्ययुगीन पादरियों की भाषा में बात करते हैं, ब्रह्मांड को परमात्मा और शैतान के बीच बंटा होने पर जोर देते हैं, तो बड़ा निराश होना पड़ता है। मेयर जैसे लोग उस बूढ़े, दयनीय और पराजयानुमुख अहम् के प्रतीक हैं, जो सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और सर्वजनक चेतना के विरुद्ध व्यर्थ की जंग छेड़े हुए हैं।

**मानवीय अनुभूति की अगली अवस्था**

मानवीय अनुभूति की अगली अवस्था होगी, उसका उच्चतर मानवतावाद की अवस्था की ओर सहज-सरल विकास। संभवतः वह एक अभिन्न सर्वेश्वरवाद का वह रूप भी धारण कर ले, जिसमें ब्रह्मांड की प्रत्येक वास्तविकता (मय उस वास्तविकता के, जो उन्हें देख और अनुभव कर सके) समानाधिकार के साथ मौजूद हों।

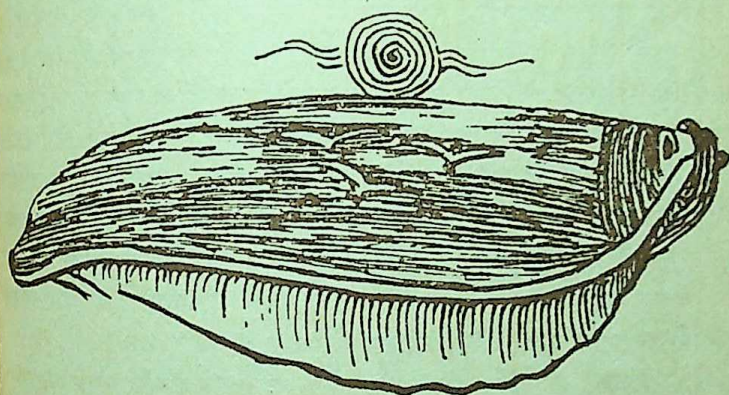
उन मूल्यहीन और 'निष्पक्ष' तत्त्वज्ञानों से मानव अथा चुका है, जो पुराकालीन यथापूर्व स्थिति को बनाये रखना चाहते



नंद तरीके  
द्वानों और  
‘उच्चो’  
को ‘अमान-  
कहना बंद  
आलोचक  
मूझे बड़ा  
अमरीका के  
नेकिन, जब  
मानसी और  
या में बातें  
और शैतान  
हैं, तो बड़ा  
र जैसे लोग  
गोन्मुख अहम्  
वंशशक्तिमान  
रुद्ध व्यर्थ की  
अवस्था  
गली अवस्था  
वतावाद की  
ल विकास।  
श्वरवाद का  
जसमें ब्रह्मांड  
उस वास्त-  
अनुभव कर  
मौजूद हों।  
क्ष’ तत्त्वज्ञानों  
पुराकालीन  
रखना चाहते  
विश्वर

ह उभ गया है, स्वस्थचित्त/ उन्मादी,  
ण, काला/सफेद, मानव/प्रकृति,  
पराजित, मैं—यह जैसे द्विभाजनों  
हैं तो से। मानवीय विकास के अन्वे-  
की आवश्यकता थी, मगर  
न वे लाभदायक हैं, न परिणामवादी।  
वे सच नहीं हैं। आज हम जान चुके  
हमारा मानस सिर्फ हमारा नहीं है।  
प्रज्ञा, हमारी समझ, हमारी चतुराई;

विज्ञान का ही एक अंग है। जिन्होंने इस  
सच्चाई को जाना-समझा है, उनका मान-  
वतावाद ब्रह्मांड में सबको (और सब में  
सब मानव भी शामिल हैं) जैसा है, जहां है,  
रूप में देखता है।’ इसी सच्चाई से परिचय  
हुआ था मानवतावादी मनोवैज्ञानिक  
अब्राहम मास्लो का, जिन्होंने मनोविज्ञान  
के अध्ययन-क्षेत्र को असंतुलित मानव के  
अध्ययन से आगे ले जाकर, सामान्य और  
‘सामान्य से अधिक’ मानवों के, जिनमें



विशिष्ट व्यक्तित्व जितने हमारे  
जितने ही सारी सृष्टि के भी। अब तक  
हमारे को रहस्यवादी कल्पना की संज्ञा  
रही थी, मगर आज यह एक  
सच्चाई बन चुकी है। और यह  
हो अब तक किसी ब्लेक, किसी  
कैप्लेन, किसी लारेंस की अपनी सच्चाई  
याव एक सार्वजनिक सच्चाई बन  
है, ऐसी सच्चाई जो एक क्लॉड लेवी-  
ब्रुहलवाती है कि ‘नृविज्ञान ब्रह्मांड-

विवेकहीन समझे जाने वाले रहस्यवादी  
भी सम्मिलित थे, अध्ययन-क्षेत्र तक  
बढ़ाया। इसी सच्चाई को हृदयंगम किया  
था, बकमिनस्टर फुलर ने, जब उन्होंने उसे  
लुभावने और असाधारण शब्दों में अभि-  
व्यक्त किया, ‘ब्रह्मांड की समग्र अभि-  
कल्पना में मानवीय मन और मस्तिष्क  
दोनों की आवश्यकता प्रतीत होती है।’  
इसी सच्चाई ने जन्म दिया है फ्रायडवादी /  
फ्रायडोत्तर रहस्यवादी आर. डी. लेंग की



इस जोरदार दलील को कि 'सामान्य' और 'अप्रसामान्य' में कोई डाक्टरी या वैधिक विभेद नहीं है। मैंने उस तान्त्रिक 'प्रबोधन' को अनुभव ही नहीं किया है, वरन् मैं उसे वाणी भी प्रदान करना चाहता हूँ, जिसके प्रकाश में मैंने 'स्व' को दूसरों से जुड़ते देखा है।'

ये सभी उद्गार उन मेधावी पुरुषों के हैं, जिनकी शिक्षा-दीक्षा विशुद्ध रूप से वैज्ञानिक और अनुशासनात्मक थी। चूँकि वे उन मतों को अपनी भाषा में व्यक्त कर रहे हैं, जो पहले केवल रहस्यवादी व्यक्त किया करते थे, इसलिए यह सिद्ध हो जाता है कि तर्क / अंतर्ज्ञान का द्विभाजन या तो समाप्त हो गया है या समाप्त होता जा रहा है। कल की उद्दाम, अलंकृत और काव्यात्मक भविष्यवाणियाँ आज के तथ्यपरक कथनों में बदल गयी हैं।

### मन : पदार्थ-जगत् का सर्जक और नियंत्रक

नये मानवतावाद या सर्वेश्वरवाद का सपना असंगत नहीं है, वह जो हम आज जानते हैं, उसी का तर्कयुक्त विस्तार ही है। चूँकि यह सपना हमारी पूर्व-धारणाओं को चुनौती देता है, इसलिए हमें डरावना लग सकता है, किन्तु हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि ये पूर्व धारणाएँ कभी हमारी नहीं थीं। वे हमें उत्तराधिकार में मिली हैं। अब सर जेम्स जीन्स जैसे भौतिकशास्त्री / दार्शनिक और अधिक नयी और गहरी बात कह रहे हैं :

'आज भौतिक-विज्ञानी साधारणतः

इस विषय में एकमत होते जा रहे हैं कि ज्ञान-विज्ञान की धारा एक गैर-यांत्रिक वास्तविकता की ओर प्रवाहित हो रही है। ब्रह्मांड अब एक महान यंत्र के स्थान पर एक महान विचार के रूप में प्रकट हो रहा है। पहले हम मानते थे कि मन पदार्थ की दुनिया में कभी-कभी एक घुसपैठिया की भूमिका अदा करता रहता है, पर अब हमें लगने लगा है कि मन पदार्थ-जगत् का सर्जक ही नहीं, उसका नियंत्रक भी है।

आज हमें हर कहीं नीत्ये की वही पैगम्बरी वाणी सुनायी देने लगी है, जिसमें उसने कहा था कि आदमी को अपने ऊपर विजय पानी होगी, उसे ब्रह्मांड की व्याख्या करनी होगी, उसका सर्जन करना होगा। इस जगत् में जो वस्तुतः चेतना का ही जगत् है, ऊर्जाओं के काम होंगे : एकता की ओर अभिमुख होता और अनेकता में एकता के दर्शन करना।

मगर सहज और सुसाध्य आशावाद भी उतना ही विभ्रान्त कर सकता है, जितना वह शून्यवाद और अवसाद, जो बार-बार दोहराया जाता है, और जो हमें इस संसार के पूर्वार्ध में उत्तराधिकार में मिला था।

पुराने मूल्यों की मरण-पीड़ा हमें चारों ओर नज़र आती है, मगर इस पीड़ा में और कुछ मानवों की मरण-पीड़ा में बहुत अंतर है। जो मानव जानता है, वह अपने को बदल सकता है। मानव को नियति उच्चतर चेतना को पाने की है चेतना के निम्नतर स्तर पर जाना उसकी



नहीं है। हां, आत्म-केंद्रित व्यक्तित्व का उत्तम व्यक्तित्व में परिवर्तन किसी कृत्रिम या जबरन लादी हुई घटना के द्वारा सम्भव नहीं हो सकता, उसके अन्तर्गत किसी स्वाभाविक घटना का होना आवश्यक है। यह विकास ऐसा ही होगा कि किसी पौधे का प्राकृतिक विकास। विकास का रिश्ता न नशीली दवाओं के तंत्र-मंत्र से, और न पूर्व के रहस्य-मंत्र से। राजनैतिक मान्यताओं से भी उस कोई संबंध नहीं है, कारण यह विकास नार्सवादी है, न समाजवादी और न किसी विशेष राजनैतिक विचारधारा से लगे को उत्सुक ही है। यदि उसका संबंध समाज ही हो, तो लोकतंत्र के आदर्शों और समानता के आधार पर गठित समुदायों से ही जोड़ा जा सकेगा। पर, यह समानता आदिकालीन संभ्रांति पर आधारित नहीं होगी।

पिछले दो दशकों से हमें बड़े बेसुरे राग झुंझ रहे हैं। हमें एक दूसरे पर चीखना-फिलाना बंद करना होगा। हमें विभिन्न वर्गों, स्तरों और असमान व्यक्तित्वों में समन्वय स्थापित करना होगा। जो

काफी विकसित हो चुके हैं, उन्हें अपने से कम विकसित व्यक्तियों को अपने स्तर पर लाना होगा, बिना अपना विवेक, संतुलन और अपनी सुस्वस्थता खोये।

इसमें कोई संदेह नहीं कि नयी चेतना-सन्निकट है, किंतु उसे प्राप्त करने में कई पीढ़ियों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

अपनी विचित्र काव्य-कृति 'नया स्वर्ग और पृथ्वी' में लॉरेंस ने एक सवाल उठाया है, जो मुझे उस सवाल के समांतर जाता लगता है, जो यीट्स ने अपनी एक कविता में उठाया है। यीट्स की इस कविता में एक मर्त्य महिला एक अमर शक्ति द्वारा भ्रष्ट होती है। हां, ऐसा होगा, होना ही चाहिये और इससे बचा नहीं जा सकता। लेकिन खास मुद्दा यह है : क्या जब दोनों का संपर्क टूटा, तब उस महिला ने उस शक्ति का ज्ञान भी ग्रहण किया ? लॉरेंस ने उन रहस्यमयी 'हरी जलधाराओं' की बात कही है, जो नयी दुनिया से (नयी आंखों से देखी गयी, हमारे आसपास की दुनिया) बहती है, और पूछती है : 'वे क्या हैं ?' वे कौन से रूपांतरण हैं, जो हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ?



यदि आप पश्चिम के किसी व्यक्ति के बारे में यह जानना चाहते हैं कि वह किस देश का रहनेवाला है, तो उसे किसी लड़की से मिला दीजिये। और देखिये, क्या होता है ! वह वह अंग्रेज होगा, तो लड़की से हाथ मिलायेगा। फ्रांसीसी होगा, तो उसके हाथ का सूत लेंगा। अमरीकी होगा, तो मिलन का समय (डेट) मांगेगा और रूसी होगा, तो शरभकर मास्को से पूछेगा—'इस परिस्थिति में क्या आदेश है ?'

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'





# निर्मल कुमार का पारदर्शी मौलिक चिन्तन



## क्या तृष्णा भी किसी मुकाम पर कल्याणी हो सकती है ?

तृष्णा को भगवान बुद्ध ने दुःखों का कारण कहा है। तृष्णा को नष्ट करके ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। ऐसी धारणा अधिकांशतः लोगों की रही है। पिछली सैकड़ों शताब्दियों में इस धारणा को पोषण मिला हिन्दू, ईसाई, जैन, मुस्लिम, बौद्ध आदि लगभग सभी धर्मों में। संत अगस्टीन, जैन मुनि कालकाचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य, बौद्ध भिक्षु दिग्नाग, मुस्लिम संत सादी, इब्न सिना, जलालउद्दीन रूमी, स्वामी दयानंद, राम-तीर्थ, विवेकानंद आदि सभी ने यही बताया कि तृष्णा को मार देने में ही मनुष्य का कल्याण है।

यह धारणा सत्य के कितने निकट है— इस लेख में हमें इस पर विचार नहीं करना है। हमें यहां सिर्फ यह देखना है कि इस धारणा या विश्वास से मनुष्य जाति का कितना हित हुआ। शायद यह सुनकर काफी धक्का पहुंचे कि इंसान को सर्वाधिक गुमराह करने वाली, उसे तरह-

तरह की जंजीरों में जकड़कर गुलामी से पागल बनाने वाली बेड़ी यही धारणा रही है। इसलिये नहीं कि बुद्ध मानवजाति को गुलाम बनाना चाहते थे, बल्कि इसलिए कि उन्होंने जो कहा उसे गलत समझ लिया गया और राजनीतिज्ञों ने अपने उद्देश्य के लिए उनके विचारों का शोषण किया। उन विचारों को इस ढंग से पेश किया और अपने द्वारा पोषित धर्म प्रचारकों से कराया कि शासकों के उद्देश्य पूरे हो गये और इंसान मर गया।

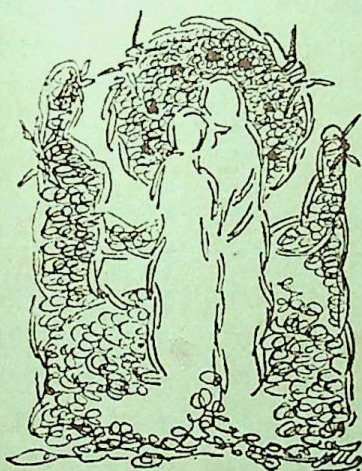
सर्व प्रमुख बात जो ध्यान देने की है, वह यह है कि भगवान बुद्ध ने ये विचार अपने भिक्षु संघ के लिए कहे थे। आनंद, महामोग्गलान और सारिपुत्र जैसे साधक भिक्षुओं को सुनाये थे। वे विचार गृहस्थों के लिए, श्रावकों के लिए नहीं थे। उन भिक्षुओं और शिष्यों का धर्म था कि इन विचारों का गृहस्थीकरण करके ही इन्हें श्रावकों को देते। यह देखते कि वे लोग जो समाज छोड़कर संन्यास धर्म



अपना रहे हैं, क्या यह संभव है कि समाज में रहते हुए, गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए, पूरी तरह तृष्णाविहीन हो जायें? उन्होंने यह सब देखा या नहीं, इतिहास इस विषय पर मौन है। लेकिन मानव आदमी के मानस में, जनमानस में, वह विचार उसी रूप में उतरे हैं, जिस रूप में वे विचार तीर्थंकरों और बुद्धों ने अपने शिष्यों को दिये थे। और जो विचार की उपयोग-

गुलामी से यही धारणा है कि जनमानस में वह विचार किस रूप में आज भी विद्यमान है। शोषण के इतिहास का निष्पक्ष अध्ययन से आसानी से सत्य पता चल सकता है। हम जानना चाहते हैं कि एक जाति के अस्मृति के आधार-

पर क्या है, तो हमें उस जाति के शोषण के इतिहास का क्रमबद्ध अध्ययन करना होगा। क्योंकि हर शोषण के मूल में किसी एक महापुरुष द्वारा दिया गया कोई एक सत्य या मूल्य है। शोषण करने वाले शोषकों ने उस सत्य को कुछ इस तरह उस जाति के मनस में फंसा दिया है कि आज तक उस जाति की धार बह रही है कि उस जाति को चूसा जा रहा है।



जब भी एक महान् सत्य पैदा होता है, तभी एक महान् शोषक भी पैदा होता है। वह शोषक उस महान् विचार को ही एक दरवाजा बनाने में कामयाब हो जाता है अपने शोषण कार्यों के लिए।

तृष्णा संबंधी बुद्ध के इस महान् विचार का भी जमकर शोषकों ने इस्तेमाल किया है। यह बात जल्दी जन मानस और उससे टपकते खून से आज भी प्रकट है। इस

जल्म को दूर करने के लिए हमें यह विचार करना होगा कि सामाजिक जीवन में तृष्णा संबंधी यह अंधमान्यता किस सीमा तक ग्राह्य है। यह तो बहुत अच्छी बात है कि ज़िंदगी में तृष्णा बिल्कुल न हो। मगर ज़िंदगी में तृष्णा न रहे यह संन्यासी जीवन में भले ही संभव हो,

सामाजिक जीवन में असंभव है। हमारे प्राण जब समाज और परिवार में औरों के प्राणों से संबंध रखते हैं तो उनमें प्यास जरूर जगेगी। जब समाज और राष्ट्र में व्यक्ति का जीवन करोड़ों के जीवन से संबंध रखेगा तो उसमें तृष्णा अवश्य जगेगी।

संन्यासी आत्मा का सीधे विकास कर ईश्वर को प्राप्त कर लेना चाहता है। गृहस्थ जीवन का विकास करके परोक्ष

हिंदी डाइजेस्ट



मार्ग से ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है। संन्यासी जीवन को गौण समझ, मृत्यु को गर्भित करता है। और इस तरफ मुक्ति प्राप्त करता है। उसके लिए सभी तृष्णाएं त्याज्य हैं; क्योंकि वे उसे आत्मा से हटाकर जीवन मार्ग पर लगाती हैं। मगर गृहस्थ का मार्ग जीवन और उसकी तृष्णाओं का मार्ग है। केवल उसकी अपनी तृष्णा नहीं, समाज की, सरकार की, राजनीतिक दलों की, उसके वर्ण और धर्म की तृष्णाएं भी उसकी तृष्णा को जकड़े हुए हैं। वह अगर अपनी व्यक्तिगत तृष्णा को मार दे तो भी समाज में रहते ए वह तृष्णा-मुक्त नहीं हो सकता। उसमें सरकार की तृष्णा जियेगी। एक सरकारी कर्मचारी अगर अपनी शारीरिक और मानसिक तृष्णाओं, जैसे प्रेम और सेक्स की तृष्णा, खाने-पीने की, धन-संपदा की तृष्णा को मार देता है तो भी उसमें तृष्णा रहती है। उसमें सरकार की टैक्स इकट्ठा करके सत्ताधारी राजनैतिक दल के कार्यक्रमों को सफल करने की तृष्णा रहती है। यदि कोई व्यक्ति किसी धार्मिक मठ या संघ का सदस्य है तो उस मठ की तृष्णा उसमें जीती है। यदि कोई साहित्यकार है और किसी ग्रुप का सदस्य है तो उस ग्रुप की तृष्णा उसमें जीती है और वह उससे अच्छे साहित्य को बकवास का खिताब सिर्फ इसलिए दिलवा देती है कि वह साहित्य उसके ग्रुपवालों ने नहीं रचा है। बहुत से लोग जो अपनी निजी तृष्णाओं

को मार लेते हैं, अक्सर अपने पुरखों की तृष्णा को जीते हैं। ग्रामों में कितने ही अनपढ़ परिवारों में पुश्तैनी एक दूसरे के वंशजों की हत्या करने की परंपरा चली आ रही होती है। उनके पूर्वजों में एक दूसरे के खून की जो प्यास जागी थी वह आज भी बरकरार है। एक बहुत बड़े उद्योगपति की कहानी है जिसकी अपनी तृष्णाएं मर चुकी हैं। उसे न खाने, पीने, पहनने की इच्छा है न ठाठ-बाट से रहने की। न उसकी रुचि लड़कियों में है। मगर फिर भी उसमें तृष्णा है, धन की अमानुषिक तृष्णा जो किसी भी रूप से धन कमा लेना चाहती है। यह तृष्णा उसकी व्यक्तिगत तृष्णा नहीं है। यह तृष्णा उस समाज और राजनैतिक ढांचे की सामूहिक तृष्णा है, जिसमें वह जी रहा है। उसने राजनीतिज्ञ पैसा लेते हैं, कुछ सरकारी लोगों की तृष्णाएं वह तृप्त करता है। यह अमानुषिक तृष्णा उसे कोई तृप्ति नहीं देती, मगर वह इसके लिए कुछ भी कर सकता है।

अगर हम गौर से देखें तो पायेंगे कि उन लोगों में जिन्होंने अपनी निजी तृष्णाओं को मार दिया है अमानुषिक तृष्णाओं को मार दिया है अमानुषिक तृष्णाओं को मार दिया है अमानुषिक समाजी और राजनैतिक तृष्णाएं पैसा चिक तृष्णाएं बनकर जीती हैं। इनके विपरीत वे लोग जिनकी अपनी नारीरिक और मानसिक तृष्णाएं अभी जीवित हैं, अधिक मानवीय और दयालु हैं और दूसरे का लिहाज करते हैं। इसकी बह



है? इंसान की व्यक्तिगत तृष्णाएं शिकार ।  
 पुरखों की तृष्णाएं और वे मानव-धर्म का स्वतः  
 करती हैं। इसके विपरीत संस्थाओं  
 तृष्णाएं हैं—चाहे वह संस्था सरकार  
 या समाज या धर्म या बाज़ार । इन  
 तृष्णाओं की तृष्णा एक मुर्दे की तृष्णा  
 तृष्ण है। यह तृष्णा हावज़ के  
 या शैली के फ्रेंकेन्सटीन जैसे  
 की तृष्णा है। यह अंधी होकर  
 का इस्तेमाल करती है अपनी तृप्ति  
 लिए।

प्रत्येक व्यक्ति जो समाज में रहता है  
 तृष्णाओं से ग्रस्त है। एक  
 उसकी शारीरिक और मानसिक  
 तृष्णाओं से जन्मी है। यह तृष्णा  
 भी मानवीय है और सौंदर्य और  
 का कुछ न कुछ प्रतिबंध मानती  
 दूसरी तृष्णा है सरकार की,  
 विरादरी या वर्ग की और आर्थिक-  
 तंत्र रूपी दानव की  
 है जो बचा हुआ है? पूरे  
 हवाओं में इसके इंसानी खून  
 धंसे हुए हैं और कदम-कदम  
 फाड़कर खा रहा  
 भी इतनी भहंगाई, इतनी  
 और शोषण के बाद भी इसकी  
 नहीं मिटती। क्या कोई आदमी  
 अपनी निजी तृष्णा को मार दिया  
 कर सकता है कि वह इस आर्थिक  
 तृष्णा का यंत्र और शिकार नहीं  
 है वह इसका यंत्र है और कहीं

इस पैशाचिक तृष्णा के शिकार सभी  
 प्राणी हैं। यह बात शायद चौकाने वाली  
 लगे कि इस पैशाचिक तृष्णा को मनमानी  
 करने से रोकने की ताकत केवल हमारी  
 निजी तृष्णा में है, विवेक में नहीं। कार्ल  
 गुस्टाफ जुंग ने कहा है कि 'यह पैशाचिक  
 तृष्णा इंसान पर बेल्ड के नीचे मार करती  
 है, कमर के नीचे उसे इस तरह जकड़  
 लेती है कि उसका विवेक निरर्थक और  
 एक फालतू चीज़ होकर रह जाता है।'

यह पैशाचिक तृष्णा इंसान के मूला-  
 धार पर कब्ज़ा करती है जिसे योगी  
 प्राणी का उद्गम मानते हैं। इंसान जितना  
 अपनी प्यास को मारता है उतना ही यह  
 पैशाचिक तृष्णा उस पर कब्ज़ा कर लेती  
 है। वह ऊर्जा जो उसकी निजी वासना या  
 तृष्णा बनकर प्रकट हो रही थी अब पूरी  
 तरह से इस पिशाच का काम करती है।  
 अक्सर देखा है कि वे लोग जिनमें कोई  
 निजी वासना नहीं है उनमें कोई अमानुषिक  
 तृष्णा बहुत क्रूर रूप में विद्यमान है।  
 हिटलर और चंगेज़ ऐसे ही लोग बनते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि हमें तृष्णा  
 को परंपरागत ढंग से बुरा कहने के बजाय  
 उसका इस्तेमाल करना सीखना होगा।  
 ज़हर ज़हर को काटता है। तृष्णा तृष्णा  
 को काटती है—इस सिद्धांत को समझते  
 हुए मानवीय तृष्णा से पैशाचिक तृष्णा  
 को काटना होगा।

भारतीय जीवन का यह दुर्भाग्य रहा

हिंदी डाइजेस्ट



कि यहां व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत तृष्णाओं को मारते रहे और समझते रहे कि वे अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। मगर वे झूल गये कि जितनी वे व्यक्तिगत तृष्णाओं के साथ हिंसा करेंगे, उतनी ही संस्थागत तृष्णा, पैशाचिक तृष्णा बढ़ेगी। नतीजा यह हुआ कि सरकार और समाज की तृष्णा व्यक्ति में जीने लगी। ये पैशाचिक तृष्णाएं इस क्रूर हावी हो गयीं कि वह अमानुषिक जीवन जीने का अभ्यासी हो गया। मानव जीवन की मर्यादा, सम्मान और सौंदर्य - प्रतिबंधता को उसने छोड़ दिया। इससे असंख्य अंधविश्वासों, कायरता और कुटिलता की जंजीरों ने उसके जनमानस को जकड़ लिया। यही कारण है कि झूठे कुटिल राजनीतिज्ञ और बस्ती के छटे हुए गुंडे आज उसका नेतृत्व करते हैं और अपनी इंसानी आवाज को वह खुद घोंटे हुए है। व्यक्तिगत तृष्णा के प्रति हिंसा करके हम उससे मुक्त नहीं हो सकते। तब हम और भी भयानक, एक पैशाचिक तृष्णा से भर जाते हैं।

आज वक्त आया है कि हम दूसरा रास्ता अपनायें। शताब्दियों की लीक से हटना होगा। तृष्णा को मारने के बजाय उसका इस्तेमाल अपनी जाति के विकास के



लिए करना होगा। यह मानकर चलना होगा कि जहां समाज या राजनीति है, वहां तृष्णा को मारने की बात कहना मुश्किल है। हम अगर व्यक्तिगत तृष्णा को मार भी लेंगे तो भी सरकार और समाज की तृष्णाएं जियेंगी। वे बदतर तृष्णाएं हैं क्योंकि वे पैशाचिक हैं। व्यक्ति की तृष्णा सरकार की तृष्णा की बढ़ती व्याप्तियों पर एक स्वाभाविक रोक है।

हमें व्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमा को उठाना होगा, यदि हम एक महान् जाति और राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं। उसके लिए हमें व्यक्ति की तृष्णा और संस्था की तृष्णा को अलग-अलग करना होगा और समझना होगा कि पहले मारने की चीज संस्था की तृष्णा है।

क्योंकि वह पैशाचिक है। वह मरती है व्यक्ति की तृष्णा को स्वस्थ अभिव्यक्ति देकर। उसके बाद समाजोत्थान का चरण आता है, जब व्यक्ति अपनी तृष्णा का त्याग करके जनमंगल के कलश शताब्दियों की चलती राहों पर सजाता है। हमने पहले ही ये कलश राहों पर रख दिये, जिन्हें कुचलता हुआ सरकारी बजेट हमारे जनमानस की हर गली से निकल गया और हम भय और पक्षाघात से भर



बैबी रहे हैं।

बात बुरा अटपटी जरूर लगती है कि

तृष्णा हमारा कल्याण कर सकती है।

तब मनुष्य के मानसिक तल का निर्माण

बुराई ने कुछ इस अंदाज से किया है कि

बुराई अगर अपनी सीमा और निर्दिष्ट

मान पर रहे तो उससे अच्छाई को बनाये

गले में मदद मिलती है। तृष्णा भी उन

बुराईयों में से एक है। इसके विपरीत

उस बुराई को

खस से मिटाने की

कोशिश की जाये तो

मानसिक तल का

गुंनुन बिगड़ जाता

और वह बुराई

विनाशकारी बन

गयी है।

तृष्णा नष्ट करने से

नहीं होती बल्कि

और भी भयानक रूप

ले लेती है। वह इतने

बुराई के रूप ले लेती है

कि उसे पहचानना मुश्किल हो जाता है।

यह सब लोग जो तृष्णा नष्ट कर देते हैं,

उन्होंने तृष्णा दूसरों की तृष्णा की जासूसी

करके अपनी शक्ति बनकर पुनः प्रकट हो जाती

है। बस बाल-विधवाओं और समाज में

कलह फैलाने वाले लोगों में इस बात की

आलोचना बहुत पायी जाती है कि किसका

किसके साथ चल रहा है। इनकी

तृष्णा का यह जासूस रूप इतना विकृत

होता है कि यह सुरागरसी तक ही सीमित

नहीं रहता, कीचड़ भी उछालता है। इस

तरह तृष्णा को दबाने से हम अपना और

दूसरों का अहित ही करते हैं। ऐसे लोग

अनेकों निर्दोष प्रेमियों के जीवन को हर

युग में नष्ट करते आये हैं।

दूसरों की तृष्णा की जासूसी करने से

हमारी तृष्णा मर जाती है। बहुत से

लोग जो तृष्णा को मार लेना ही जीवन को

पवित्र बना लेना सम-

झते हैं, बहुत आसानी

से दूसरों की तृष्णा की

जासूसी करके यह पवि-

त्रता प्राप्त कर सकते

हैं। मगर जो सत्याग्रही

हैं वे जानते हैं कि यह

पवित्रता नहीं नपुंस-

कता है।

आज पश्चिम में

लोग एक दूसरे तरीके

से दूसरों की तृष्णा को

जानने की कोशिश

में लगे हुए हैं। वे अश्लील आत्मकथाओं,

सत्यकथाओं तथा यौन-फिल्मों के द्वारा

दूसरों की तृष्णा का सुराग लगाने में लगे

हुए हैं, मगर यह रास्ता जितना उत्तेजक

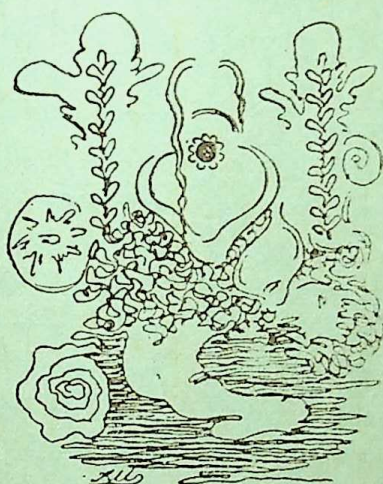
है उतना ही तृष्णा को मारने वाला भी।

पश्चिम में तेजी से बढ़ती नपुंसकता

(Frigidity) इसी शौक का परिणाम है।

तृष्णा एक ऐसी शक्ति है, जो नितांत

निजी है। न यह अपनी खिड़की में किसी





का झांकना पसंद करती है न किसी और की खिड़की में झांकना। ऐसा करने से तृष्णा मर जाती है और इसकी जगह वितृष्णा आ जाती है जो तृष्णा का और भी विकट रूप है। यह रूप आज की नग्नता के पीछे छुपा है।

तृष्णा को वृहदारण्यक उपनिषद ने अशनाया कहा है। यह आदि मृत्यु है। इसने होने की, अस्तित्व में आने की कामना की तो इससे सर्वप्रथम वाणी प्रकट हुई। शब्द से ही सृष्टि हुई है और वाणी को प्रकृति कहा गया है। भारतीय चिंतन प्रकृति को तृष्णा की पुत्री कहता है।

तृष्णा आदि सृजन शक्ति है, ब्रह्मा है। वाणी सरस्वती है, जो उनसे उत्पन्न होती है। वाणी सृष्टि रूप में, संपूर्ण प्रकृति के रूप में मूर्त है। पुराणों में ब्रह्मा को सरस्वती के प्रति कामासक्त दिखाकर फिर उन्हें इस आसक्ति से मुक्त होते दर्शाया गया है। यह और कुछ नहीं तृष्णा की वाणी के प्रति स्वाभाविक घोर आसक्ति है। वाणी भी अग्नि है, और तृष्णा भी। वाणी का जो स्थान है वहीं तृष्णा या प्यास भी लगती है। तृष्णा अपनी तृप्ति वाणी में खोजती है जैसे अशनाया अपनी तृप्ति चाहती है तो वाणी को उत्पन्न करती है।

यही वह बारीक संकेत है भारतीय चिंतन का जो तृष्णा के लिए सच्चे मार्ग को प्रशस्त करता है। वाणी तृष्णा की पूर्ति नहीं कर सकती। नारी और पुरुष को एक शरीर से दो शरीर कर देने के बाद

ब्रह्मा (तृष्णा) सो जाते हैं। अर्थात् नारी पुरुष की भिन्नता का बोध वह अंतिम सीमा है जहां से आगे तृष्णा को नहीं बढ़ना है। उसके बाद उसे सो जाना है। वाणी या प्रकृति का मोह यहां तृष्णा को छोड़ देना है। तृष्णा को अब सो जाना है यानी वाणी नहीं, मौन का, निर्वाण का आलिंगन करना है। यही निर्वाण पथ है। यहां वाण नहीं चलते, घात-प्रति-घात नहीं हैं। वाणी जो चोट से उत्पन्न होती है वह यहां नहीं है। यहां अनहद है। यह वह आदि मौन है, वह निर्वाण है, जिससे तृष्णा रमण करती है। यह वह महामृत्यु है जिसके आलिंगन में तृष्णा का बदन नीला हो जाता है। यह मृत्यु ही इसका निर्वाण में पुनर्जन्म है।

महावीर और बुद्ध ने जिस निर्वाण पथ का सृजन किया, उस पर चलने के लिए तृष्णा ही राही है। तृष्णा हमारी आत्मा का सबसे विद्वल, सबसे अशंत, सबसे कमजोर रूप है जो आसानी से फिसल सकता है। महावीर और बुद्ध इसी तृष्णा को बताते हैं कि प्रकृति ने इससे अपने को एक करके एक ऐसी पहनी इसे दी है जिसे इसको हल करना है। इसे समझना है कि एक ही स्थान और जन्मजात एकता होते हुए भी वाणी और तृष्णा दो हैं; कि तृष्णा के लिए वाणी और मौन (निर्वाण) दोनों समान हैं। जब तृष्णा वाणी के मोह से मुक्त हो जाती है तो ब्रह्मा सरस्वती का पीछा



मरता छोड़ देते हैं। श्री मद्भागवत के अनुसार 'उसके बाद ब्रह्मा ने अपना काम-कलुषित शरीर त्याग दिया।' ब्रह्मा मृत्यु में, मौन में, निर्वाणी होकर रह गये।

इस तरह हिंदू, जैन, बौद्ध, भारतीय धर्म की तीनों विशिष्ट धाराएं एक ही लक्ष्य की ओर इशारा कर रही हैं—तृष्णा को दबाओ या मारो मत। इस तरह ब्रह्मा मरती नहीं। उसे समझाओ कि ब्रह्मा प्रकृति और सृष्टि से अपने को भिन्न समझे तृष्णा वाणी और निर्वाणी अर्थात् जल की समान रूप से पूजा करे। इनमें फर्क न करे। फिर वह वाणी या सृष्टि को छोड़े भागना छोड़ मौन या निर्वाणी में बाँहों में सो जाये। जिसकी तृष्णा ब्रह्म मृत्यु को गर्भित करती है उसका निर्वाण निर्वाण में होता है।

अब स्वतंत्र भारतीय चिंतन के चिंतन पर आग्रह को देखकर बहुत चिंतन रहा और उसने भारतीय चिंतन

को जीवन विमुख और परलोकवादी समझा। अगर वह आज जिंदा होता तो आज के पश्चिम का कोई भी इहलोकवादी, भोगवादी, जीवन-प्रेमी उसे बता देता कि जिंदगी वह शह है जो जिंदगी की प्यास से जल जाती है। दिलदार मौत की गलियों में इसलिये नहीं जाते कि उन्हें जिंदगी से नफ़रत है बल्कि इसलिये कि इस महफिल का दस्तूर बनाने वाले ने ऐसा बनाया है कि दुल्हन इसमें नहीं बैठती। उसे पाने के लिए मौत की गलियों से पालकी गुज़ारनी पड़ती है। कितनी आसान होती जिंदगी अगर जिंदगी जिंदगी की राहों पर मिल जाया करती। फिर इतिहास के छोर पर खड़े बुद्ध और महावीर, अजितनाथ और कृष्ण मौत से यह आंखमिचौली क्यों खेलते ?

( निर्मल कुमार की पुस्तक—ऋत, साइकोलोजी बियान्ड फ़ायड, प्रकाशक : भारतीय विद्या भवन, के एक अंश का स्वतंत्र अनुवाद स्वयं लेखक द्वारा )



**भूलो नहीं**

बांधी है, तूफान है, परंतु यह भूलो नहीं कि इन घटाओं के पीछे अभी सूर्य चमक रहा है।

**क्षमा का फल किसे ?**

क्षमा का फल क्या सिर्फ अपराधी को ही मिलता है। जो क्षमा करता है, उसे क्या नहीं मिलता ?

**पहला प्यार क्या ?**

किसी ने पूछा, 'पहला प्यार क्या है ?'

उत्तर था—'बीस प्रतिशत मूर्खता और अस्सी प्रतिशत उत्सुकता।'





# नईम के दो ताजा गीत

[ १ ]

दोख में हों या बहिस्त में—  
हम सब मौसम की गिरफ्त में ।

पत्तों पर करवट लेते दिन,  
बूढ़े हो या काफिर कमसिन,  
लगातार होने के मौसम  
जिये-मरे हम किस्त-किस्त में ।

देने लगे हवाएं पत्ते,  
मौसम हुए बर के छत्ते,  
पानी डूबे नहीं बचेंगे—  
उत्तर, दक्षिण किसी सिम्त में ।

खदे हुए सिर बोझ कर्ज से,  
क्वारे कच्चे खड़े फ़र्ज से ।  
मौसम मर्ज हुए कुछ ऐसे,  
हुए नहीं जो सात पुश्त में ।

०००



[ २ ]

पोर-पोर चूसे दिन लेकिन  
विलुप्त सीढ़े,  
घर जैसे ये चौकस घर भी  
हुए बग़ाटे ।

दीमक चाट गयी, नागों ने डेरे डाले,  
डसे जा रहे, दूध पिलाये पूजे-पाले ।  
मरे हुए कुत्ते के जैसे  
अपने ही अस्तित्व बसीटे !

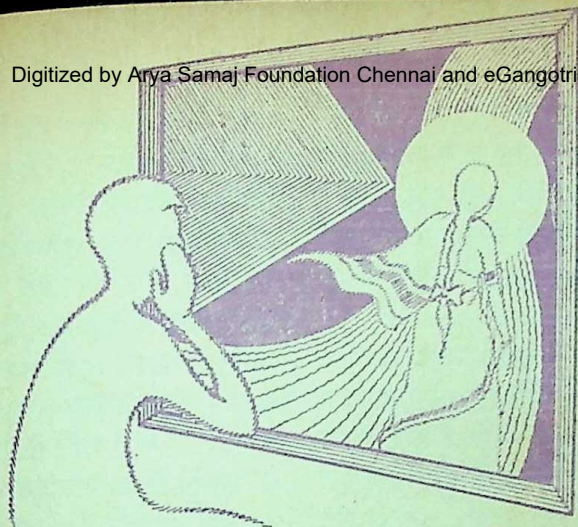
छोड़ समय के पृष्ठ रात-दिन जिये हाथिबे,  
अपने लिए नहीं, गैरों के हुए डाकिये ।  
शहद नीम से हुए,  
किंतु चिपके हैं चोंटे ।

नये मोर्चे, दीवारों में चूहों के बिब,  
पंजे दांत तेज भूखों के कुतर रहे दिल ।

पिटे हुये मोहरे अपने  
अपनों ने पीटे ।

—राधागंज, देवात (म.प्र.)  
दिल्ली





प्रसिद्ध उर्दू साहित्यकार गुलज़ार की कहानी

## चौरस रात

जब मैं जाग रहा था, तब रात सो रही थी।

कमरे की चौकोर खिड़की पर बैठा एक सपना कब से ऊँघ रहा था। उसकी पलकें भारी हो रही थीं। वह आंखें मलता, पलकें झपकाता, और नींद आहिस्ता-आहिस्ता पलकें मूंद लेती। बाहर रात के रंग खिल रहे थे।

इस रात के कई रंग हैं। इस रात के कई रूप हैं। यह रात, जो काली है। यह रात, जो नीली भी है। यह रात, जो सफेद भी हो जाती है। मैंने इस रात को मौत की तरह जर्द होते भी देखा है। यह रात गोल भी है। यह रात लंबी भी है। यह रात

जो तिकोन भी होती है। लेकिन वह रात चौरस थी। वह रात सिर्फ चौरस थी—जैसे दीवार में जड़ी हुई यह खिड़की, जैसे आंख में जड़ा हुआ वह सपना।

उन दिनों रात का सिर्फ एक ही रूप था, सिर्फ एक ही केंद्र था। उन दिनों मेरी रात, मेरी सुबह, मेरी शाम, मेरे हर पल, मेरे हर क्षण का केंद्र तुम थीं। उन दिनों भी मैं तुम्हें इसी खिड़की में से आते-जाते देखा करता था। घंटों इसी खिड़की पर बैठा तुम्हारा इंतज़ार किया करता था। यह सड़क, जो हमारी बस्ती से निकलकर सामने चौक से जा मिलती है, यह सड़क मेरी खिड़की से होकर गुजरती है। यह



सड़क मेरी खिड़की के एक सिरे को दूसरे सिरे से मिलाती है। उन दिनों इस खिड़की ने मेरे जीवन के सिरे को उस सिरे से मिला दिया था, जिस सिरे पर तुम खड़ी थीं, और वह सिरा सामने चौक से जा मिलता है।

उन दिनों यह सड़क अढ़ाई मिनिट लंबी थी। और यह दिन तीन सौ बीस कदम लंबा था। मैंने आते-जाते तुम्हारे कदम गिने थे। दूर से आते हुए मैं तुम्हारे कदमों की आहट सुना करता था। वह आहट, जो मैं अपने दिल पर हाथ रखकर छू लिया करता। तीन सौ बीस कदम। और फिर दिन बीत जाता। दिल की धड़कन डूब जाती। कदमों की आहट बस्ती में गुम हो जाती। सड़क का अस्तित्व मिट जाता। एक लंबी रात सामने बिछ जाती। वह रात, जो असीम है। वह रात, जिसका कोई अंत नहीं है, जिसका कोई छोर नहीं है। फिर, एक दिन तुम्हारे कदमों ने मेरे कमरे को चौक से मिला दिया। डूबी हुई धड़कन फिर तेज हो गयी। एक आहट ने सीने में कई गीत जगा दिये। इस सड़क का एक सिरा मेरे कमरे में उतर आया।

तुम्हारे कदमों की आहट की नपी-तुली गति टूट गयी। उन नपे-तुले कदमों में घबराहट और बेचैनी नज़र आने लगी। तुम अपनी आहट से खुद ही चौंक जातीं। एक उचटती-सी नज़र इस खिड़की को छूती और तुम अचानक सहमकर चारों ओर देखतीं। दिल चोर हो गया था। नज़र

पहरा देने लगी थी। तुम जाते समय किसी बहाने आंचल लहरा देतीं। मैं उस मामूम अलविदा को चूम लेता। सुबह की पलकों पर मैं हाथ रख देता और दिन भर की उस सुंदर छवि को आंखों में समा लेता। शाम पलकों से हाथ हटा देती। फिर, वही बहके से कदम। अढ़ाई मिनिट लंबी सड़क। तीन सौ बीस कदम। सारा जीवन सिमट कर मेरी बांहों में आ जाता।

उन दिनों यह रात बड़ी लंबी थी। यह रात बड़ी उजली थी। उस रात में तुम्हारे बदन की आंच थी, तुम्हारी सांसों की महक थी। उन दिनों यह रात तुम्हारे कंधों से लिपट-लिपट जाती थी। जीवन का हर उद्देश्य सिमटकर एक शून्य पर आ जाता। रात सिमटकर एक शून्य बन जाती। वह शून्य, जो तुम थीं। वह शून्य, जो मैं था। वह शून्य, जहां हम दोनों खड़े थे।

और फिर, वह शून्य भी लुप्त हो गया। वह रात भी बीत गयी।

इस सड़क पर मैंने किसी को आते नहीं देखा। इस सड़क पर मैंने किसी को जाते नहीं देखा। मैंने सिर्फ तुम्हारे कदम गिने थे। तुम्हारे कदमों की आहट सुनी थी। मुझे नहीं मालूम वह कौन है? मुझे नहीं मालूम वह कब इस सड़क से गुजरा है। जिसने तुम्हारे कदमों की टूटी हुई गति जोड़ दी है। तुमने आना छोड़ दिया है। लेकिन मैंने इंतज़ार करना नहीं छोड़ा है। तुम अब भी इस सड़क से गुज़रती हो। लेकिन तुमने कभी मुड़कर नहीं देखा कि



दो आंखें आज भी इस खिड़की में तुम्हारा इंतजार करती हैं। तुम अब भी इस सड़क से गुजरती हो, लेकिन तुमने कभी आंचल नहीं लहराया, कभी सुवह को अलविदा नहीं कहा।

सुवह अपनी जलन सीने में लिये तपती रहती है, दहकने लगती है, शाम होते-होते जलकर राख हो जाती है, बिखर जाती है, फल जाती है।

अब खिड़की के दोनों सिरों टूट गये हैं। खिड़की का वह सिरा भी टूट गया है, वहां तुम खड़ी थीं। अब यह सड़क उस चौक से जाकर नहीं मिलती। अब यह

सड़क इस खिड़की से होकर भी नहीं गुजरती। इस सड़क ने रात के सीने में एक गहरा छेद कर दिया है। वस, एक सपना खिड़की पर बैठ आंघता रहता है, और रात के बदलते हुए रूप देखता रहता है। वह रात, जो नीली भी है। वह रात जो गोल भी है। वह रात, जो सफेद भी है। वह रात, जो लंबी भी है। लेकिन वह रात चौरस थी।

वह रात सिर्फ चौरस थी—जैसे दीवार में जड़ी हुई यह खिड़की, जैसे आंख में जड़ा हुआ वह सपना।

अनुवाद : सुखबीर

## परिमल पराग

० श्रद्धा द्वारा यह प्रकट होता है कि जीवन के प्रयोजन को समझने के लिए मुझे अपनी बुद्धि का तिरस्कार करना चाहिये, उसी वस्तु का, जिसके लिए जीवन का अर्थ षानने की जरूरत है।

—टालस्टाय

० प्रेम तो अमरता का ही चिन्ह है, वह समय की पाबंदी ही नहीं मानता। उसमें आरंभ की स्मृति शेष नहीं रहती और न रहता है अंत का भय।

—सोनिया डोल

० अगर कोई पुरुष आग पर बैठकर भी यह कहे कि वह मुझे प्रेम करता है, तो मैं यही समझूंगी कि वह ऐसा इसलिये कह रहा है कि मैं उसे आग में से निकाल लूं।

—सोनिया डोल

० बुरा क्या है भला क्या है, इसका फैसला यह देखकर नहीं किया जा सकता कि बोल क्या कहते और क्या करते हैं। प्रकृति भी इसका निर्णय नहीं कर सकती। इसका फैसला तो मेरा हृदय और मैं ही कर सकते हैं।

—टालस्टाय

० विदाई की घड़ियां ही प्रेम की गहराई को नापती हैं।

—खलील जिब्रान

० बेदिली से पकाई रोटी भी कड़वी होगी।

—खलील जिब्रान

० जल प्रपात का दृश्य देर तक देखा। सोचता रहा कि जीवन ऐसा होना चाहिये शुभ, स्वस्थ, संगीतपूर्ण, अरुद्ध, निरंतर सचेष्ट और प्रगतिशील, घर-बाहर के बंधनों से मुक्त और सदा विद्रोही।

—अज्ञेय



हमारी आचार्य परंपरा के एक अंतिम वंशधर  
डॉ. विजयेन्द्र स्नातक का संस्मरणात्मक लेख

# भाषा-शास्त्री, शब्द-शिल्पी, अभिनव पाषिणी आचार्य किशोरीदास वाजपेयी

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का चौरासी वर्ष की आयु में उनके निवास स्थान कनखल में बारह अगस्त को निधन हो गया। उनका निधन राष्ट्र और राष्ट्र-भाषा के लिए अपूरणीय क्षति है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वाजपेयीजी विलक्षण प्रतिभासम्पन्न ठेठ देहाती पंडित थे, जिनका असाधारण पांडित्य बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों और विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभाग के आचार्यों को अपनी ललकार और फटकार से स्तब्ध कर देता था। उनके जैसा निर्भीक तेजस्वी, स्पष्टवादी, अहंमन्य मुखरवक्ता कोई दूसरा खोजने पर भी नहीं मिलेगा। जहां उनके वैदुष्य और पांडित्य की ख्याति थी, वहां उनके प्रखर, अक्खड़ और क्रोधी स्वभाव की भी प्रसिद्धि थी। इसमें सन्देह नहीं कि वाजपेयीजी तुनुक-मिज़ाज थे, किन्तु इस मिज़ाज का प्रेरक उनका स्वाभिमान ही था। अपनी अस्मिता की उन्हें पूरी-पक्की पहचान थी और उसकी रक्षा के लिए वे सब कुछ छोड़ने

को उद्यत रहते थे। अपने स्वाभिमान एवं सिद्धान्त को त्यागकर सहूलियत का समझौता उन्हें भाता नहीं था। स्वाभिमान को वाजपेयीजी अस्मिता का कवच कहते थे। कवच उतारकर अस्मिता की रक्षा संभव नहीं, अतः समन्वय-समझौता उनके उग्र स्वभाव के प्रतिकूल था। राष्ट्रीयता, संस्कृति और स्वदेशाभिमान उनके स्वाभिमान में अन्तर्भुक्त थे। अतः उनकी प्रकृति एवं शील-स्वभाव को इसी मर्यादा में समझना चाहिये। अक्खड़ होने के लिए व्यक्ति को फक्कड़ होना पड़ता है; स्पष्टवादी होने के लिए व्यक्ति को सत्यवादी होना पड़ता है और उग्रता का अनल घघकाने के लिए ओज और तेज संचय करना पड़ता है। जो लोग इस तेजस्वी फक्कड़ ब्राह्मण के विद्रोही व्यक्तित्व को नहीं पहचानते वे उन्हें क्रोधी, अक्खड़, लड़ाकू, मुंहफट आदि समझने की भूल करते रहे हैं।

वाजपेयीजी का जीवन-संघर्ष :

पं० किशोरीदास वाजपेयी अपने जीवन

नवनीत



और किशोरावस्था में जिन दुर्द्वर्ष एवं विषम परिस्थितियों में से गुज़रे, उनका आभास भी रोमांचकारी है। असाधारण पांडित्य का धनी यह व्यक्ति धन-सम्पत्ति के अभाव में किस प्रकार जीवन-यापन करता रहा, यह पूरी तरह हिन्दी जगत को ज्ञात नहीं है। वाजपेयीजी ने अपने 'आत्म परिचय' में जो कुछ लिखा है उसे पढ़कर पाठक के मानस

में एक अत्यन्त निर्धन, अनाथ, आश्रयहीन निपट गंवार बालक का चित्र उभरता है। कानपुर जिले के छोटे से गांव रामनगर में पं० सतीदीन वाजपेयी के घर इस बालक का जन्म हुआ। इनके पितामह और पिता ने बेहद गरीबी का जीवन

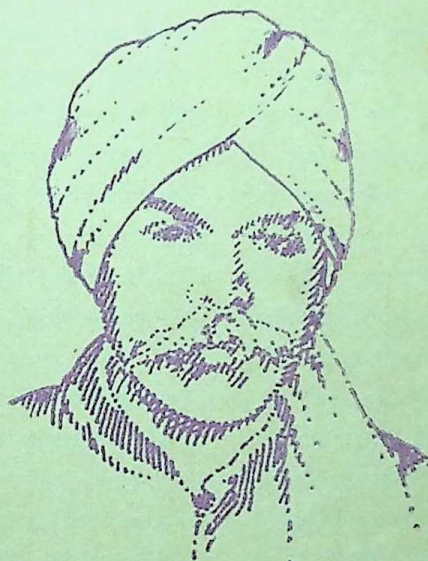
बिताया था। हां, गरीबी में भी मान-मर्यादा और स्वाभिमान पर आंच न आने दी थी। यही संस्कार किशोरीदास पर भी पड़ा। इनका बचपन का नाम गोविन्दप्रसाद था। यह नाम पन्द्रह वर्ष की आयु तक चला, किन्तु बाद में वृन्दावन में गुरु से दीक्षा लेने पर स्वयं अपना नाम किशोरीदास रख लिया।

१९८१

इनके पिता जीविका के लिए खेती करते थे, लेकिन उनके पास अपनी कहने को एक गज़ ज़मीन भी न थी। लगान पर खेत लेकर काम चलाते थे। मकान के नाम पर एक कच्चा कोठा और दो छप्पर थे। छप्पर में बैल बंधता था। बैल की जोड़ी नहीं, केवल एक बैल था जो किसी दूसरे किसान के बैल के साथ जुतकर काम

करता था। खेती करने में एक बड़ी दिक्कत थी। बीस-बिस्वा कनौजिया ब्राह्मण होने के कारण पिता स्वयं हल की मूँठ नहीं पकड़ते थे। मजदूर के माध्यम से खेत की जुताई होती। हां, खेत की निराई वे स्वयं करते थे। मजदूरी के लिए दूसरों के खेत की निराई-कटाई भी

कर देते थे। मां भी खेती के काम में हाथ बंटाती और अल्पायु में किशोरीदास भी खेत में मजदूरी करते। समीपवर्ती मन्धना नामक कस्बे से पैठ के दिन घर का सौदा-सट्टा आता, जिसे किशोरीदास के पिता सिर पर लादकर लाते। बालक किशोरीदास को भी सिर



आचार्य किशोरीदास वाजपेयी



पर सामान ढोना पड़ता। भोजन के लिए घर में मोटे अनाज जौ-चना का प्रयोग होता था। बच्चों के लिए गुरी की रोटी (जौ का छिलका उतारी हुई गिरी) बन जाती थी। आम की फसल में आम खाने को मिलते, पर उनकी गुठली फेंकी नहीं जाती थी। गुठली को उबालकर परिवार के सब लोग खाते थे, परन्तु दूसरों से छिपाते थे।

आठ-दस वर्ष की आयु तक इन विपत्तियों को झेलने का बच्चों को अभ्यास हो गया था, किन्तु सहसा दैव का भीषण प्रकोप हुआ। अनभ्र वज्रपात इसी को कहते हैं। गांव में प्लेग की महामारी फैली और वाजपेयीजी के पिता, माता और बड़ी बहन प्लेग के शिकार हो गये। एक सप्ताह के भीतर मां-बाप-बहन तीनों का साया सिर से उठ गया। अपने छोटे भाई के साथ किशोरीदास अनाथ हो गये। कोई सहारा न रहा, कोई हमदम न रहा। दैवी प्रकोप तो देखा किन्तु दैवी शक्ति का कोई सबूत न मिला। पास ही छोटी-लाइन का छोटा-सा रेलवे स्टेशन 'उतरी-पुरा' था। किशोरीदास की बालबुद्धि पेटपूर्ति का उपाय खोज रही थी। कचालू की चाट बनाकर स्टेशन पर बेचने का उपक्रम किया। 'बढ़िया कचालू दो पैसे दोना' की आवाज लगाकर बेचना शुरू किया। दुर्भाग्य यहां भी साथ था, केवल चार दोने बिके। कुल दो आने हाथ लगे। कचालू की चाट थाली में बची रही। नहर

के किनारे बैठ जितनी खुद खायी गयी खा ली। शेष नहर में फेंक दी। ब्राह्मण बालक की व्यापार बुद्धि असफल रही।

गांव में एक धनी व्यक्ति का मकान बन रहा था उसमें मजदूरी मिल गयी। दो आने रोज पर कुछ दिन काम किया। कुछ दिन जमींदार की भैंस चराने का-चरवाहे का- भी धंधा किया। वह भी रास न आया तो भागकर अपने चाचा के पास कानपुर पहुंचे। चाचा ने इन्हें विकटोरिया मिल में आठ रुपये मासिक पर नौकर लगा दिया। लेकिन एक मास काम करने पर इनका मन उचटा और एक दिन बेतन मिलने पर नौकरी छोड़कर वैरागी साधुओं की संगत में पड़कर वृन्दावन के लिए चल पड़े। कायमगंज स्टेशन पर टिकट चैकर ने बिना टिकट का होने से गाड़ी से उतार दिया। गाड़ी से उतरकर स्टेशन के बाहर खिन्नमना बैठे थे कि एक सज्जन ने इनकी उदासी का कारण पूछा। इन्होंने वृन्दावन जाने और संस्कृत पढ़ने की इच्छा व्यक्त की। सज्जन दयालु थे; उन्होंने टिकट खरीदकर दिया और खर्च के लिए पांच रुपये देकर वृन्दावन की संस्कृत पाठशाला में भेज दिया।

वृन्दावन से किशोरीदास वाजपेयी के जीवन का नया अध्याय प्रारंभ होता है। वृन्दावन में संस्कृत पाठशाला में प्रवेश मिल गया किन्तु उदर पूर्ति की पूरी व्यवस्था न होने से कुछ भटकना पड़ा। पहला भटकाव तो मन का था। मन पढ़ने



लिखने में कम और रासलीला देखने में अधिक रमता था। ब्रह्मचारीजी के मन्दिर में गोपाल सहस्रनाम का अहर्निश पाठ होता था। तीन घंटे पाठ करने के निमित्त तीन रुपये मासिक वृत्ति। वाजपेयीजी ने पाठ करना स्वीकार कर लिया। एक वृद्धा पंजाबिन रास देखने आती थी। वाजपेयीजी की रास-निष्ठा देखकर उसने अपने घर पुजारी का काम करने का प्रस्ताव रखा। वाजपेयीजी पूजा-अर्चा विधि से सर्वथा अनभिज्ञ थे, किन्तु वृद्धा के आग्रह पर पुजारी बन गये। पांच रुपये मासिक वेतन और दो जून भोजन पत्तल। इसी समय एक संन्यासी से दीक्षा भी ग्रहण की। दीक्षा के समय अपना असली नाम गोविन्दप्रसाद न बताकर किशोरीदास बताया और उसी दिन से वे किशोरीदास हो गये।

इस संक्षिप्त इतिवृत्त से बालक किशोरीदास की निर्धनता, असहायता के साथ जिजीविषा जिस रूप में उभरती है वही कालांतर में पंडित किशोरीदास वाजपेयी को प्रकांड पंडित, उद्भट विद्वान्, स्वभिमानि साहित्यकार, निष्ठावान् ममाजसेवी, दृढ़ राष्ट्रप्रेमी बनाने में समर्थ होती है। वाजपेयीजी के संदर्भ में वह कहावत झूठी और बेमानी सिद्ध हो जाती है, जिसमें कहा गया है कि 'पूत के पांव पालने में ही दिख जाते हैं।' कौन कह सकता है कि गंवई गांव का गरीब भोला बालक चरवाहा, मजदूर, पुजारी

और विद्यार्थी एक दिन व्याकरण-मार्टेड बनकर राष्ट्रभाषा हिन्दी के क्षितिज पर अपनी ज्योति से देदीप्यमान होगा। वाजपेयीजी ने शैशव में कष्टों की सीमा का अतिक्रमण किया। किसी काम को छोटा, ऊंच-नीच नहीं समझा। पुरुषार्थ का पल्ला पकड़े, अपनी जिजीविषा को समेटे खाई-खन्दक फांदते, स्वयं मार्ग बनाते, रोज़ कुआं खोदकर पानी पीते आगे बढ़ते रहे। उनका अडिग विश्वास कहता था, दृढ़ रहो मुश्किलें आसान हो जायेंगी और विघ्नों की विशाल पर्वतश्रेणी सीढ़ी का काम देगी। वृन्दावन में उस समय साहित्यिक वातावरण था। पं० किशोरीलाल गोस्वामी, उनके पुत्र छवीलेलाल गोस्वामी, राधाचरण गोस्वामी आदि भारतेन्दु मंडल से परिचित थे। किशोरीलाल गोस्वामी अपने मुदर्शन प्रेम से 'वैष्णव सर्वस्व' नामक एक धार्मिक एवं साहित्यिक मासिक पत्र प्रकाशित करते थे। इसी पत्र में किशोरीदास वाजपेयी का 'दशधा भक्ति' शीर्षक सबसे पहला लेख छपा। इस पत्र के सहायक-सम्पादक भी बने, किन्तु वेतन आत्मतुष्टि मात्र ही था। सन १९१९ में पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा प्रथम स्थान पर उत्तीर्ण की और लेखन की ओर प्रवृत्ति अधिकाधिक बढ़ती गयी। पहले संस्कृत में लिखना प्रारंभ किया, किन्तु जलियांवाला बाग का हत्याकांड स्वयं देखकर उसका वर्णन करने की तीव्र आकांक्षा से प्रेरित हो इन्होंने



हिन्दी में 'अमृत में विष' शीर्षक से यह कांड लिखा और हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई को प्रकाशनार्थ भेजा । श्री नाथूराम प्रेमी संस्था के संचालक थे । उन्होंने इसको छापना स्वीकार नहीं किया, किन्तु इतना अवश्य लिख भेजा कि 'आपकी हिन्दी हमें बहुत पसन्द आयी । एक संस्कृत पंडित ऐसी अच्छी हिन्दी लिखता है, यह देखकर प्रसन्नता हुई ।' प्रेमीजी के उत्साह-वर्धक वाक्य से वाजपेयीजी को अपनी भाषा पर भरोसा जमा और संस्कृत छोड़कर हिन्दी के क्षेत्र में पूरी तैयारी से आ गये । साहित्यिक लेखन

पंडित किशोरीदास वाजपेयी ने हिन्दी की मासिक पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत में प्रवेश किया था। उस समय माधुरी, चांद, सुधा, अभ्युदय आदि पत्र-पत्रिकाओं का व्यापक प्रचार था। सरस्वती का प्रकाशन भी हो रहा था, किन्तु आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादक पद छोड़ देने से उसका महत्व

৬২

कुछ कम हो गया था। वाजपेयीजी ने हिन्दी भाषा के स्वरूप पर माधुरी और सुधा में लेख लिखे जो भाषाशास्त्रियों द्वारा सराहे गये। वाजपेयीजी का साहस बढ़ा और उन्होंने सम्पादक बनने का संकल्प किया। संकल्प शुभ था, किन्तु सांसारिक अनुभव से शून्य वाजपेयीजी उसे सफल न बना सके। सुधा और चांद दोनों स्थातों से साक्षात्कार के लिए निमंत्रण मिले। सुधा कार्यालय में तो वाजपेयीजी को किसी ने पानी तक के लिए नहीं पूछा। खिन्न होकर मैनेजर से बिना मिले प्रयाग के लिए चल पड़े। प्रयाग में चांद कार्यालय के मालिक श्री रामरिखसिंह सहगल ने बड़े सम्मान से जलपान कराया, ठहरे की व्यवस्था की और उन्हें पुस्तक विभाग में नियुक्त कर दिया गया। चांद के 'अछूत अंक' के लिए वाजपेयीजी ने 'कुछ अछूत सन्त और भक्त' शीर्षक लेख लिखा जिसे सम्पादक, प्रबंधक तथा पाठकों ने बहुत सराहा। किन्तु एक दिन मदनमोहन मालवीयजी के विषय में सहगलजी के मुख से कुछ अपशब्द निकल गये, जिन्हें वाजपेयीजी सहन न कर सके। फलतः चांद से भी त्यागपत्र देकर शहर में आ गये। अभ्युदय में काम करने का निमंत्रण तत्काल मिला, किन्तु उसे स्वीकार न कर लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से पुस्तक विभाग में काम करने के निमित्त नियुक्ति पत्र मिल गया। कुछ दिन काम करने के उपरान्त वाजपेयीजी हरिद्वार चले आये।

दिसंबर

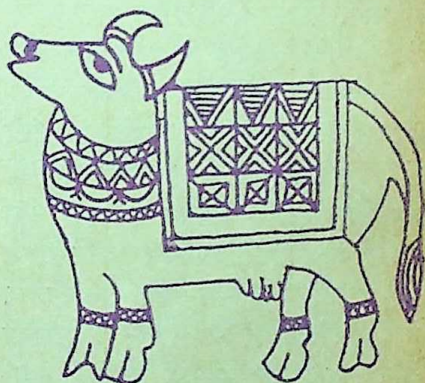


वाजपेयीजी ने माधुरी और स्वयं द्वारा स बढ़ा और लिख किया। एक अनुभव फल न बना स्थानों से मिले। मुश्ता को किसी ने खिन्न होकर के लिए चल के मालिक बड़े सम्मान की व्यवस्था में नियुक्त छूत अंकों के अछूत सन्त लिखा जिसे कों ने बहुत मदनमोहन सहगलजी के न गये, जिन्हें सके। फलतः शहर में आ का निमंत्रण वीकारन कर से पुस्तक भर्त निमुक्ति- काम करने के चले अगे।

हरिद्वार में रहते हुए पं० शालग्राम शास्त्री साहित्याचार्य की साहित्य दर्पण की टीका पढ़ने का अवसर मिला। यह टीका संस्कृत जगत में विख्यात हो चुकी थी। बड़े-बड़े दिग्गज पंडित इसकी प्रशंसा के पुल बांधते न थकते थे। वाजपेयीजी को यह अच्छी लगी, किन्तु उस टीका में प्राचीन आचार्यों के मतों का खंडन संयत भाषा में न पाकर वाजपेयीजी का विद्रोही स्वभाव भड़क उठा। उन्होंने टीका के खिलाफ एक लम्बी लेखमाला तैयार कर माधुरी में छपने भेज दी। यह लेखमाला सन् १९२८-२९ में छपी और शास्त्रीजी ने इसके उत्तर में भी तीन-चार लेख लिखे। वाजपेयीजी के स्वभाव में उस समय छिदा-वेषण का औद्यत्य था, यह उन्होंने स्वयं स्वीकारा है। किन्तु विवाद का विषय सदा काव्यशास्त्र ही रखते थे। इसी सिल-सिले में पं० पद्मसिंह शर्मा के संजीवन भाष्य के विरुद्ध एक लेखमाला 'बिहारी भट्टाई और उसके टीकाकार' शीर्षक से लिख डाली। यह लेखमाला माधुरी और गंगा नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। इनके प्रकाशन से पंडित किशोरीदास वाजपेयी हिन्दी जगत में एक पेनी धार वाले प्रखर समालोचक के रूप में प्रसिद्ध हो गये। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का स लेखमालाओं ने ध्यानाकर्षण किया। माधुरी के सम्पादक पं० कृष्णबिहारी मिश्र और प्रेमचन्दजी भी इन दोनों लेखमालाओं को पढ़ते थे। उनका मत था

कि 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' ही इन लेखों में है। अतः 'लात खाय पुचकारिये होय दुधारू धेनु।' वाजपेयीजी लात तो मारते हैं, पर ज्ञान का दूध भी तो देते हैं।

जिस समय किशोरीदासजी ने साहित्य जगत में प्रवेश किया वह द्विवेदी-युग था। चूंकि वाजपेयीजी संस्कृत से हिन्दी साहित्य में आये थे, अतः शास्त्रीय विषयों की ओर उनका ध्यान जाना स्वाभाविक था। बाबू जगन्नाथप्रसाद भानु, सेठ कन्हैयालाल



चित्र : आलोक जैन

पोद्दार, बाबू गुलाबराय आदि विद्वान् रस और अलंकार आदि विषयों पर ग्रंथ लिख चुके थे। अतः वाजपेयीजी ने भी 'रस और अलंकार' शीर्षक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक पुरानी लीक से हटकर थी। इसमें जो उदाहरण दिये गये थे वे सब राजनैतिक पुट के थे। पुस्तक हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई में छपी थी। उदाहरणों में राजनीति की गंध पाकर



बम्बई सरकार ने इसे ज़ब्त कर लिया । भारत के इतिहास में शुद्ध काव्यशास्त्र की यह पहली और अन्तिम पुस्तक है, जिसे सरकार की कोपदृष्टि का भाजन होना पड़ा है । वाजपेयीजी में साहित्यांकुर फूट निकले थे । काव्यशास्त्र तो संस्कृत के विषय माने जाते हैं । वाजपेयीजी ने हिन्दी में काव्य रचना प्रारंभ की । 'तरंगिणी' नाम से दोहावली लिखी । व्यंग्य-विनोद तो था ही, काव्यालोचन भी इसमें भरपूर था । फूहड़ कुकवियों, शास्त्रविहीन पंडितों, ब्रजभाषा माहात्म्य आदि पर बड़े फड़कते दोहे लिखे थे । खेद है कि परवर्ती काल में 'तरंगिणी' की चर्चा न हो सकी और वाजपेयीजी के वैयाकरणी वटवृक्ष के नीचे तरंगिणी सूख गयी । तरंगिणी की मैंने अपने एक लेख में विस्तृत समीक्षा लिखी है जिसे वाजपेयीजी ने स्वयं पढ़ा और सराहा था । साहित्य प्रेम के साथ समालोचना में वाजपेयीजी की अच्छी पैठ हो चुकी थी और उस समय के कई साहित्य महारथियों से वे दो-दो हाथ कर चुके थे । उनके पंजे की मजबूत पकड़ की उन दिनों काफी धूम थी । 'मराल' के सम्पादन में उन्होंने अपनी आलोचक-प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया था ।

### व्याकरण-क्षेत्र में प्रवेश

पंडित किशोरीदास वाजपेयी की ख्याति का मूलाधार आज उनका वैयाकरण रूप है । उन्हें हिन्दी-व्याकरण का पाणिनि कहा जाता है । महापंडित राहुल सांकृत्या-

यन न उनके व्याकरण-ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । ब्रजभाषा का व्याकरण लिखने में उन्होंने अपनी जो स्थापनाएं प्रस्तुत की हैं उन्हें कुछ विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया था । इस तथ्य से अवगत होने पर वाजपेयीजी पूरी चुनौती की मुद्रा में थे और पूरी फटकार तथा ललकार के साथ ताल ठोककर शास्त्रार्थ के लिए विद्वानों को बुलाते थे । इसके साथ निरुक्त, अच्छी हिन्दी, हिन्दी व्याकरण, शब्दानुशासन आदि व्याकरण सम्बन्धी अनेक ग्रंथों का प्रणयन उन्होंने किया । इन ग्रंथों की रचना के पीछे परिष्कार के साथ उन लोगों के लिए चैलेंज भी था जो व्याकरण शास्त्र में दखल रखने का दावा करते थे । एक-दो बार मुठभेड़ हुई भी किन्तु वाजपेयीजी का पांसा ही भारी रहा । 'हिन्दी शब्दानुशासन' के प्रणयन की तो पूरी कहानी है जिसे यहां लिखना संभव नहीं है, किन्तु इतना संकेत करना ही पर्याप्त होगा कि पंडित किशोरीदास वाजपेयी अपनी स्थापनाओं में तर्क-प्रमाण के साथ शास्त्र को पुष्ट रूप में प्रस्तुत करते रहे और कहना न होगा कि वे सदा विजयी रहे । डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि भाषा विज्ञान और व्याकरण की पुस्तकें प्रायः नीरस होती हैं, किन्तु वाजपेयीजी ने अपनी पुस्तक को यथेष्ट रोचक बनाया है । व्याकरण की पुस्तक में व्यंग्य और हास्य की छटा अलग दर्शनीय है । पाठकों से हमारा आग्रह है कि हिन्दी



शब्दानुशासन' नाम से आतंकित न होकर इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें। हिन्दी व्याकरण के सम्बन्ध में वाजपेयीजी से विद्वानों के जो वाद-विवाद के प्रसंग आये उनका उल्लेख फिर कभी स्वतंत्र लेख में किया जायेगा। बड़े रोचक एवं ज्ञानवर्धक प्रसंग हैं, साथ ही वाजपेयीजी के शील स्वभाव पर भी अच्छा प्रकाश डालते हैं। यदि वाजपेयीजी 'हिन्दी शब्दानुशासन' न लिखते तो हिन्दी व्याकरण अंग्रेजी व्याकरण के ढर्रे पर ही चलता रहता और हिन्दी भाषा की नैसर्गिक प्रकृति की पहचान लुप्त हो जाती। भाषा की मूल प्रकृति ही उसके विकास में सहायक होती है। संस्कृत अथवा अंग्रेजी की डाल पर हिन्दी की कलम लगाकर हिन्दी को जीवित भाषा नहीं बनाया जा सकता, अतः वाजपेयीजी संस्कृत भाषा की प्रकृति को हिन्दी की प्रकृति से भिन्न मानकर ही चलते रहे। हिन्दी की नैसर्गिक प्रकृति (जीनियस) की पहचान के लिए तद्भव शब्दों के मूल में प्रविष्ट होकर उन्हें पकड़ना ही वाजपेयीजी का लक्ष्य रहा। यह आचार्य कोटि का काम था।

भाषा विज्ञान और व्याकरण को आज के भाषा वैज्ञानिक विद्वान् सर्वथा पृथक् अनुशासन मानते हैं। उनकी दृष्टि में ये दोनों शास्त्र पारस्परिकता के साथ नहीं रहते, स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं। वाजपेयीजी भाषाशास्त्र के मूल में व्याकरण को प्रतिष्ठा करते थे। व्याकरण तो शब्द की

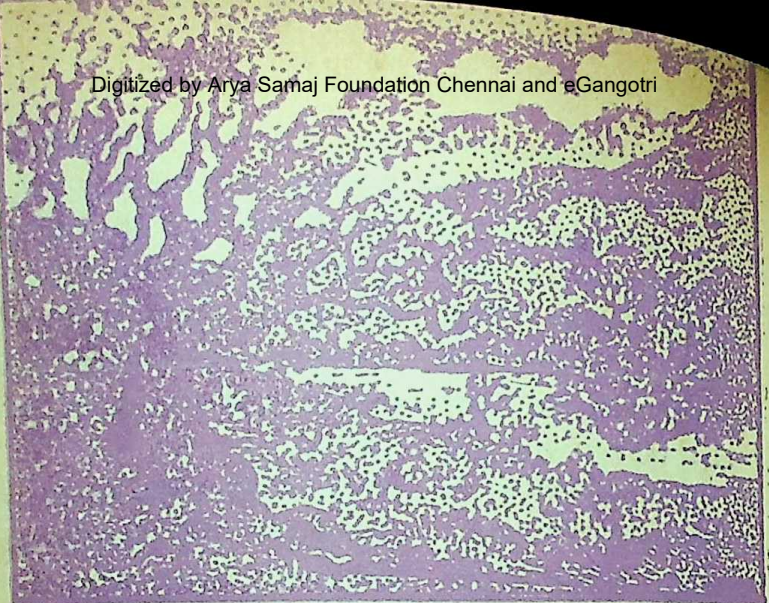
शल्यक्रिया करके उसका स्वरूप प्रत्यक्ष कराता है, भाषा विज्ञान शब्द रचना और वाक्य-विन्यास का स्वरूप निरूपित करता है। दोनों में अत्यन्त निकट की पारस्परिकता है। ऐसे ही कितने मुद्दे वाजपेयीजी ने अपने भाषा विज्ञान एवं निरुक्त विषयक ग्रंथों में उठाये और उन पर टिप्पणियाँ लिखीं।

### वाजपेयीजी की राष्ट्रीय भावना :

सामान्यतः पंडित किशोरीदासजी को साहित्यकार, विद्वान् पंडित, वैयाकरण और अध्यापक के रूप में जाना जाता है। उनकी ख्याति के मूलाधार ये ही घटक हैं। किन्तु उनके लेखन और कार्यकलाप में राष्ट्रीय भावना का जो सूत्र अनुस्यूत है वह उन्हें राजनीति के क्षेत्र में ले जाता है। राजनैतिक नेता का पद उन्होंने कभी नहीं लिया किन्तु परतंत्र भारत की राजनीति में वे सदा सक्रिय रहे। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन से भी वाजपेयीजी जुड़े रहे। कारावास का कष्ट भी सहा, नौकरी से निकाले गये और परिवार को अनेक क्लेश सहन करने पड़े। वाजपेयीजी के हृदय में राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात जलियांवाला बाग के नरसंहार को देखकर हुआ था। जनरल ओडायर की नृशंस क्रूर लीला ने वाजपेयीजी के मन में अंग्रेज जाति के प्रति विद्रोह की भावना भर दी थी। वे अंग्रेजों को क्रूर और दमनकारी शासक मानकर उनकी अवमानना का

(शेषांश पृष्ठ ७८ पर)





डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय की कविता



## अशब्दता

नहीं, कोई शब्द नहीं  
शब्द स्थिति के वाचक हुए  
शब्द दृश्यगति के ज्ञापक हुए  
पर, इस अदृश्य हम्मीर हलचल का  
क्या हो जो बौराए-वजूद में  
अपना हठ नहीं छोड़ती, न ऐंठ  
पठान-धमकी के बावजूद !  
...कोई आखेट खेल रहा है मुझमें  
परमाणु दुबक रहे हैं इधर-उधर  
अचानक, किसी संस्मरण में  
जब त्वचा से चिनगारियां-सी निकलें  
कोई जूतों से दाल-सी बंटे हृत्पटल पर

चित्र : चंदुलाल सांकला



चक्की-सी चलने लगे कानों में  
 जीभ बार-बार होठों पर पौछा लगाये  
 आंखों के भरे बांधों से चादर चलने लगे  
 चेतना चकरघिन्नी खाये  
 सहारे के लिए हाथ ऊपर उठें मन डूब जाय  
 नींव को ढहाती हुई नर्मदा में  
 ... शायद मेरा जीवाणु विध्व गया है  
 कृष्ण के पद्म-सा वधिक के विपैले वाण से  
 कौन-सा सपूत-शब्द है  
 जो विम्बित कर दे इस वेदना को ?  
 सिर्फ काली सुरंग है मेरे अंतरिक्ष में  
 जो नक्षत्रों को भकोस रही है  
 मैं उसकी अंधेरी अंतड़ियों में  
 पिसता हुआ पच रहा हूं  
 अस्तित्व की चटाख टूटन को सुन तो रहा हूं  
 पर कहूं कैसे, किन शब्दों में, किस मुख से ?  
 शून्य इतना भारी होगा, इतना अकथनीय  
 ऐसा न सोचा था, न सहा  
 अब तो शेष बुझी-बुझी पीली-पतली दृष्टि है  
 और अनियोजित श्वास-प्रश्वास  
 कभी किसी पास आती हुई अनुकूल  
 आहट के भरम में  
 प्राण फड़कता है जिवह किये हुए फ़ाखले-सा  
 और फिर अनवरत रक्त-स्राव में  
 बल खाता हुआ अंतिम आलोक  
 भभककर गुल हो जाता है  
 इस अकारण अवसान के लिए  
 नहीं, कोई वाग्यंत्र नहीं, नहीं, कोई शब्द नहीं !!





## (पृष्ठ ७५ का शेषांश)

अवसर ढूँढ़ा करते थे। इस कांड पर उन्होंने पूरी पुस्तक लिखी थी जो शासकों के भय से किसी ने छापी नहीं।

दूसरा कारण स्वभाषा और स्व-संस्कृति प्रेम था जो वाजपेयीजी की राष्ट्रीय भावना को उद्दीप्त करता था। हिन्दी को वाजपेयीजी राष्ट्रभाषा मानते थे। उसके प्रसार-प्रचार के लिए ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के सदस्य बने थे। भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए भी उनके भीतर बड़ा उत्साह रहता था। भाषा और संस्कृति को वे राष्ट्रीयता के मूलतत्त्वों में स्थान देते थे। अपने ग्रंथों में इन दोनों पक्षों पर उन्होंने पर्याप्त बल दिया है और समय आने पर इनके लिए संघर्ष करने में भी उन्होंने कभी पीठ नहीं दिखाई। अंग्रेज शासकों से लड़ने-भिड़ने को तो वे अपना पुनीत कर्तव्य मानते थे किन्तु अपने भारतीय नेताओं से भी इन प्रश्नों पर उनकी मुठभेड़ होती रहती थी। राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर तो महात्मा गांधी से भी भिड़ गये थे। अंग्रेजों के प्रति उनके मन में न तो आदर था और न भय, फिर उनसे प्रीति कैसे होती?

पंडित वाजपेयीजी को राष्ट्रीय कार्यों के लिए दो बार जेल-यात्रा करनी पड़ी। पहली बार सन १९४२ के आन्दोलन में १४ अगस्त को पकड़े गये। सात दिन हवालात में रहे। हथकड़ी का सुख भी भोगा। घर का सामान कुर्क हुआ। जुर्माना

हुआ। जब जेल से छूटे तो घर पर पुनः तिरंगा झंडा फहराकर अंग्रेजी शासन को चुनौती देने का साहस दिखाया। उस समय हरिद्वार, ज्वालापुर और कनखल में एक ही घर पर राष्ट्रीय तिरंगा झंडा लहराता था और वह घर था पं. किशोरीदास वाजपेयी का।

दूसरी बार पंडित वाजपेयीजी को अकारण अपने स्वतंत्र भारत की सरकार ने जेल भेजा। महात्मा गांधी की हत्या के बाद जिन लोगों को हिन्दू सभाई या स्वयं सेवक संघ का कार्यकर्ता मानकर जेल भेजा गया उनमें वाजपेयीजी भी थे। वाजपेयीजी का कांग्रेस के सिवा किसी राजनैतिक संस्था से कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा किन्तु किसी विद्वेष भावना से उन्हें संघ का कार्यकर्ता ठहराकर छह मास के लिए जेल में डाल दिया गया। इस दुःखद प्रसंग को वाजपेयीजी बड़ी मर्यादा के साथ सुनाते थे। जिस कांग्रेस का वे अपने जीवन के साथ वर्षों तक अनुगमन करते रहे उसी के अनुयायियों ने इस महापंडित को संकीर्ण मनोवृत्ति का संघी करार देकर ठुकरा दिया। उनके जीवन का यह सबसे अधिक पीड़क-प्रसंग था।

**सामाजिक कार्यकर्ता वाजपेयीजी :**  
वाजपेयीजी अपनी किशोरावस्था में जब वृन्दावन में संस्कृत पढ़ रहे थे तभी उनके मन पर पं. राधाचरण गोस्वामी के सम्पर्क से समाज-सुधार के बीजवपन हुए थे। सनातनी विचारधारा में पले-पड़े



पर पुनः  
शासन को  
उस समय  
खल में एक  
डा लहराता  
दीदास वाज-

को अका-  
कार ने जेल  
त्या के बाद  
स्वयं सेवक  
ल भेजा गया  
वाजपेयीजी  
राजनैतिक  
ही रहा किन्तु  
गंध का कार्य-  
लिए जेल में  
द प्रसंग को  
डीडा के साथ  
अपने जीवन  
रते रहे उसी  
हापंडित को  
करार देकर  
का यह सबने

रीजी :  
गौरवस्था में  
रहे थे तभी  
गोस्वामी के  
बीजवपन हुए  
में पले-पड़े  
दित्तवर

होने पर भी वाजपेयीजी तत्कालीन समाज-  
सुधार के कार्यों की सराहना करते थे ।  
जातिगत ऊंच-नीच भावना, संकीर्ण वर्ण-  
व्यवस्था, अस्पृश्यता, स्त्री शिक्षा आदि  
विषयों पर लेख लिखकर वाजपेयीजी उस  
समय की लहर के साथ थे । अस्पृश्यता  
को उन्होंने सदा घातक माना और कहा कि  
अस्पृश्य तो वह है जो दुराचारी, रिश्वत-  
खोर, चोरवाजारिया, शराबी और संक्रा-  
मक रोग से घिनौना है । जाति के नाम पर  
किसी को अस्पृश्य या अछूत कहना सामा-  
जिक अपराध है । 'संस्कृत का पांचवां  
अध्याय' शीर्षक पुस्तक में वाजपेयीजी ने  
अंग्रेजी शासन के बाद जो सांस्कृतिक पृष्ठ-  
भूमि हमारे देश में बनी उसकी समीक्षा  
करते हुए सामाजिक सुधारों की ओर  
इंगित किया है ।

एक बड़ा सामाजिक आन्दोलन भी  
वाजपेयीजी ने अपने विवाह के समय स्वयं  
किया था । उन्होंने लिखा है कि 'मेरा  
विवाह पूरे आर्थ डंग पर हुआ था । बारात  
में कुल चार व्यक्ति थे । न सिर पर मौर  
न वाजा-गाजा । नाई पुरोहित भी नहीं ।  
बारों बराती शुद्ध खादी के कपड़ों में थे ।  
स्वागत-सत्कार की कोई औपचारिकता  
नहीं ।' आज से साठ वर्ष पहले इस प्रकार  
के आदर्श विवाह की कल्पना करना कठिन  
है । समाज-सुधार के लिए उन्होंने 'सुदामा'  
शीर्षक नाटक भी लिखा था जिसकी कहीं  
चर्चा नहीं है । यह नाटक अपनी शैली में  
अनूठा है । हास्य-व्यंग्य का इसमें गहरा

१९११

पुट है । सुदामा का सादा सरल जीवन ही  
वाजपेयीजी का आदर्श है । सुदामा ने बार-  
बार स्पष्ट कहा है कि 'जनता के सच्चे  
सेवक को अपना जीवन सादा रखना  
चाहिये और आवश्यकताएं कम से कम  
करनी चाहिये ।' वाजपेयीजी तो स्वयं  
सुदामा की प्रतिमूर्ति थे, उन्हें श्रीकृष्ण  
जैसा कोई मित्र नहीं मिला । समाज-  
सुधार के कार्यों में कभी-कभी अपने लिए  
संकट भी बुलाने में उन्हें संकोच न होता  
था । हरिद्वार के कुंभ पर्व के अवसर पर  
नागा साधुओं को निर्वस्त्र नंगा नहाते देख  
उनके विरुद्ध प्रचार में जुट जाना ऐसे ही  
संकट का निमंत्रण था । हरिद्वार के साधुओं  
ने पंडितजी को समझाया कि यह पुरातन  
प्रथा है । विशाल साधु जमात इसे मानता  
है आप अकेले इसका विरोध करके समाप्त  
नहीं करा सकेंगे । लेकिन वाजपेयीजी का  
कहना था कि 'एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति न च  
ताराशतान्यपि' । आन्दोलन छोड़ दिया ।  
पर्व छपवाकर मेले में बांट दिये । नागा  
लोग कुपित हो उठे । वाजपेयीजी ने पंडित  
नेहरू को इस कुप्रथा को रोकने के लिए  
लिखा । टंडनजी ने भी इस रूढ़ि को बंद  
करने में वाजपेयीजी का समर्थन किया ।  
नागा साधुओं में एक विद्वान् संत थे  
स्वामी चन्द्रशेखर गिरि । उन्होंने वाजपेयी-  
जी को समझाया कि इस विराट जनसमूह  
के मध्य सत्याग्रह जैसा कोई कार्य न करें ।  
नागा साधु खून-खराबी पर उतर सकते  
(शेषांश पृष्ठ १५८ पर)



# फ्रेंच क्रांति के आदि स्वप्न-द्रष्टा महान रूसो की परम प्रेयसी पत्नी और प्रेरणा-शक्ति थिरेसा लिवेसूर



लीलाधर पिरसाली

प्रसिद्ध अंग्रेज उदारवादी विचारक जॉन मोल्ले कहता है कि अन्याय की चक्की के नीचे पिसनेवाली फ्रांस की मूक जनता को महाक्रांति के लिए उत्तेजित करने में सबसे अधिक यदि किसी का हाथ है तो वह ज्याँ जॉक रूसो का। वह सचमुच उस महाक्रांति का जनक था और उसकी पुस्तक 'दि सोशल कंट्राक्ट', जो १७६२ में प्रकाशित हुई थी, उस क्रांति के लिए 'बाइबल' थी। बहुत-कुछ लिखा जा चुका है रूसो और उसके द्वारा अनुप्राणित फ्रांस की राज्यक्रांति पर। परंतु उस महाक्रांति के अनुप्रणेता की एक जीवनसंगिनी भी थी, एक स्त्री 'जिसके साथ मैं (रूसो) उसी आनंद से रहा, जिस आनंद से मैं विश्व के सर्वश्रेष्ठ प्रतिभासंपन्न मानव के साथ रह सकता था', पर इधर-उधर कुछ पंक्तियों से अधिक कुछ भी लिखा नहीं मिलता। कोई स्वतंत्र लेख तक नहीं।

रूसो पर असंख्य जीवनियां प्रकाशित हो चुकी हैं। बहुत कम जीवनी-लेखकों ने अपने ग्रंथों में एक अध्याय थिरेसा लिवेसूर

पर लिखा है। अधिकांश चरित्रकारों ने सुनी-सुनाई बातों के आधार पर विवरण पेश किये हैं। उसे एक अनपढ़, अघड़ और गंवार औरत कहा है। लिखा है कि वह रूसो के प्रति वफादार नहीं थी, उसका प्यार रूसो को लूटने के लिए दिखावा था। उसके चरित्र पर तक शंका की गयी है। शायद, स्त्रियों को समझने में इस तरह की उपेक्षा ही कारण है कि आज स्त्री पुरुष के साथ समानता के लिए लड़ रही है।

हमारी आदत बन गयी है कि जब स्त्री तलवार उठाती है, हम उसका गुणगान करने लगते हैं और जब वह मां होती है, उसके प्रेम पर संदेह करते हैं। आश्चर्य होता है कि थिरेसा लिवेसूर पर कुछ असंबद्ध पंक्तियां लिखकर लेखकों ने रूसो के अर्धांग को नाप डाला। यह लेख थिरेसा को उस रूप में प्रस्तुत कर रहा है, जिस रूप में स्वयं रूसो ने उसे देखा है: 'मैं (रूसो) ने उसमें अपनी मां को पा लिया।'

पेरिस के नज़दीक ओरलियन्स की खानों में काम करने वाले एक अधिकारी श्री

दिसंबर



लिवेसूर। उनकी पत्नी श्रीमती लिवेसूर  
वहाँ एक छोटी-सी दुकान चलाती थीं।  
उनकी सबसे छोटी कन्या थी थिरेसा।  
सन १७२३ में जन्मी। समय का फेर।  
सन १७४५ के शुरुआत में खान बंद हो  
जाने से श्री लिवेसूर की नौकरी छूट गयी।  
इस बीच श्रीमती लिवेसूर की दुकान का  
दिवाला पिट गया। बच्चे इधर-उधर  
नौकरी-धंधे में लग गये थे। थिरेसा को

तेकरपति-पत्नी काम  
को तलाश में पेरिस  
हुँचे। थिरेसा को  
काम मिला सेंट  
क्वेंटिन होटल में।  
वह होटल-मालकिन  
की सहायिका बनी।  
कपड़े धोना, सिलाई  
करना और होटल  
को सफाई उसका  
काम था। उस समय  
रूसो उसी होटल में  
एक किरायेदार की  
हैसियत से रहता था।

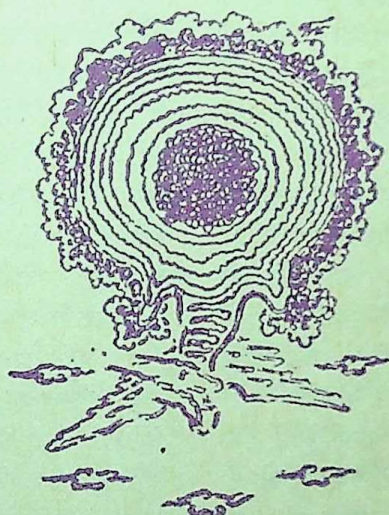
रूसो लिखता है कि थिरेसा के भोले  
सम्भाव, जिन्दादिली और चमचमाती  
आँखों ने उसका दिल जीत लिया। वह  
बहुत शरमाती थी। उसका शरमाना रूसो  
के दिल में उसके प्रति और अधिक आकर्षण  
पैदा करता था। अब सेंट क्वेंटिन मात्र  
एक होटल न था, एक चुम्बक था जो  
दिलभर उसे अपनी ओर खींचता रहता।

वहाँ कोई उसकी याद में रास्ता देख रहा  
होगा, यह स्मरण उसे जल्दी वापस ले  
आता। रूसो उस समय संघर्ष की ज़िदगी  
जी रहा था। हर संघर्षों में जीने वाला  
व्यक्ति बदनाम होता है, रूसो भी था।  
परंतु उसे कितनी मनःशांति मिलती थी  
होटल में वापस आकर। वहाँ छल-कपट-  
रहित एक ऐसा व्यक्ति था जिसके दिल में  
उसके लिए सहानुभूति थी और जो उसके

हर क्रदम पर गर्व  
महसूस करता था।

थिरेसा इससे  
अधिक कर भी क्या  
सकती थी? वह  
अनपढ़ थी। उसने  
रूसो की तरह संसार  
नहीं देखा था। दार्श-  
निक चर्चाओं में साथ  
दे पाना उसके लिए  
असंभव था। रूसो ने  
'कानफेशन्स' (आत्म-  
स्वीकार) ग्रंथ सन  
१७७० के आसपास

पूरा किया है। उस ग्रंथ में रूसो लिखता  
है कि तब तक भी थिरेसा बारह महीनों  
के नाम टीक से नहीं गिन सकती थी।  
उसे पैसों का हिसाब रखना नहीं आता  
था। यहाँ तक कि पूरे एक महीने तक  
प्रशिक्षण के बाद भी दिवाल-घड़ी पर  
समय देखना वह कभी न सीख सकी।  
परंतु रूसो ने इस सबके लिए उसे नहीं





चाहा था। उसे जरूरत थी एक ऐसे हृदय की जिसमें मां का वात्सल्य हो और जो हर साहसिक कदम पर उसका साथ दे सके। थिरेसा में वह सब था। तभी तो वह रूसों की भावनाओं का ध्यान रखते हुए सब कर सकी जो किसी भी सामान्य स्त्री के लिए असंभव था।

होटल सेंट क्वेंटिन के भोजन-गृह के एक कक्ष में वार्तालाप करते समय सन १७४५ के मार्च महीने की एक संध्या को रूसो ने थिरेसा को अपनी कहानी सुनायी। मां जन्म देने के बाद पंद्रहवें दिन स्वर्ग सिधार गयी थी। जब दस वर्ष का था, किसी अपराध के कारण पिता को देश-निकाला हो गया। मामा ने उसे पाला-पोसा और शिक्षा की व्यवस्था की। परंतु परिस्थितियों ने उसे कुछ भी सीखने न दिया। उसकी मजबूरियों ने उससे भीख तक मंगवायी। तभी किसी कैथोलिक पादरी के स्वर्ग के चित्रण से प्रभावित होकर रूसो ने कैथोलिक पंथ की दीक्षा ली और धर्म की उच्च शिक्षा के लिए उस पादरी से पहचान-पत्र लेकर अट्ठाइस वर्षीय श्रीमती वारेन्स के पास गया। तब वह सोलह वर्ष का था। श्रीमती वारेन्स ने उसे मां का स्नेह दिया और पत्नी का प्यार भी। परंतु परिस्थितियों ने रूसो को श्रीमती वारेन्स को छोड़ने के लिए मजबूर किया। बिचारी वारेन्स धूर्तों के चंगुल में फंस गयी थी। वह एक छोटी-सी रकम उसकी परवरिश के लिए

भेजता है।

रूसो थिरेसा से कहता है कि उसने उसने उसी वारेन्स को देखा है। यदि थिरेसा उसके साथ रहना पसंद करे, तो वह उसे जीवन-भर साथ रखेगा। हां, वह शादी जैसे संस्कारों पर विश्वास नहीं रखता; इसलिए वह उससे शादी नहीं करेगा। रूसो ने उसे यह भी बताया कि बचपन में आघात से उसके मूत्राशय में गड़बड़ पैदा हो गयी है, जिसकी वजह से अक्सर उसका पेट दुखता है। पेशाब अपने-आप हो जाया करती है। सिर में दर्द, आदि परेशानियां हर समय बनी रहती हैं। उसने यह भी बताया कि उसके दुश्मन उसे आराम से नहीं रहने देते। उसके रास्ते में अड़चनें पैदा करते हैं। वह चाहता है कि थिरेसा उसकी रक्षा करे। इस संसार से जूझता हुआ वह उसके पास सुरक्षित रह पायेगा।

यह जानते हुए भी कि रूसो अस्वस्थ है, किसी दूसरे के प्यार में फंसा है और उसे सिर्फ रखबैल की तरह रखना चाहता है, थिरेसा ने अपने को उसे समर्पित कर दिया। ऐसे साफ आदमी से अपना रहस्य छिपाना भी उसने अनुचित समझा। आंखों में आंसू भरे उसने बताया कि जबानी की शुरुआत में उसके भोलेपन का फायदा उठाकर किसी धूर्त ने उसकी इज्जत को लूटा था।

‘कुंआरापन, ओ थिरेसा, बीस वर्ष की एक सुंदरी पेरिस जैसे शहर में एक-आध



कफा फिसल जाये, उसमें बुरा क्या है ? मैं कितना खुश हूं तुम्हें पाकर...मैं कुंआरी लड़की नहीं ढूंढ़ रहा, थिरेसा । मैं....'

रूसो और थिरेसा दोनों साथ-साथ रहने लगे । होटल सेंट क्वेंटिन के नजदीक उन्होंने एक घर ले लिया । श्रीमती लिवे-सूर भी अपनी दूसरी लड़कियों एवं पोते-पोतियों के साथ वहां रहने आ गयी । रूसो चिन्तित था कि उसकी थोड़ी-सी आमदनी में आठ जनों का कैसे पोषण होगा ? परंतु थिरेसा के साथ रहते वह सब भूल जाता । चौथे मजले पर स्थित कमरे के वरामदे में बैठकर दोनों बची-बची रोटियों का थोड़े मक्खन के साथ उसी तरह आनंद लेते, जैसे कोई शाही दम्पति अपने महल में स्वादिष्ट व्यञ्जनों का ले रहे हों । रूसो लिखता है, 'थिरेसा बाना क्या बनाती थी, अन्न में अमृत घोलती थी ।'

सन १७४७ के आखिरी महीने । थिरेसा मां बननेवाली है । बहुत प्रसन्न है वह, उतनी ही जितनी कोई स्त्री प्रथम बार मां बनते समय होती है । शायद, उससे भी अधिक । बीमार पति का क्या भरोसा ? वह बालक उसके लिए पति का मूर्तरूप होगा । वच्चा हुआ । बेहद सुंदर । बाप जैसा । थिरेसा ने उसे रूसो की गोद में रख दिया । रूसो की आंखें भर आयीं । कैंगाली में जीने वाला वह अपनी संतान को क्या दे पायेगा ? यही, दुःखों और अपमानों से भरी जिन्दगी । लोग कहेंगे

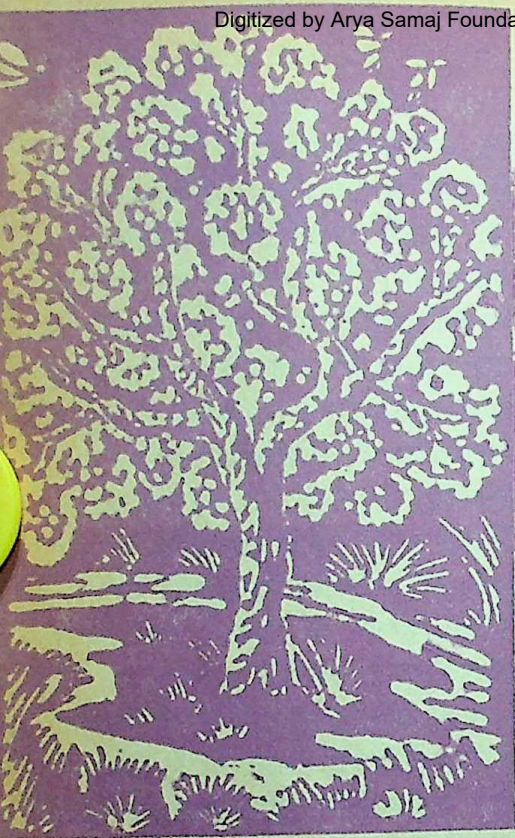
११८१

यह रूसो की संतान है और उसका तिर-स्कार करेंगे ! इससे तो अच्छा है कि वह वच्चा अनाथों की तरह राज्य के संरक्षण में पले । तब, कम-से-कम वच्चे पर उसकी छाया तो नहीं पड़ेगी और वह एक किसान अथवा शिल्पकार की जिन्दगी सम्मान के साथ जी पायेगा । उसने वच्चे को अनाथालय में सौंप देने का निश्चय किया । पति की इच्छा के लिए थिरेसाने इस निर्णय को रोकर स्वीकार कर लिया । सन १७४८ में दूसरा, १७५० में तीसरा व उसके बाद दो वच्चे और हुए । सभी अनाथालय के सुपुर्द कर दिये गये । थिरेसा ने उन्हें हर बार आंसू बहाकर विदा किया ।

बहुत-से चरित्रकार लिखते हैं कि रूसो के दिल में अपनी संतान के प्रति मोह नहीं था । वह उन्हें थिरेसा के नाजायज संबंधों से उत्पन्न मानता था । दुःख होता है कि उन्होंने रूसो की कहानी उसकी जवानी नहीं पढ़ी । रूसो बार-बार अपने वच्चों की याद में आंसू बहाता है । उन्हें अनाथालय में सौंपने के कृत्य पर पश्चाताप करता है । सन १७६० के आसपास मित्रों की मदद से उसने उन्हें खोज निकालने की कोशिश की थी, परंतु असफल रहा । संतान-त्याग का भयंकर मानसिक परिणाम उसे अंत में झेलना पड़ा ।

जवानी में वह अपनी भावनाओं को दबाने में सफल रहा । थिरेसा का साहचर्य (शेषांश पृष्ठ १५९ पर)





प्रेमशंकर रघुवंशी की  
तीन संगत कविताएं



ऊर्जा का संघर्ष

(१)

ओ मेरी प्रार्थना !  
यह मैं नहीं जानता  
कि हममें से पहले  
किसने किसे पाया था

किंतु यह सच है  
कि मैं एक यायावर की तरह  
अपने ही अंतस की  
कस्तूरी गंध में खोया  
जब एक-एक वनस्पति को सूंघता हुआ  
मैदानों, वनों और पहाड़ों में  
कुलांचें लगा रहा था  
तब तुम—

एक अक्षय गंधकोष की तरह  
मेरी ही नाभि में समा गयी थीं

उस वक्त तुम भी यायावरी थीं  
उस वक्त तुम्हें भी  
एक हिरण्यगर्भ की खोज रही होगी

तुम्हें नाभि से लेकर  
कंठ तक खींचने की यात्रा  
मुझे अकेले ही करनी पड़ी है  
मह बहुत-बहुत लंबी यातना में डूबी हुई  
एक सुखद अनुभूति है

दिसंबर



जिसमें कितने ही शब्द-पर्वतों के  
हिंसक अहिंसक परिवेशों को पार करता हुआ  
आज तुम्हें एक स्वर दे पा रहा हूँ  
वह मेरी ऊर्जा का

पहला संघर्ष है, मेरी प्रार्थना !  
अब तुम्हें यायावरी नहीं होने दूंगा  
नहीं होने दूंगा यायावरी तुम्हें  
तुम्हें मेरे ही मानसरोवर में बंठकर  
सहस्रदल कमल बनना है

जिसकी पंखुरियों के  
खिलने के अंतर्नाद को पीता हुआ

मैं : एक जीता हुआ—  
प्रार्थना स्वर बन सकूँ !

०००

(२)

ओ मेरी प्रार्थना !

तुम मुझे

एक स्वर के रूप में मिली हो

और मैंने तुम्हें

एक आचमन की तरह

अपने कंठ की वंशी में

विह्वलता के साथ पान कर लिया है

मैं अपनी दिनचर्या में लगकर भी

तुम्हारे ही आलापों से गमकता हूँ

अब मुझे

गँदी से लेकर हाथी तक को

१९८१

हथेलियों और नज़रों से सहलाते हुए  
तुम्हारा स्वर  
उनके कंठों में भी उतारना है  
उलीचना है यह कोष

ताकि संपूर्ण सृष्टि ही  
एक प्रार्थना पुरुष हो जाये  
और विसंगतियों की तमाम दरारें  
तुम्हारी प्रभा में डूबकर  
शुद्ध सच्चिदानंद बन जायें !!

०००

(३)

वाक्यों, शब्दों, और अर्थों के

आपसी तनावों से मुक्त

मैं—स्वरों के संसार में समा गया हूँ





और ये भी मुझमें पैठकर  
ब्रह्मरंध्री हो गये हैं

और सजने लगा हूं  
पूजा के थाल जैसा

ओ प्रार्थना—ओ पीयूषरसवर्षिणी  
तुमने आते ही यह किया  
कि अब, मैं भी बजने लगा हूं

जिसके उजले हुए  
दियों को  
मानसगंगा में छोड़ता हुआ  
दीपोत्सव मना रहा हूं



तुम इनका ही  
आलोक संगीत बनकर  
मेरे कंठ में —

अवतरित होती रहो

अवतरित होती रहो

अवतरित होती रहो

और बोती रहो—वह  
जो — है !!



विवाह क्या है ?

विवाह एक कैंची है, जिसमें दो व्यक्ति ऐसे जुड़े हैं जो अलग नहीं हो सकते। जब भी चलते हैं विपरीत दिशा में ही, लेकिन कोई दूसरा बीच में आये तो खतरे से खाली नहीं !

०००

धैर्य कितना ?

निस्संदेह संसार सुख का स्वर्ग बन जाये अगर हम हर समय हर काम में उतना धैर्य रख सकें, जितना मछली पकड़ते समय रखते हैं।

०००

अच्छा कौन ?

अंधा देख नहीं सकता, इसलिए अगर कोई कुत्ता भी राह दिखाये तो उसे प्रसन्नता होती है। परंतु अकल के अंधे को राह दिखाने की हिम्मत किसमें है ?







धूप

मनोज सोनकर

बिलचिलाती थी धूप . . . .

शोर मेरा आज्ञा भटक-भटक गोदा  
हेरता था !

बिलचिलाती थी धूप . . .

शोर मेरी आज्ञा कुछ-कुछ कंडा हेरती थी !

बिलचिलाती थी धूप . . .

शोर मेरा दादा बेगार में धरलिया जाता था !

बिलचिलाती थी धूप . . .

शोर मेरी माई कुटाई करती हांफती थी !

बिलचिला रही है धूप . . .

शोर में 'गांगल' खीसे में रख

युनिवर्सिटी लायब्रेरी में बैठा हूं

मेरे सामने—लेनिन हैं ! मुक्तिबोध हैं !

अज्ञेय हैं ! निराला हैं ! महादेवी हैं ! . . .

परीक्षा की तैयारी में जुटे विद्यार्थी हैं

बगीचे में, पेड़ों की झोली छाया में

धूम-धूम पड़ते नौकरीपेशा लड़के भी हैं !

तुम अभी-अभी आकर मेरे सामने बैठे हो  
'बेरी हॉट नो ?'—काफी गर्मी है न ? कहकर  
इत्र में सना 'इपोटेड' रुमाल हिलाया है  
और मैं कुछ न बोल, तुम्हारे चेहरे पर  
नजर गड़ाता हूं

पाता हूं—'मेक अप' पग फूटे नाले !

मेरी दादी का झुर्रीदार चेहरा

सेन्ट्रल रेलवे के नक्शे की तरह

मेरी आंखों के सामने बड़ी तेजी से

उभरता है !

और तुम्हारी बेसब्री बढ़ती है —

'बेरी हॉट नो ?'—काफी गर्मी है न ?

न जाने क्यों

तुम्हारा यह सवाल

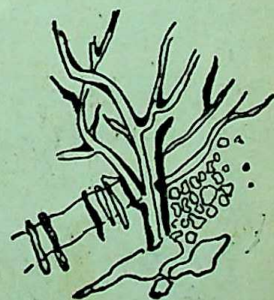
मुझे बड़ा बेमानी लगता है

और धूप का जायजा लेनेवाली मानसिकता

एक चक्रव्यूह बनाती है !

—होमाय खाड़ी, ५९९ रमेशबाग,

जामेजमशेद रोड, माटुंगा, बंबई-१९



हिंदी डाइजेस्ट



प्रसिद्ध पंजाबी कथाकार गुरुबख्श सिंह  
का एक संस्मरणात्मक आत्म-निवेदन

# मेरी पहली कहानी

सन १९१३ में मैंने नौकरी छोड़कर फिर से कालेज में दाखिल होने का फैसला किया। पढ़ाई के खर्च के लिए मैं अपनी पत्नी के गहने बेचना चाहता था। सो, उसे राजी करने के लिए मैंने छोटा-सा उपन्यास लिखा, जिसे कहानी के रूप में संक्षिप्त करके १९३४ में 'प्रतिमा' शीर्षक से छपा था।

लेकिन मैं सही अर्थों में जिसे अपनी पहली कहानी कह सकता हूँ, वह मैंने १९२२ में लिखी थी, जिन दिनों कि मैं अमरीका के एक बहुत बड़े औद्योगिक नगर में इंजीनियर के रूप में काम कर रहा था।

उस कहानी का नाम था, 'भूखी आत्मा'। जिस प्रकार प्रेरणा पाकर मैंने उसे लिखा, वह अपने आप में एक दिलचस्प कहानी है।

एक सिनेमा-हाल में दाखिल होकर मैं अभी बैठा ही था कि वहां के एक कर्मचारी ने मुझे पगड़ी उतारने के लिए कहा, क्योंकि वहां टोपी पहनकर किसी थियेटर में बैठना असभ्यता माना जाता था। जवाब में मैंने कहा कि मेरे सिर पर

टोपी नहीं, बल्कि पगड़ी है, और अच्छा हो कि वह इस बारे में अपने मैनेजर से जाकर बात करे। वह गया और लौटने पर उसने फिर कहा कि पगड़ी पहनकर बैठने की इजाजत बिल्कुल नहीं मिल सकती। लेकिन हां, अगर मैं ऊपर किसी गैलरी में किसी वाक्स में बैठना चाहूँ, तो मुझसे टिकट के अतिरिक्त पैसे नहीं लिये जायेंगे।

मैं उसका धन्यवाद करके वहां से चला आया, और उसी दिन एक स्थानीय समाचार-पत्र को इस सिलसिले में पत्र लिखकर भेज दिया। उस पत्र का शीर्षक भी मैंने दिया : 'एक विदेशी आपके दरवाजे पर'। अगले ही दिन वह पत्र छप गया। और उसके अगले दिन सिनेमा-मैनेजर की क्षमा-याचना के अलावा बहुत-से लोगों के पत्र मुझे मिले, जिनमें एक पत्र उस स्त्री का था, जिसकी मित्रता ने अमरीका में रहने के दौरान मेरा जीवन ही आनंददायक नहीं बनाया, बल्कि लेखक बनने की पहली प्रेरणा मेरी आत्मा में बसा दी।



उस अद्भुत स्त्री का पत्र भी अद्भुत था। उसने लिखा था :

‘समाचार-पत्र में छपा आपका पत्र एक युवती मेरे पास लायी। मैं उसे अभी पढ़ ही रही थी कि एक और स्त्री हाथ में समाचार-पत्र पकड़े मुस्कराती हुई मेरे घर में दाखिल हुई। फिर, अभी आधा घंटा भी नहीं बीता होगा कि छह स्त्रियाँ-पुरुष मेरे कमरे में बैठे आपके बारे में बातें कर रहे थे। इससे मैं यह बताना चाहती हूँ कि हिन्दुस्तान के साथ मेरी दिलचस्पी इतनी ज्यादा है कि छह व्यक्तियों ने आपके पत्र का मेरे साथ इतना गहरा संबंध समझा।

‘आप मिलने के लिए आ सकें, तो मुझे बहुत खुशी होगी। लेकिन किसी गलत-फहमी के कारण आपको निराश न होना पड़े, सो मैं पहले से ही बता दूँ कि मैं कोई धनवान स्त्री नहीं हूँ। मैं खुद अपने हाथों से दीवारों पर कागज लगाने का काम करती हूँ। मैं कोई जवान, सुंदर स्त्री भी नहीं। मेरे सभी बाल सफेद हैं और मैं उम्र के पचास साल पार कर चुकी हूँ।

‘लेकिन अगर आपको मित्रता की प्रवृत्ति है, प्यार की लालसा है, तो आप बहर ही मुझे मिलने के लिए आयें। मेरे मित्रों का घेरा काफी चौड़ा है, और मैं सभी आपसे मिलकर बहुत खुश होंगे।’

मैं इस स्त्री के पास गया, जिसका नाम था, श्रीमती मैकाटरी। पति, पुत्र, पुत्रियाँ—सभी थे उसके, लेकिन वह किसी के साथ रहती नहीं थी, न ही किसी से कोई आर्थिक सहायता ही लेती थी। उसके एक धनवान प्रशंसक ने उसे थोड़ी-सी जमीन लेकर उसमें एक छोटा-सा घर बनवा दिया था। अपनी रोजी वह खुद कमाती थी। कला और साहित्य संबंधी ज्ञान की बदौलत उसका अपने मित्रों में बहुत सम्मान था। उसका छोटा-सा कद

था, अतीव कोमल अंग थे, और आंखों में चमक भरी हुई थी। बातें करते समय उसकी अंगुलियों, उसकी आंखों, उसके होठों में से जैसे बिजली की तरंग बहती थी। कई व्यक्ति तो उसे ‘बिजली का तार’ कहा करते थे।



### गुरुबल्लभ सिंह

उस मुलाकात में श्रीमती मैकाटरी ने मेरे पत्र के प्रत्येक वाक्य की प्रशंसा की, तो मेरे अंदर झुनझुनी पैदा होने से न रही। मेरे मन में लेखकों के प्रति श्रद्धा का भाव तो कई बार आया था, लेकिन खुद लेखक बनने के बारे में सोचने का मैंने कभी साहस नहीं किया था। तब श्रीमती मैकाटरी ने पहली बार यह सपना भी मेरे मन में जगाया और मैंने सोचा : ‘कई लोगों के सामने मैं अपने दिल की



दुनिया साकार कर सकूंगा ? उनमें से कुछ एक को वह दुनिया अच्छी भी लग सकती है, कुछ मुझसे मिलना भी चाह सकते हैं, और कुछ मुझे प्यार भी कर सकते हैं। तब मेरी जिंदगी कितनी दिल-चस्प बन सकती है !'

श्रीमती मैकाटरी ने मेरे जीवन के कई पक्ष जानने की इच्छा प्रकट की, और कई व्यक्तियों से मेरे संबंधों के बारे में सुनकर वे कहने से न रहीं :

'कहीं आप इन सबके बारे में लिख लें। और मैं विश्वास के साथ कह सकती हूं कि आप लिख सकते हैं। यह मैं इसलिए नहीं कह रही, क्योंकि आप मुझे अच्छे लग रहे हैं, बल्कि इसलिए कि मैंने काफी सारा साहित्य पढ़ा है, और आपमें मुझे बहुत सम्भावनाएं दिखायी दे रही हैं !'

वहां से लौटने पर मुझे लगा कि उस रात मेरे अंदर बहुत कुछ ऐसा था, जो लिखा जाने के लिए बेकरार हो उठा था। मैं सो न सका और एक भूखी आत्मा की कहानी अंग्रेजी में लिख डाली। अगले दिन वह कहानी मैंने श्रीमती मैकाटरी को दिखाई, तो उसे पढ़ते समय उसने कई बार आंखें बंद कीं। अंत में, उसने कहा :

'बहुत सुंदर लिखी है यह कहानी। अगर आप इसका अंत बदल सकें, तो यह अमरीका में छप सकती है और इसका अच्छा पारिश्रमिक भी मिल सकता है।'

०००

यह कहानी एक पंजाबी युवती के बारे में थी, जो अपनी बड़ी बहन की मौत के बाद अपने अमीर जीजा के साथ ब्याही गयी थी।

शादी होने के कुछ ही अरसे बाद उसे अपनी बहन की मौत का कारण पता चला था, तो उसे अपनी मौत भी दिखायी देने लगी थी। उसके पति के परिवार में सिर्फ धन-दौलत की ही चर्चा थी। परिवार का कोई भी व्यक्ति किसी के काम आने, किसी की प्रतीक्षा करने और फिर उससे मिलने की खुशी से जैसे अनजान था।

और जिस परिवार में से वह आयी थी, वहां हर कोई दूसरों की खुशी के लिए जीता था। लेकिन शादी के पहले ही साल में उसकी जीने की लालसा मर गयी। आखिर मानसिक रोगी समझकर उसका इलाज कराया गया। पर उसकी हालत में कोई फर्क न पड़ा।

मेरे चाचाजी के साथ उसके परिवार का संबंध था, और चाचाजी बहुत दयालु व्यक्ति थे। सो, वे उसे अपने यहां ले आये। उन्हीं दिनों मैं भी दो हफ्तों की छुट्टी बिताने के लिए उनके यहां गया। स्वाभाविक था कि उस भूखी आत्मा से मुझे हमदर्दी हो गयी। तब उसे यह अहसास होने से न रहा कि वह मुझे अच्छी लगती थी।

और इस अहसास की बदौलत उसकी

दिसंबर



ती के बारे  
की मौत के  
साथ व्याही

अरसे बाद

का कारण

की मौत भी

के पति के

की ही चर्चा

यन्त्रि किसी

तीक्षा करने

बुशी से जैसे

वह आया

की खुशी

न शादी के

जीने की

र मानसिक

लाज कराया

कोई फर्क न

उसके परि-

चाजी बहुत

से अपने यहां

दो हफ्तों की

यहां गया।

भी आत्मा से

उसे यह अहं

ह मुझे अच्छी

दिलत उसकी

दिसंबर

हालत में तबदीली आने लगी। अब वह निराश और हताश-सी एक ही जगह बैठी नहीं रहती थी। जब मैं अपनी बहनों को कोई कहानी सुनाता, तो वह भी पास आकर बैठ जाती, और कभी किसी बात पर उसके होठों पर हल्की-सी मुस्कराहट आने से न रहती। फिर, एक शाम वह मेरे साथ नहर पर जाने के लिए भी मान गयी।

वहां उसने चांद चढ़ने तक बैठना चाहा और मेरे कहने पर एक गीत भी गायक सुनाया।

उस शाम के बाद वह एकदम नयी बन गयी और फिर अपनी मर्जी से ससुराल चली गयी, जहां जाने के नाम से ही वह कांप उठती थी।

यह जानकर मुझे हमेशा खुशी होती कि उसकी सारी तकलीफ दूर हो गयी थी और अब वह स्वस्थ और खुश थी। लगभग एक साल बाद उसने अपनी इस तबदीली का कारण बताते हुए मुझे पत्र में लिखा था :

‘मेरे मन में बहुत बड़ी लालसा थी कि मैं किसी को अच्छी लगूं और कोई मुझे कहे कि मैं भी किसी के काम आ सकती हूं; और कोई मुझे देखकर खुशी महसूस करे...। भैया, आपने यह सब कुछ कितनी जल्दी कर दिखाया ! आपने यह भी कहा कि मैं चाहे कहीं भी रहूं, आपको चाहे कभी मिलूं भी न, आप मुझे हमेशा अच्छी ही समझेंगे। आपको



मेरा गाना भी अच्छा लगा, जो कभी किसी ने सुना नहीं था और जो मेरे अंदर दर्द बना हुआ था।... आखिर आपने मेरी लालसा पूरी कर दी। अब मुझे न अपने पति और न ही ससुराल की किसी चीज के बारे में कोई शिकायत होती है। और मेरी गोद में एक बच्चा भी आ गया है, जिसे मैं अपने भैया की ही अमूल्य देन समझती हूं।’

श्रीमती मैकाटरी ने फिर कहा : ‘अमरीका में भाई लड़कियों को बच्चे नहीं देते, इसलिए यह कहानी यहां स्वीकृत नहीं होगी। मैं चाहती हूं कि इसमें आप संकेत के तौर पर शारीरिक संबंध का जिक्र कर दें।’

उन दिनों यह सलाह मैं कबूल नहीं कर पाया था। मैं समझता था कि यह तबदीली कहानी के साथ इंसाफ नहीं करेगी। तो, उस कहानी को मैंने ज्यों का त्यों ही रहने दिया था।

और कहानी मैंने जहां-जहां भी भेजी, अस्वीकृत होकर वापस आ गयी थी।

**अनुवाद : सुखबीर**





# शौक गप्प लड़ाने का

**ग**प्प लड़ाना अपने देश में बहुत लोकप्रिय है। गप्प लड़ाने के शौकीन गांव-गांव नगर-नगर और यहां तक कि घर-घर, दफ्तर-दफ्तर और गली-गली मिल जायेंगे। इस शौक में लिंग-भेद कोई बाधा नहीं डालता। नर और मादा दोनों ही गप्प-रस का रसास्वादन समान रूप से करते हैं। शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, अंगूठा छाप हो अथवा आई. ए. एस., नेता हो अथवा चमचा, गप्प के घाट पर सब समान रूप से जल ग्रहण करते हैं।

विकसित देशों की अपेक्षाकृत अपने देश में अणुशक्ति कम पायी जाती है। यह भ्रांति है। समस्त देश में गप्प लड़ाने में जितनी ऊर्जा-शक्ति का व्यय होता है यदि इस शक्ति को एकत्रित रूप में इस्तेमाल में लाया जाये तो 'गप्प-पावर-प्लांट' 'अणु-उत्पादक-प्लांट' में परिवर्तित हो सकता है। साथ में यह भी लाभ है कि गप्प-शक्ति से बनायी गयी अणु-शक्ति शांति के प्रयासों में ही उपयोग में लायी जायेगी।

एशियाटिक खेलों की तैयारी में करोड़ों रुपये व्यय किये जा रहे हैं। इसमें अनेक

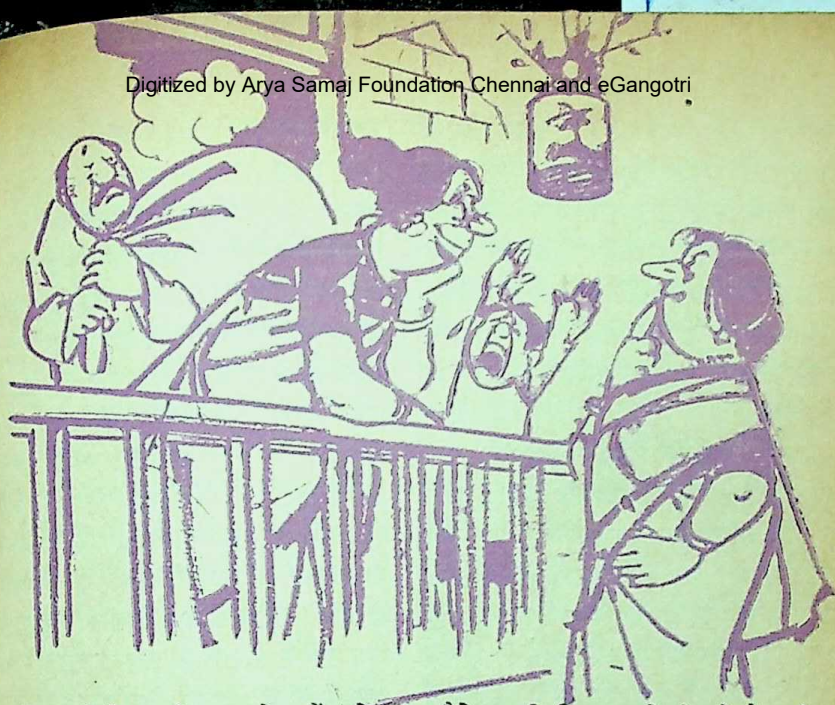
खेलों में प्रतियोगिताएं होंगी। काश, 'गप्प प्रतियोगिता' को भी सम्मिलित किया जाता तो हमारा देश अधिकांश स्वर्ण-पदकों को जीत लेता। राजनैतिक पार्टियां अनेक हैं, उनमें मतभेद भी हैं किंतु गप्प लड़ाने को अपने यहां का राष्ट्रीय मनोरंजन के एकमत से स्वीकार करती हैं।

शरद-ऋतु की दोपहर का समय है। गृहणियां किसी एक घर के बरामदे में एकत्रित हैं। दाल जल रही है, बच्चे रो रहे हैं, धोबी कपड़े देने को इंतजार कर रहा है, पति महोदय को दफ्तर जाने को देर हो रही है और इधर अखंड-गप्प-सम्मेलन चल रहा है। रंग-विरंगे विषय, रंग-विरंगी गप्पें, रंग-विरंगे लहजे, समय का कोई बंधन नहीं, रस में पूर्णरूपेण तल्लीन। 'अहा ! गप्प भी अद्भुत रस है, नहीं किसी का इस पर वश है।'।

एक बार मैं ट्रेन में सफर कर रहा था। श्री-टीयर का डिब्बा था। मैं सबसे ऊपर की बर्थ पर था। नीचे गप्प-सम्मेलन चल रहा था। सम्मेलन में भाग लेने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही थी। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि गप्प-सम्मिति का

दिनांक





वार्षिक अधिवेशन हो रहा हो। मैं अकेला मूर्ख था जो सोने का असफल प्रयास कर रहा था। कभी-कभी सीट से उठकर गप्प प्रेमियों के ऊपर कूद पड़ने की इच्छा होती थी। हाथ-पैर टूट जाने के डर से ऐसा नहीं कर पा रहा था। सोचने लगा, रेलों के चलने में कोयले के अभाव का अक्सर रोना रोया जाता है। यदि वैज्ञानिक तरीके से गप्प-शक्ति का प्रयोग किया जाये तो इसी शक्ति से बिना कोयले के इंजन क्यों नहीं चल सकते ?

आप 'ट्रंक काल' बुक कराने को उत्सुक हैं। नंबर मिल गया है किंतु वहां रूपसियों की कोयल जैसी मीठी बोली नहीं, बोलियां सुनायी पड़ रही हैं, वे रसलीन हैं, भाव विभोर हैं, कलरव सुनायी पड़ता है, आप

बैठे अपनी किस्मत को रो रहे हैं वहां गप्प गोष्ठी का अधिवेशन जोरों से चल रहा है। आप टिकट की खिड़की पर खड़े हैं, ट्रेन प्लेटफार्म पर आ चुकी है, बाबू साहब प्रासाद में अपनी 'गर्ल-फ्रेंड' से शाम के कार्यक्रम को अंतिम रूप दे रहे हैं। आपकी प्रस्तावित यात्रा का अंतिम संस्कार हो जाये, उन्हें कोई सरोकार नहीं !

आपको कश्मीर की सुषमा देखने का शौक चर्राया। आप सपरिवार निकल पड़ते हैं। जम्मू से श्रीनगर वाली बस में बैठे हैं। ड्राइवर महोदय का भी कोई लंगोटिया यार उनके पास बैठा है और अतीत की अविस्मरणीय घटनाओं का आदान-प्रदान दोनों में चल रहा है। आप हज़ारों फुट की ऊंचाई पर हैं। सड़क के एक ओर पहाड़ है



दूसरी ओर पाताल लोक । तनिक-सी देर में ही आप सपरिवार दूसरे लोक में जा सकते हैं । आप का दिल छलांग मारने लगा है, आप सोचने लग जाते हैं कि जीवन बीमा की आपकी किस्तें पूरी जमा हैं कि नहीं । आप कुछ भी सोचते रहिये, ड्राइवर तथा उनके प्रिय तो गप्पों में पूर्णरूपेण लिप्त हो चुके हैं ।

हमारे पड़ोसी मिस्टर सेठ तो गप्प मारने के इतन शौकीन हैं कि उनकी गप्पों के प्रति प्रतिबद्धता का वर्णन नहीं किया जा सकता । घर से तरकारी लेने निकले हैं, रास्ते में कोई मित्र मिल गया तो चाहे लंच का समय भी बीत जाये पर वे लौटने का नाम ही नहीं लेंगे । तरकारी छोड़ यदि घर में पड़े हुए किसी मरीज की दवाई ही लेने गये हों पर वे गप्प लड़ाने के मौके को हाथ से नहीं जाने देंगे, मरीज का कुछ भी हाल हो जाये ।

विद्यालय हो, महाविद्यालय हो अथवा विश्वविद्यालय हो, स्टाफ रूम तो गप्प-कक्ष ही होते हैं । घंटी बज चुकी है, विद्यार्थी अपलक नेत्रों से गुरुजी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं, इधर गुरुजी गप्प-गोष्ठी में इतने लीन हैं कि उन्हें यही पता नहीं चला कि घन्-घन् घंटी कब की बज गयी ?

गप्प के प्रेमियों का सिद्धांत 'कला कला के लिए' की भांति 'गप्प गप्प के लिए' होता है । गप्प का विषय इस नश्वर संसार से लेकर अंतरिक्ष भी हो सकता है । गप्प

मारने वालों को अनेक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है । उदाहरण के लिए हमारी पड़ोसिन दुलारी बाई को ले सकते हैं । इनके चिरंजीव की उम्र लगभग चालीस वर्ष की है । हाथी के छोटे बच्चे जैसा आकार है । आवनूसी रंग है । मस्तिष्क शुरू से ही विकृत है । विवाह के अनेक प्रस्ताव आये किंतु जो लड़कीवाला एक बार देख गया उसने फिर लौटकर कोई सुधि नहीं ली । इसीलिए चिरंजीव अभी तक ब्रह्मचर्याश्रम में हैं । दुलारी बाई गप्प मारने में 'डी-लक्स' श्रेणी में आती हैं । वे अपने अविवाहित चिरंजीव के गुणों का जब वर्णन करती हैं तब कहती हैं—'क्या बताऊं, दीदी, हमारे साहबजादे को कोई लड़की ही पसंद नहीं आती । उस दिन अहमदाबाद के एक मिल-मालिक अपनी लड़की का रिश्ता लेकर आये थे । लड़की जैसे गुलाब का फूल । दहेज में हेलीकॉप्टर देने को भी राजी हो गये, कार की तो उन्होंने इसलिए बात नहीं की क्योंकि अपने यहां तो पहले से ही कारों की लाइन लगी हुई है । पर, दीदी, मेरे बेटे को कोई लड़की तो पसंद आवे ।

'एक दिन एक मिलिट्री के कर्नल अपनी लड़की के रिश्ते के लिए आये थे । लड़की किसी दूतावास में सर्विस करती थी । हमारे साहबजादे को कर्नल साहब को छज्जेदार मूँछें पसंद नहीं आयीं । मैंने बहुत समझाया कि समुरजी की मूँछों से तुम्हें क्या लेना-देना है, पर ये तो जिस बात पर

दिसंबर



अड़ गये तो फिर हटने का नाम नहीं लेते।

दीदी, परसों अपनी जाति के लाला करोड़ीमल आये थे। एक लाख शादी में लगाने को तैयार थे। लड़की मोटी थी तो ये क्या कम मोटे हैं। लड़की तुलवाई, वह इनसे वजन में २० किलो ज्यादा निकल आयी, तब बताओ इनके वजन के बिल-कुल बराबर की कहां से लाऊं ?

दीदी ने उनके चिरंजीव का वजन तोट किया और यह कहकर अपना पिंड छुड़ाया कि जैसे ही इस वजन की लड़की का उन्हें पता लगेगा, वे तुरंत सूचना देंगी।

गम्पी महिला हो अथवा पुरुष, यदि आप उनके चंगुल में फंस जायें तो निकलना

मुश्किल पड़ जाता है। देश में गम्प-कला का इतना प्रचलन देखकर 'गम्प-कला मंत्रालय' खोलने के मुझाव पर भारत सरकार विचार कर सकती है। नेतागण के भाषणों में अधिकांश भाग गम्पों का होता ही है। इस मंत्रालय का मंत्री उसे ही बनाया जाये जो भाषणों में शत प्रतिशत गम्पों का ही प्रयोग करता हो। राज्य स्तर पर तथा अखिल भारतीय स्तर पर गम्प-प्रतियोगिताएं करायी जायें तथा विजेताओं को गम्प-सम्राट, गम्प-श्री, गम्प-रत्न आदि उपाधियों से विभूषित किया जाये। अपने देश की इस अनमोल कला के संवर्द्धन के लिए प्राइवेट तथा पब्लिक दोनों ही सैक्टरों को ध्यान देना चाहिये।

—१३/७ शक्तिनगर, दिल्ली-७



### चीनी कहावतें

हरा चश्मा लगाने वाले को सब हरा-हरा ही दिखायी देता है।

०००

अपने को चुटकी काटने पर ही, हम दूसरे के कण्ठ को समझ सकते हैं।

०००

रोगों का इलाज हो सकता है, नियति का नहीं।

०००

ईर्ष्या की यातना वैसी ही है, जैसे आंख में बालू-कण गिर जाये।

०००

पिता है तो पुत्र होगा ही।

०००

सत्तर वर्ष के व्यक्ति को रात को रुकने, और अस्सी वर्ष के व्यक्ति को बैठने के लिए न कहो।





# डॉ. कमलकिशोर गोयनका की हाइकु कवितारं

० विशाल अट्टालिका के सामने  
नंगा, भूखा भिखारी  
खाली कटोरा ।

० शिशिर की गत  
निर्वस्त्र वदन  
भूखा पेट ।

० दीपक की लौ  
पकड़ रहा  
शिशु ।

० वसन्त का जाना  
चीखती कोयल  
रोती धरती ।

० व्यस्त बाजार  
सड़क पर पड़ी लाश  
नितांत अकेली ।

० शिशिर की गत  
निर्वस्त्र भिखारी  
घरती और आकाश ।

० कोयल फुदकती, गाती  
गाती, फुदकती फिरती  
कितनी मदमस्त ।

० रात का जुगनू  
दिन में  
लाल कीट ।

० महानगर की रात  
एक दूसरे की बहन  
दो दोस्तों के साथ ।

० अमावस की रात  
अंधेरे को चीरती  
मोटर की दो आंख ।

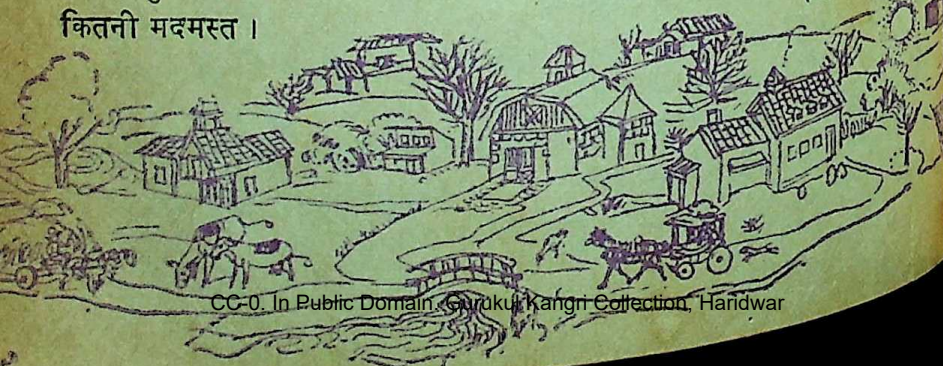
० राजभवन  
मस्त जंगली कबूतर  
गुटर-गूं-गुटर-गूं ।

० भोर का उजाला  
सचेत मुर्गा बोला  
कुक्कू-कू-कुक्कू-कू ।

० चौराहे की रोशनी  
लपक-लपककर  
देती मौत का इशारा ।

० घोरतम अंधकार  
हूँढ़ता चंद्रमा  
प्रेयसी पृथ्वी को ।

—ए/९८ अशोक विहार, फेज प्रथम,  
दिल्ली-११००५१







नरेन्द्र कोहली की व्यंग्य-कथा



## ऋषि की दृष्टि

**प्रातः** सुदामा, उन व्यापारियों से पहले उठकर, तैयार हो चल पड़े। रात, जाने व्यापारी लोग कब सोये थे। देर से ही सोये होंगे, इसलिए उठने में विलंब भी आवश्यक था। वैसे भी सुदामा नहीं चाहते थे कि उनसे उनका आमना-सामना हो। यदि कोई बातचीत हो ही गयी और उन लोगों ने सुदामा का परिचय पूछ ही लिया, तो सुदामा झूठ नहीं बोल पायेंगे। उनका परिचय पाकर व्यापारियों का व्यवहार कैसा होगा, इसका कुछ-कुछ अनुमान, वे कर सकते थे। ऐसी किसी

स्थिति से दो-चार होने की उनकी कोई इच्छा नहीं थी।

मार्ग पर चलते हुए सुदामा देख रहे थे : सब कुछ वैसा ही था, जैसा वे द्वारका की ओर जाते हुए देखकर गये थे। वही पथ थे, वही ग्राम, वही वृक्ष, वही खेत। वैसे ही पशु चर रहे थे, वैसे ही कृषक स्त्री-पुरुष अपने खेतों में काम कर रहे थे; और छोटे-बड़े व्यापारी अपने सामान के साथ यात्राएं कर रहे थे।... पर सुदामा के लिए संसार बदल गया था। उनके लिए चारों ओर सब कुछ सुनहला हो गया था।

१९८१

९७

हिंदी डाइजैस्ट



यह सुनहला-स्वर्णिम संसार उन्हें कृष्ण ने दिया था। पहले वे स्वयं बताना चाहते थे कि वे सुदामा हैं, तो कोई उन्हें पहचानता नहीं था; और अब लोग उन्हें खोजते फिरते हैं। वे जिसे बता देंगे कि वे सुदामा हैं, उसी का व्यवहार कुछ और हो जायेगा। . . .

सुदामा की एक क्षण की चिंता, दूसरे ही क्षण चुहल में बदल जाती। एक क्षण उन्हें लगता कि अपने प्रति लोगों का कृत्रिम व्यवहार, उनके लिए असहनीय होगा; और दूसरे ही क्षण लोगों का यह परिवर्तित व्यवहार देखने का कौतुक उनके मन को चंचल कर देता। अब जब वे ग्रामप्रमुख से मिलेंगे तो क्या ग्रामप्रमुख उनसे उसी प्रकार कहेगा कि ग्राम में गुरुकुल की आवश्यकता नहीं है; सुदामा का ज्ञान ग्राम के लोगों के लिए आवश्यक नहीं है; और यदि गुरुकुल स्थापित होगा तो उसके लिए कुलपति, आचार्य तथा उपाध्याय राजधानी से आयेंगे? . . . क्या श्रेष्ठ धनदत्त पहले के ही समान चाहेंगे कि ग्राम के हाट में फेरी गयी डोंडी को सुनकर सुदामा उनके पुत्रों और पौत्रों को आशीर्वाद देने के लिए याचक बनकर उनके द्वार पर उपस्थित हों और उनसे दान-दक्षिणा पाकर कृतकृत्य हो जायें। . . . नहीं ! जब अन्य लोगों का व्यवहार, सुदामा के प्रति बदला है तो ग्रामप्रमुख और श्रेष्ठ धनदत्त भी बदलेंगे . . . बदलेंगे ! पर क्या परिवर्तन होगा ? . . .

सहसा सुदामा का ध्यान दूसरी ओर चला गया : व्यवहार मात्र बदलने से क्या होगा ? इन पिछले कुछ दिनों में सुदामा, कृष्ण से मिलने, कृष्ण की बातें और लोगों के व्यवहार की उत्तेजना में अपनी आजीविका की समस्या को भूल रहे हैं . . . पर घर लौटते ही इस कठोर और यथार्थ समस्या का सामना करना पड़ेगा। ग्रामप्रमुख मधुर ढंग से हाथ जोड़कर सुदामा को प्रणाम करेंगे . . . श्रेष्ठ धनदत्त उन्हें आमंत्रित करने के लिए स्वयं उनकी कुटिया में पधारेंगे। . . . पर सुदामा की आजीविका का क्या होगा ? द्वारका की ओर चलने से पहले तो फिर, उन्होंने एक प्रकार से स्वयं को मना लिया था कि वे अपनी आजीविका के लिए श्रेष्ठ के पास या कहीं और जायेंगे। पर अब ! अब वे साधारण निर्धन ग्रामीण ब्राह्मण, सुदामा नहीं रहे। योगीराज यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण से इतना सत्कार पाकर, द्वारका से लौटा हुआ उनका मित्र, जिस-तिस से अपनी आजीविका के लिए कैसे प्रार्थना करेगा ? . . . अब तो उनके लिए यह और भी कठिन हो जायेगा। . . . और यदि सुदामा इस समस्या का समाधान न कर सके, तो फिर सुशीला अपने लिए कोई काम खोजने के लिए पार्वती के साथ नगर जायेगी, या काशीनाथ से सहायता चाहेगी। . . . सुदामा ने सुशीला से एक अवसर मांगा था। किंतु उस अवसर से तो उनकी स्थिति और भी

दिसंबर



जटिल हो गयी है . . .

कैसी विषम स्थिति है इस समाज की ! समाज तो अर्थ से चलता है । आर्थिक स्थिति सुदृढ़ न हो तो सारा यश और सम्मान हास्यास्पद हो जाता है । पहले तो सुदामा को अपनी विद्या और ज्ञान का ही अभिमान था, जो उन्हें कहीं झुकने नहीं देता, अब कृष्ण का यह सत्कार, यह आदर-मान . . .

कहीं उनके मन में अहंकार तो नहीं बढ़ रहा . . . ठीक कहा था कृष्ण ने । प्रकृति बड़ी द्वंद्वात्मक है । जिस वस्तु का अभाव हमें वंचित करता है, हम उसकी प्राप्ति को अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं । और यदि वह वस्तु हमें प्राप्त हो जाये, तो वह भविष्य में हमारी वंचना का कारण बन जाती है । . . . कितना तड़पे थे सुदामा, कृष्ण के साथ अपनी घनिष्टता को प्रकट करने के लिए । किसलिये चाहते थे वे कि यह हो-अपना महत्व जताने के लिए ही तो ।

और आज जब वह संबंध प्रकट हो गया है, उन्हें महत्व प्राप्त हो गया है, तो वही महत्व उनके मार्ग में आड़े आ रहा है । इसी महत्व के कारण वे अपने लिए एक साधारण आजीविका प्राप्त नहीं कर सकेंगे । पहले वे साधारण थे, इसलिए कोई उन्हें कुछ देता नहीं था, अब वे असाधारण हैं तो किसी से कुछ ले नहीं सकेंगे . . .

भीतरी ऊहापोह से घबराकर उन्होंने बाहर देखा : यह कदाचित् वही स्थान

था, जहां से जात हुए उन्होंने धर्मशाला में रात भर टिकना चाहा था और उस प्रबंधक ने उन्हें किसी कोने में पड़ रहने का परामर्श दिया था । . . . हां ! यह वही स्थान था । वह सामने वाला वृक्ष ही शायद उनका आश्रय बना था । तो थोड़ी दूर चलकर वह धर्मशाला भी मिलेगी । उसमें शायद वह प्रबंधक भी होगा . . .

सुदामा अपनी चिताएं भूल गये । उन्हें एक उन्माद-सा हो गया था । जाने कहां से ऊर्जा का एक स्रोत-सा उठा और उन्हें एक चंचल सक्रियता से भर गया । वे स्वयं नहीं जानते थे कि वे क्या करने जा रहे हैं । . . पर उनके पग जल्दी-जल्दी उठने लगे थे और उनकी आंखें अनवरत उस धर्मशाला को खोज रही थीं . . . कुछ ही क्षणों में वे उस धर्मशाला के सामने खड़े थे । . . . हां ! यह वही धर्मशाला थी और आज तो वह प्रबंधक भी चारपाई, डाले बाहर ही बैठा था ।

सुदामा का संकोची स्वभाव सहसा ही तिरोहित हो गया । वे निःसंकोच जाकर प्रबंधक के सामने खड़े हो गये ।

प्रबंधक ने उनकी ओर देखा ; किंतु उसके चेहरे पर कोई पहचान नहीं उभरी । 'क्या बात है, भाई ! धर्मशाला में टिकना है क्या ?' उसने पूछा ।

सुदामा को आश्चर्य हुआ : यह वही व्यक्ति था, जिसने उनकी प्रार्थना पर भी कोई ध्यान न देकर उन्हें वहां से चले जाने पर बाध्य किया था ; और आज स्वयं ही

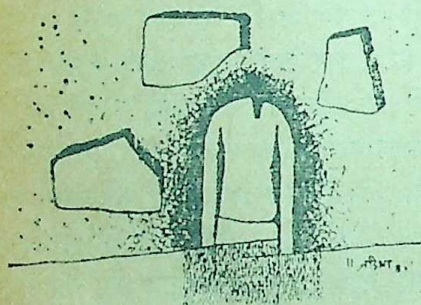


उनसे निमंत्रण-भरे स्वर में पूछ रहा है।

‘दिन के समय धर्मशाला में टिकने का क्या अर्थ?’ सुदामा बोले, ‘रात होगी, यात्रा स्थगित होगी तो कोई धर्मशाला में टिकेगा।’

‘अरे भैया ! कुछ लोग दिन में भी टिक जाते हैं।’ वह बोला, ‘अपना सामान रख जाते हैं और स्वयं आस-पास घूम-फिर आते हैं।’

सुदामा चुपचाप खड़े उसे देखते रहे।  
‘द्वार खोलूँ क्या?’ वह तालियों का गुच्छा लिये उठा।



चित्र : संतोष जड़िया

सुदामा हंस पड़े, ‘तुम धर्मशाला में ठहराने के लिए इतने उत्सुक क्यों हो, भाई? पहले तो तुम ऐसे न थे।’

लगा, उसे अपनी कोई पीड़ा याद आ गयी और उसका पका हुआ फोड़ा जैसे रिसने लगा, ‘पहले ऐसा नहीं था, तभी तो भुगत रहा हूँ। पहले मैं बाहर चारपाई डाल, आने-जाने वालों को निहारता थोड़ी था। आने-जाने वालों से धर्मशाला में ठहर जाने के लिए अनुनय-विनय कहाँ

करता था। भीतर कमरे में रहता था। कोई आता तो उसे दुत्कार देता। किसी को ठहरने ही नहीं देता था कि उसकी देख-भाल करनी होगी...।’

‘तो क्या हो गया?’ सुदामा ने उसे टोका।

‘क्या नहीं हो गया।’ उस व्यक्ति के चेहरे पर झल्लाहट छा गयी, ‘पता ही देर से चला। यही तो बात है। पता ही तब चलता है, जब घटना घट जाती है और अपने हाथ से बाहर हो जाती है।... जब वह यहाँ से जा रहा था तो पता नहीं चला। पता तब चला, जब वह द्वारका पहुँच गया...।’

सुदामा चौंके, ‘कौन?’

‘अरे वही विप्र सुदामा ! श्रीकृष्ण का सखा।’ सुदामा की प्रतिक्रिया से उदासीन, प्रबन्धक अपनी रौ में बोलता चला गया, ‘मैं क्या जानता था, वह कौन-सा है। उसके माथे पर तो लिखा नहीं था कि हम सुदामा हैं। जो मैं सब के साथ करता हूँ, वही मैंने उसके साथ भी किया होगा। अब यदि उसने मेरे विरुद्ध कृष्ण के कान भर दिये हों, तो किसी भी दिन द्वारका से इधर जाने वाली सैनिक टुकड़ियाँ, मुझे बांध कर ले जायेंगी...।’

सुदामा को प्रबन्धक के प्रलाप में अजीब-सा सुख आने लगा था, ‘पर वह इधर से गया था क्या ? तुम्हारी धर्मशाला में आया था?’

‘गया ही होगा। आया ही होगा।’

प्रबन्धक  
‘सुदामा!’  
‘मार्ग ही’  
‘सुदा’  
बोले, ‘य’  
तो इस  
‘नहीं’  
‘द्वारका’  
‘होगा।’  
‘है। यह’  
‘सुद’  
‘कृष्ण की’  
‘ने वह’  
‘ग्राम स’  
‘जो’  
‘स्वयं को’  
‘तुम क्या’  
‘है, भाई’  
‘अरे’  
‘सोटेगा’  
‘धर्मशाल’  
‘कहूँगा’  
‘तुम’  
‘पह’  
‘ही अपन’  
‘धक बो’  
‘रथ पर’  
‘आये।’  
‘सुदा’  
‘पर गय’  
‘लगा,’  
‘१९८१’



हता था।  
। किसी को  
सकी देख-

मा ने उसे

व्यक्ति के

पता ही

। पता ही

ट जाती है

ती है।...

तो पता नहीं

वह द्वारका

श्रीकृष्ण का

या से उदा-

गोलता चला

कौन-सा है।

था कि हम

थ करता हूँ,

क्या होगा।

कृष्ण के कान

दिन द्वारका

कड़ियाँ, मुझे

प में अजीब-

वह इधर से

धृष्टशाला में

ही होगा।

दिसंबर

प्रबंधक धाराप्रवाह बोलता चला गया,  
'सुदामापुरी से द्वारका जाने का और  
मार्ग ही कौन-सा है?'

'सुदामापुरी!' सुदामा चकित होकर  
बोले, 'यह कौन-सा ग्राम है, भाई? इधर  
तो इस नाम का कोई ग्राम नहीं है।'

'नहीं था, पर अब है।' वह बोला,  
'द्वारका से आदेश आ गया है कि यही नाम  
होगा। ग्रामप्रमुख ने डोंडी भी पिटवा दी  
है। यह मुझे बहुत सारे यात्री बता गये हैं।'

सुदामा को उद्धव का प्रस्ताव और  
कृष्ण की पुष्टि याद हो आयी। तो कृष्ण  
ने वह कार्य कर ही डाला। अब उनका  
ग्राम सचमुच ही सुदामापुरी हो गया है।

'जो होना था, वह तो हो गया।'   
स्वयं को संतुलितकर सुदामा बोले, 'अब  
तुम क्या कर रहे हो, अब क्या हो सकता  
है, भाई?'

'अरे भैया! वह कभी द्वारका से  
चलेगा भी तो।' वह बोला, 'अब उसे  
धर्मशाला में ठहराऊंगा और उसकी सेवा  
करूंगा।'

'तुम उसे पहचानते हो क्या?'

'पहचानता तो नहीं। पर वह स्वयं  
ही अपना महत्व जताता आयेगा।' प्रबं-  
धक बोला, 'संभव है, वह श्रीकृष्ण के  
रथ पर आये। सेवकों और सैनिकों के साथ  
आये। अब वह छुप थोड़े सकता है।'

सुदामा का मन एक उज्ज्वल हास से  
भर गया। कैसा विचित्र है यह व्यक्ति।  
लगा, जैसे उन्हें अदृश्य हो जाने की



चित्र : संतोष जड़िया

सिद्धि प्राप्त हो गयी है। वे जहां जाना  
चाहते हैं, चले जाते हैं और कोई जान नहीं  
पाता कि वे वहां आये हैं। वे किसी के भी  
सम्मुख जा खड़े होते हैं और वह देख नहीं  
पाता कि वे उसके सामने खड़े हैं।

'उसने तुम्हारे विरुद्ध कृष्ण... श्रीकृष्ण,'  
सुदामा ने स्वयं को सुधारा, 'के कान नहीं  
भरे होंगे। वह ऐसा आदमी नहीं है।'

'तुम उसे जानते हो क्या?' प्रबंधक  
ने पहली बार, पूरी आंखें खोलकर, सुदामा  
की ओर देखा।

'वैसा होता तो अब तक श्रीकृष्ण के  
सैनिक तुम्हें बांधकर ले भी गये होते।'   
सुदामा उसका प्रश्न टाल गये। पर उन्हें  
लगा कि अब यह क्रीड़ा अधिक देर नहीं  
चलनी चाहिये, नहीं तो वह अधिक से  
अधिक प्रश्न पूछेगा। सुदामा झूठ बोलेंगे  
नहीं और वे पहचाने जायेंगे।

'यदि उसने मेरे विरुद्ध कुछ नहीं भी



कहा तो भी मुझे उसकी सेवा करनी है । प्रबंधक फिर पहले के ही समान अपनी रौ में बह चला, 'वह मेरे प्रतिकूल नहीं है तो इसका अर्थ यह है कि वह मेरे अनुकूल भी हो सकता है । वह मेरे अनुकूल हो गया तो . . . ।'

'तो वह क्या कर सकता है ?' सुदामा स्वयं को रोक नहीं पाये, 'वह तो एक दरिद्र ब्राह्मण है . . . ऐसा मैंने सुना है ।' वे सतर्क हो गये थे ।

'सुना तो मैंने भी यही है ।' वह बोला, 'पर उसकी राजा तक पहुंच है और राज-कृपा क्या नहीं कर सकती . . . ।'

सुदामा की चंचलता, आशंकाओं के नीचे दब गयी । . . . उन्हें अब चल ही देना चाहिये ।

'अच्छा भैया ! मैं चलूं । राम-राम !'

'राम-राम !' प्रबंधक निर्बाध गति से बोला, 'वह कहीं मिल जाये तो उसे मेरी धर्मशाला में भेज देना । वह एक बार मुझे मिल जाये . . . '

सुदामा उसकी बात सुनने के लिए रुके नहीं । वह जाने क्या-क्या और कब तक बोलता रहेगा । पर, सुदामा का अधिक ठहरना उचित नहीं था । आगे की यात्रा के लिए तो उन्हें और भी सावधान रहना चाहिये । जो उन्हें पहचानते हैं, वे तो पहचानते ही हैं : पर अपरिचित लोगों के बीच उनका सार्वजनिक रूप से पहचाना जाना हितकर नहीं होगा । जाने वे किस फंदे में फंस जायें . . .

यह व्यक्ति तो एकदम बौद्ध है . . . वे सोच रहे थे . . . पर मनुष्य की वृत्तियों का कितना ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करता है । जाते समय जब वे उसके पास पहुंचे थे तो उसमें अधिकार का अहंकार कूट-कूटकर भरा हुआ था । उस समय वह सबसे दुर्व्यवहार कर रहा था । आज उसकी भय और लोभ की पशु-वृत्तियां पुकार-पुकारकर सुदामा को सादर निर्मंत्रित कर रही थीं . . .

आज सुदामा उन व्यापारियों, इस प्रबंधक या ऐसे ही सब लोगों के लिए महत्वपूर्ण हो गये हैं, क्योंकि वे कृष्ण के मित्र के रूप में विख्यात हो गये हैं । और कृष्ण का क्या महत्व है ? शासन उसके हाथ में है । . . . यदि आज किसी कारण से सत्ता यादवों के हाथ में न रहे तो ? . . . हां ! इसमें असंभव ही क्या है ? मथुरा में यादवों की सत्ता कंस ने छीन ली थी । कृष्ण ने सत्ता लौटा तो ली थी, किंतु जरासंध के भय से मथुरा नगरी ही छोड़ देनी पड़ी । . . यहां भी तो पहले कुकुद्मीन शासक था, फिर पंचजन आया, फिर यादव आये . . . ये जो लोग, आज सुदामा को पूजने लगे हैं, पहले इसी प्रकार कुकुद्मीन के प्रति अपना प्रेम जताते होंगे, फिर यही प्रेम उन्होंने पंचजन राक्षस को अंजुलियां भर-भरकर दिया होगा । आज इनकी पूजा-श्रद्धा, सब कुछ कृष्ण के लिए है, और कृष्ण के माध्यम से सुदामा के लिए है . . . यह प्रेम, यह पूजा, यह श्रद्धा . . . किसी

दिसंबर



गुण के लिए नहीं है, किसी व्यक्ति के लिए नहीं है, यह राज-सत्ता के लिए है। राज-सत्ता के लिए भी नहीं, अपनी पशु-वृत्तियों की तृप्ति के साधनों के लिए है। . . कितना अविवेकी है यह मनुष्य . . कितनी संकुचित दृष्टि है इसकी। राज-सत्ताएं तो काल के थपड़े से आये दिन उलटती-पलटती रहती हैं, पर मानवता को तो लाखों-करोड़ों वर्षों तक जीना है। प्रेम, पूजा, श्रद्धा, आदर्श, सिद्धांत, सत्य . . ये सब भाव क्या इतने हल्के, सस्ते और मूल्य-हीन हैं कि आये दिन सत्ता-परिवर्तन के साथ ये भी बेपैदे के लोटे के समान दिशा-

हीन डोलते फिरें. . सुदामा को आचार्य ज्ञानेश्वर याद हो आये . . यही हमारे बुद्धिजीवी करते हैं, यही चिंतक, दार्शनिक और लेखक करते हैं . . वे भूल जाते हैं कि राज-सत्ता जिस मोह और त्रास का निर्माण करती है, वह अल्पकालीन होती है; और ऋषि जिन सिद्धांतों, ग्रंथों, आदर्शों और नियमों का निर्माण करते हैं, उन्हें मानवता के साथ बहुत दूर तक चलना होता है . . .

[अप्रकाशित उपन्यास 'अभिज्ञान' का एक अंश। शीघ्र प्रकाश्य : राजपाल एंड संस, दिल्ली-११०००६]



### अपनी-अपनी रुचि

पंडित जवाहर लाल नेहरू जितने बड़े राजनेता रहे हैं, उतने ही बड़े साहित्यकार भी। बात उस जमाने की है जब भारत के नक्शे में विंध्यप्रदेश नाम का राज्य था। उसकी राजधानी रीवां थी। उन्हीं दिनों राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन खजुराहो आये। तत्कालीन एक मंत्री श्री महेंद्रकुमार मानव ने राजर्षि का स्वागत किया। राजर्षि खजुराहो की गगन मूर्तियों को देखकर बहुत नाराज हुए और मानवजी से बोले-‘यह क्या अश्लील प्रदर्शन करवा रहे हो ? इन मंदिरों पर सीमेन्ट का लेप करा दो।’ राजर्षि का क्रोध देखकर मानवजी खामोश रह गये। राजर्षि के समक्ष उनकी बात काटने अथवा बहस करने की उनमें हिम्मत न थी।

कुछ दिनों बाद प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू खजुराहो आये। उन्होंने खजुराहो देखा तो उनका मन प्रमुदित हो उठा। मंदिरों की प्रशंसा में वे बहुत-कुछ बोलते रहे। मानवजी वहां उपस्थित थे। उन्होंने पंडितजी को बताया कि पिछले दिनों राजर्षि बाये थे। कह रहे थे कि इन पर सीमेन्ट का लेप करा दो। बात सुनकर नेहरूजी बोले, ‘मानव ! उनकी गलती नहीं है। गलती तुम्हारी है, तुम नालायक हो। तुम ‘राजर्षि’ को इस रंगशाला में लाये ही क्यों ? एक राजर्षि से तुम और क्या अपेक्षा रखते हो ?’ नेहरूजी की बात सुनकर मानवजी साहस बटोर कर बोले, ‘ठीक है, पंडितजी ! राजर्षि ने भी डांटा था, अब आप भी डांट लें।’ इतना सुनकर नेहरूजी अपनी हंसी न रोक पाये।

—जगदीश किजल्क





महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज का  
पराभौतिक विद्या-संबंधी साक्षात्कारी लेख

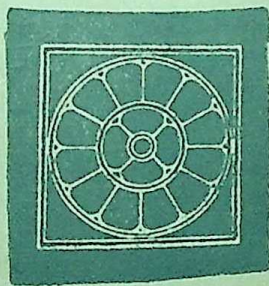


# महान आत्मविज्ञानी परमहंस विशुद्धानंद और सूर्य-विज्ञान के दिव्य चमत्कार

नाभि से कमलनाल का स्फुरण

एक बार बाबा काशी के पुरातन आश्रम में विराजमान थे। प्रातः ८ बजे के लगभग, सत्संग में उपस्थित चार-पांच व्यक्तियों में—जिनमें से एक मैं भी था—पौराणिक विषय लेकर वार्तालाप चल रहा था। एक ने कहा, 'पुराणों में बहुत-सी अलौकिक तथा अविश्वसनीय बातें भरी पड़ी हैं। दृष्टान्त-स्वरूप विष्णु के नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति जैसे प्रसंग लिये जा सकते हैं।

यह सब कल्पना अथवा रूपक मात्र हैं।' यह सुनकर बाबा बोले, 'जो वस्तु तुम्हारी बुद्धि के बाहर है उसी को तुम लोग अस्वीकार करते हो। विश्वास नहीं कर सकते। परंतु सत्य वस्तु सत्य ही रहती है। नाभि में कमल है, क्या तुम यह मान सकते हो?'



उस व्यक्ति ने कहा, 'मेरा तो यह अनुभव है ही नहीं, किंतु कोई विज्ञानविद् डाक्टर भी इसे नहीं मानेगा।' बाबा ने कहा, 'तुम्हारे डाक्टर कितना जानते हैं? देह-तत्त्व अत्यंत गंभीर है। क्या प्रत्यक्ष

देखना चाहते हो?' वह बोला, 'बाबा ! प्रत्यक्ष देखने का अवसर कहां? इसीलिए विश्वास होता नहीं।' बाबा बोले, 'दो न!' यह कहकर जिस पलंग पर वे बैठे हुए थे, उसमें तकिया की टेक लगाकर

अपना नाभि प्रदेश खोल दिया और उसे हाथ से हिलाने लगे। पहले उस स्थान पर एक गहरा खोखला हो गया। फिर उसने रक्तिम वर्ण धारण कर लिया। तदनंतर शनैः-शनैः उस स्थान से एक डेढ़ फुट लंबा कमलनाल निकला जिसके ऊपर अत्यंत सुंदर कमल पुष्प था। उसकी गंध

नवनीत



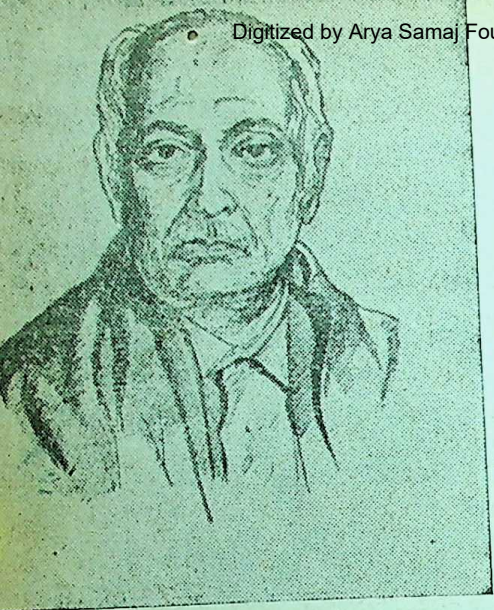
से पूरा कमरा सुवासित हो गया । हम सभी यह देखकर मंत्रमुग्ध से बैठे रहे ।

बाबा बोले, 'इस समय सूर्य का तेज अधिक नहीं है, नहीं तो यह कमल छत तक पहुँच जाता ।' थोड़ी देर बाद वह कमल, नाल सहित धीरे-धीरे संकुचित होकर नाभि में प्रवेश कर गया । अंत में बाबा ने हाथ से पेट दबाकर नाभि को पूर्वावस्था में कर दिया और कहा, 'देखो ! इसी प्रकार नाभि में रक्त, श्वेत तथा नील वर्ण के असंख्य कमल विद्यमान हैं' । योग में अत्यंत उच्चकोटि में प्रविष्ट न होने पर यह अनुभव नहीं मिलता । इसीलिए ऋषियों के वाक्य में विश्वास रखना चाहिये । योग्यता लाभ करने पर समय से इन विषयों का अनुभव स्वतः हो जाता है ।'

एक दूसरे दिन की घटना है । मेरे गुरु भाई भूषणचंद्र बसु काशी में बाबाजी के आश्रम के निकट पृथक् मकान लेकर रहते थे । ये वृद्ध शरीर थे । कुछ दिन पहले पत्नी का देहांत हो गया । घर पर इनकी

देखभाल करनेवाला और कोई व्यक्ति न था । बाबा जब तक काशी में निवास करते थे, ये उनकी सेवा में निरंतर उपस्थित रहते थे । एक रात ये अपने घर में सो रहे थे । चारपाई ऊंची थी । उसके निकट योगक्रिया में प्रयुक्त होने वाला उनका योगदंड रखा हुआ था । वह त्रिशूल की भांति नुकीला था । रात में दो बजे के करीब करवट लेते हुए ये खाट से गिर पड़े । सामान्य स्थिति में इन्हें उसी योगदंड के ऊपर गिरना चाहिये था, किंतु गिरने के बाद नौदं खुल जाने पर इन्होंने देखा कि ये उससे डेढ़ हाथ दूर गिरे थे । कमरे में चारों ओर कमल की गंध पाकर इनकी समझ में आया कि गुरुदेव आये थे । बाबा जब किसी कारणवश शिष्यों को प्रत्यक्ष दर्शन नहीं देना चाहते थे, अपनी उपस्थिति की सूचना कमल की दिव्य देह-गंध से देते थे । बसु महाशय यह देखकर चकित हो गये कि अज्ञानावस्था में वे चारपाई के पास गिरे होते तो अवश्य ही





### गोपीनाथ कविराज

वह त्रिशूल उनके पेट में घुस जाता। इस प्रकार गुरुकृपा का अनुभव कर वे गद्गद हो गये। उस समय बाबा काशी में ही थे। दूसरे दिन जब भूषण बाबू ने बाबाजी से रात्रि की घटना निवेदित की तो वे हंसने लगे और कहा, 'हां ! तुम लोग आराम से सो जाते हो। हमको तुम्हारा पहरा देना पड़ता है।' मैं भी वहां उपस्थित था। बाबा से पूछा, 'इस घटना का रहस्य समझ में नहीं आ रहा है। शिष्य के आकर्षण से आप आकृष्ट होकर वहां जा सकते हैं, यह समझ में आता है।' रक्षा भी कर सकते हैं, यह भी आश्चर्यजनक नहीं। किंतु जहां शिष्य निद्रा में डूबा हुआ है। उसने तो आपका, रक्षा के लिए, चिंतन किया नहीं। आप भी उस समय योगासन में समाधि-मग्न थे। उस स्थिति में आपको इनकी

भावी आपत्ति का अनुभव कैसे हुआ और किस प्रकार वहां उपस्थित होकर आपने रक्षा की ?'

बाबा ने इसके उत्तर में कहा, 'योगी जब युक्त अवस्था में रहता है तब समस्त विश्व में ही उसकी सत्ता प्रकट रहती है। केवल परिमित देह मात्र में नहीं। जो भक्त हैं उनके लिए रक्षा की आंकाक्षा पहले से ही रहने के कारण विपत्ति के क्षणों में वे उसी स्थान में प्रकट हो जाते हैं, चाहे निराकार रूप में हों या साकार रूप में। यहां तक कि स्थूल रूप में भी प्रकट होकर वे उसकी रक्षा करते हैं। इससे योगासन में युक्त योगी का योगभंग नहीं होता। अखंड निष्क्रिय रहने पर भी परमात्मा क्या प्रत्येक क्षण में क्रियाशील नहीं है ?' **देह से निःसृत पदमगंध**

गुरुदेव पुरी के तिततल्ले बंगलेवाले आश्रम में ठहरे हुए थे। बंगले में बरामदा था। एक दिन वहीं आराम कुर्सी पर बैठे हुए थे। प्रसंगवश सत्संग वार्ता में बैठे कहा—'बाबा, जैसे आपके शरीर से निरंतर गंध निकलता है वैसे श्रीकृष्ण, बुद्धदेव तथा चैतन्य महाप्रभु के भी देह से अनवरत गंध प्रसरित होते रहने का वर्णन शास्त्रों तथा भक्तचरितों में मिलता है। भगवान तथा बुद्ध के निवासस्थान का इसी कारण से गंधकुटी नाम ही पड़ गया था। जिसका मर्म न समझ सकने से यूरोपीय विद्वानों ने उसे उन्हें अपित किये गये पुष्पादि की गंध का प्रभाव माना है। चैतन्यदेव के

दिग्भार



शरीर से पद्मगंध निकलता था ।

कहा जाता है कि एक बार अपने शिष्य गोविंददास के साथ पर्यटन करते हुए वे दक्षिण देश में गये । वहां एक पहाड़ पर वे किसी गृहस्थ के घर ठहरे । उस परिवार के कर्ता तथा उसकी धर्मपत्नी की महा-प्रभु में प्रगाढ़ भक्ति हो गयी । पत्नी नित्य पूजन तथा कीर्तन से इनकी अभ्यर्चना करने लगी । एक दिन वह बोली, 'प्रभु ! आप तो भगवान् हैं, मेरा उद्धार करिएगा ।' महाप्रभु बोले, 'भोली ! मैं भगवान् हो गया ? यह तेरा भ्रम-मात्र है ।' उसने कहा, 'भगवन् ! अपने को छिपा नहीं सकते । आपके शरीर से निरंतर विद्युत् प्रवाहित होती रहती है, पद्मगंध निकलती रहती है । इसी से मैं पहचान गयी ।' महाप्रभु ने निरुत्तर होकर उसकी अभिलाषा पूरी करने का आश्वासन दिया ।

प्रसिद्ध है कि महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण के शरीर के निकली हुई गंध से उनकी दिव्य उपस्थिति का आभास पाकर प्रियतम को खोजते-खोजते उत्पन्न हो जाते थे । चैतन्य चरितामृत (मध्यलीला) में इस गंध के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है—

हेन श्रीकृष्ण अंग गंध

जे न पाय से संबंध

तार नासा भस्त्रादि समान ।

यह सुनकर बाबा बोले, 'क्या इस सुगंध के प्रकार का भी कुछ विवरण तुम्हें मिला है ?' मैंने कहा, 'हां ! नीलकमल, तुलसी-मंजरी, मृगमद, श्वेत चंदनादि छह द्रव्यों



### परमहंस विशुद्धानंद

के सम्मिश्रण से जो सुगंध उत्पन्न होगी वह श्रीकृष्ण की देह से निकलने वाली गंध का आभास-मात्र है । ऐसा उल्लेख पाया जाता है । हम लोगों के देखते-देखते बाबा ने शून्य में झटका देकर एक-ए करके उपर्युक्त छह पदार्थ एकत्र कर लिये, फिर उनके मिश्रण से शास्त्रोक्त अपूर्व गंध तैयार कर दिया । मैंने निवेदन किया—'बाबा ! हमारी इच्छा है कि इस गंध को हम अपने पास कुछ समय तक रखें, ऐसी व्यवस्था कर दीजिये ।' बाबा ने एक शीशी लाने को कहा, मैं एक होमियोपैथिक दवा वाली छोटी शीशी ले आया । बाबा ने अपनी लोकोत्तर सृष्टि प्रक्रिया से उस गंध को तेल में परिवर्तित करके उस शीशी में भर दिया । वह मेरे पास बहुत दिनों तक रही । म. म. पंडित प्रमथनाथ तर्कभूषण उस

हिंदी डाइजेस्ट

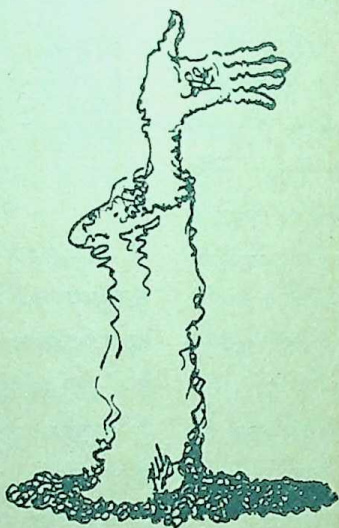


गंध को सूंघकर भाव-विभोर हो गया था।

बाबा बड़े ही मर्यादावादी थे। परमहंस वृत्ति धारण करते हुए भी वे अपने कुलगुरु को कौटुंबिक परंपरानुसार निरंतर बंधान के रूप में कुछ न कुछ द्रव्य, वस्त्रादि दिया करते थे।

एक बार कुलगुरु के पुत्र उनका दर्शन करने काशी आये। बाबा ने कई दिन तक अपने आश्रम में ठहराकर उनका स्वागत-सत्कार किया। विदा होते समय जब बाबा उन्हें रुपये देने लगे तो वे बोले, 'बाबा, रुपया-पैसा तो हम सभी जगह पाते हैं। आप हमें ऐसी वस्तु दें जिससे आपकी स्मृति सदा बनी रहे। मेरी इच्छा है कि आप सोने की एक ऐसी अंगूठी मंगा दें, जिसके ऊपर देवी की मूर्ति बनी हो, नीचे हमारा नाम लिखा हो।' बाबा ने कहा, 'अच्छा बैठ जाओ, मिल जायेगी।' इसके बाद उन्होंने हम लोगों के सामने ही प्रकृति से आकृष्ट करके ठीक उसी प्रकार की अंगूठी कुलगुरु के पुत्र को दे दी। वे उसे देखकर स्तब्ध रह गये। हम लोगों के भी आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बाबा ने इसका समाधान करते हुए कहा, 'प्रकृति पूर्ण है। सृष्टि-प्रक्रिया के द्वारा उससे अभीप्सित

वस्तु प्राप्त की जा सकती है।' घटना मेरे दीक्षा-काल (१९१८ ई.) के कुछ महीने पूर्व की है। कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील सतीशचंद्र मुखर्जी बाबा के परम भक्त थे। उन्होंने इनके निवास के लिए हनुमान घाट पर एक मकान खरीद कर अर्पित किया था। इसके पूर्व उनकी दो स्त्रियां मर चुकी थीं इसलिए



चित्र : कमलाक्ष शर्मा

भावी पत्नी की मृत्यु की आशंका से न वे स्वयं विवाह करने को राजी होते थे न उस इलाके का कोई संध्रांत व्यक्ति उन्हें अपनी लड़की देने का साहस करता था। सतीश बाबू के पिता इससे निरंतर चिंतित रहा करते थे। उन्होंने काशी आकर बाबा से सारी व्याख्या कह सुनाई और इस समस्या को सुलझाने की प्रार्थना की। बाबा ने सतीश को बुलाकर समझाया, 'तुम निश्चय होकर विवाह करो। अबकी बार स्त्री मरेगी नहीं, मेरी जिम्मेदारी है। मरेगी तो नूतन सृष्टि कर दूंगा। दैवयोग से इसके पश्चात् श्रीगुरु ही उमेशचंद्र बनर्जी नामक एक बड़े धनीमानी व्यक्ति ने अपनी कन्या कालिदासी से इनका विवाह करने का प्रस्ताव किया। सतीश बाबू बाबा के आदेशानुसार उद्यत हो गये। विवाह बड़ी धूमधाम से संपन्न हो

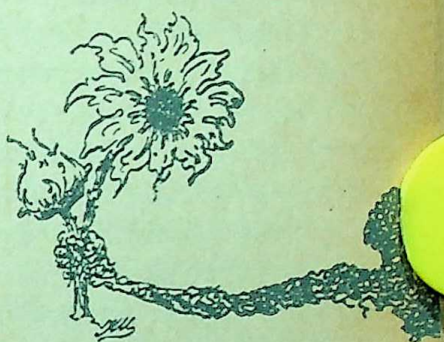


गया।

इसके कुछ दिनों बाद बाबा केदार घाट का किराये का मकान छोड़कर हनुमान घाट के मकान में चले आये। सतीश बाबू उनकी सेवा में थे। एक दिन सहसा कलकत्ता से उनके ससुर का तार आया: 'कालिदासी बहुत बीमार है। डाक्टर चित्त है। हो सके तो चले आओ'। सतीश बाबू यह समाचार पाकर प्रत्याशित विपत्ति की आशंका से घबरा गये। दौड़े हुए बाबा के पास गये, तार दिखाया और अपने जाने के विषय में उनकी अनुमति मांगी। बाबा ने कहा, 'जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।' गुरु आदेश शिरोधार्य कर वे पूर्ववत् सेवा में लग गये। दूसरे दिन फिर एक तार आया, 'स्थिति अत्यंत शोचनीय है, शीघ्र चले आओ'। उन्होंने वह तार बाबा के सामने रखा। बाबा बोले, 'जाना हो तो जाओ। मेरा विचार नहीं है।' सतीश बाबू कुछ कह न सके। तीसरे दिन के तार का विषय था—'बचने की आशा नहीं है। डाक्टर हताश हो गये हैं'। सतीश बाबू के हाथों इसे पाकर बाबा बोले, 'उत्तर में लिख दो कि गुरुदेव कहते हैं कि काली इस रात में रोगमुक्त हो जायेगी। निराश होने की आवश्यकता नहीं है।'।

इसके बाद बाबा ने ऋषि नामक अपने रसोईदार को बुलाकर कहा, 'आज रात में कुछ खाऊंगा नहीं। १० बजे के करीब मुझे भयंकर बुखार होगा। चिंता न करना।'

ऋषि व्यग्र होकर समय की प्रतीक्षा करने लगा। रात में ठीक दस बजे बाबा ज्वरग्रस्त हुए। ऋषि से चादर मांगी और उसे ओढ़कर लेट गये। थर्मामीटर घर में नहीं था। बाबा ने उसे सृष्टि प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न कर दिया। देखा गया, तापमान १०५ डिग्री तक पहुंच गया है। रात में कई घंटे तक भयंकर कष्ट हुआ किंतु प्रातः होते-होते बुखार उतर गया। बाबा स्वस्थ हो गये। प्रातः कलकत्ता से तार आया:



चित्र : कमलाक्ष शोण

'काली रोगमुक्त हो गयी। बुखार नहीं है।'।

बाबा कहा करते थे कि ज्ञानगंज के साथ स्वशिष्यों का, चाहे वे कहीं के भी हों, निरंतर संबंध रहता है। वे स्वयं सूर्य-विज्ञान का लेंस, औषधियां तथा कुछ अन्य वैज्ञानिक यंत्र वहां से बराबर मंगाया करते थे और यहां से भी ज्ञानगंज आश्रम-वासी कुमारियों तथा माताओं की सेवा के लिए वस्त्राभूषणादि भेजा करते थे। यह व्यापार उनके घनिष्ठ संपर्क में आने

हिंदी डाइजेस्ट



नहीं समझ पाते थे। एक दिन मेरे सामने  
ही एक घटना हुई। एक गुरुभाई सुरेंद्र-  
नाथ मुकर्जी ने ज्ञानगंज की कुमारियों के  
लिए ५० के लगभग रंग-बिरंगी छोटी-  
बड़ी साड़ियां लाकर बाबा को दीं। उन  
दिनों बाबा हनुमान घाट वाले आश्रम में  
तिनतल्ले पर विराजते थे। हम लोग भी  
उपस्थित थे। बाबा के आदेशानुसार  
साड़ियों का पार्सल बनाकर पूजा घर में  
रख दिया गया। मैंने पूछा, 'ये सब साड़ियां  
ज्ञानगंज को भेजी जायेंगी न ?' बाबा ने  
कहा, 'हां भेजी जायेंगी।' मैंने कुतूहलवश  
जिज्ञासा की, 'कैसे भेजी जायेंगी ?' वे  
बोले, 'ऐसे ही भेजी जायेंगी।' इसके बाद  
उन्होंने कहा, 'तुम लोग बाहर बैठो। संध्या  
करने के पश्चात् बातें करेंगे।' हम लोग  
कमरे से बाहर जाकर छत पर बैठ गये।  
बाबाजी ने दरवाजा बंद कर लिया।  
आधे घंटे बाद दरवाजा खुला। हम लोग  
संकेत पाकर भीतर गये। बाबा बोले,  
'कपड़े का पार्सल भेज दिया।' हम लोगों  
ने जाकर देखा, पूजा-घर में पार्सल का  
बंडल नहीं था।

### अलौकिक शक्ति से वस्तु की प्राप्ति

एक दिन की बात है। मलदहिया में  
नवनिर्मित आश्रम के उपलक्ष्य में आयोजित  
उत्सव में समागत शिष्यों को बाबा लेंस  
की सहायता से सूर्य-विज्ञान की शिक्षा  
विज्ञान-मंदिर के दोतल्ले में दे रहे थे।  
मेरे एक कलकत्ता निवासी मित्र श्री अक्षय-

१९३१ के आसपास की एक दूसरी  
घटना है। उन दिनों मलदहिया आश्रम में  
नवमुंडी आसन की प्रतिष्ठा हो चुकी थी।  
नवमुंडी गुहा के ऊपर, बैठने के लिए एक  
छोटा-सा कमरा बनाया गया था। उद्देश्य  
यह था कि उसमें बाबाजी क्रियावान्  
शिष्यों के साथ बैठा करेंगे। तदनुसार  
विशेष आसन भी बनाया गया था। इसकी  
सज्जा के लिए प्रत्येक शिष्य पर एक वस्तु  
अर्पित करने का भार डाला गया। फर्श के  
ऊपर बिछाने के लिए सिल्क की बड़ी  
चादर का व्यय मेरे जिम्मे आया। मेरे  
गुरुभाई डा. शोभाराम प्रबंधक बनाये  
गये। उन्होंने कहा, 'चादरों में ८० रु.  
दिसंबर



लंगेंगे। इसे आप देंगे।' दूसरे दिन डा. शोभाराम को देने के लिए दस-दस रुपये के आठ नोट एक लिफाफे में रखकर मैं आश्रम गया। अपराह्न काल था। गुरुदेव विज्ञान-भवन के पूरब दोतल्ले के वरामदे में एक आराम कुर्सी पर बैठे हुए थे। उनके निकट अन्य कई गुरुभाई बैठे थे। डा. शोभाराम भी उपस्थित थे। मेरी इच्छा हुई कि नोट का लिफाफा बाबाजी के हाथों में दे दूँ, फिर वे उसे स्वयं डा. साहब को दे देंगे। यह सोचकर लिफाफा आगे बढ़ा दिया।

डा. शोभाराम मेरी दाहिनी ओर बैठे थे। मैंने कहा, 'बाबा, यह मेरा योगदान है। नवमंडी के ऊपर के कमरे की फर्श की चादरें इसी से खरीदी जायें।' गुरुदेव ने कहा, 'अरे, चादर का दाम है ८० रुपया! इतना!' फिर वे डा. शोभाराम की ओर मुड़े, 'इतना रुपया क्या होगा?' डा. शोभाराम ने कहा, 'बीस रुपये के हिसाब से चार रेशमी चादरों का प्रबंध किया गया है। उसमें इतना ही लगेगा।' बाबा ने कहा, 'कीमती चादर है। इतनी चादरों का क्या होगा? एक काफी है।' यह कहकर लिफाफे में से दो नोट निकालकर उन्होंने डा. शोभाराम को दे दिये, शेष ६ मुझे लौटाते हुए कहा, 'व्यर्थ रुपया नष्ट करना उचित नहीं।'।

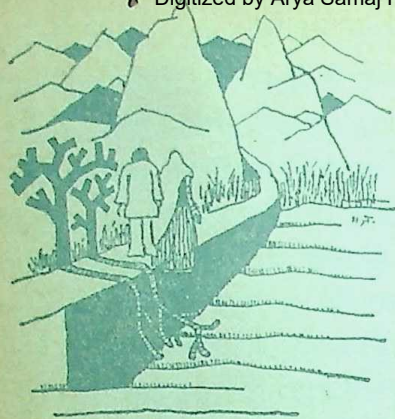
मैंने निवेदन किया, 'यह रुपया एक अच्छे काम के लिए लाया गया था। मैं वापस नहीं लूंगा।' बाबा बोले, 'तब क्या

करोगे?' मैंने कहा, 'ले लीजिये किसी धर्मकार्य में लगा दीजियेगा।' बाबा ने कहा, 'यह नहीं होगा। ज्ञानगंज से इसका प्रतिवाद हो जायेगा। ऐसा मैं कर नहीं सकता।' मैंने कहा, 'न इसे आप लेंगे न मैं ही लूंगा, तब यह रुपया क्या होगा?' बाबा बोले, 'बात तो ठीक है। अच्छा ठहरो। हम अभी पूछकर आते हैं।' यह कहकर बाबा भीतर गये। फिर थोड़ी देर बाद लौटकर कहने लगे, 'ठीक है। यह रुपया उमा भैरवी मां ज्ञानगंज के लिए ले जायेंगी।' तब मैंने कहा, 'आप दे दीजियेगा।' 'नहीं, भैरवी मां स्वयं तुम्हारे हाथ से ले जायेंगी।' उनका उत्तर था।

मैंने लिफाफे को गोंद से बंद कर दिया। जाड़े के दिन थे। मैं शाल ओढ़े हुए था। बाबा के आदेशानुसार मैंने लिफाफे को अपनी मुट्ठी में कसकर बंद कर लिया। हाथ शाल के नीचे छिपा लिया और बड़ी सावधानी तथा उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगा। कुछ देर बाद गुरुदेव से पूछा, 'वे कब तक ले जायेंगी?' बाबा बोले, 'अभी।' इसके बाद उन्होंने आराम कुर्सी के हथ्ये पर हाथ पटककर मुझसे पूछा, 'कुछ अनुभव किया?' मैंने कहा, 'स्पंदन के अतिरिक्त कुछ अनुभव नहीं हुआ।' वे बोले, 'लिफाफा खोलकर देखो।' मैंने शाल हटाकर लिफाफा बाहर निकाला। वह जैसा का तैसा बंद था किंतु उसके भीतर रुपया नहीं था। लिफाफे पर हाथ की रेखाओं के चिह्न दिखाई दे रहे थे। और

हिंदी डाइजेस्ट





कमल जैसी भीनी सुगंध आ रही थी। यह लिफाफा मैं बहुत दिनों तक यत्न के साथ अपने पास रखे रहा।

### अनंत वैभव के स्वामी

लोक-दृष्टि से तिरोहित होने पर भी अभी तक बाबा का मेरे साथ व्यवहार पहले जैसा ही है। वे शिष्य और अशिष्य में भेद नहीं रखते। भक्त भी उनके अनुग्रह-पात्र हैं। गुजरात के एक विशिष्ट भक्त, जिन्होंने जीवन काल में बाबा को कभी देखा भी नहीं था, अब तक उनका दर्शन पाते हैं। उनके घर में कभी-कभी बाबा का आविर्भाव होता है। उनका एक छोटा लड़का है, जो बाबा के आशीर्वाद से उत्पन्न हुआ था। वह भी स्थूल शरीर में बाबा का दर्शन लाभ करता है। बाबा का उस परिवार से बड़ा स्नेह है। इस प्रकार की घटनाएं अन्य अनेक स्थानों पर हुई हैं। आज तक एकांत भक्ति से पुकारने पर वे प्रकट होते हुए देखे जाते हैं। मैंने गुरुदेव के लीला-माधुर्य का वर्णन विशुद्ध वाणी के

आठ खंडों में किया है, फिर भी वह संपूर्ण नहीं है। उनका वैभव अनंत है।

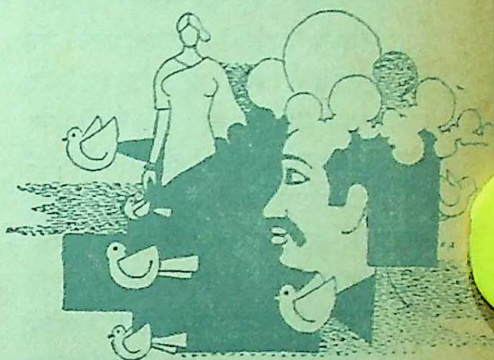
एक दिन की घटना है। उस समय बाबाजी अपने पुरीवाले आश्रम में विराजमान थे। एक दिन उनके कामाख्या बनर्जी नामक एक पुराने शिष्य समुद्र में स्नान करने के लिए गये थे। असावधानता के कारण लहर की चपेट में आ जाने से उन्हें काफी चोट आ गयी। दर्द महीनों तक बना रहा। धीरे-धीरे वह वात में परिणत हो गया। इस प्रकार व्याधिग्रस्त रहते हुए भी कामाख्या बाबू बाबाजी के सत्संग में निरंतर उपस्थित होते थे। सत्संग में उस दिन कटक से आये हुए एक आई. एम. एस. महाशय भी बैठे थे। बाबाजी ने कामाख्या बाबू के रोग का विवरण बताते हुए उक्त डाक्टर महाशय से पूछा—'इस दर्द की कोई औषधि है?' डाक्टर बोले, 'थोड़े ही दिन हुए जर्मनी से एक तैलात्मक औषधि निकली है, उससे इस प्रकार के रोग का उपचार होता है। मैंने स्वयं आजमाया है, परंतु वह यहां नहीं, कलकत्ता में मिल सकती है।' बाबा ने कहा, 'क्या उस औषधि के उपकरण (इन्फ्रीडियंट्स) आपको ज्ञात हैं?' डाक्टर महाशय ने कहा, 'नहीं।' बाबाजी ने पुनः प्रश्न किया, 'क्या तुमने स्वयं उसका व्यवहार किया है?' डाक्टर महाशय ने कहा, 'हां।' बाबाजी ने तत्काल पत्थर की एक कूंडी मंगवाई। वह लायी गयी। वे आराम-कुर्सी पर बैठे थे, बोले, 'कटोरे को मेरे



सामने नीचे रखो।' कटोरा उनके निर्देशानुसार सामने एक स्टूल पर रखा गया। बाबाजी ने अपना हाथ उसमें लटकाया। हाथ लटकाते ही उससे बूंद-बूंद करके तेल की भाँति कोई पदार्थ कटोरे में गिरने लगा। देखते ही देखते उसका तीन चौथाई भाग उससे भर गया। बाबाजी ने डाक्टर महाशय की ओर संकेत करते हुए कहा, 'तुम्हारी दवा यही है न ?' डाक्टर ने कहा, 'हां, महाराज !' बाबाजी इस रहस्य की व्याख्या करते हुए बोले, 'तुम्हारे चित्त में संस्कार रूपेण औषधि के प्रत्यक्ष दर्शन के कारण जो वस्तु विद्यमान थी, उसी को मैंने भौतिक रूपेण उत्पन्न कर दिया। यह पंचीकरण का व्यापार है।' कामाख्या वनर्जी ने उस तैल का सेवन किया और थोड़े ही दिनों में वे व्याधिमुक्त हो गये।

१९२९-३० की बात है। उस समय बाबा भवानीपुर (कलकत्ता) में थे। मैं गौदोलिया के निकट सर्वमंगला लेन के एक मकान में रहता था। मेरी स्त्री की तबीयत बहुत खराब थी। कई डाक्टरों की दवा की गयी, किंतु कोई लाभ नहीं होता था। उनका शरीर जर्जर हो गया था। निरंतर धड़कन (स्पैज्म) होती थी और भी बहुत प्रकार के रोगों का सन्निवेश था। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद दौरा आता था। एक दिन उनकी स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गयी। मेरे मित्र सुप्रसिद्ध डा. शोभाराम ने बहुत प्रयत्न किया,

किंतु किसी प्रकार का प्रतिकार संभव न हो सका। अन्य कई बड़े-बड़े डाक्टरों को बुलाया गया किंतु कोई फिट बंद करने में सफल नहीं हो सका। संध्या होते-होते सभी घबड़ा गये। किसी-किसी ने मुझे सलाह दी कि गुरुदेव को तार देकर सूचित किया जाये। परंतु शरीर के लिए बाबाजी को कष्ट देना मैंने उचित नहीं समझा। तार देने का विचार स्थगित कर दिया गया।



किंतु तार न भेजने से क्या हुआ ? जो मर्मज्ञ है उसके ज्ञान का मार्ग कभी अवरुद्ध नहीं होता। इसी रात को ११-१२ बजे के लगभग देखा गया कि रोगी के कमरे से पद्मगंध आ रही है। उसी समय से मेरी धर्मपत्नी की स्थिति सुधरने लगी। फिट बंद हो गये। अकस्मात् आविर्भूत गुरुदेव के स्वरूप को प्रणाम करते ही उनका रोग उपशम हो गया। तार देने की आवश्यकता नहीं पड़ी। संकट का उद्धार हो गया। हम लोग निश्चित हो गये।

**दोनों पृष्ठों के चित्रकार : संतोष जड़िया**



दूसरे दिन प्रातः साढ़े-आठ बजे मैं नीचे अपने कमरे में बैठा था। नौकर ने आकर मुझसे कहा, 'ऊपर मांजी आपको बुला रही हैं।' मैं ऊपर चला गया। वहीं स्त्री का वासस्थान था। मैंने पूछा, 'आवश्यकता क्या है?' वे बोलीं, 'अभी गुरुदेव आये थे।' मैंने कहा, 'कल रात गुरुदेव आये थे, उनके आने के बाद तुम्हारे रोग की निवृत्ति भी हो गयी थी, यह मैं जानता हूँ। किंतु वे इस वक्त कब आये?' उन्होंने कहा, 'अभी आये थे। पांच मिनट भी नहीं हुआ। मैं अपने सोने के कमरे से बाथरूम में जा रही थी। आंगन को पार करते हुए आगे रास्ते में ही अत्यंत कम-जोरी के कारण गिरने लगी। उसी समय गुरुदेव ने स्थूल शरीर से प्रकट हो मुझे पकड़ लिया। मैं गिरने नहीं पायी। उनकी दाढ़ी हमारे शरीर में लग गयी थी। बाबा ने मेरे हाथ में दवा की आठ-दस गोलियां दीं। उनके सेवन की विधि बतायी। और अंतर्धान हो गये।' मैंने उस दवा को देखा, फिर पूछा, 'इसके सेवन के क्या नियम हैं?' वे बोलीं, 'सो तो मैं भूल गयी।' मैंने कहा, 'जब यथानियम सेवन की विधि ही नहीं मालूम है, तब व्यवहार कैसे करोगी?' इसके बाद उस दवा को मैंने अपने पास रख लिया और बाबाजी के पास इस घटना का उल्लेख करते हुए पत्र लिखा। इसके उत्तर में बाबाजी ने यथेष्ट निर्देश दिया। गोलीयों का सेवन हुआ। धर्मपत्नी पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गयीं।

नवनीत

योगी का अर्थ है अखंड सत्ता से युक्त  
इसके बाद श्री-भावकाश में जब मैं  
बाबाजी के पास कलकत्ता आश्रम में गया,  
तो एक दिन एकांत में उनसे इस घटना  
को लेकर कुछ प्रश्न किये। मैंने पूछा,  
'बाबाजी! कलकत्ता रहते हुए आपने  
काशी में उपस्थित होकर मेरी स्त्री की  
प्राण-रक्षा कैसे की? एक साथ ही आपका  
इन दोनों स्थानों पर वर्तमान होना कैसे  
संभव हुआ?' यह सुनकर वे हंसते हुए  
बोले—'जिस समय बहू मां गिर रही थी,  
मैं भी अपने बाथरूम में कुल्ला करने गया  
था। मैंने देखा कि वे गिर रही हैं। मैंने  
उन्हें पकड़ लिया।' मैंने कहा, 'भवानीपुर  
से काशी लगभग ५०० मील दूर है। न  
उसने आपको पुकारा न मैंने ही इस संबंध  
में पहले कोई सूचना आपको दी थी, फिर  
आपको कैसे पता चल गया कि वे रुग्ण  
हैं?' बाबा ने कहा, 'तुम योगी का क्या  
अर्थ समझते हो? योगी का अर्थ है—  
अखण्ड सत्ता से नित्य युक्त होना। वह  
देशकाल से अवरुद्ध नहीं होता। मैं इसी  
शरीर से सर्वत्र, सर्वकाल वर्तमान रहता हूँ।  
फिर मेरे काशी पहुंचने की बात ही क्या!'  
मैंने एक दिन बाबा से पूछा, 'योगी के  
लिए अपनी शक्तियों अथवा विभूतियों का  
बाहर प्रकाश करना उचित है या नहीं?'  
उन्होंने कहा, 'जो शिष्यार्थी हैं और अभी  
मार्ग में प्रविष्ट हुए हैं, उनके लिए योग  
की विभूतियों का प्रदर्शन करना अनुचित  
एवं हानिकारक है। क्योंकि इससे अहंकार  
दिसंवा



अथवा आसक्ति की दृष्टि हो सकती है।

उन्हें इन सब शक्तियों को इस प्रकार गुप्त रखना चाहिये कि निकटतम संपर्क में रहने वाले व्यक्ति को भी इसका पता न लगे। किंतु जो सिद्धयोगी अधिकारी बन गये हैं, उनके लिए यह नियम नहीं है। उनको अहंकार है नहीं, होने की संभावना भी नहीं है। अपनी दृष्टि से उनके लिए इन शक्तियों का कोई प्रयोजन नहीं है—इन पर वे पूरी तरह से जय प्राप्त कर चुके हैं। परंतु प्रथम-प्रविष्ट जिज्ञासु के लिए प्रयोजन के अनुसार इनका प्रदर्शन आवश्यक होता है। दिखाये बिना और क्रम रहस्य समझाये बिना उनके लिए सूक्ष्मतत्त्व में प्रवेश करना कठिन है। प्रथम प्रवेशार्थी का विश्वास दृढ़ रखने के लिए यह आवश्यक होता है। साधारणतया लोग जिसको असंभव समझते हैं वह असंभव नहीं रहता। सिद्धयोगी के लिए कोई वस्तु असंभव होती ही नहीं, क्योंकि शक्ति के अधीन सब कुछ है। अतः शक्ति आयत्त होने पर सब कुछ हो सकता है। अघटन का घटन महाशक्ति के ही अधीन है।

मैंने शंका की, 'योगमार्ग में शक्ति का विकास आवश्यक है या सरल विश्वास?' उनका उत्तर था, 'दोनों सिद्धांत ठीक हैं? पहली अवस्था में जब चित्त चंचल रहता है तब निष्ठा और विश्वास कहां से आयेगा। प्रत्यक्ष देखे बिना, एक बार नहीं पुनः-पुनः विभिन्न अवस्थाओं में अपरोक्षानुभव प्राप्त किये बिना, मनुष्य का मन प्रायः शांत नहीं

होता। ऊपर के राज्य में विश्वास ही प्रधान है। परंतु आरंभ में प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिये।'

**इच्छा-शक्ति ही चरम-शक्ति**

मैंने पूछा, 'विभूतियों में श्रेष्ठ कौन-सी विभूति है?' उन्होंने कहा, 'इच्छा, ज्ञान और क्रिया-शक्ति, यही त्रिक्रम सर्वश्रेष्ठ है। इनमें भी इच्छा-शक्ति सबसे ऊपर है। ज्ञान-शक्ति प्राप्त करने से अशेष विशेष लाभ—ज्ञान-लाभ होता है अर्थात् सर्वगत का गत हो सकता है, इसमें बिलकुल संदेह नहीं। क्रिया-शक्ति आयत्त करने पर सर्व-कर्तृत्व आ जाता है।'

हमने कहा, 'यह तो योगशास्त्र में विशोकासिद्धि कही जाती है, जिसका स्वरूप है 'सर्वज्ञातृत्व और सर्व भावाधिष्ठातृत्व।'

बाबाजी बोले, 'ठीक है, परंतु इसके ऊपर में है इच्छा-शक्ति। यह तुम्हारे विशोकासिद्धि के भी ऊपर की वस्तु है। इच्छा-शक्ति प्राप्त होने पर उसी से ज्ञान-शक्ति तथा क्रिया-शक्ति का भी कार्य हो जाता है। इच्छा से ही सर्वज्ञान होता है। इच्छा से ही सर्वक्रिया भी हो सकती है। इच्छा-शक्ति प्राप्त होने पर प्राकृतिक उपादान लेकर ज्ञान तथा क्रिया-शक्ति काम कर सकती है। यही विज्ञान है। विज्ञान के अनंत प्रकार हैं—सूर्य-विज्ञान, चंद्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, समय-विज्ञान आदि। परंतु इच्छा-शक्ति विज्ञान नहीं है।'

मैंने एक प्रश्न पूछा, 'बाबा, इच्छा-शक्ति (शेषांश पृष्ठ १४० पर)

हिंदी डाइजेस्ट



आनन्द खल्लर भटनगर द्वारा आलेखित  
मरणोत्तर जीवन की रोमांचक सत्य-कथा



# वे मृत्यु के उस पार से हमसे मिलने आते हैं

१६ मार्च १९६७ की सुबह ३.३५ की यह विचित्र घटना है। विद्वान गायत्री प्रचारक व मंत्रयोगी प्रिंसिपल आचार्य विष्णु सहाय साधक ने देखा कि उनके गुरु प्रभु आश्रितजी महाराज साक्षात् उनके साधनाकक्ष में प्रकट हो गये हैं। आचार्यजी को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। वे गुरुदेव के स्वागत के लिए आगे बढ़े। गुरुदेव मुस्कराये और अंतर्धान हो गये। मन खटका। आचार्यजी को कौतूहल बना रहा। वे विस्मय में पड़े रहे। उसी दिन दस बजे तार मिला कि प्रभु आश्रितजी महाराज ने उसी दिन ३.३५ पर प्रातः वैदिक भक्ति साधन आश्रम, आर्यनगर, रोहतक में अपना यह पार्थिव शरीर त्याग दिया था। तब यह लगा कि वे शरीर त्यागते ही अपने परमप्रिय शिष्य से सूक्ष्म शरीर में मिलने आये थे। इस घटना को सुनाते हुए आज भी आचार्यजी अपने गुरु के प्रति श्रद्धा-विभोर हो उठते हैं। प्रभु

आश्रितजी महाराज सुपरिचित गायत्री साधक व प्रचारक हुए हैं और इस विषय पर आज भी उनकी कई लोकप्रिय पुस्तकें बहुत चाव से पढ़ी जाती हैं।

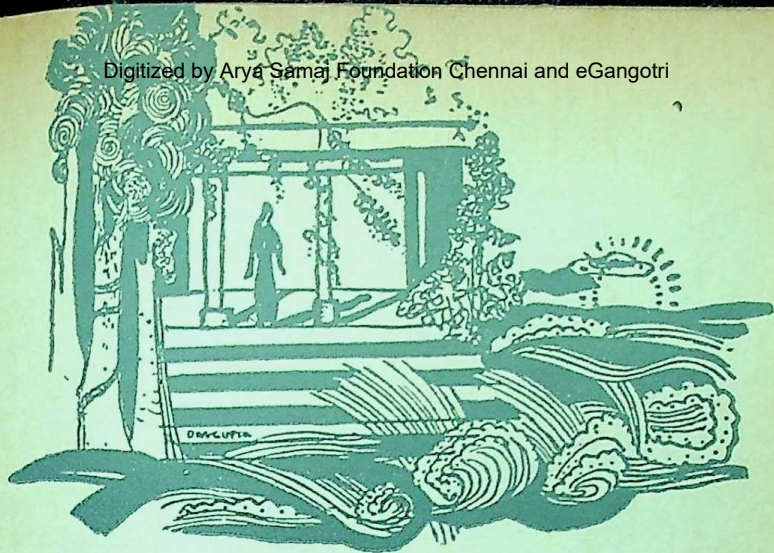
ऐसा ही विचित्र अनुभव अनन्य आध्यात्मिक साधिका श्रीमती चंद्रकांता जयरथ को हुआ। वे उन दिनों मंदिर मार्ग, नयी दिल्ली में रहती थीं। प्रातः ३॥ बजे वे अपनी दैनिक साधना के लिए उठा करती हैं, परंतु १४ जून १९७२ को उनकी आंख २॥ बजे ही खुल गयी। उन्होंने देखा कि उनका बड़ा बेटा विक्रम जयरथ, जिसे वे प्यार से विककी कहती थीं पूजा के कमरे में खड़ा है। फिर वह बिस्तर पर बैठ गया। वह अपनी मां से कुछ कहना चाहता था। लेकिन एक तो उन्हें विश्वास नहीं था कि विककी वहां हो सकता है। दूसरे प्रतिदिन ९ बजे तक उनका मौन रहता है। इस लिए उन्होंने बात करने की कोशिश भी नहीं की। विक्रम तो अमरीका में था।

विसंग

नवनीत

११६





वहां आ कैसे सकता था ? यह केवल  
उनका भ्रम है। विस्मय में पड़ीं वे इसी  
प्रकार सोचती रहीं। आश्चर्यचकित होकर  
फिर उन्होंने देखा, सचमुच था तो वह  
विक्रम ही। फिर वह कुछ ही मिनट में  
गायब हो गया।

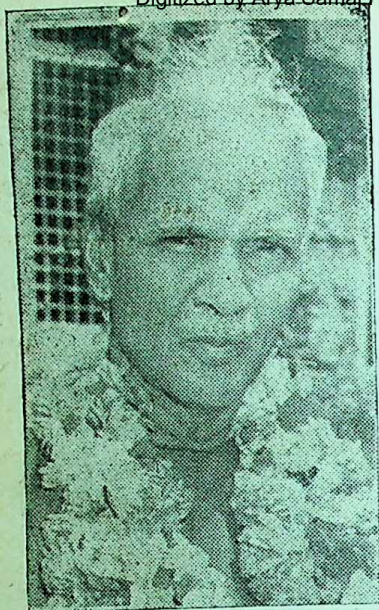
हुआ यह कि बहुत दिन बाद कुछ दिन  
पहले विक्रम जयरथ का बहुत स्नेहसिक्त  
पत्र अपनी मां के नाम आया था। कहीं  
ऐसा तो नहीं हुआ कि उसी के भावों में  
बूबते रहने के कारण उन्हें यह भ्रम हुआ  
हो कि बेटा सामने आ गया है। कई तरह  
मन को समझाया। मन फिर भी बार-बार  
उसी में रमा रहा। लेकिन उसी दिन रात  
को उनके बेटे सुप्रसिद्ध अंतरिक्ष वैज्ञानिक  
डॉ. नवीन जयरथ का अमरीका से फोन  
आ गया कि उसी समय जब वह अपनी  
मां को दिखाई दिया था विक्रम जयरथ  
और दुर्घटना से मृत्यु हो गयी ! बाद में

अनुमान लगाया गया कि सूक्ष्म शरीर में  
बेटा स्नेह से खिंचा अपनी मां के पास चला  
आया था।

इन घटनाओं से इस मान्यता की पुष्टि  
होती है कि मरते समय की इच्छा और  
कामना बहुत ही प्रबल होती है। वही  
आत्मा की भावी दिशा को भी निर्धारित  
करती है। इसीलिए भारतीय जीवन में  
एक परंपरा बन गयी है कि मृत्यु के समय  
मनुष्य की भावना और विचारणा को  
उसके विश्वासानुसार धार्मिक ग्रंथों के पाठ  
से प्रभावित किया जाता है। इसी प्रकार  
मन अपने जिस किसी आत्मीय में मरते  
समय पड़ा होता है, शरीर छोड़ने के बाद  
वह उसी के पास पहुंच जाता है। इस  
मान्यता को प्रमाणित करने वाली अनेक  
घटनाएं और भी हैं।

नैपोलियन की मृत्यु ऐलबा के कारागार  
में हुई थी। उसी दिन सैकड़ों मील दूर





### आचार्य श्रीराम शर्मा

वह अपनी मां के सामने प्रकट हो गया और बोला—‘मां ! मैं अब जाकर झंझटों से मुक्त हो पाया हूँ ।’ उस समय तक नैपो-लियन की मृत्यु का समाचार उसकी मां तक नहीं पहुंच पाया था । इसलिए मां ने तो यही समझा कि सहसा वह मिलने आ गया है । अन्य तीन व्यक्तियों ने भी उसे वहां देखा था ।

अपने आत्मीय जनों से संपर्क बनाने की उत्कट इच्छा कुछ जीव आत्माओं के लिए मृत्यु के बाद अपने सूक्ष्म शरीर का स्थूली-करण करना भी संभव बना देती है । फिर भी कुछ ही दृढ़ संकल्प के व्यक्ति स्थूलरूप में व्यक्त हो पाते हैं । उनमें भी सभी के लिए आवाज निकालना संभव नहीं होता ।

अधिकतर जीव आत्माएं अदृश्य रूप में ही अपने प्रियजनों के आसपास मंडराती रहती हैं और कोई अपेक्षित विचार उनके मन में उतारकर उन्हें पूर्णतः संतुष्ट होना पड़ता है ।

मृत व्यक्ति को अपने प्रिय से संपर्क बनाने की तो अनेक घटनाएं घटती रहती हैं । ऐसी ही घटना एक ब्रिटिश सैनिक के साथ घटी । कैप्टन किड गहरी नींद में सो रहे थे । उन्हें अपने विस्तर पर सहसा भारी बोझ-सा मालूम दिया । आखें खोलीं तो देखा कि सुदूर वेस्ट इंडीज में नौकरी कर रहा भाई विस्तर पर बैठा है । भाई की ओर हाथ बढ़ाकर उसे छुआ । उसका कोट पानी से तर था । वे हड़बड़ाकर विस्तर से उठ बैठे । भाई गायब हो गया । बाद में पता चला कि उसी समय भाई की पानी में डूब जाने से वेस्ट इंडीज में ही मृत्यु हो गयी थी ।

इन सारी घटनाओं के बावजूद भी जो यदाकदा घटती रहती हैं कुछ लोग आत्मा के अस्तित्व तक में विश्वास नहीं करते । उनके विचार से आत्मा केवल एक कल्पना मात्र है जिसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है । भगवान बुद्ध के अनुसार भी इस सृष्टि में प्रकृति व व्यक्ति केवल एक गति क्रम है । ईसाई और इस्लाम के अनुसार व्यक्ति का अस्तित्व किसी न किसी रूप में मृत्यु के बाद बना रहता है, भले ही उसका पुनर्जन्म न होता हो । विभिन्न धर्मों में विवादास्पद और अलग-अलग मत-विस्तार



मतांतरों के कारण खुले स्वतंत्र विचारों का व्यक्ति संदेहों का ताना-बाना बुनता रहता है। वह तर्क की कसौटी पर ही खरे उतरने वाले सत्य को ही केवल स्वीकार करना चाहता है।

आत्मा के अस्तित्व के विषय में व मरणोपरांत जीवन के विषय में सत्य को जानने के मार्ग में सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि जो उस पार चला जाता है वह फिर यह बताने इस पार नहीं आता कि वहां क्या कैसा है ? इस लिए तलाश इस बात की की गयी कि कोई वहां जाकर वापस आया हो तो उससे ही आंखों देखा हाल मालूम किया जाये। यह कठिनाई भी अब



सरस्वती शर्मा, जिनसे उनका मृत-भाई मिलने आता था और बच्चे को गोद खिलाता था

दूर हो गयी है। अब उन लोगों से संपर्क किया जाने लगा है जो लोग आपरेशन की मेज पर मृत घोषित कर दिये गये हों या अस्पतालों में किन्हीं असाध्य रोगों के मृत मान लिये गये हों और वे फिर जी उठें हों। इस दौरान उन्होंने क्या कुछ अनुभव किया और क्या देखा सुना ? उन

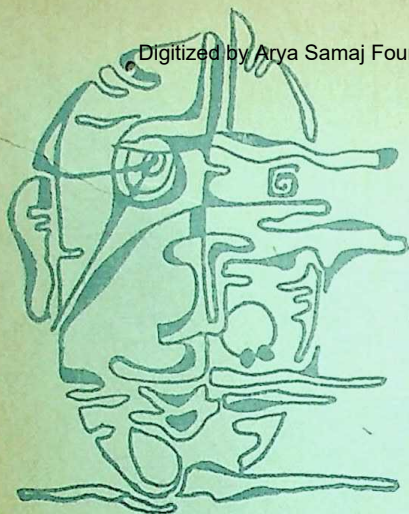
सबके अनुभव विचित्र, रोमांचकारी और चौंका देने वाले हैं। नेशनल ओपीनियन रिसर्च सेंटर के अनुसार पचास हजार अमरीकनों को विश्वास है कि उनका कुछ ही समय के लिए परलोक में जाकर उन लोगों से मिलना हुआ जो कि मर चुके थे।

यह विश्वास थियो-सोफी की इस मान्यता की पुष्टि करता है कि सूक्ष्म-लोक में हमारी मुलाकात अपने मृत संबंधियों से फिर हो जाती है। बल्कि उनका तो मत यह भी है कि इस शरीर को छोड़कर जब हम सूक्ष्मलोक में जाते हैं तो हमारे रिश्तेदार हमें लेने आते हैं और उस नये लोक के तौर-तरीकों की जान-

कारी देते हैं।

एक स्त्री कैथरीन ने इस अस्थायी मृत अवस्था में दो हजार मील दूर अपनी मां से संपर्क किया। इसी प्रकार मर्क लेविन जिस समय आपरेशन की मेज पर मृत पड़ा हुआ था उसने अपनी पत्नी को वेंटिग-रूम में बैठे देखा था और उसका संपूर्ण





### चित्र : नीता वैद्य

विवरण भी दिया। वापस शरीर में आने पर उसने अपने अनुभव बताये।

एक और दिलचस्प घटना है १२ अप्रैल १९७५ की। प्रातः मर्था ईगन की दिल के दौरों से मृत्यु हो गयी। उसने अपने शरीर से बाहर निकलकर देखा कि डाक्टर लोग उसके हृदय को फिर से जागृत करने का प्रयास कर रहे हैं। सोचा कि मरना ही है तो क्यों न जाकर मां को कम से कम यह बुरी खबर मैं खुद ही दे दूं। उसने बताया कि सोचा ही था कि मैं वारमोंट में अपनी मां के पास पहुंच गयी। मां अपनी प्रिय आराम-कुर्सी पर लेटी पढ़ रही थीं। मैंने उन्हें चिल्लाकर बताया कि मां मुझे दिल का दौरा पड़ गया है। मैं मर गयी हूं। मैंने हर तरह कोशिश की परंतु व्यर्थ। मैं उनकी कुर्सी के नजदीक पलंग के किनारे पर बैठ गयी। मैं उनसे कुछ ही इंच की दूरी पर होऊंगी। वे अपनी किताब में डूबी हुई

थीं। मैंने उस किताब का शीर्षक भी देखा था। परंतु अब मुझे कुछ याद नहीं है। बस मैं तो किसी तरह उनका ध्यान अपनी ओर खींचना चाहती थी। मैंने इस दर की वजह से उन्हें नहीं छुआ कि कहीं वे बुरी तरह से चौंक न पड़ें। मैं धीरे-धीरे उनके कान के पास फुसफुसाकर कहती रही, 'मां ! मैं हूं मर्था तुमसे कुछ बात करनी है।' मैं अब उनका ध्यान बंटाने के लिए कोई और उपाय सोच ही रही थी कि मेरा सारा मन यकायक अपने शरीर की ओर चला गया। अपने शरीर में मैं अब वापस आ गयी थी।

जीवित होने के बाद मर्था को पता लगा कि मां को उस समय, जबकि मर्था उससे बात करने की कोशिश कर रही थी, कुछ अजीब-अजीब-सा अंदर से लगा था कि मर्था कुशलता से नहीं है। परिणाम-स्वरूप उन्होंने अपने बेटे को ट्रंककाल से कहा कि जाकर पता लगाओ मर्था कैसी है, वह कुशल से तो है ?

इस घटना से भी इसी मान्यता की पुष्टि होती है कि मरने के बाद आत्मा का अस्तित्व बना रहता है। यही नहीं, यदि वह अपने प्रिय से दूर हो तो तुरंत उसके पास जाकर उससे संपर्क कर कुछ कहने का प्रयास करती है। उसकी आवाज तो अधिकतर केवल सूक्ष्मलोक में ही सुनी जा सकती है। परंतु वह मन में कोई विचार उतारने में अक्सर सफल हो जाती है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि जब

दिवंगत



भी देखा  
नहीं है।  
अन अपनो  
इस डर  
कहीं वे  
धीरे-धीरे  
र कहती  
कुछ बात  
न बंटाने  
व ही रही  
पक अपने  
पने शरीर  
को पता  
बकि मर्या  
र रही थी,  
लगा था  
परिणाम-  
काल से  
मर्या कैसी  
न्यता को  
आत्मा का  
नहीं, यदि  
रुंत उसके  
कुछ कहने  
आवाज तो  
ही सुनी  
कोई विचार  
जाती है।  
है कि जब  
दिसंबर

कभी अपना कोई बहुत प्रिय मृत अवस्था  
जैसे किसी घोर संकट में हो तो मन में  
अंदर से कुछ अजीब-अजीब-सी अनुभूति  
होने लगती है। अनायास ही मन घबराता  
है और उस प्रिय की ओर चला जाता है।  
बाद में खबर मिलती है कि वह सख्त  
बीमार है। सिर्फ हमारे ही इंतजार में  
दम नहीं तोड़ा। हम पहुंचे कि उसने शरीर  
छोड़ दिया। या कि  
जिस समय हमें अना-  
यास ही अंदर से विचि-  
त्र-सी अनुभूति हुई थी  
हमारा वह आत्मीय उसी  
समय अपना शरीर छोड़  
चुका था।

मृत्यु के बाद किस  
प्रकार अपने आत्मी-  
यजन किसी भी तरह  
हमसे संपर्क बनाये  
रखना चाहते हैं। किन्हीं-  
किन्हीं को इसमें सफ-

लता भी मिलती है। परंतु अधिकतर  
सूक्ष्मलोक वासी इसमें सफल नहीं हो  
पाते। जिस समय अपने प्रिय की मृत्यु पर  
हम विलाप कर रहे होते हैं वे हमसे कुछ  
कहना चाहते हैं। हमें सांत्वना देना चाहते  
हैं कि वे उस लोक में मंजरे में हैं। उन्हें कष्ट  
तो हम सिर्फ रो-धोकर पहुंचा रहे हैं।  
वास्तव में सूक्ष्मलोक एक प्रकार से भाव-  
लोक व विचार लोक भी है, और वह  
विचार और भाव एक प्रत्यक्ष वस्तु के



चित्र : नीता बंड

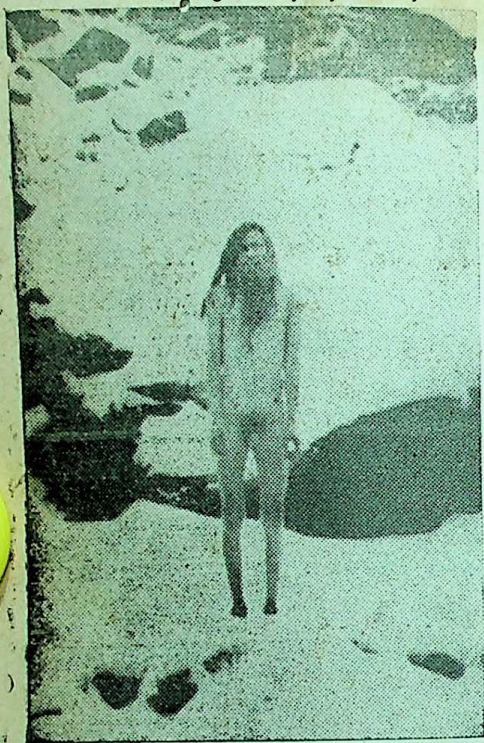
रूप में ही प्रकट होते हैं और उनका सूक्ष्म  
शरीरधारी व्यक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ता  
है। इसीलिए संतवृत्ति के कई लोग अक्सर  
प्राण छोड़ने से पहले ही यह आदेश दे देते  
हैं कि हमारे बाद रोना-धोना न किया  
जाये। लेकिन सामान्य व्यक्ति की इच्छा  
तो अपने प्रिय संबंधियों से संपर्क साधने  
की बनी ही रहती है। जिन आत्माओं का

पुनर्जन्म का समय आ  
जाता है उनका प्रयास  
भी यही होता है कि वे  
अपने ही कुल में जन्म  
ले लें। मेरी जानकारी  
में एक ऐसी ही एक  
विचित्र घटना है।

कृष्णनगर दिल्ली  
की सरस्वती शर्मा के  
पहला बेटा हुआ था।  
उनकी सोबर में उनका  
मृत भाई आया और  
बोला—'जिज्जी, भैया

को दे दे। खिलाने आया हूं।' कुछ  
देर वह उस बच्चे को गोद में लेकर झुलाता  
रहा। फिर वह चला गया। इस प्रकार  
वह कई दिन तक आता रहा। एक दिन  
वे बोलीं—'तू रोज आता है और फिर चला  
जाता है। आज मैं तुझे जाने नहीं दूंगी।'   
यह कहकर उन्होंने भाई का कुर्ता कसकर  
पकड़ लिया। भाई ने झटके से कुर्ता छोड़ा  
और चला गया। दूसरे दिन वह फिर आया  
और बोला—'जिज्जी ! मैं अब सारा





### गर्मों, सर्दों, भूख-प्यास से परे स्वामी सर्वेश्वरानन्द

झगड़ा ही खत्म किये दे रहा हूं। अब मैं तेरे पास ही आ जाऊंगा।' दूसरा बच्चा भी लड़का हुआ। देखने वाले सब कहते थे कि इसकी शक्ल-सूरत तो तुम्हारे भाई से बहुत मिलती है। इस बच्चे का नाम है आनंदचंद्र मोहन शर्मा। वह काफी बड़ा हो गया है।

कास पर लटकाये जाने के बाद व कब्र में दफन किये जाने के बाद ईसा मसीह फिर वापस आ गये थे। कुछ लोगों का मत है कि वे कब्र में से जीवित होकर

नवनीत

सशरीर उठ आये थे। परंतु कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि उन्होंने अपने सूक्ष्म शरीर को स्थूल में व्यक्त किया था। उनके शिष्य थामस को तो यह संदेह ही बना रहा कि क्या सचमुच ईसा वापस आ गये हैं। उसने उन्हें छूकर देखा था और तब विश्वास किया था।

परमहंस योगी योगानंद बंबई के एक शानदार होटल में टिके हुए थे। १० जून १९३६ को दोपहर के तीन बजे थे। एक दिव्य ज्योति से यकायक कमरा भर गया और उसमें से उनके गुरु स्वर्गवासी श्री युक्तेश्वर सशरीर प्रकट हो गये। योगानंद ने उत्तेजना और खुशी से उनके चरण छूने के स्थान पर कसकर उनकी कौली भर ली और तभी छोड़ा जब उनके गुरु ने कहा कि 'भई, जरा कसाव को ढीला करो। बहुत जोर से पकड़ रखा है।' फिर श्री युक्तेश्वर बहुत देर तक योगानंद को अध्यात्मदर्शन की बातें बताते रहे। श्री युक्तेश्वर जब जीवित थे तब भी एक बार वे कलकत्ते में अपना शरीर छोड़कर सीरमपुर में सशरीर प्रकट हो गये थे। उन दिनों योगानंद सीरमपुर कालेज में बी. ए. में पढ़ते थे। श्री युक्तेश्वर ने कहा कि 'मुझे दिव्य प्रेरणा हुई है कि मैं तुम्हें यह अनुभव कराऊं कि एक योगी के लिए यह भी संभव है। आज मैं दस बजे की ट्रेन से आ रहा हूं। तुम मुझे स्टेशन पर मिलना। मैं इन्हीं कपड़ों में हूंगा जिनमें कि अब तुम मुझे देख रहे हो। मेरे साथ एक छोटा-सा



लड़का चांदी का लोटा लिये हुए होगा। फिर योगानंद ने ठीक दस बजे स्टेशन पहुंचकर उन्हें इसी वेश में उसी विवरण के साथ पाया जो उन्होंने दिया था। इन दोनों घटनाओं का विस्तृत विवरण 'आटो-बायप्राफी आफ ए योगी बाई योगानंद' में दिया गया है।

यह स्थूल शरीर छोड़कर जिस प्रकार एक सामान्य व्यक्ति सूक्ष्म शरीर में विचरण करता है उसी प्रकार कहीं भी मात्र रूपना से या संकल्प से चले जाना व फिर सशरीर प्रकट हो जाना योगियों के लिए सामान्य-सी बात है। भारतीय योगदर्शन की कुछ बातों को तो पाश्चात्य जगत अब धीरे-धीरे मानने लगा है, परंतु जैसे-जैसे वे जिज्ञासु इस सूक्ष्म जगत की छानबीन कर रहे हैं वे इन सभी सिद्धांतों को प्रामाणिक पा रहे हैं।

एक योगी के लिए शरीर छोड़कर दूसरे स्थान पर फिर सशरीर प्रकट होना तनिक भी कठिन नहीं है। कितनी ही ऐसी घटनाएं हैं जो प्रकाश में आ चुकी हैं। परंतु कितनी ही ऐसी भी घटनाएं हैं जो हमें ज्ञात नहीं हैं। ऐसी ही एक और ज्ञात घटना का जिक्र इस तथ्य पर प्रकाश डालने में सहायक होगा।

जिस समय की यह घटना है उस समय आचार्य पं. श्रीराम शर्मा पंद्रह वर्ष के थे। अब तो वे ७२ वर्ष के हैं। पंडित मदनमोहन मालवीय से गायत्री-साधना में दीक्षित होकर वे अपने गांव आंवलखेड़ा, जिला आगरा,

में तीन वर्ष से निरंतर गायत्री-साधना में लगे हुए थे और वह सब कुछ प्राप्त कर लेने के लिए संकल्पबद्ध थे जो पं. मदनमोहन मालवीय ने दीक्षा के समय गायत्री मंत्र की उपलब्धियां बतायी थीं। एक दिन साधना के समय प्रातः के अंधेरे में उनका पूजाघर दिव्य प्रकाश से जगमगा उठा। सूर्य की तरह जगमगाते उस प्रकाश से एक मानव आकृति उदित हुई। उसने अपना परिचय देते हुए बताया कि मैं तीन जन्मों से तेरा गुरु हूं और तुझे अब आगे का मार्ग बताने आया हूं। श्रीराम ने पूछा कि आपकी बात का प्रमाण क्या है? इस मानव आकृति ने श्रीराम को तीनों जन्मों का हाल फिल्म की तरह दिखा दिया। संतुष्ट होकर श्रीराम ने उनका मार्गदर्शन स्वीकार कर लिया। इन गुरु का नाम है स्वामी सर्वेश्वरानंद। वे तीन सौ वर्ष के हैं। आज भी वे हिमालय की बर्फ में भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी से मुक्त तपस्या में लगे हुए हैं। वे बराबर श्रीराम का सूक्ष्म विचार-तरंगों द्वारा मार्ग-दर्शन किया करते हैं। एक बार आचार्य श्रीराम शर्मा हिमालय की बर्फ के बीच अपने गुरु के दर्शनों के लिए गये थे तो वे कैमरा भी ले गये थे और प्रस्तुत फोटो ले आये। इन दिनों वे अपने इस सक्षम शिष्य को माध्यम बनाकर मनुष्य में देवत्व के उदय, पृथ्वी पर स्वर्ग तुल्य एक नया युग लाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

—सी ८६ डी. डी. ए. फ्लेट्स, साकेत,  
नयी दिल्ली-११००१७





□  
सूली चढ़ा  
अम्लान चेहरा

## डा. रामाश्रय रत्नेश की कविता

भावनाओं का अकिंचन यीशु ।  
जब-जब दुर्विपाकों औ' अनास्था के गहन वन में  
विश्वास की पगडंडियों पर,  
प्रेम के दो डग उठाता;  
धरा हंसती,  
औ' दिगंतों तक मधुर उल्लास छाता ।  
शान्ति पक्षमों को पसारे,  
एक पक्षी प्यार का स्वर घोल जाता ।

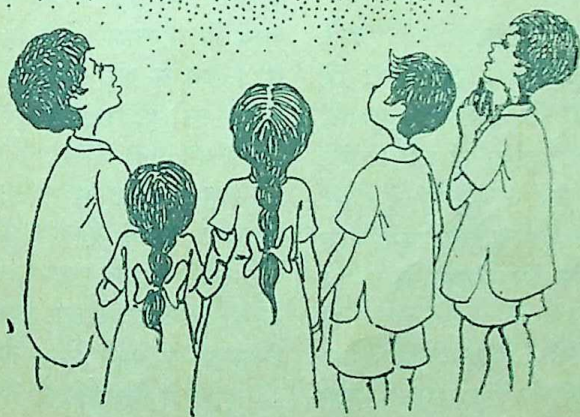
तब;  
अराजक,  
बुद्धिवादी,  
चेतनाहृत  
द्वेष का ले कास,  
उस पर यीशु को सूली चढ़ाता ।

पर,  
यीशु की मधुरिम सहज मुस्कान  
बुद्धिवादी वक्रता पर—  
कौन जाने शान्ति बनती  
या महा आक्रोश को फिर जन्म देती ?  
क्यों कि—

हर क्षण कास दिखता  
और उस पर—  
मुस्कराता यीशु का सूली चढ़ा अम्लान चेहरा ।

—शासकीय महाविद्यालय, दत्तिया, म. प्र.  
दिसंबर





जॉन वाहतेरा कृत असामान्य उपन्यास 'द होली चाइल्ड इज एवरीव्हेयर' का हरिमोहन शर्मा द्वारा संक्षिप्त हिंदी रूपांतर



क्रिसमस के त्योहार से संबंधित एक आनंददायक कथा—तीन असंभाव्य प्रसों और क्रिसमस के उस एकमात्र उपहार की, जिसका महत्त्व क्रिसमस के सब उपहारों से बढ़कर है।

**जैसे-जैसे** क्रिसमस का त्योहार निकट आता जा रहा था, वैसे-वैसे ठंडे मौसम के बावजूद, लोगों में गर्मजोशी बढ़ती जा रही थी। आखिर, क्रिसमस सौहार्द और मैत्री का पर्व है न !

इसी सौहार्द का परिचय देता हुआ, डिग्बी नाम का बालक हाथ में काहू की ताजी हरी पत्तियां लिये खरगोशों के एक बाड़े के पास आया। बाड़ा, जो कुछ दिन पहले सीधा था, अब झुक गया था, उन बच्चों के कारण जो खरगोशों को देखने, खाना खिलाने और उनसे खेलने के लिए आते रहते थे।

डिग्बी ने एक खरगोश को हरी पत्तियां दिखाते हुए कहा, 'इधर आ, मेरे यार, रुडोल्फ ! मैं डिग्बी हूं, तेरा पुराना दोस्त ! देख, क्या लाया हूं तेरे लिए। बड़ी ताजी और लजीज पत्तियां हैं।'।

कहकर, उसने कुछ पत्तियां खुद चाब लीं, ताकि रुडोल्फ को उसकी बात पर यकीन आ जाये।

रुडोल्फ धीरे-धीरे, झिझकता हुआ आगे बढ़ा। डिग्बी के पास आकर, पहले उसने पत्तियों को नाक से छुआ, सूंघा, और फिर एक झटके के साथ, उन्हें डिग्बी के हाथ से छीन लिया।

अब तक रुडोल्फ ने डिग्बी को पहचान

लिया था, इसलिए पत्तियों को हथियाने के बाद भी वह पीछे नहीं गया, और वहीं खड़ा रहा, ताकि डिग्बी को उसकी नरम खाल पर हाथ फेरने का मौका मिल सके।

डिग्बी और रुडोल्फ की मित्रता एक महीना पुरानी थी। रुडोल्फ उसे पाक में उस रात मिला था, जब कस्बे के मेयर ने क्रिसमस के वृक्षों को रोशन किया था। भीड़ से डरा हुआ, एक खरगोश जब डिग्बी को दिखायी दिया, तो उसकी सुर्ख लाल नाक पर मोहित होकर उसने खरगोश को उठा लिया था, और लाकर कस्बे के खरगोशों के बाड़े में रख दिया था। तब से वह खरगोश, जिसका नाम उसने रुडोल्फ रखा था, उसका 'याद' दोस्त बन गया था।

काहू की सारी पत्तियां, जो बाटौर पर उसने रुडोल्फ के लिए छरीत थीं, उसके सामने रखकर, डिग्बी ने उससे कहा, 'अच्छा, दोस्त, अब चला हूँ। क्रिसमस से पहले फिर आऊंगा।'।

बगल में बिना बिकी अपनी कलाकृति दबाये, डिग्बी जब घर की ओर बढ़ा तो उसने पाया कि हल्की-हल्की बर्फ पड़ने लगी थी। जैसे-जैसे वह अपनी निर्विक बस्ती की ओर बढ़ रहा था, वैसे-वैसे



उसे लग रहा था कि क्रिसमस के उल्लास में कमी आती जा रही है। उसके मुहल्ले के गरीब लोग खाने के लिए ही पैसे नहीं बुटा पाते, तो क्रिसमस का पेड़ तथा दूसरा साजो-सामान खरीदने को पैसे कहाँ से लायें ? फिर भी, बस्ती में आकर उसने पाया कि दो-चार घरों में पेड़ हैं.... रोशनी है... हंसी-खुशी है।

एक स्टोर में क्रिसमस के कुछ पेड़ सजे देखकर, डिग्बी का मन एक पेड़ खरीदने का हो आया। मगर, उसे आशा नहीं थी कि उसकी जेब में जो दो डॉलर हैं उसे उसे कोई पेड़ मिल सकेगा ? स्टोर की मोटी मालकिन ने पूछा, 'पेड़ चाहिये ?'

वाहर, हवा तेज हो चली थी, और बर्फ का गिरना भी बढ़ गया था। एक छोटे पेड़ की ओर इशारा करके डिग्बी ने उसकी कीमत पूछी।

'छह डॉलर।' 'मेरे पास सिर्फ दो डॉलर हैं,' कहकर डिग्बी स्टोर से बाहर जाने लगा। भाव-तोल करने से भी क्या लाभ था ?

'ठहरो, मेरे पास दो डॉलर वाले पेड़ हैं।' डिग्बी ने दो डॉलर वाले पेड़ों की ओर देखा। वे काफी छोटे थे, और हर पेड़ में कोई न कोई खराबी थी। फिर भी, क्रिसमस के पेड़ तो थे। उसने दो डॉलर देकर एक पेड़ खरीद लिया।

स्टोर से बाहर आकर, डिग्बी ने पाया

कि हवा ने आंधी का रूप धारण कर लिया था, और हिमपात सचमुच सारे शरीर को एकबारगी सुन्न कर देने वाला बन गया था। आगे बढ़ना एक समस्या थी। लेकिन, पेड़ की वजह से वह काफ़ी प्रमुदित था, और किसी तरह अपने को आगे ठेलता हुआ आगे बढ़ रहा था।

०००

तभी, उसने एक अजीब नजारा देखा।

एक अनाथालय की कोठी से कुछ नीग्रो बच्चे बिल्ली के एक बच्चे को मिठाई के टुकड़े फेंक रहे थे, मगर वे टुकड़े बर्फ से कांपते बिल्ली के बच्चे के पास नहीं पहुंच रहे थे। डिग्बी को देखकर, बिल्ली का बच्चा 'म्याऊं-म्याऊं' करने लगा, जैसे मदद मांग रहा हो।

डिग्बी ने, परेशानी से, आंखें बंद कर लीं। उसके घर में पहले ही बिल्ली के दो बच्चे और एक कुत्ता मौजूद है, जिन्हें वह कभी भूखा नहीं रहने देता, भले ही उसे खुद भूखा रह जाना पड़ जाये। क्या इस बच्चे को घर ले जाना ठीक रहेगा ?

तभी, उसने नीग्रो बच्चों को कहते सुना, 'इस बेचारे का कोई नहीं है। इसे अपने घर ले जाओ न !'

डिग्बी ने चुपचाप बिल्ली के बच्चे को उठा लिया। अब वह तेजी से घर की ओर चलने लगा। वह नहीं चाहता था कि बिल्ली का बच्चा रास्ते में ही ठिठुर कर मर जाये।



उसने सुना, कोई अंदर से उससे कह रहा था—‘तुम किस-किस भटके जानवर की रक्षा करोगे, डिग्बी? सारी दुनिया भूले-भटके जानवरों से भरी पड़ी है। जानवरों से क्या, भूले-भटके आदमियों से भी।’

मगर यह स्वर अगले ही क्षण न जाने कहां खो गया। घर के दरवाजे पर पहुंच कर उसका मन खुशी से नाचने लगा। वह खुश था कि वह अकेला घर नहीं लौटा था।

०००

डिग्बी के पड़ोस में ज्यादातर नीग्रो परिवार रहते थे। इनमें से एक परिवार था इडले हैरिसन का, जो अपने आपको ‘बड़ा मुहम्मद’ कहलाना ज्यादा पसंद करता था। वह नीग्रो युवकों की एक ऐसी सेना बनाने का सपना देखता रहता था, जो गोरे लोगों के प्रभुत्व को समाप्त कर देगी। वह डिग्बी से सख्त नाराज था, क्योंकि उसके पड़ोस में आने के बाद से वहां सफाई रहने लगी थी (जिससे नीग्रो बच्चों को सूरों से खेलने का अवसर नहीं मिलता था) और शांति रहने लगी थी (जिससे पुलिस का आना कम हो गया था)। डिग्बी के इस सफाई-अभियान का यह प्रभाव हुआ था कि एक दिन जब उसने अधजला सिगार सड़क पर फेंक दिया था, तो एक बूढ़ी महिला ने अपने घर की खिड़की खोलकर, उसकी काफ़ी लानत-मलामत की थी। तब से उसने

ठान लिया था कि वह एक दिन डिग्बी को देख लेगा, और उसे अच्छी तरह बतायेगा।

उसने डिग्बी को अकेले घर में घुसने देखकर अपनी जेब से पिस्तौल निकाली। मगर तभी डिग्बी उसकी नज़रों से ओझल हो गया। गुस्से के मारे मुहम्मद ने अपना फ्रैज टोपी उतारकर ज़मीन पर फेंक दी।

बड़े मुहम्मद की इस कार्यवाही को उसके सामने रहने वाले पादरी सिटवैल ने बड़े ध्यान से देखा। ‘भगवान सबकी सहाय करें’, यह उनका प्रिय कथन था। मगर जब वे अपने चारों ओर देखते थे, तो उन्हें लगता था कि यह कथन किसी के बारे में भी सच नहीं बैठता। और, उन्हें रूसों की यह उक्ति याद आ जाती, ‘आदमी जन्मा स्वतंत्र था, मगर हर जगह हम उसे बेड़ियों में बंधा पाते हैं।’ आज की परिस्थितियों में उसे यह उक्ति इतनी प्रासंगिक लगी थी कि उसने उसे प्रवचन-मंच के पीछे लगा दिया था।

सिटवैल चुपचाप बैठे अपने खस्ताहाल चर्च के बारे में सोच रहे थे, जिसकी हालत दिनोंदिन बदतर होती जा रही थी और जिसे सुधारने के लिए बस्ती का कोई आदमी तैयार न होता था। चर्च में आने वाले लोगों की संख्या भी दिन-दिन कम होती जा रही थी। वे इन सब बातों से हमेशा दुखी रहते थे। क्रिसमस का त्योहार निकट था, मगर उनके चेहरे पर कोई खुशी न थी।

हिंदी जड़बोल



सहसा... उन्होंने देखा कि वर्फ की एक गेंद जोर से आकर चर्च की दीवार से टकरायी। वे एकदम चौंक गये।

किसने यह गेंद फेंकी है, यह देखने के लिए वे बाहर आये। मगर कहीं कोई न था। सड़क खाली, सुनसान पड़ी थी। उस पर वर्फ बिखरी पड़ी थी, जिसकी गेंदें बनाकर वे भी इधर-उधर फेंक सकते थे। उन्हें अपना बचपन याद आया, जब वे बच्चों की गेंदों से अपने साथियों को मारा करते थे। उनके अंदर का बालक जाग उठा, और उनका मन हुआ कि वे सड़क पर पड़ी वर्फ उठाकर उसकी गेंदें बनाकर इधर-उधर फेंकें... किसी को मारें। वह विचार मन में आते ही उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी, और वे एकबारगी खिलखिलाकर हंस पड़े।

फिर उन्होंने घुटने टेक कर प्रभु का श्रवण किया कि उसकी कृपा से उनके जीवन में, किसमस की पूर्व-संध्या पर उल्लास का एक क्षण आया। हे भगवान ! तुम कितने कृपालु हो ! अवसाद के क्षणों में सहसा, एक साधारण-सी घटना से जानंद की चमक ला देते हो !

०००

डिग्बी ने अपनी खिड़की से सिटवैल के सिलहूट को देखा, उसके बारे में एक विचार सोचा, और फिर ब्लॉजम की ओर जाने लगा, जिसकी बड़बड़ उसे रसोई में सुनायी दे रही थी। उसने अंदर जाकर देखा कि वह फर्श पर लेटी थी, और

बिल्ली का बच्चा उसकी छाती के ऊपर सिकुड़ा हुआ आराम से बैठा था। उसने पूछा, 'इसका नाम क्या रखा जाये, डिग्बी ?'

'एमेनुअल।'

'इसलिए कि उसका जिक्र बाइबिल में आता है। चर्च में पिछले प्रवचन के अवसर पर मैंने पादरी के मुंह से उसका नाम सुना था।... पर, हम इसे खिला-येंगे कहाँ से, ब्लॉजम ?'

'देखा जायेगा। तो तुम एमेनुअल हो ?' ब्लॉजम ने बिल्ली के बच्चे से कहा। उसे प्यार से सहलाती हुई, वह डिग्बी को बड़ी मृदुल और सुंदर लग रही थी। गंभीरस्था के कारण उसका चेहरा पहले से कहीं अधिक आलोकित था। वह उसे देखे ही जा रहा था।

अपने को ध्यान से देखने वाले डिग्बी से ब्लॉजम ने कहा, 'मैं तुम पर बोझ हूँ। हूँ न ?' वह समझी, डिग्बी उसके प्रति चिंतित है।

'बोझ ? कौन कहता है ? तुम तो मेरा निस्तार हो।' डिग्बी ने ब्लॉजम से कहा, 'तुम बच्चे को लेकर इतनी चिंतित क्यों हो ? क्या तुम समझती हो कि मैं उसका लालन-पालन करने में असमर्थ हूँ ?'

'ऐसी बात नहीं है। तुमने मेरी सब जरूरतें पूरी की हैं। अब देखो, आज यह बिल्ली का बच्चा ही ले आये। और किसमस का यह पेड़। कितना सुंदर है यह !'

'ठीक तुम्हारी तरह', डिग्बी ने कहा, और फिर पास के कमरे से गिटार की



आवाज़ सुनकर पूछने लगा, 'हैप्पी के गिटार का एक तार टूट गया था। ठीक हो गया क्या?'

'हां, मैंने काँफी के डिब्बे से उसे कुछ रकम निकालकर दी थी। अभी भी डिब्बे में थोड़ी रकम बाकी है।'

डिग्बी ने कुछ सोचकर कहा, 'अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए मुझे त्रिसमस की छुट्टियों में कुछ काम करना होगा, ताकि त्योहार के अवसर पर हमें कोई कमी महसूस न हो।'

'तुम यह तस्वीर वापस क्यों ले आये? जिस औरत ने इसे बनाने को कहा था, उसे अपना वायदा पूरा करके इसे खरीद लेना चाहिये था।'

'वह अपनी इस तस्वीर से खुश नहीं है। लेकिन, मैं इससे खुश हूँ। उसने नहीं खरीदा, तो मैं इसे कहीं और बेच दूंगा।' और फिर गिटार पर किसी के गाने की आवाज़ सुनकर पूछने लगा, 'यह कौन गा रहा है?'

'एक जवान लड़की है, जो मार्था को कहीं मिली थी। वैसे लड़की ठीक है। मैंने इसकी जांच कर ली है।'

डिग्बी अपने घर आने वाले मेहमानों से सिर्फ यही अपेक्षा रखता था कि वे अपने साथ कोई नशीला पदार्थ लेकर न आयें, और ना ही उनके सेवन के आदी हों। घर के जीने के ऊपर उसने इस आशय का एक नोटिस लगा रखा था।

तभी, काले रंग का एक शिकारी

कुत्ता स्टोव के पास से उठकर, ब्लॉजम के पास आकर खड़ा हो गया, और कुछ हिलाने लगा। दो मोटी-ताजी बिलियाँ भी उसके पीछे-पीछे चलकर वहीं खड़ी हो गयीं।

'हमारा दोस्त पिकासो भूखा है। एमेनुअल भी भूखा है। सभी भूखे हैं। ब्लॉजम ने कहा।

'ठीक कहती हो। खाने के भूखे, प्यार के भूखे, एक कृपालु शब्द के भूखे। लेकिन, हम सब हार्दिक और स्नेही लोग हैं। हमारा घर हार्दिक और स्नेही लोगों का घर है। ऐसे कितने घर हैं, इस दुनिया में?'

०००

ब्लॉजम के खाने की गंध से आकर्षित होकर डिग्बी के छोटे-से घर के हार्दिक और स्नेही लोग रसोईघर में आने लगे।

मार्था ने अपने साथ की लड़की के डिग्बी का परिचय कराया, 'किलओ, इनसे मिलो। ये हैं डिग्बी।' इसी लड़की के बारे में ब्लॉजम ने उसे बताया था। उसकी आयु १६ के आसपास लगती थी। उसे देखकर, डिग्बी को पड़ोस के नीग्रो अनाथालय में बंद नीग्रो बच्चों के सहने और कठोर चेहरे याद हो आये। वह गोरी होते हुए भी, इस माने में उन बच्चों से बहुत मिलती थी। लेकिन, यह निश्चय करना बहुत जरूरी था कि वह नशा नहीं करती, और अपने घर से भागी नहीं है।

उसने किलओ को एक दूसरे कमरे में बुलाया, और गौर से उसकी आँखें देखीं।



व स्वच्छ और स्वस्थ थीं। नशे का कोई प्रभाव उन पर दिखायी नहीं देता था। उसकी बांहों की त्वचा भी साफ़ और इंजेक्शनों के निशानों से साफ़ थी।

‘मैं नशीली दवाओं का सेवन नहीं करती,’ क्लिओ ने कहा।

‘किसी को कभी करना भी नहीं चाहिये। यह शलत धारणा है कि उनके सेवन से बोध बढ़ जाता है, उल्टे कम हो जाता है। मैं एक कलाकार हूँ, बोध के बारे में सब कुछ जानता हूँ, क्योंकि बिना बोध के मैं सर्जन नहीं कर सकता। लेकिन यह भी जानता हूँ कि यह बोध भीतर से आना चाहिये, नशीले पदार्थों के सेवन से नहीं। मेरा बोध भीतर से ही आता है।’

‘मुझे आपकी बातें पसंद हैं। आप भी पसंद हैं। आपके घर के सब लोग पसंद हैं। क्या मैं भी आप लोगों के साथ रह सकती हूँ?’

‘किसी को तुम्हारी तलाश तो नहीं है, क्लिओ?’

‘नहीं। मैं कहीं से भागकर नहीं आयी। मेरे पास आप लोगों को नगद देने के कुछ नहीं है, लेकिन मैं घर के काम-काज में हाथ बंटा सकती हूँ।’

‘हम लोग गरीब हैं। बहुत सादा ढंग से रहते हैं। लेकिन सपनों के मामलों में बहुत अमीर हैं। हमारे सपने सादा नहीं होते।’ कहकर डिग्बी ने एक बार फिर क्लिओ को ध्यानपूर्वक देखा। उसे एक बार फिर नीग्रो अनाथालय में रहने वाले

बच्चों की याद आ गयी। उसने एक चुटकी बजायी, और एक फ़ैसला-सा करते हुए कहा, ‘जो अब तक देता आया है वह आगे भी देगा। तुम यहां रह सकती हो, क्लिओ! नहीं, नहीं मैं, असल में यह कहना चाहता हूँ कि तुम्हारा स्वागत है, हमारे घर में।’

और, जब वह क्लिओ को लेकर, ब्लॉजम के पास आया, तो ब्लॉजम क्लिओ का चेहरा देखते ही समझ गयी कि डिग्बी ने उसे घर में रखना स्वीकार कर लिया है। उसने प्यार से डिग्बी की ओर देखते हुए कहा, ‘आज हमारा घर और अधिक हार्दिक और स्नेही हो गया है। है न!’

०००

क्लिओ की भांति ही, हैप्पी भी न जाने कहां से डिग्बी के घर में आया था। उसे भी, ज्यादा पूछताछ किये बिना इस घर ने शरण दी थी। वह अच्छा गाता था, और उससे भी अच्छा गिटार बजाता था। कभी-कभी वह, बिना किसी से कुछ कहे, तीन-चार दिनों के लिए गायब हो जाता था, और लौटने पर, चुपचाप, काँफी के डिब्बे में, जो घर के सभी सदस्यों का साझा बैंक था, कुछ डॉलर डाल देता था, जो उसकी समझ से उसके रहने-खाने पर पिछले दिनों खर्च हुए थे। यह रकम वह कहां और कैसे कमाता था, यह उसने आज तक न किसी को बताया, न किसी ने उससे पूछने की हिम्मत की। वह बहुत कम बोलता था। या, यह कहता ज्यादा



ठीक होगा कि बोलता बिल्कुल नहीं था, सिर्फ गाता था और जब वह गाता था तो डिग्बी को ऐसा लगता, जैसे कोई पक्षी मुक्त वन में गाकर अपनी खुशी का इजहार कर रहा हो।

हैप्पी को खाते देख डिग्बी न पूछा, 'ठीक हो न, हैप्पी ?'

'ठीक हूँ। मैंने क्रिसमस के लिए एक भजन तैयार किया है।

'वाह ! यह तो बड़ी खुशी की बात है। सुनाओ न !'

'अभी पूरा तैयार नहीं हुआ है। फिर सुनाऊंगा।'

मार्था ने अपनी खाने की प्लेट पर हाथ साफ करते हुए सबको सूचित किया कि उसने आज कॉफी के डिब्बे में आठ डॉलर डाले हैं। 'बर्फ बहुत गिर रही है न, इसलिए लोग अखबार खरीदने बाहर नहीं आते। हां, तुमने देखा, आज के अखबार में तुम्हारे दोस्त बर्नार्ड ने अपनी बिजली की दुकान का एक बड़ा विज्ञापन प्रकाशित कराया है। देखना चाहोगे ?'

'बाद में देखूंगा,' कहकर डिग्बी बर्नार्ड के बारे में सोचने लगा। जिस प्रकार आज मार्था, हैप्पी, क्लिओ और खुद ब्लॉजम उसके घर में शरण पा रहे हैं, उसी प्रकार कुछ दिनों तक अनाथ-असहाय बर्नार्ड भी शरणागत के रूप में इस घर में रहा था। उसने तय किया कि वह उसकी दुकान से कुछ रंगीन बल्ब लाकर अपने घर के सदस्यों और पड़ोस के बच्चों की

क्रिसमस की रात को रंगीन बनायेगा। वह सोच रहा था कि जब उसका घर इतना उष्ण और आनंदित है, तो बाहर की दुनिया इतनी ठंडी और दुखी क्यों है ?

०००

सुबह उठकर जब डिग्बी बाहर जाने लगा, तो उसने देखा कि बृद्ध पादरी सिटवैल अपने चर्च के सामने जमी बर्फ को कुदाली से साफ करने की कोशिश कर रहे हैं, और इस कोशिश में उन्हें बड़ी मुश्किल हो रही है। वह उनकी मदद के लिए आगे आया।

'शुक्रिया, मेरे दोस्त, इस मदद के लिए। मगर....'

'मैं आपसे बदले में कुछ मांगने नहीं जा रहा हूँ।'

थोड़ी देर में ही बर्फ साफ हो गयी, और सड़क से चर्च तक आने के लिए एक छोटा-सा सुंदर-सा रास्ता तैयार हो गया। सिटवैल बहुत खुशी हुए। उन्होंने डिग्बी से कहा, 'तुम एक कलाकार हो न। मैं तुम्हें अक्सर कैनवेस बगल में दवाये सामने से गुजरते देखा करता हूँ।'

'मैं कलाकार तो हूँ, मगर मेरी कला मुझे धन नहीं देती।'

सिटवैल ने हंसकर कहा, 'और मेरा चर्च ही कहां धन देता है मुझे ? धन तो है ही नहीं, मेरे पास, और इससे भी बुरी बात यह है कि बहुत कम लोग चर्च में आते हैं।... मैंने अपनी सारी जिंदगी चर्च को समर्पित कर दी, और इसी कारण



विवाह तक नहीं किया। आज लगता है कि विवाह कर लेता, तो इतना अकेला तो न रहता।'

'हां, आप विवाहित होते, तो आप इतने अकेले और उदास न होते! हर पुरुष के जीवन के केंद्र में एक स्त्री ही होती है।'

'मैंने तुम्हारी पत्नी को कई बार आते-जाते देखा है,' सिटवैल ने कुछ याद करते हुए कहा।

'पत्नी? ... नहीं, वह मेरी पत्नी नहीं है। हम दोनों सिर्फ एक दूसरे को प्यार करते हैं। आशा है, आप समझ गये होंगे।'

'समझने की कोशिश कर रहा हूं।' सहसा, एक विचार डिग्बी के मन में आया। उसने पूछा, 'क्या आपको एक बिल्ली का बच्चा चाहिये?'

'बिल्ली का बच्चा? कभी सोचा नहीं उसके बारे में।'

'बड़ा प्यारा बच्चा है। मुझे अनाथालय के पास मिला था। मेरे पास पहले ही दो बिल्लियां हैं। उसके साथ आपको अकेला-पन इतना महसूस नहीं होगा। क्या कहते हैं? ले आऊं, वह बिल्ली का बच्चा?'

एक क्षण में सिटवैल ने फ्रैसला कर लिया। बोले, 'ले आओ! उसके साथ मेरा दिल बहला रहेगा। मेरा परिवार अपना शुरू हो जायेगा।'

'उस बिल्ली के बच्चे के लिए आप समुच्च अनाथालय के बच्चों के शुक्र-गुनार होंगे। अगर आप उन्हें यह बता

देंगे, तो वे बड़े खुश होंगे।'

'मैं जरूर उन्हें बता दूंगा। असल में, मैं उन बच्चों के बारे में कुछ करने के लिए काफ़ी सोचता रहता हूं, मगर कर नहीं पाता। क्या तुम इस बारे में कोई सुझाव देना चाहोगे, डिग्बी?'

'हां, इस क्रिसमस पर हम आपके चर्च को जगमग कर, अनाथालय के बच्चों के साथ भजन गावेंगे, और जश्न मनायेंगे।'

'लेकिन, डिग्बी, उसमें तो पैसा लगेगा? और...'

'जब तक अपना दोस्त बर्नार्ड मौजूद है, तब तक पैसे की समस्या हमारे सामने खड़ी नहीं होनी चाहिये।' डिग्बी ने विदा लेते हुए कहा।

०००

घर पहुंचकर, डिग्बी ने, बिना किसी को बताये, काँफी के डिब्बे की सारी रकम जेब में रखी, और उससे बाज़ार से कागज़, रंग और रंगने के ब्रुश खरीदे। फिर वह दुकानों के चक्कर लगाने लगा।

हर दुकान के मालिक के सामने उसने एक ही प्रस्ताव रखा। वह क्रिसमस से पहले दुकान पर एक रंगीन इश्तहार तैयार करके लगा देगा, ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए और उसके बदले में दुकान से उसी मूल्य का सामान ले लेगा, वह सामान जो चर्च में होने वाले जश्न में काम आयेगा।

सब दुकानवालों ने उसके प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत किया। एक दुकान की



मालकिन पर्ल ने छह दर्जन मिठाई के टुकड़े देने का वायदा किया, जो डिग्बी की मजदूरी से ज्यादा कीमत के बैठते थे, मगर पर्ल भी उस जश्न का एक हिस्सा बनने को उत्सुक थी।

सबसे अंत में, डिग्बी बर्नार्ड की बिजली की दुकान पर पहुंचा, और पहुंचते ही बोला, 'कुछ मांगने आया हूं, बर्नार्ड भाई!'

बर्नार्ड ने अपनी आंखें बंद कर लीं, और कहा, 'नौकरी और धन को छोड़कर कुछ भी मांग सकते हो।'

'मुझे तुमसे रंगीन बल्ब चाहिये, हरे-लाल वगैरह रंग के।'

'बल्ब मुफ्त थोड़े ही आते हैं। मैंने पहले ही कहा था...'

'उस दिन की याद करो, बर्नार्ड जब मैंने तुम्हें अपने घर में आसरा दिया था, और इस दुकान के लिए आधी पूंजी की व्यवस्था भी मैंने ही तुम्हारे लिए की थी। मैंने आज तक तुमसे उस अहसान के बदले में न कुछ मांगा न आज मांग रहा हूं। जो कुछ मांग रहा हूं, अनाथ बच्चों की खुशी की खातिर। तुम भी कभी अनाथ थे, और तुम्हें मिला। आज जब तुम इस स्थिति में हो कि अनाथों को दे सको, तो हिचकिचा क्यों रहे हो? जो लेता है, उसे देने और लौटाने के लिए भी तैयार रहना चाहिये।'

बर्नार्ड ने क्षण भर कुछ सोचा, और फिर उसने कहा, 'तुम कुछ बल्ब मांग रहे थे। मैं तुम्हें रंगीन बल्बों की एक

पूरी लंबी माला ही दे रहा हूं। वह थोड़ा खराब है, मगर तार बदलने से ठीक हो जायेगी। तुम उसे कभी भी मेरे अभिनंदन सहित ले जा सकते हो।'

वह माला लेकर चर्च आ रहा था कि उसने चर्च के दरवाजे पर सिटवैल को खड़े पाया। डिग्बी को देखते ही उन्होंने उसे अपने पास बुलाया, और यह हृदयक समाचार दिया कि नीग्रो परिवारों से काफ़ी सामान आ गया है, और आने वाला है। कुछ नीग्रो युवक काम करने के लिए भी तैयार हैं। आओ, ऐसे ही एक युवक डडले हैरिसन से मिलो।

'मैं डडले को जानता हूं,' डिग्बी ने उससे हाथ मिलाते हुए कहा, और सिटवैल द्वारा दिया गया क्रीम शेरी का जाम पीते हुए कहा—

'पृथ्वी पर शांति रहे। लोग आपस में प्रेम से रहें।'

०००

अगले दिन डिग्बी जल्दी उठ गया, और उसने अलसायी पड़ी ब्लॉजम को उठाकर कहा, 'चलो, हम दोनों जादी करेंगे।'

'क्या कह रहे हो?' चकित स्वर में ब्लॉजम ने पूछा।

'क्यों, क्या तुम मुझसे विवाह नहीं करना चाहती? आखिर तुम भी चाहोगी कि तुम्हारे बच्चे का पिता हो, और वह अनाथालय में न दाखिल हो।'

'मैं भी यही चाहती हूं, डिग्बी! कहा



जाना होगा।

‘पादरी सिटवैल के पास जाने से पहले हमें किसी डॉक्टर के पास जाकर अपने खून की जांच करवानी होगी।’

जिस डॉक्टर कैसलमैन ने दोनों के खून की जांच की, उसने न केवल उन दोनों से अपनी फीस भी नहीं ली, बल्कि दोनों को मैरिज रजिस्ट्रार के कार्यालय में जाकर लायसेंस लाने के लिए, टैक्सी का भाड़ा भी दिया। कारण पूछने पर उस सहृदय डाक्टर ने कहा—

‘इसलिए कि तुम (डिग्बी) एक नंबर के वेवकूफ हो, और यह लड़की (ब्लॉजम) हृद से ज्यादा भोली और सुंदर है।’

जिंदगी दोनों को अचानक बड़ी हसीन लगने लगी थी। लोग कितने दयालु और संवेदनशील थे !

फिर दोनों सिटवैल के पास पहुंचे। दोनों को शादी की पोशाक में देखकर, सिटवैल ने कहा, ‘शादी मुबारक !’

‘शादी हुई नहीं है, होती है, और आपको ही करानी है।’

‘मुझे करानी है ? तारीख तय कर तो है ?’

‘हां आज ही। इसी समय।’

सिटवैल चकित रह गये। कुछ संभल कर बोले—

‘मगर आज तो हम सभी व्यस्त हैं। मैं तो तुम भी। और फिर मैंने सालों से किसी की शादी नहीं करायी। सब भूल

गया हूं।’

‘कुछ भी करा दीजियेगा। कुछ भी बोल दीजियेगा।’

‘यही करना पड़ेगा। जहां चाह, वहां राह। तुम्हारी ही सीख है।’

जल्दी से शादी के लिए सारा जुगाड़ किया गया। जब सारा जुगाड़ हो गया, तो सिटवैल ने दोनों से पूछा, ‘तुम्हारी अंगूठियां कहां हैं?’

दोनों बगलें झांकने लगे। अंगूठी दोनों में से किसी के पास न थी।

‘तो इसमें इतना उदास होने की क्या ज़रूरत है?’ सिटवैल ने कुछ याद करते हुए कहा, ‘मेरे पास मेरे पिता और माता की शादी की अंगूठियां रखी हैं। उनसे काम चला लेंगे।’

डडले हैरिसन ने ‘वेस्ट मैन’ की भूमिका अदा की। और शादी हो गयी... बाकायदा सारे रीति-रिवाजों के साथ।

शायद ही कोई शादी ऐसे निराले ढंग से हुई हो !

०००

बल्बों की माला को ठीक करने की जिम्मेवारी डडले हैरिसन ने ले ली थी, और उसने काफ़ी परेशानी के बाद, सचमुच उसकी सारी खराबियां दूर कर दी थीं। स्विच लग चुके थे, और डडले बत्तियों का परीक्षण कर रहा था।

तभी, डिग्बी ने एक नीग्रो लड़के को एक स्विच से छेड़छाड़ करते देखा। उसने लड़के के पास जाकर कहा, ‘अच्छा ! तो



तुम हो ! मैं जानता हूँ तुम्हें ।’

लड़का घबरा गया । बोला, ‘मैंने कुछ नहीं किया । मगर तुम मुझे कैसे जानते हो?’

‘तुम अनाथालय में रहते हो न ! तुम वही लड़के हो, जिसने मुझे बिल्ली के बच्चे को ले जाने दिया था ।’

‘तो क्या हुआ । वह बच्चा मेरा थोड़े ही था ।’

‘खैर, लो यह मिठाई खाओ ।’

लड़के ने, जिसकी उम्र ११ साल होगी, मिठाई को कुछ सेकंड देखा, और फिर कहा, ‘मुझे जाना है ।’

डिग्बी ने लड़के के पीछे देखा । चर्च के हॉल में अनाथालय के बीस बच्चे और मौजूद थे, और सब खुशी-खुशी मिठाइयां खा रहे थे । उसने लड़के से कहा, ‘तुम्हें अपने साथियों के बीच होना चाहिये था । खैर, वहां बहुत भीड़ है । तुम मेरे साथ रहो ।’

‘मैं किसी के साथ नहीं रहना चाहता । बच्चियों के जलते ही मैं यहां से बाहर चला जाऊंगा ।’ लड़के की ऊपरी कठोरता के बावजूद, उसकी आंखें काफ़ी सहमी हुई, और उदास थीं । डिग्बी ने नरमी से पूछा, ‘तुम्हारा नाम क्या है?’

‘मेरे नाम से तुम्हें क्या लेना-देना है?’

‘इतना लंबा नाम है तुम्हारा !’

‘क्या ब्रह्मा ‘जोक’ मारा है !’

‘नाम बताओ न अपना ।’

लड़के ने अपने भीतरी तनाव को कुछ कम करते हुए जवाब दिया, ‘मेरा नाम

डेनिस है ।’

‘खूब ! अच्छा, डेनिस यह मिठाई लो । तुम भूखे लगते हो ।’

लड़के ने मिठाई ले ली, मगर डिग्बी को नफरत भरी निगाह से देखता रहा । डिग्बी ने जानबूझकर अपनी मुद्रा शांत और मैत्रीपूर्ण रखी ।

सिटवैल ने आकर डिग्बी को बताया कि बच्चियां जलाने का समय आ गया है । ‘तो हम भी तैयार हैं ! स्विच ऑन हमारा दोस्त डेनिस करेगा ।’

और उसने चकित डेनिस से स्विच दबाकर प्रकाश करने को कहा ।

प्रकाश होते ही सब गाने लगे, क्रिसमस के भजन ।

डिग्बी ने देखा, गानेवालों में डेनिस का स्वर सबसे ऊंचा था ।

और फिर तो क्रिसमस के भजनों का सिलसिला ही शुरू हो गया ।

भजनों का अंत हैप्पी के पवित्र बालक वाले भजन से हुआ । इस भजन में एक अजनबी पवित्र बालक की खोज करता हुआ आता है । वह जिससे मिलता है, उसी से पूछता है, ‘क्या तुम ही पवित्र बालक हो ? क्या तुम ही पवित्र बालक हो?’

बिजली जलाने, बुझाने और सीन लट्टुओं का संयोजन करने की पूरी जिम्मेवारी डिग्बी ने डेनिस को सौंप दी थी जो अपना फर्ज बड़ी खूबी और मुस्तैदी से अंजाम दे रहा था ।



जब समारोह समाप्त होने लगा, और डेनिस स्विचों के पास से आने लगा, तो उसके प्रफुल्ल चेहरे को देखकर, डिग्वी का मन हुआ कि उसके पास जाकर पूछे, 'क्या तुम ही पवित्र बालक हो ?'

लेकिन, वह डेनिस से यह प्रश्न नहीं पूछ पाया। उल्टे, डेनिस ने ही समारोह के बाद उससे एक प्रश्न पूछ लिया :

'क्या तुम भी क्रिसमस के नाम पर किये जा रहे इस तमाशे में विश्वास करते हो ?'

'तुम्हें तन्मय देखकर मुझे लग रहा था कि तुम बड़ी आस्था से सब कुछ देख-सुन रहे हो।'

'हां, उस वक्त सुन रहा था, लेकिन अब उसका जादू खत्म हो गया है। थोड़ी देर में बिलकुल खत्म हो जायेगा।'

'कला का जादू भी ऐसा ही क्षणिक होता है। मगर, श्रद्धा के बीज मन में ऐसे ही बोये जाते हैं।'

'श्रद्धा के बीज ?'

'अभी तुम उनके बारे में नहीं समझ सकोगे। और शायद अभी मैं समझा भी नहीं पाऊंगा। ... मेरी एक बात मानोगे, डेनिस !'

'क्या ?'

'तुमने मेरा घर देखा है न। वहां कभी-कभी आते रहना। जब भी आओगे, तुम्हारा वहां स्वागत होगा। गर्म कॉफी और मिलावेगी। वहां तुम मेरे कुत्तों के साथ, मेरी विल्लियों के साथ खेल सकोगे।'

बोलो, क्या कहते हो ? आओगे ?

'हां, आता रहूंगा।' डेनिस ने आहिस्ता से कहा।

दोनों कुछ क्षण खामोश बैठे रहे। हॉल धीरे-धीरे खाली होता जा रहा था। थोड़ी देर पहले जो चहल-पहल थी, उसकी एक गूंज ही शेष रह गयी थी। तभी, डिग्वी ने हाथ की घड़ी देखकर समय जानना चाहा, मगर वह यह देखकर स्तब्ध रह गया कि उसके हाथ में घड़ी नहीं थी, कहीं गिर गयी थी।

डेनिस ने भांप लिया कि डिग्वी की घड़ी कहीं खो गयी है। उसने फर्श पर घड़ी ढूँढ़ना आरंभ कर दिया, और कुछ देर बाद उसके हाथ में उसकी घड़ी लाकर रख दी। 'शायद तुम्हारी ही है !'

'हां,' डिग्वी ने घड़ी को देखकर कहा। और उसने भावावेश में आकर डेनिस को अपनी बांहों में भींच लिया। डेनिस कांपने लगा। उसे इतने प्यार से किसी ने अपनी बांहों में नहीं लिया था।

बांहों से मुक्त उसने डिग्वी से पूछा, 'घड़ी तो अच्छी है। कितने की होगी ?'

'कुछ मत पूछो। लाख से कम की तो क्या होगी ?' डेनिस को लगा, उसने लाखों सितारे किसी पर न्योछावर कर दिये हैं।

०००

मार्था से डिग्वी को मालूम पड़ा कि ब्लॉज्म प्रसववेदना से पीड़ित है, और बच्चा कभी भी हो सकता है।



# Imagine a world with black and white rainbows



## Imagine a world without Amar Dye-Chem

Amar Dye-Chem supplies vital dyes & pigments to a variety of Textiles, Paints, Coir, Leather, Printing Inks and Plastics Industries. ADC pigments are noted for their colour fastness, economy and convenience.

\* The Company also exports its sophisticated colour know-how and has helped set up plants abroad.



to enrich India's  
life with colour !

**AMAR DYE-CHEM LTD.**  
Rang Udyan, Sitladevi Temple Road, Mahim,  
Bombay-400 016.

Branches: Ahmedabad, Amritsar, Calcutta, Delhi,  
Jaipur, Madras, Madurai.

ADC-5088



‘बच्चों को होने में इतनी देर नहीं करती चाहिये।’ डिग्बी ने अपने चकराते सिर को थाम कर कहा।

डेनिस ने उसे सात्वना दी, ‘घबराओ मत, डिग्बी। मेरी मां को न जाने कितने बच्चे हुए थे। थोड़ी-बहुत तकलीफ़ हर बच्चे ने ज़रूर दी, मगर सब ठीक-ठाक हो गये। घबराओ मत।’

०००

सिटवैल डिग्बी को बता रहे थे कि समारोह में बच्चों को बड़ा आनंद आया, स्वयं उन्होंने उसमें बहुत रस लिया। और सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि खुद मेयर ने समारोह में उपस्थित रहकर बच्चों का हाँसला बढ़ाया। ‘किसमस पर ऐसा आनंद मुझे पहले कभी नहीं मिला था,’ वे डिग्बी से कह रहे थे।

लेकिन, डिग्बी का ध्यान इन बातों में न था।

वह अपने होने वाले बच्चे के बारे में सोच रहा था।

वह बच्चा... पवित्र बालक !

कैसा होगा वह पवित्र बालक, जिसकी प्रशस्ति में बच्चों ने भजन गाये थे, पादरी सिटवैल ने प्रवचन दिये थे।

... और जब डॉक्टर कैसलमॅन ने उसके हाथों में उसके बच्चे को रखा, तो उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह अपने बच्चे को हाथों में लिये हुए है।

डॉक्टर बच्चे से कह रहे थे, ‘तौ-ये हस्त है, भई, तुम्हारे पिता ! देखने



“जीसा ६।”

में जितने पागल लगते हैं, वास्तव में उतने पागल हैं नहीं। वैसे, ये आदमी बिल्कुल भी बुरे नहीं हैं।’

०००

बच्चे ने अपने बाप को ऐसे देखा, मानो परखने की कोशिश कर रहा हो कि वाकई किस हद तक पागल हैं जनाब !

डिग्बी बच्चे को लेकर, ब्लॉजम के पास गया, तो वह आराम से सोई हुई थी।

उसने हल्के से उसे जगाया, तो वह मुस्करायी।

‘कैसा लग रहा है?’ डिग्बी ने प्यार से पूछा।

‘घर पहले से ज्यादा.... सुंदर.... भरा-भरा.... हार्दिक और स्नेही लग रहा है। है न?’

‘हां, मगर अब तुम सो जाओ तुम्हें आराम चाहिये।’

कहकर वह बच्चे को गोद में लिये बाहर चला आया।



## (पृष्ठ ११५ का शेषांश)

और इच्छा में भेद है न ?' उन्होंने कहा: 'अवश्य, अज्ञानावस्था में इच्छा रहती है, परंतु ज्ञानपूर्ण होने पर वही इच्छा, इच्छा-शक्ति का रूप धारण कर लेती है।'

मैंने जिज्ञासा की, 'क्या इच्छा स्वभावतः शक्ति नहीं है?'

बाबा का उत्तर था, 'शक्ति का अर्थ है—चैतन्य। जब तक आत्मा अचेतन रहती है अर्थात् ज्ञान को प्राप्त नहीं करती, तब तक उसकी इच्छा, इच्छा मात्र है, इच्छा-शक्ति नहीं है। ज्ञान प्राप्त करने के माने ही हैं आत्मस्वरूप या ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार।'

मैंने पूछा, 'क्या इस साक्षात्कार के बाद भी इच्छा रहती है?'

बाबा ने कहा, 'अवश्य रहती है, किंतु महाइच्छा के रूप में। यह न रहे तो परमेश्वर का ईश्वरत्व ही कहां से होगा?'

मैंने कहा, 'शास्त्रों में भी कहा है 'इच्छा मात्रं प्रभोः सृष्टिः' (मांडूक्योपनिषद-कारिका गौड़ पाद) इसलिए यह बात समझ में आ गयी।'

इसी प्रसंग में और एक दिन बाबा ने कहा, 'देखो, इच्छाशक्ति के विषय में मैं तुमको एक तमाशा दिखाता हूं।' उस समय मेरे साथ दो अन्य गुरुभाई भी उपस्थित थे। बाबा ने कहा, 'तुम तीनों अपने हाथ की मुट्ठी बांधकर उसमें रखने लायक किसी भी वस्तु की इच्छा करो।'

हम तीनों मुट्ठी बांधकर बाबा के

निर्देशानुसार मनचाही वस्तु की इच्छा करने लगे।

बाबा ने कहा, 'देखो। तुम्हारी इच्छानुसार मुट्ठी में वस्तु आ गयी या नहीं?'

हम लोगों ने कहा, 'नहीं।' हाथ खोलकर देखने पर पहले जैसा ही खाली मिला।

बाबा ने फिर कहा, 'एक बार ओर मुट्ठी बांधो। जो वस्तु सोचते थे, पुनः उसी का चिंतन करने लगे। पहली बार तुम लोगों ने यह तो देख लिया कि मात्र इच्छा से कुछ नहीं होता। अब मैं यहां से शक्ति-संचार करता हूं।'

बाबा ऊपर आसन पर बैठे हुए थे। यह कहकर वे अपने हाथ से तकिये को थपाते हुए बोले, 'देखो, मैं तुम्हारी इच्छा में शक्ति का संचार कर रहा हूं।'

इसके बाद हम लोगों ने मुट्ठी खोलकर देखा। तीनों की मुट्ठी में इच्छित वस्तु रखी हुई थी।

इस घटना की व्याख्या करते हुए बाबा ने बताया, 'तुम्हारी इच्छा और मेरी शक्ति दोनों मिलकर इच्छाशक्ति में परिणित हो गयी और इसके परिणाम स्वरूप जो वस्तु प्राप्त हुई वह इच्छाशक्ति का फल है। जब तुम्हारा महाज्ञान उदय हो जायेगा, उस समय इस शक्ति-संचार की आवश्यकता न रहेगी।'

हमने प्रश्न किया, 'इच्छाशक्ति ही तो चरम शक्ति है। उसकी प्राप्ति से योगी में ईश्वरत्व आ जाता है। क्या यही चरम

निर्देश



सिद्धि है ?'

बाबा बोले, 'नहीं, वहिर्मुखी शक्तियों में इच्छाशक्ति ही प्रधान है। सृष्टि-राज्य की दृष्टि से यह सर्वप्रधान शक्ति है, इसमें संदेह नहीं। परंतु यह भी चरम नहीं है। अंत में योगी अंतमुख होकर इच्छाशक्ति को भी श्री भगवान् के चरणों में अर्पण कर देते हैं। इच्छाशक्ति के अर्पण के साथ ही साथ आह्लादिनी अथवा परमानंद-रूपा शक्ति का आविर्भाव होता है। जब तक इच्छा की निवृत्ति न हो, तब तक आनंद का उदय कहां से होगा ? इच्छा-निवृत्ति के साथ ही योगी महाशक्ति के

पूर्णानंदमय अंक में प्रवेश लाभ करते हैं। इसके बाद अनुकूल तथा प्रतिकूल भाव बराबर हो जाने पर आनंद का भी भेदन हो जाता है। तभी चैतन्य-राज्य में प्रवेश होता है। अंत में शिव-शक्ति का अभेद ज्ञान होने पर और उसी के साथ अपने स्वरूप का भी तादात्म्य हो जाने पर योगी में स्वातंत्र्य का उन्मेष होता है। यही पूर्णता है।'

अंत में उन्होंने कहा, 'विभूति तुच्छ अवश्य है, किंतु उसका विकास होना चाहिये और विकास होने के अनंतर उसकी निवृत्ति भी होनी आवश्यक है।'



### शरमाने की जरूरत नहीं

मुंह, हाथ, पैर और शरीर के बेकार बाल बिना किसी कष्ट के इलेक्ट्रीलीसीस द्वारा गारंटी के साथ हटाने के लिए संपर्क करें :

मिससेस मीनाक्षी डी. गांधी

इलेक्ट्रोलॉजिस्ट ( लंदन )

C/o SLIMMING CENTRE

सिल्क हाउस, तीसरा मजला, धोबी तलाव के पास,

गिरगांव रोड, हमाल वाडी, बंबई-२

फोन : २९७८१०



# ओरियन्ट पेपर एन्ड इन्डस्ट्रीज़ लि.

रजि. आफिस :  
ब्रजराजनगर, उड़ीसा

उत्तम प्रकार के प्रिंटिंग-राइटिंग, पेकिंग-रेपिंग  
कागज और पेपर बोर्ड के निर्माता

मिल्स : ब्रजराजनगर-७६८२१६  
अमलाई-४८४११७

शीघ्र पत्र विवरण हेतु पोस्टल पिन कोड व्यवहार करें।



## (पृष्ठ ३५ का शेषांश)

एक परंपरा का निर्वाह और होता है कि पहले स्टेट के जमाने में राज्य घराने के प्रतिनिधि की हैसियत से इस इलाके का नाज़िम यात्रा जुलूस के रथ का सारथी बनता था। आज भी एस. डी. एम. इस रथ का संचालन स्वयं बैठकर, यहां की पारंपरिक पगड़ी पहन कर करते हैं। पहले स्वयं भेंट चढ़ाते हैं, फिर मंदिर का पुजारी इन्हें साफा भेंट करता है। पहले हिंदौन के नाज़िम की करौली के राजा जैसी शान थी। इसमें सभी धर्मों के लोग शामिल होते हैं... भावनात्मक एकता का रूप है यह। ऊंच-नीच भाव का यहां कोई स्थान नहीं है, शुरू से ही। रथ के साथ मीना लोग खूब गाते-बजाते चलते हैं। गंभीर नदी के तट पर जब कलशाभिषेक होता है, सभी बैठे रहते हैं, लेकिन जब रथ वापस लौटता है, तब मीने नहीं आते। उस पार के गूजर ही आते हैं, वरना तो झगड़ा हो जाये। सुनते हैं कि पहले तो बलवारें तक खिंच जाती थीं। इस अवसर पर कनक दण्डवत देखते ही बनती है। श्रद्धालु लोग मीलों से, जाने कहां-कहां से इस भीषण गर्मी में जमीन पर लेट-लेटकर, साष्टांग प्रणाम करते हुए मंदिर तक आते हैं... पत्नी साथ-साथ अपने पल्लू से (आंचल) झुक-झुककर उसके चरण छूकर बांधों से लगाती हुई पीछे चलती है... मीलों तक यही सफर... घुटने-कोहनी छिल जाते हैं... परंतु आस्था का प्रश्न

रहा न यह तो....

गांववालों की श्रद्धा का यह हाल है कि गाय-भैंस का पहला व्यावन, मतलब दूध महावीरजी के चरण पर चढ़ाया जाता है, तब काम में लिया जाता है। विवाह के बाद, कोई भी जाति का हो, जोड़े से आकर पहले मंदिर में आशीर्वाद लेते हैं, तब घर की देहरी पूजते हैं। हां, होली के तीसरे दिन मंदिर में आकर होली खेलता है पूरा गांव... आसपास के लोग... पहले देहरी पर गुलाल-रंग समर्पित, फिर खेल होली का। बाहर चौक में नारी-पुरुष दोनों मिलकर खेलते हैं। ब्रज की लठामार होली का दृश्य उपस्थित हो जाता है। यह क्षेत्र भी तो इसी कृष्णभूमि में शामिल है न! बाद में प्रबंधक कमेटी की ओर से सभी को प्रसाद और गुड़ दिया जाता है।

भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव दीपावली पर हज़ारों की संख्या में दिगंबर जैन यात्री निर्वाण-लाडू (लड्डू) चढ़ाने के लिए इस तीर्थ पर एकत्रित होते हैं। इसके अतिरिक्त दशहरा, होली, आर्य अष्टानिकाओं पर भी इस क्षेत्र पर निर्वाण-लड्डू चढ़ाने यात्री लोग दूर-दूर से आते हैं—पूजन, रथ-यात्रा, अभिषेक, लड्डू आदि सभी उत्सव-समारोह दिगंबर मान्यता के अनुसार ही होते हैं। यहां के समस्त मंदिरों और धर्मशालाओं का निर्माण भी इसी समाज के द्वारा हुआ है।

जब मंदिर बनाया गया, तब जयपुर



# INDOKEM LIMITED

221. Dr. D.N. Road,  
Fort

Bombay - 400 001.

Phone : 267881/10    Gram: "INDOKM"    Telex: 011-2942

## Marketing:

Dyes. Chemicals. Pigments. Leather Binders; Auxiliaries,  
Synthetic Tanning Agents. Leather Colours, Fat Liquors,  
Synthetic Resins, Textile Auxiliaries, Polyester Fibre;  
paints, menthol, Non-textile Auxiliaries etc.

## Manufactured By:

Indian Dyestuff Industries Ltd.,  
Colour Chem Ltd.  
Aniline Dyestuffs & Pharmaceuticals (P) Ltd.,  
Cellulose Products of India Ltd.  
Dai-Ichi Karkaria Pvt. Ltd.  
Haryana Rang Udyog  
National Chemical Industries  
Indian Organic Chemicals Ltd. (Futura Polyester Fibre)  
Hypo Chemiedye  
Gujchem Distillers India Ltd.  
Lalji Mentha (P) Ltd.

## Branches at:

Ammedabad    Calcutta  
                         Kanpur

Delhi  
Secunderabad.

Madras    Nagpur



11-2942

रा,

rc)

Nagpur

दिसवा

राज्य की ओर से भी एक गांव मंदिर की सेवा-पूजा के लिए अर्पित किया गया था। यही वर्तमान में श्रीमहावीरजी है। इस क्षेत्र के प्रादुर्भाव का काल सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। इसके अलावा पहले राज्य सरकार द्वारा राहदारी (चैकपोस्ट) के चबूतरों से इस मंदिर को कुछ टके भेंट के लिए रोज बंधे हुए थे। अब तो राज्य द्वारा दिया गया गांव सरकार ने ले लिया है। वार्षिक सरकारी सहायता बंधी हुई है। यह स्थान आमेर गद्दी के मूल संघ अम्नाय के दिगंबर जैन भट्टारकों का केंद्र रहा। इन भट्टारकों का तत्कालीन राजाओं-बादशाहों पर पर्याप्त प्रभाव रहा। बड़ा सम्मान रहा। इसीलिए इन्हें सम्मान का सूचक चंवर और मोरछल आदि ताजीमें दी जाती थीं। इस क्षेत्र का प्रबंध शुरू से ही दि. जै. समाज (जयपुर), इसकी पंचायतें और भट्टारकों द्वारा ही होता रहा है। इन भट्टारकों की नियुक्ति जयपुर की जैन पंचायत ही करती थी...

इस क्षेत्र पर जो भी वैभव है, वह सारे भारत के दि. जै. बंधुओं की श्रद्धा का प्रतीक है। बहुत विकास हुआ है। चहुंमुखी विकास। भविष्य की कई बड़ी योजनाओं के प्रति भी प्रयत्नशील—ताकि स्थानीय जनता को अधिक-से-अधिक सुख-सुविधाएं, चिकित्सा, शिक्षा, डाक्टरी सहायता, इंजीनियरों का सहयोग मिल सके।

हां, इस क्षेत्र में जल-व्यवस्था का समु-

चित प्रबंध किया गया है। इंजन फिट किये गये हैं। पाइप लाइनें—एक लाख गैलन की पावर की दो विशाल टंकियां हैं। प्रकाश के लिए शक्तिशाली जनरेटर्स। आधुनिक सुविधाओं से युक्त ठहरने के लिए स्थान... उद्यान-फव्वारे। भूमि को रातल करके गांववालों को योजनाबद्ध तरीके से बसाया है। सुसज्जित, हरे-भरे खूबसूरत बगीचे। धर्म-संस्कृति का प्रचुर प्रचार और प्रसार। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, तमिल आदि भाषाओं के अति प्राचीन ग्रंथों पर शोधकार्य होता है। प्रकाशन, प्रसार और प्रचार बराबर जारी। शोध-अनुसंधान के काम यही हैं कि जो प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत-अपभ्रंश में लाखों की संख्या में राजस्थान जैन मंदिरों में पुस्तकों की पाण्डुलिपियां फैली-बिखरी पड़ी हैं, उन्हें सुनियोजित ढंग से सूचीबद्ध करके सुरक्षित रखना। दुर्लभ ग्रंथों की माइक्रो-फिल्म तैयार करने की भी योजना है।

किसी अनुपम तथा सर्वश्रेष्ठ जैन ग्रंथ पर यह कमेटी पांच हजार का महावीर पुरस्कार देती है। असमर्थ, विकलांग, शोधार्थी एवं होनहार छात्रों को पच्चीस हजार की स्कॉलरशिप दी जाती है तथा पच्चीस हजार रुपये के लगभग विधवाओं, असहायों, अनाथों, वृद्धों और नेत्रहीनों के लिए खर्च होता है। चूंकि यह विकलांग वर्ष है, इसलिए यह निर्णय लिया गया है कि जिला सवाई माधोपुर



# बचपन के दिन...सपनों के दिन!



संजू अभी-अभी अस्पताल से अपने प्यारे छोटे भाई को देखकर लौटा है। उसके मन में वही एक नयी कल्पना जागृत हुई और उसने एक सपना संजोया- वह था डॉक्टर बनने का। लेकिन उसके सपने को पूरा करने की जिम्मेदारी आपकी है। उसकी उच्च शिक्षा ही उसके जीवन की सफलता होगी। आप अभी से इस बारे में सोचिए- बैंक ऑफ इंडिया की अपनी नज़दीकी शाखा में पधारिए। हमारे पास आपकी तथा आपके परिवार की हर ज़रूरत को पूरा करनेवाली कई वचत योजनाएँ हैं। आइए और देश के सबसे बड़े राष्ट्रीयकृत बैंक की मदद से अपने बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बनाइए।

**बैंक ऑफ इंडिया**  
(भारत सरकार का उपकार)

सबसे अच्छा ही हमारी विशेषता है।

CONCEPT-BOI-4452 HIN.

में जिन  
बंग लग  
कमेटी  
है... ज  
से ही  
बाढ़ का  
के गांवों  
क्रिया ग  
फाड़ में  
संध्य  
प्रायना  
वही पू  
शांति श  
उसी को  
'पदीये  
समं भ

जगत्सा  
महावीर  
अतिवीर  
हुमाराव  
सुरनि  
महावीर  
-ज

तरह रा  
बचित  
हने वा  
जगज्ज  
भागर  
स्वामी



में जिन विकलांगों के बनावटी पैर या अन्य अंग लगाने हैं, इनका सभी तरह का भार कमेटी वहन करेगी, अब भी कर रही है... जी हां, विकलांग-समिति के माध्यम से ही। अभी हाल में ही जो विकराल बाढ़ का सामना इस नगर और आसपास के गांवों तथा भारतवर्ष भर में जहां भी किया गया है, इसके लिए चीफ मिनिस्टर फण्ड में पच्चीस हजार रु. दिये गये हैं।

संध्या की गुलाबी आभा में मंत्रों की प्रार्थना सुगंध चारों ओर फैल रही है—वही पूजा, वही महावीर भगवान का शांति श्लोक, जो आते समय सुना था, उसी को जाते समय फिर सुन रही हूं : 'पदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचित्तः समं भान्ति ध्रौव्यव्ययजनिलसन्तोऽन्त-

रहितः

जगत्साक्षी मार्गं प्रकटनपरो भानुखि यो महावीर स्वामी नयन पथगामी भवतु मे अनिवारोद्रेकस्मिभुवनजयी काम सुभटः कुमारवस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः सुखरन्ध्रित्यानन्द प्रशम पद राज्याय स जिनः महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे..'

—जगत के अध्यक्ष विधाता, सूरज की तरह राह दिखाने वाले भगवन्... चित्त-वर्धित सभी को दर्पण की तरह उजास देने वाले प्रभु... त्रिभुवनजयी मुक्ति-सूर्य जगज्जाल से छुड़ाकर सुख देने वाले शांति-सागर... महिमा के आगार महावीर स्वामी आपको शत-शत प्रणाम...



## मुक्ति

महावीर के एक परम श्रद्धालु भक्त का नाम था गौतम। वह महावीर के प्रति अनन्य भाव से समर्पित था। और यह परम समर्पण ही उसकी मुक्ति में बाधा बन गया। उसके बाद महावीर के निकट आने वाले भक्त, मुक्त हो गये किंतु गौतम वहीं का वहीं रहा। उस पर महावीर की इस प्रेमपूर्ण चेतावनी का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता था, 'मेरा मोह छोड़, गौतम ! अपनी मुक्ति की चिंता कर, जिसकी राह में मेरे प्रति मेरी आसक्ति बाधक बनी हुई है।'

एक गांव में भिक्षा मांगते हुए, गौतम को महावीर के निर्वाण का समाचार मिला।

अन्य महावीर-भक्तों से उसने रोते-रोते पूछा, 'अब मुझे कैसे मुक्ति मिलेगी ? जो मुक्ति दिला सकते थे, वे तो चले गये।'

भक्तों ने कहा, 'निर्वाण से पूर्व, महावीर विशेष रूप से तुम्हारे लिए एक संदेश छोड़ गये हैं।'

'संदेश ? कैसा संदेश ?'

'संदेश यह है : सारी नदी पार करके अब तट को क्यों पकड़े हुए है, गौतम ? उसे भी छोड़ दे, तो तू मुक्त हो जायेगा। जिस तट को तू पकड़े हुए है, वह है मेरे, से लगाव। उसे त्याग दे, तो उसी क्षण तू मुक्त है।'





## डॉरिस मेनेजस का मनोविश्लेषक लेख



## मुस्कान



यदि हममें से अधिकांश लोगों ने इस अकाट्य तथ्य पर कभी कोई ध्यान नहीं दिया है, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है, क्योंकि यह अजीब सत्य है कि हमें प्राप्त अनेक उत्तम देनों से हम अवगत भी नहीं हैं। फिर भी यदि हम यह जान सकें कि ईश्वर की सृष्टि में मानव ही एकमात्र प्राणी है जिसे मुस्कान की देन मिली है, तो वह हमें अधिक प्रसन्न और संपन्न अवस्था में पहुंचा देगा।

मनुष्येतर प्राणी अपने विभिन्न जज्बात बेशक जाहिर कर सकते हैं और करते भी हैं। वे मुहब्बत, पहचान, नाराजगी, झुंझलाहट, खुशी और उदासी आदि दिखाते हैं। वे आंसू बहा सकते हैं और अपना गम जाहिर कर सकते हैं। वे अपनी रहम की भावना को नाक पर नाक रगड़कर जाहिर करते हैं। वे खुशी से उछल-कूद सकते हैं। परंतु सीधे दिल से निकलकर चेहरे पर छा जानेवाली मुस्कान रूपी उस एक प्रेम-चिन्ह के जरिये अपने भावों का आदान-प्रदान वे नहीं कर सकते।

वाक्शक्ति भी बेशक मनुष्य मात्र के

लिए प्राप्त देन है। पर जितना ही उसका सदुपयोग होता है, उतना ही उसका दुस्-योग भी होता है। शब्द दिल पर चुभ सकते हैं, चोट पहुंचा सकते हैं, टीका और निंदा कर सकते हैं, झगड़े और कटुता के कारण बन सकते हैं। बात जितनी रचनात्मक और आरामदेह हो सकती है, उतनी ही नाशात्मक और दर्दनाक भी हो सकती है। कठोर वचन से होने वाले तिरस्कार और दर्द दिल को अक्सर इतने गहरे रूप से झकझोर जाते हैं कि कभी भुलाया नहीं जा सकता।

पर मुस्कान इस प्रकार के खतरों से मुक्त है। और इसलिए उसका अंतर्निहित मूल्य वाक्शक्ति से भी बढ़कर है। वह एक विश्वभाषा है, जो व्याकरण, वाक्य रचना, शब्द-भंडार आदि के भेदभावों से मरोड़ी नहीं गयी है। वह एक ऐसी भाषा है जो लचीली है, अति सरल है और जाति, धर्म, वर्ण और राष्ट्रीयता के भेदभावों के बावजूद हर एक के द्वारा समझी जाती है। कभी भी इसे समझने में गलती नहीं होती, हमेशा यह लेन-देन की प्रक्रिया

रूपांतर : मालती पुणतांबेकर



लिये चलती है, इसमें मुहब्बत की गरमी अंतर्निहित है और उसकी जगमगाहट चारों तरफ फैलती है; यह प्रेम-चिन्ह दिल से आविर्भूत हो निकलता है, न कि दिमाग से आदिष्ट होकर।

यदि यह देन मानव-मात्र को दी गयी है, तो क्या यह बिना किसी उद्देश्य या योजना के हो सकता है? क्या यह अनुपम और अमूल्य देन हमें इसलिये दी गयी है कि हम इसे तिरस्कृत करें या जाया करें? अथवा क्या हम अपनी विचार-विकृति के कारण उसका मतलब समझने में नाकाम हुए हैं? या उसकी महत्ता समझने में असमर्थ?

### आश्वासन देने वाली मुस्कान

कई साल हुए, गर्मी में एक भरी दोपहर को एक फ्रेंच महिला बेहद थकी हालत में सकपकायी हुई, रास्ते पर भटक रही थी। स्पष्ट था कि उसे दिशाभूल हुई है और जहां उसकी भाषा बोलने वाला कोई नहीं था, उसे रास्ता मालूम कर लेना नामुमकिन हुआ है। उस रास्ते से मेरी मां जा रही थी। उस महिला को देखते ही वह बात ताड़ गयी। उस पर तरस खाकर मेरी मां आश्वासन देने वाली एक स्निग्ध मुस्कान लिये उसकी ओर बढ़ी। सहसा उस महिला के चेहरे पर आच्छन्न प्रीति जाती रही और एक प्रतिबिम्बात्मक मुस्कान उसके चेहरे पर झलक उठी, जो वयस्वानुभूत तसल्ली की द्योतक थी।

दोनों तरफ से खिंचे एक सुखद मुस्कान

के बंधन में आवद्ध हो दोनों घर आये और भोजन और विश्राम के बाद मेरी मां उसे फ्रेंच नर्स के एक कान्वेंट में ले गयी। वहां उसे उनका सहारा मिला।

जब इस घटना के बारे में मुझे मालूम पड़ा तो मैंने चकित होकर मां से पूछा कि भाषा न जानते हुए भी उस महिला के साथ भावों का आदान-प्रदान कैसे किया? उसका जवाब था— 'शब्दों की कोई जरूरत ही नहीं थी। हम दोनों ही मुस्कान का आशय समझते थे। अपनी मुस्कान से मैंने उसे यह जताया कि मैं एक दोस्त हूँ, जिस पर वह यक़ीन कर सकती है और उसने मुस्कराकर यही बोध कराया कि उसे मुझ पर भरोसा है।'

कुछ साल के बाद वह दुबारा भारत आयी थी। हमारे घर उसका आगमन ही यह स्पष्ट करने वाला था कि मुस्कान से सुशोभित अपनी दोस्त को वह भूली नहीं है। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि मेरी मां अब इस दुनिया में नहीं है, तो सुनने मात्र से उसकी आंखें सजल हो उठीं, वह आग्रह करने लगी कि उसे मेरी मां की कब्र के पास ले जाया जाये। वहां नतमस्तक हो अपनी अश्रु-अंजलि द्वारा उसने मेरी मां के प्रति—जिसने उसमें उत्साह और विश्वास पैदा किया था मौन आदर व्यक्त किया था।

ऐसी शक्ति है मुस्कान की! यदि मेरी मां ने मुस्कान की जगह पर 'बोली' का इस्तेमाल किया होता, तो मैं नहीं कह



# दि इंडियन स्मेल्टिंग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

रजिस्टर्ड कार्यालय :

सालबहादुर शास्त्री मार्गः भांडुप, बंबई-४०० ०७८

केबल : 'लकी' भांडुप

फोन १५८४३८१

१.

नानफेरस यूनिट

सेमिस रोलिंग विभाग :

नानफेरस शीट, स्ट्रिप और फाइल,  
नानफेरस प्लेट और सर्कल

एलाय और कार्स्टिंग विभाग :

एंटीफ्रिक्शन बेयरिंग मेटल्स

गनमेटल्स और ब्रोन्जेस, ब्रेजिंग सोल्डर्स और टिन सोल्डर्स,  
फाइन जिक डाइकार्स्टिंग एलाय्स 'इस्माक ३' अल्युमिनियम  
बेस्ड डाइकार्स्टिंग एलाय्स, ब्रास और ब्रोन्ज राइस साबि  
कोर्ड, फिनिशड कार्स्टिंग रफ और मशीन्ड ।



२.

फेरस यूनिट :

फाउंड्री डिविजन

एस० जी० आयरन और स्पेशल स्टील कार्स्टिंग्स

मेलिएबल आयरन कार्स्टिंग्स

आइ० एस० एस०, बी० एस० एस०, एस० एस० आइ० एस०

के स्पेसिफिकेशन्स तथा ग्राहकों की विशेष आवश्यकता

के अनुसार सप्लाई किये जाते हैं ।

दिनांक



सकती कि उससे उक्त शब्दों की याद उतनी स्पष्ट बनी रहती, जितनी उसके मन पर अंकित उस खामोश मुस्कान का चित्र ! उच्चरित शब्दों की मन पर छाप केवल ध्वनि-संकेतों के अंकन के रूप में होती है, जबकि मुस्कान दृष्टिगोचर वस्तु है और इसलिए मन-पटल पर ज्यादा समय तक बनी रहती है और सुखद स्मृतियों को संकृत कर देती है ।

जब नन्हा बच्चा मुस्काता है

जीवन में बोलने के लिए सीखने से पहले ही हम मुस्कराना सीख जाते हैं । बड़े लोग एक बच्चे को हँसाने के लिए उकसाते और उत्तेजित करते हैं । जब एक नन्हा बच्चा नींद में मुस्कराता है तो हम यह सुखद कल्पना करते हैं कि परियां स्वर्ग के रहस्यों को उसके कानों में फुस-फुसाती हैं । मुस्कान सरलता, सज्जनता, सहृदयता आदि उत्तम गुणों से जुड़ी रहती है । एक चेहरा कितना भी सुन्दर और कलात्मक क्यों न हो, जब तक वह मुस्कान से सुशोभित नहीं होता, वह कठोर और निष्ठुर मालूम पड़ता है । परन्तु एक सामान्य किन्तु स्निग्ध और सौम्य चेहरा भी आकर्षक और तेजोमय लगता है, जब उसकी आकृति एक सुखद सुकोमल मुस्कान से प्रज्वलित हो उठती है । प्रथम उल्लिखित प्रकार का चेहरा कलात्मकता की परिपूर्णता एवं भव्यता लिये हुए हो सकता है, परन्तु एक मधुर मुस्कान ही उसमें सजीवता का सौंदर्य ला सकती है ।

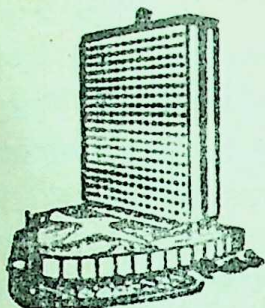
मुस्कान के सिवा चेहरे पर चार चांद लगाने वाला और कोई आभूषण नहीं है ।

एक सरफिरा आदमी मुस्कराता नहीं है । ऐसा व्यक्ति पागल के समान हंस सकता है, दांत दिखा सकता है, शरीर हिला-हिलाकर अट्टहास कर सकता है, पर मुस्कराता नहीं है; क्योंकि मुस्कान एक शांत, संतुष्ट मन की अति स्वाभाविक अभिव्यक्ति है और ऐसी ईश्वरीय देन से मानसिक अस्वस्थता से पीड़ित व्यक्ति वंचित रहता है । यदि हम इतना समझ लें, तो हम यह जान सकेंगे कि हम मुस्कान रूपी देन से कितने धन्य हैं !

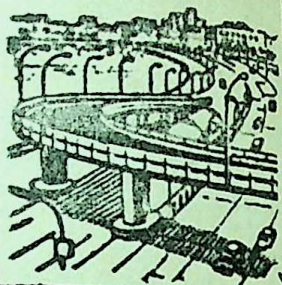
जो बालक मुस्करा नहीं सकता, वह बड़ों पर बड़ा बोझ बनकर रह जाता है । क्योंकि बच्चों के लिए खुशी से मुस्कराना स्वाभाविक और सहज है । उसके न मुस्कराने का कारण कुछ दुःखदायक अनुभव ही हो सकता है तो उसे उदास और ग्रम-शीन बनाये रखता है । मुझे याद है मैंने एक बार तीन साल की एक लड़की को अत्यंत उदास एवं अप्रसन्न मुद्रा में अपनी कक्षा के एक कोने में बैठे हुए देखा था । जब बहुत कोशिश करके उसकी उदासी का सबब जानने में सफल हुई, तो उसने मुझे यही बताया, 'मेरी मां मुझे छोड़कर स्वर्ग सिंघार गयी है, इसलिए मैं मुस्करा नहीं सकती । जब वह वापस चली आयेगी, तो मैं जरूर मुस्कराऊंगी ।' पर जैसे-जैसे वह लड़की अपनी मां को भूलती गयी, वैसे-वैसे वह मुस्कराना भी एकदम भूल



**SKYSCRAPERS**



**FLY-OVERS**



**STADIUMS**



**BRIDGES**



For modern projects

# ANCHOR

## CONCRETE SHUTTERING PLYWOOD

is used  
to cut drastically  
shuttering and centering  
costs.

For details write for our Technical Bulletin



**THE INDIAN PLYWOOD  
MFG. CO. LTD.**

Regd. Office: 2, Waghmare Street, Fort  
Bombay 400001



गयी और एक अमिट उदासी की छाप लिये स्वीत्व में उसने पदार्पण किया।

मुस्कराता हुआ पुलिसवाला, प्रसन्न मुद्रा लिये हुए मरीजों के बीच मंडरानेवाली नर्स, मुस्कान से भूषित पड़ोसी-इन सबके प्रभाव-सींदर्य के बारे में हम सबने सुना है। अपने मन की गहराई में दूसरों के प्रति सहृदयता का अनुभव करने के कारण ही वे मुस्करा सकते हैं। वे यह समझते हैं कि दया के गुण के समान ही मुस्कान भी दुस्तरफा देन है। देने वाले को मुस्कान के लिए कोई खर्च नहीं उठाना पड़ता। पर पाने वाले के लिए अपने अस्तित्व के महत्वपूर्ण होने और नगण्य होने के बीच का भेद एक मुस्कान बता देती है।

एक युवा स्त्री एक गरीब अनाथालय में गुजारे अपने बचपन की याद करते हुए आँखों में आंसू लिये बोली, 'हम लोगों को हर प्रकार की सुविधा दी गयी। शारीरिक अस्तित्व की जरूरतों की पूर्ति की गयी। पर इस बात पर किसी का ध्यान नहीं गया कि हमें भी मुस्कान की जरूरत है। एक मुस्कान से हमें यह एहसास होता कि इस दुनिया में हमारी जरूरत है। पर उसके अभाव में हमें यही लगा कि हमें यहाँ वर्दीशत किया जा रहा है। दूसरों की मुस्कान यही बताती है कि यहाँ हमारा स्वागत है, हमारे अस्तित्व की कोई महत्ता है। पर उसकी कमी यही बोध कराती है कि हम मानव नहीं हैं हम ऐसी चीजें हैं जिनका कोई मूल्य

नहीं है।'

अति सहजता से उस औरत ने उसी बात को व्यक्त किया जिसे समझने में भी अक्सर हम असफल रह जाते हैं। मुस्कान से हम यही स्पष्ट करते हैं कि हम दूसरे की कितनी परवाह करते हैं, उसे कितना चाहते हैं। इसलिए तो हम ऐसे सजीव प्राणियों को देखकर ही मुस्कराते हैं, जो हमारी भावनाओं से प्रभावित हो सकें, न कि निर्जीव को देख जिन पर प्रेम का असर नहीं होता। इसलिए मुस्कान केवल एक मुख-चेष्टा ही नहीं है, वह दूसरों के प्रति मन में उद्भूत गहरे, प्रेम-भरे चिंतन की अर्थपूर्ण मौन अभिव्यक्ति है। दूसरे के भार को हल्का करने के लिए मानव मात्र को प्राप्त श्रेष्ठ विभूति है।

निस्संतान, पर सुसंपन्न एक विधुर कालेज के कुछ गरीब, असहाय विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता दिया करते थे। उन विद्यार्थियों के खिलाफ उनकी एक बहुत बड़ी शिकायत रहती थी। वे कहा करते थे कि उनके दान-पात्र छात्र कालेज के द्वार के पास खड़े रहने वाले एक भिखारी व्यक्ति को भीख तो देते, पर उसके सामने ऐसे रह जाते जैसे मुंह पर ताला लगा दिया गया हो ! लेकिन द्वार पर खड़ा वह अजनबी हमेशा छात्रों को देख तहे दिल से मुस्कराता और परीक्षा में सफलता के लिए उनको शुभ-कामनाएं देता। जब कि वे गर्वभरे दानी अपनी सहायता गंभीर और अमूर्त रूप



# Presenting the latest concept in convenient and economical cooking

**It's a wonder pan for your kitchen!** Coated with the miracle polymer finish the world is raving about: Teflon!

**EASY TO COOK WITH**  
Owing to its non-stick properties, Teflon ensures that sticky ingredients like rice won't stick to the sides of the pan.

**HIGHLY ECONOMICAL**  
As a result of its non-stick surface, Crown Hi-Fri needs very little oil to cook in. A real boon from every viewpoint!

**EASY TO CLEAN**  
As nothing sticks to its surface, you can clean Crown Hi-Fri in a jiffy: with soap and water!

**ACCEPTED THE WORLD OVER**  
The Teflon II Seal-invented and patented by the reputed Du Pont Company of USA, is given only to select international manufacturers, on pure merit. To earn it and to retain it, samples of Teflon-coated products have to be tested initially and then again regularly on Du Pont premises. In India only Crown Hi-Fri has won this coveted Seal of quality: an honour we plan to have permanently.



The only TEFLON coated non-stick fry pan in India awarded the Du Pont Seal of Quality.

**MADE BY EXPERTS**  
A product of Jeeewanlal (1929) Ltd., India's leading manufacturers of aluminium utensils, Crown Hi-Fri is the first of a series of Teflon-coated cookware to come.



Manufactured by:  
**Jeeewanlal (1929) Ltd.**

Liberty Building,  
2nd Floor, New Marine  
Lines, Bombay-400 020.  
Phone : 291156  
Show Room : Kansara  
Chawl, Kalbadevi Road,  
Bombay-400 002.  
Phone : 354860.



से देते। देते समय भी भिखारी के चेहरे की तरफ नज़र उठाकर देखने तक की परवाह नहीं करते थे। वह गरीब अशिक्षित भिखारी उनके प्रति भाईचारे का भाव रखता और ये घमंडी दानी उसे सहायता मांगने वाला उपेक्षणीय व्यक्ति समझकर हिकारत की नज़र से देखते। दोनों तरफ़ के लोगों के मनोभाव को बदलने के लिए एक स्निग्ध शब्द और एक मधुर मुस्कान की ही ज़रूरत थी, लेकिन उसके अभाव में दोनों पक्षों के बीच ऐसा रूखापन ही बना रह सकता था, जिसे कोई आर्थिक क्षमता भी दूर नहीं कर सकती।

### मुस्कान का अदम्य आकर्षण

आज के व्यापार की दुनिया मुस्कान के अंतर्निहित मूल्यों को अच्छी तरह समझ चुकी है। सारी दुनिया में उत्पादक और वस्तु-निर्माता विक्रेता-शक्ति और सेवा के क्षेत्रों में मुस्कान के प्रयोजन से लाभ उठाने लगे हैं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित विज्ञापनों, टेलिविज़न में दंत-मंजन के लिए प्रस्तुत सचित्र विज्ञापनों, बीमा की सुरक्षा, विविध घरेलू चीज़ों के लिए घोषित अपेक्षाकृत कम दाम आदि के विज्ञापनों में मुस्कान का महत्वपूर्ण स्थान है। मुस्कान के आकर्षण के अभाव में ये विज्ञापन अत्यंत नीरस लगेंगे और दर्शनीय भी नहीं रहेंगे। विज्ञापनों में ध्यानाकर्षण का केंद्रबिंदु वही है। व्यापार की दुनिया ने सही रूप में थाह लगायी है कि मुस्कान

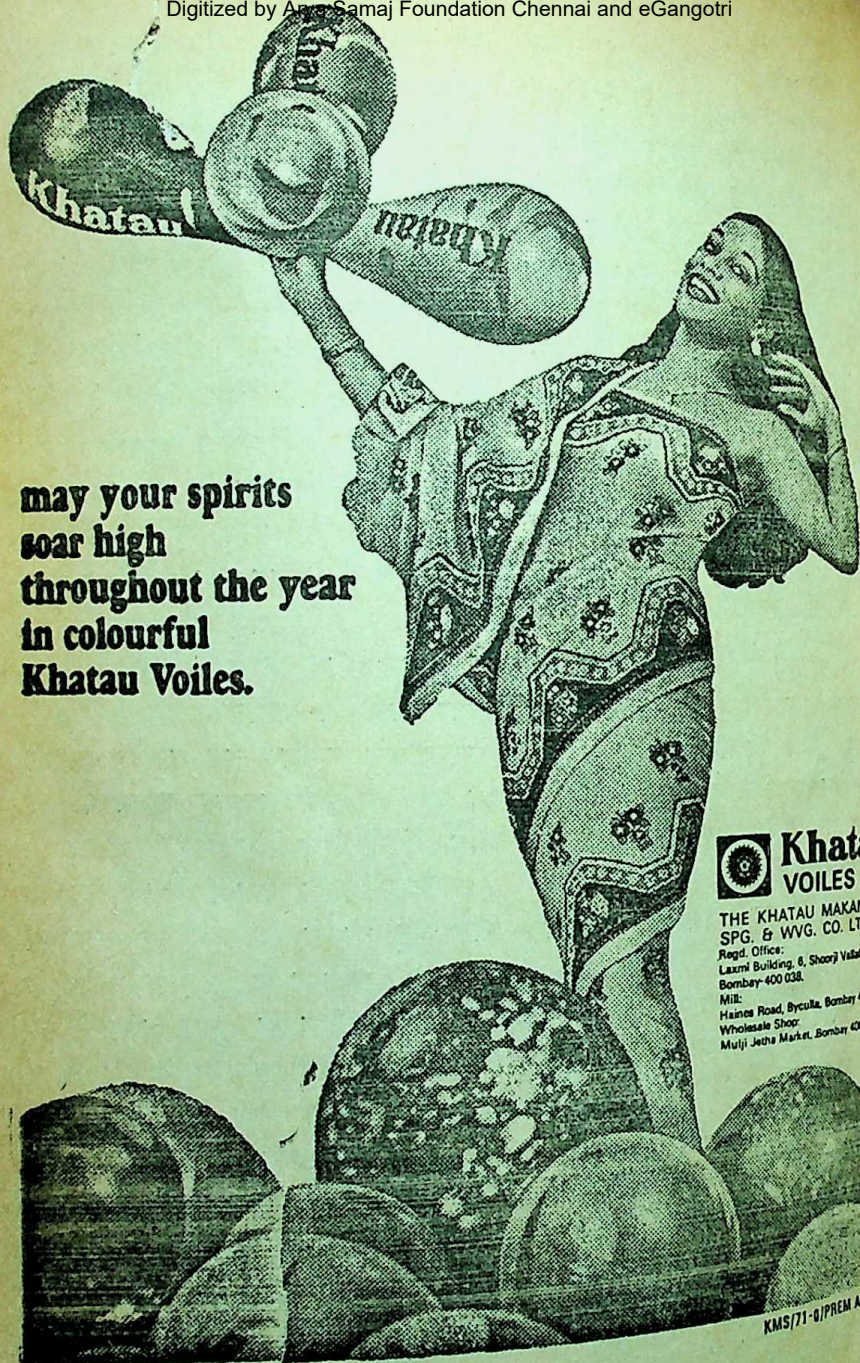
का आकर्षण अदम्य है। मुस्कान अपनी जादू की शक्ति से मन को खींच लेती है, जब कि अपनी तर्क-शक्ति द्वारा ही शब्द दिमाग को प्रश्न करके रह जाते हैं।

जब व्यापार की दुनिया भी आजकल इसकी अदम्य शक्ति और अचूक प्रभाव से इतना लाभ उठाती है, तो हमी लोग इस अद्भुत देन के असीम लाभों से अपने आपको वंचित क्यों रखें? मुस्कान व्यथा-ग्रस्त लोगों के लिए उनके उदास मन को उज्ज्वल बनाने वाली एक प्रकाशमान सूर्य-किरण है। जीवन के संकटों के भार से दबे लोगों के लिए वह इस बात का आश्वासन देती है कि उनका चिंतन करने वाला कोई है। शारीरिक पीड़ा से ग्रस्त और दुखित के लिए वह सारे दुःख-दर्दों को दूर करने में सहायक रामबाण है। जीवन से जूझने वाले के लिए वह आशा की एक टिमटिमाती ज्योति है। दोस्त के लिए वह दोस्ती का एक स्वीकारात्मक चिन्ह है। पड़ोसी के लिए वह मन को बशीभूत करने वाली सुखद जज़्बातों का प्रशस्त प्रवाह है। दुनिया में ऐसा कोई नहीं है, जिसका दिन एक मुस्कान से और अधिक सुखदायक न होता हो और ऐसा कोई नहीं है जिसकी रात शुभचिंतन के इस प्रीति-चिन्ह को प्रदान करने से और शांतिप्रद न होती हो।

### स्निग्ध मुस्कान : एक देन

हर एक को कोई न कोई देन मिली है।





may your spirits  
soar high  
throughout the year  
in colourful  
Khatau Voiles.

**Khatau  
VOILES**

THE KHATAU MAKANJI  
SPG. & WVG. CO. LTD.

Regd. Office:  
Laxmi Building, 8, Shoorji Vallabhdas Marg,  
Bombay-400 038.

Mill:  
Haines Road, Byculla, Bombay 400 071.  
Wholesale Shop:  
Mulji Jetha Market, Bombay 400 002.

KMS/71-0/1PREM ASSOCIATES



फूलों के पास अपने रंग और छटाएं हैं, पेड़ फलों से लदे होते हैं, नदी जीवनदायक पानी लिए कलकल करती हुई बहती है, झरने अंतर-गर्भित अदम्य शक्ति लिये झरझर झरते हैं, पहाड़ों के अंतराल में अमूल्य और कीमती धातुएं छिपी पड़ी हैं और ऊपर प्रशस्त आसमान प्रकाश और गरमी से जाज्वल्यमान हो उठता है। अद्भुत और सुंदर देन हैं सबके सब, फिर भी इनमें से किसी में भी वह खूबी, वह व्यक्तिगत छाप, वह सहजता नहीं है, जो एक स्निग्ध मुस्कान में है।

सुंदरता और रंग आंखों को लुभा

सकते हैं, किंतु केवल मुस्कान ही हृदय का स्पर्श कर सकती है, हृदय को मोह ले सकती है। तब तो इस स्नेह को तुच्छ समझकर इसका उपयोग क्यों तज दें? मुस्कान के बिना, मनुष्य की कृतियां यों यांत्रिक हो जाती हैं, मानो आवश्यकता या आदत से आदिष्ट हैं। पर एक मुस्कान से उसका व्यवहार अतिमानवीय रूप में परिणत हो जाता है, मानो हर कृति भावना प्रधान एवं भावना प्रेरित है! हृदय की इस भाषा को क्यों भूलें और इस सुंदर देन का तिरस्कार करके मुस्कानहीन शुष्क जीवन क्यों जियें?



### वैज्ञानिकों की हाज़िरजवाबी

वैज्ञानिक, वह भी हाज़िरजवाब, बाप शायद विश्वास नहीं कर रहे होंगे। दरअसल अधिकांश लोगों का मत है कि वैज्ञानिक स्वभाव से अत्यंत नीरस होते हैं। लेकिन कुछ वैज्ञानिक ऐसे भी थे जो अपनी हाज़िरजवाबी के लिए बहुत प्रसिद्ध रहे हैं।

प्रस्तुत हैं कुछ संस्मरण :

मूर्खता अंदर जा रही है

आइज़क न्यूटन के फटे कोट के एक छेद की ओर संकेत करते हुए एक व्यक्ति ने कहा, 'न्यूटन साहब, इस छेद से आपकी निधनता झांक रही है।' 'जी नहीं, आपकी मूर्खता अंदर जा रही है।' न्यूटन ने झट उत्तर दिया।

० ० ०

आपको सख्त ज़रूरत है

एक सभा में डार्विन के एक विरोधी ने कहा—'मैं डार्विन का दिमाग बाहर निकाल दूंगा।' 'जी हां, इसकी आपको सख्त ज़रूरत भी है।' डार्विन ने तत्काल जवाब दिया।

० ० ०

पत्नियां दिमाग चाटती रहती हैं

एक बार अलैक्जेंडर ग्राहम बेल ने अपने मित्र से कहा, 'टेलीफोन का आविष्कार करने के बाद से अधिकांश विवाहित पुरुष मुझसे प्रसन्न नहीं हैं।

'दरअसल अब उनकी पत्नियां फोन पर ही उनका दिमाग चाटती रहती हैं!' ग्राहम बेल ने स्पष्ट किया।

-असीम चक्रवर्ती





## (पृष्ठ ७९ का शेषांश)

हैं। ऐसी कुछ प्रथाओं को समाप्त करने में समय लगेगा। फलतः वाजपेयीजी ने सत्याग्रह का विचार त्याग दिया। किन्तु 'क्रान्ति' नामक पत्र निकालकर उन्होंने सामाजिक बुराइयों के खिलाफ प्रचार करना शुरू किया। उस समय म्यूनिस्सिपल बोर्ड के स्कूल में वाजपेयीजी अध्यापक थे। अध्यापक को प्रचारात्मक कार्य करने का अधिकार नहीं है, यह कहकर उन्हें नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया। नौकरी छूटी तो सामाजिक कार्यों के लिए समय का अभाव न रहा। समय मिला तो काम करने की प्रवृत्ति और अधिक बलवती हुई। प्रचार के लिए प्रेस खरीदा और छोटे-मोटे पर्चे छापकर प्रचार शुरू किया। लेकिन प्रेस भी बेच देना पड़ा क्योंकि प्रेस चलाने का उन्हें कोई अनुभव न था। संक्षेप में, कहने का तात्पर्य यह है कि इस वैयाकरण मार्तण्ड को जीवन में कितने झोंके-झकोरे, कितने आंधी-तूफान झेलने पड़े वे सब बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध की कहानी कहते हैं।

**अध्यापक वाजपेयीजी**

वाजपेयीजी कहा करते थे कि मेरा जन्म भाषा-संस्कार और भाव-संस्कार के लिए हुआ है। इन दोनों कार्यों के लिए साधन है अध्यापन। ग्रंथ प्रणयन से उतना भाषा-संस्कार नहीं होता जितना प्रत्यक्षतः विद्यार्थियों को पढ़ाकर, समझाकर भाषा ज्ञान दिया जा सकता है। इसी प्रकार

विद्यार्थियों के भाव एवं विचार परिष्कृत करने के लिए भी अध्यापन एक अच्छा साधन है। अपने जीवन में वाजपेयीजी ने सात-आठ स्थानों पर अध्यापन किया किन्तु हरिद्वार ही उनका प्रमुख स्थान रहा। हरिद्वार म्यूनिस्सिपल बोर्ड के मिडिल स्कूल में वे अध्यापक हुए थे। दो बार स्कूल छोड़ना पड़ा। राष्ट्रीय कार्यों ने नौकरी में व्यवधान डाला। संस्कृत अध्यापन की उनकी अपनी सुगम प्रणाली थी। पुरानी रटन्त शैली के वे समर्थक नहीं थे। बिना समझे घोट-रटकर जो पढ़ा-सीखा जाता है वह कंठ से नीचे नहीं जाता। हृदय में नहीं उतरता। संस्कृत के पठन-पाठन की पुरातन पद्धति के विषय में उन्होंने प्रारंभ से ही अपना मत स्पष्ट कहना शुरू कर दिया था। अध्यापक के रूप में वाजपेयीजी कठोर अनुशासन के मानने वाले थे। छात्रों में समबुद्धि रखना और समभाव से सबको देखना उनका स्वभाव था। स्कूल में जिन महन्तों के बालक पढ़ते थे उन पर अनुशासन का अंकुश लगाना वाजपेयीजी की ही सामर्थ्य थी। विद्यालय में सब विद्यार्थी हैं, न कोई मठाधीश है और न महन्त। अध्यापक ही सर्वोच्च है। शासक है, उसकी आज्ञा ही सर्वोच्च है।

वाजपेयीजी के शील-स्वभाव की जिस रूप में विद्वत्समाज में चर्चा होती रही है उसमें उनका वैदुष्य तो नहीं छिपा किन्तु विद्रोही रूप अतिरंजित होकर उभर



उससे सारे दुःख छीन लेता और वह नयी योजनाओं में लग जाता। सन १७५४ में थिरेसा के साथ रूसो ने जेनेवा (अपने जन्मस्थान) की यात्रा की। रास्ते में वे श्रीमती वारेन्स से मिले। वह बहुत गरीबी में जी रही थी। फिर भी उसने अपनी हीरे की अंगूठी थिरेसा की अंगुली में पहना दी। उन्होंने उससे साथ चलने

आया। यदि उनके विद्रोही स्वभाव का विश्लेषण किया जाय तो वाजपेयीजी स्पष्टवादी, सत्यवादी, अहंकारी होने के साथ निस्पृह, त्यागी, बलिदानी, स्वदेशाभिमानी, राष्ट्रवादी और फक्कड़ ही सिद्ध होंगे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की एक कविता को उन्होंने अपने स्वभाव में पूरी तरह ढाल लिया था—‘आपु को न माने ताके बापु को न मानिय।’ बेहद गरीबी में रहते हुए भी एक पल में लगी लगाई नौकरी को ठुकरा देता उनका स्वभाव था। वाजपेयीजी तेजस्वी ब्राह्मण थे। निर्धन पिता की निर्धन प्रज्ञा होने पर भी विद्या धन का भंडार उनके पास था। किसान, मजदूर, चरवाहा, फरीवाला, पुजारी, पंडित, अध्यापक, साहित्यकार, व्याकरण, भाषा वैज्ञानिक, समाज सुधारक आदि अनेक रूपों में हम उन्हें देख सकते हैं किन्तु विद्रोह और क्रांति की चिनगारी सदा उनके साथ रही। वाजपेयीजी की चिनगारी यदि थोड़ी देर के लिए उत्ताप पैदा करती थी तो वह प्रकाश भी देती थी। उनका विद्रोही स्वभाव देश

के लिए कहा, परंतु श्रीमती वारेन्स तैयार नहीं हुई। जेनेवा में पहुंचकर रूसो ने कैथोलिक पंथ छोड़कर पुनः प्रोटेस्टेंट मत स्वीकार कर लिया। सन १७५६ में वे पेरिस वापस पहुंचे। सन १७५७ से पेरिस के नजदीक मोन्टमोरेन्सी में रहने चले गये। वहीं रहकर रूसो ने अपने दो प्रसिद्ध ग्रंथों—शिक्षा को नवीन दिशा

को शुद्ध आचरण वाला, सात्विक व्यवहार वाला बनाना चाहता था। उन्होंने भाषा के क्षेत्र में अप्रतिम परिष्कार किया, हिन्दी के पाणिनि बनकर व्याकरण का मार्ग प्रशस्त किया, समाज सुधार के लिए कठोर से कठोर दंड सहा, देश की पराधीनता का अन्त करने के लिए स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लिया। लेकिन स्वयं अपने लिए मकान तो क्या एक बरामदा—एक छप्पर भी न बना सके। उन्होंने कभी चाहा ही नहीं कि मेरा अपना कोई भव्य भवन हो। गंगा के किनारे रहने में सन्तोष करने वाले, गंगाजल पीकर अमृतरस का आनन्द उठाने वाले वाजपेयीजी की यशःकाया तो उनकी कृतियों से सदा अमर रहेगी। भौतिक विभूति की न तो उन्होंने कभी आकांक्षा की और न उसे समेटने-संग्रह करने का कभी उपक्रम ही किया। जब तक संसार में शब्द हैं, शब्द का अनुशासन है, वाजपेयीजी का ‘हिन्दी शब्दानुशासन’ ग्रंथ उनकी यशःपताका फहराता रहेगा।

—राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७

हिंदी डाइजेस्ट



देने वाले ग्रंथ 'इमिली' तथा फ्रांस में राज्यक्रांति को 'भड़कानेवाली बाइबिल 'दि सोशल कंक्ट'—को रचा। ये दोनों ग्रंथ सन १७६२ में प्रकाशित हुए और शुरूआत हुई रूसो के विकट दुर्भाग्य की।

फ्रांस की सरकार ने रूसो को देश-निकाला दे दिया। जेनेवा में प्रवेश की उसके लिए बंदी कर दी गयी। सरकारों तथा धर्माध्यक्षों ने उसकी पुस्तकों की होली जलवायी। अब थिरेसा को साथ रखना भी मुश्किल था, उससे मुसीबतें और बढ़ जातीं। थिरेसा लगातार रो रही थी, वह ऐसे समय उसे अकेला छोड़ना नहीं चाहती थी।

'मेरी बच्ची, धीरज रखो, ऐसे समय साहस से काम लो।' और, थिरेसा ने उसे पेरिस छोड़कर अकेले चले जाने की स्वीकृति दे दी। रूसो बर्न गया, फिर प्रशिया में शरण ली। इसी बीच उसे श्रीमती वारेन्स की मृत्यु का समाचार मिला। सन १७६५ तक प्रशिया में रहने के बाद ब्रिटिश दार्शनिक डेविड ह्यूम के निमंत्रण पर लंदन पहुंचा। वहां कोई भय नहीं था। थिरेसा भी फ्रांस से वहां आ गयी। परंतु इस चार साल की एकाकी जिंदगी ने उसके मानसिक संतुलन को पूरी तरह बिगाड़ दिया था। कहते हैं, थिरेसा को देखते ही वह भभक पड़ा।

'मेरी थिरेसा, मैंने तेरे बच्चों को गंवाया है... थिरेसा मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है... मैं तब कर भी क्या सकता था

मेरी बच्ची... ?

अपनी संतान को अनायालय में सुपुर्न करने के दुःख ने उसे अब अर्ध-विक्षिप्त कर दिया था। थिरेसा की सेवा और सहानुभूति ने उसे फिर आश्वस्त किया, परंतु वह पूरी तरह स्वस्थ कभी न हो सका। सन १७६७ में थिरेसा के साथ पुनः फ्रांस लौट आया। शायद थिरेसा को खेल की तरह रखना भी उसकी विक्षिप्ति का कारण हो। जब उसका मस्तिष्क थोड़ा शांत हुआ, सन १७६८ में, २३ वर्ष साथ रहने के बाद उसने थिरेसा के साथ विवाह रचा। चर्च पर दोनों की विधिवत् शादी हुई। सन १७७० में वे पुनः पेरिस लौट आये।

इस बीच रूसो ने खूब लिखा। 'कन्फे-शन्स' ग्रंथ इसी बीच रचा गया है, उसमें सब कुछ ईमानदारी के साथ कह डाला है।

'मेरा कर्तव्य है कि सच-सच लिख दूं। पाठक मेरे साथ न्याय करे, यह उसका कर्तव्य है।'

मूत्राशय के रोग से पीड़ित, मन से विक्षिप्त तथा संतान के प्रति कर्तव्यहीनता से उत्पन्न आत्मपीड़ा से रूसो २ जुलाई, १७७८ को ६६ वर्ष की अवस्था में पागल होकर मर गया। मरते समय उसका सिर थिरेसा की गोद में था। थिरेसा में 'देवदूतिका' का हृदय देखनेवाला रूसो शायद इससे अधिक शांति से मृत्यु नहीं पा सकता था। —अकाडमी, फुलपाइ,

विरार, ४०१३०३, जिला थाना, महाराष्ट्र

मु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००७ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवैकटेश्वर देस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४०० ००४ म मुद्रित।



# जेनिथ स्टील पाइप्स एंड इंडस्ट्रीज लि.

111281

उत्तम दर्जे के निर्माता

- \* स्टील पाइप्स
- \* रोलस एंड शिअर्स
- \* स्पेशल स्टील्स
- \* केमिकल्स

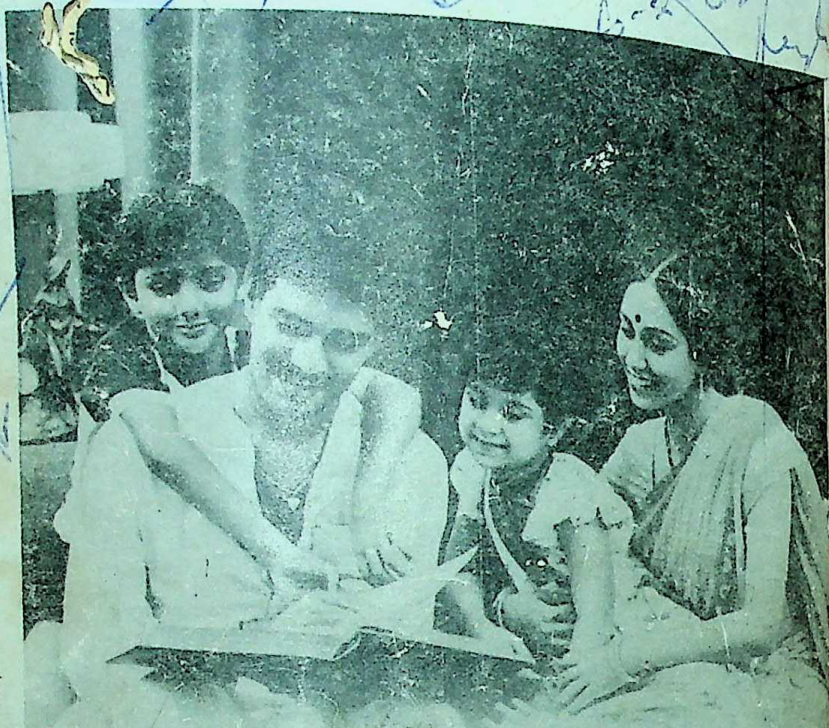
प्रतिष्ठा का आधार है क्वालिटी की  
वचनबद्धता

रजिस्टर्ड कार्यालय : मोती महल  
१९५, चर्चगेट रेक्लेमेशन  
बम्बई-४०० ०२०

टेली. : २२११२२

टेलेक्स : ०११-२४५८ और ०११-६३३४





## बहुत पहले, उसने एक सपना देखा था...

... एक प्यारी पत्नी का, प्रसन्न, स्वस्थ बच्चों का, सुख, आराम, प्यार और सुरक्षा से भरपूर एक घर का।

लेकिन जो तनख्वाह उसे मिलती थी, उसमें यह सब कुछ कभी साकार न होनेवाला एक सपना तब तक लगता था, जब तक कि स्टेट बैंक ने उसके सपनों को साकार बनाने के लिये अपनी योजनाओं से उसकी सहायता नहीं की।

उसने और स्टेट बैंक ने साथ मिलकर कुछ ऐसी योजनाएँ चुनीं, जो उसके इन सपनों को असलियत में बदल सकती थीं।

उसे काफी मेहनत करनी पड़ी।

काफी बचत करनी पड़ी।

अब वह खुद को सुरक्षित अनुभव

करता है। सुरक्षा की यह अनुभूति अपना एक घर होने से होती है। इस जानकारी से होती है कि आपके आज और कल के लिए पूरी व्यवस्था है। और यह कि आपके बच्चों का भविष्य सुरक्षित है।

स्टेट बैंक के पास आप सभी के सपनों को साकार करने के लिये योजनाएँ हैं— जैसे पुनर्निवेश योजना, आवर्ती जमा योजना, सावधि जमा, निरंतर पेंशन योजना, बचत खाता, नकद प्रमाणपत्र, नाबालिग खाता।



**स्टेट बैंक**  
सुरक्षा: एक सुखद अनुभूति

CHAITRA-SBI-627 H



था...

भूति  
ह.  
आपके

पके

के  
लिये

नमा  
र पेशन

क

अनुभूति

RA-SBI-627 H



Compiled  
1999-2000







